ब्रह्मवैवर्तपुराणम्

पूर्वभागः
(ब्रह्मखण्ड, प्रकृतिखण्ड, गणपतिखण्ड)
[हिन्दी अनुवाद सहित]

⊙

अनुवादक एवं सम्पादक
तारिणीश झा
व्याकरणवेदान्ताचार्य

⊙

अनुवादक
स्वर्गीय पण्डित बाबूराम उपाध्याय

शक १९०३ : सन् १९८१

हिन्दी साहित्य सम्मेलन • प्रयाग

अनुक्रम

भूमिका

पुराण की महनीयता

पुराण भारतीय साहित्य का गौरव-ग्रन्थ है। बिना पुराण के अध्ययन के कोई भी व्यक्ति विचक्षण नहीं माना जा सकता है—

यो विद्याच्चतुरो वेदान्सांगोपनिषदो द्विजः।
न चेत्पुराणं संविद्यान्नैव स स्याद्विचक्षणः॥

—ब्रह्माण्डपुराण, अ० १

वेद तो हमारे सनातन धर्म के सर्वप्रामाणिक तथा प्राचीनतम ग्रन्थ हैं ही, परन्तु वेदार्थ का उपबृंहण करने से पुराण 'वेद का पूरक' माना जाता है। 'पुराण' शब्द की व्युत्पत्तियों में 'पूरणात् पुराणम्' भी अन्यतम व्युत्पत्ति है, जिसका तात्पर्य यही है कि वेदार्थ के पूरण करने के कारण ही इस ग्रन्थ को पुराण' नामकरण प्राप्त हुआ। इसी व्युत्पत्ति के आधार पर जीवगोस्वामी वेदतुल्य पुराण को भी अपौरुषेय मानते हैं। उनका तर्क यह है कि पूर्ति करनेवाला पदार्थ भी मूल पदार्थ से सर्वथा समानता रखता है। पूरक पदार्थ में भिन्नता होने के कारण मूल पदार्थ का पूरण क्या यथार्थतः कभी हो सकता है? स्वर्णाभूषण की पूर्ति क्या जतु (लाह) कभी कर सकता है? सुवर्ण के आभूषणों में यदि कहीं च्युति हो जाये, तो उसकी पूर्ति सुवर्ण से ही की जा सकती है, लाह से नहीं। पूरक पदार्थ की मूल पदार्थ से एकजातीयता अनिवार्य है। इस तर्क का आश्रय लेकर इतनी दूर तक न जाने पर भी इतना तो मानना ही पड़ेगा कि वेदार्थ का उपबृंहण पुराण सर्वथा करता है। व्यास जी का यह प्रख्यात श्लोक इसी तथ्य की ओर संकेत करता है—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरेदिति॥

—महाभारत, आदिपर्व

पुराणार्थ की वेदार्थ से महनीयता मानने में जीवगोस्वामी ने अपने 'तत्त्वसन्दर्भ' के उपोद्घात में तीन कारणों को उपन्यस्त किया है—(१) वैदिक साहित्य की दुष्पारता (वेद का साहित्य इतना विशाल है कि उसका पार पाना एकान्ततः कठिन है), (२) वेदार्थ की दुरधिगमता (वेद की भाषा के सर्वाधिक प्राचीन होने के कारण उसके अर्थ को समझना नितान्त कठिन है), (३) वेदार्थ के निर्णय में मुनियों का परस्पर विरोध (उदाहरणार्थ 'वृत्र' के स्वरूप का निर्णय आज भी यथार्थरूपेण नहीं हो पाया। इसीलिए महर्षि यास्क ने अपने 'निरुक्त' ग्रन्थ में नाना सम्प्रदायों का उल्लेख करके निर्णय के प्रश्न को खुला ही छोड़ दिया है), इन कारणों से उत्पन्न दुरूहता पुराण में कहीं भी नहीं है। पुराण न तो दुष्पार है, न उसका अर्थ दुरधिगम है और न उसके अर्थ-निर्णय में 'मुनीनां च मतिभ्रमः' वाली बात है। पुराण तथा वेद की यह शैली और भाषागत वैभिन्य को मूलतः समझ लेना

नितान्त आवश्यक है। वेद की भाषा है प्राचीन तथा दुरूह, वेद की शैली है रूपकमयी तथा प्रतीकात्मक। इसके ठीक विपरीत पुराण की भाषा व्यावहारिक तथा सरल और शैली रोचक तथा आख्यानमयी है। इसीलिए जनता के हृदय तक धर्म के तत्त्व को सुबोध भाषा के द्वारा पहुँचा देने में पुराण का प्रतिस्पर्धी कोई साहित्य नहीं है।

वेद में सूत्र रूप में जो बातें कही गयी हैं, उन्हीं की व्याख्या पुराणों में भाष्य रूप से की गयी है। यह बात पुराण-रचयिता व्यास जी ने स्वयं कही है—'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्' अर्थात् इतिहास (रामायण-महाभारत) और पुराण की सहायता से वेद का अर्थ समझना चाहिए। यही कारण है कि वेद में जिन बातों की सूचना मात्र है, पुराण में उपाख्यान आदि के द्वारा उन्हीं का विस्तार है। जैसे ऋग्वेद के **'इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्'** मन्त्र में विष्णु के अवतार की सूचनामात्र है, पर वामन पुराण में त्रिविक्रम नामक वामनावतार के प्रसंग में तथा अन्य पुराणों में भी विष्णु के वामनावतार का विस्तार से वर्णन किया गया है। इसी तरह अथर्ववेद (क० ८० सू० प्र० ३।४।५) में राजा पृथु का पृथ्वीदोहन संक्षेप में वर्णित है, पर श्रीमद्भागवत में उसी का विस्तृत रूप से वर्णन है।

पुराण में जितनी सरलता से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप चतुर्वर्ग की सिद्धि का साधन मिलेगा उतना अन्यत्र नहीं है। १८ पुराणों में परोपकार को सब धर्मों का सारभूत पुण्य बताया गया है और परपीड़ा को महापाप। यह पाप-पुण्य की परिभाषा मानवता को कितना सुन्दर और मौलिक आचरण बता रही है।

पुराणों में सत्यान्वेषण करने की दृष्टि से, सत्यवादी हरिश्चन्द्र आदि के उपाख्यान से ज्ञात होता है कि उन्होंने सत्य की मूल्यवत्ता को कितना आत्मसात् किया था। सती अनसूया, सीता, सावित्री, सुकन्या आदि देवियों ने अपनी निष्ठा और सत्य से अलौकिक चमत्कार की सिद्धि प्राप्त की थी। भगवान् राम की जीवनचर्या से उनके चरित्र की विशेषता और मर्यादा-पालन की मर्यादापूर्ण एवं हृदयग्राही शिक्षा मिलती है। राम ने जनमत का सम्मान कर अपनी धर्मपत्नी सती सीता को छोड़ दिया था। पैतृक अनुशासन और आज्ञा का आदर्श स्थिर करने के लिए राज्य का भी त्याग किया एवं अत्याचार का शमन करने के लिए एक स्वेच्छाचारी अधिनायक का विध्वंस किया। श्रीराम के चरित्र में जो आदर्श है तथा जिस उच्च भूमिका पर समाज के जीवन का नैतिक, सामाजिक, चारित्रिक, धार्मिक, व्यावहारिक, आध्यात्मिक और आधिभौतिक स्तर प्रतिष्ठित करने का अद्वितीय लक्ष्य है, उसका दर्शन अन्यत्र दुर्लभ है। रामराज्य के सम्बन्ध में व्यास जी ने लिखा है—'न पुत्रमरणं केचिद्रामे राज्यं प्रशासति।' इसी बात को महर्षि वाल्मीकि ने इस प्रकार लिखा है—

न पुत्रमरणं केचिद्द्रक्ष्यन्ति पुरुषाः क्वचित्।
नार्यश्चाविधवा नित्यं भविष्यन्ति पतिव्रताः ॥

—वाल्मीकिरामायण

अर्थात् राम के राज्य में कोई पुरुष पुत्र की मृत्यु नहीं देखता था, कोई स्त्री विधवा नहीं होती थी और सभी पतिव्रता होती थीं।

पुण्य शासन का यही आदर्श है। क्या राम के शासन के अतिरिक्त संसार के किसी भी शासन का यह आदर्श मिलता है?

इसी प्रकार मार्कण्डेय मुनि के जीवन से दीर्घायु तथा दधीचि, शिवि आदि के चरित्र से त्याग आदि का आदर्श पुराणों के द्वारा ही मिलता है। पुराणों में ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, श्रद्धा, विश्वास, यज्ञ, दान, तप, संयम, यम, नियम, सेवा, भूत-दया, वर्णधर्म, आश्रमधर्म, राजधर्म, मानवधर्म, व्यक्तिधर्म, स्त्री-धर्म, सदाचार और नाना श्रेणियों के पुरुषों के विभिन्न कल्याणकारी उपदेश सुन्दर, सरल और उपादेय भाषा में लिखे गये हैं। एतदतिरिक्त पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व, प्रकृति-विकृति, भूगोल, खगोल, ऋषिवंश तथा राजवंश का वर्णन और स्थावरजंगम सृष्टि का बहुत सुन्दर रीति से सूक्ष्म विवेचन किया गया है। कोश, दर्शन, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष, निरुक्त, शिक्षा, कला, आयुर्वेद, गन्धर्ववेद, स्थापत्यवेद, राजनीति, समाजनीति, योग, तन्त्र आदि शास्त्रों का भी परिज्ञान हमें इनसे प्राप्त होता है। आध्यात्मिक एवं आधिदैविक विषयों के अतिरिक्त आधिभौतिकवाद की भी प्रचुर सामग्री पुराणों में पायी जाती है। इन्हीं विशेषताओं के कारण स्वयं नारदीयपुराण (२, २४, १७) का कथन है––

वेदार्थादधिकं मन्ये पुराणार्थं वरानने।
वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणे नात्र संशयः॥

अर्थात् वेदों से भी पुराणों का अधिक महत्त्व है, क्योंकि सभी वेद पुराणों में ही प्रतिष्ठित हैं।

पुराणों का आविर्भाव

महर्षि वात्स्यायन ने अपने न्यायदर्शन भाष्य में लिखा है कि वेदों और पुराणों का आविर्भावकाल समान ही है। जैसे वेद अपौरुषेय हैं; गौतम, वसिष्ठ, अत्रि, कश्यप, भरद्वाज, वामदेव आदि ऋषि वेद-मन्त्रों के द्रष्टा मात्र हैं कर्ता नहीं, वैसे ही पुराणों की मौलिक सामग्री का कर्ता कोई भी नहीं है; किन्तु वेद-प्रतिपादित पुराणों के स्मर्ता ब्रह्मदेव हैं और वक्ता अनेक ऋषि हैं। तात्पर्य यह है कि जो वेद के द्रष्टा हैं वे ही पुराणों के स्मर्ता एवं वक्ता हैं। जिस प्रकार वेद का आरम्भ ब्रह्मा से है, उसी प्रकार पुराणों का आरम्भ भी ब्रह्मा से ही हुआ है। विशेषता इतनी है कि मन्त्रोपदेश से पूर्व विनियोग आवश्यक है तथा विनियोग की पूर्णता के लिए ऋषि, देवता, छन्द तथा चरित्र का ज्ञान भी अत्यावश्यक है। अतः पहले पुराणों को जान लेने पर ही मन्त्रोपदेश सफल हो सकता है, अन्यथा नहीं। इसी अभिप्राय से पद्मपुराण के सृष्टिखण्ड के अध्याय १०४ में सिद्ध किया गया है कि सर्वप्रथम ब्रह्मा के मुख से पुराणों का ही स्मरण हुआ, पश्चात् उनके मुख से वेदमन्त्र निकले––

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः॥

इस सम्बन्ध में, अपने समय के अद्वितीय विद्वान् विद्यावाचस्पति मधुसूदन ओझा का अभिमत है कि मन्त्रब्राह्मणात्मक वेद-ग्रन्थों के आविर्भाव से पहले या उसके समकाल ही ब्रह्माण्डपुराण नामक वेदविशेष था, जिसमें सृष्टि और प्रलय का निरूपण था। इसीलिए शतपथ ब्राह्मण के **'ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वांगिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानीति'** वाक्य में 'पुराण' शब्द का उल्लेख मिलता है। मत्स्यपुराण के निम्नलिखित श्लोक भी इस बात को पुष्ट करते हैं––

पुराणमेकमेवासीत्तदा कल्पान्तरेऽनघ।
त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम्॥१॥

कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य ततो नृप।
तदष्टादशधा कृत्वा भूलोकेऽस्मिन् प्रकाश्यते ॥२॥

अर्थात् हे निष्पाप ! कल्पान्तर में एक ही पुराण था, जो धर्म, अर्थ और काम का साधक तथा सौ करोड़ श्लोकों में फैला हुआ (रचित) था। तब हे राजन् ! समय बीतने पर उस विस्तृत पुराण का ग्रहण करना असंभव देखकर उसे आठ भागों में विभक्त करके इस भूलोक में प्रकाशित किया।

पद्मपुराण एवं बृहन्नारदीयपुराण में भी इस तरह के श्लोक पाये जाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि पहले के प्रसिद्ध पुराण ग्रन्थ के आधार पर ही अठारह पुराणों की उत्पत्ति हुई है। उसी आदिम ब्रह्माण्डपुराण से मन्त्रार्थोपयोगी आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक उपाख्यानों को लेकर महर्षियों ने ब्राह्मण-ग्रन्थों में सन्निविष्ट कर दिया। इसीलिए ऐतरेय ब्राह्मण के निम्नलिखित मन्त्र में सिद्ध आख्यानों के वक्ताओं का ही प्रतिपादन किया गया है--

सोमो वै राजाऽमुष्मिन् लोके आसीदत देवाश्च ऋषयश्चाभ्यध्यायन्—कथमयमस्मान् सोमो राजा गच्छेदिति, तेऽब्रुवन् छन्दांसि श्रूयां न इमं सोमं राजानमाहरतेति, तथेति, ते सुपर्णा भूत्वोदपतन् ते यत् सुपर्णा भूत्वोदपतन् तदेतत् सौपर्णमिति आख्यानविद आचक्षते।

यद्यपि ब्राह्मण ग्रन्थों में महर्षियों ने ही आख्यानों को कहा है, किन्तु वे आख्यान ब्राह्मणग्रन्थकर्ता महर्षियों द्वारा प्रणीत नहीं हैं, क्योंकि मन्त्रार्थ के उपपादन में उन आख्यानों का उपादान होने से उन्हें मन्त्र-रचना के बाद की कल्पना का विषय नहीं माना जा सकता। इसलिए ब्रह्मा द्वारा प्रस्तुत चिरन्तन ब्रह्माण्डपुराण से ही ये आख्यान संकलित किये गये हैं, ऐसा मानना चाहिए। ब्राह्मणग्रन्थों में उल्लिखित पुराणार्थ—आख्यानों को ब्रह्मकृत मानकर ही पद्मपुराण के सृष्टिखण्ड में कहा गया है—

सूतेनानुक्रमेणेदं पुराणं सम्प्रकाशितम्।
ब्राह्मणेषु पुरा यच्च ब्रह्मणोक्तं सविस्तरम् ॥

इन ब्राह्मण-ग्रन्थों में प्रायः सभी विद्याओं का उल्लेख है, किन्तु वे क्रमबद्धता से रहित सूत्ररूप में अस्पष्ट हैं। अतएव उन्हें बुद्धिग्राह्य बनाने के लिए विशिष्ट बुद्धिशाली महर्षियों ने अपनी प्रतिभा के बल पर उन ब्राह्मण-ग्रन्थों से उन विद्याओं को अलग करके युक्ति-प्रयुक्ति और सिद्धि के द्वारा विशद करके लोक-कल्याणार्थ प्रसारित किया। जैसे कपिल और पतञ्जलि आदि ने सांख्य और योग को, वात्स्यायन आदि ने कामसूत्र को, मनु आदि ने धर्मसूत्र को, धन्वन्तरि आदि ने आयुर्वेद को, यास्क आदि ने निरुक्त को और इन्द्र, पाणिनि आदि ने व्याकरण को प्रवर्तित किया। इसी प्रकार वसिष्ठ के प्रपौत्र शक्ति के पौत्र और पराशर के पुत्र सत्यवती के गर्भ से उत्पन्न भगवान् कृष्णद्वैपायन ने लोकोपकार के लिए समस्त ब्राह्मण-ग्रन्थों से सभी उपाख्यानों एवं गाथाओं का संकलन करके कथा-प्रसंग में आयी हुई कल्पशुद्धियों को भी ठीक-ठीक जोड़कर लौकिक आख्यानों से मिश्रित तथा संगति-बद्ध करके पूर्वोक्त वेदरूप ब्रह्माण्डपुराण में कहे गये जगत्सृष्टिप्रलय रूप पदार्थों को आख्यान,[1] उपाख्यान,[2] गाथा[3]

---

१. स्वयं देखे गये विषयों का वर्णन।

२. कर्ण-परम्परा द्वारा सुने गये विषयों का वर्णन।

३. पितरगण, परलोक अथवा अन्यान्य विषयों के गीत व अनुश्रुतियाँ।

और कल्पशुद्धि[1] से गुम्फित करके अठारह खण्डों में विभक्त एक पुराण-संहिता का निर्माण किया। उसे पुराण-संहिता इसलिए कहते हैं कि उसमें पुराण पद से अभिहित तथा ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में उल्लिखित विश्व-सृष्टि-विद्याओं का एक जगह संग्रह करके समाहार किया गया है। फिर कृष्णद्वैपायन ने अपने शिष्य सूतोत्पन्न लोमहर्षण को वह संहिता पढ़ायी। लोमहर्षण ने भी सम्पूर्ण संहिता को पढ़कर १. सर्ग (सृष्टि), २. प्रतिसर्ग (प्रलय), ३. वंश (देवताओं एवं पितरों की वंशावली), ४. मन्वन्तर (किस मनु का कब तक अधिकार रहता है), तथा ५. वंशानुचरित (सूर्य, चन्द्र प्रभृति राजवंशों में उत्पन्न होनेवाले राजाओं के संक्षिप्त वर्णन)—इन पाँच विषयों में विभक्त करके एक लोमहर्षणी नाम की संहिता बनायी। उन्हें अपने छह शिष्यों—१. सुमति, २. अग्निवर्चस्, ३. मित्रयु, ४. सुशर्मा, ५. अकृतव्रण और ६. सोमदत्ति को पढ़ा दिया। ये ही छह व्यक्ति गोत्र-नाम के क्रम से १. आत्रेय, २. भारद्वाज, ३. वसिष्ठ, ४. शांशपायन, ५. काश्यप और ६. सावर्णि कहे जाते हैं। इन छहों ने भी पूर्वोक्त संहिताद्वय के आधार पर स्वेच्छानुसार क्रम रखकर छह संहिताओं का निर्माण किया। उन छहों संहिताओं में जिज्ञासा, आख्यान, संवाद एवं प्रवृत्ति के अनुरोध से प्रसंगतः संक्षिप्त और विस्तृत अनेक कथानक जोड़ दिये गये। जिससे उनके आकारों में भिन्नता आ गयी; पर सर्ग, प्रतिसर्ग आदि सामान्य धर्म उनमें बराबर ही बने रहे। इस प्रकार पुराणों की आठ संहिताएँ बन गयीं, यह किन्हीं आचार्यों का मत है। वैसे वायुपुराण और विष्णुपुराण के मत से चार ही संहिताएँ हैं—१. लोमहर्षिणिका, काश्यपिका, सावर्णिका और शांशपायनिका। इन चार संहिताओं के आधार पर ही वेदव्यास ने ब्रह्मपुराण आदि प्रसिद्ध पुराणों की रचना की और उसमें उग्रश्रवा प्रभृति सूतों ने संवृद्धि की।

आगे चलकर उन चारों संहिताओं में उल्लिखित कथाओं में भिन्नता आ गयी। इसका कारण यह है कि समय-समय पर मुनियों की गोष्ठियों में उन पर चर्चा होती रही, जिसमें सात्त्विक, राजस और तामस उपासना के भेद से उनको भिन्न-भिन्न प्रकार से निरूपित किया गया; फलतः मुख्य उद्देश्य में भिन्नता आ जाने से इतिहास और प्रबन्ध में भी भेद हो गया। बाद में उन-उन पुराणों में आये हुए पुलस्त्य एवं भीष्म और पराशर एवं मैत्रेय आदि के संवादों का प्रचार करने के लिए कभी लोमहर्षणसूत नैमिषारण्य में जाकर वेदव्यास ही के द्वारा विभक्त किये गये अठारह पुराणों को शौनक आदि जिज्ञासु मुनियों को सुनाने लगे। यद्यपि वेदव्यास द्वारा व्यक्त किये गये पुराणों का पूर्वापर क्रम दूसरे प्रकार से निर्धारित था, किन्तु लोमहर्षण ने जिज्ञासुओं के अनुरोध से निर्धारित क्रम की उपेक्षा करके क्रमशः ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण, कूर्मपुराण, मत्स्यपुराण, वामनपुराण, वाराहपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, नारदीयपुराण तथा भविष्यपुराण—इन दस पुराणों को पूर्ण रूप से सुनाकर अग्निपुराण को आधा ही सुनाया। इसी बीच संयोग से नैमिषारण्य में आये हुए बलभद्र ने अवशिष्ट अग्निपुराण को सुनाते हुए ही सूत को—यह बिना मेरा अभिवादन किये शूद्र होकर पुराण सुना रहा है—ऐसा सोचकर क्रोधावेश में मार डाला। तब लोमहर्षण के दिवंगत हो जाने पर शोकाकुलित शौनक आदि मुनियों ने लोमहर्षण के पुत्र उग्रश्रवा नामक सूत को बुलाकर व्यासगद्दी पर बैठाकर उससे अग्निपुराण के अवशिष्ट आधे भाग के साथ और भी सात पुराण सुन लिये। यह बात पद्मपुराण के उत्तरखण्ड में आयी है। लोमहर्षण की जीवितावस्था में भी नित्य वे ही मुनियों को पुराण नहीं सुनाते थे, अपितु उनकी आज्ञा से उग्रश्रवा भी नैमिषारण्य में जाकर मुनियों को पुराण सुनाया करते थे। यह बात भी पद्मपुराण से ही विदित होती है।

---

१. श्राद्धकल्प आदि के निर्णय।

पुराणों का क्रम

विष्णुपुराण के अनुसार पुराणों की रचना (सृष्टि) का क्रम इस प्रकार है--

१. ब्रह्म	७. मार्कण्डेय	१३. स्कन्द
२. पद्म	८. अग्नि	१४. वामन
३. विष्णु	९. भविष्य	१५. कूर्म
४. वायु (शिव)	१०. ब्रह्मवैवर्त	१६. मत्स्य
५. भागवत	११. लिंग	१७. गरुड़
६. नारदीय	१२. वाराह	१८. ब्रह्माण्ड

इन्हीं अठारह पुराणों का आद्य अक्षर लेकर निम्नलिखित श्लोक में मात्र सूची प्रस्तुत की गयी है--

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम् ।
अनापकूस्कलिंगानि पुराणानि प्रचक्षते ।।

दो म	दो भ	तीन ब्र	चार व	अ०	ना०	प०	कू०	स्क०	लिं०	ग०
७	५	१	३	८	६	२	१५	१३	११	१७
१६	९	१०	१२							
		१८	१४							
			४ (मतभेद से)							

पुराणों की अष्टादश संख्या

यद्यपि पौराणिक शैली प्रधानतया त्रैगुण्य-रचना और प्रकृति की विकासक है तथा प्रत्येक पुराण में गुण-त्रय और गुणातीत संसार एवं अव्यक्त ब्रह्म का प्रतिपादन और उस प्रतिपाद्य की प्राप्ति का विधान है तो भी कोई पुराण प्रधानतया सात्त्विक, कोई राजसिक और कोई तामसिक होने से प्रधान-अप्रधान के भेद से नौ भेदो में पर्यवसित हो जाते हैं। फिर नवों के शक्त्यात्मक एवं शिवात्मक भेद होने से अठारह संख्या हो जाती है। वस्तुतः संख्या नौ ही है। परन्तु तन्त्र-शास्त्र के अनुसार शिव-शक्त्यात्मक योग से नौ संख्या अष्टादश हो जाती है।

इसी सिद्धान्त के आधार पर अष्टादश पुराण, अष्टादश स्मृतियाँ, अष्टादश पर्व तथा गीता के अष्टादश अध्याय आदि कहे गये हैं।

वैदिक प्रक्रिया के अनुसार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड तीन भागों में विभक्त हैं--१. पृथ्वी, २. अन्तरिक्ष और ३. द्यौः। कालक्रमानुसार इन तीनों में ६-६ परिवर्तन होते हैं; १. सत्ता, २. उत्पत्ति, ३. वृद्धि, ४. परिपाक, ५. अपचय और ६. विनाश। ३ से प्रत्येक विकारों की गणना करने से १८ होता है। १८ पुराण इन तीनों स्थानों की सृष्टि, प्रलय आदि का निरूपण करते हैं। इसलिए १८ भाव-विकारों को व्यक्त करने के लिए पुराण भी १८ माने गये हैं। फिर कल्प भी १८ माने जाते हैं। एक-एक कल्प में एक-एक पुराण की प्रधानता रहती है। इस दृष्टि से विचार करने पर भी पुराणों की अष्टादश संख्या के रहस्य का उद्घाटन होता है।

पुराणों का वर्गों में विभाजन

उक्त अष्टादश पुराणों को वर्गों में विभक्त किया गया है। स्कन्दपुराण के केदारखण्ड में यह चर्चा आयी है कि अठारहों महापुराणों में दस शैव, चार ब्राह्म, दो शाक्त और दो वैष्णव हैं। फिर उसी पुराण के शिव-रहस्यखण्डान्तर्गत सम्भवकाण्ड में लिखा है कि शिव, भविष्य, मार्कण्डेय, लिंग, वाराह, स्कन्द, मत्स्य, वामन, कूर्म और ब्रह्माण्ड——ये दस पुराण शैव हैं। इन सबकी श्लोकसंख्या ३ लाख है। विष्णु, भागवत, नारदीय और गरुड़——ये चार वैष्णव हैं। इनमें भगवान् विष्णु की महिमा वर्णित है। ब्रह्म और पद्म——ये दो पुराण ब्रह्मा से सम्बन्धित हैं। अग्निपुराण अग्नि की और ब्रह्मवैवर्तपुराण कृष्ण की (मतान्तर में सूर्य की) महिमा से पूर्ण हैं। ब्रह्मपुराण में ब्रह्मा, विष्णु और महेश का साम्य प्रतिपादित करते हुए भी ब्रह्मा को श्रेष्ठ और विष्णु को त्रिदेवात्मक सिद्ध किया गया है। इसी प्रकार शैव पुराणों में शिव को सभी देवताओं से अधिक शक्तिशाली माना गया है। मत्स्य-पुराण में यद्यपि विष्णु के मत्स्यावतार का ही वर्णन किया गया है, पर शिव के विविध अवतारों एवं कार्यों का भी इसमें वर्णन मिलता है। इसी प्रकार वाराह, वामन और ब्रह्माण्ड में भी शिव की अनन्त शक्ति का वर्णन किया गया है, जिसके सम्मुख विष्णु, ब्रह्मा प्रभृति सभी देवों एवं शक्तियों को कई बार प्रभावहीन होते दिखाया गया है। शैव मत की प्राचीनता एवं उसके उदात्त विचारों का ही यह परिणाम है कि अधिकांश पुराणों में उसकी चर्चा की गयी है। ऋग्, यजु, साम और अथर्व इन चारों वैदिक संहिताओं में रुद्र की स्तुति मिलती है। इनमें यजुर्वेदान्तर्गत रुद्राष्टाध्यायी का आज भी बहुत प्रचार है। यद्यपि इस बात में विवाद उठाया गया है कि वैदिक रुद्र ही पौराणिक शिव अथवा रुद्र हैं, पर यह परम्परा इतनी प्रचलित हो गयी है कि वह तर्क नहीं स्वीकार करती। वाजसनेयी संहिता में शतरुद्रों के बीच-बीच में शिव, गिरीश, पशुपति, नीलग्रीव, शितिकण्ठ, भव, शर्व, महादेव इत्यादि नामों को देखने से रुद्र और शिव के एकत्व में अविश्वास नहीं रह जाता। अथर्व-संहिता में भी महादेव, भव, पशुपति आदि नामों का उल्लेख हुआ है। अस्तु, शैव पुराणों में प्रायः इन्हीं उपर्युक्त नामों की चरितार्थता मनोहर कथाओं के रूप में की गयी है। इनके अतिरिक्त सात्त्विक, राजस एवं तामस—— इन तीन गुणों के आधार पर भी पुराणों का वर्ग-विभाग किया गया है।

पुराणों की श्लोक-संख्या और अध्यायों का विवरण

उपर्युक्त अठारहों पुराणों में आये हुए श्लोकों एवं अध्यायों की संख्या नारदीय पुराण एव मत्स्यपुराण में उल्लिखित संख्या के अनुसार प्रस्तुत की जा रही है——

	नारदीयपुराण के अनुसार (श्लोक-संख्या)	मत्स्यपुराण के अनुसार (श्लोक संख्या)	(अध्याय-संख्या)
१. ब्रह्मपुराण	१००००	१३०००	२४५
२. पद्मपुराण	५५०००	५५०००	६४१
३. विष्णुपुराण	२३०००	२३०००	१२७
४. शिवपुराण	२४०००	२४०००	४६४
५. श्रीमद्भागवत	१८०००	१८०००	३३२
६. नारदीयपुराण	२५०००	२५०००	२०७

७. मार्कण्डेयपुराण	९०००	९०००	१३४
८. अग्निपुराण	१५०००	१६०००	३८३
९. भविष्यपुराण	१४०००	१४५००	६०५
१०. ब्रह्मवैवर्तपुराण	१८०००	१८०००	२६६
११. लिंगपुराण	११०००	११०००	१६०
१२. वाराहपुराण	२४०००	२४०००	२१८
१३. स्कन्दपुराण	८११००	८१०००	१६७१
१४. वामनपुराण	१००००	१००००	२५
१५. कूर्मपुराण	१७०००	१८०००	९९
१६. मत्स्यपुराण	१५०००	१४०००	२९०
१७. गरुड़पुराण	१९०००	१८०००	३१८
१८. ब्रह्माण्डपुराण	१२०००	१२२००	१६१

इन पुराणों के जो संस्करण छपे हैं, उनमें केवल श्रीमद्भागवत, लिंगपुराण, मत्स्यपुराण और ब्रह्माण्ड-पुराण में उपर्युक्त श्लोक-संख्या ठीक है, पर शेष पुराणों की श्लोक संख्या में पर्याप्त अन्तर है।

पुराण-लक्षण

स्वयं पुराणों में ही 'पुराण' के कई लक्षण दिये गये हैं। कोशकारों के अनुसार उसका सर्वाधिक प्रचलित लक्षण है—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥

अर्थात् जिसमें सर्ग ईश्वरकृत सृष्टि (कारणसृष्टि), प्रतिसर्ग पुनः (कार्य) सृष्टि और लय, देवताओं एवं पितरों की वंशावली, समस्त मन्वन्तर (किस मनु का कब तक अधिकार रहता है) तथा वंशानुचरित (सूर्य-चन्द्र प्रभृति राजवंशों में उत्पन्न होनेवाले राजाओं के संक्षिप्त वर्णन) पुराण के ये ही पाँच लक्षण हैं। इस लक्षण से सर्वांशतः घटित होनेवाले प्रायः अधिकांश महापुराण हैं, पर कुछ ऐसे भी हैं, जिनमें सब लक्षण घटित नहीं होते। 'पुराण' शब्द का व्यवहार अथर्ववेद, शतपथब्राह्मण, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, तैत्तिरीयारण्यक, आश्वलायनगृह्यसूत्र, आपस्तम्बधर्मसूत्र, मनुसंहिता, रामायण, महाभारत प्रभृति हिन्दू जाति के प्राचीनतम एवं सम्मान्य ग्रन्थों में किया गया है। पर यह विवादास्पद है कि उस समय भी पुराण का यही लक्षण था। अथर्वसंहिता के '**ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह**' (अथर्व ११, ७, २४) इस मत का 'ऋक्, साम, छन्द और पुराण ये साथ उत्पन्न हुए' यह स्फुट अर्थ है। बृहदारण्यक और शतपथब्राह्मण में एक स्थान पर यह वर्णन किया गया है कि 'जिस प्रकार गीले काष्ठ से उत्पन्न अग्नि से पृथक्-पृथक् धुआँ निकलता है उसी प्रकार इस महान् भूत के निःश्वास से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषत्, श्लोक, सूत्र, व्याख्यान और अनुख्यान निकले हैं। ये सभी इनके निःश्वास हैं।' इसमें भी 'पुराण' का इतिहासादि से पृथक् कथन किया गया है। छान्दोग्योपनिषद् के '**स होवाच ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासं पुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्**'।

(छान्दोग्य उ० ७, १, १) इस वचन के द्वारा 'पुराण' भी वेद-समूह में पाँचवाँ वेद माना गया है। इसी प्रकार महाभारत और रामायण में भी पुराण शब्द का अनेक स्थलों पर प्रयोग हुआ है। भगवान् शंकराचार्य ने बृहदारण्यक के भाष्य में 'पुराण' शब्द की व्याख्या की है। उनका कहना है कि 'वेदों में उर्वशी और पुरूरवा के कथोपकथन आदि ब्राह्मणभाग का नाम इतिहास और सबसे पहले एकमात्र असत् था इत्यादि सृष्टिप्रक्रिया के घटित वृत्तान्त का नाम पुराण है।' इसी प्रकार आचार्य सायण ने भी वेदों में आये हुए पुराण शब्द की निरुक्ति करते हुए सृष्टि-प्रक्रिया-घटित वृत्तान्त को 'पुरा' माना है। शंकराचार्य एवं सायण की परिभाषा के अतिरिक्त महाभारत एवं रामायण में पुराणों का जो परिचय दिया गया है, उसमें सृष्टि-प्रक्रिया-घटित वृत्तान्तों के अतिरिक्त अन्य विषयों का भी उल्लेख किया गया है। महाभारत के आदिपर्व में महर्षि शौनक ने कहा है—

पुराणे हि कथा दिव्या आदिवंशाश्च धीमताम्।
कथ्यन्ते ये पुरास्माभिः श्रुतपूर्वं पितुस्तव॥

—महाभारत, आदिपर्व ५, २

अर्थात् पुराणों में दिव्य कथाओं एवं परम बुद्धिमान् व्यक्तियों के आदिवंशो के वर्णन हैं। यही नहीं, महाभारत के आदिपर्व में उन समस्त राजाओं की नामावली है, जिनके वंश पुराणों में वर्णित हैं। इसी प्रकार रामायण के बालकाण्ड के नवें सर्ग से लेकर ग्यारहवें सर्ग तक वर्णित कथाओं को भी 'पुराण' संज्ञा दी गयी है। इन बातों पर विचार करने से पता लगता है कि वेद-काल से लेकर रामायण एवं महाभारत-काल तक जो पुराण प्रचलित थे, उनमें सृष्टि-प्रक्रिया-घटित वृत्तान्तों, दिव्य कथाओं एवं परम बुद्धिमान् व्यक्तियों के आदिवंशों का वर्णन था। 'पुराण' के अधुना प्रचलित 'सर्गश्च प्रतिसर्गश्च' इस उपर्युक्त लक्षण से इसकी समानता है। अस्तु,

उपर्युक्त सर्वमान्य 'सर्गश्च प्रतिसर्गश्च' इत्यादि लक्षण के अतिरिक्त ब्रह्मवैवर्तपुराण में महापुराण के दूसरे लक्षण भी बताये गये और उस सर्वमान्य लक्षण को उपपुराणों का लक्षण बतलाया गया—

सृष्टिश्चापि विसृष्टिश्च स्थितिस्तेषाञ्च पालनम्।
कर्मणां वासनावार्तामनूनाञ्च क्रमेण च॥
वर्णनं प्रलयानाञ्च मोक्षस्य च निरूपणम्।
उदकीर्तनं हरेरेव देवानाञ्च पृथक् पृथक्।
दशाधिकं लक्षणञ्च महतां परिकीर्तितम्॥

—ब्र० वै० प्र० १३२, ३५-३७

इस प्रकार यदि ब्रह्मवैवर्तपुराण का मत माना जाय तो महापुराण में उपर्युक्त दस लक्षण होने चाहिए और उपपुराणों में पाँच। किन्तु इससे भी अमरकोश में वर्णित उक्त सर्वसम्मत लक्षण की ही मान्यता सिद्ध होती है, क्योंकि उपपुराणों में उक्त पाँच लक्षण भी नहीं मिलते।

पुराण शब्द की व्युत्पत्ति तथा अर्थ

ब्रह्माण्डपुराण में लिखा है--

यस्मात्पुरा ह्यनक्तीदं पुराणं तेन तत्स्मृतम्।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

अर्थात् सर्वप्रथम ज्ञान का प्रकाश करने के कारण इसकी 'पुराण' संज्ञा हुई। इसकी निरुक्ति या व्युत्पत्ति जो जानते हैं वे सब पापों से छूट जाते हैं।

पुराण शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की जाती है--पुरा नीयते इति पुराणम् पुरा √नी + ड (अ), ईकार का लोप, णत्व। अथवा पुरा भवम् इति पुराणम् पुरा + ट्यु (यु) प्रत्यय 'सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च' इस सूत्र से, अनन्तर यु के स्थान में 'युवोरनाकौ' सूत्र से अन आदेश, नकार को 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' सूत्र से णत्व। यहाँ 'सायंचिरं'--इत्यादि सूत्र से ट्युप्रत्यय तो होता है, पर तुट् का आगम नहीं हो पाता है, कारण 'पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन' इस सूत्र में पाणिनि ने 'पुराण' शब्द का निर्देश किया है। यदि तुट् हो जायगा तो उक्त सूत्र में पठित पुराण शब्द कैसे बनेगा? अथवा 'पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु' इस सूत्र-निर्देश से निपातन करके पुराण शब्द बन सकता है।

निरुक्त में पुराण शब्द का निर्वचन इस प्रकार आया है--'पुरा नवं भवति' जिसकी नव द्युति सबसे प्रथम प्रकट हुई, वह पुराण है। इसलिए भगवान् को भी पुराणपुरुष कहते हैं। पुराण का अर्थ जीर्ण नहीं है अपितु आदि विकास है। गीता में भगवान् की प्रार्थना में आया है--कविं पुराणमनुशासितारं' अर्थात् भगवान् क्रान्तदर्शी तथा पुराण होने से सबके अनुशासक हैं। अतः पुराण शब्द से आदि साहित्य का तात्पर्य है। आदि साहित्य वह है जिसमें आदिदेव आत्मा का प्रबोध हो। इस आदि विद्या को वेदव्यास जी ने जगत्कल्याण के लिए सर्गादि पाँच लक्षणों में ग्रथित कर दिया। इसी को पुराण कहते हैं। पुराण शब्द को सुनते ही व्यासकृत अष्टादश पुराण की स्मृति हो जाती है।

उपपुराण और औपपुराण

पुराणों की तरह उपपुराण और औपपुराण भी संख्या में अष्टादश ही हैं। यथा—उपपुराण--(१) सनत्कुमारकृत आदिपुराण, (२) नरसिंहपुराण, (३) कुमारकृत स्कन्दपुराण, (४) शिवधर्मपुराण, (५) दुर्वासः-पुराण, (६) नारदपुराण, (७) कपिलपुराण, (८) वामनपुराण, (९) औशनसपुराण, (१०) ब्रह्माण्डपुराण, (११) कालिकापुराण, (१२) वरुणपुराण, (१३) माहेश्वरपुराण, (१४) साम्बपुराण, (१५) सौरपुराण, (१६) पाराशरपुराण, (१७) मारीचपुराण और (१८) भास्करपुराण हैं।

औपपुराण—(१) सनत्कुमारपुराण, (२) बृहन्नारदीयपुराण, (३) आदित्यपुराण, (४) सूर्यपुराण, (५) नन्दिकेश्वरपुराण, (६) कौर्मपुराण, (७) भागवतपुराण, (८) वसिष्ठपुराण, (९) भार्गवपुराण, (१०) मुद्गल-पुराण, (११) कल्किपुराण, (१२) देवीपुराण, (१३) महाभागवतपुराण, (१४) बृहद्धर्मपुराण, (१५) परानन्द-पुराण, (१६) वह्निपुराण, (१७) पशुपतिपुराण और (१८) हरिवंशपुराण हैं।

इन उपपुराणों और औपपुराणों की रचना पुराणों के आधार पर ही हुई है। प्राचीन काल के विभिन्न विद्वानों ने १८ महापुराण की छाया लेकर ही इनकी रचना की है। विस्तार के भय से इनमें कहीं-कहीं तो कथाओं में नावीन्य लाने के लिए परिवर्तन भी कर दिया गया है। इतना अन्तर होने पर भी इनका मूल अष्टादश पुराण ही है। श्रीमद्भागवत के यशस्वी टीकाकार श्रीधर स्वामी के प्रधान शिष्य नीलकण्ठ ने देवी भागवत की टीका में इस विषय का स्पष्ट संकेत किया है--

अष्टादशभ्यस्तु पृथक् पुराणं यत्प्रदृश्यते।
विजानीध्वं द्विजश्रेष्ठास्तथा तेभ्यो विनिर्गतम्॥

पुराणनिर्माता महर्षि व्यास

अचतुर्वदनो ब्रह्मा द्विबाहुरपरो हरिः।
अभाललोचनो शम्भुर्भगवान् बादरायणः॥

सकल विद्याओं के केन्द्र भारतवर्ष में शतशः रससिद्ध कवीश्वरों एवं युगनिर्माता महापुरुषों में पुराण-प्रणेता महर्षि व्यास का स्थान सर्वोपरि है। व्यास की निरुक्ति इस प्रकार की जाती है--व्यस्यति वेदान् इति व्यासः वि+आ+अस्+अण्। महाभारत के आदिपर्व में स्पष्टतया निरूपित है—

यो व्यस्य वेदांश्चतुरस्तपसा भगवान् ऋषिः।
लोके व्यासत्वमापेदे कार्ष्णात् कृष्णत्वमेव च॥

—म० भा० १।१०५।१४

जैसा कि ऊपर के श्लोक से भी संकेत मिलता है, व्यास को 'कृष्णद्वैपायन वेदव्यास' भी कहते हैं। इस शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार होगी—द्विर्गता द्वयोर्दिशोर्वा गता आपो यत्र (बहुव्रीहि), ईत्वम्–द्वीपम्। द्वीपमेव अयनं स्थानं द्वीपायनम् (कर्मधारय)। द्वीपायने भवः द्वैपायनः द्वीपायन अण्। कृष्णश्चासौ द्वैपायनः कृष्णद्वैपायनः (कर्मधारय)। वेदानां व्यासः वेदव्यासः (षष्ठी तत्पुरुष)। कृष्णद्वैपायन एव वेदव्यासः कृष्णद्वैपायनवेदव्यासः (मयूरव्यंसकादित्वात् तत्पुरुषसमासः)।

कुछ विद्वानों का कहना है कि व्यास किसी व्यक्ति-विशेष का नाम नहीं है। यह वेदविभागकारी ऋषियों की सम्मानजनक उपाधि है। क्योंकि कूर्म, वायु और विष्णुपुराण में २८ व्यासों का उल्लेख है। जैसे १. स्वयंभू, २. प्रजापति या मनु, ३. उशना, ४. बृहस्पति, ५. सविता, ६. मृत्यु या यम, ७. इन्द्र, ८. वशिष्ठ, ९. सारस्वत, १०. त्रियामा, ११. ऋषभ या त्रिवृषा, १२. सुतेजा या भारद्वाज, १३. आन्तरिक्ष या धर्म, १४. वपृवा या सुचक्षुस्, १५. त्र्यारुणि, १६. धनञ्जय, १७. कृतञ्जय, १८. ऋतुञ्जय, १९. भरद्वाज, २०. गौतम, २१. उत्तम, २२. वाचश्रवस् वेण या नारायण, २३. सोममुख्यायन या तृणविन्दु, २४. ऋक्ष या वाल्मीकि, २५. शक्ति, २६. पराशर, २७. जातुकर्ण और २८. कृष्णद्वैपायन। इससे यह सिद्ध होता है कि किसी एक कल्प में एक व्यास जो सम्पादन कर गये, दूसरे कल्प में उसे लुप्तप्राय देखकर दूसरे ऋषि ने उस शास्त्र की मर्यादा बनाये रखने के लिए व्यास उपाधि धारण करके उस शास्त्र की रक्षा की। उनमें से २८वें वेदव्यास कृष्णद्वैपायन वेदान्तसूत्र, पुराण तथा महाभारत के रचयिता के रूप में विश्रुत हैं।

महाभारत के आदिपर्व के अनुसार कृष्णद्वैपायन की उत्पत्ति अट्ठाईसवें द्वापरयुग में पराशर से सत्यवती में यमुनाद्वीप में हुई थी—

इति सत्यवती हृष्टा लब्ध्वा वरमनुत्तमम्।
पराशरेण संयुक्ता सद्यो गर्भं सुषाव सा॥
जज्ञे च यमुनाद्वीपे पाराशर्यः स वीर्यवान्।
स मातरमनुज्ञाय तपस्येव मनो दधे॥
स्मृतोऽहं दर्शयिष्यामि कृत्येष्विति च सोऽब्रवीत्।
एवं द्वैपायनो जज्ञे सत्यवत्यां पराशरात्।
न्यस्तो द्वीपे स यद् बालस्तस्माद्द्वैपायनः स्मृतः॥

—म० भा० १।६३।८३-८५

महर्षि वेदव्यास के अन्य नाम––माठर, द्वैपायन, पाराशर्य, कानीन तथा बादरायण हेमचन्द्र के शब्दानुशासन में उल्लिखित हैं, कृष्णद्वैपायन सत्य, भारत, पाराशरि और सात्यवत आदि त्रिकाण्डशेष में मिलते हैं तथा बादरायणि, सत्यवतीसुत, सत्यरत एवं पाराशर आदि शब्दरत्नावली में प्राप्य हैं। इन नामों तथा पुराण आदि में महर्षि वेदव्यास विषयक उल्लेख से उनके जीवन-चरित्र के विषय में हम इतना जान सकते हैं कि वे यमुनाद्वीप में पराशर-सत्यवती से जन्म-लाभ करके बाल्यकाल से ही तपोनिष्ठ एवं लोक-संग्रहार्थ ही नियत कर्म के अनुष्ठान में परायण हुए। इतिहास-पुराणों के द्वारा वेदार्थ के उपबृंहण का कार्य भी उन्होंने भलीभाँति किया। ब्रह्मसूत्र के कर्ता भी बादरायण ही हैं, यह बात मत्स्यपुराण के चौदहवें अध्याय के सोलहवें श्लोक से अनुमित होता है। कृष्णद्वैपायन ही बादरायण व्यास हैं, यह बात वेदान्तसूत्र के भाष्य में भगवान् शंकराचार्य के इस वचन से प्रमाणित होता है––**तथाहि अपान्तरतमा नाम वेदाचार्यः पुराणर्षिः विष्णुनियोगात् कलिद्वापरयोः सन्धौ कृष्णद्वैपायनः संबभूव** (वे० सू० ३।३।३२)। अहिर्बुध्न्यसंहिता (११।५०-६०) में, शान्तिपर्व (३५९।३८-४२; ६०-७०) में, वायुपुराण (२३-३७) में और ब्रह्मपुराण (३५।१६-१२४) में व्यासविषयक जो वृत्तान्त उपलब्ध होता है उससे व्यास-परम्परा में महर्षि कृष्णद्वैपायनव्यास का महत्त्व सुप्रतिष्ठित होता है। तैत्तिरीय आरण्यक (पाराशर्यवचः सरोजममलम्) में तथा पाणिनि-अष्टाध्यायी (पाराशर्यशिलालिभ्याम्) में 'पाराशर्य' इस नामोल्लेख से व्यास का पराशर के साथ पुत्र-सम्बन्ध तथा महाभारत और ब्रह्मसूत्र का कर्तृत्व भी सिद्ध होता है।

वंश की दृष्टि से कृष्णद्वैपायन ब्रह्मा के प्रपौत्र पराशर के पुत्र थे। जैसा कि कहा गया है––ब्रह्मा से वशिष्ठ, वशिष्ठ से शक्ति, शक्ति से पराशर और पराशर से कृष्णद्वैपायन उत्पन्न हुए। व्यास की माता सत्यवती भी दाशराज (मल्लाह) की पुत्री नहीं थी, अपितु वह चेदिराज उपरिचरवसु की पुत्री थी, जिसे हस्तिनापुर के निकटवर्ती एक द्वीप में त्याग दिया गया था। वह दाशराज को मिली। उसी ने उसका पालन-पोषण किया। वह कुमारी-अवस्था में व्यास को जन्म देकर भी पराशर के प्रभाव से पूर्ववत् निर्दोषदर्शना कन्या ही रही। कालान्तर में प्रतीप के पुत्र शान्तनु ने उसे देखा और विवाह कर लिया। फिर गांगेय (देवव्रत भीष्म) की विमाता उस सत्यवती ने शान्तनु से विचित्रवीर्य और चित्रांगद नामक दो पुत्रों को जन्म दिया। इस प्रकार कृष्णद्वैपायन, विचित्रवीर्य और चित्रांगद एक ही माता के सहोदर भाई थे। इसीलिए कौरव और पांडव के हित के लिए महर्षि कृष्णद्वैपायन ने उस समय यथोचित कर्तव्य सम्पन्न किया।

वशिष्ठ के ही एक यशस्वी पौत्र जतूकर्ण्य थे। उनसे कृष्णद्वैपायन ने वेदाध्ययन किया, यह विष्णुपुराण में वर्णित है।

महाभारत के शान्तिपर्व (३४९-१०-२७) में महर्षि कृष्णद्वैपायन के आश्रम का विशाला में ही अवस्थित होने का वर्णन है, किन्तु श्रीमद्भागवत (१, ५, १५) में हस्तिनापुर के निकटवर्ती सरस्वती-तट पर व्यासाश्रम के होने का उल्लेख है।

महर्षि ने बदरिकाश्रम में ही महाभारत की रचना की और यह इतिहास पैल, वैशम्पायन, जैमिनि तथा सुमन्तु आदि अपने शिष्यों को पढ़ाया। महाभारत के अतिरिक्त मत्स्य, मार्कण्डेय, भविष्य, भागवत, ब्रह्माण्ड, ब्राह्म, वाराह, वामन, कूर्म, विष्णु, वायु, अग्नि, नारद, विष्णु, पद्म, लिंग, गरुड़ तथा स्कन्द नामक अठारह पुराणों की उन्होंने रचना की, जिनमें चार लाख श्लोक हैं। एक लाख श्लोक महाभारत में बताये जाते हैं। इस प्रकार पाँच लाख श्लोकों के रचयिता महर्षि व्यास दिव्यशक्तिसम्पन्न थे, इसमें सन्देह की गुंजाइश नहीं है। ब्रह्मवैवर्तपुराण

के प्रकृतिखण्ड के चतुर्थ अध्याय में व्यास जी को श्रीकृष्ण की पाँच कलाओं में उत्पन्न बताया गया है। अन्यत्र भी ऐसा वर्णन है--

द्वापरे तु युगे विष्णुर्व्यासरूपो महामुने।
वेदमेकं स बहुधा कुरुते जगतो हितः ॥
यथा च कुरुते तत्वा वेदमेकं पृथक्प्रभुः।
वेदव्यासाभिधानात्तु सा सा मूर्तिर्मधुद्विषः ॥

'व्यासाय विष्णुरूपाय', 'व्यासो नारायणः स्वयम्' इत्यादि वचन भी पाये जाते हैं।

महर्षि व्यास के अनुभाव के अनेक पक्ष हैं। जैसे--

तपोनिष्ठ--'स मातरमनुज्ञाय तपस्येव मनो दधे', 'तपसा च सुतप्तेन यमेन नियमेन च', 'त्वां सिषेवे प्रदध्यौ च शतवर्षञ्च पुष्करे' इत्यादि अनेक उद्धरणीय वचनों से व्यास जी की तपोनिष्ठा सूचित होती है, जो कि 'सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा' इत्यादि श्रुतिवचनों से संगत है।

मुनि--विभूतियोग में भगवान् श्रीकृष्ण ने स्पष्ट ही कहा है--'मुनीनामप्यहं व्यासः' (श्रीमद्भगवद्गीता १०।३७)। इसलिए व्यास जी कवि की अपेक्षा मुनि ही प्रथम हैं। अन्यत्र भी 'व्यासेन ग्रथितां पुराणमुनिना', 'इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम्' (श्रीमद्भागवत १।४।२५) इत्यादि कथन उपलब्ध होते हैं।

ऋषि--'परावरज्ञः स ऋषिः' (भाग० १।४।१६) 'देवर्षिः प्राह विप्रर्षिः' (भाग० १।५।१) इत्यादि वचनों से व्यास का ऋषित्व उद्घोषित होता है। यदि कहें कि 'ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः' के अनुसार व्यास ऋषि नहीं हो सकते, क्योंकि उन्होंने वेदमन्त्रों का साक्षात्कार नहीं किया तो यह कथन ठीक नहीं है, कारण उन्होंने पंचम वेदरूप महाभारत की रचना की है, अतः उनका ऋषित्व निःसन्दिग्ध है। वे केवल ऋषि ही नहीं, अपितु महर्षि हैं। संस्कृत-साहित्य में उनको बहुशः ऋषि-महर्षि पदों से अभिहित किया गया है।

दार्शनिक--उत्तरमीमांसा दर्शन या वेदान्त दर्शन के आचार्य भगवान् बादरायण ही हैं। उनका रचा हुआ ब्रह्मसूत्र उनकी दार्शनिक क्षमता का परम प्रमाण है। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने भी 'ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव' (गीता १३।४) में कहकर ब्रह्मसूत्रों की प्रशंसा की है। उनका वेदान्तदर्शन सर्वश्रेष्ठ दर्शन माना जाता है।

योगी--व्यास बचपन से ही कर्मयोगी थे। लोक-संग्रह के लिए ही उन्होंने कर्मों को स्वीकार किया। श्रीमद्भागवत आदि में 'जातः पराशराद् योगी वासव्यां कलया हरेः' इत्यादि वचन तथा दिव्य दृष्टि आदि सिद्धि-वर्णन भी उन्हें योगी प्रमाणित करते हैं।

श्रेष्ठकवि--इतिहास-पुराणों के द्वारा वेदार्थों का उपबृंहण करनेवाले महर्षि व्यास कृतित्व की दृष्टि से विश्वसाहित्य में अद्वितीय कवि हैं। किसी ने भी इतनी काव्य-सर्जना नहीं की है।

युगनिर्माता--भारतीय धर्म, दर्शन, संस्कृति, सभ्यता आदि का संरक्षण महर्षि व्यास ने ही सबसे अधिक किया है। महाभारत आदि ग्रन्थों में तथा वेदान्तदर्शन में उन्होंने जो मनुष्य की वैयक्तिक, सामाजिक, आध्यात्मिक आदि जीवन-पद्धतियों का व्यावहारिक विवेचन किया है, वह उनके युग-निर्माण का सामर्थ्य प्रमाणित करता है।

उपदेष्टा, मानवहितचिन्तक, नीतिकार

तपोनिष्ठा, योग और दर्शन स्वभावतः मनुष्यों को कल्याणपथ पर चलने के लिए प्रेरित करते हैं। इसलिए व्यास-रचित महाभारत, पुराण आदि ग्रंथों में मानवों के अभ्युदय और कल्याण के साधक अमृतमय वचन

पग-पग पर प्राप्त होते हैं। महर्षि व्यास मानवों के सर्वोत्कर्ष के प्रति सदैव श्रद्धालु रहे हैं। महाभारत के शान्ति-पर्व में उनका यह उद्घोष है––'गुह्यं ब्रह्म तदिदं ब्रवीमि नहि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्', 'मनुष्याः कर्मलक्षणाः', 'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्', 'अहिंसा परमो धर्मः', 'धर्मादर्थश्च कामश्च स धर्मः किं न सेव्यते', 'सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ। ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥' इत्यादि अनेक उपदेश उन्होंने ही पहले-पहल मानवों को दिये थे।

यद्यपि प्रधानरूप से व्यास जी तप एवं योग में निरत रहनेवाले मुनि ही हैं, तो भी काव्योत्कर्ष की दृष्टि से भी 'व्यासोच्छिष्टं जगत्सर्वम्', 'विद्यावतां भागवते परीक्षा' इत्यादि बहुत-से प्रशंसापरक वचन उन्हें कवीन्द्र प्रमाणित करने के लिए प्रस्फुरित हो रहे हैं। इतिहासप्रधान होने पर भी महाभारत, पुराण आदि ग्रन्थों में उत्तम काव्य के निदर्शन रूप पद्यों का अभाव नहीं है। श्रीमद्भागवत में न केवल अर्थ-गौरव एवं विषय-गम्भीर्य ही है अपितु सब प्रकार का काव्य-सौन्दर्य भी है।

इस प्रकार कृष्णद्वैपायन व्यास भारतीय प्रतिभा-प्रज्ञा से उत्पन्न ज्ञान-विज्ञान, विचार, भाव आदि के कुशलतम व्याख्याता, मुनि, महर्षि, योगी, नीतिकार, दार्शनिक, युग-निर्माता, कवीश्वर और महापुरुष के रूप में सदैव से हमारे श्रद्धेय एवं पूज्य हैं। उनके निम्नोक्त शिक्षा-वचन अविस्मरणीय हैं––

'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।'
'परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।'
'सत्यान्नास्ति परो धर्मो नानृतात्पातकं परम्।'
'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।'

●

ब्रह्मवैवर्तपुराण

१. नामकरण

विवृतं ब्रह्मकात्स्र्यं च कृष्णेन यत्र शौनक।
ब्रह्मवैवर्तकं तेन प्रवदन्ति पुराविदः।। (ब्र० खं० २)

हे शौनक ! जिस पुराण में कृष्ण ने अपनी पूर्ण ब्रह्मरूपता को विवृत (प्रकट) कर दिया है अथवा जिसमें कृष्ण के ब्रह्मत्व के विवर्तों (परिणामों) का पूर्णतया वर्णन है, उसको पुराणवेत्ताओं ने 'ब्रह्मवैवर्त' नाम से अभिहित किया है। 'ब्रह्मवैवर्त' शब्द का अर्थ है--'ब्रह्मणो विवर्तः (परिणामः) ब्रह्मविवर्तः'—ब्रह्म का विवर्त (परिणाम)। ब्रह्म का आद्य विवर्त प्रकृति है। अतः 'ब्रह्मविवर्त' शब्द का अर्थ प्रकृति होता है। ब्रह्मविवर्तस्य (प्रकृतेः) विवर्ताः (परिणामाः) यत्र प्रदर्श्यन्ते तत् पुराणम् 'ब्रह्मवैवर्तम्'। प्रकृति के भिन्न-भिन्न परिणामों का जहाँ प्रतिपादन हो, वह पुराण ग्रन्थ ब्रह्मवैवर्त है। ब्रह्मवैवर्त के प्रकृतिखण्ड में प्रकृति के दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री तथा राधा नामक मुख्य पाँच विवर्तों का वर्णन है। इन मुख्य विवर्तों में पाँचवाँ राधा शब्द 'राध साध संसिद्धौ' इस धातु से निष्पन्न हुआ है। विवर्त का नाम राधा है। राधा नाम प्राणशक्ति का है। प्राणशक्ति से ही यह विश्व राद्ध है। अतः प्राणशक्ति राधा है। यह प्राणशक्ति राधा और प्राणेश्वर कृष्ण दोनों परस्पर में अनुस्यूत हैं। भगवान् कृष्ण की राधापर-नामा यह प्राणशक्ति अनेक विवर्तों में विवर्तित होकर भगवान् के संयोग, वियोग, आलिंगन आदि अवस्थाओं से विश्व में विभिन्न कार्यों की राधिका (साधिका) है। प्राणशक्ति की इस प्रक्रिया का वर्णन ग्रन्थकर्ता ने दार्शनिक परिभाषाओं से न करके कामशास्त्र में परिभाषित परिभाषाओं (संयोग, वियोग एवं आलिंगन) से किया है। ऐसा करने में ग्रन्थकार स्वतन्त्र है, उसकी रुचि ही प्रमाण है।

२. खण्डगत परिचय

ब्रह्मवैवर्तपुराण में चार खण्ड हैं--(१) ब्रह्मखण्ड, (२) प्रकृतिखण्ड, (३) गणपतिखण्ड और (४) कृष्णजन्मखण्ड। इन चारों खण्डों में उक्त 'ब्रह्मवैवर्त' शब्द के अर्थ का सम्बन्ध पूर्णरूप से ब्रह्मखण्ड एवं प्रकृतिखण्ड के साथ अधिक है।

(१) ब्रह्मखण्ड में ३० अध्याय हैं। अध्याय १ से ६ तक का विवरण इस प्रकार है—पहले परमात्मा श्रीकृष्ण के महान् उज्ज्वल तेजःपुञ्ज, गोलोक, वैकुण्ठलोक और शिवलोक की स्थिति का वर्णन करके गोलोक में श्यामसुन्दर भगवान् श्रीकृष्ण के परात्पर स्वरूप का निरूपण किया गया है। अनन्तर श्रीकृष्ण से सृष्टि का आरंभ, नारायण, महादेव, ब्रह्मा, धर्म, सरस्वती, महालक्ष्मी और प्रकृति (दुर्गा) का प्रादुर्भाव बताकर इन सबके द्वारा पृथक्-पृथक् श्रीकृष्ण की स्तुति करायी गयी है। इसके बाद सावित्री, कामदेव, रति, अग्नि, अग्निदेव, जल, वरुणदेव, स्वाहा, वरुणानी, वायुदेव, वायवी देवी तथा मेदिनी के प्राकट्य का वर्णन किया गया है। फिर ब्रह्मा

आदि कल्पों का परिचय, गोलोक में श्रीकृष्ण का नारायण आदि के साथ रासमण्डल में निवास, श्रीकृष्ण के वामपार्श्व से श्रीराधा का प्रादुर्भाव, राधा के रोमकूपों से गोपांगनाओं का प्राकट्य तथा श्रीकृष्ण से गोपों, गौओं, बलीवर्दों हंसों, श्वेत अश्वों और सिंहों की उत्पत्ति, श्रीकृष्ण द्वारा पाँच रथों का निर्माण तथा पार्षदों का प्राकट्य एवं भैरव, ईशान और डाकिनी आदि की उत्पत्ति बतायी गयी है। इसके बाद श्रीकृष्ण ने नारायण आदि को पत्नी-रूप में लक्ष्मी आदि देवियाँ प्रदान कीं। शंकर ने दार-संयोग में अरुचि प्रकट करके निरन्तर भजन करने के लिए वर माँगा। भगवान् ने नाम आदि की महिमा बताकर उन्हें भविष्य में शिवा से विवाह करने की आज्ञा देकर शिवा आदि को मंत्र आदि का उपदेश दिया।

अध्याय ७ से १३ तक का विवरण——ब्रह्मा ने मेदिनी, पर्वत, समुद्र, द्वीप, मर्यादापर्वत, पाताल, स्वर्ग आदि का निर्माण किया तथा कृत्रिम जगत् की अनित्यता एवं वैकुण्ठ, शिवलोक और गोलोक की नित्यता का प्रतिपादन किया। सावित्री से वेद आदि की सृष्टि हुई और ब्रह्मा से सनकादि, सस्त्रीक स्वायम्भुवमनु, रुद्रों, पुलस्त्यादि मुनियों तथा नारद की उत्पत्ति हुई, फिर नारद को ब्रह्मा का तथा ब्रह्मा को नारद का शाप पड़ा। मरीचि आदि ब्रह्मकुमारों तथा दक्षकन्याओं से अनेकानेक सन्तानें हुईं। दक्ष के शाप से पीड़ित चन्द्रमा भगवान् शिव की शरण में गये। अपनी कन्याओं के अनुरोध पर दक्ष चन्द्रमा को लौटा लाने के लिए गये। शिव की शरणागतवत्सलता तथा विष्णु की कृपा से दक्ष को चन्द्रमा मिल गये। जाति और सम्बन्ध का निर्णय हुआ। सूर्य के अनुरोध से सुतपा ने अश्विनीकुमारों को शापमुक्त किया तथा सन्ध्यानिरत वैष्णव ब्राह्मण की प्रशंसा की। गन्धर्वराज की तपस्या से सन्तुष्ट हुए भगवान् शंकर ने अभीष्ट वर दिया तथा नारद जी उनके पुत्र रूप से उत्पन्न हो उपबर्हण नाम से प्रसिद्ध हुए। ब्रह्मा के शाप से उपबर्हण ने योगधारणा द्वारा अपने शरीर को त्याग दिया। उनकी पत्नी मालावती ने विलाप एवं प्रार्थना की। पश्चात् वह देवताओं को शाप देने के लिए उद्यत हो गयी। आकाशवाणी द्वारा भगवान् का आश्वासन पाकर देवताओं ने कौशिकी के तट पर मालावती का दर्शन किया।

अध्याय १४ से २० तक का विवरण——ब्राह्मण-बालकरूपधारी विष्णु ने मालावती से वार्तालाप किया। ब्राह्मण के पूछने पर मालावती ने अपने दुःख और इच्छा को व्यक्त किया तथा ब्राह्मण ने कर्मफल के विवेचन-पूर्वक विभिन्न देवताओं की आराधना से प्राप्त होनेवाले फल का वर्णन किया और श्रीकृष्ण एवं उनके भजन की महिमा बतायी। फिर अपनी शक्ति का परिचय एवं मृतक को जीवित करने का आश्वासन दिया। मालावती ने पति के महत्त्व का वर्णन किया और काल, यम, मृत्युकन्या आदि को ब्राह्मण द्वारा बुलवाकर उनसे बातें कीं। यम आदि ने अपने को ईश्वर की आज्ञा का पालक बताया और उसे श्रीकृष्ण-चिन्तन के लिए प्रेरित किया। मालावती के पूछने पर ब्राह्मण ने वैद्यक संहिता का वर्णन किया, जिसमें आयुर्वेद की आचार्य-परम्परा, उसके सोलह प्रमुख विद्वानों तथा उनके द्वारा रचित तन्त्रों का नाम-निर्देश, ज्वर आदि चौंसठ रोग, उनके हेतुभूत वात, पित्त, कफ की उत्पत्ति के कारण और उनके निवारण के उपायों का विवेचन है। ब्राह्मण-बालक के साथ क्रमशः ब्रह्मा, शंकर तथा धर्म ने बातचीत की और देवताओं ने श्रीविष्णु की तथा ब्राह्मण ने भगवान् श्रीकृष्ण की उत्कृष्ट महत्ता का प्रतिपादन किया। ब्रह्मा आदि देवताओं ने उपबर्हण को जीवित करने की चेष्टा की, मालावती ने भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति की। तब शक्ति सहित भगवान् ने गन्धर्व के शरीर में प्रवेश किया, जिससे गन्धर्व जी उठा। मालावती ने प्रचुर दान दिया। इसके बाद ब्रह्माण्डपावन नामक कृष्णकवच, संसारपावन नामक शिवकवच तथा शिवस्तवराज का वर्णन किया गया है। गोपत्नी कलावती के गर्भ से एक शिशु के रूप में उपबर्हण का जन्म हुआ। तत्पश्चात्

शूद्रयोनि में उत्पन्न बालक नारद की जीवनचर्या, नाम की व्युत्पत्ति उसके द्वारा संतों की सेवा, सनत्कुमार द्वारा उसे उपदेश की प्राप्ति, उसके द्वारा श्रीहरि के स्वरूप का ध्यान, आकाशवाणी और उस बालक के देहत्याग की कथा वर्णित है।

अध्याय २१ से ३० तक का विवरण--ब्रह्मा के पुत्रों के नामों की व्युत्पत्ति के बाद ब्रह्मा से सृष्टि के, लिए दारपरिग्रह की प्रेरणा पाकर डरे हुए नारद ने स्त्रीसंग्रह के दोष बताकर तप के लिए जाने की आज्ञा माँगी। ब्रह्मा ने नारद को गृहस्थधर्म का महत्त्व बताकर विवाह के लिए राजी किया और नारद पिता की आज्ञा लेकर शिवलोक को विदा हो गये। वहाँ नारद को भगवान् शिव का दर्शन मिला। शिव ने उनका सत्कार किया तथा मनोवाञ्छापूर्ति के लिए आश्वासन दिया। इसके बाद ब्राह्मणों के आह्निक आचार तथा भगवान् के पूजन की विधि का वर्णन है। फिर ब्राह्मणों के लिए भक्ष्याभक्ष्य तथा कर्त्तव्याकर्त्तव्य का एवं परब्रह्म परमात्मा के स्वरूप का निरूपण किया गया है। बदरिकाश्रम में नारायण से नारद ने प्रश्न पूछा और नारायण ने परम पुरुष परमात्मा श्रीकृष्ण तथा प्रकृति देवी की महिमा का प्रतिपादन किया।

(२) प्रकृतिखण्ड में ६७ अध्याय हैं। अध्याय १ से १४ तक का विवरण--पञ्चदेवी रूपा प्रकृति का तथा उनके अंश, कला एवं कलांश का विशद वर्णन करने के उपरान्त परब्रह्म श्रीकृष्ण और श्रीराधा से प्रकट चिन्मय देवी और देवताओं के चरित्र चित्रित किये गये हैं। इसके बाद परिपूर्णतम श्रीकृष्ण और चिन्मयी श्रीराधा से प्रकट विराट्स्वरूप बालक का वर्णन तथा सरस्वती की पूजा का विधान और कवच प्रस्तुत है। याज्ञवल्क्य ने भगवती सरस्वती की स्तुति की। विष्णु-पत्नी--लक्ष्मी, सरस्वती एवं गंगा परस्पर शापवश भारतवर्ष में पधारीं। इसके बाद कलियुग के भावी चरित्र, कालमान तथा गोलोक की श्रीकृष्णलीला का वर्णन किया गया है। फिर पृथ्वी की उत्पत्ति का प्रसंग, ध्यान और पूजन का प्रकार तथा स्तुति एवं पृथ्वी के प्रति शास्त्रविपरीत व्यवहार करने पर नरकों की प्राप्ति का वर्णन है। गंगा की उत्पत्ति के विस्तृत प्रसंग में श्रीराधा जी ने गंगा पर रोष किया राधा ने श्रीकृष्ण को उपालंभ दिया। गंगा श्रीराधा के भय से श्रीकृष्ण के चरणों में छिप गयीं, जलाभाव से पीड़ित देवगण गोलोक में गये, ब्रह्मा जी की स्तुति से राधा प्रसन्न हो गयीं तथा गंगा प्रकट हुईं। फिर देवताओं के प्रति श्रीकृष्ण के आदेश और गंगा के विष्णुपत्नी होने का प्रसंग आता है। तदनन्तर तुलसी के कथा-प्रसंग में राजा वृषध्वज का चरित्र-वर्णन किया गया है। फिर वेदवती की कथा आती है। इसी प्रसंग में भगवान् राम के चरित्र का एक अंश और भगवती सीता तथा द्रौपदी के पूर्व-जन्म का वृत्तान्त कहा गया है।

अध्याय १५ से २८ तक का विवरण--भगवती तुलसी का प्रादुर्भाव हुआ। स्वप्न में तुलसी को शंख-चूड के दर्शन हुए। शंखचूड तथा तुलसी के विवाह के लिए ब्रह्मा ने दोनों को आदेश दिया। तुलसी के साथ शंखचूड का गान्धर्व विवाह हुआ और देवताओं ने उसके पूर्व-जन्म का वृत्तान्त जाना। पुष्पदन्त दूत बनकर शंखचूड के पास गया और शंखचूड ने तुलसी के प्रति ज्ञानोपदेश किया। फिर शंखचूड पुष्पभद्रानदी के तट पर गया, वहाँ भगवान् शंकर का दर्शन तथा उनसे विशद वार्तालाप हुआ। भगवान् शंकर और शंखचूड के पक्षों में युद्ध ठन गया। भद्रकाली ने भयंकर युद्ध किया। जब भद्रकाली ने पाशुपतास्त्र चलाना चाहा तब आकाशवाणी ने उसे रोक दिया। तब भगवान् शंकर और शंखचूड का युद्ध हुआ। इस बीच शंखचूड वेशधारी हरि ने तुलसी का पातिव्रत्य भंग किया। तब शंकर के त्रिशूल से शंखचूड भस्म हो गया तथा सुदामा गोप के रूप में वह विमान द्वारा गोलोक चला गया। इधर तुलसी के शाप से हरि को शालग्राम-पाषाण के रूप में भारतवर्ष में रहना पड़ा

और तुलसी के शरीर से गण्डकी नदी एवं केशों से तुलसी वृक्ष उत्पन्न हुए। शालग्राम के विभिन्न लक्षण और महत्त्व का वर्णन किया गया। इसके बाद तुलसी-पूजन, ध्यान, नामाष्टक तथा तुलसी-स्तवन का वर्णन है। अनन्तर सावित्री देवी की पूजा-स्तुति की विधि बतायी गयी है। राजा अश्वपति ने सावित्री की उपासना की तथा फल-स्वरूप सावित्री नामक कन्या की उत्पत्ति हुई, सत्यवान् के साथ सावित्री का विवाह हुआ, सत्यवान् की मृत्यु हो गयी। उस समय सावित्री और यमराज में संवाद होता है। सावित्री धर्मराज से प्रश्न करती है और धर्मराज उसका उत्तर देता है। सावित्री को वरदान मिलता है तथा सावित्री धर्मराज को प्रणाम निवेदन करती है।

अध्याय २९ से ५४ तक का विवरण--नरक-कुण्डों और उनमें जानेवाले पापियों तथा पापों के वर्णन के उपरान्त पञ्चदेवोपासकों के नरक में न जाने का कथन किया जाता है तथा छियासी प्रकार के नरक-कुण्डों का विशद परिचय दिया जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण के स्वरूप, महत्त्व और गुणों की अनिर्वचनीयता बतायी जाती है। भगवती महालक्ष्मी प्रकट होकर विभिन्न व्यक्तियों द्वारा पूजित होती हैं, फिर दुर्वासा के शाप से महालक्ष्मी देवलोक को छोड़ देती हैं और इन्द्र दुःखी होकर बृहस्पति के पास जाते हैं। भगवती लक्ष्मी समुद्र से प्रकट होती हैं। इन्द्र महालक्ष्मी का ध्यान तथा स्तवन करके पुनः अधिकार प्राप्त करते हैं। इसके बाद भगवती स्वाहा तथा भगवती स्वधा का उपाख्यान, उनके ध्यान, पूजा-विधान तथा स्तोत्रों का वर्णन किया जाता है। फिर भगवती दक्षिणा का प्रसंग आता है. उनका ध्यान, पूजा-विधान तथा स्तोत्र-वर्णन एवं चरित्र-श्रवण की फलश्रुति बतायी गयी है। देवी षष्ठी के ध्यान, पूजन, स्तोत्र तथा विशद महिमा का वर्णन किया गया है। इसके बाद भगवती मंगलचण्डी और मनसा देवी का उपाख्यान आता है। फिर आदि गौ सुरभी देवी का उपाख्यान है। अनन्तर नारद-नारायण-संवाद में पार्वती के पूछने पर महादेव द्वारा राधा के प्रादुर्भाव एवं महत्त्व आदि का वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् राधा और श्रीकृष्ण के चरित्र तथा राधा की पूजा-परम्परा का अत्यन्त संक्षिप्त परिचय मिलता है। फिर राजा सुयज्ञ की यज्ञशीलता और उन्हें ब्राह्मण के शाप की प्राप्ति, ऋषियों द्वारा ब्राह्मण को क्षमा के लिए प्रेरित करते हुए कृतघ्नों के भेद तथा विभिन्न पापों के फल का प्रतिपादन किया गया है, और सुतपा ने सुयज्ञ को शिवप्रदत्त परम दुर्लभ महाज्ञान का उपदेश दिया है।

अध्याय ५५ से ६७ तक का विवरण--गोलोक एवं श्रीकृष्ण की उत्कृष्टता बताकर कालमान एवं विभिन्न प्रलयों का निरूपण किया गया है। फिर चौदह मनुओं का परिचय, ब्रह्मा से लेकर प्रकृति तक के श्रीकृष्ण में लय होने का वर्णन, शिव का मृत्युञ्जयत्व और मूल-प्रकृति से महाविष्णु का प्रादुर्भाव वर्णित है। सुयज्ञ को विप्र-चरणोदक का महत्त्व तथा राधा का मन्त्र बताकर सुतपा चले गये और पुष्कर में दुष्कर तपस्या तथा राधा मंत्र के जप से सुयज्ञ को राधा की कृपा प्राप्त हुई, जिससे गोलोक में पहुँचने पर उन्हें श्रीकृष्ण का दर्शन एवं कृपा-प्रसाद प्राप्त हो गया। इसके बाद राधा के ध्यान, षोडशोपचार पूजन, परिचारिकापूजन, परिहारस्तवन, पूजन-महिमा तथा स्तुति एवं उसके माहात्म्य का वर्णन आता है। फिर श्रीजगन्मंगल राधाकवच तथा उसकी महिमा, दुर्गा जी के सोलह नामों की व्याख्या, दुर्गा की उत्पत्ति तथा उनके पूजन की परम्परा का संक्षिप्त परिचय है। इसके बाद सुरथ और समाधि वैश्य मेधस् के आश्रम में पहुँचते हैं। मुनि उन्हें दुर्गा की महिमा एवं उनकी आराधना-विधि का उपदेश देते हैं और दुर्गा की आराधना से उन दोनों के अभीष्ट मनोरथ की पूर्ति होती है। सुरथ और समाधि पर देवी की कृपा होती है, उन्हें वरदान मिलता है। अनन्तर देवी की पूजा का विधान, ध्यान, प्रतिमा की स्थापना, परिहारस्तुति, शंख में तीर्थों का आवाहन तथा देवी के षोडशोपचारपूजन का क्रम बताया

गया है। फिर देवी के बोधन, आवाहन, पूजन और विसर्जन के नक्षत्र, इन सबकी महिमा, राजा को देवी का दर्शन एवं उत्तम ज्ञान का उपदेश वर्णित है। अन्त में दुर्गा के दुर्गानाशनस्तोत्र तथा प्रकृतिकवच या ब्रह्माण्ड-मोहन-कवच एवं उसका माहात्म्य बताया गया है।

(३) गणपतिखण्ड में ४६ अध्याय हैं। अध्याय १ से १० तक का विवरण—नारद ने नारायण से गणेश-चरित के विषय में जिज्ञासा प्रकट की। नारायण ने शिव-पार्वती के विवाह तथा स्कन्द की उत्पत्ति का वर्णन किया। पार्वती ने शिव से पुत्रोत्पत्ति के लिए प्रार्थना की। तब शिव ने उन्हें पुण्यक-व्रत रखने के लिए प्रेरित किया और पुण्यक-व्रत की सामग्री, विधि, फल तथा माहात्म्य भी बताया। तब पार्वती ने व्रतारम्भ के लिए प्रयत्न किया। ब्रह्मा आदि देवगण तथा ऋषिवृन्द आये। शिव ने सबका सत्कार किया तथा विष्णु से पुण्यक-व्रत के विषय में प्रश्न पूछा। विष्णु ने व्रत का माहात्म्य तथा गणेशोत्पत्ति का वर्णन सुनाया। पार्वती ने व्रत प्रारंभ किया। किन्तु व्रत की समाप्ति पर जब पुरोहित ने शिव को दक्षिणा रूप में माँगा तब पार्वती मूर्च्छित हो गयीं। पश्चात् शिव, देवगण तथा मुनिवृन्द उन्हें समझाने लगे। पार्वती बहुत दुःखी हुईं। तब विष्णु ने पति के बदले गोमूल्य देकर पार्वती को व्रत समाप्त करने का आदेश दिया। उस समय एक अद्भुत तेज का आविर्भाव हुआ जिसकी स्तुति देवों, मुनियों तथा पार्वती ने की। पार्वती की स्तुति से प्रसन्न हुए श्रीकृष्ण ने पार्वती को अपने रूप का दर्शन कराया और वर प्रदान किया। अनन्तर जब शिव-पार्वती एकान्तवास करने लगे उस समय विष्णु भिक्षु ब्राह्मण का रूप बनाकर वहाँ पहुँचे और भोजन माँगने लगे। दम्पती वहाँ आये। ब्राह्मण से वार्तालाप कर ही रहे थे कि ब्राह्मण अन्तर्हित हो गये। शिव-पार्वती ब्राह्मण को ढूँढ़ने लगे। आकाशवाणी के सूचित करने पर पार्वती ने अपने भवन में जाकर पुत्र को देखा जो विप्ररूपधारी श्रीकृष्ण ही थे। तब उमा ने शंकर को बुलाकर दिखाया। शिव-पार्वती बालक गणेश को गोद में लेकर आनन्द मनाने लगे। उन्होंने पुत्रोत्सव के उपलक्ष्य में अनेक प्रकार के दान दिये तथा देवी-देवताओं ने बालक को शुभाशीर्वाद प्रदान किया। अन्त में मंगलाध्याय के श्रवण का फल वर्णित है।

अध्याय ११ से २३ तक का विवरण—गणेश को देखने के लिए शनैश्चर आये और पार्वती के पूछने पर उन्होंने अपने द्वारा किसी वस्तु के न देखने का कारण बताया। फिर भी पार्वती हठ करने लगीं, जिससे शनैश्चर को गणेश पर दृष्टिपात करना पड़ा, शनि के देखते ही गणेश का सिर कटकर गोलोक में चला गया। पार्वती मूर्च्छित हो गयीं। श्रीहरि आये। उन्होंने गणेश के धड़ पर हाथी का सिर जोड़कर जीवित कर दिया। फिर पार्वती को होश में लाकर बालक को आशीर्वाद दिया और पार्वती ने शनैश्चर को शाप दे दिया। विष्णु आदि देवों ने गणेश की अग्रपूजा की। पार्वती ने भी विशेष उपचार के साथ गणेश का पूजन किया। विष्णु ने गणेश की स्तुति की और संसारमोहन नामक कवच का वर्णन किया। तदुपरान्त शिव-पार्वती से कार्तिकेय की उत्पत्ति हुई, जिसे कृत्तिकाओं ने प्राप्त कर लिया था। जब पार्वती को देवताओं द्वारा कार्तिकेय का समाचार मिला तो शिव ने कृत्तिकाओं के पास दूतों को भेजा। वहाँ कार्तिकेय और नन्दी का संवाद हुआ। कार्तिकेय नन्दिकेश्वर के साथ कैलास पर आये। उनका स्वागत हुआ। विष्णु आदि देवों को प्रणाम करके उनसे शुभाशीर्वाद प्राप्त किया। पश्चात् कार्तिकेय का अभिषेक हुआ और देवताओं ने उन्हें उपहार प्रदान किया। गणेश के शिरश्छेदन के वर्णन-प्रसंग में शंकर ने सूर्य को मार डाला। कश्यप ने शिव को शाप दिया। अनन्तर सूर्य जीवित हो गये और माली-सुमाली की रोग-निवृत्ति हो गयी। तब ब्रह्मा से माली-सुमाली को सूर्य के कवच और स्तोत्र की प्राप्ति

हुई। भगवान् नारायण के समर्पित पुष्प की अवहेलना से इन्द्र श्रीभ्रष्ट हो गये। फिर बृहस्पति के साथ ब्रह्मा के पास जाने पर उन्हें ब्रह्मा द्वारा दिये गये नारायणस्तोत्र, कवच और मन्त्र के जप से पुनः श्री की प्राप्ति हुई। श्रीहरि ने इन्द्र को लक्ष्मीकवच तथा लक्ष्मीस्तोत्र प्रदान किये, देवताओं के स्तवन करने पर महालक्ष्मी ने प्रकट होकर देवों और मुनियों के समक्ष अपने निवास योग्य स्थान का वर्णन किया।

अध्याय २४ से ३३ तक का विवरण——गणेश के एकदन्त-वर्णन-प्रसंग में जमदग्नि के आश्रम में कार्तवीर्य का स्वागत-सत्कार किया गया। पर कार्तवीर्य ने कामधेनु को बलपूर्वक हरण करने की इच्छा प्रकट की। तब कामधेनु ने सेना उत्पन्न की, जिसके साथ कार्तवीर्य की सेना का घोर युद्ध हुआ। पश्चात् जमदग्नि एवं कार्तवीर्य में युद्ध ठन गया, पर ब्रह्मा ने बीच-बचाव कर दिया। पुनः दोनों में युद्ध हुआ। कार्तवीर्य ने दत्तात्रेय द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रहार किया, जिससे जमदग्नि का प्राणान्त हो गया। मुनि की पत्नी रेणुका विलाप करने लगी। परशुराम आये। उन्होंने क्षत्रिय-वध की प्रतिज्ञा की। भृगु मुनि सान्त्वना देने आये। रेणुका और भृगु का संवाद हुआ। रेणुका पति के साथ सती हो गयी। परशुराम पिता की अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न करके ब्रह्मा के पास गये और अपनी प्रतिज्ञा सुनाने लगे। ब्रह्मा ने उन्हें शिव के पास भेज दिया। परशुराम शिवलोक पहुँचकर शिव का दर्शन करके उनकी स्तुति करने लगे। परशुराम ने शिव से अपना अभिप्राय प्रकट किया। उसे सुनकर भद्रकाली कुपित हो गयीं। परशुराम रोने लगे। शिव ने प्रसन्न होकर उन्हें नाना प्रकार के दिव्यास्त्र एवं शस्त्रास्त्र प्रदान किये, साथ ही त्रैलोक्य विजय नामक कवच उन्हें दिया और मंत्र, ध्यान एवं पूजाविधि बतायी। तब पुष्कर में जाकर परशुराम ने तपस्या की। श्रीकृष्ण से वरदान मिला। आश्रम में आकर उन्होंने मित्रों के साथ विजय-यात्रा की। शुभ शकुन प्रकट होने लगे। नर्मदा-तट पर उन्हें रात्रि में शुभ स्वप्न दिखायी पड़े।

अध्याय ३४ से ४० तक का विवरण——परशुराम ने कार्तवीर्य के पास दूत भेजा। दूत की बात सुनकर राजा युद्ध के लिए उद्यत हो गया और रानी मनोरमा से स्वप्नदृष्ट अपशकुन के बारे में बताने लगा। रानी ने उसे परशुराम से युद्ध न करने की सलाह दी। परन्तु राजा रानी को समझाकर स्वयं युद्धार्थ उद्यत हो गया। राजा को युद्धोद्यत देखकर मनोरमा ने योग द्वारा शरीर छोड़ दिया। राजा ने विलाप किया और आकाशवाणी सुनकर उसकी अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न की। युद्ध-यात्रा में उसे नाना प्रकार के अपशकुन दिखायी दिये। फिर भी उसने परशुराम से युद्ध किया। उस युद्ध में मत्स्यराज के वध के पश्चात् अनेकों राजा खेत आये। पुनः राजा सुचन्द्र और परशुराम से युद्ध हुआ। परशुराम ने काली की स्तुति की। ब्रह्मा ने आकर परशुराम को युक्ति बतायी। जिससे परशुराम ने राजा सुचन्द्र से मन्त्र और कवच माँगकर उसका वध किया। इसके बाद दशाक्षरी विद्या तथा काली-कवच का वर्णन आता है। फिर सुचन्द्र-पुत्र पुष्कराक्ष के साथ परशुराम का युद्ध होता है। पाशुपतास्त्र छोड़ने के लिए उद्यत परशुराम के पास विष्णु आते हैं और उन्हें समझाते हैं। फिर ब्राह्मण का रूप धारणकर विष्णु पुत्र-सहित पुष्कराक्ष से लक्ष्मीकवच तथा दुर्गाकवच माँग लेते हैं। इसके बाद लक्ष्मीकवच तथा दुर्गाकवच का वर्णन आता है। अनन्तर परशुराम द्वारा राजा सहस्राक्ष का वध किया जाता है। कार्तवीर्य और परशुराम में युद्ध होता है। परशुराम मूर्च्छित हो जाते हैं। शिव उन्हें पुनर्जीवन-दान देते हैं। कार्तवीर्य और परशुरा में संवाद होता है। आकाशवाणी सुनकर शंकर ब्राह्मणवेश धारण करके कार्तवीर्य से कवच माँग लेते हैं। तब परशुराम कार्तवीर्य और अन्यान्य क्षत्रियों का संहार कर डालते हैं। ब्रह्मा आते हैं और परशुराम को गुरुस्वरूप शंकर की शरण में जाने का उपदेश देकर अपने स्थान को लौट जाते हैं।

अध्याय ४१ से ४६ तक का विवरण—परशुराम ने कैलास के लिए प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचने पर वे शिव-मन्दिर में पार्षदों सहित गणेश को प्रणाम करके आगे बढ़ने को उद्यत हुए। पर गणेश ने उन्हें रोक दिया। परशुराम ने शंकर के अन्तःपुर में जाने के लिए गणपति से प्रार्थना की। गणेश ने उन्हें समझाया। न मानने पर उन्हें स्तम्भित करके अपनी सूंड़ में लपेटकर सभी लोकों में घुमाते हुए गोलोक में श्रीकृष्ण का दर्शन कराकर भूतल पर छोड़ दिया। प्रकृतिस्थ होने पर परशुराम ने क्रोध से गणेश पर फरसे का प्रहार किया। गणेश का एक दाँत टूट गया। देवलोक में हाहाकार मच गया। पार्वती रोने लगीं। फिर उन्होंने शिव से प्रार्थना की और परशुराम को मारने के लिए उद्यत हो गयीं। तब परशुराम ने इष्टदेव का ध्यान किया। भगवान् वामन रूप से पधारे। उन्होंने शंकर-पार्वती को समझाया और गणेश-स्तोत्र को प्रकट किया। फिर परशुराम से गौरी की स्तुति करने के लिए कहकर विष्णु वैकुण्ठ चले गये। परशुराम ने पार्वती की स्तुति की। वे प्रसन्न हो गयीं। फिर राम ने गणपति की स्तुति और पूजा की। इसके बाद गणेश-पूजन में तुलसी-निषेध के प्रसंग में गणेश और तुलसी के संवाद का तथा गणपति-खण्ड की फलश्रुति माहात्म्य वर्णन किया गया है।

ब्रह्मवैवर्तपुराण क्या प्राचीन ब्रह्मवैवर्त ही है ?

प्रचलित ब्रह्मवैवर्तपुराण मूल ब्रह्मवैवर्त नहीं है। कारण मत्स्यपुराण इसको राजस पुराण मानता है, जिसमें ब्रह्मा की स्तुति की गयी है—

ब्रह्माण्डं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं तथैव च।
भविष्यं वामनं ब्राह्मं राजसानि निबोध मे॥

(आनन्दाश्रमसं० २६४।८४)

स्कन्दपुराणीय 'शिवरहस्य' खण्ड के अनुसार यह पुराण सविता (सूर्य) का प्रतिपादक माना जाता था। मत्स्य के अनुसार इस पुराण का दानकर्ता ब्रह्मलोक में निवास करता है। इस प्रकार ब्रह्मलोक को ब्रह्मा के प्रतिपादक पुराण द्वारा उच्चतम माना जाना स्वाभाविक ही है--मत्स्य के अनुसार 'राजस' पुराण में ब्रह्मा की ही स्तुति प्राधान्येन निविष्ट रहती है—'**राजसेषु च माहात्म्यमधिकं ब्रह्मणो विदुः**' (मत्स्य० ५३।२८)। इन्हीं दोनों वाक्यों की एकवाक्यता करने पर ब्रह्मवैवर्त ब्रह्मा का प्रतिपादक पुराण मूलतः प्रतीत होता है। इस तथ्य का समर्थन इस बात से भी होता है कि ब्रह्मवैवर्त का दाता ब्रह्मलोक में पूजित होता है--

पुराणं ब्रह्मवैवर्तं यो दद्यान्माघमासि च।
पौर्णमास्यां शुभदिने ब्रह्मलोके महीयते॥

(मत्स्य० ५३।३५)

स्कन्दपुराण (७, १, २, ५३) में भी यही श्लोक उपलब्ध है। फलतः पुराणों की दृष्टि से मूल ब्रह्मवैवर्त ब्रह्मा की स्तुति तथा माहात्म्य का प्रतिपादक पुराण निश्चित होता है। इस प्रसंग में स्वयं ब्रह्मवैवर्तपुराण का भी कथन द्रष्टव्य है—

'विवृतं ब्रह्म कार्त्स्न्येन कृष्णेन यत्र शौनक।
ब्रह्मवैवर्तकं तेन प्रवदन्ति पुराविदः॥
इदं पुराणसूत्रञ्च पुरादत्तञ्च ब्रह्मणे।
निरामये च गोलोके कृष्णेन परमात्मना॥

महातीर्थे पुष्करे च दत्तं धर्माय ब्रह्मणा ।
धर्मेण दत्तं पुत्राय प्रीत्या नारायणाय च ।।
नारायणर्षिर्भगवान् प्रददौ नारदाय च ।
नारदो व्यासदेवाय प्रददौ जाह्नवीतटे ।
व्यासः पुराणसूत्रं तत् संव्यस्य विपुलं महत् ।
मह्यं ददौ सिद्धक्षेत्रे पुण्यदेशे मनोहरम् ।।
मयेदं कथितं ब्रह्मंस्तत्समग्रं निशामय ।
अष्टादशसहस्रं तु व्यासेनेदं पुराणकम् ।।

(ब्रह्मखण्ड १।६०-६६)

उपर्युक्त श्लोकों के अनुसार इसे मात्स्य या शैववर्णित ब्रह्मवैवर्त नहीं माना जा सकता ।

फिर प्रचलित ब्रह्मवैवर्त में इतने कृत्रिम विषयों का समावेश हो गया है कि उनमें से आदि और अकृत्रिम विषय निकालना असम्भव-सा है ।

कुछ विद्वानों का कहना है कि मुसलमान-काल में किसी बंगाली विद्वान् द्वारा प्रचलित ब्रह्मवैवर्त में बहुत-से श्लोक समाविष्ट कर दिये गये हैं । जैसा कि ब्रह्मखण्ड के वचन से ज्ञात होता है––

'म्लेच्छात् कुविन्दकन्यायां जोलाजातिर्बभूव ह ।'

(१०।१२१)

अर्थात् म्लेच्छ के औरस और कुविन्द-कन्या के गर्भ से जोला (जुलाहा) जाति उत्पन्न हुई । केवल वंग-देश में जुलाहे को जोला कहते हैं । पश्चिमांचल में तो जोलाहा नाम से ही प्रचलित है । यही कारण है कि शंखचूड के युद्ध में 'राढ़ीय' और 'वारेन्द्र' वीरों का नाम आया है ।

और, स्मृतिचन्द्रिका, हेमाद्रि का चतुर्वर्गचिन्तामणि, रघुनन्दन का स्मृतितत्त्व आदि निबन्धों में तत्तत् लेखकों ने ब्रह्मवैवर्त से विपुल वचनों को उद्धृत किया है । वचनों की संख्या १५०० पंक्तियों के आस-पास है, परन्तु प्रचलित ब्रह्मवैवर्त में केवल ३ पंक्तियाँ ही इनमें से प्राप्य हैं । यह स्पष्टतः सूचित करता है कि प्रचलित ब्रह्मवैवर्त मूल पुराण नहीं है ।

ब्रह्मवैवर्तपुराण का मूल्यांकन

ब्रह्मवैवर्तपुराण का प्रधान लक्ष्य है कृष्णचरित्र का विस्तृत रूप से वर्णन करना । सृष्टि के अवसर पर परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं दो रूपों में प्रकट होते हैं––प्रकृति और पुरुष । उनका दाहिना अंग पुरुष और बायाँ अंग प्रकृति हुआ । वही मूल प्रकृति राधा हैं । ये ब्रह्मस्वरूपा नित्या और सनातनी हैं । फिर इनके पाँच रूप हो गये––(१) शिवस्वरूपा नारायणी और पूर्णब्रह्मस्वरूपिणी 'भगवती दुर्गा' (२) शुद्ध सत्त्व-स्वरूपा, परम प्रभु हरि की शक्ति, समस्त सम्पत्ति की अधिष्ठात्री देवी महालक्ष्मी, (३) वाणी, बुद्धि, विद्या और ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती, (४) ब्रह्मतेज से सम्पन्न शुद्ध सत्त्वमयी ब्रह्मा की परम प्रिय शक्ति सावित्री और (५) प्रेम तथा प्राणों की अधिदेवी परमात्मा श्रीकृष्ण की प्राणाधिका प्रिया, सम्पूर्ण देवियों में अग्रगण्य, अतुलनीय सौन्दर्य, माधुर्य आदि सद्गुणों में सम्पन्न राधा ।

इन मूल प्रकृति देवी के ही अंश, कला, कलांश और कलांशांश भेद से अनेक रूप हैं। गंगा, तुलसी, मनसा, देवसेना, षष्ठी, मंगलचण्डी, काली, पृथ्वी, स्वाहा, स्वधा तथा सम्पूर्ण दिव्य देवियाँ इन्हीं से प्रकट हुई हैं। यहाँ तक कि लोक में जितनी स्त्रियाँ हैं, वे सभी प्रकृति (परमात्मा की अभिन्न शक्ति) की कला के अंश की अंशरूपा ही हैं। इसीलिए स्त्रियों के अपमान से प्रकृति का अपमान समझा जाता है—**'योषितामपमानेन प्रकृतेश्च पराभव ।'**

ब्रह्मवैवर्तपुराण के अनुसार प्रलयकाल में केवल ज्योतिःपुञ्ज शेष रहता है। उसका प्रकाश करोड़ों सूर्यों की प्रभा से भी अधिक होता है। वह नित्य होने के साथ ही अनेक विश्वों का कारण है। स्वेच्छामय परमात्मा श्रीकृष्ण का ही वह महान् तेजःपुञ्ज है। तीनों लोकों अथवा समस्त ब्रह्माण्ड से बहुत ऊपर अप्राकृत अन्तरिक्ष में परमेश्वर के समान ही नित्य गोलोकधाम विराजमान है। यद्यपि वह नित्य और विभु है तथापि भगवान् की इच्छा के अनुसार तीन करोड़ योजन लम्बाई-चौड़ाई में उसकी स्थिति है। वह सब ओर से गोलाकार है। उस धाम का स्वरूप भी दिव्य तेजोमय है तथा वहाँ की सच्चिन्मयी भूमि भी रत्नमयी दिखायी देती है। परमेश्वर श्रीकृष्ण ने अपने ही स्वरूपभूत उस श्रेष्ठ धाम को योगशक्ति से धारण कर रखा है। वहाँ आधि, व्याधि, जरा, मृत्यु, शोक तथा भय आदि का कदापि प्रवेश नहीं होता।

इस पुराण में सृष्टि-प्रक्रिया का जो क्रम वर्णित है, वह अन्य स्थानों से कुछ विलक्षण है; अतः इसे कल्प-विशेष का ही क्रम मानना चाहिए। यद्यपि इस ग्रन्थ में उस कल्प का नाम-निर्देश नहीं है तो भी मत्स्यादि पुरा-णान्तरों के मतानुसार इसमें रथन्तर कल्प के ही सर्गादि वृत्तान्त का वर्णन हुआ है—ऐसा हम कह सकते हैं।

इस प्रकार उपक्रम, उपसंहार तथा अभ्यास आदि तात्पर्य-निर्णय के साधनानुसार इस ग्रन्थ का यह सिद्धान्त स्वीकार किया जा सकता है कि श्रीकृष्ण ही परम तत्त्व हैं।

त्याग, तपस्या, वैराग्य, धर्म और सदाचार आदि के सदुपदेश तो इसमें कूट-कूटकर भरे हैं। पाठकों के लाभार्थ हम इस पुराण की कुछ सूक्तियाँ नीचे प्रस्तुत कर रहे हैं। सर्वप्रथम एक सुप्रसिद्ध श्लोक या मन्त्र देखिये जिसे प्रत्येक कर्मकाण्डी कार्यारम्भ में पढ़कर अपने ऊपर छिड़कता है—

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥

(ब्रह्मखण्ड १७, १७)

पाप ही रोग आदि का कारण है—

पापेन जायते व्याधिः पापेन जायते जरा ।
पापेन जायते दैन्यं दुःखं शोको भयंकरः ॥
तस्मात् पापं महावैरं दोषबीजममंगलम् ।
भारते सततं सन्तो नाचरन्ति भयातुराः ॥

(ब्रह्मखण्ड १६, ५१-५२)

गंगा आदि की श्रेष्ठता –

नास्ति गंगासमं तीर्थं न च कृष्णात्परः सुरः ।
न शंकराद्वैष्णवश्च न सहिष्णुर्धरा परा ॥

न च सत्यात्परो धर्मो न साध्वी पार्वती परा ।
न दैवाद् बलवान् कश्चिन्न च पुत्रात्परः प्रियः ।।
न च व्याधिसमः शत्रुर्न च पूज्यो गुरोः परः ।
नास्ति मातृसमो बन्धुर्न च मित्रं पितुः परम् ।।
एकादशीव्रतान्नान्यत्तपो नानशनात्परम् ।
परं सर्वधनं रत्नं विद्यारत्नं परं ततः ।।

(ब्रह्मखण्ड ११, १६-१६)

उत्तम कुल में नीच पैदा नहीं होता--

सद्वंशे दुर्विनीता च संभवेन्न कदाचन ।
आकरे पद्मरागाणां जन्म काचमणेः कुतः ।।

(ब्रह्मखण्ड २४, १०)

पुत्र की आत्मीयता--

सर्वेभ्यो जयमन्विच्छेत्पुत्रादेकात्पराजयम् ।

(ब्रह्मखण्ड २४, २६)

[ब्रह्मखण्ड का १६वाँ अध्याय तो वैद्यक का निचोड़ ही है। उसे अवश्य देखना चाहिए।]

हरि-कीर्तन का फल--

करोति सततं यो हि तन्नामगुणकीर्तनम् ।
कालं मृत्युं स जयति जन्म, रोगं जरां भयम् ।।

(प्रकृतिखण्ड, १८, ६१)

कन्या का विक्रय महान् पाप है--

स्वकन्यापालनं कृत्वा विक्रीणाति हि यो नरः ।
अर्थलोभान्महामूढो मांसकुण्डं प्रयाति सः ।।

(प्रकृतिखण्ड ३०, ३३)

भगवान् का प्रसाद तुरन्त खा लेना चाहिए--

विष्णोर्निवेदितं पुष्पं नैवेद्यं वा फलं जलम् ।
प्राप्तिमात्रेण भोक्तव्यं त्यागेन ब्रह्महा जनः ।।

(प्रकृतिखण्ड ३६, २८)

परस्त्रीलम्पट पुरुष किसी कर्म के योग्य नहीं होता--

यस्य चित्तं परस्त्रीषु सोऽशुचिः सर्वकर्मसु ।
न कर्मफलभाक्पापी निन्द्यो विश्वेषु सर्वतः ।।

(प्रकृतिखण्ड ५८, ३२)

बिना माता और पत्नी के घर जंगल के समान है--

यस्य माता गृहे नास्ति गृहिणी वा सुशासिता ।
अरण्यं तेन गन्तव्यं यथाऽरण्यं तथा गृहम् ।।

(प्रकृतिखण्ड ५६, १२)

स्त्रियों के तीन रक्षक होते हैं--

पिता कौमारकाले च सदा पालनकारकः ।
भर्ता मध्ये सुतः शेषे त्रिधाऽवस्था सुयोषिताम् ।।

(गणपतिखण्ड ४, ६)

सभी अपने कर्मों के फल भोगते हैं--

ब्रह्मादिकीटपर्यन्तं फलं भुङक्ते स्वकर्मणः ।
इन्द्रः स्वकर्मणा कीटयोनौ जन्म लभेत्सति ।।
कीटश्चापि भवेदिन्द्रः पूर्वकर्मफलेन वै ।।
सिंहोऽपि मक्षिकां हन्तुमक्षमः प्राक्तनं विना ।
मशको हस्तिनं हन्तुं क्षमः स्वप्राक्तनेन च ।।
इहैव कर्मणो भोगः परत्र च शुभाशुभः ।
कर्मोपार्जनयोग्य हि पुण्यक्षेत्रं च भारतम् ।।

(गणपतिखण्ड १२, २५-२७-२८-३०)

माताएँ कितनी होती हैं--

स्तनदात्री गर्भधात्री भक्ष्यदात्री गुरुप्रिया ।
अभीष्टदेवपत्नी च पितुः पत्नी च कन्यकाः ।।
सगर्भकन्या भगिनी पुत्रपत्नी प्रियाप्रसूः ।
मातुर्माता पितुर्माता सोदरस्य प्रिया तथा ।।
मातुः पितुश्च भगिनी मातुलानी तथैव च ।
जनानां वेदविहिता मातरः षोडश स्मृताः ।।

(गणपतिखण्ड १५, ४१-४३)

समय बलवान् होता है--

काले सिंहः सृगालं च सृगालः सिंहमेव च ।
काले व्याघ्रं हन्ति मृगो गजेन्द्रं हरिणस्तथा ।।
महिषं मक्षिका काले गरुडं च तथोरगः ।
किंकरः स्तौति राजेन्द्रं काले राजा च किंकरम् ।।
इन्द्रं च मानवः काले काले ब्रह्मा मरिष्यति ।

(गणपतिखण्ड ४०, ४३-४५)

माता-पिता आदि का पोषण करना कर्तव्य है--

पिता माता गुरुर्भार्या शिशुश्चानाथबान्धवाः ।
एते पुंसां नित्यपोष्या इत्याह कमलोद्भवः ।।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ६०, ५)

हरि मारे तो रखे कौन, हरि रखे तो मारे कौन ?

सत्यं हन्ति च सर्वेशो रक्षिता तस्य कः पुमान् ।
सत्यं रक्षति सर्वात्मा तस्य हन्ता न कोऽपि च ।।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ७२, १०५)

पृथ्वी किनके भार से पीड़ित रहती है ?--

स्वधर्माचारहीना ये नित्यकृत्यविवर्जिताः ।
श्रद्धाहीनाश्च वेदेषु तेषां भारेण पीडिता ।।
पितृमातृगुरुस्त्रीणां पोषणं पुत्रपोष्ययोः ।
ये न कुर्वन्ति तेषां च न शक्ता भारवाहने ।।
ये मिथ्यावादिनस्तात दयासत्यविहीनकाः ।
निन्दका गुरुदेवानां तेषां भारेण पीडिता ।।
मित्रद्रोही कृतघ्नश्च मिथ्यासाक्ष्यप्रदायकः ।
विश्वासघ्नः स्थाप्यहारी तेषां भारेण पीडिता ।।
पूजायज्ञोपवासानां व्रतानां नियमस्य च ।
ये ये मूढा निहन्तारस्तेषां भारेण पीडिता ।।
सदा द्विषन्ति ये पापा गोविप्रसुरवैष्णवान् ।
हरिं हरिकथाभक्तिं तेषां भारेण पीडिता ।।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ४, २१-२८)

धर्मपत्नी के त्याग से नरक की प्राप्ति ।

अनपत्यां च युवतीं कुलजां च पतिव्रताम् ।
त्यक्त्वा भवेद्यः संन्यासी ब्रह्मचारी यतीति वा ।।
वाणिज्ये वा प्रवासे वा चिरं दूरं प्रयाति यः ।
तीर्थे वा तपसे वापि मोक्षार्थं जन्म खण्डितुम् ।
न मोक्षस्तस्य भवति धर्मस्य स्खलनं ध्रुवम् ।
अभिशापेन भार्याया नरकं च परत्र च ।।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ११३, ६-८)

हमारा निवेदन

जैसा कि प्रकाशकीय वक्तव्य से स्पष्ट है कि स्वर्गीय राजर्षि टण्डन ने पुराणों के हिन्दी-अनुवाद की योजना बनायी थी। पर इस कार्य में उन्होंने जिन विद्वानों से परामर्श किया था, उनमें अन्यतम सम्मेलन के वर्तमान प्रधानमन्त्री श्री प्रभात शास्त्री भी थे। टण्डन जी केवल हिन्दी-अनुवाद ही प्रकाशित कराना चाहते थे, मूल-श्लोक नहीं। अतएव मत्स्यपुराण और वायुपुराण का मात्र हिन्दी-अनुवाद सम्मेलन से प्रकाशित हुआ। पर शास्त्री जी पुराणों की सार्वभौम उपयोगिता की दृष्टि से मूल-श्लोकों के साथ हिन्दी-अनुवाद पाठकों को देना चाहते हैं। इसीलिए अब ऐसा संस्करण सम्मेलन द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है। शास्त्री जी को, इस सदिच्छा एवं सत्प्रयत्न के लिए जितना भी धन्यवाद एवं साधुवाद दिया जाय वह थोड़ा ही है, क्योंकि इस दुष्काल कलिकाल में जहाँ 'लुप्त भये सद्ग्रन्थ' वाली कहावत चरितार्थ हो रही है और इस समय बाजार में सभी पुराणों का मूल-पाठ भी अप्राप्य हो गया है वहाँ मूलपाठ समेत हिन्दी-अनुवाद लोगों को मिल जाय तो 'सोने में सुगन्ध' के समान ही कहना चाहिए।

इस संस्करण का प्रारम्भिक एवं अपूर्ण हिन्दी-अनुवाद पण्डित बाबूराम उपाध्याय ने किया था। उसमें आमूलचूल परिवर्तन करके हमने इसे प्रस्तुत रूप में सम्पादित एवं अनूदित किया है। इसमें हमें कहाँ तक सफलता मिली है, यह तो गुणैकपक्षपाती विद्वान् ही बता सकेंगे, पर इससे पाठकों को कुछ भी लाभ हुआ तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

अन्त में हम सम्मेलन के साहित्य मन्त्री श्री प्रेमनारायण शुक्ल के प्रति आभार प्रकट करते हैं, जिन्होंने बड़े सौजन्य से पुराण प्रकाशन कार्य को अग्रसारित किया। पुनः इस कार्य में विभिन्न प्रकार के सहयोग करनेवाले पण्डित श्री द्वारकाप्रसाद शास्त्री, श्री हरिमोहन मालवीय, डॉ० श्री त्रिवेणीदत्त शुक्ल तथा श्री जगदेव पाण्डेय को धन्यवाद ज्ञापित करते हुए 'करकृतमपराधं क्षन्तुमर्हन्ति सन्तः' इस अभ्यर्थना के साथ वक्तव्य समाप्त करते हैं।

वैशाखी पूर्णिमा
संवत् २०३८ वि०

तारिणीश झा
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

विषय-सूची

प्रथम ब्रह्मखण्ड

द्वितीय प्रकृति खण्ड

तृतीय गणपति खण्ड

⊙

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः

श्री मद्द्वैपायनमुनिप्रणीतं

ब्रह्मवैवर्तपुराणम्

तत्राऽऽदिमं ब्रह्मखण्डम्

अथ प्रथमोध्यायः

गणेशब्रह्मेशसुरेशशेषाः सुराश्च सर्वे मनवो मुनीन्द्राः ।
सरस्वतीश्रीगिरिजादिकाश्च यं नमन्ति देव्यः प्रणमामि तं विभुम् ॥१॥
स्थूलास्तनूर्विदधतं त्रिगुणं विराजं विश्वानि लोमविवरेषु महान्तमाद्यम्[1] ।
सृष्ट्युन्मुखः स्वकलयाऽपि ससर्ज सूक्ष्मं नित्यं समेत्य हृदि यस्तमजं भजामि ॥२॥
ध्यायन्ते ध्याननिष्ठाः सुरनरमनवो योगिनो योगरूढाः
सन्तः स्वप्नेऽपि[2] सन्तं कतिकतिजनिभिर्यं न पश्यन्ति तप्त्वा[3] ।

अध्याय १

मंगलाचरण, ब्रह्मवैवर्तपुराण का परिचय तथा महत्त्व

गणेश, ब्रह्मा, शंकर, इन्द्र, शेषनाग, देवता, समस्त मनु, मुनिवर, सरस्वती, लक्ष्मी तथा पार्वती आदि देवियाँ जिनको नमस्कार करती हैं, उन व्यापक परमात्मा को मैं प्रणाम करता हूँ ॥१॥ जो स्थूल शरीरों का धारण करने वाले, त्रिगुणात्मक, विराट्स्वरूप, अपने लोमकूपों में अनेक विश्वों को निहित करने वाले, महान्, आदिपुरुष, सृष्टि करने में प्रवृत्त होने पर अपनी कला से भी सृष्टि-रचना करने वाले तथा सूक्ष्म रूप से सदा (सब के) हृदय में रहने वाले हैं, उन अजन्मा ब्रह्म का मैं भजन करता हूँ ॥२॥ देवता, मनुष्य तथा मनु ध्याननिष्ठ

---

१. क. माद्यः । २. क. स्वप्नोन्मिषन्तं । ३. क. तप्ताः ।

ध्याये स्वेच्छामयं तं त्रिगुणपरमहो निर्विकारं निरीहं
भक्त्या ध्यानैकहेतोर्निरुपमरुचिरश्यामरूपं दधानम् ॥३॥
वन्दे कृष्णं गुणातीतं परं ब्रह्माच्युतं यतः ।
आविर्बभूवुः प्रकृतिब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥४॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय। ([1]ॐ नमः सर्वलोकविघ्नविनायकाय ।
ॐ नमो ब्रह्मणे। ॐनमः शिवाय। ॐ नमो गणपतये। ॐ नमो नारदाय ।
ॐ नमो व्यासाय । ॐ नमः प्रकृत्यै) ।

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥१॥
अमृतपरमपूर्वं भारतीकामधेनुं श्रुतिगणकृतवत्सो व्यासदेवो दुदोह ।
अतिरुचिरपुराणं ब्रह्मवैवर्तमेतत्पिबत पिबत मुग्धा दुग्धमक्षय्यमिष्टम् ॥२॥
भारते नैमिषारण्ये ऋषयः शौनकादयः । नित्यां नैमित्तिकीं कृत्वा क्रियामूषुः कुशासने ॥३॥
एतस्मिन्नन्तरे सौतिमागच्छन्तं यदृच्छया । प्रणतं सुविनीतं तं विलोक्य ददुरासनम् ॥४॥
तं संपूज्यातिथिं भक्त्या शौनको मुनिपुंगवः । पप्रच्छ कुशलं शान्तं शान्तः पौराणिकं मुदा ॥५॥
वर्त्मायासविनिर्मुक्तं वसन्तं सुस्थिरासने । सस्मितं सर्वतत्त्वज्ञं पुराणानां पुराणवित् ॥६॥
परं [2]कृष्णकथोपेतं पुराणं श्रुतिसंमतम्[3] । मङ्गलं मङ्गलार्हं च मङ्गल्यं मङ्गलालयम् ॥७॥

होकर और योगी लोग योगारूढ़ होकर जिनका ध्यान करते हैं एवं कतिपय साधक कई जन्मों तक तपस्या करके भी स्वप्न में भी जिनको नहीं देख पाते हैं, उन, भक्त पुरुषों के ध्यान के लिए अनुपम सुन्दर तथा श्याम रूप धारण करने वाले भगवान् का मैं ध्यान करता हूँ॥३॥ जिनसे प्रकृति, ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि प्रकट हुए हैं, उन त्रिगुणातीत परब्रह्म श्रीकृष्ण की मैं वन्दना करता हूँ॥४॥

भगवान् वासुदेव को नमस्कार है। ओं नमो भगवते वासुदेवाय (भगवान् नारायण, नरश्रेष्ठ नर तथा सरस्वती देवी को नमस्कार करके जय बोले (अर्थात् इतिहास-पुराण का पाठ करे) ॥१॥ सरस्वती को कामधेनु तथा वेदों को बछड़ा बना कर व्यासदेव ने अत्यन्त मनोरम ब्रह्मवैवर्तपुराण रूप अपूर्व अमृत का दोहन किया है। सज्जनो! इस अक्षय्य दुग्ध का यथेच्छ पान करो॥२॥ भारतवर्ष के नैमिषारण्य (तीर्थ) में शौनक आदि ऋषि नित्य और नैमित्तिक क्रियाओं का अनुष्ठान करके कुशासन पर बैठे हुए थे। इसी बीच सूत-पुत्र (उग्रश्रवा) को अकस्मात् (वहाँ) आते हुए तथा विनीत भाव से (सबको) प्रणाम करते हुए देख कर ऋषियों ने उन्हें आसन दिया। उस अतिथि की भक्तिपूर्वक पूजा करके मुनिवर शान्त शौनक ने उस शान्त पौराणिक (सूत) से हर्षपूर्वक कुशल-समाचार पूछा। मार्ग की थकावट से रहित होकर सुस्थिर आसन पर बैठे हुए, मुसकराते हुए, पुराणों के सकल तत्त्वों के ज्ञाता तथा परम विनीत सूत से आकाश में तारों के बीच चन्द्रमा की

---

१ अयं पाठः ख. पुस्तके नास्ति। २. क.० ष्णवरोपे०। ३. क. ०तिसुन्दरम्।

सर्वमङ्गलबीजं च सर्वदा मङ्गलप्रदम्। सर्वामङ्गलनिघ्नं[1] च सर्वसंपत्करं परम्॥८॥
हरिभक्तिप्रदं शश्वत्सुखदं मोक्षदं भवेत्। तत्त्वज्ञानप्रदं दारपुत्रपौत्रविवर्धनम्॥९॥
पप्रच्छ [2]सुविनीतं च सुप्रीतो मुनिसंसदि। यथाऽऽकाशे तारकाणां द्विजराजो विराजते॥१०॥

शौनक उवाच

प्रस्थानं भवतः कुत्र कुत आयासि ते शिवम्। किमस्माकं पुण्यदिनमद्य त्वद्दर्शनेन च॥११॥
वयमेव कलौ भीता विशिष्टज्ञानवर्जिताः। मुमुक्षवो भवे मग्नास्तद्धेतुस्त्वमिहागतः॥१२॥
भवान्साधुर्महाभागः पुराणेषु पुराणवित्। सर्वेषु च पुराणेषु निष्णातोऽतिकृपानिधिः॥१३॥
श्रीकृष्णे निश्चला भक्तिर्यतो भवति शाश्वती। तत्कथ्यतां महाभाग पुराणं ज्ञानवर्धनम्॥१४॥
गरीयसी या साक्षाच्च कर्ममूलनिकृन्तनी। संसारसंनिबद्धानां निगडच्छेदकर्तरी॥१५॥
भवदावाग्निदग्धानां पीयूषवृष्टिवर्षिणी। सुखदाऽऽनन्ददा सौते शश्वच्चेतसि जीविनाम्॥१६॥
यत्राऽऽदौ सर्वबीजं च परब्रह्मनिरूपणम्। तस्य सृष्टयुन्मुखस्यापि सृष्टेरुत्कीर्तनं परम्॥१७॥
साकारं वा निराकारं परमात्मस्वरूपकम्। किमाकारं च तद्ब्रह्म तद्धयानं किं च भावनम्॥१८॥

भाँति मुनि-सभा में शोभा पाने वाले पुराणवेत्ता सुप्रसन्न शौनक ने ऐसे पुराण के विषय में प्रश्न किया, जो परम उत्तम, श्रीकृष्ण की कथा से युक्त, सुनने में सुन्दर एवं सुखद, मंगलमय, मंगलयोग्य, मंगलयुक्त, मंगलधाम, सकल मंगलों का बीज, सर्वदा मंगलदायक, समस्त अमंगलों का नाशक, निखिल सम्पत्तियों की प्राप्ति कराने वाला, श्रेष्ठ, हरिभक्तिदायक, सदा सुख एवं मोक्ष देने वाला, तत्त्वज्ञान देने वाला और स्त्री, पुत्र एवं पौत्रों की वृद्धि करने वाला हो॥३-१०॥

शौनक ने पूछा—आपने कहाँ के लिए प्रस्थान किया है? कहाँ से आये हैं? आपका कल्याण हो। आज आपके दर्शन से हमारा दिन कैसा पुण्यमय हो गया है। हम सभी लोग कलियुग में भयभीत हैं, विशिष्ट ज्ञान से शून्य हैं, संसार में डूबे हुए हैं और मोक्ष के अभिलाषी हैं। इसी कारण आप यहाँ पधारे हैं। आप सज्जन, महाभाग्यवान्, पुराणों के वेत्ता; समस्त पुराणों में निष्णात तथा महान् कृपानिधान हैं। महाभाग! आप (कोई) ऐसा ज्ञानवर्धक पुराण बताइए जिससे श्रीकृष्ण में निश्चल एवं नित्य भक्ति प्राप्त हो। क्योंकि हे सूतपुत्र! श्रीकृष्ण की भक्ति मोक्ष से भी श्रेष्ठ, कर्म का मूलोच्छेद करने वाली, संसार में बँधे हुए जीवों का बन्धन काटने वाली, जगत् रूपी दावानलों से दग्ध हुए जीवों पर अमृत-वर्षा करने वाली तथा प्राणियों के हृदय में नित्य-निरन्तर सुख एवं आनन्द देने वाली है॥११-१६॥

(आप ऐसा पुराण सुनाइए), जिसके आदिम भाग में सबके बीज (कारणतत्त्व) का प्रतिपादन और परब्रह्म का निरूपण हो। सृष्टि के लिए प्रवृत्त हुए उस (परमात्मा) की सृष्टि का भी उत्तम वर्णन हो। (हम आपसे यह पूछना चाहते हैं कि) परमात्मा का स्वरूप साकार है या निराकार? उस ब्रह्म का स्वरूप क्या है? उसका

---

१ क. ०लविघ्नं। २ क. सुमहाभागो विनी।

ध्यायन्ते वैष्णवाः किं वा शान्ताश्च योगिनस्तथा। मतं प्रधानं केषां वा गूढं वेदे निरूपितम् ॥१९॥
प्रकृतेश्च[1] य आकारो यत्र वत्स निरूपितः। गुणानां लक्षणं यत्र महदादेश्च निश्चयः ॥२०॥
गोलोकवर्णनं यत्र यत्र वैकुण्ठवर्णनम्। वर्णनं शिवलोकस्य यत्रान्यत्स्वर्गवर्णनम् ॥२१॥
अंशानां च कलानां च यत्र सौते निरूपणम्। के प्राकृताः का प्रकृतिः क आत्मा प्रकृतेः परः ॥२२॥
निगूढं जन्म येषां वा देवानां देवयोषिताम्। समुत्पत्तिः समुद्राणां शैलानां सरितामपि ॥२३॥
के वांऽशाः प्रकृतेश्चापि कलाः का वा कलाकलाः। तासां च चरितं ध्यानं पूजास्तोत्रादिकं शुभम् ॥२४॥
दुर्गासरस्वतीलक्ष्मीसावित्रीणां च वर्णनम्। यत्रैव राधिकाख्यानमत्यपूर्वं सुधोपमम् ॥२५॥
जीवकर्मविपाकश्च नरकाणां च वर्णनम्। कर्मणां खण्डनं यत्र यत्र तेभ्यो विमोक्षणम् ॥२६॥
येषां च जीविनां यद्यत्स्थानं यत्र शुभाशुभम्। जीविनां कर्मणो यस्माद्यासु यासु च योनिषु ॥२७॥
जीवानां कर्मणो यस्माद्यो यो रोगो भवेदिह। मोक्षणं कर्मणो यस्मात्तेषां च तन्निरूपय ॥२८॥
मनसा तुलसी काली गङ्गा पृथ्वी वसुंधरा। आसां यत्र शुभाख्यानमन्यासामपि यत्र वै ॥२९॥
शालग्रामशिलानां च दानानां च निरूपणम्। अपूर्वं यत्र वा सौते धर्माधर्मनिरूपणम् ॥३०॥
गणेश्वरस्य[2] चरितं यत्र तज्जन्म कर्म च। कवचस्तोत्रमन्त्राणां गूढानां यत्र वर्णनम् ॥३१॥

ध्यान और चिन्तन कैसे किया जाय? वैष्णव या शान्त योगी जन किसका ध्यान करते हैं? वेद में किनके प्रधान या गूढ़ मत का निरूपण हुआ है? ॥१७-१९॥

वत्स! जिस पुराण में प्रकृति के स्वरूप का निरूपण हुआ हो, गुणों का लक्षण (बताया गया हो) 'महत्' आदि का निर्णय किया गया हो, गोलोक, वैकुण्ठ, शिवलोक तथा स्वर्गों का वर्णन हो और अंशों एवं कलाओं का निरूपण हो, वह हमें सुनाइए। सूतनन्दन! प्राकृत पदार्थ कौन हैं? प्रकृति कौन है? और प्रकृति से परे आत्मा कौन है? जिन देवों और देवांगनाओं का जन्म (पृथ्वी पर) गूढ़ रूप से हुआ है, उनके विषय में तथा समुद्रों, पर्वतों और नदियों की उत्पत्ति के विषय में भी हमें बताइए। प्रकृति के अंश कौन हैं? कलायें कौन हैं? कलाओं की कलायें कौन हैं? उनके चरित्र, ध्यान, पूजन तथा पवित्र स्तोत्र आदि जिस पुराण में वर्णित हों, दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी तथा सावित्री का वर्णन जिसमें हो, राधिका का अत्यन्त अपूर्व तथा अमृतोपम आख्यान जिसमें हो, जीवों के कर्म-फल तथा नरकों का वर्णन जिसमें हो, कर्मों का खण्डन तथा उनसे मुक्ति पाने का उपाय जिसमें प्रतिपादित हो, वह हमें बताइए। जीवधारियों को जहाँ जो शुभ या अशुभ स्थान प्राप्त होता हो उन्हें जिन कर्मों से जिन योनियों में जाना पड़ता हो, जिन कर्मों से जो रोग होते हों तथा जिन कर्मों से मोक्ष मिलता हो, उनका प्रतिपादन कीजिए॥२०-२८॥

सूतपुत्र! जिस पुराण में मनसा, तुलसी, काली, गंगा और वसुन्धरा पृथ्वी—इनका तथा अन्य देवियों का भी पवित्र आख्यान हो, शालग्राम शिलाओं तथा दानों का निरूपण हो, धर्म और अधर्म का अपूर्व निरूपण हो, गणपति के चरित्र, जन्म, कर्म, गूढ़ कवच, स्तोत्र तथा मन्त्रों का वर्णन हो तथा जो उपाख्यान पहले न सुना गया हो

---

१ क. श्च ०किमाका०। २ क. स्य देवस्य उत्पत्तिर्ज०।

यदपूर्वमुपाख्यानमश्रुतं परमाद्भुतम्। कृत्वा मनसि तत्सर्वं सांप्रतं वक्तुमर्हसि ॥३२॥
यत्र जन्मभ्रमो विश्वे पुण्यक्षेत्रे च भारते। परिपूर्णतमस्यापि कृष्णस्य परमात्मनः ॥३३॥
जन्म कस्य गृहे लब्धं पुण्ये पुण्यवतो मुने। सुतं प्रसूता का धन्या मान्या पुण्यवती सती ॥३४॥
आविर्भूय च तद्गेहात्क्व गतः केन हेतुना। गत्वा किं कृतवांस्तत्र कथं वा पुनरागतः ॥३५॥
भारावतरणं केन प्रार्थितो गोश्चकार सः। विधाय किंवा सेतुं च गोलोकं गतवान्पुनः ॥३६॥
इतीदमन्यदाख्यानं पुराणं श्रुतिदुर्लभम्। दुर्विज्ञेयं मुनीनां च मनोनिर्मलकारणम् ॥३७॥
स्वज्ञानाद्यन्मया पृष्टमपृष्टं वा शुभाशुभम्। सद्यो वैराग्यजननं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥३८॥
शिष्यपृष्टमपृष्टं वा व्याख्यानं कुरुते च यः। स सद्गुरुः सतां श्रेष्ठो योग्यायोग्ये च यः समः ॥३९॥

सौतिरुवाच

सर्वं कुशलमस्माकं त्वत्पादपद्मदर्शनात्। सिद्धक्षेत्रादागतोऽहं यामि नारायणाश्रमम् ॥४०॥
दृष्ट्वा विप्रसमूहं च नमस्कर्तुमिहागतः। द्रष्टुं च नैमिषारण्यं पुण्यदं चापि भारते ॥४१॥
देवं विप्रं गुरुं दृष्ट्वा न नमेद्यस्तु संभ्रमात्। स कालसूत्रं व्रजति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥४२॥
हरिर्ब्राह्मणरूपेण शश्वद्भ्रमति [1]भूतले। [2]सुकृती प्रणमेत्पुण्याद्ब्राह्मणं हरिरूपिणम् ॥४३॥

और परम अद्भुत हो, वह सब आप मन में सोचकर इस समय बताएँ। जिस पुराण में विश्व के पुण्य-क्षेत्र भारतवर्ष में परिपूर्णतम परमात्मा कृष्ण के जन्म (अवतार) लेने की बात हो, वह हमें सुनाइए। मुने! किस पुण्यवान् के पवित्र गृह में (भगवान् कृष्ण का) जन्म हुआ? किस धन्य, मान्य एवं पुण्यवती पतिव्रता ने उन्हें पुत्र रूप में जन्म दिया? प्रकट होकर वे उसके घर से कहाँ चले गए? किसलिए गए? जाकर उन्होंने क्या किया? या वे फिर वहाँ कैसे आये? किसकी प्रार्थना करने पर उन्होंने पृथ्वी का भार उतारा? अथवा किस सेतु (मर्यादा) की स्थापना करके वे पुनः गोलोक को पधारे? इन बातों से तथा अन्य आख्यानों से युक्त जो श्रुतिदुर्लभ पुराण है, उसका सम्यक् ज्ञान मुनियों के लिए भी दुर्लभ है। वह मन को निर्मल करने का साधन है। मैंने अपने ज्ञान के अनुसार जो कुछ शुभ तथा अशुभ बातें पूछी हैं, उनसे सम्बद्ध (या उनका उत्तर देते हुए) जो पुराण सद्यः वैराग्य उत्पन्न करने वाला हो, उसे आप बताएँ। जो शिष्य के पूछे या न पूछे हुए विषय की भी व्याख्या करके बता देता है तथा योग्य और अयोग्य (शिष्य) के प्रति भी समान भाव रखता है, वही सत्पुरुषों में श्रेष्ठ सद्गुरु है ॥२९-३९॥

सूतनन्दन बोले—आपके चरणारविन्द के दर्शन से मेरे लिए सब कुशल है। मैं सिद्ध क्षेत्र से आ रहा हूँ और नारायण-आश्रम को जाऊँगा। ब्राह्मण-समूह को देखकर नमस्कार करने के लिए तथा भारतवर्ष में पुण्यदायक नैमिषारण्य को देखने के लिए भी यहाँ चला आया हूँ। देवता, ब्राह्मण तथा गुरु को देखकर जो झट से उन्हें प्रणाम नहीं करता है, वह कालसूत्र नरक में तब तक पड़ा रहता है जब तक सूर्य और चन्द्रमा रहते हैं। पृथ्वी पर विष्णु

---

१ क. भारते। २ क. ०कृतिस्तं नमे०।

भगवन्यत्त्वया पृष्टं ज्ञातं सर्वमभीप्सितम्। सारभूतं पुराणेषु ब्रह्मवैवर्तमुत्तमम् ॥४४॥
पुराणोपपुराणानां वेदानां भ्रमभञ्जनम्। हरिभक्तिप्रदं सर्वतत्त्वज्ञानविवर्धनम् ॥४५॥
कामिनां कामदं चेदं मुमुक्षूणां च मोक्षदम्। भक्तिप्रदं वैष्णवानां कल्पवृक्षस्वरूपकम् ॥४६॥
ब्रह्मखण्डे[1] सर्वबीजं परब्रह्मनिरूपणम्। ध्यायन्ते योगिनः सन्तो वैष्णवा यत्परात्परम् ॥४७॥
वैष्णवा योगिनः सन्तो न च भिन्नाश्च शौनक। स्वज्ञानपरिपाकेन भवन्ति जीविनः क्रमात् ॥४८॥
सन्तो भवन्ति सत्सङ्गाद्योगिसंगेन योगिनः। वैष्णवा भक्तसंगेन क्रमात्सद्योगिनः पराः ॥४९॥
यत्रोद्भवश्च देवानां देवीनां सर्वजीविनाम्। ततः प्रकृतिखण्डे च देवीनां चरितं शुभम् ॥५०॥
जीवकर्मविपाकश्च शालिग्रामनिरूपणम्। तासां च कवचस्तोत्रमन्त्रपूजानिरूपणम् ॥५१॥
प्रकृतेर्लक्षणं तत्र कलांशानां निरूपणम्। कीर्तेरुत्कीर्तनं तासां प्रभावश्च निरूपितः ॥५२॥
सुकृतीनां दुष्कृतीनां यद्यत्स्थानं शुभाशुभम्। वर्णनं नरकाणां च रोगाणां मोक्षणं ततः ॥५३॥
ततो गणेशखण्डे च तज्जन्म परिकीर्तितम्। अतीवापूर्वचरितं श्रुतिवेदसुदुर्लभम् ॥५४॥
गणेशभृगुसंवादे सर्वतत्त्वनिरूपणम्। निगूढकवचस्तोत्रमन्त्रतन्त्रनिरूपणम् ॥५५॥

ब्राह्मण के रूप में सदा भ्रमण करते रहते हैं। (इसलिए) पुण्यात्मा व्यक्ति (अपने) पुण्य के प्रभाव से विष्णु रूपी ब्राह्मण को प्रणाम करता है। भगवन्! आपने जो कुछ पूछा है, वह सब (आपका) अभिप्राय मैंने जान लिया। पुराणों में सारभूत ब्रह्मवैवर्तपुराण है। यह पुराण पुराणों, उपपुराणों एवं वेदों के भ्रम का निराकरण करने वाला, हरि-भक्ति देने वाला और समस्त तत्त्वों का ज्ञान बढ़ाने वाला है। यह भोगियों को भोग तथा मुमुक्षुओं को मोक्ष प्रदान करता है। यह वैष्णवों के लिए भक्तिदायक तथा कल्पवृक्ष-स्वरूप है। इसके ब्रह्मखण्ड में सर्व-बीजस्वरूप उस परात्पर परब्रह्म का निरूपण है, जिसका योगी, सन्त तथा वैष्णव ध्यान करते हैं। शौनक! वैष्णव, योगी तथा सन्त में कोई भेद नहीं है। जीवधारी मनुष्य अपपे ज्ञान के परिणामस्वरूप क्रमशः सन्त आदि होते हैं। सत्संग से मनुष्य सन्त होते हैं, योगी के संग से योगी और भक्त के संग से वैष्णव होते हैं। ये क्रमशः उत्तरोत्तर श्रेष्ठ योगी हैं ॥४०-४९॥

इसके बाद प्रकृतिखण्ड है, जिसमें देवों, देवियों तथा सकल जीवधारियों की उत्पत्ति और देवियों का पवित्र चरित्र वर्णित है। जीवों के कर्म-परिणाम तथा शालिग्राम का निरूपण है। उन देवियों के कवच, स्तोत्र, मन्त्र तथा पूजा का भी निरूपण है। उस (प्रकृतिखण्ड) में प्रकृति के लक्षण तथा उसकी कलाओं और अंशों का वर्णन है। उन देवियों की कीर्ति का कीर्तन एवं प्रभाव का प्रतिपादन है। पुण्यात्माओं तथा पापात्माओं को जो-जो शुभ तथा अशुभ स्थान प्राप्त होते हैं, उनका तथा नरकों एवं रोगों और उनसे छूटने के उपाय का भी वर्णन है ॥५०-५३॥

तदनन्तर गणेशखण्ड में गणेश के जन्म एवं वेद-शास्त्रों में अत्यन्त दुर्लभ उनके चरित्र का वर्णन है। गणेश और भृगु के संवाद में सकल तत्त्वों का निरूपण हुआ है। (गणेश के) गूढ़ कवच, स्तोत्र, मन्त्र तथा तन्त्रों का वर्णन है ॥५४-५५॥

---

१ ख. खण्डं स।

श्रीकृष्णजन्मखण्डं च कीर्तितं च ततः परम्। भारते पुण्यक्षेत्रे च श्रीकृष्णजन्म कर्म च ॥५६॥
भुवो भारावतरणं क्रीडाकौतुकमङ्गलम्। सतां सेतुविधानं च जन्मखण्डे निरूपितम् ॥५७॥
इदं ते कथितं विप्र पुराणप्रवरं परम्। चतुःखण्डैः परिमितं सर्वधर्मनिरूपणम् ॥५८॥
सर्वेषामीप्सितं[1] श्रीदं सर्वाशापूर्णकारकम्[2]। ब्रह्मवैवर्तकं नाम सर्वाभीष्टफलप्रदम् ॥५९॥
सारभूतं पुराणेषु केवलं वेदसंमतम्[3]। विवृतं ब्रह्म कार्त्स्न्यं च कृष्णेन यत्र शौनक ॥६०॥
ब्रह्मवैवर्तकं तेन प्रवदन्ति पुराविदः ॥६१॥
इदं पुराणसूत्रं च पुरा दत्तं च ब्रह्मणे। निरामये च गोलोके कृष्णेन परमात्मना ॥६२॥
महातीर्थे पुष्करे च दत्तं धर्माय ब्रह्मणा। धर्मेण दत्तं पुत्राय प्रीत्या नारायणाय च ॥६३॥
*नारायणर्षिर्भगवान्प्रददौ नारदाय च। नारदो व्यासदेवाय प्रददौ जाह्नवीतटे ॥६४॥
व्यासः पुराणसूत्रं तत्संव्यस्य विपुलं महत्। मह्यं ददौ [4]सिद्धक्षेत्रे पुण्यदेशे मनोहरम् ॥६५॥
मयेदं कथितं ब्रह्मँस्तत्समग्रं निशामय। अष्टादशसहस्रं तु व्यासेनेदं पुराणकम् ॥६६॥
पुराणकार्त्स्न्यश्रवणे यत्फलं लभते नरः। तत्फलं लभते नूनमध्यायश्रवणेन च ॥६७॥

इति श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे
ऽनुक्रमणिकानाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

तदनन्तर श्रीकृष्णजन्मखण्ड का कीर्तन हुआ है। (उसमें) भारतवर्ष के पुण्य क्षेत्र में श्रीकृष्ण के जन्म-कर्म, (उनके द्वारा) पृथ्वी के भार उतारने, (उनके) मंगलमय क्रीडाकौतुक और सज्जनों के लिए सेतु (मर्यादा)-विधान का वर्णन है। विप्र! यह मैंने परम उत्कृष्ट पुराण के विषय में तुमसे कहा है। यह चार खंडों में सीमित है। इसमें समस्त धर्मों का निरूपण है। यह सबको प्रिय, लक्ष्मीदायक तथा सबकी आशाओं को पूर्ण करने वाला है। इसका नाम ब्रह्मवैवर्त है। यह सम्पूर्ण अभीष्ट फलों को देने वाला है। यह पुराणों का सार है और पूर्णतया वेदों के अनुकूल है। शौनक! इसमें श्रीकृष्ण ने (अपने) सम्पूर्ण ब्रह्मभाव को प्रकट किया है, इसलिए पुराणवेत्ता इसे ब्रह्मवैवर्तक कहते हैं ॥५४-६१॥

पूर्वकाल में रोग-रहित गोलोक में परमात्मा श्रीकृष्ण ने यह पुराण-सूत्र ब्रह्मा को दिया था। फिर ब्रह्मा ने महान् तीर्थ पुष्कर में यह धर्म को दे दिया। धर्म ने (अपने) पुत्र नारायण को प्रसन्नतापूर्वक यह प्रदान किया। भगवान् नारायण ने नारद को प्रदान किया। नारद ने गंगा-तट पर व्यास जी को दिया। व्यास जी ने उस मनोहर पुराणसूत्र को बहुत विस्तृत करके पुण्य प्रदेश वाले सिद्धक्षेत्र में मुझे दिया। ब्रह्मन्! मेरे कहे हुए इस सम्पूर्ण पुराण को आप सुनिए। व्यासजी ने इस पुराण को अठारह हजार श्लोकों में विस्तृत किया है। मनुष्य सम्पूर्ण पुराणों के श्रवण से जो फल प्राप्त करता है, वह फल इसके एक अध्याय के श्रवण से ही प्राप्त हो जाता है ॥६२-६७॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में अनुक्रमणिका नामक पहला अध्याय समाप्त ॥१॥

---

*इदं श्लोकार्धं ख. पुस्तके नास्ति।

१ क. ०प्सिततमं स०। २ ख. ०रणम्। ३ ख. संमितम्। ४ क. सिद्धिक्षेण।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

शौनक उवाच

किमपूर्वं श्रुतं सौते परमाद्भुतदर्शनम्[1]। सर्वं कथय संव्यस्य ब्रह्मखण्डमनुत्तमम्॥१॥

सौतिरुवाच

वन्दे गुरोः पादपद्मं व्यासस्यामिततेजसः। हरिं देवान्द्विजान्नत्वा धर्मान्वक्ष्ये सनातनान्॥२॥
यच्छ्रुतं व्यासवक्त्रेण ब्रह्मखण्डमनुत्तमम्। अज्ञानान्धतमोध्वंसि ज्ञानवर्त्मप्रदीपकम्॥३॥
ज्योतिः समूहं प्रलये पुराऽऽसीत्केवलं द्विज। सूर्यकोटिप्रभं नित्यमसंख्यं विश्वकारणम्॥४॥
स्वेच्छामयस्य च विभोस्तज्ज्योतिरुज्ज्वलं महत्। ज्योतिरभ्यन्तरे लोकत्रयमेव मनोहरम्॥५॥
तेषामुपरि गोलोकं [2]नित्यमीश्वरवद्द्विज। त्रिकोटियोजनायामं विस्तीर्णं मण्डलाकृति॥६॥
तेजः स्वरूपं सुमहद्रत्नभूमिमयं परम्। अदृश्यं योगिभिः स्वप्ने दृश्यं गम्यं च वैष्णवैः॥७॥

अध्याय २

गोलोक आदि की स्थिति का वर्णन तथा श्रीकृष्ण के परात्पर स्वरूप का निरूपण

शौनक बोले—सूतनन्दन! आपने कौन-सा अपूर्व एवं परम अद्भुत शास्त्र (पुराण) सुना है। सबका विस्तार करके (पहले) अत्युत्तम ब्रह्मखण्ड सुनाइए॥१॥

सौति ने कहा—मैं अमित तेजस्वी गुरु व्यासदेव के चरणारविन्द की वन्दना करता हूँ। विष्णु, देवों और ब्राह्मणों को नमस्कार करके मैं सनातन धर्मों का वर्णन कर रहा हूँ। मैंने व्यासजी के मुख से जिस परमोत्तम ब्रह्मखण्ड का श्रवण किया है, वह अज्ञान रूपी अन्धकार का विनाशक तथा ज्ञानमार्ग का प्रकाशक है। द्विज! पहले प्रलयकाल में केवल ज्योतिः समूह था, जिसकी प्रभा करोड़ों सूर्य के समान थी। वह ज्योतिःपुंज नित्य, असंख्य तथा विश्व का कारण है। स्वेच्छामय परमात्मा की वह ज्योति महान् उज्ज्वल है। उस ज्योति के भीतर तीनों लोक मनोहर रूप में विद्यमान हैं। द्विज! उन (तीनों लोक) के ऊपर गोलोक है, जो परमात्मा के समान नित्य है। उसकी लंबाई-चौड़ाई तीन करोड़ योजन है। वह मंडलाकार में फैला हुआ है। वह महान् तेजःस्वरूप है तथा वहाँ की भूमि परम रत्नमयी है। योगी स्वप्न में भी उसे नहीं देख पाते हैं, जब कि वैष्णव (उसे) देखते और प्राप्त भी

---

१ क. ०तमीप्सितम्। २ क. ०त्यममरव०।

योगेन धृतमीशेन चान्तरिक्षस्थितं वरम्। आधिव्याधिजरामृत्युशोकभीतिविवर्जितम् ॥८॥
सद्रत्नरचितासंख्यमन्दिरैः परिशोभितम्। लये कृष्णयुतं सृष्टौ गोपगोपीभिरावृतम् ॥९॥
तदधो दक्षिणे सव्ये पञ्चाशत्कोटियोजनात्। वैकुण्ठं शिवलोकं तु तत्समं सुमनोहरम् ॥१०॥
कोटियोजनविस्तीर्णं वैकुण्ठं मण्डलाकृति। लये शून्यं च सृष्टौ च लक्ष्मीनारायणान्वितम् ॥११॥
चतुर्भुजैः पार्षदैश्च जरामृत्य्वादिवर्जितम्। सव्ये च शिवलोकं च कोटियोजनविस्तृतम् ॥१२॥
लये शून्यं च सृष्टौ च सपार्षदशिवान्वितम्। गोलोकाभ्यन्तरे ज्योतिरतीवसुमनोहरम् ॥१३॥
परमाह्लादकं शश्वत्परमानन्दकारकम्। ध्यायन्ते योगिनः शश्वद्योगेन ज्ञानचक्षुषा ॥१४॥
तदेवानन्दजनकं निराकारं परात्परम्। तज्ज्योतिरन्तरे रूपमतीवसुमनोहरम् ॥१५॥
नवीननीरदश्यामं रक्तपङ्कजलोचनम्। शारदीयपार्वणेन्दुशोभितं चामलाननम् ॥१६॥
कोटिकन्दर्पलावण्यं लीलाधाम मनोरमम्। द्विभुजं मुरलीहस्तं सस्मितं पीतवाससम् ॥१७॥
[1]सद्रत्नभूषणौघेन भूषितं भक्तवत्सलम्। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम् ॥१८॥
श्रीवत्सवक्षःसंभ्राजत्कौस्तुभेन विराजितम्। सद्रत्नसाररचितकिरीटमुकुटोज्ज्वलम् ॥१९॥

करते हैं। आकाश में स्थित उस श्रेष्ठ लोक को परमात्मा ने योगशक्ति से धारण कर रखा है। गोलोक आधि (मानसिक रोग), व्याधि (शारीरिक रोग), मृत्यु, शोक तथा भय से रहित है। उत्तम रत्नों से खचित असंख्य मन्दिर उसकी शोभा बढ़ाते हैं। प्रलयकाल में वहाँ केवल श्रीकृष्ण रहते हैं और सृष्टिकाल में वह गोप-गोपियों से भरा रहता है ॥२-९॥

गोलोक से नीचे पचास करोड़ योजन दूर दक्षिण भाग में वैकुंठ और वामभाग में शिवलोक है। ये दोनों लोक भी गोलोक के समान अत्यन्त सुन्दर हैं। वैकुंठ मंडलाकार में एक करोड़ योजन तक फैला हुआ है। प्रलय-काल में वह शून्य रहता है और सृष्टिकाल में वहाँ लक्ष्मी और नारायण विराजमान रहते हैं। उनके साथ चार भुजा वाले पार्षद भी रहते हैं। वैकुंठ भी जरा, मृत्यु आदि से रहित है। उसके वाम भाग में एक करोड़ योजन में फैला हुआ शिवलोक है। प्रलयकाल में शिवलोक शून्य रहता है और सृष्टिकाल में पार्षदों समेत शंकर वहाँ विराजमान रहते हैं। गोलोक के भीतर अत्यन्त मनोहर ज्योति है, जो परम आह्लादजनक तथा नित्य परमानन्द उत्पन्न करने वाली है। योगी जन सदा योग के द्वारा ज्ञानचक्षु से उसका ध्यान करते हैं। वह ज्योति ही आनन्ददायक, निराकार तथा परात्पर ब्रह्म है। उस ज्योति के भीतर अत्यन्त मनोहर रूप विराजमान है, जो नये बादल के समान श्यामवर्ण है। उसके नेत्र लाल कमल के समान हैं। उसका निर्मल मुख शरत्पूर्णिमा के समान शोभायमान है। करोड़ों कन्दर्प के तुल्य उसका लावण्य है। वह मनोरम रूप (विविध) लीलाओं का धाम है। उसकी दो भुजाएँ हैं, हाथ में मुरली है। चेहरा मुसकराता हुआ है और शरीर पीताम्बरधारी है। वह उत्तम रत्नों के आभूषणों से विभूषित, भक्त-वत्सल है। उसके अंग चंदन से चर्चित तथा कस्तूरी और केसर से युक्त हैं। उसका वक्षःस्थल श्रीवत्स चिह्न तथा कौस्तुभ मणि से सुशोभित है। उत्तम रत्नों के सार-तत्त्व से बने हुए किरीट-मुकुटों से उसका मस्तक भासमान है। वह रत्न-सिंहासन पर आसीन तथा वनमाला से विभूषित है। वही परम ब्रह्म एवं सनातन भगवान् है। वह स्वेच्छामय

१ क. ०द्रत्नैर्भूषणैः प्रेमभू०।

रत्नसिंहासनस्थं च वनमालाविभूषितम्। तदेव परमं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम् ॥२०॥
स्वेच्छामयं सर्वबीजं सर्वाधारं परात्परम्। किशोरवयसं शश्वद्गोपवेषविधायकम् ॥२१॥
कोटिपूर्णेन्दुशोभाढ्यं भक्तानुग्रहकारकम्। निरीहं निर्विकारं च परिपूर्णतमं विभुम् ॥२२॥
रासमण्डलमध्यस्थं शान्तं रासेश्वरं[1] वरम्। माङ्गल्यं मङ्गलार्हं च मङ्गलं मङ्गलप्रदम् ॥२३॥
परमानन्दबीजं[2] च सत्यमक्षरमव्ययम्। सर्वसिद्धेश्वरं[3] सर्वसिद्धिरूपं च सिद्धिदम् ॥२४॥
प्रकृतेः परमीशानं निर्गुणं नित्यविग्रहम्। आद्यं पुरुषमव्यक्तं पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ॥२५॥
सत्यं स्वतन्त्रमेकं च परमात्मस्वरूपकम्। ध्यायन्ते वैष्णवाः शान्ताः शान्तं तत्परमायणम् ॥२६॥
एवं[4] रूपं परं बिभ्रद्भगवानेक एव सः। दिग्भिश्च नभसा सार्धं शून्यं विश्वं ददर्श ह ॥२७॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे
परब्रह्मनिरूपणं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

सौतिरुवाच

दृष्ट्वा शून्यमयं विश्वं गोलोकं च भयंकरम्। निर्जन्तुनिर्जलं घोरं निर्वातं तमसाऽऽवृतम् ॥१॥

सब का आदिकारण सब का आधार तथा परात्पर ब्रह्म है। उसकी नित्य किशोरावस्था रहती है और वह गोपवेष धारण किये रहता है। वह करोड़ों पूर्णचन्द्र की शोभा से युक्त है तथा भक्तों पर अनुग्रह करने वाला है। वह निरीह, निर्विकार, परिपूर्णतम, सर्वव्यापक, रासमंडल के मध्य में अवस्थित, शान्त, रासेश्वर, श्रेष्ठ, मंगलकारी, मंगलयोग्य, मंगलमय, परमानन्द का बीज, सत्य, अक्षर, अविनाशी, समस्त सिद्धियों का प्रभु, सकल सिद्धियों का स्वरूप, सिद्धिदायक, प्रकृति से परे, ईश्वर, निर्गुण, नित्यशरीरधारी, आदिपुरुष, अव्यक्त, बहुत नामों से पुकारा जाने वाला, बहुतों द्वारा स्तवन किया जाने वाला, सत्य, स्वतन्त्र, एक, परमात्मस्वरूप, शान्त तथा परम आश्रय है। शान्त वैष्णव जन उसी का ध्यान करते हैं। इस प्रकार परम रूप धारण करने वाले वे भगवान् एक ही हैं। उन्होंने (प्रलय काल में) दिशाओं और आकाश के साथ विश्व को शून्य देखा ॥१०-२७॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में परब्रह्मनिरूपण नामक दूसरा अध्याय समाप्त ॥२॥

अध्याय ३

श्रीकृष्ण से सृष्टि का आरंभ तथा नारायण द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति

सौति बोले—द्विज! स्वेच्छामय प्रभु ने देखा कि गोलोक भयंकर लग रहा है और विश्व शून्यमय,

---

१ क. ०से हरं हरिम्०। २ क. ०न्दराजं। ३ क. ०रं सिद्धसि०। ४ क. एकं रू०।

वृक्षशैलसमुद्रादिविहीनं विकृताकृतिम्। निर्मृत्तिकं[1] च निर्धातुं निःसस्यं निस्तृणं द्विज ॥२॥
आलोच्य मनसा सर्वमेक एवासहायवान्। स्वेच्छया स्रष्टुमारेभे सृष्टिं स्वेच्छामयः प्रभुः ॥३॥
आविर्बभूवुः सर्गादौ[2] पुंसो दक्षिणपार्श्वतः। भवकारणरूपाश्च मूर्तिमन्तस्त्रयो गुणाः ॥४॥
ततो महानहंकारः पञ्चतन्मात्र एव च। रूपरसगन्धस्पर्शशब्दाश्चैवेति संज्ञकाः ॥५॥
आविर्बभूव तत्पश्चात्स्वयं नारायणः प्रभुः। श्यामो युवा पीतवासा वनमाली चतुर्भुजः ॥६॥
शङ्खचक्रगदापद्मधरः स्मेरमुखाम्बुजः। रत्नभूषणभूषाढ्यः शार्ङ्गी कौस्तुभभूषणः ॥७॥
श्रीवत्सवक्षाः श्रीवासः श्रीनिधिः श्रीविभावनः। शारदेन्दुप्रभामृष्टमुखेन्दुसुमनोहरः ॥८॥
कामदेवप्रभामृष्टरूपलावण्यसुन्दरः। श्रीकृष्णपुरतः स्थित्वा तुष्टाव तं पुटाञ्जलिः ॥९॥

नारायण उवाच

वरं वरेण्यं वरदं वरार्हं वरकारणम्। कारणं कारणानां च कर्म तत्कर्मकारणम् ॥१०॥
तपस्तत्फलदं शश्वत्तपस्वीशं च तापसम्। वन्दे नवघनश्यामं स्वात्मारामं मनोहरम् ॥११॥
निष्कामं कामरूपं[3] च कामघ्नं कामकारणम्। सर्वं सर्वेश्वरं सर्वबीजरूपमनुत्तमम् ॥१२॥
वेदरूपं वेदबीजं[4] वेदोक्तफलदं फलम्। वेदज्ञं तद्विधानं च सर्ववेदविदां वरम् ॥१३॥

भयंकर, जीव-जन्तुओं से रहित, जल-विहीन, दारुण, वायुशून्य, अंधकार से आवृत, वृक्ष, पर्वत एवं समुद्र आदि से विहीन, विकृताकार, मृत्तिका, धातु, सस्य और तृण से रहित हो गया है। मन ही मन सब बातों की आलोचना करके सहायक रहित, एकमात्र प्रभु ने स्वेच्छा से सृष्टि-रचना आरंभ की ॥१-३॥

सृष्टि के आदि में (उस परम) पुरुष के दक्षिण पार्श्व से संसार के कारण रूप तीन मूर्तिमान् गुण प्रकट हुए। उन (गुणों) से महत्तत्त्व, अहंकार, पंचतन्मात्राएं और रूप, रस, गन्ध स्पर्श और शब्द (क्रमशः) उत्पन्न हुए। तत्पश्चात् स्वयं नारायण प्रभु प्रकट हुए जो श्यामवर्ण, तरुण, पीताम्बर, चतुर्भुज, शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किए हुए, मुखारविन्द पर मन्द मुसकान से युक्त, रत्नों के आभूषणों से सम्पन्न, शार्ङ्गधनुष धारण किए हुए, कौस्तुभ मणि से विभूषित, वक्षःस्थल पर श्रीवत्स चिह्न से युक्त, लक्ष्मी के निवास, शोभा के निधान, श्री के चिन्तक, शरत्काल की पूर्णिमा के चन्द्रमा की प्रभा से सेवित मुखचन्द्र के कारण अत्यन्त मनोहर और कामदेव की कान्ति से युक्त रूप-लावण्य के कारण सुन्दर थे। वे श्रीकृष्ण के सामने खड़े होकर दोनों हाथ जोड़ कर उनकी स्तुति करने लगे ॥४-९॥

नारायण बोले—जो वर (श्रेष्ठ), वन्दनीय, वरदायक, वर देने में समर्थ, वर (की प्राप्ति) के कारण, कारणों के भी कारण, कर्मस्वरूप, उस कर्म के भी कारण, तपः स्वरूप, निरन्तर उस तप के फल देने वाले, तपस्वी, तपस्वियों के प्रभु, नवीन मेघ के समान श्याम, स्वात्माराम, मनोहर, निष्काम, कामरूप, कामना के नाशक, कामदेव की उत्पत्ति के कारण, सब, सब के ईश्वर, सर्वबीजस्वरूप, सर्वोत्तम, वेदस्वरूप, वेदों के बीज, वेदोक्त फल के दाता फलरूप, वेदों के ज्ञाता, उसके विधान को जानने वाले तथा सम्पूर्ण वेदवेत्ताओं के शिरोमणि हैं, उनकी मैं वन्दना करता हूँ ॥१०-१३॥

---

१ ख. निर्मुक्तिकं। २ क. सर्वादौ। ३ क. ०मपूरं च। ४ ख. ०दमवं वे०।

इत्युक्त्वा भक्तियुक्तश्च स उवास तदाज्ञया। रत्नसिंहासने रम्ये पुरतः परमात्मनः ॥१४॥
नारायणकृतं स्तोत्रं यः पठेत्सुसमाहितः। त्रिसंध्यं यः पठेन्नित्यं पापं तस्य न विद्यते ॥१५॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रं भार्यार्थी लभते प्रियाम्। भ्रष्टराज्यो लभेद्राज्यं धनं भ्रष्टधनो लभेत् ॥१६॥
कारागारे विपद्ग्रस्तः स्तोत्रेणानेन मुच्यते। रोगात्प्रमुच्यते रोगी[1] वर्षं श्रुत्वा च संयतः ॥१७॥

इति ब्रह्मवैवर्ते नारायणकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्।

सौतिरुवाच

आविर्बभूव तत्पश्चादात्मनो वामपार्श्वतः। शुद्धस्फटिकसंकाशः पञ्चवक्त्रो दिगम्बरः ॥१८॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभजटाभारधरो वरः। ईषद्धास्यप्रसन्नास्यस्त्रिनेत्रश्चन्द्रशेखरः ॥१९॥
त्रिशूलपट्टिशधरो जपमालाकरः परः। सर्वसिद्धेश्वरः सिद्धो योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः ॥२०॥
मृत्योर्मृत्युरीश्वरश्च मृत्युर्मृत्युंजयः शिवः। ज्ञानानन्दो महाज्ञानी महाज्ञानप्रदः परः ॥२१॥
पूर्णचन्द्रप्रभामृष्टसुखदृश्यो मनोहरः। वैष्णवानां च प्रवरः प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा ॥२२॥
श्रीकृष्णपुरतः स्थित्वा तुष्टाव तं पुटाञ्जलिः। पुलकाङ्कितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्रोऽतिगद्गदः ॥२३॥

ऐसा कह कर भक्ति से युक्त वे (नारायण) उनकी आज्ञा से परमात्मा (कृष्ण) के सामने रत्न-निर्मित रमणीय सिंहासन पर आसीन हो गये। जो एकाग्रचित्त होकर नारायण द्वारा किये गये इस स्तोत्र का पाठ करता है और जो नित्य, तीनों संध्याओं के समय (इसको) पढ़ता है, वह निष्पाप हो जाता है। इसके पाठ से पुत्र चाहने वाले को पुत्र मिलता है, पत्नी की कामना करने वाले को पत्नी मिलती है, राज्य से भ्रष्ट हुए को राज्य मिलता है और धन से वंचित हुए को धन की प्राप्ति होती है। कारागार के भीतर विपत्ति में पड़ा हुआ व्यक्ति इस स्तोत्र के प्रभाव से (कारागार से) छूट जाता है। एक वर्ष तक संयमपूर्वक इस स्तोत्र को सुन कर रोगी रोग से मुक्त हो जाता है ॥१४-१७॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में नारायणकृत श्रीकृष्णस्तोत्र समाप्त।

सौति बोले—अनन्तर उनके बायें पार्श्व से शुद्ध स्फटिक मणि के समान धवल, पाँच मुख वाले, दिगम्बर (नग्न), तपाये हुए सुवर्ण की कान्ति के समान जटाओं को धारण किये हुए, श्रेष्ठ, मन्द मुसकान करते हुए प्रसन्न-मुख, त्रिनेत्र, भाल पर चन्द्रमा को धारण किये हुए, हाथों में त्रिशूल, पट्टिश और जपमाला लिए हुए, सर्वसिद्धेश्वर, सिद्ध, योगीन्द्रों के गुरु के गुरु हैं, मृत्यु के मृत्यु, ईश्वर, मृत्यु रूप, मृत्यु को जीतने वाले, कल्याणकारक, ज्ञानानन्द, महाज्ञानी, श्रेष्ठ, महाज्ञानदाता, पूर्ण चन्द्रमा की प्रभा से भूषित मुख वाले, मनोहर, वैष्णवों के शिरोमणि और ब्रह्म तेज से देदीप्यमान शंकर प्रकट हुए। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण के सामने खड़े होकर हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करना

---

१ ख. ०गी ध्रुवं श्रु०।

महादेव उवाच

जयस्वरूपं जयदं जयेशं जयकारणम्। प्रवरं जयदानां[1] च वन्दे तमपराजितम् ॥२४॥
विश्वं विश्वेश्वरेशं च विश्वेशं विश्वकारणम्। विश्वाधारं च विश्वस्थं[2] विश्वकारणकारणम् ॥२५॥
विश्वरक्षाकारणं च विश्वघ्नं विश्वजं परम्। फलबीजं फलाधारं फलं च तत्फलप्रदम् ॥२६॥
तेजःस्वरूपं तेजोदं सर्वतेजस्विनां वरम्। इत्येवमुक्त्वा तं नत्वा रत्नसिंहासने वरे॥
नारायणं च संभाष्य उवास स तदाज्ञया ॥२७॥
इति शंभुकृतं स्तोत्रं यो जनः संयतः पठेत्। सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य विजयं च पदे पदे ॥२८॥
संततं वर्धते मित्रं धनमैश्वर्यमेव च। शत्रुसैन्यं क्षयं याति दुःखानि दुरितानि च ॥२९॥

इति ब्रह्मवैवर्ते शंभुकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्।

सौतिरुवाच

आविर्बभूव तत्पश्चात्कृष्णस्य नाभिपङ्कजात्। महातपस्वी वृद्धश्च कमण्डलुकरो वरः ॥३०॥
शुक्लवासाः शुक्लदन्तः शुक्लकेशश्चतुर्मुखः। योगीशः शिल्पिनामीशः सर्वेषां जनको गुरुः ॥३१॥

आरम्भ किया। उस समय उनके शरीर में रोमांच रहा था, आँखें आसुओं से भरी थीं और वाणी अत्यन्त गद्गद हो रही थी ॥१८-२३॥

महादेव बोले—जयस्वरूप, जय देने वाले, जय के कारण, जय देने वालों में सर्वश्रेठ और अपराजित उस देव की मैं वन्दना कर रहा हूँ जो विश्वरूप, विश्वेश्वराधिपति, विश्व के ईश,विश्व के कारण, विश्व के आधार, विश्व में स्थित, विश्वकारण के कारण, विश्व की रक्षा के कारण, विश्वहन्ता, विश्व की सृष्टि में सर्वोत्तम, फल के बीज, फल के आधार, फलस्वरूप, फल के भी फलदाता, तेजःस्वरूप, तेजोदायक और समस्त तेजस्वियों में श्रेष्ठ हैं ॥२४-२६½॥

ऐसा कह कर नमस्कार करके उनकी आज्ञा से श्रेष्ठ रत्नमय सिंहासन पर नारायण के साथ वार्तालाप करते हुए वे बैठ गए। जो मनुष्य संयतचित्त होकर इस शम्भु-रचित स्तोत्र का पाठ करता है उसके सभी कार्यों की सिद्धि और पग-पग पर विजय प्राप्त होती है। उसके मित्र, धन, ऐश्वर्य की सदा वृद्धि होती है और शत्रुओं की सेनाएँ, दुःख एवं पाप नष्ट होते हैं ॥२७-२९॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में शम्भुकृत श्रीकृष्ण-स्तोत्र समाप्त।

सौति बोले—तदनन्तर भगवान् कृष्ण के नाभि-कमल से महातपस्वी, श्रेष्ठ और हाथ में कमण्डलु लिए वृद्ध ब्रह्मा प्रकट हुए। उनके वस्त्र, दाँत और केश धवल थे। चार मुख थे। वे योगिराज, शिल्पियों के अधीश्वर,

---

१ क. •दाने च। २ ख. ०श्वस्तं वि०।

तपसां फलदाता च प्रदाता सर्वसंपदाम्। स्रष्टा विधाता कर्ता च हर्ता च सर्वकर्मणाम् ॥३२॥
धाता चतुर्णां वेदानां ज्ञाता वेदप्रसूपतिः। शान्तः सरस्वतीकान्तः सुशीलश्च कृपानिधिः ॥३३॥
श्रीकृष्णपुरतः स्थित्वा तुष्टाव तं पुटाञ्जलिः। पुलकाङ्कितसर्वाङ्गो भक्तिनम्रात्मकंधरः ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

कृष्णं वन्दे गुणातीतं गोविन्दमेकमक्षरम्। अव्यक्तमव्ययं व्यक्तं गोपवेषविधायिनम् ॥३५॥
किशोरवयसं शान्तं गोपीकान्तं मनोहरम्। नवीननीरदश्यामं कोटिकन्दर्पसुन्दरम् ॥३६॥
वृन्दावनवनाभ्यर्णे रासमण्डलसंस्थितम्। रासेश्वरं रासवासं रासोल्लाससमुत्सुकम् ॥३७॥
इत्येवमुक्त्वा तं नत्वा रत्नसिंहासने वरे। नारायणेशौ संभाष्य स उवास तदाज्ञया ॥३८॥
इति ब्रह्मकृतं स्तोत्रं प्रातरुत्थाय यः पठेत्। पापानि तस्य नश्यन्ति दुःस्वप्नः सुस्वप्नो भवेत् ॥३९॥
भक्तिर्भवति गोविन्दे श्रीपुत्रपौत्रवर्धिनी। अकीर्तिः क्षयमाप्नोति सत्कीर्तिर्वर्धते चिरम् ॥४०॥

इति ब्रह्मवैवर्ते ब्रह्मकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्।

सौतिरुवाच

आविर्बभूव तत्पश्चाद्वक्षसः परमात्मनः। सस्मितः पुरुषः कश्चिच्छुक्लवर्णो जटाधरः ॥४१॥

सबके उत्पादक, गुरु, तपस्याओं के फलदाता, समस्त सम्पत्तियों के प्रदायक, स्रष्टा, विधाता, समस्त कर्मों के कर्ता, हर्ता, धाता (धारण करने वाले), चारों वेदों के ज्ञाता, वेदों के प्रकट करने वाले और उनके पति, शान्त, सरस्वती के कान्त, सुशील तथा कृपानिधान हैं। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण के सामने हाथ जोड़ कर उनका स्तवन किया। उस समय उनके सम्पूर्ण अंगों में रोमांच हो आया तथा उनकी ग्रीवा भगवान् के सामने भक्तिभाव से झुक गई थी ॥३०-३४॥

ब्रह्मा बोले—मैं भगवान् कृष्ण की वन्दना करता हूँ, जो गुणों से परे, एकमात्र गोविन्द, अविनाशी, अव्यय (नित्य एक रस रहने वाले), व्यक्त, गोपवेषधारी, किशोर अवस्था वाले, शान्त, गोपियों के कान्त, मनोहर, नवीनघन की भाँति श्यामल, करोड़ों काम से सुन्दर, वृन्दावन के भीतर रास-मण्डल में विराजमान, रासेश्वर, रास में सदैव रहने वाले और रासजनित उल्लास के लिए सदा उत्सुक रहने वाले हैं ॥३५-३७॥

ऐसा कहकर श्रीकृष्ण को नमस्कार करके उनकी आज्ञा से नारायण और शिव के साथ संभाषण करते हुए ब्रह्मा श्रेष्ठ रत्नसिंहासन पर बैठ गये। जो प्रातःकाल उठकर ब्रह्मा द्वारा किए गए इस स्तोत्र का पाठ करता है उसके पाप नष्ट हो जाते हैं और दुःस्वप्न सुस्वप्न हो जाता है। उसे श्री, पुत्र एवं पौत्र बढ़ाने वाली गोविन्द की भक्ति प्राप्त होती है। उसकी अपकीर्ति नष्ट हो जाती है और सत्कीर्ति चिरकाल तक बढ़ती रहती है ॥३८-४०॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में ब्रह्मकृत श्रीकृष्णस्तोत्र समाप्त।

सौति बोले—तत्पश्चात् उस परमात्मा के वक्षःस्थल से शुक्ल वर्ण का कोई एक जटाधारी पुरुष प्रकट हुआ, जो मन्द मुसकान कर रहा था और सभी जीवों के समस्त कर्मों का साक्षी, सर्वज्ञाता, सर्वत्र समभाव से रहने

सर्वसाक्षी च सर्वज्ञः सर्वेषां सर्वकर्मणाम्। समः सर्वत्र सदयो हिंसाकोपविवर्जितः ॥४२॥
धर्मज्ञानयुतो धर्मो धर्मिष्ठो धर्मदो भवेत्। स एव धर्मिणां धर्मः परमात्मा फलोद्भवः ॥४३॥
श्रीकृष्णपुरतः स्थित्वा प्रणम्य दण्डवद्भुवि। तुष्टाव परमात्मानं सर्वेशं सर्वकामदम् ॥४४॥

श्रीधर्म उवाच

कृष्णं विष्णुं वासुदेवं परमात्मानमीश्वरम्। गोविन्दं परमानन्दमेकमक्षरमच्युतम् ॥४५॥
गोपेश्वरं च गोपीशं गोपं गोरक्षकं विभुम्। गवामीशं च गोष्ठस्थं गोवत्सपुच्छधारिणम् ॥४६॥
गोगोपगोपीमध्यस्थं प्रधानं पुरुषोत्तमम्। [1]वन्देऽनवद्यमनघं श्यामं शान्तं मनोहरम् ॥४७॥
इत्युच्चार्य समुत्तिष्ठन्रत्नसिंहासने वरे। ब्रह्मविष्णुमहेशांस्तान्संभाष्य स उवास ह ॥४८॥
चतुर्विंशतिनामानि धर्मवक्त्रोद्गतानि च। यः पठेत्प्रातरुत्थाय स सुखी सर्वतो जयी ॥४९॥
मृत्युकाले हरेर्नाम तस्य साध्यं[2] भवेद्ध्रुवम्। स यात्यन्ते हरेः स्थानं हरिदास्यं[3] भवेद्ध्रुवम् ॥५०॥
नित्यं धर्मस्तं घटते नाधर्मे तद्रतिर्भवेत्। चतुर्वर्गफलं तस्य शश्वत्करगतं भवेत् ॥५१॥
तं दृष्ट्वा सर्वपापानि पलायन्ते भयेन च। भयानि चैव दुःखानि वैनतेयमिवोरगाः ॥५२॥

इति ब्रह्मवैवर्ते धर्मकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्।

वाला, सहृदय, हिंसा और क्रोध से हीन, धर्म ज्ञान से युक्त, धर्ममूर्ति, धर्मिष्ठ, धर्मियों का धर्म, परमात्मा तथा फलदाता था। उन्होंने भगवान् श्री कृष्ण के सामने खड़े होकर भूमि में दण्डवत् प्रणाम किया और सबके प्रभु एवं समस्त कामनाओं के देने वाले उन परमात्मा की स्तुति करना आरम्भ किया ॥४१-४४॥

धर्म बोले—कृष्ण, विष्णु, वासुदेव, परमात्मा, ईश्वर, गोविन्द, परमानन्दरूप, एक, अविनाशी, अच्युत, गोपेश्वर, गोपीश, गोप, गोरक्षक, व्यापक, गौओं के ईश, गोष्ठ (गोशाला) में रहने वाले, गौओं के बछड़ों की पूंछ धारण करने वाले तथा गौ, गोप और गोपियों के मध्य रहने वाले, प्रधान, पुरुषोत्तम, अनवद्य, अनघ, श्याम, शान्त और मनोहर (परमात्मा) की मैं वन्दना करता हूँ ॥४५-४७॥

ऐसा कह कर धर्म उठकर खड़े हुए। फिर वे भगवान् की आज्ञा से ब्रह्मा, विष्णु और महादेव के साथ वार्तालाप करते हुए उस श्रेष्ठ रत्नमय सिंहासन पर बैठे ॥४८॥ जो प्रातःकाल उठकर धर्म के मुख से निकले हुए इन चौबीस नामों का पाठ करता है वह सर्वत्र सुखी और विजयी होता है ॥४९॥ मृत्यु के समय उसके मुख से हरि-नाम का उच्चारण निश्चित रूप से होता है और अन्त काल में भगवान् के स्थान में जाकर वह भगवान् की दास्य-भक्ति अवश्य प्राप्त करता है ॥५०॥ नित्य उसे धर्म की ही प्राप्ति होती है और अधर्म में उसकी रुचि कभी नहीं होती है। चारों वर्गों (धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष) का फल सदा के लिए उसके हाथ में आ जाता है ॥५१॥ उसे देखते ही समस्त पाप, भय तथा दुःख भयभीत होकर उसी तरह भाग खड़े होते हैं जैसे गरुड को देख कर साँप (भाग जाते हैं) ॥५२॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में धर्मकृत श्रीकृष्णस्तोत्र समाप्त।

---

१ क. ०न्दे नवघनश्यामं कामवासं म०। २ क. ०वेद्मवि०। ३ क. ०स्यं लभेद्ध्रु०।

सौतिरुवाच

आविर्बभूव कन्यैका धर्मस्य वामपार्श्वतः। मूर्तिर्मूर्तिमती साक्षाद्द्वितीया कमलालया ॥५३॥
आविर्बभूव तत्पश्चान्मुखतः परमात्मनः। एका देवी शुक्लवर्णा वीणापुस्तकधारिणी ॥५४॥
कोटिपूर्णेन्दुशोभाढ्या शरत्पङ्कजलोचना। वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नभूषणभूषिता ॥५५॥
सस्मिता सुदती श्यामा सुन्दरीणां च सुन्दरी। श्रेष्ठा श्रुतीनां शास्त्राणां विदुषां जननी परा ॥५६॥
वागधिष्ठातृदेवी सा कवीनामिष्टदेवता। शुद्धसत्त्वस्वरूपा च शान्तरूपा सरस्वती ॥५७॥
गोविन्दपुरतः स्थित्वा जगौ प्रथमतः सुखम्। तन्नामगुणकीर्तिं च वीणया सा ननर्त च ॥५८॥
कृतानि यानि कर्माणि कल्पे कल्पे युगे युगे। तानि सर्वाणि हरिणा तुष्टाव च पुटाञ्जलिः ॥५९॥

सरस्वत्युवाच

रासमण्डलमध्यस्थं रासोल्लाससमुत्सुकम्। रत्नसिंहासनस्थं च रत्नभूषणभूषितम् ॥६०॥
रासेश्वरं रासकरं वरं रासेश्वरीश्वरम्। रासाधिष्ठातृदेवं च वन्दे रासविनोदिनम् ॥६१॥
रासायासपरिश्रान्तं रासरासविहारिणम्। रासोत्सुकानां गोपीनां कान्तं शान्तं मनोहरम् ॥६२॥
प्रणम्य च तमित्युक्त्वा प्रहृष्टवदना सती। उवास सा सकामा च रत्नसिंहासने वरे ॥६३॥
इति वाणीकृतं स्तोत्रं प्रातरुत्थाय यः पठेत्। बुद्धिमान्धनवान्सोऽपि विद्यावान्पुत्रवान्सदा ॥६४॥

इति ब्रह्मवैवर्ते सरस्वतीकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्।

सौति बोले—तत्पश्चात् धर्म के वाम पार्श्व से एक रूपवती कन्या प्रकट हुई, जो साक्षात् दूसरी लक्ष्मी के समान थी। वह मूर्ति नाम से विख्यात हुई ॥५३॥ उसके अनन्तर परमात्मा के मुख से वीणा और पुस्तक लिए हुए एक शुक्ल वर्ण की देवी प्रकट हुई, जो करोड़ों पूर्णचन्द्रमा की शोभा से सम्पन्न थी। उसके नेत्र शरत्कालीन कमल के समान थे। वह अग्नि में तपाये हुए सुवर्ण की भाँति वस्त्र और रत्नों के भूषणों से विभूषित थी ॥५४-५५॥ वह मन्द मुसकान करती थी एवं उसके दाँत बड़े सुन्दर थे। वह श्यामा (सोलह वर्ष की युवती) सुन्दरियोंमें भी श्रेष्ठ सुन्दरी, श्रुतियों, शास्त्रों और विद्वानों की परमोत्तम जननी, वाणी की अधिष्ठात्री देवी, कवियों की इष्ट देवी, शुद्ध सत्त्व स्वरूप वाली और शान्तरूपिणी सरस्वती थी। उसने भगवान् कृष्ण के सामने स्थित होकर सर्वप्रथम वीणावादन के साथ उनके नाम और गुणों का सुन्दर कीर्तन किया। फिर वह नृत्य करने लगी। उसने हाथ जोड़ कर प्रत्येक कल्प और युगों में किए हुए भगवान् के सभी कार्यों का गान करते हुए उनकी स्तुति की ॥५६-५९॥

सरस्वती बोली—रास-मण्डल के मध्य में स्थित, रासोल्लास के लिए अत्यन्त उत्सुक, रत्नजटित सिंहासन पर सुशोभित, रत्नों के भूषणों से विभूषित, रासेश्वर, श्रेष्ठ रास करने वाले, रासेश्वरी (श्री राधिका जी) के प्राण-वल्लभ, रास के अधिष्ठाता देव और रासविनोदी (आप) की मैं वन्दना करती हूँ। जो रास-क्रीडा से श्रान्त हैं, प्रत्येक रास में विहार करने वाले हैं तथा रास से उत्कण्ठित हुई गोपियों के प्राणवल्लभ हैं, उन शान्त मनोहर श्रीकृष्ण को मैं प्रणाम करती हूँ। इस प्रकार उन्हें प्रणाम करके वह सती सरस्वती प्रसन्नचित्त एवं सफलमनोरथ होकर उस उत्तम रत्न सिंहासन पर समासीन हो गई ॥६०-६३॥ प्रातःकाल उठ कर जो इस सरस्वती कृत स्तोत्र का पाठ करेगा वह सदा बुद्धिमान्, धनवान्, विद्वान् और पुत्रवान् होगा ॥६४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में सरस्वती कृत श्रीकृष्णस्तोत्र समाप्त।

सौतिरुवाच

आविर्बभूव मनसः कृष्णस्य परमात्मनः। एका देवी गौरवर्णा रत्नालंकारभूषिता ॥६५॥
पीतवस्त्रपरीधाना सस्मिता नवयौवना। सर्वैश्वर्याधिदेवी सा सर्वसंपत्फलप्रदा ॥
स्वर्गे च स्वर्गलक्ष्मीश्च राजलक्ष्मीश्च राजसु ॥६६॥
सा हरेः पुरतः स्थित्वा परमात्मानमीश्वरम्। तुष्टाव प्रणता साध्वी भक्तिनम्रात्मकंधरा ॥६७॥

महालक्ष्मीरुवाच

सत्यस्वरूपं सत्येशं सत्यबीजं[1] सनातनम्। सत्याधारं च सत्यज्ञं सत्यमूलं नमाम्यहम् ॥६८॥
इत्युक्त्वा श्रीहरिं नत्वा सा चोवास सुखासने। तप्तकाञ्चनवर्णाभा भासयन्ती दिशस्त्विषा ॥६९॥
आविर्बभूव तत्पश्चाद्बुद्धेश्च परमात्मनः। सर्वाधिष्ठातृदेवी सा मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥७०॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभा सूर्यकोटिसमप्रभा। ईषद्धास्यप्रसन्नास्या शरत्पङ्कजलोचना ॥७१॥
रक्तवस्त्रपरीधाना रत्नाभरणभूषिता। निद्रातृष्णाक्षुत्पिपासादयाश्रद्धाक्षमादिकाः ॥७२॥
तासां च सर्वशक्तीनामीशाऽधिष्ठातृदेवता। भयंकरी शतभुजा दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी ॥७३॥
आत्मनः शक्तिरूपा सा जगतां जननी परा। त्रिशूलशक्तिशार्ङ्गं च धनुःखड्गशराणि च ॥७४॥

सौति बोले—भगवान् कृष्ण के मन से एक गौर वर्णा देवी प्रकट हुई, जो रत्नों के अलंकारों से भूषित पीताम्बर धारण किये हुए तथा मंदमुसकान से युक्त नवयुवती थी। वह समस्त ऐश्वर्यों की अधिष्ठात्री देवी और समस्त सम्पत्ति का फल प्रदान करने वाली है। वही स्वर्ग में स्वर्ग की लक्ष्मी एवं राजाओं के यहाँ राजलक्ष्मी कही जाती है। उसने भगवान् के सामने खड़ी होकर उन्हें प्रणाम किया और भक्तिभावसे ग्रीवा को झुका कर परमात्मा की स्तुति की ॥६५-६७॥

महालक्ष्मी बोली—सत्य स्वरूप, सत्य के स्वामी, सत्य के बीज, सनातन, सत्य के आधार, सत्य के ज्ञाता और उस सत्य के कारण को मैं नमस्कार कर रही हूँ ॥६८॥ तपाये हुए सुवर्ण की भाँति प्रभा से पूर्ण और दिशाओं को अपनी कान्ति से प्रकाशित करती हुई वह (महालक्ष्मी) भी हरि को नमस्कार कर के उस सुखमय सिंहासन पर बैठ गयी ॥६९॥ अनन्तर उस परमात्मा की बुद्धि से मूल प्रकृति प्रकट हुई, जो सब की अधिष्ठात्री देवी और ईश्वरी है ॥७०॥ वह तपाये हुए सुवर्ण के समान कान्ति वाली वह देवी करोड़ों सूर्यों का तिरस्कार कर रही थी। उसका मुख मंद मुसकान से प्रसन्न दीख रहा था। उसके नेत्र शारदीय कमल के समान थे। वह लाल रंग के वस्त्र पहने हुये थी तथा रत्नों के आभूषणों से भूषित थी। निद्रा, तृष्णा, क्षुधा, पिपासा, दया, श्रद्धा, क्षमा आदि जो देवियाँ हैं, उन सब की तथा समस्त शक्तियों की वह अधिष्ठात्री देवी है। वह भयंकरी, सौ भुजाएँ धारण करने वाली और दुर्ग के समान दुःखों का नाश करने वाली दुर्गा है। वह आत्मा की शक्तिरूपा और समस्त जगत् की श्रेष्ठ जननी है। त्रिशूल, शक्ति,

---

१ क. ०त्यराजं स०।

शङ्खचक्रगदापद्ममक्षमालां कमण्डलुम्। वज्रमङ्कुशपाशं च भुशुण्डीदण्डतोमरम् ॥७५॥
नारायणास्त्रं ब्रह्मास्त्रं रौद्रं पाशुपतं तथा। पार्जन्यं वारुणं वाह्नं[1] गान्धर्वं बिभ्रती सती।
कृष्णस्य पुरतः स्थित्वा तुष्टाव तं मुदान्विता ॥७६॥

प्रकृतिरुवाच

अहं प्रकृतिरीशाना सर्वेशा सर्वरूपिणी। सर्वशक्तिस्वरूपा च मया च शक्तिमज्जगत् ॥७७॥
त्वया सृष्टा न स्वतन्त्रा त्वमेव जगतां पतिः। गतिश्च पाता स्रष्टा च संहर्ता च पुनर्विधिः ॥७८॥
स्रष्टुं[2] स्रष्टा च संहर्तुं संहर्ता वेधसां विधिः। परमानन्दरूपं त्वां वन्दे चाऽऽनन्दपूर्वकम्।
चक्षुर्निमेषकाले च ब्रह्मणः पतनं भवेत् ॥७९॥
तस्य प्रभावमतुलं वर्णितुं कः क्षमो विभो। भ्रूभङ्गलीलामात्रेण विष्णुकोटिं सृजेत्तु यः ॥८०॥
चराचरांश्च[3] विश्वेषु देवान्ब्रह्मपुरोगमान्। मद्विधाः कति वा देवीः स्रष्टुं शक्तश्च लीलया ॥८१॥
परिपूर्णतमं स्वीड्यं वन्दे चाऽऽनन्दपूर्वकम्। महान्विराड् यत्कलांशो विश्वसंख्याश्रयो विभो।
वन्दे चाऽऽनन्दपूर्वं तं परमात्मानमीश्वरम् ॥८२॥
यं च स्तोतुमशक्ताश्च ब्रह्मविष्णुशिवादयः। वेदा अहं च वाणी च वन्दे तं प्रकृतेः परम् ॥८३॥
वेदाश्च विदुषां श्रेष्ठाः स्तोतुं शक्ताश्च लक्ष्यतः। निर्लक्ष्यं कः क्षमः स्तोतुं तं निरीहं नमाम्यहम् ॥८४॥

धनुष, खड्ग, बाण, शंख, चक्र, गदा, पद्म, अक्षमाला, कमण्डलु, वज्र, अंकुश, पाश, भुशुण्डी, दण्ड, तोमर, नारायणास्त्र, ब्रह्मास्त्र, रौद्रास्त्र, पाशुपतास्त्र, पार्जन्यास्त्र, वारुणास्त्र, आग्नेयास्त्र तथा गान्धर्वास्त्र—इन सब को हाथों में धारण किये वह सती भगवान् कृष्ण के सामने खड़ी होकर प्रसन्न चित्त से उनकी स्तुति करने लगी ॥७१-७६॥

प्रकृति बोली—मैं प्रकृति, ईश्वरी, सर्वेश्वरी, सर्वरूपिणी और सर्वशक्तिस्वरूपा कहलाती हूँ। मुझसे यह जगत् शक्तिमान् है ॥७७॥ आप इस जगत् के स्वतन्त्र स्रष्टा नहीं हैं, किन्तु इसके पति, गति, रक्षक, स्रष्टा, संहारक एवं पुनः सृष्टि करने वाले हैं ॥७८॥ आप सर्जन करने के लिए स्रष्टा, संहार करने के लिए संहर्ता एवं ब्रह्मा के भी उत्पादक हैं। ऐसे परमानन्द रूप आपकी मैं सहर्ष वन्दना करती हूँ। हे विभो! आपके पलक भाँजते ही ब्रह्मा का पतन हो जाता है। जो अपनी भ्रूभङ्ग की लीला मात्र से करोड़ों विष्णु को उत्पन्न कर सकता है ऐसे आपके अनुपम प्रभाव का वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता है? ॥७९-८०॥ उसी प्रकार आप सारे ब्रह्माण्ड में चर-अचर प्राणियों, ब्रह्मा आदि देवगणों और मेरे समान कितनी देवियों को लीला मात्र से उत्पन्न करने में समर्थ हैं ॥८१॥ अतः परिपूर्णतम एवं अपने से स्तुति के योग्य आपकी मैं सानन्द वन्दना करती हूँ। असंख्य विश्व का आश्रयभूत महान् विराट् पुरुष जिनकी कालामात्र का अंश है, उन परमात्मा (श्रीकृष्ण) की मैं सहर्ष वन्दना करती हूँ ॥८२॥ जिसकी स्तुति करने में ब्रह्मा, विष्णु, शिव, वेद, मैं और वाणी (सरस्वती) असमर्थ हैं तथा जो प्रकृति से परे हैं उन (ईश) की मैं वन्दना करती हूँ ॥८३॥ श्रेष्ठ विद्वान् तथा वेद भी जिनकी स्तुति करने में समर्थ नहीं हैं और जो लक्ष्यहीन एवम् निरीह हैं, उनकी स्तुति करने में कौन समर्थ हो सकता है? अतः मैं उन परमात्मा को प्रणाम कर रही हूँ ॥८४॥

---

१ क. ०वाय्वं गा०। २ क. ०स्रष्टुः स्रष्टा च संहर्तुः सं०। ३. क. ०चरेषु वि०।

इत्येवमुक्त्वा सा दुर्गा रत्नसिंहासने वरे। उवास नत्वा श्रीकृष्णं तुष्टुवुस्तां सुरेश्वराः ॥८५॥
इति दुर्गाकृतं स्तोत्रं कृष्णस्य परमात्मनः। यः पठेदर्चनाकाले स जयी सर्वतः सुखी ॥८६॥
दुर्गा तस्य गृहं त्यक्त्वा नैव याति कदाचन। भवाब्धौ यशसा भाति यात्यन्ते श्रीहरेः पुरम् ॥८७॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे सृष्टिनिरूपणे
दुर्गास्तोत्रं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

सौतिरुवाच

आविर्बभूव तत्पश्चात्कृष्णस्य रसनाग्रतः। शुद्धस्फटिकसंकाशा देवी चैका मनोहरा ॥१॥
शुक्लवस्त्रपरीधाना सर्वालंकारभूषिता। बिभ्रती जपमालां च सावित्री सा प्रकीर्तिता ॥२॥
सा तुष्टाव पुरः स्थित्वा परं ब्रह्म सनातनम्। पुटाञ्जलिपरा साध्वी भक्तिनम्रात्मकंधरा ॥३॥

इस प्रकार कह कर और भगवान् श्रीकृष्ण को प्रणाम करके वह दुर्गा देवी रत्न-सिंहासन पर बैठ गई। उपरान्त देवनायकों ने दुर्गा की स्तुति की ॥८५॥

इस प्रकार जो पूजाकाल में दुर्गा रचित परमात्मा श्रीकृष्ण के इस स्तोत्र का पाठ करता है वह सभी स्थानों में विजयी और सुखी होता है ॥८६॥ दुर्गा उसका गृह छोड़ कर कभी नहीं जाती हैं। इस संसार-सागर में उसका यश सुशोभित रहता है और अन्त काल में वह भगवान् श्री हरि की पुरी में जाता है ॥८७॥

श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराण के ब्रह्मखण्ड में सौति-शौनक-संवाद के द्वारा सृष्टि-निरूपण
के प्रसंग में दुर्गास्तोत्र नामक तीसरा अध्याय समाप्त ॥३॥

अध्याय ४

सावित्री, कामदेव, रति आदि के प्राकट्य का वर्णन

सौति बोले—उसके अनन्तर भगवान् श्री कृष्ण की जिह्वा के अग्र भाग से शुद्ध स्फटिक के समान उज्ज्वल वर्ण की एक मनोहारिणी देवी प्रकट हुई, जो शुक्लवस्त्र पहने हुए, समस्त आभूषणों से विभूषित और (हाथ में) जपमाला लिए हुए थी। उसे सावित्री कहा गया है ॥१—२॥ वह पतिव्रता सामने खड़ी होकर हाथ जोड़ भक्ति से शिर झुकाकर सनातन परब्रह्म (श्रीकृष्ण) की स्तुति करने लगी ॥३॥

चतुर्थोऽध्यायः

सावित्र्युवाच

नमामि सर्वबीजं त्वां 'ब्रह्मज्योतिः सनातनम्। परात्परतरं श्यामं निर्विकारं निरञ्जनम्॥४॥
इत्युक्त्वा सस्मिता देवी रत्नसिंहासने वरे। उवास श्रीहरिं नत्वा पुनरेव श्रुतिप्रसूः॥५॥
आविर्बभूव तत्पश्चात्कृष्णस्य परमात्मनः। मानसाच्च पुमानेकस्तप्तकाञ्चनसंनिभः॥६॥
मनो मथ्नाति सर्वेषां पञ्चबाणेन कामिनाम्। तन्नाम मन्मथं तेन प्रवदन्ति मनीषिणः॥७॥
तस्य पुंसो वामपार्श्वात्कामस्य कामिनी वरा। बभूवातीवललिता सर्वेषां मोहकारिणी॥८॥
रतिर्बभूव सर्वेषां तां दृष्ट्वा सस्मितां सतीम्। रतीति तेन तन्नाम प्रवदन्ति मनीषिणः॥९॥
हरिं स्तुत्वा तया सार्द्धं स उवास हरेः पुरः। रत्नसिंहासने[2] रम्ये पञ्चबाणो धनुर्धरः॥१०॥
मारणं स्तम्भनं चैव जृम्भणं शोषणं तथा। उन्मादनं पञ्चबाणान्पञ्चबाणो बिभर्ति सः॥११॥
बाणांश्चिक्षेप सर्वांश्च कामो बाणपरीक्षया। सद्यः सर्वे सकामाश्च बभूवुरीश्वरेच्छया॥१२॥
रतिं दृष्ट्वा ब्रह्मणश्च रेतःपातो बभूव ह। तत्र तस्थौ महायोगी वस्त्रेणाऽऽच्छाद्य लज्जया॥१२॥
वस्त्रं दग्ध्वा समुत्तस्थौ ज्वलदग्निः सुरेश्वरः। कोटितालप्रमाणश्च सशिखश्च समुज्ज्वलन्॥१३॥
कृष्णस्तद्वर्धनं[3] दृष्ट्वा ससर्जापः स्वलीलया। निःश्वासवायुना सार्धं मुखबिन्दून्समुद्गिरन्॥१५॥

सावित्री बोली—सबके बीज (आदि कारण) उस सनातन ब्रह्म ज्योति को मैं नमस्कार करती हूँ, जो पर से भी अत्यन्त परे, श्याम, निर्विकार और निरञ्जन (ब्रह्म) है॥४॥ इतना कहकर मुसकराती हुई वह वेदमाता (सावित्री) भगवान् श्री हरि को नमस्कार कर उस उत्तम रत्न-सिंहासन पर आसीन हो गई॥५॥ अनन्तर परमात्मा कृष्ण के मन से तपाये हुए सुवर्ण के समान एक पुरुष उत्पन्न हुआ, जो अपने पाँच बाणों से समस्त कामियों के मन को मथ डालता है। इसीलिए बुद्धिमान् लोग उसे 'मन्मथ' (कामदेव) कहते हैं॥६-७॥ उस कामदेव के वाम पार्श्व से एक अत्यन्त सुन्दरी एवं परमोत्तम कामिनी प्रकट हुई, जो समस्त पुरुषों को मुग्ध करती है॥८॥ मन्द-मन्द मुसकराती हुई उस सती को देखकर सभी प्राणियों की उसमें रति हो गई। इसीलिए बुद्धिमानों ने उसका नाम 'रति' बताया है॥९॥ भगवान् के सामने उनकी स्तुति करने के उपरान्त बाण तथा (पुष्पमय) धनुष धारण करनेवाला कामदेव रत्नसिंहासन पर उस रति के साथ आसीन हुआ॥१०॥ मारण, स्तम्भन, जृम्भण, शोषण और उन्मादन, इन्हीं पांचों बाणों को वह सदैव अपनाये रहता है॥११॥ कामदेव ने अपने बाणों की परीक्षा करने के लिए सभी बाण चला दिये। फिर तो ईश्वर की इच्छा से उसी समय सब लोग कामुक हो गये। (यहाँ तक कि) रति को देखकर ब्रह्मा का वीर्यपात हो गया किन्तु महायोगी ब्रह्मा लज्जा वश उसे वस्त्र से आच्छादित कर वहीं खड़े रहे॥१२-१३॥ पश्चात् उस वस्त्र को जलाते हुए सुरेश्वर अग्निदेव बड़ी-बड़ी लपटें उठाते हुए करोड़ों ताड़ों के समान विशाल रूप धारण करके प्रज्वलित होने लगे॥१४॥ भगवान् कृष्ण ने उस बढ़ते हुए अग्निको देखकर अपनी लीला से जल उत्पन्न किया—अपने निःश्वास वायु के साथ मुख से जल की एक-एक बूँद गिराने लगे॥१५॥ द्विज! उसी मुखबिंदु के जल

---

१ क. ०ह्मयोनिं स०। २ ख. ०ने चाऽऽस्य प०। ३ क. ०ष्णस्तं दहन।

विश्वौघं प्लावयामास मुखबिन्दुजलं द्विज। तत्र किंचिज्जलकणं(णो) वह्निं शान्तं चकार ह॥१६॥
ततःप्रभृति तेनाग्निस्तोयान्निर्वाणतां व्रजेत्। आविर्भूतः पुमानेकस्ततस्तदधिदेवता॥१७॥
उत्तस्थौ तज्जलादेकः पुमान्स वरुणः स्मृतः। जलाधिष्ठातृदेवोऽसौ सर्वेषां यादसां पतिः॥१८॥
आविर्बभूव कन्यैका तद्वह्नेर्वामपार्श्वतः। सा स्वाहा वह्निपत्नीं तां प्रवदन्ति मनीषिणः॥१९॥
जलेशस्य वामपार्श्वात्कन्या चैका बभूव सा। वरुणानीति विख्याता वरुणस्य प्रिया सती॥२०॥
बभूव पवनः श्रीमान्विभोर्निःश्वासवायुना। स च प्राणश्च सर्वेषां निःश्वासस्तत्कलोद्भवः॥२१॥
तस्य वायोर्वामपार्श्वात्कन्या चैका बभूव ह। वायोः पत्नी च सा देवी वायवी परिकीर्तिता॥२२॥
कृष्णस्य कामबाणेन रेतः पातो बभूव ह। जले [1]तद्रेचनं चक्रे लज्जया सुरसंसदि॥२३॥
सहस्रवत्सरान्ते [2]तड्डिम्भरूपं बभूव ह। ततो महान्विराड्जज्ञे विश्वौघाधार एव सः॥२४॥
यस्यैकलोमविवरे विश्वैकस्य व्यवस्थितिः। स्थूलात्स्थूलतरः सोऽपि महान्नान्यस्ततः परः॥२५॥
स एव षोडशांशोऽपि कृष्णस्य परमात्मनः। महाविष्णुः स विज्ञेयः सर्वाधारः सनातनः॥२६॥
महार्णवे शयानः स पद्मपत्रं यथा जले। बभूवतुस्तौ द्वौ दैत्यौ तस्य कर्णमलोद्भवौ॥२७॥
तौ जलाच्च समुत्थाय ब्रह्माणं हन्तुमुद्यतौ। नारायणश्च भगवाञ्जघने तौ जघान ह॥२८॥

से समस्त विश्व आप्लावित (जलमग्न) हो गया। और उसी जल के कुछ कणों ने उस अग्नि को शान्त कर दिया। उसी समय से अग्नि जल से शान्त होने लगा। पश्चात् उसी जल से उसका अधिदेवता एक पुरुष रूप में प्रकट हुआ जिसे 'वरुण' कहा गया है। वह जल का अधिष्ठाता देव समस्त जल जीवों का अधिपति है॥१६-१८॥ अनन्तर अग्नि के वाम पार्श्व से एक कन्या प्रकट हुई, जो अग्नि की पत्नी हुई और मनीषी लोग उसे 'स्वाहा' कहते हैं॥१९॥ जलेश्वर (वरुण) के वाम पार्श्व से भी एक कन्या उत्पन्न हुई, जो वरुण की प्रेयसी स्त्री वरुणानी कही जाती है॥२०॥ पुनः उस प्रभु के निःश्वास वायु से श्रीमान् पवन देव की उत्पत्ति हुई, जो सभी के प्राण हैं। श्वास-प्रश्वास के रूप में उसी की कला प्रकट हुई है॥२१॥ उस वायु के भी वाम पार्श्व से एक कन्या उत्पन्न हुई, जो वायु की पत्नी हुई और उस देवी को 'वायवी' कहा जाता है॥२२॥ पश्चात् काम-बाण द्वारा भगवान् कृष्ण का वीर्यपात हुआ किन्तु उस देवसभा में लज्जावश उन्होंने उसे जल में डाल दिया॥२३॥ सहस्र वर्ष के उपरान्त वह एक अंडे के रूप में प्रकट हुआ। उसी से महान् विराट् उत्पन्न हुआ, जो समस्त विश्व का आधार है॥२४॥ जिसके एक लोम के विवर (छिद्र) में एक विश्व सुव्यवस्थित रहता है। वह स्थूल से अत्यन्त स्थूल है और उससे बड़ा दूसरा कोई नहीं है॥२५॥ वह परमात्मा श्रीकृष्ण का सोलहवाँ अंश है। उसी को 'महाविष्णु' जानना चाहिए, जो सब के आधार और सनातन है॥२६॥ जल में कमल के पत्ते की भाँति वे महासागर में शयन किये हुए हैं। जिनके कान के मल से दो दैत्य उत्पन्न हुए॥२७॥ उन दैत्यों ने जल से उठकर ब्रह्मा की हत्या करनी चाही किन्तु नारायण भगवान् ने अपने जघन पर (उनकी इच्छा से) उनका वध किया॥२८॥ और उन्हीं दोनों के मेद (चर्बी) से समस्त पृथ्वी निर्मित हुई। इसी

---

१ क. तत्प्रेरणं च०। २ क. तद्बिन्दुरू०।

बभूव मेदिनी कृत्स्ना[1] कात्स्न्येंन मेदसा तयोः । तत्रैव सन्ति विश्वानि सा च देवी वसुंधरा ॥२९॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे
सृष्टिनिरूपणं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

शौनक उवाच

गोगोपगोप्यो गोलोके किं नित्याः किं नु कल्पिताः । मम संदेहभेदार्थं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१॥

सौतिरुवाच

सर्वादिसृष्टौ ताः क्लृप्ताः प्रलये[2] कृष्णसंस्थिताः । सर्वादिसृष्टिकथनं यन्मया कथितं द्विज ॥२॥
सर्वादिसृष्टौ क्लृप्तौ च नारायणमहेश्वरौ । प्रलये प्रलये व्यक्तौ स्थितौ तौ प्रकृतिश्च सा ॥३॥

लिये इसे 'मेदिनी' कहा जाता है। उसी पर समस्त विश्व टिका हुआ है। उसकी अधिष्ठात्री देवी का नाम वसुन्धरा है ॥२९॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में सौति-शौनक-संवाद
प्रकरण में चौथा अध्याय समाप्त ॥४॥

अध्याय ५

गोलोक आदि के नित्यानित्यत्व की व्यवस्था तथा राधा से गोपांगनाओं का प्रादुर्भाव

शौनक बोले—गोलोक में गायें, गोप और गोपियाँ क्या नित्य (सदैव) रहती हैं या कल्पित हैं? मेरे सन्देह के निवारणार्थ आप इसको बताने की कृपा करें ॥१॥

सौति बोले—द्विज! सब की आदि सृष्टि में, जिसका वर्णन मैं कर चुका हूँ, वे गायें, गोप तथा गोपियाँ प्रकट रूप से रहती हैं और प्रलयकाल में वे कृष्ण में अवस्थित हो जाती हैं। सबकी आदि सृष्टि में नारायण और महेश्वर प्रकट रूप से रहते हैं। प्रलयकाल में भी ये दोनों तथा प्रकृति व्यक्त रूप से रहती हैं ॥२-३॥ हे द्विज!

---

१ क. कृष्णा कार्ष्ण्येन मे० । २ ख. ०ये प्रलये स्थि० ।

सर्वादौ ब्रह्मकल्पस्य चरितं कथितं द्विज। वाराहपाद्मकल्पौ द्वौ कथयिष्यामि श्रोष्यसि ॥४॥
ब्राह्मवाराहपाद्माश्च कल्पाश्च त्रिविधा मुने। यथा युगानि चत्वारि क्रमेण कथितानि च ॥५॥
सत्यं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम्। त्रिशतैश्च षष्टयधिकैर्युगैर्दिव्यं युगं स्मृतम् ॥६॥
मन्वन्तरं तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः। चतुर्दशेषु मनुषु गतेषु ब्रह्मणो दिनम् ॥७॥
त्रिशतैश्च षष्टयधिकैर्दिनैर्वर्षं च ब्रह्मणः। अष्टोत्तरं वर्षशतं विधेरायुर्निरूपितम् ॥८॥
एतन्निमेषकालस्तु कृष्णस्य परमात्मनः। ब्रह्मणश्चाऽऽयुषा कल्पः कालविद्भिर्निरूपितः ॥९॥
क्षुद्रकल्पा बहुतरास्ते संवर्तादयः स्मृताः। सप्तकल्पान्तजीवी च मार्कण्डेयश्च तन्मतः ॥१०॥
ब्रह्मणश्च दिनेनैव स कल्पः परिकीर्तितः। विधेश्च सप्तदिवसैर्मुनेरायुर्निरूपितम् ॥११॥
ब्राह्मवाराहपाद्माश्च त्रयः कल्पा निरूपिताः। कल्पत्रये यथा सृष्टिः कथयामि निशामय ॥१२॥
ब्राह्मे च मेदिनीं सृष्ट्वा स्रष्टा सृष्टिं चकार सः। मधुकैटभयोश्चैव मेदसा चाऽऽज्ञया प्रभोः ॥१३॥
वाराहे तां समुद्धृत्य लुप्तां मग्नां रसातलात्। विष्णोर्वराहरूपस्य द्वारा चातिप्रयत्नतः ॥१४॥
पाद्मे विष्णोर्नाभिपद्मे स्रष्टा सृष्टिं विनिर्ममे। त्रिलोकीं ब्रह्मलोकान्तां नित्यलोकत्रयं विना ॥१५॥
एतत्तु कालसंख्यानमुक्तं सृष्टिनिरूपणे। किंचिन्निरूपणं सृष्टेः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१६॥

(इस पुराण में) मैंने सब से पहले ब्रह्मकल्प के चरित्र का वर्णन किया है। अब वाराह कल्प और पाद्मकल्प इन दोनों का वर्णन करूँगा, सुनिए ॥४॥ हे मुने! ब्राह्म, वाराह, पाद्म के भेद से कल्प तीन प्रकार के होते हैं। जैसे सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि—ये चारों युग क्रम से कहे गए हैं, वैसे ही वे कल्प भी हैं। तीन सौ साठ युगों का एक 'दिव्य युग' होता है ॥५-६॥ एकहत्तर दिव्य युगों का एक मन्वन्तर होता है और चौदह मनुओं के व्यतीत हो जाने पर ब्रह्मा का एक दिन होता है ॥७॥ ऐसे तीन सौ साठ दिनों के बीतने पर ब्रह्मा का एक वर्ष पूरा होता है। इस तरह के एक सौ आठ वर्षों की ब्रह्मा की आयु बतायी गयी है। परमात्मा कृष्ण का यही निमेष-काल कहा गया है। काल-वेत्ताओं ने ब्रह्मा की आयु के बराबर 'कल्प' का मान निश्चित किया है ॥८-९॥ संवर्त आदि छोटे-छोटे कल्प तो अनेक हैं। मार्कण्डेय जी सात कल्पों तक जीने वाले बताये गए हैं ॥१०॥ किन्तु वह कल्प ब्रह्मा के एक दिन के बराबर ही बताया गया है। अतः ब्रह्मा के सात दिनों में मुनि (मार्कण्डेय) की आयु पूरी हो जाती है ॥११॥ ब्राह्म, वाराह और पाद्म यही तीन कल्प हैं और इन तीनों कल्पों में जिस प्रकार सृष्टि होती है, वह बताता हूँ, सुनो! ॥१२॥ ब्राह्म कल्प में मधु और कैटभ नामक दैत्यों के मेद (चर्बी) से पृथिवी का निर्माण करके स्रष्टा ने प्रभु श्रीकृष्ण की आज्ञा से सृष्टि-रचना की ॥१३॥ वाराह कल्प में जलमग्न एवं लुप्त हुई पृथिवी को वाराह रूपधारी भगवान् विष्णु के द्वारा अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक रसातल से उसका उद्धार करवाया और सृष्टि-रचना की ॥१४॥ पश्चात् पाद्म कल्प में भगवान् विष्णु की नाभि-कमल पर स्रष्टा ने सृष्टि का निर्माण किया। ब्रह्मलोकपर्यन्त जो त्रिलोकी है, उसी की रचना की, ऊपर के जो नित्य तीन लोक हैं, उनकी नहीं ॥१५॥ सृष्टि-निरूपण के प्रसंग में मैंने यह कालगणना बतायी है और अंशतः सृष्टि का निरूपण किया है। अब और क्या सुनना चाहते हो? ॥१६॥

शौनक उवाच

अतः परं किं चकार भगवान्सात्वतां पतिः। एतान्सृष्ट्वा किं चकार तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१७॥

सौतिरुवाच

अतः परं तु गोलोके गोलोकेशो महान्प्रभुः। एतान्सृष्ट्वा जगामासौ रम्यं रासमण्डलम्।
एतैः समेतैर्भगवानतीव कमनीयकम् ॥१८॥
रम्याणां कल्पवृक्षाणां मध्येऽतीवमनोहरम्। सुविस्तीर्णं च सुसमं सुस्निग्धं मण्डलाकृति ॥१९॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमैश्च सुसंस्कृतम्। दधिलाजसक्तुधान्यदूर्वापर्णपरिप्लुतम् ॥२०॥
पट्टसूत्रग्रन्थियुक्तं नवचन्दनपल्लवैः। संयुक्तरम्भास्तम्भानां समूहैः परिवेष्टितम् ॥२१॥
सद्रत्नसारनिर्माणमण्डपानां त्रिकोटिभिः। रत्नप्रदीपज्वलितैः पुष्पधूपाधिवासितैः ॥२२॥
शृङ्गाराहंभोगवस्तुसमूहपरिवेष्टितम्। अतीवललिताकल्पतल्पयुक्तैः सुशोभितम् ॥२३॥
तत्र गत्वा च तैः सार्धं समुवास जगत्पतिः। दृष्ट्वा रासं विस्मितास्ते बभूवुर्मुनिसत्तम ॥२४॥
आविर्बभूव कन्यैका कृष्णस्य वामपार्श्वतः। धावित्वा पुष्पमानीय ददावर्घ्यं प्रभोः पदे ॥२५॥
रासे संभूय गोलोके सा दधाव हरे पुरः। तेन राधा समाख्याता पुराविद्भिर्द्विजोत्तम ॥२६॥
प्राणाधिष्ठातृदेवी सा कृष्णस्य परमात्मनः। आविर्बभूव प्राणेभ्यः प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥२७॥
देवी षोडशवर्षीया नवयौवनसंयुता। वह्निशुद्धांशुकाधाना सस्मिता सुमनोहरा ॥२८॥

शौनक बोले—इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्ण ने क्या किया—किसकी सृष्टि की—बताने की कृपा करें ॥१७॥

सौति बोले—इसके उपरान्त गोलोकेश भगवान् श्रीकृष्ण गोलोक में इन सब की सृष्टि करके अत्यन्त सुन्दर एवं मनोहर रासमण्डल में गए। वह रमणीय कल्पवृक्षों के मध्य मण्डलाकार रासमण्डल अत्यन्त मनोहर दिखायी देता था ॥१८-१९॥ चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुम से उसको सजाया गया था। उस पर दधि, लावा, सत्तू, धान्य और दूर्वादल बिखेरे गये थे। रेशमी सूत में गुंथे हुए नूतन चन्दन-पल्लवों की बन्दनवारों और केले के स्तम्भों से वह घिरा हुआ था। उत्तम रत्नों के सार भाग से सुरचित तीन करोड़ मंडप उस भूमि की शोभा बढ़ा रहे थे। उनके भीतर रत्नमय प्रदीप जल रहे थे। वे पुष्प और धूप से वासित थे ॥२०-२२॥ उनके भीतर अत्यन्त ललित प्रसाधन-सामग्री रखी हुई थी ॥२३॥ उन सब को साथ लिए भगवान् जगतीपति कृष्णचन्द्र वहाँ जाकर ठहरे। मुनिश्रेष्ठ ! उस रास को देखकर वे सब अत्यन्त आश्चर्यचकित हो उठे ॥२४॥ उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण के वाम पार्श्व से एक कन्या उत्पन्न हुई। वह दौड़ कर तुरन्त पुष्प ले आई और प्रभु कृष्ण को पग-पग पर अर्घ्य प्रदान करने लगी ॥२५॥ द्विजोत्तम ! रास में उत्पन्न होकर गोलोक में भगवान् के सामने दौड़ने के कारण विद्वानों ने उसे 'राधा' कहा है ॥२६॥ वह परमात्मा कृष्ण के प्राणों की अधिष्ठात्री देवी उनके प्राणों से प्रकट होने के कारण उन्हें प्राणों से भी अधिक प्रिय हुई ॥२७॥ वह देवी सोलह वर्ष की अवस्था एवं नवीन यौवन से सम्पन्न थी। अग्नि में तपाये हुए सुवर्ण की भाँति वस्त्रों को पहने हुए वह अत्यन्त रूपवती देवी मुसकरा रही थी ॥२८॥ उसके अंग

सुकोमलाङ्गी ललिता सुन्दरीषु च सुन्दरी। बृहन्नितम्बभारार्ता पीनश्रोणिपयोधरा ॥२९॥
बन्धुजीवजितारक्तसुन्दरोष्ठाधराननना । मुक्तापङ्क्तिजिताचारुदन्तपङ्क्तिर्मनोहरा ॥३०॥
शरत्पार्वणकोटीन्दुशोभामृष्टशुभानना । चारुसीमन्तिनी चारुशरत्पङ्कचलोचना ॥३१॥
खगेन्द्रचञ्चुविजितचारुनासामनोहरा । स्वर्णगण्डूकविजिते गण्डयुग्मे च बिभ्रती ॥३२॥
दधती चारुकर्णे च रत्नाभरणभूषिते। चन्दनागरुकस्तूरीयुक्तकुङ्कुमबिन्दुभिः ॥३३॥
सिन्दूरबिन्दुसंयुक्तसुकपोला मनोहरा। सुसंस्कृतं केशपाशं मालतीमाल्यभूषितम् ॥३४॥
सुगन्धकबरीभारं सुन्दरं दधती सती। स्थलपद्मप्रभामुष्टं पादयुग्मं च बिभ्रती ॥३५॥
गमनं कुर्वती सा च हंसखञ्जनगञ्जनम्। सद्रत्नसारनिर्माणां वनमालां मनोहराम् ॥३६॥
हारं हरिकनिर्माणं रत्नकेयूरकङ्कणम्। सद्रत्नसारनिर्माणं पाशकं सुमनोहरम् ॥३७॥
अमूल्यरत्ननिर्माणं क्वणन्मञ्जीररञ्जितम्। नानाप्रकारचित्राढ्यं सुन्दरं परिबिभ्रती ॥३८॥
सा च संभाष्य गोविन्दं रत्नसिंहासने वरे। उवास सस्मिता भर्तुः पश्यन्ती मुखपङ्कजम् ॥३९॥
तस्याश्च लोमकूपेभ्यः सद्यो गोपाङ्गनागणः। आविर्बभूव रूपेण वेषेणैव च तत्समः ॥४०॥
लक्षकोटीपरिमितः शश्वत्सुस्थिरयौवनः । संख्याविद्भिश्च संख्यातो गोलोके गोपिकागणः ॥४१॥

अत्यन्त कोमल थे। वह सुन्दरियों में भी सुन्दरी थी। वह विशाल नितम्ब के भार से थकी और स्थूल श्रोणी तथा स्तनों से शोभित थी। उसके बन्धूक (दुपहरिये) के पुष्प की भाँति रक्ताभ और सुन्दर ओष्ठ थे, मोतियों की पंक्ति के समान अत्यन्त मनोहर दाँतों की पंक्ति थी और शरत्कालीन कोटि चन्द्रों की शोभा को तिरस्कृत करने वाला मुख था। सीमन्त भाग बड़ा मनोहर था। शारदीय सुन्दर कमल की भाँति नेत्र दिखाई देते थे। उसकी मनोहर नासिका के सामने पक्षिराज गरुड़ की चोंच हार मान चुकी थी। वह बाला अपने दोनों कपोलों द्वारा सुनहरे दर्पण की शोभा को तिरस्कृत कर रही थी। रत्नों के आभूषणों से विभूषित दोनों कान बड़े सुन्दर लगते थे। सुन्दर कपोलों पर चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुम और सिन्दूर की बूंदों से पत्र-रचना की गई थी, जिससे वह बड़ी सुन्दरी जान पड़ती थी। उसके सँवारे हुए केशपाश मालती की सुन्दर माला से अलंकृत थे। वह सती-साध्वी बाला अपने सिर पर सुन्दर एवं सुगन्धित वेणी धारण किये हुई थी। उसके दोनों चरण स्थल-कमलों की प्रभा को चुरा रहे थे। उसकी चाल हंस तथा खंजन के गर्व को चूर करने वाली थी। वह उत्तम रत्नों के सारभाग से बनी हुई मनोहर वनमाला, हीरे का बना हुआ हार, रत्न-निर्मित केयूर, कंगन, सुन्दर रत्नों के सारभाग से निर्मित अत्यन्त मनोहर पाशक (गले की जंजीर या कान का पासा), बहुमूल्य रत्नों का बना झनकारता हुआ मंजीर तथा अन्य नाना प्रकार के चित्रांकित सुन्दर जड़ाऊ आभूषण धारण किये हुई थी। वह श्रीकृष्ण से वार्तालाप करके उनकी आज्ञा पा मुसकराती हुई तथा स्वामी के मुखारविन्द को देखती हुई श्रेष्ठ रत्नमय सिंहासन पर बैठ गई ॥२९-३९॥ उसी समय उसके लोम-कूपों से गोपांगनाओं का आविर्भाव हुआ, जो रूप और वेश में उसी के समान थीं ॥४०॥ एक लाख करोड़ उनकी संख्या थी और वे नित्य सुस्थिरयौवना थीं। विद्वानों ने गोलोक में गोपियों की उक्त संख्या ही बतायी हैं ॥४१॥ मुने! उसी प्रकार भगवान् कृष्ण के लोम

कृष्णस्य लोमकूपेभ्यः सद्यो गोपगणो मुने। आविर्बभूव रूपेण वेषेणैव च तत्समः ॥४२॥
त्रिंशत्कोटिपरिमितः कमनीयो मनोहरः। संख्याविद्भिश्च संख्यातो बल्लवानां गणः श्रुतौ ॥४३॥
कृष्णस्य लोमकूपेभ्यः सद्यश्चाऽऽविर्बभूव ह। नानावर्णो गोगणश्च शश्वत्सुस्थिरयौवनः ॥४४॥
बलीवर्दाः सुरभ्यश्च वत्सा नानाविधाः शुभाः। अतीवललिताः श्यामा बह्वचो वै कामधेनवः ॥४५॥
तेषामेकं बलीवर्दं कोटिसिंहसमं बले। शिवाय प्रददौ कृष्णो वाहनाय मनोहरम् ॥४६॥
कृष्णाङ्घ्रिनखरन्ध्रेभ्यो हंसपङ्क्तिर्मनोहरा। आविर्बभूव सहसा स्त्रीपुंवत्ससमन्विता ॥४७॥
तेषामेकं राजहंसं महाबलपराक्रमम्। वाहनाय ददौ कृष्णो ब्रह्मणे च तपस्विने ॥४८॥
वामकर्णस्य विवरात्कृष्णस्य परमात्मनः। गणः श्वेततुरङ्गाणामाविर्भूतो मनोहरः ॥४९॥
तेषामेकं च श्वेताश्वं धर्मार्थं वाहनाय च। ददौ गोपाङ्गनेशश्च संप्रीत्या सुरसंसदि ॥५०॥
दक्षकर्णस्य विवरात्पुंसश्च सुरसंसदि। आविर्भूता सिंहपङ्क्तिर्महाबलपराक्रमा ॥५१॥
तेषामेकं ददौ कृष्णः प्रकृत्यै परमादरम्। अमूल्यरत्नमाल्यं च वरं यदभिवाञ्छितम् ॥५२॥
कृष्णो योगेन योगीन्द्रश्चकार रथपञ्चकम्। शुद्धरत्नेन्द्रनिर्माणं मनोयायि मनोहरम् ॥५३॥
लक्षयोजनमूर्ध्वं च प्रस्थे च शतयोजनम्। लक्षचक्रं वायुरहं लक्षक्रीडागृहान्वितम् ॥५४॥
शृङ्गारार्हं भोगवस्तुतल्पासंख्यसमन्वितम्। रत्नप्रदीपलक्षाणां[1] राजिभिश्च विराजितम् ॥५५॥

विवर से भी तुरन्त गोपगण प्रकट हुए, जो रूप और वेश में उन्हीं के समान थे ॥४२॥ विद्वानों का कहना है कि श्रुति में गोलोक के कमनीय एवं मनोहर रूप वाले गोपों की संख्या तीस करोड़ बतायी गई है ॥४३॥ उसी प्रकार तत्काल ही भगवान् कृष्ण के लोम-कूप से नित्य सुस्थिर यौवन वाली अनेक वर्ण की गौएँ प्रकट हुईं ॥४४॥ उनमें बलीवर्द (साँड़), सुरभी जाति की गौएँ और अनेक भाँति के सुन्दर बछड़े थे तथा अत्यन्त ललित अनेकों श्यामा कामधेनु गौएँ थीं ॥४५॥ भगवान् कृष्ण ने उन्हीं में से एक मनोहर बैल को, जो करोड़ों सिंह के समान बलवान् था, शंकर को सवारी के लिए दे दिया ॥४६॥ पुनः भगवान् श्रीकृष्ण के चरण-नख के छिद्रों से सहसा सुन्दर हंसों की पंक्ति उत्पन्न हुई, जिसमें स्त्री-पुरुष (नर-मादा) सभी थे। उनमें से एक महापराक्रमी राजहंस को भगवान् कृष्ण ने तपस्वी ब्रह्मा को वाहनार्थ प्रदान किया ॥४७-४८॥ परमात्मा कृष्ण के बायें कर्ण विवर से श्वेत वर्ण के अश्वों का समूह उत्पन्न हुआ ॥४९॥ गोपांगनाओं के अधिपति भगवान् कृष्ण ने उस सभा के भीतर बड़ी प्रसन्नता से एक श्वेत अश्व देवसभा में विराजमान धर्म को वाहन के लिए प्रदान किया ॥५०॥ पुनः उस पुरुष के दाहिने कर्ण-विवर से उस सुर-सभा के भीतर ही महाबली और पराक्रमी सिंहों की श्रेणी उत्पन्न हुई ॥५१॥ उनमें से एक को कृष्ण ने प्रसन्नता वश प्रकृति (दुर्गा) को सौंप दिया और अमूल्य रत्नों की माला एवं इच्छित वरदान भी दिया ॥५२॥ अनन्तर योगीन्द्र कृष्ण ने योगबल से पाँच रथ उत्पन्न किए, जो शुद्ध रत्नों के बने, मनोहर और मन के समान चलने वाले थे ॥५३॥ उनकी ऊँचाई एक लाख योजन की थी और विस्तार सौ योजन का था। उनमें एक लाख चक्के थे जो वायु के समान चलने वाले थे और उनमें एक-एक लाख क्रीड़ा-गृह, शृंगारोचित भोग-वस्तुएँ और असंख्य शय्यायें थीं। लाखों रत्नमय प्रदीपों और अश्वों से वे (रथ) सुसज्जित थे ॥५४-५५॥ अनेक भाँति के विचित्र चित्र उनमें अंकित

१ ख. ०णां वाजि०।

नानाचित्रविचित्राढ्यं सद्रत्नकलशोज्ज्वलम् । रत्नदर्पणभूषाढ्यं शोभितं श्वेतचामरैः ॥५६॥
वह्निशुद्धांशुकैश्चित्रैर्मुक्ताजालैर्विभूषितम् । मणीन्द्रमुक्तामाणिक्यहीरहारविराजितम् ॥५७॥
आरक्तवर्णरत्नेन्द्रसारनिर्माणकृत्रिमैः । पङ्कजानामसंख्यैश्च सुन्दरैश्च सुशोभितम् ॥५८॥
ददौ नारायणायैकं तेषां मध्ये द्विजोत्तम। एकं दत्त्वा राधिकायै ररक्ष शेषमात्मने ॥५९॥
आविर्बभूव कृष्णस्य गुह्यदेशात्ततः परम्। पिङ्गलश्च पुमानेकः पिङ्गलैश्च गणैः सह ॥६०॥
आविर्भूता यतो गुह्यात्तेन ते गुह्यकाः स्मृताः। यः पुमान्स कुबेरश्च धनेशो गुह्यकेश्वरः ॥६१॥
बभूव कन्यका चैका कुबेरवामपार्श्वतः। कुबेरपत्नी सा देवी सुन्दरीणां मनोरमा ॥६२॥
भूतप्रेतपिशाचाश्च कूष्माण्डब्रह्मराक्षसाः। वेताला विकृतास्तस्याऽऽविर्भूता गुह्यदेशतः ॥६३॥
शङ्खचक्रगदापद्मधारिणो वनमालिनः । पीतवस्त्रपरीधानाः सर्वे श्यामचतुर्भुजाः ॥६४॥
किरीटिनः कुण्डलिनो रत्नभूषणभूषिताः । आविर्भूताः पार्षदाश्च कृष्णस्य मुखतो मुने ॥६५॥
चतुर्भुजान्पार्षदांश्च ददौ नारायणाय च । गुह्यकान्गुह्यकेशाय भूतादीञ्छंकराय च ॥६६॥
द्विभुजाः श्यामवर्णाश्च जपमालाकरा वराः। ध्यायन्तश्चरणाम्भोजं कृष्णस्य सततं मुदा ॥६७॥
दास्ये नियुक्ता दासाश्चैवार्घ्यमादाय यत्नतः। आविर्भूता वैष्णवाश्च सर्वे कृष्णपरायणाः ॥६८॥

थे। वे उत्तम रत्नों के कलशों से उज्ज्वल तथा रत्न के दर्पणों एवं आभूषणों और श्वेत चामरों से सुशोभित थे ॥५६॥ अग्नि में तपाये गये (सुवर्ण) की भाँति वस्त्रों, चित्र-विचित्र मुक्तामालाओं तथा मणियों, मोतियों और हीरों के हारों से विभूषित थे ॥५७॥ रक्तवर्ण के उत्तम रत्नों के तत्त्वों से सुरचित, असंख्य एवं सुन्दर कमलों से वे अलंकृत थे ॥५८॥ द्विजोत्तम ! भगवान् कृष्ण ने उनमें से एक नारायण को और एक श्रीराधा जी को देकर शेष अपने लिए सुरक्षित रख लिए ॥५९॥ अनन्तर भगवान् कृष्ण के गुह्य स्थान से एक पिंगल वर्ण का पुरुष पिंगलगणों के साथ उत्पन्न हुआ ॥६०॥ गुप्त स्थान से प्रकट होने के कारण वे सब 'गुह्यक' कहलाये। उनमें वह पुरुष धन का ईश और गुह्यकों का अधिपति हुआ ॥६१॥ कुबेर के वाम पार्श्व से एक कन्या उत्पन्न हुई। वह अत्यन्त सुन्दरी देवी कुबेर की पत्नी हुई ॥६२॥ भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस और वेताल भी उन्हीं के गुह्य स्थान से प्रकट हुए ॥६३॥ मुने ! तदनन्तर श्रीकृष्ण के मुख से कुछ पार्षदों का प्राकट्य हुआ। वे सब शंख, चक्र, गदा, पद्म, वनमाला और पीताम्बर धारण किए हुए श्यामवर्ण और चतुर्भुज थे ॥६४॥ किरीट, कुण्डल और रत्नों के आभूषण उनकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥६५॥ भगवान् ने चार भुजाधारी पार्षद नारायण को दे दिए। उसी प्रकार गुह्य कुबेर को और भूत, प्रेत आदि शंकर को समर्पित किए ॥६६॥ तदुपरान्त श्रीकृष्ण के चरणारविन्द से द्विभुज पार्षद प्रकट हुए, जो श्याम वर्ण के थे और हाथों में जपमाला लिये हुए थे। वे श्रेष्ठ पार्षद निरन्तर आनन्दपूर्वक भगवान् के चरणकमलों का ही चिन्तन करते थे। श्रीकृष्ण ने उन्हें दास्यकर्म में नियुक्त किया। वे दास यत्नपूर्वक अर्घ्य लिए प्रकट हुए थे। वे सभी श्रीकृष्णपरायण वैष्णव थे। उनके सारे अंग पुलकित थे, नेत्रों से आँसू झर रहे थे और वाणी गद्गद थी। उनका

पुलकाङ्कितसर्वाङ्गाः साश्रुनेत्राः सगद्गदाः । आविर्भूताः पादपद्मात्पादपद्मैकमानसाः ।।६९।।
आविर्बभूवुः कृष्णस्य दक्षनेत्राद्भयङ्कराः । त्रिशूलपट्टिशधरास्त्रिनेत्राश्चन्द्रशेखराः ।।७०।।
दिगम्बरा महाकाया ज्वलदग्निशिखोपमाः । ते भैरवा महाभागाः शिवतुल्याश्च तेजसा ।।७१।।
रुरुसंहारकालाख्या असितक्रोधभीषणाः । महाभैरवखट्वाङ्गावित्यष्टौ भैरवाः स्मृताः ।।७२।।
आविर्बभूव कृष्णस्य वामनेत्राद्भयंकरः । त्रिशूलपट्टिशव्याघ्रचर्माम्बरगदाधरः ।।७३।।
दिगम्बरो महाकायस्त्रिनेत्रश्चन्द्रशेखरः । स ईशानो महाभागो दिक्पालानामधीश्वरः ।।७४।।
डाकिन्यश्चैव योगिन्यः क्षेत्रपालाः सहस्रशः । आविर्बभूवुः कृष्णस्य नासिकाविवरोदरात् ।।७५।।
सुरास्त्रिकोटिसंख्याता दिव्यमूर्तिधरा वराः । आविर्बभूवुः सहसा पुंसो वै पृष्ठदेशतः ।।७६।।

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे
सृष्टिनिरूपणं नाम पञ्चमोऽध्यायः ।।५।।

अथ षष्ठोऽध्यायः

सौतिरुवाच

अथ कृष्णो महालक्ष्मीं सादरं च सरस्वतीम् । नारायणाय प्रददौ रत्नेन्द्रं मालया सह ।।१।।

चित्त केवल भगवच्चरणारविन्दों के चिन्तन में ही संलग्न था ।।६७-६९।। भगवान् कृष्ण के दाहिने नेत्र से ऐसे भीषण लोगों की उत्पत्ति हुई, जो हाथों में त्रिशूल और पट्टिश लिए हुए थे। उन सब के तीन नेत्र थे और वे सिर पर चन्द्राकार मुकुट धारण किये हुए थे। वे सब के सब महाकाय, दिगम्बर और प्रज्वलित अग्नि के समान (तेजस्वी) थे। वे महाभाग भैरव कहलाये। वे तेज में शिव के समान ही थे ।।७०-७१।। रुद्र, संहार, काल, असित, क्रोध, भीषण, महाभैरव और खट्वांग, ये आठ भैरव बताये गए हैं ।।७२।। भगवान् कृष्ण के बायें नेत्र से एक भयंकर पुरुष की उत्पत्ति हुई, जो त्रिशूल, पटिट्श, बाघम्बर और गदा धारण किए हुए था। वह दिगम्बर, महाकाय, त्रिनेत्र और चन्द्राकार मुकुट धारण करने वाला था। उस महाभाग को ईशान कहा गया है। वही दिक्पालों का अधिनायक भी है ।।७३-७४।। भगवान् कृष्ण के नासिका छिद्र से डाकिनियाँ, योगिनियाँ और सहस्रों क्षेत्रपाल प्रकट हुए ।।७५।। उसी भाँति उनके पृष्ठदेश से तीन करोड़ की संख्या में देवगण उत्पन्न हुए, जो दिव्य मूर्ति एवं श्रेष्ठ थे ।।७६।।

श्री ब्रह्मवैवर्त महापुराण के ब्रह्मखण्ड में सृष्टि-निरूपण नामक
पाँचवाँ अध्याय समाप्त ।।५।।

अध्याय ६

श्रीकृष्ण द्वारा नारायण आदि को लक्ष्मी आदि का पत्नीरूप में दान

सौति बोले—पश्चात् भगवान् कृष्ण ने नारायण को सादर महालक्ष्मी सरस्वती एवं परमोत्तमरत्नों की

सावित्रीं ब्रह्मणे प्रादान्मूर्तिं धर्माय सादरम्। । रतिं कामाय रूपाढ्यां कुबेराय मनोरमाम् ॥२॥
अन्याश्च या या अन्येभ्यो याश्च येभ्यः समुद्भवाः। तस्मै तस्मै ददौ कृष्णस्तां तां रूपवतीं सतीम् ॥३॥
ततः शंकरमाहूय सर्वेशो योगिनां गुरुम्। उवाच प्रियमित्येवं गृहणीयाः सिंहवाहिनीम् ॥४॥
श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा प्रहसन्नीललोहितः। उवाच भीतः प्रणतः प्राणेशं प्रभुमच्युतम् ॥५॥

श्रीमहेश्वर उवाच

अधुनाऽहं च गृह्णामि प्रकृतिं प्राकृतो यथा। त्वद्भक्त्यैकव्यवहितां दास्यमार्गविरोधिनीम् ॥६॥
तत्त्वज्ञानसमाच्छन्नां योगद्वारकपाटिकाम्। मुक्तीच्छाध्वंसरूपां च सकामां कामवर्धिनीम् ॥७॥
तपस्याच्छन्नरूपां च महामोहकरण्डिकाम्। भवकारागृहे घोरे दृढां निगडरूपिणीम् ॥८॥
शश्वद्विबुद्धिजननीं सद्बुद्धिच्छेदकारिणीम्। शश्वद्विभोगसारां[1] च विषयेच्छाविवर्द्धिनीम् ॥९॥
नेच्छामि गृहिणीं नाथ वरं देहि मदीप्सितम्। यस्य यद्वाञ्छितं तस्मै तद्ददाति तदीश्वरः ॥१०॥
त्वद्भक्तिविषये दास्ये लालसा वर्धतेऽनिशम्। तृप्तिर्न जायते नामजपने पादसेवने ॥११॥
त्वन्नाम पञ्चवक्त्रेण गुणं सन्मङ्गलालयम्। स्वप्ने जागरणे शश्वद्गायन्गायन्भ्रमाम्यहम् ॥१२॥
आकल्पकोटि कोटिं च त्वद्रूपध्यानतत्परम्। भोगेच्छाविषये नैव योगे तपसि मन्मनः ॥१३॥

माला भी सौंप दी। उसी भाँति ब्रह्मा को सावित्री, धर्म को मूर्ति, काम को रति, कुबेर को रूपवती मनोरमा सादर समर्पित की। और इसी प्रकार भगवान् कृष्ण ने अन्य स्त्रियों को भी पतियों के हाथ में दिया। जो जिससे उत्पन्न हुई थी, उस रूपवती सती को उसी पति को सौंप दिया। अनन्तर सर्वाधीश्वर कृष्ण ने योगियों के गुरु शंकर जी को बुला कर अत्यन्त प्रेम से कहा—'आप इस सिंहवाहिनी को ग्रहण कीजिए' ॥१-४॥ भगवान् श्रीकृष्ण की बात सुन-कर नीललोहित शिव हँसे और डरते हुए विनीत भाव से उन प्राणेश, प्रभु, अच्युत भगवान् से बोले ॥५॥

श्री महेश्वर ने कहा—साधारण पुरुष की भाँति मैं भी इस समय इस प्रकृति का ग्रहण करने में असमर्थ हूँ। क्योंकि यह आपकी भक्ति को दूर करने वाली, सेवा मार्ग की विरोधिनी, तत्त्वज्ञान को आच्छन्न करने वाली, योगरूपी द्वार का किवाड़, मुक्ति की इच्छा का ध्वंस करने वाली, कामुकी तथा काम (भोग) को बढ़ाने वाली है ॥६-७॥ यह तपस्या का लोप करने वाली, महामोह की टोकरी, संसार रूपी भयंकर कारागार की सुदृढ़ बेड़ी, निरन्तर दुर्बुद्धि की जननी, सद्बुद्धि का नाश करने वाली, निरन्तर भोगतत्त्व से हीन और विषयेच्छा को बढ़ाने वाली है ॥८-९॥ नाथ! इसलिए मुझे गृहिणी की इच्छा नहीं है। मैं कुछ मनइच्छित वरदान चाहता हूँ उसे देने की कृपा करें। क्योंकि जिसकी जो वस्तु अभिलषित होती है, ईश्वर उसे वही प्रदान करता है ॥८-१०॥ आपकी भक्ति के विषय में मेरी लालसा दिनरात बढ़ती रहती है, एवं आपके चरण की सेवा और नाम जपने से मुझे कभी तृप्ति नहीं होती है ॥११॥ शयन करते और जागते—हर समय मैं अपने पाँचों मुखों से सन्मंगलों के धाम आपके नाम-गुण का गान गाते हुए चारों ओर घूमता रहता हूँ ॥१२॥ कोटि-कोटि कल्पों तक मैं आपके रूप के ध्यान में तल्लीन रहता हूँ, इसलिए मुझे विषय-भोग की इच्छा नहीं है। योग और तप में मेरा मन लगा रहता है ॥१३॥ आपकी सेवा,

---

१ क. ०साध्यां च वि।

त्वत्सेवने पूजने च वन्दने नामकीर्तने। सदोल्लसितमेषा च विरतौ विरतिं लभेत् ॥१४॥
स्मरणं कीर्तनं नामगुणयोः श्रवणं जपः। त्वच्चारुरूपध्यानं त्वत्पादसेवाभिवन्दनम् ॥१५॥
समर्पणं चाऽऽत्मनश्च नित्यं नैवेद्यभोजनम्। वरं वरेश देहीदं नवधाभक्तिलक्षणम् ॥१६॥
सार्ष्टिसालोक्यसारूप्यसामीप्यं साम्यलीनताम्। वदन्ति षड्विधां मुक्तिं मुक्ता मुक्तिविदो विभो ॥१७॥
अणिमा लघिमा प्राप्तिः प्राकाम्यं महिमा तथा। ईशित्वं च वशित्वं च सर्वकामावसायिता ॥१८॥
सार्वज्ञं दूरश्रवणं परकायप्रवेशनम्। वाक्सिद्धिः कल्पवृक्षत्वं स्रष्टुं संहर्तुमीशता ॥१९॥
अमरत्वं च सर्वाग्र्यं सिद्धयोऽष्टादश स्मृताः। योगास्तपांसि सर्वाणि दानानि च व्रतानि च ॥२०॥
यशः कीर्तिर्वचः सत्यं धर्माण्यनशनानि च। भ्रमणं सर्वतीर्थेषु स्नानमन्यसुरार्चनम् ॥२१॥
सुरार्चादर्शनं सप्तद्वीपसप्तप्रदक्षिणम्। स्नानं सर्वसमुद्रेषु सर्वस्वर्गप्रदर्शनम् ॥२२॥
ब्रह्मत्वं चैव रुद्रत्वं विष्णुत्वं च परं पदम्। अतोऽनिर्वचनीयानि वाञ्छनीयानि सन्ति वा ॥२३॥
सर्वाण्येतानि सर्वेश कथितानि च यानि च। तव भक्तिकलांशस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥२४॥
शर्वस्य वचनं श्रुत्वा कृष्णस्तं योगिनां गुरुम्। प्रहस्योवाच वचनं सत्यं सर्वसुखप्रदम् ॥२५॥

श्रीभगवानुवाच

मत्सेवां कुरु सर्वेश शर्व सर्वविदां वर। कल्पकोटिशतं यावत्पूर्णं शश्वदहर्निशम् ॥२६॥

पूजा, वन्दना और नाम-कीर्तन में मेरा मन सदैव उल्लसित रहता है। इनसे विरत होने पर यह उद्विग्न हो उठता है ॥१४॥ वरों के ईश्वर! आपके नाम और गुण का स्मरण करना, कीर्तन, श्रवण, जप, आपके सुन्दर रूप का ध्यान, आपके चरणों की सेवा, वन्दना, आत्म-समर्पण, नित्य नैवेद्य का भोजन—यही नव प्रकार की भक्ति मुझे प्रदान करने की कृपा करें ॥१५-१६॥ विभो! मोक्ष और अमोक्ष के वेत्ताओं ने सार्ष्टि (ईश्वर के समान सृष्टि करने की शक्ति), सालोक्य (ईश्वर के समान लोक में रहना), सामीप्य (ईश्वर के समीप रहना), सारूप्य (ईश्वर के समान स्वरूप प्राप्त करना) साम्य (आपकी समता की प्राप्ति) और लीन होना—यही छह प्रकार की मुक्ति बतायी है ॥१७॥ अणिमा (सूक्ष्म रूप), लघिमा (लघु होना), प्राप्ति (किसी भी वस्तु को प्राप्त कर लेना), प्राकाम्य (इच्छा का अभिघात न होना), महिमा (महान् बन जाना), ईशित्व (अधीश्वर होना), वशित्व (वश में करना), सर्वकामावसायिता (समस्त कामनाओं को नष्ट करना), सर्वज्ञता, दूर श्रवण (अत्यन्त दूर से भी सभी बातें सुनना), परकाय-प्रवेश (दूसरे के शरीर में प्रवेश करना), वाक् सिद्धि (सभी बातें सत्य होना), कल्पवृक्षत्व (कल्पवृक्ष की भाँति मनइच्छित फल प्रदान करना), सृष्टि और संहार की क्षमता, अमर होना और सब का अग्रणी या सर्वश्रेष्ठ होना, ये अठारह प्रकार की सिद्धियाँ हैं। योग, तप, सब प्रकार के दान, व्रत, यश, कीर्ति, सत्यवाणी, उपवास, समस्त तीर्थों में भ्रमण और स्नान, अन्य देवों की अर्चना, देव-पूजा, दर्शन, सातों द्वीपों की सात प्रदक्षिणा, सभी समुद्रों के स्नान, सभी स्वर्गों के दर्शन, ब्रह्मपद, रुद्रपद, विष्णुपद एवं परम पद तथा सभी अनिर्वचनीय अभिलषित पदार्थ आपकी भक्ति के कलांश की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं हैं ॥१८-२४॥ योगियों के गुरु (महादेव) की बातें सुन कर उनसे भगवान् कृष्ण हँसते हुए समस्त सुखदायक सत्य वचन बोले ॥२५॥

श्री भगवान् बोले—निखिल ज्ञाताओं में श्रेष्ठ सर्वेश्वर शिव! तुम सौ करोड़ कल्पों तक दिनरात निरन्तर

वरस्तपस्विनां त्वं च सिद्धानां योगिनां तथा। ज्ञानिनां वैष्णवानां च सुराणां च सुरेश्वर ॥२७॥
अमरत्वं लभ[1] भव भव मृत्युंजयो महान्। सर्वसिद्धिं च वेदांश्च सर्वज्ञत्वं च मद्वरात् ॥२८॥
असंख्यं ब्रह्मणां पातं लीलया वत्स पश्यसि। अद्यप्रभृति ज्ञानेन तेजसा वयसा शिव ॥२९॥
पराक्रमेण यशसा महसा मत्समो भव। प्राणानामधिकस्त्वं च न भक्तस्त्वपरो मम ॥३०॥
त्वत्परो नास्ति मे प्रेयांस्त्वं मदीयात्मनः परः। ये त्वां निन्दन्ति पापिष्ठा ज्ञानहीना विचेतनाः ॥३१॥
पच्यन्ते ते कालसूत्रे यावच्चन्द्रदिवाकरौ। कल्पकोटिशतान्ते च ग्रहीष्यसि शिवां शिव ॥३२॥
ममाव्यर्थं च वचनं पालनं कर्तुमर्हसि। त्वन्मुखान्निर्गतं वाक्यं न करोम्यधुनेति च ॥३३॥
मद्वाक्यं च स्ववाक्यं च पालनं तत्करिष्यसि। गृहीत्वा प्रकृतिं शंभो दिव्यं वर्षसहस्रकम् ॥३४॥
सुखं महच्च शृङ्गारं करिष्यसि न संशयः। न केवलं तपस्वी त्वमीश्वरो मत्समो[2] महान् ॥३५॥
काले गृही तपस्वी च योगी स्वेच्छामयो हि यः। दुःखं च दारसंयोगे यत्त्वया कथितं शिव ॥३६॥
कुस्त्री ददाति दुःखं च स्वामिने न पतिव्रता। कुले महति या जाता कुलजा कुलपालिका ॥३७॥
करोति पालनं स्नेहात्सत्पुत्रस्य समं पतिम्। पतिर्बन्धुर्गतिर्भर्ता दैवतं कुलयोषिताम् ॥३८॥
पतितोऽपतितो वाऽपि कृपणश्चेश्वरोऽथवा। असत्कुलप्रसूता याः पित्रोर्दुःशीलमिश्रिताः ॥३९॥

मेरी सेवा करो ॥२६॥ सुरेश्वर ! तुम तपस्वियों, सिद्धों, योगियों, ज्ञानियों, वैष्णवों और देवों में सर्वश्रेष्ठ हो ॥२७॥ भव ! अमरत्व प्राप्त करो और महान् मृत्युजेता बनो। उसी भाँति हमारे वरदान द्वारा समस्त सिद्धियाँ, चारों वेद (का ज्ञान) तथा सर्वज्ञता प्राप्त करो। वत्स ! उससे असंख्य ब्रह्माओं का पतन अनायास ही देखते रहोगे। शिव ! आज से ही तुम मेरे समान ज्ञान, तेज, अवस्था, पराक्रम, यश तथा तेज प्राप्त करो। क्योंकि तुम मेरे प्राण से भी अधिक प्रिय हो, अतः तुमसे बढ़ कर मेरा कोई भक्त नहीं है ॥२८-३०॥ तुम मेरे आत्मा से भी बढ़ कर हो। (इस-लिए) तुमसे अधिक प्रिय मेरा कोई नहीं है। जो पापिष्ठ, अज्ञानी और चेतनाहीन मनुष्य तुम्हारी निन्दा करते हैं, वे तब तक कालसूत्र में पकाये जाते हैं जब तक सूर्य और चन्द्रमा की स्थिति रहती है। शिव ! सौ करोड़ कल्पों के उपरांत तुम शिवा (प्रकृति) का ग्रहण करोगे ॥३१-३२॥ अतः मेरे इन सार्थक वचनों का पालन करो। मैं तुम्हारी इस समय की बात मानने को तैयार नहीं हूँ। शम्भो ! मेरी बात और अपनी उस बात का पालन उस समय करोगे, जब प्रकृति को अपनाकर दिव्य सहस्र वर्षों तक महान् सुख और शृंगार रस का आस्वादन करोगे, इसमें संशय नहीं। तुम केवल तपस्वी ही नहीं हो प्रत्युत मेरे समान महान् ईश्वर भी हो ॥३३-३५॥ जो स्वेच्छामय ईश्वर है वह समय पर गृही, तपस्वी और योगी हुआ करता है। शिव ! स्त्री के साथ रहने में जो दुःख आपने बताया है उसमें निन्दित स्त्रियाँ ही अपने पति को दुःख देती हैं न कि पतिव्रता। जो प्रतिष्ठित कुल में उत्पन्न हुई है, कुलीना और कुल-मर्यादा का पालन करने वाली है, वह अच्छे पुत्र की भाँति अधिक स्नेह से पति का पालन करती है। क्योंकि सत्कुल में उत्पन्न होनेवाली स्त्रियों का पति ही बन्धु, पति ही भर्त्ता और पति ही देवता है चाहे वह पतित, अपतित, दीन-हीन अथवा ऐश्वर्यशाली क्यों न हो। और असत्कुल में उत्पन्न होने वाली स्त्रियाँ, जिनमें उनके माँ-बाप का बुरा

---

१ क. ०मत्वं च भ०। २ क. मो भवान्।

**ध्रुवं ताः परभोग्याश्च पतिं निन्दन्ति संततम्। आवयोरतिरिक्तं च या पश्यति पतिं सती।।४०।।
गोलोके स्वामिना सार्द्धं कोटिकल्पं प्रमोदते। भविता सा शिवा शैवी प्रकृतिर्वैष्णवी शिव।।४१।।
मदाज्ञया च तां साध्वीं ग्रहीष्यसि भवाय च। प्रकृत्या योनिसंयुक्तं त्वल्लिङ्गं तीर्थमृत्कृतम्।।४२।।
तीर्थे सहस्रं संपूज्य भक्त्या पञ्चोपचारतः। सदक्षिणं संयतो यः पवित्रश्च जितेन्द्रियः।।४३।।
कोटिकल्पं च गोलोके मोदते च मया सह। लक्षं तीर्थे पूजयेद्यो विधिवत्साधुदक्षिणम्।।४४।।
न च्युतिस्तस्य गोलोकात्स भवेदावयोः समः। मृद्भस्मगोशकृत्पिण्डैस्तीर्थवालुकयाऽपि वा।।४५।।
कृत्वा लिङ्गं सकृत्पूज्य वसेत्कल्पायुतं दिवि। प्रजावान्भूमिमान्विद्वान्पुत्रवान्धनवांस्तथा।।४६।।
ज्ञानवान्मुक्तिमान्साधुः शिवलिङ्गार्चनाद्भवेत्। शिवलिङ्गार्चनस्थानमतीर्थं तीर्थमेव तत्।
भवेत्तत्र मृतः पापी शिवलोकं स गच्छति ।।४७।।
महादेव महादेव महादेवेति वादिनः। पश्चाद्यामि महास्तोत्रनामश्रवणलोभतः।।४८।।
शिवेति शब्दमुच्चार्य प्राणांस्त्यजति यो नरः। कोटिजन्मार्जितात्पापान्मुक्तो मुक्तिं प्रयाति सः।।४९।।
शिवकल्याणवचनं कल्याणं मुक्तिवाचकम्। यतस्तत्प्रभवेत्तेन स शिवः परिकीर्तितः।।५०।।
विच्छेदे धनबन्धूनां निमग्नः शोकसागरे। शिवेति शब्दमुच्चार्य लभेत्सर्वशिवं नरः।।५१।।**

स्वभाव मिश्रित रहता है, निश्चित ही परभोग्या (व्यभिचारिणी) होती हैं तथा वे ही सदैव पति की निन्दा भी करती हैं। जो सती स्त्री हम दोनों से भी बढ़कर पति को देखती है, वह गोलोक में अपने पति समेत कोटिकल्प तक सुख प्राप्त करती है। शिव ! वह वैष्णवी प्रकृति शिवप्रिया होकर तुम्हारे लिए कल्याणमयी होगी।।३६-४१।। मेरी आज्ञा से तुम लोक-कल्याण के निमित्त उस पतिव्रता को पत्नीरूप में ग्रहण करो। तीर्थों की मिट्टियों से प्रकृति के साथ योनि युक्त तुम्हारे लिंग का निर्माण कर जो संयमी जितेन्द्रिय पुरुष तीर्थ-स्थानों में उसकी एक सहस्र संख्या का पंचोपचार से विधिपूर्वक दक्षिणा समेत पूजन करता है वह गोलोक में मेरे साथ एक करोड़ कल्प तक आनन्द करता है। इसी भाँति जो तीर्थ में सविधान और उचित दक्षिणा समेत एक लक्ष शिवलिंग (पार्थिव) का पूजन करता है, उसकी च्युति गोलोक से कभी नहीं होती है और वह हम लोगों के समान हो जाता है। इसलिए मिट्टी, भस्म, गोबर अथवा तीर्थ की बालुका से लिंग बना कर एक बार पूजन करने से दश सहस्र कल्प तक स्वर्ग में निवास प्राप्त होता है। सज्जन पुरुष शिवलिंग की अर्चना करने से प्रजा, भूमि, विद्या, पुत्र, धन, ज्ञान और मुक्ति प्राप्त करता है। शिवलिंग की पूजा होने से अतीर्थ भी तीर्थ हो जाता है और वहाँ पापी की मृत्यु होने पर शिवलोक को जाता है।।४२-४७।। 'महादेव, महादेव, महादेव' ऐसा कहने वाले के पीछे महान् स्तोत्र रूप नाम सुनने के लोभ से मैं जाता हूँ।।४८।। 'शिव-शिव' शब्द का उच्चारण करते हुए जो मनुष्य प्राण त्याग करता है वह कोटि जन्मों के संचित पापों से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त करता है।।४९।। 'शिव' शब्द कल्याण का वाचक है और 'कल्याण' शब्द मोक्ष का। शिव के उच्चारण से मोक्ष या कल्याण की प्राप्ति होती है, इसीलिए महादेव को शिव कहा गया है।।५०।। धन और बन्धुओं के नाश हो जाने पर शोकसागर में निमग्न होने वाला मनुष्य 'शिव' शब्द के उच्चारण करने से कल्याण का भागी होता है।।५१।। (शिव शब्द में) 'शि' वर्ण पापनाशक और 'व' मुक्तिप्रदायक है।

पापघ्ने वर्तते शिश्च वश्च मुक्तिप्रदे तथा। पापघ्नो मोक्षदो नृणां शिवस्तेन प्रकीर्तितः ॥५२॥
शिवेति च शिवं नाम यस्य वाचि प्रवर्तते। कोटिजन्मार्जितं पापं तस्य नश्यति निश्चितम् ॥५३॥
इत्युक्त्वा शूलिने कृष्णो दत्त्वा कल्पतरुं मनुम्। तत्त्वज्ञानं मृत्युजयमवोचत्सिंहवाहिनीम् ॥५४॥

श्रीभगवानुवाच

अधुना तिष्ठ वत्से त्वं गोलोके मम संनिधौ। काले भजिष्यसि शिवं शिवदं च शिवायनम् ॥५५॥
तेजःसु[1] सर्वदेवानामाविर्भूय वरानने। संहृत्य दैत्यान्सर्वांश्च भविता सर्वपूजिता ॥५६॥
ततः कल्पविशेषे च सत्यं सत्ययुगे सति। भविता दक्षकन्या त्वं सुशीला शंभुगेहिनी ॥५७॥
ततः शरीरं संत्यज्य यज्ञे भर्तुश्च निन्दया। मेनायां शैलभार्यायां भविता पार्वतीति च ॥५८॥
दिव्यं वर्षसहस्रं च विहरिष्यसि शंभुना। पूर्णं[2] ततः सर्वकालमभेदं त्वं लभिष्यसि ॥५९॥
काले सर्वेषु विश्वेषु महापूजा सुपूजिते। भविता प्रतिवर्षे च शारदीया सुरेश्वरि ॥६०॥
ग्रामेषु नगरेष्वेव पूजिता ग्रामदेवता। भवती भवितेत्येवं नामभेदेन चारुणा ॥६१॥
मदाज्ञया शिवकृतैस्तन्त्रैर्नानाविधैरपि। पूजाविधिं विधास्यामि कवचं स्तोत्रसंयुतम् ॥६२॥
भविष्यन्ति महान्तश्च तवैव परिचारकाः। धर्मार्थकाममोक्षाणां सिद्धाश्च फलभागिनः ॥६३॥

इसलिए मनुष्यों के पापनाशक एवं मोक्षदाता होने के कारण वे 'शिव' कहे गये हैं ॥५२॥ शिव का यह 'शिव' नाम जिसकी वाणी में (सदैव) वर्तमान रहता है, उसका कोटिजन्मों का अर्जित पाप निश्चित रूप से नष्ट हो जाता है ॥५३॥ इस प्रकार भगवान् कृष्ण ने शूलधारी शंकर से कहकर उन्हें कल्पवृक्ष के समान मंत्र और मृत्युञ्जय तत्त्वज्ञान प्रदान किया। पश्चात् सिंहवाहिनी प्रकृति से वे बोले ॥५४॥

श्री भगवान् बोले—वत्से ! इस समय तुम मेरे साथ गोलोक में रहो। फिर समय आने पर तुम कल्याण-प्रद और कल्याण-निधि शंकर की सेवा करोगी ॥५५॥ समस्त देवों की तेजोराशि से प्रकट होकर समस्त दैत्यों का वध करके तुम सबकी पूजनीया होगी ॥५६॥ पश्चात् किसी विशेष कल्प में सत्य युग के आने पर तुम दक्ष की कन्या होकर शिव की भार्या बनोगी ॥५७॥ अनन्तर दक्ष के यज्ञ में पति की निन्दा से तुम शरीर का त्याग करके हिमालयपत्नी मेना की पार्वती नामक पुत्री होगी ॥५८॥ शिव के साथ एक सहस्र दिव्य वर्षों तक विहार करने के उपरान्त तुम सर्वदा के लिए पति के साथ पूर्णतः अभिन्नता प्राप्त कर लोगी ॥५९॥ सुरेश्वरी ! प्रतिवर्ष प्रशस्त समय में समस्त लोकों में तुम्हारी शरत्कालिक पूजा होगी। ग्रामों और नगरों में तुम ग्रामदेवता के रूप में पूजित होगी तथा विभिन्न स्थानों में तुम्हारे पृथक्-पृथक् मनोहर नाम होंगे ॥६०-६१॥ मेरी आज्ञा से शिव द्वारा रचित अनेक भाँति के तन्त्रों से तुम्हारी पूजा की जाएगी। मैं तुम्हारे लिए स्तोत्र और कवच का विधान करूँगा ॥६२॥ जिससे तुम्हारी ही सेवा करने वाले सेवकगण महत्ता प्राप्त करेंगे तथा धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष रूप फल के भागी होंगे ॥६३॥

---

१ ख.० तेजसा स०। २ क. पूर्णा ततः सर्वकालं ममैव त्वं भविष्यसि। का०।

ये त्वां मातर्भजिष्यन्ति पुण्यक्षेत्रे च भारते। तेषां यशश्च [1]कीर्तिश्च धर्मैश्वर्यं च वर्द्धते ॥६४॥
इत्युक्त्वा प्रकृतिं तस्यै मन्त्रमेकादशाक्षरम्। दत्त्वा सकामबीजं च मन्त्रराजमनुत्तमम् ॥६५॥
चकार विधिना ध्यानं भक्तं भक्तानुकम्पया। श्रीमायाकामबीजाढ्यं ददौ मन्त्रं दशाक्षरम् ॥६६॥
सृष्ट्यौपयौगिकीं शक्तिं सर्वसिद्धिं च कामदाम्। तद्विशिष्टोत्कृष्टतत्त्वं ज्ञानं तस्यै ददौ विभुः ॥६७॥
त्रयोदशाक्षरं मन्त्रं दत्त्वा तस्मै जगत्पतिः। कवचं स्तोत्रसहितं शंकराय तथा द्विज ॥६८॥
दत्त्वा धर्माय तं मन्त्रं सिद्धिज्ञानं तदेव च। कामाय वह्नये चैव कुबेराय च वायवे ॥६९॥
एवं कुबेरादिभ्यस्तु दत्त्वा मन्त्रादिकं परम्। विधिं प्रोवाच सृष्टयर्थं विधातुर्विधिरेव सः ॥७०॥

श्रीभगवानुवाच

मदीयं च तपः कृत्वा दिव्यं वर्षसहस्रकम्। सृष्टिं कुरु महाभाग विधे नानाविधां पराम् ॥७१॥
इत्युक्त्वा ब्रह्मणे कृष्णो ददौ मालां मनोरमाम्। जगाम सार्धं गोपीभिर्गोपैर्वृन्दावनं वनम् ॥७२॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे
सृष्टिनिरूपणं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

मातः! पुण्य क्षेत्र भारतवर्ष में जो लोग तुम्हारी सेवा करेंगे, उनके यश, कीर्ति, धर्म और ऐश्वर्य की वृद्धि होगी ॥६४॥ इतना कह कर भगवान् कृष्ण ने उसे कामबीज (क्लीं) सहित एकादशाक्षर मन्त्र प्रदान किया, जो परमोत्तम एवं मन्त्रराज है ॥६५॥ पुनः विधिपूर्वक ध्यान का उपदेश दिया तथा भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए श्री (श्रीं) माया (ह्रीं) तथा काम (क्लीं) बीज सहित दशाक्षर मन्त्र का उपदेश दिया। साथ ही सृष्टि की उपयोगी शक्ति, कामनाओं को सफल करने वाली समस्त सिद्धियाँ और उत्कृष्ट तत्त्वज्ञान भी उसे प्रदान किये ॥६६-६७॥ द्विजो, उसी प्रकार विभु जगदीश्वर ने शंकर जी को त्रयोदशाक्षर मंत्र और स्तोत्रसमेत कवच प्रदान किया ॥६८॥ पुनः धर्म को वही मन्त्र एवं सिद्धि-ज्ञान देकर उन्होंने कामदेव, अग्नि, कुबेर और वायु को भी मन्त्र आदि प्रदान किये ॥६९॥ इस प्रकार कुबेरादिकों को मन्त्रादि प्रदान करने के उपरान्त विधाता के भी विधाता भगवान् श्रीकृष्ण ने सृष्टि करने के लिए ब्रह्मा से कहा ॥७०॥

श्री भगवान् बोले —महाभाग! विधे! सहस्र दिव्य वर्षों तक मेरा तप करके तुम अनेक भाँति की सृष्टि करो ॥७१॥ इतना कहकर भगवान् कृष्ण ने उन्हें एक मनोरम माला प्रदान की। पश्चात् गोप-गोपियों को साथ लेकर वे (दिव्य) वृन्दावन में चले गये ॥७२॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में सृष्टिनिरूपण नामक
छठा अध्याय समाप्त ॥६॥

---

१ ख.० र्तिः श्रीर्धनैश्च०।

अथ सप्तमोऽध्यायः

सौतिरुवाच

[illegible] ब्रह्मा तपः कृत्वा सिद्धिं प्राप्य यथेप्सिताम्। ससृजे पृथिवीमादौ मधुकैटभमेदसा ॥१॥
ससृजे पर्वतानष्टौ प्रधानान्सुमनोहरान्। क्षुद्रानसंख्यान्किं ब्रूमः प्रधानाख्यां निशामय ॥२॥
सुमेरुं चैव कैलासं मलयं च हिमालयम्। उदयं च तथाऽस्तं च सुवेलं गन्धमादनम् ॥३॥
समुद्रान्ससृजे सप्त नदान्कतिविधा नदीः। वृक्षांश्च ग्रामनगरं समुद्राख्या निशामय ॥४॥
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलार्णवान्। लक्षयोजनमानेन द्विगुणांश्च परात्परान् ॥५॥
सप्तद्वीपांश्च तद्भूमिमण्डले कमलाकृते। उपद्वीपांस्तथा सप्त सीमाशैलांश्च सप्त च ॥६॥
निबोध विप्र द्वीपाख्यां पुरा या विधिना कृता। जम्बूशाककुशप्लक्षक्रौञ्चन्यग्रोधपौष्करान् ॥७॥
मेरोरष्टसु शृङ्गेषु ससृजेऽष्टौ पुरीः प्रभुः। अष्टानां लोकपालानां विहाराय मनोहराः॥८॥
मूलेऽनन्तस्य नगरीं निर्माय जगतां पतिः। ऊर्ध्वे स्वर्गाश्च सप्तैव तेषामाख्यां निशामय ॥९॥
भूर्लोकं च भुवर्लोकं स्वर्लोकं सुमनोहरम्। जनोलोकं तपोलोकं सत्यलोकं च शौनक ॥१०॥

अध्याय ७

ब्रह्मा द्वारा पृथ्वी, पर्वत, समुद्र आदि का निर्माण

सौति बोले—पश्चात् ब्रह्मा ने तप करके मन अभिलषित सिद्धि प्राप्त की और सर्वप्रथम मधुकैटभ दैत्य के मेद (चर्बी) से मेदिनी (पृथिवी) का निर्माण किया॥१॥ अनन्तर आठ प्रधान और मनोहर पर्वतों एवं उनसे असंख्य छोटे-छोटे पर्वतों की रचना की। उनके नाम क्या बताऊँ? प्रधानों की नामावली सुनिए॥२॥ सुमेरु, कैलास, मलय, हिमालय, उदयाचल, अस्ताचल, सुवेल और गन्धमादन ये आठ प्रधान पर्वत हैं। फिर ब्रह्मा ने सात समुद्रों, अनेक नदों, कई नदियों, वृक्षों, ग्रामों और नगरों की सृष्टि की। लवण (खार), ईख, सुरा, घी, दही, दूध और (शुद्ध) जल के सात समुद्र हैं। उनमें से पहले की लम्बाई-चौड़ाई एक लक्ष योजन की है। बाद वाले उत्तरोत्तर दुगुने होते गये हैं॥३-५॥ इन समुद्रों से घिरे हुए सात द्वीप हैं। उनके भूमण्डल कमलपत्र जैसे हैं। उनमें उपद्वीप और मर्यादापर्वत भी सात-सात ही हैं। हे विप्र! उन द्वीपों का नाम बता रहा हूँ, सुनिए—जम्बू, शाक कुश, प्लक्ष, क्रौञ्च, न्यग्रोध और पुष्कर यही द्वीपों के नाम हैं॥६-७॥ अनन्तर ब्रह्मा ने आठों लोकपालों के विहार करने के लिए मेरु पर्वत के आठों शिखरों पर मनोहर आठ पुरियों का निर्माण किया॥८॥ जगत्पति ने उसके मूल भाग (पाताल) में अनन्त (शेषनाग) की नगरी का निर्माण करके ऊपर सातों स्वर्गों की रचना की, जिन्हें बता रहा हूँ, सुनिए—॥९॥ शौनक! भूर्लोक, भुवर्लोक, अत्यन्त मनोहर स्वर्ग लोक, जनोलोक, तपोलोक और

शृङ्गमूर्ध्नि ब्रह्मलोकं जरादिपरिवर्जितम्। तदूर्ध्वे ध्रुवलोकं च सर्वतः सुमनोहरम् ॥११॥
तदधः सप्त पातालान्निर्ममे जगदीश्वरः। स्वर्गातिरिक्तभोगाढ्यानधोऽधः क्रमतो मुने ॥१२॥
अतलं वितलं चैव सुतलं च तलातलम्। महातलं च पातालं रसातलमधस्ततः ॥१३॥
सप्तद्वीपैः सप्तनाकैः सप्तपातालसंज्ञकैः। एभिर्लोकैश्च ब्रह्माण्डं ब्रह्माधिकृतमेव च ॥१४॥
एवं चासंख्यब्रह्माण्डं सर्वं कृत्रिममेव च। महाविष्णोश्च लोम्नां च विवरेषु च शौनक ॥१५॥
प्रतिविश्वेषु दिक्पाला ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। सुरा[1] नरादयः सर्वे सन्ति कृष्णस्य मायया ॥१६॥
ब्रह्माण्डगणनां कर्तुं न क्षमो जगतां पतिः। न शंकरो न धर्मश्च न च विष्णुश्च के सुराः ॥१७॥
संख्यातुमीश्वरः शक्तो न संख्यातुं तथाऽपि सः। विश्वाकाशदिशां चैव सर्वतो यद्यपि क्षमः ॥१८॥
कृत्रिमाणि च विश्वानि विश्वस्थानि च यानि च। अनित्यानि च विप्रेन्द्र स्वप्नवन्नश्वराणि च ॥१९॥
वैकुण्ठः शिवलोकश्च गोलोकश्च तयोः परः। नित्यो विश्वबहिर्भूतश्चाऽऽत्माकाशदिशो यथा ॥२०॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे
सृष्टिनिरूपणं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

सत्य लोक का निर्माण करके ब्रह्मा ने मेरु के शिखर के शिरोभाग में जरा-मृत्यु से रहित ब्रह्मलोक की रचना की। उसके ऊपर चारों ओर अत्यन्त मनोहर ध्रुव लोक बनाया और नीचे जगदीश्वर ने सात पाताल लोकों की रचना की। मुने! वे स्वर्गलोक की अपेक्षा अधिक भोग-सामग्रियों से सम्पन्न हैं ॥१०-१२॥ (उनके नाम ये हैं—) अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, पाताल और रसातल ॥१३॥ सात द्वीप, सात स्वर्ग और सात पाताल लोकों से युक्त यह ब्रह्माण्ड ब्रह्मा के अधिकार में है ॥१४॥ शौनक! इस प्रकार के असंख्य ब्रह्माण्ड, जो कृत्रिम हैं, भगवान् महाविष्णु के लोम-विवरों में स्थित हैं ॥१५॥ भगवान् श्रीकृष्ण की माया द्वारा प्रत्येक विश्व में दिक्पाल, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, देवगण और मनुष्य आदि स्थित हैं ॥१६॥ जगत्पति ब्रह्मा ब्रह्माण्ड की गणना करने में असमर्थ हैं। (इतना ही नहीं) शंकर, धर्म, विष्णु और देवगण भी (उसकी गणना करने में) असमर्थ हैं ॥१७॥ यद्यपि ईश्वर उसकी गणना करने में समर्थ हैं, तथापि विश्व, आकाश और दिशाओं का सर्वथा संख्यान तो उनके लिए भी कठिन है ॥१८॥ विप्रेन्द्र! कृत्रिम विश्व और उनके भीतर रहने वाली जो वस्तुएँ हैं, वे सब अनित्य और स्वप्न की भाँति नश्वर हैं ॥१९॥ वैकुण्ठ और शिवलोक तथा इन दोनों से परे जो गोलोक है—ये सब नित्य धाम हैं। आत्मा, आकाश और दिशा की भाँति ये सब कृत्रिम विश्व से बाहर तथा नित्य हैं ॥२०॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में सृष्टिनिरूपण
नामक सातवाँ अध्याय समाप्त ॥७॥

---

१ क. ०राऽसुराद०।

अथाष्टमोऽध्यायः

सौतिरुवाच

ब्रह्मा विश्वं विनिर्माय सावित्र्यां वरयोषिति। चकार वीर्याधानं च कामुक्यां कामुको यथा ॥१॥
सा दिव्यं शतवर्षं च धृत्वा गर्भं सुदुःसहम्। सुप्रसूता च सुषुवे चतुर्वेदान्मनोहरान् ॥२॥
विविधाञ्शास्त्रसंघांश्च तर्कव्याकरणादिकान्। षट्त्रिंशत्संख्यका दिव्या रागिणीः सुमनोहराः ॥३॥
षड् रागान्सुन्दरांश्चैव नानातालसमन्वितान्। सत्यत्रेताद्वापरांश्च कलिं च कलहप्रियम् ॥४॥
वर्षं मासमृतुं चैव तिथिं दण्डक्षणादिकम्। दिनं रात्रिं च वारांश्च संध्यामुषसमेव च ॥५॥
पुष्टिं च देवसेनां च मेधां च विजयां जयाम्। षट् कृत्तिकाश्च योगांश्च करणं च तपोधन ॥६॥
देवसेनां महाषष्ठीं कार्तिकेयप्रियां सतीम्। मातृकासु प्रधाना सा बालानामिष्टदेवता ॥७॥
ब्राह्मं पाद्मं च वाराहं कल्पत्रयमिदं स्मृतम्। नित्यं नैमित्तिकं चैव द्विपरार्धं च प्राकृतम् ॥८॥
चतुर्विधं च प्रलयं कालं वै मृत्युकन्यकाम्। सर्वान्व्याधिगणांश्चैव सा प्रसूय स्तनं ददौ ॥९॥
अथ धातुः पृष्ठदेशादधर्मः समजायत। अलक्ष्मीस्तद्वामपार्श्वाद्बभूवात्यन्तकामिनी[1] ॥१०॥

अध्याय ८

वेद, मनु आदि की सृष्टि का वर्णन

सौति बोले—ब्रह्मा ने विश्व की रचना करके परम सुन्दरी सावित्री में उसी तरह वीर्याधान किया जैसे कोई कामुक पुरुष कामुकी स्त्री में करता है। अनन्तर उस सावित्री ने उस वीर्य को दिव्य सौ वर्षों तक धारणकर चार मनोहर वेदों को प्रकट किया। साथ ही न्याय, व्याकरण आदि शास्त्र समूह और छत्तीस प्रकार की दिव्य एवं अत्यन्त मनोहर रागिनियों को उत्पन्न किया। फिर अनेक प्रकार के तालों से युक्त छह सुन्दर राग प्रकट किये। सत्य, त्रेता, द्वापर और कलहप्रिय कलियुग को भी सावित्री ने उत्पन्न किया ॥१-४॥ तपोधन! वर्ष, मास, ऋतु, तिथि, दण्ड, क्षण आदि, दिन, रात्रि, वार, सन्ध्या, उषाकाल, पुष्टि, देवसेना, मेधा, विजया, जया, छह कृत्तिका, योग और करण को भी उन्होंने उत्पन्न किया ॥५-६॥ कार्तिकेय की प्रिया सती महाषष्ठी देवसेना—जो मातृकाओं में प्रधान और बालकों की इष्टदेवी हैं, इन सब को भी सावित्री ने उत्पन्न किया ॥७॥ ब्राह्म, पाद्म, और वाराह ये तीन कल्प, नित्य, नैमित्तिक, द्विपरार्द्ध और प्राकृत ये चार प्रकार के प्रलय-काल, मृत्यु-कन्या और समस्त व्याधियों को उत्पन्न करके सावित्री ने उन्हें अपना स्तन पान कराया ॥८-९॥ अनन्तर ब्रह्मा के पृष्ठभाग से अधर्म और उनके वाम पार्श्व से अत्यन्त कामिनी अलक्ष्मी (दरिद्रा) उत्पन्न हुई ॥१०॥ उनके नाभिप्रदेश से शिल्पियों के गुरु विश्व-

---

१ क. ०भूव तस्य का०।

नाभिदेशाद्विश्वकर्मा जातो वै शिल्पिनां गुरुः। महान्तो वसवोऽष्टौ च महाबलपराक्रमाः ॥११॥
अथ धातुश्च मनस आविर्भूता कुमारकाः। चत्वारः पञ्चवर्षीया ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा ॥१२॥
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः। सनत्कुमारो भगवांश्चतुर्थो ज्ञानिनां वरः ॥१३॥
आविर्बभूव मुखतः कुमारः कनकप्रभः। दिव्यरूपधरः श्रीमान्सस्त्रीकः सुन्दरो युवा ॥१४॥
क्षत्रियाणां बीजरूपो नाम्ना स्वायंभुवो मनुः। या स्त्री सा शतरूपा च रूपाढ्या कमलाकला ॥१५॥
सस्त्रीकश्च मनुस्तस्थौ धात्राज्ञापरिपालकः। स्वयं विधाता पुत्रांश्च तानुवाच प्रहर्षितान् ॥१६॥
सृष्टिं कर्तुं महाभागो महाभागवतान्द्विजः। जग्मुस्ते च नहीत्युक्त्वा तप्तुं कृष्णपरायणाः ॥१७॥
चुकोप हेतुना तेन विधाता जगतां पतिः। कोपासक्तस्य च विधेर्ज्वलतो ब्रह्मतेजसा ॥१८॥
आविर्भूता ललाटाच्च रुद्रा एकादश प्रभो। कालाग्निरुद्रः संहर्ता तेषामेकः प्रकीर्तितः ॥१९॥
सर्वेषामेव विश्वानां स तामस इति स्मृतः। राजसश्च स्वयं ब्रह्मा शिवो विष्णुश्च सात्त्विकौ ॥२०॥
गोलोकनाथः कृष्णश्च निर्गुणः प्रकृतेः परः। परमज्ञानिनो मूर्खा वदन्ति तामसं शिवम् ॥२१॥
शुद्धसत्त्वस्वरूपं च निर्मलं वैष्णवाग्रणीम्। शृणु नामानि रुद्राणां वेदोक्तानि च यानि च ॥२२॥
महान्महात्मा मतिमान्भीषणश्च भयंकरः[1]। ऋतुध्वजश्चोर्ध्वकेशः पिङ्गलाक्षो रुचिः शुचिः ॥२३॥

कर्मा और महान् बल-पराक्रम से उत्पन्न महान् आठ वसु उत्पन्न हुए ॥११॥ पश्चात् ब्रह्मा के मन द्वारा चार कुमार उत्पन्न हुए, जो पाँच वर्ष की अवस्था वाले एवं ब्रह्मतेज से देदीप्यमान थे ॥१२॥ उनमें से प्रथम सनक, दूसरे सनन्दन, तीसरे सनातन और चौथे ज्ञानिश्रेष्ठ भगवान् सनत्कुमार हैं ॥१३॥ उनके मुख से एक कुमार उत्पन्न हुआ, जिसकी प्रभा सुवर्ण की भाँति थी। वह दिव्य रूप धारण किये, श्रीमान्, स्त्री समेत, सुन्दर, युवा और क्षत्रियों का बीज रूप था। उसका नाम स्वायम्भुव मनु था और उस स्त्री का नाम शतरूपा था, जो परम रूपवती तथा लक्ष्मी की कलास्वरूपा थी ॥१४-१५॥ स्त्री समेत मनु ने ब्रह्मा की आज्ञा को शिरोधार्य किया। अनन्तर ब्रह्मा ने स्वयं अत्यन्त हर्षित उन महाभागवत कुमारों से भी सृष्टि करने के लिए गृहस्थ होने को कहा। द्विज! किन्तु उन कुमारों ने महाभाग ब्रह्मा की आज्ञा का 'नहीं' कहकर उल्लंघन कर दिया और कृष्णपरायण वे कुमार तप करने के लिए चले गये ॥१६-१७॥ उस कारण जगत्पति ब्रह्मा अत्यन्त क्रुद्ध हुए। प्रभो! ब्रह्मतेज से देदीप्यमान विधाता के कुपित होने पर उनके ललाट से एकादश रुद्र उत्पन्न हुए। उनमें से एक को संहर्ता कालाग्निरुद्र कहा गया है। सम्पूर्ण लोकों में केवल वे ही, तामस या तमोगुणी, माने गये हैं। स्वयं ब्रह्मा 'राजस' तथा शिव और विष्णु 'सात्त्विक' कहे जाते हैं। गोलोकनाथ भगवान् कृष्ण निर्गुण और प्रकृति से परे हैं। परम अज्ञानी मूर्ख लोग शिवजी को तामस कहते हैं किन्तु वे शुद्ध सत्त्वस्वरूप, निर्मल, तथा वैष्णवों में अग्रणी हैं। अब रुद्रों के वेदोक्त नाम सुनो ॥१८-२२॥ महान्, महात्मा, मतिमान्, भीषण, भयंकर, ऋतुध्वज, उर्ध्वकेश, पिंगलाक्ष, रुचि और शुचि यही उनके नाम हैं ॥२३॥ ब्रह्मा के दाहिने कान से पुलस्त्य, बायें से पुलह, दाहिने नेत्र से अत्रि, बाँयें नेत्र से स्वयंक्रतु

---

[1] क. ०रः। ऊर्ध्वतेजोर्ध्वके०।

पुलस्त्यो दक्षकर्णाच्च पुलहो वामकर्णतः। दक्षनेत्रात्तथाऽत्रिश्च वामनेत्रात्क्रतुः स्वयम् ॥२४॥
अरणिर्नासिकारन्ध्रादङ्गिराश्च मुखाद्रुचिः। भृगुश्च वामपार्श्वाच्च दक्षो दक्षिणपार्श्वतः ॥२५॥
छायायाः कर्दमो जातो नाभेः पञ्चशिखस्तथा। वक्षसश्चैव वोढुश्च कण्ठदेशाच्च नारदः ॥२६॥
मरीचिः स्कन्धदेशाच्चैवापान्तरतमा[1] गलात्। वसिष्ठो रसनादेशात्प्रचेता अधरोष्ठतः ॥२७॥
हंसश्च वामकुक्षेश्च दक्षकुक्षेर्यतिः स्वयम्। सृष्टिं विधातुं स विधिश्चकाराऽऽज्ञां सुतान्प्रति।
पितुर्वाक्यं समाकर्ण्य तवमुवाच स नारदः ॥२८॥

नारद उवाच

पूर्वमानय मज्ज्येष्ठान्सनकादीन्पितामह। कारयित्वा दारयुक्तानस्मान्वद जगत्पते ॥२९॥
पित्रा ते तपसे युक्ताः संसाराय वयं कथम्। अहो हन्त प्रभोर्बुद्धिर्विपरीताय कल्पते ॥३०॥
कस्मै पुत्राय पीयूषात्परं दत्तं तपोऽधुना। कस्मै ददासि विषयं विषमं च विषाधिकम् ॥३१॥
अतीव निम्ने घोरे च भवाब्धौ यः पतेत्पितः। निष्कृतिस्तस्य नास्तीति कोटिकल्पे गतेऽपि च ॥३२॥
निस्तारबीजं सर्वेषां बीजं च पुरुषोत्तमम्। सर्वदं भक्तिदं दास्यप्रदं सत्यं कृपामयम् ॥३३॥
भक्तैकशरणं भक्तवत्सलं स्वच्छमेव च। भक्तप्रियं भक्तनाथं भक्तानुग्रहकारकम् ॥३४॥
भक्ताराध्यं भक्तसाध्यं विहाय परमेश्वरम्। मनो दधाति को मूढो विषये नाशकारणे ॥३५॥

(यज्ञ), नासाछिद्र से अरणि और अंगिरा, मुख से रुचि, बाँये पार्श्व से भृगु और दाहिने पार्श्व से दक्ष उत्पन्न हुए ॥२४-२५॥ छाया से कर्दम, नाभि से पञ्चशिख, वक्षःस्थल से वोढु, कण्ठ देश से नारद, स्कन्ध प्रदेश से मरीचि, गले से अपान्तरतमा, जिह्वा से वशिष्ठ, अधरोष्ठ से प्रचेता, वाम कुक्षि से हंस, दक्षिण कुक्षि से यति प्रकट हुए। ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना करने के लिए अपने पुत्रों को आज्ञा दी। (इस पर) पिता की बात सुनकर नारद ने उनसे कहा ॥२६-२८॥

नारद बोले—पितामह, जगत्पते! सर्वप्रथम आप हमारे ज्येष्ठ भाई सनकादिकों को यहाँ लाइये और उनका विवाह कीजिए। तत्पश्चात् हमें आज्ञा दीजिये ॥२९॥ जब पिता के ही द्वारा वे सब तप करने के लिए नियुक्त किये गये तो हमें संसार में क्यों फँसाया जा रहा है। आश्चर्य और खेद की बात है कि प्रभु की बुद्धि विपरीत भाव को प्राप्त हो रही है ॥३०॥ क्योंकि किसी पुत्र को तो अमृत से भी उत्तम तप इस समय प्रदान किया जा रहा है और किसी को विष से भी अधिक विषम होने वाला विषय प्रदान किया जा रहा है ॥३१॥ पिता जी! अत्यन्त निम्न कोटि के घोर भव-सागर में जो गिर जायगा उसकी कोटि कल्पों में भी कोई निष्कृति (उद्धार होने का उपाय) नहीं है ॥३२॥ क्योंकि सभी प्राणियों के निस्तार करने का कारण एकमात्र भगवान् पुरुषोत्तम ही हैं, जो समस्त वस्तुओं के दाता, भक्तिप्रद, दास्यप्रद, सत्य, कृपामय, भक्तों के एकमात्र शरणप्रद, भक्तवत्सल, स्वच्छ, भक्तों के प्रिय, भक्तनाथ, भक्त के ऊपर अनुग्रह करने वाले, भक्तों के आराध्य देव और भक्तसाध्य हैं। भला! ऐसे परमेश्वर को छोड़कर कौन मूढ़ जन अपने मन को विनाशजनक विषय में लगायेगा ॥३३-३५॥ कौन मूढ़ प्राणी अमृत से भी अधिक

---

१ क. तमो ग०।

विहाय कृष्णसेवां च पीयूषादधिकां प्रियाम्। को मूढो विषमश्नाति विषमं विषयाभिधम् ॥३६॥
स्वप्नवन्नश्वरं तुच्छमसत्यं मृत्युकारणम्। यथा दीपशिखाग्रं च कीटानां सुमनोहरम् ॥३७॥
यथा बडिशमांसं च मत्स्यापातसुखप्रदम्। तथा विषयिणां तात विषयो मृत्युकारणम् ॥३८॥
इत्युक्त्वा नारदस्तत्र विरराम विधेः पुरः। तस्थौ तातं नमस्कृत्य ज्वलदग्निशिखोपमः ॥३९॥
ब्रह्मा कोपपरीतश्च शशाप तनयं द्विज। उवाच कम्पिताङ्गश्च रक्तास्यः स्फुरिताधरः ॥४०॥

ब्रह्मोवाच

भविता ज्ञानलोपस्ते मच्छापेन च नारद। क्रीडामृगश्च त्वं साध्यो योषिल्लुब्धश्च लम्पटः ॥४१॥
स्थिरयौवनयुक्तानां रूपाढ्यानां मनोहरः। पञ्चाशत्कामिनीनां च भर्ता च प्राणवल्लभः ॥४२॥
शृङ्गारशास्त्रवेत्ता च महाशृङ्गारलोलुपः। नानाप्रकारशृङ्गारनिपुणानां गुरोर्गुरुः ॥४३॥
गन्धर्वाणां च सुवरः सुस्वरश्च सुगायनः। वीणावादनसंदर्भनिष्णातः स्थिरयौवनः ॥४४॥
प्राज्ञो मधुरवाक्शान्तः सुशीलः सुन्दरः सुधीः। भविष्यसि न संदेहो नामतश्चोपबर्हणः ॥४५॥
ताभिर्दिव्यं लक्षयुगं विहृत्य निर्जने वने। पुनर्मदीयशापेन दासीपुत्रश्च तत्परः ॥४६॥
वत्स वैष्णवसंसर्गाद्वैष्णवोच्छिष्टभोजनात्। पुनः कृष्णप्रसादेन भविष्यसि ममाऽऽत्मजः ॥४७॥

मधुर भगवान् कृष्ण की सेवा को छोड़कर विषय नामक विषम विष का भक्षण करेगा ॥३६॥ जिस प्रकार दीपक की शिखा का अग्रभाग अत्यन्त मनोहर होते हुए भी पतिंगों के लिए मृत्युकारक है उसी प्रकार यह विषय भी स्वप्न की भाँति नश्वर, तुच्छ, असत्य और विनाशकारी है ॥३७॥ हे तात! जिस प्रकार बंसी में गुंथा हुआ मांस मछलियों को आपातत: सुखद जान पड़ता है, उसी प्रकार विषयी पुरुषों को विषय में सुख की प्रतीति होती है। किन्तु वास्तव में वह मृत्यु का कारण है ॥३८॥ प्रज्वलित अग्निशिखा की भाँति प्रदीप्त होने वाले नारद जी ब्रह्मा के सामने इस प्रकार कहकर चुप हो गये और उन्हें प्रणाम करके चुपचाप खड़े रहे ॥३९॥ द्विज! इस पर ब्रह्मा ने अत्यन्त कुपित होकर पुत्र नारद को शाप दे दिया। उस समय ब्रह्मा क्रोध से काँप रहे थे, उनका मुख लाल हो गया था और ओठ फड़क रहे थे ॥४०॥

ब्रह्मा बोले--नारद! मेरे शाप से तुम्हारा ज्ञान लुप्त हो जायगा। तुम कामिनियों के क्रीड़ामृग, स्त्री-लोभी और लम्पट बन जाओगे ॥४१॥ तुम स्थिर यौवन वाली अत्यन्त सुन्दरी पचास कामिनियों के प्राणप्रिय एवं सुन्दर पति बनोगे। तुम श्रृंगारशास्त्र के वेत्ता, महाश्रृंगारी, लोलुप, अनेक भाँति के श्रृंगारों में निपुण व्यक्तियों के गुरुओं के गुरु, गन्धर्वों में श्रेष्ठ, अच्छे स्वर वाले गायक तथा वीणा बजाने में सबसे निपुण होगे। तुम्हारा यौवन निरन्तर स्थिर रहेगा ॥४२-४४॥ उसी भाँति विद्वान्, मधुरभाषी, शान्त, सुशील, सुन्दर और सुबुद्धि होगे। इसमें सन्देह नहीं। उस समय उपबर्हण नाम से तुम्हारी प्रसिद्धि होगी। उन कामिनियों के साथ निर्जन बन में एक लक्ष युग तक बिहार करने के अनन्तर मेरे शाप से दासीपुत्र होगे ॥४५-४६॥ वत्स! तदनन्तर वैष्णव महात्माओं के संसर्ग से और उनके उच्छिष्ट भोजन करने से तुम पुनः भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा प्राप्त करके मेरे पुत्र रूप में प्रतिष्ठित होगे ॥४७॥ उस समय मैं तुम्हें पुरातन दिव्य ज्ञान प्रदान करूँगा। किन्तु इस समय मेरा पुत्र

ज्ञानं दास्यामि ते दिव्यं पुनरेव पुरातनम्। अधुना भव नष्टस्त्वं मत्सुतो निपत ध्रुवम् ।।४८।।
ब्रह्मेत्युक्त्वा सुतं विप्र विरराम जगत्पतिः। रुरोद नारदस्तातमवोचत्संपुटाञ्जलिः ।।४९।।

नारद उवाच

क्रोधं संहर संहर्तस्तात तात जगद्गुरो। स्रष्टुस्तपस्वीशस्याहो क्रोधोऽयं मय्यनाकरः ।।५०।।
शपेत्परित्यजेद्विद्वान्पुत्रमुत्पथगामिनम्। तपस्विनं सुतं शप्तुं कथमर्हसि पण्डित ।।५१।।
जनिर्भवतु मे ब्रह्मन्यासु यासु च योनिषु। न जहातु हरेर्भक्तिर्मामेवं देहि मे वरम् ।।५२।।
पुत्रश्चेज्जगतां धातुर्नास्ति भक्तिर्हरेः पदे। सूकरादतिरिक्तश्च सोऽधमो भारते भुवि ।।५३।।
जातिस्मरो हरेर्भक्तियुक्तः सूकरयोनिषु। जनिर्लभेत्स प्रवरो गोलोकं याति कर्मणा ।।५४।।
गोविन्दचरणाम्भोजभक्तिमाध्वीकमीप्सितम्। पिबतां वैष्णवादीनां स्पर्शपूता वसुंधरा ।।५५।।
तीर्थानि स्पर्शमिच्छन्ति वैष्णवानां पितामह। पापानां पापितत्त्वानां क्षालनायाऽऽत्मनामपि ।।५६।।
मन्त्रोपदेशमात्रेण नरा मुक्ताश्च भारते। परैश्च कोटिपुरुषैः पूर्वैः सार्धं हरेरहो ।।५७।।
कोटिजन्मार्जितात्पापान्मन्त्रग्रहणमात्रतः। मुक्ताः शुध्यन्ति यत्पूर्वं कर्म निर्मूलयन्ति च ।।५८।।
पुत्रान्दारांश्च शिष्यांश्च सेवकान्बान्धवांस्तथा। यो दर्शयति सन्मार्गं सद्गतिस्तं लभेद्ध्रुवम् ।।५९।।
यो दर्शयत्यसन्मार्गं शिष्यैर्विश्वासितो गुरुः। कुम्भीपाके स्थितिस्तस्य यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।।६०।।

होते हुए भी तुम नष्ट हो जाओ और अवश्य ही नीचे गिरो।।४८।। विप्र! जगत्पति ब्रह्मा इस प्रकार अपने पुत्र से कहकर चुप हो गये और नारद जी रुदन करते हुए हाथ जोड़कर अपने पिता से बोले।।४९।।

नारद बोले—हे तात! हे जगद्गुरो! आप क्रोध को शान्त करें। आप स्रष्टा हैं। तपस्वियों के स्वामी हैं। अहो! मुझ पर आपका यह क्रोध अकारण ही हुआ है। ।।५०।। हे पण्डित! विद्वान् पुरुष दुराचारी पुत्र को शाप देते हैं और उसका त्याग करते हैं। अतः आप अपने तपस्वी पुत्र को शाप देना कैसे उचित मानते हैं।।५१।। ब्रह्मन्! जिन-जिन योनियों में मेरा जन्म हो, भगवान् की भक्ति मुझे कदापि न छोड़े, यह वरदान भी मुझे देने की कृपा करें।।५२।। क्योंकि कोई जगत् के रचयिता का ही पुत्र क्यों न हो, यदि उसमें भगवच्चरण की भक्ति नहीं है तो वह भारत के भूमण्डल में सूकर से भी अधिक अधम है।।५३।। पूर्वजन्म के स्मरण और भगवान् की भक्ति से युक्त रहने पर यदि उसका जन्म सूकर योनि में भी हो जाये तो वह श्रेष्ठ पुरुष अपने कर्म से गोलोक को प्राप्त कर लेता है।।५४।। क्योंकि गोविन्द के चरणकमल की भक्तिरूप मनोवांछित मकरन्द का पान करने वाले वैष्णवों के स्पर्श से ही यह वसुन्धरा पृथ्वी पवित्र होती है।।५५।। पितामह! तीर्थ-समूह पापियों के पाप से अपने को शुद्ध करने के लिए वैष्णवों का स्पर्श चाहते हैं। भारत में भगवान् के मन्त्रोपदेश मात्र से मनुष्य करोड़ों पूर्वजों तथा वंशजों के साथ मुक्त हो जाते हैं।।५६-५७।। मन्त्र ग्रहण मात्र से मनुष्य करोड़ों जन्म के संचित पाप से मुक्त होकर शुद्ध हो जाता है क्योंकि वह (मंत्र) पूर्व के पापों को निर्मूल कर देता है।।५८।। इस प्रकार पुत्र, स्त्री, शिष्य, सेवक और बान्धवगणों को जो सन्मार्ग प्रदर्शित कराता है उसकी निश्चित सद्गति होती है।।५९।। और जो शिष्य का विश्वास पात्र गुरु (शिष्य को) असन्मार्ग बताता है, वह कुम्भीपाक नरक में तब तक पड़ा रहता है जब तक सूर्य

स किंगुरुः स किंतात स किंस्वामी स किंसुतः। यः श्रीकृष्णपदाम्भोजे भक्तिं दातुमनीश्वरः॥६१॥
शप्तो निरपराधेन त्वयाऽहं चतुरानन। मया शप्तुं त्वमुचितो घ्नन्तं घ्नन्त्यपि पण्डिताः॥६२॥
कवचस्तोत्रपूजाभिः सहितस्ते मनुर्मनोः। लुप्तो भवतु मच्छापात्प्रतिविश्वेषु निश्चितम्॥६३॥
अपूज्यो भव विश्वेषु यावत्कल्पत्रयं पितः। गतेषु त्रिषु कल्पेषु पूज्य पूज्यो भविष्यसि॥६४॥
अधुना यज्ञभागस्ते व्रतादिष्वपि सुव्रत। पूजनं चास्तु नामैकं वन्द्यो भव सुरादिभिः॥६५॥
इत्युक्त्वा नारदस्तत्र विरराम पितुः पुरः। तस्थौ सभायां स विधिर्हृदयेन विदूयता॥६६॥
उपबर्हणगन्धर्वो नारदस्तेन हेतुना। दासीपुत्रश्च शापेन पितुरेव च शौनक॥६७॥
ततः पुनर्नारदश्च स बभूव महानृषिः। ज्ञानं प्राप्य पितुः पश्चात्कथयिष्यामि चाधुना॥६८॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे ब्रह्मनारद-
शापोपलम्भनं नामाष्टमोऽध्यायः॥८॥

अथ नवमोऽध्यायः

सौतिरुवाच

अथ ब्रह्मा स्वपुत्रांस्तानादिदेश च सृष्टये। सृष्टिं प्रचक्रुस्ते सर्वे विप्रेन्द्र नारदं विना॥१॥

और चन्द्रमा का अस्तित्व रहता है॥६०॥ वे गुरु, भाई, पिता, स्वामी और पुत्र निन्दनीय हैं जो भगवान् श्री कृष्ण के चरण कमल की भक्ति प्रदान करने में असमर्थ हैं॥६१॥ चतुरानन! तुमने मुझे बिना अपराध के ही शाप दिया है, अतः उचित है कि मैं भी तुम्हें शाप दूं; क्योंकि मारने वाले को पण्डितगण भी मारते हैं॥६२॥ मेरे शाप से प्रत्येक विश्व में तुम्हारे कवच, स्तोत्र, पूजा और मन्त्र लुप्त रहेंगे॥६३॥ और हे पिता। तुम सभी विश्वों में तीनों कल्पों तक अपूजनीय रहोगे (अर्थात् तुम्हारी पूजा कोई नहीं करेगा)। हाँ, तीनों कल्पों के व्यतीत होने पर तुम पूज्य के भी पूज्य हो जाओगे॥६४॥ हे सुव्रत! इस समय तुम्हारा यज्ञभाग बंद हो और व्रतदिकों में भी तुम्हारा पूजन न हो केवल तुम देवों के वन्दनीय बने रहोगे॥६५॥ ऐसा कह कर नारद जी अपने पिता के सामने चुप हो गए और ब्रह्मा भी सन्तप्त हृदय से उस सभा में सुस्थिर भाव से बैठे रहे॥६६॥ शौनक! पिता के शाप से ही नारद उपबर्हण नामक गन्धर्व हुए और पुनः दासी-पुत्र हुए। इसके पश्चात् पिता (ब्रह्मा) से ज्ञान प्राप्त करके वे महर्षि नारद हुए। इसका वर्णन मैं अभी करूँगा॥६७-६८॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में ब्रह्म-नारद-शाप-प्राप्ति नामक आठवाँ अध्याय समाप्त॥८॥

अध्याय ९

दक्ष कन्याओं की संतति आदि का वर्णन

सौति बोले—हे विप्रेन्द्र! इसके उपरान्त ब्रह्मा ने अपने पुत्रों को सृष्टि करने की आज्ञा प्रदान की और

मरीचेर्मनसो जातः कश्यपश्च प्रजापतिः। अत्रेर्नेत्रमलाच्चन्द्रः क्षीरोदे च बभूव ह॥२॥
प्रचेतसोऽपि मनसो गौतमश्च बभूव ह। पुलस्त्यमनसः पुत्रो मैत्रावरुण एव च॥३॥
मनोश्च शतरूपायां तिस्रः कन्याः प्रजज्ञिरे। आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिस्ताः पतिव्रताः॥४॥
प्रियव्रतोत्तानपादौ द्वौ च पुत्रौ मनोहरौ। उत्तानपादतनयो ध्रुवः परमधार्मिकः॥५॥
आकूतिं रुचये प्रादाद्दक्षायाथ प्रसूतिकाम्। देवहूतिं कर्दमाय यत्पुत्रः कपिलः स्वयम्॥६॥
प्रसूत्यां दक्षबीजेन षष्टिकन्याः प्रजज्ञिरे। अष्टौ धर्माय स ददौ रुद्रायैकादश स्मृताः॥७॥
शिवायैकां सतीं प्रादात्कश्यपाय त्रयोदश। सप्तविंशतिकन्याश्च दक्षश्चन्द्राय दत्तवान्॥८॥
नामानि धर्मपत्नीनां मत्तो विप्र निशामय। शान्तिः पुष्टिर्धृतिस्तुष्टिः क्षमा श्रद्धा मतिः स्मृतिः॥९॥
शान्तेः पुत्रश्च संतोषः पुष्टेः पुत्रो महानभूत्। धृतेर्धैर्यं च तुष्टेश्च हर्षदर्पौ सुतौ स्मृतौ॥१०॥
क्षमापुत्रः सहिष्णुश्च श्रद्धापुत्रश्च धार्मिक। मतेर्ज्ञानाभिधः पुत्रः स्मृतेर्जातिस्मरो महान्॥११॥
पूर्वपत्न्यां च मूर्त्यां च नरनारायणावृषी। बभूवुरेते धर्मिष्ठा धर्मपुत्राश्च शौनक॥१२॥
नामानि रुद्रपत्नीनां सावधानं निबोध मे। कला कलावती काष्ठा कालिका कलहप्रिया॥१३॥
कन्दली भीषणा रास्ना प्रमोचा भूषणा शुकी। एतासां बहवः पुत्रा बभूवुः शिवपार्षदाः॥१४॥
सा सती स्वामिनिन्दायां तनुं तत्याज्य यज्ञतः। पुनर्भूत्वा शैलपुत्री लेभे सा शंकरं पतिम्॥१५॥
कश्यपस्य प्रियाणां च नामानि शृणु धार्मिक। अदितिर्देवमाता वै दैत्यमाता दितिस्तथा॥१६॥

नारद को छोड़कर सभी पुत्रों ने सृष्टि करना आरम्भ भी किया॥१॥ मरीचि के मन से कश्यप प्रजापति प्रकट हुए। अत्रि महर्षि के नेत्र के मल से क्षीरसागर में चन्द्रमा का आविर्भाव हुआ॥२॥ प्रचेता के मन से गौतम और पुलस्त्य के मन से मैत्रावरुण उत्पन्न हुए॥३॥ मनु-शतरूपा से आकूति, देवहूति और प्रसूति नामक तीन कन्यायें तथा प्रियव्रत एवं उत्तानपाद नामक दो मनोहर पुत्र उत्पन्न हुए। उत्तानपाद के पुत्र परम धार्मिक ध्रुव हुए॥४-५॥ आकूति रुचि को, प्रसूति दक्ष को तथा देवहूति कर्दम प्रजापति को प्रदान की गई। देवहूति से स्वयं कपिल उत्पन्न हुए॥६॥ दक्ष के वीर्य और प्रसूति के गर्भ से साठ कन्याओं की उत्पत्ति हुई, जिनमें से उन्होंने आठ कन्यायें धर्म को, ग्यारह रुद्र को, एक सती शिव को, तेरह कश्यप को तथा सत्ताईस कन्याएँ चन्द्रमा को प्रदान कीं॥७-८॥ विप्र! धर्म की पत्नियों के नाम मैं कह रहा हूँ, सुनो—शान्ति, पुष्टि, धृति, तुष्टि, क्षमा, श्रद्धा, मति और स्मृति उनके नाम हैं॥९॥ शान्ति का पुत्र सन्तोष और पुष्टि का महान् हुआ। धृति के धैर्य और तुष्टि के हर्ष तथा दर्प नामक पुत्र हुए॥१०॥ इसी प्रकार क्षमा के सहिष्णु, श्रद्धा के धार्मिक, मति के ज्ञान और स्मृति के महान् जातिस्मर नामक पुत्र हुआ॥११॥ शौनक! धर्म की पहली पत्नी मूर्ति में नर-नारायण नामक दो ऋषि और अन्य भी धार्मिक पुत्र हुए॥१२॥ अब मैं रुद्र की पत्नियों के नाम बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो! कला, कलावती, काष्ठा, कालिका, कलहप्रिया, कन्दली, भीषणा, रास्ना, प्रमोचा, भूषणा और शुकी —ये उनके नाम हैं। उनके अनेक पुत्र उत्पन्न हुए, जो शिव के पार्षद हैं॥१४॥ सती ने (अपने पिता के) यज्ञ में स्वामी (शंकर) की निन्दा होने के कारण अपना शरीर छोड़ दिया और पुनः हिमालय के यहाँ उत्पन्न होकर शंकर को पति के रूप में वरण किया॥१५॥ धार्मिक! अब कश्यप की पत्नियों के नाम सुनो! देवमाता अदिति, दैत्यमाता दिति, सर्पों की माता कद्रू, पक्षियों

सर्पमाता तथा कद्रूर्विनता पक्षिसूस्तथा। सुरभिश्च गवां माता महिषाणां च निश्चितम् ॥१७॥
सारमेयादिजन्तूनां सरमा सूश्चतुष्पदाम्। दनुः प्रसूर्दानवानामन्याश्चेत्येवमादिकाः ॥१८॥
इन्द्रश्च द्वादशादित्या उपेन्द्राद्याः सुरा मुने। कथिताश्चादितेः पुत्रा महाबलपराक्रमाः ॥१९॥
इन्द्रपुत्रो जयन्तश्च ब्रह्मञ्शच्यामजायत। आदित्यस्य सवर्णायां कन्यायां विश्वकर्मणः ॥२०॥
शनैश्चरयमौ पुत्रौ कालिन्दी कन्यका तथा। उपेन्द्रवीर्यात्पृथ्व्यां तु मङ्गलः समजायत ॥२१॥

शौनक उवाच

कथं सौते स चोपेन्द्रान्मङ्गलः समजायत। वसुंधरायां बलवान्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥२२॥

सौतिरुवाच

उपेन्द्ररूपमालोक्य कामार्ता च वसुंधरा। विधाय सुन्दरीवेषमक्षता प्रौढयौवना ॥२३॥
मलये निर्जने रम्ये चारुचन्दनपल्लवे। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम् ॥२४॥
तं सुशीलं शयानं च शान्तं सस्मितमीप्सितम्। सस्मिता तस्य तल्पे च सहसा समुपस्थिता ॥२५॥
सुरम्यां मालतीमालां ददौ तस्मै वरानना। सुगन्धि चन्दनं चारु कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम् ॥२६॥
उपेन्द्रस्तन्मनो ज्ञात्वा कामिनीं कामपीडिताम्। नानाप्रकारशृङ्गारं चकार च तया सह ॥२७॥
तदङ्गसङ्गसंसक्ता मूर्छां प्राप सती तदा। मृतेव निद्रितेवासौ बीजाधाने कृते हरौ ॥२८॥

की माता विनता, गौओं और महिषों की माता सुरभि, कुत्ते आदि चार पैर वाले जन्तु की माता सरमा, दानवों की माता दनु और अन्य पत्नियाँ भी इसी प्रकार अन्यान्य सन्तानों की जननी थीं ॥१६-१८॥ मुने! इन्द्र द्वादश आदित्य और उपेन्द्र (विष्णु) आदि देवगण अदिति के पुत्र कहे गये हैं, जो महापराक्रमी एवं महाबली हैं ॥१९॥ ब्रह्मन्! इन्द्र-पत्नी शची से जयन्त उत्पन्न हुआ। विश्वकर्मा की पुत्री सवर्णा में सूर्य द्वारा शनि, यम ये दो पुत्र और (यमुना) नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई। उसी भाँति उपेन्द्र के वीर्य से पृथ्वी में मंगल नामक (ग्रह) उत्पन्न हुआ ॥२०-२१॥

शौनक बोले--सूतपुत्र! उपेन्द्र के वीर्य से वसुँधरा में बलवान् मंगल कैसे उत्पन्न हुआ? हमें बताने की कृपा करें! ॥२२॥

सौति बोले--एक बार उपेन्द्र के रूप को देख कर पृथ्वी अत्यन्त काम-पीड़ित हुई। उसने अक्षुण्ण प्रौढ़ यौवन वाली एक सुन्दरी स्त्री का वेष बना कर मलयाचल के निर्जन स्थान में, जो रमणीक एवं चन्दन के सुन्दर पल्लवों से विभूषित था, सम्पूर्ण शरीर में चन्दन का लेप लगाए हुए, रत्नों के आभूषणों से विभूषित, सुशील, शान्त और मन्द मुसकान से युक्त अपने हृदयवल्लभ (उपेन्द्र) को सोते हुए देख कर स्वयं भी मुसकराती हुई पृथ्वी सहसा उनकी शय्या पर पहुँच गयी। उस सुन्दरी ने उन्हें अत्यन्त रमणीक एक मालती-माला तथा कस्तूरी और केसर से युक्त सुगन्धित चन्दन प्रदान किया ॥२३-२६॥ उपेन्द्र ने काम-पीड़ित उस कामिनी के मनोभाव को समझ कर उसके साथ नाना प्रकार की कामक्रीड़ायें कीं ॥२७॥ उनके अंगों में अपने अंग मिलाने से ही वह सती मूर्च्छित-सी होने लगी और उपेन्द्र (विष्णु) के वीर्याधान करने पर तो वह निद्रित अथवा मृतक की भाँति हो गयी ॥२८॥ अनन्तर विशाल

तां विलग्नां च सुश्रोणीं सुखसंभोगमूर्छिताम्। बृहन्मुक्तनितम्बां च सस्मितां विपुलस्तनीम्॥२९॥
क्षणं वक्षसि कृत्वा तां तदोष्ठं च चुचुम्ब ह। विहाय तत्र रहसि जगाम पुरुषोत्तमः॥३०॥
उर्वशी पथि गच्छन्ती बोधयामास तां मुने। सा च पप्रच्छ वृत्तान्तं कथयामास भूश्च ताम्॥३१॥
वीर्यसंवरणं कर्तु सा चाशक्ता च दुर्बला। प्रवालस्याऽऽकरे त्रस्ता वीर्यन्यासं चकार सा॥३२॥
तेन प्रवालवर्णश्च कुमारः समपद्य। तेजसा सूर्यसदृशो नारायणसुतो महान्॥३३॥
मङ्गलस्य प्रिया मेधा तस्य[1] घण्टेश्वरो महान्। व्रणदाताऽतितेजस्वी विष्णुतुल्यो बभूव ह॥३४॥
दितेर्हिरण्यकशिपुहिरण्याक्षौ महाबलौ। कन्या च सिंहिका विप्र सैंहिकेयश्च तत्सुतः॥३५॥
निर्ऋतिः सिंहिका सा च तेन राहुश्च नैर्ऋतः। सूकरेण हिरण्याक्षोऽप्यनपत्यो मृतो युवा॥३६॥
हिरण्यकशिपोः पुत्रः प्रह्लादो वैष्णवाग्रणीः। विरोचनश्च तत्पुत्रस्तत्पुत्रश्च बलिः स्वयम्॥३७॥
बलेः पुत्रो महायोगी ज्ञानी शंकरकिंकरः। दितेर्वंशश्च कथितः कद्रूवंशं निबोध मे॥३८॥
अनन्तं वासुकिं चैव कालीयं च धनंजयम्। कर्कोटकं तक्षकं च पद्ममैरावतं तथा॥३९॥
महापद्मं च शङ्कुं च शङ्खं च संवरणं तथा। धृतराष्ट्रं च दुर्धर्षं दुर्जयं दुर्मुखं बलम्॥४०॥
मोक्षं गोकामुकं चैव विरूपादींश्च शौनक[2]। एतेषां प्रवरांश्चैव यावत्यः सर्पजातयः॥४१॥

नितम्बों एवं स्तनों वाली धरा को, जो संभोग-सुख से मूर्च्छित होने के उपरान्त मुसकरा रही थी, उपेन्द्र ने अपनी छाती से लगा कर उसका अधर-पान किया। पश्चात् वहीं एकान्त में उसे छोड़कर पुरुषोत्तम चले गये॥२९-३०॥ मुने! उसी मार्ग से उर्वशी जा रही थी। उसने उसे सचेत किया और वृत्तान्त पूछा। पृथ्वी ने उससे समस्त वृत्तान्त कह सुनाया॥३१॥ पश्चात् उस दुर्बला पृथ्वी उस वीर्य को धारण करने में असमर्थ हो गयी। तब उसने भयभीत प्रवालों (मूंगों) की खान में उस वीर्य को रख दिया। उससे प्रवाल के रंग का कुमार (मंगल) उत्पन्न हुआ। वह नारायण का पुत्र महान् और सूर्य के समान तेजस्वी हुआ॥३३॥ मंगल की प्रिया का नाम मेधा था, जिसके पुत्र महान् घंटेश्वर तथा विष्णु के समान अति तेजस्वी व्रणदाता हुए॥३४॥ विप्र! दिति के महाबली हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नामक दो पुत्र एवं सिंहिका नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई। सिंहिका के सैंहिकेय (राहु) नामक पुत्र हुआ॥३५॥ सिंहिका का नाम निर्ऋति भी था। इसीलिए राहु को नैर्ऋत कहा गया है। हिरण्याक्ष को कोई संतान नहीं थी। वह युवावस्था में ही वराहावतार के द्वारा मारा गया॥३६॥ हिरण्यकशिपु का पुत्र प्रह्लाद वैष्णवों में सर्वश्रेष्ठ था। विरोचन उनके पुत्र हुए और विरोचन का पुत्र स्वयं बलि हुआ॥३७॥ बलि का पुत्र (बाणासुर) हुआ, जो महायोगी, ज्ञानी और शंकर का बहुत बड़ा सेवक था। इस प्रकार दिति के वंश का वर्णन मैंने कर दिया और कद्रू के वंश का वर्णन कर रहा हूँ, सुनो॥३८॥ अनन्त, वासुकि, कालीय, धनञ्जय, कर्कोटक, तक्षक, पद्म, ऐरावत, महापद्म, शंकु शंख, संवरण, धृतराष्ट्र, दुर्द्धर्ष, दुर्जय, दुर्मुख, बल, गोक्ष, गोकार्मुक और विरूप आदि नाम हैं। शौनक! जितनी सर्पजातियाँ हैं, उन सब में प्रधान ये ही हैं॥३९-४१॥ लक्ष्मी के अंश से

---

१ क. तस्यां खड्गेश्व०। २ ख. ०क। न ते०।

कन्यका मनसा देवी कमलांशसमुद्भवा। तपस्विनीनां प्रवरा महातेजस्विनी शुभा ॥४२॥
यत्पतिश्च जरत्कारुर्नारायणबलोद्भवः[1]। आस्तीकस्तनयो यस्या विष्णुतुल्यश्च तेजसा ॥४३॥
एतेषां नाममात्रेण नास्ति नागभयं नृणाम्। कद्रूवंशो निगदितो विनतायाः शृणुष्व मे ॥४४॥
वैनतेयारुणौ पुत्रौ विष्णुतुल्यपराक्रमौ। तौ बभूवुः क्रमेणैव यावत्यः पक्षिजातयः ॥४५॥
गावश्च महिषाश्चैव सुरभिप्रवरा इमे। सर्वे वै सारमेयाश्च बभूवुः सरमासुताः ॥४६॥
दानवाश्च दनोर्वंश्या अन्याः सामान्यजातयः। उक्तः कश्यपवंशश्च चन्द्राख्यानं निबोध मे ॥४७॥
नामानि चन्द्रपत्नीनां सावधानं निशामय। अत्यपूर्वं च चरितं पुराणेषु पुरातनम् ॥४८॥
अश्विनी भरणी चैव कृत्तिका रोहिणी तथा। मृगशीर्षा तथाऽऽर्द्रा च पूज्या साध्वी पुनर्वसुः ॥४९॥
पुष्याऽऽश्लेषा मघा पूर्वफल्गुन्युत्तरफल्गुनी। हस्ता चित्रा तथा स्वाती विशाखा चानुराधिका ॥५०॥
ज्येष्ठा मूला तथा पूर्वाषाढा चैवोत्तरा स्मृता। श्रवणा च धनिष्ठा च तथा शतभिषक्छुभा ॥५१॥
[2]पूर्वा भाद्रोत्तरा भाद्रा रेवत्यन्ता विधुप्रियाः। तासां मध्ये च सुभगा रोहिणी रसिका वरा ॥५२॥
संततं रसभावेन चकार शशिनं वशम्। रोहिण्युपगतश्चन्द्रो न यात्यन्यां च कामिनीम् ॥५३॥
सर्वा भगिन्यः पितरं कथयामासुरादृताः। सपत्नीकृतसंतापं प्राणनाशकरं परम् ॥५४॥

उत्पन्न होने वाली कन्या का नाम 'मनसा देवी' है, जो तपस्विनियों में अतिश्रेष्ठ, महातेजस्विनी और शुभमूर्ति है ॥४२॥ नारायण की कला से उत्पन्न जरत्कारु मुनि उसके पति हैं, और उसके पुत्र का नाम आस्तीक है, जो विष्णु के समान तेजस्वी है ॥४३॥ इन सब के नाममात्र (उच्चारण करने) से मनुष्यों को नाग-भय नहीं होता है। कद्रू के वंश का परिचय दे दिया, अब वनिता का वंश-वर्णन सुनिए ॥४४॥ वनिता के दो पुत्र हुए---अरुण और गरुड़। दोनों ही विष्णु के समान पराक्रमी थे। उन्हीं से सभी पक्षि-जातियों का प्रादुर्भाव हुआ है ॥४५॥ गौ और महिष (भैंसे) सुरभी से उत्पन्न हुए। एवं सभी सारमय (कुत्ते) सरमा के पुत्र हैं। दनु के वंश में दानव हुए और अन्य स्त्रियों के वंशज अन्यान्य जातियाँ। इस प्रकार कश्यप वंश का वर्णन कर के अब चन्द्र वंश का आख्यान कर रहा हूँ, सुनो! ॥४६॥-४७॥ सर्वप्रथम चन्द्रमा की पत्नियों के नाम और पुराणों में वर्णित उनका अपूर्व पुरातन चरित्र भी सावधान होकर सुनो ॥४८॥ अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पूज्या साध्वी पुनर्वसु, पुष्या, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तरा-फाल्गुनी, हस्ता, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्टा, मूला, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, श्रवणा, धनिष्ठा, शुभा शतभिषा, पूर्वा भाद्रपदा, उत्तरा भाद्रपदा और रेवती---ये सत्ताईस चन्द्र की प्रेयसी पत्नियाँ हैं। किन्तु इनके मध्य सुन्दरी और रसिकशिरोमणि रोहिणी चन्द्रमा को अति प्रिय है; क्योंकि उसने अपने अनुराग-रस से चन्द्रमा को निरन्तर अपने वश में कर लिया। तब चन्द्रमा ने अन्य पत्नियों की बड़ी अवहेलना की ॥४९-५३॥ अनन्तर सभी बहिनों ने आपस में मिल कर अपने पिता से अपना वह दुःख प्रकट किया, जो सपत्नी (सौत) के द्वारा उत्पन्न किया गया था और अत्यन्त प्राणनाशक था ॥५४॥ (पिता) दक्ष ने क्रुद्ध होकर चन्द्रमा

---

१ ख. ०णकुलो.। २ क. पूर्वोत्तराभाद्रपदा रे०।

दक्षः प्रकुपितश्चन्द्रमशपन्मन्त्रपूर्वकम्। द्रुतं श्वशुरशापेन यक्ष्मग्रस्तो बभूव सः ॥५५॥
दिने दिने यक्ष्मणा स क्षीयमाणश्च दुःखितः। वपुष्यर्धं क्षीयमाणे शंकरं शरणं ययौ ॥५६॥
दृष्ट्वा चन्द्रं शंकरश्च क्लेशितं शरणागतम्। करुणासागरस्तस्मै कृपया चाभयं ददौ ॥५७॥
निर्मुक्तं यक्ष्मणा कृत्वा स्वकपाले स्थलं ददौ। अपरो निर्भयो भूत्वा स तस्थौ शिवशेखरे ॥५८॥
तं शिवः शेखरे कृत्वा चाभवच्चन्द्रशेखरः। नास्ति लोकेषु देवेषु शिवाच्छरणपञ्जरः ॥५९॥
दक्षकन्याः पतिं मुक्तं दृष्ट्वा च रुरुदुः पुनः। आजग्मुः शरणं तातं दक्षं तेजस्विनां वरम् ॥६०॥
उच्चैश्च रुरुदुर्गत्वा निहत्याङ्गं पुनः पुनः। तमूचुः कातरं दीना दीनानाथं विधेः सुतम् ॥६१॥

दक्षकन्या ऊचुः

स्वामिसौभाग्यलाभाय त्वमुक्तोऽस्माभिरेव च। सौभाग्यमस्तु नस्तात गतः स्वामी गुणान्वितः ॥६२॥
स्थिते चक्षुषि हे तात दृष्टं ध्वान्तमयं जगत्। विज्ञातमधुना स्त्रीणां पतिरेव हि लोचनम् ॥६३॥
पतिरेव गतिः स्त्रीणां पतिः प्राणाश्च संपदः। धर्मार्थकाममोक्षाणां हेतुः सेतुर्भवार्णवे ॥६४॥
पतिर्नारायणः स्त्रीणां व्रतं धर्मः सनातनः। सर्वं कर्म वृथा तासां स्वामिनो विमुखाश्च याः ॥६५॥
स्नानं च सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दक्षिणा। सर्वदानानि पुण्यानि व्रतानि नियमाश्च ये ॥६६॥
देवार्चनं चानशनं सर्वाणि च तपांसि च। स्वामिनः पादसेवायाः कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥६७॥

को मन्त्रपूर्वक शाप दे दिया। श्वशुर के शाप देने से चन्द्रमा अत्यन्त शीघ्र यक्ष्मा रोग से पीड़ित हो गए ॥५५॥ दिन-प्रतिदिन यक्ष्मा रोग से दुःखी और क्षीण काय होते हुए चन्द्रमा ने आधे शरीर के क्षीण हो जाने पर शंकर की शरण प्राप्त की ॥५६॥ करुणासागर शंकर ने शरण में आये हुए चन्द्रमा को दुःखी देख कर कृपा कर उन्हें अभयदान दिया ॥५७॥ और यक्ष्मा रोग से मुक्त करके उन्हें अपने मस्तक पर स्थान दिया। जिससे चन्द्रमा भी अमर और निर्भय होकर शिव के शिखर पर विराजमान हो गए ॥५८॥ तब से शंकर भी उन्हें अपने शिखर पर रख लेने के कारण चन्द्रशेखर कहलाने लगे। देवों तथा अन्य लोगों में शिव से बढ़ कर शरणागत-पालक दूसरा कोई नहीं है ॥५९॥ पश्चात् दक्ष की कन्याएँ अपने पति (चन्द्रमा) को रोग-मुक्त देखकर पुनः रोने लगीं और तेजस्वियों में श्रेष्ठ पिता दक्ष की शरण पहुँचीं। वहाँ जाकर बार-बार अपने (शिर आदि) अंगों को पीटती हुई वे उच्च स्वर से रोने लगीं और दीन होकर कातर भाव से दीनानाथ ब्रह्मपुत्र दक्ष से कहने लगीं ॥६०-६१॥

दक्ष-कन्याओं ने कहा—तात! हम लोगों ने स्वामी की प्राप्ति रूप सौभाग्य पाने के लिए आपसे निवेदन किया था। किन्तु सौभाग्य तो दूर रहा हमारे गुणवान् स्वामी ही हमें छोड़कर चले गए ॥६२॥ तात! नेत्रों के रहते हुए भी हमें सारा जगत् अन्धकारपूर्ण दिखायी पड़ रहा है। इस समय यह बात भलीभाँति समझ में आ रही है कि पति ही स्त्रियों का नेत्र है ॥६३॥ (इतना ही नहीं) प्रत्युत स्त्रियों की गति, प्राण और सम्पत्ति भी पति ही है। उनके धर्म अर्थ काम और मोक्ष का हेतु तथा भवसागर को पार करने का सेतु पति ही है ॥६४॥ पति ही स्त्रियों के नारायण, व्रत और सनातनधर्म है। इसलिए पति से विमुख रहने वाली स्त्रियों के सभी धर्म-कर्म व्यर्थ हैं ॥६५॥ सभी तीर्थों के स्नान, समस्त यज्ञों की दक्षिणा, सब भाँति के दान, पुण्य, व्रत, नियम, देव-पूजा, व्रतोपवास, सभी तप पति की चरण-सेवा की सोलहवीं कला के भी बराबर नहीं है ॥६६-६७॥ समस्त बन्धुओं और स्त्रियों का प्रिय

सर्वेषां बान्धवानां च प्रियः पुत्रश्च योषिताम् । स एव स्वामिनोंऽशश्च शतपुत्रात्परः पतिः ॥६८॥
असद्वंशप्रसूता या सा द्वेष्टि स्वामिनं सदा। यस्या मनश्चलं दुष्टं सततं परपूरुषे ॥६९॥
पतितं रोगिणं दुष्टं निर्धनं गुणहीनकम् । युवानं चैव वृद्धं वा भजेत्तं न त्यजेत्सती ॥७०॥
सगुणं निर्गुणं वाऽपि द्वेष्टि या संत्यजेत्पतिम् । पच्यते कालसूत्रे सा यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥७१॥
कीटैः शुनकतुल्यैश्च भक्षिता सा दिवानिशम् । 'भुङ्क्ते मृतवसामांसे पिबेन्मूत्रं च तृष्णया ॥७२॥
गृध्रः कोटिसहस्राणि शतजन्मानि सूकरः । श्वापदः शतजन्मानि सा भवेद्बन्धुहा ततः ॥७३॥
ततो मानवजन्मानि लभेच्चेत्पूर्वकर्मणः । विधवा धनहीना च रोगयुक्ता भवेद्ध्रुवम् ॥७४॥
देहि नः कान्तदानं च कामपूरं विधेः सुत । विधात्रा सदृशस्त्वं च पुनः स्रष्टुं क्षमो जगत् ॥७५॥
कन्यानां वचनं श्रुत्वा दक्षः शंकरसंनिधिम् । जगाम शंभुस्तं दृष्ट्वा समुत्थाय ननाम च ॥७६॥
दक्षस्तस्याऽऽशिषं कृत्वा समुवाच कृपानिधिम् । तत्याज कोपं दुर्धर्षं[2] दृष्ट्वा च प्रणतं शिवम् ॥७७॥

दक्ष उवाच

देहि जामातरं शंभो मदीयं प्राणवल्लभम् । मत्सुतानां च प्राणानां परमेव प्रियं पतिम् ॥७८॥
न चेद्ददासि जामातर्मम जामातरं विधुम् । दास्यामि दारुणं शापं तुभ्यं त्वं केन मुच्यसे ॥७९॥
दक्षस्य वचनं श्रुत्वा तमुवाच कृपानिधिः । सुधाधिकं च वचनं ब्रह्मञ्शरणपञ्जरः ॥८०॥

पुत्र होता है किन्तु वह पुत्र स्वामी का अंश मात्र रहता है। इसलिए (स्त्रियों के लिए) पति सैकड़ों पुत्रों से भी बढ़ कर है ॥६८॥ असत्कुल में उत्पन्न होने वाली स्त्री अपने पति से सदा वैरभाव ही रखती है क्योंकि उसका मन सदैव चलायमान, दुष्ट और पर पुरुष में लगा रहता है ॥६९॥ किन्तु सती स्त्रियाँ पतित, रोगी, दुष्ट, निर्धन, गुणहीन, युवा या वृद्ध कैसा भी पति क्यों न हो उसकी भी सेवा करती हैं ॥७०॥ जो स्त्री गुणी अथवा निर्गुण पति से द्वेष या उनका त्याग करती हैं वे कालसूत्र में तब तक पकायी जाती हैं जब तक सूर्य-चन्द्रमा की सत्ता रहती है ॥७१॥ वहाँ कुत्ते के समान कीड़े उसे दिनरात खाया करते हैं। क्षुधा लगने पर वह स्त्री मृतक का मांस खाती है और प्यास लगने पर मूत्र पान करती है ॥७२॥ अनन्तर करोड़ जन्मों तक गीध, सौ जन्मों तक सूकरी, सौ जन्मों तक हिंसक जीव होकर अन्त में बन्धु का नाश करती है ॥७३॥ पुनः पूर्व कर्मों के अनुसार यदि मानव-जन्म प्राप्त किया तो विधवा, दरिद्रा, और रोगिणी होती है, यह निश्चित है ॥७४॥ अतः हे ब्रह्मपुत्र ! हमें पति-दान देने की कृपा करें ! क्योंकि आप ब्रह्मा के समान ही समस्त जगत् की सृष्टि करने मे समर्थ हैं ॥७५॥ कन्याओं की ऐसी बातें सुनकर दक्ष शंकर के पास गए और शिव ने उन्हें देखते ही उठ कर प्रणाम किया ॥७६॥ कृपानिधान शंकर को दक्ष ने आशीर्वाद प्रदान किया और (साथ ही) शिव को प्रणत देख कर अपना क्रोध भी त्याग दिया ॥७७॥

दक्ष बोले—शम्भो ! आप मेरे प्राणप्रिय जामाता को लौटा दें, जो मेरी कन्याओं के परम प्राणप्रिय पति हैं ॥७८॥ आप भी मेरे जामाता हैं। तथापि यदि मेरे जामाता चन्द्रमा को नहीं लौटाते हैं तो मैं आपको दारुण शाप दे दूंगा, फिर तो उससे मुक्त नहीं हो सकेंगे ॥७९॥ ब्रह्मन् ! दक्ष की बातें सुनकर कृपानिधि एवं शरणागत

---

१ क. ०ङ्क्ते मूत्ररसं मां०। २ ख. धर्षो दृ०।

शिव उवाच

करोषि भस्मसाच्चेन्मां दत्त्वा वा शापमेव च। नाहं दातुं समर्थश्च चन्द्रं च शरणागतम् ॥८१॥
शिवस्य वचनं श्रुत्वा दक्षस्तं शप्तुमुद्यतः। शिवः सस्मार गोविन्दं विपन्मोक्षणकारकम् ॥८२॥
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो वृद्धब्राह्मणरूपधृक्। समाययौ तयोर्मूलं तौ तं च नमतुः क्रमात् ॥८३॥
दत्त्वा शुभाशिषं तौ स ब्रह्मज्योतिः सनातनः। उवाच शंकरं पूर्वं परिपूर्णतमो द्विज ॥८४॥

श्रीभगवानुवाच

न चाऽऽत्मनः प्रियः कश्चिच्छर्व सर्वेषु बन्धुषु। आत्मानं रक्ष दक्षाय देहि चन्द्रं सुरेश्वर ॥८५॥
तपस्विनां वरः शान्तस्त्वमेवं वैष्णवाग्रणीः। समः सर्वेषु जीवेषु हिंसाक्रोधविवर्जितः ॥८६॥
दक्षः क्रोधी च दुर्धर्षस्तेजस्वी ब्रह्मणःसुतः। शिष्टो बिभेति दुर्धर्षं न दुर्धर्षश्च कञ्चन ॥८७॥
नारायणवचः श्रुत्वा हसित्वा शंकरः स्वयम्। उवाच नीतिसारं च नीतिबीजं परात्परम् ॥८८॥

शंकर उवाच

तपो दास्यामि तेजश्च[1] सर्वसिद्धिं च संपदम्। प्राणांश्च न समर्थोऽहं प्रदातुं शरणागतम् ॥८९॥
यो ददाति भयेनैव प्रपन्नं शरणागतम्। तं च धर्मः परित्यज्य याति शप्त्वा सुदारुणम् ॥९०॥
सर्वं त्यक्तुं समर्थोऽहं न स्वधर्मं जगत्प्रभो। यः स्वधर्मविहीनश्च स च सर्वबहिष्कृतः ॥९१॥

पालक शिव से अमृत से भी बढ़कर (मधुर) वचन उनसे कहा—

शिव बोले—मुझे भस्म कीजिए या शाप प्रदान कीजिए, किन्तु शरणागत चन्द्रमा को मैं देने में असमर्थ हूँ। शिव की बात सुनकर दक्ष उन्हें शाप देने को तैयार हो गये। उस समय शिव विपत्ति से मुक्त कराने वाले गोविन्द का स्मरण करने लगे ॥८१-८२॥ उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण एक वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण कर वहाँ आ गये, जो उन दोनों के भी मूल कारण हैं। उन दोनों ने उन्हें क्रमशः नमस्कार किया ॥८३॥ द्विज ! उन सनातन एवं परिपूर्णतम ब्रह्मज्योति ने उन दोनों को शुभाशीर्वाद दिया और पहले शंकर से कहा ॥८४॥

श्री भगवान् बोले—शिव ! समस्त बन्धुओं में भी आत्मा से बढ़कर कोई प्रिय नहीं होता है, अतः हे सुरेश्वर ! दक्ष को चन्द्रमा प्रदान कर अपनी रक्षा कीजिये ॥८५॥ तुम तपस्वियों में श्रेष्ठ, शान्त, वैष्णवों में प्रमुख और सभी जीवों में समभाव रखने वाले एवं हिंसा तथा क्रोध से हीन हो ॥८६॥ दक्ष क्रोधी, दुर्द्धर्ष (उद्धत) तथा तेजस्वी ब्रह्मपुत्र हैं। शिष्ट व्यक्ति दुर्द्धर्ष प्राणी से भयभीत होता है और दुर्द्धर्ष किसी से भी भयभीत नहीं होता है ॥८७॥ नारायण की ऐसी बातें सुनकर स्वयं शंकर ने हँसकर नीतिशास्त्र का निचोड़ तथा बीजरूप परमोत्तम वचन कहा ॥८८॥

शंकर बोले—मैं तप, तेज, समस्त सिद्धियाँ, सम्पत्ति और प्राण भी दे सकता हूँ किन्तु शरणागत का त्याग करने में असमर्थ हूँ ॥८९॥ क्योंकि जो भयवश शरणागत का त्याग करता है, उसे भी धर्म त्याग देता है और घोर शाप देकर चला जाता है ॥९०॥ इसलिए हे जगत्प्रभो ! मैं सब का त्याग कर सकता हूँ किन्तु धर्म का नहीं।

---

१ क. ०श्च ब्रह्मसि०।

यश्च धर्मं सदा रक्षेद्धर्मस्तं परिरक्षति । धर्मं वेदेश्वर त्वं च किं मां ब्रूहि स्वमायया ॥९२॥
त्वं सर्वमाता स्त्रष्टा च हन्ता च परिणामतः । त्वयि भक्तिर्दृढा यस्य तस्य कस्माद्भयं भवेत् ॥९३॥
शंकरस्य वचः श्रुत्वा भगवान्सर्वभाववित् । चन्द्रं चन्द्राद्विनिष्कृष्य दक्षाय प्रददौ हरिः ॥९४॥
प्रतस्थावर्धचन्द्रश्च निर्व्याधिः शिवशेखरे । निजग्राह परं चन्द्रं विष्णुदत्तं प्रजापतिः ॥९५॥
यक्ष्मग्रस्तं च तं दृष्ट्वा दक्षस्तुष्टाव माधवम् । पक्षे पूर्णं क्षतं पक्षे तं चकार हरिः स्वयम् ॥९६॥
कृष्ण[1] एवं वरं दत्त्वा जगाम स्वालयं द्विज । दक्षश्चन्द्रं गृहीत्वा च कन्याभ्यः प्रददौ पुनः ॥९७॥
चन्द्रस्ताश्च परिप्राप्य विजहार दिवानिशम् । समं ददर्श ताः सर्वास्तत्प्रभृत्येव कम्पितः ॥९८॥
इत्येवं कथितं सर्वं किंचित्सृष्टिक्रमं मुने । श्रुतं च गुरुवक्त्रेण पुष्करे मुनिसंसदि ॥९९॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे
प्रसूतिवंशवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

अथ दशमोऽध्यायः

सौतिरुवाच

भृगोः पुत्रश्च च्यवनः शुक्रश्च ज्ञानिनां वर। क्रतोरपि क्रिया भार्या बालखिल्यानसूयत ॥१॥

क्योंकि जो अपने धर्म से हीन है, वह समस्त धर्मों से बहिष्कृत है ॥९१॥ और जो सदैव धर्म की रक्षा करता है, धर्म भी उसकी रक्षा करता है। ईश्वर ! तुम धर्म को जानते हो। अतः अपनी माया से मोहित करते हुए मुझे यह क्यों कह रहे हो ? ॥९२॥ तुम्हीं सबकी माता, स्त्रष्टा और परिणामतः (अन्त में) हन्ता भी हो। तुममें जिसकी दृढ़ भक्ति होती है, उसे किससे भय हो सकता है ॥९३॥ समस्त भावों के जानने वाले भगवान् ने शंकर की बातें सुनकर (सर्वांगपूर्ण) चन्द्रमा से (आधे) चन्द्रमा को निकाल कर दक्ष को सौंप दिया ॥९४॥ चन्द्रमा का अर्धभाग रोगहीन होकर शिव के शिखर पर स्थित हुआ और विष्णु द्वारा दिये गये दूसरे भाग को प्रजापति दक्ष ने ग्रहण किया ॥९५॥ दक्ष ने उस चन्द्रमा को यक्ष्मा रोग से पीड़ित जानकर श्रीकृष्ण की स्तुति की। इस पर भगवान् ने चन्द्रमा को एक पक्ष में पूर्ण और दूसरे पक्ष में क्षीण (क्षय) बना दिया। द्विज ! इस प्रकार भगवान् कृष्ण उन्हें वर देकर अपने घर चले गये और दक्ष ने उस चन्द्रमा को लेकर पुनः अपनी कन्याओं को सौंप दिया ॥९६-९७॥ चन्द्रमा भी अपनी पत्नियों को पाकर दिन-रात विहार करने लगे और उसी दिन से उन सबको समभाव से देखने लगे ॥९८॥ मुने ! इस प्रकार मैंने पुष्कर-तीर्थ में मुनियों की सभा में गुरु के मुख से सृष्टिक्रम के संबंध में जो कुछ सुना था, वह तुम्हें बता दिया ॥९९॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में नवाँ अध्याय समाप्त ॥९॥

अध्याय १०

जाति और संबंध का निर्णय

सौति बोले—ज्ञानियों में श्रेष्ठ भृगु के पुत्र च्यवन और शुक्र हुए। क्रतु की क्रिया नामक भार्या ने बालखिल्य

---

१ ख. ०ष्णस्तेभ्यो व ०।

त्रयः पुत्राश्चाङ्गिरसो बभूवुर्मुनिसत्तमाः । बृहस्पतिरुतथ्यश्च[1] शम्बरश्चापि शौनक ॥२॥
वसिष्ठस्य सुतः शक्तिः शक्तेः पुत्रः पराशरः । पराशरसुतः श्रीमान्कृष्णद्वैपायनो हरिः ॥३॥
व्यासपुत्रः शिवांशश्च शुकश्च ज्ञानिनां वरः । विश्वश्रवाः पुलस्त्यस्य यस्य पुत्रो धनेश्वरः ॥४॥

शौनक उवाच

अहो पुराणविदुषामत्यन्तं दुर्गमं वचः । न बुद्धं वचनं किंचिद्धनेशोत्पत्तिपूर्वकम् ॥५॥
अधुना कथितं जन्म धनेशस्येश्वरादिदम् । पुनर्भिन्नक्रमं जन्म ब्रवीषि कथमेव माम् ॥६॥

सौतिरुवाच

बभूवुरेते दिक्पालाः पुरा च परमेश्वरात् । पुनश्च ब्रह्मशापेन स च विश्रवसः सुतः ॥७॥
गुरवे दक्षिणां दातुमुतथ्यश्च धनेश्वरम् । ययाचे कोटिसौवर्णं यत्नतश्च प्रचेतसे ॥८॥
धनेशो विरसो भूत्वा तस्मै तद्दातुमुद्यतः । चकार भस्मसाद्विप्र पुनर्जन्म ललाभ सः ॥९॥
तेन विश्रवसः पुत्रः कुबेरश्च धनाधिपः । रावणः कुम्भकर्णश्च धार्मिकश्च विभीषणः ॥१०॥
पुलहस्य सुतो वात्स्यः शाण्डिल्यश्च रुचेः सुतः । सावर्णिर्गौतमाज्जज्ञे मुनिप्रवर एव सः ॥११॥
काश्यपः कश्यपाज्जातो भरद्वाजो बृहस्पतेः । (स्वयं वात्स्यश्च पुलहात्सावर्णिर्गौतमात्तथा ॥१२॥
शाण्डिल्यश्च रुचेः पुत्रो मुनिस्तेजस्विनां वरः ।) बभूवुः पञ्चगोत्राश्च एतेषां प्रवरा भवे ॥१३॥

नामक ऋषियों को उत्पन्न किया ॥१॥ शौनक! अंगिरा से मुनिश्रेष्ठ बृहस्पति, उतथ्य और शम्बर नामक तीन पुत्र हुए ॥२॥ बशिष्ठ के पुत्र शक्ति, शक्ति के पुत्र पराशर और पराशर के श्रीमान् कृष्ण द्वैपायन (व्यास) पुत्र हुए, जो विष्णु के अंशावतार माने जाते हैं ॥३॥ व्यास के ज्ञानिप्रवर शुक पुत्र हुए, जो शिव के अंश माने जाते हैं। पुलस्त्य के विश्वश्रवा और विश्वश्रवा के धनेश्वर (कुबेर) पुत्र हुए ॥४॥

शौनक बोले—आश्चर्य है कि पुराणवेत्ताओं की बातें अत्यन्त दुर्बोध होती हैं। धनेश कुबेर की उत्पत्ति आदि की बातें मैं कुछ समझ नहीं सका। क्योंकि अभी आपने कुबेर की उत्पत्ति ईश्वर (श्रीकृष्ण) से बतायी है, तो फिर उनके जन्म के बारे में दूसरा क्रम आप मुझसे कैसे बता रहे हैं (अर्थात् कुबेर विश्वश्रवा के पुत्र कैसे हुए) ? ॥५-६॥

सौति बोले—प्राचीन काल में ये सब परमेश्वर द्वारा उत्पन्न होकर दिक्पाल हुए थे, किन्तु पुनः ब्रह्मा के शाप से विश्वश्रवा के पुत्र हुए ॥७॥ (एक बार) उतथ्य ने अपने गुरु प्रचेता को दक्षिणा देने के लिए कुबेर से एक करोड़ सुवर्ण-मुद्रायें माँगीं। कुबेर ने उनके साथ निष्ठुरतापूर्ण व्यवहार किया। विप्र! इस पर उतथ्य ने उन्हें भस्म कर दिया, जिससे कुबेर को पुनर्जन्म ग्रहण करना पड़ा ॥८-९॥ इस प्रकार विश्वश्रवा के धनाधीश्वर कुबेर, रावण, कुम्भकर्ण और धार्मिक विभीषण पुत्र हुए ॥१०॥ पुलह के वात्स्य, रुचि के शाण्डिल्य और गौतम के मुनिश्रेष्ठ सावर्णि पुत्र हुए ॥११॥ कश्यप के काश्यप और बृहस्पति के भारद्वाज, पुत्र हुए। स्वयं वात्स्य पुलह से उत्पन्न हुए, गौतम से सावर्णि और रुचि से महातेजस्वी मुनि शाण्डिल्य आविर्भूत हुए ॥१२-१३॥ इन मुनियों के

---

१ क. ०श्च संवर्तश्चा०।

बभूवुर्ब्रह्मणो वक्त्रादन्या ब्राह्मणजातयः । ताः स्थिता देशभेदेषु गोत्रशून्याश्च शौनक ॥१४॥
चन्द्रादित्यमनूनां च प्रवराः क्षत्रियाः स्मृताः । ब्रह्मणो बाहुदेशाच्चैवान्याः क्षत्रियजातयः ॥१५॥
ऊरुदेशाच्च वैश्याश्च पादतः शूद्रजातयः । तासां संकरजातेन बभूवुर्वर्णसंकराः ॥१६॥
गोपनापितभिल्लाश्च तथा मोदककूबरौ । ताम्बूलिस्वर्णकारौ च वणिग्जातय एव च ॥१७॥
इत्येवमाद्या विप्रेन्द्र सच्छूद्राः परिकीर्तिताः । शूद्राविशोस्तु करणोऽम्बष्ठो वैश्याद्द्विजन्मनोः ॥१८॥
विश्वकर्मा च विद्यायां वीर्याधानं चकार सः । ततो बभूवुः पुत्राश्च नवैते शिल्पकारिणः ॥१९॥
मालाकारः कर्मकारः शङ्खकारः कुविन्दकः । कुम्भकारः कांस्यकारः षडेते शिल्पिनां वराः ॥२०॥
सूत्रधारश्चित्रकारः स्वर्णकारस्तथैव च । पतितास्ते ब्रह्मशापादयाज्या वर्णसंकराः ॥२१॥

शौनक उवाच

कथं देवो विश्वकर्मा वीर्याधानं चकार सः । शूद्रायामधमायां च कथं ते पतितास्त्रयः ॥२२॥
कथं तेषु ब्रह्मशापो ह्यभवत्केन हेतुना । हे पुराणविदां श्रेष्ठ तन्नः शंसितुमर्हसि ॥२३॥

सौतिरुवाच

घृताची कामतः कामं वेषं चक्रे मनोहरम् । तामपश्यद्विश्वकर्मा गच्छन्तीं पुष्करे पथि ॥२४॥
आगच्छत्तद्विलोकाच्च प्रसादोत्फुल्लमानसः । तां ययाचे स शृङ्गारं कामेन हृतचेतनः ॥२५॥

पाँच गोत्र परम प्रसिद्ध हुए। शौनक ! फिर ब्रह्मा के मुख से अन्य ब्राह्मण-जातियाँ उत्पन्न हुईं। वे विभिन्न देशों में अवस्थित हुईं और वे गोत्रशून्य हैं ॥१४॥ उसी प्रकार चन्द्र, सूर्य और मनु द्वारा उत्पन्न क्षत्रिय-गण श्रेष्ठ हैं और अन्य क्षत्रिय जाति के लोग ब्रह्मा के बाहु से उत्पन्न हुए ॥१५॥ उनके ऊरु देश से वैश्य और चरण से शूद्रों की उत्पत्ति हुई---इन शूद्र जातियों के सांकर्य से (अर्थात् एक जाति की स्त्री में दूसरी जाति के पुरुष द्वारा) वर्ण-संकर उत्पन्न हुए ॥१६॥ विप्रवर ! गोप, नापित (नाई), भील, हलवाई, कूबर (सूत ?), तमोली, सोनार और बनिया---ये सब सत् शूद्र कहलाते हैं। शूद्र में वैश्य से उत्पन्न जाति को करण और वैश्य से द्विजाति की स्त्री में उत्पन्न जाति को अम्बष्ठ कहते हैं ॥१७-१८॥ विश्वकर्मा ने विद्या में वीर्याधान किया। उससे नव पुत्रों की उत्पत्ति हुई, जो शिल्पी कहे जाते हैं ॥१९॥ जैसे---माली, बढ़ई, शंख बनाने वाला, जुलाहा, कुम्हार और ठठेरा---ये छहों, शिल्पियों में श्रेष्ठ कहे गये हैं ॥२०॥ सूत्रधार (बढ़ई), चित्रकार (मूर्ति बनाने वाला) और सोनार, ये तीनों ब्रह्मा के शाप से पतित, वर्णसंकर एवम् अयाज्य (यज्ञ आदि न कराने योग्य) माने गए हैं ॥२१॥

शौनक बोले---विश्वकर्मा ने देव होकर अधम शूद्र-स्त्री में वीर्याधान कैसे किया ? वे तीनों (सूत्रधार आदि) पतित कैसे हो गये ? ब्रह्मा ने उन्हें शाप क्यों दिया ? पुराणवेत्ताओं में श्रेष्ठ ! यह सब हमें बताने की कृपा करें ॥२२-२३॥

सौति बोले---(एक बार) घृताची (नामक अप्सरा) कामवश कमनीय वेश बनाकर कामदेव के पास जा रही थी। पुष्कर के पास मार्ग में विश्वकर्मा ने उसे देख लिया ॥२४॥ देखते ही विश्वकर्मा का मन आनन्द से खिल उठा और कामासक्त होकर उन्होंने उससे सहवास की याचना की ॥२५॥ उस समय वह समस्त अलंकारों

रत्नालङ्कारभूषाढ्यां सर्वावयवकोमलाम् । यथा षोडशवर्षीयां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम् ।।२६।।
बृहन्नितम्बभारार्तां मुनिमानसमोहिनीम् । अतिवेगकटाक्षेण लोलां कामातिपीडिताम् ।।२७।।
तच्छ्रोणीं कठिनां दृष्ट्वा वायुनाऽपहृताम्शुकाम् । अतीवोच्चैः स्तनयुगं कठिनं वर्तुलं परम् ।।२८।।
सुस्मितं चारु वक्त्रं च शरच्चन्द्रविनिन्दकम् । पक्वबिम्बफलारक्तस्वोष्ठाधरमनोहरम् ।।२९।।
सिन्दूरबिन्दुसंयुक्तं कस्तूरीबिन्दुसंयुतम् । कपोलमुज्ज्वलं शश्वन्महार्हमणिकुण्डलम् ।।३०।।
तामुवाच प्रियां शान्तां कामशास्त्रविशारदः । कामाग्निवर्धनोद्योगि वचनं श्रुतिसुन्दरम् ।।३१।।

विश्वकर्मोवाच

अयि क्व यासि ललिते मम प्राणाधिके प्रिये । मम प्राणांश्चापहृत्य तिष्ठ कान्ते क्षणं शुभे ।।३२।।
तवैवान्वेषणं कृत्वा भ्रमामि जगतीतलम् । स्वप्राणांस्त्यक्तुमिष्टोऽहं त्वां न दृष्ट्वा हुताशने ।।३३।।
त्वं कामलोकं यासीति श्रुत्वा रम्भामुखान्मया । आगच्छमहमेवाद्य चास्मिन्वर्त्मन्यवस्थितः ।।३४।।
अहो सरस्वतीतीरे पुष्पोद्याने मनोहरे । सुगन्धिमन्दशीतेन वायुना सुरभीकृते ।।३५।।
रम[1] कान्ते मया सार्द्धं यूना कान्तेन शोभने । विदग्धाया विदग्धेन संगमो गुणवान्भवेत् ।।३६।।
स्थिरयौवनसंयुक्ता त्वमेव चिरजीविनी । कामुकी कोमलाङ्गी च सुन्दरीषु च सुन्दरी ।।३७।।
मृत्युंजयवरेणैव मृत्युकन्या जिता मया । कुबेरभवनं गत्वा धनं लब्धं कुबेरतः ।।३८।।

से विभूषित थी। उसके सभी अंग कोमल थे। नित्य सुस्थिर यौवन वाली वह सोलह वर्ष की बाला दीख रही थी। उसके नितम्ब विशाल थे। वह मुनियों के भी मन को मोहित करने वाली थी। वह अत्यन्त वेग से कटाक्ष करने के कारण चंचल तथा अत्यन्त कामपीड़ित मालूम हो रही थी। उसका नितम्ब कठोर था। वायु उसके वस्त्र को उड़ा देता था। उसके दोनों कुच उन्नत, गोले और कठोर थे। शारदीय चन्द्रमा को लज्जित करने वाला उसका मुख मधुर मुसकान से युक्त था। उसके मनोहर ओठ पके बिम्बफल के समान लाल थे। कस्तूरी मिश्रित सिन्दूरबिन्दु उसके ललाट पर शोभित हो रहा था। उसके उज्ज्वल कपोलों पर बहुमूल्यक मणियों के बने कुण्डल चमक रहे थे। उस शान्त प्रिया से कामशास्त्र के पंडित विश्वकर्मा ने कामाग्निवर्धक तथा सुनने में सुन्दर (यह) वचन कहा—।।२६-३१।।

विश्वकर्मा बोले—सुन्दरी! प्राणप्रिये! मेरे प्राणों का अपहरण करके कहाँ जा रही हो? कान्ते! क्षण-भर ठहरो।।३२।। मैं तुम्हें खोजने के लिए सारे भूमण्डल में घूम रहा हूँ और तुम्हारे न मिलने पर सोच लिया है कि अग्नि में (कूद कर) मर जाऊँगा।।३३।। मैंने रम्भा के मुख से सुना कि तुम काम के पास जा रही हो। इसीलिए आज मैं इस मार्ग में आकर ठहर गया हूँ।।३४।। सुन्दरी! सरस्वती के तट पर मनोहर पुष्पवाटिका में, जो शीतल, मंद, सुगंध, वायु से सुगंधित हो उठी है, मुझ सुन्दर एवं युवक कान्त के साथ सहवास करो; क्योंकि चतुर पुरुष के साथ चतुर स्त्री का समागम अत्यन्त सुखप्रद होता है।।३५-३६।। तुम चिरजीविनी एवं नित्ययौवना हो। तुम कामुकी, कोमलांगी और सुन्दरियों में भी सुन्दरी हो।।३७।। मैंने मृत्युञ्जय (शिव) के वरदान से मृत्यु की कन्या को जीत लिया है। कुबेर के घर जाकर उनसे धन प्राप्त किया है। उसी प्रकार वरुण से रत्न की माला, वायु से

---

१ ख. यम०।

रत्नमाला च वरुणाद्वायोः स्त्रीरत्नभूषणम् । वह्निशुद्धं वस्त्रयुगं वह्नेः प्राप्तं महौजसः ॥३९॥
कामशास्त्रं कामदेवाद्योषिद्रञ्जनकारणम् । शृङ्गारशिल्पं यत्किंचिल्लब्धं चन्द्राच्च दुर्लभम् ॥४०॥
रत्नमालां वस्त्रयुग्मं सर्वाण्याभरणानि च । तुभ्यं दातुं हृदि कृतं प्राप्तं तत्क्षणमेव च ॥४१॥
गृहे तानि च संस्थाप्य चाऽऽगतोऽन्वेषणे भवे । विरामे सुखसंभोगे तुभ्यं दास्यामि सांप्रतम् ॥४२॥
कामुकस्य वचः श्रुत्वा घृताची सस्मिता मुने । ददौ प्रत्युत्तरं शीघ्रं नीतियुक्तं मनोहरम् ॥४३॥

घृताच्युवाच

त्वया यदुक्तं भद्रं तत्स्वीकरोम्यधुना परम् । किंतु सामयिकं वाक्यं ब्रवीष्यामि स्मरातुर ॥४४॥
कामदेवालयं यामि कृतवेषा च तत्कृते । यद्दिने यत्कृते यामो वयं तेषां च योषितः ॥४५॥
अद्याहं कामपत्नी च गुरुपत्नी तवाधुना । त्वयोक्तमधुनेदं च पठितं [1]कामदेवतः ॥४६॥
विद्यादाता मन्त्रदाता गुरुर्लक्षगुणैः पितुः । मातुः सहस्रगुणवान्नास्त्यन्यस्तत्समो गुरुः ॥४७॥
गुरोः शतगुणैः पूज्या गुरुपत्नी श्रुतौ श्रुता । पितुः शतगुणं पूज्या यथा माता विचक्षणः ॥४८॥
मात्रा समागमे सूनोर्यावान्दोषः श्रुतौ श्रुता । ततो लक्षगुणो दोषो गुरुपत्नीसमागमे ॥४९॥
मातरित्येव शब्देन यां च संभाषते नरः । सा मातृतुल्या सत्येन धर्मः साक्षी सतामपि ॥५०॥
तया हि संगतो यः स्यात्कालसूत्रं प्रयाति सः । तत्र घोरे वसत्येव यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥५१॥

स्त्री समुचित रत्नों के भूषण, महान् ओजस्वी अग्नि से शुद्ध किये दो वस्त्र और कामदेव से कामशास्त्र प्राप्त किया है जो स्त्रियों के लिए मनोरञ्जन की वस्तु है। चन्द्रमा से दुर्लभ शृंगारकला प्राप्त की है ॥३७-४०॥ वह रत्नमाला, दोनों वस्त्र और समस्त आभूषण तुम्हें देने के लिए मैंने उसी समय मन में सोच लिया था ॥४१॥ उन वस्तुओं को घर में रखकर तुम्हें खोजने के लिए मैं यहाँ आया। इस समय तुम्हारे साथ सुख-सम्भोग करके पश्चात् तुम्हें वह सब सौंप दूंगा ॥४२॥ मुने! कामुक की बातें सुनकर मुसकुराती हुई घृताची उसे नीतियुक्त सुन्दर उत्तर तुरन्त देने लगी ॥४३॥

घृताची बोली—हे कामातुर! तुमने जो सुन्दर बात कही है, उसे मैं स्वीकार करती हूँ; किन्तु इस समय मैं तुमसे कुछ सामयिक बातें कहना चाहती हूँ ॥४४॥ मैं कामदेव के लिए सुन्दर वेश बनाकर उसी के घर जा रही हूँ; क्योंकि हम लोग जिस दिन जिसके लिए (वेष बनाकर) जाती हैं, उस दिन उसी की स्त्रियाँ हो जाती हैं। आज मैं काम की पत्नी और तुम्हारी गुरुपत्नी हूँ। क्योंकि तुमने अभी कहा है कि मैंने कामदेव से पढ़ा है।' ॥४५-४६॥ विद्यादाता और मन्त्रदाता गुरु पिता से लाख गुना और माता से सहस्र गुना अधिक (मान्य) है। दूसरा उसके समान गुरु नहीं है ॥४७॥ विद्वन्! वेद में यह बात सुनी गयी है कि गुरु से गुरुपत्नी उसी तरह सौगुना अधिक पूज्य है जैसे पिता से सौगुना अधिक माता ॥४८॥ माता के साथ समागम करने पर पुत्र के लिए जितने दोष वेद में सुने गये हैं, उससे लाख गुना अधिक दोष गुरुपत्नी के समागम से प्राप्त होता है ॥४९॥ मनुष्य जिसको 'माता' शब्द से संबोधित करके बात-चीत करता है, वह यथार्थ में उसकी माता के तुल्य है; क्योंकि सज्जनों का भी साक्षी धर्म ही है ॥५०॥ इसलिए उसके साथ जो समागम करता है, वह कालसूत्र (नरक) को प्राप्त होकर वहाँ घोर यातना

---

१ क. ०मवेतदः।

मात्रा सह समायोगे ततो दोषश्चतुर्गुणः । सार्द्धं च गुरुपत्न्या च तल्लक्षगुण एव च ॥५२॥
कुम्भीपाके पतत्येव यावद्ब्रह्मणो वयः । प्रायश्चित्तं पापिनश्च तस्य नैव श्रुतौ श्रुतम् ॥५३॥
चक्राकारं कुलालस्य तीक्ष्णधारं च खड्गवत् । वसामूत्रपुरीषैश्च परिपूर्णं सुदुस्तरम् ॥५४॥
शूलवत्कृमिसंयुक्तं तप्तमग्निसमं द्रवत् । पापिनां तद्विहारं च कुम्भीपाकं प्रकीर्तितम् ॥५५॥
यावान्दोषो हि पुंसां च गुरुपत्नीसमागमे । तावांश्च गुरुपत्न्या वै तत्र चेत्कामुकी यदि ॥५६॥
अद्य यास्यामि कामस्य मन्दिरं तस्य कामिनी । वेषं कृत्वाऽऽगमिष्यामि त्वत्कृतेऽहं दिनान्तरे ॥५७॥
घृताचीवचनं श्रुत्वा विश्वकर्मा रुरोष ताम् । शशाप शूद्रयोनिं च व्रजेति जगतीतले ॥५८॥
घृताची तद्वचः श्रुत्वा तं शशाप सुदारुणम् । लभ जन्म भवे त्वं च स्वर्गभ्रष्टो भवेति च ॥५९॥
घृताची कारुमुक्त्वा च साऽगच्छत्काममन्दिरम् । कामेन सुरतं कृत्वा कथयामास तां कथाम् ॥६०॥
सा भारते च कामोक्त्या गोपस्य मदनस्य च । पत्न्यां प्रयागे नगरे लेभे जन्म च शौनक ॥६१॥
जातिस्मरा तत्प्रसूता बभूव च तपस्विनी । वरं न वव्रे धर्मिष्ठा तपस्यायां मनो दधौ ॥६२॥
तपश्चकार तपसा तप्तकाञ्चनसंनिभा । दिव्यं च शतवर्षं सा गङ्गातीरे मनोरमे ॥६३॥
वीर्येण सुरकारोश्च[1] नव पुत्रान्प्रसूय सा । पुनः स्वर्लोकं गत्वा च सा घृताची बभूव ह ॥६४॥

तब तक भोगता है जब तक सूर्य और चन्द्रमा का अस्तित्व रहता है ॥५१॥ माता के साथ समागम करने से उससे चौगुना और गुरुपत्नी के साथ समागम करने से उससे लाख गुना अधिक दोष लगता है ॥५२॥ और वह ब्रह्मा की आयु की अवधि तक कुम्भीपाक नरक में पड़ा रहता है। ऐसे पापियों का प्रायश्चित्त वेद में सुना ही नहीं गया है ॥५३॥ कुम्हार के चक्के के समान गोलाकार, खड्ग के समान तीक्ष्ण धार वाला, मांस, मूत्र और मल से भरा हुआ अत्यन्त दुस्तर, शूल के समान कीड़ों से युक्त और प्रज्वलित अग्नि के समान तपता एवं पिघलता हुआ वह कुम्भीपाक नरक पापियों के लिए कर्मभोग का स्थान बताया गया है ॥५४-५५॥ गुरुपत्नी के साथ समागम करने पर पुरुषों को जितना दोष लगता है उतना ही दोष गुरुपत्नी को भी लगता है, यदि वह कामुकी होकर उस पुरुष के साथ सहवास करती है ॥५६॥ आज मैं कामदेव की कामिनी हूँ, अतः उसी के यहाँ जा रही हूँ। तुम्हारे लिए भी दूसरे दिन (उत्तम) वेष बनाकर आऊँगी ॥५७॥ घृताची की ऐसी बातें सुनकर विश्वकर्मा ने उस पर क्रोध किया और उसे शाप दिया कि—तुम भूतल पर शूद्र-योनि में उत्पन्न हो ॥५८॥ घृताची ने भी उनकी बात सुनकर उन्हें दारुण शाप दिया कि तुम भी स्वर्ग से भ्रष्ट होकर पृथ्वी पर जन्म ग्रहण करो ॥५९॥ विश्वकर्मा से इस प्रकार कहकर घृताची काम के भवन में पहुँची। उससे सम्भोग करने के उपरान्त वह घटना बता दी ॥६०॥ काम को बताने के अनन्तर घृताची ने भारत में तीर्थराज प्रयाग नगर में मदन नामक गोप के यहाँ जन्म ग्रहण किया। शौनक! वहाँ उत्पन्न होने पर उसे पूर्व जन्म का स्मरण बना रहा। अतः उसने किसी वर का वरण न करके तपस्या करने की ही मन में ठान ली ॥६१-६२॥ गंगा के मनोहर तट पर तपाये हुए सुवर्ण के समान वर्ण वाली उस घृताची ने दिव्य सौ वर्षों तक तप किया ॥६३॥ पश्चात् देवों के शिल्पी (विश्वकर्मा) के वीर्य द्वारा नौ पुत्रों को उत्पन्न कर घृताची स्वर्ग को चली गयी ॥६४॥

---

१ क. ०श्च चाष्टौ पु०।

शौनक उवाच

कथं वीर्यं सा दधार सुरकारोस्तपस्विनी । पुत्रान्नव[1] प्रसूता च कुत्र वा कति वासरान् ॥६५॥

सौतिरुवाच

विश्वकर्मा तु तच्छापं समाकर्ण्य रुषाऽन्वितः । जगाम ब्रह्मणः स्थानं शोकेन हृतचेतनः ॥६६॥
नत्वा स्तुत्वा च ब्रह्माणं कथयामास तां कथाम् । ललाभ जन्म ब्राह्मण्यां [2]पृथिव्यामाज्ञया विधेः ॥६७॥
स एव ब्राह्मणो भूत्वा भुवि कारुर्बभूव ह । नृपाणां च गृहस्थानां नानाशिल्पं चकार ह ॥६८॥
शिल्पं च कारयामास सर्वेभ्यः सर्वतः सदा । विचित्रं विविधं शिल्पमाश्चर्यं सुमनोहरम् ॥६९॥
एकदा तु प्रयागे च शिल्पं कृत्वा नृपस्य च । स्नातुं जगाम गङ्गां स चापश्यत्तत्र कामिनीम् ॥७०॥
घृताचीं नवरूपां च युवतिं तां तपस्विनीम् । जातिस्मरां तां बुबुधे स च जातिस्मरो द्विजः ॥७१॥
दृष्ट्वा सकामः सहसा बभूव हृतचेतनः । उवाच मधुरं शान्तः शान्तां तां च तपस्विनीम् ॥७२॥

ब्राह्मण उवाच

अहोऽधुना त्वमत्रैव घृताचि सुमनोहरे[3] । मा मां स्मरसि रम्भोरु विश्वकर्माऽहमेव च ॥७३॥
शापमोक्षं करिष्यामि भज मां तव सुन्दरि । त्वत्कृतेऽतिदहत्येव मनो मे स च मन्मथः ॥७४॥

शौनक बोले——उस तपस्विनी ने विश्वकर्मा का वीर्य कैसे धारण किया? नौ पुत्रों को कहाँ जन्म दिया? और कितने दिनों तक पृथ्वी पर रही? ॥६५॥

सौति बोले——विश्वकर्मा उसका शाप सुनकर क्रुद्ध हुए और शोक करते हुए ब्रह्मा के यहाँ चले गये ॥६६॥ ब्रह्मा को प्रणाम कर के उन्होंने उस घटना को कह सुनाया। पश्चात् ब्रह्मा की आज्ञा से पृथ्वी पर एक ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न हुए ॥६७॥ ब्राह्मण-वंश में उत्पन्न होकर भी वे शिल्पी का ही कार्य करते थे जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने राजाओं और अन्य गृहस्थों के यहाँ अनेक प्रकार के शिल्प-कार्य किये ॥६८॥ वे सदा सब लोगों से शिल्प का ही कार्य कराते थे। उनका शिल्प विविध, विचित्र, आश्चर्यजनक तथा अत्यन्त मनोहर होता था ॥६९॥ एक बार वे प्रयाग में राजा के यहाँ कुछ कारीगरी का काम करके स्नान करने के लिए गंगाजी गए। वहाँ उन्हें एक सुन्दरी तपस्विनी दिखायी पड़ी ॥७०॥ द्विज! (पूर्वजन्म का स्मरणकर्ता) जातिस्मर होने के कारण उन्होंने उस नवयुवती घृताची को, जिसे अपने पूर्व जन्मों का स्मरण था, पहचान लिया ॥७१॥ अतः उसे देखते ही वे सहसा कामविह्वल हो गये। पुनः शान्त होकर उन्होंने उस शान्त तपस्विनी से मधुर वाणी में कहा ॥७२॥

ब्राह्मण बोले——अहा! अत्यन्त मनोहर रूप धारण करने वाली घृताची! तुम इस समय यहीं हो। हे कदलीस्तम्भ के समान ऊरु वाली! मैं भी विश्वकर्मा हूँ। क्या तुम मुझे पहचान रही हो ॥७३॥ सुन्दरी! मैं तुम्हें शापमुक्त कर दूंगा, मेरे साथ समागम करो। तुम्हारे ही लिए (कामदेव) मेरे मन को अत्यन्त जला रहा

---

१ क. ०त्रानष्टौ प्र०। २ ख. ०थिमां साऽऽज्ञ०। ३ क. ०रे मां संस्म०।

द्विजस्य वचनं श्रुत्वा घृताची नवरूपिणी। उवाच मधुरं शान्ता नीतियुक्तं परं वचः ॥७५॥

गोपिकोवाच

तद्दिने कामकान्ताऽहमधुना च तपस्विनी। कथं त्वया संगता स्यां गङ्गातीरे च भारते ॥७६॥
विश्वकर्मन्निदं पुण्यं कर्मक्षेत्रं च भारतम्। अत्र यत्क्रियते कर्म भोगोऽन्यत्र शुभाशुभम् ॥७७॥
धर्मी मोक्षकृते जन्म प्रलभ्य तपसः फलात्। निबद्धः कुरुते कर्म मोहितो विष्णुमायया ॥७८॥
माया नारायणीशाना परितुष्टा च यं भवेत्। तस्मै ददाति श्रीकृष्णो भक्तिं तन्मन्त्रमीप्सितम् ॥७९॥
यो मूढो विषयासक्तो लब्धजन्मा च भारते। विहाय कृष्णं सर्वेशं स मुग्धो विष्णुमायया ॥८०॥
सर्वं स्मरामि देवाहमहो जातिस्मरा पुरा। घृताची सुरवेश्याऽहमधुना गोपकन्यका ॥८१॥
तपः करोमि मोक्षार्थं गङ्गातीरे सुपुण्यदे। नात्र स्थलं च क्रीडायाः स्थिरस्त्वं भव कामुक ॥८२॥
अन्यत्र च कृतं पापं गङ्गायां च विनश्यति। गङ्गातीरे कृतं पापं सद्यो लक्षगुणं भवेत् ॥८३॥
तत्तु नारायणक्षेत्रे तपसा च विनश्यति। सद्यो वा कामतः कृत्वा निवृत्तश्च भवेत्पुनः ॥८४॥
घृताचीवचनं श्रुत्वा विश्वकर्माऽनिलाकृतिः। जगाम तां गृहीत्वा च मलयं चन्दनालयम् ॥८५॥
रम्यायां मलयद्रोण्यां पुष्पतल्पे मनोरमे। पुष्पचन्दनवातेन संततं सुरभीकृते ॥८६॥

है ॥७४॥ ब्राह्मण की बात सुनकर नवीन रूप धारण करने वाली शान्त घृताची ने मधुर एवं नीतियुक्त वचन कहा ॥७५॥

गोपिका बोली—उस दिन मैं काम की पत्नी थी और आज तपस्विनी हूँ और फिर इस भारत में गंगा के तट पर तुम्हारे साथ कैसे समागम कर सकती हूँ ॥७६॥ क्योंकि हे विश्वकर्मन्! यह भारत पुण्य कर्मक्षेत्र है। यहाँ जो कुछ शुभाशुभ कर्म किया जाता है उसका भोग अन्यत्र प्राप्त होता है ॥७७॥ धर्मात्मा पुरुष तपोबल से मोक्ष के लिए यहाँ (भारत में) जन्म लेता है और विष्णु की माया से मोहित एवं बद्ध होकर कर्म करता है ॥७८॥ क्योंकि सर्वसमर्थ नारायणी माया जिस पर प्रसन्न होती है उसी को भगवान् श्रीकृष्ण अपनी भक्ति और उसका अभि-लषित मन्त्र प्रदान करते हैं ॥७९॥ भारत में जन्म ग्रहण कर जो मूर्ख सर्वेश भगवान् श्रीकृष्ण को छोड़कर विषय-वासना में ही आसक्त रहता है, उसे भगवान् विष्णु की माया से मोहित ही जानना चाहिए ॥८०॥ देव! मैं पूर्वजन्म की सब बातों का स्मरण कर रही हूँ। मैं पहले की देववेश्या घृताची हूँ और इस समय गोप की कन्या हूँ ॥८१॥ अत्यन्त पुण्यप्रद गंगा-तट पर मैं मोक्ष के लिए तप कर रही हूँ। अतः हे कामुक! तुम इस समय शान्तचित्त रहो, क्योंकि यह क्रीड़ा करने का स्थान नहीं है ॥८२॥ अन्यत्र जो पाप किया जाता है वह गंगा में नष्ट होता है और गंगा के तट पर किया हुआ पाप तुरन्त लाख गुना बढ़ जाता है ॥८३॥ वह पाप नारायण क्षेत्र (गंगा के किनारे चार हाथ तक की भूमि) में तप के द्वारा ही विनष्ट होता है। आपाततः या कामना वश किया गया भी वह पाप निवृत्त हो जाता है ॥८४॥ वायु के आकार वाले विश्वकर्मा ने घृताची की बात सुनकर उसे साथ लेकर चन्दनों के आलय मलयाचल पर चले गये ॥८५॥ मलय की उपत्यका में पुष्पों की मनोहर शय्या लगायी, जो पुष्पों और चन्दनों से सम्पृक्त वायु से अत्यन्त सुगन्धित हो रही थी। निर्जन वन में उसी शय्या पर उन्होंने उसके साथ सुख-सम्भोग

चकार सुखसंभोगं तया स विजने वने। पूर्णं द्वादशवर्षं च बुबुधे न दिवानिशम् ॥८७
बभूव गर्भः कामिन्याः परिपूर्णः सुदुर्वहः। सा सुषाव च तत्रैव पुत्रान्नव[1] मनोहरान् ॥८८
कृतशिक्षितशिल्पांश्च ज्ञानयुक्तांश्च शौनक। पूर्वप्राक्तनतो योग्यान्बलयुक्तान्विचक्षणान् ॥८९
मालाकारान्कर्मकारान्छङ्खकारान्कुविन्दकान्। कुम्भकारान्सूत्रकारान्स्वर्णचित्रकरांस्तथा ॥९०
तौ च तेभ्यो वरं दत्त्वा तान्संस्थाप्य महीतले। मानवीं तनुमुत्सृज्य जग्मतुर्निजमन्दिरम् ॥९१
स्वर्णकारः स्वर्णचौर्याद्‌ब्राह्मणानां द्विजोत्तम। बभूव पतितः सद्यो ब्रह्मशापेन कर्मणा ॥९२
सूत्रकारो[2] द्विजानां तु शापेन पतितो भुवि। शीघ्रं च यज्ञकाष्ठानि न ददौ तेन हेतुना ॥९३
व्यतिक्रमेण चित्राणां सद्यश्चित्रकरस्तथा। पतितो ब्रह्मशापेन ब्राह्मणानां च कोपतः ॥९४
कश्चिद्वणिग्विशेषश्च संसर्गात्स्वर्णकारिणः। स्वर्णचौर्यादिदोषेण पतितो ब्रह्मशापतः ॥९५
कुलटायां च शूद्रायां चित्रकारस्य वीर्यतः। बभूवाट्टालिकाकारः पतितो जारदोषतः ॥९६
अट्टालिकाकारबीजात्कुम्भकारस्य योषिति। बभूव कोटकः सद्यः पतितो गृहकारकः ॥९७
कुम्भकारस्य बीजेन सद्यः कोटकयोषिति। बभूव तैलकारश्च कुटिलः पतितो भुवि ॥९८
सद्यः क्षत्रियबीजेन राजपुत्रस्य योषिति। बभूव तीवरश्चैव पतितो जारदोषतः ॥९९
तीवरस्य तु बीजेन तैलकारस्य योषिति। बभूव पतितो दस्युर्लेटश्च परिकीर्तितः ॥१००

किया। पूरे बारह वर्ष तक (सुखसम्भोग में लीन रहने के कारण) उन्हें दिन-रात का कुछ भी ज्ञान न रहा पश्चात् उस कामिनी को परिपूर्ण और अत्यन्त दुर्वह गर्भ रह गया। उसने उसी स्थान पर नौ सुन्दर पुत्रों को उत्प किया। शौनक ! उन बालकों को भलीभाँति शिल्प की शिक्षा देकर उन्हें ज्ञानी, योग्य, बलवान् और बुद्धिमान् बनाया पश्चात् उन्हें माली, बढ़ई, शंख बनाने वाले, जुलाहा, कुम्हार, सूत्रकार, स्वर्णकार और चित्रकार का काम सौंप क वरदान दिया। अन्त में उन लोगों को भूतल पर स्थापित करके वे दोनों अपने मानवीय शरीर का त्याग कर अप लोक को चले गये ॥८६-९१॥ द्विजोत्तम ! स्वर्णकार ब्राह्मणों के सोने की चोरी करने के कारण उसी समय ब्रह्मशा से पतित हो गया ॥९२॥ सूत्रकार भी यज्ञ के निमित्त ब्राह्मणों को तत्क्षण लकड़ी न देने से उनके शाप से उसी सम पतित हो गया ॥९३॥ इसी प्रकार चित्रकार भी चित्रों के उलटफेर कर देने से ब्राह्मणों के शाप से पतित ह गया ॥९४॥ एक विशेष प्रकार का बनिया भी सोनारों के साथ रहकर सोने की चोरी में साथ देने के कार ब्राह्मण-शाप से पतित हो गया ॥९५॥ चित्रकार के वीर्य से कुलटा शूद्रा स्त्री में राजगीर उत्पन्न हुआ। जार-क (व्यभिचारदोष) से उत्पन्न होने के कारण वह भी पतित हो गया ॥९६॥ राजगीर से कुम्हार की स्त्री में उत्प कोटक भी, जो घर बनाता है, पतित हो गया ॥९७॥ कुम्हार के वीर्य से कोटक की स्त्री में कुटिल तेली उत्प हुआ। वह भी पतित कहलाया ॥९८॥ क्षत्रिय के बीज से राजपुत्र की स्त्री में तीवर उत्पन्न हुआ। वह भी व्यभि चार दोष के कारण पतित कहलाया ॥९९॥ तीवर के वीर्य से तेली की स्त्री में पतित दस्यु उत्पन्न हुआ जिसकी संज्ञा लेट भी हुई ॥१००॥ तीवर की कन्या में लेट ने छह पुत्रों को उत्पन्न किया जिनके नाम ये हैं—माल्ल, मन्त्र

---

१ क. ०त्रानष्टौ म०। २ छ. ख. ०त्रधारो०।

लेटस्तीवरकन्यायां जनयामास षट् सुतान्। माल्लं मन्त्रं मातरं च भण्डं कोलं कलंदरम् ॥१०१॥
ब्राह्मण्यां शूद्रवीर्येण पतितो जारदोषतः। सद्यो बभूव चाण्डालः सर्वस्मादधमोऽशुचिः ॥१०२॥
तीवरेण च चण्डाल्यां चर्मकारो बभूव ह। चर्मकार्यां च चण्डालान्मांसच्छेदो बभूव ह ॥१०३॥
मांसच्छेद्यां तीवरेण कोंचश्च परिकीर्तितः। कोंचस्त्रियां तु कैवर्तात्कर्तारः परिकीर्तितः ॥१०४॥
सद्यश्चाण्डालकन्यायां लेटवीर्येण शौनक। बभूवतुस्तौ द्वौ पुत्रौ दुष्टौ हड्डिडमौ तथा ॥१०५॥
क्रमेण हड्डिकन्यायां सद्यश्चाण्डालवीर्यतः बभूवुः पञ्च पुत्राश्च दुष्टा वनचराश्च ते ॥१०६॥
लेटात्तीवरकन्यायां गङ्गातीरे च शौनक। बभूव सद्यो यो बालो गङ्गापुत्रः प्रकीर्तितः ॥१०७॥
गङ्गापुत्रस्य कन्यायां वीर्याद्वै वेषधारिणः। बभूव वेषधारी च पुत्रो युङ्गी प्रकीर्तितः ॥१०८॥
वैश्यात्तीवरकन्यायां सद्यः शुण्डी बभूव ह। शुण्डियोषिति वैश्यात्तु पौण्ड्रकश्च बभूव ह ॥१०९॥
क्षत्रात्करणकन्यायां राजपुत्रो बभूव ह। राजपुत्र्यां तु करणादागरीति प्रकीर्तितः ॥११०॥
क्षत्रवीर्येण वैश्यायां कैवर्तः परिकीर्तितः। कलौ तीवरसंसर्गाद्धीवरः पतितो भुवि ॥१११॥
तीवर्यां धीवरात्पुत्रो बभूव रजकः स्मृतः। रजक्यां तीवराच्चैव कोयालीति बभूव ह ॥११२॥
नापिताद्गोपकन्यायां सर्वस्वी तस्य योषिति। क्षत्राद्बभूव व्याधश्च बलवान्मृगहिंसकः ॥११३॥
तीवराच्छुण्डिकन्यायां बभूवुः सप्त पुत्रकाः। ते कलौ हड्डिसंसर्गाद्बभूवुर्दस्यवः सदा ॥११४॥
ब्राह्मण्यामृषिवीर्येण ऋतोः प्रथमवासरे। कुत्सितश्चोदरे जातः कूदरस्तेन कीर्तितः ॥११५॥

मातर, भण्ड, कोल और कलन्दर। ॥१०१॥ जार कर्म के द्वारा शूद्र-वीर्य से ब्राह्मण में उत्पन्न पुरुष सबसे अधम एवं अपवित्र चाण्डाल हुआ। ॥१०२॥ तीवर से चाण्डाल की कन्या में चर्मकार उत्पन्न हुआ। चर्मकार की स्त्री में चाण्डाल द्वारा मांसच्छेद (बहेलिया) उत्पन्न हुआ ॥१०३॥ मांसच्छेद की स्त्री में तीवर से 'कोंच' की उत्पत्ति हुई और कोञ्च की स्त्री में कैवर्त से कर्त्तार की उत्पत्ति हुई ॥१०४॥ शौनक! चाण्डाल की कन्या में लेट के वीर्य से 'हड्डि और 'डम' नामक दो दुष्ट पुत्र उत्पन्न हुए ॥१०५॥ क्रमशः हड्डि की कन्या में चाण्डाल के वीर्य से पांच दुष्ट पुत्रों की उत्पत्ति हुई, जो वनचर कहे जाते हैं ॥१०६॥ शौनक! गंगा के किनारे लेट द्वारा तीवर की कन्या में जो बालक उत्पन्न हुआ वह गंगापुत्र कहलाया ॥१०७॥ और गंगापुत्र की कन्या में वेषधारी के वीर्य से वेषधारी पुत्र उत्पन्न हुआ जो 'युंगी' कहलाता है ॥१०८॥ वैश्य से तीवर की कन्या में शुण्डी की उत्पत्ति हुई और शुण्डी की स्त्री में वैश्य से 'पौण्ड्रक' उत्पन्न हुआ ॥१०९॥ क्षत्रिय से करण-कन्या में राजपुत्र और राजपुत्र की कन्या में करण द्वारा 'आगरी' उत्पन्न हुआ ॥११०॥ क्षत्रिय के वीर्य से वैश्य की स्त्री में कैवर्त्त उत्पन्न हुआ। कलि में तीवर के संसर्ग से पतित धीवर पृथ्वी पर उत्पन्न हुआ ॥१११॥ धीवर से तीवर की स्त्री में उत्पन्न पुत्र रजक (धोबी) कहलाया। तीवर से धोबिन में कोयालि की उत्पत्ति हुई ॥११२॥ नापित से गोप की कन्या में उत्पन्न पुत्र 'सर्वस्वी' और उसकी स्त्री में क्षत्रिय से व्याध की उत्पत्ति हुई, जो बलवान् और पशुहिंसक हुआ ॥११३॥ तीवर से शुण्डि की कन्या में सात पुत्र उत्पन्न हुए, जो कलियुग में हड्डि का साथ करने से सदा के लिए दस्यु हो गए ॥११४॥ ऋतुकाल के प्रथम दिन ब्राह्मणी में ऋषि के वीर्य से जो कुत्सित गर्भ रह गया वह उत्पन्न होने पर 'कूदर' कहलाया

तदशौचं विप्रतुल्यं पतितो ऋतुदोषतः। सद्यः कोटकसंसर्गादधमो जगतीतले ॥११६॥
क्षत्रवीर्येण वैश्यायामृतोः प्रथमवासरे । जातः पुत्रो महादस्युर्बलवांश्च धनुर्धरः ॥११७॥
चकार वागतीतं च क्षत्रियेणापि वारितः। तेन जात्या स पुत्रश्च वागतीतः प्रकीर्तितः ॥११८॥
क्षत्रवीर्येण शूद्रायामृतुदोषेण पापतः । बलवन्तो दुरन्ताश्च बभूवुर्म्लेच्छजातयः ॥११९॥
अविद्धकर्णाः क्रूराश्च निर्भया रणदुर्जयाः। शौचाचारविहीनाश्च दुर्धर्षा धर्मवर्जिताः ॥१२०॥
म्लेच्छात्कुविन्दकन्यायां जोलाजातिर्बभूव । जोलात्कुविन्दकन्यायां शराङ्कः परिकीर्तितः ॥१२१॥
वर्णसंकरदोषेण [1]बह्व्यश्चाश्रुतजातयः। तासां नामानि संख्याश्च को वा वक्तुं क्षमो द्विज ॥१२२॥
वैद्योऽश्वनीकुमारेण जातो विप्रस्य योषिति। वैद्यवीर्येण शूद्रायां बभूवुर्बहवो जनाः ॥१२३॥
ते च ग्राम्यगुणज्ञाश्च मन्त्रौषधिपरायणाः। तेभ्यश्च जाताः शूद्रायां ये व्यालग्राहिणो भुवि ॥१२४॥

शौनक उवाच

कथं ब्राह्मणपत्न्यां तु सूर्यपुत्रोऽश्विनीसुतः । अहो केनाविवेकेन वीर्याधानं चकार ह ॥१२५॥

सौतिरुवाच

गच्छन्तीं तीर्थयात्रायां ब्राह्मणीं रविनन्दनः। ददर्श कामुकः शान्तः पुष्पोद्याने च निर्जने ॥१२६॥

॥११५॥ उसका अशौच ब्राह्मण के समान ही होता है। वह (माता के) ऋतुदोष के कारण पतित हुआ और सद्यः कोटक के संसर्ग से वह भूतल पर अधम भी हुआ ॥११६॥ उसी प्रकार वैश्य की स्त्री में ऋतुकाल के प्रथम दिन में ही क्षत्रिय के वीर्य से उत्पन्न पुत्र 'महादस्यु' बलवान् और धनुर्धारी हुआ। उसने क्षत्रिय के मना करने पर भी उसके वचन के विरुद्ध कार्य किया, अतः जन्म से वह वागतीत कहलाया ॥११७-११८॥ क्षत्रिय के वीर्य से शूद्र स्त्री में ऋतुदोष के पाप से बलवान् एवं प्रचंड म्लेच्छ जातियाँ उत्पन्न हुईं ॥११९॥ वे म्लेच्छ अविद्धकर्ण (कान न छेदाने-वाले), क्रूर, निर्भय, रण में कठिनाई से जीते जाने वाले, पवित्रता एवं आचार से हीन दुर्द्धर्ष और धर्मरहित हुए ॥१२०॥ म्लेच्छ से कुविन्द की कन्या में 'जोला' जाति उत्पन्न हुई और जोला से कुविन्द की कन्या में 'शरांक' उत्पन्न हुआ ॥१२१॥ द्विज! इस प्रकार वर्णसंकर दोष से अनेक अश्रुत (न सुनी हुई) जातियाँ उत्पन्न हुईं। उनके नाम और संख्या बताने में भला कौन समर्थ है? ॥१२२॥

अश्विनीकुमार द्वारा ब्राह्मण-स्त्री में वैद्य उत्पन्न हुआ और वैद्य द्वारा शूद्र स्त्रियों से अनेक जनों की उत्पत्ति हुई। वे लोग ग्राम्य गुणों के जानकार और मन्त्र, औषध के प्रयोग में परायण हुए। पुनः उनके द्वारा शूद्र स्त्री से सँपेरों की उत्पत्ति हुई ॥१२३-१२४॥

शौनक बोले—ब्राह्मण-पत्नी में सूर्यपुत्र अश्विनी-कुमार ने यह दुस्साहस कैसे किया? उन्होंने किस अवि-वेक वश उसमें वीर्याधान किया ॥१२५॥

सौति बोले—कोई ब्राह्मणी तीर्थयात्रा कर रही थी। किसी निर्जन पुष्पवाटिका में उसके पहुँचने पर शान्त अश्विनी-कुमार उसे देख कर कामपीड़ित हो गए। प्रयत्नपूर्वक उसके द्वारा रोके जाने पर भी बलवान् अश्विनीकुमार

---

१ क. ०हव्यश्च शठजा०।

तथा निवारितो यत्नाद्बलेन बलवान्सुरः। अतीव सुन्दरीं दृष्ट्वा वीर्याधानं चकार सः ॥१२७॥
द्रुतं तत्याज गर्भं सा पुष्पोद्याने मनोहरे। सद्यो बभूव पुत्रश्च तप्तकाञ्चनसंनिभः ॥१२८॥
सपुत्रा स्वामिनो गेहं जगाम व्रीडिता सदा। स्वामिनं कथयामास यन्मार्गे दैवसंकटम् ॥१२९॥
विप्रो रोषेण तत्याज तं च पुत्रं स्वकामिनीम्। सरिद्बभूव योगेन सा च गोदावरी स्मृता ॥१३०॥
पुत्रं चिकित्साशास्त्रं च पाठयामास यत्नतः। नानाशिल्पं च मन्त्रं च स्वयं स रविनन्दनः ॥१३१॥
विप्रश्च वेतनाज्ज्योतिर्गणनाच्च निरन्तरम्। वेदधर्मपरित्यक्तो बभूव गणको भुवि ॥१३२॥
लोभी विप्रश्च शूद्राणामग्रे दानं गृहीतवान्। ग्रहणे मृतदानानामग्रदानी बभूव सः ॥१३३॥
कश्चित्पुमान्ब्रह्मयज्ञे यज्ञकुण्डात्समुत्थितः। स सूतो धर्मवक्ता च मत्पूर्वपुरुषः स्मृतः ॥१३४॥
पुराणं पाठयामास तं च ब्रह्मा कृपानिधिः। पुराणवक्ता सूतश्च यज्ञकुण्डसमुद्भवः ॥१३५॥
वैश्यायां सूतवीर्येण पुमानेको बभूव ह। स भट्टो वावदूकश्च सर्वेषां स्तुतिपाठकः ॥१३६॥
एवं ते कथितः किंचित्पृथिव्यां जातिनिर्णयः। वर्णसंकरदोषेण बह्व्योऽन्याः सन्ति जातयः ॥१३७॥
संबन्धो येषु येषां यः सर्वजातिषु[1] सर्वतः। तत्त्वं ब्रवीमि वेदोक्तं ब्रह्मणा कथितं पुरा ॥१३८॥
पिता तातस्तु जनको जन्मदाता प्रकीर्तितः अम्बा माता च जननी जनयित्री प्रसूरपि ॥१३९॥

ने उसे अत्यन्त सुन्दरी देखकर (उसमें) वीर्याधान कर ही डाला। उसने तुरन्त उस गर्भ को उसी मनोहर पुष्पोद्यान में त्याग दिया, किन्तु उससे एक तप्त सुवर्ण की भाँति कान्तिमान् पुत्र उत्पन्न हो गया ॥१२६-१२८॥ पश्चात् लज्जित होकर वह स्त्री उस पुत्र को साथ लिये अपने पति के घर लौट गयी। वहाँ उसने अपने पति से मार्ग की घटना बता दी। ब्राह्मण ने क्रुद्ध होकर पुत्र और स्त्री दोनों का त्याग कर दिया। अनन्तर वह स्त्री योग द्वारा 'गोदावरी' नामक नदी में परिणत हो गयी और उस पुत्र को स्वयं रविनन्दन अश्विनीकुमार ने बड़े प्रयत्न से चिकित्साशास्त्र, नाना प्रकार के शिल्प तथा मंत्र पढ़ाये ॥१२९-१३१॥ किन्तु वह ब्राह्मण निरन्तर नक्षत्रों की गणना करने और वेतन लेने से वैदिक धर्म से भ्रष्ट हो इस भूतल पर गणक हो गया। उस लोभी ब्राह्मण ने ग्रहण के समय तथा मृतकों के दान लेने के समय शूद्रों से भी अग्रदान ग्रहण किया था; इसलिए अग्रदानी हुआ ॥१३२-१३३॥

एक पुरुष ब्राह्मणों के यज्ञ में यज्ञ-कुण्ड से उत्पन्न हुआ। वह धर्मवक्ता 'सूत' कहलाया। वही धर्मवक्ता सूत हमारा पूर्वज है ॥१३४॥ कृपानिधान ब्रह्मा ने उसे पुराण का अध्ययन कराया। इस प्रकार वही यज्ञकुण्ड से उत्पन्न सूत पुराणों का वक्ता हुआ ॥१३५॥ सूत के वीर्य द्वारा वैश्य की स्त्री से एक पुरुष उत्पन्न हुआ, जो अत्यन्त वक्ता था। लोक में उसकी भट्ट (भाट) संज्ञा हुई। वह सभी के लिए स्तुतिपाठ करता है। इस प्रकार मैंने पृथिवी पर स्थित कुछ जातियों का निर्णय बताया। वर्णसंकर दोष से उत्पन्न होने वाली अभी अनेक जातियाँ शेष हैं ॥१३६-१३७॥ अब मैं जिन जातियों का जिन जातियों से जो सम्बन्ध है उसके विषय में वेदोक्त तत्त्व का वर्णन करता हूँ, जैसा कि पहले ब्रह्मा ने कहा था ॥१३८॥

पिता को तात, जनक, तथा जन्मदाता भी कहते हैं। उसी भाँति माता को अम्बा, माता, जननी, जनयित्री तथा प्रसू (प्रसव करने वाली) कहा जाता है। बाबा को पितामह, पिता का पिता और उनके पिता को प्रपितामह

---

१ क. ०षु संमतः०। त्वां तं ब्र०।

पितामहः पितृपिता तत्पिता प्रपितामहः। अत ऊर्ध्वं ज्ञातयश्च सगोत्राः परिकीर्तिताः ॥१४०॥
मातामहः पिता मातुः प्रमातामह एव च। मातामहस्य जनकस्तत्पिता वृद्धपूर्वकः ॥१४१॥
पितामही पितुर्माता तच्छ्वश्रूः प्रपितामही। तच्छ्वश्रूश्च परिज्ञेया सा वृद्धप्रपितामही ॥१४२॥
मातामही मातृमाता मातृतुल्या च पूजिता। प्रमातामहीति ज्ञेया प्रमातामहकामिनी ॥१४३॥
वृद्धमातामही ज्ञेया तत्पितुः कामिनी तथा। पितृभ्राता पितृव्यश्च मातृभ्राता च मातुलः ॥१४४॥
पितृष्वसा पितुर्मातृष्वसा मातुः स्वसा स्मृता। सूनुश्च तनयः पुत्रो दायादश्चाऽऽत्मजस्तथा ॥१४५॥
धनभाग्वीर्यजश्चैव पुंसि[1] जन्ये च वर्तते। जन्यायां दुहिता कन्या चाऽऽत्मजा परिकीर्तिता ॥१४६॥
पुत्रपत्नी वधूर्ज्ञेया जामाता दुहितुः पतिः। पतिः प्रियश्च भर्ता च स्वामी कान्ते च वर्तते ॥१४७॥
देवरः स्वामिनो भ्राता ननान्दा स्वामिनः स्वसा। श्वशुरः स्वामिनस्तातः श्वश्रूश्च स्वामिनः प्रसूः ॥१४८॥
भार्या जाया प्रिया कान्ता स्त्री च पत्नी प्रकीर्तिता। पत्नीभ्राता श्यालकश्च स्वसा पत्न्याश्च श्यालिका ॥१४९॥
पत्नीमाता तथा श्वश्रूस्तत्पिता श्वशुरः स्मृतः। सगर्भः सोदरो भ्राता सगर्भा भगिनी स्मृता ॥१५०॥
भगिनीजो भागिनेयो भ्रातृजो भ्रातृपुत्रकः। आवुत्तो भगिनीकान्तो भगिनीपतिरेव च ॥१५१॥

कहा जाता है। उनसे ऊपर के लोग ज्ञाति और सगोत्र कहलाते हैं॥१३९-१४०॥ माता के पिता को मातामह तथा उनके पिता को प्रमातामह और उनके पिता को वृद्धप्रमातामह कहा जाता है। उसी भाँति पिता की माता पितामही, उसकी सास प्रपितामही और उसकी सास वृद्धप्रपितामही कही जाती है॥१४१-१४२॥ माता की माता मातामही कही जाती है, जो माता के समान ही पूज्य है। प्रमातामह की स्त्री प्रमातामही और उनके पिता की स्त्री वृद्धप्रमातामही कही गयी है।॥१४३॥ पिता का भाई 'पितृव्य (चाचा) एवं माता का भाई मातुल (मामा) कहा जाता है॥१४४॥ पिता की भगिनी 'पितृष्वसा' (बुआ) माता की भगिनी 'मातृष्वसा' (मौसी) कही जाती है। सूनु, तनय पुत्र, दायाद और आत्मज—ये पुत्र के अर्थ में पर्यायवाची शब्द हैं। अपने से उत्पन्न हुए पुरुष (पुत्र) के अर्थ में धनभाक् और वीर्यज शब्द भी प्रयुक्त होते हैं। उत्पन्न की गई पुत्री के अर्थ में दुहिता, कन्या तथा आत्मजा शब्द प्रचलित हैं॥१४५-१४६॥ पुत्र की पत्नी को 'वधू' (बहू) और कन्या के पति को जामाता (जमाई) कहते हैं। स्त्री के स्वामी को पति, प्रिय, भर्ता, स्वामी और कान्त, स्वामी के भाई को देवर और स्वामी की भगिनी को 'ननांदा' (ननद) कहते हैं। उसी भाँति स्वामी के पिता को 'श्वशुर' एवं उनकी माता को 'श्वश्रू' (सास) कहते हैं। स्त्री को भार्या, जाया, प्रिया, कान्ता, स्त्री तथा पत्नी, स्त्री के भाई को 'श्यालक' (साला) स्त्री के भगिनी को 'श्यालिका' (साली) तथा पत्नी की माता को 'श्वश्रू' (सास) और उसके पिता को 'श्वशुर' कहते हैं। सगे भाई को सोदर और सगी बहन 'को सोदरा' कहते हैं॥१४७-१५०॥ भगिनी के पुत्र को 'भागिनेय' 'भानजा', भाई के पुत्र को 'भातृज'

---

१ क. ०सि जीवे च०।

श्यालीपतिस्तु भ्राता च श्वशुरैकत्वहेतुना। श्वशुरस्तु पिता ज्ञेयो जन्मदातुः समो मुने॥१५२॥
अन्नदाता भयत्राता पत्नीतातस्तथैव च। विद्यादाता जन्मदाता पञ्चैते पितरो नृणाम्॥१५३॥
अन्नदातुश्च या पत्नी भगिनी गुरुकामिनी। माता च तत्सपत्नी च कन्या पुत्रप्रिया तथा॥१५४॥
मातुर्माता पितुर्माता श्वश्रूःपित्रोः स्वसा तथा। पितृव्यस्त्री मातुलानी मातरश्च चतुर्दश॥१५५॥
पौत्रस्तु पुत्रपुत्रे च प्रपौत्रस्तत्सुतेऽपि च। तत्पुत्राद्याश्च ये वंश्याः कुलजाश्च प्रकीर्तिताः॥१५६॥
कन्यापुत्रश्च दौहित्रस्तत्पुत्राद्याश्च बान्धवाः। भागिनेयसुताद्याश्च पुरुषा बान्धवाः स्मृताः॥१५७॥
भ्रातृपुत्रस्य पुत्राद्यास्ते पुनर्ज्ञातयः स्मृताः। गुरुपुत्रस्तथा भ्राता पोष्यः परमबान्धवः॥१५८॥
गुरुकन्या च भगिनी पोष्या मातृसमा मुने। पुत्रस्य च गुरुर्भ्राता पोष्यः सुस्निग्धबान्धवः॥१५९॥
पुत्रस्य श्वशुरो भ्राता बन्धुर्वैवाहिकः स्मृतः। कन्यायाः श्वशुरे चैव तत्संबन्धः प्रकीर्तितः॥१६०॥
गुरुश्च कन्यकायाश्च भ्राता सुस्निग्धबान्धवाः। गुरुश्वशुरभ्रातॄणां गुरुतुल्यः प्रकीर्तितः॥१६१॥
बन्धुता येन सार्धं च तन्मित्रं परिकीर्तितम्। मित्रं सुखप्रदं ज्ञेयं दुःखदो रिपुरुच्यते॥१६२॥
बान्धवो दुःखदो दैवान्निःसंबन्धोऽसुखप्रदः। संबन्धास्त्रिविधाः पुंसां विप्रेन्द्र जगतीतले॥१६३॥
विद्याजो योनिजश्चैव प्रीतिजश्च प्रकीर्तितः। मित्रं तु प्रीतिजं ज्ञेयं स संबन्धः सुदुर्लभः॥१६४॥
मित्रमाता मित्रभार्या मातृतुल्या न संशयः। मित्रभ्राता मित्रपिता भ्रातृतातसमौ नृणाम्॥१६५॥

(भतीजा) और भगिनी के पति को आवुत्त, भगिनीकान्त तथा भगिनीपति कहा जाता है। साली का पति (साढ़ू) भी अपना भाई ही है; दोनों के श्वशुर को जन्म देने वाले पिता के समान जानना चाहिए॥१५१-१५२॥ अन्नदाता, भयत्राता, पत्नी का पिता, विद्यादाता, जन्मदाता—ये पाँच मनुष्यों के पिता कहलाते हैं॥१५३॥ अन्नदाता की पत्नी, भगिनी, गुरु की स्त्री, माता, सौतेली माँ, कन्या, पुत्रवधू, नानी, दादी, सास, माता की बहन, पिता की बहन, चाची और मामी—ये चौदह माताएँ हैं॥१५४-१५५॥ पुत्र के पुत्र को पौत्र, उसके पुत्र को प्रपौत्र तथा उसके पुत्र आदि को 'वंशज' और 'कुलज' कहते हैं॥१५६॥ कन्या के पुत्र को दौहित्र और उसके पुत्रादि तथा भानजे के पुत्रादि को 'बान्धव' कहते हैं॥१५७॥ भाई के पुत्र के पुत्र आदि को 'ज्ञाति' कहा जाता है। गुरुपुत्र और भाई परम बन्धु होने के नाते पोषण के योग्य हैं॥१५८॥ मुने! गुरु की कन्या और भगिनी माता के समान पोषण के योग्य हैं। पुत्र के गुरु को भी भाई मानना चाहिए। वह पोष्य तथा सुस्निग्ध बान्धव कहा गया है॥१५९॥ पुत्र के श्वशुर को वैवाहिक सम्बन्ध से भाई समझना चाहिए। कन्या के श्वशुर के साथ भी वही सम्बन्ध होता है॥१६०॥ कन्या का गुरु भी अत्यन्त स्नेही बान्धव है। गुरु और श्वशुर के भाई गुरु के समान होते हैं जिसके साथ 'बन्धुता' (भाईचारे) का सम्बन्ध होता है, उसे मित्र कहा जाता है; क्योंकि सुख देने वाले को 'मित्र' और दुःख देने वाले को शत्रु समझना चाहिए॥१६१-१६२॥ विप्रेन्द्र! दैववश कभी बान्धव भी दुःख देने वाला हो जाता है और जिससे कोई भी सम्बन्ध नहीं है, वह सुखदायक बन जाता है। इस भूमण्डल में मनुष्यों के तीन प्रकार के सम्बन्ध कहे गये हैं—जो विद्याजन्य, योनिजन्य और प्रीतिजन्य होते हैं। उसमें मित्र के साथ प्रीतिजन्य सम्बन्ध होता है, वह अत्यन्त दुर्लभ है॥१६३-१६४॥ मित्र की माता और मित्र की पत्नी माता के समान होती है, इसमें

चतुर्थं नामसंबन्धमित्याह कमलोद्भवः। जारश्चोपपतिर्बन्धुर्दुष्टसंभोगकर्तरि ॥१६६॥
उपपत्न्यां नवज्ञा च प्रेयसी चित्तहारिणी। स्वामितुल्यश्च जारश्च नवज्ञा गृहिणीसमा ॥१६७॥
संबन्धो देशभेदे च सर्वदेशे विगर्हितः। अवैदिको निन्दितस्तु विश्वामित्रेण निर्मितः ॥१६८॥
दुस्त्यजश्च महद्भिस्तु देशभेदे विधीयते। अकीर्तिजनकः पुंसां योषितां च विशेषतः ॥१६९॥
तेजीयसां न दोषाय विद्यमाने युगे युगे ॥१७०॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे
जातिसंबन्धनिर्णयो नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

अथैकादशोऽध्यायः

शौनक उवाच

द्विजः स भार्यां संत्यज्य किं चकार विशेषतः। अश्विनोर्वा महाभाग किं नाम कस्य वंशजौ ॥१॥

सौतिरुवाच

द्विजश्च सुतपा नाम भारद्वाजो महामुनिः। तपश्चकार कृष्णस्य लक्षवर्षं हिमालये ॥॥२॥

संशय नहीं। मित्र का भाई और उसका पिता मनुष्यों के लिए भाई और पिता के समान होते हैं ॥१६५॥ कमलोत्पन्न ब्रह्मा ने चौथा नाम-सम्बन्ध भी बताया है। दुष्ट संभोग करने वाला जार पुरुष सम्बन्ध में उपपति कहलाता है ॥१६६॥ चित्त का हरण करने वाली प्रेमिका उपपत्नी तथा नवज्ञा कहलाती है। जार पति के तुल्य और नवज्ञा पत्नी के तुल्य कही गई है ॥१६७॥ यह सम्बन्ध देश विशेष में या सभी देशों में निन्दित माना गया है। इस अवैदिक सम्बन्ध का निर्माण विश्वामित्र ने किया था ॥१६८॥ महान् व्यक्तियों के लिए भी दुस्त्यज यह सम्बन्ध देश-विशेष में विहित है। किन्तु यह सम्बन्ध पुरुषों और विशेषकर स्त्रियों के लिए अकीर्तिकर है। फिर भी किसी भी युग में अतिशय तेजस्वी व्यक्तियों के लिए यह सम्बन्ध दोषजनक नहीं भी है ॥१६९-१७०॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में जाति-सम्बन्ध-
निर्णय नामक दसवाँ अध्याय समाप्त ॥१०॥

अध्याय ११

अश्विनीकुमारों का शापमोक्ष तथा वैष्णव ब्राह्मणों की प्रशंसा

शौनक बोले––महाभाग! उस ब्राह्मण ने अपनी पत्नी को त्यागकर आगे क्या किया? और अश्विनीकुमारों से उत्पन्न हुए का क्या नाम है? वे किसके वंशज हैं?

सौति बोले––उस तपस्वी ब्राह्मण का नाम सुतपा था। वे भरद्वाज-कुल में उत्पन्न बहुत बड़े मुनि थे। उन्होंने हिमालय पर्वत पर जाकर एक लाख वर्ष तक भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना की। उन महातपस्वी एवं

महातपस्वी तेजस्वी प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा। ज्योतिर्ददर्श कृष्णस्य गगने सहसा क्षणम्॥३॥
वरं स वव्रे निर्लिप्तमात्मानं प्रकृतेः परम्। न च मोक्षं ययाचे तं दास्यं भक्तिं च निश्चलाम्॥४॥
बभूवाऽऽकाशवाणीति कुरु दारपरिग्रहम्। पश्चाद्दास्यं प्रदास्यामि भक्तिं भोगक्षये द्विज॥५॥
पितृणां मानसीं कन्यां ददौ तस्मै विधिः स्वयम्। तस्यां कल्याणमित्रश्च बभूव मुनिपुंगवः॥६॥
यस्य स्मरणमात्रेण न भवेत्कुलिशाद्भयम्। न द्रष्टव्यं बन्धुमात्रं नूनं तत्स्मरणाल्लभेत्॥७॥
कल्याणमित्रजननीं परित्यज्य महामुनिः। शशाप सूर्यपुत्रं च यज्ञभागविवर्जितो भव॥८॥
ससोदरश्च वा पूज्यो भवेति च सुराधम। व्याधिग्रस्तो जडाङ्गश्च भूयास्तेऽकीर्तिमानिति॥९॥
इत्युक्त्वा सुतपा गेहं प्रतस्थे सूनुना सह। अश्विभ्यां सहितः सूर्यः प्रययौ च तदन्तिकम्॥१०॥
पुत्राभ्यां व्याधियुक्ताभ्यां सूर्यस्त्रिजगतां पतिः। मुनीन्द्रं वै सुतपसं स तुष्टाव च शौनक॥११॥

सूर्य उवाच

क्षमस्व भगवन्विप्र विष्णुरूप युगे युगे। मम पुत्रापराधं च भारद्वाज मुनीश्वर॥१२॥
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्याः सुराः सर्वे च संततम्। भुञ्जते विप्रदत्तं तु फलपुष्पजलादिकम्॥१३॥
ब्राह्मणा वाहिता देवाः शश्वद्धिश्वेषु पूजिताः। न च विप्रात्परो देवो विप्ररूपी स्वयं हरिः॥१४॥

तेजस्वी ने, जो अपने ब्रह्मतेज से उदीप्त हो रहे थे, एक दिन सहसा आकाश में क्षण भर के लिए भगवान् श्रीकृष्ण की ज्योति का दर्शन किया और प्रकृति से परे सर्वथा निर्लिप्त रहने एवं निश्चल दास्य-भक्ति का वरदान मांगा। उन्होंने मोक्ष की याचना नहीं की॥१-४॥ तब आकाशवाणी हुई—ब्रह्मन्! विवाह करो, अनन्तर भोग सम्बन्धी प्रारब्ध के क्षीण हो जाने पर मैं तुम्हें अपनी दास्य भक्ति प्रदान करूँगा॥५॥ पश्चात् ब्रह्मा ने स्वयं उन्हें पितरों की मानसी नामक कन्या प्रदान की। मुनिपुंगव! उनके संयोग से उस स्त्री में कल्याणमित्र नामक पुत्र उत्पन्न हुआ॥६॥ जिसके स्मरण मात्र से मनुष्य को अपने ऊपर वज्र या बिजली गिरने का भय नहीं होता। कल्याणमित्र के स्मरण से निश्चय ही उन बन्धुजनों को भी प्राप्ति हो जाती है, जिनका दर्शन असंभव होता है॥७॥ अनन्तर महामुनि सुतपा ने कल्याणमित्र की माता को त्यागकर सूर्यपुत्र (अश्विनीकुमार) को भी शाप दिया कि 'तू अपने भाई के साथ यज्ञभाग से वंचित और अपूज्य हो जा। तेरा अंग रोगग्रस्त और जड़ हो जाय। तू कलंकयुक्त हो जाय' ॥८-९॥ इतना कह कर सुतपा बालक को लेकर अपने घर चले गये और सूर्य भी अपने अश्विनीकुमारों को लेकर उन ऋषि के निकट पहुँचे॥१०॥ शौनक! तीनों लोकों के पति सूर्य ने अपने रोगी पुत्रों समेत मुनिश्रेष्ठ सुतपा का दर्शन करके उनकी स्तुति करना प्रारम्भ किया॥११॥

सूर्य बोले—विप्र! क्षमा करें। भगवन्! आप प्रत्येक युग में विष्णुस्वरूप हैं। हे भारद्वाज मुनीश्वर! मेरे पुत्रों का अपराध क्षमा कीजिए॥१२॥ ब्रह्मा, विष्णु और शंकर आदि सभी देवगण सदैव ब्राह्मण के दिये हुए फल, पुष्प एवं जल आदि का उपभोग करते हैं। लोकों में ब्राह्मण द्वारा आवाहित हुए देवगण वहाँ निरन्तर पूजित होते हैं। विप्र से बढ़कर कोई अन्य देवगण नहीं हैं; क्योंकि वे ब्राह्मण के रूप में स्वयं भगवान् हैं॥१३-१४॥

ब्राह्मणे परितुष्टे च तुष्टो नारायणः स्वयम्। नारायणे च संतुष्टे संतुष्टाः सर्वदेवताः॥१५॥
नास्ति गङ्गासमं तीर्थं न च कृष्णात्परः सुरः। न शंकराद्वैष्णवश्च न सहिष्णुर्धरापरा॥१६॥
न च सत्यात्परो धर्मो न साध्वी पार्वतीपरा। न दैवाद्बलवान्कश्चिन्न च पुत्रात्परः प्रियः॥१७॥
न च व्याधिसमः शत्रुर्न च पूज्यो गुरोः परः। नास्ति मातृसमो बन्धुर्न च मित्रं पितुः परम्॥१८॥
एकादशीव्रतान्नान्यत्तपो नानशनात्परम्। परं सर्वधनं रत्नं विद्यारत्नं परं ततः॥१९॥
[1]सर्ववर्णात्परो विप्रो नास्ति विप्रसमो गुरुः। वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञ इत्याह कमलोद्भवः॥२०॥
सूर्यस्य वचनं श्रुत्वा भारद्वाजो ननाम तम्। नीरुजौ चापि तत्पुत्रौ चकार तपसः फलात्॥२१॥
पश्चाच्च तव पुत्रौ च यज्ञभाजौ भविष्यतः। इत्युक्त्वा तं च सुतपाः प्रणम्याहस्करं मुनिः॥२२॥
जगाम गङ्गां संत्रस्तो हरिसेवनतत्परः। पुत्राभ्यां सहितः सूर्यो जगाम निजमन्दिरम्॥२३॥
बभूवतुस्तौ पूज्यौ च यज्ञभाजौ द्विजाशिषा[2]। एतत्सूर्यकृतं विप्र स्तोत्रं यो मानवः पठेत्
विप्रपादप्रसादेन सर्वत्र विजयी भवेत्। ॥२४॥
ब्राह्मणेभ्यो नम इति प्रातरुत्थाय यः पठेत्। स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः॥२५॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि तानि तीर्थानि सागरे। सागरे यानि तीर्थानि विप्रपादेषु तानि च॥२६॥

ब्राह्मण के सन्तुष्ट होने पर स्वयं नारायण सन्तुष्ट होते हैं और नारायण के सन्तुष्ट होने पर समस्त देवता सन्तुष्ट हो जाते हैं॥१५॥ गंगा से बढ़कर कोई तीर्थ नहीं है, कृष्ण से बढ़कर उत्तम देवता नहीं; शंकर से बढ़कर वैष्णव नहीं और पृथिवी से बढ़कर कोई सहनशील नहीं है॥१६॥ सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं, पार्वती से बढ़कर कोई पतिव्रता नहीं, दैव से बढ़कर कोई बलवान् नहीं और पुत्र से बढ़कर कोई प्रिय नहीं है॥१७॥ रोग के समान शत्रु, गुरु से बढ़कर पूज्य, माता के समान बन्धु, और पिता से बढ़कर दूसरा कोई मित्र नहीं है॥१८॥ व्रतों में एकादशी उत्तम है और उपवास से बढ़कर अन्य कोई तप नहीं है। सब धनों में रत्न और रत्नों में विद्यारत्न उत्तम है॥१९॥ सभी वर्णों में ब्राह्मण उत्तम है। विप्र के समान कोई गुरु नहीं है। यह बात वेद-वेदांग के तत्त्व-ज्ञाता कमलोत्पन्न ब्रह्मा ने कही है॥२०॥ सूर्य की बातें सुनकर भारद्वाज सुतपा ने उन्हें नमस्कार किया और तप फल द्वारा उनके दोनों पुत्रों को नीरोग कर दिया॥२१॥ पश्चात् सुतपा मुनि ने यह भी कहा कि तुम्हारे ये दोनों पुत्र यज्ञ-भाग के अधिकारी भी होंगे। उपरान्त सूर्य को नमस्कार करके तपस्या के क्षीण होने के भय से भयभीत हो श्रीहरि की सेवा में मन लगाकर गंगा-तट को प्रस्थान किया। तत्पश्चात् सूर्य दोनों सुपुत्र को साथ लिए अपने धाम को चले गये। ब्राह्मण के आशीर्वाद से वे दोनों उसी दिन से यज्ञ में पूज्य और उसके भाग के अधिकारी हो गये। विप्र! जो मनुष्य सूर्यरचित इस स्तोत्र का पाठ करता है, वह विप्रचरण के प्रसाद से सर्वत्र विजयी होता है॥२२-२४॥ प्रातः-काल उठकर जो 'ब्राह्मणेभ्योनमः' ऐसा पाठ करता है, वह समस्त तीर्थों में स्नान करने और समस्त यज्ञों में दीक्षा लेने का फल प्राप्त करता है॥२५॥ पृथिवी-मण्डल में जितने तीर्थ हैं, वे सागर में भी हैं और सागर में जितने तीर्थ हैं, वे ब्राह्मण के चरणों में भी वर्तमान रहते हैं। इसलिए जो ब्राह्मण का चरणोदक पान करता है, उसके

---

१ ख. ०सर्वाश्रमैः प०। २ क. ०जाज्ञया०। ए।

विप्रपादोदकं पीत्वा यावत्तिष्ठति मेदिनी। तावत्पुष्करपात्रेषु पिबन्ति पितरो जलम् ॥२७॥
विप्रपादोदकं पुण्यं भक्तियुक्तश्च यः पिबेत्। स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ॥२८॥
महारोगी यदि पिबेद्विप्रपादोदकं द्विज। मुच्यते सर्वरोगाच्च मासमेकं तु भक्तितः ॥२९॥
अविद्यो वा सविद्यो वा संध्यापूतो हि यो द्विजः। स एव विष्णुसदृशो न हरौ विमुखो यदि ॥३०॥
घ्नन्तं विप्रं शपन्तं वा न हन्यान्न च तं शपेत्। गोभ्यः शतगुणं पूज्यो हरिभक्तश्च स स्मृतः ॥३१॥
पादोदकं च नैवेद्यं भुङ्क्ते विप्रस्य यो द्विजः। नित्यं नैवेद्यभोजी च राजसूयफलं लभेत् ॥३२॥
एकादश्यां न भुङ्क्ते यो नित्यं कृष्णं समर्चयेत्। तस्य पादोदकं प्राप्य स्थलं तीर्थं भवेद् ध्रुवम् ॥३३॥
यो भुङ्क्ते भोजनोच्छिष्टं नित्यं नैवेद्यभोजनम्। कृष्णदेवस्य पूतोऽसौ जीवन्मुक्तो महीतले ॥३४॥
अन्नं विष्ठा पयो मूत्रं यद्विष्णोरनिवेदितम्। द्विजानां कुलजातानामित्याह कमलोद्भवः ॥३५॥
ब्रह्मा च ब्रह्मपुत्राश्च सर्वे विष्णुपरायणाः। ब्राह्मणस्तत्कुले जातो विमुखश्च हरौ कथम् ॥३६॥
पित्रोर्मातामहादीनां संसर्गस्य गुरोश्च वा। दोषेण विमुखाः कृष्णे विप्रा जीवन्मृताश्च ते ॥३७॥
स किंगुरुः स किंतातः स किंपुत्रः स किंसखा। स किंराजा स किंबन्धुर्न दद्याद्यो हरौ मतिम् ॥३८॥
अवैष्णवाद्द्विजाद्विप्र चण्डालो वैष्णवो वरः। सगणः श्वपचो मुक्तो ब्राह्मणो नरकं व्रजेत् ॥३९॥
संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यं कृष्णे वा विमुखो द्विजः। स एव ब्राह्मणाभासो विषहीनो यथोरगः ॥४०॥

पितर पृथिवी के स्थिति-काल तक पुष्करपात्रों (कमल के पत्तों ?) में जल पीते हैं ॥२६-२७॥ जो भक्तिपूर्वक ब्राह्मण का पुण्य चरणोदक पान करता है उसे समस्त तीर्थों में स्नान और सभी यज्ञों की दीक्षा प्राप्त करने का फल मिलता है॥२८॥ द्विज! यदि महारोगी भी एक मास तक भक्तिपूर्वक ब्राह्मण का चरणोदक पान करे तो वह समस्त रोगों से मुक्त हो जाता है॥२९॥ विद्वान् हो चाहे विद्याहीन, जो ब्राह्मण प्रतिदिन संध्यावंदन करके पवित्र होता है तथा भगवद्भक्ति करता है, वह विष्णु के समान है। मारते हुए या शाप देते हुए ब्राह्मण को न मारना चाहिए और न शाप ही देना चाहिए। हरिभक्त ब्राह्मण गौओं से भी सौ गुना अधिक पूज्य है॥३०-३१॥ द्विज! ब्राह्मण का चरणोदक और नैवेद्य का नित्य भक्षण करने वाला पुरुष राजसूय नामक यज्ञ का फल प्राप्त करता है॥३२॥ जो एकादशी के दिन भोजन नहीं करता है और नित्य भगवान् कृष्ण की अर्चना करता है उसके चरणोदक को प्राप्त करने पर स्थल भी निश्चित रूप से तीर्थ बन जाता है॥३३॥ जो नित्य भगवान् कृष्ण का उच्छिष्ट या नैवेद्य भोजन करता है वह पवित्रात्मा भूतल पर जीवन्मुक्त होकर रहता है॥३४॥ कमलोद्भव ब्रह्मा ने यह भी बताया है कि कुलीन ब्राह्मणों का भी अन्न, जो भगवान् कृष्ण को अर्पित नहीं किया गया है, विष्ठा के समान है और उनको अनिवेदित दुग्ध मूत्र के समान है॥३५॥ ब्रह्मा और ब्रह्मा के पुत्र सभी विष्णु के भक्त हैं और उन्हीं के कुल में ब्राह्मण की उत्पत्ति हुई है तो वह भला भगवान् से विमुख कैसे हो सकता है? ॥३६॥ माता-पिता अथवा मातामह आदि या गुरु के संसर्ग के दोष से भगवान् कृष्ण के विमुख रहने वाले ब्राह्मण जीवित होते हुए भी मृतक के समान हैं॥३७॥ जो भगवान् श्रीकृष्ण के सम्मुख रहने की बुद्धि नहीं प्रदान करता है, वह गुरु, पिता, पुत्र, सखा, राजा या बन्धु आदि कोई भी हो, निन्दा का पात्र है॥३८॥ विप्र! अवैष्णव ब्राह्मण से वैष्णव चाण्डाल उत्तम होता है। इसलिए वैष्णव चांडाल परिवार समेत मुक्त हो जाता है और अवैष्णव ब्राह्मण नरकगामी होता है। जो ब्राह्मण संध्या से हीन, नित्य अपवित्र और भगवान् कृष्ण से विमुख रहता है, वह विषहीन साँप की भाँति नाममात्र का ब्राह्मण है॥३९-४०॥

गुरुवक्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे प्रविशति। तं वैष्णवं महापूतं जीवन्मुक्तं वदेद्विधिः ॥४१॥
पुंसां मातामहादीनां शतैः सार्धं हरेः पदम्। प्रयाति वैष्णवः पुंसामात्मनः कुलकोटिभिः ॥४२॥
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्राश्चतस्रो जातयो यथा। स्वतन्त्रा जातिरेका च [1]विश्वस्मिन्वैष्णवाभिधा ॥४३॥
ध्यायन्ति वैष्णवाः शश्वद्गोविन्दपदपङ्कजम्। ध्यायते तांश्च गोविन्दः शश्वत्तेषां च संनिधौ ॥४४॥
सुदर्शनं संनियोज्य भक्तानां रक्षणाय च। तथाऽपि नहि निश्चिन्तोऽवतिष्ठेद्भक्तसंनिधौ ॥४५॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे विष्णुवैष्णव-
ब्राह्मणप्रशंसा नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

शौनक उवाच

ऋषिवंशप्रसंगेन बभूवुर्विविधाः कथाः। उपालम्भेन प्रस्तावात्कौतुकेन श्रुता मया ॥१॥
प्रजा वा ससृजुः के वा [1]ऊर्ध्वरेतारश्च कश्चन। पित्रा सह विरोधेन नारदः किं चकार सः ॥२॥

गुरु के मुख से निकला हुआ विष्णु-मंत्र जिसके कान में प्रविष्ट होता है, उस वैष्णव को ब्रह्मा ने महापवित्र एवं जीवन्मुक्त कहा है। वह वैष्णव मातामह (नाना) आदि की सैकड़ों पीढ़ियों और अपने कुल की करोड़ों पीढ़ियों को साथ लेकर भगवान् के लोक को जाता है॥४१-४२॥ यद्यपि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार जातियाँ हैं किन्तु सम्पूर्ण विश्व में वैष्णव नाम की एक जाति स्वतन्त्र है॥४३॥

वैष्णव लोग निरन्तर भगवान् श्रीकृष्ण के चरण-कमल का ध्यान करते हैं और भगवान् श्रीकृष्ण उनके समीप रहकर निरन्तर उन लोगों का ध्यान करते हैं॥४४॥ भक्तों के रक्षार्थ सुदर्शनचक्र को नियुक्त करके भी भगवान् निश्चिन्त नहीं रहते; प्रत्युत भक्तों के समीप जाकर रहते हैं॥४५॥

श्री ब्रह्मवैवर्त महापुराण के ब्रह्मखण्ड में वैष्णव ब्राह्मणों की प्रशंसा
नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥११॥

अध्याय १२

नारद का वृत्तान्त

शौनक बोले—ऋषियों के वंश-वर्णन के प्रसंग में बहुत-सी कथाएँ हुईं। उनको मैं उपालंभ के द्वारा, प्रस्ताव से तथा कौतुक से सुन चुका। (अब यह बताने की कृपा करें कि) ब्रह्मा के पुत्रों में किन लोगों ने सृष्टि करना आरम्भ किया और कौन उर्ध्वरेता (महर्षि) हुए? पिता (ब्रह्मा) से विरोध करके नारद ने क्या किया?

---

१ क. विश्वेषु।

पितुः शापेन पुत्रस्य किं बभूव विरोधतः। पितुर्वा पुत्रशापेन सौते तत्कथ्यतां शुभम् ॥३॥

सौतिरुवाच

हंसो यतिश्चारणिश्च वोढुः पञ्चशिखस्तथा। अपान्तरतमाश्चैव सनकाद्याश्च शौनक ॥४॥
एतैर्विनाऽन्ये बहवो ब्रह्मपुत्राश्च संततम्। सांसारिकाः प्रजावन्तो गुर्वाज्ञापरिपालकाः ॥५॥
अपूज्यः पुत्रशापेन स्वयं ब्रह्मा प्रजापतिः। तेनैव ब्रह्मणो मन्त्रं नोपासन्ते विपश्चितः ॥६॥
नारदो गुरुशापेन गन्धर्वश्च बभूव सः। कथयामि सुविस्तीर्णं तद्वृत्तान्तं निशामय ॥७॥
गन्धर्वराजः सर्वेषां गन्धर्वाणां वरो महान्। परमैश्वर्यसंयुक्तः पुत्रहीनो हि कर्मणा ॥८॥
गुर्वाज्ञया पुष्करे स परमेण समाधिना। तपश्चकार शंभोश्च कृपणो दीनमानसः ॥९॥
शिवस्य कवचं स्तोत्रं मन्त्रं च द्वादशाक्षरम्। ददौ गन्धर्वराजाय वसिष्ठश्च कृपानिधिः ॥१०॥
जजाप परमं मन्त्रं दिव्यं वर्षशतं मुने। पुष्करे स निराहारः पुत्रदुःखेन तापितः ॥११॥
विरामे शतवर्षस्य ददर्श पुरतः शिवम्। भासयन्तं दश दिशो ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥१२॥
महत्तेजः स्वरूपं च भगवन्तं सनातनम्। ईषद्धासं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम् ॥१३॥
तपोरूपं तपोबीजं तपस्याफलदं फलम्। शरणागतभक्ताय दातारं सर्वसंपदाम् ॥१४॥

विरोध वश पिता के शाप से पुत्र का क्या हुआ? और पुत्र के शाप से पिता का क्या हुआ? सूतपुत्र! यह पवित्र वृत्तान्त बताइए ॥१-३॥

सौति बोले—शौनक! हंस, यति, अरणि, वोढु, पञ्चशिख, अपान्तरतमा और सनकादि चारों पुत्रों के अतिरिक्त अन्य सभी ब्रह्मा के पुत्रों ने संसार-वृद्धि के लिए प्रजाओं की सृष्टि की। वे सदैव गुरु ब्रह्मा की आज्ञा का पालन करते रहे ॥४-५॥ पुत्र (नारद) के शाप द्वारा स्वयं प्रजापति ब्रह्मा अपूज्य हुए। इसीलिए विद्वान् लोग ब्रह्मा के मंत्र की उपासना नहीं करते ॥६॥ नारद भी ब्रह्मा के शाप से गन्धर्व हुए। उनके विस्तृत वृत्तान्त को मैं कह रहा हूँ, सुनो ॥७॥

उन दिनों जो गन्धर्वराज थे वे सब गन्धर्वों में श्रेष्ठ और महान् थे, उच्च कोटि के ऐश्वर्य से सम्पन्न थे, परन्तु किसी कर्म वश पुत्रहीन थे। कृपण एवं दीन चित्त वाले उस गन्धर्वराज ने गुरु की आज्ञा से पुष्कर तीर्थ में परम समाधिस्थ होकर (या एकाग्रतापूर्वक) भगवान् शंकर की आराधना करना आरम्भ किया ॥८-९॥ कृपानिधान वशिष्ठ ने शिव का कवच, स्तोत्र और द्वादशाक्षर मन्त्र गन्धर्वराज को प्रदान किया। मुने! पुत्र-दुःख से सन्तप्त गन्धर्वराज ने निराहार रहकर दिव्य सौ वर्षों तक पुष्कर में उस परम मन्त्र का जप किया ॥१०-११॥ तब सौ वर्षों के अन्त में उन्होंने अपने सामने स्थित शिव का प्रत्यक्ष दर्शन किया जो दशों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए अपने तेज से प्रदीप्त हो रहे हैं ॥१२॥ उनके प्रसन्न मुख पर मन्द हास्य की छटा छा रही थी। भक्तों पर अनुग्रह करने वाले वे भगवान् तपोरूप हैं, तपस्या के बीज हैं, तपस्या के फल देने वाले हैं और स्वयं ही तपस्या के फल हैं। वे शरण में आये हुए भक्तों को समस्त सम्पत्ति प्रदान कर देते हैं ॥१३-१४॥ उस समय वे त्रिशूल, पट्टिश, धारण किये

त्रिशूलपट्टिशधरं वृषभस्थं दिगम्बरम्। शुद्धस्फटिकसंकाशं त्रिनेत्रं चन्द्रशेखरम्॥१५॥
तप्तस्वर्णप्रभाजुष्टजटाजालधरं वरम्। नीलकण्ठं च सर्वज्ञं नागयज्ञोपवीतकम्॥१६॥
संहर्तारं च सर्वेषां कालं मृत्युंजयं परम्। ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डकोटिसंकाशमीश्वरम्॥१७॥
तत्त्वज्ञानप्रदं शान्तं मुक्तिदं हरिभक्तिदम्। दृष्ट्वा ननाम सहसा गन्धर्वो दण्डवद्भुवि॥१८॥
वसिष्ठदत्तस्तोत्रेण तुष्टाव परमेश्वरम्। वरं वृणुष्वेति शिवस्तमुवाच कृपानिधिः॥
स ययाचे हरेर्भक्तिं पुत्रं परमवैष्णवम् ॥१९॥
गन्धर्वस्य वचः श्रुत्वा चाहसीच्चन्द्रशेखरः। उवाच दीनं दीनेशो दीनबन्धुः सनातनः॥२०॥

महादेव उवाच

कृतार्थस्त्वं वरादेकादन्यच्चर्वितचर्वणम्। गन्धर्वराज वृणुषे को वा तृप्तोऽतिमङ्गले॥२१॥
यस्य भक्तिर्हरौ वत्स सुदृढा सर्वमङ्गला। स समर्थः सर्वविश्वं पातुं कर्तुं च लीलया॥२२॥
आत्मनः कुलकोटिं च शतं मातामहस्य च। पुरुषाणां समुद्धृत्य गोलोकं याति निश्चितम्॥२३॥
त्रिविधानि च पापानि कोटिजन्मार्जितानि च। निहत्य पुण्यभोगं च हरिदास्यं लभेद् ध्रुवम्॥२४॥
तावत्पत्नी सुतस्तावत्तावदैश्वर्यमीप्सितम्। सुखं दुःखं नृणां तावद्यावत्कृष्णे न मानसम्॥२५॥
कृष्णे मनसि संजाते भक्तिखड्गो दुरत्ययः। नराणां कर्मवृक्षाणां मूलच्छेदं करोत्यहो॥२६॥

हुए, बैल पर विराजमान, नग्न, शुद्ध स्फटिक के समान निर्मलकान्ति, त्रिनेत्र, मस्तक पर चन्द्रमा तथा तपाये हुए सुवर्ण की प्रभा से भूषित जटा-जूट को धारण किये हुए थे। कंठ में नील चिह्न और कंधे पर नाग का यज्ञोपवीत शोभा दे रहा था। इस प्रकार सर्वज्ञ, सर्वसंहारक, कालरूप, मृत्युञ्जय, ग्रीष्मऋतु की दोपहरी के करोड़ों सूर्यों के समान तेजस्वी, शान्तस्वरूप और तत्त्वज्ञान, मोक्ष तथा हरिभक्ति प्रदान करने वाले शिव को देखकर उस गन्धर्व ने सहसा दंड की भाँति पृथिवी पर पड़कर प्रणाम किया और वशिष्ठ के दिये हुए स्तोत्र द्वारा उन परमेश्वर की स्तुति की। अनन्तर कृपानिधान शिव ने उससे कहा—'वरदान मांगो।' उन्होंने भगवान् की भक्ति समेत परम वैष्णव पुत्र की याचना की॥१५-१९॥ दीनों के ईश, दीनबन्धु एवं सनातन भगवान् चन्द्रशेखर ने उस गन्धर्व की बात सुनकर हँसते हुए उस दीन से कहा॥२०॥

श्री महादेव बोले—गन्धर्वराज! तुम तो एक ही वरदान से कृतार्थ हो गये, अतः दूसरा वरदान तुम्हारे लिए चबाये हुए को चबाना मात्र है। अथवा जो तुमने दूसरा वरदान माँगा, वह भी ठीक है। भला कल्याण से कौन तृप्त होता है? (अर्थात् जिसको जितना कल्याण मिलता है, वह उससे अधिकाधिक कल्याण चाहता है)॥२१॥ वत्स! जिसकी श्रीहरि में सर्वमांगलिक भक्ति अत्यन्त दृढ़ है वह समस्त विश्व की रक्षा एवं सर्जन खेल-खेल में ही करने में समर्थ है॥२२॥ वह अपनी करोड़ पीढ़ियों और मातामह के सौ कुलों का उद्धार करके निश्चित रूप से गोलोक को जाता है॥२३॥ वह कोटि जन्मों के किये हुए त्रिविध (कायिक, वाचिक और मानसिक) पापों को नष्ट करके पुण्य भोग समेत भगवान् की सेवा का सौभाग्य पाता है॥२४॥ मनुष्यों को पत्नी, पुत्र और ऐश्वर्य की प्राप्ति तभी तक अभीष्ट होती है और तभी तक सुख-दुःख होते हैं जब तक उसका मन भगवान् कृष्ण में नहीं लगता है॥२५॥ क्योंकि भगवान् कृष्ण में मन लगाने पर भक्तिरूपी खड्ग मनुष्यों के कर्म रूपी वृक्षों का मूलोच्छेद कर डालता

भवेद्येषां सुकृतिनां पुत्राः परमवैष्णवाः। कुलकोटिं च तेषां त उद्धरन्त्येव लीलया॥२७॥
चरितार्थः पुमानेकद्वारमिच्छुर्वरादहो। किं वरेण द्वितीयेन पुंसां तृप्तिर्न मङ्गले॥२८॥
धनं संचितमस्माकं वैष्णवानां सुदुर्लभम्। श्रीकृष्णे भक्तिदास्यं च न वयं दातुमुत्सुकाः॥२९॥
वरयान्यं वरं वत्स यत्ते मनसि वाञ्छितम्। इन्द्रत्वममरत्वं वा ब्रह्मत्वं लभ दुर्लभम्॥३०॥
सर्वसिद्धिं महायोगं ज्ञानं मृत्युंजयादिकं। सुखेन सर्वं दास्यामि हरिदास्यं त्यज ध्रुवम्॥३१॥
शंकरस्य वचः श्रुत्वा शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः। उवाच दीनो दीनेशं दातारं सर्वसंपदाम्॥३२॥

गन्धर्व उवाच

यत्पक्ष्मचालनेनैव ब्रह्मणः पतनं भवेत्। तद्ब्रह्मत्वं स्वप्नतुल्यं कृष्णभक्तो न चेच्छति॥३३॥
इन्द्रत्वममरत्वं वा सिद्धयोगादिकं शिव। ज्ञानं मृत्युंजयाद्यं वा नहि भक्तस्य वाञ्छितम्॥३४॥
सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसायुज्यं श्रीहरेरपि। तत्र निर्वाणमोक्षं च नहि वाञ्छन्ति वैष्णवाः॥३५॥
शश्वत्तत्र दृढा भक्तिर्हरिदास्यं सुदुर्लभम्। स्वप्ने जागरणे भक्ता वाञ्छन्त्येवं वरं वरम्॥३६॥
तद्दास्यं वैष्णवसुतं देहि कल्पतरो वरम्। त्वां प्राप्य लभते तुष्टं वरं सर्ववरोऽवरः॥३७॥

है; यह आश्चर्य की बात है। जिन पुण्यकर्मियों के अत्यन्त वैष्णव पुत्र उत्पन्न होते हैं, उनके वे पुत्र लीलापूर्वक कुल की बहुसंख्यक पीढ़ियों का उद्धार कर देते हैं॥२६-२७॥ यद्यपि मनुष्य एक ही वरदान से कृतार्थ हो जाता है, फिर भी वह दूसरा वरदान चाहता है, यह आश्चर्य की बात है। दूसरे वरदान की क्या आवश्यकता है? लोगों को मंगल की प्राप्ति से तृप्ति नहीं होती है॥२८॥ हमारे पास वैष्णवों के लिए परम दुर्लभ धन संचित है। भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति और दास्य हम लोग दूसरों को देने के लिए उत्सुक नहीं होते। कोई अन्य अभीष्ट वरदान माँगो। मैं इन्द्रत्व, अमरत्व और दुर्लभ ब्रह्मत्व भी दे सकता हूँ तथा समस्त सिद्धियाँ, महायोग एवं मृत्यु को जीतने आदि का ज्ञान भी सहर्ष प्रदान करने को तैयार हूँ; किन्तु श्रीहरि का दासत्व माँगना छोड़ दो॥२९-३१॥ शंकर की ऐसी बातें सुन कर उस दीन के कण्ठ, ओठ और तालु सब सूख गये। उसने समस्त सम्पत्तियों के प्रदाता एवं दीनानाथ से पुनः कहा।

गन्धर्व बोले—जिसका ब्रह्मा की दृष्टि पड़ते ही पतन हो जाता है, वह ब्रह्मपद स्वप्न के समान मिथ्या एवं क्षणभंगुर है। उसे कोई कृष्ण-भक्त नहीं चाहता है॥३२-३३॥ हे शिव! इन्द्रत्व, अमरत्व, सिद्धि अथवा योगादिक और मृत्युञ्जयादिक ज्ञान भी भक्त को प्रिय नहीं होता है। यहाँ तक कि भगवान् के सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य और सायुज्य नामक चार प्रकार के मोक्ष और निर्वाणमोक्ष को भी वैष्णवगण नहीं चाहते हैं। भगवान् की निरन्तर सुदृढ़ रहने वाली भक्ति और उनके अत्यन्त दुर्लभ दास्य को ही भक्तगण सोते-जागते समय चाहते हैं। अतः हमारे लिए यही वरदान उत्तम है। ॥३४-३६॥ हे कल्पवृक्ष! इसलिए मुझे हरिदास्य और विष्णुभक्त पुत्र प्रदान करने की कृपा करें क्योंकि आपको सन्तुष्ट पाकर जो कोई दूसरा वर माँगता है, वह बर्बर है। ॥३७॥ शम्भो! यदि आप

न दास्यसीदं चेच्छंभो वरं दुष्कृतिनं च माम्। कृत्वा हि स्वशिरश्छेदं प्रदास्यामि हुताशने ॥३८॥
गन्धर्ववचनं श्रुत्वा तमुवाच कृपानिधिः। भक्तं दीनं च भक्तेशो भक्तानुग्रहकारकः ॥३९॥

शंकर उवाच

हरिभक्तिं हरेर्दास्यं पुत्रं परमवैष्णवम्। चिरायुषं च गुणिनं शश्वत्सुस्थिरयौवनम् ॥४०॥
ज्ञानिनं सुन्दरवरं गुरुभक्तं जितेन्द्रियम्। गन्धर्वराजप्रवरं वरेमं लभ मा शुचः ॥४१॥
इत्युक्त्वा शंकरस्तस्माज्जगाम स्वालयं मुने। गन्धर्वराजः संतुष्ट आजगाम स्वमन्दिरम् ॥४२॥
प्रफुल्लमानसाः सर्वे मानवाः[1] सिद्धकर्मणः। नारदस्तस्य भार्यायां लेभे जन्म च भारते ॥४३॥
सुषाव पुत्रं सा वृद्धा पर्वते गन्धमादने। गुरुर्वसिष्ठो भगवान्नाम चक्रे यथोचितम् ॥४४॥
बालकस्य च तत्रैव[2] मङ्गलं मङ्गले दिने। उपशब्दोऽधिकार्थश्च पूज्ये च बर्हणः पुमान् ॥
पूज्यानामधिको बालस्तेनोपबर्हणाभिधः ॥४५॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे नारदजन्मकथनं
नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

मुझ पापी को यह वरदान नहीं देंगे तो मैं अपना सिर काट कर अग्नि में होम दूंगा ॥३८॥ अनन्तर भक्तों के ईश और उन पर कृपा रखने वाले कृपानिधान भगवान् शंकर ने गन्धर्व की बातें सुनकर उससे कहा ॥३९॥

श्रीशंकर बोले—भगवान् की भक्ति, भगवान् का दास्य और परमवैष्णव पुत्र की प्राप्ति—इस श्रेष्ठ वर को उपलब्ध करो, खिन्न न होओ। तुम्हारा पुत्र वैष्णव होने के साथ ही दीर्घायु, सद्गुणशाली, नित्य सुस्थिर यौवन से सम्पन्न, ज्ञानी, परम सुन्दर, गुरुभक्त तथा जितेन्द्रिय होगा ॥४०-४१॥ मुने! इतना कहकर शंकर जी अपने धाम को चले गये और गन्धर्वराज भी सन्तुष्ट होकर अपने घर को लौटे ॥४२॥ अपने कार्य में सफलता प्राप्त होने पर सभी मानवों के मानस-कमल खिल उठते हैं। उस गन्धर्वराज की पत्नी से नारद जी ने भारतवर्ष में जन्म ग्रहण किया ॥४३॥ गन्धमादन पर्वत पर गन्धर्वराज की वृद्धा पत्नी ने पुत्ररत्न उत्पन्न किया और गुरुदेव भगवान् वशिष्ठ ने उस पुत्र का यथोचित नामकरण संस्कार किया ॥४४॥ उपशब्द का अर्थ अधिक है और पुंलिंग बर्हण का अर्थ पूज्य है। यह बालक पूज्य पुरुषों में सबसे अधिक है। इसलिए इसका नाम 'उपबर्हण' होगा ऐसा वशिष्ठ जी ने कहा ॥४५॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में नारदजन्मकथन
नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥१२॥

---

१ क. ०वाः सर्वकामिनः। ना०। २ ख. तस्यैव।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

सौतिरुवाच

पुत्रोत्सवे च रत्नानि धनानि विविधानि च। गन्धर्वराजः प्रददौ ब्राह्मणेभ्यो मुदाऽन्वितः ॥१॥
उपबर्हणस्तु कालेन हरेर्मन्त्रं सुदुर्लभम्। वसिष्ठेन तु संप्राप्य स चक्रे दुष्करं तपः ॥२॥
एकदा गण्डकीतीरे तं च संप्राप्तयौवनम्। गन्धर्वपत्न्यो ददृशुर्मूर्च्छामापुश्च तत्क्षणम् ॥३॥
ताश्च तीव्रं तपः कृत्वा प्राणान्संत्यज्य योगतः। पञ्चाशत्ता बभूवुश्च कन्याश्चित्ररथस्य च ॥४॥
उपबर्हणगन्धर्वं ताश्च तं वव्रिरे पतिम्। मुदा माला ददुस्तस्मै कामुक्यः पितुराज्ञया ॥५॥
गृहीत्वा ताश्च गन्धर्वो युवा सुस्थिरयौवनः। दिव्यं त्रिलक्षवर्षं च रेमे रहसि कामुकः ॥६॥
ततोऽपि सुचिरं राज्यं कृत्वा ताभिः सहानिशम्। जगाम ब्रह्मणः स्थानं हरिगाथां जगौ मुने ॥७॥
दृष्ट्वा स रम्भारम्भोरुं नर्तने कठिनं स्तनम्। बभूव स्खलनं तस्य गन्धर्वस्य महात्मनः ॥८॥
द्रुतं तत्याज संगीतं मूर्च्छां प्राप सभातले। उच्चैः प्रजहसुर्देवा ब्रह्मा कोपाच्छशाप तम् ॥९॥
व्रज त्वं शूद्रयोनिं च गान्धर्वीं तनुमुत्सृज। काले वैष्णवसंसर्गान्मत्पुत्रस्त्वं भविष्यसि ॥१०॥

अध्याय १३

ब्रह्मा के शाप से उपबर्हण का शरीर-त्याग, मालावती का विलाप आदि

सौति बोले—गन्धर्वराज ने उस पुत्रोत्सव के उपलक्ष में अत्यन्त प्रसन्न होकर ब्राह्मणों को अनेक भाँति के रत्न, धन समर्पित किये ॥१॥ समयानुसार बड़े होने पर उपबर्हण ने गुरु वशिष्ठ के द्वारा अत्यन्त दुर्लभ भगवान् का मन्त्र प्राप्त कर अति कठिन तप करना आरम्भ किया ॥२॥ एक बार गण्डकी नदी के तीर पर युवावस्था प्राप्त उस गन्धर्व को गन्धर्व की पत्नियों ने देखा। देखते ही वे उसी क्षण मूर्च्छित हो गईं ॥३॥ अनन्तर उन पचास स्त्रियों ने घोर तप करके योग मार्ग द्वारा अपने प्राणों को त्याग किया और चित्ररथ (गन्धर्व) की कन्या होकर पुनः जन्म ग्रहण किया ॥४॥ उपरान्त उन कन्याओं ने उसी उपबर्हण नामक गन्धर्व को अपना पति बनाया। उन्होंने अपने पिता की आज्ञा से गन्धर्व को माला पहनाई ॥५॥ वह कामुक गन्धर्व भी उन्हें अपनाकर एकान्त स्थान में निवास करते हुए दिव्य तीन लाख वर्षों तक चिरस्थायी यौवन का आनन्द लूटता रहा ॥६॥ मुने! अनन्तर राज्य-सिंहासन पर सुखासीन होकर उन ललनाओं के साथ राज्य का उपभोग करते हुए एक दिन ब्रह्मा के यहाँ जाकर भगवान् के यशोगान में सम्मिलित हुआ। नृत्य के समय नाचती हुई रम्भा के कदली-स्तम्भ के समान ऊरु और कठोर स्तन को देखते ही उस महात्मा गन्धर्व का वीर्यपात हो गया ॥७-८॥ इससे उसका संगीत तो छूट ही गया, वह मूर्च्छित भी हो गया। देवता लोग ठहाका मारकर हँसने लगे। तब ब्रह्मा ने उसे शाप देते हुए कहा—'इस गन्धर्व-शरीर को त्याग कर तुम शूद्र योनि में जन्म ग्रहण करो। फिर समयानुसार वैष्णवों का संसर्ग प्राप्त कर तुम पुनः मेरे पुत्र के रूप में प्रतिष्ठित हो जाओगे ॥९-१०॥ पुत्र! बिना विपत्ति को सहन किये पुरुषों की महिमा प्रकट नहीं

विना विपत्तेर्महिमा पुंसां नैव भवेत्सुत। सुखं दुःखं च सर्वेषां क्रमेण प्रभवेदिति॥११॥
इत्येवमुक्त्वा स विधिरगच्छत्पुष्करादृगृहम्। उपबर्हणगन्धर्वः स जहौ तां तनुं तदा॥१२॥
मूलाधारं स्वाधिष्ठानं मणिपूरमनाहतम्। विशुद्धमाज्ञाख्यं चेति भित्त्वा षट्चक्रमेव च॥१३॥
इडां सुषुम्नां मेधां च पिङ्गलां [1]प्राणधारिणीम्। सर्वज्ञानप्रदां चैव मनःसंयमिनीं तथा॥१४॥
विशुद्धां च निरुद्धां च वायुसंचारिणीं तथा। तेजः शुष्ककरीं चैव बलपुष्टिकरीं तथा॥१५॥
बुद्धिसंचारिणीं चैव ज्ञानजृम्भणकारिणीम्। सर्वप्राणहरा चैव पुनर्जीवनकारिणीम्॥१६॥
एताः षोडशधा नाडीर्भित्त्वा वै हंसमेव च। मनसा सहितं ब्रह्मरन्ध्रमानीय योगतः॥१७॥
स्थित्वा मुहूर्तमात्मानमात्मन्येव युयोज ह। जातिस्मरश्च योगीन्द्रः संप्राप ब्रह्म शौनक॥१८॥
वीणां त्रितन्त्रीं दुष्प्राप्यां वामस्कन्धे निधाय च। शुद्धस्फटिकमालां च विधृत्वा दक्षिणे करे॥१९॥
संजल्पन्परमं ब्रह्म वेदसारं परात्परम्। परं निस्तारबीजं च कृष्ण इत्यक्षरद्वयम्॥२०॥
प्राच्यां कृत्वा शिरःस्थानं पश्चिमे चरणद्वयम्। विधाय दर्भशयनं शयानः पुरुषो यथा॥२१॥
गन्धर्वराजस्तं दृष्ट्वा भार्यया सह तत्क्षणम्। योगेन ब्रह्म संप्राप श्रीकृष्णं मनसा स्मरन्॥२२॥
पत्न्यश्च बान्धवाः सर्वे विलप्य रुरुदुर्भृशम्। जग्मुः क्रमेण शोकार्ता मोहिता विष्णुमायया॥२३॥
पञ्चाशद्योषितां मध्ये प्रधाना महिषी च या। साध्वी मालावती नाम्ना परमा प्रेयसी वरा॥२४॥

होती। संसार में सभी को क्रमशः सुख और दुःख प्राप्त होते हैं॥११॥ इतना कहकर ब्रह्मा पुष्कर स्थान से अपने धाम को चले गये और उपबर्हण नामक गन्धर्व ने उसी समय अपने शरीर को त्याग दिया॥१२॥ उन्होंने सर्वप्रथम मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा नामक षट्चक्र का भेदन करके इडा, सुषुम्ना, मेधा, पिंगला, प्राणहारिणी, सर्वज्ञानप्रदा, मनःसंयमिनी, विशुद्धा, निरुद्धा, वायु-संचारिणी, तेज को सुखाने वाली, बल-पुष्टि करने वाली, बुद्धि-संचारिणी, ज्ञान को विकसित करने वाली, सर्वप्राणहरा और पुनर्जीवन करने वाली इन सोलह प्रकार की नाड़ियों का भेदन किया। अनन्तर मन समेत प्राणवायु को योग द्वारा ब्रह्मरन्ध्र में लाकर वे योगासन से बैठ गए और दो घड़ी तक उन्होंने मन को आत्मा में ही लगाया। तत्पश्चात् वह जातिस्मर (पूर्वजन्म की बात को याद रखने वाले) योगिराज उपबर्हण ब्रह्मभाव को प्राप्त हो गए॥१३-१८॥ शौनक! तीन तार वाली दुर्लभ वीणा को बायें कंधे पर रख कर दाहिने हाथ में शुद्ध स्फटिक की माला लिये वे वेद के सारतत्त्व तथा उद्धार के उत्तम बीज रूप परात्पर परब्रह्ममय 'कृष्ण' इन दो अक्षरों का जप करने लगे। उन्होंने कुश की चटाई पर पूर्व की ओर सिरहाना करके पश्चिम दिशा की ओर दोनों चरण फैला दिये और इस तरह सो गए, मानो कोई पुरुष सो रहा हो। उनके पिता गन्धर्वराज ने उन्हें इस प्रकार देहत्याग करते देख कर स्वयं भी अपनी पत्नी के साथ मन ही मन श्रीकृष्ण का स्मरण करते हुए योगधारण द्वारा प्राण त्याग दिये और परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त कर लिया। उस समय उपबर्हण के सभी भाई बन्धु और पत्नियाँ बार बार विलाप करते हुए जोर-जोर से रोने लगे। विष्णु की माया से मोहित होने के कारण शोक से पीड़ित हो वे उनके शरीर के पास गए। उपबर्हण की पचास स्त्रियों में मालावती नामक प्रधान रानी,

---

१ ख. ०णहारि०।

उच्चै रुरोद सा तीव्रं कान्तं कृत्वा च वक्षसि। इत्युवाच च शोकार्ता कान्तं संबोध्य चैव हि ॥२५॥

मालावत्युवाच

हे नाथ रमण श्रेष्ठ विदग्ध रसिकेश्वर। दर्शनं देहि मां बन्धो निमग्नां शोकसागरे ॥२६॥
विस्रम्भके[1] सुवसने रम्ये[2] चन्दनकानने। पुष्पभद्रानदीतीरे पुष्पोद्याने मनोहरे ॥२७॥
चन्दनाचलसांनिध्ये चारुचन्दनकानने। पुष्पचन्दनतल्पे च चन्दनानिलवासिते ॥२८॥
गन्धमादनशैलैकदेशे रम्ये नदीतटे। पुंस्कोकिलनिनादे च मालतीजलशालिनि ॥२९॥
श्रीशैले श्रीवने दिव्ये श्रीनिवासनिषेविते। श्रीयुक्ते श्रीपदाम्भोजे पूतेऽच्युतकृते शुभे ॥३०॥
पुरा या या कृता क्रीडा वसन्ते रहसि त्वया। मया च दुर्हृदा सार्धं तया वै दूयते मनः ॥३१॥
सुधातुल्येन वचसा सिक्ताऽहं च पुरा त्वया। दूयते सततं तेन परमात्माऽतिदारुणः ॥३२॥
साधुना सह संसर्गो वैकुण्ठादपि दुर्लभः। अहो ततोऽतिविच्छेदो मरणादपि दुष्करः ॥३३॥
तस्मात्तेषां च विच्छेदः साधुशोककरः परः। ततोऽपि बन्धुविच्छेदः शोकः परमदारुणः ॥३४॥
ततोऽपत्यवियोगो हि मरणादतिरिच्यते। सर्वस्मात्पतिभेदो हि तत्परं नास्ति संकटम् ॥३५॥
शयने भोजने स्नाने स्वप्ने जागरणेऽपि च। स्वामिविच्छेददुःखं च नूतनं च दिने दिने ॥३६॥
सर्वशोकं विस्मरेत्स्त्री स्वामिसंयोगमात्रतः। बन्धुमन्यं न पश्यमि यं दृष्ट्वा विस्मरेत्पतिम् ॥३७॥

जो पतिव्रता श्रेष्ठ एवं पति की परम प्रेयसी थी, अपने पति को छाती से लगाकर अत्यन्त उच्च स्वर से रोदन करने लगी ॥१९-२५॥

मालावती ने कहा—नाथ! रमण! उत्तम! चतुर! रसिकेश्वर! बन्धो! मैं शोकसागर में डूब रही हूँ, मुझे दर्शन देने की कृपा करो ॥२६॥ विश्वस्त गृह में, रमणीय चन्दनवन में, पुष्प भद्रानदी के तट पर मनोहर पुष्प-वाटिका में, मलयपर्वत के समीप सुन्दर चन्दनवन में चन्दन-वायु से सुवासित, पुष्पचन्दन की शय्या पर, गन्धमादनपर्वत के एकदेश में, रमणीय नदी-तट पर, नर कोकिलों से निनादित तथा मालतीपुष्पसम्पृक्त जल से युक्त श्रीपर्वत पर, लक्ष्मीरमण (विष्णु) से सेवित, श्रीयुक्त, श्रीचरणकमल से पूत तथा श्री विष्णु से पवित्र किये हुए दिव्य जीवन में पहले वसन्त ऋतु में एकान्त में मुझ दुष्टहृदया के साथ आपने जो-जो क्रीड़ायें कीं, उन (का स्मरण होने) से मेरा मन परितप्त हो रहा है। पहले आप अपनी अमृतोपम वाणी से मुझे सिंचित करते थे, उस (के स्मरण) से भी मेरा अत्यन्त कठोर आत्मा परम दुःखी हो रहा है। साधु पुरुष का संग वैकुंठ-सुख से भी बढ़कर है। हाय, उस (साधु-संग) से वंचित होना मृत्यु से भी अधिक दुःखदायी है ॥२७-३३॥ इसलिये उन लोगों का नाश होना सज्जनों के लिए अत्यन्त दुःखप्रद है। उससे भी परम दारुण शोक बन्धुवियोग में होता है और सन्तान का वियोग तो मरण से भी बढ़कर होता है। किन्तु सभी दुःखों से पतिवियोग अत्यन्त दुःखदायी होता है। उससे अधिक संकट कोई है ही नहीं ॥३४-३५॥ क्योंकि शयन, भोजन, स्नान और सोते-जागते सभी समय पति का वियोग-दुःख दिन-दिन नवीन होता जाता है ॥३६॥ स्त्री पति के संयोग मात्र से समस्त दुःखों को भुला देती है। किन्तु मुझे ऐसा अन्य कोई

---

१ क. ०स्रस्तके। २ क. ०म्ये नन्द०।

नातो विशिष्टं पश्यामि बान्धवं स्वामिना विना। साध्वीनां कुलजातानामित्याह कमलोद्भवः॥३८॥
हे दिगीशाश्च दिक्पाला हे धर्म त्वं प्रजापते। गिरीश कमलाकान्त पतिदानं च देहि मे॥३९॥
इत्युक्त्वा विरहार्ता सा कन्या चित्ररथस्य च। मूर्च्छां संप्राप तत्रैव दुर्गमे गहने वने॥४०॥
विचेतना तत्र तस्थौ कान्तं कृत्वा स्ववक्षसि। परिपूर्णे दिवानक्तं सर्वैर्देवैश्च रक्षिता॥४१॥
प्रभाते चेतनां प्राप्य विललाप भृशं मुहुः। इत्युवाच पुनस्तत्र हरिं संबोध्य सा सती॥४२॥

मालावत्युवाच

हे कृष्ण जगतां नाथ नाथ माहं जगद्बहिः। त्वमेव जगतां पाता मां न पासि कथं प्रभो॥४३॥
अयं भर्ताऽस्य भार्याऽहं ममेति तव मायया। त्वमेव संभवो भर्ता सर्वेषां सर्वकारणः॥४४॥
गन्धर्वः कर्मणा कान्तः कान्ताऽहं चास्य कर्मणा। क्व गतः कर्मभोगान्ते कुत्र संस्थाप्य मां प्रियाम्॥४५॥
को वा कस्याः पतिः पुत्रः का वा कस्य प्रिया प्रभो। संयुनक्ति विधाता च वियुनक्ति च कर्मणा॥४६॥
संयोगे परमानन्दो वियोगे प्राणसंकटम्। शश्वज्जगति मूर्खस्य नाऽऽत्मारामस्य निश्चितम्॥४७॥
नश्वरो विषयः सत्यं भुवि भोगश्च बान्धवः। स्वयं त्यक्तः सुखायैव दुःखाय त्याजितः परैः॥४८॥
तस्मात्सन्तः स्वयं त्यक्त्वा परमैश्वर्यमीप्सितम्। ध्यायन्ते सततं कृष्णपादपद्मं निरापदम्॥४९॥

बन्धु नहीं दिखायी पड़ता है, जिसे देखकर पति को भुला सकूं॥३७॥ इस बात को स्वयं ब्रह्मा ने भी कहा है कि—कुलीन पतिव्रताओं के लिए पति के अतिरिक्त उससे उत्तम अन्य कोई बन्धु नहीं है॥३८॥ हे दिशाओं के अधीश्वर, दिक्पाल! हे धर्म! हे प्रजापते, हे शिव, हे लक्ष्मीरमण! मुझे पतिदान देने की कृपा करो॥३९॥ उस दुर्गम एवं घोर वन में चित्ररथ की वह कन्या इतना कह कर मूर्च्छित हो गयी॥४०॥ पति को अपनी छाती से लगाये वह पूरे एक दिन और एक रात चेतनाहीन रही। उस समय सकल देवों ने उसकी रक्षा की॥४१॥ प्रातःकाल चेतना मिलने पर वह बार-बार अत्यन्त विलाप करने लगी। वहाँ उस सती ने भगवान् को सम्बोधित करके (अपने विलाप में) इस प्रकार कहा॥४२॥

मालावती बोली—हे कृष्ण! आप सम्पूर्ण जगत् के नाथ हैं। हे नाथ! मैं भी जगत् से बाहर नहीं हूँ। प्रभो! आप जगत् की रक्षा करते हैं, तो मेरी रक्षा क्यों नहीं कर रहे हैं?॥४३॥ यह मेरा पति है और मैं इसकी पत्नी हूँ, यह 'मेरा-तेरा' का भाव आपकी माया है। आप ही सबके स्वामी हैं और ऐसा होना ही अधिक संभव है; क्योंकि आप ही सबके कारण हैं॥४४॥ कर्मवश गन्धर्व मेरे पति हुए और कर्मवश ही मैं उनकी पत्नी हुई। किन्तु कर्मभोग के अन्त में वे मुझ प्रिया को छोड़कर कहाँ चले गये?॥४५॥ अथवा प्रभो! कौन किसका पति या पुत्र है तथा कौन किसकी प्रेयसी? विधाता ही कर्म के अनुसार प्राणियों को संयुक्त और वियुक्त करता रहता है॥४६॥ किन्तु सदा संसार में मूर्खों को ही संयोग में परमानन्द की प्राप्ति और वियोग में प्राणसंकट उपस्थित हो जाता है। आत्मा में रमण करने वाले महात्माओं को निश्चित ही यह दुःख प्राप्त नहीं होता है॥४७॥ यह सत्य है कि भूतल के सभी विषय, उनके भोग और बान्धव आदि नश्वर हैं। इनका स्वयं त्याग करना सुखकर होता है और दूसरे के द्वारा त्याग करवाने पर ये दुःखप्रद प्रतीत होते हैं॥४८॥ इसीलिए सन्त लोग अपने अभिलषित परम ऐश्वर्य का भी स्वयं त्याग करके भगवान् श्रीकृष्ण के निरापद चरणकमल का ही निरन्तर ध्यान करते रहते

सर्वत्र ज्ञानिनः सन्तः का स्त्री ज्ञानवती भुवि। ततो मह्यं विमूढायै दातुमर्हसि वाञ्छितम् ॥५०॥
न मे वाञ्छाऽमरत्वे च शक्रत्वे मोक्षवर्त्मनि। इमं कान्तं वरं देहि चतुर्वर्गकरं परम् ॥५१॥
यावती कामिनीजातिर्जगत्यां जगदीश्वर। कस्यैचिन्नहि दत्तश्च तेन धात्रेदृशः पतिः ॥५२॥
तस्मै दत्ताः गुणाः सर्वे रूपाणि विविधानि च। सुशीलानि च सर्वाणि चामरत्वं विना हरे ॥५३॥
रूपेण च गुणेनैव तेजसा विक्रमेण च। ज्ञानेन शान्त्या संतुष्ट्या हरितुल्यः प्रभुर्मम ॥५४॥
हरिभक्तो हरिसमो गाम्भीर्ये सागरो यथा। दीप्तिमान्सूर्यतुल्यश्च शुद्धो वह्निसमस्तथा ॥५५॥
चन्द्रतुल्यः सुदृश्यश्च कन्दर्पसमसुन्दरः। बुद्ध्या बृहस्पतिसमः काव्ये कविसमस्तथा ॥५६॥
वाणी च सर्वशास्त्रज्ञा प्रतिभायां भृगोरिव। कुबेरतुल्यो धनवान्महान्दाता मनोरिव ॥५७॥
धर्मे धर्मसमो धर्मी सत्ये सत्यव्रताधिकः। कुमारतुल्यतपसा स्वाचारे ब्रह्मणा समः ॥५८॥
ऐश्वर्ये शक्रतुल्यश्च सहिष्णुः पृथिवीसमः। एवंभूतो मृतः कान्तः प्राणा यान्ति न मे कथम् ॥५९॥
अहो[1] सुरा यज्ञभाजो घृतं भोक्तुं क्षमा भुवि। क्षणेनायज्ञभाजश्च करिष्यामि स्वलीलया ॥६०॥
नारायण जगत्कान्त नाहमेव जगद्बहिः। शीघ्रं जीवय मत्कान्तमन्यथा त्वां शपाम्यहम् ॥६१॥

हैं॥४९॥ पृथ्वी पर ज्ञानी महात्मा सब जगह हैं, किन्तु ज्ञानवती स्त्री कौन है? अतः आप मुझ मूढ़ अबला को मेरी अभिलषित वस्तु प्रदान करने की कृपा करें॥५०॥ मुझे अमरत्व, इन्द्रत्व अथवा मोक्ष की इच्छा नहीं है। अतः चारों वर्ग (धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष) के परम साधक मेरे इस पति को मुझे दे दें॥५१॥ हे जगदीश्वर! इस जगत् में जितनी स्त्री जातियाँ हैं, उनमें से किसी को भी ब्रह्मा ने ऐसा पति नहीं दिया है॥५२॥ हरे! ब्रह्मा ने केवल अमरत्व को छोड़ कर सभी गुण, विविध भाँति के समस्त रूप तथा सब प्रकार के सुन्दर स्वभाव उन्हें (मेरे पति को) प्रदान किए हैं॥५३॥ मेरे स्वामी रूप, गुण, तेज, पराक्रम, ज्ञान, शान्ति और सन्तुष्टि में भगवान् के समान हैं॥५४॥ वे (मेरे पति), हरि के भक्तों में हर के समान तथा गम्भीरता में सागर के समान हैं। वे सूर्य के समान देदीप्यमान, अग्नि के समान शुद्ध, चन्द्रमा के समान अत्यन्त दर्शनीय, काम की भाँति सुन्दर, बुद्धि में बृहस्पति के समान और काव्य में कवि (शुक्राचार्य) के तुल्य हैं॥५५-५६॥ उनकी वाणी सकल शास्त्रों को जानने वाली है। वे प्रतिभा में भृगु के समान तथा धन में कुबेर के तुल्य हैं। वे मनु की भाँति महान् दाता हैं। वे धर्म में धर्म के समान धर्मी, सत्य में सत्यव्रत से भी अधिक, (सनकादि) कुमारों के समान तपस्वी, ब्रह्मा के समान आचारी, इन्द्र के तुल्य ऐश्वर्यशाली और पृथ्वी के समान सहिष्णु (सहनशील) हैं। ऐसे मेरे पति जब मृत हो गए तब ये मेरे प्राण क्यों नहीं निकल कर जा रहे हैं? ॥५७-५९॥ अरे देवताओ! तुम लोग पृथ्वी पर यज्ञ में भाग ले कर घृत के पान करने में ही समर्थ हो। (देखो) मैं तुम्हें अभी क्षण मात्र में अपनी लीला द्वारा यज्ञ भाग से अलग कर देती हूँ॥६०॥ हे नारायण! आप समस्त जगत् के नाथ हैं। मैं भी जगत् के बाहर नहीं हूँ। अतः मेरे कान्त को शीघ्र जीवित कीजिए; नहीं तो आपको शाप दे रही हूँ॥६१॥ प्रजापते! पुत्र के शाप से तुम इस भूतल पर अपूज्य हो गए हो। अब

---

१ ख. अरे सु०।

प्रजापते पुत्रशापात्त्वमपूज्यो महीतले। तवैवानधिकारित्वं करिष्याम्यधुना भवे ॥६२॥
हे शंभो ज्ञानलोपं ते करिष्यामि शपेन च। धर्मलोपं च धर्मस्य करिष्याम्येव लीलया ॥६३॥
यमाधिकारं दूरे च करिष्यामि न संशयः। सत्यं कालं शपिष्यामि मृत्युकन्यां सुनिष्ठुराम् ॥६४॥
शपामि सर्वानत्रैव जरां व्याधिं विनाऽधुना। व्याधिना जरया मृत्युर्न ह्यभूच्च पतेर्मम ॥६५॥
इत्युक्त्वा कौशिकीतीरे चागच्छच्छप्तुमेव तान्। मालावती महासाध्वी शवं कृत्वा स्ववक्षसि ॥६६॥
तां शप्तुमुद्यतां दृष्ट्वा ब्रह्मा [1]देवपुरोगमः। जगाम शरणं विष्णुं तीरं क्षीरपयोनिधेः ॥६७॥
तत्र स्नात्वा च तुष्टाव परमात्मानमीश्वरम्। विष्णुं ब्रह्मा जगत्कान्तमित्युवाच ह भीतवत् ॥६८॥

ब्रह्मोवाच

उपबर्हणपत्नी सा कन्या चित्ररथस्य च। कान्तहेतोश्च मां देवाञ्छपेत्त्वं रक्ष माधव ॥६९॥
स्मरन्ति साधवः सन्तो जपन्ति मुनयो मुदा। स्वप्ने जागरणे चैव सर्वकार्येषु माधवम् ॥७०॥
शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायण। रक्ष रक्ष हृषीकेश व्रजामः शरणं वयम् ॥७१॥
पूजा मे पुत्रशापेन विहता सांप्रतं प्रभो। अधिकारहतं मां च कुरुते मालती सती ॥७२॥
सर्वाधिकारो ब्रह्माण्डे त्वया दत्तः पुरा प्रभो। संपदेतादृशी नाथ यास्यत्येवाधुना मम ॥७३॥

मैं तुम्हें अधिकार से भी च्युत कर दूंगी ॥६२॥ शम्भो! मैं शाप द्वारा तुम्हारे ज्ञान का लोप कर दूंगी और इसी भाँति धर्म के धर्म को मैं लीला द्वारा उड़ा दूंगी ॥६३॥ यम को भी उनके अधिकार से पृथक् कर दूंगी, इसमें संशय नहीं। इसी भाँति मैं काल तथा अत्यन्त निष्ठुर मृत्यु-कन्या को भी शाप देने जा रही हूँ ॥६४॥ बुढ़ापे और व्याधि से हमारे पति की मृत्यु नहीं हुई है। अतः इन दोनों को छोड़ कर अन्य सभी को मैं अभी शाप देने जा रही हूँ। ॥६५॥ इतना कह कर महापतिव्रता मालावती पति के शव को गोद में लेकर उन लोगों को शाप देने के लिए कौशिकी नदी के तट पर चली गयी। उसे शाप देने के लिए उद्यत देख कर ब्रह्मा आदि सभी देवगण क्षीरसागर के तट पर भगवान् विष्णु की शरण में गए ॥६६-६७॥ वहाँ स्नान करके ब्रह्मा भयभीत की भाँति उन जगत्पति विष्णु की, जो परमात्मा और ईश्वर कहे जाते हैं, स्तुति करने लगे ॥६८॥

ब्रह्मा बोले—माधव! उपबर्हण की पत्नी और चित्ररथ की कन्या मालावती अपने पति के कारण मुझे और देवों को शाप देने जा रही है, उससे हमारी रक्षा कीजिए ॥६९॥ सोते-जागते सभी कार्यों में साधु लोग भगवान् कृष्ण का स्मरण करते हैं और मुनि लोग उनका जप करते हैं ॥७०॥ शरण में आए हुए दीन-दुखियों की रक्षा करने में तत्पर! हृषीकेश (इन्द्रियों के स्वामी)! रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए। हम लोग आपकी शरण में आए हैं ॥७१॥ प्रभो! पुत्र के शाप द्वारा हमारी पूजा तो नष्ट ही हो गयी है, अब सती मालावती मुझे अधिकार से भी च्युत कर रही है ॥७२॥ प्रभो! पूर्व समय में आपने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में मुझे अधिकार प्रदान किया था। किन्तु नाथ! इस समय हमारी इस भाँति की सम्पत्ति भी हमसे पृथक् हो जायगी ॥७३॥

---

१ क. देवाः ब्रह्मपुरोगमाः। प्रजग्मुः श०।

महादेव उवाच

त्वया दत्तं महाज्ञानं गुप्तं सर्वेषु दुर्लभम्। शतमन्वन्तरतपःफलेन[1] पुष्करे पुरा ॥७४॥
ऐश्वर्यं वा धनं वाऽपि विद्या वा विक्रमोऽथवा। ज्ञानस्य परमार्थस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥७५॥
सर्वज्ञातं सर्वगुप्तमत्यन्तं दुर्लभं परम्। मम तत्त्वज्ञानरत्नं शापान्निर्याति योषितः ॥७६॥
अहो पतिव्रतातेजः सर्वेषां तेजसां परम्। तेजोऽनलेन दग्धं मां रक्ष रक्ष हरे हरे ॥७७॥

धर्म उवाच

सर्वरत्नात्परं रत्नं धर्म एव सनातनः। यास्यत्येवंविधो धर्मस्त्वया दत्तः पुरा प्रभो ॥७८॥
सप्तमन्वन्तरतपः फलेन परमेश्वर। प्राप्तो धर्मोऽधुना याति शापेन योषितः प्रभो ॥७९॥

देवा ऊचुः

यज्ञभाजो घृतभुजो वयमेव त्वया कृताः। योषिच्छापेन तत्सर्वमधुना याति माधव ॥८०॥
इत्युक्त्वा संयताः सर्वे तस्थुस्तत्र भयार्दिताः। एतस्मिन्नन्तरेऽकस्माद्वागबभूवाशरीरिणी ॥८१॥
यूयं गच्छत तन्मूलं विप्ररूपी जनार्दनः। पश्चाद्यास्यति शान्त्यर्थमिति वो रक्षणाय च ॥८२॥
श्रुत्वा तद्वचनं देवाः प्रहृष्टमनसोन्मुखाः। जग्मुर्मालावतीस्थानं कौशिकीतीरमीश्वराः ॥८३॥

महादेव बोले—पूर्व समय में पुष्कर क्षेत्र में सौ मन्वन्तर-काल तक तप करने के फलस्वरूप आपने मुझे महाज्ञान प्रदान किया था, जो गुप्त एवं सब के लिए दुर्लभ है ॥७४॥ ऐश्वर्य, धन, विद्या तथा विक्रम उस परमार्थ ज्ञान की सोलहवीं कला के समान भी नहीं हैं ॥७५॥ सब से अज्ञात, सब से गुप्त एवं अत्यन्त दुर्लभ और उत्कृष्ट वह मेरा तत्त्वज्ञानरत्न स्त्री के शाप द्वारा नष्ट हो रहा है ॥७६॥ अहो! (आश्चर्य है) पतिव्रता का तेज सभी तेजों से श्रेष्ठ है। इसीलिए, हे हरे, उस तेज रूप अग्नि से मैं दग्ध हो रहा हूँ, मेरी रक्षा करें ॥७७॥

धर्म बोले—प्रभो! आपने प्राचीन काल में मुझे धर्म प्रदान किया था, जो सभी रत्नों से अत्युत्तम और सनातन है। वह अब मुझसे पृथक् होकर जा रहा है ॥७८॥ परमेश्वर! सात मन्वन्तरों के समय तक तप करने के परिणामस्वरूप वह मुझे प्राप्त हुआ था। किन्तु प्रभो! वह धर्म स्त्री के शाप द्वारा (मुझसे अलग होने) जा रहा है ॥७९॥

देवों ने कहा—माधव! हमें यज्ञों में भाग लेने और घृत भक्षण करने के लिए आपने नियुक्त किया था। स्त्री के शाप वश यह सब इस समय नष्ट होने जा रहा है ॥८०॥ भयभीत देवगण इतना कह कर संयम के साथ उसी स्थान पर खड़े रहे। उसी बीच अकस्मात् आकाशवाणी हुई कि तुम लोग उस (मालावती) के पास चलो। पीछे से उसको शान्त करने और तुम लोगों की रक्षा करने के लिए भगवान् जनार्दन ब्राह्मण-वेष में वहाँ पहुँच रहे हैं ॥८१-८२॥ उस वाणी को सुन कर देवताओं का मन प्रसन्नता से खिल उठा और वे कौशिकी-तट पर पहुँच कर पतिव्रता मालावती के स्थान में गए ॥८३॥ वह रत्नों के सारभूत इन्द्रनील आदि मणियों के आभूषणों

---

१ क. ०न प्रतिपादितम्०। ७४। ऐ।

तामेव ददृशुर्देवा देवीं मालावतीं सतीम्। रत्नसारेन्द्रभूषाभिरुज्ज्वलां कमलाकलाम् ।।८४।।
वह्निशुद्धांशुकाधानां सिन्दूरबिन्दुभूषिताम्। शरच्चन्द्रप्रभां शान्तां द्योतयन्तीं दिशस्त्विषा ।।८५।।
पतिसेवामहाधर्मचिरसंचिततेजसा। प्रज्वलन्तीं सुप्रदीप्तशिखां वह्नेरिवोत्तमाम् ।।८६।।
योगासनं कुर्वतीं च शववक्षःस्थलस्थिताम्। सुरम्यां स्वामिनो वीणां बिभ्रती दक्षिणे करे ।।८७।।
तर्जन्यङ्गुष्ठकोटिभ्यां शुद्धस्फटिकमालिकाम्। भक्त्या स्नेहेन कान्तस्य बिभ्रती योगमुद्रया ।।८८।।
चारुचम्पकवर्णाभां बिम्बोष्ठीं रत्नमालिनीम्। यथा षोडशवर्षीयां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम् ।।८९।।
बृहन्नितम्बभारार्तां पीनश्रोणिपयोधराम्। पश्यन्तीं शवमीशस्य शुभदृष्ट्या पुनः पुनः ।।९०।।
एवंभूतां च तां दृष्ट्वा देवास्ते विस्मयं ययुः। स्थगितां च क्षणं तत्र धार्मिका धर्मभीरवः ।।९१।।

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे
मालावतीविलापो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।

से भूषित हो भगवती लक्ष्मी की कला-सी जान पड़ती थी ।।८४।। उसके अंगों को अग्नि में तपा कर शुद्ध की हुई सुनहरी साड़ी सुशोभित कर रही थी। भाल देश में सिन्दूर की बेंदी शोभा दे रही थी। वह शरत्काल के चन्द्रमा की शान्त प्रभा-सी प्रकाशित होती और अपनी दीप्ति से सम्पूर्ण दिशाओं को उद्भासित करती थी। वह पतिसेवा रूप महान् धर्म का अनुष्ठान कर के चिरकाल से संचित किए हुए तेज से अग्नि की उत्तम एवं प्रज्वलितशिखा-सी उद्दीप्त हो रही थी। पति के शव को छाती से लगा कर योगासन लगाये बैठी थी और स्वामी की सुरम्य वीणा को दाहिने हाथ में लिये हुई थी। प्राणवल्लभ के प्रति भक्ति तथा स्नेह के कारण योगमुद्रापूर्वक तर्जनी और अंगुष्ठ अंगुलियों के अग्रभाग से शुद्ध स्फटिक मणि की माला धारण किए थी। मनोहर चम्पा की-सी अंगकान्ति, बिम्बफल के सदृश अरुण ओष्ठ, गले में रत्नों की माला शोभा पाती थी। वह सुन्दरी सोलह वर्ष की-सी अवस्था से युक्त तथा नित्य सुस्थिर यौवन से सम्पन्न थी। उसके नितम्ब विशाल थे और स्तन स्थूल थे। वह सती अपने स्वामी के शव को बारंबार शुभ दृष्टि से देख रही थी ।।८५-९०।।

इस रूप में मालावती को देख कर उन सब देवताओं को बड़ा विस्मय हुआ। वे सभी धर्मात्मा और धर्मभीरु थे। अतः क्षण भर वहाँ अपने को छिपाये खड़े रहे ।।९१।।

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में मालावती-विलाप
नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त ।।१३।।

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

सौतिरुवाच

तत्र स्थित्वा क्षणं देवा ब्रह्मेशानपुरोगमाः। ययुर्मालावतीमूलं परं मङ्गलदायकाः ॥१॥
मालावती सुरान्दृष्ट्वा प्रणनाम पतिव्रता। रुरोद कान्तं संस्थाप्य देवानां संनिधौ मुने ॥२॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र कश्चिद्ब्राह्मणबालकः। आजगाम सुराणां च सभामतिमनोहरः ॥३॥
दण्डी छत्री शुक्लवासा बिभ्रत्तिलकमुज्ज्वलम्। दीर्घपुस्तकहस्तश्च सुप्रशान्तश्च सुस्मितः ॥४॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गः प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा। सुरान्संभाष्य तत्रैव विस्मितान्विष्णुमायया ॥५॥
तत्रोवास सभामध्ये तारामध्ये यथा शशी। उवाच देवान्सर्वांश्च मालतीं च विचक्षणः ॥६॥

ब्राह्मण उवाच

कथमत्र सुराः सर्वे ब्रह्मेशानपुरोगमाः। स्वयं विधाता जगतां स्रष्टा वै केन कर्मणा ॥७॥
सर्वब्रह्माण्डसंहर्ता शम्भुरत्र स्वयं विभुः। अहो त्रिजगतां साक्षी धर्मो वै सर्वकर्मणाम् ॥८॥
कथं रविः कथं चन्द्रः कथमत्र हुताशनः। कथं कालो मृत्युकन्या कथं वाऽत्र यमादयः ॥९॥
हे मालावति ते क्रोडे कोऽतिशुष्कः शवोऽनघे। जीविकायाः कथं मूले योषितश्च पुमाञ्छवैः ॥१०॥

अध्याय १४

विप्रबालक के रूप में विष्णु का मालावती से साथ संवाद

सौति बोले—ब्रह्मा और शिव को आगे किए परम मंगल प्रदान करने वाले देवगण क्षण मात्र वहाँ ठहर कर मालावती के निकट पहुँचे ॥१॥ मुने! पतिव्रता मालावती ने देवों को देख कर उन्हें प्रणाम किया और देवों के समीप अपने पति को रख कर वह रोदन करने लगी ॥२॥ उसी बीच उस देव-सभा में एक अति मनोहर ब्राह्मण-बालक आ गया, जो दण्ड और छत्र लिए, शुक्ल वस्त्र पहने, उज्ज्वल तिलक लगाए एक बड़ी-सी पुस्तक हाथ में लिए अत्यन्त शान्त एवं मन्द मुसकान कर रहा था ॥३-४॥ उसके सम्पूर्ण अंग चन्दन से चर्चित थे। ब्रह्म-तेज से प्रज्वलित उस बालक ने वहाँ पहुँच कर देवों से बातचीत की जो भगवान् विष्णु की माया से ठगे-से दिखायी दे रहे थे। उस सभामध्य में, ताराओं के बीच चन्द्रमा की भाँति विराजमान उस चतुर बालक ने सभी देवों और मालावती से कहा ॥५-६॥

ब्राह्मण बोले—यहाँ ब्रह्मा और शिव को आगे किए देवगण और जगत् के स्रष्टा स्वयं विधाता भी किस कार्य से उपस्थित हैं? ॥७॥ समस्त ब्रह्माण्ड का संहार करने वाले साक्षात् शिव भी यहाँ उपस्थित हैं और आश्चर्य है कि तीनों लोकों में सभी कर्मों के साक्षी धर्म भी यहाँ उपस्थित हैं ॥८॥ सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, काल, मृत्युकन्या और यम आदि ये सभी लोग यहाँ क्यों आए हैं? हे मालावती! हे निष्पाप! तुम्हारी गोद में यह सूखा हुआ शव किसका दिखायी दे रहा है? जीवित स्त्री के पास यह पुरुष-शव क्यों है? ॥९-१०॥ इस प्रकार वह ब्राह्मण सभा में देवों तथा

इत्युक्त्वा तांश्च तां विप्रो विरराम सभातले। मालावती तं प्रणम्य समुवाच विचक्षणम् ॥११॥

मालावत्युवाच

आनन्दपूर्वकं वन्दे विप्ररूपं जनार्दनम्। तुष्टा देवा हरिस्तुष्टो यस्य पुष्पजलेन च ॥१२॥
अवधानं कुरु विभो शोकार्तया निवेदने। समा कृपा सतां शश्वद्योग्यायोग्ये कृपावताम् ॥१३॥
उपबर्हणभार्याऽहं कन्या चित्ररथस्य च। सर्वे मालावतीं कृत्वा वदन्ते विप्रपुंगव ॥१४॥
दिव्यं लक्षयुगं रम्ये स्थाने स्थाने मनोहरे। कृता स्वच्छन्दतः क्रीडा चानेन स्वामिना सह ॥१५॥
प्रिये स्नेहो हि साध्वीनां यावान्विप्रेन्द्र योषिताम्। सर्वं शास्त्रानुसारेण जानासि त्वं विचक्षण ॥१६॥
अकस्माद्ब्रह्मणः शापात्प्राणांस्तत्याज मत्पतिः। देवानुद्दिश्य विलपे यथा जीवति मत्पतिः ॥१७॥
स्वकार्यसाधने सर्वे व्यग्राश्च जगतीतले। भावाभावं न जानन्ति केवलं स्वार्थतत्पराः ॥१८॥
सुखं दुःखं भयं शोकः संतापः कर्मणां नृणाम्। ऐश्वर्यं परमानन्दो जन्म मृत्युश्च मोक्षणम् ॥१९॥
देवाश्च[1] सर्वजनका दातारः कर्मणां फलम्। कर्तारः कर्मवृक्षाणां मूलच्छेदं च लीलया ॥२०॥
नहि देवात्परो बन्धुर्नहि देवात्परो बली। दयावान्नहि देवाच्च न च दाता ततः परः ॥२१॥

मालावती से कह कर चुप हो गया। अनन्तर मालावती उस बुद्धिमान् ब्राह्मण को प्रणाम करके उससे बोली ॥११॥

मालावती बोली—मैं विप्र रूपी जनार्दन को प्रसन्नता पूर्वक प्रणाम करती हूँ, जिनके दिए हुए पुष्प और जल से देवगण और विष्णु भी सन्तुष्ट होते हैं ॥१२॥ प्रभो! आप सावधान होकर मुझ शोक-पीड़िता का निवेदन सुनने की कृपा करें; क्योंकि कृपाशील सज्जनों की कृपा योग्य और अयोग्य सब पर सदा समान रूप से प्रकट होती है ॥१३॥ विप्रपुंगव! मैं उपबर्हण की भार्या चित्ररथ की कन्या हूँ। मुझे सब मालावती कहते हैं ॥१४॥ रमणीक और मनोहर प्रत्येक स्थान में मैंने अपने इस स्वामी के साथ लक्ष दिव्य वर्षों तक स्वतन्त्र विहार किया है। विप्रेन्द्र! विद्वान्! साध्वी स्त्रियों का अपने प्रियतम के प्रति कितना स्नेह होता है। वह सब आपको शास्त्रानुसार विदित है ॥१५-१६॥ ब्रह्मा के आकस्मिक शाप द्वारा मेरे पतिदेव ने अपने प्राणों का त्यागकर दिया है। देवों के सम्मुख मैं इसलिए विलाप कर रही हूँ कि मेरे पति जीवित हो जायँ ॥१७॥ क्योंकि संसार में सभी लोग अपने कार्यों की सिद्धि में व्यग्र रहते हैं। वे लाभ-हानि को नहीं जानते। केवल अपने स्वार्थ में ही लीन रहते हैं ॥१८॥ मनुष्यों के सुख, दुःख, भय, शोक, सन्ताप, ऐश्वर्य, परमानन्द, जन्म, मृत्यु, और मोक्ष कर्मों के फल हैं। देवता सबके जनक हैं। वे ही कर्मों का फल देते हैं। साथ ही वे लीलापूर्वक कर्मवृक्ष का मूलोच्छेदन करने में भी समर्थ हैं ॥१९-२०॥ क्योंकि देवों से बढ़कर बन्धु, देवों से बढ़कर वलवान् तथा दयावान् और देवों से बढ़कर कोई दाता नहीं है। इसीलिए धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के फल देने वाले कल्पवृक्ष रूप देवों से मैं याचना करती हूँ कि वे मुझे अभिलषित पति-दान

---

१ क. ०श्च कर्मज०।

सर्वान्देवानहं याचे पतिदानंममेप्सितम्। धर्मार्थकाममोक्षाणां फलदांश्च सुरद्रुमान्॥२२॥
यदि दास्यन्ति देवा मे कान्तदानं यथेप्सितम्। भद्रं तदाऽन्यथा तेभ्यो दास्यामि स्त्रीवधं ध्रुवम्॥२३॥
शपिष्यामि च सर्वांश्च दारुणं दुर्निवारकम्। दुर्निवार्यः सतीशापस्तपसा केन वार्यते॥२४॥
इत्युक्त्वा मालती साध्वी शोकार्ता सुरसंसदि। विरराम द्विजश्रेष्ठस्तामुवाच च शौनक॥२५॥

ब्राह्मण उवाच

कर्मणां फलदातारो देवाः सत्यं च मालति। न सद्यः सुचिरेणैव धान्यं कृषकवन्नृणाम्॥२६॥
गृही च कृषकद्वारा क्षेत्रे धान्यं वपेत्सति। तदङ्कुरो भवेत्काले काले वृक्षः फलत्यपि॥२७॥
काले सुपक्वं भवति काले प्राप्नोति तद्गृही। एवं सर्वं समुन्नेयं चिरेण कर्मणः फलम्॥२८॥
अष्ठीं वपति संसारे गृहस्थो विष्णुमायया। काले तदङ्कुरो वृक्षः काले प्राप्नोति तत्फलम्॥२९॥
पुण्यवान्पुण्यभूमौ च करोति सुचिरं तपः। तेषां च फलदातारो देवाः सत्यं न संशयः॥३०॥
ब्राह्मणानां मुखे क्षेत्रे श्रेष्ठेऽनूषर एव च। यो यज्जुहोति भक्त्या च स तत्प्राप्नोति निश्चितम्॥३१॥
न बलं न च सौन्दर्यं नैश्वर्यं न धनं सुतः। नैव स्त्री न च सत्कान्तः किं भवेत्तपसा विना॥३२॥
सेवते प्रकृतिं यो हि भक्त्या जन्मनि जन्मनि। स लभेत्सुन्दरीं कान्तां विनीतां च गुणान्विताम्॥३३॥
श्रियं च निश्चलां पुत्रं पौत्रं भूमिं धनं प्रजाम्। प्रकृतेश्च[1] वरेणैव लभेद्भक्तोऽवलीलया॥३४॥

देने की कृपा करें॥२१-२२॥ देवगण! यदि आप लोग मुझे अभीष्ट पतिदान देंगे तब तो कुशल है; नहीं तो मैं निश्चित ही स्त्रीवध का पाप इन्हें दूंगी। और सभी देवों को कठोर एवं दुर्निवार शाप प्रदान करूँगी। सती का शाप दुर्निवार होता ही है। किस तपस्या से उसका निवारण किया जाएगा? ॥२३-२४॥ हे शौनक! इतना कहकर शोक-सन्तप्त मालावती उस देवसभा में चुप हो गई। तत्पश्चात् उस द्विज-श्रेष्ठ ने उससे कहा॥२५॥

ब्राह्मण बोले—हे मालावति! यह सत्य है कि देवलोग मनुष्यों को उनके कर्मों के फल प्रदान करते हैं, किन्तु तत्काल नहीं। ठीक वैसे ही, जैसे किसान बोये हुए अनाज का फल तुरन्त नहीं, देर से पाता है॥२६॥ गृहस्थ हलवाहे के द्वारा खेतों में बीज बोता है। उसका अंकुर समय पर प्रकट होता है। फिर समय आने पर वह वृक्ष होता है और फलता भी है॥२७॥ समय पाकर वह भलीभाँति पकता है तथा समय पर वह गृही उसे प्राप्त करता है। इसी प्रकार कर्म का फल भी देर में प्राप्त होता है॥२८॥ भगवान् विष्णु की माया से मोहित होकर गृही संसार में बीज बोता है, समय पर उसमें अंकुर निकलता है और समय प्राप्त होने पर वही वृक्ष होकर फलता है जो गृही को प्राप्त होता है॥२९॥ पुण्यात्मा पुरुष पुण्यभूमि में अति चिरकाल तक जो तप करता है उसका फल देने वाले सचमुच देवता ही हैं, इसमें संशय नहीं है॥३०॥ ब्राह्मणों के मुख में तथा उत्तम उर्वरा भूमि में मनुष्य भक्तिपूर्वक जो आहुति डालता है, उसका फल उसे निश्चित रूप से प्राप्त होता है॥३१॥ बिना तप किये बल, सौन्दर्य, ऐश्वर्य, धन, पुत्र, स्त्री और मनोहर पति की प्राप्ति नहीं होती (अर्थात् तप के बिना कुछ भी नहीं होता)। जो जन्मजन्मान्तर तक भक्तिपूर्वक प्रकृति (दुर्गा देवी) की सेवा करते हैं, उन्हें गुणवती, विनीत और सुन्दरी स्त्री की प्राप्ति होती है॥३२-३३॥ प्रकृति के वरदान द्वारा भक्त पुरुष लीलापूर्वक निश्चल लक्ष्मी, पुत्र, पौत्र, भूमि, धन एवं प्रजा को प्राप्त

---

१ क. ०श्च प्रियेणै०।

शिवं शिवस्वरूपं च शिवदं शिवकारणम्। ज्ञानानन्दं महात्मानं परं मृत्युंजयं वरम् ॥३५॥
तमीशं सेवते यो हि भक्त्या जन्मनि जन्मनि। पुमान्प्राप्नोति सत्कान्तां कामिनी चापि सत्पतिम् ॥३६॥
विद्यां ज्ञानं सुकवितां पुत्रं पौत्रं परां श्रियम्[1]। बलं धनं विक्रमं च लभेद्धरवरेण सः ॥३७॥
ब्रह्माणं भजते यो हि लभेत्सोऽपि प्रजां श्रियम्। विद्यामैश्वर्यमानन्दं वरेण ब्रह्मणो नरः ॥३८॥
यो नरो भजते भक्त्या दीननाथं दिनेश्वरम्। विद्यामारोग्यमानन्दं धनं पुत्रं लभेद्ध्रुवम् ॥३९॥
गणेश्वरं यो भजते देवदेवं सनातनम्। सर्वाग्रपूज्यं सर्वेशं भक्त्या जन्मनि जन्मनि ॥४०॥
विघ्ननाशो भवेत्तस्य स्वप्ने जागरणेऽनिशम्। परमानन्दमैश्वर्यं पुत्रं पौत्रं धनं प्रजाः ॥४१॥
ज्ञानं विद्यां सुकवितां लभते तद्वरेण च। भजते यो हि विष्णुं च लक्ष्मीकान्तं सुरेश्वरम् ॥४२॥
वरार्थी चेल्लभेत्सर्वं निर्वाणमन्यथा ध्रुवम्। शान्तं निषेव्य पातारं सत्यं सत्यं लभेन्नरः ॥४३॥
सर्वं तपः सर्वधर्मं यशः कीर्तिमनुत्तमाम्। विष्णुं निषेव्य सर्वेशं यो मूढो लभते वरम् ॥४४॥
विडम्बितो विधात्राऽसौ मोहितो विष्णुमायया। माया नारायणीशाना सर्वप्रकृतिरीश्वरी ॥४५॥
सा कृपां कुरुते यं च विष्णुमन्त्रं ददाति तम्। धर्मं यो भजते धर्मो सर्वधर्मं लभेद्ध्रुवम् ॥४६॥

करता है ॥३४॥ जो प्रत्येक जन्म में भक्तिपूर्वक कल्याणस्वरूप, कल्याणप्रद, कल्याण के कारण, ज्ञानानन्द की मूर्ति, श्रेष्ठ महात्मा और मृत्यु के विजेता शिव की सेवा करता है, वह पुरुष प्रत्येक जन्म में सुन्दरी स्त्री प्राप्त करता है, और शंकर की आराधना करने वाली स्त्री प्रत्येक जन्म में उत्तम पति पाती है। शिव के वर से मनुष्य को विद्या, ज्ञान, उत्तम कविता, पुत्र, पौत्र, उत्तम स्त्री, बल, धन एवं विक्रम की प्राप्ति होती है ॥३५-३७॥ ब्रह्मा की सेवा करने वाले भी ब्रह्मा के वरदान द्वारा प्रजा (सन्तान) लक्ष्मी, विद्या, ऐश्वर्य और आनन्द की प्राप्ति करते हैं।।३८॥ जो मनुष्य भक्तिपूर्वक दीनों के नाथ दिनेश्वर सूर्य की सेवा करता है, उसे भी विद्या, आरोग्य, आनन्द, धन और पुत्र की निश्चित प्राप्ति होती है ॥३९॥ प्रत्येक जन्म में जो भक्तिपूर्वक सबसे प्रथम पूजने योग्य, सर्वेश्वर, सनातन, देवाधिदेव गणेश्वर की पूजा करता है, उसके सोते-जागते सभी समय के विघ्नों का नाश होता है और परमानन्द, ऐश्वर्य, पुत्र, पौत्र, धन, प्रजा, ज्ञान, विद्या एवं सुन्दर कविता उसे उनके वरदान द्वारा प्राप्त होती है। जो देवों के अधीश्वर एवं लक्ष्मी के कान्त भगवान् विष्णु की सेवा करता है, वह यदि वरदान चाहता है तो उसे वह सम्पूर्ण वर प्राप्त हो जाता है; अन्यथा उसे निर्वाण की प्राप्ति तो निश्चित ही होती है। उस शान्त एवं रक्षक विष्णु की सेवा करके मनुष्य निश्चित रूप से समस्त तप, सम्पूर्ण धर्म, यश और परमोत्तम कीर्ति को प्राप्त कर लेता है। जो मूढ़ सर्वेश्वर भगवान् विष्णु का सेवन करके उसके बदले में कोई वर लेना चाहता है, उसे विधाता ने ठग लिया और विष्णु की माया ने मोह में डाल दिया (ऐसा समझना चाहिए)। नारायण की माया सब कुछ करने में समर्थ, सबकी कारणभूता और परमेश्वरी है। वह जिस पर कृपा करती है, उसे विष्णुमंत्र देती है। जो धर्मात्मा धर्म की सेवा करता है उसे निश्चित ही सब धर्मों की प्राप्ति होती है ॥४०-४६॥ वह इस लोक में सुखानुभव करने के उपरान्त

---

१ क ०म्। वरं ध०।

इह लोके सुखं भुक्त्वा याति विष्णोः परं पदम्। यो यं देवं भजेद्भक्त्या स चाऽऽदौ लभते च तम् ॥४७॥
काले पश्चात्तेन सार्धं परं विष्णोः पदं लभेत्। श्रीकृष्णं भजते यो हि निर्गुणं प्रकृतेः परम् ॥४८॥
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां सेव्यं बीजं परात्परम्। अक्षरं परमं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम् ॥४९॥
साकारं च निराकारं ज्योतिः स्वेच्छामयं विभुम्। सर्वाधारं च[1] सर्वेशं परमानन्दमीश्वरम् ॥५०॥
निर्लिप्तं साक्षिरूपं च भक्तानुग्रहविग्रहम्। जीवन्मुक्तः स सत्यं हि न वरं लभते सुधीः ॥५१॥
स सर्वं मन्यते तुच्छं सालोक्यादिचतुष्टयम्। ब्रह्मत्वममरत्वं वा मोक्षं यत्तुच्छवत्सति ॥५२॥
ऐश्वर्यं लोष्टतुल्यं च नश्वरं चैव मन्यते। इन्द्रत्वं च मनुत्वं च चिरजीवित्वमेव वा ॥५३॥
जलबुद्बुदवद्बुद्धया चातितुच्छं न गण्यते। स्वप्ने जागरणे वाऽपि शश्वत्सेवां च वाञ्छति ॥५४॥
दास्यं विना न याचेत श्रीकृष्णस्य पदं परम्। तत्पादाब्जे दृढां भक्तिं लब्ध्वा पूर्णो निरन्तरम् ॥५५॥
परिपूर्णतमं ब्रह्म निषेव्यं सुस्थिरैः सदा। आत्मनः कुलकोटिं च शतं मातामहस्य च ॥५६॥
श्वशुरस्य शतं पूर्वमुद्धृत्य चावलीलया। दासं दासी प्रसूं भार्यां पुत्रादपि परं शतम् ॥५७॥
उद्धरेत्कृष्णभक्तश्च गोलोकं यात निश्चितम्। तावद्गर्भे वसेत्कामी तावती यमयातना ॥५८॥

भगवान् विष्णु का परम पद प्राप्त करता है। जो जिस देव की भक्ति-भावना से उपासना करता है, वह पहले उसी देव को पाता है और पश्चात् समय पाकर उस देवता के साथ वह भगवान् विष्णु के परम धाम में चला जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण प्रकृति से परे तथा तीनों गुणों से अतीत—निर्गुण हैं। ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आदि देवों के सेव्य, उनके आदि कारण, परात्पर, अविनाशी, परब्रह्म एवं सनातन भगवान् हैं। साकार, निराकार, ज्योतिःस्वरूप, स्वेच्छामय, व्यापक, सबके आधार, सबके अधीश्वर परमानन्दमय, ईश्वर, निर्लिप्त तथा साक्षीरूप हैं। वे भक्तों के ऊपर कृपा करने के लिए शरीर धारण करते हैं। जो उनकी आराधना करता है, वह सचमुच जीवन्मुक्त है। वह विद्वान् अन्य वरदान कभी नहीं चाहता है ॥४७-५१॥ वह सालोक्य आदि चार प्रकार के मोक्ष को भी तुच्छ समझता है और ब्रह्मत्व, अमरत्व तथा मोक्ष भी उसे तुच्छ लगता है। वह ऐश्वर्य को मृत्तिका के समान नश्वर समझता है। उसी प्रकार इन्द्रत्व, मनुत्व और चिरजीवित्व को भी जल के बुलबुले की भाँति क्षणभंगुर समझकर अत्यन्त तुच्छ गिनने लगता है। वह सोते-जागते सभी समय निरन्तर (श्रीकृष्ण की) सेवा ही चाहता है ॥५२-५४॥ दास्य भक्ति के बिना वह भगवान् श्रीकृष्ण का परमपद भी नहीं चाहता है। श्रीकृष्ण के चरणकमल की निरन्तर एवं दृढ़ भक्ति प्राप्त कर वह पूर्णकाम हो जाता है। भगवान् का भक्त अत्यन्त स्थिर होकर सुसेव्य एवं परिपूर्णतम ब्रह्म की निरन्तर सेवा करता है। वह अपने कुल की करोड़ों, मातामह की सैकड़ों तथा श्वशुर की सैकड़ों पूर्व पीढ़ियों का लीलापूर्वक उद्धार करके दास, दासी, माता, स्त्री और पुत्र के बाद की सैकड़ों पीढ़ियों का उद्धार कर देता है और स्वयं निश्चय ही गोलोक में चला जाता है। कामासक्त पुरुष तभी तक गर्भ में निवास करता है, तभी तक यम-यातनाओं को भोगता है एवं गृही तभी तक भोगों को चाहता है, जब तक भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा नहीं करता

---

१ क. च सर्वेषां परमात्मानमी०।

तावद्गृही[1] च भोगार्थी यावत्कृष्णं न सेवते। गुरुवक्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे प्रविशयति ॥५९॥
यमस्तल्लिखनं दूरं करोति तत्क्षणं भिया। मधुपर्कादिकं ब्रह्मा पुरैव[2] तन्नियोजयेत् ॥६०॥
अहो विलङ्घ्य मल्लोकं मार्गेणानेन यास्यति। तस्य वै निष्कृतिर्नास्ति कल्पकोटिशतैरपि ॥६१॥
दुरितानि च भीतानि कोटिजन्मकृतानि च। तं विहाय पलायन्ते वैनतेयं यथोरगाः ॥६२॥
पुरातनं कृतं कर्म यद्यत्तस्य शुभाशुभम्। छिनत्ति कृष्णश्चक्रेण तीक्ष्णधारेण संततम् ॥६३॥
तं विहाय जरा मृत्युर्याति चक्रभिया सति। अन्यथा शतखण्डं तां कुरुते च सुदर्शनः ॥६४॥
निःशङ्को याति गोलोकं विहाय मानवीं तनुम्। गत्वा दिव्यां तनुं धृत्वा श्रीकृष्णं सेवते सदा ॥६५॥
यावत्कृष्णो हि गोलोके तावद्भक्तो वसेत्सदा। निमेषं मन्यते दासो नश्वरं ब्रह्मणो वयः ॥६६॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे
विष्णुमालावतीसंवादो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

है। गुरु के मुख से निकला हुआ विष्णुमन्त्र जिस (व्यक्ति) के कान में प्रविष्ट होता है, उसी क्षण यमराज, भयभीत होकर उसके कर्म-लेख को अपने यहाँ से हटा देते हैं और ब्रह्मा पहले से ही उसके स्वागत के लिए मधुपर्क आदि तैयार करके रखते हैं और सोचते हैं कि अहो! वह मेरे लोक को भी लांघ कर इसी मार्ग से यात्रा करेगा और सौ कोटि कल्पों में भी उसका वहाँ से निष्काशन नहीं होगा ॥५५-६१॥ जैसे गरुड़ को देखकर साँप भाग जाते हैं, उसी तरह करोड़ों जन्मों के किए हुए पाप भी कृष्ण-भक्त को देखकर भाग जाते हैं ॥६२॥ उसके पहले के किये हुए सभी अच्छे बुरे कर्मों को भगवान् श्रीकृष्ण अपने तीक्ष्ण धार वाले चक्र से काट देते हैं ॥६३॥ जरा (बुढ़ापा) और मृत्यु भी चक्र के भय से उसे छोड़कर भाग जाते हैं, अन्यथा सुदर्शन (चक्र) उसके सैकड़ों टुकड़े कर देता है। वह (भक्त) अपने मनुष्य-शरीर का त्यागकर निःशंक होकर गोलोक में पहुँचता है और वहाँ दिव्य शरीर धारण कर सदा भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा करता है ॥६४-६५॥ श्रीकृष्ण जब तक गोलोक में निवास करते हैं तब तक भक्त पुरुष भी वहाँ नित्य निवास करता है। श्रीकृष्ण का दास ब्रह्मा की नश्वर आयु को एक निमेष भर का मानता है ॥६६॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में विष्णु और मालावती के
संवाद नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥१४॥

---

१ क. द्गृहं च भोगोऽपि या०। २ क. पुनरेव नियो०।

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

ब्राह्मण उवाच

केन रोगेण हि मृतोऽधुना साध्वि तव प्रियः। सर्वरोगचिकित्सां च जानामि च चिकित्सकः[1] ॥१॥
मृततुल्यं मृतं[2] रोगात्सप्ताहाभ्यन्तरे सति। महाज्ञानेन तं जीवं जीवयाम्यवलीलया[3] ॥२॥
राजमृत्युं यमं कालं व्याधिमानीय त्वत्पुरः। निबध्य दातुं शक्तोऽहं व्याधो बध्वा पशुं यथा ॥३॥
यतो न संचरेद्व्याधिर्देहेषु देहधारिणाम्। व्याधीनां कारणं यद्यत्सर्वं जानामि सुन्दरि ॥४॥
यतो न संचरेद्व्याधिबीजं दुष्टममङ्गलम्। तदुपायं विजानामि शास्त्रतत्त्वानुसारतः ॥५॥
यो वा योगेन खेदेन देहत्यागं करोति च। तस्य तं जीवनोपायं जानामि योगधर्मतः ॥६॥
ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा स्फीता मालावती सती। सस्मिता स्निग्धचित्ता सा तमुवाच प्रहर्षिता ॥७॥

मालावत्युवाच

अहो श्रुतं किमाश्चर्यं वचनं बालवक्त्रतः। वयसाऽतिशिशुर्दृष्टो ज्ञानं योगविदां परम् ॥८॥

अध्याय १५

ब्राह्मण द्वारा अपनी शक्ति का परिचय

ब्राह्मण बोले—पतिव्रते! यह तुम्हारा पति इस समय किस रोग से मृत्यु को प्राप्त हुआ है? मैं चिकित्सक हूँ, सभी रोगों की चिकित्सा मैं जानता हूँ ॥१॥ सती! यदि कोई रोग से मृतक के समान हो गया हो अथवा मृतक ही हो गया हो, किन्तु यदि यह सात दिन के भीतर की ही घटना हो तो उस जीव को मैं चिकित्सा सम्बन्धी महाज्ञान के द्वारा चुटकी बजाते हुए ही जीवित कर सकता हूँ ॥२॥ मैं जरा, मृत्यु, यम, काल और व्याधियों को तुम्हारे सामने बाँधकर उसी प्रकार तुम्हें सौंप सकता हूँ, जैसे व्याध पशु को बांधकर सामने ला देता है ॥३॥ सुन्दरि! देहधारी प्राणियों के शरीर में जिससे कोई व्याधि उत्पन्न न हो सके, वह उपाय तथा रोगों के सभी कारणों को मैं भली-भाँति जानता हूँ ॥४॥ शास्त्र के तत्त्वज्ञान के अनुसार मैं उस उपाय को भी जानता हूँ जिससे व्याधियों का दुष्ट और अमंगलकारी बीज अंकुरित ही न हो ॥५॥ जिसने योग द्वारा अथवा खेदवश अपने शरीर का त्याग किया है, उसके जीवित होने का उपाय भी योग-धर्म के प्रभाव से मैं जानता हूँ ॥६॥ ब्राह्मण की बातें सुनकर मालावती को बड़ी प्रसन्नता हुई। मन्द मुसकान और स्नेहपूर्ण मन से उसने अत्यन्त हर्षित होकर उनसे कहा ॥७॥

मालावती बोली—अहो! बालक के मुख से मैं कैसी आश्चर्यजनक बात सुन रही हूँ!! अवस्था से तो यह अत्यन्त शिशु दिखायी दे रहा है, किन्तु इसका ज्ञान योगवेत्ताओं से भी बढ़कर है ॥८॥ भगवन्! आपने

---

१ क. ०त्सकान्। २ क. ०तं लोकात्स०। ३ क ०या ॥२॥ जरामृत्युं जराका०।

त्वया कृता प्रतिज्ञा च कान्तं जीवयितुं मम। विपरीतं न सद्वाक्यं तत्क्षणं जीवितः पतिः ॥९॥
जीवयिष्यति मत्कान्तं पश्चाद्वेदविदां वरः। यद्यत्पृच्छामि संदेहात्तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥१०॥
सभायां जीविते कान्ते तस्य तीव्रस्य संनिधौ। त्वां हि प्रष्टुं न शक्ताऽहं विद्यमाने मदीश्वरे ॥११॥
एते ब्रह्मादयो देवा विद्यमानाश्च संसदि। त्वं च वेदविदां श्रेष्ठो न च कश्चिन्मदीश्वरः ॥१२॥
नारीं रक्षति भर्ता चेन्न कोऽपि खण्डितुं क्षमः। शास्ति करोति यदि स न कोऽपि रक्षिता भुवि ॥१३॥
एवं वेदेषु नो शक्तिः शक्रे वा ब्रह्मरुद्रयोः। स्त्रीपुंभावश्च[1] बोद्धव्यः स्वामी कर्ता च योषिताम् ॥१४॥
स्वामी कर्ता च हर्ता च शास्ता पोष्टा च रक्षिता। अभीष्टदेवः पूज्यश्च न गुरुः स्वामिनः परः ॥१५॥
कन्या सत्कुलजाता या सा कान्तवशवर्तिनी। या स्वतन्त्रा च सा दुष्टा स्वभावात्कुटिला ध्रुवम् ॥१६॥
दुष्टा परपुमांसं च सेवते या नराधमा। सा निन्दति पतिं शश्वदसद्वंशप्रसूतिका ॥१७॥
उपबर्हणभार्याऽहं कन्या चित्ररथस्य च। वधूर्गन्धर्वराजस्य कान्तभक्ता सदा द्विज ॥१८॥
सर्वं कालयितुं शक्तस्त्वं च वेदविदां वर। कालं यमं मृत्युकन्यां मदभ्याशं समानय ॥१९॥
मालावतीवचः श्रुत्वा विप्रो वेदविदां वरः। सभामध्ये समाहूय तान्प्रत्यक्षं चकार ह ॥२०॥

मेरे कान्त को जीवित करने के लिए जो प्रतिज्ञा की है, वह सद्वाक्य कभी बदल नहीं सकता। अतः उसी क्षण मुझे विश्वास हो गया कि मेरे पति जीवित हो गए॥९॥ आप वेदज्ञों में श्रेष्ठ हैं। आप मेरे पति को जीवित तो कर ही देंगे, किन्तु सन्देहवश जो-जो बातें मैं अभी आपसे पूछ रही हूं, उन सबको बताने की कृपा करें॥१०॥ क्योंकि पति के जीवित हो जाने पर उनकी उपस्थिति में मैं आपसे कोई बात पूछ नहीं सकूंगी; क्योंकि वे तीक्ष्ण स्वभाव के हैं। यद्यपि इस सभा में ब्रह्मादि देवगण और वेदविदों में श्रेष्ठ आप भी विद्यमान हैं, पर कोई भी मेरा (स्वामी) नहीं है। पति यदि नारी की रक्षा करता है, तो कोई उसका खंडन नहीं कर सकता है। और यदि वह अनुशासन करता या दंड देता है तो भूतल पर उस (स्त्री) की कोई रक्षा भी नहीं कर सकता है॥११-१३॥ इसी प्रकार वेदों इन्द्र, ब्रह्मा और रुद्र में भी (उसके रोकने की) शक्ति नहीं है। स्वामी और स्त्री में पति-पत्नी-भाव-सम्बन्ध जानना चाहिए। स्वामी ही स्त्रियों का कर्ता, हर्त्ता, शास्ता, पोषक, रक्षक, इष्टदेव तथा पूज्य है। स्त्री के लिए पति से बढ़कर कोई गुरु नहीं है। ॥१४-१५॥ उत्तम कुल में उत्पन्न होने वाली कन्या सदैव अपने पति के अधीन रहती है और जो स्वतन्त्रा है, वह दुष्टा तथा स्वभाव से निश्चित ही कुटिल होती है॥१६॥ जो दुष्टा परपुरुष में रत तथा अधम है, वही अपने पति की निन्दा किया करती है। वह अवश्य ही नीचकुल की कन्या होती है॥१७॥ मैं उपबर्हण की पत्नी और चित्ररथ की कन्या हूँ और हे द्विज! मैं सदा पतिभक्ता एवं गन्धर्वराज की वधू हूँ॥१८॥ हे वेदविदांवर! आप सबको यहाँ बुलाने में समर्थ हैं, अतः यम और मृत्यु-कन्या को मेरे समीप बुलाने की कृपा करें॥१९॥ वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ उस विप्र ने मालावती की बात सुनकर सभा के भीतर ही उन सब को बुलाकर उसके सामने प्रत्यक्ष खड़ा कर दिया। सती मालावती ने सर्वप्रथम मृत्युकन्या को

---

१ क. ०श्च यो ब्रह्मन्स्वा०।

ददर्श मृत्युकन्यां च प्रथमं मालती सती । कृष्णवर्णां घोररूपां रक्ताम्बरधरां वराम् ॥२१॥
सस्मितां षड्भुजां शान्तां दयायुक्तां महासतीम् । कालस्य स्वामिनो वामे चतुःषष्टिसुतान्विताम् ॥२२॥
कालं नारायणांशं च ददर्श पुरतः सती । महोग्ररूपं विकटं ग्रीष्मसूर्यसमप्रभम् ॥२३॥
षड्वक्त्रं षोडशभुजं चतुर्विंशतिलोचनम् । षट्पादं कृष्णवर्णं च रक्ताम्बरधरं परम् ॥२४॥
देवस्य देवं विकृतं सर्वसंहाररूपिणम् । कालाधिदेवं सर्वेशं भगवन्तं सनातनम् ॥२५॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यमक्षमालाकरं वरम् । जपन्तं परमं ब्रह्म कृष्णमात्मानमीश्वरम् ॥२६॥
सती ददर्श पुरतो व्याधिसंघान्सुदुर्जयान् । वयसाऽतिमहावृद्धान्स्तनंधान्मातृसंनिधौ ॥२७॥
स्थूलपादं कृष्णवर्णं धर्मिष्ठं रविनन्दनम् । जपन्तं परमं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम् ॥२८॥
धर्माधर्मविचारज्ञं परं धर्मस्वरूपिणम् । पापिनामपि शास्तारं ददर्श पुरतो यमम् ॥२९॥
तांश्च दृष्ट्वा च निःशङ्का पप्रच्छ प्रथमं यमम् । मालावती महासाध्वी प्रहृष्टवदनेक्षणा ॥३०॥

मालावत्युवाच

हे धर्मराज धर्मिष्ठ धर्मशास्त्रविशारद । कालव्यतिक्रमे कान्तं कथं हरसि मे विभो ॥३१॥

यम उवाच

अप्राप्तकालो म्रियते न कश्चिज्जगतीतले । ईश्वराज्ञां विना साध्वि नामृतं चालयाम्यहम् ॥३२॥

देखा। उसका रंग काला था। वह देखने में भयानक थी। उसने लाल रंग के वस्त्र पहन रखे थे। वह मंद-मंद मुसकरा रही थी। उसके छह भुजायें थीं। वह शान्त, दयालु और महासती थी। वह अपने स्वामी काल के बाँयें भाग में चौंसठ पुत्रों को साथ लिये खड़ी थी ॥२०-२२॥ तदनन्तर मालावती ने अपने सामने स्थित नारायण के अंगभूत काल को भी देखा। वह महान् उग्ररूप, विकट तथा ग्रीष्म ऋतु के सूर्य के समान चमक रहा था। उसके छह मुख, सोलह भुजाएँ, चौबीस नेत्र, और छह चरण थे। उसका रंग काला था और उसने लाल वस्त्र धारण कर रखे थे। वह देवताओं का भी देवता, विकराल आकृति वाला, सर्वसंहाररूपी, काल का अधिदेवता, सर्वेश्वर एवं सनातन भगवान् है। उसके मुख पर प्रसन्नता तथा मंद मुसकान दिखाई पड़ रही थी। वह हाथ में अक्षमाला धारण करके भगवान् कृष्ण का (नाम) जप रहा था ॥२३-२६॥ अनन्तर उस सती (मालावती) ने अपने सम्मुख अत्यन्त दुर्जेय व्याधि-समूहों को देखा, जो अवस्था में अत्यन्त महावृद्ध, किन्तु माता के समीप स्तनपान करने वाले बच्चे की भाँति दिख रहे थे। फिर मालावती ने सूर्यपुत्र यम को देखा, जो कृष्ण वर्ण तथा स्थूलपाद थे। वे धर्मनिष्ठ सूर्य-पुत्र परब्रह्म स्वरूप सनातन भगवान् श्रीकृष्ण का नाम-जप कर रहे थे। वे धर्माधर्म के विचार के ज्ञाता, श्रेष्ठ धर्म-स्वरूप तथा पापियों के शासक हैं। उन्हें देखकर महासती मालावती ने अपने मुख और नेत्रों से अत्यन्त हर्ष सूचित करती हुई निःशंक होकर सर्वप्रथम यम से पूछा ॥२७-३०॥

मालावती बोली—धर्मशास्त्र-विशारद ! धर्मनिष्ठ ! धर्मराज ! प्रभो ! आप समय का उल्लंघन करके मेरे प्रियतम को कैसे लिये जा रहे हैं ? ॥३१॥

यम बोले—पतिव्रते ! इस भूतल पर बिना समय पूरा हुए तथा ईश्वर की आज्ञा मिले बिना कोई भी मरता नहीं है। और बिना मरे मैं किसी को ले नहीं जाता हूँ ॥३२॥ मैं, काल, मृत्यु-कन्या और समस्त दुर्जेय व्याधि-

अहं कालो मृत्युकन्या व्याधयश्च सुदुर्जयाः । निषेकेण प्राप्तकालं कालयन्तीश्वराज्ञया ॥३३॥
मृत्युकन्या विचारज्ञा यं प्राप्नोति निषेकतः । तमहं कालयाम्येव पृच्छतां केन हेतुना ॥३४॥

मालावत्युवाच

त्वमपि स्त्री मृत्युकन्या जानासि स्वामिवेदनम् । कथं हरसि मत्कान्तं जीवितायां मयि प्रिये ॥३५॥

मृत्युकन्योवाच

पुरा विश्वसृजा सृष्टाऽप्यहमेवात्र कर्मणि । न च क्षमा परित्यक्तुं बहुना तपसा सति ॥३६॥
सती सतीनां मध्ये च काचित्तेजस्विनी वरा । मामेव भस्मसात्कर्तुं क्षमा यदि भवेद्ध्रुवे ॥३७॥
सर्वापच्छान्तिरेवेह तदा भवति सुन्दरि । पुत्राणां स्वामिनः पश्चाद्भविता यद्भविष्यति ॥३८॥
कालेन प्रेरिताऽहं च मत्पुत्रा व्याधयश्च वै । न मत्सुतानां दोषश्च न च मे शृणु निश्चितम् ॥३९॥
पृच्छ कालं महात्मानं धर्मज्ञं धर्मसंसदि । तदा यदुचितं भद्रे तत्करिष्यसि निश्चितम् ॥४०॥

मालावत्युवाच

हे कालकर्मणां [1]साक्षिन्कर्मरूप सनातन । नारायणांश भगवन्नमस्तुभ्यं पराय च ॥४१॥
कथं हरसि मत्कान्तं जीवितायां मयि प्रभो । जानासि सर्वदुःखं च सर्वज्ञस्त्वं कृपानिधे[2] ॥४२॥

गण जन्म के बाद समय आने पर ही जीव को ईश्वर की आज्ञा से ले जाते हैं ॥३३॥ विवेकशील मृत्युकन्या जन्मकाल के बाद जिसके पास पहुँच जाती है, उसे ही मैं ले जाता हूँ। (अतएव उसी से) पूछो कि वह किस कारण जीव के पास जाती है ॥३४॥

मालावती बोली—प्रिय (सखी) मृत्युकन्या! तुम भी स्त्री हो और पति-वियोग की वेदना को जानती हो। तब जीवित रहते हुए मेरे कान्त का अपहरण क्यों कर रही हो? ॥३५॥

मृत्युकन्या बोली—प्राचीन काल में ही विश्वस्रष्टा ब्रह्मा ने मेरी सृष्टि करके इस कर्म में मुझे नियुक्त कर दिया था। पतिव्रते! बहुत तप करने पर भी मैं इस कर्म को छोड़ने में असमर्थ हूँ। यदि संसार में सती स्त्रियों के बीच कोई परमतेजस्विनी स्त्री मुझे भस्म करने में समर्थ हो जाये, तो हे सुन्दरि! इस लोक की समस्त आपत्तियाँ शान्त हो जातीं। पश्चात् मेरे स्वामी और पुत्रों की जो दशा होने को होती, वह हो जाती ॥३६-३८॥ काल से प्रेरित होने पर ही मैं और मेरे पुत्र व्याधिगण यह कार्य करते हैं। इसलिए यह निश्चित है कि इसमें मेरा और मेरे पुत्रों का कोई दोष नहीं है ॥३९॥ भद्रे! इस धर्मसभा में धर्मज्ञाता एवं महात्मा काल से इस विषय में पूछो। फिर जो उचित होगा वह सुनिश्चित रूप से करना ॥४०॥

मालावती बोली—काल और कर्मों के साक्षी, कर्मरूप, सनातन! भगवन्! आप नारायण के अंश हैं। अतः आप परमश्वर को नमस्कार है ॥४१॥ प्रभो, कृपानिधे! आप सर्वज्ञ हैं। समस्त दुःखों को जानते हैं। इसलिए मेरे जीवित काल में मेरे कान्त का अपहरण आप क्यों कर रहे हैं? ॥४२॥

---

१ क. ०क्षिन्धर्मरू०। २ क ०निधिः।

कालपुरुष उवाच

को वाऽहं को यमः का च मृत्युकन्या च व्याधयः। वयं भ्रमामः सततमीशाज्ञापरिपालकाः ॥४३॥
यस्य सृष्टा च प्रकृतिर्ब्रह्मविष्णुशिवादयः। सुरा मुनीन्द्रा मनवो मानवाः सर्वजन्तवः ॥४४॥
ध्यायन्ते तत्पदाम्भोजं योगिनश्च विचक्षणाः। जपन्ति शश्वन्नामानि पुण्यानि परमात्मनः ॥४५॥
यद्भयाद्वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति यद्भयात्। स्रष्टा ब्रह्माऽऽज्ञया यस्य पाता विष्णुर्यदाज्ञया ॥४६॥
संहर्ता शंकरः सर्वजगतां यस्य शासनात्। धर्मश्च कर्मणां साक्षी यस्याऽऽज्ञापरिपालकः ॥४७॥
राशिचक्रं ग्रहाः सर्वे भ्रमन्ति यस्य शासनात् । दिगीशाश्चैव दिक्पाला यस्याऽऽज्ञापरिपालकाः॥४८॥
यस्याऽऽज्ञया च तरवः पुष्पाणि च फलानि च । बिभ्रत्येव ददत्येव काले मालावति सति ॥४९॥
यस्याऽऽज्ञया जलाधारा सर्वाधारा वसुंधरा । क्षमावती च पृथिवी कम्पिता न भयेन च ॥५०॥
सहसा मोहिता माया मायया यस्य संततम् । सर्वप्रसूर्या प्रकृतिः सा भीता यद्भयादहो ॥५१॥
यस्यान्तं न विदुर्वेदा वस्तूनां भावगा अपि । पुराणानि च सर्वाणि यस्यैव स्तुतिपाठकाः ॥५२॥
यस्य नाम विधिर्विष्णुः सेवते सुमहान्विराट् । षोडशांशो भगवतः स एव तेजसो विभोः ॥५३॥
सर्वेश्वरः[1] कालकालो मृत्योर्मृत्युः परात्परः । सर्वविघ्नविनाशाय तं कृष्णं परिचिन्तय ॥५४॥

कालपुरुष बोले—मैं क्या हूँ? तथा यम, मृत्युकन्या और समस्त व्याधिगण भी किस गिनती में हैं? हम लोग निरन्तर ईश्वर की आज्ञा का पालन करने के लिये भ्रमण करते हैं।।४३।। जिनसे प्रकृति, ब्रह्मा, विष्णु और शिवादि देवगण, मुनिगण, मनुगण, मानवसमूह और समस्त जीवगण उत्पन्न हुए हैं। जिनके चरणकमल का योगी-गण सदैव ध्यान करते हैं और बुद्धिमान् पुरुष जिन परमात्मा के पवित्र नामों का निरन्तर जप करते हैं।।४४-४५।। जिनके भय से वायु चलता है, सूर्य तपता है और जिनकी आज्ञा से ब्रह्मा सृष्टि करते तथा विष्णु पालन करते हैं। ।।४६।। जिनके शासन में शंकर समस्त जगत् का संहार करते हैं। जिनकी आज्ञा का पालन करने के नाते धर्म कर्मों के साक्षी कहे जाते हैं। जिनके शासन से राशि-समूह और समस्त ग्रहगण भ्रमण करते हैं। दिशाओं के अधी-श्वर दिक्पाल जिनकी आज्ञा का सतत पालन करते हैं।।४७-४८।। हे सती मालावती! जिनकी आज्ञा से वृक्ष समय पर फूल और फल धारण करते तथा देते हैं।।४९।। जिनकी आज्ञा से यह वसुन्धरा जल और सभी चराचरों का आधार बनी हुई है। जिनके भय से पृथ्वी कभी-कभी सहसा कम्पित हो उठती है।।५०।। जिनकी माया से सहसा माया भी मोहित हो जाती है और जिनके भय से सबको जन्म देने वाली प्रकृति भीत होकर कार्य करती रहती है।।५१।। समस्त वस्तुओं की सत्ता को बताने वाले वेद भी जिनका अन्त नहीं जानते तथा समस्त पुराण जिनकी स्तुति किया करते हैं।।५२।। जिनके नाम का सेवन तेजोमय सर्वव्यापी भगवान् की सोलहवीं कला स्वरूप ब्रह्मा, विष्णु और महान् विराट् किया करते हैं।।५३।। वे ही सबके अधीश्वर, काल के काल, मृत्यु के मृत्यु और श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ हैं। अतः समस्त विघ्नों के विनाशार्थ उन्हीं भगगान् श्रीकृष्ण का तुम चिन्तन करो।।५४।। वही कृपानिधान तुम्हें सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तु तथा पति को भी प्रदान

---

१ क. ०रः सर्वका०।

सर्वाभीष्टं च भर्तारं प्रदास्यति कृपानिधिः । इमे यत्प्रेरिताः सर्वे स दाता सर्वसंपदाम् ॥५५॥
इत्युक्त्वा कालपुरुषो विरराम च शौनक । कथां कथितुमारेभे पुनरेव तु ब्राह्मणः ॥५६॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे
मालावतीकालपुरुषसंवादे पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

अथ षोडशोऽध्यायः

ब्राह्मण उवाच

इष्टः कालो यमो मृत्युकन्या व्याधिगणा अहो । कस्तेऽधुना च संदेहस्तं पृच्छ कन्यके शुभे ॥१॥
ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा हृष्टा मालावती सती । यन्मनोनिहितं प्रश्नं चकार जगदीश्वरम् ॥२॥

मालावत्युवाच

त्वया यः कथितो व्याधिः प्राणिनां प्राणहारकः । तत्कारणं च विविधं सर्वं[1] वेदे निरूपितम् ॥३॥
यतो न संचरेद्व्याधिर्दुर्निवारोऽशुभावहः । तमुपायं च साकल्यं भवान्वक्तुमिहार्हति ॥४॥

करेंगे। ये सब देवगण उन्हीं के द्वारा प्रेरित होते हैं। इसलिए वही समस्त सम्पत्तियों के दाता हैं ॥५५॥ शौनक! काल पुरुष इतना कहकर चुप हो गए। अनन्तर ब्राह्मण ने पुनः कथा कहना आरम्भ किया ॥५६॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में मालावती और कालपुरुष का
संवाद नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥१६॥

अध्याय १६

ब्राह्मण द्वारा चिकित्सा का वर्णन

ब्राह्मण बोले—बालिके! भद्रे! काल, यम, मृत्युकन्या और समस्त व्याधिगण को तुमने देख लिया। अब इस समय तुम्हें क्या सन्देह है, उसे पूछो ॥१॥ ब्राह्मण की बात सुनकर सती मालावती प्रसन्न हुई और उसने अपना अभीष्ट प्रश्न भगवान् जगदीश्वर से पूछा ॥२॥

मालावती बोली—आपने बताया कि व्याधियाँ प्राणियों के प्राणों का अपहरण करती हैं और उसके अनेक प्रकार के कारण भी वेद में बताये गये हैं ॥३॥ अतः जिस (उपाय) से यह दुर्निवार और अशुभकारी रोगसमूह शरीर में न फैले, उस उपाय को आप विस्तार से बताने की कृपा करें ॥४॥ आप गुरु और दीनों पर दया करने वाले

---

१ ख. ०र्वं देवनि०।

यद्यत्पृष्टमपृष्टं वा ज्ञातमज्ञातमेव वा । सर्वं कथय तद्भद्रं त्वं गुरुर्दीनवत्सलः ।।५।।
मालावतीवचः श्रुत्वा विप्ररूपी जनार्दनः । संहितां वक्तुमारेभे संहितार्थं च वैद्यकीम्[1] ।।६।।

ब्राह्मण उवाच

वन्दे तं सर्वतत्त्वज्ञं सर्वकारणकारणम् । वेदवेदाङ्गबीजस्य बीजं श्रीकृष्णमीश्वरम् ।।७।।
स ईशश्चतुरो वेदान्ससृजे मङ्गलालयान् । सर्वमङ्गलमङ्गल्यबीजरूपः सनातनः ।।८।।
ऋग्यजुःसामाथर्वाख्यान्दृष्ट्वा वेदान्प्रजापतिः । विचिन्त्य तेषामर्थं चैवाऽऽयुर्वेदं चकार सः ।।९।।
कृत्वा तु पञ्चमं वेदं भास्कराय ददौ विभुः । स्वतन्त्रसंहितां तस्माद्भास्करश्च चकार सः ।।१०।।
भास्करश्च स्वशिष्येभ्य आयुर्वेदं स्वसंहिताम् । प्रददौ पाठयामास ते चक्रुः संहितास्ततः ।।११।।
तेषां नामानि विदुषां तन्त्राणि तत्कृतानि च । व्याधिप्रणाशबीजानि साध्वि मत्तो निशामय ।।१२।।
धन्वन्तरिर्दिवोदासः काशीराजोऽश्विनीसुतौ । नकुलः सहदेवोऽर्किश्च्यवनो जनको बुधः ।।१३।।
जाबालो जाजलिः पैलः करथोऽगस्त्य एव च । एते वेदाङ्गवेदज्ञाः षोडश व्याधिनाशकाः ।।१४।।
चिकित्सातत्त्वविज्ञानं नामतन्त्रं मनोहरम् । धन्वन्तरिश्च भगवांश्चकार प्रथमे सति ।।१५।।
चिकित्सादर्पणं नाम दिवोदासश्चकार सः । चिकित्साकौमुदीं दिव्यां काशीराजश्चकार सः ।।१६।।

हैं, अतः जो बात मैंने पूछी है या नहीं पूछी है तथा जो ज्ञात है अथवा अज्ञात है, वह सब कल्याण की बात आप मुझे बताइए ।।५।। ब्राह्मणवेषधारी भगवान् जनार्दन ने मालावती की बात सुनकर 'वैद्यकसंहिता' का वर्णन आरम्भ किया ।।६।।

ब्राह्मण बोले—मैं भगवान् श्रीकृष्ण की वन्दना करता हूँ, जो समस्त तत्त्वों के ज्ञाता, समस्त कारणों के कारण तथा वेद-वेदांगों के बीज के भी बीज हैं ।।७।। समस्त मंगलों के भी मंगलकारी बीजस्वरूप उन सनातन परमेश्वर ने मंगल के आधारभूत चार वेदों को प्रकट किया ।।८।। उनके नाम हैं—ऋग्, यजु, साम और अथर्व। उन वेदों को देखकर और उनके अर्थों का विचार करके प्रजापति ने आयुर्वेद की रचना की ।।९।। इस प्रकार पाँचवें वेद की रचना करके परमेश्वर ने सूर्य को प्रदान किया और भास्कर ने उससे एक स्वतन्त्र संहिता की रचना की। अनन्तर उन्होंने अपनी आयुर्वेदसंहिता अपने शिष्यों को पढ़ायी और उन्हें सौंप दी। पश्चात् उन शिष्यों ने भी अनेक संहिताओं का निर्माण किया ।।१०-११।। साध्वी ! उन विद्वानों तथा उनके बनाये हुए तन्त्रों के नाम, जो रोग-नाशक बीजरूप हैं, मुझसे सुनो ।।१२।।

धन्वन्तरि, दिवोदास, काशिराज, दोनों अश्विनीकुमार, नकुल, सहदेव, यमराज, च्यवन, जनक, बुध, जाबाल, जाजलि, पैल, करथ और अगस्त्य—ये सोलह व्यक्ति वेद-वेदांग के तत्त्वों के ज्ञाता तथा रोगों के नाश करने में दक्ष हैं ।।१३-१४।।

सर्वप्रथम भगवान् धन्वन्तरि ने चिकित्सातत्त्वविज्ञान नामक एक मनोहर तन्त्र की रचना की। फिर दिवोदास ने 'चिकित्सादर्पण', काशिराज ने 'चिकित्साकौमुदी' और दोनों अश्विनीकुमारों ने 'चिकित्सासारतन्त्र'

---

१ ख. वैदिकीम् ।

चिकित्सासारतन्त्रं च भ्रमघ्नं चाश्विनीसुतौ । तन्त्रं वैद्यकसर्वस्वं नकुलश्च चकार सः ॥१७॥
चकार सहदेवश्च व्याधिसिन्धुविमर्दनम् । ज्ञानार्णवं महातन्त्रं यमराजश्चकार ह ॥१८॥
च्यवनो जीवदानं च चकार भगवानृषिः । चकार जनको योगी वैद्यसंदेहभञ्जनम् ॥१९॥
सर्वसारं चन्द्रसुतो जाबालस्तन्त्रसारकम् । वेदाङ्गसारं तन्त्रं च चकार जाजलिर्मुनिः ॥२०॥
पैलो निदानं करथस्तन्त्रं सर्वधरं परम् । द्वैधनिर्णयतन्त्रं च चकार कुम्भसंभवः ॥२१॥
चिकित्साशास्त्रबीजानि तन्त्राण्येतानि षोडश । व्याधिप्रणाशबीजानि बलाधानकराणि च ॥२२॥
मथित्वा [1]ज्ञानमन्त्रेणैवाऽऽयुर्वेदपयोनिधिम् । ततस्तस्मादुदाजह्रुर्नवनीतानि कोविदाः ॥२३॥
एतानि क्रमशो दृष्ट्वा दिव्यां भास्करसंहिताम् । आयुर्वेदं सर्वबीजं सर्वं जानामि[2] सुन्दरि ॥२४॥
व्याधेस्तत्त्वपरिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः । एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः ॥२५॥
आयुर्वेदस्य विज्ञाता चिकित्सासु यथार्थवित् । धर्मिष्ठश्च दयालुश्च तेन वैद्यः प्रकीर्तितः ॥२६॥
जनकः सर्वरोगाणां दुर्वारो दारुणो ज्वरः । शिवभक्तश्च योगी च निष्ठुरो विकृताकृतिः ॥२७॥
भीमस्त्रिपादस्त्रिशिराः षड्भुजो नवलोचनः । भस्मप्रहरणो रौद्रः कालान्तकयमोपमः ॥२८॥
मन्दाग्निस्तस्य जनको मन्दाग्नेर्जनकास्त्रयः । पित्तश्लेष्मसमीराश्च प्राणिनां दुःखदायकाः ॥२९॥
वायुजः पित्तजश्चैव श्लेष्मजश्च तथैव च । ज्वरभेदाश्च त्रिविधाश्चतुर्थश्च त्रिदोषजः ॥३०॥

की रचना की, जो भ्रम का निवारक है। उसी भाँति नकुल ने 'वैद्यकसर्वस्व', सहदेव ने 'व्याधिसिन्धुविमर्दन' और यमराज ने 'ज्ञानार्णव' नामक महातन्त्र को बनाया। ॥१५-१८॥ भगवान् च्यवन ऋषि ने 'जीवदान' नामक तन्त्र, योगी जनक ने 'वैद्यसन्देहभञ्जन', चन्द्र-पुत्र बुध ने 'सर्वसार,' जाबाल ने 'तन्त्रसार' और जाजलि मुनि ने 'वेदांगसार' का निर्माण किया। पैल ने 'निदानतन्त्र', करथ ने उत्तम सर्वधर-तंत्र' और अगस्त्य ने 'द्वैधनिर्णयतन्त्र' की रचना की। ये सोलह तन्त्र, चिकित्सा शास्त्र के बीज, व्याधिनाशक हेतु तथा बलवृद्धिकारक हैं॥१९-२२॥ विद्वानों ने आयुर्वेद-सागर को अपने ज्ञानरूपी मथानी से मथ कर उक्त तन्त्रों को नवनीत (मक्खन) के रूप में निकाला है॥२३॥ सुन्दरि! इनको क्रमशः देखकर तुम भास्कर की दिव्य संहिता और सर्वबीजस्वरूप आयुर्वेद को भलीभाँति जान लोगी॥२४॥ व्याधियों के तत्त्वों का भलीभाँति ज्ञान करना और वेदनाओं का निग्रह करना, यही वैद्यों का वैद्यत्व है। वैद्य आयु प्रदान करने में समर्थ नहीं हैं॥२५॥ आयुर्वेद के विशेष ज्ञाता, चिकित्साओं के यथार्थवेत्ता, धर्मात्मा और दयालु होने के नाते उन्हें वैद्य कहा जाता है॥२६॥ दारुण ज्वर समस्त रोगों का जनक और दुर्वार (बड़ी कठिनाई से रोका जानेवाला) होता है। वह शिवभक्त, योगी, निष्ठुर और विकृत आकृति का होता है। ॥२७॥ उसके तीन चरण, तीन शिर, छह भुजाएँ और नौ नेत्र हैं। वह भयंकर ज्वर काल, अन्तक और यमराज की भाँति विनाशकारी होता है। उसका अस्त्र भस्म है और देवता रुद्र॥२८॥ वह मन्दाग्नि से उत्पन्न होता है। उस मन्दाग्नि को उत्पन्न करने वाले पित्त, कफ एवं वायु ये तीन हैं, जो प्राणियों को सदैव दुःखी करते रहते हैं॥२९॥ वायु, पित्त और कफ से उत्पन्न होने के नाते ज्वर के तीन भेद हैं—वातज, पित्तज और कफज। एक चौथा ज्वर भी है,

---

१ क. ०मन्थेनैवा०। २ ख. ०नासि सु०।

पाण्डुश्च कामलः कुष्ठः शोथः प्लीहा च शूलकः । ज्वरातिसारग्रहणीकासव्रणहलीमकाः ॥३१॥
मूत्रकृच्छ्रश्च गुल्मश्च रक्तदोषविकारजः । विषमेहश्च कुब्जश्च गोदश्च गलगण्डकः ॥३२॥
भ्रमरी संनिपातश्च विषूची दारुणी सति । एषां भेदप्रभेदेन चतुःषष्टी रुजः स्मृताः ॥३३॥
मृत्युकन्यासुताश्चैते जरा तस्याश्च कन्यका । जरा च भ्रातृभिः सार्धं शश्वद्भ्रमति भूतले ॥३४॥
एते चोपायवेत्तारं न गच्छन्ति च संयतम् । पलायन्ते च तं दृष्ट्वा वैनतेयमिवोरगाः ॥३५॥
चक्षुर्जलं च व्यायामः पादाधस्तैलमर्दनम् । कर्णयोर्मूर्ध्नि तैलं च जराव्याधिविनाशनम् ॥३६॥
वसन्ते भ्रमणं वह्निसेवां स्वल्पां करोति यः । बालां च सेवते काले जरा तं नोपगच्छति ॥३७॥
[1]खातशीतोदकस्नायी सेवते चन्दनद्रवम् । नोपयाति जरा तं च निदाघेऽनिलसेवकम् ॥३८॥
प्रावृष्युष्णोदकस्नायी घनतोयं न सेवते । समये च समाहारी जरा तं नोपगच्छति ॥३९॥
शरद्रौद्रं न गृह्णाति भ्रमणं तत्र वर्जयेत् । खातस्नायी समाहारी जरा तं नोपगच्छति ॥४०॥
[2]खातस्नायी च हेमन्ते काले वह्निं च सेवते । भुङ्क्ते नवान्नमुष्णं च जरा तं नोपगच्छति ॥४१॥
शिशिरेंऽशुकवह्निं च न(क)वोष्णान्नं च सेवते । यः कवोष्णोदकस्नायी जरा तं नोपगच्छति ॥४२॥
सद्योमांसं नवान्नं च बाला स्त्री क्षीरभोजनम् । घृतं च सेवते यो हि जरा तं नोपगच्छति ॥४३॥

जिसे त्रिदोषज कहते हैं ॥३०॥ पाण्डु, कामल, कुष्ठ, शोथ, प्लीहा, शूल, ज्वरातिसार, ग्रहणी, कास (खाँसी), व्रण (फोड़ा), हलीमक, मूत्रकृच्छ्र, रक्तविकार या रक्तदोष से उत्पन्न होनेवाला गुल्म, विषमेह, कुब्ज, गोद, गलगण्ड (घेघा), भ्रमरी, सन्निपात, विषूची (हैजा) और दारुणी रोगों के नाम हैं। इन्हीं के भेद और प्रभेदों से रोग के चौंसठ भेद कहे गये हैं ॥३१-३३॥ ये सभी मृत्युकन्या के पुत्र हैं और जरा उसकी कन्या है। जरा अपने भाइयों के साथ निरन्तर भूतल पर भ्रमण किया करती है ॥३४॥ संयमी और उपायवेत्ता जन के समीप ये रोग नहीं जाते हैं। उसे देखते ही उसी प्रकार भाग जाते हैं जैसे गरुड़ को देखकर साँप ॥३५॥ नेत्र को जल से साफ करना, व्यायाम, चरणतल में तेल मलना दोनों कान और शिर पर तेल डालना—यह प्रयोग जरा-व्याधि का नाशक है ॥३६॥ वसन्त काल में भ्रमण, स्वल्प अग्निसेवन और समय पर बालास्त्री-सेवन करने वाले के समीप जरा कभी नहीं जाती है ॥३७॥ ग्रीष्म काल में तालाब आदि के शीतोदक से स्नान, चन्दन-लेप और वायुसेवन करने वाले के समीप जरा नहीं जाती है ॥३८॥ वर्षाकाल में उष्णोदक (गरमजल) से स्नान, वर्षाजल का असेवन, और समय पर परिमित आहार करने वाले के समीप जरा नहीं जाती है। शरत् काल में धूप-सेवन न करने, भ्रमण न करने, तालाब आदि में स्नान करने और परिमित भोजन करने से जरा पास नहीं फटकती है ॥३९-४०॥ हेमन्त काल में प्रातः स्नान, समय पर अग्निसेवन तथा किंचित् गरम और नवान्न भोजन करने वाले के समीप जरा नहीं जाती है ॥४१॥ शिशिरकाल में गरम कपड़े, प्रज्वलित अग्नि तथा गरम अन्न का सेवन और उष्णोदक से स्नान करने वाले के पास जरा नहीं पहुँचती है ॥४२॥ तुरन्त का मांस, नवान्न, षोडशी स्त्री, क्षीर भोजन और घृत के सेवन करने वाले को जरा नहीं होती है ॥४३॥ क्षुधा लगने पर उत्तम अन्न का भक्षण, प्यास लगने पर जलपान और नित्य

---

१ ख. प्रातः शी० । २ ख. प्रातः स्ना० ।

भुङ्क्ते सदन्नं क्षुत्काले तृष्णायां पीयते जलम् । नित्यं भुङ्क्ते च ताम्बूलं जरा तं नोपगच्छति ॥४४॥
दधि हैयङ्गवीनं च नवनीतं तथा गुडम् । नित्यं भुङ्क्ते संयमी यो जरा तं नोपगच्छति ॥४५॥
शुष्कमांसं स्त्रियं वृद्धां बालार्कं तरुणं दधि । संसेवन्तं जरा याति प्रहृष्टा भ्रातृभिः सह ॥४६॥
रात्रौ ये दधि सेवन्ते पुंश्चलीश्च रजस्वलाः । तानुपैति जरा हृष्टा भ्रातृभिः सह सुन्दरि ॥४७॥
रजस्वला च कुलटा चावीरा जारदूतिका । शूद्रयाजकपत्नी या ऋतुहीना च या सति ॥४८॥
यो हि तासामन्नभोजी ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः । तेन पापेन सार्धं सा जरा तमुपगच्छति ॥४९॥
पापानां व्याधिभिः सार्धं मित्रता संततं ध्रुवम् । पापं व्याधिजराबीजं विघ्नबीजं च निश्चितम् ॥५०॥
पापेन जायते व्याधिः पापेन जायते जरा । पापेन जायते दैन्यं दुःखं शोको भयं कलिः ॥५१॥
तस्मात्पापं महावैरं दोषबीजममङ्गलम् । भारते सततं सन्तो नाऽऽचरन्ति भयातुराः ॥५२॥
स्वधर्माचारयुक्तं च दीक्षितं हरिसेवकम् । गुरुदेवातिथीनां च भक्तं सक्तं तपःसु च ॥५३॥
व्रतोपवासयुक्तं च सदा तीर्थनिषेवकम् । रोगा द्रवन्ति तं दृष्ट्वा वैनतेयमिवोरगाः ॥५४॥
एताञ्जरा न सेवेत व्याधिसंघश्च दुर्जयः । सर्वं बोध्यमसमये काले सर्वं[क] ग्रसिष्यति ॥५५॥
ज्वरश्च सर्वरोगाणां जनकः कथितः सति । पित्तश्लेष्मसमीराश्च ज्वरस्य जनकास्त्रयः ॥५६॥

ताम्बूल सेवन करने वाले को जरा नहीं होती है ॥४४॥ जो व्यक्ति संयमपूर्वक नित्य दही, मक्खन, घी और गुड़ का सेवन करता है उसके समीप जरा नहीं जाती है ॥४५॥ शुष्क मांस, वृद्धा स्त्री, कन्याराशिगत सूर्य की रश्मि (अर्थात् क्वार-कार्तिक मास की धूप) तथा कई दिन का पुराना दही सेवन करने वाले को जरा प्रसन्नता से अपने भाइयों समेत पहुँच कर अपने अधीन कर लेती है ॥४६॥ सुन्दरि! रात्रि में दही, व्यभिचारिणी और रजस्वला स्त्री का सेवन करने वाले के समीप जरा, अत्यन्त प्रसन्न होकर भाइयों समेत पहुँच जाती है ॥४७॥ रजस्वला, कुलटा, (पति-पुत्र रहित) विधवा, जार के लिए दूती का काम करने वाली, शूद्रों को यज्ञ कराने वाले की पत्नी तथा मासिकधर्म से रहित स्त्रियों के अन्न का भोजन करने से ब्रह्महत्या का भागी होना पड़ता है और उस पाप के साथ उसे जरा भी प्राप्त होती है ॥४८-४९॥ पापों की व्याधियों के साथ सदा अटूट मित्रता होती है। पाप ही रोग, वृद्धावस्था तथा नाना प्रकार के विघ्नों का बीज है ॥५०॥ पाप से रोग होता है, पाप से बुढ़ापा आता है और पाप से ही दीनता, दुःख और भयंकर शोक की उत्पत्ति होती है ॥५१॥ इसलिए पाप महावैरी, दोषों का कारण और अमंगल रूप है। इस कारण भारत में सन्त लोग सदा भयभीत हो कभी पाप का आचरण नहीं करते हैं ॥५२॥ अपने धर्म का आचरण करने वाले, दीक्षायुक्त, भगवान् के सेवक, गुरु, देव और अतिथियों के भक्त, तप में लीन रहने लाले, व्रत और उपवास करने वाले तथा निरन्तर तीर्थ सेवन करने वाले को देखकर रोगगण उसी तरह भाग जाते हैं जैसे गरुड़ को देखकर साँप (भाग जाते हैं) ॥५३-५४॥ उस पर जरा और दुर्जेय व्याधियाँ भी आक्रमण नहीं करती हैं। अतः ये सब जानने के योग्य हैं। न जानने से असमय में ही ये ग्रसित कर लेते हैं ॥५५॥ पतिव्रते! ज्वर समस्त रोगों का जनक है—यह बताया जा चुका है। और उस ज्वर को उत्पन्न करने वाले वात, पित्त और कफ—

[क] क. ०र्वं गमिष्य०।

एते यथा संचरन्ति स्वयं यान्ति च देहिषु । तमेव विविधोपायं साध्वि मत्तो निशामय ।।५७।।
क्षुधि जाज्वल्यमानायामाहाराभाव एव च । प्राणिनां जायते पित्तं चक्रे च मणिपूरके ।।५८।।
तालबिल्वफलं भुक्त्वा जलपानं च तत्क्षणम् । तदेव तु भवेत्पित्तं सद्यः प्राणहरं परम् ।।५९।।
तप्तोदकं च शिरसि (शिशिरे) भाद्रे तिक्तं विशेषतः । दैवग्रस्तश्च यो भुङ्क्ते पित्तं तस्य प्रजायते ।।६०।।
सशर्करं च धान्याकं पिष्टं शीतोदकान्वितम् । चणकं सर्वगव्यं च दधितक्रविवर्जितम् ।।६१।।
बिल्वतालफलं पक्वं सर्वभैक्षवमेव च । आर्द्रकं [1]मुद्गसूपं च तिलपिष्टं सशर्करम् ।।६२।।
पित्तक्षयकरं सद्यो बलपुष्टिप्रदं परम् । पित्तनाशं च तद्बीजमुक्तमन्यन्निबोध मे ।।६३।।
भोजनानन्तरं स्नानं जलपानं विना तृषा । तिलतैलं स्निग्धतैलं स्निग्धमामलकोद्रवम् ।।६४।।
पर्युषितान्नं तक्रं च पक्वं रम्भाफलं दधि । मेघाम्बु शर्करातोयं सुस्निग्धजलसेवनम् ।।६५।।
नारिकेलोदकं रूक्षस्नानं पर्युषितं जलम् । तरुमुञ्जापक्वफलं सुपक्वं कर्कटीफलम् ।।६६।।
तातस्नानं च वर्षासु मूलकं श्लेष्मकारकम् । ब्रह्मरन्ध्रे च तज्जन्म महद्वीर्यविनाशनम् ।।६७।।
वह्निस्वेदं 'भ्रष्टभङ्गं पक्वतैलविशेषकम् । भ्रमणं शुष्कभक्षं च शुष्कपक्वहरीतकी ।।६८।।

ये तीन हैं।।५६।। ये जिस प्रकार देहधारियों में संचार करते और स्वयं पहुँचते हैं, उसके अनेक कारणों तथा उपायों को मुझसे सुनो। ।।५७।।

अत्यन्त क्षुधा लगने पर भोजन न करने से प्राणियों के मणिपूरक चक्र में पित्त की उत्पत्ति होती है।।५८।। ताड़ और बेल खाकर तुरन्त जल पी लेने से वह उसी क्षण प्राणहारी पित्त हो जाता है।।५९।। जो दैव का मारा हुआ पुरुष भादों में तपा हुआ जल सिर पर डालता है तथा विशेष रूप से तिक्त भोजन करता है उसका पित्त बढ़ जाता है।।६०।। अतः धनियाँ पीसकर शक्कर समेत शीतल जल में पीने से पित्त की शान्ति होती है। चना, गव्य पदार्थ (दूध, दही, घृत गोबर और मूत्र) तक्ररहित दही, पके हुए बेल और ताड़ के फल, ईख के रस से बनी हुई सब वस्तुएँ, अदरक, मूली, मूंग की दाल, शक्कर समेत तिल का चूर्ण—इन वस्तुओं के भक्षण करने से उसी क्षण पित्त नष्ट हो जाता है और अत्यन्त बल एवं पुष्टि प्राप्त होती है। इस प्रकार पित्त का कारण और उसके नाश का उपाय बता दिया। अब अन्य बातें बता रहा हूँ, सुनो! भोजन के अनन्तर (तुरंत) स्नान करना, बिना प्यास के जल पीना, तिल का तेल, स्निग्ध तेल, आँवले का रस, बासी अन्न, मट्ठा, पका केला, दही, वर्षा का जल, शक्कर का शर्बत, अत्यन्त स्निग्ध जल का सेवन, नारियल का जल, वासी जल, रूखा स्नान, तरबूज के पके फल, पकी हुई ककड़ी और वर्षा ऋतु में तालाब में नहाना और मूली खाना—इन सबसे कफ उत्पन्न हो जाता है। वह ब्रह्मरन्ध्र में उत्पन्न होकर वीर्य का महान् विनाश करता है।।६१-६७।। गन्धर्वपुत्री! अग्नि तापकर स्वेद (पसीना), भूनी हुई भांग का सेवन करना, पका तेल, भ्रमण, शुष्क भोजन, सूखी और पकी हर्रे, कच्चा पिण्डारक (कच्चा लोहबान), कच्चा केला, वेसवार (मसाला) सिंधुवार (निर्गुंडी),

---

१ ख. ०द्वयूषं च।

पिण्डारकमपक्वं च रम्भाफलमपक्वकम् । वेसवारः सिन्धुवार[1] अनाहारमपानकम् ।।६९।।
सघृतं रोचनाचूर्णं सघृतं शुष्कशर्करम् । मरीचं पिप्पलं शुष्कमार्द्रकं [2]जीवकं मधु ।।७०।।
द्रव्याण्येतानि गान्धर्वि सद्यः श्लेष्महराणि च । बलपुष्टिकराण्येव वायुबीजं निशामय ।।७१।।
भोजनानन्तरं सद्यो गमनं धावनं तथा । छेदनं वह्नितापश्च शश्वद्भ्रमणमैथुनम् (नं)।।७२।।
वृद्धस्त्रीगमनं चैव मनःसंताप एव च । अतिरूक्षमनाहारं युद्धं कलहमेव च ।।७३।।
कटुवाक्यं भयं शोकः केवलं वायुकारणम् । आज्ञाख्यचक्रे तज्जन्म निशामय तदौषधम् ।।७४।।
पक्वं रम्भाफलं चैव सबीजं शर्करोदकम् । नारिकेलोदकं चैव सद्यस्तक्रं सुपिष्टकम् ।।७५।।
माहिषं दधि मिष्टं च केवलं वा सशर्करम् । सद्यः पर्युषितान्नं च सौवीरं शीतलोदकम् ।।७६।।
पक्वतैलविशेषं च तिलतैलं च केवलम् । लाङ्गली तालखर्जूरमुष्णमामलकीद्रवम्[3] ।।७७।।
शीतलोष्णोदकस्नानं सुस्निग्धं चन्दनद्रवम् । स्निग्धपद्मपत्रतल्पं सुस्निग्धव्यजनानि च ।।७८।।
एतत्ते कथितं वत्से सद्यो वायुप्रणाशनम् । वायवस्त्रिविधाः पुंसां क्लेशसंतापकामजाः ।।७९।।
व्याधिसंघश्च कथितस्तन्त्राणि विविधानि च । तानि व्याधिप्रणाशाय कृतानि सद्भिरेव च ।।८०।।
तन्त्राण्येतानि सर्वाणि व्याधिक्षयकराणि च । रसायनादयो येषु चोपायाश्च सुदुर्लभाः ।।८१।।
न शक्तः कथितुं साध्वि यथार्थं वत्सरेण च । तेषां च सर्वतन्त्राणां कृतानां च विचक्षणैः ।।८२।।

उपवास, जल न पीना, घी मिला रोचनाचूर्ण, घी मिला सूखा शक्कर, मरिच, पीपर, सूखा अदरक, जीवक (अष्टवर्ग में से एक औषध) और मधु—इतने पदार्थ तुरन्त कफ का नाश करते हैं और निश्चित रूप से बल-पुष्टि प्रदान करते हैं। अब वायु का कारण सुनो ।।६८-७१।। भोजनान्तर तुरन्त चलना, दौड़ना, काटना, अग्नि-सेवन, निरन्तर भ्रमण और मैथुन, वृद्धा स्त्री का उपभोग, मन में सन्ताप रहना, अत्यन्त रूखा खाना, अनाहार, युद्ध करना, कलह करना, कटुवाक्य बोलना भय और शोक से अभिभूत होना—ये सब वायु की उत्पत्ति के कारण हैं। इसकी उत्पत्ति आज्ञा नामक चक्र में होती है। उसके औषध को भी बता रहा हूँ, सुनो। ।।७२-७४।। केले का पका फल, बिजौरा नीबू के साथ चीनी का शर्बत, नारियल का जल, तुरन्त का मट्ठा, उत्तम पीठी (पूआ), कचौरी आदि, भैंस का मीठा दही या उसमें शक्कर मिला हो, तुरंत का बासी अन्न जौ की काँजी, शीतल जल, पका तेल, अथवा केवल तिल का तेल, नारियल, ताड़, खजूर, आँवले का उष्ण द्रव, ठंडे-गरम जल का स्नान, अत्यन्त स्निग्ध चन्दन-रस तथा चिकने कमल पत्तों की शय्या,—ये सब वस्तुएँ एवं अत्यन्त स्निग्ध व्यजन उसी क्षण वायु का नाश कर देती है। वत्से ! इस प्रकार मैंने वायुनाशक वस्तुओं का वर्णन कर दिया। मनुष्यों में क्लेश, सन्ताप और काम से उत्पन्न होने वाले वायु-दोष तीन प्रकार के होते हैं।।७५-७९।। इस प्रकार मैंने व्याधि-समूह और उनके नाश के लिए विद्वानों द्वारा बनाये गये नाना प्रकार के तन्त्र भी बता दिये हैं।।८०।। ये सभी तन्त्र व्याधिनाशक हैं, जिनमें रसायन आदि अत्यन्त दुर्लभ उपाय बताये गये हैं।।८१।। पतिव्रते ! विद्वानों द्वारा सुरचित उन तन्त्रों

---

१ क. ०रमना०। २ क. जीरकं म०। ३ क. ०मुत्तमा०।

केन रोगेण त्वत्कान्तो मृतः कथय शोभने । तदुपायं करिष्यामि येन जीवेदयं सति ॥८३॥

सौतिरुवाच

ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा कन्या चित्ररथस्य च । कथां कथितुमारेभे सा गान्धर्वी प्रहर्षिता ॥८४॥

मालावत्युवाच

योगेन प्राणांस्तत्याज ब्रह्मणः शापहेतुना । सभायां लज्जितः कान्तो मम विप्र निशामय ॥८५॥
सर्वं श्रुतमपूर्वं च शुभाख्यानं मनोहरम् । भवे भुवे कुतः केषां महल्लभ्यं विपद्विना ॥८६॥
अधुना [1]मत्प्राणकान्तं देहि देहि विचक्षण । नत्वा वः स्वामिना सार्धं यास्यामि स्वगृहं प्रति ॥८७॥
मालावतीवचः श्रुत्वा विप्ररूपी जनार्दनः । सभां जगाम देवानां शीघ्रं विप्रस्तदन्तिकात् ॥८८॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे
चिकित्साप्रणयने षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

का यथावत् वर्णन एक वर्ष में भी नहीं किया जा सकता ॥८२॥ अतः हे शोभने ! तुम्हारा कान्त किस रोग से मृतक हुआ है वह बताओ। मैं उसका उपाय करूँगा, जिससे यह जीवित हो जायेगा ॥८३॥

सौति बोले—ब्राह्मण की बातें सुनकर चित्ररथ की कन्या गान्धर्वी (मालावती) ने अत्यन्त हर्षित होकर कथा कहना आरम्भ किया ॥८४॥

मालावती बोली—हे विप्र ! सुनिए। मेरे कान्त ने सभा में लज्जित होकर ब्रह्मा के शापवश योग द्वारा अपने प्राण का परित्याग किया है। मैंने आपके मुख से मनोहर, अपूर्व एवं शुभ आख्यान को सुना है। इस जगत् में बिना विपत्ति के कब किसको, कहाँ आप जैसे महात्माओं का संग प्राप्त हुआ है ? ॥८५-८६॥ विद्वन् ! इस समय मेरे प्राणपति को मुझे देने की कृपा करें, जिससे मैं अपने स्वामी के साथ आप सबको नमस्कार करके अपने घर को चली जाऊँ ॥८७॥ मालावती की यह बात सुनकर ब्राह्मणवेषधारी भगवान् जनार्दन उसके समीप से उठकर शीघ्र देवों की सभा में चले गये ॥८८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में मालावती-विष्णु-संवाद-विषयक
चिकित्सा-प्रणयन नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥१६॥

---

१ क. मत्प्रभोः प्राणदानं देहि वि०।

अथ सप्तदशोऽध्यायः

सौतिरुवाच

दृष्ट्वा द्विजं देवसंघः प्रत्युत्थानं चकार च । परस्परं च संभाषा बभूव तत्र संसदि ॥१॥
मा तं बुबुधिरे देवाः श्रीहरिं विप्ररूपिणम् । पौर्वापर्यं विस्मृताश्च मोहिता विष्णुमायया ॥२॥
सुरान्संबोध्य विप्रश्च वाचा मधुरया द्विज । उवाच सत्यं परमं प्राणिनां यच्छुभावहम् ॥३॥

ब्राह्मण उवाच

उपबर्हणभार्येयं कन्या चित्ररथस्य च । ययाचे जीवदानं च स्वामिनः शोककर्षिता ॥४॥
अधुना किमनुष्ठानमस्य कार्यस्य निश्चितम् । तन्मां ब्रूत सुराः सर्वे नित्यं यत्समयोचितम् ॥५॥
शप्तुकामा सुरान्सर्वान्साध्वी तेजस्विनी वरा । अहं क्षेमाय युष्माकमागतो बोधिता सती ॥६॥
स्तुतिः कृता च युष्माभिः श्वेतद्वीपे हरेरपि । युष्माकमीशो विष्णुश्च कथमेवात्र नाऽऽगतः ॥७॥
बभूवाऽऽकाशवाणीति पश्चाद्यास्यति[1] केशवः । विपरीतं कथं भूतं वाणीवाक्यमचञ्चलम् ॥८॥
ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा स्वयं ब्रह्मा जगद्गुरुः । उवाच वचनं सत्यं हितं परममङ्गलम् ॥९॥

अध्याय १७

विप्र-बालक के साथ ब्रह्मा आदि का वार्तालाप

सौति बोले—देवसमूह ने ब्राह्मण को देख कर उठकर स्वागत किया और सभा में उन सब की परस्पर बात-चीत हुई ॥१॥ विष्णु की माया से मोहित होने के नाते देवगण पूर्वापर की सारी बातें भूल गये थे, इसीलिए विप्र-वेषधारी भगवान् श्रीहरि को वे उस समय पहचान न सके ॥२॥ द्विज ! उस समय ब्राह्मण ने देवताओं को सम्बोधित करके मधुर वाणी में कहना आरम्भ किया, जो परम सत्य और प्राणियों के लिए कल्याणकारक था ॥३॥

ब्राह्मण बोले—उपबर्हण की यह भार्या, जो चित्ररथ की कन्या है, शोकाकुल होकर अपने स्वामी के जीव-दान की याचना कर रही है ॥४॥ आप सब देववृन्द मुझे बतायें कि इस कार्य के लिए निश्चित रूप से किस उपाय को अपनाया जाय, जो सदा काम में लाने योग्य और समयोचित हो ॥५॥ वह तेजस्विनी एवं श्रेष्ठ साध्वी सभी देवों को शाप देने के लिए तैयार थी किन्तु आप लोगों के कल्याणार्थ मैंने यहाँ आकर उसे समझा-बुझा दिया है ॥६॥ आप लोगों ने श्वेत द्वीप में जाकर भगवान् विष्णु की स्तुति की थी, किन्तु वे आप के ईश विष्णु यहाँ क्यों नहीं आये ? ॥७॥ आकाशवाणी हुई थी कि 'पश्चात् भगवान् केशव भी जायेंगे'। आकाशवाणी का वह अटल वाक्य विपरीत (मिथ्या) कैसे हो गया ? ॥८॥ ब्राह्मण की बात सुनकर जगद्गुरु ब्रह्मा ने सत्य, हितकर एवं परममंगलमय बात कही ॥९॥

---

[1] क. ०ति निश्चितम्।

ब्रह्मोवाच

मत्पुत्रो नारदः शप्तो गन्धर्वश्चोपबर्हणः । योगेन प्राणांस्तत्याज पुनः शापान्ममैव हि ॥१०॥
कालं लक्षयुगं व्याप्य स्थितिरस्य महीतले । शूद्रयोनिं ततः प्राप्य भविता मत्सुतः पुनः ॥११॥
अस्य कालावशेषस्य किंचिदस्ति द्विजोत्तम । तत्तु वर्षसहस्रं चैवाऽऽयुरस्यास्ति सांप्रतम् ॥१२॥
दास्यामि जीवदानं च स्वयं विष्णोः प्रसादतः । यथैनं न स्पृशेच्छापस्तत्करिष्यामि निश्चितम् ॥१३॥
नाऽऽगतो हरिरत्रेति त्वया यत्कथितं द्विज । हरिः सर्वत्र सर्वात्मा विग्रहः कुत आत्मनः ॥१४॥
स्वेच्छामयः परं ब्रह्म भक्तानुग्रहविग्रहः । सर्वं पश्यति सर्वज्ञः सर्वत्रास्ति सनातनः ॥१५॥
विषिश्च व्याप्तिवचनो नुश्च सर्वत्रवाचकः । सर्वव्यापी च सर्वात्मा तेन विष्णुः प्रकीर्तितः ॥१६॥
अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा । यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥१७॥
कर्मारम्भे च मध्ये वा शेषे विष्णुं च यः स्मरेत् । परिपूर्णं तस्य कर्म वैदिकं च भवेद्द्विज ॥१८॥
अहं स्रष्टा च जगतां विधाता संहरो हरः । धर्मश्च कर्मणां साक्षी यस्याऽऽज्ञापरिपालकः ॥१९॥
कालः संहरते लोकान्यमः शास्ता च पापिनाम् । उपैति मृत्युः सर्वांश्च भिया यस्याऽऽज्ञया सदा ॥२०॥
सर्वेशा या च सर्वाद्या प्रकृतिः सर्वसूः पुरा । सा भीता यस्य पुरतो यस्याऽऽज्ञापरिपालिका ॥२१॥

ब्रह्मा बोले—मेरे पुत्र नारद मेरे शापवश उपबर्हण नामक गन्धर्व हुए थे और पुनः मेरे शाप के कारण योग द्वारा प्राणत्याग किया था ॥१०॥ एक लाख युग के समय तक भूतल पर उनकी स्थिति रहेगी पश्चात् वे शूद्र-योनि में उत्पन्न होंगे। उसके अनन्तर पुनः मेरे पुत्र होंगे ॥११॥ हे द्विजोत्तम ! इसलिए इनका कुछ ही काल अब अवशिष्ट रह गया है। इस समय इनकी आयु एक सहस्र वर्ष की शेष है ॥१२॥ भगवान् विष्णु की कृपा से मैं स्वयं इसे जीवदान दूंगा और ऐसा उपाय अवश्य करूँगा, जिससे इस देव-समुदाय को शाप का स्पर्श न हो। हे द्विज ! आप ने जो यह कहा है कि भगवान् विष्णु यहाँ क्यों नहीं आये, सो ठीक नहीं है, क्योंकि हरि तो सर्वत्र विद्यमान हैं, वे ही सबके आत्मा हैं और आत्मा का शरीर कहाँ होता है? परब्रह्म तो स्वेच्छामय हैं। भक्तों पर कृपा करने के लिए शरीर धारण करते हैं। वे सनातन देव सर्वत्र हैं ॥१३-१५॥ विष् धातु व्याप्तिवाचक है और 'णु' का अर्थ सर्वत्र है। वे सर्वात्मा हरि सर्वत्र व्यापक हैं, इसलिए 'विष्णु' कहे गए हैं ॥१६॥ अपवित्र, पवित्र अथवा किसी भी दशा में जो पुण्डरीकाक्ष (कमलनेत्र) विष्णु का स्मरण करता है वह बाहर-भीतर दोनों ओर से शुद्ध हो जाता है ॥१७॥ द्विज ! कर्मों के आरम्भ, मध्य और अन्त में जो विष्णु का स्मरण करता है, उसका वह वैदिक कर्म परिपूर्ण हो जाता है ॥१८॥ जगत् का रचयिता मैं (विधाता), संहार करने वाले हर और कर्मों के साक्षी धर्म जिनकी आज्ञा का पालन करते हैं ॥१९॥ जिनकी आज्ञा और भय से काल लोकों का संहार करता है, यम पापियों पर शासन करता है और मृत्यु सबके समीप पहुँचती है ॥२०॥ उसी भाँति सर्वेश्वरी, सर्वाद्या और सबको उत्पन्न करने वाली प्रकृति भी जिनके सामने भयभीत रहती तथा जिनकी आज्ञा का पालन करती है। (वे ही विष्णु सर्वात्मा एवं सर्वेश्वर हैं) ॥२१॥

महेश्वर उवाच

पुत्राणां ब्रह्मणस्तेषां कस्य वंशोद्भवो भवान्। वेदानधीत्य भवता ज्ञातः कः सार एव च ॥२२॥
शिष्यः कस्य मुनीन्द्रस्य कस्त्वं नाम्ना च भो द्विज[1]। विभर्ष्यर्कातिरिक्तं च शिशुरूपोऽसि सांप्रतम् ॥२३॥
विडम्बयसि देवांश्च विष्णुमस्माकमीश्वरम्। हृदिस्थं च न जानासि परमात्मानमीश्वरम् ॥२४॥
यस्मिन्गते पतेद्देहो देहिनां परमात्मनि। प्रयान्ति सर्वे तत्पश्चान्नरदेवानुगा इव ॥२५॥
जीवस्तत्प्रतिबिम्बश्च मनो ज्ञानं च चेतना। प्राणाश्चेन्द्रियवर्गाश्च बुद्धिर्मेधा धृतिः स्मृतिः ॥२६॥
निद्रा दया च तन्द्रा च क्षुत्तृष्णा पुष्टिरेव च। श्रद्धा संतुष्टिरिच्छा च क्षमा लज्जादिकाः स्मृताः ॥२७॥
प्रयाति यत्पुरः शक्तिरीश्वरे गमनोन्मुखे। एते सर्वे च शक्तिश्च यस्याऽऽज्ञापरिपालकाः ॥२८॥
ईश्वरे च स्थिते देही क्षमश्च सर्वकर्मसु। गतेऽस्पृश्यः शवस्त्याज्यः कस्तं देही न[2] मन्यते ॥२९॥
स्वयं ब्रह्मा च जगतां विधाता सर्वकारकः। पादारविन्दमनिशं ध्यायते द्रष्टुमक्षमः ॥३०॥
युगलक्षं तपस्तप्तं श्रीकृष्णस्य च वेधसा। तदा बभूव ज्ञानी च जगत्स्रष्टुं क्षमस्तदा ॥३१॥

महेश्वर बोले—ब्रह्मा के पुत्रों में आप किसके कुल में उत्पन्न हुए हैं और वेदों का अध्ययन करके क्या तत्त्व समझा है! द्विज! आप किस मुनिवर्य के शिष्य हैं और आप का नाम क्या है? इस समय शिशुअवस्था में ही आप सूर्य से भी अधिक तेजस्वी दिखायी देते हैं॥२२-२३॥ आप अपने तेज से देवताओं को भी तिरस्कृत कर रहे हैं; किन्तु सबके हृदय में अन्तर्यामी आत्मा रूप से विराजमान हमारे स्वामी सर्वेश्वर परमात्मा को नहीं जानते, यह आश्चर्य की बात है। ॥२४॥ देहधारियों की देह से परमात्मा के निकल जाने पर देह गिर जाती है और सभी सूक्ष्म इन्द्रियवर्ग एवं प्राण उनके पीछे उसी तरह निकल जाते हैं जैसे राजा के पीछे उसके सेवक जाते हैं॥२५॥ उन्हीं का प्रतिबिम्ब जीव है। मन, ज्ञान, चेतना, प्राण, इन्द्रियाँ, बुद्धि, मेधा, धृति, स्मृति, निद्रा, दया, तन्द्रा, क्षुधा, तृष्णा, पुष्टि, श्रद्धा, संतुष्टि, इच्छा, क्षमा और लज्जा आदि भाव उन्हीं के अनुगामी माने गए हैं। वे परमात्मा जब जाने को उद्यत होते हैं तब उनकी शक्ति आगे-आगे जाती है। उपर्युक्त सभी भाव तथा शक्ति उन्हीं परमात्मा के आज्ञापालक हैं॥२६-२८॥ देह में उनके रहने पर ही प्राणी सभी कार्य करने में समर्थ होता है और उनके चले जाने पर शरीर अस्पृश्य और त्याज्य शव हो जाता है। ऐसे सर्वेश्वर शिव को कौन देहधारी नहीं मानता है? ॥२९॥ जगत के विधाता एवं सबके रचयिता स्वयं ब्रह्मा भी उनके चरण कमल का रातदिन ध्यान करते हैं, किन्तु उनका दर्शन नहीं कर पाते हैं ॥३०॥ भगवान् श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिए एक लाख युग तक तप करके ही ब्रह्मा ज्ञानी और जगत् की सृष्टि करने में समर्थ हुए हैं॥३१॥ मैंने भी असंख्य काल तक भगवान् विष्णु की आराधना करते हुए

---

१ क. ०ज। विभास्यर्कातिरिक्तश्च। २ क. नमस्यते।

असंख्यकालं सुचिरं तपस्तप्तं हरेर्मया । तृप्तिं जगाम न मनस्तृप्यते केन मङ्गले ॥३२॥
अधुना पञ्चवक्त्रेण यन्नामगुणकीर्तनम् । गायन्भ्रमामि सर्वत्र निःस्पृहः सर्वकर्मसु ॥३३॥
मत्तो याति च मृत्युश्च यन्नामगुणकीर्तनात् । शश्वज्जपन्तं तन्नाम दृष्ट्वा मृत्युः पलायते ॥३४॥
सर्वब्रह्माण्डसंहर्ताऽप्यहं मृत्युंजयाभिधः । सुचिरं तपसा यस्य गुणनामानुकीर्तनात् ॥३५॥
काले तत्र विलीनोऽहमाविर्भूतस्ततः पुनः । न कालो मम संहर्ता न मृत्युर्यत्प्रसादतः ॥३६॥
गोलोके यः स वैकुण्ठे श्वेतद्वीपे स एव च । अंशांशिनोर्न भेदश्च ब्रह्मन्वह्निस्फुलिंगवत्[1] ॥३७॥
मन्वन्तरं तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः । अष्टाविंशतिमे शक्रे गते च ब्रह्मणो दिनम् ॥३८॥
एतत्संख्याविशिष्टस्य शतवर्षायुषो विधेः । पाते लोचनपातश्च यद्विष्णोः परमात्मनः ॥३९॥
अहं कलानावृषभः कृष्णस्य परमात्मनः । पारं महिम्नः को गच्छेन्न जानामि च किंचन ॥४०॥
इत्युक्त्वा शंकरस्तत्र विरराम च शौनक । धर्मश्च वक्तुमारेभे यः साक्षी सर्वकर्मणाम् ॥४१॥

धर्म उवाच

यत्पाणिपादौ सर्वत्र चक्षुश्च सर्वदर्शनम् । सर्वान्तरात्मा प्रत्यक्षोऽप्रत्यक्षश्च दुरात्मनः ॥४२॥

घोर तप किया, किन्तु मन को तृप्ति न प्राप्त हुई। भला मंगल से कौन तृप्त होता है? ॥३२॥ इस समय मैं पाँच मुखों से उनके नाम-गुणों का कीर्तन करते एवं गाते हुए सर्वत्र भ्रमण करता हूँ और सभी कर्मों में निःस्पृह रहता हूँ ॥३३॥ उनके नाम-गुणों के कीर्तन करने से मृत्यु भी मेरे पास नहीं फटकती; क्योंकि निरन्तर उनके नाम जपने वाले को देखकर मृत्यु भाग जाती है ॥३४॥ चिरकाल तक तपस्यापूर्वक उनके नाम-गुणों का कीर्तन करने से मैं समस्त ब्रह्माण्ड का संहर्त्ता तथा मृत्युञ्जय हुआ हूँ ॥३५॥ समय आने पर मैं उन्हीं में विलीन होता हूँ तथा उन्हीं से पुनः प्रकट हो जाता हूँ। उनकी कृपा से मैं मृत्यु और काल को जीत चुका हूँ ॥३६॥ ब्रह्मन्! जो श्रीकृष्ण गोलोक में हैं, वही वैकुण्ठ तथा श्वेतद्वीप में भी रहते हैं। जैसे अग्नि और उसके कण (चिनगारी) में कोई अन्तर नहीं है, उसी प्रकार अंश और अंशी में भेद नहीं होता ॥३७॥ एकहत्तर दिव्य युगों का एक मन्वन्तर होता है। (प्रत्येक मन्वन्तर में दो इन्द्र व्यतीत होते हैं) अट्ठाईसवें इन्द्र के गत हो जाने पर ब्रह्मा का एक दिन होता है ॥३८॥ इस प्रकार ब्रह्मा की सौ वर्ष की आयु के समाप्त होने पर परमात्मा विष्णु के नेत्र की एक पलक गिरती है ॥३९॥ परमात्मा श्रीकृष्ण की कलाओं में मैं श्रेष्ठ कलामात्र हूँ; किन्तु उनकी महिमा का पार कौन पा सकता है? मैं तो कुछ भी नहीं जानता ॥४०॥ शौनक! वहाँ इतना कहकर शंकर जी चुप हो गये। अनन्तर समस्त कर्मों के साक्षी धर्म ने कहना आरम्भ किया ॥४१॥

धर्म बोले—जिनके हाथ और चरण सर्वत्र रहते हैं, आँख सब कुछ देखती है, वह सर्वान्तरात्मा प्रत्यक्ष हैं और दुरात्माओं के लिए वे अप्रत्यक्ष हैं ॥४२॥ इस समय आपने जो कहा है कि 'विष्णु सभा में नहीं आये,

---

१ क. ०त्। इन्द्रायुश्चैव दि०।

अधुनाऽपि सभां विष्णुर्नायाति इति यद्वचः । त्वयोक्तं तत्कया बुद्ध्या मुनीनां च मतिभ्रमः ॥४३॥
महन्निन्दा भवेद्यत्र नैव साधुः शृणोति ताम् । निन्दकः श्रोतृभिः सार्धं कुम्भीपाकं व्रजेद्युगम् ॥४४॥
श्रुत्वा दैवान्महन्निन्दां श्रीविष्णोः स्मरणाद्बुधः । मुच्यते सर्वपापेभ्यः पुण्यं प्राप्नोति दुर्लभम् ॥४५॥
कामतोऽकामतो वाऽपि विष्णुनिन्दां करोति यः । यः शृणोति हसति वा सभामध्ये नराधमः ॥४६॥
कुम्भीपाके पचति स यावद्धि ब्रह्मणो वयः । स्थलं भवेदपूतं च सुरापात्रं यथा द्विज ॥४७॥
प्राणी च नरकं याति श्रुतं तत्रैव चेद्ध्रुवम् । विष्णुनिन्दा च त्रिविधा ब्रह्मणा कथिता पुरा ॥४८॥
अप्रत्यक्षं च कुरुते किंवा तं च न मन्यते । देवान्यसाम्यं कुरुते ज्ञानहीनो नराधमः ॥४९॥
तस्यात्र निष्कृतिर्नास्ति यावद्वै ब्रह्मणः शतम् । गुरोर्निन्दां यः करोति पितुर्निन्दां नराधमः ।
स याति कालसूत्रं च यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥५०॥
विष्णुर्गुरुश्च सर्वेषां जनको ज्ञानदायकः । पोष्टा पाता भयत्राता वरदाता जगत्त्रये ॥५१॥
एषां च वचनं श्रुत्वा त्रयाणां विप्रपुंगव । प्रहस्योवाच तान्देवान्वाचा मधुरया पुनः ॥५२॥

ब्राह्मण उवाच

का कृता विष्णुनिन्दाऽहो हे देवा धर्मशालिनः । नाऽऽगतो हरिरत्रेति व्यर्थाऽऽकाशसरस्वती ॥५३॥
इति प्रोक्तं मया भद्रं ब्रूत धर्मार्थमीश्वराः । सभायां पाक्षिकाः सन्तो घ्नन्ति स्म शतपूरुषम् ॥५४॥

वह किस बुद्धि से कहा है? यह बात तो मुनियों की बुद्धि को भी भ्रम में डालने वाली है॥४३॥ जहाँ बड़ों की निन्दा होती है, वहाँ सज्जन लोग उसे नहीं सुनते हैं। क्योंकि सुनने वालों के साथ वह निन्दक कुम्भीपाक नरक में जाता है और वहाँ एक युग तक कष्ट भोगता रहता है॥४४॥ दैववश बड़ों की निन्दा सुन लेने पर विद्वान् लोग श्री विष्णु का स्मरण करके समस्त पापों से मुक्त हो जाते हैं तथा दुर्लभ पुण्य प्राप्त करते हैं॥४५॥ जो इच्छा या अनिच्छा से भगवान् विष्णु की निन्दा करता है तथा जो नराधम सभा के बीच में बैठकर उस निन्दा को सुनता तथा हँसता है वह ब्रह्मा की आयु तक कुम्भीपाक नरक में पकता रहता है। द्विज! मद्यपात्र की भाँति वह स्थल भी अपवित्र हो जाता है॥४६-४७॥ वहाँ जाकर जो प्राणी भगवन्निन्दा सुनता है वह निश्चय ही नरक में पड़ता है। पूर्वकाल में ब्रह्मा ने विष्णु की निन्दा के तीन प्रकार बताये थे—परोक्ष (आड़) में निन्दा करना, विष्णु को न मानना तथा अन्य देवों से उनकी तुलना करना—ये तीनों निन्दायें ज्ञानहीन नराधम करता है॥४८-४९॥ सौ ब्रह्मा की आयु तक भी उस (निन्दक) का नरक से उद्धार नहीं होता। इसी भाँति जो नराधम गुरु एवं पिता की निन्दा करता है वह कालसूत्र को प्राप्त होकर चन्द्र-सूर्य के समय तक वहीं पड़ा रहता है॥५०॥ विष्णु तीनों लोकों में सबके गुरु, पिता, ज्ञान-दाता, पोषक, पालक, भयत्राता तथा वरदाता हैं॥५१॥ इन तीनों की बातें सुनकर उस द्विजपुंगव ने हँसकर मधुरवाणी में उन देवों से कहा॥५२॥

ब्राह्मण बोले—हे धर्मशाली देवगण! मैंने विष्णु की क्या निन्दा की है? मैंने यही कहा कि—विष्णु यहाँ नहीं आये, अतः आकाशवाणी असत्य हो गई। आप लोग अधीश्वर हैं। धर्मतः कहिए; क्योंकि सभा में पक्षपात करने वाले व्यक्ति अपनी सौ पीढ़ियों का नाश कर डालते हैं॥५३-५४॥ आप लोग भावुक होकर कह

यूयं च भावुका ब्रूत विष्णुः सर्वत्र संततम् । इति चेत्तत्कथं याताः श्वेतद्वीपं वराय च ॥५५॥
अंशांशिनोर्न भेदश्चेदात्मनश्चेति निश्चितम् । कलां हित्वा निषेवन्ते सन्तः पूर्णतमं कथम् ॥५६॥
कोटिजन्मदुराराध्यमसाध्यमसतामपि । आशा बलवती पुंसां कृष्णं सेवितुमिच्छति ॥५७॥
किं क्षुद्राः किं महान्तश्च वाञ्छन्ति परमं पदम् । लब्धुमिच्छति चन्द्रं च बाहुभ्यां वामनो यथा ॥५८॥
यो विष्णुर्विषयी विश्वे श्वेतद्वीपनिवासकृत् । यूयं ब्रह्मेशधर्माश्च दिक्पालाश्च दिगीश्वराः ॥५९॥
ब्रह्मविष्णुशिवाद्याश्च सुरलोकाश्चराचराः । एवं कतिविधाः सन्ति प्रतिविश्वेषु संततम् ॥६०॥
विश्वानां च सुराणां च कः संख्यां कर्तुमीश्वरः । सर्वेषामीश्वरः कृष्णो भक्तानुग्रहविग्रहः ॥६१॥
ऊर्ध्वं च सर्वब्रह्माण्डाद्वैकुण्ठं सत्यमीप्सितम् । तस्मादूर्ध्वं च गोलोकः पञ्चाशत्कोटियोजनम् ॥६२॥
चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे लक्ष्मीकान्तः सनातनः । सुनन्दनन्दकुमुदपार्षदादिभिरावृतः ॥६३॥
गोलोके द्विभुजः कृष्णो राधाकान्तः सनातनः । गोपाङ्गनादिभिर्युक्तो द्विभुजैर्गोपपार्षदैः ॥६४॥
परिपूर्णतमं ब्रह्म स चाऽऽत्मा सर्वदेहिनाम् । स्वेच्छामयश्च विहरेद्रासे वृन्दावने सदा ॥६५॥
तज्ज्योतिर्मण्डलाकारं सूर्यकोटिसमप्रभम् । ध्यायन्ते योगिनः सन्तः संततं च निरामयम् ॥६६॥

रहे हैं कि विष्णु सर्वत्र हैं। यदि ऐसी बात है तो आप लोग वर माँगने के निमित्त श्वेतद्वीप में क्यों गये थे ? ॥५५॥ अंश और अंशी में भेद नहीं है तथा आत्मा में भी भेद का अभाव है, यदि यही आपका निश्चित मत है तो बताइए—श्रेष्ठ पुरुष कला (अंश) का त्याग करके पूर्णतम (अंशी) की उपासना क्यों करते हैं? ॥२६॥ कोटि जन्मों में भी दुराराध्य और असज्जनों के लिए सदैव असाध्य भगवान् कृष्ण की ही सेवा करने के लिए लोगों को बलवती आशा प्रेरित करती है ॥५७॥ अपने दोनों हाथों से चन्द्रमा को प्राप्त करने की इच्छा करने वाले वामन (बौने पुरुष) की भाँति क्या छोटे क्या बड़े, सभी परम पद को चाहते हैं ॥५८॥ जो विष्णु हैं, वे एक विषय (देश) में रहते हैं। विश्व के अन्तर्गत श्वेतद्वीप में निवास करते हैं। आप ब्रह्मा, शिव, धर्म तथा दिशाओं के स्वामी दिक्पाल भी एक देश के निवासी हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवेश, देवसमूह और चराचर प्राणी—ये सब भिन्न-भिन्न ब्रह्मांडों में अनेक हैं। उन ब्रह्मांडों और देवताओं की गणना करने में कौन समर्थ है? उन सबके एकमात्र स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण हैं, जो भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए दिव्य विग्रह धारण करते हैं ॥५९—६१॥ सर्ववांछनीय सत्यलोक या नित्य वैकुंठधाम समस्त ब्रह्माण्ड से ऊपर है। उससे भी ऊपर पचास कोटि योजन के विस्तार में गोलोक (विराजमान) है ॥६२॥ वैकुण्ठ में लक्ष्मीकान्त सनातन भगवान् चतुर्भुज होकर निवास करते हैं । वहाँ सुनन्द, नन्द, और कुमुद आदि पार्षद उन्हें घेरे रहते हैं ॥६३॥ गोलोक में राधाकान्त भगवान् श्री कृष्ण दो भुजाओं से युक्त होकर निवास करते हैं। उन सनातन भगवान् को गोपांगनाएँ और दो भुजा वाले पार्षदगण सदैव घेरे रहते हैं ॥६४॥ वही श्रीकृष्ण परिपूर्णतम ब्रह्म हैं। वे समस्त देहधारियों के आत्मा हैं। वे स्वेच्छामय शरीर धारण करके वृन्दावन के रासमंडल में सदैव विहार करते हैं ॥६५॥ उन्हीं निरामय परमात्मा की मण्डलाकार ज्योति का, जो करोड़ों सूर्य की प्रभा के समान है, योगी एवं सन्त-महात्मा निरन्तर ध्यान करते हैं ॥६६॥ उनकी नवीन घनश्याम की भाँति श्यामल

नवीननीरदश्यामं द्विभुजं पीतवाससम् । कोटिकन्दर्पलावण्यलीलाधाम मनोहरम् ॥६७॥
किशोरवयसं शश्वच्छान्तं सस्मितमीश्वरम् । ध्यायन्ते वैष्णवाः[1] सन्तः सेवन्ते सत्यविग्रहम् ॥६८॥
यूयं च वैष्णवा ब्रूत कस्य वंशोद्भवो भवान् । शिष्यः कस्य मुनीन्द्रस्येत्येवं मां च पुनः पुनः ॥६९॥
यस्य वंशोद्भवोऽहं च यस्य शिष्यश्च बालकः । तस्येदं वचनं ज्ञानं देवसंघा निबोधत ॥७०॥
शीघ्रं जीवय गन्धर्वं देवेश्वर सुरेश्वर । व्यक्ते विचारे मूर्खः को वाग्युद्धे किं प्रयोजनम् ॥७१॥
इत्युक्त्वा बालकस्तत्र विप्ररूपी जनार्दनः । विरराम सभामध्ये प्रजहास च शौनक ॥७२॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौ० ब्रह्मखण्डे विष्णुसुरसंघसंवादे
विष्णुप्रशंसाप्रणयनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अथाष्टादशोऽध्यायः

सौतिरुवाच

देवाः सार्धं ब्राह्मणेन मोहिता विष्णुमायया । प्रययुर्मालतीमूलं ब्रह्मेशानपुरोगमाः ॥१॥
ब्रह्मा कमण्डलुजलं ददौ गात्रे शवस्य च । संचारं मनसस्तस्य चकार सुन्दरं वपुः ॥२॥

कान्ति है। दो भुजाएँ हैं। वे पीताम्बर धारण किये हुए हैं। करोड़ों कन्दर्पों से भी सुन्दर हैं। लीलाधाम हैं। उनका रूप अत्यन्त मनोहर है। किशोर अवस्था है। वे नित्य शान्त परमात्मा मंद मुसकान की आभा बिखेरते रहते हैं। वैष्णव संत उन्हीं सत्यशरीर भगवान् का ध्यान-भजन करते हैं॥६७-६८॥ आप लोग भी वैष्णव हैं और मुझसे बार-बार पूछ रहे हैं कि—'आप किस वंश के हैं और किस मुनिश्रेष्ठ के शिष्य हैं॥६९॥ हे देवगण! मैं जिसके वंश में उत्पन्न हुआ हूं एवं जिसका बालक और शिष्य हूँ उन्हीं का यह वचन और ज्ञान है, ऐसा जानो॥७०॥ देवेश्वर सुरेश! इस गन्धर्व को शीघ्र जीवित करो। विचार व्यक्त करने पर स्वतः ज्ञात हो जाता है कि कौन मूर्ख है और कौन विद्वान्। अतः वाग्युद्ध (जिह्वा की लड़ाई) करने की क्या आवश्यकता? ॥७१॥ शौनक! विप्रवेषधारी बालक जनार्दन इतना कहकर चुप हो गये और सभा के बीच ठठाकर हँस पड़े॥७२॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में विष्णु-प्रशंसा-प्रणयन
नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥१७॥

अध्याय १८

उपबर्हण को जीवनदान

सौति बोले--भगवान् विष्णु की माया से मोहित हुए ब्रह्मा, शिव तथा देवगण ब्राह्मण के साथ मालावती के निकट पहुँचे॥१॥ ब्रह्मा ने उस शव के शरीर पर अपने कमण्डलु का जल छिड़क दिया और उसमें मन का

---

१ क ०वाः शान्ताः से०।

ज्ञानदानं ददौ तस्मै ज्ञानानन्दः शिवः स्वयम् । धर्मज्ञानं स्वयं धर्मो जीवदानं च ब्राह्मणः ॥३॥
वह्निदर्शनमात्रेण बभूव जठरानलः । कामदर्शनमात्रेण सर्वकामः सुनिश्चितम् ॥४॥
तस्य वायोरधिष्ठानाज्जगत्प्राणस्वरूपिणः । निःश्वासस्य च संचारः प्राणानां च बभूव ह ॥५॥
सूर्याधिष्ठानमात्रेण दृष्टिशक्तिर्बभूव ह । वाक्यं वाणीदर्शनेन शोभा श्रीदर्शनेन च ॥६॥
शवस्तथाऽपि नोत्तस्थौ यथा शेते जडस्तथा । विशिष्टबोधनं प्राप चाधिष्ठानं विनाऽऽत्मनः ॥७॥
ब्रह्मणो वचनात्साध्वी तुष्टाव परमेश्वरम् । स्नात्वा शीघ्रं सरित्तोये धृत्वा धौते च वाससी ॥८॥

मालावत्युवाच

वन्दे तं परमात्मानं सर्वकारणकारणम् । विना येन शवाः सर्वे प्राणिनो जगतीतले ॥९॥
निर्लिप्तं साक्षिरूपं च सर्वेषां सर्वकर्मसु । विद्यमानमदृष्टं च सर्वैः सर्वत्र सर्वदा ॥१०॥
येन सृष्टा च प्रकृतिः सर्वाधारा परात्परा । ब्रह्मविष्णुशिवादीनां प्रसूर्या त्रिगुणात्मिका ॥११॥
जगत्स्रष्टा स्वयं ब्रह्मा नियतो यस्य सेवया । पाता विष्णुश्च जगतां संहर्ता शंकरः स्वयम् ॥१२॥
ध्यायन्ते यं सुराः सर्वे मुनयो मनवस्तथा । सिद्धाश्च योगिनः सन्तः संततं प्रकृतेः परम् ॥१३॥
साकारं च निराकारं परं स्वेच्छामयं विभुम् । वरं वरेण्यं वरदं वरार्हं वरकारणम् ॥१४॥
तपः फलं तपोबीजं तपसां च फलप्रदम् । स्वयं तपःस्वरूपं च सर्वरूपं च सर्वतः ॥१५॥

संचार करके उसके शरीर को सुन्दर बना दिया ॥२॥ स्वयं ज्ञानानन्द शिव ने उसे ज्ञान-दान दिया; धर्म ने धर्म-ज्ञान और ब्राह्मण ने जीवदान दिया ॥३॥ अग्नि के दर्शन मात्र से उसमें जठराग्नि उत्पन्न हो गया। काम के दर्शन से समस्त कामनाओं का उदय हो गया ॥४॥ संसार के प्राणस्वरूप वायु से निःश्वास और प्राणों का संचार होने लगा ॥२॥ सूर्याधिष्ठान मात्र से उसकी आँखों में देखने की शक्ति आ गयी। वाणी (सरस्वती) की दृष्टि पड़ने से वाक्शक्ति और श्री के दर्शन से शोभा उत्पन्न हो गयी। इतने पर भी वह शव जड़ की भाँति सोया ही रहा; उठ न सका। क्योंकि आत्माधिष्ठान के बिना विशिष्ट बोधन (चेतना) की प्राप्ति कहाँ से हो सकती है? ॥६-७॥ तब ब्रह्मा के कहने पर उस पतिव्रता ने नदी के जल में शीघ्र स्नान करके युगल धौत वस्त्र पहनकर परमेश्वर की स्तुति करना आरम्भ किया ॥८॥

मालावती बोली—समस्त कारणों के कारण उस परमात्मा की वन्दना करती हूँ, जिसके बिना इस जगत् के सारे प्राणी शव के समान हैं ॥९॥ वह निर्लिप्त है। सबके समस्त कर्मों में सर्वत्र और सदा साक्षी रूप से विद्यमान रहता है। किन्तु सब लोग उसे नहीं देख सकते ॥१०॥ उस ब्रह्म ने सबकी आधारभूता उस परात्परा प्रकृति की सृष्टि की है, जो ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि की जननी है ॥११॥ स्वयं जगत्स्रष्टा ब्रह्मा उस ब्रह्म की सेवा में नियत रूप से लगे रहते हैं। विष्णु और स्वयं जगत् के संहर्त्ता शिव भी उसकी सेवा में तत्पर रहते हैं ॥१२॥ प्रकृति से परे उस परमेश्वर का ध्यान समस्त देव, मुनिगण, मनु, सिद्ध, योगी और सन्त महात्मा किया करते हैं ॥१३॥ वह साकार, निराकार, श्रेष्ठ, स्वेच्छामय, व्यापक, उत्तमोत्तम, वरदाता, वर देने के योग्य, वर का कारण, तप का फल, तप का बीज, तप का फलदायक, स्वयं तपःस्वरूप तथा सर्वरूप है ॥१४-१५॥ वह सबका आधार, सब का बीज,

सर्वाधारं सर्वबीजं कर्म तत्कर्मणां फलम् । तेषां च फलदातारं तद्बीज[१] क्षयकारणम् ॥१६॥
स्वयं तेजः स्वरूपं च भक्तानुग्रहविग्रहम् । सेवा ध्यानं न घटते भक्तानां विग्रहं विना ॥१७॥
तत्तेजो मण्डलाकारं सूर्यकोटिसमप्रभम् । अतीव कमनीयं च रूपं तत्र मनोहरम् ॥१८॥
नवीननीरदश्यामं शरत्पङ्कजलोचनम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यमीषद्धास्यसमन्वितम् ॥१९॥
कोटिकन्दर्पलावण्यं लीलाधाम मनोहरम् । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम् ॥२०॥
द्विभुजं मुरलीहस्तं पीतकौशेयवाससम् । किशोरवयसं शान्तं राधाकान्तमनन्तकम् ॥२१॥
गोपाङ्गनापरिवृतं कुत्रचिन्निर्जने वने । कुत्रचिद्रासमध्यस्थं राधया परिषेवितम् ॥२२॥
कुत्रचिद्गोपवेषं च वेष्टितं गोपबालकैः । शतशृङ्गाचलोत्कृष्टे[२] रम्ये वृन्दावने वने ॥२३॥
निकरं[३] कामधेनूनां रक्षन्तं शिशुरूपिणम् । गोलोके विरजातीरे पारिजातवने वने ॥२४॥
वेणुं क्वणन्तं मधुरं गोपीसंमोहकारणम् । निरामये च वैकुण्ठे कुत्रचिच्च चतुर्भुजम् ॥२५॥
लक्ष्मीकान्तं पार्षदैश्च सेवितं च चतुर्भुजैः । कुत्रचित्स्वांशरूपेण जगतां पालनाय च ॥२६॥
श्वेतद्वीपे विष्णुरूपं पद्मया परिषेवितम् । कुत्रचित्स्वांशकलया ब्रह्माण्डे ब्रह्मरूपिणम् ॥२७॥
शिवस्वरूपं शिवदं स्वांशेन शिवरूपिणम् । स्वात्मनः षोडशांशेन सर्वाधारं परात्परम् ॥२८॥

कर्म तथा उन कर्मों का फल, फल देने वाला तथा कर्मबीज का नाशक है ॥१६॥ वह स्वयं तेजःस्वरूप और भक्तों पर कृपा करने के लिए शरीर धारण करता है। क्योंकि बिना शरीर के भक्तगण उसकी सेवा और ध्यान-पूजा कैसे करेंगे ? ॥१७॥ वह तेजोमण्डलाकार, करोड़ों सूर्य के समान प्रभापूर्ण, अत्यन्त कमनीय (सुन्दर) एवं मनोहर रूप-वाला है ॥१८॥ नवीन घन के समान श्यामलवर्ण, शारदीय कमल की भाँति नेत्र, शरत्पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मन्द मुसकान से युक्त मुख तथा करोड़ों कामों को भी लज्जित करने वाला लावण्य उसकी सहज विशेषतायें हैं तथा वह चन्दन-चर्चित समस्त अंगों से युक्त है। उसके संपूर्ण अंग रत्नों के भूषणों से भूषित हैं। उसकी दो भुजाएँ हैं, हाथ में मुरली है, अंगों पर पीताम्बर शोभा पाता है तथा किशोरावस्था है। वह शान्त और राधा का कान्त है। वह अनन्त आनन्द से परिपूर्ण है। कहीं वह निर्जन बन में गोपियों से घिरा रहता है तो कहीं रास के मध्य में राधा से सुसेवित होता रहता है ॥१९-२२॥ कहीं गोप बनकर गोप-बालकों के साथ वृन्दावन नामक वन में, जो सैकड़ों शिखर वाले गोवर्धन के कारण उत्कृष्ट शोभा से युक्त एवं रमणीय है, कामधेनुओं के समुदाय को चराते हुए देखा जाता है। कहीं गोलोक में विरजा के तट पर पारिजात वन में मधुर-मधुर वेणु बजाकर गोपांगनाओं को मोहित किया करता है। कहीं निरामय वैकुण्ठ में चतुर्भुज होकर विराजमान दिखायी देता है ॥२३-२५॥ कहीं लक्ष्मीकान्त बन कर चार भुजा वाले पार्षदों से सुसेवित होता रहता है। कहीं तीनों लोकों के पालन के लिए अपने अंश रूप से श्वेतद्वीप में विष्णुरूप धारण करके रहता है और कमला से सेवा कराता है। कहीं अपनी अंश-कला से किसी ब्रह्माण्ड में ब्रह्मरूप से विराजमान रहता है। कहीं अपने ही अंश से शिवप्रद शिवस्वरूप में और कहीं अपनी सोलहवीं कला से सर्वाधार, परात्पर एवं महान्

---

१ क. ०द्बीजम० । २ क. ०लोद्देशे र० । ३ क. ०रं धामधे० ।

स्वयं महाविराड्रूपं विश्वौघो यस्य लोमसु । लीलया स्वांशकलया जगतां पालनाय च ॥२९॥
नानावतारं बिभ्रन्तं बीजं तेषां सनातनम् । वसन्तं कुत्रचित्सन्तं योगिनां हृदये सताम् ॥३०॥
प्राणरूपं प्राणिनां च परमात्मानमीश्वरम् । तं च स्तोतुमशक्ताऽहमबला निर्गुणं विभुम् ॥३१॥
निर्लक्ष्यं च निरीहं च सारं वाङ्मनसोः परम् । यं स्तोतुमक्षमोऽनन्तः सहस्रवदनेन च ॥३२॥
पञ्चवक्त्रश्चतुर्वक्त्रो गजवक्त्रः षडाननः । यं स्तोतुं न क्षमा माया मोहिता यस्य मायया ॥३३॥
यं स्तोतुं न क्षमा श्रीश्च जडीभूता सरस्वती । वेदा न शक्ता यं स्तोतुं को वा विद्वांश्च वेदवित् ॥३४॥
किं स्तौमि तमनीहं च शोकार्ता स्त्री परात्परम् । इत्युक्त्वा सा च गान्धर्वी विरराम रुरोद च ॥३५॥
कृपानिधिं प्रणनाम भयार्ता च पुनः पुनः । कृष्णश्च शक्तिभिः सार्धमधिष्ठानं चकार ह ॥३६॥
भर्तुरभ्यन्तरे तस्याः परमात्मा निराकृतिः । उत्थाय शीघ्रं वीणां च धृत्वा च वाससी पुनः ॥३७॥
प्रणनाम देवसंघं ब्राह्मणं पुरतः स्थितम् । नेदुर्दुन्दुभयो देवाः पुष्पवृष्टिं च चक्रिरे ॥३८॥
दृष्ट्वा चोपरि दम्पत्योः प्रददुः परमाशिषम् । गन्धर्वो देवपुरतो ननर्त च जगौ क्षणम् ॥३९॥
जीवितं पुरतः प्राप देवानां च वरेण च । जगाम पत्न्या सार्धं च पित्रा मात्रा च हर्षितः ॥४०॥

विराट् रूप धारण करता रहता है, जिसके रोम-रोम में विश्वसमूह स्थित रहता है। कहीं वह जगत् की रक्षा करने के लिए अपनी अंश-कला से लीला द्वारा अनेक अवतार धारण करता है, जिनका वह स्वयं सनातन बीज है। कहीं वह सद्‌गुणी योगियों के हृदय में निवास करता है॥२६-३०॥ वही प्राणियों का प्राण और परमात्मा ईश्वर है। उस निर्गुण व्यापक की स्तुति हम शक्तिहीन अबला कैसे कर सकती हैं? अनन्त (शेषनाग) अपने सहस्र मुखों द्वारा निर्लक्ष्य, निरीह, सारभूत एवं मन-वाणी से परे रहने वाले उस ब्रह्म की स्तुति करने में सदैव अपने को असमर्थ पाते हैं॥३१-३२॥ उसकी माया से मोहित होकर पञ्चमुख (शिव), चतुर्मुख (ब्रह्मा), गज-मुख (गणेश), और षडानन (कार्तिकेय) उसकी स्तुति करने में असमर्थ हैं॥३३॥ उसकी स्तुति करने में लक्ष्मी असमर्थ हैं। सरस्वती जड़ की भाँति मूक रह जाती हैं। वेद भी स्तुति करने में अक्षम हैं। तब भला उस परमात्मा की स्तुति कौन विद्वान् कर सकता है? (अर्थात् कोई नहीं)। मैं शोकातुर अबला उस अनीह एवं परात्पर की स्तुति क्या कर सकती हूँ? इतना कहकर वह गान्धर्वी चुप हो गई और फूट-फूट कर रोने लगी॥३४-३५॥ भयभीत होकर उसने कृपानिधान भगवान् को बार-बार प्रणाम किया। तब निराकार परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण ने उसके पति के भीतर (हृदय-कमल में) शक्तिसमेत अधिष्ठान किया। अनन्तर उस (शव) गन्धर्व ने उठ कर शीघ्र वीणा सम्भाला और स्नान करके युगल वस्त्र धारण किया॥३६-३७॥ तदनन्तर उस देवसमूह तथा सामने स्थित उस ब्राह्मण को प्रणाम किया। फिर तो देवता दुन्दुभि बजाने और पुष्पों की वर्षा करने लगे॥३८॥ उस गन्धर्व-दम्पति पर दृष्टिपात करके उन्होंने उत्तम आशीर्वाद दिये। गन्धर्व ने देवों के सामने क्षणमात्र नाच और गान किया। देवों के सामने उनके वरदान द्वारा उसने जीवन प्राप्त किया। उसके पश्चात् हर्षित होकर अपने पिता माता और पत्नी के साथ वह गन्धर्व-नगर में चला गया॥३९-४०॥ उसकी पत्नी सती मालावती ने करोड़ों रत्न तथा

उपबर्हणगन्धर्वो गन्धर्वनगरं पुनः । मालावती रत्नकोटिं धनानि विविधानि च ॥४१॥
प्रददौ ब्राह्मणेभ्यश्च भोजयामास तान्सती । वेदांश्च पाठयामास कारयामास मङ्गलम् ॥४२॥
महोत्सवं च विविधं हरेर्नामैकमङ्गलम् । जग्मुर्देवाश्च स्वस्थानं विप्ररूपी हरिः स्वयम् ॥४३॥
एतत्ते कथितं सर्वं स्तवराजं च शौनक । इदं स्तोत्रं पुण्यरूपं पूजाकाले तु यः पठेत् ॥४४॥
हरिभक्तिं हरेर्दास्यं लभते वैष्णवो जनः । वरार्थी यः पठेद्भक्त्या चाऽऽस्तिकः परमास्थया ॥४५॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां निश्चितं लभते फलम् । विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम् ॥४६॥
भार्यार्थी लभते भार्यां पुत्रार्थी लभते सुतम् । धर्मार्थी लभते धर्मं यशोऽर्थी लभते यशः ॥४७॥
भ्रष्टराज्यो लभेद्राज्यं प्रजाभ्रष्टः प्रजां लभेत् । रोगार्तो मुच्यते रोगाद्बद्धो मुच्येत बन्धनात् ॥४८॥
भयान्मुच्येत भीतस्तु धनं नष्टधनो लभेत् । दस्युग्रस्तो महारण्ये हिंस्रजन्तुसमन्वितः ॥४९॥
दावाग्निदग्धो मुच्येत निमग्नश्च जलार्णवे ॥५०॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे गन्धर्वजीवदाने महापुरुषस्तोत्रप्रणयनं
नामाष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

विविध प्रकार का धन ब्राह्मणों को अर्पित कर उन्हें भोजन कराया। उनसे वेदपाठ और अन्य मंगल कृत्य करवाये। ॥४१-४२॥ भाँति-भाँति के महोत्सव रचाये। उन सबमें एकमात्र हरिनाम कीर्तन रूप मंगल कृत्य की प्रधानता रही। अनन्तर देवगण और विप्ररूपी स्वयं भगवान् अपने-अपने स्थान को चले गये ॥४३॥ शौनक! स्तवराज के साथ यह सब प्रसंग मैंने तुम्हें बता दिया। पूजा के समय जो इस पवित्र स्तोत्र का पाठ करेगा, उस वैष्णव जन को हरि का दास्यभाव और हरि-भक्ति प्राप्त होगी। जो आस्तिक व्यक्ति वरदान की इच्छा से भक्ति समेत परम-आस्था से इस स्तोत्र को पढ़ेगा, उसे धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष का फल निश्चित रूप से प्राप्त होगा। उसी प्रकार विद्यार्थी को विद्या, धनार्थी को धन, भार्यार्थी को स्त्री, पुत्रार्थी को पुत्र, धर्मार्थी को धर्म तथा यश के इच्छुक को यश प्राप्त होगा ॥४४-४७॥ राज्यच्युत राजा को राज्य एवं प्रजाहीन को प्रजा प्राप्त होगी। रोगी को रोग से और बन्धन में बंधे हुए को बन्धन से मुक्ति मिलेगी ॥४८॥ भयभीत प्राणी भय से मुक्त होगा। नष्ट धन वाले को धन प्राप्त होगा। महान् जंगल में हिंसक जन्तुओं और लुटेरों से घिर जाने पर छुटकारा मिल जायगा। दावाग्नि से जलता हुआ और समुद्र में डूबता हुआ प्राणी भी इसके प्रभाव से बच जाएगा ॥४९-५०॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में महापुरुष-स्तोत्रप्रणयन नामक
अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥१८॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

सौतिरुवाच

मालावती धनं दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यः प्रहर्षिता । चकार विविधं वेशं स्वात्मनः स्वामिनः कृते ॥१॥
भर्तुश्चकार शुश्रूषां पूजां च समयोचिताम् । तेन सार्धं सुरसिका रेमे सा सुचिरं मुदा ॥२॥
महापुरुषस्तोत्रं च पूजां च कवचं मनुम् । विस्मृतं बोधयामास स्वयं रहसि सुव्रता ॥३॥
पुरा दत्तं वसिष्ठेन स्तोत्रपूजादिकं हरेः । गन्धर्वाय च मालत्यै मन्त्रमेकं च पुष्करे ॥४॥
विस्मृतं स्तोत्रकवचं वसिष्ठश्च कृपानिधिः । गन्धर्वराजं रहसि बोधयामास शूलिनः ॥५॥
एवं चकार राज्यं च कुबेरभवनोपमे । आश्रमे परमानन्दो गन्धर्वो बान्धवैः सह ॥६॥
यथातथागताभिश्च स्त्रीभिरन्याभिरेव च । आगत्य ताभिः स्वस्वामी संप्राप्तः परया मुदा ॥७॥

शौनक उवाच

किं स्तोत्रं कवचं विष्णोर्मन्त्रपूजाविधिः पुरा । दत्तो विशिष्टस्ताभ्यां च तं भवान्वक्तुमर्हति ॥८॥
द्वादशाक्षरमन्त्रं च शूलिनः कवचादिकम् । दत्तं गन्धर्वराजाय वसिष्ठेन च किं पुरा ॥९॥
तदपि ब्रूहि हे सौते श्रोतुं कौतूहलं मम । शंकरस्तोत्रकवचं मन्त्रं दुर्गतिनाशनम् ॥१०॥

अध्याय १९

कृष्णकवच, शिवकवच तथा शिवस्तवराज का वर्णन

सौति बोले—मालावती ने अत्यन्त हर्षित होकर ब्राह्मणों को धनदान करने के उपरान्त अपने स्वामी की सेवा के लिए नाना प्रकार से अपना श्रृंगार किया॥१॥ पति की शुश्रूषा तथा समयोचित पूजा करके उस रसवन्ती ने अत्यन्त हर्ष से पति के साथ चिरकाल तक रमण किया॥२॥ फिर उस सुव्रता ने एकान्त में पति को विस्मृत हुए महापुरुष-स्तोत्र, पूजा, कवच, और मन्त्र का बोध कराया॥३॥ पूर्वकाल में वशिष्ठ ने पुष्कर क्षेत्र में गन्धर्व तथा मालावती को भगवान् के स्तोत्र, पूजन आदि का तथा एक मंत्र का उपदेश प्रदान किया था॥४॥ पुनः कृपानिधान वशिष्ठ ने एकान्त स्थान में गन्धर्वराज को भगवान् शंकर का विस्मृत स्तोत्र और कवच का भी बोध कराया था॥५॥ इस प्रकार उस गन्धर्व ने कुबेर-भवन के समान अपने महल में परमहर्षित होकर बान्धवों समेत राज्यसुख का अनुभव किया॥६॥ उपबर्हण की अन्य स्त्रियाँ भी जैसे-तैसे वहाँ आकर परम प्रसन्नता के साथ अपने पति से मिलीं॥७॥

शौनक बोले—पूर्वकाल में वशिष्ठ ने उन दोनों को भगवान् विष्णु के किस पूजन-विधि का उपदेश किया था, वह हमें बताने की कृपा करें॥८॥ पूर्व समय में वशिष्ठ ने शंकर के जो द्वादशाक्षर मन्त्र और कवच आदि गन्धर्वराज को प्रदान किये थे, वह भी बताइए। उसे सुनने के लिए मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है। शंकर का कवच, स्तोत्र, एवं मन्त्र दुर्गति का नाश करता है॥९-१०॥

सौतिरुवाच

तुष्टाव येन स्तोत्रेण मालती परमेश्वरम् । तदेव स्तोत्रं दत्तं च मन्त्रं च कवचं शृणु ॥११॥
ॐ नमो भगवते रासमण्डलेशाय स्वाहा । इदं मन्त्रं कल्पतरुं प्रददौ षोडशाक्षरम् ॥१२॥
पुरा दत्तं कुमाराय ब्रह्मणा पुष्करे हरेः । पुरा दत्तं च कृष्णेन गोलोके शंकराय च ॥१३॥
ध्यानं च विष्णोर्वेदोक्तं शाश्वतं सर्वदुर्लभम् । मूलेन सर्वं देयं च नैवेद्यादिकमुत्तमम् ॥१४॥
अतीव गुप्तकवचं पितुर्वक्त्रान्मया श्रुतम् । पित्रे दत्तं पुरा विप्र गङ्गायां शूलिना ध्रुवम् ॥१५॥
शूलिने ब्रह्मणा दत्तं गोलोके रासमण्डले । धर्माय गोपीकान्तेन कृपया परमाद्भुतम् ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

राधाकान्त महाभाग कवचं यत्प्रकाशितम् । ब्रह्माण्डपावनं नाम कृपया कथय प्रभो ॥१७॥
मां महेशं च धर्मं च भक्तं च भक्तवत्सल । त्वत्प्रसादेन पुत्रेभ्यो दास्यामि भक्तिसंयुतः ॥१८॥

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु वक्ष्यामि ब्रह्मेश धर्मेदं कवचं परम् । अहं दास्यामि युष्मभ्यं गोपनीयं सुदुर्लभम् ॥१९॥
यस्मै कस्मै न दातव्यं प्राणतुल्यं ममैव हि । यत्तेजो मम देहेऽस्ति तत्तेजः कवचेऽपि च ॥२०॥

सौति बोले—जिस स्तोत्र के द्वारा मालती ने परमेश्वर श्रीकृष्ण को प्रसन्न किया था, वही स्तोत्र वसिष्ठ ने गन्धर्व-दम्पति को दिया था। उनके दिए हुए कवच और मंत्र को सुनो ॥११॥ 'ओं नमो भगवतेरासमण्डलेशाय स्वाहा' इसी षोडशाक्षर मन्त्र को, जो कल्पवृक्ष के समान है, उन्होंने प्रदान किया था ॥१२॥ यही मन्त्र पहले समय में पुष्कर क्षेत्र में ब्रह्मा ने कुमार को और गोलोक में भगवान् श्रीकृष्ण ने शंकर जी को प्रदान किया था ॥१३॥ यहाँ भगवान् विष्णु का ध्यान भी, जो वेदोक्त, शाश्वत और सबके लिए दुर्लभ है, बता रहा हूँ! पूर्वोक्त मूलमन्त्र से भगवान् विष्णु को नैवेद्य आदि सभी उत्तम पदार्थ अर्पित करना चाहिए ॥१४॥ विप्र। उनके अत्यन्त गुप्त कवच को मैंने पिता के मुख से सुना था, जिसे गंगा-तट पर शंकर जी ने मेरे पिता को प्रदान किया था और गोलोक के रासमंडल में गोपीकान्त श्रीकृष्ण ने कृपा करके शंकर, ब्रह्मा और धर्म को बताया था। उस परमाद्भुत (कवच) को कह रहा हूँ ॥१५-१६॥

ब्रह्मा बोले—हे राधाकान्त! हे महाभाग! हे प्रभो! आप ने जो ब्रह्माण्ड-पावन नामक कवच प्रकाशित किया है, उसे कृपया बतायें ॥१७॥ हे भक्तवत्सल! मैं, महेश तथा धर्म तीनों आपके भक्त हैं। आप की कृपा से हम इसे जानकर अपने पुत्रों को बतायेंगे ॥१८॥

श्रीकृष्ण बोले—हे ब्रह्मेश! हे धर्म! इस परमोत्तम, गोपनीय और अत्यन्त दुर्लभ कवच को मैं तुम्हें दे रहा हूँ। यह मेरे प्राणसमान है। अतः जिस-किसी को यह न दे देना। क्योंकि जो तेज मेरे शरीर में है वही तेज

कुरु सृष्टिमिमं धृत्वा धाता त्रिजगतां भव । संहर्ता भव हे शंभो मम तुल्यो भवे भव ॥२१॥
हे धर्म त्वमिदं धृत्वा भव साक्षी च कर्मणाम् । तपसां फलदातारो यूयं भवत मद्वरात् ॥२२॥
ब्रह्माण्डपावनस्यास्य कवचस्य हरिः स्वयम् । ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवोऽहं जगदीश्वरः ॥२३॥
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः । त्रिलक्षवारपठनात्सिद्धिदं कवचं विधे ॥२४॥
यो भवेत्सिद्धकवचो मम तुल्यो भवेच्च सः । तेजसा सिद्धियोगेन ज्ञानेन विक्रमेण च ॥२५॥
प्रणवो मे शिरः पातु नमो रासेश्वराय च । भालं पायान्नेत्रयुग्मं नमो राधेश्वराय च ॥२६॥
कृष्णः पायाच्छ्रोत्रयुग्मं हे हरे घ्राणमेव च । जिह्विकां वह्निजाया तु कृष्णायेति च सर्वतः ॥२७॥
श्रीकृष्णाय स्वाहेति च कण्ठं पातु षडक्षरः । ह्रीं कृष्णाय नमो वक्त्रं क्लींपूर्वश्च भुजद्वयम् ॥२८॥
नमो गोपाङ्गनेशाय स्कन्धावष्टाक्षरोऽवतु । दन्तपङ्क्तिमोष्ठयुग्मं नमो गोपीश्वराय च ॥२९॥
ओं नमो भगवते रासमण्डलेशाय स्वाहा । स्वयं वक्षःस्थलं पातु मन्त्रोऽयं षोडशाक्षरः ॥३०॥
ऐं कृष्णाय स्वाहेति च कर्णयुग्मं सदाऽवतु । ओं विष्णवे स्वाहेति च कपोलं सर्वतोऽवतु ॥३१॥
ओं हरये नम इति पृष्ठं पादं सदाऽवतु । ओं गोवर्धनधारिणे स्वाहा सर्वशरीरकम् ॥३२॥
प्राच्यां मां पातु श्रीकृष्ण आग्नेय्यां पातु माधवः । दक्षिणे पातु गोपीशो नैर्ऋत्यां नन्दनन्दनः ॥३३॥

इस कवच में भी है ॥१९-२०॥ ब्रह्मन्! तुम इसे धारण करके सृष्टि करो और तीनों लोकों के विधाता के पद पर प्रतिष्ठित रहो। शंभो! तुम (इस कवच को ग्रहण करके त्रिलोकी का) संहर्त्ता बनकर इस संसार में मेरे समान (शक्तिशाली) हो जाओ ॥२१॥ धर्म! इसी प्रकार तुम भी इसे धारण करके कर्मों के साक्षी बनो और मेरे वरदान द्वारा सभी को उनके तप का फल प्रदान करो ॥२२॥ इस ब्रह्माण्ड पावन नामक कवच के स्वयं विष्णु ऋषि हैं, गायत्री छन्द है और जगदीश्वर (भगवान् श्रीकृष्ण) देव हैं, धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के लिए इसका विनियोग किया जाता है। विधे! तीन लक्ष बार पाठ करने से इस कवच की सिद्धि होती है ॥२३-२४॥ जो इस कवच को सिद्ध कर लेता है, वह तेज, सिद्धियोग, ज्ञान और पराक्रम में मेरे समान हो जाता है ॥२५॥ प्रणव (ओंकार) मेरे शिर की रक्षा करे, रासेश्वराय नमः—यह मंत्र मेरे ललाट की रक्षा करे। राधेश्वराय नमः—यह मंत्र मेरे दोनों नेत्रों की रक्षा करें। भगवान् श्रीकृष्ण दोनों (कानों) की रक्षा करें। 'हे हरे!' यह मेरी (नाक) की रक्षा करे। अग्नि की पत्नी (स्वाहा) जिह्वा की रक्षा करे और कृष्णाय स्वाहा—यह मंत्र चारों ओर से रक्षा करे। ॥२६-२७॥ 'श्रीकृष्णाय स्वाहा'—यह षडक्षर मंत्र मेरे कण्ठ की रक्षा करे। ह्रीं कृष्णाय नमः—यह मंत्र मुख की तथा क्लीं कृष्णाय नमः—यह मंत्र दोनों भुजाओं की रक्षा करे। गोपांगनेशाय नमः (गोपांगना के अधीश्वर को नमस्कार है) यह अष्टाक्षर मंत्र दोनों कंधों की रक्षा करे। गोपीश्वराय नमः —यह मंत्र दाँतों की पंक्तियों और दोनों ओठों की रक्षा करे ॥२८-२९॥ 'ओं नमो भगवते रासमण्डलेशाय स्वाहा' यह सोलह अक्षरों का मंत्र स्वयं वक्षः-स्थल की रक्षा करे ॥३०॥ 'ऐं कृष्णाय स्वाहा' यह दोनों कर्णों की रक्षा करे। 'ओं विष्णवे स्वाहा' यह चारों ओर से कपोल की रक्षा करे ॥३१॥ 'ओं हरये नमः' यह पीठ और चरण की तथा 'गोवर्द्धनधारिणे स्वाहा'—यह समस्त शरीर की रक्षा करे ॥३२॥ पूर्वदिशा में श्रीकृष्ण, अग्निकोण में माधव, दक्षिण दिशा में गोपीश तथा नैर्ऋत्य में नन्दनन्दन रक्षा करें ॥३३॥ पश्चिम दिशा में गोविन्द, वायव्यकोण में राधिकेश्वर, उत्तर में रासेश और ईशान

वारुण्यां पातु गोविन्दो वायव्यां राधिकेश्वरः । उत्तरे पातु रासेश ऐशान्यामच्युतः स्वयम् ॥३४॥
सततं सर्वतः पातु परो नारायणः स्वयम् । इति ते कथितं ब्रह्मन्कवचं परमाद्भुतम् ॥३५॥
मम जीवनतुल्यं च युष्मभ्यं दत्तमेव च । अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ॥
कलां नार्हन्ति तान्येव कवचस्यैव धारणात् ॥३६॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालंकारचन्दनैः । स्नात्वा तं च नमस्कृत्य कवचं धारयेत्सुधीः ॥३७॥
कवचस्य प्रसादेन जीवन्मुक्तो भवेन्नरः । यदि स्यात्सिद्धकवचो विष्णुरेव भवेद्द्विज[1] ॥३८॥

सौतिरुवाच

शिवस्य कवचं स्तोत्रं श्रूयतामिति शौनक । वसिष्ठेन च यद्दत्तं गन्धर्वाय च यो मनुः ॥३९॥
ओं नमो भगवते शिवाय स्वाहेति च मनुः । दत्तो वसिष्ठेन पुरा पुष्करे कृपया विभो ॥४०॥
अयं मन्त्रो रावणाय प्रदत्तो ब्रह्मणा पुरा । स्वयं शंभुश्च बाणाय तथा दुर्वाससे पुरा ॥४१॥
मूलेन सर्वं देयं च नैवेद्यादिकमुत्तमम् । ध्यायेन्नित्यादिकं[2] ध्यानं वेदोक्तं सर्वसंमतम् ॥४२॥
ओं नमो महादेवाय।

बाणासुर उवाच

महेश्वर महाभाग कवचं यत्प्रकाशितम् । संसारपावनं नाम कृपया कथय प्रभो ॥४३॥

में स्वयं अच्युत रक्षा करें॥३४॥ स्वयं नारायण सर्वदा सब ओर से रक्षा करें। हे ब्रह्मन्! यह जो परमाद्भुत कवच मैंने तुम्हें दिया है, यह मेरे जीवन के तुल्य है। इस कवच के धारण करने पर इसके (पुण्य के) एक अंश की भी समानता सहस्रों अश्वमेध और सैकड़ों वाजपेय यज्ञ नहीं कर सकते हैं॥३५-३६॥ विद्वान् पुरुष स्नानोपरान्त अनेक भाँति के वस्त्र, अलंकार और चन्दन से गुरु की सविधि अर्चना और वंदना करके यह कवच धारण करे॥३७॥ द्विज! इस कवच के प्रसाद से मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है और यदि यह कवच सिद्ध हो गया तो वह विष्णु के समान हो जाता है॥३८॥

सौति बोले––शौनक! अब शिव का कवच और स्तोत्र सुनो, जिसे वसिष्ठजी ने गन्धर्व को दिया था। विभो! प्राचीन समय में पुष्करक्षेत्र में गुरु वशिष्ठ ने कृपा करके 'ओं नमो भगवते शिवाय स्वाहा' यह मंत्र गन्धर्व को प्रदान किया था॥३९-४०॥ यही मंत्र प्राचीन समय में ब्रह्मा ने रावण को और शम्भु ने बाणासुर एवं दुर्वासा को दिया था॥४१॥ इस मूल मंत्र से उन्हें नैवेद्य आदि सभी उत्तम वस्तुएँ अर्पित करनी चाहिए। इस मंत्र का वेदोक्त ध्यान 'ध्यायेन्नित्यं महेशं' इत्यादि श्लोक के अनुसार है, जो सर्वसम्मत है॥४२॥ ॐ नमो महादेवाय।

बाणासुर बोले––महेश्वर, महाभाग! प्रभो! आपने संसार-पावन नामक जो कवच प्रकाशित किया है, उसे कहने की कृपा करें॥४३॥

---

१ क. ० ज। इति महापुरुषब्रह्माण्डकथनं नाम कवचं संपूर्णम्। शि०।

२ क. ०त्यात्मकं।

महेश्वर उवाच

भृणु वक्ष्यामि हे वत्स कवचं परमाद्भुतम् । अहं तुभ्यं प्रदास्यामि गोपनीयं सुदुर्लभम् ॥४४॥
पुरा दुर्वाससे दत्तं त्रैलोक्यविजयाय च । ममैवेदं च कवचं भक्त्या यो धारयेत्सुधीः ॥४५॥
जेतुं शक्नोति त्रैलोक्यं भगवन्नवलीलया । संसारपावनस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः ॥४६॥
ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवोऽहं च महेश्वरः । धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः ॥४७॥
पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धिदं कवचं भवेत् । यो भवेत्सिद्धकवचो मम तुल्यो भवेद्भुवि
तेजसा सिद्धियोगेन तपसा विक्रमेण च ॥४८॥
शंभुर्मे मस्तकं पातु मुखं पातु महेश्वरः । दन्तपङ्क्तिं नीलकण्ठोऽप्यधरोष्ठं हरः स्वयम् ॥४९॥
कण्ठं पातु चन्द्रचूडः स्कन्धौ वृषभवाहनः । वक्षःस्थलं नीलकण्ठः पातु पृष्ठं दिगम्बरः ॥५०॥
सर्वाङ्गं पातु विश्वेशः सर्वदिक्षु च सर्वदा । स्वप्ने जागरणे चैव स्थाणुर्मे पातु संततम् ॥५१॥
इति ते कथितं बाण कवचं परमाद्भुतम् । यस्मै कस्मै न दातव्यं गोपनीयं प्रयत्नतः ॥५२॥
यत्फलं सर्वतीर्थानां स्नानेन लभते नरः । तत्फलं लभते नूनं कवचस्यैव धारणात् ॥५३॥
इदं कवचमज्ञात्वा भजेन्मां यः सुमन्दधीः । शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥५४॥

सौतिरुवाच

इदं च कवचं प्रोक्तं स्तोत्रं च शृणु शौनक । मन्त्रराजः कल्पतरुर्वसिष्ठो दत्तवान्पुरा ॥५५॥

महेश्वर बोले—वत्स ! उस परम अद्भुत कवच का मैं वर्णन कर रहा हूँ। वह गोपनीय एवं अत्यन्त दुर्लभ है, फिर भी तुम्हें प्रदान करूँगा ॥४४॥ पूर्वकाल में मैंने त्रैलोक्य-विजय करने के लिए दुर्वासा को यह कवच प्रदान किया था। अतः जो विद्वान् इस मेरे कवच को भक्तिपूर्वक धारण करेगा, वह भगवान् की भाँति लीला-पूर्वक तीनों लोकों को जीतने में समर्थ होगा ॥४५-४६॥ संसार-पावन नामक इस कवच का प्रजापति ऋषि, गायत्री छन्द और मैं महेश्वर देवता हूँ। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के लिए इसका विनियोग है ॥४७॥ पाँच लाख बार पाठ करने से यह कवच सिद्ध हो जाता है और जो इस कवच को सिद्ध कर लेता है, वह इस भूतल पर तेज, सिद्धियोग, तप और विक्रम में मेरे तुल्य हो जाता है ॥४८॥

शम्भु मेरे मस्तक की और महेश्वर मुख की रक्षा करें। नीलकण्ठ दाँतों की पंक्तियों की और स्वयं हर अधरोष्ठ की रक्षा करें ॥४९॥ चन्द्रचूड कण्ठ की रक्षा करें। वृषभवाहन दोनों स्कन्धों की, नीलकण्ठ वक्षःस्थल की और दिगम्बर पीठ की रक्षा करें ॥५०॥ विश्वेश सदा सब दिशाओं में सर्वांग की रक्षा करें। सोते-जागते सब समय स्थाणु निरन्तर मेरी रक्षा करें ॥५१॥ बाण ! यह परम अद्भुत कवच मैंने तुम्हें बताया है यह जिस किसी को न देना। यह अत्यन्त गोपनीय है ॥५२॥ समस्त तीर्थों में स्नान करने से जो फल मनुष्य को प्राप्त होता है, वह इस कवच के धारण करने से निश्चय ही प्राप्त होता है ॥५३॥ जो मूढ़मति प्राणी इस कवच को जाने बिना मेरी उपासना करता है, उसका मन्त्र सौ लाख बार जपने पर भी सिद्धिदायक नहीं होता है ॥५४॥

सौति बोले—शौनक ! यह कवच तो मैंने बता दिया, अब स्तोत्र और उस कल्पवृक्ष स्वरूप मन्त्रराज को भी सुनो, जिसे गुरु वसिष्ठ ने पूर्वकाल में दिया था ॥५५॥ ओं नमः शिवाय।

---

१ क. ०क । इति ब्रह्मवैवर्ते शंकरकवचम् । सौ० ।

ओं नमः शिवाय । बाणासुर उवाच—

वन्दे सुराणां सारं च सुरेशं नीललोहितम् । योगीश्वरं योगबीजं योगिनां च गुरोर्गुरुम् ॥५६॥
ज्ञानानन्दं ज्ञानरूपं ज्ञानबीजं सनातनम् । तपसां फलदातारं दातारं सर्वसंपदाम् ॥५७॥
तपोरूपं तपोबीजं तपोधनधनं वरम् । वरं वरेण्यं वरदमीड्यं सिद्धगणैर्वरैः ॥५८॥
कारणं भुक्तिमुक्तीनां नरकार्णवतारणम् । आशुतोषं प्रसन्नास्यं करुणामयसागरम् ॥५९॥
हिमचन्दनकुन्देन्दुकुमुदाम्भोजसंनिभम् । ब्रह्मज्योतिःस्वरूपं च भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥६०॥
विषयाणां विभेदेन बिभ्रतं बहुरूपकम् । जलरूपमग्निरूपमाकाशरूपमीश्वरम्॥६१॥
वायुरूपं चन्द्ररूपं[1] सूर्यरूपं महत्प्रभुम् । आत्मनः स्वपदं दातुं समर्थमवलीलया ॥६२॥
भक्तजीवनमीशं च भक्तानुग्रहकारकम्[2] । वेदा न शक्ता यं स्तोतुं किमहं स्तौमि तं प्रभुम् ॥६३॥
अपरिच्छिन्नमीशानमहो वाङ्मनसोः परम् । व्याघ्रचर्माम्बरधरं वृषभस्थं दिगम्बरम्
त्रिशूलपट्टिशधरं सस्मितं चन्द्रशेखरम् ॥६४॥
इत्युक्त्वा स्तवराजेन नित्यं बाणः सुसंयतः । प्राणमच्छंकरं भक्त्या दुर्वासाश्च मुनीश्वरः ॥६५॥
इदं दत्तं वसिष्ठेन गन्धर्वाय पुरा मुने । कथितं च महास्तोत्रं शूलिनः परमाद्भुतम् ॥६६॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं[3] पठेद्भक्त्या च यो नरः । स्नानस्य सर्वतीर्थानां फलमाप्नोति निश्चितम् ॥६७॥

बाणासुर बोले—देवश्रेष्ठ और देवाधीश्वर नीललोहित (शिव) की मैं वन्दना करता हूँ, जो योगीश्वर, योगियों के बीज (कारक) और योगियों के गुरु के गुरु हैं। वही ज्ञानानन्द, ज्ञानरूप, ज्ञान-बीज, सनातन, तप का फल और समस्त सम्पत्तियों के देने वाले हैं॥५६-५७॥ वे तपः स्वरूप, तपस्या के बीज, तपोधनों के उत्तम धन, वर, वरणीय, वरदाता और सिद्धगणों के द्वारा स्तुति करने योग्य, भुक्तिमुक्ति के कारण, नरक-सागर से तारने वाले, शीघ्र प्रसन्न होने वाले प्रसन्नमुख और करुणासागर हैं ॥५८-५९॥ वे बर्फ, चन्दन, कुन्द-पुष्प, चन्द्रमा, कुमुद तथा कमल के समान शुभ्र हैं। वे ब्रह्मज्योतिःस्वरूप और भक्तों के ऊपर अनुग्रह करने के लिए शरीर धारण करने वाले हैं॥६०॥ वे विषयों के भेद से अनेक रूप धारण करते हैं। जल, अग्नि, आकाश, वायु, चन्द्र और सूर्य उनके रूप हैं। वे ईश्वर तथा महान् प्रभु हैं और लीलापूर्वक अपना पद प्रदान करने में समर्थ हैं॥६१-६२॥ वे भक्तों के जीवन, ईश तथा भक्तों पर कृपा करने के लिए कातर हो उठते हैं। इस प्रकार जिन प्रभु की स्तुति वेद नहीं कर सकते हैं, जो अपरिच्छिन्न (सीमारहित), ईशान तथा मनवाणी से परे हैं, उनकी स्तुति मैं कैसे कर सकता हूँ? ॥६३॥ वे बाघम्बर धारण करने वाले, बैल पर चढ़ने वाले, दिगम्बर, त्रिशूल और पट्टिश धारण करने वाले, मन्द मुसकान करने वाले तथा मस्तक पर चन्द्रमा धारण करने वाले हैं (ऐसे शिव की मैं वंदना करता हूँ।) ॥६४॥ इस प्रकार बाणासुर नित्य सुसंयत हो कर स्तवराज के द्वारा शंकर की स्तुति करके उन्हें प्रणाम करता था। और मुनीश्वर दुर्वासा भी भक्तिपूर्वक ऐसा ही करते थे॥६५॥ मुने! पहले समय में वसिष्ठ जी ने शिव जी का यह परमाद्भुत महास्तोत्र गन्धर्व को प्रदान किया था॥६६॥ जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस महापुण्य स्तोत्र का पाठ करता है, वह समस्त तीर्थों का स्नान फल निश्चित रूप से प्राप्त करता है॥६७॥ जो संयमपूर्वक

---

१ क. ०पं महर्षीणां म०। २ क. ०म्। देवा। ३ क. ० ण्यं प्रातरुत्थाय पठेत्। स्ना०।

अपुत्रो लभते पुत्रं वर्षमेकं शृणोति यः। संयतश्च हविष्याशी प्रणम्य शंकरं गुरुम् ॥६८॥
गलत्कुष्ठी महाशूली वर्षमेकं शृणोति यः। अवश्यं मुच्यते रोगाद्व्यासवाक्यमिति श्रुतम् ॥६९॥
कारागारेऽपि बद्धो यो नैव प्राप्नोति निर्वृतिम्। स्तोत्रं श्रुत्वा मासमेकं मुच्यते बन्धनाद्ध्रुवम् ॥७०॥
भ्रष्टराज्यो लभेद्राज्यं भक्त्या मासं शृणोति यः। मासं श्रुत्वा संयतश्च लभेद्भ्रष्टधनो धनम् ॥७१॥
यक्ष्मग्रस्तो वर्षमेकमास्तिको यः शृणोति चेत्। निश्चितं मुच्यते रोगाच्छंकरस्य प्रसादतः ॥७२॥
यः शृणोति सदा भक्त्या स्तवराजमिमं द्विज। तस्यासाध्यं त्रिभुवने नास्ति किंचिच्च शौनक ॥७३॥
कदाचिद्बन्धुविच्छेदो न भवेत्तस्य भारते। अचलं परमैश्वर्यं लभते नात्र संशयः ॥७४॥
सुसंयतोऽतिभक्त्या च मासमेकं शृणोति यः। अभार्यो लभते भार्यां सुविनीतां सतीं वराम् ॥७५॥
महामूर्खश्च दुर्मेधा मासमेकं शृणोति यः। बुद्धिं विद्यां च लभते गुरूपदेशमात्रतः ॥७६॥
कर्मदुःखी दरिद्रश्च मासं भक्त्या शृणोति यः। ध्रुवं वित्तं भवेत्तस्य शंकरस्य प्रसादतः ॥७७॥
इह लोके सुखं भुक्त्वा कृत्वा कीर्तिं सुदुर्लभाम्। नानाप्रकारधर्मं च यात्यन्ते शंकरालयम् ॥७८॥
पार्षदप्रवरो भूत्वा सेवते तत्र शंकरम्। यः शृणोति त्रिसंध्यं च नित्यं स्तोत्रमनुत्तमम् ॥७९॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे
विष्णुशंकरस्तोत्रकथनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

हविष्य भोजन करते हुए एक वर्ष तक शंकर गुरु को प्रणाम कर के इस स्तोत्र को सुनता है, वह पुत्रहीन हो तो अवश्य ही पुत्र प्राप्त कर लेता है। जिसको गलित कुष्ठ हो या उदर में बड़ा भारी शूल उठता हो, वह यदि एक वर्ष तक इस स्तोत्र को सुने तो अवश्य ही उस रोग से मुक्त हो जाता है। यह बात मैंने व्यासजी से सुनी है। ॥६८-६९॥ जो बन्धनों में आबद्ध होकर जेल में पड़ जाता है और किसी भाँति वहाँ से छुटकारा नहीं पाता वह इस स्तोत्र को एक मास तक सुनने पर निश्चित ही बन्धन-मुक्त हो जाता है ॥७०॥ इसी प्रकार भक्तिपूर्वक एक मास तक श्रवण करने से राज्यच्युत को राज्य और नष्ट धन वाले को धन प्राप्त होता है ॥७१॥ जो आस्तिक यक्ष्मा का रोगी होने पर एक वर्ष तक इसका श्रवण करता है, वह शंकर जी के अनुग्रह से रोग-मुक्त हो जाता है ॥७२॥ द्विज शौनक ! जो भक्तिपूर्वक इस स्तवराज का श्रवण करता है, उसके लिए तीनों लोकों में कुछ भी असाध्य नहीं है ॥७३॥ भारत में कभी भी उसे बन्धु-वियोग नहीं होता है और वह अचल महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति करता है, इसमें संशय नहीं ॥७४॥ संयम और भक्तिपूर्वक एक मास तक इसके सुनने पर स्त्रीहीन को विनम्र एवं सती-साध्वी स्त्री प्राप्त होती है ॥७५॥ महामूर्ख तथा अत्यन्त खोटी बुद्धि का मनुष्य भी यदि एक मास तक इस स्तवराज का श्रवण करता है तो वह गुरु के उपदेश मात्र से बुद्धि और विद्या प्राप्त करता है ॥७६॥ कर्मवश दुःखी और दरिद्र मनुष्य भी भक्तिपूर्वक एक मास तक इसके श्रवण करने पर शंकर जी की कृपा से निःसंदेह धन को प्राप्त करता है ॥७७॥ जो प्रति दिन तीनों संध्याओं के समय इस उत्तम स्तोत्र को सुनता है, वह इस लोक में सुखानुभव और अत्यन्त दुर्लभ कीर्ति तथा अनेक प्रकार के धर्मों को सम्पन्न कर के अन्त में भगवान् शंकर के लोक को जाता है और वहाँ श्रेष्ठ पार्षद बन कर शंकर जी की सेवा करता है ॥७८-७९॥

श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराण के ब्रह्मखण्ड में विष्णु-शंकर-स्तोत्र-कथन नामक
उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१९॥

अथ विंशोऽध्यायः

सौतिरुवाच

मुदा मालावतीसार्धं गन्धर्वश्चोपबर्हणः । रेमे कालावशेषं च ताभिश्च निर्जने वने ॥१॥
गन्धर्वराजो मुमुदे पुत्रदारादिभिः सह । नानाविधं क्रतुवरं महत्पुण्यं चकार ह ॥२॥
राजत्वं बुभुजे राजा कुबेरभवनोपमे । रेमे सुशीलया सार्धं स्थिरयौवनयुक्तया ॥३॥
गन्धर्वराजः काले च गङ्गातीरे मनोहरे । पत्न्या सार्धमसूंस्त्यक्त्वा वैकुण्ठं च ययौ मुदा ॥४॥
शैवः शिवप्रसादेन पुत्रस्य विष्णुसेवया । बभूव दासो वैकुण्ठे विष्णोः श्यामचतुर्भुजः ॥५॥
कृत्वा पित्रोश्च सत्कारं गन्धर्वश्चोपबर्हणः । ब्राह्मणेभ्यो ददौ विप्र धनानि विविधानि च ॥६॥
काले स्वयं ब्रह्मशापात्प्राणांस्त्यक्त्वा विचक्षणः । स जज्ञे वृषलीगर्भे ब्रह्मबीजेन शौनक ॥७॥
मालावती वह्निकुण्डे पुष्करे भारते भुवि । कृत्वा तु वाञ्छितं कामं प्राणांस्तत्याज सा सती ॥८॥
सृञ्जयस्य तु पत्न्यां च मनुवंशोद्भवस्य च । जज्ञे नृपस्य साध्वी सा पुण्या जातिस्मरा वरा ॥९॥
उपबर्हणगन्धर्वः पतिर्मे भवितेति च । इतिकामा कामुकी सा सुन्दरी सुन्दरीवरा ॥१०॥

अध्याय २०

गोपपत्नी कलावती से उपबर्हण का जन्म

सौति बोले—उपबर्हण नामक गन्धर्व ने निर्जन वन में बड़ी प्रसन्नतापूर्वक मालावती तथा अन्य पत्नियों के साथ अपनी आयु के शेष काल तक रमण किया ॥१॥ (उनके पिता) गन्धर्वराज भी पुत्रों और स्त्रियों के साथ आनन्द से रहने लगे। उन्होंने बड़े-बड़े पुण्य कर्म तथा नाना प्रकार के श्रेष्ठ यज्ञ किए ॥२॥ कुबेर-भवन के समान अपने महल में उन्होंने स्थिर यौवन वाली सुशीला पत्नी के साथ रमण करते हुए राजत्व का उपभोग किया ॥३॥ अन्त में गंगा जी के मनोहर तट पर पत्नी के साथ प्राण परित्याग करके वे वैकुंठधाम को चले गए ॥४॥ वे शैव थे, इसलिए उन पर शिवजी की कृपा हुई तथा उनके पुत्र ने विष्णु की सेवा की थी, इसलिए भगवान् विष्णु की भी उन पर कृपादृष्टि हुई। इससे वे वैकुंठ में विष्णु के श्याम-चतुर्भुजरूपधारी पार्षद हुए ॥५॥ विप्र ! अनन्तर उपबर्हण गन्धर्व ने अपने पिता और माता का संस्कार सम्पन्न कर ब्राह्मणों को अनेक प्रकार के धन अर्पित किए ॥६॥ शौनक ! समय आने पर उस बुद्धिमान् गन्धर्व ने ब्रह्मा के शाप द्वारा स्वयं प्राण परित्याग कर ब्राह्मण के वीर्य और शूद्रा के गर्भ से जन्म धारण किया ॥७॥ अनन्तर उस सती मालावती ने भारत के पुष्कर क्षेत्र में जाकर अग्नि-कुण्ड में अभीष्ट कर्मों को सम्पन्न कर के प्राणों का परित्याग कर दिया ॥८॥ पश्चात् मनुवंश में उत्पन्न राजा संजय की पत्नी में उस पवित्र एवं श्रेष्ठ पतिव्रता ने पुनः जन्म ग्रहण किया। वहाँ उसे पूर्व जन्म का स्मरण भी बना रहा ॥९॥ इसीलिए उस कामुकी एवं सुन्दरी की यही इच्छा रही कि—'उपबर्हण गन्धर्व ही मेरे पति हों।' ॥१०॥

शौनक उवाच

ब्रह्मवीर्याच्छूद्रपत्न्यां गन्धर्वश्चोपबर्हणः । जातः केन प्रकारेण तद्भवान्वक्तुमर्हति ।।।।११।।

सौतिरुवाच

कान्यकुब्जे च देशे च द्रुमिलो नाम राजकः । कलावती तस्य पत्नी वन्ध्या चापि पतिव्रता ।।१२।।
स्वामिदोषेण सा वन्ध्या काले च भर्तुराज्ञया । उपतस्थे वने घोरे[1] नारदं काश्यपं मुनिम् ।।१३।।
ध्यायमानं च श्रीकृष्णं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा । तस्थौ सुवेशं कृत्वा सा ध्यानान्तं च मुनेः पुरः ।।१४।।
ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रभातुल्येन तेजसा । तपन्तं दूरतोऽप्येवं समीपं गन्तुमक्षमा ।।१५।।
ध्यानान्ते च मुनिश्रेष्ठः परं कृष्णपरायणः । ददर्श पुरतो दूरे सुन्दरीं स्थिरयौवनाम् ।।१६।।
चारुचम्पकवर्णाभां शरत्पङ्कजलोचनाम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यां रत्नभूषणभूषिताम् ।।१७।।
बृहन्नितम्बभारार्तां पीनश्रोणिपयोधराम् । शोभितां पीतवस्त्रेण सस्मितां रक्तलोचनाम् ।।१८।।
मोहितां मुनिरूपेण कामबाणप्रपीडिताम् । दर्शयन्तीं स्तनश्रोणिं मैथुनासक्तचेतसा ।।१९।।
सिन्दूरबिन्दुभूषाढ्यां सुचारुकज्जलोज्ज्वलाम्[2] । पादालक्तकशोभाढ्यां रूपेणैव यथोर्वशीम् ।।२०।।
मुनिः पप्रच्छ दृष्ट्वा तां का त्वं कामिनि निर्जने । कस्य पत्नी कथं वाऽत्र सत्यं ब्रूहि च पुंश्चलि ।।२१।।

शौनक बोले—उपबर्हण गन्धर्व ब्राह्मण-वीर्य से शूद्र की पत्नी में किस प्रकार उत्पन्न हुए, यह मुझे बताने की कृपा करें ।।११।।

सौति बोले—कान्यकुब्जप्रदेश में एक द्रुमिल नामक राजा था। उसकी पत्नी कलावती पतिव्रता एवं बन्ध्या थी ।।१२।। स्वामी के दोष से बन्ध्या होने के कारण वह एक बार समय पर (ऋतुस्नानोपरान्त) पति की आज्ञा से कश्यप-पुत्र नारद मुनि के पास भयानक वन में उपस्थित हुई ।।१३।। ब्रह्मतेज से देदीप्यमान वे मुनि भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान कर रहे थे । उन्हीं के सामने वह अपना सुन्दर वेष बना कर खड़ी हो गयी ।।१४।। ग्रीष्मकाल के मध्याह्न-सूर्य की प्रभा के समान तेज से तपते हुए मुनि के समीप वह न जा सकी (दूर ही खड़ी रही) ।।१५।। फिर ध्यान करने के उपरान्त कृष्णपरायण मुनि ने उस स्थिरयौवन वाली सुन्दरी को दूर ही से देखा। चम्पा के समान उसका सुन्दर वर्ण था। शरत्कालीन कमल के समान नेत्र थे। शरत्पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति मुख-मंडल एवं रत्न के आभूषणों से भूषित वह थी। विशाल नितम्बों के भार से वह पीड़ित हो रही थी। उसके जघन भाग तथा कुच मोटे-मोटे थे। उसकी आँखें लाल लाल थीं। वह पीतवस्त्र से शोभित हो मुसकरा रही थी। वह मुनि के रूप पर लट्टू तथा कामबाण से पीड़ित थी। अतएव मैथुन के प्रति आसक्त चित्त से वह अपने स्तनों एवं श्रोणीभाग को दिखा रही थी ।।१६-१९।। सिन्दूर-बिन्दु, आभूषण तथा सुन्दर काजल से वह सुशोभित थी। उसका वर्ण उज्ज्वल था। उसके पैरों में आलता लगा हुआ था। वह सौन्दर्य में उर्वशी जैसी थी। निर्जन वन में उसे देख कर मुनि ने पूछा—'कामिनी ! तुम कौन हो ? किसकी पत्नी हो ? यहाँ क्यों आयी हो ? पुंश्चली ! सत्य

---

१ क. ०रे वरदं कस्य ०। २ क. कज्जलोचनाम्। पा०।

मुनेश्च वचनं श्रुत्वा कम्पिता च कलावती । उवाच विनयेनैव कृत्वा च श्रीहरिं हृदि ॥२२॥

कलावत्युवाच

गोपिकाऽहं द्विजश्रेष्ठ द्रुमिलस्य च कामिनी । पुत्रार्थिनी चाऽऽगताऽहं त्वन्मूलं भर्तुराज्ञया ॥२३॥
वीर्याधानं कुरु मयि स्त्री नोपेक्ष्या ह्युपस्थिता । तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा ॥२४॥
वृषलीवचनं श्रुत्वा चुकोप मुनिसत्तमः । उवाच नित्यं सत्यं च कोपप्रस्फुरिताधरः ॥२५॥

काश्यप उवाच

यः स्वलक्ष्मीं च भोगार्हां पराय दातुमिच्छति । तं सा त्यजति मूढं च वेदवाद इति ध्रुवम् ॥२६॥
न त्वं द्रुमिलभोगार्हा पुनरेव भविष्यसि । विरक्तेन स्वयं त्यक्ता न गृह्णाति च त्वां पुनः ॥२७॥
यः शूद्रपत्नीं गृह्णाति ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः । स चाण्डालो भवेत्सत्यं न कर्मार्हो द्विजातिषु ॥२८॥
पितृश्राद्धे च यज्ञे च शिलास्पर्शे सुरार्चने । नाधिकारश्च तस्यैवमित्याह कमलोद्भवः ॥२९॥
कुम्भीपाकं स्वयं याति पातयित्वा च पूरुषान् । मातामहान्स्वात्मनश्च दश पूर्वान्दशापरान् ॥३०॥
तत्तर्पणं मूत्रमेव पिण्डः सद्यः पुरीषकम् । शालग्रामस्य तत्स्पर्शे चोपवासस्त्रिरात्रकम् ॥३१॥
तदिष्टदेवो गृह्णाति न नैवेद्यं न तज्जलम् । संन्यासिनां ब्राह्मणानां तदन्नं च पुरीषवत् ॥३२॥

बताओ'। मुनि का वचन सुनकर कलावती काँप उठी। उसने हृदय में श्रीहरि का ध्यान करके विनयपूर्वक कहा ॥२०-२२॥

कलावती बोली—हे द्विजश्रेष्ठ ! मैं जाति की गोपिका और राजा द्रुमिल की पत्नी हूँ। पति की आज्ञा से पुत्र के लिए आपके पास आयी हूँ ॥२३॥ इसलिए आप मुझमें वीर्याधान करें। पास आयी हुई स्त्री की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए और सर्वभक्षी अग्नि की भाँति तेजस्वी पुरुष इसके लिए दोषभागी भी नहीं होते हैं ॥२४॥ उस शूद्रा की बातें सुन कर मुनिश्रेष्ठ अत्यन्त कुपित हो गए और कोप से उनका ओठ फड़कने लगा। फिर वे नित्य सत्य वचन कहने लगे ॥२५॥

काश्यप बोले—जो भोग के उपयुक्त अपनी (गृह) लक्ष्मी दूसरे को देना चाहता है, वह स्त्री उस मूढ़ का त्याग कर देती है, यह वेद का निश्चित कहना है ॥२६॥ इससे तू भी पुनः द्रुमिल के भोग-योग्य न रह जायगी। जब विरक्त होकर उसने स्वयं तुम्हें त्याग दिया है तो पुनः तुम्हें वह कैसे ग्रहण कर सकता है ॥२७॥ जो ज्ञान में दुर्बल ब्राह्मण शूद्र की पत्नी को ग्रहण करता है, वह चाण्डाल हो जाता है और द्विजातियों में किसी कर्म के योग्य नहीं रहता है, यह सत्य है ॥२८॥ पितरों के श्राद्ध, यज्ञ, शिलास्पर्श (शालग्राम-पूजन) और देव-पूजन में उसका अधिकार नहीं रह जाता है, ऐसा ब्रह्मा ने कहा है ॥२९॥ फिर (अन्त में) वह स्वयं तो कुम्भीपाक नामक नरक में जाता ही है, साथ ही मातामहपक्ष के पुरखों को और अपने कुल के दस पहले की और दस बाद की पीढ़ियों को भी (नरक में) गिरा देता है ॥३०॥ उसका किया हुआ तर्पण मूत्र के समान और पिण्डदान विष्ठा के समान होता है। शालग्राम का स्पर्श हो जाने पर उसे तीन रात्रि का उपवास करना चाहिए ॥३१॥ उसके इष्टदेव उसके नैवेद्य और जल का ग्रहण नहीं करते हैं। संन्यासियों और ब्राह्मणों के लिए उसका अन्न मल के समान

कुम्भीपाके पच्यते स शक्रान्तं यावदेव हि । एकविंशतिपुरुषैः सार्धं सत्यं च पुंश्चलि ॥३३॥
पत्रोच्छिष्टं च यो भुङ्क्ते शूद्राणां ब्राह्मणाधमः । तत्तुल्योऽधरभोजी चैवेत्याङ्गिरसभाषितम् ॥३४॥
शूद्रो वा यदि गृह्णाति ब्राह्मणीं ज्ञानदुर्बलः । स पच्यते कालसूत्रे यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥३५॥
अष्टादशेन्द्रावच्छिन्नं कालं च कालसूत्रके । ब्राह्मणी पच्यते तत्र भक्षिता क्रिमिभिर्ध्रुवम् ॥३६॥
ततश्चाण्डालयोनौ च लब्ध्वा जन्म च ब्राह्मणी । शूद्रश्च कुष्ठी भवति ज्ञातिभिः परिवर्जितः ॥३७॥
इत्युक्त्वा च मुनिश्रेष्ठो विरराम च शौनक । वृषली तत्पुरस्तस्थौ शुष्ककण्ठौष्ठतालुका ॥३८॥
एतस्मिन्नन्तरे तेन पथा याति च मेनका । तस्या ऊरुं स्तनं दृष्ट्वा मुनेर्वीर्यं पपात ह ॥३९॥
ऋतुस्नाता च वृषली कृत्वा तद्भक्षणं मुदा । मुनिं प्रणम्य सा हृष्टा प्रययौ भर्तुरन्तिकम् ॥४०॥
गत्वा प्रणम्य द्रुमिलं कान्ता कान्तं मनोहरम् । सर्वं निवेदयामास वृत्तान्तं गर्भहेतुकम् ॥४१॥
कलावतीवचः श्रुत्वा प्रहृष्टवदनेक्षणः । उवाच कान्तां मधुरं परिणामसुखावहम् ॥४२॥

द्रुमिल उवाच

विप्रस्य वीर्यं त्वद्गर्भे वैष्णवस्य महात्मनः । वैष्णवो भविता बालस्त्वं च भाग्यवती सती ॥४३॥
यद्गर्भे वैष्णवो जातो यस्य वीर्येण वा सति । तयोर्याति च वैकुण्ठं पुरुषाणां शतं शतम् ॥४४॥
तौ च विष्णुविमानेन सद्रत्ननिर्मितेन च । यातौ वैकुण्ठनगरं जन्ममृत्युजराहरम् ॥४५॥

रहता है ॥३२॥ पुंश्चली ! वह अपने इक्कीस पीढ़ियों समेत कुम्भीपाक नरक में इन्द्र के समय तक पकता रहता है, यह सत्य है ॥३३॥ जो ब्राह्मणाधम शूद्र के पत्तल की जूठन खाता है, वह उसके समान नीचभोजी है, ऐसा आंगिरस ने कहा है ॥३४॥ यदि शूद्र भी अपने विचार की कमी के कारण किसी ब्राह्मणी को पत्नीरूप में अपना लेता है, तो वह चौदह इन्द्रों के समय तक कालसूत्र नामक नरक में पकाया जाता है ॥३५॥ और वह ब्राह्मणी अठारह इन्द्रों के समय तक उस कालसूत्र में पकती रहती है। उसे वहाँ कीड़े काट-काट कर खाते रहते हैं ॥३६॥ पश्चात् वह ब्राह्मणी चाण्डाल योनि में उत्पन्न होती है और वह शूद्र कुष्ठ रोग से पीड़ित हो कर बन्धुओं द्वारा त्याग दिया जाता है ॥३७॥ शौनक ! इतना कह कर मुनिश्रेष्ठ चुप हो गए और वह शूद्रा उनके सामने खड़ी रही, जिसके ओठ, कंठ और तालु सूख गए थे ॥३८॥ इस बीच उसी मार्ग से मेनका अप्सरा जा रही थी, जिसके ऊरु और स्तन देखकर उन मुनि का वीर्य पात हो गया किन्तु स्नाता शूद्रा ने प्रसन्नता में उस वीर्य को खा लिया फिर मुनि को प्रणाम करके वह आनन्द के साथ अपने पति के पास चली गयी ॥३९-४०॥ वहाँ पहुँच कर उसने अपने मनोहर कान्त द्रुमिल को प्रणाम किया और अपने गर्भ धारण का समस्त वृत्तान्त कह सुनाया ॥४१॥ कलावती की बात सुन कर द्रुमिल के मुख और नेत्र प्रसन्नता से खिल उठे। तब उसने पत्नी से परिणाम में सुख देने वाला मधुर वचन कहा ॥४२॥

द्रुमिल बोले—तुम्हारे गर्भ में वैष्णव एवं महात्मा ब्राह्मण का वीर्य निहित है, इसलिए वैष्णव बालक उत्पन्न होगा। तुम भाग्यवती पतिव्रता भी हो ॥४३॥ जिसके वीर्य से जिसके गर्भ में वैष्णव बालक उत्पन्न होता है, उन दोनों के सौ-सौ पीढ़ियाँ वैकुण्ठ को चली जाती हैं ॥४४॥ और वे दोनों उत्तम रत्नों से निर्मित विमान पर बैठ कर उस वैकुण्ठ धाम में पहुँचते हैं, जहाँ जन्म, मृत्यु और वृद्धावस्था का हरण हो जाता है ॥४५॥ सुन्दरी ! अब तुम किसी

कस्यचिद्ब्राह्मणस्यैव गेहं गच्छ शुभानने । पश्चान्ममान्तिकं भद्रे यास्यसीति हरेः[1] पुरम् ॥४६॥
इत्युक्त्वा गोपराजश्च स्नात्वा कृत्वा तु तर्पणम् । संपूज्याभीष्टदेवं च ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ ॥४७॥
अश्वानां च चतुर्लक्षं गजानां[2] लक्षमेव च । शतं मत्तगजेन्द्राणां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥४८॥
उच्चैःश्रवःपञ्चलक्षं रथानां च सहस्रकम् । शकटानां त्रिलक्षं च ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥४९॥
गवां द्वादशलक्षं च महिषाणां त्रिलक्षकम् । त्रिलक्षं राजहंसानां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥५०॥
पारावतानां लक्षं च शुकानां च शतं मुने । लक्षं च दासदासीनां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥५१॥
ग्रामाणां च सहस्रं च नगराणां शतं शतम् । धान्यतण्डुलशैलं च ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥५२॥
शतकोटिं सुवर्णानां रत्नानां च सहस्रकम् । मुद्राणां कोटिकलशं ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥५३॥
ददौ तैजसपात्राणां भूषणानामसंख्यकम् । तां स्त्रियं रत्नभूषाढ्यां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥५४॥
राज्यं दत्त्वा महाराजोऽप्यन्तर्बाह्ये हरिं स्मरन् । जगाम बदरीं गोपो मनोगामी मुदाऽन्वितः ॥५५॥
तत्र मासं तपः कृत्वा गङ्गातीरे मनोहरे । प्राणांस्तत्याज योगेन सद्यो दृष्टो महर्षिभिः ॥५६॥
स च विष्णुविमानेन रत्नेन्द्रनिर्मितेन च । संयुक्तो विष्णुदूतैश्च वैकुण्ठं च जगाम ह ॥५७॥
तत्र प्राप्य हरेर्दास्यं हरिदासो बभूव सः । वृत्तान्तं च कलावत्याः श्रूयतामिति शौनक ॥५८॥
गते कलावती नाथे उच्चैश्च प्ररुरोद ह । वह्नौ प्राणांस्त्यक्तुकामा ब्राह्मणेनैव रक्षिता ॥५९॥

ब्राह्मण के घर चली जाओ और पश्चात् भगवान् के लोक में मेरे पास चली आओगी ॥४६॥ इतना कह उस गोपराज ने स्नान, तर्पण और अभीष्ट देव का पूजन सुसम्पन्न कर ब्राह्मणों को धन अर्पित किया। चार लाख घोड़े, एक लाख हाथी और सौ मतवाले गजराज हर्ष से ब्राह्मणों को दिया। पाँच लाख उच्चैःश्रवा के वंश में उत्पन्न घोड़े, एकसहस्र रथ एवं तीन लाख बैलगाड़ियाँ प्रसन्नतापूर्वक ब्राह्मणों को समर्पित कीं ॥४७-४९॥ बारह लाख गौएँ, तीन लाख भैंसें एवं तीन लाख राजहंस प्रसन्नता से ब्राह्मणों को दिए ॥५०॥ मुने ! एक लाख कबूतर, सौ तोते और एक लाख दास-दासियाँ प्रसन्नता से ब्राह्मणों को प्रदान कीं ॥५१॥ एक सहस्र ग्राम, दो सौ नगर तथा चावल और अन्न का पर्वत हर्ष के साथ ब्राह्मणों को अर्पित किए ॥५२॥ सौ करोड़ सुवर्ण, एक सहस्र रत्न तथा मुद्राओं से भरे करोड़ों कलश आनन्दपूर्वक ब्राह्मणों को प्रदान किए ॥५३॥ असंख्य चमकीले पात्र तथा आभूषण और रत्नालंकारभूषित स्त्रियाँ भी हर्षपूर्वक ब्राह्मणों को दे दीं। अनन्तर राज्य भी दान करके हर्षित महाराज गोप बाहर-भीतर हरि का स्मरण करते हुए मन के समान गति से बदरिकाश्रम पहुँच गए ॥५४-५५॥ यहाँ गंगाजी के मनोहर तट पर एक मास तक तप कर के अन्त में योग द्वारा प्राण परित्याग किया, जिसे महर्षियों ने तत्काल देखा था ॥५६॥ उपरान्त वह उत्तम रत्नों के बने विष्णु-विमान द्वारा विष्णु-दूतों के साथ वैकुण्ठ में पहुँचा। वहाँ हरि का दास्यभाव प्राप्त करके भगवान् का दास हुआ। शौनक ! अब कलावती का वृत्तान्त सुनो। पति के चले जाने पर कलावती उच्चस्वर से रोती हुई अग्नि में प्राण देने को तत्पर हुई, किन्तु उस ब्राह्मण ने ही उसे बचा लिया ॥५७-५९॥ अनन्तर वह ब्राह्मण उसे माता

---

१ क. ०रेः पदम्। २ क. ०नां च त्रिलक्षकम्।

ब्राह्मणो मातरित्युक्त्वा तां गृहीत्वा मुदाऽन्वितः । जगाम रत्नपूर्णं च स्वगेहं च क्षणेन च ॥६०॥
सा विप्रगेहे साध्वी च सुषाव तनयं वरम् । तप्तकाञ्चनवर्णाभं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥६१॥
तत्रस्था योषितः सर्वा ददृशुर्बालकं शुभम् । ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डजितं तं ब्रह्मतेजसा ॥६२॥
कामदेवाधिकं रूपे चन्द्राधिकशुभाननम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यं शरत्पङ्कजलोचनम् ॥६३॥
हस्तपादादिललितं सुकपोलं मनोहरम् । पद्मचक्राङ्कितं पादपद्मं वाऽतुलमुज्ज्वलम् ॥६४॥
करयुग्मं वाऽतुलं च रुदन्तं च स्तनार्थिनम् । योषितो बालकं दृष्ट्वा प्रययुः स्वाश्रमं मुदा ॥६५॥
पुत्रदारयुतो विप्रः प्रहृष्टश्च ननर्त ह । स बालो ववृधे तत्र शुक्लपक्षे यथा शशी ॥६६॥
पुपोष ब्राह्मणस्तां च सपुत्रां च यथा सुताम् ॥६७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० ब्रह्म० सौ० उपबर्हणजन्मकथनं नाम विंशोऽध्यायः ॥२०॥

अथैकविंशोऽध्यायः ।

सौतिरुवाच

बभूव काले बालश्च क्रमेण पञ्चहायनः । जातिस्मरो ज्ञानयुक्तः पूर्वमन्त्रस्मृतः सदा ॥१॥
गीयते सततं कृष्णयशोनामगुणादिकम् । क्षणं रोदिति नृत्येन पुलकाञ्चितविग्रहः ॥२॥

कह कर अत्यन्त प्रसन्नता से अपने साथ ले गया। क्षण भर में ही वह रत्नों से भरे अपने घर में पहुँचा ॥६०॥ ब्राह्मण के घर में उस पतिव्रता ने एक पुत्र उत्पन्न किया, जो तपाये हुए सुवर्ण की भाँति कान्ति और ब्रह्मतेज से प्रदीप्त था ॥६१॥ वहाँ की रहने वाली समस्त स्त्रियों ने उस बालक को देखा, जो अपने ब्रह्मतेज से ग्रीष्म ऋतु के मध्याह्न-कालीन सूर्य को पराजित कर रहा था ॥६२॥ वह रूप में कामदेव से बढ़ा-चढ़ा था। उसका मुख चन्द्र से भी अधिक निर्मल था: शरत्कालीन पूर्ण चन्द्रमा की भाँति उसका मुख-मण्डल, शारदीय कमल के समान नेत्र, कर, चरण, कपोल आदि सुन्दर तथा वह स्वयं मनोहर था। उसका चरणारविन्द कमलचक्र से अंकित तथा अत्यन्त उज्ज्वल था ॥६३-६४॥ उसके दोनों हाथ भी अनुपम सुन्दर थे। वह दुग्धपान कर ने के लिए रोने लगा। स्त्रियाँ उस बालक को देख कर बहुत प्रसन्न हुईं तथा आनन्द से अपने-अपने घर गयीं ॥६५॥ पुत्र-स्त्री समेत वह ब्राह्मण भी अत्यन्त प्रसन्न होकर नाचने लगा। वहाँ वह बालक शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भाँति बढ़ने लगा। और वह ब्राह्मण पुत्र समेत उस स्त्री को कन्या की भाँति पालन-पोषण करने लगा ॥६६-६७॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में उपबर्हण-जन्म-कथननामक बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२०॥

अध्याय २१

शूद्रयोनि में उत्पन्न बालक नारद की जीवनचर्या

सौति बोले—समय पाकर वह बालक क्रमशः बढ़कर पांच वर्ष का हुआ, जिसे सदा पूर्व जन्म का स्मरण, ज्ञान और पूर्व मन्त्रों का स्मरण बना रहा ॥१॥ भगवान् श्रीकृष्ण के यश, नाम और गुणों का गान निरन्तर करते

कृष्णसंबन्धिनीं गाथां शृणोति यत्र तत्र वै । तत्संबन्धिपुराणं च तत्र तिष्ठति बालकः ॥३॥
धूलिधूसरसर्वाङ्गो धूलिनैवेद्यमीप्सितम् । धूलिषु प्रतिमां कृत्वा धूलिना पूजयेद्धरिम् ॥४॥
पुत्रमाह्वयते माता प्रातराशाय चेन्मुने । हरिं संपूजयामीति मातरं संवदेत्पुनः॥५॥

शौनक उवाच

किन्नाम बालकस्यास्य जन्मन्यत्र बभूव ह । व्युत्पत्त्या संज्ञया वाऽपि तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥६॥

सौतिरुवाच

अनावृष्टयवशेषे च काले बालो बभूव ह । नारं ददौ जन्मकाले तेनायं नारदाभिधः ॥७॥
ददाति नारं ज्ञानं च बालकेभ्यश्च बालकः । जातिस्मरो महाज्ञानी तेनायं नारदाभिधः ॥८॥
वीर्येण नारदस्यैव बभूव बालको मुने । मुनीन्द्रस्य वरेणैव तेनायं नारदाभिधः ॥९॥

शौनक उवाच

शिशुनाम च विज्ञातं व्युत्पत्त्या च यथोचितम् । मुनीन्द्रस्य कथं नाम नारदश्चेति मङ्गलम् ॥१०॥

सौतिरुवाच

अपुत्रकाय विप्राय धर्मपुत्रो नरो मुनिः । ददौ पुत्रं कश्यपाय तेनायं नारदाभिधः ॥११॥

हुए बालक कभी रोदन करने लगता और कभी नृत्य करते हुए रोमांचित हो जाता था ॥२॥ वह कृष्ण सम्बन्धी गाथाओं और पुराणों को जहाँ सुनता वहीं ठहर जाता था ॥३॥ अपने शरीर के सभी अंगों को धूलि-धूसरित किये हुए वह धूलियों में भगवान् की प्रतिमा बनाकर धूलि का अभीष्ट नैवेद्य चढ़ाकर धूलि से हरि की पूजा करता था ॥४॥ मुने ! यदि माता सबेरे कलेवे के लिए उस बच्चे को बुलाती, तो वह अपनी माता से कह देता था कि 'मैं भगवान् का पूजन कर रहा हूँ ॥५॥

शौनक बोले—इस जन्म में उत्पन्न होने पर उस बालक का क्या नामकरण हुआ ? आप व्युत्पत्ति और संज्ञा समेत उसे बताने की कृपा करें ॥६॥

सौति बोले—अनावृष्टि का समय चल रहा था, उसके कुछ अवशेष रहने पर उस बालक का जन्म हुआ और उसके जन्म-समय वृष्टि हुई, इसलिए नार (जल) देने के कारण उसका नाम 'नारद' हुआ ॥७॥ जातिस्मर एवं महाज्ञानी वह बालक दूसरे बालकों को नार (ज्ञान) देता था, इससे भी उसका नाम 'नारद' हुआ ॥८॥ मुने ! मुनिश्रेष्ठ नारद महर्षि के वीर्य से उत्पन्न होने के कारण भी उसका नाम 'नारद' हुआ ॥९॥

शौनक बोले—यथोचित व्युत्पत्ति समेत बच्चे का नाम तो मुझे मालूम हो गया, किन्तु मुनीन्द्र (बच्चे के पिता) का 'नारद' यह मंगल नाम कैसे पड़ा ? ॥१०॥

सौति बोले—धर्मपुत्र नर मुनि ने पुत्रहीन ब्राह्मण कश्यप को पुत्र प्रदान किया था। अतः नरप्रदत्त होने के कारण उसका नाम नारद हुआ ॥११॥

शौनक उवाच

अधुना नामव्युत्पत्तिः श्रुता सौते शिशोरपि । शूद्रयोनौ ब्रह्मपुत्रः कथं स नारदाभिधः ॥१२॥

सौतिरुवाच

कल्पान्तरे ब्रह्मकण्ठाद्बभूवुर्बहवो नराः । नरान्ददौ तत्कण्ठं च तेन तन्नरदं स्मृतम् ॥१३॥
ततो बभूव बालश्च नरदात्कण्ठदेशतः । अतो ब्रह्मा नाम चक्रे नारदश्चेति मङ्गलम् ॥१४॥
सांप्रतं शिशुवृत्तान्तं सावधानं निशामय । उपालम्भरहस्येन विशिष्टं किं प्रयोजनम् ॥१५॥
ववृधे गोपिकाबालो विप्रगेहे दिने दिने । सुपुत्रां पालितां चक्रे ब्राह्मणः स्वसुतां यथा ॥१६॥
एतस्मिन्नन्तरे विप्रा आययुर्विप्रमन्दिरम् । शिशवः पञ्चवर्षीया महातेजस्विनो यथा ॥१७॥
प्रच्छन्नं[1] कृतवन्तश्च ग्रीष्ममध्याह्नभास्करम् । मधुपर्कादिकं दत्त्वा तान्ननाम गृही द्विज ॥१८॥
फलमूलादिकं काले चत्वारो मुनिपुंगवाः । विप्रदत्तं बुभुजिरे तच्छेषं बुभुजे शिशुः ॥१९॥
चतुर्थको मुनिस्तस्मै कृष्णमन्त्रं ददौ मुदा । तेषां दासः स बभूव द्विजस्य मातुराज्ञया ॥२०॥
एकदा शिशुमाता च गच्छन्ती निशि वर्त्मनि । ममार सर्पदष्टा च तत्क्षणं स्मरती हरिम् ॥२१॥

शौनक बोले—सूतपुत्र ! अब मैंने उस शिशु के नाम की व्युत्पत्ति भी सुन ली। अब यह बताइए कि शूद्र-योनि में तथा ब्रह्मपुत्र-अवस्था में वह 'नारद' नामधारी कैसे हुआ ? ॥१२॥

सौति बोले—कल्पान्तर में ब्रह्मा के कण्ठ से अनेक नरों की उत्पत्ति हुई थी। उनके कण्ठ ने नर का दान किया था, इसलिए वह नरद कहलाया ॥१३॥ उस नरद अर्थात् कण्ठ से उस बालक का जन्म हुआ था, अतः ब्रह्मा ने उसका 'नारद' यह मंगल नामकरण किया ॥१४॥ सम्प्रति मैं उस बालक का वृत्तान्त कह रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ? बालक के नारद की उपलब्धि का रहस्य जान लेने से कौन-सा विशिष्ट प्रयोजन सिद्ध होगा ? ॥१५॥

ब्राह्मण के घर में वह गोपिका-पुत्र दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगा और वह ब्राह्मण भी अपनी कन्या की भाँति पुत्र समेत उस गोपी का पालन-पोषण करने लगा ॥१६॥ इसी बीच उस ब्राह्मण के घर कुछ महातेजस्वी ब्राह्मण आये जो देखने में पांच वर्षों के बालकों की भाँति जान पड़ते थे ॥१७॥ वे अपने तेज से ग्रीष्मऋतु के मध्याह्नकालिक सूर्य की प्रभा को तिरस्कृत कर रहे थे। गृहस्थ ब्राह्मण ने मधुपर्क देकर उन्हें प्रणाम किया ॥१८॥ अनन्तर भोजन के समय उन चारों मुनिपुंगवों ने ब्राह्मण के दिये हुए फल, मूल आदि का आहार ग्रहण किया और उनके बचे हुए फलादि को उस बालक ने खाया ॥१९॥ उनमें से चौथे महर्षि ने प्रसन्न होकर उस बालक को भगवान् कृष्ण का मन्त्र प्रदान किया और वह बालक भी ब्राह्मण तथा माता की आज्ञा से उन लोगों का दास बन गया ॥२०॥ एक बार आधी रात के समय उस बालक की माता कहीं जा रही थी । मार्ग में एक सर्प ने उसे काट लिया, जिससे भगवान् का स्मरण करती हुई वह उसी समय मृतक हो गयी ॥२१॥ वह सती गोपी उत्तम रत्नों के बने विष्णु के विमान

---

१ ख. ०न्नं हृत० ।

सद्यो जगाम वैकुण्ठं विष्णुयानेन सा सती । विष्णुपार्षदसंयुक्ता सद्रत्ननिर्मितेन च ।।२२।।
प्रातर्बालो द्विजैः सार्धं प्रययौ विप्रमन्दिरात् । तत्त्वज्ञानं ददुस्तस्मै ब्राह्मणाश्च कृपालवः ।।२३।।
ब्रह्मपुत्राः शिशुं त्यक्त्वा स्वस्थानं प्रययुः किल । महाज्ञानी शिशुस्तस्थौ गङ्गातीरे मनोहरे ।।२४।।
तत्र स्नात्वा विप्रदत्तं विष्णुमन्त्रं जजाप सः । क्षुत्पिपासारोगशोकहरं[1] वेदेषु दुर्लभम् ।।२५।।
महारण्ये च घोरे च अश्वत्थमूलसंनिधौ । कृत्वा योगासनं तस्थौ सुचिरं तत्र बालकः ।।२६।।

शौनक उवाच

कं मन्त्रं बालकः प्राप कुमारेण च धीमता । दत्तं परं श्रीहरेश्च तद्भवान्वक्तुमर्हति ।।२७।।

सौतिरुवाच

कृष्णेन दत्तो गोलोकं कृपया ब्रह्मणे पुरा । द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रो वेदेषु च सुदुर्लभः ।।२८।।
तं च ब्रह्मा ददौ भक्त्या कुमाराय च धीमते । कुमारेण स दत्तश्च मन्त्रश्च शिशवे द्विज ।।२९।।
ओं श्री नमो भगवते रासमण्डलेश्वराय । श्रीकृष्णाय स्वाहेति च मन्त्रोऽयं कल्पपादपः ।।३०।।
महापुरुषस्तोत्रं च पूर्वोक्तं कवचं च यत् । अस्यौपयौगिकं ध्यानं सामवेदोक्तमेव च ।।३१।।
तेजोमण्डलरूपे च सूर्यकोटिसमप्रभे । योगिभिर्वाञ्छितं ध्याने योगैः सिद्धगणैः सुरैः ।।३२।।

में बैठकर विष्णु पार्षदों के साथ उसी क्षण वैकुण्ठ पहुँच गयी ।।२२।। प्रातःकाल होने पर वह बालक ब्राह्मण के घर से निकल कर इन अतिथि ब्राह्मणों के साथ चल दिया। उन दयालु ब्राह्मणों ने उस बच्चे को तत्त्वज्ञान प्रदान किया ।।२३।। अनन्तर वे ब्रह्मपुत्र महर्षिगण उस बच्चे को छोड़कर अपने स्थान को चले गये और वह महाज्ञानी शिशु गंगाजी के मनोहर तट पर रहने लगा ।।२४।। वहाँ स्नान करके उसने ब्राह्मणप्रदत्त उस मन्त्र का जप किया जो क्षुधा, तृष्णा (प्यास), रोग एवं शोक का अपहरण करने वाला तथा वेदों में दुर्लभ बताया गया है ।।२५।। घोर महाजंगल में पीपल वृक्ष के नीचे योगासन लगाकर वह बालक सुचिर काल तक बैठा रहा ।।२६।।

शौनक बोले—विद्वान् सनत्कुमार द्वारा उस बालक को भगवान् विष्णु का कौन सा मन्त्र प्राप्त हुआ था, उसे आप बताने की कृपा करें ।।२७।।

सौति बोले—प्राचीन समय में भगवान् श्री कृष्ण ने गोलोक में ब्रह्मा को जो बाईस अक्षरवाला मन्त्र प्रदान किया और जो वेदों में अत्यन्त दुर्लभ है, वही मन्त्र ब्रह्मा ने बुद्धिमान् सनत्कुमार की भक्ति देखकर उन्हें प्रदान किया था। द्विज ! कुमार ने वही मन्त्र उस ब्राह्मण को प्रदान किया ।।२८-२९।। (वह मन्त्र इस प्रकार है—) ओं श्री नमोभगवते रासमण्डलेश्वराय श्रीकृष्णाय स्वाहा। यह मन्त्र कल्पवृक्ष है। इसके साथ ही महापुरुष का स्तोत्र पूर्वोक्त कवच तथा इसके उपयोगी सामवेदोक्त ध्यान भी बताया था ।।३०-३१।। करोड़ों सूर्य के समान प्रभापूर्ण उस तेजोमण्डलरूप अनिर्वचनीय चिन्मय प्रकाश में ध्यान लगाकर योगी, सिद्धगण तथा देवता मनोवांछित रूप का साक्षात्कार करते हैं। उसी को वैष्णव लोग अपने अभ्यन्तर में लाकर सदैव ध्यान करते हैं, जो अत्यन्त

---

१ क. ०रं देवेषु ।

ध्यायन्ते वैष्णवा रूपं [1]तदभ्यन्तरसंनिधौ । अतीव कमनीयानिर्वचनीयं मनोहरम् ।।३३।।
नवीनजलदश्यामं शरत्पङ्कजलोचनम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यं पक्वबिम्बाधिकाधरम् ।।३४।।
मुक्तापङक्तिविनिन्दैकदन्तपङक्तिमनोहरम् । सस्मितं मुरलीन्यस्तहस्तालम्बनमेव च ।।३५।।
कोटिकन्दर्पलावण्यं लीलाधाम मनोहरम् । चन्द्रलक्षप्रभाजुष्टं पुष्टश्रीयुक्तविग्रहम् ।।३६।।
त्रिभङ्गभङ्गिकायुक्तं द्विभुजं पीतवाससम् । रत्नकेयूरवलयरत्ननूपुरभूषितम् ।।३७।।
रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितम् । मयूरपुच्छचूडं च रत्नमालाविभूषितम् ।।३८।।
शोभितं जानुपर्यन्तं मालतीवनमालया । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं भक्तानुग्रहकारकम् ।।३९।।
मणिना कौस्तुभेन्द्रेण वक्षःस्थलसमुज्ज्वलम्[2] । वीक्षितं गोपिकाभिश्च शश्वद्व्रीडितलोचनैः ।।४०।।
स्थिरयौवनयुक्ताभिर्वेष्टिताभिश्च संततम् । भूषणैर्भूषिताभिश्च राधावक्षःस्थलस्थितम् ।।४१।।
ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च पूजितं वन्दितं स्तुतम् । किशोरं राधिकाकान्तं शान्तरूपं परात्परम् ।।४२।।
निर्लिप्तं साक्षिरूपं च निर्गुणं प्रकृतेः परम् । ध्यायेत्सर्वेश्वरं तं च परमात्मानमीश्वरम् ।।४३।।
इदं ते कथितं ध्यानं स्तोत्रं च कवचं मुने । मन्त्रौपयौगिकं सत्यं मन्त्रश्च कल्पपादपः ।।४४।।
सांप्रतं बालकस्तस्थौ ध्यानस्थस्तत्र शौनक । दिव्यं वर्षसहस्रं च निराहारः कृशोदरः ।।४५।।

कमनीय (सुन्दर), अनिर्वचनीय (वाणी से परे) एवं मनोहर है। नूतन मेघ के समान उसकी श्यामलकान्ति है। उसके नेत्र शारदीय कमल के समान हैं। मुख शरत्काल की पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान है। अधरोष्ठ पके हुए बिम्ब से अधिक अरुण है। मोतियों की पंक्तियों को विजित करने वाली मनोहर दांतों की पंक्तियाँ हैं। वह मन्द मुसकान से युक्त है। हाथ में मुरली लिए हुए है। करोड़ों काम से अधिक उसका लावण्य है। वह लीलाधाम, मनोहर, लाखों चन्द्रमा की प्रभा (कान्ति) से सेवित तथा श्रीसमेत पुष्ट शरीर धारण किये हुए है।।३२-३६।। वह त्रिभंगी छवि से सुशोभित है। उसकी दो भुजाएँ हैं। रत्नों के केयूर (बाजूबंद), पीत वस्त्र, वलय (कंकण) एवं रत्न-नूपुरों से वह भूषित है। उसके गंडस्थल रत्नों के युगल कुण्डलों से सुशोभित हैं। मस्तक पर मोर पंख का मुकुट शोभा पाता है। रत्नों की मालाएँ कंठदेश को विभूषित करती हैं। मालती की वनमाला से घुटनों तक का भाग विभूषित है। उसका सर्वांग चन्दन से चर्चित है। वह भक्तों पर कृपा करने वाला है।।३७-३९।। उत्तम कौस्तुभमणि की प्रभा से उसका वक्षःस्थल उद्भासित होता है। गोपिकाएँ अपने लजीले नेत्रों से निरन्तर उसे देखा करती हैं।।४०।। स्थिर यौवन वाली गोपियाँ भूषणों से विभूषित होकर उन्हें निरन्तर घेरे रहती हैं। वह राधा के वक्षःस्थल में विराजमान है।।४१।। ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश आदि देवता उसकी पूजा, वंदना एवं स्तुति किया करते हैं। उसकी अवस्था किशोर है। वह राधा का प्राणनाथ, शान्तस्वरूप एवं परात्पर है। वह निर्लिप्त एवं साक्षिरूप है। निर्गुण तथा प्रकृति से परे है। उसी परमात्मा सर्वेश्वर ईश्वर का ध्यान करना चाहिए।।४२-४३।। मुने! इस प्रकार मैंने ध्यान, स्तोत्र, कवच और कल्पवृक्ष रूपी मन्त्र तुम्हें बता दिया है।।४४।। शौनक! उस समय वह बालक एक सहस्र दिव्य वर्षों तक निराहार और कृशोदर होकर ध्यान में बैठा रहा। फिर भी उस सिद्ध मन्त्र

---

१ क. ०रमेव च। २ क. ०म्। वेष्टितं गो०।

शक्तिमान्परिपुष्टश्च सिद्धमन्त्रप्रभावतः । ददर्श बालको ध्याने दिव्यं लोकं च बालकम् ।।४६।।
रत्नसिंहासनस्थं च रत्नभूषणभूषितम् । किशोरवयसं श्यामं गोपवेशं च सस्मितम् ।।४७।।
गोपैर्गोपाङ्गनाभिश्च वेष्टितं पीतवाससम् । द्विभुजं मुरलीहस्तं चन्दनेन विर्चचितम् ।।४८।।
ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च स्तूयमानं परात्परम् । दृष्ट्वा च सुचिरं शान्तं शान्तश्च गोपिकासुतः ।।४९।।
विरराम च शोकार्तो यदा तद्द्रष्टुमक्षमः । रुरोदाश्वत्थमूले च न दृष्ट्वा बालकं शिशुः ।।५०।।
बभूवाऽऽकाशवाणीति रुदन्तं बालकं प्रति । सत्यं प्रबोधयुक्तं च हितमेव मिताक्षरम् ।।५१।।
सकृद्यद्दर्शितं रूपं तदेव नाधुना पुनः । अविपक्वकषायाणां दुर्दर्शं च कुयोगिनाम् ।।५२।।
एतस्मिन्विग्रहेऽतीते संप्राप्ते दिव्यविग्रहे । पुनर्द्रक्ष्यसि गोविन्दं जन्ममृत्युहरं हरिम् ।।५३।।
इति श्रुत्वा बालकश्च विरराम मुदाऽन्वितः । काले तत्याज तीर्थे च तनुं कृष्णं हृदि स्मरन् ।।५४।।
नेदुर्दुन्दुभयः स्वर्गे पुष्पवृष्टिर्बभूव ह । बभूव शापमुक्तश्च नारदश्च महामुनिः ।।५५।।
तनुं त्यक्त्वा स जीवश्च विलीनो ब्रह्मविग्रहे । बभूव प्राक्तनान्नित्यः कालभेदे तिरोहितः ।।५६।।
आविर्भावस्तिरोभावः स्वेच्छया नित्यदेहिनाम् । जन्ममृत्युजराव्याधिर्भक्तानां नास्ति शौनक ।।५७।।

इति श्री ब्र० महा० ब्र० सौ० नारदशापविमोचनं नामैकविंशोऽध्यायः ।।२१।।

के प्रभाव से वह शक्तिमान् और परिपुष्ट बना रहा। बालक ने अपने ध्यान में दिव्यलोक और एक बालक को देखा, जो रत्नसिंहासन पर विराजमान, रत्नों के भूषणों से भूषित तथा किशोर वय, श्यामलवर्ण और गोप वेष धारण किए हुए मुस्कुरा रहा था। वह गोपों और गोपियों से घिरा हुआ, पीताम्बर, द्विभुज तथा मुरली हाथ में लिए हुए था। उसके श्रीअंग चन्दन-र्चचित थे। उस परात्पर की ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आदि देवगण स्तुति कर रहे थे। ऐसे शान्तरूप को बहुत काल तक देखकर वह गोपिकासुत ध्यान से विरत हो गया। ध्यान टूटने पर जब फिर वह उसका दर्शन न कर सका तब शोक से पीड़ित हो गया। ध्यानगत बालक को पुनः न देखने पर वह बच्चा उस पीपल के मूल में रोने लगा ।।४५-५०।। अनन्तर रोते हुए उस बालक को संबोधित करके आकाशवाणी हुई, जो सत्य, ज्ञानयुक्त, हितकर और परिमित अक्षरों में थी—'जिस रूप को तुमने अभी एक बार देखा है, वह पुनः इस समय नहीं दिखायी देगा। क्योंकि अपरिपक्व कषाय (मल)वाले कुयोगियों के लिए उसका दर्शन होना अत्यन्त कठिन है ।।५१-५२।। तुम इस शरीर को त्यागकर दिव्य शरीर धारण करने पर जन्म-मृत्युहारी भगवान् गोविन्द का (यह) रूप पुनः देखोगे' ।।५३।। यह सुनकर उस बालक ने प्रसन्नता से देखने का प्रयत्न छोड़ दिया और समय पाकर तीर्थभूमि में, हृदय में भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण करते हुए अपने शरीर को त्याग दिया। उस समय स्वर्ग में नगाड़े बजने लगे तथा पुष्पों की वर्षा होने लगी। इस प्रकार महामुनि नारद शापमुक्त हुए ।।५४-५५।। शरीर त्यागकर वह जीव ब्रह्म-शरीर में विलीन हो गया। पहले की अपेक्षा वह नित्य हो गया और भिन्नकाल में तिरोहित भी हुआ। शौनक! नित्यरूपधारी जो भक्त जन हैं, उनका अपनी इच्छा से आविर्भाव एवं तिरोभाव होता है। वे जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि से पीड़ित नहीं होते हैं ।।५६-५७।।

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में नारद-शापमोचन
नामक इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ।।२१।।

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

सौतिरुवाच

कति कल्पान्तरेऽतीते स्रष्टुः सृष्टिविधौ पुनः। मरीचिमिश्रैर्मुनिभिः सार्धं कण्ठाद्बभूव सः॥१॥
विधेर्नरदनाम्नश्च कण्ठदेशाद्बभूव सः। नारदश्चेति विख्यातो मुनीन्द्रस्तेन हेतुना॥२॥
यः पुत्रश्चेतसो धातुर्बभूव मुनिपुंगवः। तेन प्रचेता इति च नाम चक्रे पितामहः॥३॥
बभूव धातुर्यः पुत्रः सहसा दक्षपार्श्वतः। सर्वकर्मणि दक्षश्च तेन दक्षः प्रकीर्तितः॥४॥
वेदेषु कर्दमः शब्दश्छायायां वर्तते स्फुटः। बभूव कर्दमाद्बालः कर्दमस्तेन कीर्तितः॥५॥
तेजोभेदे मरीचिश्च वेदेषु वर्तते स्फुटम्। जातः सद्योऽतितेजस्वी मरीचिस्तेन कीर्तितः॥६॥
क्रतुसंघश्च बालेन कृतो जन्मान्तरेऽधुना। ब्रह्मपुत्रेऽपि तन्नाम क्रतुरित्यभिधीयते॥७॥
प्रधानाङ्गं मुखं धातुस्ततो जातश्च बालकः। इरस्तेजस्विवचनोऽप्यङ्गिरास्तेन कीर्तितः॥८॥
अतितेजस्विनि भृगुर्वर्तते नाम्नि शौनक। जातः सद्योऽतितेजस्वी भृगुस्तेन प्रकीर्तितः॥९॥
बालोऽप्यरुणवर्णश्च जातः सद्योऽतितेजसा। प्रज्वलन्नूर्ध्वतपसा चारुणिस्तेन कीर्तितः॥१०॥
हंसा आत्मवशा यस्य योगेन योगिनो ध्रुवम्। बालः परमयोगीन्द्रस्तेन हंसी प्रकीर्तितः॥११॥

अध्याय २२

ब्रह्मपुत्रों के नामों की व्युत्पत्ति

सौति बोले—अनेक कल्पों के व्यतीत हो जाने पर पुनः सृष्टि-कार्य में संलग्न ब्रह्मा के नरद नामक कण्ठ प्रदेश से मरीचि आदि मुनियों के साथ वे शापमुक्त मुनि प्रकट हुए॥१॥ इसी कारण उस मुनिवर्य का 'नारद' नामकरण हुआ॥२॥ ब्रह्मा के चित्त से जिस मुनिपुंगव का जन्म हुआ, पितामह ने उसका 'प्रचेता' नामकरण किया॥३॥ जो ब्रह्मा के दाहिने पार्श्व से सहसा उत्पन्न होकर और सभी कर्मों में दक्ष हुए, उनका नाम 'दक्ष' रखा गया॥४॥ वेदों में कर्दम शब्द छाया अर्थ में स्पष्ट कहा गया है। अतः उनके कर्दम (छाया) से उत्पन्न होने वाले पुत्र का नाम 'कर्दम' रखा गया॥५॥ मरीचि शब्द वेदों में तेजोविशेष के अर्थ में कहा गया है, अतः ब्रह्मा के तेज से उत्पन्न होने वाले पुत्र का नाम 'मरीचि' पड़ा॥६॥ जिस बालक ने जन्मान्तर में अनेक यज्ञों को सुसम्पन्न किया था, वह ब्रह्मपुत्र होने पर 'क्रतु' नाम से ख्यात हुआ॥७॥ ब्रह्मा के प्रधान अंग मुख से उत्पन्न हुआ पुत्र इर अर्थात् तेजस्वी था, इसलिए 'अंगिरा' नाम से प्रसिद्ध हुआ॥८॥ शौनक! अतितेजस्वी अर्थ में भृगु शब्द का प्रयोग किया गया है। अतः जो बालक अतितेजस्वी हुआ उसका नाम 'भृगु' रखा गया॥९॥ जो बालक होने पर भी तत्काल अत्यन्त तेज के कारण अरुण वर्ण का हो गया और उच्च कोटि की तपस्या के कारण तेज से प्रज्वलित होने लगा, वह 'आरुणि' नाम से ख्यात हुआ॥१०॥ जिस योगी के योग द्वारा हंसगण उसके अधीन हो गये थे, उस परमयोगीन्द्र बालक की 'हंसी' नाम से ख्याति हुई॥११॥ जो बालक तत्काल प्रकट होकर ब्रह्मा का वशीभूत,

वशीभूतश्च शिष्यश्च जात: सद्यो हि बालक:। अतिप्रियश्च धातुश्च वशिष्ठस्तेन कीर्तित: ॥१२॥
संततं यस्य यत्नश्च तप:सु बालकस्य च। प्रकीर्तितो यतिस्तेन संयत: सर्वकर्मसु ॥१३॥
पुलस्तप:सु वेदेषु वर्तते हः स्फुटेऽपि च। 'स्फुटस्तप: समूहश्च पुलहस्तेन बालक: ॥१४॥
पुलस्तप:समूहश्च यस्यास्ति पूर्वजन्मनाम्। तप:संघस्वरूपश्च पुलस्त्यस्तेन बालक: ॥१५॥
त्रिगुणायां प्रकृत्यां त्रिर्विष्णावश्च प्रवर्तते। तयोर्भक्ति: समा यस्य तेन बालोऽत्रिरुच्यते ॥१६॥
जटावह्निशिखारूपा: पञ्च च सन्ति मस्तके। तपस्तेजोभवा यस्य स च पञ्चशिख: स्मृत: ॥१७॥
अपान्तरतमे देशे तपस्तेपेऽन्यजन्मनि। अपान्तरतमा नाम शिशोस्तेन प्रकीर्तितम् ॥१८॥
स्वयं तप: समाप्नोति वाहयेत्प्रापयेत्परान्। वोढुं समर्थस्तपसि वोढुस्तेन प्रकीर्तित: ॥१९॥
तपसस्तेजसा बालो दीप्तिमान्सततं मुने। तप:सु रोचते चित्तं रुचिस्तेन प्रकीर्तित: ॥२०॥
कोपकाले बभूवुर्ये स्रष्टुरेकादश स्मृता:। रोदनादेव रुद्राश्च कोपितास्तेन हेतुना ॥२१॥

शौनक उवाच

रुद्रेष्वेकतमो[2] वाऽन्यो महेश इति मे भ्रम:। भवान्पुराणतत्त्वज्ञ: संदेहं छेत्तुमर्हति ॥२२॥

शिष्य तथा अत्यन्त प्रीतिपात्र हुआ, उसका नाम वशिष्ठ, रखा गया ॥१२॥ उत्पन्न होने पर जिस बालक का सतत यत्न केवल तप के लिए होता था और जो सभी कर्मों में संयत था, वह इसी गुण के कारण 'यति' कहलाया। वेदों में 'पुल' शब्द तप के अर्थ में स्पष्ट कहा गया है और स्फुट अर्थ में 'ह' है। इसलिए जिस बालक में स्पष्ट रूप से तप:समूह दिखाई पड़ा, उसका नाम पुलह पड़ा। 'पुल' तप: समूह का अर्थ है इसलिए जिसके पूर्वजन्मों का तप: समूह विद्यमान था, वह बालक पुलस्त्य कहलाया ॥१३-१५॥ त्रिगुणमयी प्रकृति के अर्थ में 'त्रि' शब्द और विष्णु के अर्थ में 'अ' शब्द प्रयुक्त हैं, इसीलिए उन दोनों में समान भक्ति रखने वाले बालक का नाम 'अत्रि' हुआ ॥१६॥ तपस्तेज के कारण अग्नि की शिखा के समान पाँच शिखाएँ जिसके मस्तक पर थीं, उसका नाम 'पंचशिख' हुआ ॥१७॥ जिसने अन्य जन्म में आंतरिक अंधकार से रहित प्रदेश में तप किया था; उसका नाम 'अपान्तरतमा' हुआ ॥१८॥ स्वयं तप करके अन्य प्राणियों को भी तपस्वी बनाने का प्रयत्न करने वाले तथा तपस्या का भार वहन करने वाले बालक को 'वोढु' नाम से पुकारा गया ॥१९॥ मुने! जो बालक तपस्या के तेज से दीप्तिमान् रहता था तथा तपस्या में ही जिसकी रुचि रहती थी, उसका नाम 'रुचि' पड़ा ॥२०॥ जो ब्रह्मा के कोप के समय ग्यारह की संख्या में प्रकट हुए और रोदन करने लगे, उनका नाम 'रुद्र' हुआ ॥२१॥

शौनक बोले—उन्हीं रुद्रों में से एक बालक का नाम 'महेश' है या अन्य किसी का नाम महेश है, ऐसा मुझे भ्रम है। आप पुराणों के तत्त्ववेत्ता हैं, अत: मेरे इस सन्देह को दूर करने की कृपा करें ॥२२॥

---

१. क. स्फुटं तप: स्वरूपं च। २. ख. ०मो बालो म०।

सौतिरुवाच

विष्णुः सत्त्वगुणः पाता ब्रह्मा स्रष्टा रजोगुणः। तमोगुणास्ते रुद्राश्च दुर्निवारा भयंकराः ॥२३॥
कालाग्निरुद्रः संहर्ता तेष्वेकः शंकरांशकः। शुद्धसत्त्वस्वरूपश्च शिवश्च शिवदः सताम् ॥२४॥
अन्ये कृष्णस्य च कलास्तावंशौ विष्णुशंकरौ। समौ सत्त्वस्वरूपौ द्वौ परिपूर्णतमस्य च ॥२५॥
उक्तं रुद्रोद्भवे काले कथं विस्मरसि द्विज। मायया मोहिताः सर्वे मुनीनां च मतिभ्रमः ॥२६॥
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः। सनत्कुमारो भगवांश्चतुर्थो ब्रह्मणः सुतः ॥२७॥
ब्रह्मा स्रष्टुं [1]पूर्वपुत्रानुवाच ते न सेहिरे। तेन प्रकोपितो धाता रुद्राः कोपोद्भवा मुने ॥२८॥
सनकश्च सनन्दश्च तौ द्वावानन्दवाचकौ। आनन्दितौ च बालौ द्वौ भक्तिपूर्णतमौ सदा ॥२९॥
सनातनश्च श्रीकृष्णो नित्यः पूर्णतमः स्वयम्। तद्भक्तस्तत्समः सत्यं तेन बालः सनातनः ॥३०॥
सनत्तु नित्यवचनः कुमारः शिशुवाचकः। सनत्कुमारं तेनेममुवाच कमलोद्भवः ॥३१॥
ब्रह्मणो बालकानां च व्युत्पत्तिः कथिता मुने। सांप्रतं नारदाख्यानं श्रूयतां च यथाक्रमम् ॥३२॥

इति श्रीब्र० महा० ब्र० सौ० ब्रह्मपुत्रव्युत्पत्तिकथनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

सौति बोले—सत्त्वगुण सम्पन्न होने के नाते विष्णु (जगत् के) रक्षक, रजोगुण सम्पन्न ब्रह्मा स्रष्टा और तमोगुण सम्पन्न होने के कारण वे रुद्र दुर्निवार और भयंकर हैं ॥२३॥ उनमें से एक का नाम 'कालाग्निरुद्र' है, जो संहर्ता हैं तथा शंकर के अंश हैं। शुद्ध सत्त्वरूप जो शिव हैं, वे सत्पुरुषों का कल्याण करने वाले हैं ॥२४॥ अन्य रुद्र भगवान् श्रीकृष्ण की कला मात्र हैं। केवल विष्णु एवं शंकर उन परिपूर्णतम श्रीकृष्ण के अंश हैं और वे दोनों समान सत्त्वस्वरूप हैं ॥२५॥ द्विज ! रुद्र की उत्पत्ति के प्रसंग में मैंने यह बात तुम्हें बता दी थी। उसे क्यों भूल रहे हो। सभी भगवान् की माया से मोहित हैं। इसलिए मुनियों को भी भ्रम हो जाता है ॥२६॥ ब्रह्मा के पुत्र प्रथम सनक, द्वितीय सनन्द, तृतीय सनातन और चौथे भगवान् सनत्कुमार हैं। मुने ! ब्रह्मा ने सर्वप्रथम इन्हें उत्पन्न करके सृष्टि करने के लिए कहा, किन्तु उन्होंने अस्वीकार कर दिया। इसलिए ब्रह्मा अत्यन्त कुपित हो गये। उसी कोप से रुद्रों की उत्पत्ति हुई ॥२७-२८॥ सनक और सनन्द दोनों शब्द आनन्दवाचक हैं। वे दोनों बालक सदैव आनन्द एवं अत्यन्त भक्ति से पूर्ण रहते हैं। इसलिये सनक और सनन्द नाम से ख्यात हुए ॥२९॥ स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण सनातन, नित्य और पूर्णतम हैं। उनका भक्त भी उन्हीं के समान है, अतः वह तीसरा बालक 'सनातन' नाम से विख्यात हुआ ॥३०॥ सनत् शब्द नित्यवाचक है और कुमार शब्द शिशुवाचक, अतः ब्रह्मा ने उस बालक का नाम सनत्कुमार रखा ॥३१॥ मुने ! इस प्रकार मैंने ब्रह्मा के पुत्रों के नामों की व्युत्पत्ति बतायी। अब क्रमशः नारद का आख्यान सुनो ॥३२॥

श्री ब्रह्मवैवर्त महापुराण के ब्रह्मखण्ड में ब्रह्मपुत्र-व्युत्पत्ति-कथन नामक बाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२॥

---

१. ०र्वंभूतान्०।

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

सौतिरुवाच

स्रष्टा सृष्टिविधानेन नियोज्य सर्वबालकान्। नारदं प्रेरयामास सृष्टिं कर्तुं च शौनक ॥१॥
हितं सत्यं वेदसारं परिणामसुखावहम्। उवाच नारदं ब्रह्मा वेदवेदाङ्गपारगम् ॥२॥

ब्रह्मोवाच

एहि वत्स कुलश्रेष्ठ नारद प्राणवल्लभ। ज्ञानदीपशिखाज्ञानतिमिरक्षयकारक ॥३॥
सर्वेषामपि वन्द्यानां जनकः परमो गुरुः। विद्यादाता मन्त्रदाता द्वौ समौ च पितुः परौ ॥४॥
तवाहं जनकः पुत्र विद्यादाता च पालकः। ममाऽऽज्ञया च मत्प्रीत्या कुरु दारपरिग्रहम् ॥५॥
स च शिष्यः सोऽपि पुत्रो यश्चाऽऽज्ञां पालयेद्गुरोः। न क्षेमं तस्य मूढस्य यो गुरोरवचस्करः ॥६॥
स पण्डितः स च ज्ञानी स क्षेमी स च पुण्यवान्। गुरोर्वचस्करो यो हि क्षेमं तस्य पदे पदे ॥७॥
सर्वेषामाश्रमाणां च प्रधानः पुण्यवान्गृही। स्त्रीपुत्रपौत्रयुक्तं च मन्दिरं तपसः फलम् ॥८॥
[1]पितरः पूर्वकाले च तिथिकाले च देवताः। सर्वे गृहस्थमायान्ति निपानमिव धेनवः ॥९॥

अध्याय २३

नारद द्वारा ब्रह्मा से तप के लिए आज्ञा माँगना

सौति बोले—शौनक! ब्रह्मा ने सृष्टि कार्य में सभी पुत्रों को लगाकर नारद को भी सृष्टि करने के लिए प्रेरित किया ॥१॥ ब्रह्मा ने वेद-वेदांग के पारगामी विद्वान् नारद से यह हितकर, सत्य, वेदों का सार, और परिणाम में सुख देने वाली बात कही ॥२॥

ब्रह्मा बोले—वत्स! यहाँ आओ। तुम मेरे कुल में श्रेष्ठ और प्राणों से भी प्रिय हो। तुम ज्ञानदीप की शिखा से अज्ञान-तिमिर के नाशक हो ॥३॥ पिता परम गुरु होता है। वह वन्दनीय पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ है। विद्या-दाता और मन्त्रदाता दोनों समान हैं तथा पिता से भी बढ़कर हैं। पुत्र! मैं तुम्हारा पिता, विद्यादाता और पालन-कर्त्ता हूँ। अतः मेरी आज्ञा से मेरे प्रसन्नार्थं तुम विवाह अवश्य करो ॥४-५॥ पुत्र और शिष्य वही है, जो गुरु की आज्ञा का पालन करता है। जो गुरु की अवहेलना करता है उस मूढ़ का कल्याण नहीं होता है। वही पण्डित, ज्ञानी, कल्याणभाजन और पुण्यवान् है, जो गुरु की आज्ञा का पालन करता है। पग-पग पर उसका कल्याण होता है ॥६-७॥ सभी आश्रमों में पुण्यवान् गृही श्रेष्ठ कहा गया है; क्योंकि उसके तप के फलस्वरूप उसका गृह स्त्री, पुत्र और पौत्रों से सुसम्पन्न रहता है ॥८॥ जैसे हौज में पानी पीने के लिए गायें आती हैं उसी तरह पूर्वाह्ण में देवता और अपराह्ण में पितर गृहस्थ के यहाँ आते हैं ॥९॥ गृही सदा नित्य, नैमित्तिक और काम्य अनुष्ठानों को

१क. ०रः सर्वकां०।

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं कुर्वन्ति गृहिणः सदा। इह एतत्सुखं पुण्यं स्वर्गभोगः परत्र च ॥१०॥
जीवन्मुक्तो गृहस्थश्च स्वधर्मपरिपालकः। यशस्वी पुण्यवांश्चैव कीर्तिमान्धनवान्सुखी ॥११॥
यशस्वी कीर्तिमान्यो हि मृतो जीवति संततम्। यशःकीर्तिविहीनो हि जीवन्नपि मृतो हि सः ॥१२॥
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा नारदो मुनिसत्तमः। उवाच विनयं भीतः शुष्ककण्ठौष्ठतालुकः ॥१३॥

नारद उवाच

एकदा वाग्विरोधेन चोभयोस्तातपुत्रयोः। हानिर्बभूव दैवेन महती वाऽयशस्करी ॥१४॥
मया प्राप्तं च त्वच्छापाद्गान्धर्वं शौद्रमेव च। जन्म कर्म च मच्छापात्त्वमपूज्यो भवे भव ॥१५॥
बभूव शापो मुक्तो मे काले ते भविता विधे। दोषाय कल्पते शश्वद्विरोधो न गुणाय च ॥१६॥
स पिता स गुरुर्बन्धुः स पुत्रः स अधीश्वरः। यः श्रीकृष्णपादपद्मे दृढां भक्तिं च कारयेत् ॥१७॥
असद्वर्त्मनि चाज्ञानाद्गच्छन्ति यदि बालकाः। निवर्तयति तानेव स पिता करुणानिधिः ॥१८॥
कारयित्वा कृष्णपादे भक्तित्यागं च यः पिता। अन्यस्मिन्विषये पुत्रं स किं हन्त प्रवर्तयेत् ॥१९॥
दारग्रहो हि दुःखाय केवलं न सुखाय च। तपःस्वर्गभक्तिमुक्तिकर्मणां व्यवधायकः ॥२०॥
योषितस्त्रिविधा ब्रह्मन्गृहिणां मूढचेतसाम्। साध्वी भोग्या च कुलटास्ताः सर्वाःस्वार्थतत्पराः ॥२१॥
परलोकभिया साध्वी तथेह यशसाऽऽत्मनः। कामस्नेहाच्च कुरुते भर्तुः सेवां च संततम् ॥२२॥

करता रहता है। जिससे वह इस लोक में पवित्र सुख और परलोक में स्वर्ग-भोग प्राप्त करता है ॥१०॥ स्वधर्म का तत्परता से पालन करने वाला गृहस्थ जीवन्मुक्त होता है। वह यशस्वी, पुण्यवान्, कीर्तिमान्, धनवान् और सुखी भी होता है ॥११॥ जो यशस्वी और कीर्तिमान् है वह मर जाने पर भी निरन्तर जीवित रहता है और यश एवं कीर्ति से हीन प्राणी जीवित रहने पर भी मृतक के समान है ॥१२॥ ब्रह्मा की बात सुनकर मुनिवर नारद के कंठ, ओठ और तालू सूख गये। वे भयभीत होकर विनयपूर्वक बोले—॥१३॥

नारद ने कहा—एक बार वाग्विरोध के फलस्वरूप ही पुत्र-पिता दोनों की बहुत बड़ी और निन्दनीय हानि हुई है ॥१४॥ आपके शाप के कारण गन्धर्व-कुल और शूद्र-कुल में मेरा जन्म-कर्म हुआ तथा मेरे शाप से आप संसार में अपूज्य हो गये। विधे! बहुत काल के उपरान्त मुझे आपके शाप से मुक्ति मिली है इसीलिए कहा जाता है कि—(आपस का) विरोध निरन्तर दोष ही उत्पन्न करता है न कि गुण ॥१५-१६॥ जो भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमल में दृढ़ भक्ति उत्पन्न कराये, वही पिता, गुरु, बन्धु, पुत्र और अधीश्वर है ॥१७॥ यदि बालक अज्ञान-वश असन्मार्ग में जाता है तो करुणानिधान पिता उसे उस मार्ग से लौटाता है ॥१८॥ भगवान् श्रीकृष्ण के चरण-कमल की भक्ति का त्याग कराकर पुत्र को अन्य विषयों में प्रवृत्त कराने वाला पिता कुत्सित पिता है। दारा (स्त्री) ग्रहण करना केवल दुःखदायी होता है, सुखकारक नहीं। वह तप, स्वर्ग, भुक्ति एवं मुक्ति के कर्मों में व्यव-धायक है ॥१९-२०॥ ब्रह्मन्! मूढ़चेता गृहस्थों के यहाँ तीन प्रकार की साध्वी, भोग्या और कुलटा स्त्रियाँ होती हैं। ये सभी स्वार्थपरायण होती हैं ॥२१॥ साध्वी परलोक के भय से और अपने यश के लिए तथा कामानुराग वश भी निरन्तर पति की सेवा करती हैं ॥२२॥ भोगार्थिनी भोग्या केवल भोग के लिए कामानुरागवश कान्त की सेवा

भोग्या भोगार्थिनी शश्वत्कामस्नेहेन केवलम्। कुरुते कान्तसेवां च न च भोगादृते क्षणम् ॥२३॥
वस्त्रालंकारसंभोगसुस्निग्धाहारमुत्तमम्। यावत्प्राप्नोति सा भोग्या तावच्च वशगा प्रिया ॥२४॥
कुलाङ्गारसमा नारी कुलटा कुलनाशिनी। कपटात्कुरुते सेवां स्वामिनो न च भक्तितः ॥२५॥
सदा पुंयोगमाशंसुर्मनसा मदनातुरा। आहारादधिकं जारं प्रार्थयन्ती नवं नवम् ॥२६॥
जारार्थे स्वपतिं तात हन्तुमिच्छति पुंश्चली। तस्यां यो विश्वसेन्मूढो जीवनं तस्य निष्फलम् ॥२७॥
कथिता योषितः सर्वा उत्तमाधममध्यमाः। स्वात्मारामा विजानन्ति मनस्तासां न पण्डिताः ॥२८॥
हृदयं क्षुरधाराभं शरत्पद्मोत्सवं मुखम्। सुधासमं सुमधुरं वचनं स्वार्थसिद्धये ॥२९॥
प्रकोपे विषतुल्यं च विश्वासे सर्वनाशनम्। दुर्ज्ञेयं तदभिप्रायं निगूढं कर्म केवलम् ॥३०॥
सदा तासामविनयः प्रबलं साहसं परम्। दोषोत्कर्षश्छलोत्कर्षः शश्वन्माया दुरत्यया ॥३१॥
पुंसश्चाष्टगुणः कामः शश्वत्कामो जगद्गुरो। आहारो द्विगुणो नित्यं नैष्ठुर्यं च चतुर्गुणम् ॥३२॥
कोपः पुंसः षड्गुणश्च व्यवसायश्च निश्चितम्। यत्रेमे दोषनिवहाः काऽऽस्था तत्र पितामह ॥३३॥
का क्रीडा किं सुखं पुंसो विण्मूत्रमलवेश्मनि। तेजः प्रणष्टं संभोगे दिवाऽऽलापे यशःक्षयः ॥३४॥

करती है। और किसी हेतु से वह क्षण भर भी सेवा नहीं करती ॥२३॥ वह जब तक वस्त्र, आभूषण, सम्भोग और अत्यन्त स्निग्ध एवं उत्तम पदार्थ पाती है तभी तक वह पति के अधीन रहकर प्यारी बनी रहती है ॥२४॥ कुलटा स्त्री कुल में अंगार के समान है तथा कुलनाशिनी है। वह पति की सेवा सदैव कपटपूर्वक करती है, भक्तिपूर्वक कभी नहीं। वह सदा कामातुर रहकर पुरुष-संयोग चाहती रहती है। आहार से अधिक नये-नये जार पुरुष को चाहती है ॥२५-२६॥ तात ! जार के निमित्त यह पुंश्चली अपने पति की हत्या कर देती है। इसलिए जो मूर्ख उसमें विश्वास रखता है, उसका जीवन व्यर्थ है ॥२७॥ इस प्रकार मैंने उत्तम अधम और मध्यम स्त्रियों को बता दिया है। इनके मनोभाव को स्वात्माराम (अपने आप में रमण करने वाले योगी) ही जान सकते हैं, पंडित नहीं ॥२८॥ उनका हृदय क्षुर की धार के समान (तीक्ष्ण) और मुख शारदीय कमल के समान (कोमल) होता है। वह अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए अमृत समान अत्यन्त मधुर वाणी बोलती है ॥२९॥ कोप करने पर विष के समान उनके मुख से दुःसह वचन निकलता है। उनकी बातों पर विश्वास करने से सर्वनाश हो जाता है। उनके अभिप्राय को समझना बहुत कठिन है। केवल उनका कर्म अत्यन्त निगूढ़ होता है ॥३०॥ उन लोगों में सदा अविनयभाव (उद्दण्डता) प्रबल और पराकाष्ठा का साहस, दोषों और कपटों का उत्कर्ष तथा निरन्तर दुरत्यय (कठिनता से पार की जाने वाली) माया होती है ॥३१॥ जगद्गुरो ! इनमें पुरुषों से आठ गुना अधिक काम निरन्तर बना रहता है और आहार की मात्रा दुगुनी तथा निष्ठुरता चौगुनी होती है ॥३२॥ पुरुष से छह गुना अधिक कोप तथा उद्योग होता है। पितामह ! जिसमें इतने दोषसमूह वर्तमान रहते हैं, उस पर आस्था क्या होगी ? मलमूत्रभाण्डागार रूप स्त्री-शरीर से पुरुष को क्या सुख मिलेगा और क्या मनोविनोद होगा ? उससे सम्भोग करने पर तेज का क्षय होता है और दिन में बातचीत करने से यश का नाश होता है ॥३३-३४॥ उससे

धनक्षयोऽतिप्रीतौ चात्यासक्तौ च वपुःक्षयः। साहित्ये पौरुषं नष्टं कलहे माननाशनम्॥
सर्वनाशश्च विश्वासे ब्रह्मन्नारीषु किं सुखम् ॥३५॥
यावद्धनी च तेजस्वी सश्रीको योग्यतापरः। पुमान्नारीं वशीकर्तुं समर्थस्तावदेव हि॥३६॥
रोगिणं निर्धनं वृद्धं योषिद्वै प्रेक्षतेऽप्रियम्। लोकाचारभयात्तस्मै ददात्याहारमल्पकम्॥३७॥
इत्येवं कथितं सर्वं ब्रह्मन्नात्मागमो यथा। सर्वं जानासि सर्वज्ञ स्वात्मारामेश्वरो भवान्॥३८॥
अनुग्रहं कुरु विभो विदायं देहि सांप्रतम्। कृष्णभक्तिं प्रार्थयामि त्वयि कल्पतरोः परे॥३९॥
इत्युक्त्वा नारदस्तत्र धृत्वा तातपदाम्बुजम्। आज्ञां ययाचे पितरं गन्तुं तपसि मङ्गले॥४०॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकंधरः। कृत्वा प्रदक्षिणं नत्वा ब्रह्माणं गन्तुमुद्यतः॥४१॥
गच्छन्तं तनयं दृष्ट्वा विधाता जगतां मुने। रुरोदोच्चैर्मुक्तकण्ठं महासांसारिको यथा॥४२॥
करे धृत्वा समालिङ्ग्य चुचुम्ब च पुनः पुनः। चिरं वक्षसि कृत्वा च वासयामास जानुनि॥४३॥
स्वात्मारामेश्वरो ब्रह्मा योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः। भेदं सोढुं न शक्तोऽभूद्विच्छेदो दुःसहो नृणाम्॥४४॥
कातरः पुत्रभेदेन मोहितो विष्णुमायया। शोकार्तो वक्तुमारेभे सुतं संबोध्य शौनक॥४५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० ब्रह्म० सौ० ब्रह्मनारदसंवादो नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥२३॥

अति प्रीति करने पर धन का नाश, अत्यन्त आसक्त होने पर शरीर का नाश, संयोग करने से पौरुष-नाश, कलह करने से माननाश और विश्वास करने से सर्वनाश होता है। अतएव ब्रह्मन्! स्त्रियों से क्या सुख मिल सकता है? ॥३५॥ जब तक मनुष्य धनी, तेजस्वी, श्रीसम्पन्न और योग्य है तभी तक वह स्त्रियों को वशीभूत रखने में समर्थ होता है ॥३६॥ स्त्रियाँ रोगी निर्धन और वृद्ध पति को प्रेम से नहीं देखती हैं, केवल लोकाचार के भय से उसे थोड़ा भोजन दे देती हैं॥३७॥ ब्रह्मन्! इस प्रकार मैंने अपने बोध के अनुसार सब कुछ बता दिया। सर्वज्ञ! आप सब कुछ जानते हैं। क्योंकि आप आत्माराम पुरुषों के अधीश्वर हैं। अब मुझे बिदा दें। विभो! मेरे ऊपर कृपा करें। आप कल्पवृक्ष से भी बढ़कर हैं। मैं आपसे श्रीकृष्ण-भक्ति की याचना करता हूँ॥३८-३९॥ इतना कहकर नारद ने पिता ब्रह्मा के चरण-कमलों को पकड़कर संगलमय तप के निमित्त जाने के लिये उनसे आज्ञा माँगी।॥४०॥ उपरान्त वे हाथ जोड़कर भक्ति से ग्रीवा झुकाकर ब्रह्मा की प्रदक्षिणा और नमस्कार करके (तपस्यार्थ) जाने को उद्यत हो गये॥४१॥ मुने! पुत्र को तप के हेतु जाते हुए देखकर जगत् के विधाता ब्रह्मा, महासंसारी (अज्ञानी) प्राणी की भाँति फूट-फूट कर रोने लगे॥४२॥ अनन्तर उनका हाथ पकड़ कर आलिंगन और बार-बार चुम्बन करके वक्षःस्थल से चिपका कर देर तक घुटनों पर बैठाये रहे॥४३॥ स्वात्मारामों (योगी पुरुषों) के ईश्वर और योगीन्द्रों के गुरु के गुरु होते हुए भी ब्रह्मा उनका वियोग सहन करने में समर्थ न हो सके। क्योंकि वियोग मनुष्यों के लिए दुःसह होता है॥४४॥ शौनक! भगवान् विष्णु की माया से मोहित होने के कारण पुत्र-वियोग-जन्य दुःख से कातर और शोकार्त्त होकर (ब्रह्मा) पुत्र को सम्बोधित करके कहने लगे॥४५॥

श्री ब्रह्मवैवर्त महापुराण के ब्रह्मखण्ड में ब्रह्म-नारद-संवाद नामक तेईसवाँ अध्याय समाप्त॥२३॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

श्रीब्रह्मोवाच

त्वं गच्छ तपसे वत्स किं मे संसारकर्मणि । अहं यास्यामि गोलोकं विज्ञातुं कृष्णमीश्वरम् ।।१।।
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः । सनत्कुमारो वैरागी चतुर्थः पुत्र एव च ।।२।।
यती हंसी चारुणिश्च वोढुः पञ्चशिखस्तथा । पुत्रास्तपस्विनः सर्वे किं मे संसारकर्मणि ।।३।।
वचस्करो मरीचिर्मे अङ्गिराश्च भृगुस्तथा । [1]रुचिरत्रिः कर्दमश्च प्रचेताश्च क्रतुर्मनुः ।।४।।
वसिष्ठो वशगः शश्वत्सर्वेषु च सुतेषु च । अन्येऽविवेकिनोऽसाध्याः किं ते संसारकर्मणि ।।५।।
निबोध वत्स वक्ष्यामि वेदोक्तं वचनं शुभम् । पारम्पर्यक्रमपरं चतुर्वर्गफलप्रदम् ।।६।।
धर्मार्थकाममोक्षांश्च सर्वे वाञ्छन्ति पण्डिताः । वेदप्रणिहितानेतान्सभासु मुनिशंसितान् ।।७।।
वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः । आदौ विप्रो यज्ञसूत्रं परिधाय सुखं सुखी ।।८।।
समधीत्य ततो वेदान्ददाति गुरुदक्षिणाम् । ततः प्रकृष्टकुलजां सुविनीतां समुद्वहेत् ।।९।।

अध्याय २४

ब्रह्मा द्वारा नारद को गृहस्थ-धर्म का उपदेश

ब्रह्मा बोले—वत्स ! तुम तप करने के लिए चले जाओ। मुझे भी इस संसार-सृष्टि से क्या (प्रयोजन) है ? मैं भगवान् कृष्ण को जानने के लिए गोलोक जाऊँगा ।।१।। क्योंकि सनक, सनन्दन, सनातन और चौथा पुत्र सनत्कुमार—ये सब विरागी हो गये। यति, हंसी, आरुणि, वोढु, पञ्चशिख आदि पुत्र भी तपस्वी हो गये। तो मुझे इस संसार की सृष्टि से क्या (प्रयोजन) है ।।२-३।। मेरी बात मानने वाले मरीचि, अंगिरा, भृगु, रुचि, अत्रि, कर्दम, प्रचेता क्रतु और मनु ये मेरे आज्ञापालक हैं। इन सब पुत्रों में अधिक आज्ञापालक वशिष्ठ है जो सदा मेरे अधीन रहता है। उपर्युक्त पुत्रों के सिवा अन्य सब के सब अविवेकी तथा मेरी आज्ञा से बाहर हैं। ऐसी दशा में मेरा संसार की सृष्टि से क्या प्रयोजन है ? ।।४-५।। वत्स ! सुनो, मैं तुम्हें वेदोक्त मंगलमय वचन सुना रहा हूँ। वह वचन परम्पराक्रम से पालित होता आ रहा है तथा धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष रूप चारों पुरुषार्थों को देने वाला है ।।६।। वेदों में लिखित और सभाओं में मुनियों द्वारा प्रशंसित धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को सभी विद्वान् चाहते हैं ।।७।। वेद में जिसका विधान है, वह धर्म है और जिसका निषेध है वह अधर्म है। ब्राह्मण सर्वप्रथम सुख-पूर्वक यज्ञोपवीत धारण कर वेदों का अध्ययन करे, पश्चात् गुरुदक्षिणा प्रदान करे। इसके बाद किसी उत्तम कुल की अत्यन्त विनीत कन्या का पाणिग्रहण (विवाह) करे ।।८-९।। उत्तम कुल में उत्पन्न नारी पतिव्रता तथा सदैव

१क. ०चिर्बर्हिः क०

सा साध्वी कुलजा या च पतिसेवासु तत्परा। सद्वंशे दुर्विनीता च संभवेन्न कदाचन
आकरे पद्मरागाणां जन्म काचमणेः कुतः ॥१०॥
असद्वंशप्रसूता या पित्रोर्दोषेण नारद। दुर्विनीता च सा दुष्टा स्वतन्त्रा सर्वकर्मसु॥११॥
न वत्स दुष्टाः सर्वाश्च योषितः कमलाकलाः। स्वर्वेश्यांशाश्च कुलटा असद्वंशसमुद्भवाः॥१२॥
निर्गुणं स्वामिनं साध्वी सेवते च प्रशंसति। न सेवते च कुलटा प्रियं निन्दति सद्‌गुणम्॥१३॥
साधुः सद्वंशजां कन्यां प्रयत्नेन परिग्रहेत्। तस्यां पुत्रान्समुत्पाद्य वृद्धस्तु तपसे व्रजेत्॥१४॥
वरं हुतवहे वासः सर्पवक्त्रे च कण्टके। एतेभ्यो दुःखदो वासः स्त्रिया दुर्मुखया सह॥१५॥
मत्तोऽधीतस्त्वया वेदो मह्यं च गुरुदक्षिणाम्। पुत्र देहीदमेवेह कुरु दारपरिग्रहम्॥१६॥
वत्स त्वं कुलजातां च पूर्वपत्नीं च मालतीम्। विवाहं कुरु कल्याण कल्याणे च दिनेऽनघ॥१७॥
मनुवंशोद्भवस्येह सृञ्जयस्य गृहे सती। त्वत्कृते जन्म लब्ध्वा च कुरुते भारते तपः॥१८॥
गृहाणीष्व परमां रत्नमालां च कमलाकलाम्। भारते न भवेद्व्यर्थं जनानां तपसः फलम्॥१९॥
आदौ भवेद्गृही लोको वानप्रस्थस्ततः परम्। ततस्तपस्वी मोक्षाय क्रम एष श्रुतौ श्रुतः॥२०॥
वैष्णवानां हरेरर्चा तपस्या च श्रुतौ श्रुता। वैष्णव त्वं गृहे तिष्ठ कुरु कृष्णपदार्चनम्॥२१॥

पति-सेवा में तत्पर रहती है। कुल की स्त्री कभी दुर्विनीता नहीं होती है। पद्मराग मणि की खान में काचमणि कैसे उत्पन्न हो सकती है? ॥१०॥ नारद! नीच कुल में उत्पन्न स्त्री ही माता-पिता के दोष से दुर्विनीता (उद्धतस्वभावा), दुष्ट और सभी कर्म करने में स्वतन्त्र होती है॥११॥ वत्स! सभी स्त्रियाँ दुष्टा नहीं होती हैं; क्योंकि वे लक्ष्मी की कलायें हैं। जो अप्सराओं के अंश से तथा नीच कुल में उत्पन्न होती हैं, वे ही स्त्रियाँ कुलटा हुआ करती हैं॥१२॥ पतिव्रता स्त्री गुणहीन पति की भी सेवा और प्रशंसा करती है, किन्तु कुलटा स्त्री सदगुणी पति की भी सेवा नहीं करती है, अपितु उसके सद्‌गुणों की निन्दा ही करती है॥१३॥ इसीलिए साधुप्रकृति के पुरुष प्रयत्नपूर्वक सत्कुलीना कन्या के साथ विवाह कर उससे पुत्रोत्पादन करते हैं और वृद्ध होने पर तपस्या के लिए चले जाते हैं॥१४॥ अग्नि, सर्प के मुख और काँटे पर निवास करना अच्छा है किन्तु मुख से दुर्वचन निकालने वाली स्त्री के साथ रहना कदापि अच्छा नहीं है, वह इन अग्नि, सर्प और कंटक से भी अधिक दुःखदायिनी होती है। ॥१५॥ पुत्र! मुझसे तुमने वेदाध्ययन किया है, अतः मुझे यही गुरुदक्षिणा प्रदान करो—'तुम विवाह कर लो।' वत्स! तुम्हारी पूर्वपत्नी कुलीना मालती ने पुनः जन्म ग्रहण किया है। निष्पाप! किसी शुभ दिन में उसके साथ विवाह करो॥१६-१७॥ मनुवंश में उत्पन्न राजा सृञ्जय के घर में जन्म लेकर वह सती तुम्हें पाने के लिए भारतवर्ष में तप कर रही है॥१८॥ इस समय उसका नाम रत्नमाला है। वह लक्ष्मी की कला है। तुम उसे ग्रहण करो। क्योंकि भारतवर्ष में मनुष्यों के तप का फल व्यर्थ नहीं होता है॥१९॥ मनुष्य सर्वप्रथम गृहस्थ, अनन्तर वानप्रस्थ और उसके पश्चात् मोक्ष के लिए तपस्वी (संन्यासी) हो—ऐसा क्रम वेदों में सुना गया है॥२०॥ वेदों में कहा गया है कि भगवान् की अर्चना करना ही वैष्णवों की तपस्या है॥२१॥ अतः वैष्णव! तुम घर में रहो और भगवान् श्रीकृष्ण के चरण-कमल की अर्चना

अन्तर्बाह्ये हरिर्यस्य तस्य किं तपसा सुत ॥२२॥
नान्तर्बाह्ये हरिर्यस्य तस्य किं तपसा फलम्। तपसा हरिराराध्यो नान्यः कश्चन विद्यते॥२३॥
यत्र तत्र कृतं कृष्णसेवनं परमं तपः। वत्स मद्वचनेनैव गृहे स्थित्वा हरिं भज॥२४॥
गृही भव मुनिश्रेष्ठ गृहीणां सर्वदा सुखम्। कामिन्यां[1] सुखसंभोगः स्वर्गभोगसमो मतः॥२५॥
तद्दर्शनमुपस्पर्शं वाञ्छन्त्येव मुमुक्षवः। सर्वस्पर्शसुखात्स्त्रीणामुपस्पर्शसुखं वरम्॥२६॥
ततः सुखतमे पुत्रदर्शनस्पर्शने मुने। सर्वेभ्यः प्रेयसी कान्ता प्रिया तेन प्रकीर्तिता॥२७॥
पुत्रप्रयोजना कान्ता शतकान्ताप्रियः सुतः। नास्ति पुत्रात्परो बन्धुर्नास्ति पुत्रात्परः प्रियः॥२८॥
सर्वेभ्यो जयमन्विच्छेत्पुत्रादेकात्पराजयम्। न चाऽऽत्मनोऽप्रियोऽर्थश्च तस्मादपि सुतः प्रियः॥२९॥
अतः प्रियतमे पुत्रे न्यसेदात्मपरं धनम्। इत्येवमुक्त्वा स ब्रह्मा विरराम च शौनक
उवाच वचनं तातं नारदो ज्ञानिनां वरः ॥३०॥

नारद उवाच

स्वयं विज्ञाय सर्वार्थं स्वपुत्रं वेददर्शने। प्रवर्तयत्यसन्मार्गे स दयालुः कथं पिता॥३१॥
जलबुद्बुदवत्सर्वं संसारमतिनश्वरम्। जलरेखा यथा मिथ्या तथा ब्रह्मञ्जगत्त्रयम्॥३२॥

करो। पुत्र ! जिसके भीतर और बाहर विष्णु विराजमान हैं, उसे तप करने की क्या आवश्यकता है॥२२॥ निष्पाप ! जिसके भीतर-बाहर हरि नहीं हैं उसे भी तप करने से क्या लाभ हो सकता है ? क्योंकि तप द्वारा विष्णु की ही अर्चना की जाती है अन्य की नहीं॥२३॥ पुत्र ! जहाँ-तहाँ कहीं भी रहकर की हुई श्रीकृष्ण की सेवा सर्वोत्तम तप है। अतः तुम मेरी बात मानकर घर रहो और भगवान् को भजो॥२४॥ मुनिश्रेष्ठ ! गृही बनो, गृहस्थों को सर्वदा सुख मिलता है। कामिनी का सुख-सम्भोग स्वर्गभोग के समान है॥२५॥ मुमुक्षु पुरुष भी उसका दर्शन और स्पर्शन चाहते हैं। सभी के स्पर्श-सुख से स्त्री का स्पर्श-सुख श्रेष्ठ कहा गया है॥२६॥ मुने ! उससे अधिक सुख-दायक पुत्रदर्शन और उसका स्पर्शन होता है। सबसे अधिक प्रिय पत्नी होती है। इसलिए उसे 'प्रिया' कहा गया है॥२७॥ पुत्ररूप प्रयोजन सम्पन्न करने के लिए स्त्री की आवश्यकता होती है और सैकड़ों स्त्रियों से भी अधिक प्रिय पुत्र होता है। पुत्र से बढ़ कर बन्धु और प्रिय कोई नहीं है॥२८॥ सबसे जीतने की इच्छा करे। एकमात्र पुत्र से ही पराजय की कामना करे। कोई भी प्रिय पदार्थ अपने लिए नहीं (पुत्र के लिए) रखा जाता है, इसलिए पुत्र प्रिय होता है॥२९॥ अतः प्रियतम पुत्र को अपना श्रेष्ठ धन भी सौंप देना चाहिए। शौनक ! इतना कह कर ब्रह्मा चुप हो गये। अनन्तर ज्ञानिश्रेष्ठ नारद ने अपने पिता से कहा॥३०॥

नारद बोले—जो स्वयं वेदों और दर्शनों को जानकर अपने पुत्र को निकृष्ट मार्ग में लगाता है वह पिता दयालु कैसे कहा जा सकता है ?॥३१॥ ब्रह्मन् ! यह समस्त संसार जल के बुलबुले के समान अत्यन्त नाशशील और जल-रेखा की भाँति मिथ्या है॥३२॥ हरिदास्य को छोड़कर इस चञ्चल मन को विषय-वासना में नहीं लगाना चाहिए।

१क. ०मिन्या सह सं०।

विहाय हरिदास्यं च विषये यन्मनश्चलम्। दुर्लभं मानवं जन्म मा भूत्तन्निष्फलं क्वचित् ।।३३।।
का वा कस्य प्रिया पुत्रो बन्धुः को वा भवार्णवे। कर्मोर्मिभिर्योजना च तदपायो वियोजना ।।३४।।
सुकर्म कारयेद्यो हि तन्मित्रं स पिता गुरुः। दुर्बुद्धिं जनयेद्यो हि स रिपुः स्यात्कथं पिता ।।३५।।
इत्येवं कथितं तात वेदबीजं यथागमम्। ध्रुवं तथाऽपि कर्तव्यं तवाऽऽज्ञापरिपालनम् ।।३६।।
आदौ यास्यामि भगवन्नरनारायणाश्रमम्। नारायणकथां श्रुत्वा करिष्ये दारसंग्रहम् ।।३७।।
इत्येवमुक्त्वा स मुनिर्विरराम पितुः पुरः। पुष्पवृष्टिस्तदुपरि तत्क्षणेन बभूव ह ।।३८।।
क्षणं पितुः पुरः स्थित्वा नारदो मुनिसत्तमः। उवाच च पुनर्वेदं वचनं मङ्गलप्रदम् ।।३९।।

नारद उवाच

देहि मे कृष्णमन्त्रं च यन्मनोवाञ्छितं मम। तत्संबन्धि च यज्ज्ञानं यत्र तद्गुणवर्णनम् ।।४०।।
ततः पश्चात्करिष्यामि त्वत्प्रीत्या दारसंग्रहम्। मानसे परिपूर्णे च कार्यं कर्तुं पुमान्सुखी ।।४१।।
नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहृष्टः कमलोद्भवः। उवाच पुनरेवेदं पुत्रं ज्ञानविदां वरः ।।४२।।

ब्रह्मोवाच

पत्युर्मन्त्रं पितुर्मन्त्रं न गृह्णीयाद्विचक्षणः। विविक्ताश्रमिणां चैव न[1] मन्त्रः सुखदायकः ।।४३।।
निषेकाल्लभ्यते मन्त्रो [2]गुरुर्भर्ता च कामिनी। विद्या सुखं भयं दुःखं पुरुषैः स्वेच्छया न च ।।४४।।

क्योंकि यह मानव-जन्म दुर्लभ है, अतः यह कहीं निष्फल न हो जाये ।।३३।। इस संसार-सागर में कौन किसकी प्रिया, कौन पुत्र और कौन बन्धु है। कर्मों की तरंगों द्वारा सबका संयोग होता है और कर्मों के नाश से ये एक-दूसरे से बिछुड़ जाते हैं।।३४।। जो सुकर्म कराता है, वही मित्र, पिता और गुरु है। और जो दुर्बुद्धि उत्पन्न कराता है, वह पिता नहीं शत्रु है।।३५।। तात! इस प्रकार मैंने शास्त्र के अनुसार वेद का बीज (सारतत्त्व) कहा है। यद्यपि यह ध्रुव सत्य है तथापि मुझे आपकी आज्ञा का पालन करना चाहिए।।३६।। भगवन्! पहले मैं नरनारायण के आश्रम में जाऊँगा। वहाँ नारायण की वार्ता सुनने के पश्चात् दारपरिग्रह (विवाह) करूँगा।।३७।। इतना कह कर नारद मुनि पिता के सम्मुख चुप हो गये। उसी क्षण उनके ऊपर पुष्पों की वृष्टि हुई।।३८।। मुनिश्रेष्ठ नारद थोड़ी देर पिता के सामने खड़े रहकर पुनः मंगलप्रद वचन बोले।।३९।।

नारद बोले—मुझे भगवान् श्रीकृष्ण का मंत्र प्रदान कीजिये, जो मेरे मन को अत्यन्त अभीष्ट है। श्रीकृष्ण मंत्र संबंधी जो ज्ञान है तथा जिसमें उनके गुणों का वर्णन है, वह सब भी मुझे बताइए।।४०।। उसके अनन्तर आपकी प्रसन्नता के लिए मैं विवाह करूँगा। क्योंकि अभीष्ट कार्य की सिद्धि होने पर ही मनुष्य सुखी होकर अन्य कार्यों में प्रवृत्त होता है।।४१।। ज्ञानवेत्ताओं में श्रेष्ठ ब्रह्मा नारद की बातें सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और फिर पुत्र से बोले।।४२।।

ब्रह्मा ने कहा—बुद्धिमान् व्यक्ति पिता और पति से मंत्र न ले। संन्यासियों से मंत्र लेना भी सुखदायक नहीं होता है।।४३।। मनुष्य जन्म-कर्मानुसार मंत्र गुरु, स्वामी, स्त्री, विद्या, सुख, भय तथा दुःख प्राप्त करता है। इन्हें वह स्वेच्छा से प्राप्त नहीं कर सकता।।४४।। वत्स! महेश्वर तुम्हारे पुरातन गुरु हैं और हमारे भी। अतः

१क. न पुत्रः सु०। २क. ०र्भक्ता च।

महेश्वरस्तव गुरुः प्राक्तनो नः पुरातनः। गच्छ वत्स शिवं शान्तं शिवदं ज्ञानिनां गुरुम् ॥४५॥
तत एव भवान्मन्त्रं ज्ञानं लब्ध्वा पुरातनात्। नारायणकथां श्रुत्वा शीघ्रमागच्छ मद्गृहम् ॥४६॥
इत्युक्त्वा जगतां धाता विरराम च शौनक। प्रणम्य पितरं भक्त्या शिवलोकं ययौ मुनिः ॥४७॥

इति श्री० म० सौ० ब्र० ब्रह्मनारदोक्तसंसारसुखासुखवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः।

सौतिरुवाच

क्षणेन विप्रप्रवरो मुदाऽन्वितो जगाम शंभोः सदनं मनोहरम्।
उर्ध्वं ध्रुवाद्योजनलक्षमीप्सितं महार्हरत्नौघविनिर्मितं महत् ॥१॥
निराश्रये योगबलेन शंभुना धृतं विचित्रं विविधालयान्वितम्।
दृष्टं सुपुण्याशयसाधकैर्वरैर्मुनीन्द्रवर्यैः[1] परिपूरितं शुभम् ॥२॥
मयूखशून्यं रविचन्द्रयोर्मुने हुताशनैर्वेष्टितमेव केवलम्।
प्राकाररूपैरतिरिक्तवर्धितैरुच्चैरसंख्याप्रमितैः शिखोज्ज्वलैः ॥३॥

उन्हीं शिव के पास जाओ, जो शान्त, कल्याणप्रद और ज्ञानियों के गुरु हैं ॥४५॥ उन्हीं प्राचीन गुरु से मन्त्र लेकर नारायण की कथा-वार्ता सुनो और शीघ्र मेरे घर लौट आओ ॥४६॥ शौनक! जगत् के विधाता (ब्रह्मा) इतना कहकर चुप हो गये और नारद मुनि भी भक्तिपूर्वक पिता को प्रणाम करके शिवलोक को चले गये ॥४७॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में ब्रह्म-नारद-संवाद-प्रकरण में संसार के सुख-दुःख वर्णन नामक चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४॥

अध्याय २५

नारद को भगवान् शिव का दर्शन

सौति बोले—विप्रवर नारद प्रसन्न होकर क्षणभर में शंकर के मनोहर सदन में पहुँच गये, जो ध्रुव से भी एक लाख योजन ऊपर अत्यन्त अमूल्य रत्नों से बनाया गया है ॥१॥ आधारशून्य आकाश में शंकर ने योगबल द्वारा अनेक भाँति के विचित्र भवनों से अपने लोक को सजा दिया है। पवित्र अन्तःकरण वाले श्रेष्ठ साधकों तथा मुनीन्द्र-शिरोमणि महात्माओं से वह लोक परिपूर्ण है ॥२॥ सूर्य और चन्द्रमा की किरणें वहाँ नहीं पहुँचती हैं। परकोटों के रूप में ऊँचे, बहुत बढ़े हुए तथा ज्वालाओं से जगमगाते हुए असंख्य पावक उस लोक को घेरकर स्थित हैं ॥३॥ वह उत्तमपुरी एक लाख योजन विस्तृत है, जिसमें उत्तम रत्नों से भूषित तीन करोड़ गृह हैं, जो

१क. ०रैर्मणीन्द्रसारैर्ज्वलितं दिवानिशम्।

पुरं वरं योजनलक्षविस्तृतं त्रिकोटिरत्नेन्द्रगृहान्वितं सदा।
विराजितं हीरकसारनिर्मितैश्चित्रैर्विचित्रैर्विविधैर्मनोहरैः ॥४॥
माणिक्यमुक्तामणिदर्पणैर्युतं न स्वप्नदृष्टं द्विज विश्वकर्मणः।
आकल्पमेकैः शिवसेवितैर्जनैर्निषेवितं संततमेव शौनक ॥५॥
सिद्धैर्नियुक्तं शतकोटिलक्षकैस्त्रिकोटिलक्षैश्च युतं स्वपार्षदैः।
युक्तं त्रिलक्षैर्विकटैश्च भैरवैः क्षेत्रैश्चतुर्लक्षशतैश्च वेष्टितम् ॥६॥
सुरद्रुमैर्वेष्टितमेव संततं मन्दारवृक्षप्रवरैः सुपुष्पितैः।
विराजितं सुन्दरकामधेनुभिर्यथा बलाकाशतकैर्नभस्तलम् ॥७॥
दृष्ट्वा मुनिर्विस्मयमाप मानसे किं[1] नात्र चित्रं सुरयोगिनां गुरौ।
लोकं त्रिलोकाच्च विलक्षणं परं भीमृत्युरोगार्तिजराहरं वरम् ॥८॥
दूरे सभामण्डलमध्यगं शिवं ददर्श शान्तं शिवदं मनोहरम्।
पद्मत्रिनेत्रं विधुपञ्चवक्त्रकं गङ्गाधरं निर्मलचन्द्रशेखरम् ॥९॥
प्रतप्तहेमाभजटाधरं विभुं दिगम्बरं शुभ्रमनन्तमक्षरम्।
मन्दाकिनीपुष्करबीजमालया कृष्णेति नामैव मुदा जपन्तम् ॥१०॥

हीरों के सारभाग से निर्मित, चित्रविचित्र मनोहर तथा अनेक प्रकार के हैं ॥४॥ द्विज! शौनक! वे मणियों, मोतियों और मणि के दर्पणों से सुशोभित हैं, जिन्हें विश्वकर्मा स्वप्न में भी नहीं देख सकते। ऐसे महलों में एकमात्र शिवभक्त ही निरन्तर वास करते हैं ॥५॥ वह शिवलोक सौ करोड़ लाख सिद्धों और तीन करोड़ लाख शिव-पार्षदों से युक्त है। वहाँ तीन लाख विकट भैरव निवास करते हैं। सैकड़ों लाख क्षेत्र उसे घेरे हुए हैं ॥६॥ सुन्दर पुष्पों से भरे हुए मंदार आदि देववृक्षों से वह सदा आवेष्टित है। सुन्दर कामधेनुएँ उस धाम की उसी तरह शोभा बढ़ाती हैं जैसे सैकड़ों बलाकाएँ आकाश की ॥७॥ उसे देखकर मुनि नारद के मन में आश्चर्य उत्पन्न हुआ। वे सोचने लगे—जहाँ ज्ञानियों तथा योगियों के गुरु निवास करते हैं, वहाँ ऐसी विचित्रता का होना क्या आश्चर्य है? यह लोक तीनों लोकों से विलक्षण, श्रेष्ठ एवं भय, मृत्यु, रोग, दुःख और जरा का अपहरण करनेवाला है ॥८॥ वहाँ नारद ने दूर से देखा कि शंकर सभा-मंडप के मध्यभाग में विराजमान हैं जो शान्त, कल्याणप्रद, मनोहर, कमल की भाँति तीन नेत्र वाले, चन्द्रमाओं की भाँति (आनन्ददायक) पाँच मुख वाले और गंगाजी तथा निर्मल चन्द्रमा का मुकट धारण करने वाले हैं ॥९॥ वे अत्यन्त तपाये गये सुवर्ण की भाँति प्रभापूर्ण जटा धारण किये हुए हैं। दिगम्बर, उज्ज्वल वर्ण, अनन्त एवं अविनाशी शिव आकाशगंगा में उत्पन्न कमलों के बीज की माला से भगवान् श्रीकृष्ण का नाम आनन्द से जप रहे हैं ॥१०॥ उनके कंठ में सुन्दर नील चिह्न शोभा पाता है। वे नागराज के हार से अलं-

---

[1] क. किमत्र चि०।

सुनीलकण्ठं भुजगेन्द्रमण्डितं योगीन्द्रसिद्धेन्द्रमुनीन्द्रवन्दितम्।
सिद्धेश्वरं सिद्धविधानकारणं मृत्युञ्जयं कालयमान्तकारकम्॥११॥

प्रसन्नहास्यास्यमनोहरं वरं विश्वाश्रयाणां शिवदं वरप्रदम्।
सदाऽऽशुतोषं भवरोगवर्जितं भक्तप्रियं भक्तजनैकबन्धुम्॥१२॥

गत्वा समीपं मुनिरेष शूलिनं ननाम मूर्ध्ना पुलकाङ्कविग्रहः।
वीणां त्रितन्त्रीं क्वणयन्पुनर्जगौ कृष्णं स तुष्टाव कलं सुकण्ठः॥१३॥

दृष्ट्वा मुनीन्द्रप्रवरं च सस्मितं विधेः सुतं वेदविदां वरिष्ठम्।
योगीन्द्रसिद्धेन्द्रमहर्षिभिः सह हर्षेण पीठादुदपश्यदीश्वरः॥१४॥

ददौ च तस्मै मुनये ससंभ्रमादालिङ्गनं चाऽऽशिषमासनादिकम्।
पप्रच्छ भद्रागमनप्रयोजनं तपोधनं तं तपसां च शौनक॥१५॥

सद्रत्नसिंहासनसुन्दरे परश्चोवास शंभुर्वरपार्षदैः सह।
नोवास धातुस्तनयः कृताञ्जलिस्तुष्टाव भक्त्या प्रणतः प्रभुं द्विज॥१६॥

गन्धर्वराजेन कृतेन नारदः स्तोत्रेण रम्येण शुभप्रदेन च।
स्तुत्वा प्रणामं पुनरेव कृत्वा भवाज्ञयोवास भवस्य वामतः॥१७॥

कृत हैं। बड़े-बड़े योगीन्द्र, सिद्धेन्द्र और मुनीन्द्र उनके चरणों की वंदना करते हैं। वे सिद्धेश्वर हैं, सिद्धि-विधान के कारण है, मृत्युंजय हैं तथा काल और यम का भी अंत करने वाले हैं। उनका मुख प्रसन्नतासूचक हास्य से अत्यन्त सुन्दर है। वे सम्पूर्ण आश्रितों को कल्याण तथा अभीष्ट वर प्रदान करने वाले हैं। सदा शीघ्र ही सन्तुष्ट होने वाले, भवरोग से रहित भक्तजनों के प्रिय तथा भक्तों के एकमात्र बंधु हैं॥११-१२॥ ऐसे शूली शंकर जी के समीप जाकर रोमाञ्चित शरीर से मुनि ने मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। पश्चात् तीन तार वाली अपनी वीणा की झंकार करते हुए वे मधुर सुन्दर वाणी द्वारा भगवान् कृष्ण का गुण-गान करने लगे॥१३॥ वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ मुनीन्द्र-प्रवर ब्रह्मपुत्र नारद को देखकर मुसकराते हुए शिव योगीन्द्रों, सिद्धेन्द्रों और महर्षियों समेत आसन से उठकर खड़े हो गए॥१४॥ शौनक! शंकर जी ने निःसंकोच तपोधन नारद का आलिंगन किया और उन्हें आशिष, आसन आदि प्रदान कर उनके शुभा-गमन का प्रयोजन पूछा॥१५॥ द्विज! भगवान् शंकर उत्तम रत्नों के सुन्दर सिंहासन पर अपने पार्षदों समेत पुनः विराजमान हो गये, किन्तु ब्रह्मपुत्र नारद उस पर न बैठ कर केवल हाथ जोड़े भक्तिपूर्वक प्रणाम करके प्रभु शिव की स्तुति करने लगे॥१६॥ पश्चात् गन्धर्वराज कृत सुन्दर और शुभप्रद वेदोक्त स्तोत्र से स्तुति करके पुनः प्रणाम करने के अनन्तर शिवजी की आज्ञा ले नारद उनके वाम भाग में बैठ गये॥१७॥ वहीं

चकार तत्रैव निवेदनं शिवे मनोऽभिलाषं निजकामपूरके।
श्रुत्वा मुनेस्तद्वचनं कृपानिधिर्द्रुतं प्रतिज्ञाय चकार चोमिति ॥१८॥

इति श्री० म० सौ० ब्र० कैलासं प्रति नारदागमनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

अथ षड्विंशोऽध्यायः।

सौतिरुवाच

हरिस्तोत्रं च कवचं मन्त्रं पूजाविधिं परम्। हरं ययाचे देवर्षिर्ध्यानं च ज्ञानमेव च ॥१॥
स्तोत्रं च कवचं मन्त्रं ध्यानं पूजाविधिं तथा। तत्प्राक्तनीयज्ञानं च ददौ तस्मै महेश्वरः ॥२॥
सर्वं प्राप्य मुनिश्रेष्ठः परिपूर्णमनोरथः। उवाच प्रणतो भक्त्या गुरुं प्रणतवत्सलम् ॥३॥

नारद उवाच

आह्निकं ब्राह्मणानां च वद वेदविदां वर। स्वधर्मपालनं नित्यं यतो भवति नित्यशः ॥४॥

श्रीमहेश्वर उवाच

ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय ब्रह्मरन्ध्रस्थपङ्कजे। सूक्ष्मे सहस्रपत्रे स्वे निर्मले ग्लानिवर्जिते ॥५॥

उन्होंने जगत् की कामनाओं के पूरक भगवान् शिव से अपना मनोऽभिलाष प्रकट किया। मुनि की बातें सुनकर कृपानिधान शंकर जी ने भी शीघ्र प्रतिज्ञापूर्वक कहा—'बहुत अच्छा' ॥१८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में नारद का कैलाश-प्रस्थान नामक
पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२५॥

अध्याय २६

आह्निक आचार तथा भगवत्पूजन की विधि

सौति बोले—देवर्षि नारद ने भगवान् शंकर से श्रीहरि के स्तोत्र, कवच, मन्त्र, परमोत्तम पूजाविधान, ध्यान और तत्त्वज्ञान की याचना की ॥१॥ महेश्वर ने स्तोत्र, कवच, मन्त्र, ध्यान, पूजाविधान और उनका प्राक्तन ज्ञान उन्हें प्रदान किया ॥२॥ मुनिश्रेष्ठ नारद वह सब कुछ पाकर सफल मनोरथ हो गए। उन्होंने प्रणत होकर भक्तिपूर्वक अपने भक्तवत्सल गुरु से कहा ॥३॥

नारद बोले—वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ आप ब्राह्मणों के आह्निक (नित्यकर्म या दिनचर्या) बताने की कृपा करें, जिससे प्रतिदिन स्वधर्म का पालन हो सके ॥४॥

श्रीमहेश्वर बोले—ब्राह्ममुहूर्त (४ बजे रात) में शय्या से उठकर वस्त्र बदल कर अपने ब्रह्मरन्ध्र में स्थित सूक्ष्म, निर्मल, ग्लानिरहित सहस्रदल कमल पर विराजमान गुरुदेव का परम चिन्तन करे। ध्यान में यह देखे कि

रात्रिवासं परित्यज्य गुरुं तत्रैव चिन्तयेत्। व्याख्यामुद्राकरं प्रीतं सस्मितं शिष्यवत्सलम्॥६॥
प्रसन्नवदनं शान्तं परितुष्टं निरन्तरम्। साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपं च[1] परमं चिन्तयेत्सदा॥७॥
ध्यात्वैवं गुरुमाराध्य हृत्पद्मे निर्मले सिते। सहस्रपत्रे विस्तीर्णे देवमिष्टं विचिन्तयेत्॥८॥
यस्य देवस्य यद्ध्यानं यद्रूपं तद्विचिन्तयेत्। गृहीत्वा तदनुज्ञां च कर्तव्यं समयोचितम्॥९।
आदौ ध्यात्वा गुरुं नत्वा संपूज्य विधिपूर्वकम्। पश्चात्तदाज्ञामादाय ध्यायेदिष्टं प्रपूजयेत्॥१०॥
गुरुप्रदर्शितो देवो मन्त्रः पूजाविधिर्जपः। न देवेन गुरुर्दृष्टस्तस्माद्देवाद्गुरुः परः॥११॥
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुः प्रकृतिरीशाद्या गुरुश्चन्द्रोऽनलो रविः॥१२॥
गुरुर्वायुश्च वरुणो गुरुर्माता पिता सुहृत्। गुरुरेव परं ब्रह्म नास्ति पूज्यो गुरोः परः॥१३॥
अभीष्टदेवे रुष्टे च समर्थो रक्षणे गुरुः। न समर्था गुरौ रुष्टे रक्षणे सर्वदेवताः॥१४॥
यस्य तुष्टो गुरुः शश्वज्जयस्तस्य पदे पदे। यस्य रुष्टो गुरुस्तस्य सर्वनाशश्च सर्वदा॥१५॥
न संपूज्य गुरुं देवं यो मूढः पूजयेद्भ्रमात्। ब्रह्महत्याशतं पापी लभते नात्र संशयः॥१६॥
सामवेदे च भगवानित्युवाच हरिः स्वयम्। तस्मादभीष्टदेवाच्च गुरुः पूज्यतमः परः॥१७॥

ब्रह्मरन्ध्रवर्ती सहस्रदल कमल पर गुरुजी प्रसन्नतापूर्वक बैठे हैं, मंद-मंद मुसकरा रहे हैं, व्याख्या की मुद्रा में उनका हाथ उठा हुआ है और शिष्य के प्रति उनके हृदय में बड़ा स्नेह है। मुख पर प्रसन्नता छा रही है। वे शान्त तथा निरन्तर सन्तुष्ट रहने वाले हैं और साक्षात् परब्रह्म स्वरूप हैं। सदा इसी प्रकार उनका चिन्तन करना चाहिए। इस तरह ध्यान कर के मन-ही-मन गुरु की आराधना करे। तदनन्तर निर्मल, श्वेत, सहस्रदलभूषित, विस्तृत हृदय-कमल पर विराजमान इष्टदेव का चिन्तन करे। जिस देवता का जैसा ध्यान और जो रूप बताया गया है, वैसा ही चिन्तन करना चाहिए। क्रम यह है कि पहले गुरु का ध्यान करके उन्हें प्रणाम करे। फिर उनकी विधिवत् पूजा करने के पश्चात् उनकी आज्ञा ले इष्टदेव का ध्यान एवं पूजन करे। गुरु ही देवता के स्वरूप का दर्शन कराते हैं। वे ही इष्टदेव के मंत्र, पूजाविधि और जप का उपदेश देते हैं। गुरु ने इष्टदेव को देखा है, किन्तु इष्टदेव ने गुरु को नहीं देखा है, इसलिए गुरु इष्टदेव से भी बढ़कर हैं॥५-११॥ इसलिए गुरु ब्रह्मा, गुरु विष्णु, गुरु देव महेश्वर, गुरु आदि ईश्वरी प्रकृति और गुरु ही चन्द्र, अग्नि एवं सूर्य हैं॥१२॥ गुरु वायु, वरुण, माता-पिता, मित्र एवं परब्रह्म हैं। इसलिए गुरु से बढ़ कर कोई अन्य पूज्य नहीं है। ।१३॥ अभीष्ट देव के क्रुद्ध होने पर गुरु उससे रक्षा करने में समर्थ होता है। किन्तु गुरु के रुष्ट होने पर उससे रक्षा करने में सारे देवता भी मिल कर समर्थ नहीं होते हैं॥१४॥ जिस पर गुरु संतुष्ट रहता है, उसकी विजय पद-पद पर होती है और जिस पर गुरु रुष्ट रहता है, उसका सदैव सर्वनाश होता है॥१५॥ बिना गुरु की पूजा किए जो मूर्ख देव की पूजा करता है, वह पापी सौ ब्रह्महत्या का भागी होता है, इसमें संशय नहीं॥१६॥ इसे सामवेद में भगवान् विष्णु ने स्वयं कहा है। इसलिए गुरु इष्टदेव से भी बढ़ कर परम पूजनीय है॥१७॥

१क. च शिष्याणां चित्तनायकम् ।।७।। ध्यात्वा हृदाऽऽज्ञामादाय हृ०।

गुरुमिष्टं[1] स्वयं ध्यात्वा स्तुत्वा वै साधको मुने[2]। निर्मलं स्थलमासाद्य विण्मूत्रं ह्युत्सृजेन्मुदा ॥१८॥
जलं जलसमीपं च सरन्ध्रं प्राणिसंनिधिम्। देवालयसमीपं च वृक्षमूलं च वर्त्म च ॥१९॥
हलोत्कर्षस्थलं चैव सस्यक्षेत्रं च गोष्ठकम्। नदीकन्दरगर्भं च पुष्पोद्यानं च पङ्किलम् ॥२०॥
ग्रामाद्यभ्यन्तरं चैव नृणां गृहसमीपकम्। शङ्कुं सेतुं शरवणं श्मशानं वह्निसंनिधिम् ॥२१॥
क्रीडास्थलं महारण्यं मञ्चकाधःस्थलं तथा। वृक्षच्छायायुतं स्थानमन्तःप्राण्यवपर्णकम् ॥२२॥
दूर्वास्थानं कुशस्थानं वल्मीकस्थानमेव च। वृक्षारोपणभूमिं च कार्यार्थं च परिष्कृतम् ॥२३॥
एतत्सर्वं परित्यज्य सूर्यतापविवर्जितम्। कृत्वा गर्तं पुरीषं च मूत्रं च परिवर्जयेत् ॥२४॥
पुरीषमूत्रोत्सर्गं च दिवा कुर्यादुदङमुखः। पश्चिमाभिमुखो रात्रौ संध्यायां दक्षिणामुखः ॥२५॥
मौनी धृत्वा च निःश्वासं यथा गन्धो न संचरेत्। त्यक्त्वा मृदा समाच्छाद्य शौचं कुर्याद्विचक्षणः ॥२६॥
कृत्वा तु लोष्टशौचं च जलशौचं ततः परम्। मृद्युक्तं तज्जलं चैव तत्प्रमाणं निशामय ॥२७॥
एकां लिङ्गे मृदं दद्याद्वामहस्ते चतुष्टयम्। उभयोर्हस्तयोर्द्वे तु मूत्रशौचं प्रकीर्तितम् ॥२८॥
मूत्रशौचं द्विगुणितं मैथुनानन्तरं यदि। मैथुनानन्तरं यद्वा मूत्रशौचं चतुर्गुणम् ॥२९॥

मुने ! इस प्रकार सर्वप्रथम गुरु और इष्टदेव का स्वयं ध्यान और स्तुति करके प्रसन्न मन से निर्मल स्थान में जाकर मल-मूत्र का त्याग करे ॥१८॥ जल, जल के समीप, बिलयुक्त भूमि, प्राणियों के निवास के निकट, देवालय के समीप, वृक्षमूल, मार्ग, जोते हुए खेत, बीज बोये गए हुए खेत, गौओं के स्थान, नदी, कन्दरा के भीतर का स्थान, फुलवाड़ी कीचड़युक्त अथवा दलदल की भूमि, गाँव आदि के भीतर की भूमि, लोगों के घर के आसपास का स्थान, मेंख या खंभे के पास, पुल, सरकंडों के वन, श्मशान भूमि, अग्नि के समीप क्रीडास्थल, विशाल वन, मचान के नीचे का स्थान, पेड़ की छाया से युक्त स्थान, जहाँ भूमि के भीतर प्राणी रहते हों वह स्थान, जहाँ ढेर-के-ढेर पत्ते जमा हों वह स्थान, बाँबी, जहाँ वृक्ष लगाए गये हों वहाँ की भूमि तथा जो किसी विशेष कार्य के लिए झाड़-बुहार कर साफ की गई हो वह भूमि—इन सब को छोड़कर सूर्य के ताप से रहित स्थान में गड्ढा बना कर मल-मूत्र का त्याग करे ॥१९-२४॥ दिन में उत्तराभिमुख होकर मल मूत्र का त्याग करे और रात्रि में पश्चिमाभिमुख होकर मल-मूत्र का त्याग करे। संध्या समय दक्षिण दिशा की ओर मुख कर के मल-मूत्रोत्सर्ग करना चाहिए ॥२५॥ उस समय मौन रह कर जोर-जोर से साँस न लेते हुए मलत्याग करना चाहिए, जिससे (भीतर) दुर्गन्ध न प्रवेश कर सके। अनन्तर बुद्धिमान् पुरुष गुदा आदि अंगों को शुद्ध करे। पहले ढेले या मिट्टी से गुदा आदि की शुद्धि करे। तत्पश्चात् उसे जल से धोकर शुद्ध करे। मृत्तिकायुक्त जो जल शौच के काम में आता है, उसका प्रमाण सुनो ॥२६-२७॥ मूत्रत्याग के पश्चात् लिंग में एक बार, बाँये हाथ में चार बार और दोनों हाथों में दो बार मिट्टी लगानी चाहिए ॥२८॥ उसी प्रकार मैथुन के अनन्तर मूत्रत्याग की शुद्धि में दूनी या चौगुनी संख्या में मिट्टी लगानी चाहिए ॥२९॥

---

१ क. ०मिष्टसुरं ध्या०। २ क. ०ने। वेदोक्तं स्थ०।

एका लिङ्गे गुदे तिस्रस्तथा वामकरे दश। उभयोः सप्त दातव्याः पादः षष्ठेन शुध्यति ॥३०॥
पुरीषशौचं विप्राणां गृहिणामिदमेव च। विधवानां द्विगुणितं शौचमेवं प्रकीर्तितम् ॥३१॥
वैष्णवानां यतीनां च ब्रह्मर्षेर्ब्रह्मचारिणाम्। चतुर्गुणं च गृहिणां तेषां शौचं प्रकीर्तितम् ॥३२॥
नो यावदुपनीयेत द्विजः शूद्रस्तथाऽङ्गना। गन्धलेपक्षयकरं तेषां शौचं प्रकीर्तितम् ॥३३॥
शौचं क्षत्रविशोश्चैव द्विजानां गृहिणां समम्। द्विगुणं वैष्णवादीनां मुनीनां परिकीर्तितम् ॥३४॥
न्यूनाधिकं न कर्त्तव्यं शौचं शुद्धिमभीप्सता। प्रायश्चित्तं प्रयुज्येत विहितातिक्रमे कृते ॥३५॥
शौचं तन्नियमं मत्तः सावधानं निशामय। मृच्छौचे च शुचिर्विप्रोऽप्यशुचिश्च व्यतिक्रमे ॥३६॥
वल्मीकमूषिकोत्खातां मृदमन्तर्जलां तथा। शौचावशिष्टां गेहाच्च नाऽऽदद्याल्लेपसंभवाम् ॥३७॥
अन्तःप्राण्यवपर्णां च हलोत्खातां विशेषतः। कुशमूलोत्थितां चैव दूर्वामूलोत्थितां तथा ॥३८॥
अश्वत्थमूलान्नीतां च तथैव शयनोत्थिताम्। चतुष्पथाच्च गोष्ठानां गोष्पदानां तथैव च ॥३९॥
सस्यस्थलानां क्षेत्राणामुद्यानानां मृदं त्यजेत्। स्नातो वाऽप्यथवाऽस्नातो विप्रः शौचेन शुद्ध्यति ॥४०॥
शौचहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु। कृत्वा शौचमिदं विप्रो मुखं प्रक्षालयेत्सुधीः ॥४१॥

मलत्याग के पश्चात् लिंग में एक बार, गुदा में तीन बार, बाँयें हाथ में दश बार, दोनों हाथों में सात बार और चरण में छह बार मिट्टी लगाने से शुद्धि होती है ॥३०॥ गृहस्थ ब्राह्मणों के लिए मलत्याग के अनन्तर यही शौच बताया गया है। विधवाओं के लिए दूनी शुद्धि बतायी गयी है ॥३१॥ यति, वैष्णव, ब्रह्मर्षि और ब्रह्मचारी के लिए गृहस्थ की अपेक्षा चौगुनी शुद्धि कही गयी है ॥३२॥ यज्ञोपवीत-संस्कार-रहित द्विजों, शूद्रों और स्त्रियों के लिए केवल उतने जल से शुद्धि कही गयी है, जितने से वह स्थान स्वच्छ हो जाए। क्षत्रियों और वैश्यों के लिए भी गृहस्थ द्विजों के समान ही शुद्धि कही गयी है। वैष्णव आदि मुनियों के लिए दुगुनी शुद्धि बतायी गयी है ॥३३-३४॥ शुद्धि के इच्छुकों को इससे न्यूनाधिक शुद्धि नहीं करनी चाहिए, क्योंकि विधि का उल्लंघन करने पर वह प्रायश्चित्त का भागी होता है ॥३५॥ शौच (शुद्धि) का नियम मैं बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो। क्योंकि मिट्टी से शुद्धि करने पर ब्राह्मण शुद्ध होता है और नियम का उल्लंघन करने पर वह अशुद्ध ही रहता है ॥३६॥

वल्मीक की मिट्टी, चूहे की खोदी हुई मिट्टी, जल के भीतर की मिट्टी, शुद्धि करने से शेष बची हुई मिट्टी और घर की दीवाल की मिट्टी से शुद्धि नहीं करनी चाहिए लीपने-पोतने के काम में लायी हुई मिट्टी शौच के लिए त्याज्य है। जिसके भीतर प्राणी रहते हों, जहाँ वृक्ष से गिरे हुए पत्तों के ढेर लगे हों तथा जहाँ की भूमि हल से जोती गई हो, वहाँ की मिट्टी न ले। कुश और दूर्वा की जड़ से निकाली गई, पीपल की जड़ के निकट से लायी गई तथा शयन की वेदी से निकाली गई मिट्टी को भी शौच के काम में न लाये। चौराहे की, गोशाला की, गाय की खुरी की, जहाँ खेती लहलहा रही हो उस खेत की तथा उद्यान की मिट्टी को भी त्याग दे। ब्राह्मण नहाया हो अथवा नहीं, उपर्युक्त शौचाचार के पालन मात्रसे शुद्ध हो जाता है ॥३७-४०॥ शुद्धिहीन पुरुष नित्य अशुद्ध रहता है अतः वह सभी कर्मों के करने में अयोग्य रहता है। विद्वान् ब्राह्मण इस प्रकार शुद्धि कर के मुँह धोये ॥४१॥ पहले सोलह

आदौ षोडश गण्डूषैर्मुखशुद्धिं विधाय च। दन्तकाष्ठेन दन्तांश्च तत्पश्चात्परिमार्जयेत्॥४२॥
पुनः षोडशगण्डूषैर्मुखशुद्धिं समाचरेत्। दन्तमार्जनकाष्ठानां नियमं शृणु नारद॥४३॥
निरूपितं सामवेदे हरिणा चाऽऽह्निकक्रमे। अपामार्गं सिंधुवारमाम्रं च करवीरकम्॥४४॥
खदिरं च शिरीषं च जातिपुन्नागशालकम्। अशोकमर्जुनं चैव क्षीरिवृक्षं कदम्बकम्॥४५॥
जम्बूकं बकुलं तोक्मं पलाशं च प्रशस्तकम्। बदरीं पारिभद्रं च मन्दारं शाल्मलिं तथा॥४६॥
वृक्षं कण्टकयुक्तं च लतादि पारिवर्जयेत्। पिप्पलं च प्रियालं च तिन्तिडीकं च तालकम्॥४७॥
खर्जूरं नारिकेलं च तालं च परिवर्जयेत्। दन्तशौचविहीनश्च सर्वशौचविहीनकः॥४८॥
शौचहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु। कृत्वा शौचं शुचिर्विप्रो धृत्वा धौते च वाससी॥४९॥
प्रक्षाल्य पादावाचम्य प्रातःसंध्यां समाचरेत्। एवं त्रिसंध्यं सन्ध्यां च कुरुते कुलजो द्विजः॥५०॥
स स्नातः सर्वतीर्थेषु त्रिसध्यं यः समाचरेत्। संध्यात्रितयहीनः स्यादनर्हः सर्वकर्मसु॥५१॥
यदह्ना कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत्। नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम्॥५२॥
स शूद्रवद्बहिः कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः। पूर्वां संध्यां परित्यज्य मध्यमां पश्चिमां तथा॥५३॥
ब्रह्महत्यामात्महत्यां प्रत्यहं लभते द्विजः। एकादशीविहीनो यः संध्याहीनश्च यो द्विजः॥५४॥
कल्पं व्रजेत्कालसूत्रं यथा हि वृषलीपतिः। प्रातः संध्यां विधायैवं गुरुमिष्टं सुरं रविम्॥५५॥

बार कुल्ला कर के मुख शुद्ध करने के पश्चात् काठ की दातून से दाँतों को रगड़ कर शुद्ध करे॥४२॥ अनन्तर पुनः सोलह बार कुल्ला कर के मुख शुद्ध करे। नारद ! दातून के नियमों को सुनो, जिसे स्वयं विष्णु ने सामवेद के आह्निक प्रकरण में बताया है

अपामार्ग (चिचिरा), म्योड़ी, आम, करवीर (कनेर) खैर, सिरस, जायफल, नागकेशर, साखू, अशोक, अर्जुन, गूलर कदम्ब, जामुन, मौलसिरी, तोक्म (जौ आदि की हरी बाल) और पलाश की दातून प्रशस्त होती है। बेर, देवदारु, मदार, सेमर और काँटे वाले वृक्ष तथा लता, पीपल, चिरौंजी, इमली, ताड़, खजूर और नारियल की दातून नहीं करनी चाहिए। दाँतों की शुद्धि से रहित प्राणी को सभी शुद्धि से रहित समझना चाहिए॥४३-४८॥ शुद्धि रहित प्राणी अशुद्ध होने के नाते सभी कर्मों के अयोग्य होता है। इसलिए ब्राह्मण शुद्धि करने के उपरान्त स्नान करके दो धुले हुए वस्त्र पहन कर चरण धोकर आचमन कर के प्रातःसन्ध्या सम्पन्न करे। इस प्रकार जो कुलीन द्विज तीनों काल में संध्योपासना करता है, वह सभी तीर्थों में स्नान करने का पुण्य प्राप्त करता है। क्योंकि तीनों संध्याओं से रहित प्राणी सभी कर्मों के अयोग्य है॥४९-५१॥ ऐसा व्यक्ति दिन में जो कर्म करता है उसका फल उसे नहीं मिलता है। जो द्विज प्रातः और संध्या समय की संध्या को सम्पन्न नहीं करता है, उसे शूद्र की भाँति सभी द्विजकर्मों से पृथक् रखना चाहिए। क्योंकि प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल की संध्या को न करने वाला द्विज प्रतिदिन ब्रह्महत्या और आत्महत्या का भागी होता है। इसी भाँति जो एकादशी व्रत और संध्या से हीन है, वह द्विज शूद्रा से सम्बन्ध रखने वाले पापी की भाँति कालसूत्र नामक नरक में कल्पपर्यन्त पड़ा रहता है। इस प्रकार प्रातः सन्ध्या सम्पन्न करके गुरु, इष्टदेव, सूर्य, ब्रह्मा, शिव, विष्णु, देवी, लक्ष्मी और सरस्वती को प्रणाम करे। अनन्तर गुरु,

ब्रह्माणमीशं विष्णुं च मायां पद्मां सरस्वतीम्। प्रणम्य गुरुलाज्यं च दर्पणं मधु काञ्चनम्[1] ॥५६॥
स्पृष्ट्वा स्नानादिकं काले कुर्यात्साधकसत्तमः। पुष्करिण्यां तु वाप्यां वा यदा स्नानं समाचरेत् ॥५७॥
समुद्धृत्य पञ्च पिण्डानादौ धर्मी विचक्षणः। नद्यां नदे कन्दरे वा तीर्थे वा स्नानमाचरेत् ॥५८॥
कुर्यात् स्नात्वा तु संकल्पं ततः स्नानं पुनर्मुने। श्रीकृष्णप्रीतिकामश्च वैष्णवानां महात्मनाम् ॥५९॥
संकल्पो गृहिणां चैव कृतपातकनाशनः। विप्रः कृत्वा तु संकल्पं मृदं गात्रे प्रलेपयेत् ॥६०॥
वेदोक्तमन्त्रेणानेन देहशुद्धिकृते नरः। अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे ॥६१॥
मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम्। उद्धृताऽसि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना ॥६२॥
आरुह्य मम गात्राणि सर्वं पापं प्रमोचय। पुण्यं देहि महाभागे स्नानानुज्ञां कुरुष्व माम् ॥६३॥
इत्युक्त्वा च जले नाभिप्रमाणे मन्त्रपूर्वकम्। चतुर्हस्तप्रमाणां च कृत्वा मण्डलिकां शुभाम् ॥६४॥
तीर्थान्यावाहयेत्तत्र हस्तं दत्त्वा तपोधन। यानि यानि च तीर्थानि सर्वाणि कथयामि ते ॥६५॥
गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति। नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन्संनिधिं कुरु ॥६६॥
नलिनी नन्दिनी सीता मालिनी च महापगा। [2]विष्णुपादाब्जसंभूता गङ्गा त्रिपथगामिनी ॥६७॥
पद्मावती भोगवती स्वर्णरेखा च कौशिकी। दक्षा पृथ्वी च सुभगा विश्वकाया शिवाऽमृता ॥६८॥
विद्याधरी [3]सुप्रसन्ना तथा लोकप्रसाधिनी। क्षेमा च वैष्णवी शान्ता[4] शान्तिदा गोमती सती ॥६९॥

घृत, दर्पण, मधु और सुवर्ण का स्पर्श करके उत्तम साधक समयानुसार स्नान आदि करे। जब पोखर या बावली में स्नान करे तब धर्मात्मा एवं विद्वान् पुरुष पहले उसमें से पाँच पिंड मिट्टी निकालकर बाहर फेंक दे। नदी, नद, गुफा या तीर्थ में स्नान करना चाहिए ॥५२-५८॥ मुने! स्नान करके संकल्प करे। तदनन्तर पुनः स्नान के लिए संकल्प करे। वैष्णव महात्माओं का संकल्प भगवान् श्रीकृष्ण के प्रीत्यर्थ होता है ॥५९॥ और गृहस्थों का वह संकल्प किए हुए पापों के नाश के उद्देश्य से होता है। ब्राह्मण संकल्प करके शरीर में वेदोक्त मंत्रों द्वारा मिट्टी लगाए। (मन्त्र)—हे वसुन्धरे! तुम अश्वों और रथों से आक्रान्त हो। विष्णु ने भी तुम्हें (अपने चरणों से) आक्रान्त किया है। मृत्तिके! मैंने जो पाप किए हैं उनका अपहरण कर लो। सैकड़ों भुजाओं से सुशोभित वराहरूपधारी श्रीकृष्ण ने एकार्णव के जल से तुम्हारा उद्धार किया है। तुम मेरे अंगों पर आरूढ़ हो समस्त पापों को दूर कर दो। महाभागे! मुझे पुण्य प्रदान करो और मुझे स्नान करने के लिए आज्ञा दो। तपोधन! इस प्रकार कह कर नाभि-प्रमाण जल में मन्त्रपूर्वक चार हाथ लम्बा-चौड़ा शुभ मण्डल बनाये और उसमें हाथ लगाकर तीर्थों का आवाहन करे। जो-जो तीर्थ हैं, उन सब का वर्णन कर रहा हूँ ॥६०-६५॥ हे गंगे, यमुने, गोदावरि, सरस्वति, नर्मदे, सिन्धु तथा कावेरि! इस जल में निवास करो ॥६६॥ उपरान्त नलिनी, नन्दिनी, सीता, महानदी मालिनी और भगवान् विष्णु के चरण-कमल से उत्पन्न त्रिपथगामिनी गंगा, पद्मावती, भोगवती, स्वर्णरेखा, कौशिकी, दक्षा, पृथिवी, सुभगा, विश्वकाया, शिवामृता, सुप्रसन्ना विद्याधरी, लोकप्रसाधिनी,

---

१क. ०म्। ५६॥ दृष्ट्वा। २ क. ०दार्ध्य सं०। ३ क सुपत्ना च त०। ४ क. ०न्ता प्रमदा गो०।

सावित्री तुलसी दुर्गा महालक्ष्मीः सरस्वती। कृष्णप्राणाधिका राधा लोपामुद्रा दिती रतिः ॥७०॥
अहल्या चादितिः संज्ञा स्वधा स्वाहाऽप्यरुन्धती। शतरूपा देवहूतिरित्याद्याः संस्मरेत्सुधीः ॥७१॥
स्मृत्वा स्नात्वा महापूतः कुर्यात्तु तिलकं बुधः। बाह्वोर्मूले ललाटे च कण्ठदेशे च वक्षसि ॥७२॥
स्नानं दानं तपो होमो देवता पितृकर्म च। तत्सर्वं निष्फलं याति ललाटे तिलकं विना ॥७३॥
ब्राह्मणस्तिलकं कृत्वा कुर्यात्संध्यां च तर्पणम्। नमस्कृत्य सुरान्भवत्या गृहं गच्छेन्मुदाऽन्वितः ॥७४॥
प्रक्षाल्य पादौ यत्नेन धृत्वा धौते च वाससी। मन्दिरं प्रविशेत्प्राज्ञ इत्याह हरिरेव च ॥७५॥
विना पादक्षालनं यः स्नात्वा विशति मन्दिरम्। तस्य स्नानादिकं नष्टं जपहोमादिपञ्चकम् ॥७६॥
परिधाय स्निग्धवस्त्रं गृहं च प्रविशेद्गृही। रुष्टा लक्ष्मीर्गृहाद्याति शापं दत्त्वा सुदारुणम् ॥७७॥
जङ्घोर्ध्वतश्च यो विप्रःपादौ प्रक्षालयेद्यदा। तावद्भवति चाण्डालो यावद्गङ्गां न पश्यति ॥७८॥
उपविश्याऽऽसने ब्रह्मञ्छुचिराचम्य साधकः। पूजां कुर्यात्तु वेदोक्तां भक्तियुक्तो हि संयतः ॥७९॥
शालग्रामे मणौ मन्त्रे प्रतिमायां जले स्थले। गोपृष्ठे वा गुरौ विप्रे प्रशस्तमर्चनं हरेः ॥८०॥
सर्वेषु शस्ता पूजा च शालग्रामे च नारद। सुराणामेव सर्वेषां यत्राधिष्ठानमेव च ॥८१॥
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। शालग्रामोदकेनैव योऽभिषेकं समाचरेत् ॥८२॥

क्षेमा, वैष्णावी, शान्ता, शान्तिदा, गोमती, सती, सावित्री, तुलसी, दुर्गा, महालक्ष्मी, सरस्वती, श्रीकृष्ण-प्राणाधिका राधिका, लोपामुद्रा, दिति, रति, अहल्या, अदिति, संज्ञा, स्वाहा, स्वधा, अरुन्धती, शतरूपा और देवदूति आदि का स्मरण बुद्धिमान् पुरुष करे ॥६७-७१॥ स्नान द्वारा महापवित्र होकर पण्डित को अपनी बाहु के मूलभाग, ललाट, कण्ठ और वक्षःस्थल में तिलक लगाना चाहिए ॥७२॥ क्योंकि बिना तिलक लगाए स्नान, दान, तप, हवन, देवकर्म, पितृकर्म—सब कुछ निष्फल हो जाता है ॥७३॥ ब्राह्मण, को सर्वप्रथम तिलक लगा कर संध्या-तर्पण कार्य सुसम्पन्न करना चाहिए। उपरान्त भक्तिपूर्वक देवों को प्रणाम करके प्रसन्नतापूर्वक घर जाना चाहिए ॥७४॥ वहाँ यत्नपूर्वक पैर धोकर धुले हुए दो वस्त्र धारण करे। तत्पश्चात् बुद्धिमान् पुरुष मन्दिर में जाय, यह साक्षात् हरि का ही कथन है ॥७५॥ जो स्नानोपरान्त बिना चरण प्रक्षालन किए मन्दिर में प्रवेश करता है, उसके स्नानादि और जप, हवन आदि पाँच कर्म नष्ट हो जाते हैं ॥७६॥ जो गृहस्थ पुरुष जल से भीगे या तेल से तर वस्त्र पहन कर गृह में प्रवेश करता है, उससे रुष्ट होकर लक्ष्मी उसके गृह से निकल जाती हैं और अत्यन्त दारुण शाप देती हैं ॥७७॥ जो ब्राह्मण चरण धोने के समय जंघा के ऊपर तक धो डालता है, उससे वह तब तक चाण्डाल बना रहता है, जब तक गंगाजी का दर्शन नहीं कर लेता है ॥७८॥ ब्रह्मन्! पवित्र साधक आसन पर बैठ कर आचमन करे। उपरान्त संयम एवं भक्तिपूर्वक वेदोक्त विधि से इष्टदेव की पूजा करे ॥७९॥ शालग्राम, मणि, मन्त्र, प्रतिमा, जल, स्थल, गोपृष्ठ, गुरु और ब्राह्मण में भगवान् की अर्चना प्रशस्त मानी गयी है ॥८०॥ किन्तु नारद! भगवान् की सब से प्रशस्त पूजा शालग्राम में होती है; क्योंकि उसमें सभी देवों का अधिष्ठान रहता है ॥८१॥ अतः जिसने शालग्राम-जल से अभिषेक किया, वह मानो समस्त तीर्थों में स्नान और सभी यज्ञों की दीक्षा

शालग्रामजलं भक्त्या नित्यमश्नाति यो नरः। जीवन्मुक्तः स च भवेद्यात्यन्ते कृष्णमन्दिरम् ॥८३॥
शालग्रामशिलाचक्रं यत्र तिष्ठति नारद। सचक्रो भगवांस्तत्र सर्वतीर्थानि निश्चितम् ॥८४॥
तत्र यो हि मृतो देही ज्ञानाज्ञानेन दैवतः। रत्ननिर्मितयानेन स याति श्रीहरेः पदम् ॥८५॥
शालग्रामं विनाऽन्यत्र कः साधुः पूजयेद्धरिम्। कृत्वा तत्र हरेः पूजां परिपूर्णं फलं लभेत् ॥८६॥
पूजाधारश्च कथितः श्रूयतां पूजनक्रमः। हरेः पूजां बहुमतां कथयामि यथागमम् ॥८७॥
कश्चिद्ददाति हरये चोपचारांश्च षोडश। सुन्दराणि पवित्राणि नित्यं भक्त्या च वैष्णवः ॥८८॥
कश्चिद्द्वादश वस्तूनि पञ्च वस्तूनि कश्चन। येषामेव यथा[1]शक्तिर्भक्तिर्मूलं च पूजने ॥८९॥
आसनं वसनं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम्। पुष्पं चन्दनधूपं च दीपं नैवेद्यमुत्तमम् ॥९०॥
गन्धं माल्यं च शय्यां च ललितां सुविलक्षणाम्। जलमन्नं च ताम्बूलं साधारं देयमेव च ॥९१॥
गन्धान्नतल्पताम्बूलं विना द्रव्याणि द्वादश। पाद्यार्घ्यजलनैवेद्यपुष्पाण्येतानि पञ्च च ॥९२॥
सर्वाण्येतानि मूलेन दद्यात्साधकसत्तमः। गुरूपदिष्टं मूलं च प्रशस्तं सर्वकर्मसु ॥९३॥
आदौ कृत्वा भूतशुद्धिं प्राणायामं ततः परम्। अङ्गप्रत्यङ्गयोर्न्यासं मन्त्रन्यासं ततः परम् ॥९४॥
वर्णन्यासं विनिर्वर्त्य चार्घ्यपात्रं विनिर्दिशेत्। त्रिकोणमण्डलं कृत्वा तत्र कूर्मं प्रपूजयेत् ॥९५॥

ग्रहण कर चुका ॥८२॥ क्योंकि जो नित्य भक्तिपूर्वक शालग्राम जल का पान करता है वह जीवन्मुक्त होता है और अन्त में भगवान् श्रीकृष्ण के धाम में पहुँचता है ॥८३॥ नारद! शालग्राम शिला का चक्र जहाँ रहता वहाँ समस्त तीर्थ और चक्र समेत भगवान् अवश्य रहते हैं ॥८४॥ अतः वहाँ जो देहधारी भाग्यवश जानकर या अनजान में अपनी देह का त्याग करता है, वह रत्नखचित विमान पर बठ कर श्री विष्णु भगवान् के धाम को जाता है ॥८५॥ कौन ऐसा साधु पुरुष है, जो शालग्राम शिला के सिवा अन्यत्र भगवान् की पूजा करेगा ? क्योंकि उसमें भगवान् की अर्चना करने से परिपूर्ण फल की प्राप्ति होती है ॥८६॥ इस प्रकार मैंने भगवान् की पूजा का आधार बता दिया, अब बहुमत से निश्चित और शास्त्र के अनुकूल पूजन-क्रम के बारे में सुनो ॥८७॥

कोई वैष्णव भक्तिभाव से सोलह सुन्दर और पवित्र उपचार भगवान् को नित्य अर्पित करते हैं ॥८८॥ इसी प्रकार कोई बारह और कोई पाँच वस्तुओं का उपचार समर्पित करते हैं। किन्तु जिन लोगों की जैसी शक्ति और भक्ति हो उन्हें उसी के अनुसार पूजन करना चाहिए। पूजा की जड़ है—भगवान् के प्रति भक्ति ॥८९॥ आसन, वस्त्र, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, पुष्प, चन्दन, दीप, उत्तम नैवेद्य, सुगन्ध, माला, सुन्दर और विलक्षण शय्या, जल, अन्न, ताम्बूल——सामान्यतः अर्पित करने योग्य सोलह उपचार हैं ॥९०-९१॥ गन्ध, अन्न, शय्या और ताम्बूल को छोड़ कर शेष द्रव्य बारह उपचार हैं। पाद्य, अर्घ्य, जल, नैवेद्य और पुष्प——ये पाँच उपचार हैं। श्रेष्ठ साधक ये सभी वस्तुएँ मूल मन्त्र द्वारा अर्पित करे। गुरु के उपदेश से प्राप्त मूल मन्त्र समस्त कर्मों में प्रशस्त कहा गया है ॥९२-९३॥ सर्वप्रथम भूत-शुद्धि करके प्राणायाम करे। तदनन्तर अंगन्यास, प्रत्यंगन्यास और वर्णन्यास कर के अर्घ्यपात्र प्रस्तुत करे। पहले त्रिकोण मण्डल बना कर उसमें कूर्म (कच्छप भगवान्) की पूजा करे ॥९४-९५॥ अनन्तर द्विज जलपूर्ण

---

१ क. ०क्तिर्यथा मू०।

जलेनाऽऽपूर्य शङ्खं च तत्र संस्थापयेद्द्विजः। जलं संपूज्य विधिवत्तीर्थान्यावाहयेत्ततः ॥९६॥
पूजोपकरणं तेन जलेन क्षालयेत्पुनः। ततो गृहीत्वा पुष्पं च कृत्वा योगासनं शुचिः ॥९७॥
ध्यानेन गुरुदत्तेन ध्यायेत्कृष्णमनन्यधीः। ध्यात्वा पाद्यादिकं सर्वं दद्यान्मूलेन साधकः ॥९८॥
अङ्गप्रत्यङ्गदेवं च तन्त्रोक्तं पूजयेद्धरिम्। मूलं जप्त्वा यथाशक्ति देवे[1] मन्त्रं[2] समर्पयेत् ॥९९॥
दत्त्वोपहारं विविधं स्तुत्वा च कवचं पठेत्। ततः कृत्वा परीहारं मूर्ध्ना च प्रणमेद्भुवि ॥१००॥
कृत्वा वै देवपूजां च यज्ञं कुर्याद्विचक्षणः। श्रौतस्मार्ताग्नियुक्तं च बलिं दद्यात्ततो मुने ॥१०१॥
नित्यश्राद्धं यथाशक्ति दानं वित्तानुरूपकम्। कृत्वा कृती स विहरेत्क्रम एष श्रुतौ श्रुतः ॥१०२॥
इति ते कथितं सर्वं वेदोक्तं सूत्रमुत्तमम्। आह्निकस्य च विप्राणां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१०३॥

इति श्री ब्रह्म० महा० ब्रह्म० शिवनारदसंवाद आह्निकनिरूपणं
नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

शंख वहाँ रख कर उस जल की सविधि अर्चा करके उसमें समस्त तीर्थों का आवाहन करे ॥९६॥ पुनः उसी जल से पूजा की समस्त वस्तुओं को प्रक्षालित करे। इसके बाद पवित्र साधक पुष्प लेकर योगासन पर बैठे और गुरु के बताए हुए ध्यान के अनुसार अनन्य भाव से भगवान् श्रीकृष्ण का चिन्तन करे। इस प्रकार ध्यान-साधक मूल मंत्र का उच्चारण करते हुए पाद्य आदि सभी उपचार अर्पित करे ॥९७-९८॥ इस प्रकार तंत्र के अनुसार अंग-प्रत्यंग देवताओं के साथ भगवान् विष्णु की पूजा करे। मूलमंत्र यथाशक्ति जप करके इष्टदेव को मंत्र समर्पित करे ॥९९॥ पुनः अनेक भाँति के उपहार प्रदान करके स्तुति पाठ एवं कवच पाठ करे। पश्चात् विसर्जन करके भूमि पर माथा टेक कर नमस्कार करे ॥१००॥ मुने! इस प्रकार देवपूजा करके बुद्धिमान् पुरुष श्रौत तथा स्मार्त अग्नि से युक्त यज्ञ का अनुष्ठान करे। मुने! यज्ञ के पश्चात् दिक्पाल आदि को बलि देनी चाहिए ॥१०१॥ फिर यथाशक्ति नित्य श्राद्ध और वैभव के अनुसार दान करे। यह सब करके पुण्यात्मा साधक आवश्यक आहार-विहार में प्रवृत्त हो ॥१०२॥ इस प्रकार मैंने ब्राह्मणों का वेदोक्त उत्तम आह्निकसूत्र तुम्हें बता दिया अब पुनः क्या सुनना चाहते हो? ॥१०३॥

श्रीब्रह्मवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में आह्निकनिरूपण नामक
छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२६॥

---

१. ख. दैवम०। २. ख. ०न्त्रं विसर्जये०।

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

नारद उवाच

भक्ष्यं किं वाऽप्यभक्ष्यं च द्विजानां गृहिणां प्रभो। यतीनां वैष्णवानां च विधवाब्रह्मचारिणाम् ॥१॥
किं कर्तव्यमकर्तव्यमभोग्यं भोग्यमेव वा। सर्वं कथय सर्वज्ञ सर्वेश सर्वकारण ॥२॥

महेश्वर उवाच

कश्चित्तपस्वी विप्रश्च निराहारी चिरं मुनिः। कश्चित्समीरणाहारी फलाहारी च कश्चन ॥३॥
अन्नाहारी यथाकाले गृही च गृहिणीयुतः। येषामिच्छा च या[1] ब्रह्मन्रुचीनां विविधा गतिः ॥४॥
हविष्यान्नं ब्राह्मणानां प्रशस्तं गृहिणां सदा। नारायणोच्छिष्टमिष्टमभक्ष्यमनिवेदितम् ॥५॥
अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं यद्विष्णोरनिवेदितम्। विण्मूत्रं सर्वथा प्रोक्तमन्नं च हरिवासरे ॥६॥
ब्राह्मणः कामतोऽन्नं च यो भुङ्क्ते हरिवासरे। त्रैलोक्यजनितं पापं सोऽपि भुङ्क्ते न संशयः ॥७॥
न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं च नारद। गृहिभिर्ब्राह्मणैरन्नं संप्राप्ते हरिवासरे ॥८॥

अध्याय २७

ब्राह्मणों के लिए भक्ष्याभक्ष्य आदि का निरूपण

नारद बोले—प्रभो! गृहस्थ द्विज, यति, वैष्णव, विधवा और ब्रह्मचारी के लिए क्या भक्ष्य और क्या अभक्ष्य है? तथा उनके कर्तव्य और अकर्तव्य, भोग्य और अभोग्य सभी बातें बताने की कृपा करें; क्योंकि आप सर्वज्ञ, सब के ईश और सब के कारण हैं ॥१-२॥

महेश्वर बोले—कुछ तपस्वी ब्राह्मण मुनि निराहार होते हैं। कोई वायु का आहार और कोई फलाहार करते हैं ॥३॥ ब्रह्मन्! गृहिणी समेत गृहस्थ लोग यथासमय अन्न का आहार करते हैं। इसी प्रकार जिसकी जैसी रुचि होती है वे वैसा ही करते हैं; क्योंकि रुचियों का स्वरूप भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है ॥४॥ किन्तु ब्राह्मण गृही के लिए हविष्यान्न का भोजन सदैव प्रशस्त बताया गया है। नारायण का उच्छिष्ट प्रसाद ही उनके लिए अभीष्ट भोजन है। अभक्ष्य वह है जो (भगवान् को) निवेदित नहीं किया गया है ॥५॥ क्योंकि भगवान् विष्णु को अर्पित न किया गया अन्न विष्ठा के समान और जल मूत्र के समान होता है। इसी प्रकार एकादशी के दिन सब प्रकार का अन्न-जल मल-मूत्र के तुल्य कहा गया है ॥६॥ इसलिए जो ब्राह्मण स्वेच्छा या परेच्छा से एकादशी के दिन अन्न भोजन करते हैं वे तीनों लोकों के पाप भक्षण करते हैं, इसमें संशय नहीं ॥७॥ नारद! इसलिए एकादशी के दिन गृहस्थ ब्राह्मणों को अन्न कदापि ग्रहण नहीं करना चाहिए ॥८॥ हरिवासर के दिन गृही, शैव एवं शाक्त ब्राह्मण विचार की कमी के

---

१. क. ०ह्मन्कवीनां वि०।

गृही शैवश्च शाक्तश्च ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः : प्रयाति कालसूत्रं च भुक्त्वा च हरिवासरे ॥९॥
कृमिभिः शालिमानैश्च भक्षितस्तत्र तिष्ठति। विण्मूत्रभोजनं कृत्वा[1] यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥१०॥
जन्माष्टमीदिने रामनवमीदिवसे हरेः। शिवरात्रौ च यो भुङ्क्ते सोऽपि द्विगुणपातकी ॥११॥
उपवासासमर्थश्च फलं मूलं जलं पिबेत्। नष्टे शरीरे स भवेदन्यथा चाऽऽत्मघातकः ॥१२॥
सकृद्भुङ्क्ते हविष्यान्नं विष्णोर्नैवेद्यमेव च। न भवेत्प्रत्यवायी स चोपवासफलं लभेत् ॥१३॥
एकादश्यामनाहारो गृही विप्रश्च भारते। स च तिष्ठति वैकुण्ठे यावद्वै ब्रह्मणो वयः ॥१४॥
गृहिणां शैवशाक्तानामिदमुक्तं च नारद। विशेषतो वैष्णवानां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥१५॥
नित्यनैवेद्यभोजी यः श्रीविष्णोः स हि वैष्णवः। नित्यं शतोपवासानां जीवन्मुक्तफलं लभेत् ॥१६॥
वाञ्छन्ति तस्य संस्पर्शं तीर्थान्यखिलदेवताः। आलापं दर्शनं चैव सर्वपापप्रणाशनम् ॥१७॥
द्विस्विन्नमन्नं पृथुकं शुद्धं देशविशेषके। नात्यन्तशस्तं विप्राणां भक्षणे न निवेदने ॥१८॥
अभक्ष्यं वै यतीनां च विधवाब्रह्मचारिणाम्। ताम्बूलं च यथा ब्रह्मन्तथैतद्वस्तु न ध्रुवम् ॥१९॥
ताम्बूलं विधवास्त्रीणां यतीनां ब्रह्मचारिणाम्। तपस्विनां च विप्रेन्द्र गोमांससदृशं स्मृतम् ॥२०॥

कारण अन्न भक्षण करने पर कालसूत्र नामक नरक को प्राप्त होते हैं ॥९॥ वहाँ उसे वे ही अन्न कीड़े होकर काट-काट कर खाते हैं। इस प्रकार वह प्राणी मल-मूत्र का भोजन करते हुए चौदह इन्द्र के समय तक वहाँ नरक में निवास करता है॥१०॥ इसी प्रकार (भगवान् कृष्ण की) जन्माष्टमी, रामनवमी और शिवरात्रि के दिन अन्न भक्षण करने वाले को दूना पातक लगता है॥११॥ उपवास करने में असमर्थ होने पर फल, मूल और जल ग्रहण करे; अन्यथा शरीर नष्ट हो जाने पर मनुष्य आत्महत्या के पाप का भागी होता है॥१२॥ जो व्रत के दिन एक बार हविष्यान्न का भोजन या भगवान् विष्णु का नैवेद्य भोजन कर के रह जाता है वह (अन्न खाने का) दोषी नहीं होता; अपितु उसे उपवास का फल भी प्राप्त हो जाता है॥१३॥ इसीलिए भारतवर्ष में गृहस्थ ब्राह्मण एकादशी के दिन अनाहार (उपवास) करते हैं, जिससे वे वैकुण्ठलोक में ब्रह्मा की आयु तक निवास करते हैं।१४॥ नारद! गृही, शैव, शाक्त और विशेषकर वैष्णव यति तथा ब्रह्मचारियों के लिए यह सब कहा गया है॥१५॥ भगवान् विष्णु का नित्य नैवेद्य भोजन करने वाला ब्राह्मण वैष्णव है उसे नित्य सौ उपवास और जीवन्मुक्त होने का फल प्राप्त होता है॥१६॥ उसके स्पर्शन, दर्शन और बातचीत करने के लिए सभी तीर्थ एवं दवगण इच्छुक रहते हैं। इसलिए कि वह समस्त पापों का महान् नाशक होता है॥१७॥ दो बार पकाया हुआ अन्न तथा चिउरा, जो देश विशेष में शुद्ध माना गया है, ब्राह्मणों के खाने के लिए और भगवान् को समर्पित करने के लिए बहुत प्रशस्त नहीं माना गया है॥१८॥ ब्रह्मन्! संन्यासी, विधवा, और ब्रह्मचारियों के लिए उक्त चीजें तांबूल की तरह अभक्ष्य हैं। ।१९॥ विप्रेन्द्र! विधवा स्त्रियों, यतियों, ब्रह्मचारियों और तपस्वियों के लिए ताम्बूल गोमांस के समान बताया गया है॥२०॥

१क. ०वभक्ता।

सर्वेषां ब्राह्मणानां यदभक्ष्यं शृणु नारद। यदुक्तं सामवेदे च हरिणा चाऽऽह्निकक्रमे ॥२१॥
ताम्रपात्रे पयःपानमुच्छिष्टे घृतभोजनम्। दुग्धं लवणसार्धं च सद्यो गोमांसभक्षणम् ॥२२॥
नारिकेलोदकं कांस्ये ताम्रपात्रे स्थितं मधु। ऐक्षवं ताम्रपात्रस्थं सुरातुल्यं न संशयः ॥२३॥
उत्थाय वामहस्तेन यस्तोयं पिबति द्विजः। सुरापी च स विज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥२४॥
अनिवेद्यं हरेरन्नं भुक्तशेषं च नित्यशः। पीतशेषजलं चैव गोमांससदृशं मुने ॥२५॥
[1]वानिङ्गणफलं चैव गोमांसं कार्तिके स्मृतम्। माघे च मूलकं चैव कलम्बीशयने तथा ॥२६॥
श्वेतवर्णं च तालं च मसूरं मत्स्यमेव च। सर्वेषां ब्राह्मणानां च त्याज्यं सर्वत्र देशके ॥२७॥
मत्स्यांश्च कामतो भुक्त्वा सोपवासस्त्र्यहं वसेत्। प्रायश्चित्तं ततः कृत्वा शुद्धिमाप्नोति वाडवः ॥२८॥
प्रतिपत्सु च कूष्माण्डमभक्ष्यं ह्यर्थनाशनम्। द्वितीयायां च बृहतीं भोजनेन स्मरेद्धरिम् ॥२९॥
अभक्ष्यं च पटोलं च शत्रुवृद्धिकरं परम्। तृतीयायां चतुर्थ्यां च मूलकं धननाशनम् ॥३०॥
कलङ्ककारणं चैव पञ्चम्यां बिल्वभक्षणम्। तिर्यग्योनिं प्रापयेत्तु षष्ठ्यां वै निम्बभक्षकम् ॥३१॥
रोगवृद्धिकरं चैव नराणां तालभक्षणम्। सप्तम्यां च तथा तालं शरीरस्य च नाशकम् ॥३२॥
नारीकेलफलं भक्ष्यमष्टम्यां बुद्धिनाशकम्। तुम्बी नवम्यां गोमांसं दशम्यां च कलम्बिका ॥३३॥

नारद! समस्त ब्राह्मणों के लिए जो अभक्ष्य है और जिसे सामवेद के दैनिक क्रम-प्रकरण में स्वयं हरि ने कहा है, उसे सुनो॥२१॥

ताम्बे के पात्र में दुग्ध, जूठे में घी एवं नमक के साथ दूध पीना तत्काल गोमांस भक्षण के समान है॥२२॥ काँसे और ताँबे के पात्र में नारियल का जल तथा ताँबे के पात्र में मधु और ईख का रस मदिरा के समान होता है, इसमें संशय नहीं॥२३॥ जो द्विज उठकर बाँये हाथ से जल पीता है उसे शराबी और सभी धर्मों से बहिष्कृत जानना चाहिए॥२४॥ मुने! भगवान् विष्णु को निवेदन न किया हुआ अन्न, खाने से बचा हुआ जूठा भोजन और पीने से शेष रहा जल भी गोमांस के समान (निषिद्ध) है॥२५॥ इसी प्रकार कार्तिक में बैंगन, माघ में मूली तथा चौमासे में करमी साग नहीं खाना चाहिए। श्वेत वर्ण का ताड़ फल, मसूर और मत्स्य, किसी भी देश के किसी भी ब्राह्मण को नहीं खाना चाहिए। स्वेच्छा से मछली खाने पर तीन दिन के उपवास के उपरान्त प्रायश्चित्त करने से ब्राह्मण शुद्ध होता है॥२६-२८॥ प्रतिपदा के दिन कूष्माण्ड (कुम्हड़ा) अभक्ष्य है। उससे अर्थनाश होता है। द्वितीया के दिन वनभाँटा खाना निषिद्ध है। ऐसा करने पर भगवान् विष्णु का स्मरण करे॥२९॥ तृतीया को परवल शत्रुवृद्धिकारक होता है, अतः उस दिन उसे नहीं खाना चाहिए। चतुर्थी को मूली खाने से धननाश होता है॥३०॥ पंचमी में विल्व (बेल) भक्षण करना कलंक का कारण होता है। षष्ठी में नीम खाने से पक्षी आदि योनियों की प्राप्ति होती है॥३१॥ सप्तमी में ताड़ फल भक्षण करने से मनुष्यों को रोग होता है और ताड़ शरीर का भी नाशक है॥३२॥ अष्टमी में नारियल खाने से बुद्धि नाश होता है। नवमी में लौकी गोमांस के समान तथा दशमी के दिन कलम्बी का साग गोमांस के समान त्याज्य है॥३३॥ एकादशी को सेम, द्वादशी को पूतिका (पोई) और त्रयोदशी को **भाँटा**

---

१ ख. कालिङ्गणमित्यर्थः।

एकादश्यां तथा शिम्बी द्वादश्यां पूतिका तथा। त्रयोदश्यां च वार्ताकी न भक्ष्या पुत्रनाशनम् ॥३४॥
चतुर्दश्यां माषभक्ष्यं महापापकरं परम्। पञ्चदश्यां तथा मांसमभक्ष्यं गृहिणां मुने ॥३५॥
गृहिणां प्रोक्षितं मांसं भक्ष्यमन्यदिनेषु च। प्रातःस्नाने तथा श्राद्धे पार्वणे व्रतवासरे ॥३६॥
प्रशस्तं सार्षपं तैलं पक्वतैलं च नारद। कुहूपूर्णेन्दुसंक्रान्तिचतुर्दश्यष्टमीषु च ॥३७॥
रवौ श्राद्धे व्रताहे च दुष्टं स्त्रीतिलतैलकम्। मांसं च रक्तशाकं च कांस्यपात्रे च भोजनम् ॥३८॥
निषिद्धं शयनं चैव कूर्ममांसं च सन्त्रितम्। निषिद्धं सर्ववर्णानां दिवा स्वस्त्रीनिषेवणम् ॥४९॥
रात्रौ च दधिभक्ष्यं च शयनं संध्ययोर्दिने। रजस्वलास्त्रीगमनमेतन्नरककारणम् ॥४०॥
उदक्यवीरयोरन्नं पुंश्चल्यन्नमभक्षकम्। शूद्रान्नं याजकान्नं च शूद्रश्राद्धान्नमेव च ॥४१॥
अभक्ष्यान्नं च विप्रर्षे यदन्नं वृषलीपतेः। [1]ब्रह्मन्वार्धुषिकान्नं च गणकान्नमभक्षकम् ॥४२॥
अग्रदानिद्विजान्नं च चिकित्साकारकस्य च। हस्तचित्राहरौ तैलमग्राह्यं चाप्यभक्षकम् ॥४३॥
मूले मृगे भाद्रमासे मांसं गोमांसतुल्यकम्। मघायां कृत्तिकायां वै चोत्तरासु च नारद ॥४४॥
करोति मैथुनं यो हि कुम्भीपाकं स च व्रजेत्। रोहिण्यां च विशाखायां मैत्रे चैवोत्तरासु च ॥
[2]अमायां कृत्तिकायां च द्विजैः क्षौरं विवर्जितम् ॥४५॥

खाने से पुत्र नाश होता है ॥३४॥ मुने! चतुर्दशी को उरद खाना महापापकारी है। अमावस्या को मांस भक्षण गृहस्थों के लिए सर्वथा अभक्ष्य है ॥३५॥ गृहस्थों के लिए अन्य दिनों में यज्ञीय मांस भक्ष्य कहा गया है। नारद! प्रातःकाल के स्नान में, पार्वण श्राद्ध में और व्रत के दिन सरसों का तेल तथा पका तेल प्रशस्त कहा गया है। अमावस्या, पूर्णिमा, संक्रान्ति, चतुर्दशी, अष्टमी, रविवार, श्राद्ध और व्रतवार में स्त्री-सहवास तथा तिल का तेल निषिद्ध हैं। उसी प्रकार उस दिन मांस, रक्तवर्ण का साग और कांसे के पात्र में भोजन भी निषिद्ध है ॥३६-३८॥ सभी वर्ण के मनुष्यों के लिए दिन में शयन, कछुवे का मांस और स्त्री सम्भोग-सर्वथा निषिद्ध हैं ॥३९॥ रात्रि में दही खाने से, दोनों सन्ध्याओं में (सायं-प्रातः) शयन करने से तथा रजस्वला स्त्री के साथ सम्भोग करने से नरक प्राप्त होता है ॥४०॥ रजस्वला स्त्री का अन्न, पुंश्चली (व्यभिचारिणी) का अन्न, शूद्र का अन्न, याजक (यज्ञ कराने वाले, पुजारी और पुरोहितों) के अन्न तथा शूद्र के श्राद्धान्न सर्वथा अभक्ष्य हैं ॥४१॥ विप्रर्षे! वृषलीपति (शूद्र) का अन्न, सूदखोर का अन्न, गणक (ज्योतिषी) का अन्न अभक्ष्य होता है ॥४२॥ अग्रदानी ब्राह्मण (महापात्र) तथा वैद्य के अन्न अभक्ष्य हैं। हस्त और चित्रा नक्षत्रों में तेल अग्राह्य एवं अभक्ष्य है ॥४३॥ मूल तथा मृगशिरा नक्षत्रों में और भादों मास में मांस-भक्षण गो-मांस के समान होता है। नारद! मघा, कृत्तिका तथा उत्तरा नक्षत्रों में जो व्यक्ति मैथुन करता है वह कुंभीपाक नरक में जाता है। रोहिणी, विशाखा, अनुराधा, उत्तरात्रय तथा कृत्तिका नक्षत्रों में और अमावास्या तिथि को द्विजों के लिए क्षौर कर्म वर्जित है। जो मैथुन करके देवताओं तथा पितरों का तर्पण करता है, उसका

---

१. अयं सार्धश्लोकः ख. पुस्तके नास्ति।
२. ख. मघायामिति पाठः।

कृत्वा तु मैथुनं क्षौरं यो देवांस्तर्पयेत्पितॄन् । रुधिरं तद्भवेत्तोयं दाता च नरकं व्रजेत् ॥४६॥
यत्कर्तव्यमकर्तव्यं यद्भोज्यं यदभोज्यकम् । सर्वं तुभ्यं निगदितं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥४७॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे नारदं प्रति
शिवोपदेशभक्ष्याभक्ष्यादिविवरणं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

अथाष्टाविंशोऽध्यायः ।

नारद उवाच

श्रुतं सर्वं जगन्नाथ त्वत्प्रसादाज्जगद्गुरो । भवान्ब्रह्मस्वरूपं च वद ब्रह्मनिरूपणम् ॥१॥
प्रभो किं ब्रह्म साकारं किं निराकारमीश्वर । किं तद्विशेषणं किंवाऽप्यविशेषणमेव च ॥२॥
किंवा दृश्यमदृश्यं वा लिप्तं देहिषु किं न वा । किंवा तल्लक्षणं शस्तं वेदे वा किं निरूपितम् ॥३॥
ब्रह्मातिरिक्ता प्रकृतिः किंवा ब्रह्मस्वरूपिणी । प्रकृतेर्लक्षणं किंवा सारभूतं श्रुतौ श्रुतम् ॥४॥
प्राधान्यं कस्य सृष्टौ च द्वयोर्मध्ये वरं परम् । विचार्य मनसा सर्वं सर्वज्ञ वद मां ध्रुवम् ॥५॥

वह जल रक्त के समान होता है तथा उसे देने वाला नरक में पड़ता है। नारद! जो करना चाहिए, जो नहीं करना चाहिए, जो भक्ष्य है और जो अभक्ष्य है, वह सब तुम्हें बताया गया। अब और क्या सुनना चाहते हो? ॥४४-४८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में भक्ष्याभक्ष्यवर्णन नामक
सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२७॥

अध्याय २८

परमात्मा के स्वरूप का निरूपण

नारद बोले—जगन्नाथ, जगद्गुरो! आपकी कृपा से सब कुछ सुन चुका, अब आप ब्रह्म का स्वरूप तथा ब्रह्मतत्त्व का निरूपण करने की कृपा करें। प्रभो! ब्रह्म साकार है या निराकार? क्या उसका कुछ विशेषण भी है? अथवा वह विशेषणों से रहित है? वह दृश्य है या अदृश्य? वह देहधारियों की देह में लिप्त रहता है या नहीं? शास्त्रों और वेदों में उसका लक्षण क्या बताया गया है। प्रकृति ब्रह्म से पृथक् है या ब्रह्मस्वरूपिणी? वेद में प्रकृति का सारभूत लक्षण क्या है? सृष्टि में किसकी प्रधानता है? दोनों में कौन श्रेष्ठ है? सर्वज्ञ! यह सब मन से विचार द्वारा निश्चित करके मुझे बताने की कृपा करें॥१-५॥

नारदस्य वचः श्रुत्वा पञ्चवक्त्रः प्रहस्य च । भगवान्कर्तुमारेभे[1] परब्रह्मनिरूपणम् ॥६॥

महादेव उवाच

यद्यत्पृष्टं त्वया वत्स निगूढं ज्ञानमुत्तमम् । सुदुर्लभं च वेदेषु पुराणेषु च नारद ॥७॥
अहं ब्रह्मा च विष्णुश्च शेषो धर्मो महान्विराट् । सर्वं निरूपितं ब्रह्मन्नस्माभिः श्रुतिभिर्मुने ॥८॥
यद्विशेषणयुक्तं च दृश्यं प्रत्यक्षमेव च । तन्निरूपितमस्माभिर्वेदे वेदविदां वर ॥९॥
वैकुण्ठे च पुरा पृष्टे धर्मेण ब्रह्मणा तदा । यदुवाच हरिः किंचिन्निबोध कथयामि ते ॥१०॥
सारभूतं च तत्त्वानामज्ञानान्धकलोचनम् । द्वैधभ्रमतमोध्वंससुप्रकृष्टप्रदीपकम् ॥११॥
परमात्मस्वरूपं च परं ब्रह्म सनातनम् । सर्वदेहस्थितं साक्षिस्वरूपं देहि कर्मणाम् ॥१२॥
प्राणाः पञ्च स्वयं विष्णुर्मनो ब्रह्मा प्रजापतिः । सर्वज्ञानस्वरूपोऽहं शक्तिः प्रकृतिरीश्वरी ॥१३॥
आत्माधीना वयं सर्वे स्थिते तस्मिन्वयं स्थिताः । गते गताश्च परमे नरदेवमिवानुगाः ॥१४॥
जीवस्तत्प्रतिबिम्बं च सर्वभोगी हि कर्मणाम् । यथाऽर्कचन्द्रयोर्बिम्बं जलपूर्णघटेषु च ॥१५॥
बिम्बं घटेषु भग्नेषु प्रलीनं चन्द्रसूर्ययोः । तथा लयप्रसङ्गे स जीवो ब्रह्मणि लीयते ॥१६॥

नारद की बातें सुन कर पाँच मुख वाले भगवान् शिव ने हँस कर परब्रह्म का निरूपण करना आरम्भ किया ॥६॥

महादेव बोले—वत्स नारद ! तुमने जो निगूढ़ एवं परमोत्तम ज्ञान के विषय में पूछा है, वह वेदों और पुराणों में अत्यन्त दुर्लभ है ॥७॥ ब्रह्मन् ! मुने ! शिव, ब्रह्मा, विष्णु, शेष, धर्म और महान् विराट्—इन सब का हमने तथा श्रुतियों ने भी निरूपण किया है। वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ नारद ! जो सविशेष तथा प्रत्यक्ष दृश्य तत्त्व है, उसका हम लोगोंने वेद में निरूपण किया है ॥८-९॥

एक बार वैकुण्ठ में मेरे, ब्रह्मा के तथा धर्म के पूछने पर भगवान् विष्णु ने जो कुछ कहा था, वही तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ! वह तत्त्वों का सारभूत, अज्ञानी-अन्धे के नेत्र और द्वैध भ्रम रूपी अंधकार का नाशक अत्यन्त प्रज्ज्वलित प्रदीप है ॥१०-११॥ सनातन परब्रह्म परमात्मस्वरूप है। वह समस्त देहों में स्थित और जीवों के कर्मों का साक्षी है ॥१२॥ (सभी जीवों के) पाँचों प्राण स्वयं विष्णु, मन प्रजापति ब्रह्मा, समस्त ज्ञानस्वरूप मैं (शिव) और ईश्वरी प्रकृति शक्ति है ॥१३॥ राजा के अनुचरों की भाँति हम सभी परमात्मा के अधीन हैं। शरीर में उसके स्थित रहने पर हम लोग स्थित रहते हैं और उस परम (महान्) के चले जाने पर चले जाते हैं ॥१४॥ जीव उसी परमात्मा का प्रतिबिम्ब है और कर्मों का भोग करता है। जैसे जलपूर्ण घट में सूर्य-चन्द्र का प्रतिबिम्ब दिखायी पड़ता है और घट के फूट जाने पर वह प्रतिबिम्ब चन्द्रमा और सूर्य में विलीन हो जाता है, उसी भाँति प्रलय के समय जीव ब्रह्म में लीन हो जाता है ॥१५-१६॥ वत्स ! (महाप्रलय में) इस संसार के नष्ट हो जाने पर एक वही परब्रह्म शेष रह जाता है

१क. ०वान्वक्तु० ।

एकमेव परं ब्रह्म शेषे वत्स भवक्षये। वयं प्रलीनास्तत्रैव जगदेतच्चराचरम् ॥१७॥
तच्च ज्योतिःस्वरूपं च मण्डलाकारमेव च। ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डकोटिकोटिसमप्रभम् ॥१८॥
आकाशमिव विस्तीर्णं सर्वव्यापकमव्ययम्। सुखदृश्यं यथा चन्द्रबिम्बं योगिभिरेव च ॥१९॥
वदन्ति योगिनस्तत्तु परं ब्रह्म सनातनम्। दिवानिशं च ध्यायन्ते सत्यं तत्सर्वमङ्गलम् ॥२०॥
निरीहं च निराकारं परमात्मानमीश्वरम्। स्वेच्छामयं स्वतन्त्रं च सर्वकारणकारणम् ॥२१॥
परमानन्दरूपं च परमानन्दकारणम्। परं प्रधानं पुरुषं निर्गुणं प्रकृतेः परम् ॥२२॥
तत्रैव लीना प्रकृतिः सर्वबीजस्वरूपिणी। यथाऽग्नौ दाहिका शक्तिः प्रभा सूर्ये यथा मुने ॥२३॥
यथा दुग्धे च धावल्यं जले शैत्यं यथैव च। यथा शब्दश्च गगने यथा गन्धः क्षितौ सदा ॥२४॥
तथा हि निर्गुणं ब्रह्म निर्गुणा प्रकृतिस्तथा। सृष्टयुन्मुखेन तद्ब्रह्म चांशेन पुरुषः स्मृतः ॥२५॥
स एव सगुणो वत्स प्राकृतो विषयी स्मृतः। त्रिगुणा सा हि तत्रैव[1] परस्येच्छामयी स्मृता ॥२६॥
यथा मृदा कुलालश्च घटं कर्तुं क्षमः सदा। तथा प्रकृत्या तद्ब्रह्म सृष्टिं स्रष्टुं क्षमं मुने ॥२७॥
स्वर्णेन कुण्डलं कर्तुं स्वर्णकारः क्षमो यथा। तथा ब्रह्म तया सार्धं सृष्टिं कर्तुमिहेश्वरः (म्) ॥२८॥
कुलालसृष्टा सा च मृन्नित्या चैव सनातनी। न स्वर्णकारसृष्टं तत्स्वर्णं वा नित्यमेव च ॥२९॥

और हम सब तथा यह चराचरमय सम्पूर्ण जगत् उसी में विलीन हो जाते हैं ॥१७॥ वह परब्रह्म ज्योतिःस्वरूप मण्डलाकार और ग्रीष्म ऋतु के मध्याह्नकालीन करोड़ों सूर्य के समान प्रभापूर्ण है ॥१८॥ आकाश की भाँति विस्तृत, सर्वव्यापक, अनश्वर तथा योगियों को चन्द्रबिम्ब की भाँति सुखमय दिखायी देता है ॥१९॥ योगी लोग उसे सनातन परब्रह्म कहते हैं और दिन-रात उस सर्वमंगलमय सत्य स्वरूप का ध्यान करते रहते हैं ॥२०॥ वह निरीह (इच्छा-रहित), निराकार (रूपहीन), परमात्मा, ईश्वर, स्वेच्छामय, स्वतन्त्र एवं समस्त कारणों का कारण है ॥२१॥ परमानन्दरूप, परमानन्द का कारण, उत्तम प्रधान पुरुष, गुण (सत्त्व, रज, तम) से हीन और प्रकृति से परे है। प्रलय के समय उसीमें सर्वबीजस्वरूपिणी प्रकृति लीन होती है। ठीक उसी तरह जैसे अग्नि में उसकी दाहिका शक्ति, सूर्य में प्रभा, दुग्ध में धवलता और जल में शीतलता लीन रहती है। मुने! जैसे आकाश में शब्द और पृथ्वी में गंध सदा विद्यमान है उसी तरह निर्गुण ब्रह्म में निर्गुण प्रकृति सर्वदा स्थित है ॥२२-२४॥ वही ब्रह्म, सृष्टि के समय अंश से पुरुष रूप होता है। वत्स! उसी को सगुण, प्राकृत और विषयी कहा जाता है ॥२५॥ उसी में त्रिगुण रूप वाली परा प्रकृति भी छायामयी होकर रहती है ॥२६॥ मुने! जिस प्रकार कुम्हार मिट्टी द्वारा घड़े बनाने में सदैव समर्थ रहता है उसी भाँति वह ब्रह्म प्रकृति द्वारा समस्त सृष्टि करने में समर्थ है ॥२७॥ जिस प्रकार सुनार सुवर्ण द्वारा कुण्डल आदि (भूषण) बनाने में सदैव समर्थ रहता है उसी भाँति वह ब्रह्म प्रकृति द्वारा सृष्टि करने में समर्थ है ॥२८॥ कुम्हार की रचनोपयोगी मिट्टी न नित्य और न सनातनी (सदैव रहने वाली) है। उसी प्रकार सुवर्णकार का रचनोपयोगी सुवर्ण नित्य और सनातन नहीं है ॥२९॥ किन्तु वह परब्रह्म और प्रकृति नित्य है, क्योंकि दोनों की प्रधानता समान

---

१ ख. परा छायाम०।

नित्यं तत्परमं ब्रह्म नित्या च प्रकृतिः स्मृता। द्वयोः समं च प्राधान्यमिति केचिद्वदन्ति हि ॥३०॥
मृदं स्वर्णं समाहर्तुं कुलालस्वर्णकारकौ। न समर्थौ च मृत्स्वर्णं तयोराहरणे क्षमम् ॥३१॥
तस्मात्तत्प्रकृतेर्ब्रह्म परमेव च नारद। इति केचिद्वदन्त्येवं द्वयोर्वै नित्यता ध्रुवम् ॥३२॥
केचिद्वदन्ति तद्ब्रह्म स्वयं च प्रकृतिः पुमान्। ब्रह्मातिरिक्तप्रकृतिर्वदन्तीति च केचन ॥३३॥
तद्ब्रह्म परमं धाम सर्वकारणकारणम्। तद्ब्रह्मलक्षणं ब्रह्मन्निदं किंचिच्छ्रुतौ श्रुतम् ॥३४॥
ब्रह्म चाऽऽत्मा च सर्वेषां निर्लिप्तं साक्षिरूपि च। सर्वव्यापी च सर्वादि लक्षणं च श्रुतौ श्रुतम् ॥३५॥
तद्ब्रह्म शक्तिः प्रकृतिः सर्वबीजस्वरूपिणी। यतस्तच्छक्तिमद्ब्रह्म चेदं प्रकृतिलक्षणम् ॥३६॥
तेजोरूपं च तद्ब्रह्म ध्यायन्ते योगिनः सदा। वैष्णवास्तन्न मन्यन्ते मद्भक्ताः सूक्ष्मबुद्धयः ॥३७॥
तत्तेजः कस्य नाऽऽश्चर्यं ध्यायन्ते पुरुषं विना। कारणेन विना कार्यं कुतो वा प्रभवेद्भुवि ॥३८॥
ध्यायन्ते वैष्णवास्तस्मात्तत्र रूपं मनोहरम्। स्वेच्छामयस्य पुंसश्च साकारस्याऽऽत्मनः सदा ॥३९॥
तत्तेजोमण्डलाकारे सूर्यकोटिसमप्रभे। नित्यं स्थलं च प्रच्छन्नं गोलोकाभिधमेव च ॥४०॥
लक्षकोट्या योजनानां चतुरस्रं मनोहरम्। रत्नेन्द्रसारनिर्माणैर्गोपीभिश्चाऽऽवृतं सदा ॥४१॥
सुदृश्यं वर्तुलाकारं यथा चन्द्रस्य मण्डलम्। नानारत्नैश्च खचितं निराधारं तदिच्छया ॥४२॥
ऊर्ध्वं च नित्यं वैकुण्ठात्पञ्चाशत्कोटियोजनम्। गोगोपगोपीसंयुक्तं कल्पवृक्षसमन्वितम् ॥४३॥

है, ऐसा कुछ लोगों का कहना है ॥३०॥ कुम्हार और सुनार स्वयं मिट्टी और सुवर्ण पैदा कर के लाने में समर्थ नहीं हैं तथा मिट्टी और सुवर्ण भी कुम्हार और सुनार को ले आने की शक्ति नहीं रखते। अतः मिट्टी और कुम्हार की घट में तथा सुवर्ण और सुनार की कुंडल में समानरूप से प्रधानता है ॥३१॥ नारद! अतः प्रकृति से ब्रह्म श्रेष्ठ है। इस प्रकार कुछ लोग उन दोनों की निश्चित नित्यता बतलाते हैं ॥३२॥ कुछ लोग कहते हैं कि वही ब्रह्म प्रकृति (स्त्री) और पुरुष दोनों होता है। कुछ लोग प्रकृति को ब्रह्म से अतिरिक्त मानते हैं ॥३३॥ वह ब्रह्म, परमधाम, समस्त कारणों का कारण है। ब्रह्मन्! उस ब्रह्म का लक्षण श्रुति में कुछ इस प्रकार सुना गया है। ३४॥ वह ब्रह्म सभी का आत्मा, निर्लिप्त, साक्षिरूप, सर्वव्यापी एवं सब का आदिकारण है, वेद में ऐसा सुना है ॥३५॥ सर्वबीजस्वरूपिणी प्रकृति उस ब्रह्म की शक्ति है। क्योंकि प्रकृति के लक्षण में 'ब्रह्म शक्तिमान् है' ऐसा कहा गया है ॥३६॥ उस ब्रह्म के उस तेजोरूप का सभी योगी सदैव ध्यान करते हैं। किन्तु सूक्ष्म बुद्धि वाले मेरे भक्त वैष्णवगण ऐसा नहीं मानते ॥३७॥ बिना पुरुष के केवल उस तेज का ध्यान करना किसे आश्चर्य में नहीं डालता? पृथ्वी पर बिना कारण के कार्य का होना कहाँ सम्भव है? ॥३८॥ इसीलिए वैष्णवगण सदैव उसमें स्वेच्छामय पुरुष के मनोहर रूप का, जो परमात्मा का साकार रूप है, ध्यान किया करते हैं ॥३९॥ करोड़ों सूर्य के समान प्रकाशमान जो मंडलाकार तेजःपुंज है, उसके भीतर नित्य धाम छिपा हुआ है, जिसका नाम गोलोक है ॥४०॥ वह मनोहर लोक चारों ओर से लक्षकोटि योजन विस्तृत है। सर्वश्रेष्ठ दिव्य रत्नों के सारतत्त्व से जिनका निर्माण हुआ है, ऐसे दिव्य भवनों तथा गोपाङ्गनाओं से वह लोक भरा हुआ है। ॥४१॥ उसे सुखपूर्वक देखा जा सकता है। चन्द्रमंडल के समान ही वह गोलाकार है। रत्नेंद्रसार से निर्मित वह धाम परमात्मा की इच्छा के अनुसार बिना किसी आधार के ही स्थित है ॥४२॥ मुने! इस प्रकार वह गोलोक उसी नित्य वैकुण्ठ धाम से पचास करोड़ योजन ऊपर है। वह

कामधेनुभिराकीर्णं रासमण्डलमण्डितम्। वृन्दावनवनाच्छन्नं विरजावेष्टितं मुने ॥४४॥
शतशृङ्गैः शातकुम्भैः सुदीप्तं श्रीमदीप्सितम्। लक्षकोटया परिमितैराश्रमैः सुमनोहरैः ॥४५॥
शतमन्दिरसंयुक्तमाश्रमं सुमनोहरम्। रत्नप्राकारपरिखाविचित्रेण विराजितम् ॥४६॥
अमूल्यरत्ननिर्माणं लक्षमन्दिरसुन्दरम्। आश्रमं चतुरस्रं च चन्द्रबिम्बाकृतं वरम् ॥४७॥
गोलोकमध्यदेशस्थमतीव सुमनोहरम्। [1]प्राकारपरिखायुक्तं पारिजातवनान्वितम् ॥४८॥
कौस्तुभेन्द्रेण मणिना राजितं परमोज्ज्वलम्। हीरसारसुसंक्लृप्तसोपानैश्चातिसुन्दरैः ॥४९॥
मणीन्द्रसाररचितैः कपाटैर्दर्पणान्वितैः। नानाचित्रविचित्राढ्यैराश्रमं च सुसंस्कृतम् ॥५०॥
षोडशद्वारसंयुक्तं सुदीप्तं [2]रत्नदीपकैः। रत्नसिंहासने रम्ये महार्घमणिनिर्मिते ॥५१॥
नानाचित्रविचित्राढ्ये वसन्तं परमीश्वरम्। नवीननीरदश्यामं किशोरवयसं शिशुम् ॥५२॥
[3]शरन्मध्याह्नमार्तण्डप्रभामोचकलोचनम्। [4]शरत्पार्वणपूर्णेन्दुशुभदीप्तिमदाननम् ॥५३॥

गौ, गोप, गोपी से युक्त, कल्पवृक्ष सहित, कामधेनुओं से भरा हुआ, रासमण्डल से सुशोभित, वृन्दावन नामक वन से आच्छन्न और विरजा नदी से आवेष्टित है ॥४३-४४॥ वहाँ सैकड़ों स्वर्णमय शिखरों से सुशोभित गिरिराज विराजमान है। सुवर्ण-निर्मित लक्ष कोटि मनोहर आश्रम हैं, जिनसे वह अभीष्ट धाम अत्यन्त दीप्तिमान् एवं श्रीसम्पन्न दिखाई देता है। उन सबके मध्य भाग में एक परम मनोहर आश्रम है, जो अकेला ही सौ मंदिरों से युक्त है। वह रत्नों के बने विचित्र परकोटों तथा खाइयों से सुशोभित हैं। उसका अमूल्य रत्नों से निर्माण हुआ है। वह लाखों मन्दिर के समान सुन्दर है, वह आश्रम चौकोर है। चन्द्रबिम्ब के समान उसका आकार है। वह गोलोक के मध्य देश में अवस्थित एवं अत्यन्त सुन्दर है। वह परकोटों तथा खाइयों से घिरा हुआ तथा पारिजात वनों से सुशोभित है। उस आश्रम के भवनों में जो कलश लगे हैं, उनका निर्माण रत्नराज कौस्तुभ मणि से हुआ है। इसलिए उत्तम ज्योतिः पुंज से जाज्वल्यमान रहते हैं। हीरा के सारभाग से बनीं उनकी सीढ़ियाँ अत्यन्त सुन्दर हैं ॥४५-४९॥ मणियों के तत्त्व भाग के बने किवाड़ों में दर्पण जड़े हुए हैं। अनेक भाँति के चित्रविचित्र उपकरणों से वह आश्रम अत्यन्त सुसज्जित है उसमें सोलह दरवाजे हैं तथा वह आश्रम रत्नों के दीपकों से अत्यन्त प्रदीप्त हैं। उस आश्रम में अत्यन्त अमूल्य मणियों का बना एक रत्नखचित रमणीय सिंहासन है। उस पर सर्वेश्वर श्रीकृष्ण बैठे हुए हैं। उनकी अंग-कान्ति नवीन मेघमाला के समान श्याम है। वे किशोरावस्था के बालक हैं ॥५०-५२॥ उनकी आँखों से शरत् ऋतु के मध्याह्नकालीन सूर्य के समान प्रभा निकलती रहती है और उनका मुख शरत्पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति शुभ किरणों से युक्त है। उनका सौन्दर्य कोटि कन्दर्पों

---

१ इदं श्लोकद्वयं ख. पुस्तके नास्ति। २क. ०कैः। तत्र सिं०। ३क. ०हनराजीवप्र०। ४क. ०न्दुशोभाच्छादनमान०।

कोटिकन्दर्पलावण्यलीलानिन्दितमन्मथम्। कोटिचन्द्रप्रभाजुष्टं पुष्टं श्रीयुक्तविग्रहम् ॥५४॥
सस्मितं मुरलीहस्तं सुप्रशस्तं सुमङ्गलम्[1]। परमोत्तमपीतांशुकयुगेन समुज्ज्वलम् ॥५५॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं कौस्तुभेन विराजितम्। आजानुमालतीमालावनमालाविभूषितम् ॥५६॥
त्रिभङ्गभङ्गचसंयुक्तं[2] मणिमाणिक्यभूषितम्। मयूरपुच्छचूडं च सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम् ॥५७॥
रत्नकेयूरवलयरत्नमञ्जीररञ्जितम्। रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलसुशोभितम् ॥५८॥
[3]मुक्तापङक्तिसदृक्षामदशनं सुमनोहरम्। पक्वबिम्बाधरोष्ठं च नासिकोन्नतिशोभनम् ॥५९॥
वीक्षितं गोपिकाभिश्च वेष्टिताभिः समन्ततः। स्थिरयौवनयुक्ताभिः सस्मिताभिश्च सादरम् ॥६०॥
भूषिताभिश्च सद्रत्ननिर्मितैर्भूषणैः परम्। सुरेन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च मुनिभिर्मानवेन्द्रकैः ॥६१॥
ब्रह्मविष्णुशिवानन्तधर्माद्यैर्वन्दितं मुदा। भक्तप्रियं भक्तनाथं भक्तानुग्रहकारकम् ॥६२॥
रासेश्वरं सुरसिकं राधावक्षःस्थलस्थितम्। एवं रूपमरूपं तं मुने ध्यायन्ति वैष्णवाः ॥६३॥
सततं ध्येयमस्माकं परमात्मानमीश्वरम्। अक्षरं परमं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम् ॥६४॥
स्वेच्छामयं निर्गुणं च निरीहं प्रकृतेः परम्। सर्वाधारं[4] सर्वबीजं सर्वज्ञं सर्वमेव च ॥६५॥

की लावण्यलीला को तिरस्कृत कर रहा है। उनका पुष्ट श्रीविग्रह करोड़ों चन्द्रमाओं की प्रभा से सेवित है। उनके मुख पर मुसकराहट खेलती रहती है। उनके हाथ में मुरली शोभा पाती है। उनकी मनोहर छवि अत्यन्त प्रशंसनीय है। वे परम मंगलमय हैं। अग्नि में तपाकर शुद्ध किए गए सुवर्ण के समान रंग वाले दो पीताम्बर धारण करने से उनका श्रीविग्रह परम उज्जवल प्रतीत होता है ॥५३-५५॥ उनके सम्पूर्ण अंग चन्दन-चर्चित, कौस्तुभमणि से सुशोभित तथा जानु (घुटनों) तक लटकती हुई मालतीमाला और वनमाला से विभूषित हैं ॥५६॥ त्रिभंगी छवि से युक्त और मणियों से अलंकृत हैं। मोरपंख का मुकुट धारण करते हैं। उत्तम रत्नमय मुकुट से उनका मस्तक जगमगाता रहता है। रत्नों के बाजूबन्द, कंगन और मंजीर से उनके हाथ-पैर सुशोभित हैं। उनके गंडस्थल रत्नमय युगल कुंडल से सुशोभित हैं ॥५७-५८॥ मोतियों की पंक्ति के समान कान्तिपूर्ण उनके दाँत अत्यन्त मनोहर हैं। पके हुए बिम्बफल के समान उनके ओठ हैं। उनकी उन्नत नासिका अत्यन्त सुन्दर है। चारों ओर से घेरकर मंद मुसकान करती हुई गोपिकाएँ उन्हे सदा सादर निहारती रहती हैं। वे गोपियाँ स्थिर यौवन से युक्त, मंद मुसकान से सुशोभित तथा उत्तम रत्नों के बने हुए आभूषणों से विभूषित हैं ॥५९-६०½॥ ऐसे उन परब्रह्म की मुनीन्द्र, सुरेन्द्र, मुनि, मानवेन्द्र तथा ब्रह्मा, विष्णु, शिव एवं अनन्त धार्मिकजन सदा वंदना किया करते हैं। वे भक्तों के प्रिय, भक्तों के नाथ और भक्तों के ऊपर कृपा करने वाले हैं ॥६१-६२॥ मुने! इस प्रकार उस रासेश्वर, अत्यन्त रसिक, राधा जी के वक्षःस्थल पर विराजमान निराकार परमात्मा का वैष्णव गण सदैव ध्यान करते हैं ॥६३॥ वही परमात्मा, ईश्वर हम लोगों के ध्येय हैं, उन्हीं को अविनाशी, परब्रह्म एवं सनातन भगवान् कहा गया है ॥६४॥ वे स्वेच्छामय

१क. °म्। वह्निसंस्कारपी० २क. क्तं मुक्तामा०। ३क. ङक्तिविनिवेद्यद० ४क. सर्वसारं स०।

सर्वेश्वरं सर्वपूज्यं सर्वसिद्धिकरं परम्। स एव भगवानादिर्गोलोके द्विभुजः स्वयम् ॥६६॥
गोपवेषश्च गोपालैः पार्षदैः परिवेष्टितः। परिपूर्णतमः श्रीमान् श्रीकृष्णो राधिकेश्वरः ॥६७॥
सर्वान्तरात्मा सर्वत्र प्रत्यक्षः सर्वगः स्मृतः। कृषिश्च सर्ववचनो नकारश्चाऽऽत्मवाचकः ॥६८॥
सर्वात्मा च परं ब्रह्म तेन कृष्णः प्रकीर्तितः। कृषिश्च सर्ववचनो नकारश्चाऽऽदिवाचकः ॥६९॥
सर्वादिपुरुषो व्यापी तेन कृष्णः प्रकीर्तितः। स एवांशेन भगवान्वैकुण्ठे च चतुर्भुजः ॥७०॥
चतुर्भुजैः पार्षदैस्तैरावृतः कमलापतिः। स एव कलया विष्णुः पाता च जगतां प्रभुः ॥७१॥
श्वेतद्वीपे सिन्धुकन्यापतिरेव चतुर्भुजः। एतत्ते कथितं सर्वं [1]परब्रह्मस्वरूपकम् ॥७२॥
अस्माकं चिन्तनीयं च सेव्यं वन्दितमीप्सितम्। इत्युक्त्वा शंकरस्तत्र विरराम च शौनक ॥७३॥
गन्धर्वराजस्तोत्रेण तुष्टुवे तं च नारदः। मुनिस्तोत्रेण संतुष्टो भगवानादिरच्युतः ॥७४॥
ज्ञानं मृत्युंजयस्तस्मै प्रददौ वरमीप्सितम्। मुनीन्द्रस्तं संप्रणम्य प्रहृष्टवदनेक्षणः ॥७५॥
तदाज्ञया पुण्यरूपं ययौ नारायणाश्रमम् ॥७६॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते म० ब्र० सौ० ब्रह्मस्वरूपवैकुण्ठादिवर्णनं
नारदप्रस्थानं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

निर्गुण, निरीह, प्रकृति से परे, समस्त का आधार, सर्वबीज, सर्वज्ञ, सब कुछ, सर्वेश्वर, सब के पूज्य, समस्त सिद्धियों के प्रदाता हैं। वही एकमात्र भगवान् हैं, जो गोलोक में द्विभुज होकर गोपवेश में स्वयं रहते हैं । गोपाल पार्षदों से घिरे हुए वे परिपूर्णतम, श्रीकृष्ण, श्रीमान् राधिकेश्वर, सब के अन्तरात्मा, सब स्थानों में प्रत्यक्ष होने योग्य और सर्वगामी हैं। (कृष्ण शब्द में) कृष् शब्द का समस्त और नकार का आत्मा अर्थ है इसीलिए वे सर्वात्मा परब्रह्म कृष्ण नाम से कहे जाते हैं ॥६५-६८½॥ कृष् का अर्थ आदि और नकार का अर्थ आत्मा है। इसलिए वे सर्वव्यापी परमेश्वर सब के आदिपुरुष हैं। वही भगवान् अपने अंश से चतुर्भुज होकर वैकुण्ठ में चार भुजाओं वाले पार्षदों समेत लक्ष्मीपति रूप से निवास करते हैं। वही अपनी कला (अंश) मात्र से विष्णु होकर समस्त जगत् की रक्षा करते हैं और श्वेतद्वीप में सिन्धुकन्या लक्ष्मी के पति होकर चार भुजाओं से स्थित हैं। इस प्रकार मैंने परब्रह्म का स्वरूप सभी प्रकार से तुम्हें बता दिया, जो हम लोगों के चिन्तनीय, सुसेवा के योग्य और प्रिय एवं स्मरणीय हैं। शौनक ! इतना कह कर शंकर चुप हो गए ॥६९-७३॥ तब नारद ने गन्धर्वराज द्वारा रचे गए स्तोत्र से उनकी पुनः स्तुति की। उपरान्त आदि भगवान् अच्युत मृत्युंजय (शिव) ने मुनि के उस स्तोत्र से प्रसन्न होकर उन्हें मनोवांछित उत्तम ज्ञान प्रदान किया। और मुनीन्द्र नारद ने अपने प्रसन्न मुख तथा नेत्र द्वारा अत्यन्त हर्ष प्रकट करते हुए उन्हें प्रणाम किया। पश्चात् उनकी आज्ञा से नारद उस पुण्य रूप नारायणाश्रम की ओर चले गए ॥७४-७६॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुरण के ब्रह्मखण्ड में ब्रह्मस्वरूप एवं वैकुण्ठादिवर्णन समेत
नारदप्रस्थान नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२८॥

१क. ०ह्म निरूपणम्।

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

सौतिरुवाच

ददर्शाऽऽश्रममाश्चर्यं देवर्षिर्नारदस्तथा। ऋषेर्नारायणस्यैव बदरीवनसंयुतम् ॥१॥
नानावृक्षलताकीर्णं पुंस्कोकिलरुतश्रुतम्। शरभेन्द्रैः केसरीन्द्रैर्व्याघ्रौघैः परिवेष्टितम् ॥२॥
ऋषीन्द्रस्य प्रभावेण हिंसाभयविवर्जितम्। महारण्यमगम्यं च स्वर्गादपि मनोहरम् ॥३॥
([1]त्रिषष्टिकोटिसिद्धौघैरावृतं सूर्यवर्चसम्। ऋषीन्द्राणां च पञ्चाशत्कोटिभिश्चान्वितं मुदा ॥
विद्याधराणां नृत्यं तत्पश्यन्तं सस्मितं द्विज। गन्धर्वकृष्णसंगीतं श्रुतवन्तं मनोहरम् ॥)
सिद्धेन्द्राणां मुनीन्द्राणामाश्रमाणां त्रिकोटिभिः। आवृतं चन्दनारण्यैः पारिजातवनान्वितम् ॥४॥
ददर्श तमृषीन्द्रं च सभामध्ये मनोहरम्। रत्नसिंहासनस्थं च वसन्तं योगिनां गुरुम् ॥५॥
जपन्तं परमं ब्रह्म कृष्णमात्मानमीश्वरम्। प्रणनाम च तं दृष्ट्वा ब्रह्मपुत्रश्च शौनक ॥६॥
उत्थाय सहसाऽऽलिङ्ग्य युयुजे परमाशिषम्। पप्रच्छ कुशलं स्नेहाच्चकारातिथिपूजनम् ॥७॥
रत्नसिंहासने रम्ये वासयामास नारदम्। निवसन्नासने रम्ये वर्त्मश्रमविवर्जितः ॥८॥

अध्याय २९

बदरिकाश्रम में नारायण से नारद का प्रश्न

सौति बोले—देवर्षि नारद ने ऋषि नारायण के आश्चर्यमय आश्रम को देखा, जो बदरी (बेर) के वन से युक्त, अनेक भाँति के वृक्ष एवं फलों से व्याप्त, कोकिल की मधुर कूक से कूजित, मृगों, सिंहों और व्याघ्र-समूहों से घिरा हुआ था॥१-२॥ किन्तु ऋषीन्द्र नारायण के प्रभाव से वह स्थान हिंसा और भय से रहित था। इस प्रकार यह अगम्य महावन स्वर्ग से भी मनोहर दिखायी देता था॥३॥ वह तिरसठ करोड़ सिद्धों तथा पचास करोड़ मुनीन्द्रों से सुसेवित था॥४॥ द्विज ! विद्याधरों के नृत्य को देखते हुए तथा मुसकराते हुए ऋषीन्द्र नारायण को देखा, जो गन्धर्व-कृष्ण के संगीत को सुनने वाले तथा मनोहर थे। वहाँ तीन करोड़ सिद्धेन्द्रों एवं मुनीन्द्रों के आश्रम थे। वह चन्दन तथा पारिजात के वनों से घिरा हुआ था। इस प्रकार उस आश्रम में सभा के मध्य एक रत्नसिंहासन पर विराजमान उन ऋषीन्द्र को देखा, जिनका रूप मनोहर था और जो योगियों के गुरु थे। शौनक ! श्रीकृष्णस्वरूप परब्रह्म परमात्मा का जप करते हुए नारायण मुनि को देखकर ब्रह्मपुत्र नारद ने उन्हें प्रणाम किया॥५-६॥ अनन्तर ऋषि ने उठ कर सहसा उनका आलिंगन किया और उत्तम आशीर्वाद प्रदान किया। पुनः स्नेहवश कुशल पूछ कर उनका अतिथि-सत्कार किया॥७॥ उन्होंने उस रमणीक रत्नसिंहासन पर नारद को भी बैठाया, जिस पर बैठने से नारद का मार्गश्रम

१इदं श्लोकद्वयं ख. पुस्तके नास्ति।

उवाच तमृषिश्रेष्ठं भगवन्तं सनातनम्। अधीत्य वेदान्सर्वांश्च पितुः स्थाने सुदुर्गमान् ॥९॥
ज्ञानं संप्राप्य योगीन्द्रान्मन्त्रं वै शंकराद्विभो। मनो मे नहि तृप्नोति दुर्निवारं च चञ्चलम् ॥१०॥
दृष्टं मया त्वत्पदाब्जं मनसा प्रेरितेन च। किंचिज्ज्ञानविशेषं च लब्धुमिच्छामि सांप्रतम् ॥११॥
यत्र कृष्णगुणाख्यानं जन्ममृत्युजरापहम् ॥१२॥
ब्रह्मविष्णुशिवाद्याश्च सुरेन्द्राश्च सुरा विभो। कं चिन्तयन्ति मुनयो मनवश्च विचक्षणाः ॥१३॥
कस्मात्सृष्टिश्च भवति कुत्र वा संप्रलीयते। को वा सर्वेश्वरो विष्णुः सर्वकारणकारकः ॥१४॥
तस्येश्वरस्य किं रूपं कर्म वा किं जगत्पते। विचार्य मनसा सर्वं तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥१५॥
नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य भगवानृषिः। कथां कथितुमारेभे पुण्यां भुवनपावनीम् ॥१६॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते सौ० नारायणं प्रति नारदप्रश्नो
नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

दूर हो गया ॥८॥ पश्चात् नारद ने ऋषिश्रेष्ठ सनातन भगवान् से कहा—विभो! पिताजी से उन अत्यन्त दुर्गम वेदों का अध्ययन तथा योगीन्द्र शंकर जी से ज्ञान और मन्त्र प्राप्त कर लेने पर भी मेरे मन को तृप्ति नहीं हो रही है, क्योंकि यह मन अत्यन्त दुर्निवार और चंचल है ॥९-१०॥ इसीलिए मन से प्रेरित होकर मैंने आपके चरणकमल का दर्शन किया है। अब मुझे कुछ विशेष ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा हो रही है, जिसमें जन्म, मृत्यु एवं जरा के विनाशक भगवान् श्रीकृष्ण का गुणानुवर्णन किया गया हो ॥११-१२॥ विभो! ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आदि सुरेन्द्र, देवगण तथा बुद्धिमान् मुनिगण तथा मनुगण किसका चिन्तन करते हैं? ॥१३॥ सृष्टि किससे उत्पन्न होकर किसमें विलीन हो जाती है? कौन सब का ईश्वर, विष्णु एवं समस्त कारणों का कारण है? जगत्पते! उस ईश्वर का रूप और कर्म मन से विचार कर आप मुझे बताने की कृपा करें ॥१४-१५॥ नारद की बातें सुन कर भगवान् ऋषि ने हँसकर त्रिभुवनपावनी पुण्य कथा को कहना आरम्भ किया ॥१६॥

श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराण के ब्रह्मखण्ड में नारद-प्रश्न-नामक
उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२९॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच

लम्बोदरो हरिरुमापतिरादिशेषब्रह्मादयः सुरगणा मनवो मुनीन्द्राः
वाणीशिवात्रिपथगाकमलादिकाश्च संचिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दम् ॥१॥
संसारसागरमतीव गभीरघोरं दावाग्निसर्पपरिवेष्टितचेष्टिताङ्गम् ।
संलङ्घ्य गन्तुमभिवाञ्छति यो हि दास्यं संचिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दम् ॥२॥
गोवर्धनोद्धरणकीर्तिरतीवखिन्ना भूर्धारिता च दशनाग्रत एव चाऽऽर्द्रा ।
विश्वानि लोमविवरेषु बिभर्तुरादेः संचिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दम् ॥३॥
वेदाङ्गवेदमुखनिःसृतकीर्तिरंशैर्वेदाङ्गवेदजनकस्य हरेर्विधातुः ।
जन्मान्तकादिभयशोकविदीर्णदेहः संचिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दम् ॥४॥
गोपाङ्गनावदनपङ्कजषट्पदस्य रासेश्वरस्य [1]रसिकारमणस्य पुंसः ।
वृन्दावने विहरतो व्रजवेषविष्णोः संचिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दम् ॥५॥
चक्षुर्निमेषपतितो जगतां विधाता तत्कर्म वत्स कथितुं भुवि कः समर्थः ।

अध्याय ३०

परमात्मा श्रीकृष्ण तथा प्रकृति की महिमा का वर्णन

श्रीनारायण बोले—गणेश, विष्णु, शिव, आदि शेष तथा ब्रह्मा आदि देवगण, मनु, मुनीन्द्रवृन्द, सरस्वती, गौरी, गंगा और कमला आदि देवियाँ भी जिन भगवान् के चरण-कमल का चिन्तन करती हैं, उन भगवान् का चिन्तन करना सबका कर्तव्य है॥१॥ जो गम्भीर और घोर इस संसार-सागर को, जिसका अंग दावाग्निरूपी सर्पों से घिरा है, पार करना चाहता है, वह दास्य भाव से भगवान् के चरण-कमल की चिन्तना करे॥२॥ गोवर्द्धन का उद्धार करने वाले भगवान् ने इस दीनमुखी पृथिवी को अपने दाँतों के अग्र भाग पर रख कर इसका उद्धार किया था और (जीवों के) भरण-पोषण करने वाले उन आदि देव के लोमविवरों में अनेक विश्व निहित हैं। ऐसे भगवान् के चरण-कमल का स्मरण अवश्य करना चाहिए॥३॥ (शिक्षा, कल्प आदि) छहों वेदांग और वेदगण अपने मुख से जिसकी कीर्ति का सदैव वर्णन करते हैं तथा जो अपने अंश से वेदांग-सहित वेद के उत्पादक हैं, ऐसे विधाता भगवान् हरि के चरण-कमलों का स्मरण वह व्यक्ति करे जिसका शरीर जन्म-मरण आदि के भय और शोक से विदीर्ण हो गया है॥४॥ जो गोपियों के मुखकमल के भ्रमर हैं और वृन्दावन में विहार करते हैं, उन व्रजवेषधारी, विष्णु रूप परम पुरुष, रसिकरमण, रासेश्वर श्रीकृष्ण के चरणारविन्द का चिन्तन करना चाहिए। जिनके नेत्रों की पलक गिरने पर जगद्विधाता

---

[1] क. ०काभरण०

त्वं चापि नारदमुने परमादरेण संचिन्तनं कुरु हरेश्चरणारविन्दम् ॥६॥
यूयं वयं तस्य कलाकलांशाः कलाकलांशा मनवो मुनीन्द्राः ।
कलाविशेषा भवपाद्ममुख्या महान्विराड् यस्य कलाविशेषः ॥७॥
सहस्रशीर्षा शिरसः प्रदेशे बिभर्ति सिद्धार्थसमं च विश्वम्।
कूर्मे च शेषो मशको गजे यथा कूर्मश्च कृष्णस्य कलाकलांशः ॥८॥
गोलोकनाथस्य विभोर्यशोऽमलं श्रुतौ पुराणे नहि किंचन स्फुटम् ।
न पाद्ममुख्याः कथितुं समर्थाः सर्वेश्वरं तं भज पाद्मपुत्र ॥९॥
विश्वेषु सर्वेषु च विश्वधाम्नः सन्त्येव शश्वद्विधिविष्णुरुद्राः ।
तेषां च संख्याः श्रुतयश्च देवाः परं न जानन्ति तमीश्वरं भज ॥१०॥
करोति सृष्टिं स विधेर्विधाता विधाय नित्यां प्रकृतिं जगत्प्रसूम् ।
ब्रह्मादयः प्राकृतिकाश्च सर्वे भक्तिप्रदां श्रीं प्रकृतिं भजन्ति ॥११॥
ब्रह्मस्वरूपा प्रकृतिर्न भिन्ना यया च सृष्टिं कुरुते सनातनः[1] ।
स्त्रियश्च सर्वाः कलया जगत्सु माया च सर्वे च तया विमोहिताः ॥१२॥
नारायणी सा परमा सनातनी शक्तिश्च पुंसः परमात्मनश्च ।

ब्रह्मा की आयु समाप्त हो जाती है उनके कर्म का वर्णन करने में भूतल पर कौन समर्थ है ? इसलिए नारद मुने ! तुम भी परम आदर से उसी भगवान् के चरण-कमल का चिन्तन करो ॥६॥ तुम लोग और हम लोग सभी उन भगवान् की कला के अंशमात्र हैं। उसी प्रकार मनुगण तथा संसारपारगामी मुख्य मुनिगण भी उनकी कला के कलांश ही हैं। महादेव और ब्रह्मा भी कलाविशेष हैं और महान् विराट् पुरुष भी उनकी विशिष्ट कलामात्र हैं ॥७॥ सहस्र सिरों वाले शेषनाग सम्पूर्ण विश्व को अपने मस्तक पर सरसों के एक दाने के समान धारण करते हैं, परन्तु कूर्म के पृष्ठ भाग में वे शेषनाग ऐसे जान पड़ते हैं मानो हाथी के ऊपर मच्छर बैठा हो। वे भगवान् कूर्म श्रीकृष्ण की कला के अंशमात्र हैं ॥८॥ अतः उस व्यापक एवं गोलोक नाथ के निर्मल यश का वर्णन वेद एवं पुराण में किंचिन्मात्र भी प्रकट नहीं हुआ। ब्रह्मा आदि मुख्य देवगण भी उसके वर्णन करने में समर्थ नहीं हो सके। इसलिए उसी सर्वेश्वर एवं मुख्य देव की आराधना करो ॥९॥ उस विश्वधाम भगवान् के सभी विश्वों में ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश निरन्तर स्थित रहते हैं, उनकी संख्याएँ वेद तथा देवगण नहीं जानते हैं। अतः उस परमेश्वर की सेवा करो ॥१०॥ वही परमेश्वर ब्रह्मा की सृष्टि करते हैं और वे ब्रह्मा जगत् को उत्पन्न करनेवाली उस नित्य प्रकृति की रचना करके सृष्टि करते हैं। इसीलिए ब्रह्मा आदि देवगण और प्राकृतिक मनुष्य सभी, उस भक्तिप्रद की प्रकृति की आराधना करते हैं ॥११॥ वह ब्रह्मस्वरूपा प्रकृति ब्रह्म से भिन्न नहीं है। वे सनातन भगवान् उस प्रकृति द्वारा सृष्टि करते हैं। उसी प्रकृति की कला से संसार की सारी स्त्रियाँ प्रकट हुई हैं। प्रकृति ही माया है। उससे सब विमोहित हैं ॥१२॥ वह सनातनी नारायणी,

---

१ख. ०नः। भिन्न०।

आत्मेश्वरश्चापि यया च शक्तिमांस्तया विना स्रष्टुमशक्त एव ॥१३॥
गत्वा विवाहं कुरु वत्स सांप्रतं कर्तुं प्रयुक्तश्च पितुर्निदेशः ।
गुरोर्निदेशप्रतिपालको भवेः सर्वत्र पूज्यो विजयी च संततम् ॥१४॥
स्वपत्नीं पूजयेद्यो हि वस्त्रालंकारचन्दनैः। प्रकृतिस्तस्य संतुष्टा यथा कृष्णो द्विजार्चने ॥१५॥
सा च योषित्स्वरूपा च प्रतिविश्वेषु मायया। योषितामपमानेन पराभूता च सा भवेत् ॥१६॥
दिव्या स्त्री पूजिता येन पतिपुत्रवती सती। प्रकृतिः पूजिता तेन सर्वमङ्गलदायिनी ॥१७॥
मूलप्रकृतिरेका सा पूर्णब्रह्मस्वरूपिणी। सृष्टौ पञ्चविधा सा च विष्णुमाया सनातनी ॥१८॥
प्राणाधिष्ठातृदेवी या कृष्णस्य परमात्मनः। सर्वासां प्रेयसी कान्ता सा राधा परिकीर्तिता ॥१९॥
नारायणप्रिया लक्ष्मीः सर्वसंपत्स्वरूपिणी। वागधिष्ठातृदेवी या सा च पूज्या सरस्वती ॥२०॥
सावित्री वेदमाता च पूज्यरूपा विधेः प्रिया। शंकरस्य प्रिया दुर्गा यस्याः पुत्रो गणेश्वरः ॥२१॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे भगवत्स्तुति-तत्स्वरूपमायास्वरूपवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

परमात्मा पुरुष की परमा शक्ति है, जिससे वे आत्मेश्वर शक्तिमान् कहे जाते हैं, और उस (माया) के विना वे सृष्टि करने में असमर्थ भी रहते हैं॥१३॥ वत्स! इस समय तुम पिता की आज्ञा का पालन रूप विवाह अवश्य करो, क्योंकि गुरु की आज्ञा का पालन करने से तुम सर्वत्र सदैव पूज्य और विजयी बने रहोगे॥१४॥ क्योंकि जो अपनी पत्नी का वस्त्र आभूषण और चन्दनों द्वारा पूजा (सम्मान) करता है, उस पर वह प्रकृति उसी तरह परम प्रसन्न होती है जैसे ब्राह्मण की अर्चना करने पर भगवान् कृष्ण॥१५॥ इस प्रकार प्रत्येक विश्व में वह माया स्त्री रूप से विद्यमान है। इसलिए स्त्री का अपमान करने से वह अपमानित होती है॥१६॥ इसलिए पतिपुत्रवाली दिव्य स्त्री की जिसने पूजा की उसने मानों सर्वमंगलप्रदा प्रकृति की पूजा की है॥१७॥ पूर्णब्रह्मस्वरूप वाली वह मूल प्रकृति एक ही है किन्तु वह विष्णु की सनातनी माया सृष्टि के समय पाँच रूपों में प्रकट होती हैं॥१८॥ इस भाँति भगवान् कृष्ण के प्राणों की उस अधिष्ठात्री देवी को, जो समस्त प्रकृतियों में उन्हें सबसे अधिक प्रिय हैं, 'राधा' कहा गया है॥१९॥ समस्त सम्पत्तियों का रूप धारण करने वाली लक्ष्मी, जो नारायण की प्रिया हैं, दूसरी प्रकृति हैं एवं वाणी की अधिष्ठात्री देवी पूज्या सरस्वती तीसरी प्रकृति हैं॥२०॥ ब्रह्मा की प्रिया वेदमाता सावित्री चौथी और शंकर की प्रिया दुर्गा, जिनके पुत्र गणेश हैं; पांचवीं प्रकृति हैं॥२१॥

ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में भगवत्स्तुति, तत्स्वरूप एवं मायास्वरूप वर्णन नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३०॥

ब्रह्मखंड समाप्त।

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः

श्रीमद्द्वैपायनमुनिप्रणीतं

ब्रह्मवैवर्तपुराणम्

तत्र द्वितीयं प्रकृतिखण्डम्

अथ प्रथमोऽध्यायः

नारद उवाच

गणेशजननी दुर्गा राधा लक्ष्मीः सरस्वती। सावित्री वै सृष्टिविधौ प्रकृतिः पञ्चधा स्मृता ॥१॥
आविर्बभूव सा केन का वा सा ज्ञानिनां वरा। किंवा तल्लक्षणं ब्रूहि साऽभवत्पञ्चधा कथम् ॥२॥
सर्वासां चरितं पूजाविधानं[1] कथमीप्सितम्। अवतारं कुत्र कस्यास्तन्मां व्याख्यातुमर्हसि ॥३॥

नारायण उवाच

प्रकृतेर्लक्षणं वत्स को वा वक्तुं क्षमो भवेत्। किंचित्तथाऽपि वक्ष्यामि यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रतः ॥४॥
प्रकृष्टवाचकः प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचकः। सृष्टौ प्रकृष्टा या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता ॥५॥
गुणे प्रकृष्टसत्त्वे च प्रशब्दो वर्तते श्रुतौ। मध्यमे कृश्च रजसि तिशब्दस्तमसि स्मृतः ॥६॥
त्रिगुणात्मस्वरूपा या सर्वशक्तिसमन्विता। प्रधाना सृष्टिकरणे प्रकृतिस्तेन कथ्यते ॥७॥

अध्याय १

प्रकृति तथा उसके अंश आदि का वर्णन

नारद बोले--गणेश की माता दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती और सावित्री--ये पाँच देवियाँ प्रकृति कहलाती हैं। इन्हीं पर सृष्टि निर्भर है॥१॥ ज्ञानियों में श्रेष्ठ वह प्रकृति किसके द्वारा उत्पन्न होती है? उसका रूप क्या है? उसका लक्षण क्या है? और वह पाँच प्रकार की कैसे होती है? इसे बताने की कृपा करें॥२॥ तथा उन सब का चरित और पूजा का विधान, उनकी इच्छा और किसका कहाँ अवतार हुआ है यह भी बताने की कृपा करें॥३॥

नारायण बोले--वत्स! प्रकृति का लक्षण कहने में कौन समर्थ हो सकता है। तो भी जो कुछ धर्म के मुख से मैंने सुना है उसे तुम्हें बता रहा हूँ॥४॥ (प्रकृति शब्द में) प्र का अर्थ है 'प्रकृष्ट' और कृति का अर्थ है 'सृष्टि'। अतः सृष्टि करने में प्रकृष्ट गुण सम्पन्न होने वाली देवी को 'प्रकृति' कहा गया है॥५॥ वेद में प्रशब्दका प्रकृष्ट सत्त्व-गुण अर्थ बताया गया है, कृ शब्द का मध्यम रजोगुण और ति शब्द का तमोगुण अर्थ कहा है॥६॥ इस प्रकार त्रिगुण स्वरूप वाली सर्वशक्तिमती को सृष्टि में प्रधान होने के नाते 'प्रकृति' कहा गया है॥७॥ प्रथम अर्थ में प्रशब्द

---

१ क ०नं गुणमौ०।

प्रथमे वर्तते प्रश्च कृतिः स्यात्सृष्टिवाचकः। सृष्टेराद्या च या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता ॥८॥
योगेनाऽऽत्मा सृष्टिविधौ द्विधारूपो बभूव सः। पुमांश्च दक्षिणार्धाङ्गो वामाङ्गः प्रकृतिः स्मृतः ॥९॥
सा च ब्रह्मस्वरूपा स्यान्माया नित्या सनातनी। यथाऽऽत्मा च तथा शक्तिर्यथाऽग्नौ दाहिका स्मृता ॥१०॥
अत एव हि योगीन्द्रः स्त्रीपुंभेदं न मन्यते। सर्वं ब्रह्ममयं ब्रह्मञ्छश्वत्पश्यति नारद ॥११॥
स्वेच्छामयस्येच्छया च श्रीकृष्णस्य सिसृक्षया। साऽऽविर्बभूव सहसा मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥१२॥
तदाज्ञया पञ्चविधा सृष्टिकर्मणि भेदतः। अथ भक्तानुरोधाद्वा भक्तानुग्रहविग्रहा ॥१३॥
गणेशमाता दुर्गा या शिवरूपा शिवप्रिया। नारायणी विष्णुमाया[1] पूर्णब्रह्मस्वरूपिणी ॥१४॥
ब्रह्मादिदेवैर्मुनिभिर्मनुभिः[2] पूजिता सदा। सर्वाधिष्ठातृदेवी सा ब्रह्मरूपा सनातनी ॥१५॥
यशोमङ्गलधर्मश्रीसत्यपुण्यप्रदायिनी[3]। मोक्षहर्षप्रदात्रीयं शोकदुःखार्तिनाशिनी ॥१६॥
शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणा। तेजःस्वरूपा परमा तदधिष्ठातृदेवता ॥१७॥
[4]सर्वशक्तिस्वरूपा च शक्तिरीशस्य संततम्। सिद्धेश्वरी सिद्धरूपा सिद्धिदा सिद्धिदेश्वरी ॥१८॥

और सृष्टि अर्थ में कृति शब्द का प्रयोग होता है। अतः सृष्टि की आदि देवी को 'प्रकृति' कहते हैं॥८॥ सृष्टि विधान काल में वह परब्रह्म योग द्वारा दो रूपों में प्रकट होते हैं। उनके दाहिने अंग से उत्पन्न होने वाले को 'पुरुष' और बाँयें अंग से उत्पन्न होने वाली को 'प्रकृति' कहते हैं॥९॥ वह ब्रह्मस्वरूपा माया जो नित्य और सनातनी' है, वह अग्नि में दाहिका शक्ति की भाँति आत्मा की शक्तिरूप है॥१०॥ नारद! इसीलिए योगीन्द्र लोग स्त्री-पुरुष का भेद नहीं मानते हैं। वे सबको निरन्तर ब्रह्ममय देखते हैं॥११॥ ब्रह्मन्! वह ईश्वरी मूल प्रकृति स्वेच्छा-मय भगवान् श्रीकृष्ण की सृष्टि करने वाली इच्छा द्वारा सहसा प्रकट हुई है॥१२॥ अतः उनकी आज्ञा से सृष्टि-कर्म में वह पाँच प्रकार का रूप धारण करती है, अथवा भक्तों के ऊपर कृपा करने के लिए या भक्तों के अनुरोध से भगवती प्रकृति विविध रूप धारण करती है॥१३॥ गणेश की माता दुर्गा, शिव (कल्याण) रूपा और शिव की प्रिया हैं। उस पूर्णब्रह्मस्वरूपिणी, नारायणी, विष्णु की माया का ब्रह्मादि देवगण, मुनिगण और मनुगण सदैव पूजन करते रहते हैं, वह सब की अधिष्ठात्री देवी एवं सनातनी ब्रह्मरूपा है। वह यश, मङ्गल, धर्म, श्री, सत्य, पुण्य, मोक्ष एवं हर्ष प्रदान करने वाली शोक-दुःख का नाश करने वाली है॥१४-१६॥ शरण में आये हुए दीनों की रक्षा में सदा संलग्न रहती है। वह परम तेजःस्वरूपा है। उसे तेज की अधिष्ठात्री देवी कहा जाता है॥१७॥ वह सर्वशक्तिस्वरूपा है तथा शंकर को नित्य शक्ति प्रदान करती है। वह सिद्धेश्वरी, सिद्धिरूपा, सिद्धि देने वाली और सिद्धि देने वाले की अधीश्वरी है॥१८॥ बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, पिपासा, छाया, तन्द्रा, दया, स्मृति, जाति, क्षान्ति

---

१ क. ०ष्णुरूपा पू०। २ क. ०र्महद्भिः पू०। ३ क. ०नी। सुखमोक्षहर्षदात्री शोकार्तिदुर्गना०। ४ क. वैमन्त्रस्वरूपा च शक्तिबीजस्य साम्प्रतम्।

बुद्धिर्निद्रा क्षुत्पिपासा छाया तन्द्रा दया स्मृतिः। जातिः क्षान्तिश्च शान्तिश्च कान्तिर्भ्रान्तिश्च चेतना॥१९॥
तुष्टिः पुष्टिस्तथा[1] लक्ष्मीर्वृत्तिर्माता तथैव च। सर्वशक्तिस्वरूपा सा कृष्णस्य परमात्मनः॥२०॥
उक्तः श्रुतौ[2] श्रुतगुणश्चातिस्वल्पो यथाऽऽगमम्। गुणोऽस्त्यनन्तोऽनन्ताया अपरां च निशामय॥२१॥
शुद्धसत्त्वस्वरूपा या पद्मा च परमात्मनः। सर्वसंपत्स्वरूपा या तदधिष्ठातृदेवता॥२२॥
कान्ता दान्ताऽतिशान्ता च सुशीला सर्वमङ्गला। लोभान्मोहात्कामरोषान्मदाहंकारतस्तथा॥२३॥
त्यक्ताऽनुरक्ता पत्युश्च सर्वाद्या च पतिव्रता। प्राणतुल्या भगवतः प्रेमपात्री प्रियंवदा॥२४॥
सर्वसस्यात्मिका सर्वजीवनोपायरूपिणी। महालक्ष्मीश्च वैकुण्ठे पतिसेवापरायणा॥२५॥
स्वर्गे च स्वर्गलक्ष्मीश्च राजलक्ष्मीश्च राजसु। गृहे च गृहलक्ष्मीश्च मर्त्यानां गृहिणां तथा॥२६॥
सर्वेषु प्राणिद्रव्येषु शोभारूपा मनोहरा। प्रीतिरूपा पुण्यवतां प्रभारूपा नृपेषु च॥२७॥
वाणिज्यरूपा वणिजां पापिनां कलहङ्करी[3]। दयामयी भक्तमाता भक्तानुग्रहकारिका॥२८॥
चपले चपला भक्तसम्पदो रक्षणाय च। जगज्जीवन्मृतं सर्वं यया देव्या विना मुने॥२९॥
शक्तिर्द्वितीया कथिता वेदोक्ता सर्वसंमता। सर्वपूज्या सर्ववन्द्या चान्यां मत्तो निशामय॥३०॥

शान्ति, कान्ति, भ्रान्ति, चेतना, तुष्टि, पुष्टि, लक्ष्मी, वृत्ति तथा माता नाम से प्रसिद्ध देवियाँ परमात्मा कृष्ण की सर्वशक्ति स्वरूपा प्रकृति हैं॥१९-२०॥ श्रुति में इनके सुविख्यात गुण का अत्यन्त संक्षेप से वर्णन किया गया है, जैसा कि आगमों में उपलब्ध होता है। ये अनन्ता हैं। अतएव इनमें गुण भी अनन्त हैं। अब इनके दूसरे रूप का वर्णन सुनो॥२१॥

परमात्मा विष्णु की शक्ति पद्मा शुद्ध सत्त्व स्वरूपा, समस्त सम्पत्ति स्वरूपा तथा सम्पत्ति की अधिष्ठात्री देवी हैं ॥२२॥ वह परम सुन्दरी, अनुपम संयमरूपा, अत्यन्त शान्तारूपा, सुशीला और सर्वमंगलमयी है। वह लोभ, मोह, काम, रोष, मद और अहंकार आदि दुर्गुणों से रहित है। भक्तों पर अनुग्रह करना तथा अपने स्वामी श्रीहरि से प्रेम करना उनका स्वभाव है। वह सबकी आदि कारण और पतिव्रता हैं। भगवान् की प्रेमपात्री, प्रियंवदा एवं प्राणतुल्य हैं॥२३-२४॥ समस्त अन्नमयी, सबकी जीवन-रक्षा स्वरूप वह महालक्ष्मी वैकुण्ठ में पति-सेवापरायण रहती हैं॥२५॥ वही स्वर्ग में स्वर्गलक्ष्मी, राजाओं की राजलक्ष्मी और गृहों में गृहस्थ मनुष्यों की गृहलक्ष्मी हैं॥२६॥ वह सभी प्राणियों और जड़ पदार्थों की शोभा, परम मनोहर, पुण्यात्माओं की प्रीति एवं राजाओं की प्रभा है॥२७॥ वह बनियों में व्यापार रूप से और पापियों में कलह रूप से विराजती हैं। वह दयामयी, भक्तों की माता और भक्तों पर अनुग्रह करने वाली है॥२८॥ मुने! वह विद्युत् की चञ्चलता है तथा भक्तों की सम्पत्ति की रक्षा करने वाली है। उसके बिना समस्त जगत् जीवित रहते हुए भी मृतक के समान है॥२९॥ इस प्रकार मैंने वेदोक्त सर्वसम्मत प्रकार से दूसरी शक्ति का वर्णन कर दिया। वह सर्वपूज्या एवं सबकी वन्द्या है। अब अन्य देवी के गुण बता रहा हूँ, सुनो॥३०॥

---

१ क. ०क्ष्मीर्धृतिर्मा०। २ क. श्रुतिगु० ३. क. ०लहाङ्करा द०।

वाग्बुद्धिविद्याज्ञानाधिदेवता परमात्मनः। सर्वविद्यास्वरूपा या सा च देवी सरस्वती ॥३१॥
सुबुद्धिः कविता मेधा प्रतिभा स्मृतिदा नृणाम्। नानाप्रकारसिद्धान्तभेदार्थकल्पनाप्रदा ॥३२॥
व्याख्याबोधस्वरूपा च सर्वसन्देहभञ्जनी। विचारकारिणी ग्रन्थकारिणी शक्तिरूपिणी[1] ॥३३॥
सर्वसंगीतसंधानतालकारणरूपिणी। विषयज्ञानवाग्रूपा प्रतिविश्वं च जीविनाम् ॥३४॥
यया विना च विश्वौघो मूको मृतसमः सदा। [2]व्याख्यामुद्राकरा शान्ता वीणापुस्तकधारिणी ॥३५॥
शुद्धसत्त्वस्वरूपा या सुशीला श्रीहरिप्रिया। हिमचन्दनकुन्देन्दुकुमुदाम्भोजसन्निभा ॥३६॥
जपन्ती परमात्मानं श्रीकृष्णं रत्नमालया। तपःस्वरूपा तपसां फलदात्री तपस्विनी ॥३७॥
सिद्धिविद्यास्वरूपा च सर्वसिद्धिप्रदा सदा। देवी तृतीया गदिता श्रीयुक्ता जगदम्बिका ॥३८॥
यथागमं यथाकिंचिदपरां संनिबोध मे। माता चतुर्णां वेदानां वेदाङ्गानां च च्छन्दसाम् ॥३९॥
संध्यावन्दनमन्त्राणां तन्त्राणां च विचक्षणा। द्विजातिजातिरूपा च [3]जपरूपा तपस्विनी ॥४०॥
ब्राह्मण्यतेजोरूपा च सर्वसंस्कारकारिणी। पवित्ररूपा सावित्री गायत्री ब्रह्मणः प्रिया ॥४१॥
तीर्थानि यस्या संस्पर्शं दर्शं वाञ्छन्ति शुद्धये। शुद्धस्फटिकसंकाशा शुद्धसत्त्वस्वरूपिणी ॥४२॥

परमात्मा की वाणी, बुद्धि, विद्या और ज्ञान की अधिष्ठात्री सर्वविद्यास्वरूपा देवी को सरस्वती कहा जाता है॥३१॥ वह सज्जनों को उत्तम बुद्धि, कविता, मेधा, प्रतिभा एवं स्मृति प्रदान करती है। अनेक प्रकार के सिद्धान्त-भेदों और अर्थों की कल्पना-शक्ति वही देती है॥३२॥ वह व्याख्या तथा बोध स्वरूपा है। समस्त सन्देहों को दूर करने वाली, विचार करने वाली और ग्रन्थों का निर्माण करने वाली शक्ति है॥३३॥ समस्त संगीत की संधि तथा ताल का कारण उसी का रूप है। प्रत्येक विश्व में जीवों के लिए वह विषय, ज्ञान और वाणी रूपा है। उसके बिना विश्व-समूह सदा मूक एवं मृतक तुल्य है। उसका एक हाथ व्याख्या की मुद्रा में सदा उठा रहता है। वह शान्तरूपा है तथा हाथ में वीणा और पुस्तक धारण किये रहती है। वह शुद्धसत्त्वस्वरूपा, सुशीला और विष्णु की प्रिया है। हिम (बर्फ) चन्दन, कुन्द, चन्द्र, कुमुद और कमल के समान श्वेत वर्ण वाली वह सरस्वती देवी रत्नों की माला पर परमात्मा श्री कृष्ण के नामों का जप करती है। वह तपःस्वरूपा, तपस्वियों के तप का फल देनेवाली, तपस्विनी, सिद्धिविद्यास्वरूपा तथा सर्वदा समस्तसिद्धिप्रदायिनी है॥३४-३८॥ शास्त्रानुसार उसकी थोड़ी-सी व्याख्या करके अब मैं चौथी देवी का वर्णन कर रहा हूँ, सुनो!

वह देवी चारों वेद, वेदांग, छन्दःशास्त्र, सन्ध्या-वन्दन के मन्त्रों एवं तन्त्रों की जननी है। द्विजाति वर्णों के लिए उसने अपना यह रूप धारण किया है। वह जपरूपा, तपस्विनी, ब्रह्मण्यतेजोरूपा, समस्त संस्कारों को सुसम्पन्न करने वाली, एवं पवित्र रूपा सावित्री या गायत्री है। वह ब्रह्मा की प्रिय शक्ति है॥३९-४१॥ तीर्थगण अपनी शुद्धि की कामना से उस देवी का स्पर्श और दर्शन चाहते हैं। वह शुद्ध स्फटिक के समान कान्तिवाली,

---

१ क. ०णी ॥३३॥ स्वरसं०। २ क. ०ख्यासूत्रक०। ३ क. ०पा सरस्वती।

परमानन्दरूपा च परमा च सनातनी। परब्रह्मस्वरूपा च निर्वाणपददायिनी ॥४३॥
ब्रह्मतेजोमयी शक्तिस्तदधिष्ठातृदेवता। यत्पादरजसा[1] पूतं जगत्सर्वं च नारद ॥४४॥
देवी चतुर्थी कथिता पञ्चमीं वर्णयामि ते। प्रेमप्राणाधिदेवी या पञ्चप्राणस्वरूपिणी ॥४५॥
प्राणाधिकप्रियतमा सर्वाद्या[2] सुन्दरी वरा। सर्वसौभाग्ययुक्ता च मानिनी गौरवान्विता ॥४६॥
वामार्धाङ्गस्वरूपा च सुगुणैस्तेजसा समा। परावरा[3] सर्वमाता परमाद्या सनातनी ॥४७॥
परमानन्दरूपा च धन्या मान्या च पूजिता। रासक्रीडाधिदेवी च कृष्णस्य परमात्मनः ॥४८॥
रासमण्डलसम्भूता रासमण्डलमण्डिता। रासेश्वरी सुरसिका रासावासनिवासिनी ॥४९॥
गोलोकवासिनी देवी गोपीवेषविधायिका। परमाह्लादरूपा च सन्तोषामर्षरूपिणी ॥५०॥
निर्गुणा च निराकारा निर्लिप्ताऽऽत्मस्वरूपिणी। निरीहा निरहंकारा भक्तानुग्रहविग्रहा ॥५१॥
वेदानुसारध्यानेन विज्ञेया[4] सा विचक्षणैः। दृष्टिर्दृष्टा सहस्रेषु सुरेन्द्रैर्मुनिपुंगवैः ॥५२॥
वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नालंकारभूषिता। कोटिचन्द्रप्रभाजुष्टश्रीयुक्ता भक्तविग्रहा ॥५३॥
श्रीकृष्णभक्तदास्यैकदायिनी सर्वसंपदाम्। अवतारे च वाराहे वृषभानुसुता च या ॥५४॥

शुद्ध सत्त्वरूप वाली, परमानन्दरूपा, परमा, सनातनी, परब्रह्मरूपा, निर्वाण (कैवल्य) पद प्रदान करने वाली (परब्रह्म की) ब्रह्मतेजोमयी शक्ति और उसकी अधिष्ठात्री देवता है। नारद ! उसके चरणरज से यह सारा संसार पवित्र हुआ है ॥४२-४४॥ इस प्रकार मैं चार देवियों का वर्णन कर चुका। अब तुम्हें पांचवीं देवी का वर्णन सुना रहा हूँ।

वह (परब्रह्म के) प्रेम और प्राणों की अधिदेवता, तथा पञ्चप्राणस्वरूपिणी है। वह श्रीकृष्ण की प्राणाधिक प्रिया है। सम्पूर्ण देवियों में अग्रगण्य है। वह परम सुन्दरी समस्त सौभाग्य सम्पन्ना, मानिनी, गौरवशालिनी, (भगवान् श्रीकृष्ण की) वामार्धांगिनी अपने उत्तम गुणों तथा तेज में (परब्रह्म की) समानता प्राप्त करने वाली, परावरा, सबकी माता, परमाद्या, सनातनी, परमानन्दरूपा, धन्या, सर्वपूजिता और परमात्मा कृष्ण की रासक्रीड़ा की अधीश्वरी देवी है ॥४५-४८॥ रासमण्डल में प्रकट होकर उसकी शोभा बढ़ाने वाली, रासेश्वरी, सुरसिका, तथा रासस्थल में निवास करने वाली वह देवी गोलोक की निवासिनी है। गोपी का वेष बनानेवाली परमाह्लादरूपा, सन्तोष और अमर्ष का रूप धारण करने वाली, तीनों गुणों से रहित, निराकारा, निर्लिप्ता, आत्मस्वरूपिणी, निरीहा, निरहंकारा, भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए शरीर धारण करने वाली उस देवी को बुद्धिमान् लोग वेदानुसार ध्यान द्वारा ही जान पाते हैं। इस प्रकार सहस्रों श्रेष्ठ मुनिगण एवं सुरेन्द्रवृन्द ध्यान द्वारा उसका दर्शन करते हैं ॥४९-५२॥ वह अग्नि-शुद्ध (नीले रंग के दिव्य) वस्त्र धारण करती है। वह अनेक प्रकार के अलंकारों से भूषित, करोड़ों चन्द्रमा की प्रभा से सेवित, श्रीयुक्त तथा भक्तों के लिए शरीर धारण करने वाली है ॥५३॥ भगवान् श्रीकृष्ण के भक्तों को सकल संपत्तियों से श्रेष्ठ एकमात्र दास्यभक्ति प्रदान करने वाली यही देवी है। वह

---

१ क. ०सा भूतं ज०। २ क. ०र्वाभ्यः सुन्दरी परा। ३ क. ०रा सारभूता०। ४ क. विज्ञातां च वि०।

यत्पादपद्मसंस्पर्शपवित्रा च वसुंधरा। ब्रह्मादिभिरदृष्टा या सर्वदृष्टा च भारते ।।५५।।
स्त्रीरत्नसारसंभूता 'कृष्णवक्षःस्थलोज्ज्वला। यथा घने नवघने लोला सौदामिनी मुने ।।५६।।
षष्टिवर्षसहस्राणि प्रतप्तं ब्रह्मणा[2] पुरा। यत्पादपद्मनखरदृष्टये चाऽऽत्मशुद्धये ।।५७।।
स्वप्नेऽपि नैव दृष्टा स्यात्प्रत्यक्षे तु च का कथा। तेनैव तपसा दृष्टा[3] भूरिवृन्दावने वने ।।५८।।
कथिता पञ्चमी देवी सा राधा परिकीर्तिता। अंशरूपा कलारूपा कलांशांशसमुद्भवा ।।५९।।
प्रकृतेः प्रतिविश्वं च रूपं स्यात्सर्वयोषितः। परिपूर्णतमाः पञ्चविधा देव्यः प्रकीर्तिताः ।।६०।।
या या प्रधानांशरूपा वर्णयामि निशामय। प्रधानांशस्वरूपा च गङ्गा भुवनपावनी ।।६१।।
विष्णुपादाब्जसंभूता द्रवरूपा सनातनी। पापिपापेध्मदाहाय ज्वलदिन्धनरूपिणी ।।६२।।
दर्शनस्पर्शनस्नानपानैर्निर्वाणदायिनी। गोलोकस्थानगमनसुसोपानस्वरूपिणी ।।६३।।
पवित्ररूपा तीर्थानां सरितां च परा वरा। शंभुमौलिजटामेरुमुक्तापङ्क्तिस्वरूपिणी ।।६४।।
तपःसंपादिनी सद्यो भारते च तपस्विनाम्[4]। शङ्खपद्मक्षीरनिभा शुद्धसत्त्वस्वरूपिणी ।।६५।।

वृषभानु की पुत्री होकर प्रकट हुई है। वराहावतार में उसके चरण-कमल के पावन स्पर्श से यह पृथिवी पवित्र हो गयी है। और जिसे ब्रह्मा आदि देवता नहीं देख सके थे वही यह देवी भारतवर्ष में सबको दृष्टिगोचर हो रही है ।।५४-५५।। मुने ! स्त्री रूपी रत्नों के तत्त्व से उत्पन्न होकर वह श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल पर उसी प्रकार विराजती है, जैसे आकाशस्थित नवीन नील मेघों में बिजली चमक रही हो।।५६।। पहले समय में ब्रह्मा ने अपनी शुद्धि के लिए उसके चरण-कमल के नख के दर्शन के लिए साठ सहस्र वर्षों तक तप किया, किन्तु उसे स्वप्न में भी वे नहीं देख सके। फिर प्रत्यक्ष की तो वात ही क्या है। पर, उसी तप के प्रभाव से वृन्दावन नामक वन में ब्रह्मा को उसका बार-बार दर्शन हो सका ।।५७-५८।। इस प्रकार मैंने उस पाँचवीं देवी का वर्णन कर दिया, जिसे 'राधा' कहा जाता है।

इस प्रकृति देवी के अंश, कला, कलांश और कलांशांश भेद से अनेक रूप हैं ।।५९।। प्रत्येक विश्व में प्रकृति का रूप समस्त स्त्रियों के रूप में दिखायी पड़ता है। ये पाँच देवियाँ परिपूर्णतम कही गयी हैं। इन देवियों के जितने प्रधान अंश रूप हैं उनका मैं वर्णन कर रहा हूँ, सुनो ! लोक को पवित्र करनेवाली गंगा उसके प्रधान अंश का स्वरूप हैं। जो विष्णु के चरण-कमल से उत्पन्न होकर 'द्रव' (बहाव) रूपा सनातनी एवं पापियों के पाप रूप ईंधन को जलाने के लिए प्रज्वलित अग्निरूप हैं ।।६०-६२।। दर्शन, स्पर्शन, स्नान और पान करने से गंगा मोक्ष प्रदान करती हैं तथा गोलोक धाम मे पहुँचने के लिए सुन्दर सीढ़ी के रूप में वे विराजमान हैं ।।६३।। उनका रूप पवित्र है। वे तीर्थों तथा नदियों में सर्वश्रेष्ठ हैं। वे शंकर के जटाजूट में मोतियों की पंक्ति जैसी लगती हैं ।।६४।। भारतवर्ष में तपस्वियों के तप को सद्यः सम्पन्न करानेवाली हैं। उनका शुद्ध एवं सत्त्वमय स्वरूप चन्द्रमा, श्वेतकमल

---

१ ख. ०स्थलस्थिता। तथा। २ क. ०णा तपः य०। ३ क. ०ष्टा भुवि वृ०। ४ क. ०म् चन्द्रप०।

यत्पादपद्मसंस्पर्शपवित्रा च वसुंधरा। ब्रह्मादिभिरदृष्टा या सर्वदृष्टा च भारते॥५५॥
स्त्रीरत्नसारसंभूता [1]कृष्णवक्षःस्थलोज्ज्वला। यथा घने नवघने लोला सौदामिनी मुने॥५६॥
षष्टिवर्षसहस्राणि प्रतप्तं ब्रह्मणा[2] पुरा। यत्पादपद्मनखरदृष्टये चाऽऽत्मशुद्धये॥५७॥
स्वप्नेऽपि नैव दृष्टा स्यात्प्रत्यक्षे तु च का कथा। तेनैव तपसा दृष्टा[3] भूरिवृन्दावने वने॥५८॥
कथिता पञ्चमी देवी सा राधा परिकीर्तिता। अंशरूपा कलारूपा कलांशांशसमुद्भवा॥५९॥
प्रकृतेः प्रतिविश्वं च रूपं स्यात्सर्वयोषितः। परिपूर्णतमाः पञ्चविधा देव्यः प्रकीर्तिताः॥६०॥
या या प्रधानांशरूपा वर्णयामि निशामय। प्रधानांशस्वरूपा च गङ्गा भुवनपावनी॥६१॥
विष्णुपादाब्जसंभूता द्रवरूपा सनातनी। पापिपापेध्मदाहाय ज्वलदिन्धनरूपिणी॥६२॥
दर्शनस्पर्शनस्नानपानैर्निर्वाणदायिनी। गोलोकस्थानगमनसुसोपानस्वरूपिणी॥६३॥
पवित्ररूपा तीर्थानां सरितां च परा वरा। शंभुमौलिजटामेरुमुक्तापङ्क्तिस्वरूपिणी॥६४॥
तपःसंपादिनी सद्यो भारते च तपस्विनाम्[4]। शङ्खपद्मक्षीरनिभा शुद्धसत्त्वस्वरूपिणी॥६५॥

वृषभानु की पुत्री होकर प्रकट हुई है। वराहावतार में उसके चरण कमल के पावन स्पर्श से यह पृथिवी पवित्र हो गयी है। और जिसे ब्रह्मा आदि देवता नहीं देख सके थे वही यह देवी भारतवर्ष में सबको दृष्टिगोचर हो रही है॥५४-५५॥ मुने! स्त्री रूपी रत्नों के सार से उत्पन्न होकर यह श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल पर उसी प्रकार विराजती है, जैसे [illegible] में बिजली चमक रही हो॥५६॥ पहले समय में ब्रह्मा ने अपनी शुद्धि के लिए उसके [illegible] किन्तु उसे स्वप्न में भी वे नहीं देख सके। [illegible] ब्रह्मा को उसका बारम्बार दर्शन हो [illegible] 'राधा' कहा जाता है।

इस प्रकृति देवी के अंश, [illegible] प्रत्येक [illegible] में प्रकृति का रूप समस्त स्त्रियों के रूप में दिखायी पड़ता है। ये पाँच देवियाँ परिपूर्णतम कही गई हैं। इन देवियों के जितने प्रधान अंश रूप हैं उनका मैं वर्णन कर रहा हूँ, सुनो! लोक को पवित्र करने वाली गंगा उसके प्रधान अंश का स्वरूप हैं। जो विष्णु के चरणकमल से उत्पन्न होकर 'द्रव' (बहाव) रूपा [illegible] पापियों के पाप रूप ईंधन को जलाने के लिए प्रज्वलित अग्निरूप हैं॥६०-६२॥ दर्शन, स्पर्शन, स्नान और पान करने से गंगा मोक्ष प्रदान करती हैं तथा गोलोक धाम में पहुँचने के लिए सुन्दर सीढ़ी के रूप में वे विराजमान हैं॥६३॥ उनका रूप पवित्र है। वे तीर्थों तथा नदियों में सर्वश्रेष्ठ हैं। वे शंकर के जटाजूट में मोतियों की पंक्ति जैसी लगती हैं॥६४॥ भारतवर्ष में तपस्वियों के तप को सद्यः सम्पन्न कराने वाली हैं। उनका शुद्ध एवं सत्त्वमय स्वरूप चन्द्रमा, श्वेतकमल

१ख. ०स्थलस्थिता। तथा। २क. ०णा तपः य०। ३क. ०ष्टा भुवि वृ०। ४क. ०म् चन्द्रप०।

निर्मला निरहंकारा साध्वी नारायणप्रिया। प्रधानांशस्वरूपा च तुलसी विष्णुकामिनी ॥६६॥
विष्णुभूषणरूपा च विष्णुपादस्थिता सती। तपः संकल्पपूजादि सद्यः संपादनी मुने ॥६७॥
सारभूता च पुष्पाणां पवित्रा पुण्यदा सदा। दर्शनस्पर्शनाभ्यां च सद्यो निर्वाणदायिनी ॥६८॥
कलौ कलुषशुष्केध्मदाहनायाग्निरूपिणी। यत्पादपद्मस्पर्शात्सद्यःपूता वसुंधरा ॥६९॥
यत्स्पर्शदर्शं वाञ्छन्ति तीर्थानामात्मशुद्धये। यया विना च विश्वेषु सर्वं कर्मास्ति निष्फलम् ॥७०॥
मोक्षदा या मुमुक्षूणां कामिनां सर्वकामदा। कल्पवृक्षस्वरूपा च भारते वृक्षरूपिणी ॥७१॥
त्राणाय[1] भारतानां च प्रजानां परदेवता। प्रधानांशस्वरूपा च मनसा कश्यपात्मजा ॥७२॥
शंकरप्रियशिष्या च महाज्ञानविशारदा। नागेश्वरस्यानन्तस्य भगिनी नागपूजिता ॥७३॥
नागेश्वरी नागमाता सुन्दरी नागवाहिनी। [2]नागेन्द्रगणयुक्ता सा नागभूषणभूषिता ॥७४॥
नागेन्द्रवन्दिता सिद्धयोगिनी नागवासिनी। विष्णुभक्ता विष्णुरूपा विष्णुपूजापरायणा ॥७५॥
तपःस्वरूपा तपसां फलदात्री तपस्विनी। दिव्यं त्रिलक्षवर्षं च तपस्तप्तं यया हरेः ॥७६॥
तपस्विनीषु पूज्या च तपस्विषु च भारते। सर्पमन्त्राधिदेवी च ज्वलन्ती ब्रह्मतेजसा ॥७७॥

या दूध के समान धवल है। वे मल और अहंकार से रहित हैं। वे परम साध्वी गंगा भगवान् नारायण को बहुत प्रिय हैं।

विष्णु-प्रिया तुलसी को प्रकृति देवी का प्रधान अंग माना गया है। ये पतिव्रता विष्णु के आभूषण स्वरूप हैं। ये सदा विष्णु के चरण में विराजमान रहती हैं। मुने! तपस्या, संकल्प और पूजा आदि सभी शुभ कर्म इन्हीं से शीघ्र सम्पन्न होते हैं ॥६५-६७॥ ये पुष्पों में मुख्य, पवित्र, सदा पुण्यप्रदा और दर्शन-स्पर्शन से शीघ्र निर्वाण पद प्रदान करने वाली हैं ॥६८॥ कलियुग में पापरूपी सूखी लकड़ी को जलाने के लिए ये अग्निरूप हैं। इनके चरण-कमलों के स्पर्श से यह पृथिवी पवित्र हो गयी है ॥६९॥ अपनी शुद्धि के लिए तीर्थ भी इनका दर्शन-स्पर्शन चाहते हैं। इनके बिना विश्व में सभी कर्म निष्फल समझे जाते हैं ॥७०॥ इनकी कृपा से मुमुक्षु जन मुक्त हो जाते हैं। ये भक्तों की सकल कामनायें पूर्ण करती हैं। भारत में वृक्ष होकर ये कल्पवृक्ष का काम करती हैं ॥७१॥ भारतवासियों का त्राण करने के लिए इनका यहाँ पधारना हुआ है। ये प्रजाओं की परम देवता हैं।

प्रकृति देवी के एक अन्य प्रधान अंश का नाम देवी 'मनसा' है। ये कश्यप की मानसपुत्री हैं; अतः 'मनसा' देवी कहलाती हैं। ये शंकर की प्रिय शिष्या, महाज्ञानविशारदा तथा अनन्त नामक नाग की भगिनी हैं। ये नागपूजिता, नागेश्वरी, नागमाता, सुन्दरी, नागवाहिनी, नागेन्द्र गण से युक्त, नाग के भूषणों से भूषित, नागेन्द्रवन्दिता, सिद्धयोगिनी, नाग पर वास करने वाली, विष्णुभक्ता, विष्णुरूपा, विष्णु की पूजा में निरत रहने वाली, तपःस्वरूपा, तप का फल देने वाली एवं तपस्विनी हैं। इन्होंने देव-वर्ष के हिसाब से तीन लाख वर्षों तक श्रीहरि की प्रसन्नता के लिए तप किया है ॥७२-७६॥ वे भारतवर्ष में समस्त तपस्विनी और तपस्वियों में पूज्य एवं श्रेष्ठ हैं। सर्प-मन्त्रों की अधिदेवी, ब्रह्मतेज से प्रज्वलित, ब्रह्मस्वरूप तथा ब्रह्मचिन्तन में अत्यन्त तत्पर रहती हैं। वे कृष्ण एवं शंभु के अंशभूत जरत्कारु

---

१ क. ०य भवतीनां। २ ०न्द्रगुण ०।

ब्रह्मस्वरूपा परमा ब्रह्मभावनतत्परा। जरत्कारुमुनेः पत्नी कृष्णशम्भुपतिव्रता ॥७८॥
आस्तीकस्य मुनेर्माता प्रवरस्य तपस्विनाम् प्रधानांशस्वरूपा या देवसेना च नारद ॥७९॥
मातृका सा पूज्यतमा सा च च षष्ठी प्रकीर्तिता। शिशूनां प्रतिविश्वं तु प्रतिपालनकारिणी ॥८०॥
तपस्विनी विष्णुभक्ता कार्तिकेयस्य कामिनी। षष्ठांशरूपा प्रकृतेस्तेन षष्ठी प्रकीर्तिता ॥८१॥
पुत्रपौत्रप्रदात्री च धात्री च जगतां सदा। सुन्दरी[1] युवती रम्या सततं भर्तुरन्तिके ॥८२॥
स्थाने शिशुनां परमा वृद्धरूपा च योगिनी। पूजा द्वादशमासेषु यस्याः षष्ठ्यास्तु संततम् ॥८३॥
पूजा च सूतिकागारे परषष्ठदिने शिशोः। एकविंशतितमे चैव पूजा कल्याणहेतुकी ॥८४॥
[2]शश्वन्नियमिता चैषा नित्या काम्याऽप्यतः परा। मातृरूपा दयारूपा शश्वद्रक्षणकारिणी ॥८५॥
जले स्थले चान्तरिक्षे शिशूनां स्वप्नगोचरा। प्रधानांशस्वरूपा या देवी मङ्गलचण्डिका ॥८६॥
प्रकृतेर्मुखसंभूता सर्वमङ्गलदा सदा। सृष्टौ मङ्गलरूपा च संहारे कोपरूपिणी ॥८७॥
तेन मङ्गलचण्डी सा पण्डितैः परिकीर्तिता। प्रतिमङ्गलवारेषु प्रतिविश्वेषु पूजिता ॥८८॥
पञ्चोपचारैर्भक्त्या च योषिद्भिः परिपूजिता। पुत्रपौत्रधनैश्वर्ययशोमङ्गलदायिनी ॥८९॥
शोकसंतापपापार्तिदुःखदारिद्र्यनाशिनी। परितुष्टा सर्ववाञ्छाप्रदात्री सर्वयोषिताम् ॥९०॥

की पतिव्रता पत्नी हैं। तपस्विवर आस्तीक मुनि की ये माता हैं।

नारद! प्रकृति देवी के एक प्रधान अंश को 'देवसेना' कहते हैं॥७७-७९॥ वे सब से श्रेष्ठ मातृका मानी जाती हैं। उन्हें लोग षष्ठी देवी कहते हैं। प्रत्येक विश्व में वे बच्चों का पालन करती हैं॥८०॥ वे तपस्विनी, विष्णु-भक्ता और कार्त्तिकेय की पत्नी हैं। प्रकृति का छठा अंश होने से वे 'षष्ठी' कही जाती हैं॥८१॥ वे जगत् के लिए सदा पुत्रपौत्रदात्री तथा धात्री हैं और अपने पति के समीप सुन्दरी एवं रमणीक युवती के रूप में वे सदा विद्यमान रहती हैं॥८२॥ बच्चों के लिए वे परम वृद्धा योगिनी हैं। लोग बारहों मास निरन्तर इनकी पूजा करते हैं॥८३॥ सन्तान उत्पन्न होने पर छठे दिन या इक्कीसवें दिन सूतिकागृह में इनकी पूजा होती है॥८४॥ ये निरन्तर नियमिता, नित्या, काम्या और परा रूप में रहती हैं। ये मातृरूपा, दयामयी, निरन्तर रक्षा करने वाली हैं। जल, स्थल तथा आकाश में ये शिशुओं को स्वप्न में दिखायी देती हैं॥८५½॥

प्रकृति देवी का एक प्रधान अंश मंगलचंडी के नाम से विख्यात है॥८६॥ यह देवी प्रकृति के मुख से उत्पन्न होकर सदा समस्त मंगलों का संपादन करती रहती हैं। सृष्टि के समय मंगलरूपा और संहार के समय कोपरूपा होने के कारण इन्हें पण्डितों ने 'मंगलचण्डी' कहा है। प्रत्येक मंगलवार को विश्व भर में ये पूजित होती हैं॥८७-८८॥ स्त्रियाँ भक्तिपूर्वक पंचोपचार द्वारा इनको भलीभाँति पूजती हैं, जिससे ये उन्हें पुत्र, पौत्र, धन, ऐश्वर्य, शोभा और मंगल प्रदान करती हैं॥८९॥ प्रसन्न होने पर ये समस्त स्त्रियों के शोक, सन्ताप, पाप, कष्ट, दुःख-दारिद्र्य का नाश करके उनकी सकल कामनायें पूर्ण करती हैं॥९०॥ किन्तु यही माहेश्वरी रुष्ट होने पर क्षण मात्र में सारे विश्व का संहार करने में समर्थ हो जाती हैं।

---

१ क. ०री सुरमी र०। २ क. ०श्वद्धियति मात्येषा।

रुष्टा क्षणेन संहर्तुं शक्ता विश्वं महेश्वरी। प्रधानांशस्वरूपा च काली कमललोचना॥९१॥
दुर्गाललाटसंभूता रणे शुम्भनिशुम्भयोः। दुर्गार्धांशस्वरूपा स्याद् गुणैः सा तेजसा समा॥९२॥
[1]कोटिसूर्यप्रभाजुष्टदिव्यसुन्दरविग्रहा। प्रधाना सर्वशक्तीनां वरा बलवती परा॥९३॥
सर्वसिद्धिप्रदा देवी परमा सिद्धियोगिनी। कृष्णभक्ता कृष्णतुल्या तेजसा विक्रमैर्गुणैः॥
कृष्णभावनया शश्वत्कृष्णवर्णा सनातनी ॥९४॥
ब्रह्माण्डे सकलं हर्तुं शक्ता निःश्वासमात्रतः। रणं दैत्यैः समं तस्याः क्रीडया लोकरक्षया॥९५॥
धर्मार्थकाममोक्षांश्च दातुं शक्ता सुपूजिता। ब्रह्मादिभिः स्तूयमाना मुनिभिर्मनुभिर्नरैः॥९६॥
प्रधानांशस्वरूपा च प्रकृतिश्च वसुंधरा। आधारभूता सर्वेषां सर्वसस्यप्रसूतिका॥९७॥
रत्नाकारा रत्नगर्भा सर्वरत्नाकराश्रया। प्रजादिभिः प्रजेशैश्च पूजिता वन्दिता सदा॥९८॥
सर्वोपजीव्यरूपा च सर्वसंपद्विधायिनी। यया विना जगत्सर्वं निराधारं चराचरम्॥९९॥
प्रकृतेश्च कला या यास्ता निबोध मुनीश्वर। यस्य यस्य च याः पत्न्यस्ताः सर्वा वर्णयामि ते॥१००॥
स्वाहादेवी वह्निपत्नी त्रिषु लोकेषु पूजिता। यया विना हविर्दत्तं न ग्रहीतुं सुराः क्षमाः॥१०१॥

देवी काली को प्रकृति देवी का प्रधान अंश मानते हैं। इनके नेत्र कमल के समान हैं॥९१॥ शुम्भ-निशुम्भ के युद्ध में दुर्गा के ललाट से काली प्रकट हुई थीं। इन्हें दुर्गा का आधा अंश माना जाता है। ये गुण और तेज में उन्हीं के समान हैं॥९२॥ करोड़ों सूर्य की प्रभा से युक्त दिव्य सुन्दर शरीर वाली, समस्त शक्तियों में श्रेष्ठ, अत्यन्त बलवती, समस्त सिद्धियों को देने वाली, परम सिद्ध योगिनी तथा भगवान् कृष्ण की भक्ता काली देवी तेज, गुण और पराक्रम में उन्हीं के समान हैं। वे सनातनी देवी भगवान् कृष्ण में अपनी शुद्ध भावना रखने के कारण निरन्तर कृष्ण-वर्ण की रहती हैं॥९३-९४॥ वे अपने निःश्वास मात्र से समस्त ब्रह्माण्ड का संहार करने में सदैव समर्थ हैं। इसलिए दैत्यों के साथ उनकी रण-क्रीड़ा केवल लोक रक्षार्थ होती है॥९५॥ सुपूजित होने पर वे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्रदान करती हैं। इसीलिए ब्रह्मादि देवगण, मुनिगण, मनुगण और मनुष्यवृन्द उनकी सदैव स्तुति करते हैं।

यह वसुन्धरा (पृथ्वी) भी प्रकृति देवी के प्रधान अंश से उत्पन्न हुई हैं। सम्पूर्ण जगत् इन्हीं पर ठहरा है। ये सर्वसस्यप्रसूतिका (सकल अन्नों को उत्पन्न करने वाली) कही जाती हैं॥९६-९७॥ ये रत्नों की खान, रत्नों से परिपूर्ण तथा सकल रत्नों की आधार हैं। राजा और प्रजा सभी लोग इनकी पूजा एवं स्तुति करते हैं। सब को जीविका प्रदान करने के लिए ही उन्होंने यह रूप धारण कर रखा है। वे सम्पूर्ण सम्पत्ति का विधान करती हैं। वे न रहें तो सारा चराचर जगत् कहीं भी नहीं ठहर सकता॥९८-९९॥ मुनीश्वर! प्रकृति की उन कलाओं को तथा वे जिन-जिन की स्त्रियाँ हैं, वह सब भी मैं तुम्हें बता रहा हूँ।

स्वाहा देवी अग्नि की पत्नी हैं जो तीनों लोकों में पूजित होती हैं। उनके बिना हवि प्रदान करने पर भी देव-गण उसे ग्रहण करने में असमर्थ रहते हैं॥१००-१०१॥ यज्ञ की दक्षिणा और दीक्षा दो पत्नियाँ हैं, जो सर्वत्र.

---

१ क. ०ष्टपुष्टजाज्वल्यवि०।

दक्षिणा यज्ञपत्नी च दीक्षा सर्वत्र पूजिता। यया विना च विश्वेषु सर्वं कर्म च निष्फलम् ॥१०२॥
स्वधा पितॄणां पत्नी च मुनिभिर्मनुभिर्नरैः। पूजिता पैतृकं दानं निष्फलं च यया विना ॥१०३॥
स्वस्तिदेवी वायुपत्नी प्रतिविश्वेषु पूजिता। आदानं च प्रदानं च निष्फलं च यया विना ॥१०४॥
पुष्टिर्गणपतेः पत्नी पूजिता जगतीतले। यया विना परिक्षीणाः पुमांसो योषितोऽपि च ॥१०५॥
अनन्तपत्नी तुष्टिश्च पूजिता वन्दिता सदा। यया विना न संतुष्टाः सर्वलोकाश्च सर्वतः ॥१०६॥
ईशानपत्नी संपत्तिः पूजिता च सुरैर्नरैः। सर्वे लोका दरिद्राश्च विश्वेषु च यया विना ॥१०७॥
धृतिः कपिलपत्नी च सर्वैः सर्वत्र पूजिता। सर्वे लोका अधीराः स्युर्जगत्सु च यया विना ॥१०८॥
यमपत्नी क्षमा साध्वी सुशीला सर्वपूजिता। समुन्मत्ताश्च रुद्राश्च सर्वे लोका यया विना ॥१०९॥
क्रीडाधिष्ठातृदेवी सा कामपत्नी रतिः सती। केलिकौतुकहीनाश्च सर्वे लोका यया विना ॥११०॥
सत्यपत्नी सती मुक्तिः पूजिता जगतां प्रिया। यया विना भवेल्लोको बन्धुतारहितः सदा ॥१११॥
मोहपत्नी दया साध्वी पूजिता च जगत्प्रिया। सर्वलोकाश्च सर्वत्र निष्ठुराश्च यया विना ॥११२॥
पुण्यपत्नी प्रतिष्ठा सा पुण्यरूपा च पूजिता। यया विना जगत्सर्वं जीवन्मृतसमं मुने ॥११३॥
सुकर्मपत्नी कीर्तिश्च धन्या मान्या च पूजिता। यया विना जगत्सर्वं यशोहीनं मृतं यथा ॥११४॥

पूजित होती हैं। उनके बिना समस्त विश्व में सभी कर्म निष्फल रहते हैं॥१०२॥ स्वधा पितरों की पत्नी हैं, उन्हें मुनिगण, मनुगण और नरगण पूजते रहते हैं। उनके बिना सभी पैतृक दान निष्फल होता है॥१०३॥ स्वस्ति देवी वायुदेव की पत्नी हैं। उनकी पूजा प्रत्येक विश्व में की जाती है। उनके बिना सभी आदान-प्रदान निष्फल होते हैं। पुष्टि गणपति की पत्नी हैं, जो इस भूतल पर पूजित होती हैं। उनके बिना सभी स्त्री-पुरुष अत्यन्त क्षीण हो जाते हैं॥१०४-१०५॥ तुष्टि अनन्त की पत्नी हैं। सब लोग उनकी पूजा और वंदना करते हैं। उनके बिना समस्त लोक सब भाँति असन्तुष्ट रहते हैं॥१०६॥ ईशान की पत्नी सम्पत्ति देवों एवं मनुष्यों से सदैव पूजित होती हैं। उनके बिना विश्व भर की जनता दरिद्र कहलाती है॥१०७॥ धृति कपिल की पत्नी हैं। सभी लोग सर्वत्र उनका स्वागत करते हैं। उनके बिना संसार के सभी लोग अधीर रहते हैं॥१०८॥ क्षमा यम की पत्नी हैं। वह सुशीला पतिव्रता एवं सब की पूज्या हैं। उनके बिना समस्त लोक उन्मत्त और भयंकर हो जाता है॥१०९॥ काम की पत्नी रति हैं। वे पतिव्रता एवं क्रीड़ा की अधिष्ठात्री देवी हैं। उनके बिना समस्त लोक केलि और कौतुक से वंचित हो जाते हैं॥११०॥ सत्य की पत्नी मुक्ति हैं। वह सती समस्त संसार को प्रिय हैं। इसीलिए वह पूजित होती हैं। उनके बिना समस्त लोक सदा बन्धुता-रहित हो जाता है॥१११॥ दया मोह की पत्नी हैं। वे साध्वी, पूज्य एवं जगत्प्रिय हैं। उनके बिना समस्त लोक निष्ठुर माने जाते हैं॥११२॥ मुने! पुण्य की पत्नी प्रतिष्ठा हैं। वे पुण्य रूपा देवी सर्वत्र पूजित होती हैं। उनके बिना समस्त जगत् जीवित रहते हुए भी मृतक के समान है॥११३॥ सुकर्म की पत्नी कीर्ति है, जो धन्या, मान्या एवं पूज्या हैं। उनके बिना सम्पूर्ण जगत् यशोहीन होने से मृतक की भाँति हो जाता है॥११४॥ क्रिया उद्योग की पत्नी हैं। इन आदरणीया देवी से सब लोग सहमत हैं। नारद! इनके बिना यह

क्रिया उद्योगपत्नी[1] च पूजिता सर्वसंगता। यया विना जगत्सर्वमुच्छिन्नमिव नारद ॥११५॥
अधर्मपत्नी मिथ्या सा सर्वधूर्तैश्च पूजिता। यया विना जगत्सर्वमुच्छिन्नं विधिनिर्मितम् ॥११६॥
सत्ये अदर्शना या च त्रेतायां सूक्ष्मरूपिणी। अर्धावयवरूपा च द्वापरे संहृता ह्रिया ॥११७॥
कलौ महाप्रगल्भा च सर्वत्र[2] व्याप्तिकारणात्। कपटेन सह भ्रात्रा भ्रमत्येव गृहे गृहे ॥११८॥
शान्तिर्लज्जा च भार्ये द्वे सुशीलस्य च पूजिते। याभ्यां विना जगत्सर्वमुन्मत्तमिव नारद ॥११९॥
ज्ञानस्य तिस्रो भार्याश्च बुद्धिर्मेधा स्मृतिस्तथा। याभिर्विना जगत्सर्वं मूढं मृतसमं सदा ॥१२०॥
मूर्तिश्च धर्मपत्नी सा कान्तिरूपा मनोहरा। परमात्मा च विश्वौघा निराधारा यया विना ॥१२१॥
सर्वत्र शोभारूपा च लक्ष्मीर्मूर्तिमती सती। श्रीरूपा मूर्तिरूपा च मान्या धन्या च पूजिता ॥१२२॥
कालाग्निरुद्रपत्नी च निद्रा[3] या सिद्धयोगिनाम्। सर्वलोकाः समाच्छन्ना[4] मायायोगेन रात्रिषु ॥१२३॥
कालस्य तिस्रो भार्याश्च संध्या रात्रिर्दिनानि च[5]। याभिर्विना विधात्रा च संख्यां कर्तुं न शक्यते ॥१२४॥
क्षुत्पिपासे लोभभार्ये धन्ये मान्ये च पूजिते। याभ्यां व्याप्तं जगत्क्षोभयुक्तं चिन्तितमेव च ॥१२५॥
प्रभा च दाहिका चैव द्वे भार्ये तेजसस्तथा। याभ्यां विना जगत्स्रष्टुं विधाता च नहीश्वरः ॥१२६॥

समस्त जगत् उच्छिन्न-सा हो जाता है ॥११५॥ मिथ्या, अधर्म की पत्नी हैं। धूर्त लोग इस देवी की पूजा करते हैं। इसके बिना विधि-रचित यह सारा जगत् अस्तित्वहीन दिखाई देता है ॥११६॥ सत्ययुग में यह देवी अदृश्य थी। त्रेता में सूक्ष्म रूप से, द्वापर में लज्जा के कारण सिकुड़कर आधे शरीर से और कलियुग में सर्वत्र व्याप्त होने के कारण महाप्रगल्भ होकर रहती हैं। अपने भाई कपट के साथ घर-घर घूमती है ॥११७-११८॥ सुशील की शान्ति और लज्जा ये दो माननीया पत्नियाँ हैं। नारद! इनके बिना समस्त जगत् उन्मत्त की भाँति दिखायी देता है ॥११९॥ ज्ञान की बुद्धि, मेधा और स्मृति ये तीन भार्याएँ हैं, जिनके बिना यह सारा जगत् मूढ़ता के कारण मृतक के समान हो जाता है ॥१२०॥ मूर्ति, धर्म की पत्नी है। कमनीय कान्ति वाली यह सब को मुग्ध किये रहती हैं। इसके बिना परमात्मा एवं विश्व समूह भी निराधार हो जातां है ॥१२१॥ इसके स्वरूप को अपनाकर ही साध्वी लक्ष्मी सर्वत्र शोभा पाती है। श्री और मूर्ति दोनों इसके स्वरूप हैं। यह परम मान्य, धन्य एवं सुपूज्य हैं ॥१२२॥ निद्रा कालाग्नि रुद्र की पत्नी है, जो रात्रि में समस्त लोकों को मायायोग से आच्छन्न करके सिद्धयोगियों को भी अभिभूत कर देती है ॥१२३॥ काल की संध्या, रात्रि और दिन ये तीन स्त्रियाँ हैं, इनके बिना ब्रह्मा भी संख्या बताने में असमर्थ हैं ॥१२४॥ क्षुधा तथा पिपासा लोभ की स्त्रियाँ हैं, जो लोक में धन्या, मान्या होकर पूजित हो रही हैं। इन्हीं के कारण सारा जगत् क्षुब्ध और चिन्तित रहता है ॥१२५॥ तेज की प्रभा और दाहिका दो स्त्रियाँ हैं, जिनके बिना विधाता भी जगत् की सृष्टि करने में असमर्थ हैं ॥१२६॥ काल की पुत्रियाँ—जरा और मृत्यु—ज्वर की प्रिय भार्याएँ हैं।

---

१ क. ०त्नी ईर्ष्या सा। २ क व्यापिकाबलात्। ३ क. ०द्रा सा सिद्धयोगिनी। स०। ४ क. ०न्ना यया योगेन रा०। ५ क. च। प्रभा च या०।

कालकन्ये मृत्युजरे प्रज्वरस्य प्रिये प्रिये। याभ्यां जगत्समुच्छिन्नं विधात्रा निर्मिते विधौ॥१२७॥
निद्राकन्या च तन्द्रा सा प्रीतिरन्यासुखप्रिये। याभ्यां व्याप्तं जगत्सर्वं विधिपुत्र विधेर्विधौ॥१२८॥
वैराग्यस्य च द्वे भार्ये श्रद्धा भक्तिश्च पूजिते। याभ्यां शश्वज्जत्सर्वं जीवन्मुक्तमिदं मुने॥१२९॥
अदितिर्देवमाता च सुरभिश्च गवां प्रसूः। दितिश्च दैत्यजननी कद्रूश्च विनता दनुः॥१३०॥
उपयुक्ताः सृष्टिविधावेताश्च प्रकृतेः कलाः। कलाश्चान्याः सन्ति बह्वचस्तासु काश्चिन्निबोध मे॥१३१॥
रोहिणी चन्द्रपत्नी च संज्ञा सूर्यस्य कामिनी। शतरूपा मनोर्भार्या शचीन्द्रस्य च गेहिनी॥१३२॥
तारा बृहस्पतेर्भार्या वसिष्ठस्याप्यरुन्धती। अहल्या गौतमस्त्री स्यादनसूयाऽत्रिकामिनी॥१३३॥
देवहूतिः कर्दमस्य प्रसूतिर्दक्षकामिनी। पितॄणां मानसी कन्या मेनका साऽम्बिकाप्रसूः॥१३४॥
लोपामुद्रा तथाऽऽहूतिः कुबेरस्य तु कामिनी। वरुणानी यमस्त्री च बलेर्विन्ध्यावलीति च॥१३५॥
कुन्ती च दमयन्ती च यशोदा देवकी सती। गान्धारी द्रौपदी शैब्या सावित्री सत्यवत्प्रिया॥१३६॥
वृषभानुप्रिया साध्वी राधामाता कलावती। मन्दोदरी च कौसल्या सुभद्रा कैकयी तथा॥१३७॥
रेवती सत्यभामा च कालिन्दी लक्ष्मणा तथा। मित्रविन्दा नाग्नजिती तथा जाम्बवती परा॥१३८॥
लक्ष्मणा रुक्मिणी, सीता स्वयं लक्ष्मीः प्रकीर्तिता। कला योजनगंधा च व्यासमाता महासती॥१३९॥
बाणपुत्री तथोषा च चित्रलेखा च तत्सखी। प्रभावती भानुमती तथा मायावती सती॥१४०॥

इनकी सत्ता न रहे तो ब्रह्मा के बनाये हुए जगत् की व्यवस्था भी बिगड़ जाय॥१२७॥ हे ब्रह्मपुत्र ! निद्रा की कन्या तन्द्रा और प्रीति ये दोनों सुख की स्त्रियाँ हैं। ये दोनों ब्रह्म-रचित समस्त जगत् में व्याप्त हैं॥१२८॥ मुने ! श्रद्धा और भक्ति ये वैराग्य की दो आदरणीय स्त्रियाँ हैं, जिनके द्वारा यह समस्त संसार निरन्तर जीवन्मुक्त हो सकता है॥१२९॥ अदिति देवों की माता हैं। सुरभी गौओं की जननी है तथा दैत्यों की माता दिति हैं और इसी भाँति कद्रू, विनता एवं दनु भी सृष्टि-विधान में उपयोगी होने के कारण प्रकृति की कलाएँ हैं। इस प्रकार प्रकृति देवी की अन्य भी अनेक कलाएँ हैं, जिनमें से कुछ को मैं बता रहा हूँ, सुनो॥१३०–१३१॥

रोहिणी चन्द्रमा की पत्नी हैं। संज्ञा सूर्य की कान्ता हैं। शतरूपा मनु की स्त्री हैं। शची इन्द्र की भार्या हैं॥१३२॥ तारा बृहस्पति की पत्नी हैं और वशिष्ठ की अरुन्धती, गौतम की अहल्या तथा अत्रि की अनुसूया पत्नी हैं॥१३३॥ देवहूति कर्दम की और प्रसूति दक्ष की पत्नियाँ हैं। पितरों की मानसी कन्या मेनका पार्वती की माता हैं॥१३४॥ इसी प्रकार कुबेर की पत्नी लोपामुद्रा और आहूति तथा वरुणानी, यम की स्त्री, बलि की पत्नी विन्ध्यावली, कुन्ती, दमयन्ती, यशोदा, सती देवकी, गान्धारी, द्रौपदी, शैब्या, सत्यवान् की प्रिया सावित्री, राधिका जी की माता तथा वृषभानु की पतिव्रता पत्नी कलावती, मन्दोदरी, कौसल्या, सुभद्रा, कैकेयी, रेवती, सत्यमामा, कालिन्दी, लक्ष्मणा, मित्रविन्दा, नाग्नजिती, जाम्बबती, लक्ष्मणा, रुक्मिणी और सीता जो स्वयं लक्ष्मी कहलायीं, व्यासमाता महासती योजनगन्धा॥१३५-१३९॥ बाण की पुत्री उषा, उसकी सखी चित्रलेखा, प्रभावती, भानुमती, सती मायावती, भार्गव (परशुराम) की माता रेणुका, बलराम की माता रोहिणी, और श्रीकृष्ण

रेणुका च भृगोर्माता हलिमाता च रोहिणी। एकाऽनंशा च दुर्गा सा श्रीकृष्णभगिनी सती॥१४१॥
बह्व्यः सन्ति कलाश्चैवं प्रकृतेरेव भारते। या याश्च ग्रामदेव्यस्ताः सर्वाश्च प्रकृतेः कलाः॥१४२॥
कलांशांशसमुद्भूताः प्रतिविश्वेषु योषितः। योषितामपमानेन प्रकृतेश्च पराभवः॥१४३॥
ब्राह्मणी पूजिता येन पतिपुत्रवती सती। प्रकृतिः पूजिता तेन वस्त्रालंकारचन्दनैः॥१४४॥
कुमारी चाष्टवर्षीया वस्त्रालंकारचन्दनैः। पूजिता येन विप्रस्य प्रकृतिस्तेन पूजिता॥१४५॥
सर्वाः प्रकृतिसंभूता उत्तमाधममध्यमाः। सत्त्वांशाश्चोत्तमा ज्ञेयाः सुशीलाश्च पतिव्रताः॥१४६॥
मध्यमा रजसश्चांशास्ताश्च भोग्याः प्रकीर्तिताः। सुखसंभोगवत्यश्च[1] स्वकार्ये तत्पराः सदा॥१४७॥
अधमास्तमसश्चांशा अज्ञातकुलसंभवाः। दुर्मुखाः कुलटा धूर्ताः स्वतन्त्राः कलहप्रियाः॥१४८॥
पृथिव्यां कुलटा याश्च स्वर्गे चाप्सरसां गणाः। प्रकृतेस्तमसश्चांशाः पुंश्चल्यः परिकीर्तिताः॥१४९॥
एवं निगदितं सर्वं प्रकृतेर्भेदपञ्चकम्। ताः सर्वाः पूजिताः पृथ्व्यां पुण्यक्षेत्रे च भारते॥१५०॥
पूजिता सुरथेनाऽऽदौ दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी। द्वितीया रामचन्द्रेण रावणस्य वधार्थिना॥१५१॥
तत्पश्चाज्जगतां माता त्रिषु लोकेषु पूजिता। जाताऽऽदौ दक्षपत्न्यां च निहन्तुं दैत्यदानवान्॥१५२॥

की परम साध्वी भगिनी दुर्गास्वरूपा एकानंशा (प्रकृति की कलायें हैं)॥१४०-१४१॥ इस प्रकार प्रकृति की अनेक कलाएँ भारत में विख्यात हैं। जो-जो ग्राम देवियाँ हैं वे सभी प्रकृति की कलाएँ हैं॥१४२॥ इसी भाँति प्रत्येक विश्व में जितनी स्त्रियाँ हैं, उन सब को प्रकृति की कला का के अंश का अंश समझना चाहिए। (इसलिए) उनका अपमान करने पर प्रकृति का अपमान होता है॥१४३॥ जिसने वस्त्र, अलंकार एवं चन्दन से पति-पुत्र वाली सती ब्राह्मणी का पूजन किया है, उसने प्रकृति की पूजा की है॥१४४॥ जिसने वस्त्र, आभूषण तथा चन्दन द्वारा ब्राह्मण की अष्टवर्षीया कुमारी की पूजा की है, उसने प्रकृति की पूजा की है॥१४५॥ संसार की उत्तम, मध्यम और अधम सभी स्त्रियाँ प्रकृति से ही उत्पन्न हैं, जिनमें सत्त्व अंश से उत्पन्न होने वाली स्त्रियाँ सुशीला एवं प्रतिव्रता होने के कारण उत्तम कही गयी हैं॥१४६॥ जिन्हें भोग ही प्रिय है, वे राजस अंश से प्रकट स्त्रियाँ, 'मध्यम' श्रेणी की कही गई हैं। वे सुख-भोग में आसक्त होकर सदा अपने कार्य में लगी रहती हैं। प्रकृति देवी के तामस अंश से उत्पन्न स्त्रियाँ अधम कहलाती हैं। उनके कुल का कुछ पता नहीं रहता। वे मुख से दुर्वचन बोलने वाली, कुलटा, धूर्त, स्वेच्छाचारिणी और कलहप्रिया होती हैं॥१४७-१४८॥ पृथिवी की कुलटायें और स्वर्ग की वेश्यायें प्रकृति के तम अंश से उत्पन्न हैं। अतः इन्हें पुंश्चली कहा जाता है॥१४९॥ इस प्रकार मैंने प्रकृति के पाँचो भेद तुम्हें बता दिए। वे सभी देवियाँ पृथ्वी पर इस पुण्य क्षेत्र भारत में पूजित हुई हैं॥१५०॥

प्रकृति की दूसरी कला, भीषण कष्टों का नाश करने वाली भी दुर्गा जी हैं, जिनकी उपासना सर्वप्रथम राजा सुरथ ने की थी। पश्चात् रावण-वधार्थ भगवान् रामचन्द्र ने भी उनकी आराधना की॥१५१॥ उसके पश्चात् वह जगन्माता तीनों लोकों में पूजित हुई। दैत्य-दानवों के विनाशार्थ वह सब से पहले दक्ष की पत्नी में अवतरित हुई

---

१ क. ०वश्याश्च स्व०।

ततो देहं परित्यज्य यज्ञे भर्तुश्च निन्दया। जज्ञे हिमवतः पत्न्यां लेभे पशुपतिं पतिम्॥१५३॥
गणेशश्च स्वयं कृष्णः स्कन्दो विष्णुकलोद्भवः। बभूवतुस्तौ तनयौ पश्चात्तस्याश्च नारद॥१५४॥
लक्ष्मीर्मङ्गलभूपेन प्रथमं परिपूजिता। त्रिषु लोकेषु तत्पश्चाद्देवतामुनिमानवः॥१५५॥
सावित्री प्रथमं चापि भक्त्या वै परिपूजिता। तत्पश्चात्त्रिषु लोकेषु देवतामुनिमानवैः॥१५६॥
आदौ सरस्वती देवी ब्रह्मणा परिपूजिता। तत्पश्चात्त्रिषु लोकेषु देवतामुनिमानवैः॥१५७॥
प्रथमं पूजिता राधा गोलोके रासमण्डले। पौर्णमास्यां कार्तिकस्य कृष्णेन परमात्मना॥१५८॥
गोपिकाभिश्च गोपैश्च बालिकाभिश्च बालकैः। गवां गणैः सुरगणैस्तत्पश्चान्मायया हरेः॥१५९॥
तदा ब्रह्मादिभिर्देवैर्मुनिभिर्मनुभिस्तथा। पुष्पधूपादिभिर्भक्त्या पूजिता वन्दिता सदा॥१६०॥
पृथिव्यां प्रथमं देवी सुयज्ञेन च पूजिता। शंकरेणोपदिष्टेन पुण्यक्षेत्रे च भारते॥१६१॥
त्रिषु लोकेषु तत्पश्चादाज्ञया परमात्मनः। पुष्पधूपादिभिर्भक्त्या पूजिता मुनिभिः सुरैः॥१६२॥
कला या या सुसंभूताः पूजितास्ताश्च भारते। पूजिता ग्रामदेव्यश्च ग्रामे च नगरे मुने॥१६३॥
एवं ते कथितं सर्वं प्रकृतेश्चरितं शुभम्। यथागमं लक्षणं च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥१६४॥

इति श्रीब्र० म० प्रकृ० नारायणनारदसंवादे प्रकृतिस्वरूपतद्भेदवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥१॥

थीं॥१५२॥ अनन्तर उन्होंने यज्ञ में पति की निन्दा के कारण देह त्याग कर हिमवान् की पत्नी मेना से जन्म ग्रहण किया और पशुपति (शिव) को पति के रूप में प्राप्त किया॥१५३॥ नारद! स्वयं कृष्ण ही गणेश हुए हैं और स्कन्द विष्णु की कला से उत्पन्न हुए हैं। ये दोनों शिव के पुत्र कहे जाते हैं॥१५४॥ लक्ष्मी की पूजा सर्वप्रथम राजा मंगल ने की। अनन्तर तीनों लोकों में देवता, मुनि एवं मनुष्यों द्वारा वह पूजित हुई॥१५५॥ सावित्री की प्रथम पूजा भक्ति ने की। उसके पश्चात् तीनों लोकों में देव, मुनि एवं मानवों ने उनकी पूजा की॥१५६॥ सर्वप्रथम ब्रह्मा ने सरस्वती देवी का सम्मान किया। अनन्तर तीनों लोकों में देवता, मुनि और मनुष्य वृन्दों ने उनकी अर्चना की॥१५७॥ कार्त्तिकी पूर्णिमा के दिन सर्वप्रथम गोलोक के रासमण्डल में परमात्मा श्रीकृष्ण ने राधिका की पूजा की॥१५८॥ पश्चात् गोपिकाओं, गोपों और उनके बालक-बालिकाओं तथा गौओं, देवों एवं विष्णु की माया ने उनकी पूजा की॥१५९॥ अनन्तर ब्रह्मा आदि देवगण, मुनिगण और मनुष्यों ने भक्तिपूर्वक पुष्प, धूप आदि के द्वारा राधा की पूजा-वन्दना की॥१६०॥ पृथिवी पर पुण्य क्षेत्र भारत में सर्वप्रथम सुयज्ञ ने शंकर जी के उपदेश देने पर राधा देवी की पूजा की॥१६१॥ तत्पश्चात् परमात्मा की आज्ञा से तीनों लोकों में मुनिगण और देवगण भक्तिपूर्वक पुष्प, धूपादि द्वारा उनकी पूजा की॥१६२॥ मुने! इस प्रकार (प्रकृति से उत्पन्न) जितनी कलाएँ हैं वे भारत में ग्रामदेवियाँ होकर गाँवों और नगरों में पूजित होती हैं॥१६३॥ इस प्रकार मैंने तुम्हें प्रकृति का सभी शुभचरित और शास्त्रानुसार उनका लक्षण बता दिया। अब और क्या सुनना चाहते हो।?।१६४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के प्रकृतिखण्ड में प्रकृति-स्वरूप और
उसका भेद वर्णन नामक पहला अध्याय समाप्त॥१॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

नारद उवाच

समासेन श्रुतं सर्वं देवीनां चरितं विभो। विबोधनार्थं बोधस्य व्यासतो वक्तुमर्हसि॥१॥
सृष्टिराद्या सृष्टिविधौ कथमाविर्बभूव ह। कथं वा पञ्चधा भूता वद वेदविदां वर॥२॥
भूता या याश्च कलया तया त्रिगुणया भवे। व्यासेन तासां चरितं श्रोतुमिच्छामि सांप्रतम्॥३॥
तासां जन्मानुकथनं ध्यानं पूजाविधिं परम्। स्तोत्रं कवचमैश्वर्यं शौर्यं वर्णय मङ्गलम्॥४॥

नारायण उवाच

नित्यात्मा च नभो नित्यं कालो नित्यो दिशो यथा। विश्वेषां गोलकं नित्यं नित्यो गोलोक एव च॥५॥
तदेकदेशो वैकुण्ठो लम्बभागः स नित्यकः। तथैव प्रकृतिर्नित्या ब्रह्मलीना सनातनी॥६॥
यथाऽग्नौ दाहिका चन्द्रे पद्मे शोभा प्रभा रवौ। शश्वद्युक्ता न भिन्ना सा तथा प्रकृतिरात्मनि॥७॥
विना स्वर्णं स्वर्णकारः कुण्डलं कर्तुमक्षमः। विना मृदा कुलालो हि घटं कर्तुं नहीश्वरः॥८॥
न हि क्षमस्तथा ब्रह्मा सृष्टिं स्रष्टुं तया विना। सर्वशक्तिस्वरूपा सा तया स्याच्छक्तिमान्सदा॥९॥

अध्याय २

श्रीकृष्ण और राधा से देव-देवियों की उत्पत्ति का वर्णन

नारद बोले—विभो! मैंने संक्षेपतः देवियों का समस्त चरित सुन लिया, किन्तु ज्ञान-वृद्धि के लिए इसे पुनः विस्तार के साथ कहने की कृपा करें॥१॥ वेद-वेत्ताओं में श्रेष्ठ! सृष्टि-विधान के समय सृष्टि की आद्या देवी कैसे प्रकट हुई? और वह पाँच रूपों में कैसे हो गई? ॥२॥ इस संसार में देवी की त्रिगुणमयी कला से जो-जो देवियाँ उत्पन्न हुईं, उनका चरित्र मैं विस्तार के साथ सुनना चाहता हूँ॥३॥ आप उनके जन्म की कथा, उनके ध्यान, पूजा का उत्तम विधान, स्तोत्र, कवच, ऐश्वर्य और मंगलदायक शौर्य वर्णन करने की कृपा करें॥४॥

श्रीनारायण बोले—दिशाओं की भाँति आत्मा, आकाश और काल नित्य हैं, एवं विश्व-गोल तथा गोलोकधाम नित्य हैं॥५॥ उसके एक प्रदेश के लम्बे भाग में स्थित वैकुण्ठ भी नित्य है। उसी प्रकार ब्रह्म में लीन रहने वाली सनातनी प्रकृति भी नित्य है॥६॥ जिस प्रकार अग्नि में दाहिका शक्ति, चन्द्र और कमल में शोभा तथा सूर्य में प्रभा निरन्तर युक्त रहती है कभी भिन्न नहीं होती। उसी प्रकार परमात्मा में प्रकृति नित्य विराजमान रहती है॥७॥ जिस भाँति विना सुवर्ण के सोनार कुण्डल (आदि आभूषण) बनाने में असमर्थ रहता है, बिना मिट्टी के कुम्हार घट आदि नहीं बना सकता है॥८॥ उसी भाँति बिना प्रकृति के परमात्मा सृष्टि करने में समर्थ नहीं हो सकते हैं। जिसके सहारे श्रीहरि सदा शक्तिमान् बने रहते हैं, वह प्रकृति देवी ही शक्तिस्वरूपा है॥९॥

ऐश्वर्यवचनःशक् च तिः पराक्रमवाचकः। तत्स्वरूपा तयोर्दात्री या सा शक्तिः प्रकीर्तिता॥१०॥
समृद्धिबुद्धिसंपत्तियशसां वचनो भगः। तेन शक्तिर्भगवती भगरूपा च सा सदा॥११॥
तया युक्तः सदाऽऽत्मा च भगवांस्तेन कथ्यते। स च स्वेच्छामयः कृष्णः साकारश्च निराकृतिः॥१२॥
तेजोरूपं निराकारं ध्यायन्ते योगिनः सदा। वदन्ति ते परं ब्रह्म परमात्मानमीश्वरम्॥१३॥
अदृश्यं सर्वद्रष्टारं सर्वज्ञं सर्वकारणम्। सर्वदं सर्वरूपान्तमरूपं सर्वपोषकम्॥१४॥
वैष्णवास्तं न मन्यन्ते तद्भक्ताः सूक्ष्मदर्शिनः। वदन्ति इति ते कस्य तेजस्तेजस्विनं विना॥१५॥
तेजोमण्डलमध्यस्थं ब्रह्मतेजस्विनं परम्। स्वेच्छामयं सर्वरूपं सर्वकारणकारणम्॥१६॥
अतीव सुन्दरं रूपं बिभ्रतं सुमनोहरम्। किशोरवयसं शान्तं सर्वकान्तं परात्परम्॥१७॥
नवीननीरदाभासं रासैकश्यामसुन्दरम्। शरन्मध्याह्नपद्मौघशोभामोचकलोचनम्॥१८॥
मुक्तासारमहास्वच्छदन्तपङ्क्तिमनोहरम्। मयूरपुच्छचूडं च मालतीमाल्यमण्डितम्॥१९॥
सुनासं सस्मितं शश्वद्भक्तानुग्रहकारकम्। ज्वलदग्निविशुद्धैकपीतांशुकसुशोभितम्॥२०॥
द्विभुजं मुरलीहस्तं रत्नभूषणभूषितम्। सर्वाधारं च सर्वेशं सर्वशक्तियुतं विभुम्॥२१॥
सर्वैश्वर्यप्रदं सर्वं स्वतन्त्रं सर्वमङ्गलम्। परिपूर्णतमं सिद्धं सिद्धिदं सिद्धिकारणम्॥२२॥

(शक्ति शब्द में) शक् का अर्थ है ऐश्वर्य और ति का अर्थ है पराक्रम। ये दोनों जिसके स्वरूप हैं तथा जो इन दोनों गुणों को प्रदान करती है, उसे शक्ति कहा जाता है॥१०॥ भग शब्द समृद्धि, बुद्धि, सम्पत्ति एवं यश का बोधक है। उससे सम्पन्न होने के कारण शक्ति को भगवती कहा जाता है; क्योंकि वह सदैव भगस्वरूपा है॥११॥ उसी से सदैव युक्त रहने के कारण परमात्मा भगवान् कहा जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण, स्वेच्छामय एवं निराकार होते हुए भी साकार हैं॥१२॥ उन परब्रह्म परमात्मा एवं ईश्वर को योगी लोग सदा तेजोरूप निराकार कह कर उनका ध्यान करते हैं, वे अदृश्य रहते हुए भी सब को देखने वाले, सर्वज्ञाता, समस्त के कारण, सर्वप्रद, समस्त रूपों में रहने वाले, रूपरहित तथा सब के पोषक हैं॥१३-१४॥ किन्तु उनके सूक्ष्मदर्शी भक्त वैष्णव जन ऐसा नहीं स्वीकार करते हैं। उनका कहना है कि बिना तेजस्वी व्यक्ति के वह तेज किसका कहा जायगा। इस लिए उस तेजोमण्डल के मध्य में वह परम तेजस्वी परब्रह्म स्थित रहते हैं, जो स्वेच्छामय, सर्वरूप तथा समस्त कारणों के कारण हैं। वे अत्यन्त सुन्दर और अत्यन्त मनोहर रूप धारण कर के किशोरावस्था में वर्तमान रहते हैं। वे शान्त, सब के कान्त और परात्पर (श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ) हैं॥१५-१७॥ उनका श्याम विग्रह नवीन मेघ की कान्ति का परमधाम है। इनके विशाल नेत्र शरत् काल के मध्याह्न में खिले हुए कमलों की शोभा को तुच्छ करने वाले हैं। मोतियों की शोभा को छीनने वाली उनकी सुन्दर दन्तपंक्ति है। मुकुट में मोरपंख सुशोभित है। मालती की माला से वे अनुपम शोभा पा रहे हैं। उनकी नासिका सुन्दर है। मुख पर मुस्कान छायी है। वे परम मनोहर प्रभु भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए व्याकुल रहते हैं। प्रज्वलित अग्नि के समान विशुद्ध पीताम्बर से उनका विग्रह परम मनोहर हो गया है। उनकी दो भुजाएँ हैं। हाथ में बांसुरी सुशोभित है। वे रत्नमय भूषणों से भूषित, सब के आधार, सब के ईश, समस्त शक्तियों से युक्त, प्रभु, समस्त ऐश्वर्यों के प्रदाता, सर्वरूप स्वतन्त्र, सर्वमंगल, परिपूर्णतम, सिद्ध, सिद्धिदायक और सिद्धि के कारण हैं॥१८-२२॥ इस प्रकार के सनातन

ध्यायन्ते वैष्णवाः शश्वदेवंरूपं सनातनम्। जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिहरं परम्॥२३॥
ब्रह्मणो वयसा यस्य निमेष उपचर्यते। स चाऽऽत्मा परमं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते॥२४॥
कृषिस्तद्भक्तिवचनो नश्च तद्दास्यवाचकः। भक्तिदास्यप्रदाता यः स कृष्णः परिकीर्तितः॥२५॥
कृषिश्च सर्ववचनो नकारो बीजवाचकः। सर्वबीजं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते॥२६॥
असंख्यब्रह्मणां पाते कालेऽतीतेऽपि नारद। यद्गुणानां[1] नास्ति नाशस्तत्समानो गुणेन च॥२७॥
स कृष्णः सर्वसृष्ट्यादौ सिसृक्षुस्त्वेक एव च। सृष्ट्युन्मुखस्तदंशेन कालेन प्रेरितः प्रभुः॥२८॥
स्वेच्छामयःस्वेच्छया च द्विधारूपो बभूव ह। स्त्रीरूपा वामभागांशाद्दक्षिणांशः पुमान् स्मृतः॥२९॥
तां ददर्श महाकामी कामाधारः सनातनः। अतीव कमनीयां च चारुचम्पकसंनिभाम्॥३०॥
पूर्णेन्दुबिम्बसदृशनितम्बयुगलां पराम्। सुचारुकदलीस्तम्भसदृशश्रोणिसुन्दरीम्॥३१॥
श्रीयुक्तश्रीफलाकारस्तनयुग्ममनोरमाम्। पुष्ट्या युक्तां सुललितां मध्यक्षीणां मनोहराम्॥३२॥
अतीव सुन्दरीं[2] शान्तां सस्मितां वक्रलोचनाम्। वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम्॥३३॥
शश्वच्चक्षुश्चकोराभ्यां पिबन्तीं संततं मुदा। कृष्णस्य[3] सुन्दरमुखं चन्द्रकोटिविनिन्दकम्॥३४॥
कस्तूरीबिन्दुभिः सार्धमधश्चन्दनबिन्दुना। समं सिन्दूरबिन्दुं च भालमध्ये च बिभ्रतीम्॥३५॥

रूप का वैष्णव गण निरन्तर ध्यान करते हैं। उनकी कृपा से जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, शोक और भय का अत्यन्त नाश हो जाता है॥२३॥ ब्रह्मा की पूर्ण आयु उनके एक निमेष के बराबर है, वे ही परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण हैं॥२४॥ (कृष्ण शब्द में) 'कृष्' का अर्थ है भक्ति और 'न' का अर्थ है दास्य। इसलिए भक्ति और दास्य भाव के प्रदायक भगवान् कृष्ण हैं, ऐसा कहा जाता है॥२५॥ 'कृष्' समस्त वाची है और ण, का अर्थ है बीज। अतः समस्त बीजस्वरूप परब्रह्म 'कृष्ण' कहे गए हैं॥२६॥ नारद! असंख्य ब्रह्मा की आयु पर्यन्त जिनके गुणों का नाश नहीं होता है उनके समान गुण में कोई नहीं है वे सृष्टि के आदि में एकाकी थे। उस समय उनके मन में सृष्टि करने की इच्छा हुई। अपने अंशभूत काल से प्रेरित होकर ही वे प्रभु सृष्टिकर्म के लिए उन्मुख हुए थे। उनका स्वरूप स्वेच्छामय है। वे अपनी इच्छा से ही दो रूपों में प्रकट हो गए। उनका वामांश स्त्री रूप में और दक्षिण भाग पुरुष रूप में आविर्भूत हुए॥२७-२९॥ वे सनातन, महाकामी तथा कामाधार पुरुष उस दिव्य रमणी को देखने लगे। उस रमणी की कान्ति मनोहर चंपा के समान थी। पूर्णचन्द्र-मंडल के समान उसके गोल-गोल नितम्ब थे। सुंदर कदली-स्तंभ के समान उसके ऊरु भाग थे। सुन्दर विल्बफल के समान उसके दोनों स्तन थे। उसका शरीर पुष्ट एवं कमनीय था। मध्यभाग (कटि-प्रदेश) पतला था। वह सुन्दरी शान्त, मन्द मुसकान से युक्त तथा टेढ़ी चितवन वाली थी। उसने अग्नि के समान चमकने वाले वस्त्र तथा रत्नों के आभूषण धारण कर रखे थे। वह अपने चकोररूपी चक्षुओं के द्वारा श्रीकृष्ण के मुखचन्द्र का निरन्तर हर्षपूर्वक पान कर रही थी। श्रीकृष्ण का मुखमण्डल इतना भव्य था कि उसके सामने करोड़ों चन्द्र भी नगण्य थे। उस देवी के ललाट के ऊपरी भाग में कस्तूरी की बिंदी थी। नीचे चन्दन की

---

१ क. यदंशानां ना०। २ क. ०रीं रामां स ०। ३ क. ०स्य मुखचन्द्रं च च०।

सुवक्रकबरीभारं मालतीमाल्यभूषितम् । रत्नेन्द्रसारहारं च दधतीं कान्तकामुकीम् ॥३६॥
कोटिचन्द्रप्रभाजुष्टपुष्टशोभासमन्विताम्[1] । गमने राजहंसीं तां दृष्ट्या खञ्जनगञ्जनीम् ॥३७॥
अतिमात्रं[2] तया सार्धं रासेशो रासमण्डले । रासोल्लासेषु रहसि रासक्रीडां चकार ह ॥३८॥
नानाप्रकारश्शृङ्गारं शृङ्गारो मूर्तिमानिव । चकार सुखसंभोगो यावद्वै ब्रह्मणो वयः ॥३९॥
ततः स च परिश्रान्तस्तस्या योनौ जगत्पिता । चकार वीर्याधानं च नित्यानन्दः शुभक्षणे ॥४०॥
गात्रतो योषितस्तस्याः सुरतान्ते च सुव्रत । निःससार श्रमजलं श्रान्तायास्तेजसा हरेः ॥४१॥
महासुरतखिन्नाया निःश्वासश्च बभूव ह । तदाधारश्रमजलं तत्सर्वं विश्वगोलकम् ॥४२॥
स च निःश्वासवायुश्च सर्वाधारो बभूव ह । निःश्वासवायुः सर्वेषां जीविनां च भवेषु च ॥४३॥
बभूव मूर्तिमद्वायोर्वामाङ्गात्प्राणवल्लभा । तत्पत्नी सा च तत्पुत्राः प्राणाः पञ्च च जीविनाम् ॥४४॥
प्राणोऽपानः समानश्चैवोदानो व्यान एव च । बभूवुरेव तत्पुत्रा अधः प्राणाश्च पञ्च च ॥४५॥
घर्मतोयाधिदेवश्च बभूव वरुणो महान् । तद्वामाङ्गाच्च तत्पत्नी वरुणानी बभूव सा ॥४६॥
अथ सा कृष्णशक्तिश्च कृष्णाद्गर्भं दधार ह । शतमन्वन्तरं यावज्ज्वलन्ती ब्रह्मतेजसा ॥४७॥

छोटी-छोटी बिंदियाँ थीं। साथ ही मध्य ललाट में सिंदूर की बिंदी भी शोभा पा रही थी। प्रियतम के प्रति अनुरक्त चित्त वाली उस देवी के केश[1] घुघराले थे। मालती के पुष्पों का सुन्दर हार उसे सुशोभित कर रहा था। करोड़ों चन्द्रों की प्रभा से सुप्रकाशित परिपूर्ण शोभा से इस देवी का श्रीविग्रह सम्पन्न था। यह अपनी चाल से राजहंस एवं खंजन पक्षी के गर्व को नष्ट कर रही थी ॥३०-३७॥ रासेश्वर श्रीकृष्ण उस देवी को देख कर रास के उल्लास में उल्लसित हो उठे। वे उसके साथ रासमण्डल में पधारे। एकान्त में रासक्रीड़ा होने लगी। मानो स्वयं शृंगार ही मूर्तिमान् होकर नाना प्रकार की शृंगारोचित चेष्टाओं के साथ रसमयी क्रीड़ा कर रहा हो। उस रास में उन्होंने एक ब्रह्मा की आयु पर्यन्त उसके साथ सुख-सम्भोग किया ॥३८-३९॥ पश्चात् जगत् के पिता उन नित्यानन्द ने परिश्रान्त होकर शुभमुहूर्त में उसके गर्भ में वीर्य का निक्षेप किया ॥४०॥ सुव्रत ! रतिक्रीड़ा के अन्त में उस कामिनी के शरीर से, जो भगवान् के तेज से श्रान्त हो गयी थी, प्रस्वेद बह चला और उस महासुख से खिन्न होने के कारण उसका निःश्वास जोर-जोर से चलने लगा। उसके शरीर से निकले हुए प्रस्वेद-जल से सम्पूर्ण विश्वगोल का निर्माण हुआ। और उसका निःश्वास वायु सब का आधार हुआ। संसार में सभी जीवों का निःश्वास वायु हुआ ॥४१-४३॥ उस मूर्तिमान् वायु के बाँयें अंग से उसकी प्राणवल्लभा पत्नी प्रकट हुई। उससे पाँच पुत्र उत्पन्न हुए, जो जीव-धारियों के प्राण रूप हैं ॥४४॥ प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान यही पाँचों उसके पुत्र हैं। पाँच अधः प्राण भी हैं ॥४५॥ फिर उस स्वेद-जल से जल के महान् अधिदेव वरुण उत्पन्न हुए, जिनके बाँयें भाग से उनकी पत्नी वरुणानी उत्पन्न हुईं ॥४६॥ उस समय भगवान् श्रीकृष्ण की उस शक्ति ने उनके द्वारा गर्भ धारण किया, जो सौ

---

१ क. ०टिसूर्यप्र० । २ क. दृष्टमा० ।

कृष्णप्राणाधिदेवी सा कृष्णप्राणाधिकप्रिया। कृष्णस्य सङ्गिनी शश्वत्कृष्णवक्षःस्थलस्थिता ॥४८॥
शतमन्वन्तरातीतकाले परमसुन्दरी। सुषावाण्डं सुवर्णाभं विश्वाधारं लयं परम् ॥४९॥
दृष्ट्वा चाण्डं हि सा देवी हृदयेन विदूयता। उत्ससर्ज च कोपेन[1] तदण्डं गोलके जले ॥५०॥
दृष्ट्वा कृष्णश्च तत्त्यागं हाहाकारं चकार ह। शशाप देवी देवेशस्तत्क्षणं च यथोचितम् ॥५१॥
यतोऽपत्यं त्वया त्यक्तं कोपशीले सुनिष्ठुरे। भव त्वमनपत्याऽपि चाद्यप्रभृति निश्चितम् ॥५२॥
या यास्त्वदंशरूपाश्च भविष्यन्ति सुरस्त्रियः। अनपत्याश्च ताः सर्वास्त्वत्समा नित्ययौवनाः ॥५३॥
एतस्मिन्नन्तरे देवीजिह्वाग्रात्सहसा ततः। आविर्बभूव कन्यैका शुक्लवर्णा मनोहरा ॥५४॥
पीतवस्त्रपरिधाना वीणापुस्तकधारिणी। रत्नभूषणभूषाढ्या सर्वशास्त्राधिदेवता ॥५५॥
अथ कालान्तरे सा च द्विधारूपा बभूव ह। वामार्धाङ्गा च कमला दक्षिणार्धा च राधिका ॥५६॥
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो द्विधारूपो बभूव ह। दक्षिणार्धः स्याद्द्विभुजो वामार्धश्च चतुर्भुजः ॥५७॥
उवाच वाणीं श्रीकृष्णस्त्वमस्य भव कामिनी। अत्रैव मानिनी राधा नैव भद्रं भविष्यति ॥५८॥
एवं लक्ष्मीं संप्रददौ तुष्टो नारायणाय वै। संजगाम च वैकुण्ठं ताभ्यां सार्धं जगत्पतिः ॥५९॥

मन्वन्तर के समय तक ब्रह्म-तेज से प्रज्वलित रहा ॥४७॥ तब भगवान् कृष्ण के प्राणों की अधिदेवता, उनके प्राणों की प्यारी, उनकी संगिनी और उनके वक्षःस्थल पर निरन्तर विराजमान उस परम सुन्दरी ने सौ मन्वन्तर का समय व्यतीत हो जाने पर एक सुवर्ण के समान प्रकाशमान अण्डा उत्पन्न किया, जो समस्त विश्व का परम आधार हुआ ॥४८-४९॥ उस अण्डे को देख कर उस देवी ने हार्दिक दुःख प्रकट करती हुई क्रोध से उस अंडे को विश्वगोलक के अथाह जल में छोड़ दिया ॥५०॥ भगवान् कृष्ण ने स्त्री द्वारा उस अण्डे का उस प्रकार का त्याग देख कर हा-हाकार करते हुए उसी समय उस देवी को यथोचित शाप दिया—'हे कोपस्वभाव वाली एवं अत्यन्त निष्ठुरे! तुमने सन्तान का त्याग किया है, अतः आज से सदैव के लिए तू निश्चित ही सन्तानहीना होकर रहेगी ॥५१-५२॥ और तेरे अंश से उत्पन्न होने वाली जितनी देवांगनाएँ होंगी, वे तुम्हारी ही भाँति नित्ययौवना किन्तु सन्तानहीना होंगी ॥५३॥ अनन्तर उसी क्षण उस देवी की जिह्वा के अग्र भाग से एक शुक्ल वर्ण की मनोहरा कन्या सहसा उत्पन्न हुई ॥५४॥ वह पीताम्बर धारण किए हुई थी। उसके दोनों हाथ वीणा और पुस्तक से सुशोभित थे। समस्त शास्त्रों की वह अधिष्ठात्री देवी रत्नमय आभूषणों से विभूषित थी ॥५५॥ इसके उपरान्त कुछ काल व्यतीत होने पर वह देवी दो रूपों में प्रकट हुई, जिसके बाँयें भाग से कमला और दाहिने से राधिका का प्रादुर्भाव हुआ ॥५६॥ इसी बीच भगवान् कृष्ण भी दो रूपों में प्रकट होकर दाहिने भाग से दो भुजा वाले श्रीकृष्ण और बाँयें भाग से चार भुजा वाले विष्णु हुए ॥५७॥ भगवान् कृष्ण ने सरस्वती से कहा कि 'तुम विष्णु की पत्नी बनो। यहाँ (मेरे साथ) माननीया राधिका रहेगी। इसी से कल्याण होगा।' इसी प्रकार लक्ष्मी से भी कह कर उन्होंने लक्ष्मी को नारायण (विष्णु) को प्रदान कर दिया। फिर तो जगत्पति (विष्णु) उन दोनों को साथ लेकर वैकुण्ठ चले गए ॥५८-५९॥ मूल प्रकृति रूप

---

१ क. ०न ब्रह्माण्डगो० ।

अनपत्ये च ते द्वे च यतो राधांशसंभवे। नारायणाङ्गादभवन्पार्षदाश्च चतुर्भुजाः ॥६०॥
तेजसा वयसा रूपगुणाभ्यां च समा हरेः। बभूवुः कमलाङ्गाच्च दासीकोटयश्च तत्समाः ॥६१॥
अथ गोलोकनाथस्य लोम्नां विवरतो मुने। आसन्नसंख्यगोपाश्च वयसा तेजसा समाः ॥६२॥
रूपेण सुगुणेनैव वेषाद्या विक्रमेण च। प्राणतुल्याः प्रियाः सर्वे बभूबु पार्षदा विभोः ॥६३॥
राधाङ्गलोमकूपेभ्यो बभूवुर्गोपकन्यकाः। राधातुल्याश्च सर्वास्ता[1] नान्यतुल्याः प्रियंवदाः ॥६४॥
रत्नभूषणभूषाढ्याः शश्वत्सुस्थिरयौवनाः। अनपत्याश्च ताः सर्वाः पुंसः शापेन संततम् ॥६५॥
एतस्मिन्नन्तरे विप्र सहसा कृष्णदेहतः। आविर्बभूव सा दुर्गा विष्णुमाया सनातनी ॥६६॥
देवी नारायणीशाना सर्वशक्तिस्वरूपिणी। बुद्ध्यधिष्ठातृदेवी सा कृष्णस्य परमात्मनः ॥६७॥
देवीनां बीजरूपा च मूलप्रकृतिरीश्वरी। परिपूर्णतमा तेजःस्वरूपा त्रिगुणात्मिका ॥६८॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभा सूर्यकोटिसमप्रभा। ईषद्धासप्रसन्नास्या सहस्रभुजसंयुता ॥६९॥
नानाशस्त्रास्त्रनिकरं बिभ्रती सा त्रिलोचना। वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नभूषणभूषिता ॥७०॥
यस्याश्चांशांशकलया बभूवुः सर्वयोषितः। सर्वविश्वस्थिता लोका मोहिता मायया यया ॥७१॥

राधा के अंश से उत्पन्न होने के कारण वे दोनों (लक्ष्मी और सरस्वती) सन्तानहीना हुईं। फिर नारायण (विष्णु) के अंग से विष्णु अनेक पार्षद उत्पन्न हुए, जो तेज, अवस्था, रूप और गुणों में विष्णु के ही समान थे। लक्ष्मी के अंग से करोड़ों दासियाँ उत्पन्न हो गईं, जो उन्हीं के समान थीं ॥६०-६१॥ मुने! अनन्तर गोलोकनाथ (भगवान् श्रीकृष्ण) के लोम-कूपों से असंख्य गोप उत्पन्न हुए, जो अवस्था और तेज में उन्हीं के समान थे ॥६२-॥ रूप, उत्तम गुण, वेष और पराक्रम में विभु श्रीकृष्ण के समान वे गोपगण उन्हीं के प्राणप्रिय पार्षद हुए ॥६३॥ ऐसे ही राधा जी के लोम-कूपों से बहुत-सी गोपकन्याएँ उत्पन्न हुईं, जो राधा के समान ही अनुपम मधुरभाषिणी थीं ॥६४॥ रत्नों के भूषणों से भूषित एवं निरन्तर स्थिर यौवन वाली वे सभी स्त्रियाँ भगवान् कृष्ण के (पहले) शाप के कारण सन्तानहीन हुईं ॥६५॥

विप्र! इसी बीच भगवान् कृष्ण की देह से सनातनी विष्णु माया दुर्गा सहसा प्रकट हुईं ॥६६॥ इन्हें नारायणी, ईशाना एवं सर्वशक्तिस्वरूपिणी कहा जाता है। ये परमात्मा कृष्ण की बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी हैं ॥६७॥ देवियों की बीज रूप, मूल प्रकृति, ईश्वरी, परिपूर्णतमा, तेजःस्वरूपा, तीनों (सत्त्व, रज, तम) गुणमयी, तप्त सुवर्ण के समान वर्ण वाली, करोड़ों सूर्य के समान चमकने वाली, मन्द मुसुकान से सुशोभित प्रसन्न मुख वाली और सहस्र भुजाओं वाली हैं ॥६८-६९॥ तीन नेत्रों वाली वे दुर्गा अनेक भाँति के शस्त्रास्त्रों को हाथों में लिये रहती हैं। वे अग्निशुद्ध वस्त्रों एवं रत्नों के आभूषणों से विभूषित हैं। ॥७०॥ समस्त स्त्रियाँ उनके अंश की कला से उत्पन्न हुई हैं और उनकी माया समस्त विश्व को मोहित करने में समर्थ हैं ॥७१॥ वह सकाम भाव से उपासना करने

---

१ क. स्ता राधादास्यः प्रि०।

सर्वैश्वर्यप्रदात्री च कामिनां गृहमेधिनाम्। कृष्णभक्तिप्रदात्री च वैष्णवानां च वैष्णवी॥७२॥
मुमुक्षूणां मोक्षदात्री सुखिनां सुखदायिनी। स्वर्गेषु स्वर्गलक्ष्मीः सा गृहलक्ष्मीर्गृहेष्वसौ॥७३॥
तपस्विषु तपस्या च श्रीरूपा सा नृपेषु च। या चाग्नौ दाहिकारूपा प्रभारूपा च भास्करे॥७४॥
शोभास्वरूपा चन्द्रे च पद्मेषु च सुशोभना। सर्वशक्तिस्वरूपा या श्रीकृष्णे परमात्मनि॥७५॥
यया च शक्तिमानात्मा यया वै शक्तिमज्जगत्। यया विना जगत्सर्वं जीवन्मृतमिव स्थितम्॥७६॥
या च संसारवृक्षस्य बीजरूपा सनातनी। स्थितिरूपा बुद्धिरूपा फलरूपा[1] च नारद॥७७॥
क्षुत्पिपासा दया श्रद्धा निद्रा तन्द्रा क्षमा धृतिः। शान्तिर्लज्जा तुष्टिपुष्टिभ्रान्तिकान्त्यादिरूपिणी॥७८॥
सा च संस्तूय सर्वेशं तत्पुरः समुपस्थितः। रत्नसिंहासनं तस्यै प्रददौ राधिकेश्वरः॥७९॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र सस्त्रीकश्च चतुर्मुखः। पद्मनाभनाभिपद्मान्निःससार पुमान्मुने॥८०॥
कमण्डलुधरः श्रीमांस्तपस्वी ज्ञानिनां वरः। चतुर्मुखस्तं तुष्टाव प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा॥८१॥
सुदती सुन्दरी श्रेष्ठा शतचन्द्रसमप्रभा। वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नभूषणभूषिता॥८२॥
रत्नसिंहासने रम्ये स्तुता वै सर्वकारणम्। उवास स्वामिना सार्धं कृष्णस्य पुरतो मुदा॥८३॥

वाले गृहस्थों को सम्पूर्ण ऐश्वर्य प्रदान करती हैं। वही कृष्णभक्ति देने वाली तथा विष्णु-भक्तों के लिए विष्णुरूप-धारिणी भी हैं॥७२॥ वे मोक्ष चाहने वालों को मोक्ष और सुखेच्छुकों को सुख प्रदान करती हैं। वही स्वर्ग में स्वर्गलक्ष्मी और गृहस्थों के घर गृहलक्ष्मी के रूप में रहती हैं। वही तप करने वालों में तपस्या रूप से, राजाओं में राजलक्ष्मी रूप से, अग्नि में दाहिका रूप से, भास्कर में प्रभारूप से, चन्द्रमा में शोभारूप से, कमलों में सौन्दर्य रूप से तथा परमात्मा श्रीकृष्ण में समस्त शक्ति रूप से विराजमान रहती हैं॥७३-७५॥ उनसे आत्मा तथा सारा जगत् शक्तिमान् होता है और उनके बिना समस्त जगत् जीवित रहते हुए भी मृतक के समान है॥७६॥ नारद! वे इस संसार रूपी वृक्ष के लिए बीजस्वरूपा हैं। वे स्थितिरूपा, बुद्धिरूपा और फलरूपा भी हैं॥७७॥ वही क्षुधा, पिपासा, दया, श्रद्धा, निद्रा, तन्द्रा (आलस्य), क्षमा, धृति, शान्ति, लज्जा, तुष्टि, पुष्टि, भ्रान्ति, और कान्ति आदि रूपा हैं। अनन्तर वे देवेश कृष्ण की स्तुति करके उनके सामने खड़ी हो गईं। राधिकेश्वर (भगवान् श्रीकृष्ण) ने उन्हें रत्नसिंहासन प्रदान किया॥७८-७९॥ मुने! इसी बीच स्त्री सहित ब्रह्मा वहाँ आये। ब्रह्मा विष्णु के नाभिकमल से प्रकट हुए थे। ॥८०॥ वे तपस्वी, ज्ञानियों में श्रेष्ठ, कमण्डलुधारी और ब्रह्मतेज से देदीप्यमान ब्रह्मा श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे। उस समय सैकड़ों चन्द्रमाओं के समान कान्ति वाली, सुन्दर दाँतों वाली तथा अग्निशुद्ध वस्त्र एवं रत्न-निर्मित आभूषणों से अलंकृत वह सुन्दरी देवी उन सर्वकारण (श्रीकृष्ण) की स्तुति करके पतिदेव के साथ श्रीकृष्ण के सामने रत्नमय सिंहासन पर आनन्दपूर्वक बैठ गईं॥८१-८३॥ इसी समय भगवान्

---

१ क. ०पा व्रतरू०।

एवस्मिन्नन्तरे कृष्णो द्विधारूपो बभूव सः। वामार्धाङ्गो महादेवो दक्षिणो गोपिकापतिः॥८४॥
शुद्धस्फटिकसंकाशः शतकोटिरविप्रभः। त्रिशूलपट्टिशधरो व्याघ्रचर्मधरो हरः॥८५॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभजटाभारधरः परः। भस्मभूषणगात्रश्च सस्मितश्चन्द्रशेखरः॥८६॥
दिगम्बरो नीलकण्ठः सर्वभूषणभूषितः। बिभ्रद्दक्षिणहस्तेन रत्नमालां सुसंस्कृताम्॥८७॥
प्रजपन्पञ्चवक्त्रेण ब्रह्मज्योतिः सनातनम्। सत्यस्वरूपं श्रीकृष्णं परमात्मानमीश्वरम्॥८८॥
कारणं कारणानां च सर्वमङ्गलमङ्गलम्। जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिहरं परम्॥८९॥
संस्तूय मृत्योर्मृत्युं तं जातो मृत्युंजयाभिधः। रत्नसिंहासने रम्ये समुवास हरेः पुरः॥९०॥

इति श्री० म० प्र० नारायणनारदसंवादे देवदेव्युत्पत्तिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः॥२॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच

अथाण्डं तज्जलेऽतिष्ठद्यावद्वै ब्रह्मणो वयः। ततः स्वकाले सहसा द्विधारूपो बभूव सः॥१॥
तन्मध्ये शिशुरेकश्च शतकोटिरविप्रभः। क्षणं रोरूयमाणश्च स शिशुः पीडितः क्षुधा॥२॥

श्रीकृष्ण ने दो रूप धारण किये। उनका बायाँ आधा अंग महादेव हुआ और दाहिने आधे अंग से वे गोपीपति (श्रीकृष्ण) ही रहे॥८४॥ महादेव की कान्ति शुद्ध स्फटिकमणि के समान थी। एक अरब सूर्य के समान वे प्रकाशमान थे। वे त्रिशूल और पट्टिश धारण किये हुए थे। बाघम्बर पहने हुए थे। उनकी जटाओं की आभा तपाये हुए सुवर्ण जैसी थी। अंगों में भस्म रमा हुआ था। मुख पर मुसकराहट और मस्तक पर चन्द्रमा की शोभा हो रही थी। वे दिगम्बर (नग्न), नीलकंठ तथा सर्पों के आभूषणों से विभूषित थे। उनके दाहिने हाथ में सुसंस्कृत रत्नमाला थी। वे (अपने) पांच मुखों से ब्रह्मज्योतिः स्वरूप, सनातन, सत्यरूप, परमात्मा, ईश्वर, कारणों के कारण, समस्त मंगलों के मंगल, जन्म, मृत्यु, ज़रा, व्याधि, शोक तथा भय को हरने वाले और मृत्यु की भी मृत्यु भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करके 'मृत्युञ्जय' कहलाये और भगवान् के सम्मुख ही उनकी आज्ञा से रमणीक रत्न सिंहासन पर आसीन हो गए॥८५-९०॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के प्रकृतिखण्ड में देव और देवी की उत्पत्ति नामक दूसरा अध्याय समाप्त॥२॥

अध्याय ३

विराट् स्वरूप बालक का वर्णन

श्री नारायण बोले--वह अण्डा ब्रह्मा की पूरी आयु तक उस जल में पड़ा रहा। अनन्तर समय पूरा हो जाने पर वह सहसा दो खण्डों में विभक्त हो गया॥१॥ उसके मध्य भाग में एक शिशु अवस्थित था, जिसकी प्रभा सैकड़ों सूर्यों के समान थी। वह शिशु माता-पिता से परित्यक्त तथा जल के भीतर आश्रय-रहित था। इस-

पितृमातृपरित्यक्तो जलमध्ये निराश्रयः। नैकब्रह्माण्डनाथो यो ददर्शोर्ध्वमनाथवत् ॥३॥
स्थूलात्स्थूलतमः सोऽपि नाम्ना देवो महाविराट्। परमाणुर्यथा सूक्ष्मात्परः स्थूलात्तथाऽप्यसौ ॥४॥
तेजसां षोडशांशोऽयं कृष्णस्य परमात्मनः। आधारोऽसंख्यविश्वानां महाविष्णुः[१] सुरेश्वरः ॥५॥
प्रत्येकं रोमकूपेषु विश्वानि निखिलानि च। अद्यापि तेषां सख्यां च कृष्णो वक्तुं न हि क्षमः ॥६॥
यथाऽस्ति संख्या रजसां विश्वानां न कदाचन। ब्रह्मविष्णुशिवादीनां तथा संख्या न विद्यते ॥७॥
प्रतिविश्वेषु सन्त्येवं ब्रह्मविष्णुशिवादयः। पातालाद् ब्रह्मलोकान्तं ब्रह्माण्डं परिकीर्तितम् ॥८॥
तत ऊर्ध्वे च वैकुण्ठो ब्रह्माण्डाद्बहिरेव सः। स च सत्यस्वरूपश्च शश्वन्नारायणो यथा ॥९॥
तदूर्ध्वं चैव गोलोकः पञ्चाशत्कोटियोजनात्। नित्यः सत्यस्वरूपश्च यथा कृष्णस्तथाऽप्ययम् ॥१०॥
[२]सप्तद्वीपमिता पृथ्वी सप्तसागरसंयुता। एकोनपञ्चाशदुपद्वीपासंख्यवनान्विता ॥११॥
ऊर्ध्वं सप्त सुवर्लोका ब्रह्मलोकसमन्विताः। पातालानि च सप्ताधश्चैवं ब्रह्माण्डमेव च ॥१२॥
ऊर्ध्वं धराया भूर्लोको भुवर्लोकस्ततः परः। स्वर्लोकस्तु ततः पश्चान्महर्लोकस्ततो जनः ॥१३॥
ततः परस्तपोलोकः सत्यलोकस्ततः परः। ततः परो ब्रह्मलोकस्तप्तकाञ्चननिर्मितः ॥१४॥
एवं सर्वं कृत्रिमं तद्बाह्याभ्यन्तर एव च। तद्विनाशे[३] विनाशश्च सर्वेषामेव नारद ॥१५॥

लिए भूख से पीड़ित होकर रोने लगा। वह अनेकों ब्रह्माण्डों का अधिनायक था। उसी ने अनाथ की भाँति ऊपर की ओर दृष्टिपात किया ॥२-३॥ वह स्थूल से भी स्थूल था। इसलिए उस देव का नाम 'महाविराट्' हुआ। जैसे परमाणु सूक्ष्मतम होता है वैसे वह स्थूलतम था।॥४॥ वह परमात्मा श्रीकृष्ण के तेज का सोलहवाँ अंश था। वही असंख्य विश्वों का आधार एवं देवों का अधीश्वर 'महाविष्णु' है ॥५॥ उसके प्रत्येक लोमकूपों में समस्त विश्व स्थित हैं, जिनकी संख्या बताने में भगवान् श्रीकृष्ण भी आज असमर्थ हैं ॥६॥ प्रत्येक ब्रह्मांड में ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देव वर्तमान हैं। कदाचित् रजःकण को गिना जा सकता है, किन्तु उस विराट् के शरीर में स्थित विश्व, ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि की संख्या नहीं बतायी जा सकती। पाताल से ब्रह्मलोक तक 'ब्रह्माण्ड' कहा जाता है ॥७-८॥ उसके ऊपर वैकुण्ठ लोक है जो ब्रह्माण्ड से बाहर है। वह नारायण की तरह नित्य सत्यस्वरूप हैं ॥९॥ उसके ऊपर पचास करोड़ योजन के विस्तार में गोलोक स्थित है, जो भगवान् की भाँति नित्य और सत्यस्वरूप है ॥१०॥ यह पृथिवी सात द्वीप और सात समुद्र, उनचास उपद्वीप और असंख्य वनों से युक्त है ॥११॥ इसके ऊपर ब्रह्मलोक सहित सात सुवर्लोक और नीचे सात पाताल अवस्थित हैं। इसी समस्त को 'ब्रह्माण्ड' कहा गया है ॥१२॥ पृथ्वी से ऊपर भूलोक, उससे ऊपर भुवर्लोक, ततः पर स्वर्गलोक, ततः पर महर्लोक, ततः पर जनोलोक, ततः पर तपोलोक, ततः पर सत्यलोक और उससे ऊपर तपे हुए सुवर्ण के समान बना हुआ ब्रह्मलोक विराजमान है ॥१३-१४॥ ये सभी कृत्रिम हैं। कुछ तो ब्रह्मांड के भीतर हैं और कुछ बाहर। नारद! ब्रह्माण्ड का

---

१ क. ०ष्णुश्च प्राकृतः । २ क. ०पमयी पृ० । ३ क. नाशश्च नाशाय स० ।

जलबुद्बुदवत्सर्वं विश्वसंघमनित्यकम्। नित्यौ गोलोकवैकुण्ठौ सत्यौ शश्वदकृत्रिमौ ॥१६॥
लोमकूपे च ब्रह्माण्डं प्रत्येकं तस्य निश्चितम्। एषां संख्यां न जानाति कृष्णोऽन्यस्यापि का कथा ॥१७॥
प्रत्येकं प्रतिब्रह्माण्डे ब्रह्मविष्णुशिवादयः। तिस्रः कोट्यः सुराणां च संख्या सर्वत्र पुत्रक ॥१८॥
दिगीशाश्चैव दिक्पाला नक्षत्राणि ग्रहादयः। भुवि वर्णाश्च चत्वारोऽधो नागाश्च चराचराः ॥१९॥
अथ कालेन स विराडूर्ध्वं दृष्ट्वा पुनः पुनः। डिम्भान्तरं च शून्यं च न द्वितीयं कथंचन ॥२०॥
चिन्तामवाप[1] क्षुद्युक्तो रुरोद च पुनः पुनः। ज्ञानं प्राप्य तदा दध्यौ कृष्णं परमपूरुषम् ॥२१॥
ततो ददर्श तत्रैव ब्रह्मज्योतिः सनातनम्। नवीननीरदश्यामं द्विभुजं पीतवाससम् ॥२२॥
सस्मितं मुरलीहस्तं भक्तानुग्रहकारकम्। जहास बालकस्तुष्टो दृष्ट्वा जनकमीश्वरम् ॥२३॥
वरं तस्मै ददौ तुष्टो वरेशः समयोचितम्। मत्समो ज्ञानयुक्तश्च क्षुत्पिपासाविवर्जितः ॥२४॥
ब्रह्माण्डासंख्यनिलयो भव वत्स लयावधि। निष्कामो निर्भयश्चैव सर्वेषां वरदो वरः
रोगमृत्युजराशोकपीडादिपरिवर्जितः ॥२५॥

विनाश होने पर इन सबका विनाश हो जाता है। क्योंकि जल के बुलबुले के समान सारा जगत् अनित्य है। इनमें केवल गोलोक और वैकुण्ठ लोक नित्य, अविनाशी और अकृत्रिम हैं॥१५-१६॥ उस विराट् शिशु के प्रति लोम-कूप में अनेक ब्रह्माण्ड स्थित हैं, जिनकी संख्याएँ भगवान् कृष्ण भी नहीं जानते अन्य की तो बात ही क्या॥१७॥ पुत्र! प्रत्येक ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिव आदि तीन करोड़ देवों की संख्या विद्यमान है॥१८॥ चारों ओर दिशाओं के अधीश्वर, दिक्पाल, ग्रह, नक्षत्र सभी इसमें सम्मिलित हैं। पृथ्वी पर चार वर्ण हैं। नीचे नागलोक हैं, जहाँ चराचर सभी अवस्थित हैं॥१९॥

इसके अनन्तर वह विराट् बालक बार-बार ऊपर देखता रहा। किन्तु वह गोलाकार पिण्ड बिलकुल खाली था। दूसरी कोई भी वस्तु वहाँ नहीं थी॥२०॥ इससे वह क्षुधित बालक चिन्तित होकर बार-बार रुदन करने लगा। अनन्तर उसे ज्ञान हुआ और वह परम पुरुष भगवान् कृष्ण का ध्यान करने लगा। उसमें उसे सनातन ब्रह्म-ज्योति दिखायी पड़ी, जो नूतन जलधर की भाँति श्यामल, दो भुजाधारी और पीताम्बर पहने हुए मुसकरा रही थी। उसके हाथ में मुरली थी। भक्तों पर अनुग्रह करने वाले उस मूर्ति रूप पिता ईश्वर को देखकर वह बालक अत्यन्त मुदित होकर हँस पड़ा॥२१-२३॥ तदुपरान्त वरेश भगवान् कृष्ण ने प्रसन्न होकर उसे समुचित वर प्रदान किया—वत्स! मेरे समान ज्ञानी, क्षुधा-पिपासा से रहित होकर प्रलयकाल पर्यन्त तुम असंख्य ब्रह्माण्डों का आश्रय बनो। कामनारहित और निर्भय होकर सबके लिए श्रेष्ठ वरदायक बनो। तथा रोग, मृत्यु, जरा एवं शोक, की पीड़ा आदि से रहित हो॥२४-२५॥ इतना कहकर उसके दाहिने कान में षडक्षर महामंत्र का तीन बार जप किया। यह उत्तम

---

१ क. ०प शुष्कोष्ठो रु० ।

इत्युक्त्वा तद्दक्षकर्णे महामन्त्रं षडक्षरम्। त्रिः कृत्वा प्रजजापाऽऽदौ वेदागमपरं वरम्॥२६॥
प्रणवादिचतुर्थ्यन्तं कृष्ण इत्यक्षरद्वयम्। वह्निजायान्तमिष्टं च सर्वविघ्नहरं परम्॥२७॥
मन्त्रं दत्त्वा तदाऽऽहारं कल्पयामास वै प्रभुः। श्रूयतां तद्ब्रह्मपुत्र निबोध कथयामि ते॥२८॥
प्रतिविश्वेषु नैवेद्यं दद्याद्वै वैष्णवो जनः। षोडशांशं विषयिणो विष्णोः पञ्चदशास्य वै॥२९॥
निर्गुणस्याऽऽत्मनश्चैव परिपूर्णतमस्य च। नैवेद्येन च कृष्णस्य नहि किंचित्प्रयोजनम्॥३०॥
यद्ददाति च नैवेद्यं यस्मै देवाय यो जनः। स च खादति तत्सर्वं लक्ष्मीदृष्ट्या पुनर्भवेत्॥३१॥
तं च मन्त्रं वरं दत्त्वा तमुवाच पुनर्विभुः। वर अन्यः क इष्टस्ते तं मे ब्रूहि ददामि ते॥३२॥
कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा तमुवाच महाविराट्। अदन्तो बालकस्तत्र वचनं समयोचितम्॥३३॥

महाविराडुवाच

वरं मे त्वत्पदाम्भोजे भक्तिर्भवतु निश्चला। संततं यावदायुर्मे क्षणं वा सुचिरं च वा॥३४॥
त्वद्भक्तियुक्तो यो लोके जीवन्मुक्तः स संततम्। त्वद्भक्तिहीनो मूर्खश्च जीवन्नपि मृतो हि सः॥३५॥
किं तज्जपेन तपसा यज्ञेन[1] यजनेन च। व्रतेनैवोपवासेन [2]पुण्य तीर्थनिषेवया॥३६॥
कृष्णभक्तिविहीनस्य पुंसः स्याज्जीवनं वृथा। येनाऽऽत्मना जीवितश्च तमेव नहि मन्यते॥३७॥

मंत्र वेद का प्रधान अंग है॥२६॥ इसके आदि में 'ओं' का स्थान है। बीच में चतुर्थी विभक्ति के साथ 'कृष्ण' ये दो अक्षर हैं। अन्त में अग्नी की पत्नी 'स्वाहा' सम्मिलित हो जाती है। इस प्रकार 'ओं कृष्णाय स्वाहा' मंत्र का स्वरूप है। यह मंत्र सर्वविघ्ननाशक है॥२७॥ ब्रह्मपुत्र नारद! प्रभु श्रीकृष्ण ने उसे मंत्र देकर उसके भोजन की जो व्यवस्था की वह मुझसे सुनो॥२८॥ प्रत्येक विश्व में वैष्णव जन जो नैवेद्य अर्पित करते हैं, उसका सोलहवाँ अंश व्यापक विष्णु को प्राप्त होता है और शेष पन्द्रह भाग इस विराट् बालक के लिए निश्चित हैं, क्योंकि यह बालक स्वयं परिपूर्णतम भगवान् कृष्ण का विराट् रूप है। और उस नैवेद्य से श्रीकृष्ण को कोई प्रयोजन नहीं है॥२९-३०॥ मनुष्य जिस देवता के लिए जो नैवेद्य समर्पित करता है, वह देव उसका भक्षण कर लेता है, किन्तु लक्ष्मी की दृष्टि से वह पुनः वैसा ही हो जाता है॥३१॥ इस प्रकार श्रेष्ठ मन्त्र उस बालक को प्रदान कर प्रभु ने पुनः उससे कहा—अब दूसरा कौन वर तुम्हें प्रिय है? मुझे बताओ, मैं देने के लिए तैयार हूँ॥३२॥ भगवान् कृष्ण की ऐसी बात सुन कर उस दन्तहीन महाविराट् बालक ने समयोचित बात कही॥३३॥

महाविराट् ने कहा—आपके चरण-कमलों में मेरी नित्य निश्चल भक्ति हो। मेरी आयु चाहे क्षणिक हो या दीर्घकाल की; किन्तु जब तक मैं जीवित रहूँ तब तक आपमें मेरी भक्ति बनी रहे॥३४॥ क्योंकि लोक में जो आपकी भक्ति से युक्त है वह निरन्तर जीवन्मुक्त होता है और जो आपकी भक्ति से रहित है वह मूर्ख जीवित रहते हुए भी मृतक के समान है॥३५॥ उसे जप, तप, यज्ञ, पूजन, व्रत, उपवास और पुण्य तीर्थों के सेवन से क्या लाभ हो सकता है?॥३६॥ कृष्णभक्तिहीन पुरुष का जीवन, ही व्यर्थ है। क्योंकि वह जिस आत्मा से

---

१ क. ०न पूज०। २ क. पुण्येन तीर्थसे०

यावदात्मा शरीरेऽस्ति तावत्स्याच्छक्तिसंयुतः। पश्चाद्यान्ति गते तस्मिन्न स्वतन्त्राश्च शक्तयः ॥३८॥
स च त्वं च महाभाग सर्वात्मा प्रकृतेः परः। स्वेच्छामयश्च सर्वाद्यो ब्रह्मज्योतिः सनातनः ॥३९॥
इत्युक्त्वा बालकस्तत्र विरराम च नारद। उवाच कृष्णः प्रत्युक्तिं मधुरां श्रुतिसुन्दरीम् ॥४०॥

श्रीकृष्ण उवाच

सुचिरं सुस्थिरं तिष्ठ यथाऽहं त्वं तथा भव। असंख्यब्रह्मणां पाते पातस्ते न भविष्यति ॥४१॥
अंशेन प्रतिविश्वाण्डे त्वं च पुत्र विराड् भव। त्वन्नाभिपद्मे ब्रह्मा च विश्वस्रष्टा भविष्यति ॥४२॥
ललाटे ब्रह्मणश्चैव रुद्राश्चैकादशैव तु। शिवांशेन भविष्यन्ति सृष्टिसंहरणाय वै ॥४३॥
कालाग्निरुद्रस्तेष्वेको विश्वसंहारकारकः। पाता विष्णुश्च विषयी रुद्रांशेन भविष्यति ॥४४॥
मद्भक्तियुक्तः सततं भविष्यसि वरेण मे। ध्यानेन कमनीयं मां नित्यं द्रक्ष्यसि निश्चितम् ॥४५॥
मातरं कमनीयां च मम वक्षःस्थलस्थिताम्। यामि लोकं[1] तिष्ठ वत्सेत्युक्त्वा सोऽन्तरधीयत ॥४६॥
गत्वा[2] च नाकं ब्रह्माणं शंकरं स उवाच ह। स्रष्टारं स्रष्टुमीशं[3] च संहर्तारं च तत्क्षणम् ॥४७॥

जीवित रहता है उसी को नहीं मानता ॥३७॥ शरीर में जब तक आत्मा रहता है तब तक शक्तियों से उसका संयोग होता है, और पश्चात् आत्मा के चले जाने पर शक्तियाँ भी चली जाती हैं। क्योंकि शक्तियाँ स्वतन्त्र नहीं हैं ॥३८॥ महाभाग! प्रकृति से परे रहने वाले वही सर्वात्मा, स्वेच्छामय, सर्वादि एवं सनातन ब्रह्मज्योति आप हैं ॥३९॥ नारद! इतना कहकर वह बालक चुप हो गया। अनन्तर भगवान् कृष्ण ने कान में मीठी लगने वाली सुन्दर वाणी में कहा ॥४०॥

श्रीकृष्ण बोले—मेरे समान तुम भी चिरकाल तक सुस्थिर होकर रहो। असंख्य ब्रह्मा के पतन होने पर भी तुम्हारा पतन नहीं होगा ॥४१॥ पुत्र! प्रत्येक ब्रह्माण्ड में तुम अंशतः विराजमान रहोगे। तुम्हारे नाभि-कमल से उत्पन्न ब्रह्मा विश्व के स्रष्टा (रचयिता) होंगे ॥४२॥ ब्रह्मा के ललाट प्रदेश से ग्यारह रुद्र शिव के अंश से आविर्भूत होकर सृष्टि का संहार करेंगे ॥४३॥ उनमें एक रुद्र कालाग्नि नाम से प्रसिद्ध होगा, जो विश्व का संहार करेगा। रुद्र के अंश से सृष्टि-रक्षक विष्णु प्रकट होगा ॥४४॥ तुम मेरे वरदान से मेरी भक्ति प्राप्त करोगे, और ध्यान से मेरे सुन्दर रूप का नित्य दर्शन करोगे, यह निश्चित है ॥४५॥ वत्स! उसी प्रकार मेरे वक्षःस्थल पर स्थित अपनी सुन्दरी माता का भी दर्शन करोगे। मैं अब अपने लोक को जा रहा हूँ, तुम यहीं रहो। इतना कह-कर वे अन्तर्हित हो गये ॥४६॥ स्वर्ग जाकर उन्होंने सृष्टि करने में समर्थ ब्रह्मा और क्षण भर में सृष्टि का संहार करने वाले शंकर को भी आज्ञा दी ॥४७॥

---

१ क. लोके ति०। २ क. ०त्वा स्वलोकं ०। ३ क. मीशश्च सं०।

श्रीकृष्ण उवाच

सृष्टिं स्रष्टुं गच्छ वत्स नाभिपद्मोद्भवो भव। महाविराड् लोमकूपे क्षुद्रस्य च विधेः शृणु ॥४८॥
गच्छ वत्स महादेव ब्रह्मभालोद्भवो भव। अंशेन च महाभाग स्वयं च सुचिरं तपः ॥४९॥
इत्युक्त्वा जगतां नाथो विरराम विधेः सुत। जगाम नत्वा तं ब्रह्मा शिवश्च शिवदायकः ॥५०॥
महाविराड्लोमकूपे ब्रह्माण्डे गोलके जले। स बभूव विराट् क्षुद्रो विराडंशेन सांप्रतम् ॥५१॥
श्यामो युवा पीतवासाः शयानो जलतल्पके। ईषद्धासः प्रसन्नास्यो विश्वरूपी जनार्दनः ॥५२॥
तन्नाभिकमले ब्रह्मा बभूव कमलोद्भवः। संभूय पद्मदण्डं च बभ्राम युगलक्षकम् ॥५३॥
नान्तं जगाम दण्डस्य पद्मनाभस्य पद्मजः। नाभिजस्य च पद्मस्य चिन्तामाप पितामहः ॥५४॥
स्वस्थानं पुनरागत्य दध्यौ कृष्णपदाम्बुजम्। ततो ददर्श क्षुद्रं तं ध्यानेन दिव्यचक्षुषा ॥५५॥
शयानं जलतल्पे च ब्रह्माण्डगोलकावृते। यल्लोमकूपे ब्रह्माण्डं तं च तत्परमीश्वरम् ॥५६॥
श्रीकृष्णं चापि गोलोकं गोपगोपीसमन्वितम्। तं संस्तूय वरं प्राप ततः सृष्टिं चकार सः ॥५७॥
बभूवुर्ब्रह्मणः पुत्रा मानसाः सनकादयः। ततो रुद्राः कपालाच्च शिवस्यैकादश स्मृताः ॥५८॥
बभूव पाता विष्णुश्च क्षुद्रस्य वामपार्श्वतः। चतुर्भुजश्च भगवाञ्श्वेतद्वीपनिवासकृत् ॥५९॥

श्रीकृष्ण बोले—वत्स ! सृष्टि रचना के लिए तुम जाओ। विधे ! महाविराट् के एक रोमकूप में स्थित क्षुद्र विराट् पुरुष के नाभिकमल से प्रकट होओ। फिर रुद्र को संकेत करके कहा—वत्स महादेव ! जाओ। महाभाग ! तुम भी अंशतः ब्रह्मा के भाल से उत्पन्न होकर चिरकाल तक तपस्या के लिए स्वयं प्रस्थान करो ॥४८-४९॥ नारद ! जगत् के नाथ (भगवान् श्रीकृष्ण) इतना कह कर चुप हो गये। अनन्तर ब्रह्मा और कल्याणप्रद शिव भी उन्हें नमस्कार करके चले गये ॥५०॥ महाविराट् के रोमकूप में जो ब्रह्माण्ड-गोलक का जल है, उसमें वे महाविराट् पुरुष अपने अंश से क्षुद्र विराट् हो गये, जो इस समय भी विद्यमान है ॥५१॥ वे श्यामवर्ण, युवक, पीतवस्त्रधारी तथा जलरूपी शय्या पर सोने वाले हैं। वे प्रसन्नमुख विश्वव्यापी प्रभु जनार्दन कहलाते हैं ॥५२॥ उन्हीं के नाभिकमल से ब्रह्मा प्रकट हुए और उसके अंतिम छोर का पता लगाने के लिए वे उस कमलदण्ड में एक लाख युगों तक चक्कर लगाते रहे ॥५३॥ किन्तु नाभि से उत्पन्न होने वाले उस कमल का और उसके दण्ड के ओर-छोर का पता न चलने से पितामह ब्रह्मा चिन्तित हो गए ॥५४॥ तब वे पुनः अपने स्थान पर आकर भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमल का ध्यान करने लगे। अनन्तर दिव्य दृष्टि के द्वारा उन्हें क्षुद्र विराट् रूप का दर्शन प्राप्त हुआ। ब्रह्माण्ड गोलक के भीतर जलमय शय्या पर वे पुरुष सोये हुए थे। फिर जिनके रोमकूप में वह ब्रह्माण्ड था, उन महाविराट् पुरुष के तथा उनके भी महाप्रभु श्रीकृष्ण के भी दर्शन हुए। साथ ही गोलोकधाम का भी दर्शन हुआ। तत्पश्चात् उन्होंने श्रीकृष्ण की स्तुति की और उनसे वरदान पाकर सृष्टि का कार्य आरंभ कर दिया ॥५५-५७॥ सर्वप्रथम ब्रह्मा से सनकादि चार मानस पुत्र उत्पन्न हुए और पश्चात् उनके ललाट से शिव के अंशभूत ग्यारह रुद्रों की उत्पत्ति हुई ॥५८॥ उस क्षुद्र विराट् के बायें भाग से सृष्टिपालक भगवान् विष्णु प्रकट हुए, जो चार भुजाधारी हैं। वे श्वेत द्वीप में निवास करने लगे ॥५९॥ क्षुद्र विराट् के नाभिपद्म से उत्पन्न होकर ब्रह्मा ने समस्त विश्व—स्वर्ग, मर्त्यलोक और पाताल—के

क्षुद्रस्य नाभिपद्मे च ब्रह्मा विश्वं ससर्ज सः। स्वर्गं मृत्युं च पातालं त्रिलोकं सचराचरम् ॥६०॥
एवं सर्वं लोमकूपे विश्वं प्रत्येकमेव च। प्रतिविश्वं क्षुद्रविराड्ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥६१॥
इत्येवं कथितं वत्स कृष्णसंकीर्तनं शुभम्। सुखदं मोक्षदं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥६२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदनारायणसंवादे विश्वब्रह्माण्ड-
वर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

नारद उवाच

श्रुतं सर्वमपूर्वं च त्वत्प्रसादात्सुधोपमम्। अधुना प्रकृतीनां च व्यासं वर्णय भोः प्रभो ॥१॥
कस्याः पूजा कृता केन कथं मर्त्ये प्रकाशिता। केन वा पूजिता का वा केन का वा स्तुता मुने ॥२॥
कवचं स्तोत्रकं ध्यानं प्रभावं चरितं शुभम्। काभिः काभ्यो वरो दत्तस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥३॥

नारायण उवाच

गणेशजननी दुर्गा राधा लक्ष्मीः सरस्वती। सावित्री च सृष्टिविधौ प्रकृतिः पञ्चधा स्मृता ॥४॥

चराचर सहित तीनों लोक का निर्माण किया ॥६०॥ इस प्रकार उसे (महाविराट् के) प्रत्येक लोम कूप में विश्व निहित हैं और उन विश्वों में पृथक्-पृथक् क्षुद्र विराट् (महाविष्णु)—ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आदि देवगण स्थित हैं ॥६१॥

वत्स! इस प्रकार मैंने भगवान् श्रीकृष्ण का शुभ संकीर्तन तुम्हें सुना दिया, जो सुखद, मोक्षप्रद और साररूप है। अब क्या सुनना चाहते हो? ॥६२॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में विश्व-ब्रह्माण्ड-वर्णन नामक तीसरा अध्याय समाप्त ॥३॥

अध्याय ४

सरस्वती-पूजा का विधान तथा कवच

नारद बोले—प्रभो! आपकी कृपा से मैंने सारा अमृतोपम वृत्तान्त सुन लिया, अब प्रकृतियों का व्यष्टि रूप में वर्णन कीजिये ॥१॥ मुने! किस देवी की पूजा सर्वप्रथम किसने की है और वह मर्त्यलोक में कैसे प्रकाशित हुई। वहाँ किसने किसकी पूजा की और किसने किसकी स्तुति की ॥२॥ उनके कवच, स्तोत्र, ध्यान, प्रभाव एवं चरित के साथ-साथ यह भी मुझे बताने की कृपा कीजिये कि किन्होंने किनको वर दिये हैं ॥३॥

नारायण बोले—गणेश की माता दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती और सावित्री, इन्हीं पांच रूपों में प्रकृति

आसां[1] पूजा प्रभावश्च प्रसिद्धः परमाद्भुतः। सुधोपमं च चरितं सर्वमङ्गलकारणम् ॥५॥
प्रकृत्यंशाः कलायाश्च तासां च चरितं शुभम्। सर्वं वक्ष्यामि ते ब्रह्मन्सावधानं निशामय ॥६॥
वाणी वसुंधरा गङ्गा षष्ठी मङ्गलचण्डिका तुलसी मानसी निद्रा स्वधा स्वाहा च दक्षिणा।
तेजसा मत्समास्ताश्च रूपेण च गुणेन च ॥८॥
संक्षेपमासां चरितं पुण्यदं श्रुतिसुन्दरम्। जीवकर्मविपाकं च तच्च वक्ष्यामि सुन्दरम्॥९॥
दुर्गायाश्चैव राधाया विस्तीर्णं चरितं महत्। तच्च पश्चात्प्रवक्ष्यामि संक्षेपात्क्रमतः शृणु ॥१०॥
आदौ सरस्वतीपूजा श्रीकृष्णेन विनिर्मिता। यत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठ मूर्खो भवति पण्डितः ॥११॥
आविर्भूता यदा देवी वक्त्रतः कृष्णयोषितः। इयेष कृष्णं कामेन कामुकी कामरूपिणी ॥१२॥
स च विज्ञाय तद्भावं सर्वज्ञः सर्वमातरम्। तामुवाच हितं सत्यं परिणामसुखावहम् ॥१३॥

श्रीकृष्ण उवाच

भजन्नारायणं साध्वि मदंशं च चतुर्भुजम्। युवानं सुन्दरं सर्वगुणयुक्तं च मत्समम् ॥१४॥
कामदं कामिनीनां च तासां तं कामपूरकम्। कोटिकन्दर्पलावण्यं लीलान्यक्कृतमन्मथम् ॥१५॥
कान्ते कान्तं च मां कृत्वा यदि स्थातुमिहेच्छसि। त्वत्तो बलवती राधा न ते भद्रं भविष्यति ॥१६॥
यो यस्माद्बलवान्वाणि ततोऽन्यं रक्षितुं क्षमः। कथं परान्साधयति यदि स्वयमनीश्वरः ॥१७॥

सृष्टिविधान के अवसर पर प्रकट हुई थी ॥४॥ इनकी पूजा और प्रभाव परम अद्भुत एवं प्रसिद्ध है। इनका अमृतोपमचरित्र समस्त मंगलों का कारण है ॥५॥ ब्रह्मन्! जो प्रकृति की अंशभूता और कलास्वरूपा देवियाँ हैं, उनके पुण्य चरित्र तुम्हें बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ॥६॥ वाणी (सरस्वती), वसुन्धरा (पृथ्वी), गंगा, षष्ठी, मंगलचण्डिका, तुलसी, मानसी, निद्रा, स्वधा, स्वाहा और दक्षिणा—ये देवियाँ तेज, रूप, गुण में मेरे समान हैं। संक्षेप में मैं इनका पुण्यदायक तथा श्रवणसुखद चरित्र और जीवों का सुन्दर कर्म-विपाक भी बताऊँगा ॥७-९॥ दुर्गा और राधिका के महान् विस्तृत चरित को पश्चात् संक्षेप में कहूँगा, अभी क्रमशः सुनो ॥१०॥

मुनिश्रेष्ठ! सर्वप्रथम श्रीकृष्ण ने ही सरस्वती जी की पूजा आरम्भ की है, जिनकी कृपा से मूर्ख भी पण्डित हो जाता है ॥११॥ भगवान् कृष्ण की स्त्री के मुख से उत्पन्न सरस्वती देवी ने जिस समय कामरूपिणी और कामुकी होकर कृष्ण को पाने की इच्छा प्रकट की, उस समय उनका भाव ताड़कर सर्वज्ञ श्रीकृष्ण ने सबकी माता सरस्वती से हितकर, सत्य और परिणाम में सुखदायक वचन कहा ॥१२-१३॥

श्रीकृष्ण बोले—पतिव्रते! मेरे अंश से उत्पन्न नारायण (विष्णु) चार भुजा धारणकर, मेरे समान ही युवा, सुन्दर और समस्त गुणों से युक्त हैं, तुम उन्हीं की (पत्नी होकर) सेवा करो। वे समस्त कामिनियों की इच्छाओं के पूरक, कामप्रद, करोड़ों कन्दर्प के समान सुन्दर तथा लीला में कामदेव को भी परास्त करने वाले हैं। ॥१४-१५॥ कान्ते! मुझे पतिरूप में स्वीकार कर यदि तुम यहाँ रहना चाहती हो तो राधा तुमसे बलवती हैं, अतः तुम्हारा कल्याण नहीं होगा ॥१६॥ सरस्वती! जो जिससे बलवान् होता है, वह उससे अन्य की रक्षा कर सकता है, किन्तु जो स्वयं असमर्थ है, वह दूसरों की रक्षा कैसे कर सकता है? ॥१७॥ मैं सभी का अधीश्वर और

1 ख. आसीत्पूज्या प्रसिद्धा च प्रभावः प०।

सर्वेशः सर्वशास्ताऽहं राधां राधितुमक्षमः। तेजसा मत्समा सा च रूपेण च गुणेन च ॥१८॥
प्राणाधिष्ठातृदेवी सा प्राणांस्त्यक्तुं च कः क्षमः। प्राणतोऽपि प्रियः कुत्र केषां वाऽस्ति च कश्चन ॥१९॥
त्वं भद्रे गच्छ वैकुण्ठं तव भद्रं भविष्यति। पतिं तमीश्वरं कृत्वा मोदस्व सुचिरं सुखम् ॥२०॥
विवर्जिता लोभमोहकामकोपेन हिंसया। तेजसा त्वत्समा लक्ष्मी रूपेण च गुणेन च ॥२१॥
तया सार्धं तव प्रीत्या सुखं कालः प्रयास्यति। गौरवं चापि तत्तुल्यं करिष्यति पतिर्द्वयोः ॥२२॥
प्रतिविश्वेषु ते पूजां महतीं ते मुदाऽन्विताः। माघस्य शुक्लपचम्यां विद्यारम्भेषु सुन्दरि ॥२३॥
मानवा मनवो देवा मुनीन्द्राश्च मुमुक्षवः। सन्तश्च योगिनः सिद्धाः नागगन्धर्वकिंनराः ॥२४॥
मद्वरेण करिष्यन्ति कल्पे कल्पे यथाविधि। भक्तियुक्ताश्च दत्वा वै चोपचारांश्च षोडश ॥२५॥
काण्वशाखोक्तविधिना ध्यानेन स्तवनेन च। जितेन्द्रियाः संयुताश्च पुस्तकेषु घटेऽपि च ॥२६॥
कृत्वा सुवर्णगुटिकां गन्धचन्दनचर्चिताम्। कवचं ते ग्रहीष्यन्ति कण्ठे वा दक्षिणे भुजे ॥२७॥
पठिष्यन्ति[1] च विद्वांसः पूजाकाले च पूजिते। इत्युक्त्वा पूजयामास तां देवीं सर्वपूजितः ॥२८॥
ततस्तत्पूजनं चक्रुर्ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। अनन्तश्चापि धर्मश्च मुनीन्द्राः सनकादयः ॥२९॥
सर्वे देवाश्च मनवो नृपा वा मानवादयः। बभूव पूजिता नित्या सर्वलोकैः सरस्वती ॥३०॥

शासक हूँ पर, राधा का शासक होने में असमर्थ हूँ; क्योंकि वह तेज, रूप और गुणों में मेरे ही समान है ॥१८॥ वह मेरे प्राणों की अधिष्ठात्री देवी है। फिर भला प्राणों का परित्याग कौन कर सकता है? जबकि प्राण से भी अधिक प्रिय कोई किसी का नहीं है ॥१९॥ अतः भद्रे! तुम वैकुण्ठ जाओ, वहाँ तुम्हारा कल्याण होगा। उन ईश्वर (विष्णु) को पतिरूप में स्वीकार कर चिरकाल तक सहर्ष सुख का अनुभव करो ॥२०॥ वहाँ लक्ष्मी भी तुम्हारी ही भाँति लोभ, मोह, काम, क्रोध और हिंसा भाव से रहित तथा तेज, रूप और गुणों में तुम्हारे ही समान हैं ॥२१॥ उसके साथ प्रीतिपूर्वक रहने से तुम्हारा जीवन सुखमय होगा और (तुम्हारे) पति महोदय दोनों का आदर भी समान भाव से करेंगे ॥२२॥ सुन्दरी! मेरे वर के प्रभाव से प्रत्येक विश्व में हर्षित मानवगण, मनुगण, देवगण, मुमुक्षु, मुनीन्द्र, सन्त, योगी, सिद्ध, नाग, गन्धर्व और किन्नर प्रत्येक कल्प में माघशुक्ल पञ्चमी को विद्यारम्भ के अवसर पर तुम्हारा महान् पूजोत्सव करेंगे। उस समय वे भक्ति के साथ षोडशोपचार पूजन करेंगे। उन संयमशील जितेन्द्रिय पुरुषों के द्वारा कण्वशाखा में कही हुई विधि के अनुसार तुम्हारा ध्यान और पूजन होगा। वे कलश या पुस्तक में तुम्हारा आवाहन करेंगे। तुम्हारे कवच को भोजपत्र पर लिखकर उसे सोने की डिब्बी में रख गंध एवं चन्दन आदि से सुपूजित करके लोग अपने गले में अथवा दाहिनी भुजा में धारण करेंगे ॥२३-२७॥ पूजाकाल में तथा उसके उपरान्त विद्वान् लोग तुम्हारा स्तुति-पाठ करेंगे। इतना कहकर सर्वपूजित भगवान् श्रीकृष्ण ने उस देवी की पूजा की ॥२८॥ अनन्तर ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, अनन्त, धर्म और मुनीन्द्र सनकादिकों ने भी उस देवी की पूजा की ॥२९॥ इस प्रकार समस्त देवगण, मनु-वृन्द, राजगण और मानव आदि के द्वारा वह देवी समस्त लोकों से नित्य पूजित होने लगी ॥३०॥

---

१ क. भविष्य०।

नारद उवाच

पूजाविधानं स्तवनं ध्यानं कवचमीप्सितम्। पूजोपयुक्तं नैवेद्यं पुष्पं वा चन्दनादिकम् ॥३१॥
वद वेदविदां श्रेष्ठ श्रोतुं कौतूहलं मम। वर्धते सांप्रतं शश्वत्किमिदं श्रुतिसुन्दरम् ॥३२॥

नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि काण्वशाखोक्तपद्धतिम्। जगन्मातुः सरस्वत्याः पूजाविधिसमन्विताम् ॥३३॥
माघस्य शुक्लपञ्चम्यां विद्यारम्भदिनेऽपि च। पूर्वेऽह्नि संयमं कृत्वा तत्र स्यात्संयतः शुचिः ॥३४॥
स्नात्वा नित्यक्रियां कृत्वा घटं संस्थाप्य भक्तितः। संपूज्य[1] देवषट्कं च नैवेद्यादिभिरेव च ॥३५॥
गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम्। संपूज्य संयतोऽग्रे च ततोऽभीष्टं प्रपूजयेत् ॥३६॥
ध्यानेन वक्ष्यमाणेन ध्यात्वा बाह्यघटे बुधः। ध्यात्वा पुनः षोडशोपचारैस्तां पूजयेद्व्रती ॥३७॥
पूजोपयुक्तं नैवेद्यं यद्यद्वेदे निरूपितम्। वक्ष्यामि सांप्रतं किंचिद्यथाधीतं यथागमम् ॥३८॥
नवनीतं दधिं क्षीरं लाजांश्च तिललड्डुकान्। इक्षुमिक्षुरसं शुक्लवर्णं पक्वगुडं मधु ॥३९॥
स्वस्तिकं शर्करां शुक्लधान्यस्याक्षतमक्षतम्। अस्विन्नशुक्लधान्यस्य पृथुकं शुक्लमोदकम् ॥४०॥
घृतसैन्धवसंस्कारैर्हविष्यैर्व्यञ्जनैस्तथा। यवगोधूमचूर्णानां पिष्टकं घृतसंस्कृतम् ॥४१॥

नारद बोले—हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ! आप सरस्वती देवी की पूजा का विधान, स्तवन, ध्यान, अभीष्ट कवच, पूजोपयोगी नैवेद्य, पुष्प तथा चन्दन आदि बताने की कृपा करें! इस कर्णसुखद विषय को सुनने के लिए सम्प्रति मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है॥३१-३२॥

नारायण बोले—नारद! मैं तुम्हें काण्व शाखा में कही हुई पद्धति बताता हूँ, जिसमें जगन्माता सरस्वती का पूजाविधान निरूपित है ॥३३॥ माघ की शुक्ल-पञ्चमी विद्यारम्भ की मुख्य तिथि है। पूर्व दिन में संयम करके उस दिन संयमशील एवं पवित्र हो स्नान और नित्य क्रिया के पश्चात् कलश-स्थापन करे। फिर नैवेद्य आदि उपचारों से छहों देवों—गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और पार्वती की—सर्व प्रथम अर्चना करके पश्चात् इष्टदेव (सरस्वती) की अर्चना करे॥३४-३६॥ बुद्धिमान् व्रती आगे कहे जाने वाले ध्यान-मंत्र से बाह्य कलश में उनका ध्यान करके षोडशोपचार से उनका पूजन करे॥३७॥ पूजा के उपयुक्त वेदानुसार जो-जो नैवेद्य बताये गये हैं उन्हें मैं सम्प्रति अपने शास्त्राध्ययनानुसार बता रहा हूँ॥३८॥ नवनीत (मक्खन), दही, क्षीर (दुग्ध), धान का लावा, तिल के लड्डू, सफेद गन्ना और उसका रस, गुड़, मधु, स्वस्तिक (एक प्रकार का पकवान) शक्कर या मिश्री, सफेद धान का चावल जो टूटा न हो (अक्षत), बिना उबाले हुए धान का चिउड़ा, सफेद लड्डू, घी और सेंधा नमक डालकर तैयार किये गये व्यंजन के साथ शास्त्रोक्त हविष्यान्न, जौ अथवा गेहूँ के आटे से घृत में तले हुए पदार्थ, पके हुए स्वच्छ केले का पिष्टक, उत्तम अन्न को घृत में पकाकर उससे बना हुआ

---

१ क. ०ज्य संयतोऽभीष्टं नै०।

पिष्टकं स्वतिकस्यापि पक्वरम्भाफलस्य च। परमान्नं च सघृतं मिष्टान्नं च सुधोपमम् ॥४२॥
नारिकेलं तदुदकं केशरं मूलमार्द्रकम्। पक्वरम्भाफलं चारु श्रीफलं बदरीफलम् ॥४३॥
कालदेशोद्भवं पक्वफलं शुक्लं सुसंस्कृतम्। सुगन्धि शुक्लपुष्पं च गन्धाढ्यं शुक्लचन्दनम् ॥४४॥
नवीनं शुक्लवस्त्रं च शङ्खं च सुमनोहरम्। माल्यं च शुक्लपुष्पाणां मुक्ताहीरादिभूषणम् ॥४५॥
यद्दृष्टं च श्रुतौ ध्यानं प्रशस्तं श्रुतिसुन्दरम्। तन्निबोध महाभाग भ्रमभञ्जनकारणम् ॥४६॥
सरस्वतीं शुक्लवर्णां सस्मितां सुमनोहराम्। [1]कोटिचन्द्रप्रभाजुष्टपुष्टश्रीयुक्तविग्रहाम् ॥४७॥
वह्निशुद्धांशुकाधानां सस्मितां सुमनोहराम्। रत्नसारेन्द्रखचितवरभूषणभूषिताम् ॥४८॥
सुपूजितां सुरगणैर्ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः। वन्दे भक्त्या वन्दितां तां मुनीन्द्रमनुमानवैः ॥४९॥
एवं ध्यात्वा च मूलेन सर्वं दत्त्वा विचक्षणः। संस्तूय कवचं धृत्वा प्रणमेद्दण्डवद्भुवि ॥५०॥
येषां स्यादिष्टदेवीयं तेषां नित्यं शुभं मुने। विद्यारम्भे च सर्वेषां वर्षान्ते पञ्चमीदिने ॥५१॥
सर्वोपयुक्तमूलं च वैदिकाष्टाक्षरः परः। येषां यदुपदेशो वा तेषां तन्मूलमेव च
सरस्वतीचतुर्थ्यन्तो वह्निजायान्त एव च ॥५२॥

अमृत के समान मधुर मिष्टान्न, नारियल, नारियल का जल, केशर, मूली, अदरक, पका केला, सुन्दर श्रीफल (बेल), बेर और देशकालानुसार उपलब्ध ऋतुफल तथा अन्य भी पवित्र स्वच्छ वर्ण के फल (ये नैवेद्य तथा) सुगंधित श्वेत पुष्प, अधिक गन्धवाला श्वेत चन्दन, नूतन श्वेतवस्त्र, अत्यन्त मनोहर शंख, श्वेत पुष्पों की माला और मोती, हीरा आदि के आभूषण सरस्वती देवी को अर्पण करना चाहिए।।३९-४४।। वेद में जो उनका प्रशस्त ध्यान बताया गया है, वह कर्णसुखावह और भ्रमभञ्जनककारी है। उसे मैं बता रहा हूँ, सुनो ।।४५।।

सरस्वती का श्रीविग्रह शुक्लवर्ण, मन्द मुसकान से युक्त अत्यन्त मनोहर, करोड़ों चन्द्रमा की प्रभा से युक्त पुष्ट और शोभासम्पन्न है।।४६।। वे अग्निशुद्धवस्त्र पहने हुई, मुसकराती हुई, अत्यन्त मनोहर तथा रत्नों के सार भाग से बने उत्तम आभूषणों से भूषित हैं।।४७।। ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवों, श्रेष्ठ मुनियों, मनुओं एवं मनुष्यों द्वारा वन्दित एवं सुपूजित उन सरस्वती की मैं भक्तिपूर्वक वन्दना करता हूँ।।४८।। इस प्रकार ध्यान करके मूल मंत्र से पूजन की सभी सामग्री सरस्वती को समर्पित कर दे। फिर कवच का पाठ करके बुद्धिमान् साधक देवी को साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करे।।४९।। मुने! यह देवी जिन लोगों को इष्ट हो जाती हैं, उन्हें नित्य कल्याण की प्राप्ति होती है। विद्यारम्भ के दिन और वर्ष के अन्त में माघ-शुक्ल-पञ्चमी के दिन सभी को सरस्वती देवी की पूजा करनी चाहिए। 'श्रीं ह्लीं सरस्वत्यै स्वाहा' यह वैदिक अष्टाक्षर मूल-मंत्र परम श्रेष्ठ एवं सबके लिए उपयोगी है। अथवा जिनको जिस मंत्र के द्वारा उपदेश प्राप्त हुआ है, उनके लिए वही मूल-मंत्र है। 'सरस्वती' शब्द

---

१. क. सूर्य०

श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा। लक्ष्मीमायादिकं चैव मन्त्रोऽयं कल्पपादपः ॥५३॥
पुरा नारायणश्चेमं वाल्मिकाय कृपानिधिः। प्रददौ जाह्नवीतीरे पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥५४॥
भृगुर्ददौ च शुक्राय पुष्करे सूर्यपर्वणि। चन्द्रपर्वणि मारीचो ददौ वाक्पतये मुदा ॥५५॥
भृगवे च ददौ तुष्टो ब्रह्मा बदरिकाश्रमे। आस्तीकाय जरत्कारुर्ददौ क्षीरोदसंन्निधौ ॥
विभाण्डक। ददौ मेरौ ऋष्यशृङ्गाय धीमते ॥५६॥
शिवः कणादमुनये गौतमाय ददौ मुने। सूर्यश्च याज्ञवल्क्याय तथा कात्यायनाय च ॥५७॥
शेषः पाणिनये चैव भरद्वाजाय धीमते। ददौ शाकटायनाय सुतले बलिसंसदि ॥५८॥
चतुर्लक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम्। यदि स्यात्सिद्धमन्त्रो हि बृहस्पतिसमो भवेत् ॥५९॥
कवचं शृणु विप्रेन्द्र यद्दत्तं विधिना पुरा। विश्वश्रेष्ठं विश्वजयं भृगवे गन्धमादने ॥६०॥

भृगुरुवाच

ब्रह्मन्ब्रह्मविदां श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानविशारद। सर्वज्ञ सर्वजनक [1]सर्वपूजकपूजित ॥६१॥
सरस्वत्याश्च कवचं ब्रूहि विश्वजयं प्रभो। अयातयाममन्त्राणां समूहो यत्र संयुतः ॥६२॥

के साथ चतुर्थी विभक्ति जोड़कर अन्त में 'स्वाहा' शब्द लगा लेना चाहिए। इसके आदि में लक्ष्मी का बीज (श्रीं) और मायाबीज (ह्रीं) लगावे। यह (श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा) मंत्र साधक के लिए कल्पवृक्षरूप है। सर्वप्रथम कृपानिधान नारायण ने पुण्यक्षेत्र भारत में गंगा-तट पर वाल्मिकि को यह मंत्र प्रदान किया था फिर सूर्यग्रहण के अवसर पर पुष्कर क्षेत्र में भृगु ने शुक्र को यह मंत्र दिया। फिर चन्द्रग्रहण के अवसर पर मरीचि- नन्दन कश्यप ने प्रसन्न होकर बृहस्पति को प्रदान किया ॥५०-५५॥ अनन्तर बदरिकाश्रम में ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर भृगु को, जरत्कारु ने क्षीरसागर के तट पर आस्तीक को और विभाण्डक ने मेरुपर्वत पर बुद्धिमान् ऋष्यशृङ्ग को यह मंत्र बताया ॥५६॥ मुने! शिव ने कणाद और गौतम मुनि को तथा सूर्य ने याज्ञवल्क्य और कात्यायन को इस मंत्र का उपदेश किया। अनन्त शेष ने पाताल में बलि की सभा में उस मंत्र को प्राप्त करके, पाणिनि, बुद्धिमान् भारद्वाज तथा शाकटायन को यह मंत्र बता दिया ॥५७-५८॥ चार लाख जप करने से मनुष्यों को इसकी सिद्धि होती है। मंत्र के सिद्ध हो जाने पर मनुष्य बृहस्पति के समान (विद्वान्) होता है ॥५९॥

विप्रेन्द्र! पूर्वकाल में गन्धमादन पर्वत पर ब्रह्मा ने भृगु को जो विश्व में सर्वश्रेष्ठ तथा विश्व पर विजय दिलाने वाला कवच प्रदान किया था, उसे मैं बता रहा हूँ, सुनो! ॥६०॥

भृगु बोले—ब्रह्मन्! आप ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ, ब्रह्मज्ञान में विशारद, सर्वज्ञाता, सबके जनक और सबके पूज्य हैं ॥६१॥ प्रभो! मुझे सरस्वती का 'विश्वजय' नामक कवच बताने की कृपा करें, जिसमें सद्यः फलदायक मंत्रों का समूह सम्मिलित है ॥६२॥

---

१ क. सर्वेश सर्वपू०।

ब्रह्मोवाच

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि कवचं सर्वकामदम्। श्रुतिसारं श्रुतिसुखं श्रुत्युक्तं श्रुतिपूजितम् ॥६३॥
उक्तं कृष्णेन गोलोके मह्यं वृन्दावने वने। रासेश्वरेण विभुना रासे वै रासमण्डले॥६४॥
अतीव गोपनीयं च कल्पवृक्षसमं परम्। अश्रुताद्भुतमन्त्राणां समूहैश्च समन्वितम् ॥६५॥
यद्धृत्वा पठनाद्ब्रह्मन्बुद्धिमांश्च[1] बृहस्पतिः। यद्धृत्वा भगवाञ्छुक्रः सर्वदैत्येषु पूजितः ॥६६॥
पठनाद्धारणाद्वाग्मी कवीन्द्रो वाल्मिको मनिः। स्वायंभुवो मनुश्चैव यद्धृत्वा सर्वपूजितः ॥६७॥
कणादो गौतमः कण्वः पाणिनिः शाकटायनः। ग्रन्थं चकार यद्धृत्वा दक्षः कात्यायनः स्वयम् ॥६८॥
धृत्वा वेदविभागं च पुराणान्यखिलानि च। चकार लीलामात्रेण कृष्णद्वैपायनः स्वयम् ॥६९॥
शातातपश्च संवर्तो वशिष्ठश्च पराशरः। यद्धृत्वा पठनाद्ग्रन्थं याज्ञवल्क्यश्चकार सः ॥७०॥
ऋष्यशृङ्गो भरद्वाजश्चाऽऽस्तीको देवलस्तथा। जैगीषव्योऽथ जाबालिर्यद्धृत्वा सर्वपूजितः ॥७१॥
कवचस्यास्य विप्रेन्द्र ऋषिरेष प्रजापतिः। स्वयं बृहस्पतिश्छन्दो देवो रासेश्वरः प्रभुः ॥७२॥
सर्वतत्त्वपरिज्ञाने सर्वार्थेऽपि च साधने। कवितासु च सर्वासु विनियोगः प्रकीर्तितः ॥७३॥
ओं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा शिरो मे पातु सर्वतः। श्रीं वाग्देवतायै स्वाहा भालं मे सर्वदाऽवतु ॥७४॥

ब्रह्मा बोले—वत्स! मैं तुम्हें वह समस्त कामनाओं को पूर्ण करनेवाला कवच बता रहा हूँ। यह कवच वेदों का तत्त्व, सुनने में सुखप्रद, वेदों में प्रतिपादित तथा उनसे अनुमोदित है॥६३॥ रासेश्वर प्रभु भगवान् श्रीकृष्ण ने गोलोक के वृन्दावन वाले रासमण्डल में रास के समय मुझे यह कवच बताया था। यह अत्यन्त गोपनीय और कल्पवृक्ष के समान है। इसमें अश्रुत एवं अद्भुत मन्त्रों का समूह सम्मिलित है॥६४-६५॥ ब्रह्मन्! इसके धारण और पाठ करने से बृहस्पति बुद्धिमान् हुए और भगवान् शुक्र दैत्यों के पूज्य बने॥६६॥ पाठ और धारण करने से वाल्मिक मुनि कवीन्द्र और उत्तम वक्ता हुए। इसी के धारण से स्वायम्भुव मनु सर्वपूजित हुए॥६७॥ इसी भाँति कणाद, गौतम, कण्व, पाणिनि, शाकटायन, दक्ष और स्वयं कात्यायन ने इसको धारण करके ग्रन्थों का निर्माण किया॥६८॥ इसे धारण करके स्वयं कृष्ण द्वैपायन व्यास ने बड़ी सरलता से वेदों का विभाग करके समस्त पुराणों की रचना की॥६९॥ इसे धारण करके शातातप, संवर्त्त, वशिष्ठ, पराशर एवं याज्ञवल्क्य ने ग्रंथों का निर्माण किया। ऋष्यशृंग, भरद्वाज, आस्तीक, देवल, जैगीषव्य, और जाबालि भी इसी के धारण के प्रभाव से सर्वपूजित हुए॥७०-७१॥

विप्रेन्द्र! इस कवच के प्रजापति ऋषि, स्वयं बृहती छन्द और रासेश्वर प्रभु देवता, हैं। समस्त तत्त्वों के परिज्ञान, सर्वार्थ साधन और सभी प्रकार की कविताओं के प्रणयन में इसका विनियोग किया जाता है॥७२-७३॥ ओं ह्रीं स्वरूपिणी सरस्वती के लिए श्रद्धा की आहुति दी जाती है, वे सब ओर से मेरे सिर की रक्षा करें। ओं श्रीं वाग्देवता के लिए श्रद्धा की आहुति दी जाती है, वे सदा मेरे ललाट की रक्षा करें। ॥७४॥ ओं ह्रीं सरस्वती

---

१ क. यच्छ्रुत्वा म०।

ओं सरस्वत्यै स्वाहेति श्रोत्रं पातु निरन्तरम्। ओं श्रीं ह्रीं भारत्यै स्वाहा नेत्रयुग्मं सदाऽवतु॥७५॥
ओं ह्रीं वाग्वादिन्यै स्वाहा नासां मे सर्वतोऽवतु। ह्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा[१] श्रोत्रं सदाऽवतु॥७६॥
ओं श्रीं ह्रीं ब्राह्म्यै स्वाहेति दन्तपङ्क्तीः सदाऽवतु। ऐंमित्येकाक्षरो मन्त्रो मम कण्ठं सदाऽवतु॥७७॥
ओं श्रीं ह्रीं पातु मे ग्रीवां स्कन्धं मे श्रीं सदाऽवतु। श्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा वक्षः सदाऽवतु॥७८॥
ओं ह्रीं विद्यास्वरूपायै स्वाहा मे पातु नाभिकाम्। ओं ह्रीं क्लीं वाण्यै स्वाहेति मम पृष्ठं सदाऽवतु॥७९॥
ओं सर्ववर्णात्मिकायै पादयुग्मं सदाऽवतु। ओं वागधिष्ठातृदेव्यै सर्वाङ्गं मे सदाऽवतु॥८०॥
ओं सर्वकण्ठवासिन्यै स्वाहा प्राच्यां सदाऽवतु। ओं ह्रीं जिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहाऽग्निदिशि रक्षतु॥८१॥
ओं ऐं श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा। सततं मन्त्रराजोऽयं दक्षिणे मां सदाऽवतु॥८२॥
ओं ह्रीं श्रीं त्र्यक्षरो मन्त्रो नैर्ऋत्यां मे सदाऽवतु। कविजिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहा मां वारुणेऽवतु॥८३॥
ओं सदम्बिकायै स्वाहा वायव्ये मां सदाऽवतु। ओं गद्यपद्यवासिन्यै स्वाहा मामुत्तरेऽवतु॥८४॥

के लिए श्रद्धा की आहुति दी जाती है, वे निरन्तर कानों की रक्षा करें। ओं श्रीं ह्रीं भारती के लिए श्रद्धा की आहुति दे जाती है। वे सदा दोनों नेत्रों की रक्षा करें। ओं ह्रीं वाग्वादिनी के लिए श्रद्धा की आहुति दी जाती है। वे सब ओर से मेरी नासिका की रक्षा करें। ओं ह्रीं विद्या की अधिष्ठात्री देवी के लिए श्रद्धा की आहुति दी जाती है। वे कान की सदा रक्षा करें॥७५-७६॥ ओं ह्रीं ब्राह्मी के लिए श्रद्धा की आहुति दी जाती है। वे दाँतों की पंक्तियों की सदा रक्षा करें। 'ऐं' यह एकाक्षर मंत्र मेरे कंठ की सदा रक्षा करे॥७७॥ ओं श्रीं ह्रीं मेरी ग्रीवा की और 'श्रीं' कन्धों की सदा रक्षा करे। श्रीं विद्या की अधिष्ठात्री देवी को श्रद्धा को आहुति दी जाती है। वे सदा वक्षःस्थल की रक्षा करें॥७८॥ ओं ह्रीं विद्यास्वरूपा देवी के लिए आहुति दी जाती है। वे मेरी नाभि की रक्षा करें। ओं ह्रीं क्लीं वाणी देवी के लिए श्रद्धा की आहुति दी जाती है। वे मेरे पृष्ठ भाग की सदा रक्षा करें॥७९॥ ओं सर्ववर्णात्मिका देवी के लिए श्रद्धा की आहुति दी जाती है। वे दोनों चरणों की रक्षा करें। ओं वाग् की अधिष्ठात्री देवी के लिए श्रद्धा की आहुति दी जाती है। वे सदा मेरे सर्वांग की रक्षा करें॥८०॥ ओं सर्व-कण्ठवासिनी देवी के लिए श्रद्धा की आहुति दी जाती है। वे पूर्व दिशा में सदा रक्षा करें ओं ह्रीं जिह्वाग्रवासिनी देवी के लिए श्रद्धा की आहुति दी जाती है। वे अग्निकोण में रक्षा करें॥८१॥ 'ओं ऐं ह्रीं श्रीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा' यह मन्त्रराज दक्षिण दिशा में सदा रक्षा करे॥८२॥ 'ओं ह्रीं श्रीं' यह तीन अक्षर वाला मंत्र नैर्ऋत्य कोण में सदा रक्षा करे। कविजिह्वाग्रवासिनी देवी के लिए श्रद्धा की आहुति दी जाती है। वे सदा पश्चिम दिशा में मेरी रक्षा करें॥८३॥ ओं सदम्बिका देवी के लिए श्रद्धा की आहुति दी जाती है। वे वायव्य कोण में मेरी रक्षा करें। ओं गद्यपद्यवासिनी देवी के लिए श्रद्धा की आहुति दी जाती है। वे उत्तर दिशा में मेरी रक्षा करें॥८४॥ ओं सर्वशास्त्रवासिनी देवी के लिए श्रद्धा की आहुति दी जाती

---

१ क. ०हा चौष्ठं स० ।

ओं सर्वशास्त्रवासिन्यै स्वाहैशान्यां सदाऽवतु। ओं ह्रीं सर्वपूजितायै स्वाहा चोर्ध्वं सदाऽवतु ॥८५॥
ऐं ह्रीं पुस्तकवासिन्यै स्वाहाऽधो मां सदाऽवतु। ओं ग्रन्थबीजरूपायै स्वाहा मां सर्वतोऽवतु ॥८६।
इति ते कथितं विप्र सर्वमन्त्रौघविग्रहम्। इदं विश्वजयं नाम कवचं ब्रह्मरूपकम् ॥८७॥
पुरा श्रुतं धर्मवक्त्रात्पर्वते गन्धमादने। तव स्नेहान्मयाऽऽख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचित् ॥८८॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालंकारचन्दनैः। प्रणम्य दण्डवद्भूमौ कवचं धारयेत्सुधीः ॥८९॥
पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धं तु कवचं भवेत्। यदि स्यात्सिद्धकवचो बृहस्पतिसमो भवेत् ॥९०॥
महावाग्मी कवीन्द्रश्च त्रैलोक्यविजयी भवेत्। शक्नोति सर्वं जेतुं स कवचस्य प्रभावतः[1] ॥९१॥
इदं ते काण्वशाखोक्तं कथितं कवचं मुने। स्तोत्रं पूजाविधानं च ध्यानं वै वन्दनं तथा ॥९२॥

इति श्री ब्रह्म० महा० प्रकृ० नारदनारायणसंवादे सरस्वतीकवचं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

नारायण उवाच

वाग्देवतायाः स्तवनं श्रूयतां सर्वकामदम्। महामुनिर्याज्ञवल्क्यो येन तुष्टाव तां पुरा ॥१॥

है। वे सदा ईशानकोण में मेरी रक्षा करें। ओं सर्वपूजिता देवी के लिए श्रद्धा की आहुति दी जाती है। वे सदा ऊर्ध्व भाग में रक्षा करें ॥८५॥ 'ऐं ह्रीं' पुस्तकवासिनी देवी के लिए श्रद्धा की आहुति दी जाती है। वे सदा निम्न भाग में रक्षा करें। ओं ग्रन्थबीजस्वरूपा देवी के लिए श्रद्धा की आहुति दी जाती है। वे चारों ओर से मेरी रक्षा करें ॥८६॥ विप्र! यह विश्वजय नामक कवच, जो समस्त मंत्र-समुदायों का साक्षात् शरीर और ब्रह्मस्वरूप है, तुम्हें बता दिया ॥८७॥ इसको पहले समय गन्धमादन पर्वत पर धर्म के मुख से मैंने सुना था। केवल तुम्हारे स्नेहवश मैंने उसे कहा है, अतः किसी को बताना नहीं ॥८८॥ वस्त्र, अलंकार और चन्दनों द्वारा गुरु की सविधि अर्चना और भूमि पर दण्डवत्प्रणाम करके यह कवच बुद्धिमान् को धारण करना चाहिए ॥८९॥ पाँच लाख जप करने से यह कवच सिद्ध होता है और सिद्ध हो जाने पर वह पुरुष बृहस्पति के समान हो जाता है ॥९०॥ वह महा-वक्ता एवं त्रैलोक्यविजयी कवीन्द्र होता है। इस कवच के प्रभाव से वह सब कुछ जीत सकता है ॥९१॥ मुने! इस प्रकार काण्व शाखा में प्रतिपादित कवच, स्तोत्र, पूजाविधान, ध्यान और वन्दन भी मैंने तुम्हें बता दिये ॥९२॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के प्रकृतिखण्ड में सरस्वतीकवच नामक चौथा अध्याय समाप्त ॥४॥

अध्याय ५

याज्ञवल्क्य द्वारा सरस्वती की स्तुति

नारायण बोले—मैं तुम्हें सरस्वती का सकलकामनादायक स्तोत्र बता रहा हूँ, जिसके द्वारा महामुनि याज्ञवल्क्य ने पहले उनकी स्तुति की थी ॥१॥ जब मुनि याज्ञवल्क्य की विद्या गुरु के शाप के कारण नष्ट हो गयी तब

---

१ क. प्रदानतः।

गुरुशापाच्च स मुनिर्हतविद्यो बभूव ह। तदा जगाम दुःखार्तो रविस्थानं च पुण्यदम् ॥२॥
संप्राप्य तपसा सूर्यं कोणार्के दृष्टिगोचरे। तुष्टाव सूर्यं शोकेन रुरोद च पुनः पुनः ॥३॥
सूर्यस्तं पाठयामास वेदवेदाङ्गमीश्वरः। उवाच स्तुहि वाग्देवीं भक्त्या च स्मृतिहेतवे ॥४॥
तमित्युक्त्वा दीननाथो ह्यन्तर्धानं जगाम सः। मुनिः स्नात्वा च तुष्टाव भक्तिनम्रात्मकंधरः ॥५॥

याज्ञवल्क्य उवाच

कृपां कुरु जगन्मातर्मामेवं हततेजसम्। गुरुशापात्स्मृतिभ्रष्टं विद्याहीनं च दुःखितम् ॥६॥
ज्ञानं देहि स्मृतिं देहि विद्यां विद्याधिदेवते। प्रतिष्ठां कवितां देहि शक्तिं शिष्यप्रबोधिकाम् ॥७॥
ग्रन्थनिर्मितिशक्तिं च सच्छिष्यं सुप्रतिष्ठितम् प्रतिभां सत्सभायां च विचारक्षमतां शुभाम् ॥८॥
लुप्तां सर्वां [1]दैववशान्नवं कुरु पुनः पुनः। यथाऽङ्कुरं जनयति भगवान्योगमायया ॥९॥
ब्रह्मस्वरूपा परमा ज्योतीरूपा सनातनी। सर्वविद्याधिदेवी या तस्यै वाण्यै नमो नमः ॥१०॥
यया विना जगत्सर्वं शश्वज्जीवन्मृतं सदा। ज्ञानाधिदेवी या तस्यै सरस्वत्यै नमो नमः ॥११॥
यया विना जगत्सर्वं मूकमुन्मत्तवत्सदा। वागधिष्ठातृदेवी या तस्यै वाण्यै नमो नमः ॥१२॥

अत्यन्त दुःखी हुए और सूर्य के पुण्यप्रद स्थान की ओर चल पड़े ॥२॥ कोणार्क क्षेत्र में पहुँच कर तप द्वारा सूर्य का प्रत्यक्ष दर्शन करके स्तुति करने लगे तथा शोक से बार-बार रोने भी लगे ॥३॥ सूर्य भगवान् ने उन्हें वेद-वेदांग का अध्ययन कराया और कहा कि तुम स्मरण-शक्ति प्राप्त करने के लिए सरस्वती की भक्तिपूर्वक स्तुति करो ॥४॥ दीनों के स्वामी सूर्य उन्हें इस भाँति कह कर अन्तर्हित हो गए और मुनि स्नानोपरांत भक्तिपूर्वक सिर झुका कर देवी की स्तुति करने लगे ॥५॥

याज्ञवल्क्य बोले—हे संसार की माता ! गुरु के शाप से मेरा तेज नष्ट हो गया है। मेरी स्मृति और विद्या भी जाती रही। आप मेरे ऊपर कृपा करें ॥६॥ हे विद्याधिदेवता ! मुझे ज्ञान, स्मृति, विद्या, प्रतिष्ठा, कवित्व-शक्ति, शिष्यों को प्रबोधन कराने वाली शक्ति तथा ग्रन्थ निर्माण करने की शक्ति प्रदान करें। साथ ही मुझे अपना उत्तम एवं सुप्रतिष्ठित शिष्य बना लीजिए। मुझे प्रतिभा तथा सत्पुरुषों की सभा में विचार प्रकट करने की उत्तम क्षमता दीजिए ॥७-८॥ दुर्भाग्यवश मेरी नष्ट हुई इन सब चीजों को आप पुनःपुनः उसी प्रकार नवीन कर दें जिस प्रकार भगवान् योगमाया द्वारा अंकुर उत्पन्न करते हैं ॥९॥ मैं उन सरस्वती देवी को बार-बार नमस्कार कर रहा हूँ, जो ब्रह्मस्वरूपा, परम ज्योतिःस्वरूपा, सनातनी (नित्या) और समस्त विद्याओं की अधीश्वरी हैं ॥१०॥ जिनके बिना सम्पूर्ण जगत् निरन्तर जीवित रहते हुए भी सदा मृतक के समान है, उन ज्ञानाधिदेवी सरस्वती को मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥११॥ जिनके बिना समस्त जगत् सदा मूक (गूंगे) और उन्मत्त की भाँति रहता है, उन वाणी की अधिष्ठात्री देवी को मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥१२॥ हिम (बर्फ), चन्दन, कुन्दपुष्प, चन्द्र, कुमुद

---

१ क. ०वदोषान्नवी भूतं पुनः कुरु।

हिमचन्दनकुन्देन्दुकुमुदाम्भोजसंनिभा। वर्णाधिदेवी या तस्यै चाक्षरायै नमो नमः ॥१३॥
विसर्गबिन्दुमात्राणां यदधिष्ठानमेव च। इत्थं त्वं गीयसे सद्भिर्भारत्यै ते नमो नमः ॥१४॥
यया विनाऽत्र संख्याकृत्संख्यां कर्तुं न शक्नुते। कालसंख्यास्वरूपा या तस्यै देव्यै नमो नमः ॥१५॥
व्याख्यास्वरूपा या देवी व्याख्याधिष्ठातृदेवता। भ्रमसिद्धान्तरूपा या तस्यै देव्यै नमो नमः ॥१६॥
स्मृतिशक्तिर्ज्ञानशक्तिर्बुद्धिशक्तिस्वरूपिणी। प्रतिभा कल्पनाशक्तिर्या च तस्यै नमो नमः ॥१७॥
सनत्कुमारो ब्रह्माणं ज्ञानं पप्रच्छ यत्र वै। बभूव जडवत्सोऽपि सिद्धान्तं कर्तुमक्षमः ॥१८॥
तदाऽऽजगाम भगवानात्मा श्रीकृष्ण ईश्वरः। उवाच स च तं स्तौहि वाणीमिति प्रजापते ॥१९॥
स च तुष्टाव तां ब्रह्मा चाऽऽज्ञया परमात्मनः। चकार तत्प्रसादेन तदा सिद्धान्तमुत्तमम् ॥२०॥
यदाऽप्यनन्तं पप्रच्छ ज्ञानमेकं वसुंधरा। बभूव मूकवत्सोऽपि सिद्धान्तं कर्तुमक्षमः ॥२१॥
तदा त्वां च स तुष्टाव संत्रस्तः कश्यपाज्ञया। ततश्चकार सिद्धान्तं निर्मलं भ्रमभञ्जनम् ॥२२॥
व्यासः पुराणसूत्रं समपृच्छद्वाल्मिकिं[1] यदा। मौनीभूतः स सस्मार त्वामेव जगदम्बिकाम् ॥२३॥
तदा चकार सिद्धान्तं त्वद्वरेण मुनीश्वरः। स प्राप निर्मलं ज्ञानं [2]प्रमादध्वंसकारणम् ॥२४॥

और श्वेत कमल के समान वर्ण (रंग) वाली तथा वर्णों की अधिष्ठात्री देवी अक्षरस्वरूपा सरस्वती को मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥१३॥ विसर्ग, विन्दु और मात्रा —इन तीनों का जो अधिष्ठान है, वह आप हैं—इस प्रकार साधु पुरुष आपकी महिमा का गान करते हैं। ऐसी भारती देवी को बार-बार नमस्कार है ॥१४॥ संख्या करने वाले लोग जिनके बिना संख्या नहीं कर सकते, उन कालसंख्या-स्वरूपिणी देवी को बार-बार नमस्कार है ॥१५॥ व्याख्या स्वरूपा, व्याख्या की अधिष्ठात्री देवता और भ्रम तथा सिद्धान्त रूप वाली देवी को बार-बार नमस्कार है ॥१६॥ जो स्मरणशक्ति, ज्ञानशक्ति, बुद्धिशक्ति तथा प्रतिभाशक्ति एवं कल्पनाशक्ति स्वरूपा हैं. उन भगवती को बार-बार नमस्कार है ॥१७॥

एक बार सनत्कुमार ने ब्रह्मा से ज्ञान के विषय में प्रश्न किया। किन्तु वे (ब्रह्मा) सिद्धान्त रूप में कुछ कहने में असमर्थ होने के कारण जड़वत् हो गए ॥१८॥ उस समय वहाँ ईश्वर भगवान् श्रीकृष्ण आये और उन्होंने सरस्वती का उत्तम स्तोत्र ब्रह्मा को बताया ॥१९॥ परमात्मा की आज्ञा से ब्रह्मा ने उसी स्तोत्र द्वारा सरस्वती की स्तुति की और उनकी कृपा से उत्तम सिद्धान्त के विवेचन में वे सफल हो गए ॥२०॥ इसी प्रकार एक बार पृथ्वी ने अनन्त नाग से ज्ञान की चर्चा की, किन्तु वे भी सिद्धान्त को न बता सके, प्रत्युत मूकवत् हो गए ॥२१॥ फिर घबराये हुए नाग ने कश्यप की आज्ञा से सरस्वती की स्तुति की। पश्चात् उन्होंने भ्रमनिवारक एवं निर्मल सिद्धान्त का निर्माण किया ॥२२॥ व्यास ने वाल्मिकि मुनि से पुराणों का सूत्र पूछा, किन्तु मौन रहने के अतिरिक्त वे भी कुछ न कह सके। अनन्तर वे जगदम्बिका रूप तुम्हारा ही स्मरण करने लगे ॥२३॥ तुम्हारे वरदान से मुनीश्वर ने उन्हें सिद्धान्त बताया जिससे उन्होंने प्रमाद का ध्वंस करने वाला निर्मल ज्ञान प्राप्त किया ॥२४॥ पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण की कला

---

१ क. म्बिके। २ क. प्रदध्यौ स च का०।

पुराणसूत्रं श्रुत्वा स व्यासः कृष्णकलोद्भवः। त्वां सिषेवे च दध्यौ तं शतवर्षं च पुष्करे ॥२५।
तदा त्वत्तो वरं प्राप्य स कवीन्द्रो बभूव ह। तदा वेदविभागं च पुराणानि चकार ह ॥२६॥
यदा महेन्द्रे पप्रच्छ तत्त्वज्ञानं शिवा शिवम्। क्षणं त्वामेव संचिन्त्य तस्यै ज्ञानं ददौ विभुः ॥२७॥
पप्रच्छ शब्दशास्त्रं च महेन्द्रश्च बृहस्पतिम्। दिव्यं वर्षसहस्रं च स त्वां दध्यौ च पुष्करे ॥२८॥
तदा त्वत्तो वरं प्राप्य दिव्यं वर्षसहस्रकम्। उवाच शब्दशास्त्रं च तदर्थं च सुरेश्वरम् ॥२९॥
अध्यापिताश्च यैः शिष्या यैरधीतं मुनीश्वरैः। ते च त्वां परिसंचिन्त्य प्रवर्तन्ते सुरेश्वरि ॥३०॥
त्वं संस्तुता पूजिता च मुनीन्द्रमनुमानवैः। दैत्येन्द्रैश्च सुरैश्चापि ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः ॥३१॥
जडीभूतः सहस्रास्यः पञ्चवक्त्रश्चतुर्मुखः। यां स्तोतुं किमहं स्तौमि तामेकास्येन मानवः ॥३२॥
इत्युक्त्वा याज्ञवल्क्यश्च भक्तिनम्रात्मकंधरः। प्रणनाम निराहारो रुरोद च मुहुर्मुहुः ॥३३॥
तदा ज्योतिः स्वरूपा सा तेनादृष्टाऽप्युवाच तम्। सुकवीन्द्रो भवेत्युक्त्वा वैकुण्ठं च जगाम ह ॥३४॥
महामूर्खश्च दुर्मेधा वर्षमेकं च यः पठेत्। स पण्डितश्च मेधावी सुकविश्च भवेद्ध्रुवम् ॥३५॥

इति श्रीब्र० महा० प्रकृति० नारदना० याज्ञवल्क्योक्तवाणीस्तवनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

(अंश) से उत्पन्न व्यास ने पुराण सूत्र सुनने के उपरान्त पुष्कर क्षेत्र में सौ वर्षों तक आप (सरस्वती) का ध्यान पूजन किया, फिर आपसे वरदान प्राप्त करके वे कवीन्द्र हुए ॥२५½॥ उसी समय उन्होंने वेदों का विभाजन और पुराणों की रचना की। जिस समय महेन्द्र पर्वत पर पार्वती ने शंकर से तत्त्वज्ञान पूछा था, उस समय शिव ने क्षण भर आपका ध्यान करके पार्वती को ज्ञान दिया। फिर इन्द्र ने बृहस्पति से व्याकरणशास्त्र के विषय में पूछा, तो उन्होंने पुष्कर क्षेत्र में दिव्य सौ वर्षों तक आपका ध्यान-पूजन किया। अनन्तर आपसे वरदान पाकर दिव्य सौ वर्षों तक इन्द्र को अर्थ समेत व्याकरण शास्त्र का अध्ययन कराया ॥२६-२९॥ हे सुरेश्वरि ! जिन मुनीश्वरों ने स्वयं अध्ययन किया और अपने शिष्यों को अध्ययन कराया, वे लोग उस कार्य में आपका भली भाँति ध्यान कर के ही प्रवृत्त हुए ॥३०॥ श्रेष्ठ मुनिगण, मनुगण, दैत्य, देव, ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि ने आपकी स्तुति और पूजा की है। जिन (आप) की स्तुति करने में शेष, शिव और ब्रह्मा भी जड़ की भाँति हो गए उनकी स्तुति भला एक मुख वाला मैं मानव कैसे कर सकता हूँ ॥३१-३२॥ इतना कह कर याज्ञवल्क्य ने भक्तिपूर्वक कन्धे को झुकाए हुए, देवी को प्रणाम किया और निराहार रह कर बार-बार रोदन किया ॥३३॥ उस समय ज्योतिः स्वरूपा सरस्वती ने उनसे न देखी जाने पर भी कहा—'तुम सुप्रख्यात कवि हो, जाओ।' यों कह कर देवी वैकुंठ को चली गईं ॥३४॥ महामूर्ख एवं अत्यन्त कठोर बुद्धि वाला मनुष्य भी यदि एक वर्ष तक इसका पाठ करेगा तो वह निश्चित रूप से पण्डित, मेधावी और महान् कवि होगा ॥३५॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के प्रकृतिखण्ड में याज्ञवल्क्योक्त सरस्वती-स्तोत्र नामक पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

नारायण उवाच

सरस्वती सा वैकुण्ठे स्वयं नारायणान्तिके। गङ्गाशापेन कलया कलहाद्भारते सरित् ॥१॥
पुण्यदा पुण्यजननी पुण्यतीर्थस्वरूपिणी। पुण्यवद्भिर्निषेव्या च स्थितिः पुण्यवतां मुने ॥२॥
तपस्विनां तपोरूपा तपस्याकाररूपिणी। कृतपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निस्वरूपिणी ॥३॥
ज्ञाने सरस्वतीतोये गतं यैर्मानवैर्भुवि। तेषां स्थितिश्च वैकुण्ठे सुचिरं हरिसंसदि ॥४॥
भारते कृतपापश्च स्नात्वा तत्रैव लीलया। मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोके वसेच्चिरम् ॥५॥
चतुर्दश्यां पौर्णमास्यामक्षयायां दिनक्षये। ग्रहणे च व्यतीपातेऽन्यस्मिन्पुण्यदिनेऽपि च ॥६॥
अनुषङ्गेण यः स्नाति हेलया श्रद्धयाऽपि वा। सारूप्यं लभते नूनं वैकुण्ठे स हरेरपि ॥७॥
सरस्वतीमन्त्रकं च मासमेकं तु यो जपेत्। महामूर्खः कवीन्द्रश्च स भवेन्नात्र संशयः ॥८॥
नित्यं सरस्वतीतोये यः स्नात्वा मुण्डयेन्नरः। न गर्भवासं कुरुते पुनरेव स मानवः ॥९॥
इत्येवं कथितं किंचिद्भारतीगुणकीर्तनम्। सुखदं मोक्षदं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१०॥

अध्याय ६

लक्ष्मी, सरस्वती एवं गंगा का परस्पर शाप

नारायण बोले—वैकुण्ठ में स्वयं नारायण के समीप रहने वाली वह सरस्वती देवी, जिन्हें कलह के कारण गंगा ने शाप दे दिया था, भारत में कलारूप से नदी होकर प्रकट हुई। मुने! वह (सरस्वती नदी) पुण्यप्रदा, पुण्य की जननी, पुण्यतीर्थस्वरूपा हैं। पुण्यात्मा लोगों को उनका सेवन करना चाहिए। उनके तटों पर पुण्यात्माओं की स्थिति है ॥१-२॥ तपस्वी लोगों की तपस्या रूप और तपस्या की मूर्ति रूप वह नदी (प्राणियों के) किए हुए पाप रूप (सूखी) लकड़ी को जलाने के लिए प्रज्वलित अग्नि रूपा है ॥३॥ भूतल पर सरस्वती के जल में जो ज्ञान-पुरस्सर शरीर त्याग करते हैं, वे वैकुण्ठ में भगवान् की सभा में बहुत दीर्घ काल तक रहते हैं ॥४॥ अतः भारत की उस नदी में स्नान करने से पापी लोग सहज ही में समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक में चिरकाल तक निवास करते हैं ॥५॥ चतुर्दशी, पूर्णिमा, अक्षय तृतीया, दिनक्षय, ग्रहण, व्यतीपात और अन्य पुण्य पर्वों में जो कोई उत्कट इच्छा से या श्रद्धा से या खेल के रूप में ही स्नान करता है, वह वैकुण्ठ लोक में निश्चित रूप से भगवान् के सारूप्यमोक्ष को प्राप्त करता है ॥६-७॥ सरस्वती का मन्त्र एक मास तक जपने से महामूर्ख मनुष्य भी कवीन्द्र होता है, इसमें सन्देह नहीं ॥८॥ सरस्वती के जल में नित्य स्नान करते हुए जो मुण्डन कराता है, वह मनुष्य कभी भी गर्भवास नहीं करता है ॥९॥ इस प्रकार मैंने सरस्वती का कुछ गुण-गान कर दिया, जो सुखप्रद और मोक्षप्रद होते हुए तत्त्वरूप है, अब और क्या सुनना चाहते हो? ॥१०॥

सौतिरुवाच

नारायणवचः श्रुत्वा नारदो मुनिसत्तमः। पुनः पप्रच्छ संदेहच्छेदं शौनक सत्वरम् ॥११॥

नारद उवाच

कथं सरस्वतीदेवी गङ्गाशापेन भारते। कलया कलहेनैव समभूत्पुण्यदा सरित् ॥१२॥
श्रवणे श्रुतिसाराणां वर्धते कौतुकं मम। कथामृतानां नो तृप्तिः केन श्रेयसि तृप्यते ॥१३॥
कथं शशाप सा गङ्गा पूजितां तां सरस्वतीम्। शान्तसत्त्वस्वरूपा च पुण्यदा सर्वदा नृणाम् ॥१४॥
तेजस्विन्योर्द्वयोर्वादकारणं श्रुतिसुन्दरम्। सुदुर्लभं पुराणेषु तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१५॥

नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि कथामेतां पुरातनीम्। यस्याः स्मरणमात्रेण सर्वपापात्प्रमुच्यते ॥१६॥
लक्ष्मीः सरस्वती गङ्गा तिस्रो भार्या हरेरपि। प्रेम्णा समास्तास्तिष्ठन्तिसततं हरिसंनिधौ ॥१७॥
चकार सैकदा गङ्गा विष्णोर्मुखनिरीक्षणम्। सस्मिता च सकामा च सकटाक्षं पुनः पुनः ॥१८॥
विभुर्जहास तद्वक्त्रं निरीक्ष्य च मुदा क्षणम्। क्षमां चकार तद्दृष्ट्वा लक्ष्मीर्नैव सरस्वती ॥१९॥
बोधयामास तां पद्मा सत्त्वरूपा च सस्मिता। क्रोधाविष्टा च सा वाणी न च शान्ता बभूव ह ॥२०॥

सौति बोले—शौनक ! नारायण की बात सुन कर मुनिश्रेष्ठ नारद ने उन सन्देह-नाशक (नारायण) से पुनः प्रश्न किया ॥११॥

नारद बोले—कलह के कारण ही गंगा ने सरस्वती को शाप दिया और वे (सरस्वती) अपनी एक कला से पुण्य नदी होकर भारतवर्ष में प्रकट हुई—ऐसा क्यों हुआ ? ॥१२॥ यह कथा वेदों का सार रूप तथा अमृत रूप है। मुझे इसके सुनने में कौतुक बढ़ रहा है। क्यों न हो, कल्याण से किसको तृप्ति होती है ? ॥१३॥ गंगा ने पूज्य सरस्वती को कैसे शाप दिया। क्योंकि गंगा मनुष्यों को पुण्य देने वाली तथा शान्त और सत्त्व स्वरूप वाली हैं ॥१४॥ अतः इन दोनों तेजस्विनी देवियों के वाद-विवाद का कारण, जो सुनने में सुखप्रद और पुराणों में अत्यन्त दुर्लभ है, मुझे बताने की कृपा करें ॥१५॥

नारायण बोले—नारद ! मैं इस पुरानी कथा को तुम्हें सुना रहा हूँ, जिसके स्मरण मात्र से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥१६॥ भगवान् विष्णु की लक्ष्मी, गंगा और सरस्वती ये तीन पत्नियाँ थीं, जो प्रेमपूर्वक समान भाव से उनके निकट निरन्तर रहती थीं ॥१७॥ एक बार गंगा सकामा होकर मुसकराती हुई भगवान् विष्णु के मुख को देख रही थीं और बार-बार उन पर कटाक्ष कर रही थीं ॥१८॥ भगवान् विष्णु भी उनका मुख देख कर उस समय प्रसन्न मुख से हँस रहे थे। उसे देख कर लक्ष्मी ने उस पर ध्यान नहीं दिया, किन्तु सरस्वती उसको सहन न कर सकीं ॥१९॥ (यह देख कर) सत्त्वरूपा लक्ष्मी ने प्रेमभाव से सरस्वती को भली भाँति समझाया, किन्तु क्रोधावेश में आ जाने के कारण वे शान्त न हो सकीं ॥२०॥ (क्रोध के मारे) तमतमाया मुख और लाल-लाल आँखें

उवाच गङ्गाभर्तारं रक्तास्या रक्तलोचना। कम्पिता कोपवेगेन शश्वत्प्रस्फुरिताधरा॥२१॥

सरस्वत्युवाच

सर्वत्र समताबुद्धिः सद्भर्तुः कामिनीः प्रति। धर्मिष्ठस्य वरिष्ठस्य विपरीता खलस्य च॥२२॥
ज्ञातं सौभाग्यमधिकं गङ्गायां ते गदाधर। कमलायां च तत्तुल्यं न च किंचिन्मयि प्रभो॥२३॥
गङ्गायाः पद्मया सार्धं प्रीतिश्चापि सुसंमता। क्षमां चकार तेनेदं विपरीतं हरिप्रिया॥२४॥
किं जीवनेन मेऽत्रैव दुर्भगायाश्च सांप्रतम्। निष्फलं जीवनं तस्या या पत्युः प्रेमवञ्चिता॥२५॥
त्वां सर्वेशं सत्त्वरूपं ये वदन्ति मनीषिणः। ते मूर्खा न वेदज्ञा न जानन्ति मतिं तव॥२६॥
सरस्वतीवचः श्रुत्वा दृष्ट्वा तां कोपसंयुताम्। मनसा तु समालोच्य स जगाम बहिः सभाम्॥२७॥
गते नारायणे गङ्गामवोचन्निर्भयं रुषा। वागधिष्ठातृदेवी सा वाक्यं श्रवणदुःसहम्॥२८॥
हे निर्लज्जे सकामे त्वं स्वामिगर्वं करोषि किम्। अधिकं स्वामिसौभाग्यं विज्ञापयितुमिच्छसि॥२९॥
मानहानिं करिष्यामि तवाद्य हरिसंनिधौ। किं करिष्यति ते कान्तो मम वै कान्तवल्लभे॥३०॥
इत्येवमुक्त्वा गङ्गाया जिघृक्षं केशमुद्यताम्। [1]वारयामास तां पद्मा मध्यदेशस्थिता सती॥३१॥

कर के सरस्वती ने, जो कोप के वेग से काँप रही थीं और जिनका अधरोष्ठ निरन्तर फड़क रहा था, गंगा और पति विष्णु से कहा॥२१॥

सरस्वती बोलीं—जो पति धार्मिक और श्रेष्ठ होता है, उसका अपनी सभी कामिनी स्त्रियों पर समता का भाव रहता है और दुष्ट पति की इससे विपरीत बुद्धि रहती है॥२२॥ गदाधर! प्रभो! मैं जानती हूँ कि—तुम्हारा प्रेम गंगा में अधिक है, इसी से उसका सौभाग्य अधिक है और लक्ष्मी में भी तुम्हारा प्रेम उसी के समान है, किन्तु मुझमें तुम्हारा कुछ भी प्रेम नहीं है॥२३॥ गंगा का प्रेम लक्ष्मी से भी है। इसीलिए लक्ष्मी ने इस विरुद्धाचरण को भी क्षमा कर दिया है॥२४॥ और मैं दुर्भगा (अभागिनी) हूँ, अतः अब इस (अभागे) जीवन को रख कर क्या करूँगी? क्योंकि जो स्त्री अपने पति के प्रेम से वंचित है, उसका जीवन व्यर्थ है॥२५॥ और तुम्हें (विष्णु को) जो बुद्धिमान् लोग सर्वाधीश्वर तथा सत्त्व रूप कहते हैं, वे मूर्ख न तो वेद ही जानते हैं और न तुम्हारे विवेक को ही जानते हैं॥२६॥

सरस्वती की ऐसी बातें सुनकर और उन्हें अत्यन्त क्रुद्ध देखकर विष्णु ने मन में कुछ विचार किया और अनन्तर वे उस सभा से उठकर बाहर चले गये॥२७॥ नारायण के बाहर चले जाने पर वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती ने निर्भय होकर क्रोध से अत्यन्त कर्णकटु वचन गंगा से कहने लगीं—'निर्लज्जे, कामातुरे! क्या तू स्वामी का गर्व करती है? क्या तू अधिक पति-सौभाग्य जनाना चाहती है॥२८-२९॥ विष्णु के निकट ही आज मैं तेरी मानहानि करूँगी। क्योंकि तू पति की बड़ी प्यारी है न। देखती हूँ तेरा पति मेरा क्या कर लेता है॥३०॥ इतना कहकर सरस्वती ने गंगा का केश-पाश पकड़ना चाहा किन्तु लक्ष्मी ने दोनों के बीच में खड़ी होकर उन्हें ऐसा करने से रोक दिया॥३१॥ अनन्तर महाकोप करने वाली सती सरस्वती ने पद्मा (लक्ष्मी) को

---

१ क.० त्वा कारयामा०।

शशाप वाणी तां पद्मां महाकोपवती सती। वृक्षरूपा सरिद्रूपा भविष्यसि न संशयः ॥३२॥
विपरीतं यतो दृष्ट्वा किंचिन्नो वक्तुमर्हसि। संतिष्ठसि सभामध्ये यथा वृक्षो यथा सरित् ॥३३॥
शापं श्रुत्वा च सा देवी न शशाप चुकोप न। तत्रैव दुःखिता तस्थौ वाणीं धृत्वा करेण च ॥३४॥
अत्युद्धतां च तां दृष्ट्वा कोपप्रस्फुरिताननां। उवाच गङ्गा तां देवीं पद्मां पद्मविलोचना ॥३५॥

गङ्गोवाच

त्वमुत्सृज महोग्रां तां पद्मे किं मे करिष्यति। वाग्दुष्टा वागधिष्ठात्री देवीयं कलहप्रिया ॥३६॥
यावती योग्यताऽस्याश्च यावती शक्तिरेव वा। तया करोतु वादं च मया सार्धं सुदुर्मुखा ॥३७॥
स्वबलं यन्मम बलं विज्ञापयितुमर्हतु। जानन्तु सर्वे ह्युभयोः प्रभावं विक्रमं सति ॥३८॥
इत्येवमुक्त्वा सा देवी वाण्यै शापं ददाविति। सरित्स्वरूपा भवतु सा या त्वामशपद्रुषा ॥३९॥
अधोमर्त्यं सा प्रयातु सन्ति यत्रैव पापिनः। कलौ तेषां च पापांशं लभिष्यति न संशयः ॥४०॥
इत्येवं वचनं श्रुत्वा तां शशाप सरस्वती। त्वमेव यास्यसि महीं पापिपापं लभिष्यसि ॥४१॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र भगवानाजगाम ह। चतुर्भुजश्चतुर्भिश्च पार्षदैश्च चतुर्भुजैः ॥४२॥
सरस्वतीं करे धृत्वा वासयामास वक्षसि। बोधयामास सर्वज्ञः सर्वज्ञानं पुरातनम् ॥४३॥
श्रुत्वा रहस्यं तासां च शापस्य कलहस्य च। उवाच दुःखितास्ताश्च वाक्यं सामयिकं विभुः ॥४४॥

भी शाप दे दिया—'तू वृक्ष और नदी का रूप धारण करेगी, इसमें संशय नहीं ॥३२॥ क्योंकि विपरीत आचरण देख करके भी तू सभा के मध्य वृक्ष और नदी की भाँति खड़ी रही कुछ बोली नहीं ॥३३॥ इस प्रकार का शाप सुनकर भी कमला ने सरस्वती को न तो शाप ही दिया और न क्रोध ही किया। केवल सरस्वती का हाथ पकड़े उसी स्थान पर दुःख का अनुभव करती हुई वे खड़ी रह गयीं ॥३४॥ क्रोध से तमतमाये हुए मुख वाली अत्यन्त उद्धत सरस्वती को देख कर कमलनेत्रा गंगा ने कमला देवी से कहा ॥३५॥

गंगा बोलीं—भद्रे! महाकोप करने वाली इस दुष्टा को तुम छोड़ दो। यह मेरा क्या कर लेगी। वाणी की अधिष्ठात्री देवी होती हुई भी अत्यन्त झगड़ालू है ॥३६॥ इसलिए इसकी जितनी योग्यता और जितनी शक्ति है उसके अनुसार यह कटुभाषिणी मुझसे वाद-विवाद कर ले ॥३७॥ आज यह मेरी और अपनी शक्ति की परीक्षा कर ले। सभी लोग हम दोनों के प्रभाव और पराक्रम को जान लें ॥३८॥ इतना कहकर गंगा देवी ने सरस्वती को शाप दिया कि—'जिसने रोष भरे शब्दों से लक्ष्मी को शाप दिया है, वह स्वयं भी नदी-रूप में हो जाय और नीचे मर्त्यलोक में जहाँ पापियों का समूह निवास करता है, वहाँ रहे तथा कलियुग में उनके पापांशों को भी प्राप्त करे, इसमें संशय नहीं ॥३९-४०॥ इतनी बात सुनकर सरस्वती ने भी गंगा को शाप दिया कि—तू भी पृथ्वी पर जायगी और पापियों के पाप को प्राप्त करेगी ॥४१॥ इसी बीच चतुर्भुज भगवान् विष्णु अपने चतुर्भुज पार्षदों समेत वहाँ आ गये ॥४२॥ उन्होंने सरस्वती का दोनों हाथ पकड़ कर उन्हें अपने वक्षःस्थल से चिपका लिया और उन सर्वज्ञ ने अपने पुरातन ज्ञान द्वारा उन्हें भलीभाँति समझाया ॥४३॥ विभु विष्णु ने उन स्त्रियों के शाप-कलह का रहस्य सुनकर दुःखानुभव करने वाली उन पत्नियों से समयोचित वाक्य कहा ॥४४॥

श्रीभगवानुवाच

लक्ष्मि त्वं कलया गच्छ धर्मध्वजगृहं शुभे। अयोनिसंभवा भूमौ तस्य कन्या भविष्यसि ॥४५॥
तत्रैव दैवदोषेण वृक्षत्वं च लभिष्यसि। मदंशस्यासुरस्यैव शङ्खचूडस्य कामिनी ॥४६॥
भूत्वा पश्चाच्च मत्पत्नी भविष्यसि न संशयः। त्रैलोक्यपावनी नाम्ना तुलसीति च भारते ॥४७॥
कलया च सरिद्भूत्वा शीघ्रं गच्छ वरानने। भारतं भारतीशापान्नाम्ना पद्मावती भव ॥४८॥
गङ्गे यास्यसि चांशेन पश्चात्त्वं विश्वपावनी। भारतं भारतीशापात्पापदाहाय देहिनाम् ॥४९॥
भगीरथस्य तपसा तेन नीता सुदुष्करात्। नाम्ना भागीरथी पूता भविष्यसि महीतले ॥५०॥
मदंशस्य समुद्रस्य जाया जाये ममाऽऽज्ञया। मत्कलांशस्य भूपस्य शन्तनोश्च सुरेश्वरि ॥५१॥
गङ्गाशापेन कलया भारतं गच्छ भारति। कलहस्य फलं भुङ्क्ष्व सपत्नीभ्यां सहाच्युते ॥५२॥
स्वयं च ब्रह्मसदनं ब्रह्मणः कामिनी भव। गङ्गा यातु शिवस्थानमत्र पद्मैव तिष्ठतु ॥५३॥
शान्ता च क्रोधरहिता मद्भक्ता[1] मत्स्वरूपिणी। महासाध्वी महाभागा सुशीला धर्मचारिणी ॥५४॥
यदंशकलया सर्वा धर्मिष्ठाश्च पतिव्रताः। शान्तरूपाः सुशीलाश्च प्रतिविश्वेषु योषितः ॥५५॥
तिस्रो भार्यास्त्रयः शालास्त्रयो भृत्याश्च बान्धवाः। ध्रुवं वेदविरुद्धाश्च न ह्येते मङ्गलप्रदाः ॥५६॥

श्री भगवान् बोले—हे शुभमूर्ति लक्ष्मि ! तुम पृथ्वी पर जाकर धर्मध्वज के घर अपने अंश से अयोनिजा (योनि से उत्पन्न न होने वाली) कन्या होकर प्रकट होओ। वहाँ मेरे अंश से उत्पन्न होनेवाले शंखचूड़ की पत्नी बनकर दैववश वहाँ वृक्ष का रूप भी धारण करोगी ॥४५-४६॥ पश्चात् यहाँ आकर मेरी पत्नी हो जाओगी और भारत में तुम्हारा त्रैलोक्यपावन 'तुलसी' नाम पड़ेगा ॥४७॥ हे सुमुखी ! सरस्वती के शाप वश तुम भारत में शीघ्र जाओ। वहाँ अंशमात्र से नदी का रूप धारण करने पर तुम्हारा नाम पद्मावती होगा। गंगे ! इसके पश्चात् तुम भी भारती के शाप वश भारत में पापियों के पाप विनाशार्थ अपने अंश से विश्वपावनी नदी होकर रहो ॥४७-४९॥ भगीरथ की दुष्कर तपस्या के कारण तुम्हें वहाँ जाना पड़ेगा। भूतल पर सब लोग तुम्हें भागीरथी कहेंगे ॥५०॥ हे सुरेश्वरि ! मेरे अंश से उत्पन्न समुद्र और मेरे ही अंश से उत्पन्न होने वाले राजा शान्तनु की भी पत्नी तुम मेरी आज्ञा से बनना ॥५१॥ हे भारति ! गंगा के शाप से तुम भी अपने अंश से भारत में जाकर अपनी सपत्नियों के साथ कलह करने का फल भोगो। फिर स्वयं ब्रह्मा के घर जाकर उनकी पत्नी बनो तथा स्वयं गंगा भी शिव जी के यहाँ चली जाय। यहाँ केवल लक्ष्मी ही रहे ॥५२॥ क्योंकि यह शान्त, क्रोधहीन, मेरी भक्त, मेरे स्वरूप को धारण करने वाली महापतिव्रता, पुण्यात्मा, सुशीला और धर्मचारिणी है ॥५४॥ प्रत्येक विश्व में इसके अंश की कला से उत्पन्न होकर स्त्रियाँ धार्मिक, पतिव्रता, शान्तमूर्ति और सुशील होती हैं ॥५५॥ क्योंकि तीन स्त्रियों, तीन घरों, तीन सेवकों और तीन बन्धुओं का होना निश्चित रूप से वेदविरुद्ध है। ये मंगलप्रद नहीं होते ॥५६॥ जिसके घर में स्त्री, पुरुष की भाँति (लोक-व्यवहार करती) रहती हैं और पुरुष स्त्री के वश में रहता है, उसका जन्म

---

१ क. ०क्ता[illegible]सत्त्वरू०।

स्त्री पुंवच्च गृहे येषां गृहिणां स्त्रीवशः पुमान्। निष्फलं जन्म वै तेषामशुभं च पदे पदे ॥५७॥
मुखदुष्टा योनिदुष्टा यस्य स्त्री कलहप्रिया। अरण्यं तेन गन्तव्यं महारण्यं गृहाद्वरम् ॥५८॥
जलानां[१] च स्थलानां च फलानां प्राप्तिरेव च। सततं सुलभा तत्र न तेषां तद्गृहेऽपि च ॥५९॥
वरमग्नौ स्थितिर्हिंस्रजन्तूनां संनिधौ सुखम्। ततोऽपि दुःखं पुंसां च दुष्टस्त्रीसंनिधौ ध्रुवम् ॥६०॥
व्याधिज्वाला विषज्वाला वरं पुंसां वरानने। दुष्टस्त्रीणां मुखज्वाला मरणादतिरिच्यते ॥६१॥
पुंसश्च स्त्रीजितस्येह जीवितं निष्फलं ध्रुवम्। यदह्ना कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत् ॥६२॥
स निन्दितोऽत्र सर्वत्र परत्र नरकं व्रजेत्। यशः कीर्तिविहीनो यो जीवन्नपि मृतो हि सः ॥६३॥
बह्वीनां च सपत्नीनां नैकत्र श्रेयसी स्थितिः। एकभार्यः सुखी नैव बहुभार्यः कदाचन ॥६४॥
गच्छ गङ्गे शिवस्थानं ब्रह्मस्थानं सरस्वति। अत्र तिष्ठतु मद्गेहे[२] सुशीला कमलालया ॥६५॥
सुसाध्या यस्य पत्नी च सुशीला च पतिव्रता। इह स्वर्गसुखं तस्य धर्ममोक्षौ परत्र च ॥६६॥
पतिव्रता यस्य पत्नी स च मुक्तः शुचिः सुखी। जीवन्मृतोऽशुचिर्दुःखी दुःशीलापतिरेव यः ॥६७॥
इत्युक्त्वा जगतां नाथो विरराम च नारद। अत्युच्चै रुरुदुर्देव्यः समालिङ्ग्य परस्परम् ॥६८॥

निष्फल है और पद-पद पर उसका अशुभ होता है ॥५७॥ जिसकी स्त्री मुख की कटुभाषिणी, पुंश्चली एव झगड़ालू है, उसे जंगल में रहना चाहिए, क्योंकि उसके लिए घर की अपेक्षा महावन ही अच्छा है ॥५८॥ कारण वहाँ उसे जल, स्थल और फल तो मिल ही जाते हैं। ये फल-जल आदि जंगल में निरन्तर सुलभ रहते हैं, घर पर नहीं मिल सकते ॥५९॥ अग्नि में कूदना अच्छा है, हिंसक जानवरों के समीप रहना सुखकर है, किन्तु पुरुषों के लिए दुष्ट स्त्री के साथ रहना उससे भी अधिक दुःखप्रद होता है, यह निश्चित है। ६०॥ हे सुमुखी ! व्याधि की ज्वाला (ताप) तथा विष की ज्वाला (तीक्ष्णता) अच्छी है, किन्तु दुष्ट स्त्रियों के मुख की ज्वाला (वचन-कटुता) मरण से भी अधिक दुःखप्रद होती है ॥६१॥ इस लोक में स्त्री के अधीन रहने वाले पुरुषों का जीवन वस्तुतः निष्फल है। वह दिन में जो (उत्तम) कार्य करता है, उसका भी फलभागी वह नहीं होता ॥६२॥ वह इस लोक में सर्वत्र निन्दा का पात्र बनता है, और मरने पर नरक में जाता है। अतः यश एवं कीर्ति से रहित होने पर वह जीवित रहते हुए भी मृतक है ॥६३॥ अनेक सपत्नियों का एक स्थान पर रहना श्रेयस्कर नहीं होता है। और एक ही स्त्री का पति बनने से सुख प्राप्त होता है अनेक स्त्रियों के पति बनने से कभी नहीं ॥६४॥ अतः हे गंगे ! तुम शिव के यहाँ जाओ और हे सरस्वति ! तुम ब्रह्मा के यहाँ चली जाओ। यहाँ केवल सुशील लक्ष्मी ही मेरे घर में रहे ॥६५॥ क्योंकि जिसकी पत्नी सरल स्वभाव वाली, सुशीला और पतिव्रता होती है, उसे स्वर्गसुख यहीं प्राप्त होता है परलोक में उसे केवल धर्म-मोक्ष प्राप्त होते हैं ॥६६॥ जिसकी पत्नी पतिव्रता है वह (सब दुःखों से) मुक्त, पवित्र और सुखी रहता है। और दुःशीला (बुरे स्वभाव वाली) स्त्री का पति जीवित रहते हुए भी मृतक, अपवित्र और दुःखी रहता है ॥६७॥ नारद ! इतना कह कर जगत् के स्वामी (विष्णु) चुप हो गए। उधर देवियाँ परस्पर एक-दूसरी को पकड़-पकड़

---

१ ख. जनानां च स्थलानां च पुराणां प्रा०। २ ख. मद्देहे।

ताश्च सर्वाः समालोच्य क्रमेणोचुः सदीश्वरम्। कम्पिताः साश्रुनेत्राश्च शोकेन च भयेन च ॥६९॥

सरस्वत्युवाच

प्रायश्चित्तं देहि नाथ दुष्टायां जन्मशोधकम्। सत्स्वामिना परित्यक्ताः कुत्र जीवन्ति काः स्त्रियः ॥७०॥
देहत्यागं करिष्यामि ध्रुवं योगेन भारते। अत्युच्चतो निपतनं प्राप्तुमर्हति निश्चितम् ॥७१॥

गङ्गोवाच

अहं केनापराधेन त्वया त्यक्ता जगत्पते। देहत्यागं करिष्यामि निर्दोषाया वधं लभ ॥७२॥
निर्दोषकामिनीत्यागं कुरुते यो जनो भवे। स याति नरकं कल्पं किं ते सर्वेश्वरस्य वा ॥७३॥

लक्ष्मीरुवाच

नाथ सत्त्वस्वरूपस्त्वं कोपः कथमहो तव। प्रसादं कुरु[1] चास्मभ्यं सदीशस्य क्षमा वरा ॥७४॥
भारतं भारतीशापाद्यास्यामि कलया यदि। कतिकालं स्थितिस्तत्र कदा द्रक्ष्यामि ते पदम् ॥७५॥
दास्यन्ति पापिनः पापं मह्यं स्नानावगाहनात्। केन तस्माद्विमुक्ताऽहमागमिष्यामि ते पदम् ॥७६॥
कलया तुलसीरूपा धर्मध्वजसुता सती। भूत्वा कदा लभिष्यामि त्वत्पादाम्बुजमच्युत ॥७७॥

कर ऊँचे स्वर से रोने लगीं ॥६८॥ अनन्तर भय से कम्पित, आँखों में आँसू भरे और शोक से खिन्न (हीन-दीन) होती हुई उन स्त्रियों ने क्रमशः महाप्रभु (विष्णु) से कहना आरम्भ किया ॥६९॥

सरस्वती बोलीं—हे नाथ! मुझ दुष्टा स्त्री का जन्म पवित्र करने वाला प्रायश्चित्त बता दें। क्योंकि उत्तम स्वभाव वाले पति द्वारा त्यागी गई कौन स्त्रियाँ कहाँ जीवित रहती हैं?॥७०॥ अतः भारत में मैं योग द्वारा निश्चित रूप से अपना देह-त्याग करूँगी। क्योंकि अत्यन्त ऊँचाई पर पहुँच जाने के बाद पतन होना निश्चित है ॥७१॥

गंगा बोलीं—हे जगत्पते! किस अपराध से आपने मेरा त्याग किया है? मैं भी शरीर छोड़ दूंगी, जिससे आपको मुझ निर्दोष के वध करने का फल मिले ॥७२॥ क्योंकि संसार में जो पुरुष अपनी निर्दोष स्त्री का त्याग करता है, उसे एक कल्प तक नरक-वास करना पड़ता है। चाहे वह सर्वेश्वर तुम्हीं क्यों न हो ॥७३॥

लक्ष्मी बोलीं—हे नाथ! आपका स्वरूप सत्त्व गुण प्रधान है। आश्चर्य है, आपको कोप कैसे हो गया? आप हम लोगों पर प्रसन्न हो जायँ; क्योंकि उत्तम स्वभाव वाले स्वामी का क्षमा करना ही उत्तम गुण है ॥७४॥ और यदि सरस्वती के शाप देने के कारण मैं अपने अंश से भारत में जाऊँगी, तो कितने दिन वहाँ रह कर पुनः आपके चरणों का दर्शन करूँगी ॥७५॥ वहाँ पापी लोग (मुझमें) स्नान कर के मुझे अपना पाप दे जायँगे तब फिर किसके द्वारा उस पाप से मुक्त होकर मैं यहाँ आपके स्थान पर आ सकूंगी? ॥७६॥ हे अच्युत! कला रूप से धर्मध्वज की तुलसी नामक कन्या होकर मैं कब आपका चरण-कमल प्राप्त करूँगी? ॥७७॥ हे कृपानिधे! मैं वृक्ष रूप एवं उसकी

---

१ क. रु भार्याभ्यः स०।

वृक्षरूपा भविष्यामि तदधिष्ठातृदेवता । मामुद्धरिष्यसि कदा तन्मे ब्रूहि कृपानिधे ॥७८॥
गङ्गा सरस्वतीशापाद्यदि यास्यति भारतम् । शापेन मुक्ता पापाच्च कदा त्वां वा लभिष्यति ॥७९॥
गङ्गाशापेन सा वाणी यदि यास्यति भारतम् । कदा शापाद्विनिर्मुच्य लभिष्यति पदं तव ॥८०॥
तां वाणीं ब्रह्मसदनं गङ्गां वा शिवमन्दिरम् । गन्तुं वदसि हे नाथ तत्क्षमस्व च मद्वचः ॥८१॥
इत्युक्त्वा कमला कान्तपदं धृत्वा ननाम च । स्वकेशैर्वेष्टयित्वा च रुरोद च पुनः पुनः ॥८२॥
उवाच पद्मनाभस्तां पद्मां कृत्वा स्ववक्षसि । ईषद्धासः प्रसन्नास्यो भक्तानुग्रहकारकः ॥८३॥

नारायण उवाच

त्वद्वाक्यमाचरिष्यामि स्ववाक्यं च सुरेश्वरि । समतां च करिष्यामि शृणु तत्क्रममेव च ॥८४॥
भारती यातु कलया सरिद्रूपा च भारतम् । अर्धांशा ब्रह्मसदनं स्वयं तिष्ठतु मद्गृहे ॥८५॥
भगीरथेन नीता सा गङ्गा यास्यति भारतम् । पूतं कर्तुं त्रिभुवनं स्वयं तिष्ठतु मद्गृहे ॥८६॥
तत्रैव चन्द्रमौलेश्च मौलिं प्राप्स्यति दुर्लभम् । ततः स्वभावतः पूताऽप्यतिपूता भविष्यति ॥८७॥
कलांशांशेन गच्छ त्वं भारते कमलोद्भवे । पद्मावती सरिद्रूपा तुलसी वृक्षरूपिणी ॥८८॥
कलौ पञ्चसहस्रे च गते वर्षे च मोक्षणम् । युष्माकं सरितां भूयो मद्गृहे चाऽऽगमिष्यथ ॥८९॥

अधिष्ठात्री देवता होकर वहाँ रहूँगी, तो आप मेरा उद्धार कब करेंगे, यह बताने की कृपा करें॥७८॥ सरस्वती के शापवश यदि गंगा भारत में जायगी, तो वह कब शाप-पाप से मुक्त हो कर आपको प्राप्त करेगी॥७९॥ एवं गंगा के शाप से यदि सरस्वती भारत जायगी, तो वह भी कब शाप से मुक्त हो कर आपके चरणों में आएगी? ॥८०॥ हे नाथ! जो आप सरस्वती को ब्रह्मा के यहाँ तथा गंगा को शिव के यहाँ जाने के लिए कह रहे हैं, उसे क्षमा करें॥८१॥ इतना कह कर लक्ष्मी ने विष्णु के चरण पकड़ लिए, उन्हें प्रणाम किया और अपने केसों से भगवान् के चरणों को आवेष्टित कर के बार-बार रोने लगीं॥८२॥ भक्तों पर अनुग्रह करने वाले कमलनाभ भगवान् विष्णु ने लक्ष्मी को अपने वक्षःस्थल से लगा लिया एवं प्रसन्न मुख से मुसकराते हुए कहा॥८३॥

नारायण बोले—हे सुरेश्वरि! मैं तुम्हारी बातें स्वीकार कर रहा हूँ और अपने वचन की भी रक्षा करूँगा। साथ ही तुम तीनों में समता कर दूंगा, अतः सुनो॥८४॥ सरस्वती कलामात्र से नदी बन कर भारत चली जायें, अर्धांश से ब्रह्मा के घर जायँ और पूर्ण अंश से स्वयं मेरे पास रहें॥८५॥ ऐसे ही गंगा भगीरथ के सत्प्रयत्न से अपने कलांश से त्रिलोकी को पवित्र करने के लिए भारत में जायँ और स्वयं पूर्ण अंश से मेरे भवन में रहें॥८६॥ वहाँ चन्द्र-मौलि (शिव) का वह दुर्लभ मस्तक (शिर) भी उन्हें प्राप्त हो जायेगा इससे स्वभावतः पवित्र होती हुई भी गंगा और पवित्र हो जायेंगी॥८७॥ हे कमलोद्भवे! तुम भी अपने अशांश मात्र से भारत में पद्मावती नामक नदी और तुलसी नामक वृक्ष होकर रहो॥८८॥ कलियुग में पाँच सहस्र वर्ष व्यतीत होने पर तुम लोग नदी भाव से मुक्त हो जाओगी। फिर मेरे यहाँ लौट आओगी॥८९॥ हे पद्मे! देहधारियों को सम्पत्ति की प्राप्ति में विपत्ति कारण

संपदां हेतुभूता च विपत्तिः[1] सर्वदेहिनाम्। विना विपत्तेर्महिमा केषां पद्मे भवेद्ध्रुवे ॥९०॥
मन्मन्त्रोपासकानां च सतां स्नानावगाहनात्। युष्माकं मोक्षणं पापात्पापिस्पर्शनहेतुकात् ॥९१॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि सन्त्यसंख्यानि सुन्दरि। भविष्यन्ति च पूतानि मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥९२॥
मन्त्रमन्त्रोपासका भक्ता भ्रमन्ते भारते सति। पूतं कर्तुं भारतं च सुपवित्रां वसुंधराम् ॥९३॥
मद्भक्ता यत्र तिष्ठन्ति पादं प्रक्षालयन्ति च। तत्स्थानं च महातीर्थं सुपवित्रं भवेद्ध्रुवम् ॥९४॥
स्त्रीघ्नो गोघ्नः कृतघ्नश्च ब्रह्मघ्नो गुरुतल्पगः। जीवन्मुक्तो भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥९५॥
एकादशीविहीनश्च संध्याहीनो[2]ऽपि नास्तिकः। नरघाती भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥९६॥
असिजीवी मषीजीवी धावकः शूद्रयाजकः। वृषवाहो भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥९७॥
विश्वासघाती मित्रघ्नो मिथ्यासाक्ष्यप्रदायकः। न्यासहारी भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥९८॥
ऋणग्रस्तो वार्धुषिको जारजः पुंश्चलीपतिः। पूतश्च पुंश्चलीपुत्रो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥९९॥
शूद्राणां सूपकारश्च देवलो ग्रामयाजकः। अदीक्षितो भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥१००॥
अश्वत्थघातकश्चैव मद्भक्तानां च निन्दकः। अनिवेदितभोजी च पूतो मद्भक्तदर्शनात् ॥१०१॥
मातरं पितरं भार्यां भ्रातरं तनयं सुताम्। गुरोः कुलं च भगिनीं वंशहीनं च बान्धवम् ॥१०२॥

होती है, क्योंकि इस संसार में बिना विपत्ति का सामना किए किसी को भी गौरव प्राप्त नहीं होता ॥९०॥ मेरे मन्त्रों की उपासना करने वाले सज्जनों के स्नान करने से तुम पापियों के स्पर्श जन्य पाप से छुटकारा पा जाओगी ॥९१॥ सुन्दरी! भारत में जितने असंख्य तीर्थ हैं, वे सभी मेरे भक्तों के दर्शन-स्पर्शन से पवित्र हो जायँगे ॥९२॥ साध्वी! मेरे मन्त्रों के उपासक भक्त गण भारत देश और पृथ्वी को पवित्र करने के लिए भारत में भ्रमण करते रहते हैं ॥९३॥ मेरे भक्त लोग जहाँ ठहरते हैं और जहाँ चरण प्रक्षालन करते हैं, वह स्थान निश्चित रूप से महातीर्थ होकर अत्यन्त पवित्र हो जाता है ॥९४॥ स्त्री हत्या, गोहत्या और ब्रह्महत्या करने वाला, कृतघ्न एवं गुरुपत्नीगामी भी मेरे भक्तों के दर्शन-स्पर्शन करने से पवित्र होकर जीवन्मुक्त हो जाता है ॥९५॥ एकादशी व्रत विहीन, संध्या न करने वाला, नास्तिक और मनुष्यघाती भी मेरे भक्तों के दर्शन-स्पर्शन से पवित्र हो जाते हैं ॥९६॥ अस्त्र-शस्त्रों से जीविका चलाने वाला, मुनीमी से जीविका चलाने वाला, दौत्य कर्म से जीविका चलाने वाला, शूद्रों को पुजाने वाला तथा बैल जोतने वाला ब्राह्मण भी मेरे भक्तों के दर्शन-स्पर्शन से पवित्र हो जाते हैं ॥९७॥ विश्वासघात करने वाला, मित्र की हत्या करने वाला, झूठी गवाही देने वाला और धरोहर को हड़प जाने वाला व्यक्ति भी मेरे भक्तों के दर्शन-स्पर्शन से शुद्ध हो जाता है, ॥९८॥ ऋणग्रस्त, सूदखोर, वर्णसंकर, पुंश्चली स्त्री का पति और पुंश्चली स्त्री का पुत्र भी मेरे भक्तों के दर्शन-स्पर्शन करने से शुद्ध हो जाता है ॥९९॥ शूद्रों का भण्डारी, मन्दिर का पुजारी, गाँव-गाँव में यज्ञ कराने वाला और दीक्षा रहित मनुष्य मेरे भक्तों के दर्शन- स्पर्शन से शुद्ध हो जाता है ॥१००॥ पीपल के पेड़ को काटने वाला, मेरे भक्तों का निन्दक तथा बिना निमत्रण के भोजन करने वाला भी मेरे भक्तों के दर्शन से शुद्ध हो जाता है ॥१०१॥ नारद! माता-पिता, स्त्री, भ्राता, पुत्री, गुरु के कुल, भगिनी, वंशहीन बन्धु और सास-ससुर की सेवा न करने वाला महापातकी भी मेरे भक्तों के

---

१ क. ०त्तिः कापि दे०। २ क. ०नो ऽप्यनाश्रमी।

श्वश्रूं च श्वशुरं चैव यो न पुष्णाति नारद। स महापातकी पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥१०३॥
देवद्रव्यापहारी च विप्रद्रव्यापहारकः। लाक्षालोहरसानां च विक्रेता[1] दुहितुस्तथा ॥१०४॥
महापातकिनश्चेते शूद्राणां शवदाहकाः। भवेयुरेते पूताश्च मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥१०५॥

लक्ष्मीरुवाच

भक्तानां लक्षणं ब्रूहि भक्तानुग्रहकारक। येषां संदर्शनस्पर्शात्सद्यःपूता नराधमाः ॥१०६॥
हरिभक्तिविहीनाश्च महाहंकारसंयुताः। स्वप्रशंसारता धूर्ताः[2] शठा वै साधुनिन्दकाः ॥१०७॥
पुनन्ति सर्वतीर्थानि येषां स्नानावगाहनात्। येषां च पादरजसा पूता पादोदकान्मही ॥१०८॥
येषां संदर्शनं स्पर्शं देवा वाञ्छन्ति भारते। सर्वेषां परमो लाभो वैष्णवानां समागमः ॥१०९॥
नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः। ते पुनन्त्युरुकालेन विष्णुभक्ताः क्षणादहो ॥११०॥

सौतिरुवाच

महालक्ष्मीवचः श्रुत्वा लक्ष्मीकान्तश्च सस्मितः। निगूढतत्त्वं कथितुमृषिश्रेष्ठोपचक्रमे ॥१११॥

श्रीनारायण उवाच

भक्तानां लक्षणं लक्ष्मि गूढं श्रुतिपुराणयोः। पुण्यस्वरूपं पापघ्नं सुखदं भुक्तिमुक्तिदम् ॥११२॥

दर्शन-स्पर्शन से पवित्र हो जाता है ॥१०२-१०३॥ देवताओं और ब्राह्मणों के द्रव्य का अपहरण करने वाला तथा लाख (लाह), लोह, रस (भस्म) एवं कन्या का विक्रेता और शूद्रों का शव (मुर्दा) जलाने वाले महापातकी भी भी मेरे भक्तों के दर्शन-स्पर्शन से शुद्ध हो जाते हैं ॥१०५॥

लक्ष्मी बोलीं—हे भक्तों पर अनुग्रह करने वाले! आप उन भक्तों के लक्षण बताने की कृपा करें, जिनके दर्शन-स्पर्शन से अधम मनुष्य तुरन्त पवित्र हो जाते हैं ॥१०६॥ क्योंकि विष्णु की भक्ति से रहित, महान् अहंकारी, अपनी प्रशंसा में निमग्न रहने वाले, धूर्त, शठ, साधुओं की निन्दा करने वाले भी आपके भक्तों के दर्शन और स्पर्श से सद्यः पवित्र हो जाते हैं ॥१०७॥ उन भक्तों के नहाने-धोने से समस्त तीर्थ पवित्र होते हैं जिनके चरण-रज और पादोदक से यह पृथ्वी पवित्र हो जाती है ॥१०८॥ भारत में जिनके दर्शन-स्पर्शन के लिए देवता भी लालायित रहते हैं, उन सब वैष्णवों का समागम सभी प्राणियों के लिए परम लाभप्रद है ॥१०९॥ जलमयतीर्थ ही तीर्थ नहीं है और न मृण्मय एवं प्रस्तरमय देवता ही देवता हैं; क्योंकि वे दीर्घकाल तक सेवा करने पर पवित्र करते हैं। अहो! साक्षात् देवता तो विष्णु भक्तों को मानना चाहिए जो क्षण भर में पवित्र कर देते हैं ॥११०॥

सौति बोले—हे ऋषिश्रेष्ठ! महालक्ष्मी की बातें सुन कर लक्ष्मीकान्त विष्णु ने मन्द-मन्द हँसते हुए अत्यन्त गूढ़ तत्त्व को बताना आरम्भ किया ॥१११॥

श्री नारायण बोले—हे लक्ष्मि! भक्तों का लक्षण श्रुतियों और पुराणों में गूढ़ बताया गया है, जो पुण्य रूप, पापनाशक, सुखप्रद और भुक्ति-मुक्ति का प्रदायक है ॥११२॥ यह सारभूत होने के नाते अत्यन्त गोपनीय है,

---

१ क. ०ता लवणस्य च। २ क. ० ताः सगर्वाः सा०।

सारभूतं गोपनीयं न वक्तव्यं खलेषु च। त्वां पवित्रां प्राणतुल्यां कथयामि निशामय ॥११३॥
गुरुवक्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे विशेद्धरः। वदन्ति वेदवेदाङ्गात्तं पवित्रं नरोत्तमम् ॥११४॥
पुरुषाणां शतं पूर्वं पूतं तज्जन्ममात्रतः। स्वर्गस्थं नरकस्थं वा मुक्तिं प्राप्नोति तत्क्षणात् ॥११५॥
यैः कैश्चिद्यत्र वा जन्म लब्धं येषु च जन्तुषु। जीवन्मुक्तास्ते च पूता यान्ति काले हरेः पदम् ॥११६॥
मद्भक्तियुक्तो मत्पूजानियुक्तो मद्गुणान्वितः। मद्गुणश्लाघनीयश्च मन्निविष्टश्च संततम् ॥११७॥
मद्गुणश्रुतिमात्रेण सानन्दः पुलकान्वितः। सगद्गदः साश्रुनेत्रः स्वात्मविस्मृतिरेव च ॥११८॥
न वाञ्छति सुखं मुक्तिं सालोक्यादिचतुष्टयम्। ब्रह्मत्वममरत्वं वा तद्वाञ्छा मम सेवने ॥११९॥
इन्द्रत्वं च मनुत्वं च देवत्वं च सुदुर्लभम्। स्वर्गराज्यादिभोगं च स्वप्नेऽपि नहि वाञ्छति ॥१२०॥
ब्रह्माण्डानि[1] विनश्यन्ति देवा ब्रह्मादयस्तथा। कल्याणभक्तियुक्तश्च मद्भक्तो न प्रणश्यति ॥१२१॥
भ्रमन्ति भारते भक्ता लब्ध्वा जन्म सुदुर्लभम्। तेऽपि यान्ति महीं पूतां कृत्वा तीर्थं ममाऽऽलयम् ॥१२२॥
इत्येतत्कथितं सर्वं कुरु पद्मे यथोचितम्। तदाज्ञाताश्च ताश्चक्रुर्हरिस्तस्थौ सुखासने ॥१२३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० सरस्वत्युपाख्यानं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

दुष्टों से इसकी चर्चा कभी नहीं करनी चाहिए। किन्तु तुम पवित्र एवं प्राणसमान हो, इसीलिए तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ॥११३॥ भगवान् विष्णु का मन्त्र गुरु के मुख से निकलकर जिसके कर्ण विवर में प्रविष्ट होता है, वह वेदवेदांग से भी पवित्र और नरोत्तम कहा जाता है ॥११४॥ उसके जन्ममात्र से उसके सौ पूर्वज शुद्ध हो जाते हैं, और वे स्वर्ग नरक में कहीं भी हों, उसी क्षण उनकी मुक्ति हो जाती है ॥११५॥ यदि उन पूर्वजों में से किन्हीं का कहीं जन्म हो गया हो तो उन्होंने जिस योनि में जन्म पाया है, वहीं उनमें जीवन्मुक्तता आ जाती है और समयानुसार वे परम धाम में चले जाते हैं ॥११६॥ मुझमें भक्ति रखने वाला मनुष्य मेरी पूजा में निरन्तर नियुक्त तथा मेरे गुणानुवाद में तल्लीन रह कर मेरे गुणों की ही प्रशंसा करता है और सतत मेरा ध्यान करता रहता है ॥११७॥ मेरे गुणों को सुनते ही वह आनन्दविभोर होकर पुलकित हो जाता है, और उसकी वाणी गद्गद हो जाती है। उसकी आँखों में आँसू भर आते और वह अपनी सुधि-बुधि खो बैठता है ॥११८॥ वह सुख या सालोक्य आदि चारों प्रकार की मुक्ति नहीं चाहता है, ब्रह्मत्व और अमरत्व भी नहीं चाहता, केवल मेरी सेवा ही करना चाहता है ॥११९॥ इसी प्रकार इन्द्रत्व, मनुत्व, अत्यन्त दुर्लभ देवत्व और स्वर्गराज्यादि के भोग को वह स्वप्न में भी नहीं चाहता है ॥१२०॥ प्रत्येक ब्रह्माण्ड का विनाश हो जाता है एवं ब्रह्मादि देवगण विनष्ट हो जाते हैं; किन्तु मेरी कल्याणकारिणी भक्ति से युक्त मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता है ॥१२१॥ इस प्रकार भारत में अत्यन्त दुर्लभ जन्म ग्रहण कर वे भक्तगण चारों ओर भ्रमण किया करते हैं और पृथिवी तथा तीर्थों को पवित्र करके अन्त में मेरे धाम में पहुँच जाते हैं ॥१२२॥ पद्मे! इस प्रकार मैंने तुम्हें सब सुना दिया। अब तुम्हें जो उचित मालूम पड़े वह करो। अनन्तर भगवान् की आज्ञा शिरोधार्य कर के उन्होंने वैसा ही किया और भगवान् विष्णु अपने सुखासन पर विराजमान हो गए ॥१२३॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के प्रकृतिखण्ड में सरस्वती का उपाख्यान नामक छठा अध्याय समाप्त ॥६॥

---

१ क. ०ण्डादीनि न०

अथ सप्तमोऽध्यायः

नारायण उवाच

पुण्यक्षेत्रे ह्याजगाम भारते सा सरस्वती। गङ्गाशापेन कलया स्वयं तस्थौ हरेः पदम् ॥१॥
भारती भारतं गत्वा ब्राह्मी च ब्रह्मणः प्रिया। वागधिष्ठातृदेवी सा तेन वाणी च कीर्तिता ॥२॥
सर्वं विश्वं परिव्याप्य स्रोतस्येव हि दृश्यते। हरिः सरःसु तस्येयं तेन नाम्ना सरस्वती ॥३॥
सरस्वती नदी सा च तीर्थरूपातिपावनी। पापिपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निस्वरूपिणी ॥४॥
पश्चाद्भगीरथानीता महीं भागीरथी शुभा। समाजगाम कलया वाणीशापेन नारद ॥५॥
तत्रैव समये तां च दधार शिरसा शिवः। वेगं सोढुमशक्ताया भुवः प्रार्थनया विभुः ॥६॥
पद्मा जगाम कलया सा च पद्मावती नदी। भारतं भारती शापात्स्वयं तस्थौ हरेः पदम् ॥७॥
ततोऽन्यया सा कलया चालभज्जन्म भारते। धर्मध्वजसुता लक्ष्मीर्विख्याता तुलसीति च ॥८॥
पुरा सरस्वतीशापात्तत्पश्चाद्धरिशापतः। बभूव वृक्षरूपा सा कलया [1]विश्वपावनी ॥९॥

अध्याय ७

कलियुग-चरित्र, कालमान तथा गोलोक की श्रीकृष्ण-लीला का वर्णन

नारायण बोले—गंगा के शाप के कारण सरस्वती अपनी एक कला से पुण्य क्षेत्र भारत में पधारीं और पूर्ण अंश से स्वयं भगवान् के निकट रहीं ॥१॥ सरस्वती भारत में जाने के कारण भारती ब्रह्मा की प्रिया होने के कारण ब्राह्मी और वाणी को अधिष्ठात्री देवी होने के कारण वाणी नाम से विख्यात हुईं ॥२॥ विष्णु सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त रहते हुए भी सागर के जल-स्रोत में शयन करते देखे जाते हैं। इस प्रकार सरस् (सरोवर या जलस्रोत) से सम्पर्क होने के कारण विष्णु-प्रिया वाणी सरस्वती नाम से विख्यात हुईं ॥३॥ नदी रूप में पधार कर ये सरस्वती परम पावन तीर्थ बन गईं, जो पापियों के पाप रूपी ईंधन को जलाने के लिए प्रज्वलित अग्निरूपा हैं ॥४॥ नारद! तत्पश्चात् सरस्वती के शाप वश गंगा भी अपनी कला से भगीरथ के द्वारा पृथिवी पर पधारीं। इसी से उनका शुभ नाम 'भागीरथी' पड़ा ॥५॥ उसी आगमन-काल में शिव ने उन्हें अपने शिर पर धारण किया था; क्योंकि उनकी यात्रा के वेग को सहन न कर सकने के कारण पृथ्वी ने विभु (शिव) से प्रार्थना की थी ॥६॥ पद्मा (लक्ष्मी) भी सरस्वती के शाप वश अपनी एक कला से भारत में जाकर 'पद्मावती' नामक नदी हुईं और स्वयं संपूर्ण अंश से भगवान् के समीप ही रहीं ॥७॥ तदनन्तर वे अपनी एक दूसरी कला से भारत में धर्मध्वज के यहाँ पुत्री रूप में प्रकट हुईं। उस समय उनका नाम तुलसी पड़ा ॥८॥ पहले सरस्वती के शाप से और पश्चात् भगवान् के शाप से वह विश्वपावनी लक्ष्मी अपनी कला द्वारा 'वृक्ष' रूप में परिणत हो गयीं ॥९॥ भारत में कलि-

---

१ क. ०स्वरूपिणी।

कलौ पञ्चसहस्रं च वर्षं स्थित्वा च भारते। जग्मुस्ताश्च सरिद्रूपं विहाय श्रीहरेः पदम् ॥१०॥
यानि सर्वाणि तीर्थानि काशी वृन्दावनं विना। यास्यन्ति सार्धं ताभिश्च हरेर्वैकुण्ठमाज्ञया ॥११॥
शालग्रामो हरेर्मूर्तिर्जगन्नाथश्च भारतम्। कलेर्दशसहस्रान्ते ययौ त्यक्त्वा हरेः पदम् ॥१२॥
वैष्णवाश्च पुराणानि शङ्खाश्च श्राद्धतर्पणम्। वेदोक्तानि च कर्माणि ययुस्तैः सार्धमेव च ॥१३॥
हरिपूजा हरेर्नाम तत्कीर्तिगुणकीर्तनम्। वेदाङ्गानि च शास्त्राणि ययुस्तैः सार्धमेव च ॥१४॥
सन्तश्च[1] सत्यं धर्मश्च वेदाश्च ग्रामदेवताः। व्रतं तपस्याऽनशनं ययुस्तैः सार्धमेव च ॥१५॥
वामाचाररताः सर्वे मिथ्याकापट्यसंयुताः। तुलसीवर्जिता पूजा भविष्यति ततः परम् ॥१६॥
एकादशीविहीनाश्च सर्वे धर्मविवर्जिताः। हरिप्रसङ्गविमुखा भविष्यन्ति ततः परम् ॥१७॥
शठाः क्रूरा दाम्भिकाश्च महाहंकारसंयुताः। चौराश्च हिंसकाः सर्वे भविष्यन्ति ततः परम् ॥१८॥
पुंसां भेदस्तथा स्त्रीणां विवाहो वादनिर्णयः। स्वस्वामिभेदो वस्तूनां न भविष्यत्यतः परम् ॥१९॥
सर्वे जनाः स्त्रीवशाश्च पुंश्चल्यश्च गृहे गृहे। तर्जनैर्भर्त्सनैः शश्वत्स्वामिनं ताडयन्ति च ॥२०॥
गृहेश्वरी च गृहिणी गृही भृत्याधिकोऽधमः। चेटी भृत्यासमा वध्वः श्वश्रूश्च श्वशुरस्तथा ॥२१॥
कर्तारो बलिनो गेहे योनिसंबन्धिबान्धवाः। विद्यासंबन्धिभिः सार्धं संभाषाऽपि न विद्यते ॥२२॥

युग के पाँच सहस्र वर्ष व्यतीत होने पर वे सभी अपने नदी रूपों का त्याग कर श्रीहरि के धाम में चली जायँगी ॥१०॥ काशी और वृन्दावन के अतिरिक्त अन्य सभी तीर्थगण भी भगवान् की आज्ञा से उन लोगों के साथ वैकुण्ठ चले जायँगे ॥११॥ कलि के दशसहस्र वर्ष के अनन्तर भगवान् की शालग्राम मूर्ति और जगन्नाथ जी भारत छोड़कर विष्णुलोक चले जायंगे ॥१२॥ वैष्णवगण, पुराण, शंख, श्राद्ध, तर्पण और वेदोक्त कर्म भी उनके साथ चले जायँगे ॥१३॥ भगवान् की पूजा, भगवान् का नाम, उनके गुणों का कीर्तन, वेद के छह अंग (शिक्षा, कल्प आदि) एवं शास्त्र उनके साथ चले जायँगे ॥१४॥ सन्त, सत्य, धर्म, वेद, ग्राम के देवता, व्रत, तपस्या और उपवास उन के साथ-साथ चले जायँगे ॥१५॥ (अनन्तर सभी लोग) वाममार्गी शास्त्रविरुद्ध आचरण करने वाले होकर झूठ, और कपट से पूर्ण व्यवहार करेंगे। उसके बाद बिना तुलसी के विष्णु की पूजा होगी ॥१६॥ सभी लोग एकादशी व्रत से रहित,, धर्मशून्य तथा हरि की चर्चा से विमुख होंगे ॥१७॥ मनुष्य शठ, क्रूर, दम्भी (पाखण्डी), महाहंकारी चोर एवं हिंसक होंगे ॥१८॥ स्त्री-पुरुषों में (अधिकार या कार्य का) कोई भेद नहीं रहेगा। विवाह-सम्बन्ध उठ जाएगा। वाद (मुकदमे) का (उचित) निर्णय नहीं होगा। अपने या पराये स्वामी का भेद तथा अपनी परायी वस्तुओं का भेद आगे चलकर नहीं रहेगा ॥१९॥ सभी पुरुष स्त्री के अधीन होकर रहेंगे, घर-घर में स्त्रियाँ पुंश्चली (व्यभिचारिणी) होंगी और निरन्तर अपने स्वामियों की तर्जना-भर्त्सना किया करेंगी ॥२०॥ गृहिणी घर की स्वामिनी बनेगी, पुरुष नौकर से भी अधिक अधम समझा जायगा। अन्य स्त्रियाँ नौकरानी की भाँति रहेंगी। उसी भाँति सास-ससुर भी रहेंगे। घर में जो बलवान् होंगे, उन्हीं को कर्ता-धर्ता माना जाएगा। भाई-बन्धु वे ही माने जायँगे जिनका सम्बन्ध योनि या जन्म को लेकर रहेगा (जैसे पुत्र, भाई आदि)। किन्तु विद्या-सम्बन्ध रखने वाले (गुरुभाई आदि) से

---

१ ख. सत्त्वं च।

यथाऽपरिचिता लोकास्तथा पुंसश्च बान्धवाः। सर्वकर्माक्षमाः पुंसो योषितामाज्ञया विना ॥२३॥
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रा जात्याचारविनिर्णयः। संध्या च यज्ञसूत्रं च भावलुप्तं न संशयः ॥२४॥
म्लेच्छाचारा भविष्यन्ति वर्णाश्चत्वार एव च। म्लेच्छशास्त्रं पठिष्यन्ति स्वशास्त्राणि विहाय ते ॥
ब्रह्मक्षत्रविशां वंशाः शूद्राणां सेवकाः कलौ ॥२५॥
सूपकारा भविष्यन्ति धावका वृषवाहकाः। सत्यहीना जनाः सर्वे सस्यहीना च मेदिनी ॥२६॥
फलहीनाश्च तरवोऽपत्यहीनाश्च योषितः। क्षीरहीनास्तथा गावः क्षीरं सर्पिर्विवर्जितम् ॥२७॥
दम्पती प्रीतिहीनौ च गृहिणः सुखवर्जिताः। प्रतापहीना भूपाश्च प्रजाश्च करपीडिताः ॥२८॥
जलहीना नदा नद्यो दीर्घिकाः कन्दरादयः। धर्महीनाः पुण्यहीना वर्णाश्चत्वार एव च ॥२९॥
लक्षेषु पुण्यवान्कोऽपि न तिष्ठति ततः परम्। कुत्सिता विकृताकारा नरा नार्यश्च बालकाः ॥३०॥
कुवार्ताः कुत्सितपथा भविष्यन्ति ततः परम्। केचिद्ग्रामाश्च नगरा नरशून्या भयानकाः ॥३१॥
केचित्स्वल्पकुटीरेण नरेण च समन्विताः। अरण्यानि भविष्यन्ति ग्रामेषु नगरेषु च ॥३२॥
अरण्यवासिनः सर्वे जनाश्च करपीडिताः। सस्यानि च भविष्यन्ति तडागेषु नदीषु च ॥३३॥
क्षेत्राणि सस्यहीनानि प्रकृष्टान्यर्थतः परम्। हीनाः प्रकृष्टा धनिनो बलदर्पसमन्विताः ॥३४॥

कोई बात भी नहीं करेगा ॥२१-२२॥ अपरिचित लोगों की भाँति भाई-बन्धुओं से लोग व्यवहार करेंगे। पुरुष स्त्री की आज्ञा के बिना कोई काम नहीं करेगा ॥२३॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रवर्ग अपने-अपने जातीय आचार-विचार को छोड़ देंगे। संध्यावंदन और यज्ञोपवीत आदि संस्कार तो बंद ही हो जायँगे, इसमें संशय नहीं ॥२४॥ चारों वर्ण के लोग म्लेच्छाचारी होंगे और अपने शास्त्रों को छोड़कर म्लेच्छों के शास्त्र पढेंगे और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के वंशज कलियुग में शूद्रों के सेवक होंगे ॥२५॥ सभी जाति के लोग भण्डारी होंगे, दूत बनेंगे और बैल पर लादने का काम करेंगे, सत्य से रहित (झूठे) होंगे एवं पृथ्वी भी सस्य (फसल) से हीन होती रहेगी ॥२६॥ वृक्षों में फल नहीं लगेंगे, स्त्रियाँ सन्तानहीन होंगी, गौओं में दूध नहीं होगा और दूध में घी नहीं होगा ॥२७॥ दम्पति (पति पत्नी) में प्रीति नहीं होगी, गृही (गृहस्थ) को सुख नहीं मिलेगा। राजाओं में प्रताप नहीं होगा और प्रजावर्ग कर (मालगुजारी) आदि से पीड़ित रहेगा ॥२८॥ नद, नदी, बावली और झरने आदि जल से शून्य होंगे, तथा चारों वर्ण के लोग धर्महीन और पुण्यहीन होंगे ॥२९॥ लाखों में कोई एक पुण्यवान् होगा, और पुरुष, स्त्री एवं बालक कुत्सित विचार तथा विकृताकार वाले (टेढ़े, लूले) होंगे ॥३०॥ वे बुरी बातें बोला करेंगे तथा कुमार्ग पर चलेंगे। कुछ गाँव और नगर जनरहित होने के कारण भयानक मालूम होंगे ॥३१॥ कुछ में छोटी-छोटी झोंपड़ियों वाले मनुष्य रहेंगे। इस प्रकार ग्राम और नगर अरण्य के समान हो जायंगे ॥३२॥ सभी जंगलनिवासी लोग भी कर से पीड़ित रहेंगे। तालाबों और नदियों में खेती होगी ॥३३॥ खेतों में अच्छी खेती (फसल) नहीं होगी। अच्छी खेती से आमदनी नहीं होगी। नीच उत्तम मानें जायँगे, धनिक वर्ग बलवान् और अहंकारी होंगे ॥३४॥

प्रकृष्टवंशजा हीना भविष्यन्ति कलौ युगे। अलीकवादिनो धूर्ताः शठा वै सत्यवादिनः ॥३५॥
पापिनः पुण्यवन्तश्चाप्यशिष्टः शिष्ट एव च। जितेन्द्रिया लम्पटाश्च पुंश्चल्यश्च पतिव्रताः ॥३६॥
तपस्विनः पातकिनो विष्णुभक्ता अवैष्णवाः। हिंसकाश्च दयायुक्ताश्चौराश्च नरघातिनः ॥३७॥
भिक्षुवेषधरा धूर्ता निन्दन्त्युपहसन्ति च। भूतादिसेवानिपुणा जनानां[1] मोदकारिणः ॥३८॥
पूजितास्ते भविष्यन्ति वञ्चका ज्ञानदुर्बलाः। वामना[2] व्याधियुक्ताश्च नरा नार्यश्च सर्वतः ॥३९॥
अल्पायुषो जरायुक्ता यौवनेषु कलौ युगे। पलिता षोडशे वर्षे महावृद्धास्तु विंशतौ ॥४०॥
अष्टवर्षा च युवती रजोयुक्ता च गर्भिणी। वत्सरान्ते प्रसूता स्त्री षोडशे च जरान्विता ॥४१॥
एताः काश्चित्सहस्रेषु वन्ध्याश्चापि कलौ युगे। कन्याविक्रयिणः सर्वे वर्णाश्चत्वार एव च ॥४२॥
मातृजायावधूनां च जारोपार्जनतत्पराः। कन्यानां भगिनीनां च जारोपार्जनजीविनः ॥४३॥
हरेर्नाम्नां विक्रयिणो भविष्यन्ति कलौ युगे। स्वयमुत्सृज्य दानं च कीर्तिवर्धनहेतवे ॥४४॥
तत्पश्चान्मनसाऽऽलोच्य स्वयमुल्लङ्घयिष्यति। देववृत्तिं ब्रह्मवृत्तिं वृत्तिं गुरुकुलस्य च ॥४५॥
स्वदत्तां परदत्तां वा सर्वमुल्लङ्घयिष्यति। कन्यकागामिनः केचित्केचिच्छ्वश्रूभिगामिनः ॥४६॥

कलियुग में उत्तम वंश वाले नीच काम कर नीच कहलायेंगे। झूठ बोलने वाले, धूर्त, एवं शठ लोग सत्यवादी कहे जायँगे॥३५॥ पापी लोग पुण्यवान् कहे जायँगे, अशिष्ट लोग शिष्ट माने जायंगे। लम्पट पुरुष जितेन्द्रिय कहे जायँगे और पुंश्चली स्त्रियां पतिव्रता कही जायँगी ॥३६॥ पातकी लोग तपस्वी कहे जायँगे, वैष्णव धर्म को मानने वाले लोग विष्णु के भक्त कहे जायँगे। हिंसा करने वाले दयालु कहे जायँगे। चोर लोग मनुष्यों की हत्या करेंगे। ॥३७॥ धूर्त लोग भिक्षु (संन्यासियों) के वेष बनाये चारों ओर निन्दा तथा उपहास करते फिरेंगे। भूत, प्रेत आदि के उपासक चतुर लोग लोकप्रिय कहलायेंगे ॥३८॥ वे ही नाममात्र के ज्ञानी एवं वञ्चक लोग सबसे पूजित होंगे। सब ओर पुरुष तथा स्त्रियाँ बौने तथा रोगी होंगे ॥३९॥ इस भाँति कलियुग में मनुष्य अल्पायु होंगे, युवावस्था में ही उन्हें बुढ़ाई आने लगेगी। सोलहवें वर्ष तक सब बाल पक जायँगे और बीसवें में महावृद्ध हो जायँगे ॥४०॥ स्त्रियाँ आठवें वर्ष में युवती हो जायँगी और उसी अवस्था में मासिक धर्म होने लगेगा एवं वे गर्भिणी भी होने लगेंगी। प्रत्येक वर्ष के अन्त में वे बच्चा पैदा करेंगी और सोलहवें वर्ष तक वृद्धा हो जायँगी ॥४१॥ कलियुग में सहस्रों में कुछ स्त्रियाँ बन्ध्या भी होंगी और चारों वर्ण के लोग कन्या-विक्रय करेंगे ॥४२॥ माता, स्त्री, बहू सभी जार (उपपति) से जीविका प्राप्त करने में तत्पर रहेंगी। पुरुष कन्याओं एवं भगिनियों के जार पति द्वारा अपनी जीविका चलायेंगे ॥४३॥ लोग कलियुग में भगवान् के नाम का विक्रय करेंगे और अपनी कीर्ति बढ़ाने के निमित्त स्वयं वस्तु का दान करेंगे ॥४४॥ किन्तु पश्चात् मन में सोचकर उसको वापस ले लेंगे। देववृत्ति, ब्राह्मणवृत्ति, अथवा गुरुकुल वृत्ति—चाहे वह अपनी दी हुई हो अथवा दूसरे की—कलि के मानव उसे छीन लेंगे। कलियुग में कोई व्यक्ति कन्यागामी, कोई श्वश्रूगामी, कोई वधूगामी और कोई सर्वगामी होंगे। कोई भगिनीगामी, कोई सौतेली मां

---

१ ० नानामपकारिणः० । २ क. ०ना ज्ञानयु० ।

केचिद्वधूगामिनश्च केचित्सर्वत्रगामिनः। भगिनीगामिनः केचित्सपत्नीमातृगामिनः ॥४७॥
भ्रातृजायागामिनश्च भविष्यन्ति कलौ युगे। अगम्यागमनं चैव करिष्यन्ति गृहे गृहे ॥४८॥
आत्मयोनिं परित्यज्य विहरिष्यन्ति सर्वतः। पत्नीनां निर्णयो नास्ति भर्तृणां च कलौ युगे ॥४९॥
प्रजानां चैव वस्तूनां ग्रामाणां च विशेषतः। अलीकवादिनः सर्वे सर्वे चौर्यार्थिलम्पटाः ॥५०॥
परस्परं हिंसकाश्च सर्वे च नरघातिनः। ब्रह्मक्षत्रविशां वंशा भविष्यन्ति च पापिनः ॥५१॥
लाक्षालोहरसानां च व्यापारं लवणस्य च। वृषवाहा विप्रवंशाः शूद्राणां शवदाहिनः ॥५२॥
शूद्रान्नभोजिनः सर्वे सर्वे च वृषलीरताः। पञ्चपर्वपरित्यक्ताः कुहूरात्रिषु भोजिनः ॥५३॥
यज्ञसूत्रविहीनाश्च संध्याशौचविहीनकाः ॥५४॥
पुंश्चली वार्धुषाऽवीरा कुट्टिनी च रजस्वला। विप्राणां रन्धनागारे भविष्यन्ति च पाचिकाः ॥५५॥
अन्नानां निर्णयो[1] नास्ति योनीनां च विशेषतः। आश्रमाणां जनानां च सर्वे म्लेच्छाः कलौ युगे ॥५६॥
एवं कलौ संप्रवृत्ते सर्वे म्लेच्छमया भवे। हस्तप्रमाणे वृक्षे चाङ्गुष्ठमाने च मानवे ॥५७॥
विप्रस्य विष्णुयशसः पुत्रः कल्की भविष्यति। नारायणकलांशश्च भगवान्बलिनां बली ॥५८॥
दीर्घेण करवालेन दीर्घघोटकवाहनः। म्लेच्छशून्यां च पृथिवीं त्रिरात्रेण करिष्यति ॥५९॥

के साथ गमन करने वाले और कोई भाई की स्त्री के साथ गमन करने वाले होंगे। घर-घर में लोग अगम्या स्त्री के साथ गमन करेंगे ॥४५-४८॥ केवल अपनी योनि (माता) को छोड़कर सभी स्त्रियों के साथ विहार करेंगे। इसलिए कलियुग में पत्नियों और पतियों का निर्णय नहीं हो सकेगा (अर्थात् सभी स्त्री-पुरुषों में अवैध व्यवहार होंगे) ॥४९॥ प्रजा किन्हीं ग्रामों और धनों पर अपना पूर्ण अधिकार नहीं प्राप्त कर सकेगी। प्रायः सब निष्प्रयोजन झूठ बोलेंगे। सभी चोर और लम्पट होंगे ॥५०॥ सभी एक-दूसरे की हिंसा करेंगे और मनुष्यघाती होंगे। ब्राह्मण क्षत्रिय, एवं वैश्य—सबके वंशज पाप कर्म करेंगे ॥५१॥ ब्राह्मणों के वंशज लाह, लोहा, रस और नमक के व्यापार करेंगे, बैलों पर लादने का कार्य करेंगे एवं शूद्रों के शव जलायेंगे ॥५२॥ सभी लोग शूद्रों के अन्न खायँगे और शूद्र की स्त्रियों के साथ रमण करेंगे। विप्र पंचयज्ञ नहीं करेंगे और अमावस्या की रात्रि में भोजन भी करेंगे ॥५३॥ यज्ञोपवीत का त्याग कर संध्या वंदन और शौच कर्म से विहीन होंगे ॥५४॥ पुंश्चली, सूदखोर, पति-पुत्रहीन, कुटनी एवं रजस्वला स्त्री ब्राह्मणों के भोजनालय में भोजन बनाने का काम करेंगी ॥५५॥ अन्नों में, स्त्रियों में और आश्रमवासी मनुष्यों में कोई नियम नहीं रहेगा। कलियुग में सभी मलेच्छ हो जायँगे ॥५६॥ इस प्रकार घोर कलियुग के आ जाने पर संसार में सभी म्लेच्छ हो जायँगे। उस समय एक हाथ के वृक्ष होंगे और अंगूठे के बराबर मनुष्य होंगे ॥५७॥ तब विष्णुयशा नामक ब्राह्मण के यहाँ नारायण की कला के अंश से महाबली कल्की भगवान् पुत्ररूप में प्रकट होंगे ॥५८॥ वे एक बहुत ऊँचे घोड़े पर बैठकर लम्बी तलवार से तीन रात में ही पृथ्वी को म्लेच्छों से शून्य कर देंगे ॥५९॥ इस भाँति पृथिवी को म्लेच्छ-रहित करके वे स्वयं अन्तर्धान हो जायँगे। उस समय समस्त

---

१. क. नियमो।

निर्म्लेच्छां वसुधां कृत्वा चान्तर्धानं करिष्यति। अराजका च वसुधा दस्युग्रस्ता भविष्यति॥६०॥
स्थूलप्रमाणं षड्रात्रं वर्षाधाराप्लुता मही। लोकशून्या वृक्षशून्या गृहशून्या भविष्यति॥६१॥
ततश्च द्वादशादित्याः करिष्यन्त्युदयं मुने। प्राप्नोति शुष्कतां पृथ्वी समा तेषां च तेजसा॥६२॥
कलौ गते च दुर्धर्षे संप्रवृत्ते कृते युगे। तपःसत्यसमायुक्तो धर्मः पूर्णो भविष्यति॥६३॥
तपस्विनश्च धर्मिष्ठा वेदज्ञा ब्राह्मणा भुवि। पतिव्रताश्च धर्मिष्ठा योषितश्च गृहे गृहे॥६४॥
राजानः क्षत्रियाः सर्वे विप्रभक्ताः स्वधर्मिणः[1]। प्रतापवन्तो धर्मिष्ठाः पुण्यकर्मरताः सदा॥६५॥
वैश्या वाणिज्यनिरता विप्रभक्ताश्च धार्मिकाः। शूद्राश्च पुण्यशीलाश्च धर्मिष्ठा विप्रसेविनः॥६६॥
विप्रक्षत्रविशां वंशा विष्णुयज्ञपरायणाः। विष्णुमन्त्ररताः सर्वे विष्णुभक्ताश्च वैष्णवाः॥६७॥
श्रुतिस्मृतिपुराणज्ञा धर्मज्ञा ऋतुगामिनः। लेशो नास्ति ह्यधर्माणां धर्मपूर्णे कृते युगे॥६८॥
धर्मस्त्रिपाच्च त्रेतायां द्विपाच्च द्वापरे स्मृतः। कलौ प्रवृत्ते पादात्मा सर्वलोपस्ततः परम्॥६९॥
वाराः सप्त यथा विप्र तिथयः षोडश स्मृताः। यथा द्वादश मासाश्च ऋतवश्च षडेव हि॥७०॥
द्वौ पक्षौ चायने द्वे च चतुर्भिः प्रहरैर्दिनम्। चतुर्भिः प्रहरै रात्रिर्मासस्त्रिंशद्दिनैस्तथा॥७१॥
वर्षः पञ्चविधो ज्ञेयः कालसंख्यां निबोध मे। यथा चाऽऽयान्ति यान्त्येव तथा युगचतुष्टयम्॥७२॥

पृथिवी पर अराजकता फैल जाएगी और चारों ओर चोर-डाकुओं का उपद्रव बढ़ जायगा॥६०॥ पश्चात् छह रात्रि तक मोटी धार से इतनी वर्षा होगी कि पृथ्वी पर जल ही जल दिखाई देगा। प्राणी, वृक्ष तथा घर कुछ भी नहीं दिखाई पड़ेगा। इसके बाद एक साथ बारह आदित्य उदय होकर अपने तेज से इस पृथ्वी को सुखा डालेंगे॥६२॥

यों होने पर दुर्धर्ष कलियुग समाप्त हो जाएगा और कृतयुग का आरम्भ होगा, जिसमें तप और सत्य से युक्त धर्म का पूर्णरूप से प्राकट्य होगा॥६३॥ उस समय भूतल पर ब्राह्मण लोग तपस्वी, अत्यन्त धार्मिक और वेदज्ञाता होंगे तथा घर-घर में स्त्रियाँ अत्यन्त धार्मिक और पतिव्रता होंगी॥६४॥ क्षत्रिय राजा होंगे। वे सभी अपने धर्मों के पालन करने वाले, ब्राह्मण के भक्त, प्रतापी, धर्मिष्ठ एवं सदा पुण्य कर्म से निरत रहने वाले होंगे॥६५॥ वैश्य व्यापार कर्म में संलग्न रहकर ब्राह्मणों के भक्त तथा धार्मिक होंगे। उसी प्रकार शूद्र भी पुण्य स्वभाव वाले धर्मिष्ठ होकर ब्राह्मणों के सेवक होंगे॥६६॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वंश वाले विष्णु-यज्ञ का अनुष्ठान करते रहेंगे। वे वैष्णव, भगवान् विष्णु के मन्त्र की उपासना में संलग्न और विष्णु के भक्त होंगे॥६७॥ वे श्रुतियों, स्मृतियों और पुराणों के ज्ञाता, धर्म के वेत्ता तथा ऋतुकाल में स्त्री-प्रसंग करने वाले होंगे। इस प्रकार धर्मपूर्ण उस कृतयुग में अधर्म का लेश भी नहीं रहेगा॥६८॥ धर्म त्रेतायुग में तीन पैर से, द्वापर में दो पैर से और कलियुग में एक पैर से रहता है। अनन्तर समस्त का लोप हो जाता है॥६९॥ विप्र! जिस प्रकार सात दिन, सोलह तिथियाँ और बारह मास बताये गये हैं उसी भाँति छह ऋतुएँ भी होती हैं॥७०॥ (मास में) दो पक्ष, (वर्ष में) दो अयन, चार पहर का दिन, चार पहर की रात्रि और तीस दिन का मास होता है॥७१॥ वर्ष पाँच प्रकार का होता है। अब तुम्हें काल की संख्या बता रहा हूँ, जिस प्रकार दिन आते-जाते रहते हैं उसी प्रकार चारों युग आते-जाते रहते हैं॥७२॥ मनु-

---

१ क. सुध०।

वर्षे पूर्णे नराणां च देवानां च दिवानिशम्। शतत्रये षष्टयधिके नराणां च युगे गते॥
देवानां च युगो ज्ञेयः कालसंख्याविदां मतः ॥७३॥
मन्वन्तरं तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः। मन्वन्तरसमं ज्ञेयं चेन्द्रायुः परिकीर्तितम् ॥७४॥
अष्टाविंशतिमे चेन्द्रे गते ब्राह्मं दिवानिशम्। अष्टोत्तरे वर्षशते गते पातो विधेर्भवेत् ॥७५॥
प्रलयः प्राकृतो ज्ञेयस्तत्रादृष्टा वसुंधरा। जलप्लुतानि विश्वानि ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥७६॥
ऋषयो जीविनः सर्वे लीनाः कृष्णे परात्परे। तत्रैव प्रकृतिर्लीना तेन प्राकृतिको लयः ॥७७॥
लये प्राकृतिकेऽतीते पाते च ब्रह्मणो मुने। निमेषमात्रः कालश्च कृष्णस्य परमात्मनः ॥७८॥
एवं नश्यन्ति सर्वाणि ब्रह्माण्डान्यखिलानि च। स्थितौ गोलोकवैकुण्ठौ श्रीकृष्णश्च सपार्षदः ॥७९॥
निमेषमात्रः प्रलयो यत्र विश्वं जलप्लुतम्। निमेषानन्तरे काले पुनः सृष्टिः क्रमेण च ॥८०॥
एवं कतिविधा सृष्टिर्लयः कतिविधोऽपि वा। कतिकृत्वो गतायातः संख्यां जानाति कः पुमान् ॥८१॥
सृष्टीनां च लयानां च ब्रह्माण्डानां च नारद। ब्रह्मादीनां च विध्यण्डे संख्यां जानाति कः पुमान् ॥८२॥
ब्रह्माण्डानां च सर्वेषामीश्वरश्चैक एव सः। सर्वेषां परमात्मा च श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः ॥८३॥
ब्रह्मादयश्च तस्यांशास्तस्यांशश्च महाविराट्। तस्यांशश्च विराट् क्षुद्रस्तस्यांशा प्रकृतिः स्मृता ॥८४॥

ष्यों के एक वर्ष पूरा होने पर देवों का एक दिन-रात होता है। काल-संख्या वेत्ताओं के मत में मनुष्यों के तीन सौ साठ युगों के व्यतीत होने पर देवों का 'एक युग' होता है ॥७३॥ दिव्य एकहत्तर युगों का एक मन्वन्तर होता है। और मन्वन्तर के समान ही इन्द्र की आयु होती है ॥७४॥ इस प्रकार अट्ठाईस इन्द्र के गत होने पर 'ब्रह्मा का एक दिन-रात होता है। इस प्रकार के एक सौ आठ वर्ष बीत जाने पर ब्रह्मा की आयु पूरी होती है ॥७५॥ उसे ही 'प्राकृत प्रलय' जानना चाहिए। उस समय पृथिवी अदृश्य रहती है और सारा विश्व जल में लीन हो जाता है। ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि देवता, ऋषिगण तथा समस्त जीवगण परात्पर भगवान् श्रीकृष्ण में विलीन हो जाते हैं और प्रकृति भी उन्हीं में लीन होती है। इसीलिए यह 'प्राकृतिक लय, कहा जाता है ॥७६-७७॥

मुने! ब्रह्मा के पतन रूप उस प्राकृतिक लय के व्यतीत होने पर परमात्मा कृष्ण का एक निमेष काल (पलक भाँजना) होता है ॥७८॥ इस प्रकार अखिल ब्रह्माण्ड का नाश हो जाता है, किन्तु गोलोक और वैकुण्ठ-लोक तथा पार्षदों समेत भगवान् श्रीकृष्ण पूर्ववत् विराजमान रहते हैं ॥७९॥ उनके निमेष मात्र काल में प्रलय होता है—सारा विश्व जलमग्न हो जाता है और निमेष के अनन्तर क्रमशः पुनः सृष्टि का क्रम चालू हो जाता है। ॥८०॥ इस प्रकार कितने बार सृष्टि हुई तथा कितने बार प्रलय हुआ, और कितने कल्प गये और आये, इसकी संख्या कौन पुरुष जान सकता है ॥८१॥ नारद! सृष्टियों, प्रलयों और ब्रह्माण्डों तथा ब्रह्माण्डों के भीतर रहने वाले ब्रह्मा आदि की संख्या कौन पुरुष जान सकता है ॥८२॥ परमात्मा श्रीकृष्ण ही सभी ब्रह्माण्डों के मात्र ईश्वर और वही सबके परमात्मा हैं तथा प्रकृति से परे हैं ॥८३॥ ब्रह्मा आदि देवता, महाविराट् और क्षुद्र विराट्—सब उसी परमात्मा के अंश हैं और प्रकृति भी उन्हीं का अंश है ॥८४॥ वही भगवान् श्रीकृष्ण दो रूपों में विभक्त

स च कृष्णो द्विधाभूतो द्विभुजश्च चतुर्भुजः । चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे गोलोके द्विभुजः स्वयम् ॥८५॥
ब्रह्मादितृणपर्यन्तं सर्वं प्राकृतिकं भवेत् । यद्यत्प्राकृतिकं सृष्टं सर्वं नश्वरमेव च ॥८६॥
विद्ध्येकं सृष्टिमूलं तत्सत्यं नित्यं सनातनम् । स्वेच्छामयं परं ब्रह्म निर्लिप्तं निर्गुणं परम् ॥८७॥
निरुपाधि निराकारं भक्तानुग्रहविग्रहम् । अतीव कमनीयं च नवीननीरदप्रभम् ॥८८॥
द्विभुजं मुरलीहस्तं गोपवेषं किशोरकम् । सर्वज्ञं सर्वसेव्यं च परमात्मानमीश्वरम् ॥८९॥
करोति धाता ब्रह्माण्डं ज्ञानात्मा कमलोद्भवः । शिवो मृत्युंजयश्चैव संहर्ता सर्वतत्त्ववित् ॥९०॥
यस्य ज्ञानाद्यत्तपसा सर्वेशस्तत्समो महान् । महाविभूतियुक्तश्च सर्वज्ञः सर्वदः स्वयम् ॥९१॥
सर्वव्यापी सर्वपाता प्रदाता सर्वसंपदाम् । विष्णुः सर्वेश्वरः श्रीमान्यस्य ज्ञानाज्जगत्पतिः ॥९२॥
महामाया च प्रकृतिः सर्वशक्तिमतीश्वरी । यज्ज्ञानाद्यस्य तपसा यद्भक्त्या यस्य सेवया ॥९३॥
सावित्री वेदमाता च वेदाधिष्ठातृदेवता । पूज्या द्विजानां वेदज्ञा यज्ज्ञानाद्यस्य सेवया ॥९४॥
सर्वविद्याधिदेवी सा पूज्या च विदुषां पुरा । यत्सेवया यत्तपसा यस्य ज्ञानात्सरस्वती ॥९५॥
यत्सेवया यत्तपसा प्रदात्री सर्वसंपदाम् । [1]धनदस्याधिदेवी सा महालक्ष्मीः सनातनी ॥९६॥

हो गए—एक द्विभुज और दूसरे चतुर्भुज। चतुर्भुज विष्णु वकुण्ठ में विराजते हैं और द्विभुज स्वयं श्रीकृष्ण गोलोक में निवास करते हैं ॥८५॥ ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त समस्त चराचर प्राकृतिक कहे जाते हैं। जो-जो प्राकृतिक हैं, वे सब नश्वर हैं ॥८६॥ सभी सृष्टियों का मूल कारण वही एक श्रीकृष्ण हैं जो सत्य, नित्य, सनातन, स्वेच्छामय परब्रह्म, निर्लिप्त, निर्गुण, प्रकृति से परे, उपाधिशून्य तथा निराकार हैं; फिर भी भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए वे शरीर धारण करते हैं। वे अत्यन्त कमनीय हैं। उनकी अंगकान्ति नूतन जलधर के समान है ॥८७-८८॥ उनके दो भुजाएँ हैं, हाथ में मुरली है, गोप जैसा वेश तथा किशोरावस्था है। सबके ज्ञाता, सबके सेव्य, परमात्मा एवं ईश्वर हैं ॥८९॥ उनके नाभिकमल से उत्पन्न होकर ज्ञानत्मा ब्रह्मा ब्रह्माण्ड की रचना करते हैं और समस्त तत्त्वों के वेत्ता एवं मृत्यु को जीतने वाले शिव (सृष्टि) संहार का कार्य करते हैं। उन्हीं के दिये ज्ञान से तथा उन्हीं के लिए किये गये तप के प्रभाव से वे उनके समान ही महान् एवं सर्वेश्वर हुए हैं। उन परमात्मा श्रीकृष्ण के ज्ञान के प्रभाव से ही भगवान् विष्णु महान् विभूति से सम्पन्न, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, सर्वव्यापी, सब के रक्षक, सम्पूर्ण सम्पत्ति प्रदान करने में समर्थ, सर्वेश्वर तथा समस्त जगत् के अधिपति हुए हैं ॥९०-९२॥ उन्हीं के ज्ञान, तप, भक्ति और सेवा द्वारा प्रकृति समस्त शक्तिमती महामाया और ईश्वरी हुई हैं ॥९३॥ उन्हीं के ज्ञान और सेवा करने से माता सावित्री वेदों की अधिष्ठात्री देवी और द्विजों की पूज्या हुई हैं ॥९४॥ उन्हीं की सेवा, तप और ज्ञान से सरस्वती समस्त विद्याओं की अधिदेवी और विद्वानों की पूज्या हुई हैं ॥९५॥ उन्हीं की सेवा और तप करके सनातनी महालक्ष्मी समस्त सम्पत्ति की प्रदात्री और धन-धान्य की अधिष्ठात्री देवी हुई हैं ॥९६॥ उन्हीं की सेवा के

---

१ ख. नसस्या० ।

यत्सेवया यत्तपसा सर्वविश्वेषु पूजिता। सर्वज्ञानाधिदेवी[1] सा सर्वसंपत्प्रदायिनी ॥९७॥
सर्वेश्वरी सर्ववन्द्या सर्वेशं प्राप या पतिम्। सर्वस्तुता च सर्वज्ञा दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥९८॥
कृष्णवामांशसंभूता कृष्णप्राणाधिदेवता। [2]कृष्णप्राणाधिका प्रेम्णा राधिका कृष्णसेवया ॥९९॥
सर्वाधिकं च रूपं च सौभाग्यं मानगौरवम्। कृष्णवक्षःस्थलस्थानं पत्नीत्वं प्राप सेवया ॥१००॥
तपश्चकार सा पूर्वं शतशृङ्गे च पर्वते। दिव्यं युगसहस्रं च निराहाराऽतिकर्शिता ॥१०१॥
कृशां निःश्वासरहितां दृष्ट्वाचन्द्रकलोपमाम्। कृष्णो वक्षःस्थले कृत्वा रुरोद कृपया विभुः ॥१०२॥
वरं तस्यै ददौ सारं सर्वेषामपि दुर्लभम्। मम वक्षःस्थले तिष्ठ मयि ते भक्तिरस्त्विति ॥१०३॥
सौभाग्येन च मानेन प्रेम्णा वै गौरवेण च। त्वं मे श्रेष्ठा[3] परं प्रेम्णा ज्येष्ठा त्वं सर्वयोषिताम् ॥१०४॥
वरिष्ठा च गरिष्ठा च संस्तुता पूजिता मया। सततं तव साम्योऽहं राध्यश्च प्राणवल्लभे ॥१०५॥
इत्युक्त्वा जगतां नाथश्चक्रे तच्चेतनां ततः। सपत्नीरहितां तां च चकार प्राणवल्लभाम् ॥१०६॥
अन्या[4] या याश्च देव्यो वै पूजितास्तस्य सेवया। तपस्या यादृशी यासां तासां तादृक्फलं मुने ॥१०७॥

तथा तप के प्रभाव से दुर्गा समस्त विश्व में पूजित, सम्पूर्ण ज्ञान की अधीश्वरी, समस्त सम्पत्तियों को देने वाली, सबकी ईश्वरी, सबकी वन्द्या, सर्वाधीश्वर (शिव) को पति के रूप में प्राप्त करने वाली, सबकी स्तुत्य, सर्वज्ञ एवं भयंकर पीड़ा को मिटाने वाली हैं॥९७-९८॥ उन्हीं भगवान् श्रीकृष्ण के बाँयें भाग से उत्पन्न होने वाली राधिका ने भी, जो प्रेम के कारण उनके प्राणों की अधिदेवी हैं तथा उन्हें प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं, उनकी सेवा के प्रभाव से सर्वाधिक सौन्दर्य, सौभाग्य, मान और गौरव के साथ उनके वक्षःस्थल पर अपना स्थान तथा उनका पत्नीत्व प्राप्त किया है॥९९-१००॥ राधा ने पूर्वकाल में शतशृङ्ग पर्वत पर दिव्य सहस्र युगों तक तप किया था, जिसमें निराहार रहने के कारण वे अत्यन्त कृशकाय हो गयी थीं॥१०१॥ तब उन्हें कृश, श्वास-रहित, चन्द्र की (एक) कला की भाँति (सूक्ष्म) देखकर विभु भगवान् कृष्ण उन्हें अपने वक्षःस्थल से लगाकर करुणावश रोने लगे॥१०२॥ फिर उन्होंने राधा को सर्वदुर्लभ सारभूत वर प्रदान किया। वे बोले—'प्राणवल्लभे' तुम मेरे वक्षःस्थल पर सदैव रहो और मुझमें तुम्हारी भक्ति हो॥१०३॥ सौभाग्य, मान, प्रेम, एवं गौरव के द्वारा तुम मेरी श्रेष्ठा तथा अत्यन्त प्रेम के कारण सभी स्त्रियों में ज्येष्ठा पत्नी बनो॥१०४॥ तुम सबसे अधिक महत्त्व तथा गौरव प्राप्त करो मैं सदा तुम्हारी स्तुति करूँगा, पूजा करूँगा। तुम सदा मुझे अपने अधीन समझो। मैं तुम्हारी आज्ञा का पालन करने के लिए बाध्य रहूँगा' ॥१०५॥ इतना कहकर जगत् के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण ने उन्हें सचेत किया और अपनी उन प्राणवल्लभा को सपत्नी के कष्ट से मुक्त कर दिया॥१०६॥ जिन-जिन देवताओं की जो-जो देवियाँ पति द्वारा सम्मानित हुई हैं, उनके उस सम्मान में श्रीकृष्ण की आराधना ही कारण है। मुने! जिनकी जैसी तपस्या है, उन्हें

---

१ ख. र्वग्रामाधि० । २ ख. ०ष्णप्रेमाधि० । ३ क. ०ष्ठा च प्रेष्ठा च प्रेयसी स० ।४ ख. येषां या।

दिव्यं वर्षसहस्रं च तपस्तप्त्वा हिमालये। दुर्गा च तत्पदं ध्यात्वा सर्वपूज्या बभूव ह॥१०८॥
सरस्वती तपस्तप्त्वा पर्वते गन्धमादने। लक्षवर्षं च दिव्यं च सर्ववन्द्या बभूव सा॥१०९॥
लक्ष्मीर्युगशतं दिव्यं तपस्तप्त्वा च पुष्करे। सर्वसंपत्प्रदात्री सा चाभवत्तस्य सेवया॥११०॥
सावित्री मलये तप्त्वा द्विजपूज्या बभूव सा। षष्टिवर्षसहस्रं च दिव्यं ध्यात्वा च तत्पदम्॥१११॥
शतमन्वन्तरं तप्तं शंकरेण पुरा विभो। शतमन्वन्तरं चैव ब्रह्मणा तस्य भक्तितः॥११२॥
शतमन्वन्तरं विष्णुस्तप्त्वा पाता बभूव ह। शतमन्वन्तरं धर्मस्तप्त्वा पूज्यो बभूव ह॥११३॥
मन्वन्तरं तपस्तेपे शेषो भक्त्या च नारद। मन्वन्तरं च सूर्यश्च शक्रश्चन्द्रस्तथा गुरुः॥११४॥
दिव्यं शतयुगं चैव वायुस्तप्त्वा च भक्तितः। सर्वप्राणः सर्वपूज्यः सर्वाधारो बभूव सः॥११५॥
एवं कृष्णस्य तपसा सर्वे देवाश्च पूजिताः। मुनयो मानवा भूपा ब्राह्मणाश्चैव पूजिताः॥११६॥
एवं ते कथितं सर्वं पुराणं च यथागमम्। गुरुवक्त्राद्यथा ज्ञातं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥११७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० युगतन्माहात्म्यमन्वन्तरकालेश्वर-
गुणनिरूपणं नाम सप्तमोऽध्यायः॥७॥

वैसा ही फल प्राप्त हुआ है॥१०७॥ जैसे हिमालय पर्वत पर दुर्गा जी दिव्य सहस्र वर्षों तक तप और उनके चरणों के ध्यान करने के कारण सर्वपूज्या हो गईं॥१०८॥ सरस्वती गन्धमादन पर्वत पर एक लाख दिव्य वर्षों तक तप कर के सब की वन्द्या हुई हैं॥१०९॥ लक्ष्मी पुष्कर क्षेत्र में दिव्य सौ युगों तक तप कर के उनकी सेवा के प्रभाव से समस्त सम्पत्तियों को प्रदान करने वाली हुई हैं॥११०॥ सावित्री मलयाचल पर दिव्य साठ सहस्र वर्षों तक तप और उनके चरणों का ध्यान कर के द्विजों की पूज्या हुई हैं॥१११॥ विभो! पूर्व काल में शंकर ने और ब्रह्मा ने सौ मन्वन्तरों के समय तक भक्तिपूर्वक तप किया था। तथा उतने ही दिन विष्णु भी तप करके समस्त चराचर के रक्षक बने। सौ मन्वन्तरों तक तप कर के धर्म पूज्य हुए॥११२-११३॥ नारद! एक मन्वन्तर के समय तक शेष, सूर्य, इन्द्र, चन्द्रमा और बृहस्पति ने भक्तिपूर्वक तप किया था॥११४॥ वायु दिव्य सौ युगों तक भक्तिपूर्वक तप कर के सब के प्राण, सब के पूज्य और सब के आधार हुए हैं॥११५। इसी भाँति भगवान् कृष्ण का तप करके समस्त देवगण, मुनिगण, मनुष्यवृन्द, राजा लोग और ब्राह्मणगण पूजित हुए हैं॥११६॥ इस प्रकार मैंने पुराण और आगम का सारभूत तत्त्व गुरुजी के मुख से जैसा सुना था, वैसा तुम्हें बता दिया, अब और क्या सुनना चाहते हो॥११७॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के प्रकृतिखण्ड में युग, युग-माहात्म्य, मन्वन्तरकाल और ईश्वर-गुण-
निरूपण नामक सातवाँ अध्याय समाप्त॥७॥

अथाष्टमोऽध्यायः

नारद उवाच

हरेर्निमेषमात्रेण ब्रह्मणः पात एव च। तस्य पाते प्राकृतिकः प्रलयः परिकीर्तितः ॥१॥
प्रलये प्राकृते चोक्तं तत्रादृष्टा वसुंधरा। जलप्लुतानि विश्वानि सर्वे लीना हराविति ॥२॥
वसुंधरा तिरोभूता कुत्र वा तत्र तिष्ठति। सृष्टेर्विधानसमये साऽऽविर्भूता कथं पुनः ॥३॥
कथं बभूव सा धन्या मान्या सर्वाश्रया जया। तस्याश्च जन्मविस्तारं वद मङ्गलकारणम् ॥४॥

श्रीनारायण उवाच

सर्वादिसृष्टौ सर्वेषां जन्म कृष्णादिति श्रुतिः। आविर्भावस्तिरोभावः सर्वेषु प्रलयेषु च ॥५॥
श्रूयतां वसुधाजन्म सर्वमङ्गलमङ्गलम्। विघ्ननिघ्नं परं पापनाशनं पुण्यवर्धनम् ॥६॥
अहो केचिद्वदन्तीति मधुकैटभमेदसा। बभूव वसुधा धन्या तद्विरुद्धमतं शृणु ॥७॥
ऊचतुस्तौ पुरा विष्णुं तुष्टौ युद्धेन तेजसा। आवां जहि न यत्रोर्वी पयसा संवृतेति च ॥८॥
तयोर्जीवनकाले न प्रत्यक्षा च भवेत्स्फुटम्। ततो बभूव मेदश्च मरणानन्तरं तयोः ॥९॥

अध्याय ८

पृथ्वी का उपाख्यान

श्रीनारद बोले––भगवान् के निमेष (पलक भाँजने) मात्र से ब्रह्मा का पात (अन्त) होता है और उनका अन्त होना प्राकृतिक प्रलय कहा जाता है ॥१॥ उस प्राकृत प्रलय में यह वसुन्धरा पृथिवी (जल में) अदृश्य हो जाती है और समस्त विश्व जलमग्न रहता है, इस प्रकार सब कुछ भगवान् श्रीकृष्ण में विलीन हो जाता है ॥२॥ तो, यह पृथिवी अदृश्य होकर कहाँ रहती है और सृष्टि के आरम्भ में पुनः कैसे प्रकट हो जाती है? धन्या, मान्या, सब की आश्रयरूपा एवं विजयशालिनी होने का सौभाग्य उसे पुनः कैसे प्राप्त होता है? आप कृपया पृथ्वी के मंगलमय चरित्र को विस्तार से बताने की कृपा करें॥३-४॥

श्रीनारायण बोले––सम्पूर्ण सृष्टि के प्रारम्भ में भगवान् कृष्ण से सब की उत्पत्ति होती है और समस्त प्रलयों के अवसर पर प्राणी उन्हीं में लीन भी हो जाते हैं, ऐसा श्रुति कहती है ॥५॥ अब पृथ्वी के जन्म का प्रसंग सुनो, जो समस्त मंगलों का मंगल, विघ्ननाशक, उत्तम, पापनाशक एवं पुण्यवर्द्धक है ॥६॥ कुछ लोगों का कहना है कि यह पृथ्वी मधु-कैटभ नामक दैत्य के मेद से उत्पन्न हुई, जो पूर्वोक्त मत से विरुद्ध है। इसका आख्यान सुनो ॥७॥

प्राचीन काल में उन दोनों (मधु, कैटभ) दैत्यों ने युद्धस्थल में भगवान् विष्णु के तेज (पराक्रम) से प्रसन्न होकर कहा––'जहाँ पृथ्वी जल से ढकी न हो, वहाँ हम दोनों को मारो'। इससे यह स्पष्ट होता है कि उन दोनों के जीवनकाल में पृथ्वी स्पष्ट दिखलाई नहीं पड़ती थी। वे जब मर गए तब उनके शरीर से मेद निकला। उसी से

मेदिनीति च विख्यातेत्युक्ता यैस्तन्मतं शृणु। जलधौता कृशा पूर्वं वर्धिता मेदसा यतः॥१०॥
कथयामि च तज्जन्म सार्थकं सर्वसंमतम्। पुरा श्रुतं च श्रुत्युक्तं धर्मवक्त्राच्च पुष्करे॥११॥
महाविराट्शरीरस्य जलस्थस्य चिरं स्फुटम्। मलो बभूव कालेन सर्वाङ्गव्यापको ध्रुवम्॥१२॥
सच च प्रविष्टः सर्वेषां तल्लोम्नां विवरेषु च। कालेन महता तस्माद्बभूव वसुधा मुने॥१३॥
प्रत्येकं प्रतिलोम्नां च स्थिता कूपेषु सा स्थिरा। आविर्भूता तिरोभूता सा[1] चला च पुनः पुनः॥१४॥
आविर्भूता सृष्टिकाले [2]तज्जलात्पर्युपस्थिता। प्रलये च तिरोभूता जलाभ्यन्तरवस्थिता॥१५॥
प्रतिविश्वेषु वसुधा शैलकाननसंयुता। सप्तसागरसंयुक्ता [3]सप्तद्वीपमिता सती॥१६॥
हिमाद्रिमेरुसंयुक्ता ग्रहचन्द्रार्कसंयुता। ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च सुरैर्लोकैस्तथा नुता॥१७॥
पुण्यतीर्थसमायुक्ता पुण्यभारतसंयुता। काञ्चनीभूमिसंयुक्ता सर्वदुर्गसमन्विता ॥१८॥
पातालाः सप्त तदधस्तदूर्ध्वे ब्रह्मलोकतः। ध्रुवलोकश्च तत्रैव सर्वं विश्वं च तत्र वै॥१९॥
एवं सर्वाणि विश्वानि पृथिव्यां निर्मितानि वै। ऊर्ध्वं गोलोकवैकुण्ठौ नित्यौ विश्वपरौ च तौ॥२०॥
नश्वराणि च विश्वानि कृत्रिमाकृत्रिमाणि च। प्रलये प्राकृते ब्रह्मन्ब्रह्मणश्च निपातने॥२१॥

पृथ्वी बनी। इसलिए पृथ्वी को मेदिनी कहते हैं। इस मत का स्पष्टीकरण सुनो। पहले सर्वत्र जल ही जल दृष्टि-गोचर हो रहा था। पृथ्वी जल से ढकी थी। मेद से केवल उसका स्पर्श हुआ। अतः लोग उसे 'मेदिनी' कहने लगे॥८-१०॥ अब मैं उसका सार्थक और सर्वसम्मत जन्म सुना रहा हूँ, जिसे प्राचीनकाल में पुष्कर क्षेत्र में धर्म के मुख से मैंने सुना था और वह वेदानुसार भी हैं॥११॥ जल में रहने वाले महाविराट् के शरीर में बहुत दिनों से सर्वाङ्गव्यापी मल जम गया था, जो चिरकाल से स्पष्ट हो रहा था॥१२॥ मुने! वह उनके सभी लोम-विवरों में प्रविष्ट हो गया था, जो समय पाकर पृथ्वी रूप में प्रकट हुआ॥१३॥ इस प्रकार उनके प्रत्येक लोम कूप में एक-एक पृथ्वी अवस्थित है, जो सृष्टि के समय प्रकट होती है और प्रलयकाल में तिरोहित हो जाती है। वह बार-बार चलायमान भी होती है॥१४॥ सृष्टि के समय प्रकट होकर जल के ऊपर स्थिर रहना और प्रलयकाल में उस जल के भीतर तिरोहित हो जाना, यही उसका नियम है॥१५। प्रत्येक विश्व में यह पृथ्वी पर्वत, जंगल, सातों सागरों और सातों द्वीपों से युक्त रहती है॥१६॥ उसी भाँति हिमालय, मेरु, ग्रह, चन्द्र तथा सूर्य से संयुक्त रह कर ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवों और समस्त लोकों से परिपूर्ण रहती है॥१७॥ पुण्य तीर्थों, पुण्य भारत देश, सुवर्णमयी भूमि (सोने की खानि सुमेरु) और समस्त दुर्गों से युक्त रहती है॥१८॥ पाताल आदि सात लोक उसके नीचे और ब्रह्म लोक आदि सात लोक तथा ध्रुव लोक इसके ऊपर स्थित हैं। इसी प्रकार सारा विश्व उसी पर स्थित रहता है॥१९॥ इस प्रकार इस पृथ्वी पर अखिल विश्व का निर्माण हुआ है। ऊपर गोलोक और वैकुण्ठ लोक नित्य हैं एवं विश्व से परे हैं॥२०॥ ब्रह्मन्! इस प्रकार ब्रह्मा के अन्त होने पर, जो प्राकृत प्रलय कहा जाता है, जितने कृत्रिम-अकृतिम विश्व हैं, सब का नाश हो जाता है॥२१॥ सृष्टि के आदि काल में भगवान् श्रीकृष्ण

---

१ क. ०ता सजला च। २ क. ०ज्जलोपर्यधःस्थि०। ३ क. सप्तस्वर्गस०।

महाविराडादिसृष्टौ सृष्टः कृष्णेन चाऽऽत्मना। नित्ये स्थितः स प्रलये काष्ठाकाशेश्वरैः सह ॥२२॥
क्षित्यधिष्ठातृदेवी सा वाराहे पूजिता सुरैः। मनुभिर्मुनिभिर्विप्रैर्गन्धर्वादिभिरेव च ॥२३॥
विष्णोर्वराहरूपस्य पत्नी सा श्रुतिसंमता। तत्पुत्रो मङ्गलो ज्ञेयः सुयशा मङ्गलात्मजः ॥२४॥

नारद उवाच

पूजिता केन रूपेण वाराहे च सुरैर्मही। वराहेण च वाराही सर्वैः सर्वाश्रया सती ॥२५॥
तस्याः पूजाविधानं चाऽप्यधश्चोद्धरणक्रमम्। मङ्गलं मङ्गलस्यापि जन्म[1] वासं वद प्रभो ॥२६॥

नारायण उवाच

वाराहे च वराहश्च ब्रह्मणा संस्तुतः पुरा। उद्दधार महीं हत्वा हिरण्याक्षं रसातलात् ॥२७॥
जले तां स्थापयामास पद्मपत्रं यथाऽर्णवे। तत्रैव निर्ममे ब्रह्मा सर्वं विश्वं मनोहरम् ॥२८॥
दृष्ट्वा तदधिदेवीं च सकामां कामुको हरिः। वराहरूपी भगवान्कोटिसूर्यसमप्रभः ॥२९॥
कृत्वा रतिकरीं शय्यां मूर्तिं च सुमनोहराम्। क्रीडां चकार रहसि दिव्यवर्षमहर्निशम् ॥३०॥
सुखसंभोगसंस्पर्शान्मूर्च्छां संप्राप सुन्दरी। विदग्धया विदग्धेन [2]संगमोऽतिसुखप्रदः ॥३१॥

स्वयं 'महाविराट्' की सृष्टि करते हैं, जो प्रलय में भी नित्य दिशा, आकाश एवं ईश्वरों (महान् देवों) के साथ स्थित रहता है ॥२२॥ (भगवान् के) वराहावतार के समय पृथ्वी की अधिष्ठात्री देवी, जो देव, मनु, मुनि, ब्राह्मण और गन्धर्व-गणों से पूजित हुई है, वराह रूप भगवान् विष्णु की श्रुतिसम्मत पत्नी है। उन्हीं के पुत्र मंगल हैं और मंगल के पुत्र सुयशा हैं ॥२३-२४॥

नारद बोले—प्रभो! देवताओं ने वाराहकल्प में पृथ्वी की किस रूप से पूजा की थी? सब को आश्रय प्रदान करने वाली इस साध्वी देवी की उस कल्प में स्वयं भगवान् वाराह ने तथा अन्य सब ने भी पूजा की थी। भगवन्! इसके पूजन का विधान, जल के नीचे से इसके ऊपर उठने का क्रम एवं मंगल के जन्म का कल्याण-मय प्रसंग विस्तार के साथ बताने की कृपा करें ॥२५-२६॥

नारायण बोले—पूर्वकाल में वराहावतार के समय ब्रह्मा ने वराह भगवान् की स्तुति की, जिससे उन्होंने हिरण्याक्ष को मार कर रसातल से इस पृथ्वी का उद्धार किया ॥२७॥ समुद्र में कमलपत्र की भाँति इस पृथ्वी को जल में स्थापित किया। उस पर ब्रह्मा ने समस्त मनोहर विश्व की रचना की ॥२८॥ अनन्तर करोड़ों सूर्य के समान देदीप्यमान वराह रूपी भगवान् विष्णु ने कामभाव से पृथ्वी की अधिष्ठात्री देवी (वाराही) को देखा, जो उस समय कामातुर हो रही थी। भगवान् ने रतिक्रीड़ा के योग्य शय्या और अत्यन्त मनोहर अपना रूप बना कर एकान्त में उसके साथ एक दिव्य वर्ष तक दिन रात भोग किया ॥२९-३०॥ उस सुख-सम्भोग के अन्त में वह सुन्दरी मूर्च्छित सी हो गयी क्योंकि रति-दक्षा नायिका का रति-दक्ष नायक के साथ समागम अति सुखदायी होता है ॥३१॥ विष्णु

---

१ ख. ०न्म व्यासं व० । २ख. ०मोऽपि सु० ।

विष्णुस्तदङ्गसंश्लेषाद्बुबुधे न दिवानिशम्। वर्षान्ते चेतनां प्राप्य कामी[1] तत्याज कामुकीम् ॥३२॥
दधार पूर्वरूपं हि वाराहं चैव लीलया। पूजां चकार भक्त्या च ध्यात्वा च धरणीं सतीम् ॥३३॥
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैः सिन्दूरैरनुलेपनैः। वस्त्रैः पुष्पैश्च बलिभिः संपूज्योवाच तां हरिः ॥३४॥

महावराह उवाच

सर्वाधारा भव शुभे सर्वैः संपूजिता सती। मुनिभिर्मनुभिर्देवैः सिद्धैर्वा मानवादिभिः ॥३५॥
जलोच्छ्वासाज्जलत्यागगृहारम्भप्रवेशने। वापीतडागारम्भे च शुभे च कृषिकर्मणि ॥३६॥
तव पूजां करिष्यन्ति संभ्रमेण सुरादयः। मूढा ये न करिष्यन्ति यास्यन्ति नरकं च ते ॥३७॥

वसुधोवाच

वहामि सर्वं वाराहरूपेणाहं तवाज्ञया। लीलामात्रेण भगवन्विश्वं च सचराचरम् ॥३८॥
मुक्तां शुक्तिं हरेरर्चां शिवलिङ्गं शिलां तथा। शङ्खं प्रदीपं रत्नं[2] च माणिक्यं हीरकं मणिम् ॥३९॥
यज्ञसूत्रं च पुष्पं च पुस्तकं तुलसीदलम्। जपमालां पुष्पमालां कर्पूरं च सुवर्णकम् ॥४०॥
गोरोचनां चन्दनं च शालग्रामजलं तथा। एतान्वोढुमशक्ताऽहं क्लिष्टा च भगवञ्छृणु ॥४१॥

को उसके अंगों का संग होने पर दिन रात का ज्ञान ही नहीं रहा। वर्ष के अन्त में उन्हें ज्ञान हुआ। तब उन्होंने उस सुन्दरी देवी का संग छोड़ दिया ॥३२॥ और पूर्व की भाँति पुनः सहज ही में वाराह रूप धारण कर लिया। पश्चात् उन्होंने इस धरणी सती का भक्तिपूर्वक ध्यान-पूजन किया। धूप, दीप, नैवेद्य, सिन्दूर, चन्दन, वस्त्र, पुष्प और बलि द्वारा उसकी अर्चना करके भगवान् विष्णु ने उससे कहा ॥३३-३४॥

महावराह बोले—शुभे! मुनिगण, मनुगण, देवों, सिद्धों और मनुष्यों आदि के द्वारा भलीभाँति पूजित हो कर तुम सब को आश्रय प्रदान करने वाली बनो। गृहारम्भ तथा गृहप्रवेश के समय और वावली, तालाब, कूप आदि खनने तथा (इनमें) जल बढ़ाने तथा (इनसे) जल निकालने के समय और शुभ कृषि कर्म में देवादि गण तुम्हारी पूजा करेंगे। जो मूढ़ उस समय पूजा नहीं करेंगे उन्हें नरकगामी होना पड़ेगा ॥३५-३७॥

वसुधा बोली—भगवन्! आपकी आज्ञा से वाराह रूप धारण कर के मैं बड़ी सरलता से सचराचर समस्त विश्व का वहन करूँगी। किन्तु भगवन्! एक मेरी प्रार्थना है, उसे सुन लेने की कृपा करें—मोती, शुक्ति (सीपी), भगवान् की पूजा, शिवलिंग, शालग्राम शिला, शंख, प्रदीप, रत्न, माणिक्य, हीरा, मणि, यज्ञोपवीत, पुष्प, पुस्तक, तुलसीदल, जपमाला, पुष्पों की माला, कपूर, सुवर्ण, गोरोचन, चन्दन और शालग्राम का जल वहन करने में मैं असमर्थ रहूँगी तथा क्लेश का अनुभव करूँगी ॥३८-४१॥

---

१ क. कामं तत्याज कामिनी० । २ क. ०पं यन्त्रं च।

श्रीभगवानुवाच

द्रव्याण्येतानि ये मूढा अर्पयिष्यन्ति सुन्दरि। यास्यन्ति कालसूत्रं ते दिव्यं वर्षशतं त्वयि ॥४२॥
इत्येवमुक्त्वा भगवान्विरराम च नारद। बभूव तेन गर्भेण तेजस्वी मङ्गलग्रहः ॥४३॥
पूजां चक्रुः पृथिव्याश्च ते सर्वे चाऽऽज्ञया हरेः। दध्युः काण्वोक्तमार्गेण तुष्टुवुः स्तवनेन च ॥४४॥
दद्युर्मूलेन मन्त्रेण नैवेद्यादिकमेव च। संस्तुता त्रिषु लोकेषु पूजिता सा बभूव ह ॥४५॥

नारद उवाच

किं ध्यानं स्तवनं किंवा तस्य मूलं च किं वद। गूढं सर्वपुराणेषु श्रोतुं कौतूहलं मम ॥४६॥

नारायण उवाच

आदौ च पृथिवीदेवी वराहेण सुपूजिता। ततो हि ब्रह्मणा पश्चात्ततश्च पृथुना पुरा ॥४७॥
ततः सर्वैर्मुनीन्द्रैश्च मनुभिर्नारदादिभिः। ध्यानं च स्तवनं मन्त्रं शृणु वक्ष्यामि नारद ॥४८॥
ओं ह्रीं क्लीं श्रीं वां वसुधायै स्वाहा। इत्यनेन तु मन्त्रेण पूजिता विष्णुना पुरा ॥४९॥
श्वेतचम्पकवर्णाभां शतचन्द्रसमप्रभाम्। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गीं सर्वभूषणभूषिताम् ॥५०॥
रत्नाधारां रत्नगर्भां रत्नाकरसमन्विताम्। वह्निशुद्धांशुकाधानां सस्मितां वन्दितां भजे ॥५१॥
ध्यानेनानेन सा देवी सर्वैर्वै पूजिता भवेत्। स्तवनं शृणु विप्रेन्द्र काण्वशाखोक्तमेव च ॥५२॥

भगवान् बोले—सुन्दरी! जो मूढ़ इन वस्तुओं को तुम्हारे ऊपर रखेगा, वह दिव्य सौ वर्ष पर्यन्त कालसूत्र नामक नरक में रहेगा ॥४२॥ नारद! इतना कह कर भगवान् चुप हो गए और अनन्तर उस पृथ्वी के गर्भ से तेजस्वी मंगल नामक ग्रह का जन्म हुआ ॥४३॥ अनन्तर भगवान् की आज्ञा से उपस्थित सब लोग काण्वोक्त पद्धति से पृथ्वी की पूजा और स्तुति करने लगे ॥४४॥ मूल मंत्र का उच्चारण करके उन्होंने नैवेद्य आदि वस्तुएँ अर्पित कीं। इस प्रकार तीनों लोकों में पृथ्वी की पूजा होने लगी ॥४५॥

नारद बोले—उसका ध्यान, स्तुति, और मूल-मंत्र क्या है? सभी पुराणों में छिपे हुए इस प्रनंग को सुनने के लि मेरे मन में बड़ा कौतूहल हो रहा है। अतः बताने की कृपा करें ॥४६॥

नारायण बोले—पूर्व काल में सर्वप्रथम वराह रूप भगवान् विष्णु ने इस पृथ्वी की पूजा की। पश्चात् ब्रह्मा और तदनन्तर राजा पृथु ने उस देवी की अर्चना की ॥४७॥ उपरान्त सभी मुनीन्द्रगण, मनुगण और नारदादि ऋषियों ने उनका सम्मान किया। नारद! अब ध्यान, स्तुति और मन्त्र बता रहा हूँ, सुनो! 'ओं ह्रीं क्लीं श्रीं वां वसुधायै स्वाहा' इस मन्त्र से भगवान् विष्णु ने पहले पृथ्वी की पूजा की थी। ध्यान का स्वरूप यह है—पृथ्वी देवी के शरीर का वर्ण श्वेत चम्पा के समान है, सैकड़ों चन्द्रमा के समान कान्ति है, सम्पूर्ण अंगों में चन्दन लगा हुआ है। सब प्रकार के आभूषणों से ये विभूषित हैं। ये समस्त रत्नों की आधारभूता और रत्नगर्भा हैं। रत्नों की खानें इनको गौरवान्वित किए हुए हैं। ये अग्निशुद्ध रेशमी वस्त्र धारण किए रहती हैं। इनके मुख पर मुसकान छायी है। सभी लोग इनकी वंदना करते हैं। ऐसी पृथ्वी की मैं वंदना करता हूँ ॥४८-५१॥ विप्रेन्द्र! इसी ध्यान द्वारा यह पृथ्वी देवी सबसे पूजित होती हैं, अब मैं काण्वशाखोक्त स्तुति बता रहा हूँ, सुनो ॥५२॥

विष्णुरुवाच

यज्ञसूकरजाया त्वं जयं देहि जयावहे। जयेऽजये जयाधारे जयशीले जयप्रदे ॥५३॥
सर्वाधारे सर्वबीजे सर्वशक्तिसमन्विते। सर्वकामप्रदे देवि सर्वेष्टं देहि मे स्थिरे ॥५४॥
सर्वसस्यालये सर्वसस्याढ्ये सर्वसस्यदे। सर्वसस्यहरे काले सर्वसस्यात्मिके क्षिते ॥५५॥
मङ्गले मङ्गलाधारे माङ्गल्ये मङ्गलप्रदे। मङ्गलार्थे मङ्गलांशे मङ्गलं देहि मे परम् ॥५६॥
पुण्यस्वरूपे पुण्यानां बीजरूपे सनातनि। पुण्याश्रये पुण्यवतामालये पुण्यदे भवे ॥५७॥
स्त्रीरत्नरूपे रत्नौघे रत्नसारवरप्रदे ॥५८॥
भूमे भूमिपसर्वस्वे भूमिपालपरायणे। भूमिपाहंकाररूपे भूमिं देहि वसुंधरे ॥५९॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं तां संपूज्य च यः पठेत्। कोटचन्तरे जन्मनि स संभवेद्भूमिपेश्वरः॥ ६०॥
भूमिदानकृतं पुण्यं लभते पठनाज्जनः। दत्तापहारजात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः॥६१॥
अम्बुवीचीभूखननात्पापान्मुच्येत स ध्रुवम्। अन्यकूपे कुपदजात्पापान्मुच्येत स ध्रुवम्॥६२॥
परभूश्राद्धजात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः। भूमौ वीर्यत्यागपापाद्दीपादिस्थापनात्तथा॥६३॥
पापेन मुच्यते प्राज्ञः स्तोत्रस्य पठनान्मुने। अश्वमेधशतं पुण्यं लभते नात्र संशयः॥६४॥

इति श्री० म० प्र० नारदना० पृथिव्युपाख्याने पृथिवीस्तोत्रं नामाष्टमोऽध्यायः॥८॥

विष्णु बोले—हे जय देने वाली! मुझे विजय दो। तुम भगवान् यज्ञवराह की पत्नी हो। जये! तुम्हारी कभी पराजय नहीं होती है। तुम विजय का आधार, विजयशील और विजयदायिनी हो। तुम सब की आधारभूमि हो। सर्वबीजस्वरूपिणी तथा सम्पूर्ण शक्तियों से सम्पन्न हो। समस्त कामनाओं को देने वाली देवी! तुम मुझे सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तु प्रदान करो। स्थिर स्वभाव वाली! तुम धान्यों का आलय, समस्त धान्यों से भूषित, सब प्रकार के अन्न देने वाली, विशेष समय पर सब धान्यों का अपहरण करने वाली, समस्त धान्यस्वरूपा और सहनशीला हो। मंगल-मूर्ति, मंगल का आधार, मंगलमय, मंगल देने वाली, मंगलस्वरूप और मंगल अंशों से पूर्ण हो, अतः मुझे परम मंगल प्रदान करो। तुम पुण्य स्वरूप वाली, पुण्यों की बीजस्वरूपा, सनातनी, पुण्यों का आधार, पुण्यवालों का मन्दिर, पुण्यदायिनी, भवस्वरूपा, स्त्रीरत्न, रत्न-समूह से युक्त तथा रत्नराशि देने वाली हो। भूमे! तुम भूमिपालकों का सर्वस्व, भूमिपाल-परायणा, एवं भूमिपालों के अहंकार का मूर्त रूप हो। वसुन्धरे! मुझे भूमि प्रदान करो। इस प्रकार जो वसुधा की अर्चना कर के इस महापुण्य स्तोत्र का पाठ करता है, वह करोड़ों जन्म तक भूमिपालक राजा होता है। इसके पाठ करने से मनुष्य को भूमिदान का पुण्य फल प्राप्त होता है। (कोई वस्तु) दान कर के पुनः उसका अपहरण करने से जो पाप लगता है, उससे इस स्तोत्र के पाठक को मुक्ति मिल सकती है, इसमें संशय नहीं। इसी प्रकार दूसरे के कुएँ को बिना उससे आज्ञा लिए खोदने से, अम्बुवीची योग में पृथ्वी को खोदने से और दूसरे की भूमि पर श्राद्ध करने से जो पाप लगता है, उस पाप से इस स्तोत्र का पाठक मुक्त हो जाता है। मुने! पृथ्वी पर वीर्यपात करने से तथा दीपक रखने से जो पाप होता है, उससे भी इस स्तोत्र के पाठक को मुक्ति मिल जाती है। इस स्तोत्र का पाठ करने से बुद्धिमान् पुरुष को सौ अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं॥५३-६४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के प्रकृतिखण्ड में पृथ्वीस्तोत्र-वर्णन नामक आठवाँ अध्याय समाप्त॥८॥

अथ नवमोऽध्यायः

नारद उवाच

भूमिदानकृतं पुण्यं पापं तद्धरणेन यत्। परभूमौ [1]श्राद्धपापं कूपे कूपदजं तथा ॥१॥
अम्बुवीचीभूखननवीजत्यागजमेव च। दीपादिस्थापनात्पापं श्रोतुमिच्छामि यत्नतः ॥२॥
अन्यद्वा पृथिवीजन्यं पापं यत्प्रश्नतः परम्। यदस्ति तत्प्रतीकारं वद वेदविदां वर ॥३॥

नारायण उवाच

वितस्तिमानां भूमिं च यो ददाति च भारते। संध्यापूताय विप्राय स यायाद्विष्णुमन्दिरम् ॥४॥
भूमिं च सर्वसस्याढ्यां ब्राह्मणाय ददाति यः। भूमिरेणुप्रमाणे च वर्षे विष्णुपदे वसेत् ॥५॥
ग्रामं भूमिं च धान्यं च यो ददात्याददाति यः। सर्वपापाद्विनिर्मुक्तौ चोभौ वैकुण्ठवासिनौ ॥६॥
भूमिं ददाति यः काले यः साधुश्चानुमोदते। स प्रयाति च वैकुण्ठं मित्रगोत्रसमन्वितः ॥७॥
स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेत्तु यः। कालसूत्रे तिष्ठति स यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥८॥
तत्पुत्रपौत्रप्रभृतिर्भूमिहीनः श्रिया हतः। सुखहीनो[2] दरिद्रः स्यादन्ते याति च रौरवम् ॥९॥

अध्याय ९

पृथ्वी का उपाख्यान

नारद बोले—मैं भूमिदान करने से प्राप्त होने वाले पुण्य और उसके अपहरण से लगने वाले पाप तथा दूसरे की भूमि पर श्राद्ध करने, कूप खोदने, अम्बुवीची योग में पृथ्वी का उपयोग करने, भूमि पर वीर्यपात करने और दीपादि रखने से लगने वाले पाप के बारे में सुनना चाहता हूँ॥१-२॥ वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ! मेरे पूछने के अतिरिक्त अन्य भी जो पृथ्वीजन्य पाप हैं, उनको उनके प्रतीकार सहित बताने की कृपा करें॥३॥

नारायण बोले—भारत में संध्या कर्म से पवित्र ब्राह्मण को जो एक बित्ता भी भूमि अर्पित करता है, वह भगवान् विष्णु के धाम में जाता है॥४॥ जो सम्पूर्ण सस्यों से हरी-भरी भूमि ब्राह्मण को देता है, वह उस भूमि के रजः कण के समान वर्ष-पर्यन्त विष्णुलोक में निवास करता है॥५॥ गाँव, भूमि और धान्य का दान देने और लेने वाले दोनों समस्त पाप से मुक्त होकर वैकुण्ठ लोक के निवासी होते हैं॥६॥ भूमिदान का तत्काल अनुमोदन करने वाला सज्जन भी अपने मित्र एवं सगोत्रियों समेत वैकुण्ठ लोक को प्राप्त करता है॥७॥

अपनी अथवा दूसरे की दी हुई ब्राह्मण की भूमि अपहरण करने वाला प्राणी चन्द्र-सूर्य के समय तक कालसूत्र (नरक) में स्थान पाता है॥८॥ और उसके पुत्र-पौत्र आदि परिवार भूमिहीन, धनरहित और सुख से वंचित एवं दरिद्र होते हैं तथा अन्त में रौरव नरक में गिरते हैं॥९॥ जो गोचर भूमि जोत कर उसमें खेती करता

---

१ ख. ०द्धरूपं। २ क. पुत्रही०।

गवां मार्गं विनिष्कृष्य यश्च सस्यं ददाति सः। दिव्यं वर्षशतं चैव कुम्भीपाके च तिष्ठति ॥१०॥
गोष्ठं तडागं निष्कृष्य मार्गं सस्यं ददाति यः। स च तिष्ठत्यसीपत्रे यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥११॥
न पञ्चपिण्डमुद्धृत्य स्नाति कूपे परस्य यः। प्राप्नोति नरकं चैव न स्नानफलमेव च ॥१२॥
कामी भूमौ च रहसि बीजत्यागं करोति यः। स्निग्धरेणुप्रमाणं च वर्षं तिष्ठति रौरवे ॥१३॥
अम्बुवीच्यां भूखननं यः करोति च मानवः। स याति कृमिदंशं च स्थितिस्तत्र चतुर्युगम् ॥१४॥
परकीये लुप्तकूपे कूपं मूढः करोति यः। पुष्करिण्यां च लुप्तायां तां ददाति च यो नरः ॥१५॥
सर्वं फलं परस्यैव तप्तसूर्मि व्रजेत्तु सः। तत्र तिष्ठति संतप्तो यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥१६॥
परकीयतडागे च पङ्कमुद्धृत्य चोत्सृजेत्। रेणुप्रमाणवर्षं च ब्रह्मलोके वसेन्नरः ॥१७॥
पिण्डं पित्रे भूमिभर्तुर्न प्रदाय च मानवः। श्राद्धं करोति यो मूढो नरकं याति निश्चितम् ॥१८॥
भूमौ दीपं योऽर्पयति सोऽन्धः सप्तसु जन्मसु। भूमौ शङ्खं च संस्थाप्य कुष्ठं जन्मान्तरे लभेत् ॥१९॥
मुक्तामाणिक्यहीरं च सुवर्णं च मणिं तथा। यश्च संस्थापयेद्भूमौ दरिद्रः सप्तजन्मसु ॥२०॥
शिवलिङ्गं [1]शिलामर्च्यां यश्चार्पयति भूतले। शतमन्वन्तरं यावत्कृमिभक्षे स तिष्ठति ॥२१॥

है, वह दिव्य सौ वर्षों तक कुम्भीपाक नरक में रहता है॥१०॥ गौओं के रहने के स्थान और तालाब को तोड़ कर जो आने जाने का मार्ग बनाता है या उसमें खेती करता है, वह चौदह इन्द्रों के समय तक 'असिपत्र' नामक नरक में निवास करता है॥११॥ पाँच मुट्ठी मिट्टी निकाले बिना जो किसी अन्य के कूप या तालाब में स्नान करता है, वह स्नान-फल से वंचित होता है तथा नरक में गिरता है। जो कामान्ध व्यक्ति एकान्त में भूमि पर वीर्यपात करता है, उसे उस भीगी हुई भूमि के रजःकण के बराबर वर्षों तक रौरव नरक में रहना पड़ता है॥१२–१३॥ अम्बुवीची योग में भूमि खोदने वाला व्यक्ति चारों युगों के समय तक 'कृमिदंश' नामक नरक में रहता है॥१४॥ दूसरे के लुप्त कूप तथा लुप्त बावली को अपने नाम से बनवाने वाला मनुष्य चौदहों इन्द्रों के समय तक 'तप्प-सूर्मि' नामक नरक में रहता है और उसके बनवाने का समस्त फल दूसरे को हो जाता है॥१५-१६॥ जो दूसरे की भूमि में बनाये हुए तालाब से कीचड़ निकालकर पुनः उस तालाब से कोई स्वार्थ नहीं रखता है, वह मनुष्य वहाँ के रजःकण के बराबर वर्षों तक ब्रह्मलोक में निवास करता है॥१७॥ दूसरे की भूमि में श्राद्ध करते समय उस भूस्वामी को (कुछ) श्राद्धान्न दिये बिना जो मूढ़ मनुष्य उस श्राद्ध कर्म को सम्पन्न करता है उसे निश्चित नरक होता है॥१८॥ भूमि पर दीपक रखने वाला सात जन्मों तक अन्धा होता है और भूमि पर शंख रखने वाला दूसरे जन्म में कुष्ठ का रोगी होता है॥१९॥ मोती, माणिक्य, हीरा, सुवर्ण और मणि को भूमि पर रखने वाला मनुष्य सात जन्मों तक दरिद्र होता है॥२०॥ जो शिवलिंग तथा पूजनीय शिला (शालिग्राम) को पृथिवी पर रखता है, वह सौ मन्वन्तरों के समय तक 'कृमिभक्ष' नामक नरक में रहता है॥२१॥ (वैदिक) सूक्त, मन्त्र, (शालग्राम) शिला का जल (चरणामृत), पुष्प और तुलसीदल को भूमि पर रखने से मनुष्य चारों युगों के

---

१ क. शिवाम०।

[1]सूक्तं मन्त्रं शिलातोयं पुष्पं च तुलसीदलम्। यश्चार्पयति भूमौ च स तिष्ठेन्नरके युगम् ॥२२॥
जपमालां पुष्पमालां कर्पूरं रोचनां तथा। यो मूढश्चार्पयेद्भूमौ स याति नरकं ध्रुवम् ॥२३॥
मुने चन्दनकाष्ठं च रुद्राक्षं कुशमूलकम्। संस्थाप्य भूमौ नरके वसेन्मन्वन्तरावधि ॥२४॥
पुस्तकं यज्ञसूत्रं च भूमौ संस्थापयेत्तु यः। न भवेद्विप्रयोनौ च तस्य जन्मान्तरे जनिः ॥२५॥
ब्रह्महत्यासमं पापमिह वै लभते ध्रुवम्। ग्रन्थियुक्तं यज्ञसूत्रं पूज्यं स्यात्सर्ववर्णकैः ॥२६॥
यज्ञं कृत्वा तु यो भूमिं क्षीरेण नहि सिञ्चति। स याति तप्तसूर्मिं च संतप्तः सर्वजन्मसु ॥२७॥
भूकम्पे ग्रहणे यो हि करोति खननं भुवः। जन्मान्तरे महापापी सोऽङ्गहीनो भवेद्ध्रुवम् ॥२८॥
भवनं यत्र सर्वेषां भूमिस्तेन प्रकीर्तिता। वसु रत्नं या दधाति वसुधा च वसुंधरा ॥२९॥
हरेरूरौ च या जाता सा चोर्वी परिकीर्तिता। धरा धरित्री धरणी सर्वेषां धरणात्तु या ॥३०॥
इज्या च यागभरणात्क्षोणी क्षीणालये च या। महालये क्षयं याति क्षितिस्तेन प्रकीर्तिता ॥३१॥
काश्यपी कश्यपस्येयमचला स्थितिरूपतः। विश्वंभरा तद्भरणाच्चान्ताऽनन्तरूपतः ॥३२॥
पृथ्वीयं पृथुकन्यात्वाद्विस्तृतत्वान्मही मुने ॥३३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० पृथिव्युपाख्यानं नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

समय तक नरक में रहता है॥२२॥ भूमि पर जप-माला (रुद्राक्ष आदि), पुष्पमाला, कपूर तथा गोरोचन रखनेवाला मूढ़ निश्चित ही नरक प्राप्त करता है॥२३॥ मुने ! चन्दन काष्ठ, रुद्राक्ष, कुश का मूल भाग भूमि पर रखने से मन्वन्तर के समय तक नरक में रहना पड़ता है॥२४॥ जो पुस्तक तथा यज्ञोपवीत भूमिपर रखता है, वह मनुष्य जन्मान्तर में ब्राह्मण के यहाँ जन्मग्रहण नहीं करता है॥२५॥ तथा उसे निश्चित ही ब्रह्म-हत्या के समान पाप लगता है। गाँठ में बँधे हुए यज्ञसूत्र की पूजा करना सभी द्विजातियों के लिए अत्यावश्यक है॥२६॥ यज्ञ करने के अनन्तर जो यज्ञभूमि को क्षीर (दूध) से सिंचित नहीं करता है, वह सभी जन्मों में संतप्त होकर 'तप्तसूर्मि' नामक नरक को प्राप्त करता है॥२७॥ भूकम्प और ग्रहण के समय भी जो पृथ्वी का खनन करता है, वह महापापी जन्मान्तर में निश्चित रूप से अंगहीन होता है॥२८॥ इस पर सबके भवन बने हैं, इसलिए यह भूमि कही जाती है और वसु (धन) धारण करने के कारण 'वसुधा तथा 'वसुन्धरा' कहलाती है॥२९॥ (महाविराट्) भगवान् के ऊरु से उत्पन्न होने के कारण 'उर्वी' एवं सभी को धारण करने के कारण धरा, धरित्री और धरणी कही जाती है॥३०॥ यागों का भरण-पोषण करने के कारण 'इज्या' प्रलय में क्षीण होने के कारण 'क्षोणी' और महाप्रलय में नष्ट होने के कारण 'क्षिति' कही जाती है॥३१॥ कश्यप की पुत्री होने से 'काश्यपी', स्थिर रूप होने से 'अचला', समस्त विश्व का भरण (पोषण) करने के कारण 'विश्वम्भरा' तथा अनन्त रूप होने से 'अनन्ता' कहलाती है॥३२॥ मुने ! (राजा) पृथु की कन्या होने से यह 'पृथ्वी' और विस्तृत होने से 'मही' कही जाती है॥३३॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के प्रकृतिखण्ड में पृथ्वी-उपाख्यान नामक नवाँ अध्याय समाप्त॥९॥

---

१ क. शुक्तिं पत्रं सि०।

अथ दशमोऽध्यायः

नारद उवाच

श्रुतं पृथिव्युपाख्यानमतीव सुमनोहरम्। गङ्गोपाख्यानमधुना वद वेदविदां वर ॥१॥
भारतं भारतीशापादाजगाम सुरेश्वरी। विष्णुस्वरूपा परमा स्वयं विष्णुपदी सती ॥२॥
कथं कुत्र युगे केन प्रार्थिता प्रेरिता पुरा। तत्क्रमं श्रोतुमिच्छामि पापघ्नं पुण्यदं शुभम् ॥३॥

नारायण उवाच

राजराजेश्वरः श्रीमान्सगरः सूर्यवंशजः। तस्य भार्या च वैदर्भी शैव्या च द्वे मनोहरे ॥४॥
सत्यस्वरूपः सत्येष्ठः सत्यवाक्सत्यभावनः। सत्यधर्मविचारज्ञः परं[1] सत्ययुगोद्भवः ॥५॥
एकस्यामेव पुत्रश्च बभूव सुमनोहरः। असमञ्ज इति ख्यातः शैव्यायां कुलवर्धनः ॥६॥
अन्या चाऽऽराधयामास शंकरं पुत्रकामुकी। बभूव गर्भस्तस्याश्च शिवस्य तु वरेण च ॥७॥
गते शताब्दे पूर्णे च मांसपिण्डं सुषाव सा। तद्दृष्ट्वा च शिवं ध्यात्वा रुरोदोच्चैः पुनः पुनः ॥८॥
शंभुर्ब्राह्मणरूपेण तत्समीपं जगाम ह। चकार संविभज्यैतत्पिण्डं षष्टिसहस्रधा ॥९॥

अध्याय १०

गंगा की उत्पत्ति का वर्णन

नारद बोले—हे वेदविदों में श्रेष्ठ! पृथ्वी का अत्यन्त सुमनोहर उपाख्यान तो मैंने सुन लिया, किन्तु अब गंगा का उपाख्यान सुनाने की कृपा करें। सुरेश्वरी (गंगा), जो विष्णुस्वरूपा एवं विष्णुपदी नाम से विख्यात हैं, सरस्वती के शाप से भारतवर्ष में किस प्रकार और किस युग में पधारीं? किसकी प्रार्थना एवं प्रेरणा से उन्हें वहाँ जाना पड़ा? वह पापनाशक, पवित्र एवं पुण्यप्रद प्रसंग मैं सुनना चाहता हूँ ॥१-३॥

नारायण बोले—सूर्य वंश में उत्पन्न श्रीमान् महाराजाधिराज सगर के, वैदर्भी और शैव्या नाम की अत्यन्त मनोहर दो स्त्रियाँ थीं, वह राजा सत्यमूर्ति, सत्यप्रिय, सत्यवक्ता, सत्यभावक और सत्यधर्म-विचार के ज्ञाता, श्रेष्ठ तथा सत्य युग में उत्पन्न हुए थे ॥४-५॥ उनकी शैव्या नामक पत्नी में एक कन्या और 'असमंजस' नामक एक अत्यन्त मनोहर पुत्र उत्पन्न हुआ, जो कुल को बढ़ाने वाला था ॥६॥ उनकी दूसरी पत्नी वैदर्भी ने पुत्र की कामना से भगवान् शंकर की आराधना की। शंकर के वरदान से उसे भी गर्भ धारण हुआ ॥७॥ अनन्तर सौ वर्ष व्यतीत होने पर उसने एक मांस-पिण्ड उत्पन्न किया, जिसे देख कर शिव का ध्यान करती हुई वह बार-बार रोने लगी ॥८॥ तब ब्राह्मण के वेष में भगवान् शंकर ने उसके समीप जा कर उस मांस-पिण्ड का भेदन किया, जिससे उसमें से साठ सहस्र पुत्र उत्पन्न हुए ॥९॥ वे सभी पुत्र महाबली, पराक्रमी और ग्रीष्मऋतु के मध्याह्नकालीन सूर्य के समान तेजस्वी

---

1 क. परमत्त्वगुणोद्म० ।

सर्वे बभूवुः पुत्राश्च महाबलपराक्रमाः। ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रभाजुष्टकलेवराः ॥१०॥
कपिलर्षेः कोपदृष्ट्या बभूवुर्भस्मसाच्च ते। राजा रुरोद तच्छ्रुत्वा जगाम मरणं[1] शुचा ॥११॥
तपश्चकारासमञ्जो गङ्गानयनकारणात्। तपः कृत्वा लक्षवर्षं ममार कालयोगतः ॥१२॥
दिलीपस्तस्य तनयो गङ्गानयनकारणात्। तपः कृत्वा लक्षवर्षं ययौ लोकान्तरं नृपः ॥१३॥
अंशुमांस्तस्य पुत्रश्च गङ्गानयनकारणात्। तपः कृत्वा लक्षवर्षं मृतश्च कालयोगतः ॥१४॥
भगीरथस्तस्य पुत्रो महाभागवतः सुधीः। वैष्णवो विष्णुभक्तश्च गुणवानजरामरः ॥१५॥
तपः कृत्वा लक्षवर्षं गङ्गानयनकारणात्। ददर्श कृष्णं हृष्टास्यं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥१६॥
द्विभुजं मुरलीहस्तं किशोरं गोपवेषकम्। परमात्मानमीशं च भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥१७॥
स्वेच्छामयं परं ब्रह्म परिपूर्णतमं विभुम्। ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च स्तुतं मुनिगणैर्नुतम् ॥१८॥
निर्लिप्तं साक्षिरूपं च निर्गुणं प्रकृतेः परम्। ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम् ॥१९॥
वह्निशुद्धांशुकाधानं रत्नभूषणभूषितम्। तुष्टाव दृष्ट्वा नृपतिः प्रणम्य च पुनः पुनः ॥२०॥
लीलया च वरं प्राप्य वाञ्छितं वंशतारकम्। तत्राऽऽजगाम गङ्गा सा स्मरणात्परमात्मनः ॥२१॥

शरीर धारण किए हुए थे ॥१०॥ (कुछ दिन के पश्चात्) भगवान् कपिल मुनि की कोपदृष्टि से वे सभी भस्म हो गए। उसे सुन कर राजा ने बड़ा रुदन किया और शोकाकुल होकर प्राण त्याग कर दिया ॥११॥ उपरान्त असमंजस ने गंगा लाने के लिए तप करना आरम्भ किया। एक लाख वर्षों तक तप करने पर कालयोग से उनकी मृत्यु हो गयी ॥१२॥ पश्चात् उनके पुत्र दिलीप ने गंगा लाने के लिए एक लाख वर्षों तक तप कया किन्तु कालयोग से वे भी दिवंगत हो गए ॥१३॥ उनके पुत्र अंशुमान् ने भी गंगा लाने के लिए एक लाख वर्षों तक तप किया और अन्त में कलयोग से उन्हें भी शरीर छोड़ देना पड़ा ॥१४॥ उनके भगीरथ नामक अत्यन्त बुद्धिमान् पुत्र उत्पन्न हुआ, जो महान् भगवदुपासक, वैष्णव, विष्णुभक्त, गुणवान् और अजर-अमर था ॥१५॥ एक लाख वर्षों तक तप करने के उपरान्त उन्हें भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन प्राप्त हुआ। उस समय भगवान् के श्रीविग्रह से ग्रीष्मकालीन करोड़ों सूर्य के समान प्रकाश फैल रहा था। उनकी दो भुजाएँ थीं। वे हाथ में मुरली लिये हुए थे। उनकी किशोर अवस्था थी। वे गोप के वेश में पधारे थे। भक्तों पर कृपा करने के लिए उन्होंने यह रूप धारण कर लिया था। मुने! भगवान् श्रीकृष्ण परिपूर्णतम परब्रह्म हैं। वे चाहे जैसा रूप बना सकते हैं। उस समय ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि उनकी स्तुति कर रहे थे और मुनियों ने उनके सामने अपने मस्तक झुका रखे थे। सदा निर्लिप्त, सब के साक्षी, निर्गुण, प्रकृति से परे तथा भक्तों पर अनुग्रह करने वाले उन भगवान् श्रीकृष्ण का मुख मुसकान से सुशोभित था। विशुद्ध चिन्मय वस्त्र तथा दिव्य रत्नों से निर्मित आभूषण उनके श्रीविग्रह को सुशोभित कर रहे थे। उनकी यह दिव्य झाँकी पाकर भगीरथ ने उन्हें बार-बार प्रणाम किया तथा स्तुति की। अनन्तर वंश को तारने वाला वरदान उन्होंने भगवान् से सहज ही में प्राप्त कर लिया और परमात्मा के स्मरण करने पर गंगा भी उसी स्थान में आ

---

१ क. ०म च वनं शु० ।

तं प्रणम्य प्रतस्थौ च तत्पुरः संपुटाञ्जलिः। उवाच भगवांस्तत्र तां दृष्टवा सुमनोहराम्॥
कुर्वतीं स्तवनं दिव्यं पुलकाञ्चितविग्रहाम् ॥२२॥

श्रीकृष्ण उवाच

भारतं भारतीशापाद्गच्छ शीघ्रं सुरेश्वरि ॥२३॥
सगरस्य सुतान्सर्वान्पूतान्कुरु ममाऽऽज्ञया। त्वत्स्पर्शवायुना पूता यास्यन्ति मम मन्दिरम्॥२४॥
बिभ्रतो दिव्यमूर्तिं ते दिव्यस्यन्दनगामिनः। मत्पार्षदा भविष्यन्ति सर्वकालं निरामयाः॥२५॥
कर्मभोगं समुच्छिद्य कृतं जन्मनि जन्मनि। नानाविधं महत्स्वल्पं पापं स्याद्भारते नृभिः॥२६॥
गङ्गायाः स्पर्शवातेन नश्यतीति श्रुतौ श्रुतम्। स्पर्शनं दर्शनाद्देव्याः पुण्यं दशगुणं ततः॥२७॥
मौसलस्नानमात्रेण सामान्यदिवसे नृणाम्। कोटिजन्मार्जितं पापं नश्यतीति श्रुतौ श्रुतम्॥२८॥
यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च। नानाजन्मार्जितान्येव कामतोऽपि कृतानि च॥२९॥
तानि सर्वाणि नश्यन्ति मौसलस्नानतो नृणाम्। पुण्याहस्नानजं पुण्यं वेदा नैव विदन्ति च॥३०॥
केचिद्विदन्ति ते देवि फलमेव यथागमम्। ब्रह्मविष्णुशिवाद्याश्च सर्वं नैव विदन्ति च॥३१॥
सामान्यदिवसस्नानसंकल्पं शृणु सुन्दरि। पुण्यं दशगुणं चैव मौसलस्नानतः परम्॥३२॥
ततस्त्रिंशद्गुणं पुण्यं रविसंक्रमणे दिने। अमायां चापि तत्तुल्यं द्विगुणं दक्षिणायने॥३३॥

गयीं। वे भगवान् को प्रणाम करके उनके सामने हाथ जोड़ कर खड़ी हो गयीं। भगवान् ने उन्हें पुलकायमान शरीर से दिव्य एवं अत्यन्त मनोहर स्तुति करते हुए देख कर उनसे कहा॥१६-२२॥

श्रीकृष्ण बोले—हे सुरेश्वरि! भारती सरस्वती के शाप वश तुम भारत में जाओ मेरी आज्ञा से वहाँ सगर के पुत्रों को पवित्र करो। वे तुम्हारे स्पर्श-वायु से पवित्र होकर मेरे धाम में चले जायँगे॥२३-२४॥ और वहाँ दिव्य मूर्ति धारण कर दिव्य रथ पर गमन करने वाले तथा सब समय निरामय रहने वाले मेरे पार्षद होंगे॥२५॥ उनके प्रत्येक जन्म का (दुष्कृत) कर्म भोग नष्ट होकर सुकृत रूप में परिणत हो जायगा। श्रुति कहती है कि भारतवर्ष में मनुष्यों द्वारा उपार्जित करोड़ों जन्मों के पाप गंगा के वायु के स्पर्शमात्र से नष्ट हो जाते हैं। देवी (गंगा) के दर्शन से स्पर्श करने में दश गुना अधिक पुण्य प्राप्त होता है॥२६-२७॥ सामान्य दिनों में भी मौसल (चुपके डुबकी लगाने मात्र) स्नान से मनुष्यों के करोड़ों जन्मों के पाप नष्ट होते हैं, ऐसा श्रुतियों में सुना गया है॥२८॥ अनेकों जन्मों में अर्जित ब्रह्महत्या आदि अनेकों पाप, चाहे वे कामनावश ही किए गये हों, मनुष्यों के मौसल स्नान से नष्ट हो जाते हैं। और पुण्य दिनों में स्नान करने से उत्पन्न पुण्य का वर्णन तो वेद भी नहीं कर सकते हैं॥२९-३०॥ देवि! कुछ लोग शास्त्र से ही तुम्हारे फल को जान पाते हैं। वैसे तो ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि भी तुम्हारे फल को नहीं जानते हैं॥३१॥ सुन्दरी! साधारण दिनों के स्नान-संकल्प को, जो मौसल स्नान से दश गुने अधिक पुण्य प्रदान करता है, बता रहा हूँ, सुनो॥३२॥ रविवार के दिन संक्रान्ति होने पर उस दिन गंगास्नान करने से मौसल—स्नान की अपेक्षा तीस गुना अधिक पुण्य प्राप्त होता है। अमावास्या के दिन भी उसके

ततो दशगुणं पुण्यं नराणामुत्तरायणे। चातुर्मास्यां पौर्णमास्यामनन्तं पुण्यमेव च॥३४॥
अक्षयायां च तत्तुल्यं नैतद्वेदे निरूपितम्। असंख्यपुण्यफलदमेतेषु स्नानदानकम्॥३५॥
सामान्यदिवसे स्नानं ध्यानाच्छतगुणं फलम्। मन्वन्तरेषु देवेशि युगादिषु तथैव च॥३६॥
माघस्य सितसप्तम्यां भीष्माष्टम्यां तथैव च। तथाऽशोकाष्टमीतिथ्यां नवम्यां च तथा हरेः॥३७॥
ततोऽपि द्विगुणं पुण्यं नन्दायां तव दुर्लभम्। [1]दशपापहरायां तु दशम्यां सुमहत्फलम्॥३८॥
नन्दोपमं च वारुण्यां महत्पूर्वं चतुर्गुणम्। ततश्चतुर्गुणं पुण्यं द्विमहत्पूर्वके सति॥३९॥
पुण्यं कोटिगुणं चैव सामान्यस्नानतो भवेत्। चन्द्रसूर्योपरागेषु स्मृतं दशगुणं ततः॥४०॥
पुण्येऽप्यर्धोदये काले ततः शतगुणं फलम्। सर्वेषामेव संकल्पो वैष्णवानां विपर्ययः॥४१॥
फलसंधानरहिता जीवन्मुक्ताश्च वैष्णवाः। मत्प्रीतिभक्तिकामास्ते सर्वदा सर्वकर्मसु॥४२॥
गुरुवक्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे विशेत्परः। जीवन्मुक्तं वैष्णवं तं वेदाः सर्वे वदन्ति च॥४३॥
पुरुषाणां शतं पूर्वं पैतृकं च परं शतम्। मातामहस्य च शतं मातरं मातृमातरम्॥४४॥
भगिनीं भ्रातरं चैव भागिनेयं च मातुलम्। श्वश्रूं च श्वशुरं चैव गुरुपत्नीं गुरोः सुतम्॥४५॥
गुरुं च ज्ञानदातारं मित्रं च सहचारिणम्। भृत्यं शिष्यं तथा चेटीं प्रजां स्वाश्रमसंनिधौ॥४६॥

समान पुण्य होता है। उसी भाँति दक्षिणायन सूर्य में दुगुना, उत्तरायण सूर्य में उससे दशगुना अधिक और चातुर्मास्य (चौमासे) की पूर्णिमा में अनन्त पुण्य होता है॥३३-३४॥ अक्षय तिथि में उसी (चातुर्मास्य-पूर्णिमा) के समान पुण्य होता है, यह वेद में भी नहीं बताया गया है। इन दिनों में स्नान करने से असंख्य पुण्य की प्राप्ति होती है॥३५॥ हे देवेशि! सामान्य दिनों में स्नान करने से ध्यान से सौगुने अधिक फल प्राप्त होता है, उसी भाँति मन्वन्तरों और युगादिकों में भी फल कहा गया है॥३६॥ माघ की शुक्ल सप्तमी, भीष्माष्टमी, अशोकाष्टमी और रामनवमी के दिन (गंगास्नान से) जो पुण्य प्राप्त होता है, उससे दुगुना पुण्य नन्दा (तिथि) में प्राप्त होता है तथा दश पाप हरण करने वाली दशमी में अत्यन्त महान् पुण्य फल प्राप्त होता है। नन्दा के समान ही वारुणी में पुण्य प्राप्त होता है, महावारुणी में उससे चौगुना और महामहावारुणी में उससे भी चौगुना अधिक पुण्य प्राप्त होता है, जो सामान्य दिनों के पुण्य-फल की अपेक्षा करोड़ गुना अधिक है। चन्द्र-सूर्य के ग्रहण के अवसर पर स्नान करने से उससे दश गुना अधिक पुण्य होता है। इसी प्रकार अर्धोदय योग में स्नान करने से सौगुना अधिक फल प्राप्त होता है। और लोगों की अपेक्षा वैष्णवों का गंगा-स्नान-संकल्प भिन्न होता है॥३७-४१॥ वैष्णव लोग सर्वदा सभी कर्मों की फलासक्ति से रहित और जीवन्मुक्त होते हैं। वे मुझमें सदैव प्रीति-भक्ति की कामना रखते हैं॥४२॥ क्योंकि भगवान् विष्णु का मन्त्र गुरु के मुख से निकल कर जिसके कर्णविवर में प्रविष्ट होता है, उसे सभी वेद जीवन्मुक्त वैष्णव कहते हैं॥४३॥ वैष्णव मंत्र के ग्रहणमात्र से मनुष्य अपने पूर्व की सौ पीढ़ी, बाद की सौ पीढ़ी, मातामह की सौ पीढ़ी, माता, नानी, भगिनी, भाई, भानजा, मामा, सास-ससुर, गुरुपत्नी, गुरु-पुत्र, ज्ञान देने वाले गुरु, सहचारी मित्र, नौकर, शिष्य, नौकरानी और आश्रम (घर आदि) के समीप रहने वाली प्रजा (पड़ोसी) का भी उद्धार कर देता

१ क. ॰शहरादशम्यां च युगाद्यादिसमं फ॰।

उद्धरेदात्मना सार्धं मन्त्रग्रहणमात्रतः। मन्त्रग्रहणमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥४७॥
तस्य संस्पर्शनात्पूतं तीर्थं च भुवि भारते। तस्यैव पादरजसा सद्यः पूता वसुंधरा ॥४८॥
पादोदकस्थानमिदं तीर्थमेव भवेद्ध्रुवम्। अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं यद्विष्णोरनिवेदितम् ॥४९॥
खादन्ति नो वैष्णवाश्च सदा नैवेद्यभोजिनः। विष्णोर्निवेदितान्नं च नित्यं ये भुञ्जते नराः ॥५०॥
पूतानि सर्वतीर्थानि तेषां च स्पर्शनादहो। विष्णो : पादोदकं पुण्यं नित्यं ये भुञ्जते नराः ॥५१॥
तत्पापानि पलायन्ते वैनतेयादिवोरगाः। तेषां दर्शनमात्रेण पूतं च भुवनत्रयम् ॥५२॥
विष्णोः सुदर्शनं चक्रं सततं तांश्च रक्षति। मद्गुणश्रवणाद्ये च पुलकाङ्कितविग्रहाः ॥५३॥
गद्गदाः साश्रुनेत्राश्च नरास्ते वैष्णवोत्तमाः। पुत्रादपि परः स्नेहो मयि येषां निरन्तरम् ॥
गृहाद्याश्च मयि न्यस्तास्ते नरा वैष्णवोत्तमाः ॥५४॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं मत्तः सर्वं चराचरम्। सर्वेषामहमेवेश इतिज्ञा वैष्णवोत्तमाः ॥५५॥
असंख्यकोटिब्रह्माण्डं ब्रह्मविष्णुशिवादयः। प्रलये मयि लीयन्ते चेतिज्ञा वैष्णवोत्तमाः ॥५६॥
तेजः स्वरूपं परमं भक्तानुग्रहविग्रहम्। स्वेच्छामयं निर्गुणं च निरीहं प्रकृतेः परम् ॥५७॥
सर्वे प्राकृतिका मत्त आविर्भूतास्तिरोहिताः। इति जानन्ति ये देवि ते नरा वैष्णवोत्तमाः ॥५८॥
इत्येवमुक्त्वा देवेशो विरराम तयोः पुरः। उवाच तं त्रिपथगा भक्तिनम्रात्मकंधरा ॥५९॥

है। मन्त्र ग्रहण मात्र से मनुष्य जीवन्मुक्त होता है॥४४-४७॥ भारत-भूतल के तीर्थ उसके स्पर्श से पवित्र होते हैं और उसी के चरण रज से वसुन्धरा (पृथ्वी) पवित्र होती है॥४८॥ उसके पादोदक का स्थान निश्चित ही तीर्थ होता है। विष्णु को निवेदन न किया गया अन्न विष्ठा के समान और जल मूत्र के समान होता है। उसे वैष्णव गण कभी नहीं खाते हैं। क्योंकि वे सदैव नैवेद्य (विष्णु का प्रसाद) ही भोजन करते हैं। जो मनुष्य नित्य विष्णु को भोग लगा कर अन्न ग्रहण करते हैं, उनके स्पर्श से सभी तीर्थ पवित्र हो जाते हैं। भगवान् विष्णु के पुण्य पादोदक का नित्य पान करने वाले मनुष्यों के साथ पाप उसी तरह भाग जाते हैं जैसे गरुड़ को देख कर सर्प भाग जाते हैं। उनके दर्शन मात्र से तीनों लोक पवित्र हो जाते हैं॥४९-५२॥ विष्णु का सुदर्शन चक्र उनकी निरन्तर रक्षा करता है। मेरे गुणों के श्रवण-मनन आदि करते ही उनका शरीर पुलकायमान हो उठता है और वे गद्गद तथा अश्रुपूर्ण हो जाते हैं, ऐसे व्यक्ति उत्तम वैष्णव हैं। जिन लोगों का मुझमें निरन्तर पुत्र से भी बढ़ कर स्नेह रहता है और गृह आदि सब कुछ मेरे भरोसे छोड़ देते हैं वे उत्तम वैष्णव हैं॥५३-५४॥ यहाँ से लेकर ब्रह्म-लोक तक यह समस्त चराचर जगत् मुझ (श्रीकृष्ण) से ही उत्पन्न होता है और मैं ही सब का अधीश्वर हूँ, ऐसा ज्ञान रखने वाले वैष्णव उत्तम हैं॥५५॥ असंख्य करोड़ ब्रह्माण्ड और ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि सभी प्रलय के समय मुझ में लीन होते हैं, ऐसा जानने वाले वैष्णव उत्तम हैं॥५६॥ देवि! मैं तेजः स्वरूप, श्रेष्ठ, भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए शरीर धारण करने वाला, स्वेच्छामय, निर्गुण, निरीह और प्रकृति से परे हूँ तथा समस्त प्राकृतिक सृष्टि मुझसे ही उत्पन्न और मुझमें ही तिरोहित होती है। ऐसा जानने वाले मनुष्य उत्तम वैष्णव हैं॥५७-५८॥ उन दोनों के सामने ऐसा कह कर देवेश (भगवान् श्रीकृष्ण) चुप हो गए। अनन्तर भक्तिपूर्वक शिर झुकाये गंगा ने कहा॥५९॥

गङ्गोवाच

यामि चेद्भारतं नाथ भारतीशापतः पुरा। तवाऽऽज्ञया च राजेन्द्र तपसा चैव सांप्रतम् ॥६०॥
यानि कानि च पापानि मह्यं दास्यन्ति पापिनः। तानि मे केन नश्यन्ति तदुपायं वद प्रभो ॥६१॥
कति कालं परिमितं स्थितिर्मे तत्र भारते। कदा यास्यामि सर्वेश तद्विष्णोः परमं पदम् ॥६२॥
ममान्यद्वाञ्छितं यद्यत्सर्वं जानासि सर्ववित्। सर्वान्तरात्मन्सर्वज्ञ तदुपायं वद प्रभो ॥६३॥

श्रीकृष्ण उवाच

जानामि वाञ्छितं गङ्गे तव सर्वं सुरेश्वरि। पतिस्ते रुद्ररूपोऽयं लवणोदो भविष्यति ॥६४॥
ममैवांशः समुद्रश्च त्वं च लक्ष्मीस्वरूपिणी। विदग्धाया विदग्धेन संगमो गुणवान्भुवि ॥६५॥
यावत्यः सन्ति नद्यश्च भारत्याद्याश्च भारते। सौभाग्यं तव तास्वेव लवणोदस्य सौरते ॥६६॥
अद्यप्रभृति देवेशि कलेः पञ्चसहस्रकम्। वर्षं स्थितिस्ते भारत्या भुवि शापेन भारते ॥६७॥
नित्यं वारिधिना सार्धं करिष्यसि रहो रतिम्। त्वमेव रसिका देवी रसिकेन्द्रेण संयुता ॥६८॥
त्वां तोषयन्ति स्तोत्रेण भगीरथकृतेन च। भारतस्था जनाः सर्वे पूजयिष्यन्ति भक्तितः ॥६९॥
ध्यानेन कौथुमोक्तेन ध्यात्वा त्वां पूजयिष्यति। यः स्तौति प्रणमेन्नित्यं सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥७०॥
गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि। मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥७१॥

गंगा बोलीं—हे नाथ! पूर्व काल के सरस्वती-शापवश मैं आपकी आज्ञा और राजेन्द्र (भगीरथ) के तप के कारण अभी भारत जा रही हूँ ॥६०॥ किन्तु हे प्रभो! वहाँ पापी लोग पाप की राशि मुझ पर लाद देंगे। उसका नाश कैसे होगा? बताने की कृपा करें ॥६१॥ हे सर्वेश! भारत में कितने दिनों तक मेरी स्थिति रहेगी और कब आपके परमोत्तम विष्णुलोक में जाऊँगी? ॥६२॥ प्रभो! आप सर्ववेत्ता हैं, इसलिए मेरी अन्य कामनाओं को भी जानते हैं। हे सबके अन्तरात्मा और सर्वज्ञ! मेरे मनोरथ के पूर्ण होने का उपाय बताएँ ॥६३॥

श्रीकृष्ण बोले—गंगे! सुरेश्वरि! मैं तुम्हारे सभी मनोरथों को जानता हूँ। रुद्र का रूप यह लवण-समुद्र तुम्हारा पति होगा ॥६४॥ समुद्र मेरा ही अंश है और तुम लक्ष्मी स्वरूपिणी हो। चतुर नायक का चतुर नायिका के साथ समागम भूतल पर गुणवान् माना गया है ॥६५॥ भारत में सरस्वती आदि अन्य जितनी नदियाँ होंगी, उन सब में समुद्र के लिए तुम्हीं सबसे अधिक सौभाग्यवती मानी जाओगी। देवेशि! कलियुग के पाँच सहस्र वर्षों तक तुम्हें सरस्वती के शाप से भारतवर्ष में रहना पड़ेगा ॥६६-६७॥ तुम वहाँ एकान्त स्थान में रसिकेन्द्र समुद्र के साथ नित्य क्रीड़ा करोगी। क्योंकि तुम अत्यन्त रसविलासिनी हो ॥६८॥ भारतनिवासी सभी लोग भक्तिपूर्वक भगीरथ-निर्मित स्तोत्र द्वारा तुम्हारी स्तुति और पूजा करेंगे ॥६९॥ कौथुमी शाखा की पद्धति के अनुसार जो तुम्हारा नित्य ध्यान, पूजा, स्तुति और प्रणाम करेंगे, वे अश्वमेध यज्ञ के फल को प्राप्त करेंगे ॥७०॥ सैकड़ों योजन की दूरी से जो 'गंगे-गंगे' कहता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥७१॥

सहस्रपापिनां स्नानाद्यत्पापं ते भविष्यति। मद्भक्तदर्शने तावत्तदैव हि विनश्यति॥७२॥
पापिनां तु सहस्राणां शवस्पर्शेन यत्तव। मन्मन्त्रोपासकस्नानात्तदघं च विनश्यति॥७३॥
यत्र यत्र भवेद्गङ्गे मन्नामगुणकीर्तनम्। तत्रैव त्वमधिष्ठानं करिष्यस्यघमोचनात्॥७४॥
सार्धं सरिद्भिः श्रेष्ठाभिः सरस्वत्यादिभिः शुभे। तत्तु तीर्थं भवेत्सद्यो यत्र मद्गुणकीर्तनम्॥७५॥
यद्रेणुस्पर्शमात्रेण पूतो भवति पातकी। रेणुप्रमाणं वर्षं च स वैकुण्ठे वसेद्ध्रुवम्॥७६॥
स्नास्यन्ति त्वयि ये भक्ता मन्नामस्मृतिपूर्वकम्। समुत्सृजन्ति प्राणांश्च ते गच्छन्ति हरेः पदम्॥७७॥
पार्षदप्रवरास्ते च भविष्यन्ति हरेश्चिरम्। असंख्यकं प्राकृतिकं लयं द्रक्ष्यन्ति ते नराः॥७८॥
मृतस्य बहुपुण्येन तच्छवं त्वयि विन्यसेत्। प्रयाति स च वैकुण्ठं यावदस्थ्नां स्थितिस्त्वयि॥७९॥
कायव्यूहं ततः कृत्वा भोजयित्वा स्वकर्मजम्। तस्मै ददामि सारूप्यं तं करोमि च पार्षदम्॥८०॥
अज्ञानी त्वज्जलस्पर्शाद्यदि प्राणान्समुत्सृजेत्। तस्मै ददामि सारूप्यं तं करोमि च पार्षदम्॥८१॥
अन्यत्र वा [1]त्यजेत्प्राणांस्त्वन्नामस्मृतिपूर्वकम्। तस्मै ददामि सारूप्यमसंख्यं प्राकृतं लयम्॥८२॥
अन्यत्र वा त्यजेत्प्राणान्मन्नामस्मृतिपूर्वकम्। तस्मै ददामि सालोक्यं यावद्वै ब्रह्मणो वयः॥८३॥

सहस्रों पापियों के स्नान करने से जो पाप तुम्हें होगा, वह मेरे भक्तों के दर्शन करने से उसी समय नष्ट हो जायगा॥७२॥ उसी प्रकार सहस्रों पापियों के शव-स्पर्श से जो पाप तुम्हें प्राप्त होगा, वह मेरे मन्त्रों के उपासक भक्तों के स्नान करने से नष्ट हो जायगा॥७३॥ गंगे! जिस-जिस स्थान पर मेरे नाम व गुणों का कीर्तन होगा, वहीं पाप नाश करने के कारण तुम्हारा निवास होगा॥७४॥ शुभे! जहाँ-कहीं मेरे गुणों का कीर्तन होगा वहाँ सरस्वती आदि श्रेष्ठ नदियों के साथ तुम्हारे रहने से वह (स्थान) सद्यः तीर्थ बन जायगा॥७५॥ वहाँ के रेणु-स्पर्शमात्र से पातकी पवित्र होकर वैकुण्ठ में उतने रेणु प्रमाण वर्षों तक निश्चित रूप से निवास करेंगे॥७६॥ जो भक्त पुरुष मेरे नामों का स्मरण करते हुए तुम में स्नान करके प्राण-परित्याग करेंगे, वे विष्णु-पद को प्राप्त करेंगे॥७७॥ वे विष्णु के चिरस्थायी पार्षद होंगे और वहाँ रहकर असंख्य प्राकृतिक प्रलय का दर्शन करेंगे॥७८॥ मृतक प्राणी के बहुपुण्य होने पर ही उसका शव तुम्हारे जल में डाला जायगा और जब तक उसकी अस्थि तुम्हारे भीतर रहेगी उतने समय तक वह वैकुण्ठ में रहेगा॥७९॥ फिर मैं उसे उसके कर्मजन्य शारीरिक भोग भोगा कर अन्त में सारूप्य मोक्ष प्रदान करता हूँ तथा अपना पार्षद बना लेता हूँ॥८०॥ अज्ञानी प्राणी यदि तुम्हारे जल का स्पर्श करके अपने प्राणों का परित्याग करता है, तो मैं उसे सारूप्य मोक्ष देकर अपना पार्षद बनाता हूँ॥८१॥ यदि मनुष्य तुम्हारे नाम का स्मरण करते हुए कहीं अन्यत्र प्राणोत्सर्ग करता है, तो मैं उसे असंख्य प्राकृत प्रलयों तक सालोक्य मोक्ष देता हूँ॥८२॥ मेरे नामों के स्मरणपूर्वक अन्यत्र प्राण परित्याग करने वाले मनुष्य को ब्रह्मा की आयु तक सालोक्य (मोक्ष) प्रदान करता हूँ॥८३॥ मेरे मंत्रों की उपासना तथा नित्य मेरे नैवेद्यों का भोजन

---

१ क. ०प्राणान्मन्ना०।

तीर्थेऽप्यतीर्थे मरणे विशेषो नास्ति कश्चन। मन्मन्त्रोपासकानां च नित्यं नैवेद्यभोजिनाम् ॥८४॥
पूतं कर्तुं स शक्तो हि लीलया भुवनत्रयम्। रत्नेन्द्रसारनिर्माणयानेन सह पार्षदैः ॥
सद्यः स याति गोलोकं मम तुल्यो भवेद्ध्रुवम् ॥८५॥
मद्भक्तबान्धवा ये ये ते ते पुण्यधियः शुभे। ते यान्ति रत्नयानेन गोलोकं च सुदुर्लभम् ॥८६॥
यत्र यत्र मृता ये च ज्ञानाज्ञानेन वा सति। जीवन्मुक्ताश्च ते पूता भक्तसंनिधिमात्रतः ॥८७॥
इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तां च तमुवाच भगीरथम्। स्तुहि गङ्गामिमां भक्त्या पूजां कुरु च सांप्रतम् ॥८८॥
भगीरथस्तां तुष्टाव पूजयामास भक्तितः। ध्यानेन कौथुमोक्तेन स्तोत्रेण च पुनः पुनः ॥८९॥
श्रीकृष्णं प्रणनामाथ परमात्मानमीश्वरम्। भगीरथश्च गङ्गा च सोऽन्तर्धानं गतो हरिः ॥९०॥

नारद उवाच

स्तोत्रेण केन ध्यानेन केन पूजाक्रमेण च। पूजां चकार नृपतिर्वद वेदविदां वर ॥९१॥

श्रीनारायण उवाच

स्नात्वा नित्यक्रियां कृत्वा धृत्वा धौते च वाससी। पादौ प्रक्षाल्य चाऽऽचम्य संयतो भक्तिपूर्वकम् ॥९२॥
गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवम्। संपूजयेन्नरः शुद्धः सोऽधिकारी च पूजने ॥९३॥
गणेशं विघ्ननाशाय निष्पापाय दिवाकरम्। वह्निं स्वशुद्धये विष्णुं मुक्तये पूजयेन्नरः ॥९४॥

करने वाले पुरुष चाहे तीर्थ में मरें या अतीर्थ में, कोई अन्तर नहीं पड़ता। ऐसा व्यक्ति सहज ही में त्रिलोकी को भी पवित्र कर देता है तथा वह मेरे तुल्य होकर मेरे पार्षदों के साथ उत्तम रत्नों के सार से बने हुए विमान से गोलोक में चला जाता है॥८५॥ शुभे! मेरे भक्तों के जितने पुण्यात्मा बान्धव होते हैं, वे भी रत्नखचित विमानों द्वारा अत्यन्त दुर्लभ गोलोक में जाते हैं॥८६॥ ज्ञानी, अज्ञानी किसी भी अवस्था में रह कर वे जहाँ कहीं प्राण परित्याग करते हैं, केवल भक्तों की सन्निधि मात्र से वे पवित्र एवं जीवन्मुक्त होते हैं॥८७॥ गंगा जी से इतना कह कर भगवान् श्री हरि ने भगीरथ से भी कहा—सम्प्रति भक्तिपूर्वक इस गंगा की स्तुति और पूजा करो॥८८॥ पश्चात् भगीरथ ने भक्तिपूर्वक कौथुमी शाखा के अनुसार ध्यान, पूजन और स्तोत्र द्वारा गंगा की बार-बार स्तुति की॥८९॥ फिर परमात्मा एवं ईश्वर भगवान् श्रीकृष्ण और गंगा को भगीरथ ने प्रणाम किया तथा भगवान् अन्तर्धान हो गए॥९०॥

नारद बोले—वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ! राजा भगीरथ ने किस स्तोत्र, ध्यान और पूजा-क्रम से उनकी आराधना की, वह बताने की कृपा करें॥९१॥

श्री नारायण बोले—स्नान तथा नित्यक्रिया करने के उपरान्त दो स्वच्छ वस्त्र पहन कर पाद-प्रक्षालन और आचमन करने के उपरान्त भक्ति और संयमपूर्वक गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और पार्वती की अर्चना करे॥९२-९३॥ विघ्न-निवारण के लिए गणेश की, पाप नाश के लिए सूर्य की, आत्म-शुद्धि के लिए अग्नि की, मुक्ति के लिए विष्णु की, ज्ञान के लिए शिव की और बुद्धि-वृद्धि के लिए पार्वती की पूजा करनी चाहिए। क्योंकि इन देवों की आराधना

शिवं ज्ञानाय[1] ज्ञानेशं शिवां बुद्धिविवृद्धये। संपूज्यैतल्लभेत्प्राज्ञो विपरीतमतोऽन्यथा ॥९५॥
दध्यावनेन तद्ध्यानं शृणु नारद तत्त्वतः। ध्यानं च कौथुमोक्तं वै सर्वपापप्रणाशनम् ॥९६॥
श्वेतचम्पकवर्णाभां गङ्गां पापप्रणाशिनीम्। कृष्णविग्रहसंभूतां कृष्णतुल्यां परां[2] सतीम् ॥९७॥
वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम्। शरत्पूर्णेन्दुशतकप्रभाजुष्टकलेवराम् ॥९८॥
ईषद्धासप्रसन्नास्यां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम्। नारायणप्रियां शान्तां सत्सौभाग्यसमन्विताम् ॥९९॥
बिभ्रतीं कबरीभारं मालतीमाल्यसंयुताम्। सिन्दूरबिन्दुललितां सार्धं चन्दनबिन्दुभिः ॥१००॥
कस्तूरीपत्रकं गण्डे नानाचित्रसमन्वितम्। पक्वबिम्बसमानैकचार्वोष्ठपुटमुत्तमम् ॥१०१॥
मुक्तापङ्क्तिप्रभाजुष्टदन्तपङ्क्तिमनोहराम्। सुचारुवक्त्रनयनां सकटाक्षमनोरमाम् ॥१०२॥
कठिनं श्रीफलाकारं स्तनयुग्मं च बिभ्रतीम्। बृहच्छ्रो[illegible] सुकठिनां [3]रम्भास्तम्भविनिन्दिताम् ॥१०३॥
स्थलपद्मप्रभाजुष्टपादपद्मयुगं धराम्। रत्नाभरणसंयुक्तं कुङ्कुमावतं सयावकम् ॥१०४॥
देवेन्द्रमौलिमन्दारमकरन्दकणारुणम्। सुरसिद्धमुनीन्द्रादिदत्तार्घ्यैः संयुतं सदा ॥१०५॥

करने से प्राज्ञ को उक्त फल की प्राप्ति होती है और न करने से विपरीत फल भी मिलता है॥९४-९५॥ नारद! कौथुमी शाखानुसार समस्त पापों के नाशक जिस ध्यान को भगीरथ ने किया था, उसे यथार्थतः सुनो॥९६॥ श्वेत चम्पा के समान कान्तिपूर्ण वर्ण वाली, पापविनाशिनी, भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर से उत्पन्न होने वाली और उनके समान श्रेष्ठ उन सती गंगा का ध्यान करे, जो अग्नि के समान शुद्ध वस्त्र धारण किए हुए हैं, जो रत्नों के भूषणों से भूषित हैं, शरत्कालीन पूर्णिमा के सैकड़ों चन्द्रमा के समान प्रभापूर्ण हैं, जिनके प्रसन्न मुख पर मुसकराहट है और जो नित्ययौवना हैं। वे शास्त्रस्वरूपिणी देवी भगवान् नारायण की प्रिया हैं। सत्सौभाग्य कभी उनसे दूर नहीं हो सकता। उनके सिर पर सघन अलकावली है। मालती के पुष्पों की माला उनकी शोभा बढ़ा रही है। उनके ललाट पर चन्दन-बिन्दुओं के साथ सिन्दूर की बिन्दी है जिससे उनका लालित्य बढ़ रहा है। गण्डस्थल पर कस्तूरी से पत्र-रचना की गई है, जो नाना प्रकार के चित्रों से सुशोभित है। उनके ओष्ठपुट बिम्बाफल के समान सुन्दर है॥९७-१०१॥ दाँतों की पंक्तियाँ मोतियों की पंक्तियों की भाँति प्रभापूर्ण और मनोहर हैं, अत्यन्त सुन्दर मुख एवं नेत्र मनोरम कटाक्ष करने वाले हैं॥१०२॥ युगल स्तन कठोर और श्रीफल (बेल) के आकार वाले हैं। नितम्ब भाग विस्तृत और अत्यन्त कठोर है। ऊरु कदलीस्तम्भ को तिरस्कृत करने वाले हैं ॥१०३॥ युगल चरणकमल स्थलकमल की भाँति प्रभापूर्ण हैं। उन चरणों में रत्नों के आभूषण तथा कुंकुम मिश्रित महावर लगा हुआ है। देवराज इन्द्र के मुकुट में लगे हुए मन्दार के फूलों के रजः कण से इन देवी के श्री चरणों की लालिमा गाढ़ी हो गई है। देवता, सिद्ध और मुनीन्द्र अर्घ्य लेकर सदा सामने खड़े हैं। तपस्वियों के मुकुट में रहने वाले भौंरों की पंक्ति से इनके चरण संयुक्त हैं। इनके पावन चरण मुमुक्षु को मुक्ति देने वाले हैं तथा कामना

---

१ ख ०य तदीनां शि०। २ क ०रां सति०। ३ ख. ०म्भपरिष्कृता०।

तपस्विमौलिनिकरभ्रमरश्रेणिसंयुतम्। मुक्तिप्रदं मुमुक्षूणां कामिनां स्वर्गभोगदम्॥१०६॥
वरां वरेण्यां वरदां भक्तानुग्रहविग्रहाम्। श्रीविष्णोः पददात्रीं च भजे विष्णुपदीं सतीम्॥१०७॥
इति ध्यानेन चानेन ध्यात्वा त्रिपथगां शुभाम्। दत्त्वा संपूजयेद्ब्रह्मन्नुपचारांश्च षोडश॥१०८॥
आसनं पाद्यमर्घ्यं च स्नानीयं चानुलेपनम्। धूपं दीपं च नैवेद्यं ताम्बूलं शीतलं जलम्॥१०९॥
वसनं भूषणं माल्यं गन्धमाचमनीयकम्। मनोहरं सुतल्पं च देयान्येतानि षोडश॥११०॥
दत्त्वा भक्त्या संप्रणमेत्स्तुत्वा तां संपुटाञ्जलि। संपूज्यैवंप्रकारेण सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥१११॥
स्तोत्रं वै कौथुमोक्तं च संवादं विष्णुवेधसोः। शृणु नारद वक्ष्यामि पापघ्नं च सुपुण्यदम्॥११२॥

ओं नमो गङ्गायै। श्रीब्रह्मोवाच

श्रोतुमिच्छामि देवेश लक्ष्मीकान्त[1] नमः प्रभो। विष्णो विष्णुपदीस्तोत्रं पापघ्नं पुण्यकारणम्॥११३॥

श्रीनारायण उवाच

शिवसंगीतसंमुग्धश्रीकृष्णाङ्गद्रवोद्भवाम्। राधाङ्गद्रवसंभूतां तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥११४॥
या जन्मसृष्टेरादौ च गोलोके रासमण्डले। संनिधाने शंकरस्य तां० ॥११५॥

वालों को स्वर्ग भोग देने वाले हैं॥१०४-१०६॥ इस प्रकार श्रेष्ठ, आदरणीय, वर देने वाली, भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए अधीर रहने वाली, भगवान् श्री विष्णु का पद देने वाली तथा विष्णुपदी नाम से विख्यात सती गंगा की मैं उपासना करता हूँ॥१०७॥ ब्रह्मन्! इस प्रकार के ध्यान से तीन मार्गों से विचरण करने वाली (गंगा) का ध्यान कर के कल्याणी गंगा का स्मरण कर षोडशोपचार पूजन करे॥१०८॥ आसन, पाद्य, अर्घ्य, स्नानार्थ जल, अनुलेपन (चन्दन), धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, शीतल जल, वस्त्र, भूषण, माला, गन्ध, आचमन और अत्यन्त मनोहर शय्या, यही अर्पण करने योग्य सोलह उपचार हैं॥१०९-११०॥ इन्हें भक्तिपूर्वक समर्पण करने के अनन्तर हाथ जोड़ कर स्तुति और प्रणाम करे। इस प्रकार पूजा करने से उसे अश्वमेध का फल प्राप्त होता है॥१११॥ नारद! कौथुमोक्त स्तोत्र तुम्हें बता रहा हूँ, जिसमें विष्णु और ब्रह्मा का संवाद हुआ है। वह स्तोत्र पापनाशक तथा अत्यन्त पुण्यप्रद है। सुनो!

ब्रह्मा बोले—देवेश, लक्ष्मीकान्त, प्रभो, विष्णो! आपको नमस्कार है। मैं आपसे गंगा का पापनाशक एवं पुण्यकारक स्तोत्र सुनना चाहता हूँ॥११२-११३॥

नारायण बोले—शिव के संगीत पर अत्यन्त मुग्ध हुए भगवान् श्रीकृष्ण और राधा के द्रवीभूत अंग से उत्पन्न होने वाली उन गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ॥११४॥ सृष्टि के आदि काल में गोलोक के रासमण्डल में भगवान् शंकर के समीप रहने वाली उन गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ॥११५॥ गोपों और गोपिकाओं से व्याप्त

---

१ क. ०न्त जगत्प्र०।

गोपैर्गोपीभिराकीर्णे शुभे राधामहोत्सवे। कार्तिकीपूर्णिमाजातां तां० ॥११६॥
कोटियोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये लक्षगुणा ततः। समावृता या गोलोकं तां० ॥११७॥
षष्टिलक्षैर्योजनैर्या ततो दैर्घ्ये चतुर्गुणा। समावृता या वैकुण्ठं तां० ॥११८॥
विंशल्लक्षैर्योजनैर्या ततो दैर्घ्ये चतुर्गुणा। समावृता ब्रह्मलोकं या तां० ॥११९॥
त्रिंशल्लक्षैर्योजनैर्या दैर्घ्ये पञ्चगुणा ततः। आवृता शिवलोकं या तां० ॥१२०॥
षड्योजनसुविस्तीर्णा दैर्घ्ये दशगुणा ततः। मन्दाकिनी येन्द्रलोके तां० ॥१२१॥
लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये सप्तगुणा ततः। आवृता ध्रुवलोकं या तां० ॥१२२॥
लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये षड्गुणिता ततः। आवृता चन्द्रलोकं या तां० ॥१२३॥
योजनैः षष्टिसाहस्त्रैर्दैर्घ्ये दशगुणा ततः। आवृता सूर्यलोकं या तां० ॥१२४॥
लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये षड्गुणिता ततः। आवृता सत्यलोकं या तां० ॥१२५॥
दशलक्षैर्योजनैर्या दैर्घ्ये पञ्चगुणा ततः। आवृता या तपोलोकं तां० ॥१२६॥
सहस्त्रयोजना या च दैर्घ्ये सप्तगुणा ततः। आवृता जनलोकं या तां० ॥१२७॥
सहस्त्रयोजनायामा दैर्घ्ये सप्तगुणा ततः। आवृता या च कैलासं तां० ॥१२८॥
पाताले या भोगवती विस्तीर्णा दशयोजना। ततो दशगुणा दैर्घ्ये तां० ॥१२९॥

शुभ राधा-महोत्सव के अवसर पर कार्तिक की पूर्णिमा के दिन उत्पन्न होने वाली उन गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ॥११६॥ करोड़ों योजन चौड़ी और उससे लाखगुनी अधिक लम्बी होकर गोलोक को आवृत करने वाली उन गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ॥११७॥ साठ लाख योजन चौड़ी और उससे चौगुनी लम्बी होकर समस्त वैकुण्ठ को घेरने वाली उन गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ॥११८॥ बीस लाख योजन चौड़ी तथा उससे चौगुनी लम्बी होकर ब्रह्मलोक को आवृत करने वाली उन गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ॥११९॥ तीन लाख योजन चौड़ी और उससे पंचगुनी लम्बी होकर शिव लोक को घेरने वाली उन गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ॥१२०॥ छह योजन चौड़ी और उससे दशगुनी लम्बी होकर मन्दाकिनी नाम से इन्द्रलोक में विराजने वाली उन गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ॥१२१॥ एक लाख योजन चौड़ी और उससे सातगुनी लम्बी होकर ध्रुव लोक को घेरे रहने वाली उन गंगा को मैं नमस्कार करता हूँ॥१२२॥ एक लाख योजन चौड़ी एवं उससे छह गुनी लम्बी होकर चन्द्रलोक को आवृत करने वाली उन गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ॥१२३॥ सात सहस्र योजन चौड़ी और उससे दश गुनी लम्बी होकर सूर्य लोक को घेरने वाली उन गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ॥१२४॥ एक लाख योजन चौड़ी तथा उससे छह गुनी लम्बी होकर सत्यलोक को आवृत करने वाली उन गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ॥१२५॥ दश लाख योजन चौड़ी और उससे पाँच गुनी लम्बी होकर तपोलोक को घेरने वाली उन गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ॥१२६॥ एक सहस्र योजन चौड़ी एवं उससे सातगुनी लम्बी होकर जनलोक को आवृत करने वाली उन गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ॥१२७॥ सहस्र योजन चौड़ी और उससे सात गुनी लम्बी होकर कैलास को घेर कर स्थित रहने वाली उन गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ॥१२८॥ दश योजन चौड़ी और उससे दश गुनी लम्बी होकर पाताल में भोगवती नाम से विराजमान उन गंगा को मैं प्रणाम

क्रोशैकमात्रविस्तीर्णा ततः क्षीणा न कुत्रचित्। क्षितौ चालकनन्दा या तां० ॥१३०॥
सत्ये या क्षीरवर्णा च त्रेतायामिन्दुसंनिभा। द्वापरे चन्दनाभा च तां० ॥१३१॥
जलप्रभा कलौ या च नान्यत्र पृथिवीतले। स्वर्गे च नित्यं क्षीराभा तां० ॥१३२॥
यस्याः प्रभाव अतुलः पुराणे च श्रुतौ श्रुतः। या पुण्यदा पापहर्त्री तां० ॥१३३॥
यत्तोयकणिकास्पर्शः पापिनां च पितामह। ब्रह्महत्यादिकं पापं कोटिजन्मार्जितं दहेत् ॥१३४॥
इत्येवं कथितं ब्रह्मन्गङ्गापद्यैकविंशतिम्। स्तोत्ररूपं च परमं पापघ्नं पुण्यबीजकम् ॥१३५॥
नित्यं यो हि पठेद्भक्त्या संपूज्य च सुरेश्वरीम्। अश्वमेधफलं नित्यं लभते नात्र संशयः ॥१३६॥
अपुत्रो लभते पुत्रं भार्याहीनो लभेत्प्रियाम्। रोगान्मुच्येत रोगी च बद्धो मुच्येत बन्धनात् ॥१३७॥
अस्पष्टकीर्तिः सुयशा मूर्खो भवति पण्डितः। यः पठेत्प्रातरुत्थाय गङ्गास्तोत्रमिदं शुभम् ॥१३८॥
शुभं भवेत्तु दुःस्वप्नं गङ्गास्नानफलं भवेत् ॥१३९॥

नारायण उवाच

भगीरथोऽनया स्तुत्या स्तुत्वा गङ्गां च नारद। जगाम तां गृहीत्वा च यत्र नष्टाश्च सागराः ॥१४०॥
वैकुण्ठं ते ययुस्तूर्णं गङ्गायाः स्पर्शवायुना। भगीरथेन साऽऽनीता तेन भागीरथी स्मृता ॥१४१॥

करता हूँ॥१२९॥ इस भूतल पर एक कोश चौड़ी तथा कहीं भी उससे क्षीण न होने वाली अलकनन्दा नाम से विराजमान गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ॥१३०॥ सत्ययुग में दुग्ध के समान (वर्णवाली), त्रेता में चन्द्रमा के समान और द्वापर में चन्दन के समान कान्ति वाली उन गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ॥१३१॥ कलियुग में जो केवल पृथ्वी पर जल की प्रभा से पूर्ण रहती है अन्यत्र नहीं और स्वर्ग में नित्य क्षीर की भाँति कान्तिमती रहती हैं, उन गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ॥१३२॥ पुराण और वेदों में जिनका अतुलनीय प्रभाव सुना जाता है और जो पुण्यदायिनी एवं पापविनाशिनी है उन गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ॥१३३॥ पितामह, ब्रह्मन्! जिनके जल की बूंद मात्र के स्पर्श होने से पापियों के करोड़ों जन्मों के अर्जित ब्रह्महत्या आदि पाप नष्ट हो जाते हैं, उन्हीं गंगा का इक्कीस पद्यों में निर्मित यह स्तोत्र तुम्हें बता दिया। यह उत्तम, पापनाशक और पुण्य का कारण है॥१३४-१३५॥ जो देवेश्वरी गंगा की अर्चना कर के भक्तिपूर्वक नित्य इस स्तोत्र का पाठ करते हैं, उन्हें नित्य अश्वमेध यज्ञ के फल की प्राप्ति होती है, इसमें सन्देह नहीं॥१३६॥ उसी प्रकार पुत्रहीन को पुत्र और स्त्रीविहीन को स्त्री की प्राप्ति होती है। रोगी रोग से मुक्त हो जाता है और बन्धन में पड़ा हुआ व्यक्ति उससे मुक्त हो जाता है॥१३७॥ प्रातःकाल उठ कर इस शुभ गंगा-स्तोत्र का पाठ करने वाला अल्प कीर्तिकारी मूर्ख भी अत्यन्त यशस्वी पण्डित हो जाता है। उसके दुःस्वप्न सुस्वप्न हो जाते हैं और गंगास्नान का फल प्राप्त होता है॥१३८-१३९॥

नारायण बोले—नारद! भगीरथ ने इस स्तोत्र से गंगा की स्तुति करके उन्हें लेकर उसी स्थान की यात्रा की, जहाँ सगर के (साठ हजार) पुत्र नष्ट हो गए थे॥१४०॥ वायु द्वारा गंगा का स्पर्श होते ही वे सभी पुत्र वैकुण्ठ धाम में चले गए। भगीरथ गंगा को ले आए, इस कारण गंगा को 'भागीरथी' कहा गया है॥१४१॥

इत्येवं कथितं सर्वं गङ्गोपाख्यानमुत्तमम्। पुण्यदं मोक्षदं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥१४२॥

नारद उवाच

शिवसंगीतसंमुग्धे श्रीकृष्णे द्रवतां गते। द्रवतां च गतायां च राधायां किं बभूव ह॥१४३॥
तत्रस्थाश्च जना ये ये ते च किं चक्रुरुद्यमम्। एतत्सर्वं सुविस्तीर्णं प्रभो वक्तुमिहार्हसि॥१४४॥

नारायण उवाच

कार्तिकीपूर्णिमायां च राधायाः सुमहोत्सवे। कृष्णा संपूज्य तां राधामवसद्रासमण्डले॥१४५॥
कृष्णेन पूजितां तां तु संपूज्याऽऽदृतमानसाः। ऊचुर्ब्रह्मादयः सर्वे ऋषयः सनकादयः॥१४६॥
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णसंगीतं च सरस्वती। जगौ सुन्दरतानेन[1] वीणया च मनोहरम्॥१४७॥
तुष्टो ब्रह्मा ददौ तस्यै महारत्नाढ्यमालिकाम्। शिरोमणीन्द्रसारं च सर्वब्रह्माण्डदुर्लभम्॥१४८॥
कृष्णः कौस्तुभरत्नं च सर्वरत्नात्परं वरम्। अमूल्यरत्नखचितं हारसारं च राधिका॥१४९॥
नारायणश्च भगवान्वनमालां मनोहराम्। अमूल्यरत्नकलितं लक्ष्मीर्मकरकुण्डलम्॥१५०॥
विष्णुमाया भगवती मूलप्रकृतिरीश्वरी। दुर्गा नारायणीशानी विष्णुभक्तिं सुदुर्लभाम्॥१५१॥

इस प्रकार गंगा का पूरा परमोत्तम उपाख्यान तुम्हें बता दिया, जो पुण्य और मोक्ष का दाता एवं सब का सार रूप है अब आगे और क्या सुनना चाहते हो॥१४२॥

नारद बोले—शिव के संगीत से मुग्ध होकर भगवान् श्रीकृष्ण और राधिका जी के द्रवीभूत (जलमय) हो जाने के पश्चात् क्या हुआ? उस समय वहाँ जो लोग उपस्थित थे, उन्होंने कौन-सा उत्तम कार्य किया? हे प्रभो! यह सब बातें विस्तारपूर्वक बताने की कृपा करें॥१४३-१४४॥

नारायण बोले—कार्तिकी पूर्णिमा के दिन भगवान् श्रीकृष्ण ने राधिका जी के उस सुन्दर महोत्सव में राधा की भली भाँति पूजा करके रासमण्डल में उनके साथ निवास किया॥१४५॥ भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा सम्पूजित होने पर ब्रह्मा आदि सभी सनकादि ऋषियों ने भी उनकी पूजा की और निवेदन किया। इसी बीच सरस्वती ने अपनी वीणा की सुन्दर तान पर भगवान् श्रीकृष्ण का मनोहर संगीत गाना आरम्भ कर दिया। ॥१४६-१४७॥ तब ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर उन्हें एक उत्तम रत्नों की बनी माला प्रदान की। श्रेष्ठ मणियों के सार भाग से रचित एक ऐसी उत्तम चूड़ामणि अर्पित की जो समस्त ब्रह्माण्ड में दुर्लभ है॥१४८॥ श्रीकृष्ण ने समस्त रत्नों में श्रेष्ठ कौस्तुभ मणि भेंट की। राधिका ने अमूल्य रत्नों से निर्मित उत्तम हार प्रदान किया॥१४९॥ भगवान् नारायण ने मनोहर वनमाला तथा लक्ष्मी ने अमूल्य रत्नों से निर्मित मकराकृति कुण्डल प्रदान किए॥१५०॥ विष्णु की माया भगवती मूल प्रकृति ने, जो ईश्वरी, दुर्गा, नारायणी और ईशानी नाम से विख्यात हैं, अत्यन्त दुर्लभ विष्णु-भक्ति दी॥१५१॥

---

१ क. ०तालेन।

धर्मबुद्धिं च धर्मस्तु यशश्च विपुलं भवे। वह्निशुद्धांशुकं वह्निर्वायुश्च [1]मणिनूपुरम् ॥१५२॥
एतस्मिन्नन्तरे शंभुर्ब्रह्मणा प्रेरितो मुहुः। जगौ श्रीकृष्णसंगीतं रासोल्लाससमन्वितम् ॥१५३॥
मूर्छां प्रापुः सुराः सर्वे चित्रपुत्तलिका यथा। क्षणेन चेतनां प्राप्य ददृशुः रासमण्डलम् ॥१५४॥
स्थलं सर्वं जलाकीर्णं हीनराधाहरिं तथा। अत्युच्चै रुरुदुः सर्वे गोपा गोप्यः सुरा द्विजाः ॥१५५॥
ध्यानेन धाता बुबुधे सर्वमेतदभीप्सितम्। गतश्च राधया सार्धं श्रीकृष्णो द्रवतामिति ॥१५६॥
ततो ब्रह्मादयः सर्वे तुष्टुवुः परमेश्वरम्। स्वमूर्तिं दर्शय विभो वाञ्छितो वर एष नः ॥१५७॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वाग्बभूवाशरीरिणी। तामेव शुश्रुवुः सर्वे सुव्यक्तां मधुरां शुभाम् ॥१५८॥
सर्वात्माऽहमियं शक्तिर्भक्तानुग्रहविग्रहा। ममाप्यस्याश्च हे देवा देहेन च किमावयोः ॥१५९॥
मनवो मानवाः सर्वे मुनयश्चैव वैष्णवाः। मन्मन्त्रपूता मां द्रष्टुमागमिष्यन्ति मत्पदम् ॥१६०॥
मूर्तिं द्रष्टुं च सुव्यग्रा यूयं यदि सुरेश्वराः। करोतु शंभुस्तत्रैव मदीयं वाक्यपालनम् ॥१६१॥
स्वयं विधाता त्वं ब्रह्मन्नाज्ञां कुरु जगद्गुरो। कर्तुं शास्त्रविशेषं च वेदाङ्गं सुमनोहरम् ॥१६२॥
अपूर्वमन्त्रनिकरैः सर्वाभीष्टफलप्रदैः। स्तोत्रैश्च कवचैर्ध्यानैर्युतं पूजाविधिक्रमैः ॥१६३॥
मन्मन्त्रं कवचं स्तोत्रं कृत्वा यत्नेन गोपय। भवन्ति विमुखा ये न जनानां यत्करिष्यति ॥१६४॥

धर्म ने धार्मिक बुद्धि के साथ-साथ संसार में महायश प्रदान किया। अग्नि ने चिन्मय वस्त्र और वायु ने मणिमय नूपुर अर्पित किए ॥१५२॥ इतने में ब्रह्मा से बार-बार प्रेरित होकर शिव भी रास के उल्लास से युक्त श्रीकृष्ण का गीत गाने लगे ॥१५३॥ उसे सुन कर समस्त देववृन्द मूर्च्छित होकर चित्र की भाँति निश्चेष्ट हो गए, किन्तु एक क्षण के उपरान्त चेतना प्राप्त होने पर उन्होंने रासमण्डल की ओर देखा, तो सम्पूर्ण स्थल जलमय हो गया था और भगवान् श्रीकृष्ण तथा राधा जी का कहीं पता नहीं था। अनन्तर गोपगण, गोपिकाएँ देवता और ब्राह्मण गण (अधीर होकर) अति उच्च स्वर से विलाप करने लगे ॥१५४-१५५॥ उस समय ब्रह्मा ने ध्यान लगा कर भगवान् की सभी अभीप्सित बातों को जान लिया और कहा कि भगवान् श्रीकृष्ण राधा जी समेत जलमय हो गए हैं। पश्चात् ब्रह्मा आदि समस्त देवगण परमेश्वर की स्तुति करते हुए कहने लगे 'विभो ! हमें आप अपनी मूर्ति का दर्शन करायें' यही हम लोगों की बड़ी अभिलाषा है ॥१५६-१५७॥ इस बीच वहाँ आकाशवाणी हुई, जो अत्यन्त स्पष्ट, मधुर और शुभ थी। उसे सभी लोगों ने सुना। उसने कहा—देवगण ! सर्वात्मा मैं और भक्तों पर अनुग्रहार्थ शरीर धारण करने वाली यह मेरी शक्ति तो वर्तमान हैं ही। अब हम दोनों का विग्रह देखकर क्या करोगे ॥१५८-१५९॥ मनुगण, मनुष्यवृन्द, समस्त मुनि-समूह और वैष्णव लोग मेरे मन्त्र से पवित्र होकर मुझे देखने के लिए मेरे धाम में आयेंगे ॥१६०॥ सुरेश्वरवृन्द ! यदि तुम लोग मुझे देखने के लिए अत्यन्त चिन्तित हो रहे हो, तो शिव जी से कहो कि उसी स्थान पर मेरे वचनों का पालन करें और ब्रह्मन् ! जगद्गुरो ! तुम स्वयं विधाता हो। शंकर से कह दो कि वे वेदों के अंगभूत परम मनोहर विशिष्ट शास्त्र अर्थात् तन्त्रशास्त्र का निर्माण करें। उसमें सम्पूर्ण अभीष्ट फल देने वाले बहुत-से अपूर्व मंत्र उद्धृत हों, स्तोत्र, ध्यान, पूजा-विधि, मन्त्र और कवच—इन सब से वह शास्त्र सम्पन्न हो। मेरे मंत्र और कवच का निर्माण करके उसे गुप्त रखने का प्रयत्न करो। जो मुझसे विमुख रहें,

---

१ क. ०णिहारकम्।

सहस्रेषु शतेष्वेको मन्मन्त्रोपासको भवेत्। ते ते जना मन्त्रपूताश्चाऽऽगमिष्यन्ति मत्पदम्॥१६५॥
अन्यथा च भविष्यन्ति सर्वे गोलोकवासिनः। निष्फलं भविता सर्वं ब्रह्माण्डं चैव वेधसः॥१६६॥
जनाः पञ्चप्रकाराश्च युक्ताः स्रष्टुर्भवे भवे। पृथिवीवासिनः केचित्केचित्स्वर्गनिवासिनः॥१६७॥
अधोनिवासिनः केचिद्ब्रह्मलोकनिवासिनः। केचिद्वा वैष्णवाः केचिन्मम लोकनिवासिनः॥१६८॥
इदं कर्तुं महादेवः करोतु सुरसंसदि। प्रतिज्ञां सुदृढां सद्यस्ततो मूर्तिं च पश्यसि॥१६९॥
इत्येवमुक्त्वा गगने विरराम सनातनः। तद्दृष्ट्वा तां जगद्धाता तमुवाच शिवं मुदा॥१७०॥
ब्राह्मणो वचनं श्रुत्वा ज्ञानेशो ज्ञानिनां वरः। गङ्गातोयं करे धृत्वा स्वीचकार वचस्तु सः॥१७१॥
संयुक्तं विष्णुमायाद्यैर्मन्त्राद्यैः शास्त्रमुत्तमम्। वेदसारं करिष्यामि कृष्णाज्ञापालनाय च॥१७२॥
गङ्गातोयमुपस्पृश्य मिथ्या यदि वदेज्जनः। स याति कालसूत्रं च यावद्वै ब्रह्मणो वयः॥१७३॥
इत्युक्ते शंकरे ब्रह्मन्गोलोके सुरसंसदि। आविर्बभूव श्रीकृष्णो राधया सह तत्पुरः॥१७४॥
ते तं दृष्ट्वा च संहृष्टाः संस्तूय पुरुषोत्तमम्। परमानन्दपूर्णाश्च चक्रुश्च पुनरुत्सवम्॥१७५॥
कालेन शंभुर्भगवाञ्छास्त्रदीपं चकार सः। इत्येवं कथितं सर्वं सुगोप्यं च सुदुर्लभम्॥१७६॥
सा चैवं द्रवरूपा या गङ्गा गोलोकसंभवा। राधाकृष्णाङ्गसंभूता भुक्तिमुक्तिफलप्रदा॥१७७॥

उन्हें इसका उपदेश नहीं करना चाहिए। सैकड़ों एवं सहस्रों मनुष्यों में कोई एक ही मनुष्य मेरे मन्त्र का उपासक होगा। इससे जो-जो मनुष्य मेरे मन्त्र से पवित्र होंगे वे ही मेरे धाम में आएँगे। यदि मेरे धाम में न आ सकें तो वे सब गोलोक के निवासी हो जायँगे तब ब्रह्मा का सुरक्षित सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड निष्फल हो जायगा॥१६१-१६६॥ ब्रह्मा की प्रत्येक सृष्टि में पाँच प्रकार के प्राणी हैं—पृथ्वीनिवासी, स्वर्गनिवासी, पातालनिवासी, ब्रह्मलोकनिवासी और मेरे लोक के निवासी वैष्णव लोग। यदि देव-सभा में महादेव ऐसा शास्त्र-निर्माण करने के लिए सुदृढ़ प्रतिज्ञा करते हैं, तो तुरन्त मेरी मूर्ति का दर्शन हो जाएगा॥१६७-१६९॥ भगवान् सनातन आकाश में इतना कह कर चुप हो गए। इसे देखकर जगत्पति ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर (भगवान्) शंकर से उसकी पूर्ति के लिए अनुरोध किया॥१७०॥ ब्रह्मा की बात सुन कर ज्ञानिप्रवर और ज्ञानेश्वर शिव ने गंगाजल हाथ में लेकर उसकी स्वीकृति के लिए दृढ़ प्रतिज्ञा की॥१७१॥ कि—'भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा के पालनार्थ मैं विष्णु की माया और मन्त्रों आदि से संयुक्त तथा वेद के सारभूत एक उत्तम शास्त्र (तन्त्रशास्त्र) की रचना करूँगा'॥१७२॥ यदि गंगा-जल लेकर कोई प्राणी मिथ्या बोलता है, तो ब्रह्मा की आयु पर्यन्त वह कालसूत्र (नरक) में रहता है॥१७३॥ ब्रह्मन्! गोलोक की उस देव-सभा में शंकर के इस प्रकार प्रतिज्ञा करने पर राधा समेत भगवान् श्रीकृष्ण तुरन्त प्रकट हो गए॥१७४॥ उन्हें देखकर देवताओं ने पुरुषोत्तम भगवान् की स्तुति की और परमानन्दमग्न होकर उस उत्सव कां पुनः आरम्भ किया॥१७५॥ कुछ समय के उपरान्त भगवान् शंकर ने शास्त्रदीप की (शास्त्रीय मत को प्रकाशित करने वाले सात्त्विक तन्त्रशास्त्र) की रचना की। इस प्रकार मैंने समस्त वृत्तान्त सुना दिया, जो अत्यन्त गोपनीय और सुदुर्लभ है॥१७६॥ इस प्रकार वही द्रवरूपा गंगा है जो गोलोक में उत्पन्न हुई थीं। राधा और कृष्ण के अंग से उत्पन्न हुई गंगा भुक्ति और मुक्ति दोनों को देने वाली हैं। परमात्मा श्रीकृष्ण की

स्थाने स्थाने स्थापिता सा कृष्णेन परमात्मना। कृष्णस्वरूपा परमा सर्वब्रह्माण्डपूजिता ॥१७८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृ० नारदना० गङ्गोपाख्यानं
नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

अथैकादशोऽध्यायः

नारद उवाच

कलेः पञ्चसहस्राब्दे समतीते सुरेश्वरी। क्व गता सा महाभागा तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१॥

श्रीनारायण उवाच

भारतं भारतीशापात्समागत्येश्वरेच्छया। जगाम तं च वैकुण्ठं शापान्ते पुनरेव सा ॥२॥
भारतं भारती त्यक्त्वा चागमत्तद्धरेः पदम्। पद्मावती च शापान्ते गङ्गायाश्चैव नारद ॥३॥
गङ्गा सरस्वती लक्ष्मीश्चैतास्तिस्रः प्रिया हरेः। तुलसीसहिता ब्रह्मंश्चतस्रः कीर्तिताः श्रुतौ ॥४॥

व्यवस्था के अनुसार जगह-जगह रहने का सुअवसर इन्हें प्राप्त हो गया। श्रीकृष्ण-स्वरूपा इन आदरणीया गंगा को सम्पूर्ण ब्रह्मांड के लोग पूजते हैं ॥१७७-१७८॥

श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराण के प्रकृतिखण्ड में गंगोपाख्यानवर्णन
नामक दसवाँ अध्याय समाप्त ॥१०॥

अध्याय ११

गंगा का उपाख्यान

नारद बोले—कलियुग के पाँच सहस्र वर्ष व्यतीत होने पर महाभागा गंगा कहाँ जाएँगी? यह मुझे बताने की कृपा करें ॥१॥

नारायण बोले—सरस्वती के शापवश गंगा जी भारत में आयीं और शाप के अन्त होने पर श्रीहरि की आज्ञा से वे पुनः वैकुण्ठ में चली जायँगी ॥२॥ नारद! गंगा-शाप के अन्त होने पर सरस्वती और पद्मावती (लक्ष्मी) भी भारत को त्याग कर विष्णु लोक में पधारेंगी ॥३॥ ब्रह्मन्! इस प्रकार भगवान् विष्णु की गंगा, सरस्वती और लक्ष्मी ये तीन स्त्रियाँ हैं। तुलसी समेत चार पत्नियाँ वेद में प्रसिद्ध हैं ॥४॥

नारद उवाच

हेतुना केन देवी वै विष्णुपादाब्जसंभवा। धातुः कमण्डलुस्था च शंकरस्य शिरोगता ॥५॥
बभूव सा मुनिश्रेष्ठ गङ्गा नारायणप्रिया। अहो केन प्रकारेण तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥६॥

श्रीनारायण उवाच

पुरा बभूव गोलोके सा गङ्गा द्रवरूपिणी। राधाकृष्णाङ्गसंभूता तदंशा तत्स्वरूपिणी ॥७॥
द्रवाधिष्ठातृरूपा या रूपेणाप्रतिमा भुवि। नवयौवनसंपन्ना रत्नाभरणभूषिता ॥८॥
शरन्मध्याह्नपद्मास्या सस्मिता सुमनोहरा। तप्तकाञ्चनवर्णाभा शरच्चन्द्रसमप्रभा ॥९॥
स्निग्धप्रभाऽतिसुस्निग्धा शुद्धसत्त्वस्वरूपिणी। सुपीनकठिनश्रोणी सुनितम्बयुगं वरम् ॥१०॥
पीनोन्नतं सुकठिनं स्तनयुग्मं सुवर्तुलम्। सुचारुनेत्रयुगलं सुकटाक्षं सुवङ्किमम् ॥११॥
वङ्किमं कबरीभारं मालतीमाल्यसंयुतम्। सिन्दूरबिन्दुललितं सार्धं चन्दनबिन्दुभिः ॥१२॥
कस्तूरीपत्रिकायुक्तं गण्डयुग्मं मनोहरम्। बन्धूककुसुमाकारमधरोष्ठं च सुन्दरम् ॥१३॥
पक्वदाडिमबीजाभदन्तपङ्क्तिसमुज्ज्वलम्। वाससी वह्निशुद्धे च नीवीयुक्ते च बिभ्रती ॥१४॥
सा सकामा कृष्णपार्श्वे समुत्तस्थे सुलज्जिता[1]। वाससा मुखमाच्छाद्य लोचनाभ्यां विभोर्मुखम् ॥१५॥

नारद बोले—गंगा देवी भगवान् विष्णु के चरणकमल से क्यों निकलीं, ब्रह्मा के कमण्डल में क्यों स्थित हुईं और शंकर के मस्तक पर कैसे पहुँचीं? मुनिश्रेष्ठ! वही गंगा भगवान् विष्णु की प्रिया किस प्रकार हुईं, यह सब मुझे बताने की कृपा करें ॥५-६॥

नारायण बोले—पूर्वकाल में गंगा गोलोक में जल रूप से विराजमान थीं। राधा और कृष्ण के अंग से उत्पन्न यह गंगा उनका अंश और उन्हीं का स्वरूप हैं ॥७॥ जल की अधिष्ठात्री देवी गंगा भूतल पर अनुपम रूपवती, नवयौवना और रत्नों के आभूषणों से विभूषिता थीं ॥८॥ शरद् ऋतु के मध्याह्नकाल में कमल की भाँति उनका मुस्कान भरा मुख परम मनोहर था। उनकी आभा तपाये हुए सुवर्ण के सदृश थी। तेज में वह शरत्काल के चन्द्रमा को भी लज्जित कर रही थीं ॥९॥ स्निग्ध प्रभा के कारण उनके शरीर में अत्यन्त चिकनाहट थी। उनका शुद्ध सात्त्विक स्वरूप था। उनकी श्रोणी मांसल और कठोर थी। दोनों नितम्ब मनोहर थे। दोनों कुच स्थूल, उत्तुंग तथा गोल थे। दोनों नेत्र सुन्दर कटाक्ष एवं सुन्दर भंगिमा सहित आकर्षक थे। घुंघराले केशपाश पर मालती-माला शोभायमान थी। ललाट पर चन्दन-बिंदुओं के साथ सिंदूर की सुंदर बिंदी थी। दोनों मनोहर कपोलों पर कस्तूरी से पत्र-रचनायें हुई थीं। अधरोष्ठ दुपहरिया के विकसित पुष्प के समान सुन्दर था। दाँतों की अत्यंत उज्ज्वल पंक्ति पके हुए अनार के दानों की भाँति चमक रही थी। अग्निशुद्ध दो दिव्य वस्त्रों को उन्होंने धारण कर रखा था ॥१०-१४॥ इस प्रकार अत्यन्त सज-धज कर कामुकीभाव से लजाती हुई वह भगवान् श्रीकृष्ण के समीप विराजमान हो गईं। उनका मुखमंडल हर्ष से खिल रहा था। हृदय में नव-संगम की लालसा थी। इसलिए

---

१ ख ०ता। पद्मपत्रसमानाभ्यां लो०।

निमेषरहिताभ्यां च पिबन्ती सततं मुदा। प्रफुल्लवदना हर्षान्नवसंगमलालसा ॥१६॥
मूर्च्छिता प्रभुरूपेण पुलकाङ्कितविग्रहा। एतस्मिन्नन्तरे तत्र विद्यमाना च राधिका ॥१७॥
गोपीत्रिंशत्कोटियुक्ता कोटिचन्द्रसमप्रभा। कोपेन रक्तपद्मास्या रक्तपङ्कजलोचना ॥१८॥
श्वेतचम्पकवर्णाभा मत्तवारणगामिनी। अमूल्यरत्नखचितनानाभरणभूषिता ॥१९॥
माणिक्यखचितं हारममूल्यं वह्निशौचकम्। पीताभवस्त्रयुगलं नीवीयुक्तं च बिभ्रती ॥२०॥
स्थलपद्मप्रभाजुष्टं कोमलं च सुरञ्जितम्। कृष्णदत्तार्घ्यसंयुक्तं विन्यस्यन्ती पदाम्बुजम् ॥२१॥
रत्नेन्द्रराजखचितविमानादवरुह्य च। सेव्यमाना च सखिभिः श्वेतचामरवायुना ॥२२॥
कस्तूरीबिन्दुतिलकं चन्दनेन्दुसमन्वितम्। दीप्तदीपप्रभाकारं सिन्दूरारुणसुन्दरम् ॥२३॥
दधती भालमध्ये च सीमान्ताधस्तदुज्ज्वलम्। पारिजातप्रसूनादिमालायुक्तं सुवङ्किमम् ॥२४॥
सुचारुकबरीभारं कम्पयन्ती च कम्पिता। सुचारुनासा संयुक्तमोष्ठं कम्पयती रुषा ॥२५॥
गत्वा तस्थौ कृष्णपार्श्वे रत्नसिंहासने वरे। सखीनां च समूहैश्च परिपूर्णा विभोः सभा ॥२६॥
तां च दृष्ट्वा समुत्तस्थौ कृष्णः सादरमच्युतः। संभाष्य मधुरालापैः सस्मितश्च ससंभ्रमः ॥२७॥

वे आँचल से अपना मुख ढककर अपलक नेत्रों से भगवान् के मुख रूपी अमृत का निरन्तर प्रसन्नतापूर्वक पान कर रही थीं॥१५-१६॥ भगवान् के रूप-दर्शन में वे इतना विभोर थीं कि मूर्च्छित-सी मालूम हो रही थीं और उनके शरीर में रोमांच हो रहा था। उस समय वहाँ राधिका जी उपस्थित हो गईं, जो तीस करोड़ गोपियों से युक्त तथा करोड़ों चन्द्रमा के समान प्रभापूर्ण थीं। क्रोध के कारण उनका मुख रक्तकमल की भाँति (लाल) हो गया और नेत्र रक्त-कमल के समान हो गए॥१७-१८॥ श्वेत चम्पा के समान उनके शरीर का रंग था तथा मतवाले हाथी की भाँति चाल थी। अमूल्य रत्नों के बने अनेक भाँति के आभूषणों तथा मणियों से खचित अमूल्य हार से वे सुशोभित थीं। उन्होंने अग्नि-विशुद्ध दो पीत वस्त्र इजारबंद के साथ धारण कर रखे थे॥१९-२०॥ उनके चरण-कमल स्थल-कमल की भाँति कान्तिपूर्ण, कोमल एवं अत्यन्त रंजित थे, जिन पर भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्घ्य प्रदान किया था। इस प्रकार के चरणों का विन्यास करती (डग भरती) हुईं परमोत्तम रत्नों से खचित विमान से वे नीचे उतरीं। सखियाँ स्वच्छ चँवर के वायु से उनकी सेवा कर रही थीं॥२१-२२॥ उनके भाल के मध्य में चन्दन के चन्द्रमा युक्त कस्तूरी की बिन्दी की तिलक थी, जो प्रदीप्त दीप-प्रभा के समान आकृति वाली और सिन्दूर की अरुणिमा से अत्यंत सुन्दर थी॥२३॥ उनके सीमन्त का निचला भाग परम स्वच्छ था। पारिजात के पुष्पों की सुन्दर माला उनके गले में सुशोभित थी। अपनी सुन्दर अलकावली को कँपाती हुई वे स्वयं भी कम्पित हो रही थीं। रोष के कारण उनके सुन्दर रागयुक्त ओष्ठ फड़क रहे थे॥२४-२५॥ वे जाकर रत्न-सिंहासन पर कृष्ण के बगल में विराजमान हो गईं। परमेश्वर (कृष्ण) की सभा सखियों के समूहों से भर गई॥२६॥ उन्हें देख कर अच्युत श्रीकृष्ण उठ कर उनका आदर करके मन्द मुसकान के साथ मधुर वाणी में उनसे बातचीत करने लगे॥२७॥ अनन्तर गोपगणों ने भयभीत

[1]प्रणेमुरतिभक्ताश्च गोपा नम्रात्मकंधराः। [2]तुष्टुवुस्ते च भक्त्या तं तुष्टाव परमेश्वरः ॥२८॥
उत्थाय गङ्गा सहसा संभाषां च चकार सा। कुशलं परिपप्रच्छ भीताऽतिविनयेन च ॥२९॥
नम्रभावस्थिता त्रस्ता शुष्ककण्ठौष्ठतालुका। ध्यानेन शरणापन्ना श्रीकृष्णचरणाम्बुजे ॥३०॥
तद्धृत्पद्मे स्थितः कृष्णो भीतायै चाभयं ददौ। बभूव स्थिरचित्ता सा सर्वेश्वरवरेण च ॥३१॥
ऊर्ध्वं सिंहासनस्थां च राधां गङ्गा ददर्श सा। सुस्निग्धां सुखदृश्यां च ज्वलन्तीं ब्रह्मतेजसा ॥३२॥
असंख्यब्रह्मणामाद्यां चाऽऽदिसृष्टिं सनातनीम्। यथा द्वादशवर्षीयां कन्यां च नवयौवनाम् ॥३३॥
विश्ववृन्दे निरुपमां रूपेण च गुणेन च। शान्तां कान्तामनन्तां तामाद्यन्तरहितां सतीम् ॥३४॥
शुभां सुभद्रां सुभगां स्वामिसौभाग्यसंयुताम्। सौन्दर्यसुन्दरीं श्रेष्ठां सुन्दरीष्वखिलासु च ॥३५॥
कृष्णार्धाङ्गीं कृष्णसमां तेजसा वयसा त्विषा। पूजितां च महालक्ष्म्या महालक्ष्मीश्वरेण च ॥३६॥
प्रच्छाद्यमानां प्रभया सभामीशस्य सुप्रभाम्। सखीदत्तं च ताम्बूलं गृह्णतीमन्यदुर्लभम् ॥३७॥
अजन्यां सर्वजननीं धन्यां मान्यां च मानिनीम्। कृष्णप्राणाधिदेवीं च प्राणप्रियतमां रमाम् ॥३८॥

होकर उन्हें प्रणाम किया और भक्तिपूर्वक स्तुति प्रारंभ कर दी। परमेश्वर श्रीकृष्ण भी उनकी स्तुति करने लगे ॥२८॥ गंगा ने भी सहसा उठकर उनका स्तवन किया और भयभीत होकर अत्यन्त विनय के साथ उनसे कुशल पूछा ॥२९॥ उस समय भय के कारण गंगा के कंठ, ओष्ठ और तालू सूख गये थे। वे विनीत भाव से खड़ी थीं। उन्होंने ध्यान के द्वारा श्रीकृष्ण के चरणारविन्दों की शरण ली ॥३०॥ अनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण ने उनके हृदयकमल में स्थित होकर उन्हें अभयदान दिया और वे सर्वेश्वर भगवान् के वरदान से शांतचित्त हुईं ॥३१॥ पश्चात् गंगा ने ऊपर सिंहासनासीन श्री राधिकाजी को देखा, जो अत्यन्त स्निग्ध, देखने में अत्यन्त सुखकर और ब्रह्मतेज से प्रदीप्त हो रही थीं ॥३२॥ असंख्य ब्रह्मा की आदि जननी, आदि सृष्टिरूपा तथा सनातनी राधाजी की वह मूर्ति, नवयौवन-भूषित बारह वर्ष वाली कन्या के समान प्रतीत हो रही थी ॥३३॥ समस्त विश्व में उनके सदृश रूपवती और गुणवती कोई भी नहीं है। वे परम शान्त, कमनीय, अनन्त, आदि-अन्त से रहित, सती, शुभ, अत्यन्त भद्ररूप, सुन्दरी, पति-सौभाग्य से युक्त, सौन्दर्य की रानी तथा सकल सुन्दरियों में श्रेष्ठ थीं ॥३४-३५॥ वे भगवान् श्रीकृष्ण की अर्द्धांगिनी, उनके समान तेज, अवस्था और कान्ति से युक्त, महालक्ष्मीश्वर द्वारा पूजित होनेवाली महालक्ष्मी, भगवान् की उस सभा को अपनी कान्ति से आच्छादित करनेवाली एवं अत्यन्त प्रभाव से पूर्ण थीं। सखियों का दिया हुआ दुर्लभ पान वे ग्रहण कर रही थीं ॥३६-३७॥ वे स्वयं जन्मरहित, समस्त की जननी, धन्या, मान्या, मानिनी, भगवान् श्रीकृष्ण के प्राणों की अधीश्वरी, उनके प्राणों की प्रियतमा एवं रमा रूप हैं ॥३८॥ रासेश्वरी राधिका जी को इस भाँति देखकर गंगा को तृप्ति नहीं हो रही थी। वे अपने अनिमेषलोचनों से उनकी मधुर

---

१ ख. ०रभिसंत्रस्ता गो०। २ क. ०वुश्चातिसंतुष्टास्तु०।

दृष्ट्वा रासेश्वरीं तृप्तिं न जगाम सुरेश्वरी। निमेषरहिताभ्यां च लोचनाभ्यां पपौ च ताम् ॥३९॥
एतस्मिन्नन्तरे राधा जगदीशमुवाच सा। वाचा मधुरया शान्ता विनीता सस्मिता मुने ॥४०॥

राधिकोवाच

केयं प्राणेश कल्याणी सस्मिता त्वन्मुखाम्बुजम्। पश्यन्ती सततं पार्श्वे सकामा रक्तलोचना ॥४१॥
मूर्छां प्राप्नोति रूपेण पुलकाङ्कितविग्रहा। वस्त्रेण मुखमाच्छाद्य निरीक्षन्ती पुनः पुनः ॥४२॥
त्वं चापि मां संनिरीक्ष्य सकामः[1] सस्मितः सदा। मयि जीवति गोलोके भूता दुर्वृत्तिरीदृशी ॥४३॥
त्वमेव चैवं दुर्वृत्तं वारं वारं करोषि च। क्षमां करोमि ते प्रेम्णा स्त्रीजातिः स्निग्धमानसा ॥४४॥
संगृह्येमां प्रियामिष्टां गोलोकाद्गच्छ लम्पट। अन्यथा नहि ते भद्रं भविष्यति[2] सुरेश्वर ॥४५॥
दृष्टस्त्वं विरजायुक्तो मया चन्दनकानने। क्षमा कृता मया पूर्वं सखीनां वचनादहो ॥४६॥
त्वया मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं पुरा। देहं संत्यज्य विरजा नदीरूपा बभूव सा ॥४७॥
कोटियोजनविस्तीर्णा ततो दैर्घ्ये चतुर्गुणा। अद्यापि विद्यमाना सा तव सत्कीर्तिरूपिणी ॥४८॥
गृहं मयि गतायां च पुनर्गत्वा तदन्तिकम्। उच्चैरुरोदीर्विरजे विरजे चेति संस्मरन् ॥४९॥
तदा तोयात्समुत्थाय सा योगात्सिद्धयोगिनी। सालंकारा मूर्तिमती ददौ तुभ्यं च दर्शनम् ॥५०॥

छवि का एकटक दर्शनपान कर रही थीं॥३९॥ मुने! इसी बीच शान्त, विनीत राधिका ने मन्द-मन्द हँसती हुई मधुरवाणी में जगदीश भगवान् श्रीकृष्ण से कहा॥४०॥

राधिका बोलीं—हे प्राणेश! यह कल्याणमूर्ति कौन है, जो तुम्हारे पार्श्व में बैठकर सस्मित भाव से तुम्हारे मुखकमल को निरन्तर देख रही है? काम उत्पन्न होने से इसके नेत्र लाल हो गये हैं॥४१॥ तुम्हारे रूप पर (मोहित होकर) मूर्च्छित सी हो रही है। इसके शरीर में रोमांच हो गया है और वस्त्र से अपना मुख ढककर बार-बार तुम्हें देख रही है॥४२॥ तुम मुझे ही देखकर सदैव सस्मित भाव से कामुक होते थे; किन्तु अब मेरे रहते हुए भी गोलोक में इस प्रकार का दुराचार हो रहा है॥४३॥ तुम इस प्रकार का दुर्व्यवहार बार-बार करते आये हो, किन्तु तुम्हारे प्रेम के कारण मैं क्षमा करती आयी हूँ क्योंकि स्त्री जाति कोमल स्वभाव की भोली-भाली होती है॥४४॥ सुरेश्वर! (यदि ऐसा ही करना है) तो इसे लेकर यहाँ गोलोक से चले जाओ; अन्यथा तुम्हारा कल्याण नहीं होगा॥४५॥ क्योंकि पहले भी एक बार मैंने चन्दनवन में तुम्हें विरजा के साथ देखा था; किन्तु सखियों के कहने से मैंने क्षमा कर दी थी॥४६॥ मेरा शब्द सुनते ही तुमने उसे पहले ही तिरोहित कर दिया था। तब, वह (विरजा) अपनी देह का त्याग कर नदी रूप में परिणत हो गई॥४७॥ जो एक करोड़ योजन चौड़ी और उससे चौगुने योजन लम्बी होकर तुम्हारी सत्कीर्ति के रूप में आज भी विद्यमान है॥४८॥ जब मैं घर चली गयी तो पुनः उसके समीप जाकर—हा विरजे, हा विरजे! कहकर तुम उच्च स्वर से (गला फाड़कर) रोने लगे। उस समय उस सिद्ध योगिनी ने योग द्वारा जल से निकल कर अलंकारों से सज-धज कर तुम्हें

---

१ क. ०म इव स।२ क. ०ति वज्रेश्वर।

ततस्तां च समाश्लिष्य वीर्याधानं कृतं त्वया। ततो बभूवस्तस्यां च समुद्राः सप्त चैव हि ॥५१॥
दृष्टस्त्वं शोभया गोप्या युक्तश्चम्पककानने। सद्यो मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं त्वया ॥५२॥
शोभा देहं परित्यज्य प्राविशच्चन्द्रमण्डलम्। ततस्तस्याः शरीरं च स्निग्धं तेजो बभूव ह ॥५३॥
संविभज्य त्वया दत्तं हृदयेन विदूयता। रत्नाय किंचित्स्वर्णाय किंचिन्मतिवराय च ॥५४॥
किंचित्स्त्रीणां मुखाब्जेभ्यः किंचिद्राज्ञे च किंचन। किंचित्प्रकृष्टवस्त्रेभ्यो रौप्येभ्यश्चापि किंचन ॥५५॥
किंचिच्चन्दनपङ्केभ्यस्तोयेभ्यश्चापि किंचन। किंचित्किसलयेभ्यश्च पुष्पेभ्यश्चापि किंचन ॥५६॥
किंचित्फलेभ्यः सस्येभ्यः सुपक्वेभ्यश्च किंचन। नृपदेवगृहेभ्यश्च संस्कृतेभ्यश्च किंचन ॥
किंचिन्नूतनवस्त्रेभ्यो गोरसेभ्यश्च किंचन ॥५७॥
दृष्टस्त्वं प्रभया गोप्या युक्तो वृन्दावने वने। सद्यो मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं त्वया ॥५८॥
प्रभा देहं परित्यज्य प्राविशत्सूर्यमण्डलम्। ततस्तस्याः शरीरं च तीक्ष्णं तेजो बभूव ह ॥५९॥
संविभज्य त्वया दत्तं प्रेम्णा च रुदता पुरा। विभज्य चक्षुषोर्दत्तं लज्जया मद्भयेन च ॥६०॥
हुताशनाय किंचिच्च नृपेभ्यश्चापि किंचन। किंचित्पुरुषसंघेभ्यो देवेभ्यश्चापि किंचन ॥६१॥
किंचिद्दस्युगणेभ्यश्च[1] नागेभ्यश्चापि किंचन। ब्राह्मणेभ्यो मुनिभ्यश्च तपस्विभ्यश्च किंचन ॥६२॥
स्त्रीभ्यः सौभाग्ययुक्ताभ्यो[2] यशस्विभ्यश्च किंचन। तच्च दत्त्वा च सर्वेभ्यः पूर्वं रोदितुमुद्यतः ॥६३॥
शान्त्या गोप्या युतस्त्वं च दृष्टो वै रासमण्डले। वसन्ते पुष्पशय्यायां माल्यवांश्चन्दनोक्षितः ॥६४॥

अपना दर्शन दिया ॥४९-५०॥ अनन्तर तुमने उसका गाढालिंगन कर उसमें वीर्याधान किया। तब उससे सात समुद्रों की उत्पत्ति हुई ॥५१॥ दूसरी बार चम्पक वन में शोभागोपी के साथ (रति करते हुए) तुम पकड़े गये थे। वहाँ भी मेरा शब्द सुनते ही तुमने उसे छिपा दिया ॥५२॥ अनन्तर शोभा ने देहत्याग कर चन्द्रमण्डल में प्रवेश किया और उसका शरीर परम स्निग्ध तेज बन गया। तब तुमने हार्दिक समवेदना प्रकट करते हुए उस तेज का विभाग कर रत्न, सुवर्ण, श्रेष्ठ बुद्धिवाले मनुष्य, स्त्रियों के मुखकमल, राजा, उत्तम वस्त्र, चांदी, चन्दनपंक, जल, नूतन पल्लव, पुष्प, फल, पके अन्न, सुसंस्कृत राजगृह और देवमंदिरों में थोड़ा-थोड़ा करके बाँट दिया ॥५३-५७॥ फिर तुम वृन्दावन में प्रभा गोपी के साथ समागम करते देखे गये। मेरा शब्द सुनते ही तुमने उसे अन्तर्हित कर दिया ॥५८॥ किन्तु प्रभा अपना शरीर छोड़ कर सूर्यमण्डल में प्रविष्ट हो गयी और उसकी देह तीक्ष्ण तेज में परिणत हो गयी ॥५९॥ रोते हुए तुमने प्रेम से उस तेज का विभाजन किया और लज्जा तथा मेरे भय के कारण, नेत्र, अग्नि, राजा, जनसमुदाय, देवता, चोरगण, नागगण, ब्राह्मण, मुनि, तपस्वी, सौभाग्यवती स्त्री और यशस्वी व्यक्तियों में बाँट दिया। इस प्रकार वह तेज सभी लोगों को देकर तुम पहले की भाँति रोने लगे ॥६०-६३॥ पुनः तुम रासमण्डल के अवसर पर बसन्त के समय का लेप लगाये और पुष्प माला धारण किये पुष्प की शय्या पर शान्ति गोपी के साथ (विहार करते) देखे गये थे ॥६४॥ विभो! उस रत्न जड़े हुए महल में रत्नप्रदीप के प्रकाश में तुम दोनों रत्नों के भूषणों से भूषित

---

१ क. ०स्युजनेभ्य०। २ ०भ्यो व्रतिनीभ्य०।

रत्नभूषणभूषाढ्यो रत्नभूषितया सह ॥६५॥
रत्नप्रदीपैर्युक्तश्च रत्ननिर्मितमन्दिरे । त्वया दत्तं च ताम्बूलं भुक्तवत्यै सुवासितम्। तया दत्तं च ताम्बूलं भुक्तवांस्त्वं पुरा विभो ॥६६॥
सद्यो मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं त्वया। शान्तिर्देहं परित्यज्य भिया लीना त्वयि प्रभो ॥६७॥
ततस्तस्याः शरीरं च गुणश्रेष्ठं बभूव ह। संविभज्य त्वया दत्तं प्रेम्णा च रुदता पुरा ॥६८॥
विश्वे विषयिणे किंचित्सत्त्वरूपाय विष्णवे। शुद्धसत्त्वस्वरूपायै किंचिल्लक्ष्म्यै पुरा विभो ॥६९॥
त्वन्मन्त्रोपासकेभ्यश्च वैष्णवेभ्यश्च किंचन। तपस्विभ्यश्च धर्माय धर्मिष्ठेभ्यश्च किंचन ॥७०॥
मया पूर्वं हि दृष्टस्त्वं गोप्या च क्षमया सह। सुवेषवान्माल्यवांश्च गन्धचन्दनसंयुतः ॥७१॥
रत्नभूषितया चारुचन्दनोक्षितया तया। सुखेन मूर्च्छितस्तल्पे पुष्पचन्दनसंयुते ॥७२॥
श्लिष्टोऽभून्निद्रया सद्यः सुखेन नवसंगमात्। मया प्रबोधितौ सा च भवांश्च स्मरणं कुरु ॥७३॥
गृहीतं पीतवस्त्रं ते मुरली च मनोहरा। वनमाला कौस्तुभश्चाप्यमूल्यं रत्नकुण्डलम् ॥७४॥
पश्चात्प्रदत्तं प्रेम्णा च सखीनां वचनादहो। लज्जया कृष्णवर्णोऽभूदद्यापि च भवान्प्रभो ॥७५॥
क्षमा देहं परित्यज्य लज्जया पृथिवीं गता। ततस्तस्याः शरीरं च गुणश्रेष्ठं बभूव ह ॥७६॥
संविभज्य त्वया दत्तं प्रेम्णा च रुदता पुरा। किंचिद्दत्तं विष्णवे च वैष्णवेभ्यश्च किंचन ॥७७॥
धर्मिष्ठेभ्यश्च धर्माय दुर्बलेभ्यश्च किंचन। तपस्विभ्योऽपि देवेभ्यः पण्डितेभ्यश्च किंचन ॥७८॥
एतत्ते कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि। त्वद्गुणं बहुविस्तारं जानामि च परं प्रभो ॥७९॥

होकर एक दूसरे को सुवासित पान खिला रहे थे ॥६५-६६॥ प्रभो! उस समय मेरा शब्द सुनते ही तुमने उसे छिपा दिया किन्तु भयभीत होकर वह शान्ति अपनी देह त्याग कर तुममें लीन हो गयी ॥६७॥ और उसका शरीर श्रेष्ठ गुण में परिवर्तित हो गया। अनन्तर सप्रेम रुदन करते हुए तुमने उसका विभाजन करके विश्व में विषयी, सत्त्वरूप विष्णु और शुद्ध सत्त्व स्वरूपा महालक्ष्मी, तुम्हारे मन्त्र के उपासक वैष्णवगण, तपस्वीगण, धर्म और धर्म-निष्ठ व्यक्तियों को सौंप दिया ॥६८-७०॥ फिर मैंने क्षमा गोपी के साथ तुम्हें देखा था। तुम उस समय उत्तम वेष बनाये—पुष्पमाला पहने और सुगंधित चन्दन से चर्चित थे ॥७१॥ पुष्प और चन्दन से सुवासित उस शय्या पर तुम रत्नों के आभूषणों से विभूषित तथा सुन्दर चन्दन से चर्चित उस रमणी के साथ सुखविहार कर रहे थे; अनन्तर नवसमागम के कारण तुम दोनों शीघ्र ही निद्रामग्न हो गये। तब मैंने ही तुम दोनों को जगाया, यह स्मरण करो ॥७२-७३॥ उस समय मैंने तुम्हारा पीताम्बर, मनोहर मुरली, वनमाला, कौस्तुभमणि और अमूल्य रत्न-कुण्डल ले लिये। किन्तु प्रेमवश और सखियों के कहने से मैंने पुनः तुम्हें उन चीजों को लौटा दिया। प्रभो! उसी लज्जा के कारण आप कृष्ण वर्ण के हो गये, जो आज भी दिखाई दे रहे हैं ॥७४-७५॥ और क्षमा ने लज्जित होकर देह त्याग दी तथा पृथिवी में प्रवेश किया। उसका शरीर श्रेष्ठ गुणों में परिणत हो गया ॥७६॥ तब प्रेम का आँसू बहाते हुए तुमने उसका विभाग कर विष्णु, वैष्णवों, धर्मनिष्ठों, धर्म, दुर्बलों, तपस्वियों, देवताओं और पण्डितों को थोड़ा-थोड़ा करके बाँट दिया ॥७७-७८॥ प्रभो! यह सब मैंने तुम्हें सुना दिया, अब और क्या सुनना चाहते हो? मैं तुम्हारे गुणों को बहुत विस्तार से जानती हूँ ॥७९॥

इत्येवमुक्त्वा सा राधा रक्तपङ्कजलोचना। गङ्गां वक्तुं समारेभे नम्रास्यां लज्जितां सतीम् ॥८०॥
गङ्गा रहस्यं योगेन ज्ञात्वा वै सिद्धयोगिनी। तिरोभूय सभामध्यात्स्वजलं प्रविवेश सा ॥८१॥
राधा योगेन विज्ञाय सर्वत्रावस्थितां च ताम्। पानं कर्तुं समारेभे गण्डूषात्सिद्धयोगिनी ॥८२॥
गङ्गा रहस्यं योगेन ज्ञात्वा वै सिद्धयोगिनी। श्रीकृष्णचरणाम्भोजं परमं शरणं ययौ ॥८३॥
गोलोकं चैव वैकुण्ठं ब्रह्मलोकादिकं तथा। ददर्श राधा सर्वत्र नैव गङ्गां ददर्श सा ॥८४॥
सर्वतो जलशून्यं च शुष्कं गोलोकपङ्कजम्। जलजन्तुसमहैश्च मृतदेहैः समन्वितम् ॥८५॥
ब्रह्मविष्णुशिवानन्तधर्मेन्द्रेन्दुदिवाकराः। मनवो मानवाः[1] सर्वे देवाः सिद्धास्तपस्विनः ॥८६॥
गोलोकं च समाजग्मुः शुष्ककण्ठौष्ठतालुकाः। सर्वे प्रणेमुर्गोविन्दं सर्वेशं प्रकृतेः परम् ॥८७॥
वरं वरेण्यं वरदं वरिष्ठं वरकारणम्। वरेशं च वरार्हं च सर्वेषां प्रवरं प्रभुम् ॥८८॥
निरीहं च निराकारं निर्लिप्तं च निराश्रयम्। निर्गुणं च निरुत्साहं निर्व्यूहं च निरञ्जनम् ॥८९॥
स्वेच्छामयं च साकारं भक्तानुग्रहविग्रहम्। सत्यस्वरूपं सत्येशं साक्षिरूपं सनातनम् ॥९०॥
परं परेशं परमं परमात्मानमीश्वरम्। प्रणम्य तुष्टुवुः सर्वे भक्तिनम्रात्मकंधराः ॥९१॥
सगद्गदाः साश्रुनेत्राः पुलकाङ्कितविग्रहाः। सर्वे संस्तूय सर्वेशं भगवन्तं परं हरिम् ॥९२॥

इतना कहकर लालकमल के समान नेत्रों वाली राधा ने गंगा से कहना आरम्भ किया, जो लज्जित होने के कारण नीचे मुख किये खड़ी थी ॥८०॥ उस समय सिद्धयोगिनी गंगा योग द्वारा समस्त रहस्य जानकर सभा-मध्य से तिरोहित होकर अपने जल में प्रविष्ट हो गयीं ॥८१॥ अनन्तर सिद्धयोगिनी राधिका ने भी योग द्वारा गंगा को सब स्थानों में जलरूप से अवस्थित देखकर अंजलि से उठाकर पीना आरम्भ कर दिया ॥८२॥ इस रहस्य को सिद्ध योगिनी गंगा ने योगबल से जान कर भगवान् श्रीकृष्ण के चरण-कमल की शरण ली ॥८३॥ अनन्तर राधिका ने गोलोक, वैकुण्ठ और ब्रह्मलोक आदि समस्त लोकों में सभी स्थान में ढूंढ़ा किन्तु गंगा कहीं भी दिखायी नहीं दीं ॥८४॥ चारों ओर जलशून्य दिखायी देता था। गोलोक का कमल भी सूख गया था। जल-जन्तुओं के समह अपने शरीर छोड़ चुके थे ॥८५॥ अनन्तर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, अनन्त, धर्म, इन्द्र, सूर्य, मनु, मानव, समस्त देव, सिद्ध और तपस्वी—सभी कण्ठ, ओंठ और तालू के सूख जाने पर (विह्वल होकर) गोलोक में आये। प्रकृति से परे सर्वेश गोविन्द को प्रणाम किया। उत्तम, परमपूज्य, वरप्रद, सबसे महान्, वर के कारण, वर के प्रभु, वर देने योग्य, वरप्रद, सबके परम प्रभु, निरीह, निराकार, निर्लिप्त, निराश्रय, निर्गुण, निरुत्साह, अशरीरी, निरञ्जन, स्वेच्छामय, साकार, भक्तों के अनुग्रहार्थ प्रकट होने वाले, सत्यस्वरूप, सत्येश, साक्षीरूप, सनातन, श्रेष्ठ, श्रेष्ठाधीश्वर एवं परमात्मा ईश्वर को प्रणाम करके वे सब उनकी स्तुति करने लगे। भक्ति के कारण उनके कंधे झुक गए थे। उनकी वाणी गद्गद हो गयी थी। आँखों में आँसू भर आये थे। उनके सभी अंगों में पुलकावली छायी थी। सबने उन परात्पर ब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति की ॥८६-९२॥ उस समय ज्योतिरूप परब्रह्म, जो समस्त कारणों के कारण हैं,

---

१ क. मुनयः।

ज्योतिर्मयं परं ब्रह्म सर्वकारणकारणम्। अमूल्यरत्नखचितचित्रसिंहासनस्थितम् ॥९३॥
सेव्यमानं च गोपालैः श्वेतचामरवायुना। गोपालिकानृत्यगीतं पश्यन्तं सस्मितं मुदा ॥९४॥
वल्गुवेषैः परिवृतं गोपैश्च शतकोटिभिः। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम् ॥९५॥
नवीननीरदश्यामं किशोरं पीतवाससम्। यथा द्वादशवर्षीयं बालं गोपालरूपिणम् ॥९६॥
कोटिचन्द्रप्रभाजुष्टपुष्टश्रीयुक्तविग्रहम्। स्वतेजसा परिवृतं सुखदृश्यं मनोहरम् ॥९७॥
कोटिकन्दर्पसौन्दर्यलीलालावण्यविग्रहम्। दृश्यमानं च गोपीभिः सस्मिताभिश्च संततम् ॥९८॥
भूषणैर्भूषिताभिश्च महारत्नविनिर्मितैः। पिबन्तीभिर्लोचनाभ्यां मुखचन्द्रं प्रभोर्मुदा ॥९९॥
प्राणाधिकप्रियतमाराधावक्षःस्थलस्थितम्। तया प्रदत्तं ताम्बूलं भुक्तवन्तं सुवासितम् ॥१००॥
परिपूर्णतमं रासे ददृशुः सर्वतः सुराः। मुनयो मानवाः[1] सिद्धास्तपसा च तपस्विनः ॥१०१॥
प्रहृष्टमानसाः सर्वे जग्मुः परमविस्मयम्। परस्परं समालोच्य ते तमूचुश्चतुर्मुखम् ॥१०२॥
निवेदितुं जगन्नाथं स्वाभिप्रायमभीप्सितम्। ब्रह्मा तद्वचनं श्रुत्वा[2] स्थितं विष्णोस्तु दक्षिणे ॥१०३॥
वामतो वामदेवस्य[3] चागमत्कृष्णमुत्तमम्। परमानन्दयुक्तं च परमानन्दरूपकम् ॥१०४॥
सर्वं कृष्णमयं धाता चापश्यद्रासमण्डले। सर्वं समानवेषं च समानासनसंस्थितम् ॥१०५॥

अमूल्य रत्नों द्वारा खचित चित्र-विचित्र सिंहासन पर सुशोभित हो रहे थे ॥९३॥ गोपालगण श्वेत चामर से उनकी सेवा कर रहे थे और वे प्रसन्नमुख से मन्द मुसकान करते हुए गोपियों का नृत्य-गान देख रहे थे ॥९४॥ सुन्दर वेष बनाये हुए सौ करोड़ गोपगण उन्हें चारों ओर से घेर कर सेवा कर रहे थे। श्रीकृष्ण का शरीर चन्दन से चर्चित तथा रत्नों के भूषणों से भूषित था। उनका वर्ण नूतन घन की भाँति श्याम था। वे किशोरावस्था से युक्त तथा पीताम्बर से भूषित बारह वर्ष के गोपालबालक के रूप में विराजमान थे ॥९५-९६॥ करोड़ों चन्द्रमा की प्रभा से पूर्ण, पुष्ट और श्रीसम्पन्न शरीर धारण करके वे अपने तेज को चारों ओर फैला रहे थे। उनका वह मनोहर रूप आनन्द से देखने योग्य था। करोड़ों कन्दर्पों के सौन्दर्य से बढ़े-चढ़े उस रूप को मुसकराती हुई गोपियाँ सतत देख रही थीं ॥९७-९८॥ महारत्नों के भूषणों से भूषित वे गोपियाँ प्रसन्न मुखमुद्रा में भगवान् श्रीकृष्ण के मुखचन्द्र का अपने नेत्रों से पान कर रही थीं। और प्राणों से भी अधिक प्रिय राधा उनके वक्षःस्थल पर शोभा पा रही थीं। उनके दिये हुए सुवासित पान ये चबा रहे थे। ऐसे ये देवाधिदेव परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण रासमंडल में विराजमान थे। वहीं देवगण, मुनिगण, मानवगण, सिद्धों और तपस्वियों ने उनके दिव्य दर्शन प्राप्त किये। सबको महान् आश्चर्य हुआ ॥९९-१०१½॥ अनन्तर आपस में विचार-विमर्श करके उन लोगों ने अपना अभिप्राय भगवान् जगदीश्वर से निवेदन करने के हेतु ब्रह्मा से कहा ॥१०२॥ ब्रह्मा देवों की बातें सुनकर विष्णु को दाहिने और महादेव को बायें करके भगवान् श्रीकृष्ण के समीप पहुँचे। उन्होंने उस रासमण्डल में सबको परमानन्दयुक्त और परमानन्दस्वरूप भगवान् कृष्णमय देखा। वहाँ सभी लोग समान वेष, समान सिंहासन पर स्थित, दो भुजाधारी,

---

१ ख. मनवः। २ क. ०त्वा विष्णु कृत्वा स द०। ३ क. ०देवं च जगाम कृष्णमन्दिरम्।

द्विभुजं मुरलीहस्तं वनमालाविभूषितम्। मयूरपुच्छचूडं च कौस्तुभेन विराजितम् ॥१०६॥
अतीव कमनीयं च सुन्दरं शान्तविग्रहम्। गुणभूषणरूपेण तेजसा वयसा त्विषा ॥१०७॥
वाससा यशसा[1] कीर्त्या मूर्त्या सुन्दरया समम्। परिपूर्णतमं सर्वं सर्वैश्वर्यसमन्वितम् ॥१०८॥
कः सेव्यः सेवको वेति दृष्ट्वा निर्वक्तुमक्षमः। क्षणं तेजः स्वरूपं च रूपराशियुतं क्षणम् ॥
निराकारं च साकारं ददर्श द्वैधलक्षणम् ॥१०९॥
एकमेव क्षणं कृष्णं राधया सहितं परम्। प्रत्येकासनसंस्थं च तया च सहितं क्षणम् ॥११०॥
राधारूपधरं कृष्णं कृष्णरूपकलत्रकम्। किं स्त्रीरूपं च पुंरूपं विधाता ध्यातुमक्षमः ॥१११॥
हृत्पद्मस्थं च श्रीकृष्णं धाता ध्यानेन चेतसा। चकार स्ववनं भक्त्या प्रणम्याथ त्वनेकधा ॥११२॥
ततः स चक्षुरुन्मील्य पुनश्च तदनुज्ञया। अपश्यत्कृष्णमेकं च राधावक्षःस्थलस्थितम् ॥११३॥
स्वपार्षदैः परिवृतं गोपीमण्डलमण्डितम्। पुनः प्रणेमुस्तं दृष्ट्वा तुष्टुवुश्च पुनश्च ते ॥११४॥
विज्ञाय तदभिप्रायं तानुवाच सुरेश्वरः। सर्वा[2] मा सर्वयज्ञेशः सर्वेशः सर्वभावनः ॥११५॥

श्रीभगवानुवाच

आगच्छ कुशलं ब्रह्मन्नागच्छ कमलापते। इहाऽऽगच्छ महादेव शश्वत्कुशलमस्तु वः ॥११६॥
अगताः स्थ महाभागा गङ्गानयनकारणात्। गङ्गा मच्चरणाम्भोजे भयेन शरणं गता ॥११७॥

हाथ में मुरली लिये हुए, वनमाला से भूषित, (मुकुट में) मोरपंख लगाये, कौस्तुभमणि से सुशोभित, अत्यन्त सुन्दर एवं शान्त स्वरूप थे। तथा गुण, भूषण, रूप, तेज, अवस्था, तेज, वस्त्र, यश, आकृति, मूर्ति और सुन्दरता में सब एक जैसे थे। सभी व्यक्ति समस्त ऐश्वर्यों से सम्पन्न तथा परिपूर्णतम थे ॥१०३-१०८॥ उन्हें देखकर कौन स्वामी है और कौन सेवक, इसका निर्णय करने में ब्रह्मा भी समर्थ न हो सके। क्योंकि क्षण मात्र में तेजःस्वरूप, क्षण में रूपराशियुक्त, क्षण में कहीं अकेले कृष्ण और कहीं राधा समेत तथा कहीं क्षण में राधासमेत कृष्ण प्रत्येक सिंहासनों पर बैठे दीख पड़ते थे ॥१०९-११०॥ राधारूप कृष्ण और कृष्णरूप राधा को देखकर कौन स्त्री रूप है और कौन पुरुष रूप, इस रहस्य को विधाता नहीं समझ सके ॥१११॥ तब उन्होंने अपने हृदय-कमल में स्थित भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान किया और भक्तिपूर्वक अनेक बार प्रणाम करके स्तुति करने लगे ॥११२॥ अनन्तर भगवान् की आज्ञा से ब्रह्मा ने नेत्र खोला तो राधाजी के वक्षःस्थल पर स्थित एक भगवान् श्रीकृष्ण ही उन्हें दिखायी पड़े ॥११३॥ जो अपने पार्षदों से घिरे हुए गोपीमण्डल से मण्डित थे। देवों ने उन्हें देखकर बार-बार प्रणाम और बार-बार स्तुति की ॥११४॥ उनके अभिप्राय को जानकर देवों के अधीश्वर, सबके आत्मा, समस्त यज्ञों के ईश, समस्त (चराचर) के ईश और और सबके स्रष्टा भगवान् श्रीकृष्ण ने उनसे कहा ॥११५॥

श्री भगवान् बोले—ब्रह्मन्, कमलापते! आओ, और महादेव! यहाँ आओ, तुम लोगों की निरन्तर कुशल हो ॥११६॥ महाभागो! तुम लोग गंगा को ले जाने के लिए यहाँ आये हो। किन्तु गंगा भयभीत होकर

१ख. ०सा कृत्या मू०। २क. ०र्वान्तरात्मा सर्वज्ञः स०।

राधेमां पातुमिच्छन्ती दृष्ट्वा मत्संनिधानतः। दास्यामीमां बहिः कृत्वा यूयं कुरुत निर्भयाम् ॥११८॥
श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा सस्मितः कमलोद्भवः। तुष्टाव सर्वाराध्यां तां राधां श्रीकृष्णपूजिताम् ॥११९॥
वक्त्रैश्चतुर्भिः संस्तूय भक्तिनम्रात्मकंधरः। धाता चतुर्णां वेदानामुवाच चतुराननः ॥१२०॥

ब्रह्मोवाच

गङ्गा त्वदङ्गसंभूता प्रभोर्वै रासमण्डले। [1]युवयोर्द्रवरूपा या मुग्धयोः शंकरः स्वराट् ॥१२१॥
कृष्णांशा च त्वदंशा च त्वत्कन्यासदृशी प्रिया। त्वन्मन्त्रग्रहणं कृत्वा करोतु तव पूजनम् ॥१२२॥
भविष्यति पतिस्तस्या वैकुण्ठे च चतुर्भुजः। भूगतायाः कलायाश्च लवणोदश्च वारिधिः ॥१२३॥
गोलोकस्थ च या राधा सर्वत्रस्था तथात्मिका। तदात्मिका त्वं देवेशि सर्वदा च तवाऽऽत्मजा ॥१२४॥
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा स्वीचकार च सस्मिता। बहिर्बभूव सा कृष्णपादाङ्गुष्ठनखाग्रतः ॥१२५॥
तत्रैव संवृता शान्ता तस्थौ तेषां च मध्यतः। उवास तोयादुत्थाय तदधिष्ठातृदेवता ॥१२६॥
तत्तोयं ब्रह्मणा किंचित्स्थापितं च कमण्डलौ। किंचिद्दधार शिरसि चन्द्रार्धे चन्द्रशेखरः ॥१२७॥

हमारे चरणकमलों में छिपी हैं ॥११७॥ राधिका मेरे समीप उसे देखकर उसका पान करना चाहती हैं। अतः मैं इसे तुम लोगों को दे रहा हूँ। तुम लोग इसे यहाँ से बाहर ले जाकर निर्भय बनाओ ॥११८॥ भगवान् श्रीकृष्ण की बातें सुनकर हँसते हुए ब्रह्मा भगवान् की पूज्या और सब की आराध्या श्री राधिका की स्तुति करने लगे ॥११९॥ चारों वेदों के प्रणेता चतुरानन ब्रह्मा ने भक्ति से कंधों को झुकाकर अपने चारों मुखों से स्तुति करके यह कहा ॥१२०॥

ब्रह्मा बोले—देवी ! वह गंगा आपके तथा भगवान् श्रीकृष्ण के अंग से समुत्पन्न है। आप दोनों महानुभाव रासमंडल में पधारे थे। शंकर के संगीत ने आपको मुग्ध कर दिया था। उसी अवसर पर यह द्रव रूप में प्रकट हो गई। इसलिए भगवान् श्रीकृष्ण का और आपका अंश होने के कारण यह आपकी प्रिय कन्या के सदृश है। यह आपके मन्त्र को ग्रहण करके आपका पूजन करे। इसके पति वैकुण्ठनिवासी चतुर्भुज विष्णु होंगे और अपनी कलामात्र से पृथ्वी पर जाने पर, लवण समुद्र इसका पति होगा ॥१२१-१२३॥ देवेशि ! जो राधा गोलोक में है वे सर्वत्र हैं। आप इसकी माता हैं और यह सर्वदा आपकी कन्या है ॥१२४॥ ब्रह्मा की बात सुनकर राधा ने मन्दहास करती हुई अपनी स्वीकृति प्रदान की। अनन्तर गंगा भगवान् श्रीकृष्ण के चरण के अंगूठे के नखाग्र भाग से बाहर निकलकर वहीं उन लोगों के बीच घूंघट काढ़कर शान्त भाव से अवस्थित हो गईं। फिर जलस्वरूपा गंगा से उसकी अधिष्ठात्री देवी बाहर आयीं। उस जल के स्वल्प भाग को ब्रह्मा ने अपने कमण्डलु में रखा और चन्द्रशेखर शिव ने अपने शिर के चन्द्रार्द्ध भाग में उस जल का कुछ अंश धारण कर लिया ॥१२५-१२७॥ अनन्तर ब्रह्मा ने गंगा को श्री राधा के मंत्र की दीक्षा दी। साथ ही राधा के स्तोत्र,

---

१ख. द्रवरूपा च या रासमुग्धया शं०।

गङ्गायै राधिकामन्त्रं प्रददौ कमलोद्भवः। तत्स्तोत्रं कवचं पूजाविधानं ध्यानमेव च॥१२८॥
सर्वं तत्सामवेदोक्तं पुरश्चर्याक्रमं तथा। गङ्गा तामेव संपूज्य वैकुण्ठं प्रययौ सती॥१२९॥
लक्ष्मीः सरस्वती गङ्गा तुलसी विश्वपावनी। एता नारायणस्यैव चतस्रो योषितो मुने॥१३०॥
अथ तं सस्मितः कृष्णो ब्रह्माणं समुवाच ह। सर्वं कालस्य वृत्तान्तं दुर्बोध्यमविपश्चिताम्॥१३१॥

श्रीकृष्ण उवाच

गृहाण गङ्गां हे ब्रह्मन् हे विष्णो हे महेश्वर। शृणु कालस्य वृत्तान्तं यदतीतं निशामय॥१३२॥
यूयं च येऽन्यदेवाश्च मुनयो मनवस्तथा। सिद्धास्तपस्विनश्चैव ये येऽत्रैव समागताः॥१३३॥
ते ते जीवन्ति गोलोके कालचक्रविवर्जिते। जलप्लुतं सर्वविश्वमागतं प्राकृते लये॥१३४॥
ब्रह्माद्या येऽन्यविश्वस्थास्ते लीना अधुना मयि। वैकुण्ठं च विना सर्वं सजलं पश्य पद्मज॥१३५॥
गत्वा सृष्टिं कुरु पुनर्ब्रह्मलोकादिकं परम्। सब्रह्माण्डं विरचय पश्चाद्गङ्गा च यास्यति॥१३६॥
एवमन्येषु विश्वेषु सृष्ट्वा ब्रह्मादिकं पुनः। करोम्यहं पुनः सृष्टिं गच्छ शीघ्रं सुरैः सह॥१३७॥
मच्चक्षुषोर्निमेषेण ब्रह्मणः पतनं भवेत्। गताः कतिविधास्ते च भविष्यन्ति च वेधसः॥१३८॥
इत्युक्त्वा राधिकानाथो जगामान्तःपुरं मुने। देवा गत्वा पुनः सृष्टिं चक्रुरेव प्रयत्नतः॥१३९॥

कवच, पूजाविधान, ध्यान तथा सामवेदानुसार पुरश्चरण का समस्त क्रम बता दिया। सती गंगा ने उन नियमों द्वारा राधा की पूजा करके वैकुण्ठ की यात्रा की॥१२८-१२९॥

मुने! इस प्रकार लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा और विश्व को पावन करने वाली तुलसी—ये चारों देवियाँ हैं॥१३०॥ तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण ने मुसकराकर ब्रह्मा को काल का समस्त वृत्तान्त बताया, जो अपण्डितों के लिए दुर्बोध्य है॥१३१॥

श्रीकृष्ण बोले—ब्रह्मन्! विष्णो! और महेश्वर! तुम लोग गंगा को स्वीकार करो और काल का अतीत वृत्तान्त तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो!॥१३२॥ तुम लोग तथा अन्य देवगण एवं मुनिगण, मनुवृन्द और सिद्ध; तपस्वी आदि जितने यहाँ उपस्थित हैं, वे सब कालचक्ररहित गोलोक में जीवित रहेंगे, क्योंकि इस समय प्राकृत लय होने के कारण समस्त विश्व जलमग्न हो गया है॥१३३-१३४॥ ब्रह्मन्! विविध ब्रह्मांड में रहने वाले जितने ब्रह्मा आदि प्रधान देवता हैं, वे सब सम्प्रति मुझमें लीन हो गये हैं, क्योंकि वैकुण्ठ को छोड़कर सबके सब जलमग्न हैं, देखो!॥१३५॥ तुम लोग जाकर पुनः ब्रह्मलोक आदि समस्त ब्रह्माण्ड की सृष्टि आरम्भ करो और पश्चात् गंगा भी वहाँ जायगी॥१३६॥ इसी प्रकार अन्य ब्रह्मांडों में भी मैं ब्रह्मा आदि की सृष्टि करके पुनः सबका सर्जन कर रहा हूँ। तुम देवताओं के साथ शीघ्र जाओ॥१३७॥ मेरे पलक भाँजने मात्र से ब्रह्मा की आयु समाप्त होती है, इस प्रकार कितने ब्रह्मा बीत चुके और कितने होंगे कहा नहीं जा सकता॥१३८॥ इस प्रकार राधिकानाथ श्रीकृष्ण जी कहकर अन्तःपुर में चले गये और देवगण जाकर पुनः प्रयत्नपूर्वक सृष्टि करने लगे॥१३९॥

गोलोके च स्थिता गङ्गा वैकुण्ठे शिवलोकके। ब्रह्मलोके तथाऽन्यत्र यत्र यत्र पुरा स्थिता॥१४०॥
तत्रैव सा गता गङ्गा चाऽऽज्ञया परमात्मनः। निर्गता विष्णुपादाब्जात्तेन विष्णुपदी स्मृता॥१४१॥
इत्येवं कथितं सर्वं गङ्गोपाख्यानमुत्तमम्। सुखदं मोक्षदं सारं[1] किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥१४२॥

इति श्रीब्र० महा० प्रकृति० नारदना० गङ्गोपाख्यानं नामैकादशोऽध्यायः॥११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

नारद उवाच

लक्ष्मीः सरस्वती गङ्गा तुलसी लोकपावनी। एता नारायणस्यैव चतस्रश्च प्रिया इति॥१॥
गङ्गा जगाम वैकुण्ठमिदमेव श्रुतं मया। कथं सा तस्य पत्नी च बभूव[2] ब्रूहि केशव॥२॥

श्रीनारायण उवाच

गङ्गा जगाम वैकुण्ठं तत्पश्चाच्च गतो विधिः। गत्वोवाच तया सार्धं प्रणम्य जगदीश्वरम्॥३॥

फिर तो गंगा को गोलोक, वैकुण्ठ, शिवलोक और ब्रह्मलोक तथा अन्यत्र भी जिस-जिस स्थान में रहने के लिए परमात्मा श्रीकृष्ण ने आज्ञा दी थी, उस-उस स्थान के लिए उसने प्रस्थान कर दिया। भगवान् विष्णु के चरण कमल से निकलने के कारण गंगा को 'विष्णुपदी' कहा जाता है॥१४०-१४१॥ इस प्रकार मैंने गंगा का समस्त उपाख्यान तुम्हें सुना दिया, जो सुखदायक, मोक्षप्रद और तत्त्वरूप है अब पुनः क्या सुनना चाहते हो?॥१४२॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के प्रकृतिखंड में गंगोपाख्यान नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त॥११॥

अध्याय १२

गंगोपख्यान-वर्णन

नारद बोले—लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा और लोकपावनी तुलसी, ये चारों देवियाँ भगवान् विष्णु की ही पत्नियाँ हैं, और यह भी मैं सुन चुका हूँ कि गंगा वैकुण्ठ को चली गयीं। अतः हे केशव! वह (गंगा) उन (विष्णु) की पत्नी कैसे हुईं, यह बताने की कृपा करें॥१-२॥

नारायण बोले—गंगा के वैकुण्ठ में चले जाने पर उनके पीछे ब्रह्मा भी वहाँ पहुँचे और गंगा के साथ ही भगवान् जगदीश्वर को प्रणाम करके उनसे कहने लगे॥३॥

१क. साक्षात्किं। २क. ०भवेति च न श्रुतम्।

ब्रह्मोवाच

राधाकृष्णाङ्गसंभूता या देवी द्रवरूपिणी। तदधिष्ठातृदेवीयं रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥४॥
नवयौवनसंपन्ना सुशीला सुन्दरी वरा। शुद्धसत्त्वस्वरूपा च क्रोधाहंकारवर्जिता ॥५॥
यदङ्गसंभवा नान्यं वृणोतीयं च तं विना। तत्रापि मानिनी राधा महातेजस्विनी वरा ॥६॥
समुद्यता पातुमिमां भीतेयं बुद्धिपूर्वकम्। विवेश चरणाम्भोजे कृष्णस्य परमात्मनः ॥७॥
सर्वं विशुष्कं गोलोकं दृष्ट्वाऽहमगमं तदा। गोलोकं यत्र कृष्णश्च सर्ववृत्तान्तलब्धये ॥८॥
सर्वान्तरात्मा सर्वं[1] नो ज्ञात्वाऽभिप्रायमेव च। बहिश्चकार गङ्गां च पादाङ्गुष्ठनखाग्रतः ॥९॥
दत्त्वाऽस्यै राधिकामन्त्रं पूरयित्वा च गोलकम्। संप्रणम्य च राधेशं गृहीत्वाऽत्राऽऽगमं विभो ॥१०॥
गान्धर्वेण विवाहेन गृहाणेमां सुरेश्वरीम्। सुरेश्वरस्त्वं रसिको रसिकां रसभावनः ॥११॥
त्वं रत्नं पुंसु देवेश स्त्रीरत्नं स्त्रीष्वियं सती। विदग्धाया विदग्धेन संगमो गुणवान्भवेत् ॥१२॥
उपस्थितां च यः कन्यां न गृह्णाति मदेन च। तं विहाय महालक्ष्मी रुष्टा याति न संशयः ॥१३॥

ब्रह्मा बोले—श्रीराधा और भगवान् श्रीकृष्ण के अंग से यह जलमयी गंगा उत्पन्न होकर जल की अधिष्ठात्री देवी हैं। ये भूतल पर अनुपम रूपवती एवं नवीन युवावस्था से भूषित, सुशीला, परम सुन्दरी, शुद्ध सत्त्व-स्वरूपा और क्रोध-अहंकार से रहित हैं ॥४-५॥ यह जिनके अंग से उत्पन्न हुई हैं उन्हें छोड़ किसी दूसरे को पति नहीं बनाना चाहतीं। किन्तु वहाँ की महातेजस्विनी राधा अत्यन्त मानिनी हैं ॥६॥ वे इनका पान कर लेने के लिए एकदम तैयार हो गयी थीं; पर भयभीत होते हुए भी इन्होंने बुद्धि से काम लिया—परमात्मा श्रीकृष्ण के चरण-कमल में ये प्रविष्ट हो गईं ॥७॥ समस्त विश्व को सूखा हुआ देखकर मैं भगवान् श्रीकृष्ण से समस्त वृत्तान्त जानने के लिए गोलोक में गया ॥८॥ वहाँ सबके अन्तरात्मा भगवान् श्रीकृष्ण ने मेरा सम्पूर्ण अभिप्राय जानकर अपने चरण के अंगूठे के नखाग्र भाग से गंगा को बाहर निकाला ॥९॥ विभो! अनन्तर मैंने गंगा को राधिका-मन्त्र प्रदान किया और इसके जल से ब्रह्मांड-गोलक को पूर्ण कराया। उपरान्त राधा और श्रीकृष्ण के चरणों में मस्तक झुकाकर इसे साथ लेकर यहाँ आया ॥१०॥ अतः गान्धर्व विवाह द्वारा इस सुरेश्वरी को आप अपनाइए। क्योंकि आप सुरेश्वर, रसिक, एवं रसिकों के रस के स्रष्टा हैं ॥११॥ फिर आप पुरुषों में रत्न हैं और यह सती स्त्रियों में रत्न मानी जाती है। और विदग्ध (चतुर पुरुष) का विदग्धा (कलापूर्ण नायिका) के साथ समागम सुखकर बताया गया है ॥१२॥ जो व्यक्ति पास आयी हुई कन्या को अभिमान के कारण स्वीकार नहीं करता है, उससे महालक्ष्मी रुष्ट होकर उसे छोड़कर चली जाती है, इसमें संशय नहीं ॥१३॥ जो पण्डित होता है, वह प्रकृति (रूपधारी स्त्री) का अपमान नहीं करता है; क्योंकि पुरुष गण प्रकृति से उत्पन्न हुए हैं और स्त्रियाँ प्रकृति

---

१ क. सर्वज्ञो ज्ञा०।

यो भवेत्पण्डितः सोऽपि प्रकृतिं नावमन्यते। सर्वे प्राकृतिकाः पुंसः कामिन्यः प्रकृतेः कलाः ॥१४॥
त्वमेव भगवानाद्यो निर्गुणः प्रकृतेः परः। अर्धाङ्गो द्विभुजः कृष्णोऽप्यर्धाङ्गेन चतुर्भुजः ॥१५॥
कृष्णवामाङ्गसंभूता परमा राधिका पुरा। दक्षिणाङ्गात्स्वयं सा च वामाङ्गात्कमला यथा ॥१६॥
तेन त्वां सा वृणोत्येव यतस्त्वद्देहसंभवा। स्त्रीपुंसौ वै तथैकाङ्गौ यथा प्रकृतिपूरुषौ ॥१७॥
इत्येवमुक्त्वा धाता च तां समर्प्य जगाम सः। गान्धर्वेण विवाहेन तां जग्राह हरिः स्वयम् ॥१८॥
शय्यां रतिकरीं कृत्वा पुष्पचन्दनचर्चिताम्। रेमे रमापतिस्तत्र गङ्गया सहितो मुदा ॥१९॥
गां पृथ्वीं च गता यस्मात्स्वस्थानं पुनरागता। निर्गता विष्णुपादाच्च गङ्गा विष्णुपदी स्मृता ॥२०॥
मूर्छां संप्राप सा देवी नवसंगममात्रतः। रसिका सुखसंभोगाद्रसिकेश्वरसंयुता ॥२१॥
तद्दृष्ट्वा दुःखिता वाणी सापत्न्येर्ष्याविवर्जिता। नित्यमीर्ष्यति तां वाणी न च गङ्गा सरस्वतीम् ॥२२॥
गङ्गया सहितस्यैव तिस्रो भार्या रमापतेः। सार्धं तुलस्या पश्चाच्च चतस्रो ह्यभवन्मुने ॥२३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० गङ्गोपाख्यानं
नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

की कलायें हैं ॥१४॥ केवल आप भगवान् श्री हरि ही उस प्रकृति से परे निर्गुण प्रभु हैं। परिपूर्णतम श्रीकृष्ण दो भागों में विभक्त हुए हैं। आधे से तो दो भुजाधारी श्रीकृष्ण बने रहे और उनका आधा अंग आप चतुर्भुज श्रीहरि के रूप में प्रकट हो गया ॥१५॥ पूर्वकाल में परमोत्तम राधिका भी भगवान् श्रीकृष्ण के बायें अंग से उत्पन्न हुई थीं। फिर वे दो रूपों में परिणत हुईं। दाहिने अंश में तो वे स्वयं रहीं और उनके बामांश से लक्ष्मी का प्राकट्य हुआ और उन्हीं की तरह गंगा भी प्रकट हुई। ॥१६॥ इसीलिए यह तुम्हारी देह से उत्पन्न होने के कारण तुम्हारा वरण करना चाहती है। क्योंकि प्रकृति और पुरुष की भांति स्त्री-पुरुष भी एक ही अंग हैं ॥१७॥ ब्रह्मा इस प्रकार कहकर गंगा को उन्हें सौंप कर चले गये। पश्चात् स्वयं विष्णु ने गान्धर्व विवाह द्वारा गंगा को ग्रहण कर लिया ॥१८॥ फिर पुष्पों की चंदन चर्चित उत्तम शय्या बनाकर विष्णु ने उस पर गंगा के साथ आनन्द से रमण किया ॥१९॥ गंगा के (पृथ्वी) पर जाकर पुनः अपने स्थान को लौट आने से उन्हें गंगा, और भगवान् विष्णु के पाद (चरण) से निकलने के कारण विष्णुपदी कहा जाता है ॥२०॥ इस प्रकार रसिकों में प्रधान भगवान् विष्णु के साथ समागम होने पर उस नवसंगममात्र से रसिका देवी गंगा मूर्च्छित हो गयीं ॥२१॥ उनकी वह अवस्था देखकर सरस्वती को बड़ा दुःख हुआ, क्योंकि उस समय सापत्न्य-ईर्ष्या (सवतिया डाह) नहीं थी। पर बाद में सरस्वती गंगा से नित्य ईर्ष्या करने लगीं; यद्यपि गंगा सरस्वती से कभी ईर्ष्या नहीं करती थीं ॥२२॥ मुने! इस प्रकार रमापति विष्णु की गंगा समेत तीन पत्नियाँ हुईं। बाद में तुलसी सहित चार पत्नियाँ हो गईं ॥२३॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के प्रकृतिखण्ड में गंगोपाख्यान नामक
बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥१२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

नारद उवाच

नारायणप्रिया साध्वी कथं सा च बभूव ह। तुलसी कुत्र संभूता का वा सा पूर्वजन्मनि ॥१॥
कस्य वा सा कुले जाता कस्य कन्या तपस्विनी। केन वा तपसा सा च संप्राप प्रकृतेः परम् ॥२॥
[1]निर्विकल्पं निरीहं च सर्वसाक्षिस्वरूपकम्। नारायणं परं ब्रह्म परमात्मानमीश्वरम् ॥३॥
सर्वाराध्यं च सर्वेशं सर्वज्ञं[2] सर्वकारणम्। सर्वाधारं सर्वरूपं सर्वेषां परिपालकम् ॥४॥
कथमेतादृशी देवी वृक्षत्वं समवाप ह। कथं साऽप्यसुरग्रस्ता संबभूव तपस्विनी ॥५॥
संदिग्धं मे मनो लोलं प्रेरयेन्मां मुहुर्मुहुः। छेत्तुमर्हसि संदेहं सर्वसंदेहभञ्जन ॥६॥

श्रीनारायण उवाच

मनुश्च दक्षसार्वणिः पुण्यवान्वैष्णवः शुचिः। यशस्वी कीर्तिमांश्चैव विष्णोरंशसमुद्भवः ॥७॥
तत्पुत्रो धर्मसार्वणिर्धर्मिष्ठो वैष्णवः शुचिः। तत्पुत्रो विष्णुसार्वणिर्वैष्णवश्च जितेन्द्रियः ॥८॥
तत्पुत्रो देवसार्वणिर्विष्णुव्रतपरायणः। तत्पुत्रो राजसार्वणिर्महाविष्णुपरायणः ॥९॥

अध्याय १३

तुलसी के कथा-प्रसंग में राजा वृषध्वज का चरित्र-वर्णन

नारद बोले—पतिव्रता तुलसी भगवान् नारायण की प्रेयसी कैसे बनी? कहाँ उसका जन्म हुआ? वह पूर्व जन्म में कौन थी? किसके कुल में उसने जन्म ग्रहण किया? वह तपस्विनी किसकी कन्या थी? और किस तप के प्रभाव से उसने प्रकृति से परे, निर्विकल्प, निरीह, सबके साक्षीरूप, नारायण, परब्रह्म, परमात्मा, ईश्वर, सबके आराध्य देव, सबके ईश, सर्वज्ञ, सबके कारण, सर्वाधार, सबके स्वरूप और सबके परिपालक श्रीहरि को पति-रूप में प्राप्त किया? ॥१-४॥ ऐसी देवी को वृक्ष क्यों होना पड़ा? और वह तपस्विनी देवी कैसे असुर के चंगुल में फँस गई? ॥५॥ हे समस्त सन्देह के भञ्जन करने वाले, मेरे इस सन्देह का नाश करें, क्योंकि मेरा चपल मन बार-बार संदेह में पड़ जाता है ॥६॥

नारायण बोले—दक्ष सार्वणि नामक मनु पुण्यात्मा, विष्णु के उपासक, सदाचारी, यशस्वी, कीर्तिमान् और भगवान् विष्णु के अंश से उत्पन्न हुए थे ॥७॥ उनके पुत्र धर्मसार्वणि, धर्मात्मा, विष्णु-भक्त और सदाचारी हुए उनके पुत्र विष्णुसार्वणि, भगवान् विष्णु के उपासक और जितेन्द्रिय हुए ॥८॥ उनके पुत्र देव सार्वणि भगवान् विष्णु के महान् भक्त हुए और उनके पुत्र राजसार्वणि महाविष्णु के परम उपासक हुए॥९॥ उनके

१क. ०विकारं नि०। २क. ०र्वमङ्गलकारकम्।

वृषध्वजश्च तत्पुत्रो वृषध्वजपरायणः। यस्याऽऽश्रमे स्वयं शंभुरासीद्दैवयुगत्रयम् ॥१०॥
पुत्रादपि परः स्नेहो नृपे तस्मिञ्छिवस्य च। न च नारायणं मेने न च लक्ष्मीं सरस्वतीम् ॥११॥
पूजां च सर्वदेवानां दूरीभूतां चकार सः। भाद्रे मासि महालक्ष्मीपूजां मत्तो[1]ऽत्यजन्नृपः ॥१२॥
माघे सरस्वतीपूजां दूरीभूतां चकार सः। यज्ञं च विष्णुपूजां च निनिन्दे न चकार सः ॥१३॥
न कोऽपि देवो भूपेन्द्रं शशाप शिवकारणात्। भ्रष्टश्रीर्भव भूपेति चाशपत्तं दिवाकरः ॥१४॥
शूलं गृहीत्वा तं सूर्यं धृतवाञ्छंकरः स्वयम्। पित्रा सार्धं दिनेशश्च ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥१५॥
शिवस्त्रिशूलहस्तश्च ब्रह्मलोकं ययौ क्रुधा। ब्रह्मा सूर्यं पुरस्कृत्य वैकुण्ठं च ययौ भिया ॥१६॥
शूलं गृहीत्वा तत्रापि धृतवाञ्छंकरो रविम्। ब्रह्मकश्यपमार्तण्डाः संत्रस्ताः शुष्कतालुकाः ॥१७॥
नारायणं च सर्वेशं ते ययुः शरणं भिया। मूर्ध्ना प्रणेमुस्ते गत्वा तुष्टुवुश्च पुनः पुनः ॥१८॥
[2]सर्वे निवेदनं चक्रुर्भियस्ते कारणं हरौ ॥१९॥
नारायणश्च कृपयाऽभयं तेभ्यो ददौ मुने। स्थिरा भवत हे भीता भयं किं वो मयि स्थिते ॥२०॥
स्मरन्ति ये यत्र यत्र मां विपत्तौ भयान्विताः। तांस्तत्र गत्वा रक्षामि चक्रहस्तस्त्वरान्वितः ॥२१॥
पाताऽहं जगतां देवाः कर्ताऽहं सततं सदा। स्रष्टा च ब्रह्मरूपेण संहर्ता शिवरूपतः ॥२२॥

पुत्र वृषध्वज हुए, जो भगवान् शंकर के परम उपासक थे। उनके आश्रम में स्वयं भगवान् शंकर ने तीन दैवयुग तक निवास किया था ॥१०॥ उस राजा में शिव का स्नेह पुत्र से भी बढ़कर हो गया था; इसलिए वह राजा नारायण, लक्ष्मी और सरस्वती को कभी नहीं पूजता था ॥११॥ उसने सम्पूर्ण देवों की पूजा त्याग दी तथा शिव-निरत होकर उसने भाद्रपद में महालक्ष्मी-पूजन एवं माघ मास में सरस्वती-पूजन भी त्याग दिये। इसी प्रकार यज्ञ और विष्णु-पूजन भी उसने छोड़ दिये तथा उनकी निन्दा की ॥१२-१३॥ शंकर के कारण कोई भी देवता उस राजेन्द्र को शाप नहीं देता था। किन्तु एक बार सूर्य ने इस राजा को शाप दे दिया—'तुम्हारी श्री नष्ट हो जाये।' इस पर क्रुद्ध होकर भगवान् शंकर स्वयं शूल लेकर सूर्य पर टूट पड़े। तब सूर्य अपने पिता (कश्यप) के साथ ब्रह्मा की शरण में गए ॥१४-१५॥ हाथ में त्रिशूल लिए शंकर भी क्रोधावेश में ब्रह्मलोक पहुँच गये। इससे भयभीत होकर ब्रह्मा सूर्य को आगे करके वैकुण्ठ चले गये ॥१६॥ शूल लिए शिव ने वहाँ भी पहुँच कर सूर्य को पकड़ लिया। यह देखकर ब्रह्मा, कश्यप तथा सूर्य अत्यन्त संत्रस्त हुए, उनके तालू सूख गए ॥१७॥ भय से उन्होंने सर्वेश भगवान् नारायण की शरण ली। वहाँ पहुँच कर उन्होंने शिर से प्रणाम करके उनकी बार-बार स्तुति की ॥१८॥ अनन्तर उन लोगों ने भगवान् विष्णु से अपने भय का कारण निवेदन किया ॥१९॥ मुने! भगवान् विष्णु ने अत्यन्त कृपा करके उन्हें अभयदान दिया—हे भीरु! स्थिर हो जाओ। मेरे रहते तुम्हें कोई भय नहीं ॥२०॥ विपत्ति आने पर भयभीत प्राणी जहाँ कहीं मेरा स्मरण करता है, वहीं मैं चक्रहस्त पहुँचकर उसकी रक्षा करता हूँ ॥२१॥ देवो! मैं ही इस जगत् का सदा कर्ता और पालयिता हूँ। ब्रह्मा के रूप से मैं इसकी सृष्टि करता हूँ तथा शिवरूप से संहार

---

[1]क. ०त्तो बभञ्ज ह।   [2]क. सर्वं नि०।

शिवोऽहं त्वमहं चापि सूर्योऽहं त्रिगुणात्मकः। विधाय नानारूपं च कुर्यां सृष्ट्यादिकाः क्रियाः ॥२३॥
यूयं गच्छत भद्रं वो भविष्यति भयं कुतः। अद्यप्रभृति वो नास्ति मद्वराच्छंकराद्भयम् ॥२४॥
आशुतोषः स भगवाञ्छंकरश्च[1] सतां गतिः। भक्ताधीनश्च भक्तेशो भक्तात्मा भक्तवत्सलः ॥२५॥
सुदर्शनं शिवश्चैव मम प्राणाधिकप्रियौ। ब्रह्माण्डेषु न तेजस्वी हे ब्रह्मन्ननयोः परः ॥२६॥
शक्तः स्रष्टुं महादेवः सूर्यकोटिं च लीलया। कोटिं च ब्रह्मणामेवं किमसाध्यं च शूलिनः ॥२७॥
बाह्यज्ञानं तत्र किंचिद्ध्यायतो मां दिवानिशम्। मन्नाम मद्गुणं भक्त्या पञ्चवक्त्रेण गीयते ॥२८॥
अहमेवं चिन्तयामि तत्कल्याणं दिवानिशम्। ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ॥२९॥
शिवस्वरूपो भगवाञ्छिवाधिष्ठातृदेवता। शिवो भवति यस्माच्च शिवं तेन विदुर्बुधाः ॥३०॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र चागमच्छंकरः स्वयम्। शूलहस्तो वृषारूढो रक्तपङ्कजलोचनः ॥३१॥
अवरुह्य वृषात्तूर्णं भक्तिनम्रात्मकंधरः। ननाम भक्त्या तं शान्तं लक्ष्मीकान्तं परात्परम् ॥३२॥
रत्नसिंहासनस्थं च रत्नालंकारभूषितम्। किरीटिनं कुण्डलिनं चक्रिणं वनमालिनम् ॥३३॥
नवीननीरदश्यामं सुन्दरं च चतुर्भुजम्। चतुर्भुजैः सेवितं च श्वेतचामरवायुना ॥३४॥

करता हूँ ॥२२॥ मैं ही त्रिगुणात्मक रूप से शिव, ब्रह्मा तथा सूर्य हूँ। इस प्रकार मैं नाना रूप धारण करके सृष्टि आदि क्रियायें करता हूँ ॥२३॥ इसलिए तुम लोग जाओ, तुम्हारा कल्याण होगा, भय दूर हो जायगा। मेरे वरदान द्वारा आज से तुम्हें शंकर का भय नहीं होगा ॥२४॥ भगवान् शिव आशुतोष, सज्जनों के रक्षक, भक्तों के अधीन, भक्तों के स्वामी, भक्तों के आत्मा एवं भक्तों के प्रिय हैं ॥२५॥ ब्रह्मन्! यह सुदर्शन चक्र और शिव, ये दोनों मुझे प्राणों से भी बढ़कर प्रिय हैं। समस्त ब्रह्माण्डों में इन दोनों से अधिक दूसरा तेजस्वी नहीं है ॥२६॥ महादेव लीलापूर्वक करोड़ों सूर्यों की सृष्टि करने में समर्थ हैं और इसी प्रकार वे करोड़ों ब्रह्माओं की भी सृष्टि कर सकते हैं। शंकर के लिए कोई भी कार्य असाध्य नहीं है ॥२७॥ दिनरात मेरा ही ध्यान करने के कारण उन्हें बाह्य ज्ञान कुछ नहीं रहता है। वे अपने पाँचों मुखों से भक्तिपूर्वक मेरा ही नाम गुण गाया करते हैं ॥२८॥ इसीलिए मैं भी दिनरात उनके कल्याण का चिन्तन करता हूँ। क्योंकि जो जिस प्रकार से मुझसे मिलता है, मैं भी उसी प्रकार उसकी सेवा में तत्पर रहता हूँ ॥२९॥ भगवान् शिवस्वरूप होकर शिव (कल्याण) के अधिष्ठातृ देवता हैं। क्योंकि जिससे शिव (कल्याण) प्राप्त होता है, विद्वानों ने उसे शिव (कल्याणमूर्ति) कहा है ॥३०॥ इतने में स्वयं शंकर वहाँ आ पहुँचे। उनके हाथ में त्रिशूल था, आँखें रक्तकमल के समान लाल थीं और वे वृषभ पर आरूढ़ थे ॥३१॥ शीघ्रता से बैल की पीठ पर से उतर कर उन्होंने भक्ति से अपने कन्धे को झुका लिया और शान्त एवं परात्पर भगवान् लक्ष्मीकान्त को भक्तिपूर्वक नमस्कार किया ॥३२॥ उस समय भगवान् विष्णु रत्नों के सिंहासन पर सुखासीन, रत्नों के अलंकारों से भूषित, किरीट-कुण्डलों से अलंकृत तथा चक्र एवं वनमाला धारण किये हुए थे ॥३३॥ वे नवीन मेघके समान श्याम वर्ण, सुन्दर, चतुर्भुज तथा चार भुजाओं वाले पार्षदों के द्वारा श्वेत चामर से सुसेवित

१क. ०करः शंकरः सताम्।

चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं भूषितं पीतवाससा। लक्ष्मीप्रदत्तताम्बूलं भुक्तवन्तं च नारद ।।३५।।
विद्याधरीनृत्यगीतं शृण्वन्तं सस्मितं मुदा। ईश्वरं परमात्मानं भक्तानुग्रहविग्रहम् ।।३६।।
तं ननाम महादेवो ब्रह्माणं च ननाम सः। ननाम सूर्यो भक्त्या च संत्रस्तश्चन्द्रशेखरम् ।।३७।।
कश्यपश्च महाभक्त्या तुष्टाव च नमाम च। शिवः संस्तूय सर्वेशं समुवास सुखासने ।।३८।।
सुखासने सुखासीनं विश्रान्तं चन्द्रशेखरम्। श्वेतचामरवातेन सेवितं विष्णुपार्षदैः ।।३९।।
अक्रोधं सत्त्वसंसर्गात्प्रसन्नं सस्मितं मुदा। स्तूयमानं पञ्चवक्त्रैः परं नारायणं विभुम् ।।४०।।
तमुवाच प्रसन्नात्मा प्रसन्नं सुरसंसदि। पीयूषतुल्यं मधुरं वचनं सुमनोहरम् ।।४१।।

श्रीभगवानुवाच

अत्यन्तमुपहास्यं च शिवप्रश्नं शिवेऽशिवम्। लौकिकं वैदिकं चैव त्वां पृच्छामि तथाऽपि शम् ।।४२।।
तपसां फलदातारं दातारं सर्वसंपदाम्। संपत्प्रश्नं तपःप्रश्नमयोग्यं त्वां च सांप्रतम् ।।४३।।
ज्ञानाधिदेवे सर्वज्ञे ज्ञानं पृच्छामि किं वृथा। निरापदि विपत्प्रश्नमलं मृत्युंजये हरे ।।४४।।
[1]त्वामेवाऽऽगमने प्रश्नमलं स्वाश्रयागमे। [2]आगतोऽसि कथं वेगादित्युवाच रमापतिः ।।४५।।

हो रहे थे ।।३४।। नारद! उनका सर्वांग शरीर चन्दन से चर्चित तथा पीताम्बर से सुशोभित था। वे लक्ष्मी का दिया हुआ ताम्बूल खा रहे थे ।।३५।। तथा मन्द मुसुकान करते हुए प्रसन्नता से विद्याधरियों के संगीत सुन रहे थे। ऐसे परमात्मा ईश्वर भक्तों पर कृपा करने के लिए ही शरीर धारण करते हैं।।३६।। महादेव ने उन्हें और ब्रह्मा दोनों को नमस्कार किया। तब सूर्य ने चन्द्रशेखर (शिव) को डरते-डरते भक्तिपूर्वक नमस्कार किया ।।३७।। कश्यप जी ने भी महान् भक्ति से उनकी स्तुति और नमस्कार किया। अनन्तर शिव सर्वाधीश्वर विष्णु की भलीभाँति स्तुति करके सुखासनपर विराजमान हो गये ।।३८।। तब सुखासन पर आराम से बैठे हुए चन्द्रशेखर को अत्यन्त श्रान्त देखकर विष्णु के पार्षदों ने अपने श्वेत चामर से उनकी सेवा आरम्भ कर दी ।।३९।। सत्त्व (गुण) के संसर्ग से क्रोध-रहित, प्रसन्न, मुसकराते हुए और अपने पांचों मुखों द्वारा श्रेष्ठ एवं व्यापक नारायण की स्तुति करने वाले शिव से उस देवसभा में प्रसन्नात्मा विष्णु ने अमृत के समान अत्यन्त मनोहर एवं मधुर वचन कहा ।।४०-४१।।

भगवान् (विष्णु) बोले—शिव (कल्याणरूप) से शिव (कल्याण) का प्रश्न करना यद्यपि अति उपहास की बात है, तथापि लोक और वेद के अनुसार कल्याण का प्रश्न पूछ रहा हूँ ।।४२।। क्योंकि तुम तपस्या का फल प्रदान करते हो और समस्त सम्पदाओं के प्रदाता हो, अतः सम्प्रति तुमसे सम्पत्ति और तप का भी प्रश्न करना अनुचित है ।।४३।। इसी प्रकार ज्ञान के अधीश्वर और सर्वज्ञ से ज्ञान का प्रश्न करना भी व्यर्थ है। आपत्ति-रहित मृत्युजेता शिव से विपत्ति का भी प्रश्न करना व्यर्थ है ।।४४।। फिर अपने आधार को प्राप्त करने वाले तुम्हीं से आगमन का प्रश्न करना व्यर्थ है। (तब मेरा यह प्रश्न है कि) इतने वेग से क्यों आये हो? ।।४५।।

१ख. ०मेव वाग्धनं प्र०।　　　२क. ०गतस्तत इत्येव वद कोपस्य कारणम्।

श्रीमहादेव उवाच

वृषध्वजं च मद्भक्तं मम प्राणाधिकप्रियम्। सूर्यः शशाप इति मे हेतुरागमकोपयोः ॥४६॥
पुत्रवात्सल्यशोकेन सूर्यं हन्तुं समुद्यतः। स ब्रह्माणं प्रपन्नश्च ससूर्यश्च विधिस्त्वयि ॥४७॥
त्वां ये शरणमापन्ना ध्यानेन वचसाऽपि वा। निरापदस्ते निःशंका जरा मृत्युश्च तर्जितः ॥४८॥
साक्षाद्ये शरणापन्नास्तत्फलं किं वदामि भोः। हरिस्मृतिश्चाभयदा सर्वमङ्गलदा सदा ॥४९॥
किं मे भक्तस्य भविता तन्मे ब्रूहि जगत्प्रभो। श्रीहतस्यास्य मूढस्य सूर्यशापेन हेतुना ॥५०॥

श्रीभगवानुवाच

कालोऽतियातो दैवेन युगानामेकविंशतिः। वैकुण्ठे घटिकार्धेन[1] शीघ्रं याहि नृपालयम् ॥५१॥
वृषध्वजो मृतः कालाद्दुर्निवार्यात्सुदारुणात्। हंसध्वजश्च[2] तत्पुत्रो मृतः सोऽपि श्रिया हतः ॥५२॥
तत्पुत्रौ च महाभागौ धर्मध्वजकुशध्वजौ। हतश्रियौ सूर्यशापात्तौ वै परमवैष्णवौ ॥५३॥
राज्यभ्रष्टौ श्रिया भ्रष्टौ कमलातापसावुभौ। तयोश्च भार्ययोर्लक्ष्मीः कलया च जनिष्यति ॥५४॥
संपद्युक्तौ तदा तौ च नृपश्रेष्ठौ भविष्यतः। मृतस्ते सेवकः शंभो गच्छ यूयं च गच्छत ॥५५॥

महादेव बोले—मेरे भक्त और मेरे प्राणों से अधिक प्रिय वृषध्वज को सूर्य ने शाप दिया है। इसी कारण मैं क्रुद्ध हुआ और यहाँ तक आ गया ॥४६॥ पुत्र-वात्सल्य के शोक से मैं सूर्य को मारने के लिए तैयार हो गया था, जिससे वह (भागकर) ब्रह्मा की शरण में पहुँचा और उसे लेकर ब्रह्मा आपकी शरण में आये हैं ॥४७॥ ध्यान द्वारा अथवा वाणी द्वारा ही जो आपकी शरण में आते हैं, वे सर्वथा आपत्तियों से मुक्त और जरा एवं मृत्यु से रहित हो जाते हैं ॥४८॥ फिर जो साक्षात् आपके शरणागत हैं, उनका फल मैं क्या बताऊँ? विष्णु का केवल स्मरण भी सदा अभयप्रद और समस्त-मंगल-प्रदायक होता है ॥४९॥ जगत्प्रभो! सूर्य के शाप से मेरा भक्त श्रीहत और मूढ़ हो गया है, अब उसका क्या होगा? यह बताने की कृपा करें ॥५०॥

भगवान् (विष्णु) बोले—दैव की प्रेरणा से बहुत समय बीत गया। इक्कीस युग समाप्त हो गए। यद्यपि वैकुंठ में अभी आधी घड़ी का समय बीता है। अतः अब तुम उस राजा के यहाँ जाओ। अत्यन्त दारुण और दुर्निवार काल ने वृषध्वज को अपना ग्रास बना लिया है। उसका पुत्र हंसध्वज भी श्रीहत होकर मर चुका है ॥५१-५२॥ उसके धर्मध्वज और कुशध्वज नामक दो परम वैष्णव महाभाग्यवान् पुत्र भी सूर्य के शाप से हतश्रीक हो गये हैं कमला (लक्ष्मी) के उपासक वे दोनों तपस्वी, श्रीभ्रष्ट तथा राज्यभ्रष्ट भी हो गये हैं। अतः जब लक्ष्मी अपनी कला से उन दोनों की पत्नियों से अवतार लेंगी तब वे दोनों राजकुमार श्रीसम्पन्न हो जायँगे। शम्भो! तुम्हारा भक्त मर चुका है। अतः तुम यहाँ से जाओ। देवताओ! तुम लोग भी यहाँ से प्रस्थान करो ॥५३-५५॥

१क. ०न यात शीघ्रं नृ०। २क. रथध्व०।

इत्युक्त्वा च सलक्ष्मीकः सभातोऽभ्यन्तरं गतः। देवा जग्मुश्च संहृष्टाः स्वाश्रमं परया मुदा ।।५६।।
शिवश्च तपसे शीघ्रं परिपूर्णतमो ययौ ।।५७।।

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० तुलस्युपाख्यानं नाम
त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

नारायण उवाच

लक्ष्मीं तौ च समाराध्य चोग्रेण तपसा मुने। प्रत्येकं वरमिष्टं च संप्रापतुरभीप्सितम् ।।१।।
महालक्ष्म्या वरेणैव तौ पृथ्वीशौ बभूवतुः। धनवन्तौ पुत्रवन्तौ धर्मध्वजकुशध्वजौ ।।२।।
कुशध्वजस्य पत्नी च देवी मालावती सती। सा सुषाव च कालेन कमलांशां सुतां सतीम् ।।३।।
सा च भूतलसंबन्धाज्ज्ञानयुक्ता बभूव ह। कृत्वा वेदध्वनिं स्पष्टमुत्तस्थौ सूतिकागृहे ।।४।।
वेदध्वनिं सा चकार जातमात्रेण कन्यका। तस्मात्तां ते वेदवतीं प्रवदन्ति मनीषिणः ।।५।।

इतना कहकर भगवान् विष्णु लक्ष्मी समेत सभा से उठे और अन्तःपुर में चले गये। देवता गण भी अत्यन्त हर्षित होकर प्रसन्न मन से अपने-अपने आश्रमों में चले गये। अनन्तर परिपूर्णतम शिव उसी क्षण तप करने के लिए चल पड़े ।।५६-५७।।

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के प्रकृतिखण्ड में तुलसी-उपाख्यान नामक
तेरहवाँ अध्याय समाप्त ।।१३।।

अध्याय १४

वेदवती की कथा तथा सीता और द्रौपदी के पूर्वजन्म का वृत्तान्त

नारायण बोले—मुने! उन दोनों (धर्मध्वज और कुशध्वज) ने अपनी उग्र तपस्या द्वारा लक्ष्मी की आराधना करके अपने प्रत्येक अभीष्ट को प्राप्त कर लिया ।।१।। महालक्ष्मी के वरदान से वे दोनों धर्मध्वज और कुशध्वज पृथ्वीपति (राजा), धनवान् और पुत्रवान् हो गये ।।२।। कुछ काल बीतने पर कुशध्वज की पत्नी परमसाध्वी मालावती ने एक सती कन्या को उत्पन्न किया, जो लक्ष्मी का अंश थी ।।३।। वह भूमिष्ठ होते ही ज्ञान से सम्पन्न हो गयी। उस कन्या ने जन्म लेते ही सूतिका-गृह में स्पष्ट स्वर से वेद-मन्त्रों का उच्चारण किया और उठकर खड़ी हो गई ।।४।। इसीलिए विद्वान्-पुरुष उसे 'वेदवती' कहते हैं ।।५।। उत्पन्न होने पर उसने भलीभाँति स्नान किया और तप के हेतु वन की ओर चल दिया। सभी लोगों के द्वारा यत्नपूर्वक निषेध करने पर भी नारायणपरायणा होने

जातमात्रेण सुस्नाता जगाम तपसे वनम्। सर्वैर्निषिद्धा यत्नेन नारायणपरायणा ॥६॥
एकमन्वन्तरं चैव पुष्करे च तपस्विनी। अत्युग्रां वै तपस्यां तु लीलया च चकार सा ॥७॥
तथाऽपि[1] पुष्टा न कृशा नवयौवनसंयुता। शुश्राव खे च सहसा सा वाचमशरीरिणीम् ॥८॥
जन्मान्तरे ते भर्ता च भविष्यति हरिः स्वयम्। ब्रह्मादिभिर्दुराराध्यं पतिं लप्स्यसि सुन्दरि ॥९॥
इति श्रुत्वा तु सा रुष्टा चकार च पुनस्तपः। अतीव निर्जनस्थाने पर्वते गन्धमादने ॥१०॥
तत्रैवं सुचिरं तप्त्वा विश्वस्य समुवास सा। ददर्श पुरतस्तत्र रावणं दुर्निवारणम् ॥११॥
दृष्ट्वा साऽतिथिभक्त्या च पाद्यं तस्मै ददौ किल। सुस्वादु फलमूलं च जलं चापि सुशीतलम् ॥१२॥
तच्च भुक्त्वा स पापिष्ठश्चावात्सीत्तत्समीपतः। चकार प्रश्नमिति तां का त्वं कल्याणि चेति च ॥१३॥
तां च दृष्ट्वा वरारोहां [2]पीनोन्नतपयोधराम्। शरत्पद्मनिभास्यां च सस्मितां सुदतीं सतीम् ॥१४॥
मूर्च्छामवाप कृपणः कामबाणप्रपीडितः। तां करेण समाकृष्य संभोगं कर्तुमुद्यतः ॥१५॥
सा सती कोपदृष्ट्या च स्तम्भितं तं चकार ह। स जडो हस्तपादैश्च किञ्चिद्वक्तुं न च क्षमः ॥१६॥
तुष्टाव मनसा देवीं पद्मांशां पद्मलोचनाम्। सा तत्स्तवेन संतुष्टा प्राकृतं तं मुमोच ह ॥१७॥
शशाप च मदर्थे त्वं विनश्यसि सबान्धवः। स्पृष्टाऽहं च त्वया कामाद्विसृजाम्यवलोकय ॥१८॥

के कारण वह नहीं रुक सकी ॥६॥ यद्यपि उस तपस्विनी ने पुष्कर क्षेत्र में एक मन्वन्तर के समय तक अत्यन्त उग्र तपस्या लीलापूर्वक सम्पन्न की तो भी वह दुर्बल नहीं हुई अपितु पुष्ट और नवयौवन से विभूषित रही। उसने सहसा आकाश में आकाशवाणी सुनी—'हे सुन्दरि! जन्मान्तर में भगवान् विष्णु स्वयं तुम्हें पति रूप में मिलेंगे। ब्रह्मादि देवों के लिए भी जो दुराराध्य हैं, वे तुम्हारे पति होंगे।' ॥७-९॥ यह सुन कर उसने रुष्ट होकर गन्धमादन पर्वत के अति निर्जन स्थान में पुनः तप करना आरम्भ किया। ॥१०॥ वहाँ चिरकाल तक तप कर के विश्वस्त हो वहीं रहने लगी। एक दिन उसने अपने सामने दुर्निवार रावण को देखा ॥११॥ अनन्तर उसने अतिथि-सेवा के रूप में पाद्य (पादप्रक्षालनार्थ जल), अत्यन्त स्वादिष्ठ फल और शीतल जल उसे प्रदान किया। वह पापी रावण उसे खा-पीकर वहीं रह गया और उससे पूछने लगा कि—'हे कल्याणि! तुम कौन हो।' ॥१२-१३॥ उस सुन्दरी सती साध्वी कन्या को, जिसके स्तन स्थूल और उन्नत थे, मुख शरत्काल के कमल की तरह मनोहर था, मुख पर मंद मुसकान की छटा छायी रहती थी और दाँत आकर्षक थे, देख कर रावण कामबाण से पीड़ित तथा दीन होकर मूर्च्छित हो गया। फिर हाथ से उसे खींच कर संभोग करने के लिए तैयार हो गया ॥१४-१५॥ यह देख कर उस सती ने क्रुद्ध होकर उसे स्तम्भित कर दिया, जिससे वह जड़ की भाँति निश्चेष्ट हो गया—न हाथ पैर हिला सकता था और न कुछ बोल ही सकता था ॥१६॥ अनन्तर उसने कमला के अंश से उत्पन्न होने वाली उस कमललोचना की मानसिक स्तुति की, जिससे प्रसन्न होकर उस कन्या ने उस मूर्ख को मुक्त कर दिया ॥१७॥ और शाप भी दिया कि—मेरे ही लिए तुम सपरिवार विनष्ट हो जाओगे। तुमने कामातुर होकर मेरा स्पर्श कर लिया है। अतः तुम्हारे

---

१ क. ०पि सा न च क्लिष्टा न०। २ क. पीनश्रेणीप०।

इत्युक्त्वा सा च योगेन देहत्यागं चकार ह। गङ्गायां तां च संन्यस्य स्वगृहं रावणो ययौ॥१९॥
अहो किमद्भुतं दृष्टं किं कृतं वा मयाऽधुना। इति संचिन्त्य संस्मृत्य विललाप पुनः पुनः॥२०॥
सा च कालान्तरे साध्वी बभूव जनकात्मजा। सीतादेवीति विख्याता यदर्थे रावणो हतः॥२१॥
महातपस्विनी सा च तपसा पूर्वजन्मनः। लेभे रामं च भर्तारं परिपूर्णतमं हरिम्॥२२॥
संप्राप्य तपसाऽऽराध्य[1] स्वामिनं च जगत्पतिम्। सा रमा सुचिरं रेमे रामेण सह सुन्दरी॥२३॥
जातिस्मरा[2] स्म स्मरति तपसश्च क्रमं पुरा। सुखेन तज्जहौ सर्वं दुःखं चापि सुखं फले॥२४॥
नानाप्रकारविभवं चकार सुचिरं सती। संप्राप्य सुकुमारं तमतीव[3] नवयौवनम्॥२५॥
गुणिनं रसिकं शान्तं कान्तवेषमनुत्तमम्। स्त्रीणां मनोज्ञं[4] रुचिरं तथा लेभे यथेप्सितम्॥२६॥
पितुर्वचः पालनार्थं सत्यसंधो रघूत्तमः। जगाम काननं पश्चात्कालेन च बलीयसा॥२७॥
तस्थौ समुद्रनिकटे सीतया लक्ष्मणेन च। ददर्श तत्र वह्निं च विप्ररूपधरं हरिः॥२८॥
तं रामं दुःखितं दृष्ट्वा स च दुःखी बभूव ह। उवाच किञ्चित्सत्येष्टं सत्यं सत्यपरायणः॥२९॥

सामने ही मैं इस शरीर का त्याग कर रही हूँ॥१८॥ ऐसा कह कर उसने योग द्वारा अपनी देह को त्याग दिया। पश्चात् रावण ने उस शव को गंगा में डाल कर अपने घर का रास्ता लिया॥१९॥ 'अहो! मैंने कैसा आश्चर्य देखा और मैंने इस समय कैसा (अनुचित) कार्य किया' ऐसा सोचकर स्मरण करके वह रावण बार-बार विलाप करने लगा॥२०॥ वही साध्वी कुमारी कालान्तर में राजा जनक की पुत्री सीता देवी हुई, जिसके निमित्त रावण मारा गया॥२१॥ उस महातपस्विनी ने पूर्व जन्म की तपस्या के कारण परिपूर्णतम भगवान् राम को पति रूप में प्राप्त किया॥२२॥ उस सुन्दरी रमा ने तप द्वारा जगत्पति राम को स्वामी के रूप में पाकर सेवा करती हुई चिरकाल तक उनके साथ रमण किया॥२३॥ उसे पूर्व जन्म की बातें स्मरण थीं। फिर भी पूर्व समय में तपस्या से जो कष्ट हुआ था, उस पर उसने ध्यान नहीं दिया। वर्तमान सुख के सामने उसने सम्पूर्ण पूर्व क्लेशों की स्मृति का त्याग कर दिया॥२४॥ अत्यन्त सुकुमार, अतिनव-यौवन-सम्पन्न, गुणी, रसिक, शान्तस्वभाव, अत्यन्त कमनीय, स्त्रियों के लिए चित्ताकर्षक तथा मनोऽभिलषित स्वामी को पाकर वेदवती ने चिरकाल तक नाना प्रकार के सुखों का उपभोग किया॥२५-२६॥ सत्यप्रतिज्ञ एवं रघुश्रेष्ठ भगवान् राम, कुछ दिनों के उपरान्त पिता के वचन की रक्षा करने के लिए वन में चले गए॥२७॥ अनन्तर बलवान् काल के वश में होकर वे सीता-लक्ष्मण के साथ समुद्र के निकट ठहरे। वहाँ भगवान् ने विप्ररूपधारी अग्नि को देखा॥२८॥ भगवान् राम को दुःखी देखकर वह ब्राह्मणरूपधारी अग्नि स्वयं दुःखी हो गया और सत्यपरायण होने के नाते सत्यप्रिय और सत्यमूर्ति (राम) से कुछ कहने लगा॥२९॥

---

१ क. राध्यं मुराराध्यं च०। २ क. ०रा च स्म०। ३ क. ०व सुमनोहरा।
४ क. ०नोज्ञरूपं च त०।

वह्निरुवाच

भगवञ्छ्रूयतां वाक्यं कालेन यदुपस्थितम्। सीताहरणकालोऽयं तवैव समुपस्थितः॥३०॥
दैवं च दुर्निवार्यं वै न च दैवात्परं बलम्। मत्प्रसूं मयि संन्यस्य च्छायां रक्षान्तिकेऽधुना॥३१॥
दास्यामि सीतां तुभ्यं च परीक्षासमये पुनः। देवैः प्रस्थापितोऽहं च न च विप्रो हुताशनः॥३२॥
रामस्तद्वचनं श्रुत्वा न प्रकाश्य च लक्ष्मणम्। स्वच्छन्दं स्वीचकारासौ हृदयेन विदूयता॥३३॥
वह्नियोगेन सीतावन्मायासीतां चकार ह। तत्तुल्यगुणरूपाङ्गीं[1] ददौ रामाय नारद॥३४॥
सीतां गृहीत्वा स ययौ गोप्यं वक्तुं निषेध्य च। लक्ष्मणो नैव बुबुधे गोप्यमन्यस्य का कथा॥३५॥
एतस्मिन्नन्तरे रामो ददर्श कनकं मृगम्। सीता तं प्रेरयामास तदर्थे यत्नपूर्वकम्॥३६॥
संन्यस्य लक्ष्मणं रामो जानकीरक्षणे वने। स्वयं जगाम हन्तुं तं विव्यधे सायकेन च॥३७॥
लक्ष्मणेति च शब्दं वै कृत्वा मायामृगस्तदा। प्राणांस्तत्याज सहसा पुरो दृष्ट्वा हरिं स्मरन्॥३८॥
मृगरूपं परित्यज्य दिव्यरूपं विधाय च। रत्ननिर्मितयानेन वैकुण्ठं स जगाम ह॥३९॥
वैकुण्ठस्य महाद्वारे किंकरो द्वारपालयोः। जयविजययोश्चैव बलवांश्च जयाभिधः॥४०॥
शापेन सनकादीनां संप्राप्य राक्षसीं तनुम्। पुनर्जगाम तद्द्वारमादौ स द्वारपालयोः॥४१॥
अथ शब्दं च सा श्रुत्वा लक्ष्मणेति च विक्लवम्। सीता तं प्रेरयामास लक्ष्मणं रामसंनिधौ॥४२॥

अग्नि बोले—भगवन्! मेरी एक बात सुनने की कृपा करें। यह सीता के हरण का समय उपस्थित है, क्योंकि दैव (भाग्य) अत्यन्त दुर्निवार होता है। दैव से बढ़ कर कोई बलवान् नहीं है। अतः मेरी माता (सीता) को आप मुझे सौंप दीजिए और उसकी छाया को अपने पास रख लीजिए॥३०-३१॥ पुनः परीक्षा के समय आपको सीता लौटा दूंगा। देवों ने इसी निमित्त मुझे भेजा है। मैं ब्राह्मण नहीं अग्नि हूँ॥३२॥ यह सुन कर राम ने लक्ष्मण को बिना बताये ही हृदय से दुःखी होते हुए भी स्वतन्त्रता से इसकी स्वीकृति प्रदान की॥३३॥ नारद! अग्नि ने तुरन्त सीता की भाँति एक माया सीता को उत्पन्न कर, जो गुण और रूप में सीता के ही समान थी, राम को सौंप दिया॥२४॥ अनन्तर वह (ब्राह्मण) सीता को लेकर चला गया और इस गोप्य रहस्य को किसी से बताने के लिए निषेध भी कर गया। इसीलिए इस रहस्य को लक्ष्मण भी नहीं जान सके थे और अन्य की तो बात ही क्या॥३५॥ इसी बीच राम को सुवर्ण का मृग (बना मारीच) दिखायी पड़ा, जिसको लाने के लिए सीता ने बड़े प्रयत्न से राम को भेजा॥३६॥ भगवान् राम ने उस वन में जानकी की रक्षा के लिए लक्ष्मण को नियुक्त करके स्वयं उस मृग को मारने के लिए चले गए। उन्होंने बाण से उसे मार गिराया॥३७॥ मरते समय उस मृग (मारीच) ने—'हे लक्ष्मण!' ऐसा कह कर अपने सामने स्थित राम को देखते तथा स्मरण करते हुए सहसा प्राणों को छोड़ दिया॥३८॥ मृग का शरीर त्याग कर वह दिव्य देह से सम्पन्न हो गया और रत्न-निर्मित विमान पर सवार होकर वैकुण्ठ धाम को चला गया॥३९॥ वैकुण्ठ के महाद्वार पर रहने वाले जय-विजय नामक दो द्वारपालों का वह जय नामक बलवान् सेवक था॥४०॥ सनक, सनातन आदि कुमारों के शाप वश उसने राक्षसी शरीर प्राप्त किया था, किन्तु अब पुनः वह अपने उसी पद पर पहुँच गया॥४१॥ अनन्तर सीता ने हे लक्ष्मण! इस कष्ट भरे शब्द को सुन कर लक्ष्मण को

---

१ ख. ०रूपां तां द०।

गते च लक्ष्मणे रामं रावणो दुर्निवारणः। सीतां गृहीत्वा प्रययौ लङ्कामेव स्वलीलया ॥४३॥
विषसाद च रामश्च वने दृष्ट्वा च लक्ष्मणम् । तूर्णं च स्वाश्रमं गत्वा सीतां नैव ददर्श सः ॥४४॥
मूर्छां संप्राप्य सुचिरं विललाप भृशं पुनः। पुनर्बभ्राम गहने तदन्वेषणपूर्वकम् ॥४५॥
काले संप्राप्य तद्वार्तां गृध्रद्वारा नदीतटे। सहायं वानरं कृत्वा बबन्धे सागरं हरिः ॥४६॥
लङ्कां गत्वा रघुश्रेष्ठो जघान सायकेन च। सबान्धवं रावणं च सीतां संप्राप्य दुःखिताम् ॥४७॥
तां च वह्निपरीक्षां वै कारयामास सत्वरम्। हुताशनस्तत्र काले वास्तवीं जानकीं ददौ ॥४८॥
छाया चोवाच वह्निं च रामं च विनयान्विता। करिष्यामीति किमहं तदुपायं वदस्व मे ॥४९॥

वह्निरुवाच

त्वं गच्छ तपसे देवि पुष्करं च सुपुण्यदम्। कृत्वा तपस्यां तत्रैव स्वर्गलक्ष्मीर्भविष्यसि ॥५०॥
सा च तद्वचनं श्रुत्वा प्रणम्य[1] पुष्करे तपः। कृत्वा त्रिलक्षवर्षं च स्वर्गे लक्ष्मीर्बभूव ह ॥५१॥
सा च कालेन तपसा यज्ञकुण्डसमुद्भवा। कामिनी पाण्डवानां च द्रौपदी द्रुपदात्मजा ॥५२॥
कृतयुगे वेदवती कुशध्वजसुता शुभा। त्रेतायां रामपत्नी च सीतेति जनकात्मजा ॥५३॥
तच्छाया द्रौपदी देवी द्वापरे द्रुपदात्मजा। त्रिहायणीति सा प्रोक्ता विद्यमाना युगत्रये ॥५४॥

राम के समीप भेज दिया ॥४२॥ लक्ष्मण के राम के पास चले जाने पर दुर्निवार रावण ने अपनी लीला से जानकी का अपहरण करके लंका की ओर चल दिया ॥४३॥ उधर लक्ष्मण को वन में देखकर राम विषाद में डूब गए तथा मूर्च्छित हो गए। फिर वे उसी क्षण अपने आश्रम पर गए और सीता को वहाँ न देख चिर काल तक विलाप करके सीता को खोजते हुए वे बार-बार वन में चक्कर लगाने लगे ॥४४-४५॥ कुछ समय बाद (उन्हें गोदावरी) नदी के तट पर गीध (जटायु) द्वारा जानकी का समाचार मिला। तब वानरों की सहायता से सागर में पुल बाँधकर वे लंका पहुँचे। रघुश्रेष्ठ राम ने वहाँ जाकर बाण से सपरिवार रावण का नाश किया और दुःखिनी सीता को प्राप्त किया ॥४६-४७॥ अनन्तर बहुत शीघ्र ही उन्होंने जानकी की अग्नि परीक्षा-करायी। उस समय अग्नि ने प्रकट होकर उन्हें वास्तविक जानकी प्रदान की ॥४८॥ पश्चात् विनयावनत होकर उस छाया (सीता) ने अग्नि और राम से कहा—'अब मैं क्या करूँ, बताने की कृपा करें ॥'४९॥

अग्नि बोले—देवि ! तुम अत्यन्त पुण्यप्रद पुष्कर क्षेत्र में जाकर तप करो। ऐसा करने से तुम स्वर्ग की लक्ष्मी हो जाओगी ॥५०॥ उसने उनकी बातें सुन कर पुष्कर में अत्यन्त तप किया और दिव्य तीन लाख वर्ष तक तप करने के उपरान्त स्वर्ग की लक्ष्मी हो गयी ॥५१॥ पुनः कुछ दिन के अनन्तर वह यज्ञ-कुण्ड से उत्पन्न होकर राजा द्रुपद की पुत्री द्रौपदी हुई, जो पाँचों पाण्डवों की पत्नी बनी ॥५२॥ इस प्रकार कृतयुग में वही कल्याणी वेदवती कुशध्वज की कन्या, त्रेता में जनक-पुत्री सीता बन कर राम की पत्नी और द्वापर में सीता की छाया रूप से द्रुपद-कुमारी द्रौपदी हुई। इस प्रकार तीनों युगों में वर्तमान रहने के कारण उसे 'त्रिहायणी' कहा जाता है ॥५३-५४॥

---

१ ख. प्रतेपे पुष्करे तपः। दिव्यं त्रि०।

नारद उवाच

प्रियाः पञ्च कथं तस्या बभूवुर्मुनिपुंगव। इति मे चित्तसंदेहं दूरं कुरु महाप्रभो।।५५।।

श्रीनारायण उवाच

लङ्कायां वास्तवी सीता रामं संप्राप नारद। रूपयौवनसंपन्ना छाया सा बहु विह्वला।।५६।।
रामाग्न्योराज्ञया तप्त्वा ययाचे शंकरं वरम्। कामातुरा पतिव्यग्रा प्रार्थयन्ती पुनः पुनः।।५७।।
पतिं देहि पतिं देहि पतिं देहि त्रिलोचन। पतिं देहि पतिं देहि पञ्चवारं चकार सा।।५८।।
शिवस्तत्प्रार्थनां श्रुत्वा सस्मितो रसिकेश्वरः। प्रिये तव प्रियाः पञ्च भवन्त्विवति वरं ददौ।। ५९।।
तेनाऽऽसीत्पाण्डवानां च पञ्चानां कामिनी प्रिया। इत्येवं कथितं सर्वं प्रस्तुतं वस्तुतः शृणु।।६०।।
अथ संप्राप्य लङ्कायां सीतां रामो मनोहराम्। विभीषणाय तां लङ्कां दत्त्वाऽयोध्यां ययौ पुनः।।६१।।
एकादशसहस्राब्दं कृत्वा राज्यं च भारते। जगाम सर्वैर्लोकैश्च सार्धं वैकुण्ठमेव[1] च।।६२।।
कमलांशा वेदवती कमलायां विवेश सा। कथितं पुण्यमाख्यानं पुण्यदं पापनाशनम् ।।६३।।
सततं मूर्तिमन्तश्च वेदाश्चत्वार एव च। सन्ति यस्याश्च जिह्वाग्रे सा च वेदवती स्मृता।।६४।।
कुशध्वजसुताख्यानमुक्तं संक्षेपतस्तव। धर्मध्वजसुताख्यानं निबोध कथयामि ते ।।६५।।
इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० तुलस्युपाख्याने वेदवतीप्रस्तावो नाम चतुर्दशोऽध्यायः।।१४।।

नारद बोले—मुनिश्रेष्ठ ! महाप्रभो ! द्रौपदी के पाँच पति कैसे हुए। मेरे मन का यह सन्देह दूर करने की कृपा करें।।५५।।

नारायण बोले—नारद ! लंका में भगवान् राम को वास्तविक जानकी मिल जाने पर वह रूप-यौवन-सम्पन्ना छाया बहुत व्याकुल हुई।।५६।। पश्चात् राम और अग्नि की आज्ञा से तप करके उसने शंकर से वरदान माँगा। उसने कामातुर तथा पति के लिए व्यग्र होकर 'शंकर ! मुझे पति दीजिए' इस वाक्य का पाँच बार उच्चारण कर दिया।।५७-५८।। तब रसिकेश्वर शंकर ने उसकी प्रार्थना सुन कर मुसकराते हुए कहा—'प्रिये ! तुम्हारे पाँच पति होंगे।'५९।। इसीलिए वह पाँचों पाण्डवों की पत्नी हुई। यह सब (जो बीच की बातें थीं) बता चुका, अब प्रस्तुत को विषय वस्तुतः सुनो।।६०।। इसके उपरान्त राम ने लंका में मनोहारिणी सीता को प्राप्त करके वहाँ का राज्य विभीषण को सौंपा और फिर अयोध्या के लिए प्रस्थान किया।।६१।। ग्यारह सहस्र वर्षों तक भारत में राज्यसुखानुभव करने के अनन्तर समस्त जनों के साथ वे वैकुण्ठ धाम को चले गए।।६२।। और लक्ष्मी के अंश से उत्पन्न हुई वेदवती लक्ष्मी में प्रविष्ट हो गयी। इस प्रकार यह पुण्यरूप, पुण्यप्रद और पापनाशक आख्यान तुम्हें बता दिया।।६३।। उसकी जिह्वा के अग्रभाग पर निरन्तर चारों वेद मूर्तिमान् होकर विराजमान रहते थे, इसीलिए उसे वेदवती कहा गया है।।६४।। इस भाँति कुशध्वज की सुता का आख्यान तुम्हें संक्षेप में सुना दिया है, अब धर्मध्वज की कन्या का आख्यान सुना रहा हूँ, सुनो ?६५।।

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के प्रकृतिखण्ड में तुलसी के उपाख्यान-प्रसंग में वेदवती की प्रस्तावना नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त।।१४।।

---

१ क. ०ख्यानं श्रुतं शिक्षागमेषु च।

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच

धर्मध्वजस्य पत्नी च माधवीति च विश्रुता। नृपेण सार्धं सा रागाद्रेमे वै गन्धमादने ॥१॥
शय्यां रतिकरीं कृत्वा पुष्पचन्दनचर्चिता। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गी पुष्पचन्दनवायुना ॥२॥
स्त्रीरत्नमतिचार्वङ्गी रत्नभूषणभूषिता। कामुकी रसिकश्रेष्ठा रसिकेशेन संगता ॥३॥
सुरताद्विरतिर्नाऽऽसीत्तयोः सुरतविज्ञयोः। गतं वर्षशतं दैवं न जानीतां दिवानिशम् ॥४॥
ततो[1] राजा मतिं प्राप्य सुरताद्विरराम सः। कामुकी सुन्दरी किंचिन्न च तृप्तिं जगाम सा ॥५॥
दधार गर्भं सा सद्यो देवाब्दशतकं सती। श्रीगर्भा श्रीयुता सा च संबभूव दिने दिने ॥६॥
शुभक्षणे शुभदिने शुभयोगेन संयुते। शुभलग्ने शुभांशे च शुभस्वामिग्रहान्विते ॥७॥
कार्तिकीपूर्णिमायां च सितवारे च पद्मजे। सुषाव सा च पद्मांशां पद्मिनीं सुमनोहराम् ॥८॥
पादपद्मयुगे[2] चैव पद्मरागविराजिताम्। राजराजेश्वरीं लक्ष्मीं सर्वावयवसुन्दरीम् ॥९॥

अध्याय १५

तुलसी के प्रादुर्भाव का प्रसंग

नारायण बोले—राजा धर्मध्वज की पत्नी जो माधवी नाम से प्रख्यात थी, गन्धमादन पर्वत पर राजा के साथ अति अनुराग से विलास करती थी ॥१॥ वहाँ रति के उपयुक्त शय्या बना कर स्वयं पुष्प-चन्दन से विभूषित, सम्पूर्ण अंगों में चन्दन से लिप्त, पुष्प और चन्दन के वायु से सेवित तथा रत्नों के आभूषणों से आभूषित वह परमरसिका रमणीरत्न कामुकी रसिकेश्वर पति के साथ रमण करने में जुटी रहती थी ॥२-३॥ वे दोनों रतिक्रीड़ा विशेषज्ञ रति से विरत होने का नाम ही नहीं लेते थे। उन दोनों को रति करते हुए देव-वर्ष के हिसाब से सौ वर्ष बीत गए, किन्तु उन्हें इसका ज्ञान न रहा कि कब दिन बीते, कब रात ॥४॥ तब राजा के हृदय में विवेक का प्रादुर्भाव हुआ और वे रति-क्रीड़ा से अलग हो गए, पर वह सुन्दरी कामुकी रानी अभी तृप्त नहीं हुई थी। फिर भी उस सती ने दिव्य सौ वर्षों का गर्भ धारण कर लिया। गर्भ में लक्ष्मी का अंश आने से दिनानुदिन उसकी शोभा बढ़ने लगी ॥५-६॥ अनन्तर शुभ क्षण, शुभ दिन, शुभ योग, शुभ लग्न, शुभ अंश और शुभ गृहाधिप के योग में कार्तिक मास की पूर्णिमा तिथि तथा शुक्रवार के दिन उसने लक्ष्मी के अंश से प्रादुर्भूत, पद्मिनी और परम सुन्दरी कन्या को जन्म दिया। उसके दोनों चरण-कमलों में पद्मराग मणि के चिह्न थे (या पद्मरागमणि के समान उसके दोनों चरण-कमलों की कान्ति थी)। उसके समस्त अंग सुन्दर थे तथा वह राज-राजेश्वरी लक्ष्मी के समान थी ॥७-९॥ वह राजलक्ष्मी के

---

१ क. ०तो रजस्वलां प्रा०। २ क. ०गे यस्याः पद्मराजी विराजते।

राजलक्ष्मीलक्ष्मयुक्तां राजलक्ष्म्यधिदेवताम्। शरत्पार्वणचन्द्रास्यां शरत्पङ्कजलोचनाम् ॥१०॥
पक्वबिम्बाधरोष्ठीं च पश्यन्तीं सस्मितां गृहम्। हस्तपादतलारक्तां निम्ननाभिं मनोरमाम् ॥११॥
तदधस्त्रिवलीयुक्तां वृत्तवल्गुनितम्बिनीम्। शीते सुखोष्णसर्वाङ्गीं ग्रीष्मे च सुखशीतलाम् ॥१२॥
श्यामां सुकेशीं रुचिरां न्यग्रोधपरिमण्डलाम्। श्वेतचम्पकवर्णाभां सुन्दरीष्वेकसुन्दरीम् ॥१३॥
नरा नार्यश्च तां दृष्ट्वा तुलनां दातुमक्षमा। तेन नाम्ना च तुलसी तां वदन्ति पुराविदः ॥१४॥
सा च भूमिष्ठमात्रेण योग्या स्त्री प्रकृतिर्यथा। सर्वैर्निषिद्धा तपसे जगाम बदरीवनम् ॥१५॥
तत्र दैवाब्दलक्षं च चकार परमं तपः। मम नारायणः स्वामी भवितेति विनिश्चिता ॥१६॥
ग्रीष्मे पञ्चतपाः शीते तोयस्था सा च सुन्दरी। प्रकाशस्था वृष्टिधारां सहन्ती च दिवानिशम् ॥१७॥
विंशत्सहस्रवर्षं च फलतोयाशना च सा। त्रिंशद्वर्षसहस्राब्दं पत्राहारा तपस्विनी ॥१८॥
चत्वारिंशत्सहस्राब्दं वाय्वाहारा कृशोदरी। ततो दशसहस्राब्दं निराहारा बभूव सा ॥१९॥
निर्लक्ष्यां चैकपादस्थां दृष्ट्वा तां कमलोद्भवः। समाययौ वरं दातुं परं बदरिकाश्रमम् ॥२०॥
चतुर्मुखं च सा दृष्ट्वा प्राणंसीद्धंसवाहनम्। तामुवाच जगत्कर्ता विधाता जगतामपि ॥२१॥

लक्षणों से अंकित तथा राजलक्ष्मी की अधिष्ठात्री देवता थी। उसका मुख शारदीय पूर्णिमा के पूर्णचन्द्र के समान था। नेत्र शरद् ऋतु के कमल के समान थे और अधर पके हुए बिम्बाफल की समानता कर रहे थे। मुसकराती हुई वह महल (में चारों ओर) देख रही थी। उस मनोरम कन्या के हाथ-पैर के तलुवे लाल थे और नाभि गहरी थी ॥१०-११॥ उसके पेट पर पड़ने वाले तीन बल थे और गोल-गोल नितम्ब बहुत सुन्दर थे। शीतकाल में सुख देने के लिए उसके सम्पूर्ण अंग गरम रहते थे और उष्णकाल में वह शीतलांगी बनी रहती थी। वह सदा सोलह वर्ष की किशोरी जान पड़ती थी। उसके सुन्दर केश ऐसे थे मानो वटवृक्ष को घेरकर शोभा पाने वाले बरोह हों। उसकी कान्ति पीले चम्पे की तुलना कर रही थी। स्त्री और पुरुष उसे देखकर किसी के साथ तुलना करने में असमर्थ हो जाते थे; अतएव विद्वान् पुरुषों ने उसका नाम तुलसी रखा। भूमि पर पधारते ही वह ऐसी सुयोग्या बन गई, मानो साक्षात् प्रकृति देवी हो। सभी लोगों के निषेध (मना) करने पर भी वह तप करने के लिए बदरिकाश्रम चली गयी ॥१२-१५॥ 'मेरे स्वामी (पति) नारायण हों' ऐसा संकल्प कर उसने एक लाख दिव्य वर्षों तक वहाँ तप किया ॥१६॥ ग्रीष्म ऋतु में पँचाग्नि सेवन करके जाड़े के दिनों में जल में रह कर और वर्षा काल में खुले मैदान में आसन लगा कर दिन रात वृष्टि की धारा का वेग सहन करती हुई उस सुन्दरी ने तप किया ॥१७॥ बीस सहस्र वर्षों तक वह केवल फल और जल पर रही, फिर तीस सहस्र वर्षों तक पत्ते खाकर, चालीस सहस्र वर्षों तक वायु पीकर और दस सहस्र वर्षों तक उस पतली कमर वाली ने निराहार रह कर तप किया ॥१८-१९॥ निर्लक्ष्य होकर एक पैर पर खड़ी हो वह तपस्या करती रही। उसे देख कर ब्रह्मा बदरिकाश्रम में पधारे ॥२०॥ हँस पर बैठे हुए चतुर्मुख ब्रह्मा को देख कर उसने नमस्कार किया। अनन्तर जगत् के रचयिता ब्रह्मा ने उससे कहा ॥२१॥

१ख. ०शच्छतसहस्राब्दं प०।

ब्रह्मोवाच

वरं वृणुष्व तुलसि यत्ते मनसि वाञ्छितम्। हरिभक्तिं च मुक्तिं वाऽप्यजरामरतामपि॥२२॥

तुलस्युवाच

शृणु तात प्रवक्ष्यामि यन्मे मनसि वाञ्छितम्। सर्वज्ञस्यापि पुरतः का लज्जा मम सांप्रतम्॥२३॥
अहं च तुलसी गोपी गोलोकेऽहं स्थिता पुरा। कृष्णप्रियाकिंकरी च तदंशा तत्सखी प्रिया॥२४॥
गोविन्देन सहाऽऽसक्तामतृप्तां मां च मूर्च्छिताम्। रासेश्वरी समागत्य चापश्यद्रासमण्डले॥२५॥
गोविन्दं भर्त्सयामास मां शशाप रुषाऽन्विता। याहि त्वं मानवीं योनिमित्येवं च पितामह॥२६॥
मामुवाच स गोविन्दो मदंशं त्वं चतुर्भुजम्। लभिष्यसि तपस्तप्त्वा भारते ब्रह्मणो वरात्॥२७॥
इत्येवमुक्त्वा देवेशोऽप्यन्तर्धानमवाप सः। देव्या भिया तनुं त्यक्त्वा लब्धं जन्म मया भुवि॥२८॥
अहं नारायणं कान्तं शान्तं सुन्दरविग्रहम्। सांप्रतं लब्धुमिच्छामि वरमेवं च देहि मे॥२९॥

ब्रह्मोवाच

सुदामा नाम गोपश्च श्रीकृष्णाङ्गसमुद्भवः। तदंशश्चातितेजस्वी चालभज्जन्म भारते॥३०॥
साम्प्रतं राधिकाशापाद्दनुवंशसमुद्भवः। शङ्खचूड इति ख्यातस्त्रैलोक्ये न च तत्समः॥३१॥

ब्रह्मा बोले—हे तुलसि! तुम अपने मनोवांछित वरदान भगवान् की भक्ति, मुक्ति या अजर-अमर होना—जो कुछ चाहो, माँगो॥२२॥

तुलसी बोली—हे तात! मेरे मन का अभीष्ट जो है, तुम्हें बता रही हूँ, सुनो! आप सर्वज्ञाता हैं। अतः आपके सामने मुझे लज्जा किस बात की हो सकती है? ॥२३॥ मैं पहले गोलोक में तुलसी नाम की गोपी थी और भगवान् कृष्ण की प्रिया, सेविका, उनका अंश एवं उनकी प्रिय सखी थी॥२४॥ एक बार रासमण्डल में भगवान् गोविन्द के साथ क्रीड़ा में अत्यन्त आसक्त होने के कारण मुझे तृप्ति होने से पहले ही मूर्च्छा आ गई। उसी बीच रासेश्वरी राधा ने वहाँ आकर देख लिया। जिससे रुष्ट होकर उन्होंने गोविन्द को फटकार बतायी और मुझे शाप दिया कि—'तुम मनुष्य के यहाँ उत्पन्न हो' ॥२५-२६॥ हे पितामह! उस समय भगवान् गोविन्द ने मुझसे कहा, 'तुम भारत में तप कर के ब्रह्मा के वरदान द्वारा मेरे अंश चतुर्भुज विष्णु को पति के रूप में प्राप्त करोगी'॥२७॥ इतना कहकर देवेश्वर भगवान् अन्तर्हित हो गए और राधिका देवी के भय से मैंने शरीर त्याग कर इस पृथ्वी पर जन्म ग्रहण कर लिया॥२८॥ मैं इस समय नारायण भगवान् को, जो कान्त, शान्त तथा सुन्दर शरीर वाले हैं, चाहती हूँ। मुझे यही वरदान देने की कृपा करें॥२९॥

ब्रह्मा बोले—भगवान् श्रीकृष्ण के अंग से उत्पन्न होने वाले सुदामा नामक गोप के अति तेजस्वी अंश ने भारत में जन्म ग्रहण किया है॥३०॥ वह राधिका जी के शाप से इस समय दानववंश में शंखचूड़ नामक प्रख्यात दानव हुआ है जिसकी बराबरी तीनों लोक में कोई नहीं कर सकता॥३१॥

गोलोके त्वां पुरा दृष्ट्वा कामोन्मथितमानसः। विलम्बितुं मा शशाक राधिकायाः प्रभावतः॥३२॥
स च जातिस्मरस्तप्त्वा त्वां ललाभ वरेण च। जातिस्मरा तु त्वमपि सर्वं जानासि सुन्दरि॥३३॥
अधुना तस्य पत्नी च भव भाविनि शोभने। पश्चान्नारायणं कान्तं शान्तमेव लभिष्यसि॥३४॥
शापान्नारायणस्यैव कलया दैवयोगतः। प्राप्नोषि वृक्षरूपं च त्वं पूता विश्वपावनी॥३५॥
प्रधाना सर्वपुष्पाणां विष्णुप्राणाधिका भवेः। त्वया विना च सर्वेषां पूजा च विफला भवेत्॥३६॥
वृन्दावने वृक्षरूपा नाम्ना वृन्दावनीति च। त्वत्पत्रैर्गोपिका गोपाः पूजयिष्यन्ति माधवम्॥३७॥
वृक्षाधिदेवरूपेण सार्धं कृष्णेन संततम्। विहरिष्यसि गोपेन स्वच्छन्दं मद्वरेण च॥३८॥
इत्येवं वचनं श्रुत्वा सस्मिता हृष्टमानसा। प्रणनाम च धातारं तं च किंचिदुवाच ह॥३९॥

तुलस्युवाच

यथा मे द्विभुजे कृष्णे वाञ्छा च श्यामसुन्दरे। सत्यं ब्रवीमि हे तात न तथा च चतुर्भुजे॥४०॥
अतृप्ताऽहं च गोविन्दे दैवाच्छृङ्गारभङ्गता। गोविन्दस्यैव वचनात्प्रार्थयामि चतुर्भुजम्॥४१॥
त्वत्प्रसादेन गोविन्दं पुनरेव सुदुर्लभम्। ध्रुवमेवं लभिष्यामि राधाभीतिं प्रमोचय॥४२॥

वह गोलोक में तुम्हें देख कर अत्यन्त कामातुर हुआ था किन्तु राधिका के प्रभाववश नियम का उल्लंघन करने में असमर्थ रहा॥३२॥ हे सुन्दरि! उसे पूर्व जन्म का स्मरण है, इसलिए उसने तप कर के वरदान द्वारा तुम्हें प्राप्त कर लिया है और जातिस्मर होने के कारण तुम भी सब कुछ जानती ही हो॥३३॥ अतः हे शोभने, सुन्दरि! इस समय उसकी पत्नी होना स्वीकार करो और पश्चात् शान्त एवं कान्त नारायण भगवान् मिल ही जायँगे॥३४॥ दैवसंयोग से नारायण के ही शापवश तुम अपनी कला से वृक्ष बन कर भारत में रहोगी और तुमसे सारा विश्व पवित्र होगा॥३५॥ सम्पूर्ण पुष्पों में तुम प्रधान मानी जाओगी। भगवान् विष्णु तुम्हें प्राणों से अधिक प्रिय मानेंगे। तुम्हारे बिना सभी की पूजा निष्फल समझी जाएगी॥३६॥ वृन्दावन में वृक्ष होने पर तुम्हारा 'वृन्दावनी' नाम होगा और तुम्हारे ही पत्रों द्वारा गोप-गोपियाँ माधव कृष्ण की अर्चना करेंगी॥३७॥ तुम वृक्ष की अधीश्वरी रूप से भगवान् कृष्ण के साथ और मेरे वरदान से उस गोप के साथ स्वच्छन्द बिहार करोगी।॥३८॥ ऐसी बात सुनकर मुसकराती हुई वह अत्यन्त प्रसन्न हुई और अनन्तर ब्रह्मा को प्रणाम कर उसने उनसे कुछ निवेदन किया॥३९॥

तुलसी बोली--तात! मैं सत्य कह रही हूँ कि दो भुजाधारी श्यामसुन्दर कृष्ण में मेरी जैसी प्रीति है वैसी प्रीति चतुर्भुज विष्णु में नहीं है॥४०॥ दैवसंयोग से शृंगारभंग हो जाने के कारण मैं भगवान् कृष्ण से तृप्त न हो सकी किन्तु उन्हीं के कहने से चतुर्भुज विष्णु के लिये प्रार्थना कर रही हूँ॥४१॥ आपकी कृपा से मैं पुनः अत्यन्त दुर्लभ कृष्ण को निश्चित रूप से प्राप्त करूँगी। किन्तु मुझे राधा के भय से मुक्त कर दीजिए॥४२॥

ब्रह्मोवाच

गृहाण राधिकामन्त्रं ददे वै षोडशाक्षरम् । तस्याश्च प्राणतुल्या त्वं मद्वरेण भविष्यसि ॥४३॥
शृङ्गारं युवयोर्गोप्यमाज्ञास्यति च राधिका । राधासमा त्वं सुभगा गोविन्दस्य भविष्यसि ॥४४॥
इत्येवमुक्त्वा दत्त्वा च देव्यै तत्षोडशाक्षरम् । मन्त्रं तस्यै जगद्धाता स्तोत्रं च कवचं परम् ॥४५॥
सर्वं पूजाविधानं च पुरश्चर्याविधिक्रमम् । परं शुभाशिषं कृत्वा सोऽन्तर्धानमवाप ह ॥४६॥
सा च ब्रह्मोपदेशेन पुण्ये बदरिकाश्रमे । जजाप परमं मन्त्रं यदिष्टं पूर्वजन्मनः ॥४७॥
दिव्यं द्वादशवर्षं च पूजां चैव चकार सा । बभूव सिद्धा सा देवी तत्प्रत्यादेशमाप च ॥४८॥
सिद्धे तपसि मन्त्रे च वरं प्राप्य यथेप्सितम् । बुभुजे च [1]महाभागं यद्विश्वेषु सुदुर्लभम् ॥४९॥
प्रसन्नमानसा देवी तत्याज तपसः क्लमम् । सिद्धे फले नराणां च दुःखं तत् सुखमुत्तमम् ॥५०॥
भुक्त्वा पीत्वा च संतुष्टा शयनं च चकार सा । तल्पे मनोरमे तत्र पुष्पचन्दनचर्चिते ॥५१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० तुलस्युपाख्याने तुलसीवरप्रदानं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

ब्रह्मा बोले—मैं राधा का सोलह अक्षर वाला मन्त्र तुम्हें बता रहा हूँ, उसे ग्रहण करो। उसके प्रभाव से तुम मेरे वरदान द्वारा उनके प्राणों के समान प्रिय हो जाओगी ॥४३॥ राधिका स्वयं तुम दोनों को एकान्त में शृंगार करने की आज्ञा प्रदान कर देंगी तथा राधा के समान ही तुम गोविन्द की सौभाग्यवती प्रिया बन जाओगी ॥४४॥ इतना कह कर जगत् के रचयिता ब्रह्मा ने उसे राधा का षोडशाक्षर मन्त्र, स्तोत्र और श्रेष्ठ कवच प्रदान किया ॥४५॥ फिर सम्पूर्ण पूजाविधान, पुरश्चरण की विधि का क्रम और शुभाशीर्वाद देकर ब्रह्मा अन्तर्हित हो गये ॥४६॥ पश्चात् तुलसी ने भी ब्रह्मा के उपदेश से पुण्य बदरिकाश्रम में जाकर अपने पूर्वजन्म के उस अभीष्ट मन्त्र का जप किया ॥४७॥ और दिव्य बारह वर्षों तक पूजा करने के अनन्तर वह देवी सिद्ध हो गयी और उसे देवादेश प्राप्त हुआ ॥४८॥ तप और मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर उसने अभीष्ट वर प्राप्त किया, जिससे विश्व-दुर्लभ महान् पुण्य-सुख उसे प्राप्त हुआ ॥४९॥ तपस्या सम्बन्धी जो भी क्लेश थे, वे मन में प्रसन्नता उत्पन्न होने के कारण दूर हो गए; क्योंकि फल सिद्ध हो जाने पर मनुष्य का दुःख ही उत्तम सुख के रूप में परिणत हो जाता है ॥५०॥ इस प्रकार उसने भी भोजन-पान से सन्तुष्ट होकर पुष्प-चन्दन-चर्चित एवं मनोहर शय्या पर शयन किया ॥५१॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के प्रकृति-खण्ड में तुलसी-वर-प्रदान नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥१५॥

१क. ०हादेवं य०।

अथ षोडशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच

तुलसी परितुष्टा सा चास्वाप्सीद्धृष्टमानसा। नवयौवनसंपन्ना[1] प्रशंसन्ती वराङ्गना ॥१॥
चिक्षेप पञ्चबाणश्च पञ्च बाणांश्च तां प्रति। पुष्पायुधेन सा विद्धा पुष्पचन्दनचर्चिता ॥२॥
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गी कम्पिता रक्तलोचना। क्षणं सा शुष्कतां प्राप क्षणं मूर्च्छामवाप ह ॥३॥
क्षणमुद्विग्नतां प्राप क्षणं तन्द्रां सुखावहाम्। क्षणं सा दहनं प्राप क्षणं प्राप प्रमत्तताम् ॥४॥
क्षणं सा चेतनां प्राप क्षणं प्राप विषण्णताम्। उत्तिष्ठन्ती क्षणं तल्पाद्गच्छन्ती निकटं क्षणम् ॥५॥
भ्रमन्ती क्षणमुद्वेगाद्विवसन्ती क्षणं पुनः। क्षणमेव समुद्वेगादस्वाप्सीत्पुनरेव सा ॥६॥
पुष्पचन्दनतल्पं च तद्बभूवातिकण्टकम्। विषमाहारकं स्वादु दिव्यरूपं फलं जलम् ॥७॥
निलयश्च[2] निराकारः सूक्ष्मवस्त्रं हुताशनः। सिन्दूरपत्रकं चैव व्रणतुल्यं च दुःखदम् ॥८॥
क्षणं ददर्श तन्द्रायां सुवेषं पुरुषं सती। सुन्दरं च युवानं च सस्मितं रसिकेश्वरम् ॥९॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम्। आगच्छन्तं माल्यवन्तं पश्यन्तं तन्मुखाम्बुजम् ॥१०॥

अध्याय १६

तुलसी के साथ शंखचूड का विवाह

नारायण बोले—जिस समय नवयौवन से सम्पन्न सुन्दरी तुलसी भलीभाँति सन्तुष्ट और प्रसन्नचित्त होकर शयन कर रही थी ॥१॥ उसी समय कामदेव ने उस पर अपने पाँचों बाणों को चला दिया, जिससे वह पुष्पों और चन्दनों से चर्चित होने पर भी उस कामबाण से जलने लगी ॥२॥ उसके सर्वांग में रोमाञ्च हो गया। वह काँपने लगी और उसके नेत्र रक्तवर्ण हो गये। क्षण में शुष्कता, क्षण में मूर्च्छा, क्षण में उद्विग्नता, क्षण में आलस्य क्षण में सुख, क्षण में जलन, क्षण में प्रमत्तता, क्षण में चेतना और क्षण में विषाद उस पर दौड़ने लगे। क्षण में वह शय्या से उठकर इधर-उधर घूमने लगती और क्षण में पुनः वहीं आ जाती ॥३-५॥ क्षण में ऊबकर भ्रमण करती, क्षण में विवस्त्र हो जाती और क्षण में पुनः आकर शय्या पर लेट जाती ॥६॥ पुष्प-चन्दन की शय्या उसे काँटे की भाँति अत्यन्त चुभने लगी; दिव्य स्वाद से भरा हुआ जल और फल भी उसे विषम आहार लगने लगा ॥७॥ घर शून्य दिखाई देता था। सूक्ष्म वस्त्र अग्नि की भाँति मालूम होता था। सिन्दूरपत्र व्रण के समान दुःखदायक हो रहा था ॥८॥ क्षणभर की तन्द्रावस्था में उस सती ने एक सुन्दर वेष वाले पुरुष को देखा। वह परम सुन्दर युवक था। उसके मुख पर मुसकान छायी थी। उसके सम्पूर्ण अंगों में चन्दन का अनुलेप था। रत्नों के बने आभूषण उसे सुशोभित कर रहे थे। उसके गले में सुन्दर माला थी। उसके नेत्र तुलसी के मुखकमल को देख रहे थे ॥९-१०॥

१क. ०न्ना वृषस्यन्ती ब०। २क. ०श्च बिलाका०।

कथयन्तं रतिकथां चुम्बन्तमधरं मुहुः। शयानं पुष्पतल्पे च समाश्लिष्यन्तमङ्गकम्॥११॥
पुनरेव तु गच्छन्तमागच्छन्तं वसन्तकम्। कान्त क्व यासि प्राणेश तिष्ठेत्येवमुवाच सा॥१२॥
पुनः स्वचेतनां प्राप्य विललाप पुनः पुनः। एवं तपोवने सा च तस्थौ तत्रैव नारद॥१३॥
शङ्खचूडो महायोगी जैगीषव्यान्मनोरमम्। कृष्णस्य मन्त्रं संप्राप्य प्राप्य सिद्धिं तु पुष्करे॥१४॥
पठन्सदा तु कवचं सर्वमङ्गलमङ्गलम्। ब्रह्मेशाच्च वरं प्राप्य यत्तन्मनसि वाञ्छितम्॥१५॥
आज्ञया ब्रह्मणः सोऽपि बदरीं वै समाययौ। आगच्छन्तं शङ्खचूडमपश्यत्तुलसी मुने॥१६॥
नवयौवनसंपन्नं कामदेवसमप्रभम्। श्वेतचम्पकवर्णाभं रत्नभूषणभूषितम्॥१७॥
शरत्पार्वणचन्द्रास्यं शरत्पङ्कजलोचनम्। महारत्नगणाक्लृप्तविमानस्थं मनोहरम्॥१८॥
रत्नकुण्डलयुग्माढ्यगण्डस्थलविराजितम्। पारिजातप्रसूनाढ्यमाल्यवन्तं च सुस्मितम्[1]॥१९॥
कस्तूरीकुङ्कुमयुतं [2]सुगन्धितिलकोज्ज्वलम्। सा दृष्ट्वा संनिधाने तं मुखमाच्छाद्य वाससा॥२०॥
सस्मिता तं निरीक्षन्ती सकटाक्षं पुनः पुनः। बभूव सा नम्रमुखी नवसंगमलज्जिता॥२१॥

वह पुष्प-शय्या पर लेटकर रतिवर्धक कथाओं को कहते हुए बार-बार तुलसी का अधर चुम्बन तथा उसके अंगों का आलिंगन कर रहा था। ॥११॥ तुलसी ने पुनः देखा कि वह चला गया तथा वसन्त आ गया है। इतने में वह यह कह कर कि—हे प्राणनाथ, हे कान्त, कहाँ जा रहे हो, थोडी देर रुक जाओ, उठ बैठी॥१२॥ नारद! पुनः चेतना प्राप्त होने पर (अर्थात् तन्द्रा भंग होने पर) वह बार-बार विलाप करने लगी। इस प्रकार वह देवी तपोवन में रहकर समय व्यतीत कर रही थी॥१३॥

उसी समय महायोगी शंखचूड ने जैगीषव्य ऋषि से श्रीकृष्ण का मनोरम मंत्र प्राप्त करके पुष्कर क्षेत्र में उसको सिद्ध किया॥१४॥ उसने समस्त मंगलों का मंगल रूप श्रीकृष्णकवच का सदा पाठ करके ब्रह्मा के प्रभु से मनोनीत वरदान भी प्राप्त कर लिया था॥१५॥ मुने! ब्रह्मा की आज्ञा से वह भी वदरिकाश्रम में गया और तुलसी ने आते हुए उसे देखा। वह नवीन यौवन से सम्पन्न और कामदेव के समान सुन्दर था। उसकी कान्ति श्वेतचम्पा के समान थी। रत्नमय अलंकारों से वह अलंकृत था। उसके मुख की शोभा शरत्पूर्णिमा के चन्द्रमा की समता कर रही थी। उसके नेत्र शरत्कालीन कमल के समान थे। श्रेष्ठ रत्नों की राशि से बने हुए विमान पर वह सुन्दर युवक विराजमान था। दो रत्नमय कुण्डल उसके गंडस्थल की छवि बढ़ा रहे थे। पारिजात के पुष्पों की माला उसने पहन रखी थीं। उसका मुख मुसकान से भरा था। कस्तूरी और कुंकुम से युक्त सुगंधपूर्ण चन्दन द्वारा उसके अंग अनुलिप्त थे॥१६-२०॥ ऐसे युवक को अपने समीप देखकर उसने वस्त्र से अपने मुख को (थोड़ा-सा) ढक लिया। फिर मुसकराती तथा बार-बार उसे कटाक्ष के साथ देखती हुई उसने नवीन समागम के कारण लज्जा से अपना मुख नीचे की ओर कर लिया॥२१॥ किन्तु काम-बाण से पीड़ित होने के कारण उस कामुकी के

१क. सुप्रियम्। २क. ०न्धिचन्दनान्वितम्।

कामुकी कामबाणेन पीडिता पुलकान्विता। पिबन्ती तन्मुखाम्भोजं लोचनाभ्यां च संततम् ॥२२॥
ददर्श शङ्खचूडश्च कन्यामेकां तपोवने। पुष्पचन्दनतल्पस्थां वसन्तीं वाससाऽऽवृताम् ॥२३॥
पश्यन्तीं तन्मुखं शश्वत्सस्मितां सुमनोहराम्। सुपीनकठिनश्रोणीं पीनोन्नतपयोधराम् ॥२४॥
मुक्तापङ्क्तिप्रभाजुष्टदन्तपङ्क्तिं सुबिभ्रतीम्। पक्वबिम्बाधरोष्ठीं च सुनासां सुन्दरीं वराम् ॥२५॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभां शरच्चन्द्रसमप्रभाम्। स्वतेजसा परिवृतां सुखदृश्यां मनोरमाम् ॥२६॥
कस्तूरीबिन्दुभिः सार्धमधश्चन्दनबिन्दुना। सिन्दूरबिन्दुना शश्वत्सीमन्ताधःस्थलोज्ज्वलाम् ॥२७॥
निम्ननाभिगभीरां च तदधस्त्रिवलीयुताम्। करपद्मतलारक्तां नखचन्द्रैर्विभूषिताम् ॥२८॥
स्थलपद्मप्रभाजुष्टं पादपद्मं च बिभ्रतीम्। आरक्तवर्णं ललितमलक्तकसमप्रभम् ॥२९॥
[1]स्थलपद्मैश्च जलजैः पद्मरागविराजिताम्। शरदिन्दुविनिन्द्यैकनखेन्द्वोघविराजिताम् ॥३०॥
[2]अमूल्यरत्नसंमिश्रयावकेन स्वलंकृताम्। मणीन्द्रमुख्यखचितक्वणन्मञ्जीररञ्जिताम् ॥३१॥
दधतीं कबरीभारं मालतीमाल्यसंयुतम्। अमूल्यरत्नसंक्लृप्तमकराकृतिरूपिणा ॥३२॥
[3]चित्रकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजिताम्। रत्नेन्द्रमुक्ताहारश्रीस्तनमध्यस्थलोज्ज्वलाम् ॥३३॥
रत्नकङ्कणकेयूरशङ्खभूषणभूषिताम्। रत्नाङ्गुलीयकैर्दिव्यैरङ्गुल्यावलिभिर्युताम् ॥३४॥

शरीर में रोमांच हो आया। तब वह निरन्तर अपने दोनों नेत्रों से शंखचूड के मुखकमल का पान करने लगी॥२२॥ उधर शंखचूड ने भी तपोवन में अकेली उस कन्या को देखा। वह वस्त्रावृत होकर पुष्पचन्दन की शय्या पर विराजमान थी। वह अत्यन्त सुन्दरी थी और निरन्तर शंखचूड के मुख को देखती हुई मुसकरा रही थी॥२३-२४॥ उसका श्रोणी भाग स्थूल और कठोर था। स्तन स्थूल एवं उन्नत थे। दाँतों की पंक्तियाँ मोतियों की पंक्ति की भाँति चमक रही थीं। अधरोष्ठ पके बिम्बाफल के समान थे। उस सुन्दरी की नासिका बड़ी अच्छी थी। वर्ण तपाये हुए सुवर्ण के सदृश था। कान्ति शरत्कालीन चन्द्रमा की तरह थी। वह अपने तेज से घिरी हुई थी। उसका दर्शन सौम्य था। वह मनोरम थी। उसके शरीर पर कस्तूरी-बिन्दुओं के साथ चन्दन-बिन्दु तथा सिन्दूरबिन्दु शोभायमान हो रहे थे। सीमन्त (माँग) का निचला भाग उज्ज्वल था। उसकी नाभि गंभीर थी। वह त्रिवली (तीन बलों) से युक्त थी। उसके करकमल का तल भाग (हथेली) लाल था। नख चन्द्राकार थे। चरणारविन्द स्थलकमल की-सी कान्ति से युक्त थे। वे (दोनों चरण) लाल, ललित तथा महावर के समान प्रभापूर्ण थे। वह स्थकमल और रक्तकमल समेत पद्मराग मणि से विभूषित थी॥२५-३०॥ शारदीय चन्द्रमा को तिरस्कृत करने वाले नखचन्द्रों से वह सुशोभित थी। अमूल्य रत्नों से मिश्रित महावर से वह अलंकृत थी। सर्वोत्तम मणियों के बने शब्दायमान नूपुर उसके पैरों की शोभा बढ़ा रहे थे। मालती के पुष्पों की माला से सम्पन्न केशकलाप उसके मस्तक पर शोभा पा रहे थे। उसके कानों में अमूल्य रत्नों के बने हुए मकराकृत कुंडल थे। सर्वोत्तम रत्नों से निर्मित हार उसके वक्षःस्थल को समुज्वल बना रहा था। रत्नमय कंकण, केयूर, शंख और अंगूठियाँ उस देवी की शोभा बढ़ा रही थीं॥ ३१-३४॥

१क. ऊर्ध्वपद्मस्थलपद्मबीजराजिवि०। २क. ०स्तनिर्माणपाशकावलिसंयुताम्। ३क. ०युग्मे श्रीसुषमापरिशोभिताम्।

दृष्ट्वा तां ललितां कन्यां सुशीलां सुदतीं सतीम्। उवास तत्समीपे च मधुरं तामुवाच सः ॥३५॥

शङ्खचूड उवाच

कात्वं कस्य च कन्याऽसि धन्ये मान्ये सुयोषिताम्। का त्वं[1] कामिनि कल्याणि सर्वकल्याणदायिनि ॥३६॥
स्वर्गभोगादिसारेऽतिविहारे हाररूपिणि। संसारदारसारे च मायाधारे मनोहरे ॥३७॥
जगद्विलक्षणे क्षामे मुनीनां मोहकारिणि। मौनं त्यक्त्वा किंकरं मां संभाषां कुरु सुन्दरि ॥३८॥
इत्येवं वचनं श्रुत्वा सकामा वामलोचना। सस्मिता नम्रवदना सकामं तमुवाच सा ॥३९॥

तुलस्युवाच

धर्मध्वजसुताऽहं च तपस्यायां तपोवने। तपस्विनीह तिष्ठामि कस्त्वं गच्छ यथासुखम् ॥४०॥
कामिनीं कुलजातां च रहस्येकाकिनीं सतीम्। न पृच्छति कुले जात एवमेव श्रुतौ श्रुतम् ॥४१॥
लम्पटोऽसत्कुले जातो धर्मशास्त्रार्थवर्जितः। येनाश्रुतः श्रुतेरर्थः स कामीच्छति कामिनीम् ॥४२॥
आपातमधुरामन्ते चान्तकां पुरुषस्य ताम्। विषकुम्भाकाररूपाममृतास्यां च संततम् ॥४३॥

इस प्रकार की सुन्दरी सुशील, आकर्षक दाँतों वाली एवं साध्वी उस कन्या को देखकर शंखचूड उसके पास बैठ गया और मीठे शब्दों में बोला ॥३५॥

शंखचूड बोले—सुन्दरी ललनाओं में तुम धन्या और मान्या हो, अतः तुम कौन हो? किसकी पुत्री हो? हे कामिनि! हे कल्याणि! तुम समस्त कल्याण प्रदान करने वाली हो, इसलिए कहो तुम कौन हो? ॥३६॥ तुम स्वर्ग-भोग आदि का सार हो। अत्यन्त विहार करने वाली हो। हार-रूपिणी हो। संसार का सार हो। माया का आधार हो। मनोरमा हो। संसार में विलक्षण हो। छरहरे शरीर वाली हो। मुनिजनों को मोहित करने वाली हो अतः मौनभाव त्यागकर इस सेवक से कुछ बोलने की कृपा करो ॥३७-३८॥ इस प्रकार की बातें सुनकर उस वामलोचना ने कामवासना से मुसकराते हुए मुख नीचे की ओर झुका कर उस कामुक युवक से कहना आरम्भ किया ॥३९॥

तुलसी बोली—मैं धर्मध्वज की कन्या हूँ। इस तपोवन में तपस्या करने के लिए आई हूँ और यहाँ तपस्विनी होकर रह रही हूँ। तुम कौन हो? यहाँ से सुखपूर्वक चले जाओ ॥४०॥ श्रुतियों में यह बात सुनी गई है कि किसी कुलीन एवं सती कन्या से एकान्त में कोई भी कुलीन पुरुष बात नहीं करता है। जो लम्पट, अकुलीन तथा धर्मशास्त्र के अर्थज्ञान से शून्य एवं वेदों के अर्थों के श्रवण से रहित है, वही कामी पुरुष कामिनी को चाहता है। कामिनी तत्काल रमणीय प्रतीत होती है, किन्तु अन्त में पुरुष के लिए घातक हो जाती है। क्योंकि स्त्रियाँ विष से भरे हुए घड़े के समान है, परन्तु उसका मुख ऐसा जान पड़ता है मानो सदा अमृत से भरा हो ॥४१-४३॥

१क. त्वं मानिनि।

हृदये क्षुरधाराभां शश्वन्मधुरभाषिणीम् । स्वकार्यपरिनिष्पत्तितत्परां सततं च ताम् ॥४४॥
कार्यार्थे स्वामिवशगामन्यथैवावशां सदा । स्वान्तर्मलिनरूपां च प्रसन्नवदनेक्षणाम् ॥४५॥
श्रुतौ पुराणे यासां च चरित्रमनिरूपितम् । तासु को विश्वसेत्प्राज्ञो ह्यप्राज्ञ इव सर्वदा ॥४६॥
तासां को वा रिपुर्मित्रं प्रार्थयन्तीं नवं नवम् । दृष्ट्वा सुवेशं पुरुषमिच्छन्तीं हृदये सदा ॥४७॥
बाह्ये स्वात्मसतीत्वं च ज्ञापयन्तीं प्रयत्नतः । शश्वत्कामां च रामां च कामाधारां मनोहराम् ॥४८॥
बाह्ये छलाच्छादयन्तीं स्वान्तर्मैथुनलालसाम् । कान्तं ग्रसन्तीं रहसि बाह्येऽतीव सुलज्जिताम् ॥४९॥
मानिनीं मैथुनाभावे कोपिनीं कलहाङ्कुराम् । [1]सुप्रीतां भूरिसंभोगात्स्वल्पमैथुनदुःखिताम् ॥५०॥
सुमिष्टान्नं शीततोयमाकाङक्षन्तीं च मानसे । सुन्दरं रसिकं कान्तं युवानं गुणिनं सदा ॥५१॥
सुखात्परमतिस्नेहं कुर्वतीं रतिकर्तरि । प्राणाधिकं प्रियतमं संभोगकुशलं प्रियम् ॥५२॥
पश्यन्तीं रिपुतुल्यं च वृद्धं वा मैथुनाक्षमम् । कलहं कुर्वतीं शश्वत्तेन सार्धं सुकोपनाम् ॥५३॥
चर्चया भक्षयन्ती तं कीनाश इव गोरजः । दुःसाहसस्वरूपां च सर्वदोषाश्रयां सदा ॥५४॥

कामिनी का हृदय निरन्तर क्षुर (छुरे) की धार के समान होता है, पर वह निरन्तर मधुरवाणी बोलती रहती है। वह अपने कार्य सिद्ध करने में सदा तत्पर रहती है॥४४॥ अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए ही वह स्वामी (पति) के वश में रहती है अन्यथा वह सदा अवश (किसी के अधीन न रहने वाली) है। उसका हृदय अत्यन्त मलिन होता है, किन्तु वह ताकती है प्रसन्न मुखमुद्रा से॥४५॥ वेदों और पुराणों में जिसका चरित्र न कहने योग्य बताया गया है उसके प्रति कौन बुद्धिमान् मनुष्य मूर्ख की भाँति सदा विश्वास करेगा॥४६॥ स्त्रियों के शत्रु और मित्र नहीं होते हैं। वे नित्य नवसमागम चाहती हैं। सुन्दर वेश वाले पुरुष की कामना सदा हृदय में किया करती हैं॥४७॥ किन्तु बाहर (ऊपर) से अपने सतीत्व को प्रकट करने के लिए प्रयत्नशील रहती हैं। स्त्रियाँ सदा कामयुक्त, रमणीय, कामाधार तथा मनोहर होती हैं और अपने भीतर मैथुन की लालसा रखकर ऊपर से उसे छिपाये रहती हैं। इसी तरह वे ऊपर से बड़ी लज्जाशील बनी रहती हैं, पर एकान्त में कान्त को ग्रस लेती हैं॥४८-४९॥ इस भाँति वे अत्यन्त मानिनी स्त्रियाँ मैथुन (रति) क्रिया में कमी होने पर कोप की मूर्ति बन जाती हैं। इससे उनमें कलह का अंकुर निकल आता है। अत्यन्त सम्भोग करने से वे प्रसन्न रहती हैं और स्वल्प मैथुन करने से दुःखी हो जाती हैं। ॥५०॥ वे मन में सदैव उत्तम भोजन और शीतल जल तथा सुन्दर, रसिक, युवा और गुणी पति की अभिलाषा रखती हैं॥५१॥ रति करनेवाले पुरुष से वह पुत्र से भी अधिक स्नेह करती हैं। रति-दक्ष पुरुष उन्हें प्राणों से अधिक प्रिय होता है॥५२॥ मैथुन करने में असमर्थ या वृद्ध पुरुष को वे शत्रु समझती हैं। इससे अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसके साथ वे निरन्तर कलह करती रहती हैं॥५३॥ झगड़ा करने पर उसे यमराज की भाँति खा लेने के लिए तैयार हो जाती हैं। इस प्रकार दुःसाहस की मूर्ति बनकर सदा समस्त दोषों को अपनाये रहती हैं॥५४॥ निरन्तर कपट का

१क. ०नदुःखिताम्। २ख. सुमीतां। ३ख. सर्वदोषाश्रयां सदा।

शश्वत्कपटरूपां च [1]दुःसाध्यामप्रतिक्रियाम्। ब्रह्मविष्णुशिवादीनां दुस्त्याज्यां मोहरूपिणीम् ॥५५॥
तपोमार्गार्गलां शश्वन्मुक्तिद्वारकपाटिकाम् ॥५६॥
हरेर्भक्तिव्यवहितां सर्वमायाकरण्डिकाम्। संसारकारागारे च शश्वन्निगडरूपिणीम् ॥५७॥
इन्द्रजालस्वरूपां च मिथ्यावादिस्वरूपिणीम्। बिभ्रतीं बाह्यसौन्दर्यमध्याङ्गमतिकुत्सितम् ॥५८॥
नानाविण्मूत्रपूयानामाधारं मलसंयुतम्। दुर्गन्धिदोषसंयुक्तं रक्ताक्तं चाप्यसंस्कृतम् ॥५९॥
मायारूपं मायिनां च विधिना निर्मितं पुरा। विषरूपां मुमुक्षूणामदृश्यां चैव सर्वदा ॥६०॥
इत्युक्त्वा तुलसी तं च विरराम च नारद। सस्मितः शङ्खचूडश्च प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥६१॥

शङ्खचूड उवाच

त्वया यत्कथितं देवि न च सर्वमलीककम्। किंचित्सत्यमलीकं च किंचिन्मत्तो निशामय ॥६२॥
[1]निर्मितं विविधं धात्रा स्त्रीरूपं सर्वमोहनम्। कृत्यारूपं वास्तवं च प्रशस्यं चाप्रशंसितम् ॥६३॥
[2]लक्ष्मीसरस्वतीदुर्गासावित्रीराधिकादिकम्। सृष्टिसूत्रस्वरूपं चाप्याद्यं स्रष्ट्रा तु निर्मितम् ॥६४॥
एतासामंशरूपं यत्स्त्रीरूपं वास्तवं स्मृतम्। तत्प्रशस्यं यशोरूपं सर्वमङ्गलकारणम् ॥६५॥

रूप धारण करने वाली स्त्रियाँ दुःसाध्य तथा अप्रतीकार्य होती हैं। वे ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आदि के लिए भी दुस्त्यज बतायी गयी हैं। वे मोहरूपा हैं। तपस्या के मार्ग को अवरुद्ध करने के लिए अर्गलास्वरूप हैं और मुक्ति-द्वार को बंद करने के लिए कपाटरूपा हैं। वे विष्णु की भक्ति में बाधक, सम्पूर्ण माया की करण्डिका (सन्दूक) और संसार रूपी कारागार में (डाले रहने के लिए) सदा बेड़ी के समान हैं॥५५-५७॥ अतएव स्त्री इन्द्रजाल के समान होती है और मिथ्यावादी का तो उसे स्वरूप ही कहना चाहिए। बाहर से तो वह अत्यन्त सुन्दरता धारण करती है, परन्तु उसके भीतर के अंग कुत्सित भावों से भरे रहते हैं। उसका शरीर विष्ठा, मूत्र, पीब और मल आदि नाना प्रकार की दुर्गंधपूर्ण वस्तुओं का आधार है। रक्तरंजित तथा दोषयुक्त यह शरीर कभी पवित्र नहीं रहता। सृष्टि की रचना के समय ब्रह्मा ने मायावी व्यक्तियों के लिए इस मायास्वरूपिणी स्त्री का सर्जन किया है। मोक्ष की इच्छा करने वाले पुरुषों के लिए यह विष का काम करती है। अतः मोक्षाभिलाषी व्यक्ति उसे देखना भी नहीं चाहते। नारद! शंखचूड से इस प्रकार कहकर तुलसी चुप हो गई। तब शंखचूड हँसकर कहने लगा॥५८-६१॥

शंखचूड बोले—हे देवि! तुमने जो कुछ कहा है, वह सब मिथ्या नहीं है। कुछ सत्य भी है और कुछ असत्य भी। अब मैं भी कुछ कह रहा हूँ, सुनो! ब्रह्मा ने सर्वमोहक स्त्रीरूप के दो भेद किये। एक है वास्तवस्वरूप और दूसरा है कृत्यास्वरूप। पहला प्रशस्त है और दूसरा अप्रशस्त। स्रष्टा ने आदिकाल में सबसे पहले लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, सावित्री और राधिका आदि देवियों का निर्माण किया, जो सृष्टि का सूत्रस्वरूप हैं (अर्थात् जिनसे सृष्टि आरम्भ हुई हैं) ॥६१-६४॥ इन देवियों के अंश से जो अन्य स्त्रीरूप बना है, वह वास्तव में प्रशंसनीय, यशःरूप और समस्त मंगलों का कारण है॥६५॥ जैसे

१ख. ०तं द्विवि०। २क. ०तीगङ्गासा।

शतरूपा देवहूतिः स्वधा स्वाहा च दक्षिणा। छायावती रोहिणी च वरुणानी शची तथा॥६६॥
कुबेरवायुपत्नी साऽप्यदितिश्च दितिस्तथा। लोपामुद्राऽनसूया च कैटभी तुलसी तथा॥६७॥
अहल्याऽरुन्धती मैना तारा मन्दोदरी परा। दमयन्ती वेदवती गङ्गा च यमुना तथा॥६८॥
पुष्टिस्तुष्टिः स्मृतिर्मेधा कालिका च वसुंधरा। षष्ठी मङ्गलचण्डी च मूर्तिर्वै धर्मकामिनी॥६९॥
स्वस्तिः श्रद्धा च कान्तिश्च तुष्टिः[1] शान्तिस्तथापरा। निद्रा तन्द्रा क्षुत्पिपासा संध्या रात्रिर्दिनानि च॥७०॥
[2]संपत्तिवृत्तिकीर्त्यश्च क्रिया शोभा प्रमांशकम्। यत्स्त्रीरूपं च संभूतमुत्तमं तद्युगे युगे॥७१॥
कृत्यास्वरूपं तद्यत्तु स्वर्वेश्यादिकमेव च। तदप्रशस्यं विश्वेषु पुंश्चलीरूपमेव च॥७२॥
सत्त्वप्रधानं यद्रूपं तच्च शुद्धं स्वभावतः। तदुत्तमं च विश्वेषु साध्वीरूपं प्रशंसितम्॥७३॥
तद्वास्तवं च विज्ञेयं प्रवदन्ति मनीषिणः। रजोरूपं तमोरूपं कृत्यासु द्विविधं स्मृतम्॥७४॥
स्थानाभावात्क्षणाभावान्मध्यवृत्तेरभावतः। देहक्लेशेन रोगेण[3] सत्संसर्गेण सुन्दरी॥७५॥
बहुगोष्ठावृतेनैव रिपुराजभयेन च। रजोरूपस्य साध्वीत्वमेतेनैवोपजायते॥७६॥
इदं मध्यमरूपं च प्रवदन्ति मनीषिणः। तमोरूपं दुर्निवार्यमधमं तद्विदुर्बुधाः॥७७॥
न पृच्छति कुले जातः पण्डितश्च परस्त्रियम्। निर्जने दुर्जने वाऽपि रहस्ये वचसा स्त्रियम्॥७८॥
आगच्छामि त्वत्समीपमाज्ञया ब्रह्मणोऽधुना। गान्धर्वेण विवाहेन त्वां ग्रहीष्यामि शोभने॥७९॥

शतरूपा, देवहूति, स्वधा, स्वाहा, दक्षिणा, छायावती, रोहिणी, वरुणानी, इन्द्राणी, कुबेर की पत्नी, वायु की स्त्री, अदिति, दिति, लोपामुद्रा, अनसूया, कैटभी, तुलसी, अहल्या, अरुन्धती, मेना, तारा, मन्दोदरी, दमयन्ती, वेदवती, गंगा, यमुना, पुष्टि, तुष्टि, स्मृति, मेधा, कालिका, वसुन्धरा, मंगलचण्डी, षष्ठी, धर्म की पत्नी मूर्ति, स्वस्ति, श्रद्धा, कान्ति, तुष्टि, शान्ति, निद्रा, तन्द्रा, क्षुधा, पिपासा, सन्ध्या, रात्रि, दिन, सम्पत्ति, वृत्ति, कीर्ति, क्रिया, शोभा, प्रभा, आदि जितने उत्तम स्त्रीरूप उत्पन्न हुए हैं वे प्रत्येक युगों में सुखप्रद हैं॥६६-७१॥ उसी भाँति स्त्री का जो दूसरा रूप है, वह कृत्या (तमः प्रधान पिशाचिनी आदि) का है। स्वर्ग की अप्सरायें भी कृत्यास्वरूपा हैं। समस्त विश्व में वे प्रशंसाहीन (निन्दित) और पुंश्चली (व्यभिचारिणी) रूप से विख्यात हैं॥७२॥ सत्त्वगुणप्रधान जो देवियाँ हैं वे स्वभावतः अत्यन्त शुद्ध हैं। समस्त विश्व में वे सर्वोत्तम और साध्वीरूप होने से प्रशंसित हैं। इसीलिए विद्वद्वृन्द उसे 'वास्तवरूपा' कहते हैं। इस प्रकार कृत्या के भी रजोरूप एवं तमोरूप के कारण दो भेद बताये गये हैं॥७३-७४॥ सुन्दरि! स्थानाभाव, समयाभाव, मध्यवर्ती दूत या दूती का न होना, शारीरिक पीड़ा, रोग, सत्संग, बहुगोष्ठी (बहुत से जनसमुदाय द्वारा घिरी रहना) शत्रु अथवा राजा से भय का प्राप्त होना—इन्हीं कारणों से रजोगुण प्रधान स्त्रियाँ अपने सतीत्व की रक्षा कर पाती हैं। इन्हीं स्त्रियों को मनीषी लोग 'मध्यमा' कहते हैं। और तमोगुण प्रधान स्त्रियाँ दुर्निवार्य होती हैं। विद्वद्वृन्द इसे ही 'अधमा' कहते हैं॥७५-७७॥ यद्यपि कुलीन एवं पण्डित पुरुष निर्जन या दुर्जन स्थान में कहीं परस्त्री से कोई बात-चीत नहीं करते हैं तथापि मैं सम्प्रति ब्रह्मा ही की आज्ञा

---

१ क ०ष्टिर्लज्जा त०। २ क. ० त्तिधृतिकी०। ३ क. ०ण तदसङ्गेन सु०।

अहमेव शङ्खचूडो देवविद्रावकारकः। दनुवंशोद्भवो विश्वे सुदामाऽहं हरेः पुरे ॥८०॥
अहमष्टसु गोपेषु [1]गोगोपीपार्षदेषु च। अधुना दानवेन्द्रोऽहं राधिकायाश्च शापतः ॥८१॥
जातिस्मरोऽहं जानामि कृष्णमन्त्रप्रभावतः। जातिस्मरा त्वं तुलसी संसक्ता[2] हरिणा पुरा ॥८२॥
त्वमेव राधिकाकोपाज्जाताऽसि भारते भुवि। त्वां संभोक्तुमिच्छुकोऽहं नालं राधाभयात्तदा ॥८३॥
इत्येवमुक्त्वा स पुमान्विरराम महामुने। सस्मिता तुलसी हृष्टा प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥८४॥

तुलस्युवाच

एवंविधो बुधो विश्वे बुधेषु च प्रशंसितः। कान्तमेवंविधं कान्ता शश्वदिच्छति कामतः ॥८५॥
त्वयाऽहमधुना सत्यं विचारेण पराजिता। सनिन्दितश्चाप्यशुचिर्यः पुमांश्च स्त्रिया जितः ॥८६॥
निन्दन्ति पितरो देवा बान्धवाः स्त्रीजितं जनम्। स्त्रीजितं मनसा वाचा पिता भ्राता[3] च निन्दति ॥८७॥
शुध्येद्विप्रो दशाहेन जातके मृतके तथा। भूमिपो द्वादशाहेन वैश्यः पञ्चदशाहतः ॥८८॥
शूद्रो मासेन वेदेषु मातृवद्वर्णसंकरः। अशुचिः स्त्रीजितः शुद्धेच्चितादाहेन कालतः ॥८९॥
न गृह्णन्तीच्छया तस्य पितरः पिण्डतर्पणम्। न गृह्णन्तीच्छया देवास्तस्य पुष्पजलादिकम् ॥९०॥

से तुम्हारे पास आया हूँ। हे शोभने! गान्धर्व विवाह द्वारा मैं तुम्हारा पाणिग्रहण करूँगा। मैं ही दनु-वंश में उत्पन्न और विश्व के देवों को दलने वाला शंखचूड हूँ, जो श्रीहरि के गोलोक में पहले सुदामा नामक गोप था ॥७८-८०॥ जो सुप्रसिद्ध आठ गोप भगवान् के स्वयं पार्षद थे, उनमें एक मैं ही था। देवी राधिका के शाप से मैं दानवों का राजा हुआ हूँ ॥८१॥ भगवान् श्रीकृष्ण के मन्त्र के प्रभाव से मुझे पिछले जन्म का स्मरण है और तुम्हें भी पूर्वजन्म का स्मरण है ही, क्योंकि तुम भी पूर्वजन्म में श्रीकृष्ण के पास रहनेवाली तुलसी थी ॥८२॥ इस समय राधिका के कोप के कारण तुम्हारा जन्म भारत-भूमि पर हुआ है। उस समय वहाँ (गोलोक में) मैं तुम्हारे सम्भोग का बड़ा इच्छुक था, पर राधा के भय के कारण उसे पूरा न कर सका ॥८३॥ हे महामुने! इतना कहकर वह युवक चुप हो गया। अनन्तर मुसकराती हुई तुलसी ने हर्षित होकर कहना आरम्भ किया ॥८४॥

तुलसी बोली—इस प्रकार के सद्विचार से सम्पन्न विज्ञ पुरुष ही विश्व में सदा प्रशंसित होते हैं और स्त्री ऐसे ही सत्पति की निरन्तर अभिलाषा करती है ॥८५॥ इस समय तुम्हारे विचार से मैं वस्तुतः पराजित हो गई। जिसे स्त्री ने जीत लिया हो वह पुरुष निन्दित और अपवित्र होता है ॥८६॥ पितरगण और देवगण स्त्री-पराजित पुरुष की निन्दा करते हैं तथा पिता, भ्राता भी मन-वाणी से उसकी निन्दा करते रहते हैं ॥८७॥ जन्म तथा मृत्यु के अशौच में ब्राह्मण दस दिनों पर, क्षत्रिय बारह दिनों पर, वैश्य पन्द्रह दिनों पर और शूद्र एक मास पर शुद्ध होता है किन्तु वर्णसंकर, उसकी माता और अपवित्र स्त्रीजित पुरुष चिता पर जलते समय ही शुद्ध होते हैं, ऐसा वेदों में कहा गया है। उसके दिए हुए पिण्ड और तर्पण पितर लोग इच्छा से नहीं ग्रहण करते हैं और

---

१ क. गोविन्दपा०। २ क. संभुक्ता। ३ क. माता।

किं तस्य[1] ज्ञानतपसा जपहोमप्रपूजनैः। किं विद्यया वा यशसा स्त्रीभिर्यस्य मनो हृतम्॥९१॥
विद्याप्रभावज्ञानार्थं मया त्वं च परीक्षितः। कृत्वा परीक्षां कान्तस्य वृणोति कामिनी वरम्॥९२॥
वराय गुणहीनाय वृद्धायाज्ञानिने तथा। दरिद्राय च मूर्खाय रोगिणे कुत्सिताय च॥९३॥
अत्यन्तकोपयुक्ताय चात्यन्तदुर्मुखाय च। पङ्गुलायाङ्गहीनाय चान्धाय बधिराय च॥९४॥
जडाय चैव मूकाय क्लीबतुल्याय पापिने। ब्रह्महत्यां लभेत्सोऽपि यः स्वकन्यां ददाति च॥९५॥
शान्ताय गुणिने चैव यूने च विदुषेऽपि च। वैष्णवाय सुतां दत्त्वा दशवाजिफलं[2] लभेत्॥९६॥
यः कन्यापालनं कृत्वा करोति विक्रयं यदि। विपदा धनलोभेन कुम्भीपाकं स गच्छति॥९७॥
कन्यामूत्रपुरीषं च तत्र भक्षति पातकी। कृमिभिर्दंशितः काकैर्यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥९८॥
तदन्ते व्याधयोनौ च लभते जन्म निश्चितम्। विक्रीणाति मांसभारं वहत्येव दिवानिशम्॥९९॥
इत्येवमुक्त्वा तुलसी विरराम तपोवने। एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा तयोरन्तिकमाययौ॥१००॥
मूर्ध्ना ननाम तुलसी शङ्खचूडश्च नारद। उवास तत्र देवेशश्चोवाच च तयोर्हितम्॥१०१॥

ब्रह्मोवाच

किं करोषि शङ्खचूड संवादमनया सह। गान्धर्वेण विवाहेन त्वमस्या ग्रहणं कुरु॥१०२॥
त्वं च पुरुषरत्नं च स्त्रीरत्नं स्त्रीष्वियं सती। विदग्धाया विदग्धेन संगमो गुणवान्भवेत्॥१०३॥

उसके दिये हुए पुष्पजल आदि को देवता भी स्वेच्छापूर्वक नहीं स्वीकार करते हैं। इसलिए उसे ज्ञान, तप, जप, होम और अत्यन्त पूजन करने से क्या लाभ हो सकता है एवं उसकी विद्या और यश किस काम के हो सकते हैं, जिसका मन स्त्रियों के अधीन है ८८-९१॥ मैंने विद्या और प्रभाव जानने के लिए ही तुम्हारी परीक्षा की है, क्योंकि कान्त की परीक्षा करके ही कामिनी उसका वरण करती है॥९२॥ जो व्यक्ति गुणरहित, वृद्ध, अज्ञानी, दरिद्र, मूर्ख, रोगी, निन्दित, अत्यन्त क्रोधी, अत्यन्त कटुभाषी, पंगु, अंगहीन, अन्धे, बहरे, जड़, गूंगे और नपुंसक (तुल्य) पापी को कन्या देता है, उसे ब्रह्महत्या का भागी होना पड़ता है॥९३-९५॥ शान्त, गुणी, युवा, विद्वान्, और वैष्णव को कन्या प्रदान करने से दश अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है॥९६॥ जो कन्या को पाल-पोसकर विपत्ति अथवा धन-लोभ के कारण उसका विक्रय करता है, उसे कुम्भीपाक नरक में जाना पड़ता है॥९७॥ और वह पातकी वहाँ रहकर उसी कन्या का मल-मूत्र भक्षण करता है और चौदहों इन्द्रों के समय तक कीड़े और कौवे उसे काटते-नोचते रहते हैं॥९८॥ अन्त में वह व्याध के यहाँ निश्चित रूप से जन्म लेता है, जहाँ रातदिन उसे मांस का बोझा ढोना और बेंचना पड़ता है॥९९॥ उस तपोवन में इतना कहकर तुलसी चुप हो गयी। इसी बीच उन दोनों के पास वहाँ ब्रह्मा जी आ गये॥१००॥ हे नारद! तुलसी और शंखचूड ने उन्हें मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। तब देवेश ब्रह्मा ने भी उन दोनों के हित की बातें कही॥१०१॥

ब्रह्मा बोले—शंखचूड! तुम इसके साथ संवाद क्या करते हो? तुम इससे गान्धर्व विवाह करके ग्रहण कर

---

१ क. तद्ध्यानेन त०। २ क. ०वापीफ०।

निर्विरोधसुखं राजन्को वा त्यजति दुर्लभम्। योऽविरोधसुखत्यागी स पशुर्नात्र संशयः॥१०४॥
किमुपेक्षसि[1] त्वं कान्तमीदृशं गुणिनं सति। देवानामसुराणां च दानवानां विमर्दनम्॥१०५॥
यथा लक्ष्मीश्च लक्ष्मीशे यथा कृष्णे च राधिका। यथा मयि च सावित्री भवानी च भवे यथा॥१०६॥
यथा धरा वराहे च यथा मेना हिमालये। यथाऽत्रावनसूया च दमयन्ती नले यथा॥१०७॥
रोहिणी च यथा चन्द्रे यथा कामे रतिः सती। यथाऽदितिः कश्यपे च वसिष्ठेऽरुन्धती यथा॥१०८॥
यथाऽहल्या गौतमे च देवहूतिश्च कर्दमे। यथा बृहस्पतौ तारा शतरूपा मनौ यथा॥१०९॥
यथा च दक्षिणा यज्ञे यथा स्वाहा हुताशने। यथा शची महेन्द्रे च यथा पुष्टिर्गणेश्वरे॥११०॥
देवसेना यथा स्कन्दे धर्मे मूर्तिर्यथा सती। सौभाग्यासु प्रिया त्वं च शङ्खचूडे तथा भव॥१११॥
अनेन सार्धं सुचिरं सुन्दरेण च सुन्दरि। स्थाने स्थाने विहारं च यथेच्छं कुरु संततम्॥११२॥
पश्चात्प्राप्स्यसि गोविन्दं गोलोके पुनरेव च। चतुर्भुजं च वैकुण्ठे शङ्खचूडे मृते सति॥११३॥
इत्येवमाशिषं कृत्वा स्वालयं प्रययौ विधिः। गान्धर्वेण विवाहेन जगृहे तां च दानवः॥११४॥
स्वर्गे दुन्दुभिवाद्यं च पुष्पवृष्टिर्बभूव ह। स रेमे रामया सार्धं वासगेहे मनोहरे॥११५॥
मूर्च्छां संप्राप तुलसी नवसंगमसंगता। निमग्ना निर्जने साध्वी संभोगसुखसागरे॥११६॥

लो। क्योंकि तुम पुरुषरत्न हो और यह स्त्रीरत्न है। विदग्ध-विदग्धा (चतुर नायक और चतुर नायिका) का संगम सुखकर होता है। राजन्! निर्विरोध सुख अत्यन्त दुर्लभ होता है, अतः कौन उसका त्याग कर सकता है? फिर ऐसे सुख का त्याग करने वाला पशु ही होता है, इसमें संशय नहीं। ।१०२-१०४॥ और तुम भी साध्वी होकर ऐसे स्वामी की उपेक्षा क्यों कर रही हो, जो सुन्दर, गुणी एवं देव, असुर और दानवों का विमर्दन करने वाला है॥१०५॥ जिस प्रकार लक्ष्मीश (विष्णु) में लक्ष्मी का, भगवान् श्रीकृष्ण में राधिका का, मुझमें सावित्री का, भव (शिव) में भवानी का, वराह भगवान् में पृथिवी का, हिमालय में मेना का, अत्रि में अनसूया का, नल में दमयन्ती का, चन्द्रमा में रोहिणी का, कामदेव में रति का, कश्यप में दिति का, वशिष्ठ में अरुन्धती का, गौतम में अहल्या का, कर्दम में देवहूति का, बृहस्पति में तारा का, मनु में शतरूपा का, यज्ञ में दक्षिणा का, अग्नि में स्वाहा का, इन्द्र में इन्द्राणी का, गणेश्वर में पुष्टि का, स्कन्द में देवसेना का और धर्म में मूर्ति का (निश्चल) प्रेम है, उसी भाँति शंखचूड में तुम्हारा अटल प्रेम हो और उसकी सौभाग्यवती अतिप्रेयसी बनो॥१०६-१११॥ सुन्दरि! इस सुन्दर युवक के साथ प्रत्येक स्थान में इच्छानुसार निरन्तर विहार करो॥११२॥ और शंखचूड के शरीर छोड़ देने पर तुम वैकुण्ठ में चतुर्भुज (विष्णु) तथा गोलोक में गोविन्द को पुनः प्राप्त करोगी॥११३॥ इतना कहकर ब्रह्मा अपने धाम को चले गये और दानव (शंखचूड) ने गान्धर्व-विवाह द्वारा उसका पाणिग्रहण किया ॥११४॥ उसके उत्सव में स्वर्ग से देवों ने नगाड़े बजाये और पुष्पों की वर्षा की, अनन्तर उसने अपने मनोहर वास-भवन में उस रमणी के साथ रमण किया। उस नव समागम में तुलसी

---

१ क. किं परीक्ष्य०।

चतुःषष्टिकलामानं चतुःषष्टिविधं सुखम्। कामशास्त्रे यन्निरुक्तं रसिकानां यथेप्सितम्॥११७॥
अङ्गप्रत्यङ्गसंश्लेषपूर्वकं स्त्रीमनोहरम्। तत्सर्वं सुखशृङ्गारं चकार रसिकेश्वरः॥११८॥
अतीव रम्ये देशे च सर्वजन्तुविवर्जिते। पुष्पचन्दनतल्पे च पुष्पचन्दनवायुना॥११९॥
पुष्पोद्याने नदीतीरे पुष्पचन्दनचर्चिते। गृहीत्वा रसिकां रामां पुष्पचन्दनचर्चिताम्॥१२०॥
भूषितां भूषणैः सर्वैरतीवसुमनोहराम्। सुरतेर्विरतिर्नास्ति तयोः सुरतविज्ञयोः॥१२१॥
जहार मानसं भर्तुर्लीलया तुलसी सती। चेतनां रसिकायाश्च जहार रसभाववित्॥१२२॥
वक्षसश्चन्दनं[1] बाह्वोस्तिलकं विजहार सा। स च जग्राह तस्याश्च सिन्दूरबिन्दुपत्रकम्॥१२३॥
स तद्वक्षसि तस्याश्च नखरेखां ददौ मुदा। सा ददौ तद्वामपार्श्वे करभूषणलक्षणम्॥१२४॥
राजा तदोष्ठपुटके ददौ दशनदंशनम्। तद्गण्डयुगले सा च प्रददौ तच्चतुर्गुणम्॥१२५॥
सुरतेर्विरतौ तौ च समुत्थाय परस्परम्। सुवेशं चक्रतुस्तत्र यत्तन्मनसि वाञ्छितम्॥१२६॥
कुङ्कुमाक्तचन्दनेन सा तस्मै तिलकं ददौ। सर्वाङ्गे सुन्दरे रम्ये चकार चानुलेपनम्॥१२७॥
सुवासितं च ताम्बूलं वह्निशुद्धे च वाससी। पारिजातस्य कुसुमं[2] माल्यं चैव सुशोभनम्॥१२८॥

को मूर्च्छा आ गयी किन्तु पश्चात् वह पतिव्रता निर्जन स्थानों में जाकर सम्भोग सुख के सागर में निमग्न रहने लगी॥ चौंसठ कलाओं द्वारा चौंसठ प्रकार के सुख तथा कामशास्त्र में रसिकों के लिए कहे गये यथेच्छ सुख एवं स्त्री के मनोहर अंग-प्रत्यंग के आलिंगन सुख आदि समस्त सुखश्रृंगार को उस रसिकेश्वर ने उसके साथ प्राप्त किया॥११५-११८॥ अत्यन्त रमणीक प्रदेश में, जो सभी जन्तुओं से शून्य था, पुष्पचन्दन की शय्या पर पुष्पचन्दन के (मन्द, सुगन्ध) वायु में उसने अति आनन्द प्राप्त किया॥११९॥ नदी के किनारे पुष्पवाटिका में पुष्प-चन्दन-चर्चित शय्या पर पुष्पचन्दन से भूषित उस रसिकप्रिया को भूषण आदि से अत्यन्त सुसज्जित करके दानवेन्द्र ने मनोहारिणी के साथ सुरत-सम्भोग किया। अनन्तर वे दोनों सुरतवेत्ता इतने आनन्दमग्न हो गए कि उन्हें उससे कभी विरति ही नहीं होती थी॥१२०-१२१॥ उस सती तुलसी ने अपनी लीलाओं द्वारा पति का मन अपने अधीन कर लिया और उस रसिक ने भी उस रसीली कामिनी की चेतना को अपने अधीन कर लिया॥१२२॥ उस रति-क्रीड़ा में तुलसी ने उसके वक्षःस्थल का चन्दन और बाँह पर का तिलक मिटा दिया, तो उस युवक ने भी उसका सिन्दूर-बिन्दु-पत्र ले लिया॥१२३॥ उन्होंने आनन्दविभोर होकर उस कामिनी के वक्षःस्थल में नख-रेखा बनायी, तो उस कामिनी ने भी उसके बायें हाथ में अपने हाथ के भूषण के चिह्न बना दिये॥१२४॥ राजा ने उसके होंठ को अपने दांतों से काट लिया, तो उसके दोनों कपोलों में उससे चौगुना उस सुन्दरी ने भी काट लिया॥१२५॥ पुनः रति करने के अनन्तर दोनों उठकर एक दूसरे को यथेष्ट ढंग से सजाने लगे॥१२६॥ तुलसी ने उसको कुंकुम मिश्रित चन्दन का तिलक लगाया और उसके सुन्दर सर्वांग में अनुलेपन कर दिया। अत्यन्त सुवासित ताम्बूल अग्निविशुद्ध

---

१ क. ०नं राज्ञस्ति०। २ क ०मं जरारोगहरं परम्।

अमूल्यरत्ननिर्माणमङ्गुलीयकमुत्तमम् । सुन्दरं च मणिवरं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ।।१२९।।
दासी तवाहमित्येवं समुच्चार्य पुनः पुनः । ननाम परया भक्त्या स्वामिनं गुणशालिनम् ।।१३०।।
सस्मिता तन्मुखाम्भोजं लोचनाभ्यां पपौ पुनः। निमेषरहिताभ्यां च सकटाक्षं च सुन्दरम् ।।१३१।।
स च तां च समाकृष्य चकार वक्षसि प्रियाम्। सस्मितं वाससा छन्नं ददर्श मुखपंकजम् ।।१३२।।
चुचुम्ब कठिने गण्डबिम्बोष्ठे पुनरेव च। ददौ तस्यै वस्त्रयुग्मं वरुणादाहृतं च यत् ।।१३३।।
तदा हृतां रत्नमालां त्रिषु लोकेषु विश्रुताम् ।।१३४।।
ददौ मञ्जीरयुग्मं च स्वाहायाश्च हृतं च यत्। केयूरयुग्मं छायाया रोहिण्याश्चैव कुण्डलम् ।।१३५।।
अङ्गुलीयकरत्नानि[1] रत्याश्च वरभूषणम्। शङ्खं सुरुचिरं चित्रं यद्दत्तं विश्वकर्मणा ।।१३६।।
[2]विचित्रपीठकश्रेणीं शय्यां चापि सुदुर्लभाम्। भूषणानि च दत्त्वा च परीहारं चकार ह ।।१३७।।
निर्ममे कबरीभारं तस्याश्च माल्यसंयुतम्। सुचित्रं पत्रकं गण्डे जयलेखसमं तथा ।।१३८।।
चन्द्रलेखात्रिभिर्युक्तं चन्दनेन सुगन्धिना। परितः परितश्चित्रैः सार्धं कुङ्कुमबिन्दुभिः ।।१३९।।
ज्वलत्प्रदीपाकारं च सिन्दूरतिलकं ददौ। तत्पादपद्मयुगले स्थलपद्मविनिन्दिते ।।१४०।।
चित्रालक्तकरागं च नखरेषु ददौ मुदा। स्ववक्षसि मुहुर्न्यस्तं सरागं चरणाम्बुजम् ।।१४१।।

दो वस्त्र और पारिजात का पुष्प ग्रहण करउ सी की सुन्दर माला से अपने को विभूषित किया। अमूल्य रत्नों की अंगूठी, जो तीनों लोकों में दुर्लभ एवं सुन्दर श्रेष्ठ मणि से बनी थी, शंखचूड को पहनाकर उससे बार-बार कहने लगी कि मैं आप की दासी हूँ। फिर उसने अपने गुणशाली स्वामी को भक्तिभाव के साथ प्रणाम किया ।।१२७-१३०।। अनन्तर तुलसी मुसकराकर अपने अपलक नेत्रों से कटाक्ष के साथ शंखचूड के मुखकमल का पान करने लगी ।।१३१।। उस समय उस युवक ने उसे अपनी ओर खींचकर अपनी छाती से चिपका लिया और मन्द मुसकान से सुशोभित उस प्रेयसी के मुखकमल को देखा, जो वस्त्र से आवृत था ।।१३२।। उपरान्त उसके कठिन गण्डस्थल का चुम्बन करके पुनः बिम्बाफल के समान ओठों का चुम्बन किया। फिर वरुण के यहाँ से लाया हुआ वस्त्र और तीनों लोकों में विख्यात रत्नमाला उसे पहनाई ।।१३३-१३४।। स्वाहा से छीनकर लाये हुए दोनों नूपुर, छाया के दोनों केयूर (बहूँटा), रोहिणी के कुण्डल, रति की अंगूठी एवं आभूषण, विश्वकर्मा के दिये हुए शंख, सुन्दर चित्र, अनेक प्रकार के आसन, सुदुर्लभ शय्या और बहुत-से गहने देकर पहनाये ।।१३५-१३७।। उसके जूड़े को माला से सजाया। गण्डस्थल पर जयलेखा के समान सुन्दर पत्र-रचना की ।।१३८।। सुगन्धित चन्दन की तीन चन्द्रलेखाओं से युक्त किया। फिर चारों ओर कुंकुमविन्दुओं के साथ अनेक चित्र बनाये ।।१३९।। जलते हुए दीपक के आकार में सिन्दूर का तिलक लगाया स्थलकमल से भी उत्तम उसके दोनों चरणारविन्द में महावर लगाया तथा नखों को रंगा फिर रंगे हुए उसके चरण-कमल को थोड़ी देर के लिए अपने वक्षःस्थल पर रखकर बार-बार कहा—हे देवि ! मैं तुम्हारा दास हूँ। अनन्तर

---

१ क. ०नि रेवत्याः करमू० । २ क. ० त्रपाशकश्रेणीं शच्याश्चापि ।

हे देवि तव दासोऽहमित्युच्चार्य पुनः पुनः। रत्ननिर्माणयानेन तां च कृत्वा स्ववक्षसि ॥१४२॥
तपोवनं परित्यज्य राजा स्थानान्तरं ययौ। मलये देवनिलये शैले शैले वने वने ॥१४३॥
स्थाने स्थानेऽतिरम्ये च पुष्पोद्यानेऽतिनिर्जने। कन्दरे कन्दरे सिन्धुतीरे तीरेऽतिसुन्दरे ॥१४४॥
पुष्पभद्रानदीतीरे नीरवातमनोहरे। पुलिने पुलिने दिव्ये नद्यां नद्यां नदे नदे ॥१४५॥
मधौ मधुकराणां च मधुरध्वनिनादिते। विनिस्यन्दे सुपवने नन्दने गन्धमादने ॥१४६॥
देवोद्याने देववने चित्रे चन्दनकानने। चम्पकानां केतकीनां माधवीनां च माधवे ॥१४७॥
कुन्दानां मालतीनां च कुमुदाम्भोजकानने। कल्पवृक्षे कल्पवृक्षे पारिजातवने वने ॥१४८॥
निर्जने काञ्चनस्थाने धन्ये काञ्चनपर्वते। काञ्चीवने किञ्जलके कञ्चुके काञ्चनाकरे ॥१४९॥
पुष्पचन्दनतल्पे च पुंस्कोकिलरुते श्रुते। पुष्पचन्दनसंयुक्तः पुष्पचन्दनवायुना ॥१५०॥
कामुक्या कामुकः कामात्स रेमे रामया सह। न तृप्तो दानवेन्द्रश्च तृप्तिं नैव जगाम सा ॥१५१॥
हविषा कृष्णवर्त्मेव ववृधे मदनस्तयोः। तया सह समागत्य स्वाश्रमं दानवस्ततः ॥१५२॥
रम्यं क्रीडालयं कृत्वा विजहार पुनस्ततः। एवं संबुभुजे राज्यं शङ्खचूडः प्रतापवान् ॥१५३॥
एकमन्वन्तरं पूर्णं राजराजेश्वरो बली। देवानामसुराणां च दानवानां च संततम् ॥१५४॥
गन्धर्वाणां किन्नराणां राक्षसानां च शास्तिदः। हृताधिकारा देवाश्च चरन्ति भिक्षुका यथा ॥१५५॥
पूजाहोमादिकं तेषां जहार विषयं बलात्। आश्रयं चाधिकारं च शस्त्रास्त्रभूषणादिकम् ॥१५६॥

उस कामिनी को अपनी छाती से चिपकाकर राजा रत्नखचित विमान द्वारा उस तपोवन से दूसरे स्थान में चला गया। इस प्रकार मलय पर्वत पर, देव-स्थानों में, पर्वतों पर, जंगलों में, रमणीक स्थानों में, अति निर्जन पुष्प-वाटिकाओं में, कन्दराओं में, अत्यन्त सुन्दर सिन्धुनदी के जल में तथा तट पर, सुन्दर वन में, पुष्पभद्रा नदी के तट पर, सुन्दर जलवायु से युक्त नदी-तटों पर, दिव्य नदियों एवं नदों के किनारे, मधुमास में भ्रमरों की मधुर ध्वनि से गुंजित उपवनों में, झरनों के पास, नन्दन वन में, गन्धमादन पर्वत पर, देवोद्यान में, चित्र वन में, चन्दनवन में तथा चम्पा, केतकी, माधवी-लता, कुन्द, मालती, कुमुद, कमल, कल्पवृक्ष, एवं पारिजात के वनों में, निर्जन काञ्चनस्थान में, रम्य सुमेरुपर्वत पर, कांचीवन में, किञ्जलक वन में तथा काञ्चनाकर (सोने की खान) में पुष्पचन्दन की शय्या पर, कोकिल की कूक सुनते हुए, पुष्पचन्दन के वायु से सम्पृक्त और पुष्पचन्दन से सुशोभित होकर वह कामुक कामुकी रमणी के साथ कामभाव से रमण करता रहा। किन्तु उन दोनों (कामुक-कामुकी) को सम्भोग से तृप्ति नहीं हुई ॥१४०-१५१॥ घृत डालने से अग्नि की भाँति उन दोनों में कन्दर्प की अतिवृद्धि हो गयी। पश्चात् वह दानव उसके साथ अपने घर आया और एक अलग रमणीक रतिगृह बनवा कर पुनः उसके साथ सम्भोग करने में जुट गया। इस प्रकार प्रतापी शंखचूड ने राज्य का सुखानुभव किया। ॥१५२-१५३॥ उस बली राजराजेश्वर ने एक मन्वन्तर के पूर्ण समय तक देवों, असुरों, दानवों, गन्धर्वों, किन्नरों और राक्षसों पर शासन किया। उसके द्वारा अधिकार छिन जाने पर देवगण भिक्षुक की भाँति इधर-उधर घूमने लगे ॥१५४-१५५॥ शंखचूड ने उनके पूजाहोमादि, राज्य, निवास-स्थान, अधिकार तथा शस्त्रास्त्र और भूषणादि

निरुद्यमाः सुराः सर्वे चित्रपुत्तलिका यथा। ते च सर्वे विषण्णाश्च प्रजग्मुर्ब्रह्मणः सभाम्॥१५७॥
वृत्तान्तं कथयामासू रुरुदुश्च भृशं मुहुः। तदा ब्रह्मा सुरैः सार्धं जगाम शंकरालयम्॥१५८॥
सर्वं संकथयामास विधाता चन्द्रशेखरम्। ब्रह्मा शिवश्च तैः सार्धं वैकुण्ठं च जगाम ह॥१५९॥
सुदुर्लभं परं धाम जरामृत्युहरं परम्। संप्राप च वरं द्वारमाश्रमाणां हरेरहो॥१६०॥
ददर्श द्वारपालाश्च रत्नसिंहासनस्थितान्। शोभितान्पीतवस्त्रांश्च रत्नभूषणभूषितान्॥१६१॥
वनमालान्वितान्सर्वाञ्श्यामसुन्दरविग्रहान्। शङ्खचक्रगदापद्मधरांश्चैव चतुर्भुजान्॥१६२॥
सस्मितान्पद्मवक्त्रांश्च पद्मनेत्रान्मनोहरान्। ब्रह्मा तान्कथयामास वृत्तान्तं गमनार्थकम्॥१६३॥
तेऽनुज्ञां च ददुस्तस्मै प्रविवेश तदाज्ञया। एवं च षोडश द्वारान्निरीक्ष्य कमलोद्भवः॥१६४॥
देवैः सार्धं ताननतीत्य प्रविवेश हरेः सभाम्। देवर्षिभिः परिवृतां पार्षदैश्च चतुर्भुजैः॥१६५॥
नारायणस्वरूपैश्च सर्वैः कौस्तुभभूषितैः। पूर्णेन्दुमण्डलाकारां चतुरस्त्रां मनोहरम्॥१६६॥
मणीन्द्रसारनिर्माणां हीरासारसुशोभिताम्। अमूल्यरत्नखचितां रचितां स्वेच्छया हरेः॥१६७॥
माणिक्यमालाजालाढ्यां मुक्तापङ्क्तिविभूषिताम्। मण्डितां मण्डलाकारै रत्नदर्पणकोटिभिः॥१६८॥
विचित्रैश्चित्ररेखाभिर्नानाचित्रविचित्रिताम्। पद्मरागेन्द्ररचितै [1]रचितां पद्मकृत्रिमैः॥१६९॥

को बलात् ले लिया॥१५६॥ जिससे उद्यमहीन देवगण चित्र-पुत्तलिका (गुड़िया) की भाँति बने रहे। अनन्तर अत्यन्त दुःखी होकर वे सब ब्रह्मा की सभा में गये॥१५७॥ वहाँ अपना वृत्तान्त कहकर बहुत रोने लगे। तब ब्रह्मा उन्हें साथ लेकर शिव जी के पास गए॥१५८॥ विधाता ने चन्द्रशेखर शिव से सारा वृत्तान्त कह सुनाया, जिसे सुनने के उपरान्त शिव उन्हें साथ लेकर वैकुण्ठ गये॥१५९॥ भगवान् शिव जरा और मृत्यु से रहित उस अत्यन्त दुर्लभ लोक में पहुँचकर, श्रीहरि के भवन के परम श्रेष्ठ द्वार पर उपस्थित हुए। ॥१६०॥ वहाँ उन्होंने रत्न के सिंहासनों पर विराजमान द्वारपालों को देखा, जो पीताम्बर और रत्नों के भूषणों से सुशोभित हो रहे थे॥१६१॥ तथा वन-माला पहने वे सभी द्वारपाल श्यामसुन्दर थे और चारों भुजाओं में शंख चक्र, गदा एवं पद्म धारण किये हुए थे। ॥१६२॥ मुसकान भरे कमलमुख एवं कमलनेत्र वाले उन मनोहर द्वारपालों से ब्रह्मा ने वहाँ आने का समस्त वृत्तान्त कह सुनाया॥१६३॥ अनन्तर उन लोगों ने ब्रह्मा आदि को भीतर जाने की अनुमति प्रदान की। इस प्रकार सोलह द्वारों को पार करके ब्रह्मा देवों के साथ भगवान् की उस सभा में पहुँचे, जहाँ देवर्षिगण तथा चतुर्भुज पार्षदगण शोभायमान थे॥१६४-१६५॥ वहाँ के सभी पार्षद नारायण स्वरूप और कौस्तुभ मणि से भूषित थे। वह सभा भी पूर्ण चन्द्रमा की भाँति मण्डलाकार, चौकोर, मनोहर, श्रेष्ठ मणियों के सार भाग से सुरचित, हीरों के सारभाग से सुशोभित, अमूल्य रत्नों से खचित, तथा भगवान् विष्णु की इच्छा से बनी थी॥१६६-१६७॥ माणिक्य-मालाएँ जाली के रूप में शोभा दे रही थीं। और दिव्य मोतियों की झालरें उसकी छवि बढ़ा रही थीं। मंडलाकार करोड़ों रत्नमय दर्पणों से वह सभा सुशोभित थी। उसकी दीवारों में लिखित अनेक प्रकार के विचित्र चित्र उसकी

---

१ क. ०चितां पद्मरागविचित्रितैः।

सोपानशतकैर्युक्तां स्यमन्तकविनिर्मितैः। पट्टसूत्रग्रन्थियुतैश्चारुचन्दनपल्लवैः ॥१७०॥
इन्द्रनीलमणिस्तम्भैर्वेष्टितां सुमनोरमाम्। सद्रत्नपूर्णकुम्भानां समूहैश्च समन्विताम् ॥१७१॥
पारिजातप्रसूनानां मालाजालैर्विराजिताम्। कस्तूरीकुङ्कुमाक्तैश्च सुगन्धिचन्दनद्रवैः ॥१७२॥
सुसंस्कृतां तु सर्वत्र वासितां गन्धवायुना। विद्याधरीसमूहानां संगीतैश्च मनोहराम् ॥१७३॥
सहस्रयोजनायामां परिपूर्णां च किंकरैः। ददर्श श्रीहरिं ब्रह्मा शंकरश्च सुरैः सह ॥१७४॥
वसन्तं तन्मध्यदेशे यथेन्दुं तारकावृतम्। अमूल्यरत्ननिर्माणचित्रसिंहासनस्थितम् ॥१७५॥
किरीटिनं कुण्डलिनं वनमालाविभूषितम्। शङ्खचक्रगदापद्मधारिणं च चतुर्भुजम् ॥१७६॥
नवीननीरदश्यामं सुन्दरं सुमनोहरम्। अमूल्यरत्ननिर्माणसर्वाभरणभूषितम् ॥१७७॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं बिभ्रतं केलिपङ्कजम्। पुरतो नृत्यगीतं च पश्यन्तं सस्मितं मुदा ॥१७८॥
शान्तं सरस्वतीकान्तं लक्ष्मीधृतपदाम्बुजम्। भक्तप्रदत्तताम्बूलं भुक्तवन्तं सुवासितम् ॥१७९॥
गङ्गया परया भक्त्या सेवितं श्वेतचामरैः। सर्वैश्च स्तूयमानं च भक्तिनम्रात्मकंधरैः ॥१८०॥
एवं विशिष्टं तं दृष्ट्वा परिपूर्णतमं विभुम्। ब्रह्मादयः सुराः सर्वे प्रणम्य तुष्टुवुस्तदा ॥१८१॥
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गाः साश्रुनेत्राः सगद्गदाः। भक्त्या परमया भक्ता भीता नम्रात्मकंधराः ॥१८२॥

सुन्दरता बढ़ा रहे थे। सर्वोत्कृष्ट पद्मराग मणि से निर्मित कृत्रिम कमलों से वह परम सुशोभित थी। स्यमन्तक मणि से बनी हुई सैकड़ों सीढ़ियाँ उस भवन की शोभा बढ़ाती थीं। रेशम की डोरी में गुँथे हुए दिव्य चन्दन-वृक्ष के सुन्दर पल्लव बंदनवार का काम दे रहे थे। वहाँ के खंभों का निर्माण इन्द्रनील मणि से हुआ था। उत्तम रत्नों से भरे कलशों से संयुक्त वह सभा अत्यन्त मनोरम जान पड़ती थी ॥१६८-१७१॥ पारिजात पुष्पों के बहुत-से हार उसे अलंकृत किये हुए थे। कस्तूरी एवं कुंकुम से युक्त सुगंधपूर्ण चंदन के द्रव से वह भवन सुसज्जित तथा सुसंस्कृत किया गया था। सुगंधित वायु से वह सभा सब ओर से सुवासित थी और विद्याधरियों के संगीत से मनोहर थी॥ १७२-१७३॥ एक सहस्र योजन विस्तृत उसका क्षेत्र सेवकों से परिपूर्ण था। इस प्रकार वहाँ शंकर आदि देवों समेत ब्रह्मा ने भगवान् श्री हरि का दर्शन किया। वे उस (भवन) के मध्य प्रदेशमें तारों से घिरे चन्द्रमा की भाँति सुशोभित, अमूल्य रत्नों से निर्मित अद्भुत सिंहासन पर विराजमान, किरीट, कुण्डल एवं वनमाला से सुशोभित, चारों भुजाओं में शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किए हुए, नवीन जलधर की भाँति श्यामल, सुन्दर, अत्यन्त मनोहर और अमूल्य रत्नों से निर्मित समस्त आभूषणों से विभूषित थे ॥१७४-१७७॥ उनके सम्पूर्ण अंग चन्दन से अनुलिप्त थे। एक हाथ में कमल शोभा पा रहा था। भगवान् का श्रीविग्रह अतिशय शान्त था ॥१७८॥ लक्ष्मी उनके चरणकमलों की सेवा में संलग्न थीं। भगवान् भक्तों के दिए सुवासित ताम्बूल खा रहे थे। गंगा उन पर अत्यन्त भक्तिपूर्वक श्वेत चामर डुला रही थीं। उपस्थित समाज अत्यन्त भक्ति-विनम्र होकर उनकी स्तुति कर रहा था ॥१७९-१८०॥ इस प्रकार सुशोभित उस परिपूर्णतम प्रभु को देख कर ब्रह्मा आदि देवगण उन्हें प्रणाम कर के स्तुति करने लगे ॥१८१॥ उन देवों के सर्वांग में रोमांच, नेत्रों में आँसू एवं वाणी गद्गद थी। वे भीत भक्तगण अत्यन्त भक्ति से कन्धे झुकाए हुए थे ॥१८२॥ पश्चात् जगत् के विधाता

पुटाञ्जलियुतो भूत्वा विधाता जगतामपि। वृत्तान्तं कथयामास विनयेन हरेः पुरः॥१८३॥
हरिस्तद्वचनं श्रुत्वा सर्वज्ञः सर्वभाववित्[1]। प्रहस्योवाच ब्रह्माणं रहस्यं च मनोहरम्॥१८४॥
शङ्खचूडस्य वृत्तान्तं सर्वं जानामि पद्मज। मद्भक्तस्य च गोपस्य महातेजस्विनः पुरा॥१८५॥
सुराः शृणुत तत्सर्वमितिहासं पुरातनम्। गोलोकस्यैव चरितं पापघ्नं पुण्यकारणम्॥१८६॥
सुदामा नाम गोपश्च पार्षदप्रवरो मम। स प्राप दानवीं योनिं राधाशापात्सुदारुणात्॥१८७॥
तत्रैकदाऽहमगमं स्वालयाद्रासमण्डलम्। विहाय मानिनीं राधां मम प्रणाधिकां पराम्॥१८८॥
सा मां विरजया सार्धं विज्ञाय किंकरीमुखात्। पश्चात्क्रुधा साऽऽजगाम मां ददर्श च तत्र च॥१८९॥
विरजां च नदीरूपां मां ज्ञात्वा च तिरोहितम्। पुनर्जगाम सा रुष्टा स्वालयं सखिभिः सह॥१९०॥
मां दृष्ट्वा मन्दिरे देवी सुदामसहितं[2] पुरा। भृशं मां भर्त्सयामास मौनीभूतं च सुस्थिरम्॥१९१॥
तच्छ्रुत्वा च सुमहांश्च सुदामा तां चुकोप ह। स च तां भर्त्सयामास कोपेन मम संनिधौ॥१९२॥
तच्छ्रुत्वा सा कोपयुक्ता रक्तपङ्कजलोचना। बहिष्कर्तुं चकाराऽऽज्ञां संत्रस्ता[3] मम संसदि॥१९३॥
सखीलक्षं समुत्तस्थौ दुर्वारं तेजसोज्ज्वलम्। बहिश्चकार तं तूर्णं जल्पन्तं च पुनः पुनः॥१९४॥
सा च तद्वचनं श्रुत्वा समारुष्टा शशाप तम्। याहि रे दानवीं योनिमित्येवं दारुणं वचः॥१९५॥

ब्रह्मा ने भगवान् के सामने हाथ जोड़ कर विनम्रतापूर्वक समस्त वृत्तान्त कह सुनाया॥१८३॥ सर्वज्ञ एवं समस्त भावों के वेत्ता भगवान् विष्णु उनकी बात सुन कर हँस पड़े और फिर ब्रह्मा से मनोहर रहस्य की बात बताने लगे॥१८४॥

भगवान् बोले—विधाता! मैं शंखचूड़ का समस्त वृत्तान्त जानता हूँ, जो पहले मेरा भक्त एवं महातेजस्वी गोप था। देवगण! मैं उसका सभी पुरातन इतिहास बता रहा हूँ, जो गोलोक का ही पापनाशक एवं पुण्यजनक चरित है, सुनो॥१८५-१८६॥ सुदामा नामक गोप मेरा एक श्रेष्ठ पार्षद था, जो राधा के अत्यन्त दारुण शापवश दानव-योनि में पहुँच गया है। एक बार मैं अपनी प्राणेश्वरी राधा को छोड़ कर अपने भवन से रासमण्डल में गया। उस समय राधिका जी किसी सेविका के मुख से विरजा के साथ मेरा रहना सुन कर क्रोधावेश में वहाँ आयीं। उन्होंने हमें देख लिया॥१८७-१८९॥ किन्तु विरजा को नदी रूप में और मुझे तिरोहित देख कर वे उसी क्रोधावेश में सखियों समेत पुनः निजी भवन में लौट गयीं॥१९०॥ पुनः वहाँ मन्दिर में सुदामा समेत मुझे देख कर वे मुझे बहुत डाँटने लगीं, किन्तु मैं एक दम मौन और सुस्थिर था॥१९१॥ वह सुनकर महान् पार्षद सुदामा को सहन न हो सका। उसने कोप किया और मेरे समीप ही राधा को फटकार बतायी॥१९२॥ उसे सुनकर राधा के नेत्र अत्यन्त क्रोध से रक्त कमल की भाँति (लाल) हो गए। उन्होंने संत्रस्त होकर मेरी सभा से उसे निकालने की आज्ञा दे दी॥१९३॥ अनन्तर एक लाख सखियों का समूह उठा और उस दुर्वार तेजस्वी को तुरन्त बाहर निकाल दिया, जो बार-बार बक रहा था॥१९४॥ अनन्तर उसकी बातें सुन कर राधा ने रोष भरे शब्दों में यह दारुण वचन कहा—'रे दुष्ट! तू दानवी योनि में जा'॥१९५॥ शाप होने पर वह मुझे प्रणाम कर के रोते हुए जा रहा था, उसे देख कर राधा को

---

१ क.०त्रनः। २ क.०मसेवितं। ३ क. संरम्भान्म०।

तं गच्छन्तं शपन्तं च रुदन्तं मां प्रणम्य च। वारयामास सा तुष्टा रुदती कृपया पुनः ॥१९६॥
हे वत्स तिष्ठ मा गच्छ क्व यासीति पुनः पुनः। समुच्चार्य च तत्पश्चाज्जगाम सा च विस्मिता[1] ॥१९७॥
गोप्यश्च रुरुदुः सर्वा गोपाश्चेति सुदुःखिताः। ते सर्वे राधिका चापि तत्पश्चाद्बोधिता मया ॥१९८॥
आयास्यति क्षणार्धेन कृत्वा शापस्य पालनम्। सुदामंस्त्वमिहाऽऽगच्छेत्युवाच सा निवारिता ॥१९९॥
गोलोकस्य क्षणार्धेन चैकमन्वन्तरं भवेत्। पृथिव्यां जगतां धातुरित्येवं वचनं ध्रुवम् ॥२००॥
स एव शङ्खचूडश्च पुनस्तत्रैव यास्यति। महाबलिष्ठो योगीशः सर्वमायाविशारदः ॥२०१॥
मम शूलं गृहीत्वा च शीघ्रं गच्छत भारतम्। शिवः करोतु संहारं मम शूलेन रक्षसः ॥२०२॥
ममैव कवचं कण्ठे सर्वमङ्गलमङ्गलम्। बिभर्ति दानवः शश्वत्संसारविजयी ततः ॥२०३॥
कवचे संस्थिते तत्र न कोऽपि हिंसितुं क्षमः। तद्याच्ञां च करिष्यामि विप्ररूपोऽहमेव च ॥२०४॥
सतीत्वभङ्गस्तत्पत्न्या यत्र काले भविष्यति। तत्रैव काले तन्मृत्युरिति दत्तो वरस्त्वया ॥२०५॥
तत्पत्न्याश्चोदरे वीर्यमर्पयिष्यामि निश्चितम् तत्क्षणेनैव तन्मृत्युर्भविष्यति न संशयः ॥२०६॥
पश्चात्सा देहमुत्सृज्य भविष्यति प्रिया मम। इत्युक्त्वा जगतां नाथो ददौ शूलं हराय च ॥२०७॥

अत्यन्त करुणा हुई। वे सन्तुष्ट होकर स्वयं रोती हुई कृपा कर के उसे जाने से रोकने लगीं ॥१९६॥ 'हे वत्स! ठहरो, मत जाओ, कहाँ जा रहे हो' ऐसा बार-बार कहने लगीं। पश्चात् उन्हें रोदन करते और आश्चर्यचकित देख कर सभी गोप-गोपियाँ दुःखी होकर रोदन करने लगीं। तब मैंने राधिका समेत उन सभी को समझा कर शांत किया और कहा—'वह आधे क्षण में शाप का पालन कर पुनः यहाँ आ जायगा।' किन्तु मना करने पर भी राधा जी कहती ही रहीं—'हे सुदामन्! तू यहाँ आ, वहाँ मत जा।'

हे जगत् के रक्षक ब्रह्मन्! गोलोक के आधे क्षण में ही भूमण्डल पर एक मन्वन्तर का समय हो जाता है। ब्रह्मन्! इस प्रकार यह सब कुछ पूर्व निश्चित व्यवस्था के अनुसार ही हो रहा है। अतः सम्पूर्ण मायाओं का पूर्ण ज्ञाता, अपर बल-शाली योगीश यह शंखचूड़ समय पर पुनः उस गोलोक में ही चला जाएगा ॥१९७-२०१॥ अतः शंकर मेरा शूल लेकर भारत देश में चले जायँ और मेरे शूल से उस राक्षस का वध करें ॥२०२॥ उस दानव के कंठ में समस्त मंगलों का मंगल मेरा कवच पड़ा हुआ है। इसीलिए वह संसार में निरन्तर विजयी हो रहा है ॥२०३॥ ब्रह्मन्! उसके कण्ठ में जब तक वह रहेगा, उसको कोई भी मार नहीं सकता है। अतः मैं ब्राह्मण रूप होकर उससे उसकी याचना करूँगा ॥२०४॥ और जिस समय उसकी पत्नी का सतीत्व भंग होगा उसी समय उसकी मृत्यु होगी, ऐसा तुमने उसे वरदान भी दिया है ॥२०५॥ एतदर्थ मैं उसकी पत्नी के उदर में निश्चित रूप से वीर्य स्थापित करूँगा और उसी क्षण उसकी मृत्यु भी होगी, इसमें संशय नहीं है ॥२०६॥ पश्चात् वह स्त्री देह त्याग कर मेरी प्रेयसी होगी। इतना कह कर जगत् के स्वामी श्रीहरि ने शिव को अपना शूल दे दिया और प्रसन्न होकर वे अपने भवन में

---

१ क. विक्लवा।

शूलं दत्त्वा ययौ शीघ्रं हरिरभ्यन्तरं मुदा। भारतं च ययुर्देवा ब्रह्मरुद्रपुरोगमाः ॥२०८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० तुलस्युपाख्याने षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच

ब्रह्मा शिवं संनियोज्य संहारे दानवस्य च। जगाम स्वालयं तूर्णं यथास्थानं महामुने ॥१॥
चन्द्रभागानदीतीरे घटमूले मनोहरे। तत्र तस्थौ महादेवो देवनिस्तारहेतवे ॥२॥
दूतं कृत्वा पुष्पदन्तं गन्धर्वेश्वरमीप्सितम्। शीघ्रं प्रस्थापयामास शङ्खचूडान्तिकं मुदा ॥३॥
स चेश्वराज्ञया शीघ्रं ययौ तन्नगरं वरम्। महेन्द्रनगरोत्कृष्टं कुबेरभवनाधिकम् ॥४॥
पञ्चयोजनविस्तीर्णं दैर्घ्यं तद्द्विगुणं मुने। स्फाटिकाकारमणिभिः समन्तात्परिवेष्टितम् ॥
सप्तभिः परिखाभिश्च दुर्गमाभिः समन्वितम् ॥५॥
ज्वलदग्निनिभैर्नित्यं शोभितं रत्नकोटिभिः। युक्तं च वीथिशतकैर्मणिवेदिसमन्वितैः ॥६॥

चले गए। अनन्तर ब्रह्मा ने शिव को आगे कर के वहाँ से प्रस्थान किया और देवगण भी भारत में चले गये ॥२०७-२०८॥

श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराण के प्रकृतिखण्ड में तुलसी-उपाख्यान नामक
सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥१६॥

अध्याय १७

पुष्पदन्त का दूत बनकर शंखचूड़ के पास जाना

नारायण बोले—महामुने ! ब्रह्मा शिव को दानव शंखचूड़ का संहार करने के लिए नियुक्त कर के स्वयं शीघ्र अपने धाम में चले गए ॥१॥ अनन्तर चन्द्रभागा नदी के तट पर स्थित एक मनोहर वट वृक्ष के नीचे देवों का अभ्युदय करने के विचार से शिव ने आसन जमा लिया। उन्होंने गन्धर्वराज पुष्पदन्त को दूत बना कर तुरन्त हर्षपूर्वक शंखचूड़ के पास भेजा ॥२-३॥ शिव की आज्ञा से वह दूत शीघ्र दानव के उस नगर की ओर चल पड़ा, जो महेन्द्र की पुरी (अमरावती) से उत्कृष्ट और कुबर के भवन से अधिक सुशोभित था ॥४॥ मुने ! वह नगर पाँच योजन चौड़ा और दस योजन लंबा था। वह स्फटिक के समान मणियों से चारों ओर घिरा हुआ था और सात दुर्गम परिखाओं (खाइयों) से युक्त था ॥५॥ एवं प्रज्वलित अग्नि के समान करोड़ों रत्नों से शोभित, मणि की वेदियों और सैकड़ों वीथियों (गलियों) से समन्वित था ॥६॥ चारों ओर वैश्यों की अनेक प्रकार की वस्तुओं से सजी हुई दूकानों से

परितो वणिजां संघैर्नानावस्तुविराजितैः। सिन्दूराकारमणिभिर्निर्मितैश्च विचित्रितैः ॥७॥
भूषितं भूषितैर्दिव्यैराश्रमैः शतकोटिभिः। गत्वा ददर्श तन्मध्ये शङ्खचूडालयं वरम् ॥८॥
अतीव वलयाकारं यथा पूर्णेन्दुमण्डलम्। ज्वलदग्निशिखाभिश्च परिखाभिश्चतसृभिः ॥९॥
सुदुर्गमं च शत्रूणामन्येषां सुगमं सुखम्। अत्युच्चैर्गगनस्पर्श्यमणिप्राकारवेष्टितम् ॥१०॥
राजितं द्वादशद्वारैर्द्वारपालसमन्वितैः। रत्नकृत्रिमपद्माढ्यै रत्नदर्पणभूषितैः ॥११॥
मणीन्द्रसारखचितैः शोभितं लक्षमन्दिरैः। शोभितं रत्नसोपानै रत्नस्तम्भविराजितैः ॥१२॥
रत्नचित्रकपाटाद्यैः सद्रत्नकलशान्वितैः। रत्नप्रतिमपद्माद्यै रत्नदर्पणभूषितम् ॥
रत्नेन्द्रचित्रराजोभिः सुदीप्ताभिर्विराजितम् ॥१३॥
परितो रक्षितं शश्वद्दानवैः शतकोटिभिः। दिव्यास्त्रधारिभिः शूरैर्महाबलपराक्रमैः ॥१४॥
सुन्दरैश्च सुवेषैश्च नानालंकारभूषितैः। तान्दृष्ट्वा पुष्पदन्तोऽपि वरद्वारं ददर्श सः ॥१५॥
द्वारे नियुक्तं पुरुषं शूलहस्तं च सस्मितम्। तिष्ठन्तं पिङ्गलाक्षं च ताम्रवर्णं भयंकरम् ॥१६॥
कथयामास वृत्तान्तं जगाम तदनुज्ञया। अतिक्रम्य नवद्वारं जगामाभ्यन्तरं पुरम् ॥१७॥
न कैश्चिद्वारितो दूतो दूतरूपेण तस्य च। गत्वा सोऽभ्यन्तरं द्वारं द्वारपालमुवाच ह ॥१८॥
रणस्य सर्ववृत्तान्तं विज्ञापयितुमीश्वरम्। स च तं कथयित्वा च दूतं गन्तुमुवाच ह ॥१९॥

सुशोभित तथा सिन्दूराकार मणियों के चित्र-विचित्र सौ करोड़ दिव्य भवनों से विभूषित था। इस प्रकार वहाँ पहुँच कर उस दूत ने शंखचूड़ का वह सुन्दर भवन देखा जो चन्द्रमण्डल की भाँति अत्यन्त गोलाकार और प्रज्वलित अग्निशिखा की भाँति चार परिखाओं (खाइयों) से घिरा था ॥७-९॥ शत्रुओं के लिए अत्यन्त दुर्गम और अन्य के लिए सुखप्रद तथा अत्यन्त ऊँची मणिनिर्मित दीवारों से आवृत था ॥१०॥ द्वारपाल समेत बारह दरवाजों से सुशोभित और रत्नों के बने कमलों तथा रत्नों के दर्पणों से भूषित तथा मणियों के सार भाग से निर्मित एक लक्ष मन्दिरों से वह भवन शोभायमान था। रत्नों के सोपान (सीढ़ियाँ), रत्नों के स्तम्भ, रत्नों के चित्र-विचित्र किवाड़, उत्तम रत्नों के कलश, रत्नों के कमल, रत्नों के दर्पण एवं उत्तम रत्नों की चित्र विचित्र पंक्तियाँ वहाँ की शोभा बढ़ा रही थीं ॥११-१३॥ वहाँ चारों ओर से सौ करोड़ दानव पहरा दे रहे थे, जो दिव्य अस्त्रों से सम्पन्न, शूर, महाबली, महापराक्रमी, सुन्दर और उत्तम वेष तथा विविध अलंकारों से भूषित थे। उन्हें देखने के उपरान्त पुष्पदन्त ने प्रमुख द्वार को देखा ॥१४-१५॥ वहाँ बैठा हुआ द्वारपाल हाथ में शूल लिए हुए, मुसकराता हुआ, पिंगलाक्ष, ताँबे के समान वर्ण वाला और भयंकर दिखायी देता था ॥१६॥ उससे सारा समाचार कह कर दूत ने उसकी आज्ञा से भीतर प्रवेश किया। इस प्रकार नौ द्वारों को पार कर के वह भीतर पहुँच गया ॥१७॥ उसे दूत समझ कर किसी ने रोका नहीं। अनन्तर उसने भीतर जाकर द्वारपाल से सब वृत्तान्त कह दिया, जो उसके स्वामी से कहना था। वृत्तान्त सुनने के उपरान्त उसने दूत को भीतर जाने की अनुमति प्रदान की ॥१८-१९॥ इस प्रकार भीतर जाकर दूत ने

स गत्वा शङ्खचूडं तं ददर्श सुमनोहरम्। सभामण्डलमध्यस्थं स्वर्णसिंहासनस्थितम् ॥२०॥
मणीन्द्रखचितं चित्रं रत्नदण्डसमन्वितम्। रत्नकृत्रिमपुष्पैश्च प्रशस्तं शोभितं सदा ॥२१॥
भृत्येन हस्तविधृतं स्वर्णच्छत्रं मनोहरम्। सेवितं पार्षदगणैर्व्यजनैः श्वेतचामरैः ॥२२॥
सुवेषं सुन्दरं रम्यं रत्नभूषणभूषितम्। माल्यानुलेपनं सूक्ष्मवस्त्रं च दधतं मुने ॥२३॥
दानवेन्द्रैः परिवृतं सुवेषैश्च त्रिकोटिभिः। शतकोटिभिरन्यैश्च भ्रमद्भिः शस्त्रधारिभिः ॥२४॥
एवंभूतं च तं दृष्ट्वा पुष्पदन्तः सविस्मयः। उवाच रणवृत्तान्तं यदुक्तं शंकरेण च ॥२५॥

पुष्पदन्त उवाच

राजेन्द्र शिवदूतोऽहं पुष्पदन्ताभिधः प्रभो। यदुक्तं शंकरेणैव तद्ब्रवीमि निशामय ॥२६॥
राज्यं देहि च देवानामधिकारं च सांप्रतम्। देवाश्च शरणापन्ना देवेशे श्रीहरौ परे ॥२७॥
दत्त्वा त्रिशूलं हरिणा तुभ्यं प्रस्थापितः शिवः। चन्द्रभागानदीतीरे वटमूले त्रिलोचनः ॥२८॥
विषयं देहि तेषां च युद्धं वा कुरु निश्चितम्। गत्वा वक्ष्यामि किं शम्भुं तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥२९॥
दूतस्य वचनं श्रुत्वा शङ्खचूडः प्रहस्य च। प्रभाते ह्यागमिष्यामि त्वं च गच्छेत्युवाच ह ॥३०॥

अतिमनोहर शंखचूड़ को दखा, जो सभामण्डल के मध्य ऐसे स्वर्ण सिंहासन पर विराजमान था, जो उत्तम मणियों से निर्मित, चित्र विचित्र रत्नदण्डों से भूषित और रत्नों के बने पुष्पों से रमणीय एवं शोभित था ॥२०-२१॥ उसके मस्तक पर सोने का सुन्दर छत्र तना था, जिसे एक भृत्य ने ले रखा था। उस छत्र में मणियाँ जड़ी हुई थीं। वह विचित्र छत्र रत्नमय दंड से सुशोभित था। रत्ननिर्मित कृत्रिम पुष्प उसकी शोभा को और भी बढ़ा रहे थे। सफेद एवं चमकीले चँवर हाथ में लेकर अनेक पार्षद शंखचूड की सेवा में संलग्न थे। उत्तम वेष एवं रत्नमय भूषणों से विभूषित होने के कारण वह बड़ा सुन्दर जान पड़ता था। मुने! उसके गले में माला थी। शरीर पर चंदन का अनुलेपन था। वह दो महीन उत्तम वस्त्र पहने हुए था। उस समय सुन्दर वेष वाले असंख्य प्रसिद्ध दानवों से वह घिरा था और असंख्य दूसरे दानव हाथों में अस्त्र लिए इधर-उधर घूम रहे थे। ऐसे वैभव-सम्पन्न शंखचूड़ को देखकर पुष्पदन्त को महान् आश्चर्य हुआ। अनन्तर उसने शंकर के कथनानुसार युद्ध का वृत्तान्त कहना प्रारम्भ किया ॥२२-२५॥

पुष्पदन्त ने कहा—राजेन्द्र! मैं शिव का दूत हूँ, पुष्पदन्त मेरा नाम है। प्रभो! शंकर जी ने जो कुछ कहा है मैं उसे कह रहा हूँ। आप सुनने की कृपा करें! ॥२६॥ आप इस समय देवों के अधिकार और उनके राज्य उन्हें लौटा दें। क्योंकि देव लोग देवाधीश्वर भगवान् श्रीहरि (विष्णु) की शरण में पहुँच गये हैं ॥२७॥ उन्होंने शंकर जी को त्रिशूल देकर तुम्हारे पास (युद्धार्थ) भेजा है। वे त्रिलोचन चन्द्रभागा नदी के तट पर वट वृक्ष के नीचे ठहरे हुए हैं ॥२८॥ अतः देवों को उनका राज्य लौटा दें या निश्चित रूप से युद्ध करें। मुझ यह भी आप बता दें कि मैं लौट कर शम्भु से क्या कहूँगा ॥२९॥दूत की बातें सुनकर शंखचूड़ ने हँसकर कहा—'मैं प्रातःकाल वहाँ आऊँगा, तुम जाओ।' यह सुन कर दूत ने शीघ्रता से जाकर वट वृक्ष के नीच ठहरे हुए शिव से शंखचूड़ की बात (उत्तर) और

स गत्वोवाच तूर्णं तं वटमूलस्थमीश्वरम्। शङ्खचूडस्य वचनं तदीयं यत्परिच्छदम् ॥३१॥
एतस्मिन्नन्तरे स्कन्द आजगाम शिवान्तिकम्। वीरभद्रश्च नन्दी च महाकालः सुभद्रकः ॥३२॥
विशालाक्षश्च बाणश्च पिङ्गलाक्षो विकम्पनः। विरूपो विकृतिश्चैव मणिभद्रश्च बाष्कलः ॥३३॥
कपिलाक्षो दीर्घदंष्ट्रो विकटस्ताम्रलोचनः। कालङ्कटो बलीभद्रः कालजिह्वः कुटीचरः ॥३४॥
बलोन्मत्तो रणश्लाघी दुर्जयो दुर्गमस्तथा। अष्टौ च भैरवा रौद्रा रुद्राश्चैकादश स्मृताः ३५॥
वसवो वासवाद्याश्च आदित्या द्वादश स्मृताः। हुताशनश्च चन्द्रश्च विश्वकर्माऽश्विनौ च तौ ॥३६॥
कुबेरश्च यमश्चैव जयन्तो नलकूबरः। वायुश्च वरुणश्चैव बुधो वै मङ्गलस्तथा ॥३७॥
धर्मश्च शनिरीशानः कामदेवश्च वीर्यवान्। उग्रदंष्ट्रा चोग्रचण्डा कोट्टरी कैटभी तथा ॥३८॥
स्वयं शतभुजा देवी भद्रकाली भयंकरी। रत्नेन्द्रराजखचितविमानोपरि संस्थिता ॥३९॥
रक्तवस्त्रपरीधाना रक्तमाल्यानुलेपना। नृत्यन्ती च हसन्ती गायन्ती सुस्वरं मुदा ॥४०॥
अभयं ददती भक्तमभया सा भयं रिपुम्। बिभ्रती विकटां जिह्वां सुलोलां योजनायताम् ॥४१॥
खर्परं वर्तुलाकारं गम्भीरं योजनायतम्। त्रिशूलं गगनस्पर्शि शक्तिं वै योजनायताम् ॥४२॥
शङ्खं चक्रं गदां पद्मं शरांश्चापं भयंकरम्। मुद्गरं मुसलं वज्रं खड्गं फलकमुज्ज्वलम् ॥४३॥
वैष्णवास्त्रं वारुणास्त्रमाग्नेयं नागपाशकम्। नारायणास्त्रं ब्रह्मास्त्रं गान्धर्वं गारुडं तथा ॥४४॥
पार्जन्यं वै पाशुपतं जृम्भणास्त्रं च पार्वतम्। माहेश्वरास्त्रं वायव्यं दण्डं संमोहनं तथा ॥
अव्यर्थमस्त्रशतकं[1] दिव्यास्त्रशतकं परम् ॥४५॥

उसके सेवकों आदि का वृत्तान्त कह सुनाया ॥३०-३१॥ उसी बीच वहाँ शिव के पास (दल समेत) कार्तिकेय आये, जिनके साथ वीरभद्र, नन्दी, महाकाल, सुभद्र, विशालाक्ष, बाण, पिंगलाक्ष, विकम्पन, निरूप, विकृति, मणिभद्र, वाष्कल, कपिलाक्ष, दीर्घदंष्ट्र (लम्बे दाँत वाले), विकट, ताम्रलोचन, कालंकट, बलीभद्र, कालजिह्व, कुटीचर, बलोन्मत्त, रणश्लाघी, दुर्जय, दुर्गम, आठों भयंकर भैरव, ग्यारह रुद्र, आठो वसु, वासव आदि बारहों आदित्य, अग्नि, चन्द्र, विश्वकर्मा, अश्विनीकुमार, कुबेर, यम, जयन्त, नलकूबर, वायु, वरुण, बुध, मंगल, धर्म, ईशान, शनि, पराक्रमी कामदेव तथा उग्रदंष्ट्रा, उग्रचण्डा, कोट्टरी, कैटभी, स्वयं शतभुजा देवी तथा भयंकरी भद्रकाली भी आयी थीं। वे देवी अतिशय श्रेष्ठ रत्न द्वारा निर्मित विमान पर बैठी थीं ॥३२-३९॥ वे रक्त वर्ण के वस्त्र, रक्तवर्ण की माला तथा रक्तवर्ण का अनुलेपन धारण कर के नाचती, हँसती एवं हर्ष के उल्लास में भर कर मीठे स्वरों में गाना गा रही थीं ॥४०॥ भक्त को निर्भय और शत्रु को भयभीत करने वाली वे देवी विकट जिह्वा धारण किए थीं, जो योजन भर लंबी तथा लपलपा रही थी ॥४१॥ उनके हाथ में एक योजन विस्तृत, वर्तुलाकार तथा गंभीर खप्पर था वे गगनस्पर्शी त्रिशूल, एक योजन लम्बी शक्ति, शंख, चक्र, गदा, पद्म, भीषण धनुष, मुद्गर, मुशल, वज्र और अत्यंत विस्तृत एवं चमकीला खड्ग धारण किए हुई थीं ॥४२-४३॥ वैष्णवास्त्र, वारुणास्त्र, आग्नेय अस्त्र, नागपाश, नारायणास्त्र, ब्रह्मास्त्र, गान्धर्व, गारुड, पार्जन्य, पाशुपत, जृम्भणास्त्र, पार्वत, माहेश्वरास्त्र, वायव्य, दण्ड, सम्मोहनास्त्र, सैकड़ों अमोघ अस्त्र और सौ तेजस्वी दिव्यास्त्रों को धारण करके भद्रकाली तीन करोड़ योगिनियों एवं तीन

---

१ ख. ०था। नानाविधान्यायुधानि दि०।

आगत्य तत्र तस्थौ सा योगिनीनां त्रिकोटिभिः। सार्धं वै डाकिनीनां च विकटानां त्रिकोटिभिः ॥४६॥
भूतप्रेतपिशाचाश्च कूष्माण्डा ब्रह्मराक्षसाः। वेतालाश्चैव यक्षाश्च राक्षसाश्चैव किन्नराः ॥४७॥
ताभिश्चैव सह स्कन्दो नत्वा वै चन्द्रशेखरम्। पितुः पार्श्वे सभायां च समुवास भवाज्ञया ॥४८॥
अथ दूते गते तत्र शङ्खचूडः प्रतापवान्। उवाच तुलसी वार्तां गत्वाऽभ्यन्तरमेव च ॥४९॥
रणवार्तां च सा श्रुत्वा शुष्ककण्ठोष्ठतालुका। उवाच मधुरं साध्वी हृदयेन विदूयता ॥५०॥

तुलस्युवाच

हे प्राणनाथ हे बन्धो तिष्ठ मे वक्षसि क्षणम्। हे प्राणाधिष्ठातृदेव रक्ष मे जीवनं क्षणम् ॥५१॥
भुङ्क्ष्व जन्मसु भोग्यं तद्यद्वै मनसि वाञ्छितम्। पश्यामि त्वां क्षणं किंचिल्लोचनाभ्यां पिपासिता ॥५२॥
आन्दोलयन्ति प्राणा मे मनोदाहश्च संततम्। दुःस्वप्नं च मया दृष्टं चाद्यैव चरमे निशि ॥५३॥
तुलसीवचनं श्रुत्वा भुक्त्वा पीत्वा नृपेश्वरः। उवाच वचनं प्राज्ञो हितं सत्यं यथोचितम्[1] ॥५४॥

शङ्खचूड उवाच

कालेन योजितं सर्वं कर्मभोगनिबन्धनम्। शुभं हर्षं सुखं दुःखं भयं शोकममङ्गलम् ॥५५॥
कालेभवन्ति वृक्षाश्च शाखावन्तश्च कालतः। क्रमेण पुष्पवन्तश्च फलवन्तश्च कालतः ॥५६॥

करोड़ विकट रूप वाली डाकिनियों के साथ विराजमान थीं ॥४४-४६॥ इस प्रकार भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, वेतालगण, यक्षगण, राक्षसगण और किन्नर लोगों को भी साथ लेकर कार्तिकेय ने अपने पिता चन्द्रशेखर को प्रणाम किया और उनकी आज्ञा से उस सभा में उनके पास ही बैठ गये ॥४७-४८॥

दूत के चले जाने पर प्रतापी राजा शंखचूड ने अन्तःपुर में जाकर तुलसी से सब बातें बतायीं ॥४९॥ रण की बातें सुनकर उस सुन्दरी के कण्ठ, ओंठ और तालू सूख गये। हृदय में दुःखानुभव करती हुई भी वह पतिव्रता पति से मधुरवाणी में कहने लगी ॥५०॥

तुलसी बोली—हे प्राणनाथ, हे बन्धो ! क्षण भर आप मेरी छाती से लगे रहें। हे मेरे प्राणों के अधिष्ठातृ देव ! क्षण भर मेरे जीवन की रक्षा करें ॥५१॥ कई जन्मों से मन में जो अभिलषित भोग्य पदार्थ हों उनका उपभोग कर लें। मैं अपने नेत्रों से कुछ क्षण तो आदरपूर्वक आपके दर्शन कर लूँ ॥५२॥ मेरे प्राण फड़फड़ा रहे हैं और मन निरन्तर जल रहा है। मैंने आज ही रात्रि के अन्तिम समय दुःस्वप्न देखा है ॥५३॥ तुलसी की ऐसी बातें सुन कर विद्वान् राजाधीश्वर शंखचूड़ ने खा-पीकर उससे सत्य, हितकर एवं यथार्थ वचन कहे ॥५४॥

शंखचूड बोले—कर्म-भोग का सारा निबन्ध काल के सूत्र में बँधा है। शुभ, हर्ष, सुख, दुःख, भय, शोक और अमंगल—सभी कालके अधीन हैं ॥५५॥ काल द्वारा ही वृक्ष उत्पन्न होता है, काल द्वारा ही वह शाखाओं आदि से युक्त होता है और काल द्वारा उसमें क्रमशः पुष्प-फल लगते हैं ॥५६॥ काल ही उन फलों को पकाता है। बाद में काल

---

१ क. यमीप्सित०।

तेषां फलानि पक्वानि प्रभवन्त्येव कालतः। ते सर्वे फलिनः काले काले कालं प्रयान्ति च ॥५७॥
भवन्ति काले भूतानि काले कालं प्रयान्ति च। काले भवन्ति विश्वानि काले नश्यन्ति सुन्दरि ॥५८॥
स्त्रष्टा च काले सृजति पाता पाति च कालतः। संहर्ता संहरेत्काले संचरन्ति क्रमेण ते ॥५९॥
ब्रह्मविष्णुशिवादीनामीश्वरः प्रकृतेः परः। स्त्रष्टा पाता च संहर्ता स कृत्स्नांशेन सर्वदा ॥६०॥
काले स एव प्रकृतिं निर्माय स्वेच्छया प्रभुः। निर्माय प्राकृतान्सर्वान्विश्वस्थांश्च चराचरान् ॥६१॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सर्वं कृत्रिममेव च। प्रवदन्ति च कालेन नश्यत्यपि हि नश्वरम् ॥६२॥
भज सत्यं परं ब्रह्म राधेशं त्रिगुणात्परम्। सर्वेशं सर्वरूपं च सर्वात्मानं तमीश्वरम् ॥६३॥
जनं जनेन सृजति जनं पाति जनेन यः। हरेज्जनं जनेनैव तं कृष्णं भज संततम् ॥६४॥
यस्याऽऽज्ञया वाति वातः शीघ्रगामी च संततम्। यस्याऽऽज्ञया च तपनस्तपत्येव यथाक्षणम् ॥६५॥
यथाक्षणं वर्षतीन्द्रो मृत्युश्चरति जन्तुषु। यथाक्षणं दहत्यग्निश्चन्द्रो भ्रमति भीतवत् ॥६६॥
मृत्योर्मृत्युं कालकालं यमस्य च यमं परम्। विभुं स्त्रष्टुश्च स्त्रष्टारं पातुः पालकमेव च ॥६७॥
संहर्तारं च संहर्तुस्तं कृष्णं शरणं व्रज। को बन्धुश्चैव केषां वा सर्वबन्धुं भज प्रिये ॥६८॥
अहं को वा त्वं च का वा विधिना योजितः पुरा। त्वया सार्धं कर्मणा च पुनस्तेन वियोजितः ॥६९॥

के प्रभाव से फूल-फल कर वह सम्पूर्ण वृक्ष काल कवलित हो जाता है ॥५७॥ हे सुन्दरि! उसी प्रकार प्राणी काल द्वारा उत्पन्न होते हैं और काल द्वारा ही विनष्ट भी होते हैं। काल द्वारा ही यह सारा विश्व उत्पन्न होता है और काल द्वारा नष्ट होता है ॥५८॥ काल की महिमा स्वीकार कर के ब्रह्मा सृष्टि करते हैं और विष्णु पालन में तत्पर रहते हैं। रुद्र का संहार कार्य भी काल के संकेत पर ही निर्भर है। सभी क्रमशः कालानुसार अपने व्यापार में नियुक्त होते हैं ॥५९॥ वे (श्रीकृष्ण) ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि समस्त देवों के ईश्वर, प्रकृति से परे एवं अपने सम्पूर्ण अंश से विश्व के स्त्रष्टा, पालक तथा संहारक हैं ॥६०॥ वे ही प्रभु समयानुसार स्वेच्छा से प्रकृति को उत्पन्न करके उसके द्वारा चराचर समस्त विश्व की सृष्टि करते हैं ॥६१॥ इसलिए यहाँ से ब्रह्मलोक तक सब कृत्रिम कहलाते हैं और वे नश्वर पदार्थ समय से नष्ट भी होते हैं। अतः उन सत्यमूर्ति, परब्रह्म, राधाधीश्वर की ही उपासना करो, जो तीनों गुणों से परे, सर्वाधीश्वर, समस्त रूप, सब के आत्मा, अनन्त और ईश्वर हैं ॥६२-६३॥ वे प्राणी से प्राणी को उत्पन्न करते हैं, प्राणी से प्राणी की रक्षा करते हैं और प्राणी से ही प्राणी का संहार करते हैं। अतएव उन कृष्ण का भजन करो ॥६४॥ जिनकी आज्ञा से वायु निरन्तर शीघ्रगामी होकर चलता है, जिनकी आज्ञा से सूर्य समय पर तपता है ॥६५॥ इन्द्र समय पर वर्षा करते हैं, मृत्यु समस्त जीवों में विचरण करता है, अग्नि जलाता है, और भयभीत की भाँति चन्द्रमा नित्य घूमा करता है ॥६६॥ प्रिये! जो मृत्यु के मृत्यु काल के काल, यमराज के श्रेष्ठ शासक, व्यापक, ब्रह्मा के भी स्त्रष्टा, पालक के भी पालक तथा संहार करने वाले के भी संहारक हैं, उन श्रीकृष्ण की शरण में जाओ। प्रिये! यहाँ कौन किनका बन्धु है? जो सब के बन्धु हैं, उन्हीं को भजो ॥६७-६८॥ (देखो!) मैं कौन था और तुम कौन थी। किन्तु ब्रह्मा ने कर्मानुसार हम दोनों को एक साथ कर दिया और अब कर्मानुसार ही हम दोनों को पृथक्

---

१ क० जलं जलेन सृजति जलं पाति जलेन यः। हरेज्जलं जलेनै०।

अज्ञानी कातरः शोके विपत्तौ च न पण्डितः। सुखं दुःखं भ्रमत्येव चक्रनेमिक्रमेण च ॥७०॥
नारायणं तं सर्वेशं कान्तं प्राप्स्यसि निश्चितम्। तपः कृतं यदर्थे च पुरा बदरिकाश्रमे ॥७१॥
मया त्वं तपसा लब्धा ब्रह्मणश्च वरेण हि। हरेरर्थे तव तपो हरिं प्राप्स्यसि कामिनि ॥७२॥
वृन्दावने च गोविन्दं गोलोके त्वं लभिष्यसि। अहं यास्यामि तल्लोकं तनुं त्यक्त्वा च दानवीम् ॥७३॥
तत्र द्रक्ष्यसि मां त्वं च त्वां द्रक्ष्यामि च संततम्। आगमं राधिकाशापाद्भारतं च सुदुर्लभम् ॥७४॥
पुनर्यास्यामि तत्रैव कः शोको मे शृणु प्रिये। त्वं हि देहं परित्यज्य दिव्यरूपं विधाय च ॥७५॥
तत्कालं प्राप्स्यसि हरिं मा कान्ते कातरा भव। इत्युक्त्वा च दिनान्ते च तया सार्धं मनोहरे ॥७६॥
सुष्वाप शोभने तल्पे पुष्पचन्दनचर्चिते। नानाप्रकारविभवे चचार रत्नमन्दिरे ॥७७॥
रत्नप्रदीपसंयुक्ते स्त्रीरत्नं प्राप्य सुन्दरीम्। निनाय रजनीं राजा क्रीडाकौतुकमङ्गलैः ॥७८॥
कृत्वा वक्षसि कान्तां तां रुदतीमतिदुःखिताम्। कृशोदरीं निराहारां निमग्नां शोकसागरे ॥७९॥
पुनस्तां बोधयामास दिव्यज्ञानेन बोधवित्। पुरा कृष्णेन यद्दत्तं भाण्डीरे तत्त्वमुत्तमम् ॥८०॥
स च तस्यै ददौ तच्च सर्वशोकहरं परम्। ज्ञानं संप्राप्य सा देवी प्रसन्नवदनेक्षणा ॥८१॥
क्रीडां चकार हर्षेण सर्वं मत्वाऽतिनश्वरम्। तौ दम्पती च क्रीडातौ निमग्नौ सुखसागरे ॥८२॥

भी कर रहे हैं ॥६९॥ शोक में और विपत्ति आने पर अज्ञानी जीव कातर हो जाता है किन्तु ज्ञानी पुरुष वैसा नहीं होता है। क्योंकि सुख और दुःख चक्के की नेमि (पुट्ठी) के अनुसार आते-जाते रहते हैं ॥७०॥ इसलिए सर्वाधीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हें पति रूप में अवश्य मिलेंगे, जिसके निमित्त बदरिकाश्रम में पहले तुमने तप किया था ॥७१॥ हे कामिनि ! मैंने तप करके ब्रह्मा के वरदान द्वारा तुम्हें प्राप्त किया था और तुम्हारा तप तो भगवान् के लिए था, इसलिए तुम भगवान् को अवश्य प्राप्त करोमी ॥७२॥ वृन्दावन और गोलोक में भगवान् गोविन्द तुम्हें मिलेंगे और मैं भी इस दानवीय शरीर को छोड़कर उसी लोक में जाऊँगा ॥७३॥ वहाँ तुम हमें देखोगी और मैं तुम्हें निरन्तर देखा करूँगा। यहाँ अति दुर्लभ भारत प्रदेश में श्री राधा जी के शाप से हम दोनों आ गए थे ॥७४॥ प्रिये ! फिर वहीं चलेंगे। इसमें शोक करने की कौन-सी बात है। तुम भी इस देह को त्याग कर दिव्य रूप धारण कर के तत्काल भगवान् से मिलोगी। अतः हे कान्ते ! व्यर्थ में कातर मत हो।' इतना कह कर शंखचूड़ ने दिन के अवसान में मनोहर, सुशोभित तथा पुष्पचन्दनचर्चित शय्या पर उसके साथ शयन किया। उसका शयन-कक्ष रत्नों का बना हुआ तथा अनेक प्रकार के ऐश्वर्यों से भरा पड़ा था ॥७५-७७॥ रत्नों के प्रदीपों से सुसज्जित उस मन्दिर में उस स्त्रीरत्न (तुलसी) के साथ राजा क्रीड़ा के मांगलिक कौतुकों को करते हुए रात्रि बिताने लगा। अनन्तर रोती हुई, अत्यन्त दुःखित, क्षीण कटि वाली, भोजन से रहित तथा शोक-समुद्र में डूबी हुई उस रमणी को अपनी छाती से लगा कर बोधवेत्ता शंखचूड़ उसे दिव्य ज्ञान का उपदेश देने लगा। उस तत्त्वज्ञान को उसने पूर्वकाल में भगवान् श्रीकृष्ण से भाण्डीर वन में प्राप्त किया था ॥७८-८०॥ समस्त शोकहारी उस ज्ञान को पाकर वह देवी अत्यन्त प्रसन्न हो गयी। प्रसन्नता से उसके मुख और नेत्र खिल उठे ॥८१॥ सब को नश्वर समझ कर उस दम्पति ने हर्ष से क्रीड़ा की और क्रीड़ा करते हुए वे सुखसागर में निमग्न हो गए ॥८२॥ मुने ! उस निर्जन स्थान में उनके सर्वांग में रोमांच हो गया। रति करने

पुलकाङ्कितसर्वाङ्गौ मूर्च्छितौ निर्जने वने । अङ्गप्रत्यङ्गसंयुक्तौ सुप्रीतौ सुरतोत्सुकौ ॥८३॥
एकाङ्गौ च तथा तौ द्वौ चार्धनारीश्वरौ यथा । प्राणेश्वरं च तुलसी मेने प्राणाधिकं परम् ॥८४॥
प्राणाधिकां च तां मेने राजा प्राणाधिकेश्वरीम् । तौ स्थितौ सुखसुप्तौ च तन्द्रितौ सुन्दरौ समौ ॥८५॥
सुवेषौ सुखसंभोगादचेष्टौ सुमनोहरौ । क्षणं सचेतनौ तौ च कथयन्तौ रसाश्रयाम् ॥८६॥
कथां मनोहरां दिव्यां हसन्तौ च क्षणं पुनः । भुक्तवन्तौ च ताम्बूलं प्रदत्तं च परस्परम् ॥८७॥
परस्परं[1] सेवितौ च सुप्रीत्या श्वेतचामरैः । क्षणं शयानौ सानन्दौ वसन्तौ च क्षणं पुनः ॥८८॥
क्षणं केलिनियुक्तौ च रसभावसमन्वितौ । सुरताद्विरतिर्नास्ति तौ तद्विषयपण्डितौ ॥८९॥
सततं जययुक्तौ द्वौ क्षणं नैव पराजितौ ॥९०॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० तुलस्यु० तुलसीशङ्खचूडसंभोगो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

के लिए उनके अंग-प्रत्यंग अति प्रेम से संयुक्त हो गए ॥८३॥ अर्द्धनारीश्वर (शिव) की भाँति उन दोनों के अंग मिलकर एक हो गये। उस समय तुलसी अपने प्राणेश्वर को प्राणों से अधिक मानने लगी और राजा ने भी उस प्राणेश्वरी को प्राणों से अधिक समझा। वे दोनों आनन्दपूर्वक सो गए। तन्द्रावस्था में दोनों समान रूप से सुन्दर लगते थे। उन दोनों का वेष बहुत बढ़िया था। वे दोनों सुख-संभोग के कारण निश्चेष्ट होने पर अत्यन्त मनोहर लगते थे। क्षण भर के बाद चेतना प्राप्त करने पर वे दोनों सरस, मनोहर एवं दिव्य कथा एक दूसरे को सुनाते थे ॥८४-८६॥ तथा आपस में एक दूसरे के दिए हुए सुवासित ताम्बूल खाते थे ॥८७॥ अति प्रेम से एक दूसरे को श्वेत चामर डुला कर सुखी करते थे। क्षण में दोनों सानन्द शयन करते थे, क्षण में बैठ जाते थे और क्षण में कामुक भाव में मग्न होकर रति क्रीड़ा करने लगते थे। इस प्रकार रति विषय के विशेषज्ञ उन दोनों को सुरत करने से विरति नहीं होती थी। इसलिए दोनों निरन्तर विजयी होते थे, पराजित तो कभी होते ही नहीं ॥८८-९०॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के प्रकृतिखण्ड में तुलसीशंखचूडसम्भोगवर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥१७॥

---

१ क. ०रं वीजितौ च।

अथाष्टादशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच

श्रीकृष्णं मनसा ध्यात्वा राजा कृष्णपरायणः। ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय पुष्पतल्पान्मनोहरात् ॥१॥
रात्रिवासः परित्यज्य स्नात्वा मङ्गलवारिणा। धौते च वाससी धृत्वा कृत्वा तिलकमुज्ज्वलम् ॥२॥
चकाराऽऽह्निकमावश्यमभीष्टगुरुवन्दनम्। दध्याज्यं मधु लाजांश्च सोऽपश्यद्वस्तु मङ्गलम् ॥३॥
रत्नश्रेष्ठं मणिश्रेष्ठं वस्त्रश्रेष्ठं च काञ्चनम्। ब्राह्मणेभ्यो ददौ भक्त्या यथा नित्यं च नारद ॥४॥
अमूल्यरत्नं यत्किंचिन्मुक्तामाणिक्यहीरकम्। ददौ विप्राय गुरुवे यात्रामङ्गलहेतवे ॥५॥
गजरत्नं [1]चाश्वरत्नं धेनुरत्नं मनोहरम्। ददौ सर्वं दरिद्राय विप्रार्थं मङ्गलाय च ॥६॥
कोशागारसहस्रं च नगराणां त्रिलक्षकम्। ग्रामाणां शतकोटिं च ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥७॥
पुत्रं कृत्वा च राजेन्द्रं सुचन्द्रं दानवेषु च। पुत्रे समर्प्य भार्यां च राज्यं वै सर्वसंपदम् ॥८॥
प्रजानुचरसंघं च कोशौघं वाहनादिकम्। स्वयं संनाहयुक्तश्च धनुष्पाणिर्बभूव ह ॥९॥
भृत्यद्वाराक्रमेणैव स चक्रे सैन्यसंचयम्। अश्वानां च त्रिलक्षेण पञ्चलक्षेण हस्तिनाम् ॥१०॥

अध्याय १८

शंखचूड का भगवान् शंकर से वार्तालाप

श्रीनारायण बोले—कृष्णपरायण राजा शंखचूड ने ब्राह्म मुहूर्त में भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करके अपनी मनोहर पुष्पशय्या का त्याग किया ॥१॥ रात के वस्त्र को त्याग कर मंगल-जल से स्नान करके दो धुले वस्त्रों को धारण किया और उज्ज्वल तिलक लगाया ॥२॥ नारद! प्रातःकाल का आवश्यक नित्य कर्म—इष्ट-गुरु-वन्दन करके दही, घृत, मधु, लावा, इन मांगलिक वस्तुओं का दर्शन किया और नित्य की भाँति उत्तम रत्न, श्रेष्ठ मणि, उत्तम वस्त्र तथा सुवर्ण भक्तिपूर्वक दान किये ॥३-४॥ अनन्तर मांगलिक यात्रा के निमित्त अमूल्य रत्न, कुछ मोती एवं मणि की वस्तुएँ और हीरा ब्राह्मण और गुरु को अर्पित किया ॥५॥ पुनः मंगलार्थ श्रेष्ठ हाथी, उत्तम घोड़े तथा मनोहर श्रेष्ठ धेनु दरिद्र ब्राह्मणों को बाँटने लगा ॥६॥ उपरान्त एक हजार कोषागार (खजाने), तीन लाख नगर, और सौ करोड़ गाँव ब्राह्मणों को बड़ी प्रसन्नता से बाँट दिये ॥७॥ अपने पुत्र सुचन्द्र को दानवों का राजेन्द्र बना कर उसे अपनी स्त्री, राज्य, समस्त सम्पत्ति, प्रजाएँ अनुचरवृन्द, कोष-समूह और वाहन आदि सौंप दिये और स्वयं कवच धारण कर हाथ में धनुष और बाण ले लिये ॥८-९॥ सब सैनिकों को एकत्र किया। तीन लाख घोड़े, पाँच लाख हाथी, दस सहस्र रथ, तीन करोड़ धनुर्धारी, तीन करोड़ ढाल-तलवारधारी और तीन करोड़ त्रिशूल-

---

१ क. ०त्नं यानरत्नं म०।

रथानामयुतेनैव धानुष्काणां त्रिकोटिभिः। त्रिकोटिभिश्चर्मिणां च शूलिनां च त्रिकोटिभिः ॥११॥
कृता सेनाऽपरिमिता दानवेन्द्रेण नारद। तस्यां सेनापतिश्चैको युद्धशास्त्रविशारदः ॥१२॥
महारथः स विज्ञेयो रथिनां प्रवरो रणे। त्रिलक्षाक्षौहिणीसेनापतिं कृत्वा नराधिपः ॥१३॥
त्रिंशदक्षौहिणीवाद्यभाण्डौघं च चकार सः। बहिर्बभूव शिबिरान्मनसा श्रीहरिं स्मरन् ॥१४॥
रत्नेन्द्रसारखचितं विमानं ह्यारुरोह सः। गुरुवर्गान्पुरस्कृत्य प्रययौ शंकरान्तिकम् ॥१५॥
पुष्पभद्रानदीतीरे यत्राक्षयवटः शुभः। सिद्धाश्रमं च सिद्धानां सिद्धिक्षेत्रं च नामतः ॥१६॥
कपिलस्य तपः स्थानं पुण्यक्षेत्रं च भारते। पश्चिमोदधिपूर्वे च मलयस्य च पश्चिमे ॥१७॥
श्रीशैलोत्तरभागे च गन्धमादनदक्षिणे। पञ्चयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये शतगुणा तथा ॥
शाश्वती जलपूर्णा च पुष्पभद्रा नदी शुभा ॥१८॥
लवणोदप्रिया भार्या शश्वत्सौभाग्यसंयुता। शुद्धस्फटिकसंकाशा भारते च सुपुण्यदा ॥१९॥
शरावतीमिश्रिता च निर्गता सा हिमालयात्। गोमन्तं वामतः कृत्वा प्रविष्टा पश्चिमोदधौ ॥२०॥
तत्र गत्वा शङ्खचूडो लुलोके चन्द्रशेखरम्। वटमूले समासीनं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥२१॥
कृत्वा योगासने स्थित्वा मुद्रायुक्तं च सस्मितम्। शुद्धस्फटिसंकाशं ज्वलंतं ब्रह्मतेजसा ॥२२॥
त्रिशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्माम्बरं वरम्। तप्तकाञ्चनवर्णाभं जटाजालं च बिभ्रतम् ॥२३॥

धारी वीर उसकी सेना के अंग बने ॥१०-११॥ नारद! इस प्रकार उस दानवेन्द्र ने अपरिमित सेना तैयार की, जिसका एक सेनापति युद्धशास्त्र का पारगामी था ॥१२॥ महारथी उसे समझना चाहिये जो रथियों में श्रेष्ठ हो। राजा शंखचूड ने उस महारथी को अगणित अक्षौहिणी सेना पर अधिकार प्रदान कर दिया। तीस अक्षौहिणी वाद्य-भाण्डों के समूह लेकर वह राजा मन से श्रीहरि का स्मरण करते हुए अपने स्थान से बाहर निकला ॥१३-१४॥ वह रत्नेन्द्रों के सारभाग से रचित विमान पर गुरु-वर्गों को आगे करके बैठ गया और शंकर के समीप पहुँचने के लिए प्रस्थित हुआ ॥१५॥ पुष्पभद्रा नदी के तट पर एक सुन्दर अक्षयवट है। वहीं सिद्धों के बहुत-से आश्रम हैं। उस स्थान को सिद्धक्षेत्र कहा गया है ॥१६॥ भारतवर्ष में वह पुण्यक्षेत्र कपिल मुनि की तपोभूमि है। वह पश्चिम सागर के पूर्व और मलय पर्वत से पश्चिम में है। श्रीशैल पर्वत से उत्तर और गन्धमादन से दक्षिण भाग में पाँच योजन चौड़ी, पाँच सौ योजन लंबी और निरन्तर जल से परिपूर्ण रहने वाली पवित्र पुष्पभद्रा नदी बहती है ॥१७-१८॥ जो लवण-सागर की प्रिय भार्या, निरन्तर सौभाग्य सम्पन्न, शुद्ध स्फटिक की भाँति (समुज्ज्वल) और भारतदेश में अत्यन्त पुण्यप्रदा है ॥१९॥ उसका उद्गम-स्थान हिमालय है। कुछ दूर आगे आने पर शरावती नाम की नदी उसमें मिल गई है। वह गोमन्त पर्वत को बायें करके बहती हुई पश्चिम समुद्र की ओर प्रस्थान करती है ॥२०॥ वहाँ पहुँचकर शंखचूड ने चन्द्रशेखर का दर्शन किया, जो वट के नीचे सुखासीन होकर करोड़ों सूर्य के समान उद्भासित हो रहे थे ॥२१॥ वे योगासन से बैठे थे। उनके हाथों में वर एवं अभय की मुद्रा थी। मुख-मंडल मुसकान से भरा था। वे ब्रह्मतेज से उद्भासित हो रहे थे। उनकी अंग-कान्ति शुद्ध स्फटिकमणि के समान उज्ज्वल थी। उनके हाथ में त्रिशूल और पट्टिश थे तथा शरीर पर श्रेष्ठ बाघम्बर शोभा पा रहा था। वस्तुतः गौरी के प्रिय पति भगवान्

त्रिनेत्रं पञ्चवक्त्रं च नागयज्ञोपवीतिनम्। मृत्युंजयं कालमृत्युं विश्वमृत्युकरं परम्॥२४॥
भक्तमृत्युहरं शान्तं गौरीकान्तं मनोरमम्। तपसां फलदातारं दातारं सर्वसंपदाम्॥२५॥
आशुतोषं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम्। विश्वनाथं विश्वरूपं विश्वबीजं च विश्वजम्॥२६॥
विश्वंभरं विश्ववरं विश्वसंहारकारणम्। कारणं कारणानां च नरकार्णवतारणम् ॥२७॥
ज्ञानप्रदं ज्ञानबीजं ज्ञानानन्दं सनातनम्। अवरुह्य विमानाच्च तं दृष्ट्वा दानवेश्वरः॥२८॥
सर्वैः सार्धं भक्तियुक्तः शिरसा प्रणनाम सः। वामतो भद्रकाली च स्कन्दं तत्पुरतः स्थितम्॥२९॥
आशिषं च ददौ तस्मै काली स्कन्दश्च शंकरः। उत्तस्थुर्दानवं दृष्ट्वा सर्वे नन्दीश्वरादयः॥३०॥
परस्परं च संभाषां ते चक्रुस्तत्र सांप्रतम्। राजा कृत्वा च संभाषामुवास शिवसंनिधौ॥३१॥
प्रसन्नात्मा महादेवो भगवांस्तमुवाच ह ॥३२॥

श्रीमहादेव उवाच

विधाता जगतां ब्रह्मा पिता धर्मस्य धर्मवित्। मरीचिस्तस्य पुत्रश्च वैष्णवश्चापि धार्मिकः॥३३॥
कश्यपश्चापि तत्पुत्रो धर्मिष्ठश्च प्रजापतिः। दक्षः प्रीत्या ददौ तस्मै भक्त्या कन्यास्त्रयोदश॥३४॥
तास्वेका च दनुः साध्वी तत्सौभाग्येन वर्धिता। चत्वारिंशद्दनोः पुत्रा दानवास्तेजसोज्ज्वलः॥३५॥
तेष्वेको विप्रचित्तिश्च महाबलपराक्रमः। तत्पुत्रो धार्मिको दम्भो विष्णुभक्तो जितेन्द्रियः॥३६॥

शंकर परम सुन्दर हैं। उनका शान्त विग्रह भक्त के मृत्युभय को दूर करने में पूर्ण समर्थ है। तपस्या का फल देना तथा अखिल सम्पत्तियों को भरपूर रखना उनका स्वाभाविक गुण है। वे बहुत शीघ्र प्रसन्न होते हैं। उनके मुख पर कभी उदासी नहीं आती। वे भक्तों पर अनुग्रह करने वाले हैं। उन्हें विश्वनाथ, विश्वबीज, विश्वरूप, विश्वज, विश्वम्भर, विश्ववर और विश्वसंहारक कहा जाता है। वे कारणों के कारण तथा नरक से उद्धार करने में परम कुशल हैं। वे सनातन प्रभु ज्ञान प्रदान करने वाले, ज्ञान के बीज तथा ज्ञानानन्द हैं। दानवराज शंखचूड ने विमान से उतरकर उनके दर्शन किये और सबके साथ सिर झुका कर उन भगवान् शंकर को भक्तिपूर्वक प्रणाम किया, जिनके बाँये भाग में भद्रकाली और सामने स्कन्द बैठे थे॥२२-२९॥ काली, स्कन्द और शिव ने उसे आशीर्वाद दिया और नन्दीश्वर आदि ने उठकर उस दानवराज का स्वागत किया॥३०॥ उसे देखकर वहाँ के लोगों ने आपस में (उसके विषय की) बातें कीं और राजा भी उनसे बातचीत करने के अनन्तर शिव के समीप बैठ गया॥३१॥ अनन्तर प्रसन्नात्मा भगवान् महादेव उससे बोले॥३२॥

श्री महादेव बोले—जगत् के विधाता ब्रह्मा के, जो धर्म के पिता और धर्मवेत्ता हैं, मरीचि नामक वैष्णव एवं धार्मिक पुत्र हुए॥३३॥ मरीचि के कश्यप प्रजापति धार्मिक पुत्र हुए। उन्हें दक्ष ने प्रसन्न होकर अति भक्ति-पूर्वक अपनी तेरह कन्याएँ प्रदान कीं॥३४॥ उनमें एक पतिव्रता दनु है। दनु के सौभाग्य से चालीस दानव पुत्र हुए, जो अत्यन्त तेजस्वी थे॥३५॥ उन्हीं में एक विप्रचित्ति नामक महाबली और महापराक्रमी दानव हुआ, जिसका दम्भ नामक पुत्र धार्मिक, विष्णुभक्त एवं जितेन्द्रिय था॥३६॥ उसने गुरु शुक्राचार्य की प्रेरणा से पुष्कर क्षेत्र

जजाप परमं मन्त्रं पुष्करे लक्षवत्सरम् । शुक्राचार्यं गुरुं कृत्वा कृष्णस्य परमात्मनः ॥३७॥
तदा त्वां तनयं प्राप परं कृष्णपरायणम् । पुरा त्वं पार्षदो गोपो गोपेष्वष्टसु धार्मिकः ॥३८॥
अधुना राधिकाशापाद्भारते दानवेश्वरः । आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं भ्रमं मेने च वैष्णवः ॥३९॥
सालोक्यसार्ष्टिसारूप्यसामीप्यैक्यं हरेरपि । दीयमानं न गृह्णन्ति वैष्णवाः सेवनं विना ॥४०॥
ब्रह्मत्वममरत्वं वा तुच्छं मेने च वैष्णवः । इन्द्रत्वं वा कुबेरत्वं न मेने गणनासु च ॥४१॥
कृष्णभक्तस्य ते किं वा देवानां विषये भ्रमे । देहि राज्यं च देवानां मत्प्रीतिं कुरु भूमिप ॥४२॥
सुखं स्वराज्ये त्वं तिष्ठ देवाः सन्तु स्वके पदे । अलं भ्रातृविरोधेन सर्वे कश्यपवंशजाः ॥४३॥
यानि कानि पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च । ज्ञातिद्रोहस्य पापस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥४४॥
स्वसंपदां च हानिं च यदि राजेन्द्र मन्यसे । सर्वावस्थासु समता केषां याति च सर्वदा ॥४५॥
ब्रह्मणश्च तिरोभावो लये प्राकृतिके सति । आविर्भावः पुनस्तस्य प्रभवेदीश्वरेच्छया ॥४६॥
ज्ञानं बुद्धिश्च तपसा स्मृतिर्लोकस्य निश्चितम् । करोति सृष्टिं ज्ञानेन स्रष्टा सोऽपि क्रमेण च ॥४७॥
परिपूर्णतमो धर्मः सत्ये सत्याश्रयः सदा । सोऽपि त्रिभागस्त्रेतायां द्विभागो द्वापरे स्मृतः ॥४८॥
एकभागः कलेः पूर्वे तद्ध्रासश्च क्रमेण च । कलामात्रं कलेः शेषे कुहूवां चन्द्रकला यथा ॥४९॥

में एक लाख वर्षों तक परमात्मा श्रीकृष्ण के मंत्र का जप किया था ॥३७॥ तब तुम कृष्णपरायण श्रेष्ठ पुरुष उन्हें पुत्र रूप से प्राप्त हुए हो। पूर्वजन्म में तुम भगवान् श्रीकृष्ण के पार्षद एक महान् धर्मातमा गोप थे। गोपों में तुम्हारी महती प्रतिष्ठा थी ॥३८॥ इस समय तुम राधिका जी के शाप से भारतवर्ष में आकर वैष्णव दानवेश्वर हुए हो। वैष्णव लोग यहाँ से ब्रह्मलोक पर्यन्त सभी लोकों को भ्रमात्मक (मिथ्या) मानते हैं ॥३९॥ भगवान् की एक सेवा (भक्ति) के बिना सालोक्य, सायुज्य, सारूप्य और सामीप्य नामक मुक्ति को भी वे वैष्णव गण स्वीकार नहीं करते हैं ॥४०॥ वैष्णव जन ब्रह्मत्व-अमरत्व को भी तुच्छ मानते हैं; इन्द्रत्व, कुबेरत्व की तो वे गणना ही नहीं करते ॥४१॥ इसलिए तुम भगवान् श्रीकृष्ण के भक्त हो। तुम्हारे लिए देवताओं का राज्य भ्रममात्र है। उसमें तुम्हारी क्या आस्था हो सकती है? तुम देवों को उनका राज्य लौटा दो और मुझे आनन्दित करो। तुम अपने राज्य में सुख से रहो और देवता लोग अपने स्थान पर रहें। क्योंकि एक कश्यप के ही तुम सभी (देव-राक्षस) सन्तान हो। अतः भाइयों से विरोध करना अच्छा नहीं है ॥४२-४३॥ ब्रह्महत्या आदि जितने पाप हैं, वे ज्ञाति (पट्टीदारी) के द्रोह रूप पाप की सोलहवीं कला के भी समान नहीं होते हैं ॥४४॥ राजेन्द्र! आप यदि इसमें अपनी सम्पत्ति की हानि समझते हैं, तो भला सोचो कि संसार में किसकी सदा एक-सी स्थिति बनी रह सकी है ॥४५॥ प्राकृतिक लय में ब्रह्मा का भी तिरोधान हो जाता है और ईश्वर की इच्छा से उनका पुनः आविर्भाव भी होता है ॥४६॥ तप के द्वारा उन्हें ज्ञान, बुद्धि और लोक की स्मृति होती है, इसीलिए स्रष्टा (ब्रह्मा) ज्ञान से क्रमशः (जगत् की) सृष्टि करते हैं ॥४७॥ सत्ययुग में जो धर्म परिपूर्णतम होकर सदा सत्य के आश्रित रहता है, वह त्रेता में तीन अंश से और द्वापर में दो अंश से रहता है ॥४८॥ कलि के आरम्भ में वह एक अंश से रहता है और क्रमशः उसका ह्रास होता जाता है। इसलिए अमावास्या के दिन चन्द्रमा की कला की भाँति कलि में केवल धर्म की मात्र एक कला ही शेष रह जाती है ॥४९॥ सूर्य का जैसा तेज

यादृक्तेजो रवेर्ग्रीष्मे न तादृक्शिशिरे पुनः। दिने च यादृङ्मध्याह्ने सायं प्रातर्न तत्समम् ॥५०॥
उदयं याति कालेन बालतां च क्रमेण च। प्रकाण्डतां च तत्पश्चात्कालेऽस्तं पुनरेव सः ॥५१॥
दिने प्रच्छन्नतां याति काले वै दुर्दिने घने। राहुग्रस्ते कम्पितश्च पुनरेव प्रसन्नताम् ॥५२॥
परिपूर्णतमश्चन्द्रः पूर्णिमायां च यादृशः। तादृशो न भवेन्नित्यं[1] क्षयं याति दिने दिने ॥५३॥
पुनः स पुष्टतां याति परकुह्वा दिने दिने। संपद्युक्तः शुक्लपक्षे कृष्णे म्लानश्च यक्ष्मणा ॥५४॥
राहुग्रस्ते दिने म्लानो दुर्दिने निबिडे घने। काले चन्द्रो भवेच्छुद्धो भ्रष्टश्रीः कालभेदके ॥५५॥
भविष्यति बलिश्चेन्द्रो भ्रष्टश्रीः सुतलेऽधुना। कालेन पृथ्वी सस्याढ्या सर्वाधारा वसुंधरा ॥५६॥
काले जले निमग्ना सा तिरोभूता विपद्गता। काले नश्यन्ति विश्वानि प्रभवन्त्येव कालतः ॥५७॥
चराचराश्च कालेन नश्यन्ति प्रभवन्ति च। ईश्वरस्यैव समता कृष्णस्य परमात्मनः ॥५८॥
अहं मृत्युंजयो यस्मादसंख्यं प्राकृतं लयम्। अदृश्यं चापि पश्यामि वारं वारं पुनः पुनः ॥५९॥
स च प्रकृतिरूपश्च स एव पुरुषः स्मृतः। स चाऽऽत्मा सर्वजीवश्च नानारूपधरः परः ॥६०॥
करोति सततं यो हि तन्नामगुणकीर्तनम्। कालं मृत्युं स जयति जन्म रोगं जरां भयम् ॥६१॥

ग्रीष्म ऋतु में होता है वैसा शिशिर ऋतु में नहीं रहता। दिन में भी जिस प्रकार मध्याह्न में वह रहता है, वैसा सायं और प्रातःकाल में नहीं रहता है ॥५०॥ इस प्रकार सूर्य समयानुसार उदय होकर क्रमशः बाल एवं प्रचंड-अवस्था में आकर अंत में पुनः अस्त हो जाते हैं ॥५१॥ कालक्रम से जब दुर्दिन (वर्षा का समय) आता है, तब उन्हें दिन में ही छिप जाना पड़ता है। राहु से ग्रस्त होने पर सूर्य कम्पित होते हैं; पुनः थोड़ी देर के बाद प्रसन्नता आ जाती है ॥५२॥ उसी तरह पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा जिस भाँति परिपूर्णतम रहते हैं, वैसे नित्य नहीं रहते हैं—दिन-दिन क्षीण होते रहते हैं ॥५३॥ पुनः दिन-प्रतिदिन बढ़कर पुष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार शुक्ल पक्ष में वे शोभा-सम्पत्ति से युक्त रहते हैं और कृष्णपक्ष में यक्ष्मा रोग से मलिन हो जाते हैं ॥५४॥ फिर राहुग्रस्त होने पर तथा बादलों द्वारा घने अन्धकार के फैल जाने पर और दुर्दिन के समय वे मलिन रहते हैं और समय पाकर वही चन्द्रमा शुद्ध भी हो जाते हैं। पुनः काल भेद से उनकी श्री भ्रष्ट भी हो जाती है ॥५५॥ (देखो)! सम्प्रति भ्रष्टश्री बलि सुतल में रह रहे हैं, और आगे चलकर वही इन्द्र होंगे। यह सर्वाधार पृथ्वी कालानुसार ही सस्यसम्पन्ना होती है और काल पाकर जल में निमग्न हो जाती है एवं विपत्तिग्रस्त होकर तिरोहित भी हो जाती है। इस प्रकार समस्त विश्व समयानुसार नष्ट होता है और पुनः समय पाकर उत्पन्न भी हो जाता है ॥५६-५७॥ चर-अचर सभी समयानुसार उत्पन्न एवं विनष्ट होते हैं। केवल ईश्वर परमात्मा श्रीकृष्ण ही एक रूप में सदा विद्यमान रहते हैं ॥५८॥ मैं मृत्युञ्जय हूँ; अतः असंख्य प्राकृत लय देख चुका हूँ इसका अदृश्य होना भी बार-बार देखता रहता हूँ ॥५९॥ वही (भगवान् श्रीकृष्ण) प्रकृतिरूप, पुरुष रूप आत्मा, जीवात्मा, अनेकरूपधारी तथा सर्वश्रेष्ठ हैं ॥६०॥ जो व्यक्ति उनके नाम-गुण का निरन्तर कीर्तन करता रहता है, वह काल, मृत्यु, जन्म, रोग, जरा और भय को जीत लेता है ॥६१॥ उन्होंने

---

१ क० ०त्यं याति कुह्वामदृश्यताम्।

स्रष्टा कृतो विधिस्तेन पाता विष्णुः कृतो भवे। अहं कृतश्च संहर्ता वयं विषयिणो[1] यतः॥६२॥
कालाग्निरुद्रं संहारे नियुज्य विषये नृप। अहं करोमि सततं तन्नामगुणकीर्तनम्॥६३॥
तेन मृत्युंजयोऽहं च ज्ञानेनानेन निर्भयः। मृत्युर्मत्तो भयाद्याति वैनतेयादिवोरगः॥६४॥
इत्युक्त्वा स च सर्वेशः सर्वज्ञः सर्वभावनः। विरराभाथ शर्वश्च सभामध्ये च नारद॥६५॥
राजा तद्वचनं श्रुत्वा प्रशशंस पुनः पुनः। उवाच सुन्दरं देवं परं विनयपूर्वकम्॥६६॥

शङ्खचूड उवाच

त्वया यत्कथितं नाथ सर्वं सत्यं च नानृतम्। तथाऽपि किंचिद्यत्सत्यं श्रूयतां मन्निवेदनम्॥६७॥
ज्ञातिद्रोहे महत्पापं त्वयोक्तमधुना त्रयम्। गृहीत्वा तस्य सर्वस्वं कुतः प्रस्थापितो बलिः॥६८॥
मया समुद्धृतं सर्वमैश्वर्यं विक्रमेण च। सुतलाच्च समुद्धर्तुं नालं सोऽपि गदाधरः॥६९॥
सभ्रातृको हिरण्याक्षः कथं देवैश्च हिंसितः। शुम्भादयश्चासुरा वै कथं देवैर्निपातिताः॥७०॥
पुरा समुद्रमथने पीयूषं भक्षितं सुरैः। क्लेशभाजो वयं तत्र ते सर्वे फलभागिनः।७१॥
क्रीडाभाण्डमिदं विश्वं कृष्णस्य परमात्मनः। यदा ददाति यस्मै स तस्यैश्वर्यं भवेत्तदा॥७२॥

ही ब्रह्मा को इस जगत् का स्रष्टा, विष्णु को रक्षक और मुझ संहर्ता बनाया है क्योंकि हम लोग विषयी हैं॥६२॥ नृप! मैं कालाग्नि नामक रुद्र को संहार कार्य में नियुक्त कर स्वयं परमात्मा श्रीकृष्ण के नामगुण का कीर्तन करता रहता हूँ॥६३॥ इसी से मृत्यु मुझ पर प्रभाव नहीं डाल सकती। गरुड़ से साँप की भाँति मुझसे मृत्यु भागती रहती है।॥६४॥ नारद! इस प्रकार उस सभा में सर्वेश भगवान् शंकर जो सर्वज्ञ, सब पर कृपा करने वाले और सर्वरूप हैं, इतना कहकर चुप हो गये॥६५॥ उनकी बातें सुनकर राजा ने बार-बार प्रशंसा की और शंकरदेव से सविनय सुन्दर वाणी में कहा॥६६॥

शंखचूड बोला—प्रभो! यद्यपि आपने जो कुछ कहा है, वह सब सत्य है, असत्य कुछ भी नहीं है। तथापि मैं भी कुछ सत्य निवेदन करना चाहता हूं, आप सुनने की कृपा करें॥६७॥ आपने अभी कहा है कि ज्ञाति द्रोह में तीन प्रकार के महान् पाप होते हैं, तो देवताओं ने बलि का सर्वस्व लेकर उन्हें क्यों भेज दिया। मैंने यह सारा ऐश्वर्य अपने पराक्रम से प्राप्त किया—दानवों के पूव वैभव का उद्धार किया है। भगवान् गदाधर भी सुतललोक से दानव-समाज को हटा देने में समर्थन नहीं हैं॥६८-६९॥ देवों ने भाई सहित हिरण्याक्ष की हिंसा क्यों करवायी? तथा शुम्भादि असुरों को देवों ने क्यों मार गिराया?॥७०॥ उसी प्रकार पूर्वकाल में समुद्र मथने पर अमृत निकला था, जिसे केवल देवों ने ही पान किया था। वहाँ(मन्थन का) परिश्रम हमें भी करना पड़ा था किन्तु फलभागी केवल वे ही (देव लोग) हुए॥७१॥ यह समस्त विश्व परमात्मा श्रीकृष्ण का क्रीडास्थान है। वे जिसे जिस समय ऐश्वर्य प्रदान करते हैं उस समय वह ऐश्वर्यवान् होता है॥७२॥ और देव-दानव का यह वाद-विवाद (कलह) निर-

---

१ क. ०यिणाः कृताः।

देवदानवयोर्वादः शश्वन्नैमित्तिकः सदा। पराजयो जयस्तेषां कालेऽस्माकं क्रमेण च ॥७३॥
तत्राऽऽवयोर्विरोधे च गमनं निष्फलं तव। समसंबधिनोर्बन्ध्वोरीश्वरस्य महात्मनः ॥७४॥
जायते महती लज्जा स्पर्धाऽस्माभिः सहाधुना। ततोऽधिका च समरे कीर्तिहानिः पराजये ॥७५॥
शङ्खचूडवचः श्रुत्वा प्रहस्याऽऽह त्रिलोचनः। यथोचितं सुमधुरमत्युग्रं दानवेश्वरम् ॥७६॥

श्रीमहादेव उवाच

युष्माभिः सह युद्धं मे ब्रह्मवंशसमुद्भवैः। का लज्जा महती राजन्नकीर्तिर्वा पराजये ॥७७॥
युद्धमादौ हरेरेव मधुना कैटभेन च। हिरण्यकशिपोश्चैव सह तेनाऽऽत्मना नृप ॥७८॥
हिरण्याक्षस्य युद्धं च पुनस्तेन गदाभृता। त्रिपुरैः सह युद्धं च मया चापि पुरा कृतम् ॥७९॥
सर्वेश्वर्याः सर्वमातुः प्रकृत्याश्च बभूव ह। सह शुम्भादिभिः पूर्वं समरं परमाद्भुतम् ॥८०॥
पार्षदप्रवरस्त्वं च कृष्णस्य परमात्मनः। ये ये हताश्च ते दैत्या नहि केऽपि त्वया समाः ॥८१॥
का लज्जा महती राजन्मम युद्धे त्वया सह। सुराणां शरणस्यैव प्रेषितस्य हरेरहो ॥८२॥
देहि राज्यं च देवानां वाग्व्यये किं प्रयोजनम्। युद्धं वा कुरु मत्सार्धमिति मे निश्चितं वचः ॥८३॥

न्तर नैमित्तिक ही है। इसीलिए समयानुसार बारी-बारी से कभी उनको और कभी हम लोगों को जय-पराजय प्राप्त होते रहते है ॥७३॥ और हम दोनों के इस भाँति के विरोध में आप का आना निष्फल है। क्योंकि आप हम दोनों के साथ समान सम्बन्ध रखने वाले बन्धु, ईश्वर एवं महात्मा हैं ॥७४॥ सम्प्रति हम लोगों से स्पर्धा (वैर-भाव) रखना आपके लिए बड़ी लज्जा की बात होगी और उससे भी अधिक रण में पराजय होने पर कीर्ति की हानि होगी ॥७५॥ शंखचूड की ऐसी बातें सुनकर भगवान् त्रिलोचन उस उत्कट दानवराज से यथोचित और अत्यन्त मधुर वाणी में कहने लगे ॥७६॥

श्रीमहादेवजी बोले—राजन्! तुम लोग ब्रह्मा के वंश में उत्पन्न हो, अतः तुम्हारे साथ युद्ध करने में हमें क्या बड़ी लज्जा होगी और पराजय होने पर क्या भारी अपकीर्ति होगी ॥७७॥ नृप! भगवान् का मधु तथा कैटभ के साथ युद्ध हो चुका है तथा उनके साथ हिरण्यकशिपु का भी युद्ध हुआ है ॥७८॥ पुनः उन्हीं गदाधारी (भगवान्) का हिरण्याक्ष के साथ यद्ध हुआ और पूर्वकाल में त्रिपुर के साथ हमारा भी युद्ध हो चुका है ॥७९॥ प्राचीन काल में समस्त ऐश्वर्य सम्पन्न एवं सबकी माता प्रकृति का शुम्भ आदि असुरों के साथ परम अद्भुत युद्ध हुआ था ॥८०॥ और तुम भी तो परमात्मा श्रीकृष्ण के श्रेष्ठ पार्षद हो। पिछले जितने दैत्यवृन्द मारे गये उनमें से कोई भी तुम्हारे समान नहीं है ॥८१॥ इसलिए राजन्! तुम्हारे साथ युद्ध करने में मुझे क्या लज्जा है? देवों के रक्षक भगवान् ने ही मुझे भेजा है ॥८२॥ अतः मेरा निश्चित कहना यही है कि मेरे साथ युद्ध मत करो, देवों का

इत्युक्त्वा शंकरस्तत्र विरराम च नारद। उत्तस्थौ शङ्खचूडश्च स्वामात्यैः सह सत्वरः ॥८४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृ० नारदना० तुलस्यु० शिवशङ्खचूडसंवादो नामाष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच

शिवं प्रणम्य शिरसा दानवेन्द्रः प्रतापवान्। समारुरोह यानं च स्वामात्यैः सह सत्वरः ॥१॥
बभूवुस्ते च संक्षुब्धाः स्कन्दशक्त्यर्दितास्तदा। नेदुर्दुन्दुभयः स्वर्गे पुष्पवृष्टिर्बभूव ह ॥२॥
स्कन्दस्योपरि तत्रैव समरे च भयंकरे। स्कन्दस्य समरं दृष्ट्वा महदद्भुतमुल्बणम् ॥३॥
दानवानां क्षयकरं यथा प्राकृतिकं लयम्। राजा विमानमारुह्य शरवर्षं चकार ह ॥४॥
नृपस्य शरवृष्टिश्च घनवृष्टिर्यथा तथा। महान्घोरान्धकारश्च वह्न्युत्थानं बभूव ह ॥५॥
देवाः प्रदुद्रुवुश्चान्ये सर्वे नन्दीश्वरादयः। एकाकी कार्तिकेयस्तु तस्थौ समरमूर्धनि ॥६॥
पर्वतानां च सर्पाणां शिलानां शाखिनां तथा। शश्वच्चकार वृष्टिं च दुर्वार्ह्यां च भयंकरीम् ॥७॥

राज्य लौटा दो और व्यर्थ का वाग्जाल न बढ़ाओ ॥८३॥ नारद! वहाँ इतना कहकर शंकर चुप हो गये और अपने मंत्रियों समेत शंखचूड भी तुरंत उठकर खड़ा हो गया ॥८४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के प्रकृतिखण्ड में शिव-शंखचूड-संवाद नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥१८॥

अध्याय १९

शंकर और शंखचूड के पक्षों में युद्ध

नारायण बोले—वह प्रतापी दानवेन्द्र शिवजी को शिर से प्रणाम करके मंत्रियों समेत अपने विमान पर जा बैठा ॥१॥ (दोनों दलों में युद्ध आरम्भ हो गया) दानव स्कन्द की शक्ति से निरन्तर पीड़ित होने लगे। उनमें हलचल मच गई। उधर स्वर्ग में नगाड़े बजने लगे। उस भयंकर युद्ध में स्कन्द के ऊपर फूलों की वर्षा होने लगी ॥२॥ स्कन्द का युद्ध अत्यन्त अद्भुत और भयानक था। वह प्राकृतिक प्रलय की भाँति दानवों के लिए विनाशकारी सिद्ध हो रहा था पर बैठा हुआ शंखचूड बाणों की वर्षा करने लगा ॥३-४॥ राजा की उस बाण-वर्षा ने घन (बादल) की वर्षा की भाँति महान् और घोर अन्धकार उत्पन्न कर दिया। फिर अग्नि प्रकट होने लगा ॥५॥ उस समरांगण से नन्दीश्वर आदि सभी देवगण भाग चले। केवल एकाकी कार्तिकेय पहले ही के समान डटे रहे ॥६॥ उस रण में पर्वतों, नागों, शिलाओं और वृक्षों की भयंकर वृष्टि निरन्तर हो रही थी ॥७॥ जल भरे बादलों से

नृपस्य शरवृष्ट्या च प्रच्छन्नः शिवनन्दनः। नीरदेन च सान्द्रेण संछन्नो भास्करो यथा॥८॥
धनुः स्कन्दस्य चिच्छेद दुर्वहं च भयंकरम्। बभञ्ज च रथं दिव्यं चिच्छेद रथघोटकान्॥९॥
मयूरं जर्जरीभूतं दिव्यास्त्रेण चकार सः। शक्तिं चिक्षेप सूर्याभां तस्य वक्षोविभेदिनीम्॥१०॥
क्षणं मूर्च्छां च संप्राप्य चेतनामुपलभ्य सः। गृहीत्वाऽन्यद्धनुर्दिव्यं यद्दत्तं विष्णुना पुरा॥११॥
रत्नेन्द्रसारखचितं यानमारुह्य चाग्निभूः। शस्त्रमस्त्रं गृहीत्वा च चकार रणमुल्बणम्॥१२॥
सर्पांश्च पर्वतांश्चैव वृक्षांश्च प्रस्तरांस्तथा। सर्वांश्चिच्छेद कोपेन दिव्यास्त्रेण शिवात्मजः॥१३॥
आग्नेयं वारुणास्त्रेण वारयामास वै गुहः। रथं धनुश्च चिच्छेद शङ्खचूडस्य लीलया॥१४॥
सवाहं सारथिं चैव किरीटं मुकुटोज्ज्वलम्। चिक्षेप शक्तिमुल्काभां दानवेन्द्रस्य वक्षसि॥१५॥
मूर्च्छां संप्राप्य राजोपलभ्य वै चेतनां पुनः। आरुह्य वै यानमन्यं धनुर्जग्राह सत्वरः॥१६॥
चकार शरजालं च मायया मायिनां वरः। गुहं चाऽऽच्छाद्य समरे शरजालेन नारद॥१७॥
जग्राह शक्तिमव्यर्थां शतसूर्यसमप्रभाम्। प्रलयाग्निशिखारूपां विष्णोर्वै तेजसाऽऽवृताम्॥१८॥
चिक्षेप तां च कोपेन महावेगेन कार्तिके। पपात शक्तिस्तद्गात्रे वह्निराशिरिवोज्ज्वला॥१९॥
मूर्च्छां संप्राप शक्त्या च कार्तिकेयो महाबलः। काली गृहीत्वा तं क्रोडे निनाय शिवसंनिधौ॥२०॥

आच्छन्न सूर्य की भाँति स्कन्द, राजा की उस बाणवर्षा से प्रच्छन्न (अलक्षित) हो गये॥८॥ राजा ने अपने बाणों से स्कन्द के दुर्वह और भीषण धनुष को काट दिया तथा दिव्य रथ एवं रथ के घोड़ों को भी चूर-चूर कर धराशायी कर दिया।॥९॥ फिर शंखचूड ने अपने दिव्यास्त्र से उनके (वाहन) मयूर को जर्जर करके उनके वक्षःस्थल को फाड़ने के लिए उन पर सूर्य के समान प्रकाशपूर्ण अपनी शक्ति को चला दिया॥१०॥ इससे उन्हें क्षण भर मूर्च्छा आयी। अनन्तर चेतना प्राप्त होने पर उन्होंने एक दूसरे दिव्य धनुष को हाथ में लिया, जिसे पहले समय में भगवान् विष्णु ने दिया था॥११॥ फिर उत्तम रत्नों के सार भाग से निर्मित अन्य यान (रथ) पर बैठकर स्कन्द ने शस्त्र-अस्त्र द्वारा महान् घोर युद्ध किया॥१२॥ शिव-पुत्र ने क्रुद्ध होकर उन साँपों, पर्वतों, वृक्षों और शिलाओं को अपने दिव्य अस्त्र से चूर-चूर कर दिया॥१३॥ शंखचूड के आग्नेयास्त्र को उन्होंने अपने वारुणास्त्र से रोक दिया और उसके रथ एवं धनुष को सहज ही में काट कर गिरा दिया। पश्चात् उसके घोड़े, सारथी और उज्ज्वल किरीट मुकुट को नष्ट कर दानव-राज के लिए उल्का के समान अपने शक्ति अस्त्र का प्रयोग किया॥१४-१५॥ जिससे राजा मूर्च्छित हो गया। अनन्तर चेतना प्राप्त होने पर वह दूसरे रथ पर बैठा और शीघ्रता से अन्य धनुष को उठा लिया॥१६॥ नारद! उस श्रेष्ठ मायावी ने अपनी माया से उस रणस्थल में स्कन्द को बाणों के जाल से ढक दिया और कभी भी निष्फल न होने वाली अपनी उस शक्ति को, जो सैकड़ों सूर्य के समान प्रभापूर्ण, प्रलयकालीन अग्नि की शिखारूप और भगवान् विष्णु के तेज से आवृत थी, हाथ में लेकर क्रोध से अत्यन्त वेगपूर्वक कार्तिकेय के पर छोड़ दिया। वह शक्ति उनके शरीर पर प्रज्वलित अग्नि की राशि के समान गिरी। महाबली कार्तिकेय उससे मूर्च्छित हो गये। अनन्तर कालीजी उन्हें अपनी गोद में लेकर शिवजी के पास ले गयीं और शिव जी ने सहज ही में उन्हें देखते ही जीवित कर दिया। तथा

शिवस्तं[1] दर्शनादेव जीवयामास लीलया। ददौ बलमनन्तं च स चोत्तस्थौ प्रतापवान्॥२१॥
शिवः स्वसैन्यं देवांश्च प्रेरयामास सत्वरः। दानवेन्द्रैः ससैन्यैश्च युद्धारम्भो बभूव ह॥२२॥
स्वयं महेन्द्रो युयुधे सार्धं च वृषपर्वणा। भास्करो युयुधे विप्रचित्तिना सह सत्वरः॥२३॥
दम्भेन[2] सह चन्द्रश्च चकार समरं परम्। कालेश्वरेण कालश्च गोकर्णेन हुताशनः॥२४॥
कुबेरः कालकेयेन विश्वकर्मा मयेन च। भयंकरेण मृत्युश्च संहारेण यमस्तथा॥२५॥
कलविङ्केन[3] वरुणश्चञ्चलेन समीरणः। बुधश्च घृतपुष्टेन[4] रक्ताक्षेण शनैश्चरः॥२६॥
जयन्तो रत्नसारेण वसवो वर्चसां गणैः। अश्विनौ वै दीप्तिमता धूम्रेण नलकूबरः॥२७॥
धनुर्धरेण[5] धर्मश्च मण्डूकाक्षेण मङ्गलः। शोभाकरेणैवेशानः पिठरेण च मन्मथः॥२८॥
उल्कामुखेन[6] धूम्रेण खड्गेनापि ध्वजेन च। काञ्चीमुखेन पिण्डेन धूम्रेण सह नन्दिना॥२९॥
विश्वे देवाः पलाशेन चाऽऽदित्या युयुधुः परम्। एकादश महारुद्राश्चैकादश भयंकरैः॥३०॥
महामारी च युयुधे चोग्रदण्डादिभिः सह। नन्दीश्वरादयः सर्वे दानवानां गणैः सह॥३१॥
युयुधुश्च महायुद्धे प्रलये च भयंकरे। वटमूले च शंभुश्च तस्थौ काल्या सुतेन च॥३२॥
सर्वे च युयुधुः सैन्यसमूहाः सततं मुने। रत्नसिंहासने रम्ये कोटिभिर्दानवैः सह॥३३॥
उवास शङ्खचूडश्च रत्नभूषणभूषितः। शंकरस्य च योधाश्च युद्धे सर्वे पराजिताः॥३४॥

अनन्त बल भी प्रदान किया, जिससे प्रतापी स्कन्द तुरन्त उठ कर बैठ गये॥१७-२१॥ पश्चात् शिव जी ने अपने सैनिकों और देवों को तुरन्त युद्ध के लिए प्रेरित किया। सेना समेत दानवराजों के साथ देवताओं का पुनः युद्ध प्रारंभ हुआ॥२२॥ उस युद्ध में वृषपर्वा के साथ स्वयं महेन्द्र, विप्रचित्ति के साथ सूर्य, दम्भ के साथ चन्द्रमा, कालेश्वर के साथ काल, गोकर्ण के साथ अग्नि, कालकेय के साथ कुबेर, मय के साथ विश्वकर्मा, भयंकर (नामक दानव) के साथ मृत्यु और संहार के साथ यम का महान् युद्ध होने लगा॥२३-२५॥ उसी प्रकार कलविङ्क से वरुण, चञ्चल से वायु, घृतपुष्ट से बुध, रक्ताक्ष से शनैश्चर, रत्नसार से जयन्त, वर्चस्गणों से वसुगण, दीप्तिमान् से अश्विनीकुमार, धूम्र से नलकूबर, धनुर्द्धर से धर्म मण्डूकाक्ष से मंगल, शोभाकरण से ईशान, पिठर से मन्मथ (कामदेव) और उल्कामुख धूम्र, खड्ग, ध्वज, काञ्चीमुख, पिण्ड, धूम्र तथा नन्दी से विश्वेदेव, पलाश से आदित्य और ग्यारह भयंकर दानवों के साथ ग्यारह महारुद्र भिड़ गए। ॥२६-३०॥ उग्रदण्डा आदि से महामारी और दानवगणों के साथ नन्दीश्वर आदि का घोर युद्ध होने लगा॥३१॥ भयंकर प्रलय की भाँति आरम्भ हुए उस युद्ध में केवल भगवान् शंकर उस वट के नीचे काली और पुत्र स्कन्द के साथ ठहरे हुए थे॥३२॥ मुने! समस्त सेनाओं का समूह उस युद्ध में निरन्तर युद्ध कर रहा था और रत्नभूषण भूषित होकर शंखचूड करोड़ों दानवों समेत रम्य रत्नसिंहासन पर सुखासीन था। उस युद्ध में शिव जी के सभी वीर

---

१ क. ०स्तं चापि ज्ञानेन। २ क. कुम्भे०। ३ क. ०बिङ्कः कारणेन चञ्च। ४ क. ०तपृष्ठेन। ५ क. धुरंधरे०। ६ क. कोकामु०।

देवाश्च दुद्रुवुः सर्वे भीताश्च क्षतविक्षताः। चकार कोपं स्कन्दश्च देवेभ्यश्चाभयं ददौ ॥३५॥
बलं सुरगणानां वै वर्धयामास तेजसा। स्वयमेकश्च युयुधे दानवानां गणैः सह ॥३६॥
अक्षौहिणीनां शतकं समरे स जघान ह। खर्परं पातयामास काली कमललोचना ॥३७॥
पपौ रक्तं दानवानां क्रुद्धा सा शतखर्परम्। दशलक्षं गजेन्द्राणां शतलक्षं च वाजिनाम् ॥३८॥
समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप लीलया। कबन्धानां सहस्रं च ननर्त समरे मुने ॥३९॥
स्कन्दस्य शरजालेन दानवाः क्षतविक्षताः। भीताश्च दुद्रुवुः सर्वे महाबलपराक्रमाः ॥४०॥
वृषपर्वा[1] विप्रचित्तिर्दम्भश्चापि विकङ्कनः। स्कन्देन सार्धं युयुधुस्ते च सर्वे क्रमेण च ॥४१॥
काली जगाम समरमरक्षत्कार्तिकं शिवः। वीरास्तामनुजग्मुश्च ते च नन्दीश्वरादयः ॥४२॥
सर्वे देवाश्च गन्धर्वा यक्षराक्षसकिन्नराः। राज्यभाण्डाश्च[2] बहुशः शतकोटिर्बलाहकाः ॥४३॥
सा च गत्वा च संग्रामं सिंहनादं चकार ह। देव्या वै सिंहनादेन प्रापुर्मूर्च्छां च दानवाः ॥४४॥
अट्टाट्टहासमशिवं चकार च पुनः पुनः। हृष्टा पपौ च माध्वीकं ननर्त रणमूर्धनि ॥४५॥
उग्रदंष्ट्रा चोग्रदण्डा[3] कौट्टरी च पपौ मधु। योगिनीनां डाकिनीनां गणाः सुरगणादयः ॥४६॥
दृष्ट्वा कालीं शङ्खचूडः शीघ्रमाजिं समाययौ। दानवाश्च भयं प्रापू राजा तेभ्योऽभयं ददौ ॥४७॥

गण पराजित हो गये—क्षत-विक्षत होकर भयभीत देवगण भाग गये। अनन्तर स्कन्द ने क्रुद्ध होकर देवों को अभय-दान देते हुए तेज द्वारा अपने गणों का बलवर्द्धन किया और स्वयं अकेले दानवों के साथ युद्ध में निरत हो गए ॥३३-३६॥ उस रणस्थल में उन्होंने सौ अक्षौहिणी सेना का वध किया। कमलनेत्रा काली ने क्रुद्ध होकर दानवों के सौ खप्पर रक्त का पान किया और दश लाख गजराज तथा सौ लाख घोड़ों को एक हाथ से पकड़कर खेलवाड़ की भाँति अपने मुख में डाल लिया। मुने! इस प्रकार सहस्रों कबन्धों (धड़ों) को खाकर कालीजी नृत्य करने लगीं ॥३७-३९॥ उधर स्कन्द की बाणवर्षा से महाबली एवं पराक्रमी दानवगण क्षत-विक्षत होने पर भयभीत होकर भाग निकले ॥४०॥ वृषपर्वा, विप्रचित्ति, दम्भ और विकंकन आदि सभी दानव योद्धाओं ने क्रमशः स्कन्द से युद्ध किया। ॥४१॥ शिव जी कार्तिकेय की रक्षा कर रहे थे और काली युद्ध करने में लगी हुई थीं। उनके पीछे नन्दीश्वर आदि वीरगण, देवगण, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर, बहुत-से राज्यभाण्ड और सौ करोड़ बलाहक भी युद्धरत थे ॥४२-४३॥ देवी ने उस युद्धस्थल में पहुँचकर सिंहनाद किया, जिससे सभी दानवगण मूर्च्छित हो गये ॥४४॥ देवी ने वहाँ बार-बार भयंकर अट्टाट्टहास किया और सुरापान से हर्षित होकर उस रणभूमि में नृत्य करने लगीं ॥४५॥ अनन्तर उग्र-दंष्ट्रा, उग्रचण्डा और कौट्टरी मधुपान करने लगीं। योगिनियों और डाकिनियों के गण तथा देवगण आदि भी इस कार्य में योग देने लगे। काली जी को देखकर राजा शंखचूड युद्ध में शीघ्रता से आ पहुँचा और भयभीत दानवों को अभय दान देने लगा ॥४६-४७॥ काली ने आग्नेय अस्त्र का प्रयोग किया, जो प्रलयकालीन अग्नि की शिखा की भाँति

---

१ क. ०र्तिलिकुम्भश्च वि०। २ क. वाद्यभाण्डश्च बहुशः शतशो मधुवाह०। ३ क. ०ण्डा कोटरी।

काली चिक्षेप चाऽऽग्नेयं प्रलयाग्निशिखोपमम् । राजा निर्वापयामास वारुणेन स लीलया ॥४८॥
चिक्षेप वारुणं सा च तत्तीव्रं महदद्भुतम् । गन्धर्वेण च चिच्छेद दानवेन्द्रश्च[1] लीलया ॥४९॥
माहेश्वरं प्रचिक्षेप काली वह्निशिखोपमम् । राजा जघान तच्छीघ्रं वैष्णवेन च लीलया ॥५०॥
नारायणास्त्रं सा देवी चिक्षिपे मन्त्रपूर्वकम् । राजा ननाम तं दृष्ट्वा चावरुह्य रथाद्दहो ॥५१॥
ऊर्ध्वं जगाम तच्छस्त्रं प्रलयाग्निशिखोपमम् । पपात शङ्खचूडश्च भक्त्या वै दण्डवद्भुवि ।
ब्रह्मास्त्रं सा च चिक्षेप यत्नतो मन्त्रपूर्वकम् ॥५२॥
ब्रह्मास्त्रेण महाराजो निर्वाणं च चकार ह । चिक्षेपातीव दिव्यास्त्रं सा देवी मन्त्रपूर्वकम् ॥५३॥
राजा दिव्यास्त्रजालेन निर्वाणं च चकार ह । देवी चिक्षेप शक्तिं च यत्नतो योजनायताम् ॥५४॥
राजा तीक्ष्णास्त्रजालेन शतखण्डं चकार ह । जग्राह मन्त्रपूर्वं च देवी पाशुपतं रुषा ॥५५॥
निक्षेप्तुं सा निषिद्धा च वाग्बभूवाशरीरिणी । मृत्युः[2] पाशुपते नास्ति नृपस्य च महात्मनः ॥५६॥
यावदस्त्येव कण्ठेऽस्य कवचं हि हरेरिति । यावत्सतीत्वमस्तीह सत्याश्च नृपयोषितः ॥५७॥
तावदस्य जरा मृत्युर्नास्तीति ब्रह्मणो वरः । इत्याकर्ण्य महाकाली न तच्चिक्षेप सा सती ॥५८॥
शतलक्षं दानवानामग्रहील्लीलया क्रुधा । अत्तुं जगाम वेगेन शङ्खचूडं भयंकरी ॥५९॥

था, राजा ने वारुणास्त्र से उसका सहज ही में निवारण कर दिया ॥४८॥ देवी ने अत्यन्त तीक्ष्ण और महान् अद्‌भुत वारुण अस्त्र का प्रयोग किया, जिसको दानवराज ने गान्धर्वास्त्र द्वारा लीलापूर्वक काट दिया ॥४९॥ तब काली अग्निशिखा के समान माहेश्वर अस्त्र का प्रयोग किया, राजा ने वैष्णवास्त्र द्वारा शीघ्रता से उसे काट डाला ॥५०॥ देवी ने मन्त्रपूर्वक नारायणास्त्र चलाया, राजा ने उसे देखते ही नमस्कार किया और अनन्तर रथ से नीचे उतर पड़ा ॥५१॥ प्रलयकाल की अग्नि-शिखा के समान वह अस्त्र उसी समय ऊपर चला गया और भक्तिवश राजा भूमि पर दण्डवत् पड़कर साष्टांग प्रणाम करने लगा। उपरान्त देवी ने यत्न से मन्त्रपूर्वक ब्रह्मास्त्र चलाया, महाराज (दानव) ने भी ब्रह्मास्त्र द्वारा उसे शान्त कर दिया। देवी ने मन्त्रपूर्वक अत्यन्त दिव्य अस्त्र का प्रयोग किया। राजा ने अपने दिव्यास्त्र द्वारा उसे शान्त कर दिया। देवी ने एक योजन लम्बी शक्ति का सप्रयत्न प्रयोग किया, राजा ने तीक्ष्णास्त्रों के समूहों द्वारा उसके सौ टुकड़े कर दिये अनन्तर देवी ने रुष्ट होकर मन्त्रपूर्वक पाशुपत अस्त्र का प्रयोग करना चाहा, किन्तु आकाशवाणी ने उसे चलाने से रोक दिया और कहा—'इस महात्मा राजा की मृत्यु पाशुपत अस्त्र से संभव नहीं है ॥५२-५६॥ तथा जब तक इसके कण्ठ में भगवान् विष्णु का कवच बँधा रहेगा और इसकी पतिव्रता पत्नी अपने सतीत्व की रक्षा करती रहेगी तब तक इसके समीप जरा और मृत्यु अपना कुछ भी प्रभाव नहीं डाल सकती—यह ब्रह्मा का वरदान है। यह सुनकर सती महाकाली ने पाशुपत अस्त्र नहीं चलाया ॥५७-५८॥ किन्तु क्रोधावेश में सौ लाख दानवों का भक्षण कर डाला और वह भयंकरी शंखचूड को भक्षण करने के लिए वेग से दौड़ी ॥५९॥ दानवराज

---

१ क. ०न्द्रः प्रतापवान् । २ क. ०त्युः शस्त्रशतैर्नास्ति नृ० ।

दिव्यास्त्रेण सुतीक्ष्णेन वारयामास दानवः । खड्गं चिक्षेप सा देवी ग्रीष्मसूर्योपमं परम् ॥६०॥
दिव्यास्त्रैर्दानवेन्द्रोऽयं शतखण्डं चकार सः । पुनरत्तुं महादेवी वेगेन च जगाम तम् ॥६१॥
सर्वसिद्धेश्वरः श्रीमान्ववृधे दानवेश्वरः । निवारयास च तां सर्वसिद्धेश्वरो वरः ॥६२॥
वेगेन मुष्टिना काली कोपयुक्ता भयंकरी । बभञ्जाथ रथं तस्य वाहनत्सारथिं सती ॥६३॥
सा च शूलं च चिक्षेप प्रलयाग्निशिखोपमम् । वामहस्तेन जग्राह शङ्खचूडं च लीलया ॥६४॥
मुष्ट्या जघान तं देवी महाकोपेन वेगतः । बभ्राम व्यथया दैत्यः क्षणं मूर्च्छामवाप ह ॥६५॥
क्षणेन चेतनां प्राप्य समुत्तस्थौ प्रतापवान् । न चक्रे बाहुयुद्धं स देव्या सह ननाम ताम् ॥६६॥
देव्याश्चास्त्रं च चिच्छेद चाग्रहीत्स्वेन तेजसा । नास्त्रं चिक्षेप तां भक्त्या मातृबुद्ध्या च वैष्णवः ॥६७॥
गृहीत्वा दानवं देवी भ्रामयित्वा पुनः पुनः । ऊर्ध्वं च प्रेरयामास महावेगेन कोपतः ॥६८॥
ऊर्ध्वात्पपात वेगेन शङ्खचूडः प्रतापवान् । निपत्य च समुत्तस्थौ स नत्वा भद्रकालिकाम् ॥६९॥
रत्नेन्द्रसारखचितं विमानाग्र्यं मनोहरम् । आरुरोह रथं हृष्टो न विश्रान्तो महारणे ॥७०॥
क्षतजं दानवानां च मासं च विपुलं क्रुधा । पीत्वा भुक्त्वा भद्रकाली ययौ सा शंकरान्तिकम् ॥७१॥
उवाच रणवृत्तान्तं पौर्वापर्यं यथाक्रमम् । श्रुत्वा जहास शंभुश्च दानवानां विनाशनम् ॥७२॥

ने अत्यन्त तीक्ष्ण दिव्यास्त्रों द्वारा उनको रोक दिया। देवी ने ग्रीष्मकालीन सूर्य की प्रभा के समान अपना खड्ग चलाया, उसे दानवेन्द्र ने अपने दिव्यास्त्रों द्वारा सौ खण्डों में कर दिया। अनन्तर महादेवी उसे खाने के लिए पुनः वेग से दौड़ीं ॥६०-६१॥ उस समय दानवेश्वर शंखचूड ने श्रीमान् और सर्वसिद्धेश्वर होने के कारण बढ़ना आरम्भ किया और सर्वसिद्धेश्वर वर के द्वारा देवी का निवारण कर दिया। पुनः भयंकरी काली देवी ने क्रुद्ध होकर वेग से मुष्टि प्रहार किया जिससे दानव का रथ और सारथी छिन्नभिन्न हो गया। पुन देवी ने प्रलयाग्नि-शिखा की भाँति शूल का प्रयोग किया, शंखचूड ने उसे लीलापूर्वक बायें हाथ से पकड़ कर रख दिया। उसी समय देवी ने महाकोप करके पुनः वेग से मुष्टि प्रहार किया, जिससे दैत्यराज व्यथित होकर घूमते हुए गिर पड़ा और क्षणिक मूर्च्छित भी हो गया। अनन्तर क्षण में चेतना प्राप्त होने पर वह प्रतापी दानव उठकर बैठ गया ॥६२-६५॥ इतने पर भी दानव ने देवी के साथ बाहुयुद्ध न कर उन्हें नमस्कार ही किया, देवी के अस्त्रों को काट डाला और अपने तेज द्वारा उन्हें पकड़ भी लिया ॥६६॥ उस वैष्णव दानवराज ने भक्तिपूर्वक उन्हें माता समझकर उन पर अपने अस्त्रों का प्रयोग नहीं किया ॥६७॥ किन्तु देवी ने क्रुद्ध होकर उसे पकड़ कर बार-बार घुमाया और अतिवेग से ऊपर फेंक दिया, किन्तु प्रतापी शंखचूड ने वेग से ऊपर से नीचे आकर भद्रकाली को नमस्कार किया और सामने उठ कर खड़ा हो गया ॥६८-६९॥ फिर उत्तम रत्नों के सार भाग से रचित उत्तम एवं मनोहर रथ पर चढ़कर प्रसन्न हो गया और वह उस महासमर में कुछ भी श्रान्त नहीं हुआ ॥७०॥ पश्चात् भद्रकाली दानवों के कटे हुए विपुल मांस तथा रक्त आदि को खा-पीकर शंकर के समीप चली गयीं। वहाँ पहुँचकर उन्होंने (शंकर से) रण का समस्त वृत्तान्त—जिस क्रम से जो कुछ हुआ था—कह सुनाया। उसे सुनकर शिव जी दानवों के विनाशार्थ हंस पड़े ॥७१-७२॥ पुनः उन्होंने

लक्षं च दानवेन्द्राणामवशिष्टं रणेऽधुना। उद्वृत्तं भूभृता सार्धं तदन्यं भुक्तमीश्वरम्॥७३॥
संग्रामं दानवेन्द्रं च हन्तुं पाशुपतेन वै। अवध्यस्तव राजेति वाग्बभूवाशरीरिणी॥७४॥
राजेन्द्रश्च महाज्ञानी महाबलपराक्रमः। न च चिक्षेप मय्यस्त्रं चिच्छेद मम सायकम्॥७५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० तुलस्यु० कालीशङ्खचूडयुद्ध
एकोनविंशोऽध्यायः॥१९॥

अथ विंशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच

शिवस्तत्त्वं समाकर्ण्य तत्त्वज्ञानविशारदः। ययौ स्वयं च समरं स्वगणैः सह नारद॥१॥
शङ्खचूडः शिवं दृष्ट्वा विमानादवरुह्य च। ननाम परया भक्त्या दण्डवत्पतितो भुवि॥२॥
तं प्रणम्य च वेगेन विमानं ह्यारुरोह सः। तूर्णं चकार संनाहं धनुर्जग्राह दुर्वहम्॥३॥
शवदानवयोर्युद्धं पूर्णमब्दं बभूव ह। न वै बभूवतुर्ब्रह्मन्तयोर्जयपराजयौ॥४॥
न्यस्तशस्त्रश्च भगवान्न्यस्तशस्त्रश्च दानवः। रथस्थः शङ्खचूडश्च वृषस्थो वृषभध्वजः॥५॥

शिव से कहा—हे ईश्वर! इस समय रणस्थल में एक लाख दानवेन्द्र शेष रह गये हैं, जो राजा के साथ सन्नद्ध हैं और अन्य को मैंने खा लिया है॥७३॥ समर में मैंने उस दानवेन्द्र को पाशुपत से मारना चाहा उसी समय आकाश-वाणी हुई कि—तुम्हारे द्वारा राजा की मृत्यु नहीं हो सकेगी। उसके बाद महाज्ञानी, महाबली एवं पराक्रमी राजा ने मेरे ऊपर अस्त्रों का प्रयोग नहीं किया। वह केवल मेरे छोड़े हुए बाणों को काट भर देता था॥७४-७५॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के प्रकृतिखण्ड में तुलसी-उपाख्यान के प्रसंग में काली तथा शंखचूड-
युद्ध-वर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त॥१९॥

अध्याय २०

शंकर के त्रिशूल से शंखचूड का भस्म होना

नारायण बोले—नारद! तत्त्वज्ञान-विशारद शिव ने भद्रकाली से यथार्थ वृत्तान्त सुनकर अपने गणों समेत स्वयं समरभूमि के लिए प्रस्थान कर दिया॥१॥ वहाँ शंखचूड ने शिव को देखते ही विमान से उतरकर अत्यन्त भक्ति से भूमि पर लेटकर दण्डवत् प्रणाम किया॥२॥ प्रणाम करने के उपरान्त उसने वेग से रथ पर बैठकर शीघ्रता से सैनिकों को सावधान किया और दुर्जेय धनुष को उठा लिया॥३॥ ब्रह्मन्! शिव-दानव का वह युद्ध पूरे वर्ष तक होता रहा, किन्तु उनमें किसी की जय-पराजय नहीं हुई॥४॥ अनन्तर भगवान शिव अस्त्र छोड़कर खाली हाथ हो गये और दानव भी हथियार डालकर चुप रहा। फिर शंखचूड रथ पर आरूढ़ हुआ और शिव नन्दी पर सवार हुए॥५॥ उस युद्ध में असंख्य दानव मारे गए। रण में शिव के सैनिक जितनी संख्या में

दानवानां च शतकमुद्वृत्तं च बभूव ह। रणे ये ये मृताः शंभोर्जीवयामास तान्विभुः ॥६॥
ततो विष्णुर्महामायो वृद्धब्राह्मणरूपधृक्। आगत्य च रणस्थानमवोचद्दानवेश्वरम् ॥७॥

वृद्धब्राह्मण उवाच

देहि भिक्षां च राजेन्द्र मह्यं विप्राय साम्प्रतम्। त्वं सर्वसंपदां दाता यन्मे मनसि वाञ्छितम् ॥८॥
निराहाराय वृद्धाय तृषितायाऽऽतुराय च। पश्चात्त्वां कथयिष्यामि पुरः सत्यं च कुर्विति ॥९॥
ओमित्युवाच राजेन्द्रः प्रसन्नवदनेक्षणः। कवचार्थी जनश्चाहमित्युवाच स मायया ॥१०॥
तच्छ्रुत्वा दानवश्रेष्ठो ददौ कवचमुत्तमम्। गृहीत्वा कवचं दिव्यं जगाम हरिरेव च ॥११॥
शङ्खचूडस्य रूपेण जगाम तुलसीं प्रति। गत्वा तस्यां मायया च वीर्याधानं चकार ह ॥१२॥
अथ शंभुर्हरेः शूलं दानवार्थं समग्रहीत्। ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डशतकप्रभमुज्ज्वलम् ॥१३॥
नारायणाधिष्ठिताग्रं ब्रह्माधिष्ठितमध्यमम्। शिवाधिष्ठितमूलं च कालाधिष्ठितधारकम् ॥१४॥
किरणावलिसंयुक्तं प्रलयाग्निशिखोपमम्। दुर्निवार्यं च दुर्धर्षमव्यर्थं वैरिघातकम् ॥१५॥
तेजसा चक्रतुल्यं च सर्वशस्त्रविघातकम्। शिवकेशवयोरन्यद्दुर्वहं च भयंकरम् ॥१६॥
धनुःसहस्रं दैर्घ्येण विस्तृत्या शतहस्तकम्। सजीवं ब्रह्मरूपं च नित्यरूपमनिर्मितम् ॥१७॥

मृतक हुए थे, उन्हें उन्होंने जीवित कर लिया था ॥६॥ इसी बीच महामायी विष्णु ने वृद्ध ब्राह्मण के वेष में उस रण भूमि में आकर उस दानवराज से कहा ॥७॥

वृद्ध ब्राह्मण बोले—राजेन्द्र! इस समय आप मुझ ब्राह्मण को मेरी अभिलषित भिक्षा देने की कृपा करें; क्योंकि आप समस्त सम्पत्तियों के दाता हैं और मैं निराहार, वृद्ध, प्यासा और आतुर ब्राह्मण हूँ। पहले आप देने के लिए सत्य प्रतिज्ञा करें पश्चात् मैं आपको (अपनी अभिलषित वस्तु) बताऊँगा ॥८-९॥ अनन्तर राजेन्द्र शंखचूड ने प्रसन्न मुख मुद्रा में 'ओम्' कह कर देने की प्रतिज्ञा की। तदनन्तर विष्णु ने माया फैलाते हुए कहा—'मैं आपका कवच चाहता हूँ' ॥१०॥ यह सुनकर उस दानवश्रेष्ठ ने वह उत्तम कवच उन्हें दे दिया और उस दिव्य कवच को लेकर विष्णु चले गये ॥११॥ अनन्तर शंखचूड का रूप धारण कर विष्णु ने तुलसी के पास जाकर माया से उसमें वीर्याधान किया ॥१२॥ उसी समय शिव ने दानवराज के वधार्थ विष्णु का शूल हाथ में उठा लिया। वह शूल ग्रीष्म ऋतु के मध्याह्नकालीन सैकड़ों सूर्य की प्रभा से समुज्ज्वल था ॥१३॥ उसके अग्रभाग में नारायण, मध्य में ब्रह्मा और मूल भाग में शिव एवं उसकी धार में काल अधिष्ठित थे ॥१४॥ प्रलयाग्नि शिखा की भांति उसकी किरणावलियाँ (प्रकाशपुञ्ज) थीं और वह (शूल) दुर्निवार्य, दुद्धर्ष, अव्यर्थ तथा वैरी के लिए घातक था ॥१५॥ सुदर्शन चक्र की भांति तेजस्वी, समस्त शस्त्रों का भेदक और शिव-केशव को छोड़कर दूसरों के लिए वह दुर्वह एवं भयंकर था ॥१६॥ वह सहस्र धनुषों के बराबर लंबा और सौ हाथ चौड़ा था। वह साक्षात् सजीव ब्रह्म ही था। उसके रूप में कभी परिवर्तन नहीं होता था और वह किसी का बनाया हुआ नहीं था ॥१७॥ नारद!

संहर्तुं सर्वविध्यण्डमेकदा[1] दैवलीलया। चिक्षेप घूर्णनं कृत्वा शङ्खचूडे च नारद॥१८॥
राजा चापं परित्यज्य श्रीकृष्णचरणाम्बुजम्। ध्यानं चकार भक्त्या च कृत्वा योगासनं धिया॥१९॥
शूलं च भ्रमणं कृत्वा न्यपतद्दानवोपरि। चकार भस्मसात्तं च सरथं चैव लीलया॥२०॥
राजा धृत्वा दिव्यरूपं बालकं गोपवेषकम्। द्विभुजं मुरलीहस्तं रत्नभूषणभूषितम्॥२१॥
नानारत्नसुभूषाढ्यं गोपकोटिभिरावृतम्। गोलोकादागतं यानमारुह्य तत्पुरं ययौ॥२२॥
गत्वा ननाम शिरसा राधामाधवयोर्मुने। भक्त्या तच्चरणाम्भोजं रासे वृन्दावने मुने॥२३॥
सुदामानं तौ च दृष्ट्वा प्रसन्नवदनेक्षणौ। तदा च चक्रतुः क्रोडे स्नेहेन परिसंप्लुतौ॥२४॥
अथ शूलश्च वेगेन प्रययौ शूलिनः करम्। शंकरस्तेन शूलेन शूलपाणिर्बभूव सः॥२५॥
स शिवस्तेन शूलेन दानवस्यास्थिजालकम्। प्रेम्णा च प्रेरयामास लवणोदे च सागरे[2]॥२६॥
अस्थिभिः शङ्खचूडस्य शङ्खजातिर्बभूव ह। नानाप्रकाररूपा च श्रेष्ठा पूता सुरार्चने॥२७॥
प्रशस्तं शङ्खतोयं च देवानां प्रीतिदं परम्। तीर्थतोयस्वरूपं च पवित्रं शंकरं विना॥२८॥
शङ्खशब्दो भवेद्यत्र तत्र लक्ष्मीश्च सुस्थिरा। सुस्नातः सर्वतीर्थेषु यः स्नातः शङ्खवारिणा॥२९॥

अखिल ब्रह्मांड का संहार करने की उस त्रिशूल में शक्ति थी। भगवान् शंकर ने लीला से ही उसे उठाकर घुमाया और शंखचूड पर फेंक दिया। तब उस बुद्धिमान् राजा ने सारा रहस्य जानकर अपना धनुष धरती पर फेंक दिया और वह बुद्धिपूर्वक योगासन लगाकर भक्ति के साथ अनन्य चित्त से भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमल का ध्यान करने लगा। अनन्तर वह शूल चक्कर काटकर दानवराज के ऊपर जा गिरा, और उसने लीलापूर्वक रथ समेत राजा को भस्म कर डाला॥१८-२०॥ पश्चात् राजा ने गोपबालक के वेष में दिव्य रूप धारण कर लिया। उसकी दो भुजायें थीं, हाथ में मुरली शोभा पा रही थी और रत्नमय आभूषणों से वह विभूषित था। करोड़ों गोप उसे घेरे हुए थे। इतने में गोलोक से आये हुए एक विमान पर बैठ कर वह गोलोक को चला गया॥२१-२२॥ मुने! वहाँ वृन्दावन के रासमंडल में जाकर उसने भक्ति के साथ मस्तक झुकाकर राधा और माधव के चरण-कमल में साष्टांग प्रणाम किया। सुदामा को देखकर उन दोनों के श्रीमुख प्रसन्नता से खिल उठे। उन्होंने स्नेह से आर्द्र होकर उसे अपनी गोद में उठा लिया। उधर वह शूल भी वेग से शिव जी के हाथ में पुनः आ गया। शंकरजी ने उसके द्वारा दानवराज के अस्थि-समूह को प्रेमपूर्वक लवण-समुद्र में डाल दिया। शंखचूड की उन अस्थियों से शंख-जाति उत्पन्न हुई॥२३-२६॥ वही शंख अनेक प्रकार के रूपों में विराजमान होकर देवपूजन में पवित्र माना जाता है, शंख का जल भी प्रशस्त एवं देवों को अति प्रीतिप्रद होता है॥२७॥ वह जल एक शिव को छोड़कर और सभी के लिए तीर्थजल के समान पवित्र होता है। शंख की ध्वनि जहाँ होती है वहाँ लक्ष्मी सुस्थिर रहती हैं॥२८॥ जिसने शंख के जल से स्नान कर लिया, वह मानों समस्त तीर्थों में स्नान कर चुका। शंख ही भगवान्

---

१ क. ०ण्डमलं च स्वाव०। २ क. सादरम्।

शङ्खो हरेरधिष्ठानं यत्र शङ्खस्ततो हरिः। तत्रैव सततं लक्ष्मीर्दूरीभूतममङ्गलम् ॥३०॥
स्त्रीणां च शङ्खध्वनिभिः शूद्राणां च विशेषतः। भीता रुष्टा याति लक्ष्मीः स्थलमन्यत्स्थलात्ततः ॥३१॥
शिवश्च दानवं हत्वा शिवलोकं जगाम सः। प्रहृष्टो वृषमारुह्य स्वगणैश्च समावृतः ॥३२॥
सुराः स्वविषयं प्रापुः परमानन्दसंयुताः। नेदुर्दुन्दुभयः स्वर्गे जगुर्गन्धर्वकिन्नराः ॥३३॥
बभूव पुष्पवृष्टिश्च शिवस्योपरि संततम्। प्रशशंसुः सुरास्तं च मुनीन्द्रप्रवरादयः ॥३४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० तुलस्यु० शङ्खचूडवधे
शङ्खप्रस्तावो नाम विंशोऽध्यायः ॥२०॥

अथैकविंशोऽध्यायः

नारद उवाच

नारायणश्च भगवान्वीर्याधानं चकार ह। तुलस्यां केन रूपेण तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१॥

श्रीनारायण उवाच

नारायणश्च भगवान्देवानां साधनेन च। शङ्खचूडस्य रूपेण रेमे तद्रामया सह ॥२॥

विष्णु का अधिष्ठान है, अतः जहाँ शंख रहता है वहाँ भगवान् विष्णु रहते हैं॥२९॥ वहीं निरन्तर लक्ष्मी भी निवास करती हैं, अमंगल दूर से ही भाग जाता है। किन्तु स्त्रियों की तथा विशेषतया शूद्रों की शंखध्वनि सुनकर लक्ष्मी रुष्ट और भयभीत होकर उस स्थान से दूसरे स्थान में चली जाती है॥३०॥ इस प्रकार दानवराज के वध करने के अनन्तर शिव जी अत्यन्त हर्षित होकर अपने गणों समेत बैलपर बैठकर अपने लोक को पधार गये॥३१॥ देवगण अपना राज्य पाकर परमानन्द मग्न हो गए। स्वर्ग में देव-दुन्दुभियाँ बज उठीं। गन्धर्व-किन्नर गान करने लगे ॥३२॥ भगवान् शिव के ऊपर निरन्तर पुष्प की वर्षा होने लगी। और देवगण तथा मुनीन्द्रगण शंकरजी की प्रशंसा करने लगे॥३३॥

श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराण के प्रकृति-खण्ड में तुलसी-उपाख्यान के प्रसंग में
शंख-प्रस्ताव नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त॥२०॥

अध्याय २१

तुलसी का पातिव्रत्य भंग तथा शालिग्राम के लक्षण और महत्त्व

नारद बोले—नारायण भगवान् ने तुलसी में किस रूप से वीर्याधान किया, वह मुझे बताने की कृपा करें॥१॥

नारायण बोले—भगवान् नारायण ने देवों के हितार्थ शंखचूड का रूप धारण करके उस सुन्दरी के साथ सम्भोग किया॥२॥ विष्णु कपट के द्वारा शंखचूड से कवच लेकर और उसका रूप धारण करके तुलसी के भवन

शङ्खचूडस्य कवचं गृहीत्वा मायया हरिः। पुनर्विधाय तद्रूपं जगाम तुलसीगृहम् ॥३॥
दुन्दुभिं वादयामास तुलसीद्वारसंनिधौ। जयशब्दरवद्वारा बोधयामास सुन्दरीम् ॥४॥
तच्छ्रुत्वा सा च साध्वी च परमानन्दसंयुता। राजमार्गगवाक्षेण ददर्श परमादरात् ॥५॥
ब्राह्मणेभ्यो धनं दत्त्वा कारयामास मङ्गलम्। बन्दिभ्यो भिक्षुकेभ्यश्च वाचिकेभ्यो धनं ददौ ॥६॥
अवरुह्य रथाद्देवो देव्याश्च भवनं ययौ। अमूल्यरत्नसंक्लृप्तं सुन्दरं सुमनोहरम् ॥७॥
दृष्ट्वा च पुरतः कान्तं शान्तं कान्ता मुदाऽन्विता। तत्पादं क्षालयामास ननाम च रुरोद च ॥८॥
रत्नसिंहासने रम्ये वासयामास कामुकी। ताम्बूलं च ददौ तस्मै कर्पूरादिसुवासितम् ॥९॥
अद्य मे सफलं जन्म ह्यद्य मे सफलाः क्रियाः। रणागतं च प्राणेशं पश्यन्त्याश्च पुनर्गृहे ॥१०॥
सस्मिता सकटाक्षं च सकामा पुलकाञ्चिता। प्रपच्छ रणवृत्तान्तं कान्तं मधुरया गिरा ॥११॥

तुलस्युवाच

असंख्यविश्वसंहर्त्रा सार्धमाजौ तव प्रभो। कथं बभूव विजयस्तन्मे ब्रूहि कृपानिधे ॥१२॥
तुलसीवचनं श्रुत्वा प्रहस्य कमलापतिः। शङ्खचूडस्य रूपेण तामुवाचानृतं वचः ॥१३॥

श्रीहरिरुवाच

आवयोः समरं कान्ते पूर्णमब्दं बभूव ह। नाशो बभूव सर्वेषां दानवानां च कामिनि ॥१४॥

में पहुँचे ॥३॥ तुलसी के द्वार पर उन्होंने नगाड़ा बजवाया और जयध्वनि के द्वारा उस सुन्दरी को जगाया ॥४॥ उसे सुनकर वह पतिव्रता परमानन्द में मग्न हो गयी और परम आदरपूर्वक खिड़की से राज-मार्ग की ओर देखने लगी ॥५॥ उसने ब्राह्मणों को धन दान देकर मंगल कराया और भाटों, भिक्षुओं एवं वाचिकों को (समाचार देने वालों) को धन प्रदान किया ॥६॥ राजा रथ से उतरकर रानी के महल की ओर चले, जो अमूल्यरत्नों द्वारा सुरचित, सुन्दर एवं अति मनोहर था ॥७॥ सामने अपने कान्त को शान्त खड़ा देखकर वह रमणी हर्षगद्गद हो गयी। अनन्तर प्रणाम पूर्वक उनके चरणों का प्रक्षालन करती हुई वह प्रेमाश्रुओं को बहाने लगी ॥८॥ उस कामुकी ने उन्हें एक रमणीक सिंहासन पर बैठाकर उन्हें कर्पूरादि से सुवासित ताम्बूल प्रदान किया ॥९॥ और वह बोली—आज मेरा जन्म सफल हो गया एवं मेरी समस्त (शुभ) क्रियायें सफल हो गईं, क्योंकि रणस्थल से आये हुए अपने प्राणेश्वर को आज मैं पुनः घर में देख रही हूँ ॥१०॥ अनन्तर वह मुसकराती हुई कटाक्ष, काम-वासना तथा रोमांच के साथ मधुरवाणी में अपने प्रिय से युद्ध का वृत्तान्त पूछने लगी ॥११॥

तुलसी बोली—प्रभो! कृपानिधे! असंख्य विश्वों का संहार करने वाले उन (शिव) के साथ तुम्हारा युद्ध हो रहा था, उसमें तुम्हारी विजय कैसे हुई, मुझे बताने की कृपा करें ॥१२॥ तुलसी की बातें सुनकर शंखचूड के रूप में भगवान कमलापति ने हँसकर उससे असत्य कहना आरम्भ किया ॥१३॥

श्रीहरि बोले—कान्ते! हम दोनों का युद्ध पूरे वर्ष तक चलता रहा। कामिनि! उसमें समस्त दानवों का नाश हो गया ॥१४॥ अनन्तर ब्रह्मा ने हम दोनों में समझौता करा दिया और देवों को उनके अधिकार उन्होंने

प्रीतिं च कारयामास ब्रह्मा च स्वयमावयोः। देवानामधिकारश्च प्रदत्तो[1] धातुराज्ञया॥१५॥
मयाऽऽगतं स्वभवनं शिवलोकं शिवो गतः। इत्युक्त्वा जगतां नाथः शयनं च चकार ह॥१६॥
रेमे रमापतिस्तत्र रामया सह नारद। सा साध्वी सुखसंभोगादाकर्षणव्यतिक्रमात्॥
सर्वं वितर्कयामास कस्त्वमेवेत्युवाच ह ॥१७॥

तुलस्युवाच

को वा त्वं वद मायेश भुक्ताऽहं मायया त्वया। दूरीकृतं मत्सतीत्वमथवा त्वां शपामहे॥१८॥
तुलसीवचनं श्रुत्वा हरिः शापभयेन च। दधार लीलया ब्रह्मन्स्वां मूर्तिं सुमनोहराम्॥१९॥
ददर्श पुरतो देवी देवदेवं सनातनम्। नवीननीरदश्यामं शरत्पङ्कजलोचनम्॥२०॥
कोटिकन्दर्पलीलाभं रत्नभूषणभूषितम्। ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं शोभितं पीतवाससा॥२१॥
तं दृष्ट्वा कामिनी कामान्मूर्च्छां संप्राप लीलया। पुनश्च चेतनां प्राप्य पुनः सा तमुवाच ह॥२२॥

तुलस्युवाच

हे नाथ ते दया नास्ति पाषाणसदृशस्य च। छलेन धर्मभङ्गेन मम स्वामी त्वया हतः॥२३॥
पाषाणसदृशस्त्वं च दयाहीनो यतः प्रभो। तस्मात्पाषाणरूपस्त्वं भुवि देव भवाधुना॥२४॥
ये वदन्ति दयासिन्धुं त्वां ते भ्रान्ता न संशयः। भक्तो विनाऽपराधेन परार्थे च कथं हतः॥२५॥

पहले ही दे दिये थे॥१५॥ इससे हम अपने भवन लौट आये और शिव जी अपने धाम को चले गये। इतना कहकर जगत् के नाथ ने शयन किया॥१६॥ नारद! भगवान् रमापति विष्णु ने उस सुन्दरी के साथ रमण किया। तुलसी को इस बार पहले की अपेक्षा सुख-संभोग के आकर्षण में व्यतिक्रम का अनुभव हुआ। अतः उसने सारी वास्तविकता का अनुमान लगा लिया और पूछा कि—तुम कौन हो॥१७॥

तुलसी बोली—तुम मायाधीश तो नहीं हो? बताओ, कौन हो? तुमने छल करके मेरा भोग किया है और मेरा सतीत्व नष्ट किया है। अब मैं तुम्हें शाप दे रही हूँ। ब्रह्मन्! तुलसी की बात सुन कर शाप के भय से विष्णु ने लीला से अपनी अत्यन्त मनोहर मूर्ति को धारण कर लिया। रानी ने देखा कि सामने देवों के देव सनातन भगवान् खड़े हैं, जो नूतन मेघ के समान श्यामल, शारदीय कमल की भाँति नेत्रों वाले, करोड़ों कन्दर्प के समान कान्तिमान् करोड़ों रत्नों के भूषणों से भूषित, मन्द मुसकान से युक्त प्रसन्न मुख वाले एवं पीताम्बर से सुशोभित हैं॥१८-२१॥ उन्हें देखकर वह कामिनी काम के कारण मूर्च्छित हो गयी और चेतना प्राप्त होने पर वह उनसे पुनः बोली॥२२॥

तुलसी ने कहा—नाथ! तुममें दया नहीं है। तुम पत्थर के समान (कठोर) हो। तुमने छल से मेरा धर्म भंग करके मेरे स्वामी को मार डाला है॥२२-२३॥ प्रभो, देव! जिस लिए तुम दया रहित पाषाण के समान हो, अतः तुम भूतल पर पाषाण का रूप धारण करो॥२४॥ जो तुम्हें दयासिन्धु कहते हैं, वे भ्रान्त हैं, इसमें संशय

---

१ ख. ०तो ब्रह्मणा पुरा।

सर्वात्मा त्वं च सर्वज्ञो न जानासि परव्यथाम् । अतस्त्वमेकजनुषि स्वमेव विस्मरिष्यसि ॥२६॥
इत्युक्त्वा च महासाध्वी निपत्य चरणे हरेः । भृशं रुरोद शोकार्ता विललाप मुहुर्मुहुः ॥२७॥
तस्याश्च करुणां दृष्ट्वा करुणामयसागरः । नयेन तां बोधयितुमुवाच कमलापतिः ॥२८॥

श्रीभगवानुवाच

तपस्त्वया कृतं साध्वि मदर्थे भारते चिरम् । त्वदर्थे शङ्खचूडश्च चकार सुचिरं तपः ॥२९॥
कृत्वा त्वां कामिनीं कामी विजहार च तत्फलात् । अधुना दातुमुचितं तवैव तपसः फलम् ॥३०॥
इदं शरीरं त्यक्त्वा च दिव्यं देहं विधाय च । रासे मे रमया सार्धं त्वं रमासदृशी भव ॥३१॥
इयं तनुर्नदीरूपा गण्डकीति च विश्रुता । पूता सुपुण्यदा नृणां पुण्या भवतु भारते ॥३२॥
तव केशसमूहाश्च पुण्यवृक्षा भवन्त्विति । तुलसीकेशसंभूता तुलसीति च विश्रुता ॥३३॥
त्रिलोकेषु च पुष्पानां पत्राणां देवपूजने । प्रधानरूपा तुलसी भविष्यति वरानने ॥३४॥
स्वर्गे मर्त्ये च पाताले वैकुण्ठे मम संनिधौ । भवन्तु तुलसीवृक्षा वराः पुष्पेषु सुन्दरि ॥३५॥
गोलोके विरजातीरे रासे वृन्दावने भुवि । भाण्डीरे चम्पकवने रम्ये चन्दनकानने ॥३६॥
माधवीकेतकीकुन्दमल्लिकामालतीवने । भवन्तु तरवस्तत्र पुष्पस्थानेषु पुण्यदाः ॥३७॥
तुलसीतरुमूले च पुण्यदेशे सुपुण्यदे । अधिष्ठानं तु तीर्थानां सर्वेषां च भविष्यति ॥३८॥

नहीं। तुमने मात्र दूसरे के लिए अपने निरपराध भक्त को क्यों मार डाला? तुम सर्वात्मा एवं सर्वज्ञ हो, फिर भी दूसरे की व्यथा को नहीं जानते हो इसीलिए एक जन्म में तुम अपने को हीं भूल जाओगे ॥२३॥ इतना कहकर वह महासती भगवान् के चरणों में गिरकर रोने लगी और शोकपीड़ित होने से बार-बार विलाप करने लगी ।२७॥ भगवान् कमलापति ने उसकी करुणा देखकर उसे नीति से समझाते हुए कहा ॥२८॥

श्रीभगवान् बोले—सती ! तुमने मेरे लिए भारत वर्ष में चिरकाल तक तप किया था, और तुम्हारे लिए शंखचूड ने अति चिरकाल तक तप किया था ॥२९॥ उसके फलस्वरूप उस कामी ने तुम्हें पाया। अब मैंने तुम्हारे तप का फल देना उचित समझा, अतः तुम इस शरीर को छोड़कर दिव्य देह धारण करके मेरी रासलीला में लक्ष्मी के साथ लक्ष्मी के समान ही बनकर रहो ॥३०-३१॥ और यह तुम्हारा शरीर 'गण्डकी' नामक नदी का रूप धारण करेगा, जो भारत में मनुष्यों के लिए पवित्र, अतिपुण्यप्रद और पुण्यस्वरूपा होगी। तुम्हारे केश-समूह पुण्यात्मक वृक्ष होंगे। तुलसी के केश से उत्पन्न होने के कारण उस वृक्ष का नाम 'तुलसी' होगा ॥३२-३३॥ सुमुखी ! तीनों लोकों में देव-पूजन के उपयोग में आने वाले सभी पुष्पों और पत्रों में तुलसी प्रधान होगी ॥३४॥ सुन्दरी ! तुलसी वृक्ष समस्त पुष्प-वृक्षों में श्रेष्ठ होगा। वह स्वर्ग, मृत्यु, पाताल और मेरे वैकुण्ठ लोक में तथा गोलोक में विरजा के तट पर, वृन्दावन के रास में, पृथिवी पर, भाण्डीर वन में, चम्पक वन में, रम्य चन्दन वन में एवं माधवी, केतकी, कुन्द, मल्लिका तथा मालती के वनों में तथा पुष्प-स्थानों में तुलसी के पुण्यदायक वृक्ष उत्पन्न होंगे ॥३५-३७॥ पवित्र देश तथा अत्यन्त पुण्यदायक स्थान में उत्पन्न तुलसी वृक्ष के मूल भाग में सभी तीर्थों का निवास होगा ॥३८॥

तत्रैव सर्वदेवानां समधिष्ठानमेव च। तुलसीपत्रपतनं प्रायो यश्च वरानने ।।३९।।
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। तुलसीपत्रतोयेन योऽभिषेकं समाचरेत् ।।४०।।
सुधाघटसहस्रेण सा तुष्टिर्न भवेत्समा। या च तुष्टिर्भवेन्नृणां तुलसीपत्रदानतः ।।४१।।
गवामयुतदानेन यत्फलं लभते नरः। तुलसीपत्रदानेन तत्फलं कार्तिके सति ।।४२।।
तुलसीपत्रतोयं च मृत्युकाले च यो लभेत्। स मुच्यते सर्वपापाद्विष्णुलोकं स गच्छति ।४३।।
नित्यं यस्तुलसीतोयं भुङ्क्ते भक्त्या च यो नरः। स एव जीवन्मुक्तश्च गङ्गास्नानफलं लभेत् ।।४४।।
नित्यं यस्तुलसीं दत्त्वा पूजयेन्मां च मानवः। लक्षाश्वमेधजं पुण्यं लभते नात्र संशयः ।।४५।।
तुलसीं स्वकरे धृत्वा देहे धृत्वा च मानवः। प्राणांस्त्यजति तीर्थेषु विष्णुलोकं स गच्छति ।।४६।।
तुलसीकाष्ठनिर्माणमालां गृह्णाति यो नरः। पदे पदेऽश्वमेधस्य लभते निश्चितं फलम् ।।४७।।
तुलसीं स्वकरे धृत्वा स्वीकारं यो न रक्षति। स याति कालसूत्रं च यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।।४८।।
करोति मिथ्या शपथं तुलस्या यो हि मानवः। स याति कुम्भीपाकं च यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।।४९।।
तुलसीतोयकणिकां मृत्युकाले च यो लभेत्। रत्नयानं समारुह्य वैकुण्ठं स प्रयाति च ।।५०।।
पूर्णिमायाममायां च द्वादश्यां रविसंक्रमे। तैलाभ्यङ्गे चास्नाते च मध्याह्ने निशि संध्ययोः ।।५१।।
आशौचेऽशुचिकाले वा रात्रिवासान्विते नराः। तुलसीं ये च छिन्दन्ति ते छिन्दन्ति हरेः शिरः ।।५२।।

सुमुखी! वहाँ समस्त देवों का अधिष्ठान रहता है, जहाँ प्रायः तुलसी-पत्र गिर जाता है ।।३९।। तुलसीपत्र के जल से जिसने अभिषेक कर लिया, वह मानों समस्त तीर्थों में स्नान कर चुका और समस्त यज्ञों की दीक्षा से दीक्षित हो गया ।।४०।। भगवान् विष्णु को अमृत भरे सहस्रों घड़ों से उतनी तुष्टि नहीं होती, जितनी मनुष्यों के तुलसीपत्र-दान से होती है ।।४१।। दश सहस्र गायें दान करने से मनुष्य को जो फल प्राप्त होता है, वह केवल तुलसीपत्र दान करने से प्राप्त हो जाता है ।।४२।। मृत्यु के समय जो तुलसी पत्र समेत जल का पान करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक को जाता है ।।४३।। जो मनुष्य नित्य तुलसीपत्र समेत जल का भक्तिपूर्वक पान करता है, वह जीवन्मुक्त होता है और गंगा स्नान का फल प्राप्त करता है ।।४४।। जो मनुष्य मुझे नित्य तुलसी दान करते हुए मेरी अर्चना करता है, उसे लाख अश्वमेध के पुण्य फल प्राप्त होते हैं, इसमें संशय नहीं ।।४५।। जो मनुष्य तीर्थों में जाकर अपने हाथ और देह पर तुलसी रख कर प्राण परित्याग करता है, वह विष्णुलोक में चला जाता है ।।४६।। तुलसी के काष्ठ की माला धारण करनेवाला मनुष्य पग-पग पर अश्वमेध यज्ञ का भागी होता है, इसमें संशय नहीं ।।४७।। हाथ में तुलसी लेकर स्वीकार किये गये वचन का पालन न करनेवाला मनुष्य चन्द्र-सूर्य के समय तक कालसूत्र में रहता है ।।४८।। तुलसी रखकर लिये हुए शपथ को मिथ्या करने वाला मनुष्य चौदहों इन्द्रों के समय तक कुम्भीपाक नरक में पड़ा रहता है ।।४९।। मृत्यु के समय तुलसी-जल का कण भी प्राप्त करनेवाला मनुष्य रत्न निर्मित यान पर बैठकर वैकुण्ठ को जाता है ।।५०।। पूर्णिमा, अमावास्या, द्वादशी तथा सूर्य की संक्रान्ति के दिन, तेल लगाकर, मध्याह्नकाल, रात्रि और दोनों संध्याओं में तथा अशौच के समय, बिना नहाये-धोये अथवा रात के वस्त्र पहने हुए जो तुलसीपत्र तोड़ते हैं, वे मानों भगवान् विष्णु का शिरश्छेदन करते हैं ।।५१-५२।। तीन

त्रिरात्रं तुलसीपत्रं शुद्धं पर्युषितं सति। श्राद्धे व्रते वा दाने वा प्रतिष्ठायां सुरार्चने ॥५३॥
भूगतं तोयपतितं यद्दत्तं विष्णवे सति। शुद्धं तु तुलसीपत्रं क्षालनादन्यकर्मणि ॥५४॥
वृक्षाधिष्ठात्री देवी या गोलोके च निरामये। कृष्णेन सार्धं रहसि नित्यं क्रीडां करिष्यति ॥५५॥
नद्यधिष्ठातृदेवी या भारते च सुपुण्यदा। लवणोदस्य पत्नी च मदंशस्य भविष्यति ॥५६॥
त्वं च स्वयं महासाध्वि वैकुण्ठे मम संनिधौ। रमासमा च रासे च भविष्यसि न संशयः ॥५७॥
अहं च शैलरूपेण गण्डकीतीरसंनिधौ। अधिष्ठानं करिष्यामि भारते तव शापतः ॥५८॥
वज्रकीटाश्च कृमयो वज्रदंष्ट्राश्च तत्र वै। तच्छिलाकुहरे चक्रं करिष्यन्ति मदीयकम् ॥५९॥
एकद्वारे चतुश्चक्रं वनमालाविभूषितम्। नवीननीरदश्यामं लक्ष्मीनारायणाभिधम् ॥६०॥
एकद्वारे चतुश्चक्रं नवीननीरदोपमम्। लक्ष्मीजनार्दनं ज्ञेयं रहितं वनमालया ॥६१॥
द्वारद्वये चतुश्चक्रं गोष्पदेन समन्वितम्। रघुनाथाभिधं ज्ञेयं रहितं वनमालया ॥६२॥
अतिक्षुद्रं द्विचक्रं च नवीनजलदप्रभम्। दधिवामनाभिधं ज्ञेयं गृहिणां च सुखप्रदम् ॥६३॥
अतिक्षुद्रं द्विचक्रं च[1] वनमालाविभूषितम्। विज्ञेयं श्रीधरं देवं श्रीप्रदं गृहिणां सदा ॥६४॥
स्थूलं च वर्तुलाकारं रहितं वनमालया। द्विचक्रं स्फुटमत्यन्तं ज्ञेयं दामोदराभिधम् ॥६५॥

रात का बासी तुलसीपत्र श्राद्ध, व्रत, दान,-प्रतिष्ठा और देव-पूजन में शुद्ध माना जाता है ॥५३॥ पृथ्वी पर गिरा हुआ, जल में गिरा हुआ तथा श्रीविष्णु को अर्पित तुलसी-पत्र धो देने पर अन्य कर्म के लिए शुद्ध हो जाता है ॥५४॥ (हे तुलसी !) तुम वृक्षों की अधिष्ठात्री देवी होकर निरामय गोलोक में भगवान् श्रीकृष्ण के साथ एकान्त में नित्य क्रीड़ा करोगी। और तुम हरि के अंश से भारतवर्ष में नदी की अधिष्ठात्री देवी होकर मेरे अंश से उत्पन्न लवण (खार) सागर की अतिपुण्यदा पत्नी बनोगी ॥५५-५६॥ स्वयं तुम महासाध्वी तुलसी रूप से वैकुण्ठ में मेरे निकट निवास करोगी। वहाँ तुम लक्ष्मी के समान सम्मानित होगी। गोलोक के रास में भी तुम उपस्थित रहोगी, इसमें संशय नहीं ॥५७॥ तुम्हारे शाप के कारण भारत में मैं गण्डकी नदी के तट पर पर्वत रूप में रहूँगा ॥५८॥ वहाँ रहने वाले वज्रोपम कीड़े अपने वज्रसदृश दाँतों से काट-काटकर उस पाषाण में मेरे चक्र का चिह्न करेंगे ॥५९॥ उनमें से एक द्वारवाले चार चक्रवाले, वनमाला से विभूषित और नूतन मेघ के समान श्यामल वर्ण-वाले (शालग्राम) का नाम 'लक्ष्मीनारायण' होगा ॥६०॥ एक द्वार, चार चक्र, नवीन मेघ के समान श्यामल और वनमाला रहित (शालग्राम) का नाम लक्ष्मी-जनार्दन होगा ॥६१॥ दो द्वार, चार चक्र, गोपद चिह्न तथा वनमाला से रहित का नाम 'रघुनाथ' होगा ॥६२॥ बहुत छोटे, दो चक्र वाले तथा नूतन मेघ की प्रभा से पूर्ण का नाम 'दधिवामन' होगा, जो गृहस्थ मनुष्यों को सुख प्रदान करेंगे ॥६३॥ बहुत छोटे, दो चक्रवाले और वनमाला से विभूषित का नाम 'श्रीधर' देव होगा, जो गृही जनों को सदा श्री प्रदान करेंगे ॥६४॥ स्थूल, गोल, वनमाला से रहित और दो अत्यन्त स्पष्ट चक्रवाले शालग्राम का नाम 'दामोदर' होगा ॥६५॥ जो मध्यम श्रेणी का वर्तुलाकार हो, जिसमें दो चक्र तथा तरकस और बाण के चिह्न शोभा पाते हों, एवं जिसके ऊपर बाण से कट जाने का चिह्न

---

[1] क. च नवीननीरदोपमम् ।

मध्यमं वर्तुलाकारं द्विचक्रं बाणविक्षतम्। रणरामाभिधं ज्ञेयं शरतूणसमन्वितम्॥६६॥
मध्यमं सप्तचक्रं च च्छत्रतूणसमन्वितम्। राजराजेश्वरं ज्ञेयं राजसंपत्प्रदं नृणाम्॥६७॥
द्विसप्तचक्रं स्थूलं च नवीनजलदप्रभम्। अनन्ताख्यं च विज्ञेयं चतुर्वर्गफलप्रदम्॥६८॥
चक्राकारं द्विचक्रं च सश्रीकं जलदप्रभम्। सगोपदं मध्यमं च विज्ञेयं मधुसूदनम्॥६९॥
सुदर्शनं चैकचक्रं गुप्तचक्रं गदाधरम्। द्विचक्रं हयवक्त्राभं हयग्रीवं प्रकीर्तितम्॥७०॥
अतीव विस्तृतास्यं च द्विचक्रं विकटं सति। नरसिंहाभिधं ज्ञेयं सद्यो वैराग्यदं नृणाम्॥७१॥
द्विचक्रं विस्तृतास्यं च वनमालासमन्वितम्। लक्ष्मीनृसिंहं विज्ञेयं गृहिणां सुखदं सदा॥७२॥
द्वारदेशे द्विचक्रं च सश्रीकं च समं स्फुटम्। वासुदेवं च विज्ञेयं सर्वकामफलप्रदम्॥७३॥
प्रद्युम्नं सूक्ष्मचक्रं च नवीननीरदप्रभम्। सुषिरे छिद्रबहुलं गृहिणां च सुखप्रदम्॥७४॥
द्वे चक्रे चैकलग्ने च पृष्ठे यत्र तु पुष्कलम्। संकर्षणं तु विज्ञेयं सुखदं गृहिणां सदा॥७५॥
अनिरुद्धं तु पीताभं वर्तुलं चातिशोभनम्। सुखप्रदं गृहस्थानां प्रवदन्ति मनीषिणः॥७६॥
शालग्रामशिला यत्र तत्र संनिहितो हरिः। तत्रैव लक्ष्मीर्वसति सर्वतीर्थसमन्विता॥७७॥
यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च। तानि सर्वाणि नश्यन्ति शालग्रामशिलार्चनात्॥७८॥

हो, उस पाषाण को रण में शोभा पानेवाले 'रणराम' की संज्ञा देनी चाहिए॥६६॥ मध्यम, सात चक्रों, छत्र और तरकस से युक्त का नाम 'राजराजेश्वर' समझना चाहिए। वे मनुष्यों को राज्य-सम्पत्ति प्रदान करते हैं॥६७॥ चौदह चक्रवाले स्थूल और नवीनमेघ के समान कान्तिवाले (शालग्राम) का नाम 'अनन्त' समझना चाहिए, जो (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूप) चार प्रकार के फल प्रदान करते हैं॥६८॥ चक्राकार, द्विचक्री, श्री से सम्पन्न, मेघ समान प्रभापूर्ण और गो-खुर के चिह्न से सुशोभित मध्यम श्रेणी के पाषाण को 'मधुसूदन' कहते हैं॥६९॥ उसी भाँति एक चक्र को 'सुदर्शन', गुप्त चक्र को 'गदाधर' तथा दो चक्र और अश्वमुख की आकृति से युक्त पाषाण को 'हयग्रीव' कहते हैं॥७०॥ अति विस्तृत मुखवाले, दो चक्रवाले और विकट आकार वाले को 'नरसिंह' कहते हैं, जो मनुष्यों को तुरन्त वैराग्य प्रदान करते हैं॥७१॥ दो चक्र, विस्तृत मुख एवं वनमाला से विभूषित पाषाण का नाम 'लक्ष्मीनृसिंह' है, जो गृही जनों को सदैव सुख प्रदान करते हैं॥७२॥ जो द्वार देश में दो चक्रों से युक्त हो, तथा जिस पर श्री का चिह्न स्पष्ट दिखाई पड़े, ऐसे पाषाण को भगवान् 'वासुदेव' का विग्रह मानना चाहिए। वह विग्रह सकल कामना-दायक है॥७३॥ सूक्ष्मचक्र, नये मेघ की भाँति प्रभा तथा छोटे-छोटे छिद्रों से सुशोभित पाषाण प्रद्युम्न का स्वरूप है, जो गृही मनुष्यों को सुख प्रदान करता है॥७४॥ जिसमें दो चक्र सटे हुए हों और जिसका पृष्ठभाग विशाल हो, उसे 'संकर्षण' कहते हैं, जो गृहस्थों को सदा सुखी रखता है॥७५॥ पीत वर्ण, गोलाकार और अति सुन्दर पाषाण को मनीषी लोग 'अनिरुद्ध' कहते हैं, जो गृहस्थों को सुख प्रदान करते रहते हैं॥७६॥ शालग्राम की शिला जहाँ रहती है, वहाँ भगवान् विष्णु और समस्त तीर्थों समेत लक्ष्मी निवास करती हैं॥७७॥ शालग्राम शिला के पूजन करने से ब्रह्महत्या आदि जितने पाप हैं, सभी नष्ट हो जाते हैं॥७८॥ शालग्राम के छत्राकार होने से राज्य,

छत्राकारे भवेद्राज्यं वर्तुले च महाश्रियः। दुःखं च शकटाकारे शूलाग्रे मरणं ध्रुवम् ॥७९॥
विकृतास्ये च दारिद्र्यं पिङ्गले हानिरेव च। लग्नचक्रे भवेद्व्याधिर्विदीर्णे मरणं ध्रुवम् ॥८०॥
व्रतं दानं प्रतिष्ठा च श्राद्धं च देवपूजनम्। शालग्रामशिलायाश्चैवाधिष्ठानात्प्रशस्तकम् ॥८१॥
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। शालग्रामशिलातोयैर्योऽभिषेकं समाचरेत् ॥८२॥
सर्वदानेषु यत्पुण्यं प्रादक्षिण्ये भुवो यथा। सर्वयज्ञेषु तीर्थेषु व्रतेष्वनशनेषु च ॥८३॥
तस्य स्पर्शं च वाञ्छन्ति तीर्थानि निखिलानि च। जीवन्मुक्तो महापूतो भवेदेव न संशयः ॥८४॥
पाठे चतुर्णां वेदानां तपसां करणे सति। तत्पुण्यं लभते नूनं शालग्रामशिलार्चनात् ॥८५॥
शालग्रामशिलातोयं नित्यं भुङ्क्ते च यो नरः। सुरेप्सितं प्रसादं च जन्ममृत्युजराहरम् ॥८६॥
तस्य स्पर्शं च वाञ्छन्ति तीर्थानि निखिलानि च। जीवन्मुक्तो महापूतोऽप्यन्ते याति हरेः पदम् ॥८७॥
तत्रैव हरिणा सार्धमसंख्यं प्राकृतं लयम्। पश्यत्येव हि दास्ये च निर्मुक्तो दास्यकर्मणि ॥८८॥
यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च। तं च दृष्ट्वा भिया यान्ति वैनतेयमिवोरगाः ॥८९॥
तत्पादपद्मरजसा सद्यः पूता वसुंधरा। पुंसां लक्षं तत्पितॄणां निस्तारस्तस्य जन्मनः ॥९०॥
शालग्रामशिलातोयं मृत्युकाले च यो लभेत्। सर्वपापाद्विनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥९१॥
निर्वाणमुक्तिं लभते कर्मभोगाद्विमुच्यते। विष्णुपादे प्रलीनश्च भविष्यति न संशयः ॥९२॥

गोलाकार होने से महाश्री, शकट (गाड़ी) के आकार से दुःख एवं शूल के अग्रभाग के समान होने से निश्चित ही मृत्यु की प्राप्ति होती है ॥७९॥ विकृत मुख होने से दारिद्र्य, पिंगलवर्ण से हानि, भग्नचक्र से व्याधि, और फटे हुए शालग्राम से निश्चित मरण की प्राप्ति होती है ॥८०॥ व्रत, दान, प्रतिष्ठा, श्राद्ध तथा देवपूजन आदि में शालग्राम शिला के रहने ही से अमित फल मिलता है ॥८१॥ शालग्राम शिला के जल से जो अभिषेक करता है वह समस्त तीर्थों में स्नान कर लेता है और समस्त यज्ञों की दीक्षाओं से दीक्षित हो जाता है ॥८२॥ सकल पदार्थ दान करने और पृथ्वी की प्रदक्षिणा करने का पुण्य उसे प्राप्त होता है तथा सभी यज्ञों, तीर्थों, व्रतों और तपस्याओं के फल का वह अधिकारी समझा जाता है क्योंकि वह जीवन्मुक्त और महापूत होता है इसमें संशय नहीं ॥८३-८४॥ चारों वेदों के पाठ और तप करने का समस्त पुण्य शालग्राम शिला की पूजा करने से निश्चित प्राप्त होता है ॥८५॥ जो नित्य शालग्राम शिला के जल का पान करता है तथा देवों के प्रिय प्रसाद (को भोग लगाकर) भक्षण करता है, वह जन्म-मरण और बुढ़ापे से रहित हो जाता है। उसके स्पर्श के लिए समस्त तीर्थ लालायित रहते हैं। अतः जीवन्मुक्त और अति पवित्र होकर अन्त में विष्णुधाम को जाता है ॥८६-८७॥ वहाँ भगवान् के साथ रहकर उनकी सेवा करता हुआ असंख्य प्राकृत लयों को देखता है ॥८८॥ उसे देखकर ब्रह्महत्या आदि समस्त पाप, उसी तरह भाग खड़े होते हैं जैसे गरुड़ को देखकर साँप पलायन कर जाते हैं ॥८९॥ उसके चरण-कमल के रज से वसुन्धरा सद्यः पवित्र होती है। उसके पितरों की लाख पीढ़ियाँ तर जाती हैं ॥९०॥ मरण-समय शालग्राम शिला का जल प्राप्त करनेवाला मनुष्य समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक को जाता है ॥९१॥ अनन्तर कर्मफल-भोग से मुक्त होकर वह निर्वाण प्राप्त करता है और भगवान् विष्णु के चरण में अत्यन्त लीन हो जाता है, इसमें संशय नहीं ॥९२॥

शालग्रामशिलां धृत्वा मिथ्यावादं वदेत्तु यः। स याति कूर्मदंष्ट्रं च यावद्वै ब्रह्मणो वयः ॥९३॥
शालग्रामशिलां स्पृष्टा स्वीकारं यो न पालयेत्। स प्रयात्यसिपत्रं च लक्षमन्वन्तराधिकम्[1] ॥९४॥
तुलसीपत्रविच्छेदं शालग्रामे करोति यः। तस्य जन्मान्तरे काले स्त्रीविच्छेदो भविष्यति ॥९५॥
तुलसीपत्रविच्छेदं शङ्खे यो हि करोति च। भार्याहीनो भवेत्सोऽपि रोगी च सप्तजन्मसु ॥९६॥
शालग्रामं च तुलसीं शङ्खमेकत्र एव च। यो रक्षति महाज्ञानी स भवेच्छ्रीहरिप्रियः ॥९७॥
सकृदेव हि यो यस्यां वीर्याधानं करोति यः। तद्विच्छेदे तस्य दुःखं भवेदेव परस्परम् ॥९८॥
त्वं प्रिया शङ्खचूडस्य चैकमन्वन्तरावधि। शङ्खेन सार्धं त्वद्भेदः केवलं दुःखदस्तव ॥९९॥
इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तां च विरराम च नारद। सा च देहं परित्यज्य दिव्यरूपं दधार ह ॥१००॥
यथा श्रीश्च तथा सा चाप्युवास हरिवक्षसि। प्रजगाम तया सार्धं वैकुण्ठं कमलापतिः ॥१०१॥
लक्ष्मी सरस्वती गङ्गा तुलसी चापि नारद। हरेः प्रियाश्चतस्रश्च बभूवुरीश्वरस्य च ॥१०२॥
सद्यस्तद्देहजाता च बभूव गण्डकी नदी। हरेरंशेन शैलश्च तत्तीरे पुण्यदो नृणाम् ॥१०३॥
कुर्वन्ति तत्र कीटाश्च शिलां बहुविधां मुने। जले पतन्ति या याश्च जलदाभाश्च निश्चितम् ॥१०४॥

इसीलिए शालग्राम शिला रखकर जो मिथ्या भाषण करता है, उसे ब्रह्मा की आयु पर्यन्त कूर्मदंष्ट्र नामक नरक में रहना पड़ता है ॥९३॥ शालग्राम शिला का स्पर्श करके की गई प्रतिज्ञा का पालन न करने वाला मनुष्य एक लाख मन्वन्तरों के समय तक असिपत्र नामक नरक में रहता है ॥९४॥ जो शालग्राम शिला पर से तुलसीपत्र का विच्छेद (वियोग) करता है, जन्मान्तर में उसे स्त्री से वियोग होता है ॥९५॥ इसी प्रकार जो शंख पर से तुलसीपत्र को हटाता है, वह भार्याहीन तथा सात जन्म तक रोगी होता है ॥९६॥ शालग्राम, तुलसी और शंख इन्हें एकत्र रखकर जो इन (तुलसी-पत्रादि) की रक्षा करता है, वह महाज्ञानी एवं श्री हरि का प्रिय पात्र होता है ॥९७॥ जो पुरुष जिस स्त्री में एकबार भी वीर्याधान कर देता है उसके लिए उसका वियोग परस्पर दुःखदायी होता है ॥९८॥ तुम तो एक मन्वन्तर तक शंखचूड की प्रेयसी बनकर रही हो, इसलिए शंख के साथ तुम्हारा वियोग करना केवल तुम्हें दुःख देना है ॥९९॥ भगवान् श्री विष्णु सादर इतना कह कर मौन हो गये और उसने देह त्याग कर दिव्य रूप धारण किया ॥१००॥ श्री की भाँति वह भी भगवान् के वक्षःस्थल पर निवास करने लगी और कमलापति भगवान् उसके साथ वैकुण्ठ चले गये ॥१०१॥ नारद ! इस प्रकार ईश्वर विष्णु की लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा और तुलसी ये चार स्त्रियाँ हुईं ॥१०२॥ तुलसी की देह से उसी क्षण गण्डकी नदी उत्पन्न हो गयी। उसी के तट पर भगवान् के अंश से उत्पन्न शैल अवस्थित है, जो मनुष्यों के लिए पुण्यदायक है ॥१०३॥ मुने ! वहाँ कीड़े (पाषाण को काट-काटकर) अनेक प्रकार की शिलायें बना डालते हैं। मेघ के समान कान्तिवाली वे शिलाएँ (कट-कट कर) निश्चित ही जल में गिरती हैं ॥१०४॥

---

१ क. ०रावधि ।

स्थलस्था: पिङ्गला ज्ञेयाश्चोपतापाद्धरेरिति। इत्येवं कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१०५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० तुलस्यु० एकविंशोऽध्याय: ॥२१॥

अथ द्वाविंशोऽध्याय:

नारद उवाच

तुलसी च जगत्पूज्या [1]पूता नारायणप्रिया। तस्याः पूजाविधानं च स्तोत्रं किं न श्रुतं मया ॥१॥
केन पूज्या स्तुता केन पुरा प्रथमतो मुने। तव पूज्या सा बभूव केन वा वद मामहो ॥२॥

सूत उवाच

नारदस्य वच: श्रुत्वा प्रहस्य[2] गरुडध्वज:। कथां कथितुमारेभे पुण्यरूपां पुरातनीम् ॥३॥

श्रीनारायण उवाच

हरि: संप्राप्य तुलसीं रेमे च रमया सह। रमासमां तां सौभाग्यां चकार गौरवेण च ॥४॥
सेहे लक्ष्मीश्च गङ्गा च तस्याश्च नवसंगमम्। सौभाग्यं गौरवं कोपान्न सेहे च सरस्वती ॥५॥

श्री हरि के ताप से स्थलवर्ती शिलायें ललाई लिये भूरे रंग की होती हैं। इस भाँति मैंने सब कुछ बता दिया है अब और क्या सुनना चाहते हो? ॥१०५॥

श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराण के प्रकृति-खण्ड में तुलसी-उपाख्यान नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२१॥

अध्याय २२

तुलसी-पूजन आदि का वर्णन

नारद बोले—नारायण की प्रेयसी होने के नाते तुलसी जगत्पूज्या और परम पवित्र हैं। उनकी पूजा का विधान और स्तोत्र मैंने नहीं सुना है, अत: बताने की कृपा करें ॥१॥ मुने ! पूर्वकाल में तुलसी की पूजा एवं स्तुति किन लोगों ने की थी ? और वे आपके लिए भी पूजनीया कैसे हो गईं ? यह सब बातें मुझे बतायें ॥२॥

सूत बोले—नारद की बातें सुनकर भगवान् नारायण ने हँसकर पुण्यस्वरूपा उस प्राचीन कथा को कहना आरम्भ किया ॥३॥

नारायण बोले—विष्णु ने तुलसी को पाकर उस रमणी के साथ रमण किया और लक्ष्मी के समान उसे आदरपूर्वक सौभाग्य प्रदान किया ॥४॥ तुलसी के नवसंगम, सौभाग्य और गौरव का सहन तो लक्ष्मी एवं गंगा ने हर्षपूर्वक कर लिया किन्तु कोप के कारण सरस्वती न सह सकीं ॥५॥ अनन्तर भगवान् के समीप ही दोनों में

---

१ क. पूज्या नारायणस्य च। २ क. ०स्य मुनिपुंगव।

सा तां जघान कलहे मानिनी हरिसंनिधौ। व्रीडया स्वापमानाच्च साऽन्तर्धानं चकार ह॥६॥
सर्वसिद्धेश्वरी देवी ज्ञानिनी सिद्धयोगिनी। बभूव दर्शनं कोपात्सर्वत्र च हरेरहो॥७॥
हरिर्न दृष्ट्वा तुलसीं बोधयित्वा सरस्वतीम्। तदनुज्ञां गृहीत्वा च जगाम तुलसीवनम्॥८॥
तत्र गत्वा च स्नात्वा च तुलस्या तुलसीं सतीम्। पूजयामास ध्यात्वा तां स्तोत्रं भक्त्या चकार ह॥९॥
लक्ष्मीं मायाकामवाणीबीजपूर्वं दशाक्षरम्। वृन्दावनीति ङेन्तं च वह्निजायान्तमेव च॥१०॥
श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं वृन्दावन्यै स्वाहा॥
अनेन कल्पतरुणा मन्त्रराजेन नारद। पूजयेच्च विधानेन सर्वसिद्धिं लभेन्नरः॥११॥
घृतदीपेन धूपेन सिन्दूरचन्दनेन च। नैवेद्येन च पुष्पेण चोपहारेण नारद॥१२॥
हरिस्तोत्रेण तुष्टा सा चाऽऽविर्भूय महीरुहात्। प्रपन्ना चरणाम्भोजे जगाम शरणं शुचिः॥१३॥
वरं तस्यै ददौ विष्णुर्जगत्पूज्या भवेति च। अहं त्वां च धरिष्यामि स्वमूर्ध्नि वक्षसीति च॥१४॥
सर्वे त्वां धारयिष्यन्ति स्वयं मूर्ध्नि सुरादयः। इत्युक्त्वा तां गृहीत्वा च प्रययौ स्वालयं विभुः॥१५॥

नारद उवाच

किं ध्यानं स्तवनं किंवा किंवा पूजाविधिक्रमः। तुलस्याश्च महाभाग तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥१६॥

कलह आरम्भ हुआ, जिसमें सरस्वती ने तुलसी पर आक्रमण कर दिया। लज्जा और अपने अपमान के कारण तुलसी अन्तर्हित हो गईं॥६॥ ज्ञानसम्पन्ना देवी तुलसी सिद्धयोगिनी एवं सर्वसिद्धेश्वरी थीं। अतः उन्होंने कोप के कारण श्रीहरि की आँखों से अपने को सर्वत्र ओझल कर लिया॥७॥ भगवान् ने सरस्वती को भलीभाँति समझाया और तुलसी को वहाँ न देखकर सरस्वती की आज्ञा से तुलसीवन की यात्रा की॥८॥ वहाँ जाकर स्नान करके भक्तिपूर्वक तुलसी की पूजा की और उसका ध्यान करते हुए स्तोत्र का निर्माण किया॥९॥ लक्ष्मीबीज (श्रीं) मायाबीज (ह्रीं) कामबीज (क्लीं) और वाणीबीज (ऐं)—इन बीजों का पूर्व में उच्चारण करके 'वृन्दावनी' इस शब्द के अन्त में (ङे) विभक्ति लगायी और अन्त में वह्निजाया (स्वाहा) का प्रयोग करके 'श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं वृन्दावन्यै स्वाहा' इस दशाक्षर मंत्र का उच्चारण किया। नारद! यह मंत्र राजकल्पतरु है। विधान से इसके द्वारा पूजन करने से मनुष्य को समस्त सिद्धि प्राप्त होती है॥१०-११॥ नारद! घृत का दीपक, धूप, सिन्दूर, चन्दन, नैवेद्य और पुष्पोपहार द्वारा पूजन करने के उपरान्त भगवान् ने तुलसी की स्तुति की। अनन्तर वे प्रसन्न होकर उसी (तुलसी) वृक्ष से प्रकट हो गयीं एवं भगवान् के चरण-कमल की शरणागत बनीं॥१२-१३॥ भगवान् विष्णु ने उन्हें वरदान दिया 'तुम जगत् की पूज्या होगी और मैं तुम्हें अपने शिर तथा वक्षःस्थल पर धारण करूँगा एवं सभी देवगण स्वयं तुम्हें अपने शिर पर धारण करेंगे।' इतना कहकर भगवान् तुलसी को साथ लेकर चले गये॥१४-१५॥

नारद बोले—महाभाग! तुलसी का ध्यान, स्तुति और पूजाविधान बताने की कृपा करें॥१६॥

श्रीनारायण उवाच

अन्तर्हितायां तस्यां च गत्वा च तुलसीवनम्। हरिः संपूज्य तुष्टाव तुलसीं विरहातुरः॥१७॥

श्रीभगवानुवाच

वृन्दारूपाश्च वृक्षाश्च यदैकत्र भवन्ति च। विदुर्बुधास्तेन वृन्दा मत्प्रियां तां भजाम्यहम्॥१८॥
पुरा बभूव या देवी ह्यादौ वृन्दावने वने। तेन वृन्दावनी ख्याता सुभगां तां भजाम्यहम्॥१९॥
असंख्येषु च विश्वेषु पूजिता या निरन्तरम्। तेन विश्वपूजिताख्यां जगत्पूज्यां भजाम्यहम्॥२०॥
असंख्यानि च विश्वानि पवित्राणि यया सदा। तां विश्वपावनीं देवीं विरहेण स्मराम्यहम्॥२१॥
देवा न तुष्टाः पुष्पाणां समूहेन यया विना। तां पुष्पसारां शुद्धां च द्रष्टुमिच्छामि शोकतः॥२२॥
विश्वे यत्प्राप्तिमात्रेण भक्त्यानन्दो भवेद्ध्रुवम्। नन्दिनी तेन विख्याता सा प्रीता भविता हि मे॥२३॥
यस्या देव्यास्तुला नास्ति विश्वेषु निखिलेषु च। तुलसी तेन विख्याता तां यामि शरणं प्रियाम्॥२४॥
कृष्णजीवनरूपा या शश्वत्प्रियतमा सती। तेन कृष्णजीवनीति मम रक्षतु जीवनम्॥२५॥
इत्येवं स्तवनं कृत्वा तत्र तस्थौ रमापतिः। ददर्श तुलसीं साक्षात्पादपद्मे नतां सतीम्॥२६॥
रुदतीमभिमानेन मानिनीं मानपूजिताम्। प्रियां दृष्ट्वा प्रियः शीघ्रं वासयामास वक्षसि॥२७॥
भारत्याज्ञां गृहीत्वा च स्वालयं च ययौ हरिः। भारत्या सह तत्प्रीतिं कारयामास सत्वरम्॥२८॥

नारायण बोले—तुलसी के छिप जाने पर भगवान् ने तुलसी वन में जाकर वियोग दुःख का अनुभव करते हुए, तुलसी की पूजा एवं स्तुति की॥१७॥

भगवान् बोले—जब वृन्दा (तुलसी रूप) वृक्ष एकत्र हो जाते हैं, तब मेरी प्रेयसी (तुलसी) को बुध लोग 'वृन्दा' कहते हैं। मैं उसकी सेवा कर रहा हूँ॥१८॥ पूर्व समय में जो देवी वृन्दावन में प्रकट हुई थी, अतएव जिसे 'वृन्दावनी' कहते हैं, उस सौभाग्यवती देवी की मैं सेवा कर रहा हूँ॥१९॥ असंख्य विश्वों में वह निरन्तर पूजित होती हैं, इसीलिए उसे 'विश्वपूजिता' कहते हैं। मैं उस जगत्पूज्या की पूजा कर रहा हूँ॥२०॥ जिससे असंख्य विश्व सदैव पवित्र रहते हैं, उस 'विश्वपावनी' देवी का मैं विरहातुर होकर स्मरण करता हूँ॥२१॥ जिसके बिना देवगण पुष्पसमूह पाने पर भी प्रसन्न नहीं होते हैं, उस शुद्ध, पुण्यसार को मैं देखने के लिए चिन्तित हूँ॥२२॥ विश्व में जिसकी प्राप्ति मात्र से भक्त परम आनन्दित हो जाता है, इसीलिए 'नन्दिनी' नाम से जिसकी प्रसिद्धि है, वह भगवती तुलसी मुझ पर प्रसन्न हो जाय॥२३॥ प्रिये! समस्त विश्व में जिसकी तुलना नहीं हैं; इसीलिए जिसका नाम 'तुलसी' पड़ा है, उस प्रिया की शरण में मैं जाता हूँ॥२४॥ जो कृष्ण की जीवनस्वरूपा एवं नित्य प्रियतमा है, वह 'कृष्णजीवनी' देवी मेरे जीवन की रक्षा करे॥२५॥ इस प्रकार उनकी स्तुति करके भगवान् वहीं अवस्थित हो गए। अनन्तर उन्होंने अपने चरण-कमलों में विनम्र भाव से स्थित तुलसी को देखा, जो अभिमान वश रुदन कर रही थी। उस मानिनी एवं मानपूजिता प्रिया को देखकर भगवान् ने तुरन्त उन्हें अपनी छाती से लगा लिया॥२६-२७॥ फिर सरस्वती की आज्ञा से वे तुलसी को अपने भवन में ले गये और उसी समय सरस्वती के साथ उनकी मैत्री करायी॥२८॥ अनन्तर विष्णु ने उन्हें वरदान दिया—देवि! तुम विश्वपूज्या होकर सबकी

वरं विष्णुर्ददौ तस्यै विश्वपूज्या भवेति च। शिरोधार्या च सर्वेषां वन्द्या मान्या ममेति च ॥२९॥
विष्णोर्वरेण सा देवी परितुष्टा बभूव ह। सरस्वती तामाश्लिष्य वासयामास सन्निधौ ॥३०॥
लक्ष्मीर्गङ्गा सस्मिता तां समाश्लिष्य च नारद। गृहं प्रवेशयामास विनयेन सतीं मुदा ॥३१॥
वृन्दां वृन्दावनीं विश्वपावनीं विश्वपूजिताम्। पुष्पसारां नन्दिनीं च तुलसीं कृष्णजीवनीम् ॥३२॥
एतन्नामाष्टकं चैतत्स्तोत्रं नामार्थसंयुतम्। यः पठेत्तां च संपूज्य सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥३३॥
कार्तिकीपूर्णिमायां च तुलस्या जन्म मङ्गलम्। तत्र तस्याश्च पूजा च विहिता हरिणा पुरा ॥३४॥
तस्यां यः पूजयेत्तां च भक्त्या च विश्वपावनीम्। सर्वपापाद्विनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥३५॥
कार्तिके तुलसीपत्रं विष्णवे यो ददाति च। गवामयुतदानस्य फलमाप्नोति निश्चितम् ॥३६॥
अपुत्रो लभते पुत्रं प्रियाहीनो लभेत्प्रियाम्। बन्धुहीनो लभेद्बन्धुं स्तोत्रस्मरणमात्रतः ॥३७॥
रोगी प्रमुच्यते रोगाद्बद्धो मुच्येत बन्धनात्। भयान्मुच्येत भीतस्तु[1] पापान्मुच्येत पातकी ॥३८॥
इत्येवं कथितं स्तोत्रं ध्यानं पूजाविधिं शृणु। त्वमेव देव जानासि काण्वशाखोक्तमेव च ॥३९॥
यद्वक्ष्ये पूजयेत्तां च भक्त्या चाऽऽवाहनं विना। उपचारैः षोडशभिर्ध्यानं पातकनाशनम् ॥४०॥
तुलसीं पुष्पसारां च सतीं पूज्यां मनोहराम्। कृत्स्नपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निशिखोपमाम् ॥४१॥

शिरोधार्या और मेरी भी वन्द्या मान्या होओ ॥२९॥ इस प्रकार भगवान् विष्णु के वरदान को पाकर वह देवी अत्यन्त प्रसन्न हुईं और सरस्वती ने उनका आलिंगन कर अपने समीप बैठाया ॥३०॥ नारद! लक्ष्मी और गंगा ने भी मन्द मुसकान के साथ विनयपूर्वक साध्वीं तुलसी का हाथ पकड़कर उन्हें भवन में प्रवेश कराया ॥३१॥ वृन्दा, वृन्दावनी, विश्वपावनी, विश्वपूजिता, पुष्पसारा, नन्दिनी, तुलसी और कृष्णजीवनी—ये तुलसी देवी के आठ नाम हैं। यह सार्थक नामावली स्तोत्र के रूप में परिणत है। जो पुरुष तुलसी की पूजा करके इस नामाष्टक का पाठ करता है, उसे अश्वमेध का फल प्राप्त होता है ॥३२-३३॥ कार्तिक की पूर्णिमा के दिन तुलसी का मांगलिक जन्म हुआ था और भगवान् ने सर्वप्रथम उसी दिन उनकी पूजा की थी ॥३४॥ अतः जो उस पूर्णिमा के दिन भक्ति-पूर्वक उस विश्वपावनी की पूजा करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक चला जाता है ॥३५॥ कार्तिक मास में जो भगवान् विष्णु को तुलसी-पत्र अर्पित करता है, उसे निश्चित रूप से दश सहस्र गोदान का फल प्राप्त होता है ॥३६॥ उनके स्तोत्र के स्मरण मात्र से पुत्रहीन को पुत्र, स्त्रीरहित को स्त्री और बन्धुहीन को बन्धु की प्राप्ति होती है ॥३७॥ एवं रोगी रोग से मुक्त हो जाता है, बंधन में पड़ा हुआ व्यक्ति बन्धन-मुक्त होता है और भयभीत प्राणी भय से तथा पातकी पातक से मुक्त होता है ॥३८॥ इस प्रकार स्तोत्र तुम्हें बता दिया, अब उनका ध्यान और पूजाविधान बता रहा हूँ, सुनो! तुम भी तो वेद जानते ही हो—उसमें काण्वशाखोक्त विधान तुम्हें बता रहा हूँ—बिना आवाहन किये ही तुलसीवृक्ष में भक्तिपूर्वक षोडशोपचार द्वारा तुलसी की पूजा करके उनका पापनाशक ध्यान इस प्रकार करना चाहिए—तुलसी, पुष्पों का साररूप है। वह सती, पूज्य, मनोहर और समस्त पापरूप ईंधन को जलाने के लिए प्रज्वलित अग्निरूप है ॥३९-४१॥ मुने! इस देवी की तुलना पुष्पों अथवा

---

१ क. ०स्तु मुच्येताऽऽपन्न आपदः ।

पुष्पेषु तुलनाऽप्यस्या [1]नासीद्देवीषु वा मुने। पवित्ररूपा सर्वासु तुलसी सा च कीर्तिता ॥४२॥
शिरोधार्यां च सर्वेषामीप्सितां विश्वपावनीम्। जीवन्मुक्तां मुक्तिदां च भजे तां हरिभक्तिदाम् ॥४३॥
इति ध्यात्वा च संपूज्य स्तुत्वा च प्रणमेद्बुधः। उक्तं तुलस्युपाख्यानं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥४४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० तुलस्युपाख्यानं
नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

नारद उवाच

तुलस्युपाख्यानमिदं श्रुतमीश सुधोपमम्। यत्तु सावित्र्युपाख्यानं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१॥
पुरा येन समुद्भूता सा श्रुता च श्रुतिप्रसूः। केन वा पूजिता देवी प्रथमे कैश्च वाऽपरे ॥२॥

श्रीनारायण उवाच

ब्रह्मणा वेदजननी पूजिता प्रथमे मुने। द्वितीये च देवगणैस्तत्पश्चाद्विदुषां गणैः ॥३॥

देवियों से नहीं हो सकी। इसीलिए उन सबमें पवित्ररूपा इन देवी को तुलसी कहा गया ॥४२॥ यह सभी लोगों की शिरोधार्या, अभीष्ट, विश्व को पावन करने वाली, जीवन्मुक्त, मुक्ति और हरिभक्ति देनेवाली हैं, अतः मैं उनकी सेवा कर रहा हूँ। इस प्रकार उनका ध्यान, पूजन और स्तुति करके विद्वान् लोग उन्हें प्रणाम करें। तुलसी का उपाख्यान तुम्हें सुना दिया है। अब और क्या सुनना चाहते हो? ॥४३-४४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में तुलसी-उपाख्यान वर्णन नामक
बाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२॥

अध्याय २३

सावित्री देवी की पूजा-स्तुति का विधान

नारद बोले—प्रभो! तुलसी का यह सुधा-मधुर उपाख्यान तो मैंने आपके द्वारा सुन लिया। अब आप सावित्री का उपाख्यान सुनाने की कृपा करें ॥१॥ देवी सावित्री वेदों की जननी हैं, ऐसा सुना गया है। ये देवी सर्वप्रथम किससे प्रकट हुईं? सबसे पहले इनकी किसने पूजा की और बाद में किन लोगों ने? ॥२॥

नारायण बोले—मुने! सर्वप्रथम ब्रह्मा ने उस वेदमाता की पूजा की, अनन्तर देवों ने और उनके पश्चात् विद्वज्जनों ने उनकी पूजा की ॥३॥

---

१ क. नास्ति वेदेषु वा।

तथा चाश्वपतिः पूर्वं पूजयामास भारते। तत्पश्चात्पूजयामासुर्वर्णाश्चत्वार एव च॥४॥

नारद उवाच

को वा सोऽश्वपतिर्ब्रह्मन्केन वा तेन पूजिता। सर्वपूज्या च सावित्री तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥५॥

श्रीनारायण उवाच

मद्रदेशे महाराजो बभूवाश्वपतिर्मुने। वैरिणां बलहर्ता च मित्राणां दुःखनाशनः॥६॥
आसीत्तस्य महाराज्ञी[1] महिषी धर्मचारिणी। मालतीति च साऽऽख्याता यथा लक्ष्मीर्गदाभृतः॥७॥
सा च राज्ञी महासाध्वी वसिष्ठस्योपदेशतः। चकाराऽऽराधनं भक्त्या सावित्र्याश्चैव नारद॥८॥
प्रत्यादेशं न सा प्राप महिषी न ददर्श ताम्। गृहं जगाम सा दुःखाद्धृदयेन विदूयता॥९॥
राजा तां दुःखितां दृष्ट्वा बोधयित्वा नयेन वै। सावित्र्यास्तपसे भक्त्या जगाम पुष्करं तदा॥१०॥
तपश्चचार तत्रैव संयतः शतवत्सरम्। न ददर्श च सावित्रीं प्रत्यादेशो बभूव ह॥११॥
शुश्रावाऽऽकाशवाणीं च नृपेन्द्रश्चाशरीरिणीम्। गायत्रीदशलक्षं च जपं कुर्विति नारद॥१२॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र प्राजगाम पराशरः। प्रणनाम नृपस्तं च मुनिर्नृपमुवाच ह॥१३॥

भारतवर्ष में सर्वप्रथम राजा अश्वपति ने उनकी पूजा की। उनके उपरान्त (ब्राह्मणादि) चारों वर्ण उनकी आराधना में संलग्न हो गए॥४॥

नारद बोले—ब्रह्मन्! वह अश्वपति कौन है? और कैसे उसने सर्वपूज्या सावित्री की प्रथम पूजा की? मुझे बताने की कृपा करें॥५॥

नारायण बोले—मुने! महाराज अश्वपति मद्रदेश के अधीश्वर थे। वैरियों के बल के एवं मित्रों के दुःख के नाशक थे॥६॥ उनकी धर्मशीला महारानी का नाम मालती था। वह महाराज के साथ उसी तरह शोभा पाती थी जैसे विष्णु के साथ लक्ष्मी॥७॥ नारद! उस महासती रानी ने वसिष्ठ जी के उपदेश से भक्तिपूर्वक सावित्री की आराधना की॥८॥ किन्तु उस महारानी को देवी की ओर से न तो प्रत्यादेश मिला और न देवी ने साक्षात् दर्शन ही दिये। अतः हार्दिक दुःख प्रकट करती हुई वह अपने घर चली गयी॥९॥ राजा ने उसे दुःखी देखकर नीति द्वारा समझाया और स्वयं उसी सावित्री की भक्तिपूर्वक तपस्या करने के लिए पुष्कर चला गया॥१०॥ वहाँ पहुँचकर उसने संयत होकर सौ वर्षों तक तप किया, उससे उसे सावित्री का दर्शन तो नहीं हुआ, किन्तु आदेश प्राप्त हो गया॥११॥ नारद! उस समय राजा ने आकाशवाणी सुनी कि—'गायत्री का दस लाख जप करो।'॥१२॥ उसी बीच वहाँ पराशर मुनि आ गये। राजा ने उन्हें प्रणाम किया। अनंतर महर्षि ने राजा से कहा॥१३॥

---

१ ख. महाराज्ञो।

पराशर उवाच

सकृज्जपश्च गायत्र्याः पापं दिनकृतं हरेत्। दशधा प्रजपो नृणां दिवाराज्यघमेव च ॥१४॥
शतधा च जपाच्चैवं पापं मासार्जितं परम्। सहस्रधा जपाच्चैवं कल्मषं वत्सरार्जितम् ॥१५॥
लक्षं जन्मकृतं पापं दशलक्षं त्रिजन्मनः। सर्वजन्मकृतं पापं शतलक्षे विनश्यति ॥१६॥
करोति मुक्तिं विप्राणां जपो दशगुणस्ततः। करं सर्पफणाकारं कृत्वा[1] तद्रन्ध्रमुद्रितम् ॥१७॥
आनम्रमूर्धमचलं प्रजपेत्प्राङ्मुखो द्विजः। अनामिकामध्यदेशादधो वामक्रमेण च ॥१८॥
तर्जनीमूलपर्यन्तं जपस्यैष क्रमः करे। [2]श्वेतपङ्कजबीजानां स्फाटिकानां च संस्कृताम् ॥१९॥
कृत्वा वा मालिकां राजञ्जपेत्तीर्थे सुरालये। संस्थाप्य मालामश्वत्थपत्रसप्तसु संयतः ॥२०॥
कृत्वा गोरोचनाक्तां च गायत्र्या स्नापयेत्सुधीः। गायत्रीशतकं तस्यां जपेच्च विधिपूर्वकम् ॥२१॥
अथवा पञ्चगव्येन स्नाता माला च संस्कृता। अथ गङ्गोदकेनैव स्नाता वाऽतिसुसंस्कृता ॥२२॥
एवंक्रमेण राजर्षे दशलक्षं जपं कुरु। साक्षाद्द्रक्ष्यसि[?] सावित्रीं त्रिजन्मपातकक्षयात् ॥२३॥
नित्यं नित्यं त्रिसंध्यं च करिष्यसि दिने दिने। मध्याह्ने चापि सायाह्ने प्रातरेव शुचिः सदा ॥२४॥

पराशर बोले—गायत्री का एक बार जप करने से दिनभर का पाप नष्ट होता है, और दश बार जप करने से मनुष्यों के दिनरात्रि के पाप नष्ट होते हैं॥१४ ॥ सौ बार जप करने से एक मास का पाप और सहस्र बार जप करने से एक वर्ष का पाप विनष्ट होता है॥१५॥ एक लाख जप करने से जन्मभर का पाप और दस लाख जप करने से तीन जन्मों के पाप नष्ट होते हैं। उसी प्रकार सौ लाख (१ करोड़) जप करने से सभी जन्मों के पाप नष्ट होते हैं॥१६॥ और उससे दस गुने जप करने से ब्राह्मणों को मुक्ति प्राप्त होती है। द्विज को चाहिए कि वह पूर्वाभिमुख होकर बैठे। हाथ को सर्प के फण के समान कर ले। वह हाथ ऊर्ध्वमुख हो और ऊपर की ओर से कुछ-कुछ मुद्रित (मुँदा सा) रहे। उसे किंचित् झुकाये हुए स्थिर रखे। अनामिका के बिचले पर्व से आरंभ करके नीचे और बायें होते हुए तर्जनी के मूल भाग तक अंगूठे से स्पर्शपूर्वक जप करे। हाथ में जप करने का यही क्रम है। राजन्! श्वेत कमल के बीज या स्फटिक की संस्कारयुक्त माला बनाकर तीर्थ या देवालय में जप करे। उसके पूर्व पीपल के सात पत्तों पर माला को संयतभाव से रखकर उसे गोरोचन से अनुलिप्त करे। फिर गायत्री के उच्चारणपूर्वक विद्वान् माला को स्नान कराये। अनंतर विधिपूर्वक उस पर गायत्री का सौ बार जप करे॥१७-२१॥ अथवा पञ्चगव्य द्वारा गंगाजल से स्नान करा देने पर भी माला का संस्कार हो जाता है॥२२॥ राजर्षे! इस क्रम से गायत्री का दस लाख जप करने से तीनों जन्मों के पातक विनष्ट हो जायेंगे जिससे तुम्हें सावित्री का साक्षात् दर्शन प्राप्त होगा॥२३॥ इस प्रकार प्रतिदिन नित्य तीनों—प्रातः मध्याह्न और सायं—संध्याओं में पवित्र होकर सदैव जप करना चाहिए॥२४॥ क्योंकि संध्या (कर्म) रहित पुरुष अपवित्र होता है, इसीलिए सभी कर्मों में वह अयोग्य

---

१ ख. ०त्वा तु ऊर्ध्वमु०। २ क. ०तचम्पकवर्णाभां स्फा ०।

संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु। यदह्ना कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत् ॥२५॥
नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्। स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः॥२६॥
यावज्जीवनपर्यन्तं यस्त्रिसंध्यं करोति च। स च सूर्यसमो विप्रस्तेजसा तपसा सदा॥२७॥
तत्पादपद्मरजसा सद्यः पूता वसुंधरा। जीवन्मुक्तः स तेजस्वी संध्यापूतो हि यो द्विजः॥२८॥
तीर्थानि च पवित्राणि तस्य स्पर्शनमात्रतः। ततः पापानि यान्त्येव वैनतेयादिवोरगाः॥२९॥
न गृह्णन्ति सुराः पूजां पितरः पिण्डतर्पणम्। स्वेच्छया चरतश्चैव त्रिसंध्यरहितस्य च॥३०॥
विष्णुमन्त्रविहीनश्च त्रिसंध्यरहितो द्विजः। एकादशीविहीनश्च विषहीनो यथोरगः॥३१॥
हरेरनैवेद्यभोजी धावको वृषवाहकः। शूद्रान्नभोजी विप्रश्च विषहीनो यथोरगः॥३२॥
शवदाही च शूद्राणां यो विप्रो वृषलीपतिः। शूद्राणां सूपकारश्च विषहीनो यथोरगः॥३३॥
शूद्राणां च प्रतिग्राही शूद्रयाजी च यो द्विजः। असिजीवी मषीजिवी विषहीनो यथोरगः॥३४॥
यो विप्रोऽवीरान्नभोजी ऋतुस्नातान्नभोजकः। भगजीवी वार्धुषिको विषहीनो यथोरगः॥३५॥
यः कन्याविक्रयी विप्रो यो हरेर्नामविक्रयी। यो विद्याविक्रयी भूप विषहीनो यथोरगः॥३६॥
सूर्योदये योऽन्नभोजी मत्स्यभोजी च यो द्विजः। शिलापूजादिरहितो विषहीनो यथोरगः॥३७॥

कहा जाता है। और दिन में वह जो कर्म करता है, उसका फल भी उसे नहीं होता है॥२५॥ जो ब्राह्मण प्रातःकाल और सायंकाल में संध्योपासन नहीं करता है, वह समस्त ब्राह्मणोचित कर्मों से बहिष्कृत कर देने योग्य है॥२६॥ जीवनपर्यन्त त्रिकाल संध्या करने वाले द्विज में तप के प्रभाव से सूर्य के समान तेजस्विता आ जाती है॥२७॥ ऐसे द्विज के चरणकमल के रज से यह पृथ्वी सद्यः पवित्र हो जाती है। संध्या से पवित्र होनेवाला ब्राह्मण तेजस्वी और जीवन्मुक्त होता है॥२८॥ उसके स्पर्शमात्र से तीर्थ पवित्र हो जाते हैं। उसके समस्त पाप उसी तरह भाग खड़े होते हैं जैसे गरुड़ के भय से साँप॥२९॥ तीनों संध्याओं से रहित तथा मनमाना आचरण करने वाले द्विज की पूजा देवगण स्वीकार नहीं करते हैं और पितर लोग उसके द्वारा किये गये पिण्ड और तर्पण नहीं स्वीकारते हैं। ॥३०॥ भगवान् विष्णु के मन्त्र (दीक्षा) से हीन, तीनों संध्याओं से रहित और एकादशी व्रत न करने वाला ब्राह्मण विषहीन सर्प की भाँति होता है॥३१॥ भगवान् विष्णु को बिना समर्पण किए भोजन करनेवाला, धावक (हरकारा), बैल की सवारी करने वाला और शूद्रों का अन्न खाने वाला ब्राह्मण विषहीन सर्प की भाँति होता है॥३२॥ शूद्रों के शवों को जलाने वाला, शूद्र जाति की स्त्री का पति और शूद्रों का भोजन बनाने वाला ब्राह्मण विषहीन सर्प की भाँति होता है॥३३॥ शूद्रों से दान लेने वाला, उनके यहाँ यज्ञ कराने वाला, असि (तलवार) से जीविका चलाने वाला और पटवारी का काम करने वाला ब्राह्मण विषहीन साँप के समान होता है॥३४॥ पतिपुत्रहीन विधवा स्त्री का अन्न खानेवाला, ऋतुस्नाता स्त्री का अन्न खानेवाला, स्त्री को व्यभिचारिणी बनाकर जीविका चलाने वाला एवं सूदखोर ब्राह्मण विषहीन साँप के समान होता है॥३५॥ राजन्! कन्याविक्रय, भगवान् के नाम का विक्रय और विद्याविक्रय करने वाला ब्राह्मण विषहीन साँप के समान होता है॥३६॥ सूर्य के उदय-काल में भोजन करने वाला, मछली खाने वाला और (शालग्राम) शिला की पूजा आदि से रहित ब्राह्मण विषहीन साँप के समान होता

इत्युक्त्वा च मुनिश्रेष्ठः सर्वं पूजाविधिक्रमम्। तमुवाच च सावित्र्या ध्यानादिकमभीप्सितम् ॥३८॥
दत्त्वा सर्वं नृपेन्द्राय प्रययौ स्वालयं मुनिः। राजा संपूज्य सावित्रीं ददर्श वरमाप च ॥३९॥

नारद उवाच

किंवा ध्यानं च सावित्र्याः किंवा पूजाविधानकम्। स्तोत्रं मन्त्रं च किं दत्त्वा प्रययौ स पराशरः ॥४०॥
नृपः केन विधानेन संपूज्य श्रुतिमातरम्। वरं च किंवा संप्राप वद सोऽश्वपतिर्नृपः ॥४१॥

श्रीनारायण उवाच

ज्येष्ठे [1]शुक्लत्रयोदश्यां शुद्धे काले च संयतः। व्रतमेतच्चतुर्दश्यां व्रती भक्त्या समाचरेत् ॥४२॥
व्रतं चतुर्दशाब्दं च द्विसप्तफलसंयुतम्। दत्त्वा द्विसप्तनैवेद्यं पुष्पधूपादिकं तथा ॥४३॥
वस्त्रं यज्ञोपवीतं च भोज्यं च विधिपूर्वकम्। संस्थाप्य मङ्गलघटं फलशाखासमन्वितम् ॥४४॥
गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम्। संपूज्य पूजयेदिष्टं घटे आवाहिते मुने ॥४५॥
शृणु ध्यानं च सावित्र्याश्चोक्तं माध्यंदिने च यत्। स्तोत्रं पूजाविधानं च मन्त्रं च सर्वकामदम् ॥४६॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभां ज्वलन्तीं ब्रह्मतेजसा। ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डसहस्रसमसुप्रभाम् ॥४७॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां रत्नभूषणभूषिताम्। वह्निशुद्धांशुकाधानां भक्तानुग्रहकारिकाम् ॥४८॥

है ॥३७॥ इतना कहकर मुनिश्रेष्ठ ने उन्हें समस्त पूजाविधान का क्रम और सावित्री के अभीष्ट ध्यान आदि बता दिये ॥३८॥ इस भाँति मुनि ने राजेन्द्र को सब कुछ देकर अपने घर की यात्रा की और अनन्तर राजा ने भी सावित्री की पूजा करके उनका दर्शन और वरदान प्राप्त किया ॥३९॥

नारद बोले—सावित्री का वह कौन ध्यान, कौन पूजाविधान और कौन स्तोत्र और कौन मंत्र हैं जिन्हें देकर पराशर चले गये ॥४०॥ राजा अश्वपति ने किस विधान से वेदमाता (सावित्री की) पूजा की और उसने कौन-सा वरदान प्राप्त किया ? बताने की कृपा करें ॥४१॥

नारायण बोले—ज्येष्ठ मास की कृष्ण त्रयोदशी तथा चतुर्दशी के दिन व्रत करके भक्तिपूर्वक व्रती को शुद्ध समय में भक्ति के साथ सावित्री की पूजा करनी चाहिए ॥४२॥ चौदह वर्ष तक इस व्रत का पालन करते हुए चौदह फल, चौदह नैवेद्य, पुष्प, धूपादि, वस्त्र, यज्ञोपवीत और भोज्य वस्तु समर्पित करना चाहिए। अनन्तर फल, पल्लव-युत मंगलकलश की स्थापना करके गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और पार्वती की पूजा करे। उस कलश पर अपनी इष्टदेवी की आवाहनपूर्वक अर्चना करे। हे मुने! यजुर्वेद की माध्यन्दिनी शाखा के अनुसार सावित्री का ध्यान, स्तोत्र, पूजाविधान और समस्त कामनाओं को सफल करने वाला मंत्र बता रहा हूँ, सुनो! ॥४३-४६॥ वह देवी तपाये हुए सुवर्ण की भाँति कान्ति वाली, ब्रह्मतेज से उद्दीप्त, ग्रीष्मकालीन मध्याह्न के सहस्रों सूर्य के समान अति-प्रभापूर्ण, मन्द मुसकान समेत प्रसन्न मुख, रत्नों के आभूषणों से भूषित, अग्निविशुद्ध वस्त्र धारण किये हुई, भक्त

---

1 ख. कृष्ण०।

सुखदां मुक्तिदां शान्तां कान्तां च जगतां विधेः। सर्वसंपत्स्वरूपां च प्रदात्रीं सर्वसंपदाम् ॥४९॥
वेदाधिष्ठातृदेवीं च वेदशास्त्रस्वरूपिणीम्। वेदे बीजस्वरूपां च भजे त्वां वेदमातरम् ॥५०॥
ध्यात्वा ध्यानेन चानेन दत्त्वा पुष्पं स्वमूर्धनि। पुनर्ध्यात्वा घटे भक्त्या देवीमावाहयेद्व्रती ॥५१॥
दत्त्वा षोडशोपचारं वेदोक्तमन्त्रपूर्वकम्। संपूज्य स्तुत्वा प्रणमेदेवं देवीं विधानतः ॥५२॥
आसनं पाद्यमर्घ्यं च स्नानीयं चानुलेपनम्। धूपं दीपं च नैवेद्यं ताम्बूलं शीतलं जलम् ॥५३॥
वसनं भूषणं माल्यं गन्धमाचमनीयकम्। मनोहरं सुतल्पं च देयान्येतानि षोडश ॥५४॥
दारुसारविकारं च हेमादिनिर्मितं च वा। देवाधारं पुण्यदं च मया[1] तुभ्यं निवेदितम् ॥५५॥
तीर्थोदकं च पाद्यं च पुण्यदं प्रीतिदं महत्। पूजाङ्गभूतं शुद्धं च मया भक्त्या निवेदितम् ॥५६॥
पवित्ररूपमर्घ्यं च दूर्वापुष्पाक्षतान्वितम्। पुण्यदं शङ्खतोयाक्तं मया तुभ्यं निवेदितम् ॥५७॥
सुगन्धि धात्रीतैलं च देहसौन्दर्यकारणम्। मया निवेदितं भक्त्या स्नानीयं प्रतिगृह्यताम् ॥५८॥
मलयाचलसंभूतं देहशोभाविवर्धनम्। सुगन्धयुक्तं सुखदं मया तुभ्यं निवेदितम् ॥५९॥
गन्धद्रव्योद्भवः पुण्यः प्रीतिदो दिव्यगन्धदः। मया निवेदितो भक्त्या धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥६०॥

के ऊपर अनुग्रह करने के लिए कातर रहने वाली, सुख देने वाली, मुक्ति देने वाली, शान्त और जगत्‌रचयिता की कान्ता हैं। वे समस्त सम्पत्तिरूपा, समस्तसम्पत्तिदायिनी, वेदों की अधिष्ठात्री देवी, वेदशास्त्रस्वरूपिणी एवं वेदों में बीजस्वरूप से रहने वाली हैं। उन वेदमाता की मैं सेवा कर रहा हूँ ॥४७-५०॥ इस प्रकार ध्यान करते हुए व्रती अपने शिर पर पुष्प रखकर पुनः ध्यान करे और उस कलश में भक्तिपूर्वक देवी का आवाहन करे ॥५१॥ पश्चात् वेदानुसार मंत्रों के उच्चारणपूर्वक सविधान षोडशोपचार द्वारा देवी की अर्चना और स्तुति करके उन्हें प्रणाम करे ॥५२॥ आसन, पाद्य, अर्घ्य और स्नान का जल, लेपन, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, शीतल जल, वस्त्र, भूषण, माला, चन्दन, आचमन, और अति मनोहर शय्या—ये देने योग्य सोलह उपचार हैं ॥५३-५४॥ निम्नलिखित मंत्रों से सोलहों वस्तुओं को अर्पित करना चाहिए—काष्ठ के सारतत्त्व से बना हुआ अथवा सुवर्ण आदि धातुओं का बना आसन, जो देव के बैठने योग्य एवं पुण्यप्रद है, मैं सदा के लिए समर्पित कर रहा हूँ ॥५५॥ तीर्थ जल को पाद्य (पादप्रक्षालन जल) के रूप में मैं भक्तिपूर्वक समर्पित कर रहा हूँ, जो पुण्यप्रद, महान् प्रीतिप्रद, पूजा का अंगभूत एवं शुद्ध है ॥५६॥ इस पवित्र अर्घ्य को, जो दूर्वा, पुष्प, अक्षत से युक्त, पुण्यप्रद और शंख-जल से मिश्रित है, आपको अर्पित कर रहा हूँ। ॥५७॥ सुगन्धित तथा देह-सौन्दर्यकारी उस आँवले के तेल को मैं भक्तिपूर्वक स्नान के हेतु आपको अर्पित कर रहा हूँ, स्वीकार करने की कृपा करें ॥५८॥ मलयाचल में उत्पन्न, देह की शोभा को बढ़ाने वाला, सुखद एवं सुगन्धि-युक्त चन्दन मैं आपको अर्पित कर रहा हूँ ॥५९॥ गन्धद्रव्यों से बना हुआ, पुण्यस्वरूप, प्रीति तथा दिव्य गन्ध प्रकट करने वाला भक्तिपूर्वक आपको अर्पित कर रहा हूँ, स्वीकार करने की कृपा करें ॥६०॥ जगत् के लिए दर्शनीय,

---

१ ख. नित्यं।

जगतां दर्शनीयं च दर्शनं दीप्तिकारणम्। अन्धकारध्वंसबीजं मया तुभ्यं निवेदितम् ॥६१॥
तुष्टिदं पुष्टिदं चैव प्रीतिदं क्षुद्विनाशनम्। पुण्यदं स्वादुरूपं च नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥६२॥
ताम्बूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम्। तुष्टिदं पुष्टिदं चैव मया भक्त्या निवेदितम् ॥६३॥
सुशीतलं वासितं च पिपासानाशकारणम्। जगतां जीवरूपं च जीवनं प्रतिगृह्यताम् ॥६४॥
देहशोभास्वरूपं च सभाशोभाविवर्धनम्। कार्पासजं च कृमिजं वसनं प्रतिगृह्यताम् ॥६५॥
काञ्चनादिभिराबद्धं श्रीयुक्तं श्रीकरं सदा। सुखदं पुण्यदं चैव भूषणं प्रतिगृह्यताम् ॥६६॥
नानापुष्पलताकीर्णं बहुभासा समन्वितम्। प्रीतिदं पुण्यदं चैव माल्यं वै प्रतिगृह्यताम् ॥६७॥
सर्वमङ्गलरूपश्च सर्वमङ्गलदो वरः। पुण्यप्रदश्च गन्धाढ्यो गन्धश्च प्रतिगृह्यताम् ॥६८॥
शुद्धं शुद्धिप्रदं चैव पुण्यदं प्रीतिदं महत्। रम्यमाचनीयं च मया दत्तं प्रगृह्यताम् ॥६९॥
रत्नसारादिनिर्माणं पुष्पचन्दनसंयुतम्। सुखदं पुण्यदं चैव सुतल्पं प्रतिगृह्यताम् ॥७०॥
नानावृक्षसमुद्भूतं नानारूपसमन्वितम्। फलस्वरूपं फलदं फलं च प्रतिगृह्यताम् ॥७१॥
सिन्दूरं च वरं रम्यं भालशोभाविवर्धनम्। भूषणं भूषणानां च सिन्दूरं प्रतिगृह्यताम् ॥७२॥
विशुद्धग्रन्थिसंयुक्तं पुण्यसूत्रविनिर्मितम्। पवित्रं वेदमन्त्रेण यज्ञसूत्रं च गृह्यताम् ॥७३॥
द्रव्याण्येतानि मूलेन दत्त्वा स्तोत्रं पठेत्सुधीः। ततः प्रणम्य विप्राय व्रती दद्याच्च दक्षिणाम् ॥७४॥

दृष्टि का सहायक, प्रकाश का कारण तथा अन्धकार-नाश का मूल कारण दीप मैं आपको अर्पित कर रहा हूँ ॥६१॥ तुष्टि, पुष्टि, एवं प्रीति प्रदान करनेवाला क्षुधाविनाशक, पुण्यप्रद तथा स्वादिष्ठ नैवेद्य अर्पित कर रहा हूँ, स्वीकार करने की कृपा करें॥६२॥ परमोत्तम, रमणीक, कर्पूरादि से सुवासित तथा तुष्टि-पुष्टि-दायक ताम्बूल भक्तिपूर्वक अर्पित कर रहा हूँ ॥६३॥ अत्यन्त शीतल, सुगन्धित, पिपासा-नाशक और जगत् का प्राणरूप (जल) अर्पित कर रहा हूँ, स्वीकार करने की कृपा करें॥६४॥ देह की शोभा का स्वरूप, सभा में शरीर की शोभा का वर्द्धक, सूती और रेशमी वस्त्र अर्पित कर रहा हूँ, स्वीकार करें॥६५॥ सुवर्ण आदि धातुओं का बना हुआ, शोभासम्पन्न, शोभाकारक, दा सुखद और पुण्यप्रद भूषण अर्पित कर रहा हूँ, स्वीकार करने की कृपा करें॥६६॥ अनेक पुष्पलताओं से विभू-स षित, अत्यन्त प्रकाशपूर्ण, प्रीतिदायक और पुण्यप्रद माला स्वीकार करने की कृपा करें॥६७॥ समस्त मंगल स्वरूप, समस्त मंगलों का प्रदाता, श्रेष्ठ, पुण्यप्रद एवं सुगन्धित गन्ध अर्पित कर रहा हूँ, स्वीकार करें॥६८॥ शुद्ध, शुद्धि-दाता, शुद्ध रहनेवालों के लिए महान् प्रीतिप्रद और स्वच्छ आचमनीय जल मैं समर्पित कर रहा हूँ, स्वीकार करने की कृपा करें॥६९॥ रत्न-सार आदि की बनी हुई, पुष्प चन्दन-युत, सुखद और पुण्यप्रद इस सुन्दर शय्या को अर्पित कर रहा हूँ, स्वीकार करें॥७०॥ अनेक वृक्षों से उत्पन्न, अनेक रूपवाले, फल (भोग) स्वरूप एवं फलप्रद यह फल स्वीकार करने की कृपा करें॥७१॥ श्रेष्ठ, रम्य, भाल की शोभा का वर्द्धक, भूषणों का पूरक यह सिन्दूर ग्रहण करने की कृपा करें॥७२॥ अति शुद्ध ग्रन्थियों (गांठों) से युक्त, पुण्यसूत्र से रचित, और वेदमन्त्र द्वारा पवित्र किया हुआ यह यज्ञोपवीत आप स्वीकार करने की कृपा करें॥७३॥ इस प्रकार मूलमन्त्र द्वारा इन वस्तुओं को अर्पित कर विद्वान् व्रती स्तोत्र का पाठ करे और अनन्तर प्रणाम करके ब्राह्मणों को दक्षिणा प्रदान करे॥७४॥ लक्ष्मी, माया

सावित्रीति चतुर्थ्यन्तं वह्निजायान्तमेव च। लक्ष्मीमायाकामपूर्वं मन्त्रमष्टाक्षरं विदुः॥७५॥
श्रीं ह्रीं क्लीं सावित्र्यै स्वाहा।
माध्यंदिनोक्तं स्तोत्रं च सर्ववाञ्छाफलप्रदम्। विप्रजीवनरूपं च निबोध कथयामि ते॥७६॥
कृष्णेन दत्ता सावित्री गोलोके ब्रह्मणे पुरा। न याति सा तेन सार्धं ब्रह्मलोकं तु नारद॥७७॥
ब्रह्मा कृष्णाज्ञया भक्त्या पर्यष्टौद्वेदमातरम्। तदा सा परितुष्टा च ब्रह्माणं चकमे सती॥७८॥

ब्रह्मोवाच

नारायणस्वरूपे च नारायणि सनातनि। नारायणात्समुद्भूते प्रसन्ना भव सुन्दरि॥७९॥
तेजः स्वरूपे परमे परमानन्दरूपिणि। द्विजातीनां जातिरूपे प्रसन्ना भव सुन्दरि॥८०॥
नित्ये नित्यप्रिये देवि नित्यानन्दस्वरूपिणि। सर्वमङ्गलरूपेण प्रसन्ना भव सुन्दरि॥८१॥
सर्वस्वरूपे विप्राणां मन्त्रसारे परात्परे। सुखदे मोक्षदे देवि प्रसन्ना भव सुन्दरि॥८२॥
विप्रपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निशिखोपमे। ब्रह्मतेजःप्रदे देवि प्रसन्ना भव सुन्दरि॥८३॥
कायेन मनसा वाचा यत्पापं कुरुते द्विजः। तत्ते स्मरणमात्रेण भस्मीभूतं भविष्यति॥८४॥
इत्युक्त्वा जगतां धाता तत्र तस्थौ च संसदि। सावित्री ब्रह्मणा सार्धं ब्रह्मलोकं जगाम सा॥८५॥

और काम में क्रमशः 'श्रीं ह्रीं क्लीं' बीज समेत सावित्री शब्द के चतुर्थ्यन्त पद (सावित्र्यै) के अन्त में अग्निस्त्री (स्वाहा) शब्द रख देने से 'श्रीं ह्रीं क्लीं सावित्र्यै स्वाहा' मंत्र बनता है। सावित्री के इसी अष्ठाक्षर मन्त्र को विद्वानों ने मूलमंत्र कहा है॥७५॥ अब माध्यन्दिनी शाखा के अनुसार सावित्री का सकलकामनादायक एवं ब्राह्मणों के लिए जीवनस्वरूप स्तोत्र बता रहा हूँ, सुनो॥७६॥ नारद! भगवान् श्री कृष्ण ने सर्वप्रथम गोलोक में ब्रह्मा को सावित्री प्रदान की थी किन्तु उसने उनके साथ ब्रह्मलोक जाना स्वीकार नहीं किया॥७७॥ पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा से ब्रह्मा ने जब भक्तिपूर्वक उस वेदमाता की स्तुति की, तब वह सती प्रसन्न होकर ब्रह्मा को चाहने लगी॥७८॥

ब्रह्मा बोले—हे नारायण स्वरूप वाली, हे नारायणि, हे सनातनि! तुम नारायण से उत्पन्न हुई हो! हे सुन्दरि! प्रसन्न हो जाओ॥७९॥ तुम परम तेजः स्वरूप और परमानन्द रूप हो, हे द्विजातियों की जातिस्वरूप सुन्दरि! प्रसन्न हो जाओ॥८०॥ हे देवि! तुम नित्या, नित्यप्रिया और नित्यानन्दस्वरूपा हो। समस्त मंगलरूपों से तुम प्रसन्न हो जाओ॥८१॥ हे देवि! तुम ब्राह्मणों के लिए सर्वस्व, मन्त्रों का साररूप और श्रेष्ठातिश्रेष्ठ हो। हे सुन्दरि! तुम सुख और मोक्ष प्रदान करती हो। मुझ पर प्रसन्न हो जाओ॥८२॥ हे देवि! ब्राह्मणों के पाप-रूपी ईंधन को जलाने के लिए तुम जलती हुई अग्निशिखा हो और ब्रह्मतेज प्रदायिनी हो। हे सुन्दरि! प्रसन्न हो जाओ॥८३॥ ब्राह्मण शरीर, मन एवं वाणी से जो पाप करता है, वह केवल तुम्हारे स्मरणमात्र से भस्म हो जाता है॥८४॥ जगत् के विधाता ब्रह्मा उस सभा में इस प्रकार कह कर चुप हो गये। अनन्तर सावित्री भी ब्रह्मा के

अनेन स्तवराजेन संस्तूयाश्वपतिर्नृपः । ददर्श तां च सावित्रीं वरं प्राप मनोगतम् ॥८६॥
स्तवराजमिदं पुण्यं[1] त्रिःसंध्यायां च यः पठेत् । पाठे चतुर्णां वेदानां यत्फलं तल्लभेद्ध्रुवम् ॥८७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० सावित्र्युपाख्याने सावित्रीस्तोत्रकथनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच

स्तुत्वा सोऽश्वपतिस्तेन संपूज्य विधिपूर्वकम् । ददर्श तत्र तां देवीं सहस्रार्कसमप्रभाम् ॥१॥
उवाच सा तं राजानं प्रसन्ना सस्मिता सती । यथा माता स्वपुत्रं च द्योतयन्ती दिशस्त्विषा ॥२॥

सावित्र्युवाच

जानामि ते महाराज यत्ते मनसि वर्तते । वाञ्छितं तव पत्न्याश्च सर्वं दास्यामि निश्चितम् ॥३॥

साथ ब्रह्मलोक को चली गयी ॥८५॥ इसी स्तवराज द्वारा अश्वपति ने सावित्री की स्तुति की । तब उन्हें उनका दर्शन प्राप्त हुआ और मनोनीत वरदान भी मिला ॥८६॥ जो तीनों संध्याओं में इस स्तवराज का पाठ करेगा, उसे निश्चित रूप से चारों वेदों के पाठ करने का फल मिलेगा ॥८७॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के सावित्री-उपाख्यान के प्रसंग में सावित्री स्तोत्र कथन नामक तेईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३॥

अध्याय २४

राजा अश्वपति द्वारा सावित्री की उपासना आदि

नारायण बोले—राजा अश्वपति ने उसी स्तवराज द्वारा स्तुति और विधिपूर्वक पूजन करके उन देवी का दर्शन किया, जो सहस्रसूर्य के समान प्रभापूर्ण थीं ॥१॥ साध्वी सावित्री अत्यन्त प्रसन्न होकर हँसती हुई राजा अश्वपति से इस प्रकार बोलीं, मानों माता अपने पुत्र से बात कर रही हो। उस समय देवी सावित्री की प्रभा से चारों दिशाएँ उद्भासित हो रही थीं ॥२॥

सावित्री बोली—महाराज तुम्हारे मन की बात मैं जानती हूँ। इसलिए तुम्हारा और तुम्हारी पत्नी का मनोरथ मैं निश्चित रूप से सफल करूँगी ॥३॥ तुम्हारी पतिव्रता रानी कन्या की अभिलाषा करती है और तुम

---

१ क ०ण्यं संध्यां कृत्वा च ।

साध्वी कन्याभिलाषं च करोति तव कामिनी। त्वं प्रार्थयसि पुत्रं च भविष्यति च ते क्रमात्॥४॥
इत्युक्त्वा सा महादेवी ब्रह्मलोकं जगाम ह। राजा जगाम स्वगृहं तत्कन्याऽऽदौ बभूव ह॥५॥
आराधनाच्च सावित्र्या बभूव कमला[1]कला। सावित्रीति च तन्नाम चकाराश्वपतिर्नृपः॥६॥
कालेन सा वर्धमाना बभूव च दिने दिने। रूपयौवनसंपन्ना शुक्ले चन्द्रकला यथा॥७॥
सा वरं वरयामास द्युमत्सेनात्मजं तदा। सावित्री[2] सत्यवन्तं च नानागुणसमन्वितम्॥८॥
राजा तस्मै ददौ तां च रत्नभूषणभूषिताम्। स च सार्धं कौतुकेन तां गृहीत्वा गृहं ययौ॥९॥
स च संवत्सरेऽतीते सत्यवान्सत्यविक्रमः। जगाम फलकाष्ठार्थं प्रहर्षं पितुराज्ञया॥१०॥
जगाम तत्र सावित्री तत्पश्चाद्दैवयोगतः। निपत्य वृक्षाद्दैवेन प्राणांस्तत्याज सत्यवान्॥११॥
यमस्तज्जीवपुरुषं बध्वाऽङ्गुष्ठसमं मुने। गृहीत्वा गमनं चक्रे तत्पश्चात्प्रययौ सती॥१२॥
पश्चात्तां सुन्दरीं दृष्ट्वा यमः संयमिनीपतिः। उवाच मधुरं साध्वीं साधूनां प्रवरो महान्॥१३॥

यम उवाच

अहो क्व यासि सावित्रि गृहीत्वा मानुषीं तनुम्। यदि यास्यसि कान्तेन सार्धं देहं तदा त्यज॥१४॥
गन्तुं मर्त्यो न शक्नोति गृहीत्वा पाञ्चभौतिकम्। देहं च यमलोकं च नश्वरं नश्वरः सदा॥१५॥

पुत्र की कामना कर रहे हो। क्रमशः दोनों बातें पूरी होंगी॥४॥ इतना कहकर वह महादेवी ब्रह्मलोक में चली गयीं और राजा भी अपने घर लौट आया। अनन्तर पहले कन्या का जन्म हुआ॥५॥ सावित्री की आराधना करने के नाते राजा अश्वपति के यहाँ जिस लक्ष्मी की कला का जन्म हुआ था राजा ने उसका नाम 'सावित्री' रखा॥६॥ शुक्ल पक्ष की चन्द्रकला की भाँति वह कन्या दिन-प्रतिदिन समयानुसार बढ़ने लगी और थोड़े ही समय में रूप-यौवनसम्पन्न हो गयी॥७॥ अनन्तर सावित्री ने (पतिरूप में) सत्यवान् का वरण किया, जो द्युमत्सेन का पुत्र, सत्य-निष्ठ एवं अनेक गुणों से सम्पन्न था॥८॥ राजा ने रत्नों के भूषणों से भूषित करके सावित्री सत्यवान् को समर्पित कर दी और वह भी उसे साथ लेकर अत्यन्त कौतुक से अपने घर चले गये॥९॥ एक वर्ष के अनन्तर सत्यनिष्ठ सत्यवान् ने पिता की आज्ञा से फल-मूल और ईंधन लाने के लिए हर्ष के साथ वन में प्रस्थान किया॥१०॥ दैवयोग से सावित्री भी उनके पीछे चल पड़ी। उधर दैवयोग से सत्यवान् वृक्ष से गिर पड़ा। उसके प्राण निकल गये॥११॥ मुने! यमराज ने उसके अंगुष्ठ-सदृश जीवात्मा को सूक्ष्म-शरीर के साथ बाँधकर यमपुरी के लिए प्रस्थान किया। उसके पीछे सती सावित्री भी चलने लगी। साधुप्रवर एवं संयमिनी पुरी के स्वामी यम ने उस सती सुन्दरी को पीछे आते देख कर उससे मधुर वाणी में कहा॥१२-१३॥

यम बोले—अहो सावित्री! तुम इस मानव शरीर से कहाँ जा रही हो? यदि तुम अपने कान्त के साथ जाना चाहती हो तो अपने शरीर का त्याग कर दो॥१४॥ इस पाञ्चभौतिक (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश) से बने इस नश्वर शरीर को लेकर कोई मनुष्य यमपुरी नहीं जा सकता है॥१५॥ इस भारत में तुम्हारे पति का समय

---

१ क. लया। २ क. सत्यवर्णं सत्यशीलं मा०।

पूर्णश्च भर्तुस्ते कालो ह्यभवद्भारते सति। स्वकर्मफलभोगार्थं सत्यवान्याति मद्गृहम्॥१६॥
कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते। सुखं दुःखं भयं शोकं कर्मणैव प्रपद्यते॥१७॥
कर्मणेन्द्रो भवेज्जीवो ब्रह्मपुत्रः स्वकर्मणा। स्वकर्मणा हरेर्दासो जन्मादिरहितो भवेत्॥१८॥
स्वकर्मणा सर्वसिद्धिममरत्वं लभेद्ध्रुवम्। लभेत्स्वकर्मणा विष्णोः सालोक्यादिचतुष्टयम्॥१९॥
कर्मणा ब्राह्मणत्वं च मुक्तत्वं च स्वकर्मणा। सुरत्वं मनुजत्वं च राजेन्द्रत्वं लभेन्नरः॥२०॥
कर्मणा च मुनीन्द्रत्वं तपस्वित्वं च कर्मणा। कर्मणा क्षत्रियत्वं च वैश्यत्वं च स्वकर्मणा॥२१॥
कर्मणा चैव शूद्रत्वमन्त्यजत्वं स्वकर्मणा। स्वकर्मणा च म्लेच्छत्वं लभते नात्र संशयः॥२२॥
स्वकर्मणा जङ्गमत्वं स्थावरत्वं स्वकर्मणा। स्वकर्मणा च शैलत्वं वृक्षत्वं च स्वकर्मणा॥२३॥
स्वकर्मणा पशुत्वं च पक्षित्वं च स्वकर्मणा। स्वकर्मणा क्षुद्रजन्तुः कृमित्वं च स्वकर्मणा॥२४॥
स्वकर्मणा च सर्पत्वं गन्धर्वत्वं स्वकर्मणा। स्वकर्मणा राक्षसत्वं किन्नरत्वं स्वकर्मणा॥२५॥
स्वकर्मणा च यक्षत्वं कूष्माण्डत्वं स्वकर्मणा। स्वकर्मणा च प्रेतत्वं वेतालत्वं स्वकर्मणा॥२६॥
भूतत्वं च पिशाचत्वं डाकिनीत्वं स्वकर्मणा। दैत्यत्वं दानवत्वं चाप्यसुरत्वं स्वकर्मणा॥२७॥
कर्मणा पुण्यवाञ्जीवो महापापी स्वकर्मणा। कर्मणा सुन्दरोऽरोगी महारोगी च कर्मणा॥२८॥
कर्मणा चाङ्गहीनत्वं बधिरश्च स्वकर्मणा। कर्मणा चान्धः काणश्च कुत्सितश्च स्वकर्मणा॥२९॥
कर्मणा नरकं यान्ति जीवाः स्वर्गं स्वकर्मणा। कर्मणा शक्रलोकं च सूर्यलोकं स्वकर्मणा॥३०॥

पूरा हो गया है। अतः कर्मफल भोग करने के लिए सत्यवान् मेरे लोक जा रहा है॥१६॥ क्योंकि कर्म से जीव उत्पन्न होता है और कर्म से ही उसकी मृत्यु भी होती है तथा सुख, दुःख, भय और शोक कर्म से ही उसे प्राप्त होते हैं॥१७॥ कर्म द्वारा ही यह जीव इन्द्र होता है, कर्म से ब्रह्मा का पुत्र होता है, और कर्म द्वारा भगवान का दास बनकर जन्म-मरण रहित होता है॥१८॥ अपने कर्म से ही समस्त सिद्धियाँ, अमरत्व की प्राप्ति होती है एवं कर्म द्वारा भगवान् विष्णु के सालोक्य आदि चारों मोक्ष प्राप्त होते हैं॥१९॥ मनुष्य कर्म से ब्राह्मणत्व, मुक्ति, देवत्व, मानवत्व और राजेन्द्रत्व प्राप्त करता है॥२०॥ कर्म से ही मुनीन्द्रत्व, तपस्वित्व, क्षत्रियत्व, वैश्यत्व, शूद्रत्व, चाण्डालत्व और म्लेच्छत्व की प्राप्ति होती है, इसमें सन्देह नहीं है॥२१-२२॥ मनुष्य अपने स्वकर्म से जंगम (चलने-फिरने वाला) और अपने कर्म से स्थावर (अचल) होता है। अपने कर्म से पर्वत, अपने कर्म से वृक्ष, अपने कर्म से पशु और अपने ही कर्म से पक्षी होता है॥२३½॥ अपने कर्म से क्षुद्र जन्तु, अपने कर्म से कीड़े, अपने कर्म से सर्प, अपने कर्म से गन्धर्व, अपने कर्म से राक्षस, अपने कर्म से किन्नर, अपने कर्म से यक्ष, अपने कर्म से कूष्माण्ड, अपने कर्म से वेताल, अपने कर्म से प्रेत तथा भूत, पिशाच एवं डाकिनी भी अपने कर्म से ही होता है॥२४-२६½॥ अपने कर्म से दैत्य, दानव, असुर और अपने ही कर्म से जीव पुण्यात्मा एवं महापापी भी होता है। कर्म से सुन्दर, नीरोग तथा कर्म से महारोगी, कर्म से अन्धा, काना और कर्म से कुत्सित (निन्दित) होता है॥२७-२९॥ कर्म से ही जीवगण नरक जाते हैं और कर्म से ही स्वर्ग। कर्म से इन्द्रलोक, कर्म से सूर्यलोक, कर्म से चन्द्रलोक, कर्म से अग्नि-लोक, कर्म से वायु-

कर्मणा चन्द्रलोकं च वह्निलोकं स्वकर्मणा। कर्मणा वायुलोकं च कर्मणा वरुणालयम् ॥३१॥
[1]तथा कुबेरलोकं च नरो याति स्वकर्मणा। कर्मणा ध्रुवलोकं च शिवलोकं स्वकर्मणा ॥३२॥
याति नक्षत्रलोकं च सत्यलोकं स्वकर्मणा। जनोलोकं तपोलोकं महर्लोकं स्वकर्मणा ॥३३॥
स्वकर्मणा च पातालं [2]ब्रह्मलोकं स्वकर्मणा। कर्मणा भारतं पुण्यं [3]सर्वेषामीप्सितं परम् ॥३४॥
कर्मणा याति वैकुण्ठं गोलोकं च निरामयम्। कर्मणा चिरजीवी च [4]क्षणायुश्च स्वकर्मणा ॥३५॥
कर्मणा कोटिकल्पायुः क्षीणायुश्च स्वकर्मणा। जीवसंसारमात्रायुर्गर्भे मृत्युः स्वकर्मणा ॥३६॥
इत्येवं कथितं सर्वं मया[5] तत्त्वं च सुन्दरि। कर्मणा ते मृतो भर्ता गच्छ वत्से यथासुखम् ॥३७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० सावित्र्यु० सावित्रीयमसंवादे
कर्मणः सर्वहेतुत्वप्रदर्शनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच

यमस्य वचनं श्रुत्वा सावित्री च पतिव्रता। तुष्टाव परया भक्त्या तमुवाच मनस्विनी ॥१॥

लोक तथा कर्म से वरुणलोक में जाता है ॥३०-३१॥ कर्म से नर कुबेरलोक, कर्म से ध्रुव लोक, कर्म से शिव लोक और कर्म से ही नक्षत्र लोक, सत्यलोक, जनलोक, तपोलोक तथा महर्लोक भी प्राप्त करता है ॥३२-३३॥ अपने कर्म से पाताल, अपने कर्म से ब्रह्मलोक और कर्म से पवित्र एवं सबके अत्यन्त अभिलषणीय भारतवर्ष में जन्म लेता है ॥३४॥ कर्म से वैकुण्ठ तथा निर्दोष गोलोक की प्राप्ति होती है। कर्म से चिरायु और कर्म से क्षणिक जीवन प्राप्त होता है ॥३५॥ कर्म से करोड़ों कल्प की आयु, कर्म से क्षीण आयु, कर्म से संसार में आने भर की आयु और कर्म से ही गर्भ में मृत्यु प्राप्त होती है ॥३६॥ हे सुन्दरि! इस प्रकार मैंने समस्त तत्त्वों को बता दिया है। वत्से! कर्म से ही तुम्हारा पति मृतक हुआ है। अतः सुखपूर्वक लौट जाओ ॥३७॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में कर्म का सर्वकारणत्व वर्णन
नामक चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४॥

अध्याय २५

यमराज से सावित्री का प्रश्न

श्रीनारायण बोले—यमराज की बातें सुनकर पतिव्रता एवं मनस्विनी सावित्री ने अनन्य भक्ति से उनकी स्तुति की और निवेदन किया ॥१॥

---

१ क. ब्रह्मकु०। २ क. रसातलं। ३ ख. ०र्वेप्सितवरप्रदम्। ४ क. च लक्षायु०। ५ क. महत्त०।

सावित्र्युवाच

किं कर्म वा शुभं धर्मराज किंवाऽशुभं नृणाम्। कर्म निर्मूलयन्त्येव केन वा साधवो जनाः ॥२॥
कर्मणां बीजरूपः कः को वा कर्मफलप्रदः। किं कर्म तद्भवेत्केन को वा तद्धेतुरेव च ॥३॥
को वा कर्मफलं भुङ्क्ते को वा निर्लिप्त एव च। को वा देही कश्च देहः को वाऽत्र कर्मकारकः ॥४॥
किं वा ज्ञानं मनो बुद्धिः के वा प्राणाः शरीरिणाम्। कानीन्द्रियाणि किं तेषां लक्षणं देवताश्च काः ॥५॥
भोक्ता भोजयिता को वा को भोगः का च निष्कृतिः। को जीवः परमात्मा कस्तन्मेव्याख्यातु-
मर्हसि ॥६॥

यम उवाच

[1]वेदेन विहितं कर्म तन्मन्ये मङ्गलं परम्। अवैदिकं तु यत्कर्म तदेवाशुभमेव च ॥७॥
अहैतुकी विष्णुसेवा संकल्परहिता सताम्। [2]कर्मनिर्मूलनात्मा वै सा चैव हरिभक्तिदा ॥८॥
हरिभक्तो नरो यश्च स च मुक्तः श्रुतौ श्रुतम्। जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिविवर्जितः ॥९॥
मुक्तिश्च द्विविधा साध्वि श्रुत्युक्ता सर्वसंमता। निर्वाणपददात्री च हरिभक्तिप्रदा नृणाम् ॥१०॥
हरिभक्तिस्वरूपां च मुक्तिं वाञ्छन्ति वैष्णवाः। अन्ये निर्वाणरूपां च मुक्तिमिच्छन्ति साधवः ॥११॥

सावित्री बोली—हे धर्मराज! मनुष्यों का कौन-सा कर्म शुभ है और कौन-सा अशुभ है? तथा सज्जन लोग किसके द्वारा कर्म का उन्मूलन करते हैं? ॥२॥ कर्मों का बीजरूप कौन-सा है? कर्म का फल कौन देता है? कर्म किसे कहते हैं? और वह किसके द्वारा होता है? उसका कारण कौन है? ॥३॥ कर्मफल का भोग कौन करता है? कौन (उससे) निर्लिप्त रहता है? देही कौन है? देह कौन है? और कर्म कौन करता है? ॥४॥ ज्ञान, मन, बुद्धि, किसे कहते हैं, शरीरधारियों के प्राण कौन हैं? इन्द्रियां कौन हैं? उनके लक्षण क्या हैं? और उनके देवता कौन हैं? ॥५॥ भोक्ता (भोग करनेवाला) कौन है? भोजयिता (भोग करानेवाला) कौन है? और भोग कौन है? और उससे छुटकारा मिलने का उपाय क्या है? जीव कौन है? और परमात्मा कौन है? (—यह सारी बातें आप) मुझे बताने की कृपा करें ॥६॥

यम बोले—वेद विहित कर्म परम मङ्गलमय है और वेद में जिसका स्थान नहीं है वही अशुभ कर्म है ॥७॥ अहैतुकी (अकारण) विष्णु सेवा सज्जनों के कर्म का नाश करने वाली है और वही हरिभक्ति भी प्रदान करती है ॥८॥ भगवान् का भक्त मनुष्य मुक्त होता है। इसीलिए उसे जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, शोक और भय नहीं होता है, ऐसा वेद में सुना गया है ॥९॥ पतिव्रते! वेद में सर्वसम्मत से दो प्रकार की मुक्ति बतायी गयी है। उसमें एक मनुष्यों को निर्वाणपद प्रदान करती है और दूसरी भगवान् विष्णु की भक्ति ॥१०॥ वैष्णव जन भगवान् की भक्ति रूप मुक्ति चाहते हैं और अन्य साधु वर्ग निर्वाण रूप मुक्ति की कामना करते हैं ॥११॥ प्रकृति से परे रहने वाले

---

१ क. वेदप्रणिहितो धर्मः कर्म तन्मङ्ग०। २ क. ०निर्मलरूपा च सा चै०।

कर्मणो बीजरूपश्च संततं तत्फलप्रदः। कर्मरूपश्च भगवाञ्छीकृष्णः प्रकृतेः परः॥१२॥
सोऽपि तद्धेतुरूपश्च कर्म तेन भवेत्सति। जीवः कर्मफलं भुङ्क्त आत्मा निर्लिप्त एव च॥१३॥
आत्मनः प्रतिबिम्बं च देही जीवः स एव च। पाञ्चभौक्तिकरूपश्च देहो नश्वर एव च॥१४॥
पृथिवी वायुराकाशो जलं तेजस्तथैव च। एतानि सूत्ररूपाणि सृष्टिः सृष्टिविधौ हरेः॥१५॥
कर्ता भोक्ता च देही च स्वात्मा भोजयिता सदा। भोगो विभवभेदश्च निष्कृतिर्मुक्तिरेव च॥१६॥
सदसद्भेदबीजं च ज्ञानं नानाविधं भवेत्। विषयाणां विभागानां भेदबीजं च कीर्तितम्॥१७॥
बुद्धिर्विवेचनारूपा ज्ञानसंदीपनी श्रुतौ। वायुभेदाश्च वै प्राणा बलरूपाश्च देहिनाम्॥१८॥
इन्द्रियाणां वै प्रवरमीश्वराणां समूहकम्। प्रेरकं कर्मणां चैव दुर्निवार्यं च देहिनाम्॥१९॥
अनिरूप्यमदृश्यं च ज्ञानभेदं मनः स्मृतम्। लोचनं श्रवणं घ्राणं त्वग्जिह्वादिकमिन्द्रियम्॥२०॥
अङ्गिनामङ्गरूपं च प्रेरकं सर्वकर्मणाम्। रिपुरूपं मित्ररूपं सुखदं दुःखदं सदा॥२१॥
सूर्यो वायुश्च पृथिवी वाण्याद्या देवताः स्मृताः। प्राणदेहादिभृद्यो हि स जीवः परिकीर्तितः॥२२॥
परमात्मा परं ब्रह्म निर्गुणः प्रकृतेः परः। कारणं कारणानां च श्रीकृष्णो भगवान्स्वयम्॥२३॥
इत्येवं कथितं सर्वं [1]मया पृष्टं यथागमम्। ज्ञानिनां ज्ञानरूपं च गच्छ वत्से यथासुखम्॥२४॥

भगवान् श्रीकृष्ण ही कर्मों के बीज रूप, उसके फलदाता और कर्मरूप हैं॥१२॥ एवं वही कर्मों के हेतु रूप भी हैं। वे सदैव वर्तमान रहते हैं, अतः उन्हीं के द्वारा कर्म की प्राप्ति होती है। कर्मों के फल का भोक्ता जीव है और आत्मा उससे निर्लिप्त रहता है॥१३॥ आत्मा का प्रतिबिम्ब ही देही और जीव कहलाता है। पाँच भूतों के नश्वर रूप को देह कहते हैं॥१४॥ भगवान् के सृष्टि विधान में पृथिवी, वायु, आकाश, जल और तेज, यही सृष्टि के सूत्र हैं॥१५॥ देही (जीवात्मा) कर्ता, भोक्ता है और आत्मा (परमात्मा) भोजयिता (भोग कराने वाला) है। अनेक भाँति के विभव भोग हैं तथा उनसे पृथक् होने को मुक्ति कहते हैं॥१६॥ सत्-असत् भेद का बीज रूप ज्ञान अनेक प्रकार का होता है। घट, पट आदि विषय तथा उनका भेद ज्ञान के भेद में कारण कहा गया है॥१७॥ विवेचनमयी शक्ति को बुद्धि कहते हैं। वेद में ज्ञानबीज नाम से इसकी प्रसिद्धि है। वायु के ही विभिन्न रूप प्राण हैं। इन्हीं के प्रभाव से प्राणियों के शरीर में शक्ति का संचार होता है। जो इन्द्रियों में प्रमुख, परमात्मा का अंश, संशयात्मक , कर्मों का प्रेरक, प्राणियों के लिए दुर्निवार्य, अनिरूप्य, अदृश्य तथा बुद्धि का एक भेद है, उसे 'मन' कहा गया है। यह शरीरधारियों का अंग तथा सम्पूर्ण कर्मों का प्रेरक है। यही इन्द्रियों को विषयों में लगा कर दुःखी बनाने के कारण शत्रु रूप हो जाता है और सत्कार्य में लगा कर सुखी बनाने के कारण मित्र रूप है। आँख, कान, नाक, त्वचा और जिह्वा आदि इन्द्रियाँ हैं। सूर्य, वायु और पृथिवी एवं वाणी आदि इन्द्रियों के देवता हैं। प्राण और देह आदि के धारण करने वाले को 'जीव' कहते हैं। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण को परमात्मा एवं परब्रह्म कहते हैं, जो निर्गुण, प्रकृति से परे और समस्त कारणों के कारण हैं। वत्से ! इस प्रकार मैंने शास्त्रानुसार तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दे दिया है, जो ज्ञानियों के लिए ज्ञानरूप है। अब यथासुख चली जाओ॥१८-२४॥

---

१ क. त्वया।

सावित्र्युवाच

त्यक्त्वा क्व यामि कान्तं वा त्वां वा ज्ञानार्णवं बुधम् । प्रश्नं यद्यत्करोमि त्वां तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥२५॥
कां कां योनिं याति जीवः कर्मणा केन वा यम । केन वा कर्मणा स्वर्गं केन वा नरकं पितः ॥२६॥
केन वा कर्मणा मुक्तिः केन भक्तिर्भवेद्धरेः । केन वा कर्मणा रोगी चारोगी केन कर्मणा ॥२७॥
केन वा दीर्घजीवी च केनाल्पायुश्च कर्मणा । केन वा कर्मणा दुःखी केन वा कर्मणा सुखी ॥२८॥
अङ्गहीनश्च काणश्च बधिरः केन कर्मणा । अन्धो वा कृपणो[1] वाऽपि प्रमत्तः केन कर्मणा ॥२९॥
क्षिप्तोऽतिलुब्धकश्चौरः[2] केन वा नरघातकः । केन[3] सिद्धिमवाप्नोति सालोक्यादिचतुष्टयम् ॥३०॥
केन वा ब्राह्मणत्वं च तपस्वित्वं च केन वा । स्वर्गभोगादिकं केन वैकुण्ठं केन कर्मणा ॥३१॥
गोलोकं केन वा ब्रह्मन्सर्वोत्कृष्टं निरामयम् । नरकं वा कतिविधं किंसंख्यं नाम किं तथा ॥३२॥
को वा कं नरकं याति कियन्तं तेषु तिष्ठति । पापिनां कर्मणा केन को वा व्याधिः प्रजायते ॥३३॥
यद्यदस्ति मया पृष्टं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥३४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० कर्मविपाके यमोक्त्यनन्तरं
सावित्रीप्रश्नो नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

सावित्री बोली—पति को तथा ज्ञान के सागर आप विद्वान् को छोड़ कर मैं कहाँ जाऊँ? मैं जो-जो प्रश्न पूछती हूँ, आप उसे बताने की कृपा करें ॥२५॥ हे यम! किन-किन कर्मों द्वारा यह जीव किन-किन योनियों में जाता है? हे पिता! किस कर्म द्वारा इसे स्वर्ग तथा नरक की प्राप्ति होती है ॥२६॥ किस कर्म से मुक्ति मिलती है? किस कर्म से भगवान् की भक्ति होती है? मनुष्य किस कर्म से रोगी होता है तथा किस कर्म से नीरोग रहता है ॥२७॥ किस कर्म से दीर्घजीवी होता है और किस कर्म से अल्पायु होता है। किस कर्म से दुःखी होता है और किस कर्म से सुखी ॥२८॥ किस कर्म से अंगहीन, काना, बहरा, अन्धा, कृपण और पागल होता है ॥२९॥ किस कर्म से अत्यन्त लोभी, महान् व्याध और नरघाती होता है? सिद्धि और सालोक्यादि मुक्ति प्राप्त होने में कौन कर्म सहायक हैं? ॥३०॥ किस कर्म से प्राणी ब्राह्मण और तपस्वी होता है? किस कर्म से स्वर्ग के भोग मिलते हैं? और किस कर्म से वैकुण्ठ की प्राप्ति होती है ॥३१॥ ब्रह्मन्! किस कर्म से गोलोक मिलता है? जो सभी लोकों से उत्कृष्ट एवं निरामय है। कितने प्रकार के नरक हैं? उनकी संख्या और नाम क्या हैं? ॥३२॥ कौन (जीव) किस नरक में जाता है? उसमें कितने दिन रहता है? और पापियों को किस कर्म से कौन रोग प्राप्त होता है? ये जितनी बातें मैंने पूछी हैं, आप बताने की कृपा करें ॥३३-३४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के प्रकृतिखण्ड में सावित्री-प्रश्न-वर्णन नामक
पचीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२५॥

---

१ क. षिङ्गलो वा। २ ख. ०कश्चैव के०। ३ ०न स्वर्गम०।

अथ षड्विंशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच

सावित्रीवचनं श्रुत्वा जगाम विस्मयं यमः । प्रहस्य वक्तुमारेभे कर्मपाकं च जीविनाम् ॥१॥

यम उवाच

कन्या द्वादशवर्षीया वत्से त्वं वयसाऽधुना । ज्ञानं ते सर्वविदुषां योगिनां ज्ञानिनां परम् ॥२॥
सावित्रीवरदानेन त्वं सावित्रीकला सति । प्राप्ता पुरा भूभृता च तपसा तत्समा शुभे ॥३॥
यथा श्रीः श्रीपतेः क्रोडे भवानी च भवोरसि । यथा राधा च श्रीकृष्णे सावित्री ब्रह्मवक्षसि ॥४॥
धर्मोरसि यथा मूर्तिः शतरूपा मनौ यथा । कर्दमे देवहूतिश्च वसिष्ठेऽरुन्धती यथा ॥५॥
अदितिः कश्यपे चापि यथाऽऽहल्या च गौतमे । यथा शची महेन्द्रे च यथा चन्द्रे च रोहिणी ॥६॥
यथा रतिः कामदेवे यथा स्वाहा हुताशने । यथा स्वधा च पितृषु यथा संज्ञा दिवाकरे ॥७॥
वरुणानी च वरुणे यज्ञे च दक्षिणा यथा । यथा धरा वराहे च देवसेना च कार्तिके ॥८॥
सौभाग्या सुप्रिया त्वं च भव सत्यवति प्रिये । इति तुभ्यं वरं दत्तमपरं च यदीप्सितम् ॥
वृणु देवि महाभागे सर्वं दास्यामि निश्चितम् ॥९॥

अध्याय २६

सावित्री-धर्मराज के प्रश्नोत्तर

नारायण बोले—सावित्री की बातें सुनकर यमराज को आश्चर्य हुआ। उन्होंने हँसकर जीवों के कर्म-विपाक (कर्मों के फल) कहना आरम्भ किया ॥१॥

यम बोले—वत्से ! यद्यपि तुम इस समय बारह वर्ष की कन्या हो, किन्तु तुम्हारा ज्ञान प्राचीन विद्वानों, योगियों एवं श्रेष्ठ ज्ञानियों के समान है ॥२॥ भद्रे ! (तुम्हारे पिता) राजा ने पूर्व काल में तप करके सावित्री के वरदान से उन्हीं की कला के रूप में तुम्हें प्राप्त किया है ॥३॥ अतः जिस प्रकार विष्णु के अङ्क में लक्ष्मी, शिव की गोद में भवानी, श्रीकृष्ण के अङ्क में राधा, ब्रह्मा के अङ्क में सावित्री, धर्म के अङ्क में मूर्ति, मनु के अङ्क में शतरूपा, कर्दम के अङ्क में देवहूति, वसिष्ठ के अङ्क में अरुन्धती ॥४-५॥ कश्यप के अङ्क में अदिति, गौतम के अङ्क में अहल्या, इन्द्र के अङ्क में इन्द्राणी, चन्द्रमा के अङ्क में रोहिणी, कामदेव के वक्ष पर रति, अग्नि के अङ्क में स्वाहा, पितरों के साथ स्वधा, दिवाकर के साथ संज्ञा ॥६-७॥ वरुण के अङ्क में वरुणानी, यज्ञ के अङ्क में दक्षिणा, वराहावतार भगवान् के अङ्क में पृथिवी और कार्तिकेय के साथ देवसेना सुशोभित होती हैं उसी प्रकार, हे प्रिये ! तुम भी सत्यवान् की परम प्रेयसी एवं सौभाग्यशालिनी बनो। मैंने यह तुम्हें वरदान दिया है। हे देवि ! हे महाभागे ! इसके अतिरिक्त भी जो तुम्हें अभीष्ट हो, वह वर माँगो। मैं निश्चित रूप से तुम्हें सब वरदान दूँगा ॥८-९॥

सावित्र्युवाच

सत्यवदौरसेनैव पुत्राणां शतकं मम । भविष्यति महाभाग वरमेतन्मदीप्सितम् ॥१०॥
मत्पितुः पुत्रशतकं श्वशुरस्य च चक्षुषी । राज्यलाभो भवत्वेवं वरमेवं मदीप्सितम् ॥११॥
अन्ते सत्यवता सार्धं यास्यामि हरिमन्दिरम् । समतीते लक्षवर्षे देहीमं मे जगत्प्रभो ॥१२॥
जीवकर्मविपाकं च श्रोतुं कौतूहलं च मे । विश्वविस्तारबीजं च तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१३॥

यम उवाच

भविष्यति महासाध्वि सर्वं मानसिकं तव । जीवकर्मविपाकं च कथयामि निशामय ॥१४॥
शुभानामशुभानां च कर्मणां जन्म भारते । पुण्यक्षेत्रेऽत्र सर्वत्र नान्यत्र भुञ्जते जनाः ॥१५॥
सुरा दैत्या दानवाश्च गन्धर्वा राक्षसादयः । नराश्च कर्मजनका न सर्वे समजीविनः ॥१६॥
विशिष्टजीविनः कर्म भुञ्जते सर्वयोनिषु । शुभाशुभं च सर्वत्र स्वर्गेषु नरकेषु च ॥१७॥
विशेषतो मानवाश्च भ्रमन्ति सर्वयोनिषु । शुभाशुभं भुञ्जते च कर्म पूर्वार्जितं परम् ॥१८॥
शुभेन कर्मणा यान्ति ते स्वर्गादिकमेव च । कर्मणा चाशुभेनैव भ्रमन्ति नरकेषु च ॥१९॥
कर्मनिर्मूलने मुक्तिः सा चोक्ता द्विविधा मता । निर्वाणरूपा सेवा च कृष्णस्य परमात्मनः ॥२०॥

सावित्री बोली—हे महाभाग ! सत्यवान् के द्वारा मेरे सौ पुत्र उत्पन्न हों, यह मेरी बड़ी अभिलाषा है तथा हमारे पिता के सौ पुत्र हों, श्वशुर की आँखें ठीक हो जायँ और मुझे राज्य लाभ हो, यह मेरी अभिलाषा पूरी कीजिए ॥१०-११॥ जगत्प्रभो ! (सत्यवान् के साथ) एक लाख वर्षों तक (परम सुखानुभव) करने के अनन्तर उनके साथ विष्णु लोक जाऊँ, मुझे यह भी वरदान दीजिए ॥१२॥ प्रभो ! मुझे जीव का कर्मविपाक तथा विश्व से तर जाने का उपाय भी सुनने के लिए मन में महान् कौतूहल हो रहा है, अतः आप यह मी बताएँ ॥१३॥

यम बोले—महापतिव्रते ! तुम्हारे सभी मनोरथ सफल होंगे। अब जीवों का कर्म-फल बता रहा हूँ, सुनो ! इस पुण्य क्षेत्र भारत में शुभ और अशुभ कर्मों का जन्म होता है और इसी क्षेत्र में लोग कर्मों के फल भोगते हैं अन्यत्र नहीं ॥१४-१५॥ देव, दैत्य, दानव, गन्धर्व, राक्षस और मनुष्य सभी कर्मों के फल भोगते हैं, परन्तु सब का जीवन समान नहीं है ॥१६॥ उनमें से मानव ही कर्म का जनक होता है अर्थात् मनुष्य-योनि में ही शुभाशुभ कर्म किये जाते हैं, जिनका फल सर्वत्र स्वर्गों तथा नरकों में भी भोगना पड़ता है। विशेषतः मानव ही सब योनियों में कर्मों का फल भोगते हैं और सभी योनियों में भटकते हैं। वे पूर्वजन्म का किया हुआ शुभाशुभ कर्म भोगते हैं। शुभ कर्म के प्रभाव से वे स्वर्गलोक में जाते हैं और अशुभ कर्म से उन्हें नरक में भटकना पड़ता है। कर्म का निर्मूलन हो जाने पर मुक्ति होती है। पतिव्रते ! मुक्ति दो प्रकार की बतलायी गई है—एक निर्वाणरूपा और दूसरी परमात्मा श्रीकृष्ण की सेवारूपा। बुरे कर्म से प्राणी रोगी होता है और शुभ कर्म से नीरोग। वह अपने शुभाशुभ कर्म के अनुसार दीर्घजीवी, अल्पायु, सुखी एवं दुःखी होता है। कुत्सित कर्म से ही प्राणी अंगहीन, अंधे, बहरे आदि

रोगी कुकर्मणा जीवश्चारोगी शुभकर्मणा । दीर्घजीवी च क्षीणायुः सुखी दुःखी च निश्चितम् ॥२१॥
अन्धादयश्चाङ्गहीनाः कुत्सितेन च कर्मणा । सिद्ध्यादिकमवाप्नोति सर्वोत्कृष्टेन कर्मणा ॥२२॥
सामान्यं कथितं सर्वं विशेषं शृणु सुन्दरि । सुदुर्लभं सुभोग्यं च पुराणेषु श्रुतिष्वपि ॥२३॥
दुर्लभा मानवी जातिः सर्वजातिषु भारते । सर्वाभ्यो ब्राह्मणः श्रेष्ठः प्रशस्तः सर्वकर्मसु ॥२४॥
विष्णुभक्तो द्विजश्चैव गरीयान्भारते ततः । निश्कामश्च सकामश्च वैष्णवो द्विविधः सति ॥२५॥
सकामश्च प्रधानश्च निष्कामो भक्त एव च । कर्मभोगी सकामश्च निष्कामो निरुपद्रवः ॥२६॥
स याति देहं त्यक्त्वा च पदं विष्णोर्निरामयम् । पुनरागमनं नास्ति तेषां निष्कामिणां सति ॥२७॥
ये सेवन्ते च द्विभुजं कृष्णमात्मानमीश्वरम् । गोलोकं यान्ति ते भक्ता दिव्यरूपविधारिणः ॥२८॥
ये च नारायणं भक्ताः सेवन्ते च चतुर्भुजम् । वैकुण्ठं यान्ति ते सर्वे दिव्यरूपविधारिणः ॥२९॥
सकामिनो वैष्णवाश्च गत्वा वैकुण्ठमेव च । भारतं पुनरायान्ति तेषां जन्म द्विजातिषु ॥३०॥
कालेन ते च निष्कामा भविष्यन्ति क्रमेण च । भक्तिं च निर्मलां बुद्धिं तेभ्यो दास्यति निश्चितम् ॥३१॥
ब्राह्मणाद्वैष्णवादन्ये सकामाः सर्वजन्मसु । न तेषां निर्मला बुद्धिर्विष्णुभक्तिविवर्जिताः ॥३२॥
तीर्थाश्रिता द्विजा ये च तपस्यानिरताः सति । ते यान्ति ब्रह्मलोकं च पुनरायान्ति भारतम् ॥३३॥
स्वधर्मनिरता विप्राः सूर्यभक्ताश्च भारतं । व्रजन्ति सूर्यलोकं तं पुनरायान्ति भारतम् ॥३४॥

होते हैं। उत्तम कर्म के फलस्वरूप सिद्धि आदि की प्राप्ति होती है॥१७-२१॥ इस प्रकार मैंने सामान्य कर्म फल बता दिया है, अब विशेष बातें सुनो। जिसे पुराणों और श्रुतियों में अत्यन्त दुर्लभ बताया गया है॥२२-२३॥ सभी जातियों के लिए भारत में मनुष्य का जन्म पाना परम दुर्लभ है। साध्वी! उन सब जातियों में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं, जो सभी कर्मों के लिए प्रशस्त कहे गए हैं। भारत में विष्णुभक्त द्विज सबसे श्रेष्ठ होते हैं। निष्काम और सकाम भेद से वैष्णव दो प्रकार के होते हैं॥२४-२५॥ सकाम वैष्णव कर्म प्रधान होते हैं और निष्काम वैष्णव केवल भक्त। सकाम वैष्णव कर्मों का फल भोगता है और निष्काम वैष्णव शुभाशुभ भोग के उपद्रव से दूर रहता है॥२६॥ वह निष्काम (भक्त) देह त्यागने पर निरामय विष्णु लोक को प्राप्त करता है और निष्काम होने के नाते उसका यहाँ पुनः आगमन नहीं होता है॥२७॥ जो भक्त दो भुजाधारी पूर्णब्रह्म परमेश्वर श्रीकृष्ण की उपासना करते हैं वे अन्त में दिव्य रूप धारण करके गोलोक में जाते हैं॥२८॥ जो भक्त चतुर्भुज भगवान् विष्णु की सेवा करते हैं, वे दिव्य रूप धारण करके वैकुण्ठ लोक में जाते हैं॥२९॥ किन्तु सकाम वैष्णव वैकुण्ठ में जाकर पुनः यहाँ भारत में लौट आते हैं और द्विजातियों में जन्म ग्रहण करते हैं॥३०॥ समय पाकर क्रमशः वे भी निष्काम भक्त होते हैं, क्योंकि भगवान् उन्हें भी भक्ति और निर्मल बुद्धि निश्चित रूप से प्रदान करते हैं॥३१॥ ब्राह्मण वैष्णव से अन्य लोग सभी जन्मों में सकाम वैष्णव ही होते हैं किन्तु भगवान् विष्णु की भक्ति से रहित होने के कारण उनकी बुद्धि निर्मल नहीं होती है॥३२॥ तीर्थ में रह कर जो ब्राह्मण तपस्या में लीन रहते हैं, वे ब्रह्मलोक को जाते हैं और (पुण्य भोग के पश्चात्) पुनः यहाँ भारत में आते हैं॥३३॥ भारत में स्वधर्म में संलग्न रहते हुए जो ब्राह्मण सूर्य के भक्त होते हैं, वे सूर्य-लोक को जाते हैं तथा (पुण्य भोग के पश्चात्) पुनः भारत में आते हैं॥३४॥ इसी प्रकार स्वधर्माचरण

स्वधर्मनिरता विप्राः शैवाः शाक्ताश्च गाणपाः। तं यान्ति शिवलोकं च पुनरायान्ति भारतम्॥३५॥
ये विप्रा अन्यदेवेष्टाः स्वधर्मनिरताः सति। ते गत्वा शक्रलोकं च पुनरायान्ति भारतम्॥३६॥
हरिभक्ताश्च निष्कामाः स्वधर्मरहिता द्विजाः। तेऽपि यान्ति हरेर्लोकं क्रमाद्भक्तिबलादहो॥३७॥
स्वधर्मरहिता विप्रा देवान्यसेविनः सदा। भ्रष्टाचाराश्च [1]वामाश्च ते यान्ति नरकं ध्रुवम्॥३८॥
स्वधर्मनिरताश्चैवं वर्णाश्चत्वार एव च। भवन्त्येव शुभस्यैव कर्मणः फलभागिनः॥३९॥
स्वधर्मरहितास्ते च नरकं यान्ति हि ध्रुवम्। भारते च भवन्त्येव कर्मणः फलभागिनः॥४०॥
स्वधर्मनिरता विप्राः स्वधर्मनिरताय च। कन्यां ददति विप्राय चन्द्रलोकं व्रजन्ति ते॥४१॥
वसन्ति तत्र ते साध्वि यावदिन्द्राश्चतुर्दश। सालंकृताया दानेन द्विगुणं फलमुच्यते॥४२॥
सकामा यान्ति तल्लोकं न निष्कामाश्च वैष्णवा। ते प्रयान्ति विष्णुलोकं फलसंधानवर्जिताः॥४३॥
गव्यं च रजतं भार्यां वस्त्रं सस्यं फलं जलम्। ये ददत्येव विप्रेभ्यस्तल्लोकं हि व्रजन्ति च॥४४॥
वसन्ति ते[2] च तल्लोकं यावन्मन्वन्तरं सति। कालं च सुचिरं वासं कुर्वन्ति तत्र ते जनाः॥४५॥
ये ददति सुवर्णं च गां च ताम्रादिकं सति। ते यान्ति सूर्यलोकं च शुचये ब्राह्मणाय च॥४६॥

करते हुए जो ब्राह्मण शिव, शक्ति (दुर्गा) और गणेश के भक्त होते हैं, वे शिवलोक में जाते हैं और (पुण्य भोग के पश्चात्) पुनः भारत में लौट आते हैं॥३५॥ जो ब्राह्मण अन्य किसी देव को इष्ट मान कर स्वधर्मानुष्ठानपूर्वक उसकी आराधना करते हैं, वे इन्द्रलोक में जाते हैं और (पुण्य भोग के पश्चात्) पुनः भारत में आते हैं॥३६॥ निष्काम कर्म करने वाले ब्राह्मण, जो भगवान् के भक्त हैं किन्तु अपने (जातीय) धर्म से रहित हैं, वे भी क्रमशः अपनी भक्ति के बल से विष्णु के ही लोक में जाते हैं॥३७॥ जो ब्राह्मण स्वधर्म से रहित हैं, देवेतर की सेवा करते हैं तथा भ्रष्टाचारी और वामाचारी हैं, वे निश्चित ही नरक में जाते हैं॥३८॥ इस प्रकार चारों वर्णों के लोग अपने-अपने (जातीय) कर्मों में संलग्न रहें तो उन्हें शुभ कर्मों का ही फलभागी जानना चाहिए॥३९॥ यदि वे अपने-अपने धर्मों से च्युत होते हैं तो निश्चित ही नरक में जाते हैं क्योंकि भारत में कर्मों का फलभागी होना ही पड़ता है॥४०॥ स्वधर्मानुष्ठान करने वाले ब्राह्मण यदि अपनी कन्या स्वधर्माचारी को देते हैं, तो वे चन्द्रलोक में जाते हैं॥४१॥ और वहाँ चौदह इन्द्रों के समय तक रहते हैं। साध्वी! यदि कन्या को अलङ्कार आदि से विभूषित करके दान में दिया जाय तो उससे दुगुना फल प्राप्त होता है॥४२॥ किन्तु कामना वाले ब्राह्मण ही वहाँ जाते हैं, निष्काम वैष्णव नहीं। वे तो फल की आशा से पृथक् रहने के कारण भगवान् विष्णु के ही लोक में जाते हैं॥४३॥ गौ के दूध, घी आदि एवं चाँदी, भार्या, वस्त्र, अनाज, फल और जल का दान करने वाले भी उसी लोक में जाते हैं॥४४॥ और मन्वन्तर के समय तक वे वहाँ रहते हैं। इस प्रकार वे वहाँ अति चिरकाल तक निवास करते हैं॥४५॥ पवित्र (सदाचारी) ब्राह्मण को सुवर्ण, गौ एवं ताँबे आदि का दान करने वाले पुरुष सूर्यलोक में जाते हैं॥४६॥ वे वहाँ

---

१ ख. ०बालाश्च। २ क. ते विष्णलोकं।

वसन्ति तत्र ते लोके वर्षाणामयुतं सति। विपुलं सुचिरं वासं कुर्वन्ति च निरामयाः ॥४७॥
ददाति भूमिं विप्रेभ्यो धान्यानि विपुलानि च। स याति विष्णुलोकं च श्वेतद्वीपं मनोहरम् ॥४८॥
तत्रैव निवसत्येव यावच्चन्द्रदिवाकरौ। विपुलं विपुले वासं करोति पुण्यवान्सति ॥४९॥
गृहं ददति विप्राय ये जना भक्तिपूर्वकम्। ते यान्ति सुरलोकं च चिरं तत्र भवन्ति ते ॥५०॥
गृहरेणुप्रमाणाब्दं दानं पुण्यदिने यदि। विपुलं विपुले वासं कुर्वन्ति मानवाः सति ॥५१॥
यस्मै यस्मै च देवाय यो ददाति गृहं नरः। स याति तस्य लोकं च रेणुमानाब्दमेव च ॥५२॥
सौधे चतुर्गुणं पुण्यं पूर्ते शतगुणं फलम्। प्रकृष्टेऽष्टगुणं तस्मादित्याह कमलोद्भवः ॥५३॥
यो ददाति तडागं च सर्वभूताय भारते। स याति जनलोकं च वर्षाणामयुतं सति ॥५४॥
वाप्यां फलं शतगुणं प्राप्नोति मानवस्ततः। तथा सेतुप्रदानेन तडागस्य फलं लभेत् ॥५५॥
धनुश्चतुःसहस्रेण दैर्घ्यमानेन निश्चितम्। न्यूना वा तावती प्रस्थे सा वापी परिकीर्तिता ॥५६॥
दशवापीसमा कन्या यदि पात्रे प्रदीयते। फलं ददाति द्विगुणं यदि सालंकृता भवेत् ॥५७॥
यत्फलं च तडागे च पङ्कोद्धारेण तत्फलम्। वाप्याश्च पङ्कोद्धारेण वापीतुल्यफलं लभेत् ॥५८॥
अश्वत्थवृक्षमारोप्य प्रतिष्ठां च करोति यः। स याति तपसो लोकं वर्षाणामयुतं परम् ॥५९॥

दश सहस्र वर्षों तक निवास करते हैं। अनन्तर बिना किसी बाधा के पुनः चिरकाल तक वास करते हैं ॥४७॥ ब्राह्मण को भूमि और विपुल धान्य देने वाले व्यक्ति विष्णुलोक में तथा मनोरम श्वेत द्वीप में जाते हैं ॥४८॥ वहाँ चन्द्रमा और सूर्य के समय तक निवास करते हुए वे पुण्यवान् व्यक्ति उस विपुल स्थान में चिरकाल तक निवास करते हैं ॥४९॥ ब्राह्मण को भक्तिपूर्वक गृह दान देने वाले व्यक्ति देवलोक में जाकर चिर निवास करते हैं ॥५०॥ यदि किसी शुभ अवसर पर वह, वही दान करता है, तो वह उस गृह के रजकण जितने वर्षों तक उस दान के फलस्वरूप उस विशाल लोक में चिर निवास करता है ॥५१॥ इस प्रकार जो मनुष्य जिस देव के निमित्त गृह दान करता है, उस देव के लोक में उस गृह के रेणु प्रमाण वर्षों तक वह निवास करता है ॥५२॥ अपने घर पर दान करने की अपेक्षा देव-मन्दिर में दान करने से चौगुना, पूतकर्म (वापी, कूप, तड़ाग आदि के निर्माण) के अवसर पर करने से सौगुना तथा किसी श्रेष्ठ तीर्थस्थान में करने से आठगुना फल होता है—ऐसा ब्रह्मा ने कहा है ॥५३॥ भारत में समस्त प्राणियों के हितार्थ जो तड़ाग बनवा कर दान करता है, वह दश सहस्र वर्षों तक जन-लोक में निवास करता है ॥५४॥ बावली का दान करने से मनुष्य को सदा सौगुना फल मिलता है। सेतु (पुल) दान करने से तड़ाग के दान का पुण्यफल प्राप्त होता है ॥५५॥ तड़ाग का प्रमाण चार सहस्र धनुष (१ धनुष = ४हाथ चौड़ा और उतना ही लम्बा) निश्चित किया गया है। इससे जो लघु प्रमाण में है, उसे बावली कहते हैं ॥५६॥ किसी (सु) पात्र को कन्या दान देने पर दश बावलियाँ दान करने का पुण्य प्राप्त होता है। यदि (आभूषण आदि से) अलंकृत करके कन्या का दान किया जाता है, तो उससे दुगुना फल मिलता है ॥५७॥ वापी और तड़ाग बनवाने से जो पुण्य होता है, वही पुण्य उसके जीर्णोद्धार (कीचड़ दूर कराने) से होता है ॥५८॥ पीपल का वृक्ष लगा कर जो उसकी प्रतिष्ठा करता है, वह दश सहस्र वर्षों तक तपोलोक में निवास करता है ॥५९॥ सावित्री !

पुष्पोद्यानं यो ददाति सावित्रि सर्वभूतये। स वसेद्ध्रुवलोके च वर्षाणामयुतं ध्रुवम् ॥६०॥
यो ददाति विमानं च विष्णवे भारते सति। विष्णुलोके वसेत्सोऽपि यावन्मन्वन्तरं परम् ॥६१॥
चित्रयुक्ते च विपुले फलं तस्य चतुर्गुणम्। रथार्धं शिबिकादाने फलमेव लभेद्ध्रुवम् ॥६२॥
यो ददाति भक्तियुक्तो हरये दोलमन्दिरम्। विष्णुलोके वसेत्सोऽपि यावन्मन्वन्तरं परम् ॥६३॥
राजमार्गं सौधयुक्तं यः करोति पतिव्रते। वर्षाणामयुतं सोऽपि शक्रलोके महीयते ॥६४॥
ब्राह्मणेभ्योऽपि देवेभ्यो दाने समफलं लभेत्। यच्च दत्तं हि तद्भोक्तुर्न दत्तं नोपतिष्ठते ॥६५॥
भुक्त्वा स्वर्गादिकं सौख्यं पुनरायान्ति भारते। लभेद्विप्रकुलेष्वेव क्रमेणैवोत्तमादिषु ॥६६॥
भारते पुण्यवान्विप्रो भुक्त्वा स्वर्गादिकं परम्। पुन सोऽपि भवेद्विप्रो न पुनः क्षत्रियादयः ॥६७॥
क्षत्रियो वापि वैश्यो वा कल्पकोटिशतेन च। तपसा ब्राह्मणत्वं च न प्राप्नोति श्रुतौ श्रुतम् ॥६८॥
स्वधर्मरहिता विप्रा नानायोनिं व्रजन्ति च। भुक्त्वा च कर्मभोगं च विप्रयोनिं लभेत्पुनः ॥६९॥
नाऽभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि। अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥७०॥

समस्त प्राणियों के हित के लिए जो पुष्पवाटिका (फुलवाड़ी) का दान करता है, वह ध्रुवलोक में दश सहस्र वर्षों तक निश्चित रूप से निवास करता है ॥६०॥ भारतवर्ष में जो भगवान् विष्णु के लिए विमान (रथ) का दान करता है, वह एक मन्वन्तर के समय तक विष्णुलोक में निवास करता है ॥६१॥ चित्र-विचित्र एवं विशाल रथ का दान करने पर उससे चौगुने पुण्य और शिबिका (पालकी) दान करने पर रथ का आधा पुण्यफल प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं ॥६२॥ जो भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णु को मन्दिराकार झूला समर्पित करता है, वह मन्वन्तर के समय तक विष्णुलोक में निवास करता है ॥६३॥ हे पतिव्रते ! जो सड़क बनवाता और उसमें लोगों के ठहरने के लिए महल (धर्मशाला) बनवा देता है, वह दश सहस्र वर्षों तक इन्द्रलोक में पूजित होता है ॥६४॥ इस प्रकार ब्राह्मणों और देवों को दान देने से दान का फल समान ही होता है। जो पूर्व जन्म में दिया गया है, वही जन्मान्तर में प्राप्त होता है। जो नहीं दिया गया है, वह कैसे प्राप्त हो सकता है ॥६५॥ ऐसे व्यक्ति स्वर्ग आदि के सुख का अनुभव करने के उपरान्त यहाँ भारतवर्ष में क्रमशः (दान के अनुसार) उत्तम-मध्यम आदि ब्राह्मणों के कुल में ही जन्म ग्रहण करते हैं। भारत के निवासी पुण्यवान् ब्राह्मण स्वर्ग आदि लोकों के उत्तम सुखों का अनुभव करके पुनः यहाँ ब्राह्मण कुल में ही उत्पन्न होते हैं। किन्तु क्षत्रिय आदि के लिए ऐसा नियम नहीं है ॥६६-६७॥ क्षत्रिय और वैश्य सौ करोड़ कल्प में भी तप करने के द्वारा ब्राह्मणत्व नहीं प्राप्त कर सकते हैं, ऐसा वेद में सुना गया है ॥६८॥ अपने धर्म-कर्म से रहित ब्राह्मण अनेक योनियों में घूमते हैं और वहाँ कर्म भोगों को भोगने के अनन्तर पुनः ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होते हैं ॥६९॥ सैकड़ों करोड़ कल्पों के व्यतीत होने पर भी बिना भोग किये कर्म नष्ट नहीं होता है। शुभ तथा अशुभ कर्मों का फल अवश्यमेव भोगना पड़ता है ॥७०॥ देवता तथा तीर्थ की सहायता और

देवतीर्थे सहायेन कायव्यूहेन शुध्यति । एतत्ते कथितं[1] सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥७१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० नारदना० प्रकृति० सावित्र्यु० कर्मविपाके कर्मानुरूपस्थानगमनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

सावित्र्युवाच

प्रयान्ति स्वर्गमन्यं च येन येनैव कर्मणा । मानवाः पुण्यवन्तश्च तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१॥

यम उवाच

अन्नदानं च विप्राय यः करोति च भारते । अन्नप्रमाणवर्षं च शक्रलोके महीयते ॥२॥
अन्नदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति । नात्र पात्रपरीक्षा स्यान्न कालनियमः क्वचित् ॥३॥
देवेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो वा ददाति चाऽऽसनं यदि । महीयते वह्निलोके वर्षाणामयुतं ध्रुवम् ॥४॥
यो ददाति च विप्राय दिव्यां धेनुं पयस्विनीम् । तल्लोममानवर्षं च वैकुण्ठे च महीयते ॥५॥

कायव्यूह से प्राणी शुद्ध हो जाता है। पतिव्रते! ये सब बातें तुम्हें बता दी गईं, अब पुनः क्या सुनना चाहती हो? ॥७१॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के प्रकृति-खण्ड में सावित्री-उपाख्यान के कर्म-विपाक-प्रकरण में कर्मानुरूपस्थान में जाने का वर्णन नामक छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२६॥

अध्याय २७

सावित्री-धर्मराज के प्रश्नोत्तर

सावित्री बोली—पुण्यवान् मनुष्य जिन-जिन कर्मों द्वारा स्वर्ग तथा अन्य लोकों को प्राप्त करते हैं, उन्हें बताने की कृपा करें ॥१॥

यम बोले—भारतवर्ष में जो ब्राह्मण को अन्नदान देता है, वह दान किये हुए अन्न में जितने दाने होते हैं उतने वर्षों तक इन्द्रलोक में पूजित होता है ॥२॥ क्योंकि अन्नदान से उत्तम दूसरा दान न हुआ है और न होगा। इसमें (लेने वाले) पात्र की परीक्षा नहीं की जाती और (देने के लिए) समय का कोई नियम भी नहीं है ॥३॥ देवों या ब्राह्मणों को आसन प्रदान करने पर, दश सहस्र वर्षों तक अग्निलोक में रहने की सुविधा प्राप्त होती है ॥४॥ जो ब्राह्मणों को दूध देनेवाली दिव्य गौ का दान देता है, वह उस (गाय) के लोमप्रमाण वर्षों तक वैकुण्ठ लोक में

---

१ क. ०तं किंचित्किं।

चतुर्गुणं पुण्यदिने तीर्थे शतगुणं फलम्। दानं नारायणक्षेत्रे फलं कोटिगुणं भवेत्॥६॥
गां यो ददाति विप्राय भारते भक्तिपूर्वकम्। वर्षाणामयुतं चैव चन्द्रलोके महीयते॥७॥
यश्चोभयमुखीदानं करोति ब्राह्मणाय च। तल्लोममानवर्षं च वैकुण्ठे च महीयते॥८॥
यो ददाति ब्राह्मणाय शालिग्रामं सवस्त्रकम्। महीयते स वैकुण्ठे यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥९॥
यो ददाति ब्राह्मणाय च्छत्रं च सुमनोहरम्। वर्षाणामयुतं सोऽपि मोदते वरुणालये॥१०॥
विप्राय पादुकायुग्मं यो ददाति च भारते। महीयते वायुलोके वर्षाणामयुतं सति॥११॥
यो ददाति ब्राह्मणाय शय्यां दिव्यां मनोहराम्। महीयते चन्द्रलोके यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥१२॥
यो ददाति प्रदीपं च देवाय ब्राह्मणाय च। यावन्मन्वन्तरं सोऽपि [1]ब्रह्मलोके महीयते॥१३॥
संप्राप्य मानवीं योनिं चक्षुष्मांश्च भवेद्ध्रुवम्। न याति यमलोकं च तेन पुण्येन सुन्दरि॥१४॥
करोति गजदानं च यो हि विप्राय भारते। यावदिन्द्रादिदेवस्य लोके चार्धासने वसेत्॥१५॥
भारते योऽश्वदानं च करोति ब्राह्मणाय च। मोदते वारुणे लोके यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥१६॥
प्रकृष्टां शिबिकां यो हि ददाति ब्राह्मणाय च। महीयते विष्णुलोके यावन्मन्वन्तरं सति॥१७॥
यो ददाति च विप्राय व्यजनं श्वेतचामरम्। महीयते वायुलोके वर्षाणामयुतं ध्रुवम्॥१८॥

पूजित होता है॥५॥ किसी पुण्य अवसर पर उसका दान करने से चौगुना पुण्य, तीर्थ में दान करने से सौगुना और नारायण क्षेत्र में दान करने से करोड़ गुना फल मिलता है॥६॥ भारतवर्ष में जो भक्तिपूर्वक ब्राह्मण को गौ प्रदान करता है, वह चन्द्रलोक में दश सहस्र वर्षों तक पूजित होता है॥७॥ जो ब्राह्मण को उभयमुखी (ब्याती हुई) गाय प्रदान करता है, वह उसके लोम प्रमाण वर्षों तक वैकुण्ठ में निवास करता है॥८॥ जो वस्त्र समेत शालग्राम की मूर्ति ब्राह्मण को अर्पित करता है, वह चन्द्र-सूर्य के समय तक वैकुण्ठ में सम्मानपूर्वक रहता है॥९॥ जो ब्राह्मण को अति मनोरम छत्र समर्पित करता है, वह भी दस सहस्र वर्षों तक वरुण लोक में आनन्दपूर्ण जीवन बिताता है॥१०॥ भारतवर्ष में ब्राह्मण को पादुकाएँ प्रदान करने वाला दश सहस्र वर्षों तक वायुलोक में सम्मान प्राप्त करता है॥११॥ दिव्य एवं मनोहर शय्या का दान ब्राह्मण को समर्पित करने से मनुष्य चन्द्रलोक में चन्द्र-सूर्य के समय तक सम्मान प्राप्त करता है॥१२॥ सुन्दरी! जो व्यक्ति देवता और ब्राह्मण को दीप प्रदान करता है, वह ब्रह्मलोक में मन्वन्तर के समय तक पूजित होता है॥१३॥ उस पुण्य से उसके नेत्रों में ज्योति बनी रहती है और वह यमलोक में नहीं जाता है॥१४॥ भारत में जो ब्राह्मण को गज प्रदान करता है, वह इन्द्र आदि देवों के लोक में उनके समय तक उनके सिंहासन के आधे भाग पर सुशोभित रहता है॥१५॥ भारत में ब्राह्मण को जो अश्व प्रदान करता है, वह चौदहों इन्द्रों के समय तक वरुण लोक में आनन्द का अनुभव करता है॥१६॥ जो ब्राह्मण को सुन्दर शिविका (पालकी) प्रदान करते हैं, वे विष्णु लोक में मन्वन्तर के समय तक सम्मानित होते हैं॥१७॥ जो ब्राह्मण को श्वेत चामर (चँवर) अर्पित करता है, वह दश सहस्र वर्षों तक वायुलोक में पूजित होता है॥१८॥ जो भारत में ब्राह्मण

---

१ क. वह्निलो०।

धान्याचलं यो ददाति ब्राह्मणाय च भारते। स च धान्यप्रमाणाब्दं विष्णुलोके महीयते॥१९॥
ततः स्वयोनिं संप्राप्य चिरजीवी भवेत्सुखी। दाता ग्रहीता तौ द्वौ च ध्रुवं वैकुण्ठगामिनौ॥२०॥
सततं श्रीहरेर्नाम भारते यो जपेन्नरः। स एव चिरजीवी च ततो मृत्युः पलायते॥२१॥
यो नरो भारते वर्षे दोलनं कारयेद्धरेः। पूर्णिमारजनीशेषे जीवन्मुक्तो भवेन्नरः॥२२॥
इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते विष्णुमन्दिरम्। निश्चितं निवसेत्तत्र शतमन्वन्तरावधि॥२३॥
फलमुत्तरफाल्गुन्यां ततोऽपि द्विगुणं भवेत्। कल्पान्तजीवी स भवेदित्याह कमलोद्भवः॥२४॥
तिलदानं ब्राह्मणाय यः करोति च भारते। तिलप्रमाणवर्षं च मोदते विष्णुमन्दिरे॥२५॥
ततः स्वयोनिं संप्राप्य चिरजीवी भवेत्सुखी। ताम्रपात्रस्थदानेन द्विगुणं च फलं लभेत्॥२६॥
सालंकृतां च भोग्यां च सवस्त्रां सुन्दरीं प्रियाम्। यो ददाति ब्राह्मणाय भारते च पतिव्रताम्॥२७॥
महीयते चन्द्रलोके यावदिन्द्राश्चतुर्दश। तत्र स्ववेश्यया सार्धं मोदते च दिवानिशम्॥२८॥
ततो गन्धर्वलोके च वर्षाणामयुतं सति। दिवानिशं कौतुकेन चोर्वश्या सह मोदते॥२९॥
ततो जन्मसहस्रं च प्राप्नोति सुन्दरीं प्रियाम्। सतीं सौभाग्ययुक्तां च कोमलां प्रियवादिनीम्॥३०॥
ददाति सफलं वृक्षं ब्राह्मणाय च यो नरः। फलप्रमाणवर्षं च शक्रलोके महीयते॥३१॥

को धान का पर्वत अर्पित करता है, वह धान के दानों के बराबर वर्षों तक विष्णुलोक में प्रतिष्ठित होता है॥१९॥ पश्चात् पुनः मनुष्य योनि में उत्पन्न होकर सुखी तथा चिरजीवी होता है। इस प्रकार दाता (देनेवाला) और गृहीता (लेनेवाला) दोनों ही (अन्त में) निश्चित रूप से वैकुण्ठ में जाते हैं॥२०॥ भारत में जो मनुष्य निरन्तर श्री विष्णु भगवान् के नाम का जप करता है, वह चिरजीवी होता है तथा उसे देखते ही मृत्यु भाग जाती है॥२१॥ भारत में जो मनुष्य पूर्णिमा की रात्रि में भगवान् श्रीकृष्ण के निमित्त झूला (हिंडोला) अर्पित करता है, वह जीवन्मुक्त होता है॥२२॥ इस लोक में सुखानुभव करने के अनन्तर वह विष्णुलोक में जाता है और वहाँ सौ मन्वन्तरों के समय तक निश्चित रूप से निवास करता है॥२३॥ उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में दोलोत्सव मनाने से दुगुना फल प्राप्त होता है और ऐसा व्यक्ति कल्पान्त पर्यन्त जीवित रहता है, ऐसा ब्रह्मा ने कहा है॥२४॥ जो भारत में ब्राह्मण को तिल अर्पित करता है, वह उस तिल के दाने के बराबर वर्षों तक भगवान् विष्णु के धाम में आनन्द प्राप्त करता है॥२५॥ अनन्तर वह मनुष्य-योनि में उत्पन्न होकर चिरकाल तक सुखी जीवन व्यतीत करता है। ताँबे के पात्र में तिल रखकर दान करने से दुगुना फल प्राप्त होता है॥२६॥ जो अपनी प्रियतमा सुन्दरी स्त्री को, जो भोग के उपयुक्त एवं पतिव्रता हो, सुन्दर वस्त्र तथा अलङ्कारों से विभूषित करके ब्राह्मण को समर्पित करता है वह चौदहों इन्द्रों के समय तक चन्द्रलोक में पूजित होता है और वहाँ अप्सराओं के साथ दिनरात आनन्द का जीवन व्यतीत करता है॥२७-२८॥ अनन्तर दश सहस्र वर्षों तक गन्धर्व लोक में उर्वशी के साथ दिनरात आमोद-प्रमोद करता है॥२९॥ उसके पश्चात् सहस्रों जन्मों तक (इस लोक में) अत्यन्त सुन्दरी प्रियतमा प्राप्त करता है, जो पतिव्रता, सौभाग्यशालिनी, अतिकोमलाङ्गी एवं मधुरभाषिणी होती है॥३०॥ जो ब्राह्मण को फलयुक्त वृक्ष प्रदान करता है, वह फल के बराबर वर्षों तक इन्द्र-लोक में पूजित होता है॥३१॥ अनन्तर मनुष्य योनि में

पुनः स्वयोनिं संप्राप्य लभते सुतमुत्तमम्। सफलानां च वृक्षाणां सहस्रं च प्रशंसितम्॥३२॥
केवलं फलदानं च ब्राह्मणाय ददाति यः। सुचिरं स्वर्गवासं च कृत्वा याति च भारतम्॥३३॥
नानाद्रव्यसमायुक्तं नानासस्यसमन्वितम्। ददाति यश्च विप्राय भारते विपुलं गृहम्॥३४॥
कुबेरलोके वसति स च मन्वन्तरावधि। ततः स्वयोनिं संप्राप्य महांश्च धनवान्भवेत्॥३५॥
यो जनः सस्यसंयुक्तां भूमिं च रुचिरां सति। ददाति भक्त्या विप्राय पुण्यक्षेत्रे च वा सति॥३६॥
महीयते स वैकुण्ठे मन्वन्तरशतं ध्रुवम्। पुनः स्वयोनिं संप्राप्य महांश्च भूमिवान्भवेत्॥३७॥
तं न त्यजति भूमिश्च जन्मनां शतकं परम्। श्रीमांश्च धनवांश्चैव पुत्रवांश्च प्रजेश्वरः॥३८॥
सप्रजं च प्रकृष्टं च ग्रामं दद्याद्द्विजातये। लक्षमन्वन्तरं चैव वैकुण्ठे स महीयते॥३९॥
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य ग्रामलक्षं लभेद्ध्रुवम्। न जहाति च तं पृथ्वी जन्मनां लक्षमेव च॥४०॥
सप्रजं सुप्रकृष्टं च पक्वसस्यसमन्वितम्। नानापुष्करिणीवृक्षं फलभोगसमन्वितम्॥४१॥
नगरं यश्च विप्राय ददाति भारते भुवि। महीयते स वैकुण्ठे दशलक्षेन्द्रकालकम्॥४२॥
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य राजेन्द्रो भारते भवेत्। नगराणां च नियुतं लभते नात्र संशयः॥४३॥
धरा तं न जहात्येव जन्मनां नियुतं ध्रुवम्। परमैश्वर्यसंयुक्तो भवेदेव महीतले॥४४॥

उत्पन्न होकर परमोत्तम पुत्र प्राप्त करता है। फल लगे वृक्षों के दान की महिमा सहस्रगुण अधिक बतायी गई है॥३२॥ जो ब्राह्मण को केवल फल का ही दान करता है, वह अतिचिरकाल तक स्वर्गनिवास करके पुनः भारतवर्ष में जन्म पाता है। भारतवर्ष में रहनेवाला जो पुरुष अनेक द्रव्यों से सम्पन्न तथा भाँति-भाँति के धान्यों से भरे-पूरे विशाल भवन ब्राह्मण को दान करता है, वह उसके फल-स्वरूप दीर्घकाल तक कुबेर के लोक में वास पाता है। तत्पश्चात् मनुष्ययोनि में जन्म पाकर वह महान् धनवान् होता है। ॥३३-३५॥ जो मनुष्य पुण्य क्षेत्र में या अन्यत्र फूली-फली मनोहर भूमि किसी ब्राह्मण को भक्तिपूर्वक अर्पित करता है, वह वैकुण्ठ लोक में सौ मन्वन्तरों के समय तक प्रतिष्ठित होता है, और पुनः अन्त में मनुष्ययोनि में उत्पन्न होकर महान 'भूमिस्वामी' बनता है॥३६-३७॥ सैकड़ों जन्मों तक भूमि उसका त्याग नहीं करती है और वह सदैव श्रीमान्, धनवान् एवं पुत्रवान् राजा बना रहता है॥३८॥ जो प्रजाओं समेत परमोत्तम ग्राम ब्राह्मण को समर्पित करता है, वह वैकुण्ठ में एक लाख मन्वन्तर के समय तक पूजित होता है॥३९॥ पुनः मानवकुल में उत्पन्न होकर एक लाख ग्रामों का अधीश्वर होता है और लाखों जन्मों तक पृथ्वी उसका त्याग नहीं करती है॥४०॥ भारत के भूतल पर जो प्रजाओं से सुशोभित अत्यन्त उन्नत, पकी हुई फसलों से सम्पन्न और अनेक बावलियों, फूले-फले वृक्षों से परिपूर्ण नगर ब्राह्मण को प्रदान करता है, वह दश लाख इन्द्रों के समय तक वैकुण्ठ में पूजित होता है॥४१-४२॥ पुनः मनुष्यकुल में उत्पन्न होकर भारत का राजाधिराज होता है और एक लाख नगर उसके अधीन रहते हैं, इसमें संशय नहीं॥४३॥ ऐसे पुरुष को दस हजार जन्मों तक पृथ्वी नहीं छोड़ती है (अर्थात् वह पृथिवीपति होता है)। इस भूतल पर वह सदैव परम ऐश्वर्य से सम्पन्न रहता है॥४४॥ जो भक्तिपूर्वक ब्राह्मण को सौ नगर का देश समर्पित करता

नगराणां च शतकं[1] देशं यो हि द्विजातये। [2]सुप्रकृष्टप्रजायुक्तं ददाति भक्तिपूर्वकम् ॥४५॥
वापीतडागसंयुक्तं नानावृक्षसमन्वितम्। महीयते स वैकुण्ठे कोटिमन्वन्तरावधि ॥४६॥
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य जम्बूद्वीपपतिर्भवेत्। परमैश्वर्यसंयुक्तो यथा शक्रस्तथा भुवि ॥४७॥
मही तं न जहात्येव जन्मनां कोटिमेव च। कल्पान्तजीवी स भवेद्राजराजेश्वरो महान् ॥४८॥
स्वाधिकारं समग्रं च यो ददाति द्विजातये। चतुर्गुणं फलं चातो भवेत्तस्य न संशयः ॥४९॥
जम्बूद्वीपं यो ददाति ब्राह्मणाय पतिव्रते। फलं शतगुणं चातो भवेत्तस्य न संशयः ॥५०॥
सप्तद्वीपमहीदातुः सर्वतीर्थानुसेविनः। सर्वेषां तपसां कर्तुः सर्वोपवासकारिणः ॥५१॥
सर्वदानप्रदातुश्च सर्वसिद्धेश्वरस्य च। अस्त्येव पुनरावृत्तिर्न भक्तस्य हरेरहो ॥५२॥
असंख्यब्रह्मणां पातं पश्यन्ति वैष्णवाः सति। निवसन्ति हि गोलोके वैकुण्ठे वा हरेः पदे ॥५३॥
विष्णुमन्त्रोपासकश्च विहाय मानवीं तनुम्। बिभर्ति दिव्यरूपं च जन्ममृत्युजरापहम् ॥५४॥
लब्ध्वा विष्णोश्च सारूप्यं विष्णुसेवां करोति च। स च पश्यति गोलोके ह्यसंख्यं प्राकृतं लयम् ॥५५॥
नश्यन्ति देवाः सिद्धाश्च विश्वानि निखिलानि च। कृष्णभक्ता न नश्यन्ति जन्ममृत्युजराहराः ॥५६॥

है, जो अत्यन्त उन्नत एवं प्रजाओं से सुशोभित और बावली, तालाब एवं अनेक भाँति के वृक्षों से विभूषित हो, वह करोड़ों मन्वन्तरों के समय तक वैकुण्ठ में प्रतिष्ठित होता है। अनन्तर मानव-कुल में उत्पन्न होकर 'जम्बूद्वीप' का 'अधीश्वर' होता है और इन्द्र की भाँति इस भूतल पर महान् ऐश्वर्य का उपभोग करता है।।४५-४७।। करोड़ों जन्मों तक पृथिवी उसका त्याग नहीं करती है। वह चिरजीवी तथा महाराजाधिराज होता है।।४८।। जो अपना समस्त अधिकार ब्राह्मण को समर्पित करता है, वह चौगुने फल का भागी होता है, इसमें संशय नहीं।।४९।। पतिव्रते! जो ब्राह्मण को जम्बूद्वीप अर्पित करता है, उसे सौगुने फल प्राप्त होते है, इसमें संदेह नहीं।।५०।। सातों द्वीप समेत इस भूमण्डल का दान करने वाले, समस्त तीर्थों की सेवा करने वाले, समस्त तपस्याओं में संलग्न रहने वाले, सम्पूर्ण उपवास-व्रत के पालक, सर्वस्व दान करने वाले तथा सम्पूर्ण सिद्धियों के पारंगत भी पुनः इस संसार में लौट कर आते हैं (अर्थात् जन्म ग्रहण करते हैं), किन्तु, आश्चर्य है कि भगवान् के भक्त यहाँ लौटकर नहीं आते (अर्थात् उनका पुनर्जन्म नहीं होता है) ।।५१-५२।। वे वैष्णव गोलोक अथवा भगवान् विष्णु के वैकुण्ठ स्थान में रहते हैं और वहीं से असंख्य ब्रह्मा का पात (उत्पत्ति और विलय) देखा करते हैं।।५३।। भगवान् विष्णु के मन्त्र की उपासना करने वाले पुरुष अपने मानव-शरीर का त्याग कर जन्म, मृत्यु और जरा से रहित दिव्यरूप धारण करते हैं।।५४।। वहाँ वे विष्णु का सारूप्य पाकर गोलोक में भगवान् कृष्ण की सेवा करते हैं और असंख्य प्राकृत लय को देखते रहते हैं।।५५।। देवगण, सिद्धगण तथा समस्त विश्व का नाश हो जाता है, किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण का भक्त नष्ट नहीं होता। जन्म, मृत्यु एवं जरा उसके पास नहीं फटकती।।५६।। जो कार्तिक मास में भगवान् को

---

१ क. च नियुतं दे०। २ क. ०प्रसन्नप्र०।

कार्तिके तुलसीदानं करोति हरये च यः। युगं पत्रप्रमाणं च मोदते हरिमन्दिरे ॥५७॥
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य हरिभक्तिं लभेद्ध्रुवम्। सुखी च चिरजीवी च स भवेद्भारते भुवि ॥५८॥
घृतप्रदीपं हरये कार्तिके यो ददाति च। पलप्रमाणं वर्षं च मोदते हरिमन्दिरे॥५९॥
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य विष्णुभक्तिं लभेद्ध्रुवम्। महाधनाढ्यः स भवेच्चक्षुष्मांश्चैव दीप्तिमान् ॥६०॥
माघे यः स्नाति गङ्गायामरुणोदयकालतः। युगषष्टिसहस्राणि मोदते हरिमन्दिरे ॥६१॥
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य विष्णुभक्तिं लभेद्ध्रुवम्। जितेन्द्रियाणां प्रवरः स भवेद्भारते भुवि ॥६२॥
माघे यः स्नाति गङ्गायां प्रयागे चारुणोदये। वैकुण्ठे मोदते सोऽपि लक्षमन्वन्तरावधि ॥६३॥
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य विष्णुमन्त्रं लभेद्ध्रुवम्। त्यक्त्वा च मानुषं देहं पुनर्याति हरेः पदम् ॥६४॥
नास्ति तत्पुनरावृत्तिर्वैकुण्ठाच्च महीतले। करोति हरिदास्यं च लब्ध्वा सारूप्यमेव च ॥६५॥
नित्यस्नायी च गङ्गायां स पूतः सूर्यवद्भुवि। पदे पदेऽश्वमेधस्य लभते निश्चितं फलम् ॥६६॥
तस्यैव पादरजसा सद्यः पूता वसुंधरा। मोदते स च वैकुण्ठे यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥६७॥
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य तपस्विप्रवरो भवेत्। स्वधर्मनिरतः शुद्धो विद्वांश्च सुजितेन्द्रियः ॥६८॥
मीनकर्कटयोर्मध्ये गाढं तपति भास्करे। भारते यो ददात्येव जलमेव सुवासितम् ॥६९॥

तुलसी दान करता है, वह उन पत्रों की संख्या के बराबर युगों तक भगवान् के धाम में आनन्द-जीवन प्राप्त करता है।।५७।। अनन्तर मानव-कुल में जन्म ग्रहण करके निश्चित ही हरिभक्त होता है और इस भारत भूतल पर सुखी रहकर चिरजीवन व्यतीत करता है।।५८।। जो कार्तिक में भगवान् को घृत का दीपक अर्पित करता है, वह जितने पल दीपक जलता है उतने वर्षों तक भगवान् के धाम में आनन्द प्राप्त करता है।।५९।। और अन्त में मानव कुल में उत्पन्न होकर भगवान् विष्णु की भक्ति निश्चित रूप से प्राप्त करता है तथा यहाँ महाधनवान्, नेत्र ज्योति से युक्त एवं कान्तिमान् होकर रहता है।।६०।। जो माघ मास में अरुणोदय के समय गंगा स्नान करता है, वह भगवान् विष्णु के धाम में साठ सहस्र युगों तक आनन्द प्राप्त करता है।।६१।। पश्चात् मानव-कुल में उत्पन्न होकर भगवान् का निःसन्देह भक्त होता है और भारत में जितेन्द्रिय-शिरोमणि होता है।।६२।। माघ मास में प्रयाग क्षेत्र की गंगा में अरुणोदय के समय स्नान करने वाला व्यक्ति एक लाख मन्वन्तरों के समय तक वैकुण्ठ में आनन्द प्राप्त करता है ।।६३।। अनन्तर मानव-कुल में उत्पन्न होकर भगवान् विष्णु का मन्त्र निश्चित रूप से प्राप्त करता है और अन्त में इस मानव-शरीर का त्याग कर पुनः विष्णुलोक में चला जाता है। फिर उसे वैकुण्ठलोक से इस महीतल पर कभी नहीं आना पड़ता है। वहाँ सारूप्य मोक्ष प्राप्त कर वह भगवान् का पार्षद हो जाता है।।६४-६५।। जो गंगा में नित्य स्नान करता है, वह इस भूतल पर सूर्य के समान पवित्र होता है और उसे पग-पग पर अश्वमेध का फल प्राप्त होता है।।६६।। उसके चरण-रज से वसुन्धरा सद्यः पवित्र हो जाती है तथा वह स्वयं वैकुण्ठ-लोक में सूर्य-चन्द्रमा के समय तक आनन्दानुभव करता है।।६७।। पश्चात् मानव-कुल में उत्पन्न होकर वह श्रेष्ठ तपसी, स्वधर्मपरायण, शुद्ध, विद्वान् एवं जितेन्द्रिय होता है।।६८।। जो मीन और कर्कट के मध्यवर्तीकाल में सूर्य के बहुत तपने पर भारतवर्ष में सुवासित जल का दान करता है, वह वैकुण्ठ में चौदह इन्द्रों के काल तक आनन्द भोगता रहता है। फिर मनुष्य

मोदते स च वैकुण्ठे यावदिन्द्राश्चतुर्दश। पुनः स्वयोनिं संप्राप्य सुखी निष्कपटो[1] भवेत् ॥७०॥
वैशाखे हरये भक्त्या यो ददाति च चन्दनम्। युगषष्टिसहस्राणि मोदते विष्णुमन्दिरे।
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य रूपवांश्च सुखी भवेत् ॥७१॥
(यज्ञसूत्रेण तत्पुण्यं लभते नात्र संशयः। वैकुण्ठे मोदते सोऽपि कृष्णभक्तिं लभेद्ध्रुवम्) ॥७२॥
वैशाखे सक्तुदानं च यः करोति द्विजातये। सक्तुरेणुप्रमाणाब्दं मोदते विष्णुमन्दिरे ॥७३॥
करोति भारते यो हि कृष्णजन्माष्टमीव्रतम्। शतजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥७४॥
वैकुण्ठे मोदते सोऽपि यावदिन्द्राश्चतुर्दश। पुनः स्वयोनिं संप्राप्य कृष्णभक्तिं लभेद्ध्रुवम् ॥७५॥
इहैव भारते वर्षे शिवरात्रिं करोति यः। मोदते शिवलोके च सप्तमन्वन्तरावधि ॥७६॥
शिवाय शिवरात्रौ च बिल्वपत्रं ददाति यः। पत्रप्रमाणं च युगं मोदते शिवमन्दिरे ॥७७॥
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य शिवभक्तिं लभेद्ध्रुवम्। विद्यावान्पुत्रवाञ्छ्रीमान्प्रजावान्भूमिमान्भवेत् ॥७८॥
चैत्रमासेऽथवा माघे शंकरं योऽर्चयेद्व्रती। करोति नर्तनं भक्त्या वेत्रपाणिर्दिवानिशम् ॥७९॥
मासं वाऽप्यर्धमासं वा दश सप्त दिनानि वा। दिनमानं युगं सोऽपि शिवलोके महीयते ॥८०॥

योनि में जन्म पाकर कपटरहित एवं सुखी होता है ॥६९-७०॥ वैशाख मास में भगवान् को जो चन्दन अर्पित करता है, वह भगवान् के लोक में साठ सहस्र युगों तक आनन्दानुभव करता है और पुनः मानव-कुल में उत्पन्न होकर रूपवान् एवं सुखी होता है ॥७१॥ (यज्ञोपवीत दान करने से भी निःसन्देह वही पुण्य होता है और वह व्यक्ति वैकुण्ठ में आनन्द प्राप्त करता है तथा निश्चित रूप से कृष्ण-भक्ति भी उसे मिलती है।) ॥७२॥ वैशाख मास में जो द्विजातियों को सतुआ दान करता है, वह सत्तूकण के बराबर वर्षों तक विष्णु-धाम में आनन्द प्राप्त करता है ॥७३॥ भारतवर्ष में जो श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी व्रत करता है वह सैकड़ों जन्मों के पाप से मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं ॥७४॥ वह भी वैकुण्ठ में चौदहों इन्द्रों के समय तक आनन्द-जीवन व्यतीत करता है। पश्चात् यहाँ मानवकुल में जन्म पाकर भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति निश्चित रूप से प्राप्त करता है ॥७५॥ इस भारतवर्ष में ही शिवरात्रि का व्रत करनेवाला व्यक्ति सात मन्वन्तरों के समय तक शिव-लोक में आनन्द प्राप्त करता है ॥७६॥ शिवरात्रि के दिन जो भगवान् शिव को विल्वपत्र अर्पित करता है, वह पत्र-संख्या के बराबर युगों तक शिवलोक में आनन्द प्राप्त करता है ॥७७॥ पश्चात मानव-कुल में उत्पन्न होकर निश्चित रूप से शिवभक्ति प्राप्त करता है और विद्या, पुत्र, श्री, प्रजा और भूमि से सदैव सम्पन्न रहता है ॥७८॥ चैत्र मास अथवा माघ मास में जो व्रत रखकर भगवान् शंकर की अर्चना करता है तथा हाथ में बेंत लेकर उनके सम्मुख रात-दिन सात दिन तक भक्तिपूर्वक नृत्य करता है वह चाहे एक दिन, आधा मास, दस दिन, सात दिन अथवा दो ही दिन या एक ही दिन ऐसा क्यों न करे, उसे दिन की संख्या के बराबर युगों तक शिवलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त होती है ॥७९-८०॥ भारतवर्ष में जो मनुष्य रामनवमी

---

१ क. निष्कण्टको भ०।

श्रीरामनवमीं यो हि करोति भारते नरः। सप्तमन्वन्तरं यावन्मोदते विष्णुमन्दिरे ॥८१॥
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य रामभक्तिं लभेद्ध्रुवम्। जितेन्द्रियाणां प्रवरो महांश्च धार्मिको भवेत् ॥८२॥
शारदीयां महापूजां प्रकृतेर्यः करोति च। महिषैश्छागलैर्मेषैरिक्षुकूष्माण्डकैस्तथा ॥८३॥
नैवेद्यैरुपहारैश्च धूपदीपादिभिस्तथा। नृत्यगीतादिभिर्वाद्यैर्नानाकौतुकमङ्गलैः ॥८४॥
शिवलोके वसेत्सोऽपि सप्तमन्वन्तरावधि। पुनः स्वयोनिं संप्राप्य[1] बुद्धिं च निर्मलां लभेत् ॥८५॥
अचलां श्रियमाप्नोति पुत्रपौत्रादिवर्धिनीम्। महाप्रभावयुक्तश्च गजवाजिसमन्वितः ॥८६॥
राजराजेश्वरः सोऽपि भवेदेव न संशयः। भाद्रशुक्लाष्टमीं प्राप्य महालक्ष्मीं च योऽर्चयेत् ॥८७॥
नित्यं भक्त्या पक्षमेकं पुण्यक्षेत्रे च भारते। दत्त्वा तस्यै प्रकृष्टानि चोपचाराणि षोडश ॥८८॥
वैकुण्ठे मोदते सोऽपि यावच्चन्द्रदिवाकरौ। पुनः स्वयोनिं संप्राप्य राजराजेश्वरो भवेत् ॥८९॥
कार्तिके पूर्णिमायां च कृत्वा तु रासमण्डलम्। गोपानां शतकं कृत्वा गोपीनां शतकं तथा ॥९०॥
शिलायां प्रतिमायां वा श्रीकृष्णं राधया सह। भारते पूजयेद्दत्त्वा चोपचाराणि षोडश ॥९१॥
गोलोके च वसेत्सोऽपि यावद्वै ब्रह्मणो वयः। भारतं पुनरागत्य कृष्णभक्तिं लभेद् ध्रुवम् ॥९२॥
क्रमेण सुदृढां भक्तिं लब्ध्वा मन्त्रं हरेरपि। देहं त्यक्त्वा च गोलोकं पुनरेव प्रयाति सः ॥९३॥

व्रत सुसम्पन्न करता है, वह विष्णुलोक में सात मन्वन्तरों के समय तक आनन्द प्राप्त करता है ॥८१॥ पुनः मानव-कुल में उत्पन्न होकर निश्चित रूप से राम-भक्ति प्राप्त करता है तथा जितेन्द्रिय शिरोमणि एवं महान् धार्मिक होता है ॥८२॥ शारदीय नवरात्र में जो महादुर्गा की महापूजा करता है, जिसमें भैंसा, बकरी, भेंड़ा, ऊख, कूष्माण्ड (कुम्हड़ा) आदि नैवेद्यों , उपहारों तथा धूप-दीप आदि से महापूजा करता है, साथ ही नृत्य-गीत, वाद्य आदि के द्वारा अनेक भाँति के मंगलमय उत्सव मनाता है, वह भी शिवलोक में सात मन्वन्तरों के समय तक निवास करता है और अन्त में पुनः मानव-कुल में उत्पन्न होकर निर्मल बुद्धि प्राप्त करता है, उसे पुत्र-पौत्रादि की अभिवृद्धि तथा अचल श्री की प्राप्ति होती है और वह स्वयं महाप्रभावशाली होकर गजराजों और अश्वों से सम्पन्न राजराजेश्वर होता है, इसमें संशय नहीं। पुण्यक्षेत्र भारत में भाद्रपद की शुक्ल-अष्टमी के अवसर पर जो एक पक्ष तक नित्य भक्तिभाव से महालक्ष्मी की उपासना करता है, सोलह प्रकार के उत्तम उपचारों से भलीभाँति पूजा करने में संलग्न रहता है, वह वैकुण्ठ धाम में चन्द्र और सूर्य के समय तक आनन्द प्राप्त करता है और पुनः मनुष्ययोनि में उत्पन्न होकर राजराजेश्वर होता है ॥८३-८९॥ भारत में कार्तिक मास की पूर्णिमा के दिन रासमण्डल की रचना करने के उपरान्त सौ गोप और सौ गोपियों समेत राधाकृष्ण की पाषाणमयी प्रतिमा की षोडशोपचार से पूजा करने वाला व्यक्ति ब्रह्मा की आयु पर्यन्त गोलोक में निवास करता है और पश्चात् पुनः भारतवर्ष में जन्म लेकर निश्चित ही हरिभक्ति प्राप्त करता है ॥९०-९२॥ इस प्रकार क्रमशः वह भगवान् विष्णु की मन्त्रसमेत दृढ़ भक्ति प्राप्त कर अन्त में इस शरीर के छूटने पर पुनः गोलोक में चला जाता है ॥९३॥ वहाँ भगवान् श्रीकृष्ण का सारूप्य मोक्ष प्राप्त कर उनका पार्षद बन जाता है। उसकी न

---

१ क. राजराजेश्वरो भवेत्।

तत्र कृष्णस्य सारूप्यं संप्राप्य पार्षदो भवेत्। पुनस्तत्पतनं नास्ति जरामृत्युहरो महान् ॥९४॥
शुक्लां वाप्यथवा कृष्णां करोत्येकादशीं च यः। वैकुण्ठे मोदते सोऽपि यावद्वै ब्रह्मणो वयः ॥९५॥
भारतं पुनरागत्य हरिभक्तिं लभेद्ध्रुवम्। पुनर्याति च वैकुण्ठं न तस्य पतनं भवेत् ॥९६॥
भाद्रे शुक्ले च द्वादश्यां यः शक्रं पूजयेन्नरः। षष्टिवर्षसहस्राणि शक्रलोके महीयते ॥९७॥
रविवारेऽर्कसंक्रान्त्यां सप्तम्यां शुक्लपक्षतः। संपूज्यार्कं हविष्यान्नं यः करोति च भारते ॥९८॥
महीयते सोऽर्कलोके यावच्चन्द्रदिवाकरौ। भारतं पुनरागत्य [1]चारोगी श्रीयुतो भवेत् ॥९९॥
ज्येष्ठशुक्लचतुर्दश्यां सावित्रीं यो हि पूजयेत्। महीयते ब्रह्मलोके सप्तमन्वन्तरावधि ॥१००॥
पुनर्महीं समागत्य श्रीमानतुलविक्रमः। चिरजीवी भवेत्सोऽपि ज्ञानवान्संपदा युतः ॥१०१॥
माघस्य शुक्लपञ्चम्यां पूजयेद्यः सरस्वतीम्। संयतो भक्तितो दत्त्वा चोपचाराणि षोडश ॥१०२॥
महीयते स वैकुण्ठे यावद्ब्रह्मदिवानिशम्। संप्राप्य च पुनर्जन्म स भवेत्कविपण्डितः ॥१०३॥
गां सुवर्णादिकं यो हि ब्राह्मणाय ददाति च। नित्यं जीवनपर्यन्तं भक्तियुक्तश्च भारते ॥१०४॥
गवां लोमप्रमाणाब्दं द्विगुणं विष्णुमन्दिरे। मोदते हरिणा सार्धं क्रीडाकौतुकमङ्गलैः ॥१०५॥

तो जरा-मृत्यु होती है और न वहाँ से उसका पतन ही होता है ॥९४॥ शुक्लपक्ष अथवा कृष्णपक्ष की एकादशी तिथि का व्रत रहने वाला भी ब्रह्मा की आयु पर्यन्त वैकुण्ठ में आनन्द प्राप्त करता है ॥९५॥ और अन्त में भारतवर्ष में जन्म लेने पर निश्चित रूप से भगवान् विष्णु की भक्ति प्राप्त करता है। जिसके प्रभाव से वह यहाँ से पुनः वैकुण्ठ में जाता है और वहाँ से उसका कभी पतन नहीं होता है ॥९६॥ भादों मास की शुक्ल-द्वादशी के दिन जो इन्द्र की पूजा करता है, वह साठ सहस्र वर्षों तक इन्द्रलोक में आनन्द-जीवन प्राप्त करता है ॥९७॥ जो व्यक्ति भारतवर्ष में रविवार, सूर्य संक्रान्ति और शुक्ल पक्ष की सप्तमी के दिन सूर्य की पूजा करके हविष्यान्न दान करता है, वह चन्द्र-सूर्य के समय तक सूर्य-लोक में सम्मानित होता है और अन्त में भारत आने पर नीरोग एवं श्रीसम्पन्न होता है ॥९८-९९॥ ज्येष्ठ मास की शुक्ल-चतुर्दशी के दिन जो सावित्री देवी की पूजा करता है, वह ब्रह्मलोक में सात मन्वन्तरों के समय तक पूजित होता है ॥१००॥ अन्त में यहाँ जन्मग्रहण करने पर श्रीमान्, अतुल पराक्रमी, चिरजीवी, ज्ञानी एवं महान् धनी होता है ॥१०१॥ माघ मास की शुक्ल-पञ्चमी के दिन संयत होकर जो भक्तिभाव के साथ षोडशोपचार से सरस्वती देवी की अर्चना करता है, वह ब्रह्मा के समय तक वैकुण्ठ में रात्रिदिन पूजित होता है और अन्त में पुनः जन्म ग्रहण करने पर कवि पण्डित होता है ॥१०२-१०३॥ भारत में जो मनुष्य अपने जीवनकाल तक प्रतिदिन भक्तिपूर्वक ब्राह्मण को गौ या सुवर्णदान अर्पित करता है, वह उन गौओं के लोमों के दुगुने वर्षों तक विष्णु-लोक में भगवान् के साथ क्रीड़ा एवं मंगल कौतुक करते हुए आनन्द जीवन व्यतीत करता है ॥१०४-१०५॥

---

१ क. कृष्णभक्तिं लभेद्ध्रुवम्।

ततः पुनरिहाऽऽगत्य विष्णुभक्तिं लभेद्ध्रुवम्। ततः पुनरिहाऽऽगत्य राजराजेश्वरो भवेत्।
गोमांश्च पुत्रवान्विद्वाञ्ज्ञानवान्सर्वतः सुखी। ॥१०६॥
भोजयेद्यो हि मिष्टान्नं ब्राह्मणेभ्यश्च भारते। विप्रलोमप्रमाणाब्दं मोदते विष्णुमन्दिरे॥१०७॥
ततः पुनरिहाऽऽगत्य स सुखी धनवान्भवेत्। विद्वान्सुचिरजीवी च श्रीमानतुलविक्रमः॥१०८॥
यो वक्ति वा ददात्येव हरेर्नामानि भारते। युगं नामप्रमाणं च विष्णुलोके महीयते॥१०९॥
ततः पुनरिहाऽऽगत्य विष्णुभक्तिं लभेद्ध्रुवम्। यदि नारायणक्षेत्रे फलं कोटिगुणं लभेत्॥११०॥
नाम्नां कोटिं हरेर्यो हि क्षेत्रे नारायणे जपेत्। सर्वपापविनिर्मुक्तो जीवन्मुक्तो भवेद्ध्रुवम्॥१११॥
लभते न पुनर्जन्म वैकुण्ठे स महीयते। लभेद्विष्णोश्च सारूप्यं न तस्य पतनं भवेत्॥११२॥
यः शिवं पूजयेन्नित्यं कृत्वा लिङ्गं च पार्थिवम्। यावज्जीवनपर्यन्तं स याति शिवमन्दिरम्॥११३॥
मृदां रेणुप्रमाणाब्दं शिवलोके महीयते। ततः पुनरिहाऽऽगत्य राजेन्द्रो भारते भवेत्॥११४॥
शिलां च योऽर्चयेन्नित्यं शिलातोयं च भक्षति। महीयते स वैकुण्ठे यावद्वै ब्रह्मणः शतम्॥११५॥
ततो लब्ध्वा पुनर्जन्म हरिभक्तिं सुदुर्लभाम्। महीयते विष्णुलोके न तस्य पतनं भवेत्॥११६॥
तपांसि चैव सर्वाणि व्रतानि निखिलानि च। कृत्वा तिष्ठति वैकुण्ठे[1] यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥११७॥

पुनः अन्त में यहाँ आने पर निश्चित रूप से विष्णुभक्ति प्राप्त करता है। पश्चात् पुनः विष्णुलोक से लौटकर वह राजाधिराज, प्रशस्त गौओं से युक्त, पुत्रवान्, विद्वान्, ज्ञानवान् तथा सब प्रकार से सुखी होता है॥१०६॥ भारत में जो ब्राह्मणों को मिष्टान्न (मिठाई) भोजन कराता है, वह ब्राह्मणों के लोम जितने वर्षों तक विष्णुलोक में आनन्द प्राप्त करता है। पश्चात् यहाँ आने पर वह सुखी, धनी, विद्वान्, अतिचिरजीवी, श्रीमान् और अतुल पराक्रमी होता है॥१०७-१०८॥ भारत में जो भगवान् विष्णु के नामों को कहता रहता है या (लिखकर) देता है, वह नाम-संख्या के बराबर युगों तक विष्णुलोक में पूजित होता है॥१०९॥ पुनः यहाँ आने पर निश्चित ही भगवान् की भक्ति प्राप्त करता है। यदि नारायण क्षेत्र में उसने यह पुण्य कर्म किया है, तो उसे करोड़ गुना अधिक फल प्राप्त होता है॥११०॥ जो नारायण क्षेत्र में भगवान् के नामों का करोड़ बार जप करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर जीवन्मुक्त हो जाता है, यह ध्रुव है॥१११॥ उसका पुनर्जन्म नहीं होता है। वह वैकुण्ठ में पूजित होता है। पश्चात् विष्णु का सारूप्य मोक्ष प्राप्त करने से उसका कभी वहाँ से पतन नहीं होता है॥११२॥ जो व्यक्ति नित्य पार्थिव शिवलिंग बनाकर शिवजी की पूजा करता है और जीवन भर इस नियम का पालन करता है, वह भगवान शिव के लोक में जाता है और (पार्थिव शिवलिंग की) मृत्तिका के रेणु-कण जितने वर्षों तक वहाँ प्रतिष्ठित होता है। पश्चात् पुनः भारतवर्ष में आने पर राजेन्द्र-पद को सुशोभित करता है॥११३-११४॥ जो व्यक्ति (शालग्राम) शिला का नित्य पूजन करता है और उनका चरणोदक लेता है, वह सौ ब्रह्मा के समय तक वैकुण्ठ में पूजित होता है। पश्चात् पुनः भारतवर्ष में आने पर भगवान् की अतिदुर्लभ भक्ति प्राप्त करके पुनः विष्णुलोक में जाता है और वहाँ से उसका पतन कभी नहीं होता है॥११५-११६॥ सकल तप और समस्त व्रतों का अनुष्ठान करके मनुष्य वैकुण्ठ में चौदहों इन्द्रों के समय तक निवास करता है॥११७॥ अनन्तर यहाँ भारत में जन्म लेकर राजेन्द्र होता है और अन्त में

---

१ क. वद्वै ब्रह्मणां शतम्।

ततो लब्ध्वा पुनर्जन्म राजेन्द्रो भारते भवेत्। ततो मुक्तो भवेत्पश्चात्पुनर्जन्म न विद्यते ॥११८॥
यः स्नाति सर्वतीर्थेषु भुवः कृत्वा प्रदक्षिणाम्। स च निर्वाणतां याति न तज्जन्म भवेद्भुवि ॥११९॥
पुण्यक्षेत्रे भारते च योऽश्वमेधं करोति च। अश्वलोमप्रमाणाब्दं शक्रस्यार्धासने वसेत् ॥१२०॥
चतुर्गुणं राजसूये फलमाप्नोति मानवः। नरमेधेऽश्वमेधार्धं गोमेधे च तदेव च ॥१२१॥
पुत्रेष्टौ च तदर्धं च सुपुत्रं च लभेद्ध्रुवम्। लभते लाङ्गलेष्टौ च गोमेधसदृशं फलम् ॥१२२॥
तत्समानं च विप्रेष्टौ वृद्धियागे च तत्फलम्। पद्मयज्ञे तदर्धं च फलमाप्नोति मानवः ॥१२३॥
विशोके च विशोकं च पद्मार्धं स्वर्गमश्नुते। विजये विजयी राजा स्वर्गं पद्मसमं लभेत् ॥१२४॥
प्राजापत्ये प्रजालाभो भूवृद्धिर्भूभृतां भवेत्। इह राजश्रियं लब्ध्वा पद्मार्धं स्वर्गमश्नुते ॥
ऋद्धियागे महैश्वर्यं स्वर्गं पद्मसमं भवेत् ॥१२५॥
विष्णुयज्ञः प्रधानं च सर्वयज्ञेषु सुन्दरि। ब्रह्मणा च कृतः पूर्वं महासंभारसंयुतः ॥१२६॥
बभूव कलहो यत्र दक्षशंकरयोःसति। शेपुश्च नन्दिनं विप्रा नन्दी विप्रांश्च कोपतः ॥१२७॥
यतो हेतोर्दक्षयज्ञं बभञ्ज चन्द्रशेखरः। चकार विष्णुयज्ञं च पुरा दक्षप्रजापतिः ॥१२८॥
धर्मश्च कश्यपश्चैव शेषश्चापि च कर्दमः। स्वायंभुवो मनुश्चैव तत्पुत्रश्च प्रियव्रतः ॥१२९॥
शिवः सनत्कुमारश्च कपिलश्च ध्रुवस्तथा। राजसूयसहस्राणां समृद्धया च क्रतुर्भवेत् ॥१३०॥

मुक्त हो जाता है। फिर उसका जन्म नहीं होता है॥११८॥ जो पृथिवी की परिक्रमा करते हुए समस्त तीर्थों में स्नान करता है, वह 'निर्वाण पद' प्राप्त करता है, और पृथ्वी पर उसका जन्म नहीं होता है॥११९॥ जो इस पुण्य क्षेत्र भारत में अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न करता है, वह अश्व के लोम जितने वर्षों तक इन्द्र के आधे सिंहासन पर सुशोभित होता है॥१२०॥ राजसूय यज्ञ करने पर मनुष्य को अश्वमेध का चौगुना फल प्राप्त होता है, नरमेध यज्ञ में उसका आधा और गोमेध यज्ञ में भी उतना ही फल प्राप्त होता है॥१२१॥ पुत्रेष्टि यज्ञ में उसका आधा फल तथा उत्तम पुत्र प्राप्त होता है। और लाङ्गलेष्टि यज्ञ में गोमेध के समान फल प्राप्त होता है। उसी प्रकार विप्रेष्टि और वृद्धि-याग में उसके समान फल प्राप्त होता है, पद्मयज्ञ में मानव को उसका आधा फल प्राप्त होता है॥१२२-१२३॥ विशोक यज्ञ करने वाला व्यक्ति विगतशोक होकर पद्मयज्ञ के आधे फलस्वरूप स्वर्ग प्राप्त करता है। विजय यज्ञ करने वाला राजा विजयी होकर पद्मयज्ञ के समान फल प्राप्त करते हुए स्वर्ग-सुख का उपभोग करता है॥१२४॥ प्राजापत्य यज्ञ सम्पन्न करने पर राजाओं को प्रजालाभ और भूमिवृद्धि होती है। यहाँ राज्यलक्ष्मी का सुखोपभोग करके अन्त में पद्मयज्ञ के आधे फलस्वरूप स्वर्ग प्राप्त करता है। ऋद्धि याग के महान् ऐश्वर्य और पद्म के समान फलस्वरूप स्वर्ग प्राप्त होता है॥१२५॥ सुन्दरि! समस्त यज्ञों में भगवान विष्णु का यज्ञ सर्वप्रधान है। जिसे पूर्व समय में ब्रह्मा ने बड़े धूमधाम से सम्पन्न किया था॥१२६॥ जहाँ भगवान् शंकर और दक्ष का झगड़ा हुआ था, जिसमें क्रुद्ध होकर ब्राह्मणों ने नन्दी को शाप दिया था और नन्दी ने ब्राह्मणों को तथा जिसके कारण चन्द्र-शेखर ने दक्ष का यज्ञ भंग किया था, वहाँ पूर्व समय में दक्षप्रजापति ने विष्णु यज्ञ ही किया था॥१२७-१२८॥ उसी प्रकार धर्म, कश्यप, शेष, कर्दम, स्वायम्भुव मनु, उनके पुत्र प्रियव्रत, शिव, सनत्कुमार, कपिल और ध्रुव ने भी विष्णु-यज्ञ सम्पन्न किया था। समृद्धि होने पर ही सहस्रों राजसूय यज्ञ सम्पन्न किया जा सकता है। किन्तु विष्णुयज्ञ करने

राजसूयसहस्राणां फलमाप्नोति निश्चितम्। विष्णुयज्ञात्परो यज्ञो नास्ति वेदे फलप्रदः॥१३१॥
बहुकल्पान्तजीवी च जीवन्मुक्तो भवेद्ध्रुवम्। ज्ञानेन तेजसा चैव विष्णुतुल्यो भवेदिह॥१३२॥
देवानां च यथा विष्णुर्वैष्णवानां यथा शिवः। शास्त्राणां च यथा वेदा आश्रमाणां च ब्राह्मणाः॥१३३॥
तीर्थानां च यथा गङ्गा पवित्राणां च वैष्णवाः। एकादशी व्रतानां च पुष्पाणां तुलसी यथा॥१३४॥
नक्षत्राणां यथा चन्द्रः पक्षिणां गरुडो यथा। यथा स्त्रीणां च प्रकृतिराधाराणां वसुंधरा॥१३५॥
शीघ्रगानां चेन्द्रियाणां चञ्चलानां यथा मनः। प्रजापतीनां ब्रह्मा च प्रजेशानां प्रजापतिः॥१३६॥
वृन्दावनं वनानां च वर्षाणां भारतं यथा। श्रीमतां च यथा श्रीश्च विदुषां च सरस्वती॥१३७॥
पतिव्रतानां दुर्गा च सौभाग्यानां च राधिका। विष्णुयज्ञस्तथा वत्से यज्ञेषु च महानिति॥१३८॥
अश्वमेधशतेनैव शक्रत्वं लभते ध्रुवम्। सहस्रेण विष्णुपदं संप्राप पृथुरेव च॥१३९॥
स्नानं च सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षणम्। सर्वेषां च व्रतानां च तपसां फलमेव च॥१४०॥
पाठश्चतुर्णां वेदानां प्रादक्षिण्यं भुवस्तथा। फलं बीजमिदं सर्वं मुक्तिदं कृष्णसेवनम्॥१४१॥
पुराणेषु च वेदेषु चेतिहासेषु सर्वतः। निरूपितं सारभूतं कृष्णपादाम्बुजार्चनम्॥१४२॥
तद्वर्णनं च तद्ध्यानं तन्नामगुणकीर्तनम्। तत्स्तोत्रं स्मरणं चैव वन्दनं जप एव च॥१४३॥
तत्पादोदकनैवेद्यभक्षणं नित्यमेव च। सर्वसंमतमित्येवं सर्वेप्सितमिदं सति॥१४४॥

से सहस्रों राजसूय यज्ञों के फल प्राप्त होते हैं। अतएव विष्णुयज्ञ से बढ़कर फल देने वाला कोई यज्ञ नहीं है, ऐसा वेद में बताया गया है॥१२९-१३१॥ उसे सुसम्पन्न करने से मनुष्य बहुत कल्पों का जीवन तथा निश्चित जीवन्मुक्ति प्राप्त करता है और यहाँ ज्ञान एवं तेज में भगवान् विष्णु के समान होता है॥१३२॥ जिस प्रकार देवों में भगवान् विष्णु, वैष्णवों में शिव, शास्त्रों में वेद, आश्रमों में ब्राह्मण, तीर्थों में गंगा, पवित्रों में वैष्णव, व्रतों में एकादशी, पुष्पों में तुलसी, नक्षत्रों में चन्द्रमा, पक्षियों में गरुड़, स्त्रियों में प्रकृति, आधारों में पृथिवी, शीघ्रगामी तथा चंचल इन्द्रियों में मन, प्रजापतियों में ब्रह्मा, प्रजा-प्रभुओं में प्रजापति, वनों में वृन्दावन, वर्षों में भारत, श्रीमानों में श्री, विद्वानों में सरस्वती, पतिव्रताओं में दुर्गा और सौभाग्यों में श्री राधिका जी श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार हे वत्से! समस्त यज्ञों में विष्णुयज्ञ महान श्रेष्ठ है॥१३३-१३८॥ इस प्रकार सौ अश्वमेध यज्ञ सुसम्पन्न करने से इन्द्रपद प्राप्त होता है। राजा पृथु ने एक सहस्र अश्वमेधयज्ञ सुसम्पन्न करने के द्वारा विष्णु पद प्राप्त किया था॥१३९॥ इसलिए समस्त तीर्थों के स्नान, समस्त यज्ञों की दीक्षा, सम्पूर्ण व्रतों एवं सभी भाँति की तपस्याओं, चारों वेदों के पाठ और सम्पूर्ण पृथिवी की प्रदक्षिणा के फल का बीज एकमात्र भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा है, जो मुक्ति प्रदान करती है॥१४०-१४१॥ क्योंकि पुराणों, वेदों एवं सभी इतिहासों में यही निष्कर्ष (निचोड़) बताया गया है कि 'किसी भाँति भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमल की अर्चना करो'॥१४२॥ इस प्रकार उन्हीं का वर्णन, उन्हीं का ध्यान, उनके नामों और गुणों का गान, उन्हीं का स्तोत्र, स्मरण, वन्दन एवं जप करके नित्य उन्हीं के चरणोदक नैवेद्य का भक्षण करना चाहिये। सभी मनोरथ सफल करने के नाते यह सर्वसम्मत से कहा गया है॥१४३-१४४॥ इसलिए भगवान् श्रीकृष्ण को ही भजो,

भज कृष्णं परं ब्रह्म निर्गुणं प्रकृतेः परम्। गृहाण स्वामिनं वत्से सुखं गच्छ स्वमन्दिरम्॥१४५॥
एतत्ते कथितं सर्वं विपाकं[1] कर्मणां नृणाम्। सर्वेप्सितं सर्वमतं परं तत्त्वप्रदं नृणाम्॥१४६॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० तुलस्यु० यमसावित्रीसं० शुभकर्मविपाककथनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः॥२७॥

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच

हरेरुत्कीर्तनं श्रुत्वा सावित्री यमवक्त्रतः। साश्रुनेत्रा सपुलका यमं पुनरुवाच सा॥१॥

सावित्र्युवाच

हरेरुत्कीर्तनं धर्म स्वकुलोद्धारकारणम्। श्रोतॄणां चैव वक्तॄणां जन्ममृत्युजराहरम्॥२॥
दानानां च व्रतानां च सिद्धीनां तपसां परम्। योगानां चैव वेदानां सेवनं कीर्तनं हरेः॥३॥
मुक्तत्वममरत्वं वा सर्वसिद्धित्वमेव वा। श्रीकृष्णसेवनस्यैव कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥४॥

जो परब्रह्म, निर्गुण एवं प्रकृति से परे हैं। अतः हे वत्से! यह लो अपने पतिदेव को और सुखपूर्वक अपने घर जाओ॥१४५॥ मनुष्यों के समस्त कर्मों के फल तुम्हें मैंने इस प्रकार कहकर सुना दिया, जो सभी को अभीष्ट, सर्वसम्मत एवं मनुष्यों के लिए परम ज्ञानप्रद है॥१४६॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में सावित्री-यम संवाद में शुभकर्मों के फल-वर्णन नामक सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त॥२७॥

अध्याय २८

सावित्रीकृत यमस्तोत्र

श्री नारायण बोले—यम के मुख से भगवान् विष्णु का गुणानुवाद सुनकर सावित्री के नेत्र में आँसू आ गये और (हर्षातिरेक से) रोमांच हो आया। अनन्तर उसने पुनः यम से कहा॥१॥

सावित्री बोली—हे धर्म! भगवान् विष्णु का कीर्तन करना, श्रोता-वक्ता दोनों कुल के उद्धार का हेतु है, क्योंकि वह उनकी जरा, मृत्यु एवं जन्म का अपहरण करता है॥२॥ इसलिए सभी भाँति के दानों, व्रतों, सिद्धियों, तपस्याओं, योगों के अभ्यास और वेदों के पठन-पाठन की अपेक्षा भगवान् विष्णु का कीर्त्तन करना अति उत्तम है॥३॥ इसीलिए कहा भी है कि मोक्ष, अमरपद, तथा समस्त सिद्धियाँ, ये भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा के सोलहवें अंश के

---

१ क. ०कं सर्वमङ्गलम्।

भजामि केन विधिना श्रीकृष्णं प्रकृतेः परम्। मूढां मामबलां तात वद वेदविदां वर ॥५॥
शुभकर्मविपाकं च श्रुतं नृणां मनोहरम् । कर्माशुभविपाकं च तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥६॥
इत्युक्त्वा सा सती ब्रह्मन्भक्तिनम्रात्मकंधरा। तुष्टाव धर्मराजं च वेदोक्तेन स्तवेन च ॥७॥

सावित्र्युवाच

तपसा धर्ममाराध्य पुष्करे भास्करः पुरा। धर्मांशं यं सुतं प्राप धर्मराजं नमाम्यहम् ॥८॥
समता सर्वभूतेषु यस्य सर्वस्य साक्षिणः । अतो यन्नाम शमनमिति तं प्रणमाम्यहम् ॥९॥
येनान्तश्च कृतो विश्वे सर्वेषां जीविनां परम्। कर्मानुरूपकालेन तं कृतान्तं नमाम्यहम् ॥१०॥
बिभर्ति दण्डं दण्डचाय पापिनां शुद्धिहेतवे। नमामि तं दण्डधरं यः शास्ता सर्वकर्मणाम् ॥११॥
विश्वे यः कलयत्येव सर्वायुश्चापि संततम् । अतीव दुर्निवार्यं च तं कालं प्रणमाम्यहम् ॥१२॥
तपस्वी वैष्णवो धर्मो संयमी विजितेन्द्रियः। जीविनां कर्मफलदं तं यमं प्रणमाम्यहम् ॥१३॥
स्वात्मारामश्च सर्वज्ञो मित्रं पुण्यकृतां भवेत्। पापिनं क्लेशदो यस्य[1] पुत्रो मित्रो नमाम्यहम् ॥१४॥
यज्जन्म ब्रह्मणो वंशे ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा। यो ध्यायति परं ब्रह्म ब्रह्मवंशं नमाम्यहम् ॥१५॥

समान भी नहीं हैं ॥४॥ अतः हे तात ! हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ ! किस विधि से उस प्रकृति से परे भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा करूँ, यह मुझ अबला को बताने की कृपा करें ॥५॥ और मनुष्यों के शुभ कर्मों के मनोहर फल को तो मैंने सुन लिया है, किन्तु उनके अशुभ कर्मों के फल भी जानने की इच्छा है, अतः आप बतायें ॥६॥ हे ब्रह्मन् ! इतना कहकर उस साध्वी ने भक्ति से कन्धे को झुकाकर वेदोक्त स्तुति द्वारा धर्मराज की स्तुति करना आरम्भ कर दिया ॥७॥

सावित्री बोली—पहले समय में भगवान् भास्कर ने पुष्कर क्षेत्र में जाकर तप द्वारा धर्म की आराधना की। उससे उन्होंने जिस धर्म-अंश पुत्र की प्राप्ति की, उस धर्मराज को मैं नमस्कार कर रही हूँ ॥८॥ जो समस्त का साक्षी है और समस्त प्राणियों में समता का भाव रखता है, तथा जिसका 'शमन' नाम है, मैं उसे प्रणाम कर रही हूँ ॥९॥ सारे विश्व में सभी प्राणियों के कर्मानुरूप काल द्वारा जिन्होंने सबका अन्त (नाश) किया है, उस-कृतान्त को मैं नमस्कार कर रही हूँ ॥१०॥ पापियों के शुद्ध होने के लिए जो उन्हें दण्ड देता है और समस्त कर्मों का शास्ता है, उस दण्डधारी को मैं नमस्कार कर रही हूँ ॥११॥ समस्त विश्व में जो सभी की आयु को निरन्तर कवल (ग्रास) बनाता रहता है, उस अतिदुर्निवार काल को मैं प्रणाम कर रही हूँ ॥१२॥ तपस्वी, वैष्णव, धर्मात्मा, संयमी एवं इन्द्रियजित् आदि जीवों को उनके कर्मफल देने वाले उस यम को मैं प्रणाम कर रही हूँ ॥१३॥ अपने आत्मा में रमण करने वाले, सर्वज्ञ, पुण्यात्माओं के मित्र और पापियों को (दण्डरूप में) दुःख देने वाले उस पुण्यात्मा मित्र को मैं नमस्कार कर रही हूँ ॥१४॥ जिसने ब्रह्मा के वंश में जन्म ग्रहण किया है, ब्रह्मतेज से प्रदीप्त हो रहा है और जो परब्रह्म का ध्यान करता है, उस ब्रह्म-वंश को मैं नमस्कार कर रही हूँ ॥१५॥ हे मुने ! इतना कह कर उस

---

१ क. यश्च पुण्यं मित्रं न० ।

इत्युक्त्वा सा च सावित्री प्रणनाम यमं मुने। यमस्तां विष्णुभजनं कर्मपाकमुवाच ह ॥१६॥
इदं यमाष्टकं नित्यं प्रातरुत्थाय यः पठेत्। यमात्तस्य भयं नास्ति सर्वपापात्प्रमुच्यते ॥१७॥
महापापी यदि पठेन्नित्यं भक्त्या च नारद। यमः करोति तं शुद्धं कायव्यूहेन निश्चितम् ॥१८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० तुलस्यु० सावित्रीकृतयमस्तोत्रं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

यमस्तस्यै विष्णुमन्त्रं दत्त्वा च विधिपूर्वकम्। कर्माशुभविपाकं च तामुवाच रवेः सुतः ॥१॥

यम उवाच

शुभकर्मविपाकं च श्रुतं नानाविधं सति। कर्माशुभविपाके च कथयामि निशामय ॥२॥
नानाप्रकारं स्वर्गं च याति जीवः सुकर्मणा। कुकर्मणा च नरकं याति नानाविधं नरः ॥३॥
नरकाणां च कुण्डानि सन्ति नानाविधानि च। नानापुराणभेदेन नामभेदानि तानि च ॥४॥
विस्तृतानि गभीराणि क्लेशदानि च जीविनाम्। भयंकराणि घोराणि हे वत्से कुत्सितानि च ॥५॥

सावित्री ने यम को प्रणाम किया और यम ने उसको विष्णु का भजन तथा कर्मों का फल बताया। इस प्रकार प्रातःकाल उठकर नित्य जो पुरुष इस यमाष्टक (यम के आठ श्लोकों) का पाठ करता है, उसे यम से भय नहीं होता है और वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है ॥१६-१७॥ हे नारद! यदि महापापी भी भक्तिपूर्वक नित्य इसका पाठ करता है, तो यम उसे कायाकल्प के द्वारा निश्चित शुद्ध कर देते हैं ॥१८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में सावित्रीकृत यमस्तोत्र-वर्णन नामक अठाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२८॥

अध्याय २९

नरक-कुण्डों के नाम

श्री नारायण बोले—सूर्य पुत्र यमराज ने उसे भगवान् विष्णु के मन्त्र की सविधि दीक्षा देकर अशुभ कर्मों के फल सुनाना आरम्भ किया ॥१॥

यम बोले—अनेक भाँति के शुभ कर्मों के फल तुमने सुन लिया है, अब अशुभ कर्मों के फल कह रहा हूँ, सुनो ॥२॥ जीव भले कर्मों द्वारा अनेक भाँति का स्वर्ग प्राप्त करता है और कुकर्मों द्वारा अनेक भाँति का नरक ॥३॥ नरकों के अनेक भाँति के कुण्ड हैं, पुराणों में जिनके नामभेद किये गये हैं ॥४॥ हे वत्से! वे विस्तृत, गम्भीर (अथाह), जीवों को दुःख देने वाले, घोर, भयंकर एवं कुत्सित हैं ॥५॥

षडशीतिश्च कुण्डानि संयमन्यां च सन्ति च। निबोध तेषां नामानि प्रसिद्धानि श्रुतौ सति ॥६॥
वह्निकुण्डं तप्तकुण्डं क्षारकुण्डं भयानकम्। विट्कुण्डं मूत्रकुण्डं च श्लेष्मकुण्डं च दुःसहम् ॥७॥
गरकुण्डं दूषिकाकुण्डं वसाकुण्डं तथैव च। शुक्रकुण्डमसृक्कुण्डमश्रुकुण्डं च कुत्सितम् ॥८॥
कुण्डं गात्रमलानां च कर्णविट्कुण्डमेव च। मज्जाकुण्डं मांसकुण्डं नखकुण्डं च दुस्तरम् ॥९॥
लोम्नां कुण्डं केशकुण्डमस्थिकुण्डं च दुःखदम्। ताम्रकुण्डं लोहकुण्डं प्रतप्तं क्लेशदं महत् ॥१०॥
तीक्ष्णकण्टककुण्डं च विषकुण्डं च विघ्नदम्। घर्मकुण्डं तप्तकुण्डं सुराकुण्डं प्रकीर्तितम् ॥११॥
प्रतप्ततैलकुण्डं च दन्तकुण्डं च दुर्वहम्। कृमिकुण्डं पूयकुण्डं सर्पकुण्डं दुरन्तकम् ॥१२॥
मशकुण्डं दंशकुण्डं भीमं गरलकुण्डकम्। कुण्डं च वज्रदंष्ट्राणां वृश्चिकानां च सुव्रते ॥१३॥
शरकुण्डं शूलकुण्डं खड्गकुण्डं च भीषणम्। गोलकुण्डं नक्रकुण्डं काककुण्डं शुचास्पदम् ॥१४॥
संचालकुण्डं वाजकुण्डं बन्धकुण्डं सुदुस्तरम्। तप्तपाषाणकुण्डं च तीक्ष्णपाषाणकुण्डकम् ॥१५॥
लालाकुण्डं मसीकुण्डं चूर्णकुण्डं सुदारुणम्। चक्रकुण्डं वज्रकुण्डं कूर्मकुण्डं महोल्बणम् ॥१६॥
ज्वालाकुण्डं भस्मकुण्डं [1]पूतिकुण्डं च सुन्दरि। तप्तसूर्यमसीपत्रं क्षुरधारं सुचीमुखम् ॥१७॥
गोधामुखं नक्रमुखं गजदंशं च गोमुखम्। कुम्भीपाकं कालसूत्रमवटोदमरुंतुदम् ॥१८॥
पांशुभोजं पाशवेष्टं शूलप्रोतं प्रकम्पनम्। उल्कामुखमन्धकूपं वेधनं दण्डताडनम् ॥१९॥
जालबन्धं देहचूर्णं दलनं शोषणंकरम्। शूर्पं ज्वालामुखं जिह्मं धूमान्धं नागवेष्टनम् ॥२०॥

इस संयमिनी पुरी में छियासी कुण्ड हैं, जिनके नाम वेद में प्रसिद्ध हैं, कह रहा हूँ, सुनो ॥६॥ अग्निकुण्ड, तप्तकुण्ड, भयानक क्षारकुण्ड, विट् (मल) कुण्ड, मूत्रकुण्ड, दुःसह श्लेष्म (कफ) कुण्ड, गर (विष) कुण्ड, दूषिका (नेत्रमल) कुण्ड, वसा (चर्बी) कुण्ड, शुक्र (वीर्य) कुण्ड, रुद्रकुण्ड, निन्दित अश्रुकुण्ड, शरीर के मलकुण्ड, कान के मल कुण्ड, मज्जाकुण्ड, मांसकुण्ड, कठिन नखकुण्ड, लोमकुण्ड, केशकुण्ड, दुःखप्रद अस्थि (हड्डी) कुण्ड, अतितप्त और महान् दुःख देने वाले ताँबे का कुण्ड और लोहे का कुण्ड, तीक्ष्णकण्टक (तेज काँटे का) कुण्ड, मारनेवाले विषकुण्ड, घर्म (घाम) कुण्ड, तप्त सुरा (शराब) कुण्ड, अति तप्त तेल कुण्ड, दुर्वह दन्त कुण्ड, कृमि (कीड़े का) कुण्ड, पूय (पीव) कुण्ड, दुःख से पार करने योग्य सर्प कुण्ड, मश (मसा) कुण्ड, दंश (डँसा) कुण्ड, भीषण गरल (विष) कुण्ड, और वज्र-सदृश दाँत वाले बिच्छुओं का कुण्ड हैं ॥७-१३॥ हे सुव्रते! शरकुण्ड, शूलकुण्ड, भयंकर खड्ग (तेगा) कुण्ड, गोलकुण्ड, नक्र (मगर) कुण्ड, शोककारी काककुण्ड, सञ्चालकुण्ड, बाजकुण्ड, अति दुस्तर बन्धकुण्ड, तप्तपाषाण कुण्ड, तीक्ष्ण पाषाण कुण्ड, लाला (लार) कुण्ड, असि (तलवार) कुण्ड, अतिदारुण चूर्णकुण्ड, चक्रकुण्ड, वज्रकुण्ड, कूर्मकुण्ड, महान् उल्बण ज्वालाकुण्ड, भस्मकुण्ड, पूति (दुर्गन्ध) कुण्ड, हे सुन्दरि! इसी भाँति तप्तसूर्य, असिपत्र, क्षुरधार, सूची-मुख, गोधामुख, नक्रमुख, गजदंश, गोमुख, कुम्भीपाक, कालसूत्र, अवटोद, अरुन्तुद, पांशुभोज, पाशवेष्ट, शूलप्रोत, प्रकम्पन, उल्कामुख, अन्धकूप, वेधन, दण्डताडन, जालबन्ध, देहचूर्ण, दलन, शोषण, सर्पज्वालामुख, जिह्म, धूमान्ध, और नागवेष्टन कुण्ड हैं ॥१४-२०॥ हे सावित्रि! ये कुण्ड, पापियों को दुःख देने के लिए बने हैं, जिनके लिए नियुक्त

१ क. ०दग्धकु० ।

कुण्डान्येतानि सावित्रि पापिनां क्लेशदानि च। नियुक्तैः किंकरगणै रक्षितानि च संततम् ॥२१॥
दण्डहस्तैः शूलहस्तैः पाशहस्तैर्भयंकरैः। शक्तिहस्तैर्गदाहस्तैर्मदमत्तैश्च दारुणैः ॥२२॥
तमोयुक्तैर्दयाहीनैर्दुर्निवार्यैश्च सर्वतः। तेजस्विभिश्च निःशङ्कैस्ताम्रपिङ्गललोचनैः ॥२३॥
योगयुक्तैः सिद्धयोगैर्नानारूपधरैर्वरैः। आसन्नमृत्युभिर्दृष्टैः पापिभिः सर्वजीविभिः ॥२४॥
स्वकर्मनिरतैः शैवैः शाक्तैः सौरैश्च गाणपैः। अदृष्टैः पुण्यकृद्भिश्च सिद्धयोगिभिरेव च ॥२५॥
स्वधर्मनिरतैर्वाऽपि विरतैर्वा स्वतन्त्रकैः। बलवद्भिश्च निःशङ्कैः [1]स्वप्नदृष्टैश्च वैष्णवैः ॥२६॥
एतत्ते कथितं साध्वि कुण्डसंख्यानिरूपणम्। येषां निवासो यत्कुण्डे निबोध कथयामि ते ॥२७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० नारदना० प्रकृति० सावित्र्युपाख्याने यमसावित्रिसं० नरककुण्डसंख्यानं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः

यम उवाच

हरिसेवारतः शुद्धो योगी सिद्धो व्रती सति। तपस्वी ब्रह्मचारी च न याति नरकं यतिः ॥१॥

सेवक गण निरन्तर रक्षा किया रकते हैं॥२१॥ वे भयंकर दूत गण हाथों में दण्ड, शूल, पाश, शक्ति, गदा, लिए मदमत्त, भीषण, दयाहीन, चारों ओर से दुर्निवार, तेजस्वी, निःशंक एवं ताँबे के समान पिंगल नेत्रों से युक्त होकर योग और सिद्धयोग द्वारा अनेक रूप धारण किये घूमते रहते हैं। समस्त पापी प्राणी मृत्यु निकट आने पर उन्हें देखते हैं ॥२२-२४॥ स्वकर्मपरायण शैव, शाक्त, सौर, गाणपत्य, पुण्यात्मा और सिद्ध-योगीगण से वे अदृष्ट रहते हैं॥२५॥ एवं स्वधर्मपरायण, स्वतन्त्र, विरत, बलवान् तथा निःशंक वैष्णवगण स्वप्न में उन्हें देखते हैं॥२६॥ हे पतिव्रते! इस प्रकार तुम्हें कुण्ड की संख्या बता दी है, अब जिस जीव का जिस कुण्ड में निवास रहता है, कह रहा हूँ, सुनो॥२७॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में यम-सावित्री-संवाद में नरककुण्डों की संख्या वर्णन नामक उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त॥२९॥

अध्याय ३०

पापियों के नरक-भोग का वर्णन

यम बोले—भगवान् की सेवा में मग्न रहनेवाले, शुद्ध (अन्तःकरण), योगी, सिद्ध, व्रती, तपस्वी, ब्रह्मचारी और संन्यासी नरक नहीं जाते हैं॥१॥ किन्तु जो बलवान् खल पुरुष अपनी दुष्टता के नाते कटु वाणी द्वारा बान्धवों

---

१ क. स्वात्मादृ०।

कटुवाचा बान्धवांश्च खेलत्वेन च यो नरः। दग्धान्करोति बलवान्वह्निकुण्डं प्रयाति सः॥२॥
गात्रलोमप्रमाणाब्दं तत्र स्थित्वा हुताशने। पशुयोनिमवाप्नोति रौद्रे दग्धस्त्रिजन्मनि॥३॥
ब्राह्मणं तृषितं तप्तं क्षुधितं गृहमागतम्। न भोजयति यो मूढस्तप्तकुण्डं प्रयाति सः॥४॥
तत्र लोमप्रमाणाब्दं स्थित्वा तत्र च दुःखितः। तप्तस्थले वह्निकुण्डे पक्षी च सप्तजन्मसु॥५॥
रविवारार्कसंक्रान्त्याममायां श्राद्धवासरे। वस्त्राणां क्षारसंयोगं करोति यो हि मानवः॥६॥
स याति क्षारकुण्डं च सूत्रमानाब्दमेव च। स व्रजेद्राजकीं योनिं सप्तजन्मसु भारते॥७॥
स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं [1]हरेत्तु यः। यो हरेद्भारते वर्षे विट्कुण्डं च प्रयाति सः॥८॥
षष्टिवर्षसहस्राणि विड्भोजी तत्र तिष्ठति। षष्टिवर्षसहस्राणि विट्कृमिश्च पुनर्भुवि॥९॥
परकीयतडागे च तडागं यः करोति च। उत्सृजेद्दैवदोषेण मूत्रकुण्डं प्रयाति सः॥१०॥
तद्रेणुमानवर्षं च तद्भोजी तत्र तिष्ठति। भारते गोधिका चैव स भवेत्सप्तजन्मसु॥११॥
एकाकी मिष्टमश्नाति श्लेष्मकुण्डं प्रयाति सः। पूर्णमब्दशतं चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति॥१२॥
पूर्णमब्दशतं चैव स प्रेतो भारते भवेत्। श्लेष्ममूत्रगरं चैव [2]तद्भोजी तत्र तिष्ठति॥१३॥
पितरं मातरं चैव गुरुं भार्यां सुतं सुताम्। यो न पुष्णात्यनाथं च गरकुण्डं प्रयाति सः॥१४॥

को जलाया करता है, वह अग्नि कुण्ड नामक नरक में जाता है॥२॥ वहाँ भीषण अग्निकुण्ड में शरीर के लोम प्रमाण वर्ष तक जलते हुए रहकर अन्त में तीन जन्म तक पशु-योनि में जन्म ग्रहण करता है॥३॥ घर आये हुए भूखे, प्यासे एवं अति संतप्त ब्राह्मण को जो भोजन नहीं कराता है, वह मूर्ख तप्तकुण्ड में जाता है॥४॥ वहाँ लोम के प्रमाण वर्ष तक दुःखों का अनुभव करके अन्त में सात जन्म तक पक्षी होता है॥५॥ जो मनुष्य रविवार, सूर्य की संक्रान्ति अमावस्या और श्राद्ध के दिन वस्त्रों में खारी मिट्टी (रेह, साबुन आदि) लगाता है, वह उस वस्त्र के सूत प्रमाण वर्ष तक क्षार कुण्ड में दुःखानुभव करता है और अन्त में भारत में सात जन्म तक धोबी के यहाँ उत्पन्न होता है॥६-७॥ जो प्राणी अपने द्वारा या दूसरे के द्वारा दी गयी ब्राह्मण वृत्ति का अपहरण करता है, वह साठ सहस्र वर्ष तक विट् (विष्ठा) कुण्ड में (कीड़ा होकर) पड़ा रहता है और वहाँ उतने दिन वही विट् (विष्ठा) भोजन करता है और अन्त में पृथिवी पर उतने ही दिन विष्ठा का कीड़ा होता है॥८-९॥ दुर्भाग्यवश जो दूसरे के तालाब को अपना कहकर उसे खोदवाता है, तो वह (अन्त में) मूत्रकुण्ड में जाता है॥१०॥ और वहाँ उसके रेणु प्रमाण वर्ष तक उसी का भोजन करते हुए जीवन व्यतीत करता है। पश्चात् (जन्म ग्रहणार्थ) भारत आने पर सात जन्मों तक गोधा (गोह) होता है॥११॥ अकेले मिष्ठान्न भोजी प्राणी श्लेष्म (कफ) कुण्ड में जाता है और वहाँ पूरे सौ वर्ष तक वही भक्षण करते हुए रहता है। पश्चात् यहाँ भारत में सौ वर्ष प्रेतयोनि में जन्म-ग्रहण करता है। और रात्रि-दिन कफ, मूत्र तथा विष खाता रहता है। अनन्तर शुद्ध होता है॥१२-१३॥ पिता, माता, गुरु, स्त्री, पुत्र, कन्या और अनाथ का जो पालन नहीं करता है, वह गरकुण्ड नामक नरक में जाता है और पूरे

---

१ ख. सुरविप्रयोः। २ ख. पूयं भुंक्ते ततः शुचिः।

पूर्णमब्दसहस्रं च तद्भोजी तत्र तिष्ठति। ततो व्रजेद्भूतयोनिं शतवर्षं ततः शुचिः ॥१५॥
दृष्ट्वाऽतिथिं वक्रचक्षुः करोति यो हि मानवः। पितृदेवास्तस्य जलं न गृह्णन्ति च पापिनः ॥१६॥
यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च। इहैव लभते चान्ते दूषिकाकुण्डमाव्रजेत् ॥१७॥
पूर्णमब्दशतं चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति। ततो नरो भवेद्भूमौ दरिद्रः सप्तजन्मसु ॥१८॥
दत्त्वा द्रव्यं च विप्राय चान्यस्मै दीयते यदि। स तिष्ठति वसाकुण्डे तद्भोजी शतवत्सरम् ॥१९॥
ततो भवेत्स चण्डालस्त्रिजन्मनि ततः शुचिः। कृकलासो भवेत्सोऽपि भारते सप्तजन्मसु ॥
ततो भवेन्मानवश्च दरिद्रोऽल्पायुरेव च ॥२०॥
पुमांसं कामिनी वाऽपि कामिनीं वा पुमानथ। यः शुक्रं पाययत्येव शुक्रकुण्डं प्रयाति सः ॥२१॥
पूर्णमब्दशतं चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति। योनिकृमिः शताब्दं च भवेद्भुवि ततः शुचिः ॥२२॥
संताड्य च गुरुं विप्रं रक्तपातं च कारयेत्। स च तिष्ठत्यसृक्कुण्डे तद्भोजी शतवत्सरम् ॥२३॥
ततो भवेद्व्याधजन्म सप्तजन्मसु भारते। ततः शुद्धिमवाप्नोति मानवश्च क्रमेण च ॥२४॥
अश्रु स्रवन्तं गायन्तं भक्तं दृष्ट्वा च गद्गदम्। श्रीकृष्णगुणसंगीते हसत्येव हि यो नरः ॥२५॥
स वसेदश्रुकुण्डे च तद्भोजी शतवत्सरम्। ततो भवेत्स चण्डालो त्रिजन्मनि ततः शुचिः ॥२६॥

सहस्र वर्ष तक वही खा कर वहाँ रहता है। पश्चात् यहाँ सौ वर्ष तक भूतयोनि में उत्पन्न होता है, अनन्तर शुद्ध होता है॥१४-१५॥ जो मनुष्य (घर आये) अतिथि को देखकर नेत्र (नाक, भौंह) टेढ़ा करता है, उस पापी के हाथ का जल पितर और देवलोग ग्रहण नहीं करते हैं॥१६॥ और यहाँ ही (अपने जीवित काल में ही) ब्रह्महत्या आदि समस्त पापों का भागी होता है तथा मरने पर दूषिकाकुण्ड में जाता है। वहाँ पूरे सौ वर्ष तक वही भोजन करते हुए रहता है एवं अनन्तर भूतल पर जन्म ग्रहण करने पर सात जन्मों तक दरिद्र होता है॥१७-१८॥ जो मनुष्य किसी ब्राह्मण को कोई वस्तु देकर पुनः उसे अन्य को दे देता है, वह सौ वर्ष तक वसा (चर्बी) कुण्ड में रहता है और वही भोजन करता है। पुनः यहाँ तीन जन्म तक चाण्डाल होकर अन्त में शुद्ध होता है। किन्तु भारत में वह सात जन्मों तक कृकलास (गिरगिट) होकर पुनः दरिद्र और अल्पायु मनुष्य होता है॥१९-२०॥ जो स्त्री पुरुष को अथवा पुरुष स्त्री को वीर्यपान कराता है वह शुक्र (वीर्य) कुण्ड में जाता है। पूरे सौ वर्ष तक वहाँ रहकर वही भोजन करता है। अनन्तर सौ वर्ष तक योनि के कीड़े होकर अन्त में शुद्ध होता है॥२१-२२॥ जो गुरु या ब्राह्मण को आघात द्वारा ताड़ित कर रक्तपात कराता है वह असृक् (रक्त) कुण्ड में वही पान करते हुए सौ वर्ष तक रहता है। पश्चात् भारत में सात जन्मों तक व्याध (बहेलिया) होकर वह मनुष्य क्रमशः शुद्ध होता है॥२३-२४॥ भगवान् श्रीकृष्ण के गुणगान करनेवाले भक्त को, जो (प्रेम में) आँसू गिराते हुए गद्‌गद रहता है, देखकर जो मनुष्य उसका उपहास (हँसी) करता है, वह सौ वर्ष तक अश्रुकुण्ड में रहकर वही भोजन करता है। पश्चात् यहाँ तीन जन्म तक चाण्डाल के घर उत्पन्न होकर अन्त में शुद्ध होता है॥२५-२६॥ जो दुष्ट हृदय वाला मनुष्य

करोति खलतां शश्वदशुद्धहृदयो नरः। कुण्डं गात्रमलानां च स च याति [1]दशाब्दकम् ॥२७॥
ततः स गार्दभीं योनिमवाप्नोति त्रिजन्मनि । त्रिजन्मनि च शार्गालीं ततः शुद्धो भवेद्ध्रुवम् ॥२८॥
बधिरं यो सहत्येव निन्दत्येव हि मानवः। स वसेत्[2] कर्णविट्कुण्डे तद्भोजी शतवत्सरम् ॥२९॥
ततो भवेत्स बधिरो दरिद्रः सप्तजन्मसु। सप्तजन्मस्वङ्गहीनस्ततः शुद्धिं लभेद्ध्रुवम् ॥३०॥
लोभात्स्वपालनार्थाय जीविनं हन्ति यो नरः। मज्जाकुण्डे वसेत्सोऽपि तद्भोजी लक्षवर्षकम् ॥३१॥
ततोभवेत्स शशको मीनश्च सप्तजन्मसु । एणादयश्च कर्मभ्यस्ततः शुद्धिं लभेद्ध्रुवम् ॥३२॥
स्वकन्यापालनं कृत्वा विक्रीणाति हि यो नरः। अर्थलोभान्महामूढो मांसकुण्डं प्रयाति सः ॥३३॥
कन्यालोमप्रमाणाब्दं तद्भोजी तत्र तिष्ठति। तं च कुण्डे प्रहारं च करोति यमकिङ्करः ॥३४॥
मांसभारं मूर्ध्नि कृत्वा रक्तधारां लिहेत्क्षुधा। ततो हि भारते पापी कन्याविट्सु कृमिर्भवेत् ॥३५॥
षष्टिवर्षसहस्राणि व्याधश्च सप्तजन्मसु। त्रिजन्मनि वराहश्च कुक्कुरः सप्तजन्मसु ॥३६॥
सप्तजन्मसु मण्डूको जलौकाः सप्तजन्मसु। सप्तजन्मसु काकश्च ततः शुद्धिं लभेद्ध्रुवम् ॥३७॥
व्रतानामुपवासानां श्राद्धादीनां च संयमे। न करोति क्षौरकर्म सोऽशुचिः सर्वकर्मसु ॥३८॥
स च तिष्ठति कुण्डेषु नखादीनां च सुन्दरि। तदेव दिनमानाब्दं तद्भोजी दण्डताडितः ॥३९॥

निरन्तर दुष्टता करता है, वह शरीर के मलों के कुण्ड में दश वर्ष तक रहकर पश्चात् तीन जन्म तक गधा और तीन जन्म तक सियार की योनि में उत्पन्न होता है, अन्त में उसकी शुद्धि हो जाती है॥२७-२८॥ जो मनुष्य किसी बहरे व्यक्ति की निन्दा या उपहास करता है, वह सौ वर्ष तक कर्णविट् (कान की मैल खूँट वाले) कुण्ड में पड़ा रह कर वही भोजन करता है। पश्चात् सात जन्मों तक बहरा और दरिद्र होता है। पुनः सात जन्मों तक अंगहीन रहने के उपरान्त उसकी शुद्धि होती है॥२९-३०॥ जो लोभवश अपने पालन के लिए किसी अन्य जीव का हनन करता है, वह लाख वर्ष तक मज्जा के कुण्ड में वही खाकर पड़ा रहता है। अन्त में सात जन्मों तक वह शशक (खरगोश), मछली, मृग आदि योनियों में उत्पन्न होकर दुःखानुभव करता है, उपरान्त उसकी निश्चित शुद्धि हो जाती है॥३१-३२॥ जो मनुष्य कन्या का पालन-पोषण कर के धन के लोभवश उसका विक्रय करता है, वह महामूढ़ कन्या के लोमप्रमाण वर्ष तक मांस कुण्ड में वही खाकर रहता है। उस समय यमदूत उस कुण्ड में उसके ऊपर प्रहार करते हैं और वह मांस-पिण्डों को अपने शिर पर लिए रहता है तथा भूख लगने पर रक्त की धारा का पान करता है। अनन्तर वह पापी भारत में साठ सहस्र वर्ष तक कन्या के विष्ठा का कीड़ा होकर उत्पन्न होता है॥३३-३५॥ पुनः सात जन्मों तक व्याध (बहेलिया), तीन जन्म तक सूकर, सात जन्म तक कुत्ता, सात जन्म तक मेढक, सात जन्म तक जोंक और सात जन्म तक कौवा होने के उपरान्त वह शुद्ध होता है॥३६-३७॥ व्रत, उपवास और श्राद्ध आदि कर्मों में संयमपूर्वक रहने के लिए जो क्षौर कर्म नहीं कराता है, वह सभी कर्मों में अशुद्ध माना जाता है॥३८॥ हे सुन्दरि! उसे नख आदि के कुण्डों में उतने दिनों के प्रमाण वर्ष तक वही खाते हुए रहना पड़ता है

---

१. शताब्द० । २. ०सेत्तीर्थवि० ।

सकेशं पार्थिवं लिङ्गं यो वाऽर्चयति भारते। स तिष्ठति केशकुण्डे मृद्रेणुमानवर्षकम् ॥४०॥
तदन्ते यावनीं[1] योनिं प्रयाति हरकोपतः। शताब्दाच्छुद्धिमाप्नोति[2] स्वकुलं लभते ध्रुवम् ॥४१॥
पितृणां यो विष्णुपदे पिण्डं नैव ददाति च। स तिष्ठत्यस्थिकुण्डे च स्वलोमाब्दं महोल्बणे ॥४२॥
ततः स्वयोनिं संप्राप्य खञ्जः सप्तसु जन्मसु। भवेन्महादरिद्रश्च ततः शुद्धो हि दण्डतः ॥४३॥
यः सेवते महामूढो गुर्विणीं च स्वकामिनीम्। प्रतप्तताम्रकुण्डे च शतवर्षं स तिष्ठति ॥४४॥
अवीरान्नं च यो भुङ्क्ते ऋतुस्नातान्नमेव च। लौहकुण्डे शताब्दं च स च तिष्ठति तप्तके ॥४५॥
स व्रजेद्राजकीं योनिं कर्मकारीं च सप्तसु। महाव्रणी दरिद्रश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥४६॥
यो हि घर्माक्तहस्तेन देवद्रव्यमुपस्पृशेत्। शतवर्षप्रमाणं च घर्मकुण्डे स तिष्ठति ॥४७॥
यः शूद्रेणाभ्यनुज्ञातो भुङ्क्ते शूद्रान्नमेव च। स च तप्तसुराकुण्डे शताब्दं तिष्ठति द्विजः ॥४८॥
ततो भवेच्छूद्रयाजी ब्राह्मणः सप्तजन्मसु। शूद्रश्राद्धान्नभोजी च ततः शुद्धो भवेद्ध्रुवम् ॥४९॥
वाग्दुष्टा कटुवाचा या ताडयेत्स्वामिनं सदा। तीक्ष्णकण्टककुण्डे सा तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥५०॥
ताडिता यमदूतेन दण्डेन च चतुर्युगम्। तत उच्चैःश्रवाः सप्तजन्मस्वेव ततः शुचिः ॥५१॥
विषेण जीविनं हन्ति निर्दयो यो हि पामरः[3]। विषकुण्डे च तद्भोजी सहस्राब्दं च तिष्ठति ॥५२॥

और दण्डे से पीटा जाता है ॥३९॥ भारत में जो पुरुष केशयुक्त पार्थिव लिंग का पूजन करता है, वह उस मिट्टी की रेणु प्रमाण वर्ष तक केशकुण्ड में रहता है। भगवान् शंकर के कोप से उसे अन्त में यवन (मुसलमान) जाति में सौ वर्ष तक जन्म ग्रहण करना पड़ता है। अनन्तर शुद्ध होकर अपने कुल में उत्पन्न होता है ॥४०-४१॥ जो विष्णुपद (स्थान) में पितरों को पिण्ड दान नहीं करता है, वह अपने लोम प्रमाण वर्ष तक अति भीषण अस्थि कुण्ड में रहता है ॥४२॥ पुनः अपने कुल में उत्पन्न होकर सात जन्मों तक महादरिद्र और लँगड़ा होता है। इस प्रकार दण्ड भोगने के अनन्तर वह शुद्ध होता है ॥४३॥ जो महामूढ़ अपनी गर्भिणी पत्नी का उपभोग करता है; वह सौ वर्ष तक प्रतप्त ताम्रकुण्ड में रहता है ॥४४॥ जो अवीरा (पति पुत्र रहित विधवा) स्त्री का अन्न या मासिक धर्म हुई स्त्री का अन्न खाता है, वह तपे हुए लौहकुण्ड में सौ वर्ष तक रहता है, तथा सात जन्मों तक धोबी और कर्मकर के यहाँ उत्पन्न होकर विशाल घाव युक्त दरिद्र होता है, पश्चात् शुद्ध होता है ॥४५-४६॥ जो पसीने या (पसीजे) हाथ से देवता की किसी वस्तु का स्पर्श करता है, वह ब्राह्मण सौ वर्ष तक घर्मकुण्ड में रहता है ॥४७॥ जो शूद्र की आज्ञा से शूद्रान्न का भक्षण करता है, वह ब्राह्मण सौ वर्ष तक तप्त सुराकुण्ड में रहता है। पश्चात् सात जन्मों तक शूद्रों के यहाँ यज्ञ कराने वाला ब्राह्मण होता है और शूद्रों के अन्न भोजन करता है, अनन्तर शुद्ध होता है ॥४८-४९॥ जो कटुभाषिणी स्त्री अपने पति को कठोर बातों द्वारा सदैव दुःख पहुँचाती रहती है, वह तीक्ष्ण कण्टककुण्ड में वही खाती हुई चारों युग तक रहती है। और यमदूत दण्डे से उसे पीटते रहते हैं। पश्चात् सात जन्मों तक ऊँचा सुननेवाली स्त्री होकर उत्पन्न होती है। उसके उपरान्त शुद्ध हो जाती है ॥५०-५१॥ जो निर्दयी एवं नीचपुरुष विष देकर किसी का हनन करता है, वह सहस्र वर्षों तक विषकुण्ड में रहता है और वही भोजन करता है ॥५२॥ अन्त में सात जन्मों तक नृघाती (हत्यारा) होता

१क. दानवीं। २क. राजत्वं लभते कलौ। ३क. मानवः।

ततो भवेन्नृघाती च व्रणी स्यात्सप्तजन्मसु । सप्तजन्मसु कुष्ठी च ततः शुद्धो भवेद्ध्रुवम् ॥५३॥
दण्डेन ताडयेद्यो हि वृषं च वृषवाहकः । भृत्यद्वारा स्वतन्त्रो वा पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥५४॥
प्रतप्ततैलकुण्डे च स तिष्ठति चतुर्युगम् । गवां लोमप्रमाणाब्दं वृषो भवति तत्परम् ॥५५॥
दन्तेन[1] हन्ति जीवं यो लौहेन बडिशेन वा । [2]दन्तकुण्डे वसेत्सोऽपि वर्षाणामयुतं सति ॥५६॥
ततः स्वयोनिं संप्राप्य चोदरव्याधिसंयुतः । क्लिष्टेन जन्मनैकेन ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥५७॥
यो भुङ्क्ते च वृथा मांसं मत्स्यभोजी च ब्राह्मणः । हरेरनैवेद्यभोजी कृमिकुण्डं प्रयाति सः ॥५८॥
स्वलोममानवर्षं च तद्भोजी तत्र तिष्ठति । ततो भवेन्म्लेच्छजातिस्त्रिजन्मनि ततः शुचिः ॥५९॥
ब्राह्मणः शूद्रयाजी यः शूद्रश्राद्धान्नभोजकः । शूद्राणां शवदाही च पूयकुण्डं व्रजेद् ध्रुवम् ॥६०॥
यावल्लोमप्रमाणाब्दं यजमानस्य सुव्रते । ताडितो यमदूतेन तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥६१॥
ततो भारतमागत्य स शूद्रः सप्तजन्मसु । महाशूली दरिद्रश्च ततः शुद्धः पुनर्द्विजः ॥६२॥
लघुं [3]क्रूरं महान्तं वा सर्पं हन्ति च यो नरः । [4]स्वात्मलोमप्रमाणाब्दं सर्पकुण्डं प्रयाति सः ॥६३॥
सर्पेण भक्षितः सोऽपि यमदूतेन ताडितः । वसेच्च सर्पविड्जीवी ततः सर्पो भवेद्ध्रुवम् ॥६४॥
ततो भवेन्मानवश्चाप्यल्पायुर्दद्रुसंयुतः । महाक्लेशेन तन्मृत्युः सर्पेण भक्षणं ध्रुवम् ॥६५॥

है और घाव युक्त रहता है। इस भाँति सात जन्मों तक कुष्ठी (कोढ़ी) रहने के उपरान्त शुद्ध होता है॥५३॥ जो किसान इस पुण्य क्षेत्र भारत में स्वयं अपने या नौकर द्वारा दण्डे से बैल को पीटता है, वह चारों युगों तक प्रतप्त तैल कुण्ड में रहता है। अनन्तर गौ के लोम प्रमाण वर्ष तक वह बैल होता है॥५४-५५॥ जो दाँतों से काट कर या लोहे या वडिश (बंसी) द्वारा जीवों को मारता है, वह दश सहस्र वर्ष तक दन्तकुण्ड में रहता है। अन्त में अपने कुल में उत्पन्न होकर व्याधि-पीड़ित रहता है। इस प्रकार उसी एक जन्म में कष्टों को भोग कर पुनः शुद्ध हो जाता है॥५६-५७॥ जो मछली खाने वाला ब्राह्मण, भगवान् के नैवेद्य का त्याग कर व्यर्थ मांस सेवन करता है, वह कृमि कुण्ड में जाता है और अपने लोमों के प्रमाण वर्ष तक वही खाकर वहाँ रहता है। अन्त में यहाँ तीन जन्म तक म्लेच्छ जाति में उत्पन्न होकर पुनः ब्राह्मण होता है। शूद्रों के यहाँ यज्ञ कराने वाला ब्राह्मण जो शूद्रों के श्राद्धान्न का भोजन करता है और उनके शव (मुर्दे) को जलाता है, वह निश्चित पूय (पीव) कुण्ड में जाता है॥५८-६०॥ हे सुव्रते! यजमान के लोम प्रमाण वर्ष तक वह वहाँ वही खाकर रहता है और नित्य यमदूतों से ताड़ित होता है॥६१॥ पश्चात् भारत आने पर सात जन्मों तक शूद्र होता है, तथा महारोगी एवं दरिद्र बना रहता है। पश्चात् शुद्ध होकर पुनः ब्राह्मण होता है॥६२॥ जो मनुष्य लघु, क्रूर या महान् सर्प की हत्या करता है, वह अपने लोमों के प्रमाण वर्ष तक सर्पकुण्ड में रहता है। वहाँ उसी सर्पद्वारा भक्षित होता है, ऊपर से यमदूत ताड़ना देते हैं और स्वयं सर्पों के विष्ठा का भक्षण करता है। अन्त में सर्पयोनि में उत्पन्न होता है। पश्चात् अल्पायु तथा दाद का रोगी मानव होता है। अन्त में सर्प के काटने से उसकी अतिक्लेशदायक मृत्यु होती है॥६३-६५॥ जो युक्ति निकालकर जीवों

१ख. कुन्त०। २ख. कुन्त०। ३क. कृष्णपादमस्तकस्थं स०। ४क. सर्पलो०।

[1]विधिं प्रकल्प्य जीवांश्च क्षुद्रजन्तूंश्च हन्ति यः। स दंशमशके कुण्डे जन्ममानदिनाब्दकम् ॥६६॥
दिवानिशं भक्षितस्तैरनाहारश्च शब्दकृत्। बद्धहस्तपदादिश्च यमदूतेन ताडितः ॥६७॥
ततो भवेत्क्षुद्रजन्तुर्जातिर्वै यावती स्मृता। ततो भवेन्मानवश्च सोऽङ्गहीनस्ततः शुचिः ॥६८॥
यो मूढो मधु गृह्णाति हत्वा च मधुमक्षिकाः। स एव गारले कुण्डे जीवमानदिनाब्दकम् ॥६९॥
भक्षितो गरलैर्दग्धो यमदूतेन ताडितः। ततो हि मक्षिकाजातिस्ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥७०॥
दण्डं करोत्यदण्ड्ये च विप्रे दण्डं करोति च। स कुण्डं वज्रदंष्ट्राणां कीटानां वै प्रयाति च ॥७१॥
तल्लोममानवर्षं च तत्र तिष्ठत्यहर्निशम्। शब्दकृद्भक्षितस्तैश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥७२॥
अर्थलोभेन यो भूपः प्रजादण्डं करोति च। वृश्चिकानां च कुण्डेषु तल्लोमाब्दं वसेद्ध्रुवम् ॥७३॥
ततो वृश्चिकजातिश्च सप्त जन्मसु जायते। ततो नरश्चाङ्गहीनो व्याधियुक्तो भवेद्ध्रुवम् ॥७४॥
यः खादति गुरुं स्वं च धूर्तो धूर्ततया खलः। स कुण्डे वज्रदंष्ट्राणां वसेन्मन्वन्तरावधि ॥७५॥
ब्राह्मणःशस्त्रधारी यो ह्यन्येषां धावको भवेत्। संध्याहीनश्च मूढश्च हरिभक्तिविहीनकः ॥७६॥
स तिष्ठति स्वलोमाब्दं कुण्डादिषु शरादिषु। विद्धः शरादिभिः शश्वत्ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥७७॥

और क्षुद्र जन्तुओं (छोटे-छोटे जीवों) का हनन करता है वह अपनी आयु दिन के प्रमाण वर्ष तक डँसा और मसा के कुण्ड में पड़ा रहता है। वे कीड़े वहाँ दिन-रात उसे (काट-काट कर) खाया करते हैं और वह आहारहीन होकर चिल्लाता रहता है, तथा यम के दूतगण उसका हाथ-पैर बाँध कर ऊपर से ताड़ना देते रहते हैं ॥६६-६७॥ अनन्तर क्षुद्र जन्तु होकर उत्पन्न होता है। इस प्रकार अनेक जन्मों के उपरान्त अङ्गहीन मनुष्य होता है। तब उसकी शुद्धि होती है ॥६८॥ जो मूढ़ मधुमक्खियों को मार कर मधु (शहद) निकालता है, वह अपने जीवन दिन के प्रमाण वर्ष तक विष कुण्ड में रहता है ॥६९॥. वहाँ विष भक्षण कर जलता रहता है और यम के दूत ऊपर से ताड़ना देते हैं। अनन्तर मधु की मक्खी होकर उत्पन्न होता है। तब उसकी शुद्धि होती है ॥७०॥ जो अदण्ड्य (अपराध रहित) ब्राह्मण को दण्ड देता है, वह वज्र के समान दाँत वाले कीड़ों के कुण्ड में आता है ॥७१॥ और उस ब्राह्मण के लोम प्रमाण वर्ष तक उस कुण्ड में पड़ा रह कर दिन-रात उन कीड़ों के काटने से चिल्लाया करता है और पश्चात् शुद्ध होता है ॥७२॥ जो राजा धन के लोभवश प्रजाओं को दण्डित करता रहता है, वह उनके लोम प्रमाण वर्ष तक विच्छुओं के कुण्डों में निश्चित निवास करता है ॥७३॥ अनन्तर सात जन्मों तक बिच्छू होकर उत्पन्न होता है और पश्चात् अङ्गहीन मानव होकर सदैव रोग पीड़ित रहता है ॥७४॥ जो धूर्त एवं दुष्ट व्यक्ति धूर्तता से अपने गुरु की हिंसा करता है, वह वज्रसदृश दाँतों वालों के कुण्ड में एक मन्वन्तर तक वास करता है ॥७५॥ जो मूर्ख ब्राह्मण संध्यारहित और भगवान् की भक्ति से हीन रह कर शस्त्र धारण किए दूसरे लोगों का दूत बनता है, वह अपने शरीर लोम के प्रमाण वर्ष तक शर (बाण) आदि के कुण्डों में रहता है, वहाँ बाणों द्वारा (शरीर में) क्षत-विक्षत होता रहता है, पश्चात् उसकी शुद्धि होती है ॥७६-७७॥ जो प्रमत्त

१क. विधिप्रदत्त जी०।

कारागारे सान्धकारे निबध्नाति प्रजाश्च यः। प्रमत्तः स्वल्पदोषेण गोलकुण्डं प्रयाति सः ॥७८॥
तत्कुण्डं तप्ततोयाक्तं सान्धकारं भयङ्करम्। तीक्ष्णदंष्ट्रैश्च कीटैश्च संयुक्तं गोलकुण्डकम् ॥७९॥
कीटैर्विद्धो वसेत्तत्र प्रजालोमाब्दमेव च। ततो [1]भवेन्नीचभृत्यस्ततः शुद्धो नरो भुवि ॥८०॥
सरोवरादुत्थितांश्च नक्रादीन्हन्ति यः सति। नक्रकण्टकमानाब्दं नक्रकुण्डं प्रयाति सः ॥८१॥
ततो नक्रादिजातिश्च भवेन्नद्यादिषु ध्रुवम्। ततः सद्यो विशुद्धो हि दण्डेनैव नरः पुनः ॥८२॥
वक्षःश्रोणीस्तनास्यं च यः पश्यति परस्त्रियाः। कामेन कामुको यो हि पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥८३॥
स वसेत्काककुण्डे च काकैश्च क्षुण्णलोचनः। ततः स्वलोममानाब्दं ततश्चान्धस्त्रिजन्मनि ॥८४॥
स्वर्णस्तेयी च यो मूढो भारते सुरविप्रयोः। स च संचानकुण्डं च स्वलोमाब्दं वसेद्ध्रुवम् ॥८५॥
ताडितो यमदूतेन संचानैः क्षुण्णलोचनः। ततो भोजी च तत्रैव ततश्चान्धस्त्रिजन्मनि ॥८६॥
सप्तजन्मदरिद्रश्च महाक्रूरश्च पातकी। भारते स्वर्णकारश्च स च स्वर्णवणिक्ततः ॥८७॥
यो भारते ताम्रचौरो लौहचौरश्च सुन्दरि। स स्वलोमप्रमाणाब्दं वज्रकुण्डं प्रयाति वै ॥८८॥
तत्रैव वज्रविड्भोजी वज्रैश्च क्षुण्णलोचनः। ताडितो यमदूतेन ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥८९॥
भारते देवचौरश्च देवद्रव्यादिहारकः। सुदुष्करे वज्रकुण्डे स्वलोमाब्दं वसेद्ध्रुवम् ॥९०॥

होने के नाते अल्प अपराध के कारण भी प्रजाओं को अन्धकारपूर्ण जेल (काली कोठरी) में बन्द कर देता है, वह गोलकुण्ड नामक नरक में जाता है जो संतप्त (खौलते हुए) जल, अंधकार और तेज दाँत वाले कीड़ों से संयुक्त होने के नाते भीषण दिखायी देता है। प्रजाओं के लोम प्रमाण वर्ष तक वहाँ कीड़ों द्वारा भक्षित होता है। अनन्तर यहाँ भूतल पर नीच का सेवक होता है, तब उसकी शुद्धि होती है ॥७८-८०॥ सरोवर आदि जलाशयों से बाहर आये हुए मकर (मगर) आदि जलजन्तुओं का जो हनन करता है, वह उनके काँटों के प्रमाण वर्ष तक नक्रकुण्ड में रहता है ॥८१॥ पश्चात् नदी आदि में मगर आदि जन्तु होकर निश्चित उत्पन्न होता है और वहाँ दण्ड के द्वारा ही उसकी शुद्धि होती है ॥८२॥ इस पुण्य क्षेत्र भारत में जो पर-स्त्री का वक्षःस्थल, श्रोणी भाग (कटि तट), स्तन या मुख का दर्शन कामुक भाव से करता है, वह काककुण्ड में जाता है और वहाँ कौवे उसकी आँखें (ठोढ़ों से मार कर) फोड़ डालते हैं। अपने लोमों के प्रमाण वर्ष तक वहाँ रहकर वह यहाँ भारत में तीन जन्मों तक अन्धा होता है। भारत में जो मूर्ख व्यक्ति देवता और ब्राह्मण का सोना चुराता है, वह अपने रोओं के जितने वर्षों तक संचानकुण्ड मे वास करता है। वहाँ यमदूत उसे पीटते हैं, संचान नामक कौए उसकी आँखें नोचते हैं। वहाँ भोग करने के बाद वह तीन जन्मों तक अन्धा, सात जन्मों तक दरिद्र, महाक्रूर, पातकी, सोनार और सुवर्ण का व्यापारी होता है। हे सुन्दरि! जो भारत में ताँबे और लोहे की चोरी करता है, वह अपने लोम के प्रमाण वर्ष तक वज्रकुण्ड में रहता है वहाँ रहते हुए वज्र नामक कीड़ों के मल का भोजन करता है तथा कीड़ों द्वारा उसके नेत्र फोड़ दिये जाते हैं और ऊपर से यम के दूत ताड़ना देते हैं। पश्चात् उसकी शुद्धि होती है ॥८३-८९॥ भारत में जो देव प्रतिमा या देवों के द्रव्य आदि की चोरी करता है, वह अपने लोम के प्रमाण वर्ष तक अति दुष्कर वज्रकुण्ड में निश्चित निवास करता है। वहाँ वज्र

१क. ०वेत्प्रजाजातिस्त०।

देहदग्धो हि तद्वक्त्रैरनाहारश्च शब्दकृत्। ताडितो यमदूतेन ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥९१॥
रौप्यगव्यांशुकानां च यश्चौरः सुरविप्रयोः। तप्तपाषाणकुण्डे च स्वलोमाब्दं वसेद्ध्रुवम् ॥९२॥
त्रिजन्मनि बकः सोऽपि श्वेतहंसस्त्रिजन्मनि। जन्मैकं शङ्खचिल्लश्च ततोऽन्ये श्वेतपक्षिणः ॥९३॥
ततो रक्तविकारी च शूली वै मानवो भवेत्। सप्तजन्मसु चाल्पायुस्ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥९४॥
रौप्यकांस्यादिपात्रं च यो रेहत्सुरविप्रयोः। तीक्ष्णपाषाणकुण्डे च स्वलोमाब्दं वसेद्ध्रुवम् ॥९५॥
स भवेदश्वजातिश्च भारते सप्तजन्मसु। ततोऽधिकाङ्गयुक्तश्च पादरोगी ततः शुचिः ॥९६॥
पुंश्चल्यन्नं च यो भुङक्ते पुंश्चलीजीव्यजीवनः। स्वलोममानवर्षं च लालाकुण्डे वसेद्ध्रुवम् ॥९७॥
ताडितो यमदूतेन तद्भोजी तत्र तिष्ठति। ततश्चक्षुः शूलरोगी ततः शुद्धः क्रमेण सः ॥९८॥
म्लेच्छसेवी मषीजीवी यो विप्रो भारते भुवि। स च तप्तमषीकुण्डे स्वलोमाब्दं वसेद्ध्रुवम् ॥९९॥
ताडितो यमदूतेन तद्भोजी तत्र तिष्ठति। ततस्त्रिजन्मनि भवेत्कृष्णवर्णः पशुः सति ॥१००॥
त्रिजन्मनि भवेच्छागः कृष्णसर्पस्त्रिजन्मनि। ततश्च तालवृक्षश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥१०१॥
धान्यादिसस्यं ताम्बूलं यो हरेत्सुरविप्रयोः। आसनं च तथा तल्पं चूर्णकुण्डं प्रयाति सः ॥१०२॥
शताब्दं तत्र निवसेद्यमदूतेन ताडितः। ततो भवेन्मेषजातिः कुक्कुटश्च त्रिजन्मनि ॥१०३॥

कीड़ों द्वारा उसकी देह दग्ध हो जाती है और वह स्वयं आहारहीन होकर चिल्लाता रहता है। ऊपर से यम के दूत ताड़ना देते रहते हैं। इसके पश्चात् वह प्राणी शुद्ध होता है ॥९०-९१॥ देव या ब्राह्मण की चाँदी गौ या वस्त्र चुराने वाला अपने लोम के प्रमाण वर्ष तक पाषाण (पत्थर) कुण्ड में निश्चित निवास करता है ॥९२॥ अनन्तर तीन जन्म तक बगुला, तीन जन्म तक श्वेत रंग का हंस, एक जन्म तक शंखचिल्ल, अन्य जन्म में श्वेत वर्ण का पक्षी होकर सात जन्मों तक रक्त विकार और शूल रोगयुक्त अल्पायु मनुष्य होता है और इसके उपरान्त उसकी शुद्धि होती है ॥९३-९४॥ इसी प्रकार देव या ब्राह्मण के पीतल अथवा काँसे के पात्र की जो चोरी करता है, वह अपने लोम के प्रमाण वर्ष तक तीक्ष्ण पाषाणकुण्ड में निश्चित निवास करता है ॥९५॥ उपरान्त भारत में सात जन्मों तक अश्व होता है। पुनः अधिक अङ्ग युक्त तथा चरण का रोगी होता है और इसके पश्चात् उसकी शुद्धि हो जाती है ॥९६॥ पुंश्चली (व्यभिचारिणी स्त्री) द्वारा जीविका निर्वाह करने वाला जो पुरुष पुंश्चली का अन्न खाता है, वह अपने लोम के प्रमाण वर्ष तक लाला (लार) कुण्ड में निश्चित निवास करता है ॥९७॥ वहाँ यम के दूतों द्वारा ताड़ित होता है और वही भक्षण करता है। अनन्तर क्रमशः नेत्र और शूल की पीड़ा से पीड़ित होकर शुद्ध होता है ॥९८॥ भारत के भूमण्डल पर जो विप्र म्लेच्छों की सेवा या मुंशीगिरी द्वारा जीविका निर्वाह करता है, वह अपने लोम के प्रमाण वर्ष तक खौलते हुए मसी (स्याही) कुण्ड में निश्चित निवास करता है ॥९९॥ वहाँ वही भोजन करता है और यमदूतों द्वारा सदैव ताड़ित होता है। अनन्तर तीन जन्म तक काले वर्ण का पशु, तीन जन्म तक छाग (बकरी) तथा तीन जन्म तक काला सर्प होता है और पश्चात् ताड़ का वृक्ष होकर शुद्ध हो जाता है ॥१००-१०१॥ देवों या ब्राह्मणों के अन्न, ताम्बूल, आसन और शय्या की चोरी करने वाला प्राणी चूर्णकुण्ड में जाता है ॥१०२॥ वहाँ सौ वर्ष तक यमदूतों द्वारा ताड़ित होकर रहता है। पश्चात् भेंड़ा और तीन जन्म तक मुर्गा होने के उपरान्त भूतल पर खाँसी

ततो भवेन्मानवश्च कासव्याधियुतो भुवि। वंशहीनो दरिद्रश्चाप्यल्पायुश्च ततः शुचिः ॥१०४॥
चक्रं करोति विप्राणां हृत्वा द्रव्यं च यो नरः। स वसेच्चक्रकुण्डे च शताब्दं दण्डताडितः ॥१०५।
ततो भवेन्मानवश्च तैलकारस्त्रिजन्मनि। व्याधियुक्तो भवेद्रोगी वंशहीनस्ततः शुचिः ॥१०६॥
बान्धवेषु च विप्रेषु कुरुते वक्रतां नरः। प्रयाति [1]वककुण्डं च वसेत् तत्र युगं सति ॥१०७॥
ततो भवेत्स वक्राङ्गो हीनाङ्गः सप्तजन्मसु। दरिद्रो वंशहीनश्च भार्याहीनस्ततः शुचिः ॥१०८॥
शयने कूर्ममांसं च ब्राह्मणो यो हि भक्षति। कूर्मकुण्डे वसेत्सोऽपि शताब्दं कूर्मभक्षितः ॥१०९॥
ततो भवेत्कूर्मजन्म त्रिजन्मनि च सूकरः। त्रिजन्मनि बिडालश्च मयूरश्च त्रिजन्मनि॥११०॥
घृततैलादिकं चैव यो हरेत्सुरविप्रयोः । ज्वालाकुण्डं स वै याति भस्मकुण्डं च पातकी॥१११॥
तत्र स्थित्वा शताब्दं च स भवेत्तैलपायिकः। सप्तजन्मसु मत्स्यः स्यान्मूषकश्च ततः शुचिः ॥११२॥
सुगन्धितैलं धात्रीं च गन्धद्रव्यं तथैव वा। भारते पुण्यवर्षे च यो हरेत्सुरविप्रयोः ॥११३॥
[2]वसेद्दुर्गन्धकुण्डे च दुर्गन्धं च लभेत्सदा। स्वलोममानवर्षं च ततो दुर्गन्धिको भवेत् ॥११४॥
दुर्गन्धिकः सप्तजनौ मृगनाभिस्त्रिजन्मनि। सप्तजन्म सुगन्धिश्च ततो वै मानवो भवेत् ॥११५॥
बलेनैव खलत्वेन हिंसारूपेण वा सति। बली च यो हरेद्भूमिं भारते परपैतृकीम् ॥११६॥

रोग से युक्त मनुष्य होता है, जो वंशहीन, दरिद्र एवं अल्पायु होता है। अनन्तर शुद्ध हो जाता है॥१०३-१०४॥ जो ब्राह्मणों के द्रव्यों को चुरा कर उससे चक्र का निर्माण करता है, वह सौ वर्ष तक दण्ड ताड़ना का अनुभव करता हुआ चक्रकुण्ड में निवास करता है॥१०५॥ पश्चात् तीन जन्म तक तेली जाति में उत्पन्न होकर व्याधियुक्त, रोगी और सन्तानरहित होता है, उपरान्त शुद्ध होता है॥१०६॥ जो बन्धुओं या ब्राह्मणों के साथ कुटिलता का व्यवहार करता है, वह युग के प्रमाण वर्ष तक वज्रकुण्ड में निवास करता है॥१०७॥ पश्चात् सात जन्मों तक टेढ़े-मेढ़े (कूबरादि) अङ्ग, हीनाङ्ग, दरिद्र, सन्तानहीन, स्त्रीरहित होकर शुद्ध होता है॥१०८॥ जो ब्राह्मण बिस्तर पर कछुवे का मांस भक्षण करता है, वह सौ वर्ष तक कछुवे के कुण्डों में निवास करता है और कछुवे लोग उसके मांस का भक्षण करते हैं॥१०९॥ पश्चात् कछुवे जाति में उत्पन्न होकर तीन जन्म सूकर, तीन जन्म बिडाल एवं तीन जन्म मोर पक्षी होता है॥११०॥ देवों या ब्राह्मणों के तेल-घी की चोरी जो करता है, वह पातकी ज्वालाकुण्ड तथा भस्मकुण्ड में जाता है। वह वहाँ सौ वर्ष तक दुःखों के अनुभव करने के उपरान्त सात जन्म तक गीदड़, मछली और चूहा होता है, पश्चात् शुद्ध हो जाता है॥१११-११२॥ इस पुण्य क्षेत्र भारतवर्ष में जो देवता या ब्राह्मणों के सुगन्धित तेल, आँवले एवं सुगन्धित पदार्थों का अपहरण करता है, वह अपने लोम के प्रमाण वर्ष तक दुर्गन्धकुण्ड में दुर्गन्ध का अनुभव करता है। अनन्तर सात जन्मों तक छछून्दर होता है। पुनः तीन जन्म तक कस्तूरी, सात जन्म तक सुगन्धित वस्तु होकर अन्त में मानव होता है॥११३-११५॥ भारत में जो बली दुष्टतावश बल प्रयोग या हिंसा द्वारा दूसरे के पूर्वजों की भूमि का अपहरण करता है, वह खौलते हुए तेल में दग्ध होने पर निरन्तर चारों

१ख. वज्रकु०। २क. स वसेद्दग्धकुण्डे च भवेद्दग्धो दिवानिशम्।

स वसेत्तप्तशूले च भवेत्तप्तो दिवानिशम्। तप्ततैले यथा जीवो दग्धो भ्रमति संततम् ॥११७॥
भस्मसान्न भवत्येव भोगदेहो न नश्यति। सप्तमन्वन्तरं पापी संतप्तस्तत्र तिष्ठति ॥११८॥
शब्दं करोत्यनाहारो यमदूतेन ताडितः। षष्टिवर्षसहस्राणि विट्कृमिर्भारते ततः ॥११९॥
ततो भवेद्भूमिहीनो दरिद्रश्च ततः शुचिः। ततः स्वयोनिं संप्राप्य [1]शुभकर्मा भवेत्पुनः ॥१२०॥
छिनत्ति जीविनः खड्गैर्दयाहीनः सुदारुणः। नरघाती हन्ति नरमर्थलोभेन भारते ॥१२१॥
असिपत्रे च स वसेद्यावदिन्द्राश्चतुर्दश। तेषु चेद्ब्राह्मणान्हन्ति शतमन्वन्तरं तदा ॥१२२॥
छिन्नाङ्गश्च भवेत्पापी खड्गधारेण संततम्। अनाहारः शब्दकृच्च यमदूतेन ताडितः ॥१२३॥
[2]चण्डालः शतजन्मानि भारते सूकरो भवेत्। कुक्कुरः शतजन्मानि शृगालः सप्तजन्मसु ॥१२४॥
व्याघ्रश्च सप्तजन्मानि वृकश्चैव त्रिजन्मनि। सप्तजन्मसु गण्डी स्यान्महिषश्च त्रिजन्मनि ॥१२५॥
ग्रामं वा नगरं वाऽपि दाहनं यः करोति च। क्षुरधारे वसेत्सोऽपि च्छिन्नाङ्गस्त्रियुगं सति ॥१२६॥
ततः प्रेतो भवेत्सद्यो वह्निवक्त्रो भ्रमेन्महीम्। सप्तजन्मामेध्यभोजी खद्योतः सप्तजन्मसु ॥१२७॥
ततो भवेन्महाशूली मानवः सप्तजन्मसु। सप्तजन्म गलत्कुष्ठी ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥१२८॥

ओर भ्रमण करने वाले जीव की भाँति तप्तशूल नामक नरक में रात दिन संतप्त होता है॥११६-११७॥ किन्तु न तो वह भस्म (राख) ही होता है और न उसकी भोगदेह नष्ट होती है। इस प्रकार वह पापी सात मन्वन्तरों के समय तक वहाँ निवास करता है॥११८॥ अनाहारी रह कर यमदूतों द्वारा ताड़ित होने पर चिल्लाता रहता है। पश्चात् भारत में साठ सहस्र वर्ष तक विष्ठा का कीड़ा होता है॥११९॥ उसके उपरान्त भूमिरहित एवं दरिद्र होकर शुद्ध होता है और अपने कुल में उत्पन्न होकर पुनः शुभ कर्म करता है॥१२०॥ भारत में जो निष्करुण और अति भीषण नरघाती मनुष्य खड्गों द्वारा जीवों को मारता है, तथा धन के लोभ से मनुष्य की हत्या करता है, वह चौदह इन्द्रों के समय तक असिपत्र नामक नरक में रहता है। यदि वह ब्राह्मणों की हत्या किए रहता है, तो सौ मन्वन्तरों के समय तक उस नरक में निवास करता है॥१२१-१२२॥ वहाँ वह पापी तलवार की धार से टुकड़े-टुकड़े हुआ करता है, अनाहारी रहता है, और यमदूतों द्वारा ताड़ित होने पर चिल्लाया करता है॥१२३॥ पश्चात् भारत में सौ जन्मों तक चाण्डाल तथा सूकर, सौ जन्मों तक कुत्ता, सात जन्मों तक गीदड़, सात जन्मों तक बाघ, तीन जन्मों तक भेड़िया, सात जन्मों तक गैंड़ा और तीन जन्मों तक भैंसा होता है॥१२४-१२५॥ गाँव या नगर को जो जला देता है, वह क्षुरधार नामक नरक में उसकी धार से छिन्न-भिन्न होता हुआ तीन युग तक निवास करता है॥१२६॥ अनन्तर अग्निमुख प्रेत होकर पृथ्वी पर घूमा करता है, सात जन्मों तक अपवित्रभोजी, सात जन्मों तक जुगनू, सात जन्मों तक महाशूल से पीड़ित मनुष्य और सात जन्मों तक गलत्कुष्ठ का महान् रोगी होता है। पश्चात् वह शुद्ध होता है॥१२७-१२८॥ जो दूसरों के कानों में दूसरों की चुगुली करता है, दूसरों के दोषों के कहने में ही जिसे महान्

१क. ०कर्म चरेत्पु०। २क. संचानः शतवर्षाणि शतजन्मानि सूकरः। कुक्कुरः सप्तजन्मानि सृ०।

परकर्णोपजापेन परनिन्दां करोति यः। परदोषे महातोषी देवब्राह्मणनिन्दकः॥ ॥१२९॥
सूचीमुखे स च वसेत्सूचीविद्धो युगत्रयम्। ततो भवेद्वृश्चिकश्च सर्पः स्यात्सप्तजन्मसु॥१३०॥
वज्रकीटः सप्तजनौ भस्मकीटस्ततः परम्। ततो भवेन्मानवश्च महाव्याधिस्ततः शुचिः॥१३१॥
गृहिणां च गृहं भित्त्वा वस्तुस्तेयं करोति यः। गाश्च च्छागांश्च मेषांश्च याति गोधामुखं च सः॥१३२॥
ताडितो यमदूतेन वसेत्तत्र युगत्रयम्। ततो भवेत्सप्तजनौ गोजातिर्व्याधिसंयुतः॥१३३॥
त्रिजन्मनि मेषजातिश्छागजातिस्त्रिजन्मनि। ततो भवेन्मानवश्च नित्यरोगी दरिद्रकः॥१३४॥
भार्याहीनो बन्धुहीनः संतापी च ततः शुचिः। सामान्यद्रव्यचौरश्च याति नक्रमुखं युगम्॥१३५॥
ततो भवेन्मानवश्च महारोगी ततः शुचिः। हन्ति गाश्च गजांश्चैव तुरगांश्च नरांस्तथा॥१३६॥
स याति गजदंशं च महापापी युगत्रयम्। ताडितो यमदूतेन गजदन्तेन संततम्॥१३७॥
स भवेद्गजजातिश्च तुरगश्च त्रिजन्मनि। गोजातिर्म्लेच्छजातिश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः॥१३८॥
जलं पिबन्तीं तृषितां गां वारयति यो नरः। तच्छुश्रूषाविहीनश्च गोमुखं याति मानवः॥१३९॥
नरकं गोमुखाकारं कृमितप्तोदकान्वितम्। तत्र तिष्ठति संतप्तो यावन्मन्वन्तरावधि॥१४०॥
ततो [1]नरोऽपि गोहीनो महारोगी दरिद्रकः। सप्तजन्मन्यन्त्यजातिस्ततः शुद्धो भवेन्नरः॥१४१॥

सन्तोष होता है तथा जो देवों और ब्राह्मणों की सदैव निन्दा किया करता है, वह सूचीमुख नामक नरक में जाता है और वहाँ सूचियों द्वारा क्षत अङ्ग होकर तीन युगों तक रहता है। पश्चात् बिच्छू, सात जन्मों तक साँप, सात जन्मों तक वज्रकीट और सात जन्मों तक भस्मकीट होकर पुनः महाव्याधियुक्त मनुष्य होता है, तब उसकी शुद्धि होती है॥१२९-१३१॥ जो किसी गृहस्थ के घर की दीवाल फोड़ कर वस्तुओं, गौओं, भेड़ों और बकरियों की चोरी करता है, वह गोधामुख नामक नरक में जाता है॥१३२॥ पश्चात् सात जन्म तक व्याधिपीड़ित गौ, तीन जन्म तक भेड़ और तीन जन्म तक बकरी होता है। इसके उपरान्त मनुष्य होकर नित्य रोगपीड़ित, दरिद्र, स्त्री एवं भाई से रहित होकर सन्तप्त जीवन व्यतीत करता है, तब शुद्ध होता है॥१३३-१३४½॥ सामान्य द्रव्य की चोरी करने वाला एक युग तक नक्रमुख नामक नरक में रहता है। पश्चात् मनुष्य होकर महान् रोगी होता है। अनन्तर उसकी शुद्धि होती है॥१३५½॥ जो गौ, गज, घोड़े एवं मनुष्यों की हत्या करता है, वह महापापी तीन युग तक गजदंश नामक नरक में रहता है। वहाँ यमदूतों द्वारा गजदन्त से निरन्तर ताड़ित होता है। पश्चात् तीन जन्म तक गज और घोड़ा होता है, पुनः गो जाति एवं म्लेच्छ जाति होने पर उसकी शुद्धि हो जाती है॥१३६-१३८॥ जल पीती हुई प्यासी गौ को जो जल पीने से रोक देता है, वह गोसेवाहीन मनुष्य गोमुख नामक नरक में जाता है॥१३९॥ जो गौ के मुखाकार का बना है। तथा कीड़े और संतप्त जल से सदैव भरा रहता है। एक मन्वन्तर के समय तक वह उसी नरक में संतप्त होकर रहता है॥१४०॥ पश्चात् वह गोहीन, महारोगी एवं दरिद्र होता है और सात जन्मों तक अन्त्यज (असवर्ण) जाति होता है। तब उसकी शुद्धि होती है॥१४१॥ दूसरे के कहने से गोहत्या, ब्रह्महत्या तथा अगम्यागमन करने वाला,

---

१क.० रोप्यङ्गही०।

गोहत्यां ब्रह्महत्यां च यः करोत्यतिदेशिकीम् । यो हि गच्छेदगम्यां च संध्याहीनोऽप्यदीक्षितः ॥१४२॥
प्रतिग्राही च तीर्थेषु ग्रामयाजी च देवलः । शूद्राणां सूपकारश्च प्रमत्तो वृषलीपतिः ॥१४३॥
गोहत्यां ब्रह्महत्यां च स्त्रीहत्यां च करोति यः । मित्रहत्यां भ्रूणहत्यां महापापी च भारते ॥१४४॥
कुम्भीपाकं स च वसेद्यावदिन्द्राश्चतुर्दश । ताडितो यमदूतेन [1]घूर्ण्यमानश्च संततम् ॥१४५॥
क्षणं पतति वह्नौ च क्षणं पतति कण्टके । क्षणं च तप्ततैलेषु तप्ततोयेषु च क्षणम् ॥१४६॥
क्षणं च तप्तपाषाणे तप्तलोहे क्षणं ततः । गृध्रः कोटिसहस्राणि शतजन्मानि सूकरः ॥१४७॥
काकश्च सप्तजन्मानि सर्पः स्यात्सप्तजन्मसु । षष्टिवर्षसहस्राणि ततो वै विट्कृमिर्भवेत् ॥१४८॥
ततो भवेत्स वृषलो गलत्कुष्ठी दरिद्रकः । यक्ष्मग्रस्तो [2]वंशहीनो भार्याहीनस्ततः शुचिः ॥१४९॥

सावित्र्युवाच

ब्रह्महत्या च गोहत्या किंविधा वाऽऽतिदेशिकी । का वा नृणामगम्या वा को वा संध्याविहीनकः ॥१५०॥
अदीक्षितः पुमान्को वा को वा तीर्थे प्रतिग्रही । द्विजः को वा ग्रामयाजी को वा विप्रश्च देवलः ॥१५१॥
शूद्राणां सूपकारः कः प्रमत्तो वृषलीपतिः । एतेषां लक्षणं सर्वं वद वेदविदां वर ॥१५२॥

यम उवाच

श्रीकृष्णे च तदर्चायां मृन्मय्यां प्रकृतौ तथा । शिवे च शिवलिङ्गे वा सूर्ये सूर्यमणौ तथा ॥१५३॥
गणेशे वा तदर्चायामेवं सर्वत्र सुन्दरि । करोति भेदबुद्धिं यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥१५४॥

संध्याकर्म-रहित, दीक्षाहीन, तीर्थों में प्रतिग्राही (दान लेने वाला), ग्रामयाजी (गाँव-गाँव यज्ञ कराने वाला); देवल (मन्दिर का पुजारी), शूद्रों का भण्डारी, प्रमत्त, वृषलीपति (शूद्र की स्त्री से व्यभिचार करने वाला) एवं गोहत्या, ब्रह्महत्या, स्त्रीहत्या, मित्रहत्या, भ्रूणहत्या करने वाला महापापी कुम्भीपाक नरक में चौदहों इन्द्रों के समय तक रहता है, वहाँ धर्मराज के दूतगण ताड़ित कर उसे निरन्तर घुमाया करते हैं॥१४२-१४५॥ वह वहाँ क्षण में अग्नि में गिरता है, क्षण में काँटों के कुण्डों में गिरता है, क्षण में खौलते हुए तेल में, क्षण में संतप्त जल में, क्षण में तप्त पत्थर पर और क्षण में तप्त लोहे पर गिरता है। अनन्तर करोड़ों जन्म तक गीध, सौ जन्म तक सूकर, सात जन्म तक कौवा और सात जन्म तक सर्प होकर साठ सहस्र वर्ष तक विष्ठा का कीड़ा होता है॥१४६-१४८॥ उसके उपरान्त शूद्र, गलत्कुष्ठ का रोगी, दरिद्र, यक्ष्मापीड़ित, वंशहीन, और स्त्रीहीन मनुष्य होता है, तब उसकी शुद्धि होती है॥१४९॥

सावित्री बोली—हे वेदविदांवर ! ब्रह्महत्या, गोहत्या एवं अतिदेशिकी हत्या किस भाँति की होती हैं। मनुष्यों के लिए अगम्या कौन है, संध्याहीन एवं तीर्थ का प्रतिग्राही (दान लेने वाला) पुरुष कौन है, कौन ब्राह्मण ग्रामयाजी (गाँव-गाँव में यज्ञ कराने वाला) और कौन ब्राह्मण देवल (मन्दिर में पुजारी) होता है एवं शूद्रों का भण्डारी, प्रमत्त और वृषलीपति कौन है, इनके समस्त लक्षण बताने की कृपा करें॥१५०-१५२॥

यम बोले—हे सुन्दरि ! भगवान् श्रीकृष्ण, उनकी अर्चना, मिट्टी की बनी हुई श्रीदुर्गा जी की मूर्ति, शिव, शिवलिङ्ग, सूर्य, सूर्यमणि, गणेश एवं उनकी पूजा में भेद बुद्धि रखने वाले को ब्रह्महत्या लगती है॥१५३-१५४॥

---

१ ख.० चूर्ण्यमा०। २ क. बन्धुही ०।

स्वगुरौ स्वेष्टदेवे वा जन्मदातरि मातरि। करोति भेदबुद्धिं यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥१५५॥
वैष्णवेष्वन्यभक्तेषु ब्राह्मणेष्वितरेषु च। करोति समतां यो हि ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥१५६॥
यो मूढो विष्णुनैवेद्ये चान्यनैवेद्यके तथा। हरेः पादोदकेष्वन्यदेवपादोदके तथा॥
करोति समतां यो हि ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥१५७॥
सर्वेश्वरेश्वरे कृष्णे सर्वकारणकारणे। सर्वाद्ये सर्वदेवानां सेव्ये सर्वान्तरात्मनि। ॥१५८॥
माययाऽनेकरूपे वाऽप्येक एव हि निर्गुणे। करोत्यन्येन समतां ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः। ॥१५९॥
पितृदेवार्चनां पौर्वापरां वेदविनिर्मिताम्। यः करोति निषेधं च ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥१६०॥
ये निन्दन्ति हृषीकेशं तन्मन्त्रोपासकं तथा। पवित्राणां पवित्रं च ब्रह्महत्यां लभन्ति ते ॥१६१॥
शिवं शिवस्वरूपं च कृष्णप्राणाधिकं प्रियम्। पवित्राणां पवित्रं च ज्ञानानन्दं सनातनम् ॥१६२॥
प्रधानं वैष्णवानां च देवानां सेव्यमीश्वरम्। ये नार्चयन्ति निन्दन्ति ब्रह्महत्यां लभन्ति ते ॥१६३॥
ये विष्णुमायां निन्दन्ति विष्णुभक्तिप्रदां सतीम्। सर्वशक्तिस्वरूपां च प्रकृतिं सर्वमातरम् ॥१६४॥
सर्वदेवीस्वरूपां च सर्वाद्यां सर्ववन्दिताम्। सर्वकारणरूपां च ब्रह्महत्यां लभन्ति ते ॥१६५॥
कृष्णजन्माष्टमीं रामनवमीं पुण्यदां पराम्। शिवरात्रिं तथा चैकादशीं वारं रवेस्तथा ॥१६६॥
पञ्च पर्वाणि पुण्यानि ये न कुर्वति मानवाः। लभन्ते ब्रह्महत्यां ते चाण्डालाधिकपापिनः ॥१६७॥

अपने गुरु, इष्टदेव, जन्मप्रद माता-पिता में भेद बुद्धि रखने वाले को ब्रह्महत्या लगती है॥१५५॥ वैष्णवों, अन्य-भक्तों, ब्राह्मणों और अन्य जातियों में समता रखने वाले को ब्रह्महत्या लगती है॥१५६॥ जो मूर्ख भगवान् विष्णु के नैवेद्य, अन्य के नैवेद्य, भगवान् के चरणोदक और अन्य देव के चरणोदक में समता रखते हैं, उन्हें ब्रह्महत्या लगती है॥१५७॥ समस्त ईश्वरों के ईश्वर भगवान् श्रीकृष्ण के साथ, जो समस्त कारणों के कारण, सब के आदि, सब देवों के सेव्य, सबके अन्तरात्मा, माया द्वारा अनेक रूप धारण करने वाले (सगुण) अथवा निर्गुण एक ही रहने वाले हैं, अन्य की समता करता है, उसे ब्रह्महत्या लगती है॥१५८-१५९॥ पितरों एवं देवों की वेदविहित पूर्वापर अर्चना का जो निषेध करता है, उसे ब्रह्महत्या लगती है॥१६०॥ जो पवित्रों के पवित्र भगवान् हृषीकेश (विष्णु) और उनके मन्त्रों के उपासकों की निन्दा करता है, उसे ब्रह्महत्या लगती है ॥१६१॥ कल्याण स्वरूप शिव भगवान् श्रीकृष्ण को उनके प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं और पवित्रों के पवित्र, ज्ञानानन्द, सनातन, वैष्णवों में प्रधान, देवों में श्रेष्ठ तथा ईश्वर हैं। उनकी जो अर्चना नहीं करता अपितु निन्दा करता है, उसे ब्रह्महत्या लगती है॥१६२-१६३॥ भगवान् की माया प्रकृति विष्णु की भक्ति देनेवाली, सती, सम्पूर्ण शक्ति स्वरूपा, सबकी माता, समस्त देवीस्वरूपा, सर्वादि, सर्ववन्दिता और समस्त कारण रूपा हैं। जो उनकी निन्दा करते हैं, उन्हें ब्रह्महत्या लगती है ॥१६४-१६५॥ भगवान् श्रीकृष्ण की जन्माष्टमी, पुण्यदायिनी एवं परमोत्तम रामनवमी, शिवरात्रि, एकादशी, रविवार, इन पाँचों पुण्य पर्वों का व्रत जो मनुष्य नहीं करते हैं, वे चाण्डाल से भी अधिक पापी हैं और उन्हें ब्रह्महत्या लगती है॥१६६-१६७॥ हे वत्से! भारतप्रदेश में जो जल की लहरों के द्वारा उत्पन्न किये गड्ढे में और जल में शौचादि क्रिया

अम्बुवीच्यांबुखनने जले शौचादिकं च ये। कुर्वन्ति भारते वर्षे ब्रह्महत्यां लभन्ति ते॥१६८॥
गुरुं च मातरं तातं साध्वीं भार्यां सुतं सुताम्। अनाथान्यो न पुष्णाति ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः॥१६९॥
विवाहो यस्य न भवेन्न पश्यति सुतं च यः। हरिभक्तिविहीनो यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः॥१७०॥
हरेरनैवेद्यभोजी नित्यं विष्णुं न पूजयेत्। पुण्यं पार्थिवलिङ्गं वा ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः॥१७१॥
आहारं कुर्वतीं गां च पिबन्तीं यो निवारयेत्। याति गोविप्रयोर्मध्ये गोहत्यां च लभेत्तु सः॥१७२॥
दण्डैर्गास्ताडयेन्मूढो यो विप्रो वृषवाहकः। दिने दिने गवां हत्यां लभते नात्र संशयः॥१७३॥
ददाति गोभ्य उच्छिष्टं याजयेद्वृषवाहकम्। भोजयेद्वृषवाहान्नं स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम्॥१७४॥
वृषलीपतिं याजयेद्यो भुङ्क्तेऽन्नं तस्य यो नरः। गोहत्याशतकं सोऽपि लभते नात्र संशयः॥१७५॥
पादं ददाति वह्नौ च गाश्च पादेन ताडयेत्। गृहं विशेदधौताङ्घ्रिः स्नात्वा गोवधमाप्नुयात्॥१७६॥
यो भुङ्क्ते स्निग्धपादेन शेते स्निग्धाङ्घ्रिरेव च। सूर्योदये च द्विर्भोजी स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम्॥१७७॥
अवीरान्नं च यो भुङ्क्ते योनिजीवी च वै द्विजः। यस्त्रिसंध्याविहीनश्च स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम्॥१७८॥
पितॄंश्च पर्वकाले च तिथिकाले च देवताम्। न सेवतेऽतिथिं यो हि गोहत्यां स लभेद्ध्रुवम्॥१७९॥
स्वभर्तरि च कृष्णे च भेदबुद्धिं करोति या। कटूक्त्या ताडयेत्कान्तं सा गोहत्यां लभेद्ध्रुवम्॥१८०॥

करते हैं, उन्हें ब्रह्महत्या लगती है॥१६८॥ जो अपने गुरु, माता, पिता, पतिव्रता स्त्री, पुत्र, कन्या और अन्य अनाथों का यथाशक्ति पालन-पोषण नहीं करता है, उसे ब्रह्महत्या लगती है॥१६९॥ जिसका विवाह नहीं होता है, जो पुत्र का मुख नहीं देखता है, भगवान् की भक्ति से रहित होता है, उसे ब्रह्महत्या लगती है॥१७०॥ भगवान् विष्णु का नैवेद्य न खाने वाले को तथा नित्य भगवान् की या पुण्य पार्थिव लिङ्ग की अर्चा न करने वाले को ब्रह्महत्या लगती है॥१७१॥ खाती हुई या जल पीती हुई गौ को रोकने वाले तथा गौ और ब्राह्मण के बीच से निकलने वाले को ब्रह्महत्या लगती है॥१७२॥ जो मूर्ख ब्राह्मण दण्ड द्वारा गौ को आघात पहुँचाता है, गाड़ी या हल में बैलों को जोतता है, उसे प्रतिदिन गौओं की हत्याएँ लगती हैं, इसमें संशय नहीं॥१७३॥ गौओं को जो जूठा खिलाता है, वृषवाहक को यज्ञ कराता है और वृषवाह का अन्न भोजन कराता है, उसे निश्चित गोहत्या लगती है॥१७४॥ जो शूद्रस्त्री के पति को यज्ञ कराता है तथा जो मनुष्य उसका अन्न खाता है, उसको सैकड़ों गोहत्याएँ लगती हैं, इसमें संदेह नहीं। ॥१७५॥ जो अग्नि की ओर चरण करता है, गौ को पैर से मारता है, स्नान करके बिना चरण धोये घर में घुसता है, उसे गोहत्या लगती है॥१७६॥ जो पैरों में तेल लगाकर भोजन तथा शयन करता और सूर्योदय के समय दो बार भोजन करता है, उसे निश्चित गोहत्या लगती है॥१७७॥ जो ब्राह्मण अवीरा (पति पुत्र रहित विधवा) स्त्री का अन्न भोजन करता है, (स्त्री के) व्यभिचार द्वारा जीविका चलाता है और तीनों काल में संध्योपासन कर्म नहीं करता है, उसे निश्चित गोहत्या लगती है॥१७८॥ जो पर्वतिथियों में पितरों और तिथियों में देवों एवं अतिथियों की सेवा नहीं करता है, उसे निश्चित गोहत्या लगती है॥१७९॥ जो स्त्री अपने पति और भगवान् कृष्ण में भेदभावना रखती है और कटु वाणी से पति को आघात पहुँचाती है, उसे निश्चित गोहत्या लगती है॥१८०॥ जो गोमार्ग को जोतकर खेती करता है, तालाब में और उसके ऊपरी भूमि में भी बीज बोता है, उसे

गोमार्गखननं कृत्वा वपते सस्यमेव च। तडागे वा तदूर्ध्वं वा स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥१८१॥
प्रायश्चित्तं गोवधस्य यः करोति व्यतिक्रमम्। अर्थलोभादथाज्ञानात्स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥१८२॥
राजके दैवके यत्नाद्गोस्वामी गां न पालयेत्। दुःखं ददाति यो मूढो गोहत्यां स लभेद्ध्रुवम् ॥१८३॥
प्राणिनं लङ्घयेद्यो हि देवार्चायां रतं जलम्। नैवेद्यं पुष्पमन्नं च स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥१८४॥
शश्वन्नास्तीति वादी यो मिथ्यावादी प्रतारकः। देवद्वेषी गुरुद्वेषी स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥१८५॥
देवताप्रतिमां दृष्ट्वा गुरुं वा ब्राह्मणं सति। संभ्रमान्न नमेद्यो हि स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥१८६॥
न ददात्याशिषं कोपात्प्रणताय च यो द्विजः। विद्यार्थिने च विद्यां वै स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥१८७॥
गोहत्या ब्रह्महत्या च कथिता चाऽऽतिदेशिकी। यथा श्रुतं सूर्यवक्त्रात्किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१८८॥

सावित्र्युवाच

वास्तवे चाऽऽतिदेशे च संबन्धे पापपुण्ययोः। न्यूनाधिके च को भेदस्तन्मां व्याख्यातुमर्हसि ॥१८९॥

यम उवाच

कुत्रापि वास्तवः श्रेष्ठो न्यूनोऽतिदेशिकः सदा। कुत्राऽऽतिदेशिकः श्रेष्ठो वास्तवो न्यून एव च ॥१९०॥
कुत्र वा समता साध्वि तयोर्वेदप्रमाणतः। करोति तत्र नाऽऽस्थां यो गुरुहत्यां लभेत्तु सः ॥१९१॥
पुरा परिचिते विप्रे विद्यामन्त्रप्रदातरि। गुरौ पितृत्वमारोपाद्वस्तुतः श्रेष्ठ उच्यते ॥१९२॥
पितुः शतगुणा माता मातुः शतगुणस्तथा। विद्यामन्त्रप्रदाता च गुरुः पूज्यः श्रुतेर्मतः ॥१९३॥

निश्चित गोहत्या लगती है ॥१८१॥ जो धन के लोभवश या अज्ञानवश गोहत्या का प्रायश्चित्त व्यतिक्रम (उलटा-पुलटा) कर डालता है, उसे निश्चित गोहत्या लगती है ॥१८२॥ जो गोपाल राजा या देव के उत्सव के दिन गौओं का विशेष सत्कार नहीं करता है, और दुःखी करता है, उस मूर्ख को निश्चित गोहत्या लगती है ॥१८३॥ जो किसी प्राणी, देवपूजन के जल, नैवेद्य, पुष्प तथा अन्न को लाँघता है, उसे गोहत्या लगती है ॥१८४॥ जो निरन्तर (सबसे) नहीं शब्द का ही प्रयोग करता है, मिथ्यावादी एवं धोखेबाज है, देव और गुरु से द्वेष करता है, उसे निश्चित गोहत्या लगती है ॥१८५॥ देवमूर्ति, गुरु एवं ब्राह्मण को देखते ही जो नम्र नहीं होता है, उसे गोहत्या लगती है ॥१८६॥ जो ब्राह्मण क्रुद्ध होने के नाते किसी प्रणत को आशीर्वाद नहीं देता है और विद्यार्थी को विद्या नहीं प्रदान करता है, उसे निश्चित गोहत्या लगती है ॥१८७॥ जिस प्रकार मैंने सूर्य के मुख से आतिदेशिकी गोहत्या तथा ब्रह्महत्या सुनी थी वह तुम्हें बता दी। अब और क्या सुनना चाहती हो ॥१८८॥

सावित्री बोली—वास्तव और अतिदेश में तथा पाप और पुण्य के न्यूनाधिक सम्बन्ध में क्या भेद है, वह मुझे बतायें ॥१८९॥

यम बोले—हे साध्वि ! कहीं वास्तव श्रेष्ठ होता है और आतिदेशिक न्यून होता है। फिर कहीं आतिदेशिक श्रेष्ठ होता है और वास्तव न्यून होता है। कहीं दोनों की समता है, इसमें वेद प्रमाण है। इस प्रमाण में जो आस्था (विश्वास) नहीं रखता है, उसे गुरुहत्या लगती है ॥१९०-१९१॥ पहले के परिचित ब्राह्मण और विद्या तथा मन्त्र के प्रदाता गुरु में पितृत्व का आरोप (कल्पना) करना वस्तुतः श्रेष्ठ है ॥१९२॥ पिता से सौगुनी माता और माता

गुरुतो गुरुपत्नी च गौरवे च गरीयसी। यथेष्टं देवपत्नी च पूज्या चाभीष्टदेवता ॥१९४॥
विप्रः शिवसमो यश्च विष्णुतुल्यपराक्रमः। राजाऽऽतिदेशिकाच्छ्रेष्ठो वास्तवो गुणलक्षतः ॥१९५॥
सर्वं गङ्गासमं तोयं सर्वे व्याससमा द्विजाः। ग्रहणे सूर्यशशिनोश्चात्रैव समता तयोः ॥१९६॥
आतिदेशिकहत्याया वास्तवश्च चतुर्गुणः। संमतः सर्ववेदानामित्याह कमलोद्भवः ॥१९७॥
आतिदेशिकहत्याया भेदश्च कथितः सति। या या गम्या नृणामेव निबोध कथयामि ते ॥१९८॥
स्वस्त्री गम्या च सर्वेषामिति वेदे निरूपिता। अगम्या च तदन्या या चेति वेदविदो विदुः ॥१९९॥
सामान्यं कथितं सर्वं विशेषं शृणु सुन्दरि। अत्यगम्याश्च या या वै निबोध कथयामि ते ॥२००॥
शूद्राणां विप्रपत्नी च विप्राणां शूद्रकामिनी। अत्यगम्याऽतिनिन्द्या च लोके वेदे पतिव्रते ॥२०१॥
शूद्रश्चेद्ब्राह्मणीं गच्छेद्ब्रह्महत्याशतं लभेत्। तत्समं ब्राह्मणी चापि कुम्भीपाकं व्रजेद् ध्रुवम् ॥२०२॥
यदि शूद्रां व्रजेद्विप्रो वृषलीपतिरेव सः। स भ्रष्टो विप्रजातेश्च चण्डालात्सोऽधमः स्मृतः ॥२०३॥
विष्ठासमश्च तत्पिण्डो मूत्रतूल्यं च तर्पणम्। तत्पितॄणां सुराणां च पूजने तत्समं सति ॥२०४॥
कोटिजन्मार्जितं पुण्यं संध्यार्चातपसार्जितम्। द्विजस्य वृषलीभोगान्नश्यत्येव न संशयः ॥२०५॥

से सौगुने विद्या तथा मन्त्र देने वाले गुरु पूज्य हैं, यह वेद का मत है॥१९३॥ गुरु से गुरुपत्नी का गौरव श्रेष्ठ है, और देवपत्नी भी यथेष्ट पूज्या एवं अभीष्ट देवता के समान है॥१९४॥ ब्राह्मण शिव के समान पूज्य है। और भगवान् विष्णु के समान पराक्रमी राजा भी पूज्य है, किन्तु 'वास्तव' 'आतिदेशिक' से लाख गुना श्रेष्ठ है। ॥१९५॥ इस भाँति सभी जल गङ्गाजल के समान हैं एवं सभी ब्राह्मण व्यास के समान हैं ऐसा सूर्य चन्द्रमा के ग्रहण के समय ही इन दोनों की समता कही गयी है। ॥१९६॥ आतिदेशिक हत्या से वास्तविक हत्या चार गुनी अधिक है, ऐसी समस्त वेदों की सम्मति है और इसे ब्रह्मा ने भी स्वयं कहा है ॥१९७॥ इस प्रकार आतिदेशिक हत्या का भेद मैंने तुम्हें बता दिया, अब मनुष्यों के लिए जो जो गम्य है, उसे बता रहा हूँ, सुनो। वेद में यह बताया गया है कि केवल अपनी ही स्त्री गम्या (भोग करने के योग्य) होती है, ऐसा सभी के लिए आदेश है। और उससे भिन्न अन्य स्त्री अगम्या होती है यह भी वेद-विदों का कहना है॥१९८-१९९॥ हे सुन्दरि। इस भाँति इसका सामान्य भेद तो मैंने बता दिया है अब उसका विशेष भेद बता रहा हूँ, सुनो और अति अगम्या कौन हैं वह भी कह रहा हूँ ॥२००॥ हे पतिव्रते! शूद्रों के लिए ब्राह्मणी और ब्राह्मणों के लिए शूद्र की स्त्री अत्यन्त अगम्या (भोग करने के लिए अत्यन्त अनुपयुक्त) हैं और लोक वेद दोनों में अतिनिन्द्य हैं॥२०१॥ जो शूद्र ब्राह्मणी के साथ भोग करता है उसे सौ ब्रह्महत्यायें लगती हैं, और उसी के समान ब्राह्मणी भी कुम्भीपाक में निश्चित जाती है॥२०२॥ यदि ब्राह्मण शूद्र की स्त्री के साथ गमन करता है, तो उसे वृषलीपति कहा जाता है और ब्राह्मण जाति से भ्रष्ट होने के नाते वह चाण्डाल से भी अधम कहा गया है॥२०३॥ उसका दिया हुआ पिण्ड विष्ठा के समान और तर्पण मूत्र के तुल्य हैं, जो उसके पितरों और देवों के पूजन-समय वैसा ही हो जाता है॥२०४॥ इस प्रकार सन्ध्योपासना, देवार्चन एवं तप द्वारा अर्जित ब्राह्मणों के करोड़ों जन्मों के संचित पुण्य, उस वृषली (शूद्र स्त्री) के साथ भोग करने से तुरन्त नष्ट हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं॥२०५॥ एवं मद्यपान करने वाला ब्राह्मण, काला नमक खाने वाला वृषली (शूद्र-

ब्राह्मणश्च सुरापीती विड्भोजी वृषलीपतिः। हरिवासरभोजी च कुम्भीपाकं व्रजेद् ध्रुवम् ॥२०६॥
गुरुपत्नीं राजपत्नीं सपत्नीं मातरं प्रसूम्। सुतां पुत्रवधूं श्वश्रूं सगर्भां भगिनीं सति ॥२०७॥
सोदरभ्रातृजायां च मातुलानीं पितृप्रसूम्। मातुः प्रसूं तत्स्वसारं गर्भिणीं भ्रातृकन्यकाम् ॥२०८॥
शिष्यां च शिष्यपत्नीं च भागिनेयस्य कामिनीम्। भ्रातुः पुत्रप्रियां चैवाप्यगम्यामाह पद्मजः ॥२०९॥
एतास्वेकामनेकां वा यो व्रजेन्मानवोऽधमः। स्वमातृगामी वेदेषु ब्रह्महत्याशतं लभेत् ॥२१०॥
अकर्मार्होऽपि सोऽस्पृश्यो लोके वेदेऽतिनिन्दितः। स याति कुम्भीपाकं च महापापी सुदुस्तरम् ॥२११॥
करोत्यशुद्धां संध्यां च संध्यां वा न करोति यः। त्रिःसंध्यां वर्जयेद्यो वा संध्याहीनश्च स द्विजः ॥२१२॥
वैष्णवं च तथा शैवं शाक्तं सौरं च गाणपम्। योऽहंकारान्न गृह्णाति मन्त्रं सोऽदीक्षितः स्मृतः ॥२१३॥
प्रवाहमवधिं कृत्वा यावद्धस्तचतुष्टयम्। तत्र नारायणः स्वामी गङ्गागर्भान्तरे वरे ॥२१४॥
तत्र नारायणक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे हरेः पदे। वाराणस्यां बदर्यां च गङ्गासागरसंगमे ॥२१५॥
पुष्करे भास्करक्षेत्रे प्रभासे रासमण्डले। हरिद्वारे च केदारे सोमे बदरिकाश्रमे ॥२१६॥
सरस्वतीनदीतीरे पुण्ये वृन्दावने वने। गोदावर्यां च कौशिक्यां त्रिवेण्यां च हिमालये ॥२१७॥
एष्वन्यत्र च यो दानं प्रतिगृह्णाति कामतः। स च तीर्थप्रतिग्राही कुम्भीपाकं प्रयाति च ॥२१८॥
शूद्रातिरिक्तयाजी यो ग्रामयाजी च कीर्तितः। तथा देवोपजीवी यो देवलः परिकीर्तितः ॥२१९॥

स्त्री का) पति (ब्राह्मण), और एकादशी को अन्न खाने वाला निश्चित कुम्भीपाक (नरक) में जाता है ॥२०६॥ गुरुपत्नी, राजा की पत्नी, सौतेली माता, जननी, कन्या, पुत्रस्त्री (पतोहू), सास, सास की भगिनी, सगे भाई की स्त्री, मामी, पिता की माता, नानी, नानी की बहिन, भगिनी, भाई की कन्या, शिष्या, शिष्य की पत्नी, भानजे की पत्नी और भाई के पुत्र की वधू (पतोहू), इतनी स्त्रियाँ अगम्या होती हैं, ऐसा ब्रह्मा ने कहा है ॥२०७-२०९॥ इनमें किसी एक के अथवा अनेक के साथ जो भोग करता है, वह नराधम अपनी माता के साथ भोग करता है ऐसा वेदों में बताया गया है और उसे सैकड़ों ब्रह्महत्याएँ लगती हैं ॥२१०॥ वह सभी (शुभ) कर्मों के करने के अयोग्य, अछूत एवं लोक-वेद में अतिनिन्दित होता है और वह महापापी अतिदुस्तर कुम्भीपाक में जाता है ॥२११॥ जो अशुद्ध सन्ध्या करता है, अथवा सन्ध्या नहीं करता—तीनों संध्याओं को नहीं करता है वह ब्राह्मण सन्ध्याहीन कहा जाता है ॥२१२॥ जो वैष्णव, शैव, शाक्त, सौर तथा गाणपत्य मन्त्र का, अहङ्कारवश ग्रहण नहीं करता है, वह अदीक्षित कहा जाता है ॥२१३॥ (जल में) प्रवाह से चार हाथ किनारे की ओर की भूमि को, जो श्रेष्ठ गंगा-गर्भान्तर है, नारायणक्षेत्र कहते हैं। उसके स्वामी स्वयं नारायण देव हैं। उस नारायणक्षेत्र में, कुरुक्षेत्र में, विष्णुपद, वाराणसी, बदरी, गंगासागरसंगम, पुष्कर, भास्करक्षेत्र, प्रभास, रासमण्डल, हरिद्वार, केदार, सोम, बदरिकाश्रम, सरस्वती नदी के किनारे, पुण्य वृन्दावन नामक वन, गोदावरी, कौशिकी, त्रिवेणी एवं हिमालय, इन स्थानों में तथा अन्य स्थानों में भी जो कामनापूर्वक दान ग्रहण करता है, वह तीर्थप्रतिग्राही है, उसे कुम्भीपाक नरक में जाना पड़ता है ॥२१४-२१८॥ शूद्र से अतिरिक्त अन्य के यज्ञ कराने वाले को ग्रामयाजी कहते हैं। और देवोपजीवी (देवपूजा से जीविका चलाने वाले) को देवल (पुजारी) कहते हैं ॥२१९॥ शूद्र के

शूद्रपाकोपजीवी यः सूपकार इति स्मृतः। संध्यापूजाविहीनश्च प्रमत्तः पतितः स्मृतः ॥२२०॥
उक्तं पूर्वप्रकरणे लक्षणं वृषलीपतेः । एते महापातकिनः कुम्भीपाकं प्रयान्ति ते ॥२२१॥
कुण्डान्यन्यानि ये यान्ति निबोध कथयामि ते ॥२२२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० सावित्र्यु० यमसावित्रीसं० कर्मविपाके पापिनरकनिरूपणं शिवप्राशस्त्यं ब्रह्महत्यादिपदार्थपरिभाषानिरूपणं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

यम उवाच

हरिसेवां विना साध्वि न लभेत्कर्मखण्डनम्। शुभकर्म स्वर्गबीजं नरकं च कुकर्मतः ॥१॥
पुंश्चल्यन्नं च यो भुङ्क्ते वेश्यान्नं च पतिव्रते। तां व्रजेत्तु द्विजो यो हि कालसूत्रं प्रयाति सः ॥२॥
शतवर्षं कालसूत्रे स्थित्वा शूद्रो भवेद्ध्रुवम्। तत्र जन्मनि रोगी च ततः शुद्धो भवेद्द्विजः ॥३॥
पतिव्रता चैकपत्नी द्वितीये कुलटा स्मृता। तृतीये धर्षिणी ज्ञेया चतुर्थे पुंश्चली स्मृता ॥४॥

पाकालय में रहकर जीविका चलाने वाला भंडारी कहा जाता है। संध्या-पूजन से हीन को प्रमत्त और पतित कहते हैं ॥२२०॥ पूर्व प्रकरण में वृषलीपति का लक्षण बता दिया गया है। ये महापातकी लोग कुम्भीपाक नरक में जाते हैं ॥२२१॥ (नरक के) अन्य कुण्डों में जो जाते हैं, उन्हें भी बता रहा हूँ, सुनो ॥२२२॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद-विषयक सावित्री-उपाख्यान में यम-सावित्री-संवाद के कर्मविपाक-प्रकरण में ब्रह्महत्यादिपदार्थ-परिभाषा-निरूपण नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३०॥

अध्याय ३१

पापियों के नरककुण्डों का निर्णय

यम बोले—हे साध्वि! बिना भगवान् की सेवा किये कर्मों का नाश नहीं होता है; क्योंकि शुभकर्म से स्वर्ग की प्राप्ति होती है और कुकर्म से नरक प्राप्त होता है ॥१॥ हे पतिव्रते! व्यभिचारिणी स्त्री का अन्न एवं वेश्या का अन्न खाने वाला और वेश्या का भोग करने वाला ब्राह्मण कालसूत्र नामक नरक में जाता है ॥२॥ वहाँ सौ वर्ष तक कालसूत्र में रहकर अन्त में शूद्र के यहाँ उत्पन्न होता है, और जन्म से ही रोगी रहता है, पश्चात् उस ब्राह्मण की शुद्धि होती है ॥३॥ इस प्रकार एक पति वाली स्त्री पतिव्रता, दो पति वाली स्त्री 'कुलटा', तीन पति वाली 'धर्षिणी' और चार पति (पुरुषों से संभोग कराने) वाली स्त्री पुँश्चली कही जाती है ॥४॥ पाँच से संभोग

वेश्या च पञ्चमे षष्ठे युग्मी[1] च सप्तमेऽष्टमे। तत ऊर्ध्वं महावेश्या साऽस्पृश्या सर्वजातिषु ॥५॥
यो द्विजः कुलटां गच्छेद्धर्षिणीं पुंश्चलीमपि। वेश्यां युग्मीं महावेश्यामवटोदं प्रयाति सः ॥६॥
शताब्दं कुलटागामी धृष्टागामी चतुर्गुणम्। षड्गुणं पुंश्चलीगामी वेश्यागामी गुणाष्टकम् ॥७॥
युग्मीगामी दशगुणं वसेत्तत्र न संशयः। महावेश्याकामुकश्च ततः शतगुणं वसेत् ॥८॥
तदा हि सर्वगामी चेत्येवमाह पितामहः। तत्रैव यातनां भुङ्क्ते यमदूतेन ताडितः ॥९॥
तित्तिरः कुलटागामी धृष्टागामी च वायसः। कोकिलः पुंश्चलीगामी वेश्यागामी वृकस्तथा ॥१०॥
युग्मीगामी सूकरश्च सप्तजन्मसु भारते। महावेश्याकामुकश्च श्मशाने शाल्मलिस्तरुः ॥११॥
यो भुङ्क्ते ज्ञानहीनश्च ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। अरुंतुदं स यात्येव चन्द्रमानाब्दमेव च ॥१२॥
ततो भवेन्मानवश्चाप्युदरव्याधिसंयुतः। गुल्मयुक्तश्च काणश्च दन्तहीनस्ततः शुचिः ॥१३॥
वाक्प्रदत्तां हि कन्यां च यश्चान्यस्मै ददाति च। स वसेत्पांशुभोगे[2] च तद्भोजी च शताब्दकम् ॥१४॥
दत्तापहारी यः साध्वि पाशवेष्टं शताब्दकम्। निवसेच्छरशय्यायां यमदूतेन ताडितः ॥१५॥
न पूजयेद्यो हि भक्त्या शिवलिङ्गं च पार्थिवम्। स याति शूलिनः कोपाच्छूलप्रोतं सुदारुणम् ॥१६॥
स्थित्वा शताब्दं तत्रैव श्वापदः सप्तजन्मसु। ततो भवेद्देवलश्च सप्तजन्मस्वतः शुचिः ॥१७॥

कराने वाली को 'वेश्या', छह से भोग करानेवाली को 'युग्मी' और इससे अधिक वाली को 'महावेश्या' कहते हैं, वह सभी जातियों में अछूत है॥५॥ जो ब्राह्मण कुलटा, धर्षिणी, पुंश्चली, वेश्या, युग्मी और महावेश्या के साथ संभोग करता है, वह अवटोद नामक नरक में जाता है॥६॥ वहाँ कुलटागामी सौ वर्ष, उससे चौगुने वर्ष धृष्टागामी, उससे छह गुने पुंश्चलीगामी, आठ गुने वेश्यागामी, दस गुने युग्मीगामी और महावेश्यागामी कामी उससे सौ गुने अधिक वर्ष तक रहता है, इसमें संशय नहीं॥७-८॥ तब वह सर्वगामी भी कहा जाता है, ऐसा ब्रह्मा ने कहा है। इस प्रकार वह वहाँ यमदूतों द्वारा ताड़ित होते हुए यातनाएँ भोगता है॥९॥ पश्चात् भारत में सात जन्मों तक कुलटागामी तित्तिर, धृष्टागामी कौवा, पुंश्चलीगामी कोकिल, वेश्यागामी भेड़िया, युग्मीगामी सूकर और महावेश्या-गामी श्मशान में सेमर का वृक्ष होता है॥१०-११॥ जो चन्द्र-सूर्य के ग्रहण समय अज्ञानवश भोजन करता है, वह चन्द्रमा के प्रमाण वर्ष तक अरुन्तुद नामक नरक में रहता है॥१२॥ पश्चात् मानव के यहाँ जन्म ग्रहण कर उदररोग से पीड़ित, गुल्म का रोगी, काना और दाँतों से रहित होता है। अनन्तर उसकी शुद्धि होती है॥१३॥ वाग्दान द्वारा दी हुई कन्या को जो अन्य किसी को दे देता है, वह सौ वर्ष तक पांशुभोग नामक नरक में जाता है और वही (धूलि) भोजन भी करता है॥१४॥ हे साध्वि! दान दी हुई वस्तु का अपहरण करनेवाला फाँस से आबद्ध होकर शरशय्या नामक नरक में सौ वर्ष तक यमदूतों द्वारा ताड़ित होता है॥१५॥ जो भक्तिपूर्वक भगवान् शङ्कर के पार्थिव लिङ्ग का पूजन नहीं करता है, वह शङ्करजी के कोप के कारण शूलप्रोत नामक अति दारुण नरक में जाता है॥१६॥ वहाँ सौ वर्ष तक यातनाओं को भोगकर यहाँ सात जन्मों तक हिंसक पशु और सात जन्मों तक मन्दिर का पुजारी होता है, अनन्तर शुद्ध होता है॥१७॥ जो ब्राह्मण को दण्ड देता है और जिसके भय से ब्राह्मण कम्पित

१क. युङ्गी। २क. शुकुण्डे च।

करोति दण्डं यो विप्रे यद्भयात्कम्पते द्विजः। प्रकम्पने वसेत्सोऽपि विप्रलोमाब्दमेव च ॥१८॥
प्रकोपवदना कोपात्स्वामिनं या च पश्यति। कटूक्तिं तं च वदति याति चोल्कामुखं च सा ॥१९॥
उल्कां ददाति वक्त्रे च सततं यमकिङ्करः। दण्डेन ताडयेन्मूर्ध्नि तल्लोमाब्दप्रमाणकम् ॥२०॥
ततो भवेन्मानवी च विधवा सप्तजन्मसु। भुक्त्वा दुःखं च वैधव्यं व्याधियुक्ता ततः शुचिः ॥२१॥
या ब्राह्मणी शूद्रभोग्या साऽन्धकूपं प्रयाति च। तप्तशौचोदके ध्वान्ते तदाहारा दिवानिशम् ॥२२॥
निवसेदतिसंतप्ता यमदूतेन ताडिता। शौचोदके निमग्ना च यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥२३॥
काकी जन्मसहस्राणि शतजन्मानि सूकरी। कुक्कुटी शतजन्मानि शृगाली सप्तजन्मसु ॥२४॥
पारावती सप्तजनौ वानरी सप्तजन्मसु। ततो भवेत्सा चण्डाली सर्वभोग्या च भारते ॥२५॥
ततो भवेच्च रजकी यक्ष्मग्रस्ता च पुंश्चली। ततः कुष्ठयुता तैलकारी शुद्धा भवेत्ततः ॥२६॥
वेश्या वसेद्वेधने च युग्मी[1] वै दण्डताडने। जालबन्धे महावेश्या कुलटा देहचूर्णके ॥२७॥
स्वैरिणी दलने[2] चैव धृष्टा वै शोषणे तथा। निवसेद्यातनायुक्ता यमदूतेन ताडिता ॥२८॥
विण्मूत्रभक्षणं तत्र यावन्मन्वन्तरं सति। ततो भवेद्विट्कृमिश्च वर्षलक्षं ततः शुचिः ॥२९॥

होता है, वह उस ब्राह्मण के लोमप्रमाण वर्ष तक प्रकम्पन नरक में रहता है॥१८॥ अतिक्रोध मुख वाली जो स्त्री क्रुद्ध होकर अपने पति को देखती है और उन्हें कटु वाणी भी कहती है, वह उल्कामुख नामक नरक में जाती है॥१९॥ वहाँ यम के दूत निरन्तर उसके मुख में उल्का (जलती हुई लकड़ी) डालते हैं और उसके लोमप्रमाण वर्ष तक दण्ड से उसके शिर पर आघात पहुँचाते हैं॥२०॥ पश्चात् सात जन्मों तक वह मनुष्य होकर विधवा होती है। इस भाँति विधवा-दुःख अनुभव करके वह रोगपीड़ित होती है और अनन्तर शुद्ध होती है॥२१॥ जो ब्राह्मणी शूद्र से संभोग कराती है, वह अन्धकूप नामक नरक में जाती है। वहाँ शौच के संतप्त जल में और अँधेरे में वही पीकर दिन-रात रहती है॥२२॥ इस भाँति अतिसंतप्त होकर निवास करने पर भी यमदूत उसे ताड़ना देते हैं। इस प्रकार उस शौचजल में वह चौदह इन्द्रों के समय तक रहती है॥२३॥ पश्चात् भारत में सहस्र जन्मों तक कौए की मादा, सौ जन्मों तक सूकरी, सौ जन्मों तक मुर्गी, सात जन्मों तक सियारिन, सात जन्मों तक कबूतरी, और सात जन्मों तक वानरी होकर अनन्तर भारत में चाण्डाली, सर्वजनभोग्या, धोबिन तथा यक्ष्मा से पीड़ित वेश्या होती है। अनन्तर कुष्ठ रोग से पीड़ित तेलिन होती है और तब उसकी शुद्धि होती है॥२४-२६॥ उसी प्रकार वेश्या वेधन नरक में, युग्मी दण्डताडन नरक में, महावेश्या जालबन्ध नरक में, कुलटा देहचूर्ण नरक में, तथा स्वैरिणी दलन नरक में, धृष्टा शोषण नरक में जाती है और यमदूतों द्वारा ताड़ित होकर भाँति-भाँति की यातनाओं को सहन करती है। इस प्रकार एक मन्वन्तर के समय तक वहाँ विष्ठा भक्षण करके रहती है। पश्चात् लाख वर्ष तक विष्ठा का कीड़ा होती है। तब उसकी शुद्धि होती है॥२७-२९॥ यदि ब्राह्मण किसी अन्य ब्राह्मणी के

१क. युङ्गी। २क. दण्डने।

ब्राह्मणो ब्राह्मणीं गच्छेत्क्षत्रियामपि क्षत्रियः । वैश्यो वैश्यां च शूद्रां च शूद्रो वाऽपि व्रजेद्यदि ॥ ३०॥
स्ववर्णपरदारी च कषं याति तया सह। भुक्त्वा कषायतप्तोदं निवसेद्द्वादशाब्दकम् ॥३१॥
ततो विप्रो भवेच्छुद्धश्चैवं च क्षत्रियादयः । योषितश्चापि शुध्यन्तीत्येवमाह पितामहः ॥३२॥
क्षत्रियो ब्राह्मणीं गच्छेद्वैश्यो वाऽपि पतिव्रते। मातृगामी भवेत्सोऽपि शूर्पं च नरकं व्रजेत् ॥३३॥
शूर्पाकारैश्च कृमिभिर्ब्राह्मण्या सह भक्षितः। प्रतप्तमूत्रभोजी च यमदूतेन ताडितः ॥३४॥
तत्रैव यातनां भुङ्क्ते यावदिन्द्राश्चतुर्दश। सप्तजन्मसु वाराहश्छागलश्च ततः शुचिः ॥३५॥
करे धृत्वा च तुलसीं प्रतिज्ञां यो न पालयेत्। मिथ्या वा शपथं कुर्यात्स च ज्वालामुखं व्रजेत् ॥३६॥
गङ्गातोयं करे धृत्वा प्रतिज्ञां यो न पालयेत्। शिलां च देवप्रतिमां स च ज्वालामुखं व्रजेत् ॥३७॥
दत्त्वा च दक्षिणं हस्तं प्रतिज्ञां यो न पालयेत्। स्थित्वा देवगृहे वाऽपि स च० ॥३८॥
स्पृष्ट्वा च ब्राह्मणं गां च वह्निं विष्णुसमं सति। न पालयेत्प्रतिज्ञां च स च० ॥३९॥
मित्रद्रोही कृतघ्नश्च यो हि विश्वासघातकः। मिथ्यासाक्ष्यप्रदश्चैव स च० ॥४०॥
एते तत्र वसन्त्येव यावदिन्द्राश्चतुर्दश। यथाऽङ्गारप्रदग्धाश्च यमदूतैश्च ताडिताः॥४१॥

साथ, क्षत्रिय अन्य क्षत्रियपत्नी के साथ, वैश्य अन्य वैश्य की पत्नी के साथ और शूद्र अन्य शूद्र की पत्नी के साथ संभोग करता है, तो वह अपनी जाति की अन्य स्त्री के साथ रमण करने वाला पुरुष उस स्त्री के साथ कष नरक में जाता है। वहाँ बारह वर्ष तक कसैला और तप्त जल वाले कुण्ड में रहकर वही पान करते हुए निवास करता है॥३०-३१॥ अनन्तर ब्राह्मण शुद्ध होता है । इसी प्रकार क्षत्रिय आदि और स्त्रियाँ शुद्ध होती हैं ऐसा ब्रह्मा ने स्वयं कहा है॥३२॥ हे पतिव्रते! क्षत्रिय या वैश्य यदि ब्राह्मणी के साथ रमण करता है, तो वह मातृगामी (माता के साथ व्यभिचार करनेवाला) कहा जाता है और वह शूर्प नामक नरक में जाता है॥३३॥ वहाँ सूप के आकार वाले कीड़े ब्राह्मणी समेत उस पुरुष को नित्य (काट-काट कर) खाते हैं और पुरुष खौलते हुए मूत्र का पान करता है और यमदूतों द्वारा ताड़ित होता है॥३४॥ इस प्रकार चौदह इन्द्रों के समय तक वहाँ यातनाओं को भोगकर यहाँ सात जन्मों तक सूकर और बकरा होता है, तब उसकी शुद्धि होती है॥३५॥ हाथ में तुलसी लिए प्रतिज्ञा करके जो कोई उसका पालन नहीं करता है अथवा मिथ्या शपथ करता है, वह ज्वालामुख नरक में जाता है॥३६॥ जो हाथ में गंगाजल, शालग्रामशिला या देवप्रतिमा को लिए प्रतिज्ञा करता है और उसका पालन नहीं करता है, वह भी ज्वालामुख नामक नरक में जाता है॥३७॥ अपना दाहिना हाथ देकर जो प्रतिज्ञा करता है या देवमन्दिर में रहकर प्रतिज्ञा करता है और उसका पालन नहीं करता है, वह ज्वालामुख नरक में जाता है। ॥३८॥ विष्णु के समान होने वाले ब्राह्मण, गौ और अग्नि का स्पर्श करके जो प्रतिज्ञा का पालन नहीं करता है, वह ज्वालामुख नरक में जाता है॥३९॥ मित्र का द्रोही, कृतघ्न (उपकार न मानने वाला), विश्वासघाती एवं झूठी गवाही देने वाला ज्वालामुख नामक नरक में जाता है॥४०॥ इस प्रकार ये सभी प्राणी चौदह इन्द्रों के समय तक वहाँ अंगार से जले हुए की भाँति संतप्त रहते हुए निरन्तर यमदूतों द्वारा ताडित होते हैं ॥४१॥

चण्डालस्तुलसीस्पर्शी सप्तजन्मस्वतः शुचिः। म्लेच्छो गङ्गाजलस्पर्शी पञ्चजन्मस्वतः शुचिः ॥४२॥
शिलास्पर्शी विट्कृमिश्च सप्तजन्मसु सुन्दरि। अर्चास्पर्शी व्रणकृमिः सप्तजन्मस्वतः शुचिः ॥४३॥
दक्षहस्तप्रदाता च सर्पः स्यात्सप्तजन्मसु। ततो भवेद्धस्तहीनो मानवश्च ततः शुचिः ॥४४॥
मिथ्यावादी देवगृहे देवलः सप्तजन्मसु। विप्रादिस्पर्शकारी च सोऽग्रदानी भवेद्ध्रुवम् ॥४५॥
ततो भवन्ति मूकास्ते बधिराश्च त्रिजन्मसु। भार्याहीना वंशहीना [1]बुद्धिहीनास्ततः शुचिः ॥४६॥
मित्रद्रोही च नकुलः कृतघ्नश्चापि गण्डकः। विश्वासघाती व्याघ्रश्च सप्तजन्मसु भारते ॥४७॥
मिथ्यासाक्ष्यप्रदश्चैव भल्लूकः सप्तजन्मसु। पूर्वान्सप्त परान्सप्त पुरुषान्हन्ति चाऽऽत्मनः ॥४८॥
नित्यक्रियाविहीनश्च जडत्वेन युतो द्विजः। यस्यानास्था वेदवाक्ये मन्दं हसति संततम् ॥४९॥
व्रतोपवासहीनश्च सद्वाक्यपरिनिन्दकः। जिह्मे जिह्मो वसेत्सोऽपि शताब्दं च हिमोदके ॥५०॥
जलजन्तुर्भवेत्सोऽपि शतजन्मक्रमेण च। ततो नानाप्रकारा च मत्स्यजातिस्ततः शुचिः ॥५१॥
यो वा धनस्यापहारं देवब्राह्मणयोश्चरेत्। पातयित्वा स्वपुरुषान्दश पूर्वान्दशापरान् ॥५२॥

तुलसी का स्पर्श करके झूठी शपथ खाने वाला सात जन्मों तक चाण्डाल होने के बाद शुद्ध होता है और गंगाजल का स्पर्श करके झूठी शपथ खाने वाला पाँच जन्मों तक म्लेच्छ होकर शुद्ध होता है। हे सुन्दरि ! शालग्राम शिला का स्पर्श करके झूठी शपथ खाने वाला सात जन्मों तक विष्ठा का कीड़ा होता है और अर्चा का स्पर्श के मिथ्या शपथ करने वाला सात जन्मों तक घाव का कीड़ा होता है और अनन्तर शुद्ध होता है ॥४२-४३॥ दाहिने हाथ को आगे रखकर मिथ्या शपथ करने वाला सात जन्मों तक सर्प होता है। पश्चात् हाथ रहित मनुष्य होकर शुद्ध होता है ॥४४॥ देवमन्दिर में झूठ बोलने वाला सात जन्मों तक देवल (मन्दिर का पुजारी) होता है। ब्राह्मण आदि का स्पर्श करने वाला निश्चित महापात्र होता है ॥४५॥ अनन्तर तीन जन्म तक गूँगा और बहरा होता है, जो स्त्रीहीन, सन्तानहीन और बुद्धिहीन रहता है पश्चात् शुद्ध होता है ॥४६॥ मित्र का द्रोही भारत में सात जन्मों तक नेवला, कृतघ्न गैंड़ा, विश्वासघाती बाघ और झूठी गवाही देने वाला भालू होता है। इस प्रकार ये सभी सात जन्मों तक अपने-अपने दुष्परिणाम भोगते हैं तथा अपने-अपने पूर्व और पर की सात-सात पीढ़ियों को भी नरक ले जाकर हनन करते हैं ॥४७-४८॥ जो नित्य-क्रिया से हीन एवं जड़ (मूर्ख) ब्राह्मण है, जो वेदवाक्यों में अविश्वास रखनेवाला है, जो मन्द बुद्धिवाले (मूर्ख) का निरन्तर उपहास करता है, जो व्रत-उपवास से रहित होकर सात्त्विक बातों की भलीभाँति निन्दा करता है और कुटिल के साथ कुटिल बन जाता है, वह हिम (बर्फ) के कुण्ड में सौ वर्ष तक दुःखानुभव करता है ॥४९-५०॥ पश्चात् सौ जन्मों तक क्रमशः जल-जीव और अनेक भाँति की मछली होता है, तब उसकी शुद्धि होती है ॥५१॥ जो देवों या ब्राह्मणों का धन अपहरण करता है, वह अपने पूर्व के दश और पर के दश पुरुषों को नरक भेजकर स्वयं धूमांध नामक नरक में जाता

१क. बन्धुही०।

स्वयं याति च धूमान्धं धूमध्वान्तसमन्वितम्। धूमक्लिष्टो धूमभोजी वसेत्तत्र चतुर्युगम् ॥५३॥
ततो मूषकजातिश्च शतजन्मानि भारते। ततो नानाविधाः पक्षिजातयः क्रमिजातयः ॥५४॥
ततो नानाविधा वृक्षजातयश्च ततो नरः। भार्याहीनो वंशहीनः[1] शबरो व्याधिसंयुतः ॥५५॥
ततो भवेत्स्वर्णकारः सुवर्णस्य वणिक्तथा। ततो यवनसेवी च ब्राह्मणो गणकस्ततः ॥५६॥
विप्रो दैवज्ञोपजीवी वैद्यजीवी चिकित्सकः। व्यापारी लोहलाक्षादे रसादेर्विक्रयी च यः ॥५७॥
स याति नागवेष्टं च नागैर्वेष्टित एव च। वसेत्स्वलोममानाब्दं तत्र वै नागदंशितः ॥५८॥
ततो भवेत्स गणको वैद्यो वै सप्तजन्मसु। गोपश्च कर्मकारश्च [2]शङ्खकारस्ततः शुचिः ॥५९॥
प्रसिद्धानि च कुण्डानि कथितानि पतिव्रते। अन्यानि चाप्रसिद्धानि तत्र क्षुद्राणि सन्ति वै ॥६०॥
सन्ति पातकिनस्तेषु स्वकर्मफलभोगिनः। भ्रमन्ति तावत्संसारे किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥६१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० सावित्र्यु० कर्मविपाके पापिनां कुण्डनिर्णयो नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

है, जो धूम के घने अंधकार से आच्छन्न रहता है। वहाँ धूम से दुःखी होकर धूम का भोजन करता हुआ वह चारों युगों के समय तक रहता है ॥५२-५३॥ पश्चात् भारत में सौ जन्मों तक मूषक (चूहा), अनेक भाँति के पक्षी और अनेक रंग के कीड़े होता है ॥५४॥ पुनः अनेक भाँति के वृक्ष होकर जंगली मनुष्य होता है, जो स्त्रीहीन, सन्तानहीन और व्याधि-पीड़ित रहता है ॥५५॥ अनन्तर सोनार, सुवर्ण का व्यापारी, यवन (मुसलमान) का सेवक और ज्योतिष का ज्ञाता ब्राह्मण होता है ॥५६॥ जो ब्राह्मण ज्योतिषशास्त्र से अपनी जीविका चलाता है, चिकित्सक वैद्य होता है, लोहा, लाख (लाह) का व्यापारी और रस (भस्म) का विक्रेता होता है, वह नागवेष्ट नामक नरक में जाता है वहाँ नागों (सर्पों) से आवेष्टित होकर अपने लोम के प्रमाण वर्ष तक रहता है और नित्य नाग लोग उसे काटते रहते हैं ॥५७-५८॥ पश्चात् सात जन्मों तक ज्योतिषी, वैद्य, गोप (अहीर), कर्मकार (बढ़ई), और शंख बनाने वालों की जाति में उत्पन्न होता है। तब उसकी शुद्धि होती है। हे पतिव्रते ! इस प्रकार प्रसिद्ध कुण्डों को तो मैंने तुम्हें बता दिया है। इसी भाँति अन्य अप्रसिद्ध कुण्ड भी वहाँ बहुत हैं और इनसे छोटे-छोटे भी कुण्ड हैं, जिनमें अपने कर्म के फल भोगने वाले पातकी पड़े रहते हैं जो संसार में भी इधर-उधर भ्रमण किया करते हैं। अनन्तर अब क्या सुनना चाहती हो ॥५९-६१॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवादविषयक सावित्री-उपाख्यान के कर्मविपाक में पापियों के कुण्डनिर्णय नामक इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३१॥

१क. ०नः स भवेद्व्या०। २क. रङ्गका०।

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

सावित्र्युवाच

धर्मराज महाभाग वेदवेदाङ्गपारग । नानापुराणेतिहासपाञ्चरात्रप्रदर्शक ॥१॥
सर्वेषु सारभूतं यत्सर्वेष्टं सर्वसंमतम् । कर्मच्छेदे बीजरूपं प्रशस्यं सुखदं नृणाम् ॥२॥
यशःप्रदं धर्मदं च सर्वमङ्गलमङ्गलम् । येन यामीं न ते यान्ति यातनां भवदुःखदाम् ॥३॥
कुण्डानि च न पश्यन्ति तत्र नैव पतन्ति च । न भवेद्येन जन्मादि तत्कर्म वद सुव्रत ॥४॥
किमाकाराणि कुण्डानि कानि तेषां मतानि च । केन रूपेण तत्रैव सदा तिष्ठन्ति पापिनः ॥५॥
स्वदेहे भस्मसाद्भूते यान्ति लोकान्तरं नराः । केन देहेन वा भोगं भुञ्जते वा शुभाशुभम् ॥६॥
सुचिरं क्लेशभोगेन कथं देहो न नश्यति । देहो वा किंविधो ब्रह्मन्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥७॥

नारायण उवाच

सावित्रीवचनं श्रुत्वा धर्मराजो हरिं स्मरन् । कथां कथितुमारेभे गुरुं नत्वा च नारद ॥८॥

यम उवाच

वत्से चतुर्षु वेदेषु धर्मो वै संहितासु च । पुराणेष्वितिहासेषु पाञ्चरात्रादिकेषु च ॥९॥

अध्याय ३२

भोग-शरीर आदि का वर्णन

सावित्री बोली—हे धर्मराज, हे महाभाग, हे वेदविदों में श्रेष्ठ ! आप सभी पुराण, इतिहास और पाञ्च-रात्र मत के प्रदर्शक हैं ? अतः आप इन सभी का तत्त्वरूप, जो सभी को इष्ट (प्रिय) सबको मान्य, मनुष्यों के कर्म-नाश करने में मूलभूत, प्रशस्त, सुखप्रद, यशोदायक, धर्मदाता और समस्त मंगलों का मंगल है, बताने की कृपा करें, जिससे यम की यातनाएँ और संसारी दुःख न प्राप्त हों। हे सुव्रत ! ऐसा कर्म बतायें जिससे नरक कुण्डों के दर्शन न हों और उसमें गिरें नहीं तथा जन्म-मरण से रहित हो जायँ ॥१-४॥ कुण्डों के आकार कैसे हैं उनके मत (सिद्धान्त) क्या हैं, पापीगण वहाँ किस रूप से सदा निवास करते हैं ॥५॥ अपनी देह के (चिता) भस्म हो जाने पर जीव दूसरे लोक में चला जाता है, तो वहाँ शुभ-अशुभ कर्मों का परिणाम किस देह से भोगता है ॥६॥ अत्यन्त चिरकाल तक वहाँ दुःखों को भोगते रहने पर वह देह नष्ट क्यों नहीं होती है। तथा हे ब्रह्मन् ! वह देह किस प्रकार की होती है, मुझे यह सब बताने की कृपा करें ॥७॥

नारायण बोले—हे नारद ! सावित्री की ऐसी बातें सुन कर धर्मराज ने भगवान् का स्मरण करते हुए गुरु को नमस्कार किया और तब कथा कहना प्रारम्भ किया ॥८॥

यम बोले—हे वत्से ! चारों वेदों, संहिताओं, पुराणों, इतिहासों और पाञ्चरात्र आदि ग्रंथों में तथा हे सुव्रते ! अन्य सभी शास्त्रों, (व्याकरणादि) वेदांगों में यही एक धर्म बताया गया है कि—भगवान् श्रीकृष्ण का

अन्येषु सर्वशास्त्रेषु वेदाङ्गेषु च सुव्रते। सर्वेष्टं सारभूतं च मङ्गलं कृष्णसेवनम् ॥१०॥
जन्ममृत्युजरारोगशोकसंतापतारणम्। सर्वमङ्गलरूपं च परमानन्दकारणम् ॥११॥
कारणं सर्वसिद्धीनां नरकार्णवतारणम्। भक्तिवृक्षाङ्कुरकरं कर्मवृक्षनिकृन्तनम् ॥१२॥
गोलोकमार्गसोपानमविनाशिपदप्रदम्[1]। सालोक्यसार्ष्टिसारूप्यसामीप्यादिप्रदं शुभे ॥१३॥
कुण्डानि यमदूतं च यमं च यमकिङ्करान्। स्वप्नेऽपि नहि पश्यन्ति सति श्रीकृष्णकिङ्कराः ॥१४॥
हरिव्रतं ये कुर्वन्ति गृहिणः कर्मभोगिणः। ये स्नान्ति हरितीर्थे च नाश्नन्ति हरिवासरे ॥१५॥
प्रणमन्ति हरिं नित्यं हर्यर्चां पूजयन्ति च। न यान्ति ते च घोरां च मम संयमनीं पुरीम् ॥१६॥
त्रिसंध्यपूता विप्राश्च शुद्धाचारसमन्विताः। स्वधर्मनिरताः शान्ता न यान्ति यममन्दिरम् ॥१७॥
ते स्वर्गभोगिणोऽन्ये च शुद्धा देवान्यकिङ्कराः। यान्त्यायान्ति च मर्त्यं च स्वर्गं च नहि निर्वृताः।
निर्वृत्तिं न हि लिप्सन्ति कृष्णसेवां विना नराः ॥१८॥
स्वकर्मनिरताश्चापि स्वधर्मनिरतास्तथा। गच्छन्तो मर्त्यलोकं च दुर्धर्षा यमकिङ्कराः ॥१९॥
भीताः कृष्णोपासकाच्च वैनतेयादिवोरगाः। स्वदूतं पाशहस्तं च गच्छन्तं तं वदाम्यहम् ॥२०॥

सेवन ही सभी का इष्ट, तत्त्वभूत और परम मंगलमय है ॥९-१०॥ वह जन्म, मृत्यु, वृद्धता, रोग; शोक, सन्ताप से बचाने वाला, समस्त मंगलरूप, परमानन्द का कारण, समस्त, सिद्धियों का कारण, नरकसागर से तारनेवाला, भक्तिरूपी वृक्ष का अंकुर उत्पन्न करने वाला और कर्मरूपी वृक्ष का नाशक है ॥११-१२॥ तथा गोलोक के मार्ग की सीढ़ी, कभी भी विनष्ट न होनेवाले स्थान का प्रदाता एवं सालोक्य, सायुज्य, सारूप्य तथा सामीप्य आदि मोक्ष का दायक है ॥१३॥ हे शुभे! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण के किंकर (सेवक) होने पर वे प्राणी नरकों के कुण्डों, यमदूतों, यम और यमभटों को स्वप्न में भी नहीं देखते हैं ॥१४॥ जो कर्मभोगी गृहस्थ भगवान् के व्रत करते हैं, भगवान् के तीर्थ में स्नान करते हैं, और हरिवासर (एकादशी) के दिन (अन्न) भोजन नहीं करते हैं, भगवान् को नित्य प्रणाम करते हैं, भगवान् का अर्चन-पूजन करते हैं, वे मेरी उस घोर संयमनी पुरी में नहीं जाते हैं ॥१५-१६॥ तीनों काल की संध्योपासनाओं से पवित्र होने वाले ब्राह्मणगण, जो शुद्ध आचारयुक्त एवं अपने धर्म में लीन रहने के कारण शान्त रहते हैं, वे यमपुर नहीं जाते हैं ॥१७॥ वे स्वर्ग का उपभोग करते हैं तथा अन्य वे लोग भी जो शुद्ध एवं अन्य देवों के सेवक हैं, (स्वर्ग से) मनुष्य लोक और मनुष्य लोक से (मृत्यु होने पर) स्वर्ग लोक आया-जाया करते हैं, किन्तु मुक्त नहीं होते क्योंकि बिना भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा किये मनुष्य (कर्मभोगों से) निवृत्त (मुक्त) नहीं होते हैं ॥१८॥ यमराज के दूतगण अतिभीषण होते हैं, किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण के उपासक को देख कर वे गरुड़ को देखकर साँप की भाँति भयभीत होते हैं, इसीलिए स्वधर्म में निरत रहने पर भी वे लोग (कहीं-कहीं) अपने धर्म को छोड़ बैठते हैं। हाथ में पाश लिए जब वे (मर्त्यलोक) जाने को तैयार होते हैं, तो मैं उन अपने दूतों से कहता हूँ कि—सभी स्थान पर जाओ किन्तु भगवान् के भक्तों के यहाँ कभी न जाना। भगवान् श्रीकृष्ण के

१क.०शिसुखप्र०।

यास्यसीति च सर्वत्र हरिभक्ताश्रमं विना । कृष्णमन्त्रोपासकानां नामानि च निकृन्तनम् ॥२१॥
करोति नखराञ्जल्या चित्रगुप्तश्च भीतवत् । मधुपर्कादिकं ब्रह्मा तेषां च कुरुते पुनः ॥२२॥
विलङ्घ्य ब्रह्मलोकं च गोलोके गच्छतां सताम् । दुरितानि च नश्यन्ति तेषां संस्पर्शमात्रतः ॥२३॥
यथा सुप्रज्वलद्वह्नौ काष्ठानि च तृणानि च । प्राप्नोति मोहः संमोहं तांश्च दृष्ट्वाऽतिभीतवत् ॥२४॥
कामश्च कामिनं याति लोभक्रोधौ ततः सति । मृत्युः पलायते रोगो जरा शोको भयं तथा ॥२५॥
कालः शुभाशुभं कर्म हर्षो भोगस्तथैव च । ये ये न यान्ति यामीं च कथितास्ते मया सति ॥२६॥
शृणु देहस्य विवृतिं कथयामि यथागमम् । पृथिवी वायुराकाशं तेजस्तोयमिति स्फुटम् ॥२७॥
देहिनां देहबीजं च स्रष्टुः सृष्टिविधौ परम् । पृथ्व्यादिपञ्चभूतैश्च यो देहो निर्मितो भवेत् ॥२८॥
स कृत्रिमो नश्वरश्च भस्मसाच्च भवेदिह । वृद्धाङ्गुष्ठप्रमाणेन यो जीवः पुरुषाकृतिः ॥२९॥
बिभर्ति सूक्ष्मदेहं च तद्रूपं भोगहेतवे । स देहो न भवेद्भस्म ज्वलदग्नौ ममाऽऽलये ॥३०॥
जले न नष्टो देहो वा प्रहारे सुचिरं कृते । न शस्त्रे च न चास्त्रे च सुतीक्ष्णे कण्टके तथा ॥३१॥
तप्तद्रवे तप्तलौहे तप्तपाषाण एव च । प्रतप्तप्रतिमाश्लेषेऽप्यत्यूर्ध्वपतनेऽपि च ॥३२॥

मन्त्रों के उपासकों के नाम (यदि बही में भूल से लिख जाते हैं तो) भयभीत होकर चित्रगुप्त हाथ जोड़ कर काट देते हैं। ब्रह्मा उनकी मधुपर्क आदि से सेवा करते हैं। और वे (भक्त) ब्रह्मलोक पार कर (आगे) गोलोक चले जाते हैं। उस समय (गोलोक) जाते हुए उन सज्जनों के स्पर्श मात्र से ही उनके पाप उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं॥१९-२३॥ जिस प्रकार प्रदीप्त अग्नि में लकड़ियाँ और तृण (खर) जल जाते हैं। उन्हें देखकर मोह भी भयभीत होकर संमोहित हो जाता है॥२४॥ काम कामी के पास चला जाता है, लोभ और क्रोध भी उससे दूर हो जाते हैं तथा मृत्यु; रोग, जरा, शोक और भय (उससे दूर) भाग जाते हैं ॥२५॥ उसी भाँति काल; शुभाशुभ कर्म, हर्ष तथा भोग भी दूर हो जाते हैं। इस प्रकार जो यमपुरी नहीं जाते हैं, उन्हें मैंने बता दिया है॥२६॥ शास्त्रानुसार शरीर की रचना (कैसे होती है) बता रहा हूँ, सुनो ! पृथिवी, वायु, आकाश, तेज और जल यही (पञ्चभूत) जीवात्मा की देह के और स्रष्टा (ब्रह्मा) के सृष्टि-विधान के मूल कारण हैं क्योंकि इन्हीं पृथिवी आदि पाँच भूतों द्वारा देह का निर्माण होता है॥२७-२८॥ जो नश्वर (विनाशशील) और इसी लोक में भस्म हो जाती है। पुनः (नरक में दण्ड) भोगने के लिए पुरुषाकार यह जीव वृद्धाङ्गुष्ठ के बराबर 'सूक्ष्म देह' धारण करता है। वह हमारे यहाँ (नरक में) न तो प्रज्वलित अग्नि में भस्म होती है, न जल में नष्ट होती है, न अतिआघात करने पर नष्ट होती है, न शस्त्र, अस्त्र, अतितीक्ष्ण (तेज) काँटे, तप्त द्रव (पिघले) पदार्थ, तपाये लोह और संतप्त पाषाण (पत्थर) से नष्ट होती है और न अति सुतप्त प्रतिमा के आलिंगन करने तथा अत्यन्त ऊँचाई से गिरने पर ही नष्ट होती है। न वह जलती है. न टूटती है, केवल संताप का अनुभव कराती है। हे देवि !

न च दग्धो न भग्नश्च भुङ्क्ते संतापमेव च। कथितं देवि वृत्तान्तं कारणं च यथागमम्।
कुण्डानां लक्षणं सर्वं निबोध कथयामि ते ॥३३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० सावित्र्यु० द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

यम उवाच

पूर्णेन्दुमण्डलाकारं सर्वकुण्डं च वर्तुलम्। अतीव निम्नं पाषाणभेदैश्च खचितं सति ॥१॥
न नश्वरं चाऽऽप्रलयं निर्मितं चेश्वरेच्छया। क्लेशदं वै पातकिनां नानारूपं तदालयम् ॥२॥
ज्वलदङ्गाररूपं च शतहस्तशिखान्वितम्। परितः क्रोशमानं च वह्निकुण्डं प्रकीर्तितम् ॥३॥
महच्छब्दं प्रकुर्वद्भिः पापिभिः परिपूरितम्। रक्षितं मम दूतैश्च ताडितैश्चापि संततम् ॥४॥
प्रतप्तोदकपूर्णं च हिंस्रजन्तुसमन्वितम्। महाघोरान्धकारं च पापिसंघेन संकुलम् ॥५॥
प्रकुर्वता काकुशब्दं प्रहारैर्घूर्णितेन च। क्रोशार्धमानं मद्दूतैस्ताडितेन च रक्षितम् ॥६॥

इस प्रकार उसका कारण-वृत्तान्त बता दिया है, जैसा कि शास्त्रों में कहा है। अब कुण्डों के लक्षण बता रहा हूँ, सुनो ॥२९-३३॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में सावित्री-उपाख्यान नामक
बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३२॥

अध्याय ३३

नरक-कुण्डों का लक्षण-वर्णन

यम बोले—पूर्णिमा के चन्द्रमण्डल के समान सभी (नरक) कुण्ड गोलाकार अत्यन्त नीचे (गहरे) और अनेक भाँति के पत्थरों से खचित हैं ॥१॥ ईश्वर की इच्छा द्वारा ही इनका निर्माण हुआ है, इसलिए प्रलय पर्यन्त इनका नाश नहीं होता है। ये अनेक भाँति के हैं, जो पापियों को दुःख देते हैं ॥२॥ जलते हुए अङ्गार स्वरूप, सौ हाथ की लपटों से युक्त और एक कोस का चौड़ा अग्निकुण्ड कहा गया है ॥३॥ जो महान् घोर शब्द करते (चिल्लाते) हुए पापियों से नित्य भरा रहता है, मेरे दूतगण उस कुण्ड की रक्षा करते हैं और निरन्तर पापियों को ताड़ना देते रहते हैं ॥४॥ अत्यन्त तप्त जल से पूर्ण, हिंसक जानवरों से युक्त, महाघोर अन्धकार रूप, पापीगणों से भरा तथा आधे कोस का विस्तृत 'प्रतप्तोदककुण्ड' है, जहाँ मेरे दूतों द्वारा ताड़ित होने पर पापी लोग (चिल्ला कर) (अपना) शोक और भय प्रकट करते रहते हैं तथा दूत लोग उस कुण्ड की रक्षा करते हैं ॥५-६॥ तप्त और खारे जल से भरा,

तप्तक्षारोदकैः पूर्णं नक्रैश्च परिवेष्टितम् । संकुलं पापिभिश्चैव क्रोशमानं भयानकम् ॥७॥
त्राहीति शब्दं कुर्वद्भिर्मम दूतैश्च ताडितैः । प्रचलद्भिरनाहारैः शुष्ककण्ठौष्ठतालुकैः ॥८॥
विण्मूत्रैरेव पूर्णं च क्रोशमानं च कुत्सितम् । अतिदुर्गन्धिसंयुक्तं व्याप्तं पापिभिरेव च ॥९॥
ताडितैर्मम दूतैश्चाप्यनाहारैरुपद्रवैः[1]। रक्षेति शब्दं कुर्वद्भिस्तत्कीटैरेव भक्षितम् ॥१०॥
तप्तमूत्रद्रवैः पूर्णं मूत्रकीटैश्च संकुलम् । युक्तं महापापिभिश्च तत्कीटैर्दंशितं सदा ॥११॥
गव्यूतिमानं ध्वान्ताक्तं शब्दकृद्भिश्च संततम् । मद्दूतैस्ताडितैर्घोरैः शुष्ककण्ठोष्ठतालुकैः ॥१२॥
श्लेष्मपूर्णं क्रोशमितं वेष्टितं चेष्टितैः सदा । तद्भोजिभिः पापिभिश्च तत्कीटैर्भक्षितैः सदा ॥१३॥
क्रोशार्धं गरपूर्णं च गरभोजिभिरन्वितम् । गरकीटैर्भक्षितैश्च पापिभिः पूर्णमेव च ॥१४॥
ताडितैर्मम दूतैश्च शब्दकृद्भिश्च कम्पितैः । सर्पाकारैर्वज्रदंष्ट्रैः शुष्ककण्ठैः सुदारुणैः ॥१५॥
नेत्रयोर्मलपूर्णं च क्रोशार्धं कीटसंयुतम् । पापिभिः संकुलं शश्वद्द्रवद्भिः कीटभक्षितैः ॥१६॥
वसारसेन पूर्णं च क्रोशतुर्यं सुदुःसहम् । तद्भोजिभिः पातकिभिर्व्याप्तं दूतैश्च ताडितैः ॥१७॥
शुक्रपूर्णं क्रोशतुर्यं शुक्रकीटैश्च भक्षितैः । क्रन्दद्भिः पापिभिः शश्वत्संकुलं व्याकुलैर्भिया ॥१८॥

मगरों (घड़ियालों) से घिरा, पापियों से परिपूर्ण तथा एक कोस का विस्तृत एवं भीषण वह 'तप्तक्षारोदकुण्ड' है, जिसमें मेरे दूतों द्वारा ताड़ित होने पर पापीगण त्राहि-त्राहि (बचाओ-बचाओ) कहते हैं। वे उसमें सदैव चलते-फिरते रहते हैं और भोजन न मिलने से उनके कण्ठ, होंठ एवं तालु सूखे रहते हैं ॥७-८॥ 'विण्मूत्रकुण्ड' विष्ठा और मूत्र से परिपूरित, एक कोस का विस्तृत, निन्दित, अति दुर्गन्धयुक्त एवं उन पापियों से भरा रहता है, जो अनाहारी (भूखे) रह कर उपद्रवकारी मेरे दूतों द्वारा ताड़ित होने पर (हमारी) 'रक्षा करो' ऐसा चिल्ला कर कहते हैं और वहाँ के कीड़े उन्हें (काट-काट कर) खाया करते हैं ।।९-१०॥ तप्त मूत्र से भरा, मूत्र वाले कीड़ों से युक्त, महान्-पापियों से आच्छन्न 'मूत्रकुण्ड' है जो दो कोस का विस्तृत तथा अन्धकार से ढँका है, जहाँ उसके कीड़ों द्वारा पापीगण सदैव काटे जाते हैं, और मेरे दूतों द्वारा ताड़ित होने पर निरन्तर चिल्लाते रहते हैं, जिससे उनके कण्ठ, होंठ और तालु सूखे रहते हैं ॥११-१२॥ 'श्लेष्मकुण्ड' कफ से भरा, एक कोस का विस्तृत एवं उन कफभोजी पापियों से घिरा रहता है, जिन्हें वहाँ के कीड़े सदैव खाया करते हैं ॥१३॥ 'विषकुण्ड' आधे कोस का विस्तृत, विष से भरा और विषभोजी पापियों से युक्त रहता है, जिन्हें विष के कीड़े खाया करते हैं, सर्पाकार और वज्र दाँतों वाले एवं अति भयंकर मेरे दूतों द्वारा ताड़ना देने पर वे (पापी) काँपते और चिल्लाते रहते हैं इससे इनके कण्ठ सूखे रहते हैं ॥१४-१५॥ नेत्रमलकुण्ड, आधे कोस के विस्तार वाला, कीड़ों से युक्त तथा उन पापी समूहों से भरा है, जो निरन्तर कीड़ों के खाने के कारण पिघले-से रहते हैं ॥१६॥ वसा (चर्बी) के रस से भरा, चार कोस का विस्तृत, अति असह्य एवं चर्बी खाने वाले पापियों से आच्छन्न 'वसाकुण्ड' है, जहाँ पापी जीव दूतों द्वारा नित्य ताड़ित होते हैं ॥१७॥ शुक्र (वीर्य) से भरा, चार कोस का विस्तृत, 'शुक्रकुण्ड' व्याकुल एवं भयभीत उन पापी समूहों से निरन्तर भरा रहता है, जिन्हें वीर्य के कीड़े निरन्तर काटते हैं और वे

---

१ क. तदाकारै० ।

दुर्गन्धिरक्तपूर्णं च वापीमानं गभीरकम् । तद्भोजिभिः पापिभिश्च संकुलं कीटभक्षितैः ॥१९॥
पूर्णं नेत्राश्रुभिर्नॄणां वाप्यर्धं पापिभिर्युतम् । ताडितैर्मम दूतैश्च तद्भक्ष्यैः कीटभक्षितैः ॥२०॥
नृणां गात्रमलैः पूर्णं तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युतम् । ताडितैर्मम दूतैश्च व्यग्रैश्च कीटभक्षितैः ॥२१॥
कर्णविट्परिपूर्णं च तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युतम् । वापीतुर्यप्रमाणं च रुदद्भिः कीटभक्षितैः ॥२२॥
मज्जापूर्णं नराणां च महादुर्गन्धिसंयुतम् । महापातकिभिर्युक्तं वापीतुर्यप्रमाणकम् ॥२३॥
परिपूर्णं स्निग्धमांसैर्मम दूतैश्च ताडितैः । पापिभिः संकुलं चैव वापीमानं भयानकम् ॥२४॥
कन्याविक्रयिभिश्चैव तद्भक्ष्यैः कीटभक्षितैः । त्राहीति शब्दं कुर्वद्भिस्त्रासितैश्च भयानकम् ॥२५॥
वापीतुर्यप्रमाणं च नखादिकचतुष्टयम् । पापिभिः संकुलं शश्वन्मम दूतैश्च ताडितैः ॥२६॥
प्रतप्तताम्रकुण्डं ताम्रपर्युन्मुखान्वितम् । ताम्राणां प्रतिमालक्षैः प्रतप्तैरावृतं सदा ॥२७॥
प्रत्येकं प्रतिमाश्लिष्टै रुदद्भिः पापिभिर्युतम् । गव्यूतिमानं विस्तीर्णं मम दूतैश्च ताडितैः ॥२८॥
प्रतप्तलोहधारं च ज्वलदङ्गारसंयुतम् । लौहानां प्रतिमालक्षैः प्रतप्तैरावृतं सदा ॥२९॥

चिल्लाया करते हैं ॥१८॥ दुर्गन्ध वाले रक्त से पूर्ण, बावली के समान विस्तृत एवं गम्भीर 'रक्तकुण्ड' है। वह रक्त भोजन करने वाले पापीगणों से, जिन्हें उसके कीड़े नित्य खाया करते हैं, व्याप्त है ॥१९॥ अश्रुकुण्ड आँसुओं से परिपूर्ण, बावली के आधे भाग के समान विस्तृत और उन पापियों से भरा है, जिन्हें (मेरे) दूतगण ताड़ित करते हैं और वहाँ के कीड़े (काट-काट कर) खाया करते हैं तथा जो (पापी) आँसुओं का भक्षण करते हैं ॥२०॥ मनुष्यों के शरीर-मल से पूर्ण होने वाला 'गात्रमलकुण्ड' उसके भक्षण करने वाले पापियों से युक्त रहता है, जिन्हें दूतगण निरन्तर पीटते हैं और कीड़े (काट-काट कर) खाते हैं। इसी से वे पापी लोग सदैव व्यग्र (दुःखी) रहते हैं ॥२१॥ कान के मल से परिपूर्ण रहने वाला कर्णविट्-कुण्ड चार बावली के समान विस्तृत है। वह उन मलभोजी पापियों से भरा है, जिन्हें कीड़े खाते हैं और वे (केवल) सहन किया करते हैं ॥२२॥ मनुष्यों की मज्जा से भरा रहने वाला 'मज्जाकुण्ड' महादुर्गन्धपूर्ण है, जो चार बावलियों के समान विस्तृत है ॥२३॥ स्निग्ध मांस से भरा रहने वाला 'मांसकुण्ड' बावली के समान विस्तृत और भीषण है। उसमें पापीगण भरे पड़े रहते हैं, जिन्हें हमारे दूतगण ताड़ना दिया करते हैं। उसमें कन्या के विक्रेता लोग वही खाकर रहते हैं और वहाँ के कीड़ों के काटने पर वे 'रक्षा करो रक्षा करो' ऐसा भयभीत होकर चिल्लाते रहते हैं ॥२४-२५॥ नख आदि के चारों कुण्ड चार बावलियों के प्रमाण विस्तृत, एवं उन पापियों से भरे रहते हैं, जिन्हें निरन्तर मेरे दूतगण ताड़ना देते हैं ॥२६॥ प्रतप्तताम्रकुण्ड के ऊपर चारों ओर ताँबा लगा है, उस कुण्ड में ताँबे की लाखों प्रतिमाएँ (मूर्तियाँ) हैं जो सदैव अति संतप्त रहती हैं। वहाँ पापियों को प्रत्येक प्रतिमाओं का गाढ़ालिङ्गन करना पड़ता है, जिससे वे निरन्तर रुदन करते रहते हैं और मेरे दूतगण उन्हें पीटते रहते हैं, वह कुण्ड दो कोस का विस्तृत है ॥२७-२८॥ प्रतप्त लोहे की धार वाला कुण्ड, जलते हुए अंगारों से भरा रहता है। वह लोहे की लाखों संतप्त प्रतिमाओं से घिरा है, पापियों को उन प्रत्येक मूर्तियों का निरन्तर गाढ़ालिङ्गन करना पड़ता है, जिससे वे भयभीत होकर उससे विचलित (अलग) होने की

प्रत्येकं सर्वसंश्लिष्टैः शश्वद्विचलितैर्भिया । रक्ष रक्षेति शब्दं च कुर्वद्भिर्दूतताडितैः ।।३०।।
महापातकिभिर्युक्तं द्विगव्यूतिप्रमाणकम् । भयानकं ध्वान्तयुक्तं लौहकुण्डं प्रकीर्तितम् ।।३१।।
घर्मकुण्डं तप्तसुराकुण्डं वाप्यर्धमेव च । तद्भोजिभिः पापिभिश्च व्याप्तं मद्दूतताडितैः ।।३२।।
अधः शाल्मलिवृक्षस्य तीक्ष्णकण्टककुण्डकम् । लक्षपौरुषमानं च क्रोशमानं च दुःखदम् ।।३३।।
धनुर्मानैः कण्टकैश्च सुतीक्ष्णैः परिवेष्टितम् । प्रत्येकं कण्टकैर्विद्धं महापातकिभिर्युतम् ।।३४।।
वृक्षाग्रान्निपतद्भिश्च मम दूतैश्च ताडितैः । जलं देहीति शब्दं च कुर्वद्भिः शुष्कतालुकैः ।।३५।।
महाभयातिव्यग्रैश्च दण्डसंभिन्नमस्तकैः । प्रचलद्भिर्यथा तप्ततैले जीविभिरेव च ।।३६।।
विषौघैस्तक्षकादीनां पूर्णं च क्रोशमानकम् । तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युक्तं मम दूतैश्च ताडितैः ।।३७।।
प्रतप्ततैलपूर्णं च कीटादिपरिवर्जितम् । तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युक्तं [1]दग्धगात्रैश्च वेष्टितैः ।।३८।।
काकुशब्दं प्रकुर्वद्भिश्चलद्भिर्दूतताडितैः । महापातकिभिर्युक्तं द्विगव्यूतिप्रमाणकम् ।।३९।।
शस्त्रकुण्डं ध्वान्तयुक्तं क्रोशमानं भयानकम् । शूलाकारैः सुतीक्ष्णाग्रैर्लौहशस्त्रैश्च वेष्टितम् ।।४०।।
शस्त्रतल्पस्वरूपंच क्रोशतुर्यप्रमाणकम् । पातकिभिर्वेष्टितं च कुन्तविद्धैश्च वेष्टितम् ।।४१।।

चेष्टा करते हैं, किन्तु असफल रहते हैं। ऊपर से यमदूतों के मारने पर वे 'रक्ष-रक्ष' कहते हुए चिल्लाया करते हैं ।।२९-३०।। महापातकियों से युक्त, चार कोस का विस्तृत, भयानक और अन्धकारपूर्ण लौहकुण्ड कहलाता है ।।३१।। धर्मकुण्ड और तप्त सुराकुण्ड बावली के आधे भाग के प्रमाण विस्तृत हैं और उन पापीगणों से व्याप्त हैं, जो मेरे दूतों द्वारा पीटे जाते हैं और वही (तप्त सुरा) पीते हैं।।३२।। सेमर वृक्ष के नीचे तीक्ष्ण (तेज) कण्टक (काँटे वाला) एक कुण्ड है, जो लाखों पुरुषों को अपने में अँटाने वाला, एक कोस का विस्तृत एवं दुःखदायक है तथा धनुषप्रमाण तीक्ष्ण काँटों से घिरा है ।।३३-३४।। उन प्रत्येक काँटों में महापातकी गण गुथे रहते हैं, जो उस सेमर वृक्ष के ऊपरी भाग से गिराए जाते हैं और दूतों द्वारा ताड़ित होते हैं। वे हमें 'जल पिला दो' चिल्ला कर कहते रहते हैं, उनके तालू सूखे हुए रहते हैं और डण्डे से उनके शिर फोड़े जाते हैं। खौलते हुए तेल में दौड़ते हुए जीव की भाँति वे पापीगण महाभय से अति दुःखी होते रहते हैं ।।३५-३६।। तक्षक आदि साँपों के विष-समूहों से परिपूर्ण, एक कोस का विस्तृत और उसके भक्षण करने वाले पापियों से युक्त एक कुण्ड है जहाँ पापी लोग हमारे दूतों द्वारा नित्य ताड़ित होते हैं ।।३७।। प्रतप्त तैलकुण्ड, अत्यन्त खौलते हुए तेल से भरा रहता है, जिसमें कीड़े आदि भी नहीं रहते। पापी लोग उसी का भक्षण करते हैं और उनके कोमल अंगों में वह चारों ओर लगाया जाता है ।।३८।। ऊपर से यमदूत उन्हें पीटते हैं जिससे वे अधीर होकर चिल्लाते और उसमें दौड़ते है। इस प्रकार महान् पापियों से भरा हुआ यह कुण्ड चार कोस तक विस्तृत है ।।३९।। अन्धकारपूर्ण, एक कोस तक विस्तृत, भयानक शूलाकार एवं अति तीक्ष्ण अग्रभाग (नोक) वाले लौह शस्त्रों से घिरा हुआ शस्त्रकुण्ड है ।।४०।। शस्त्रों की शय्या के समान चार कोस तक विस्तृत कुन्त (भाले) से घिरा वह कुण्ड है, जिसके प्रत्येक फल में छेदे हुए पापी लटके रहते हैं ।।४१।। ऊपर

१क. स्निग्ध० ।

ताडितैर्मम दूतैश्च शुष्ककंठौष्ठतालुकैः। कीटैः संपीड्यमानैश्च सर्पयानैर्भयङ्करैः॥४२॥
तीक्ष्णदन्तैश्च विकृतैर्व्याप्तं ध्वान्तयुतं सति। महापातकिभिर्युक्तं भीतैर्वा कीटभक्षितैः।
रुदद्भिः क्रोशमानं च मम दूतैश्च ताडितैः ॥४३॥
अतिदुर्गन्धिसंयुक्तं क्रोशार्धं पूयसंयुतम्। तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युक्तं मम दूतैश्च ताडितैः॥४४॥
[1]द्विगव्यूतिप्रमाणं च हिमतोयप्रपूरितम्। तालवृक्षप्रमाणैश्च सर्पकोटिभिरावृतम्॥४५॥
सर्पवेष्टितगात्रैश्च पापिभिः सर्पभक्षितैः। संकुलं शब्दकृद्भिश्च मम दूतैश्च ताडितैः॥४६॥
कुण्डत्रयं मशादीनां पूर्णं च मशकादिभिः। सर्वं क्रोशार्धमात्रं च महापातकिभिर्युतम्॥४७॥
हस्तपादादिभिर्बद्धैः क्षत्रैः क्षतजलोहितैः। हाहेति शब्दं कुर्वद्भिः प्रचलद्भिश्च संततम्॥४८॥
वज्रवृश्चिकयोः कुण्डं ताभ्यां च परिपूरितम्। वाप्यर्धं पापिभिर्युक्तं वज्रवृश्चिकदंशितैः॥४९॥
कुण्डत्रयं शरादीनां तैरेव परिपूरितम्। तैर्विद्धैः पापिभिर्युक्तं वाप्यर्धं रक्तलोहितैः॥५०॥
तप्तपङ्कोदकैः पूर्णं सध्वान्तं गोलकुण्डकम्। कीटैः संपीड्यमानैश्च भक्षितैः पापिभिर्युतम्॥५१॥
वाप्यर्धं परिपूर्णं च जलस्थैर्नक्रकोटिभिः। दारुणैर्विकृताकारैर्भक्षितैः पापिभिर्युतम्॥५२॥

से मेरे दूतगण उन्हें ताड़ित करते हैं, जिससे उनके कण्ठ, होंठ और तालू सूख जाते हैं। भयंकर सर्पयानों और तीक्ष्ण दाँतों एवं विकृत कीटों से व्याप्त तथा अंधकारपूर्ण और एक कोस का विस्तृत 'कृमिकुण्ड है, जिसमें भयभीत महापातकी भरे पड़े रहते हैं, जिन्हें वे कीड़े खाया करते हैं और दूतों द्वारा पीटे जाने के कारण वे रुदन किया करते हैं॥४२-४३॥ अतिदुर्गन्धपूर्ण एवं आधे कोस का विस्तृत पूय (पीब) का कुण्ड है जिसमें वे पापी गण भरे रहते हैं, जो वही भोजन भी करते हैं और उन्हें हमारे दूत नित्य पीटा करते हैं॥४४॥ चार कोस का विस्तृत, बर्फजल से परिपूर्ण और ताड़ वृक्ष के समान आकार वाले करोड़ों साँपों से सर्पकुण्ड घिरा है। उसमें पापीगण भरे पड़े हैं, जिनके शरीर में साँप लिपटे और काटते रहते हैं, ऊपर से यमदूत गण मारा-पीटा करते हैं जिससे वे पापीगण निरन्तर चिल्लाते रहते हैं॥४५-४६॥ तीन कुण्ड मसा मच्छरों आदि के हैं जो मशक (मसों) से भरे रहते हैं, वे सभी कुण्ड आधे-आधे कोस में फैले हुए एवं महापापियों से संयुत हैं॥४७॥ वहाँ हाथ पैर बँधे, रुधिर से ओत-प्रोत (लथपथ) तथा हाय-हाय शब्द करते हुए पापी लोग निरन्तर चलते रहते हैं॥४८॥ वज्र और बिच्छुओं के कुण्ड वज्र और बिच्छुओं से परिपूर्ण, बावली के आधे भाग के समान विस्तृत एवं उन पापियों के समूहों से भरे पड़े हैं जिन्हें वज्र तथा बिच्छू गण निरन्तर काटते रहते हैं॥४९॥ बाण आदि के तीन कुण्ड हैं, जो उन्हीं से भरे और उन्हीं से छिदे पापियों से पटे हैं जो रक्तलोहित (रुधिर से लाल) वर्ण के दिखायी देते हैं और वे कुण्ड बावली के आधे भाग के समान विस्तृत हैं॥५०॥ गोलकुण्ड तप्त कीचड़ जल से भरा हुआ एवं अन्धकारमय है और वहाँ के कीड़ों के काटने से अतिसंपीड़ित पापी गणों से परिपूर्ण है॥५१॥ वह कुण्ड बावली के आधे भाग के समान विस्तृत है। नक्रकुण्ड जल में रहने वाले करोड़ों मगरों (घड़ियालों) से परिपूर्ण है, जो भीषण रूप एवं विकृत आकार वाले हैं और जिनको वे काटते रहते हैं, उन पापियों से घिरा है॥५२॥

१क. त्रिग०

विण्मूत्रश्लेष्मभक्ष्यैश्च संयुक्तं शतकोटिभिः । काकैश्च विकृताकारैर्धनुर्लक्षं च पापिभिः ।।५३।।
संचालकाजयोः कुण्डं ताभ्यां च परिपूरितम् । भक्षितैः पापिभिर्युक्तं शब्दकृद्भिश्च संततम् ।।५४।।
धनुः शतं वज्रयुक्तं पापिभिः संकुलं सदा । शब्दकृद्भिर्वज्रदग्धैरन्तर्ध्वान्तमयं सदा ।।५५।।
वापीद्विगुणमानं च तप्तप्रस्तरनिर्मितम् । ज्वलदङ्गारसदृशं[1] चलद्भिः पापिभिर्युतम् ।।५६।।
क्षुरधारोपमैस्तीक्ष्णैः पाषाणैर्निर्मितं परम् । महापातकिभिर्युक्तं क्षतं क्षतजलोहितैः ।।५७।।
दुर्गन्धिलालापूर्णं च तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युतम् । क्रोशमानं गभीरं च मम दूतैश्च ताडितैः ।।५८।।
[2]तप्ततोयेऽञ्जनाकारैः परिपूर्णं धनुः शतम् । चलद्भिः पापिभिर्युक्तं मम दूतैश्च ताडितैः ।।५९।।
पूर्णं चूर्णद्रवैः क्रोशमानं पापिभिरन्वितम् । तद्भोजिभिः प्रदग्धैश्च मम दूतैश्च ताडितैः ।।६०।।
कुण्डं कुलालचक्राभं घूर्णमानं[3] च संततम् । सुतीक्ष्णषोडशारं च घूर्णितैः पापिभिर्युतम् ।।६१।।
अतीव वक्रं निम्नं च द्विगव्यूतिप्रमाणकम् । कन्दराकारनिर्माणं तप्तोदकसमन्वितम् ।।६२।।
महापातकिभिर्युक्तं भक्षितैर्जलजन्तुभिः । प्रचलद्भिः शब्दकृद्भिर्ध्वान्तयुक्तं भयानकम् ।।६३।।

इसी भाँति विष्ठा, मूत्र, श्लेष्मा (कफ) खाने वाले तथा विकृत आकार वाले कौओं तथा पापियों से युक्त 'विण्मूत्रश्लेष्म-कुण्ड' है, जिसका विस्तार एक लाखधनुष के बराबार है ।।५३।। संचाल और बाजकुण्ड संचाल और बाज पक्षियों से परिपूर्ण है तथा उन पापियों के समूह उसमें भरे पड़े हैं, जिन्हें वे नित्य (काट कर) खाया करते हैं और इसी कारण वे निरन्तर चिल्लाते रहते हैं ।।५४।। सौ धनुष के प्रमाण विस्तृत, वज्रयुक्त, सदा भीतर अन्धकारपूर्ण एवं उन पापियों से वज्रकुण्ड भरा पड़ा है, जो वज्र से दग्ध होने के कारण सदैव चिल्लाहट मचाये रहते हैं ।।५५।। बावली के दुगुने प्रमाण में विस्तृत, तप्त पत्थरों से बना तप्तपाषाणकुण्ड है, जो जलते हुए अंगारे के समान दिखायी देता है। उस पर पापीगण सदा चलते रहते हैं ।।५६।। तीक्ष्णपाषाण कुण्ड क्षुर (नाई के स्तुरा) के समान तीक्ष्ण (तेज) पत्थरों से रचित तथा उन महापातकियों से परिपूर्ण, है, जो रुधिरों से भीगे एवं घावों से युक्त हैं ।।५७।। लालाकुण्ड दुर्गन्ध लार से भरा और उसके भक्षण करने वाले पापियों से परिपूर्ण एक कोस का विस्तृत तथा गम्भीर है । वहाँ मेरे दूत उन पापियों को (ऊपर से) ताड़ना देते रहते हैं ।।५८।। खौलते हुए जल का कुण्ड अंजन की भाँति काले रंग से परिपूर्ण, सौ धनुष के समान विस्तृत एवं पापियों से भरा है, जो मेरे दूतों के द्वारा ताड़ित होने के कारण उसमें चलते रहते हैं ।।५९।। चूर्णकुण्ड द्रवीभूत (पिघले हुए) चूर्ण से परिपूर्ण, एक कोस का विस्तृत तथा उन पापियों से भरा है, जो यही (चूर्ण) भोजन करते, उसमें जलते रहते एवं मेरे दूतों से ताड़ित होते रहते हैं ।।६०।। कुम्हार के चक्के के समान चक्रकुण्ड निरन्तर घूमा करता है, जिसमें अत्यन्त तीक्ष्ण सोलह आरे बने हैं। उस पर बैठाये गये पापी लोग निरन्तर घूमते रहते हैं ।।६१।। अत्यन्त वक्र (टेढ़ा), गहरा चार कोश का विस्तृत, कन्दरा (गुफा) के समान बना एवं खौलते हुए जल से भरा एक कुण्ड है ।।६२।। जो अन्धकारपूर्ण एवं भीषणाकार है। उसमें महापातकी गण भरे पड़े हैं, जिन्हें वहाँ के जलजन्तु नित्य खाया करते हैं जिससे वे चिल्लाते हुए चलते रहते हैं ।।६३।। विकृताकार एवं अति भीषण स्वरूप वाले करोड़ों कछुओं से कूर्मकुण्ड भरा

१क.० रसंभूतं च० । २क.० तोयाञ्ज० । ३ख. घूर्ण्यमा० ।

कोटिभिर्विकृताकारैः कच्छपैश्च सुदारुणैः । जलस्थैः संयुतं तैश्च भक्षितैः पापिभिर्युतम् ॥६४॥
ज्वालाकलापैस्तेजोभिर्निर्मितं क्रोशमानकम् । शब्दकृद्भिः पापिभिश्च चलद्भिः संयुतं सदा ॥६५॥
क्रोशमानं गभीरं च तप्तभस्मभिरन्वितम् । शश्वच्चलद्भिः संयुक्तं पापिभिर्भस्मभक्षितैः ॥६६॥
तप्तपाषाणलोष्टानां समूहैः परिपूरितम् । पापिभिर्दग्धगात्रैश्च युक्तं वै शुष्कतालुकैः ॥६७॥
क्रोशमानं ध्वान्तमयं गभीरमतिदारुणैः । ताडितैर्मम दूतैश्च दग्धकुण्डं प्रकीर्तितम् ॥६८॥
अत्यूर्मियुक्ततोयं च प्रतप्तक्षारसंयुतम् । नानाप्रकारविकृतं जलजन्तुसमन्वितम् ॥६९॥
द्विगव्यूतिप्रमाणं च गभीरं ध्वान्तसंयुतम् । तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युक्तं दंशितैर्जलजन्तुभिः ॥७०॥
चलद्भिः क्रन्दमानैश्च न पश्यद्भिः परस्परम् । उत्तप्तसूर्मिकुण्डं च कीर्तितं च भयानकम् ॥७१॥
असिपत्रवनस्यैवाप्युच्चैस्तालतरोरधः । क्रोशार्धमानकुण्डं च पतत्पत्रसमन्वितम् ॥७२॥
पापिनां रक्तपूर्णं च वृक्षाग्रात्पततां परम् । परित्राहीति शब्दं च कुर्वतामसतामपि ॥७३॥
गभीरं ध्वान्तसंयुक्तं रक्तकीटसमन्वितम् । तदसीपत्रकुण्डं च कीर्तितं च भयानकम् ॥७४॥
धनुःशतप्रमाणं च क्षुराकारास्त्रसंकुलम् । पापिनां रक्तपूर्णं च क्षुरधारं भयानकम् ॥७५॥
सूचीवाश्यास्त्रसंयुक्तं पापिरक्तौघपूरितम् । पञ्चाशद्धनुरायामं क्लेशदं सूचिकामुखम् ॥७६॥

है और पापियों से आच्छन्न है, जिन्हें वहाँ के जलस्थ कछुवे नित्य खाया करते हैं ॥६४॥ ज्वाला-समूह वाले तेज द्वारा रचित, एक कोस का विस्तृत एवं उसमें चलने-फिरने वाले पापियों से ज्वालाकुण्ड भरा है, जो (पापी दण्डित) होने के कारण चिल्लाते रहते हैं ॥६५॥ तप्त भस्म का कुण्ड एक कोस तक विस्तृत एवं गम्भीर है। उसमें निरन्तर चलने-फिरने वाले पापीगण भरे पड़े हैं, जो वही (संतप्त राख) सदैव खाते भी हैं ॥६६॥ एक कुण्ड तप्त पाषाण (पत्थर) और मिट्टी से परिपूर्ण एवं पापी प्राणियों से पटा हुआ है, जिनकी देह जल गयी है और इसी से उनके तालू सूख गए हैं ॥६७॥ जो एक कोस तक विस्तृत, अन्धकारमय तथा गम्भीर है और जहाँ भीषण दूतों द्वारा पापी वृन्द नित्य ताड़ित होते हैं, उसे दग्ध-कुण्ड कहते हैं ॥६८॥ एक कुण्ड असंख्य लहरों से पूर्ण, अत्यन्त तप्त क्षार जल से तथा अनेक भाँति के जलजन्तुओं से युक्त, चार कोस का विस्तृत, गम्भीर, भीतर अन्धकार से आच्छन्न एवं उन पापियों से भरा पड़ा है, जिन्हें वे जलजन्तु सदैव खाया करते हैं और वे पापीगण भी वही खाया करते हैं तथा करुण क्रन्दन करते हुए चलते रहते हैं किन्तु परस्पर एक दूसरे (पापी) को देख नहीं सकते हैं। उस भयानक कुण्ड को 'उत्तप्तसूर्मिकुण्ड' कहा जाता है ॥६९-७१॥ असिपत्रवन (तलवार की धार के समान तीखे पत्ते वाले वृक्षों के वन) के ताड़ वृक्ष के नीचे वाला कुण्ड आधे कोश का विस्तृत, गिरते हुए ताड़ पत्रों से युक्त और उस (ताड़) वृक्ष के अग्र (ऊपरी) भाग से गिराये जाने वाले पापियों के रक्त से भरा हुआ है। पापीगण 'परित्राहि' (बचाओ) जोर से चिल्लाते रहते हैं ॥७२-७३॥ उस गम्भीर, अन्धकारपूर्ण, रक्त वर्ण के कीड़ों से युक्त एवं भयानक कुण्ड को 'असिपत्रकुण्ड' कहते हैं ॥७४॥ सौ धनुष के प्रमाण विस्तृत, क्षुर (नाई के छुरे) की भाँति तीक्ष्ण अस्त्रों से परिपूर्ण, भयानक छुरे की धार के सदृश तथा पापियों के रुधिरों से युक्त कुण्ड को क्षुरधार कहते हैं ॥७५॥ सूई के समान नोक वाले अस्त्र से संयुक्त, पापियों के रुधिर से भरा, पचास धनुष के समान विस्तृत एवं दुःखदायी कुण्ड को सूचिकामुख कहा जाता है ॥७६॥ गोधामुखकुण्ड गोधा (गोह) नामक जन्तु के मुख के समान

गोधाह्वजन्तुभेदस्य मुखाकृति भयानकम् । कूपरूपं गभीरं च धनुर्विंशतिमानकम् ॥७७॥
महापातकिनां चैव महाक्लेशकरं परम् । तत्कीटभक्षितानां च नम्रास्यानां च संततम् ॥७८॥
कुण्डं [1]नक्रमुखाकारं धनुःषोडशमानकम् । गभीरं कूपरूपं च पापिष्ठैः संकुलं सदा ॥७९॥
गजेन्द्राणां समूहेन व्याप्तं कुण्डाकृति स्थलम् । गजदन्तहतानां च पापिनां रक्तपूरितम् ॥८०॥
तत्कीटभक्षितानां च दीनशब्दकृतं सदा । धनुःशतप्रमाणं च कीर्तितं गजदंशनम् ॥८१॥
धनुस्त्रिंशत्प्रमाणं च कुण्डं वै गोमुखाकृति । पापिनां दुःखदं चैव गोमुखं परिकीर्तितम् ॥८२॥
भ्रमितं कालचक्रेण संततं च भयानकम् । कुम्भाकारं ध्वान्तयुक्तं द्विगव्यूतिप्रमाणकम् ॥८३॥
लक्षमानवमानं च गभीरमतिविस्तृतम् । कुत्रचित्तप्ततैलं च कुण्डाभ्यन्तरमन्तिके ॥८४॥
कुत्रचित्तप्तलौहादिकुण्डं ताम्रादिकं तथा । कुत्रचित्तप्तपाषाणकुण्डाभ्यन्तरमन्तिके ॥८५॥
पापिनां च प्रधानैश्च महापातकिभिर्युतम् । परस्परं न पश्यद्भिः शब्दकृद्भिश्च संततम् ॥८६॥
ताडितैर्मम दूतैश्च दण्डैश्च मुसलैस्तथा ॥८७॥
घूर्णमानैः[2] पतद्भिश्च मूर्च्छितैश्च मुहुर्मुहुः । पातितैर्मम दूतैश्चाप्यत्यूर्ध्वात्पतितैः क्षणम् ॥८८॥
यावन्तः पापिनः सन्ति सर्वकुण्डेषु सुन्दरि । ततश्चतुर्गुणाः सन्ति कुम्भीपाके च दुस्तरे ॥८९॥
सुचिरं[3] पतिताश्चैव भोगदेहविवर्जिताः । सर्वकुण्डप्रधानं च कुम्भीपाकं प्रकीर्तितम् ॥९०॥

आकृति वाला, भयानक, कूप की भाँति गम्भीर, और बीस धनुष के समान विस्तृत है जो महापापियों को महान् दुःख देता है। उसके कीड़े नीचे मुख वाले पातकियों को निरन्तर काट कर खाते रहते हैं ॥७७-७८॥ नक्रकुण्ड नाक नामक जलजन्तु के मुख जैसी आकृति वाला, सोलह धनुष विस्तृत, गम्भीर, कूपरूप और पापी समूहों से भरा पड़ा है ॥७९॥ गजेन्द्रों के समूह से व्याप्त एवं कुण्डाकार एक स्थल है, जो गजेन्द्रों के दाँतों द्वारा आहत हुए पापियों के रुधिरों से भरा है ॥८०॥ जिन्हें वहाँ के कीड़े नित्य खाया करते हैं और वे सदैव दीनों की भाँति चिल्लाते रहते हैं। वह कुण्ड सौ धनुष विस्तृत है और गजदंशन नाम से प्रख्यात है ॥८१॥ तीस धनुष विस्तृत, गोमुखाकार और पापियों को दुःख देने वाला जो कुण्ड है, उसे गोमुखकुण्ड कहते हैं ॥८२॥ कालचक्र से युक्त, सदा चक्कर काटने वाला भयानक नरक, जिसकी आकृति घड़े के समान है, कुम्भीपाक कहलाता है, चार कोस के परिमाण वाला वह नरक महान् अन्धकारमय है। उसकी गहराई एक लाख पोरसा (पुरुष के बराबर) है। उस कुण्ड के अर्न्तगत तप्ततैलकुण्ड, लौहादिकुण्ड, ताम्रादिकुण्ड और तप्तपाषाणकुण्ड हैं। महापातक करने वाले प्रधान पापियों से वह भरा है, जो एक दूसरे को नहीं देखते हैं और सभी लोग हमारे दूतों के दण्ड-मुसल द्वारा ताड़ित होने के कारण चिल्लाया करते हैं, बार-बार मूर्च्छित होकर चक्कर काटते हुए गिरते रहते हैं तथा गिरते समय उन्हें हमारे दूतगण क्षणमात्र में अति ऊपर से गिराते हैं ॥८३-८८॥ हे सुन्दरि ! समस्त कुण्डों में जितने पापी रहते हैं उनसे चौगुने पापी उस भयंकर कुम्भीपाक कुण्ड में रहते हैं ॥८९॥ जो भोग देह हीन होकर उसमें अति चिरकाल के लिए डाल दिए गये हैं और वह कुम्भीपाक नरक समस्त कुण्डों में प्रधान है ॥९०॥ जिसमें पापीगण कालसूत्र में आबद्ध

१ख. नरमु० । २ख. ०मानं प० । ३क. रं पात्यमानाश्च मो० ।

कालनिर्मितसूत्रेण निबद्धा यत्र पापिनः । उत्थापिताश्च मद्दूतैः क्षणमेव निमज्जिताः ॥९१॥
निःश्वासबन्धाः सुचिरं कुण्डानामन्तरे तथा । अतीव क्लेशयुक्ताश्च भोगदेहा अनश्वराः ॥९२॥
दण्डेन मुसलेनैव मम दूतैश्च ताडिताः । प्रतप्ततोययुक्तं च कालसूत्रं प्रकीर्तितम् ॥९३॥
अवटः कूपभेदश्च यत्रोदं च तदाकृति । प्रतप्ततोयपूर्णं च धनुर्विंशत्प्रमाणकम् ॥९४॥
व्याप्तं महापापिभिश्च दग्धगात्रैश्च संततम् । मद्दूतैस्ताडितैः शश्वदवटोदं प्रकीर्तितम् ॥९५॥
यत्तोयस्पर्शमात्रेण सर्वव्याधिश्च पापिनाम् । भवेदकस्मात्पततां यत्र कुण्डे धनुःशते ॥९६॥
सर्वे रुद्धाः पापिनश्च व्यथन्ते यत्र संततम् । हाहेति शब्दं कुर्वन्तस्तदेवारुन्तुदं विदुः ॥९७॥
तप्तपांसुपराकीर्णं ज्वलद्भिस्तु सुदग्धकैः । तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युक्तं पांसुभोजं धनुःशतम् ॥९८॥
पततां पापिनां यत्र भवेदेव प्रकम्पनम् । पापमात्रेण पापी वै भवेत्पाशेन वेष्टितः ॥९९॥
क्रोशमाने च कुण्डे वै विदुस्तत्पाशवेष्टनम् । धनुर्विंशतिमानं च शूलप्रोतं प्रकीर्तितम् ॥१००॥
पातमात्रेण पापी च शूलेन ग्रथितो भवेत् । पततां पापिनां यत्र भवेदेव प्रकम्पनम् ॥१०१॥
अतीव हिमतोये च क्रोशार्धं च प्रकम्पनम् । ददत्येव हि मद्दूता यत्रोल्काः पापिनां मुखे ॥१०२॥

हैं, उन्हें मेरे दूत गण ऊपर उठाते हैं और क्षण भर में उसी में पुनः डुबा देते हैं ॥९१॥ सभी (नरक) कुण्डों के भीतर पापी गण अतिचिरकाल के लिए निःश्वास से बँधे रहते हैं, उनकी भोग (यातना) देह अनश्वर (कभी नष्ट न होने वाली) रहती है एवं अति क्लेशपूर्ण रहती है ॥९२॥ ऊपर से मेरे दूतगण दण्ड, मुसल एवं अस्त्र से उन्हें पीटते हैं। इस भाँति वह अतितप्त जल से पूर्ण रहता है जिसे कालसूत्र नरक कहते हैं ॥९३॥ अवट नरक, कूप के समान होता है, उसमें जल भरा रहता है। इसीलिए उसे कूप का एक भेद मानते हैं। जो अतिसंतप्त जल से पूर्ण, बीस धनुष प्रमाण विस्तृत एवं उन महापापियों से व्याप्त है जिनकी देह निरन्तर जलती रहती है और ऊपर से मेरे दूत ताड़ना देते रहते हैं, उसे अवटोद (नरक) कहा जाता है ॥९४-९५॥ सौ धनुष विस्तृत उस कुण्ड में गिरते ही उसके जल के स्पर्श होने पर पापियों की देह में अकस्मात् व्याधि हो जाती है। सभी पापीगण उसमें अवरुद्ध रह कर पीड़ित होते हैं और निरन्तर हाय, हाय शब्द करके चिल्लाते रहते हैं। इसीलिए विद्वानों ने उस कुण्ड को अरुन्तुद कहा है ॥९६-९७॥ जलती हुई धूलियों से भरा, जलते हुए एवं जली देह वाले उन पापियों से वह कुण्ड पूर्ण रहता है, जो वही जलती हुई धूलि का भोजन करते हैं। वह सौ धनुष विस्तृत है ॥९८॥ जिसमें गिरते ही पापी काँपने लगते हैं और पाश से आबद्ध हो जाते हैं एवं जो एक कोस विस्तृत है। उसे सब पाशवेष्टन (नरक) कहते हैं। शूलप्रोत नामक कुण्ड बीस धनुष के समान विस्तृत है, उसमें गिरते ही पापी गण शूल से छिद उठते हैं । जिसमें गिरते ही पापीगण कम्पित होने लगते हैं तथा जो अति हिम (बर्फों) से भरा एवं आधे कोस तक विस्तृत है, उसे प्रकम्पन नरक कहा गया है। जहाँ हमारे दूतगण पापियों के मुख में उल्का (जलती हुई लकड़ी) डालते हैं, वह बीस धनष का विस्तृत और उल्काओं से भरा हुआ उल्कामुख नरक है। जो लाखों मनुष्यों को एक साथ रखने वाला, गम्भीर, सौ धनुष

धनुर्विंशतिमानं च तदुल्काभिश्च संकुलम् । लक्षमानवमानं च गम्भीरं च धनुःशतम् ॥१०३॥
नानाप्रकारक्रिमिभिः संयुक्तं च भयानकैः । अत्यन्धकारव्याप्तं यत्कूपाकारं च वर्तुलम् ॥१०४॥
तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युक्तं न पश्यद्भिः परस्परम् । तप्ततोयप्रदग्धैश्च चलद्भिः कीटभक्षितैः ।
ध्वान्तेन चक्षुषा चान्धैरन्धकूपं प्रकीर्तितम् ॥१०५॥
नानाप्रकारशस्त्रौघैर्यत्र विद्धाश्च पापिनः । धनुर्विंशतिमानं च वेधनं तत्प्रकीर्तितम् ॥१०६॥
दण्डेन ताडिता यत्र मम दूतैश्च पापिनः । धनुः षोडशमानं च तत्कुण्डं दण्डताडनम् ॥१०७॥
निबद्धाश्च महाजालैर्यथा मीनाश्च पापिनः । धनुस्त्रिंशत्प्रमाणं च जालबद्धं प्रकीर्तितम् ॥१०८॥
पततां पापिनां[1] कुण्डे देहाश्चूर्णीभवन्ति च । लौहवेदिनिबद्धान्तः कोटिमानवमानकम् ॥१०९॥
गभीरं ध्वान्तयुक्तं च धनुर्विंशतिमानकम् । मूर्च्छितानां जडानां तद्देहचूर्णं प्रकीर्तितम् ॥११०॥
दलिताः पापिनो यत्र मद्दूतैर्मुसलैः सदा । धनुः षोडशमानं च तत्कुण्डं दलनं स्मृतम् ॥१११॥
पातमात्रे यत्र पापी शुष्ककण्ठौष्ठतालुकः । वालुकासु च तप्तासु धनुस्त्रिंशत्प्रमाणकम् ॥११२॥
शतमानवमानं च गभीरं ध्वान्तसंयुतम् । जलाहारैर्विरहितं शोषणं तत्प्रकीर्तितम् ॥११३॥

विस्तृत, अनेक भाँति के भीषण कीड़ों से युक्त, अत्यन्त अंधकारपूर्ण, कूपाकार, गोलाकार एवं उसी का भक्षण करने वाले उन पापियों से भरा है, जो एक दूसरे को देखते नहीं हैं, खौलते हुए जल से जलते रहते हैं तथा कीड़ों के काटने से (स्थिर न रह कर) चलते रहते हैं और जहाँ अन्धकारमय होने के कारण आँखों से दिखायी नहीं देता है, उसे अन्धकूप कहते हैं ॥९९-१०५॥ अनेक भाँति के शस्त्र-समूहों से जहाँ पापी के अंग छिन्न-भिन्न होते हैं और जो बीस धनुष प्रमाण विस्तृत है, उसे वेधनकुण्ड कहते हैं ॥१०६॥ हमारे दूत गण जिस स्थान पर पापियों को दण्ड से मारते हैं और सोलह धनुष विस्तृत है, उसे दण्डताड़न कुण्ड कहते हैं ॥१०७॥ मछलियों की भाँति पापीगण जहाँ महान् जालों से बँधे हैं और जो तीस धनुष विस्तृत है, उसे जालबद्ध कुण्ड कहते हैं ॥१०८॥ जिस कुण्ड में पापियों के गिरते ही उनकी देह चूर्ण हो जाती है, और जिसके भीतर लोहे की वेदियाँ बनी हैं, जो करोड़ों मनुष्यों को अपने में अँटा सकता है, तथा गम्भीर, अंधकारमय और बीस धनुष विस्तृत है, वह मूर्च्छितों एवं जड़ों का देहचूर्णकुण्ड कहा जाता है ॥१०९-११०॥ जिस कुण्ड में मेरे दूतों द्वारा मुसलों से पापीगण दले जाते हैं तथा जो सोलह धनुष प्रमाण विस्तृत है, उसे दलनकुण्ड कहा जाता है ॥१११॥ जिस कुण्ड में गिरते ही पापीगण के कण्ठ, होंठ और तालू सूख जाते हैं, जो संतप्त बालुओं से भरा है, तीस धनुष विस्तृत, सौ मनुष्य के प्रमाण वाला, गम्भीर, अंधकारपूर्ण और जल से शून्य है, उसे शोषणकुण्ड कहते हैं ॥११२-११३॥ अनेक भाँति के

---

१. क. ०नां दण्डैर्दे० ।

नानाचर्मकषायोदैः परिपूर्णं धनुःशतम् । शतमानवमानं च गभीरं ध्वान्तसंयुतम् ।
दुर्गन्धियुक्तं तद्भक्ष्यैः पापिभिः संकुलं महत् ॥११४॥
शूर्पाकारमुखं कुण्डं धनुर्द्वादशमानकम् । तप्तलोहवालुकाभिः पूर्णं पातकिभिर्युतम् ॥११५॥
अन्तरग्निशिखानां च ज्वालाव्याप्तमुखं सदा । धनुर्विंशतिमानं च यस्य कुण्डस्य सुन्दरि ॥११६॥
ज्वालाभिर्दग्धगात्रैश्च पापिभिर्व्याप्तमेव यत् । तन्महत्क्लेशदं शश्वत्कुण्डं ज्वालामुखं स्मृतम् ॥११७॥
पातमात्राद्यत्र पापी मूर्च्छितो जिह्मितो[1] भवेत् । तप्तेष्टकाभ्यन्तरितं वाप्यर्धं जिह्मकुण्डकम् ॥११८॥
धूमान्धकारयुक्तं च धूमान्धैः पापिभिर्युतम् । धनुःशतं श्वासबद्धैर्धूमान्धं परिकीर्तितम् ॥११९॥
पातमात्राद्यत्र पापी नागैः संवेष्टितो भवेत् । धनुः शतं नागपूर्णं नागवेष्टनकुण्डकम् ॥१२०॥
षडशीतिश्च कुण्डानि मयोक्तानि निशामय । लक्षणं चापि तेषां च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१२१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० सावित्र्युपा० यमलोकस्थनरककुण्डलक्षणप्रकथनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

चमड़ों के सड़ने वाले जल से पूर्ण, सौ धनुष विस्तृत, दुर्गन्धभरा एवं उसके भोजन करने वाले पापियों से पटा पड़ा है॥११४॥ सूप के समान मुखवाला कुण्ड, बारह धनुष विस्तृत, तपे हुए लोहे के समान बालुओं से पूर्ण एवं उसके भोजी पातकियों से भरा है॥११५॥ हे सुन्दरि! जिस कुण्ड के भीतर अग्नि की ढेरी पड़ी है, ज्वालाओं से जिसका मुख सदा आच्छन्न है, जो बीस धनुष विस्तृत है, जहाँ ज्वालाओं से जले शरीर वाले पापीगण भरे हैं एवं जो नित्य निरन्तर महान् क्लेश देता है, उसे ज्वालामुख कुण्ड कहते हैं॥११६-११७॥ जिसमें गिरते ही पापीगण व्यथा के मारे मूर्च्छित हो जाते हैं, जिसके भीतरी भाग की ईंटें अति संतप्त रहती हैं, तथा बावली के आधे भाग के समान विस्तृत है, उसे जिह्मकुण्ड कहते हैं॥११८॥ जो धुएँ के अन्धकार से पूर्ण और धुयें से अन्धे बने हुए पापियों से भरा, सौ धनुष विस्तृत एवं श्वास से बँधा है, उसे धूमान्धनरक कहते हैं॥११९॥ जिस कुण्ड में पापीगणों को गिरते ही साँपगण लपेट लेते हैं, और जो सौ धनुष विस्तृत और साँपों से भरा है, उसे नागवेष्टनकुण्ड कहते हैं॥१२०॥ इस प्रकार मैंने छियासी (प्रधान) कुण्डों के नाम और लक्षण बता दिये हैं। अब और क्या सुनना चाहती हो॥१२१॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड के सावित्री-उपाख्यान में यमलोकस्थ नरक-कुण्डों के लक्षण-कथन नामक तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३३॥

---

१. ख. व्यथितो०।

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

सावित्र्युवाच

हरिभक्तिं देहि मह्यं सारभूतां सुदुर्लभाम् । त्वत्तः सर्वं श्रुतं देव नावशिष्टो वरो मम ॥१॥
किंचित्कथय मे धर्मं श्रीकृष्णगुणकीर्तनम् । पुंसां लक्षोद्धारबीजं नरकार्णवतारकम् ॥२॥
कारणं मुक्तिकार्याणां सर्वाशुभनिवारणम् । दारणं कर्मवृक्षाणां कृतपापौघहारकम् ॥३॥
मुक्तयः कतिधा सन्ति किं वा तासां च लक्षणम् । हरिभक्तेर्मूर्तिभेदं निषेकस्यापि लक्षणम् ॥४॥
तत्त्वज्ञानविहीना च स्त्रीजातिर्विधिनिर्मिता । किं तज्ज्ञानं सारभूतं वद वेदविदां वर ॥५॥
सर्वदानं ह्यनशनं तीर्थस्नानं व्रतं तपः । अज्ञाने ज्ञानदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥६॥
पितुः शतगुणा माता गौरवेणातिरिच्यते । मातुः शतगुणैः पूज्यो ज्ञानदाता गुरुः प्रभो ॥७॥

यम उवाच

पूर्वं[1] सर्वो वरो दत्तो यस्ते मनसि वाञ्छितः । अधुना हरिभक्तिस्ते वत्से भवतु मद्वरात् ॥८॥

अध्याय ३४

यम के उपदेश की समाप्ति

सावित्री बोली—हे देव ! तुमसे मैंने सब कुछ सुन लिया है। अब मुझे सुनने के लिए कुछ शेष नहीं रह गया है। अतः भगवान् की भक्ति मुझे देने की कृपा करें, जो सार (तत्त्व) रूप और अत्यन्त दुर्लभ है॥१॥ मुझे धर्म की कुछ चर्चा सुनाने की कृपा करें, जिसमें भगवान् श्रीकृष्ण का गुण-कीर्तन किया गया हो, और वह अनेक मनुष्यों के उद्धार का मूलकारण तथा नरक-सागर से तारने वाला हो ॥२॥ उसी भाँति मुक्तिरूप कार्य का कारण, समस्त अशुभों का नाशक, कर्मरूपी वृक्षों का विदारक और पापसमूहों का अपहर्ता हो ॥३॥ मुक्तियाँ कितने प्रकार की होती हैं, उनके लक्षण क्या हैं, भगवान् की भक्ति का स्वरूपभेद और निषेक (कृतकर्मभोग) का लक्षण बताने की कृपा करें ॥४॥ हे वेद के ज्ञाताओं में श्रेष्ठ ! ब्रह्मा ने स्त्री जाति को तत्त्वज्ञानहीन निर्माण किया है। अतः उसके लिये सारभूत ज्ञान कौन है, हमें बतायें ॥५॥ क्योंकि सम्पूर्ण दान, अनशन, तीर्थस्नान, व्रत और तप अज्ञानी को ज्ञान देने की सोलहवीं कला के समान भी नहीं होते हैं ॥६॥ हे प्रभो ! पिता से माता का गौरव सौगुना अधिक है, और माता से सौ गुना अधिक पूज्य ज्ञानदाता गुरु का गौरव होता है ॥७॥

यम बोले—हे वत्से ! जो तुम्हारे मन में अभीष्ट था वह वरदान पहले ही दिया जा चुका है। अब इस समय मेरे वरदान से तुम्हें भगवान् की भक्ति भी प्राप्त हो जायगी ॥८॥ हे कल्याणि ! तुम भगवान् श्रीकृष्ण का गुण-गान सुनना

---

१ क. अथ पूर्वं व० ।

श्रोतुमिच्छसि कल्याणि श्रीकृष्णगुणकीर्तनम् । वक्तृणां प्रश्नकर्तृणां श्रोतृणां कुलतारकम् ॥ ९ ॥
शेषो वक्त्रसहस्रेण नहि यद्वक्तुमीश्वरः । मृत्युंजयो न क्षमश्च वक्तुं पञ्चमुखेन च॥१०॥
धाता चतुर्णां वेदानां विधाता जगतामपि । ब्रह्मा चतुर्मुखेनैव नालं विष्णुश्च सर्ववित्॥११॥
कार्तिकेयः षण्मुखेन नापि वक्तुमलं ध्रुवम् । न गणेशः समर्थश्च योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः॥१२॥
सारभूताश्च शास्त्राणां वेदाश्चत्वार एव च । कलामात्रं यद्गुणानां न विदन्ति बुधाश्च ये॥१३॥
सरस्वती[1] जडीभूता नालं यद्गुणवर्णने । सनत्कुमारो धर्मश्च सनकश्च सनातनः॥१४॥
सनन्दः कपिलः सूर्यो ये चान्ये ब्रह्मणः सुताः । विचक्षणा न यद्वक्तुं के वाऽन्ये जडबुद्धयः॥१५॥
न यद्वक्तुं क्षमाः सिद्धा मुनीन्द्रा योगिनस्तथा । के वाऽन्ये च वयं के वा भगवद्गुणवर्णने ॥१६॥
ध्यायन्ति यत्पदाम्भोजं ब्रह्मविष्णुशिवादयः । अतिसाध्यं स्वभक्तानां तदन्येषां सुदुर्लभम्॥१७॥
कश्चित्किंचिद्विजानाति तद्गुणोत्कीर्तनं महत् । अतिरिक्तं विजानाति ब्रह्मा [2]ब्रह्मविशारदः॥१८॥
ततोऽतिरिक्तं जानाति गणेशो ज्ञानिनां गुरुः । सर्वातिरिक्तं जानाति सर्वज्ञः शंभुरेव च॥१९॥
तस्मै दत्तं पुरा ज्ञानं कृष्णेन परमात्मना । अतीव निर्जने रम्ये गोलोके रासमण्डले॥२०॥

चाहती हो जो कहने वाले, पूछने वाले और सुनने वाले इन सभी के कुलों को तार देता है॥९॥ जिसे सहस्रमुख वाले शेष भी नहीं कह सकते हैं, मृत्युञ्जय (शिव) अपने पाँचों मुखो से उनके गुण का वर्णन करने में असमर्थ हैं॥१०॥ चारों वेदों के धारण करने वाले जगत् के विधाता ब्रह्मा एवं समस्त के वेत्ता विष्णु भी असमर्थ हैं॥११॥ षडानन कार्तिकेय अपने छहों मुखों से उनका वर्णन नहीं कर सकते और योगीन्द्रों के गुरु गणेश भी वर्णन करने में समर्थ नहीं हैं॥१२॥ इस भाँति शास्त्रों के सारभूत चारों वेद भी जिनके गुणों का कलामात्र वर्णन नहीं कर सकते हैं तो विद्वानों की कौन-सी बात है॥१३॥ सरस्वती भी यत्नपूर्वक जिनके गुण का वर्णन करने में अपनी असमर्थता प्रकट करती हैं तथा सनत्कुमार, धर्म, सनक, सनातन, सनन्द, कपिल, सूर्य और ब्रह्मा के अन्य विद्वान् पुत्र भी जिनके गुण कहने में असमर्थ रहते हैं तो जड़-बुद्धि वालों की बात ही क्या है॥१४-१५॥ उसी प्रकार भगवान् के गुणवर्णन करने में सिद्धगण, मुनीन्द्रगण और योगी लोग असमर्थ रहते हैं तो अन्य तथा हम लोगों की कौन बात है॥१६॥ ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि जिनके चरण-कमल का सतत ध्यान करते रहते हैं, एवं अपने भक्तों के लिए जो अति साध्य और अन्य के लिए अति दुर्लभ है॥१७॥ उनके महान् गुणों का कीर्तन कोई कुछ ही जानता होगा। उसके अतिरिक्त ब्रह्मविशारद ब्रह्मा जानते हैं ॥१८॥ उनके अतिरिक्त ज्ञानियों के गुरु गणेश जानते हैं और सबसे अधिक सर्वज्ञ शिव जानते हैं ॥१९॥ क्योंकि पहले समय में परमात्मा श्रीकृष्ण ने अपने सुरम्य रासमण्डल के समय गोलोक के प्रति निर्जन स्थान में उन्हें ज्ञान प्रदान किया था॥२०॥

---

१. ख. ०ती च यत्ने ना० । २. ख. ०ह्मसुतादयः ।

तत्रैव कथितं किंचिद्यद्गुणोत्कीर्तनं पुनः । धर्माय कथयामास शिवलोके शिवः स्वयम् ॥२१॥
धर्मस्तत्कथयामास पुष्करे भास्कराय च । पिता मम यमाराध्य मां प्राप तपसा सति ॥२२॥
पूर्वं[१] स्वविषयं चाहं न गृह्णामि प्रयत्नतः । वैराग्ययुक्तस्तपसे गन्तुमिच्छामि सुव्रते ॥२३॥
तदा मां कथयामास पिता तद्गुणकीर्तनम् । यथागमं तद्वदामि निबोधातीव दुर्गमम् ॥२४॥
तद्गुणं स न जानाति तदन्यस्य च का कथा । यथाऽऽकाशो न जानाति स्वान्तमेव वरानने ॥२५॥
सर्वान्तरात्मा भगवान्सर्वकारणकारणम् । सर्वेश्वरश्च सर्वाद्यः सर्ववित्सर्वरूपधृक् ॥२६॥
नित्यरूपी नित्यदेही नित्यानन्दो निराकृतिः । निरङ्कुशश्च निःशङ्को निर्गुणश्च निराश्रयः ॥२७॥
निर्लिप्तः सर्वसाक्षी च सर्वाधारः परात्परः । प्रकृतिस्तद्विकारा च प्राकृतास्तद्विकारजाः ॥२८॥
स्वयं पुमांश्च प्रकृतिः स्वयं च प्रकृतेः परः । रूपं विधत्तेऽरूपश्च भक्तानुग्रहहेतवे ॥२९॥
अतीव कमनीयं च सुन्दरं सुमनोहरम् । नवीननीरदश्यामं किशोरं गोपवेषकम् ॥३०॥
कन्दर्पकोटिलावण्यलीलाधाम मनोहरम् । शरन्मध्याह्नपद्मानां शोभामोषकलोचनम् ॥३१॥
शरत्पार्वणकोटीन्दुशोभासंशोभिताननम् । अमूल्यरत्नखचितं रत्नाभरणभूषितम् ॥३२॥

उन्होंने उसी स्थान में उनका जो गुण-गान किया था, उसे ही पुनः शिव ने स्वयं अपने लोक में धर्म से कहा ॥२१॥ धर्म ने पुष्कर में सूर्य से कहा। मेरे पिता ने उनकी आराधना करके तप द्वारा मुझको प्राप्त किया ॥२२॥ हे सुव्रते ! पहले समय में प्रयत्न करने पर भी मैं अपने इस विषय (पदाधिकार) का ग्रहण नहीं कर रहा था, विराग होने के नाते तप करने जा रहा था ॥२३॥ उस समय मेरे पिता ने मुझे उनका गुण कीर्तन सुनाया। अतः उस दुरूह विषय को मैं अपने ज्ञानानुसार कह रहा हूँ, सुनो ! ॥२४॥ हे वरानने ! जैसे आकाश अपने ही अन्त को नहीं जानता है उसी तरह वे स्वयं उनके गुणों को नहीं जानते हैं, तो अन्य की बात ही क्या है ॥२५॥ भगवान् श्रीकृष्ण सबके भीतरी आत्मा , समस्त कारणों के कारण, सभी के ईश्वर, सबके आदि, समस्त के वेत्ता, सभी भाँति के रूप धारण करने वाले, नित्यरूपवान्, नित्य देह धारण करने वाले, नित्य आनन्द स्वरूप, आकृतिहीन, निरंकुश (स्वतंत्र), शंकाशून्य, गुणरहित, आश्रमहीन, निर्लिप्त, सभी के साक्षी, समस्त के आधार एवं परात्पर (श्रेष्ठ से श्रेष्ठ) हैं। प्रकृति उनका विकाररूप है और उनके विकार से उत्पन्न होने वाले को प्राकृत कहा जाता है ॥२६-२८॥ वे स्वयं पुरुषरूप और प्रकृतिरूप हैं तथा स्वयं प्रकृति से परे (पृथक्) भी हैं। रूपहीन होते हुए भी भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए रूप धारण करते हैं ॥२९॥ स्वयं अतीव कमनीय (सुन्दरातिसुन्दर), अति मनोहर, नये मेघ की भाँति श्यामल, किशोर, गोपवेष, करोड़ों काम की लावण्यमयी लीला के धाम, मनोहर, शरत् ऋतु के मध्याह्नकालीन कमलों की शोभा को चुराने वाले नेत्रों से युक्त, शारदीय पूर्णिमा के करोड़ों चन्द्रमा की शोभा से सुशोभित मुख वाले, अमूल्य

---

१ क. पूर्वं च विषयांश्चाहं।

सस्मितं शोभितं शश्वदमूल्यपीतवाससा । परब्रह्मस्वरूपं च ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥३३॥
सुखदृश्यं च शान्तं च राधाकान्तमनन्तकम् । गोपीभिर्वीक्ष्यमाणं च सस्मिताभिः[1] समन्ततः ॥३४॥
रासमण्डलमध्यस्थं रत्नसिंहासनस्थितम् । वंशीं क्वणन्तं द्विभुजं वनमालाविभूषितम् ॥३५॥
कौस्तुभेन मणीन्द्रेण सुन्दरं वक्षसोज्ज्वलम् । कुङ्कुमागरुकस्तूरीचन्दनार्चितविग्रहम् ॥३६॥
चारुचम्पकमालाब्जमालतीमाल्यमण्डितम् । चारुचम्पकशोभाढ्यचूडावक्रिमराजितम् ॥३७॥
ध्यायन्ति चैवंभूतं वै भक्ता भक्तिपरिप्लुताः । यद्भयाज्जगतां धाता विधत्ते सृष्टिमेव च ॥३८॥
करोति लेखनं कर्मानुरूपं [2]सर्वकर्मणाम् । तपसां फलदाता च कर्मणां च यदाज्ञया ॥३९॥
विष्णुः पाता च सर्वेषां यद्भयात्पाति संततम् । कालाग्निरुद्रः संहर्ता सर्वविश्वेषु यद्भयात् ॥४०॥
शिवो मृत्युंजयश्चैव ज्ञानिनां च गुरोर्गुरुः । यज्ज्ञानदानात्सिद्धेशो योगीशः सर्ववित्स्वयम् ॥४१॥
परमानन्दयुक्तश्च भक्तिवैराग्यसंयुतः । यत्प्रसादाद्वाति वातः प्रवरः शीघ्रगामिनाम् ॥४२॥
तपनश्च प्रतपति यद्भयात्संततं सति । यदाज्ञया वर्षतीन्द्रो मृत्युश्चरति जन्तुषु ॥४३॥
यदाज्ञया दहेद्वह्निर्जलमेव सुशीतलम् । दिशो रक्षन्ति दिक्पाला [3]महाभीता यदाज्ञया ॥४४॥

रत्नों से खचित, रत्नों के भूषणों से विभूषित, मन्द मुसुकाते और निरन्तर अमूल्य पीताम्बर से सुशोभित हो रहे हैं। वे परब्रह्मस्वरूप, ब्रह्मतेज से प्रदीप्त, सुखदृश्य (देखने मात्र से सुख देने वाले), शान्त, राधा के कान्त एवं अनन्त हैं। मन्द मुसुकाती हुई गोपियाँ उन्हें चारों ओर से घेरे हुए देख रही हैं ॥३०-३४॥ वे रासमण्डल के मध्य स्थित रत्नसिंहासन पर विराजमान, वंशी की तान में मस्त, दो भुजा वाले, वनमाला पहने, वक्षःस्थल पर स्थित उज्ज्वल कौस्तुभ मणि से सुन्दर तथा सर्वाङ्ग में कुङ्कुम, अगरु, कस्तूरीमिश्रित चन्दन से चर्चित हैं ॥३५-३६॥ सुन्दर चम्पा पुष्पों की माला और कमल एवं मालती पुष्पों की माला से विभूषित, चारु चम्पा की शोभा से सम्पन्न तथा घुँघराले बालों से शोभित हैं ॥३७॥ भक्ति रस में विभोर होकर भक्तगण ऐसे ही स्वरूप का ध्यान करते हैं जिनके भय से जगत् के विधाता ब्रह्मा सृष्टि रचना करते हैं, समस्त देहधारियों के कर्मानुरूप फल उनके भाल में लिखते हैं और जिनकी आज्ञा से तप का फल और कर्मों के फल (जीवों को) देते रहते हैं ॥३८-३९॥ जिनके भय से विष्णु सभी के निरन्तर रक्षक हुए हैं एवं जिनके भय से कालाग्नि रुद्र समस्त विश्व का संहार करते हैं ॥४०॥ जिनके ज्ञानदान द्वारा ज्ञानियों के गुरु के गुरु एवं मृत्युञ्जय शिव सिद्धेश, योगीश और स्वयं सर्ववेत्ता, परमानन्दसम्पन्न एवं भक्तिवैराग्ययुक्त हो गये हैं। जिनके प्रसाद से वायु शीघ्रगामियों में सर्वश्रेष्ठ होकर चलता है ॥४१-४२॥ जिनके भय से तपन (सूर्य) निरन्तर तपते हैं, जिनकी आज्ञा से इन्द्र वर्षा करते हैं तथा सभी जीवों के बीच मृत्यु विचरण करता है ॥४३॥ जिनकी आज्ञा से अग्नि जलाता है, जल अति शीतल होता है। जिनकी आज्ञावश अत्यन्त भयभीत होकर दिक्पाल दिशाओं की रक्षा करते हैं ॥४४॥ जिनके भय से राशिमण्डल तथा ग्रहगण

१क. ०भिश्च शाश्वतम्० । २ख. ०र्वदेहिनाम् । ३क. मही पाति य० ।

भ्रमन्ति राशिचक्राणि ग्रहा वै यद्भयेन च । भयात्फलन्ति वृक्षाश्च पुष्पन्त्यपि च यद्भयात् ॥४५॥
भयात्फलानि पक्वानि निष्फलास्तरवो भयात् । यदाज्ञया स्थलस्थाश्च न जीवन्ति जलेषु च ॥४६॥
तथा स्थले जलस्थाश्च न जीवन्ति यदाज्ञया । अहं नियमकर्ता च धर्माधर्मे च यद्भयात् ॥४७॥
कालश्च कलयेत्सर्वं भ्रमत्येव यदाज्ञया । अकाले न हरेत्कालो मृत्युर्वै यद्भयेन च ॥४८॥
ज्वलदग्नौ पतन्तं च गभीरे च जलार्णवे । वृक्षाग्रात्तीक्ष्णखड्गे च सर्पादीनां मुखेषु च ॥४९॥
नानाशस्त्रास्त्रविद्धं च रणेषु विषमेषु च । पुष्पचन्दनतल्पे च बन्धुवर्गैश्च रक्षितम् ॥५०॥
शयानं तन्त्रमन्त्रैश्च काले कालो हरेद्भयात् । धत्ते वायुस्तोयराशिं तोयं कूर्मं यदाज्ञया ॥५१॥
कूर्मोऽनन्तं स च क्षोणीं समुद्रान्सप्त पर्वतान् । [1]सर्वांश्चैव क्षमारूपो नानारूपं बिभर्ति सः ॥५२॥
यतः सर्वाणि भूतानि लीयन्तेऽन्ते च तत्र वै । इन्द्रायुश्चैव दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः ॥५३॥
अष्टाविंशच्छक्रपाते ब्रह्मणः स्यादहर्निशम् । षष्टयाऽधिके पञ्चशते सहस्रे पञ्चविंशतौ ॥५४॥
युगे नराणां शक्रायुरेवं संख्याविदो विदुः । एवं त्रिंशद्दिनैर्मासो द्वाभ्यां ताभ्यामृतुः स्मृतः ॥५५॥
ऋतुभिः षड्भिरेवाब्दं शताब्दं ब्रह्मणो वयः । ब्रह्मणश्च निपाते वै चक्षुरुन्मीलनं हरेः ॥५६॥

घूमा करते हैं, जिनके भय से वृक्ष फूलते-फलते हैं ॥४५॥ जिनके भय से फल पक जाते हैं और (समय पर) वृक्ष फलहीन हो जाते हैं । जिनकी आज्ञा से स्थल के रहने वाले (जीव) जल में जीवित नहीं रह सकते ॥४६॥ जिनकी आज्ञा से जलस्थायी जीव स्थल पर जीवित नहीं रहते हैं। जिनके भय से मैं धर्माधर्म का नियम करता हूँ ॥४७॥ जिनकी आज्ञा से काल सभी को ग्रास बनाता हुआ घूमा करता है। जिनके भय से कालरूप मृत्यु अकाल में हरण नहीं कर पाता है ॥४८॥ जलते हुए अग्नि में, अगाध जलसागर में, वृक्ष के अग्रभाग से, तीक्ष्ण खड्ग पर, सर्पादि हिंसक जन्तुओं के मुख में तथा भीषण रणस्थलों में अनेक भाँति के शस्त्रास्त्रों से छिन्न-भिन्न होकर गिरते हुए को तथा पुष्प-चन्दन की शय्या पर बन्धुवर्गों द्वारा सुरक्षित को और तन्त्रों-मन्त्रों द्वारा शयन करते हुए को भी काल जिनके भय से समय पर अपहरण कर लेता है। जिनकी आज्ञा से वायु जलराशि धारण करता है, तोय कूर्म (कछुवा) को धारण करता है । कछुवा अनन्त (शेष) को धारण करता है। अनन्त पृथिवी को धारण करता है और पृथिवी सभी समुद्रों, सातों पर्वतों एवं सभी को तथा अनेक रूपों को धारण करती है ॥४९-५२॥ और अन्त में जिनमें सभी भूत (पृथिवी आदि) लीन हो जाते हैं। एकहत्तर दिव्य युगों की इन्द्र की आयु होती है। इस भाँति अट्ठाईस इन्द्र के समय तक ब्रह्मा का एक अहोरात्र (दिन-रात) होता है। मनुष्यों के पचीस सहस्र पाँच सौ साठ युग के समय तक इन्द्र की आयु होती है, ऐसा गणनाविदों ने कहा है। इस प्रकार तीस दिन का एक मास, दो मास की एक ऋतु, छह ऋतुओं का एक वर्ष और सौ वर्ष की ब्रह्मा की आयु होती है । एवं ब्रह्मा की आयु का समय भग-

---

१क. ०र्वांश्च रक्षमाणो यो ना० ।

चक्षुर्निमीलने तस्य लयं प्राकृतिकं विदुः । प्रलये प्राकृताः सर्वे देवाद्याश्च चराचराः ॥५७॥
लीना धातरि धाता च श्रीकृष्णे नाभिपङ्कजे । विष्णुः क्षीरोदशायी च वैकुण्ठे यश्चतुर्भुजः ॥५८॥
विलीना वामपार्श्वे च कृष्णस्य परमात्मनः । इन्द्राद्या[1] भैरवाद्याश्च यावन्तश्च शिवानुगाः ॥५९॥
शिवाधारे शिवे लीना ज्ञानानन्दे सनातने । ज्ञानाधिदेवः कृष्णस्य महादेवस्य चाऽत्मनः ॥६०॥
तस्य ज्ञाने विलीनश्च बभूवाथ क्षणं हरेः । दुर्गायां विष्णुमायायां विलीनाः सर्वशक्तयः ॥६१॥
सा च कृष्णस्य बुद्धौ च बुद्ध्यधिष्ठातृदेवता । नारायणांशः स्कन्दश्च लीनो वक्षसि तस्य च ॥६२॥
श्रीकृष्णांशश्च तद्बाहौ देवाधीशो गणेश्वरः । पद्मांशभूता पद्मायां सा राधायां च सुव्रते ॥६३॥
गोप्यश्चापि च तस्यां च सर्वा वै देवयोषितः । कृष्णप्राणाधिदेवी सा तस्य प्राणेषु सा स्थिता ॥६४॥
सावित्री च सरस्वत्यां वेदशास्त्राणि यानि च । स्थिता वाणी च जिह्वायां तस्यैव परमात्मनः ॥६५॥
गोलोकस्थस्य गोपाश्च विलीनास्तस्य लोमसु । तत्प्राणेषु च सर्वेषां प्राणा वाता हुताशनः ॥६६॥
जठराग्नौ विलीनश्च जलं तद्रसनाग्रतः । वैष्णवाश्चरणाम्भोजे परमानन्दसंयुताः ॥६७॥

वान् विष्णु का एक निमेष (पलक-भाँजना) होता है। इस प्रकार उनका नेत्र निमीलन करना ही प्राकृतिक लय है, ऐसा विद्वानों ने कहा है। प्रलय के समय देव आदि चराचर प्राकृत सभी धाता ब्रह्मा में लीन होते हैं और ब्रह्मा भगवान् श्रीकृष्ण के नाभिकमल में लीन होते हैं। भगवान् विष्णु जो क्षीरसागर में शयन करते हैं, और वैकुण्ठ में चार भुजाओं से विभूषित रहते हैं वे परमात्मा श्रीकृष्ण के बायें पार्श्व में विलीन होते हैं। जितने रुद्रादि और भैरवादि गण भगवान् शिव के अनुगामी हैं, वे शिवाधार शिव में लीन होते हैं, जो ज्ञानानन्द एवं सनातन हैं। श्रीकृष्ण तथा महादेव के आत्मा का जो ज्ञानाधिदेव है, उसका हरि के ज्ञान में तत्क्षण लय हो जाता है। विष्णुमाया दुर्गाजी में समस्त शक्तियाँ विलीन हो जाती हैं। वह दुर्गा भगवान् श्रीकृष्ण की बुद्धि में निवास करती हैं, जो उनकी बुद्धि की अधिष्ठातृदेवी हैं। उसी प्रकार नारायण के अंश स्कन्द नारायण के वक्षःस्थल में लीन हो जाते हैं॥५३-६२॥ देवों के अधीश्वर गणेशजी, भगवान् श्रीकृष्ण के बाहु में लीन होते हैं। हे सुव्रते! पद्मा (कमला) का अंश कमला में और कमला राधिका जी में लीन होती हैं और गोपियाँ एवं सभी देवियाँ उन्हीं राधा में लीन हो जाती हैं, जो भगवान् श्रीकृष्ण की प्राणाधिष्ठातृदेवी हैं। इसीलिए वह राधा उनके प्राणों में स्थित रहती हैं॥६३-६४॥ सावित्री एवं वेदशास्त्र आदि सभी सरस्वती में स्थित होते हैं और सरस्वती परमात्मा उसी श्रीकृष्ण की जिह्वा में लीन होती हैं॥६५॥ गोलोकनिवासी भगवान् के लोमों में वहाँ के सभी गोप और उनके प्राणों में सभी के प्राण-वायु विलीन होते हैं। उनके जठराग्नि में अग्नि, रसना के अग्रभाग में जल और उनके चरणकमल में परमतत्त्वस्वरूप भक्तिरसामृत पान करने वाले वैष्णवगण परमानन्दमग्न होकर

---

१. ख. रुद्रा०।

सारात्सारतरा भक्तिरसपीयूषपायिनः । विराट्क्षुद्रश्च महति लीनः कृष्णे महान्विराट् ॥६८॥
यस्यैव लोमकूपेषु विश्वानि निखिलानि च । यस्य चक्षुर्निमेषेण महांश्च प्रलयो भवेत् ॥६९॥
चक्षुरुन्मीलने सृष्टिर्यस्यैव परमात्मनः । यावन्निमेषे सृष्टिः स्यात्तावदुन्मीलने व्ययः ॥७०॥
ब्रह्मणश्च शताब्देन सृष्टिस्तत्र लयः पुनः । ब्रह्मसृष्टिलयानां च संख्या नास्त्येव सुव्रते ॥७१॥
यथा भूरजसां चैव संख्यानं च निशामय । चक्षुर्निमेषे प्रलयो यस्य सर्वान्तरात्मनः ॥७२॥
उन्मीलने पुनः सृष्टिर्भवेदेवेश्वरेच्छया । तद्गुणोत्कीर्तनं वक्तुं ब्रह्माण्डेषु च कः क्षमः ॥७३॥
यथा श्रुतं तातवक्त्रात्तथोक्तं च यथागमम् । मुक्तयश्च चतुर्वेदैर्निरुक्ताश्च चतुर्विधाः ॥७४॥
तत्प्रधाना हरेर्भक्तिर्मुक्तेरपि गरीयसी । सालोक्यदा हरेरेका चान्या सारूप्यदाऽपरा ॥७५॥
सामीप्यदा च निर्वाणदात्री चैवमिति स्मृतिः । भक्तास्ता नहि वाञ्छन्ति विना तत्सेवनादिकम् ॥७६॥
सिद्धत्वममरत्वं च ब्रह्मत्वं चावहेलया । जन्ममृत्युजराव्याधिभयशोकादिखण्डनम् ॥७७॥
धारणं दिव्यरूपस्य विदुर्निर्वाणमोक्षदम् । मुक्तिश्च सेवारहिता भक्तिः सेवाविवर्द्धिनी ॥७८॥

निवास करते हैं ॥६६-६७॥ फिर शुद्ध विराट् महान् में तथा महाविराट् भगवान् श्रीकृष्ण में लीन होता है ॥६८॥ जिनके लोमकूपों में समस्त विश्व स्थित रहता है और जिनके नेत्र (पलक) बंद करने से महाप्रलय तथा जिन परमात्मा के नेत्रोन्मीलन (आँख खोलने) से सृष्टि होती है। इस भाँति उनके निमेष (नेत्रनिमीलन) के समय जितनी सृष्टि 'सुरक्षित' रहती है, नेत्रोन्मीलन के समय सबकी सब बाहर (सृष्टि) हो जाती है ॥६९-७०॥ ब्रह्मा के सौ वर्ष की आयु तक सृष्टि होती है। उपरान्त पुनः वह उसी में लीन हो जाती है। इसलिए हे सुव्रते ! ब्रह्मा, सृष्टि और लय की पृथिवी के रजकणों की भाँति (अनन्त होने के कारण) संख्या नहीं है ॥७१॥ क्योंकि जिस सर्वान्तरात्मा भगवान् के नेत्रोन्मेष (पलक भाँजने) के समय तक प्रलय और उसी देवेश्वर की इच्छा से उसके नेत्रोन्मीलन करने (आँख खोलने) पर सृष्टि होती है, उसके गुण का ज्ञान करने में समस्त ब्रह्माण्डों के मध्य कौन समर्थ हो सकता है ? ॥७२-७३॥ इस प्रकार पिताजी के मुख से मैंने जैसा सुना था वैसा शास्त्रानुसार सुना दिया। चारों वेदों में मुक्ति चार प्रकार की बतायी गयी है। उनमें भगवान् की भक्ति, मुक्ति से अधिक गौरव रखने के कारण सर्वश्रेष्ठ है। उन चार प्रकार की मुक्ति में एक मुक्ति भगवान् का सालोक्य प्रदान करती है, दूसरी मुक्ति सारूप्य, तीसरी सामीप्य और चौथी मुक्ति सायुज्य प्रदान करती है तथा निर्वाणदायिनी मुक्ति भी कही गयी है। किन्तु भक्त गण बिना भगवान् की सेवा (भक्ति) किये उपर्युक्त कोई मुक्ति नहीं चाहते हैं ॥७४-७६॥ इतना ही नहीं, भक्त लोग भक्तिरहित अमरत्व एवं ब्रह्मत्व की भी अवहेलना कर देते हैं। इस प्रकार भक्ति जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, भय और शोक आदि के नाशपूर्वक दिव्यरूप धारण एवं निर्वाण मोक्ष प्रदान करती है। मुक्ति सेवा से रहित होती है और भक्ति सेवावृद्धि करती है ॥७७-७८॥ भक्ति और मुक्ति में यही

भक्तिमुक्त्योरयं भेदो निषेकलक्षणं शृणु। विदुर्बुधा निषेकं च भोगं च कृतकर्मणाम्॥७९॥
तत्खण्डनं च शुभदं परं श्रीकृष्णसेवनम्। तत्त्वज्ञानमिदं साध्वि सारं वै लोकवेदयोः॥८०॥
विघ्नघ्नं शुभदं चोक्तं गच्छ वत्से यथासुखम्। इत्युक्त्वा सूर्यपुत्रश्च जीवयित्वा च तत्पतिम्॥८१॥
तस्यै शुभाशिषं दत्त्वा गमनं कर्तुमुद्यतः। दृष्ट्वा यमं च गच्छन्तं सावित्री तं प्रणम्य च॥८२॥
रुरोद चरणे धृत्वा सद्विच्छेदोऽतिदुःखदः। सावित्रीरोदनं श्रुत्वा यमः सोऽयं कृपानिधिः॥८३॥
तामित्युवाच संतुष्टस्त्वरोदीच्चापि नारद ॥८४॥

यम उवाच

लक्षवर्षं सुखं भुक्त्वा पुण्यक्षेत्रे च भारते। अन्ते यास्यसि गोलोके श्रीकृष्णभवनं शुभे॥८५॥
गत्वा च स्वगृहं भद्रे सावित्र्याश्च व्रतं कुरु। द्विसप्तवर्षपर्यन्तं नारीणां मोक्षकारणम्॥८६॥
ज्येष्ठे शुक्लचतुर्दश्यां सावित्र्याश्च व्रतं कुरु। शुक्लाष्टम्यां भाद्रपदे महालक्ष्म्या व्रतं तथा॥८७॥
[1]द्व्यष्टवर्षव्रतं चेदं प्रत्यब्दं पक्षमेव च। करोति परया भक्त्या सा याति च हरेः पदम्॥८८॥
प्रतिमङ्गलवारे च देवीं मङ्गलचण्डिकाम्। प्रतिमासं शुक्लषष्ठ्यां षष्ठीं मङ्गलदायिकाम्॥८९॥

भेद है। अब निषेक का लक्षण कह रहा हूँ, सुनो! विद्वानों ने किये हुए कर्मों के भोग को निषेक बताया है॥७९॥ हे साध्वि! भगवान् श्रीकृष्ण की एकमात्र सेवा द्वारा ही (कर्मों) का खण्डन होता है क्योंकि वह परम शुभ (कल्याण-प्रद) होती है। यही तत्त्वज्ञान है और लोक एवं वेद का सार है॥८०॥ तथा विघ्नों का नाशक और शुभदायक है। हे वत्से! इस प्रकार मैंने सब कुछ बता दिया है, अतः तू अब सुखपूर्वक घर चली जा। इतना कह कर सूर्यपुत्र यम ने उसके पति (सत्यवान्) को जीवित कर दिया और सावित्री को शुभाशीर्वाद देकर अपने चलने का उपक्रम किया। उपरान्त सावित्री ने यम को जाते हुए देखकर उन्हें प्रणाम किया और उनके चरण पकड़ कर रुदन करने लगी क्योंकि सत्पुरुषों का वियोग अति दुःखदायक होता है। हे नारद! उस समय सावित्री का रुदन देखकर कृपानिधान यमराज भी अति सन्तुष्ट होकर उसे आश्वासन देने लगे जिसमें प्रेममग्न होकर वे स्वयं भी अश्रुपात कर रहे थे॥८१-८४॥

यम बोले—हे शुभे! पुण्य क्षेत्र भारत में एक लाख वर्ष तक सुखोपभोग करके अन्त में तुम गोलोक में भगवान् श्रीकृष्ण के भवन में चली जाओगी।८५॥ अतः हे भद्रे! घर जाकर चौदह वर्ष तक तुम (वट) सावित्री का व्रत करो, जो स्त्रियों के मोक्ष का हेतु है॥८६॥ ज्येष्ठ मास की शुक्ल चतुर्दशी के दिन सावित्री का वह शुभ व्रत होता है। भादों मास की शुक्लाष्टमी के दिन महालक्ष्मी का शुभ व्रत होता है, जिसे १६ वर्षों तक प्रत्येक वर्ष जो (स्त्री) परम भक्ति के साथ करती है वह विष्णुलोक को जाती है॥८७-८८॥ इसी भाँति प्रत्येक मंगल के दिन मंगलचण्डिका देवी की, प्रति मास में शुक्ल पक्ष की षष्ठी के दिन मंगलदायिनी षष्ठी देवी की, आषाढ़ की संक्रान्ति के दिन समस्त सिद्धि-

---

[1] क अष्ट°।

तथा चाऽऽषाढसंक्रान्त्यां मनसा सर्वसिद्धिदाम्। राधां रासे च कार्तिक्यां कृष्णप्राणाधिकां प्रियाम्॥९०॥
उपोष्य शुक्लाष्टम्यां च प्रतिमासे वरप्रदाम्। विष्णुमायां भगवतीं दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम्॥९१॥
प्रकृतिं जगदम्बां च पतिपुत्रवतीषु च। पतिव्रतासु शुद्धासु यन्त्रेषु प्रतिमासु च॥९२॥
या नारी पूजयेद्भक्त्या धनसंतानहेतवे। इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते श्रीहरेः पदम्॥९३॥
इत्युक्त्वा तां धर्मराजो जगाम निजमन्दिरम्। गृहीत्वा स्वामिनं सा च सावित्री च निजालयम्॥९४॥
सावित्री सत्यवन्तं च वृत्तान्तं च यथाक्रमम्। अन्यांश्च कथयामास बान्धवांश्चैव नारद॥९५॥
सावित्रीजनकः पुत्रान्स प्रापद्वै क्रमेण च। श्वशुरश्चक्षुषी राज्यं सा च पुत्रान्वरेण च॥९६॥
लक्षवर्षं सुखं भुक्त्वा पुण्यक्षेत्रे च भारते। जगाम स्वामिना सार्धं गोलोकं सा पतिव्रता॥९७॥
सवितुश्चाधिदेवी या मन्त्राधिष्ठातृदेवता। सावित्री चापि वेदानां सावित्री तेन कीर्तिता॥९८॥
इत्येवं कथितं वत्स सावित्र्याख्यानमुत्तमम्। जीवकर्मविपाकं च किं पुनः श्रोतुमिच्छसि॥९९॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० सावित्र्यु० सावित्र्या
यमोपदेशसमाप्तिर्नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥३४॥

दायिनी मनसा देवी की, कार्तिकी संक्रान्ति एवं पूर्णिमा को कृष्ण की प्राणों से भी अधिक प्रिय राधा की और प्रत्येक मास की शुक्लाष्टमी में उपवास रह कर भगवान् विष्णु की माया भगवती दुर्गा जी की, जो वर प्रदान करने वाली, दुर्गति की नाशिनी, प्रकृति स्वरूप जगज्जननी एवं पति पुत्र सम्पन्न, शुद्ध पतिव्रताओं में प्रथम सती हैं, यंत्रों और परमात्माओं में जो स्त्री धन और सन्तानार्थ भक्तिपूर्वक अर्चना करती है, वह इस लोक में (आजीवन) सुखोपभोग करने के उपरान्त अन्त में श्री हरि के लोक में जाती है॥८९–९३॥ इतना कह कर धर्मराज अपने भवन में चले गये और सावित्री भी अपने पति (सत्यवान्) को साथ लेकर अपने घर आयी॥९४॥ हे नारद! घर पहुँच कर सावित्री ने यह समस्त वृत्तान्त क्रमशः अपने (पति) सत्यवान् और अन्य बन्धुओं को कह सुनाया॥९५। पश्चात् क्रमशः सावित्री के पिता को पुत्रों का लाभ हुआ, उसके सास-ससुर को आँखें और स्वयं उसे राज्य समेत पुत्रों की प्राप्ति हुई। इस प्रकार वह पतिव्रता वरदान द्वारा इस पुण्य क्षेत्र भारतवर्ष में एक लाख वर्ष तक सुखोपभोग करने के अनन्तर अपने स्वामी समेत गोलोक को चली गयी॥९६-९७॥ सविता (सूर्य) की अधिदेवी, मन्त्रों की अधिष्ठात्री देवी और वेदों की सावित्री देवी होने के नाते उसे सावित्री कहा जाता है।९८॥ हे वत्स! इस भाँति सावित्री का उत्तम आख्यान तथा जीवों का कर्मविपाक तुम्हें सुना दिया। अब और क्या सुनना चाहते हो?॥९९॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारदनारायणसंवादविषयक सावित्री के उपाख्यान में सावित्री को यम के द्वारा दिये गये उपदेश की समाप्ति नामक चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त॥३४॥

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

नारद उवाच

श्रीकृष्णस्याऽऽत्मनश्चैव निर्गुणस्य निराकृतेः । सावित्रीयमसंवादे श्रुतं सुविमलं यशः ॥१॥
तद्गुणोत्कीर्तनं सत्यं मङ्गलानां च मङ्गलम् । अधुना श्रोतुमिच्छामि लक्ष्म्युपाख्यानमीश्वर[1] ॥२॥
केनाऽऽदौ पूजिता साऽपि किंभूता केन[2] वा पुरा । तद्गुणोत्कीर्तनं सत्यं वद वेदविदां वर ॥३॥

नारद उवाच

सृष्टेरादौ पुरा ब्रह्मन्कृष्णस्य परमात्मनः । देवी वामांशसंभूता चाऽऽसीत्सा रासमण्डले ॥४॥
अतीव सुन्दरी श्यामा न्यग्रोधपरिमण्डला । यथा द्वादशवर्षीया रम्या सुस्थिरयौवना ॥५॥
श्वेतचम्पकवर्णाभा सुखदृश्या मनोहरा । शरत्पार्वणकोटीन्दुप्रभासंशोभितानना ॥६॥
शरन्मध्याह्नपद्मानां शोभाशोभितलोचना । सा च देवी द्विधाभूता सहसैवेश्वरेच्छया ॥७॥
समा रूपेण वर्णेन तेजसा वयसा त्विषा । यशसा वाससा मूर्त्या भूषणेन गुणेन च ॥८॥

अध्याय ३५

लक्ष्मी के स्वरूप तथा पूजा आदि का वर्णन

नारद बोले—सावित्री और यम के संवाद में निर्गुण निराकार परमात्मरूप श्रीकृष्ण का अति निर्मल यश मैंने सुना ॥१॥ क्योंकि उनका गुणगान ही सत्यरूप और मंगलों का मंगल रूप है। हे ईश्वर ! मैं अब लक्ष्मी का उपाख्यान सुनना चाहता हूँ ॥२॥ हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ ! सर्वप्रथम उनकी पूजा किसने की थी और पूर्वकाल में किसके द्वारा वे किस रूप में अवतरित हुई थीं ? उनके गुणों का गान करना ही सत्य है। अतः उसे कहने की कृपा करें ॥३॥

नारायण बोले—हे ब्रह्मन् ! पूर्व समय–सृष्टि के आदि काल में परमात्मा श्रीकृष्ण के रासमण्डल में वह देवी उनके बाँयें अंग से प्रकट हुई ॥४॥ जो अत्यन्त सुन्दरी, श्यामा (ऋतु के अनुरूप सुख देने वाली), न्यग्रोधपरिमण्डला (कठोर स्तन, स्थूल नितम्ब तथा पतली कमर वाली), बारह वर्ष वाली, रमणीय, श्वेत चम्पा के समान वर्ण कान्तिवाली, सुदर्शना, मनोहरा, शरत्पूर्णिमा के करोड़ों चन्द्रमा की प्रभा से सुशोभित मुखवाली और शरत्काल के मध्याह्नकालिक कमलों की शोभा से शोभित नेत्रों वाली थी। ईश्वर की इच्छा से वह देवी उसी समय सहसा दो रूपों में हो गयी जो रूप-रंग,

---

१ क. °नमुत्तमम् ।　　२ क. संस्तुता ।

स्मितेन वीक्षणेनैव वचसा गमनेन च । मधुरेण स्वरेणैव [1]नयेनानुनयेन च ॥९॥
तद्वामांशा महालक्ष्मीर्दक्षिणांशा च राधिका। राधाऽऽदौ वरयामास द्विभुजं च परात्परम् ॥१०॥
महालक्ष्मीश्च तत्पश्चाच्चकमे कमनीयकम् । कृष्णस्तद्गौरवेणैव द्विधारूपो बभूव ह ॥११॥
दक्षिणांशो वै द्विभुजो वामांशश्च चतुर्भुजः। चतुर्भुजाय द्विभुजो महालक्ष्मीं ददौ [2]पुरा ॥१२॥
लक्ष्यते दृश्यते विश्वं स्निग्धदृष्ट्या ययाऽनिशम्। देवीषु या च महती महालक्ष्मीश्च सा स्मृता ॥१३॥
द्विभुजो राधिकाकान्तो लक्ष्मीकान्तश्चतुर्भुजः । गोलोके द्विभुजस्तस्थौ गोपैर्गोपीभिरावृतः ॥१४॥
चतुर्भुजश्च वैकुण्ठं प्रययौ पद्मया सह। सर्वांशेन समौ तौ द्वौ कृष्णनारायणौ परौ ॥१५॥
महालक्ष्मीश्च योगेन नानारूपा बभूव सा। वैकुण्ठे च महालक्ष्मीः परिपूर्णतमाऽपरा ॥१६॥
शुद्धसत्त्वस्वरूपा च सर्वसौभाग्यसंयुता। प्रेम्णा सा बै प्रधाना च सर्वासु रमणीषु च ॥१७॥
स्वर्गे च स्वर्गलक्ष्मीश्च शक्रसंपत्स्वरूपिणी। पातालेषु च मर्त्येषु राजलक्ष्मीश्च राजसु ॥१८॥
गृहलक्ष्मीर्गृहेष्वेव गृहिणी च कलांशया। संपत्स्वरूपा गृहिणां सर्वमङ्गलमङ्गला ॥१९॥

तेज, अवस्था, कान्ति, यश, वस्त्र, आकार-प्रकार, भूषण, गुण, मन्द मुसुकान, आँखों से देखने, बोलने एवं चलने आदि में तथा स्वर की मधुरता और नय-अनुनय (व्यवहार कुशलता) में समान थीं ॥५-९॥ उनके बाँये अंश से प्रकट होने वाली महालक्ष्मी और दाहिने अंश से उत्पन्न होने वाली राधिका थीं। उनमें श्री राधिका जी ने सर्वप्रथम दो भुजा वाले एवं परात्पर भगवान् श्रीकृष्ण का वरण कर लिया ॥१०॥ पश्चात् महालक्ष्मी ने भी अति सुन्दर पति का वरण किया। उन दोनों के गौरव के कारण ही भगवान् श्रीकृष्ण दो रूपों में प्रकट हुए ॥११॥ जिनमें दाहिने भाग वाला रूप दो भुजाओं और बाँयें भाग वाला चार भुजाओं से विभूषित था। दो भुजा वाले भगवान् श्रीकृष्ण ने महालक्ष्मी को पहले ही उस चार भुजा वाले (महाविष्णु) को सौंप दिया था ॥१२॥ जो महालक्ष्मी इस समस्त विश्व को अपनी अति स्नेहमयी दृष्टि से सतत देखती हैं तथा देवियों में महान् हैं। इसीलिए उन्हें महालक्ष्मी कहा जाता है ॥१३॥ इस प्रकार दो भुजा वाले भगवान् श्रीकृष्ण श्री राधिका जी के पति हैं और चार भुजा वाले (महाविष्णु) महालक्ष्मी जी के। दो भुजा वाले भगवान् श्रीकृष्ण गोपों और गोपियों से आवृत होकर गोलोक में ही रहते हैं। अनन्तर चार भुजा वाले भगवान् (विष्णु) ने पद्मा (महालक्ष्मी) को साथ लेकर वैकुण्ठ को प्रस्थान किया। इस भाँति वे परात्पर भगवान् श्रीकृष्ण और नारायण विष्णु, दोनों सभी अंशों में समान हैं ॥१४-१५॥ उस महालक्ष्मी ने योग द्वारा अपने अनेक रूप धारण किये हैं, जो वैकुण्ठ में परिपूर्णतम और श्रेष्ठ होकर विराजमान हैं ॥१६॥ तथा शुद्ध सत्त्व स्वरूप, समस्त सौभाग्य से परिपूर्ण और समस्त रमणियों में वे प्रेमप्रधान रमणी हैं ॥१७॥ इसी भाँति ये स्वर्ग की स्वर्गलक्ष्मी, इन्द्र की सम्पत्तिस्वरूप और पाताल तथा मर्त्यलोक के राजाओं की राजलक्ष्मी हैं ॥१८॥ एवं घर की गृहलक्ष्मी, अंशकला से घर की गृहिणी, गृही मनुष्यों की सम्पत्ति रूप और समस्त मंगलों की मंगलरूपा हैं ॥१९॥ वही गौओं की

---

१ क. प्रेम्णा चानु। २ क. °दौ मुदा।

गवां प्रसूः सा सुरभिर्दक्षिणा यज्ञकामिनी। क्षीरोदसिन्धुकन्या सा श्रीरूपा पद्मिनीषु च ॥२०॥
शोभारूपा च चन्द्रे सा सूर्यमण्डलमण्डिता । विभूषणेषु रत्नेषु फलेषु[1] जलजेषु च ॥२१॥
नृपेषु नृपपत्नीषु दिव्यस्त्रीषु गृहेषु च । सर्वसस्येषु वस्त्रेषु स्थाने सा संस्कृते तथा ॥२२॥
प्रतिमासु च देवानां मङ्गलेषु घटेषु च। माणिक्येषु च मुक्तासु माल्येषु च मनोहरा ॥२३॥
मणीन्द्रेषु च हारेषु क्षीरे वै चन्दनेषु च। वृक्षशाखासु रम्यासु नवमेघेषु वस्तुषु ॥२४॥
वैकुण्ठे पूजिता साऽऽदौ देवी नारायणेन च। द्वितीये ब्रह्मणा भक्त्या तृतीये शंकरेण च ॥२५॥
विष्णुना पूजिता सा च क्षीरोदे भारते मुने। स्वायंभुवेन मनुना मानवेन्द्रैश्च सर्वतः ॥२६॥
ऋषीन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च सद्भिश्च गृहिभिर्भवे। गन्धर्वाद्यैश्च नागाद्यैः पातालेषु च पूजिता ॥२७॥
शुक्लाष्टम्यां भाद्रपदे पूजा वै ब्रह्मणा कृता। भक्त्या च पक्षपर्यन्तं त्रिषु लोकेषु नारद ॥२८॥
चैत्रे पौषे च भाद्रे च पुण्ये मङ्गलवासरे। विष्णुना निर्मिता पूजा त्रिषु लोकेषु भक्तितः ॥२९॥
वर्षान्ते पौषसंक्रान्त्यां मेध्यामावाह्य चाङ्गणे। मनुस्तां पूजयामास सा भूता भुवनत्रये ॥३०॥
राज्ञा संपूजिता सा वै मङ्गलेनैव मङ्गला। केदारेणैव नीलेन नलेन सुबलेन च ॥३१॥

जननी सुरभी, यज्ञ की प्रिया दक्षिणा, क्षीरसागर की कन्या कमला तथा कमलिनियों में श्री (शोभा) रूपा हैं।.२०॥ वे चन्द्रमा में शोभा रूप हैं तथा सूर्य मण्डल से विभूषित हैं। उसी भाँति आभूषणों, रत्नों, फलों, जलोत्पन्न वस्तुओं, राजाओं, रानियों, दिव्य स्त्रियों, घरों, समस्त फसलों, वस्त्रों, सुसंस्कृत स्थानों, देवों की प्रतिमाओं, मांगलिक कलशों, मणि-वस्तुओं मोतियों और मालाओं में मनोहर रूप हैं। तथा उत्तम मणियों, हारों, दुग्ध, चन्दनों, वृक्षों की रम्य शाखाओं, नवीन मेघों और वस्तुओं में भी सुन्दर रूप हैं ॥२१-२४॥ इस प्रकार सर्व-प्रथम वैकुण्ठ में नारायण ने इस देवी की अर्चना की पश्चात् भक्तिपूर्वक ब्रह्मा और शंकर ने ॥२५॥ हे मुने! तदनन्तर क्षीरसागर में विष्णु ने, भारत में स्वायम्भुव मनु ने और सभी राजाओं ने सविधि पूजा की ॥२६॥ उसके उपरान्त श्रेष्ठ ऋषिगणों, मुनिगणों, सज्जन गृहस्थों ने अर्चना की। गन्धर्वों आदि और सर्पों आदि ने भी पातालों में इन्हें पूजित किया॥२७॥ हे नारद! भादों मास की शुक्ल अष्टमी के दिन ब्रह्मा ने भक्तिपूर्वक पूजा की और तीनों लोकों में पक्ष पर्यन्त उनकी पूजा हुई ॥२८॥ भगवान् विष्णु ने तीनों लोकों में भक्तिपूर्वक इनकी पूजा करने के लिए चैत्र, पौष और भादों मास एवं पुण्य मंगल दिन बताया है ॥२९॥ मनु ने वर्षा के अन्तिम समय और पौष की संक्रान्ति के दिन मेंह तथा गृह प्राङ्गण में लक्ष्मी की आवाहनपूर्वक पूजा की और उसी दिन से लक्ष्मी तीनों लोकों में प्रकट हो गयीं ॥३०॥ अनन्तर राजा मंगल ने उस मंगलस्वरूपा महालक्ष्मी की पूजा की तथा केदार, नील, नल, सुबल, उत्तानपाद-पुत्र ध्रुव, इन्द्र, बलि, कश्यप, दक्ष,

---

१. क. ॰षु च जलेषु च।

ध्रुवेणौत्तानपादेन शक्रेण बलिना तथा । कश्यपेन च दक्षेण[1] मनुना च विवस्वता ॥३२॥
पियव्रतेन चन्द्रेण कुबेरेणैव वायुना । यमेन वह्निना चैव वरुणेनैव पूजिता ॥३३॥
एवं सर्वत्र सर्वैश्च वन्दिता पूजिता सदा । सर्वैश्वर्याधिदेवी सा सर्वसंपत्स्वरूपिणी ॥३४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० लक्ष्म्युपा० लक्ष्मीस्वरूपपूजादिवर्णनं
नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

नारायणप्रिया सा च वरा वैकुण्ठवासिनी । वैकुण्ठाधिष्ठातृदेवी महालक्ष्मीः सनातनी ॥१॥
कथं बभूव सा देवी पृथिव्यां सिन्धुकन्यका । किं तद्ध्यानं च[2] कवचं सर्वं पूजाविधिक्रमम् ॥२॥
पुरा केन स्तुताऽऽदौ सा तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥३॥

नारायण उवाच

पुरा दुर्वाससः शापाद्भ्रष्टश्रीकः पुरंदरः । बभूव देवसंघश्च मर्त्यलोकश्च नारद ॥४॥

मनु, विवस्वान् (सूर्य), प्रियव्रत, चन्द्र, कुबेर, वायु, यम, अग्नि और वरुण ने उनकी अर्चना की॥ ३१-३३॥ इस प्रकार सभी स्थानों में सभी लोगों द्वारा वे वन्दित और पूजित हुईं जो समस्त ऐश्वर्यों की अधिदेवी और निखिल सम्पत्तियों की स्वरूप हैं॥३४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवादविषयक लक्ष्मी-उपाख्यान में लक्ष्मी के स्वरूप और पूजा आदि के वर्णन नामक पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३५॥

अध्याय ३६

इन्द्र को दुर्वासा का शाप

नारद बोले—वैकुण्ठ लोक में निवास करनेवाली परमश्रेष्ठ एवं नारायण की प्रेयसी वह महालक्ष्मी देवी जो वैकुण्ठ की अधीश्वरी और सनातनी (जरामरण रहित सदैव एक रूप रहने वाली) हैं, वह पृथ्वी में सिन्धु की पुत्री कैसे हुईं ? तथा उसका ध्यान, कवच और पूजा विधान का समस्त क्रम क्या है ? ॥१-२॥ एवं आदि काल में सर्वप्रथम उनकी स्तुति किसने की, मुझे बताने की कृपा करें॥३॥

नारायण बोले—हे नारद ! पहले समय में दुर्वासा जी के शाप के कारण इन्द्र की श्री नष्ट हो गयी और उसी कारण देववृन्द तथा मर्त्यलोक भी श्रीविहीन हो गया॥४॥ हे नारद ! अनन्तर रुष्ट होने के कारण वह लक्ष्मी

---

१. क. °ण कर्दमेन वि०। २. क. च स्तवनं स०।

लक्ष्मीः स्वर्गादिकं त्यक्त्वा रुष्टा परमदुःखिता । गत्वा लीना च वैकुण्ठे महालक्ष्यां च नारद ॥५॥
तदा शोकाद्ययुर्देवा दुःखिता ब्रह्मणः सभाम् । ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य ययुर्वैकुण्ठमेव च ॥६॥
वैकुण्ठे शरणापन्ना देवा नारायणे परे । अतीव दैन्ययुक्ताश्च शुष्ककण्ठौष्ठतालुकाः ॥७॥
तदा लक्ष्मीश्च कलया पुरा नारायणाज्ञया । बभूव सिन्धुकन्या सा शक्रसंपत्स्वरूपिणी ॥८॥
तदा मथित्वा क्षीरोदं देवा दैत्यगणैः सह । संप्रापुश्च वरं लक्ष्म्या ददृशुस्तां च तत्र हि ॥९॥
सुरादिभ्यो वरं दत्त्वा वनमालां च विष्णवे । ददौ प्रसन्नवदना तुष्टा क्षीरोदशायिने ॥१०॥
देवाश्चाप्यसुराक्रान्तं राज्यं प्रापुश्च तद्वरात् । तां संपूज्य च संस्तूय सर्वत्र च निरापदः ॥११॥

नारद उवाच

कथं शशाप दुर्वासा मुनिश्रेष्ठः पुरंदरम् । केन दोषेण वा ब्रह्मन्ब्रह्मिष्ठं ब्रह्मवित्पुरा ॥१२॥
ममन्थे केन रूपेण जलधिस्तैः सुरादिभिः । केन स्तोत्रेण सा देवी शक्रे साक्षाद्बभूव ह ॥१३॥
को वा तयोश्च संवादो ह्यभवत्तद्वद प्रभो ॥१४॥

नारायण उवाच

मधुपानप्रमत्तश्च त्रैलोक्याधिपतिः पुरा । क्रीडां चकार रहसि रम्भया सह कामुकः ॥१५॥

परम दुःखी होकर स्वर्ग आदि को त्याग कर वैकुण्ठ चली गयीं और वहाँ महालक्ष्मी में लीन हो गयीं ॥५॥ उस समय शोकाकुल के कारण देवगण दुःखी होकर ब्रह्मा की सभा में गये और वहाँ उन्हें आगे करके देवों ने वैकुण्ठ लोक की यात्रा की ॥६॥ वहाँ पहुँच कर उन लोगों ने सब से परे रहने वाले नारायण देव की शरण प्राप्त की। उस समय अत्यन्त दीनता के कारण देवों के कण्ठ, ओंठ और तालू सूख गये थे ॥७॥ उपरान्त लक्ष्मी ने अपनी कला (अंश) द्वारा सिन्धु की कन्या होकर पुनः जन्म ग्रहण किया, जो इन्द्र की सम्पत्ति स्वरूप थीं और जिन्हें पूर्वकाल में ही नारायण देव की (इसके लिए) आज्ञा हो चुकी थी ॥८॥ अनन्तर देवों ने दैत्यों के साथ क्षीरसागर का मन्थन किया, जिससे उन्हें लक्ष्मी का दर्शन और वरदान दोनों वहाँ प्राप्त हुए ॥९॥ अनन्तर प्रसन्नमुख लक्ष्मी ने संतुष्ट होकर देवताओं को वर प्रदान किया और क्षीरसागर में शयन करने वाले भगवान् विष्णु को वनमाला पहना कर उनका वरण किया ॥१०॥ वरदान प्राप्त होने के पश्चात् देवों ने असुरों द्वारा अपहरण किया हुआ अपना राज्य पुनः प्राप्त किया और उन लोगों ने लक्ष्मी जी की सविधि अर्चा एवं स्तुति की, जिससे सर्वत्र देवगण उसी क्षण निरापद हो गये ॥११॥

नारद बोले—हे ब्रह्मन्! पूर्वकाल में मुनिश्रेष्ठ एवं ब्रह्मवेत्ता दुर्वासा ने ब्राह्मण भक्त इन्द्र को क्यों शाप दिया, उनका क्या अपराध था? हे प्रभो! देवों ने किस प्रकार समुद्र का मन्थन किया, किस स्तोत्र द्वारा स्तुति करने पर इन्द्र को लक्ष्मी का साक्षात्कार (दर्शन) हुआ और उन दोनों का क्या संवाद हुआ, ये सभी बातें मुझे बतायें ॥१२-१४॥

नारायण बोले—पहले समय में एक बार तीनों लोकों के अधीश्वर (इन्द्र) मधु (आसव) पान से प्रमत्त होकर एकान्त स्थान में रम्भा के साथ अति कामुकता से काम क्रीड़ा कर रहे थे ॥१५॥ उसने उनके चित्त को अपने

कृत्वा क्रीडां तया सार्धं कामुक्या हृतचेतनः । तस्थौ तत्र महारण्ये कामोन्मथितमानसः ॥१६॥
कैलासशिखरं यान्तं वैकुण्ठादृषिपुंगवम् । दुर्वाससं ददर्शेन्द्रो ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥१७॥
ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डसहस्रप्रभमीश्वरम् । प्रतप्तकाञ्चनाभासं जटाभारमहोज्ज्वलम् ॥१८॥
शुक्लयज्ञोपवीतं च चीरं दण्डं कमण्डलुम् । महोज्ज्वलं च तिलकं बिभ्रतं चन्द्रसंनिभम् ॥१९॥
समन्वितं शिष्यवर्गैर्वेदवेदाङ्गपारगैः । दृष्ट्वा ननाम शिरसा संभ्रमात्तं पुरंदरः ॥२०॥
शिष्यवर्गं स भक्त्या वै तुष्टाव च मुदाऽन्वितः । मुनिना च सशिष्येण तस्मै दत्ताः शुभाशिषः ॥२१॥
विष्णुदत्तं पारिजातपुष्पं च सुमनोहरम् । मृत्युरोगजराशोकहरं मोक्षकरं ददौ ॥२२॥
शक्रः पुष्पं गृहीत्वा च प्रमत्तो राजसंपदा । भ्रमेण स्थापयामास तत्र वै हस्तिमस्तके ॥२३॥
हस्ती तत्स्पर्शमात्रेण रूपेण च गुणेन च । तेजसा वयसा कान्त्या विष्णुतुल्यो बभूव सः ॥२४॥
त्यक्त्वा शक्रं गजेन्द्रश्चाप्यगच्छद् घोरकाननम् । न शशाक महेन्द्रस्तं रक्षितुं तेजसा मुने ॥२५॥
तत्पुष्पं त्यक्तवन्तं च दृष्ट्वा शक्रं मुनीश्वरः । तं शशाप महातेजाः क्रोधसंरक्तलोचनः ॥२६॥

दुर्वासा उवाच

अरे श्रिया प्रमत्तस्त्वं कथं मामवमन्यसे । मद्दत्तपुष्पं गर्वेण त्यक्तवान्हस्तिमस्तके ॥२७॥

अधीन कर लिया और उस कारण वे काम से मथितचित्त होकर अवस्थित हुए ॥१६॥ दैव संयोग से उसी समय वैकुण्ठ से कैलाश जाते हुए ऋषिश्रेष्ठ दुर्वासा, जो ब्रह्मतेज से प्रज्वलित थे, इन्द्र को वहाँ आते हुए दिखाई पड़े ॥१७॥ वे ग्रीष्म काल के मध्याह्न मार्तण्ड (सूर्य) की सहस्रों किरणों की भाँति प्रभापूर्ण, ईश्वर, अति संतप्त सुवर्ण की सी कान्ति वाले, अति शुभ्र जटाभार, शुक्ल यज्ञोपवीत, वस्त्र, दण्ड, कमण्डलु और भाल में चन्द्रमा की भाँति अत्यन्त उज्ज्वल तिलक धारण किए हुए थे ॥१८-१९॥ इस प्रकार वेदों और वेदांगों के पारगामी विद्वान् शिष्य वर्गों से वे युक्त थे। उन्हें देखकर इन्द्र ने शिर से सहसा प्रणाम किया ॥२०॥ और प्रसन्न मन से भक्तिपूर्वक उनके शिष्यों की भी स्तुति की। अनन्तर शिष्यों समेत मुनि ने उन्हें शुभाशीर्वाद प्रदान किया ॥२१॥ और भगवान् विष्णु का दिया हुआ वह पारिजात का पुष्प भी उन्हें प्रदान किया, जो अति मनोहर, तथा मृत्यु, रोग, जरा एवं शोक का नाशक और मोक्षप्रद था ॥२२॥ किन्तु राजसम्पत्ति से प्रमत्त होने के नाते इन्द्र ने उस पुष्प को लेकर भ्रमवश उसे अपने गजराज के मस्तक पर रख दिया ॥२३॥ जिसके स्पर्श मात्र से वह गजराज उसी समय रूप, गुण, तेज, अवस्था और कान्ति में भगवान् विष्णु के समान हो गया ॥२४॥ हे मुने! वह गजराज उसी समय इन्द्र को वहाँ त्याग कर स्वयं किसी अन्य घोर जंगल में चला गया और महेन्द्र भी उस समय उसे अपने तेज से रोक न सके ॥२५॥ उपरान्त मुनियों के अधिपति एवं महातेजस्वी दुर्वासा के नेत्र, उस पुष्प का त्याग करते हुए इन्द्र को देखकर क्रोध से रक्त-वर्ण के हो गए। उन्होंने उसी निमित्त उन्हें शाप दे दिया ॥२६॥

दुर्वासा बोले—अरे! तुम लक्ष्मी से अति मतवाला हो गये हो क्या? यह हमारा अपमान क्यों कर रहे हो कि मेरे दिए हुए पुष्प को तुमने गर्व से हाथी के मस्तक पर डाल दिया है? (तुम्हें नहीं मालूम है कि) भगवान् विष्णु

विष्णोर्निवेदितं पुष्पं नैवेद्यं वा फलं जलम् । प्राप्तिमात्रेण भोक्तव्यं त्यागेन ब्रह्महा जनः ॥२८॥
भ्रष्टश्रीर्भ्रष्टबुद्धिश्च भ्रष्टज्ञानो[1] भवेन्नरः । यस्त्यजेद्विष्णुनैवेद्यं भाग्येनोपस्थितं शुभम् ॥२९॥
प्राप्तिमात्रेण यो भुङ्क्ते भक्त्या विष्णुनिवेदितम् । पुंसां शतं समुद्धृत्य जीवन्मुक्तः स्वयं भवेत् ॥३०॥
विष्णुनैवेद्यभोजी यो नित्यं तु प्रणमेद्धरिम् । पूजयेत्स्तौति वा भक्त्या स विष्णुसदृशो भवेत् ॥३१॥
तत्स्पर्शवायुना सद्यस्तीर्थौघश्च विशुध्यति । तत्पादरजसा मूढ सद्यः पूता वसुंधरा ॥३२॥
पुंश्चल्यन्नमवीरान्नं शूद्रश्राद्धान्नमेव च । यद्धरेरनिवेद्यं च वृथामांसमभक्ष्यकम् ॥३३॥
शिवलिङ्गप्रदत्तान्नं यदन्नं शूद्रयाजिनाम् । चिकित्सकद्विजानां च देवलान्नं तथैव च ॥३४॥
कन्याविक्रयिणामन्नं यदन्नं योनिजीविनाम् । अनुष्णान्नं पर्युषितं सर्वभक्ष्यावशेषितम् ॥३५॥
शूद्रापतिद्विजान्नं च वृषवाहद्विजान्नकम् । अदीक्षितद्विजान्नं च यदन्नं शवदाहिनाम् ॥३६॥
अगम्यागामिनां चैव द्विजानामन्नमेव च । मित्रद्रुहां कृतघ्नानामन्नं विश्वासघातिनाम् ॥३७॥
मिथ्यासाक्ष्यप्रदानां च ब्राह्मणानां तथैव च । एतत्सर्वं विशुद्ध्येत विष्णुनैवेद्यभक्षणात् ॥३८॥
श्वपचो विष्णुसेवी च वंशानां कोटिमुद्धरेत् । हरेरभक्तो विप्रश्च स्वं च रक्षितुमक्षमः ॥३९॥

को अर्पित किया हुआ पुष्प, नैवेद्य, फल और जल हाथ में आते ही खा लेना चाहिये उसके त्याग करने से मनुष्य ब्रह्मघाती होता है। इसीलिए भगवान् विष्णु का शुभ नैवेद्य (किसी प्रकार) भाग्य से प्राप्त होने पर जो मनुष्य उसका त्याग करता है, वह लक्ष्मी, बुद्धि और ज्ञान से च्युत होकर भ्रष्ट हो जाता है। और जो भगवान् विष्णु को निवेदित नैवेद्य के प्राप्त होते ही उसे भक्तिपूर्वक खा लेता है, वह अपनी सौ पीढ़ियों के उद्धारपूर्वक स्वयं जीवन्मुक्त हो जाता है ॥२७-३०॥ इस प्रकार भगवान् विष्णु के नैवेद्य का भक्षण करने वाला जो मनुष्य नित्य भक्तिपूर्वक उन्हें प्रणाम, पूजा और स्तुति करता है, वह विष्णु के समान होता है ॥३१॥ हे मूढ़ ! उसके स्पर्श-वायु से तीर्थगण तुरन्त शुद्ध हो जाते हैं और उसके चरण रज से पृथ्वी भी तुरन्त पवित्र होती है ॥३२॥ व्यभिचारिणी स्त्री, विधवा स्त्री तथा शूद्र के श्राद्ध का अन्न और भगवान् विष्णु को निवेदन न किया गया अन्न, ये सब व्यर्थ और मांस के समान अभक्ष्य होते हैं ॥३३॥ किन्तु शिवलिंग पर अर्पित किया हुआ अन्न, शूद्रों को यज्ञ कराने वाले ब्राह्मण का अन्न, चिकित्सक (वैद्य) ब्राह्मण का अन्न, देवल (मन्दिर के पुजारी ब्राह्मण) का अन्न, कन्याविक्रेता का अन्न, योनि-जीवी (किसी भी स्त्री के व्यभिचार द्वारा जीविका चलाने वाले) का अन्न, ठंडा और वासी अन्न, सब के खाने से बचा हुआ अन्न, शूद्रा स्त्री के पति होने वाले ब्राह्मण का अन्न, बैलों पर लादने वाले ब्राह्मण का अन्न, दीक्षा रहित ब्राह्मण का अन्न, शवदाही (मुर्दा जलाने का काम करने वाले) का अन्न अगम्या स्त्री के साथ गमन करने वाले ब्राह्मण का अन्न, मित्रद्रोही, कृतघ्न, विश्वासघाती और झूठी गवाही देने वाले ब्राह्मण का अन्न, यह सब खाने वाला व्यक्ति भगवान् विष्णु के नैवेद्य भक्षण करने से शुद्ध हो जाता है ॥३४-३८॥ इतना ही नहीं विष्णु की सेवा करने वाला श्वपच (मेहतर आदि) भी अपनी करोड़ों पीढ़ियों का उद्धार करता है और विष्णुभक्तिहीन ब्राह्मण अपनी भी रक्षा करने में असमर्थ रहता है ॥३९॥

१क. °ष्टराज्यो भ०।

अज्ञानाद्यदि गृह्णाति विष्णोर्निर्माल्यमेव च । सप्तजन्मार्जितात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ।।४०।।
ज्ञात्वा भक्त्या च गृह्णाति विष्णोर्नैवेद्यमेव च । कोटिजन्मार्जितात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ।।४१।।
यस्मात्संस्थापितं पुष्पं गर्वाद्वै हस्तिमस्तके । तस्माद्युष्मान्परित्यज्य यातु लक्ष्मीर्हरेः पदम् ।।४२।।
नारायणस्य भक्तोऽहं न बिभेमीश्वरं विधिम् । कालं मृत्युं जरां चैव कानन्यान्गणयामि च ।।४३।।
किं करिष्यति ते तातः कश्यपश्च प्रजापतिः । बृहस्पतिर्गुरुश्चैव निःशङ्कस्य च मे हरेः ।।४४।।
इदं पुष्पं यस्य मूर्ध्नि तस्य वै पूजनं पुरः । मूर्ध्नि च्छिन्ने शिवशिशोश्छित्त्वेदं योजयिष्यति ।।४५।।
इति श्रुत्वा महेन्द्रश्च धृत्वा तच्चरणद्वयम् । उच्चै रुरोद शोकार्तस्तमुवाच भयाकुलः ।।४६।।

इन्द्र उवाच

दत्तः समुचितः शापो मह्यं मत्ताय हे प्रभो । हृता त्वया चेत्संपत्तिः कियज्ज्ञानं च देहि मे ।।४७।।
ऐश्वर्यं विपदां बीजं प्रच्छन्नज्ञानकारणम् । मुक्तिमार्गार्गलं दाढ्यद्धिरिभक्तिव्यपायकम् ।।४८।।
जन्ममृत्युजरारोगशोकदुःखकरं[1] परम् । संपत्तितिमिरान्धश्च मुक्तिमार्गं न पश्यति ।।४९।।
संपन्मत्तः सुमूढश्च सुरामत्तः सचेतनः । बान्धवैर्वेष्टितः सोऽपि बन्धुद्वेषकरो मुने ।।५०।।

भगवान् विष्णु के निर्माल्य को यदि अज्ञान से भी कोई ग्रहण करता है, तो वह अपने सात जन्मों के पाप से मुक्त हो जाता है इसमें संशय नहीं ।।४०।। और जानते हुए भक्तिपूर्वक विष्णु-नैवेद्य ग्रहण करने वाला निःसन्देह अपने करोड़ों जन्मों के पाप से मुक्त हो जाता है ।।४१।। अतः जिस लिए अभिमान से तुमने उस पुष्प को हाथी के मस्तक पर रख दिया इसलिए लक्ष्मी तुम्हें त्याग कर भगवान् के यहाँ चली जायँगी ।।४२।। मैं नारायण देव का भक्त हूँ, इसीलिए ईश्वर (शिव), ब्रह्मा, काल, मृत्यु, जरा (वृद्धता) को नहीं डरता हूँ और अन्यों की गणना ही क्या है ।।४३।। मैं भगवान से भी निःशंक रहता हूँ; इसलिए तुम्हारे पिता प्रजापति कश्यप और गुरु बृहस्पति हमारा क्या कर लेंगे ।।४४।। यह पुष्प जिसके मस्तक पर रहेगा, उसका सदैव पूजन होगा और शिव के पुत्र का शिर कट जाने पर उनके धड़ पर वही काट कर जोड़ दिया जायेगा ।।४५।। इतना सुन कर महेन्द्र ने दुःखी और भयभीत होकर उनके दोनों चरण पकड़ लिये और ऊँचे स्वर से चिल्ला कर रुदन करने लगे ।।४६।।

इन्द्र बोले—हे प्रभो! मुझ मतवाले को शाप देकर आपने उचित ही किया है। और आपने यदि मेरी सम्पत्ति का अपहरण कर लिया तो मुझे कुछ ज्ञान ही प्रदान करें ।।४७।। क्योंकि ऐश्वर्य ही विपत्ति का बीज, छिपे हुए ज्ञान (की प्राप्ति) का कारण, मोक्षमार्ग की अर्गला, दृढ़ता से हरिभक्ति का बाधक और जन्म, मृत्यु, जरा, रोग, शोक एवं दुःख का परम उत्पादक है। सम्पत्ति रूपी अन्धकार से अन्धा बना मनुष्य मुक्ति-मार्ग को नहीं देख पाता है। हे मुने! सम्पत्ति से मतवाला, अत्यन्त मूढ़ तथा मदमत्त व्यक्ति चेतना से युक्त तथा बान्धवों से घिरा हुआ होने पर भी बन्धुओं से द्वेष करता है ।।४८

१क. °कर्मीतिकरं प०।

संपन्मदप्रमत्तश्च विषयान्धश्च विह्वलः । महाकामी साहसिकः सत्त्वमार्गं न पश्यति ॥५१॥
द्विविधो विषयान्धश्च राजसस्तामसः स्मृतः । अशास्त्रज्ञस्तामसश्च शास्त्रज्ञो राजसः स्मृतः ॥५२॥
शास्त्रे च द्विविधं मार्गं निर्दिष्टं मुनिपुंगव । प्रवृत्तिबीजमेकं च निवृत्तेः कारणं परम् ॥५३॥
चरन्ति जीविनश्चाऽऽदौ प्रवृत्तौ दुःखवर्त्मनि । स्वच्छन्दे चाप्रसन्ने च निर्विरोधे च संततम् ॥५४॥
आपातमधुरे लोभात्क्लेशे च सुखमानिनः । परिणामोत्पत्तिबीजे जन्ममृत्युजराकरे ॥५५॥
अनेकजन्मपर्यन्तं कृत्वा च भ्रमणं मुदा । स्वकर्मविहितायां च नानायोन्यां क्रमेण च ॥५६॥
ततः कृष्णानुग्रहाच्च सत्सङ्गं लभते जनः । सहस्रेषु शतेष्वेको भवाब्धेः पारकारणम् ॥५७॥
साधुः सत्त्वप्रदीपेन मुक्तिमार्गं प्रदर्शयेत् । तदा करोति यत्नं च जीवो बन्धनखण्डने ॥५८॥
अनेकजन्मयोगेन तपसाऽनशनेन च । तदा लभेन्मुक्तिमार्गं निर्विघ्नं सुखदं परम् ॥५९॥
इदं श्रुतं गुरोर्वक्त्रात्प्रसंगावसरेण च । नहि पृष्टमतोऽन्यच्च भवदुःखौघवेष्टितः ॥६०॥
अधुना विधिना दत्तो विपत्तौ ज्ञानसागरः । संपद्रूपा विपदियं मम निस्तारकारिणी ॥६१॥

॥५०॥ सम्पत्ति रूपी मद (नशे) से महामत्त प्राणी (सदैव) विषयों (भोगों) से अन्धा, व्याकुल, महाकामी तथा साहसिक होने से सात्त्विक मार्ग को नहीं देखता है ॥५१॥ राजस और तामस भेद से विषयान्ध प्राणी दो प्रकार के होते हैं, जिनमें तामस शास्त्रज्ञान से रहित और राजस शास्त्रज्ञ होते हैं ॥५२॥ हे मुनिपुंगव ! शास्त्र में (जीवों) के लिए) दो प्रकार के मार्ग बताये गये हैं जिनमें पहला प्रवृत्तिमार्ग का बीज (कारण) है और दूसरा उससे परे निवृत्तिमार्ग का ॥५३॥ जीवसमूह सर्वप्रथम दुःखपूर्ण प्रवृत्ति मार्ग में, जो स्वच्छन्द, प्रसन्नतारहित और निर्बाध है, निरन्तर भ्रमण करता है॥५४॥ यह (प्रवृत्ति मार्ग) आपात मधुर (देखने में अकस्मात् सुन्दर) होते हुए भी दुःखमय है। जीव लोभवश उसी दुःख को सुख मान लेता है, जिसका परिणाम (भविष्य में) उत्पत्ति का कारण होता है और इसीलिए इसे जन्म, मृत्यु एवं जरा (बुढ़ाई) का कर्ता कहते हैं ॥५५॥ अपने कर्मानुसार विविध योनियों में क्रमशः जीववृन्द घूमा करते हैं। इस प्रकार अनेक जन्म पर्यन्त भ्रमण करते हुए सहस्रों सैकड़ों में किसी एक मनुष्य को भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा से सत्संग की प्राप्ति होती है, जो इस संसारसागर को पार करने का एकमात्र कारण होता है॥५६-५७॥ क्योंकि साधु (सज्जन) लोग सत्त्वरूपी दीपक से मुक्ति का मार्ग दिखा देते हैं और तभी यह जीव अपने (कर्म) बन्धन को काटने के लिए यत्न करता है ॥५८॥ अनन्तर अनेक जन्म के योगाभ्यास, तप एवं अनशन करने के द्वारा वह परम सुखदायक मुक्ति-मार्ग को निर्विघ्न प्राप्त करता है॥५९॥ यद्यपि (किसी) प्रसंग के अवसर पर गुरु के मुख से हमने यह सुन लिया था किन्तु संसार के दुःखों से घिरा रहने के कारण इससे अधिक और कुछ पूछा नहीं॥६०॥ विपत्ति के इस अवसर पर विधि (दैव) ने हमें ज्ञान का सागर ही दे दिया है। यह विपत्ति हमारी सम्पत्ति रूप है, इसी से हमारा उद्धार

ज्ञानसिन्धो दीनबन्धो मह्यं दीनाय सांप्रतम् । देहि किंचिज्ज्ञानसारं भवपारं दयानिधे ॥६२॥
इन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा प्रहस्य ज्ञानिनां गुरुः । ज्ञानं कथितुमारेभे हर्षातितुष्टः समातनः ॥६३॥

दुर्वासा उवाच

अहो महेन्द्र माङ्गल्यमात्मानं द्रष्टुमिच्छसि । आपाततो दुःखबीजं परिणामसुखावहम् ॥६४॥
स्वगर्भयातनानाशपीडाखण्डनकारणम् । दुष्पारासारदुर्वारसंसारार्णवतारकम् ॥६५॥
कर्मवृक्षाङ्कुरच्छेदकारणं सर्वतारकम् । संतोषसंततिकरं प्रवरं सर्ववर्त्मनाम् ॥६६॥
[1]दानेन तपसा वाऽपि व्रतेनानशनादिना । कर्मणा स्वर्गभोगादिसुखं भवति जीविनाम् ॥६७॥
काम्यानां कर्मणां चैव मूलं संछिद्य यत्नतः । अधुनेदं मोक्षबीजं संकल्पाभाव एव च ॥६८॥
यत्कर्म सात्त्विकं कुर्यादसंकल्पितमेव च । सर्वं कृष्णार्पणं कृत्वा परे ब्रह्मणि लीयते ॥६९॥
सांसारिकाणामेतत्तु निर्वाणं मोचकं विदुः । नेच्छन्ति वैष्णवास्तत्तु सेवाविरहकातराः ॥७०॥
सेवां कुर्वन्ति ते नित्यं विधायोत्तमदेहकम् । गोलोके वाऽपि वैकुण्ठे तस्यैव परमात्मनः ॥७१॥
हरिसेवादिरूपां च मुक्तिमिच्छन्ति वैष्णवाः । जीवन्मुक्ताश्च ते शक्र स्वकुलोद्धारकारिणः ॥७२॥

हो जायगा। अतः हे ज्ञान के सागर, हे दीनबन्धो, तथा हे दयानिधे! इस समय आप मुझे संसार से पार करने वाला कुछ ज्ञानतत्त्व प्रदान करें॥६१-६२॥ इन्द्र की ऐसी बातें सुनकर ज्ञानियों के गुरु तथा नित्य अत्यन्त सन्तुष्ट दुर्वासा ने हँसकर ज्ञान का वर्णन आरंभ किया॥६३॥

दुर्वासा बोले—हे महेन्द्र! यह अद्भुत बात है कि अब तुम आत्मकल्याण देखना चाहते हो, जो आपाततः (सहसा) तो दुःख का कारण है, किन्तु परिणाम में सुख देने वाला है॥६४॥ अपनी गर्भयातना, नाश तथा पीड़ा के खण्डन का कारण एवं दुष्पार (कठिनता से पार किये जाने वाले), साररहीन और दुर्वार (अनिवार्य) संसारसागर से तारने वाला है॥६५॥ कर्मरूपी वृक्ष के अंकुर के नाश का कारण, सबको तारने वाला, सन्तोष की वृद्धि करने वाला और सभी मार्गों में श्रेष्ठ है॥६६॥ दान, तप, व्रत तथा अनशन आदि कर्मों से जीवों को स्वर्ग-भोगादि सुख प्राप्त होते हैं॥६७॥ अतः सम्प्रति काम्य कर्मों के मूल कारण (संकल्प) का नाश तुम प्रयत्नपूर्वक करो, क्योंकि संकल्परहित कर्म करना ही मोक्ष का कारण है। इसलिए संकल्परहित जितने सात्त्विक कर्म किये जाते हैं, उन्हें कृष्णार्पण कर देने पर व्यक्ति परब्रह्म में लीन हो जाता है॥६८-६९॥संसारी जीवों के लिए यही निर्वाण मोक्ष कहा गया है, जिसे वैष्णव लोग नहीं चाहते हैं, क्योंकि वे (विष्णु) सेवा-वियोग को ही दुःख मानते हैं॥७०॥ (वैष्णव लोग) गोलोक या वैकुण्ठ लोक में उसी परमात्मा का कर उत्तम शरीर धारण, (पार्षद बनकर सदैव) सेवा करते हैं॥७१॥ हे शक्र! वे जीवन्मुक्त और अपने कुल के उद्धारक होते हैं, और भगवान् को सेवा आदि रूप ही मुक्ति चाहते हैं॥७२॥ भगवान् विष्णु

१क. ज्ञाने०।

स्मरणं कीर्तनं विष्णोरर्चनं पादसेवनम् । वन्दनं स्तवनं नित्यं भक्त्या नैवेद्यभक्षणम् ।।७३।।
चरणोदकपानं च तन्मन्त्रजपनं परम् । इदं निस्तारबीजं च सर्वेषामीप्सितं भवेत् ।।७४।।
इदं मृत्युञ्जयज्ञानं दत्तं मृत्युञ्जयेन मे । तच्छिष्योऽहं च निःशङ्कस्तत्प्रसादाच्च सर्वतः ।।७५।।
स जन्मदाता स गुरुः स च बन्धुः सतां परः । यो ददाति हरेर्भक्तिं त्रैलोक्ये च सुदुर्लभाम् ।।७६।।
दर्शयेदन्यमार्गं च विना श्रीकृष्णसेवनम् । स च तं नाशयत्येव ध्रुवं तद्वधभाग्भवेत् ।।७७।।
संततं जगतां कृष्णनाम मङ्गलकारणम् । मङ्गलं वर्धते नित्यं न भवेदायुषो व्ययः ।।७८।।
तेभ्योऽप्यपैति कालश्च मृत्युश्च रोग एव च । संतापश्चैव शोकश्च वैनतेयादिवोरगाः ।।७९।।
कृष्णमन्त्रोपासकश्च ब्राह्मणः श्वपचोऽपि वा । ब्रह्मलोकं समुल्लङ्घ्य याति गोलोकमुत्तमम् ।।८०।।
ब्रह्मणा पूजितः सोऽपि मधुपर्कादिना च यः । स्तुतः सुरैश्च सिद्धैश्च परमानन्दभावनः ।।८१।।
ज्ञानसारं तपःसारं ब्रह्मसारं परं शिवम् । शिवेनोक्तं योगसारं श्रीकृष्णपदसेवनम् ।।८२।।
ब्रह्मादितृणपर्यन्तं सर्वं मिथ्यैव स्वप्नवत् । भज सत्यं परं ब्रह्म राधेशं प्रकृतेः परम् ।।८३।।
अतीव सुखदं सारं भक्तिदं मुक्तिदं परम् । सिद्धियोगप्रदं चैव दातारं सर्वसंपदाम् ।।८४।।

के नित्य भक्तिपूर्वक स्मरण, कीर्तन, पूजन, चरणसेवन, वन्दन, स्तुति, नैवेद्यभक्षण, चरणोदकपान और उनके परम मन्त्र का जप, यही उद्धार का बीज है और सभी लोगों को अति इष्ट भी है ।।७३-७४।। यह मृत्यञ्जय-ज्ञान मृत्युञ्जय (शिव) द्वारा मुझे प्राप्त हुआ है। क्योंकि मैं उन्हीं का शिष्य हूँ और उन्हीं की कृपा से चारों ओर निःशंक रहा करता हूँ ।।७५। वही सज्जनों के जन्मदाता (पिता), गुरु और श्रेष्ठ बन्धु हैं क्योंकि तीनों लोकों में अति दुर्लभ भगवान् विष्णु की भक्ति वही प्रदान करते हैं ।।७६।। जो भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा को त्यागकर अन्य मार्ग प्रदर्शन करता है, वह निश्चित उसका नाश करता है इसीलिए उसके वध का भागी उसे ध्रुव होना पड़ता है ।।७७।। भगवान् श्रीकृष्ण का नाम (जप, कीर्तन आदि) संसार के मंगल का निरन्तर कारण है, इससे नित्य मंगल की वृद्धि होती है और आयु (समय) का अपव्यय नहीं होता है ।।७८।। गरुड़ को देखकर सर्पों की भाँति काल, मृत्यु, रोग, सन्ताप और शोक सभी उससे भाग जाते हैं ।।७९।। भगवान् श्रीकृष्ण के मन्त्र की उपासना करने वाला ब्राह्मण हो या चाण्डाल, सभी ब्रह्मलोक को पार कर परमोत्तम गोलोक में चले जाते हैं ।।८०।। मधुपर्क आदि के द्वारा ब्रह्मा उसकी पूजा करते हैं और उस सिद्ध परमानन्द मूर्ति की देवगण स्तुति करते हैं ।।८१।। शंकर ने भगवान् श्रीकृष्ण के चरण-सेवन को ही ज्ञान का सार, तप का सार, ब्रह्म का सार, परमकल्याण एवं योग का सार बतलाया है ।।८२।। क्योंकि कीटादि से आरम्भ कर ब्रह्मा तक सभी मिथ्या है, इसीलिए केवल राधेश भगवान् श्रीकृष्ण को भजो जो सत्यमूर्ति, परब्रह्म, प्रकृति से परे, अत्यन्त सुखप्रद, (सब के) सार, भुक्ति-मुक्ति-प्रदायक सिद्धियोग के देने वाले और समस्त सम्पत्ति के दाता हैं ।।८३-८४।। यद्यपि योगी, सिद्ध, यती, तपस्वी आदि इन सभी के लिए कर्म-भोग होता है किन्तु नारायण

योगिनामपि सिद्धानां यतीनां[1] च तपस्विनाम् । सर्वेषां कर्मभोगोऽस्ति न नारायणसेविनाम् ॥८५॥
भस्मसाच्च भवेत्पापं यदुपस्पर्शमात्रतः । ज्वलदग्नौ पातितं च यथा शुष्केन्धनं तथा ॥८६॥
ततो रोगा हि वेपन्ते पापानि च भयानि च । दूरतश्च पलायन्ते यमदूतास्ततो भयात् ॥८७॥
तावन्निबद्धः संसारे कारागारे विधेर्जनः । न यावत्कृष्णमन्त्रं च प्राप्नोति गुरुवक्त्रतः ॥८८॥
कृतकर्मौघभोगाख्यनिगडच्छेदकारणम् । मायाजालोच्छेदकरं मायापाशनिकृन्तनम् ॥८९॥
गोलोकमार्गसोपानं निस्तारे बीजकारणम् । भक्त्यङ्कुरस्वरूपं च नित्यं वृद्धमनश्वरम् ॥९०॥
सारं च सर्वतपसां योगानां साधनं तथा । सिद्धीनां वेदपाठानां व्रतादीनां च निश्चितम् ॥९१॥
दानानां तीर्थस्नानानां यज्ञादीनां पुरंदर । [2]पूजानामुपवासानामित्याह कमलोद्भवः ॥९२॥
पुंसां लक्षं पितॄणां च शतं मातामहस्य च । पूर्वं परं च तत्संख्यं पितरं मातरं गुरुम् ॥९३॥
सहोदरं कलत्रं च बन्धुं शिष्यं च किङ्करम् । समुद्धरेच्च श्वशुरं श्वश्रूकन्यां च तत्सुतम् ॥९४॥
स्वात्मानं च सतीर्थ्यं च गुरुपत्नीं गुरोः सुतम् । उद्धरेद्बलवान्भक्तो मन्त्रग्रहणमात्रतः ॥९५॥
मन्त्रग्रहणमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः । तत्स्पर्शपूतस्तीर्थौघः सद्यः पूता वसुंधरा ॥९६॥
अनेकजन्मपर्यन्तं दीक्षाहीनो भवेन्नरः । तदन्यदेवमन्त्रं च लभते पुण्यलेशतः ॥९७॥

की सेवा करने वाले के लिए नहीं होता है ॥८५॥ क्योंकि प्रज्वलित अग्नि में पड़े हुए सूखे इंधन की भाँति उनके स्पर्श मात्र से पाप भस्म हो जाता है ॥८६॥ उनसे रोग, पाप और भय काँपते रहते हैं और यमदूत तो भयभीत होकर-दूर से ही पलायन कर जाते हैं ॥८७॥ ब्रह्मा के संसार रूपी कारागार में प्राणी तभी तक आबद्ध रहता है, जब तक गुरुके मुख द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण का मन्त्र प्राप्त नहीं करता है ॥८८॥ क्योंकि वह किये हुए कर्म-समूहों के भोगरूपी बेड़ी के नाश का कारण, मायाजाल का विनाशक, मायारूपी पाश को काटने वाला, गोलोक जाने की सीढ़ी, उद्धार के लिए बीज का कारण, भक्तिरूपी अंकुर का स्वरूप, नित्य बढ़ने वाला, नाश-रहित, समस्त तपस्याओं का सारभाग, योगों, वेदपाठों, सिद्धियों और समस्त व्रतों का निश्चित साधन है ॥८९-९१॥ हे पुरन्दर ! सभी प्रकार के दानों, स्नानों यज्ञों, पूजाओं और उपवासों का भी वह (प्रधान) साधन है, ऐसा ब्रह्मा ने स्वयं कहा है ॥९२॥ इसलिए मंत्र के केवल ग्रहण मात्र से बलवान् भगवद्भक्त अपने पूर्वजों की एक लाख पीढ़ियों, मातामह (नाना) की सौ पीढ़ियों, माता-पिता, गुरु, सहोदर भाई, स्त्री, बन्धु, शिष्य, सेवक (नौकर), सास-ससुर, कन्या, उसके पुत्र, अपने सहपाठी (साथ में पढ़ने वाले छात्र), गुरुपत्नी और गुरुपुत्र का उद्धार करता है ॥९३-९५॥ तथा मंत्रग्रहण मात्र से मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता हैं। उसके स्पर्श करने से तीर्थवृन्द पवित्र होते हैं और पृथ्वी भी तुरन्त शुद्ध होती है ॥९६॥

अनेकों जन्म तक दीक्षारहित मनुष्य पुण्य का लेशमात्र प्राप्त होने पर किसी अन्य देवता का मन्त्र प्राप्त करता है ॥९७॥ फिर सात जन्मों तक उस देवता की अपने कर्मानुसार सेवा

१क. व्रती० । २. जपाना० ।

सप्तजन्मसु देवानां कृत्वा सेवां स्वकर्मतः । लभते च रवेर्मन्त्रं साक्षिणः सर्वकर्मणाम् ॥९८॥
जन्मत्रयं भास्करं च सेवित्वा मानवः शुचिः । लभेद्गणेशमन्त्रं च सर्वविघ्नहरं परम् ॥९९॥
जन्मत्रयं तं निषेव्य निर्विघ्नश्च भवेन्नरः । विघ्नेशस्य प्रसादेन दिव्यज्ञानं लभेन्नरः ॥१००॥
तदा ज्ञानप्रदीपेन समालोच्य महामतिः । अज्ञानान्धतमश्छित्त्वा महामायां भजेन्नरः ॥१०१॥
प्रकृतिं विष्णुमायां च दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम् । सिद्धिदां सिद्धिरूपां च परमां सिद्धियोगिनीम् [1] ॥१०२॥
वाणीरूपां च [2] पद्मां च भद्रां कृष्णप्रियात्मिकाम् । नानारूपां तां निषेव्य जन्मनां शतकं नरः ॥१०३॥
तत्प्रसादाद्भवेज्ज्ञानी ज्ञानानन्दं तदा भजेत् । कृष्णं ज्ञानाधिदेवं च महादेवं सनातनम् ॥१०४॥
शिवं शिवस्वरूपं च शिवदं शिवकारणम् । परमानन्दरूपं च परमानन्ददायिनम् ॥१०५॥
सुखदं मोक्षदं चैव दातारं सर्वसंपदाम् । अमरत्वपदं चैव दीर्घमायुष्यदं परम् ॥१०६॥
इन्द्रत्वं च मनुत्वं च दातुं शक्तं च लीलया । राजेन्द्रत्वप्रदं चैव ज्ञानदं हरिभक्तिदम् ॥१०७॥
जन्मत्रयं तमाराध्य चाऽऽशुतोषप्रसादतः । सर्वदस्य प्रसादेन शङ्करस्य महात्मनः ॥१०८॥
वरदस्य वरेणैव हरिभक्तिं लभेद्ध्रुवम् । तदा तद्भक्तसंसर्गात्कृष्णमन्त्रं लभेद्ध्रुवम् ॥१०९॥

करने के फलस्वरूप उसे समस्त कर्मों के साक्षी सूर्य का मंत्र प्राप्त होता है ॥९८॥ वह सदाचारी पुरुष तीन जन्मों तक भास्कर की सेवा करने पर सम्पूर्ण विघ्नों के अपहर्ता गणेशदेव का परममन्त्र प्राप्त करता है ॥९९॥ तीन जन्मों तक उनकी सेवा करने पर वह विघ्नबाधा रहित हो जाता है और गणेश के प्रसाद से उसे दिव्यज्ञान की प्राप्ति हो जाती है ॥१००॥ पश्चात् वह महाबुद्धिमान् मनुष्य उस ज्ञानदीप द्वारा भलीभाँति विचार कर और अज्ञानरूपी अन्धकार का नाश करके उस महामाया की सेवा करता है, जिसे प्रकृति, भगवान् विष्णु की माया, दुर्गति-नाशिनी दुर्गा, सिद्धिप्रदा, सिद्धिस्वरूपा, परम सिद्धियोगिनी, सरस्वतीरूपा और भगवान् कृष्ण की प्रियास्वरूपा भद्र-मूर्ति कमला कहा जाता है। अनेक रूप वाली उस भगवती की सौ जन्मों तक सेवा करने पर उनकी कृपा से वह मनुष्य ज्ञानी हो जाता है और तब उस ज्ञानानन्द को भजता है, जो कृष्ण, ज्ञान के अधीश्वर, सनातन (नित्य), शिव, कल्याणस्वरूप, कल्याणप्रद, कल्याण के कारण, परमानन्द रूप, परमानन्ददाता, सुखदायक, मोक्ष-प्रद, समस्त सम्पत्ति के देने वाले, अमरत्व और परम दीर्घायु प्रदान करने वाले हैं॥१०१-१०६॥ वे इन्द्रत्व और मनुत्व को लीलापूर्वक देने में समर्थ हैं तथा राजेन्द्रत्व, ज्ञान और भगवान् की भक्ति देने वाले भी हैं। आशुतोष (शिव) की कृपा से तीन जन्मों तक उनकी आराधना करके सर्वदायक एवं वरदायक महात्मा शंकर की कृपा से ही मनुष्य भगवान् की भक्ति निश्चित प्राप्त करता है तथा भगवद्भक्त के सम्पर्क से उसे उस समय भगवान् श्रीकृष्ण का मन्त्र भी निश्चित प्राप्त हो जाता है ॥१०८-१०९॥

१क. ०रूपिणाम् । २क. च प्रथमां म० ।

निर्मलज्ञानदीपेन प्रदीप्तेन च तत्त्ववित् । ब्रह्मादितृणपर्यन्तं सर्वं मिथ्यैव पश्यति ॥११०॥
दयानिधेः प्रसादेन निर्मलज्ञानमालभेत् । वरदस्य वरेणैव हरिभक्तिं लभेद्ध्रुवम् ॥१११॥
तदा निवृत्तिमाप्नोति सारात्सारां परात्पराम् । यत्र देहे लभेन्मन्त्रं तद्देहावधि भारते ॥११२॥
तत्पाञ्चभौतिकं त्यक्त्वा बिभर्ति दिव्यरूपकम् । करोति दास्यं गोलोके वैकुण्ठे वा हरेः पदे ॥११३॥
परमानन्दसंयुक्तो मोहादिषु विवर्जितः । न विद्यते पुनर्जन्म पुनरागमनं हरे ॥११४॥
पुनश्च न पिबेत्क्षीरं धृत्वा मातृस्तनं परम् । विष्णुमन्त्रोपासकानां गङ्गादितीर्थसेविनाम् ॥११५॥
स्वधर्मिणां च भिक्षूणां पुनर्जन्म न विद्यते । तीर्थे परित्यजेत्पापं क्रियां कृत्वा हरिं भजेत् ॥११६॥
अयं निरूपितो धात्रा स्वधर्मस्तीर्थसेविनाम् । तन्नाममन्त्रं प्रजपेत्तत्सेवादिषु तत्परः ॥११७॥
तद्व्रतोपवासरत इत्युक्तो विष्णुसेविनाम् । सदन्ने वा कदन्ने वा लोष्टे वा काञ्चने तथा ॥११८॥
समबुद्धिर्यस्य शश्वत्स संन्यासीति कीर्तितः । दण्डं कमण्डलुं रक्तवस्त्रमात्रं च धारयेत् ॥११९॥
नित्यं प्रवासी नैकत्र स्यात्संन्यासीति कीर्तितः । शुद्धाचारद्विजान्नं च भुङ्क्ते लोभादिवर्जितः ॥१२०॥
किंतु किंचिन्न याचेत स संन्यासीति कीर्तितः । न व्यापारी नाऽऽश्रमी च सर्वकर्मविवर्जितः[1] ॥१२१॥

अनन्तर उस तत्त्ववेत्ता को उस प्रदीप्त निर्मल ज्ञान द्वारा ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त सारा जगत् मिथ्या दिखायी देता है। इस प्रकार उन दयानिधान के प्रसाद से उसे निर्मल ज्ञान प्राप्त होता है। वरदायक (शिव) के वरदान द्वारा ही भगवान् की निश्चित भक्ति प्राप्त होने पर उसे सार से भी सार और श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ शान्ति प्राप्त हो जाती है।

जिस शरीर से मन्त्र की प्राप्ति होती है, उसकी अवधि तक वह पुरुष भारत में रहता है। अनन्तर उस पंचतत्त्व के शरीर का त्याग करके दिव्य देह प्राप्त करता है, जिससे गोलोक या वैकुण्ठ लोक में भगवान् के यहाँ दास होकर उनकी सेवा करता है॥११०-११३॥ हे इन्द्र! वह सदैव परमानन्द में मग्न रहने के कारण मोहादि जालों से रहित हो जाता है। पुनः (इस लोक में) आगमन न होने के कारण उसका पुनर्जन्म नहीं होता है। वह फिर कभी माता का स्तन पकड़ कर दूध नहीं पीता है क्योंकि विष्णु-भक्तों के उपासकों, गंगा आदि तीर्थों की सेवा करने वालों अपने धर्म का पालन करने वालों और भिक्षुओं का पुनर्जन्म नहीं होता है। ॥११४-११५½॥ कर्म-क्रिया करके पाप का त्याग करे और भगवान् का भजन करे, ब्रह्मा ने तीर्थसेवियों का यही स्वधर्म बताया है। विष्णुसेवकों के लिए उनके नाम मन्त्र का जप और उनकी सेवाओं में सदैव तत्पर रहते हुए व्रत-उपवास करना स्वधर्म कहा है। उत्तम अन्न और कदन्न तथा लोहे एवं सुवर्ण में निरन्तर जिसकी समान बुद्धि रहती है उसे 'संन्यासी' कहा गया है। जो दण्ड, कमण्डलु और गेरुआ वस्त्र मात्र धारण करता है तथा नित्य प्रवासी (यात्री) रह कर एक स्थान में नहीं रहता है, उसे संन्यासी कहा जाता है। शुद्ध सदाचारी ब्राह्मण का अन्न भोजन करने वाले, लोभादि दोष रहित और कहीं किसी वस्तु की याचना न करने वाले को 'संन्यासी'

१क. धर्म०।

ध्यायेन्नारायणं शश्वत्स संन्यासीति कीर्तितः । शश्वन्मौनी ब्रह्मचारी संभाषापरिवर्जितः ।।१२२।।
सर्वं ब्रह्ममयं पश्येत्स संन्यासीति कीर्तितः । सर्वत्र समबुद्धिश्च हिंसामायाविवर्जितः ।।१२३।।
क्रोधाहंकाररहितः स संन्यासीति कीर्तितः । अयाचितोपस्थितं च मिष्टामिष्टं च भुक्तवान् ।।१२४।।
न याचते भक्षणार्थी स संन्यासीति कीर्तितः । न च पश्येन्मुखं स्त्रीणां न तिष्ठेत्तत्समीपतः ।।१२५।।
दारवीमपि योषां च न स्पृशेद्यः स भिक्षुकः । अयं संन्यासिनां धर्म इत्याह कमलोद्भवः ।।१२६।।
विपर्यये विनाशश्च जन्म याम्यं भयं भवेत् । जन्मदुःखं याम्यदुःखं जीविनामतिदारुणम् ।।१२७।।
सुरसूकरयोनौ वा गर्भे दुःखं समं सुर । योनौ वा क्षुद्रजन्तूनां पश्वादीनां तथैव च ।।१२८।।
गर्भे स्मरन्ति सर्वे ते कर्म जन्मशतोद्भवम् । विस्मरेन्निर्गतो जीवो गर्भाद्वै विष्णुमायया ।
स्वदेहं पाति यत्नेन सुरो वा कीट एव वा ।।१२९।।
योनेरभ्यन्तरे शुक्रे पतिते पुरुषस्य च । शुक्रं शोणितयुक्तं च सहसा तत्क्षणं भवेत् ।।१३०।।
रक्ताधिक्ये मातृसमश्चेतरे पितुराकृतिः । युग्माहे च भवेत्पुत्रः कन्यका तद्विपर्यये ।।१३१।।
रविभौमगुरूणां च वारे चेत्तद्भवेत्सुतः । अयुग्माहे तदितरे वारे वै कन्यका भवेत् ।।१३२।।

कहा गया है। जो किसी भाँति का व्यापार नहीं करता है, न किसी स्थान में रहता है और समस्त कर्मों से रहित होकर केवल नारायण का ही निरन्तर ध्यान करता है, उसे 'संन्यासी कहा गया है। निरन्तर मौन रहने वाला ब्रह्मचारी संसारी बातों से वर्जित रह कर सब को ब्रह्ममय देखे, उसे 'संन्यासी' कहते हैं। सर्वत्र समान बुद्धि रखने वाला, हिंसा और माया से रहित तथा क्रोध व अहंकार से शून्य हो, उसे 'संन्यासी' कहा जाता है। बिना याचना किये उपस्थित मधुर व अमधर किसी प्रकार के अन्न का भोजन करने वाला और भोजन के लिए कभी भी याचना न करने वाला 'संन्यासी' कहा गया है। जो स्त्रियों का मुख कभी न देखे न उनके समीप ठहरे और काष्ठ की भी बनी हुई स्त्री का स्पर्श न करे वही 'संन्यासी' है। यह संन्यासियों का धर्म है, ऐसा ब्रह्मा ने कहा है ।।११६-१२६।। इस (धर्म) का विपर्यय होने पर उस प्राणी को जन्म तथा यम-यातना का भय प्राप्त होता है। जीवों के लिए जन्म-दुःख तथा अतिभीषण यमयातना कही गई है।।१२७।। हे सुर! इस प्रकार देवता, सूकर तथा पशु आदि छोटे जीवों की योनि में जीव को गर्भ-दुःख समान ही प्राप्त होता है ।।१२८।। गर्भ में रह कर सभी जीव अपने सैकड़ों जन्मों के किए गये कर्मों का स्मरण करते हैं और पुनः गर्भ से निकलने पर भगवान् विष्णु की माया के कारण वे उसे भूल जाते हैं। देव हो या छोटा कीड़ा हो, सभी अपनी देह की रक्षा सप्रयत्न करते हैं।।१२९।। योनि के भीतर पुरुष द्वारा वीर्यपात करने पर वह वीर्य उसी समय सहसा स्त्री के शोणित (रज) से संयुक्त हो जाता है।।१३०।। पुनः रक्त अधिक होनेपर देह की आकृति माता के समान होती है और न्यून होने से पिता के समान होती है। युग्म (सम) दिनों में गर्भधारण होने पर पुत्र तथा विषम दिनों में कन्य उत्पन्न होती है ।।१३१।। रवि, मंगल और बृहस्पति के दिन (गर्भाधान होने से) पुत्र और उससे भिन्न दिन में कन्या उत्पन्न होती है ।।१३२।। जिसका जन्म प्रथम प्रहर में होता है वह अल्पायु होता है, दूसरे में मध्यमायु,

प्रथमप्रहरे जन्म यस्य सोऽल्पायुरेव च । द्वितीये मध्यमश्चैव तृतीये तत्परो भवेत् ॥१३३॥
चतुर्थे चिरजीवी स्यात्क्षणानामनुरूपकः । दुःखी वाथ सुखी वाऽपि पूर्वकर्मानुरूपतः ॥१३४॥
यादृशे च क्षणे जन्म प्रसवस्तादृशे भवेत् । प्रसूतिक्षणचर्चां च कुर्वन्त्येवं विचक्षणाः ॥१३५॥
कललं त्वेकरात्रेण प्रवृद्धः स्याद्दिने दिने । सप्तमे बदराकारो मासे गण्डुसमो भवेत् ॥१३६॥
मासत्रये मांसपिण्डो हस्तपादादिवर्जितः । सर्वावयवसंपन्नो देही मासे च पञ्चमे ॥१३७॥
भवेत्तु जीवसंचारः षण्मासे सर्वतत्त्ववित् । दुःखी स्वल्पस्थलस्थायी शकुन्त इव पञ्जरे ॥१३८॥
मातृजग्धान्नपानं च भुङ्क्तेऽमेध्यस्थले स्थितः । हाहेति शब्दं कृत्वा च चिन्तयेदीश्वरं परम् ॥१३९॥
एवं च चतुरो मासान्भुक्त्वा परमयातनाम् । प्रेरितो वायुना काले गर्भाद्बहिर्निर्गतो भवेत् ॥१४०॥
दिग्देशकालाव्युत्पन्नो विस्मृतो विष्णुमायया । शश्वद्विण्मूत्रसंयुक्तः शिशुः स्याच्छैशवावधि ॥१४१॥
परायत्तोऽप्यक्षमश्च मशकादिनिवारणे । कीटादिभुक्तो दुःखी च रौति तत्र पुनः पुनः ॥१४२॥
स्तनान्धोऽप्यसमर्थश्च याच्ञां कर्तुमभीप्सिताम् । न वाणी निःसरेत्तस्य पौगण्डावधि सुस्फुटा ॥१४३॥
पौगण्डे यातनां भुक्त्वा प्राप्नुते यौवनं पुनः । न स्मरेन्मायया देही गर्भादियातनां पुनः ॥१४४॥

तीसरे में उससे अधिक और चतुर्थ में समयानुसार चिरायु होता है। पूर्व जन्मों के कर्मानुसार जीव दुःखी या सुखी भीहोता है ॥१३३-१३४॥ जिस क्षण में जन्म होता है उसी के अनुसार दोष गुण युक्त वह बालक होता है। क्योंकि विद्वानों ने इसी प्रकार प्रसूति समय की चर्चा की है ॥१३५॥ रजवीर्य एकत्र होने पर एक रात्रि में कलल (गर्भ का आरंभिक रूप जब वह कुछ कोषों का गोला होता है) उसी दिन से प्रतिदिन प्रवृद्ध होने लगता है और सातवें दिन पूरे बेर फल के समान हो जाता है। पुनः एक मास में गांठ के समान और तीन मास में हाथ पैर रहित मांस पिंड बन जाता है। इस प्रकार यह देही (आत्मा) पाँचवें मास में (शरीर के) समस्त अंगों से युक्त हो जाता है ॥१३६-१३७॥ समस्त तत्त्वों के वेत्ता उस जीव का छठे मास में संचार होता है जो पिंजड़े में पक्षी की भाँति दुःखी होकर अति संकुचित स्थान में स्थित रहता है ॥१३८॥ उस अपवित्र स्थान में स्थित रह कर वह जीव माता के भोजन किये हुए अन्न-पान को खाता है और (असह्य दुःख के कारण) 'हाय-हाय' शब्द करते हुए प्रतिक्षण उस परमेश्वर का चिन्तन करता रहता है ॥१३९॥ इसी प्रकार शेष चार मास उस परम यातना का अनुभव कर के समय पर वायु द्वारा प्रेरित होकर गर्भ से बाहर निकलता है ॥१४०॥ दिशा, देश और काल में अविच्छिन्न उस जीव को उसी समय भगवान विष्णु की माया से (पूर्व) ज्ञान विस्मृत हो जाता है। इस भाँति निरन्तर विष्ठा-मूत्र में लिपटे रह कर वह जीव अपनी शैशवावस्था तक निरा बच्चा रहता है ॥१४१॥ पराधीन रहने के कारण वह मच्छर आदि को भगाने में असमर्थ रहता है, कीड़ों आदि के काटने पर केवल बार-बार रुदन करता है ॥१४२॥ दुग्धपान करते हुए भी वह अपनी अभिलषित की याचना करने में असमर्थ रहता है, क्योंकि पौगण्डावस्था तक उसकी वाणी अति स्फुट (साफ) नहीं निकलती है ॥१४३॥ इस प्रकार पौगण्डावस्था तक यातनाओं का भोग करता हुआ वह युवावस्था प्राप्त करता है, जिसमें वह जीव गर्भादि के दुःखों का स्मरण भी माया से परवश होने के कारण कभी नहीं कर पाता है ॥१४४॥ उन दिनों वह भोजन और स्त्री-सहवास में

आहारमैथुनार्तश्च नानामोहादिवेष्टितः । पुत्रं कलत्रमनुगं यत्नेन परिपालयेत् ॥१४५॥
एवं यावत्समर्थश्च तावदेव हि पूजितः । असमर्थं च मन्यन्ते बान्धवा गोजरं यथा ॥१४६॥
यदाऽतीव जरायुक्तो जडोऽतिबधिरो भवेत् । कफश्वासादियुक्तश्च परायत्तोऽतिमूढवत् ॥१४७॥
तदन्तरेऽनुतापं च कुरुते संततं पुनः । न सेवितं हरेस्तीर्थं सत्सङ्गश्चेति तापनः ॥१४८॥
पुनश्च मानवीं योनिं लभामि भारते यदि । तदा तीर्थं गमिष्यामि भजे वै कृष्णमित्यहो ॥१४९॥
इत्येवमादि मनसि कुर्वन्तं तं जडं सुर । गृह्णाति यमदूतश्च काले प्राप्तेऽतिदारुणः ॥१५०॥
स पश्येद्यमदूतं च पाशहस्तं च दण्डिनम् । अतीव कोपरक्ताक्षं विकृताकारमुल्बणम् ॥१५१॥
दुर्निवार्यमुपायैश्च बलिष्ठं च भयङ्करम् । दुर्दृश्यं सर्वसिद्धिज्ञं सर्वादृष्टं पुरःस्थितम् ॥१५२॥
दृष्टमात्रान्महाभीतो विण्मूत्रं च समुत्सृजेत् । तदा प्राणांस्त्यजेत्सद्यो देहं वै पाञ्चभौतिकम् ॥१५३॥
अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं गृहीत्वा यमकिङ्करः । विन्यस्य भोगदेहे च स्वस्थानं प्रापयेद्द्रुतम् ॥१५४॥
जीवो गत्वा यमं पश्येत्सर्वधर्मज्ञमेव च । रत्नसिंहासनस्थं च सस्मितं सुस्थिरं परम् ॥१५५॥

लिप्त, अनेक भाँति के मोहजाल से आच्छन्न तथा आगे बच्चों के उत्पन्न होने पर उनमें एवं स्त्री में सदा निरत रहकर यत्नपूर्वक पालन-पोषण करता है॥१४५॥ अनन्तर जब तक वह (परिवार के पालन-पोषण में) समर्थ रहता है तभी तक घर वाले उसका सम्मान करते हैं और असमर्थ हो जाने पर उसे बन्धु आदि गोजर (बुड्ढे बैल) की भाँति मानते हैं॥१४६॥ इस प्रकार जब वह अत्यन्त वृद्ध, अति बधिर (बहरा), खांसी और श्वास आदि के रोगों से युक्त और अत्यन्त मूढ के समान पराधीन हो जाता है, उस बीच फिर निरन्तर (अपने किये पर) अनुताप करता रहता है और कहता भी है कि—मैंने भगवान् के तीर्थों की सेवा कभी नहीं की और कभी (महात्माओं का) सत्संग भी नहीं किया॥१४७-१४८॥ अब यदि भारत में पुनः कभी मनुष्य देह मिली तो तीर्थयात्रा अवश्य करूँगा और (साथ-साथ) भगवान् कृष्ण का भजन भी करता रहूँगा॥१४९॥ हे सुर! इस प्रकार केवल मन में सोचविचार करते हुए उस जड़ जीव को अवसर के प्राप्त होते अति भीषण यमदूत पकड़ लेते हैं॥१५०॥ और वह उन यमदूतों को उस समय देखता भी है, जो हाथ में फांस और दण्ड लिए, अति कोप के कारण रक्त नेत्र तथा विकृत आकार (भयंकर रूप) के दिखायी देते हैं। वे यमदूत उपायों द्वारा न रोकने योग्य, बलवान् एवं भयंकर हैं। उनके दर्शन अति दुःखप्रद होते हैं। वे समस्त सिद्धियों के ज्ञाता एवं अदृश्य होकर (प्राणी के) सामने ही स्थित रहते हैं॥१५१-१५२॥ उस समय जीव उन्हें देखते ही महाभयभीत होकर विष्ठा-मूत्र करने लगता है। अनन्तर इस पाञ्चभौतिक शरीर और प्राणों के त्याग करते समय यमदूत उस अंगूठे मात्र आकार वाले पुरुष को पकड़ कर भोग देह (सूक्ष्मदेह) में रख देते हैं और शीघ्रता से उसे अपने स्थान (यमपुर) ले जाते हैं॥१५३-१५४॥ अनन्तर जीव वहाँ पहुँच कर यम को देखता है, जो समस्त धर्मों के ज्ञाता, रत्नखचितसिंहासनासीन, मन्द मुसुकान करते हुए परम सुस्थिर रहते हैं।

धर्माधर्मविचारज्ञं सर्वज्ञं सर्वतोमुखम् । विश्वेष्वेकाधिकारं च विधात्रा निर्मितं पुरा ॥१५६॥
वह्निशुद्धांशुकाधानं रत्नभूषणभूषितम् । वेष्टितं पार्षदगणैर्दूतैश्चापि त्रिकोटिभिः ॥१५७॥
जपन्तं श्रीकृष्णनाम शुद्धस्फटिकमालया । ध्यायमानं तत्पदाब्जं पुलकाङ्कितविग्रहम् ॥१५८॥
सगद्गदं साश्रुनेत्रं सर्वत्र समदर्शिनम् । अतीव कमनीयं च शश्वत्सुस्थिरयौवनम् ॥१५९॥
स्वतेजसा प्रज्वलन्तं सुखदृश्यं विचक्षणम् । शरत्पार्वणचन्द्राभं[1] चित्रगुप्तपुरःस्थितम् ॥१६०॥
पुण्यात्मनां शान्तरूपं पापिनां च भयङ्करम् । तं दृष्ट्वा प्रणमेद्देही महाभीतश्च तिष्ठति ॥१६१॥
चित्रगुप्तविचारेण येषां यदुचितं फलम् । शुभाशुभं च कुरुते तदेव रविनन्दनः ॥१६२॥
एवं तेषां गतायाते निवृत्तिर्नास्ति जीविनाम् । निवृत्तिहेतुरूपं च श्रीकृष्णपदसेवनम् ॥१६३॥
इत्येवं कथितं सर्वं वरं प्रार्थय वाञ्छितम् । सर्वं दास्यामि ते वत्स न मेऽसाध्यं च किंचन ॥१६४॥

महेन्द्र उवाच

इन्द्रत्वं च गतं भद्रं किमैश्वर्ये प्रयोजनम् । कल्पवृक्ष मुनिश्रेष्ठ देहि मे परमं पदम् ॥१६५॥
महेन्द्रस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य मुनिपुंगवः । तमुवाच वचः सत्यं वेदोक्तं सारमेव च ॥१६६॥

॥१५५॥ उन्हीं धर्माधर्मविचारशील, सर्वज्ञ और सब ओर मुखवाले को विधाता ने निखिल विश्व का एकाधिकार पूर्वकाल में ही सौंप दिया था ॥१५६॥ जो अग्नि के समान शुद्ध वस्त्र धारण किये, रत्नों के भूषणों से भूषित, पार्षदों तथा तीन करोड़ दूतों से घिरे, शुद्ध स्फटिक की माला से भगवान् कृष्ण के नाम जपते हुए उनके चरणकमल के ध्यान में (प्रसन्नता से) रोमांचित होते रहते हैं ॥१५७-१५८॥ तथा (प्रेम के कारण) गद्गद वाणी वाले, आँखों में (प्रेम के) आंसू भरे सर्वत्र समदर्शी, अति कमनीय, निरन्तर चिरस्थायी यौवन से युक्त, अपने तेज से प्रज्वलित, देखने में सुखप्रद, विद्वान् और शारदीय पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति (मधुर) कान्तियुक्त हैं। उनके सामने ही चित्रगुप्त स्थित रहते हैं। ॥१५९-१६०॥ (यमराज) पुण्यात्माओं के लिए शान्तरूप और पापियों के लिए भयंकर रूप में रहते हैं। ऐसे यम को देखकर जीव उन्हें प्रणाम करता है और महाभयभीत होते हुए वहाँ स्थित रहता है ॥१६१॥ अनन्तर चित्रगुप्त के विचार से जिस जीव का जैसा शुभ-अशुभ कर्म रहता है उसे वैसा ही उचित फल (दण्ड) सूर्यपुत्र (यम) प्रदान करते हैं ॥१६२॥ इस प्रकार गमनागमन बने रहने के कारण जीवों को कभी उससे निवृत्ति (छुटकारा) नहीं मिलती है। क्योंकि निवृत्ति का एकमात्र हेतु तो भगवान् श्रीकृष्ण की चरणसेवा है ॥१६३॥ हे वत्स! इस भाँति मैंने तुम्हें सब कुछ सुना दिया है। अब अपना अभिलषित वरदान मांगो, क्योंकि मैं सब कुछ प्रदान करने में समर्थ हूँ। मेरे लिए कुछ भी असाध्य नहीं है ॥१६४॥

महेन्द्र बोले—हे कल्पवृक्ष! हे मुनिश्रेष्ठ! हमारा इन्द्रत्व (इन्द्रपद) तो चला ही गया, जो हमारे लिए कल्याण रूप था। अब यह ऐश्वर्य्य हमारे लिए किस काम का? अतः हमें अब परमपद (मोक्ष) देने की कृपा करें। ॥१६५॥ महेन्द्र की ऐसी बात सुनकर मुनिपुंगव (श्रेष्ठ) दुर्वासा ने हँसकर उनसे कहा, जो सत्य, वेदोक्त और (सभी का) सार रूप था ॥१६६॥

१क. ०न्द्रास्यं ।

परं पदं विषयिणां महेन्द्रातिसुदुर्लभम् । मुक्तिर्युष्मद्विधानां च न लये प्राकृतेऽपि च ॥१६७॥
आविर्भावः सृष्टिविधौ तिरोभावो लयेऽपि च । यथा जागरणं सुप्तिर्भवत्येव क्रमेण च ॥१६८॥
यथा भ्रमति कालश्च तथा विषयिणो ध्रुवम् । चक्रनेमिक्रमेणैव नित्यमेवेश्वरेच्छया ॥१६९॥
पलमेकं भवेदेव यथा विपलषष्टिभिः । षष्टिभिश्च पलैर्दण्डो मुहूर्तो द्विगुणात्ततः ॥१७०॥
त्रिंशद्भिश्च मुहूर्तैश्च भवेदेव दिवानिशम् । दश पञ्च दिवारात्रिः पक्षमेकं विदुर्बुधाः ॥१७१॥
पक्षाभ्यां शुक्लकृष्णाभ्यां मास एव विधीयते । ऋतुर्द्वाभ्यां च मासाभ्यां संख्याविद्भिः प्रकीर्तितः ॥१७२॥
ऋतुत्रयेणायनं च ताभ्यां द्वाभ्यां च वत्सरः । त्रिंशत्सहस्राधिकैश्च त्रिचत्वारिंशलक्षकैः ॥१७३॥
वत्सरैर्नरमानैश्च युगानां च चतुष्टयम् । षष्ट्याऽधिके पञ्चशते सहस्रे पञ्चविंशतौ ॥१७४॥
युगे नराणां शक्रायुर्मनोरायुः प्रकीर्तितम् । दिग्लक्षेन्द्रनिपातेऽष्टसहस्राधिक एव च ॥१७५॥
निपातो ब्रह्मणस्तत्र भवेत्प्राकृतिको लयः । लये प्राकृतिके वत्स कृष्णस्य परमात्मनः ॥१७६॥
चक्षुर्निमेषः सृष्टिश्च पुनरुन्मीलने तथा । ब्रह्मसृष्टिलयानां च संख्या नास्ति श्रुतौ श्रुतम् ॥१७७॥
यथा पृथिव्या रेणूनामित्यूचे चन्द्रशेखरः । एतेषां मोक्षणं नास्ति कथितानि च यानि तु ॥१७८॥

दुर्वासा बोले—हे महेन्द्र! विषय के उपभोग में (सदैव) लिप्त रहने वाले प्राणियों को परमपद प्राप्त होना अत्यन्त कठिन है। तुम्हारे जैसे लोगों की मुक्ति (खण्ड) लय और महाप्रलय में कभी भी संभव नहीं है ॥१६७॥ जिस प्रकार (नींद से) जागना और सोना क्रमशः होता है उसी प्रकार तुम लोगों का सृष्टि-काल में जन्म ग्रहण और प्रलय काल में उसी में विलीन होना (सदैव) हुआ करता है ॥१६८॥ ईश्वर की इच्छा से चक्के के घेरे की भाँति सदा भ्रमण किया करते जैसे काल घूमता है उसी तरह विषयी (जीव) निश्चित रूप से घूमते रहते हैं ॥१६९॥ जिस प्रकार साठ विपल का एक पल होता है, और साठ पल का एक दण्ड तथा दो दण्ड का एक मुहूर्त होता है उसी प्रकार तीस मुहूर्तों का एक दिनरात होता है। विद्वानों ने पन्द्रह दिनरात का एक पक्ष बताया है। शुक्ल और कृष्ण इन दो पक्षों का एक मास कहा गया है। संख्यावेत्ताओं ने दो मास की एक ऋतु कही है। तीन ऋतुओं का एक अयन तथा दो अयनों का एक वर्ष होता है। मनुष्यों के तैंतालिस लाख तीस सहस्र वर्ष के चारों युग होते हैं और मनुष्यों के पच्चीस सहस्र पाँच सौ साठ युग के प्रमाण इन्द्र की और मनु की आयु कही गयी है। इस प्रकार दश लाख आठ सहस्र इन्द्र के पतन (नाश) होने पर ब्रह्मा का पतन होता है उसे ही प्राकृतिक लय कहते हैं। हे वत्स! भगवान् श्रीकृष्ण का नेत्र निमीलन उतने ही समय का होता है और पुनः नेत्र के उन्मीलन करने (खोलने) पर सृष्टि होती है। ब्रह्मा तथा उनकी सृष्टि और प्रलय की संख्या वेद में प्रसिद्ध नहीं है क्योंकि पृथिवी की रेणु (धूलि) के समान वह अनन्त है, ऐसा स्वयं चन्द्रशेखर (शिव) ने कहा है। और ये जितने देव कहे गये हैं कभी मोक्ष नहीं प्राप्त करते हैं ॥१७०-१७८॥ अतः हे सुर! यह सृष्टि का रूप है। इसको छोड़कर कोई अन्य वरदान मांगो। हे मुने! मुनीन्द्र

सृष्टिसूत्रस्वरूपं[1] हि चान्यद्वृणु वरं सुर । मुनीन्द्रस्य वचः श्रुत्वा देवेन्द्रो विस्मितो मुने ॥१७९॥
आत्मनः पूर्वमैश्वर्यं वरयामास तत्र वै । तत्प्राप्स्यस्यचिरेणैवेत्युक्त्वा स प्रययौ गृहम् ।
इन्द्रो ललाभ ज्ञानं च न संपदापदं विना ॥१८०॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० दुर्वासःसुरेन्द्रसं० लक्ष्म्युपा० इन्द्रं प्रति दुर्वासःशापादिकथनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

नारद उवाच

हरेर्गुणं समाकर्ण्य ज्ञानं प्राप्य पुरंदरः । किं चकार गृहं गत्वा तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१॥

नारायण उवाच

श्रीकृष्णस्य गुणं श्रुत्वा वीतरागो बभूव सः । वैराग्यं वर्धयामास तस्य ब्रह्मन्दिने दिने ॥२॥
मुनिस्थानाद्गृहं गत्वा स ददर्शामरावतीम् । दैत्यैरसुरसंघैश्च समाकीर्णां भयाकुलाम् ॥३॥

(दुर्वासा) की ऐसी बातें सुनकर देवराज इन्द्र को महान् आश्चर्य हुआ ॥१७९॥ तब इन्द्र ने अपने पूर्व ऐश्वर्य को माँगा 'वह तुम्हें शीघ्र ही प्राप्त होगा' इतना कहकर महर्षि अपने घर चले गये । इन्द्र ने ज्ञान प्राप्त किया किन्तु बिना विपत्ति के संपत्ति नहीं ॥१८०॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में दुर्वासा और सुरेन्द्र के संवाद में इन्द्र के प्रति दुर्वासा का शाप आदि कथन नामक छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२६॥

अध्याय ३७

कर्मफल का निरूपण

नारद बोले—देवराज इन्द्र ने भगवान् (विष्णु) के गुणों का श्रवण और ज्ञान की प्राप्ति करके घर जाकर क्या किया, यह मुझे बताने की कृपा करें ॥१॥

नारायण बोले—हे ब्रह्मन् ! भगवान् श्रीकृष्ण के गुणों को सुनने से उन्हें (संसार से) विराग हो गया और दिन-प्रतिदिन उनके वैराग्य की वृद्धि होने लगी ॥२॥ उपरान्त मुनि के स्थान से घर जाकर उन्होंने अपनी अमरावती पुरी को देखा; जो दैत्यों और असुर-समूहों से आक्रान्त एवं भय से व्याप्त थी। कहीं बान्धव (देव) गण

---

१ क. ०रूपोऽसि चा० ।

विषण्णबान्धवां चैव बन्धुहीनां च कुत्रचित् । पितृमातृकलत्रादिविहीनामतिचञ्चलाम् ॥४॥
शत्रुग्रस्तां च दृष्ट्वा तामगमद्वाक्पतिं प्रति । शक्रो मन्दाकिनीतीरे ददर्श गुरुमीश्वरम् ॥५॥
ध्यायमानं परं ब्रह्म गङ्गातोये स्थितं परम् । सूर्याभिसंमुखं पूर्वमुखं वै विश्वतोमुखम् ॥६॥
साश्रुनेत्रं पुलकितं परमानन्दसंयुतम् । वरिष्ठं च गरिष्ठं च धर्मिष्ठं चेष्टसेविनम् ॥७॥
श्रेष्ठं च बन्धुवर्गाणामतिश्रेष्ठं च मानिनाम् । ज्येष्ठं च भ्रातृवर्गाणां नेष्टं च सुरवैरिणाम् ॥८॥
दृष्ट्वा गुरुं जपन्तं च तत्र तस्थौ सुरेश्वरः । प्रहरान्ते गुरुं दृष्ट्वा चोत्थितं प्रणनाम सः ॥९॥
प्रणम्य चरणाम्भोजे रुरोदोच्चैर्मुहुर्मुहुः । वृत्तान्तं कथयामास ब्रह्मशापादिकं तथा ॥१०॥
पुनर्वरो मया लब्धो ज्ञानप्राप्ति सुदुर्लभाम् । वैरिग्रस्तां स्वीयपुरीं क्रमेणैव सुरेश्वरः ॥११॥
शिष्यस्य वचनं श्रुत्वा सतां बुद्धिमतां वरः । बृहस्पतिरुवाचेदं कोपरक्तान्तलोचनः ॥१२॥

बृहस्पतिरुवाच

श्रुतं सर्वं सुरश्रेष्ठ मारोदीर्वचनं शृणु । न कातरो हि नीतिज्ञो विपत्तौ स्यात्कदाचन ॥१३॥
संपत्तिर्वा विपत्तिर्वा नश्वरा स्वप्नरूपिणी । पूर्वस्वकर्मायत्ता च स्वयं कर्ता तयोरपि ॥१४॥
सर्वेषां च भवत्येव शश्वज्जन्मनि जन्मनि । चक्रनेमिक्रमेणैव तत्र का परिदेवना ॥१५॥

दीन-हीन एवं मन मलिन किए बैठे थे, कहीं कुछ लोगों का घर शून्य पड़ा था, पिता, माता और स्त्री आदि का कहीं पता नहीं था ॥३-४॥ इस भाँति अपनी पुरी को शत्रुग्रस्त देख कर इन्द्र बृहस्पति के पास गये। वहाँ मन्दाकिनी नदी के तट पर उन्होंने अपने गुरु बृहस्पति को देखा, जो परब्रह्म का ध्यान करते हुए गंगा जी के जल में स्थित, पूर्व की ओर मुख किये सूर्याभिमुख, विश्वतोमुख, परमानन्द-मग्न, सजलनेत्र, रोमांचित, अति श्रेष्ठ, अति गौरवपूर्ण, अत्यन्त धार्मिक,इष्टदेव के सेवक, बन्धु वर्गों में श्रेष्ठ, मानियों में अतिश्रेष्ठ, भाइयों में ज्येष्ठ और देव-शत्रु असुरों के अप्रिय हैं ॥५-८॥ गुरु देव को वहाँ जपमग्न देखकर देवराज इन्द्र (उनकी प्रतीक्षा के लिए) वहीं ठहर गये और एक प्रहर के उपरान्त जब गुरुदेव (पूजा से) उठे तो उन्हें देख कर प्रणाम किया ॥९॥ उनके चरण कमल को प्रणाम करके इन्द्र बार-बार ऊँचे स्वर से रोदन करने लगे और अनन्तर अपना ब्रह्मशाप आदि वृत्तान्त कहने लगे ॥१०॥ उस समय सुरराज इन्द्र ने यह भी कहा कि 'शत्रुओं से आक्रान्त अपनी पुरी को तुम फिर अपने अधीन क्रमशः करोगे' यह वरदान तथा दुर्लभ ज्ञान की प्राप्ति भी मुझे हो गई ॥११॥ शिष्य की ऐसी बातें सुन कर सज्जनों एवं बुद्धिमानों में श्रेष्ठ बृहस्पति ने क्रोध से लाल-लाल आँखें करके उनसे कहा ॥१२॥

बृहस्पति बोले—हे सुरश्रेष्ठ! मैंने सब कुछ सुन लिया है, अब रोदन न करके मेरी बातें सुनो। नीति-निपुण पुरुष विपत्ति के समय कभी भी कातर नहीं होता ॥१३॥ क्योंकि सम्पत्ति-विपत्ति दोनों ही नश्वर और स्वप्न की भाँति हैं। वह अपने जन्मान्तरीय कर्मों के अधीन ही रहती हैं। इसलिए कि इन दोनों का कर्ता वह प्राणी स्वयं होता है ॥१४॥ इस भाँति सभी के प्रत्येक जन्म में यह निरन्तर चक्के के घेरे की भाँति घूमा करती

भुङ्क्ते हि स्वकृतं कर्म सर्वत्रापि च भारते। शुभाशुभं च यत्किंचित्स्वकर्मफलभुक्पुमान् ॥१६॥
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि। अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥१७॥
इत्येवमुक्तं वेदे च कृष्णेन परमात्मना। साम्नि कौथुमशाखायां संबोध्य स्वकुलोद्भवम् ॥१८॥
जन्म भोगावशेषे च सर्वेषां कृतकर्मणाम्। अनुरूपं च तेषां वै भारतेऽन्यत्र चैव हि ॥१९॥
कर्मणा ब्रह्मशापं च कर्मणा च शुभाशिषम्। कर्मणा च महालक्ष्मीं लभेद्दैन्यं च कर्मणा ॥२०॥
कोटिजन्मार्जितं कर्म जीविनामनुगच्छति। न हि त्यजेद्विना भोगात्तं छायेव पुरंदर ॥२१॥
कालभेदे देशभेदे पात्रभेदे च कर्मणाम्। न्यूनताऽधिकता वाऽपि भवेदेव हि कर्मणाम् ॥२२॥
वस्तुदाने च वस्तूनां समं पुण्यं समं दिने। दिनभेदे कोटिगुणमसंख्यं वाऽधिकं ततः ॥२३॥
समदेशे च वस्तूनां दानें पुण्यं समं वृषन्। देशभेदे कोटिगुणमसंख्यं वाऽधिकं ततः ॥२४॥
समे पात्रे समं पुण्यं वस्तूनां कर्तुरेव च। पात्रभेदे शतगुणमसंख्यं वा ततोऽधिकम् ॥२५॥
यथा फलन्ति सस्यानि न्यूनान्यप्यधिकानि च। कर्षकाणां क्षेत्रभेदे पात्रभेदे फलं तथा ॥२६॥
सामान्यदिवसे विप्रे दानं समफलं भवेत्। अमायां रविसंक्रान्त्यां फलं शतगुणं भवेत्।
चातुर्मास्यां पौर्णमास्यामनन्तफलमेव च ॥२७॥

है, अतः इसमें शोक कैसा ? ॥१५॥ भारतवर्ष में अपने किये कर्म का भोग प्राप्त होता है। पुरुष शुभ-अशुभ जो कुछ अपना कर्म किए रहता है, उसी का फल वह भोगता है ॥१६॥ क्योंकि सैकड़ों करोड़ कल्प व्यतीत होने पर भी बिना भोग किये कर्म कभी नष्ट नहीं होता है। किया हुआ शुभ-अशुभ कर्म अवश्य भोगना पड़ता है ॥१७॥ परमात्मा श्रीकृष्ण ने वेद तथा सामवेद की कौथुमी शाखा में अपने कुल के लोगों से इसी प्रकार कहा है ॥१८॥ समस्त कर्मों के कुछ भोग शेष रहने पर उन्हीं के अनुरूप भारत या अन्यत्र (प्राणी) का जन्म होता है ॥१९॥ क्योंकि कर्म से ही ब्रह्मशाप, कर्म से शुभ आशीर्वाद, कर्म से महालक्ष्मी और कर्म से ही दीनता प्राप्त होती है ॥२०॥ हे पुरन्दर ! अतः करोड़ों जन्मों का किया हुआ संचित कर्म प्राणियों का छाया की भाँति अनुगमन करता है। बिना भोगे वह कभी छोड़ता नहीं है ॥२१॥ काल भेद, देश भेद, और पात्र भेद से कर्मों की न्यूनता या अधिकता हो जाती है ॥२२॥ जिस प्रकार वस्तुओं के दान में, साधारण दिन में वस्तुओं के दान करने से पुण्य भी साधारण ही प्राप्त होता है और दिन के भेद (पर्व समय) होने से वही पुण्य कोटि गुना या असंख्य अथवा उससे भी अधिक हो जाता है ॥२३॥ उसी प्रकार साधारण देश में वस्तुओं के दान करने से साधारण पुण्य और देश भेद होने से कोटि गुना अधिक या उससे भी अधिक असंख्य पुण्य प्राप्त होता है ॥२४॥ इसी तरह साधारण पात्र में वस्तुओं का दान करने से उसके कर्ता को साधारण पुण्य और पात्र भेद (योग्य पात्र) होने पर सौ गुना अथवा उससे भी अधिक असंख्य पुण्य प्राप्त होता है ॥२५॥ किसानों के क्षेत्र भेद (उत्तम खेत) होने से जिस प्रकार सस्य (अनाज) न्यूनाधिक फूलते-फलते हैं, उसीभाँति पात्र भेद होने पर पुण्य फल भी न्यूनाधिक होता है ॥२६॥ साधारण दिन में ब्राह्मण को दान देने पर साधारण फल होता है और अमावास्या तथा सूर्य की

ग्रहणे शशिनः कोटिगुणं च फलमेव च। सूर्यस्य ग्रहणे चापि ततो दशगुणं फलम् ॥२८॥
अक्षयायामक्षयं चाप्यसंख्यफलमुच्यते। एवमन्यत्र पुण्याहे फलाधिक्यं भवेदिह ॥२९॥
यथा दाने तथा स्नाने जपे वै पुण्यकर्मसु। एवं सर्वत्र बोद्धव्यं नराणां कर्मणां फलम् ॥३०॥
सामान्यदेशे दानं च विप्रे समफलं भवेत्। तीर्थे देवगृहे चैव फलं शतगुणं स्मृतम् ॥३१॥
गङ्गायां वै कोटिगुणं क्षेत्रे नारायणेऽव्ययम्। कुरुक्षेत्रे बदर्यां च काश्यां कोटिगुणं तथा ॥३२॥
यथा च वै कोटिगुणं तथा वै विष्णुमन्दिरे। केदारे वै लक्षगुणं हरिद्वारे तथा फलम् ॥३३॥
पुष्करे भास्करक्षेत्रे दशलक्षगुणं फलम्। एवं सर्वत्र बोद्धव्यं फलाधिक्यं क्रमेण च ॥३४॥
सामान्यब्राह्मणे दानं सममेव फलं लभेत्। लक्षं त्रिसंध्यं पूते च पण्डिते च जितेन्द्रिये ॥३५॥
विष्णुमन्त्रोपासके च बुधे कोटिगुणं फलम्। एवं सर्वत्र बोद्धव्यं फलाधिक्यं गुणाधिके ॥३६॥
यथा दण्डेन सूत्रेण शरावेण जलेन च। कुम्भं निर्माति चक्रेण कुम्भकारो मृदा भुवि ॥३७॥
तथैव कर्मसूत्रेण फलं धाता ददाति च। यस्याऽऽज्ञया सृष्टिविधौ तं च नारायणं भज ॥३८॥
स विधाता विधातुश्च पातुः पाता जगत्त्रये। स्रष्टुः स्रष्टा च संहर्तुः संहर्ता कालकालकः ॥३९॥

संक्रान्ति में दान करने से उसका सौ गुना अधिक फल प्राप्त होता है। चातुर्मास्य (चौमासे) और पूर्णिमा में अनन्त फल, चन्द्रग्रहण में कोटि गुना और सूर्यग्रहण में उससे भी दश गुना अधिक फल होता है। अक्षय तृतीया में अक्षय और असंख्य फल का प्राप्त होना कहा है। इसी प्रकार अन्य पुण्य दिवस पर अधिक फल होता है ॥२७-२९॥ जिस प्रकार दान, स्नान एवं जप आदि पुण्य कर्मों में न्यूनाधिक फल प्राप्त होता है, उसी भाँति मनुष्यों के सभी कर्मों का भी सर्वत्र (न्यूनाधिक) फल प्राप्त होता है, ऐसा समझना चाहिए ॥३०॥ जैसे सामान्य देश में ब्राह्मण को दान करने पर सम फल और तीर्थ या देव-मन्दिर में दान करने से उसका सौ गुना अधिक फल होता है ॥३१॥ गंगा जी में कोटि गुना, नारायण क्षेत्र में अव्यय (कभी समाप्त न होने वाला) तथा कुरुक्षेत्र, बदरिकाश्रम और काशी में कोटि गुना फल होता है। जिस प्रकार उपर्युक्त स्थानों में कोटि गुना अधिक फल कहा है उसी प्रकार विष्णु-मन्दिर में भी कोटि गुना फल होता है। केदार और हरिद्वार में लाख गुना, पुष्कर एवं भास्कर क्षेत्र में दश लाख गुना अधिक फल प्राप्त होता है। इसी प्रकार सर्वत्र क्रमशः फलों की अधिकता जाननी चाहिए ॥३२-३४॥ सामान्य ब्राह्मणों को दान देने से समान फल, तीनों संध्याओं में (संध्यादि द्वारा) पवित्र रहने वाले जितेन्द्रिय पण्डितों को दान देने से लाख गुना और भगवान् विष्णु के मन्त्र की उपासना करने वाले विद्वान् को देने से कोटि गुना फल होता है। इसी प्रकार सर्वत्र गुण की अधिकता में भी फलाधिक्य का होना जानना चाहिए ॥३५-३६॥ जिस प्रकार कुम्हार पृथ्वी पर दण्ड, सूत्र, कसोरा, जल, मिट्टी और चक्र द्वारा घड़े का निर्माण करता है, उसी भाँति सृष्टि-काल में ब्रह्मा जिसकी आज्ञा द्वारा कर्म सूत्र से (प्राणियों को) फल प्रदान करते हैं, उसी नारायण को भजो ॥३७-३८॥ क्योंकि तीनों लोकों में वही विधाता का विधाता, तीनों लोक की रक्षा करने वाले (विष्णु) का रक्षक, सृष्टि करने वाले ब्रह्मा का स्रष्टा, संहार करने वाले (रुद्र) का संहारक और काल का भी काल

महाविपत्तौ संसारे यः स्मरेन्मधुसूदनम् । विपत्तौ तस्य संपत्तिर्भवेदित्याह शङ्करः ॥४०॥
इत्येवमुक्त्वा जीवश्च समालिङ्ग्य सुरेश्वरम् । दत्त्वा शुभाशिषं चेष्टं बोधयामास नारद ॥४१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० लक्ष्म्यु० बृहस्पतिमहेन्द्रसंवादे कर्मफलनिरूपणं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥

अथ अष्टत्रिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

हरिं ध्यात्वा हरिर्ब्रह्मञ्जगाम ब्रह्मणः सभाम् । बृहस्पतिं पुरस्कृत्य सर्वैः सुरगणैः सह ॥१॥
शीघ्रं गत्वा ब्रह्मलोकं दृष्ट्वा च कमलोद्भवम् । प्रणेमुर्देवताः सर्वा गुरुणा सह नारद ॥२॥
वृत्तान्तं कथयामास सुराचार्यो विधिं विभुम् । प्रहस्योवाच तच्छ्रुत्वा महेन्द्रं कमलोद्भवः ॥३॥

ब्रह्मोवाच

वत्स मद्वंशजातोऽसि प्रपौत्रो मे विचक्षणः । बृहस्पतेश्च शिष्यस्त्वं सुराणामधिपः स्वयम् ॥४॥
मातामहस्ते दक्षश्च विष्णुभक्तः प्रतापवान् । कुलत्रयं यस्य शुद्धं कथं सोऽहंकृतो भवेत् ॥५॥

है ॥३९॥ अतः संसार में महान् विपत्ति के अवसर पर जो भगवान् मधुसूदन का स्मरण करता है, उसे विपत्ति में भी सम्पत्ति प्राप्त होती है, ऐसा शंकर जी ने कहा है ॥४०॥ हे नारद ! इतना कह कर बृहस्पति ने देवराज इन्द्र का आलिंगन किया और शुभाशीर्वाद देकर उन्हें इष्टज्ञान कराया ॥४१॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में दूसरे प्रकृतिखण्ड के नारदनारायण के संवाद-विषयक महालक्ष्मी के उपाख्यान में बृहस्पति और महेन्द्र के संवाद में कर्मफलनिरूपण नामक सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३७॥

अध्याय ३८

समुद्र-मन्थन-वर्णन

नारायण बोले—इन्द्र ने भगवान् का ध्यान कर के गुरु बृहस्पति को आगे किया और सभी देवों को साथ लेकर ब्रह्मा की सभा में पहुँचे ॥१॥ हे नारद ! शीघ्रता से वहाँ पहुँचने पर समस्त देवगण और गुरु के साथ इन्द्र ने कमल से उत्पन्न होने वाले ब्रह्मा को देखते ही प्रणाम किया ॥२॥ अनन्तर देवों के आचार्य गुरु ने विभु ब्रह्मा से (इन्द्र का) समस्त वृत्तान्त कहा, जिसे सुन कर हँसते हुए ब्रह्मा महेन्द्र से कहने लगे ॥३॥

ब्रह्मा बोले—हे वत्स ! तुम मेरे वंश में उत्पन्न हुए हो, मेरे बुद्धिमान् प्रपौत्र हो, बृहस्पति के शिष्य हो और स्वयं देवों के अधीश्वर हो ॥४॥ तुम्हारे मातामह दक्ष विष्णु के भक्त और प्रतापी हैं। इस प्रकार जिसका तीनों कुल शुद्ध हों, उसे अहंकार किस भाँति से हो सकता है ? ॥५॥ क्योंकि जिसकी माता पतिव्रता,

माता पतिव्रता यस्य पिता शुद्धो जितेन्द्रियः। मातामहो मातुलश्च कथं सोऽहंकृतो भवेत्॥६॥
जनः पैतृकदोषेण दोषान्मातामहस्य च। गुरोर्दोषान्नीतिदोषैर्हरिद्वेषी भवेद्ध्रुवम्॥७॥
सर्वान्तरात्मा भगवान्सर्वदेहेष्ववस्थितः। यस्य देहात्स प्रयाति स शवस्तत्क्षणं भवेत्॥८॥
मनोऽहमिन्द्रियेशश्च ज्ञानरूपो हि शङ्करः। असवः प्रकृतिर्विष्णुर्बुद्धिर्भगवती सती॥९॥
निद्रादयः शक्तयश्च ताः सर्वाः प्रकृतेः कलाः। आत्मनः प्रतिबिम्बं च जीवो भोगी शरीरभृत्॥१०॥
आत्मनीशे गते देहात्सर्वे यान्ति ससंभ्रमात्। यथा वर्त्मनि गच्छन्तं नरदेवमिवानुगाः॥११॥
अहं शिवश्च शेषश्च विष्णुर्धर्मो महान्विराट्। वयं यदंशा भक्ताश्च तत्पुष्पं न्यक्कृतं त्वया॥१२॥
शिवेन पूजितं पादपद्मं पुष्पेण येन च। तच्च दुर्वाससा दत्तं दैवेनान्यकृतं सुर॥१३॥
तत्पुष्पं मस्तके यस्य कृष्णपादाब्जतश्च्युतम्। सर्वेषां वै सुराणां च तत्पूजा पुरतो भवेत्॥१४॥
दैवेन वञ्चितस्त्वं च दैवं च बलवत्तरम्। भाग्यहीनं जनं मूढं को वा रक्षितुमीश्वरः॥१५॥
कृष्णं न मन्यते यो हि श्रीनाथं सर्ववन्दितम्। प्रयाति रुष्टा तद्दासी महालक्ष्मीर्विहाय तम्॥१६॥
शतयज्ञेन या लब्धा दीक्षितेन त्वया पुरा। सा श्रीर्गताऽधुना कोपात्कृष्णनिर्माल्यवर्जनात्॥१७॥

पिता नाना तथा मामा भी शुद्ध एवं जितेन्द्रिय हों, वह अहंकारी कैसे हो सकता है॥६॥ पिता सम्बन्धी दोष, मातामह के दोष और गुरु दोष तथा नीति दोष के कारण मनुष्य भगवान् से निश्चित द्वेष करताहै॥७॥ जो सभी के अन्तरात्मा होकर समस्त प्राणियों के देह में अवस्थित रहते हैं, वही जिसके देह से चले जाते हैं, वह उसी समय शव (मुर्दा) रूप हो जाता है॥८॥ क्योंकि (देह के भीतर) इन्द्रियों का अधीश्वर मन मैं हूँ, शंकर ज्ञान रूप हैं, विष्णु प्राण हैं और भगवती सती प्रकृति बुद्धि रूप हैं एवं निद्रा आदि समस्त शक्तियाँ प्रकृति की कलायें हैं और जीव आत्मा का प्रतिबिम्ब है, जो शरीर को धारण करता है और उसका भरण-पोषण करते हुए अपने कर्मफल (सुख-दुःख का) उपभोग करता है॥९-१०॥ जिस प्रकार मार्ग में राजा के पीछे उसके सेवक वर्ग चलते हैं, उसी भाँति देहाधीश्वर आत्मा के देह से प्रस्थान करने पर (मन प्राण आदि) सभी उसी क्षण चल देते हैं॥११॥ इस प्रकार मैं, शिव, शेष, विष्णु, धर्म, महान् और विराट् आदि जिसके अंश और भक्त हैं, उन्हीं के पुण्य को तुमने अपमानित किया है॥१२॥ हे सुर! जिस पुष्प द्वारा शिव ने भगवान् के चरण कमल की पूजा की है, वही पुष्प दुर्वासा ने तुम्हें दिया था। किन्तु दुर्दैव (दुर्भाग्य) वश तुमने उसका निरादर कर दिया॥१३॥ भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमल से च्युत (पृथक्) होकर वह पुष्प जिस के मस्तक पर रहता है, उसकी पूजा समस्त देवगणों के समक्ष होती है॥१४॥ अतः दैव (भाग्य) से तुम ठगे गए हो क्योंकि दैव ही अति बलवान् है और भाग्यहीन एवं मूर्ख प्राणी की रक्षा करने में कौन समर्थ हो सकता है॥१५॥ अतः लक्ष्मी के नाथ एवं सभी लोगों से वन्दित भगवान् श्रीकृष्ण का जो सम्मान नहीं करता है, उस पर उनकी दासी महालक्ष्मी भी रुष्ट हो जाती हैं और उसे छोड़ कर तत्काल अन्यत्र चली जाती हैं॥१६॥ दीक्षित होकर तुमने सौ यज्ञ द्वारा जिसे पूर्व समय में प्राप्त किया था, वही (लक्ष्मी) भगवान् श्रीकृष्ण के निर्माल्य के अनादर करने के कारण कोप कर के इस समय चली गयी हैं॥१७॥ अतः अब इस समय मेरे और बृहस्पति के साथ तुम वैकुण्ठ

अधुना गच्छ वैकुण्ठं मया च गुरुणा सह। निषेव्य तत्र श्रीनाथं श्रियं प्राप्स्यसि तद्वरात् ॥१८॥
इत्येवमुक्त्वा स ब्रह्मा सर्वैः सुरगणैः सह। शीघ्रं जगाम वैकुण्ठं यत्र श्रीशस्तया सह ॥१९॥
तत्र गत्वा परं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम्। दृष्ट्वा तेजःस्वरूपं च प्रज्वलन्तं स्वतेजसा ॥२०॥
ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डशतकोटिसमप्रभम्। शान्तं चानादिमध्यान्तं लक्ष्मीकान्तमनन्तकम् ॥२१॥
चतुर्भुजैः पार्षदैश्च सरस्वत्या स्तुतं नतम्। भक्त्या चतुर्भिर्वेदैश्च गङ्गया परिषेवितम् ॥२२॥
तं प्रणेमुः सुराः सर्वे मूर्ध्ना ब्रह्मपुरोगमाः। भक्तिनम्राः साश्रुनेत्रास्तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम् ॥२३॥
वृत्तान्तं कथयामास स्वयं ब्रह्मा कृताञ्जलिः। रुरुदुर्देवताः सर्वाः स्वाधिकारच्युताश्च ताः ॥२४॥
स चापश्यत्सुरगणं विपद्ग्रस्तं भयाकुलम्। वस्त्रभूषणशून्यं च वाहनादिविवर्जितम् ॥२५॥
शोभाशून्यं हतश्रीकं परिवारैरनावृतम्। उवाच कातरं दृष्ट्वा विपन्नभयभञ्जनः ॥२६॥

नारायण उवाच

मा भैर्ब्रह्मन्हे सुराश्च भयं किं वो मयि स्थिते। दास्यामि लक्ष्मीमचलां परमैश्वर्यवर्धिनीम् ॥२७॥
किंच मद्वचनं किंचिच्छ्रूयतां समयोचितम्। हितं सत्यं सारभूतं परिणामसुखावहम् ॥२८॥
जनाश्चासंख्यविश्वस्था मदधीनाश्च संततम्। यथा तथाऽहं मद्भक्तैः पराधीनः स्वतन्त्रकः ॥२९॥

चलो। वहाँ श्री के स्वामी भगवान् की सेवा कर के उनके वरदान द्वारा तुम पुनः लक्ष्मी को प्राप्त करो ॥१८॥ इतना कह कर ब्रह्मा समस्त देवों के साथ शीघ्रता से वैकुण्ठ के लिए चल पड़े। वहाँ लक्ष्मी के अधिनायक भगवान् लक्ष्मी जी के साथ विराजमान थे ॥१९॥ वहाँ पहुँचने पर परब्रह्म स्वरूप उन भगवान् सनातन का उन लोगों ने दर्शन किया, जो तेजः-स्वरूप, अपने तेज से देदीप्यमान, ग्रीष्म ऋतु के मध्याह्नकालीन सैकड़ों करोड़ सूर्य के समान प्रभा से युक्त, शान्त, आदि, मध्य, और अन्त से रहित, लक्ष्मी के कान्त, अनन्त, चार भुजा वाले पार्षदों और सरस्वती से स्तुत, भक्तिपूर्वक चारों वेदों से भी स्तुत तथा गंगा से सुसेवित हैं ॥२०-२२॥ उपरान्त ब्रह्मा को आगे किए हुए भक्ति-विनम्र और आँखों में आँसू भरे समस्त देव गणों ने शिर से उन्हें प्रणाम किया। पश्चात् उन पुरुषोत्तम की स्तुति करने लगे ॥२३॥ तदनन्तर स्वयं ब्रह्मा ने हाथ जोड़ कर उन्हें समस्त वृत्तान्त कह सुनाया। उस समय अधिकार से च्युत होने के नाते सभी देवगण रुदन कर रहे थे ॥२४॥ भगवान् ने उस समय देवगणों की ओर (सकरुण नेत्रों से) देखा जो विपत्ति से ग्रस्त, भय से व्याकुल, वस्त्र-भूषण, और वाहन आदि से शून्य थे ॥२५॥ शोभाशून्य, हतप्रभ और परिवार आदि से रहित होने के नाते उन्हें कातर देख शरणागत के भयहारी भगवान् ने कहा ॥२६॥

नारायण बोले—हे ब्रह्मन्! हे देवगण! भय मत करो, मेरे रहते तुम्हें भय क्या है। मैं तुम्हें परम ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाली अचल लक्ष्मी प्रदान करूँगा ॥२७॥ किन्तु इसके पूर्व कुछ मेरी बातें सुन लो, जो समयानुसार, हितकारी, सत्य, सारभूत और भविष्य में सुख देने वाली हैं ॥२८॥ जिस प्रकार असंख्य समस्त विश्व में अगणित प्राणी निरन्तर मेरे अधीन रह रहे हैं, उसी भाँति स्वतन्त्र रहते हुए भी मैं अपने भक्तों के अधीन रहता

यो यो रुष्टो हि मद्भक्ते मत्परे हि निरङ्कुशः। तद्गृहेऽहं न तिष्ठामि पद्मया सह निश्चितम्॥३०॥
दुर्वासाः शंकरांशश्च वैष्णवो मत्परायणः। तच्छापादागतोऽहं च सश्रीको वो गृहादपि॥३१॥
यत्र शङ्खध्वनिर्नास्ति तुलसी च शिलार्चनम्। न भोजनं च विप्राणां न पद्मा तत्र तिष्ठति॥३२॥
मद्भक्तानां च मे निन्दा यत्र यत्र भवेत्सुराः। महारुष्टा महालक्ष्मीस्ततो याति पराभवात्॥३३॥
मद्भक्तिहीनो यो मूढो यो भुङ्क्ते हरिवासरे। मम जन्मदिने चापि याति श्रीस्तद्गृहादपि॥३४॥
मन्नामविक्रयी यश्च विक्रीणाति स्वकन्यकाम्। यत्रातिथिर्न भुङ्क्ते च मत्प्रिया याति तद्गृहात्॥३५॥
पापिनां यो गृहं याति शूद्रश्राद्धान्नभोजिनाम्। महारुष्टा ततो याति मन्दिरात्कमलालया॥३६॥
शूद्राणां शवदाही च भाग्यहीनश्च वाडवः। याति रुष्टा तद्गृहाच्च देवी कमलवासिनी॥३७॥
शूद्राणां सूपकारो यो ब्राह्मणो वृषवाहकः। तत्तोयपानभीता च कमला याति तद्गृहात्॥३८॥
विप्रो यवनसेवी च देवलः शूद्रयाजकः। ततोऽपमानभीता च वैष्णवी याति तद्गृहात्॥३९॥
विश्वासघाती मित्रघ्नो नरघाती कृतघ्नकः। अगम्यां याति यो विप्रो मद्भार्या याति तद्गृहात्॥४०॥
अशुद्धहृदयः क्रूरो हिंसको निन्दको द्विजः। ब्राह्मण्यां शूद्रजातश्च याति देवी च तद्गृहात्॥४१॥

हूँ॥२९॥ इसलिए यह निश्चित है कि मुझमें तल्लीन रहने वाले मेरे भक्तों पर जो-जो निरंकुश (उद्दण्ड) रुष्ट होते हैं, लक्ष्मीसमेत मैं उनके घर नहीं रहता हूँ॥३०॥ दुर्वासा शंकर जी के अंश और (सदैव) मेरे ही आश्रय रहने वाले वैष्णव हैं। उन्हीं के शापवश लक्ष्मी समेत हम तुम लोगों के घर से चले आये॥३१॥ क्योंकि जिस स्थान में शंख ध्वनि नहीं होती, तुलसी तथा शालग्राम की अर्चना नहीं होती और ब्राह्मणों को भोजन नहीं कराया जाता है, वहाँ पद्मा (लक्ष्मी) नहीं ठहरती हैं॥३२॥ हे देववृन्द ! मेरे भक्तों की जहाँ निन्दा होती है, महालक्ष्मी अत्यन्त रुष्ट होकर उस अपमानवश वहाँ से चली जाती हैं॥३३॥ जो मेरी भक्ति से रहित है और जो मूर्ख हरिवासर (एकादशी में) और मेरे जन्म के दिन (अन्न) भोजन करता है उसके घर से लक्ष्मी चली जाती हैं॥३४॥ जो हमारे नाम का विक्रय करता है, अपनी कन्या का विक्रय करता है और जिसके यहाँ अतिथियों को भोजन नहीं कराया जाता है, उसके घर से मेरी प्रिया (लक्ष्मी) चली जाती हैं॥३५॥ शूद्रों के यहाँ श्राद्धान्न भोजनकरने वाले पापियों के घर जो जाता है, उसके घर से महारुष्ट होकर कमला चली जाती हैं॥३६॥ शूद्रों के शव का दाह करने वाले और भाग्यहीन ब्राह्मण के घर से रुष्ट होकर कमल में निवास करने वाली लक्ष्मी देवी चली जाती हैं॥३७॥ शूद्रों का भण्डारी तथा बैल पर लादने आदि के कार्य करने वाले ब्राह्मण के घर से उसका जल पीन के भय से कमला चली जाती हैं॥३८॥ यवनों (मुसलमानों) की नौकरी करने वाले, देवल (मन्दिर के पुजारी) और शूद्रों के यज्ञ कराने वाले ब्राह्मणों के घर से, अपमान के भय से वह वैष्णवी (लक्ष्मी) चली जाती हैं॥३९॥ विश्वास-घात करने वाले, मित्रहत्या, तथा नरहत्या करने वाले कृतघ्न और अगम्यागामी ब्राह्मण के घर से हमारी भार्या (लक्ष्मी) चली जाती हैं॥४०॥ अशुद्ध हृदय वाले, क्रूर, हिंसक, निन्दक और ब्राह्मणी में शूद्र से उत्पन्न हुए के घर से वह देवी चली जाती है॥४१॥

यो विप्रः पुंश्चलीपुत्रो महापापी च तत्पतिः । अवीरान्नं च यो भुङक्ते तस्माद्याति जगत्प्रसूः ॥४२॥
तृणं छिनत्ति नखरैस्तैर्वा यो हि लिखेन्महीम् । जिह्मो वा मलवासाश्च सा प्रयाति व तद्गृहात् ॥४३॥
सूर्योदये च द्विर्भोजी दिवाशायी च वाडवः । दिवा मैथुनकारी च तस्माद्याति हरिप्रिया ॥४४॥
आचारहीनो यो विप्रो यश्च शूद्रप्रतिग्रही । अदीक्षितो हि यो मूढस्तस्माल्लोला प्रयाति च ॥४५॥
स्निग्धपादश्च नग्नो वा यः शेते ज्ञानदुर्बलः । शश्वद्धर्माऽतिवाचालो याति वै तद्गृहात्सती ॥४६॥
शिरस्नातश्च तैलेन योऽन्यदङ्गमुपस्पृशेत् । स्वाङ्गे च वादयेद्वाद्यं रमा याति च तद्गृहात् ॥४७॥
व्रतोपवासहीनो यः संध्याहीनोऽशुचिर्द्विजः । विष्णुभक्तिविहीनो यस्तस्माद्याति हरिप्रिया ॥४८॥
ब्राह्मणान्निन्दयेद्यो हि तान्वै द्वेष्टि च संततम् । हिंसाकारी दयाहीनो याति सर्वप्रसूस्ततः ॥४९॥
यत्र यत्र हरेरर्चा हरेरुत्कीर्तनं शुभम् । तत्र तिष्ठति सा देवी कमला सर्वमङ्गला ॥५०॥
यत्र प्रशंसा कृष्णस्य तद्भक्तस्य पितामह । सा च कृष्णप्रिया देवी तत्र तिष्ठति संततम् ॥५१॥
यत्र शङ्खध्वनिः शङ्खः शिला च तुलसीदलम् । तत्सेवा वन्दनं ध्यानं तत्र सा तिष्ठति स्वयम् ॥५२॥
शिवलिङ्गार्चनं यत्र तस्य चोत्कीर्तनं शुभम् । दुर्गार्चनं तद्गुणाश्च तत्र पद्मनिवासिनी ॥५३॥

जो ब्राह्मण व्यभिचारिणी स्त्री का पुत्र है और जो ऐसी स्त्री का पति है, उस महापापी का तथा पतिपुत्रहीना विधवाका अन्न खाने वाले के घर से जगत् की माता लक्ष्मी चली जाती हैं ॥४२॥ नखों से तिनका तोड़ने वाले और भूमि खोदने वाले, कपटी और मलिन वस्त्र वाले के घर से वह चली जाती हैं ॥४३॥ सूर्योदय के समय दो बार भोजन करने वाले, दिन में शयन करने वाले तथा दिन में रति करने वाले ब्राह्मण के घर से हरिप्रिया (लक्ष्मी) चली जाती हैं ॥४४॥ आचारहीन, शूद्र का दान लेने वाले और दीक्षाहीन मूढ़ ब्राह्मण के घर से चपला (लक्ष्मी) चली जाती हैं ॥४५॥ जो ज्ञान की कमी के कारण तेल लगे पैर और नग्न शयन करते हैं तथा निरन्तर धर्म के सम्बन्ध में डींग मारते हैं उनके गृह से सती (लक्ष्मी) चली जाती है ॥४६॥ जो सिर से स्नान करने के अनन्तर दूसरे अंग में तेल लगाता है और जो अपने अंग को बाजे की तरह बजाता है उसके घर से यह रमा चली जाती हैं ॥४७॥ जो ब्राह्मण व्रत-उपवास से रहित, सन्ध्याकर्मविहीन होने के कारण अपवित्र एवं भगवान् विष्णु की भक्ति से रहित होता है, उसके यहाँ से हरिप्रिया (लक्ष्मी) चली जाती हैं ॥४८॥ जो ब्राह्मण की निन्दा और उनसे सदैव द्वेष रखता है तथा हिंसक एवं निर्दयी है उसके यहाँ से सबको उत्पन्न करने वाली लक्ष्मी चली जाती हैं ॥४९॥

जहाँ कहीं भगवान की अर्चा और उनका शुभ (नाम-) कीर्तन होता है वहाँ सर्वमंगलरूप कमला (लक्ष्मी) निवास करती हैं ॥५०॥ हे पितामह ! जहाँ कृष्ण और उनके भक्त की निरन्तर प्रशंसा होती है वहाँ वह कृष्ण-प्रिया (लक्ष्मी देवी) सदैव रहती हैं ॥५१॥ जहाँ शंखध्वनि होती है तथा शंख शिला (शालग्राम) और तुलसी-दल रहता है तथा उनकी सेवा, वन्दना और ध्यान होता है, वहाँ वह स्वयं रहती हैं ॥५२॥ जहाँ शिवलिंग की पूजा, उनका शुभ कीर्तन, दुर्गा जी की पूजा और उनका गुण-गान होता रहता है, वहाँ कमलनिवासिनी (लक्ष्मी)

विप्राणां सेवनं यत्र तेषां वै भोजनं शुभम् । अर्चनं सर्वदेवानां तत्र पद्ममुखी सती ॥५४॥
इत्युक्त्वा च सुरान्सर्वान्रमामाह रमापतिः । क्षीरोदसागरे जन्म लभस्व कलया रमे ॥५५॥
इत्युक्त्वा तां जगन्नाथो ब्रह्माणं पुनराह च । मथित्वा सागरं लक्ष्मीं देवेभ्यो देहि पद्मज ॥५६॥
इत्युक्त्वा कमलाकान्तो देवश्चान्तरधान्मुने । देवाश्चिरेण कालेन ययुः क्षीरोदसागरम् ॥५७॥
मन्थानं मन्दरं कृत्वा कूर्मं कृत्वा च भाजनम् । रज्जुं कृत्वा वासुकिं च ममन्थुश्चैव सागरम् ॥५८॥
धन्वन्तरिं च पीयूषमुच्चैःश्रवसमीप्सितम् । नानारत्नं हस्तिरत्नं प्रापुर्लक्ष्मीं पुरातनीम् ॥५९॥
वनमालां ददौ सा च क्षीरोदशायिने मुने । सर्वेश्वराय रम्याय विष्णवे वैष्णवी सती ॥६०॥
देवैः स्तुता पूजिता च ब्रह्मणा शङ्करेण च । ददौ दृष्टिं सुरगृहे ब्रह्मशापविमोचिकाम् ॥६१॥
प्रापुर्देवाः स्वविषयं दैत्यैर्ग्रस्तं भयङ्करैः । महालक्ष्मीप्रसादेन वरदानेन नारद ॥६२॥
इत्येवं कथितं सर्वं लक्ष्म्युपाख्यानमुत्तमम् । सुखदं सारभूतं च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥६३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० लक्ष्म्युपा० समुद्रमथनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥

निवास करती हैं ॥५३॥ जहाँ ब्राह्मणों की सेवा होती है, उन्हें पवित्र भोजन कराया जाता है और समस्त देवों की अर्चना होती है, वहाँ वह कमलवदना सती निरन्तर निवास करती हैं ॥५४॥ इस प्रकार रमापति भगवान् विष्णु ने सभी देवों से कहकर पुनः रमा (लक्ष्मी) से कहा—'हे रमे ! अपनी कला (अंश) से क्षीरसागर में जन्मग्रहण करो।' ॥५५॥ लक्ष्मी से इतना कहकर जगन्नाथ ने पुनः ब्रह्मा से कहा—'हे पद्मज (कमल से उत्पन्न होने वाले) ! जाओ; सागर का मन्थन करके देवों को लक्ष्मी प्रदान करो ॥'५६॥ हे मुने ! कमला के कान्त विष्णु इतना कह कर अन्तर्हित हो गये और देवता लोग बहुत दिन के उपरान्त क्षीरसागर पहुँचे ॥५७॥ वहाँ पहुँच कर देवताओं ने मन्दराचल को मथानी, कच्छप (कछुवे) को पात्र और वासुकी नाग को रस्सी बनाकर सागर का मन्थन किया ॥५८॥ अनन्तर उस(सागर) में से धन्वन्तरि वैद्य, अमृत, मनमोहक उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा, अनेक भाँति के रत्न, गजराज (ऐरावत) और पुरातन लक्ष्मी की प्राप्ति हुई ॥५९॥ हे मुने ! अनन्तर उस प्रतिव्रता वैष्णवी (लक्ष्मी) ने भगवान् विष्णु को वनमाला (जयमाल रूप में) अर्पित की, जो क्षीरशायी, समस्त के ईश्वर और अति रमणीक हैं ॥६०॥ देवों ने लक्ष्मी की स्तुति की। ब्रह्मा और शिव ने उनकी पूजा की। अनन्तर देवों के घर में उसने ब्रह्मशाप से मुक्त करने वाली अपनी कृपादृष्टि प्रदान की ॥६१॥ हे नारद ! इस प्रकार महालक्ष्मी के प्रसाद से वरदान द्वारा देवों ने भयंकर दैत्यों से आक्रान्त अपने विषयों (गृहादि वस्तुओं) को पुनः प्राप्त किया ॥६२॥ इस भाँति मैंने लक्ष्मी का समस्त परमोत्तम आख्यान तुम्हें सुना दिया; जो सुखद और सारभूत है। अब और क्या सुनना चाहते हो ॥६३॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायणसंवादविषयक लक्ष्मी के उपाख्यान में समुद्रमथन नामक अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३८॥

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

नारद उवाच

हरेरुत्कीर्तनं भद्रं श्रुतं तज्ज्ञानमुत्तमम्। ईप्सितं लक्ष्म्युपाख्यानं ध्यानं स्तोत्रादिकं वद ॥१॥
हरिणा पूजिता पूर्वं ततो ब्रह्मादिभिस्तथा। शक्रेण भ्रष्टराज्येन सार्धं सुरगणेन च ॥२॥
ध्यानेन पूजिता केन विधिना केन वा पुरा। केन स्तुता वा स्तोत्रेण तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥३॥

नारायण उवाच

स्नात्वा तीर्थे पुरा शक्रो धृत्वा धौते च वाससी। घटं संस्थाप्य क्षीरोदे देवषट्कमपूजयत् ॥४॥
गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम्। एतान्भक्त्या समभ्यर्च्य पुष्पगन्धादिभिस्तथा ॥५॥
तत्राऽऽवाह्य महालक्ष्मीं परमैश्वर्यरूपिणीम्। पूजां चकार देवेशो ब्रह्मणा च पुरोधसा ॥६॥
पुरःस्थितेषु मुनिषु ब्राह्मणेषु गुरौ तथा। देवादिषु च देवेशे ज्ञानानन्दे शिवे मुने ॥७॥
पारिजातस्य पुष्पं च गृहीत्वा चन्दनोक्षितम्। ध्यात्वा देवीं महालक्ष्मीं पूजयामास नारद ॥८॥
ध्यानं च सामवेदोक्तं यदुक्तं ब्रह्मणे पुरा। ध्यानेन हरिणा तेन तन्निबोध वदामि ते ॥९॥
सहस्रदलपद्मस्य कर्णिकावासिनीं पराम्। शरत्पार्वणकोटीन्दुप्रभाजुष्टकरां वराम् ॥१०॥

अध्याय ३९

लक्ष्मी का पूजा-विधान

नारद बोले—मैंने भगवान् का कल्याणकारी (नामादि) कीर्तन, उनका परमोत्तम ज्ञान और लक्ष्मी का अभिलषित उपाख्यान भी सुन लिया, अब उनके ध्यान और स्तोत्र आदि कहने की कृपा करें ॥१॥ सर्वप्रथम भगवान् ने लक्ष्मी की पूजा की, अनन्तर ब्रह्मा आदि ने और राज्यच्युत इन्द्र ने देवों समेत उनकी अर्चना की। मैं यही जानना चाहता हूँ कि पूर्व काल में उन सबों ने किस ध्यान और किस विधान से उनकी पूजा की तथा किस स्तोत्र से उनकी स्तुति की, वह मुझे बताने की कृपा करें ॥२-३॥

नारायण बोले—पहले समय में इन्द्र ने एक बार तीर्थ-स्नान किया और दो धुले वस्त्र पहन कर क्षीरसागर में कलश-स्थापनपूर्वक छः देवों की पूजा की। गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और पार्वती—इन छहों देवों की भक्तिपूर्वक पुष्प-गन्धादि द्वारा अर्चना कर के उसी स्थापित घट में परम ऐश्वर्यरूपिणी महालक्ष्मी का आवाहन किया और ब्रह्मा तथा बृहस्पति के साथ उन्होंने उनकी पूजा की ॥४-६॥ हे मुने! उनके सामने मुनिगण, ब्राह्मण वृन्द, गुरु बृहस्पति, देवगण और देवाधीश्वर एवं ज्ञानानन्द शिव उस समय विद्यमान थे ॥७॥ हे नारद! चन्दन-चर्चित पारिजात का पुष्प लेकर उन्होंने महालक्ष्मी देवी का ध्यानपूर्वक पूजन किया ॥८॥ पूर्व काल में भगवान् ने ब्रह्मा को जो सामवेदोक्त ध्यान बताया था, वह तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ॥९॥

सहस्र दल वाले कमल पुष्प की कर्णिका में निवास करने वाली, श्रेष्ठ, शारदीय पूर्णिमा के करोड़ों चन्द्रमा की कान्ति से सुशोभित, परमोत्तम, अपने तेज द्वारा देदीप्यमान, देखने में सुखकर, मनोहारिणी, अत्यन्त तपाये हुए

स्वतेजसा प्रज्वलन्तीं सुखदृश्यां मनोहराम् । प्रतप्तकाञ्चननिभां शोभां मूर्तिमतीं सतीम् ॥११॥
रत्नभूषणभूषाढ्यां शोभितां पीतवाससा । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां रम्यां सुस्थिरयौवनाम् ॥१२॥
सर्वसंपत्प्रदात्रीं च महालक्ष्मीं भजे शुभाम् । ध्यानेनानेन तां ध्यात्वा चोपहारैः सुसंयुतः ॥१३॥
संपूज्य ब्रह्मवाक्येन चोपहाराणि षोडश । ददौ भक्त्या विधानेन प्रत्येकं[1] मन्त्रपूर्वकम् ॥१४॥
प्रशंस्यानि प्रहृष्टानि दुर्लभानि वराणि च । अमूल्यरत्नखचितं निर्मितं विश्वकर्मणा ॥
आसनं च विचित्रं च महालक्ष्मि प्रगृह्यताम् ॥१५॥
शुद्धं गङ्गोदकमिदं सर्ववन्दितमीप्सितम् । पापेध्मवह्निरूपं च गृह्यतां कमलालये ॥१६॥
पुष्पचन्दनदूर्वादिसंयुतं जाह्नवीजलम् । शङ्खगर्भस्थितं शुद्धं गृह्यतां पद्मवासिनि ॥१७॥
सुगन्धियुक्तं तैलं च सुगन्धामलकीजलम् । देहसौन्दर्यबीजं च गृह्यतां श्रीहरिप्रिये ॥१८॥
वृक्षनिर्यासरूपं च गन्धद्रव्यादिसंयुतम् । कृष्णकान्ते पवित्रो वै धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥१९॥
मलयाचलसंभूतं वृक्षसारं मनोहरम् । सुगन्धियुक्तं सुखदं चन्दनं देवि गृह्यताम् ॥२०॥
जगच्चक्षुःस्वरूपं च ध्वान्तप्रध्वंसकारणम् । प्रदीपं शुद्धरूपं च गृह्यतां परमेश्वरि ॥२१॥
नानोपहाररूपं च नानारससमन्वितम् । नानास्वादुकरं चैव नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥२२॥

सुवर्ण की भाँति शोभा धारण करने वाली, मूर्तिमती सती, रत्नों के भूषणों से विभूषित, पीताम्बर से सुशोभित, मन्द मुसुकान समेत प्रसन्न मुख, रम्य, अत्यन्त स्थिर यौवन वाली और समस्त सम्पत्ति प्रदान करने वाली शुभ महालक्ष्मी का मैं भजन कर रहा हूँ। इस ध्यान द्वारा उनका ध्यान करने के उपरान्त उपहारों से युक्त इन्द्र ने ब्रह्मवाक्य द्वारा सम्यक् पूजन करके १६ उपहारों में से प्रत्येक को भक्ति और विधान के साथ मंत्रपूर्वक प्रदान किया ॥१०-१४॥ हे महा-लक्ष्मि ! प्रशस्त, प्रसन्न करने वाले, दुर्लभ और श्रेष्ठ उपहारों में से सर्वप्रथम अमूल्य रत्नों से खचित और विश्वकर्मा के बनाये इस विचित्र आसन को मैं अर्पित कर रहा हूँ, ग्रहण करो ॥१५॥ हे कमलगृहनिवासिनि ! यह शुद्ध गंगोदक अर्पित कर रहा हूँ, जो सब से वन्दित, अभीष्ट तथा पापरूपी काष्ठ को जलाने के लिए अग्नि रूप है, ग्रहण करो ॥१६॥ हे पद्मवासिनि ! पुष्प, चन्दन और दूर्वादि संयुत यह गंगा जल, जो शंख के गर्भ में स्थित एवं शुद्ध है, ग्रहण करो ॥१७॥ हे श्रीहरि की प्रिये ! सुगन्धित तैल, सुगन्धपूर्ण आँवला मिश्रित जल, जो देह की सुन्दरता का मूल कारण है, ग्रहण करो ॥१८॥ हे कृष्णकान्ते ! वृक्ष के निर्यात (गोंद) रूप और गन्ध द्रव्य मिश्रित इस पवित्र धूप को ग्रहण करो ॥१९॥ हे देवि ! यह चन्दन ग्रहण करो, जो मलयाचल पर उत्पन्न, वृक्ष का सार भाग, मनोहर, सुगन्धित एवं सुखद है ॥२०॥ हे परमेश्वरि ! इस शुद्ध रूप वाले दीपक को ग्रहण करो, जो समस्त संसार का नेत्रस्वरूप और अंधकार के नाश का कारण है ॥२१॥ अनेक भाँति के स्वाद देने वाले इस नैवेद्य को ग्रहण करो, जो नाना उपहार रूप और अनेक रस से युक्त है ॥२२॥ ब्रह्मस्वरूप इस मधुर अन्न को ग्रहण करो, जो प्राण

---

१. क. ०कं भक्तिपू० ।

अन्नं ब्रह्मस्वरूपं च प्राणरक्षणकारणम् । तुष्टिदं पुष्टिदं चान्नं मधुरं प्रतिगृह्यताम् ॥२३॥
शाल्यक्षतसुपक्वं च शर्करागव्यसंयुतम् । सुस्वादु रम्यं पद्मे च परमान्नं प्रगृह्यताम् ॥२४॥
शर्करागव्यपक्वं च सुस्वादु सुमनोहरम् । मया निवेदितं लक्ष्मि स्वस्तिकं प्रतिगृह्यताम् ॥२५॥
नानाविधानि रम्याणि पक्वानि च फलानि तु । स्वादुरस्यानि कमले गृह्यतां फलदानि च ॥२६॥
सुरभिस्तनसंभूतं सुस्वादु सुमनोहरम् । मर्त्यामृतं च गव्यं वै गृह्यतामच्युतप्रिये ॥२७॥
सुस्वादुरससंयुक्तमिक्षुवृक्षरसोद्भवम् । अग्निपक्वमपक्वं वा गुडं वै देवि गृह्यताम् ॥२८॥
यवगोधूमसस्यानां चूर्णरेणुसमुद्भवम् । सुपक्वगुडगव्यावतं मिष्टान्नं देवि गृह्यताम् ॥२९॥
सस्यचूर्णोद्भवं पक्वं स्वस्तिकादिसमन्वितम् । मया निवेदितं देवि पिष्टकं प्रतिगृह्यताम् ॥३०॥
पार्थिवं वृक्षभेदं च विविधैर्द्रव्यकारणम् । सुस्वादुरससंयुक्तमैक्षवं प्रतिगृह्यताम् ॥३१॥
शीतवायुप्रदं चैव दाहे च सुखदं परम् । कमले गृह्यतां चेदं व्यजनं श्वेतचामरम् ॥३२॥
ताम्बूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम् । जिह्वाजाडयच्छेदकरं ताम्बूलं देवि गृह्यताम् ॥३३॥
सुवासितं शीतलं च पिपासानाशकारणम् । जगज्जीवनरूपं च जीवनं देवि गृह्यताम् ॥३४॥
देहसौन्दर्यबीजं च सदा शोभाविवर्धनम् । कार्पासजं च कृमिजं वसनं देवि गृह्यताम् ॥३५॥

रक्षा का कारण और तुष्टि-पुष्टि प्रदान करता है ॥२३॥ हे पद्मे ! इस सुस्वादपूर्ण परमान्न (खीर) को ग्रहण करो जो साठी धान के चावल का उत्तम ढंग से पकाया गया है और चीनी तथा गाय के घी से युक्त है ॥२४॥ हे लक्ष्मि ! मैंने यह स्वस्तिक (कल्याणप्रद सेवइं) भोजन तुम्हें अर्पित किया है, उसे ग्रहण करो, जो शक्कर, तथा गाय के दुग्ध में बना अत्यन्त स्वादिष्ठ और मनोहारी है ॥२५॥ हे कमले ! अनेक भाँति के पके, सुन्दर एवं स्वादुरस-पूर्ण फल तुम्हें अर्पित कर रहा हूँ, इसे स्वीकार करो ॥२६॥ हे अच्युतप्रिये ! यह गौ का दूध अर्पित कर रहा हूँ, ग्रहण करो, जो गौ के स्तन से निकला, अतिस्वादपूर्ण, मनोहर और मर्त्यलोक में अमृत रूप है ॥२७॥ हे देवि ! अग्नि में पकाये अथवा बिना पकाये इस गुड़ को ग्रहण करो ! जो अति स्वादिष्ठ रस-युक्त और ऊख के रस से बना है ॥२८॥ हे देवि ! जवा, गेहूँ तथा चावल के चूर्ण (आटे) से बना और गुड़ तथा गो-घृत में भली भाँति पका है, अतः इस मिष्टान्न को ग्रहण करो ॥२९॥ हे देवि ! चावल के चूर्ण (आटे) से पका कर बनाये हुए तथा स्वस्तिक आदि से युक्त इस पूये को स्वीकार करो ॥३०॥ इस विशेष प्रकार के वृक्ष (गन्ने) को स्वीकार करो जो विविध प्रकार की मिठाइयों का (मूल) कारण और अत्यन्त स्वादिष्ठ रस से युक्त है ॥३१॥ हे कमले ! इस श्वेत चामर वाले व्यजन (पंखे) को ग्रहण करो, जो दाह के समय शीतल वायुप्रद और परम सुखदायक है ॥३२॥ हे देवि ! इस श्रेष्ठ और सुरम्य ताम्बूल (पान) को ग्रहण करो; जो कपूर आदि से सुवासित तथा जिह्वा की जड़ता का नाशक है ॥३३॥ हे देवि ! सुवासित (सुगन्धित), शीतल, पिपासा (प्यास) के नाशक और सारे संसार के जीवन रूप इस जल को स्वीकार करो ॥३४॥ हे देवि ! कपास और कीड़े से उत्पन्न यह वस्त्र ग्रहण करो, जो देह की सुन्दरता का कारण तथा सदैव शोभावर्द्धक है ॥३५॥

रत्नस्वर्णविकारं च देहसौख्यविवर्धनम् । शोभाधारं[1] श्रीकरं च भूषणं प्रतिगृह्यताम् ॥३६॥
नानाकुसुमनिर्माणं बहुशोभाप्रदं परम् । सुरलोकप्रियं शुद्धं माल्यं देवि प्रगृह्यताम् ॥३७॥
शुद्धिदं शुद्धिरूपं च सर्वमङ्गलमङ्गलम् । गन्धवस्तूद्भवं रम्यं गन्धं देवि प्रगृह्यताम् ॥३८॥
पुण्यतीर्थोदकं चैव विशुद्धं शुद्धिदं सदा । गृह्यतां कृष्णकान्ते त्वं रम्यमाचमनीयकम् ॥३९॥
रत्नसारैः संग्रथितं पुष्पचन्दनसंयुतम् । रत्नभूषणभूषाढ्यं सुतल्पं प्रतिगृह्यताम् ॥४०॥
यद्यद्द्रव्यमपूर्वं च पृथिव्यामतिदुर्लभम् । देवभूपाढ्यभोग्यं च तद्द्रव्यं देवि गृह्यताम् ॥४१॥
द्रव्याण्येतानि दत्त्वा वै मूलेन च पुरंदरः । मूलं जजाप भक्त्या च दशलक्षं विधानतः ॥४२॥
जपेन दशलक्षेण मन्त्रसिद्धिर्बभूव ह । मन्त्रश्च ब्रह्मणा दत्तः कल्पवृक्षश्च सर्वदा ॥४३॥
लक्ष्मीर्माया कामवाणी ततः कमलवासिनी । स्वाहान्तो वैदिको मन्त्रराजोऽयं द्वादशाक्षरः ॥४४॥
श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं कमलवासिन्यै स्वाहा । कुबेरोऽनेन मन्त्रेण सर्वैश्वर्यमवाप्तवान् ॥४५॥
राजराजेश्वरो दक्षः सावर्णिर्मनुरेव च । मङ्गलोऽनेन मन्त्रेण सप्तद्वीपवतीपतिः ॥४६॥
प्रियव्रतोत्तानपादौ केदारो नृप एव च । एते च सिद्धा राजेन्द्रा मन्त्रेणानेन नारद ॥४७॥
सिद्धे मन्त्रे महालक्ष्मीर्ददौ शक्राय दर्शनम् । रत्नेन्द्रव्यूहखचितविमानस्था वरप्रदा ॥४८॥

रत्न और सुवर्ण से बनाये गये, शरीरसौख्यवर्द्धक, शोभा के आधार और श्रीप्रद इस भूषण को ग्रहण करो ॥३६॥ हे देवि! अनेक भाँति के पुष्पों से विभूषित, बहुशोभाकारी, देव-समूहों की प्रिय एवं शुद्ध इस माला को स्वीकार करो ॥३७॥ हे देवि ! शुद्धिप्रद, शुद्धिरूप, सभी मंगलों के मंगल, सुगन्धित वस्तु से उत्पन्न और रम्य इस गन्ध को स्वीकार करो॥३८॥ हे कृष्णकान्ते! इस आचमन-जल को स्वीकार करो, जो पुण्यतीर्थ का जल, विशुद्ध, सदा शुद्धिप्रद और रमणीक है॥३९॥ रत्नों के सार भाग से सिली हुई, पुष्प चन्दन युक्त एवं रत्नों के भूषणों से सुशोभित, इस सुंदर शय्या को ग्रहण करो॥४०॥ हे देवि! इस धरातल पर जो-जो अपूर्व-अत्यन्त दुर्लभ तथा देवताओं और राजाओं के उपभोग के योग्य द्रव्य है उसे स्वीकार करो ॥४१॥ इस भाँति इन्द्र ने मूलमंत्र द्वारा इन वस्तुओं को उन्हें समर्पित करके भक्तिपूर्वक सविधान मूलमंत्र का दश लाख जप किया ॥४२॥ दशलाख जप करने से मंत्र की सिद्धि हो गई। इस प्रकार ब्रह्मा ने मन्त्र और कल्पवृक्ष सर्वदा के लिए दे दिया ॥४३॥ लक्ष्मी, माया, कामवाणी, अनन्तर कमलवासिनी शब्द के अन्त में स्वाहा शब्द लगा देने से यह वैदिक द्वादशाक्षर मंत्रराज हो जाता है—'श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं कमलवासिन्यै स्वाहा'। इसी मंत्र द्वारा कुबेर ने समस्त ऐश्वर्य प्राप्त किया तथा राजराजेश्वर, हो गये, दक्ष सावर्णि भी मनु हो गये और मंगल सातों द्वीप वाली पृथ्वी के अधिपति हुए। हे नारद ! प्रियव्रत, उत्तानपाद और केदारनाथ आदि ये सभी राजेन्द्र इसी मंत्र द्वारा सिद्ध हुए हैं। उपरान्त मंत्र के सिद्ध होने पर महालक्ष्मी ने इन्द्र को साक्षात् दर्शन दिया, जो चारों ओर रत्नेन्द्र समूहों से खचित विमान पर स्थित, वर देनेवाली और अपनी कान्ति से इस सातों द्वीपवाली पृथ्वी को आच्छादित किए थीं तथा श्वेत चम्पा पुष्प के समान शरीर की कान्ति एवं रत्नों के भूषणों

---

१. ख. ०धानं ।

सप्तद्वीपवतीं पृथ्वीं छादयन्ती त्विषा च सा। श्वेतचम्पकवर्णाभा रत्नभूषणभूषिता ॥४९॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्या भक्तानुग्रहकारिका। बिभ्रती रत्नमालां च कोटिचन्द्रसमप्रभा ॥५०॥
दृष्ट्वा जगत्प्रसूं शान्तां तां तुष्टाव पुरंदरः। पुलकाङ्कितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्रः कृताञ्जलिः ॥५१॥
ब्रह्मणा च प्रदत्तेन स्तोत्रराजेन संयतः। सर्वाभीष्टप्रदेनैव वैदिकेनैव तत्र च ॥५२॥

इन्द्र उवाच

ॐ नमः कमलवासिन्यै नारायण्यै नमो नमः। कृष्णप्रियायै सारायै पद्मायै च नमो नमः ॥५३॥
पद्मपत्रेक्षणायै च पद्मास्यायै नमो नमः। पद्मासनायै पद्मिन्यै वैष्णव्यै च नमो नमः ॥५४॥
सर्वसंपत्स्वरूपायै सर्वदात्र्यै नमो नमः। सुखदायै मोक्षदायै सिद्धिदायै नमो नमः ॥५५॥
हरिभक्तिप्रदात्र्यै च हर्षदात्र्यै नमो नमः। कृष्णवक्षःस्थितायै च कृष्णेशायै नमो नमः ॥५६॥
कृष्णशोभास्वरूपायै रत्नाढ्यायै नमो नमः। संपत्त्यधिष्ठातृदेव्यै महादेव्यै नमो नमः ॥५७॥
सस्याधिष्ठातृदेव्यै च सस्यलक्ष्म्यै नमो नमः। नमो बुद्धिस्वरूपायै[1] बुद्धिदायै[2] नमो नमः॥५८॥
वैकुण्ठे च महालक्ष्मीर्लक्ष्मीः क्षीरोदसागरे। स्वर्गलक्ष्मीरिन्द्रगेहे राजलक्ष्मीर्नृपालये ॥५९॥

से सुशोभित, मन्दहास करती हुई प्रसन्न मुख, भक्तों पर अनुग्रह करने वाली और रत्नों की माला धारण किए करोड़ों चन्द्रमा के समान कान्तिपूर्ण थीं। इस प्रकार शान्त स्वरूपवाली उस जगज्जननी को देख कर समस्त अंगों में रोमांचित, आँखों में आँसू भरे एवं हाथ जोड़े इन्द्र ने ब्रह्मा के द्वारा प्रदत्त सकलकामनादायक वैदिक स्तोत्रराज द्वारा स्तुति करना आरम्भ किया ॥४४-५२॥

इन्द्र बोले—कमलवासिनी को नमस्कार है, नारायणी को बार-बार नमस्कार है। भगवान् कृष्ण की प्रिया तत्त्वस्वरूप पद्मा को, बार-बार नमस्कार है ॥५३॥ कमल के पत्ते के समान नेत्रवाली और कमलमुखी को बार-बार नमस्कार है। कमलासनवाली तथा उस कमलनयनी वैष्णवी को बार-बार नमस्कार है ॥५४॥ समस्त सम्पत्तिस्वरूप और सभी कुछ देने वाली को नमस्कार है। सुखप्रद, मोक्षदायिनी तथा सिद्धि देने वाली को बार-बार नमस्कार है ॥५५॥ भगवान् की भक्ति देने वाली एवं हर्षदायिनी को नमस्कार है। भगवान् कृष्ण के वक्षःस्थल पर रहने वाली एवं कृष्णस्वामिनी को नमस्कार है ॥५६॥ भगवान् कृष्ण की शोभा-स्वरूप और रत्नभूषिता को नमस्कार है। सम्पत्ति की अधिष्ठात्री महादेवी को नमस्कार है ॥५७॥ फूले-फले क्षेत्रों की अधिष्ठात्री देवी तथा सस्य-लक्ष्मी को नमस्कार है। बुद्धि स्वरूपवाली तथा बुद्धिदायिनी को नमस्कार है ॥५८॥ वैकुण्ठ में तुम महालक्ष्मी हो एवं क्षीरसागर में लक्ष्मी, इन्द्र के घर में स्वर्गलक्ष्मी, राजघरों में राजलक्ष्मी, गृहस्थों के घर में गृहलक्ष्मी, उनके घर की देवता, गौओं की माता सुरभि, यज्ञ-पत्नी दक्षिणा, देवमाता अदिति और कमलगृह में

---

१. क. वृद्धि०। २. वृद्धि०।

गृहलक्ष्मीश्च गृहिणां गेहे च गृहदेवता। सुरभिः सा गवां माता दक्षिणा यज्ञकामिनी ॥६०॥
अदितिर्देवमाता त्वं कमला कमलालये। स्वाहा त्वं च हविर्दाने कव्यदाने स्वधा स्मृता ॥६१॥
त्वं हि विष्णुस्वरूपा च सर्वाधारा वसुंधरा। शुद्धसत्त्वस्वरूपा त्वं नारायणपरायणा ॥६२॥
क्रोधहिंसाविवर्जिता च वरदा[1] च शुभानना। परमार्थप्रदा त्वं च हरिदास्यप्रदा परा ॥६३॥
यया विना जगत्सर्वं भस्मीभूतमसारकम्। जीवन्मृतं च विश्वं च शवतुल्यं यया विना ॥६४॥
सर्वेषां च परा त्वं हि सर्वबान्धवरूपिणी। यया विना न संभाष्यो बान्धवैर्बान्धवः सदा ॥६५॥
त्वया हीनो बन्धुहीनस्त्वया युक्तः सबान्धवः। धर्मार्थकाममोक्षाणां त्वं च कारणरूपिणी ॥६६॥
स्तनंधयानां त्वं माता शिशूनां शैशवे यथा। तथा त्वं सर्वदा माता सर्वेषां सर्वविश्वतः ॥६७॥
त्यक्तस्तनो मातृहीनः स चेज्जीवति दैवतः। त्वया हीनो जनः कोऽपि न जीवत्येव निश्चितम् ॥६८॥
सुप्रसन्नस्वरूपा त्वं मे प्रसन्ना भवाम्बिके। वैरिग्रस्तं च विषयं देहि मह्यं सनातनि ॥६९॥
वयं यावत्त्वया हीना बन्धुहीनाश्च भिक्षुकाः। सर्वसंपद्विहीनाश्च तावदेव हरिप्रिये ॥७०॥
राज्यं देहि श्रियं देहि बलं देहि सुरेश्वरि। कीर्तिं देहि धनं देहि पुत्रान्मह्यं च देहि वै ॥७१॥
कामं देहि मतिं देहि भोगान्देहि हरिप्रिये। ज्ञानं देहि च धर्मं च सर्वसौभाग्यमीप्सितम् ॥७२॥

तुम कमला हो। तुम हवि प्रदान करते समय स्वाहा एवं कव्य दान में स्वधा हो ॥५९-६१॥ तुम ही विष्णुस्वरूप और समस्त की आधार वसुन्धरा हो। शुद्ध सत्त्ववाली तुम नारायणपरायण रहती हो। तुम क्रोध, हिंसा से रहित, वरदायिनी, शुभमुखी, परमार्थ देने वाली एवं हरिदास्य देने वाली सर्वश्रेष्ठ हो ॥६२-६३॥ जिसके बिना समस्त संसार भस्मीभूत और साररहीन मालूम होता है, तथा जिसके बिना यह समस्त विश्व जीवित रहते हुए भी मृतक एवं शव के समान हो जाता है ॥६४॥ वही तुम सब में श्रेष्ठ और समस्तबान्धव रूप हो। तुम्हारे बिना भाई-भाई में भी सदा बोल-चाल नहीं होता है ॥६५॥ एवं तुमसे हीन रहने पर (मनुष्य) बन्धुहीन और तुमसे युक्त रहने पर बन्धुओं से युक्त रहता है। इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की तुम कारण रूप हो।॥६६॥ शैशवावस्था में दूध पीने वाले बच्चों की माता की भाँति तुम सारे विश्व की सर्वदा माता हो।॥६७॥ क्योंकि माता का स्तन छूट जाये, मातृहीन हो जाये, तो भी कदाचित् दैवयोग से जीवित रह सकता है किन्तु तुमसे रहित होकर कोई भी मनुष्य निश्चित ही जीवित नहीं रह सकता।॥६८॥ अतः हे अम्बिके! अत्यन्त प्रसन्नस्वरूप होने के कारण तुम मुझ पर प्रसन्न हो जाओ। हे सनातनि! वैरियों के अधीन हुए मेरे विषयों (वस्तुओं) को मुझे पुनः दिलाने की कृपा करो ॥६९॥ हे हरिप्रिये! हम लोग जब तक तुमसे रहित हैं तब तक बन्धुओं से भी हीन, भिक्षुक तथा सभी सम्पत्तियों से हीन हैं ॥७०॥ अतः हे सुरेश्वरि! हमें राज्यसमेत श्री और बल प्रदान करो। कीर्ति और धन समेत मुझे अनेक पुत्र भी प्रदान करो ॥७१॥ हे हरिप्रिये! हमारी कामनाएँ पूरी करो। हमें मति (बुद्धि) प्रदान करो। भोगों को दो तथा ज्ञान-धर्म के साथ अभिलषित समस्त सौभाग्य प्रदान करो ॥७२॥

---

१. क. ०दा शारदा शुभा।

सर्वाधिकारमेवं वै प्रभावं च प्रतापकम्। जयं पराक्रमं युद्धे[1] परमैश्वर्यमेव च ॥७३॥
इत्युक्त्वा तु महेन्द्रश्च सर्वैः सुरगणैः सह। ननाम साश्रुनेत्रोऽयं मूर्ध्ना चैव पुनः पुनः ॥७४॥
ब्रह्मा च शङ्करश्चैव शेषो धर्मश्च केशवः। सर्वे चक्रुः परीहारं सुरार्थे च पुनः पुनः ॥७५॥
देवेभ्यश्च वरं दत्त्वा पुष्पमालां मनोहराम्। केशवाय ददौ लक्ष्मीः संतुष्टा सुरसंसदि ॥७६॥
ययुर्देवाश्च संतुष्टाः स्वं स्वं स्थानं च नारद। देवी ययौ हरेः क्रोडं हृष्टा क्षीरोदशायिनः ॥७७॥
ययतुस्तौ स्वस्वगृहं ब्रह्मेशानौ च नारद। दत्त्वा शुभाशिषं तौ च देवेभ्यः प्रीतिपूर्वकम् ॥७८॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः। कुबेरतुल्यः स भवेद्राजराजेश्वरो महान् ॥७९॥
सिद्धस्तोत्रं[2] यदि पठेत्सोऽपि कल्पतरुर्नरः। पञ्चलक्षजपेनैव स्तोत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥८०॥
सिद्धं स्तोत्रं यदि पठेन्मासमेकं च संयतः। महासुखी च राजेन्द्रो भविष्यति न संशयः ॥८१॥

नारद उवाच

पुष्पं दुर्वाससा दत्तमस्ति वै यस्य मस्तके। तस्य सर्वा पुरः पूजेत्युक्तं पूर्वं त्वया प्रभो ॥८२॥

इसी प्रकार समस्त अधिकार, प्रभाव, प्रताप, युद्ध में जय-पराक्रम और परमैश्वर्य हमें प्रदान करो ॥७३॥ इतना कह कर महेन्द्र ने समस्त देवों समेत आँखों में आँसू भरे शिर से उन्हें बार-बार नमस्कार किया ॥७४॥ ब्रह्मा, शिव, शेष, धर्मराज और केशव आदि सभी ने देवों के हितार्थ बार-बार अपराध क्षमा करने के लिए आग्रह किया ॥७५॥ उपरान्त उस देव के हितार्थ लक्ष्मी ने प्रसन्न होकर देवताओं को वरदान और भगवान् केशव को मनोहर पुष्पमाला प्रदान की ॥७६॥ हे नारद ! अनन्तर देवता लोग उसी समय हर्षित होकर अपने-अपने स्थान को चले गये और उसी समय से देवी (लक्ष्मी) भी क्षीरसागरशायी भगवान् की गोद में सन्तुष्ट होकर निवास करने लगीं ॥७७॥ हे नारद ब्रह्मा और शिव भी देवों को प्रीतिपूर्वक शुभ आशिष प्रदान कर अपने-अपने स्थान को चले गये ॥७८॥ जो मनुष्य महापुण्यस्वरूप इस स्तोत्र का पाठ तीनों संध्याओं में करेगा, वह कुबेर की भाँति महान् राजराजेश्वर होगा ॥७९॥ यदि वह पुरुष सिद्ध-स्तोत्र का पाठ करेगा, तो कल्पवृक्ष (की भाँति सर्वश्रेष्ठ) होगा। इसका पाँच लाख जप करने से मनुष्यों को स्तोत्र-सिद्धि हो जाती है ॥८०॥ यदि एक मास तक इस सिद्ध स्तोत्र का पाठ संयमपूर्वक करेगा तो वह महासुखी राजेन्द्र होगा, इसमें संशय नहीं ॥८१॥

नारद बोले—हे प्रभो! आपने यह पहले ही कहा है कि दुर्वासा का दिया हुआ वह पुष्प जिसके मस्तक पर विराजमान रहेगा, उसकी सब के सामने पहले पूजा होगी फिर वही पुष्प गजराज के मस्तक पर (इन्द्र ने) रखा था, जिससे गणेश जी का (गजानन रूप में) जन्म हुआ। अनन्तर वह गजेन्द्र मत्त होकर अन्य घोर वन में चला गया था। हे मुने! पूर्व काल में शनि के दृष्टिपात करने पर गणपति का मस्तक कट गया था, जिससे

१क. बुद्धि प०। २क. स्तोत्रं यदि भवेत्सो०।

तदेव स्थापितं पुष्पं गजेन्द्रस्यैव मस्तके । यतो जन्म गणेशस्य स च मत्तो वनं गतः ॥८३॥
मूर्ध्नि छिन्ने गणपतेः शनेर्दृष्टया पुरा मुने । तत्स्कन्धे योजयामास हस्तिमस्तं हरिः स्वयम् ॥८४॥
अधुनोक्तं देवषट्कं संपूज्य च पुरंदरः । पूजयामास लक्ष्मीं च क्षीरोदे च सुरैः सह ॥८५॥
अहो पुराणवक्तृणां दुर्बोधं वचनं नृणाम् । सुव्यक्तमस्य सिद्धान्तं वद वेदविदां वर ॥८६॥

नारायण उवाच

यदा शशाप शक्रं च दुर्वासा मुनिपुंगवः । तदा नास्त्येव तज्जन्म पूजाकाले बभूव सः ॥८७॥
सुचिरं दुःखिता देवा बभ्रमुर्ब्रह्मशापतः । पश्चात्प्रापुश्च तां लक्ष्मीं वरेण च हरेर्मुने ॥८८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० लक्ष्म्युपा० लक्ष्मीपूजाविधानं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

नारद उवाच

नारायण महाभाग समश्चैव त्वया प्रभो । रूपेण च गुणैश्चैव यशसा तेजसा त्विषा ॥१॥
त्वमेव ज्ञानिनां श्रेष्ठः सिद्धानां योगिनां तथा । तपस्विनां मुनीनां च परो वेदविदां तथा
महालक्ष्म्या उपाख्यानं विज्ञातं महदद्भुतम् ॥२॥

भगवान् ने स्वयं उसी हाथी का मस्तक उनके कन्धे पर जोड़ दिया था। और अब इस समय यह कह रहे हैं कि—'इन्द्र ने देवों समेत क्षीरसागर में छह देवों की पूजा के उपरान्त लक्ष्मी की भी पूजा की थी। हे वेदविदों में श्रेष्ठ! इन्हीं बातों के कारण पुराणवक्ताओं की बातें मनुष्यों के लिए दुर्बोध होती है। अतः इस सिद्धान्त को सुस्पष्ट बताने की कृपा करें ॥८२-८६॥

नारायण बोले—जिस समय मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा ने इन्द्र को शाप दिया था, उस समय गणेश का जन्म नहीं हुआ था, वे पूजा के समय उत्पन्न हुए थे। हे मुने! ब्रह्म-शाप के कारण देवगण अति चिरकाल तक दुःखी होकर इधर-उधर घूम रहे थे। पश्चात् भगवान् के वरदान द्वारा उन्होंने लक्ष्मी प्राप्त की ॥८७-८८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में लक्ष्मीपूजा—विधान नामक उन्तालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३९॥

अध्याय ४०

स्वाहा के जन्म आदि का कथन

नारद बोले—हे नारायण, हे महाभाग! हे प्रभो! रूप, गुण, यश, तेज और कान्ति में अपने समान आप ही हो। तुम्हीं ज्ञानियों, सिद्धों, योगियों, तपस्वियों, मुनियों और वेद-वेत्ताओं में परम श्रेष्ठ हो। मैंने महालक्ष्मी का

अन्यत्किंचिदुपाख्यानं निगूढं वद सांप्रतम्। अतीव गोपनीयं यदुपयुक्तं च सर्वतः। अप्रकाश्यं पुराणेषु वेदोक्तं धर्मसंयुतम् ॥३॥

नारायण उवाच

नानाप्रकारमाख्यानमप्रकाश्यं पुराणतः। श्रुतौ कतिविधं गूढमास्ते ब्रह्मन्सुदुर्लभम् ॥४॥
तेषु यत्सारभूतं च श्रोतुं किं वा त्वमिच्छसि। तन्मे ब्रूहि महाभाग पश्चाद्वक्ष्यामि तत्पुनः ॥५॥

नारद उवाच

स्वाहा देवहविर्दाने प्रशस्ता सर्वकर्मसु। पितृदाने स्वधा शस्ता दक्षिणा सर्वतो वरा ॥६॥
एतासां चरितं जन्म फलं प्राधान्यमेव च। श्रोतुमिच्छामि ते वक्त्राद्वद वेदविदां वर ॥७॥

सौतिरुवाच

नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य मुनिपुंगवः। कथां कथितुमारेभे पुराणोक्तां पुरातनीम् ॥८॥

नारायण उवाच

सृष्टेः प्रथमतो देवाश्चाऽऽहारार्थं ययुः पुरा। ब्रह्मलोके ब्रह्मसभामगम्यां सुमनोहराम् ॥९॥
गत्वा निवेदनं चक्रुर्मुने त्वाहारहेतुकम्। ब्रह्मा श्रुत्वा प्रतिज्ञाय सिषेवे श्रीहरेः पदम् ॥१०॥

यह महान् एवं अद्भुत उपाख्यान आपके द्वारा जान लिया। अब इस समय कोई अन्य गूढ़, उपाख्यान बताने की कृपा करें, जो अति गोपनीय, सबके उपयुक्त, पुराणों में अप्रकाशित, वेदोक्त और धर्मपूर्ण हो ॥१-३॥

नारायण बोले—हे ब्रह्मन्! अनेक भाँति के आख्यान हैं, जो पुराणों में प्रकाशित हैं। वेदों में इस भाँति के अनेक और गूढ़ उपाख्यान हैं, जो अन्य के लिए अत्यन्त दुर्लभ हैं ॥४॥ उनमें भी जो उनका सारभूत है, क्या तुम उन्हें सुनना चाहते हो? हे महाभाग! यदि चाहते हो तो, कहो, मैं उन्हें फिर सुनाने को तैयार हूँ ॥५॥

नारद बोले—देवों के उद्देश्य से सभी कर्मों में हवि दान में स्वाहा प्रशस्त मानी गयी हैं और पितरों के उद्देश्य से (कव्यदान में) स्वधा; किन्तु दक्षिणा की प्रशंसा सब से अधिक है; अतः इन सबका चरित, जन्म तथा प्रधान फल आपके मुख से सुनना चाहता हूँ। आप वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ हैं इसलिए बताने की कृपा करें ॥६-७॥

सौति बोले—नारद की ऐसी बातें सुन कर मुनिश्रेष्ठ नारायण ने हँसते हुए पुराण सम्बन्धी पुरानी कथाओं को कहना आरम्भ किया ॥८॥

नारायण बोले—पूर्वकाल में सृष्टि के अनन्तर देवों ने आहार के अन्वेषणार्थ ब्रह्मलोक में ब्रह्मा की सभा में पहुँचे जो दूसरों के लिए अगम्य और अत्यन्त मनोहर थी ॥९॥ हे मुने! वहाँ पहुँचकर उन लोगों ने अपने आहारार्थ ब्रह्मा से निवेदन किया। अनन्तर ब्रह्मा ने भी उनकी बातें सुनकर उसकी पूर्ति के लिए प्रतिज्ञा की और तदर्थ भगवान् के चरण की आराधना आरम्भ की ॥१०॥ तब भगवान् अपनी कला (अंश) द्वारा यज्ञ रूप होकर अवतीर्ण हुए। यज्ञ में जिस-जिस हवि का दान किया जाता है, ब्रह्मा ने देवों के निमित्त सब कुछ

यज्ञरूपो हि भगवान्कलया च बभूव सः। यज्ञे यद्यद्धविर्दानं दत्तं तेभ्यश्च वेधसा ॥११॥
हविर्ददति विप्राश्च [1]भक्ता च क्षत्रियादयः। सुरा नैव प्राप्नुवन्ति तद्दानं मुनिपुंगव ॥१२॥
देवा विषण्णास्ते सर्वे तत्सभां च पुनर्ययुः। गत्वा निवेदनं चक्रुराहाराभावहेतुकम् ॥१३॥
ब्रह्मा श्रुत्वा तु मनसा श्रीकृष्णं शरणं ययौ। प्रकृतिं पूजयामास ध्यायन्नेव तदाज्ञया ॥१४॥
प्रकृतिः कलया चैव सर्वशक्तिस्वरूपिणी। बभूव दाहिका शक्तिरग्नेः स्वाहास्वरूपिणी ॥१५॥
ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रभान्यक्कारकारिणी। अतीव सुन्दरी रामा रमणीया मनोहरा ॥१६॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्या भक्तानुग्रहकारिणी। उवाचेति विधेरग्रे पद्मयोने वरं वृणु ॥१७॥
विधिस्तद्वचनं श्रुत्वा संभ्रमात्समुवाच ताम् ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

त्वमग्नेर्दाहिकाशक्तिर्भवपत्नी च सुन्दरी। दग्धुं न शक्तः स्वहुतं हुताशश्च त्वया विना ॥१९॥
त्वन्नामोच्चार्य मन्त्रान्ते यद्दास्यति हविर्नरः। सुरेभ्यस्तत्प्राप्नुवन्ति सुराः सानन्दपूर्वकम् ॥२०॥
अग्नेः संपत्स्वरूपा च श्रीरूपा च गृहेश्वरी। देवानां पूजिता शश्वन्नरादीनां भवाम्बिके ॥२१॥

किया। हे मुनिपुंगव! यज्ञ में भक्तिपूर्वक ब्राह्मण, क्षत्रिय लोगों ने हवि का दान किया, किन्तु वह दान देवों को न प्राप्त हो सका ॥११-१२॥ अनन्तर देवों ने खिन्न मन होकर पुनः ब्रह्म-सभा के लिए प्रस्थान किया और वहाँ पहुँच कर उनसे अपने आहार न मिलने का कारण निवेदन किया ॥१३॥ उपरान्त ब्रह्मा उनकी बातें सुनकर मन से भगवान् श्रीकृष्ण की शरण में प्राप्त हुए और उनकी आज्ञा से ध्यान करते हुए उन्होंने प्रकृति की पूजा की ॥१४॥ पश्चात् समस्त शक्ति का स्वरूप धारण करने वाली वह प्रकृति अपनी कला (अंश) से अग्नि की दाहिका (जलाने वाली) शक्ति होकर उत्पन्न हुई, जिसे स्वाहास्वरूप कहा जाता है ॥१५॥ ग्रीष्मकालीन-मध्याह्न के सूर्य की प्रभा को तिरस्कृत करने वाली उसकी कान्ति थी। इस प्रकार अत्यन्त सुन्दरी, रमणीया और मनोहर उसकी वह मूर्ति थी ॥१६॥ मन्द मुसुकान करती हुई उस प्रसन्नवदना ने, जो भक्तों पर (सदा) कृपा करती रहती है, ब्रह्म के आगे स्थित होकर उनसे कहा—'हे पद्मयोने! वर की याचना करो' ॥१७॥ ब्रह्मा ने भी उनकी बातें सुन कर घबराहट के साथ उनसे कहना आरम्भ किया ॥१८॥

ब्रह्मा बोले—तुम अग्नि की दाहिका शक्ति के रूप में उनकी सुन्दरी पत्नी बनो। क्योंकि तुम्हारे बिना अग्निदेव अपने में की गई हवन वस्तु को जलाने में असमर्थ हैं ॥१९॥ मन्त्रों के अन्त में तुम्हारे नाम का उच्चारण कर मनुष्य, देवों के निमित्त जो हवि प्रदान करेंगे, वह देवों को अत्यानन्दपूर्वक प्राप्त होगा ॥२०॥ हे अम्बिके! तुम अग्नि की सम्पत्ति स्वरूप, श्रीरूप और गृहेश्वरी (गृहस्वामिनी) तथा देवों और मनुष्यों की निरन्तर पूज्या बनो ॥२१॥ इस भाँति ब्रह्मा की यह बात सुनकर वह देवी खिन्नमन हो गयी और अपने अभिप्राय को स्वयं उसने स्वयंभू (ब्रह्मा) से कहना आरम्भ किया ॥२२॥

---

१. ख. भक्त्या।

ब्रह्मणश्च वचः श्रुत्वा सा विषण्णा बभूव ह। तमुवाच स्वयं देवी स्वाभिप्रायं स्वयंभुवम् ॥२२॥

स्वाहोवाच

अहं कृष्णं भजिष्यामि तपसा सुचिरेण च। ब्रह्मंस्तदन्यद्यत्किंचित्स्वप्नवद्भ्रम एव च ॥२३॥
विधाता जगतां त्वं च शंभुर्मृत्युञ्जयः प्रभुः। बिभर्ति शेषो विश्वं च धर्मः साक्षी च देहिनाम् ॥२४॥
सर्वाद्यपूज्यो देवानां गणेषु च गणेश्वरः। प्रकृतिः सर्वसूः सर्वैः पूजिता यत्प्रसादतः ॥२५॥
ऋषयो मुनयश्चैव पूजिता यं निषेव्य च। तत्पादपद्मं ब्रह्मैक्यभावाद्धं चिन्तयाम्यहम् ॥२६॥
पद्मास्या पाद्ममित्युक्त्वा पद्मलाभानुसारतः। जगाम तपसे पाद्मे पद्मादीशस्य पद्मजा ॥२७॥
तपस्तेपे लक्षवर्षमेकपादेन पद्मजा। तदा ददर्श श्रीकृष्णं निर्गुणं प्रकृतेः परम् ॥२८॥
अतीव कमनीयं च रूपं दृष्ट्वा च सुन्दरी। मूर्च्छां संप्राप कामेन कामेशस्य च कामुकी ॥२९॥
विज्ञाय तदभिप्रायं सर्वज्ञस्तामुवाच सः। स्वक्रोडे च समुत्थाप्य क्षीणाङ्गीं तपसा चिरम् ॥३०॥

श्रीकृष्ण उवाच

वाराहे च त्वमंशेन मम पत्नी भविष्यसि। नाम्ना नाग्नजिती कन्या कान्ते नग्नजितस्य च ॥३१॥
अधुनाऽग्नेर्दाहिका त्वं भव पत्नी च भाविनि। मन्त्राङ्गरूपा पूता च मत्प्रसादाद्भविष्यसि ॥३२॥

स्वाहा बोली—हे ब्रह्मन्! मैं अति चिरकाल तक तप करके भगवान् श्रीकृष्ण को प्राप्त करूँगी और उन्हीं की सेवा करूँगी, क्योंकि उनसे भिन्न अन्य जो कुछ है, वह स्वप्न की भाँति भ्रमात्मक है ॥२३॥ (जिनके प्रसाद से) तुम जगत् के विधाता, शिव मृत्युंजय, शेष समस्त विश्व के पालक और धर्म सभी प्राणियों के साक्षी हैं ॥२४॥ गणेश सभी देवों में आदि पूजनीय, तथा गणों में गणेश्वर हुए और जिनकी कृपा से सब को उत्पन्न करने वाली प्रकृति सब के द्वारा पूजित हुई है ॥२५॥ एवं जिनकी सेवा कर के ऋषि-मुनि लोग पूजित हुए उन्हीं के चरण-कमल का मैं ब्रह्मैक्यभाव से चिन्तन किया करती हूँ ॥२६॥ कमलानना (स्वाहा) ने इतना कमलोत्पन्न ब्रह्मा से कह कर ब्रह्मा की आज्ञा से कमलों के तालाब में कमल में तप के हेतु प्रस्थान किया ॥२७॥ स्वाहा ने वहाँ एक चरण से स्थित होकर एक लाख वर्ष तक तप किया। अनन्तर उसे प्रकृति से परे एवं निर्गुण भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन हुआ ॥२८॥ वह सुन्दरी उनका अतिसुन्दर रूप देखकर कामेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण की कामुकी बनी और काम उत्पन्न होने के नाते उस समय मूर्च्छित भी हो गयी ॥२९॥ किन्तु सर्वज्ञ (भगवान्) ने उसके अभिप्राय को जान कर चिरकाल तक तप करने के कारण उस क्षीणांगी को अपनी गोद में बैठा लिया और उससे कहा ॥३०॥

श्रीकृष्ण बोले—हे कान्ते! वराहावतार के समय तुम मेरे अंश से नग्नजित के यहाँ नाग्नजिती नामक कन्या होकर मेरी पत्नी बनोगी। हे भाविनि! इस समय तुम अग्नि की दाहिका पत्नी बन जाओ और तुम मेरी कृपा से मन्त्राङ्ग रूप एवं पवित्र रहोगी। अग्नि तुम्हें अपनी गृहेश्वरी बना कर भक्ति-भाव से तुम्हारी पूजा करके तुम सुन्दरी रमणी के साथ सानन्द रमण करेंगे। हे नारद! नारायण देव उससे

वह्निस्त्वां भक्तिभावेन संपूज्य च गृहेश्वरीम्। रमिष्यते त्वया सार्धं रामया रमणीयया।।३३।।
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवो देवीमाश्वास्य नारद। तत्राऽऽजगाम संत्रस्तो वह्निर्ब्रह्मनिदेशतः।।३४।।
ध्यानैश्च सामवेदोक्तैर्ध्यात्वा तां जगदम्बिकाम्। संपूज्य परितुष्टाव पाणिं जग्राह मन्त्रतः।।३५।।
तदा दिव्यं वर्षशतं स रेमे रामया सह। अतीव निर्जने रम्ये संभोगसुखदे सदा।।३६।।
बभूव गर्भस्तस्याश्च हुताशस्यैव तेजसा। तद्दधार च सा देवी दिव्यं द्वादशवत्सरम्।।३७।।
ततः सुषाव पुत्रांश्च रमणीयान्मनोहरान्। दक्षिणाग्निगार्हपत्याहवनीयान्क्रमेण च।।३८।।
ऋषयो मुनयश्चैव ब्राह्मणाः क्षत्रियादयः। स्वाहान्तं मन्त्रमुच्चार्य हविर्ददति नित्यशः।।३९।।
स्वाहायुक्तं च मन्त्रं च यो गृह्णाति प्रशस्तकम्। सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य ब्रह्मन्ग्रहणमात्रतः।।४०।।
विषहीनो यथा सर्पो वेदहीनो यथा द्विजः। पतिसेवाविहीना स्त्री विद्याहीनो यथा नरः।।४१।।
फलशाखाविहीनश्च यथा वृक्षो हि निन्दितः। स्वाहाहीनस्तथा मन्त्रो न द्रुतं फलदायकः।।४२।।
परितुष्टा द्विजाः सर्वे देवाः संप्रापुराहुतिम्। स्वाहान्तेनैव मन्त्रेण सफलं सर्वकर्म च।।४३।।
इत्येवं वर्णितं सर्वं स्वाहोपाख्यानमुत्तमम्। सुखदं मोक्षदं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि।।४४।।

नारद उवाच

स्वाहापूजाविधानं च ध्यानं स्तोत्रं मुनीश्वर। संपूज्य वह्निस्तुष्टाव येन तां वद मे प्रभो।।४५।।

इस प्रकार कह कर अन्तर्हित हो गए और ब्रह्मा की आज्ञा से वहाँ भयभीत होते हुए अग्नि पहुँच गये। सामवेदोक्त ध्यान द्वारा अग्नि ने उस जगदम्बिका का ध्यान, पूजन और भली भाँति स्तुति की। अनन्तर मन्त्र द्वारा उसका पाणिग्रहण (विवाह) किया। पश्चात् अतिशून्य एवं रमणीय स्थान में, जो सम्भोग में सदा सुखदायक था, उस सुन्दरी के साथ दिव्य सौ वर्ष तक रमण किया। उपरान्त अग्नि के तेज को उसने गर्भ रूप में धारण किया, जो दिव्य बारह वर्ष तक गर्भ में सुरक्षित था। अनन्तर दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य एवं आहवनीय आदि रमणीय एवं मनोहर पुत्रों को क्रमशः उत्पन्न किया। इस प्रकार (तभी से) ऋषिगण, मुनिगण, ब्राह्मण वृन्द ने स्वाहान्त मन्त्र का उच्चारण कर नित्य हविर्दान करना आरम्भ किया। हे ब्रह्मन्! जो स्वाहायुक्त मन्त्र को प्रशस्त जान कर ग्रहण करता है, उसे ग्रहण मात्र से सर्व सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। जिस प्रकार विषरहित सर्प, वेदविहीन ब्राह्मण, पतिसेवा से रहित स्त्री, विद्याहीन मनुष्य और फल-शाखा रहित वृक्ष निन्दित है, उसी भाँति स्वाहाहीन मंत्र शीघ्र फलदायक नहीं होता है। अतः स्वाहान्त मंत्र के उच्चारण द्वारा ब्राह्मण गण सन्तुष्ट हुए, सभी देवों को आहुति प्राप्त होने लगी और सभी कर्म सफल होने लगे। इस प्रकार स्वाहा का उत्तम आख्यान मैंने तुम्हें सुना दिया, जो सुखदायक, मोक्षप्रद और सार रूप है। अब और क्या सुनना चाहते हो।।३१-४४।।

नारद बोले—हे मुनीश्वर! हे प्रभो! स्वाहा का पूजा-विधान, ध्यान, स्तोत्र तथा पूजनोपरान्त अग्नि ने जिसके द्वारा उनकी स्तुति की, वह मुझे बताने की कृपा करें।।४५।।

नारायण उवाच

ध्यानं च सामवेदोक्तं स्तोत्रं पूजाविधानकम् । वदामि श्रूयतां ब्रह्मन्सावधानं निशामय ॥४६॥
सर्वयज्ञारम्भकाले शालग्रामे घटेऽथवा । स्वाहां संपूज्य यत्नेन यज्ञं कुर्यात्फलाप्तये ॥४७॥
स्वाहां मन्त्राङ्गभूतां च मन्त्रसिद्धिस्वरूपिणीम् । सिद्धां च सिद्धिदां नृणां कर्मणां फलदां भजे ॥४८॥
इति ध्यात्वा च मूलेन दत्त्वा पाद्यादिकं नरः। सर्वसिद्धिं लभेत्स्तुत्वा मूलं स्तोत्रं मुने शृणु ॥४९॥
ॐ ह्रीं श्रीं वह्निजायायै देव्यै स्वाहेत्यनेन च। यः पूजयेच्च तां देवीं सर्वेष्टं लभते ध्रुवम् ॥५०॥

वह्निरुवाच

स्वाहाऽऽद्या प्रकृतेरंशा मन्त्रतन्त्राङ्गरूपिणी । मन्त्राणां फलदात्री च धात्री च जगतां सती ॥५१॥
सिद्धिस्वरूपा सिद्धा च सिद्धिदा सर्वदा नृणाम्। हुताशदाहिकाशक्तिस्तत्प्राणाधिकरूपिणी ॥५२॥
संसारसाररूपा च घोरसंसारतारिणी । देवजीवनरूपा च देवपोषणकारिणी ॥५३॥
षोडशैतानि नामानि यः पठेद्भक्तिसंयुतः । सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य चेह लोके परत्र च ॥५४॥
नाङ्गहीनो भवेत्तस्य सर्वकर्मसु शोभनम्। अपुत्रो लभते पुत्रमभार्यो लभते प्रियाम् ॥५५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० स्वाहोपा० स्वाहाजन्मादिकथनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥

नारायण बोले—हे ब्रह्मन्! सामवेदोक्त ध्यान, स्तोत्र तथा पूजाविधान मैं कह रहा हूँ; सावधान होकर सुनो ॥४६॥ फल-प्राप्ति के लिए समस्त यज्ञों के आरम्भ में शालग्राम में अथवा कलश में स्वाहा का पूजन कर के यज्ञ करना चाहिए ॥४७॥ मन्त्र की अंगभूत, मन्त्र-सिद्धि स्वरूप, सिद्ध एवं सिद्धप्रद और मनष्यों को कर्मफल प्रदान करने वाली स्वाहा की मैं सेवा कर रहा हूँ, ऐसा ध्यान कर के मूलमंत्र द्वारा उन्हें अर्घ्य-पाद्य प्रदान तथा स्तुति करने पर मनुष्य को सर्वसिद्धि प्राप्त हो जाती है। हे मुने! अब उनके मूल स्तोत्र को बता रहा हूँ, सुनो ॥४८-४९॥ 'ओं ह्रीं श्रीं वह्निजायायै देव्यै स्वाहा' इस मन्त्र द्वारा जो उस देवी की पूजा करता है उसके सभी इष्ट निश्चित सफल होते हैं ॥५०॥

वह्नि बोले—आद्य स्वाहा, प्रकृति की कला, मन्त्रतन्त्र का अंगस्वरूप, मंत्रो का फल देने वाली, समस्त संसार को धारण करने वाली, सती, सिद्धिस्वरूपा, सिद्धा, मनुष्यों को सदा सिद्धि देने वाली अग्नि की दाहिका शक्ति, उन्हें उनके प्राणों से अधिक प्रिय, संसार का सार भाग, घोर संसार से तारने वाली, देवताओं का जीवन रूप, तथा उनका पालन-पोषण करने वाली; इन सोलह नामों को जो भक्तिपूर्वक पढ़ता है, उसे लोक-परलोक की समस्त सिद्धि प्राप्त होती है ॥५१-५४॥ उसका कोई भी कार्य अंगहीन नहीं होता है। सभी कर्म सुन्दर ढंग से सफल होते हैं। इससे पुत्रहीन को पुत्र और स्त्रीविहीन को स्त्री की प्राप्ति होती है ॥५५॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवादविषयक स्वाहा-उपाख्यान में स्वाहाजन्मादिकथननामक चालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४०॥

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि स्वधोपाख्यानमुत्तमम् । पितृणां वै तृप्तिकरं श्राद्धानां फलवर्धनम् ॥१॥
सृष्टेरादौ पितृगणान्ससर्ज जगतां विधिः । चतुरो वै मूर्तिमतस्त्रींश्च तेजः स्वरूपिणः ॥२॥
सप्त दृष्ट्वा पितृगणान्सिद्धिरूपान्मनोहरान् । आहारं ससृजे तेषां श्राद्धतर्पणपूर्वकम् ॥३॥
स्नानं तर्पणपर्यन्तं श्राद्धान्तं देवपूजनम् । आह्निकं च त्रिसंध्यान्तं विप्राणां च श्रुतौ श्रुतम् ॥४॥
नित्यं न कुर्याद्यो विप्रस्त्रिसंध्यं श्राद्धतर्पणम् । बलिं वेदध्वनिं सोऽपि विषहीनो यथोरगः ॥५॥
हरिसेवाविहीनश्च श्रीहरेरनिवेद्यभुक् । जन्मान्तं सूतकं तस्य न कर्मार्हः स नारद ॥६॥
ब्रह्मा श्राद्धादिकं सृष्ट्वा जगाम पितृहेतवे । न प्राप्नुवन्ति पितरो ददति ब्राह्मणादयः ॥७॥
सर्वे प्रजग्मुः क्षुधिता विषण्णा ब्रह्मणः सभाम् । सर्वे निवेदनं चक्रुस्तमेव जगतां विधिम् ॥८॥
ब्रह्मा च मानसीं कन्यां ससृजे तां मनोहराम् । रूपयौवनसंपन्नां शरच्चन्द्रसमप्रभाम् ॥९॥
विद्यावतीं गुणवतीमपि रूपवतीं सतीम् । श्वेतचम्पकवर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम् ॥१०॥
विशुद्धां प्रकृतेरंशां सस्मितां वरदां शुभाम् । स्वधाभिधानां सुदतीं लक्ष्मीं लक्षणसंयुताम् ॥११॥

अध्याय ४१

स्वधा की उत्पत्ति आदि का कथन

नारायण बोले—हे नारद ! मैं तुम्हें स्वधा का परमोत्तम उपाख्यान बता रहा हूँ, जो पितरों को तृप्ति प्रदान करने वाला और श्राद्धों के फल में वृद्धि करने वाला है ॥१॥ जगत् के रचयिता ब्रह्मा ने सृष्टि के आरम्भ में पितर लोगों की रचना की—जिनमें चार मूर्तिधारी और तीन तेजः स्वरूप थे ॥२॥ उन सातों पितरगणों को देखकर, जो सिद्धि स्वरूप एवं मनोहर थे, ब्रह्मा ने श्राद्ध-तर्पणपूर्वक उनके आहार की रचना की ॥३॥ वेदों में ब्राह्मणों के लिए—स्नान, तर्पण, श्राद्ध, देवपूजन और तीनों काल की संध्या आदि आह्निक कर्म बताये गए हैं ॥४॥ इसलिए जो ब्राह्मण नित्य तीनों काल की संध्या, श्राद्ध-तर्पण, वलिवैश्वदेव और वेदपाठ नहीं करता है, उसे विषरहित सर्प की भाँति (व्यर्थ) जानना चाहिए ॥५॥ हे नारद ! भगवान् की सेवा से रहित और भगवान् को बिना निवेदन किए भोजन करने वाला पुरुष मरण पर्यन्त अशुद्ध रहता है, वह किसी भी कार्य के योग्य नहीं होता है ॥६॥ इस प्रकार ब्रह्मा ने श्राद्ध आदि की रचना कर के पितरों को सौंप दिया और ब्राह्मण आदि लोग पितरों के उद्देश्य से उन कर्मों को सुसम्पन्न भी करने लगे, किन्तु वह पितरों को प्राप्त न हो सका ॥७॥ उपरान्त सभी पितरगण क्षुधा पीड़ित होने से खिन्न मन होकर ब्रह्मा की सभा में गये और जगद्विधाता (ब्रह्मा) से उन्होंने निवेदन किया ॥८॥ उसे सुनकर ब्रह्मा ने एक मानसी कन्या उत्पन्न की, जो मनोहर, रूप-यौवनसम्पन्न, शरत् ऋतु की चन्द्रमा के समान कान्तिमती, विद्यावती, गुणवती, रूपवती, पतिव्रता, श्वेत चम्पक के समान वर्ण वाली, रत्नों के भूषणों से भूषित, अति शुद्ध, प्रकृति की कला, मन्द मुसुकाती, वरदायिनी, शुभमूर्ति एवं स्वधा नाम की थी। सुन्दर दाँतों वाली वह लक्षणों से युक्त एवं शोभा-सम्पन्न

शतपद्मपदन्यस्तपादपद्मं च बिभ्रतीम् । पत्नीं पितॄणां पद्मास्यां पद्मजां पद्मलोचनाम् ॥१२॥
पितृभ्यस्तां ददौ कन्यां तुष्टेभ्यस्तुष्टिरूपिणीम् । ब्राह्मणानां चोपदेशं चक्रे वै गोपनीयकम् ॥१३॥
स्वधान्तं मन्त्रमुच्चार्य पितृभ्यो देहि चेति च। क्रमेण तेन विप्राश्च पित्रे दानं ददुः पुरा ॥१४॥
स्वाहा शस्ता देवदाने पितृदाने स्वधा वरा । सर्वत्र दक्षिणा शस्ता हतो यज्ञस्त्वदक्षिणः ॥१५॥
पितरो देवता विप्रा मुनयो मानवास्तथा । पूजां चक्रुः स्वधां शान्तां तुष्टाव परमादरम् ॥१६॥
देवादयश्च संतुष्टाः परिपूर्णमनोरथाः । विप्रादयश्च पितरः स्वधादेवीवरेण च ॥१७॥
इत्येवं कथितं सर्वं स्वधोपाख्यानमुत्तमम् । सर्वेषां वै तुष्टिकरं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१८॥

नारद उवाच

स्वधापूजाविधानं च ध्यानं स्तोत्रं महामुने। श्रोतुमिच्छामि यत्नेन वद वेदविदां वर ॥१९॥

नारायण उवाच

तद्ध्यानं स्तवनं ब्रह्मन्वेदोक्तं सर्वसंमतम् । सर्वं जानासि वक्ष्ये वै ज्ञातुमिच्छसि वृद्धये ॥२०॥
शरत्कृष्णत्रयोदश्यां मघायां श्राद्धवासरे । स्वधां संपूज्य यत्नेन ततः श्राद्धं समाचरेत् ॥२१॥
स्वधां नाभ्यर्च्य यो विप्रः श्राद्धं कुर्यादहंमतिः । न भवेत्फलभाक्सत्यं श्राद्धतर्पणयोस्तथा ॥२२॥

थी। शतदल कमल के चिह्न से युक्त उसके चरण-कमल थे । वह पितरों की पत्नी, कमलवदना, कमल से उत्पन्न और कमललोचना थीं। उस तुष्टि रूप कन्या को उन्होंने पितरों को सौंप दिया और ब्राह्मणों को गोपनीय उपदेश भी प्रदान किया ॥९-१३॥ कि—मंत्रों के अन्त में स्वधा जोड़ कर पितरों के उद्देश्य से (पिण्ड आदि वस्तुएँ) समर्पित करना। उसी क्रम से ब्राह्मण लोग पूर्वकाल से पितरों को दान देते आ रहे हैं। ॥१४॥ देवों के निमित्त दान में स्वाहा, पितरों के दान में स्वधा और सभी कर्म में दक्षिणा प्रशस्त बतायी गयी है। दक्षिणा रहित यज्ञ नष्टप्राय होता है ॥१५॥ अनन्तर पितरगण, देवता, ब्राह्मण वृन्द, मुनिगण और सभी मानवों ने शान्त-स्वरूप उस स्वधा की पूजन समेत परमादर से स्तुति की ॥१६॥ पश्चात् स्वधा देवी के वरदान से देव आदि परम सन्तुष्ट हुए और ब्राह्मणों आदि का भी मनोरथ परिपूर्ण हुआ ॥१७॥ इस प्रकार स्वधा देवी का परमोत्तम उपाख्यान मैंने तुम्हें सुना दिया है, जो सभी को संतुष्ट रखता है, अतः अब और क्या सुनना चाहते हो ॥१८॥

नारद बोले—हे महामुने ! हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ ! मैं स्वधा का पूजा-विधान, ध्यान और स्तोत्र सुनना चाहता हूँ, यत्नपूर्वक कहने की कृपा करें ॥१९॥

नारायण बोले—हे ब्रह्मन् ! उनका ध्यान, तथा वेदोक्त स्तुति, जो सर्वसम्मत सिद्ध है, तुम जानते हो। किन्तु (ज्ञान) वृद्धि के लिए फिर जानना चाहते हो, अतः कह रहा हूँ, सुनो ! ॥२०॥ शरत्काल की कृष्ण त्रयोदशी के मघा (नक्षत्र) युक्त श्राद्ध-दिन में पहिले स्वधा का पूजन कर के पश्चात् श्राद्ध करना चाहिए ॥२१॥ जो अहंमानी ब्राह्मण स्वधा का बिना पूजन किए श्राद्धकर्म करता है, उसे सचमुच श्राद्ध-तर्पण का फल नहीं प्राप्त

ब्रह्मणो मानसीं कन्यां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम् । पूज्यां पितृणां देवानां श्राद्धानां फलदां भजे ॥२३॥
इति ध्यात्वा घटे रम्ये शालग्रामेऽथवा शुभे । दद्यात्पाद्यादिकं तस्यै मूलेनेति श्रुतौ श्रुतम् ॥२४॥
ओं ह्रीं श्रीं क्लीं स्वधादेव्यै स्वाहेति च महामनुम् । समुच्चार्य च संपूज्य स्तुत्वा तां प्रणमेद्द्विजः ॥२५॥
स्तोत्रं शृणु मुनिश्रेष्ठ ब्रह्मपुत्र विशारद । सर्ववाञ्छाप्रदं नृणां ब्रह्मणा यत्कृतं पुरा ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

स्वधोच्चारणमात्रेण तीर्थस्नायी भवेन्नरः । मुच्यते सर्वपापेभ्यो वाजपेयफलं लभेत् ॥२७॥
स्वधा स्वधा स्वधेत्येवं यदि वारत्रयं स्मरेत् । श्राद्धस्य फलमाप्नोति [1]बलेश्च तर्पणस्य च ॥२८॥
श्राद्धकाले स्वधास्तोत्रं यः शृणोति समाहितः । लभेच्छ्राद्धशतानां च पुण्यमेव न संशयः ॥२९॥
स्वधा स्वधा स्वधेत्येवं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः । प्रियां विनीतां स लभेत्साध्वीं पुत्रं गुणान्वितम् ॥३०॥
पितृणां प्राणतुल्या त्वं द्विजजीवनरूपिणी । श्राद्धाधिष्ठातृदेवी च श्राद्धादीनां फलप्रदा ॥३१॥
बहिर्मन्मनसो गच्छ पितृणां तुष्टिहेतवे । संप्रीतये द्विजातीनां गृहिणां [2]वृद्धिहेतवे ॥३२॥
नित्यानित्यस्वरूपाऽसि गुणरूपाऽसि सुव्रते । आविर्भावस्तिरोभावः सृष्टौ च प्रलये तव ॥३३॥

होता है ॥२२॥ ब्रह्मा की उस मानसी कन्या की मैं सेवा कर रहा हूँ, जो निरन्तर अति स्थायी यौवनावस्था से युक्त, पितरों तथा देवों की पूज्या और श्राद्धों की फलदायिका है ॥२३॥ इस प्रकार किसी सुन्दर कलश या शुभ शालग्राम की मूर्ति में स्वधा का ध्यान कर के मूल मंत्र द्वारा उसे पाद्य, अर्घ्य आदि देना चाहिए, ऐसा वेदों में सुना गया है ॥२४॥ 'ओं ह्रीं श्रीं क्लीं स्वधा देव्यै स्वाहा' इस महामंत्र के उच्चारणपूर्वक उसका पूजन और स्तुति कर के ब्राह्मणों को प्रणाम करना चाहिए ॥२५॥ हे मुनिश्रेष्ठ! विशारद! ब्रह्मपुत्र! उसका स्तोत्र सुनो, जो मनुष्यों की सभी अभिलाषाओं की सिद्धि करने वाला है और जिसे ब्रह्मा ने स्वयं पूर्व काल में बनाया था ॥२६॥

ब्रह्मा बोले—स्वधा शब्द के उच्चारण मात्र से मनुष्य तीर्थस्नान का फल प्राप्त करता है, और समस्त पापों से मुक्त होकर वाजपेय यज्ञ का फलभागी होता है ॥२७॥ 'स्वधा, स्वधा, स्वधा' इस प्रकार तीन बार जो उच्चारण करता है, उसे श्राद्ध, बलि और तर्पण के फल प्राप्त होते हैं ॥२८॥ श्राद्ध के समय स्वधा का स्तोत्र जो सावधान होकर सुनता है, उसे सौ श्राद्ध का पुण्य प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं ॥२९॥ तीनों संध्याओं में जो मनुष्य स्वधा शब्द का उच्चारण करता है, उसे प्रिय, विनीत सती पत्नी और गुणी पुत्र की प्राप्ति होती है ॥३०॥ तुम पितरों के प्राण-तुल्य, ब्राह्मणों के जीवन रूप, श्राद्ध की अधिष्ठात्री देवी और श्राद्ध आदि का फल प्रदान करने वाली हो ॥३१॥ पितरों की तुष्टि के लिए तुम हमारे मन से बाहर हो जाओ, इससे द्विजातियों को प्रसन्नता तथा गृहस्थों की वृद्धि होगी ॥३२॥ हे सुव्रते! तुम नित्य तथा अनित्य स्वरूप और गुण रूप हो, सृष्टि और प्रलय में तुम्हारा क्रमशः आविर्भाव (प्रकट होना) और तिरोभाव (अदृश्य होना) होता है ॥३३॥ तुम्हीं ओं, स्वस्ति, नमः, स्वाहा, स्वधा और दक्षिणा

---

१. ख. कालतर्पणयोस्तथा। २. क० बुद्धि०।

ॐ स्वस्ति च नमः स्वाहा स्वधा त्वं दक्षिणा तथा। निरूपिताश्चतुर्वेदे षट् प्रशस्ताश्च कर्मिणाम् ॥३४॥
पुराऽऽसीस्त्वं स्वधागोपी गोलोके राधिकासखी। धृता स्वोरसि कृष्णेन यतस्तेन स्वधा स्मृता ॥३५॥
ध्वस्ता त्वं राधिकाशापाद्गोलोकाद्विश्वमागता । कृष्णाश्लिष्टा तया दृष्टा पुरा वृन्दावने वने ॥३६॥
कृष्णालिङ्गनपुण्येन भूता मे मानसी सुता। अतृप्ता सुरते तेन चतुर्णां स्वामिनां प्रिया ॥३७॥
स्वाहा सा सुन्दरी गोपी पुराऽऽसीद्राधिकासखी । रतौ स्वयं कृष्णमाह तेन स्वाहा प्रकीर्तिता ॥३८॥
कृष्णेन सार्धं सुचिरं वसन्ते रासमण्डले । प्रमत्ता सुरते श्लिष्टा दृष्टा सा राधया पुरा ॥३९॥
तस्याः शापेन सा ध्वस्ता गोलोकाद्विश्वमागता। कृष्णालिङ्गनपुण्येन समभूद्वह्निकामिनी ॥४०॥
पवित्ररूपा परमा देवाद्यैर्वन्दिता नृभिः । यन्नामोच्चारणेनैव नरो मुच्येत पातकात् ॥४१॥
या सुशीलाभिधा गोपी पुराऽऽसीद्राधिकासखी। उवास दक्षिणे क्रोडे कृष्णस्य च[1] महात्मनः ॥४२॥
प्रध्वस्ता सा च तच्छापाद्गोलोकाद्विश्वमागता । कृष्णालिङ्गनपुण्येन सा बभूव च दक्षिणा ॥४३॥
सा प्रेयसी रतौ दक्षा प्रशस्ता सर्वकर्मसु । उवास दक्षिणे भर्तुर्दक्षिणा तेन कीर्तिता ॥४४॥
गोप्यो बभूवुस्तिस्रो वै स्वधा स्वाहा च दक्षिणा। कर्मिणां कर्मपूर्णार्थं पुरा चैवेश्वरेच्छया ॥४५॥

रूप हो, क्योंकि ये छहों, चारों वेदों में, कर्मनिष्ठों के लिए प्रशस्त बताये गये हैं ॥३४॥ पहले समय में तुम गोलोक में स्वधा नाम की गोपी और राधिका जी की सखी थीं। भगवान् कृष्ण ने तुम्हें अपने हृदय से लगाया था इसी लिए तुम्हारा 'स्वधा' नाम हुआ ॥३५॥ और राधिका जी के शाप के कारण तुम्हें गोलोक से इस विश्व में आना पड़ा। पहले समय में जब वृन्दावन में तुम कृष्ण का आलिंगन कर रही थीं, उस समय भी राधिका जी ने देख लिया था ॥३६॥ किन्तु कृष्ण के आलिंगनजन्य पुण्य के प्रभाव से तुम हमारी मानसी कन्या हुई हो। रति में अतृप्त होने के नाते तुम्हें चार पति प्राप्त हुए हैं ॥३७॥ पहले समय में स्वाहा भी सुन्दरी गोपी और राधिका जी की सखी थी। रति के लिए उसने स्वयं कृष्ण से कहा था, इसीलिए उसे 'स्वाहा' कहा गया है ॥३८॥ पूर्वकाल में वसन्त के समय रास-मण्डल में उसने कृष्ण के साथ अति चिरकाल तक संभोग किया था और राधिका जी ने उसे देख लिया था ॥३९॥ उन्हीं के शाप से गोलोक से वह संसार में आई है और कृष्ण के आलिंगनजन्य पुण्य से अग्नि की पत्नी हुई है ॥४०॥ जो पवित्र रूप, श्रेष्ठ तथा देवों और मनुष्यों से वन्दित एवं जिसके नामोच्चारण मात्र से मनुष्य पातक से मुक्त हो जाता है ॥४१॥ जो पहले सुशीला नाम की गोपी और राधिका जी की सखी थी, वह महात्मा कृष्ण की दाहिनी गोद में बैठी थी ॥४२॥ राधिका जी के शाप से उसे गोलोक से संसार में आना पड़ा और श्रीकृष्ण के आलिगजन्य पुण्य के नाते वह दक्षिणा हुई है ॥४३॥ वह प्रेयसी रति में अति दक्ष (निपुण) तथा सभी कर्मों में प्रशस्त है और पति की दक्षिण (दाहिनी) गोद में रहने के कारण उसे 'दक्षिणा' कहा गया है ॥४४॥ इस प्रकार कर्मनिष्ठ प्राणियों के कर्म सफल करने के लिए ईश्वर की इच्छा से तीन गोपियाँ स्वाहा, स्वधा और दक्षिणा

---

१ क.० स्य राधिकाग्रतः।

इत्येवमुक्त्वा स ब्रह्मा ब्रह्मलोके च संसदि । तस्थौ च सहसा सद्यः स्वधा साऽऽविर्बभूव ह ॥४६॥
तदा पितृभ्यः प्रददौ तामेव कमलाननाम् । तां संप्राप्य ययुस्ते च पितरश्च प्रहर्षिताः ॥४७॥
स्वधास्तोत्रमिदं पुण्यं यः शृणोति समाहितः । स स्नातः सर्वतीर्थेषु वेदपाठफलं लभेत् ॥४८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० स्वधोपा० स्वधोत्पत्तितत्पूजादिकं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

उक्तं स्वाहास्वधाख्यानं प्रशस्तं मधुरं परम् । वक्ष्यामि दक्षिणाख्यानं सावधानं निशामय ॥१॥
गोपी सुशीला गोलोके पुराऽऽसीत्प्रेयसी हरेः। राधाप्रधाना सध्रीची धन्या मान्या मनोहरा ॥
अतीव सुन्दरी रामा सुभगा सुदती सती ॥२॥
विद्यावती गुणवती सती रूपवती तथा। कलावती कोमलाङ्गी कान्ता कमललोचना ॥३॥
सुश्रोणी सुस्तनी श्यामा न्यग्रोधपरिमण्डला । ईषद्धास्यप्रसन्नास्या रत्नालंकारभूषिता ॥४॥
श्वेतचम्पकवर्णाभा बिम्बोष्ठी मृगलोचना । कामशास्त्रसुनिष्णाता कामिनी कलहंसगा ॥५॥

हुई ॥४५॥ इस प्रकार ब्रह्मलोक की उस सभा में इतना कह कर ब्रह्मा चुप हो गये, उसी समय सहसा स्वधा का आविर्भाव (साक्षात् दर्शन) हुआ ॥४६॥ अनन्तर उन्होंने वह कमलमुखी कन्या पितरों को सौंप दी, जिसे प्राप्त कर पितर गण अति हर्षित होकर चले गये ॥४७॥ इस पुण्यदायक स्वधा-स्तोत्र को जो एकाग्र चित्त से सुनता है, वह समस्त तीर्थों का स्नान-फल और वेदों का पाठ-फल प्राप्त करता है ॥४८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवादविषयक स्वधोपाख्यान में स्वधा की उत्पत्ति और पूजा आदि कथन नामक इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४१॥

अध्याय ४२

दक्षिणा का उपाख्यान

नारायण बोले—मैंने स्वाहा और स्वधा का प्रशस्त एवं परम मधुर उपाख्यान सुना दिया, अब दक्षिणा का आख्यान कह रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ॥१॥ गोलोक में पहले सुशीला नाम की गोपी थी जो भगवान् कृष्ण की प्रेयसी, राधा की प्रधान सखी, धन्या, मान्या, मनोहरा अत्यन्त सुन्दरी, रामा, सौभाग्यपूर्ण, सुन्दर दाँतों वाली, सती, विद्यावती, गुणवती, रूपवती, कलावती, कोमलांगी, कान्ता, कमललोचना, उत्तम नितम्ब वाली, सुन्दर स्तनों वाली, श्यामा (ऋतु के अनुरूप सुख देने वाली), न्यग्रोधपरिमण्डला (कठोर कुच, स्थूल नितम्ब तथा पतली कमर वाली), मन्द मुसकान एवं प्रसन्न मुख वाली, रत्नों के आभूषणों से भूषित, श्वेतचम्पा के समान रूपरंग वाली, बिम्बाफल के समान ओष्ठ वाली, मृगनयनी, कामशास्त्र में अति निष्णात (दक्ष), कामपूर्ण, सुन्दर हंस की भाँति गमन करने वाली,

भावानुरक्ता भावज्ञा कृष्णस्य प्रियभामिनी। रसज्ञा रसिका रासे रासेशस्य रसोत्सुका ॥६॥
उवास दक्षिणे क्रोडे राधायाः पुरतः पुरा । संबभूवाऽऽनम्रमुखो भयेन मधुसूदनः ॥७॥
दृष्ट्वा राधां च पुरतो गोपीनां प्रवरां पराम्। मानिनीं रक्तवदनां रक्तपङ्कजलोचनाम् ॥८॥
कोपेन कम्पिताङ्गीं च कोपनां कोपदर्शनाम् । कोपेन निष्ठुरं वक्तुमुद्यतां स्फुरिताधराम् ॥९॥
आगच्छन्तीं च वेगेन विज्ञाय तदनन्तरम् । विरोधभीतो भगवानन्तर्धानं जगाम सः ॥१०॥
पलायन्तं च तं शान्तं सत्त्वाधारं सुविग्रहम्। विलोक्य कम्पिता गोपी सुशीलाऽन्तर्दधौ भिया ॥११॥
विलोक्य संकटं तत्र गोपीनां लक्षकोटयः । बद्धाञ्जलिपुटा भीता भक्तिनम्रात्मकंधराः ॥१२॥
रक्ष रक्षेत्युक्तवत्यो हे देवीति पुनः पुनः । ययुर्भयेन शरणं तस्याश्चरणपङ्कजे ॥१३॥
त्रिलक्षकोटयो गोपाः सुदामादय एव च । ययुर्भयेन शरणं तत्पादाब्जे च नारद ॥१४॥
पलायन्तं च कान्तं वै विज्ञाय परमेश्वरी । पलायन्तीं सहचरीं सुशीलां च शशाप सा ॥१५॥
अद्यप्रभृति गोलोकं सा चेदायाति गोपिका । सद्यो गमनमात्रेण भस्मसाच्च भविष्यति ॥१६॥
इत्येवमुक्त्वा तत्रैव देवदेवीश्वरी रुषा। रासेश्वरी रासमध्ये रासेशं चाऽऽजुहाव ह ॥१७॥
नाऽऽलोक्य पुरतः कृष्णं राधा विरहकातरा। युगकोटिसमं मेने क्षणं भेदेन सुव्रता ॥१८॥

भावों में अनुरक्त रहने वाली, भगवान् कृष्ण के भावों को जानने वाली, उनकी प्रियकामिनी, रसज्ञा, रसिका और रास में रासेश्वर कृष्ण का रस (आनन्द) लेने के लिए उत्सुक थी ॥२-६॥ पूर्व काल में राधा के सामने ही वह कृष्ण की दाहिनी गोद में बैठ गई, किन्तु मधुसूदन राधा के भय से नीचे मुख किये रहे ॥७॥ सामने गोपियों में सर्वश्रेष्ठ, मान करने वाली, रक्तवदन, रक्तकमल की भाँति नेत्रों वाली, कोप से कम्पित अंगों वाली, क्रुद्ध, कोपरूप, कोपदर्शन कराने वाली, कोप के कारण निठुर बातें कहने को प्रस्तुत एवं काँपते हुए ओंठ वाली राधा को देखकर और उन्हें वेग से आती हुई जानकर उसी बीच भगवान् मधुसूदन विरोध-भय के कारण अन्तर्हित हो गये ॥८-१०॥ अनन्तर उन शान्त, सत्त्व के आधार और सुन्दर शरीर वाले (कृष्ण) को भागते हुए देखकर सुशीला गोपी भी भय से काँप उठी और अन्तर्हित हो गयी ॥११॥ वहाँ वर्तमान लाख करोड़ गोपियों ने संकट उपस्थित देखकर अंजली बांधे भय के मारे भक्ति से कन्धे को झुका लिया और बार-बार कहने लगीं कि हे देवी! हमारी रक्षा करो, हमारी रक्षा करो! तथा उन्हीं के चरणकमल की शरण में चली गयीं। हे नारद! तीन लाख करोड़ सुदामादि गोपों ने भी भयभीत होकर राधा जी के चरणकमल की शरण प्राप्त की। ॥१२-१४॥ अनन्तर परमेश्वरी राधिका ने अपने कान्त कृष्ण को भागते हुए जानकर उस भागने वाली सहचरी सुशीला को शाप दिया कि यदि आज से फिर कभी इस गोलोक में यह गोपी आयेगी तो आते ही भस्म हो जायेगी। ॥१५-१६॥ देवों और देवियों की ईश्वरी एवं रासेश्वरी राधिका रोष से इतना कहकर रासके मध्य रासेश (कृष्ण) को बुलाने लगीं ॥१७॥ विरह से कातर होती हुई उस सुव्रता राधिका ने सामने कृष्ण को न देखकर एक-एक क्षण को करोड़ों युग के समान व्यतीत किया ॥१८॥ हे कृष्ण! हे प्राणनाथ! हे प्राणों से अधिक प्यारे!

हे कृष्ण हे प्राणनाथाऽऽगच्छ प्राणाधिकप्रिय । प्राणाधिष्ठातृदेवेह प्राणा यान्ति त्वया विना ॥१९॥
स्त्रीगर्वः पतिसौभाग्याद्वर्धते च दिने दिने। सुस्त्री चेद्विभवो यस्मात्तं भजेद्धर्मतः सदा ॥२०॥
पतिर्बन्धुः कुलस्त्रीणामधिदेवः सदागतिः । परं संपत्स्वरूपश्च सुखरूपश्च मूर्तिमान् ॥२१॥
धर्मदः सुखदः शश्वत्प्रीतिदः शान्तिदः सदा। संमानदो मानदश्च मान्यो वै मानमण्डनः ॥२२॥
सारात्सारतमः स्वामी बन्धूनां बन्धुवर्धनः । न च भर्तृसमो बन्धुः सर्वबन्धुषु दृश्यते ॥२३॥
भरणादेव भर्ताऽयं पालनात्पतिरुच्यते । शरीरेशाच्च स स्वामी कामदः कान्त एव च ॥२४॥
बन्धुश्च सुखबन्धाच्च प्रीतिदानात्प्रियः परः । ऐश्वर्यदानादीशश्च प्राणेशात्प्राणनायकः ॥२५॥
रतिदानाच्च रमणः प्रियो नास्ति प्रियात्परः । पुत्रस्तु स्वामिनः [1]शुक्राज्जायते तेन स प्रियः ॥२६॥
शतपुत्रात्परः स्वामी कुलजानां प्रियः सदा । असत्कुलप्रसूता या कान्तं विज्ञातुमक्षमा ॥२७॥
स्नानं च सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षणम् । प्रादक्षिण्यं पृथिव्याश्च सर्वाणि च तपांसि वै ॥२८॥
सर्वाण्येव व्रतादीनि महादानानि यानि च। उपोषणानि पुण्यानि यान्यन्यानि च विश्वतः ॥२९॥
गुरुसेवा विप्रसेवा देवसेवादिकं च यत्। स्वामिनः पादसेवायाः कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥३०॥
गुरुविप्रेष्टदेवेषु सर्वेभ्यश्च पतिर्गुरुः । विद्यादाता यथा पुंसां कुलजानां तथा प्रियः ॥३१॥

शीघ्र आओ। हे प्राणों के अधिष्ठाता देव! तुम्हारे बिना अब प्राण जा रहे हैं॥१९॥ क्योंकि पति-सौभाग्य से ही स्त्री का गर्व दिन-दिन बढ़ता है। यदि उत्तम स्त्री है तो जिसके द्वारा (घर में) ऐश्वर्य प्राप्त होता है उसकी उसे सदा सेवा करनी चाहिए ॥२०॥ क्योंकि कुलीन स्त्रियों का बन्धु पति ही होता है। वह उनका अधीश्वर देव, सदा उनकी गति, परम सम्पत्तिस्वरूप, मूर्तिमान् सुखरूप, धर्म-सुखदायक, निरन्तर प्रीतिप्रद; सदा शान्तिदाता, सम्मान देनेवाला, मानप्रद, मान्य, मानविभूषण, सारभाग का भी सारभाग, स्वामी एवं बन्धुओं का बन्धुवर्द्धक है। इसी कारण समस्त बन्धुओं में पति के समान कोई बन्धु (स्त्रियों को) नहीं दिखायी देता है ॥२१-२३॥ क्योंकि भरण से भर्ता, पालन से पति, शरीर का ईश होने से स्वामी, कामदकान्त, सुखबन्धन के नाते बन्धु, प्रीतिदान से परम-प्रिय, ऐश्वर्य देने से ईश, प्राणेश्वर होने से प्राणनायक और रतिदान से रमण कहा जाता है। पति से बढ़कर कोई प्रिय नहीं है। स्वामी के शुक्र (वीर्य) से पुत्र होता है, इसी से वह प्रिय कहलाता है ॥२४-२६॥ इस प्रकार कुलीन स्त्रियों को सैकड़ों पुत्रों से भी स्वामी सदा प्रिय होता है और अकुलीन स्त्री तो पति को जानने में समर्थ ही नहीं हो सकती है॥२७॥ समस्त तीर्थों में स्नान, सभी यज्ञों की दीक्षा, सम्पूर्ण पृथिवी की प्रदक्षिणा, सब भाँति के तप, समस्त व्रत, सभी प्रकार के महादान, समस्त संसार के जितने अन्य पुण्य उपवास, गुरुसेवा विप्रसेवा और देवों आदि की सेवायें हैं, वे स्वामी की चरण-सेवा के सोलहवें अंश के समान भी नहीं होती हैं॥२८-३०॥ गुरु, ब्राह्मण, इष्टदेव इनमें और इनसे बढ़कर पति ही गुरु है। पुरुषों के विद्यादाता की भाँति कुलीना स्त्रियों को पति ही प्रिय होता है॥३१॥ तीन लाख करोड़ गोपियाँ उतने ही गोपों, असंख्य ब्रह्माण्ड,

---

१. क० क्रोडाज्जा० ।

गोपीत्रिलक्षकोटीनां गोपानां च तथैव च। ब्रह्माण्डानामसंख्यानां तत्रस्थानां तथैव च ॥३२॥
रमादिगोपकान्तानामीश्वरी यत्प्रसादतः। अहं न जाने तं कान्तं स्त्रीस्वभावो दुरत्ययः ॥३३॥
इत्युक्त्वा राधिका कृष्णं तत्र दध्यौ सुभक्तितः। आरात्संप्राप तं तेन विजहार च तत्र वै ॥३४॥
अथ सा दक्षिणा देवी ध्वस्ता गोलोकतो मुने। सुचिरं च तपस्तप्त्वा विवेश कमलातनौ ॥३५॥
अथ देवादयः सर्वे यज्ञं कृत्वा सुदुष्करम्। न लभन्ते फलं तेषां विषण्णाः प्रययुर्विधिम् ॥३६॥
विधिर्निवेदनं श्रुत्वा देवादीनां जगत्पतिः। दध्यौ सुचिन्तितो भक्त्या तत्प्रत्यादेशमाप सः ॥३७॥
नारायणश्च भगवान्महालक्ष्म्याश्च देहतः। मर्त्यलक्ष्मीं विनिष्कृत्य ब्रह्मणे दक्षिणां ददौ ॥३८॥
ब्रह्मा ददौ तां यज्ञाय पूर्णार्थं कर्मणां सताम्। यज्ञः संपूज्य विधिवत्तां तुष्टाव रमां मुदा ॥३९॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभां चन्द्रकोटिसमप्रभाम्। अतीव कमनीयां च सुन्दरीं सुमनोहराम् ॥४०॥
कमलास्यां कोमलाङ्गीं कमलायतलोचनाम्। कमलासनसंपूज्यां कमलाङ्गसमुद्भवाम् ॥४१॥
वह्निशुद्धांशुकाधानां बिम्बोष्ठीं सुदतीं सतीम्। बिभ्रतीं कबरीभारं मालतीमाल्यभूषितम् ॥४२॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां रत्नभूषणभूषिताम्। सुवेषाढ्यां च सुस्नातां मुनिमानसमोहिनीम् ॥४३॥
कस्तुरीबिन्दुभिः सार्धं चन्दनैश्च सुगन्धिभिः। सिन्दूरबिन्दुनाऽत्यन्तं मस्तकाधःस्थलोज्ज्वलाम् ॥४४॥

एवं उसमें रहने वाले रमा आदि के गोपकान्ताओं की मैं उन्हीं (कृष्ण) की कृपा से स्वामिनी हूं, किन्तु उस अपने कान्त को मैं नहीं जानती (कहाँ चले गये), स्त्री का स्वभाव कैसा उलटा होता है ॥३२-३३॥ इतना कहकर राधिका ने अति भक्ति से कृष्ण का ध्यान किया, जिससे वे शीघ्र आ गये और वे उनके साथ विहार करने लगीं ॥३४॥

हे मुने! अनन्तर उस दक्षिणा देवी ने, गोलोक से निकाल कर अति चिरकाल तक तप किया और कमला की देह में प्रविष्ट हो गयी ॥३५॥ पश्चात् देव आदि लोगों ने अति कठिन यज्ञ आरम्भ किया। उसके सुसम्पन्न होने के अनन्तर उसके फल की प्राप्ति न होने पर वे खिन्नमन हो गये और पुनः ब्रह्मा के पास पहुँचे। जगत्पति ब्रह्मा ने देवों आदि की प्रार्थना सुनकर अतिचिन्तित होते हुए भक्तिपूर्वक भगवान् का ध्यान लगाया और उनका प्रत्यादेश प्राप्त किया ॥३६-३७॥ तदनन्तर नारायण भगवान् और महालक्ष्मी ने (अपनी) देह से मनुष्यलक्ष्मी दक्षिणा को निकाल कर ब्रह्मा को सौंप दिया ॥३८॥ और ब्रह्मा ने उसे कर्मनिष्ठ सज्जनों के कर्म-परिपूरणार्थ यज्ञ को सौंप दिया। उपरान्त यज्ञ ने हर्षित होकर विधिवत् उसकी पूजा और स्तुति की ॥३९॥ वह तपाये हुए सुवर्ण के समान, रूप-रंगवाली, करोड़ों चन्द्रमा की भाँति कान्तिवाली, अत्यन्त लुभाने वाली, सुन्दरी, मनमोहनी, कमलमुखी, कोमलांगी, कमल की भाँति विशाल नेत्र वाली, कमलासन पर सम्पूजित, कमला (लक्ष्मी) के अंग से उत्पन्न, अग्नि की भाँति शुद्धवस्त्र धारण करने वाली बिम्बाफल के समान ओष्ठ वाली, सुन्दर दांतों वाली, पतिव्रता, केशपाशभूषित, मन्द-हासयुक्त, प्रसन्नमुख, रत्नों के भूषणों से अलंकृत, सुन्दर वेष बनाये तथा उत्तम ढंग से स्नान किये हुई और मुनियों के मन को मोहित करने वाली थी। सुगन्धित चन्दन युक्त कस्तूरी और सिन्दूर बिन्दु से उसके मस्तक का अधोभाग समुज्-ज्वल था, अतिप्रशंसनीय नितम्ब, विशाल श्रोणी भाग तथा कुचों से युक्त, कामदेव की आधारस्वरूप वह सुन्दरी

सुप्रशस्तनितम्बाढ्यां बृहच्छ्रोणिपयोधराम् । कामदेवाधाररूपां कामबाणप्रपीडिताम् ॥४५॥
तां दृष्ट्वा रमणीयां च यज्ञो मूर्च्छामवाप ह । पत्नीं तामेव जग्राह विधिबोधितमार्गतः ॥४६॥
दिव्यं वर्षशतं चैव तां गृहीत्वाऽथ निर्जने । यज्ञो रेमे मुदा युक्तो रामया रमया सह ॥४७॥
गर्भं दधार सा देवी दिव्यं द्वादशवत्सरम् । ततः सुषाव पुत्रं च फलं वै सर्वकर्मणाम् ॥४८॥
कर्मणां [1]फलदाता च दक्षिणां कर्मणां सताम् । परिपूर्णे कर्मणि च तत्पुत्रः फलदायकः ॥४९॥
यज्ञो दक्षिणया सार्धं पुत्रेण च फलेन च । कर्मणां फलदाता चेत्येवं वेदविदो विदुः ॥५०॥
यज्ञश्च दक्षिणां प्राप्य पुत्रं च फलदायकम् । फलं ददौ च सर्वेभ्यः कर्मठेभ्यो यदा मुने ॥५१॥
तदा देवादयस्तुष्टाः परिपूर्णमनोरथाः । स्वस्थानं प्रययुः सर्वे धर्मवक्त्रादिदं श्रुतम् ॥५२॥
कृत्वा कर्म च कर्ता तु तूर्णं दद्याच्च दक्षिणाम् । तत्क्षणं फलमाप्नोति वेदैरुक्तमिदं मुने ॥५३॥
कर्ता कर्मणि पूर्णेऽपि तत्क्षणाद्यदि दक्षिणाम् । न दद्याद्ब्राह्मणेभ्यश्च दैवेनाज्ञानतोऽथवा ॥५४॥
मुहूर्ते समतीते च द्विगुणा सा भवेद्ध्रुवम् । एकरात्रे व्यतीते तु भवेद्रसगुणा च सा ॥५५॥
त्रिरात्रे वै दशगुणा सप्ताहे द्विगुणा ततः ॥५६॥
मासे लक्षगुणा प्रोक्ता ब्राह्मणानां च वर्धते । संवत्सरे व्यतीते तु सा त्रिकोटिगुणा भवेत् ॥५७॥

काम-बाण से अतिपीड़ित हो रही थी ॥४०-४५॥ ऐसी सुन्दरी को देखते ही यज्ञ मूर्च्छित होकर गिर पड़े। पश्चात् ब्रह्मा ने आकर उन्हें जागरित किया और बताया जिससे उन्होंने उसे पत्नी रूप में ग्रहण किया ॥४६॥ अनन्तर उस परम सुन्दरी रामा को निर्जन स्थान में ले जाकर यज्ञ ने दिव्य सौ वर्ष तक अतिहर्ष से उसके साथ रमण किया ॥४७॥ तब दिव्य बारह वर्ष तक गर्भ धारण करने के पश्चात् उस देवी ने पुत्र उत्पन्न किया, जो समस्त कर्मों का फलरूप है॥४८॥ दक्षिणा सज्जनों को उनके कर्मों का फल प्रदान करती है और कर्म के पूर्ण होने पर उसका पुत्र फल देता है ॥४९॥ वेद-वेत्ताओं का कहना है कि यज्ञ (अपनी पत्नी) दक्षिणा और पुत्र फल के साथ कर्मों का फल प्रदान करता है ॥५०॥ हे मुने! जिस समय दक्षिणा पत्नी और फलदायक पुत्र को पाकर यज्ञ ने सभी कर्मठ प्राणियों को फल प्रदान किया, उस समय देवगण अति प्रसन्न हुए और परिपूर्णमनोरथ होकर वे अपने-अपने स्थान को चले गये, ऐसा धर्म के मुख से हमने सुना है ॥५१-५२॥ हे मुने! जो कर्ता (कोई यज्ञ आदि) कर्म करके उसकी दक्षिणा तुरन्त दे देता है, उसी समय उसे फल की प्राप्ति हो जाती है, ऐसा वेदों में कहा गया है ॥५३॥ यदि कर्ता दैव से अज्ञानवश कर्म समाप्त होने पर उसी समय दक्षिणा ब्राह्मणों को नहीं दे देता है, तो एक मुहूर्त व्यतीत होने पर वह दक्षिणा दुगुनी हो जाती है ॥५४-५५॥ एक रात्रि व्यतीत होने पर वह छह गुनी, तीन रात्रि व्यतीत होने पर दशगुनी, सप्ताह बीतने पर (उसकी) दुगुनी तथा मास व्यतीत होने पर ब्राह्मणों की दक्षिणा लाख गुनी बढ़ जाती है और वर्ष व्यतीत होने पर वह तीन करोड़ गुनी हो जाती है ॥५६-५७॥ इस प्रकार

---

१ क. पूर्णरूपा च ।

कर्म तद्यजमानानां सर्वं वै निष्फलं भवेत्। स च ब्रह्मस्वापहारी न कर्मार्होऽशुचिर्नरः ॥५८॥
दरिद्रो व्याधियुक्तश्च तेन पापेन पातकी। तद्गृहाद्याति लक्ष्मीश्च शापं दत्त्वा सुदारुणम् ॥५९॥
पितरो नैव गृह्णन्ति तद्दत्तं श्राद्धतर्पणम्। एवं सुराश्च तत्पूजां तद्दत्तां पावकाहुतिम् ॥६०॥
दाता ददाति नो दानं गृहीता तन्न याचते। उभौ तौ नरकं यातश्छिन्नरज्जुर्यथा घटः ॥६१॥
नार्पयेद्यजमानश्चेद्याचितारं च दक्षिणाम्। भवेद्ब्रह्मस्वापहारी कुम्भीपाकं व्रजेद्ध्रुवम् ॥६२॥
वर्षलक्षं वसेत्तत्र यमदूतेन ताडितः। ततो भवेत्स चाण्डालो व्याधियुक्तो दरिद्रकः ॥६३॥
पातयेत्पुरुषान्सप्त पूर्वान्वै पूर्वजन्मनः। इत्येवं कथितं विप्र किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥६४॥

नारद उवाच

यत्कर्म दक्षिणाहीनं को भुङ्क्ते तत्फलं मुने। पूजाविधिं दक्षिणायाः पुरा यज्ञकृतं वद ॥६५॥

नारायण उवाच

कर्मणोऽदक्षिणस्यैव कुत एव फलं मुने। सदक्षिणे कर्मणि च फलमेव प्रवर्धते ॥६६॥
या या कर्मणि सामग्री बलिर्भुङ्क्ते च तां मुने। बलये तत्प्रदत्तं च वामनेन पुरा मुने ॥६७॥
अश्रोत्रियं श्राद्धवस्तु चाश्राद्धं दानमेव च। वृषलीपतिविप्राणां पूजाद्रव्यादिकं च यत् ॥६८॥

यजमान का वह सब कर्म निष्फल हो जाता है तथा वह मनुष्य ब्राह्मण के धन का अपहरण करने का अपराधी, कर्म करने के अयोग्य और अपवित्र हो जाता है॥५८॥ उस पाप के कारण वह पातकी दरिद्र और रोगी होता है और लक्ष्मी उसे अति भयानक शाप देकर उसके घर से चली जाती है॥५९॥ उसके किये हुए श्राद्ध-तर्पण को पितरगण ग्रहण नहीं करते हैं। इसी प्रकार देवगण उसकी पूजा और अग्नि में दी गयी आहुति को ग्रहण नहीं करते हैं॥६०॥ यदि दाता दान नहीं देता है और ग्रहण करने वाला याचना करता ही रहता है, तो वे दोनों कटी हुई रस्सी वाले घड़े की भाँति नरक में जाते हैं॥६१॥ यजमान यदि दक्षिणा नहीं देता है, तो वह ब्राह्मण-धन का अपहर्ता कहा जाता है और अन्त में निश्चित कुम्भीपाक नरक में जाता है॥६२॥ एक लाख वर्ष तक उसमें रहते हुए नित्य यमदूतों से ताड़ित होता है। अनन्तर रोगी एवं दरिद्र चाण्डाल होता है तथा पूर्वजन्म की पिछली और आगे वाली सात पीढ़ियों को नरक भेजता है। हे विप्र! इस प्रकार इस आख्यान को मैंने सुना दिया, अब और क्या सुनना चाहते हो॥६३-६४॥

नारद बोले—हे मुने! दक्षिणाहीन कर्म के फल का उपभोग कौन करता है और पूर्वकाल में यज्ञ ने किस विधान से दक्षिणा की पूजा की थी॥६५॥

नारायण बोले—हे मुने! दक्षिणारहित कर्म का फल होता कहाँ है। दक्षिणा समेत सुसम्पन्न किये गये कर्म का ही फल प्रवृद्ध होता है॥६६॥ हे मुने! जिस कर्म में जो सामग्री होती है, उसका उपभोग बलि करते हैं, इसे पहले ही वामन ने बलि को दे दिया था॥६७॥ इस प्रकार वेदविद्याविहीन पुरुष को श्राद्ध वस्तु, श्रद्धा-रहित दान, वृषली (शूद्रा स्त्री) के पति ब्राह्मण देव की पूजा की सामग्री, ऋत्विज्विहीन यज्ञ, अशुद्ध का पूजन

ऋत्विजा न कृतं यज्ञमशुचेः पूजनं च यत्। गुरावभक्तस्य कर्म बलिर्भुङ्क्ते न संशयः ॥६९॥
दक्षिणायाश्च यद्ध्यानं स्तोत्रं पूजाविधिक्रमम् । तत्सर्वं काण्वशाखोक्तं प्रवक्ष्यामि निशामय ॥७०॥
पुरा संप्राप्य तां यज्ञः कर्मदक्षां च दक्षिणाम् । मुमोह तस्या रूपेण तुष्टुवे कामकातरः ॥७१॥

यज्ञ उवाच

पुरा गोलोकगोपी त्वं गोपीनां प्रवरा परा । राधासमा तत्सखी च श्रीकृष्णप्रेयसी प्रिये ॥७२॥
कार्तिके पूर्णिमायां तु रासे राधामहोत्सवे । आविर्भूता दक्षिणांशात्कृष्णस्यातो हि दक्षिणा ॥७३॥
पुरा त्वं च सुशीलाख्या शीलेन सुशुभेन च । कृष्णदक्षांशवासाच्च राधाशापाच्च दक्षिणा ॥७४॥
गोलोकात्त्वं परिध्वस्ता मम भाग्यादुपस्थिता । कृपां कुरु त्वमेवाद्य स्वामिनं कुरु मां प्रिये ॥७५॥
कर्तॄणां कर्मणां देवी त्वमेव फलदा सदा । त्वया विना च सर्वेषां सर्वं कर्म च निष्फलम् ॥७६॥
फलशाखाविहीनश्च यथा वृक्षो महीतले । त्वया विना तथा कर्म कर्तॄणां च न शोभते ॥७७॥
ब्रह्मविष्णुमहेशाश्च दिक्पालादय एव च । कर्मणश्च फलं दातुं न शक्ताश्च त्वया विना ॥७८॥
कर्मरूपी स्वयं ब्रह्मा फलरूपी महेश्वरः । यज्ञरूपी विष्णुरहं त्वमेषां साररूपिणी ॥७९॥
फलदाता परं ब्रह्म निर्गुणः प्रकृते परः । स्वयं कृष्णश्च भगवान्न च शक्तस्त्वया विना ॥८०॥

और गुरुभक्तिहीन पुरुष के कर्म का उपभोग बलि करता है, इसमें संशय नहीं ॥६८-६९॥ अब दक्षिणा देवी का जो ध्यान, स्तोत्र और पूजा विधान है, वह सब कुछ काण्वशाखा के अनुसार बता रहा हूँ, सुनो ॥७०॥

पूर्वकाल में यज्ञ, कर्मकुशल दक्षिणा को प्राप्त कर उसके रूप पर अत्यन्त मोहित हो गये और काम-पीड़ित होकर उसकी स्तुति करने लगे ॥७१॥

यज्ञ बोले—हे प्रिये! पूर्व समय में तुम गोलोक में गोपियों में श्रेष्ठ गोपी, राधा जी की सखी और राधा के समान ही श्रीकृष्ण की प्रेयसी थी ॥७२॥ कार्तिक की पूर्णिमा में राधामहोत्सव के समय रास में तुम कृष्ण के दक्षिण भाग से उत्पन्न हुई थी इसलिए तुम्हारा दक्षिणा नामकरण हुआ था ॥७३॥ पहले तुम उत्तम शुभ-शील से सम्पन्न सुशीला नाम की गोपी थी। कृष्ण की दक्षिण (दाहिनी) गोद में निवास करने और राधा के शाप के कारण भी तुम्हें दक्षिणा कहते हैं ॥७४॥ हे प्रिये! हमारे भाग्य से तुम गोलोक से यहाँ आयी हो, मेरे ऊपर कृपा करो—आज मुझे अपना स्वामी निश्चय बनाओ ॥७५॥ कर्ताओं के कर्मों की तुम फलदायिनी देवी हो, तुम्हारे बिना सभी लोगों के सब कर्म निष्फल हो जाते हैं ॥७६॥ जिस प्रकार भूतल में फल और शाखा हीन वृक्ष की शोभा नहीं होती है, उसी प्रकार तुम्हारे बिना कर्ताओं के कर्म सुशोभित नहीं होते हैं ॥७७॥ इस भाँति ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा दिक्पाल आदि सभी तुम्हारे बिना कर्मफल देने में असमर्थ रहते हैं ॥७८॥ स्वयं ब्रह्मा कर्मरूपी हैं, महेश्वर फलरूपी, विष्णु यज्ञरूपी और हम तुम इनके सार भाग हैं ॥७९॥ निर्गुण एवं प्रकृति से परे रहने वाले परब्रह्म फल के दाता कहे गये हैं किन्तु स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण भी तुम्हारे बिना फल देने में असमर्थ रहते

त्वमेव शक्तिः कान्ते मे शश्वज्जन्मनि जन्मनि । सर्वकर्मणि शक्तोऽहं त्वया सह वरानने ॥८१॥
इत्युक्त्वा तत्पुरस्तस्थौ यज्ञाधिष्ठातृदेवकः । तुष्टा बभूव सा देवी भेजे तं कमलाकला ॥८२॥
इदं च दक्षिणास्तोत्रं यज्ञकाले च यः पठेत् । फलं च सर्वयज्ञानां लभते नात्र संशयः ॥८३॥
राजसूये वाजपेये गोमेधे नरमेधके। अश्वमेधे लाङ्गले च विष्णुयज्ञे यशस्करे ॥८४॥
धनदे भूमिदे [1]फल्गौ पुत्रेष्टौ गजमेधके । लोहयज्ञे स्वर्णयज्ञे [2]पटलव्याधिखण्डने ॥८५॥
शिवयज्ञे रुद्रयज्ञे शक्रयज्ञे च [3]बन्धके । इष्टौ वरुणयागे च कन्दुके वैरिमर्दने ॥८६॥
शुचियागे धर्मयागे रेचने पापमोचने । [4]बन्धने कर्मयागे च मणियागे सुभद्रके ॥८७॥
एतेषां च समारम्भ इदं स्तोत्रं च यः पठेत्। निर्विघ्नेन च तत्कर्म साङ्गं भवति निश्चितम् ॥८८।
इति स्तोत्रं च कथितं ध्यानं पूजाविधिं शृणु । शालग्रामे घटे वाऽपि दक्षिणां पूजयेत्सुधीः ॥८९॥
लक्ष्मीदक्षांशसंभूतां दक्षिणां [5]कमलाकलाम् । सर्वकर्मसु दक्षां च फलदां सर्वकर्मणाम् ॥९०॥
विष्णोः शक्तिस्वरूपां च पूजितां वन्दितां शुभाम् । शुद्धिदां शुद्धिरूपां च सुशीलां शुभदां भजे ॥९१॥
ध्यात्वाऽनेनैव वरदां सुधीमूलेन पूजयेत् । दत्त्वा पाद्यादिकं देव्यै वेदोक्तेन च नारद ॥९२॥
ॐ श्रीं क्लीं ह्रीं दक्षिणायै स्वाहेति च विचक्षणः । पूजयेद्विधिवद्भक्त्या दक्षिणां सर्वपूजिताम् ॥९३॥

हैं ॥८०॥ हे कान्ते ! तुम हमारे प्रत्येक जन्म की निरन्तर शक्ति हो, हे वरानने ! तुम्हारे ही साथ रहने से हम सभी कर्मों में समर्थ हैं ॥८१॥ इतना कहकर यज्ञ के अधिष्ठाता देव उसके सामने स्थित रहे। अनन्तर वह कमला की कला (दक्षिणा) भी प्रसन्न होकर (पतिरूप में) उनकी सेवा करने लगी ॥८२॥ इस प्रकार इस दक्षिणास्तोत्र का जो यज्ञ के समय पाठ करता है, उसे समस्त यज्ञों का फल प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं ॥८३॥ एवं राजसूय, वाजपेय, गोमेध, नरमेध, अश्वमेध, लांगल, यशोदायक विष्णुयज्ञ, धनप्रद एवं भूमिदायक फल्गुयज्ञ, पुत्रेष्टियज्ञ, गजमेध, लोहयज्ञ, नेत्ररोगनाशक सुवर्णयज्ञ, शिवयज्ञ, रुद्रयज्ञ, इन्द्रयज्ञ, वरुणयज्ञ, कन्दुक, वैरिमर्दन, शुचियाग, धर्मयाग, पापमोचन, रेचन, बन्धन, कर्मयाग और अतिकल्याणप्रद मणियाग—इन यज्ञों के आरम्भ के समय जो इस स्तोत्र का पाठ करता है, उसका कर्म निश्चित ही सांगोपांग और निर्विघ्न समाप्त होता है ॥८४-८८॥ इस प्रकार स्तोत्र और ध्यान बता दिये। अब पूजा का विधान सुनो—शालग्राम या कलश में दक्षिणा का आवाहन-पूजन विद्वानों को करना चाहिए ॥८९॥ दक्षिणा कमला की कला और लक्ष्मी के दाहिने अंश से उत्पन्न हुई है, जो समस्त कर्मों में दक्ष (कुशल) और समस्त कर्मों का फल प्रदान करती है ॥९०॥ भगवान् विष्णु की शक्तिस्वरूप, पूजित, वन्दित, शुभ, शुद्धिदायक, शुद्धिरूप और शुभप्रद उस सुशीला की सेवा कर रहा हूं। इस प्रकार ध्यान करके उस वरदायिनी की पूजा मूलमंत्र द्वारा विद्वान् को करनी चाहिए ॥९१॥ हे नारद ! उस देवी के लिए वेदोक्त विधान से पाद्य आदि देकर 'ओं श्रीं क्लीं ह्रीं दक्षिणायै स्वाहा' इसी मंत्र द्वारा भक्तिपूर्वक विद्वान् को समस्त की पूजित दक्षिणा की पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार मैंने दक्षिणा

---

१ क. फालौ । २ क. पाटले व्या० । ३क. ०बन्धुके । ४ क. वर्धने । ५ क. ०लाननाम् ।

इत्येवं कथितं सर्वं दक्षिणाख्यानमुत्तमम् । सुखदं प्रीतिदं चैव फलदं सर्वकर्मणाम् ॥९४॥
इदं च दक्षिणाख्यानं यः शृणोति समाहितः । अङ्गहीनं च तत्कर्म न भवेद्भारते भुवि ॥९५॥
अपुत्रो लभते पुत्रं निश्चितं च गुणान्वितम् । भार्याहीनो लभेद्भार्यां सुशीलां सुन्दरीं पराम् ॥९६॥
वरारोहां पुत्रवतीं विनीतां प्रियवादिनीम् । पतिव्रतां सुव्रतां च शुद्धां च कुलजां वराम् ॥९७॥
विद्याहीनो लभेद्विद्यां धनहीनो धनं लभेत् । भूमिहीनो लभेद्भूमिं प्रजाहीनो लभेत्प्रजाः ॥९८॥
संकटे बन्धुविच्छेदे विपत्तौ बन्धने तथा । मासमेकमिदं श्रुत्वा मुच्यते नात्र संशयः ॥९९॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० दक्षिणोपा० दक्षिणोत्पत्तितत्पूजादिविधानं
नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

नारद उवाच

अनेकासां च देवीनां श्रुतमाख्यानमुत्तमम् । अन्यासां चरितं ब्रह्मन्वद वेदविदां वर ॥१॥

नारायण उवाच

सर्वासां चरितं विप्र वेदेष्वस्ति पृथक्पृथक् । पूर्वोक्तानां च देवीनां त्वं कासां श्रोतुमिच्छसि ॥२॥

का उत्तम आख्यान तुम्हें सुना दिया, जो सुखप्रद, प्रीतिदायक और समस्त कर्मों का फल प्रदान करता है। अतः इस दक्षिणाख्यान को जो एकाग्रचित्त से सुनता है, भारतभूतल में उसका कोई भी कर्म अंगहीन नहीं होता है। ॥९२-९५॥ इससे पुत्रहीन को गुणी पुत्र की निश्चित ही प्राप्ति होती है और स्त्रीहीन को सुशील, सुन्दरी, श्रेष्ठ, अनुपम, पुत्रवती, विनीत, प्रिय बोलने वाली, पतिव्रता, सुन्दर नियमवाली, शुद्ध, कुलीन और श्रेष्ठ स्त्री की प्राप्ति होती है। विद्याहीन को विद्या, धनहीन को धन, भूमिरहित को भूमि, प्रजा (सन्तान) हीन को प्रजा (सन्तान) की प्राप्ति होती है और किसी भी भाँति का संकट, बन्धुओं का वियोग, विपत्ति अथवा किसी प्रकार का बन्धन उपस्थित होने पर एक मास तक इसका श्रवण करने से मनुष्य उस संकट से मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं ॥९६-९९॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण संवादविषयक दक्षिणोपाख्यान में दक्षिणा की उत्पत्ति और पूजनादिविधान वर्णन नामक बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४२॥

अध्याय ४३

षष्ठी देवी का उपाख्यान

नारद बोले—हे ब्रह्मन्! हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ! मैं अनेक देवियों का उत्तम आख्यान सुन चुका, अब अन्य के चरित सुनाने की कृपा कीजिये ॥१॥

नारायण बोले—हे विप्र! पूर्वोक्त देवियों के चरित वेदों में पृथक्-पृथक् बताये गये हैं। उनमें तुम किन देवियों के चरित सुनना चाहते हो ॥२॥

नारद उवाच

षष्ठी मङ्गलचण्डी च मनसा प्रकृतेः कला । उत्पत्तिमासां चरितं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥३॥

नारायण उवाच

षष्ठांशा प्रकृतेर्या च सा च षष्ठी प्रकीर्तिता । बालकाधिष्ठातृदेवी विष्णुमाया च बालदा ॥४॥
मातृकासु च विख्याता देवसेनाभिधा च सा । प्राणाधिकप्रिया साध्वी स्कन्दभार्या च सुव्रता ॥५॥
आयुःप्रदा च बालानां धात्री रक्षणकारिणी । सततं शिशुपार्श्वस्था योगाद्वै सिद्धियोगिनी ॥६॥
तस्याः पूजाविधौ ब्रह्मन्नितिहासविधिं शृणु । यच्छ्रुतं धर्ममुखतो सुखदं पुत्रदं परम् ॥७॥
राजा प्रियव्रतश्चासीत्स्वायंभुवमनोः सुतः । योगीन्द्रो नोद्वहेद्भार्यां तपस्यासु रतः सदा ॥८॥
ब्रह्माज्ञया च यत्नेन कृतदारो बभूव सः । सुचिरं कृतदारश्च न लेभे तनयं मुने ॥९॥
पुत्रेष्टियज्ञं तं चापि कारयामास कश्यपः । मालिन्यै तस्य कान्तायै मुनिर्यज्ञचरुं ददौ ॥१०॥
भुक्त्वा चरुं च तस्याश्च सद्यो गर्भो बभूव ह । दधार तं च सा देवी दैवं द्वादशवत्सरम् ॥११॥
ततः सुषाव सा ब्रह्मन्कुमारं कनकप्रभम् । सर्वावयसंपन्नं मृतमुत्तारलोचनम् ॥१२॥
तं दृष्ट्वा रुरुदुः सर्वा नार्यो वै बान्धवस्त्रियः । मूर्च्छामवाप तन्माता पुत्रशोकेन सुव्रता ॥१३॥

नारद बोले—मैं षष्ठी, मंगलचण्डी और प्रकृति की कला रूप मनसा देवी की उत्पत्ति और चरित तत्त्वतः सुनना चाहता हूँ॥३॥

नारायण बोले—प्रकृति के छठे अंश से उत्पन्न होने के नाते उस देवी को षष्ठी कहा जाता है, जो बालकों की अधिष्ठात्री देवी, भगवान् विष्णु की माया और बालदा (सन्तान देने वाली) कही जाती है॥४॥ वह मातृकाओं में प्रख्यात एवं 'देवसेना' नाम की है। वह स्कन्द की पत्नी, उनके प्राणों से अधिक प्रिय, पतिव्रता और सुन्दर नियमाचरण करने वाली है॥५॥ एवं बालकों की जीवनदायिनी, रक्षा करनेवाली धाय, निरन्तर बच्चों के समीप रहने वाली और योग द्वारा सिद्धियोगिनी है॥६॥ हे ब्रह्मन्! उसके पूजाविधान का जो इतिहास धर्म के मुख से मैंने सुना है, उसे सुनो। वह परम सुखदायक और पुत्रप्रद है॥७॥

स्वायम्भुवमनु का पुत्र राजा प्रियव्रत था, जो सदा तपस्या में ही लगा रहता था। इस कारण उस योगीन्द्र ने अपना विवाह ही नहीं किया॥८॥ पश्चात् ब्रह्मा के समझाने-बुझाने पर उसने (किसी भाँति) विवाह कर लिया, किन्तु अधिक समय व्यतीत होने पर भी उसके कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ॥९॥ हे मुने! अनन्तर कश्यप जी ने उससे पुत्रेष्टि नामक यज्ञ सुसम्पन्न कराया और उसकी मालिनी नामक पत्नी को यज्ञ का चरु (प्रसाद रूप हवि) दिया, जिसका भक्षण करने से उसे शीघ्र गर्भ रह गया। वह देवी उस गर्भ को बारह वर्ष तक (अपने उदर में) धारण किये रही॥१०-११॥ हे ब्रह्मन्! उपरान्त उसने एक कुमार का जन्म दिया, जो सुर्वण के समान कान्तियुक्त और समस्त अंगों से सम्पन्न होते हुए भी आँखें उलटाये हुए मृतक था॥१२॥ उसे देखकर सभी स्त्रियाँ और बन्धुओं की स्त्रियाँ रुदन करने लगीं और वह सुव्रता शिशु-माता तो पुत्र-शोक के कारण मूर्च्छित होकर गिर पड़ी॥१३॥ हे मुने! राजा उस बच्चे को लेकर श्मशान गया

श्मशानं च ययौ राजा गृहीत्वा बालकं मुने। रुरोद तत्र कान्तारे पुत्रं कृत्वा स्ववक्षसि ॥१४॥
नोत्सृज्य बालकं राजा प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यतः। ज्ञानयोगं विसस्मार पुत्रशोकात्सुदारुणात् ॥१५॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र विमानं च ददर्श ह। शुद्धस्फटिकसंकाशं मणिराजविराजितम् ॥१६॥
तेजसा ज्वलितं शश्वच्छोभितं क्षौमवाससा। नानाचित्रविचित्राढ्यं [1]पुष्पमालाविराजितम् ॥१७॥
ददर्श तत्र देवीं च कमनीयां मनोहराम्। श्वेतचम्पकवर्णाभां रम्यसुस्थिरयौवनाम् ॥१८॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां रत्नभूषणभूषिताम्। कृपामयीं योगसिद्धां भक्तानुग्रहकारिणीम् ॥१९॥
दृष्ट्वा तां पुरतो राजा तुष्टाव परमादरात्। चकार पूजनं तस्या विहाय भुवि बालकम् ॥२०॥
पप्रच्छ राजा तां दृष्ट्वा ग्रीष्मसूर्यसमप्रभाम्। तेजसा ज्वलितां शान्तां कान्तां स्कन्दस्य नारद ॥२१॥

प्रियव्रत उवाच

का त्वं सुशोभने कान्ते कस्य कान्ताऽसि सुव्रते। कस्य कन्या वरारोहे धन्या मान्या च योषिताम् ॥२२॥
नृपेन्द्रस्य वचः श्रुत्वा जगन्मङ्गलदायिनी। उवाच देवसेना सा देवरक्षणकारिणी ॥२३॥
देवानां [2]दैत्यभीतानां पुरा सेना बभूव सा। जयं ददौ च तेभ्यश्च देवसेना च तेन सा ॥२४॥

और वहाँ जंगल में उस पुत्र को गोद में रखकर रुदन करने लगा ॥१४॥ राजा किसी भाँति बालक को छोड़ नहीं रहा था। वह अपना प्राण देने के लिए तैयार हो गया क्योंकि अति भीषण पुत्र-शोक के नाते उसका ज्ञान-योग विस्मृत हो गया था ॥१५॥ उसी बीच उसने एक विमान देखा, जो शुद्ध स्फटिक की भाँति उत्तम मणियों से सुशोभित, तेज से प्रज्वलित, रेशमी वस्त्रों से निरन्तर विभूषित, अनेक भाँति की चित्र-विचित्र (वस्तुओं) से परिपूर्ण और पुष्पों की मालाओं से अलंकृत था ॥१६-१७॥ उस पर बैठी हुई एक सुन्दरी को देखा, जो मन को हरण करने वाली, श्वेत चम्पा पुष्प के समान रूप-रंग वाली, रमणीक और अति चिरस्थायी यौवन (वाली), मन्द मुसुकान समेत प्रसन्न मुख वाली, रत्नों के भूषणों से विभूषित, कृपा की मूर्ति, योगसिद्ध और भक्तों पर अनुग्रह करनेवाली थी ॥१८-१९॥ उसे सामने देखकर राजा ने अति आदर से उसकी स्तुति की और भूमि पर बालक को छोड़कर उस देवी की पूजा की ॥२०॥ हे नारद ! स्कन्द की उस कान्ता को देखकर, जो ग्रीष्मकालीन सूर्य के समान प्रभापूर्ण, तेज से देदीप्यमान तथा शान्त थी, राजा ने उससे पूछा ॥२१॥

प्रियव्रत बोले—हे सुशोभने, कान्ते! तुम कौन हो? हे सुव्रते! तुम किसकी प्रिया हो? हे वरारोहे! तुम किसकी धन्य और स्त्रियों की मान्य कन्या हो? राजा की बात सुनकर संसार को मंगल देने वाली और देवताओं की रक्षा करने वाली देवसेना बोली। पूर्वकाल में दैत्यों से त्रस्त देवताओं की वह सेना थी, देवों को उसने विजय दिलाई थी, इससे उसे 'देवसेना' कहते हैं ॥२२-२४॥

---

१ क. ०विनिर्मितम्। २ क. ०त्यग्रस्तानां।

देवसेनोवाच

ब्रह्मणो मानसी कन्या देवसेनाऽहमीश्वरी । सृष्ट्वा मां मनसो धाता ददौ स्कन्दाय भूमिप ॥२५॥
मातृकासु च विख्याता [1]स्कन्दसेना च सुव्रता । विश्वे षष्ठीति विख्याता षष्ठांशा प्रकृतेर्यतः ॥२६॥
पुत्रदाऽहमपुत्राय प्रियस्त्रीदा प्रियाय च । धनदा च दरिद्रेभ्यः कर्तृभ्यः शुभकर्मदा ॥२७॥
सुखं दुःखं भयं शोकं हर्षं मङ्गलमेव च । संपत्तिश्च विपत्तिश्च सर्वं भवति कर्मणा ॥२८॥
कर्मणा बहुपुत्री च वंशहीनश्च कर्मणा । कर्मणा च दरिद्रश्च धनाढ्यश्च स्वकर्मणा ॥
कर्मणा रूपवांश्चैव रोगी शश्वत्स्वकर्मणा ॥२९॥
कर्मणा मृतपुत्रश्च कर्मणा चिरजीविनः । कर्मणा गुणवन्तश्च कर्मणा चाङ्गहीनकाः ॥३०॥
तस्मात्कर्म परं राजन्सर्वेभ्यश्च श्रुतौ श्रुतम् । कर्मरूपी च भगवांस्तद्द्वारा फलदो हरिः ॥३१॥
इत्येवमुक्त्वा सा देवी गृहीत्वा बालकं मुने । महाज्ञानेन सहसा जीवयामास लीलया ॥३२॥
राजा ददर्श तं बालं सस्मितं कनकप्रभम् । देवसेना च पश्यन्तं नृपमम्बरमेव च ॥३३॥
गृहीत्वा बालकं देवी गगनं गन्तुमुद्यता । पुनस्तुष्टाव तां राजा शुष्ककण्ठौष्ठतालुकः ॥३४॥
नृपस्तोत्रेण सा देवी परितुष्टा बभूव ह । उवाच तं नृपं ब्रह्मन्वेदोक्तं कर्मनिर्मितम् ॥३५॥

देवसेना बोली—हे राजन् ! मैं ब्रह्मा की मानसी कन्या हूँ, देवसेना मेरा नाम है और ब्रह्मा ने मुझे मन से उत्पन्न कर स्वामिनी बनाकर स्कन्द को सौंप दिया ॥२५॥ मुझे मातृकाओं में प्रख्यात, स्कन्द-सेना, सुव्रता और प्रकृति के छठे अंश से उत्पन्न होने के नाते 'षष्ठी' भी कहते हैं ॥२६॥ मैं पुत्रहीन को पुत्र देने वाली, प्रिय को प्रिया देने वाली, दरिद्रों को धन और कर्ताओं को शुभ कर्म प्रदान करने वाली हूँ ॥२७॥ इस प्रकार प्राणी को सुख, दुःख, भय, शोक, हर्ष, मंगल, सम्पत्ति और विपत्ति सब कर्म से ही होता है ॥२८॥ कर्म से ही बहुत पुत्र, कर्म से वंश-नाश, कर्म से रूपवान्, कर्म से सदा रोगी, कर्म से मृतक पुत्र, कर्म से चिरकाल का जीवन, कर्म से गुणवान् और कर्मसे प्राणी अंगहीन होते हैं ॥२९-३०॥ हे राजन् ! इसलिए कर्म सब से श्रेष्ठ है, ऐसा वेद में सुना गया है। उसी के द्वारा कर्मरूपी भगवान् विष्णु फल प्रदान करते हैं ॥३१॥ हे मुने ! इतना कह कर उस देवी ने बालक को लेकर और लीलापूर्वक सहसा महाज्ञान द्वारा उसे जीवित कर दिया ॥३२॥ राजा ने उस बालक को देखा, जो सुवर्ण की भाँति कान्ति से युक्त और मन्दहास कर रहा था। राजा आकाश की ओर (ऊपर) देख ही रहा था कि देवसेना उस बालक को लेकर ऊपर आकाश को जाने लगी। उस समय राजा के कण्ठ, तालु और ओंठ सूख गये। उसने फिर स्तुति करना आरम्भ किया ॥३३-३४॥ हे ब्रह्मन् ! राजा के उस स्तोत्र से देवी प्रसन्न हो गयी। उसने राजा से वेदोक्त कर्म से उद्भूत वचन कहा ॥३५॥

---

१ क. ०न्दभार्या च ।

देवसेनोवाच

त्रिषु लोकेषु राजा त्वं स्वायंभुवमनोः सुतः । मम पूजां च सर्वत्र कारयित्वा स्वयं कुरु ॥३६॥
तदा दास्यामि पुत्रं ते कुलपद्मं मनोहरम् । सुव्रतं नाम विख्यातं गुणवन्तं सुपण्डितम् ॥३७॥
जातिस्मरं च योगीन्द्रं नारायणपरायणम् । शतक्रतुकरं श्रेष्ठं क्षत्रियाणां च वन्दितम् ॥३८॥
मत्तमातङ्गलक्षाणां धृतवन्तं बलं शुभम् । धन्विनं गुणिनं शुद्धं विदुषां प्रियमेव च ॥३९॥
[1]योगिनं ज्ञानिनं चैव सिद्धरूपं तपस्विनम् । यशस्विनं च लोकेषु दातारं सर्वसंपदाम् ॥४०॥
इत्येवमुक्त्वा सा देवी तस्मै तद्बालकं ददौ । राजा च तं स्वीचकार तत्पूजार्थं च सुव्रतः ॥४१॥
जगाम देवी स्वर्गं च दत्त्वा तस्मै शुभं वरम् । आजगाम महाराजः स्वगृहं हृष्टमानसः ॥४२॥
आगत्य कथयामास वृत्तान्तं पुत्रहेतुकम् । तुष्टा बभूवुः संतुष्टा नरा नार्यश्च नारद ॥४३॥
मङ्गलं कारयामास सर्वत्र सुतहेतुकम् । देवीं च पूजयामास ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ ॥४४॥
राजा च प्रतिमासेषु [2]शुक्लषष्ठ्यां महोत्सवम् । षष्ठ्या देव्याश्च यत्नेन कारयामास सर्वतः ॥४५॥
बालानां सूतिकागारे षष्ठाहे यत्नपूर्वकम् । तत्पूजां कारयामास चैकविंशतिवासरे ॥४६॥
बालानां शुभकार्ये च शुभान्नप्राशने तथा । सर्वत्र वर्धयामास स्वयमेव चकार ह ॥४७॥
ध्यानं पूजाविधानं च स्तोत्रं मत्तो निशामय । यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रेण कौथुमोक्तं च सुव्रत ॥४८॥

देवसेना बोली—तुम स्वायम्भुवमनु के पुत्र और तीनों लोकों के राजा हो। अतः हमारी पूजा सर्वत्र कराकर तुम स्वयं करो ॥३६॥ तभी मैं तुम्हें यह कुलकमल और मनोहर पुत्र दूँगी जो सुव्रत नाम से प्रख्यात और महा-गुणवान् पण्डित होगा। (पूर्व जन्म के) जातिस्मरण के साथ यह योगिराज, नारायणपरायण, सौ यज्ञ करने वाला, श्रेष्ठ, क्षत्रियों से वन्दित, एक लाख मतवाले गजराज का बल धारण करने वाला, शुभमूर्ति, धनुर्धर, गुणी शुद्ध, विद्वानों का प्रिय, योगी, ज्ञानी, तपस्वी, सिद्ध, कीर्तिमान् और लोकों में समस्त सम्पत्ति का प्रदाता होगा ॥३७-४०॥ इतना कहकर उस देवी ने वह बालक राजा को दे दिया और उसने उसकी पूजा करने-कराने के लिए उसे स्वीकार किया ॥४१॥ अनन्तर उसे शुभ वरदान देकर देवी स्वर्ग चली गयी और महाराज भी अत्यन्त हर्षित होकर अपने घर आये तथा लोगों को पुत्र का वृत्तान्त सुनाने लगे। हे नारद ! उसे सुनकर सभी पुरुष और स्त्रियाँ अत्यन्त प्रसन्न हुई। राजा ने चारों ओर पुत्र के लिए मंगल कराया। देवी की पूजा के उपरान्त ब्राह्मणों को धन दान दिया ॥४२-४४॥ उसी समय से राजा प्रत्येक मास की शुक्ल-षष्ठी के दिन षष्ठी देवी का महोत्सव चारों ओर सप्रयत्न कराने लगा ॥४५॥ बालकों के सूतिक (सौरी) गृह में छठें दिन और इक्कीसवें दिन अति प्रयत्न से देवी की पूजा करायी ॥४६॥ बालकों के शुभ अवसर पर तथा अन्नप्राशन कार्य के समय उसने स्वयं सर्वत्र षष्ठी-पूजन का प्रचार किया ॥४७॥ हे सुव्रत ! मैंने धर्म के मुखारविन्द से उस देवी का ध्यान, पूजा-विधान, स्तोत्र आदि जो कुछ कौथुमी शाखा-नुसार सुना, उसे बता रहा हूँ, सुनो ॥४८॥ हे मुने ! शालग्राम, कलश, वटवृक्ष की जड़ में अथवा भीत

---

१ क. ०गिनां प्राणिनां चै० । २ क. शुक्लाष्टम्यां ।

शालग्रामे घटे वाऽथ वटमूलेऽथवा मुने। भित्त्यां पुत्तलिकां कृत्वा पूजयेद्वा विचक्षणः ॥४९॥
षष्ठांशां प्रकृतेः शुद्धां सुप्रतिष्ठां च सुव्रताम्। सुपुत्रदां च शुभदां दयारूपां जगत्प्रसूम् ॥५०॥
श्वेतचम्पकवर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम्। पवित्ररूपां परमां देवसेनां परां भजे ॥५१॥
इति ध्यात्वा स्वशिरसि पुष्पं दद्यात् विचक्षणः। पुनर्ध्यात्वा च मूलेन पूजयेत्सुव्रतां सतीम् ॥५२॥
पाद्यार्घ्याचमनीयैश्च गन्धधूपप्रदीपकैः। नैवेद्यैर्विविधैश्चापि फलेन च शुभेन च ॥५३॥
मूलमों ह्रीं षष्ठीदेव्यै स्वाहेति विधिपूर्वकम्। अष्टाक्षरं महामन्त्रं यथाशक्ति जपेन्नरः ॥५४॥
ततः स्तुत्वा च प्रणमेद्भक्तियुक्तः समाहितः। स्तोत्रं च सामवेदोक्तं धनपुत्रफलप्रदम् ॥५५॥
अष्टाक्षरं महामन्त्रं लक्षधा यो जपेन्मुने। स पुत्रं लभते नूनमित्याह कमलोद्भवः ॥५६॥
स्तोत्रं शृणु मुनिश्रेष्ठ[1] सर्वेषां च शुभावहम्। वाञ्छाप्रदं च सर्वेषां गूढं वेदे च नारद ॥५७॥

प्रियव्रत उवाच

नमो देव्यै महादेव्यै सिद्ध्यै शान्त्यै नमो नमः। शुभायै देवसेनायै षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥५८॥
वरदायै पुत्रदायै धनदायै नमो नमः। सुखदायै मोक्षदायै षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥५९॥
शक्तेः षष्ठांशरूपायै सिद्धायै च नमो नमः। मायायै सिद्धयोगिन्यै षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥६०॥

(दीवाल) पर मूर्ति बनाकर बुद्धिमान् को उस देवी की पूजा करनी चाहिए ॥४९॥ प्रकृति के छठे अंश से उत्पन्न, शुद्ध, उत्तम प्रतिष्ठा (मर्यादा) से युक्त, शोभननियमपूर्ण, उत्तमपुत्रदायिनी, शुभप्रदा, दयानिधान, जगज्जननी, श्वेत चम्पा-पुष्प की भाँति रूप रंग वाली, रत्नों के भूषणों से भूषित और परम पवित्र रूप उस श्रेष्ठ देवसेना की मैं सेवा कर रहा हूँ ॥५०-५१॥ ऐसा ध्यान कर अपने शिर पर पुष्प रखे और पुनः ध्यानपूर्वक मूलमंत्र द्वारा उस सती की पूजा बुद्धिमान् को करनी चाहिए ॥५२॥ फिर पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय (जल), गन्ध, धूप, दीप, अनेक भाँति के नैवेद्य और उत्तम फल समेत पूजन करने के अनन्तर 'ओं ह्रीं षष्ठी देव्यै स्वाहा' इस अष्ठाक्षर महामन्त्र का यथाशक्ति जप करे ॥५३-५४॥ सावधान होकर भक्तिपूर्वक प्रणाम करे और धनपुत्रदायक सामवेदोक्त स्तोत्र का पाठ करे ॥५५॥ हे मुने! इस अष्टाक्षर महामंत्र का जो एक लाख जप करता है, उसे निश्चित पुत्र की प्राप्ति होती है, ऐसा ब्रह्मा ने स्वयं कहा है ॥५६॥ हे मुनिश्रेष्ठ! नारद! सब को शुभ प्रदान करने वाला स्तोत्र भी तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो, जो सबका मनोरथपूरक और वेद में गुप्त है ॥५७॥

प्रियव्रत बोले—देवी को नमस्कार है, महादेवी, सिद्धि और शान्ति रूप को नमस्कार है, सुखदायिनी एवं मोक्षप्रद षष्ठी देवी को नमस्कार है ॥५८॥ वर प्रदान करने वाली एवं पुत्र, धन देने वाली को नमस्कार है तथा सुख-मोक्ष देने वाली षष्ठी देवी को नमस्कार है ॥५९॥ शक्ति के छठे भाग स्वरूप और सिद्धा को बार-बार नमस्कार है। माया तथा सिद्धयोगिनी षष्ठी देवी को नमस्कार है ॥६०॥ श्रेष्ठ रूप, श्रेष्ठ बनाने वाली षष्ठी देवी को नमस्कार

---

१ क. सर्वकामशु०

पारायै पारदायै च षष्ठीदेव्यै नमो नमः। सारायै सारदायै च पारायै सर्वकर्मणाम्॥६१॥
बालाधिष्ठातृदेव्यै च षष्ठीदेव्यै नमो नमः। कल्याणदायै कल्याण्यै फलदायै च कर्मणाम्॥
प्रत्यक्षायै च भक्तानां षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥६२॥
पूज्यायै स्कन्दकान्तायै सर्वेषां सर्वकर्मसु। देवरक्षणकारिण्यै षष्ठीदेव्यै नमो नमः॥६३॥
शुद्धसत्त्वस्वरूपायै वन्दितायै नृणां सदा। हिंसाक्रोधैर्वर्जितायै षष्ठीदेव्यै नमो नमः॥६४॥
धनं देहि प्रियां देहि पुत्रं देहि सुरेश्वरि। धर्मं देहि यशो देहि षष्ठीदेव्यै नमो नमः॥६५॥
भूमिं देहि प्रजां देहि देहि विद्यां सुपूजिते। कल्याणं च जयं देहि षष्ठीदेव्यै नमो नमः॥६६॥
इति देवीं च संस्तूय लेभे पुत्रं प्रियव्रतः। यशस्विनं च राजेन्द्रं षष्ठीदेवीप्रसादतः॥६७॥
षष्ठीस्तोत्रमिदं ब्रह्मन्यः शृणोति च वत्सरम्। अपुत्रो लभते पुत्रं वरं सुचिरजीविनम्॥६८॥
वर्षमेकं च या भक्त्या संयतेदं शृणोति च। सर्वपापाद्विनिर्मुक्ता महावन्ध्या प्रसूयते॥६९॥
वीरपुत्रं च गुणिनं विद्यावन्तं यशस्विनम्। सुचिरायुष्मन्तमेव षष्ठीमातृप्रसादतः॥७०॥

है, जो सारभाग स्वरूप और सारभाग दान करने वाली तथा समस्त कर्मों को सफल करने वाली है॥६१॥बालकों की अधिष्ठात्री देवी षष्ठी को नमस्कार है, जो कल्याण देने वाली, कल्याणीस्वरूप तथा समस्त कर्मों का फल प्रदान करने वाली है॥६२॥ भक्तों को साक्षात् दर्शन देने वाली षष्ठी देवी को नमस्कार है, जो स्कन्द की प्रिया और सभी लोगों की सब कर्मों में पूज्या है॥६३॥ देवों की रक्षा करने वाली षष्ठी देवी को नमस्कार है। शुद्ध सत्त्व रूप, मनुष्यों की सदा वन्दिता तथा हिंसा-क्रोध से रहित षष्ठी देवी को नमस्कार है॥६४॥ हे सुरेश्वरि! मुझे धन, पत्नी और पुत्र दो। मुझे धर्म और यश प्रदान करो। षष्ठी देवी को बार-बार नमस्कार है॥६५॥ हे सुपूजिते! मुझे भूमि, सन्तान और विद्या प्रदान करो। मुझे कल्याण समेत जय प्रदान करो। मैं षष्ठी देवी को बार-बार नमस्कार कर रहा हूँ॥६६॥ इस भाँति देवी की स्तुति कर के प्रियव्रत ने पुत्र की प्राप्ति की, जो षष्ठी देवी की कृपा से यशस्वी राजेन्द्र हुआ॥६७॥ हे ब्रह्मन्! इस षष्ठी स्तोत्र को जो पूरे वर्ष तक सुनता है, उसे पुत्र की कामना से उत्तम और अतिचिरायु पुत्र प्राप्त होता है और भक्तिपूर्वक एक वर्ष तक संयम से जो स्त्री इसका श्रवण करती है, वह महावन्ध्या होने पर भी समस्त पापों से मुक्त होकर पुत्र उत्पन्न करती है॥६८-६९॥ षष्ठी माता के प्रसाद से वीरपुत्र, गुणवान्, विद्यावान्, यशस्वी और अत्यन्त आयुष्मान् पुत्र की प्राप्ति होती है। काकवन्ध्या और जिसके बच्चे जीवित न रहते हों, वे स्त्रियाँ भी एक वर्ष तक इसका श्रवण कर के षष्ठी देवी की कृपा से पुत्र प्राप्त करती

काकवन्ध्या च या नारी मृतापत्या च या भवेत् । वर्षं श्रुत्वा लभेत्पुत्रं षष्ठीदेवी प्रसादतः ।।७१।।
रोगयुक्ते च बाले च पिता माता शृणोति च । मासं च मुच्यते बालः षष्ठीदेवीप्रसादतः ।।७२।।

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० षष्ठ्युपा० षष्ठीदेव्युत्पत्ति-
तत्पूजास्तोत्रादिकथनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ।।४३।।

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

**कथितं षष्ठ्युपाख्यानं ब्रह्मपुत्र यथागमम् । देवी मङ्गलचण्डी या तदाख्यानं निशामय ।।१।।
तस्याः पूजादिकं सर्वं धर्मवक्त्राच्च यच्छ्रुतम् । श्रुतिसंमतमेवेष्टं सर्वेषां विदुषामपि ।।२।।
चण्डा या वर्तते चण्डी जाग्रती शत्रुमण्डले । मङ्गलेषु च या दक्षा मङ्गला सैव चण्डिका ।।३।।
दुर्गायां विद्यते चण्डी मङ्गलोऽपि महीसुतः । मङ्गलाऽभीष्टदेवी या सा स्यान्मङ्गलचण्डिका ।।४।।
मङ्गलो मनुवंशश्च सप्तद्वीपावनीपतिः । तस्य पूज्याऽभीष्टदेवी तेन मङ्गलचण्डिका ।।५।।
मूर्तिभेदेन सा दुर्गा मूलप्रकृतिरीश्वरी । कृपारूपाऽतिप्रत्यक्षा योषितामिष्टदेवता ।।६।।**

हैं। बच्चे के रोगी होने पर उसके माता पिता एक मास तक यदि इसका श्रवण करते हैं तो षष्ठी देवी के प्रसाद से वह बालक उसी समय रोगमुक्त हो जाता है।।७०-७२।।

श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायणसंवादविषयक षष्ठी-उपाख्यान में षष्ठी देवी की उत्पत्ति, पूजा और स्तोत्र आदि कथन नामक तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।४३।।

अध्याय ४४

मंगलचंडी का उपाख्यान

नारायण बोले—हे ब्रह्मपुत्र! वेदानुसार षष्ठी देवी का उपाख्यान तुम्हें सुना दिया, अब मंगलचण्डी देवी का आख्यान सुना रहा हूँ, सुनो! उसके पूजा आदि के विषय में जो कुछ धर्म के मुख से सुना वह वेदानुसार एवं सभी विद्वानों को भी इष्ट है ।।१-२।। कोप अर्थ में चण्डी शब्द का प्रयोग होता है, इसीलिए चण्डी देवी शत्रुसमूहों में निरन्तर जागती रहती हैं और मंगल कार्यों में निपुण होने के नाते उसे 'मंगल-चण्डी देवी' कहते हैं।।३।। दुर्गा के अर्थ में चण्डी शब्द का प्रयोग होता है और पृथ्वी-पुत्र के अर्थ में मंगल शब्द का। । अतः मंगल और अभीष्ट (मनोरथ) सिद्ध करने वाली देवी को 'मंगलचण्डी' कहा जाता है।।४।। मनु वंश में उत्पन्न मंगल की, जो सातों द्वीपों वाली पृथ्वी के स्वामी हैं, पूज्या और मनोरथ सिद्ध करने वाली देवी होने के नाते उसे 'मंगलचण्डिका' देवी कहते हैं।।५।। मूर्ति-भेद से वह दुर्गा, अधीश्वरी, मूलप्रकृति और स्त्रियों की इष्ट देवता है जो कृपा रूप होकर उन्हें अति प्रत्यक्ष होती रहती है।।६।। हे ब्रह्मन्। पूर्व काल में जब त्रिपुरासुर का वध करना था,

प्रथमे पूजिता सा च शंकरेण पुरा परा। त्रिपुरस्य वधे घोरे विष्णुना प्रेरितेन च ॥७॥
ब्रह्मन्ब्रह्मोपदेशेन दुर्गप्रस्थे च संकटे। आकाशात्पतिते याने रुषा दैत्येन पातिते ॥८॥
ब्रह्मविष्णूपदिष्टश्च दुर्गां तुष्टाव शंकरः। सा च मङ्गलचण्डीयमभवद्रूपभेदतः॥९॥
उवाच पुरतः शंभोर्भयं नास्तीति ते प्रभो। भगवान्वृषरूपश्च सर्वेशश्च बभूव ह ॥१०॥
युद्धशक्तिस्वरूपाऽहं भविष्यामि तदाज्ञया। मयाऽऽत्मना च हरिणा सहायेन वृषध्वज
जहि दैत्यं च देवेश सुराणां पदघातकम् ॥११॥
इत्युक्त्वाऽन्तर्हिता देवी शंभोः शक्तिर्बभूव सा। विष्णुदत्तेन शस्त्रेण जघान तमुमापतिः॥१२॥
मुनीन्द्र पतिते दैत्ये सर्वे देवा महर्षयः। तुष्टुवुः शंकरं देवा भक्तिनम्रात्मकंधराः॥१३॥
सद्यः शिरसि शंभोश्च पुष्पवृष्टिर्बभूव ह। ब्रह्मा विष्णुश्च संतुष्टो ददौ तस्मै शुभाशिषम् ॥१४॥
ब्रह्मविष्णूपदिष्टश्च सुस्नातः शंकरः शुचिः। पूजयामास तां शक्तिं देवीं मङ्गलचण्डिकाम् ॥१५॥
पाद्यार्घ्याचमनीयैश्च बलिभिर्विविधैरपि। पुष्पचन्दननैवेद्यैर्भक्त्या नानाविधैर्मुने ॥१६॥
छागैर्मेषैश्च महिषैर्गण्डैर्मायाविभिर्वरैः। वस्त्रालंकारमाल्यैश्च पायसैः पिष्टकैरपि ॥१७॥
मधुभिश्च सुधाभिश्च पक्वैर्नानाविधैः फलैः। संगीतैर्नर्तनैर्वाद्यैरुत्सवैः कृष्णकीर्तनैः ॥१८॥
ध्यात्वा माध्यंदिनोक्तेन ध्यानेन विधिपूर्वकम्। ददौ द्रव्याणि मूलेन मन्त्रेणैव च नारद ॥१९॥

तो भगवान् विष्णु से प्रेरित होकर शंकर ने सर्वप्रथम उस सर्वश्रेष्ठ देवी की अर्चना की ॥७॥ अनन्तर अपने दुर्ग (किले) पर संकट उपस्थित होने पर (त्रिपुरासुर) दैत्य ने शिव के रथ को अत्यन्त क्रुद्ध होकर आकाश से गिरा दिया ॥८॥ पुनः ब्रह्मा और विष्णु के सदुपदेश देने पर शंकर ने दुर्गा की आराधना की। वहीं यह रूप भेद से मंगलचण्डी हुई ॥९॥ उस समय शंकर के सामने खड़ी होकर उसने कहा—हे प्रभो! अब तुम्हें कोई भय नहीं है। भगवान् सर्वाधीश्वर वृष (बैल) रूप में तुम्हारे वाहन हुए हैं ॥१०॥ हे वृषध्वज! मैं भगवान् की आज्ञा से तुम्हारी युद्ध शक्ति का स्वरूप धारण करूँगी। हे देवेश! इस प्रकार मेरी और भगवान् की सहायता से देवों के पदापहारी उस दैत्य का हनन करो। इतना कह कर वह देवी अन्तर्हित हो गयी और शिव की शक्ति हुई। हे मुनीन्द्र! अनन्तर उमापति महादेव ने भगवान् विष्णु के दिए हुए अस्त्र द्वारा उस दैत्य का विध्वंस किया ॥११-१२॥ उपरान्त दैत्य का पतन होने पर सभी देवगण और महर्षि-वृन्दों ने भक्ति-पूर्वक कन्धे झुकाये शिव की स्तुति की। उसी समय शंकर के शिर पर पुष्पों की वृष्टि होने लगी। ब्रह्मा और भगवान् विष्णु ने सन्तुष्ट होकर उन्हें शुभाशीर्वाद प्रदान किया ॥१३-१४॥ अनन्तर ब्रह्मा और विष्णु के उपदेश देने पर शिव ने भली भाँति स्नान किया तथा पवित्र होकर शक्तिस्वरूप मंगलचण्डिका देवी की पूजा की। पाद्य, अर्घ्य, आचमन, अनेक प्रकार की बलि भक्तिपूर्वक पुष्प, चन्दन और अनेक भाँति के नैवेद्य अर्पित किये। हे मुने! उसी भाँति बकरे, भेड़े, भैंसे, गैंड़े, उत्तम जादूगर (?), वस्त्र, अलंकार, माला, खीर, मालपुए, मधु (शहद), सुधा, अनेक भाँति के पके फल, सङ्गीत, नृत्य, वाद्य और भगवान् कृष्ण के नाम संकीर्तन के उत्सव द्वारा माध्यन्दिनी शाखा के अनुसार ध्यान विधिपूर्वक करके मूल मंत्र से ही सब द्रव्य समर्पित किये ॥१५-१९॥ हे

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं सर्वपूज्ये देवि मङ्गलचण्डिके। ऐं क्रूं फट् स्वाहेत्येवं चाप्येकविंशाक्षरो मनुः ॥२०॥
पूज्यः कल्पतरुश्चैव भक्तानां सर्वकामदः। दशलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥२१॥
मन्त्रसिद्धिर्भवेद्यस्य स विष्णुः सर्वकामदः। ध्यानं च श्रूयतां ब्रह्मन्वेदोक्तं सर्वसंमतम् ॥२२॥
देवीं षोडशवर्षीयां रम्यां सुस्थिरयौवनाम्। सर्वरूपगुणाढ्यां च कोमलाङ्गीं मनोहराम् ॥२३॥
श्वेतचम्पकवर्णाभां चन्द्रकोटिसमप्रभाम्। वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम् ॥२४॥
बिभ्रतीं कबरीभारं मल्लिकामाल्यभूषितम्। बिम्बोष्ठीं सुदतीं शुद्धां शरत्पद्मनिभाननाम् ॥२५॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां सुनीलोत्पललोचनाम्। जगद्धात्रीं च दात्रीं च सर्वेभ्यः सर्वसंपदाम् ॥२६॥
संसारसागरे घोरे पोतरूपां वरां भजे ॥२७॥
देव्याश्च ध्यानमित्येवं स्तवनं श्रूयतां मुने। प्रयतः संकटग्रस्तो येन तुष्टाव शंकरः ॥२८॥

शंकर उवाच

रक्ष रक्ष जगन्मातर्देवि मङ्गलचण्डिके। संहर्त्रि विपदां राशेर्हर्षमङ्गलकारिके ॥२९॥
हर्षमङ्गलदक्षे च हर्षमङ्गलचण्डिके। शुभे मङ्गलदक्षे च शुभमङ्गलचण्डिके ॥३०॥

नारद! 'ओं ह्रीं, श्रीं क्लीं सर्वपूज्ये देवि मंगलचण्डिके ऐं क्रूं फट् स्वाहा' यही इक्कीस अक्षर का महामंत्र है ॥२०॥ यह भक्तों के लिए पूज्य, कल्पतरु और समस्त कामनाओं को सफल करने वाला है। इसके दश लाख जप करने से मनुष्यों को सिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥२१॥ और जिसे मंत्र सिद्धि हो जाती है, वह समस्त कामनाओं का दाता विष्णु हो जाता है। हे ब्रह्मन्! अब वेदोक्त और सर्वसम्मत उनका ध्यान सुनो ॥२२॥ सोलह वर्ष की अवस्था वाली देवी की सेवा कर रहा हूँ, जो रमणीक, अति चिरस्थायी यौवन वाली, समस्त गुणों से पूर्ण, कोमल अंगों वाली एवं मनोहर है ॥२३॥ तथा श्वेत चम्पा पुष्प के समान रूपरंग वाली, करोड़ों चन्द्रमा की भाँति कान्ति वाली, अग्नि की भाँति विशुद्ध वस्त्र एवं रत्नों के भूषणों से भूषित, केशपाश से सुशोभित, बेला की माला से विभूषित, बिम्बाफल के समान ओंठ वाली, सुन्दर दाँतों की पंक्ति वाली, शुद्ध स्वरूप, शारदीय कमल के समान मुख वाली, मन्दहास समेत प्रसन्न वदन वाली, नीलकमल की भाँति सुन्दर नेत्र वाली, जगत् को धारण करने वाली, सबको समस्त सम्पदा प्रदान करने वाली तथा इस घोर संसार-सागर को पार कराने के लिए जहाज रूप है ॥२४-२७॥

हे मुने! देवी का यही ध्यान है, अब उनकी स्तुति सुनो! जिसके द्वारा शंकर ने संकट के समय पवित्र होकर स्तुति की थी ॥२८॥

शंकर बोले—हे मंगलचण्डिके देवी! तुम जगत् की माता हो, हमारी रक्षा करो। तुम विपत्तियों की राशियों का संहार करने वाली एवं हर्ष और मंगल करने वाली हो ॥२९॥ हर्ष और मंगल (प्रदान करने में) निपुण, हर्ष तथा मंगलचण्डी स्वरूप, शुभमंगल देने वाली तथा शुभमंगलचण्डी हो ॥३०॥ एवं मंगलमूर्ति, मंगल के योग्य,

---

१ क० के। हुं हुं फ०। २ ख० पीत०।

मङ्गले मङ्गलार्हे च सर्वमङ्गलमङ्गले। सतां मङ्गलदे देवि सर्वेषां मङ्गलालये ॥३१॥
पूज्या मङ्गलवारे च मङ्गलाभीष्टदेवते। पूज्ये मङ्गलभूपस्य मनुवंशस्य संततम् ॥३२॥
मङ्गलाधिष्ठातृदेवि मङ्गलानां च मङ्गले। संसारमङ्गलाधारे मोक्षमङ्गलदायिनि ॥३३॥
सारे च मङ्गलाधारे पारे त्वं सर्वकर्मणाम्। प्रतिमङ्गलवारे च पूज्ये त्वं मङ्गलप्रदे ॥३४॥
स्तोत्रेणानेन शंभुश्च स्तुत्वा मङ्गलचण्डिकाम्। प्रतिमङ्गलवारे च पूजां कृत्वा गतः शिवः ॥३५॥
देव्याश्च मङ्गलस्तोत्रं यः श्रृणोति समाहितः। तन्मङ्गलं भवेच्छश्वन्न भवेत्तदमङ्गलम् ॥३६॥
प्रथमे पूजिता देवी शंभुना सर्वमङ्गला। द्वितीये पूजिता देवी मङ्गलेन ग्रहेण च ॥३७॥
तृतीये पूजिता भद्रा मङ्गलेन नृपेण च। चतुर्थे मङ्गले वारे सुन्दरीभिश्च पूजिता ॥
पञ्चमे मङ्गलाकाङ्क्षैर्नरैर्मङ्गलचण्डिका ॥३८॥
पूजिता प्रतिविश्वेषु विश्वेशैः प्रतिमा सदा। ततः सर्वत्र संपूज्या सा बभूव सुरेश्वरी ॥३९॥
देवादिभिश्च मुनिभिर्मनुभिर्मानवैर्मुने। देव्याश्च मङ्गलस्तोत्रं यः शृणोति समाहितः ॥४०॥
तन्मङ्गलं भवेच्छश्वन्न भवेत्तदमङ्गलम्। वर्धन्ते तत्पुत्रपौत्रा मङ्गलं च दिने दिने ॥४१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० मङ्गलचण्डिकोपा० तत्स्तोत्रादिकथनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥

समस्त मंगलों की मंगल हो। हे देवि! तुम सज्जनों को मंगल दान करती हो और सभी की मंगलनिधि हो ॥३१॥ मंगल वार को तुम्हारी पूजा होती है, तुम मंगल की इष्ट देवता हो और मनुसे उत्पन्न राजा मंगल की निरंतर पूज्या हो ॥३२॥ हे मंगल की अधिष्ठात्री देवी! तुम मंगलों के लिए मंगल रूप हो, संसार के मंगलों का आधार और मोक्षमंगल देने वाली है ॥३३॥ तुम (सब का) सारभाग, मंगल का आधार, समस्त कर्मों से परे और प्रत्येक मंगल में पूज्य एवं मंगल देने वाली हो ॥३४॥ इसी स्तोत्र द्वारा शंकरजी मंगलचण्डिका की स्तुति कर के प्रत्येक मंगल के दिन उनकी पूजा करके गये ॥३५॥ देवी का यह मंगल-स्तोत्र, जो सावधान होकर सुनता है, उसका निरन्तर मंगल होता है और कभी भी अमंगल नहीं होता ॥३६॥ पहले मंगल को मंगला देवी की पूजा शम्भु ने की, दूसरे मंगल को मंगल ग्रह ने देवी की अर्चना की, तीसरे मंगल को भद्रा देवी की अर्चा राजा मंगल द्वारा हुई तथा चौथे मंगल वार के समय सुन्दरियों ने उनकी अर्चा सम्पन्न की एवं पाँचवें मंगल को मंगला-भिलाषी मनुष्यों ने मंगलचण्डिका की आराधना की। इस प्रकार प्रत्येक विश्व में जगदीश्वरों ने सदा उनकी अर्चना की। हे मुने! देवगण, मुनिगण, मनुवृन्द और मनुष्यों द्वारा पूजित होकर पश्चात् यह देवाधीश्वरी देवी चारों ओर सुपूजित हुई। देवी का मंगल-स्तोत्र जो सावधान होकर सुनता है, उसका निरन्तर मंगल ही होता है, अमंगल कभी नहीं और मंगल समेत उसके पुत्र-पौत्र दिन-दिन बढ़ते रहते हैं ॥३७-४१॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद-विषयक मंगलचण्डिकोपाख्यान में मंगला देवी की पूजा और स्तोत्र आदि कथन नामक चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४४॥

---

१ क० भक्त्या। २ ख० पूजिता।

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

उक्तं द्वयोरुपाख्यानं ब्रह्मपुत्र यथागमम्। श्रूयतां मनसाख्यानं यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रतः॥१॥
कन्या भगवती सा च कश्यपस्य च मानसी। तेनेयं मनसादेवी मनसा या च दीव्यति॥२॥
मनसा ध्यायते या वा परमात्मानमीश्वरम्। तेन सा मनसादेवी योगेनैतेन दीव्यति॥३॥
आत्मारामा च सा देवी वैष्णवी सिद्धयोगिनी। त्रियुगं च तपस्तप्त्वा कृष्णस्य परमात्मनः॥४॥
जरत्कारुशरीरं च दृष्ट्वा यां क्षणमीश्वरः। गोपीपतिर्नाम चक्रे जरत्कारुरिति प्रभुः॥५॥
वाञ्छितं च ददौ तस्यै कृपया च कृपानिधिः। पूजां च कारयामास चकार च पुनः स्वयम्॥६॥
स्वर्गे च नागलोके च पृथिव्यां ब्रह्मलोकतः। भृशं जगत्सु गौरी सा सुन्दरी च मनोहरा॥७॥
जगद्गौरीति विख्याता तेन सा पूजिता सती ॥७॥
शिवशिष्या च सा देवी तेन शैवीति कीर्तिता। विष्णुभक्ताऽतीव रम्या वैष्णवी तेन नारद॥८॥
नागानां प्राणरक्षित्री जनमेजययज्ञके। नागेश्वरीति विख्याता सा नागभगिनी तथा॥९॥
विषं संहर्तुमीशा सा तेन सा विषहारिणी। सिद्धं योगं हरात्प्राप तेनासौ सिद्धयोगिनी॥१०॥
महाज्ञानं च गोप्यं च मृतसंजीविनीं पराम्। महाज्ञानयुतां तां च प्रवदन्ति मनीषिणः॥११॥

अध्याय ४५

मनसा देवी का उपाख्यान

नारायण बोले— हे ब्रह्मपुत्र! दोनों (देवियों) का उपाख्यान मैंने तुम्हें सुना दिया; अब धर्म के मुख से मनसा का आख्यान जैसा सुना है, तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो! ॥१॥ वह भगवती कश्यप के मन से उत्पन्न होने के कारण मनसा देवी कहलाती है, जो मन से क्रीड़ा करती है। ॥२॥ योग द्वारा मन से परमात्मा ईश्वर का वह ध्यान करती है, अतः वह मनसा देवी योग से चमकती है ॥३॥ उस वैष्णवी एवं सिद्धयोगिनी ने आत्माराम (आत्मा में रमण करने वाली) होकर तीन युगों तक परमात्मा श्रीकृष्ण का कठिन तप किया।॥४॥ अनन्तर ईश्वर गोपीपति ने क्षणमात्र जरत्कारु मुनि की तरह शरीर देखकर उसका 'जरत्कारु' नाम रख दिया। दयानिधान ने कृपा करके उसका मनोरथ सिद्ध करने के उपरान्त उसका पूजन कराया और स्वयं भी किया॥५-६॥ वह स्वर्गलोक, नागलोक तथा ब्रह्मलोक से समस्त पृथ्वी अर्थात् सारे जगत् में अत्यन्त गौरी (गौरवर्ण), सुन्दरी और मनोहर थी, जिससे यह सती 'जगत्गौरी' होकर प्रख्यात एवं पूजित हुई। तथा शिव जी की शिष्या होने के नाते उस देवी को शैवी भी कहा गया है॥७-८॥ हे नारद! अत्यन्त विष्णु-भक्त होने के नाते वह सुन्दरी वैष्णवी कही जाती है। जनमेजय के (सर्प) यज्ञानुष्ठान में नागों के प्राण की रक्षा उसी ने की ॥९॥ इसीलिए वह 'नागेश्वरी' नाम से भी प्रख्यात है। वह नागों की भगिनी है। इस प्रकार विष का संहार करने में समर्थ होने के नाते विषहारिणी और भगवान् शंकर से सिद्ध योग प्राप्त करने के नाते 'सिद्धयोगिनी' कही जाती है। वह गोप्य महाज्ञान और सर्वश्रेष्ठ मृतसंजीविनी जानती है,

आस्तीकस्य मुनीन्द्रस्य माता सा वै तपस्विनः। आस्तीकमाता विख्याता जरत्कारुरिति स्मृता ॥१२॥
प्रिया मुनेर्जरत्कारोर्मुनीन्द्रस्य महात्मनः। योगिनी विश्वपूज्यस्य जरत्कारोः प्रिया ततः ॥१३॥
ॐ नमो मनसायै ॥१४॥
जरत्कारुर्जगद्गौरी मनसा सिद्धयोगिनी। वैष्णवी नागभगिनी शैवी नागेश्वरी तथा ॥१५॥
जरत्कारुप्रियाऽऽस्तीकमाता विषहरीति च। महाज्ञानयुता चैव सा देवी विश्वपूजिता ॥१६॥
द्वादशैतानि नामानि पूजाकाले च यः पठेत्। तस्य नागभयं नास्ति तस्य वंशोद्भवस्य च ॥१७॥
नागभीदे च शयने नागग्रस्ते च मन्दिरे। नागक्षते नागदुर्गे नागवेष्टितविग्रहे ॥१८॥
इदं स्तोत्रं पठित्वा तु मुच्यते नात्र संशयः। नित्यं पठेद्यस्तं दृष्ट्वा नागवर्गः पलायते ॥१९॥
दशलक्षजपेनैव स्तोत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम्। स्तोत्रं सिद्धं भवेद्यस्य स विषं भोक्तुमीश्वरः ॥२०॥
नागौघं भूषणं कृत्वा स भवेन्नागवाहनः। नागासनो नागतल्पो महासिद्धो भवेन्नरः ॥२१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० मनसोपा० मनसास्तोत्रादिकथनं
नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥

इसीलिए विद्वत्समुदाय उसे महाज्ञानी कहता है। वह तपस्वी एवं मुनीन्द्र आस्तीक की माता है। आस्तीक की माता जरत्कारु विख्यात है। वह महात्मा, मुनीन्द्र एवं मुनि जरत्कारु की प्रिया थी जो विश्वपूज्य योगी थे। ॥१०-१३॥ 'ओं नमो मनसायै' यही मन्त्र है। जरत्कारु, जगद्गौरी, मनसा, सिद्धयोगिनी, वैष्णवी, नागभगिनी, शैवी, नागेश्वरी, जरत्कारुप्रिया, आस्तीकमाता, विषहरी तथा महाज्ञानयुता, उस विश्व पूजिता देवी के ये बारह नाम हैं ॥१४-१६॥ अतः पूजा के समय जो इन बारह नामों का उच्चारण करता है, उसे तथा उसके कुल में किसी को नाग भय नहीं होता है ॥१७॥ इस भाँति नाग भय देने वाले शयन, नागग्रस्त भवन, नाग के काटने पर, नागों के दुर्ग में और शरीर में नाग के लिपट जाने पर, इस स्तोत्र के पाठ करने से मनुष्य उससे मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं। नित्य इसके पाठ करने वाले को देख कर नागसमूह भाग जाता हैं ॥१८-१९॥ इसके दस लाख जप करने से मनुष्यों को स्तोत्र-सिद्धि हो जाती है और जिसे स्तोत्र सिद्ध हो जाता है वह विष खाने में भी समर्थ होता है ॥२०॥ नागों को भूषणों की भाँति धारण कर के वह नागवाहन हो जाता है और महासिद्ध होने वाले मनुष्य तो नाग का आसन तथा नाग की शय्या भी बनाते हैं ॥२१॥

श्री ब्रह्मवैवर्त महापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायणसंवादविषयक मनसा देवी के उपाख्यान में उसके स्तोत्रादि कथन नामक पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४५॥

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

पूजाविधानं स्तोत्रं च श्रूयतां मुनिपुंगव। ध्यानं च सामवेदोक्तं देवीपूजाविधानकम् ॥१॥
श्वेतचम्पकवर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम्। वह्निशुद्धांशुकाधानां नागयज्ञोपवीतिनीम् ॥२॥
महाज्ञानयुतां चैव प्रवरां ज्ञानिनां सताम्। सिद्धाधिष्ठातृदेवीं च सिद्धां सिद्धिप्रदां भजे ॥३॥
इति ध्यात्वा च तां देवीं मूलेनैव प्रपूजयेत्। नैवेद्यैर्विविधैर्दीपैः पुष्पैर्धूपानुलेपनैः ॥४॥
मूलमन्त्रश्च वेदोक्तो भक्तानां वाञ्छितप्रदः। मूलकल्पतरुर्नाम प्रसिद्धो द्वादशाक्षरः ॥५॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं मनसादेव्यै स्वाहेति कीर्तितः। पञ्चलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥६॥
मन्त्रसिद्धिर्भवेद्यस्य स सिद्धो जगतीतले। सुधासमं विषं तस्य धन्वन्तरिसमो भवेत् ॥७॥
ब्रह्मन्नाषाढसंक्रान्त्यां गुडाशाखासु यत्नतः। आवाह्य देवीं मासान्तं पूजयेद्यो हि भक्तितः ॥८॥
पञ्चम्यां मनसाख्यायां देव्यै दद्याच्च यो बलिम्। धनवान्पुत्रवांश्चैव कीर्तिमान्स भवेद्ध्रुवम् ॥९॥
पूजाविधानं कथितं तदाख्यानं निशामय। कथयामि महाभाग यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रतः ॥१०॥

अध्याय ४६

मनसा देवी के स्तोत्र आदि

नारायण बोले—हे मुनिपुंगव! उसके पूजा-विधान, स्तोत्र और सामवेदानुसार उस देवी की पूजा में किया जाने वाला ध्यान भी बता रहा हूँ, सुनो! ॥१॥ श्वेत चम्पा पुष्प के समान रूपरंग वाली, रत्नों के भूषणों से भूषित, अग्नि की भाँति विशुद्ध वस्त्र पहने, नागों का यज्ञोपवीत धारण किये, महाज्ञानसुसम्पन्न सज्जन ज्ञानियों में अतिश्रेष्ठ, सिद्धों की अधिष्ठात्री देवी, सिद्धस्वरूप एवं सिद्धि देने वाली उस (मनसा) देवी की मैं सेवा कर रहा हूँ ॥२-३॥ इस प्रकार उस देवी का ध्यान करके मूलमन्त्र द्वारा अनेक भाँति के नैवेद्य, दीपक, पुष्प, धूप और लेपन से उसकी पूजा करे ॥४॥ मूल मन्त्र का मूल कल्पतरु नाम है, जो वेदोक्त, भक्तों का मनोरथ सिद्ध करने वाला, अतिसिद्ध और द्वादश (१२) अक्षर का है—'ओं ह्रीं श्रीं क्रीं ऐं मनसा देव्यै स्वाहा' यही मन्त्र है। इस के पाँच लाख जप करने से मनुष्यों को मन्त्र-सिद्धि प्राप्त होती है ॥५-६॥ और जिसे मन्त्र सिद्धि हो जाती है, वह समस्त विश्व में सिद्ध कहलाता है, उसके लिए विष अमृत तुल्य होता है और वह धन्वन्तरि के समान हो जाता है ॥७॥ हे ब्रह्मन्! आषाढ़ की संक्रांति के दिन कपास की शाखा में मनसा देवी का आवाहन कर जो भक्तिपूर्वक एक मास तक भक्तिपूर्वक पूजन करता है, तथा पञ्चमी के दिन जो मनसा देवी को बलि प्रदान करता है वह धनवान्, पुत्रवान् और यशस्वी निश्चित होता है ॥८-९॥ हे महाभाग! इस प्रकार मैंने उस देवी का पूजाविधान तुम्हें सुना दिया, अब धर्म के मुख से उसका आख्यान जैसा सुना है, कह रहा हूँ, सुनो ॥१०॥ हे नारद! पूर्वकाल में इस भूतल पर मनुष्यगण नागों के भय से अधमरे-से

---

१ क० वीमीशां तां पू०।

पुरा नागभयाक्रान्ता बभूवुर्मानवा भुवि । यान्यान्खादन्ति नागाश्च न ते जीवन्ति नारद ॥११॥
मन्त्रांश्च ससृजे भीतः कश्यपो ब्रह्मणार्ऽथितः । वेदबीजानुसारेण चोपदेशेन वेधसः ॥१२॥
मन्त्राधिष्ठातृदेवीं तां मनसां ससृजे ततः । तपसा मनसा तेन मनसा सा बभूव ह ॥१३॥
कुमारी सा च संभूय चागमच्छंकरालयम् । भक्त्या संपूज्य कैलासे तुष्टुवे चन्द्रशेखरम् ॥१४॥
दिव्यं वर्षसहस्रं च तं सिषेवे मुनेः सुता । आशुतोषो महेशश्च तां च तुष्टो बभूव ह ॥१५॥
महाज्ञानं ददौ तस्यै पाठयामास साम च । कृष्णमन्त्रं कल्पतरुं ददावष्टाक्षरं मुने ॥१६॥
लक्ष्मी माया कामबीजं ङेन्तं कृष्णपदं तथा । ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय ॥
त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कवचं पूजनक्रमम् ॥१७॥
स्तवनं सर्वपूज्यं च ध्यानं भुवनपावनम् । पुरश्चर्याक्रमं चापि वेदोक्तं सर्वसंमतम् ॥१८॥
प्राप्य मृत्युंजयाज्ज्ञानं परं मृत्युंजयं सती । जगाम तपसे साध्वी पुष्करं शंकराज्ञया ॥१९॥
त्रियुगं च तपस्तप्त्वा कृष्णस्य परमात्मनः । सिद्धा बभूव सा देवी ददर्श पुरतः प्रभुम् ॥२०॥
दृष्ट्वा कृशाङ्गीं बालां च कृपया च कृपानिधिः । पूजां च कारयामास चकार च हरिः स्वयम् ॥२१॥
वरं च प्रददौ तस्यै पूजिता त्वं भवे भव । वरं दत्त्वा च कल्याण्यै सद्यश्चान्तर्दधे विभुः ॥२२॥
प्रथमे पूजिता सा च कृष्णेन परमात्मना । द्वितीये शंकरेणैव कश्यपेन सुरेण च ॥२३॥

हो रहे थे। क्योंकि नाग लोग जिन्हें काट खाते थे वे जीवित नहीं बचते थे ॥११॥ अनन्तर ब्रह्मा के कहने पर भयभीत होकर कश्यप ने मन्त्रों का निर्माण किया, जो ब्रह्मा के उपदेश से वेदबीजानुसार ही थे ॥१२॥ अनन्तर उन्होंने तप करके मन द्वारा मनसा देवी को उत्पन्न किया जो मन्त्रों की अधिष्ठात्री देवी बनायी गयी और इसी से वह मनसा कहलाने लगी ॥१३॥ उत्पन्न होने के उपरान्त वह देवी शिव के निवास-स्थान कैलाश पर जाकर भक्तिपूर्वक चन्द्रशेखर शिव की पूजा करके स्तुति करने लगी ॥१४॥ उस मुनि-कन्या ने सहस्र दिव्य वर्ष तक शिव की आराधना की। पश्चात् आशुतोष महेश्वर उस पर प्रसन्न हुए ॥१५॥ हे मुने ! उन्होंने उसे महाज्ञान देकर सामवेद पढ़ाया और भगवान् श्रीकृष्ण का अष्टाक्षर मन्त्र कल्पतरु भी उसे प्रदान किया ॥१६॥ लक्ष्मी, माया, काम-बीज और चतुर्थ्यन्त कृष्ण पद जोड़ देने से बना मंत्र—'ओं श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय नमः' त्रैलोक्यमंगल नामक कवच, पूजनक्रम, सर्वपूज्या स्तुति, लोक को पवित्र करनेवाला ध्यान और वेदानुसार सर्व-सम्मत पुरश्चरण (अनुष्ठान) का क्रम तथा उत्तम मृत्युञ्जय ज्ञान उस सती ने मृत्युञ्जय से प्राप्त कर उनकी आज्ञा से तप करने के लिए पुष्कर क्षेत्र को प्रस्थान किया ॥१७-१९॥ परमात्मा श्रीकृष्ण के लिए तीन युग तक उसने तप किया और सिद्ध होने पर उस देवी ने अपने सामने उस प्रभु का साक्षात् दर्शन भी किया ॥२०॥ उपरान्त कृपानिधान भगवान् ने उस कृशांगी (दुर्बल देह वाली) नवयुवती को देखकर उसकी पूजा करायी और स्वयं भी की ॥२१॥ उसे वरदान भी दिया—'हे भवे ! तुम (समस्त विश्व में) पूजित हो।' उस कल्याणदायिनी को वर देकर भगवान् तत्क्षण अन्तर्हित हो गये ॥२२॥ इस प्रकार सर्वप्रथम परमात्मा कृष्ण ने उसकी पूजा की, दूसरे शंकर ने तब कश्यप और देवताओं ने। मनु, मुनि, नाग और मनुष्यों आदि ने भी उसकी पूजा

मनुना मुनिना चैव ह्यहिना मानवादिना । बभूव पूजिता सा च त्रिषु लोकेषु[1] सुव्रता ॥२४॥
जरत्कारुमुनीन्द्राय कश्यपस्तां ददौ पुरा । अयाचितो मुनिश्रेष्ठो जग्राह ब्राह्मणाज्ञया ॥२५॥
कृत्वोद्वाहं महायोगी विश्रान्तस्तपसा चिरम् । सुष्वाप देव्या जघने वटमूले च पुष्करे ॥२६॥
निद्रां जगाम स मुनिः स्मृत्वा निद्रेशमीश्वरम् । जगामास्तं दिनकरः सायंकाल उपस्थितः ॥२७॥
संचिन्त्य मनसा तत्र मनसा च पतिव्रता । धर्मलोपभयेनैव चकाराऽऽलोचनं सती ॥२८॥
अकृत्वा पश्चिमां संध्यां नित्यां चैव द्विजन्मनाम् । ब्रह्महत्यादिकं पापं लभिष्यति पतिर्मम ॥२९॥
नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् । स सर्वदाऽशुचिर्नित्यं ब्रह्महत्यादिकं लभेत् ॥३०॥
वेदोक्तमिति संचिन्त्य बोधयामास तं मुनिम् । स च बुद्ध्वा मुनिश्रेष्ठस्तां चुकोप भृशं मुनिः ॥३१॥

जरत्कारुरुवाच

कथं मे सुव्रते साध्वि निद्राभङ्गः कृतस्त्वया । व्यर्थं व्रतादिकं तस्या या भर्तुश्चापकारिणी ॥३२॥
तपश्चानशनं चैव व्रतं दानादिकं च यत् । भर्तुरप्रियकारिण्याः सर्वं भवति निष्फलम् ॥३३॥
यया पतिः पूजितश्च श्रीकृष्णः पूजितस्तया । पतिव्रताव्रतार्थं च पतिरूपी हरिः स्वयम् ॥३४॥

की । इस प्रकार वह सुव्रता देवी तीनों लोकों में पूजित हुई ॥२३-२४॥ पूर्व समय में कश्यप ने मुनीन्द्र जरत्कारु को उसे सौंप दिया था । यद्यपि मुनिश्रेष्ठ ने उसकी याचना नहीं की थी, किन्तु ब्राह्मण की आज्ञा से उन्हें उसको स्वीकार करना ही पड़ा ॥२५॥ विवाह करने के उपरान्त उस महायोगी ने चिरकाल की तपस्या से विश्राम करने की इच्छा प्रकट की और वटवृक्ष के नीचे उसी सती की जंघा पर शिर रख कर सो गये ॥२६॥ अनन्तर निद्राधीश्वर भगवान् को स्मरण करते हुए मुनि के निद्रामग्न (गाढ़ी नींद में) होने पर सूर्यास्त के कारण संध्या-काल उपस्थित हो गया ॥२७॥ उस समय पतिव्रता मनसा ने मन से भलीभाँति विचार कर धर्म के लोप के भय से पुनः निश्चय किया कि—'द्विजों की नित्य सायंकालिक संध्या को यदि हमारे पतिदेव सुसम्पन्न न करेंगे, तो उन्हें ब्रह्महत्या आदि पापों का भागी होना पड़ेगा ॥२८-२९॥ क्योंकि जो पूर्व (प्रातः) काल की संध्या और सायंकाल की संध्या सुसम्पन्न नहीं करता है, वह सदैव अपवित्र रहकर ब्रह्महत्या आदि का भागी होता है ॥३०॥ वेदानुसार इन बातों को भलीभाँति सोच-विचार कर उसने मुनिदेव को जगा दिया, किन्तु जागने पर मुनिश्रेष्ठ उस पर अतिक्रुद्ध हो गये ॥३१॥

जरत्कारु बोले—हे सुव्रते! हे साध्वि! तुमने हमारी निद्रा क्यों भंग कर दी? जो स्त्री अपने पति का अपकार करती है, उसके व्रत आदि धर्माचरण व्यर्थ हो जाते हैं ॥३२॥ उसी भाँति पति का अहित करने वाली स्त्री के तप, उपवास, व्रत, दान आदि जो कुछ सुकर्म रहते हैं, वे सब निष्फल हो जाते हैं ॥३३॥ क्योंकि जिसने पति की पूजा की है, उसने (मानो) श्रीकृष्ण की ही पूजा की है, इस प्रकार पतिव्रता के व्रत के लिए भगवान् स्वयं पति रूप में प्राप्त होते हैं ॥३४॥ इसलिए सम्पूर्ण दान, समस्त यज्ञ, सब तीर्थों के सेवन, सभी भाँति के तप, व्रत,

---

१ ख. सुश्रुता ।

सर्वदानं सर्वयज्ञं सर्वतीर्थनिषेवणम् । सर्वं तपो व्रतं सर्वमुपवासादिकं च यत् ॥३५॥
सर्वधर्मश्च सत्यं च सर्वदेवप्रपूजनम् । तत्सर्वं स्वामिसेवायाः कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥३६॥
सुपुण्ये भारते वर्षे पतिसेवां करोति या । वैकुण्ठं स्वामिना सार्धं सा याति ब्रह्मणः[1] शतम् ॥३७॥
विप्रियं कुरुते भर्तुर्विप्रियं वदति प्रियम् । असत्कुलप्रजाता या तत्फलं श्रूयतां सति ॥३८॥
कुम्भीपाकं व्रजेत्सा च यावच्चन्द्रदिवाकरौ । ततो भवति चाण्डाली पतिपुत्रविवर्जिता ॥३९॥
इत्युक्त्वा च मुनिश्रेष्ठो बभूव स्फुरिताधरः । चकम्पे मनसा साध्वी भयेनोवाच तं पतिम् ॥४०॥

मनसोवाच

संध्यालोपभयेनैव निद्राभङ्गः कृतस्तव । कुरु शान्तिं महाभाग दुष्टाया मम सुव्रत ॥४१॥
शृङ्गाराहारनिद्राणां यश्च भङ्गं करोति च । स व्रजेत्कालसूत्रं च स्वामिनश्च विशेषतः ॥४२॥
इत्युक्त्वा मनसा देवी स्वामिनश्चरणाम्बुजे । पपात भक्त्या भीता च रुरोद च पुनः पुनः ॥४३॥
कुपितं च मुनिं दृष्ट्वा श्रीसूर्यं शप्तुमुद्यतम् । तत्राऽऽजगाम भगवान्संध्यया सह नारद ॥४४॥
तत्राऽऽगत्य मुनिश्रेष्ठमवोचद्भास्करः स्वयम् । विनयेन विनीतश्च तया सह यथोचितम् ॥४५॥

सभी उपवास आदि, समस्त धर्म, सत्य, समस्त देवों के अर्चन, ये सब (स्त्री के लिए) पति-सेवा की सोलहवीं कला (भाग) के भी समान नहीं होते हैं ॥३५-३६॥ अतः इस सुपुण्य प्रदेश भारतवर्ष में जो स्त्री अपने पति की सेवा करती है, वह पति के साथ वैकुण्ठ और ब्रह्मलोक को जाती है ॥३७॥ जो कुलीना (उत्तम कुल की) स्त्री नहीं है, वह सदैव पति का अहित करती है और उससे कटु वाणी (कड़वी बात) बोलती है, उसका फल कह रहा हूँ, सुनो ॥३८॥ वह उस पाप के नाते चन्द्र-सूर्य के समय तक कुम्भीपाक नरक में रहती है और अन्त में पति-पुत्र रहित चाण्डाली होती है ॥३९॥ इतना कहने पर भी उन महर्षिप्रवर के ओष्ठ फड़-फड़ा रहे थे। यह देखकर पतिव्रता मनसा भय से काँप उठी और पति से बोली ॥४०॥

मनसा बोली—हे महाभाग ! हे सुव्रत ! संध्या कर्म के लोप-भय से ही मैंने आपका निद्राभंग किया है, अतः मुझ दुष्टा को, आप शान्ति प्रदान करने की कृपा करें ॥४१॥ क्योंकि शृंगार, भोजन और निद्रा को जो भंग करता है, वह कालसूत्र नामक नरक में जाता है और स्वामी का यह अपराध करने पर विशेषतया उस फल की प्राप्ति होती है ॥४२॥ इतना कह कर मनसा देवी भयभीत होकर भक्ति से पति के चरण पर गिर पड़ी और बार-बार रुदन करने लगी ॥४३॥ हे नारद ! क्रुद्ध मुनि को श्री सूर्य को शाप देने के लिए प्रस्तुत देखकर भगवान् सूर्य सन्ध्या समेत वहाँ आ गये ॥४४॥ वहाँ पहुँच कर भगवान् भास्कर ने स्वयं संध्या समेत विनय-विनम्र होकर उन मुनिवर्य से यथोचित कहना आरम्भ किया ॥४५॥

---

१ ख. ०णः पदम् ।

श्रीसूर्य उवाच

सूर्यास्तसमयं दृष्ट्वा धर्मलोपभयेन च। त्वां बोधयामास विप्र नाहमस्तं गतस्तदा ॥४६॥
क्षमस्व भगवन्ब्रह्मन्मां शप्तुं नोचितं मुने। ब्राह्मणानां च हृदयं नवनीतसमं सदा ॥४७॥
तेषां क्षणार्धं क्रोधश्चेत्ततो भस्म भवेज्जगत्। पुनः स्रष्टुं द्विजः शक्तो न तेजस्वी द्विजात्परः ॥४८॥
[1]ब्रह्मणो वंशसंभूतः प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा। श्रीकृष्णं भावयेन्नित्यं ब्रह्मज्योति सनातनम् ॥४९॥
सूर्यस्य वचनं श्रुत्वा द्विजस्तुष्टो बभूव ह। सूर्यो जगाम स्वस्थानं गृहीत्वा ब्राह्मणाशिषम् ॥५०॥
तत्याज मनसां विप्रः प्रतिज्ञापालनाय च। रुदतीं शोकयुक्तां च हृदयेन विदूयता ॥५१॥
सा सस्मार गुरुं शंभुमिष्टदेवं हरिं विधिम्। कश्यपं जन्मदातारं विपत्तौ भयकर्शिता ॥५२॥
तत्राऽऽजगाम भगवान्गोपीशः शंभुरेव च। विधिश्च कश्यपश्चैव मनसा परिचिन्तितः ॥५३॥
विप्रो दृष्ट्वाऽभीष्टदेवं निर्गुणं प्रकृतेः परम्। तुष्टाव परया भक्त्या प्रणनाम मुहुर्मुहुः ॥५४॥
नमश्चकार शंभुं च ब्रह्माणं कश्यपं तथा। कथमागमनं देवा इति प्रश्नं चकार सः ॥५५॥
ब्रह्मा तद्वचनं श्रुत्वा सहसा समयोचितम्। तमुवाच नमस्कृत्य हृषीकेशपदाम्बुजम् ॥५६॥

सूर्य बोले—हे विप्र ! सूर्यास्त का समय देखकर धर्म के लोपभय से तुम्हें उसने जगाया है, मैं उस समय अस्त नहीं हुआ था। अतः हे भगवन् ! हे ब्रह्मन् ! हे मुने ! क्षमा करें। आपको मुझे शाप देना भी उचित नहीं है; क्योंकि ब्राह्मणों का हृदय सदैव मक्खन की भाँति कोमल होता है ॥४६-४७॥ उनके क्षणमात्र के कोप से सारा जगत् भस्म हो सकता है, और फिर उसकी सृष्टि भी ये कर सकते हैं, क्योंकि ब्राह्मण से बढ़कर कोई दूसरा तेजस्वी नहीं होता ॥४८॥ अतः ब्रह्मा के कुल में उत्पन्न तथा ब्रह्मतेज से देदीप्यमान होकर ब्राह्मण को सनातन तथा ब्रह्म ज्योति रूप भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना करनी चाहिये ॥४९॥ सूर्य की ऐसी बातें सुनकर वे ब्राह्मण देव प्रसन्न हो गये और सूर्य भी ब्राह्मण का आशीर्वाद लेकर अपने स्थान को चले गये ॥५०॥ किन्तु उस ब्राह्मण ने (अपनी) प्रतिज्ञा पालनार्थ मनसा देवी का त्याग कर दिया, जो हार्दिक दुःख से चिन्तित होकर रुदन कर रही थी। ॥५१॥ पश्चात् उसने अपने गुरु शिव, इष्टदेव विष्णु और ब्रह्मा का स्मरण किया, और उस विपत्ति के समय भयभीत होकर जन्म देने वाले पिता कश्यप का भी स्मरण किया ॥५२॥ मनसा के विषय में विचारमग्न होते हुए गोपीपति भगवान् कृष्ण, शिव, ब्रह्मा और कश्यप सभी लोग वहाँ आये ॥५३॥ ब्राह्मण देव भी अपने इष्टदेव को, जो निर्गुण एवं प्रकृति से परे हैं, देखकर परा भक्ति के साथ स्तुति करते हुए बार-बार उन्हें प्रणाम करने लगे ॥५४॥ और शिव, ब्रह्मा तथा कश्यप को भी नमस्कार करके उनसे कहने लगे कि—'हे देवगण ! आप का आगमन यहां कैसे हुआ ?' ॥५५॥ ब्रह्मा ने उनकी बातें सुनकर भगवान् हृषीकेश के चरण-कमल को नमस्कार करने के उपरान्त उनसे

---

१ क. ब्राह्मणो ब्रह्मणो वंशः प्र०।

ब्रह्मोवाच

यदि त्यक्ता धर्मपत्नी धर्मिष्ठा मनसा सती । कुरुष्वास्यां सुतोत्पत्तिं धर्मसंस्थापनाय वै ॥५७॥
यतिर्वा ब्रह्मचारी वा भिक्षुर्वनचरोऽपि वा । जायायां च सुतोत्पत्तिं कृत्वा पश्चाद्भवेन्मुनिः ॥५८॥
अकृत्वा तु सुतोत्पत्तिं विरागी यस्त्यजेत्प्रियाम् । स्रवेत्तपस्तत्पुण्यं च चालिन्यां च यथा जलम् ॥५९॥
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा जरत्कारुर्मुनीश्वरः । चक्रे तन्नाभिसंस्पर्शं योगाद्वै मन्त्रपूर्वकम् ॥६०॥
तस्यै शुभाशिषं दत्त्वा ययुर्देवा मुदाऽन्विताः । मुदाऽन्विता च मनसा जरत्कारुर्मुदाऽन्वितः ॥६१॥
मुनेः करस्पर्शमात्रात्सद्यो गर्भो बभूव ह । मनसाया मुनिश्रेष्ठ मुनिश्रेष्ठ उवाच ताम् ॥६२॥

जरत्कारुरुवाच

गर्भेणानेन मनसे तव पुत्रो भविष्यति । जितेन्द्रियाणां प्रवरो धर्मिष्ठो वैष्णवाग्रणीः ॥६३॥
तेजस्वी च तपस्वी च यशस्वी च गुणान्वितः । वरो वेदविदां चैव योगिनां ज्ञानिनां तथा ॥६४॥
स च पुत्रो विष्णुभक्तो धार्मिकः कुलमुद्धरेत् । नृत्यन्ति पितरः सर्वे जन्ममात्रेण वै मुदा ॥६५॥
पतिव्रता सुशीला या सा प्रिया प्रियवादिनी । धर्मिष्ठा पुत्रमाता च कुलजा कुलपालिका ॥६६॥
हरिभक्तिप्रदो बन्धुस्तदिष्टं यत्सुखप्रदम् । यो बन्धच्छित्स च पिता हरेर्वर्त्मप्रदर्शकः ॥६७॥

समयोचित बात कही ॥५६॥ यदि तुमने धर्ममूर्ति एवं पतिव्रता धर्मपत्नी मनसा का त्याग किया है, तो धर्मसंस्थापनार्थ इसमें पुत्रोत्पत्ति अवश्य करो ॥५७॥ क्योंकि योगी, ब्रह्मचारी, संन्यासी, वनचर (वानप्रस्थी) या मुनि धर्मपत्नी में पुत्रोत्पादन करने के पश्चात् (ही योगी आदि) होते हैं ॥५८॥ और यदि कोई विरागी बिना पुत्रोत्पत्ति किये अपनी पत्नी का त्याग करता है, तो चलनी से जल निकलने की भाँति उसके तप और पुण्य सब क्षीण हो जाते हैं ॥५९॥ अनन्तर मुनीश्वर जरत्कारु ने ब्रह्मा की ऐसी बातें सुनकर मन्त्रोच्चारणपूर्वक योग द्वारा अपनी पत्नी का नाभिस्पर्श किया ॥६०॥ उपरान्त देवलोग भी प्रसन्न चित्त से उसे शुभ आशीर्वाद देकर चले गये। उपरान्त मनसा देवी प्रसन्न हुई और जरत्कारु भी प्रसन्न हुए ॥६१॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! मुनि के हाथ का स्पर्श होते ही वह उसी समय गर्भवती हो गयी। तब मुनिवर्य ने मनसा से कहा ॥६२॥

जरत्कारु बोले—हे मनसे ! इस गर्भ से तुम्हारे पुत्र उत्पन्न होगा, जो जितेन्द्रिय लोगों में सर्वश्रेष्ठ, धर्मात्मा, वैष्णवों में अग्रगण्य, तेजस्वी, तपस्वी, कीर्तिमान्, गुणवान्, वेदवेत्ताओं, योगियों और ज्ञानियों में श्रेष्ठ होगा। ॥६३-६४॥ वह पुत्र भगवान् विष्णु का भक्त और धार्मिक होने के नाते कुल का उद्धार करेगा तथा उसके जन्म ग्रहण मात्र से प्रसन्न होकर सभी पितरगण नृत्य करेंगे ॥६५॥ क्योंकि पतिव्रता और उत्तम स्वभाव वाली स्त्री वही है, जो (पति को) प्रिय और मधुरभाषिणी हो, धार्मिक पुत्रमाता वही है, जो कुलीना होती हुई कुल का पालन करे ॥६६॥ बन्धु वही है, जो भगवान् की भक्ति प्रदान करे । इष्ट वही है, जो सुखप्रदायक हो । पिता वही है, जो (कर्म) बन्धन का नाश करते हुए भगवान् के मार्ग का प्रदर्शक हो ॥६७॥ गर्भ को धारण करने वाली स्त्री वही है, जो गर्भ-

सा गर्भधारिणी या च गर्भवासविमोचिनी। दयारूपा च भगिनी यमभीतिविमोचिनी ॥६८॥
विष्णुमन्त्रप्रदाता च स गुरुर्विष्णुभक्तिदः। गुरुश्च ज्ञानदाता च तज्ज्ञानं कृष्णभावनम् ॥६९॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं यतो विश्वं चराचरम्। आविर्भूतं तिरोभूतं किं वा ज्ञानं तदन्यतः ॥७०॥
वेदजं योगजं यद्यत्तत्सारं हरिसेवनम्। तत्त्वानां सारभूतं च हरेरन्यद्विडम्बनम् ॥७१॥
दत्तं ज्ञानं मया तुभ्यं स स्वामी ज्ञानदो हि यः। ज्ञानात्प्रमुच्यते बन्धात्स रिपुर्यो हि बन्धदः ॥७२॥
विष्णुभक्तियुतं ज्ञानं न ददाति हि योगतः। स विप्रः शिष्यघाती च यतो बन्धान्न मोचयेत् ॥७३॥
जननीगर्भजात्क्लेशाद्यमताडनजात्तथा। न मोचयेद्यः स कथं गुरुस्तातो हि बान्धवः ॥७४॥
परमानन्दरूपं च कृष्णमार्गमनश्वरम्। न दर्शयेद्यः स कथं कीदृशो बान्धवो नृणाम् ॥७५॥
भज साध्वि परं ब्रह्माच्युतं कृष्णं च निर्गुणम्। निर्मूलं च पुराकर्म भवेद्यत्सेवया ध्रुवम् ॥७६॥
मया छलेन त्वं त्यक्ता दोषं मे क्षम्यतां प्रिये। क्षमायुतानां साध्वीनां सत्त्वात्क्रोधो न विद्यते ॥७७॥
पुष्करे तपसे यामि गच्छ देवि यथासुखम्। श्रीकृष्णचरणाम्भोजे ध्यानविच्छेदकातरः ॥७८॥
धनादिषु स्त्रियां प्रीतिः प्रवृत्तिपथगामिनाम्। श्रीकृष्णचरणाम्भोजे निःस्पृहाणां मनोरथाः ॥७९॥

वास में उसे पुनः (कभी) न आने दे (ऐसा उपदेश करे)। दयारूपा भगिनी वही है, जो यम के भय से मुक्त कराये ॥६८॥ गुरु वही है, जो भगवान् विष्णु का मन्त्र प्रदान करते हुए भगवान् की भक्ति प्रदान करे। गुरु वही है जो ज्ञानदाता हो और ज्ञान वही है जो भगवान् कृष्ण में (अटल) प्रेम उत्पन्न कराये ॥६९॥ क्योंकि यहाँ से लेकर ब्रह्मलोक पर्यन्त चर-अचर समेत सारा विश्व जिससे प्रकट और अन्तर्हित होता है उससे अन्य से क्या ज्ञान मिलेगा? ॥७०॥ अतः वेदों और योग की क्रियाओं का सारभाग यही है कि भगवान् की सेवा करें। यही तत्त्वों का सार भाग भी है और हरि से अन्य तो विडम्बना मात्र है ॥७१॥ इस प्रकार मैं तो तुम्हें ज्ञान-दान दे चुका। स्वामी वही है, जो ज्ञान प्रदान करे क्योंकि ज्ञान के द्वारा ही कोई बन्धनमुक्त होता है, और शत्रु वही है, जो बन्धन प्रदान करे ॥७२॥ इसलिए भगवान् विष्णु की भक्ति समेत ज्ञान जो योग द्वारा प्रदान नहीं जो करता है वह ब्राह्मण शिष्य का नाशक है, क्योंकि वह बंधन से मुक्त नहीं कर पाता ॥७३॥ अतः जननी के गर्भ से और यमराज के यहां ताड़नजन्य दुःख से जो मुक्त न करा सके, वह गुरु, पिता और भाई कैसा? ॥७४॥ जो परमानन्द-स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण का अनश्वर मार्ग न दिखा सके, वह मनुष्यों का बान्धव कैसा ? ॥७५॥ अतः हे साध्वि ! भगवान् श्रीकृष्ण का भजन करो, जो परब्रह्म, अच्युत एवं गुणरहित हैं और जिसकी सेवा करने से पिछले जन्म का समस्त कर्म निश्चित नष्ट हो जाता है ॥७६॥ हे प्रिये ! मैंने कपटपूर्ण तुम्हारा त्याग किया है। अतः मेरे दोष को क्षमा करना। क्षमाशील पतिव्रताओं को सत्त्वगुण की अधिकता के नाते कोप नहीं होता है ॥७७॥ हे देवि ! मैं तप हेतु पुष्कर जा रहा हूँ। तुम भी सुखपूर्वक जाओ क्योंकि भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमल का ध्यान न करने से मैं दुःखी हो रहा हूँ ॥७८॥ प्रवृत्ति मार्ग पर चलने वाली स्त्रियों का प्रेम धन-पुत्रादि में ही लगा रहता है और निःस्पृह रहने वालों (पतियों) का यही मनोरथ रहता है कि हम सदैव भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमल में लगे रहें ॥७९॥

जरत्कारुवचः श्रुत्वा मनसा शोककातरा। सा साश्रुनेत्रा विनयादुवाच प्राणवल्लभम् ॥८०॥

मनसोवाच

दोषेणाहं त्वया त्यक्ता निद्राभङ्गेन ते प्रभो। यत्र स्मरामि त्वां बन्धो तत्र मामागमिष्यसि ॥८१॥
बन्धुभेदः क्लेशतमः पुत्रभेदस्ततः परः। प्राणेशभेदः प्राणानां विच्छेदात् सर्वतः परः ॥८२॥
पतिः पतिव्रतानां च शतपुत्राधिकः प्रियः। सर्वस्माच्च प्रियः स्त्रीणां प्रियस्तेनोच्यते बुधैः ॥८३॥
पुत्रे यथैकपुत्राणां वैष्णवानां यथा हरौ। नेत्रे यथैकनेत्राणां तृषितानां यथा जले ॥८४॥
क्षुधितानां यथाऽन्ने च कामुकानां यथा स्त्रियाम्। यथा परस्वे चौराणां यथा जारे कुयोषिताम् ॥८५॥
विदुषां च यथा शास्त्रे वाणिज्ये वणिजां यथा। तथा शश्वन्मनः कान्ते साध्वीनां योषितां प्रभो ॥८६॥
इत्युक्त्वा मनसा देवी पपात स्वामिनः पदे। क्षणं चकार क्रोडे तां कृपया च कृपानिधिः ॥८७॥
नेत्रोदकेन मनसां स्नापयामास तां मुनिः। साऽश्रुणा च मुनेः क्रोडं सिषेवे भेदकातरा ॥८८॥
तदा ज्ञानेन तौ द्वौ च विशोकौ च बभूवतुः। स्मारं स्मारं पदाम्भोजं कृष्णस्य परमात्मनः ॥८९॥
जगाम तपसे विप्रः स कान्तां सुप्रबोध्य च। जगाम मनसा शंभोः कैलासं मन्दिरं गुरोः ॥९०॥
पार्वती बोधयामास मनसां शोककर्शिताम्। शिवश्चातीव ज्ञानेन शिवेन च शिवालये ॥९१॥

जरत्कारु की ऐसी बातें सुनकर मनसा ने शोकाकुल होकर आँखों में आँसू भर लिया और अपने प्राणवल्लभ से सविनय कहा ॥८०॥

मनसा बोली—हे प्रभो! आप का मैंने निद्राभंग किया है इसी दोष से आपने मेरा त्याग किया है, किन्तु हे बन्धो! जहाँ जिस समय मैं आपका स्मरण करूँ, वहाँ मेरे पास अवश्य आ जाइएगा ॥८१॥ बन्धु का वियोग अति दुःखदायक होता है और उससे बढ़ कर पुत्र-वियोग होता है। किन्तु अपने प्राणेश का वियोग तो स्त्रियों के लिए उनके प्राण-वियोग से भी बढ़कर होता है ॥८२॥ क्योंकि पतिव्रताओं के लिए पति, सैकड़ों पुत्रों से अधिक प्रिय होता है। इस प्रकार स्त्रियों को पति सबसे अधिक प्रिय होता है, इसीलिए विद्वान् लोग उसे स्त्रियों का प्रिय कहते हैं ॥८३॥ जिस प्रकार एक पुत्र वालों का मन (अपने) पुत्र में, वैष्णवों का भगवान् में, एक नेत्र वालों का नेत्र में, तृषित (प्यासे) का जल में, क्षुधित (भूखे) का अन्न में, कामी का स्त्री में लगा रहता है और दूसरे के धन में चोरों का, जार (व्यभिचारी) पुरुष में व्यभिचारिणी स्त्री का, शास्त्र में विद्वानों का एवं व्यापार में बनियों का मन लगा रहता है, उसी भाँति पतिव्रता स्त्रियों का मन निरन्तर अपने कान्त में लगा रहता है ॥८४-८६॥ इतना कह कर मनसा देवी पति के चरण पर गिर पड़ी। अनन्तर कृपानिधान मुनि ने कृपा करके उसे क्षणमात्र के लिए अपनी गोद में उठा लिया ॥८७॥ और अपने अश्रुपात से मनसा को स्नान-सा करा दिया। एवं वियोग दुःख से उसने भी अपने आँसुओं से पति की गोद को भिगो दिया ॥८८॥ किन्तु उसी समय पुनः दोनों प्रबल ज्ञान द्वारा शोकरहित हो गये और परमात्मा श्रीकृष्ण के चरण-कमल का बार-बार स्मरण करने लगे ॥८९॥ उपरान्त ब्राह्मण देव ने प्रेयसी (मनसा) को भलीभाँति ज्ञान द्वारा उद्बुद्ध करके तप के लिए प्रस्थान किया, और मनसा भी गुरु मन्दिर—शिवजी के कैलाश—की ओर चल पड़ी ॥९०॥ वहां शिवालय में पहुंचने पर पार्वती ने शोकग्रस्त उस मनसा को भलीभाँति बोध कराया और शिव ने भी कल्याण-प्रद बोध प्रदान किया ॥९१॥ अनन्तर उस पतिब्रता ने अति प्रशस्त दिन के मांगलिक क्षण में पुत्र को जन्म दिया,

सुप्रशस्ते दिने साध्वी सुषुवे मङ्गले क्षणे। नारायणांशं पुत्रं च ज्ञानिनां योगिनां गुरुम् ॥९२॥
गर्भस्थितो महाज्ञानं श्रुत्वा शंकरवक्त्रतः । स बभूव महायोगी योगिनां ज्ञानिनां गुरुः ॥९३॥
जातकं कारयामास वाचयामास मङ्गलम् । वेदांश्च पाठयामास शिवाय च शिवः शिशोः ॥९४॥
[1]मणिरत्नत्रिकोटिं च ब्राह्मणेभ्यो ददौ शिवः । पार्वती च गवां लक्षं रत्नानि विविधानि च ॥९५॥
शंभुश्च चतुरो वेदान्वेदाङ्गानितरांस्तथा । बालकं पाठयामास ज्ञानं मृत्युंजयं परम् ॥९६॥
भक्तिरास्ते स्वकान्ते चाभीष्टे देवे हरौ गुरौ। यस्यास्तेन च तत्पुत्रो बभूवास्तीक एव च ॥९७॥
जगाम तपसे विष्णोः पुष्करं शंकराज्ञया । संप्राप्य च महामन्त्रं तपश्च परमात्मनः ॥९८॥
दिव्यं वर्षत्रिलक्षं च तपस्तप्त्वा तपोधनः । आजगाम महायोगी नमस्कर्तुं शिवं प्रसूम् ॥९९॥
शंकरं च नमस्कृत्य पुरः कृत्वा च बालकम्। सा चाऽऽजगाम मनसा कश्यपस्याऽऽश्रमं पितुः ॥१००॥
तां सपुत्रां सुतां दृष्ट्वा मुदं प्राप प्रजापतिः। शतलक्षं च रत्नानां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुने ॥१०१॥
ब्राह्मणान्भोजयामास त्वसंख्याञ्छ्रेयसे शिशोः। अदितिश्च दितिश्चान्या मुदं प्रापुः परं तथा ॥१०२॥
सा सपुत्रा च सुचिरं तस्थौ तातालये तदा । तदीयं पुनराख्यानं वक्ष्ये त्वं तन्निशामय ॥१०३॥

जो भगवान् नारायण का अंश, ज्ञानियों और योगियों का गुरु था ॥९२॥ गर्भ में स्थित रहने के समय ही उस बालक ने शंकर के मुख से महाज्ञान सुन लिया था, जिससे वह ज्ञानियों और योगियों का गुरु एवं महायोगी हुआ ॥९३॥ शिव ने उस शिशु के कल्याणार्थ उसका जातकर्म, मंगल (स्वस्ति) वाचन और वेदों का पाठ कराया ॥९४॥ अनन्तर शिव ने तीन करोड़ रत्नों का दान ब्राह्मणों को प्रदान किया और पार्वती ने भी एक लाख गौ और अनेक भाँति के रत्नों का दान किया ॥९५॥ (कुछ समय व्यतीत होने पर) शिव ने स्वयं वेदांग समेत चारों वेद और इतर का भी अध्ययन उस बालक को कराया तथा परमोत्तम मृत्युञ्जय ज्ञान प्रदान किया। ॥९६॥ अपने स्वामी, इष्टदेव, विष्णु और गुरु में मनसा की अत्यन्त भक्ति थी, उसी कारण उसका पुत्र 'आस्तीक' नाम से प्रख्यात हुआ ॥९७॥ तदुपरान्त शंकर की आज्ञा से भगवान् विष्णु का तप करने के लिए परमात्मा का महामन्त्र प्राप्त कर वह बालक पुष्कर चला गया ॥९८॥ वहाँ वह तपस्वी महायोगी दिव्य तीन लाख वर्ष तक तप करके पुनः प्रभु शिव तथा माता को नमस्कार करने के लिए कैलाश आया ॥९९॥ वहाँ शंकर को नमस्कार करने के अनन्तर उसकी माता मनसा अपने बालक को आगे कर के अपने पिता कश्यप के आश्रम में आयी ॥१००॥ हे मुने ! प्रजापति कश्यप पुत्र समेत कन्या को देख कर अति प्रसन्न हुए और उन्होंने सौ लाख रत्नों का दान ब्राह्मणों को प्रदान किया ॥१०१॥ पुनः उस शिशु के कल्याणनार्थ उन्होंने असंख्य ब्राह्मणों को भोजन कराया तथा दिति-अदिति और अन्यों को भी उसे देख कर अति हर्ष प्राप्त हुआ ॥१०२॥ इस प्रकार मनसा ने पुत्र समेत अपने पिता के घर चिरकाल तक निवास किया। अब वहाँ का भी आख्यान तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ॥१०३॥

---

१ ख. रत्नत्रिकोटिलक्षं च ।

अथाभिमन्युतनये ब्रह्मशापः परीक्षिते । बभूव सहसा ब्रह्मन्दैवदोषेण कर्मणा ।।१०४।।
सप्ताहे समतीते तु तक्षकस्त्वां च दङ्क्ष्यति । शशाप शृङ्गी कौशिक्या जलं संस्पृश्य चेति सः ।।१०५।।
राजा श्रुत्वा तत्प्रवृत्तिं गङ्गाद्वारं जगाम सः । तत्र तस्थौ च सप्ताहं शुश्रुवे धर्मसंहिताम् ।।१०६।।
सप्ताहे समतीते तु गच्छन्तं तक्षकं पथि । धन्वन्तरिर्मोचयितुमपश्यद्गन्तुको नृपम् ।।१०७।।
तयोर्बभूव संवादः सुप्रीतिश्च परस्परम् । धन्वन्तरेर्मणिं श्रेष्ठं तक्षकः स्वेच्छया ददौ ।।१०८।।
स ययौ तं गृहीत्वा तु तुष्टः संहृष्टमानसः । तक्षको भक्षयामास नृपं मञ्चकसंस्थितम् ।।१०९।।
राजा जगाम वैकुण्ठं स्मारं स्मारं हरिं गुरुम् । संस्कारं कारयामास पितुर्वै जनमेजयः ।।११०।।
राजा चकार यज्ञं च सर्पसत्राभिधं मुने । प्राणांस्तत्याज सर्पाणां समूहो ब्रह्मतेजसा ।।१११।।
स तक्षकश्च भीतश्च महेन्द्रं शरणं ययौ । सेन्द्रं च तक्षकं हन्तुं विप्रवर्गः समुद्यतः ।।११२।।
अथ देवाश्च मुनयश्चाऽऽययुर्मनसान्तिकम् । तां तुष्टाव महेन्द्रश्च समक्षं भयकातरः ।।११३।।
तत आस्तीक आगत्य मातुर्यज्ञमथाऽऽज्ञया । महेन्द्रतक्षकप्राणान्ययाचे भूमिपं वरम् ।।११४।।
ददौ वरं नृपश्रेष्ठः कृपया ब्राह्मणाज्ञया । यज्ञं समाप्य विप्रेभ्यो दक्षिणां च ददौ मुदा ।।११५।।

हे ब्राह्मण ! इसके उपरान्त अभिमन्यु के पुत्र राजा परीक्षित को दैव दोषवश सहसा ब्राह्मण -शाप हो गया— 'आज के सातवें दिन के व्यतीत होते-होते तक्षक तुम्हें डस लेगा।' यह शाप शृङ्गी ऋषि ने कौशिकी नदी का जल स्पर्श करके दिया था।।१०४-१०५।। अनन्तर यह समाचार सुनते ही राजा ने गंगाद्वार (हरिद्वार) को प्रस्थान किया और वहाँ रहकर एक सप्ताह तक धर्मसंहिता (श्रीमद्भागवतपुराण) का श्रवण किया।।१०६।। सातवें दिन के व्यतीत होते समय मार्ग में जाते हुए तक्षक को धन्वन्तरि ने देखा, जो राजा को उसके विष से मुक्त कराने के लिए (राजा के यहाँ) जा रहे थे ।।१०७।। मार्ग में उन दोनों की आपस में अति प्रेमपूर्ण बातें हुईं। जिसके फल- स्वरूप तक्षक ने स्वेच्छया धन्वन्तरि को मणि प्रदान किया और वे उसे लेकर प्रसन्नचित्त हो घर लौट आये। पश्चात् तक्षक ने जाकर ऊँचे मंच पर स्थित राजा को डस लिया ।।१०८-१०९।। गुरु नारायण का बार-बार स्मरण करता हुआ राजा वैकुण्ठ चला गया और जनमेजय ने अपने पिता का दाह-संस्कार-क्रिया सम्पन्न की ।।११०।। हे मुने! तदुपरान्त राजा जनमेजय ने सर्पयज्ञानुष्ठान आरम्भ किया, जिसमें ब्रह्मतेज द्वारा सर्पसमूहों के प्राण आहुति हो रहे थे।।१११।। उस समय वह तक्षक भयभीत होकर महेन्द्र की शरण गया। किन्तु (पता लगने पर) ब्राह्मणों ने इन्द्र समेत तक्षक की भी आहुति देनी चाही।।११२।। यह जान कर देवगण और मुनिवृन्द मनसा देवी के निकट गये। वहाँ भय से कातर होकर महेन्द्र ने सामने खड़े होकर मनसा देवी की स्तुति की।११३।। इस प्रकार मनसा के प्रसन्न होने पर उसकी आज्ञा से आस्तीक ने उस यज्ञ में जाकर राजा जनमेजय से महेन्द्र और तक्षक के प्राणों की याचना की ।।११४।। नृपश्रेष्ठ जनमेजय ने ब्राह्मणों की आज्ञा से उन्हें वर प्रदान किया और प्रसन्नतापूर्वक यज्ञ समाप्त कर ब्राह्मणों को दक्षिणा प्रदान की ।।११५।। उपरान्त मुनिगण, देववृन्द

विप्राश्च मुनयो देवा गत्वा च मनसान्तिकम् । मनसां पूजयामासुस्तुष्टुवुश्च पृथक्पृथक् ॥११६॥
शक्रः संभृतसंभारो भक्तियुक्तः सदा शुचिः । मनसां पूजयामास तुष्टाव परमादरात् ॥११७॥
उपचारैः षोडशभिर्बलिं दत्त्वा प्रियं तदा । प्रददौ परितुष्टश्च ब्रह्मन्विप्रसुराज्ञया ॥११८॥
संपूज्य मनसादेवीं प्रययुः स्वालयं च ते । इत्येवं कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥११९॥

नारद उवाच

केन स्तोत्रेण तुष्टाव महेन्द्रो मनसां सतीम् । पूजाविधिं क्रमं तस्याः श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥१२०॥

नारायण उवाच

सुस्नातः शुचिराचान्तो धृत्वा धौते च वाससी । रत्नसिंहासने देवीं वासयामास भक्तितः ॥१२१॥
स्वर्गगङ्गाजलेनैव रत्नकुम्भस्थितेन च । स्नापयामास मनसां महेन्द्रो वेदमन्त्रतः ॥१२२॥
वाससी वासयामास वह्निशुद्धे मनोरमे । सर्वाङ्गे चन्दनं लिप्त्वा पाद्यार्घ्यं भक्तिसंयुतः ॥१२३॥
गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम् । संपूज्याऽऽदौ देवषट्कं पूजयामास तां सतीम् ॥१२४॥
ॐ ह्रीं श्रीं मनसादेव्यै स्वाहेत्येवं च मन्त्रतः । दशाक्षरेण[1] मन्त्रेण ददौ सर्वान्यथोचितम् ॥१२५॥

और ब्राह्मणों ने मनसा के समीप जाकर उसकी पूजा और पृथक्-पृथक् स्तुति सम्पन्न की ॥११६॥ इन्द्र ने भक्ति-पूर्वक पवित्रतापूर्ण पूजन-सामग्री साथ लेकर मनसा देवी की पूजा की और परम आदर से उसकी स्तुति की। षोडशोपचार से पूजन करने के अनन्तर इन्द्र ने ब्राह्मणों और देवताओं की आज्ञा से अति प्रसन्न होकर उन्हें प्रिय उपहार अर्पित किया ॥११७-११८॥ मनसा देवी की अर्चना कर के देवगण अपने-अपने घर चले गए। इस भाँति मैंने तुम्हें सब कथा सुना दी, अब और क्या सुनना चाहते हो? ॥११९॥

नारद बोले—महेन्द्र ने किस स्तोत्र द्वारा पतिव्रता मनसा देवी की स्तुति की और उनके पूजा विधान का क्रम क्या है? इसे मैं सरहस्य जानना चाहता हूँ ॥१२०॥

नारायण बोले—भली भाँति स्नान से पवित्र होकर (महेन्द्र ने) आचमन और दो उज्ज्वल वस्त्र धारण किये। अनन्तर भक्तिपूर्वक देवी को रत्नसिंहासन पर स्थापित किया ॥१२१॥ रत्नों के कलशों में स्थित स्वर्ग-गंगाजल द्वारा महेन्द्र ने वेद मन्त्रों के उच्चारणपूर्वक मनसा देवी को स्नान कराया ॥१२२॥ और अग्नि की भाँति विशुद्ध एवं मनोरम वस्त्रों से सुसज्जित कर सर्वांग में चन्दन का लेप किया। भक्तिपूर्वक पाद्य-अर्घ्य अर्पित कर के गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और शिवा (दुर्गा) इन छह देवों की अर्चना की। पश्चात् 'ओं ह्रीं श्रीं मनसा देव्यै स्वाहा' इस दशाक्षर मन्त्र द्वारा सब यथोचित उपचार उस पतिव्रता को प्रदान किया। इस प्रकार ब्रह्मा की प्रेरणा से भक्तिपूर्वक और सुप्रसन्न मन से इन्द्रने मनसा देवी को दुर्लभ षोडश उपचार समर्पित किये और अनेक प्रकार

---

१ क. मूलेन ।

उपचारान्षोडशकान्भक्तितो दुर्लभान्हरिः। पूजयामास भक्त्या च ब्रह्मणा प्रेरितो मुदा ॥१२६॥
वाद्यं नानाप्रकारं च वादयामास तत्र वै। बभूव पुष्पवृष्टिश्च नभसो मनसोपरि ॥१२७॥
देव विप्राज्ञया तत्र ब्रह्मविष्णुशिवाज्ञया। तुष्टाव साश्रुनेत्रश्च पुलकाञ्चितविग्रहः ॥१२८॥

महेन्द्र उवाच

देवि त्वां स्तोतुमिच्छामि साध्वीनां प्रवरां पराम्। परात्परां च परमां नहि स्तोतुं क्षमोऽधुना ॥१२९॥
स्तोत्राणां लक्षणं वेदे स्वभावाख्यानतः परम्। न क्षमः प्रकृतिं वक्तुं गुणानां तव सुव्रते ॥१३०॥
शुद्धसत्त्वस्वरूपा त्वं कोपहिंसाविवर्जिता। न च शप्तो मुनिस्तेन त्यक्तया च त्वया यतः ॥१३१॥
त्वं मया पूजिता साध्वी जननी च यथाऽदितिः। दयारूपा च भगिनी क्षमारूपा यथा प्रसूः ॥१३२॥
त्वया मे रक्षिताः प्राणाः पुत्रदाराः सुरेश्वरि। अहं करोमि त्वां पूज्यां मम प्रीतिश्च वर्धते ॥१३३॥
नित्यं यद्यपि पूज्या त्वं भवेऽत्र जगदम्बिके। तथाऽपि तव पूजां वै वर्धयामि पुनः पुनः ॥१३४॥
ये त्वामाषाढसंक्रान्त्यां पूजयिष्यन्ति भक्तितः। पञ्चम्यां मनसाख्यायां मासान्ते वा दिने दिने ॥१३५॥
पुत्रपौत्रादयस्तेषां वर्धन्ते च धनानि च। यशस्विनः कीर्तिमन्तो विद्यावन्तो गुणान्विताः ॥१३६॥
ये त्वां न पूजयिष्यन्ति निन्दन्त्यज्ञानतो जनाः। लक्ष्मीहीना भविष्यन्ति तेषां नागभयं सदा ॥१३७॥
त्वं स्वर्गलक्ष्मीः स्वर्गे च वैकुण्ठे कमलाकला। नारायणांशो भगवाञ्जरत्कारुर्मुनीश्वरः ॥१३८॥

के वहाँ बाजे बजवाये; उसी समय मनसा देवी के ऊपर आकाश से पुष्पों की वृष्टि हुई। अनन्तर महेन्द्र ने ब्राह्मण, ब्रह्मा, विष्णु और शिव की आज्ञा से पुलकायमान शरीर होकर आँखों में आँसू भरे देवी की स्तुति की ॥१२३-१२८॥

महेन्द्र बोले—हे देवि ! मैं तुम्हारी स्तुति करना चाहता हूँ, किन्तु इस समय तुम ऐसी श्रेष्ठ देवी की, जो पतिव्रताओं में परम श्रेष्ठ, परात्पर और सर्वोत्तम है, स्तुति करने में असमर्थ हूँ ॥१२९॥ हे सुव्रते ! वेद में तुम्हारे गुणों और स्तोत्रों के लक्षण, आख्यान की भाँति स्वभावतः भरे पड़े हैं, जिसे प्रकृति (देवी) भी कहने में असमर्थ हैं ॥१३०॥ तुम शुद्ध-सत्त्व स्वरूप हो, तुममें क्रोध, हिंसा आदि दोष नहीं हैं। यद्यपि मुनि ने तुम्हारा त्याग कर दिया था, किन्तु त्यागने पर भी तुमने उन्हें शाप नहीं दिया। हे साध्वि ! मैंने अपनी माता अदिति की भाँति ही तुम्हारी पूजा की है। हे सुरेश्वरि ! तुम दया रूप भगिनी और जननी की भाँति क्षमाशीला हो, तुमने ही हमारे प्राणों और पुत्रों एवं स्त्रियों की रक्षा की है ॥१३१-१३२½॥ अतः हे जगदम्बिके ! मैं तुम्हारी पूजा कर रहा हूँ। इससे हमारी प्रीति बढ़ती ही जा रही है। यद्यपि तुम संसार में नित्य पूज्या हो, तथापि तुम्हारी पूजा की मैं बार-बार वृद्धि करूँगा। इस प्रकार आषाढ़ मास की संक्रान्ति के दिन जो भक्तिपूर्वक तुम्हारी पूजा करेंगे, तथा मनसा नामक पंचमी में, मास के अन्त में या प्रतिदिन पूजा करते रहेंगे, उनके पुत्र-पौत्र आदि समेत धन की वृद्धि होती रहेगी ॥१३३-१३५½॥ तथा वे यशोभागी, कीर्तिमान, विद्यावान् और गुणी होंगे। एवं जो मनुष्य अज्ञान वश तुम्हारी पूजा न करेंगे, उनकी लोग निन्दा करेंगे, तथा वे लक्ष्मी से वंचित रहेंगे और सदा नागों का भय होता रहेगा ॥१३६-१३७॥ तुम स्वर्ग की लक्ष्मी तथा स्वर्ग एवं वैकुण्ठ की कमला-कला हो। मुनीश्वर भगवान् जरत्कारु नारायण के अंश हैं ॥१३८॥ पिता ब्रह्मा ने हम लोगों के रक्षणार्थ तप, तेज द्वारा मन से तुम्हारी सृष्टि की है। इसी से

तपसा तेजसा त्वां च मनसा ससृजे पिता । अस्माकं रक्षणायैव तेन त्वं मनसाभिधा ॥१३९॥
मनसा देवितुं शक्ता चाऽऽत्मना सिद्धयोगिनी । तेन त्वं मनसादेवी पूजिता वन्दिता भवे ॥१४०॥
यां भक्त्या मनसा देवाः पूजयन्त्यनिशं भृशम् । तेन त्वां मनसादेवीं प्रवदन्ति पुराविदः ॥१४१॥
सत्त्वरूपा च देवी त्वं शश्वत्सत्त्वनिषेवया । यो हि यद्भावयेन्नित्यं शतं प्राप्नोति तत्समम् ॥१४२॥
इन्द्रश्च मनसां स्तुत्वा गृहीत्वा भगिनीं च ताम् । निर्जगाम स्वभवनं भूषावासपरिच्छदाम् ॥१४३॥
पुत्रेण सार्धं सा देवी चिरं तस्थौ पितुर्गृहे । भ्रातृभिः पूजिता शश्वन्नान्या वन्द्या च सर्वतः ॥१४४॥
गोलोकात्सुरभी ब्रह्मंस्तत्राऽऽगत्य सुपूजिताम् । तां स्नापयित्वा क्षीरेण पूजयामास सादरम् ॥१४५॥
ज्ञानस्य कथयामास स्वरूपं सर्वदुर्लभम् । तदा देवैः पूजिता सा स्वर्गलोकं पुनर्ययौ ॥१४६॥
इदं स्तोत्रं पुण्यबीजं तां संपूज्य च यः पठेत् । तस्य नागभयं नास्ति तस्य वंशोद्भवस्य च ॥१४७॥
विषं भवेत्सुधातुल्यं सिद्धस्तोत्रं यदा पठेत् । पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धस्तोत्रो भवेन्नरः
सर्पशायी भवेत्सोऽपि निश्चितं सर्पवाहनः ॥१४८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० मनसोपा० तदुत्पत्तिपूजास्तोत्रादिकथनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥

तुम्हारा 'मनसा' नाम है ॥१३९॥ तुम मन से पूजा कराने में समर्थ एवं सिद्धयोगिनी हो इसीलिए तुम संसार में मनसा देवी होकर सब की पूजिता और वन्दिता हुई हो ॥१४०॥ जिसे भक्तिपूर्वक देवगण मन से नित्य और बार-बार-पूजते हैं, इसी कारण प्राचीन वेत्ताओं ने तुम्हें मनसा देवी कहा है ॥१४१॥ निरन्तर सत्त्व सेवन करने के नाते तुम सत्त्वस्वरूपा देवी हो। इस भाँति जो प्रेमपूर्वक तुम्हें जो कुछ अर्पित करता है, वह सौ गुना होकर उसे पुनः प्राप्त होता है। ॥१४२॥ इन्द्र ने अपनी भगिनी मनसा देवी की स्तुति की और वस्त्राभूषणों से विभूषित कर के उसे अपने भवन ले गये ॥१४३॥ अनन्तर वह देवी पुनः अपने पुत्र समेत पिता के घर आकर वहाँ चिरकाल तक रही। वह निरन्तर अपने भ्राताओं (देवों) द्वारा पूजित है, दूसरी (देवी) सबकी वन्द्या नहीं है। हे ब्रह्मन्! अनन्तर गोलोक से आकर सुरभी ने उस सुपूजित मनसा देवी को क्षीर से स्नान कराया और सादर उसका पूजन किया तथा उसे ज्ञान का सर्वदुर्लभ स्वरूप बताया। उस समय देवों द्वारा पूजित होने पर वह देवी पुनः स्वर्गलोक चली गयी ॥१४४-१४६॥ उस (देवी) की पूजा कर के जो इस पुण्य रूप स्तोत्र का पाठ करता है, उसे नागभय नहीं होता है तथा उसके वंश में उत्पन्न होने वाले किसी को भी वह भय नहीं होता है ॥१४७॥ उसके स्तोत्र सिद्ध कर के पाठ करने पर विष भी अमृत हो जाता है। पाँच लाख जप करने पर मनुष्य को उसके स्तोत्र की सिद्धि प्राप्त होती है तब वह निश्चित सर्प पर शयन कर सकता है और सर्पों को वाहन भी बना सकता है ॥१४८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद-विषयक मनसोपाख्यान में मनसा की उत्पत्ति, पूजा और स्तोत्र आदि कथन नामक छियालीसवाँ अध्याय समाप्त। ॥४६॥

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

नारद उवाच

का वा सा सुरभी देवी गोलोकादागता च या । तज्जन्मचरितं ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥१॥

नारायण उवाच

गवामधिष्ठातृदेवी गवामाद्या गवां प्रसूः । गवां प्रधाना सुरभी गोलोके च समुद्भवा ॥२॥
सर्वादिसृष्टेः कथनं कथयामि निशामय । बभूव येन तज्जन्म पुरा वृन्दावने वने ॥३॥
एकदा राधिकानाथो राधया सह कौतुकात् । गोपाङ्गनापरिवृतः पुण्यं वृन्दावनं ययौ ॥४॥
सहसा तत्र रहसि विजहार च कौतुकात् । बभूव क्षीरपानेच्छा तदा स्वेच्छापरस्य च ॥५॥
ससृजे सुरभीं देवो लीलया वामपार्श्वतः । वत्सयुक्तां दुग्धवतीं वत्सानां च मनोरमाम् ॥६॥
दृष्ट्वा सवत्सां सुरभीं रत्नभाण्डे दुदोह सः । क्षीरं सुधातिरिक्तं च जन्ममृत्युजराहरम् ॥७॥
तदुष्णं च पयः स्वादु पपौ गोपीपतिः स्वयम् । सरो बभूव 'पयसा भाण्डविस्रंसनेन च ॥८॥
दैर्घ्यं च विस्तृते चैव परितः शतयोजनम् । गोलोकेषु प्रसिद्धं तद्रम्यं क्षीरसरोवरम् ॥९॥

अध्याय ४०

सुरभी की कथा

नारद बोले—हे ब्रह्मन्! जो सुरभी देवी गोलोक से आयी है, वह कौन है, उसका जन्म और चरित्र सरहस्य बताने की कृपा करें ॥१॥

नारायण बोले—वह सुरभी, गोलोक में उत्पन्न गौओं में प्रधान, गौओं की अधिष्ठात्री देवी, गौओं की आदि देवी और उनकी जननी है ॥२॥ उस सर्वादि सृष्टि सुरभी की कथा मैं तुम्हें सुना रहा हूँ, सुनो। पूर्व काल में वृन्दावन नामक वन में उसका जन्म हुआ ॥३॥ एक बार राधिका जी के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण कौतुक-वश राधा एवं अन्य गोपियों समेत पुण्य वृन्दावन गये। ॥४॥ वहाँ पहुँचने पर कौतुकवश वे एकान्त में सहसा छिप गये। अनन्तर स्वेच्छापरायण उन्हें दुग्ध-पान करने की इच्छा उत्पन्न हुई ॥५॥ उन्होंने उसी क्षण अपने वाम भाग से सुरभी देवी की लीलापूर्वक रचना की जो सवत्सा (बछड़े समेत) दूध देने वाली एवं बछड़ों के साथ अति मनोरम लग रही थी ॥६॥ बछड़े समेत सुरभी को देख कर उन्होंने रत्न के पात्र में उसका दोहन किया जो क्षीर सुधा के समान और जन्म मृत्य का अपहारी भी था ॥७॥ पश्चात् उसके उस गर्म-गर्म दुग्ध को गोपी-पति भगवान् कृष्ण ने स्वयं पान किया। पुनः वहाँ उस दुग्ध-पात्र के किसी प्रकार गिर जाने से दुग्ध का सरोवर उत्पन्न हो गया जो चारों ओर से सौ योजन का लम्बा-चौड़ा था और गोलोक में वहीं रमणीय क्षीरसरोवर के नाम से

क. सहसा।

गोपिकानां च राधायाः क्रीडावापी बभूव सा । रत्नेन रचिता तूर्णं भूता वापीश्वरेच्छया ॥१०॥
बभूवुः कामधेनूनां सहसा लक्षकोटयः । तावत्यो हि सवत्साश्च सुरभीलोमकूपतः ॥११॥
तासां पुत्राश्च पौत्राश्च संबभूवुरसंख्यकाः । कथिता च गवां सृष्टिस्तया संपूरितं जगत् ॥१२॥
पूजां चकार भगवान्सुरभ्याश्च पुरा मुने। ततो बभूव तत्पूजा त्रिषु लोकेषु दुर्लभा ॥१३॥
दीपान्विता परदिने श्रीकृष्णस्याऽऽज्ञया भवे । बभूव सुरभीपूजा धर्मवक्त्रादिति श्रुतम् ॥१४॥
ध्यानं स्तोत्रं मूलमन्त्रं यद्यत्पूजाविधिक्रमम् । वेदोक्तं च महाभाग निबोध कथयामि ते ॥१५॥
ॐ सुरभ्यै नम इति मन्त्रस्तस्याः षडक्षरः । सिद्धो लक्षजपेनैव भक्तानां कल्पपादपः ॥१६॥
स्थितं ध्यानं यजुर्वेदे पूजनं सर्वसंमतम् । ऋद्धिदां वृद्धिदां चैव मुक्तिदां सर्वकामदाम् ॥१७॥
लक्ष्मीस्वरूपां परमां राधासहचरीं पराम् । गवामधिष्ठातृदेवीं गवामाद्यां गवां प्रसूम् ॥१८॥
पवित्ररूपां पूज्यां च भक्तानां सर्वकामदाम् । यया पूतं सर्वविश्वं तां देवीं सुरभीं भजे ॥१९॥
घटे वा धेनुशिरसि बन्धस्तम्भे गवां च वा। शालग्रामे जलेऽग्नौ वा सुरभीं पूजयेद्द्विजः ॥२०॥
दीपान्विता परदिने पूर्वाह्णे भक्तिसंयुतः । यः पूजयेच्च सुरभीं स च पूज्यो भवेद्भुवि ॥२१॥
एकदा त्रिषु लोकेषु वाराहे विष्णुमायया । क्षीरं जहार सहसा चिन्तिताश्च सुरादयः ॥२२॥

प्रख्यात है॥८-९॥ वही गोपियों की अधीश्वरी श्री राधिका जी की क्रीड़ा की बावली भी हुई जो ईश्वरेच्छया शीघ्र रत्नों से रच दी गयी थी ॥१०॥ अनन्तर सुरभी के लोमकूप से लाखों करोड़ों और उतनी ही बछड़े समेत गौएँ उत्पन्न हुईं जिनके पुत्र पौत्र असंख्य हुए तथा उन्हीं से समस्त जगत् आच्छादित हो गया। इस प्रकार गौओं की सृष्टि मैंने बता दी ॥११-१२॥ हे मुने! पूर्व काल में भगवान् ने सुरभी की पूजा। अनन्तर तीनों लोकों में उसकी दुर्लभ पूजा प्रारम्भ हुई॥१३॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा से दूसरे दिन संसार में उसकी दीपक समेत पूजा हुई, ऐसा धर्म के मुख से मैंने सुना है॥१४॥ हे महाभाग! अब मैं वेदानुसार उसका ध्यान, स्तोत्र, मूलमन्त्र और पूजाविधान का क्रम बता रहा हूँ, सुनो॥१५॥ ओं सुरभ्यै नमः यह छह अक्षर का उसका मन्त्र है, जो एक लाख जप करने से सिद्ध होता है और भक्तों के लिए कल्पवृक्ष के समान है॥१६॥ यजुर्वेद में जिस प्रकार उसके ध्यान और सर्वसम्मत पूजन को बताया गया है, उसे कह रहा हूँ, सुनो। जो देवी ऋद्धि, वृद्धि तथा मुक्ति समेत सकल कामनाओं को देने वाली, लक्ष्मी स्वरूप, श्रेष्ठ, राधा की परम सहचरी, गौओं की अधिष्ठात्री देवी, गौओं की आदि और उनकी जननी, पवित्ररूप, पूज्या, भक्तों की सभी कामनाओं को सफल करने वाली है एवं जिससे समस्त विश्व पावन हुआ है, उस सुरभी देवी की मैं सेवा कर रहा हूँ॥१७-१९॥ कलश में, गौ के शिर पर, या गौओं के बाँधने वाले खम्भे, शालग्राम, जल या अग्नि में सुरभी देवी की पूजा ब्राह्मणों को सुसम्पन्न करनी चाहिए॥२०॥ इस भाँति पूर्वाह्ण में जो भक्तिपूर्वक दीपक समेत सुरभी की पूजा करता है, वह भूतल में पूज्य होता है॥२१॥ एक बार वाराह अवतार के समय भगवान् की माया ने सहसा क्षीर का अपहरण कर लिया, जिससे देवों को अति चिन्ता उत्पन्न हो गयी॥२२॥ अनन्तर वे सब उस समय ब्रह्मलोक

ते गत्वा ब्रह्मणो लोकं ब्रह्माणं तुष्टुवुस्तदा। तदाज्ञया च सुरभीं तुष्टुवे पाकशासनः ॥२३॥

महेन्द्र उवाच

नमो देव्यै महादेव्यै सुरभ्यै च नमो नमः। गवां बीजस्वरूपायै नमस्ते जगदम्बिके ॥२४॥
नमो राधाप्रियायै च पद्मांशायै नमो नमः। नमः कृष्णप्रियायै च गवां मात्रे नमो नमः ॥२५॥
कल्पवृक्षस्वरूपायै प्रदात्र्यै सर्वसंपदाम्। श्रीदायै धनदायै च बुद्धिदायै नमो नमः ॥२६॥
शुभदायै [1]प्रसन्नायै गोप्रदायै नमो नमः। यशोदायै सौख्यदायै धर्मदायै नमो नमः ॥२७॥
स्तोत्रश्रवणमात्रेण तुष्टा हृष्टा जगत्प्रसूः। आविर्बभूव तत्रैव ब्रह्मलोके सनातनी ॥२८॥
महेन्द्राय वरं दत्त्वा वाञ्छितं सर्वदुर्लभम्। जगाम सा च गोलोकं ययुर्देवादयो गृहम् ॥२९॥
बभूव विश्वं सहसा दुग्धपूर्णं च नारद। दुग्धाद्घृतं ततो यज्ञस्ततः प्रीतिः सुरस्य च ॥३०॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं भक्तियुक्तश्च यः पठेत्। स गोमान्धनवांश्चैव कीर्तिमान्पुण्यवान्भवेत् ॥३१॥
सुस्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते कृष्णमन्दिरम् ॥३२॥

में जाकर ब्रह्मा की स्तुति करने लगे। तब ब्रह्मा ने इन्द्र को आज्ञा प्रदान की। जिससे उन्होंने सुरभी की स्तुति की ॥२३॥

महेन्द्र बोले—देवी को नमस्कार है, महादेवी सुरभी को बार-बार नमस्कार है, गौओं के मूल कारण तथा उस जगदम्बिका को नमस्कार है ॥२४॥ राधाजी की प्रिया को नमस्कार है, पद्मा के उस अंश रूप को नमस्कार है, कृष्ण की प्रिया को नमस्कार है, और गौओं की माता को बार-बार नमस्कार है, जो कल्पवृक्ष स्वरूप होकर समस्त सम्पत्ति प्रदान करती है तथा श्री देनेवाली, धनप्रदायिनी एवं बुद्धि देने वाली को नमस्कार है ॥२५-२६॥ शुभप्रदा, प्रसन्न तथा गो प्रदान करने वाली को बार-बार नमस्कार है यश देने वाली, सौख्यप्रदा और धर्मप्रदा को बार-बार नमस्कार है ॥२७॥ इस प्रकार इस स्तोत्र के सुनने मात्र से वह जगज्जननी सुरभी अति सन्तुष्ट और हर्षित हो गई। अनन्तर ब्रह्मलोक में उसी स्थान पर उस सनातनी देवी ने प्रकट होकर महेन्द्र को वर प्रदान किया जिससे उनका सर्वदुर्लभ मनोरथ सफल हुआ। अनन्तर वह गोलोक को चली गयी। हे नारद! देवलोग भी अपने-अपने घर चले गये। ॥२८-२९॥ तब जगत् एकाएक दुग्धपूर्ण हो गया। उपरान्त उस दुग्ध से घृत निकला और उसी घृत से यज्ञपूर्ण हुआ जिससे देवों की अत्यन्त प्रीति उत्पन्न हुई। ॥३०॥ इस महापुण्य स्तोत्र का जो भक्तिपूर्वक पाठ करता है, वह गोमान्, धनवान्, कीर्तिमान् और पुण्यवान् होता है तथा वह मानों समस्त तीर्थों में स्नान कर चुका एवं सम्पूर्ण यज्ञों में दीक्षित हो गया। फिर इस लोक में सुख भोगकर

---

१ क. ०यै सुभद्रायै गो०

सुचिरं निवसेत्तत्र कुरुते कृष्णसेवनम् । न पुनर्भवनं तस्य ब्रह्मपुत्र भवे भवेत् ॥३३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० सुरभ्युपा० तदुत्पत्तितत्पूजादिकथनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

अथ अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

नारद उवाच

नारायण महाभाग नारायणपरायण । नारायणांश भगवन्ब्रूहि नारायणीं कथाम् ॥१॥
श्रुतं सुरभ्युपाख्यानमतीव सुमनोहरम् । गोप्यं सर्वपुराणेषु पुराविद्भिः प्रशंसितम् ॥२॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि राधिकाख्यानमुत्तमम् । तदुत्पत्तिं च तद्ध्यानं स्तोत्रं कवचमुत्तमम् ॥३॥

नारायण उवाच

पुरा कैलासशिखरे भगवन्तं सनातनम् । सिद्धेशं सिद्धिदं सर्वस्वरूपं शंकरं परम् ॥४॥
प्रफुल्लवदनं प्रीतं सस्मितं मुनिभिः स्तुतम् । कुमाराय प्ररोचन्तं कृष्णस्य परमात्मनः ॥
रासोत्सवरसाख्यानं रासमण्डलवर्णनम् । ॥५॥

वह अन्त में भगवान् श्रीकृष्ण के भवन में जाता है और वहाँ अति चिरकाल तक निवास करते हुए उनकी सेवा करता है। हे ब्रह्मपुत्र! संसार में उसका पुनः जन्म नहीं होता है॥३१-३३॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारदनारायणसंवादविषयक सुरभी के उपाख्यान में उसकी उत्पत्ति और पूजा आदि कथन नामक सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त॥४७॥

अध्याय ४८

नारायणी कथा, राधोपाख्यान

नारद बोले—हे नारायण! हे महाभाग! हे नारायण में लीन रहने वाले! हे नारायण के अंश! हे भगवन्! मुझे नारायणी कथा सुनाने की कृपा कीजिए॥१॥ मैंने सुरभी का उपाख्यान सुन लिया, जो अत्यन्त मनोहर, समस्त पुराणों में गुप्त और प्राचीनवेत्ताओं से प्रशंसित है॥२॥ अब मैं श्री राधिका का परमोत्तम आख्यान जिसमें उनकी उत्पत्ति, ध्यान स्तोत्र और उत्तम कवच वर्णित है, सुनना चाहता हूँ॥३॥

नारायण बोले—पहले समय में (एक बार) कैलाश पर्वत के शिखर पर विराजमान सनातन भगवान् शंकर से, जो सिद्धों के अधीश्वर, सिद्धि प्रदान करने वाले, सब के स्वरूप, श्रेष्ठ, विकसित मुख, प्रसन्न, मन्दहास करते हुए, मुनियों द्वारा संस्तुत तथा कुमार की उत्सुकता बढ़ाते हुए परमात्मा कृष्ण के रासोत्सव के रस का आख्यान तथा रासमण्डल का वर्णन सुना रहे थे, अवसर

तदाख्यानावसाने च प्रस्तावावसरे सती । पप्रच्छ पार्वती स्फीता सस्मिता प्राणवल्लभम् ॥६॥
स्तवनं कुर्वती भीता प्राणेशेन प्रसादिता । प्रोवाच तं महादेवं महादेवी सुरेश्वरी ॥७॥

पार्वत्युवाच

अपूर्वं राधिकाख्यानं पुराणेषु सुदुर्लभम् । आगमं निखिलं नाथ श्रुतं सर्वमनुत्तमम् ॥८॥
पाञ्चरात्रादिकं नीतिशास्त्रं योगं च योगिनाम् । सिद्धानां सिद्धिशास्त्रं च नानातन्त्रं मनोहरम् ॥९॥
भक्तानां भक्तिशास्त्रं च कृष्णस्य परमात्मनः । देवीनामपि सर्वासां चरितं त्वन्मुखाम्बुजात् ॥१०॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि राधिकाख्यानमुत्तमम् । श्रुतौ श्रुतं प्रशस्तं च राधायाश्च समासतः ॥११॥
त्वन्मुखात्काण्वशाखायां व्यासेनोक्तं वदाधुना । आगमाख्यानकाले च भवता स्वीकृतं पुरा ॥१२॥
नहीश्वरव्याहृतिश्च मिथ्या भवितुमर्हति । तदुत्पत्तिं च तद्ध्यानं नाम्नो माहात्म्यमुत्तमम् ॥१३॥
पूजाविधानं चरितं स्तोत्रं कवचमुत्तमम् । आराधनविधानं च पूजापद्धतिमीप्सिताम् ॥१४॥
सांप्रतं ब्रूहि भगवन्मां भक्तां भक्तवत्सल । कथं न कथितं पूर्वमागमाख्यानकालतः ॥१५॥
पार्वतीवचनं श्रुत्वा नम्रवक्त्रो बभूव सः । पञ्चवक्त्रश्च भगवाञ्छुष्ककण्ठोष्ठतालुकः ॥१६॥
स्वसत्यभङ्गभीतश्च मौनीभूय विचिन्तयन् । सस्मार कृष्णं ध्यानेनाभीष्टदेवं कृपानिधिम् ॥१७॥

पाकर सती पार्वती जी ने पूछा जो हर्षमग्न एवं मन्द मुसुकानयुक्त होकर अपने प्राणवल्लभ (शिवजी) की स्तुति कर रही थीं और भयभीत होने पर उन प्राणाधीश्वर का पूर्ण कृपापात्र भी हो चुकी थीं। उन देवाधीश्वरी महादेवी ने महादेव जी से कहा ॥४-७॥

पार्वती बोलीं—मैं श्री राधिका जी का अपूर्व आख्यान सुनना चाहती हूँ, जो पुराणों में अतिदुर्लभ है। हे नाथ! मैंने सम्पूर्ण आगम (शास्त्र), परमोत्तम समस्त पाञ्चरात्र आदि, नीतिशास्त्र, योगियों का योग-शास्त्र, सिद्धों का सिद्धिशास्त्र, अनेक भाँति का मनोहर तन्त्र और परमात्मा श्रीकृष्ण के भक्तों का भक्ति-शास्त्र सुन लिया है तथा उसी भाँति तुम्हारे मुखकमल द्वारा सभी देवियों के चरित भी सुन चुकी हूँ। अब श्री राधिका जी का अनूठा आख्यान सुनना चाहती हूँ, जो वेदों में कथित, तुम्हारे द्वारा प्रशंसित तथा काण्व-शाखा में व्यास द्वारा प्रतिपादित है। आपने पहले ही आगमों (शास्त्रों) के व्याख्यान-काल में यह स्वीकार किया था। ईश्वर (शिव) की व्याहृति (कथन) कभी मिथ्या नहीं होती है। अतः हे भगवन्! हे भक्तवत्सल! अब राधा जी की उत्पत्ति, ध्यान, उनके नाम का उत्तम माहात्म्य, पूजाविधान, चरित, स्तोत्र, उत्तमकवच, आराधना का विधान और मनोवाञ्छित पूजा-पद्धति मुझे बताने की कृपा करें। आगमों (शास्त्रों) के आख्यान के समय से पूर्व आपने इसे क्यों नहीं कहा? पार्वती की ऐसी बातें सुनकर शिवने अपना मुख नीचे कर लिया। भगवान् पञ्चमुख (पांच मुख वाले) शिव के अपने सत्य-भंग के भय से कण्ठ, ओंठ और तालु सूख गये। ॥८-१६॥ वे मौन होकर विचार करने लगे। उस समय उन्होंने ध्यान द्वारा अपने इष्टदेव एवं कृपा-

तदनु ज्ञानं संप्राप्य स्वार्धाङ्गां तामुवाच सः ॥ ॥१८॥

महादेव उवाच

निषिद्धोऽहं भगवता कृष्णेन परमात्मना । आगमारम्भसमये राधाख्यानप्रसङ्गतः ॥१९॥
मदर्धाङ्गस्वरूपा त्वं न मद्भिन्ना स्वरूपतः । अतोऽनुज्ञां ददौ कृष्णो मह्यं वक्तुं महेश्वरि ॥२०॥
मदिष्टदेवकान्ताया राधायाश्चरितं सति । अतीव गोपनीयं च सुखदं कृष्णभक्तिदम् ॥२१॥
जानामि तदहं दुर्गे सर्वं पूर्वापरं वरम् । यज्जानामि रहस्यं च न तद्ब्रह्मा फणीश्वरः ॥२२॥
न तत्सनत्कुमारश्च न च धर्मः सनातनः । न देवेन्द्रो मुनीन्द्राश्च सिद्धेन्द्राः सिद्धपुंगवाः ॥२३॥
मत्तो बलवती त्वं च प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यता । अतस्त्वां गोपनीयं च कथयामि सुरेश्वरि ॥२४॥
शृणु दुर्गे प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् । चरितं राधिकायाश्च दुर्लभं च सुपुण्यदम् ॥२५॥
पुरा वृन्दावने रम्ये गोलोके रासमण्डले । शतशृङ्गैकदेशे च मालतीमल्लिकावने ॥२६॥
रत्नसिंहासने रम्ये तस्थौ तत्र जगत्पतिः[1] । स्वेच्छामयश्च भगवान्बभूव रमणोत्सुकः ॥२७॥
[2]रिरंसोस्तस्य जगतां पत्युस्तन्मल्लिकावने । इच्छया च भवेत्सर्वं तस्य स्वेच्छामयस्य च ॥२८॥
एतस्मिन्नन्तरे दुर्गे द्विधारूपो बभूव सः । दक्षिणाङ्गं च श्रीकृष्णो वामार्धाङ्गं च राधिका ॥२९॥

निधान भगवान् कृष्ण का स्मरण किया। पश्चात् उनकी आज्ञा प्राप्त होने पर उन्होंने अपनी उस अर्द्धांगिनी से कहा ॥१७-१८॥

महादेव बोले—आगमों के आख्यान काल में मैं राधाजी का आख्यान वर्णन करने से परमात्मा भगवान् श्री कृष्ण द्वारा रोक दिया गया था॥१९॥ हे महेश्वरि! तुम मेरी अर्द्धांगिनी हो और स्वरूपतः मुझसे भिन्न भी नहीं हो, इसीलिए भगवान् कृष्ण ने मुझे तुमसे कहने की अब आज्ञा प्रदान की है॥२०॥ राधिका जी मेरे इष्ट-देव की प्रेयसी हैं। उनका चरित अत्यन्त गोपनीय, भक्तों को सुखप्रद तथा कृष्णभक्तिप्रदायक है॥२१॥ हे दुर्गे! मैं उनका सभी पूर्वापर (अगला पिछला) रहस्य जानता हूँ, जिसे ब्रह्मा, शेष, सनत्कुमार, सनातन धर्म, देवराज इन्द्र, श्रेष्ठ मुनिगण, सिद्धेन्द्र, और सिद्धेश्वर नहीं जान पाये हैं ॥२२-२३॥ हे सुरेश्वरि! इसके लिए तुम प्राणत्याग करने को तैयार हो गयी थीं, इसलिए हमसे तुम बलवती हो। मैं इसीलिए ऐसी गोपनीय बातें तुम्हें बता रहा हूँ॥२४॥ हे दुर्गे! राधा जी का वह परम अद्‌भुत चरित तुम्हें बता रहा हूँ, जो दुर्लभ और अतिपुण्यदायक है॥२५॥ पहले समय में गोलोक के रमणीय वृन्दावन के रासमण्डल में सैकड़ों शिखरों से सुशोभित पर्वत के एक भाग में एवं मालती और बेला के जंगल में पुरुषोत्तम जगदीश्वर रत्नसिंहासन पर विराजमान थे। अनन्तर उनस्वेच्छाचारी भगवान् को रमण करने की इच्छा उत्पन्न हुई॥२६-२७॥ क्योंकि उन्हीं की इच्छा से सभी कुछ होता है। अतः उस बेला के वन में जब जगन्नाथ को रमण करने की इच्छा हुई तब इसी बीच वे दो रूपों में विभक्त हो गये। हे दुर्गे! उनका दाहिना भाग भगवान् श्रीकृष्ण रूप में और अर्द्धांग बायाँ

---

१ क. जगत्प्रसूः । २ क. रमणीं कर्तुमिच्छामि तद्बभूव सुरेश्वरी । इ०।

बभूव रमणी रम्या रासेशा रमणोत्सुका । अमूल्यरत्नाभरणा रत्नसिंहासनस्थिता ॥३०॥
वह्निशुद्धांशुकाधाना कोटिपूर्णशशिप्रभा । तप्तकाञ्चनवर्णाभा राजिता च स्वतेजसा ॥३१॥
सस्मिता सुदती शुद्धा शरत्पद्मनिभानना । बिभ्रती कबरीं रम्यां मालतीमाल्यमण्डिताम् ॥३२॥
रत्नमालां च दधती ग्रीष्मसूर्यसमप्रभाम् । मुक्ताहारेण शुभ्रेण गङ्गाधारानिभेन च ॥३३॥
सयुक्तं वर्तुलोत्तुङ्गं सुमेरुगिरिसंनिभम् । कठिनं सुन्दरं दृश्यं कस्तूरीपत्रचिह्नितम् ॥३४॥
माङ्गल्यं मङ्गलार्हं च स्तनयुग्मं च बिभ्रती । नितम्बश्रोणिभारार्ता नवयौवनसुन्दरी ॥३५॥
कामातुरां सस्मितां तां ददर्श रसिकेश्वरः । दृष्ट्वा कान्तां जगत्कान्तो बभूव रमणोत्सुकः ॥३६॥
दृष्ट्वा रिरंसुं कान्तं च सा दधार हरेः पुरः । तेन राधा समाख्याता पुराविद्भिर्महेश्वरि ॥३७॥
राधा भजति तं कृष्णं स च तां च परस्परम् । उभयोः सर्वसाम्यं च सदा सन्तो वदन्ति च ॥३८॥
भवनं [1]धावनं रासे स्मरत्यालिङ्गनं जपन् । तेन जल्पति संकेतं तत्र राधां स ईश्वरः ॥३९॥
राशब्दोच्चारणाद्भक्तो राति मुक्तिं सुदुर्लभाम् । धाशब्दोच्चारणाद्दुर्गे धावत्येव हरेः पदम् ॥४०॥

भाग राधिका रूप में परिणत हुए ॥२८-२९॥ वह रमणी अतिरमणीक, रास की अधीश्वरी और रमण करने के लिए उत्सुक थी, जो अमूल्य रत्नों के आभूषणों से विभूषित होकर रत्नसिंहासन पर सुशोभित हो रही थी ॥३०॥ उसका वस्त्र अग्नि की भाँति विशुद्ध था, करोड़ों पूर्ण चन्द्रमा की भाँति कान्ति थी, तपाये सुवर्ण के समान रूपरंग था और वह निजी तेज द्वारा विराजित एवं मन्द-मन्द मुसुकाती थी। उसके सुन्दर दांतों की पंक्तियाँ शुद्ध थीं और, शारदीय कमल की भाँति मुख था। वह स्वयं रम्य केशपाश धारण किये, मालती की माला से सुशोभित, ग्रीष्म-कालीन सूर्य की कान्ति के समान प्रदीप्त रत्नमाला और गंगा की धारा के समान स्वच्छ मुक्ताहार पहने थी ॥३१-३३॥ एवं एक में मिले हुए, गोलाकार, सुमेरु पर्वत की भाँति उन्नत, कठोर, सुन्दर, देखने योग्य, कस्तूरीपत्र (चित्रकारी) से अंकित, मंगलनिधि और मंगलयोग्य युगल स्तनों को धारण किये, नितम्ब और श्रोणीभार से थकी-जैसी तथा नयी युवावस्था के नाते परम सुन्दरी थी ॥३४-३५॥ रसिकों के स्वामी तथा जगत्सुन्दर भगवान् कृष्ण कामातुर एवं मन्द मुसुकाती उसे देखकर रमण करने को उत्सुक हो गये। ॥३६॥ उसने भी उन सुन्दर प्रियतम को देखकर उन्हें अपने अंक में धारण कर लिया था। महेश्वरि! प्राचीनवेत्ता इसी कारण उसे राधा कहते हैं ॥३७॥ राधा कृष्ण को भजती हैं और भगवान् कृष्ण राधा को भजते हैं। और वे दोनों आपस में सभी कुछ में समान हैं, ऐसा महात्माओं का कहना है ॥३८॥ रास में भगवान् श्रीकृष्ण उसका रूप धारण करते हैं, साथ में दौड़ते हैं, स्मरण करते हैं, आलिंगन करते हैं, उसी का नाम जपा करते हैं और इसी कारण संकेत स्थान को जाने के लिए राधा से संकेत (इशारा) करते रहते हैं ॥३९॥ इसलिए हे दुर्गे! भगवान् का भक्त रा शब्द का उच्चारण करने से अति दुर्लभ मुक्ति प्राप्त करता है और धा शब्द का उच्चारण करने से वह भगवान् के लोक को दौड़ जाता है ॥४०॥ रास की अधीश्वरी श्री राधा जी

---

१ क. धारयामास सा रत्याऽऽलिङ्गने जयात् । ते० ।

कृष्णवामांशसंभूता राधा रासेश्वरी पुरा । तस्याश्चांशांशकलया बभूवुर्देवयोषितः ॥४१॥
रा इत्यादानवचनो धा च निर्वाणवाचकः । ततोऽवाप्नोति मुक्तिं च तेन राधा प्रकीर्तिता ॥४२॥
बभूव गोपीसंघश्च राधाया लोमकूपतः । श्रीकृष्णलोमकूपेभ्यो बभूवुः सर्वबल्लवाः ॥४३॥
राधावामांशभागेन महालक्ष्मीर्बभूव सा । तस्याधिष्ठातृदेवी सा गृहलक्ष्मीर्बभूव सा ॥४४॥
चतुर्भुजस्य सा पत्नी देवी वैकुण्ठवासिनी । तदंशा सिन्धुकन्या च श्वेतद्वीपनिवासिनी ॥४५॥
क्षीरोदशायिनः पत्नी विष्णोर्विषयिणः शिवे । तदंशा सा स्वर्गलक्ष्मीः शक्रसंपत्प्रदायिनी ॥
तदंशा राजलक्ष्मीश्च राजसंपत्प्रदायिनी ॥४६॥
तदंशा मर्त्यलक्ष्मीश्च गृहिणां च गृहे गृहे । [1]दीपाधिष्ठातृदेवी च सा चैव गृहदेवता ॥४७॥
स्वयं राधा कृष्णपत्नी कृष्णवक्षःस्थलस्थिता । प्राणाधिष्ठातृदेवी च तस्यैव परमात्मनः ॥४८॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सर्वं मिथ्यैव पार्वति । भज सत्यं परं ब्रह्म राधेशं त्रिगुणात्परम् ॥४९॥
परं प्रधानं परमं परमात्मानमीश्वरम् । सर्वाद्यं सर्वपूज्यं च निरीहं प्रकृतेः परम् ॥५०॥
स्वेच्छामयं नित्यरूपं भक्तानुग्रहविग्रहम् । तद्भिन्नानां च देवानां प्राकृतं रूपमेव च ॥५१॥
तस्य प्राणाधिका राधा बहुसौभाग्यसंयुता । महाविष्णोः प्रसूः सा च मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥५२॥

भगवान् कृष्ण के बायें भाग से पूर्वकाल में उत्पन्न हुई थीं और देवस्त्रियां उन्हीं के अंश की अंशकलासे उत्पन्न हुईं॥४१॥ एवं आदान (ग्रहण करने) अर्थ में रा शब्द और निर्वाण (मुक्ति) अर्थ में धा शब्द प्रयुक्त होता है। अतः जिसके नाम के उच्चारण से मुक्ति प्राप्त होती है उसे राधा कहते हैं ॥४२॥ राधाजी के लोमकूप से समस्त गोपियाँ और भगवान् श्रीकृष्ण के लोमकूप से निखिल गोपगण उत्पन्न हुए ॥४३॥ राधा के बायें अंश भाग से महालक्ष्मी का जन्म हुआ जो भगवान् को अधिष्ठात्री देवी गृहलक्ष्मी हुई ॥४४॥ वह चतुर्भुजधारी भगवान् विष्णु की पत्नी होकर वैकुण्ठ में निवास करती है। उसके अंश से उत्पन्न सिन्धुकन्या श्वेतद्वीप में निवास करती है तथा क्षीरसागरशायी भगवान् विष्णु की पत्नी है। शिवे ! उसके अंश से उत्पन्न स्वर्गलक्ष्मी इन्द्र को सम्पत्ति देने वाली है। उसी के अंश से राजलक्ष्मी उत्पन्न हुई है जो राजस सम्पत्ति प्रदान करती है ॥४५-४६॥ उसके अंश से उत्पन्न मर्त्य लक्ष्मी गृहस्थों के घर घर में दीपों की अधिष्ठात्री देवी एवं गृहदेवता है॥४७॥ राधा स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण की पत्नी होकर उनके वक्षःस्थल पर स्थित रहती हैं और उसी परमात्मा के प्राणों की वह अधिष्ठात्री देवी भी हैं॥४८॥ हे पार्वती ! इसलिए तिनके से लेकर ब्रह्म पर्यन्त सभी को मिथ्या जानकर परब्रह्म राधेश को भजो, जो सत्यस्वरूप, तीनों गुणों से परे, सर्वश्रेष्ठ, परम, परमात्मा, ईश्वर, सबका आदि, सबका पूज्य, इच्छा रहित, प्रकृति से परे, स्वेच्छामय, नित्य- रूप, तथा भक्तों पर कृपा करने के लिए शरीर धारण करनेवाला है। उससे भिन्न तथा देवताओं का प्राकृत (प्रकृति द्वारा निर्मित) रूप ही है।॥४९-५१॥ उनकी राधा उनके प्राणों से भी अधिक प्रिय है जो अमित सौभाग्य से युक्त है। वही महाविष्णु की जननी और ईश्वरी मूल प्रकृति है ॥५२॥

१क. सस्याधि० ।

मानिनीं राधिकां सन्तः सेवन्ते नित्यशः सदा । सुलभं यत्पदाम्भोजं ब्रह्मादीनां सुदुर्लभम् ॥५३॥
स्वप्ने राधापदाम्भोजं नहि पश्यन्ति बल्लवाः । स्वयं देवी हरेः क्रोडे छायारूपेण कामिनी ॥५४॥
स च द्वादशगोपानां रायणः[1] प्रवरः प्रिये । श्रीकृष्णांशश्च भगवान्विष्णुतुल्यपराक्रमः ॥५५॥
सुदामशापात्सा देवी गोलोकादागता महीम् । वृषभानुगृहे जाता तन्माता च कलावती ॥५६॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० राधोपा० राधोत्पत्तिकथनं
नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥

अथैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पार्वत्युवाच

कथं सुदामशापं च सा च देवी ललाभ ह । कथं शशाप भृत्यो हि स्वाभीष्टदेवकामिनीम् ॥१॥

महादेव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् । गोप्यं सर्वपुराणेषु शुभदं भक्तिमुक्तिदम् ॥२॥

उस मानिनी राधिका जी की सेवा सन्त गण सदैव नित्य किया करते हैं क्योंकि उन्हें उनका चरण कमल अति सुलभ है और ब्रह्मा आदि देवों को परम दुर्लभ है ॥५३॥ गोपगण तो राधा के चरण-कमलों को स्वप्न में भी नहीं देख पाते हैं और स्वयं राधा भगवान् के छायारूप की भाँति उनकी गोद में कामिनी होकर स्थित रहती हैं ॥५४॥ हे प्रिये ! बारह गोपों में सर्वप्रधान रायण नामक गोप (वैश्य) था, जो भगवान् श्रीकृष्ण का अंश और भगवान् विष्णु के तुल्य पराक्रमी था ॥५५॥ सुदामा नामक गोप के शाप वश उस देवी राधा ने गोलोक से यहाँ पृथिवी में आकर वृषभानु के घर जन्म लिया था जिनकी माता का नाम कलावती था ॥५६॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत राधोपाख्यान
में राधोत्पत्ति कथन नामक अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४८॥

अध्याय ४९

राधा और सुदामा का परस्पर शाप

पार्वती बोलीं—(हे भगवान्) उस देवी को सुदामा का शाप कैसे हो गया और उस सेवक ने अपनी अभीष्ट देवी को शाप कैसे दे दिया ?

महादेव बोले—हे देवि ! इस परमअद्भुत रहस्य को मैं बता रहा हूं, सुनो, जो सभी पुराणों में गोप्य, शुभप्रद और भुक्ति-मुक्ति का प्रदाता है ॥२॥ एक बार गोलोक के रास-मण्डल में, जो वृन्दावन नामक वन के

---

[1] क. रायाण इति ।

एकदा राधिकेशश्च गोलोके रासमण्डले । शतशृङ्गाख्यगिर्येकदेशे वृन्दावने वने ॥३॥
गृहीत्वा विरजां गोपीं सुभाग्यां राधिकासमाम् । क्रीडां चकार भगवान्रत्नभूषणभूषितः ॥४॥
रत्नप्रदीपसंयुक्ते रत्ननिर्माणमण्डपे । अमूल्यरत्नखचितमञ्चके पुष्पतल्पके ॥५॥
कस्तूरीकुङ्कुमारक्ते [1]सुचन्दनसुधूपिते । सुगन्धिमालतीमालासमूहपरिमण्डिते ॥६॥
सुरताद्विरतिर्नास्ति दम्पती रतिपण्डितौ । तौ द्वौ परस्परासक्तौ सुखसंभोगतन्द्रितौ ॥७॥
मन्वन्तराणां लक्षश्च कालः परिमितो गतः । गोलोकस्य स्वल्पकाले जन्मादिरहितस्य च ॥८॥
दूत्यश्चतस्रो ज्ञात्वाऽथ जगदुस्तां तु राधिकाम् । श्रुत्वा परमरुष्टा सा तत्याज हरिमीश्वरी ॥९॥
प्रबोधिता च सखिभिः कोपरक्तास्यलोचना । विहाय रत्नालंकारं वह्निशुद्धांशुके शुभे ॥१०॥
क्रीडापद्मं च सद्रत्नामूल्यदर्पणमुज्ज्वलम् । निर्माजयामास सती सिन्दूरं चित्रपत्रकम् ॥११॥
प्रक्षाल्य तोयाञ्जलिभिर्मुखरागमलक्तम् । विस्रस्तकबरीभारा मुक्तकेशी प्रकम्पिता ॥१२॥
शुक्लवस्त्रपरीधाना रूक्षा वेषादिवर्जिता । ययौ यानान्तिकं तूर्णं प्रियालीभिर्निवारिता ॥१३॥
आजुहाव सखीसंघं रोषविस्फुरिताधरा । शश्वत्कम्पान्विताङ्गी सा गोपीभिः परिवारिता ॥१४॥

सौ शिखरों वाले पर्वत के एक प्रदेश में था, विरजा नामक गोपी को लेकर, जो अति भाग्यवती और राधा के समान थी, रत्नों के भूषणों से भूषित भगवान् रमण करने लगे ॥३-४॥ रत्नों के प्रदीपों से संयुक्त उस रत्न-निर्मित मण्डल में अमूल्य रत्नों से खचित पलंग पर पुष्पों की शय्या पर, जो कस्तूरी और कुंकुम से किंचित् रक्त, उत्तम चन्दनों से सुवासित और सुगन्धित मालती पुष्पों की माला से चारों ओर सुशोभित हो रही थी, दोनों लिपटे थे। उन रतिपण्डित दम्पती (स्त्री-पुरुष) को सुरत से विराग नहीं हो रहा था। वे दोनों परस्पर जुटे सुख-सम्भोग से क्लान्त हो रहे थे ॥५-७॥ इतने में एक लाख मन्वन्तर का समय व्यतीत हो गया, जो जन्मादि-रहित गोलोक का अल्प समय होता है ॥८॥ तब चार दूतियों ने इसे जानकर राधाजी से कह दिया। उसे सुनते ही वह ईश्वरी अति रुष्ट हो गयी और उसने भगवान् का त्याग कर दिया ॥९॥ कोप से उसके नेत्र लाल हो गये। सखियों के समझाने पर भी उसने रत्नों के आभूषणों, दोनों अग्नि-विशुद्ध वस्त्रों, क्रीडाकमल, उत्तम रत्न के बने हुए अमूल्य एवं उज्ज्वलाकार दर्पण को त्याग दिया, सिन्दूर एवं चित्र-पत्र को मिटा दिया और मुखराग तथा महावर को अञ्जलियों के जल से धो दिया। केशपाश (जूड़े) को खोलकर केशों को इधर-उधर अस्त-व्यस्त कर (फैला) दिया और काँपने लगी ॥१०-१२॥ फिर श्वेत वस्त्र पहनकर शृंगार रहित रूखा वेष कर लिया। प्रिय सखियों के मना करने पर भी उन लोगों का कहना न मान कर बड़ी शीघ्रता से यान (विमान) के पास पहुँच गयी और वहीं से सभी सखी वृन्दों को बुलाने लगी। उस समय उसके अधरोष्ठ क्रोध से काँप रहे थे, सारा शरीर निरन्तर काँप रहा था और गोपियाँ उसके चारों ओर घेरे खड़ी थीं। भक्तिपूर्वक वे गोपियाँ कातर भाव से विनय-प्रार्थना कर रहीं

१क. सुगन्धिचन्दनाञ्चिते ।

ताभिर्भक्त्या नताभिश्च कातराभिश्च संस्तुता । आरुरोह रथं दिव्यममूल्यं रत्ननिर्मितम् ॥१५॥
दशयोजनविस्तीर्णं दैर्घ्ये तच्छतयोजनम् । सहस्रचक्रयुक्तं च नानाचित्रसमन्वितम् ॥१६॥
नानाविचित्रवसनैः सूक्ष्मैः क्षौमैर्विराजितम् । अमूल्यरत्ननिर्माणदर्पणैः परिशोभितम् ॥१७॥
मणीन्द्रजालमालाभैः पुष्पमालासहस्रकैः । सद्रत्नकलशैर्युक्तं रम्यैर्मन्दिरकोटिभिः ॥१८॥
त्रिलक्षकोटिभिः सार्धं गोपीभिश्च प्रियालिभिः । ययौ रथेन तेनैव सुमनोमालिना प्रिये ॥१९॥
श्रुत्वा कोलाहलं गोपः सुदामा कृष्णपार्षदः । कृष्णं कृत्वा सावधानं गोपैः सार्धं पलायितः ॥२०॥
भयेन कृष्णः संत्रस्तो विहाय विरजां सतीम् । स्वप्रेममग्नः कृष्णोऽपि तिरोधानं चकार सः ॥२१॥
सा सती समयं ज्ञात्वा विचार्य स्वहृदि क्रुधा । राधाप्रकोपभीता च प्राणांस्तत्याज तत्क्षणम् ॥२२॥
विरजालिगणास्तत्र भयविह्वलकातराः । प्रययुः शरणं साध्वीं विरजां तत्क्षणं भिया ॥२३॥
गोलोके सा सरिद्रूपा जाता वै शैलकन्यके । कोटियोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये शतगुणा तथा ॥२४॥
गोलोकं वेष्टयामास परिखेव मनोहरा। बभूवुः क्षुद्रनद्यश्च तदाऽन्या गोप्य एव च ॥२५॥
सर्वा नद्यस्तदंशाश्च प्रतिविश्वेषु सुन्दरि । इमे सप्त समुद्राश्च विरजानन्दना भुवि ॥२६॥
अथाऽऽगत्य महाभागा राधा रासेश्वरी परा । न दृष्ट्वा विरजां कृष्णं स्वगृहं च पुनर्ययौ ॥२७॥

थीं। किन्तु, कुछ भी ध्यान न देकर राधाजी उस अमूल्य दिव्य रथ पर जा बैठीं, जो रत्नों द्वारा निर्मित, एक सहस्र योजन का लम्बा और दश योजन का चौड़ा था ॥१३-१५॥ उसमें एक सहस्र चक्के तथा अनेक भाँति के चित्र लगे थे। वह अनेक प्रकार के चित्र-विचित्र और सूक्ष्म रेशमी वस्त्रों से सुसज्जित, अमूल्य रत्नों के बने दर्पणों से (चारों ओर) सुशोभित, उत्तम मणिसमूहों की माला और सहस्रों पुष्पों की मालाओं से सुरचित एवं उत्तम रत्नों के बने रमणीक कलशों वाले करोड़ों मन्दिरों से युक्त था। उस पर साथ में तीन लाख करोड़ प्रिय गोपियाँ जा बैठीं। हे प्रिये ! उसी सुमनोमालि नामक रथ पर बैठ कर उसने प्रस्थान कर दिया, जिसका कोलाहल सुनकर भगवान् श्री कृष्ण के पार्षद सुदामा ने गोपों के साथ दौड़ते हुए वहाँ पहुँचकर कृष्ण को सावधान कर दिया। अनन्तर भगवान् कृष्ण ने भयभीत होकर विरजा को (अपने पास से) पृथक् कर दिया और उसके प्रेम में मग्न होने के नाते स्वयं भी तिरोहित हो गये। सती विरजा ने समय जान कर अपने हृदय में क्रोधपूर्ण विचार तो किया, किन्तु राधिका जी के महाकोप से भयभीत होकर वह संभल न सकीं, उसी क्षण प्राण छोड़ दिया। ॥१६-२२॥ विरजा की सखियाँ भी भयाकुल एवं कातर भाव से उसी समय सती विरजा की ही शरण गयीं। किन्तु हे शैलकन्यके ! वह (विरजा) गोलोक में नदी रूप धारण कर प्रवाहित हो गई। गोलोक में करोड़ योजन की चौड़ी और करोड़ योजन की लम्बी होकर वह मनोहर परिखा (खाई) की भाँति उसे चारों ओर से घेरने लगी। हे सुन्दरि ! अन्य गोपियाँ, जो उसकी सखी थीं, छोटी-छोटी नदियाँ हो गयीं ॥२३--२५॥ प्रत्येक विश्व में प्रवाहित होने वाली समस्त नदियाँ उसी के ही अंश से उत्पन्न हैं ॥२६॥ भूतल पर स्थित ये सातों समुद्र विरजा के ही नन्दन (पुत्र) हैं। अनन्तर महाभाग एवं रास की अधिष्ठात्री देवी राधिका जी वहाँ आकर विरजा और कृष्ण को न देखकर पुनः अपने भवन को लौट गयीं।

जगाम कृष्णस्तां राधां गोपालैरष्टभिः सह। गोपीभिर्द्वारि युक्ताभिर्वारितोऽपि पुनः पुनः ॥२८॥
दृष्ट्वा कृष्णं च सा देवी भर्त्सयामास तं तदा। सुदामा भर्त्सयामास तां तथा कृष्णसंनिधौ ॥२९॥
क्रुद्धा शशाप सा देवी सुदामानं सुरेश्वरी । गच्छ त्वमासुरीं योनिं गच्छ दूरमतो द्रुतम् ॥३०॥
शशाप तां सुदामा च त्वमितो गच्छ भारतम् । भव गोपी गोपकन्या मुख्याभिः स्वाभिरेव च ॥३१॥
तत्र ते कृष्णविच्छेदो भविष्यति शतं समाः । तत्र भारावतरणं भगवांश्च करिष्यति ॥३२॥
इति शप्त्वा सुदामाऽसौ प्रणम्य जननीं हरिम्। साश्रुनेत्रो मोहयुक्तस्ततो गन्तुं समुद्यतः ॥३३॥
राधा जगाम तत्पश्चात्साश्रुनेत्राऽतिविह्वला। वत्स क्व यासीत्युच्चार्य पुत्रविच्छेदकातरा ॥३४॥
कृष्णस्तां बोधयामास विद्यया च कृपानिधिः । शीघ्रं संप्राप्स्यसि सुतं मा रुदस्त्वं वरानने ॥३५॥
स चासुरः शङ्खचूडो बभूव तुलसीपतिः । मच्छूलभिन्नकायेन गोलोकं वै जगाम सः ॥३६॥
राधा जगाम वाराहे गोकुलं भारतं सती । वृषभानोश्च वैश्यस्य सा च कन्या बभूव ह ॥३७॥
अयोनिसंभवा देवी वायुगर्भा कलावती । सुषुवे मायया वायुं सा तत्राऽऽविर्बभूव ह ॥३८॥
अतीते द्वादशाब्दे तु दृष्ट्वा तां नवयौवनाम् । सार्धं रायणवैश्येन तत्संबन्धं चकार सः ॥३९॥
छायां संस्थाप्य तद्गेहे साऽन्तर्धानमवाप ह । बभूव तस्य वैश्यस्य विवाहश्छायया सह ॥४०॥

पश्चात् भगवान् कृष्ण आठ गोपों के साथ राधिका जी के महल पहुँचे वहाँ दरवाजे पर द्वारपाल रूप में खड़ी रहने वाली गोपियों के बार-बार रोकने पर भी कृष्ण भीतर चले ही गये, किन्तु उन्हें देखते ही श्री राधिका जी डाँटने-फटकारने लगीं। उधर कृष्ण के साथ खड़े हुए सुदामा गोप ने भी राधा जी को कुछ कहा, जिससे क्रुद्ध होकर उस सुरेश्वरी ने सुदामा को शाप दिया कि—'यहाँ से दूर असुर योनि को शीघ्र प्राप्त हो'। ॥२७-३०॥ सुदामा ने भी उन्हें शाप दिया—'तुम यहाँ से भारतभूमि पर जाओ और वहाँ अपनी सखियों समेत गोप कन्या होने पर तुम्हें कृष्ण का सौ वर्ष का वियोग प्राप्त होगा। वहाँ भगवान् अवतरित होकर पृथ्वी का भार उतारेंगे' ॥३१-३२॥ इस प्रकार शाप देने के पश्चात् सुदामा, माता (राधिका) और भगवान् कृष्ण को प्रणाम कर मोहवश आँखों में आँसू भरकर जाने को तैयार हो गया ॥३३॥ उसके पीछे राधिका भी सजलनयन तथा अति व्याकुल होती हुई चलने लगीं। उस समय पुत्र-वियोग से कातर होकर 'हे वत्स! कहाँ जा रहे हो।' ऐसा कहने लगीं ॥३४॥ अनन्तर भगवान् कृपानिधान कृष्ण ने विद्या द्वारा उन्हें सचेत किया और कहा—'हे वरानने! रुदन मत करो! तुम्हारा पुत्र तुम्हें शीघ्र मिलेगा ॥३५॥ वही शंखचूड़ नामक असुर होकर तुलसी का पति हुआ, जो हमारे शूल द्वारा शरीर त्यागकर पुनः गोलोक चला गया' ॥३६॥ वाराहकल्प में श्री राधिका जी भारत के गोकुल गाँव में वृषभानु वैश्य (गोप) के यहाँ उनकी कन्या होकर अवतरित हुईं, जो अयोनिजा थीं। उनकी माता कलावती के गर्भ में केवल वायु स्थित था। जिस समय माया द्वारा वे वायु का जन्म दे रही थीं उसी बीच वे वहाँ पुत्री होकर प्रकट हो गईं ॥३७-३८॥ बारह वर्ष बीतने पर उनकी नयी युवावस्था देख कर किसी रायण नामक वैश्य के साथ विवाह सम्बन्ध कर दिया गया ॥३९॥ विवाह के समय राधा जी अपने पिता के घर अपनी छाया रखकर, जिससे उस वैश्य का विवाह हुआ था, स्वयं अन्तर्हित हो गईं ॥४०॥ चौदह वर्ष

गते चतुर्दशाब्दे तु कंसभीतेश्छलेन च । जगाम गोकुलं कृष्णः शिशुरूपी जगत्पतिः ॥४१॥
कृष्णमातुर्यशोदाया रायणस्तत्सहोदरः । गोलोके गोपकृष्णांशः संबन्धात्कृष्णमातुलः ॥४२॥
कृष्णेन सह राधायाः पुण्ये वृन्दावने वने । [1]विवाहं कारयामास विधिना जगतां विधिः ॥४३॥
स्वप्ने राधापदाम्भोजं नहि पश्यन्ति बल्लवाः । स्वयं राधा हरेः क्रोडे छाया रायणमन्दिरे ॥४४॥
षष्टिवर्षसहस्राणि तपस्तेपे पुरा विधिः । राधिकाचरणाम्भोजदर्शनार्थी च पुष्करे ॥४५॥
भारावतरणे भूमेर्भारते नन्दगोकुले । ददर्श तत्पदाम्भोजं तपसस्तत्फलेन च ॥४६॥
किंचित्कालं स वै कृष्णः पुण्ये वृन्दावने वने । रेमे गोलोकनाथश्च राधया सह भारते ॥४७॥
ततः सुदामशापेन विच्छेदश्च बभूव ह । तत्र भारावतरणं भूमेः कृष्णश्चकार सः ॥४८॥
शताब्दे समतीते तु तीर्थयात्राप्रसङ्गतः । ददर्श कृष्णं सा राधा स च तां च परस्परम् ॥४९॥
ततो जगाम गोलोकं राधया सह तत्त्ववित् । कलावती यशोदा च पर्यगाद्राधया सह ॥५०॥
वृषभानुश्च नन्दश्च ययौ गोलोकमुत्तमम् । सर्वे गोपाश्च गोप्यश्च ययुस्ता याः समागताः ॥५१॥

व्यतीत होने पर जगत्पति कृष्ण, जो उस समय शिशु रूप में थे, कंस के भय से कपट द्वारा गोकुल गाँव लाये गये ॥४१॥ भगवान् कृष्ण की माता यशोदा का वह रायण सहोदर (सगा भाई) है, जो गोलोक में कृष्ण का अंश और यहाँ के सम्बन्ध से उनका मामा है ॥४२॥ वृन्दावन नामक पवित्र वन में जगत् के रचयिता ब्रह्मा ने कृष्ण के साथ राधा का सविधि विवाह कराया था ॥४३॥ जिस राधा के चरणकमल को गोपगण स्वप्न में भी नहीं देख सकते थे, वहीं स्वयं राधा भगवान् श्रीकृष्ण के अंक में स्थित थीं और उनकी छाया रायण के भवन में विराजमान थीं ॥४४॥ पूर्वकाल में ब्रह्मा ने श्री राधिका जी के चरणकमल के दर्शनार्थ पुष्कर क्षेत्र में साठ सहस्र वर्ष तक तप किया था। इस कारण पृथ्वी का भार उतारने के लिए हुए कृष्णावतार में नन्द गोकुल गाँव में उन्हें उस तपस्या के फलस्वरूप उनके चरणकमल का दर्शन हुआ ॥४५-४६॥ भारत के पुण्य वृन्दावन में गोलोकाधीश्वर कृष्ण भगवान् ने राधा के साथ कुछ ही काल तक रमण किया। उसके उपरान्त सुदामा के शापवश उन दोनों का वियोग हो गया। उसी समय कृष्ण ने पृथ्वी का भार उतारा ॥४७-४८॥ सौ वर्ष व्यतीत होने के उपरान्त तीर्थ यात्रा के अवसर पर परस्पर राधा ने पुनः कृष्ण को देखा और कृष्ण ने राधा को ॥४९॥ अनन्तर तत्त्ववेत्ता श्रीकृष्ण श्री राधिका जी को साथ लेकर अपने गोलोक चले गये और राधा के साथ उनकी माता कलावती तथा (कृष्ण माता) यशोदा भी चली गयीं ॥५०॥ उस परमोत्तम गोलोक में वृषभानु, नन्द तथा सभी गोप-गोपियाँ जो वहाँ (गोलोक) से आयी थीं, चली गयीं ॥५१॥ हे पार्वती ! वहाँ साथ रहने के नाते छाया रूप में आये हुए गोप और गोपियों की मुक्ति हो गयी। वे (गोपियाँ) वहाँ (गोलोक में) भगवान् कृष्ण के साथ रमण

१क. विहारं का° ।

छायागोपाश्च गोप्यश्च प्रापुर्मुक्तिं च संनिधौ । रेमिरे ताश्च तत्रैव सार्धं कृष्णेन पार्वति ॥५२॥
षट्त्रिंशल्लक्षकोटयश्च गोप्यो गोपाश्च तत्समाः । गोलोकं प्रययुर्मुक्ताः सार्धं कृष्णेन राधया ॥५३॥
द्रोणः प्रजापतिर्नन्दो यशोदा तत्प्रिया धरा । संप्राप पूर्वतपसा परमात्मानमीश्वरम् ॥५४॥
वसुदेवः कश्यपश्च देवकी चादितिः सती । देवमाता देवपिता प्रतिकल्पे स्वभावतः ॥५५॥
पितृणां मानसी कन्या राधामाता कलावती । वसुदामाऽपि गोलोकाद् वृषभानुः समाययौ ॥५६॥
इत्येवं कथितं दुर्गे राधिकाख्यानमुत्तमम् । संपत्करं पापहरं पुत्रपौत्रविवर्धनम् ॥५७॥
श्रीकृष्णश्च द्विधारूपो द्विभुजश्च चतुर्भुजः । चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे गोलोके द्विभुजः स्वयम् ॥५८॥
चतुर्भुजस्य पत्नी च महालक्ष्मीः सरस्वती । गङ्गा च तुलसी चैव देव्यो नारायणप्रियाः ॥५९॥
श्रीकृष्णपत्नी सा राधा तदर्धाङ्गसमुद्भवा । तेजसा वयसा साध्वी रूपेण च गुणेन च ॥६०॥
आदौ राधां समुच्चार्य पश्चात्कृष्णं वदेद्बुधः । व्यतिक्रमे ब्रह्महत्यां लभते नात्र संशयः ॥६१॥
कार्तिके पूर्णिमायां च गोलोके रासमण्डले । चकार पूजां राधायास्तत्संबन्धिमहोत्सवम् ॥६२॥
[1]सद्रत्नगुटिकायाश्च कृत्वा तत्कवचं हरिः । दधार कण्ठे बाहौ च दक्षिणे सह गोपकैः ॥६३॥

करने लगीं । छत्तीस लाख करोड़ गोपियाँ और उतने ही गोपगण कृष्ण और राधा के साथ मुक्त होकर गोलोक गये थे ॥५२-५३॥ उनमें से प्रजापति द्रोण नन्द हुए थे और उनकी पत्नी धरा यशोदा हुई थीं, उन्होंने अपनी पूर्व तपस्या द्वारा परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण को पुत्र रूप में प्राप्त किया था ॥५४॥ कश्यप जी वसुदेव हुए थे और उनकी पत्नी अदिति देवकी हुई थीं । प्रत्येक कल्प में देवों की माता और पिता स्वभावानुसार जन्म-धारण किया करते हैं ॥५५॥ पितरों की मानसी कन्या राधा की माता कलावती हुई थीं और गोलोक से आकर वसुदामा वृषभानु हुए थे ॥५६॥ हे दुर्गे! इस प्रकार मैंने तुम्हें राधिका जी का परमोत्तम आख्यान सुना दिया, जो सम्पत्तिप्रद, पापहारी और पुत्र-पौत्र की अति वृद्धि करने वाला है ॥५७॥ भगवान् श्रीकृष्ण ने दो भुजाओं वाला और चार भुजाओं वाला, दो रूप धारण किये जिसमें चार भुजाओं से वे वैकुण्ठ में रहते हैं और दो-भुजाओं से स्वयं गोलोक में ॥५८॥ चार भुजा वाले भगवान् की महालक्ष्मी, सरस्वती, गंगा और तुलसी इतनी पत्नियां हैं और ये देवियाँ भगवान् को प्रिय हैं ॥५९॥ और भगवान् श्री कृष्ण की पत्नी उनके आधे अंग से उत्पन्न होने वाली केवल सती राधिका जी हैं, जो तेज, अवस्था, रूप और गुण में उन्हीं के समान हैं ॥६०॥ इस कारण विद्वान् को चाहिये कि पहले राधा कहकर पश्चात् कृष्ण कहें अन्यथा व्यतिक्रम (उल्टा) होने पर ब्रह्महत्या का भागी होना पड़ता है इसमें संशय नहीं ॥६१॥ कार्तिक मास की पूर्णिमा के दिन गोलोक के रासमण्डल में भगवान् श्रीकृष्ण ने राधाजी की पूजा और तत्सम्बन्धी महोत्सव किया ॥६२॥ भगवान् ने उत्तम रत्नों की गुटिका (यंत्र की तावीज) में राधा कवच रख कर गोपों के साथ अपने कण्ठ और दाहिनी भुजा में धारण किया ॥६३॥ भक्तिपूर्वक ध्यान करते हुए उन्होंने उनके इस स्तोत्र का निर्माण किया। भगवान् मधुसूदन ने राधा जी का चबाया

१ख. 'घुटि'।

कृत्वा ध्यानं च पूजां च स्तोत्रमेतच्चकार सः । राधार्चिततताम्बूलं चखाद मधुसूदनः ॥६४॥
राधा पूज्या च कृष्णस्य तत्पूज्यो भगवान्प्रभुः । परस्पराभीष्टदेवे भेदकृन्नरकं व्रजेत् ॥६५॥
द्वितीये पूजिता सा च धर्मेण ब्रह्मणा मया । अनन्तवासुकिभ्यां च रविणा शशिना पुरा ॥६६॥
महेन्द्रेण च रुद्रैश्च मनुना मानवेन च । सुरेन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च सर्वविश्वैश्च पूजिता ॥६७॥
तृतीये पूजिता सा च सप्तद्वीपेश्वरेण च । भारते च सुयज्ञेन पुत्रैर्मित्रैर्मुदाऽऽन्वितैः ॥६८॥
ब्राह्मणेनाभिशप्तेन दैवदोषेण भूभृता । व्याधिग्रस्तेन हस्तेन दुःखिना च विदूयता ॥६९॥
संप्राप राज्यं भ्रष्टश्रीः स च राधावरेण च । स्तोत्रेण ब्रह्मदत्तेन स्तुत्वा च परमेश्वरीम् ॥७०॥
[1]अभेद्यं कवचं तस्याः कण्ठे बाहौ दधार सः । ध्यात्वा चकार पूजां च पुष्करे शतवत्सरान् ॥७१॥
अन्ते जगाम गोलोकं रत्नयानेन भूमिपः । इति ते कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥७२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० हरगौरिसं० राधोपा० राधायाः
सुदामशापादिकथनं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥४९॥

हुआ पान खाया ॥६४॥ इस प्रकार राधा भगवान् कृष्ण की पूज्या हैं और राधा के श्रीकृष्ण । अतः परस्पर अभीष्ट देव में भेद बुद्धि रखनेवाला मनुष्य नरकगामी होता है ॥६५॥ पूर्वकाल में दूसरे उनकी पूजा धर्म, ब्रह्मा, मैंने, अनन्तनाग, वासुकी नाग, सूर्य और चन्द्रमा, महेन्द्र, ग्यारहों रुद्रगण, मानव मनु, सुरेन्द्रों और मुनीन्द्रों ने की, इस भाँति वे समस्त विश्व द्वारा पूजित हुईं ॥६६-६७॥ तीसरे उनकी पूजा भारत के सप्तद्वीपाधीश्वर सुयज्ञ ने अपने पुत्रों और मित्रों समेत सहर्ष सम्पन्न किया ॥६८॥ दैव (भाग्य) दोषवश राजा को ब्राह्मण द्वारा शाप हो गया, जिससे उनके हाथ में रोग उत्पन्न हो गया । उस रोगपीड़ित हाथ द्वारा दुःख का अनुभव करते हुए राजा ने ब्रह्मा के दिये हुए स्तोत्र द्वारा परमेश्वरी राधा जी की आराधना की, जिससे उनके वरदान द्वारा उसे पुनः भ्रष्ट (नष्ट) राजलक्ष्मी प्राप्त हो गयी ॥६९-७०॥ फिर राधा जी के अभेद्य कवच को अपने कण्ठ तथा बाहु में धारण कर पुष्कर क्षेत्र में सौ वर्ष तक ध्यानपूर्वक उनकी पूजा की और अन्त में वह राजा रत्नखचित विमान द्वारा गोलोक चला गया। इस प्रकार मैंने तुम्हें सभी कुछ सुना दिया है । अब पुनः क्या सुनना चाहते हो ?॥७१-७२॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारदनारायणसंवादविषयक हरगौरीसंवाद के राधोपाख्यान में राधा को सुदामा द्वारा शापादि कथन नामक उन्चासवाँ अध्याय समाप्त ॥४९॥

१क. आद्यं च क॰ ।

अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पार्वत्युवाच

को वा सुयज्ञो नृपतिः कुत्र वंशे बभूव सः । कथं विप्राभिशप्तश्च कथं संप्राप राधिकाम् ।।१।।
सर्वात्मनश्च कृष्णस्य पत्नीं श्रीकृष्णपूजिताम् । कथं विण्मूत्रधारी च सिषेवे परमेश्वरीम् ।।२।।
षष्टिवर्षसहस्राणि तपस्तेपे पुरा विधिः । यत्पादाम्भोजरेणूनां लब्धये पुष्करे विभुः ।।३।।
कथं ददर्श तां देवीं महालक्ष्मीं पुरा[1] सतीम् । दुर्दर्शामपि युष्माकं दृश्या साऽभूत्कथं नृणाम् ।।४।।
कथं त्रिजगतां धाता तस्मै तत्कवचं ददौ । ध्यानं पूजाविधिं स्तोत्रं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ।।५।।

महादेव उवाच

स्वायंभुवो मनुर्देवि मनूनामादिरेव च । ब्रह्मात्मजस्तपस्वी च शतरूपापतिः प्रभुः ।।६।।
उत्तानपादस्तत्पुत्रस्तत्पुत्रो ध्रुव एव च । ध्रुवस्य कीर्तिविख्याता त्रैलोक्ये शैलकन्यके ।।७।।
उत्कलस्तस्य पुत्रश्च नारायणपरायणः । सहस्रं राजसूयानां पुष्करे स चकार ह ।।८।।
सर्वाणि रत्नपात्राणि ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा । अमूल्यरत्नराशीनां सहस्रं तेजसाऽऽवृतम् ।।
ब्राह्मणेभ्यो ददौ राजा यज्ञान्ते सुमहोत्सवे । ।।९।।

अध्याय ५०

सुयज्ञ की कथा

पार्वती बोलीं—सुयज्ञ राजा कौन थे, वे किस वंश में उत्पन्न हुए थे एवं उन्हें ब्राह्मणशाप कैसे प्राप्त हुआ और उन्होंने राधिका जी को कैसे प्राप्त किया, जो समस्त के आत्मा भगवान् श्रीकृष्ण की पत्नी एवं उनके द्वारा पूजित हुई हैं। उस परमेश्वरी की सेवा उस विष्ठा-मूत्रधारी ने कैसे की ? ।।१-२।। जिसके चरणकमल की धूलि प्राप्त करने के लिए समर्थ ब्रह्मा ने पूर्वकाल में साठ सहस्र वर्ष तप किया था, उस महालक्ष्मी सती देवी को उसने कैसे देख लिया ? जो आप लोगों को भी अति कठिनाई से दिखायी देती हैं, उन्हें मनुष्य कैसे देख सका ? और तीनों लोकों के विधाता ने राधा जी का कवच, ध्यान, पूजा-विधान और स्तोत्र उसे कैसे दे दिया ? यह मुझे बताने की कृपा करें।।३-५।।

श्री महादेव बोले—मनुवंश में सर्वप्रथम स्वायम्भुव मनु ने जन्म ग्रहण किया, जो ब्रह्मा के सुपुत्र, तपस्वी, समर्थ एवं शतरूपा के पति थे ।।६।। उनके पुत्र राजा उत्तानपाद और उनके पुत्र ध्रुव हुए। हे शैलकन्यके ! ध्रुव की कीर्ति विख्यात है। उसका उत्कल नामक पुत्र भगवान् नारायण में सतत लीन रहा करता था। उन्होंने पुष्कर क्षेत्र में सहस्र राजसूय नामक यज्ञ सुसम्पन्न किया ।।७-८।। उसमें उन्होंने ब्राह्मणों को समस्त रत्नों के पात्र और अमूल्य रत्नों की सहस्र राशियाँ, जो अत्यन्त प्रकाशपूर्ण (देदीप्यमान) थीं, सहर्ष प्रदान कीं ।।९।।

१क. परां।

दृष्ट्वा तच्छोभनं यज्ञं विधाता जगतां प्रिये। सुयज्ञं नाम नृपतिं चकार सुरसंसदि ॥१०॥
स च राजा सुयज्ञश्च मनुवंशसमुद्भवः। अन्नदाता रत्नदाता दाता वै सर्वसंपदाम् ॥११॥
दशलक्षं गवां चैव रत्नशृङ्गपरिच्छदम्। नित्यं ददौ स विप्रेभ्यो मुदा युक्तः सदक्षिणम् ॥१२॥
गवां द्वादशलक्षाणां ददौ नित्यं मुदाऽन्वितः। सुपक्वानि च मांसानि ब्राह्मणेभ्यश्च पार्वति ॥१३॥
षट्कोटीब्राह्मणानां च भोजयामास नित्यशः। चोष्यैश्चव्यैर्लेह्यपेयै रतितृप्तं दिने दिने ॥१४॥
विप्रलक्षं सूपकारं भोजयामास तत्परम्। पूर्णमन्नं च सूपाक्तं सगव्यं मांसवर्जितम् ॥१५॥
विप्रा भोजनकाले च मनुवंशसमुद्भवम्। न तुष्टुवुः सुयज्ञं च तुष्टुवुस्तत्पितॄंश्च ते ॥१६॥
दिने सुयज्ञयज्ञान्ते षट्त्रिंशल्लक्षकोटयः। चक्रुः सुभोजनं विप्राश्चातितृप्ताश्च सुन्दरि ॥१७॥
गृहीतानि च रत्नानि स्वगृहं वोढुमक्षमाः। वृषलेभ्यो ददुः किंचित्किंचित्पथि च तत्यजुः ॥१८॥
विप्राणां भोजनान्ते च विप्रान्येभ्यो ददौ नृपः। तथाप्युर्वरितं तत्र चान्नराशिसहस्रकम् ॥१९॥
कृत्वा यज्ञं महाबाहुः समुवास स्वसंसदि। रत्नेन्द्रसारसंक्लृप्तच्छत्रकोटिसमन्विते ॥२०॥
रत्नसिंहासने रम्ये पट्टवस्त्रैः सुसंस्कृते। चन्दनादिसुसंसृष्टे रम्ये चन्दनपल्लवैः ॥२१॥
शाखायुक्तैः पूर्णकुम्भै रम्भावृक्षैश्च शोभिते। चन्दनागुरुकस्तूरीघनसिन्दूरसंस्कृते ॥२२॥
वसुवासवचन्द्रेन्द्ररुद्रादित्यसमन्विते। मुनिनारदमन्वादिब्रह्मविष्णुशिवान्विते ॥२३॥

हे प्रिये! उस महोत्सव में यज्ञ की समाप्ति के अवसर पर ब्राह्मणों को उस प्रकार का दान देते हुए राजा को तथा उसके सुशोभित यज्ञ को देखकर जगत् के विधाता ब्रह्मा ने देवसभा में उसका 'सुयज्ञ' नामकरण किया, जो मनुवंश में उत्पन्न हुआ था ॥१०½॥ वह नित्य अन्नदान, रत्नदान, समस्त सम्पत्ति का दान तथा लाख गौओं का दान, जिनकी सींगे रत्नों से सुशोभित रहती थीं, दक्षिणा समेत ब्राह्मणों को सहर्ष अर्पित करता था। बारह लाख गोदान नित्य सहर्ष सम्पन्न करता था। हे पार्वती! पके मांस ब्राह्मणों को अर्पित करता था ॥११-१३॥ नित्य छह करोड़ ब्राह्मणों को भोजन कराता था जो चूसने, चबाने, स्वाद लेने और पीने योग्य पदार्थों से नित्य तृप्त होते थे। उसके यहाँ एक लाख ब्राह्मण भण्डारी भोजन करते थे ॥१४½॥ गौ के घी, दूध और दही से अतिपूर्ण भोजन रहता था ॥१५॥ भोजन के समय ब्राह्मण लोग मनुवंश में उत्पन्न उस सुयज्ञ की प्रशंसा न करके उसके पितरों की प्रशंसा करते थे। यज्ञ की समाप्ति के दिन सुयज्ञ ने छत्तीस लाख करोड़ ब्राह्मणों को भोजन कराया। हे सुन्दरि! उत्तम भोजन से तृप्त हुए उन ब्राह्मणों को इतना रत्न दान दिया, जो उसे अपने घर ले जाने में वे सभी असमर्थ हो गये—उनमें से कुछ लोगों ने शूद्रों को कुछ दे दिया और कुछ रास्ते में छोड़ दिया। उन ब्राह्मणों के अतिरिक्त और अन्य ब्राह्मणों को उसने भोजन कराया। तिस पर भी सहस्रों अन्न की राशियाँ अछूती पड़ी रह गईं ॥१६-१९॥ यज्ञ के उपरान्त उस महाबाहु ने अपनी सभा में उस रत्नसिंहासन के ऊपर, जो उत्तम रत्नों के सार भाग से विभूषित, कोटि छत्रों से युक्त, रमणीक, रेशमी वस्त्रों से सुसज्जित, चन्दनों से आर्द्र (गीला), शाखा (डाली) युक्त चन्दन के पल्लवों, पूर्ण कलशों और केले के वृक्षों से सुशोभित एवं चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कपूर तथा सिन्दूर से विभूषित था, पदार्पण किया ॥२०-२२॥ सिंहासन के समीप वसुगण, इन्द्र, चन्द्र, रुद्रगण और

एतस्मिन्नन्तरे तत्र विप्र एकः समाययौ। रूक्षो मलिनवासाश्च शुष्ककण्ठौष्टतालुकः॥२४॥
रत्नसिंहासनस्थं च माल्यचन्दनचर्चितम्। राजानमाशिषं चक्रे सस्मितः संपुटाञ्जलिः॥२५॥
प्रणनाम नृपस्तं च नोत्तस्थौ किंचिदेव हि। सभासदश्च नोत्तस्थुर्जहसुः स्वल्पमेव च॥२६॥
मुनिभ्योऽपि च देवेभ्यो नमस्कृत्य द्विजोत्तमः। शशाप नृपतिं क्रोधात्तत्रातिष्ठन्निरङ्कुशः॥२७॥
गच्छ दूरमतो राज्याद्भ्रष्टश्रीर्भव पामर। भवाचिरं गलत्कुष्ठी बुद्धिहीनोऽप्युपद्रुतः॥२८॥
इत्युक्त्वा कम्पितः क्रोधात्सभास्थाञ्छप्तुमुद्यतः। ये तत्र जहसुः सर्वे समुत्तस्थुः सभासदः॥२९॥
सर्वे चक्रुः प्रणामं ते क्रोधं तत्याज वाडवः ॥३०॥

प्रणम्याऽऽगत्य राजा तं रुरोद भयकातरः। निःससार सभामध्याद्धृदयेन विदूयता॥३१॥
ब्राह्मणो गूढरूपी च प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा। तत्पश्चान्मुनयः सर्वे प्रययुर्भयकातराः॥३२॥
हे विप्र तिष्ठ तिष्ठेति समुच्चार्य पुनः पुनः। पुलहश्च पुलस्त्यश्च प्रचेता भृगुरङ्गिराः॥३३॥
मरीचिः कश्यपश्चैव वसिष्ठः क्रतुरेव च। शुक्रो बृहस्पतिश्चैव दुर्वासा लोमशस्तथा॥३४॥
गौतमश्च कणादश्च कण्वः कात्यायनः कठः। पाणिनिर्जाजलिश्चैव ऋष्यशृङ्गो विभाण्डकः॥३५॥
तैत्तिरिश्चाऽऽप्यापिशलिर्मार्कण्डेयो महातपाः। सनकश्च सनन्दश्च वोढुः पैलः सनातनः॥३६॥
सनत्कुमारो भगवान्नरनारायणावृषी। पराशरो जरत्कारुः संवर्तः करभस्तथा॥३७॥

सूर्य तथा मुनि नारद, मनु आदि, ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव विराजमान थे। उसी बीच वहाँ एक ब्राह्मण आया॥२३॥ वह रूखा तथा मैले-कुचैले वस्त्र पहने था। उसके कण्ठ, ओंठ और तालू सूख गये थे॥२४॥ उस रत्न-सिंहासन पर विभूषित एवं मालाओं और चन्दनों से चर्चित राजा को उस ब्राह्मण ने हाथ जोड़कर तथा मुस्कराकर आशीर्वाद दिया, किन्तु राजा ने न उस ब्राह्मण को प्रणाम किया और न वह स्वागतार्थ आसन से कुछ उठा ही। वहां के सभासद गण भी आसन से नहीं उठे, अपितु कुछ हास्य (मजाक) ही करने लगे॥२५-२६॥ वह श्रेष्ठ ब्राह्मण मुनियों और देवताओं को नमस्कार करने के अनन्तर क्रुद्ध होने के कारण वहाँ निर्भय खड़ा रहा और उसने राजा को शाप दे दिया—'हे पामर (नीच)! तुम्हारी श्री नष्ट हो जाय, अतः राज्य से तुम दूर चले जाओ, तुम्हें शीघ्र गलत्कुष्ठ का रोग हो जाय, तुम बुद्धिरहित और उपद्रवी होगे, इतना कहकर क्रोध से काँपता हुआ वह ब्राह्मण सभासदों को भी शाप देने के लिए तैयार हो गया। अनन्तर जो जहाँ हँस रहे थे, वे सभी सभासद लोग वहाँ से उठकर उसे प्रणाम करने लगे। (यह देख) वह ब्राह्मण भी क्रोधरहित हो गया॥२७-३०॥ भय से कातर होकर राजा ने भी प्रणाम किया और वहाँ आकर रुदन करने लगा। उपरान्त हार्दिक वेदना का अनुभव करते हुए वह ब्राह्मण सभा-मध्य से निकल गया। उस ब्राह्मण का अतिगूढ़ रूप था क्योंकि ब्रह्मतेज से वह देदीप्यमान हो रहा था। उसके पश्चात् सभी मुनिगण भय से दुःखी होकर —'हे ब्राह्मण! ठहरो-ठहरो! ऐसा बार-बार कहते हुए उसके पीछे-पीछे जाने लगे। पुलह, पुलस्त्य, प्रचेता, भृगु, अंगिरा, मरीचि, कश्यप, वशिष्ठ, क्रतु, शुक्र, बृहस्पति, दुर्वासा, लोमश, गौतम, कणाद, कण्व, कात्यायन, कठ, पाणिनि, जाजलि, शृंगी ऋषि, विभाण्डक, तैत्तिरि, आपिशलि, महातपस्वी मार्कण्डेय, सनक, सनन्द, वोढु, पैल, सनातन, सनत्कुमार, भगवान् नर-नारायण ऋषि, पराशर, जरत्कारु, संवर्त्त,

भरद्वाजश्च वाल्मीकिरौर्वश्च च्यवनस्तथा । अगस्त्योऽत्रिरुतथ्यश्च संकर्ताऽऽस्तीक आसुरिः ॥३८॥
शिलालिर्लाङ्गलिश्चैव शाकल्यः शाकटायनः । गर्गो वत्सः पञ्चशिखो जमदग्निश्च देवलः ॥३९॥
जैगीषव्यो वामदेवो बालखिल्यादयस्तथा । शक्तिर्दक्षः कर्दमश्च प्रस्कन्नः कपिलस्तथा ॥४०॥
विश्वामित्रश्च कौत्सश्चाप्यृचीकोऽप्यघमर्षणः । एते चान्ये च मुनयः पितरोऽग्निर्हरिप्रियाः[1] ॥४१॥
दिक्पाला देवताः सर्वा विप्रं पश्चात्समाययुः । ब्राह्मणं बोधयामासुर्वासयामासुरीश्वरि ॥४२॥
समूचुस्तं क्रमेणैव नीतिं नीतिविशारदाः ॥४३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० हरगौरीसं० राधोपा० सुयज्ञोपाख्यानं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

अथैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पार्वत्युवाच

किमूचुर्ब्राह्मणं ब्रह्मन्ब्राह्मणा ब्रह्मणः सुताः । नीतिज्ञा नीतिवचनं तन्मां व्याख्यातुमर्हसि ॥१॥

महादेव उवाच

संतोष्य तं ब्राह्मणं च स्तवेन विनयेन च । क्रमेण वक्तुमारेभे मुनिसंघो वरानने ॥२॥

करभ, भरद्वाज, वाल्मीकि, और्व, च्यवन, अगस्त्य, अत्रि, उतथ्य, संकर्ता, आस्तीक, आसुरि, शिलालि, लांगलि, शाकल्य, शाकटायन, गर्ग, वत्स, पंचशिख, जमदग्नि, देवल, जैगीषव्य, वामदेव और बालखिल्यादि, शक्ति, दक्ष, कर्दमप्रस्कन्न, कपिल, विश्वामित्र, कौत्स, ऋचीक एवं अघमर्षण तथा इनके अतिरिक्त अन्य मुनिवृन्द, पितरगण, अग्नि, हरिप्रिया, दिक्पाल और सभी देवगण भी वहाँ आये । हे ईश्वरि! वे सब, ब्राह्मण को रोककर समझाने लगे। वे नीति-कुशल लोग क्रमशः नीति की बात कहने लगे ॥३१-४३॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायणसंवादविषयक हरगौरी-संवाद के राधोपाख्यान में सुयज्ञोपाख्यान-कथन नामक पचासवाँ अध्याय समाप्त ॥५०॥

अध्याय ५१

ऋषियों द्वारा पाप एवं पाप-फल का वर्णन

पार्वती बोलीं—हे ब्रह्मन् ! ब्रह्मा के पुत्र उन ब्राह्मणों ने, जो नीति के ज्ञाता थे, उस ब्राह्मण से कौनसी नीति की बातें कही थीं, मुझे बताने की कृपा करें ॥१॥

महादेव बोले—हे वरानने ! उस मुनिवृन्द ने क्रमशः अनुनय-विनयपूर्वक उस ब्राह्मण को संतुष्ट करते हुए (नीति की बातें) कहना आरम्भ किया ॥२॥

---

[1] क. °हविःप्रियाः ।

सनत्कुमार उवाच

त्वत्पश्चादागता लक्ष्मीः कीर्तिः सत्त्वं यशस्तथा । सुशीलं च महैश्वर्यं पितरोऽग्निः सुरास्तथा ॥३॥
आगता नृपगेहेभ्यः कृत्वा भ्रष्टश्रियं नृपम् । भव तुष्टो द्विजश्रेष्ठ चाऽऽशुतोषश्च वाडवः ॥४॥
ब्राह्मणानां तु हृदयं कोमलं नवनीतवत् । शुद्धं सुनिर्मलं चैव मार्जितं तपसा मुने ॥५॥
क्षमस्वाऽऽगच्छ विप्रेन्द्र शुद्धं कुरु नृपालयम् । आशिषं कुरु तस्मै त्वं पवित्रपदरेणुना ॥६॥

भृगुरुवाच

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते । पितरस्तस्य देवाश्च वह्निश्चैव तथैव च ॥७॥
निराशाः प्रतिगच्छन्ति चातिथेरप्रतिग्रहात् । क्षमस्वाऽऽगच्छ विप्रेन्द्र शुद्धं कुरु नृपालयम् ॥८॥
स्त्रीघ्नैर्गोघ्नैः कृतघ्नैश्च ब्रह्मघ्नैर्गुरुतल्पगैः । तुल्यदोषो भवत्येतैर्यस्यातिथिरनर्चितः ॥९॥

पुलस्त्य उवाच

पश्यन्ति ये वक्रदृष्ट्या चातिथिं गृहमागतम् । दत्त्वा स्वपापं तस्मै तत्पुण्यमादाय गच्छति ॥१०॥
क्षमस्व नृपदोषं च गच्छ वत्स यथासुखम् । राजा स्वकर्मदोषेण नोत्तस्थौ तत्क्षमां कुरु ॥११॥

सनत्कुमार बोले—तुम्हारे पीछे ही लक्ष्मी, कीर्ति, सत्त्व (बल), यश, सुशील, महान् ऐश्वर्य, पितरगण और अग्नि समेत सभी देवता लोग राजा को श्री (राजलक्ष्मी) हीन कर उसके घर से चले आये। हे द्विजश्रेष्ठ! अब प्रसन्न हो जाओ, क्योंकि ब्राह्मण आशुतोष (शीघ्र प्रसन्न) होते हैं। हे मुने! ब्राह्मणों का हृदय नवनीत (मक्खन) की भाँति कोमल होता है और तप द्वारा मार्जन (सफाई) करने के नाते शुद्ध एवं अति निर्मल होता है॥३-५॥ अतः हे विप्रेन्द्र! क्षमा करो और आकर राजा का घर चरणरेणु (धूलि) द्वारा शुद्ध करते हुए उसे आशीर्वाद प्रदान करो॥६॥

भृगु बोले—अतिथि (अभ्यागत) जिसके घर से निराश होकर लौट जाते हैं, उसके पितरगण, देवगण और अग्नि ये सभी उस अतिथि के प्रतिग्रह (दान-भिक्षा) न लेने के कारण उस घर से निराश होकर चले जाते हैं। अतः हे विप्रेन्द्र! क्षमा करो! और चल कर राजा का घर शुद्ध करो, क्योंकि जिसके यहाँ अतिथि की पूजा नहीं होती है, उसे स्त्रीहत्या, गोहत्या, कृतघ्नता, ब्रह्महत्या और गुरुपत्नीगामित्व के समान दोष लगता है॥७-९॥

पुलस्त्य बोले—घर आये हुए अभ्यागत को जो टेढ़ी आँख से देखता है, वह अतिथि उसे अपना समस्त पाप देकर और उसका पुण्य लेकर चला जाता है॥१०॥ अतः हे वत्स! राजा का यह दोष क्षमा करो, सुखपूर्वक जाओ, राजा अपने कर्मदोषवश (स्वागतार्थ) नहीं उठ सके, उसे क्षमा करो॥११॥

पुलह उवाच

राजश्रिया विद्यया वा ब्राह्मणं योऽवमन्यते । विप्रस्त्रिसंध्यहीनो यः श्रीहीनः क्षत्रियो भवेत् ॥१२॥
एकादशीविहीनश्च विष्णुनैवेद्यवञ्चितः । क्षमस्वाऽऽगच्छ विप्रेन्द्र शुद्धं कुरु नृपालयम् ॥१३॥

ऋतुरुवाच

ब्राह्मणः क्षत्रियो वाऽपि वैश्यो वा शूद्र एव च । दीक्षाहीनो भवेत्सोऽपि ब्राह्मणं योऽवमन्यते ॥१४॥
धनहीनः पुत्रहीनो भार्याहीनो भवेद्ध्रुवम् । क्षमस्वाऽऽगच्छ भगवञ्छुद्धं कुरु नृपालयम् ॥१५॥

अङ्गिरा उवाच

ज्ञानवान्ब्राह्मणो भूत्वा ब्राह्मणं योऽवमन्यते । वृषवाहो भवेत्सोऽपि भारते सप्तजन्मसु ॥१६॥

मरीचिरुवाच

पुण्यक्षेत्रे भारते च देवं च ब्राह्मणं गुरुम् । विष्णुभक्तिविहीनश्च स भवेद्योऽवमन्यते ॥१७॥

कश्यप उवाच

वैष्णवं ब्राह्मणं दृष्ट्वा यो हसत्यवमन्यते । विष्णुमन्त्रविहीनश्च तत्पूजाविरतो भवेत् ॥१८॥

प्रचेता उवाच

अतिथिं ब्राह्मणं दृष्ट्वा नाभ्युत्थानं करोति यः । पितृमातृभक्तिहीनः स भवेद्भारते भुवि ॥१९।

पुलह बोले—जो क्षत्रिय या ब्राह्मण राजलक्ष्मी अथवा विद्या द्वारा किसी ब्राह्मण का अनादर करता है, वह क्षत्रिय श्रीहीन होता और ब्राह्मण तीनों कालकी संध्या (कर्म) से हीन, एकादशीव्रतविहीन एवं भगवान् विष्णु के नैवेद्य से वञ्चित हो जाता है। अतः हे विप्रेन्द्र! क्षमा करो, आओ राजा का घर पवित्र करो॥१२-१३॥

ऋतु बोले—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र, जो कोई ब्राह्मण का अपमान करता है, वह दीक्षाहीन, धनरहित, पुत्रहीन और निश्चित स्त्रीहीन हो जाता है। अतः हे भगवन्! क्षमा करो और चलकर राजा का गृह शुद्ध करो। ॥१४-१५॥

अंगिरा बोले—ब्राह्मण ज्ञानी होकर यदि किसी ब्राह्मण का अपमान करता है, वह भारत में सात जन्मों तक 'वृषवाह' (बैल द्वारा किसी भाँति जीविका चलाने वाला) होता है॥१६॥

मरीचि बोले—इस पुण्य प्रदेश भारत में जो देवता, ब्राह्मण तथा गुरु का अपमान करता है, वह भगवान् विष्णु की भक्ति से सदा रहित हो जाता है॥१७॥

कश्यप बोले—जो वैष्णव ब्राह्मण को देखकर हँसता है और उसका अपमान करता है वह भगवान् विष्णु के मन्त्र और उनकी पूजा से विरत हो जाता है॥१८॥

प्रचेता बोले—ब्राह्मण अभ्यागत को देखकर जो (आसन से) उठता नहीं है, वह भारत-भूतल पर माता-पिता

प्राप्नोति [1]कौञ्जरीं योनिं स मूढः सप्तजन्मसु। शीघ्रं गच्छ द्विजश्रेष्ठ राज्ञे देह्याशिषः शुभाः ॥२०॥

दुर्वासा उवाच

गुरुं वा ब्राह्मणं वाऽपि देवताप्रतिमामपि। दृष्ट्वा शीघ्रं न प्रणमेत्स भवेत्सूकरो भुवि ॥२१॥
मिथ्यासाक्षी च भवति तथा विश्वासघातकः। क्षमस्व सर्वमस्माकमातिथ्यग्रहणं कुरु ॥२२॥

राजोवाच

छलेन कथितो धर्मो युष्माभिर्मुनिपुंगवैः। सर्वं कृत्वा च विस्पष्टं मां मूढं बोधयन्त्वहो ॥२३॥
स्त्रीघ्नगोघ्नकृतघ्नानां गुरुस्त्रीगामिनां तथा। ब्रह्मघ्नानां च को दोषो ब्रूत मां योगिनां वराः ॥२४॥

वसिष्ठ उवाच

कामतो गोवधे राजन्वर्षं तीर्थं भ्रमेन्नरः। यवयावकभोजी च करेण च जलं पिबेत् ॥२५॥
तदा धेनुशतं दिव्यं ब्राह्मणेभ्यः सदक्षिणम्। दत्त्वा मुञ्चति पापाच्च भोजयित्वा शतं द्विजान् ॥२६॥
प्रायश्चित्ते तु वै चीर्णे सर्वपापान्न मुच्यते। पापावशेषाद्भवति दुःखी चाण्डाल एव च ॥२७॥
आतिदेशिकहत्यायां तदर्धं फलमश्नुते। प्रायश्चित्तानुकल्पेन सर्वपापान्न मुच्यते ॥२८॥

की भक्ति से विहीन होता है ॥१९॥ और वह मूर्ख सात जन्मों तक हाथी की योनि में उत्पन्न होता है। हे द्विजश्रेष्ठ ! शीघ्र चलकर राजा को शुभाशिष प्रदान करो ॥२०॥

दुर्वासा बोले—गुरु, ब्राह्मण और देवता की प्रतिमा देखकर जो सहसा प्रणाम नहीं करता है, वह पृथिवी पर सूकर होकर उत्पन्न होता है, तथा झूठा गवाह और विश्वासघाती होता है। अतः हम लोगों का सब (अपराध) क्षमा करके (राजा द्वारा की गयी) अतिथि-सेवा स्वीकार करो ॥२१-२२॥

राजा बोले—आप मुनीन्द्रों ने धर्म का प्रतिपादन छल से किया है, अतः अत्यन्त स्पष्ट रूप से मुझ मूर्ख को बोध कराने की कृपा कीजिये ॥२३॥ हे श्रेष्ठ योगिवृन्द ! स्त्रीहत्या एवं गोहत्या करने वाले, कृतघ्न, गुरु-स्त्री के साथ भोग करने वाले और ब्राह्मण की हत्या करने वाले को कौन दोष होता है, मुझे बताने की कृपा करें ॥२४॥

वसिष्ठ बोले—हे राजन् ! गोवध की इच्छा रख कर जो गोहत्या करता है, उस मनुष्यको एक वर्ष तीर्थाटन करना चाहिए और यव की लप्सी का भोजन करते हुए हाथ से जल पीना चाहिए ॥२५॥ पश्चात्‌दक्षिणा समेत सौ उत्तम गौएँ ब्राह्मणों को समर्पित करके सौ ब्राह्मणों को भोजन कराये, इससे वह पापमुक्त हो जाता है ॥२६॥ किन्तु, प्रायश्चित्त करने पर भी वह समस्त पापों से मुक्त नहीं होता है और इसी कारण उसे दुःखी और चाण्डाल होना पड़ता है ॥२७॥ यदि किसी के कहने से वह हत्या करता है, तो उसे आधे फल का भागी होना पड़ता है और वह भी प्रायश्चित्त करने से समस्त पापों से मुक्त नहीं होता है ॥२८॥

---

१ क. सौकरीं।

शुक्र उवाच

गोहत्याद्विगुणं पापं स्त्रीहत्यायां भवेद्ध्रुवम् । षष्टिवर्षसहस्राणि कालसूत्रे वसेद्ध्रुवम् ।।२९।।
ततो भवेन्महापापी सूकरः सप्तजन्मसु । ततो भवति सर्पश्च सप्तजन्मन्यतः शुचिः ।।३०।।

बृहस्पतिरुवाच

स्त्रीहत्याद्विगुणं पापं ब्रह्महत्याकृतो भवेत् । लक्षवर्षं महाघोरे कुम्भीपाके वसेद्ध्रुवम् ।।३१।।
ततो भवेन्महापापी विष्ठाकीटः शताब्दकम् । ततो भवति सर्पश्च सप्तजन्मन्यतः शुचिः ।।३२।।

गौतम उवाच

दोषः कृतघ्ने राजेन्द्र ब्रह्महत्याचतुर्गुणः । निष्कृतिर्नास्ति वेदोक्ता कृतघ्नानां च निश्चितम् ।।३३।।

राजोवाच

लक्षणं च कृतघ्नानां वद वेदविदां वर । कृतघ्नः कतिधा प्रोक्तः केषु को दोष एव च ।।३४।।

ऋष्यशृङ्ग उवाच

कृतघ्नाः षोडशविधाः सामवेदे निरूपिताः । सर्वः प्रत्येकदोषेण प्रत्येकं फलमश्नुते ।।३५।।
कृते सत्ये च पुण्ये च स्वधर्मे तपसि स्थिते । प्रतिज्ञायां च दाने च स्वगोष्ठीपरिपालने ।।३६।।
गुरुकृत्ये देवकृत्ये काम्यकृत्ये द्विजार्चने । नित्यकृत्ये च विश्वासे परधर्मप्रदानयोः ।।३७।।
एतान्यो हन्ति पापिष्ठः स कृतघ्न इति स्मृतः । एतेषां सन्ति लोकाश्च तज्जन्म भिन्नयोनिषु ।।३८।।

शुक्र बोले—गोहत्या से दुगुना पाप स्त्रीहत्या में होता है, जिससे उसे कालसूत्र नामक नरक में साठ सहस्र वर्ष तक निश्चित ही रहना पड़ता है ।।२९।। पश्चात् वह महापापी सात जन्मों तक सूकर और उसके पश्चात् सात जन्मों तक सर्प होता है, अनन्तर शुद्ध हो जाता है ।।३०।।

बृहस्पति बोले—स्त्री हत्या का दुगुना पाप ब्रह्महत्या करने से होता है, जिससे उसे लाख वर्ष तक महाघोर कुम्भीपाक नरक में निश्चित रूप से रहना पड़ता है ।।३१।। अनन्तर वह महापापी सौ वर्ष तक विष्ठा का कीड़ा और सात जन्मों तक सर्प होता है, पश्चात् शुद्ध हो जाता है ।।३२।।

गौतम बोले—हे राजेन्द्र ! कृतघ्न को ब्रह्महत्या से चौगुना पाप लगता है और यह निश्चित है कि—वेदों में कृतघ्नों का उद्धार नहीं बताया गया है ।।३३।।

राजा बोले—हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ ! कृतघ्नों का लक्षण, उसका भेद और किसे कौन दोष होता है, बताने की कृपा करें ।।३४।।

ऋष्यशृंग बोले—सामवेद में सोलह प्रकार के कृतघ्न बताये गये हैं, सबको प्रत्येक दोष का प्रत्येक फल भोगना पड़ता है ।।३५।। उपकार, सत्य, पुण्य कार्य, अपने धर्म एवं तपस्या में लगे रहने, प्रतिज्ञा, दान और अपनी गोष्ठी (संख्या) का पालन करने में तथा गुरु कार्य, देवकार्य, काम्यकर्म, ब्राह्मण-पूजन, नित्य कर्म, के विश्वास, परधर्म और प्रदान कर्म में जो पापिष्ठ बाधक होता है, वही कृतघ्न कहा गया है। इन पापियों के

यान्यांश्च नरकांस्ते च यान्ति राजेन्द्र पापिनः। ते ते च नरकाः सन्ति यमलोके सुनिश्चितम्॥३९॥

सुयज्ञ उवाच

के किं कृत्वा कृतघ्नाश्च कान्कानगच्छन्ति रौरवान्। प्रत्येकं श्रोतुमिच्छामि वक्तुमर्हसि मे प्रभो॥४०॥

कात्यायन उवाच

कृत्वा शपथरूपं च सत्यं हन्ति न पालयेत्। स कृतघ्नः कालसूत्रे वसेदेव चतुर्युगम्॥४१॥
सप्तजन्मसु काकश्च सप्तजन्मसु पेचकः। ततः शूद्रो महाव्याधिः सप्तजन्मस्वतः शुचिः॥४२॥

सनन्दन उवाच

पुण्यं कृत्वा वदत्येव कीर्तिवर्धनहेतुना। स कृतघ्नस्तप्तसूर्म्यां वसत्येव युगत्रयम्॥४३॥
पञ्चजन्मसु मण्डूकस्त्रिषु जन्मसु कर्कटः। तदा मूको महाव्याधिर्दरिद्रश्च ततः शुचिः॥४४॥

सनातन उवाच

स्वधर्मं हन्ति यो विप्रः संध्यात्रयविवर्जितः। अतर्पयंश्च यत्स्नाति विष्णुनैवेद्यवर्जितः॥४५॥
विष्णुपूजाविष्णुभक्तिविष्णुमन्त्रविहीनकः। एकादशीविहीनः श्रीकृष्णजन्मदिने तथा॥४६॥
शिवरात्रौ च यो भुङ्क्ते श्रीरामनवमीदिने। पितृकृत्यादिहीनो यः स कृतघ्न इति स्मृतः॥४७॥

पृथक्-पृथक् लोक हैं और भिन्न-भिन्न योनियों में इनके जन्म होते हैं॥३६-३८॥. हे राजेन्द्र! ये पापी जिन-जिन नरकों में जाते हैं, वे यमलोक में निश्चित रूप से विद्यमान हैं॥३९॥

सुयज्ञ बोले—हे प्रभो! वे (मनुष्य) क्या-क्या करके कृतघ्न होते हैं और किस-किस रौरव नरक में जाते हैं, मुझे प्रत्येक को सुनने की इच्छा है, अतः बताने की कृपा करें॥४०॥

कात्यायन बोले—शपथ (सौगन्ध) करके सत्य का पालन न कर जो उसका हनन करता है, वह कृतघ्न चार युगों तक कालसूत्र नामक नरक में निश्चित रहता है॥४१॥ अनन्तर सात जन्मों तक कौवा, सात जन्मों तक उल्लू पक्षी और सात जन्मों तक महारोगी शूद्र होता है अनन्तर शुद्ध हो जाता है॥४२॥

सनन्दन बोले—पुण्य करके जो अपनी कीर्ति बढ़ाने के हेतु उसे कहता है, वह कृतघ्न तप्तसूर्मी नामक नरक में तीन युग तक निवास करता है॥४३॥ पश्चात् पांच जन्मों तक मेढक, तीन जन्मों तक केंकड़ा होकर गूंगा, महारोगी एवं दरिद्र मनुष्य होता है, अनन्तर शुद्ध होता है॥४४॥

सनातन बोले—जो ब्राह्मण तीनों काल के सन्ध्या कर्म से रहित होकर स्वधर्म का हनन करता है, बिना तर्पण का स्नान करता है, भगवान् विष्णु को बिना भोग लगाये भोजन करता है, विष्णु की पूजा, विष्णु की भक्ति, विष्णु के मन्त्र तथा एकादशी व्रत से हीन रहकर भगवान् श्रीकृष्ण के जन्म दिन (भादों की कृष्णाष्टमी), शिवरात्रि और रामनवमी के दिन भोजन करता है एवं पितरों के कृत्य (कर्म) से हीन रहता है, वह 'कृतघ्न' कहा जाता है॥४५-४७॥ इन पापों से वह कुम्भीपाक नरक में चौदहों इन्द्रों के समय तक निवास करता है।

कुम्भीपाके वसत्येव [1]यावदिन्द्राश्चतुर्दश। ततश्चाण्डालतां याति सप्तजन्मसु निश्चितम् ॥४८॥
शतजन्मनि गृध्रश्च शतजन्मनि सूकरः। ततो भवेद्ब्राह्मणश्च शूद्राणां सूपकारकः ॥४९॥
ततो भवेज्जन्मसप्त ब्राह्मणो वृषवाहकः। शूद्राणां शवदाही च भवेत्सप्तसु जन्मसु ॥५०॥
द्विजो भूत्वा सप्तजनौ भारते वृषलीपतिः। भुक्त्वा स्वभोगलेशं च भ्रमित्वा याति रौरवम् ॥५१॥
पुनः पुनः पापयोनिं नरकं च पुनः पुनः। ततो भवेद्गर्दभश्च मार्जारः पञ्चजन्मसु ॥५२॥
पञ्चजन्मसु मण्डूको भवेच्छुद्धस्ततः क्रमात् ॥५३॥

सुयज्ञ उवाच–

शूद्राणां सूपकरणे शूद्राणां शवदाहने। शूद्रान्नभोजने वाऽपि शूद्रस्त्रीगमनेऽपि च ॥५४॥
ब्राह्मणानां च को दोषो वृषाणां वाहने तथा। एतान्सर्वान्समालोच्य ब्रूहि मां निश्चितं मुने ॥५५॥

पराशर उवाच–

शूद्राणां सूपकारश्च यो विप्रो ज्ञानदुर्बलः। असिपत्रे वसत्येव [2]युगानामेकसप्ततिः ॥५६॥
ततो भवेद्गर्दभश्च मूषकः सप्तजन्मसु। तैलकीटः सप्तजन्मस्वतः शुद्धो भवेन्नरः ॥५७॥

जरत्कारुरुवाच

भृत्यद्वारा स्वयं वाऽपि यो विप्रो वृषवाहकः। स कृतघ्न इति ख्यातः प्रसिद्धो भारते नृप ॥५८॥

पश्चात् निश्चित रूप से सात जन्मों तक चाण्डाल, सौ जन्मों तक गीध और सौ जन्मों तक सूकर होने के उपरान्त शूद्रों का भण्डारी होता है। अनन्तर सात जन्मों तक वृषवाहक (बैल पर लादने का कार्यकारी), सात जन्मों तक शूद्रों के शव (मुर्दे) का दाह करने वाला, पुनः सात जन्मों तक भारत में वृषली (शूद्रा स्त्री) का पति ब्राह्मण होता है। इस भाँति अपने भोग के लेशमात्र शेष रहने पर रौरव नरक का चक्कर काटते हुए पुनः पापयोनि में जन्म ग्रहण करता है और पश्चात् पुनः नरक प्राप्त करता है। उपरान्त पाँच जन्मों तक गधा, बिल्ली और पाँच जन्मों तक मेढक होकर अन्त में क्रमशः शुद्ध होता है ॥४८-५३॥

सुयज्ञ बोले—मुने ! शूद्रों के भण्डारी होने, उनके शव (मुर्दे) के दाही बनने, शूद्रों के अन्न भोजन करने और उनकी स्त्रियों से भोग करने पर तथा वृषवाहक होने पर ब्राह्मणों को कौन दोष लगता है, इन्हें विवेचनापूर्वक बताने की कृपा करें ॥५४-५५॥

पराशर बोले—ज्ञान की दुर्बलता के कारण जो ब्राह्मण शूद्रों का भण्डारी होता है, वह इकहत्तर युगों तक असिपत्र नामक नरक में रहता है ॥५६॥ पश्चात् सात जन्मों तक गधा, चूहा और सात जन्मों तक तेल का कीड़ा होकर अन्त में वह शुद्ध हो जाता है ॥५७॥

जरत्कारु बोले—हे नृप ! जो ब्राह्मण भृत्य (नौकर) द्वारा अथवा स्वयं वृषवाहक (बैलों द्वारा जोतने लादने) का कार्य करता है, वह भारत में 'कृतघ्न' रूप में प्रख्यात होता है ॥५८॥ बैलों को (उस कार्य में) नित्य मारने-पीटने

---

१ क. ०वच्चन्द्रदिवाकरौ। २ क. ०कविंशतिः।

ब्रह्महत्यासमं पापं तन्नित्यं वृषताडने। वृषपृष्ठे भारदानात्पापं तद्‌द्विगुणं भवेत् ॥५९॥
सूर्यातपे वाहयेद्यः क्षुधितं तृषितं वृषम्। ब्रह्महत्याशतं पापं लभते नात्र संशयः ॥६०॥
अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं विप्राणां वृषवाहिनाम्। पितरो नैव गृह्णन्ति तेषां श्राद्धं च तर्पणम् ॥६१॥
देवता नहि गृह्णन्ति तेषां पुष्पं फलं जलम्। ददाति यदि दम्भेन विपाताय प्रकल्पते ॥६२॥
यो भुङ्क्ते कामतोऽन्नं च ब्राह्मणो वृषवाहिनाम्। नाधिकारो भवेत्तेषां पितृदेवार्चने नृप ॥६३॥
[1]लालाकुण्डे वसत्येव [2]यावच्चन्द्रदिवाकरौ। विष्ठा भक्ष्यं मूत्रजलं तत्र तस्य भवेद्ध्रुवम् ॥६४॥
त्रिसंध्यं ताडयेत्तं च शूलेन यमकिंकरः। उल्कां ददाति मुखतः सूच्या कृन्तति संततम् ॥६५॥
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां च कृमिर्भवेत्। ततः काकः पञ्चजन्मस्वथैवं बक एव च ॥६६॥
पञ्चजन्मसु गृध्रश्च शृगालः सप्तजन्मसु। ततो दरिद्रः शूद्रश्च महाव्याधिस्ततः शुचिः ॥६७॥

भरद्वाज उवाच

शूद्राणां शवदाही यः स कृतघ्न इति स्मृतः। [3]वयःप्रमाणां राजेन्द्र ब्रह्महत्यां लभेद्ध्रुवम्
तत्तुल्ययोनिभ्रमणात्तत्तुल्यनरकाच्छुचिः ॥६८॥
यो दोषो ब्राह्मणानां च शूद्राणां शवदाहने। तावदेव भवेद्दोषः शूद्रश्राद्धान्नभोजने ॥६९॥

से ब्रह्महत्या के समान पाप लगता है और उनके ऊपर भार (बोझ) लादने से उसका दुगुना पाप होता है ॥५९॥ इस प्रकार सूर्य के (प्रचण्ड) धूप में जो भूखे-प्यासे बैलों को अपने (जोतने-लादने के) काम में लगाये रहता है उसे सौ ब्रह्म-हत्या के समान पाप होता है, इसमें संशय नहीं ॥६०॥ हे नृप! उन वृषवाही (बैलों द्वारा जोतने-लादने के काम करने वाले) ब्राह्मणों का अन्न विष्ठा के समान और जल मूत्र के समान होता है तथा उनके श्राद्ध-तर्पण को पितर लोग ग्रहण नहीं करते हैं। देवता भी उनका फूल, फल एवं जल ग्रहण नहीं करते हैं। जो ब्राह्मण स्वेच्छा से वृषवाहकों का अन्न भोजन करता है, उसे पितृकार्य एवं देवकार्य (पूजादि) में अधिकार भी नहीं रहता है। (इस कारण) चंद्रमा और सूर्य के समय तक उसे लाला (लार) कुण्ड नरक में रहते हुए विष्ठा भोजन और मूत्र पान निश्चित ही करना पड़ता है। यमराज के सेवक शूल द्वारा तीनों संध्याओं में उसे ताड़ना देते हैं, मुख में जलती हुई लकड़ी डाल देते और सूई से शरीर में निरन्तर छेदते रहते हैं। पश्चात् साठ सहस्र वर्ष तक विष्ठा का कीड़ा, पाँच जन्मों तक कौवा और बगुला, पाँच जन्मों तक गीध और सात जन्मों तक सियार होता है। अनन्तर दरिद्र और महारोगी शूद्र होकर उसके पश्चात् शुद्ध होता है ॥६१-६७॥

भरद्वाज बोले—हे राजेन्द्र! जो शूद्रों का शव (मुर्दा) दाह करता है, वह कृतघ्न कहा गया है, उसे (अपनी) अवस्थानुसार निश्चित ब्रह्महत्या लगती है। अनन्तर उसी के समान योनियों में भ्रमण करते हुए उसी के समान नरक कुण्डों में जाता है और अन्त में शुद्ध होता है। शूद्रों के शव (मुर्दे) जलाने के कार्य करने से ब्राह्मणों को जो दोष प्राप्त होता है, शूद्रों के श्राद्धान्न भोजन करने में भी वही दोष उन्हें लगता है ॥६८-६९॥

---

१ क. ०लाभक्षे व०। २ क. ०वदिन्द्राश्चतुर्दश। ३ क. ०शवप्र०।

विभाण्डक उवाच

पितृश्राद्धे च शूद्राणां भुङ्क्ते यो ब्राह्मणोऽधमः। सुरापीती ब्रह्मघाती पितृदेवार्चनाद्बहिः॥७०॥

मार्कण्डेय उवाच

यो दोषो ब्राह्मणानां च शूद्रस्त्रीगमने नृप। अहं वक्ष्यामि वेदोक्तं सावधानं निशामय॥७१॥
कृतघ्नानां प्रधानश्च यो विप्रो वृषलीपतिः। कृमिदंष्ट्रे वसेत्सोऽपि यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥७२॥
कृमिभक्ष्यो भवेद्विप्रो विद्धश्च यमकिंकरैः। प्रतिमायां तप्तलौह्यामाश्लेषयति नित्यशः॥७३॥
ततश्च पुंश्चलीयोनौ कृमिर्भवति निश्चितम्। एवं वर्षसहस्रं च ततः शूद्रस्ततः शुचिः॥७४॥

सुयज्ञ उवाच

अन्येषां च कृतघ्नानां वद कर्मफलं मुने। श्लाघ्यो मे ब्रह्मशापश्च कस्य संपद्विनाऽऽपदम्॥७५॥
धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं सफलं जीवनं मम। आगतास्तु यतो मुक्ता मद्गेहे मुनयः सुराः॥७६॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० नृपमुनिसं० राधोपा० कर्मविपाको नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५१॥

विभाण्डक बोले—शूद्रों के यहाँ पितृश्राद्ध में जो अधम ब्राह्मण भोजन करता है, वह मद्यपायी और ब्रह्म-घाती के समान पितर एवं देवों की अर्चना कार्य से सदैव बाहर रहता है॥७०॥

मार्कण्डेय बोले—हे नृप! शूद्र की स्त्री के साथ रति करने पर जो वेदोक्त दोष ब्राह्मणों को प्राप्त होता है, वह मैं बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो। जो (ब्राह्मण) वृषली (शूद्र स्त्री) का पति होता है, वह कृतघ्नों में प्रधान माना जाता है और चौदहों इन्द्रों के समय तक कृमिदंष्ट्र (कीड़े काटने के) नरक में रहता है। वहाँ उसे कीड़े (काट-काट कर) खाते हैं, (ऊपर से) यमदूत ताड़ना देकर दुःखी करते हैं और (उस स्त्री की) जलती हुई लोह-मूर्ति का उसे नित्य आलिंगन करना पड़ता है। पश्चात् पुंश्चली स्त्री के भग में कीड़ा होकर वह निश्चित उत्पन्न होता है। इस भाँति सहस्र वर्ष बीतने पर शूद्र होता है और पश्चात् शुद्ध हो जाता है॥७१-७४॥

सुयज्ञ बोले—हे मुने! अन्य कृतघ्नों के कर्मफल बताने की कृपा करें! हमें तो ब्रह्मशाप प्रशस्त मालूम हो रहा है। बिना आपत्ति के सम्पत्ति नहीं मिलती है। हम धन्य, कृतकृत्य हो गये, हमारा जीवन सफल हो गया; क्योंकि हमारे घर मुक्त मुनिवृन्द और देवगण पधारे हैं॥७५-७६॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत राधोपाख्यान में कर्मविपाक-कथन नामक इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त॥५१॥

अथ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीपार्वत्युवाच

अन्येषां च कृतघ्नानां यद्यत्कर्मफलं प्रभो। तेषां किमूचुर्मुनयो वेदवेदाङ्गपारगाः॥१॥

श्रीमहेश्वर उवाच

प्रश्नं कुर्वति राजेन्द्रे सर्वेषु मुनिषु प्रिये। तत्र प्रवक्तुमारेभे ऋषिर्नारायणो महान्॥२॥

श्रीनारायण उवाच

स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेत्तु यः। स कृतघ्न इति ज्ञेयः फलं शृणु च भूमिप॥३॥
यावन्तो रेणवः सिक्ता विप्राणां नेत्रबिंदुभिः। तावद्वर्षसहस्रं च शूलपोते स तिष्ठति॥४॥
तप्ताङ्गारं च तद्भक्ष्यं पानं वै तप्तमूत्रकम्। तप्ताङ्गारे च शयनं ताडितो यमकिंकरैः॥५॥
तदन्ते च महापापी विष्ठायां जायते कृमिः। षष्टिवर्षसहस्राणि देवमानेन भारते॥६॥
ततो भवेद्भूमिहीनः प्रजाहीनश्च मानवः। दरिद्रः कृपणो रोगी शूद्रो निन्द्यस्ततः शुचिः॥७॥

नारद उवाच

हन्ति यः परकीर्तिं च स्वकीर्तिं वा नराधमः। स कृतघ्न इति ख्यातस्तत्फलं च निशामय॥८॥

अध्याय ५२

पार्वती बोलीं—हे प्रभो! अन्य कृतघ्नों के कर्मफल के विषय में वेद-वेदांग के पारगामी मुनियों ने क्या कहा? ॥१॥

महेश्वर बोले—हे प्रिये! समस्त मुनियों से राजेन्द्र (सुयज्ञ) के प्रश्न करने पर महान् ऋषि नारायण ने कहना आरम्भ किया॥२॥

नारायण बोले—हे भूमिप! अपने द्वारा अथवा दूसरे द्वारा दी गयी ब्रह्म-वृत्ति (ब्राह्मण-जीविका) का जो अपहरण करता है, वह कृतघ्न कहा जाता है, उसका फल कह रहा हूँ, सुनो! (उस समय) ब्राह्मण के आँसुओं से जितनी भूमि की धूलि भीग जाती है, उतने रेणु के सहस्र वर्ष प्रमाण वह शूलपोत नामक नरक में रहता है। वहाँ तप्त अंगारों का भक्षण, संतप्त मूत्रजलों का पान और तप्त अंगारों पर शयन करते हुए वह (ऊपर से) यमदूतों द्वारा ताड़ित होता रहता है॥३-५॥ पश्चात् वह महापापी भारत में देवों के वर्षमान के हिसाब से साठ सहस्र वर्ष तक विष्ठा का कीड़ा होकर उत्पन्न होता रहता है॥६॥ अनन्तर भूमिरहित, संतानहीन, दरिद्र, कृपण (कंजूस), रोगी और निन्दित शूद्र होकर शुद्ध होता है॥७॥

नारद बोले—जो अधम मनुष्य अपनी कीर्ति या दूसरे की कीर्ति को नष्ट करता है, वह कृतघ्न कहा गया है, उसका फल कह रहा हूँ, सुनो॥८॥ हे नृप! चौदहों इन्द्रों के समय तक वह अन्धकूप नामक नरक में

अन्धकूपे वसेत्सोऽपि यावदिन्द्राश्चतुर्दश। कीटैर्नकुलगृध्रैश्च भक्षितः सततं नृप॥९॥
तप्तक्षारोदकं पापी नित्यं पिबति वै ततः। सप्तजन्मस्वतः सर्पः काकः पञ्चस्वतः शुचिः॥१०॥

देवल उवाच

ब्रह्मस्वं वा गुरुस्वं वा देवस्वं वाऽपि यो हरेत्। स कृतघ्न इति ज्ञेयो महापापी च भारते॥११॥
अवटोदे वसेत्सोऽपि यावदिन्द्राश्चतुर्दश। ततो भवेत्सुरापी स ततः शूद्रस्ततः शुचिः॥१२॥

जैगीषव्य उवाच

पितृमातृगुरूंश्चापि भक्तिहीनो न पालयेत्। वाचाऽपि ताडयेत्तांश्च स कृतघ्न इति स्मृतः॥१३॥
वाचा च ताडयेन्नित्यं स्वामिनं कुलटा च या। सा कृतघ्नीति विख्याता भारते पापिनी वरा॥१४॥
वह्निकुण्डं महाघोरं तौ प्रयातः सुनिश्चितम्। तत्र वह्नौ वसत्येव यावच्चन्द्रदिवाकरौ
ततो भवेज्जलौकाश्च सप्तजन्मस्वतः शुचिः ॥१५॥

वाल्मीकिरुवाच

यथा तरुषु वृक्षत्वं सर्वत्र न जहाति च। तथा कृतघ्नता राजन्सर्वपापेषु वर्तते॥१६॥
मिथ्यासाक्ष्यं यो ददाति कामात्क्रोधात्तथा भयात्। सभायां पाक्षिकं वक्ति स कृतघ्न इति स्मृतः॥१७॥
पुण्यमात्रं चापि राजन्यो हन्ति स कृतघ्नकः। सर्वत्रापि च सर्वेषां पुण्यहानौ कृतघ्नता॥१८॥

रहता है और उसे कीड़े, नेवला और गीध निरन्तर खाया करते हैं॥८-९॥ वह पापी नित्य तप्त खारा जल पीता है। पश्चात् सात जन्मों तक सर्प और पाँच जन्मों तक कौवा होकर अनन्तर शुद्ध हो जाता है॥१०॥

देवल बोले—जो ब्राह्मण-धन, गुरु-धन, या देव-धन का अपहरण करता है, भारत में वह महापापी कृतघ्न कहा जाता है॥११॥ चौदहों इन्द्रों के समय तक वह अवटोद (खाईं वाले) नरक में रहता है। पश्चात् मद्य पीने वाला और शूद्र होकर अन्त में शुद्ध हो जाता है॥१२॥

जैगीषव्य बोले—जो भक्तिरहित होकर माता, पिता और गुरु का पालन नहीं करता है और कड़ुवी बातों से उन्हें दुःखी करता है, वह 'कृतघ्न' कहा गया है। उसी भाँति जो कुलटा (व्यभिचारिणी) स्त्री अपने पति को कड़वी बातों से दुःखी करती है, भारत में वह पापिनी प्रधान एवं विख्यात 'कृतघ्नी' कही जाती है। वे दोनों महाघोर अग्निकुण्ड नरक में निश्चित जाते हैं। वहाँ चन्द्रमा-सूर्य के समय तक रह कर पश्चात् सात जन्मों तक जलौका (जोंक) होकर अन्त में शुद्ध होते हैं॥१३-१५॥

वाल्मीकि बोले—हे राजन्! वृक्षों में सर्वत्र वर्तमान वृक्षत्व धर्म की भाँति कृतघ्नता भी सभी पापों में वर्तमान रहती है॥१६॥ जो काम, क्रोध अथवा भयवश झूठी गवाही या सभा में किसी का पक्ष लेकर कहता है वह कृतघ्न कहा जाता है॥१७॥ हे राजन्! जो पुण्य मात्र का हनन करता है, वह कृतघ्न है। क्योंकि सभी जगह पुण्यों का नाश होने पर सभी को कृतघ्न होना पड़ता है॥१८॥ हे नृप! भारत में जो झूठी गवाही या किसी का पक्ष

मिथ्यासाक्ष्यं पाक्षिकं वा भारते वक्ति यो नृप। यावदिन्द्रसहस्रं च सर्पकुण्डे वसेद्ध्रुवम्॥१९॥
संततं वेष्टितः सर्पैर्भीतो वै भक्षितस्तथा। भुङ्क्ते च सर्पविण्मूत्रं यमदूतेन ताडितः॥२०॥
कृकलासो भवेत्तत्र भारते सप्तजन्मसु। सप्तजन्मसु मण्डूकः पितृभिः सप्तभिः सह॥२१॥
ततो भवेद्वै वृक्षश्च महारण्ये तु शाल्मलिः। ततो भवेन्नरो मूकस्ततः शूद्रस्ततः शुचिः॥२२॥

आस्तीक उवाच

गुर्वङ्गनानां गमने मातृगामी भवेन्नरः। नराणां मातृगमने प्रायश्चित्तं न विद्यते॥२३॥
भारते च नृपश्रेष्ठ यो दोषो मातृगामिनाम्। ब्राह्मणीगमने चैव शूद्राणां तावदेव हि॥२४॥
ब्राह्मण्यास्तावदेव स्याद्दोषः शूद्रेण मैथुने। कन्यानां पुत्रपत्नीनां श्वश्रूणां गमने तथा॥२५॥
सगर्भभ्रातृपत्नीनां भगिनीनां तथैव च। दोषं वक्ष्यामि राजेन्द्र यदाह कमलोद्भवः॥२६॥
यः करोति महापापी चैताभिः सह मैथुनम्। जीवन्मृतो भवेत्सोऽपि चण्डालोऽस्पृश्य एव च॥२७॥
नाधिकारो भवेत्तस्य सूर्यमण्डलदर्शने। शालग्रामं तज्जलं च तुलस्याश्च दलं जलम्॥२८॥
सर्वतीर्थजलं चैव विप्रपादोदकं तथा। स्प्रष्टुं च नैव शक्नोति विट्तुल्यः पातकी नरः॥२९॥
देवं गुरुं ब्राह्मणं च नमस्कर्तुं न चार्हति। विष्ठाधिकं तदन्नं च जलं मूत्राधिकं तथा॥३०॥

लेकर कहता है, वह सहस्र इन्द्रों के समय तक सर्प-कुण्ड में निश्चित रहता है॥१९॥ उसकी देह में साँप निरन्त लिपटे रहते हैं और भयभीत होने पर उसे वे खा लेते हैं। इस प्रकार वह वहाँ रह कर सर्पों का विष्ठा और मूत्र खाता-पीता है तथा यमदूतों द्वारा ताड़ित होता है॥२०॥ पश्चात् भारत में सात पुस्त समेत सात जन्मों तक गिरगिट और सात जन्मों तक मेढक होकर वह घोर महाजंगल में सेमर का वृक्ष होता है। अनन्तर गूंगा शूद्र होकर अन्त में शुद्ध हो जाता है॥२१-२२॥

आस्तीक बोले—गुरुपत्नियों के साथ गमन (रति) करने पर मनुष्य मातृगामी (माता के साथ व्यभिचार) का दोषभागी होता है और माता के साथ गमन करने पर मनुष्यों को (उद्धार होने के लिए) कोई प्रायश्चित्त ही नहीं कहा गया है॥२३॥ हे नृपश्रेष्ठ! भारत में जो दोष मातृगमन में होता है, वही दोष शूद्रों को ब्राह्मणीगमन से होता है॥२४॥ हे राजेन्द्र! शूद्र के साथ मैथुन करने पर ब्राह्मणी को भी उतना ही दोष होता है तथा कन्या, पुत्र-वधू (पतोहू), सास, भाइयों की गर्भिणी स्त्रियों और भगिनियों (बहनों) के साथ भोग करने पर होने वाले दोष को मैं बता रहा हूँ, जिसे ब्रह्मा ने बताया है॥२५-२६॥ जो महापापी इन स्त्रियों के साथ मैथुन करता है, वह जीवित रहते हुए मृतक और चाण्डाल की भाँति अस्पृश्य (न छूने योग्य) है॥२७॥ उसे सूर्य-मण्डल के दर्शन का अधिकार नहीं रहता है। तथा शालग्राम एवं उसके जल, तुलसीदल और उसके जल, समस्त तीर्थों के जल एवं ब्राह्मणों के चरणोदक का स्पर्श वह नहीं कर सकता है, क्योंकि वह पातकी विष्ठा के समान होता है॥२८-२९॥ और देव, गुरु तथा ब्राह्मण को नमस्कार करने योग्य भी नहीं रहता है। अतः भारत में देवता, पितर तथा ब्राह्मणगण विष्ठा से अधिक उसके अन्न और मूत्र से अधिक उसके जल को अशुद्ध मान कर

देवताः पितरो विप्रा नैव गृह्णन्ति भारते। भवेत्तदङ्गवातेन तीर्थमङ्गारवाहनम् ॥३१॥
सप्तरात्रं ह्यपवसेद्दैवस्पर्शात्तथा द्विजः। भाराक्रान्ता च पृथिवी तद्भारं वोढुमक्षमा ॥३२॥
तत्पापात्पतितो देशः कन्याविक्रयिणो यथा। तत्स्पर्शाच्च तदालापाच्छयनाश्रयभोजनात् ॥३३॥
नृणां च तत्समं पापं भवत्येव न संशयः। कुम्भीपाके वसेत्सोऽपि यावद्वै ब्रह्मणः शतम् ॥३४॥
दिवानिशं भ्रमेत्तत्र चक्रावर्तं निरन्तरम्। दग्धो वाऽग्निशिखाभिश्च यमदूतैश्च ताडितः ॥३५॥
एवं नित्यं महापापी भुङ्क्ते निरययातनाम्। विष्ठाहारश्च[1] सर्वत्र कुम्भीपाकेऽथ पातितः ॥३६॥
गते प्राकृतिके घोरे महति प्रलये तथा। पुनः सृष्टेः समारम्भे तद्विधो वा भवेत्पुनः ॥३७॥
(षष्टिवर्षसहस्राणि कृमिश्च पुंश्चलीभगे। षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां च कृमिर्भवेत्) ॥३८॥
ततो भवति चण्डालो भार्याहीनो नपुंसकः। (सप्तजन्म गलत्कुष्ठी चाण्डालोऽस्पृश्य एव च ॥३९॥
ततस्तीर्थे भवेद्वृक्षः क्षुधितः सप्तजन्मसु। सप्तजन्मसु सर्पश्च भार्याहीनो नपुंसकः) ॥४०॥
सप्तजन्मसु शूद्रश्च गलत्कुष्ठी नपुंसकः। ततो भवेद्ब्राह्मणश्चाप्यन्धः कुष्ठी नपुंसकः ॥४१॥
लब्ध्वैवं सप्त जन्मानि महापापी भवेच्छुचिः ॥४२॥

उसका ग्रहण नहीं करते हैं। उसके अंग-स्पृष्ट वाय के स्पर्श होने से तीर्थ मानों अंगार बहने लगता है ॥३०-३१॥ दैववश उसका स्पर्श हो जाने पर ब्राह्मण को सात रात उपवास करना चाहिए, उसके भार से पृथ्वी दबी रहती है और उसका भार ढोने में अपनी असमर्थता प्रकट करती है ॥३२॥ कन्या-विक्रेता की भाँति उसके पातक से देश पतित हो जाता है और उसके स्पर्श, उसके साथ बातचीत, शयन, बैठने और भोजन करने से मनुष्यों को उसके समान ही पाप लगता है, इसमें संशय नहीं। पश्चात् सौ ब्रह्मा के समय तक कुम्भीपाक नरक में वह रहता है॥३३-३४॥ चक्के की भाँति गोलाकार उसकी लहरों में रातदिन उसे भमण करना पड़ता है, अग्नि की ज्वालाओं से जलता रहता है और यमदूत ऊपर से ताड़ना देते हैं॥३५॥ इस प्रकार वह महापापी नित्य नरक-यातनाओं को भोगता है। कुम्भीपाक में गिरने पर सर्वत्र विष्ठा का ही आहार करना पड़ता है॥३६॥ प्राकृतिक घोर महाप्रलय के व्यतीत होने और सृष्टि के पुनः आरम्भ होने पर वह पूर्व की भाँति ही रहता है॥३७॥ उसे साठ हजार वर्ष तक पुंश्चली के भग का क्रीड़ा और उतने ही समय तक विष्ठा का कीड़ा होना पड़ता है। तदनन्तर वह चाण्डाल, पत्नीरहित तथा नपुंसक होता है, फिर सात जन्म गलत्कुष्ठी और अस्पृश्य चाण्डाल होता है, अनन्तर किसी तीर्थ में वृक्ष, सात जन्म भुक्खड़, सात जन्म साँप, पत्नीहीन और नपुंसक होता है। पुनः सात जन्मों तक शूद्र, गलत्कुष्ठ का रोगी और नपुंसक होकर अंधा, कुष्ठी एवं नपुंसक ब्राह्मण होता है। इस प्रकार सात जन्मों तक वह महापापी यातना भोगने के अनन्तर शुद्ध होता है॥३८-४२॥

---

१. क. आहारश्चास्ति सर्वत्र कुम्भीपाके विवर्जिते।

मुनय ऊचुः

इत्येवं कथितं सर्वमस्माभिर्वो यथागमम्। एभिस्तुल्यो भवेद्दोषोऽप्यतिथीनां पराभवे ॥४३॥
प्रणामं कुरु विप्रेन्द्रं गृहं प्रापय निश्चितम्। संपूज्य ब्राह्मणं यत्नाद्गृहीत्वा ब्राह्मणाशिषम् ॥४४॥
वनं गच्छ महाराज तपस्यां कुरु सत्वरम्। ब्रह्मशापैर्विनिर्मुक्तः पुनरेवाऽऽगमिष्यसि ॥४५॥
इत्युक्त्वा मुनयः सर्वे ययुस्तूर्णं स्वमन्दिरम्। सुराश्चापि च राजानो बन्धुवर्गाश्च पार्वति ॥४६॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० हरगौरीसं० राधोपा० सुयज्ञोपा०
कर्मविपाको नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥

अथ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पार्वत्युवाच

गतेषु मुनिसंघेषु श्रुत्वा कर्मफलं नृणाम्। किं चकार नृपश्रेष्ठो ब्रह्मशापेन विह्वलः ॥१॥
अतिथिर्ब्राह्मणो वाऽपि किं चकार तदा प्रभो। जगाम नृपगेहं वा न वा तद्वक्तुमर्हसि ॥२॥

महेश्वर उवाच

गतेषु मुनिसंघेषु चिन्ताग्रस्तो नराधिपः। प्रेरितश्च वसिष्ठेन धर्मिष्ठेन पुरोधसा ॥३॥
पपात दण्डवद्भूमौ पादयोर्ब्राह्मणस्य च। त्यक्त्वा मन्युं द्विजश्रेष्ठो ददौ तस्मै शुभाशिषम् ॥४॥
सस्मितं ब्राह्मणं दृष्ट्वा त्यक्तमन्युं कृपामयम्। उवाच नृपतिश्रेष्ठः साश्रुनेत्रः कृताञ्जलिः ॥५॥

मुनिवर बोले—इस भाँति हम लोगों ने शास्त्रानुसार सब सुना दिया। इनके समान ही दोष अभ्यागत के अपमान करने पर होता है। अतः इस ब्राह्मणराज को प्रणाम करो और अपने गृह ले चलकर सप्रयत्न ब्राह्मण की पूजा करके आशिष ग्रहण करो। हे महाराज! अनन्तर वन जाकर तपस्या करो, जिससे इस ब्रह्म-शाप से मुक्त होकर पुनः यहाँ आगमन कर सको। हे पार्वती! इतना कहकर वे मनि लोग शीघ्र अपने-अपने घर चले गये। पीछे देवगण, राजा लोग और बन्धुवर्ग भी चले गये ॥४३-४६॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत हर-गौरी-संवाद-विषयक राधोपाख्यान में सुयज्ञोपाख्यान-कर्मविपाक-कथन नामक बावनवाँ अध्याय समाप्त ॥५२॥

अध्याय ५३

अतिथि का उपदेश

पार्वती बोलीं—मुनियों के चले जाने पर ब्राह्मण-शाप से आकुल, श्रेष्ठ राजा ने मनुष्यों का कर्मफल सुनकर क्या किया? हे प्रभो! तब उस अभ्यागत ब्राह्मण ने क्या किया? राजा के यहाँ वह गया या नहीं? यह मुझे बताने की कृपा करें ॥१-२॥

महेश्वर बोले—मुनि-समूहों के चले जाने पर चिन्दाग्रस्त राजा धार्मिक एवं पुरोहित वसिष्ठ जी द्वारा प्रेरित होकर ब्राह्मण के चरणों में दण्डे की भाँति भूमि पर गिर पड़ा। अनन्तर उस ब्राह्मणश्रेष्ठ ने भी क्रोध त्याग कर उसे शुभाशिष प्रदान किया ॥३-४॥ मन्द मुसुकान करते हुए ब्राह्मण को क्रोधरहित और कृपालु देख कर नृपश्रेष्ठ ने हाथ जोड़कर एवं आँखों में आँसू भरे, उससे कहना आरम्भ किया ॥५॥

राजोवाच

कुत्र वंशे भवाञ्जातः किं नाम भवतः प्रभो। किं नाम वा पितुर्ब्रूहि क्व वासः कथमागतः ॥६॥
विप्ररूपी स्वयं विष्णुर्गूढः कपटमानुषः। साक्षात्स मूर्तिमानग्निः प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा ॥७॥
को वा गुरुस्ते भगवन्निष्टदेवश्च भारते। तव वेषः कथमयं ज्ञानपूर्णस्य सांप्रतम् ॥८॥
गृहाण राज्यं निखिलमैश्वर्यं कोशमेव च। स्वभृत्यं कुरु मे पुत्रं मां च दासीं स्त्रियं मुने ॥९॥
सप्तसागरसंयुक्तां सप्तद्वीपां वसुंधराम्। [1]अष्टादशोपद्वीपाढ्यां सशैलवनशोभिताम् ॥१०॥
मया भृत्येन शाधि त्वं राजेन्द्रो भव भारते। रत्नेन्द्रसारखचिते तिष्ठ सिंहासने वरे ॥११॥
नृपस्य वचनं श्रुत्वा जहास मुनिपुंगवः। उवाच परमं तत्त्वमज्ञातं सर्वदुर्लभम् ॥१२॥

अतिथिरुवाच

मरीचिर्ब्रह्मणः पुत्रस्तत्पुत्रः कश्यपः स्वयम्। कश्यपस्य सुताः सर्वे प्राप्ता देवत्वमीप्सितम् ॥१३॥
तेषु त्वष्टा महाज्ञानी चकार परमं तपः। दिव्यं वर्षसहस्रं च पुष्करे दुष्करं तपः ॥१४॥
सिषेवे ब्राह्मणार्थं च देवदेवं हरिं परम्। नारायणाद्वरं प्राप विप्रं तेजस्विनं सुतम् ॥१५॥
ततो बभूव तेजस्वी विश्वरूपस्तपोधनः। पुरोधसं चकारेन्द्रो वाक्पतौ तं क्रुधा गते ॥१६॥

राजा बोले—हे प्रभो! आप किस वंश में उत्पन्न हुए हैं और आपका नाम क्या है, कहाँ निवास-स्थान है एवं यहाँ कैसे आगमन हुआ है? ब्राह्मण रूप में छिपे साक्षात् विष्णु ही आप हैं, जो छल से मनुष्य तथा ब्रह्म तेज से प्रज्वलित होने के नाते साक्षात् मूर्तिमान् अग्नि मालूम हो रहे हैं ॥६-७॥ हे भगवन्! इस भारत में आप के गुरु और इष्टदेव कौन हैं? आप ज्ञानपूर्ण हैं किन्तु आधुनिक वेष आपका ऐसा क्यों है? हे मुने! समस्त ऐश्वर्य और कोश समेत यह राज्य ग्रहण कीजिये। पुत्र समेत मुझे अपना सेवक बनाइये और स्त्री को दासी कीजिये ॥८-९॥ सातों सागर, सातों द्वीप, अट्ठारहों उपद्वीप एवं पर्वत-वन से विभूषित इस पृथिवी का मुझ भृत्य द्वारा शासन कीजिये और आप भारत में राजेन्द्र (महाराज) बन कर उत्तमरत्नों के सार भाग से खचित परम श्रेष्ठ सिंहासन पर सुप्रतिष्ठित रहें ॥१०-११॥ राजा की ऐसी बातें सुनकर वे मुनि-श्रेष्ठ हँस पड़े। अनन्तर परमतत्त्व की बातें कहना आरम्भ किया, जो सभी से अज्ञात एवं सबको दुर्लभ थी ॥१२॥

अतिथि बोले—ब्रह्मा के पुत्र मरीचि, मरीचि के कश्यप और कश्यप के सभी पुत्रों ने अभीप्सित देवत्व प्राप्त कर लिया है ॥१३॥ उन्हीं में से महाज्ञानी त्वष्टा ने पुष्कर क्षेत्र में सहस्र दिव्य वर्ष तक दुष्कर (कठिन) तप किया। उन्होंने ब्राह्मणार्थ देवाधिदेव भगवान् की अति सेवा की, जिससे नारायण द्वारा 'तेजस्वी पुत्र होने' का उन्हें वरदान प्राप्त हुआ ॥१४-१५॥ अनन्तर उनके तेजस्वी एवं महातपस्वी विश्वरूप नामक पुत्र हुआ, जिसे इन्द्र ने क्रुद्ध होकर बृहस्पति के चले जाने पर अपना पुरोहित बनाया ॥१६॥ जिस समय मातामह दैत्यों के

---

१. क. नवद्वीपोपद्वीपां तां स०

मातामहेभ्यो दैत्येभ्यो दत्तवन्तं घृताहुतिम्। चिच्छेद तं शुनासीरो ब्राह्मणं मातुराज्ञया ॥१७॥
विश्वरूपस्य तनयो विरूपो मत्पिता नृप। अहं च सुतपा नाम विरागी काश्यपो द्विजः ॥१८॥
महादेवो मम गुरुर्विद्याज्ञानमनुप्रदः। अभीष्टदेवः सर्वात्मा श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः ॥१९॥
तच्चिन्तयामि पादाब्जं न मे वाञ्छाऽस्ति संपदि। सालोक्यसार्ष्टिसारूप्यसामीप्यं राधिकापतेः ॥२०॥
तेन दत्तं न गृह्णामि विना तत्सेवनं शुभम्। ब्रह्मत्वममरत्वं वा मन्येऽहं जलबिन्दुवत् ॥२१॥
भक्तिव्यवहितं मिथ्याभ्रममेव तु नश्वरम्। इन्द्रत्वं वा मनुत्वं वा सौरत्वं वा नराधिप ॥२२॥
न मन्ये जलरेखेति नृपत्वं केन गण्यते।
श्रुत्वा सुयज्ञ यज्ञे ते मुनीनां गमनं नृप। लालसां विष्णुभक्ति ते संप्रापयितुमागतः ॥२३॥
केवलानुगृहीतस्त्वं नहि शप्तो मयाऽधुना। समुद्धृतश्च पतितो घोरे निम्ने भवार्णवे ॥२४॥
नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः। ते पुनन्त्युरुकालेन कृष्णभक्ताश्च दर्शनात् ॥२५॥
राजन्निर्गम्यतां गेहाद्देहि राज्यं सुताय च। पुत्रे न्यस्य प्रियां साध्वीं गच्छ वत्स वनं द्रुतम् ॥२६॥
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं सर्वं मिथ्यैव भूमिप। श्रीकृष्णं भज राधेशं परमात्मानमीश्वरम् ॥२७॥
ध्यानसाध्यं दुराराध्यं ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः। आविर्भूतैस्तिरोभूतैः प्राकृतैः प्रकृतेः परम् ॥२८॥

लिए (उस यज्ञ में) घृत की आहुति उस ब्राह्मण ने दी उसी समय इन्द्र ने उस ब्राह्मण को माता की आज्ञा से मार डाला ॥१७॥ हे नृप! उन्हीं विश्वरूप के पुत्र मेरे पिता थे। मेरा नाम सुतपा है, मैं विरागी एवं कश्यप गोत्र का ब्राह्मण हूँ ॥१८॥ विद्या एवं ज्ञान के प्रदाता महादेवजी हमारे गरु हैं और सर्वात्मा भगवान् श्रीकृष्ण, जो प्रकृति से परे हैं, हमारे इष्टदेव हैं। मैं उन्हीं के चरणकमल का सतत चिन्तन करता हूँ, अतः मुझे सम्पत्ति की इच्छा नहीं है। राधिका जी के पति भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा दिये गये सालोक्य, सायुज्य, सारूप्य और सामीप्य नामक मोक्ष को भी बिना उनकी शुभ सेवा किये नहीं चाहता हूँ, ब्रह्मत्व और अमरत्व (ब्रह्मा और देव होने) को मैं जल के बुलबुले के समान मानता हूँ। हे राजन्! ये सब भक्ति में व्यवधानकारक, मिथ्या, भ्रमात्मक और नाशवान् हैं। मैं इन्द्रत्व, मनुत्व, सौरत्व (सूर्य होने) को जब जल रेखा की भाँति (क्षणिक नश्वर) मानता हूँ, तो नृपत्व (राजा होने) की क्या गणना है! हे नृप! सुयज्ञ! तुम्हारे यज्ञ में मुनियों का गमन सुनकर मैं भगवान् विष्णु की भक्ति तुम्हें प्राप्त कराने की लालसा (इच्छा) से आया हूँ। संप्रति मैंने तुम्हें शाप नहीं दिया है, प्रत्युत तुम उसी द्वारा अनुगृहीत हुए हो। अधःपतन करने वाले इस घोर संसार-सागर में तुम पतित हो गये थे, मैंने तुम्हारा उद्धार कर दिया है ॥१९-२४॥ क्योंकि न तीर्थ जलमय होते हैं और न देवता लोग मिट्टी और पत्थरमय होते हैं। वे पवित्र करते हैं लम्बे समय में और भगवान् श्रीकृष्ण के भक्त दर्शनमात्र से पवित्र कर देते हैं ॥२५॥ अतः हे राजन्! राज्य पुत्र को सौंप कर घर से (तप करने के हेतु) चले जावो। हे वत्स! हे भूमिप! साध्वी स्त्री और राज्य पुत्र को सौंपकर तप के लिए शीघ्र जंगल जाओ, क्योंकि तृण से लेकर ब्रह्मा पर्यन्त सभी कुछ मिथ्या ही है। अतः राधा जी के प्राणेश भगवान् श्रीकृष्ण का भजन करो, जो परमात्मा, ईश्वर एवं ध्यान करने से साध्य हैं, अन्यथा ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि और प्रकट एवं अन्तर्हित होने वाले प्राकृत जनों के लिए वे दुराराध्य हैं एवं प्रकृति से परे हैं ॥२६-२८॥

ब्रह्मा स्रष्टा हरिः पाता हरः संहारकारकः । दिक्पालाश्च दिगीशाश्च भ्रमन्त्येवास्य मायया ॥२९॥
यदाज्ञया वाति वायुः सूर्यो दिनपतिः सदा । निशापतिः शशी शश्वत्सस्यसुस्निग्धताकरः ॥३०॥
कालेन मृत्युः सर्वेषां सर्वविश्वेषु वै भवेत् । काले वर्षति शक्रश्च दहत्यग्निश्च कालतः ॥३१॥
भीतवद्विश्वशास्ता च प्रजासंयमनो यमः । कालः संहरते काले काले सृजति पाति च ॥३२॥
स्वदेशे वै समुद्रश्च स्वदेशे वै वसुंधरा । स्वदेशे पर्वताश्चैव स्वाः पातालाः स्वदेशतः ॥३३॥
स्वर्लोकाः सप्त राजेन्द्र सप्तद्वीपा वसुंधरा । शैलसागरसंयुक्ताः पातालाः सप्त चैव हि ॥३४॥
ब्रह्माण्डमेभिर्लोकैश्च [1]डिम्बाकारं जलप्लुतम् । सन्त्येव प्रतिविध्यण्डे ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥३५॥
सुरा नराश्च नागाश्च गन्धर्वा राक्षसादयः । आपातालाद्ब्रह्मलोकपर्यन्तं डिम्बरूपकम् ॥३६॥
इदमेव तु विध्यण्डमुत्तमं कृत्रिमं नृप । नाभिपद्मे विराड्विष्णोः क्षुद्रस्य जलशालिनः ॥३७॥
स्थितं यथा पद्मबीजं कर्णिकायां च पङ्कजे । एवं सोऽपि शयानः स्याज्जलतल्पे सुविप्लुते ॥३८॥
ध्यायत्येव महायोगी प्राकृतः प्रकृतेः परम् । कालभीतश्च कालेशं कृष्णमात्मानमीश्वरम् ॥३९॥
महाविष्णोर्लोमकूपे साधारः सोऽस्ति विस्तृते । कूपेषु लोम्नां प्रत्येकमेवं विश्वानि सन्ति वै ॥४०॥

उन्हीं के द्वारा ब्रह्मा सृष्टि करने वाले, विष्णु रक्षक और शिव संहार करने वाले हुए हैं। उन्हीं की माया द्वारा दिक्पाल-गण एवं दिशाओं के अधीश्वर चारों ओर भ्रमण किया करते हैं ॥२९॥ उन्हीं की आज्ञा से वायु बहता है, सूर्य सदा दिन के स्वामी बने रहते हैं, चन्द्रमा रात्रि के पति हैं, जो निरन्तर सस्य (फसल) को अति स्निग्ध करते हैं। सम्पूर्ण विश्वों में काल द्वारा ही सब की मृत्यु होती है। काल में ही इन्द्र वर्षा करते हैं, अग्नि काल द्वारा ही जलाते हैं। प्रजाओं पर संयम (शासन) करने वाले यमराज काल द्वारा ही भयभीत के समान होकर विश्व के ऊपर शासन करते हैं। काल में ही प्रजाओं का संहार होता है, काल में ही सृष्टि और रक्षा होती है ॥३०-३२॥ अपने ही देश में सातों समुद्र, अपने ही देश में समस्त पृथ्वी, अपने ही देश में समस्त पर्वत और स्वदेश में ही समस्त पाताल आदि लोक हैं। हे राजेन्द्र! सात स्वर्गलोक, सातों द्वीपों समेत पृथ्वी और पर्वत, सागर समेत सात पाताल लोक के साथ समस्त ब्रह्माण्ड जल के मध्य डिम्बाकार बना रहता है। इस भाँति प्रति ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देव रहते हैं ॥३३-३५ देवगण, मनुष्य, नागगण, गन्धर्व लोग और राक्षस आदि पाताल से लेकर ब्रह्मलोक पर्यन्त डिम्ब का रूप है ॥३६॥ हे नृप! यह परमोत्तम (प्राकृत) ब्रह्माण्ड कृत्रिम (नश्वर) है। जलशायी क्षुद्र विष्णु के नाभि-कमल पर विराड् रूप ब्रह्मा इस भाँति स्थित रहते हैं जैसे कमल-पुष्प की कर्णिका में कमल बीज। अति विस्तृत जल की शय्या पर शयन किये वे विष्णु महायोगी, जो प्रकृति-जन्य हैं, प्रकृति से परे रहने वाले भगवान् श्रीकृष्ण का सतत ध्यान करते हैं ॥३९॥ उन काल के ईश भगवान् श्रीकृष्ण से, जो ईश्वर एवं सब के आत्मा हैं, काल की भाँति भयभीत रहते हैं। वे महाविष्णु के विस्तृत लोमकूप में साधार रहते हैं। उनके प्रत्येक लोमकूप में विश्व अवस्थित हैं ॥३७-४०॥ हे भूपति! महाविष्णु के शरीर-लोम और ब्रह्माण्ड की संख्या

---

१ क. बिम्बा० ।

महाविष्णोर्गात्रलोम्नां ब्रह्माण्डानां च भूमिप। संख्यां कर्तुं न शक्नोति कृष्णोऽप्यन्यस्य काकथा ॥४१॥
महाविष्णुः प्राकृतिकः सोऽपि डिम्बोद्भवः सदा। भवेत्कृष्णेच्छया डिम्बः प्रकृतेर्गर्भसंभवः ॥४२॥
सर्वाधारो महाविष्णुः कालभीतः स शङ्कितः। कालेशं ध्यायति स्वैरं कृष्णमात्मानमीश्वरम् ॥४३॥
एवं च सर्वविश्वस्था ब्रह्मविष्णुशिवादयः। महान्विराट् क्षुद्रविराट् सर्वे प्राकृतिकाः सदा ॥४४॥
सा सर्वबीजरूपा च मूलप्रकृतिरीश्वरी। काले लीना च कालेशे कृष्णे तं ध्यायति स्म सा ॥४५॥
एवं सर्वे कालभीताः प्रकृतिः प्राकृतास्तथा। आविर्भूतास्तिरोभूताः कालेन परमात्मनि ॥४६॥
इत्येवं कथितं सर्वं महाज्ञानं सुदुर्लभम्। शिवेन गुरुणा दत्तं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥४७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० हरगौरीसं० राधोपा० सुयज्ञोपा० सुयज्ञं प्रत्यतिथ्युपदेशो नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५३॥

अथ चतु:पञ्चाशत्तमोऽध्याय:

राजोवाच

कुत्राऽऽधारो महाविष्णोः सर्वाधारस्य तस्य च। कालभीतस्य कतिचित्कालमायुर्मुनीश्वर ॥१॥

स्वयं कृष्ण भी नहीं कर सकते हैं अन्य की तो बात ही क्या है ॥४१॥ वे महाविष्णु भी प्रकृति द्वारा उस डिम्ब से सदैव उत्पन्न होते हैं। जब भगवान् श्रीकृष्ण की इच्छा होती है, प्रकृति के गर्भ से डिम्ब उत्पन्न हो जाता है।॥४२॥ इस भाँति समस्त के आधार महाविष्णु भी काल से भयभीत एवं सशंकित रह कर कालाधीश्वर एवं परम स्वतंत्र ईश्वर एवं सर्वात्मा श्रीकृष्ण का सतत ध्यान करते हैं॥४३॥ इस प्रकार सभी विश्वों में रहने वाले ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि तथा महाविराट् एवं क्षुद्र विराट् सभी प्राकृत (प्रकृतिजन्य) हैं। वही ईश्वरी मल प्रकृति समस्त बीजों का स्वरूप है, जो समय आने पर कालाधीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण में लीन हो जाती है और नित्य उनका ध्यान करती रहती है।॥४४-४५॥ अतः सभी लोग काल से भयभीत रहते हैं और प्रकृति से उत्पन्न होने के नाते प्राकृत हैं तथा समय-समय पर उसी परमात्मा में आविर्भूत और विलीन हुआ करते हैं।॥४६॥ इस प्रकार मैंने अति दुर्लभ महाज्ञान तुम्हें सुना दिया, जिसे गुरु शिव ने मुझे बताया था। अब और क्या सुनना चाहते हो।॥४७॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत हरगौरी-संवाद के राधोपाख्यान में सुयज्ञ के प्रति अतिथि-उपदेश-कथन नामक तिरपनवाँ अध्याय समाप्त ॥५३॥

अध्याय ५४

सुयज्ञ की गोलोकप्राप्ति का वर्णन

राजा बोले—हे मुनीश्वर! समस्त के आधार महाविष्णु का आधार कौन है और

क्षुद्रस्य कतिचित्कालं ब्रह्मणः प्रकृतेस्तथा । मनोरिन्द्रस्य चन्द्रस्य सूर्यस्याऽऽयुस्तथैव च ॥२॥
अन्येषां वै जनानां च प्राकृतानां परं वयः । वेदोक्तं सुविचार्यं च वद वेदविदां वर ॥३॥
विश्वानामूर्ध्वभागे च कः स्याद्वा लोक एव सः । कथयस्व महाभाग संदेहच्छेदनं कुरु ॥४॥

मुनिरुवाच

गोलोको नृप विश्वानां विस्तृतश्च नभः समः । तथा नित्यं डिम्बरूपः श्रीकृष्णेच्छासमुद्भवः ॥५॥
जलेन परिपूर्णश्च कृष्णस्य मुखबिन्दुना । सृष्टयुन्मुखस्याऽऽदिसर्गे परिश्रान्तस्य खेलतः ॥६॥
प्रकृत्या सह युक्तस्य कलया निजया नृप । तत्राऽऽधारो महाविष्णोर्विश्वाधारस्य विस्तृतः ॥७॥
प्रकृतेर्गर्भसंभूतडिम्बोद्भूतस्य भूमिप । सुविस्तृते जलाधारे शयानश्च महाविराट् ॥८॥
राधेश्वरस्य कृष्णस्य षोडशांशः प्रकीर्तितः । दूर्वादलश्यामरूपः सस्मितश्च चतुर्भुजः ॥९॥
वनमालाधरः श्रीमाञ्शोभितः पीतवाससा । ऊर्ध्वं नभसि तद्विष्णोर्नित्यवैकुण्ठ एव च ॥१०॥
आत्माकाशसमो नित्यो विस्तृतश्चन्द्रबिम्बवत् । ईश्वरेच्छासमुद्भूतो निर्लक्ष्यश्च निराश्रयः ॥११॥
आकाशवत्सुविस्तारो रत्नौघैश्च विनिर्मितः । तत्र नारायणः श्रीमान्वनमाली चतुर्भुजः ॥१२॥
लक्ष्मीसरस्वतीगङ्गातुलसीपतिरीश्वरः । सुनन्दनन्दकुमुदपार्षदादिभिरावृतः ॥१३॥

उस कालभीत की आयु कितने काल की है? ॥१॥ क्षुद्र विराट् की आयु, ब्रह्मा, प्रकृति, मनु, इन्द्र, चन्द्र और सूर्य की आयु क्या है? ॥२॥ हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ! अन्य प्राकृत जनों की आयु भी वेदानुकूल भलीभांति विचार कर बताने की कृपा करें॥३॥ समस्त विश्वसंघ के ऊपर कौन लोक है? अथवा वही है क्या? हे महाभाग! यह सन्देह दूर करने की कृपा करें॥४॥

मुनि बोले—हे नृप! समस्त विश्व-समूहों के ऊपर गोलोक है जो आकाश की भाँति विस्तृत है तथा भगवान् श्रीकृष्ण की इच्छा से उत्पन्न एवं नित्य डिम्ब (अण्ड) रूप में रहता है॥५॥ आदि सृष्टि के समय सृष्टि के प्रति उन्मुख होने पर खेल से श्रान्त भगवान् श्रीकृष्ण के मुख-विन्दु रूप जल से यह परिपूर्ण है॥६॥ हे नृप! अपनी निजी कला रूप प्रकृति से युक्त एवं विश्व के आधार महाविष्णु का वहीं विस्तृत आधार है॥७॥ हे भूमिपाल! वह महाविष्णु प्रकृति के गर्भ से उत्पन्न डिम्ब से प्रकट हुआ है, उसका आधार महाविराट् अति विस्तृत जलाधार पर शयन करता रहता है॥८॥ राधेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण का वह षोडशांश (सोलहवाँ अंश) कहा जाता है जो दूर्वादल की भाँति श्यामल एवं मन्द मुसुकान करते हुए चार भुजाओं से युक्त है ॥९॥ तथा वनमाला धारण किए वह श्री-सुशोभित एवं पीताम्बर-भूषित है। आकाश में ऊपर उस विष्णु का नित्य स्थायी वैकुण्ठ लोक है॥१०॥ जो आत्मा एवं आकाश की भाँति नित्य, चन्द्र-विम्ब के समान विस्तृत, ईश्वर की इच्छा से उत्पन्न, लक्ष्यहीन और निराधार है॥११॥ तथा आकाश की भाँति अति विस्तार में स्थित एवं रत्नसमूहों से सुरचित है। जिसमें श्रीमान् नारायण भगवान् वनमाला धारण किए चार भुजाओं से विराजमान रहते हैं॥१२॥ उन ईश्वर के लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा और तुलसी ये चार पत्नियाँ हैं। वे स्वयं सुनन्द नन्द और कुमुद आदि पार्षदों से सदा आवृत रहते हैं ॥१३॥ सर्वेश्वर, समस्त सिद्धों के अधीश्वर एवं

सर्वेशः सर्वसिद्धेशो भक्तानुग्रहविग्रहः। श्रीकृष्णश्च द्विधाभूतो द्विभुजश्च चतुर्भुजः ॥१४॥
चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे गोलोके द्विभुजः स्वयम्। ऊर्ध्वं वैकुण्ठलोकाच्च पञ्चाशत्कोटियोजनात् ॥१५॥
गोलोको वर्तुलाकारो वरिष्ठः सर्वलोकतः। अमूल्यरत्नखचितैर्मन्दिरैश्च विभूषितः ॥१६॥
रत्नेन्द्रसारखचितैः स्तम्भसोपानचित्रितैः। मणीन्द्रदर्पणासक्तैः कपाटैः कलशोज्ज्वलैः ॥१७॥
नानाचित्रविचित्रैश्च शिबिरैश्च विराजितः। कोटियोजनविस्तीर्णो दैर्घ्ये शतगुणस्तथा ॥१८॥
विरजासरिदाकीर्णैः शतशृङ्गैः सुवेष्टितः। सरिदर्धप्रमाणेन दैर्घ्येण च ततेन च ॥१९॥
शैलार्धपरिमाणेन युक्तो वृन्दावनेन च। तदर्धमानविलसद्रासमण्डलमण्डितः ॥२०॥
सरिच्छैलवनादीनां मध्ये गोलोक एव च। यथा पङ्कजमध्ये च कर्णिका सुमनोहरा ॥२१॥
तत्र गोगोपगोपीभिर्गोपीशो रासमण्डले। रासेश्वर्या राधिकया संयुक्तः संततं नृप ॥२२॥
द्विभुजो मुरलीहस्तः शिशुर्गोपालरूपधृत्। वह्निशुद्धांशुकाधानो रत्नभूषणभूषितः ॥२३॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गो रत्नमालाविराजितः। रत्नसिंहासनस्थश्च रत्नच्छत्रेण शोभितः ॥२४॥
तथा स प्रियगोपालैः सेवितः श्वेतचामरैः। भूषिताभिश्च गोपीभिर्मालाचन्दनर्चचितः ॥२५॥
सस्मितः सकटाक्षाभिः सुवेषाभिश्च वीक्षितः। कथितो लोकविस्तारो यथाशक्ति यथागमम् ॥२६॥

भक्तों पर अनुग्रहार्थ शरीर धारण करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण दो भुजाओं और चार भुजाओं से दो रूप धारण कर चार भुजाओं से वैकुण्ठ में और दो भुजाओं से स्वयं गोलोक में स्थित हैं, जो वैकुण्ठ लोक से पचास करोड़ योजन ऊपर स्थित है ॥१४-१५॥ यह गोलोक गोलाकार, सभी लोकों से श्रेष्ठ, अमूल्य रत्नों से खचित असंख्य मन्दिरों से विभूषित है ॥१६॥ वहाँ के खम्भे और सीढ़ियाँ उत्तम रत्नों के सारभाग से खचित होने के नाते चित्रविचित्र हैं। उत्तम मणियों के दर्पणों (शीशों) से युक्त किवाड़ों, उज्ज्वल कलशों और अनेक भाँति के चित्र-विचित्र शिविरों से वह गोलोक सुशोभित है। उसकी चौड़ाई एक करोड़ योजन है और लम्बाई सौ गुनी अधिक ॥१७-१८॥ विरजा नामक नदी से व्याप्त सौ शिखरों वाले पर्वतों से वह आवेष्टित है। उक्त नदी के आधे प्रमाण लम्बे-चौड़े तथा पर्वत के आधे प्रमाण ऊँचे वृन्दावन से वह युक्त है। उसके आधे प्रमाण में स्थित रास-मण्डल से मण्डित गोलोक नदी, पर्वत और जंगलों आदि के मध्य में इस प्रकार सुशोभित है जैसे कमल-पुष्प के मध्य अति मनोहर कर्णिका रहती है। हे नृप! उस रासमण्डल में गोपाधीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण रासेश्वरी राधिका को निरन्तर साथ लिए गौओं, गोपवृन्दों और गोपियों से आवृत रहते हैं। वे सदैव दो भुजाओं वाले रूप से मुरली हाथ में लिए बच्चे की अवस्था वाले गोपाल रूप को धारण किये रहते हैं। अग्नि की भाँति विशुद्ध वस्त्र धारण किये, रत्नों के भूषणों से भूषित, समस्त अंगों में चन्दन लगाये, रत्नों की माला से सुशोभित होकर रत्न-सिंहासन पर वे विराजमान हैं। ऊपर रत्नों का छत्र लगा है और प्रिय गोपाल गण श्वेत चँवरों से सेवा करते रहते हैं। उत्तम वेषभूषा धारण करने वाली गोपियाँ उन्हें माला-चन्दन लगाती हैं और अपने कटाक्षों से बार-बार देखती रहती हैं, जिससे भगवान् मन्द मुसुकान करते रहते हैं। इस प्रकार मैंने गोलोक का विस्तार वेदानुसार यथाशक्ति बता दिया है ॥१९-२६॥

यथाश्रुतं शंभुवक्त्रात्कालमानं निशामय । पात्रं षट्पलसंभूतं गंभीरं चतुरङ्गुलम् ॥२७॥
स्वर्णमाषकृतच्छिद्रं दण्डैश्च चतुरङ्गुलैः । यावज्जलप्लुतं पात्रं तत्कालं दण्डमेव च ॥२८॥
दण्डद्वयं मुहूर्तं च यामस्तस्य चतुष्टयम् । वासरश्चाष्टभिर्यामैः पक्षस्तैर्दशपञ्चभिः ॥२९॥
मासो द्वाभ्यां च पक्षाभ्यां वर्षं द्वादशमासकैः । मासेन वै नराणां च पितृणां तदहर्निशम् ॥३०॥
कृष्णपक्षे दिनं प्रोक्तं शुक्ले रात्रिः प्रकीर्तिता। वत्सरेण नराणां च देवानां च दिवानिशम् ॥३१॥
अयनं ह्युत्तरमहो रात्रिर्वै दक्षिणायनम् । युगकर्मानुरूपं च नरादीनां वयो नृप ॥३२॥
प्रकृतेः प्राकृतानां च ब्रह्मादीनां निशामय । कृतं त्रेता द्वापरं च कालश्चेति चतुर्युगम् ॥३३॥
दिव्यैर्द्वादशसाहस्रैः सावधानं निशामय। चत्वारि त्रीणि च द्वचेकं सहस्राणि कृतादिकम् ॥३४॥
तेषां च संध्यासंध्यांशौ द्वे सहस्रे प्रकीर्तिते । त्रिचत्वारिंशकैर्लक्षैः सविंशतिसहस्रकैः ॥३५॥
चतुर्युगं परिमितं नरमानक्रमेण च । लक्षैश्च सप्तदशभिः साष्टविंशसहस्रकैः ॥३६॥
कृतं युगं नृमानेन संख्याविद्भिः प्रकीर्तितम् ॥३७॥
सहस्रैः षण्णवतिभिर्लक्षैर्द्वादशभिः सह । त्रेतायुगं परिमितं कालविद्भिः प्रकीर्तितम् ॥३८॥
अष्टलक्षैः सह मितं चतुःषष्टिसहस्रकम् । परिमाणं द्वापरस्य संख्याविद्भिरितीरितम् ॥३९॥
सद्वात्रिंशत्सहस्रैश्च चतुर्लक्षैश्च वत्सरैः । नृमानाद्वै कलियुगं विदुः कालविदो बुधाः ॥४०॥

शंकर के मुख से मैंने समय के मान के सम्बन्ध में जैसा सुना था वह तुम भी सुन लो। छह पल सोने का बना हुआ एक पात्र हो, जिसकी गहराई चार अंगुल की हो। उसमें एक-एक माशे सोने के बने हुए चार-चार अंगुल लंबे चार कीलों से छेद कर दिये जायँ । फिर उस पात्र को जल के ऊपर रख दिया जाय। उन छिद्रों से जल आकर जितनी देर में वह पात्र भर दे उतने समय को एक दण्ड कहा जाता है॥२७-२८॥ वैसे दो दण्ड का एक मुहूर्त (घटी) होता है, और चार घटी का एक याम (प्रहर), आठ याम का एक दिन-रात तथा पन्द्रह दिन का एक पक्ष (पाख), दो पक्ष (पाख) का एक मास और बारह मास का एक वर्ष होता है। मनुष्यों का एक मास पितरों का एक अहोरात्र ही होता है॥२९-३०॥ उनका दिन कृष्ण पक्ष में और रात्रि शुक्ल पक्ष में होती है। मनुष्यों का एक वर्ष देवों का एक दिन-रात होता है॥३१॥ उत्तरायण उनका दिन और दक्षिणायन उनकी रात्रि है। हे नृप! युग-कर्म के अनुरूप मनुष्य आदि की आयु होती है॥३२॥ अब प्रकृति, प्राकृत पदार्थ एवं ब्रह्मा आदि की भी आयु कह रहा हूँ, सुनो। कृत (सत्य) त्रेता, द्वापर और कलि ये चार युग हैं॥३३॥ जो दिव्य बारह सहस्र वर्ष के होते हैं। उन्हें सावधानी से सुनो। कृत (सत्य) चार सहस्र, त्रेता तीन सहस्र, द्वापर दो सहस्र और कलि एक सहस्र वर्ष का होता है, इनके सन्ध्या और सन्ध्यांश भी दो सहस्र वर्ष के होते हैं। मनुष्यों के वर्ष प्रमाण से चारों युग तैंतालीस लाख बीस सहस्र (हजार) वर्ष के होते हैं॥३४-३५॥ अब चारों युगों का पृथक्-पृथक् वर्ष प्रमाण मनुष्यों के मान से बता रहा हूँ—सत्रह लाख अट्ठाइस सहस्र वर्ष का कृत (सत्य) युग होता है, ऐसा संख्या-वेत्ताओं ने मनुष्यों के मान से बताया है। उसी भाँति बारह लाख छानवे सहस्र वर्ष का त्रेता युग, आठ लाख चौंसठ सहस्र वर्ष का द्वापर और चार लाख बत्तीस सहस्र वर्ष का कलियुग होता है, ऐसा संख्या-वेत्ताओं और काल के पण्डितों ने बताया है ॥३६-४०॥ इनमें

यथा सप्त च वारा वै तिथयः षोडश स्मृताः । दिवारात्र्यश्च पक्षौ द्वौ मासो वर्षं च निर्मितम् ॥४१॥
यथा भ्रमति तच्चक्रमेवमेव चतुर्युगम् । यथा युगानि राजेन्द्र तथा मन्वन्तराणि च ॥४२॥
मन्वन्तरं तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः । एवं क्रमाद्भ्रमन्त्येव मनवश्च चतुर्दश ॥४३॥
पञ्चविंशतिसाहस्रं षष्ट्यन्तशतपञ्चकम् । नरमानयुगं चैव परं मन्वन्तरं स्मृतम् ॥४४॥
आख्यानं च मनूनां च धर्मिष्ठानां नराधिप । यच्छ्रुतं [1]शिववक्त्रेण तत्त्वं मत्तो निशामय ॥४५॥
आद्यो मनुर्ब्रह्मपुत्रः शतरूपा पतिव्रता । धर्मिष्ठानां वरिष्ठश्च गरिष्ठो मनुषु प्रभुः ॥४६॥
स्वायंभुवः शंभुशिष्यो विष्णुव्रतपरायणः । जीवन्मुक्तो महाज्ञानी भवतः प्रपितामहः ॥४७॥
राजसूयसहस्रं च चक्रे वै नर्मदातटे । त्रिलक्षमश्वमेधं च त्रिलक्षं नरमेधकम् ॥४८॥
गोमेधं च चतुर्लक्षं विधिवन्महदद्भुतम् । ब्राह्मणानां त्रिकोटीश्च भोजयामास नित्यशः ॥४९॥
पञ्चलक्षगवां मांसैः सुपक्वैर्घृतसंस्कृतैः । चर्व्यैश्चोष्यैर्लेह्यपेयैर्मिष्टद्रव्यैः सुदुर्लभैः ॥५०॥
[2]अमूल्यरत्नलक्षं च दशकोटिसुवर्णकम् । स्वर्णशृङ्गयुतं दिव्यं गवां लक्षं सुपूजितम् ॥५१॥
वह्निशुद्धानि वस्त्राणि मणीन्द्राणां च लक्षकम् । भूमिं च सर्वसस्याढ्यां गजेन्द्राणां च लक्षकम् ॥५२॥
त्रिलक्षमश्वरत्नं च शातकुम्भविभूषितम् । सहस्ररथरत्नं च शिबिकालक्षमेव च ॥५३॥

सात दिन, सोलह तिथियाँ, दिन और रात्रि, दो पक्ष, मास और वर्ष का निर्माण किया गया है॥४१॥ हे राजेन्द्र! इसमें चक्के की भाँति चारों युगों का चक्र, प्रत्येक युगों के पृथक्-पृथक् चक्र और मन्वन्तरों का चक्र घूमता रहता है॥४२॥ इकहत्तर दिव्य युगों का एक मन्वन्तर होता है। इसी भाँति चौदहों मन्वन्तर क्रमशः घूमा करते हैं॥४३॥ मनुष्यों के मान से पच्चीस सहस्र पाँच सौ साठ युगों का एक मन्वन्तर होता है ॥४४॥ हे नराधिप! धर्मिष्ठ मनुष्यों का आख्यान मैंने शिवजी के मुख से जैसा सुना है, तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ॥४५॥ आदि मनु, जो ब्रह्मा के पुत्र एवं शतरूपा के पति हैं, धर्मिष्ठों में श्रेष्ठ, गौरव पूर्ण एवं मनुओं में समर्थ हैं ॥४६॥ स्वायम्भुव मनु शंकर जी के शिष्य हैं और भगवान् विष्णु के व्रत का पालन करते रहते हैं। वे जीवन्मुक्त, महाज्ञानी एवं आपके प्रपितामह (परदादा) हैं॥४७॥ उन्होंने नर्मदा जी के तट पर एक सहस्र राजसूय यज्ञ, तीन लाख अश्वमेध, तीन लाख नरमेध और चार लाख गोमेध यज्ञ सविधान सुसम्पन्न किये हैं, जिनका आयोजन महान् एवं अद्भुत था, उसमें तीन करोड़ ब्राह्मण नित्य भोजन करते थे ॥४८-४९॥ जिसमें पाँच लाख गौओं के घृत में भली भाँति पकाये मांस रहते थे और चबाने, चूसने, आस्वाद लेने (चाटने), पान करने योग्य वस्तुओं एवं अति दुर्लभ मिष्टान्नों का कुछ कहना ही नहीं है॥५०॥ एक लाख अमूल्य रत्न, दश करोड़ सोने के सिक्के, सुवर्ण-भूषित सींगों वाली दश लाख गौएँ एवं अग्निविशुद्ध वस्त्रों के समूह एक लाख मुनिश्रेष्ठों को समर्पित किये गये। समस्त धान्यों से सम्पन्न हरी-भरी भूमि, एक लाख गजराज, सुवर्णभूषित तीन लाख उत्तम अश्व, एक सहस्र उत्तम रथ, एक लाख शिविका

---

१ क. धर्मव० । २ क. ०रत्नपात्रं च ।

त्रिकोटिस्वर्णपात्रं च सान्नं सजलमीप्सितम् । त्रिकोटिस्वर्णभूषाश्च कर्पूरादिसुवासितम् ।।५४।।
ताम्बूलं सुविचित्रं च त्रिकोटिस्वर्णतल्पकम् । रत्नेन्द्रखचितैर्मञ्चै रचितैर्विश्वकर्मणा ।।५५।।
वह्निशुद्धांशुकैश्चित्रै राजितं माल्यजालकैः । नित्यं ददौ ब्राह्मणेभ्यो विष्णुप्रीत्यै शिवाज्ञया ।।५६।।
संप्राप्य शंकराज्ज्ञानं कृष्णमन्त्रं सुदुर्लभम् । संप्राप्य कृष्णदास्यं च गोलोकं वै जगाम सः ।।५७।।
दृष्ट्वा मुक्तं स्वपुत्रं च प्रहृष्टोऽभूत्प्रजापतिः । तुष्टाव शंकरं तुष्टः ससृजेऽन्यं मनुं विधिः ।।५८।।
यतः स्वयंभुपुत्रोऽयमतः स्वायंभुवो मनुः । स्वारोचिषो मनुश्चैव द्वितीयो वह्निनन्दनः ।।५९।।
राजा वदान्यो धर्मिष्ठः स्वायंभुवसमो महान् । प्रियव्रतसुतावन्यौ द्वौ मनू धर्मिणां वरौ ।।६०।।
तौ तृतीयौ चतुर्थौ च वैष्णवौ तापसोत्तमौ । तौ च शंकरशिष्यौ च कृष्णभक्तिपरायणौ ।।६१।।
धर्मिष्ठानां वरिष्ठश्च रैवतः पञ्चमो मनुः । षष्ठश्च चाक्षुषो ज्ञेयो विष्णुभक्तिपरायणः ।।६२।।
श्राद्धदेवः सूर्यसुतो वैष्णवः सप्तमो मनुः । सावर्णिः सूर्यतनयो वैष्णवो मनुरष्टमः ।।६३।।
नवमो दक्षसावर्णिर्विष्णुव्रतपरायणः । दशमो ब्रह्मसावर्णिर्ब्रह्मज्ञानविशारदः ।।६४।।
ततश्च धर्मसावर्णिर्मनुरेकादशः स्मृतः । धर्मिष्ठश्च वरिष्ठश्च वैष्णवव्रततत्परः ।।६५।।
ज्ञानी च रुद्रसावर्णिर्मनुश्च द्वादशः स्मृतः । धर्मात्मा देवसावर्णिर्मनुरेवं त्रयोदशः ।।६६।।
चतुर्दशो महाज्ञानी चन्द्रसावर्णिरेव च । यावदायुर्मनूनां स्यादिन्द्राणां तावदेव हि ।।६७।।
चतुर्दशेन्द्रावच्छिन्नं ब्रह्मणो दिनमुच्यते । तावती ब्रह्मणो रात्रिः सा च ब्राह्मी निशा नृप ।।६८।।

(पालकी), मन इच्छित अन्न-जल समेत तीन करोड़ सुवर्ण के पात्र, तीन करोड़ सुवर्ण के भूषण, कर्पूरादि सुवासित ताम्बूल, अति विचित्र एवं सुवर्ण रचित तीन करोड़ पलंग जो विश्वकर्मा द्वारा सुरचित रत्नेन्द्र खचित, अग्नि-विशुद्ध वस्त्रों से सुसज्जित और चित्र-विचित्र माला-जालों से सुशोभित थे, शिव जी की आज्ञा से भगवान् विष्णु के प्रसन्नतार्थ नित्य ब्राह्मणों को समर्पित करते थे।।५१-५६।। अनन्तर शंकर जी से ज्ञान तथा भगवान् कृष्ण का अति दुर्लभ मन्त्र प्राप्त कर भगवान् का दास (पार्षद) बन कर वे गोलोक चले गये।।५७।। उस समय प्रजापति ब्रह्मा ने अपने पुत्र को मुक्त होते देख कर अति हर्ष प्रकट किया और शंकर की अति स्तुति की। अनन्तर ब्रह्मा ने पुनः अन्य मनु का सर्जन किया।।५८।। वे स्वयम्भु के पुत्र थे इसलिए उनका स्वायम्भुव मनु नाम था। दूसरे अग्नि के पुत्र स्वारोचिष मनु हुए, जो दानी, धर्मिष्ठ राजा एवं स्वायम्भुव के समान महान् थे। धर्मात्माओं में श्रेष्ठ प्रियव्रत के दोनों पुत्र अन्य दो मनु हुए।।५९-६०।।जो वैष्णव, परम तापस, शिव जी के शिष्य और भगवान् श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे।।६१।। पाँचवाँ रैवत मनु हुआ, जो धर्मात्माओं में श्रेष्ठ था। छठा चाक्षुष मनु हुए जो भगवान् विष्णु की भक्ति में तन्मय रहा करते थे।।६२।। सूर्यपुत्र श्राद्धदेव, जो वैष्णव थे, सातवें मनु हुए। दूसरे वैष्णव सूर्यपुत्र सावर्णिआठवें मनु हुए।।६३।। विष्णु के व्रत परायण दक्षसावर्णि नवें मनु हुए। दशवे ब्रह्मसावर्णि मनु हुए, जो ब्रह्मज्ञान में अति निपुण थे।।६४।। ग्यारहवें धर्मसावर्णि मनु हुए, जो धर्मिष्ठ, श्रेष्ठ एवं भगवान् विष्णु के व्रत में तत्पर रहते थे।।६५।। ज्ञानी रुद्रसावर्णि बारहवें मनु हुए। इसी प्रकार धर्मात्मा देव-सावर्णि तेरहवें मनु और महाज्ञानी चन्द्रसावर्णि चौदहवें मनु हुए। मनुओं की आयु के समान ही इन्द्रों की आयु होती

कालरात्रिश्च सा ज्ञेया वेदेषु परिकीर्तिता । ब्रह्मणो वासरं राजन्क्षुद्रकल्पः प्रकीर्तितः ॥६९॥
सप्तकल्पे चिरंजीवी मार्कण्डेयो महातपाः । ब्रह्मलोकादधः सर्वे लोका दग्धाश्च तत्र वै ॥७०॥
उत्थितेनैव सहसा संकर्षणमुखाग्निना । चन्द्रार्कब्रह्मपुत्राश्च ब्रह्मलोकं गता ध्रुवम् ॥७१॥
ब्रह्मरात्रिव्यतीते तु पुनश्च ससृजे विधिः । तस्यां ब्रह्मनिशायां च क्षुद्रः प्रलय उच्यते ॥७२॥
देवाश्च मनवश्चैव[1] तत्र दग्धा नरादयः । एवं त्रिंशद्दिवारात्रैर्ब्रह्मणो मास एव च ॥७३॥
वर्षं द्वादशमासैश्च ब्रह्मसंबन्धि चैव हि । एवं पञ्चदशाब्दे तु गते च ब्रह्मणो नृप ॥७४॥
दैनंदिनस्तु प्रलयो वेदेषु परिकीर्तितः । ॥७५॥
मोहरात्रिश्च सा प्रोक्ता वेदविद्भिः पुरातनैः । तत्र सर्वे प्रणष्टाः स्युश्चन्द्रार्कादिदिगीश्वराः ॥७६॥
आदित्या वसवो रुद्रा मनवो मानवादयः । ऋषयो मुनयश्चैव गन्धर्वा राक्षसादयः ॥७७॥
मार्कण्डेयो लोमशश्च पेचकश्चिरजीविनः । इन्द्रद्युम्नश्च नृपतिश्चाकूपारश्च कच्छपः ॥७८॥
नाडीजङ्घो बकश्चैव सर्वे नष्टाश्च तत्र वै । ब्रह्मलोकादधः सर्वे लोका नागालयास्तथा ॥७९॥
ब्रह्मलोकं ययुः सर्वे ब्रह्मपुत्रादयस्तथा । गते दैनंदिने ब्रह्मा लोकांश्च ससृजे पुनः ॥८०॥
एवं शताब्दपर्यन्तं परमायुः प्रजापतेः । ब्रह्मणश्च निपाते च महाकल्पो भवेन्नृप ॥८१॥
प्रकीर्तिता महारात्रिः सैव चेह पुरातनैः । ब्रह्मणश्च निपाते च ब्रह्माण्डौघो जलप्लुतः ॥८२॥

है। हे नृप! चौदह इन्द्रों के समय के समान ब्रह्मा का एक दिन होता है और उतनी ही बड़ी उनकी रात्रि होती है। वेदों में वही कालरात्रि कही गयी है। हे राजन्! ब्रह्मा का दिन क्षुद्र (छोटा) कल्प कहा जाता है॥६६-६९॥ महातपस्वी मार्कण्डेय को ऐसे सात कल्पों तक का चिरजीवन प्राप्त है। संकर्षण (शेष) जी के सहसा उठने पर उनके मुख के अग्नि द्वारा ब्रह्मलोक से नीचे सभी लोक दग्ध हो जाते हैं। अनन्तर चन्द्र, सूर्य और ब्रह्मा के पुत्र ब्रह्मलोक चले जाते हैं। इस भाँति रात्रि व्यतीत होने पर ब्रह्मा पुनः उनकी सृष्टि करते हैं। उसी ब्रह्मरात्रि को क्षुद्र (छोटा) प्रलय कहा जाता है॥७०-७२॥ उसमें देववृन्द, मनुगण और मनुष्य आदि सभी जल जाते हैं। इस प्रकार तीस दिन रात्रि का ब्रह्मा का एक मास होता है और उनके बारह मास का उनका एक वर्ष होता है। हे नृप! इस भाँति ब्रह्मा के पन्द्रह वर्ष व्यतीत होने पर एक प्रलय होता है, जो दैनन्दिन नाम से वेदों में बताया गया है॥७३-७५॥ प्राचीन वेदवेत्ताओं ने इसे ही मोहरात्रि कहा है जिसमें चन्द्र, सूर्य आदि दिशाओं के अधीश्वर, आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, मनुवृन्द, मानव आदि, ऋषिगण, मुनिगण, गन्धर्व, राक्षस, चिरजीवी मार्कण्डेय, लोमश, पेचक, राजा इन्द्रद्युम्न, अकूपार, कच्छप, नाडीजंघ और बक सभी नष्ट हो जाते हैं। और ब्रह्मलोक के नीचे रहने वाले सभी पाताल पर्यन्त लोक जल जाते हैं एवं ब्रह्मा के पुत्र आदि ब्रह्मलोक चले जाते हैं। इस प्रकार दैनन्दिन व्यतीत होने पर ब्रह्मा पुनः उन लोकों का निर्माण करते हैं॥७६-८०॥ हे नृप! इस भाँति प्रजापति ब्रह्मा की सौ वर्ष की परमायु होती है और ब्रह्मा के अन्त होने पर महाप्रलय होता है॥८१॥ प्राचीनों ने उसे महारात्रि कहा है। ब्रह्मा के अन्त

---

१ क. मुनयश्चै०।

वेदमाता च सावित्री वेदा धर्मादयस्तथा । सर्वे प्रणष्टा मृत्युश्च प्रकृतिं च शिवं विना ॥८३॥
नारायणे प्रलीनाश्च विश्वस्था वैष्णवास्तथा । कालाग्निरुद्रः संहर्ता सर्वरुद्रगणैः सह ॥८४॥
मृत्युंजये महादेवे प्रलीनः स तमोगुणः । ब्रह्मणश्च निपातेन निमेषः प्रकृतेर्भवेत् ॥८५॥
नारायणस्य शंभोश्च महाविष्णोश्च निश्चितम् । निमेषान्ते पुनः सृष्टिर्भवेत्कृष्णेच्छया नृप ॥८६॥
कृष्णो निमेषरहितो निर्गुणः प्रकृते परः । सगुणानां निमेषश्च कालसंख्यावयोमितः ॥८७॥
निर्गुणस्य च नित्यस्य चाऽऽद्यन्तरहितस्य च । निमेषाणां सहस्रेण प्रकृतेर्दण्ड उच्यते ॥८८॥
षष्टिदण्डात्मकस्तस्य वासरश्च प्रकीर्तितः । त्रिंशद्रात्रिदिनैर्मासो वर्षं द्वादशमासकैः ॥८९॥
एवं गते शताब्दे च श्रीकृष्णे प्रकृतेर्लयः । प्रकृत्यां च प्रलीनायां श्रीकृष्णे प्राकृतो लयः ॥९०॥
सर्वान्संहृत्य सा चैका महाविष्णोः प्रसूश्च या । कृष्णवक्षसि लीना च मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥९१॥
सन्तो वदन्ति तां दुर्गां विष्णुमायां सनातनीम् । सर्वशक्तिस्वरूपां च परां नारायणीं सतीम् ॥९२॥
बुद्ध्यधिष्ठातृदेवीं च[1] कृष्णस्य त्रिगुणात्मिकाम् । यन्मायामोहिताश्चैव ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥९३॥
वैष्णवास्तां महालक्ष्मीं परां राधां वदन्ति ते । यदर्धाङ्गा महालक्ष्मीः प्रिया नारायणस्य च ॥९४॥
प्राणाधिष्ठातृदेवीं च प्रेम्णा प्राणाधिकां वराम् । स्थिरप्रेममयीं शक्तिं निर्गुणां निर्गुणस्य च ॥९५॥

होने पर ब्रह्माण्ड-समूह जल में डूब जाता है। उसमें देवमाता, सावित्री, वेद, धर्म आदि एवं मृत्यु का भी नाश हो जाता है, केवल शिव और प्रकृति शेष रहते हैं ॥८२-८३॥ विश्व के समस्त वैष्णव नारायण में विलीन हो जाते हैं और समस्त रुद्रगणों समेत संहार करने वाले कालाग्नि रुद्र, मृत्युञ्जय महादेव में लीन होते हैं, क्योंकि वे तमोगुण स्वरूप हैं। इस प्रकार ब्रह्मा के पतन होने पर प्रकृति का एक निमेष (क्षण) होता है। हे नृप! निमेष के अन्त में नारायण (विष्णु), शिव और महाविष्णु आदि की सृष्टि भगवान् श्रीकृष्ण की इच्छा से आरम्भ हो जाती है ॥८४-८६॥ भगवान् श्रीकृष्ण, निमेषरहित, निर्गुण और प्रकृति से परे हैं। उनके सगुण रूप का निमेष, काल-संख्या और आयु परिमित होती है किन्तु गुणहीन, नित्य, आदि-अन्त रहित की परिमितता (इयत्ता) नहीं होती है। प्रकृति के सहस्र निमेष का उसका एक दण्ड होता है, साठ दण्ड का एक दिन, तीस दिन का मास और बारह मास का वर्ष होता है ॥८७-८९॥ इस प्रकार प्रकृति के सौ वर्ष व्यतीत होने पर भगवान् श्रीकृष्ण में उसका लय हो जाता है और प्रकृति के श्रीकृष्ण में विलीन होने पर वह प्राकृतलय कहा जाता है ॥९०॥ इस भाँति महाविष्णु की जननी प्रकृति जो ईश्वरी एवं मूल प्रकृति कही जाती है, अपने में सबका संहरण कर के स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल में विलीन हो जाती है ॥९१॥ जिसे सन्त महात्मागण दुर्गा, विष्णु-माया, सनातनी, समस्त शक्ति रूप और सर्वश्रेष्ठ सती नारायणी कहते हैं ॥९२॥ वही भगवान् श्रीकृष्ण की बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी है, जिसकी माया से ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव मोहित रहा करते हैं ॥९३॥ वैष्णवगण उसे ही महालक्ष्मी एवं सर्वोत्तम राधा कहते हैं, जो नारायण की अर्द्धांगिनी एवं प्रिया महालक्ष्मी है ॥९४॥ वह उनके प्राणों की अधिष्ठात्री देवी, प्रेमतः प्राण से अधिक प्रिय एवं श्रेष्ठा है, और निर्गुण की स्थिरप्रेममयी निर्गुणा शक्ति है ॥९५॥ नारायण (विष्णु) और शिव (अपने में) अपने-अपने

---

१ क. च श्रीकृष्णस्यैव निर्गुणम् ।

नारायणश्च शंभुश्च संहृत्य स्वगणान्बहून् । शुद्धसत्त्वस्वरूपी श्रीकृष्णे लीनश्च निर्गुणे ॥९६॥
गोपा गोप्यश्च गावश्च सवत्साश्च नराधिप । सर्वे लीनाः प्रकृत्यां च प्रकृतिः परमेश्वरे ॥९७॥
महाविष्णौ विलीनाश्च ते सर्वे क्षुद्रविष्णवः । महाविष्णुः प्रकृत्यां च सा चैवं परमात्मनि ॥९८॥
प्रकृतिर्योगनिद्रा च श्रीकृष्णनयनद्वये । अधिष्ठानं चकारैवं मायया: चेश्वरेच्छया ॥९९॥
प्रकृतेर्वासरो यावन्मितः कालः प्रकीर्तितः । तावद्वृन्दावने निद्रा कृष्णस्य परमात्मनः ॥१००॥
अमूल्यरत्नतल्पे च वह्निशुद्धांशुकार्चिते । गन्धचन्दनमाल्यौघवाय्वादिसुरभीकृते ॥१०१॥
पुनः प्रजागरे तस्य सर्वसृष्टिर्भवेत्पुनः । एवं सर्वे प्राकृताश्च श्रीकृष्णं निर्गुणं विना ॥१०२॥
तद्वन्दनं तत्स्मरणं तस्य ध्यानं तदर्चनम् । कीर्तनं तद्गुणानां च महापातकनाशनम् ॥१०३॥
एतत्ते कथितं सर्वं यद्यन्मृत्युंजयाच्छ्रुतम् । यथागमं महाराज किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१०४॥

सुयज्ञ उवाच

कालाग्निरुद्रो विश्वानां संहर्ता च तमोगुणः । ब्रह्मणोऽन्ते विलीनश्च सत्त्वं मृत्युंजये शिवे ॥१०५॥
शिवो लीनो निर्गुणे च श्रीकृष्णे प्राकृते लये । कथं तव गुरोर्नाम मृत्युंजय इति श्रुतम् ॥१०६॥
कथं प्रसूर्महाविष्णोर्मूलप्रकृतिरीश्वरी । असंख्यानि च विश्वानि सन्ति वै यस्य लोमसु ॥१०७॥

गणों का संहरण करके शुद्ध सत्त्व रूप से निर्गुण भगवान् श्रीकृष्ण में लीन हो जाते हैं॥९६॥ हे नराधिप! गोप, गोपी, बछड़ों समेत गौएँ प्रकृति में लीन होती हैं और प्रकृति परमेश्वर में॥९७॥ सब छोटे विष्णु महाविष्णु में लीन होते हैं, महाविष्णु प्रकृति में और प्रकृति परमात्मा में विलीन होती है॥९८॥ ईश्वरेच्छया प्रकृति योगनिद्रा होकर भगवान् श्रीकृष्ण के दोनों नेत्रों पर माया से अपना अधिष्ठान बनाती है॥९९॥ इस भाँति प्रकृति का वासर (दिन) काल जितने समय का रहता है, उतने समय तक वृन्दावन में परमात्मा श्रीकृष्ण को निद्रा रहती है॥१००॥ वे अमूल्य रत्नों की शय्या पर, जो अग्नि विशुद्ध वस्त्र से सुसज्जित एवं गन्ध, चन्दन तथा मालाओं की वायु से अति सुवासित रहती है, शयन करते हैं। उनके जागने पर पुनः सब की सृष्टि होने लगती है, इस प्रकार केवल निर्गुण भगवान् श्रीकृष्ण के अतिरिक्त सभी प्राकृत (प्रकृति से उत्पन्न) कहे जाते हैं। अतः उनका वन्दन, स्मरण, ध्यान, अर्चन और उनके गुणों का कीर्तन करना महापाप का नाश करता है। हे महाराज! मृत्युञ्जय के मुख से मैंने आगमानुसार जो कुछ सुना था, वह तुम्हें सुना दिया, अब और क्या सुनना चाहते हो॥१०१-१०४॥

सुयज्ञ बोले—विश्व के संहर्ता कालाग्नि रुद्र, जो तमोगुण रूप हैं, ब्रह्मा का अन्त होने पर सत्त्व रूप से मृत्युञ्जय शिव में विलीन होते हैं॥१०५॥ और शिव जी प्राकृत लय के समय निर्गुण भगवान् श्रीकृष्ण में लीन हो जाते हैं। तो तुम्हारे गुरु शिव मृत्युञ्जय कैसे कहे जाते हैं? ॥१०६॥ और जिस महाविष्णु के लोम में असंख्य विश्व सुनिहित रहता है, ईश्वरी मूल प्रकृति उनकी जननी कैसे कही जाती है? ॥१०७॥

सुतपा उवाच

ब्रह्मणोऽन्ते मृत्युकन्या प्रणष्टा जलबिन्दुवत्। संहर्त्री सर्वलोकानां ब्रह्मादीनां नराधिप ।।१०८।।
कतिधा मृत्युकन्यानां ब्रह्मणां कोटिशो लये। कालेन लीनः शंभुश्च सत्त्वरूपे च निर्गुणे ।।१०९।।
मृत्युकन्या जिता शश्वच्छिवेन गुरुणा मम। न मृत्युना जितः शंभुः कल्पे कल्पे श्रुतौ श्रुतम् ।।११०।।
शंभुर्नारायणस्यैव प्रकृतेश्च नराधिप। नित्यानां लीनता नित्ये तन्माया न तु वास्तवी ।।१११।।
स्वयं पुमान्निर्गुणश्च कालेन सगुणः स्वयम्। स्वयं नारायणः शंभुर्मायया प्रकृतिः स्वयम् ।।११२।।
तदंशस्तत्समः शश्वद्यथा वह्नेः स्फुलिङ्गवत्। ये ये च ब्रह्मणा सृष्टा रुद्रादित्यादयस्तथा ।।११३।।
कल्पे कल्पे जितास्ते ते नश्वरा मृत्युकन्यया। न शिवो ब्रह्मणा सृष्टः सत्यो नित्यः सनातनः ।।११४।।
कतिधा ब्रह्मणां पातो यन्निमेषेण भूमिप। अथाऽऽदिसर्गे श्रीकृष्णः प्रकृत्यां च जगद्गुरुः ।।११५।।
चकार वीर्याधानं च पुण्ये वृन्दावने वने। तद्वामांशसमुद्भूता रासे रासेश्वरी परा ।।११६।।
गर्भं दधार सा राधा यावद्वै ब्रह्मणो वयः। ततः सुषाव सा डिम्भं गोलोके रासमण्डले ।।११७।।
चुकोप डिम्भं सा दृष्ट्वा हृदयेन विदूयता। तड्डिम्भं प्रेरयामास तदधो विश्वगोलके ।।११८।।

सुतपा बोले—हे नराधिप! ब्रह्मा के अन्त होने पर मृत्युकन्या जो समस्त लोकों के समेत ब्रह्मा आदि का संहार करती है, जलबिन्दु की भाँति स्वयं नष्ट हो जाती है, ।।१०८।। इस प्रकार कितनी मृत्यु-कन्याओं और करोड़ों ब्रह्मा के लय होने के अनन्तर शिव जी अवसर देखकर सत्त्व रूप एवं निर्गुण (श्रीकृष्ण) में लीन हो जाते हैं।।१०९।। मेरे गुरु शिव जी ने ही मृत्युकन्या को जीता है, न कि मृत्यु ने शंकर जी को, ऐसा प्रत्येक कल्प में वेद में सुना गया है।।११०।। हे नराधिप! शिव, नारायण और प्रकृति ये तीनों नित्य हैं, अतः नित्य में नित्यों की लीनता उनकी माया है, वास्तव में नहीं है।।१११।। क्योंकि स्वयं पुरुष निर्गुण है और वही समय पाकर सगुण होता है। स्वयं नारायण ही शिव हैं और माया से स्वयं प्रकृति है।।११२।। जो अग्नि की चिनगारी की भाँति उसी का अंश और निरन्तर उसी के समान है। ब्रह्मा द्वारा रुद्र, आदित्य आदि जिन-जिन की प्रत्येक कल्पों में सृष्टि होती है, वे मृत्यु कन्या द्वारा विजित होने के नाते नश्वर हैं। किन्तु शिव की सृष्टि ब्रह्मा द्वारा नहीं होती है, वे सत्य, नित्य एवं सनातन हैं।।११३-११४।। हे भूमिप! जिनके निमेष मात्र से कितने ब्रह्मा का पतन हो जाता है। वे जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्ण सृष्टि के आदि में वृन्दावन नामक पुण्य स्थान में प्रकृति में वीर्याधान करते हैं। उस समय रासमण्डल में उनके बाँयें भाग से सर्वश्रेष्ठा रासेश्वरी राधा उत्पन्न होती हैं। जो भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा वीर्याधान करने पर ब्रह्मा की आयु तक उस गर्भ को धारण किए रहती हैं। अनन्तर गोलोक के रासमण्डल में डिम्भ (अंड) को उत्पन्न करती हैं।।११५-११७।। किन्तु उसे देख कर उन्हें महान् क्रोध उत्पन्न होता है जिससे हार्दिक दुःख प्रकट करती हुई वे उस डिम्भ (अंडे) को गोलोक से नीचे विश्व के कुण्डों में फेंक देती हैं।।११८।।

त्यक्त्वाऽपत्यं महादेवी रुरोद च मुहुर्मुहुः। कृष्णस्तां बोधयामास महायोगेन योगवित् ॥११९॥
बभूव तस्माड्डिम्भाच्च सर्वाधारो महाविराट् ॥१२०॥

सुयज्ञ उवाच

अद्य मे सफलं जन्म जीवनं सार्थकं मम। शापो मे वररूपश्चाप्यभवद्भक्तिकारणम् ॥१२१॥
सुदुर्लभा हरेर्भक्तिः सर्वमङ्गलमङ्गला । न तस्याश्च समं विप्र वेदोक्तं भक्तिपञ्चकम् ॥१२२॥
यथा भक्तिर्मम भवेच्छ्रीकृष्णे परमात्मनि । सुदुर्लभा च सर्वेषां तत्कुरुष्व महामुने ॥१२३॥
नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः। ते पुनन्त्युरुकालेन कृष्णभक्ताश्च दर्शनात् ॥१२४॥
सर्वेषामाश्रमाणां च द्विजातेर्जातिरुत्तमा। स्वधर्मनिरतश्चैव तेषु श्रेष्ठश्च भारते ॥१२५॥
कृष्णमन्त्रोपासकश्च कृष्णभक्तिपरायणः। नित्यं नैवेद्यभोजी च ततः श्रेष्ठो महाञ्छुचिः ॥१२६॥
त्वां वैष्णवं द्विजश्रेष्ठं महाज्ञानार्णवं परम्। संप्राप्य शिवशिष्यं च कं यामि शरणं मुने ॥१२७॥
अधुनाऽहं गलत्कुष्ठी तव शापान्महामुने । कथं तपस्यामशुचिर्नाधिकारी करोमि च ॥१२८॥

इस प्रकार सन्तान त्याग कर वह महादेवी बार-बार रुदन करती है और योगवेत्ता भगवान् श्रीकृष्ण महायोग द्वारा उन्हें बोध कराते (समझाते) हैं॥११९॥ उसी अंडे से समस्त का आधार महाविराट् (महाविष्णु) उत्पन्न होता है॥१२०॥

सुयज्ञ बोले—आज मेरा जन्म सफल हो गया, जीवन सार्थक हुआ और यह शाप वरदान रूप में मिला है, क्योंकि इसी कारण भक्ति प्राप्त हुई है॥१२१॥ हे विप्र! भगवान् की भक्ति समस्त मंगलों का मंगल होने के नाते अति दुर्लभ है और वेद में कही हुई पाँच प्रकार की भक्ति, उसके समान नहीं है। हे महामुने! उन परमात्मा श्रीकृष्ण में जिस प्रकार मेरी भक्ति उत्पन्न हो, जो सबको अति दुर्लभ है, वही उपाय करने की कृपा करें॥१२२-१२३। क्योंकि तीर्थ जलमय ही नहीं होते हैं और न देव मिट्टी पत्थरों में ही रहते हैं। वे लम्बे समय में पवित्र करते हैं और भगवान् कृष्ण के भक्त देखते ही पवित्र कर देते हैं॥१२४॥ सभी आश्रमों में द्विजाति की जाति अति उत्तम कही गयी है, उसमें भी जो अपने धर्म का पालन करने में लगा रहता है वह श्रेष्ठ है॥१२५॥ कृष्ण मन्त्र की उपासना करने वाला, उनकी भक्ति में लीन रहने वाला, और नित्य उनके नैवेद्य का भोजन करने वाला व्यक्ति महान् पवित्र होता है, अतः वह उस (द्विज) से श्रेष्ठ है॥१२६॥ हे मुने! शंकर के शिष्य, द्विजों में श्रेष्ठ, विष्णु के भक्त तथा महान् ज्ञानसागर आपको पाकर मैं अन्य किसकी शरण में जाऊँ। हे महामुने! इस समय आपके शाप द्वारा हमें गलित-कुष्ठ हो गया है, अतः अशुद्ध रहने के नाते मुझे तपस्या करने का अधिकार नहीं है। इसलिए मैं तप नहीं कर सकता हूँ॥१२७-१२८॥

सुतपा उवाच

हरिभक्तिप्रदात्री सा विष्णुमाया सनातनी। सा च याननुगृह्णाति तेभ्यो भक्तिं ददाति च ॥१२९॥
यांश्च माया मोहयति तेभ्यस्तां न ददाति च। करोति वञ्चनां तेषां नश्वरेण धनेन च ॥१३०॥
कृष्णप्रेममयीं शक्तिं प्राणाधिष्ठातृदेवताम्। भज राधां निर्गुणां तां प्रदात्रीं सर्वसंपदाम् ॥१३१॥
शीघ्रं यास्यसि गोलोकं तदनुग्रहसेवया। या सेविता श्रीकृष्णेन सर्वाराध्येन पूजिता ॥१३२॥
ध्यानसाध्यं दुराराध्यं भक्ताः संसेव्य निर्गुणम्। सुचिरेण च गोलोकं प्रयान्ति बहुजन्मतः ॥१३३॥
कृपामयीं च संसेव्य भक्ता यान्त्यचिरेण वै। सा प्रसूश्च महाविष्णोः [1]सर्वसंपत्स्वरूपिणी ॥१३४॥
विप्रपादोदकं भुङक्ष्व वर्षं च संयतः शुचिः। कामदेवस्वरूपश्च रोगहीनो भविष्यसि ॥१३५॥
विप्रपादोदकक्लिन्ना यावत्तिष्ठति मेदिनी। तावत्पुष्करपत्रेषु पिबन्ति पितरो जलम् ॥१३६॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि तानि तीर्थानि सागरे। सागरे यानि तीर्थानि विप्रपादेषु तानि च ॥१३७॥
विप्रपादोदकं चैव पापव्याधिविनाशनम्। सर्वतीर्थोदकसमं भुक्तिमुक्तिप्रदं शुभम् ॥१३८॥
विप्रो मानवरूपी च देवदेवो जनार्दनः। विप्रेण दत्तं द्रव्यं च भुञ्जते सर्वदेवताः ॥१३९॥

सुतपा बोले—भगवान् विष्णु की सनातनी माया भगवान् की भक्ति प्रदान करती है। वह जिसके ऊपर अनुग्रह करती है, उन्हें भक्ति प्रदान करती है ॥१२९॥ वह माया जिन्हें मोहित करती है, उन्हें नश्वर वस्तुएँ—धन आदि देकर भक्ति से वंचित रखती है ॥१३०॥ अतः उस राधा को भजो, जो भगवान् श्रीकृष्ण की प्रेममयी शक्ति, उनके प्राणों की अधिष्ठात्री देवता, निर्गुण और समस्त सम्पदा प्रदान करने वाली है ॥१३१॥ सेवा करने पर उनकी कृपा से शीघ्र गोलोक प्राप्त करोगे, क्योंकि सभी के आराध्य देव भगवान् श्रीकृष्ण ने उनकी सेवा-पूजा स्वयं की है ॥१३२॥ ध्यानसाध्य, दुराराध्य एवं निर्गुण श्री कृष्ण की सम्यक् सेवा करके भक्त जन सुदीर्घकाल किंवा अनेक जन्मों के पश्चात् गोलोक प्राप्त करते हैं ॥१३३॥ किन्तु उस कृपामयी जननी की सेवा करने पर भक्तगण थोड़े काल में ही गोलोक चले जाते हैं और समस्त सम्पत्ति स्वरूप वाली यही महाविष्णु की जननी है ॥१३४॥ अतः तुम संयमपूर्वक एक वर्ष तक ब्राह्मण का चरणोदक पान करो, उससे तुम्हें कामदेव के समान रूप प्राप्त होगा और नीरोग हो जाओगे ॥१३५॥ क्योंकि ब्राह्मण के चरणोदक से पृथ्वी जब तक भीगी रहती है, उतने दिनों तक पितर गण कमल के पत्ते में जलपान करते हैं ॥१३६॥ पृथ्वी पर जितने तीर्थ हैं उतने ही सागर में भी हैं और सागर में जितने तीर्थ हैं उतने ही ब्राह्मणों के चरणों में भी रहते हैं ॥१३७॥ इस कारण ब्राह्मण का चरणोदक समस्त रोगों का नाशक, समस्त तीर्थों के जल के समान भुक्ति-मुक्ति-दायक और शुभ है ॥१३८॥ क्योंकि मनुष्य रूप में ब्राह्मण देवाधिदेव जनार्दन हैं और ब्राह्मणों द्वारा दी गई वस्तुओं का उपभोग सभी देव करते हैं ॥१३९॥

---

१ क. ०र्वशक्तिस्व०।

इत्येवमुक्त्वा विप्रश्च गृहीत्वा तस्य पूजनम् । जगाम गृहमित्युक्त्वा त्वायास्ये वत्सरान्तरे ॥१४०॥
भक्त्या च बुभुजे राजा विप्रपादोकं शिवे। विप्रांश्च पूजयामास भोजयामास वत्सरम् ॥१४१॥
संवत्सरे व्यतीते तु निर्मुक्तो व्याधितो नृप:। आजगाम मुनिश्रेष्ठ: सुतपा: कश्यपाग्रणी: ॥१४२॥
राधापूजाविधानं च स्तोत्रं च कवचं मनुम् । ध्यानं च सामवेदोक्तं ददौ तस्मै नृपाय स: ॥१४३॥
राजन्निर्गम्यतां शीघ्रमित्युक्त्वा तपसे मुनि:। जगाम स्वालयाद्दुर्गं निर्जगाम त्वरन्नृप: ॥१४४॥
रुरुदुर्बान्धवा: सर्वे त्रिरात्रं शोकमूर्च्छिता:। भार्याश्च तत्यजु: प्राणान्पुत्रो राजा बभूव ह ॥१४५॥
सुयश: पुष्करं गत्वा चक्रे वै दुष्करं तप:। दिव्यं वर्षशतं राजा जजाप परमं मनुम् ॥१४६॥
तदा ददर्श गगने रथस्थां परमेश्वरीम् । स तद्दर्शनमात्रेण निष्पापश्च बभूव ह ॥१४७॥
तत्याज मानुषं देहं दिव्यां मूर्तिं दधार ह। सा देवी तेन यानेन रत्नेन्द्रैर्निर्मितेन च ॥१४८॥
नृपं नीत्वा च गोलोकं तत्र चैषा ययौ तदा। राजा ददर्श गोलोकं नद्या विरजयाऽऽवृतम् ॥१४९॥
वेष्टितं पर्वतेनैव शतशृङ्गेण चारुणा। श्रीवृन्दावनसंयुक्तं रासमण्डलमण्डितम् ॥१५०॥
गोगोपगोपीनिकरै: शोभितं परिसेवितै: । रत्नेन्द्रसारखचितैर्मन्दिरै: सुमनोहरै: ॥१५१॥
नानाचित्रविचित्रैश्च राजितं परिशोभितम्। सप्तत्रिंशद्विराक्रीडै: कल्पवृक्षसमन्वितै: ॥१५२॥
पारिजातद्रुमाकीर्णैर्वेष्टितं कामधेनुभि: । आकाशवत्सुविस्तीर्णं वर्तुलं चन्द्रबिम्बवत् ॥१५३॥

इतना कह कर वह ब्राह्मण उनकी पूजा ग्रहण करने के अनन्तर अपना घर चला गया और कहता गया कि—'वर्ष बीतने पर मैं पुन: आऊँगा।' ॥१४०॥ हे शिवे! उसके पश्चात् राजा भक्तिपूर्वक ब्राह्मणों का चरणोदक पान कर उनकी पूजा करने लगा। उन्हें वर्ष भर भोजन भी कराया। वर्ष के व्यतीत होते ही वह राजा नीरोग हो गया और उसी समय वह मुनिश्रेष्ठ सुतपा, जो कश्यप-गोत्रों में अग्रसर थे, वहाँ पुन: आ पहुँचे। उन्होंने राजा को राधा जी का पूजा-विधान, स्तोत्र, कवच, मन्त्र, और सामवेदानुसार ध्यान बताया॥१४१-१४३॥ और कहा—'हे राजन्! अब तप के लिए शीघ्र चले जाओ।' इतना कह कर मुनि के चले जाने पर राजा ने भी अपने भवन से प्रस्थान कर दिया॥१४४॥ उनके वियोग में, बान्धवगण तीन रात्रि तक शोक-निमग्न पड़े रहे और स्त्रियों ने तो प्राण परित्याग ही कर दिया। अन्त में उनका पुत्र राजसिंहासन पर सुशोभित हुआ॥१४५॥ राजा सुयज्ञ ने पुष्कर जाकर दिव्य सौ वर्षों तक उस परम मन्त्र का जप करते हुए अति कठिन तप किया॥१४६॥ अनन्तर आकाश में रथ पर सुशोभित परमेश्वरी राधा का दर्शन उन्हें प्राप्त हुआ, जिससे ये उसी समय पापरहित हो गये॥१४७॥ एवं अपनी मनुष्य-देह का त्याग कर दिव्य शरीर धारण किया और रत्नेन्द्र-निर्मित उस रथ पर देवी के साथ बैठ कर राजा गोलोक चले गये। वहाँ पहुँच कर राजा ने विरजा नदी से आवृत (घिरा) उस गोलोक को देखा, जो सौन्दर्यपूर्ण सौ शिखरों वाले पर्वत से वेष्टित, श्रीवृन्दावन से युक्त एवं रासमण्डल से विभूषित था ॥१४८-१५०॥ गौओं, गोपों और गोपियों के वृन्दों से सुसेवित होने के नाते अति सुशोभित, उत्तम रत्नों के सार भागों से खचित, अति मनोहर एवं चित्र-विचित्र मन्दिरों से सुविराजित था। एवं क्रीडा स्थान वाले सैंतीस कल्पवृक्षों से युक्त, पारिजात से आच्छादित, कामधेनुओं से पूर्ण, आकाश की भाँति अति विस्तृत और चन्द्र बिम्ब के समान गोलाकार था॥१५१-१५३॥

अत्यूर्ध्वमपि वैकुण्ठात्पञ्चाशत्कोटियोजनम्। शून्ये स्थितं निराधारं ध्रुवमेवेश्वरेच्छया ॥१५४॥
आत्माकाशसमं नित्यमस्माकं च सुदुर्लभम्। अहं नारायणोऽनन्तो ब्रह्मा विष्णुर्महान्विराट् ॥१५५॥
धर्मक्षुद्रविराट्संघो गङ्गा लक्ष्मी सरस्वती। त्वं विष्णुमाया सावित्री तुलसी च गणेश्वरः ॥१५६॥
सनत्कुमारः स्कन्दश्च नरनारायणावृषी। कपिलो दक्षिणा यज्ञो ब्रह्मपुत्राश्च योगिनः ॥१५७॥
पवनो वरुणश्चन्द्रः सूर्यो रुद्रो हुताशनः। कृष्णमन्त्रोपासकाश्च भारतस्थाश्च वैष्णवाः ॥१५८॥
एभिर्दृष्टश्च गोलोको नान्यैर्दृष्टः कदाचन। निरामये च तत्रैव रत्नसिंहासने स्थितम् ॥१५९॥
रत्नमालाकिरीटैश्च भूषितं रत्नभूषणैः। सुनिर्मलैः पीतवस्त्रैर्वह्निशुद्धैर्विराजितम् ॥१६०॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं किशोरं गोपरूपिणम्। नवीननीरदश्यामं श्वेतपङ्कजलोचनम् ॥१६१॥
शरत्पार्वणचन्द्रास्यमीषद्धास्यं मनोहरम्। द्विभुजं मुरलीहस्तं भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥१६२॥
स्वेच्छामयं परं ब्रह्म निर्गुणं प्रकृतेः परम्। ध्यानसाध्यं दुराराध्यमस्माकं च सुदुर्लभम् ॥१६३॥
प्रियैर्द्वादशगोपालैः सेवितं श्वेतचामरैः। वीक्षितं गोपिकावृन्दैः सस्मितैः सुमनोहरैः ॥१६४॥
पीडितैः कामबाणैश्च शश्वत्सुस्थिरयौवनैः। वह्निशुद्धांशुकाधानै रत्नभूषणभूषितैः ॥१६५॥
रासमण्डलमध्यस्थं श्रीकृष्णं च परात्परम्। ददर्श राजा तत्रैव राधया दर्शितं तदा ॥१६६॥
स्तुतं चतुर्भिर्वेदैश्च मूर्तिमद्भिर्मनोहरैः। रागिणीनां च रागाणामतीव सुमनोहरम् ॥१६७॥

वैकुण्ठ लोक से अत्यन्त ऊपर पचास करोड़ योजन की दूरी पर स्थित एवं ईश्वरेच्छया शून्य प्रदेश में निराधार होते हुए ध्रुव की भाँति अटल था ॥१५४॥ वह आत्मा और आकाश की भाँति नित्य तथा हम लोगों के लिए भी अति दुर्लभ है। मैं, नारायण, अनन्त, ब्रह्मा, विष्णु, महाविराट् (महाविष्णु), धर्म, क्षुद्रविष्णु-वृन्द, गंगा, लक्ष्मी, सरस्वती, तुम, विष्णुमाया, सावित्री, तुलसी, गणेश्वर, सनत्कुमार, स्कन्द, नर-नारायण दोनों ऋषि, कपिल, दक्षिणा, यज्ञ, ब्रह्मा के योगी पुत्रगण, वायु, वरुण, चन्द्र, सूर्य, रुद्र, अग्नि और भारत के रहने वाले एवं भगवान् श्रीकृष्ण के मन्त्र की आराधना करने वाले वैष्णव वृन्द, इन्हीं लोगों ने गोलोक को देखा है अन्य कोई नहीं। उसी गोलोक में निरामय (सुरचित) रत्नसिंहासन पर भगवान् श्रीकृष्ण विराजमान हैं, जो रत्नों की माला, किरीट, रत्नों के भूषणों से भूषित, अतिनिर्मल एवं अग्नि की भाँति विशुद्ध पीताम्बर से सुसज्जित हैं ॥१५५-१६०॥ सर्वाङ्ग में चन्दन लगाये किशोरावस्था तथा गोपरूप धारण किये हुए हैं। जो नये मेघ के समान श्यामल और श्वेतकमल की भाँति नेत्र वाले एवं शारदीय पूर्णचन्द्रमा के समान मुख वाले हैं। वे मन्द मुसुकान से युक्त एवं मनोहर हैं। दो भुजाओं से युक्त, हाथ में मुरली लिये हुए, भक्तों के अनुग्रहार्थ शरीर धारण करने वाले, स्वेच्छामय, परब्रह्म, निर्गुण, प्रकृति से परे, ध्यान द्वारा ही साध्य होने वाले अन्यथा दुराराध्य और हम लोगों के लिए अति दुर्लभ हैं ॥१६१-१६३॥ उनकी सेवा में बारह प्रिय गोपाल श्वेत चामर डुला रहे हैं, गोपियों का अति मनोहर समूह मन्द मुसुकान भरी चितवन से देख रहा है, जो अति स्थायी यौवन से निरन्तर भूषित, काम के बाणों से आहत, अग्निविशुद्ध वस्त्रों से सुसज्जित और रत्नों के भूषणों से विभूषित था ॥१६४-१६५॥ अनन्तर राजा ने राधिका जी द्वारा दिखाये गए परात्पर भगवान् श्रीकृष्ण को रत्नसिंहासन पर सुविराजमान देखा, जो मनोहर मूर्ति धारण किये चारों वेदों द्वारा स्तुत, राग-रागिनियों से

श्रुतवन्तं च संगीतं यन्त्रवक्त्रोत्थितं शिवे। नित्यया च सनातन्या प्रकृत्या च सह त्वया ॥१६८॥
शश्वत्पूजितपादाब्जमखण्डतुलसीदलैः। कस्तूरीकुङ्कुमावक्तैश्च गन्धचन्दनचर्चितैः ॥१६९॥
दूर्वाभिरक्षताभिश्च पारिजातप्रसूनकैः। निर्मलैर्विरजातोयैर्दत्ताघ्यैंरतिशोभितम् ॥१७०॥
सुप्रसन्नं स्वतन्त्रं च सर्वकारणकारणम्। सर्वेषां चान्तरात्मानं सर्वेशं सर्वजीवनम् ॥१७१॥
सर्वाधारं परं[1] पूज्यं ब्रह्मज्योतिः सनातनम्। सर्वसंपत्स्वरूपं च दातारं सर्वसंपदाम् ॥१७२॥
सर्वमङ्गलरूपं च सर्वमङ्गलकारणम्। सर्वमङ्गलदं सर्वमङ्गलानां च मङ्गलम् ॥१७३॥
तं दृष्ट्वा नृपतिस्त्रस्तो ह्यवरुह्य रथात्त्वरन्। साश्रुनेत्रः पुलकितो मूर्ध्ना स प्रणनाम च ॥१७४॥
परमात्मा ददौ तस्मै स्वदास्यं च शुभाशिषम्। स्वभक्तिं निश्चलां सत्यामस्माकं च सुदुर्लभाम् ॥१७५॥
राधाऽवरुह्य स्वरथात्कृष्णवक्षस्युवास सा। गोपीभिः सुप्रियाभिश्च सेविता श्वेतचामरैः ॥१७६॥
संभाषिता श्रीकृष्णेन सस्मितेन च पूजिता। समुत्थितेन सहसा भक्त्या वै संभ्रमेण च ॥१७७॥
आदौ राधां समुच्चार्य पश्चात्कृष्णं च माधवम्। प्रवदन्ति च वेदेषु वेदविद्भिः पुरातनैः ॥१७८॥
विपर्ययं ये वदन्ति ये निन्दन्ति जगत्प्रसूम्। कृष्णप्राणाधिकां प्रेममयीं शक्तिं च राधिकाम् ॥१७९॥

आवृत होने के नाते अति मनोहर थे। हे शिवे! नित्य सनातनी प्रकृति रूप तुम्हारे साथ, यंत्र-मुख से निकले हुए संगीत को वे सुन रहे थे ॥१६६-१६८॥ उनके चरण कमल की निरन्तर पूजा हो रही थी, जो कस्तूरी, कुंकुम से आर्द्र, गन्ध एवं चन्दन-चर्चित अखण्ड तुलसी दल अक्षत-दूर्वादल, पारिजात (मन्दार) के पुष्पों और विरजा नदी के जल के दिए गये अर्घ्य से अति शोभित थे तथा जो स्वयं अति प्रसन्न, स्वतन्त्र, समस्त कारणों के कारण, सभी के अन्तरात्मा, सर्वाधीश, सब के जीवन, सबके आधार, परमपूज्य, ब्रह्म, सनातन ज्योतिः-स्वरूप, समस्त सम्पत्ति स्वरूप, सम्पूर्ण सम्पदाओं के प्रदाता, समस्त मंगल स्वरूप, सम्पूर्ण मंगलों के कारण, सर्व-मंगलप्रद और समस्त मंगलों के मंगल हैं ॥१६९-१७३॥ उन्हें देख कर राजा ने भयभीत होकर सजल नयन और रोमाञ्चित होते हुए रथ से उतर कर शीघ्र शिर से प्रणाम किया ॥१७४॥ उपरान्त परमात्मा ने शुभ आशीर्वाद देकर उन्हें अपना दास (पार्षद) बनाया और अपनी निश्चल एवं सत्य भक्ति भी प्रदान की जो हम लोगों को अति दुर्लभ है ॥१७५॥ अनन्तर राधा अपने रथ से उतर कर भगवान् श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल पर निवसित हो गयीं और उनकी अत्यन्त प्रेयसी गोपियाँ श्वेत चामरों से उनकी सेवा करने लगीं ॥१७६॥ उस समय भगवान् श्रीकृष्ण ने भी मन्द हास करते हुए उनसे प्रेमालाप और पूजा तथा सहसा खड़े होकर भक्तिपूर्वक सम्मान किया ॥१७७॥ (इस कारण) पहले राधा पश्चात् कृष्ण या माधव कहना चाहिए, ऐसा वेदों में प्राचीन वेद-वेत्ताओं ने कहा है ॥१७८॥ क्योंकि जो विपर्यय (उलटा अर्थात् कृष्ण कह कर राधा का नामोच्चारण करते हैं और उस जगज्जननी राधिका की, जो भगवान् श्रीकृष्ण के प्राणों से अधिक प्रिय एवं उनकी प्रेममयी शक्ति है,

---

१ क. ०रं ज्योतिर्ब्र०।

ते पच्यन्ते कालसूत्रे यावच्चन्द्रदिवाकरौ। भवन्ति स्त्रीपुत्रहीना रोगिणः शतजन्मसु ॥१८०॥
इत्येवं कथितं दुर्गे राधिकाख्यानमुत्तमम्। सा त्वं सती भगवती वैष्णवी च सनातनी ॥१८१॥
नारायणी विष्णुमाया मूलप्रकृतिरीश्वरी। मायया मां पृच्छसि त्वं सर्वज्ञा सर्वरूपिणी ॥१८२॥
स्त्रीजातिष्वधिदेवी च परा जातिस्मरा वरा। कथितं राधिकाख्यानं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१८३॥

श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० हरगौरीसं० राधाख्या० सुयज्ञाख्या० सुयज्ञगोलोकगमनं नाम चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥

अथ पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पार्वत्युवाच

श्रीकृष्णस्य स्थिते मन्त्रे चान्येषामीश्वरस्य वः। कथं जग्राह राधाया मन्त्रं वै वैष्णवो नृपः ॥१॥
किं विधानं च किं ध्यानं किं स्तोत्रं कवचं च किम्। कं मन्त्रं च ददौ राज्ञे तां पूजापद्धतिं वद ॥२॥

महेश्वर उवाच

हे विप्र कं भजामीति प्रश्नं कुर्वति राजनि। शीघ्रं प्राप्नोमि गोलोकं कस्याऽऽराधनतो मुने ॥३॥

निन्दा करते हैं, उन्हें चन्द्र-सूर्य के समय तक कालसूत्र नामक नरक में रहना पड़ता है और सौ जन्मों तक स्त्री-पुत्र से हीन एवं रोगी भी होना पड़ता है॥१७९-१८०॥ हे दुर्गे! इस प्रकार मैंने श्री राधिका जी का परमोत्तम आख्यान तुम्हें सुना दिया और तुम भी वही सती, भगवती, वैष्णवी, सनातनी, नारायणी, विष्णु की माया, मूल प्रकृति, ईश्वरी होकर माया से मुझसे पूछ रही हो क्योंकि तुम भी सब कुछ जानने वाली, समस्त का स्वरूप, स्त्री जाति की अधीश्वरी, श्रेष्ठा और जाति स्मरण रखने वाली देवी हो। इस भाँति मैंने राधिका जी का आख्यान कह दिया अब पुनः क्या सुनना चाहती हो॥१८१-१८३॥

श्रीब्रह्मवैर्वतमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत हरगौरी के संवाद में राधाख्यान एवं सुयज्ञाख्यान में सुयज्ञ का गोलोक-प्राप्ति-कथन नामक चौवनवाँ अध्याय समाप्त ॥५४॥

अध्याय ५५

राधा की पूजा, स्तोत्र आदि

पार्वती बोलीं—आपके और दूसरों के भी ईश्वर श्रीकृष्ण के मंत्र के रहते उस वैष्णव राजा ने कैसे राधा का मंत्र ग्रहण किया? तथा उसका विधान, ध्यान, स्तोत्र एवं कवच क्या है, उन्होंने राजा को कौन मन्त्र बताया? उस पूजापद्धति को बताने की कृपा कीजिये॥१-२॥

महेश्वर बोले—हे विप्र! मैं किसकी आराधना करूँ, तथा हे मने! किसकी सेवा से मुझे गोलोक की शीघ्र प्राप्ति होगी॥३॥ ऐसा उस महाराज के पूछने पर उस श्रेष्ठ ब्राह्मण ने कहा कि—भगवान् की सेवा

इत्युक्तवन्तं राजेन्द्रमुवाच ब्राह्मणोत्तमः। तत्सेवया च तल्लोकं प्राप्स्यसे बहुजन्मतः ॥४॥
तत्प्राणाधिष्ठातृदेवीं भज राधां परात्पराम्। कृपामयीप्रसादेन शीघ्रं प्राप्नोषि तत्पदम् ॥५॥
इत्युक्त्वा राधिकामन्त्रं ददौ तस्मै षडक्षरम्। ओं राधेति चतुर्थ्यन्तं वह्निजायान्तमेव च ॥६॥
प्राणायामं भूतशुद्धिं मन्त्रन्यासं तथैव च। कराङ्गन्यासमेवं च ध्यानं सर्वसुदुर्लभम् ॥७॥
स्तोत्रं च कवचं तं च शिक्षयामास भक्तितः। राजा तेन क्रमेणैव जजाप परमं मनुम् ॥८॥
ध्यानं च सामवेदोक्तं मङ्गलानां च मङ्गलम्। कृष्णस्तां पूजयामास पुरा ध्यानेन येन च ॥९॥
श्वेतचम्पकवर्णाभां कोटिचन्द्रसमप्रभाम्। शरत्पार्वणचन्द्रास्यां शरत्पङ्कजलोचनाम् ॥१०॥
सुश्रोणीं सुनितम्बां च पक्वबिम्बाधरां वराम्। मुक्तापङ्क्तिप्रतिनिधिदन्तपङ्क्तिमनोहराम् ॥११॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां भक्तानुग्रहकारिकाम्। वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नमालाविभूषिताम् ॥१२॥
रत्नकेयूरवलयां रत्नमञ्जीररञ्जिताम्। रत्नकुण्डलयुग्मेन विचित्रेण विराजिताम् ॥१३॥
सूर्यप्रभाप्रतिकृतिगण्डस्थलविराजिताम्। अमूल्यरत्नखचितग्रैवेयकविभूषिताम् ॥१४॥
सद्रत्नसारखचितकिरीटमुकुटोज्ज्वलाम्। रत्नाङ्गुलीयसंयुक्तां रत्नपाशकशोभिताम् ॥१५॥
बिभ्रतीं कबरीभारं मालतीमाल्यशोभितम्। रूपाधिष्ठातृदेवीं च मत्तवारणगामिनीम् ॥१६॥
गोपीभिः सुप्रियाभिश्च सेवितां श्वेतचामरैः। कस्तूरीबिन्दुभिः सार्धमधश्चन्दनबिन्दुना ॥१७॥

करने से अनेक जन्मों में गोलोक की प्राप्ति होगी। अतः उनके प्राणों की अधिष्ठात्री देवी राधा का भजन करो; क्योंकि उसी परात्पर (सर्वश्रेष्ठ) एवं कृपामयी के प्रसाद से तुम्हें शीघ्र उस स्थान की प्राप्ति हो जायगी ॥४-५॥ ऐसा कहकर (ब्राह्मण ने) उसे राधा जी का षडक्षर वाला 'ओं राधायै स्वाहा' मन्त्र, प्राणायाम, भूतशुद्धि, मन्त्र-न्यास, करन्यास, अंगन्यास, तथा सबके लिए अति दुर्लभ ध्यान, स्तोत्र एवं कवच की भी उन्हें शिक्षा दी। अनन्तर राजा ने उसी व्रत से उस परम मन्त्र का जप तथा ध्यान भी किया, जो सामवेदानुसार एवं समस्त मंगलों का मंगल था। पूर्वकाल में जिस ध्यान द्वारा भगवान् श्री कृष्ण ने उस राधा की पूजा की थी वह यह है— उनका श्वेत चम्पा पुष्प के समान रूप-रंग है एवं करोड़ों चन्द्रमा के समान कान्ति, शारदीय पूर्णिमा के चन्द्रमा की भांति मुख, शरद् ऋतु के कमल के समान नेत्र, सुन्दर श्रोणी भाग, अति सुन्दर नितम्ब, पके बिम्बाफल के समान अधरोष्ठ, स्वयं सबसे उत्तम, मोती की पंक्ति के समान दाँतों की मनोहर पंक्तियाँ तथा मन्दहास समेत प्रसन्नतापूर्ण मुख हैं। वे भक्तों पर अनुकम्पा करने वाली, अग्नि-विशुद्ध वस्त्र से सुसज्जित, रत्नों की मालाओं से विभूषित, रत्नों के केयूर (अंगद), रत्नों के मंजीर, रत्नों के नूपुर और रत्नों के विचित्र एवं युगल कुण्डलों से विभूषित तथा सूर्य की कान्ति के समान कान्तिपूर्ण गण्डस्थल (कपोल) से सुशोभित, अमूल्य रत्नों के हार से भूषित, उत्तम रत्नों के सार भाग से खचित किरीट-मुकुट से देदीप्यमान, रत्नों की अंगूठी आदि भूषण एवं पाशक (चेन या पासा आदि) भूषणों से सुशोभित हैं ॥६-१५॥ मालती की माला से विभूषित केश-पाश धारण करने वाली, रूप की अधिष्ठात्री और मतवाले हाथी की भाँति गमन करने वाली उन (राधा देवी) की अत्यन्त प्रिय गोपियाँ श्वेत चामरों से सेवा कर रहीं हैं। उनके भाल में कस्तूरी बिन्दी के साथ नीचे चन्दन की बिन्दी लगी है ॥१६-१७॥ सुन्दर सीमन्त

सिन्दूरबिन्दुना चारुसीमन्ताधःस्थलोज्ज्वलाम् । नित्यं सुपूजितां भक्त्या कृष्णेन परमात्मना ॥१८॥
कृष्णसौभाग्यसंयुक्तां कृष्णप्राणाधिकां वराम् । कृष्णप्राणाधिदेवीं च निर्गुणां च परात्पराम् ॥१९॥
महाविष्णुविधात्रीं च प्रदात्रीं सर्वसंपदाम् । कृष्णभक्तिप्रदां शान्तां मूलप्रकृतिमीश्वरीम् ॥२०॥
वैष्णवीं विष्णुमायां च कृष्णप्रेममयीं शुभाम् । रासमण्डलमध्यस्थां रत्नसिंहासनस्थिताम् ॥२१॥
रासे रासेश्वरयुतां राधां रासेश्वरीं भजे । ॥२२॥
ध्यात्वा पुष्पं मूर्ध्नि दत्त्वा पुनर्ध्यायेज्जगत्प्रसूम् । दद्यात्पुष्पं पुनर्ध्यात्वा चोपचाराणि षोडश ॥२३॥
आसनं वसनं पाद्यमर्घ्यं गन्धानुलेपनम् । धूपं दीपं सुपुष्पं च स्नानीयं रत्नभूषणम् ॥२४॥
नानाप्रकारनैवेद्यं ताम्बूलं वासितं जलम् । मधुपर्कं रत्नतल्पमुपचाराणि षोडश ॥२५॥
प्रत्येकं वेदमन्त्रेण दत्तं भक्त्या च भूभृता । मन्त्रांश्च श्रूयतां दुर्गे वेदोक्तान्सर्वसंमतान् ॥२६॥
रत्नसारविकारं च निर्मितं विश्वकर्मणा । वरं सिंहासनं रम्यं राधे पूजासु गृह्यताम् ॥२७॥
अमूल्यरत्नखचितममूल्यं सूक्ष्ममेव च । वह्निशुद्धं निर्मलं च वसनं देवि गृह्यताम् ॥२८॥
सद्रत्नसारपात्रस्थं सर्वतीर्थोदकं शुभम् । पादप्रक्षालनार्थं च राधे पाद्यं च गृह्यताम् ॥२९॥
दक्षिणावर्तशङ्खस्थं सदूर्वापुष्पचन्दनम् । पूतं युक्तं तीर्थतोये राधेऽर्घ्यं प्रतिगृह्यताम् ॥३०॥

(माँग) में सिन्दूर की बिन्दी लगने के कारण उसके नीचे के भाग में समुज्ज्वल, परमात्मा श्रीकृष्ण द्वारा भक्तिपूर्वक नित्य सुपूजित, कृष्ण के सौभाग्य से युक्त, उनके प्राणों से भी अधिक प्रिय, उनके प्राणों की अधिष्ठात्री देवी, निर्गुण और परात्पर (सर्वश्रेष्ठ), महाविष्णु की जननी, समस्त सम्पत्ति की प्रदायिनी, कृष्ण-भक्ति देने वाली, शान्तस्वरूप, मूलप्रकृति, ईश्वरी, वैष्णवी, विष्णु की माया, भगवान् कृष्ण की प्रेममयी मूर्ति, शुभ, रासमण्डल के मध्य रत्नसिंहासन पर विराजमान, रास में रासेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण के साथ रहनेवाली रासेश्वरी श्रीराधा जी की मैं सेवा कर रहा हूँ॥१८-२२॥ इस प्रकार ध्यान करने के उपरान्त उस पुष्प को मस्तक पर रख कर पुनः जगदम्बा (श्रीराधा) का ध्यान करे और फूल चढ़ावे। पुनः ध्यान के पश्चात् सोलह उपचार——आसन, वस्त्र, पाद्य, अर्घ्य, गन्ध, लेपन, धूप, दीप, उत्तम पुष्प, स्नान का जल, रत्न के आभूषण, अनेक भाँति के नैवेद्य, सुवासित ताम्बूल जल, मधुपर्क, रत्नजड़ित शय्या समर्पित करे। इनमें से प्रत्येक को राजा ने वेदमंत्र से भक्तिपूर्वक अर्पित किया। हे दुर्गे! वेदोक्त एवं सर्वसम्मत उन मंत्रों को बता रहा हूँ, सुनो! ॥२३-२६॥ हे राधे! उत्तम रत्नों के सारभाग का विश्वकर्मा द्वारा सुरचित यह रमणीक एवं उत्तम सिंहासन इस पूजा में तुम्हें अर्पित कर रहा हूँ, ग्रहण करो॥२७॥ हे देवि! अमूल्य रत्नों से विभूषित, अमूल्य, सूक्ष्म, अग्नि की भाँति विशुद्ध तथा निर्मल (स्वच्छ) वस्त्र तुम्हें समर्पित कर रहा हूँ, स्वीकार करो॥२८॥ हे राधे! यह पाद्य (पैर धोने वाला जल) जो उत्तम रत्नों के सारभाग के बने पात्र में स्थित है, तथा समस्त तीर्थों का शुभ जल है, चरण धोने के लिए तुम्हें अर्पित कर रहा हूँ, स्वीकार करो॥२९॥ हे राधे! दक्षिणावर्त (दाहिनी ओर को घूमे हुए) शंख में दूर्वा, पुष्प और चन्दन समेत यह पवित्र तीर्थ के जल का अर्घ्य तुम्हें समर्पित कर रहा हूं, स्वीकार करो॥३०॥ हे राधे ! पार्थिव द्रव्य

पार्थिवद्रव्यसंभूतमतीव सुरभीकृतम् । मङ्गलार्हं पवित्रं च राधे गन्धं गृहाण मे ॥३१॥
श्रीखण्डचूर्णं सुस्निग्धं कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम् । सुगन्धयुक्तं देवेशि गृह्यतामनुलेपनम् ॥३२॥
वृक्षनिर्याससंयुक्तं पार्थिवद्रव्यसंयुतम् । [1]अग्निखण्डशिखाजातं धूपं देवि गृहाण मे ॥३३॥
अन्धकारे भयहरममूल्यमणिशोभितम् । रत्नप्रदीपं शोभाढ्यं गृहाण परमेश्वरि ॥३४॥
पारिजातप्रसूनं च गन्धचन्दनचर्चितम् । अतीव शोभनं रम्यं गृह्यतां परमेश्वरि ॥३५॥
सुगन्धामलकीचूर्णं सुस्निग्धं सुमनोहरम् । विष्णुतैलसमायुक्तं स्नानीयं देवि गृह्यताम् ॥३६॥
अमूल्यरत्नखचितं केयूरवलयादिकम् । शश्वत्सुशोभनं राधे गृह्यतां भूषणं मम ॥३७॥
कालदेशोद्भवं पक्वफलं वै लड्डुकादिकम् । परमान्नं च मिष्टान्नं नैवेद्यं देवि गृह्यताम् ॥३८॥
ताम्बूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम् । सर्वभोगाधिकं स्वादु ताम्बूलं देवि गृह्यताम् ॥३९॥
अशनं रत्नपात्रस्थं सुस्वादु सुमनोहरम् । मया निवेदितं भक्त्या गृह्यतां परमेश्वरि ॥४०॥
रत्नेन्द्रसारखचितं वह्निशुद्धांशुकान्वितम् । पुष्पचन्दनचर्चाढ्यं पर्यङ्कं देवि गृह्यताम् ॥४१॥
एवं संपूज्य देवीं तां दद्यात्पुष्पाञ्जलित्रयम् । यत्नेन पूजयेद्देवीं नायिकाश्च व्रते व्रती ॥४२॥

से बनाया गया अत्यन्त सुगन्धित, मंगलमय और पवित्र यह मेरा दिया हुआ गन्ध ग्रहण करो ॥३१॥ हे देवेशि ! श्रीखण्ड के चूर्ण का बना हुआ यह अनुलेपन, जो कस्तूरी, कुंकुम युक्त होने के नाते, अति स्निग्ध और अति सुगन्धपूर्ण है, तुम्हें समर्पित कर रहा हूँ, ग्रहण करो ॥३२॥ हे देवि ! वृक्ष की गोंद और पार्थिव द्रव्यों से युक्त यह धूप, जो अग्नि-शिखा से उत्पन्न है, तुम्हें अर्पित कर रहा हूँ ॥३३॥ हे परमेश्वरि ! अन्धकार में उत्पन्न भय का नाशक, अमूल्य मणियों से सुशोभित और शोभाशाली यह रत्नप्रदीप तुम्हें समर्पित है ॥३४॥ हे परमेश्वरि ! गन्ध, चन्दन-चर्चित यह पारिजात (मन्दार), पुष्प, जो अत्यन्त सुशोभित और सुन्दर है, अर्पित कर रहा हूँ, ग्रहण करो ॥३५॥ हे देवि ! स्नान के लिए सुगन्धित आंवले का चूर्ण मिश्रित जल जो अति स्निग्ध, अति मनोहर और विष्णुतैल से युक्त है, तुम्हें समर्पित कर रहा हूँ, ग्रहण करो ॥३६॥ हे राधे ! अमूल्य रत्नों से खचित केयूर (बहूंटा), कंकण आदि मेरे द्वारा अर्पित भूषण, जो निरन्तर सौन्दर्यपूर्ण रहता है, ग्रहण करो ॥३७॥ हे देवि ! देश-काल के अनुसार उपलब्ध पके फल तथा लड्डू आदि मिष्टान्न समेत यह परमान्न नैवेद्य तुम्हें समर्पित है, ग्रहण करो ॥३८॥ हे देवि ! कपूर आदि से सुवासित, समस्त भोगों से अधिक स्वादुपूर्ण, उत्तम और सुन्दर ताम्बूल ग्रहण करो ॥३९॥ हे परमेश्वरि ! रत्नों के पात्रों में स्थापित यह अतिस्वादिष्ठ भोजन, जो अत्यन्त मनोहर है, तुम्हें भक्ति-पूर्वक मैं समर्पित कर रहा हूँ, ग्रहण करो ॥४०॥ हे देवि ! उत्तम रत्नों के सार भाग से खचित, अग्नि-विशुद्ध वस्त्र से सुसज्जित और पुष्पों एवं चन्दनों से अतिचर्चित (उत्तम) पलंग तुम्हें समर्पित है, ग्रहण करो ॥४१॥ इस भाँति यत्न से सविधान देवी की पूजा करने के अनन्तर व्रती को व्रत में तीन पुष्पांजलि देनी चाहिए तथा हे प्रिये ! उनकी अतिप्रिय परिचारिका नायिकाओं की भी, जो पूर्वादि दिशाओं के

---

१ क. ज्वलदग्निशि° ।

प्रागादिक्रमयोगेन दक्षिणावर्ततः प्रिये । भक्त्या पञ्चोपचारेण सुप्रियाः परिचारिकाः ।।४३।।
मालावतीं पूर्वकोणे वह्निकोणे च माधवीम् । दक्षिणे रत्नमालां च सुशीलां नैर्ऋते सतीम् ।।४४।।
पश्चिमे वै शशिकलां पारिजातां च मारुते । पद्मावतीमुत्तरे चाथैशान्यां सुन्दरीं तथा ।।४५।।
यूथिकामालतीपद्ममाला दद्याद्व्रते व्रती । परीहारं च कुरुते सामवेदोक्तमेव च ।।४६।।
त्वं देवि जगतां माता विष्णुमाया सनातनी । कृष्णप्राणाधिदेवी च कृष्णप्राणाधिका शुभा ।।४७।।
कृष्णप्रेममयी शक्तिः कृष्णे सौभाग्यरूपिणी । कृष्णभक्तिप्रदे राधे नमस्ते मङ्गलप्रदे ।।४८।।
अद्य मे सफलं जन्म जीवनं सार्थकं मम । पूजिताऽसि मया सा च या श्रीकृष्णेन पूजिता ।।४९।।
कृष्णवक्षसि या राधा सर्वसौभाग्यसंयुता । रासे रासेश्वरीरूपा वृन्दा वृन्दावने वने ।।५०।।
कृष्णप्रिया च गोलोके तुलसीकानने तुला[1] । चम्पावती कृष्णसङ्गे क्रीडा चम्पकानने ।।५१।।
[2]चन्द्रावली चन्द्रवने शतशृङ्गे सतीति च । विरजादर्पहन्त्री च विरजातटकानने ।।५२।।
पद्मावती पद्मवने कृष्णा कृष्णसरोवरे । भद्रा कुञ्जकुटीरे च काम्या वै काम्यके वने ।।५३।।
वैकुण्ठे च महालक्ष्मीर्वाणी नारायणोरसि । क्षीरोदे सिन्धुकन्या च मर्त्ये लक्ष्मीर्हरिप्रिया ।।५४।।

क्रम से स्थित रहती हैं, दक्षिणावर्त से भक्तिपूर्वक पांचों उपचारों द्वारा पूजा आरम्भ करनी चाहिए।।४२-४३।। पूर्वकोण में मालावती, अग्निकोण में माधवी, दक्षिण में रत्नमाला, नैर्ऋत में सती सुशीला, पश्चिम में शशि-कला, वायुकोण में पारिजाता, उत्तर में पद्मावती और ईशान में सुन्दरी की पूजा करनी चाहिए।।४४-४५।। व्रत में जूही, मालती और कमल की मालाएँ अर्पित कर व्रती सामवेदानुसार परिहार नामक स्तुति करे।।४६।। हे देवि! तुम जगत् की माता, भगवान् विष्णु की सनातनी माया, भगवान् श्रीकृष्ण के प्राणों की अधिष्ठात्री देवी, उनके प्राणों से अधिक प्रिय, शुभमूर्ति, भगवान् कृष्ण की प्रेममयी एवं मूर्तिमती शक्ति, कृष्ण में सौभाग्य रूप, उनकी भक्ति प्रदान करने वाली और मंगलदायिनी हो, अतः हे राधे! तुम्हें नमस्कार है।।४७-४८।। आज हमारा जन्म सफल हो गया और जीवन सार्थक हुआ क्योंकि मैंने उसकी प्रार्थना की है, जिसे भगवान् श्रीकृष्ण ने अपना आराध्य बनाकर पूजन किया है।।४९।। जो राधिका जी समस्त सौभाग्य लिये भगवान् श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल पर बिहार करती हैं, वही रास में रासेश्वरी, वृन्दावन नामक वन में वृन्दा, गोलोक में कृष्ण की परम प्रिया, तुलसी वन में चम्पावती, चम्पक वन में कृष्ण के साथ उनकी क्रीड़ा मूर्ति, चन्द्रवन में चन्द्रावली, सौ शिखरवाले पर्वत पर सती, विरजा (नदी) के तट वाले जंगल में विरजा (सखी) के दर्प (अभिमान) का नाश करने वाली, पद्मवन में पद्मावती, कृष्ण सरोवर (तालाब) में कृष्णा, कुञ्जकुटीर में भद्रा, काम्यक वन में काम्या, वैकुण्ठ में महालक्ष्मी, नारायण के हृदय में वाणी, क्षीर सागर में सिन्धुकन्या, मनुष्यों के लोक में हरिप्रिया लक्ष्मी हैं।।५०-५४।। तथा समस्त स्वर्ग में देवों के दुःख विनाश करने वाली स्वर्ग-

---

१ ख. तु या। २ क. चन्द्रावती।

सर्वस्वर्गे स्वर्गलक्ष्मीर्देवदुःखविनाशिनी । सनातनी विष्णुमाया दुर्गा शंकरवक्षसि ॥५५॥
सावित्री वेदमाता च कलया ब्रह्मवक्षसि । कलया धर्मपत्नी त्वं नरनारायणप्रभोः ॥५६॥
कलया तुलसी त्वं च गङ्गा भुवनपावनी । लोमकूपोद्भवा गोप्यः कलांशा रोहिणी रतिः ॥५७॥
कलाकलांशरूपा च शतरूपा शची दितिः । अदितिर्देवमाता च त्वत्कलांशा हरिप्रिया ॥५८॥
देव्यश्च मुनिपत्न्यश्च त्वत्कलाकलया शुभे । कृष्णभक्तिं कृष्णदास्यं देहि मे कृष्णपूजिते ॥५९॥
एवं कृत्वा परीहारं स्तुत्वा च कवचं पठेत् । पुरा कृतं स्तोत्रमेतद्भक्तिदास्यप्रदं शुभम् ॥६०॥
एवं नित्यं पूजयेद्यो विष्णुतुल्यः स भारते । जीवन्मुक्तश्च पूतश्च गोलोकं याति निश्चितम् ॥६१॥
कार्तिके पूर्णिमायां च राधां यः पूजयेच्छिवे । एवं क्रमेण प्रत्यब्दं राजसूयफलं लभेत् ॥६२॥
परमैश्वर्ययुक्तः स्यादिह लोके स पुण्यवान् । सर्वपापाद्विनिर्मुक्तो यात्यन्ते विष्णुमन्दिरम् ॥६३॥
आदावेवं क्रमेणैव रासे वृन्दावने वने । स्तुता सा पूजिता राधा श्रीकृष्णेन पुरा सती ॥६४॥
संपूजिता द्वितीये च धात्रा त्वेवं क्रमेण च । त्वद्वरेण च संप्राप्य विधाता वेदमातरम् ॥६५॥
नारायणो महालक्ष्मीं प्राप संपूज्य भारतीम् । गङ्गां च तुलसीं चैव परां भुवनपावनीम् ॥६६॥
विष्णुः क्षीरोदशायी च प्राप सिन्धुसुतां तथा । मृतायां दक्षकन्यायां मया कृष्णाज्ञया पुरा ॥६७॥

लक्ष्मी, शंकरजी के वक्षःस्थल पर (विहार करने वाली) भगवान् विष्णु की सनातनी माया दुर्गा और ब्रह्मा के वक्षःस्थल पर बिहरने वाली अपनी कला से वेदमाता सावित्री हैं। तुम्हीं अंश द्वारा भगवान् नरनारायण की धर्मपत्नी हो। ॥५५-५६॥ अपनी कला से तुम तुलसी और लोकपावनी गंगा, लोमकूपों से उत्पन्न होने वाली गोपियाँ, कलांश रूप रोहिणी, रति, तथा कला-कलांश रूप शतरूपा, शची, (इन्द्राणी), दिति (दैत्यमाता), देवों की माता अदिति और हरिप्रिया भी तुम्हारी कलांशरूपा हैं॥५७-५८॥ हे शुभे! तुम्हारी कला की कलामात्र देवियाँ और मुनियों की पत्नियाँ हैं। अतः हे कृष्णपूजिते! मुझे भगवान् कृष्ण की भक्ति देकर उनका दास (पार्षद) बनाओ॥५९॥ इस प्रकार परिहारपूर्वक स्तुति करने के अनन्तर उनका कवच पाठ करे। भक्ति और दास्य प्रदान करने वाला यह शुभ स्तोत्र प्राचीन काल में ही बनाया गया था॥६०॥ इस भाँति भारत में जो नित्य पूजन करते हैं वे भगवान् विष्णु के समान होकर जीवन्मुक्त और पवित्र हो जाते हैं तथा निश्चित गोलोक में निवास करते हैं॥६१॥ हे शिवे! कार्तिक मास की पूर्णिमा के दिन जो राधा जी की अर्चना करते हैं और प्रति वर्ष करते रहते हैं वे सदैव राजसूय यज्ञ का फल प्राप्त करते हैं॥६२॥ इस लोक में समस्त ऐश्वर्य से सम्पन्न होकर वह पुण्यात्मा समस्त पापों से मुक्त हो जाता है और अन्त में भगवान् विष्णु के लोक में चला जाता है॥६३॥ पूर्वकाल में पतिव्रता राधा सर्वप्रथम वृन्दावन के रासमण्डल में इसी क्रम द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण से स्तुत और पूजित हुई थीं॥६४॥ दूसरे ब्रह्मा ने भी इसी क्रम से उनकी अर्चना की थी, जिससे तुम्हारे वरदान द्वारा वेदमाता सावित्री उन्हें प्राप्त हुई थी॥६५॥ नारायण ने भी अर्चना करके महालक्ष्मी, सरस्वती, लोकपावनी गंगा और तुलसी को प्राप्त किया था॥६६॥ क्षीरसागर में शयन करने वाले विष्णु ने सिन्धु-सुता (लक्ष्मी) प्राप्त की और पहले समय में दक्षकन्या (सती) के प्राण त्याग करने के अनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा

त्वमेव दुर्गा संप्राप्ता पूजिता पुष्करे च सा । अदितिं कश्यपः प्राप चन्द्रः संप्राप रोहिणीम् ॥६८॥
कामो रतिं च संप्राप धर्मो मूर्तिं पतिव्रताम् । देवाश्च मुनयश्चैव यां संपूज्य पतिव्रताम् ॥६९॥
संप्रापुर्यद्वरेणैव धर्मकामार्थमोक्षकम् । एवं पूजाविधानं च कथितं च स्तवं शृणु ॥७०॥

महेश्वर उवाच

एकदा मानिनी राधा बभूवागोचरा प्रभोः । संसक्तस्य तुलस्यां च गोप्यां च तुलसीवने ॥७१॥
सा संहृत्य स्वमूर्तीश्च कलाः सर्वाश्च लीलया । सर्वे बभूवुर्देवाश्च ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥७२॥
भ्रष्टैश्वर्याश्च निःश्रीका भार्याहीना ह्युपद्रुताः । ते च सर्वे समालोच्य श्रीकृष्णं शरणं ययुः ॥७३॥
तेषां स्तोत्रेण संतुष्टः स्नात्वा संपूज्य तां शुचिः । तुष्टाव परमात्मा स सर्वेषां राधिकां सतीम् ॥७४॥

श्रीकृष्ण उवाच

एवमेव प्रियोऽहं ते प्रमोदश्चैव ते मयि । सुव्यक्तमद्य कापट्यवचनं ते वरानने ॥७५॥
हे कृष्ण त्वं मम प्राणा जीवात्मेति च संततम् । यद्ब्रूहि नित्यं प्रेम्णा त्वं सांप्रतं तत्कुतो गतम् ॥७६॥
तस्मात्सर्वमलीकं ते वचनं जगदम्बिके । क्षुरधारं च हृदयं स्त्रीजातीनां च सर्वतः ॥७७॥
अस्माकं वचनं सत्यं यद्ब्रवीमि च तद्ध्रुवम् । पञ्चप्राणाधिदेवी त्वं राधा प्राणाधिकेति मे ॥७८॥

शिरोधार्य कर मैंने पुष्कर क्षेत्र में श्री राधिका जी की पूजा करके तुम दुर्गा को प्राप्त किया। उसी प्रकार कश्यप को अदिति, चन्द्रमा को रोहिणी, काम को रति और धर्म को पतिव्रता मूर्ति प्राप्त हुई तथा देवगण एवं मुनिवृन्दों ने उस पतिव्रता (राधा) की अर्चना करके उनके वरदान द्वारा धर्म अर्थ काम और मोक्षरूप चारों पदार्थों की प्राप्ति की। इस प्रकार मैंने पूजा-विधान तुम्हें सुना दिया, अब स्तोत्र सुना रहा हूँ, सुनो! ॥६७-७०॥

महेश्वर बोले—एक बार मानिनी राधा ने भगवान् श्रीकृष्ण को तुलसी वन में तुलसी गोपी के साथ विहार-मग्न देख कर उनसे अपने को छिपा लिया और अपनी कला से उत्पन्न होने वाली सभी स्त्रियों को लीला की भाँति अपने में अन्तर्हित कर लिया, जिससे ब्रह्मा विष्णु और शिव आदि सभी देवगण ऐश्वर्य, श्री और स्त्री से हीन होने के कारण अति संतप्त होने लगे। अनन्तर भली भाँति विचार कर भगवान् श्रीकृष्ण की शरण में पहुँचे। उन लोगों की स्तुति से सन्तुष्ट होकर परमात्मा ने स्नान आदि से पवित्र होकर उन सभी लोगों के हितार्थ पतिव्रता श्रीराधा जी की पूजा और स्तुति की ॥७१-७४॥

श्रीकृष्ण बोले—हे वरानने! यद्यपि मैं तुम्हारा प्रिय हूँ और मुझमें तुम्हारा प्रेम भी रहता है, किन्तु तुम्हारी कपट की बातें आज सब प्रकट हो गयीं—तुम नित्य प्रेममग्न हो कर कहती थीं कि हे कृष्ण! तुम मेरे प्राण हो, निरन्तर जीवात्मा हो! यह सभी बातें सम्प्रति इतने शीघ्र कहाँ चली गयीं ॥७५-७६॥ हे जगदम्बिके! इससे तुम्हारी सभी बातें झूठी हैं क्योंकि स्त्री जाति का हृदय सब ओर से क्षुर (छुरे) के धार के समान तीव्र होता है ॥७७॥ और मैं जो कह रहा हूँ, वह ध्रुव सत्य है। तुम हमारे पाँचों प्राणों की अधीश्वरी और प्राणों से अधिक प्रिय राधा हो।

शक्तो न रक्षितुं त्वां च यान्ति प्राणास्त्वया विना । विनाऽधिष्ठातृदेवी च को वा कुत्र च जीवति ।।७९।।
महाविष्णोश्च माता त्वं मूलप्रकृतिरीश्वरी । सगुणा त्वं च कलया निर्गुणा स्वयमेव तु ।।८०।।
ज्योतीरूपा निराकारा भक्तानुग्रहविग्रहा । भक्तानां रुचिवैचित्र्यान्नानामूर्तीश्च बिभ्रती ।।८१।।
महालक्ष्मीश्च वैकुण्ठे भारती च गिरां प्रसूः । पुण्यक्षेत्रे भारते च सती त्वं पार्वती तथा ।।८२।।
तुलसी पुण्यरूपा च गङ्गा भुवनपावनी । ब्रह्मलोके च सावित्री कलया त्वं वसुंधरा ।।८३।।
गोलोके राधिका त्वं च सर्वगोपालकेश्वरी । त्वया विनाऽहं निर्जीवो ह्यशक्तः सर्वकर्मसु ।।८४।।
शिवः शक्तस्त्वया शक्त्या शवाकारस्त्वया विना । वेदकर्ता स्वयं ब्रह्मा वेदमात्रा त्वया सह ।।८५।।
नारायणस्त्वया लक्ष्म्या जगत्पाता जगत्पतिः । फलं ददाति यज्ञश्च त्वया दक्षिणया सह ।।८६।।
बिभर्ति सृष्टिं शेषश्च त्वां कृत्वा मस्तके भुवम् । बिभर्ति गङ्गारूपां त्वां मूर्ध्नि गङ्गाधरः शिवः ।।८७।।
शक्तिमच्च जगत्सर्वं शवरूपं त्वया विना । वक्ता सर्वस्त्वया वाण्या मृतो मूकस्त्वया विना ।।८८।।
यथा मृदा घटं कर्तुं कुलालः शक्तिमान्सदा । सृष्टिं स्रष्टुं तथाऽहं च प्रकृत्या च त्वया सह ।।८९।।
त्वया विना जडश्चाहं सर्वत्र च न शक्तिमान् । सर्वशक्तिस्वरूपा त्वं त्वमागच्छ ममान्तिकम् ।।९०।।
वह्नौ त्वं दाहिका शक्तिर्नाग्निः शक्तस्त्वया विना । शोभास्वरूपा चन्द्रे त्वं त्वां विना न स सुन्दरः ।।९१।।

मैं तुम्हारी रक्षा करने में समर्थ नहीं हूँ, अतः तुम्हारे बिना मेरे ये प्राण अब जा रहे हैं क्योंकि अधिष्ठात्री देवी बिना कौन कहाँ जीवित रह सकता है ।।७८-७९।। तुम महाविष्णु की माता ईश्वरी मूल प्रकृति, कला से सगुणा और स्वयं निर्गुणा हो ।।८०।। तुम ज्योतिरूप, निराकार, भक्तों के अनुग्रहार्थ शरीर धारण करनेवाली और भक्तों के विभिन्न रुचि के कारण अनेक मूर्ति धारण करने वाली तथा वैकुण्ठ में महालक्ष्मी, पुण्य प्रदेश भारत में सज्जनों की जननी भारती, तुम सती एवं पार्वती हो ।।८१-८२।। तुम पुण्य स्वरूपा तुलसी, लोकपावनी गंगा, ब्रह्मलोक में सावित्री और कला द्वारा वसुन्धरा (पृथ्वी) हो ।।८३।। गोलोक में तुम्हीं समस्त गोपालों की ईश्वरी राधा हो, तुम्हारे बिना मैं निर्जीव सा हो गया हूँ, सभी कर्मों में असमर्थ हूँ ।।८४।। शिव जी तुम्हीं शक्ति को प्राप्त कर शक्तिमान् हैं और तुम्हारे बिना शवतुल्य हैं। तुम वेदमाता (सावित्री) के साथ रहने पर ब्रह्मा स्वयं वेदकर्ता कहलाते हैं, तुम लक्ष्मी के साथ नारायण जगत् के रक्षक और अधीश्वर होते हैं, तुम्हीं दक्षिणा के साथ यज्ञ फल प्रदान करता है ।।८५-८६।। शेष पृथ्वी रूप तुम्हें मस्तक पर रखकर सम्पूर्ण सृष्टि धारण करते हैं, गंगारूप तुम्हें धारण कर शिव गंगाधर कहलाते हैं।।८७।। तुमसे ही सारा संसार शक्तिमान् है और तुम्हारे बिना शव रूप। तुम वाणी (सरस्वती) के योगदान से सभी लोग वक्ता हैं और तुम्हारे बिना सूत भी मूक हो जाता है ।।८८।। जिस प्रकार कुम्हार घड़े बनाने में सदा शक्तिशाली रहता है, उसी भाँति मैं भी तुम प्रकृति के साथ सृष्टि की रचना करने में समर्थ हूँ ।।८९।। किन्तु तुम्हारे बिना मैं शक्तिमान् न रहकर सर्वत्र जड़ हो गया हूँ क्योंकि तुम सम्पूर्ण शक्ति स्वरूपा हो, अतः मेरे समीप शीघ्र आओ ।।९०।। अग्नि की दाहिका (जलाने वाली) शक्ति तुम्हीं हो, तुम्हारे बिना वह अशक्त रहता है। चन्द्रमा में शोभास्वरूप तुम्हीं हो, तुम्हारे बिना वह सुन्दर नहीं हो सकता है ।।९१।। तुम

प्रभारूपा हि सूर्ये त्वं त्वां विना न स भानुमान् । न कामः कामिनीबन्धुस्त्वया रत्या विना प्रिये ।।९२।।
इत्येवं स्तवनं कृत्वा तां संप्राप जगत्प्रभुः । देवा बभूवुः सश्रीकाः सभार्याः शक्तिसंयुताः ।।९३।।
सस्त्रीकं च जगत्सर्वं समभूच्छैलकन्यके । गोपीपूर्णश्च गोलोको ह्यभवत्तत्प्रसादतः ।।९४।।
राजा जगाम गोलोकमिति स्तुत्वा हरिप्रियाम् । श्रीकृष्णेन कृतं स्तोत्रं राधाया यः पठेन्नरः ।।९५।।
कृष्णभक्तिं च तद्दास्यं संप्राप्नोति न संशयः । स्त्रीविच्छेदे यः शृणोति मासमेकमिदं शुचिः ।।९६।।
अचिराल्लभते भार्यां सुशीलां सुन्दरीं सतीम् । भार्याहीनो भाग्यहीनो वर्षमेकं शृणोति यः ।।९७।।
अचिराल्लभते भार्यां सुशीलां सुन्दरीं सतीम् । पुरा मया च त्वं प्राप्ता स्तोत्रेणानेन पार्वति ।।९८।।
मृतायां दक्षकन्यायामाज्ञया परमात्मनः । स्तोत्रेणानेन संप्राप्ता सावित्री ब्रह्मणा पुरा ।।९९।।
पुरा दुर्वाससः शापान्निःश्रीके देवतागणे । स्तोत्रेणानेन देवैस्तैः संप्राप्ता श्रीः सुदुर्लभा ।।१००।।
शृणोति वर्षमेकं च पुत्रार्थी लभते सुतम् । महाव्याधी रोगमुक्तो भवेत्स्तोत्रप्रसादतः ।।१०१।।
कार्तिके पूर्णिमायां तु तां संपूज्य पठेत्तु यः । अचलां श्रियमाप्नोति राजसूयफलं लभेत् ।।१०२।।
नारी शृणोति चेत्स्तोत्रं स्वामिसौभाग्यसंयुता । भक्त्या शृणोति यः स्तोत्रं बन्धनान्मुच्यते ध्रुवम् ।।१०३।।

सूर्य में प्रभा रूप हो, तुम्हारे बिना वह भानु (किरण) युक्त नहीं हो सकता है। और हे प्रिये ! तुम रति बिना कामदेव भी कामिनियों का बन्धु नहीं हो सकता है।।९२।। इस प्रकार स्तुति करने पर जगत् के प्रभु भगवान् श्रीकृष्ण को राधा मिल गयीं और सब देवगण श्री (ऐश्वर्य), स्त्री और शक्ति आदि से सम्पन्न हो गये।।९३।। हे शैलकन्ये ! उनकी प्रसन्नता से सारा संसार स्त्री-सम्पन्न और गोलोक गोपियों से भर गया।।९४।। उसी हरिप्रिया श्री राधा जी की स्तुति करके राजा ने गोलोक की प्राप्ति की। इस प्रकार श्री कृष्ण द्वारा किये गये श्री राधा जी के स्तोत्र का जो मनुष्य पाठ करेगा, उसे भगवान् कृष्ण की भक्ति और उनकी दासता प्राप्त होगी, इसमें संशय नहीं। स्त्री के मृतक होने पर जो पवित्र होकर एक मास तक इसे श्रवण करता है, वह अचिरकाल में ही सुशीला, सुन्दरी और पतिव्रता स्त्री प्राप्त करता है। भाग्यहीन और स्त्रीहीन पुरुष यदि वर्षपर्यन्त इसका श्रवण करता है, तो उसे सुशीला, सुन्दरी और पतिव्रता स्त्री शीघ्र प्राप्त होती है। हे पार्वति ! पहले समय में दक्षकन्या (सती) के मरणानन्तर मैंने परमात्मा की आज्ञा शिरोधार्य कर इसी स्तोत्र द्वारा तुम्हें प्राप्त किया था। पूर्वकाल में ब्रह्मा ने भी इसी स्तोत्र द्वारा सावित्री की प्राप्ति की थी और पहले समय में दुर्वासा के शाप के कारण श्रीहीन होने पर देवों ने इसी स्तोत्र द्वारा अति दुर्लभ श्री (लक्ष्मी) प्राप्त की थी।।९५-१००।। पुत्र की कामना से एक वर्ष तक इसे सुनने पर पुत्र की प्राप्ति होती है तथा इस स्तोत्र के प्रसाद से महारोगी प्राणी रोगमुक्त हो जाता है।।।१०१।। कार्तिक मास की पूर्णिमा में श्री राधा जी की पूजा के अनन्तर इसका पाठ करने से अचल लक्ष्मी और राजसूय यज्ञ का फल प्राप्त होता है।।१०२।। यदि स्त्री इसका श्रवण करती है तो स्वामी (पति) के सौभाग्य से युक्त होती है। भक्तिपूर्वक जो इसे सुनता है, वह निश्चित बन्धनमुक्त हो जाता है।।१०३।। जो भक्तिपूर्वक श्री राधा

नित्यं पठति यो भक्त्या राधां संपूज्य भक्तितः । स प्रयाति च गोलोकं निर्मुक्तो भवबन्धनात् ॥१०४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० हरगौरीसं० राधिकोपा०
राधापूजास्तोत्रादिकथनं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५५॥

अथ षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पार्वत्युवाच

पूजाविधानं स्तोत्रं च श्रुतमत्यद्भुतं मया । अधुना कवचं ब्रूहि श्रोष्यामि त्वत्प्रसादतः ॥१॥

महेश्वर उवाच

शृणु वक्ष्यामि हे दुर्गे कवचं परमाद्भुतम् । पुरा मह्यं निगदितं गोलोके परमात्मना ॥२॥
अतिगुह्यं परं तत्त्वं सर्वमन्त्रौघविग्रहम् । यद्धृत्वा पठनाद्ब्रह्मा संप्राप्तो वेदमातरम् ॥३॥
यद्धृत्वाऽहं तव स्वामी सर्वमाता सुरेश्वरी । नारायणश्च यद्धृत्वा महालक्ष्मीमवाप सः ॥४॥
यद्धृत्वा परमात्मा च निर्गुणः प्रकृतेः परः । बभूव शक्तिमान्कृष्णः सृष्टिं कर्तुं पुरा विभुः ॥५॥
विष्णुः पाता च यद्धृत्वा संप्राप्तः सिन्धुकन्यकाम् । शेषो बिभर्ति ब्रह्माण्डं मूर्ध्नि सर्षपवद्यतः ॥६॥

जी की पूजा करने के उपरान्त इसका नित्य पाठ करता है, वह संसार (जन्ममरण) रूप बन्धन से मुक्त होकर गोलोक जाता है॥१०४॥

श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत हरगौरी-संवाद के श्रीराधिकोपाख्यान में राधा की पूजा, स्तोत्र आदि कथन नामक पचपनवाँ अध्याय समाप्त ॥५५॥

अध्याय ५६

राधा के मंत्र आदि का निरूपण

श्री पार्वती बोलीं—मैंने अति अद्भुत पूजा विधान और स्तोत्र तो सुन लिया, किन्तु तुम्हारे प्रसाद से सम्प्रति उनका कवच भी सुनना चाहती हूँ, अतः उसे कहने की कृपा करें॥१॥

श्री महेश्वर बोले—हे दुर्गे! पूर्व समय गोलोक में परमात्मा श्रीकृष्ण ने जिसे मुझे बताया था, वह परम अद्भुत कवच तुम्हें मैं बता रहा हूँ, सुनो! ॥२॥ जो अति गुप्त, परमतत्त्व रूप तथा समस्त मन्त्रों का समूह स्वरूप है और जिसके धारण एवं पाठ करने से ब्रह्मा ने वेदमाता सावित्री को प्राप्त किया॥३॥ जिसे धारण कर मैं सबकी जननी और देवों की अधीश्वरी देवी तुम्हारा पति हूँ। जिसे धारण कर नारायण ने महालक्ष्मी की प्राप्ति की ॥४॥ जिसे धारण कर परमात्मा श्रीकृष्ण, जो निर्गुण प्रकृति से परे और विभु (व्यापक) हैं, सृष्टि करने के लिए शक्तिमान् हुए ॥५॥ जिसे धारण कर विष्णु विश्वपालक हुए और उन्होंने सिन्धु-पुत्री लक्ष्मी को प्राप्त किया। जिसके कारण शेष समस्त ब्रह्माण्ड को अपने मस्तक पर राई के समान रखते हैं तथा महाविराट् जिसे धारण

यद्धृत्वा पठनादग्निर्जगत्पूतं करोति च। यद्धृत्वा वाति वातोऽयं पुनाति भुवनत्रयम् ॥११॥
यद्धृत्वा च स्वतन्त्रो हि मृत्युश्चरति जन्तुषु। त्रिःसप्तकृत्वो निःक्षत्त्रां चकार च वसुन्धराम्॥१२॥
जामग्दन्यश्च रामश्च पठनाद्धारणात्प्रभुः। ययौ समुद्रं यद्धृत्वा राजसूयं चकार सः।
पपौ समुद्रं यद्धृत्वा पठनात्कुम्भसंभवः ॥१३॥
सनत्कुमारो भगवान्यद्धृत्वा ज्ञानिनां गुरुः। जीवन्मुक्तौ च सिद्धौ च नरनारायणावृषी ॥१४॥
यद्धृत्वा पठनात्सिद्धो वसिष्ठो ब्रह्मपुत्रकः। सिद्धेशः कपिलो यस्माद्यस्माद्दक्षः प्रजापतिः॥१५॥
यस्माद्भृगुश्च मां द्वेष्टि कर्मःशेषं बिभर्ति च। सर्वाधारो यतो वायुर्वरुणः पवनो यतः॥१६॥
ईशानो दिक्पतिश्चैव यमः शास्ता यतः शिवे। कालः कालाग्निरुद्रश्च संहर्ता जगतां यतः॥१७॥
यद्धृत्वा गौतमः सिद्धः कश्यपश्च प्रजापतिः। वसुदेवसुतां प्राप चैकांशेन तु तत्कलाम् ॥१८॥
पुरा स्वजायाविच्छेदे दुर्वासा मुनिपुंगवः। संप्राप रामः सीतां च रावणेन हृतां पुरा॥१९॥
पुरा नलश्च संप्राप दयमन्तीं यतःसतीम्। शङ्खचूडो महावीरो दैत्यानामीश्वरो यतः॥२०॥
वृषो वहति मां दुर्गे यतो हि गरुडो हरिम्। एवं संप्राप्य संसिद्धिं सिद्धाश्च मुनयः सुराः॥२१॥
यद्धृत्वा च महालक्ष्मीः प्रदात्री सर्वसंपदाम्। सरस्वती सतां श्रेष्ठा यतः क्रीडावती रतिः॥२२॥
सावित्री वेदमाता च यतः सिद्धिमवाप्नुयात्। सिन्धुकन्या मर्त्यलक्ष्मीर्यतो विष्णुमवाप सा॥२३॥

लोकों को पवित्र करते हैं॥११॥ जिसे धारण कर मृत्यु जीवों में स्वतन्त्र विचरती है। जमदग्नि के पुत्र परशुरामजी ने जिसके धारण से समर्थ होकर सम्पूर्ण पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रियरहित कर दिया था। जिसे धारण कर कुम्भ-पुत्र अगस्त्य ने समुद्र का पान कर लिया था। जिसके कारण सनत्कुमार भगवान् ज्ञानियों के गुरु हुए तथा नर-नारायण ऋषि जीवन्मुक्त और सिद्ध हो गये॥१२-१४॥ जिसके धारण और पाठ से ब्रह्मा के सुपुत्र वशिष्ठ सिद्ध हो गये तथा जिसके बल से कपिल सिद्धेश हुए, दक्ष प्रजापति और भृगु मुझसे द्वेष रखते हैं, कच्छप शेष को धारण करता है और वायु एवं वरुण समस्त के आधार हुए हैं॥१५-१६॥ हे शिवे! जिसके बल से ईशान (शिव), दिक्पाल और यम शासन करते हैं, काल एवं कालाग्नि रुद्र जगत् का संहार करते हैं, जिसके धारण करने से गौतम सिद्ध हुए कश्यप प्रजापति हुए। पहले समय में मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा ने अपनी स्त्री के मरणानन्तर वसुदेव जी की कन्या से विवाह किया था, जो राधा के कला अंश से उत्पन्न हुई थी। और पहले समय में राम ने जानकी जी को प्राप्त किया था, जिसे रावण हर ले गया था॥१७-१९॥ जिसके कारण पहले समय में नल को सती दमयन्ती प्राप्त हुई थी और महाबलवान् शंखचूड़ दैत्यों का अधीश्वर हुआ॥२०॥ हे दुर्गे! जिसके बल से बैल हमारा वाहन हुआ और गरुड़ भगवान् का और पूर्वकाल में मुनिवृन्द जिसके बल से संसिद्धि प्राप्त कर सिद्ध हो गये॥२१॥ जिसे धारण कर महालक्ष्मी समस्त सम्पत्ति प्रदान करती हैं, सरस्वती सज्जनों में श्रेष्ठ हो गयीं, रति क्रीड़ावती हुई और जिसके कारण वेदमाता सावित्री को सिद्धि प्राप्त हो गयी। मर्त्यलोक की लक्ष्मी सिन्धु-कन्या को जिसके बल से विष्णु (पति) रूप में प्राप्त हुए॥२२-२३॥ जिसे धारण करने से तुलसी पवित्र हो गयी, गंगा लोकपावनी

यद्धृत्वा तुलसी पूता गङ्गा भुवनपावनी। यद्धृत्वा सर्वसस्याढ्या सर्वाधारा वसुंधरा ॥२४॥
यद्धृत्वा मनसा देवी सिद्धा वै विश्वपूजिता। यद्धृत्वा देवमाता च विष्णुं पुत्रमवाप सा ॥२५॥
पतिव्रता च यद्धृत्वा लोपामुद्राऽप्यरुन्धती। लेभे च कपिलं पुत्रं देवहूती यतः सती ॥२६॥
प्रियव्रतोत्तानपादौ सुतौ प्राप च तत्प्रसूः। त्वन्माता चापि संप्राप[1] त्वां देवीं गिरिजां यतः ॥२७॥
एवं सर्वे सिद्धगणाः सर्वैश्वर्यमवाप्नुयुः। श्रीजगन्मङ्गलस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः ॥२८॥
ऋषिश्छन्दोऽस्य गायत्री देवी[2] रासेश्वरी स्वयम्। श्रीकृष्णभक्तिसंप्राप्तौ विनियोगः प्रकीर्तितः ॥२९॥
शिष्याय कृष्णभक्ताय ब्राह्मणाय प्रकाशयेत्। शठाय परशिष्याय दत्त्वा मृत्युमवाप्नुयात् ॥३०॥
राज्यं देयं शिरो देयं न देयं कवचं प्रिये। कण्ठे धृतमिदं भक्त्या कृष्णेन परमात्मना ॥३१॥
मया दृष्टं च गोलोके ब्रह्मणा विष्णुना पुरा। ॐ राधेति चतुर्थ्यन्तं वह्निजायान्तमेव च ॥३२॥
कृष्णेनोपासितो मन्त्रः कल्पवृक्षः शिरोऽवतु। ॐ ह्रीं श्रीं राधिकां ङेन्तं वह्निजायान्तमेव च ॥३३॥
कपालं नेत्रयुग्मं च श्रोत्रयुग्मं सदाऽवतु। अं ऐं ह्रीं श्रीं राधिकायै वह्निजायान्तमेव च ॥३४॥
मस्तकं केशसंघांश्च मन्त्रराजः सदाऽवतु। ओं रां राधां चतुर्थ्यन्तं वह्निजायान्तमेव च ॥३५॥
सर्वसिद्धिप्रदः पातु कपोलं नासिकां मुखम्। क्लीं ह्रीं कृष्णप्रियां ङेन्तं कण्ठं पातु नमोऽन्तकम् ॥३६॥
ओं रां रासेश्वरीं ङेन्तं स्कन्धं पातु नमोऽन्तकम्। ओं रां रासविलासिन्यै स्वाहा[3] पृष्ठं सदाऽवतु ॥३७॥

बनी, वसुन्धरा समस्त सस्य (फसलों) से परिपूर्ण और सभी का आधार हुई॥२४॥ जिसे धारण कर मनसा देवी सिद्ध होकर विश्वपूजित हुई, देवमाता (अदिति) को विष्णु पुत्र रूप में प्राप्त हुए॥२५॥ लोपामुद्रा और अरुन्धती पतिव्रता हुई तथा सती देवहूति को कपिल पुत्र रूप में प्राप्त हुए॥२६॥ शतरूपा को प्रियव्रत एवं उत्तानपाद पुत्र मिले और जिसके नाते तुम्हारी माता मेना ने तुम गिरिजा देवी को प्राप्त किया॥२७॥ इस भाँति सभी सिद्धगणों ने समस्त ऐश्वर्य प्राप्त किये हैं। इस जगन्मंगल (नामक) कवच के प्रजापति ऋषि, गायत्री छन्द, स्वयं रासेश्वरी (राधा) देवी और श्रीकृष्ण की भक्ति की प्राप्ति के लिए इसका विनियोग है॥२८-२९॥ भगवान् श्रीकृष्ण के भक्त शिष्य एवं ब्राह्मण से ही इसे प्रकट करना चाहिए क्योंकि किसी दूसरे के शिष्य एवं शठ को बताने से मृत्यु प्राप्त होती है॥३०॥ हे प्रिये! राज्य दे सकते हैं शिर भी दे सकते हैं, किन्तु यह कवच कभी नहीं देना चाहिए। क्योंकि परमात्मा श्रीकृष्ण इसे भक्तिपूर्वक अपने कण्ठ में धारण करते हैं जिसे ब्रह्मा विष्णु के साथ मैंने गोलोक में (एक बार) पहले समय देखा था। 'ओं राधायै स्वाहा' यह भगवान् कृष्ण द्वारा उपासित कल्पवृक्ष तुल्य मन्त्र (मेरे) शिर की रक्षा करे। 'ओं ह्रीं श्रीं राधिकायै स्वाहा' यह मन्त्र मेरे कपाल, दोनों नेत्रों तथा दोनों कानों की सदा रक्षा करे। 'ओं ह्रीं श्रीं राधिकायै स्वाहा' यह मन्त्रराज मस्तक और केशसमूह की सदा रक्षा करे। 'ओं रां राधायै स्वाहा' यह समस्त सिद्धिदायक मंत्र कपोल, नासिका और मुख की रक्षा करे। 'क्लीं ह्रीं कृष्णप्रियायै नमः' कण्ठ की रक्षा करे॥३१-३६॥ 'ओं रां रासेश्वर्यै नमः' स्कन्ध की रक्षा करे, 'ओं रां रासविलासिन्यै स्वाहा' सदा पीठ की रक्षा करे॥३७॥

१क. त्वामेव प्रकृतिं सुताम्। २क. देवो रासेश्वरःस्व०। ३क. बाहू।

वृन्दावनविलासिन्यै स्वाहा वक्षः सदाऽवतु। तुलसीवनवासिन्यै स्वाहा पातु नितम्बकम् ॥३८॥
कृष्णप्राणाधिका ङेन्तं स्वाहान्तं प्रणवादिकम्। पादयुग्मं च सर्वाङ्गं संततं पातु सर्वतः ॥३९॥
प्राच्यां रक्षतु सा राधा वह्नौ कृष्णप्रियाऽवतु। दक्षे रासेश्वरी पातु गोपीशा नैर्ऋतेऽवतु ॥४०॥
पश्चिमे निर्गुणा पातु वायव्ये कृष्णपूजिता। उत्तरे संततं पातु मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥४१॥
सर्वेश्वरी सदैशान्यां पातु मां सर्वपूजिता। जले स्थले चान्तरिक्षे स्वप्ने जागरणे तथा ॥४२॥
महाविष्णोश्च जननी सर्वतः पातु संततम्। कवचं कथितं दुर्गे श्रीजगन्मङ्गलं परम् ॥४३॥
यस्मै कस्मै न दातव्यं गुह्याद्गुह्यतरं परम्। तव स्नेहान्मयाऽऽख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचित् ॥४४॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालंकारचन्दनैः। कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ धृत्वा विष्णुसमो भवेत् ॥४५॥
महोत्सवविशेषे च पर्वन्निति सुकीर्तिता। तस्याधिदेवी या सा च पार्वती परिकीर्तिता ॥४६॥
पर्वतस्य सुता देवी साऽऽविर्भूता च पर्वते। पर्वताधिष्ठातृदेवी पार्वती तेन कीर्तिता ॥४७॥
सर्वकाले सना प्रोक्तो विस्तृते च तनीति च। सर्वत्र सर्वकाले च विद्यमाना सनातनी ॥४८॥
शतलक्षजपेनैव सिद्धं च कवचं भवेत्। यदि स्यात्सिद्धकवचो न दग्धो वह्निना भवेत् ॥४९॥
एतस्मात्कवचाद्दुर्गे राजा दुर्योधनः पुरा। विशारदो जलस्तम्भे वह्निस्तम्भे च निश्चितम् ॥५०॥
मया सनत्कुमाराय पुरा दत्तं च पुष्करे। सूर्यपर्वणि मेरौ च स सांदीपनये ददौ ॥५१॥

'वृन्दावन विलासिन्यै स्वाहा' सदा वक्षःस्थल की रक्षा करे, 'तुलसीवनवासिन्यै स्वाहा' नितम्ब की रक्षा करे ॥३८॥ 'ओं कृष्णप्राणाधिकायै स्वाहा' युगल चरण और चारों ओर से सर्वांग की सतत रक्षा करे ॥३९॥ पूर्व की ओर राधा रक्षा करें, अग्निकोण की ओर कृष्णप्रिया रक्षा करें, दक्षिण की ओर रासेश्वरी रक्षा करें, नैर्ऋतकोण में गोपीशा रक्षा करें ॥४०॥ पश्चिम दिशा में निर्गुणा, वायव्य कोण में कृष्णपूजिता और उत्तर की ओर ईश्वरी मूल प्रकृति निरन्तर रक्षा करें ॥४१॥ ईशान कोण में सदा सर्वेश्वरी मेरी रक्षा करें, जल, स्थल, अन्तरिक्ष (आकाश में), स्वप्न, जागरण (सोते-जागते) में सर्वपूजिता और महाविष्णु की जननी चारों ओर से निरन्तर रक्षा करें। हे दुर्गे! यह श्री जगन्मंगल नामक कवच तुम्हें बता दिया, जो जिस किसी को देने योग्य नहीं है क्योंकि यह गुप्त से भी परम गुप्ततर है, तुम्हारे स्नेहवश मैंने तुम्हें बताया है, अतः किसी से न कहना ॥४२-४४॥ वस्त्र, अलंकार, चन्दन द्वारा गुरु की सविधि अर्चा करने के अनन्तर कण्ठ में अथवा दाहिने बाहु में इस कवच को धारण करने से वह विष्णु के समान हो जाता है ॥४५॥ विशेष प्रकार के महोत्सव में वह 'पर्वन्' कही गई है। उसको जो अधिष्ठात्री देवी है, वह पार्वती कही गई हैं। पर्वत की पुत्री के रूप में वह देवी पर्वत में उत्पन्न हुई थी। इस लिए पर्वत की अधिष्ठात्री देवी (होने) से पार्वती कहलायी। 'सना' शब्द का प्रयोग सर्वकाल के अर्थ में होता है और 'तनी' का प्रयोग विस्तृत अर्थ में होता है। इसलिए सर्वत्र सर्वकाल में विद्यमान होने से वह सनातनी है। सौ लाख जप करने से यह कवच सिद्ध होता है, यदि कवच सिद्ध हो गया, तो वह अग्नि से जल नहीं सकता ॥४६-४९॥ हे दुर्गे! पूर्वकाल में राजा दुर्योधन ने इसी कवच द्वारा जल और अग्नि का स्तम्भन किया था। पहले समय में मैंने पुष्कर क्षेत्र में सनत्कुमार को यह दिया था। मेरु पर्वत पर सान्दीपनि को सूर्य ग्रहण के समय

[1]बल्लाय तेन दत्तं च ददौ दुर्योधनाय सः। कवचस्य प्रसादेन जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥५२॥
नित्यं पठति भक्त्येदं तन्मन्त्रोपासकश्च यः। विष्णुतुल्यो भवेन्नित्यं राजसूयफलं लभेत् ॥५३॥
स्नानेन सर्वतीर्थानां सर्वदानेन यत्फलम्। सर्वव्रतोपवासेन पृथिव्याश्च प्रदक्षिणैः ॥५४॥
सर्वयज्ञेषु दीक्षायां नित्यं वै सत्यरक्षणे। नित्यं श्रीकृष्णसेवायां कृष्णनैवेद्यभक्षणे ॥५५॥
पाठे चतुर्णां वेदानां यत्फलं च लभेन्नरः। तत्फलं लभते नूनं पठनात्कवचस्य च ॥५६॥
राजद्वारे श्मशाने च सिंहव्याघ्रान्विते वने। दावाग्नौ संकटे चैव दस्युचौरान्विते भये ॥५७॥
कारागारे [2]विपद्ग्रस्ते घोरे च दृढबन्धने। व्याधियुक्तो भवेन्मुक्तो धारणात्कवचस्य च ॥५८॥
इत्येतत्कथितं दुर्गे तवैवेदं महेश्वरि। त्वमेव सर्वरूपा मां माया पृच्छसि मायया ॥५९॥

नारायण उवाच

इत्युक्त्वा राधिकाख्यानं स्मारं स्मारं च माधवम्। पुलकाङ्कितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्रो बभूव सः ॥६०॥
न कृष्णसदृशो देवो न गङ्गासदृशी सरित्। न पुष्करात्परं तीर्थं न वर्णो ब्राह्मणात्परः ॥६१॥
परमाणोः परं सूक्ष्मं महाविष्णोः परो महान्। नभः परं च विस्तीर्णं यथा नास्त्येव नारद ॥६२॥
तथा न वैष्णवाज्ज्ञानी योगीन्द्रः शंकरात्परः। कामक्रोधलोभमोहा जितास्तेनैव नारद ॥६३॥

उन्होंने दिया और सान्दीपनि ने बलराम को तथा बलराम ने वह दुर्योधन को दिया था। इस कवच के प्रसाद से मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है॥५०-५२॥ उन (राधा) के मन्त्र की उपासना करने वाला यदि भक्तिपूर्वक नित्य इसका पाठ करता है, तो वह विष्णु के समान होकर नित्य राजसूय यज्ञ का फल प्राप्त करता है॥५३॥ इस प्रकार सम्पूर्ण तीर्थों के स्नान, समस्त दान, सम्पूर्ण व्रतों के उपवास, पृथिवी की परिक्रमा, समस्त यज्ञों की दीक्षा, नित्य सत्य की रक्षा, भगवान् श्रीकृष्ण की नित्य सेवा, उनके नैवेद्य के भक्षण और चारों वेदों के पारायण से जो फल प्राप्त होता है, वह इस कवच के पाठ करने से निश्चय प्राप्त होता है ॥५४-५६॥ राज दरबार, श्मशान, सिंह-बाघ से युक्त वन, दावाग्नि, संकट, चोर-डाकुओं के भय, कारागार (जेल), घोर विपत्ति, दृढ़बन्धन (गिरफ्तारी) और रोगी होने पर इस कवच के धारण करने से (उस संकट से) शीघ्र मुक्त हो जाता है॥५७-५८॥ हे दुर्गे! हे महेश्वरि! यह जो मैंने तुम्हें सुनाया है, वह तुम्हारी ही वस्तु है, क्योंकि तुम सर्वरूपा हो, माया होकर माया (छल) करके मुझसे पूछ रही हो॥५९॥

नारायण बोले—इस प्रकार राधिका जी का आख्यान कहने के अनन्तर बार-बार भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण करने से शिवजी के समस्त शरीर में रोमाञ्च हो आया और नेत्र सजल हो गये ॥६०॥ क्योंकि भगवान् श्रीकृष्ण के समान कोई देव नहीं है तथा गंगा के समान नदी, पुष्कर से बढ़कर तीर्थ और ब्राह्मण से बढ़कर उच्चवर्ण कोई नहीं है ॥६१॥ हे नारद ! जिस भाँति परमाणु से बढ़कर सूक्ष्म, महाविष्णु से बढ़कर महान् और आकाश से बढ़ कर विस्तीर्ण कोई नहीं है उसी प्रकार वैष्णव से बढ़ कर ज्ञानी, शंकर जी से बढ़कर योगिराज और नहीं है, क्योंकि हे नारद ! इन्होंने

१क. बालाय। २क. रिपुग्रस्ते।

स्वप्ने जागरणे शश्वत्कृष्णध्यानरतः शिवः। यथा कृष्णस्तथा शंभुर्न भेदो माधवेशयोः ॥६४॥
यथा शंभुर्वैष्णवेषु यथा देवेषु माधवः। तथेदं कवचं वत्स कवचेषु प्रशस्तकम् ॥६५॥
शिशब्दो मङ्गलार्थश्च वकारो दातृवाचकः। मङ्गलानां प्रदाता यः स शिवः परिकीर्तितः ॥६६॥
नराणां संततं विश्वे शं कल्याणं करोति यः। कल्याणं मोक्ष इत्युक्तं स एव शंकरः स्मृतः ॥६७॥
ब्रह्मादीनां सुराणां च मुनीनां वेदवादिनाम्। तेषां च महतां देवो महादेवः प्रकीर्तितः ॥६८॥
महती पूजिता विश्वे मूलप्रकृतिरीश्वरी। तस्या देवः पूजितश्च महादेवः स च स्मृतः ॥६९॥
विश्वस्थानां च सर्वेषां महतामीश्वरः स्वयम्। महेश्वरं च तेनेमं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥७०॥
हे ब्रह्मपुत्र धन्योऽसि यद्गुरुश्च महेश्वरः। श्रीकृष्णभक्तिदाता यो भवान्पृच्छति मां च किम् ॥७१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० राधिकोपा० तन्मन्त्रादिकथनं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५६॥

अथ सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

नारद उवाच

सर्वाख्यानं श्रुतं ब्रह्मन्नतीव परमाद्भुतम्। अधुना श्रोतुमिच्छामि दुर्गोपाख्यानमुत्तमम् ॥१॥
दुर्गा नारायणीशाना विष्णुमाया शिवा सती। नित्या सत्या भगवती शर्वाणी सर्वमङ्गला ॥२॥
अम्बिका वैष्णवी गौरी पार्वती च सनातनी। नामानि कौथुमोक्तानि सर्वेषां शुभदानि च ॥३॥

ही काम, क्रोध, लोभ और मोह को जीता है। सोते-जागते सब समय शिव भगवान् कृष्ण के ध्यान में निरन्तर मग्न रहते हैं, अतः जैसे कृष्ण हैं वैसे शिव हैं, इन माधव और शंकर में कोई भेद नहीं है। हे वत्स! जिस प्रकार वैष्णवों में शम्भु, देवों में माधव (श्रेष्ठ) हैं, वैसे ही समस्त कवचों में यह कवच अति प्रशस्त है ॥६२-६५॥ (शिव शब्द में) शि शब्द का मंगल अर्थ और वकार का दाता अर्थ है, अतः मंगलों के प्रदाता को शिव कहा जाता है ॥६६॥ विश्व में मनुष्यों का जो निरन्तर कल्याण करता है, उसे शंकर कहा गया है कल्याण को मोक्ष कहा गया है ॥६७॥ ब्रह्मादि देवगण तथा वेदवक्ता मुनिवृन्द का जो महान् देवता है, उसे 'महादेव' कहा गया है ॥६८॥ समस्त विश्व में ईश्वरी मूल प्रकृति अत्यन्त पूजित है और उसका जो पूजित देव है, उसे महादेव कहा जाता है ॥६९॥ विश्व के समस्त महान् प्राणियों का वह स्वयं ईश्वर है, इसी से मनीषी लोग उन्हें 'महेश्वर' कहते हैं। हे ब्रह्मपुत्र! तुम धन्य हो, श्रीकृष्ण की भक्ति देने वाले महेश्वर जिसके गुरु हैं, ऐसे आप मुझसे क्यों पूछते हैं ॥७०-७१॥

श्री ब्रह्मवैवर्त महापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद के राधिकोपाख्यान में उनके मंत्र आदि कथन नामक छप्पनवाँ अध्याय समाप्त ॥५६॥

अध्याय ५७

दुर्गा आदि नामों की व्युत्पत्ति

नारद बोले—हे ब्रह्मन्! मैंने परम अद्भुत समस्त आख्यान सुन लिया, अब श्री दुर्गा जी का उत्तम उपाख्यान सुनना चाहता हूँ। दुर्गा, नारायणी, ईशानी, विष्णुमाया, शिवा, सती, नित्या, सत्या, भगवती, शर्वाणी, सर्वमंगला, अम्बिका, वैष्णवी, गौरी, पार्वती और सनातनी ये कौथुम शाखा में कहे गये सभी नाम शुभप्रद हैं ॥१-३॥

अर्थं षोडशनाम्नां च सर्वेषामीप्सितं वरम्। ब्रूहि वेदविदां श्रेष्ठ वेदोक्तं सर्वसंमतम् ।।४।।
केन वा पूजिता साऽऽदौ द्वितीये केन वा पुरा। तृतीये वा चतुर्थे वा केन सर्वत्र पूजिता ।।५।।

नारायण उवाच

अर्थं षोडशनाम्नां च विष्णुर्वेदे चकार सः। ज्ञात्वा पुनः पृच्छसि त्वं कथयामि यथागमम् ।।६।।
दुर्गो दैत्ये महाविघ्ने भवबन्धे च कर्मणि। शोके दुःखे च नरके यमदण्डे च जन्मनि ।।७।।
महाभयेऽतिरोगे चाप्याशब्दो हन्तृवाचकः। एतान्हन्त्येव या देवी सा दुर्गा परिकीर्तिता ।।८।।
यशसा तेजसा रूपैर्नारायणसमा गुणैः। शक्तिर्नारायणस्येयं तेन नारायणी स्मृता ।।९।।
ईशानः सर्वसिद्ध्यर्थे चाशब्दो दातृवाचकः। सर्वसिद्धिप्रदात्री या साऽपीशाना प्रकीर्तिता ।।१०।।
सृष्टा माया पुरा सृष्टौ विष्णुना परमात्मना। मोहितं मायया विश्वं विष्णुमाया प्रकीर्तिता ।।११।।
शिवे कल्याणरूपा च शिवदा च शिवप्रिया। प्रिये दातरि चाऽऽशब्दो शिवा तेन प्रकीर्तिता ।।१२।।
सद्बुद्ध्यधिष्ठातृदेवी विद्यमाना युगे युगे। पतिव्रता सुशीला च सा सती परिकीर्तिता ।।१३।।
यथा नित्यो हि भगवान्नित्या भगवती तथा। स्वमायया तिरोभूता तत्रेशे प्राकृते लये ।।१४।।
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सर्वं मिथ्यैव कृत्रिमम्। दुर्गा सत्यस्वरूपा सा प्रकृतिर्भगवान्यथा ।।१५।।

हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ! इन सोलह नामों के समुचित अर्थ बताने की कृपा करें, जो सभी के लिए अभिलषित, श्रेष्ठ, वेदोक्त और सर्वसम्मत हों।।४।। सर्वप्रथम इस देवी की किसने आराधना की? पुनः दूसरा, तीसरा और चौथा कौन हैं जिन्होंने उनकी पूजा की? और किसके द्वारा ये पूजित हुईं ।।५।।

नारायण बोले—भगवान् विष्णु ने वेद में इन सोलह नामों के अर्थ बताये हैं, उसे जानते हुए भी मुझसे पूछ रहे हो, अतः शास्त्रानुसार मैं कह रहा हूँ।।६।। (दुर्गा शब्द में) दुर्ग शब्द दैत्य, महाविघ्न, संसाररूपी बन्धन, संसार के कर्म, शोक, दुःख, नरक, यमदण्ड, जन्म, महाभय, और असाध्यरोग अर्थ में प्रयुक्त होता है, तथा आ शब्द का हन्ता अर्थ है अतः इन सभी का जो हनन (नाश) करती है उस देवी को दुर्गा कहा जाता है।।७-८।। यश, तेज, रूप और गुणों में यह नारायण के समान है और उन्हीं की यह शक्ति है अतः इसे नारायणी कहते हैं।।९।। समस्त सिद्धि अर्थ में ईशान शब्द प्रयुक्त होता है और आ शब्द का अर्थ दाता है अतः सर्वसिद्धि प्रदान करने वाली देवी को 'ईशाना' कहा जाता है।।१०।। परमात्मा विष्णु ने सृष्टि के पूर्वकाल में माया को उत्पन्न किया और उस माया द्वारा समस्त विश्व को मोहित कर दिया, अतः इसे विष्णुमाया कहते हैं।।११।। शिव में वह कल्याण रूप है, शिवदायिनी और शिव की प्रिया है। प्रिय और दाता अर्थ में आ शब्द प्रयुक्त होता है, इसी से उसे शिवा कहा जाता है।।१२।। प्रत्येक युग में यह सद्बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी विद्यमान रहती है, तथा पतिव्रता और उत्तम-स्वभाव की होने के नाते इसे 'सती' कहा जाता है।।१३।। जिस प्रकार भगवान् नित्य हैं उसी प्रकार यह भगवती भी नित्या है। प्राकृत लय के समय अपनी माया द्वारा उस ईश (भगवान् कृष्ण में) तिरोहित हो जाती है। इसीलिए तृण से लेकर ब्रह्मा तक सब कुछ कृत्रिम (बनावटी) और मिथ्या है। भगवान् की भाँति प्रकृति दुर्गा भी सत्य-स्वरूपा हैं।।१४-१५।। प्रत्येक युग में जिसमें सभी सिद्धियाँ और ऐश्वर्यादि वर्तमान रहते हैं, उस सिद्धादिक अर्थ

**सिद्धैश्वर्यादिकं सर्वं यस्यामस्ति युगे युगे। सिद्धादिके भगो ज्ञेयस्तेन सा भगवती स्मृता ॥१६॥
सर्वान्मोक्षं प्रापयति जन्ममृत्युजरादिकम्। चराचरांश्च विश्वस्थाञ्छर्वाणी तेन कीर्तिता ॥१७॥
मङ्गलं मोक्षवचनं चाऽऽशब्दो दातृवाचकः। सर्वान्मोक्षान्या ददाति सैव स्यात्सर्वमङ्गला ॥१८॥
हर्षे संपदि कल्याणे मङ्गलं परिकीर्तितम्। तान्ददाति च सर्वेभ्यस्तेन सा सर्वमङ्गला ॥१९॥
अम्बेति मातृवचनो वन्दने पूजने सदा। पूजिता वन्दिता माता जगतां तेन साऽम्बिका ॥२०॥
विष्णुभक्ता विष्णुरूपा विष्णोः शक्तिस्वरूपिणी। सृष्टौ च विष्णुना सृष्टा वैष्णवी तेन कीर्तिता ॥२१॥
गौरः पीते च निर्लिप्ते परे ब्रह्मणि निर्मले। तस्याऽऽत्मनः शक्तिरियं गौरी तेन प्रकीर्तिता ॥२२॥
गुरुः शंभुश्च सर्वेषां तस्य शक्तिः प्रिया सती। गुरुः कृष्णश्च तन्माया गौरी तेन प्रकीर्तिता ॥२३॥
तिथिभेदे पर्वभेदे कल्पभेदेऽन्यभेदके। ख्यातौ तेषु च विख्याता पार्वती तेन कीर्तिता ॥२४॥
महोत्सवविशेषे च पर्वन्निति सुकीर्तिता। तस्याधिदेवी या सा च पार्वती परिकीर्तिता ॥२५॥
पर्वतस्य सुता देवी साऽऽविर्भूता च पर्वते। पर्वताधिष्ठातृदेवी पार्वती तेन कीर्तिता ॥२६॥
सर्वकाले सना प्रोक्तो विस्तृते च तनोति च। सर्वत्र सर्वकाले च विद्यमाना सनातनी ॥२७॥
अर्थः षोडशनाम्नां च कीर्तितश्च महामुने। यथागमं त्वं वेदोक्तोपाख्यानं च निशामय ॥२८॥
प्रथमे पूजिता सा च कृष्णेन परमात्मना। वृन्दावने च सृष्टयादौ गोलोके रासमण्डले ॥२९॥**

में भग शब्द प्रयुक्त होने के कारण उसे भगवती कहते हैं ॥१६॥ जो सभी को मोक्ष दिलाती हैं और समस्त विश्व के चर-अचर प्राणियों को जन्म, मृत्यु एवं जरा आदि प्रदान करती हैं, उसे 'शर्वाणी' कहते हैं ॥१७॥ मंगल शब्द का मोक्ष अर्थ और आ शब्द का दाता अर्थ है, तथा जो सभी को मोक्ष प्रदान करती है, उसे 'सर्वमंगला' कहा गया है ॥१८॥ हर्ष, सम्पत्ति और कल्याण अर्थ में मंगल शब्द प्रयुक्त होता है और वह सभी प्राणियों को प्रदान करती है, इसलिये भी उसे 'सर्वमंगला' कहते हैं ॥१९॥ माता तथा सदा वन्दन एवं पूजन अर्थ में अम्बा शब्द प्रयुक्त होता है अतः जगत् की वन्दिता एवं पूजिता माता होने के नाते उसे अम्बिका कहते हैं ॥२०॥ विष्णुभक्त विष्णुस्वरूप, विष्णु की शक्ति और सृष्टि में विष्णु द्वारा उत्पन्न होने के नाते उसे 'वैष्णवी' कहते हैं ॥२१॥ गौर शब्द पीत वर्ण, निर्लिप्त परब्रह्म और निर्मल अर्थ में प्रयुक्त होता है और परमात्मा की शक्ति होने के कारण उसे 'गौरी' कहा जाता है ॥२२॥ सभी के गुरु शिव हैं, उनकी यह शक्ति है और कृष्ण भी सभी के गुरु हैं उनकी यह माया है इससे भी इन्हें 'गौरी' कहा गया है ॥२३॥ तिथिभेद, पर्वभेद कल्पभेद और अन्य भेद तथा ख्याति में विख्यात होने के नाते उसे 'पार्वती' कहा गया है ॥२४॥ महोत्सव विशेष अर्थ में पर्वन् शब्द प्रयुक्त होता है, उसकी अधिष्ठात्री देवी होने के नाते उसे 'पार्वती' कहा जाता है ॥२५॥ और यह देवी पर्वत की कन्या होकर पर्वत पर प्रकट हुई और पर्वतों की अधिष्ठात्री देवी होने के नाते भी उसे 'पार्वती' कहा गया है ॥२६॥ सर्वकाल अर्थ में सना शब्द प्रयुक्त होता है, और विस्तृत अर्थ में तनी शब्द। अतः सभी जगह सब समय विद्यमान रहने के कारण उसका 'सनातनी' नामकरण हुआ है ॥२७॥ हे महामुने! सोलहों नामों का अर्थ मैंने कह दिया है, अब वेदानुसार उनका उपाख्यान भी शास्त्र रीति से कह रहा हूँ, सुनो ॥२८॥ सृष्टि के आदि में परमात्मा श्रीकृष्ण ने गोलोक में वृन्दावन के रासमण्डल में इनकी सर्वप्रथम अर्चना की ॥२९॥ दूसरे मधुकैटभ से भयभीत होकर

मधुकैटभभीतेन ब्रह्मणा सा द्वितीयतः। त्रिपुरप्रेरितेनैव तृतीये त्रिपुरारिणा ॥३०॥
भ्रष्टश्रिया महेन्द्रेण शापाद्दुर्वाससः पुरा। चतुर्थे पूजिता देवी भक्त्या भगवती सती ॥३१॥
तदा मुनीन्द्रैः सिद्धेन्द्रैर्देवैश्च मुनिपुंगवैः। पूजिता सर्वविश्वेषु समभूत्सर्वतः सदा ॥३२॥
तेजःसु सर्वदेवानां साऽऽविर्भूता पुरा मुने। सर्वे देवा ददुस्तस्यै शस्त्राण्याभरणानि च ॥३३॥
दुर्गादयश्च दैत्याश्च निहिता दुर्गया तथा। दत्तं स्वराज्यं देवेभ्यो वरं च यदभीप्सितम् ॥३४॥
कल्पान्तरे पूजिता सा सुरथेन महात्मना। राज्ञा च मेधशिष्येण मृन्मय्यां च सरित्तटे ॥३५॥
मेषादिभिश्च महिषैः कृष्णसारैश्च गण्डकैः। छागैरिक्षुसुकूष्माण्डैः पक्षिभिर्बलिभिर्मुने ॥३६॥
वेदोक्तांश्चैव दत्त्वैवमुपचारांस्तु षोडश। ध्यात्वा च कवचं धृत्वा संपूज्य च विधानतः ॥३७॥
राजा कृत्वा परीहारं वरं प्राप यथेप्सितम्। मुक्तिं संप्राय वैश्यश्च संपूज्य च सरित्तटे ॥३८॥
तुष्टाव राजा वैश्यश्च साश्रुनेत्रः कृताञ्जलिः। ससर्ज मृन्मयीं तां वै गभीरे निर्मले जले ॥३९॥
मृन्मयीं तामदृष्ट्वा च जलधौतां नराधिपः। रुरोद च तदा वैश्यस्ततः स्थानान्तरं ययौ ॥४०॥
त्यक्त्वा देहं च वैश्यस्तु पुष्करे दुष्करं तपः। कृत्वा जगाम गोलोकं दुर्गादेवीवरेण सः ॥४१॥
राजा ययौ स्वराज्यं च पूज्यो निष्कण्टकं बली। भोगं च बुभुजे भूपः षष्टिवर्षसहस्रकम् ॥४२॥

ब्रह्मा ने और तीसरे त्रिपुर से प्रेरित होकर त्रिपुरारि (शिव) ने उनकी पूजा की ॥३०॥ चौथे पूर्वसमय में महेन्द्र ने दुर्वासा द्वारा प्रदत्त शाप के कारण ऐश्वर्यादि से भ्रष्ट होने पर भक्तिपूर्वक सती भगवती देवी की अर्चना की ॥३१॥ उसी समय से वह समस्त विश्व में मुनीन्द्रवृन्द, सिद्धगण, देवों और श्रेष्ठ महर्षियों द्वारा पूजित होकर चारों ओर सदैव पूजित होने लगी ॥३२॥ हे मुने! प्राचीन समय में समस्त देवों के तेजःपुञ्ज से प्रकट होकर उस दुर्गा देवी ने, जिसे समस्त देवों ने अपने शस्त्र और आभूषण प्रदान किये थे, दुर्ग आदि दैत्यों को मारकर समस्त राज्य और मनइच्छित वरदान देवों को प्रदान किया ॥३३-३४॥ कल्पान्तर में मेध के शिष्य राजा सुरथ ने नदी के तट पर मिट्टी की मूर्ति बनाकर देवी की पूजा की थी ॥३५॥ हे मुने! भेड़ें आदि, भैंसे, मृग, मेढ़क, बकरे, ऊख, कुम्हड़े, और पक्षियों की बलि प्रदान द्वारा वेदोक्त षोडशोपचार से सविधि-पूजन करने के उपरान्त राजा ने कवच धारण किया तथा देवी की स्तुति करके मनइच्छित वर प्राप्त किया। (समाधि नामक) वैश्य ने भी नदी-तट पर देवी की आराधना करके मुक्ति प्राप्त की ॥३६-३८॥ राजा और वैश्य दोनों ने सजलनयन एवं हाथ जोड़े स्तुति करते हुए मिट्टी की उस प्रतिमा को गम्भीर जल में डाल दिया ॥३९॥ अनन्तर राजा उस मिट्टी की मूर्ति को, जो जल में घुल गयी थी, न देखकर रुदन करने लगा और वह वैश्य उसी समय वहाँसे दूसरी जगह चला गया ॥४०॥ पुष्कर में कठिन तप करके उस वैश्य ने अपनी देह का त्याग किया और दुर्गा देवी के वरदान द्वारा गोलोक की प्राप्ति की एवं उस बलवान् राजा ने अपने निष्कण्टक राज्य का साठ सहस्र वर्ष तक उपभोग किया। अनन्तर स्त्री और राज्य पुत्र को सौंपकर कालयोगवश पुष्कर में तप करके सावर्णि मनु

भार्यां स्वराज्यं संन्यस्य पुत्रे वै कालयोगतः । मनुर्बभूव सावर्णिस्तप्त्वा वै पुष्करे तपः ॥४३॥
इत्येवं कथितं वत्स समासेन यथागमम् । दुर्गाख्यानं मुनिश्रेष्ठ किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥४४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० मनसोपा० दुर्गोपा० दुर्गादिनाम-
व्युत्पत्त्यादिकथनं नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५७॥

अथाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

नारद उवाच

कस्य वंशोद्भवो राजा सुरथो धर्मिणां वरः । कथं संप्राप वै ज्ञानं मेधसो ज्ञानिनां वरात् ॥१॥
कस्य वंशोद्भवो ब्रह्मन्मेधसो मुनिसत्तम । बभूव कुत्र संवादो नृपस्य मुनिना सह ॥२॥
सख्यं बभूव कुत्रास्य वा प्रभो नृपवैश्ययोः । व्यासेन श्रोतुमिच्छामि वद वेदविदां वर ॥३॥

नारायण उवाच

अत्रिश्च ब्रह्मणः पुत्रस्तस्य पुत्रो निशाकरः । स च कृत्वा राजसूयं द्विजराजो बभूव ह ॥४॥
गुरुपत्न्यां च तारायां तस्याभूच्च बुधः सुतः । बुधपुत्रस्तु चैत्रश्च तत्पुत्रः सुरथः स्मृतः ॥५॥

होकर जन्म ग्रहण किया। हे वत्स! हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार मैंने तुम्हें शास्त्रानुसार दुर्गा जी का उपाख्यान सुना दिया, अब और क्या सुनना चाहते हो ॥४१-४४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृति-खण्ड में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत दुर्गोपाख्यान में
दुर्गा आदि नामों की व्युत्पत्ति आदि कथन नामक सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त ॥५७॥

अध्याय ५८

तारा और चन्द्रमा का दोष-निवारण

नारद बोले—धार्मिकों में श्रेष्ठ राजा सुरथ किसके वंश में उत्पन्न हुआ ? और ज्ञानिप्रवर श्री मेधस् ऋषि से उसने कैसे ज्ञान प्राप्त किया? ॥१॥ हे ब्रह्मन्! हे मुनिसत्तम! मेधस् ऋषि किस वंश में उत्पन्न हुए ? और राजा का मुनि के साथ संवाद किस स्थान पर हुआ ? ॥२॥ हे प्रभो! हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ! राजा सुरथ और समाधि नामक वैश्य की मित्रता कहाँ हुई थी ? मैं यह सब विस्तार से सुनना चाहता हूँ ॥३॥

नारायण बोले—ब्रह्मा के पुत्र अत्रि और उनके चन्द्रमा नामक पुत्र हुए, जो राजसूय यज्ञ सुसम्पन्न करने के कारण 'द्विजराज' कहलाये थे ॥४॥ उन्होंने गुरु (बृहस्पति) की पत्नी तारा में बुध नामक पुत्र उत्पन्न किया। बुध के पुत्र चैत्र और चैत्र के पुत्र सुरथ हुए ॥५॥

नारद उवाच

गुरुपत्न्यां च तारायां समभूत्तत्सुतः कथम् । अहो व्यतिक्रमं ब्रूहि देवस्य च महामुने ।।६।।

नारायण उवाच

संपन्मत्तो महाकामी[1] ददर्श जाह्नवीतटे । तारां सुरगुरोः पत्नीं धर्मिष्ठां च पतिव्रताम् ।।७।।
सुस्नातां सुन्दरीं रम्यां पीनोन्नतपयोधराम् । सुश्रोणीं सुनितम्बाढ्यां मध्यक्षीणां मनोहराम् ।।८।।
सुदतीं कोमलाङ्गीं च नवयौवनसंयुताम् । सूक्ष्मवस्त्रपरीधानां रत्नभूषणभूषिताम् ।।९।।
कस्तूरीबिन्दुना सार्धमधश्चन्दनबिन्दुना । सिन्दूरबिन्दुना चारुफालमध्यस्थलोज्ज्वलाम् ।।१०।।
वायुनाऽधोवस्त्रहीनां सकामां[2]रक्तलोचनाम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यां पक्वबिम्बाधरां वराम् ।।११।।
सुस्मितां नम्रवक्त्रां च लज्जया चन्द्रदर्शनात् । गच्छन्तीं स्वगृहं हर्षान्मत्तवारणगामिनीम् ।।१२।।
तां दृष्ट्वा मन्मथाक्रान्तश्चन्द्रो लज्जां जहौ मुने । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गः सकामस्तामुवाच सः ।।१३।।

चन्द्र उवाच

योषिच्छ्रेष्ठे क्षणं तिष्ठ वरिष्ठे रसिकासु च । सुविदग्धे विदग्धानां मनो हरसि संततम् ।।१४।।

नारद बोले—हे महामुने ! गुरुपत्नी तारा में उन्होंने कैसे पुत्र उत्पन्न किया, क्योंकि यह तो देव का व्यतिक्रम है, अतः उसे अवश्य बताने की कृपा कीजिये ।।६।।

नारायण बोले—एक बार धन-मदान्ध और महाकामी चन्द्रमा गंगा के किनारे विचरण कर रहे थे। उसी समय स्नान के लिए आई हुई पतिव्रता तारा को उन्होंने देखा, जो देवगुरु (बृहस्पति) की पत्नी और धर्मात्मा थी।।७।। वह रमणीय सुन्दरी मोटे और उन्नत स्तन, उत्तम जघन भाग, अति सुन्दर नितम्ब, पतली कमर, सुन्दर दाँतों की पंक्ति, कोमल अंग, नवयौवन, सूक्ष्म वस्त्र एवं रत्नों के भूषणों से भूषित थी। उसके भाल पर कस्तूरी की बिन्दी के साथ नीचे चन्दन-बिन्दु था और सुन्दर तथा उज्ज्वल माँग में सिन्दूर लगा था।।८-१०।। उसी बीच वायु के झकोरे से अधोवस्त्र हट गया। तब रक्तवर्ण के नेत्र, शारदीय पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मुख और पके बिम्बाफल के समान अधरोष्ठ वाली वह कामिनी, मन्द मुसुकाती, नीचे मुख किये, लज्जा की ओट में चन्द्रमा को देखती हुई अति हर्ष से मतवाले हाथी की-सी चाल से अपने घर जाने लगी ।।११-१२।। हे मुने! उसे देखकर चन्द्रमा अति कामपीड़ित हो गये। इससे उन्होंने लज्जा त्याग कर शरीर के सर्वांग में पुलकायमान होने के नाते काम-भावना से उससे कहा—।।१३।।

चन्द्र बोले—हे रमणीश्रेष्ठ! एवं रसिक ललनाओं में उत्तम! क्षणमात्र ठहर जाओ! हे सुदक्षे! तुम विदग्ध (चतुर) पुरुषों के मन का निरन्तर अपहरण करती हो।।१४।। हे काम- सागरे! बृहस्पति

---

१ ख. व्यचरज्जा० । २ क. वक्रलो० ।

निषेव्य प्रकृतिं जन्मसहस्रं कामसागरे । तपःफलेन त्वां प्राप बृहच्छ्रोणीं बृहस्पतिः ॥१५॥
अहो तपस्विना सार्धमविदग्धेन वेधसा। योजिता त्वं रसवती शश्वत्कामातुरा वरा ॥१६॥
किं वा सुखं च विज्ञातमविज्ञेषु समागमे । विदग्धाया विदग्धेन संगमः सुखसागरः ॥१७॥
कामेन कामिनी त्वं च दग्धाऽसि व्यर्थमीश्वरि । कर्मणा वाऽऽत्मदोषाद्वा को जानाति मनः स्त्रियाः ॥१८॥
दिने दिने वृथा याति दुर्लभं नवयौवनम् । नवीनयौवनस्थाया वृद्धेन स्वामिना तव ॥१९॥
शश्वत्तपस्यायुक्तश्च [1]कृष्णमात्मानमीप्सितम् । स्वप्ने जागरणे वाऽपि ध्यायन्नास्ते बृहस्पतिः ॥२०॥
सर्वकामरसज्ञा त्वं निष्कामं काममीप्सितम् । ध्यायन्ती कामुकी शश्वद्यूनां शृंगारमात्मनि ॥२१॥
अन्यश्च त्वन्मनः कामो भिन्नं तव भर्तुरीप्सितम् । ययोश्च भिन्नौ विषयौ का प्रीतिःसंगमे तयोः ॥२२॥
वसन्ती पुष्पतल्पे च गन्धचन्दनचर्चिते । मोदस्व मां गृहीत्वा त्वं वसन्ते माधवीवने ॥२३॥
सुगन्ध्युत्फुल्लकुसुमे निर्जने चन्दने वने । भवती युवती भाग्यवती तत्रैव मोदताम् ॥२४॥
चन्दने चम्पकवने शीतचम्पकवायुना । रम्ये चम्पकतल्पे च क्रीडां कुरु मया सह ॥२५॥
रम्यायां मलयद्रोण्यां मन्दचन्दनवायुना । रामे रम मया सार्धमतीव निर्जने वने ॥२६॥

ने सहस्रों जन्म श्री दुर्गा जी की सेवा करके उस तपस्या के फलस्वरूप तुम बृहत् श्रोणी भाग वाली स्त्री को प्राप्त किया है ॥१५॥ किन्तु आश्चर्य है कि मूर्ख ब्रह्मा ने रसीली और निरन्तर कामातुर रहने वाली तुम ऐसी उत्तम स्त्री को एक तपस्वी के गले बाँध दिया है ॥१६॥ इसलिए उस अज्ञानी (बृहस्पति) के साथ समागम में तुम्हें कौन सुख मिलता होगा। क्योंकि विदग्धा (चतुर) स्त्री का विदग्ध (चतुर) पुरुष के ही साथ जब समागम होता है, तब सुखसागर उमड़ पड़ता है ॥१७॥ हे ईश्वरि! तुम कामिनी होकर जो काम द्वारा व्यर्थ जल रही हो, यह कर्मवश या अपने दोष के नाते हो रहा है। क्योंकि स्त्री के मन को कौन जान सकता है ॥१८॥ तुम्हारी नयी जवानी है और पति वृद्ध हैं, अतः उनके साथ तुम्हारा यह दुर्लभ नव यौवन दिन-दिन व्यर्थ होता जा रहा है ॥१९॥ और बृहस्पति तो निरन्तर तपस्या में लगे रहते हैं सोते-जागते सब समय अपने इष्टदेव परमात्मा श्रीकृष्ण के ध्यान में मग्न रहते हैं ॥२०॥ वे तो निष्काम हैं और तुम काम के समस्त रस को जानती हो, इससे तुम्हें काम की चाह है, क्योंकि निरन्तर कामुकी बन कर युवा पुरुषों के शृंगार का तुम ध्यान करती रहती हो ॥२१॥ तुम्हारा मन काम चाहता है और तुम्हारे पति के मन को इससे भिन्न और ही कुछ अभीष्ट है। तो जिस (पति-पत्नी) के (मन के) विषय भिन्न-भिन्न हों, उनके समागम में उन्हें कौन सुख मिल सकेगा? ॥२२॥ इसलिए वसन्त के समय इस माधवी वन में गन्ध एवं चन्दन से चर्चित वासन्ती पुष्प की शय्या पर तुम हमारे साथ (रति का) आनन्द प्राप्त करो ॥२३॥ उस निर्जन चन्दन के वन में, जो सुगन्धित और पूर्ण-विकसित पुष्पों से सुशोभित है, भाग्यवती युवती आप (वहाँ चलकर) आनन्द लें ॥२४॥ चन्दन वन के अनन्तर चम्पक वन में चम्पक के शीतल वायु के लहरों में चम्पा की रमणीक शय्या पर मेरे साथ विहार करो ॥२५॥ हे सुन्दरि! मन्द चन्दन-वायु से युक्त मन्दराचल की कन्दरा के निर्जन वन में मेरे साथ रमण करो ॥२६॥ हे

---

१ क. ० मीश्वरम् ।

स्वर्णरेखातटवने नर्मदापुलिने शुभे । सुराणां वाञ्छितस्थाने रतिं कुरु मया सह ॥२७॥
इत्युक्त्वा मदनोन्मत्तो मदनाधिकसुन्दरः । पपात चरणे देव्या मन्दो मन्दाकिनीतटे ॥२८॥
निरुद्धमार्गा चन्द्रेण शुष्ककण्ठौष्ठतालुका । अभीतोवाच कोपेन रक्तपङ्कजलोचना ॥२९॥

तारोवाच

धिक् त्वां चन्द्र तृणं मन्ये परस्त्रीलम्पटं शठम् । अत्रेरभाग्यात्त्वं पुत्रो व्यर्थं ते जन्म जीवनम् ॥३०॥
अरे कृत्वा राजसूयमात्मानं मन्यसे बली । बभूव पुण्यं ते व्यर्थं विप्रस्त्रीषु च यन्मनः ॥३१॥
यस्य चित्तं परस्त्रीषु सोऽशुचिः सर्वकर्मसु । न कर्मफलभावपापी निन्द्यो विश्वेषु सर्वतः ॥३२॥
सतीत्वं मे नाशयसि यक्ष्मग्रस्तो भविष्यसि । अत्युच्छ्रितो निपतनं प्राप्नोतीति श्रुतौ श्रुतम् ॥३३॥
दुष्टानां दर्पहा कृष्णो दर्पं ते निहनिष्यति । त्यज मां मातरं वत्स सत्यं ते शं भविष्यति ॥३४॥
इत्युक्त्वा तारका साध्वी रुरोद च मुहुर्मुहुः । चकार साक्षिणं धर्मं सूर्यं वायुं हुताशनम् ॥३५॥
ब्रह्माणं परमात्मानमाकाशं पवनं धराम् । दिनं रात्रिं च संध्यां च सर्वं सुरगणं मुने ॥३६॥
तारकावचनं श्रुत्वा न भीतः स चुकोप ह । करे धृत्वा रथे तूर्णं स्थापयामास सुन्दरीम् ॥३७॥

शुभे ! नर्मदा के किनारे स्वर्णरेखा के तटवर्ती वन में—देवताओं के अभीष्ट स्थान में—मेरे साथ रति करो ॥२७॥ इस प्रकार मन्दाकिनी के तट पर मन्दबुद्धि चन्द्रमा, जो काम से उन्मत्त और काम से अधिक सुन्दर थे, इतना कहकर तारा देवी के चरण पर गिर पड़े ॥२८॥ चन्द्रमा के इस भाँति मार्ग रोक लेने पर तारा के कण्ठ, ओष्ठ और तालू सूख गये और उसके नेत्र रक्त कमल की भाँति लाल-लाल हो गये। अनन्तर उसने निर्भय होकर क्रोध से कहा ॥२९॥

तारा बोली—हे चन्द्र ! तुम्हें धिक्कार है, मैं तुम्हें तृणवत् समझती हूँ, क्योंकि तुम परस्त्रीलम्पट होने के नाते शठ हो। अत्रि का दुर्भाग्य था, जो तुम्हें पुत्ररूप में प्राप्त किया, क्योंकि तुम्हारा जन्म और जीवन दोनों व्यर्थ हैं ॥३०॥ अरे ! राजसूय यज्ञ करके तुम अपने को बड़ा बलवान् समझते हो। ब्राह्मण की स्त्रियों में तुम्हारे मन के दूषित होने के कारण वह तुम्हारा समस्त पुण्य व्यर्थ हो गया है ॥३१॥ क्योंकि जिसका चित्त परस्त्रियों में लगा रहता है, वह सभी कर्मों में अपवित्र माना जाता है। इतना ही नहीं, वह पापी समस्त विश्व में सब प्रकार से निन्दित होने के नाते (उत्तम) कर्मफल का भागी नहीं होता है ॥३२॥ यदि तुमने मेरा सतीत्व नष्ट किया तो तुम्हें यक्ष्मा (तपेदिक) का रोग हो जायगा। क्योंकि वेद में ऐसा सुना गया है कि—जो अत्यन्त उन्नत हो जाता है उसका पतन होता ही है ॥३३॥ दुष्टों के अभिमान को नष्ट करने वाले भगवान् कृष्ण तुम्हारे दर्प का हनन करेंगे। अतः हे वत्स ! मैं तुम्हारी माता हूँ, मुझे छोड़ दो, सत्य कहती हूँ, तुम्हारा कल्याण होगा ॥३४॥ इतना कह कर पतिव्रता तारा ने बार-बार रुदन किया और धर्म, सूर्य, वायु, अग्नि, ब्रह्मा, परमात्मा, आकाश, पवन, पृथ्वी, दिन-रात्रि, सन्ध्या, और समस्त देवों को साक्षी (गवाही) बनाने लगी ॥३५-३६॥ हे मुने ! तारा की ऐसी बातें सुनकर चन्द्रमा भयभीत नहीं हुआ अपितु क्रुद्ध हो गया और उसने उस सुन्दरी के दोनों हाथ पकड़ कर बलात् शीघ्रता

रथं च चालयामास मनोयायी मनोहरम्। मनोहरां गृहीत्वा तां स च रमे मनोहरः॥३८॥
विस्पन्दके सुरवने चन्दने पुष्पभद्रके। पुष्करे च नदीतीरे पुष्पिते पुष्पकानने॥३९॥
सुगन्धिपुष्पतल्पे च पुष्पचन्दनवायुना। निर्जने मलयद्रोण्यां स्निग्धचन्दनर्चचिते॥४०॥
शैले शैले नदे नद्यां शृङ्गारं कुर्वतोस्तयोः। गतं वर्षशतं[1] हर्षान्मुहूर्तमिव नारद॥४१॥
बभूव शरणापन्नो भीतो दैत्येषु चन्द्रमाः। तेजस्विनि तथा शुक्रे तेषां च बलिनां गुरौ॥४२॥
अभयं च ददौ तस्मै कृपया भृगुनन्दनः। गुरुं जहास देवानां स्वविपक्षं बृहस्पतिम्॥४३॥
सभायां जहसुर्हृष्टा बलिनो दितिनन्दनाः। अभयं च ददुस्तस्मै भीताय च कलङ्किने॥४४॥
सतीसतीत्वध्वंसेन पापिष्ठे चन्द्रमण्डले। बभूव शशरूपं च कलङ्कं निर्मले मलम्॥४५॥
उवाच तं महाभीतं शुक्रो वेदविदां वरः। हितं तथ्यं वेदयुक्तं परिणामसुखावहम्॥४६॥

शुक्र उवाच

त्वमहो ब्रह्मणः पौत्रोऽप्यत्रेर्भगवतः सुतः। दुर्नीतं कर्म ते पुत्र नीचवन्न यशस्करम्॥४७॥
राजसूयस्य सुफले निर्मले कीर्तिमण्डले। सुधाराशौ सुराबिन्दुरूपमङ्कमुपार्जितम्॥४८॥

से रथ पर बैठा लिया। मन की भाँति वेग से चन्द्रमा ने अपने मनोहर रथ का संचालन किया और उस सुन्दरी को पकड़कर उसके साथ रमण किया॥३७-३८॥ पुष्पभद्रा नदी के तट पर देवों के विस्पन्दक नामक चन्दन वन, पुष्कर के किनारे, खिले हुए पुष्पों के उपवन में; पुष्प-चन्दन और वायु द्वारा सुगन्धित पुष्प की शय्या पर तथा मलय-पर्वत के बीच की निर्जन भूमि में स्निग्ध और चन्दनचर्चित पर्वतों, नदी और नदों में केलि करते उन दोनों के, हे नारद! सौ वर्ष का समय मुहूर्त (दो घड़ी) की भाँति व्यतीत हो गया॥३९-४१॥ अनन्तर (देवों से) भयभीत होकर चन्द्रमा दैत्यों और उन बलवानों के तेजस्वी गुरु शुक्र की शरण में गया॥४२॥ भृगुनन्दन (शुक्र) ने कृपा करके उसे अभय दान दिया और देवों के गुरु बृहस्पति की, जो उनके शत्रु हैं, हँसी उड़ाने लगे॥४३॥ उस सभा में बलोन्मत्त दैत्यों ने भी भीत और कलंकी चन्द्रमा को अभयदान देकर बृहस्पति की खिल्ली उड़ायी॥४४॥ सती स्त्री का सतीत्व नष्ट करने के कारण पापी चन्द्रमा के निर्मल मण्डल में कलंक मल स्वरूप ही शश (खरहे) का स्वरूप हो गया है।॥४५॥ वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ शुक्र ने महाभयभीत चन्द्रमा से उसके हित, सत्य, वेदानुसार और परिणाम में सुखप्रदायक वचन कहा॥४६॥

शुक्र बोले—अहो! तुम ब्रह्मा के पौत्र और भगवान् अत्रि महर्षि के पुत्र हो। हे पुत्र! तुम्हारा यह उद्दण्डकर्म नीचों की भांति है, कीर्तिकारी नहीं है॥४७॥ राजसूय यज्ञ के सुसम्पन्न करने पर उसके परिणामस्वरूप यह निर्मल कीर्तिमण्डल तुम्हें प्राप्त हुआ था, किन्तु सुधा-समूह में सुराबिन्दु के समान उसमें तुमने कलंक लगा ही लिया॥४८॥ मैं चाहता हूँ, देवगुरु बृहस्पति की पत्नी को तुम छोड़ दो।

---

१ क. ०सहस्रं तन्म्०।

त्यज देवगुरोः पत्नीं प्रसूमिव महासतीम। धर्मिष्ठस्य वरिष्ठस्य ब्राह्मणानां बृहस्पतेः ॥४९॥
शंभोः सुराणामीशस्य गुरुपुत्रस्य वेधसः। पौत्रस्याऽऽङ्गिरसो नित्यं ज्वलतो ब्रह्मतेजसा ॥५०॥
शत्रोरपि गुणा वाच्या दोषा वाच्या गुरोरपि। इति सद्वंशजातानां स्वभावं च सतामपि ॥५१॥
स शत्रुर्मे सुरगुरुः परो विश्वे निशाकर। तथाऽपि सहजाख्यानं वर्णितं धर्मसंसदि ॥५२॥
यत्र लोकाश्च धर्मिष्ठास्तत्र धर्मः सनातनः। यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः ॥५३॥
गौरेकं पञ्च च व्याघ्री सिंही सप्त प्रसूयते। हिंसका प्रलयं यान्ति धर्मो रक्षति धार्मिकम् ॥५४॥
देवाश्च गुरवो विप्राः शक्ता यद्यपि रक्षितुम्। तथाऽपि नहि रक्षन्ति धर्मघ्नं पापिनं जनम् ॥५५॥
कुलटाविप्रपत्नीनां गमने सुरविप्रयोः। ब्रह्महत्याषोडशांशपातकं च भवेद्ध्रुवम् ॥५६॥
तासामुपस्थितानां च गमने तच्चतुर्थकम्। त्यागे धर्मो नास्ति पापमित्याह कमलोद्भवः ॥५७॥
विप्रपत्नीसतीनां च गमनं वै बलेन चेत्। ब्रह्महत्याशतं पापं भवेदेव श्रुतौ श्रुतम् ॥५८॥
धर्मं चर महाभाग ब्राह्मणीं त्यज सांप्रतम्। कृत्वाऽऽनुतापं पापाच्च निवृत्तिस्तु महाफला ॥५९॥
उपायेन च ते पापं दूरीभूतं[1] भवेन्ननु। शरणागतभीतस्य मयि देवस्य धर्मतः ॥६०॥

वह (तुम्हारी) जननी और महासती है। बृहस्पति भी अत्यन्त धर्मात्मा एवं ब्राह्मणों में श्रेष्ठ हैं ॥४९॥ देवों के अधीश्वर शिव हैं, उनके गुरुपुत्र ब्रह्मा हैं तथा उनके पौत्र और अंगिरा के पुत्र बृहस्पति हैं, जो ब्रह्मतेज से नित्य प्रज्वलित रहा करते हैं ॥५०॥ शत्रु के भी गुणों को कहना चाहिए और गुरु के दोष भी। क्योंकि उत्तम कुल में उत्पन्न होने वाले सज्जनों का ऐसा ही स्वभाव होता है ॥५१॥ हे निशाकर! यद्यपि विश्व में देवगुरु बृहस्पति हमारे परम शत्रु हैं, तथापि इस धर्मसभा में ऐसा कहना स्वाभाविक है। क्योंकि जहाँ धर्मात्मा लोग रहते हैं वहाँ सनातन धर्म रहता है, जहाँ धर्म रहता है, वहाँ कृष्ण रहते हैं और जहाँ कृष्ण हैं विजय वहीं होती है ॥५२-५३॥ गौ एक बच्चा उत्पन्न करती है, व्याघ्री पाँच और सिंहिनी सात उत्पन्न करती है (?), हिंसक नष्ट हो जाते हैं। अतः धर्म ही धार्मिक की रक्षा करता है। देववृन्द, गुरु और ब्राह्मण लोग यद्यपि रक्षा करने में समर्थ हैं तथापि धर्मनाशक पापी प्राणी की ये लोग रक्षा नहीं करते। कुलटा ब्राह्मणपत्नियों के साथ देवता या ब्राह्मण गमन करता है तो उन्हें ब्रह्महत्या का सोलहवाँ भाग पातक अवश्य लगता है और उन स्त्रियों के स्वयं उपस्थित होने पर उन्हें उसका चतुर्थांश भाग पातक लगता है ॥५४-५६॥ उनका त्याग करने पर धर्म होता है न कि पाप, ऐसा ब्रह्मा ने कहा है ॥५७॥ और सती ब्राह्मणियों के साथ बलप्रयोग द्वारा उपभोग करने पर सौ ब्रह्महत्या का पापभागी होना पड़ता है, ऐसा वेद में निश्चित सुना है ॥५८॥ इसलिये हे महाभाग! धर्माचरण करो, इस समय ब्राह्मणी को छोड़ दो। और जो पाप हो गया है, उसके लिए अनुताप (पश्चात्ताप) करो (जिससे उस पाप से निवृत्त हो जाओ), क्योंकि पापों से निवृत्त होना ही महाफल है ॥५९॥ और अन्य किसी उपाय द्वारा भी तुम्हारा पाप निश्चित नष्ट हो सकता है। भयभीत होकर तुम देव होकर भी धर्मतः मेरी शरण

१क० तं करोम्यहम्।

शस्त्रहीनं च भीतं च दीनं च शरणार्थिनम्। यो न रक्षत्यधर्मिष्ठः कुम्भीपाके वसेद्ध्रुवम् ॥६१॥
राजसूयशतानां च रक्षिता लभते फलम्। परमेश्वरयुक्तश्च धर्मेण स भवेदिह ॥६२॥
इत्युक्त्वा वै दैत्यगुरुः स्वर्गे मन्दाकिनीतटे। स्नात्वा तं स्नापयामास विष्णुपूजां चकार सः ॥६३॥
विष्णुपादाब्जजातेन तन्नैवेद्यं शुभप्रदम्। गङ्गोदकेन पुण्येन भोजयामास चन्द्रकम् ॥६४॥
क्रोडे कृत्वा तु तं भीतं लज्जितं पापकर्मणा। कुशहस्तस्तमित्यूचे स्मारंस्मारं हरिं मुने ॥६५॥

शुक्र उवाच

यद्यस्ति मे तपः सत्यं सत्यं पूजाफलं हरेः। सत्यं व्रतफलं चैव सत्यं सत्यवचः फलम् ॥६६॥
तीर्थस्नानफलं सत्यं सत्यं दानफलं यदि। उपवासफलं सत्यं पापान्मुक्तो भवान्भवेत् ॥६७॥
विप्रं त्रिसंध्यहीनं च विष्णुपूजाविहीनकम्। तदाप्नोतु महाघोरं चन्द्रपापं सुदारुणम् ॥६८॥
स्वभार्याविञ्चनं कृत्वा यः प्रयाति परस्त्रियम्। स यातु नरकं घोरं चन्द्रपापेन पातकी ॥६९॥
वाचा वा ताडयेत्कान्तं दुःशीला दुर्मुखा च या। सा युगं चन्द्रपापेन यातु लालामुखं ध्रुवम् ॥७०॥
अनैवेद्यं वृथान्नं च यश्च भुङ्क्ते हरेर्द्विजः। स यातु कालसूत्रं च चन्द्रपापाच्चतुर्युगम् ॥७१॥
अम्बुवीच्यां भूखननं यः करोति नराधमः। चन्द्रपापाद्युगशतं कालसूत्रं स गच्छतु ॥७२॥

आये हो अतः तुम्हारी रक्षा करना मेरा कर्तव्य है, क्योंकि शस्त्र-रहित, भयभीत, दीन, शरणार्थी की जो रक्षा नहीं करता है, वह अधर्मी कुम्भीपाक नरक में निश्चित जाता है॥६०-६१॥ और रक्षा करने से उसे सौ राजसूय यज्ञ के फल प्राप्त होते हैं तथा इस लोक में वह परम ऐश्वर्य से संयुक्त होकर धार्मिक होता है॥६२॥ इस प्रकार स्वर्ग में मन्दाकिनी नदी के तट पर दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य ने इतना कहकर स्वयं स्नान किया और उसे भी स्नान कराया एवं भगवान् विष्णु की पूजा की॥६३॥ तथा भगवान् विष्णु के चरण-कमल से निकले हुए गंगाजल और उनके पवित्र नैवेद्य से चन्द्रमा को भोजन कराया॥६४॥ हे मुने! पुनः उस भयभीत और पाप-कर्म से लज्जित चन्द्रमा को शुक्र ने अपनी गोद में बैठा कर उसके हाथ में कुश रखा और बार-बार भगवान् का स्मरण करके उससे कहा॥६५॥

शुक्र बोले—यदि हमारा तप सत्य है, हरि का पूजाफल सत्य है, व्रत का फल सत्य है, सत्य बोलने का फल सत्य है, तीर्थों का स्नान-फल सत्य है, दान का फल सत्य है और उपवास फल सत्य है, तो आप पापमुक्त हो जायँ। ॥६६-६७॥ तीनों काल की संध्याओं से रहित और भगवान् विष्णु की अर्चना से हीन रहने वाला ब्राह्मण चन्द्रमा के इस अति दारुण (भीषण) और महाघोर पाप का भागी हो॥६८॥ अपनी स्त्री को जो प्रवंचना (धूर्तता) से ठगकर परस्त्री से सम्भोग करता है, वह पापी चन्द्रमा के पाप से युक्त होकर घोर नरक में जाय॥६९॥ जो दुष्ट स्वभाव वाली कटुमुँही स्त्री वाणी द्वारा अपने पति को प्रताड़ित करती है, वह चन्द्रमा के पाप द्वारा लाला (लार) मुख नामक नरक में युगपर्यन्त निश्चित पड़ी रहे॥७०॥ जो द्विज भगवान् को भोग बिना लगाये उस व्यर्थ अन्न का भोजन करता है, वह चन्द्रमा के पाप से चारों युग पर्यन्त कालसूत्र नामक नरक में जाकर रहे॥७१॥ अम्बुवीचीयोग में (जिसमें भूमि खोदना शास्त्रनिषिद्ध है) खोदने वाला नराधम चन्द्रपाप वश सौ युगों तक

स्वकान्तं वञ्चयित्वा च या याति परपूरुषम्। सा यातु वह्निकुण्डं च चन्द्रपापाच्चतुर्युगम् ॥७३॥
कीर्तिं करोति रजसा परकीर्तिं विलुप्य च। स युगं चन्द्रपापेन कुम्भीपाकं च गच्छतु ॥७४॥
पितरं मातरं भार्यां यो न पुष्णाति पातकी। स्वगुरुं चन्द्रपापेन यातु चण्डालतां ध्रुवम् ॥७५॥
कुलटान्नमवीरान्नमृतुस्नातान्नमेव च। योऽश्नाति चन्द्रपापं च यातु तं पापिनं ध्रुवम् ॥७६॥
स यातु तेन पापेन कुम्भीपाकं चतुर्युगम्। तस्मादुत्तीर्य चाण्डालीं योनिमाप्नोति पातकी ॥७७॥
दिवसे यो ग्राम्यधर्मं महापापी करोति च। यो गच्छेत्कामतः कामी गुर्विणीं वा रजस्वलाम् ॥७८॥
तं यातु चन्द्रपापं च महाघोरं च पापिनम्। स यातु तेन पापेन कालसूत्रं चतुर्युगम् ॥७९॥
मुखं श्रोणीं स्तनं योनिं यः पश्यति परस्त्रियाः। कामतः कामदग्धश्च यातु तं चन्द्रकल्मषम् ॥८०॥
स यातु लालाभक्ष्यं च चन्द्रपापाच्चतुर्युगम्। तस्मादुत्तीर्य भवतु चाण्डालोऽन्धो नपुंसकः ॥८१॥
कुहूपूर्णेन्दुसंक्रान्तिचतुर्दश्यष्टमीषु च। मांसं मसूरं लकुचं यश्च भुङक्ते [1]हरेर्दिने ॥८२॥
कुरुते ग्राम्यधर्मं च यातु तं चन्द्रकिल्विषम्। चतुर्युगं कालसूत्रं तेन पापेन गच्छतु ॥८३।
तस्मादुत्तीर्य चाण्डालीं योनिमाप्नोतु पातकी । सप्तजन्म महारोगी दरिद्रः कुब्ज एव च ॥८४॥

कालसूत्र नामक नरक में रहे ॥७२॥ जो स्त्री अपने पति को वञ्चित कर पर पुरुष के पास जाती है, वह चन्द्र-पाप से अग्निकुण्ड नामक नरक में चारों युग पर्यन्त रहे ॥७३॥ जो लोभवश दूसरे की कीर्ति लुप्त कर अपनी कीर्ति बढ़ाता है वह चन्द्र-पाप से एक युग पर्यन्त कुम्भीपाक नरक में जाकर रहे ॥७४॥ जो पुरुष अपने पिता, माता, स्त्री और गुरु का पालन-पोषण नहीं करता है, वह पापी चन्द्रपाप से निश्चित चाण्डाल हो जाये ॥७५॥ कुलटा, पतिपुत्रहीना और रजस्वला स्त्री का अन्न जो भोजन करता है, वह पापी चन्द्र पाप का भागी हो और उस पाप से चारों युगों तक कुम्भीपाक नरक में रहने पर अन्त में उस पातकी को चाण्डाल के यहाँ जन्म लेना पड़े ॥७६-७७॥ जो महापापी दिन में मैथुन करता है और काम-भावना से गर्भिणी अथवा रजस्वला स्त्री का उपभोग करता है वह पापी महाघोर चन्द्र-पाप का भागी होता है और उस पाप के नाते कालसूत्र नामक नरक में चारों युग पर्यन्त रहता है ॥७८-७९॥ जो कामी कामपीड़ित होकर परस्त्री के मुख, श्रोणीभाग और स्तन को देखता है, वह चन्द्रपाप का भागी होता है और उस पाप के कारण चारों युगों तक लालाभक्ष्य नामक नरक में पड़ा रहता है। पश्चात् चांडाल, अन्धा एवं नपुंसक होता है ॥८०-८१॥ चतुर्दशी, अमावस्या, पूर्णिमा, संक्रान्ति और अष्टमी तथा एकादशी या रविवार के दिन जो मांस, मसूर और बढ़हर खाता है तथा मैथुन करता है, वह चन्द्रपाप का भागी होता है और चारों युगपर्यन्त कालसूत्र नामक नरक में रहता है ॥८२-८३॥ पुनः उसमें से निकल कर वह पातकी चाण्डाल-योनि में जाता है और सात जन्म तक रोगी, दरिद्र तथा कूबड़ा होता है ॥८४॥

---

१ ख. रवे०।

एकादश्यां च यो भुङ्क्ते कृष्णजन्माष्टमीदिने । शिवरात्रौ महापापी यातु तं चन्द्रपातकम् ॥८५॥
स यातु कुम्भीपाकं च यावदिन्द्राश्चतुर्दश । तेन पापेन चाऽऽप्नोतु चाण्डालीं योनिमेव च ॥८६॥
ताम्रस्थं दुग्धमाध्वीकमुच्छिष्टं घृतमेव च । नारिकेलोदकं कांस्ये दुग्धं सलवणं तथा ॥८७॥
पीतशेषजलं चैव भुक्तशेषं तथौदनम् । असकृच्चौदनं भुङ्क्ते सूर्ये नास्तंगते द्विजः ॥८८॥
तं यातु चन्द्रपापं च दुर्निवारं च दारुणम् । स यातु तेन पापेन चान्धकूपं चतुर्युगम् ॥८९॥
स्वकन्याविक्रयी विप्रो देवलो वृषवाहकः । शूद्राणां शवदाही च तेषां वै सूपकारकः ॥९०॥
अश्वत्थतरुघाती च विष्णवैष्णवनिन्दकः । तं यातु चन्द्रपापं च दारुणं पापिनं भृशम् ॥९१॥
स यातु तस्मात्पापाच्च तप्तसूर्मीं च पातकी । शश्वद्दग्धो भवतु स यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥९२॥
तस्मादुत्तीर्य चाण्डालीं योनिमाप्नोतु पातकी । सप्तजन्मसु चाण्डालो [1]वृषभः पञ्चजन्मसु ॥९३॥
गर्दभो जन्मशतकं सूकरः सप्तजन्मसु । तीर्थध्वाङ्क्षः सप्तसु वै विट्कृमिः पञ्चजन्मसु
जलौका जन्मशतकं शुचिर्भवतु तत्परम् ॥९४॥
वृथामांसं च यो भुङ्क्ते स्वार्थं पाकान्नमेव च । तददत्तं महापापी प्राप्नुयाच्चन्द्रपातकम् ॥९५॥
स यातु चन्द्रपापेन चासिपत्रं चतुर्युगम् । ततो भवतु सर्पश्च पशुः स्यात्सप्तजन्मसु ॥९६॥

एकादशी, भगवान श्रीकृष्ण की जन्माष्टमी तथा शिवरात्रि के दिन जो भोजन करता है वह महापापी चन्द्रपाप का भागी होता है ॥८५॥ तथा चौदहों इन्द्रों के समय तक कुम्भीपाक नरक में रहता है। और उसी पाप के कारण चाण्डाल-योनि में उत्पन्न होता है ॥८६॥ तांबे के पात्र में दुग्ध, महुए की शराब, उच्छिष्ट घृत; काँसे के पात्र में नारियल का जल, लवण समेत दुग्ध, पीने से बचा हुआ जल, खाने से बचा हुआ भात और सूर्यास्त के पहले जो बार-बार भात खाता है, वह दुर्निवार एवं भीषण चन्द्रपाप का भागी होता है और उस पाप के कारण उसे अन्धकूप नरक में चारों युग पर्यन्त रहना पड़ता है ॥८७-८९॥ जो ब्राह्मण अपनी कन्या का विक्रय करता है, मन्दिर का पुजारी है, बैलों की सवारी करता है, शूद्रों के शव का दहन एवं उनके भोजन बनाने का काम करता है, पीपल का वृक्ष काटता है, विष्णु और वैष्णवों की निन्दा करता है, उस पापी को अति दारुण चन्द्रपाप लगता है ॥९०-९१॥ उस पाप के नाते वह पातकी, तप्तसूर्मी नामक नरक में चौदहों इन्द्रों के समय तक निरन्तर दग्ध होता रहता है ॥९२॥ पुनः उसमें से निकलने पर वह पापी चाण्डाल-योनि प्राप्त कर सात जन्मों तक चाण्डाल, पाँच जन्मों तक बैल, सौ जन्मों तक गधा, सात जन्मों तक सूकर, सात जन्मों तक तीर्थ में काक, पाँच जन्मों तक विष्टा का कीड़ा और सौ जन्मों तक जोंक होकर पश्चात् शुद्ध होता है ॥९३-९४॥ जो व्यर्थ मांस भोजन करता है और बिना किसी को दिये अपने लिए अन्न पकाकर खाता है, वह महापापी चन्द्र-पाप का भागी होता है ॥९५॥ उस पाप के नाते उसे चारों युग पर्यन्त असिपत्र नामक नरक में रहना पड़ता है। पश्चात् वह सात जन्मों तक सर्प और पशु होता है ॥९६॥

---

१ क. वृषलः ।

विप्रो वार्धुषिको यो हि योनिजीवी चिकित्सकः। हरेर्नाम्नां च विक्रेता यश्च वा [1]स्वाङ्गविक्रयी ॥९७॥
स्वधर्मकथकश्चैव यश्च स्वात्मप्रशंसकः। मषीजीवी धावकश्च कुलटापोष्य एव च॥९८॥
तं यातु चन्द्रपापं च चन्द्रो भवतु विज्वरः। न यातु तेन पापेन शूलप्रोतं सुदारुणम्॥९९॥
तत्र विद्धो भवतु स यावदिन्द्राश्चतुर्दश। ततो दरिद्रो रोगी च दीक्षाहीनो नरः पशुः॥१००॥
लाक्षामांसरसानां च तिलानां लवणस्य च। अश्वानां चैव लोहानां विक्रेता नरघातकः॥१०१॥
विप्रः कुलालः चौरश्च यातु तं चन्द्रपातकम्। स यातु तेन पापेन क्षुरधारं सुदुःसहम्॥१०२॥
तत्र छिन्नो भवतु स यावदिन्द्रसहस्रकम्। तस्मादुत्तीर्य स भवेत्सृगालः सप्तजन्मसु॥१०३॥
सप्तजन्मसु मार्जारो महिषो जन्मपञ्चकम्। सप्तजन्मसु भल्लूकः कुक्कुरः सप्तजन्मसु॥१०४॥
[2]मत्स्यश्च जन्मशतकं कर्कटी जन्मपञ्चकम्। गोधिका जन्मशतकं [3]गर्दभः सप्तजन्मसु॥१०५॥
सप्तजन्मसु मण्डूकस्ततः स्यान्मानवोऽधमः। चर्मकारश्च रजकस्तैलकारश्च वर्धकिः॥१०६॥
नाविकः शवजीवी च व्याधश्च स्वर्णकारकः। कुम्भकारो लोहकारस्ततः क्षत्रस्ततो द्विजः॥१०७॥
इति चन्द्रं शुचिं कृत्वा समुवाच स तारकाम्। त्यक्त्वा चन्द्रं महासाध्वि गच्छ कान्तमिति द्विजः॥१०८॥

जो ब्राह्मण ब्याज लेता है, योनि द्वारा जीविका निर्वाह करता है, चिकित्सक है, भगवान् के नामों का विक्रेता है तथा अपना अंग विक्रय करता है, अपना धर्म कहता है, अपनी प्रशंसा करता है, स्याही से जीविका चलाता है, हरकारे का काम करता है, कुलटा स्त्री द्वारा पालित होता है, वह चन्द्रपाप का भागी हो और चन्द्रमा पाप से मुक्त हो जायँ। उस पापवश वह अति भीषण शूलप्रोत नामक नरक में चौदहों इन्द्रों के समय तक उसमें छिद कर टंगा रहे, अनन्तर दरिद्र, रोगी और दीक्षाहीन नरपशु हो॥९७-१००॥ लाख (लाह), मांस, रस, तिल, लवण (नमक) अश्व (घोड़े) और लोहे का विक्रेता, नरघाती तथा कुम्हार का कार्य करने वाला एवं चोरी करने वाला ब्राह्मण चन्द्रपाप का भागी हो। उस पाप से वह अतिदुःसह क्षुरधार नामक नरक में सहस्र इन्द्रों के समय तक छिन्न-भिन्न होता रहे। उसमें से निकलने पर वह सात जन्मों तक स्यार होता है। अनन्तर सात जन्मों तक बिलाड़, पाँच जन्मों तक भैंसा, सात जन्मों तक भालू सात जन्मों तक कुत्ता, सौ जन्मों तक मछली, पाँच जन्मों तक कर्कटी (केकड़ा), सौ जन्मों तक गोह, सात जन्मों तक गधा, सात-जन्मों तक मण्डूक (मेढक) होकर अनन्तर अधम मनुष्य होता है—चर्मकार (चमार), धोबी, तेली, बढ़ई, काछी, शवजीवी, व्याध, सोनार, कुम्हार, लोहार के उपरान्त क्षत्रिय होकर पुनः ब्राह्मण के यहाँ उत्पन्न होता है॥१०१-१०७॥ इस भाँति चन्द्रमा को पवित्र करके शुक्र ने तारा से कहा—हे महासाध्वि! चन्द्रमा को छोड़कर तू अब अपने पति के पास चली जा॥१०८॥ क्योंकि शुद्ध मन होने के नाते तू प्रायश्चित्त बिना ही शुद्ध है, कामहीन स्त्री बल-

---

१ क. यज्ञवि०। २ क. आखुश्च जन्मशतकं कुक्कुटी। ३ क.० गृध्रश्च स०।

प्रायश्चित्तं विना पूता त्वमेवं शुद्धमानसा । अकामा या बलिष्ठेन न स्त्री जारण दुष्यति ॥१०९॥
इत्यवमुक्त्वा शुक्रश्च चन्द्रं वा तारकां सतीम् । सस्मितां सस्मितं चैव चकार च शुभाशिषः ॥११०॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० दुर्गोपा० ताराचन्द्रयोर्दोषनिवारणं नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५८॥

अथैकोनषष्टितमोऽध्यायः

नारद उवाच

बृहस्पतिः किं चकार तारकाहरणान्तरे । कथं संप्राप तां साध्वीं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१॥

नारायण उवाच

दृष्ट्वा विलम्बं तारायाः स्नान्त्याश्चापि गुरुः स्वयम् । प्रस्थापयामास शिष्यमन्वेषार्थं च जाह्नवीम् ॥२॥
शिष्यो गत्वा च तद्वृत्तं ज्ञात्वा वै लोकवक्त्रतः । रुदन्नुवाच स्वगुरुं तारकाहरणं मुने ॥३॥
श्रुत्वा सुरगुरुर्वार्तां शशिना च प्रियां हृताम् । मुहूर्तं प्राप मूर्छां च ततः संप्राप्य चेतनाम् ॥४॥

वान् जार के द्वारा (दूषित होने पर भी) अदूषित ही रहती है ॥१०९॥ मुसकराते हुए चन्द्रमा तथा सती तारा को इस प्रकार कह कर शुक्र ने उन दोनों को शुभ आशीर्वाद प्रदान किया ॥११०॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृति-खण्ड में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत दुर्गोपाख्यान में तारा-चन्द्रमा का दोष-निवारण नामक अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त ॥५८॥

अध्याय ५९

बृहस्पति की कैलास-यात्रा

नारद बोले—तारा का अपहरण हो जाने पर बृहस्पति ने क्या किया—उस पतिव्रता को उन्होंने कैसे प्राप्त किया? मुझे बताने की कृपा करें ॥१॥

श्री नारायण बोले—गुरु बृहस्पति ने स्नान के लिए गयी हुई तारा का विलम्ब जानकर स्वयं उसकी खोज के लिए जाह्नवी-तट पर एक शिष्य को भेजा ॥२॥ हे मुने! शिष्य ने वहाँ जाकर लोगों के मुख से वहाँ का समस्त वृत्तान्त सुना और वहाँ से लौट कर तारा का अपहरण अपने गुरु से रोदन करते हुए उसने कहा ॥३॥ देवगुरु बृहस्पति उससे सभी बातें जानकर कि—चन्द्रमा ने मेरी प्रियतमा का अपहरण कर लिया —मूर्च्छित हो गये। दो घड़ी के उपरान्त चेतना होने पर शिष्य समेत गुरु हार्दिक दुःख प्रकट करते हुए ऊँचे

रुरोदोच्चैः सशिष्यश्च हृदयेन विदूयता । शोकेन लज्जयाऽऽविष्टो[1] विललाप मुहुर्मुहुः ॥५
उवाच शिष्यान्संबोध्य नीतिं च श्रुतिसंमताम् । साश्रुनेत्रः साश्रुनेत्राञ्छोकार्तः शोककर्शितान् ॥६॥

बृहस्पतिरुवाच

हे वत्साः केन शप्तोऽहं न जाने कारणं परम्। दुःखं धर्मविरुद्धो यः स प्राप्नोति न संशयः ॥७॥
यस्य नास्ति सती भार्या गृहेषु प्रियवादिनी। अरण्यं तेन गन्तव्यं[2] यथाऽरण्यं तथा गृहम् ॥८॥
भावानुरक्ता वनिता हृता यस्य च शत्रुणा। अरण्यं तेन गन्तव्यं यथाऽरण्यं तथा गृहम् ॥९॥
सुशीला सुन्दरी भार्या गता यस्य गृहादहो। अरण्यं तेन गन्तव्यं यथाऽरण्यं तथा गृहम् ॥१०॥
दैवेनापहृता यस्य पतिसाध्या पतिव्रता। अरण्यं तेन गन्तव्यं यथाऽरण्यं तथा गृहम् ॥११॥
यस्य माता गृहे नास्ति गृहिणी वा सुशासिता। अरण्यं तेन गन्तव्यं यथाऽरण्यं तथा गृहम् ॥१२॥
प्रियाहीनं गृहं यस्य पूर्णं द्रविणबन्धुभिः। अरण्यं तेन गन्तव्यं यथाऽरण्यं तथा गृहम् ॥१३॥
भार्याशून्या वनसमाः सभार्याश्च गृहा गृहाः। गृहिणी च गृहं प्रोक्तं न गृहं गृहमुच्यते ॥१४॥
अशुचिः स्त्रीविहीनश्च दैवे पित्र्ये च कर्मणि। यदह्ना कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत् ॥१५॥

स्वर से रोने लगे। शोक और लज्जा से उन्होंने बार-बार विलाप किया ॥४-५॥ अनन्तर वे शिष्यों को सम्बोधित कर वेद-सम्मत नीति कहने लगे। उस समय शिष्य-वर्ग भी आँखों में आँसू भरे शोकव्याकुल हो रहा था ॥६॥

बृहस्पति बोले—हे वत्स! मुझे किसने शाप दे दिया, मैं इस महान कारण को नहीं जानता हूँ। क्योंकि धर्म-विरोधी प्राणी को ही दुःख प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं ॥७॥ जिसके गृह में पतिप्राणा एवं मधुर-भाषिणी स्त्री नहीं है, उसे (गृह त्यागकर) जंगल चला जाना चाहिए क्योंकि उसके लिए जंगल और गृह दोनों समान हैं ॥८॥ जिसकी प्रेमानुरागिणी स्त्री का शत्रु द्वारा अपहरण हो गया हो, उसे जंगल में निवास करना चाहिए, क्योंकि अरण्य और गृह दोनों उसके लिए समान हैं ॥९॥ अहो! जिसके घर से सुशीला एवं सुन्दरी पत्नी चली जाये, उसे (उसी समय) अरण्य चला जाना चाहिए; क्योंकि जंगल और घर उसके लिए दोनों समान हैं ॥१०॥ दैवसंयोगवश जिसकी पतिव्रता एवं पतिपरायणा स्त्री का अपहरण हो जाय उसे वन में चला जाना चाहिए, उसके लिए जैसे घर वैसे वन है ॥११॥ जिसके घर में माता नहीं है और सुशासित स्त्री नहीं है, उसे अरण्य और गृह दोनों समान होने के नाते वन चला जाना चाहिए ॥१२॥ जिसके घर में धनराशि एवं बन्धु वर्ग अधिक हैं, किन्तु प्रिया नहीं है उसे अरण्य चला जाना चाहिए क्योंकि उसके लिए घर और वन दोनों समान हैं ॥१३॥ स्त्री-शून्य गृह वन के समान है, जिस घर में स्त्री है वही गृह है, क्योंकि स्त्री ही घर है, केवल गृह को गृह नहीं कहा गया है ॥१४॥ इसलिए स्त्रीविहीन पुरुष देव एवं पितृ कर्मों में अपवित्र माना गया है और वह दिन में जो कुछ कर्म करता है, उसका फलभागी नहीं होता है ॥१५॥ जिस प्रकार दाहिका शक्ति से हीन अग्नि, प्रभा-

---

१ क. विप्रो। २ क. व्यं तयाऽरण्यं गृहाद्वरम् ।

दाहिकाशक्तिहीनश्च यथा मन्दो हुताशनः। प्रभाहीनो यथा सूर्यः शोभाहीनो यथा शशी ॥१६॥
शक्तिहीनो यथा जीवो यथा चाऽऽत्मा तनुं विना। विनाऽऽधारं यथाऽऽधेयो यथेशः प्रकृतिं विना ॥१७॥
न च शक्तो यथा यज्ञः फलदां दक्षिणां विना। कर्मणां च फलं दातुं सामग्री मूलमेव च ॥१८॥
विना स्वर्णं स्वर्णकारो यथाऽशक्तः स्वकर्मणि। यथाऽशक्तः कुलालश्च मृत्तिकां च विना द्विज ॥१९॥
तथा गृही न शक्तश्च संततं सर्वकर्मणि। गृहाधिष्ठातृदेवीं च स्वशक्तिगृहिणीं विना ॥२०॥
भार्यामूलाः[1] क्रियाः सर्वा भार्यामूला गृहास्तथा। भार्यामूलं सुखं सर्वं गृहस्थानां गृहे सदा ॥२१॥
भार्यामूलः सदा हर्षो भार्यामूलं च मङ्गलम्। भार्यामूलश्च संसारो भार्यामूलं च [2]सौरभम् ।२२॥
यथा रथश्च रथिनां गृहिणां च तथा गृहम्। सारथिस्तु यथा तेषां गृहिणां च तथा प्रिया ॥२३॥
सर्वरत्नप्रधानं च स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि। गृहीता सा गृहस्थेनैवेत्याह कमलोद्भवः ॥२४॥
यथा जलं विना पद्मं पद्मं शोभां विना यथा। तथैव पुंसां स्वगृहं गृहिणां गृहिणीं विना ॥२५॥
इत्येवमुक्त्वा स गुरुः प्रविवेश गृहं मुहुः। गृहाद्बहिर्निःससार भूयो भूयः शुचाऽन्वितः ॥२६॥
मुहुर्मुहुश्च मूर्च्छां च चेतनां समवाप सः। भूयो भूयो रुरोदोच्चैः स्मारंस्मारं प्रियागुणान् ॥२७॥

हीन सूर्य, शोभाहीन चन्द्रमा, शक्तिहीन जीव, शरीर बिना आत्मा, आधार बिना आधेय, प्रकृति बिना ईश मन्द (शून्य) रहता है ॥१६-१७॥ हे द्विज ! जिस प्रकार फलदायक यज्ञ दक्षिणा बिना असमर्थ रहता है, यज्ञ की सामग्री और उसका मूल भाग कर्मों के फल प्रदान में असमर्थ होता है ॥१८॥ एवं सोनार जिस प्रकार सुवर्ण के बिना अपने कर्म में अशक्त रहता है और मृत्तिका (मिट्टी) के बिना कुम्हार अपने कार्यों में असमर्थ रहता है उसी प्रकार गृहस्थ गृह की अधिष्ठात्री देवी एवं अपनी शक्ति रूप गृहिणी के बिना अपने सभी कर्मों में निरन्तर अशक्त रहता है ॥१९-२०॥ क्योंकि जितनी क्रियायें हैं सभी स्त्री द्वारा आरम्भ होती हैं, सभी गृह स्त्री के कारण ही बनते हैं, इसलिए गृहस्थों को गृह में भी सुख स्त्री द्वारा ही प्राप्त होता है ॥२१॥ सदा हर्ष भी स्त्री मूलक ही प्राप्त होता है, सभी मंगल स्त्री द्वारा होते हैं। इस भाँति सारा संसार स्त्री मूलक है। प्रसन्नता भी स्त्री द्वारा ही प्राप्त होती है। जिस प्रकार रथी का रथ होता है उसी प्रकार गृहस्थों का गृह होता है और रथ का संचालक सारथी जैसे होता है उसी भाँति गृहस्थों की संचालिका उसकी प्रिया पत्नी होती है ॥२२-२३॥ इसलिए सभी रत्नों में स्त्रीरत्न प्रधान है। उसे दुष्कुल से भी गृहस्थों को ले लेना चाहिए, ऐसा ब्रह्मा ने कहा है ॥२४॥ जैसे बिना कमल का जल और बिना शोभा के कमल (हेय) होता है उसी भाँति गृही पुरुषों का गृह बिना गृहिणी का होता है ॥२५॥ इतना कह कर गुरु बृहस्पति घर के भीतर चले गये और फिर घर से बाहर निकल आये। अधिक शोकमग्न होने के नाते उनका यही क्रम बना रहा। बार-बार मूर्च्छित हो जाते थे और थोड़े समय में चेतना भी आ जाती थी। अपनी प्रिया के गुणों का बार-बार स्मरण करके उच्च स्वर से वे बार-बार रोदन करते थे ॥२६-२७॥ अनन्तर महाज्ञानी बृहस्पति को उनके बड़े-बड़े शिष्यों

---

१ क. ०लाश्च पुत्राश्च मा०। २ क. यौवनम।

अथान्तरे महाज्ञानी ज्ञानिभिश्च प्रबोधितः । सच्छिष्यैर्मुनिभिश्चान्यैः पुरंदरगृहं ययौ ॥२८॥
स गुरुः पूजितस्तेन चाऽऽतिथ्येन मरुत्वता । तमुवाच स्ववृत्तान्तं हृदि शल्यमिवाप्रियम् ॥२९॥
बृहस्पतिवचः श्रुत्वा रक्तपङ्कजलोचनः । तमुवाच महेन्द्रश्च कोपप्रस्फुरिताधरः ॥३०॥

महेन्द्र उवाच

दूतानां वै सहस्रं च चारकर्मणि गच्छतु । अतीव निपुणं दक्षं तत्त्वप्राप्तिनिमित्तकम् ॥३१॥
यत्रास्ति पातकी चन्द्रो मन्मात्रा तारया सह । गच्छामि तत्र संनद्धः सर्वैर्देवगणैः सह ॥३२॥
त्यज चिन्तां महाभाग सर्वं भद्रं भविष्यति । भद्रबीजं दुर्गमिदं कस्य संपद्विपद्विना ॥३३॥
इत्युक्त्वा च शुनासीरो दूतानां च सहस्रकम् । तूर्णं प्रस्थापयामास तत्कर्मनिपुणं मुने ॥३४॥
ते दूता वै वर्षशतं ययुर्निर्जनमेव च । [1]सुदुर्लङ्घ्यं च विश्वेषु भ्रमित्वा शक्रमाययुः ॥३५॥
चन्द्रं च शुक्रभवने तं प्रपन्नं च विज्वरम् । दृष्ट्वा सतारकं भीतं कथयामासुरीश्वरम् ॥३६॥
इति श्रुत्वा शुनासीरो नतवक्त्रो बृहस्पतिम् । उवाच शोकसंतप्तो हृदयेन विदूयता ॥३७॥

महेन्द्र उवाच

शृणु नाथ प्रवक्ष्यामि परिणामसुखावहम् । भयं त्यज महाभाग सर्वं भद्रं भविष्यति ॥३८॥

और अन्य महर्षियों ने भलीभाँति समझाया, जिससे वे सुरेन्द्र के घर गये ॥२८॥ इन्द्र ने उनकी अर्चना समेत आतिथ्य सत्कार किया और कुशल पूछा। गुरु ने अपना समस्त वृत्तान्त कह सुनाया, जो हृदय में शल्य (कील) की भाँति चुभनेवाला था ॥२९॥ बृहस्पति की बातें सुनकर इन्द्र के नेत्र रक्त कमल की भाँति रक्तवर्ण हो गये। क्रोध से अधरोष्ठ फड़काते हुए उन्होंने उनसे कहा ॥३०॥

महेन्द्र बोले—इस बात की खोज करने के लिए एक सहस्र गुप्तचर भेज रहा हूँ, जो अति निपुण एवं दक्ष होने के नाते इसके रहस्य का ठीक-ठीक पता लगायेंगे ॥३१॥ और मेरी माता तारा के साथ पापी चन्द्रमा जहाँ होगा, वहीं सर्भ देवगणों के साथ तैयार होकर चल रहा हूँ ॥३२॥ हे महाभाग! आप चिन्ता त्याग दें, सब अच्छा ही होगा। यह विपत्ति कल्याण मूलक है क्योंकि बिना विपत्ति भोगे किसे सम्पत्ति प्राप्त होती है ॥३३॥ हे मुने! इतना कहकर इन्द्र ने अतिशीघ्र एक सहस्र दूतों को भेज दिया, जो उस कर्म में अति निपुण थे ॥३४॥ वे दूतगण समस्त विश्व के अति दुर्लंघ्य और निर्जन स्थानों में उस रहस्य का पता लगाते हुए सौ वर्ष के उपरान्त लौटकर इन्द्र से मिले और कहने लगे—शुक्राचार्य के यहाँ चन्द्रमा सुखपूर्वक रह रहा है, तारा समेत भयभीत होकर वह उन्हीं की शरण में है—ऐसा दूतों ने इन्द्र से कहा ॥३५-३६॥ इसे सुनकर इन्द्र ने मुख नीचे कर लिया और शोक सन्तप्त होकर हार्दिक दुःख प्रकट करते हुए उन्होंने बृहस्पति से कहा।

महेन्द्र बोले—हे नाथ! सुनिये मैं कह रहा हूँ, जो परिणाम में सुखप्रदायक होगा। हे महाभाग! आप भय छोड़ दें, अनन्तर सब कुछ अच्छा ही होगा। न तो आपने शुक्र को जीता और न मैंने दैत्य को जीता

---

१ क. °र्लभं च।

त्वया नहि जितः शुक्रो न मया दितिनन्दनः। एतदालोच्य चन्द्रश्च जगाम शरणं कविम् ॥३९॥
गच्छ शीघ्रं ब्रह्मलोकमस्माभिः सार्धमेव च। ब्रह्मणा सह यास्यामः [1]कैलासे शंकरं वयम् ॥४०॥
इत्युक्त्वा तु महेन्द्रश्च संतप्तो गुरुणा सह। जगाम ब्रह्मलोकं च सुखदृश्यं निरामयम् ॥४१॥
तत्र दृष्ट्वा च ब्रह्माणं ननाम गुरुणा सह। प्रोवाच सर्ववृत्तान्तं देवानामीश्वरं परम् ॥४२॥
महेन्द्रवचनं श्रुत्वा हसित्वा कमलोद्भवः। हितं तथ्यं नीतिसारमुवाच विनयान्वितः ॥४३॥

ब्रह्मोवाच

यो ददाति परस्मै च दुःखमेव च सर्वतः। तस्मै ददाति दुःखं च शास्ता कृष्णः सनातनः ॥४४॥
अहं स्रष्टा च सृष्टेश्च पाता विष्णुः सनातनः। यथा रुद्रश्च संहर्ता ददाति च शिवं शिवः ॥४५॥
निरन्तरं सर्वसाक्षी धर्मो वै सर्वकारणम्। सर्वे देवा विषयिणः कृष्णाज्ञापरिपालकाः ॥४६॥
बृहस्पतिरुतथ्यश्च संवर्तश्च जितेन्द्रियः। त्रयश्चाङ्गिरसः पुत्रा वेदवेदाङ्गपारगाः ॥४७॥
संवर्ताय[2] कनिष्ठाय न च किंचिद्ददौ गुरुः। स बभूव तपस्वी च कृष्णं ध्यायति चेश्वरम् ॥४८॥
मध्यमस्योतथ्यकस्य सतीं भार्यां च गुर्विणीम्। जहार कामतस्तां च भ्रातृजायामकामुकीम् ॥४९॥
यो हरेद्भ्रातृजायां च कामी कामादकामुकीम्। ब्रह्महत्यासहस्रं च लभते नात्र संशयः ॥५०॥

यही सोचकर चन्द्रमा कवि शुक्र की शरण में गया है ॥३७-३९॥ इसलिए हमलोगों के साथ आप शीघ्र ब्रह्मलोक चलें और ब्रह्मा को साथ लेकर हमलोग शिवजी के यहाँ चलेंगे ॥४०॥ इतना कहकर महेन्द्र सन्तप्त होते हुए गुरु को साथ लिये ब्रह्मलोक गये, जो देखने में सुखप्रद और निरामय था ॥४१॥ वहाँ ब्रह्मा को देखकर गुरु समेत उन्होंने उन्हें नमस्कार किया और देवों के परमेश्वर उन ब्रह्मा को समस्त वृत्तान्त कहकर सुनाया ॥४२॥ महेन्द्र की बातें सुनकर कमल से उत्पन्न होनेवाले विनययुक्त ब्रह्मा ने हँस कर उनसे कहा, जो हित, तथ्य एवं नीति का सार था ॥४३॥

ब्रह्मा बोले—जो दूसरे को दुःख पहुँचाता है, उसे सनातन भगवान् श्रीकृष्ण शासक होने के नाते स्वयं दुःख देते हैं ॥४४॥ मैं सृष्टि का स्रष्टा हूँ, सनातन विष्णु उसकी रक्षा करते हैं, रुद्र संहार करते हैं और शिव (कल्याण) प्रदान करते हैं। धर्म समस्त के साक्षी एवं निरन्तर सब के कारण हैं, इस प्रकार सभी देवगण अपने-अपने विषय में भगवान श्रीकृष्ण की आज्ञा का पालन करते हैं ॥४५-४६॥ बृहस्पति, उतथ्य और जितेन्द्रिय संवर्त, ये तीन पुत्र अंगिरा से उत्पन्न हुए जो वेद-वेदांग के पारगामी थे ॥४७॥ अंगिरा ने कनिष्ठ (छोटे) पुत्र संवर्त को कुछ नहीं दिया, वह तपस्वी हो गया, परमेश्वर श्रीकृष्ण का सतत ध्यान करता है ॥४८॥ मध्यम (मझला) पुत्र उतथ्य की पतिव्रता पत्नी का, जो उस समय गर्भिणी एवं कामभावनाहीन तथा भाई की पत्नी थी, इन्होंने कामवश अपहरण कर लिया। जो कामी कामवश भाई की कामभावनाहीन पत्नी का अपहरण करता है, उसे सहस्र ब्रह्महत्या का पाप लगता है, इसमें संशय नहीं ॥४९-५०॥ उसे

---

१ क. ०कैलासं शंकरालयम्। २ क. कुशिष्याय।

स याति कुम्भीपाकं च यावच्चन्द्रदिवाकरौ। भ्रातृजायापहारी च मातृगामी भवेन्नरः ॥५१॥
तस्मादुत्तीर्य पापी च विष्ठायां जायते कृमिः। वर्षकोटिसहस्राणि तत्र स्थित्वा च पातकी ॥५२॥
ततो भवेन्महापापी बर्षकोटिसहस्रकम्। पुंश्चलीयोनिगर्ते च कृमिश्चैव पुरंदर ॥५३॥
गृध्रःकोटिसहस्राणि शतजन्मानि कुक्कुरः। भ्रातृजायापहरणाच्छतजन्मानि सूकरः ॥५४॥
ददाति यो न दायं च बलिष्ठो दुर्बलाय च। स याति कुम्भीपाकं च यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥५५॥
ना ऽभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि। अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥५६॥
जगद्गुरोः शिवस्यापि गुरुपुत्रो बृहस्पतिः। ज्ञातं करोतु वृत्तान्तमीश्वरं बलिनां वरम् ॥५७॥
सर्वे समूहा देवानां संनद्धाश्च सवाहनाः। मध्यस्था मुनयश्चैव सन्तु वै नर्मदातटे ॥५८॥
पश्चादहं च यास्यामि पुण्यं तं नर्मदातटम्। गुरुस्तद्गुरुपुत्रोऽपि शीघ्रं यातु शिवालयम् ॥५९॥

महेन्द्र उवाच

कथं वा वेदकर्तुश्च सिद्धानां योगिनां गुरोः। मृत्युंजयस्य शंभोश्च गुरुपुत्रो बृहस्पतिः ॥६०॥
अङ्गिरास्तव पुत्रश्च तत्पुत्रश्च बृहस्पतिः। त्वत्तो ज्ञानी महादेवः कथं शिष्यो गुरोः पितुः ॥६१॥

ब्रह्मोवाच

कथेयमतिगुप्ता च पुराणेषु पुरंदर। इमां पुराप्रवृतिं च कथयामि निशामय ॥६२॥

चन्द्र-सूर्य के समय तक कुम्भीपाक नरक में रहना पड़ता है, क्योंकि भाई की स्त्री का अपहरण करनेवाला मनुष्य मातृगामी कहलाता है ॥५१॥ उपरान्त वहाँ से निकलकर वह पापी विष्ठा का कीड़ा होता है, सहस्रों करोड़ वर्ष तक उसमें रहकर वह पातकी महापापी होता है। हे पुरन्दर! पश्चात् पुंश्चली (व्यभिचारिणी) स्त्री की योनि के गड्ढे का कीड़ा होता है ॥५२-५३॥ अनन्तर सहस्र करोड़ वर्ष गीध, सौ जन्मों तक कुत्ता और भाई की पत्नी का अपहरण करने के नाते सौ जन्मों तक सूकर होता है ॥५४॥ एवं जो बलवान् पुरुष अपने दुर्बल भाई को उसका दाय भाग (हिस्सा) नहीं देता है, उसे चन्द्र-सूर्य के समय तक कुम्भीपाक नरक में रहना पड़ता है ॥५५॥ क्योंकि सैकड़ों करोड़ कल्प बीत जाने पर भी बिना उपभोग किये कर्म नष्ट नहीं होता है, अतः अपना किया हुआ शुभ-अशुभ कर्म अवश्य भोगना पड़ता है ॥५६॥ बृहस्पति जगद्गुरु शिव के गुरुपुत्र हैं, इसलिए बलवानों में श्रेष्ठ उन ईश्वर को यह वृत्तान्त बता देना चाहिए ॥५७॥ समस्त देववृन्द अपने वाहन समेत तैयार होकर नर्मदा के तटपर चलें और मुनिगण वहाँ मध्यस्थ रहेंगे, पीछे उस पुण्य नर्मदा तट पर हम भी आ रहे हैं। गुरुपुत्र (बृहस्पति) भी कैलाश जायँ ॥५८-५९॥

महेन्द्र बोले—वेदों के प्रणेता, सिद्धों और योगियों के गुरु एवं मृत्युञ्जय शिव के गुरुपुत्र बृहस्पति कैसे हुए? क्योंकि अंगिरा तुम्हारे पुत्र हैं और उनके पुत्र बृहस्पति हैं और महादेव तुम से श्रेष्ठ ज्ञानी हैं अतः गुरु के पिता के शिष्य कैसे हुए? ॥६०-६१॥

ब्रह्मा बोले—हे पुरन्दर! यह कथा पुराणों में अति गुप्त है। अतः मैं इस प्राचीन कथा को पुनः कह रहा हूँ, सुनो ॥६२॥ ?

मृतवत्सा कर्मदोषाद्भार्या चाङ्गिरसः पुरा । व्रतं चकार मद्वाक्यात्कृष्णस्य परमात्मनः ॥६३॥
व्रतं पुंसवनं नाम वर्षमेकं चकार सा । सनत्कुमारो भगवान्कारयामास तां व्रतम् ॥६४॥
तदाऽऽगत्य च गोलोकात्परमात्मा कृपामयः । स्वेच्छामयं परं ब्रह्म भक्तानुग्रहविग्रहः ॥६५॥
सुव्रतां च सलक्ष्मीकां तामुवाच कृपानिधिः । प्रणतां साश्रुनेत्रां च विनीतां च तया स्तुतः ॥६६॥

श्रीकृष्ण उवाच

गृहाणेदं [2]व्रतफलं मम तेजः समन्वितम् । भुङ्क्ष्व मद्वरतः पुत्रो भविष्यति मदंशतः ॥६७॥
पतिर्गुरुश्च देवानां महतां ज्ञानिनां वरः । पुत्रस्ते भविता साध्वि मद्वरेण बृहस्पतिः ॥६८॥
मद्वरेण भवेद्यो हि स च मद्वरपुत्रकः । त्वद्गर्भे मम पुत्रोऽयं चिरजीवी भविष्यति ॥६९॥
वरजो वीर्यजश्चैव क्षेत्रजः पालकस्तथा । विद्यामन्त्रसुतौ चैव गृहीतः सप्तमः सुतः ॥७०॥
इत्युक्त्वा राधिकानाथः स्वलोकं च जगाम सः । श्रीकृष्णवरपुत्रोऽयं ज्ञानी सुरगुरुः स्वयम् ॥७१॥
मृत्युंजयं महाज्ञानं शिवाय प्रददौ पुरा । दिव्यं वर्षत्रिलक्षं च तपश्चक्रे हिमालये ॥७२॥

पहले समय में अंगिरा की पत्नी कर्म दोषवश मृतवत्सा थी (उसके बच्चे छोटी अवस्था में मर जाते थे)। उसने परमात्मा श्रीकृष्ण का व्रत किया ॥६२-६३॥ भगवान् सनत्कुमार ने एक वर्ष तक उससे पुंसवन नामक व्रत सविधि सम्पन्न कराया, जिससे उस समय दयामय एवं परमात्मा श्रीकृष्ण ने, जो कृपानिधि, स्वेच्छामय, परब्रह्म एवं भक्तों पर अनुग्रहार्थ शरीर धारण करने वाले हैं, गोलोक से आकर उस लक्ष्मीमूर्ति सुव्रता से कहा, जो विनय-विनम्र, आँखों में आँसू भरे स्तुति कर रही थी ॥६४-६६॥

श्रीकृष्ण बोले—हे पुत्रि ! इस व्रत-फल को ग्रहण करो, जो मेरे तेज से युक्त है। इसका भक्षण कर लो, मेरे वरदान द्वारा मेरे अंश से पुत्र उत्पन्न होगा। जो देवों का पति और गुरु तथा बड़े-बड़े ज्ञानियों में श्रेष्ठ होगा। हे साध्वि ! मेरे वरदान द्वारा तुम्हारे बृहस्पति पुत्र उत्पन्न होगा ॥६७-६८॥ मेरे वरदान द्वारा जो पुत्र उत्पन्न होगा वह मेरा वरपुत्र कहलायेगा। अतः तुम्हारे गर्भ में जो मेरा पुत्र होगा, वह चिरजीवी होगा ॥६९॥ वरदान से उत्पन्न; वीर्य से उत्पन्न, क्षेत्र से उत्पन्न पालक, विद्या एवं मंत्र जन्य दो पुत्र और सातवाँ यह बृहस्पति पुत्र है ॥७०॥ इतना कहकर राधिका-नाथ भगवान् श्रीकृष्ण अपने लोक चले गये। अतः भगवान् श्रीकृष्ण का यह वर (दान जन्य) पुत्र है जो ज्ञानीश्वर, और स्वयं गुरु है। भगवान् श्रीकृष्ण ने मृत्यु जीतने वाला महाज्ञान पहले शिव जी को दिया था। उन्होंने हिमालय पर तीन लाख दिव्य वर्ष तक तप किया, जिससे भगवान् ने प्रसन्न होकर उन्हें अपना योग, सम्पूर्ण ज्ञान, अपने समान तेज, अपनी शक्ति विष्णुमाया, और अपना अंश वृष वाहन रूप में दिया तथा अपना शूल, अपना कवच, अपना द्वादशाक्षर मंत्र भी

---

१ क. ०व्रतानशनक्षीणां ता०। २ क. यज्ञफ०।

स्वयोगं ज्ञानमखिलं तेजः स्वात्मसमं परम्। स्वशक्तिं विष्णुमायां च स्वांशं वै वाहनं वृषम् ॥७३॥
स्वशूलं च स्वकवचं स्वमन्त्रं द्वादशाक्षरम्। कृपामयः स्तुतस्तेन श्रीकृष्णश्च परात्परः ॥७४॥
शिवलोके शिवा सा च विष्णुमाया शिवप्रिया। शक्तिर्नारायणस्येयं तेन नारायणी स्मृता ॥७५॥
तेजःसु सर्वदेवानां साऽऽविर्भूता सनातनी। जघान दैत्यनिकरं देवेभ्यः प्रददौ पदम् ॥७६॥
कल्पान्ते दक्षकन्या च सा मूलप्रकृतिः सती। पितृयज्ञे तनुं त्यक्त्वा योगाद्वै सिद्धयोगिनी ॥७७॥
बभूव शैलकन्या सा साध्वी वै भर्तृनिन्दया। कालेन कृष्णतपसा शंकरं प्राप शंकरी ॥७८॥
श्रीकृष्णो हि गुरुः शंभोः परमात्मा परात्परः। कृष्णस्य वरपुत्रोऽयं स्वयमेव बृहस्पतिः ॥७९॥
अतो हेतोः सुरगुरुर्गुरुपुत्रः शिवस्य च। इत्येवं कथितं सर्वमतिगुह्यं पुरातनम् ॥८०॥
इति प्रधानसंबन्धः श्रुतश्च कथितो मया। पारम्परिकमन्यं च कथयामि निशामय ॥८१॥
दुर्वासा गरुडश्चैव शंकरांशः प्रतापवान्। शिष्यौ चाङ्गिरसस्तौ द्वौ गुरुपुत्रोऽथवा ततः ॥८२॥
प्राणाधिकायां सत्यां च मृतायां दक्षशापतः। स्वज्ञानं स्वं च भगवान्विसस्मार स्वमोहतः ॥८३॥
स्मरणं कारयामास कृष्णेन प्रेरितोऽङ्गिराः। अतो हेतोर्गुरुश्चैवं[1] मत्सुतः स्याच्छिवस्य सः ॥८४॥
शीघ्रं गच्छतु कैलासं स्वयमेव बृहस्पतिः। त्वं गच्छ तत्र संनद्धः सदेवो नर्मदातटम् ॥८५॥

प्रदान किया। अनन्तर शिव ने कृपामय एवं परात्पर भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति की। शिवलोक (कैलास) में विष्णु की माया शिवजी की प्रिया शिवा होकर रहने लगी। वह नारायण की सनातनी शक्ति है। उस सनातनी ने समस्त देवों के तेज से प्रकट होकर समस्त दैत्य-वृन्दों का संहार किया और देवों को उनके अपने-अपने पद पर प्रतिष्ठित किया। वही मूल प्रकृति कल्पान्त में दक्ष की कन्या सती होकर अवतीर्ण हुई, जिसने पिता के यज्ञ में पति की निन्दावश योग द्वारा अपना शरीर त्याग कर हिमालय की कन्या होकर जन्म ग्रहण किया। वही पतिव्रता शंकरी अधिक काल तक भगवान् कृष्ण का तप करके शंकर जी को प्राप्त हुई है। अतः परात्पर एवं परमात्मा श्रीकृष्ण शंकर जी के गुरु हैं। बृहस्पति स्वयमेव भगवान् श्रीकृष्ण के वरदत्त पुत्र हैं, इसी कारण देवगुरु (बृहस्पति) शिवजी के गुरुपुत्र हैं। इस प्रकार मैंने अति गुह्य एवं प्राचीन कथा तथा प्रधान सम्बन्ध जो सुना था, तुम्हें सुना दिया। परम्परा प्राप्त अन्य कथा भी सुना रहा हूँ, सुनो ॥७१-८१॥ दुर्वासा और गरुड़ ये दोनों प्रतापी शंकर जी के अंश हैं और अंगिरा के शिष्य हैं। इस प्रकार भी बृहस्पति शिवजी के गुरुपुत्र हैं तथा दक्ष के शापवश प्राणप्रिया सती के मर जाने पर भगवान शिव मोहवश अपना ज्ञान और स्वयं अपने को भूल गये थे, भगवान् श्रीकृष्ण से प्रेरित होकर अंगिरा ने उन्हें पुनः उसका स्मरण कराया था। इसीलिए मेरे पुत्र अंगिरा शिवजी के गुरु हैं, अतः स्वयं बृहस्पति केवल कैलास जायें। और तुम देवों के साथ तैयार होकर नर्मदा तट पर चलो। हे नारद!

---

१ क. ०रुरिव शिवस्य मत्सुतस्य च।

इत्युक्त्वा जगतां धाता विरराम च नारद। गुरुर्ययौ च कैलासं मन्हेद्रो नर्मदातटम्।।८६।।

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० दुर्गोपा० बृहस्पतेः कैलासगमनं
नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः।।५९।।

अथ षष्टितमोऽध्यायः

नारद उवाच

नारायण महाभाग वेदवेदाङ्गपारग। निपीतं च सुधाख्यानं त्वन्मुखेन्दुविनिःसृतम्।।१।।
अधुना श्रोतुमिच्छामि किमुवाच बृहस्पतिः। शिवं च गत्वा कैलासं दातारं सर्वसंपदाम्।।२।।
जगत्कर्ता विधाता च किंवा तं प्रत्युवाच सः। एतत्सर्वं समालोच्य वद वेदविदां वर।।३।।

नारायण उवाच

शीघ्रं गत्वा च कैलासं भ्रष्टश्रीः शंकरं गुरुः। प्रणम्य तस्थौ पुरतो [1]लज्जामलिनविग्रहः।।४।।
दृष्ट्वा गुरुसुतं शंभुरुदतिष्ठत्कुशासनात्। आलिङ्गनं ददौ तस्मै शीघ्रं माङ्गलिकाशिषः।।५।।
स्वासने वासयित्वा वै पप्रच्छ कुशलं वचः। उवाच मधुरं वाक्यं भीतं तं लज्जितं शिवः।।६।।

जगत् के विधाता ब्रह्मा इतना कहकर चुप हो गये। अनन्तर गुरु कैलास गये और महेन्द्र नर्मदा तट पर पहुँचे।।८२-८६।।

श्रीब्रह्मवैर्वतमहापुराण के दूसरे प्रकृति-खण्ड में नारद-नारायण-संवादविषयक दुर्गोपाख्यान में
बृहस्पति का कैलास-गमन नामक उनसठवाँ अध्याय समाप्त।।५९।।

अध्याय ६०

तारा के उद्धार का उपाय-कथन

नारद बोले—हे नारायण! हे महाभाग! आप वेद-वेदांग के पारगामी विद्वान् हैं, आपके मुखचन्द्र से निकले हुए आख्यान रूप अमृत का मैंने यथेच्छ पान किया।।१।। सम्प्रति मैं यही सुनना चाहता हूँ कि बृहस्पति ने कैलास जाकर समस्त सम्पत्ति के प्रदाता शिव जी से क्या कहा।।२।। और जगन्नियन्ता एवं रचयिता शिव जी ने उन्हें क्या उत्तर दिया। हे वेदविदों में श्रेष्ठ! यह सब बातें भलीभाँति विचार कर मुझे बताने की कृपा करें।।३।।

नारायण बोले—श्रीहत गुरु बृहस्पति ने शीघ्र कैलास जाकर शंकर को प्रणाम किया और लज्जा से कन्धा झुकाये उन्हीं के सामने बैठ गये।।४।। अनन्तर शिव ने गुरुपुत्र बृहस्पति को सामने देख कर तुरन्त कुशासन से उठ कर उनका आलिंगन किया और मांगलिक शुभाशिष प्रदान किया।।५।। शिव जी ने उन्हें अपने आसन पर बैठा कर जो भयभीत और लज्जित हो रहे थे, मधुर शब्दों में उनसे कुशल पूछा।।६।।

---

१ ख. ०ज्ज.वनतकन्धरः।

शंकर उवाच

कथमेवंविधस्त्वं च दुःखी मलिनविग्रहः। साश्रुनेत्रो लज्जितश्च भ्रातस्तत्कारणं वद ॥७॥
किंवा तपस्या हीना ते संध्या हीनाऽथवा मुने। किंवा श्रीकृष्णसेवा सा विहीना दैवदोषतः ॥८॥
किंवा गुरौ भक्तिहीनोऽभीष्टदेवेऽथवा हरौ। किंवा न रक्षितुं शक्तः प्रपन्नं शरणागतम् ॥९॥
किंवाऽतिथिस्ते विमुखः किंवा पोष्या बुभुक्षिताः। किंवा स्वतन्त्रा स्त्री वा ते किंवा पुत्रोऽवचस्करः ॥१०॥
सुशासितो न शिष्यो वा किं भृत्याश्चोत्तरप्रदाः। किंवा ते विमुखा लक्ष्मीः किंवा रुष्टो गुरुस्तव ॥११॥
गरिष्ठश्च वरिष्ठश्च शश्वत्संतुष्टमानसः। गुरुस्तव वसिष्ठश्च प्रेष्ठः श्रेष्ठः सतामहो ॥१२॥
किंवा रुष्टोऽभीष्टदेवः किंवा रुष्टाश्च वाडवाः। किंवा रुष्टा [1]वैष्णवाश्च किंवा ते प्रबलो रिपुः ॥१३॥
किंवा ते बन्धुविच्छेदो विग्रहो बलिना सह। किंवा पदं परग्रस्तं किंवा बन्धुधनं च वा ॥१४॥
केन ते वा कृता निन्दा खलैर्वा पापिभिर्मुने। केन वा त्वं परित्यक्तो बान्धवेन प्रियेण वा ॥१५॥
बन्धुस्त्यक्तस्त्वया किंवा वैराग्येण क्रुधाऽथवा। किंवा तीर्थे नहि स्नातं न दत्तं पुण्यवासरे ॥१६॥
गुरुनिन्दा बन्धुनिन्दा खलवक्त्राच्छ्रुताऽथवा। गुरुनिन्दा हि साधूनां मरणादतिरिच्यते ॥१७॥
असद्वंशप्रजातानां खलानां निन्दनं तथा। दौःशील्यमेवमसतां शश्वन्नारकिणामिह ॥१८॥

श्रीशंकर बोले—हे भ्रातः! इस भाँति तुम दुःखी और मलिन शरीर आँखों में आँसू भरे तथा लज्जित क्यों हो रहे हो, उसका कारण कहो। हे मुने! क्या तुम्हारी तपस्या नहीं हो पायी या सन्ध्यारहित हो गये? अथवा दैवदोषवश भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा नहीं कर पाये? या अभीष्ट देव या गुरु की भक्ति से विहीन हो गए या किसी शरण-प्राप्त की रक्षा नहीं कर पाये?॥७-९॥ या तुम्हारे यहाँ से अतिथि निराश होकर चला तो नहीं गया? या तुम्हारे पोष्य वर्ग भूखे तो नहीं हैं? क्या तुम्हारी स्त्री स्वतन्त्र हो गयी? या पुत्र तुम्हारा कहना नहीं मानता?॥१०॥ या शिष्य सुशासित नहीं है? सेवक वर्ग ने कहीं उत्तर तो नहीं दे दिए हैं? क्या लक्ष्मी विमुख होकर चली गयी? क्या गुरु तुम पर रुष्ट हो गए?॥११॥ हे निरन्तर सन्तुष्ट रहने वाले! तुम गौरवपूर्ण और श्रेष्ठ हो, अहो तुम्हारे गुरु वशिष्ठ जी सज्जनों में अति श्रेष्ठ और बड़े हैं॥१२॥ क्या अभीष्ट देव रुष्ट हो गए हैं या ब्राह्मणवर्ग रुष्ट है? या वैष्णव लोग रुष्ट हो गए हैं? या तुम्हारा शत्रु प्रबल हो गया है? या बन्धु-वियोग हो गया है? या बलवान् के साथ युद्धारम्भ हो गया है? या तुम्हारा पद या बन्धुओं का धन दूसरे के अधीन हो गया है?॥१३-१४॥ हे मुने! अथवा किसी पापी दुष्ट ने तुम्हारी निन्दा की है? या प्रिय बन्धु ने तुम्हारा त्याग कर दिया है? या तुम्हीं ने वैराग्य अथवा क्रोधवश बन्धु-त्याग कर दिया है या तीर्थ में स्नान नहीं किया अथवा पुण्य अवसर पर दान नहीं दिया?॥१५-१६॥ या दुष्टों के मुख से गुरु या बन्धुओं की निन्दा तो नहीं सुनी? क्योंकि गुरुनिन्दा साधु स्वभाव वाले को मरण से भी अधिक दुःखप्रद होती है॥१७॥ असत्कुल में उत्पन्न दुष्ट स्वभाव वाले प्राणियों का, जो निरन्तर नरक-सेवन करते हैं, निन्दा करना स्वभाव ही होता है॥१८॥ भारत में पुण्यात्मा सन्त लोग दूसरे की प्रशंसा ही करते हैं, इसीलिए

---

१ क बान्धवा०।

परप्रशंसकाः सन्तः पुण्यवन्तो हि भारते। शश्वन्मङ्गलयुक्ताश्च राजन्तेऽमलमानसाः ॥१९॥
पुत्रे यशसि तोये च समृद्धे च पराक्रमे। ऐश्वर्ये वा प्रतापे च प्रजाभूमिधनेषु च ॥२०॥
वचनेषु च बुद्धौ च स्वभावे च चरित्रतः। आचारे व्यवहारे च ज्ञायते हृदयं नृणाम् ॥२१॥
यादृग्येषां च हृदयं तादृक्तेषां च मङ्गलम्। यादृग्येषां पूर्वपुण्यं तादृक्तेषां च मानसम् ॥२२॥
इत्युक्त्वा च महादेवो विरराम स्वसंसदि। तमुवाच महावक्ता स्वयमेव बृहस्पतिः ॥२३॥

बृहस्पतिरुवाच

अकथ्यमेव वृत्तान्तं कथयामि किमीश्वर। लोकाः कर्मवशा नित्यं नानाजन्मसु यत्कृतम् ॥२४॥
स्वकर्मणां फलं भुङ्क्ते जन्तुर्जन्मनि जन्मनि। नहि नष्टं च तत्कर्म विना भोगाच्च भारते ॥२५॥
सुखं दुःखं भयं शोको नराणां यत्कृतं प्रभो। केचिद्वदन्ति हि भवेत्स्वकृतेन च कर्मणा ॥२६॥
केचिद्वदन्ति दैवेन स्वभावेनेति केचन। त्रिविधा गतयो ह्यस्य वेदवेदाङ्गपारग ॥२७॥
स्वयं च कर्मजनकः कर्म वै दैवकारणम्। स्वभावो जायते नृणां स्वात्मनः पूर्वकर्मणः ॥२८॥
स्वकर्मणा च सर्वेषां जन्तूनां प्रतिजन्मनि। सुखं दुःखं भयं शोकः स्वात्मनश्च प्रजायते ॥२९॥
स्वकर्मफलभोक्ता च जीवो हि सगुणः सदा। आत्मा भोजयिता साक्षी निर्गुणः प्रकृतेः परः ॥३०॥
स एवाऽऽत्मा सर्वसेव्यः सर्वेषां च फलप्रदः। स वै सृजति दैवं च स्वभावं कर्म चैव हि ॥३१॥

निरन्तर मंगल युक्त होकर सदा प्रसन्नचित्त रहते हैं ॥१९॥ क्योंकि पुत्र, यश, जल, धन, पराक्रम, ऐश्वर्य, प्रताप, प्रजा, भूमि, धन, वचन, बुद्धि, स्वभाव, चरित्र, आचार और व्यवहार में मनुष्यों का हृदय स्वयं प्रवृत्त होता है ॥२०-२१॥ इसलिए जिन लोगों के हृदय में जितनी शुद्धता रहती है, उतना ही उन्हें मंगल प्राप्त होता है और पूर्व का (किया हुआ) जिनका जैसा पुण्य रहता है वैसा उनका मन होता है ॥२२॥ इस प्रकार अपनी सभा में कह कर महादेव चुप हो गये। अनन्तर महावक्ता बृहस्पति जी स्वयं कहने लगे ॥२३॥

बृहस्पति बोले—हे ईश्वर! यद्यपि मेरा समाचार कहने योग्य नहीं है, तथापि कहूँगा ही। कर्म के अधीन प्राणी अनेक जन्मों में जो कुछ कर्म करता है, अपने कर्मों के फल उसे प्रत्येक जन्म में भोगने पड़ते हैं। क्योंकि भारत में बिना उपभोग किए कर्म नष्ट नहीं होता है ॥२४-२५॥ हे प्रभो! कुछ लोगों का कहना है कि भारत में मनुष्यों के सुख, दुःख, भय एवं शोक अपने किए कर्म वश होते हैं, कोई कहते हैं कि दैव वश और कुछ लोग कहते हैं कि स्वभावतः होते हैं॥ हे वेद-वेदांग के पारगामी (विद्वान्)! इस प्रकार इसकी तीन प्रकार की गतियाँ बतायी गयी हैं ॥२६-२७॥ प्राणी जो स्वयं कर्म करता है, वही कर्म दैव का कारण होता है और मनुष्यों का स्वभाव उसके पूर्व जन्म के कर्मानुसार ही होता है ॥२८॥ इस प्रकार सभी प्राणियों को प्रत्येक जन्म में उसके पूर्वजन्मकृत कर्मानुसार ही सुख, दुःख, भय एवं शोक होता है ॥२९॥ अपना कर्म फल भोगने के लिए जीव सदा सगुण रहता है, और आत्मा भोग कराने वाला, साक्षी, निर्गुण और प्रकृति से परे है ॥३०॥ इसीलिए वह आत्मा सभी के सेवन करने योग्य है। वही सब को फल प्रदान करता है, वही दैव (भाग्य), स्वभाव और कर्म का

कर्मणा च नृणां लज्जा प्रशंसा च प्रफुल्लता। लज्जाबीजं च वृत्तान्तं तथाऽपि कथयामि ते ॥३२॥
इक्त्युत्वा सर्ववृत्तान्तमवोचत्तं बृहस्पतिः। श्रुत्वा बभूव नम्रास्यो गौरीशो लज्जया तदा ॥३३॥
जपमाला कराद्भ्रष्टा कोपाविष्टस्य शूलिनः। बभूव सद्यः कम्पश्च रक्तपङ्कजलोचने ॥३४॥
संहर्तुरीशो रुद्रस्य विष्णोः पातुः सखा शिवः। स्त्रष्टुः स्तुत्यश्च मान्यश्च स्वात्मनः परमा गतिः ॥३५॥
निर्गुणस्य च कृष्णस्य प्रकृतीशस्य नारद। कोपात्प्रवक्तुमारेभे शुष्ककण्ठौष्ठतालुकः ॥३६॥

शिव उवाच

शिवमस्तु च साधूनां वैष्णवानां सतामिह। अवैष्णवानामसतामशिवं च पदे पदे ॥३७॥
ददाति वैष्णवेभ्यश्च यो दुःखं सुस्थितो जनः। श्रीकृष्णस्तस्य संहर्ता विघ्नस्तस्य पदे पदे ॥३८॥
अवैष्णवानां हृदयं नहि शुद्धं सदामलम्। श्रीकृष्णमन्त्रस्मरणं मनोनैर्मल्यकारणम् ॥३९॥
भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः विष्णुमन्त्रोपासनया क्षीयते कर्म तन्नृणाम् ॥४०॥
अहो श्रीकृष्णदासानां कः स्वभावः सुनिर्मलः। हृतभार्यं मूर्च्छितश्च न शशाप रिपुं गुरुः ॥४१॥
गुरुर्यस्य वरिष्ठश्च क्रोधहीनश्च धार्मिकः। शतपुत्रघ्नमप्येनं न शशाप रिपुं मुनिः ॥४२॥
निःश्वासाद्वै सुरगुरोर्भ्रातुर्मम बृहस्पतेः। भस्मीभूतो निमेषेण शतचन्द्रो भवेद्ध्रुवम् ॥४३॥

सर्जन करता है ॥३१॥ इसलिए मनुष्यों को कर्मानुसार ही लज्जा, प्रशंसा और प्रफुल्लता (प्रसन्नता) प्राप्त होती है। हमारा समाचार लज्जाजनक है, किन्तु मैं आप से कह ही रहा हूँ ॥३२॥ इतना कह कर बृहस्पति ने उन्हें अपना वृत्तान्त सुना दिया, जिसे सुन कर गौरी के प्राणेश्वर शिव ने उसी समय लज्जित होकर नीचे मुख कर लिया ॥३३॥ अनन्तर क्रुद्ध होने पर शिव के हाथ से जपमाला गिर पड़ी और नेत्र रक्त कमल की भाँति लाल हो गये और वे स्वयं काँपने लगे ॥३४॥ हे नारद ! शिव जी संहर्त्ता रुद्र के ईश, पालन करने वाले विष्णु के सखा, सर्जन करने वाले (ब्रह्मा) के स्तुत्य और मान्य तथा स्वात्मभूत, निर्गुण एवं प्रकृति के ईश श्रीकृष्ण की परम गति हैं। कोप के नाते शिव जी का कण्ठ, ओंठ और तालु सूख गया। अनन्तर उन्होंने कहना आरम्भ किया ॥३५-३६॥

शिव बोले—साधुओं, वैष्णवों एवं सज्जनों का कल्याण हो और अवैष्णव असज्जनों का पग-पग पर अशुभ हो ॥३७॥ जो प्राणी अच्छी स्थिति में रह कर वैष्णवों को दुःख देता है, उसका संहार भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं करते हैं और पद-पद पर उसका अशुभ होता है ॥३८॥ जो वैष्णव नहीं है उसका हृदय शुद्ध नहीं रहता है, सदा मल से भरा रहता है; क्योंकि मन के निर्मल होने में भगवान् श्रीकृष्ण के मन्त्र का स्मरण करना ही कारण कहा गया है ॥३९॥ भगवान् विष्णु के मन्त्र की उपासना करने से मनुष्यों के हृदय की ग्रन्थि नष्ट हो जाती है, समस्त सन्देह छिन्न-भिन्न हो जाते हैं और कर्मों का क्षय हो जाता है ॥४०॥ अहो ! भगवान् श्रीकृष्ण के दासों का स्वभाव कैसा निर्मल होता है कि स्त्री के अपहरण हो जाने पर गुरु (बृहस्पति) मूर्च्छित हो गए, किन्तु उस शत्रु को उन्होंने शाप नहीं दिया ॥४१॥ जिसके गुरु श्रेष्ठ, क्रोधरहित और धार्मिक हैं उस मुनि ने सैकड़ों पुत्रों के हनन करने वाले के समान होते हुए भी उस शत्रु को शाप नहीं दिया ॥४२॥ यद्यपि हमारे भाई देव गुरु बृहस्पति के निःश्वास से निमेष (पलक) मात्र में सैकड़ों चन्द्रमा निश्चित भस्म हो सकते हैं, तथापि धर्म-भंग होने के भय से इन्होंने उसे शाप नहीं दिया।

तथाऽपि तं नो शशाप धर्मभङ्गभयेन च। तपस्या हीयते शप्तुः कोपाविष्टस्य नित्यशः ॥४४॥
अहो ह्यत्रेरसत्पुत्रः परस्त्रीलुब्धकः शठः। तपस्विनो वैष्णवस्य ब्रह्मपुत्रस्य धीमतः ॥४५॥
धर्मिष्ठा ब्रह्मणः पुत्रा वैष्णवा ब्राह्मणास्तथा। केचिद्देवा द्विजा दैत्याः पौत्राश्च त्रिविधा मताः ॥४६॥
ये सात्त्विका ब्राह्मणास्ते देवा राजसिकास्तथा। दैत्यास्तामसिका रौद्रा बलिष्ठाश्चोद्धताः सदा ॥४७॥
स्वधर्मनिरता विप्रा नारायणपरायणाः। शैवाः शाक्ताश्च ते देवा दैत्याः पूजाविवर्जिताः ॥४८॥
मुमुक्षवो विष्णुभक्ता ब्राह्मणा दास्यलिप्सवः। ऐश्वर्यलिप्सवो देवाश्चासुरास्तामसास्तथा ॥४९॥
ब्राह्मणानां स्वधर्मश्च कृष्णस्यार्चनमीप्सितम। निष्कामानां निर्गुणस्य परस्य प्रकृतेरपि ॥५०॥
ये ब्राह्मणा वैष्णवाश्च स्वतन्त्राः परमं पदम्। यान्त्यन्योपासकाश्चान्यैः सार्धं च प्राकृते लये ॥५१॥
वर्णानां ब्राह्मणाः श्रेष्ठाः साधवो वैष्णवा यदि। विष्णुमन्त्रविहीनेभ्यो द्विजेभ्यः श्वपचो वरः ॥५२॥
परिपक्वा विपक्वा वा वैष्णवाः साधवश्च ते। सततं पाति तांश्चैव विष्णुचक्रं सुदर्शनम् ॥५३॥
यथा वह्नौ शुष्कतृणं भस्मीभूतं भवेत्सदा। तथा पापं वैष्णवेषु तेजस्विषु हुताशनात् ॥५४॥
गुरुवक्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे प्रवेक्ष्यति। तं वैष्णवं महापूतं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥५५॥
पुंसां शतं पितॄणां च शतं मातामहस्य च। स्वसोदरांश्च जननीमुद्धरन्त्येव वैष्णवाः ॥५६॥

क्योंकि क्रुद्ध होकर जो शाप देते हैं उनकी तपस्या नित्यशः न्यून होती चली जाती है ॥४३-४४॥ अहो! तपस्वी, वैष्णव ब्रह्मा के पुत्र एवं धीमान् महर्षि अत्रि के असज्जन, परस्त्री-लोभी और शठ पुत्र-हो आश्चर्य है ॥४५॥ ब्रह्मा के पुत्र धार्मिक, वैष्णव एवं ब्राह्मण हुए हैं तो कुछ देवता, कुछ ब्राह्मण एवं दैत्य तीन प्रकार के उनके पौत्र हैं ॥४६॥ उनमें सात्त्विक जो हैं वे ब्राह्मण हैं, देव लोग राजसिक (रजोगुण प्रधान) और दैत्य गण तामसी हुए, जो सदा भीषण, बलवान् तथा उद्धत होते हैं ॥४७॥ ब्राह्मणगण अपने धर्म में लगे हुए नारायण का सतत चिन्तन करते हैं, देवगण शैव और शाक्त होते हैं और दैत्यगण पूजाहीन होते हैं ॥४८॥ विष्णु के भक्त वैष्णव गण मुमुक्षु (मोक्ष के इच्छुक) होते हैं, ब्राह्मण (भगवान के) दास होने की इच्छा रखते हैं; देवगण ऐश्वर्य के इच्छुक और असुरगण तामसी होते हैं ॥४९॥ निष्काम ब्राह्मणों का अपना धर्म है—भगवान् श्रीकृष्ण की अर्चा करना जो निर्गुण और प्रकृति से भी परे हैं ॥५०॥ जो ब्राह्मण वैष्णव होते हैं वे स्वतन्त्र होकर परमपद प्राप्त करते हैं और अन्य की उपासना करने वाले भी प्राकृत लय के समय अन्य के साथ परम पद प्राप्त कर लेते हैं ॥५१॥ वर्णों में ब्राह्मण श्रेष्ट होते हैं यदि वे साधु एवं वैष्णव हों। क्योंकि भगवान विष्णु के मन्त्र से रहित ब्राह्मणों से श्वपच (चाण्डाल) कहीं श्रेष्ठ होता है ॥५२॥ वैष्णव एवं साधु ब्राह्मण भक्ति में परिपक्व हों या अपक्व, विष्णु का चक्र सुदर्शन उन सब की रक्षा करता ही है ॥५३॥ जिस प्रकार अग्नि में सूखा तृण सदा भस्म हो जाता है, उसी तरह तेजस्वी वैष्णवों में अग्नि से पाप नष्ट हो जाते हैं ॥५४॥ जिसके कान में गुरु के मुख से निकला हुआ विष्णु-मन्त्र प्रवेश करता है, विद्वद्वृन्द उसे महापवित्र वैष्णव कहते हैं ॥५५॥ वैष्णव लोग पितरों (पूर्वजों) की सौ पीढ़ी, मातामह (नाना) की सौ पीढ़ी तथा अपने सहोदरों और माता का उद्धार करते हैं ॥५६॥ गया में पिण्डदान करने वाले केवल पिण्ड-

गयायां पिण्डदानेन पिण्डदाः पिण्डभोजिनः। समुद्धरन्ति पुंसां च वैष्णवाश्च शतं शतम् ॥५७॥
मन्त्रग्रहणमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः। यमस्तस्मान्महाभीतो वैनतेयादिवोरगः ॥५८॥
पुनन्त्येव हि तीर्थानि गङ्गादीनि च भारते। कृष्णमन्त्रोपासकाश्च स्पर्शमात्रेण वाक्पते ॥५९॥
पापानि पापिनां तीर्थे यावन्ति प्रभवन्ति च। नश्यन्ति तानि सर्वाणि वैष्णवस्पर्शमात्रतः ॥६०॥
कृष्णमन्त्रोपासकानां रजसा पादपद्मयोः। सद्यो मुक्ताः पातकेभ्यः कृत्स्ना पूता वसुंधरा ॥६१॥
वायुश्च पवनो वह्निः सूर्यः सर्वं पुनाति च। एते पूता वैष्णवानां स्पर्शमात्रेण लीलया ॥६२॥
अहं ब्रह्मा च शेषश्च धर्मः साक्षी च कर्मणाम्। एते हृष्टाश्च वाञ्छन्ति वैष्णवानां समागमम् ॥६३॥
फलं कर्मानुरूपेण सर्वेषां भारते भवेत्। न भवेत्तद्वैष्णवे च [1]स्विन्नधान्ये यथाऽङ्कुरम् ॥६४॥
हन्ति तेषां कर्म पूर्वं भक्तानां भक्तवत्सलः। कृपया स्वपदं तेभ्यो ददात्येव कृपानिधिः ॥६५॥
तेजस्विनां च प्रवरं वैष्णवं भृगुनन्दनम्। स चन्द्रो दुर्बलो भीतः शुक्रं च शरणं ययौ ॥६६॥
सुदर्शनो बलिष्ठं च शुक्रं जेतुं न शक्तिमान्। तथाऽपि चोद्धरिष्यामि तारां मन्त्रेण यद्गुरोः ॥६७॥
भज सत्यं परं ब्रह्म कृष्णमात्मानमीश्वरम्। सुप्रसन्ने भगवति पत्नीं प्राप्स्यसि लीलया ॥६८॥

भोजियों का ही उद्धार करते हैं किन्तु वैष्णवगण सैकड़ों पीढ़ियों का उद्धार करते हैं।।५७।। केवल मन्त्रग्रहण मात्र से मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है, गरुड़ से सर्प की भाँति उससे यम भी महाभयभीत होता है।।५८।। हे वाक्पते! भारत में गंगादि तीर्थ नदियाँ स्नान करने पर पुनीत करती हैं, किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण के मंत्र की उपासना करने वाले (वैष्णव) केवल स्पर्शमात्र से पवित्र करते हैं।।५९।। तीर्थ में पापियों के जितने पाप उत्पन्न होते हैं, वे सभी पाप वैष्णव के स्पर्शमात्र से नष्ट हो जाते हैं।।६०।। भगवान् कृष्ण के मन्त्र की उपासना करने वालों के चरण-कमल के रज से यह समस्त पृथ्वी पातकों से तुरन्त मुक्त होकर पवित्र हो जाती है।।६१।। यद्यपि वायु, पवन, अग्नि और सूर्य सभी को पुनीत करते हैं किन्तु ये सब वैष्णवों के लीलास्पर्श मात्र से पवित्र हो जाते हैं।।६२।। मैं, ब्रह्मा, शेष, और धर्म जो कर्मों के साक्षी हैं, ये सभी अति हर्षित होकर वैष्णवों के समागम की नित्य अभिलाषा रखते हैं।।६३।। यद्यपि भारत में सभी को कर्मानुरूप ही फल प्राप्त होता है, किन्तु सिद्ध (पकाये) धान्य में अंकुर न होने की भाँति वैष्णवों को वैसा कर्मफल प्राप्त नहीं होता है।।६४।। क्योंकि भक्तवत्सल एवं कृपानिधान भगवान् सर्वप्रथम भक्तों के पूर्व जन्म के कर्मों का नाश कर देते हैं, पश्चात् कृपया अपना पद प्रदान करते हैं।।६५।। यद्यपि वह दुर्बल चन्द्रमा भयभीत होकर तेजस्विजनों में श्रेष्ठ एवं वैष्णव भृगुनन्दन शुक्र की शरण में गया है।।६६।। यद्यपि (भगवान् का) सुदर्शन चक्र बली शुक्र को जीतने में सशक्त नहीं है, तथापि अपने गुरु (भगवान् कृष्ण) के मंत्र द्वारा मैं तारा का उद्धार करूँगा।।६७।। भगवान् श्रीकृष्ण का भजन करो, जो सत्यमूर्ति, परब्रह्म एवं ईश्वर हैं। भगवान् के सुप्रसन्न होने पर तुम्हें पत्नी अनायास प्राप्त हो जायगी।।६८।। हे भ्रातः! मैं तुम्हें उन्हीं का मन्त्र दे रहा हूँ, जो परम कल्पतरु-रूप है।

---

[1] ख. सिद्धधा०।

मन्त्रं तस्य प्रदास्यामि भ्रातः कल्पतरुं परम् । कोटिजन्माघनिघ्नं च सर्वमङ्गलकारणम् ॥६९॥
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं नश्वरं जलबिन्दुवत् । शरणं याहि गोविन्दं परमात्मानमीश्वरम् ॥७०॥
तावद्भवेच्छा भोगेच्छा स्त्रीसुखेच्छा नृणामिह । यावद्गुरुमुखाम्भोजान्न प्राप्नोति मनुं हरेः ॥७१॥
संप्राप्य दुर्लभं मन्त्रं वितृष्णो हि भवेन्नरः । इन्द्रत्वममरत्वं च नहि वाञ्छन्ति वैष्णवाः ॥७२॥
नहि वाञ्छन्ति मोक्षं च दास्यभक्तिं विना हरेः । भक्तिनिर्मथनं भक्तो मोक्षं नो वाञ्छति प्रभोः ॥७३॥
ज्ञानं मृत्युंजयत्वं च सर्वसिद्धिं तदीप्सितम् । वाक्सिद्धिं चैव धातृत्वं भक्तानां नहि वाञ्छितम् ॥७४॥
भक्तिं विहाय कृष्णस्य विषयं यो हि वाञ्छति । विषमत्ति सुधां त्यक्त्वा वञ्चितो विष्णुमायया ॥७५॥
अहं ब्रह्मा च विष्णुश्च धर्मोऽनन्तश्च कश्यपः । कपिलश्च कुमारश्च नरनारायणावृषी ॥७६॥
स्वायंभुवो मनुश्चैव प्रह्लादश्च पराशरः । भृगुः शुक्रश्च दुर्वासा वसिष्ठः क्रतुरङ्गिराः ॥७७॥
बलिश्च बालखिल्याश्च वरुणश्च हुताशनः । वायुः सूर्यश्च गरुडो दक्षो गणपतिः स्वयम् ॥७८॥
एते परा भक्तवराः कृष्णस्य परमात्मनः । ये च तस्य कलाः श्रेष्ठास्ते तद्भक्तिपरायणाः ॥७९॥
इत्युक्त्वा शंकरस्तस्मै ददौ कल्पतरुं मनुम् । लक्ष्मीमायाकामबीजं ङेन्तं कृष्णपदं मुने ॥८०॥
परं पूजाविधानं च स्तोत्रं च कवचं तथा । तत्पुरश्चरणं ध्यानं शुद्धे मन्दाकिनीतटे ॥८१॥
गुरुः संप्राप्य तं मन्त्रं शंकराच्च जगद्गुरोः । वितृष्णो हि भवाब्धौ च बभूव तमुवाच ह ॥८२॥

करोड़ों जन्म का पाप नष्ट करता है तथा समस्त मंगलों का कारण है ॥६९॥ ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त सभी जल-बिम्ब के समान नश्वर हैं, अतः गोविन्द की शरण में जाओ, जो परमात्मा एवं ईश्वर हैं। मनुष्यों को तभी तक संसारी इच्छा,—भोग की इच्छा और स्त्री-सुख की इच्छा होती है जब तक गुरु के मुख-कमल से भगवान् का मंत्र प्राप्त नहीं कर लेता है। क्योंकि उस दुर्लभ मन्त्र के प्राप्त होने पर मनुष्य को कोई इच्छा ही नहीं होती है ॥७०-७१॥ इसलिए वैष्णव लोग भगवान् की दास्य-भक्ति के बिना इन्द्रत्व, अमरत्व नहीं चाहते हैं और मोक्ष भी नहीं चाहते हैं ॥७२॥ भक्त भगवद्भक्ति का विनाशक मोक्ष भी नहीं चाहता तथा ज्ञान, मृत्युंजयत्व, अभीष्ट सर्व सिद्धियाँ, वाक्सिद्धि और ब्रह्मा होना भी भक्तों को अभीष्ट नहीं है। क्योंकि भगवान् की भक्ति का त्याग कर जो विषय की अभिलाषा करता है वह (मानों) विष्णु की माया से वंचित होने के नाते सुधा त्याग कर विष भक्षण करता है। ब्रह्मा, विष्णु, धर्म, अनन्त कश्यप, कपिल, कुमार, नर-नारायण ऋषि, स्वायम्भुव मनु, प्रह्लाद, पराशर, भृगु, शुक्र, दुर्वासा, वसिष्ठ, क्रतु, अंगिरा, बलि, बालखिल्य, वरुण, अग्नि, वायु, सूर्य, गरुड़, दक्ष और गणपति, ये परमात्मा श्रीकृष्ण के श्रेष्ट भक्त हैं ॥७३-७८॥ एवं जो लोग उनकी श्रेष्ट कला (अंश) रूप हैं, वे उनकी भक्ति में निरत रहते हैं। हे मुने! इतना कहकर शंकर जी ने भगवान् का कल्पवृक्ष तुल्य मंत्र 'ओं श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय नमः,' उत्तम पूजाविधान, स्तोत्र और कवच गुरु-पुत्र को प्रदान किया ॥७९-८०॥ हे मुने! शुद्ध मन्दाकिनी-तट पर जगद्गुरु शिव द्वारा पुरश्चरणपूर्वक ध्यान एवं मंत्र प्राप्त कर बृहस्पति ने संसार-सागर से खिन्नता प्रकट करते हुए शिव से कहा ॥८१-८२॥

बृहस्पतिरुवाच

आज्ञां कुरु जगन्नाथ यामि तप्तुं हरेस्तपः। तारा तिष्ठतु तत्रैव न तया मे प्रयोजनम् ॥८३॥
पश्यामि विषतुल्यं च सर्वं नश्वरमीश्वर। श्रीकृष्णं शरणं यामि सत्यं नित्यं च निर्गुणम् ॥८४॥

महादेव उवाच

परग्रस्तां स्त्रियं त्यक्त्वा न प्रशंस्यं तपो मुने। संभावितस्य दुश्चर्चा मरणादतिरिच्यते ॥८५॥
पुरो गच्छ महाभाग तमेतं नर्मदातटम्। यत्र ब्रह्मादयो देवास्तत्राहं यामि सत्वरम् ॥८६॥
शिवस्य वचनं श्रुत्वा ययौ सुरगुरुः स्वयम्। आययौ च महाभागः शंकरो नर्मदातटम् ॥८७॥
सगणं शकरं दृष्ट्वा प्रसन्नवदनेक्षणम्। प्रणेमुर्देवताः सर्वा मनवो मुनयस्तथा ॥८८॥
ननाम शंभुः शिरसा विष्णुं च कमलोद्भवम्। ददतुस्तौ महेशाय [1]प्रेम्णाऽऽलिङ्गनमासनम् ॥८९॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र चागमच्च बृहस्पतिः। प्रणनाम महादेवं विष्णुं च कमलोद्भवम् ॥९०॥
सूर्यं धर्ममनन्तं च नरं मां च मुनीश्वरान्। स्वगुरुं पितरं भक्त्या चावसत्तत्र संसदि ॥९१॥
संचिन्त्य मनसा युक्तिमूचे तत्र च संसदि। स्वयं विष्णुश्च भगवान्ब्रह्माणं चन्द्रशेखरम् ॥९२॥

बृहस्पति बोले—हे जगन्नाथ! मुझे आज्ञा प्रदान करें, मैं भगवान् का तप करने जा रहा हूँ, और अब तारा से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है, अतः वह वहीं रहे ॥८३॥ क्योंकि हे ईश्वर! संसार की सभी वस्तुएँ नश्वर होने के नाते मुझे विष के समान दिखाई दे रही हैं। इसीलिए मैं भगवान् श्रीकृष्ण की शरण में जाना चाहता हूँ, जो सत्य, नित्य और निर्गुण हैं ।८४॥

श्री महादेव बोले—हे मुने! शत्रु के अधीन पड़ी हुई स्त्री को त्याग कर तप करने जाना अच्छा नहीं, क्योंकि सम्भावित दुश्चर्चा (अयश) मरण से अधिक दुःखप्रद होती है ॥८५॥ हे महाभाग! इसलिए तुम आगे चलो, मैं भी नर्मदा-तट पर, जहाँ ब्रह्मा आदि सभी देव हैं, शीघ्र ही चल रहा हूँ ॥८६॥ शिव की बातें सुनकर देव-गुरु बृहस्पति नर्मदा-तट की ओर चल पड़े और महाभाग शंकर भी वहाँ पहुँच गये ॥८७॥ अपने गण समेत शिव को वहाँ आये हुए देख कर, जिनके मुख और नेत्र से प्रसन्नता स्पष्ट प्रतीत हो रही थी, समस्त देवता, मनु और मुनियों ने सादर प्रणाम किया ॥८८॥ शिव ने भी विष्णु और ब्रह्मा को शिर से नमस्कार किया। अनन्तर विष्णु ने शिव से प्रेमालिंगन कर उन्हें आसन प्रदान किया ॥८९॥ उसी बीच वहाँ बृहस्पति भी आ गये। उन्होंने महादेव, विष्णु, ब्रह्मा, सूर्य, धर्म, अनन्त, नर-नारायण, मुनिवृन्द, अपने गुरु और पिता को भक्तिपूर्वक सादर प्रणाम किया, और वहीं बैठ गये ॥९०-९१॥ अनन्तर वहाँ की सभा में भगवान् विष्णु ने मन से भलीभांति युक्ति सोच कर ब्रह्मा और शिव से स्वयं कहा ॥९२॥

---

१ क. ०म्णा मङ्गलमाशिषम्।

विष्णुरुवाच

युवां च मुनयश्चैव समुद्रपुलिनं द्रुतम् । शुक्रं[1] कविं च मध्यस्थं प्रस्थापयितुमर्हथ ॥९३॥
विग्रहेणैव विषमं भविष्यति न संशयः । मदाशिषा सुरगुरुस्तारां प्राप्स्यति निश्चितम् ॥९४॥
सुरैः स्तुतश्च संतुष्टः शुक्राचार्यो भविष्यति । सुरैः शुक्रो हि न जितः कृष्णचक्रेण रक्षितः ॥९५॥
युवाभ्यां प्रार्थ्यमानोऽहं युवयोः स्तवनेन च । श्वेतद्वीपादागतोऽस्मि परितुष्टः स्तवेन च ॥९६॥
[2]शुक्राश्रमसमीपं तु सर्वा गच्छन्तु देवताः । रिपुर्बलिष्ठः स्तोत्रेण वशीभूत इति श्रुतिः ॥९७॥
इत्युक्त्वा जगतां नाथस्तत्रैवान्तरधीयत । स्तुतो ब्रह्मादिभिर्देवैः प्रणतैः परिपूजितः ॥९८॥
गते च जगतां नाथे श्वेतद्वीपं च नारद । चिन्तिताश्च सुराः सर्वे विषण्णमनसस्तथा ॥९९॥
मुनीन्देवांश्च संबोध्य ब्रह्मा वै तत्र संसदि । उवाच नीतिसारं तत्संमतं शंकरस्य सः ॥१००॥

ब्रह्मोवाच

मम शंभोश्च धर्मस्य विष्णोर्वा सर्वसाक्षिणः । अस्माकं च समः स्नेहो दैत्ये देवे च पुत्रकाः ॥१०१॥
दैत्यानां च गुरुं शुक्रं प्रपन्नश्च निशाकरः । न जितश्च सुरैः शुक्रः पूजितो दितिनन्दनैः ॥१०२॥

विष्णु बोले—तुम दोनों और मुनिवृन्द मिलकर समुद्रतट पर शुक्राचार्य के यहाँ किसी को मध्यस्थ बनाकर शीघ्र भेजो। क्योंकि युद्ध करने से विषम परिणाम होगा, इसमें संशय नहीं। और मेरे आशीर्वाद से बृहस्पति तारा को निश्चित प्राप्त करेंगे ॥९३-९४॥ इसलिए देवलोग शुक्राचार्य की स्तुति करके उन्हें सन्तुष्ट करें, क्योंकि कृष्ण-चक्रसुदर्शन द्वारा रक्षित होने के नाते शुक्र को देवलोग भी जीत नहीं सकते हैं ॥९५॥ तुम लोगों की प्रार्थना-स्तुति से प्रसन्न होकर मैं श्वेत द्वीप से यहाँ आया हूँ। अतः शुक्र के आश्रम के पास सभी देवता जायें। क्योंकि श्रुति कहती है कि बलवान् शत्रु को उसकी स्तुति द्वारा वशीभूत करना चाहिए ॥९६-९७॥ इतना कहकर जगत् के नाथ भगवान् विष्णु ब्रह्मादि देवों द्वारा प्रणाम, स्तुति तथा अर्चना करने के उपरान्त उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये ॥९८॥ हे नारद ! जगदीश्वर भगवान् विष्णु के श्वेतद्वीप चले जाने पर सभी देवता खिन्नमन होकर चिन्ता-कुल हो उठे। उसी बीच सभा में मुनियों और देवों को सम्बोधित करते हुए ब्रह्मा ने कहा, जो नीति का सार और शंकर को पसन्द था ॥९९-१००॥

ब्रह्मा बोले—हे पुत्रवृन्द ! मेरा, शिव का, धर्म का एवं सबके साक्षी विष्णु का देवों और दैत्यों में समान स्नेह रहा है ॥१०१॥ और दैत्यों के गुरु शुक्र के यहाँ चन्द्रमा रह रहा है, तथा दैत्यगणों से पूजित होने के नाते शुक्र को देवगण कभी जीत नहीं पाये ॥१०२॥ इसलिए हे देवगण ! विष्णु की आज्ञानुसार तुम लोग समुद्रतट पर चलो

१क. ०क्रं कंचिच्च म० । २ ख. ०ममसीपर्णं स० ।

तारहेतोरहं यामि शुक्रस्य भवनं सुराः । सर्वे समुद्रपुलिनं यान्तु विष्णोर्निदेशतः ॥१०३॥
इत्युक्त्वा जगतां धाता चागमच्छुक्रसंनिधिम् । प्रययुर्देवता विप्राः समुद्रपुलिनं मुने ॥१०४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० श्रीकृष्णोपदिष्टतारोद्धरणोपाय-
ज्ञानं नाम षष्टितमोऽध्यायः ॥६०॥

अथैकषष्टितमोऽध्यायः

नारद उवाच

ततः परं किं रहस्यं बभूवासुरदेवयोः। श्रोतुमिच्छामि भगवन्परं कौतूहलं मम ॥१॥

नारायण उवाच

ब्रह्मा जगाम निलयं शुक्रस्य च महात्मनः । नानादैत्यगणाकीर्णं रत्नमण्डपभूषितम् ॥२॥
पञ्चाशत्कोटिभिः शिष्यैः परीतं ब्रह्मवादिभिः । सप्तभिः परिखाभिश्च वेष्टितं दुर्गमेव च ॥३॥
रक्षितं रक्षकगणैर्दैत्यैश्च शतकोटिभिः । पद्मरागैर्विरचितैः प्रावारैः परिशोभितम् ॥४॥
ददर्श जगतां धाता सभायां भृगुनन्दनम् । स्तुतं मुनिगणैर्दैत्यै रत्नसिंहासनस्थितम् ॥५॥

और तारा के लिए मैं अकेला शुक्र के भवन में जा रहा हूँ ॥१०३॥ हे मुने! इतना कहकर जगत् के धाता (ब्रह्मा) शुक्र के पास गये और देवगण एवं ब्राह्मण-वृन्द ने समुद्र-तट की यात्रा की ॥१०४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृति-खण्ड में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत श्री कृष्णोपदिष्ट तारा के उद्धार का उपाय ज्ञान नामक साठवाँ अध्याय समाप्त। ॥६०॥

अध्याय ६१

बृहस्पति को तारा की प्राप्ति तथा बुध की उत्पत्ति

नारद बोले—हे भगवन्! उसके पश्चात् दैत्यों और देवों में क्या हुआ? यह रहस्य सुनने का मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है ॥१॥

नारायण बोले—ब्रह्मा महात्मा शुक्र के भवन गये जो अनेक भाँति के दैत्यों से आच्छन्न एवं रत्नों के मण्डपों से विभूषित था ॥२॥ पचास करोड़ ब्रह्मवेत्ता शिष्य उनके चारों ओर वर्तमान थे और उनका दुर्ग सात परिखाओं (खाइयों) से घिरा था ॥३॥ सौ करोड़ दैत्य रक्षकगण दुर्ग की रक्षा करते थे और वह दुर्ग पद्मराग मणियों की बनी चहारदीवारों से सुशोभित था ॥४॥ उपरान्त जगत् के विधाता ब्रह्मा ने वहाँ भृगु-पुत्र शुक्र को देखा जो दैत्यों तथा मुनिगणों द्वारा स्तुत और रत्नसिंहासन पर सुखासीन थे ॥५॥ परब्रह्म, परमात्मा

जपन्तं परमं ब्रह्म कृष्णमात्मानमीश्वरम्। कोटिसूर्यप्रभं शश्वज्ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥६॥
दृष्ट्वा पौत्रं प्रभायुक्तं विधाता हृष्टमानसः। आत्मानं कृतिनं मेने पुत्रं पौत्रं च नारद ॥७॥
दृष्ट्वा पितामहं शुक्रो धातारं जगतां प्रभुम्। उत्थाय सहसा भीतः प्रणनाम कृताञ्जलिः ॥८॥
आदाय पूजयामास चोपचारांस्तु षोडश। तुष्टाव परया भक्त्या संभ्रमेण यथागमम् ॥९॥
विद्यामन्त्रप्रदातारं दातारं सर्वसंपदाम्। स्वकर्मणां च फलदं सर्वेषां विश्वतो वरम् ॥१०॥
शुक्रस्य स्तवनेनैव संतुष्टो जगतां पतिः। अवरुह्य [1]रथात्तूर्णमवसत्तत्र संसदि ॥११॥
शुक्रेण शिरसो दत्तरत्नसिंहासने वरे। तेजसा ज्वलिते रम्ये निर्मिते विश्वकर्मणा ॥१२॥
शुक्रः प्रणम्य ब्रह्माणं कुमारं सनकं क्रतुम्। वसिष्ठं च मरीचिं च सनन्दं च सनातनम् ॥१३।
कपिलं वै पञ्चशिखं वोढुमङ्गिरसं मुने। धर्मं मां च नरं भक्त्या प्रणनाम कृताञ्जलिः ॥१४॥
प्रत्येकं पूजयामास सादरं च यथोचितम्। सिंहासनेषु रम्येषु वासयामास धार्मिकः ॥१५॥
प्रहृष्टवदना सर्वे प्रणेमुर्दितिनन्दनाः। ऋषिसंघाश्च धातारं तुष्टुवुश्च यथागमम् ॥१६॥
सर्वान्संस्तूय स कविरवोचत्संपुटाञ्जलिः। साश्रुनेत्रः सपुलकः प्रणतो विनयान्वितः ॥१७॥

एवं ईश्वर भगवान् श्रीकृष्ण का जप कर रहे थे, जो करोड़ों सूर्य की प्रभा से पूर्ण तथा ब्रह्मतेज से निरन्तर देदीप्यमान थे ॥६॥ हे नारद ! इस प्रकार प्रभायुक्त पौत्र को देखकर ब्रह्मा का मन उस समय हर्षमग्न हो गया। वे अपने को और पुत्र-पौत्र को कृतकृत्य समझने लगे ॥७॥ पश्चात् शुक्र जगत् के विधाता एवं प्रभु ब्रह्मा को देखते ही सहसा उठ खड़े हुए और भयभीत होते हुए अंजली बांधकर उन्हें प्रणाम किया ॥८॥ षोडशोपचार मंगाकर सविधि पूजन किया, तथा परमभक्ति से आगमानुसार उनकी स्तुति आरम्भ की, जो विद्या और मन्त्र के प्रदाता, समस्त सम्पत्ति तथा अपने कर्मों के फल देने वाले एवं विश्व में सर्वश्रेष्ठ हैं ॥९-१०॥ शुक्र की ऐसी स्तुति से जगत्पति ब्रह्मा सन्तुष्ट होकर शीघ्र रथ से उतर पड़े और उनकी सभा को सम्बोधित किया ॥११॥ शुक्र ने उनके बैठने के लिए शिर झुकाकर वह उत्तम सिंहासन प्रदान किया, जो तेज से प्रज्वलित, रम्य और विश्वकर्मा द्वारा सुनिर्मित था ॥१२॥ हे मुने ! शुक्र ने ब्रह्मा को प्रणाम करने के उपरान्त कुमार, सनक, ऋतु, वसिष्ठ, मरीचि, सनन्द, सनातन, कपिल, पञ्चशिख, वोढु, अंगिरा, धर्म, मुझे (नारायण) और नर को भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम किया ॥१३-१४॥ उस धार्मिक ने सादर यथोचित प्रत्येक की पूजा की और उन्हें रत्नसिंहासनों पर बैठाया ॥१५॥ अनन्तर दितिनन्दन और वहाँ के ऋषिसंघ ने प्रसन्नचित्त होकर शास्त्रानुसार ब्रह्मा को प्रणाम किया ॥१६॥ सब का सादर स्वागत करने के अनन्तर कवि (शुक्र) ने अंजली बाँधकर, सजल नेत्र, पुलकायमान शरीर से विनय-विनम्र होकर कहना आरम्भ किया ॥१७॥

१क. ०र्णमुवास स्वात्मजैः सह।

शुक्र उवाच

अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम् । स्वयं विधाता भगवान्साक्षाद्दृष्टः स्वमन्दिरे ॥१८॥
साक्षाद्दृष्टाश्च तत्पुत्रा भगवन्तः सनातनाः । तुष्टः कृष्णोऽद्य मामेव परमात्मा परात्परः ॥१९॥
कृतार्थं कर्तुमीशा मां युष्माकं स्वागतं शिशुम् । स्वात्मारामेषु कुशलं प्रश्नमेवं विडम्बनम् ॥२०॥
पवित्रं कर्तुमीशा मां हेतुरागमनेऽत्र वः । अपरं ब्रूथ किंवाऽपि शास्त नः करवाणि किम् ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

उद्विग्नश्चिरविच्छेदात्त्वां पौत्रं द्रष्टुमागतः । विच्छेदः पुत्रपौत्राणां मरणादतिरिच्यते ॥२२॥
कुशलं ते मुनिश्रेष्ठ पुत्रयोश्चापि योषितः । कुशलं ते स्वधर्माणां काम्यानां तपसामपि ॥२३॥
दिने दिनेऽपरिच्छन्नं श्रीकृष्णार्चनमीप्सितम् । स्वगुरोः सेवनं नित्यमविच्छिन्नं भवेत्तव ॥२४॥
गुर्विष्टयोः पूजनं च सर्वमङ्गलकारणम् । पापाधिरोगशोकघ्नं पुण्यं हर्षप्रदं शुभम् ॥२५॥
अभीष्टदेवः संतुष्टो गुरौ तुष्टे नृणामिह । इष्टदेवे च संतुष्टे संतुष्टाः सर्वदेवताः ॥२६॥
गुर्विप्रः सुरो रुष्टो येषां पातकिनामिह । तेषां च कुशलं नास्ति विघ्नस्तस्य पदे पदे ॥२७॥
तुष्टश्च सततं वत्स श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः । सर्वान्तिरात्मा भगवांस्तव भक्त्या च निर्गुणः ॥२८॥

शुक्र बोले—आज हमारा जन्म सफल हो गया, हमारा जीवन सुजीवन हो गया, क्योंकि आज अपने भवन में साक्षात् भगवान् ब्रह्मा स्वयं दृष्टिगोचर हुए हैं॥१८॥ और उनके पुत्र—भगवान् सनातन आदि भी—प्रसन्न चित्त से साक्षात् दर्शन दे रहे हैं। इससे आज परात्पर एवं परमात्मा श्रीकृष्ण मुझ पर अत्यधिक प्रसन्न मालूम हो रहे हैं॥१९॥ मुझ शिशु को कृतार्थ करने में समर्थ आप लोगों का स्वागत है। अपने आत्मा में रमण करने वालों को कुशल पूछना तो बिडम्बना मात्र है॥२०॥ हमें पवित्र करने के लिए ही आप महानुभावों का यहाँ आगमन हुआ है। हमें बतायें या शासन करें कि मैं क्या करूँ॥२१॥

ब्रह्मा बोले—तुम्हारे चिरकाल के वियोग के नाते हमें बड़ी उद्विग्नता थी अतः अपने पौत्र (तुम) को देखने के लिए आया हूँ। क्योंकि पुत्र-पौत्र का वियोग मरण से भी अधिक दुःखप्रद होता है॥२२॥हे मुनिश्रेष्ठ! तुम कुशल से तो हो? तुम्हारे पुत्र, स्त्रियाँ, स्वधर्म तथा काम्य तप कुशलपूर्वक चल रहे हैं न? ॥२३॥ तुम्हारा दिन-प्रतिदिन भगवान् श्रीकृष्ण का यथेष्ट पूजन और अपने गुरु की नित्य अविच्छिन्न सेवा चलती रहे॥२४॥ क्योंकि गुरु और इष्टदेव का पूजन करना समस्त मंगलों का कारण होता है, पाप, रोग एवं शोक का नाश करता है और पुण्य, हर्षप्रद तथा शुभ होता है॥२५॥ गुरु के संतुष्ट होने पर मनुष्यों के इष्टदेव सन्तुष्ट रहते हैं और इष्टदेव के प्रसन्न होने पर समस्त देवगण प्रसन्न होते हैं॥२६॥ जिन पापियों से गुरु, ब्राह्मण तथा देवता रुष्ट रहते हैं, उनका कुशल नहीं होता है एवं पद-पद पर उनका विघ्न ही होता है॥२७॥ हे वत्स! तुम्हारी भक्ति से भगवान् श्रीकृष्ण, जो प्रकृति से परे और सभी के अन्तरात्मा एवं निर्गुण हैं, तुम्हारी भक्ति से सतत सन्तुष्ट रहते हैं॥२८॥

तव तुष्टो गुरुरहं विधाता जगतामपि। मयि तुष्टे हरिस्तुष्टो हरौ तुष्टे तु देवताः॥२९॥
सांप्रतं शृणु मे धीमन्नत्राऽऽगमनकारणम्। प्रेषितस्य सुराणां च विश्वसंहर्तुरेव च॥३०॥
शिवस्य गुरुपुत्रस्य साध्वीं तारां बृहस्पतेः। अपहृत्य निशानाथस्तवैव शरणागतः॥३१॥
शंभुर्धर्मश्च सूर्यश्च शक्रोऽनन्तश्च पुत्रक। आदित्या वसवो रुद्रा दिक्पालाश्च दिगीश्वराः॥३२॥
युद्धायाऽऽयान्ति संनद्धास्तिस्रः कोट्यश्च देवताः। नागाः किंपुरुषाश्चैव यक्षराक्षसगुह्यकाः॥३३॥
भूताः प्रेताः पिशाचाश्च कूष्माण्डा ब्रह्मराक्षसाः। किराताश्चैव गन्धर्वाः समुद्रपुलिनेऽधुना॥३४॥
तारकामयसंग्रामे मध्यस्थोऽहं सुतैः सह। देहि तारां रणं किंवा त्यज चन्द्रं च कामिनम्॥३५॥

शुक्र उवाच

आगच्छन्तु सुराः सर्वे संनद्धा रणदुर्मदाः। योत्स्ये विना महेशं च सर्वेषां च गुरुं परम्॥३६॥

दैत्या ऊचुः

उभयेषां गुरुः शंभुर्मान्यो वन्द्यश्च सर्वदा। धर्मश्च साक्षी सर्वेषां त्वमेव च पितामह॥३७॥
अन्यांश्च तृणतुल्यांश्च नहि मन्यामहे वयम्। आगच्छन्तु च योत्स्यामो व्रज ब्रूहि जगद्गुरो॥३८॥
कृपया गुरुपुत्रस्य यद्यायाति महेश्वरः। आग्नेयास्त्रं प्रयोक्ष्यामः पश्चाद्योत्स्यामहे प्रभो॥३९॥

जगत् का विधाता मैं तुम्हारा गुरु हूँ और तुम पर प्रसन्न हूँ, मेरे प्रसन्न होने से भगवान् प्रसन्न हैं और भगवान् के प्रसन्न होने पर सभी देवगण प्रसन्न हैं॥२९॥ हे धीमन्! सम्प्रति मेरे यहाँ आने का कुछ और कारण है, कह रहा हूँ, सुनो। मैं देवगणों और विश्व के संहार करने वाले (शिव) का भेजा हुआ हूँ। शिवजी के गुरुपुत्र बृहस्पति की पतिव्रता पत्नी तारा का अपहरण करके चन्द्रमा तुम्हारी ही शरण में आकर रह रहा है॥३०-३१॥ हे पुत्र! इसी कारण शम्भु, धर्म, सूर्य, इन्द्र, अनन्त, आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, दिक्पाल, और दिशाओं के अधीश्वर युद्ध के लिए आ रहे हैं, जिसमें तीन करोड़ देवता, नागवर्ग, किम्पुरुषगण, यक्ष, राक्षस, गुह्यकवर्ग, भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, किरात, और गन्धर्वगण अत्यन्त सन्नद्ध होकर इस समय समुद्र के तट पर अवस्थित हैं॥३२–३४॥ इस युद्ध में सनत्कुमार आदि पुत्रों समेत मैं ही मध्यस्थ बनाया गया हूँ, अतः तारा को लौटा दो या युद्ध करो। किन्तु मेरा कहना है कि कामी चन्द्रमा का ही त्याग कर दो॥३५॥

शुक्र बोले—युद्ध के लिए तैयार होने वाले दुर्मदान्ध देवगणों को आने दीजिए, सभी के परमगुरु एक शिव को छोड़कर शेष सभी लोगों से मैं युद्ध करूंगा॥३६॥

दैत्य बोले—शिव जो दोनों (दैत्य-देवगणों) के गुरु, मान्य और सर्वदा वन्दनीय हैं, धर्म (कर्मों के) साक्षी हैं और आप पितामह ही हैं। शेष अन्य देवों को हम लोग तृण के तुल्य भी नहीं गिनते हैं। अतः हे जगद्गुरो! जाओ, उनसे कहो, आवें, हम लोग युद्ध के लिए तैयार हैं॥३७-३८॥ हे प्रभो! यदि शिवभी गुरुपुत्र (बृहस्पति) के ऊपर कृपा करने के नाते आयेंगे, तो सर्वप्रथम आग्नेयास्त्र का प्रयोग करके पश्चात् युद्ध करेंगे॥३९॥

ब्रह्मोवाच

कालाग्निरुद्रः संहर्ता विश्वस्य बलिनां वरः। हे वत्सास्तेन सार्धं च को वा युद्धं करिष्यति ॥४०॥
भद्रकाली जगन्माता खड्गखर्परधारिणी। तया दुर्धर्षया सार्धं को वा युद्धं करिष्यति ॥४१॥
सा सहस्रभुजा देवी मुण्डमालाविभूषणा। योजनायतवक्त्रा च दशयोजनविस्तृता ॥४२॥
सप्ततालप्रमाणाश्च यस्या दन्ता भयानकाः। क्रोशप्रमाणजिह्वा च महालोला भयंकरी ॥४३॥
अतीवरौद्राः संनद्धा भीमाः शंकरकिंकराः। अतिभीमा भैरवाश्च नन्दी चरणकर्कशः ॥४४॥
शिवस्य पार्षदाः सर्वे महाबलपराक्रमाः। वीरभद्रादयः शूराः कोटिसूर्यसमप्रभाः ॥४५॥
सहस्रमूर्ध्नः शेषस्य फणामण्डलभूषणम्। विश्वं सर्षपतुल्यं च को वा योद्धा च तत्समः ॥४६॥
कालाग्निरुद्रः संहर्ता यस्य शंभोश्च किंकराः। शूलिनस्त्रिपुरघ्नस्य ज्वलतो ब्रह्मतेजसा ॥४७॥
यस्य पाशुपतास्त्रेण दुर्निवार्येण पुत्रकाः। भस्मीभूतं भवेद्विश्वं दैत्यानां चैव का कथा ॥४८॥
यस्य शूलेन भिन्नश्च शङ्खचूडः प्रतापवान्। सुदामा पार्षदवरः कृष्णस्य परमात्मनः ॥४९॥
त्रिकोटिसूर्यसदृशस्तेजस्वी परमाद्भुतः। राधाकवचकण्ठश्च सर्वदैत्यजनेश्वरः ॥५०॥
मधुकैटभयोर्हन्ता हिरण्यकशिपोश्च यः। स च विष्णुः समायाति श्वेतद्वीपात्स्वयं प्रभुः ॥५१॥
इत्युक्त्वा जगतां धाता विरराम च संसदि। प्रहस्योवाच दैतेयो दानवानामधीश्वरः ॥५२॥

ब्रह्मा बोले—हे वत्स! वे कालाग्नि हैं, विश्व के संहर्ता होने के नाते सभी बलवानों में बड़े हैं, इसलिए उनके साथ कौन युद्ध कर सकेगा? ॥४०॥ उनके साथ में रहने वाली जगन्माता भद्रकाली हैं, जो हाथ में खड्ग और खप्पर लिये रहती हैं, उस दुर्द्धर्षा के साथ कौन युद्ध करेगा? ॥४१॥ उस सहस्रभुजा देवी के साथ कौन लड़ेगा, जो मुण्डमाला से विभूषित है तथा जिसका मुख एक योजन लंबा है और दश योजन विस्तृत है। उसके सात ताड़ के प्रमाण भयानक दाँत तथा एक कोश की लपलपाती और भयंकरी जिह्वा है ॥४२-४३॥ अत्यन्त रौद्र और भीषण शंकर के सेवक भी सन्नद्ध हैं, और अति भयंकर भैरव एवं रणकर्कश नन्दी तथा शिवजी के अन्य सभी वीरभद्र आदि पार्षदगण महाबलवान्, पराक्रमी, शूर और करोड़ों सूर्य के समान प्रभापूर्ण हैं। सहस्र शिर वाले शेष भी हैं, जिनके फणा-मण्डल ही भूषण हैं एवं जो विश्व को राई के समान अपने शिर पर रखते हैं। उनके समान कौन योद्धा है? ॥४४-४६॥ हे पुत्र! त्रिपुरहन्ता और ब्रह्मतेज से प्रज्वलित होने वाले जिस शिव जी के कालाग्नि रुद्र संहर्ता हैं एवं सेवक त्रिशूलधारी हैं, तथा जिनके दुर्निवार पाशुपत अस्त्र से समस्त विश्व भस्म हो सकता है, उनके सामने दैत्यों की क्या गिनती है? ॥४७-४८॥ जिनके शूल से प्रतापी शंखचूड़ छिन्न-भिन्न होकर नष्ट हो गया, जो परमात्मा श्रीकृष्ण का सुदामा नामक उत्तम पार्षद और तीन करोड़ सूर्य के समान तेजस्वी, परम अद्भुत, कण्ठ में राधा जी के कवच से भूषित एवं समस्त दैत्यों का अधीश्वर था, वे तथा मधु-कैटभ के निहन्ता और हिरण्यकशिपु को विदीर्ण करने वाले स्वयं प्रभु विष्णु भी श्वेतद्वीप से आ रहे हैं ॥४९-५१॥ इस प्रकार उस सभा में कहकर जगत् के विधाता ब्रह्मा चुप हो गये। अनन्तर दानवों के अधीश्वर दैत्य ने हँसकर कहा ॥५२॥

प्रह्लाद उवाच

नमस्तुभ्यं जगद्धातः सर्वेषां प्राक्तनेश्वर । सर्वपूज्यः सर्वनाथः किं वक्ष्यामि तवाग्रतः ॥५३॥
हिरण्यकशिपोर्हन्ता मधुकैटभयोश्च यः । सा कला यस्य कृष्णस्य परिपूर्णतमस्य च ॥५४॥
सर्वान्तरात्मनस्तस्य चक्रं नाम सुदर्शनम् । अस्माकं लोकमस्मांश्च शश्वद्रक्ष्यति दुःसहम् ॥५५॥
ततो न बलवाञ्छंभुर्न च पाशुपतं विधे । न च काली न शेषश्च न च रुद्रादयः सुराः ॥५६॥
यस्य लोमसु विश्वानि निखिलानि जगत्पते । सर्वाधारस्य च विभोः स्थूलात्स्थूलतरस्य च ॥५७॥
षोडशांशो भगवतः स चैव हि महान्विराट् । अनन्तो न हि तत्स्थूलो न काली न बृहती ततः ॥५८॥
आगच्छन्तु सुराः सर्वे युद्धं कुर्वन्तु सांप्रतम् । न बिभेमि [1]शरेभ्यश्च न च पाशुपताद्धरात् ॥५९॥
नमस्तुभ्यं भगवते शिवाय शिवरूपिणे । नमोऽनन्ताय साधुभ्यो वैष्णवेभ्यः प्रजापते ॥६०॥
श्रीकृष्णस्य प्रसादेन निर्भयोऽहं निरामयः । न मे स्वात्मबलं ब्रह्मंस्तद्बलं यत्प्रभोर्बलम् ॥६१॥
स्वपापेन मृतस्तातो पुरा वै विष्णुनिन्दया । निर्बन्धाच्छङ्खचूडश्च दर्पाच्च मधुकैटभौ ॥६२॥
त्रिपुरः किंकरोऽस्माकं वीरत्वेन न गण्यते । तथाऽपि प्रेरितस्तेन सरथश्च महेश्वरः ॥६३॥
इत्युक्त्वा दानवश्रेष्ठो विरराम च संसदि । उवाच जगतां धाता पुनरेव च नारद ॥६४॥

प्रह्लाद बोले—हे जगत् के विधाता एवं सभी के प्राचीन अधीश्वर! आप सभी के पूज्य और सभी के स्वामी हैं, अतः आपके सामने मैं क्या कहूँ ॥५३॥ जो हिरण्यकशिपु और मधुकैटभ का हनन करने वाला है, वह जिसकी कला है वह भगवान् श्रीकृष्ण परिपूर्णतम हैं और सभी के अन्तरात्मा हैं। उनका दुःसह सुदर्शन चक्र हमारे लोक और हम लोगों की निरन्तर रक्षा करेगा। हे विधे! उससे बलवान् न शिव हैं, न पाशुपत अस्त्र, न काली, न शेष, और न रुद्र आदि देवता हैं ॥५४-५६॥ हे जगत्पते! जिसके लोम में समस्त विश्व निहित है और जो सभी का आधार, विभु और स्थूल से स्थूलतर है ॥५७॥ उसी भगवान् का सोलहवाँ अंश महान् विराट् है। उसके समान स्थूल न तो अनन्त है और न काली ही उससे बड़ी है ॥५८॥ अब सभी देवगण आयें और युद्ध करें क्योंकि शिवके बाणों और उनके पाशुपत से मैं डरता नहीं ॥५९॥ हे प्रजापते! शिव (कल्याण) रूपी उस भगवान् शिव को नमस्कार है, अनन्त को नमस्कार है, साधु, वैष्णवों को नमस्कार है ॥६०॥ हे प्रभो! भगवान् श्रीकृष्ण के प्रसाद से मैं निर्भय और स्वस्थ हूँ। मेरा अपना कुछ बल नहीं है, जो कुछ है वह प्रभु का है ॥६१॥ पूर्वकाल में मेरे पिता अपने पाप—विष्णु की निन्दा—करने से मरे। निर्बन्ध (दुराग्रह) के कारण शंखचूड मारा गया और दर्प (अभिमान) के नाते मधुकैटभ का निधन हुआ। त्रिपुर हम लोगों का किंकर (सेवक) था, वीरों में उसकी गणना नहीं है। तथापि उससे उकसाये जाने पर महादेव ने रथ पर बैठ कर उसका संहार किया था ॥६२-६३॥ हे नारद! सभा में दानवश्रेष्ठ प्रह्लाद इतना कहकर चुप हो गये, अनन्तर जगत् के विधाता ब्रह्मा ने पुनः कहना आरम्भ किया ॥६४॥

---

१ क. सुरे० ।

ब्रह्मोवाच

विनाशकारणं युद्धमुभयोर्दैत्यदेवयोः । सुप्रीत्याचरणं वत्स सर्वमङ्गलकारणम् ॥६५॥
तारां भिक्षां देहि मह्यं भिक्षुकाय च वेधसे । विमुखे भिक्षुके राजन्गृहस्थः सर्वपापभाक् ॥६६॥

सनत्कुमार उवाच

स्वकीर्तिं रक्ष राजेन्द्र सिंहस्त्वं सुरदैत्ययोः । यस्य भिक्षुर्जगद्धाता तस्य कीर्तेश्च का कथा ॥६७॥

सनातन उवाच

न जितस्त्वं सुरेन्द्रैश्च ब्रह्मेशानपुरोगमैः । रक्षितः कृष्णचक्रेण वैष्णवः पुण्यवाञ्छुचिः ॥६८॥

सनन्दन उवाच

यस्येष्टदेवः सर्वात्मा श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः । गुरुश्च वैष्णवः शुक्रः स च केन जितो महान् ॥६९॥

सनक उवाच

पुण्यवान्न जितः केन जितः पापी स्वपातकैः । पुण्यदीपो न निर्वाति पाषण्डेनैव वायुना ॥७०॥

ऋषय ऊचुः

देहि तारां महाभाग चन्द्रं प्राणाधिकं गुरोः । स्वकीर्तिं रक्ष सुचिरं प्रार्थयामः पुनः पुनः ॥७१॥

ब्रह्मा बोले—हे वत्स! युद्ध देव-दानव दोनों कुल के विनाश का कारण होगा, अतः अति प्रेम से व्यवहार करो, जो समस्त मंगलों का कारण है॥६५॥ हे राजन्! मैं ब्रह्मा होकर तुम्हारे यहाँ भिक्षुक बना हूँ, अतः मुझे भिक्षा रूप में तारा को दे दो। क्योंकि भिक्षुक के विमुख होने पर गृहस्थ को समस्त पाप का भागी होना पड़ता है॥६६॥

सनत्कुमार बोले—हे राजेन्द्र! देव और दैत्य के वंश में तुम सिंह हो, अतः अपनी कीर्ति की रक्षा करो। और जिसके यहाँ (द्वार पर) जगत् के विधाता भिक्षुक हों, उसकी कीर्ति की कौन बात कही जाये॥६७॥

सनातन बोले—ब्रह्मा, शिव आदि देवगण तुम्हें जीत नहीं सके, क्योंकि तुम पुण्यवान् एवं पवित्र वैष्णव हो और इसीलिए भगवान् श्रीकृष्ण के चक्र से सुरक्षित हो॥६८॥

सनन्दन बोले—जिसके इष्टदेव सर्वात्मा श्रीकृष्ण हैं, जो प्रकृति से परे हैं और गुरु वैष्णव शुक्र हैं, उस महान् को कौन जीत सकता है॥६९॥

सनक बोले—पुण्यवान् को कोई नहीं जीत सकता है। पापी अपने पातकों से विजित होता है। क्योंकि पाषण्डरूपी वायु से पुण्यदीप कभी भी नहीं बुझता॥७०॥

ऋषिगण बोले—हे महाभाग! गुरु (बृहस्पति) को तारा और प्राणों से बढ़कर चन्द्रमा दे दो। मैं बार-बार प्रार्थना करता हूँ कि अपनी कीर्ति को अति चिरकाल तक के लिए सुरक्षित रखो॥७१॥

प्रह्लाद उवाच

स्थिते मदीश्वरे साक्षान्नहि भृत्यो विराजते। कर्तारं ब्रूहि मन्नाथं गुरुं शुक्रं सतां वरम्॥७२॥
शिष्याणामाधिपत्ये च साधूनां गुरुरीश्वरः। गुरौ समर्पितं पूर्वं[1] सर्वैश्वर्यं मुनीश्वरे॥७३॥
वयं भृत्याश्च पोष्याश्च स्वगुरोः परिचारकाः। ते च शिष्याः कुशलिनः गुर्वाज्ञां पालयन्ति ये॥७४॥
प्रह्लादस्य वचः श्रुत्वा चकार प्रार्थनां कविम्। ददौ शुक्रश्च तारां तां चन्द्रं च मलिनं मुने॥७५॥
दत्त्वा तारां विधुं शुक्रः प्रणनाम विधेः पदे। नमस्कृत्य मुनिभ्यश्च प्रणतः स्वपुरं ययौ॥७६॥
प्रह्लादः सगणो भक्त्या नमस्कृत्य विधेः पदे। प्रत्येकं वै मुनिगणान्प्रणतः स्वगृहं ययौ॥७७॥
ब्रह्मा ददर्श तारां च प्रणतां स्वपदे सतीम्। लज्जया नम्रवक्त्रां च रुदतीं गुर्विणीं मुने॥७८॥
चन्द्रं च प्रणतं धाता क्रोडे संस्थाप्य मायया। उवाच मलिनां तारां कातरां च कृपामयः॥७९॥
तारे त्यज भयं मत्तो भयं किं ते मयि स्थिते। सौभाग्ययुक्ता स्वपतौ भविष्यसि वरेण मे॥८०॥
दुर्बला बलिना ग्रस्ता निष्कामा न च्युता भवेत्। प्रायश्चित्तेन शुद्धा सा न स्त्री जारेण दुष्यति॥८१॥
सकामा कामतो जारं भजते स्वसुखेन च। प्रायश्चित्तान्न शुद्धा सा स्वामिना परिवर्जिता॥८२॥

प्रह्लाद बोले—हम लोगों के अधीश्वर के साक्षात् विद्यमान रहते हुए, कोई सेवक उस पद को सुशोभित नहीं कर सकता है (अर्थात् इसकी स्वीकृति प्रदान नहीं कर सकता)। यह बातें मेरे गुरु एवं स्वामी शुक्र से कहिये, जो सज्जनों में प्रवर हैं। सज्जन शिष्यों के अधिपति गुरु होते हैं, जो ईश्वर के समान होते हैं। मैंने अपना समस्त ऐश्वर्य पूर्वकाल में ही गुरु को सौंप दिया था॥७२-७३॥ हम लोग अपने गुरु के सेवक एवं पोष्य वर्ग हैं क्योंकि वे ही शिष्य कुशली कहे जाते हैं जो गुरु की आज्ञा का पालन करते हैं॥७४॥ हे मुने! प्रह्लाद की ऐसी बातें सुनकर उन्होंने कवि (शुक्र) से प्रार्थना की। अनन्तर शुक्र ने तारा को और पापी चन्द्रमा को उन्हें लौटा दिया॥७५॥ शुक्र ने तारा और चन्द्रमा को देकर ब्रह्मा का चरणस्पर्श करते हुए उन्हें प्रणाम किया और विनय-विनम्र होकर मुनियों को प्रणाम करके अपने नगर को चले गये॥७६॥ अपने गण समेत प्रह्लाद ने भी भक्तिपूर्वक ब्रह्मा का चरण स्पर्श करके प्रत्येक मुनिगण को प्रणाम किया और अपने गृह चले गये॥७७॥ हे मुने! ब्रह्मा ने सती तारा को अपना चरणस्पर्श करते देखा जो लज्जा से नीचे मुख किये, गर्भिणी एवं रोदन कर रही थी॥७८॥ अनन्तर प्रणाम करते हुए चन्द्रमा को देखकर दयालु ब्रह्मा ने उन्हें उठाया और माया से अपनी गोद में बैठा कर मलिन तथा डरी हुई तारा से कहा॥७९॥ हे तारे! मुझसे भय न करो और मेरे रहते तुम्हें भय कैसा? मेरे वरदान द्वारा तुम पुनः अपने पति की सौभाग्यशालिनी हो जाओगी॥८०॥ क्योंकि दुर्बला निष्काम स्त्री किसी बलवान् से ग्रस्त होने पर (स्वधर्म से) च्युत नहीं होती है। वह प्रायश्चित्त से शुद्ध हो जाती है, और जार (व्यभिचारी) द्वारा दूषित नहीं मानी जाती॥८१॥ जो कामनापूर्वक कामुकी होकर अपने सुख के लिए जार (व्यभिचारी) पुरुष का सेवन करती है, उसकी शुद्धि प्रायश्चित्त से भी नहीं होती है, इसीलिए वह पति-

---

१ क. पूर्णं।

कुम्भीपाके पच्यते सा यावच्चन्द्रदिवाकरौ। अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं स्पर्शनं सर्वपापदम् ८३॥
पापीयस्याश्च तस्याश्च साधुभिः परिवर्जितम् ॥८४॥
कस्य गर्भं वद शुभे गच्छ वत्से गुरोर्गृहम्। त्यज लज्जां महाभागे सर्वं च प्राक्तनाद्भवेत्॥८५॥
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा तमुवाच सती तदा। चन्द्रस्य गर्भं हे तात बिभर्म्यद्य स्वकर्मणा॥८६॥
सर्वे मे साक्षिणः सन्ति दुर्बलायाः प्रजापते। यदा जग्राह चन्द्रो मां दयाहीनश्च दुर्मतिः।८७॥
इत्युक्त्वा तारकादेवी सुषाव कनकप्रभम्। कुमारं सुन्दरं तत्र ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा॥८८॥
गृहीत्वा तनयं चन्द्रो नत्वा ब्रह्माणमीश्वरम्। जगाम स स्वभवनं ब्रह्मा सिन्धुतटं ययौ॥८९॥
साध्वीं तारां च गुरवे देवेभ्योऽप्यभयं ददौ। आशिषं शंभुधर्माभ्यां दत्त्वा लोकं ययौ विधिः॥९०॥
देवा ययुः स्वभवनं स्वगृहं च बृहस्पतिः। भावानुरक्तवनितां प्राप्य संहृष्टमानसः॥९१॥
तारकागर्भसंभूतः स एव च बुधः स्वयम्। तेजस्वी सद्ग्रहो ब्रह्मंश्चन्द्रस्य तनयो महान्॥९२॥
स एव नन्दनवने चित्रां संप्राप्य निर्जने। घृताच्या गर्भसंभूतां कुबेरस्य च रेतसा॥९३॥
दृष्ट्वा च निर्जने रम्यां कन्यां कमललोचनाम्। अतीव यौवनस्थां च बालां षोडशवार्षिकीम्।
गान्धर्वेण विवाहेन तां जग्राह विधोः सुतः ॥९४॥

त्यक्ता हो जाती है॥८२॥ तथा चन्द्र-सूर्य के समय तक वह कुम्भीपाक नरक में पकती रहती है। उसका अन्न विष्ठा के तुल्य, जल मूत्र के समान और स्पर्श समस्तपापप्रदायक होता है॥८३॥ अतः उस अत्यन्त पापिनी का अन्न-पान साधुओं को त्याज्य है। हे वत्से! अब यह बताओ कि यह किसका गर्भ है? और तुम बृहस्पति के यहाँ चली जाओ॥८४॥ हे महाभागे! अब लज्जा त्याग दो, क्योंकि सभी कुछ प्राक्तन (जन्मान्तरीय) कर्म के अनुसार ही होता है। ब्रह्मा की ऐसी बातें सुनकर उस पतिव्रता ने उनसे कहा—हे तात! यह चन्द्रमा का गर्भ है, जिसका अपने कर्मानुसार मैं भरण-पोषण कर रही हूँ। हे प्रजापते! जिस समय दुष्टबुद्धि एवं निर्दय चन्द्रमा ने मुझ दुर्बला को पकड़ लिया उस समय के सभी लोग मेरे साक्षी हैं। इतना कहकर तारा ने सुवर्ण के समान प्रभापूर्ण एक कुमार उत्पन्न किया॥८५-८७॥ उस सुन्दर कुमार को, जो ब्रह्मतेज से देदीप्यमान था, लेकर चन्द्रमा ने ब्रह्मा को नमस्कार किया और अपने घर चले गये। पश्चात् ब्रह्मा भी बृहस्पति को तारा सौंपकर, देवों को अभय और शिव एवं धर्म को शुभाशिष प्रदान कर अपने लोक चले गये। अनन्तर देवता लोग और बृहस्पति भी अपने-अपने घर गये॥८८-९०॥ अपनी भावानुरागिणी स्त्री को पुनः प्राप्त कर गुरु अत्यन्त प्रसन्न हुए। इस प्रकार तारा के गर्भ से उत्पन्न होनेवाले कुमार का नाम बुध हुआ। हे ब्रह्मन्! चन्द्रमा का वह (बुध) पुत्र महान् तेजस्वी एवं उत्तम ग्रह हुआ। उसी बुध ने एक बार निर्जन नन्दन वन में चित्रा को देखकर, जो कुबेर के वीर्य से घृताची अप्सरा के गर्भ से उत्पन्न हुई थी तथा रम्य, कमल के समान नेत्रों वाली तथा पूर्ण यौवन सम्पन्न सोलह वर्ष की बाला थी, गान्धर्व विवाह द्वारा उसको अपना लिया॥९१-९४॥ एकान्त में उसके साथ उपभोग कर उन्होंने उसमें

तस्यामथायं रहसि वीर्याधानं चकार सः। बभूव राजा चित्रायां चैत्रो वै मण्डलेश्वरः ॥९५॥
सप्तद्वीपवतीं पृथ्वीं शास्ति वै धार्मिको बली। शतं नद्यो घृतानां च दध्नां नद्यः शतानि च ॥९६॥
शतानि नद्यो दुग्धानां मधुनद्यश्च षोडश। दश नद्यश्च तैलानां शर्करालक्षराशयः ॥९७॥
मिष्टान्नानां स्वस्तिकानां लक्षराश्यश्च नित्यशः। पञ्चकोटिगवां मांसं सापूपं स्वन्नमेव च ॥९८॥
एतेषां च नदीराशीर्भुञ्जते ब्राह्मणा मुने। गवां लक्षं च रत्नानां मणीनां लक्षमेव च ॥९९॥
शतलक्षं सुवर्णानां लक्षं वै सूक्ष्मवाससाम्। रत्नानां भूषणं पात्रमतीव सुमनोहरम् ॥१००॥
ददौ द्विजातये राजा नित्यं वै जीवितावधि। तस्य चैत्रस्य पुत्रश्च राजाऽधिरथ एव च ॥१०१॥
तस्य पुत्रश्च सुरथश्चक्रवर्ती बृहच्छ्रवाः। महाज्ञानं च संप्राप्य मेधसो मुनिसत्तमात् ॥१०२॥
भेजे पुरा विष्णुमायां पुण्यक्षेत्रे च भारते। शरत्काले महापूजां चकार स सरित्तटे ॥१०३॥
वैश्येन सार्धं स महाञ्ज्ञानिनां मुनिसत्तम। राजा कलिङ्गदेशस्य विराधश्च विशां वरः ॥१०४॥
तस्य पुत्रो महायोगी द्रुमिणो ज्ञानिनां वरः। द्रुमिणो वैष्णवः प्राज्ञः पुष्करे दुष्करं तपः ॥१०५॥
कृत्वा समाधिं संप्राप ज्ञानिनां वैष्णवाग्रणीः। पुत्रैर्दारैर्निरस्तश्च धनलोभाद्दुरात्मभिः ॥१०६॥
स च कोटिसुवर्णं च नित्यं दत्त्वा जलं पपौ। मुक्तिं संप्राप संसेव्य विष्णुमायां सनातनीम् ॥१०७॥

गर्भाधान किया, जिससे चित्रा में चैत्र नामक मण्डलेश्वर राजा उत्पन्न हुआ ॥९५॥ उस धार्मिक तथा बलवान् (राजा) ने सातों द्वीप वाली पृथिवी पर (एकच्छत्र) शासन किया। उसके शासन-काल में घृत की सौ नदियाँ, दही की सौ नदियाँ, दुग्ध की सौ नदियाँ, मधु (शहद) की सोलह नदियाँ एवं तेल की दश नदियाँ बहती थीं। तथा एक लक्ष शक्कर की राशि और लड्डुओं तथा मिष्टान्नों की नित्य एक लक्षराशि, पाँच करोड़ मांस-राशि, एवं मालपूआ आदि समेत सुन्दर भोजन बनता था। हे मुने! इन नदियों एवं राशियों के उपभोग ब्राह्मण-वृन्द नित्य करते थे। इस भाँति राजा अपने जीवन काल तक नित्य एक लाख गौ, एक लाख रत्न मणि, सौ लाख सुवर्ण, एक लाख सूक्ष्म वस्त्र, रत्नों के आभूषण और अति मनोहर पात्र ब्राह्मणों को दान करता था। अनन्तर उस चैत्र राजा के अधिरथ नामक पुत्र हुआ ॥९६-१०१॥ उसके सुरथ नामक चक्रवर्ती राजा बृहच्छ्रवा पुत्र हुआ, जिसने पूर्वकाल में मुनिश्रेष्ठ मेधस् ऋषि से महाज्ञान को प्राप्ति कर पुण्यक्षेत्र भारत में विष्णुमाया (दुर्गा) की उपासना की थी। उस महाज्ञानी ने शारदीय नवरात्र में नदी के तट पर वैश्य के साथ महापूजा सुसम्पन्न की ॥१०२-१०३॥ हे मुनिश्रेष्ठ! कलिंग देश का राजा विराध वैश्यों में श्रेष्ठ था। उसका पुत्र द्रुमिण महायोगी एवं ज्ञानिप्रवर हुआ। महाबुद्धिमान् एवं वैष्णव द्रुमिण ने पुष्कर क्षेत्र में महाकठिन तप किया जिससे उसके समाधि-नामक पुत्र प्राप्त हुआ, जो ज्ञानियों और वैष्णवों में अग्रणी था। उसके दुष्ट पुत्र और स्त्री ने धन के लोभ से उसे घर से निकाल दिया था, जो नित्य करोड़ सुवर्ण-मुद्रा दान कर जल पीता था। उपरान्त उसने सनातनी विष्णुमाया (दुर्गा) की आराधना करके मुक्ति प्राप्त की ॥१०४-१०७॥ हे मुने! इस प्रकार उस

राजा लेभे मनुत्वं च राज्यं निष्कण्टकं मुने। उवाच मधुरं वाक्यं धाता त्रिजगतां पतिः॥१०८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० दुर्गोपा० गुरोस्ताराप्राप्ति-
बुधोत्पत्त्यादिवर्णनं नामैकषष्टितमोऽध्यायः॥६१॥

अथ द्विषष्टितमोऽध्यायः

नारद उवाच

कथं राजा महाज्ञानं संप्राप मुनिसत्तमात्। वैश्यो मुक्तिं मेधसश्च तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥१॥

नारायण उवाच

ध्रुवस्य पौत्रो बलवान्नन्दिरुत्कलनन्दनः। स्वायंभुवमनोर्वंश्यः सत्यवादी जितेन्द्रियः॥२॥
अक्षौहिणीनां शतकं गृहीत्वा सैन्यमेव च। कोलां च वेष्टयामास सुरथस्य महामतेः॥३॥
युद्धं बभूव नियतं पूर्णमब्दं च नारद। चिरंजीवी वैष्णवश्च जिगाय सुरथं नृपः॥४॥
एकाकी सुरथो भीतो नन्दिना च बहिष्कृतः। निशायां हयमारुह्य जगाम गहनं वनम्॥५॥
ददर्श तत्र वैश्यं च पुष्पभद्रानदीतटे। तयोर्बभूव संप्रीतिः कृतबान्धवयोर्मुने॥६॥

राजा ने निष्कण्टक राज्य प्राप्त किया तथा जन्मान्तर में वह मनु हुआ जिसे तीनों लोकों के स्वामी विधाता ने मधुर वाक्य कहा था॥१०८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृति खण्ड में नारद-नारायण-संवादान्तर्गत दुर्गोपाख्यान में गुरु को तारा की प्राप्ति और बुध की उत्पत्ति आदि का वर्णन नामक इकसठवाँ अध्याय समाप्त॥६१॥

अध्याय ६२

सुरथ और वैश्य की मनःकामना-सिद्धि

नारद बोले—राजा सुरथ को मुनिश्रेष्ठ मेधस् द्वारा महाज्ञान की प्राप्ति और वैश्य (समाधि) को मुक्ति की प्राप्ति कैसे हुई थी, मुझे बताने की कृपा करें॥१॥

श्री नारायण बोले—ध्रुव के पौत्र राजा नन्दि ने जो बलवान्, उत्कल का पुत्र, स्वायम्भुव मनु के वंश में उत्पन्न, सत्यवक्ता और इन्द्रियसंयमी था, अपनी सौ अक्षौहिणी सेना लेकर बुद्धिमान् सुरथ की कोला नगरी को घेर लिया॥२-३॥ हे नारद! पूरे वर्ष तक नियत रूप से युद्ध होता रहा। अनन्तर चिरजीवी एवं वैष्णव राजा नन्दि ने सुरथ को जीत लिया॥४॥ एकाकी एवं भयभीत सुरथ नन्दि द्वारा निकाल दिये जाने पर आधी रात के समय घोड़े पर बैठकर घोर वन में चला गया॥५॥ वहाँ पुष्पभद्रा नदी के तट पर उसे एक वैश्य दिखायी पड़ा। हे मुने! उन दोनों में अतिप्रेम और भाईचारे का दृढ़ सम्बन्ध स्थापित हुआ॥६॥

वैश्येन सार्धं नृपतिरगच्छन्मेधसाश्रमम्। पुष्करं दुष्करं पुण्यक्षेत्रं वै भारते सताम्॥७॥
ददर्श तत्र नृपतिर्मुनीन्द्रं तीव्रतेजसम्। शिष्येभ्यश्च प्रवोचन्तं ब्रह्मतत्त्वं सुदुर्लभम्॥८॥
राजा ननाम वैश्यश्च शिरसा मुनिपुंगवम्। मुनिस्तौ पूजयामास ददौ ताभ्यां शुभाशिषम्॥९॥
प्रश्नं चकार कुशलं जातिनाम पृथक्पृथक्। ददौ प्रत्युत्तरं राजा क्रमेण मुनिपुंगवम्॥१०॥

सुरथ उवाच

राजाऽहं सुरथो [1]ब्रह्मंश्चैत्रवंशसमुद्भवः। बहिष्कृतः स्वराज्याच्च नन्दिना बलिनाऽधुना॥११॥
कमुपायं करिष्यामि कथं राज्यं भवेन्मम। तन्मां ब्रूहि महाभाग त्वामेव शरणागतम्॥१२॥
अयं वैश्यः समाधिश्च स्वगृहाच्च बहिष्कृतः। पुत्रैः कलत्रैर्दैवेन धनलोभेन धार्मिकः॥१३॥
ब्राह्मणाय ददौ नित्यं रत्नकोटिं दिने दिने। निषिध्यमानः पुत्रैश्च कलत्रैर्बान्धवैरयम्॥१४॥
कोपान्निराकृतस्तैश्च पुनरन्वेषितः शुचा। अयं गृहं च न ययौ विरक्तो ज्ञानवाञ्छुचिः॥१५॥
पुत्राश्च पितृशोकेन गृहं त्यक्त्वा ययुर्वनम्। दत्त्वा धनानि विप्रेभ्यो विरक्ताः सर्वकर्मसु॥१६॥
सुदुर्लभं हरेर्दास्यं वैश्यस्यास्य च वाञ्छितम्। कथं प्राप्नोति निष्कामस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥१७॥

अनन्तर वैश्य को साथ लेकर राजा सुरथ मेधस् मुनि के आश्रम पुष्कर में गये, जो भारत में सज्जनों को कठिनता से प्राप्त होनेवाला पुण्यक्षेत्र है॥७॥ वहाँ राजा ने तीक्ष्ण तेज से युक्त मुनि को देखा, जो शिष्यों को अतिदुर्लभ ब्रह्मतत्त्व बता रहे थे॥८॥ राजा और वैश्य दोनों ने मुनिश्रेष्ठ को शिर से प्रणाम किया तथा मुनि ने भी शुभाशिष प्रदानपूर्वक दोनों का स्वागत किया॥९॥ पृथक्-पृथक् जाति और नाम पूछते हुए उन्होंने उन दोनों से कुशल मंगल पूछा। राजा ने क्रमशः मुनिश्रेष्ठ को उत्तर दिया॥१०॥

सुरथ बोले—हे ब्रह्मन्! मैं चैत्र-वंश में उत्पन्न सुरथ नामक राजा हूँ। सम्प्रति बलवान् राजा नन्दि ने मुझे मेरे राज्य से पृथक् कर दिया है॥११॥ हे महाभाग! मैं क्या उपाय करूँ जिससे मुझे अपना राज्य पुनः प्राप्त हो जाये, मुझे बतायें, इसीलिए मैं आपकी शरण आया हूँ॥१२॥ यह समाधि नामक वैश्य है। दैववश धन के लोभ से पुत्र और स्त्री ने इस धार्मिक को अपने घर से निकाल दिया है॥१३॥ यह प्रतिदिन ब्राह्मणों को करोड़ रत्न का दान देते थे। पुत्रों, स्त्रियों और बन्धुओं ने इन्हें मना किया। अन्त में न मानने पर क्रुद्ध होकर उन लोगों ने इन्हें निकाल दिया। क्रोध शान्त होने पर पुनः उन लोगों ने इनका पता लगाया। किन्तु ज्ञानी और पवित्र-हृदय होने के नाते इन्हें विराग हो गया, जिससे ये पुनः घर नहीं लौट सके॥१४-१५॥ उधर पुत्रलोग पिता के शोक में घर छोड़कर वन चले गये। वहाँ सभी कर्मों से विरक्त होकर उन्होंने ब्राह्मणों को समस्त धन दे डाले॥१६॥ अब इनकी एकमात्र यही अभिलाषा है कि—'किस प्रकार भगवान् की अतिदुर्लभ दास्यभक्ति प्राप्त हो।' इन निष्काम को यह कैसे प्राप्त होगी, मुझे बताने की कृपा करें॥१७॥

१क० नाम चै०।

मेधा उवाच

करोति मायया छन्नं विष्णुमाया दुरत्यया। निर्गुणस्य च कृष्णस्य त्रिगुणा विश्वमाज्ञया॥१८॥
कृपां करोति येषां सा धर्मिणां च कृपामयी। तेभ्यो ददाति कृपया कृष्णभक्तिं सुदुर्लभाम्॥१९॥
येषां मायाविनां माया न करोति कृपां नृप। मायया तान्निबध्नाति मोहजालेन दुर्गतान्॥२०॥
नश्वरे नित्यसंसारे भ्रामयेद्बर्बरा सदा। कुर्वती नित्यबुद्धिं च विहाय परमेश्वरम्॥२१॥
देवमन्यं निषेवन्ते तन्मन्त्रं च जपन्ति च। मिथ्या किंचिन्निमित्तं च कृत्वा मनसि लोभतः॥२२॥
सप्तजन्मसु संसेव्य देवताश्च हरेः कलाः। तदा प्रकृत्याः कृपया सेवन्ते प्रकृतिं सदा॥२३॥
सप्तजन्मसु संसेव्य विष्णुमायां कृपामयीम्। शिवे भक्तिं लभन्ते ते ज्ञानानन्दे सनातने॥२४॥
ज्ञानाधिष्ठातृदेवं च हरेः संसेव्य शंकरम्। अचिराद्विष्णुभक्तिं च प्राप्नुवन्ति महेश्वरात्॥२५॥
सेवन्ते सगुणं सत्त्वं विष्णुं विषयिणं तदा। सत्त्वज्ञानाच्च पश्यन्ति ज्ञानं वै निर्मलं नराः॥२६॥
निषेव्य सगुणं विष्णुं सात्त्विका वैष्णवा नराः। लभन्ते निर्गुणे भक्तिं श्रीकृष्णे प्रकृतेः परे॥२७॥
गृह्णन्ति सन्तस्तद्भक्ता मन्त्रं तस्य निरामयम्। निषेव्य निर्गुणं देवं ते भवन्ति च निर्गुणाः॥२८॥
असंख्यब्रह्मणां पातं ते च पश्यन्ति वैष्णवाः। दास्यं कुर्वन्ति सततं गोलोके च निरामये॥२९॥

मेधस् ऋषि बोले—अजेय तथा त्रिगुणात्मक विष्णुमाया निर्गुण भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा से समस्त विश्व को आच्छन्न किये (ढके) रहती है॥१८॥ वह कृपामयी जिन धार्मिक जनों पर कृपा करती है, उन्हें भगवान् श्रीकृष्ण की अतिदुर्लभ भक्ति प्रदान करती है॥१९॥ हे नृप! जिनके ऊपर यह माया कृपा नहीं करती है, उन्हें अपनी माया से (सांसारिक पदार्थों) में बाँधे रहती है, और मोहजाल में फँसाकर उनकी दुर्गति कराती है॥२०॥ इस नश्वर एवं अनित्य संसार में उन्हें यह सदैव भ्रमण कराती है और परमेश्वर से अलग करके संसार में नित्य बद्धि उत्पन्न करा देती है॥२१॥ जिससे वे प्राणी लोभवश मन में कुछ मिथ्या निमित्त बनाकर अन्य देव की उपासना एवं उसका मंत्र जपते हैं॥२२॥ सात जन्मों में भगवान् की कला (अंश) रूप देवों की सेवा करने के उपरान्त प्रकृति (दुर्गा) की कृपा से वे दुर्गा के भक्त होते हैं॥२३॥ पुनः सात जन्मों तक कृपामयी एवं सनातनी विष्णुमाया (दुर्गा) की सेवा करने के बाद भगवान् शिव की भक्ति प्राप्त होती है, जो सनातन एवं ज्ञानानन्द रूप हैं॥२४॥ पुनः ज्ञान के अधिष्ठाता देव भगवान् शंकर की सेवा करने पर, उनके द्वारा भगवान् विष्णु की भक्ति शीघ्र प्राप्त हो जाती है॥२५॥ और सगुण एवं सत्त्व रूप विषयी विष्णु की सेवा करने पर मनुष्यों को सत्त्वज्ञान द्वारा निर्मल ज्ञान की प्राप्ति होती है॥२६॥ इस प्रकार सगुण विष्णु की सेवा करने पर सात्त्विक वैष्णव जनों को निर्गुण भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति प्राप्त होती है, जो प्रकृति से परे हैं॥२७॥ उनके भक्त सन्त लोग उनका निरामय (निर्विकार) मंत्र ग्रहण करते हैं और उसके द्वारा निर्गुण देव (भगवान् श्रीकृष्ण) की सेवा कर के स्वयं भी निर्गुण हो जाते हैं॥२८॥ वे वैष्णव लोग निरामय गोलोक में भगवान् की दास्य भक्ति द्वारा सेवा करते हुए असंख्य ब्रह्मा का पतन (पूरी आयु में मरण) देखते हैं॥२९॥ जो श्रेष्ठ मनुष्य,

कृष्णभक्तात्कृष्णमन्त्रं यो गृह्णाति नरोत्तमः । पुरुषाणां सहस्रं च स्वपितृणां समुद्धरेत् ॥३०॥
मातामहानां साहस्रमुद्धरेन्मातरं तथा । दासादिकं समुद्धृत्य गोलोकं स प्रयाति च ॥३१॥
भवार्णवे महाघोरे कर्णधारस्वरूपिणी । दीनान्पारयते नित्यं कृष्णभक्त्या च नौकया ॥३२॥
स्वकर्मबन्धनं छेत्तुं वैष्णवानां च वैष्णवी । तीक्ष्णशस्त्रस्वरूपा सा कृष्णस्य परमात्मनः ॥३३॥
विवेचिका चाऽऽवरणी शक्तेः शक्तिर्द्विधा नृप । पूर्वं ददाति भक्ताय चेतराय परात्परा ॥३४॥
सत्यस्वरूपः श्रीकृष्णस्तस्मात्सर्वं च नश्वरम् । बुद्धिर्विवेचिकेत्येवं वैष्णवानां सतामपि ॥३५॥
नित्यरूपा ममेयं श्रीरिति चाऽऽवरणी च धीः । अवैष्णवानामसतां कर्मभोगभुजामहो ॥३६॥
अहं प्रचेतसः पुत्रः पौत्रश्च ब्रह्मणो नृप । भजामि कृष्णमात्मानं ज्ञानं संप्राप्य शंकरात् ॥३७॥
गच्छ राजन्नदीतीरं भज दुर्गां सनातनीम् । बुद्धिमावरणीं तुभ्यं देवी दास्यति कामिने ॥३८॥
निष्कामाय च वैश्याय वैष्णवाय च वैष्णवी । बुद्धिं विवेचिकां शुद्धां दास्यत्येव कृपामयी ॥३९॥
इत्युक्त्वा च मुनिश्रेष्ठो ददौ ताभ्यां कृपानिधिः । पूजाविधानं [दुर्गायाः स्तोत्रं च कवचं मनुम् ॥४०॥
वैश्यो मुक्तिं च संप्राप तां निषेव्य कृपामयीम् । राजा राज्यं मनुत्वं च परमैश्वर्यमीप्सितम् ॥४१॥

भगवान् श्रीकृष्ण के भक्त द्वारा उनका मंत्र ग्रहण करता है, वह अपने पूर्वजों की सहस्र पीढ़ियों के उद्धार समेत मातामह (नाना) की सहस्र पीढ़ियों का तथा माता और भृत्य (नौकर) आदि का उद्धार करता है और अन्त में गोलोक चला जाता है ॥३०-३१॥ वैष्णवी माया महाघोर संसार-सागर में भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति रूपी नौका के द्वारा कर्णधार स्वरूप होकर दीनों को नित्य पार करती है ॥३२॥ एवं परमात्मा श्रीकृष्ण की वैष्णवी माया तीक्ष्ण शस्त्र स्वरूप होकर वैष्णवों के स्वकर्म-बन्धन को काटती है ॥३३॥ हे नृप! शक्ति के विवेचिका और आवरणी नामक—दो भेद हैं। वह सर्वप्रथम भक्त को आवरणी शक्ति प्रदान करती है ॥३४॥ 'भगवान् श्रीकृष्ण सत्य स्वरूप हैं, उनसे पृथक् सभी वस्तुएँ नश्वर हैं' इस प्रकार की विवेचिका (विवेचन करने वाली) बुद्धि भी वह सनातनी देवी वैष्णवों को प्रदान करती है ॥३५॥ और कर्म-भोग भोगने वाले अवैष्णव असज्जनों को, 'मेरी यह लक्ष्मी नित्यस्थायी है' ऐसी आवरणी (मोहात्मक) शक्ति सदैव बनी रहती है, यह आश्चर्य की बात है ॥३६॥ हे नृप! मैं वरुण का पुत्र और ब्रह्मा का पौत्र हूँ। शंकर जी द्वारा ज्ञान प्राप्त कर आत्मस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण को यहाँ भजता हूँ ॥३७॥ हे राजन्! तुम भी नदी के तीर पर जाकर सनातनी दुर्गा की आराधना करो। तुम्हें कामना है, अतः तुम्हें आवरणी बुद्धि प्राप्त होगी ॥३८॥ और कृपामयी एवं वैष्णवी वह भगवती निष्काम एवं वैष्णव उस वैश्य को विवेचिका (विवेचन करने वाली) शुद्ध बुद्धि प्रदान करेगी ॥३९॥ कृपानिधान मुनिश्रेष्ठ ने इतना कह कर उन दोनों को दुर्गा जी का पूजा-विधान, स्तोत्र, कवच और मंत्र प्रदान किया ॥४०॥ अनन्तर वैश्य ने उस कृपामयी भगवती की सेवा करके मुक्ति प्राप्त की और राजा को यथेच्छ परमैश्वर्य समेत राज्य और मनुत्व (मनु होना)

इत्येवं कथितं सर्वं दुर्गोपाख्यानमुत्तमम्। सुखदं मोक्षदं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥४२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० दुर्गोपा० सुरथमेधःसं० सुरथवैश्ययो-
रभिलषितसिद्धिर्नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥६२॥

अथ त्रिषष्टितमोऽध्यायः

नारद उवाच

नारायण महाभाग वद वेदविदां वर। राजा केन प्रकारेण सिषेवे प्रकृतिं पराम् ॥१॥
समाधिर्नाम वैश्यो वा निष्कामं निर्गुणं विभुम्। भेजे केन प्रकारेण प्रकृतेरुपदेशतः ॥२॥
किं वा पूजाविधानं च ध्यानं वा मनुमेव च। किं स्तोत्रं कवचं किं वा ददौ राज्ञे महामुनिः ॥३॥
वैश्याय प्रकृतिस्तस्मै किं वा ज्ञानं ददौ परम्। साक्षाद्बभूव [1]तपसा केन वा प्रकृतिस्तयोः ॥४॥
ज्ञानं संप्राप्य वैश्यश्च किं पदं प्राप दुर्लभम्। गतिर्बभूव राज्ञश्च का वा तां च शृणोम्यहम् ॥५॥

नारायण उवाच

राजा वैश्यश्च संप्राप्य मन्त्रं वै मेधसो मुनेः। स्तोत्रं च कवचं देव्या ध्यानं चैव पुरस्क्रियाम् ॥६॥

प्राप्त हुआ ॥४१॥ इस प्रकार मैंने परमोत्तम दुर्गा जी का उपाख्यान सुना दिया, जो सुखप्रद, मोक्षदायक और सार रूप है। अब और क्या सुनना चाहते हो ॥६२॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण संवाद के अन्तर्गत दुर्गोपाख्यान में सुरथ-मेधस् के संवाद में सुरथ-वैश्य की अभिलषित सिद्धि का वर्णन नामक बासठवाँ अध्याय समाप्त ॥६२॥

अध्याय ६३

दुर्गा और वैश्य का संवाद

नारद बोले—हे नारायण, हे महाभाग, हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ ! राजा ने किस प्रकार परा प्रकृति (दुर्गा) की आराधना की ॥१॥ समाधि नामक वैश्य ने भी किस प्रकार प्रकृति (दुर्गाजी) के उपदेश द्वारा निष्काम एवं निर्गुण व्यापक ब्रह्म की उपासना की ॥२॥ महामुनि ने राजा को कौन पूजा-विधान, ध्यान, मंत्र, स्तोत्र और कवच प्रदान किया ॥३॥ और दुर्गा ने वैश्य को कौन परमोत्तम ज्ञान प्रदान किया तथा किस उपाय द्वारा दुर्गा ने उन दोनों को साक्षात् दर्शन दिया ॥४॥ पुनः ज्ञान प्राप्त कर उस वैश्य ने कौन दुर्लभ पद प्राप्त किया और राजा को कौन गति प्राप्त हुई (ये सब) मुझे बताने की कृपा करें ॥५॥

श्री नारायण बोले—राजा और वैश्य दोनों ने मेधस् मुनि द्वारा (दुर्गा) देवी का मंत्र, स्तोत्र, कवच, और ध्यान प्राप्त कर पुष्कर क्षेत्र में उनके परम मंत्र का जप किया। तब तीनों काल स्नान-पूजा करने पर एक

---

१ ख. सहसा।

जजाप परमं मन्त्रं राजा वैश्यश्च पुष्करे। स्नात्वा त्रिकालं वर्षं च ततः सिद्धो बभूव सः ॥७॥
साक्षाद्बभूव तत्रैव मूलप्रकृतिरीश्वरी। राज्ञे ददौ राज्यवरं मनुत्वं वाञ्छितं सुखम् ॥८॥
ज्ञानं निगूढं वैश्याय ददौ चातिसुदुर्लभम्। यद्दत्तं शूलिने पूर्वं कृष्णेन परमात्मना ॥९॥
निराहारमतिक्लिष्टं दृष्ट्वा वैश्यं कृपामयी। रुरोद कृत्वा क्रोडे तमचेष्टं श्वासवर्जितम् ॥१०॥
चेतनां कुरु भो वत्सेत्युच्चार्य च पुनः पुनः। चेतनां च ददौ तस्मै स्वयं चैतन्यरूपिणी ॥११॥
संप्राप्य चेतनां वैश्यो रुरोद प्रकृतेः पुरः। तमुवाच प्रसन्नाऽसौ कृपयाऽतिकृपामयी ॥१२॥

प्रकृतिरुवाच

वरं वृणुष्व हे वत्स यत्ते मनसि वर्तते। ब्रह्मत्वममरत्वं वा ततो वाऽतिसुदुर्लभम् ॥१३॥
इन्द्रत्वं वा मनुत्वं वा सर्वसिद्धत्वमेव च। तुच्छं तुभ्यं न दास्यामि नश्वरं बालवञ्चनम् ॥१४॥

वैश्य उवाच

ब्रह्मत्वममरत्वं वा मातर्मे नहि वाञ्छितम्। ततोऽतिदुर्लभं किंवा न जाने तदभीप्सितम् ॥१५॥
त्वय्येव शरणापन्नो देहि यद्वाञ्छितं तव। अनश्वरं सर्वसारं वरं मे दातुमर्हसि ॥१६॥

प्रकृतिरुवाच

अदेयं नास्ति मे तुभ्यं दास्यामि मम वाञ्छितम्। यतो यास्यसि गोलोकं पदमेव सुदुर्लभम् ॥१७॥

वर्ष में उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई ॥ ६—७॥ उसी समय ईश्वरी (दुर्गा) मूल प्रकृति ने उन्हें साक्षात् दर्शन दिया। राजा को उत्तम राज्य समेत मनुत्व और अभीष्ट सुख तथा वैश्य को अत्यन्त दुर्लभ निगूढ़ ज्ञान देवी ने प्रदान किया, जो पूर्व समय परमात्मा कृष्ण ने शिव को प्रदान किया था ॥८॥ कृपामयी भगवती ने निराहार के कारण अतिक्षीणकाय वैश्य को देखकर अपनी गोद में उसे बैठा लिया और श्वास की गति रुक जाने से उसे चेतनाहीन देखकर—'हे वत्स ! चेतना (प्राप्त) करो।' ऐसा बार-बार कहकर वे रुदन करने लगीं। अनन्तर चैतन्य-स्वरूपिणी देवी ने स्वयं उसे चैतन्य प्रदान किया और वैश्य भी चेतना प्राप्त होने पर देवी के सामने रुदन करने लगा। पश्चात् अतिकृपामयी भगवती ने प्रसन्न होकर कृपापूर्वक उससे कहा ॥९—१२॥

प्रकृति बोली—हे वत्स! अपना मनोनीत वरदान मांगो। ब्रह्मत्व या अमरत्व चाहते हो या उससे भी अतिदुर्लभ कोई अन्य वस्तु ॥१३॥ किन्तु इन्द्रत्व, मनुत्व एवं सर्वसिद्धत्व तो तुच्छ होने के नाते तुम्हें दिया नहीं जायेगा, क्योंकि वह नश्वर होने के नाते बालकों को बहकाने की वस्तु है ॥१४॥

वैश्य बोले—हे मातः! ब्रह्मत्व और अमरत्व तो हमें अभीष्ट नहीं है। और उससे अतिदुर्लभ मनोनीत वस्तु क्या है, मैं जानता नहीं। मैं तुम्हारी ही शरणमें प्राप्त हूँ, हमें ऐसा वरदान दो जो अनश्वर एवं समस्त का साररूप हो ॥१५-१६॥

प्रकृति बोली—तुम्हारे लिए मुझे अदेय वस्तु कुछ भी नहीं है, अतः मैं अपना अभीष्ट तुम्हें दे रही हूँ, जिससे तुम अतिदुर्लभ गोलोक पद प्राप्त करोगे ॥१७॥ हे वत्स! मैं तुम्हें समस्त का सार भाग और देवर्षियों

सर्वसारं च यज्ज्ञानं सुरर्षीणां सुदुर्लभम्। तद्गृह्यतां महाभाग गच्छ वत्स हरेः पदम्॥१८॥
स्मरणं वन्दनं ध्यानमर्चनं गुणकीर्तनम्। श्रवणं भावनं सेवा कृष्णे सर्वनिवेदनम्॥१९॥
एतदेव वैष्णवानां नवधाभक्तिलक्षणम्। जन्ममृत्युजराव्याधियमताडनखण्डनम् ॥२०॥
आयुर्हरति लोकानां रविरेव हि संततम्। नवधाभक्तिहीनानामसतां पापिनामपि॥२१॥
भक्तास्तद्गतचित्ताश्च वैष्णवाश्चिरजीविनः। जीवन्मुक्ताश्च निष्पापा जन्मादिपरिवर्जिताः॥२२॥
शिवः शेषश्च धर्मश्च ब्रह्मा विष्णुर्महान्विराट्। सनत्कुमारः कपिलः सनकश्च सनन्दनः॥२३॥
वोढुः पञ्चशिखो दक्षो नारदश्च सनातनः। भृगुर्मरीचिर्दुर्वासाः कश्यपः पुलहोऽङ्गिराः॥२४॥
मेधावी लोमशः शुक्रो वसिष्ठः क्रतुरेव च। बृहस्पतिः कर्दमश्च शक्तिरत्रिः पराशरः॥२५॥
मार्कण्डेयो बलिश्चैव प्रह्लादश्च गणेश्वरः। यमः सूर्यश्च वरुणो वायुश्चन्द्रो हुताशनः॥२६॥
अकूपार उलूकश्च नाडीजङ्घश्च वायुजः। नरनारायणौ कूर्म इन्द्रद्युम्नो विभीषणः॥२७॥
नवधाभक्तियुक्ताश्च कृष्णस्य परमात्मनः। एते महान्तो धर्मिष्ठा भक्तानां प्रवरास्तथा॥२८॥
ये तद्भक्तास्ते तदंशा जीवन्मुक्ताश्च संततम्। पापापहारास्तीर्थानां पृथिव्याश्च विशां पते॥२९॥
ऊर्ध्वं च सप्त स्वर्गाश्च सप्तद्वीपा वसुंधरा। अधः सप्त च पाताला एतद्ब्रह्माण्डमेव च॥३०॥
एवंविधानां विश्वानां संख्या नास्त्येव पुत्रक। एवं च प्रतिविश्वेषु ब्रह्मविष्णुशिवादयः॥३१॥
देवा देवर्षयश्चैव मनवो मानवादयः। सर्वाश्रमाश्च सर्वत्र सन्ति बद्धाश्च मायया॥३२॥
महाविष्णोर्लोमकूपे सन्ति विश्वानि यस्य च। स षोडशांशः कृष्णस्य चाऽऽत्मनश्च महान्विराट्॥३३॥

का अति दुर्लभ ज्ञान दे रही हूँ जिससे तुम भगवान् के लोक में जाओगे॥१८॥ भगवान् का स्मरण, वन्दन, ध्यान, अर्चन, गुणगान, श्रवण, मनन, सेवा और उन्हें समस्त निवेदन करना, यही वैष्णवों का नव प्रकार का भक्तिलक्षण है, जो जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि और यमदण्ड का नाशक है॥१९-२०॥ इस नवधा भक्ति से रहित असज्जनों एवं पापी लोगों की भी आयु का अपहरण सूर्य नित्य किया करते हैं॥२१॥ भक्त वैष्णव लोग, जो भगवान् में तन्मय रहते हैं, चिरायु, जीवन्मुक्त, पापरहित एवं जन्म आदि से शून्य होते हैं॥२२॥ शिव, शेष, धर्म, ब्रह्मा, विष्णु, महाविराट्, सनत्कुमार, कपिल, सनक, सनन्दन, वोढु, पञ्चशिख, दक्ष, नारद, सनातन, भृगु, मरीचि, दुर्वासा, कश्यप, पुलह, अंगिरा, मेधावी, लोमश, शुक्र, वसिष्ठ, बृहस्पति, कर्दम, शक्ति, अत्रि, पराशर, मार्कण्डेय, बलि, प्रहलाद, गणेश्वर, यम, सूर्य, वरुण, वायु, चन्द्र, अग्नि, अकूपार, उलूक, नाडीजंघ, वायुपुत्र (हनुमान्), नर और नारायण, कूर्म, इन्द्रद्युम्न और विभीषण, ये सब परमात्मा श्रीकृष्ण की नवधा भक्ति से सम्पन्न हैं, जो महान् धर्मिष्ठ, एवं भक्तप्रवर हैं॥२३-२८॥ हे विशांपते! जो उनके भक्त हैं, वे उनके अंश होने के नाते निरन्तर जीवन्मुक्त और पृथिवी के समस्त तीर्थों के पापापहारी हैं॥२९॥ ऊपर के स्वर्ग आदि सात लोक, मध्य के सातों द्वीप और नीचे के पाताल आदि सातों लोक यही (मिलकर) 'ब्रह्माण्ड' कहलाता है॥३०॥ हे पुत्र! ऐसे विश्वों की संख्या नहीं है, और प्रत्येक विश्व में ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आदि देवता पृथक्-पृथक् रहते हैं॥३१॥ और सभी विश्व के देव, ऋषि, मनु, मानव आदि और सभी आश्रम माया से आबद्ध हैं॥३२॥ जिस महाविष्णु के लोमकूप में समस्त विश्व निहित हैं, वह महाविराट् परमात्मा श्रीकृष्ण का सोलहवाँ अंश है॥३३॥ इसलिए सत्यरूप,

भज सत्यं परं ब्रह्म नित्यं निर्गुणमच्युतम्। प्रकृतेः परमीशानं कृष्णमात्मानमीश्वरम् ॥३४॥
निरीहं च निराकारं निर्विकारं निरञ्जनम्। निष्कामं निर्विरोधं च नित्यानन्दं सनातनम् ॥३५॥
स्वेच्छामयं सर्वरूपं भक्तानुग्रहविग्रहम्। तेजः स्वरूपं परमं दातारं सर्वसंपदाम् ॥३६॥
ध्यानासाध्यं दुराराध्यं शिवादीनां च योगिनाम्। सर्वेश्वरं सर्वपूज्यं सर्वेषां सर्वकामदम् ॥३७॥
सर्वाधारं च सर्वज्ञं सर्वानन्दकरं परम्। सर्वधर्मप्रदं सर्वं सर्वज्ञं प्राणरूपिणम् ॥३८॥
सर्वधर्मस्वरूपं च सर्वकारणकारणम्। सुखदं मोक्षदं सारं पररूपं च भक्तिदम् ॥३९॥
दास्यदं धर्मदं चैव सर्वसिद्धिप्रदं सताम्। सर्वं तदतिरिक्तं च नश्वरं कृत्रिमं सदा ॥४०॥
परात्परतरं शुद्धं परिपूर्णतमं शिवम्। यथासुखं गच्छ वत्स भगवन्तमधोक्षजम् ॥४१॥
कृष्णेति द्व्यक्षरं मन्त्रं गृहीत्वा कृष्णदास्यदम्। पुष्करं दुष्करं गत्वा दशलक्षमिमं जप ॥४२॥
दशलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेत्तव । इत्युक्त्वा सा भगवती तत्रैवान्तरधीयत ॥४३॥
वैश्यो नत्वा च तां भक्त्या चागमत्पुष्करं मुने। पुष्करे दुस्तरे तप्त्वा स लेभे कृष्णमीश्वरम् ॥
भगवत्याः प्रसादेन कृष्णदासो बभूव सः ॥४४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० दुर्गोपा० सुरथसमाधिमेधः सं०
प्रकृतिवैश्यसंवादकथनं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥६३॥

परब्रह्म, नित्य, निर्गुण, अच्युत, प्रकृति-से परे, ईशान, परमात्मा श्रीकृष्ण को भजो, जो ईश्वर, ईहारहित, आकाररहित, निर्विकार, निरञ्जन, निष्काम, निर्विरोध, नित्यानन्द, सनातन, स्वेच्छामय, सर्वरूप, भक्तों पर अनुग्रहार्थ शरीरधारी, तेजःस्वरूप, समस्त सम्पत्ति के प्रदाता, शिव आदि योगियों के लिए भी ध्यान से असाध्य एवं दुराराध्य, सभी के ईश्वर, सबके पूज्य, सब की समस्त कामनायें पूरी करने वाले, सर्वाधार, सर्वज्ञाता, सर्वानन्दकारी, श्रेष्ठ, सभी धर्मों के प्रदायक, सर्वस्वरूप, सर्वज्ञ, प्राणरूप, समस्त धर्मों के स्वरूप, समस्त कारणों के कारण, सुखदायक, मोक्षप्रद, सारभाग, श्रेष्ठरूप भक्ति, दास्य और धर्म के दाता, सज्जनों को सभी सिद्धि देने वाले हैं तथा उनके अतिरिक्त सब वस्तुएँ सदा नश्वर एवं कृत्रिम हैं ॥३४-४०॥ हे वत्स ! भगवान् कृष्ण को आनन्दपूर्वक प्राप्त करो, जो पर से भी अत्यन्त परे, शुद्ध, परिपूर्णतम तथा शिव (कल्याण) रूप हैं ॥४१॥ 'कृष्ण' इस दो अक्षर वाले मंत्र को प्राप्त कर, जो भगवान् श्रीकृष्ण की दास्यभक्ति देनेवाला है, दुष्कर पुष्कर तीर्थ में जाकर इसका दशलक्ष जप करो ॥४२॥ दशलक्ष जप करने से तुम्हारी मंत्रसिद्धि हो जायगी। इतना कहकर वह भगवती उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गयी ॥४३॥ हे मुने ! अनन्तर वह वैश्य देवी को नमस्कार करके पुष्कर क्षेत्र में आया और वहाँ दुष्कर तप करके ईश्वर श्रीकृष्ण को प्राप्त किया। भगवती के प्रसाद से वह (वैश्य) भगवान् श्रीकृष्ण का दास हो गया ॥४४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत दुर्गोपाख्यान में सुरथ, समाधि एवं मेधस् के संवाद में प्रकृति और वैश्य का संवाद कथन नामक तिरसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६३॥

अथ चतुःषष्टितमोऽध्यायः

नारायण उवाच

राजा येन क्रमेणैव भेजे तां प्रकृतिं पराम्। तच्छ्रूयतां महाभाग वेदोक्तं क्रममेव च।।१।।
स्नात्वाऽऽचम्य महाराजः कृत्वा न्यासत्रयं तदा। स्वकराङ्गाङ्गमन्त्राणां भूतशुद्धिं चकार सः।।२।।
प्राणायामं ततः कृत्वा कृत्वा च स्वाङ्गशोधनम्। ध्यात्वा देवीं च मृन्मय्यां चकाराऽऽवाहनं तदा।।३।।
पुनर्ध्यात्वा च भक्त्या च पूजयामास भक्तितः। देव्याश्च दक्षिणे भागे संस्थाप्य कमलालयाम्।।४।।
संपूज्य भक्तिभावेन भक्त्या परमधार्मिकः। देवषट्कं समावाह्य देव्याश्च पुरतो घटे।।५।।
भक्त्या च पूजयामास विधिपूर्वं च नारद। गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम्।।६।।
देवषट्कं च संपूज्य नमस्कृत्य विचक्षणः। तदा ध्यायेन्महादेवीं ध्यानेनानेन भक्तितः।।७।।
ध्यानं च सामवेदोक्तं परं कल्पतरुं मुने। ध्यायेन्नित्यं महादेवीं मूलप्रकृतिरीश्वरीम्।।८।।
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां पूज्यां वन्द्यां सनातनीम्। नारायणीं विष्णुमायां वैष्णवीं विष्णुभक्तिदाम्।।९।।
सर्वस्वरूपां सर्वेशां सर्वाधारां परात्पराम्। सर्वविद्यासर्वमन्त्रसर्वशक्तिस्वरूपिणीम् ।।१०।।
सगुणां निर्गुणां सत्यां वरां स्वेच्छामयीं सतीम्। महाविष्णोश्च जननीं कृष्णस्यार्धाङ्गसंभवाम्।।११।।
कृष्णप्रियां कृष्णशक्तिं कृष्णबुद्ध्यधिदेवताम्। कृष्णस्तुतां कृष्णपूज्यांकृष्णवन्द्यां कृपामयीम्।।१२।।

अध्याय ६४

पूजाविधि और बलिदान के पशु का लक्षण कथन

नारायण बोले—हेमहाभाग! राजा ने जिस क्रमानुसार उस देवी की उपासना की, उस वेदोक्त क्रम को मैं बता रहा हूँ, सुनो।।१।। स्नान-आचमन करके महाराज ने तीनों न्यास—करन्यास, हृदयन्यास और अंगन्यास—को उनके मंत्रोच्चारण पूर्वक समाप्त कर भूतशुद्धि की।।२।। अनन्तर प्राणायाम और अपने अंगों का शोधन करके ध्यान समेत देवी का मिट्टी की मूर्ति में आवाहन किया।।३।। पुनः भक्तिपूर्वक ध्यान-पूजन करके उनके दक्षिण भाग में कमला (लक्ष्मी) को स्थापित किया और भक्तिभावना से उनकी पूजा करके उस परम धार्मिक राजा ने देवी के सामने घट में छहों देवों का आवाहन किया।।४-५।। हे नारद! भक्तिपूर्वक राजा ने गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और शिवा (पार्वती) की सविधि अर्चना सम्पन्न की।।६।। छहों देवों को नमस्कार-पूर्वक अर्चना करके उस बुद्धिमान् राजा ने इसी ध्यान द्वारा भक्तिपूर्वक महादेवी का ध्यान किया।।७।। हे मुने! वह ध्यान सामवेदानुसार एवं परम कल्पतरु रूप है—महादेवी का मैं नित्य ध्यान करता हूँ, जो मूलप्रकृति, ईश्वरी, ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवादि देवों की पूज्या, वन्दनीया एवं सनातनी, नारायणी, विष्णु की माया, वैष्णवी, विष्णु-भक्तिप्रदा, सबका स्वरूप, सबका आधार, परात्परा, समस्त विद्या, समस्त मन्त्र और समस्त शक्तिस्वरूपिणी, सगुण, निर्गुण, सत्यस्वरूपा, श्रेष्ठा, स्वेच्छामयी, सती, महाविष्णु को उत्पन्न करनेवाली, भगवान् श्रीकृष्ण की आधी देह से उत्पन्न, कृष्ण की प्रिया, उनकी शक्ति, उनकी बुद्धि की अधिदेवता, कृष्ण से स्तुत, उनसे पूजिता, उनकी वन्द्या और

तप्तकाञ्चनवर्णाभां कोटिसूर्यसमप्रभाम्। ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां भक्तानुग्रहकारिकाम् ॥१३॥
दुर्गां शतभुजां देवीं महद्दुर्गतिनाशिनीम्। त्रिलोचनप्रियां साध्वीं त्रिगुणां च त्रिलोचनाम् ॥१४॥
त्रिलोचनप्राणरूपां शुद्धार्धचन्द्रशेखराम्। बिभ्रतीं कबरीभारं मालतीमाल्यमण्डितम् ॥१५॥
वर्तुलं वामवक्त्रं च शंभोर्मानसमोहिनीम्। रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजिताम् ॥१६॥
नासादक्षिणभागेन बिभ्रतीं गजमौक्तिकम्। अमूल्यरत्नं बहुलं बिभ्रतीं श्रवणोपरि ॥१७॥
मुक्तापङ्क्तिविनिन्द्यैकदन्तपङ्क्तिसुशोभिताम्। पक्वबिम्बाधरोष्ठीं च सुप्रसन्नां सुमङ्गलाम् ॥१८॥
चित्रपत्रावलीरम्यकपोलयुगलोज्ज्वलाम्। रत्नकेयूरवलयरत्नमञ्जीररञ्जिताम् ॥१९॥
रत्नकङ्कणभूषाढ्यां रत्नपाशकशोभिताम्। रत्नाङ्गुलीयनिकरैः कराङ्गुलिचयोज्ज्वलाम् ॥२०॥
पद्माङ्गुलिनखासक्तालक्तारेखासुशोभनाम्। वह्निशुद्धांकाधानां गन्धचन्दनचर्चिताम् ॥२१॥
बिभ्रतीं स्तनयुग्मं च कस्तूरीबिन्दुशोभिताम्। सर्वरूपगुणवतीं गजेन्द्रमन्दगामिनीम् ॥२२॥
अतीव कान्तां शान्तां च नितान्तां योगसिद्धिषु। विधातुश्च विधात्रीं च सर्वधात्रीं च शंकरीम् ॥२३॥
शरत्पार्वणचन्द्रास्यामतीव सुमनोहराम्। कस्तूरीबिन्दुभिः सार्धमधश्चन्दनबिन्दुना ॥२४॥

कृपामयी हैं ॥८-१२॥ तपाये हुए सुवर्ण के समान रूपरंग, करोड़ों सूर्य के समान प्रभापूर्ण, मन्दहासयुक्त प्रसन्न मुख, भक्तों पर अनुग्रह करने वाली, सौ भुजा वाली दुर्गा देवी को, जो महादुर्गति की नाशिनी, त्रिलोचन (शिव) की प्रिया, सती, त्रिगुणा, तीन नेत्रवाली, त्रिलोचन (शिव) की प्राणरूप, चन्द्रशेखर की शुद्ध अर्द्धांगिनी, मालती माला से सुशोभित कबरीभार (केशपाश) को धारण करने वाली, गोलाकार सुन्दर मुख, शम्भु की मन-मोहिनी तथा रत्नों के युगल कुण्डलों से विभूषित कपोल वाली हैं ॥१३-१६॥ नासिका के दाहिने भाग में गजमुक्ता से सुशोभित, अमूल्य रत्न के अनेक भूषण कानों में धारण किये हुई, मोतियों की पंक्तियों को निन्दित करनेवाली दाँतों की पंक्तियों से सुशोभित, पके बिम्बाफल के समान ओष्ठवाली, अत्यन्त प्रसन्न, अतिमंगलमयी, चित्र विचित्र पत्रावलियों से युक्त रमणीक युगल कपोल से समुज्ज्वल, रत्नों के केयूर (बहूँटा), वलय (कड़ा) और रत्नों के नूपुरों से विभूषित, रत्नों के कंकण आदि भूषणों से अलंकृत और रत्नों के पाशक (चूड़ामणि) से सुशोभित हैं। एवं रत्नों की अंगूठियों के समूहों से देदीप्यमान हाथ की अंगुलियों वाली, नखों में लगे हुए अलते की रेखा से सुशोभित, अग्नि की भाँति विशुद्ध वस्त्र पहने, तथा सुगन्धित चन्दन से चर्चित हैं ॥१७-२१॥ कस्तूरी की बिन्दी से विभूषित युगल स्तन धारण किये हुई, सबसे सुन्दर एवं गुणवती, गजेन्द्र की भाँति मन्द-मन्द गमन करने वाली, अतीव कमनीय, शान्तस्वरूप, योगसिद्धि में नितान्त लगी रहने वाली, विधाता (ब्रह्मा) की विधात्री और सबका धारण करने वाली शंकरी (पार्वती) हैं ॥२३॥ शारदीय पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मुख वाली, अत्यंत मनोहारिणी, कस्तूरी की बिन्दी के साथ नीचे चन्दन बिन्दु और सिन्दूर-बिन्दी से निरन्तर अंकित भाल के मध्यस्थल से समुज्ज्वल, शरत्कालीन

सिन्दूरबिन्दुना शश्वद्भालमध्यस्थलोज्ज्वलाम् । शरन्मध्याह्नकमलप्रभामोचनलोचनाम् ॥२५॥
चारुकज्जलरेखाभ्यां सर्वतश्च समुज्ज्वलाम् । कोटिकन्दर्पलावण्यलीलानिन्दितविग्रहाम् ॥२६॥
रत्नसिंहासनस्थां च सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलाम् । सृष्टौ स्रष्टुः शिल्परूपां दयां पातुश्च पालने ॥२७॥
संहारकाले संहर्तुः परां संहाररूपिणीम् । निशुम्भशुम्भमथिनीं महिषासुरमर्दिनीम् ॥२८॥
पुरा त्रिपुरयुद्धे च संस्तुतां त्रिपुरारिणा । मधुकैटभयोर्युद्धे विष्णुशक्तिस्वरूपिणीम् ॥२९॥
सर्वदैत्यनिहन्त्रीं च रक्तबीजविनाशिनीम् । नृसिंहशक्तिरूपां च हिरण्यकशिपोर्वधे ॥३०॥
वराहशक्तिं वाराहे हिरण्याक्षवधे तथा । परब्रह्मस्वरूपां च सर्वशक्तिं सदा भजे ॥३१॥
इति [1]ध्यात्वा च दुर्गायै पुष्पं दत्त्वा विचक्षणः । पुनर्ध्यात्वा चैव भक्त्या कुर्यादावाहनं ततः ॥३२॥
प्रकृतेः प्रतिमां धृत्वा मन्त्रमेवं पठेन्नरः । जीवन्यासं ततः कुर्यान्मनुनाऽनेन यत्नतः ॥३३॥
एह्येहि भगवत्यम्ब शिवलोकात्सनातनि । गृहाण मम पूजां च शारदीयां सुरेश्वरि ॥३४॥
इहाऽऽगच्छ जगत्पूज्ये तिष्ठ तिष्ठ महेश्वरि । हे मातरस्यामर्चायां संनिरुद्धा भवाम्बिके ॥३५॥
इहाऽऽगच्छन्तु त्वत्प्राणाश्चाऽऽधिप्राणैः सहाच्युते । इहाऽऽगच्छन्तु त्वरितं तवैव सर्वशक्तयः ॥३६॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं च दुर्गायै वह्निजायान्तमेव च । समुच्चार्योरसि प्राणाः संतिष्ठन्तु सदा शिवे ॥३७॥

मध्याह्न कमल की प्रभा से युक्त नेत्रों वाली, काजल की सुन्दर रेखाओं से चारों ओर समुज्ज्वल, करोड़ों कामदेव के लावण्य को लीलापूर्वक तिरस्कृत करने वाले शरीर वाली, रत्नसिंहासन पर विराजित, उत्तम रत्नों के मुकुटों से देदीप्यमान, स्रष्टा (ब्रह्मा) की सृष्टि में शिल्प (सृष्टि) रूप, पाता (विष्णु) के पालन में दयारूप और संहर्त्ता (शिव) के संहार-काल में महासंहार-रूपिणी निशुम्भ, शुम्भ को मथने वाली एवं महिषासुर का मर्दन करने वाली हैं ॥२४-२८॥ पूर्वकाल में त्रिपुर युद्ध के समय त्रिपुरारि (शिव) द्वारा संस्तुत हैं और मधुकैटभ के युद्ध में विष्णु-शक्तिस्वरूपिणी हैं ॥२९॥ समस्त दैत्यों का हनन करने वाली, रक्तबीज की नाशिनी एवं हिरण्यकशिपु के वध में नृसिंहशक्तिरूप, हिरण्याक्ष-वध में वाराह भगवान् की वाराह शक्तिरूप तथा परब्रह्म स्वरूप समस्त शक्तिवाली (दुर्गा) को मैं सदा भजता हूँ ॥३०-३१॥ इस प्रकार ध्यान कर बुद्धिमान् पुरुष, अपने शिर पर पुष्प रखे, भक्तिपूर्वक पुनः ध्यान करके देवी का आवाहन करे ॥३२॥ अनन्तर देवी की प्रतिमा को पकड़ कर यह मंत्र पढ़ना चाहिए और इसी मंत्र द्वारा उसे सप्रयत्न जीवन्यास भी करना चाहिए ॥३३॥ हे भगवति, हे अम्ब! हे सनातनि, हे सुरेश्वरि, आप शिवलोक से यहां आकर मेरी यह शारदीय पूजा स्वीकार करें ॥३४॥ हे जगत्पूज्ये! महेश्वरि! यहाँ आकर सुखासीन हों। हे मातः! हे अम्बिके! इस पूजन में रुकी रहें ॥३५॥ हे अच्युते! इस पूजन में अधिप्राणों के साथ तुम्हारे प्राण आयें और तुम्हारी सभी शक्तियाँ यहाँ शीघ्र पधारें ॥३६॥ हे सदाशिवे! 'ओं ह्रीं श्रीं क्लीं दुर्गायै स्वाहा' इस मंत्र का उच्चारण कर कहे—'हे शिवे! मेरे हृदय में प्राण सदा संस्थित हों ॥३७॥ हे चण्डिके! समस्त इन्द्रियों

१ख. ० त्वा स्वशिरसि पु० ।

सर्वेन्द्रियाधिदेवास्त इहाऽऽगच्छन्तु चण्डिके । ते शक्तयोऽत्राऽऽगच्छन्तु इहाऽऽच्छन्तु ईश्वराः ॥३८॥
इत्यावाह्य महादेवीं परीहारं करोति च । मन्त्रेणानेन विप्रेन्द्र तच्छृणुष्व समाहितः ॥३९॥
स्वागतं भगवत्यम्ब शिवलोकाच्छिवप्रिये । प्रसादं कुरु मां भद्रे भद्रकालि नमोऽस्तु ते ॥४०॥
धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं सफलं जीवनं मम । आगताऽसि यतो दुर्गे माहेश्वरि मदालयम् ॥४१॥
अद्य मे सफलं जन्म सार्थकं जीवनं मम । पूजयामि यतो दुर्गां पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥४२॥
भारते भवतीं पूज्यां दुर्गां यः पूजयेद्बुधः । सोऽन्ते याति च गोलोकं परमैश्वर्यवानिह ॥४३॥
कृत्वा च वैष्णवीपूजां विष्णुलोकं व्रजेत्सुधीः । माहेश्वरीं च संपूज्य शिवलोकं च गच्छति ॥४४॥
सात्त्विकी राजसी चैव त्रिधा पूजा च तामसी । भगवत्याश्च वेदोक्ता चोत्तमा मध्यमाऽधमा ॥४५॥
सात्त्विकी वैष्णवानां च शाक्तादीनां च राजसी । अदीक्षितानामसतामन्येषां तामसी स्मृता ॥४६॥
जीवहत्याविहीना या वरा पूजा तु वैष्णवी । वैष्णवा यान्ति गोलोकं वैष्णवीबलिदानतः ॥४७॥
माहेश्वरी राजसी च बलिदानसमन्विता । शाक्तादयो राजसाश्च कैलासं यान्ति ते तथा ॥४८॥
किरातास्त्रिदिवं यान्ति तामस्या पूजया तया । त्वमेव जगतां माता चतुर्वर्गफलप्रदा
सर्वशक्तिस्वरूपा च कृष्णस्य परमात्मनः ॥४९॥
जन्ममृत्युजराव्याधिहरा त्वं च परात्परा । सुखदा मोक्षदा भद्रा कृष्णभक्तिप्रदा सदा ॥५०॥

के अधीश्वरदेव यहाँ आयें । हे चण्डिके ! तुम्हारी शक्तियाँ तथा ईश्वर यहाँ आयें ॥३८॥ हे विप्रेन्द्र ! इस प्रकार महादेवी का आवाहन करके इसी मंत्र से परीहार करना चाहिए, उसे कह रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ॥३९॥ हे भगवति ! हे अम्ब ! हे शिवप्रिये ! शिवलोक से आओ, तुम्हारा स्वागत है। हे भद्रे ! मेरे ऊपर कृपा करो। हे भद्रकालि ! तुम्हें नमस्कार है॥४०॥ हे दुर्गे ! हे माहेश्वरि ! आज हम धन्य हैं, कृतकृत्य हैं, मेरा जीवन सफल हो गया क्योंकि मेरे गृह में आपका आगमन हुआ है॥४१॥ आज मेरा जन्म सफल है, मेरा जीवन सार्थक हो गया क्योंकि इस पुण्यक्षेत्र भारत में मैं दुर्गाजी की पूजा कर रहा हूँ॥४२॥ जो इस भारत में पूज्य दुर्गा जी की अर्चना करता है, वह विद्वान् परम ऐश्वर्य से सम्पन्न होकर अन्त में गोलोक प्राप्त करता है॥४३॥ विद्वान् को वैष्णवी की पूजा करने पर विष्णुलोक की प्राप्ति होती है और माहेश्वरी की आराधना करने पर शिवलोक को वह जाता है ॥४४॥ भगवती की वेदोक्त अर्चना सात्त्विकी, राजसी और तामसी भेद से उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकार की होती है ॥४५॥ उसमें वैष्णवों की सात्त्विकी, शाक्त आदि लोगों की राजसी और दीक्षाहीन असज्जन एवं अन्य लोगों के लिए तामसी पूजा बतायी गयी है॥४६॥ जीवहत्या विहीन होने के नाते वैष्णवी पूजा श्रेष्ठ बतायी गयी है, वैष्णवी बलि द्वारा वैष्णवों को गोलोक प्राप्त होता है ॥४७॥ माहेश्वरी की राजसी अर्चना और बलि प्रदान करने से राजस शाक्त आदि कैलास की यात्रा करते हैं और किरातगण तामसी देवी की आराधना द्वारा स्वर्ग प्राप्त करते हैं । चतुर्वर्ग (धर्म अर्थ , काम और मोक्ष) फल प्रदान करने वाली तुम्हीं जगत् की माता हो॥४८-४९॥ तुम परमात्मा श्रीकृष्ण की सर्वशक्ति रूप हो, जो जन्म, मृत्यु, जरा एवं व्याधि का नाश करने वाली, पर से भी श्रेष्ठ, सुख देने वाली, मोक्ष देने वाली, कल्याणरूपा तथा सदा कृष्णभक्तिदायिका हो ॥५०॥

नारायणि महामाये दुर्गे दुर्गतिनाशिनि। दुर्गेति स्मृतिमात्रेण याति दुर्गं नृणामिह॥५१॥
इति कृत्वा परीहारं देव्या वामे च साधकैः। त्रिपद्या उपरिष्टात्तु शङ्खं संस्थापयेत्तु सः॥५२॥
तत्र दत्त्वा जलं पूर्णं दूर्वां पुष्पं च चन्दनम्। धृत्वा दक्षिणहस्तेन मन्त्रमेवं पठेन्नरः॥५३॥
पुण्यस्त्वं शङ्ख पुण्यानां मङ्गलानां च मङ्गलम्। प्रभूतः शङ्खचूडात्त्वं पुराकल्पे पवित्रकः॥५४॥
ततोऽर्घ्यपात्रं संस्थाप्य विधिनाऽनेन पण्डितः। दत्त्वा संपूजयेद्देवीमुपचाराणि षोडश॥५५॥
त्रिकोणमण्डलं कृत्वा सजलेन कुशेन च। कूर्मं शेषं धरित्रीं च पूजयेत्तत्र धार्मिकः॥५६॥
त्रिपदीं स्थापयेत्तत्र त्रिपद्यां शङ्खमेव च। शङ्खे त्रिभागतोयं च दत्त्वा संपूजयेत्ततः॥५७॥
गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति। नर्मदे सिन्धु कावेरि चन्द्रभागे च कौशिकि॥५८॥
स्वर्गरेखे कनखले पारिभद्रे च गण्डकि। श्वेतगङ्गे चन्द्ररेखे पम्पे चम्पे च गोमति॥५९॥
पद्मावति त्रिपर्णाशे विपाशे विरजे प्रभे। शतह्रदे चेलगङ्गे जलेऽस्मिन्संनिधिं कुरु॥६०॥
वह्निं सूर्यं च चन्द्रं च विष्णुं च वरुणं शिवम्। पूजयेत्तत्र तोये च तुलस्या चन्दनेन च॥६१॥
नैवेद्यानि च सर्वाणि प्रोक्षयेत्तज्जलेन च। प्रत्येकं वै ततो दद्यादुपचारांश्च षोडश॥६२॥
आसनं वसनं पाद्यं स्नानीयमनुलेपनम्। मधुपर्कं गन्धमर्घ्यं पुष्पं नैवेद्यमीप्सितम्॥६३॥
पुनराचमनीयं च ताम्बूलं रत्नभूषणम्। धूपं प्रदीपं तल्पं चेत्युपचारास्तु षोडश॥६४॥

॥५०॥ हे नारायणि! हे महामाये! हे दुर्गे! हे दुर्गतिनाशिनि! इस प्रकार दुर्गा के स्मरण मात्र से मनुष्यों का दुर्ग (कठिन) दुःख नष्ट हो जाता है॥५१॥ इस प्रकार साधक को देवी के बाँयें भाग में परीहार करके त्रिपदी (पीतल की बनी हुई तीन पैर की बैठकी) पर शंख स्थापित करना चाहिए, जिसमें दूर्वा, पुष्प और चन्दन समेत जल भरा हो उसे दाहिने हाथ से पकड़ कर यह मंत्र पढ़े—हे शंख! तुम पुण्यों के पुण्य और मंगलों के मंगल हो। हे पवित्रक! पूर्व कल्प में तुम शंखचूड़ द्वारा उत्पन्न हुए हो॥५२-५४॥ पश्चात् पण्डित को चाहिए कि इसी विधि के द्वारा अर्घ्यपात्र स्थापित कर देवी का षोडशोपचार पूजन करें॥५५॥एवं कुश-जल समेत त्रिकोण मण्डल बनाकर उसमें कच्छप, शेष और पृथिवी का पूजन धार्मिक को करना चाहिए॥५६॥ पुनः त्रिपदी (तिपायी) रखकर उस पर शंख रखे, जिसमें तीन भाग जल रखकर अर्चना करे—हे गंगे! हे यमुने! हे गोदावरि! हे सरस्वति! हे नर्मदे! हे सिन्धु! हे कावेरि! हे चन्द्रभागे! हे कौशिकी! हे स्वर्णरेखे! हे कनखले! हे पारिभद्रे! हे गण्डकि! हे श्वेतगंगे! हे चन्द्ररेखे! हे पम्पे! हे चम्पे! हे गोमति! हे पद्मावति! हे त्रिपर्णाशे! हे विपाशे! हे विरजे! हे प्रभे! हे शतह्रदे! हे चेलगंगे! इस जल में आवास करो॥५७-६०॥ अनन्तर उस जल में तुलसी और चन्दन द्वारा अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, विष्णु, वरुण, शिव की पूजा करे और उसी जल द्वारा सभी नैवेद्य का प्रक्षालन करे॥६१॥ पुनः प्रत्येक देव की सोलह उपचार से अर्चना करे—आसन, वस्त्र, पाद्य, स्नानीय जल, अनुलेपन, मधुपर्क, गन्ध, अर्घ्य, पुष्प, मनोनीत नैवेद्य, आचमनीय जल, ताम्बूल, रत्नभूषण, धूप, प्रदीप, और शय्या यही सोलह उपचार हैं॥६२-६४॥ हे शंकरप्रिये! अमूल्य रत्नों से खचित और अनेक

अमूल्यरत्नसंक्लृप्तं नानाचित्रविराजितम्। वरं सिंहासनश्रेष्ठं गृह्यतां शंकरप्रिये॥६५॥
अनन्तसूत्रप्रभवमीश्वरेच्छाविनिर्मितम्। ज्वलदग्निविशुद्धं च वसनं गृह्यतां शिवे॥६६॥
अमूल्यरत्नपात्रस्थं निर्मलं जाह्नवीजलम्। पादप्रक्षालनार्थाय दुर्गे देवि प्रगृह्यताम्॥६७॥
सुगन्धामलकीस्निग्धद्रवमेतत्सुदुर्लभम्। सुपक्वं विष्णुतैलं च गृह्यतां परमेश्वरि॥६८॥
कस्तूरीकुङ्कुमाक्तं च सुगन्धिद्रुतचन्दनम्। सुवासितं जगन्मातर्गृह्यतामनुलेपनम्॥६९॥
माध्वीकं रत्नपात्रस्थं सुपवित्रं सुमङ्गलम्। मधुपर्कं महादेवि गृह्यतां प्रीतिपूर्वकम्॥७०॥
सुगन्धमूलचूर्णं च सुगन्धद्रव्यसंयुतम्। सुपवित्रं मङ्गलार्हं देवि गन्धं गृहाण मे॥७१॥
पवित्रं शङ्खपात्रस्थं दूर्वापुष्पाक्षतान्वितम्। स्वर्गमन्दाकिनीतोयमर्घ्यं चण्डि गृहाण मे॥७२॥
सुगन्धिपुष्पश्रेष्ठं च पारिजाततरूद्भवम्। नानापुष्पादिमाल्यानि गृह्यतां जगदम्बिके॥७३॥
दिव्यं सिद्धान्नमामान्नं[1] पिष्टकं पायसादिकम्। मिष्टान्नं लड्डुकफलं नैवेद्यं गृह्यतां शिवे॥७४॥
सुवासितं शीततोयं कर्पूरादिसुसंस्कृतम्। मया निवेदितं भक्त्या गृह्यतां शैलकन्यके॥७५॥
गुवाकपर्णचूर्णं च कर्पूरादिसुवासितम्। सर्वभोगवरं रम्यं ताम्बूलं देवि गृह्यताम्॥७६॥
अमूल्यरत्नसारैश्च खचितं चेश्वरेच्छया। सर्वाङ्गशोभनकरं भूषणं देवि गृह्यताम्॥७७॥

भाँति के चित्रों से सुशोभित यह श्रेष्ठ एवं सुन्दर सिंहासन ग्रहण करो॥६५॥ हे शिवे! अनन्त सूत्रों से रचित, ईश्वर की इच्छा से बना हुआ और प्रज्वलित अग्नि की भाँति विशुद्ध इस वस्त्र को अपनाने की कृपा करो॥६६॥ हे दुर्गे देवि! अमूल्य रत्न के पात्र में स्थित एवं निर्मल इस गंगाजल को चरण प्रक्षालन के लिए स्वीकार करो॥६७॥ हे परमेश्वरि! सुगन्ध मिश्रित आँवले के रस से अत्यन्त पकाया हुआ यह अतिदुर्लभ विष्णुतैल स्वीकार करो। ॥६८॥ हे जगन्मातः! कस्तूरी, कुंकुम से आर्द्र और सुगन्धित चन्दन से सुवासित यह अनुलेपन ग्रहण करो॥६९॥ हे महादेवि ! मधु का बना, रत्न के पात्र में स्थित, पवित्र एवं अतिमंगल रूप यह मधुपर्क प्रीतिपूर्वक ग्रहण करो॥७०॥ हे देवि! सुगन्ध के मूल का चूर्ण एवं सुगन्धित द्रव्य से युक्त, अति पवित्र और मंगलमय गन्ध को ग्रहण करो॥७१॥ हे चण्डि! शंखपात्र में स्थित, दूर्वा, पुष्प एवं अक्षतयुक्त स्वर्ग की मन्दाकिनी (गंगा) जल का अर्घ्य ग्रहण करो॥७२॥ हे जगदम्बिके ! पारिजात के सुगन्धित तथा उत्तम पुष्प एवं अनेक पुष्पों आदि से बनी हुई मालाओं को स्वीकार करो॥७३॥ हे शिवे! दिव्य सिद्धान्न, कच्चा अन्न, पीठी तथा पायस आदि समेत लड्डू आदि मिष्टान्न नैवेद्य को ग्रहण करो॥७४॥ हे शैलकन्ये ! सुवासित और कपूर आदि से सुसंस्कृत यह शीतल जल भक्तिपूर्वक तुम्हें अर्पित कर रहा हूँ, स्वीकार करो॥७५॥ हे देवि ! सुपारी के पत्ते के चूर्ण से मिश्रित, कर्पूर आदि से सुवासित, सब भोगों में श्रेष्ठ इस रम्य ताम्बूल को ग्रहण करो॥७६॥ हे देवि ! ईश्वरेच्छया अमूल्य रत्नों के सारभाग से खचित और सर्वांग को सुशोभित करने वाले इस आभूषण को स्वीकार करो॥७७॥ हे देवि ! वृक्ष के गोंद के चूर्ण, सुगन्धित वस्तु

---

१ क. ०माषान्नं।

तरुनिर्यासचूर्णं च गन्धवस्तुसमन्वितम्। हुताशनशिखाशुद्धं धूपं च देवि गृह्यताम्॥७८॥
दिव्यरत्नविशेषं च सान्द्रध्वान्तनिवारकम्। सुपवित्रं प्रदीपं च गृह्यतां परमेश्वरि॥७९॥
रत्नसारगणाकीर्णं दिव्यं पर्यङ्कमुत्तमम्। सूक्ष्मवस्त्रैश्च संस्यूतं देवि तल्पं प्रगृह्यताम्॥८०॥
एवं संपूज्य तां दुर्गां दद्यात्पुष्पाञ्जलिं मुने। ततोऽष्टनायिकादेवीर्यत्नतः परिपूजयेत्॥८१॥
उग्रचण्डां प्रचण्डां च चण्डोग्रां चण्डनायिकाम्। अतिचण्डां च चामुण्डां चण्डां चण्डवतीं तथा॥८२॥
पद्मे चाष्टदले चैताः प्रागादिक्रमतस्तथा। पञ्चोपचारैः संपूज्य भैरवान्मध्यदेशतः॥८३॥
आदौ महाभैरवं च तथा संहारभैरवम्। असिताङ्गं भैरवं च रुरुभैरवमेव च॥८४॥
कालभैरवमप्येवं क्रोधभैरवमेव च। ताम्रचूडं चन्द्रचूडमन्ते वै भैरवद्वयम्॥८५॥
एतान्संपूज्य मध्ये वै नवशक्तीश्च पूजयेत्। तत्र पद्मे चाष्टदले मध्ये वै भक्तिपूर्वकम्॥८६॥
ब्रह्माणीं वैष्णवीं चैव रौद्रीं माहेश्वरीं तथा। नारसिंहीं च वाराहीमिन्द्राणीं कार्तिकीं[1] तथा॥८७॥
सर्वशक्तिस्वरूपां च प्रधानां सर्वमङ्गलाम्। नवशक्तीश्च संपूज्य घटे देवांश्च पूजयेत्॥८८॥
शंकरं कार्तिकेयं च सूर्यं सोमं हुताशनम्। वायुं च वरुणं चैव देव्याश्चेटीं बटुं तथा॥८९॥
चतुःषष्टिं योगिनीनां संपूज्य विधिपूर्वकम्। यथाशक्ति बलिं दत्त्वा करोति स्तवनं बुधः॥९०॥
कवचं च गले बध्वा पठित्वा भक्तिपूर्वकम्। ततः कृत्वा परीहारं नमस्कुर्याद्विचक्षणः॥९१॥

मिश्रित एवं अग्नि की शिखा से शुद्ध इस धूप को ग्रहण करो॥७८॥ हे परमेश्वरि! दिव्य एवं रत्न विशेष द्वारा रचित तथा घने अन्धकार का नाशक यह अति पवित्र दीप ग्रहण करें॥७९॥ हे देवि! रत्नों के सार भाग से आच्छन्न यह दिव्य परमोत्तम पलंग, जो सूक्ष्म वस्त्रों से सिली हुई है, शय्या के रूप में स्वीकार करो॥८०॥ हे मुने! इस भाँति दुर्गा जी की अर्चना करके उन्हें पुष्पाञ्जलि अर्पित करे। पश्चात् आठों नायिकाओं की यत्नपूर्वक अर्चना करे॥८१॥ उग्रचण्डा, प्रचण्डा, चण्डोग्रा, चण्डनायिका, अतिचण्डा, चामुण्डा, चण्डा और चण्डवती ये ही आठों नायिकायें हैं। अष्टदल वाले कमल में पूर्व आदि दिशाओं के क्रम से पञ्चोपचार द्वारा इनकी और मध्य स्थित भैरवों की अर्चा सुसम्पन्न करे॥८२-८३॥ सर्वप्रथम महाभैरव, संहारभैरव, असित (काले) अंग वाले भैरव, रुरुभैरव, कालभैरव, क्रोधभैरव, ताम्रचूड भैरव और चन्द्रचूडभैरव की अर्चना करने के उपरान्त उसी अष्टदल कमल के मध्यस्थल में नव शक्तियों की भी भक्तिपूर्वक पूजा करे॥८४-८६॥ ब्रह्माणी, वैष्णवी, रौद्री, माहेश्वरी, नारसिंही, वाराही, इन्द्राणी, कार्तिकी और सर्वशक्तिस्वरूपा प्रधान सर्वमंगला इन नव शक्तियों की अर्चना करके कलश में देवों की पूजा करे॥८७-८८॥ शंकर, कार्तिकेय, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, वरुण, देवी की चेटी (दासी) वटुक और चौंसठ योगिनियों की सविधान अर्चना करके यथाशक्ति बलिप्रदान करने के उपरान्त विद्वान् को उनकी स्तुति करनी चाहिये। ॥८९-९०॥ कवच को गले में बाँधकर भक्तिपूर्वक उसका पाठ करके परीहार करने के उपरान्त नमस्कार करे॥९१॥

---

१ क. शक्तिकीं।

बलिदानविधानं च श्रूयतां मुनिसत्तम। मायातिं महिषं छागं दद्यान्मेषादिकं शुभम्॥९२॥
सहस्रवर्षं सुप्रीता दुर्गा मायातिदानतः। महिषाच्छतवर्षं च दशवर्षं च च्छागलात्॥९३॥
वर्षं मेषेण कूष्माण्डैः पक्षिभिर्हरिणैस्तथा। दशवर्षं कृष्णसारैः सहस्राब्दं च गण्डकैः॥९४॥
कृत्रिमैः पिष्टनिर्माणैः षण्मासं पशुभिस्तथा। मासं [1]सुपक्वादिफलैरक्षतैरिति नारद॥९५॥
युवकं व्याधिहीनं च सशृङ्गं लक्षणान्वितम्। विशुद्धमविकाराङ्गं सुवर्णं पुष्टमेव च॥९६॥
शिशुना बलिना दातुर्हन्ति पुत्रं च चण्डिका। वृद्धेन वै गुरुजनं कृशेनापीष्टबान्धवान्॥९७॥
धनं चैवाधिकाङ्गेन हीनाङ्गेन प्रजास्तथा। कामिनीं शृङ्गभङ्गेन काणेन भ्रातरं तथा॥९८॥
घुटिकेन भवेन्मृत्युर्विघ्नं स्याच्चित्रमस्तकैः। हन्ति मित्रं ताम्रपृष्ठैर्भ्रष्टश्रीः पुच्छहीनतः॥९९॥
मायातीनां स्वरूपं च श्रूयतां मुनिसत्तम। वक्ष्याम्यथर्ववेदोक्तं फलहानिर्व्यतिक्रमे॥१००॥
पितृमातृविहीनं च युवकं व्याधिवर्जितम्। विवाहितं दीक्षितं च परदारविहीनकम्॥१०१॥
अजारजं विशुद्धं च सच्छूद्रपरिपोषितम्। तद्बन्धुभ्यो धनं दत्त्वा क्रीतं मूल्यातिरेकतः॥१०२॥
स्नापयित्वा च तं कर्ता पूजयेद्वस्त्रचन्दनैः। माल्यैर्धूपैश्च सिन्दूरैर्दधिगोरोचनादिभिः॥१०३॥
तं च वर्षं भ्रामयित्वा भृत्यद्वारेण यत्नतः। वर्षान्ते च समुत्सृज्य दुर्गायै तं निवेदयेत्॥१०४॥

सत्तम ! बलिदान का विधान मैं बता रहा हूँ, सुनो। मायाति (क्रीत मनुष्य), महिष (भैंसे), छाग (बकरे) और भेंड़ आदि की शुभ बलि उन्हें समर्पित करे। क्योंकि मायाति के दान से एक सहस्र वर्ष, महिष के दान से सौ वर्ष, बकरे के दान से दश वर्ष, भेंड़ से एक वर्ष और कूष्माण्ड, पक्षी, तथा हरिण से एक वर्ष, कृष्णसार (मृग) से दश वर्ष, गण्डक (गैंड़े) से सहस्रबर्ष, आटे के कृत्रिम पशु से छह मास, सुन्दर पके फल आदि से एक मास तक दुर्गा देवी अति प्रसन्न रहती हैं। हे नारद ! रोगरहित, युवा, शृंग सहित, लक्षणों से भूषित, विशुद्ध, निर्दोष अंगवाला, सुन्दर वर्ण वाला और हृष्ट-पुष्ट पशु बलिदान के लिए होना चाहिए ॥९२-९६॥ शिशु के बलिदान से चण्डिका यजमान के पुत्र का नाश करती है, उसी भाँति वृद्ध से गुरु जन का, दुर्बल से इष्टबन्धुवर्ग का, अधिक अंग वाले से धन का, हीनांग से प्रजा का, टूटी सींग वाले से स्त्री का और काने से भाई का नाश करती है ॥९७-९८॥ घुटिक (एड़ी के ऊपर की गाँठ) भंग रहने से यजमान की मृत्यु होती है, चित्रमस्तक से कार्य में बाधा, तांबे की भाँति पीठ वाले से मित्र का नाश और पुच्छहीन से श्री नष्ट होती है ॥९९॥ हे मुनिसत्तम ! अब अथर्ववेदोक्त मायाति का स्वरूप बता रहा हूँ, सुनो ! उसके व्यतिक्रम (उलटफेर) में फल की हानि होती है ॥१००॥ पिता-माता से रहित, नीरोग, विवाहित, दीक्षित, परस्त्रीरहित, जारज सन्तान नहीं, विशुद्ध तथा किसी सच्छूद्र द्वारा परिपालित युवक को, उसके बन्धु-वर्गों को धन देकर अत्यधिक मूल्य से क्रय करके ॥१०१-१०२॥ उसे नहलाकर कर्ता वस्त्र-चन्दन, माला-धूप, सिंदूर और दधि-गोरोचन आदि से उसकी पूजा करे और सेवकों के साथ वर्ष भर उसे भ्रमण कराने के उपरान्त वर्ष के अन्त में उसे देवी को बलि चढ़ादे

---

[1] क.सुखाद्यादिफ०।

अष्टमीनवमीसंधौ दद्यान्मायातिमेव च । इत्येवं कथितं सर्वं बलिदानं प्रसङ्गतः ॥१०५॥
बलिं दत्त्वा च स्तुत्वा च धृत्वा च कवचं बुधः । प्रणम्य दण्डवद्भूमौ दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ॥१०६॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० दुर्गोपा० पूजाविधिबलिपशुलक्षणविशेषो नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥

अथ पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

नारद उवाच

श्रुतं सर्वं महाभाग सुधारसपरं वरम् । स्तोत्रं च कवचं पूजाफलं कालं वद प्रभो ॥१॥

नारायण उवाच

आर्द्रायां बोधयेद्देवीं मूलेनैव प्रवेशयेत् । उत्तरेणार्चयित्वा तां श्रवणायां विसर्जयेत् ॥२॥
आर्द्रायुक्तनवम्यां तु कृत्वा देव्याश्च [1]बोधनम् । पूजायाः शतवार्षिक्याः फलमाप्नोति मानवः ॥३॥
मूलायां तु प्रवेशे च नरमेधफलं लभेत् । उत्तरे पूजनं कृत्वा वाजपेयफलं लभेत् ॥४॥
कृत्वा विसर्जनं देव्याः श्रवणायां च मानवः । लक्ष्मीं च पुत्रपौत्रांश्च लभते नात्र संशयः ॥५॥

॥१०३-१०४॥ अष्टमी-नवमी की सन्धि में मायाति का बलि प्रदान करना चाहिए। इस प्रकार मैंने प्रसंगानुसार सभी बलिदान बता दिये ॥१०५॥ बलि प्रदान के अनन्तर देवी की स्तुति, कवचधारण, भूमि में दण्डवत् प्रणाम करके ब्राह्मण को दक्षिणा देनी चाहिए ॥१०६॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण के संवादान्तर्गत दुर्गोपाख्यान में पूजाविधि तथा बलिपशु का लक्षण विशेष कथन नामक चौंसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६४॥

अध्याय ६५

ज्ञानकथन

नारद बोले—हे महाभाग! हे प्रभो! सुधारस से भी मधुर एवं श्रेष्ठ स्तोत्र, कवच आदि सभी कुछ सुन लिया, अब पूजा का फल और समय जानना चाहता हूँ ॥१॥

नारायण बोले—आर्द्रा नक्षत्र में देवी का जागरण, मूल में प्रवेश, उत्तरा में अर्चना और श्रवण नक्षत्र में विसर्जन करना चाहिए ॥२॥ आर्द्रा नक्षत्र युक्त नवमी तिथि में देवी का उद्बोधन करने से सौ वर्ष की पूजा का फल मनुष्य को प्राप्त होता है ॥३॥ मूल नक्षत्र में प्रवेश करने से नरमेध का फल प्राप्त होता है ॥ ॥ श्रवण नक्षत्र में देवी का विसर्जन करने से मनुष्य को लक्ष्मी और पुत्र-पौत्र की प्राप्ति होती है, इसमें संशय नहीं ॥५॥ उनकी

---

१ क. पूजनम् ।

भुवः प्रदक्षिणापुण्यं पूजायां लभते नरः। नक्षत्रयोगाभावे तु पार्वत्याश्चैव नारद॥६॥
नवम्यां बोधनं कृत्वा पक्षं संपूज्य मानवः। अश्वमेधफलावाप्त्यै दशम्यां च विसर्जयेत्॥७॥
सप्तम्यां पूजनं कृत्वा बलिं दद्याद्विचक्षणः। अष्टम्यां पूजनं शस्तं बलिदानविवर्जितम्॥८॥
अष्टम्यां बलिदानेन विपत्तिर्जायते नृणाम्। दद्याद्विचक्षणो भक्त्या नवम्यां विधिवद्बलिम्॥९॥
बलिदानेन विप्रेन्द्र दुर्गाप्रीतिर्भवेन्नृणाम्। हिंसाजन्यं न पापं च लभते यज्ञकर्मणि॥१०॥
उत्सर्गकर्ता दाता च च्छेत्ता पोष्टा च रक्षकः। अग्रे पश्चान्निबद्धा च सप्तैतेऽवधकारिणः॥११॥
यो यं हन्ति स तं हन्ति नेति वेदोक्तमेव च। कुर्वन्ति वैष्णवीं पूजां वैष्णवास्तेन हेतुना॥१२॥
एवं संपूज्य सुरथः पूर्णं वर्षं च भक्तितः। कवचं च गले बध्वा तुष्टाव परमेश्वरीम्॥१३॥
स्तोत्रेण परितुष्टा सा तस्य साक्षाद्बभूव ह। स ददर्श पुरो देवीं ग्रीष्मसूर्यसमप्रभाम्॥१४॥
तेजःस्वरूपां परमां सगुणां निर्गुणां वराम्। दृष्ट्वा तां कमनीयां च तेजोमण्डलमध्यतः॥१५॥
स्वेच्छामयीं कृपारूपां भक्तानुग्रहकारिणीम्। पुनस्तुष्टाव राजेन्द्रो भक्तिनम्रात्मकंधरः॥१६॥
स्तवेन परितुष्टा सा सस्मिता स्नेहपूर्वकम्। उवाच सत्यं राजेन्द्रं कृपया जगदम्बिका॥१७॥

पूजा में पृथ्वी की प्रदक्षिणा का पुण्य फल प्राप्त होता है। हे नारद! नक्षत्र-योग के अभाव में नवमी के दिन पार्वती का बोधन करके एक पक्ष पूजन करे और दशमी में विसर्जन करे तो अश्वमेध का फल प्राप्त होता है॥६-७॥ बुद्धिमान् को चाहिए कि सप्तमी में पूजनोपरान्त बलि प्रदान करे, क्योंकि अष्टमी में केवल पूजन करना ही प्रशस्त बताया गया है बलिदान नहीं। अष्टमी में बलि प्रदान करने से मनुष्यों को विपत्ति प्राप्त होती है अतः विद्वान् को नवमी में भक्तिपूर्वक सविधि बलि प्रदान करना चाहिए॥८-९॥ हे विप्रेन्द्र! बलि प्रदान करने से दुर्गा जी प्रसन्न होती हैं और यज्ञ-कर्म में बलि करने से हिंसाजनित पाप का भागी भी मनुष्य नहीं होता है॥१०॥ (बलि प्रदान करने में) बलिपशु का उत्सर्ग (त्याग) करने वाला, उसका दाता, उसका वध करने वाला, उसका पालक, उसका रक्षक, आगे-पीछे से उसे बाँधने वाला, ये सातों वध के भागी नहीं होते हैं॥११॥जो जिसका वध करता है, वह उसका वध करने वाला होता है, ऐसा वेद का कथन वहाँ लागू नहीं होता है। इसीलिए वैष्णव लोग वैष्णवी की पूजा करते हैं॥१२॥ इस प्रकार राजा सुरथ ने पूरे वर्ष तक भक्तिपूर्वक देवी की अर्चना करके गले में कवच धारण किया और परमेश्वरी की स्तुति (आराधना) करना आरम्भ किया॥१३॥ अनन्तर उस स्तोत्र से प्रसन्न होकर देवी ने उन्हें साक्षात् दर्शन दिया और उन्होंने अपने सामने स्थित देवी को ग्रीष्मकालीन सूर्य की भाँति प्रभापूर्ण देखा॥१४॥ तेजोमण्डल के मध्य में तेजस्स्वरूप, परम सगुणरूप, निर्गुण, श्रेष्ठ, कमनीय, स्वेच्छामयी, कृपारूप और भक्तों पर अनुग्रह करने वाली देवी की राजेन्द्र ने भक्ति से कन्धे झुकाकर पुनः स्तुति की॥१५-१६॥ उनकी स्तुति से अति प्रसन्न होकर मन्द मुसुकान करती हुई जगदम्बिका ने राजेन्द्र सुरथ से स्नेह और कृपापूर्वक सत्य वचन कहा॥१७॥

प्रकृतिरुवाच

साक्षात्संप्राप्य मां राजन्वृणोषि विभवं वरम् । ददामि तुभ्यं विभवं सांप्रतं वाञ्छितं तव ॥१८॥
निर्जित्य सर्वाञ्छत्रूंश्च लब्ध्वा राज्यमकण्टकम् । भविष्यसि महाराज सावर्णिर्मनुरष्टमः ॥१९॥
दास्यामि तुभ्यं ज्ञानं च परिणामे नराधिप । भक्तिं दास्यं च परमे श्रीकृष्णे परमात्मनि ॥२०॥
वृणोति विभवं यो हि साक्षान्मां प्राप्य मन्दधीः । मायया वञ्चितः सोऽपि विषमत्त्यमृतं त्यजन् ॥२१॥
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं सर्वं नश्वरमेव च । नित्यं सत्यं परं ब्रह्म कृष्णं निर्गुणमेव च ॥२२॥
ब्रह्मविष्णुशिवादीनामहमाद्या परात्परा । सगुणा निर्गुणा चापि वरा स्वेच्छामयी सदा ॥२३॥
नित्यानित्या सर्वरूपा सर्वकारणकारणम् । बीजरूपा च सर्वेषां मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥२४॥
पुण्ये वृन्दावने रम्ये गोलोके रासमण्डले । राधा प्राणाधिकाऽहं च कृष्णस्य परमात्मनः ॥२५॥
अहं दुर्गा विष्णुमाया बुद्ध्यधिष्ठातृदेवता । अहं लक्ष्मीश्च वैकुण्ठे स्वयं देवी सरस्वती ॥२६॥
सावित्री वेदमाताऽहं ब्रह्माणी ब्रह्मलोकतः । अहं गङ्गा च तुलसी सर्वाधारा वसुंधरा ॥२७॥
नानाविधाऽहं कलया मायया सर्वयोषितः । साऽहं कृष्णेन संसृष्टा नृप भ्रूभङ्गलीलया ॥२८॥
भ्रूभङ्गलीलया सृष्टो येन पुंसा महान्विराट् । लोम्नां कूपेषु विश्वानि यस्य सन्ति हि नित्यशः ॥२९॥

दुर्गा बोलीं—हे राजन् ! मेरा साक्षात् दर्शन प्राप्त कर यदि तुम ऐश्वर्य के अभिलाषी हो तो इसी समय मैं तुम्हें अभीष्ट ऐश्वर्य प्रदान करती हूँ ॥१८॥ हे महाराज ! समस्त शत्रुओं पर विजय और निष्कण्टक राज्य की प्राप्ति पूर्वक तुम अष्टम सावर्णि मनु भी होगे ॥१९॥ हे नराधिप ! मैं तुम्हें ज्ञान भी प्रदान कर रही हूँ, जिसके परिणामस्वरूप परमात्मा श्रीकृष्ण की दास्यभक्ति प्राप्त होगी ॥२०॥ क्योंकि जो मन्दबुद्धि प्राणी मेरा साक्षात् दर्शन प्राप्त कर ऐश्वर्य का अभिलाषी होता है, वह माया द्वारा वञ्चित होकर अमृत को छोड़कर विष भक्षण करता है ॥२१॥ ब्रह्मा से लेकर तृणपर्यन्त सभी वस्तु नश्वर है, भगवान् श्रीकृष्ण ही केवल नित्य सत्य, परब्रह्म और निर्गुण हैं ॥२२॥ इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवों की मैं आद्या, परात्परा, सगुणा, निर्गुणा, उत्तमा और सदा स्वेच्छामयी शक्ति हूँ ॥२३॥ ईश्वरी, मूलप्रकृति, नित्य-अनित्य, समस्त रूप, सम्पूर्ण कारणों का कारण और सभी लोगों का बीजरूप हूँ ॥२४॥ पवित्र वृन्दावन में, गोलोक में तथा रासमण्डल में परमात्मा श्रीकृष्ण की प्राणों से अधिक प्रिया राधिका हूँ ॥२५॥ मैं ही दुर्गा, विष्णुमाया, बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी, वैकुण्ठ की लक्ष्मी, साक्षात् देवी, सरस्वती वेदमाता सावित्री, ब्रह्मलोक की ब्रह्माणी, गंगा, तुलसी और सबका आधार वसुन्धरा (पृथिवी) हूँ ॥२६-२७॥ मैं ही अनेक भाँति की कला और माया द्वारा समस्त स्त्रियों का स्वरूप हूँ । हे नृप ! कृष्ण ने अपनी भ्रूभंगलीला मात्र से ही मेरी रचना की है । क्योंकि जिस पुरुष ने भ्रूभंगलीला मात्र से महाविराट् को उत्पन्न किया, जिसके लोमकूपों में नित्य समस्त विश्व स्थित रहते हैं, वे ही

असंख्यानि च तान्येव कृत्रिमाणि च मायया । अनित्ये नित्यबुद्धिं च सर्वे कुर्वन्ति संततम् ॥३०॥
सप्तसागरसंयुक्ता सप्तद्वीपा वसुंधरा । तदधः सप्त पातालाः स्वर्लोकाश्चैव सप्त च ॥३१॥
एवं विश्वं बहुविधं ब्रह्माण्डं ब्रह्मणा कृतम् । प्रत्येकं सर्वविध्यण्डे ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥३२॥
सर्वेषामीश्वरः कृष्ण इति ज्ञानं परात्परम् । वेदानां च व्रतानां च तीर्थानां तपसां तथा ॥३३॥
देवानां चैव पुण्यानां सारः कृष्ण इति स्मृतः । तद्भक्तिहीनो यो मूढः स च जीवन्मृतो ध्रुवम् ॥३४॥
पवित्राणि च तीर्थानि तद्भक्तस्पर्शवायुना । तन्मन्त्रोपासकश्चैव जीवन्मुक्तः इति स्मृतः ॥३५॥
मन्त्रग्रहणमात्रेण नरो नारायणो भवेत् । विना जपेन तपसा विना तीर्थेन पूजया ॥३६॥
मातामहानां शतकं पितॄणां च सहस्रकम् । पुंसामेवं समुद्धृत्य गोलोकं च स गच्छति ॥३७॥
इदं ज्ञानं सारभूतं कथितं ते नराधिप । मन्वन्तरान्ते भोगान्ते भक्तिं दास्यामि ते हरौ ॥३८॥
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि । अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥३९॥
अहं यमनुगृह्णामि तस्मै दास्यामि निर्मलाम् । निश्चलां सुदृढां भक्तिं श्रीकृष्णे परमात्मनि ॥४०॥
करोमि वञ्चनां यं यं तेभ्यो दास्यामि संपदम् । प्रातः स्वप्नस्वरूपां च मिथ्येति भ्रमरूपिणीम् ॥४१॥
इति ते कथितं ज्ञानं गच्छ वत्स यथासुखम् । इत्युक्त्वा च महादेवी तत्रैवान्तरधीयत ॥४२॥

कृत्रिम और असंख्य हैं और उसी अनित्य को सब लोग निरन्तर नित्य मानते हैं ॥२८-३०॥ सातों सागरों और सातों द्वीपों समेत यह पृथिवी, उसके नीचे के पाताल आदि सात लोक और ऊपर वाले स्वर्ग आदि सात लोक, इस भाँति अनेक प्रकार के विश्व (ब्रह्माण्ड) का निर्माण ब्रह्मा ने किया है। और प्रत्येक ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देव रहते हैं ॥३१-३२॥ किन्तु सभी के ईश्वर भगवान् श्री कृष्ण हैं, यह परात्पर (अत्यन्त श्रेष्ठ) ज्ञान है। सभी वेद, व्रत, तीर्थ, तप, देव और पुण्य का सारभाग श्री कृष्ण माने गये हैं। इसीलिए जो उनकी भक्ति से विहीन है, वह मूढ़ निश्चित जीवन्मृत है ॥३३-३४॥ उनके भक्त के स्पर्श-वायु द्वारा तीर्थ पवित्र होते हैं और उनके मंत्र की उपासना करने वाला जीवन्मुक्त होता है ॥३५॥ क्योंकि उनके मंत्रग्रहण मात्र से मनुष्य जप, तप, तीर्थ और पूजा के बिना ही नारायण हो जाता है ॥३६॥ वह मातामह (नाना) की सौ पीढ़ियों और पिता की सहस्र पीढ़ियों का उद्धार कर स्वयं गोलोक चला जाता है ॥३७॥ हे नराधिप ! समस्त का सारभूत यह ज्ञान मैंने तुम्हें बता दिया और एक मन्वन्तर तक भोग कर चुकने के अन्त में तुम्हें भगवान् की भक्ति प्रदान करूँगी । क्योंकि करोड़ों कल्प के बीत जाने पर भी कर्म बिना उपभोग किये नष्ट नहीं होता है, इसलिए शुभ-अशुभ कर्म का उपभोग अवश्य करना पड़ता है ॥३८-३९॥ मैं जिस पर अनुग्रह करती हूँ, उसे परमात्मा श्रीकृष्ण की निर्मल, निश्चल और अतिदृढ़ भक्ति प्रदान करती हूँ। और जिसकी वञ्चना करती हूँ, उसे सम्पत्ति प्रदान करती हूँ, जो प्रातःकालीन स्वप्न की भाँति मिथ्या और भयावह होती है ॥४०-४१॥ हे वत्स! इस प्रकार तुम्हें ज्ञान बता दिया, अब यथासुख चले जाओ। इतना कहकर महादेवी उसी स्थान पर

राजा संप्राप्य राज्यं च नत्वा तां प्रययौ गृहम् । इति ते कथितं वत्स दुर्गोपाख्यानमुत्तमम् ॥४३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० दुर्गोपा० दुर्गासुरथसं० ज्ञानकथनं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥६५॥

अथ षट्षष्टितमोऽध्यायः

नारद उवाच

श्रुतं सर्वं नावशिष्टं किंचिदेव हि निश्चितम् । प्रकृतेः कवचं स्तोत्रं ब्रूहि मे मुनिसत्तम ॥१॥

नारायण उवाच

पुरा स्तुता सा गोलोके कृष्णेन परमात्मना । संपूज्य मधुमासे च संप्रीते रासमण्डले ॥२॥
मधुकैटभयोर्युद्धे द्वितीये विष्णुना पुरा । तत्रैव काले सा दुर्गा ब्रह्मणा प्राणसंकटे ॥३॥
चतुर्थे संस्तुता देवी भक्त्या च त्रिपुरारिणा । पुरा त्रिपुरयुद्धे च महाघोरतरे मुने ॥४॥
पञ्चमे संस्तुता देवी वृत्रासुरवधे तथा । शक्रेण सर्वदेवैश्च घोरे च प्राणसंकटे ॥५॥
तदा मुनीन्द्रैर्मनुभिर्मानवैः सुरथादिभिः । संस्तुता पूजिता सा च कल्पे कल्पे परात्परा ॥६॥

अन्तर्हित हो गयी ॥४२॥ राजा भी राज्य प्राप्त कर देवी को नमस्कार करके अपने घर चला गया। हे वत्स! इस प्रकार मैंने दुर्गा जी का परमोत्तम उपाख्यान तुम्हें सुना दिया ॥४३॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृति-खण्ड में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत दुर्गोपाख्यान में प्रकृति-सुरथ-संवाद में ज्ञानकथन नामक पैंसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६५॥

अध्याय ६६

दुर्गा का स्तोत्र

नारद बोले—हे मुनिश्रेष्ट! मैंने सब सुन लिया, कुछ भी शेष नहीं है। अब प्रकृति का कवच और स्तोत्र मुझे बताने की कृपा कीजिये ॥१॥

नारायण बोले—पूर्वकाल में गोलोक में परमात्मा श्रीकृष्ण ने प्रकृति की स्तुति की और पुनः चैत्रमास में रासमण्डल में अतिप्रेम से देवी की पूजा की। मधुकैटभ के युद्ध में विष्णु ने और उसी समय ब्रह्मा ने प्राणसंकट उपस्थित होने पर दुर्गा की आराधना की। चौथे समय हे मुने! पूर्वकालीन त्रिपुरासुर के महाघोर युद्ध में त्रिपुरारि (शिव) ने भक्तिपूर्वक दुर्गा देवी की अर्चना की। पांचवीं बार वृत्रासुर के वध में इन्द्र ने घोर प्राणसंकट उपस्थित होने पर देवों समेत देवी की अर्चना की। तब मुनिवृन्द, मनुवृन्द और राजा सुरथ आदि मनुष्यों ने देवी की स्तुति-पूजा की। इस प्रकार प्रत्येक कल्प में वह परात्परा देवी स्तुत और पूजित हुई हैं ॥२-६॥

स्तोत्रं च श्रूयतां ब्रह्मन्सर्वविघ्नविनाशकम् । सुखदं मोक्षदं सारं भवसंतारकारणम् ॥७॥

श्रीकृष्ण उवाच

त्वमेव सर्वजननी मूलप्रकृतिरीश्वरी । त्वमेवाऽऽद्या सृष्टिविधौ स्वेच्छया त्रिगुणात्मिका ॥८॥
कार्यार्थे सगुणा त्वं च वस्तुतो निर्गुणा स्वयम् । परब्रह्मस्वरूपा त्वं सत्या नित्या[1] सनातनी ॥९॥
तेजः स्वरूपा परमा भक्तानुग्रहविग्रहा । सर्वस्वरूपा सर्वेशा सर्वाधारा परात्परा ॥१०॥
सर्वबीजस्वरूपा च सर्वपूज्या निराश्रया । सर्वज्ञा सर्वतोभद्रा सर्वमङ्गलमङ्गला ॥११॥
सर्वबुद्धिस्वरूपा च सर्वशक्तिस्वरूपिणी । सर्वज्ञानप्रदा देवी सर्वज्ञा सर्वभाविनी ॥१२॥
त्वं स्वाहा देवदाने च पितृदाने स्वधा स्वयम् । दक्षिणा सर्वदाने च सर्वशक्तिस्वरूपिणी ॥१३॥
निद्रा त्वं च दया त्वं च तृष्णा त्वं चाऽऽत्मनः प्रिया । क्षुत्क्षान्तिः शान्तिरीशा च कान्तिस्तुष्टिश्च शाश्वती ॥१४॥
श्रद्धा पुष्टिश्च तन्द्रा च लज्जा शोभा प्रभा तथा । सतां संपत्स्वरूपा श्रीर्विपत्तिरसतामिह ॥१५॥
प्रीतिरूपा पुण्यवतां पापिनां कलहाङ्कुरा । शश्वत्कर्ममयी शक्तिः सर्वदा सर्वजीविनाम् ॥१६॥
देवेभ्यः स्वपदं दात्री धातुर्धात्री कृपामयी । हिताय सर्वदेवानां सर्वासुरविनाशिनी ॥१७॥
योगनिद्रा योगरूपा योगदात्री च योगिनाम् । सिद्धिस्वरूपा सिद्धानां सिद्धिदा सिद्धयोगिनी ॥१८॥

हे ब्रह्मन् ! अब मैं तुम्हें समस्त विघ्नों का नाशक स्तोत्र बता रहा हूँ, जो सुख और मोक्ष देने वाला, तत्त्वरूप और संसार से पार करने का कारण है, सुनो॥-७॥

श्रीकृष्ण बोले—तुम्हीं सबकी जननी, मूलप्रकृति एवं ईश्वरी हो। सृष्टि-विधान में तुम्ही आद्या शक्ति तथा स्वेच्छया त्रिगुण स्वरूप वाली हो॥८॥ कार्य के लिए तुम सगुण हो और वस्तुतः स्वयं निर्गुण हो। तुम परब्रह्म-स्वरूप, सत्य, अनित्य एवं सनातनी हो॥९॥ तेजःस्वरूप, परमोत्तम, भक्तों के अनुग्रहार्थ शरीर धारण करने वाली, सबका स्वरूप, सब की अधीश्वरी, सब का आधार, परात्परा, सब का बीज रूप, सब की पूज्या, निराश्रया, सर्वज्ञान-वाली, सर्वतोभद्ररूप और समस्त मंगलों का मंगल हो॥१०-११॥ समस्त बुद्धि स्वरूप, समस्त शक्ति स्वरूप, समस्त ज्ञान की प्रदायिनी, देवी, सर्वज्ञा और सर्वभाविनी हो॥१२॥ तुम ही देवों के दान में स्वाहा, पितरों के दान में स्वधा, समस्त दान में दक्षिणा और सबकी शक्ति स्वरूप हो॥१३॥ निद्रा, दया, तृष्णा, आत्मप्रिया, क्षुधा की शान्ति, शान्ति, ईशा, कान्ति तथा शाश्वत शान्ति हो। श्रद्धा, पुष्टि, तन्द्रा, लज्जा, शोभा, प्रभा और सज्जनों की सम्पत्ति एवं असज्जनों की विपत्ति रूपा हो॥१४-१५॥ पुण्यवानों की प्रीति, पापियों का कलहबीज तथा समस्त जीवों की निरन्तर कर्ममयी शक्ति हो। देवों को उनके पद देने वाली, ब्रह्मा की कृपामयी धात्री तथा समस्त देवों के हितार्थ समस्त दैत्यों की विनाशिनी हो॥१६-१७॥ योगियों की योगनिद्रा, योगरूप, योगियों को योग देने वाली, सिद्धिस्वरूप, सिद्धों को सिद्धि देने वाली तथा सिद्धयोगिनी हो॥१८॥ तुम ब्रह्माणी, माहेश्वरी, विष्णु की

---

१ क. ०त्याऽऽनन्दस्वरूपिणी ।

माहेश्वरी च ब्रह्माणी विष्णुमाया च वैष्णवी। भद्रदा भद्रकाली च सर्वलोकभयंकरी॥१९॥
ग्रामे ग्रामे ग्रामदेवी गृहदेवी गृहे गृहे। सतां कीर्तिः प्रतिष्ठा च निन्दा त्वमसतां सदा॥२०॥
महायुद्धे महामारी दुष्टसंहाररूपिणी। रक्षास्वरूपा शिष्टानां[1] मातेव हितकारिणी॥२१॥
वन्द्या पूज्या स्तुता त्वं च ब्रह्मादीनां च सर्वदा। ब्रह्मण्यरूपा विप्राणां तपस्या च तपस्विनाम्॥२२॥
विद्या विद्यावतां त्वं च बुद्धिर्बुद्धिमतां सताम्। मेधा स्मृतिस्वरूपा च प्रतिभा प्रतिभावताम्॥२३॥
राज्ञां प्रतापरूपा च विशां वाणिज्यरूपिणी। सृष्टौ सृष्टिस्वरूपा त्वं रक्षारूपा च पालने॥२४॥
तथाऽन्ते त्वं महामारी विश्वे विश्वैश्च पूजिते। कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च मोहिनी॥२५॥
दुरत्यया मे माया त्वं यया संमोहितं जगत्। यया मुग्धो हि विद्वांश्च मोक्षमार्गं न पश्यति॥२६॥
इत्यात्मना कृतं स्तोत्रं दुर्गाया [2]दुर्गनाशनम्। पूजाकाले पठेद्यो हि सिद्धिर्भवति वाञ्छिता॥२७॥
वन्ध्या च काकवन्ध्या च मृतवत्सा च दुर्भगा। श्रुत्वा स्तोत्रं वर्षमेकं सुपुत्रं लभते ध्रुवम्॥२८॥
कारागारे महाघोरे यो बद्धो दृढबन्धने। श्रुत्वा स्तोत्रं मासमेकं बन्धनान्मुच्यते ध्रुवम्॥२९॥
यक्ष्मग्रस्तो गलत्कुष्ठी महाशूली महाज्वरी। श्रुत्वा स्तोत्रं वर्षमेकं सद्यो रोगात्प्रमुच्यते॥३०॥
पुत्रभेदे प्रजाभेदे पत्नीभेदे च दुर्गतः। श्रुत्वा स्तोत्रं मासमेकं लभते नात्र संशयः॥३१॥

माया, वैष्णवी, भद्र (कल्याण) प्रदा, भद्रकाली तथा समस्त लोकों के लिए भयंकरी हो॥१९॥ गाँवों की ग्रामदेवी, घरों की गृहदेवी, सज्जनों की कीर्ति, प्रतिष्ठा और असज्जनों की निन्दा रूप हो॥२०॥ महायुद्ध में महामारी रूप, दुष्टों का संहार करने वाली, शिष्टों (सज्जनों) की रक्षा रूप और माता की भाँति हितैषिणि हो॥२१॥ और सदा ब्रह्मा आदि देवों की वन्द्या, पूज्या एवं स्तुत्य हो, ब्राह्मणों का ब्राह्मण्यरूप और तपस्वियों की तपस्या हो। विद्यावानों की विद्या, बद्धिमानों की बुद्धि, सज्जनों की मेधा और प्रतिभाशालियों की स्मृति तथा प्रतिभा हो॥२२-२३॥ राजाओं का प्रताप, व्यापारियों का व्यापार, सृष्टि में सृष्टिरूप, पालन में रक्षा रूप तथा अन्त में महामारी हो। विश्व में समस्त लोगों से पूजित हो। कालरात्रि, महारात्रि, मोहरात्रि और मोहिनी हो॥२४-२५॥ तुम हमारी दुस्तर माया हो, जिससे सारा जगत् मोहित है और जिससे मुग्ध होकर विद्वान् लोग भी मोक्ष नहीं देखते हैं॥२६॥ यह अपना बनाया हुआ दुर्गा जी का दुर्गनाशक स्तोत्र पूजा के समय जो पढ़ेगा, उसे अभिलषित सिद्धि मिलेगी॥२७॥ वन्ध्या, काकवन्ध्या, मृतवत्सा एवं दुर्भगा स्त्री एक वर्ष तक इसके सुनने से उत्तम पुत्र को निश्चित प्राप्त करती है॥२८॥ महाघोर कारागृह (जेल) में जो दृढ़बन्धनों (हथकड़ी-बेड़ी) से जकड़ा हुआ पड़ा हो, वह एक मास तक इस स्तोत्र के सुनने से निश्चित बन्धन-मुक्त हो जाता है॥२९॥ यक्ष्मा का रोगी, गलत्कुष्ठ का रोगी, महाशूली तथा महाज्वरग्रस्त व्यक्ति एक वर्ष तक इसे सुनने से तुरन्त रोगमुक्त हो जाता है॥३०॥ पुत्र, प्रजा और पत्नी से भेद (द्वेष) होने पर एक मास तक इस स्तोत्र के सुनने से वह द्वेष निश्चित नष्ट हो जाता है, इसमें संशय नहीं॥३१॥

---

[1] क. शिष्या। [2] क. स्वर्गकारणम्।

राजद्वारे श्मशाने च महारण्ये रणस्थले। हिंस्रजन्तुसमीपे च श्रुत्वा स्तोत्रं प्रमुच्यते ॥३२॥
गृहदाहे च दावाग्नौ दस्युसैन्यसमन्विते। स्तोत्रश्रवणमात्रेण लभते नात्र संशयः ॥३३॥
महादरिद्रो मूर्खश्च वर्षं स्तोत्रं पठेत्तु यः। विद्यावान्धनवांश्चैव स भवेन्नात्र संशयः ॥३४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० दुर्गोपा० दुर्गास्तोत्रं नाम
षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥६६॥

अथ सप्तषष्टितमोऽध्यायः

नारद उवाच

भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वज्ञानविशारद। ब्रह्माण्डमोहनं नाम प्रकृतेः कवचं वद ॥१॥

नारायण उवाच

शृणु वक्ष्यामि हे वत्स कवचं च सुदुर्लभम्। श्रीकृष्णेनैव कथितं कृपया ब्रह्मणे पुरा ॥२॥
ब्रह्मणा कथितं पूर्वं धर्माय जाह्नवीतटे। धर्मेण दत्तं मह्यं च कृपया पुष्करे पुरा ॥३॥
त्रिपुरारिश्च यद्धृत्वा जघान त्रिपुरं पुरा। मुमोच धाता यद्धृत्वा मधुकैटभयोर्भयम् ॥४॥
जघान रक्तबीजं तं यद्धृत्वा भद्रकालिका। यद्धृत्वा तु महेन्द्रश्च संप्राप कमलालयाम् ॥५॥

राजदरबार, श्मशान, घोर वन, युद्धस्थल और हिंसक जन्तुओं के समीप इसे सुनने से मनुष्य भयमक्त हो जाता है ॥३२॥ गृह के जलते समय, दावाग्नि में और चोरों-डाकुओं की सेनाओं से घिर जाने पर इस स्तोत्र के सुनने मात्र से मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं ॥३३॥ महादरिद्र एवं महामूर्ख एक वर्ष तक पाठ करने पर विद्या और धन से सुसम्पन्न हो जाता है, इसमें संशय नहीं ॥३४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत दुर्गोपाख्यान में
दुर्गास्तोत्रकथन नामक छाछठवाँ अध्याय समाप्त ॥६६॥

अध्याय ६७

ब्रह्माण्डमोहनकवच

नारद बोले—हे भगवन्! समस्त धर्मों के ज्ञाता! और समस्त ज्ञान में निपुण! प्रकृति का ब्रह्माण्डमोहन नामक कवच बतायें ॥१॥

नारायण बोले—हे वत्स! सुनो, अति दुर्लभ कवच मैं कह रहा हूँ, जिसे पूर्वकाल में भगवान् श्रीकृष्ण ने ब्रह्मा को कृपया बताया था ॥२॥ पूर्वकाल में ब्रह्मा ने गंगा-तट पर धर्म से कहा और धर्म ने कृपापूर्वक पुष्कर में मुझसे कहा ॥३॥ जिसे पूर्वं समय त्रिपुरारि (शिव) ने धारण कर त्रिपुरासुर का वध किया, जिसे धारण कर ब्रह्मा मधुकैटभ-जनित भय से मुक्त हुए, जिसे धारण कर भद्रकाली ने रक्तबीज का हनन किया ॥४॥ जिसे धारण कर महेन्द्र ने कमला (लक्ष्मी) की प्राप्ति की। जिसे धारण कर महाकाल धार्मिक एवं चिरजीवी

यद्धृत्वा च महाकालश्चिरजीवी च धार्मिकः। यद्धृत्वा च महाज्ञानी नन्दी सानन्दपूर्वकम् ॥६॥
यद्धृत्वा च महायोद्धा रामः[1] शत्रुभयंकरः। यद्धृत्वा शिवतुल्यश्च दुर्वासा ज्ञानिनां वरः ॥७॥
ॐ दुर्गेति चतुर्थ्यन्तः स्वाहान्तो मे शिरोऽवतु। मन्त्रः षडक्षरोऽयं च भक्तानां कल्पपादपः ॥८॥
विचारो नास्ति वेदेषु ग्रहणेऽस्य मनोर्मुने। मन्त्रग्रहणमात्रेण विष्णुतुल्यो भवेन्नरः ॥९॥
मम वक्त्रं सदा पातु चों दुर्गायै नमोन्ततः। ॐदुर्गे रक्षयति च कण्ठं पातु सदा मम ॥१०॥
ॐ ह्रीं श्रीमिति मन्त्रोऽयं स्कन्धं पातु निरन्तरम्। ॐ ह्रीं श्रीं क्लीमिति पृष्ठं पातु मे सर्वतः सदा ॥११॥
ह्रीं मे वक्षःस्थलं पातु हस्तं श्रीमिति संततम्। [2]ॐश्रीं ह्रीं क्लीं पातु सर्वाङ्गं स्वप्ने जागरणे तथा ॥१२॥
प्राच्यां मां प्रकृतिः पातुः पातु वह्नौ च चण्डिका। दक्षिणे भद्रकाली च नैर्ऋत्यां च महेश्वरी ॥१३॥
वारुण्यां पातु वाराही वायव्यां सर्वमङ्गला। उत्तरे वैष्णवी पातु तथैशान्यां शिवप्रिया ॥१४॥
जले स्थले चान्तरिक्षे पातु मां जगदम्बिका। इति ते कथितं वत्स कवचं च सुदुर्लभम् ॥१५॥
यस्मै कस्मै न दातव्यं प्रवक्तव्यं न कस्यचित्। गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालंकारचन्दनैः ॥१६॥
कवचं धारयेद्यस्तु सोऽपि विष्णुर्न संशयः। स्नाने च सर्वतीर्थानां पृथिव्याश्च प्रदक्षिणे ॥१७॥

हुए। जिसे धारण कर नन्दी आनन्दपूर्वक महाज्ञानी हो गया ॥५-६॥ जिसे धारण कर राम (परशुराम) शत्रु के लिए भयंकर महायोद्धा हुए और जिसे धारण कर दुर्वासा ज्ञानियों में श्रेष्ठ एवं शिव के तुल्य हुए ॥७॥ 'ओं दुर्गायै स्वाहा' भक्तों के लिए कल्पवृक्ष रूप यह षडक्षर मंत्र मेरे शिर की रक्षा करे। हे मुने! इस मन्त्र ग्रहण के विषय में वेदों में कोई विचार नहीं किया गया है। मन्त्र ग्रहण-मात्र से ही मनुष्य विष्णु के तुल्य हो जाता है ॥८-९॥ 'ओं दुर्गायै नमः' यह मंत्र मेरे मुख की सदा रक्षा करे। ओं दुर्गे मेरे कण्ठ की सदा रक्षा करे ॥१०॥ 'ओं ह्रीं श्रीं' यह मंत्र मेरे कन्धे की निरन्तर रक्षा करे। 'ओं ह्रीं श्रीं क्लीं' यह मंत्र मेरे पृष्ठ भाग की सदा रक्षा करे ॥११॥ ह्रीं मेरे वक्षःस्थल की रक्षा करे, 'श्रीं' निरन्तर हाथ की रक्षा करे। 'ओं श्रीं ह्रीं क्लीं' यह मंत्र स्वप्न और जागरण अवस्था में सर्वांग की रक्षा करे ॥१२॥ पूर्व की ओर मुझे प्रकृति रक्षित रखे, अग्निकोण की ओर चण्डिका रक्षा करे। दक्षिण की ओर भद्रकाली, नैर्ऋत्य में महेश्वरी, पश्चिम की ओर वाराही रक्षा करे, वायव्य की ओर सर्वमंगला, उत्तर की ओर वैष्णवी रक्षा करे, ईशान की ओर शिवप्रिया रक्षा करे ॥१३-१४॥ तथा जल, स्थल और अन्तरिक्ष (आकाश) में जगदम्बिका मेरी रक्षा करे। हे वत्स! इस प्रकार मैंने अति दुर्लभ कवच तुम्हें बता दिया, इसे जिस किसी को नहीं देना चाहिए और न किसी से कहना ही चाहिए। वस्त्र-अलंकार द्वारा गुरु की सविधान अर्चना करके जो इस कवच को धारण करता है, वह भी विष्णु हो जाता है, इसमें संशय नहीं ॥१५-१६½॥ हे मुने! समस्त तीर्थों की यात्रा और पृथिवी की प्रदक्षिणा करने से जिस फल की प्राप्ति

---

१ क. बाणः। २ क. ऐं।

यत्फलं लभते लोकस्तदेतद्धारणान्मुने। पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धमेतद्भवेद्ध्रुवम् ॥१८॥
लोके च सिद्धकवचं नास्त्रं विध्यति संकटे। न तस्य मृत्युर्भवति जले वह्नौ विषे ज्वरे ॥१९॥
जीवन्मुक्तो भवेत्सोऽपि सर्वसिद्धेश्वरेश्वरः। यदि स्यात्सिद्धकवचो विष्णुतुल्यो भवेद्ध्रुवम् ॥२०॥
कथितं प्रकृतेः खण्डं सुधाखण्डात्परं मुने। या चैव मूलप्रकृतिर्यस्याः पुत्रो गणेश्वरः ॥२१॥
कृत्वा कृष्णव्रतं सा च लेभे गणपतिं सुतम्। स्वांशेन कृष्णो भगवान्बभूव च गणेश्वरः ॥२२॥
श्रुत्वा च प्रकृतेः खण्डं सुश्राव्यं च सुधोपमम्। भोजयित्वा च दध्यन्नं तस्मै दद्याच्च काञ्चनम् ॥२३॥
सवत्सां सुरभिं रम्यां दद्याद्वै भक्तिपूर्वकम्। वासोऽलंकाररत्नैश्च तोषयेद्वाचकं मुने ॥२४॥
पुष्पालंकारवसनैरुपहारगणैस्तथा। पुस्तकं पूजयेदेवं भक्तिश्रद्धासमन्वितः ॥२५॥
एवं कृत्वा यः शृणोति तस्य विष्णुः प्रसीदति। वर्धते पुत्रपौत्रादिर्यशस्वी तत्प्रसादतः ॥२६॥
लक्ष्मीर्वसति तद्गेहे ह्यन्ते गोलोकमाप्नुयात्। लभेत्कृष्णस्य दास्यं स भक्तिं कृष्णे सुनिश्चलाम् ॥२७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० दुर्गोपा० ब्रह्माण्डमोहनकवचं नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥६७॥

समाप्तमिदं श्रीमद्ब्रह्मवैवर्तपुराणस्य द्वितीयं प्रकृतिखण्डम् ॥

●

होती है, वह इसके धारण मात्र से प्राप्त होता है ॥१७½॥ पाँच लाख जप करने से यह निश्चित सिद्ध हो जाता है। लोक में कवच सिद्ध हो जाने पर संकट के समय अस्त्र वेध नहीं करता है। जल में अग्नि में, विष से या ज्वर से उसकी मृत्यु नहीं होती है ॥१८-१९॥ वह सर्वसिद्धेश्वर होकर जीवन्मुक्त हो जाता है मनुष्य यदि सिद्धकवच हो जाता है, तो वह निश्चित भगवान् विष्णु के तुल्य होता है ॥२०॥ हे मुने! इस प्रकार मैंने सुधाखण्ड से भी उत्तम यह प्रकृतिखण्ड कह कर तुम्हें सुना दिया। जो मूल प्रकृति है एवं जिसके पुत्र गणेश्वर हुए हैं, उसी प्रकृति ने भगवान् श्रीकृष्ण का व्रत सुसम्पन्न कर गणपति को पुत्र रूप में प्राप्त किया है और भगवान् श्रीकृष्ण ही अपने अंश द्वारा गणेश्वर हुए हैं ॥२१-२२॥ इस प्रकार अच्छी तरह सुनाने योग्य और अमृत के समान मधुर प्रकृतिखण्ड का श्रवण कर, ब्राह्मण को दही अन्न भोजन कराये और सुवर्ण की दक्षिणा प्रदान करे ॥२३॥ तथा भक्तिपूर्वक सवत्सा गौ भी प्रदान करे। हे मुने! वस्त्र, अलंकार और रत्नों आदि से वाचक को प्रसन्न करे, पुष्प, अलंकार, वस्त्र रूप उपहार भी समर्पित करे। इसी भाँति भक्ति-श्रद्धा समेत पुस्तक की भी पूजा करे ॥२४-२५॥ इस प्रकार जो इसका श्रवण करता है, उस पर भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं। उनके प्रसाद से पुत्र-पौत्र समेत उस यशस्वी की वृद्धि होती है, उसके घर लक्ष्मी निवास करती है और और अन्त में वह गोलोक जाकर भगवान् श्रीकृष्ण की अति निश्चल दास्य भक्ति प्राप्त करता है ॥२६-२७॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत दुर्गोपाख्यान में ब्रह्माण्डमोहनकवचवर्णननामक सरसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६७॥

●

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः

श्रीमद्द्वैपायनमुनिप्रणीतं

ब्रह्मवैवर्तपुराणम्

तत्र तृतीयं गणपतिखण्डम्

अथ प्रथमोऽध्यायः

पार्वती की उत्पत्ति और उनसे कार्तिकेय का जन्म

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥१॥

नारद उवाच

श्रुतं प्रकृतिखण्डं तदमृतार्णवमुत्तमम्। सर्वोत्कृष्टमभीष्टं च मूढानां ज्ञानवर्धनम्॥२॥
अधुना[1] श्रीगणेशस्य खण्डं श्रोतुमिहाऽऽगतः। तज्जन्मचरितं नृणां सर्वमङ्गलमङ्गलम्॥३॥
कथं जज्ञे सुरश्रेष्ठः पार्वत्या उदरे शुभे। देवी केन प्रकारेण चालभत्तादृशं सुतम्॥४॥
स चांशः कस्य देवस्य कथं जन्म ललाभ सः। अयोनिसंभवः किंवा किंवाऽसौ योनिसंभवः॥५॥

गणपतिखण्ड आरम्भ

अध्याय १

नृ-श्रेष्ठ नारायण, वाग्देवी सरस्वती एवं व्यास जी को नमस्कार कर के जय शब्दोच्चारण पूर्वक पुराणादि का कथन (कथन-श्रवण) करना चाहिए॥१॥

नारद बोले—अमृत-सागर के समान उत्तम प्रकृतिखण्ड मैंने सुन लिया, जो सबसे उत्कृष्ट, अभीष्ट और मूढ़ों का ज्ञानवर्द्धक है। इस समय मैं श्री गणेशखण्ड सुनना चाहता हूँ, क्योंकि उनका जन्म मनुष्यों के समस्त मंगलों का मंगल रूप है। वह सुरश्रेष्ठ पार्वती जी के शुभ उदर से कैसे उत्पन्न हुए ? देवी ने किस उपाय से उस प्रकार का पुत्र प्राप्त किया ? वह किस देव का अंश है, कैसे उन्होंने जन्म ग्रहण किया। वे अयोनिज (योनि से न उत्पन्न

---

१ क. ०ना श्रोतुमिच्छामि गाणेशं खण्डमीश्वर। त०।

किंवा तद्ब्रह्मतेजो वा किं तस्य च पराक्रमः । का तपस्या च किं ज्ञानं किं वा तन्निर्मलं यशः ॥६॥
कथं तस्य पुरः पूजा विश्वेषु निखिलेषु च । स्थिते नारायणे शंभौ जगदीशे च धातरि ॥७॥
पुराणेषु निगूढं च तज्जन्म परिकीर्तितम् । कथं वा गजवक्त्रोऽयमेकदन्तो महोदरः ॥८॥
एतत्सर्वं समाचक्ष्व श्रोतुं कौतूहलं मम । सुविस्तीर्णं महाभाग तदतीव मनोहरम् ॥९॥

नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् । पापसंतापहरणं सर्वविघ्नविनाशनम् ॥१०॥
सर्वमङ्गलदं सारं सर्वश्रुतिमनोहरम् । सुखदं मोक्षबीजं च [1]पापमूलनिकृन्तनम् ॥११॥
दैत्यार्दितानां देवानां तेजोराशिसमुद्भवा । देवी संहृत्य दैत्यौघान्दक्षकन्या बभूव ह ॥१२॥
सा च नाम्ना सती देवी स्वामिनो निन्दया पुरा । देहं संत्यज्य योगेन जाता शैलप्रियोदरे ॥१३॥
शंकराय ददौ तां च पार्वतीं पर्वतो मुदा । तां गृहीत्वा महादेवो जगाम विजनं वनम् ॥१४॥
शय्यां रतिकरीं कृत्वा पुष्पचन्दनचर्चिताम् । स रेमे नर्मदातीरे पुष्पोद्याने तया सह ॥१५॥
सहस्रवर्षपर्यन्तं दैवमानेन नारद । तयोर्बभूव शृङ्गारो विपरीतादिको महान् ॥१६॥

होने वाले) हैं या योनि से उत्पन्न हुए हैं ॥२-५॥ उनका ब्रह्मतेज, उनका पराक्रम, तपस्या, ज्ञान और निर्मल यश कैसा है ? समस्त विश्व में जगदीश नारायण, शम्भु और ब्रह्मा के रहते सब से पहले उन्हीं की पूजा क्यों होती है ? पुराणों में उनका जन्म अति निगूढ़ बताया गया है। उनके, हाथी का मुख, एक दाँत और महान् उदर कैसे हुए ? हे महाभाग ! यह अतिविस्तार से बताने की कृपा कीजिये, क्योंकि यह अत्यन्त मनोहर है और इसे सुनने के लिए मुझे महान् कौतूहल हो रहा है ॥६-९॥

नारायण बोले—हे नारद ! सुनो, इस परम अद्भुत रहस्य को मैं बता रहा हूँ, जो पापरूपी सन्ताप का अपहरण करने वाला, समस्त विघ्नों का नाशक, समस्तमंगलप्रद, सबका सारभाग, सबको सुनने में मनोहर, सुखदायक, मोक्ष का कारण तथा पापमूल का नाशक है ॥१०-११॥ दैत्यों द्वारा संतप्त देवों की तेजोराशि से प्रकट होकर देवी ने दैत्यों का संहार करने के उपरान्त दक्ष के यहाँ कन्या होकर जन्म ग्रहण किया ॥१२॥ वहाँ उनका नाम सती हुआ। फिर पूर्वकाल में स्वामी (शिव) की निन्दा के कारण उन्होंने योगद्वारा शरीर त्याग कर हिमालय की पत्नी मेना के उदर से जन्म ग्रहण किया ॥१३॥ पर्वतराज हिमवान् ने प्रसन्नतापूर्वक पार्वती शिव को समर्पित कर दी और महादेव उन्हें लेकर निर्जन वन में चले गये ॥१४॥ नर्मदा के तट पर पुष्पवाटिका में रति के उपयुक्त पुष्प-चन्दन-चर्चित शय्या का निर्माण कर शिव पार्वती के साथ रमण करने लगे ॥१५॥ हे नारद ! देवों के दिव्य वर्ष से एक सहस्र वर्ष तक वे वहाँ विपरीत आदि महान् शृंगार (रति) करने में जुटे रहे। ॥१६॥ दुर्गा (पार्वती) के अंगों के स्पर्श मात्र से ही शिव काम-मूर्च्छित हो गए

---

[1] क. कर्म०।

दुर्गाङ्गस्पर्शमात्रेण मदनान्मूर्च्छितः शिवः । मूर्च्छिता सा शिवस्पर्शाद्बुबुधे न दिवानिशम् ॥१७॥
हंसकारण्डवाकीर्णे पुंस्कोकिलरुताकुले । नानापुष्पविकासाढ्ये भ्रमरध्वनिगुञ्जिते ॥१८॥
सुगन्धिकुसुमाश्लेषिवायुना सुरभीकृते । अतीव सुखदे रम्ये सर्वजन्तुविवर्जिते ॥१९॥
दृष्ट्वा तयोस्तच्छृङ्गारं चिन्तां प्रापुः सुराः पराम् । ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य ययुर्नारायणान्तिकम् ॥२०॥
तं नत्वा कथयामास ब्रह्मा वृत्तान्तमीप्सितम् । संतस्थुर्देवताः सर्वाश्चित्रपुत्तलिका यथा ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

सहस्रवर्षपर्यन्तं दैवमानेन शंकरः । रतौ रतश्च निश्चेष्टो न योगी विरराम ह ॥२२॥
मैथुनस्य विरामे च दम्पत्योर्जगदीश्वर । किंभूतं भविताऽपत्यं तन्नः कथितुमर्हसि ॥२३॥

श्रीभगवानुवाच

चिन्ता नास्ति जगद्धातः सर्वं भद्रं भविष्यति । मयि ये शरणापन्नास्तेषां दुःखं कुतो विधे ॥२४॥
येनोपायेन तद्वीर्यं भूमौ पतति निश्चितम् । तत्कुरुष्व प्रयत्नेन सार्धं देवगणेन च ॥२५॥
यदा च शंभोर्वीर्यं तत्पार्वत्या उदरे पतेत् । ततोऽपत्यं च भविता सुरासुरविमर्दकम् ॥२६॥
ततः शक्रादयः सर्वे सुरा नारायणाज्ञया । प्रययुर्नर्मदातीरं ययौ ब्रह्मा निजालयम् ॥२७॥

और पार्वती भी शिव के अंगस्पर्श से मूर्च्छित हो गयीं। उस समय उन्हें दिनरात का ज्ञान नहीं रहा ॥१७॥ हंस और कारण्डव (बत्तख) पक्षियों से व्याप्त नर कोकिल की ध्वनि से निनादित, अनेक भाँति के विकसित पुष्पों से सुशोभित, भौंरों के गुंजार से गुंजित एवं सुगन्धित पुष्पों से सम्पृक्त वायु द्वारा सुगन्धित, अति सुखदायक, रमणीय और समस्त जीव-जन्तुओं से शून्य स्थान में उन दोनों का शृंगार-विहार देखकर देवों को बड़ी चिन्ता हुई। वे लोग ब्रह्मा को आगे करके नारायण (विष्णु) के यहाँ गये ॥१८-२०॥ ब्रह्मा ने उन्हें नमस्कार कर अभीष्ट समाचार कह सुनाया और देवता लोग कठपुतली की भाँति खड़े रहे ॥२१॥

ब्रह्मा बोले—सहस्र दिव्य वर्ष पर्यन्त शंकर रति-क्रीड़ा में लगकर निश्चेष्ट हो गये हैं। वे योगी (मैथुन से) विराम नहीं कर रहे हैं ॥२२॥ हे जगदीश्वर! उन दोनों दम्पति के मैथुन का अवसान होने पर कैसी सन्तान उत्पन्न होगी, मुझे बताने की कृपा करें ॥२३॥

श्री भगवान् बोले—हे जगत् के धाता! हे विधे! इस बात की चिन्ता न करो, सब कुछ अच्छा ही होगा। क्योंकि जो मेरी शरण में आते हैं, उन्हें दुःख कैसे हो सकता है? ॥२४॥ जिस किसी उपाय से शिव का वीर्य्य पृथ्वी पर गिर जाये, वही प्रयत्नपूर्वक देवों को साथ लेकर करो ॥२५॥ क्योंकि शिव का वीर्य यदि पार्वती के उदर में पड़ेगा, तो देवों, और राक्षसों का नाश करने वाला पुत्र उत्पन्न होगा ॥२६॥ अनन्तर इन्द्र आदि देवगण नारायण की आज्ञा से नर्मदा के तट पर पहुँचे और ब्रह्मा अपने निवास को गये ॥२७॥ वहाँ पर्वतों की घाटी के बाहर ही देवगण अति खिन्न मन और

तत्रैव पर्वतद्रोणीबहिर्देशे सुराः पराः । विषण्णवदनाः सर्वे बभूवुर्भयकातराः ॥२८॥
शक्रः कुबेरमवदत्कुबेरो वरुणं तथा । समीरणं च वरुणो यमं चैव समीरणः ॥२९॥
हुताशनं यमश्चैव भास्करं च हुताशनः । चन्द्रं तथा भास्करश्च त्वीशानं चन्द्र एव च ॥३०॥
एवं देवाः प्रेरयन्ति देवांश्च रतिभञ्जने । हरशृङ्गारभङ्गं च कुर्वित्युक्त्वा परस्परम् ॥३१॥
द्वारि स्थितो वक्रशिराः शक्रः प्राह महेश्वरम् ॥३२॥

इन्द्र उवाच

किं करोषि महादेव योगीश्वर नमोऽस्तु ते । जगदीश जगद्बीज भक्तानां भयभञ्जन ॥३३॥
हरिर्जगामेत्युक्त्वा तमाजगाम च भास्करः । उवाच भीतो द्वारस्थो भयार्तो वक्रचक्षुषा ॥३४॥

सूर्य उवाच

किं करोषि महादेव जगतां परिपालक । सुरश्रेष्ठ महाभाग पार्वतीश नमोऽस्तु ते ॥३५॥
इत्येवमुक्त्वा श्रीसूर्यः स जगाम भयात्ततः । आजगाम तथा चन्द्र [1]अवोचद्वक्रकंधरः ॥३६॥

चन्द्र उवाच

किं करोषि त्रिलोकेश त्रिलोचन नमोऽस्तु ते । स्वात्माराम स्वयंपूर्ण पुण्यश्रवणकीर्तन ॥३७॥

भय से कातर होकर अवस्थित हुए ॥२८॥ पश्चात् इन्द्र ने कुबेर से कहा और कुबेर ने वरुण से, वरुण ने वायु से, वायु ने यम से, यम ने अग्नि से, अग्नि ने सूर्य से, सूर्य ने चन्द्रमा से और चन्द्र ने ईशान से कहा ॥२९-३०॥ इस भाँति देवों ने शंकर की रति भंग करने के लिए आपस में एक-दूसरे से कह रहे थे कि 'तुम शिव की रति-क्रीड़ा भंग करो।' ॥३१॥ इन्द्र ने द्वार पर खड़े होकर शिर दूसरी ओर घुमाये, महेश्वर से कहा ॥३२॥

इन्द्र बोले—हे महादेव! हे योगीश्वर! आपको नमस्कार है। हे जगदीश! हे जगत् के कारण! हे भक्तों का भय दूर करने वाले! आप यह क्या कर रहे हैं। इन्द्र इतना कह कर चले गये। पश्चात् भास्कर (सूर्य) ने द्वार पर खड़े होकर भय से पीडित हो नेत्र दूसरी ओर किए कहा—

सूर्य्य बोले—हे महादेव! हे जगत् का पालन करने वाले! हे सुरश्रेष्ठ! हे महाभाग! हे पार्वती-पते! आपको नमस्कार है। आप यह क्या कर रहे हैं? इतना कह कर सूर्य भय वश वहाँ से चले गये। अनन्तर चन्द्रमा आये और कन्धे को दूसरी ओर मोड़कर कहने लगे ॥३३-३६॥

चन्द्र बोले—हे तीनों लोकों के अधीश्वर! हे त्रिलोचन! तुम्हें नमस्कार है। हे आत्मा में रमण करने वाले! हे अपने आप में पूर्ण! हे कानों के लिए पवित्रकारक कीर्तन वाले! आप यह क्या कर रहे हैं ॥३७॥ इतना

---

१ क. चन्नतकंधरः।

इत्येवमुक्त्वा भीतश्च विरराम निशापतिः । समीरणोऽपि द्वारस्थः संवीक्ष्योवाच सादरम् ॥३८॥

पवन उवाच

किं करोषि जगन्नाथ जगद्बन्धो नमोऽस्तु ते । धर्मार्थकाममोक्षाणां बीजरूप सनातन ॥३९॥
इत्येवं स्तवनं श्रुत्वा योगज्ञानविशारदः । त्यक्तुकामो न तत्याज शृङ्गारं पार्वतीभयात् ॥४०॥
दृष्ट्वा सुरान्भयार्तांश्च पुनः स्तोतुं समुद्यतान् । विजहौ सुखसंभोगं कण्ठलग्नां च पार्वतीम् ॥४१॥
उत्तिष्ठतो महेशस्य त्रासलज्जायुतस्य च । भूमौ पपात तद्वीर्यं ततः स्कन्दो बभूव ह ॥४२॥
पश्चात्तां कथयिष्यामि कथामतिमनोहराम् । स्कन्दजन्मप्रसङ्गे च सांप्रतं वाञ्छितं शृणु ॥४३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपति० नारदना० प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

नारायण उवाच

त्यक्त्वा रतिं महादेवो ददर्श पुरतः सुरान् । पलायध्वमिति प्राह कृपया पार्वतीभयात् ॥१॥
देवाः पलायिता भीताः पार्वतीशापहेतुना । सर्वब्रह्माण्डसंहर्ता चकम्पे पार्वतीभयात् ॥२॥

कह कर रात्रिपति (चन्द्रमा) भय के मारे चुप हो गए। उपरान्त वायु द्वार पर स्थित होकर सादर कहने लगे ॥३८॥

पवन बोले—हे जगन्नाथ ! हे जगत् के बन्धो ! आपको नमस्कार है आप धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के बीज एवं सनातन हैं। यह क्या कर रहे हैं ॥३९॥ योग-ज्ञान में निपुण शिव जी इन स्तुतियों को सुन कर शृंगार का त्याग करना चाहते हुए भी पार्वती जी के भय से त्याग न कर सके ॥४०॥ भय से आर्त होते हुए शिव जी ने भी देखा कि देवता लोग पुनः स्तुति करने के लिए उद्यत हो रहे हैं—इसलिए सुख सम्भोग का त्याग कर गले लगी हुई पार्वती का भी त्याग कर दिया ॥४१॥ भय और लज्जा से युक्त महेश्वर के उठते समय उनका वीर्य पृथ्वी पर गिर पड़ा जिससे कार्तिकेय का जन्म हुआ ॥४२॥ पश्चात् उस मनोहर कथा को सुनायेंगे, सम्प्रति कार्तिकेय के जन्म के प्रसंग में वांछनीय बातें सुनो ॥४३॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण के संवाद में पहला अध्याय समाप्त ॥१॥

अध्याय २

देवताओं को पार्वती का शाप

नारायण बोले—महादेव ने सुख त्याग कर सामने देवों को देखते ही पार्वती के भय से कृपापूर्वक कहा—'तुम लोग शीघ्र भाग जाओ' ॥१॥ पार्वती के शाप के कारण डरे हुए देवगण भाग निकले और समस्त ब्रह्माण्ड के संहर्ता शिव भी पार्वती के भय से कांपने लगे ॥२॥ दुर्गा ने शय्या से उठकर सामने देवों

तल्पादुत्थाय सा दुर्गा न च दृष्ट्वा पुरः सुरान् । समुत्थितं कोपवह्निं स्तम्भयामास देहतः ॥३॥
अद्यप्रभृति ते देवा व्यर्थवीर्या भवन्त्विति । शशाप देवी तान्देवानतिरुष्टा बभूव ह ॥४॥
ततः शिवः शिवां दृष्ट्वा क्रोधसंरक्तलोचनाम् । रुदतीं नम्रवदनां लिखन्तीं धरणीतलम् ॥५॥
शिवस्तां दुःखितां दृष्ट्वा क्रोधसंरक्तलोचनाम् । हस्ते गृहीत्वा देवेशो वासयामास वक्षसि ॥६॥
अतीव भीतः संत्रस्त उवाच मधुरं वचः । ॥७॥

शंकर उवाच

कथं रुष्टा गिरिश्रेष्ठकन्ये धन्ये मनोहरे । मम सौभाग्यरूपे च प्राणाधिष्ठातृदेवते ॥८॥
किं तेऽभीष्टं करिष्यामि वद मां जगदम्बिके । ब्रह्माण्डसंघे निखिले किमसाध्यमिहाऽऽवयोः ॥९॥
अहो निरपराधं मां प्रसन्ना भवसुन्दरि । दैवादज्ञातदोषस्य शान्तिं मे कर्तुमर्हसि ॥१०॥
त्वया युक्तः शिवोऽहं च सर्वेषां शिवदायकः । त्वया विना हीश्वरश्च शवतुल्योऽशिवः सदा ॥११॥
प्रकृतिस्त्वं च बुद्धिस्त्वं शक्तिस्त्वं च क्षमा दया । तुष्टिस्त्वं च तथा पुष्टिः शान्तिस्त्वं क्षान्तिरेव च ॥१२॥
क्षुत्त्वं छाया तथा निद्रा तन्द्रा श्रद्धा सुरेश्वरि । सर्वाधारस्वरूपा त्वं सर्वबीजस्वरूपिणी ॥१३॥
स्मितपूर्वं वद वचः सांप्रतं सरसं शिवे । त्वत्कोपविषसंदग्धं द्रुतं जीवय मां मृतम् ॥१४॥
शंकरस्य वचः श्रुत्वा क्षमायुक्ता च पार्वती । उवाच मधुरं देवी हृदयेन विदूयता ॥१५॥

को नहीं देखा इसलिए भड़के हुए क्रोधाग्नि को देह में रोक लिया ॥३॥ किन्तु अति रुष्ट होकर देवी ने देवों को शाप दे ही दिया कि—वे देवता आज से निष्फलवीर्य हो जायें (अर्थात् उनके वीर्य से कोई सन्तान न हो) ॥४॥ अनन्तर शिव ने रक्तनेत्र शिवा (पार्वती) को देखा जो क्रोध से नीचे मुख करके रोदन कर रही थीं एवं पृथ्वी पर लिख रही थीं। देवेश्वर शिव ने पार्वती को क्रोध से लाल नेत्र और दुःखी देख कर उनका हाथ पकड़ लिया और अपनी ओर खींच कर उन्हें हृदय से लगा लिया ॥५-६॥ उन्होंने अत्यन्त भयभीत होकर मधुर वचन कहा।

शंकर बोले—हे उत्तम पर्वत की कन्ये! तुम धन्य हो और मन हरण करने वाली हो। तुम मेरा सौभाग्य रूप और मेरे प्राणों की अधिष्ठात्री हो। हे जगदम्बिके! तुम्हारी क्या इच्छा है? कहो, मैं करने के लिए तैयार हूँ ॥७-८॥ इस समस्त ब्रह्माण्ड-समूह में हम दोनों के लिए असाध्य ही क्या है ॥९॥ अतः हे सुन्दरि! मुझ निरपराध पर प्रसन्न हो जाओ। दैवात् मुझसे अनजाने में अपराध हो गया। उसे क्षमा करो। अहो! तुम से युक्त होने पर ही मैं शिव हूं और सबके लिए कल्याणदायक हूँ ॥१०॥ तुम्हारे बिना मैं सदा शव के समान और अकल्याणकर्ता हूँ। हे सुरेश्वरि! तुम प्रकृति हो, बुद्धि हो एवं शक्ति, क्षमा, दया, तुष्टि, पुष्टि, शान्ति, क्षान्ति, क्षुधा, छाया, निद्रा, तन्द्रा और श्रद्धा रूप हो ॥११-१२॥ हे शिवे! सब की आधार और सबकी बीजस्वरूप हो। अतः इस समय मन्द मुसुकान समेत सरस वाणी बोलो ॥१३॥ तुम्हारे कोप रूपी विष से जल कर मैं मृतक हो गया हूँ, मुझे शीघ्र जीवित करो ॥१४॥ शङ्कर की ऐसी बातें सुन कर क्षमाशील पार्वती ने व्यथित हृदय से मधुर वचन कहा ॥१५॥

पार्वत्युवाच

किं त्वाऽहं कथयिष्यामि सर्वज्ञं सर्वरूपिणम् । स्वात्मारामं पूर्णकामं सर्वदेहेष्ववस्थितम् ॥१६॥
कामिनी मानसं काममप्रज्ञं स्वामिनं वदेत् । सर्वेषां हृदयज्ञं च हृदीष्टं कथयामि किम् ॥१७॥
सुगोप्यं सर्वनारीणां लज्जाजननकारणम् । अकथ्यमपि सर्वासां महेश कथयामि ते ॥१८॥
सुखेषु मध्ये स्त्रीणां च विभवेषु सुरेश्वर । सत्पुंसा सह संभोगो निर्जनेषु परं सुखम् ॥१९॥
तद्भङ्गेन च यद्दुःखं तत्समं नास्ति च स्त्रिया । कान्तानां कान्तविच्छेदशोकः परमदारुणः ॥२०॥
कृष्णपक्षे यथा चन्द्रः क्षीयमाणो दिने दिने । तथा कान्तं विना कान्ता क्षीणा कान्त क्षणे क्षणे ॥२१॥
चिन्ता ज्वरश्च सर्वेषामुपतापश्च वाससाम् । साध्वीनां कान्तविच्छेदस्तुरगानां च मैथुनम् ॥२२॥
रतिभङ्गो दुःखमेकं द्वितीयं वीर्यपातनम् । दुःखातिरेकि दुःखं च तृतीयमनपत्यता ॥२३॥
त्रैलोक्यकान्तं कान्तं त्वां लब्ध्वाऽपि न च मे सुतः । या स्त्री पुत्रविहीना च जीवनं तन्निरर्थकम् ॥२४॥
जन्मान्तरसुखं पुण्यं तपोदानसमुद्भवम् । सद्वंशजातपुत्रश्च परत्रेह सुखप्रदः ॥२५॥
सुपुत्रः स्मामिनोंऽशश्च स्वामितुल्यसुखप्रदः । कुपुत्रश्च कुलाङ्गारो मनस्तापाय केवलम् ॥२६॥
स्वामी स्वांशेन स्वस्त्रीणां गर्भे जन्म लभेद्ध्रुवम् । साध्वी स्त्री मातृतुल्या च सततं हितकारिणी ॥२७॥

पार्वती बोलीं— मैं तुमसे क्या कहूँ, तुम सर्वज्ञ, सर्वरूप, आत्मा में रमण करने वाले, पूर्ण काम और सब की देह में अवस्थित रहते हो॥१६॥ कामिनी अपना मनोभाव अल्पज्ञ पति से कहती है और तुम तो सब के हृदय के जानने वाले हो अतः तुमसे मनोऽभिलाषित क्या कहूँ॥१७॥ हे महेश! समस्त स्त्रियों के लिए अतिगोप्य, लज्जा का जनक तथा अकथनीय होने पर भी मैं तुमसे कह रही हूँ॥१८॥ हे सुरेश्वर! सब प्रकार के सुख और समस्त ऐश्वर्यों के बीच निर्जन स्थानों में सत्पुरुष के साथ सम्भोग करना ही स्त्रियों का परम सुख है॥१९॥ और उसके भंग होने के समान अन्य दुःख स्त्रियों को नहीं है क्योंकि स्त्रियों को स्वामी का वियोग-शोक परम दारुण होता है ॥२०॥ हे कान्त! जिस प्रकार कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा दिन-दिन क्षीण होता है उसी भाँति कान्त के बिना कान्ता भी क्षण-क्षण में क्षीण होती रहती है॥२१॥ चिन्ता सभी के लिए ज्वररूप दुःख है, वस्त्रों के लिए उपताप (गर्मी) दुःख है, पतिव्रताओं के लिए कान्त-वियोग दुःख है और घोड़ों के लिए मैथुन दुःख है॥२२॥ रति भंग होना मेरा पहला दुःख है, दूसरा दुःख आपका (भूमि पर) वीर्यपात होना और यह तीसरा महान् दुःख है कि कोई सन्तान नहीं है ॥२३॥ तीनों लोकों के स्वामी आपको पतिरूप में प्राप्त कर के भी मेरे कोई पुत्र नहीं है। जो स्त्री पुत्रहीन होती है, उसका जीवन निरर्थक होता है॥२४॥ तप और दान करने से उत्पन्न पुण्य जन्मान्तर में सुख देता है और सत्कुल में उत्पन्न हुआ पुत्र लोक-परलोक दोनों में सुख प्रदान करता है॥२५॥ स्वामी के अंश से उत्पन्न सत्पुत्र स्वामी के समान ही सुख प्रदान करता है और कुपुत्र तो कुल का अंगार रूप है। वह केवल मन को संतप्त ही करता है॥२६॥ उत्तम स्त्रियों के गर्भ में उनके स्वामी अपने अंश से जन्म ग्रहण करते हैं और पतिव्रता स्त्री माता के समान निरन्तर

असाध्वी वैरितुल्या च शश्वत्संतापदायिनी । मुखदुष्टा योनिदुष्टा चासाध्वीति त्रिधा स्मृता ॥२८॥
कमुपायं करिष्यामि वद योगीश्वरेश्वर । उपायसिन्धो तपसां सर्वेषां च फलप्रद ॥२९॥
इत्युक्त्वा पार्वतीदेवी नम्रवक्त्रा बभूव ह । प्रहस्य शंकरो देवो बोधयामास पार्वतीम् ॥३०॥
सत्पुत्रबीजं सुखदं तापनाशनकारणम् । मितं स्निग्धं सुरुचिरं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥३१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

महादेव उवाच

शृणु पार्वति वक्ष्यामि तव भद्रं भविष्यति । उपायतः कार्यसिद्धिर्भवत्येव जगत्त्रये ॥१॥
सर्ववाञ्छितसिद्धेस्तु बीजरूपं सुमङ्गलम् । मनसः प्रीतिजननमुपायं कथयामि ते ॥२॥
हरेराराधनं कृत्वा व्रतं कुरु वरानने । व्रतं च पुण्यकं नाम वर्षमेकं करिष्यसि ॥३॥
महाकठोरबीजं च वाञ्छाकल्पतरुं परम् । सुखदं पुण्यदं सारं पुत्रदं सर्वसौख्यदम् ॥४॥
नदीनां च यथा गङ्गा देवानां च हरिर्यथा । वैष्णवानां यथाऽहं च देवीनां त्वं यथा प्रिये ॥५॥

हित करने वाली होती है ॥२७॥ और असाध्वी (व्यभिचारिणी) स्त्री शत्रु के समान निरन्तर सन्ताप प्रदान करने वाली होती है। मुख की दुष्टा, योनि-दुष्टा और असाध्वी भेद से कुलटा तीन प्रकार की होती है ॥२८॥ हे योगीश्वरेश्वर! आप उपाय के सागर हैं और सभी तप का फल प्रदान करने वाले हैं, अतः मुझे बताइए ! मैं क्या उपाय करूँ ॥२९॥ इतना कह कर देवी पार्वती ने अपना मुख नीचे कर लिया। अनन्तर शिव हँस कर पार्वती को समझाने लगे ॥३०॥ सत्पुत्र होने का कारण, सुखप्रद, तापनाशक, अल्प, स्नेहमय और अत्यन्त रोचक बातें कहना प्रारम्भ किया ॥३१॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में दूसरा अध्याय समाप्त ॥२॥

अध्याय ३

पुत्र-प्राप्त्यर्थ पार्वती को पुण्यक व्रत का उपदेश

श्री महादेव जी बोले—हे पार्वती ! सुनो ! मैं कह रहा हूँ, उससे तुम्हारा कल्याण होगा । तीनों लोकों में उपाय द्वारा ही कार्य-सिद्धि होती है ॥१॥ मैं तुम्हें उपाय बता रहा हूं, जो समस्त मनोरथ सिद्धि का बीज, अति मंगल और मन में प्रीति उत्पन्न करने वाला है ॥२॥ हे वरानने ! भगवान् की आराधना करके तुम एक वर्ष तक पुण्यक नामक व्रत सुसम्पन्न करो। वह महाकठोर बीज रूप, मनोरथ का श्रेष्ठ कल्पवृक्ष, सुखद, पुण्यप्रद, सारभाग, पुत्रदायक और समस्त सौख्य का प्रदाता है ॥३-४॥ हे प्रिये ! जिस प्रकार नदियों में गंगा, देवों में विष्णु, वैष्णवों में मैं, देवियों में तुम, वर्णों में ब्राह्मण, तीर्थों में पुष्कर, पुष्पों में पारिजात, पत्रों में तुलसी, पुण्य

[1]वर्णानां च यथा विप्रस्तीर्थानां पुष्करं यथा। पुष्पाणां पारिजातं च पत्राणां तुलसी यथा ॥६॥
यथा पुण्यप्रदानां च तिथिरेकादशी स्मृता। रविवारश्च वाराणां यथा पुण्यप्रदः शिवे ॥७॥
मासानां मार्गशीर्षश्चाप्यृतूनां माधवो यथा। संवत्सरो वत्सराणां युगानां च कृतं यथा ॥८॥
विद्याप्रदश्च पूज्यानां गुरूणां जननी यथा। साध्वी पत्नी यथाऽऽप्तानां विश्वस्तानां मनो यथा ॥९॥
यथा धनानां रत्नं च प्रियाणां च यथा पतिः। यथा पुत्रश्च बन्धूनां वृक्षाणां कल्पपादपः ॥१०॥
फलानां वै चूतफलं वर्षाणां भारतं यथा। वृन्दावनं वनानां चशतरूपा च योषिताम् ॥११॥
यथा काशी पुरीणां च सूर्यस्तेजस्विनां यथा। [2]यथा शशी खगानां च सुन्दराणां च मन्मथः ॥१२॥
शास्त्राणां च यथा वेदाः सिद्धानां कपिलो यथा। हनूमान्वानराणां च क्षेत्राणां ब्राह्मणाननम् ॥१३॥
यशोदानां यथा विद्या कविता च मनोहरा। [3]आकाशो व्यापकानां च ह्यङ्गानां लोचनं यथा ॥१४॥
विभवानां हरिकथा सुखानां हरिचिन्तनम्। स्पर्शानां पुत्रसंस्पर्शो हिंस्राणां च यथा खलः ॥१५॥
पापानां च यथा मिथ्या पापिनां पुंश्चली यथा। पुण्यानां च यथा सत्यं तपसां हरिसेवनम् ॥१६॥
यथा घृतं च गव्यानां यथा ब्रह्मा तपस्विनाम्। अमृतं भक्ष्यवस्तूनां सस्यानां धान्यकं यथा ॥१७॥
पुण्यदानां यथा तोयं शुद्धानां च हुताशनः। सुवर्णं तैजसानां च मिष्टानां प्रियभाषणम् ॥१८॥
गरुडः पक्षिणां चैव हस्तिनामिन्द्रवाहनम्। योगिनां च कुमारश्च देवर्षीणां च नारदः ॥१९॥
गन्धर्वाणां चित्ररथो जीवो बुद्धिमतां यथा। सुकवीनां यथा शुक्रः काव्यानां च पुराणकम् ॥२०॥
स्रोतस्वतां समुद्रश्च यथा पृथ्वी क्षमावताम्। लाभानां च यथा मुक्तिर्हरिभक्तिश्च संपदाम् ॥२१॥

देने वालों में एकादशी तिथि तथा वारों में रविवार पुण्यप्रद है ॥५-७॥ हे शिवे ! मासों में मार्गशीर्ष (अगहन), ऋतुओं में माधव (वसन्त) वत्सरों में संवत्सर, युगों में कृतयुग, पूज्यों में विद्यादाता, गुरुओं में माता, आप्त लोगों में पतिव्रता पत्नी, विश्वस्तों में मन, धनों में रत्न, प्रिय लोगों में पति, बन्धुओं में पुत्र, वृक्षों में कल्पवृक्ष, फलों में आम, वर्षों में भारतवर्ष, वनों में वृन्दावन, स्त्रियों में शतरूपा, पुरियों में काशी, तेजस्वियों में सूर्य, आकाशचारियों में चन्द्रमा, सुन्दरों में कामदेव, शास्त्रों में वेद, सिद्धों में कपिल, वानरों में हनूमान्, क्षेत्रों में ब्राह्मणमुख, यशदायकों में विद्या और मनोहर कविता, व्यापकों में आकाश, अंगों में नेत्र, ऐश्वर्यों में भगवान् की कथा, सुखों में भगवान् का चिन्तन करना, स्पर्शों में पुत्र-स्पर्श, हिंसकों में खल (दुष्ट), पापों में मिथ्या, पापियों में पुंश्चली, पुण्यों में सत्य, तपों में हरि-सेवा, गव्यों में घी, तपस्वियों में ब्रह्मा, भक्ष्य वस्तुओं में अमृत, सस्यों में धान्य, पुण्य देनेवालों में जल, शुद्धों में अग्नि, तैजस पदार्थों में सुवर्ण, मीठी वस्तुओं में प्रिय भाषण, पक्षियों में गरुड़, हाथियों में ऐरावत, योगियों में कुमार, देवर्षियों में नारद, गन्धर्वों में चित्ररथ, बुद्धिमानों में जीव (बृहस्पति), उत्तम कवियों में शुक्र, काव्यों में पुराण, स्रोतों में समुद्र, क्षमाशीलों में पृथिवी, लाभों में मुक्ति, सम्पदाओं में हरिभक्ति, पवित्रों में वैष्णव, वर्णों (अक्षरों) में ओंकार, मन्त्रों में विष्णुमन्त्र, बीजों में

---

१ क. आश्रमाणां यथा भिक्षुस्ती०। २ ख. थेयन्दुः सुखदानां च। ३ क. आत्मा कालो व्या०।

पवित्राणां वैष्णवाश्च वर्णानां प्रणवो यथा। विष्णुमन्त्रश्च मन्त्राणां बीजानां प्रकृतिर्यथा ॥२२॥
विदुषां च यथा वाणी गायत्री छन्दसां यथा। यथा कुबेरो यक्षाणां सर्पाणां वासुकिर्यथा ॥२३॥
यथा पिता ते शैलानां गवां च सुरभिर्यथा। वेदानां सामवेदश्च तृणानां च यथा कुशः ॥२४॥
सुखदानां यथा लक्ष्मीर्मनो वै शीघ्रगामिनाम्। अक्षराणामकारश्च यथा तातो हितैषिणाम् ॥२५॥
शालग्रामश्च मूर्तीनां पशूनां विष्णुपञ्जरः। चतुष्पदानां पञ्चास्यो मानवो जीविनां यथा ॥२६॥
यथा स्वान्तं चेन्द्रियाणां मन्दाग्निश्च रुजां यथा। बलिनां च यथा शक्तिरहं शक्तिमतां यथा ॥२७॥
महान्विराट् च स्थूलानां सूक्ष्माणां परमाणुकः। यथेन्द्र आदितेयानां दैत्यानां च बलिर्यथा ॥२८॥
यथा दधीचिर्दातृणां प्रह्लादश्चैव साधुषु। ब्रह्मास्त्रं च यथाऽस्त्राणां चक्राणां च सुदर्शनम् ॥२९॥
नृणां राजा रामचन्द्रो धन्विनां लक्ष्मणो यथा। सर्वाधारः सर्वसेव्यः सर्वबीजं च सर्वदः
सर्वसारो यथा कृष्णो व्रतानां पुण्यकं यथा ॥३०॥
व्रतं कुरु महाभागे त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्। सर्वश्रेष्ठश्च पुत्रस्ते व्रतादेव भविष्यति ॥३१॥
व्रताराध्यश्च वै कृष्णः सर्वेषां वाञ्छितप्रदः। जनो यत्सेवनान्मुक्तः पितृभिः कोटिभिः सह ॥३२॥
हरिमन्त्रं गृहीत्वा च हरिसेवां करोति यः। भारते जन्म सफलं स्वात्मनः स करोति च ॥३३॥
उद्धृत्य कोटिपुरुषान्वैकुण्ठं याति निश्चितम्। श्रीकृष्णपार्षदो भूत्वा सुखं तत्रैव मोदते ॥३४॥
सहोदरान्स्वभृत्यांश्च स्वबन्धून्सहचारिणः। स्वस्त्रियश्च समुद्धृत्य भक्तो याति हरेः पदम् ॥३५॥

प्रकृति, विद्वानों में सरस्वती, छन्दों में गायत्री, यक्षों में कुबेर, सर्पों में वासुकि नाग, पर्वतों में तुम्हारे पिता हिमवान्, गौओं में सुरभि, वेदों में सामवेद, तृणों में कुश, सुख देनेवालों में लक्ष्मी, शीघ्रगामियों में मन, अक्षरों में अकार, हितैषियों में पिता, मूर्तियों में शालग्राम, आयुधों में सुदर्शन चक्र, चार पैर वालों में सिंह, जीवों में मानव, इन्द्रियों में अन्तःकरण, रोगों में मन्दाग्नि, बलवानों में शक्ति, शक्तिमानों में मैं, स्थूलों में महाविराट्, सूक्ष्मों में परमाणु, अदिति-पुत्रों (देवों) में इन्द्र, दैत्यों में बलि, दाताओं में दधीचि, साधुओं में प्रह्लाद, अस्त्रों में ब्रह्मास्त्र, चक्रों में सुदर्शन, मनुष्यों में राजा रामचन्द्र, धनुर्धारियों में लक्ष्मण और समस्त के आधार, सब के सेव्य, सब के बीज, सब कुछ देनेवाले और सबके निचोड़ श्रीकृष्ण, (जैसे सर्वश्रेष्ठ) हैं उसी भाँति व्रतों में पुण्यक व्रत है ॥८-३०॥ हे महाभागे ! इस व्रत को सुसम्पन्न करो, जो तीनों लोकों में दुर्लभ है। इस व्रत के प्रभाव से तुम्हें श्रेष्ठपुत्र की प्राप्ति होगी ॥३१॥ इस व्रत में आराध्य देव भगवान् श्रीकृष्ण हैं जो सभी को मनोरथ प्रदान करते हैं और जिनकी सेवा करके मनुष्य अपनी करोड़ों पीढ़ियों समेत मुक्त हो जाता है ॥३२॥ भारत देश में जो भगवान् का मंत्र ग्रहण कर उनकी सेवा करता है, वह अपना जन्म सफल करता है ॥३३॥ और अपनी करोड़ों पीढ़ियों का उद्धार करके निश्चित रूप से वैकुण्ठ जाता है, वहाँ भगवान् श्रीकृष्ण का पार्षद होकर आनन्द जीवन व्यतीत करता है ॥३४॥ सहोदरों (सगे भाइयों), अपने सेवक-वर्ग, बन्धुवर्ग, सहचारीगण एवं अपनी स्त्रियों का उद्धार करके भक्त भगवान् के लोक में चला जाता है ॥३५॥ हे गिरिजे ! इसलिए भगवान् का अति दुर्लभ मन्त्र ग्रहण

तस्माद्गृहाण गिरजे हरेर्मन्त्रं सुदुर्लभम्। जप मन्त्रं व्रते तत्र पितॄणां मुक्तिकारणम् ॥३६॥
इत्युक्त्वा शंकरो देवो गत्वा गिरिजया सह। शीघ्रं च जाह्नवीतीरं हरेर्मन्त्रं मनोहरम् ॥३७॥
तस्यै ददौ च संप्रीत्या कवचं स्तोत्रसंयुतम्। पूजाविधाननियमं कथयामास तां मुने ॥३८॥
इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

नारायण उवाच

श्रुत्वा व्रतविधानं च दुर्गा संहृष्टमानसा। सर्वं व्रतविधानं च संप्रष्टुमुपचक्रमे ॥१॥

पार्वत्युवाच

सर्वं व्रतविधानं मां वद वेदविदां वर। हे नाथ करुणासिन्धो दीनबन्धो परात्पर ॥२॥
कानि व्रतोपयुक्तानि द्रव्याणि च फलानि च। समयं नियमं भक्ष्यं विधानं तत्फलं प्रभो ॥३॥
देहि मह्यं विनीतायै नियुक्तं सत्पुरोहितम्। पुष्पोपहारान्विप्रांश्च द्रव्याहरणकिंकरान् ॥४॥
अन्यानि चोपयुक्तानि मयाऽज्ञातानि यानि च। संनियोजय तत्सर्वं स्त्रीणां स्वामी च सर्वदः ॥५॥
पिता कौमारकाले च सदा पालनकारकः। भर्ता मध्ये सुतः शेषे त्रिधाऽवस्था सुयोषिताम् ॥६॥

कर उस व्रत में इसका जप करो, जो पितरों को मुक्त करता है। इतना कह शंकर जी ने गिरिजा के साथ शीघ्र गंगा-तट पर जाकर उन्हें भगवान् का मनोहर मंत्र प्रदान किया, और हे मुने ! सप्रेम कवच, स्तोत्र एवं पूजा-विधान का नियम भी बताया ॥३६-३८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपति-खण्ड में नारद-नारायण-संवाद में तीसरा अध्याय समाप्त ॥३॥

अध्याय ४

पुण्यक नामक व्रत का विधान

नारायण बोले—व्रत-विधान सुनने पर दुर्गा जी का चित्त अति प्रसन्न हो गया, उन्होंने सभी व्रत-विधान पूछना आरम्भ किया ॥१॥

पार्वती बोली—हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ ! हे नाथ ! हे करुणासिन्धो ! हे दीनबन्धो ! आप परे से भी परे हैं, अतः आप मुझे यह बताने की कृपा करें कि—इस व्रत के उपयुक्त कौन द्रव्य, हैं ? फल क्या हैं ? उसके समय, नियम, भक्ष्य, विधान और फल क्या हैं ? हे प्रभो ! मुझ विनीता को एक उत्तम पुरोहित, पुष्प लाने वाले ब्राह्मणों और द्रव्यों को जुटाने वाले सेवकों का वर्ग दीजिये ॥२-४॥ और अन्य जो कुछ इस व्रत के उपयुक्त हों, जिन्हें मैं नहीं जानती हूँ, वह सब प्रबन्ध कर दें क्योंकि स्त्रियों के लिए स्वामी सब कुछ प्रदान करता है ॥५॥ कुमारावस्था में स्त्री की रक्षा पिता करता है, मध्य काल में (युवती होने पर) भर्ता और शेष वृद्धावस्था में पुत्र रक्षक होता है, इस प्रकार उत्तम स्त्रियों की तीन अवस्थायें होती हैं ॥६॥ पिता प्राणोपम अपनी पुत्री को उत्तम पति के हाथ

तातोऽशोकः प्राणतुल्यां दत्त्वा सत्स्वामिने सुताम्। स्वामी निवृत्तिमाप्नोति संन्यस्य स्वसुते प्रियाम् ॥७॥
बन्धुत्रययुता या स्त्री सा च भाग्यवती परा। किंचिद्विहीना मध्या च सर्वहीनाऽधमा भुवि ॥८॥
एतेषां च समीपस्था प्रशंस्या सा जगत्त्रये। निन्दिताऽन्येषु संन्यस्ता सर्वमेतच्छ्रुतौ श्रुतम् ॥९॥
सर्वात्मा भगवांस्त्वं च सर्वसाक्षी च सर्ववित्। देहि मह्यं पुत्रवरं स्वात्मनिर्वृतिहेतुकम् ॥१०॥
स्वात्मबोधानुमानेन महात्मनि निवेदितम्। सर्वान्तराभिप्रायज्ञं[1] भवन्तं बोधयामि किम् ॥११॥
इत्युक्त्वा पार्वती प्रीत्या पपात स्वामिनः पदे। कृपासिन्धुश्च भगवान्प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥१२॥

महादेव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि विधानं नियमं फलम्। फलानि चैव द्रव्याणि व्रतयोग्यानि यानि च ॥१३॥
विप्राणां शतकं शुद्धं फलपुष्पोपहारकम्। किंकराणां च शतकं द्रव्याहरणकारकम् ॥१४॥
दासीनां शतकं लक्षं नियुक्तं च पुरोहितम्। सर्वव्रतविधानज्ञं वेदवेदाङ्गपारगम् ॥१५॥
प्रवरं हरिभक्तानां सर्वज्ञं ज्ञानिनां वरम्। सनत्कुमारं मत्तुल्यं गृहाण व्रतहेतवे ॥१६॥
देवि शुद्धे च काले च परं नियमपूर्वकम्। माघशुक्लत्रयोदश्यां व्रतारम्भः शुभः प्रिये ॥१७॥
गात्रं सुनिर्मलं कृत्वा शिरः संस्कारपूर्वकम्। उपोष्य पूर्वदिवसे वस्त्रं संशोध्य यत्नतः ॥१८॥

सौंप कर निश्चिन्त हो जाता है और स्वामी पुत्र को अपनी पत्नी सौंप कर निवृत्त होता है ॥७॥ इस प्रकार जो स्त्री इन तीन बन्धुओं से युक्त रहती है वह उत्तम भाग्यवती होती है, कुछ कमी वाली मध्यम प्रकार की भाग्यवती है और तीनों से हीन स्त्री पृथ्वी पर अधमा कही जाती है ॥८॥ इन तीनों (बन्धुओं) के समीप रहने वाली स्त्री तीनों लोकों में प्रशंसा का पात्र होती है और इनसे अन्य को सौंपी जाने वाली निन्दित होती है, यह सब वेद में सुना गया है ॥९॥ आप सब के आत्मा, भगवान्, सब के साक्षी और सब के वेत्ता हैं, अतः मुझे अपने सुख के लिए उत्तम पुत्र देने की कृपा करें ॥१०॥ अपने ज्ञान के अनुसार मैंने (आप) महानुभाव से निवेदन कर दिया है और सभी के आन्तरिक अभिप्राय को जानने वाले आपको मैं क्या बता सकती हूँ ॥११॥ इतना कह कर पार्वती अत्यन्त प्रेम से पति के चरण पर गिर पड़ीं, अनन्तर कृपासागर भगवान् महादेव ने कहना आरम्भ किया ॥१२॥

महादेव बोले—हे देवि! मैं (उस व्रत का) विधान, नियम, फल तथा व्रत के योग्य (भक्ष्य) फल और द्रव्य बता रहा हूँ, सुनो ॥१३॥ सौ शुद्ध ब्राह्मण फल-पुष्प-चयन के लिए चाहिए और द्रव्य आदि लाने के लिए सौ सेवक ॥१४॥ एक करोड़ दासियाँ तथा ऐसा पुरोहित नियुक्त होना चाहिए, जो समस्त व्रत-विधान के ज्ञाता, वेद-वेदांग के पारगामी विद्वान्, हरिभक्तों में श्रेष्ठ, और ज्ञानियों में सर्वज्ञ हो। अतः व्रत के लिए मेरे तुल्य सनत्कुमार को पुरोहित बनाओ ॥१५-१६॥ हे देवि! हे प्रिये! शुद्ध समय में अति नियम पूर्वक इसका आरम्भ होना चाहिए। इस व्रत के आरम्भ के लिए माघ-शुक्ल-त्रयोदशी शुभ मूहूर्त है ॥१७॥ शिर के

१ख. ज्ञं बोधज्ञं बो०।

अरुणोदयवेलायां तल्पादुत्थाय सुव्रती। मुखप्रक्षालनं कृत्वा स्नात्वा वै निर्मले जले ॥१९॥
आचम्य यत्नपूतो हि हरिस्मरणपूर्वकम्। दत्त्वाऽर्घ्यं हरये भक्त्या गृहमागत्य सत्वरम् ॥२०॥
धौते च वाससी धृत्वा ह्युपविश्याऽऽसने[1] शुचौ। आचम्य तिलकं धृत्वा समाप्य स्वाह्निकं पुनः ॥२१॥
घटं संस्थाप्य विधिवत्स्वस्तिवाचनपूर्वकम्। पुरोहितस्य वरणं पुरः कृत्वा प्रयत्नतः ॥२२॥
संकल्प्य वेदविहितं व्रतमेतत्समाचरेत्। व्रते द्रव्याणि नित्यानि चोपचारास्तु षोडश।
देयानि नित्यं देवेशि कृष्णाय परमात्मने ॥२३॥
आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम्। स्नानीयं मधुपर्कं च वस्त्राण्याभरणानि च ॥२४॥
सुगन्धिपुष्पधूपं च दीपनैवेद्यचन्दनम्। यज्ञसूत्रं च ताम्बूलं कर्पूरादिसुवासितम् ॥२५॥
द्रव्याण्येतानि पूजायाश्चाङ्गरूपाणि सुन्दरि। देवि किंचिद्विहीनेन चाङ्गहानिः प्रजायते ॥२६॥
अङ्गहीनं च यत्कर्म चाङ्गहीनो यथा नरः। अङ्गहीने च कार्ये च फलहानिः प्रजायते ॥२७॥
अष्टोत्तरशतं पुष्पं पारिजातस्य विष्णवे। देयं प्रतिदिनं दुर्गे स्वात्मनो रूपहेतवे ॥२८॥
श्वेतचम्पकपुष्पाणां लक्षमक्षतमीप्सितम्। प्रदेयं हरये भक्त्या वर्णसौन्दर्यहेतवे[2] ॥२९॥
सहस्रपत्रपद्मानामक्षतं लक्षकं तथा। भक्त्या देयं च हरये मुखसौन्दर्यहेतवे ॥३०॥
अमूल्यरत्नरचितं दर्पणानां सहस्रकम्। देयं नारायणायैव नेत्रयोर्दीप्तिहेतवे ॥३१॥

संस्कार समेत शरीर को निर्मल और वस्त्र को शुद्ध करके पहले दिन उपवास करे ॥१८॥ पुनः दूसरे दिन अरुणोदयवेला में शय्या से उठकर उत्तम व्रती को चाहिए कि (दातून आदि से) मुख शुद्ध कर निर्मल जल में स्नान, आचमन, सप्रयत्न हरिस्मरण एवं भक्तिपूर्वक भगवान् को अर्घ्य दान कर के शीघ्र घर आवे और दो निर्मल वस्त्र धारण कर पवित्र आसन पर बैठे। आचमन, तिलक (चन्दन) और नित्य कर्म समाप्त करे। तत्पश्चात् पहले प्रयत्नपूर्वक पुरोहित का वरण करके स्वस्ति वाचन पूर्वक कलश स्थापन करे। फिर वेदानुसार संकल्प के साथ व्रत सुसम्पन्न करे, जिसमें नित्य सोलहो उपचार से पूजन किया जाता है। हे देवेशि ! ये सभी वस्तुएँ परमात्मा श्रीकृष्ण को नित्य समर्पित की जाती हैं। आसन, स्वागत, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, मधुपर्क, वस्त्र, आभूषण, सुगन्धित पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, चन्दन, यज्ञसूत्र (जनेऊ) और कर्पूरादि से सुवासित ताम्बूल ॥१९-२५॥ हे सुन्दरि ! इतने द्रव्य पूजा के अंग हैं। हे देवि ! पूजा के अंगभूत द्रव्यों (वस्तुओं) की कुछ कमी होने पर अंग-हानि होती है ॥२६॥ और अंगहीन कर्म अंगहीन पुरुष की भाँति ही होता है। अंगहीन कार्य में फल की हानि होती है ॥२७॥ हे दुर्गे ! अपने रूप के निमित्त पारिजात का एक-सौ आठ पुष्प भगवान् विष्णु को प्रतिदिन समर्पित करना चाहिए ॥२८॥ और रंग-सौंदर्य के लिए श्वेत चम्पा का एक लाख अक्षत पुष्प भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णु को अर्पित करना चाहिए ॥२९॥ मुख-सौन्दर्य के निमित्त सहस्र पत्र वाले कमल का एक लाख अक्षत पुष्प भक्तिपूर्वक भगवान् को अर्पित करना चाहिए ॥३०॥ नेत्र की दीप्ति के लिए अमूल्य रत्नों का बना एक सहस्र दर्पण नारायण को अर्पित करे ॥३१॥ हे देवेशि ! नेत्र-सौन्दर्य के निमित्त

१क. ०ने कुशे। २क. ०व भालसौन्दर्यहे०।

नीलोत्पलानां लक्षं च देयं कृष्णाय भक्तितः। व्रताङ्गभूतं देवेशि चक्षुषो रूपहेतवे ॥३२॥
हिमालयोद्भवं लक्षं रुचिरं श्वेतचामरम्। प्रदेयं केशवायैव केशसौन्दर्यहेतवे ॥३३॥
अमूल्यरत्नरचितं पुटकानां सहस्रकम्। प्रदेयं गोपिकेशाय नासासौन्दर्यहेतवे ॥३४॥
बन्धूकपुष्पलक्षं च देयं राधेश्वराय च। [1]सौम्यौष्ठाधरयोश्चैवं [2]वर्णसौन्दर्यहेतवे ॥३५॥
मुक्ताफलानां लक्षं च दन्तसौन्दर्यहेतवे। देयं गोलोकनाथाय शैलजे भक्तिपूर्वकम् ॥३६॥
रत्नगेन्दुकलक्षं च गण्डसौन्दर्यहेतवे। महेश्वराय दातव्यं व्रते शैलेन्द्रकन्यके ॥३७॥
रत्नपाशकलक्षं च देयं ब्रह्मेश्वराय च। ओष्ठाधःस्थलरूपाय व्रती प्राणेशि भक्तितः ॥३८॥
कर्णभूषणलक्षं च रत्नसारविनिर्मितम्। देयं सर्वेश्वरायैव कर्णसौन्दर्यहेतवे ।३९॥
माध्वीककलशानां च लक्षं रत्नविनिर्मितम्। देयं विश्वेश्वरायैव स्वरसौन्दर्यहेतवे ॥४०॥
सुधापूर्णं च कुम्भानां सहस्रं रत्ननिर्मितम्। देयं कृष्णाय देवेशि वाक्यसौन्दर्यहेतवे ॥४१॥
रत्नप्रदीपलक्षं च गोपवेषविधायिने। देयं किशोरवेषाय दृष्टिसौन्दर्यहेतवे ॥४२॥
धत्तूरकुसुमाकारं रत्नपात्रसहस्रकम्। देयं गोरक्षकायैव गलसौन्दर्यहेतवे ॥४३॥
सद्रत्नसाररचितं पद्मनालसहस्रकम्। देयं [3]चण्डकपालाय बाहुसौन्दर्यहेतवे ॥४४॥

भगवान् कृष्ण को एक लाख नीलकमल भक्ति समेत देना चाहिए, यह व्रत का अंगभूत है ॥३२॥ केश के सौन्दर्य के निमित्त हिमालय में उत्पन्न एवं रुचिर श्वेत चामर एक लाख की संख्या में भगवान् केशव को अर्पित करे ॥३३॥ नासिका-सौन्दर्य के लिए अमूल्य रत्नों का सुरचित एक सहस्र पुटक (डिब्बे) गोपिकाओं के ईश भगवान् श्रीकृष्ण को समर्पित करे ॥३४॥ सौम्य ओठों के वर्ण की सुन्दरता के निमित्त राधेश्वर भगवान् को एक लाख बन्धूक (दुपहरिया) पुष्प अर्पित करे ॥३५॥ हे शैलजे ! दाँतों के सुन्दर होने के लिए एक लाख मोती गोलोकनाथ भगवान् को भक्तिपूर्वक समर्पित करना चाहिए ॥३६॥ हे शैलेन्द्रकन्यके ! कपोल-सौन्दर्य के निमित्त एक लाख रत्नों के गेंद इस व्रत में महेश्वर को अर्पित करना चाहिए ॥३७॥ हे प्राणेशि ! ओंठ के निचले भाग के सुन्दर होने के लिए रत्नों के एक लाख पाशक भक्तिपूर्वक ब्रह्मेश्वर (भगवान् श्रीकृष्ण) को व्रती प्रदान करे ॥३८॥ कर्ण-सौन्दर्य के लिए रत्नों के सार भाग के बने एक लाख कान के भूषण सर्वेश्वर को अर्पित करना चाहिए ॥३९॥ स्वर-सौन्दर्य के निमित्त माध्वीक (महुवे के आसव) से भरे रत्नों के बने एक लाख कलश विश्वेश्वर को समर्पित करना चाहिए ॥४०॥ हे देवेशि ! वाक्य की सुन्दरता के लिए रत्नों के सुनिर्मित एक सहस्र सुधापूर्ण कलश भगवान् कृष्ण को समर्पित करना चाहिए ॥४१॥ आँखों की सुन्दरता के निमित्त एक लाख रत्नों के प्रदीप गोपवेशधारी बालमुकुन्द भगवान् को समर्पित करे ॥४२॥ गले के सौन्दर्य के निमित्त धतूर पुष्प के समान बने रत्नों के एक सहस्र पात्र गोरक्षक भगवान् को प्रदान करे ॥४३॥ बाहु की सुन्दरता के लिए उत्तम रत्नों के सार भाग से रचित एक सहस्र कमलनाल चण्डकपाल को अर्पित करना चाहिए ॥४४॥ हे नारायणि ! हाथ की सुन्दरता के निमित्त एक लाख

१क. स्पष्टौष्ठा०। २क. बहुसौ०। ३क. तन्तुक० क. स्वर्णक०।

लक्षं च रक्तपद्मानां करसौन्दर्यहेतवे। देयं गोपाङ्गनेशाय नारायणि हरिव्रते ॥४५॥
अङ्गुलीयकलक्षं च रत्नसारविनिर्मितम्। अङ्गुलीनां च रूपार्थं देयं देवेश्वराय च ॥४६॥
मणीन्द्रसारलक्षं च श्वेतवर्णं मनोहरम्। देयं मुनीन्द्रनाथाय नखसौन्दर्यहेतवे ॥४७॥
सद्रत्नसारहाराणां लक्षं चातिमनोहरम्। देयं मदनमोहाय वक्षःसौंदर्यहेतवे ॥४८॥
सुपक्वश्रीफलानां च लक्षं च सुमनोहरम्। देयं [1]सिद्धेन्द्रनाथाय स्तनसौन्दर्यहेतवे ॥४९॥
सद्रत्नवर्तुलाकारपत्रलक्षं मनोहरम्। देयं पद्मालयेशाय देहसौन्दर्यहेतवे ॥५०॥
सद्रत्नसाररचितं नाभीनां च सहस्रकम्। प्रदेयं [2]पद्मनाभाय नाभिसौन्दर्यहेतवे ॥५१॥
सद्रत्नसाररचितं रथचक्रसहस्रकम्। नितम्बसौन्दर्यार्थं च देयं वै चक्रपाणये ॥५२॥
[3]सुवर्णरम्भास्तम्भानां लक्षं च सुमनोहरम्। प्रदेयं श्रीनिवासाय श्रोणिसौन्दर्यहेतवे ॥५३॥
शतपत्रस्थलाब्जानां लक्षमम्लानमक्षतम्[4]। प्रदेयं पद्मनेत्राय पादसौन्दर्यहेतवे ॥५४॥
सुवर्णरचितानां च खञ्जनानां सहस्रकम्। गतिसौन्दर्यहेत्वर्थं देयं लक्ष्मीश्वराय च ॥५५॥
राजहंससहस्रं च गजेन्द्राणां सहस्रकम्। सुवर्णरचितं देयं हरये गतिहेतवे ॥५६॥
सुवर्णच्छत्रलक्षं च देयं नारायणाय च। विचित्रं रत्नसारेण मूर्धसौन्दर्यहेतवे ॥५७॥

रक्तकमल भगवान् के इस व्रत में गोपांगनाओं के ईश भगवान् कृष्ण को सादर समर्पित करे ॥४५॥ अंगुलियों के सौन्दर्य के लिए रत्नों के सार भाग से सुनिर्मित एक लाख अंगूठियाँ देवेश्वर को प्रदान करना चाहिए ॥४६॥ नखों के सौन्दर्य के लिए उत्तम मणियाँ जो श्वेत वर्ण और मनोहर हों, एक लाख की संख्या में मुनीन्द्रनाथ (भगवान्) को समर्पित करे ॥४७॥ वक्षःस्थल के सौन्दर्य निमित्त उत्तम रत्नों के सारभाग के बने मनोहर एक लाख हार मदनमोहन भगवान् को समर्पित करने चाहिए ॥४८॥ स्तन-सौन्दर्य के लिए अत्यन्त पके और अति मनोहर एक लाख श्रीफल (बेल) सिद्धेन्द्रनाथ (भगवान्) को प्रदान करे ॥४९॥ देह-सौन्दर्य के लिए उत्तम रत्नों के गोलाकार और अति मनोहर एक लाख पत्र कमलालय के अधीश्वर (भगवान्) को सादर समर्पित करे ॥५०॥ नाभि की सुन्दरता के लिए उत्तम रत्नों के सारभाग से बनी एक सहस्र नाभि पद्मनाभ (भगवान्) को समर्पित करनी चाहिए ॥५१॥ नितम्ब-सौन्दर्य के लिए उत्तम रत्नों के सारभाग से बने एक सहस्र रथचक्र चक्रपाणि भगवान् को प्रदान करने चाहिए ॥५२॥ जघन-सौन्दर्य के लिए सुवर्ण के बने अति मनोहर एक लाख कदली-स्तम्भ श्रीनिवास (भगवान्) को प्रदान करना चाहिए ॥५३॥ चरण-सौन्दर्य के निमित्त एक लाख निर्मल और अक्षत स्थलकमल कमलनेत्र भगवान् को समर्पित करना चाहिए ॥५४॥ गति (चाल) की सुन्दरता के निमित्त सुवर्णरचित एक सहस्र खंजन (पक्षी) लक्ष्मीश्वर भगवान् को सादर अर्पित करे ॥५५॥ गति (चाल) के लिए सुवर्ण रचित एक सहस्र राजहंस और एक सहस्र गजेन्द्र भगवान् को समर्पित करे ॥५६॥ मूर्धा (शिर) के सौन्दर्य के निमित्त सुवर्ण के एक लाख छत्र, जो उत्तम रत्नों के सार भाग से चित्र-विचित्र बने हों,

---

१. क. सौन्दयना० । २ क. ०रत्ननाभा० । ३ क. ०रत्नस्त० । ४ क. मस्तकम् ।

मालतीनां च कुसुममक्षतं लक्षमीश्वरि। देयं वृन्दावनेशाय हास्यसौन्दर्यहेतवे ॥५८॥
अमूल्यरत्नलक्षं च देयं नारायणाय वै। सुव्रते व्रतपूर्णार्थं शीलसौन्दर्यहेतवे ॥५९॥
स्वच्छस्फटिकसंकाशं मणीन्द्रश्रेष्ठलक्षकम्। देयं मुनीन्द्रनाथाय मनःसौन्दर्यहेतवे ॥६०॥
प्रवालसारसंकाशं मणिसारसहस्रकम्। देयं कृष्णाय भक्त्या च प्रियरागविवृद्धये ॥६१॥
माणिक्यसारलक्षं च देयं कृष्णाय यत्नतः। जन्मनः कोटिपर्यन्तं स्वामिसौभाग्यहेतवे ॥६२॥
कूष्माण्डं नारिकेलं च जम्बीरं श्रीफलं तथा। फलान्येतानि देयानि हरये पुत्रहेतवे ॥६३॥
रत्नेन्द्रसारलक्षं च देयं कृष्णाय यत्नतः। असंख्यजन्मपर्यन्तं स्वामिनो धनवृद्धये ॥६४॥
वाद्यं नानाप्रकारं च कांस्यतालादिकं परम्। व्रते संपत्तिवृद्धयर्थं श्रीहरिं श्रावयेद्व्रती ॥६५॥
पायसं पिष्टकं सर्पिः शर्कराक्तं मनोहरम्। प्रदेयं हरये भक्त्या स्वामिनो भोगवृद्धये ॥६६॥
सुगन्धिपुष्पमालानां लक्षमक्षतमीप्सितम्। प्रदेयं हरये भक्त्या हरिभक्तिविवृद्धये ॥६७॥
नैवेद्यानि च देयानि स्वादूनि मधुराणि च। श्रीकृष्णप्रीतिप्राप्त्यर्थं दुर्गे नानाविधानि च ॥६८॥
नानाविधानि पुष्पाणि तुलसीसंयुतानि च। श्रीकृष्णप्रीतये भक्त्या व्रते देयानि सुव्रते ॥६९॥
ब्राह्मणानां सहस्रं च प्रत्यहं भोजयेद्व्रती। स्वात्मनः सस्यवृद्धयर्थं व्रते जन्मनि जन्मनि ॥७०॥
पुष्पाञ्जलिशतं देयं नित्यं पूर्णं च पूजने। प्रणामशतकं देवि कर्तव्यं भक्तिवृद्धये ॥७१॥

नारायण को अर्पित करने चाहिए ॥५७॥ हे ईश्वरि! हास्य-सौन्दर्य के लिए मालती के एक लाख अक्षत पुष्प वृन्दावन के ईश को प्रदान करे ॥५८॥ हे सुव्रते! शील-सौन्दर्य के लिए और व्रत-परिपूरणार्थ एक लाख अमूल्य रत्न नारायण को समर्पित करने चाहिए ॥५९॥ मन के सौन्दर्य के निमित्त स्वच्छ स्फटिक के समान एक लाख श्रेष्ठ मणि मुनीन्द्रनाथ को प्रदान करने चाहिए ॥६०॥ प्रियानुराग-वृद्धि के निमित्त प्रवाल (मूंगा) के सार-भाग के समान मणियों का एक सहस्र सारभाग भगवान् कृष्ण को देना चाहिए ॥६१॥ करोड़ों जन्म पर्यन्त स्वामी (पति) का सौभाग्य प्राप्त रहे, इसके लिए एक लाख उत्तम माणिक्य भगवान् श्रीकृष्ण को भक्तिपूर्वक सप्रयत्न अर्पित करे ॥६२॥ पुत्र की कामना से कूष्माण्ड (कुम्हड़ा) नारियल, जम्बीर (नीबू) और श्रीफल (बेल) इतने फल भगवान् को समर्पित करे ॥६३॥ असंख्य जन्म पर्यन्त स्वामी के धन-वृद्ध्यर्थ रत्नेन्द्र का एक लाख सारभाग श्रीकृष्ण को सप्रयत्न अर्पित करना चाहिए ॥६४॥ व्रत में सम्पत्ति के वृद्ध्यर्थ व्रती को चाहिए कि अनेक भाँति के मजीरा, ताल आदि वाद्य भगवान् श्री हरि को सुनाये ॥६५॥ स्वामी के भोग-वृद्ध्यर्थ घृत-शक्कर मिश्रित मनोहर खीर, पिष्टक (पूआ और बड़ा) भक्तिपूर्वक भगवान् को समर्पित करे ॥६६॥ भगवान् की भक्ति-वृद्धि के निमित्त सुगन्धित पुष्पों की अक्षत एक लाख माला भक्तिपूर्वक भगवान् को अर्पित करे ॥६७॥ हे दुर्गे! भगवान् श्रीकृष्ण की प्रीति-प्राप्त्यर्थ अनेक भाँति के सुस्वादु और मधुर नैवेद्य भगवान् को समर्पित करना चाहिए ॥६८॥ हे सुव्रते! इस व्रत में भगवान् श्रीकृष्ण की प्रीति के लिए तुलसी पत्र समेत अनेक भाँति के पुष्प, भक्तिपूर्वक भगवान् को अर्पित करे ॥६९॥ जन्म-जन्मान्तर में अपनी सस्य-वृद्धि के निमित्त एक सहस्र ब्राह्मणों को व्रती प्रतिदिन भोजन कराये ॥७०॥ हे देवि! इस पूजन में परि-पूरणार्थ नित्य सौ पुष्पाञ्जलि अर्पित करनी चाहिए और भक्ति-वृद्धि के निमित्त सौ बार प्रणाम करना चाहिए ॥७१॥

**षण्मासांश्च हविष्यान्नं मासान्पञ्च फलादिकम्। हविः पक्षं जलं पक्षं व्रते भक्षेच्च सुव्रते ॥७२॥
रत्नप्रदीपशतकं वह्निं दद्याद्दिवानिशम्। रात्रौ कुशासनं कृत्वा नित्यं जागरणं व्रते ॥७३॥
ज्ञानवृद्धिर्जागरणे सुबुद्धिर्मूलभोजने। लोभमोहकामक्रोधभयशोकविवादकम् ॥७४॥
स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्। संकल्पोऽध्यवसायश्च [1]क्रियानिर्वृत्तिरित्यपि ॥७५॥
[2]विविधं मैथुनं त्याज्यं व्रतिना व्रतशुद्धये। कलहश्च परित्याज्यो व्रते क्रीडाविवृद्धये ॥७६॥
संपूर्णे च व्रते देवि प्रतिष्ठा तदनन्तरम्। त्रिशतं वै षष्ट्यधिकं रल्लकं वस्त्रसंयुतम् ॥७७॥
सभोज्यं सोपवीतं च सोपहारं ददात्वयम्। त्रिशतं वै षष्ट्यधिकसहस्रं विप्रभोजनम् ॥७८॥
[1]त्रिशतं वै षष्ट्यधिकं सहस्रं तिलहोमकम्। त्रिशतं वै षष्ट्यधिकं सहस्रं स्वर्णमेव च ॥७९॥
देया व्रतसमाप्तौ च दक्षिणा विधिबोधिता। अन्यां समाप्तिदिवसे कथयिष्यामि दक्षिणाम् ॥८०॥
एतद्व्रतफलं देवि दृढा भक्तिर्हरौ भवेत्। हरितुल्यो भवेत्पुत्रो विख्यातो भुवनत्रये ॥८१॥
सौन्दर्यं स्वामिसौभाग्यमैश्वर्यं विपुलं धनम्। सर्ववाञ्छितसिद्धीनां बीजं जन्मनि जन्मनि ॥८२॥
इत्येवं कथितं देवि व्रतं कुरु महेश्वरि। पुत्रस्ते भविता साध्वीत्युक्त्वा स विरराम ह ॥८३॥**

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० पुण्यकव्रतविधानं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

इस व्रत में व्रती को छह मास तक हविष्यान्न, पाँच मास तक फल आदि, एक पक्ष हवि का भक्षण और फिर एक पक्ष तक केवल जल पी कर रहना चाहिए ॥७२॥ व्रत में रत्नों के सौ दीपक दिन-रात जलाना चाहिए और रात्रि में कुशासन पर समासीन होकर नित्य जागरण करना चाहिए ॥७३॥ जागरण में ज्ञान की वृद्धि होती है और कन्द- मूल भोजन करने से सुबुद्धि होती है। लोभ, मोह, काम क्रोध, भय, शोक और विवाद का त्याग करना चाहिए। हे देवि ! व्रत-शुद्धि के निमित्त इस व्रत में व्रती को (कामविषयक) स्मरण, कीर्तन, केलि (क्रीडा), प्रेक्षण (आँखें गड़ा कर देखना), गुह्य भाषण, संकल्प (उसकी प्राप्ति के लिए दृढ़ इच्छा), अध्यवसाय (प्रयत्न) और क्रिया निर्वृत्ति (संभोग) एवं विविध प्रकार के मैथुन तथा कलह का त्याग करना चाहिए। व्रत के सम्पूर्ण हो जाने पर अनन्तर प्रतिष्ठा करनी चाहिए। तीन सौ साठ कम्बल, वस्त्र, भोजन, यज्ञोपवीत एवं उपहार समेत दान करे। तीन सौ साठ सहस्र ब्राह्मणों को भोजन कराये ॥७४-७८॥ तीन सौ साठ सहस्र तिल की आहुति और तीन सौ साठ सहस्र सुवर्ण व्रत की समाप्ति में दक्षिणा प्रदान करना चाहिए, ऐसा ब्रह्मा ने बताया है। हे देवि ! समाप्ति के दिन दी जाने वाली अन्य दक्षिणा को भी बताऊँगा ॥७९-८०॥ इस प्रकार सुसम्पन्न करने से इस व्रत का यह फल होता है कि भगवान् में दृढ़ भक्ति उत्पन्न होती है। भगवान् के समान तीनों लोकों में विख्यात पुत्र होता है तथा सौन्दर्य, स्वामी-सौभाग्य, ऐश्वर्य एवं विपुल धन की प्राप्ति होती है। प्रत्येक जन्म में सभी अभिलषित सिद्धियों की प्राप्ति होती रहती है। हे महेश्वरि ! देवि ! इस प्रकार मैंने तुम्हें व्रत बता दिया, इसे सुसम्पन्न करो। हे साध्वि ! तुम्हारे अवश्य पुत्र होगा। इतना कह कर शिव जी चुप हो गये ॥८१-८३॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में पुण्यक-व्रत-विधान नामक चौथा अध्याय समाप्त ॥४॥

---

१ ०यानिष्पत्तिरेव च। २ ख० स्वप्नमैथुनकं. त्या०।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

नारायण उवाच

श्रुत्वा व्रतविधानं च दुर्गा संहृष्टमानसा। पुनः प्रपच्छ कान्तं सा दिव्यां व्रतकथां शुभाम्॥१॥

पार्वत्युवाच

किमद्भुतं व्रतं नाथ विधानं फलमस्य च। अधिकां तत्कथां ब्रूहि व्रतं केन प्रकाशितम्॥२॥

महादेव उवाच

शतरूपा मनोः पत्नी पुत्रदुःखेन दुःखिता। ब्रह्मणः स्थानमागत्य सा ब्रह्माणमुवाच ह॥३॥

शतरूपोवाच

ब्रह्मन्केन प्रकारेण वन्ध्यायाश्च सुतो भवेत्। तन्मे ब्रूहि जगद्धातः सृष्टिकारणकारण॥४॥
तज्जन्म निष्फलं ब्रह्मन्नैश्वर्यं धनमेव च। किंचिन्न शोभते गेहे विना पुत्रेण पुत्रिणाम्॥५॥
तपोदानोद्भवं पुण्यं जन्मान्तरसुखावहम्। सुखदो मोक्षदः प्रीतिदाता पुत्रश्च पुत्रिणाम्॥६॥
पुत्री पुत्रमुखं दृष्ट्वा चाश्वमेधशतोद्भवम्। फलं पुंनामनरकत्राणहेतुं लभेद्ध्रुवम्॥७॥
पुत्रोत्पत्तेरुपायं वै वद मां तापसंयुताम्। तदा भद्रं न चेद्भर्त्रा सह यास्यामि काननम्॥८॥

अध्याय ५

पुण्यक व्रत का माहात्म्य-कथन

नारायण बोले—व्रत का विधान सुन कर दुर्गा जी का मन प्रफुल्लित हो गया, फिर उन्होंने उस दिव्य एवं शुभ व्रत-कथा को अपने कान्त (शिव जी) से पूछा॥१॥

पार्वती बोलीं—हे नाथ! यह कैसा अद्‌भुत व्रत है। इसका विधान, फल, अधिक कथा और किसने इसे प्रकाशित किया, वह मुझे बताने की कृपा करें॥२॥

महादेव बोले—एक बार मनु की पत्नी शतरूपा ने पुत्र (न होने रूप) दुःख से दुःखी हो ब्रह्मा के स्थान में आकर उनसे कहा॥३॥

शतरूपा बोलीं—हे ब्रह्मन्! आप समस्त संसार के धाता एवं सृष्टि-कारणों के कारण हैं, अतः आप मुझे यह बताने की कृपा करें कि—किस उपाय द्वारा वन्ध्या स्त्री को भी पुत्र उत्पन्न हो सकता है॥४॥ क्योंकि हे ब्रह्मन्! जिस गृहस्थ के घर पुत्र नहीं है उसका जन्म निष्फल है, ऐश्वर्य और धन भी व्यर्थ है और उसके घर की कुछ शोभा भी नहीं होती है॥५॥ तप और दान द्वारा उत्पन्न पुण्य दूसरे जन्म में सुखप्रद होता है, और पुत्र पुत्रवानों को सुख, मोक्ष तथा प्रीति प्रदान करता है॥६॥ पुं नामक नरक से बचाने के कारण पुत्र का मुख देखने पर पुत्रवान् व्यक्ति सौ अश्वमेध यज्ञों का फल निश्चित प्राप्त करता है॥७॥ इसलिए मुझ संतप्त दुःखिया को आप

गृहाण राज्यमैश्वर्यं धनं पृथ्वीं प्रजावहाम्। किमेतेनाऽवयोस्तात विना पुत्रैरपुत्रिणोः ॥९॥
अपुत्रिणो मुखं द्रष्टुं विद्वान्नोत्सहतेऽशिवम्। मुखं दर्शयितुं लज्जां समवाप्नोत्यपुत्रकः ॥१०॥
अथवा गरलं भुक्त्वा प्रवेक्ष्यामि हुताशनम्। अपुत्रपौत्रमशिवं गृहं स्यात्स्त्रीविहीनकम् ॥११॥
इत्येवमुक्त्वा सा साक्षाद्ब्रह्मणोऽग्रे रुरोद ह। कृपानिधिश्च तां दृष्ट्वा प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

शृणु वत्से प्रवक्ष्यामि पुत्रोपायं सुखावहम्। सर्वैश्वर्यादिबीजं च सर्ववाञ्छाप्रदं शुभम् ॥१३॥
माघशुक्लत्रयोदश्यां व्रतमेतत्सुपुण्यकम्। कर्तव्यं शुद्धकाले च कृष्णमाराध्य सर्वदम् ॥१४॥
संवत्सरं च कर्तव्यं सर्वविघ्नविनाशनम्। द्रव्याणि वेदैरुक्तानि व्रते देयानि सुव्रते ॥१५॥
व्रतं च काण्वशाखोक्तं सर्ववाञ्छितसिद्धिदम्। कृत्वा पुत्रं लभ शुभे विष्णुतुल्यपराक्रमम् ॥१६॥
ब्रह्मणश्च वचः श्रुत्वा सा कृत्वा व्रतमुत्तमम्। प्रियव्रतोत्तानपादौ लेभे पुत्रौ मनोहरौ ॥१७॥
व्रतं कृत्वा देवहूतिर्लेभे सिद्धेश्वरं सुतम्। नारायणांशं कपिलं पुण्यकं[1] सिद्धिदं शुभम् ॥१८॥
अरुन्धतीदं कृत्वा तु लेभे[2] शक्तिसुतं शुभा। शक्तिकान्ता व्रतं कृत्वा सुतं लेभे पराशरम् ॥१९॥

पुत्र-उत्पन्न होने का उपाय बतायें। अन्यथा स्वामी के साथ मैं वन चली जाऊँगी ॥८॥ आप राज्य, ऐश्वर्य, धन एवं प्रजापूर्ण पृथ्वी ले लीजिए। क्योंकि हे तात! जब हम लोग निपूत ही रहेंगे तो यह सब लेकर क्या करेंगे ॥९॥ विद्वान् लोग पुत्रहीन का मुख अमंगल होने के नाते कभी नहीं देखना चाहते और वह अपुत्री भी अपना मुख दिखाने में लज्जा का अनुभव करता है ॥१०॥ अथवा मैं विष भक्षण कर अग्नि में पैठ जाऊँगी। क्योंकि पुत्र-पौत्र एवं स्त्रीहीन गृह अमंगल रूप है ॥११॥ इतना कह कर वह ब्रह्मा के सामने रोने लगीं। अनन्तर कृपानिधान ब्रह्मा ने उसकी ओर देख कर कहना आरम्भ किया ॥१२॥

ब्रह्मा बोले—हे वत्से! मैं तुम्हें पुत्र उत्पन्न होने का सुखप्रद उपाय बता रहा हूँ, जो समस्त ऐश्वर्य प्राप्ति का कारण, समस्त मनोरथ सिद्ध करनेवाला एवं शुभ है ॥१३॥ माघ-शुक्ल-त्रयोदशी में सुपुण्यक नामक व्रत होता है। शुद्ध काल में सर्वदाता भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना पूर्वक वह व्रत सुसम्पन्न करना चाहिए ॥१४॥ हे सुव्रते! समस्त विघ्नों का नाश करने वाला वह व्रत पूर्ण वर्ष भर करे और वेद में कही वस्तुएँ उस व्रत में दान करे ॥१५॥ हे शुभे! इस प्रकार काण्व शाखा के अनुसार समस्त मनोरथ को सिद्ध करने वाले उस व्रत को सुसम्पन्न कर भगवान् विष्णु के समान पराक्रमी पुत्र प्राप्त करो ॥१६॥ ब्रह्मा की बातें सुनकर उसने उस व्रत को सुसम्पन्न किया, जिससे उसे प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो मनोहर पुत्र प्राप्त हुए ॥१७॥ देवहूति ने सिद्धि-दायक तथा पवित्र पुण्यक व्रत करके सिद्धों के ईश्वर, तथा नारायण के अंश से संभूत कपिल नामक पुत्र प्राप्त किया, ॥१८॥ अरुन्धती ने इसे सुसम्पन्न कर शक्ति नामक पुत्र प्राप्त किया और शक्ति की कान्ता ने इसे सम्पन्न कर पराशर नामक पुत्र लाभ किया ॥१९॥ अदिति ने इस व्रत के द्वारा वामनावतार पुत्र और देवों की

---

१ ख. पुण्यदं शु०। २ क. सिद्धेश्वरं सुतम्।

अदितिश्च व्रतं कृत्वा लेभे वामनकं सुतम्। शची जयन्तं पुत्रं च लेभे कृत्वेदमीश्वरी॥२०॥
उत्तानपादपत्नीदं कृत्वा लेभे ध्रुवं सुतम्। कुबेरजाया कृत्वेदं लेभे च नलकूबरम्॥२१॥
सूर्यपत्नी मनुं लेभे कृत्वेदं व्रतमुत्तमम्। अत्रिपत्नी सुतं चन्द्रं लेभे कृत्वेदमुत्तमम्॥२२॥
लेभे चाङ्गिरसः पत्नी कृत्वेदं व्रतमुत्तमम्। बृहस्पतिं सुरगुरुं पुत्रमस्य प्रभावतः॥२३॥
भृगोर्भार्या व्रतं कृत्वा लेभे दैत्यगुरुं सुतम्। शुक्रं नारायणांशं च सर्वतेजस्विनां वरम्॥२४॥
इत्येवं कथितं देवि व्रतानां व्रतमुत्तमम्। त्वमेवं कुरु कल्याणि हिमालयसुते शुभे॥२५॥
साध्यं राजेन्द्रपत्नीनां देवीनां च सुखावहम्। व्रतमेतन्महासाध्वि साध्वीनां प्राणतः प्रियम्॥२६॥
व्रतस्यास्य प्रभावेण स्वयं गोपाङ्गनेश्वरः। ईश्वरः सर्वभूतानां तव पुत्रो भविष्यति॥२७॥
इत्युक्त्वा शंकरस्तत्र विरराम च नारद। व्रतं चकार सा देवी प्रहृष्टा शंकराज्ञया॥२८॥
इत्येवं कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि। सुखदं मोक्षदं सारं गणेशजनिकारणम्॥२९॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० पुण्यकव्रतकथनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥५॥

ईश्वरी इन्द्राणी ने इसके द्वारा जयन्त नामक पुत्र को प्राप्त किया॥२०॥ उत्तानपाद की पत्नी ने इस व्रत को समाप्त कर ध्रुव नामक पुत्र लाभ किया, कुवेर की पत्नी ने इस व्रत को करके नल-कूवर नामक दो पुत्र लाभ किये और सूर्य की पत्नी संज्ञा ने इस व्रत को सुसम्पन्न कर मनु पुत्र प्राप्त किया एवं अत्रि की पत्नी (अनसूया) ने चन्द्रमा नामक उत्तम पुत्र प्राप्त किया॥२१-२२॥ अंगिरा की पत्नी ने इस उत्तम व्रत को सम्पन्न कर बृहस्पति नामक पुत्र प्राप्त किया, जो देवों के गुरु हैं॥२३॥ भृगु की पत्नी ने इसी व्रत के प्रभाव से शुक्र नामक पुत्र प्राप्त किया, जो दैत्यों के गुरु, नारायण के अंश एवं समस्त तेजस्वियों में श्रेष्ठ हैं॥२४॥ हे देवि! समस्त व्रतों में परमोत्तम व्रत मैंने इस प्रकार तुम्हें बता दिया। अतः हे कल्याणि! हे हिमालय-सुते! शुभे! तुम भी इस प्रकार सम्पन्न करो॥२५॥ हे महासाध्वि! महारानियों के लिए यह व्रत साध्य है, देवियों के लिए सुखप्रद तथा पतिव्रताओं को प्राणों से भी अधिक प्रिय है॥२६॥ इस व्रत के प्रभाव वश गोपांगनाओं के अधीश्वर भगवान् कृष्ण, जो समस्त भूतों के अधीश्वर हैं, स्वयं तुम्हारे पुत्र होंगे॥२७॥ हे नारद! इतना कहकर शिवजी चुप हो गये। अनन्तर देवी ने शंकर जी की आज्ञा शिरोधार्य कर अत्यन्त प्रसन्नता से इस व्रत को सुसम्पन्न किया॥२८॥ इस भाँति मैंने सब कुछ सुना दिया जो सुख, मोक्षप्रद एवं गणेश जन्म का कारण है, और अब क्या सुनना चाहते हो॥२९॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में पुण्यक व्रत कथन नामक पाँचवाँ अध्याय समाप्त॥५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

शौनक उवाच

नारायणवचः श्रुत्वा नारदो हृष्टमानसः। किं पप्रच्छ पुनः साधो तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥१॥

सूत उवाच

नारायणवचः श्रुत्वा नारदो हृष्टमानसः। व्रतारम्भविधानं च संप्रष्टुमुपचक्रमे ॥२॥

नारद उवाच

कृतं केन प्रकारेण व्रतमेतच्छुभावहम्। तन्मे ब्रूहि मुनिश्रेष्ठ पार्वत्या भर्तुराज्ञया ॥३॥
ललाभ जन्म [1]गोपीशः कृते सुव्रतया व्रते। ब्रह्मन्केन प्रकारेण तन्नः शंसितुमर्हसि ॥४॥

नारायण उवाच

कथयित्वा कथां दिव्यां विधानं च व्रतस्य च। स्वयं विधाता तपसां जगाम तपसे शिवः ॥५॥
हरेराराधनव्यग्रो मूर्तिभेदधरो हरिः। हरिभावनशीलश्च हरिध्यानपरायणः ॥६॥
परमानन्दपूर्णश्च ज्ञानानन्दः सनातनः। दिवानिशं न जानाति हरिमन्त्रं बहिः स्मरन् ॥७॥

अध्याय ६

पुण्यकव्रत के लिए आज्ञा-ग्रहण

शौनक बोले—हे साधो! हे तपोधन! नारायण की बातें सुनकर प्रसन्न चित्त नारद ने पुनः क्या प्रश्न किया, वह मुझे बताने की कृपा करें॥१॥

सूत बोले—नारायण की बातें सुनकर नारद जी प्रसन्नचित्त होकर व्रत का आरम्भ-विधान पूछने लगे ॥२॥

नारद बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! पति की आज्ञा शिरोधार्य कर पार्वती ने इस शुभप्रद व्रत को किस प्रकार सुसम्पन्न किया, वह मुझे बताने की कृपा करें।॥३॥ हे ब्रह्मन्! उत्तम व्रत को सम्पन्न करने वाली पार्वती जी द्वारा इस व्रत के पूर्ण होने पर भूतेश भगवान् श्रीकृष्ण ने उनके यहाँ किस प्रकार जन्म ग्रहण किया, यह कृपया मुझे बतायें।॥४॥

नारायण बोले—तप के विधाता शिव ने स्वयं इस व्रत की दिव्य कथा और विधान कहकर तप के लिए प्रस्थान किया।॥५॥ क्योंकि भगवान् की आराधना के लिए वे सदैव व्यग्र रहा करते हैं, भगवान् का रूपान्तर धारण करने के नाते वे हरि हैं, हरि की सतत भावना बनाये रखना उनका शील (स्वभाव) है। इसीलिए भगवान् के ध्यान में तन्मय रहते हैं।॥६॥ वे परमानन्द से पूर्ण, ज्ञानानन्द और सनातन हैं, भगवान् के मन्त्र-जप में संलग्न

---

१ क. भूतेशः।

प्रहृष्टमनसा देवी पार्वती भर्तुराज्ञया। किंकरान्प्रेरयामास विप्रांश्च व्रतहेतवे ॥८॥
आनीय सर्वद्रव्याणि व्रते योग्यानि यानि च। व्रतं कर्तुं समारेभे शुभदा सा शुभे क्षणे ॥९॥
सनत्कुमारो भगवानाजगाम विधेः सुतः। मूर्तिमांस्तेजसां राशिः प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा ॥१०॥
ब्रह्मा जगाम हृष्टश्च ब्रह्मलोकात्सभार्यकः। अतित्रस्तो हि भगवानाजगाम सुरेश्वरः ॥११॥
विष्णुः क्षीरोदशायी च सलक्ष्मीकश्चतुर्भुजः। भगवाञ्जगतां पाता शास्ता भर्ता सपार्षदः ॥१२॥
वनमालाधरः श्यामो भूषितो रत्नभूषणैः। तथा संभृतसंभारो रत्नयानेन नारद ॥१३॥
सनकश्च सनन्दश्च कपिलश्च सनातनः। आसुरिश्च क्रतुर्हंसो वोढुः पञ्चशिखोऽरुणिः ॥१४॥
यतिश्च सुमतिश्चैव वसिष्ठश्च सहानुगः। पुलहश्च पुलस्त्यश्चाप्यत्रिश्च भृगुरङ्गिराः ॥१५॥
अगस्त्यश्च प्रचेताश्च दुर्वासाश्च्यवनस्तथा। मरीचिः कश्यपः कण्वो जरत्कारुश्च गौतमः ॥१६॥
बृहस्पतिरुतथ्यश्च संवर्तः सौभरिस्तथा। जाबालिर्जमदग्निश्च जैगीषव्यश्च देवलः ॥१७॥
[1]गोकामुखो वक्ररथः पारिभद्रः पराशरः। विश्वामित्रो वामदेव ऋष्यश्रृङ्गो विभाण्डकः ॥१८॥
मार्कण्डेयो मृकण्डुश्च [2]पुष्करो लोमशस्तथा। कौत्सो वत्सश्च दक्षश्च [3]बालाग्निरघमर्षणः ॥१९॥
कात्यायनः कणादश्च पाणिनिः शाकटायनः। शङ्कुरापिशलिश्चैव शाकल्यः शङ्ख एव च ॥२०॥
एते चान्ये च बहवः सशिष्या मुनयो मुने। आवां च धर्मपुत्रौ च नरनारायणौ समौ ॥२१॥

रहने के कारण उन्हें बाहर दिन-रात्रि का ज्ञान कुछ भी नहीं रहता है ॥७॥ प्रसन्नचित्त पार्वती ने पति की आज्ञा से इस व्रत के निमित्त सेवकों और ब्राह्मणों को प्रेरित किया ॥८॥ शुभदायिनी पार्वती ने व्रत की समस्त योग्य वस्तुओं के आ जाने पर शुभ मुहूर्त में इस व्रत को आरम्भ किया ॥९॥ ब्रह्मा के पुत्र भगवान् सनत्कुमार का वहाँ आगमन हुआ, जो प्रज्वलित ब्रह्मतेज से मूर्तिमान् तेज की राशि मालूम हो रहे थे ॥१०॥ ब्रह्मा भी प्रसन्न होकर ब्रह्मलोक से पत्नी समेत वहाँ आये और अति त्रस्त देवेश्वर भगवान् भी आये ॥११॥ तथा क्षीरसागर में शयन करनेवाले चतुर्भुजधारी भगवान् विष्णु भी, जो जगत् के पालक एवं शासनकर्ता हैं, लक्ष्मी तथा पार्षदों समेत रत्नयान द्वारा वहाँ पधारे। वे वनमाला धारण किये, श्यामवर्ण, रत्नभूषणों से भूषित एवं समस्त-सामग्री-सम्पन्न थे ॥१२-१३॥ हे नारद! अनन्तर सनक, सनन्द, कपिल, सनातन, आसुरि, क्रतु, हंस, वोढु, पञ्चशिख, अरुणि, यति, सुमति, शिष्य समेत वशिष्ठ, पुलह, पुलस्त्य, अत्रि, भृगु, अंगिरा, अगस्त्य, प्रचेता, दुर्वासा, च्यवन, मरीचि, कश्यप, कण्व, जरत्कारु, गौतम, बृहस्पति, उतथ्य, संवर्त, सौभरि, जाबालि, जमदग्नि, जैगीषव्य, देवल, गोकामुख, वक्ररथ, पारिभद्र, पराशर, विश्वामित्र, वामदेव, ऋष्यश्रृंग, विभाण्डक, मार्कण्डेय, मृकुण्डु, पुष्कर, लोमश, कौत्स, वत्स, दक्ष, बालाग्नि, अघमर्षण, कात्यायन, कणाद, पाणिनि, शाकटायन, शंकु, आपिशलि, साकल्य और शंख आये ॥१४-२०॥ हे मुने! इनके अतिरिक्त और भी अनेक मुनिगण अपने-अपने शिष्यों समेत वहाँ आये। धर्मपुत्र और हम दोनों—नरनारायण भी गये ॥२१॥ तथा दिक्पाल, देवगण, यक्ष, गन्धर्व,

---

१ क. 'मुखश्चक्रकरः पा' । २ क. प्रस्कण्वो । ३ क. काला० ।

दिक्पालाश्च तथा देवा यक्षगन्धर्वकिन्नराः। आजग्मुः पर्वताः सर्वे सगणाः पार्वतीव्रते ॥२२॥
हिमालयः शैलराजः सापत्यश्च सभार्यकः। सगणः सानुगश्चैव रत्नभूषणभूषितः ॥२३॥
तथा संभृतसंभारो नानाद्रव्यसमन्वितः। मणिमाणिक्यरत्नानि व्रते योग्यानि यानि च ॥२४॥
नानाप्रकारवस्तूनि जगत्यां दुर्लभानि च। लक्षं च गजरत्नानामश्वरत्नं त्रिलक्षकम् ॥२५॥
दशलक्षं गवां रत्नं शतलक्षं सुवर्णकम्। रुचकानां हीरकाणां स्पर्शानां च तथैव च ॥२६॥
मुक्तानां च चतुर्लक्षं कौस्तुभानां सहस्रकम्। सुस्वादुनानाद्रव्याणां लक्षभाराणि कौतुकी ॥
अनन्तरत्नप्रभव आजगाम सुताव्रते ॥२७॥
ब्राह्मणा मनवः सिद्धा नागा विद्याधरास्तथा। संन्यासिनो भिक्षुकाश्च बन्दिनः पार्वतीव्रते ॥२८॥
विद्याधरी नर्तकी च नर्तकाप्सरसां गणाः। नानाविधा वाद्यभाण्डा आजग्मुः शिवमन्दिरम् ॥२९॥
कैलासराजमार्गं च चन्दनेन सुसंस्कृतम्। आम्रपल्लवसूत्राढ्यं कदलीस्तम्भशोभितम् ॥३०॥
दूर्वाधान्यफलैः पर्णलाजपुष्पैर्विभूषितम्। निर्मितं पद्मरागेण ददृशुस्ते गणा मुदा ॥३१॥
उच्चैः सिंहासनेष्वेते पूजिताः शंकरेण च। कैलासवासिनः सर्वे परमानन्दसंयुताः ॥३२॥
दानाध्यक्षः शुनाशीरः कुबेरः कोशरक्षकः। आदेष्टा च स्वयं सूर्यः परिवेष्टा जलाधिपः ॥३३॥
दध्नां नद्यः सहस्राणि दुग्धानां च तथैव च। सहस्राणि घृतानां च गुडानां च शतानि च ॥३४॥
माध्वीकानां सहस्राणि तैलानां च शतानि च। लक्षाणि चैव तक्राणां बभूवुः पार्वतीव्रते ॥३५॥
पीयूषाणां च कुम्भानि शतलक्षाणि नारद। मिष्टान्नानां शर्कराणां बभूवुर्लक्षराशयः।

किन्नर और गण समेत समस्त पर्वत भी पार्वती के उस व्रत में आये ॥२२॥ पर्वतराज हिमालय ने स्त्री-बच्चे, गणों और सेवकों समेत रत्नों के भूषणों से भूषित होकर वहाँ आगमन किया, जो विपुल सामग्री—अनेक भाँति के द्रव्य, मणि, माणिक्य, रत्न, व्रत के योग्य अनेक भाँति की जगत्-दुर्लभ वस्तुएँ, एक लाख गजेन्द्र, तीन लाख उत्तम घोड़े, दश लाख गौएँ, सौ लाख रत्न, उतना ही सुवर्ण, रुचक (सोने के सिक्के), हीरा, स्पर्श मणि, चार लाख मोती, सहस्र कौस्तुभमणि और सुस्वादु अनेक भाँति के द्रव्यों का एक लाख भार लाये थे। इस प्रकार अपनी पुत्रीके व्रत में अनन्त रत्नों के उद्गम स्थान हिमालय कुतूहल से पधारे थे ॥२३-२७॥ पार्वती के उस व्रत में ब्राह्मण-वृन्द, मनुगण, सिद्ध, नाग, विद्याधर, संन्यासी, भिक्षुक एवं बन्दीगण आये ॥२८॥ नर्तकी विद्याधरी, नर्तक गण, अप्सराओं के गण और अनेक भाँति के बाजे बजाने वाले शिव के घर आये ॥२९॥ उस समय कैलास का राजमार्ग चन्दन से सुसंस्कृत, सूत्र में बंधे आम के पल्लव और कदली स्तम्भ से सुशोभित तथा दूर्वा, धान्यफलों, पत्तों, लावे तथा पुष्पों से विभूषित था, जो पद्मरागमणि से बनाया गया था। अभ्यागत वर्ग उसे बड़ी प्रसन्नता से देख रहे थे ॥३०-३१॥ शंकर जी ने उचित पूजन कर सबको ऊँचे सिंहासनों पर बैठाया, उस समय समस्त कैलासवासी परमानन्द-मग्न थे ॥३२॥ उस व्रत में इन्द्र दानाध्यक्ष, कुबेर कोषाध्यक्ष, सूर्य आदेश देने वाले, वरुण परोसने वाले, दही की सहस्र नदियाँ, दुग्ध की सहस्र नदियाँ, घृत की सहस्र नदियाँ, गुड की सौ, आसवों की सहस्र, तेलों की सौ और मट्ठे की एक लाख नदियाँ थीं ॥३३-३५॥ हे नारद ! सौ लाख अमृत के कलश तथा मिष्टान्न और शक्करों की एक लाख

यवगोधूमचूर्णानां घृताक्तानां च नारद ॥३६॥
स्वस्तिकानां च पूपानां बभूवुर्लक्षराशयः। गुडसंस्कृतलाजानां बभूवुः कोटिराशयः॥३७॥
शालीनां पृथुकानां च राशीनां दशकोटयः। वरतण्डुलराशीनां मुने संख्या न विद्यते॥३८॥
स्वर्णरौप्यप्रवालानां मणीनां च महामुने। बभूवुः पर्वतास्तत्र कैलासे पार्वतीव्रते॥३९॥
पायसं पिष्टकं चैव शाल्यन्नं सुमनोहरम्। चकार लक्ष्मीः पाकं च व्यञ्जनं घृतसंस्कृतम्॥४०॥
बुभुजे देवर्षिगणैः शिवो नारायणेन च। बभूवुर्लक्षविप्राश्च परिवेषणकारकाः॥४१॥
ताम्बूलं च ददौ तेभ्यः कर्पूरादिसुवासितम्। रत्नसिंहासनस्थेभ्यो विप्रलक्षाः सुदक्षकाः॥४२॥
रत्नसिंहासनस्थं च विष्णुं क्षीरोदशायिनम्। सेव्यमानं पार्षदैश्च सस्मितैः श्वेतचामरैः॥४३॥
ऋषिभिः स्तूयमानं च सिद्धैर्देवगणैस्तथा। विद्याधरीणां नृत्यानि पश्यन्तं सस्मितं मुदा॥४४॥
गन्धर्वाणां च संगीतं श्रुतवन्तं मनोहरम्। पप्रच्छ शंकरो ब्रह्मन्ब्रह्मेशं प्रीतिपूर्वकम्॥४५॥
ब्रह्मणा प्रेरितो युक्तं व्रतं कर्तव्यमीप्सितम्। देवर्षिगणपूर्णायां सभायां संपुटाञ्जलिः॥४६॥

महादेव उवाच

मदीयं वचनं नाथ श्रीनिवास शृणु प्रभो। तपःस्वरूप तपसां कर्मणां च फलप्रद॥४७॥
व्रतानां जपयज्ञानां पूजानां सर्वपूजित। सर्वेषां बीजरूपेण वाञ्छाकल्पतरो हरे॥४८॥

राशियाँ थीं। हे नारद! जवा और गेहूँ के आटे की भी उतनी ही राशियाँ थीं। घी में तर पूओं और मलपूओं की एक लाख राशि, गुड़ पाक लावे की करोड़ राशियाँ थीं ॥३६-३७॥ चिउड़े और जड़हन चावलों की दश करोड़ राशियाँ थीं। हे मुने? उत्तम चावलों की राशियों की तो संख्या ही नहीं थी ॥३८॥ हे महामुने! पार्वती के व्रत में कैलास पर सोने, चाँदी, प्रवाल (मूंगे) और मणियों के पर्वत ही थे ॥३९॥ खीर, पीठी, मनोहर चावल के भात और घी में बघारी गई तरकारियों का पाक स्वयं लक्ष्मी ने किया ॥४०॥ भगवान् नारायण और देवर्षिगणों समेत शिव भोजन कर रहे थे। एक लाख ब्राह्मण उसमें परोसने का कार्य कर रहे थे॥४१॥ एक लाख अति चतुर ब्राह्मणगण रत्नसिंहासनों पर सुखासीन अतिथियों को कपूर आदि से सुवासित ताम्बूल प्रदान से सम्मानित कर रहे थे ॥४२॥ हे ब्रह्मन्! क्षीरसागरशायी भगवान् विष्णु रत्न-सिंहासन पर सुशोभित हो रहे थे। मन्द मुसुकान करते हुए पार्षदगण श्वेत चामर द्वारा उनकी सेवा कर रहे थे। ऋषिगण, सिद्ध वर्ग और देवगण स्तुति कर रहे थे। प्रसन्नचित्त भगवान् मन्द-मन्द मुसुकाते हुए विद्याधरियों का नृत्य और गन्धर्वों के मनोहर संगीत सुन रहे थे। उसी समय शिव ने, जो ब्रह्मा से प्रेरित, अभीष्ट व्रत को पूर्ण कराने में तत्पर और देवों ऋषियों आदि गणों से भरी सभा में हाथ जोड़े खड़े थे, ब्रह्मेश विष्णु से सप्रेम पूछा, ॥४३-४६॥

महादेव बोले—हे नाथ! हे श्रीनिवास! हे प्रभो! तपःस्वरूप, तथा तप और कर्मों के फल प्रदान करने वाले! मेरी प्रार्थना सुनने की कृपा करें ॥४७॥ व्रतों, जप-यज्ञों और पूजनों में सबसे पूजित! हे हरे! सभी के बीजरूप और अभीष्ट सिद्धि के कल्पतरु! हे ब्रह्मन्! पार्वती जी को पुत्र की

सुपुण्यकव्रतं कर्तुं ब्रह्मन्निच्छति पार्वती। पुत्रार्थिनी सा शोकार्ता हृदयेन विदूयता ॥४९॥
रतिभङ्गे कृते देवैर्व्यर्थवीर्यशुचार्दिता। प्रबोधिता मया साध्वी विविधैर्वचनामृतैः ॥५०॥
सत्पुत्रं स्वामिसौभाग्यं सुव्रता याचते व्रते। ताभ्यां विना न संतुष्टा स्वप्राणांस्त्यक्तुमिच्छति ॥५१॥
पुरा त्यक्त्वा स्वदेहं च पितृयज्ञे च मानिनी। मन्निन्दया हिमवति पुनर्जन्म ललाभ सा ॥५२॥
सर्वं जानासि वृत्तान्तं सर्वज्ञं त्वां वदामि किम्। काऽऽज्ञा तां वद तत्त्वज्ञ परिणामशुभप्रदाम् ॥५३॥
दुर्निवार्यश्च [1]सर्वेश स्त्रीस्वभावश्च चापलः। दुस्त्याज्यं योगिभिः सिद्धैरस्माभिश्च तपस्विभिः ॥५४॥
जितेन्द्रियैर्जितक्रोधैः स्त्रीरूपं मोहकारणम्। सर्वमायाकरण्डं च कामवर्धनकारणम् ॥५५॥
ब्रह्मास्त्रं कामदेवस्य दुर्भेद्यं जयकारणम्। सुनिर्मितं च विधिना सर्वाद्यं विधिपूर्वकम् ॥५६॥
मोक्षद्वारकपाटं च हरिभक्तिनिरोधनम्। संसारबन्धनस्तम्भरज्जुरूपमकृन्तनम् ॥५७॥
वैराग्यनाशबीजं च शश्वद्रागविवर्धनम्। पत्तनं साहसानां च दोषाणामालयं सदा ॥५८॥
अप्रत्ययानां क्षेत्रं च स्वयं कपटमूर्तिमत्। अहंकाराश्रयं शश्वद्विषकुम्भं सुधामुखम् ॥५९॥
सर्वैरसाध्यमानं च दुराराध्यं च सर्वदा। स्वकार्यसाध्याचाराढ्यं कलहाङ्कुरकारणम् ॥६०॥
सर्वं निवेदितं नाथ कर्तव्यं वक्तुमर्हसि। कार्यं सर्वं परामर्शे परिणामसुखावहम् ॥६१॥

कामना है, इसी कारण हार्दिक दुःख से वे शोकग्रस्त होकर पुण्यक व्रत करना चाहती हैं ॥४८-४९॥ देवों द्वारा रति भंग होने पर वीर्य व्यर्थ हो गया था, जिससे वे अधिक चिन्तित हुईं। अनन्तर मैंने उस पतिव्रता को अनेक भाँति के अमृत-मय वचनों द्वारा समझा कर शान्त किया ॥५०॥ इस व्रत में वह सुव्रता स्वामिसौभाग्य रूप सत्पुत्र की याचना कर रही है, इन दोनों के बिना वह सन्तुष्ट नहीं हो सकती, वह अपना प्राण त्याग करने पर तैयार है ॥५१॥ पूर्व काल में उस मानिनी ने मेरी निन्दा के कारण अपने पिता के यज्ञ में अपनी देह त्यागकर हिमालय के यहाँ पुनः जन्म धारण किया था ॥५२॥ हे तत्त्वज्ञ ! आप सर्वज्ञ हैं। अतः समस्त वृत्तान्त जानते हैं, मैं आपसे क्या कहूँ। क्या आज्ञा है ? परिणाम में शुभप्रद उस आज्ञा को कहने की कृपा कीजिये ॥५३॥ क्योंकि हे सर्वेश ! स्त्रियों का स्वभाव दुर्निवार और चपल होता है। और स्त्रियों का रूप हम योगियों, सिद्धों, तपस्वियों, जितेन्द्रियों और क्रोधजयी लोगों के लिए भी दुस्त्यज है। स्त्री-रूप मोह का कारण, समस्त माया का करण्ड (सन्दूक), और काम-वृद्धि का कारण है ॥५४-५५॥ ब्रह्मा ने सर्वप्रथम कामदेव के विजयार्थ इस दुर्भेद्य ब्रह्मास्त्र का विधिपूर्वक निर्माण किया ॥५६॥ वह मोक्ष-द्वार का कपाट (किवाड़), भगवान् की भक्ति का निरोधक, संसारबन्धन के स्तम्भ की अकाट्य रस्सी रूप, वैराग्य के नाश का कारण, निरन्तर राग-(मोह) वर्द्धक, साहसों का नगर, दोषों का घर, अविश्वास का क्षेत्र, स्वयं मूर्तिमान् कपट, अहंकार का आश्रय, निरन्तर अमृतमुख विष का कलश, सभी लोगों से असाध्य, सदा दुराराध्य, अपने कार्य साधने में निपुण एवं कलह रूप अंकुर का बीज है ॥५७-६०॥ हे ब्रह्मन् ! मैंने सब कुछ कह दिया। अब आप मेरा कर्तव्य कहने की कृपा करें, जो परामर्श में करणीय और परिणाम में सुखप्रद हो ॥६१॥

---

१ क० र्वेषां स्त्री०।

नारायण उवाच

इत्येवमुक्त्वा भगवान्निरीक्ष्य ब्रह्मणो मुखम्। विरराम सभामध्ये स्तुत्वा च कमलापतिम् ॥६२॥
शंकरस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य जगदीश्वरः। हितं[1] च नीतिवचनं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥६३॥

विष्णुरुवाच

सुपुण्यकव्रतं सारं सतीसंतानहेतवे। स्वामिसौभाग्यबीजं च पत्नी ते कर्तुमिच्छति ॥६४॥
सर्वासाध्यं दुराराध्यं सर्वकामफलप्रदम्। सुखदं सुखसारं च मोक्षदं पार्वतीश्वर ॥६५॥
सर्वेश्वरो व्रतपरो व्रताराध्यो गुणात्परः। गोलोकनाथो भगवान्पूर्णब्रह्म सनातनः ॥६६॥
आत्मा साक्षिस्वरूपश्च ज्योतीरूपः सनातनः। निराश्रयश्च निर्लिप्तो निरुपाधिर्निरामयः ॥६७॥
भक्तप्राणश्च भक्तेशो भक्तानुग्रहकारकः। दुराराध्यो हि योऽन्येषां भक्तानामतिसाधकः ॥६८॥
भक्त्यधीनो हि भगवान्सर्वसिद्धो हि निष्कलः। ते यस्य च कलाः पुंसो ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥६९॥
महान्विराडयदंशश्च निर्लिप्तः प्रकृतेः परः। [2]अव्ययो निग्रहश्चोग्रो भक्तानुग्रहविग्रहः ॥७०॥
उग्रग्रहो ग्रहाणां च ग्रहनिग्रहकारकः। त्रिकोटिजन्ममध्ये[3] च न साध्यो भवता विना ॥७१॥
लब्ध्वा हि भारते जन्म हरिभक्तिं लभेन्नरः। सेवनं क्षुद्रदेवानां कृत्वा सप्तसु जन्मसु ॥
सूर्यमन्त्रमवाप्नोति केवलं स तदाशिषा ॥७२॥

नारायण बोले—सभा मध्य में भगवान् शंकर ने इतना कह कर ब्रह्मा के मुख की ओर देखा और कमलापति भगवान् की स्तुति करके मौन धारण कर लिया। शंकर जी की बातें सुनकर भगवान् जगदीश्वर ने हंसकर कहना आरम्भ किया, जो हितकर और नीति-सम्मत था ॥६२-६३॥

विष्णु बोले—तुम्हारी पत्नी सती संतान की कामना से सुपुण्यक नामक व्रत करना चाहती है, जो सार रूप और स्वामी के सौभाग्य का बीज रूप है ॥६४॥ हे पार्वतीश्वर! वह व्रत सब के लिए असाध्य, दुःख से आराधना करने योग्य, समस्त कामनाओं के फलों का प्रदाता, सुखप्रद, सुख का सार रूप और मोक्षप्रद है ॥६५॥ भगवान् कृष्ण सबके ईश्वर, व्रतपरायण, व्रत के द्वारा आराधनीय, गुणसे परे, गोलोकनाथ, पूर्ण ब्रह्म, सनातन, आत्मा, साक्षिस्वरूप, ज्योतिरूप, सनातन, निराश्रय, निर्लिप्त, उपाधि रहित, निरामय, भक्तों के प्राण, भक्तों के अधीश्वर और भक्तों पर अनुग्रह करने वाले हैं। जो अन्य के लिए दुराराध्य हैं, वह भक्तों के लिए अति साध्य हैं ॥६६-६८॥ भगवान् भक्ति के अधीन रहते हैं, वे सर्वसिद्ध एवं निष्कल हैं। ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर जिस पुरुष की कला रूप हैं, महाविराट् जिस का अंश है, वह निर्लिप्त, प्रकृति से परे, अव्यय (एक समान रहने वाला), निग्रह, उग्र, भक्तों पर अनुग्रहार्थ शरीरधारी, ग्रहों में उग्र ग्रह और ग्रहों का निग्रह करनेवाला है वह आपके बिना तीन करोड़ जन्मों में भी सिद्ध होने वाला नहीं है ॥६९-७१॥ भारत देश में जन्म धारण करने से मनुष्य भगवान् की भक्ति प्राप्त करता है। सात जन्मों तक छोटे-छोटे देवों की सेवा करने से उनके आशीर्वाद द्वारा वह केवल सूर्य का मन्त्र प्राप्त करता है ॥७२॥ भारत में तीन जन्मों तक सूर्य मन्त्र की आराधना करने पर मनुष्य

---

१ ख. तं मितं च क०। २ क. °व्यग्रो नि°। ३ क. °न्मसाध्यश्च न साध्यो भारतं वि०।

सूर्यमन्त्रं समाराध्य त्रिषु जन्मसु भारते। प्राप्नोति शैवं मन्त्रं च सर्वदं मानवो मुदा ॥७३॥
संसेव्य परया भक्त्या त्वामेत्रं सप्तजन्मसु। प्राप्नोति मायामन्त्रं च त्वत्पादाब्जप्रसादतः॥७४॥
शतजन्मसु चाऽऽराध्य मायां नारायणीं पराम्। नारायणकलां सेव्यां समवाप्नोति मानवः॥७५॥
कलां निषेव्य वर्षेऽत्र पुण्यक्षेत्रे सुदुर्लभे। कृष्णभक्तिमवाप्नोति भक्तसंसर्गहैतुकीम् ॥७६॥
संप्राप्य भक्तिं निष्पक्वां भ्रामंभ्रामं च भारते। प्राप्नोति परिपक्वां च भक्तिं भक्तनिषेवया ॥७७॥
तदा भक्तप्रसादेन देवानामाशिषा शिव। श्रीकृष्णमन्त्रं प्राप्नोति निर्वाणफलदं परम् ॥७८॥
कृष्णव्रतं कृष्णमन्त्रं सर्वकामफलप्रदम्। कृष्णतुल्यो भवेद्भक्तश्चिरं कृष्णनिषेवया ॥७९॥
महति प्रलये पातः सर्वेषां वै सुनिश्चितम्। न पातः कृष्णभक्तानां साधूनामविनाशिनाम् ॥८०॥
अविनाशिनि गोलोके मोदन्ते कृष्णकिंकराः। हसन्ति ते सुनिश्चिन्ता देवान्ब्रह्मादिकाञ्छिव ॥८१॥
त्वं संहर्ता च सर्वेषां न भक्तानां महेश्वर। माया मोहयते सर्वान्भक्तान्न कृपया मम ॥८२॥
माया नारायणी माता सर्वेषां कृष्णभक्तिदा। न कृष्णभक्तिं प्राप्नोति विना मायानिषेवणम् ॥८३॥
सा च नारायणी माया मूलप्रकृतिरीश्वरी। कृष्णप्रिया कृष्णभक्ता कृष्णतुल्याऽविनाशिनी ॥८४॥
सा च तेजः स्वरूपा च स्वेच्छाविग्रहधारिणी। आविर्भूता च देवानां तेजसाऽसुरनिग्रहे ॥८५॥

भगवान् शिव का सर्वप्रद मंत्र सहर्ष प्राप्त करता है ॥७३॥ सात जन्मों तक परा भक्ति द्वारा तुम्हारी सेवा करने पर उसे तुम्हारे चरण-कमल की कृपा से माया-मन्त्र प्राप्त होता है। सौ जन्मों तक परा नारायणी माया की आराधना करने पर मानव सेवनीया नारायण-कला प्राप्त करता है ॥७४-७५॥ इस अति दुर्लभ एवं पुण्य क्षेत्र भारतवर्ष में कला की सेवा करने पर उसे भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति प्राप्त होती है, जो भक्तों के संसर्ग से ही उत्पन्न होती है ॥७६॥ अपरिपक्व भक्ति प्राप्त कर भारत में घूम-घूम कर भक्त भक्तों की सेवा द्वारा परिपक्व भक्ति प्राप्त करता है ॥७७॥ हे शिव ! उस समय भक्त की कृपा और देवों के आशीर्वाद से उसे भगवान् श्रीकृष्ण का निर्वाण फल प्रदान करने वाला मन्त्र प्राप्त होता है ॥७८॥ कृष्ण का व्रत और कृष्ण का मंत्र सकलकामनादायक है। चिरकाल तक श्रीकृष्ण की सेवा कर के भक्त भगवान् कृष्ण के तुल्य हो जाता है ॥७९॥ महा-प्रलय में सभी लोगों का निपात होना निश्चित रहता है किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण के भक्त साधुओं का पात नहीं होता है, वे अविनाशी होते हैं ॥८०॥ हे शिव ! उस अनश्वर गोलोक में भगवान् श्रीकृष्ण के सेवक (पार्षद) वर्ग आनन्द विभोर रहते हैं और सुनिश्चिन्त रहने के कारण वे ब्रह्मा आदि देवों का उपहास करते हैं ॥८१॥ हे महेश्वर ! तुम सब का संहार करते हो किन्तु भक्तों का कभी नहीं करते। माया सभी को मोहित करती है किन्तु मेरी कृपा से भक्तों को मोहित नहीं करती है ॥८२॥ नारायणी माया सभी की माता है, वह कृष्ण की भक्ति प्रदान करती है, क्योंकि विना माया की सेवा किये भगवान् कृष्ण की भक्ति प्राप्त नहीं होती है ॥८३॥ वही नारायणी माया मूल प्रकृति एवं ईश्वरी कही जाती है, जो भगवान् कृष्ण की प्रिया, उनकी भक्ता और उनके समान अविनाशिनी है ॥८४॥ वह तेजःस्वरूप और अपनी इच्छा से शरीर धारण करती है। असुरों के युद्ध में वह देवों के तेज द्वारा उत्पन्न हुई थी ॥८५॥ दैत्यवृन्दों के संहार करने के अनन्तर देवी ने भारत में दक्ष के अनेक जन्म के तप के कारण उनकी

निहत्य दैत्यसंघांश्च दक्षपत्न्यां च भारते। ललाभ दक्षतपसा जन्म चानेकजन्मनः ॥८६॥
त्यक्त्वा देहं पितुर्यज्ञे सा सती तव निन्दया। जगाम देवी गोलोकं कृष्णशक्तिः सनातनी ॥८७॥
गृहीत्वा विग्रहं तस्या गुणरूपाश्रयं परम्। भ्रामंभ्रामं भारते त्वं विषण्णोऽभूः पुरा हर ॥८८॥
प्रबोधितो मया त्वं च श्रीशैलेषु सरित्तटे। ललाभ जन्म सा शैलकान्तायामचिरेण च ॥८९॥
करोतु पुण्यकं साध्वी सुव्रता सुव्रतं शिवा। राजसूयसहस्राणां पुण्यं शंकर पुण्यके ॥९०॥
राजसूयसहस्राणां व्रते यत्र धनव्ययः। न साध्यं सर्वसाध्वीनां व्रतमेतत्त्रिलोचन ॥९१॥
स्वयं गोलोकनाथश्च पुण्यकस्य प्रभावतः। पार्वतीगर्भजातश्च तव पुत्रो भविष्यति ॥९२॥
स्वयं देवगणानां स यस्मादीशः कृपानिधिः। गणेश इति विख्यातो भविष्यति जगत्त्रये ॥९३॥
यस्य स्मरणमात्रेण विघ्ननाशो भवेद्ध्रुवम्। जगतां हेतुनाऽनेन विघ्ननिघ्नाभिधो विभुः ॥९४॥
नानाविधानि द्रव्याणि यस्माद्देयानि पुण्यके। भुक्त्वा लम्बोदरत्वं च तेन लम्बोदरः स्मृतः ॥९५॥
शनिदृष्टया शिरश्छेदाद्गजवक्त्रेण योजितः। गजाननः शिशुस्तेन सर्वेषां सर्वसिद्धिदः ॥९६॥
दन्तभङ्गः परशुना परशुरामस्य वै यतः। हेतुना तेन विख्यातश्चैकदन्ताभिधः शिशुः ॥९७॥
पूज्यश्च सर्वदेवानामस्माकं जगतां विभुः। सर्वाग्रे पूजनं तस्य भविता मद्वरेण वै ॥९८॥

पत्नी में जन्म ग्रहण किया था ॥८६॥ अनन्तर उस सती ने अपने पिता के यज्ञ में तुम्हारी निन्दा होने के कारण अपनी देह का त्याग कर दिया और वह कृष्ण की शक्ति सनातनी देवी गोलोक चली गयी ॥८७॥ हे हर! पहले तुम गुण और रूप का परम आश्रयभूत सती का शरीर लेकर खिन्न मन से भारत में चारों ओर भ्रमण करते रहे ॥८८॥ पश्चात् श्री शैल पर नदी के किनारे मैंने तुम्हें (समझा-बुझाकर) प्रबुद्ध किया। पुनः अल्पकाल में ही उस देवी ने हिमालय-पत्नी मेना में जन्म ग्रहण किया ॥८९॥ अतः हे शंकर! वह साध्वी एवं सुव्रता शिवा (पार्वती) पुण्यक नामक सुव्रत अवश्य सुसम्पन्न करे, क्योंकि पुण्यक सम्पन्न करने में सहस्रों राजसूय यज्ञ का पुण्य प्राप्त होता है ॥९०॥ हे त्रिलोचन! जिस व्रत के सुसम्पन्न करने में सहस्रों राजसूय के समान धन का व्यय हो, वह व्रत सभी पतिव्रताओं के लिए साध्य नहीं है ॥९१॥ इस पुण्यक व्रत के प्रभाववश, पार्वती के गर्भ से स्वयं श्रीकृष्ण तुम्हारे पुत्र होंगे ॥९२॥ वह कृपानिधान स्वयं देवगणों का ईश होने के नाते तीनों लोकों में 'गणेश' नाम से विख्यात होगा ॥९३॥ जिसके स्मरण मात्र से विघ्नों का निश्चित नाश होगा, उस कारण समस्त जगत् में उस विभु का 'विघ्नेश्वर' नाम होगा ॥९४॥ इस पुण्यक व्रत में अनेक भाँति की वस्तुओं का दान होगा और उसके भक्षण से उसका पेट बढ़ जायगा, इसलिए वह 'लम्बोदर' भी कहलायेगा ॥९५॥ शनि के देखने मात्र से उसका शिर कट जायगा और गज (हाथी) का मुख उसके धड़ पर जोड़ दिया जायेगा। इसलिए उस बच्चे को 'गजानन' कहेंगे जो सभी को सिद्धि प्रदान करेगा ॥९६॥ परशुराम के फरसा द्वारा उसका एक दाँत टूट जायेगा इस कारण वह शिशु 'एकदन्त' नाम से प्रख्यात होगा ॥९७॥ यह हम सभी देवों और सारे जगत् का पूज्य होगा और मेरे वरदान द्वारा उस विभु का सब से पहले पूजन होगा ॥९८॥ मनुष्य

पूजासु सर्वदेवानामग्रे संपूज्य तं जनः। पूजाफलमवाप्नोति निर्विघ्नेन वृथाऽन्यथा॥९९॥
गणेशं च दिनेशं च विष्णुं शभुं हुताशनम्। दुर्गामेतान्संनिषेव्य पूजयेद्देवतान्तरम्॥१००॥
गणेशपूजने विघ्नं निर्मूलं जगतां भवेत्। निर्व्याधिः सूर्यपूजायां शुचिः श्रीविष्णुपूजने॥१०१॥
मोक्षश्च पापनाशश्च यशश्चैश्वर्यमुत्तमम्। तत्वज्ञानं सुतत्त्वानां बीजं शंकरपूजनात्॥१०२॥
स्वबुद्धिशुद्धिजननं कीर्तितं वह्निपूजनम्। विधिसंस्कृतवह्नेस्तु पूजातो ज्ञानतो मृतिः॥१०३॥
दाता भोक्ता च भवति शंकराग्निनिषेवणात्। हरिभक्तिपदं चैव परं दुर्गार्चनं शिवम्॥१०४॥
विपरीतं त्रिजगतामेतेषां पूजनं विना। एवं क्रमो महादेव कल्पे कल्पेऽस्ति निश्चितम्॥१०५॥
एते शश्वद्विद्यमाना नित्याः सृष्टिपरायणाः। आविर्भावतिरोभावौ चैतेषामीश्वरेच्छया॥१०६॥
इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तत्र विरराम सभातले। प्रहृष्टा देवता विप्राः पार्वत्या सह शंकरः॥१०७॥
इति श्रीब्रह्म० महा० गणेशख० नारदना० पुण्यकव्रताज्ञाग्रहणं नाम षष्ठोऽध्यायः॥६॥

सभी देवों के पूजन में सब से पहले उसकी पूजा कर के, पूजा का फल प्राप्त निर्विघ्न करेंगे अन्यथा व्यर्थ हो जायेगा॥९९॥ इसीलिए गणेश, दिनेश, विष्णु, शम्भु, अग्नि और दुर्गा, इन देवों की अर्चना के उपरान्त ही अन्य देवों की अर्चना करनी चाहिए॥१००॥ गणेश के पूजन से जगत् का सारा विघ्न नष्ट हो जाता है, सूर्य की पूजा से नीरोग, श्री विष्णु के पूजन से पवित्रता और शंकर के पूजन से मोक्ष, पाप-नाश, कीर्ति, परमोत्तम ऐश्वर्य, तत्वज्ञान और सुन्दर तत्त्वों का बीज प्राप्त होता है॥१०१-१०२॥ अग्नि पूजन से अपनी बुद्धि शुद्ध होती है ऐसा कहा गया है। विधिपूर्वक संस्कृत अग्नि के पूजन से ज्ञान-मृत्यु प्राप्त होती है॥१०३॥ शिव और अग्नि की सेवा करने से मनुष्य दाता एवं भोगी होता है और मंगलमय दुर्गार्चन भगवान् की भक्ति प्रदान करता है॥१०४॥ तीनों लोकों में इन देवों के पूजन बिना अन्य का पूजन करना विपरीत होगा। हे महादेव! प्रत्येक कल्प में इसी प्रकार का क्रम निश्चित है॥१०५॥ ये सृष्टिपरायण देव हैं, अतः निरन्तर विद्यमान रहते हैं, भगवान् की इच्छा से इनका आविर्भाव (प्रकट होना) और तिरोभाव (अन्तर्हित होना) हुआ करता है॥१०६॥ उस सभा में इतना कह कर भगवान् श्री हरि चुप हो गए और इसे सुन कर देवगण, ब्राह्मणवृन्द और पार्वती समेत शंकर जी अति प्रसन्न हुए॥१०७॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में
पुण्यक व्रत के लिये आज्ञा-ग्रहण नामक छठा अध्याय समाप्त॥६॥

१ख. सुवृत्तीनां।

अथ सप्तमोऽध्यायः

नारायण उवाच

हरेराज्ञां समादाय हरः संहृष्टमानसः। उवाच पार्वतीं प्रीत्या हरिसंलापमङ्गलम् ॥१॥
शिवाज्ञां च समादाय शिवा संहृष्टमानसा। वाद्यं च वादयामास मङ्गलं मङ्गलव्रते ॥२॥
सुस्नाता सुदती शुद्धा बिभ्रती धौतवाससी। संस्थाप्य रत्नकलशं शुक्लधान्योपरि स्थिरम् ॥३॥
आम्रपल्लवसंयुक्तं फलाक्षतसुशोभितम्। चन्द्रनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन विराजितम् ॥४॥
रत्नासनस्था रत्नाढ्या रत्नोद्भवसुता सती। रत्नसिंहासनस्थांश्च संपूज्य मुनिपुंगवान् ॥५॥
रत्नसिंहासनस्थं च संपूज्य सुपुरोहितम्। चन्दनागुरुकस्तूरीरत्नभूषणभूषितम् ॥६॥
संस्थाप्य पुरतो भक्त्या दिक्पालान्रत्नभूषितान्। देवान्नरांश्च नागांश्च समर्च्य विधिबोधितम् ॥७॥
समर्च्य परया भक्त्या ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान्। चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन विराजितान् ॥८॥
वह्निशुद्धैः सुवस्त्रैश्च सद्रत्नैर्भूषणैस्तथा। पूजाद्रव्यैश्च विविधैः पूजितान्पुण्यके मुने ॥९॥
समारेभे व्रतं देवी स्वस्तिवाचनपूर्वकम्। आवाह्याभीष्टदेवं तं श्रीकृष्णं मङ्गले घटे ॥१०॥
भक्त्या ददौ क्रमेणैव चोपचारांस्तु षोडश। यानि व्रते विधेयानि देयानि विविधानि च ॥११॥
प्रददौ तानि सर्वाणि प्रत्येकं फलदानि च। व्रतोक्तमुपहारं च दुर्लभं भुवनत्रये ॥१२॥

अध्याय ७

पार्वतीकृत व्रत का विधान तथा श्रीकृष्णस्तोत्र

नारायण बोले—भगवान् की आज्ञा शिरोधार्य कर महादेव ने अतिहर्षित होकर भगवान् की सभी मांगलिक बातें सप्रेम पार्वती से बता दीं ॥१॥ पार्वती ने शिवकी आज्ञा से हर्षमग्न होकर उस मंगलव्रत में मांगलिक वाद्य बजवाना आरम्भ किया ॥२॥ सुन्दर दाँतों वाली पार्वती ने उत्तम स्नान से शुद्ध होकर दो उत्तम वस्त्र धारण किये और शुक्ल धान्य पर रत्न का दृढ़ कलश स्थापित किया, जो आम के पल्लव से युक्त, फल, अक्षत से सुशोभित, चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम से विराजमान था ॥३-४॥ रत्नों के उद्भवस्थान हिमालय की पुत्री सती पार्वती ने रत्नों से भूषित होकर रत्नसिंहासन को भूषित किया। अनन्तर रत्नसिंहासनों पर सुखासीन मुनिपुंगवों की अर्चना करके रत्नसिंहासनासीन पुरोहित का चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और रत्नों के आभूषणों से पूजन किया, फिर दिक्पालों को रत्नभूषित कर भक्तिपूर्वक सामने स्थापित किया तथा देवों, मनुष्यों और नागों की सविधि पूजा की ॥५-७॥ पश्चात् पराभक्ति से ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर की चन्दन, अगरु, कस्तूरी और कुंकुम द्वारा अर्चना की ॥८॥ हे मुने! इस प्रकार अग्नि की भाँति शुद्ध उत्तम बस्त्रों, उत्तम रत्नों के भूषणों तथा अनेक भाँति की पूजन-सामग्रियों से सभी की पूजा करने के उपरान्त देवी ने स्वस्तिवाचनपूर्वक व्रतानुष्ठान आरम्भ किया उस मंगल-कलश में अभीष्ट देव भगवान् श्रीकृष्ण का आवाहन करके भक्तिपूर्वक क्रमशः सोलहों उपचार से उनकी अर्चना की। उस व्रत में विविध भाँति की जितनी वस्तुएँ दी जानी चाहिये थीं, उन्होंने प्रत्येक को वे समस्त वस्तुएँ प्रदान कीं ॥९-११½॥ एवं पतिव्रता पार्वती ने व्रतोपयुक्त, तीनों लोकों

तच्च सर्वं ददौ भक्त्या सुव्रते सुव्रता सती। दत्त्वा द्रव्याणि सर्वाणि वेदमन्त्रेण सा सती ॥१३॥
होमं च कारयामास त्रिलक्षं तिलसर्पिषाः। ब्राह्मणान्भोजयामास पूजयित्वाऽतिथींस्तथा ॥१४॥
भोजयामास सा देवी सुव्रते सुव्रता सती। प्रत्यहं सविधानं च चक्रे सा पूर्णवत्सरम् ॥१५॥
समाप्तिदिवसे विप्रस्तामुवाच पुरोहितः। सुव्रते सुव्रते मह्यं देहि त्वं पतिदक्षिणाम् ॥१६॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा विलप्य सुरसंसदि। मूर्च्छां प्राप महामाया मायामोहितचेतसा ॥१७॥
तां च ते मूर्च्छितां दृष्ट्वा प्रहस्य मुनिपुंगवाः। शंकरं प्रेषयामासुर्ब्रह्मा विष्णुश्च नारद ॥१८॥
संप्रार्थितः सभासद्भिः शिवां बोधयितुं तदा। शिवः समुद्यमं चक्रे प्रवक्तुं वदतां वरः ॥१९॥

महादेव उवाच

उत्तिष्ठ भद्रे भद्रं ते भविष्यति न संशयः। सांप्रतं चेतनं कृत्वा मदीयं वचनं शृणु ॥२०॥
शिवः शिवां तामित्युक्त्वा शुष्ककण्ठौष्ठतालुकाम्। वक्षसि स्थापयामास कारयामास चेतनाम् ॥२१॥
हितं सत्यं मितं सर्वं परिणामसुखावहम्। यशस्करं च फलदं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥२२॥
शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यद्वेदेन निरूपितम्। सर्वसंमतमिष्टं च धर्मार्थं धर्मसंसदि ॥२३॥
सर्वेषां कर्मणां देवि सारभूता च दक्षिणा। यशोदा फलदा नित्यं धर्मिष्ठे धर्मकर्मणि ॥२४॥

के जितने दुर्लभ उपहार थे वे उस व्रत में भक्तिपूर्वक सभी को पूर्णरूपेण समर्पित किये सभी द्रव्यों के दान के अनन्तर सती पार्वती ने वेदमन्त्रों द्वारा तिल, घी की तीन लाख आहुतियाँ अग्नि को समर्पित कीं। उस सुव्रत में सुव्रता पार्वती ने ब्राह्मण-भोजन के अनन्तर अतिथियों का पूजन करके उन्हें भोजन कराया। इस प्रकार उन्होंने पूरे वर्ष तक प्रतिदिन सविधान व्रत किया ॥१२-१५॥ समाप्ति के दिन ब्राह्मण पुरोहित ने उनसे कहा—हे सुव्रते! इस सुन्दर व्रत में मुझे दक्षिणारूप में अपना पति प्रदान करो ॥१६॥ उनकी ऐसी बातें सुनकर पार्वती विलाप करने लगीं, अनन्तर महामाया पार्वती माया-मोहित चित्त होने से मूर्च्छित हो गयीं ॥१७॥ हे नारद! उन्हें मूर्च्छित देखकर मुनिपुंगवों ने हँसकर एवं ब्रह्मा विष्णु ने भी शंकर को उनके पास भेजा ॥१८॥ उस समय सभी सभासद लोग पार्वती को उद्बुद्ध करने के लिए शंकर की प्रार्थना करने लगे। तब वक्ताओं में श्रेष्ठ शिव ने समझाने का प्रयत्न किया ॥१९॥

महादेव बोले—हे भद्रे! उठो! तुम्हारा अवश्य कल्याण होगा। इस समय चैतन्य होकर हमारी बातें सुनो ॥२०॥ शिव ने पार्वती से, जिनके कण्ठ, होंठ और तालू सूख गये थे, इतना कहकर उन्हें अपने वक्षःस्थल से लगा लिया और सचेत करने लगे ॥२१॥ हितकर, सत्य, अल्प, परिणाम में सुखप्रद, यशस्कर एवं फलदायक वचन उन्होंने कहना प्रारम्भ किया ॥२२॥ हे देवि! इस विषय में वेद ने धर्मसभा में जो कुछ कहा है, वह सर्व-सम्मत, इष्ट (प्रिय) एवं धर्मार्थ है, उसे बता रहा हूँ, सुनो ॥२३॥ हे देवि! दक्षिणा सभी कर्मों का सार भाग है, वह धर्म-कर्म में नित्य यश एवं फल देने वाली है ॥२४॥

दैवं वा पैतृकं वाऽपि नित्यं नैमित्तिकं प्रिये। यत्कर्म दक्षिणाहीनं तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ॥२५॥
दाता च कर्मणा तेन कालसूत्रं व्रजेद्ध्रुवम्। देहान्ते दैन्यमाप्नोति शत्रुणा परिपीडितः ॥२६॥
दक्षिणा विप्रमुद्दिश्य तत्कालं तु न दीयते। तन्मुहूर्ते व्यतीते तु दक्षिणा द्विगुणा भवेत् ॥२७॥
चतुर्गुणा दिनातीते पक्षे शतगुणा भवेत्। मासे पञ्चशतघ्ना स्यात्षण्मासे तच्चतुर्गुणा ॥२८॥
संवत्सरे व्यतीते तु कर्म तन्निष्फलं भवेत्। दाता च नरकं याति यावद्वर्षसहस्रकम्[1] ॥२९॥
पुत्रपौत्रधनैश्वर्यं क्षयमाप्नोति पातकात्। धर्मो नष्टो भवेत्तस्य धर्महीने च कर्मणि ॥३०॥

विष्णुरुवाच

रक्षस्व धर्मं धर्मिष्ठे धर्मज्ञे धर्मकर्मणि। सर्वेषां च भवेद्रक्षा स्वधर्मपरिपालने ॥३१॥

ब्रह्मोवाच

यश्च केन निमित्तेन न धर्मं परिरक्षति। धर्मे नष्टे च धर्मज्ञे तस्य[2] कर्ता विनश्यति ॥३२॥

धर्म उवाच

मां रक्ष यत्नतः साध्वि प्रदाय पतिदक्षिणाम्। मयि स्थिते महासाध्वि सर्वं भद्रं भविष्यति ॥३३॥

देवा ऊचुः

धर्मं रक्ष महासाध्वि कुरु पूर्णं व्रतं सति। वयं तव व्रते पूर्णे कुर्मस्त्वां पूर्णमानसाम् ॥३४॥

हे प्रिये! देवों और पितरों के सभी नित्य-नैमित्तिक कर्मों में जो कर्म दक्षिणाहीन होता है वह निष्फल होता है और उस कर्म के कारण दाता कालसूत्र नामक नरक में निश्चित पड़ता है तथा अन्त में दीनहीन होकर शत्रु द्वारा पीड़ित होता है। इसलिए उस समय यदि ब्राह्मण को दक्षिणा न दी गयी, तो उस मुहूर्त के बीत जाने पर दक्षिणा दुगुनी हो जाती है। दिन व्यतीत होने पर चौगुनी, पक्ष बीतने पर सौगुनी, मास में पाँच सौ गुनी, छह मास में उसकी चौगुनी और वर्ष बीतने पर वह कर्म निष्फल हो जाता है औरसहस्र वर्ष पर्यन्त दाता नरक में निवास करता है तथा उस पातक द्वारा पुत्र-पौत्र, धन और ऐश्वर्य हो जाता है धर्मविहीन कर्म में उसका धर्म नष्ट हो जाता है ॥२५ ३०॥

विष्णु बोले—हे धर्मिष्ठे! इस धर्म-कर्म में अपने धर्म की रक्षा करो, क्योंकि अपने धर्म का पालन करने से सब की रक्षा होती है ॥३१॥

ब्रह्मा बोले—हे धर्मज्ञे! किसी कारणवश जो अपने धर्म की रक्षा नहीं करता है, वह कर्ता धर्म के नष्ट होने पर स्वयं भी नष्ट हो जाता है ॥३२॥

धर्म बोले—हे साध्वि! पति को दक्षिणा में प्रदान कर मेरी रक्षा सप्रयत्न करो। हे महासाध्वि! मेरे रहने पर सब कल्याण ही होगा ॥३३॥

देवगण बोले—हे महासाध्वि! धर्म की रक्षा करो के अपना और व्रत पूरा करो। तुम्हारे व्रत के पूर्ण हो जाने पर हम लोग तुम्हें सफलमनोरथ करेंगे ॥३४॥

---

१ क. ०र्षशतं शुभे। २. क. ०स्य सर्वं वि०।

मुनय ऊचुः

कृत्वा साध्वि पूर्णहोमं देहि विप्राय दक्षिणाम्। स्थितेष्वस्मासु [1]भुवि ते किमभद्रं भविष्यति ॥३५॥

सनत्कुमार उवाच

शिवे शिवं देहि मह्यं न चेद्व्रतफलं त्यज। सुचिरं संचितस्यापि स्वात्मनस्तपसः फलम् ॥३६॥
कर्मण्यदक्षिणे साध्वि यागस्याहं तु तत्फलम्। प्राप्स्यामि यजमानस्य संपूर्णं कर्मणः फलम् ॥३७॥

पार्वत्युवाच

किं कर्मणा मे देवेशाः किं मे दक्षिणया मुने। किं पुत्रेण च धर्मेण यत्र भर्ता च दक्षिणा ॥३८॥
वृक्षार्चने फलं किं वै यदि भूमिर्न चार्च्यते। गते च कारणे कार्यं कुतः सस्यं कुतः फलम् ॥३९॥
प्राणास्त्यक्ताः स्वेच्छया चेद्देहैः स्यात्किं प्रयोजनम्। दृष्टिशक्तिविहीनेन चक्षुषा किं प्रयोजनम् ॥४०॥
शतपुत्रसमः स्वामी साध्वीनां च सुरेश्वराः। यदि भर्ता व्रते देयं किं व्रतेन सुतेन वा ॥४१॥
भर्तुरंशश्च तनयः केवलं भर्तृमूलकः। यत्र मूलं भवेद्भ्रष्टं तद्वाणिज्यं च निष्फलम् ॥४२॥

विष्णुरुवाच

पुत्रादपि परः स्वामी धर्मश्च स्वामिनः परः। नष्टे धर्मे च धर्मिष्ठे स्वामिना किं सुतेन वा ॥४३॥

मुनिवृन्द बोले—हे साध्वि ! हवन पूरा कर ब्राह्मण को दक्षिणा प्रदान करो हे । धर्मज्ञे ! भूतल पर हम लोगों के रहते तुम्हारा क्या अमंगल होगा ? ॥३५॥

सनत्कुमार बोले—हे शिवे ! शिव को मुझे सौंप दो, अन्यथा व्रत का फल और अपने चिर काल से संचित किये हुए तप का फल परित्याग करो ॥३६॥ हे साध्वि ! कर्म के दक्षिणाहीन होने पर इस याग का फल और यजमान के सम्पूर्ण कर्म का फल मुझे प्राप्त होगा ॥३७॥

पार्वती बोलीं—हे देवेश ! एवं हे मुने ! मुझे कर्म और धर्म से क्या प्रयोजन है तथा पुत्र और धर्म लेकर क्या करूँगी जहाँ पति ही दक्षिणा में जा रहा है ॥३८॥ क्योंकि यदि भूमि की अर्चना न हो तो वृक्ष की अर्चना से क्या फल हो सकता है—कारण ही नहीं है तो कार्य सस्य और फल की प्राप्ति कैसे हो सकती है ? ॥३९॥ यदि प्राण स्वेच्छा से चले गये तो देह से क्या प्रयोजन । देखने की शक्ति से हीन नेत्र किस काम आ सकता है ? ॥४०॥ हे सुरेश्वरो ! पतिव्रता स्त्रियों के लिए स्वामी सौ पुत्रों के समान होता है । यदि व्रत में पति ही देय है तो व्रत और पुत्र से क्या प्रयोजन है ? ॥४१॥ पुत्र भर्ता का अंश होता है और उसका कारण स्वामी ही होता है । जहाँ मूलधन नष्ट हो जाता है वहाँ उसका व्यापार भी निष्फल हो जाता है ॥४२॥

विष्णु बोले—स्वामी पुत्र से बढ़कर अवश्य होता है किन्तु धर्म स्वामी से भी उत्तम है, अतः धर्म के नष्ट हो जाने पर स्वामी या पुत्र दोनों से क्या प्रयोजन ? ॥४३॥

---

१. ख धर्मज्ञे कि० ।

ब्रह्मोवाच

स्वामिनश्च परो धर्मो धर्मात्सत्यं च सुव्रते। सत्यं संकल्पितं कर्म न तु भ्रष्टं कुरु व्रतम् ॥४४॥

पार्वत्युवाच

निरूपितश्च वेदेषु स्वशब्दो धनवाचकः। तद्यस्यास्तीति स स्वामी वेदज्ञ शृणु मद्वचः ॥४५॥
तस्य दाता सदा स्वामी न च स्वं स्वामितां लभेत्। अहोऽव्यवस्था भवतां वेदज्ञानामबोधतः[1] ॥४६॥

धर्म उवाच

पत्नी विनाऽन्यं स्वं साध्वि स्वामिनं दातुमक्षमा। दम्पती ध्रुवमेकाङ्गौ द्वयोर्दाने द्वकौ समौ ॥४७॥

पार्वत्युवाच

पिता ददाति जामात्रे स च गृह्णाति तत्सुताम्। न श्रुतं विपरीतं च श्रुतौ श्रुतिपरायणाः ॥४८॥

देवा ऊचुः

बुद्धिस्वरूपा त्वं दुर्गे बुद्धिमन्तो वयं त्वया। वेदज्ञे वेदवादेषु के वा त्वां जेतुमीश्वराः ॥४९॥
निरूपिता पुण्यके तु व्रते स्वामी च दक्षिणा। श्रुतौ श्रुतो यः स धर्मो विपरीतो ह्यधर्मकः ॥५०॥

ब्रह्मा बोले—हे सुव्रते! स्वामी से बढ़ कर धर्म और धर्म से बढ़कर सत्य होता है। तुम्हारा यह व्रत सत्य संकल्पित कर्म है, अतः इसे भ्रष्ट न करो॥४४॥

पार्वती बोलीं—हे वेदज्ञ! मेरी बातें सुनो। वेदों में स्वशब्द धन अर्थ में प्रयुक्त हुआ है अतः वह जिसका है वह स्वामी है ॥४५॥ उस (धन) का दाता सदा स्वामी होता है, किन्तु धन स्वामित्व को प्राप्त नहीं करता। अतः आप वेदज्ञानियों की अव्यवस्था पर, जो अज्ञान द्वारा की गयी है, आश्चर्य हो रहा है ॥४६॥

धर्म बोले—हे साध्वि! पत्नी अन्य धन को छोड़ कर स्वामी देने में असमर्थ रहती है, क्योंकि दम्पति (स्त्री पुरुष मिलकर) निश्चित एक अंग होते हैं अतः दोनों के दान में दोनों समान हैं ॥४७॥

पार्वती बोलीं—हे श्रुतिपरायणवृन्द! पिता जामाता (दामाद) को दान देता है और वह उसकी पुत्री को ग्रहण करता है, वेद में इसके विपरीत कुछ नहीं सुना गया है ॥४८॥

देववृन्द बोले—हे दुर्गे! हे वेदज्ञे! तुम बुद्धिस्वरूप हो और हम लोग तुम्हारे द्वारा बुद्धिमान् हैं, अतः वेद के वाद-विवाद में तुम्हें जीतने में कौन समर्थ हो सकता है॥४९॥ इस पुण्यकव्रत में स्वामी ही दक्षिणा रूप में देने को कहा गया है इसलिए वेद में जो सुना गया है वह धर्म है और उससे विपरीत अधर्म ॥५०॥

---

१ क. ० ज्ञानमबोधताम्।

पार्वत्युवाच

केवलं वेदमाश्रित्य कः करोति विनिर्णयम् । बलवाँल्लौकिको वेदाल्लोकाचारं च कस्त्यजेत् ॥५१॥
वेदे प्रकृतिपुंसोश्च गरीयान्पुरुषो ध्रुवम् । निबोधत सुराः प्राज्ञा बालाऽहं कथयामि किम् ॥५२॥

बृहस्पतिरुवाच

न पुमांसं विना सृष्टिर्न साध्वि प्रकृतिं विना । श्रीकृष्णश्च द्वयोः स्रष्टा समौ प्रकृतिपूरुषौ ॥५३॥

पार्वत्युवाच

[1]सर्वस्रष्टा च यः कृष्णः सोंऽशेन सगुणः पुमान् । पुमान्गरीयान्प्रकृतेस्तथैव न ततश्च सा ॥५४॥
एतस्मिन्नन्तरे देवा मुनयस्तत्र संसदि । रत्नेन्द्रसाररचितमाकाशे ददृशू रथम् ॥५५॥
पार्षदैः संपरिवृतं सर्वैः श्यामैश्चतुर्भुजैः । वनमालापरिवृतै रत्नभूषणभूषितैः ॥५६॥
अवरुह्य ततो[2] यानादाजगाम सभातलम् । तुष्टुवुस्तं सुरेन्द्रास्ते देवं वैकुण्ठवासिनम् ॥५७॥
शङ्खचक्रगदापद्मधरमीशं चतुर्भुजम् । लक्ष्मीसरस्वतीकान्तं शान्तं तं सुमनोहरम् ॥५८॥
सुखदृश्यमभक्तानामदृश्यं कोटिजन्मभिः । कोटिकन्दर्पलावण्यं कोटिचन्द्रसमप्रभम् ॥५९॥
अमूल्यरत्नरचितचारुभूषणभूषितम् । सेव्यं ब्रह्मादिदेवैश्च सेवकैः सततं स्तुतम् ॥६०॥

पार्वती बोलीं—केवल वेद के ही आधार पर कौन निर्णय कर सकता है, क्योंकि वेद से लोकाचार बलवान् होता है, इसलिए उसका त्याग कौन कर सकता है ॥५१॥ वेद में प्रकृति-पुरुष में पुरुष को ही श्रेष्ठ बताया गया है। हे प्राज्ञ सुरगण! सुनिए, मैं बाला क्या कह सकती हूँ ॥५२॥

बृहस्पति बोले—हे साध्वि! न पुरुष के बिना सृष्टि हो सकती है और न प्रकृति (स्त्री) के बिना सृष्टि हो सकती है। भगवान् श्रीकृष्ण ही दोनों के स्रष्टा हैं और प्रकृति-पुरुष दोनों समान हैं ॥५३॥

पार्वती बोलीं—सबका सर्जन करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण ही अपने अंश से सगुण पुरुष होते हैं, इसलिए प्रकृति से पुरुष श्रेष्ठ होता है और उसी प्रकार पुरुष से प्रकृति श्रेष्ठ नहीं होती ॥५४॥ इसी बीच देवों और मुनियों ने उसी सभा में आकाश में रत्नेन्द्रों के सारभाग से सुरचित एक उत्तम रथ देखा, जो श्याम वर्ण, वनमाला एवं रत्नों के भूषणों से भूषित और चार भुजाओं वाले पार्षदों से आच्छन्न था। अनन्तर उस रथ से उतर कर प्रसन्नमुख नारायण सभा में आये ॥५५-५६½॥ उन सुरवरों ने उस वैकुण्ठवासी भगवान् की स्तुति करना आरम्भ किया, जो शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये, सबके ईश, चार भुजाओं से सुशोभित, लक्ष्मी-सरस्वती के पति, शान्तस्वरूप, अति मनोहर, देखनेमात्र से सुख देने वाले, अभक्तों को करोड़ों जन्मों में भी न दिखायी देने वाले, करोड़ों काम के समान सुन्दर, करोड़ों चन्द्रमा के समान प्रभा से पूर्ण, अमूल्य रत्नों के सुन्दर आभूषणों से भूषित, ब्रह्मा आदि देवों से सुसेव्य और सेवकों द्वारा निरन्तर स्तुत हो रहे थे ॥५७-६०॥ उनकी कान्ति से चारों ओर आच्छन्न

---

१ क. यः कृष्णः प्रकृतेः स्रष्टा सो० । २ ख. मुदा ।

तद्भासा संपरिच्छन्नैर्वेष्टितं च सुरर्षिभिः। वासयामास तं ते च रत्नसिंहासने वरे ॥६१॥
तं प्रणेमुश्च शिरसा ब्रह्मशक्तिशिवादयः। संपुटाञ्जलयः सर्वे पुलकाङ्काश्रुलोचनाः ॥६२॥
सस्मितस्तांश्च पप्रच्छ सर्वं मधुरया गिरा। प्रबोधितः सुबोधज्ञः प्रववतुमुपचक्रमे ॥६३॥

नारायण उवाच

सह बुद्ध्या बुद्धिमन्तो न वक्तुमुचितं सुराः। सर्वे शक्त्या यया विश्वे शक्तिमन्तो हि जीविनः ॥६४॥
ब्रह्मादितृणपर्यन्तं सर्वं प्राकृतिकं जगत्। सत्यं सत्यं विना मां च मया शक्तिः प्रकाशिता ॥६५॥
आविर्भूता च सा मत्तः सृष्टौ देवी मदिच्छया। तिरोहिता च साऽशेषे सृष्टिसंहरणे मयि ॥६६॥
प्रकृतिः सृष्टिकर्त्री च सर्वेषां जननी परा। मम तुल्या च मन्माया तेन नारायणी स्मृता ॥६७॥
सुचिरं तपसा तप्तं शंभुना ध्यायता च माम्। तेन तस्मै मया दत्ता तपसां फलरूपिणी ॥६८॥
व्रतं च लोकशिक्षार्थमस्या न स्वार्थमेव च। स्वयं व्रतानां तपसां फलदात्री जगत्त्रये ॥६९॥
मायया मोहिताः सर्वे किमस्या वास्तवं व्रतम्। साध्यमस्या व्रतफलं कल्पे कल्पे पुनः पुनः ॥७०॥
सुरेश्वरा मदंशाश्च ब्रह्मशक्तिमहेश्वराः। कलाः कलांशरूपाश्च जीविनश्च सुरादयः ॥७१॥
मृदा विना घटं कर्तुं कुलालश्च यथाऽक्षमः। विना स्वर्णं स्वर्णकारः कुण्डलं कर्तुमक्षमः ॥७२॥
विना शक्त्या तथाऽहं च स्वसृष्टिं कर्तुमक्षमः। शक्तिप्रधाना सृष्टिश्च सर्वदर्शनसंमता ॥७३॥

देवगण उन्हें घेरे हुए थे। अनन्तर ब्रह्मा, शक्ति और शिव आदि देवों ने उन्हें उत्तम रत्न सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया और शिर से प्रणाम करने लगे। उस समय, सब हाथ जोड़े सजल नयन होकर पुलकायमान हो रहे थे। मन्द मुसुकान करते हुए भगवान् ने मधुर वाणी द्वारा उन देवों से सब पूछ लिया। वृत्तान्त जानने पर उत्तम बोध के ज्ञाता भगवान् ने कहना आरम्भ किया ॥६१-६३॥

नारायण बोले—बुद्धि (स्वरूपिणी पार्वती) के साथ बुद्धिमान् देवों का वाद-विवाद करना उचित नहीं है, क्योंकि समस्त विश्व में उसी शक्ति द्वारा सभी लोग सशक्त और जीवित हैं। इसीलिए ब्रह्मा आदि से लेकर तृणपर्यन्त समस्त जगत प्राकृतिक कहा जाता है। यह बात सत्य एवं दृढ़ सत्य है कि—मैंने पुरुष के बिना शक्ति को प्रकाशित किया है ॥६४-६५॥ सृष्टि में वह देवी मेरी इच्छा से मेरे द्वारा प्रकट होती है और सम्पूर्ण सृष्टि का संहार होने पर मुझ में अन्तर्हित हो जाती है ॥६६॥ प्रकृति सृष्टि करने के नाते सभी लोगों की श्रेष्ठ जननी है। यह मेरी माया मेरे समान है, अतः इसे 'नारायणी' कहते हैं ॥६७॥ मेरा ध्यान करते हुए शम्भु ने चिरकाल तक तप किया था, इसी लिए मैंने उनके तप के फलस्वरूप यह उन्हें सौंप दी थी ॥६८॥ यह (सुपुण्यक) व्रत इन्होंने लोक-शिक्षार्थ सम्पन्न किया है, इसमें इनका कुछ स्वार्थ नहीं है, क्योंकि तीनों लोकों में व्रतों और तपस्याओं के फल यह स्वयं प्रदान करती है ॥६९॥ तुम सभी लोग माया से मोहित हो गये हो, नहीं तो इनका यह वास्तविक व्रत है क्या? प्रत्येक कल्प में इस व्रत का फल इन्हें बार-बार प्राप्त होता रहता है ॥७०॥ देवेश्वर ब्रह्मा, शक्ति और महेश्वर मेरे अंश हैं और जीव देवादिगण कला एवं कलांशरूप हैं ॥७१॥ जिस प्रकार बिना मिट्टी के घड़ा बनाने में कुम्हार असमर्थ होता है, बिना सुवर्ण के सुनार कुण्डल बनाने में असमर्थ रहता है, उसी प्रकार बिना शक्ति के मैं सृष्टि करने में असमर्थ रहता

अहमात्मा हि निर्लिप्तोऽदृश्यः साक्षी च देहिनाम्। देहाः प्राकृतिकाः सर्वे नश्वराःपाञ्चभौतिकाः ॥७४॥
अहं नित्यः शरीरी च भानुविग्रहविग्रहः। सर्वाधारा सा प्रकृतिः सर्वात्माऽहं जगत्सु च ॥७५॥
अहमात्मा मनो ब्रह्मा ज्ञानरूपो महेश्वरः। पञ्चप्राणाः स्वयं विष्णुर्बुद्धिः प्रकृतिरीश्वरी ॥७६॥
[1]मेधानिद्रादयश्चैताः सर्वाश्च प्रकृतेः कलाः। सा च शैलेन्द्रकन्यैषा त्विति वेदे निरूपितम् ॥७७॥
अहं गोलोकनाथश्च वैकुण्ठेशः सनातनः। गोपीगोपैः परिवृतस्तत्रैव द्विभुजः स्वयम् ॥
चतुर्भुजोऽत्र देवेशो लक्ष्मीशः पार्षदैर्वृतः ॥७८॥
ऊर्ध्वं परश्च वैकुण्ठात्पञ्चाशत्कोटियोजनात्। ममाऽऽश्रयश्च गोलोको यत्राहं[2] गोपिकापतिः ॥७९॥
व्रताराध्यः स द्विभुजः स च तत्फलदायकः। यद्रूपं चिन्तयेद्यो हि तच्च तत्फलदायकः ॥८०॥
व्रतं पूर्णं कुरु शिवे शिवं दत्त्वा च दक्षिणाम्। पुनः समुचितं मूल्यं दत्त्वा नाथं ग्रहीष्यसि ॥८१॥
विष्णुदेहा यथा गावो विष्णुदेहस्तथा शिवः। द्विजाय दत्त्वा गोमूल्यं गृहाण स्वामिनं शुभे ॥८२॥
यज्ञपत्नीं यथा दातुं क्षमः स्वामी सदैव तु। तथा सा स्वामिनं दातुमीश्वरीति श्रुतेर्मतम् ॥८३॥
इत्युक्त्वा स सभामध्ये तत्रैवान्तरधीयत। हृष्टास्ते सा च संहृष्टा दक्षिणां दातुमुद्यता ॥८४॥
कृत्वा शिवा पूर्णहोमं सा शिवं दक्षिणां ददौ। स्वस्तीत्युक्त्वा च जग्राह कुमारो देवसंसदि ॥८५॥

हूँ। सृष्टि में शक्ति प्रधान है, ऐसा समस्त दर्शन शास्त्रों का मत है ॥७२-७३॥ मैं निर्लिप्त, अदृश्य और समस्त देहधारी जीवों का साक्षी आत्मा हूँ। सभी देह प्राकृतिक, नश्वर एवं पाँच भूतों से निर्मित हैं ॥७४॥ सूर्य के समान प्रकाशमान शरीर वाला मैं नित्य हूँ। जगत में प्रकृति सबकी आधारस्वरूपा है और मैं सबका आत्मा हूँ ॥७५॥ मैं आत्मा हूँ, ब्रह्मा मन हैं, महेश्वर ज्ञानरूप हैं, स्वयं विष्णु पाँचों प्राण स्वरूप हैं, ईश्वरी प्रकृति बुद्धिरूप और मेधा तथा निद्रा आदि ये सब प्रकृति की कलायें हैं। यह प्रकृति हिमालय की कन्या है, ऐसा वेद में बताया गया है ॥७६-७७॥ मैं गोलोक का अधीश्वर, वैकुण्ठ का स्वामी, सनातन और गोप-गोपियों से आवृत रहकर वहाँ स्वयं दो भुजाएँ धारण करता हूँ तथा यहाँ चार भुजाएँ धारण करके देवों का अधीश्वर, लक्ष्मी का स्वामी एवं पार्षदों से घिरा हुआ हूँ ॥७८॥ वैकुण्ठ से पचास करोड़ योजन ऊपर गोलोक में मेरा स्थान है जहाँ मैं गोपिकाओं का पति, व्रत का आराध्य देव एवं दो भुजाओं से भूषित रहकर व्रतों का फल देता हूँ। जो जिस रूप का चिन्तन करता है, उसे वह फल प्रदान करता हूँ ॥७९-८०॥ अतः हे शिवे! शिव को दक्षिणा में देकर तुम अपना व्रत पूरा करो और फिर उचित मूल्य देकर अपना स्वामी ग्रहण करो ॥८१॥ क्योंकि हे शुभे! विष्णु की देह जैसे गौएँ हैं वैसे ही विष्णु की देह शिव भी हैं, इसलिए ब्राह्मण को गो मूल्य देकर अपना पति लौटा लो ॥८२॥ जिस प्रकार स्वामी यज्ञ-पत्नी (दक्षिणा) देने में समर्थ होता है उसी भाँति वह भी स्वामी का दान करने में समर्थ है, ऐसा वेद का मत है ॥८३॥ इतना कह कर नारायण भगवान् सभा के मध्य में वहीं अन्तर्हित हो गये। देवों आदि सभासदों को बड़ा हर्ष हुआ और पार्वती अत्यन्त सन्तुष्ट होकर दक्षिणा देने के लिए तैयार हो गयीं ॥८४॥ देवों की सभा में शिवा ने पूर्णाहुति करके शिव को दक्षिणा में दे दिया और 'स्वस्ति' कह कर कुमार ने ग्रहण कर लिया ॥८५॥ उस

---

१ क. शक्ति०। २ क. कमलाप०।

उवाच दुर्गा संत्रस्ता शुष्कण्ठौष्ठतालुका। कृताञ्जलिपुटा विप्रं हृदयेन विदूयता ॥८६॥

पार्वत्युवाच

गोमूल्यं मत्पतिसममिति वेदे निरूपितम्। गवां लक्षं प्रयच्छामि देहि मत्स्वामिनं द्विज ॥८७॥
तदा दास्यामि विप्रेभ्यो दानानि विविधानि च। आत्महीनो हि देहश्च कर्म किं कर्तुमीश्वरः ॥८८॥

सनत्कुमार उवाच

गवां लक्षेण मे देवि[1] विप्रस्य किं प्रयोजनम्। [2]दत्तस्यामूल्यरत्नस्य गवां प्रत्यर्पणेन च ॥८९॥
स्वस्य स्वस्य स्वयं दाता लोकः सर्वो जगत्त्रये। कर्तुरेवेप्सितं कर्म भवेत्किं वा परेच्छया ॥९०॥
दिगम्बरं पुरः कृत्वा भ्रमिष्यामि जगत्त्रयम्। बालकानां बालिकानां समूहस्मितकारणम् ॥९१॥
इत्युक्त्वा ब्रह्मणः पुत्रो गृहीत्वा शंकरं मुने। संनिधौ वासयामास तेजस्वी देवसंसदि ॥९२॥
दृष्ट्वा शिवं गृह्यमाणं कुमारेण च पार्वती। समुद्यता तनुं त्यक्तुं शुष्ककण्ठौष्ठतालुका ॥९३॥
विचिन्त्य मनसा साध्वीत्येवमेव दुरत्ययम्। न दृष्टोऽभीष्टदेवश्च न च प्राप्तं फलं व्रते ॥९४॥
एतस्मिन्नन्तरे देवाः पार्वतीसहितास्तदा। सद्यो ददृशुराकाशे तेजसां निकरं परम् ॥९५॥
कोटिसूर्यप्रभोर्ध्वं च प्रज्वलन्तं दिशो दश। कैलासशैलं पुरतः सर्वदेवादिभिर्युतम् ॥९६॥

समय दुर्गा के कण्ठ, ओंठ और तालू सूख गये; संत्रस्त होकर हाथ जोड़े एवं हार्दिक दुःख प्रकट करती हुई उन्होंने कहा ॥८६॥

पार्वती बोलीं—हे द्विज! गो रूप मूल्य हमारे पति के समान है, ऐसा वेद में कहा गया है। इसलिए मैं आपको एक लाख गौएँ दे रही हूँ, मेरे स्वामी को लौटा दीजिए ॥८७॥ तब मैं ब्राह्मणों को अनेक भाँति के दान प्रदान करूँगी। अन्यथा आत्मरहित देह क्या कर्म करने में कभी समर्थ हो सकती है? ॥८८॥

सनत्कुमार बोले—हे देवि! मुझ ब्राह्मण को लाख गौओं की आवश्यकता नहीं है—दिये हुए अमूल्य रत्न को गौओं से बदलना नहीं चाहता ॥८९॥ तीनों लोकों में सभी लोग अपने-अपने धन के दाता स्वयं होते हैं (अन्य नहीं) और करने वाले का अभिलषित कर्म क्या कहीं दूसरे की इच्छा से सम्पन्न होता है? ॥९०॥ मैं दिगम्बर (शिव) को आगे किये तीनों लोकों में भ्रमण करूँगा, जो बालक-बालिकाओं के हास्य का एक कारण होगा ॥९१॥ हे मुने! तेजस्वी ब्रह्मपुत्र (सनत्कुमार) ने उस देवसभा में इतना कहकर शिव को अपने समीप बैठा लिया ॥९२॥ पार्वती ने शिव को पकड़ते हुए कुमार को देखकर अपना शरीर त्यागना निश्चित कर लिया। उनके कण्ठ, होंठ और तालू सूख गये ॥९३॥ उस पतिव्रता ने मन से सोचा कि यह कैसी कठिन बात हुई कि—इस व्रत में न अभीष्ट देव (भगवान् श्रीकृष्ण) ही दिखाई पड़े और न फल ही प्राप्त हुआ ॥९४॥ इसी बीच देवों के साथ उन्होंने आकाश में तेजों का समूह देखा, जो करोड़ों सूर्य की प्रभा से उत्कृष्ट तथा दसों दिशाओं को प्रज्वलित कर रहा था। वह कैलाशपर्वत

---

१ ख. वल्गुना। २ क. ददाति विप्रोऽमूल्यं च गवां प्रत्यर्पणेन कः।

सर्वाश्रयं गणाच्छन्नं विस्तीर्णं मण्डलाकृतिम्। तच्च दृष्ट्वा भगवतस्तुष्टुवुस्ते क्रमेण च ॥९७॥

विष्णुरुवाच

ब्रह्माण्डानि च सर्वाणि यल्लोमविवरेषु च। सोऽयं ते षोडशांशश्च के वयं यो महाविराट् ॥९८॥

ब्रह्मोवाच

वेदोपयुक्तं दृश्यं यत्प्रत्यक्षं द्रष्टुमीश्वर। स्तोतुं तद्वर्णितुमहं शक्तः किं स्तौमि तत्परः ॥९९॥

महादेव उवाच

ज्ञानाधिष्ठातृदेवोऽहं स्तौमि ज्ञानपरं च किम्। सर्वानिर्वचनीयं तं त्वां च स्वेच्छामयं विभुम् ॥१००॥

धर्म उवाच

अदृश्यमवतारेषु यद्दृश्यं सर्वजन्तुभिः। किं स्तौमि तेजोरूपं तद्भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥१०१॥

देवा ऊचुः

के वयं त्वत्कलांशाश्च किं वा त्वां स्तोतुमीश्वराः। स्तोतुं न शक्ता वेदा यं न च शक्ता सरस्वती ॥१०२॥

मुनय ऊचुः

वेदान्पठित्वा विद्वांसो वयं किं वेदकारणम्। स्तोतुमीशा न वाणी च त्वां वाङ्मनसयोःपरम् ॥१०३॥

के सामने समस्त देवों से युक्त, सबके आश्रय रूप, गणों से आच्छन्न, विस्तीर्ण और मण्डलाकार था। भगवान् के उस रूप को देखकर देवता क्रमशः स्तुति करने लगे ॥९५-९७॥

विष्णु बोले—जिसके लोम-छिद्रों में समस्त ब्रह्माण्ड सुस्थित हैं, वह महाविराट् तुम्हारा सोलहवाँ अंश है, तो हम लोगों की क्या गणना है? ॥९८॥

ब्रह्मा बोले—हे ईश्वर! वेद में कहे हुए दृश्य पदार्थ को, जो प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है, उसी की स्तुति और वर्णन करने में मैं समर्थ हूँ। और जो उससे परे है उसकी क्या स्तुति करूँ? ॥९९॥

महादेव बोले—मैं ज्ञान का अधिष्ठातृ देव हूँ, किन्तु जो ज्ञान से परे, सबसे अनिर्वचनीय, स्वेच्छामय एवं विभु (व्यापक) हैं उनकी क्या स्तुति करूँ? ॥१००॥

धर्म बोले—जिस अदृश्य को अवतार होने पर ही समस्त जीव जन्तु देख सकते हैं, उस तेजःस्वरूप और भक्तों के अनुग्रहार्थ शरीर धारण करने वाले (देव) की क्या स्तुति करूँ? ॥१०१॥

देवगण बोले—जिनकी स्तुति करने में वेद समर्थ नहीं हैं, सरस्वती भी असमर्थ हैं, उनकी स्तुति करने में आप के कलांश रूप हम लोग समर्थ कैसे हो सकते हैं? ॥१०२॥

मुनिगण बोले—जो वेद के मूल कारण हैं, वाणी-मन से परे हैं और जिनकी स्तुति करने में सरस्वती भी असमर्थ हैं, उनकी स्तुति केवल वेद पढ़ने के नाते हम लोग कैसे कर सकते हैं? ॥१०३॥

सरस्वत्युवाच

वागधिष्ठातृदेवीं मां वदन्ते वेदवादिनः। किंचिन्न शक्ता त्वां स्तोतुमहो वाङ्मनसोः परम् ॥१०४॥

सावित्र्युवाच

वेदप्रसूरहं नाथ सृष्टा त्वत्कलया पुरा। किं स्तौमि स्त्रीस्वभावेन सर्वकारणकारणम् ॥१०५॥

लक्ष्मीरुवाच

त्वदंशविष्णुकान्ताऽहं जगत्पोषणकारिणी। किं स्तौमि त्वत्कलासृष्टा जगतां बीजकारणम् ॥१०६॥

हिमालय उवाच

हसन्ति सन्तो मां नाथ कर्मणा स्थावरं परम्। स्तोतुं समुद्यतं क्षुद्रः किं स्तौमि स्तोतुमक्षमः ॥१०७॥
क्रमेण सर्वे तं स्तुत्वा देवा विररमुर्मुने। देव्यश्च मुनयः सर्वे पार्वती स्तोतुमुद्यता ॥१०८॥
धौतवस्त्रा जटाभारं बिभ्रती सुव्रता व्रते। प्रेरिता परमात्मानं व्रताराध्यं शिवेन च ॥१०९॥
ज्वलदग्निशिखारूपा तेजोमूर्तिमती सती। तपसां फलदा माता जगतां सर्वकर्मणाम् ॥११०॥

पार्वत्युवाच

कृष्ण जानासि मां भद्र नाहं त्वां ज्ञातुमीश्वरी। के वा जानन्ति वेदज्ञा वेदा वा वेदकारकाः ॥१११॥

सरस्वती बोलीं—यद्यपि वेदवादी लोग मुझे वागधिष्ठात्री देवी कहते हैं, किन्तु मैं किञ्चिन्मात्र भी आपकी स्तुति करने में समर्थ नहीं हूँ, क्योंकि आप वाणी और मन से परे हैं ॥१०४॥

सावित्री बोलीं—हे नाथ ! मैं वेद-जननी अवश्य हूँ, पूर्वकाल में आपकी कला द्वारा मेरी सृष्टि हुई है, किन्तु स्त्रीस्वभाव वश मैं समस्त कारणों के भी कारण आपकी स्तुति कैसे कर सकती हूँ ? ॥१०५॥

लक्ष्मी बोलीं—मैं आपके अंश से उत्पन्न विष्णु की प्रिया हूँ, सारे जगत् का पालन-पोषण करती हूँ, किन्तु आपकी कला द्वारा मेरा जन्म हुआ है अतः मैं आप की क्या स्तुति कर सकती हूँ जो जगत् के बीज कारण हैं ? ॥१०६॥

हिमालय बोले—हे नाथ ! परम स्थावर होने के नाते मेरा सन्त लोग उपहास करते हैं। मैं क्षुद्र हूँ, स्तुति करने के लिए तैयार हूँ किन्तु असमर्थतावश क्या स्तुति करूँ ? ॥१०७॥

हे मुने ! इस प्रकार देवगण, देवियों और मुनियों के क्रमशः स्तुति करके चुप हो जाने पर पार्वती स्तुति करने के लिए तैयार हो गयीं, जो उस व्रत में धौत वस्त्र धारण किये, जटाभार से भूषित, सुव्रता, शिव जी द्वारा व्रत के आराध्य देव परमात्मा श्रीकृष्ण की स्तुति के लिए प्रेरित, प्रज्वलित अग्नि की शिखा स्वरूप, मूर्तिमान् तेजोरूप, सती, तप और समस्त कर्मों के फल देने वाली तथा जगज्जननी थीं ॥१०८-११०॥

पार्वती बोलीं—हे कृष्ण ! आप मुझे जानते हैं किन्तु मैं आपको जानने में असमर्थ हूँ। वेद जानने वाले, समस्त वेद या वेदकर्ता क्या आपको जानते हैं (अर्थात् कभी नहीं जान सकते) ॥१११॥ जब तुम्हारे अंश तुम्हें नहीं

त्वदंशास्त्वां न जानन्ति कथं ज्ञास्यन्ति ते कलाः। त्वं चापि तत्त्वं जानासि किमन्ये ज्ञातुमीश्वराः ॥११२॥
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतमोऽव्यक्तः स्थूलात्स्थूलतमो महान्। विश्वस्त्वं विश्वरूपश्च विश्वबीजं सनातनः ॥११३॥
कार्यं त्वं कारणं त्वं च कारणानां च कारणम्। तेजःस्वरूपो भगवान्निर्विकारो निराश्रयः॥११४॥
निर्लिप्तो निर्गुणः साक्षी स्वात्मारामः परात्परः। प्रकृतीशो विराड्बीजं विराड्रूपस्त्वमेव च ॥११५॥
सगुणस्त्वं प्राकृतिकः कलया सृष्टिहेतवे। प्रकृतिस्त्वं पुमांस्त्वं च त्वदन्यो न क्वचिद्भवेत् ॥११६॥
जीवस्त्वं साक्षिणो भोगी स्वात्मनः प्रतिबिम्बकम्। कर्म त्वं कर्मबीजं त्वं कर्मणां फलदायकः ॥११७॥
ध्यायन्ति योगिनस्तेजस्त्वदीयमशरीरि यत्। केचिच्चतुर्भुजं शान्तं लक्ष्मीकान्तं मनोहरम् ॥११८॥
वैष्णवाश्चैव साकारं कमनीयं मनोहरम्। शङ्खचक्रगदापद्मधरं पीताम्बरं परम् ॥११९॥
द्विभुजं कमनीयं च किशोरं [1]श्यामसुन्दरम्। शान्तं गोपाङ्गनाकान्तं रत्नभूषणभूषितम् ॥१२०॥
एवं तेजस्विनं भक्ताः सेवन्ते संततं मुदा। ध्यायन्ति योगिनो यत्तत्कुतस्तेजस्विनं विना ॥१२१॥
तत्तेजो बिभ्रतां देव देवानां तेजसा पुरा। आविर्भूता सुराणां च वधाय ब्रह्मणा स्तुता ॥१२२॥
नित्या तेजः स्वरूपाऽहं धृत्वा वै विग्रहं विभो। स्त्रीरूपं कमनीयं च विधाय समुपस्थिता ॥१२३॥
मायया तव मायाऽहं मोहयित्वाऽसुरान्पुरा। निहत्य सर्वाञ्छैलेन्द्रमगमं तं हिमालयम् ॥१२४॥

जानते हैं तो कलाएँ कैसे जान सकती हैं? तत्त्व तो तुम्हीं जानते हो क्या अन्य लोग भी जानने में समर्थ हो सकते हैं? (अर्थात् कभी नहीं) ॥११२॥ क्योंकि तुम सूक्ष्म से सूक्ष्म, अव्यक्त (अस्पष्ट), स्थूल से महान् स्थूलतम हो, तुम विश्व हो, विश्व रूप हो, विश्वबीज और सनातन हो ॥११३॥ तुम्हीं कार्य रूप हो, तुम्हीं कारण रूप हो, कारणों के कारण हो, तेजःस्वरूप, भगवान्, निर्विकार, निराश्रय, निर्लिप्त, निर्गुण, साक्षी, अपने आत्मा में रमण करने वाले, परात्पर, प्रकृति के अधीश्वर, विराट्-कारण और तुम्हीं विराट्रूप हो, तुम कला द्वारा सृष्टि रचना के लिए प्राकृतिक एवं सगुण हो। तुम्हीं प्रकृति हो, तुम्हीं पुरुष हो, क्योंकि तुम से अन्य कहीं कुछ है ही नहीं। तुम्हीं जीव, साक्षी के भोगी, अपने आत्मा के प्रतिबिम्ब, कर्म और कर्म के बीज तथा कर्मों के फल प्रदान करने वाले हो। योगी गण तुम्हारे अशरीरी तेज का ध्यान करते हैं। कुछ लोग चतुर्भुजधारी भगवान् विष्णु का ध्यान करते हैं, जो शान्त, लक्ष्मी के कान्त और मनोहर हैं। वैष्णव लोग उसी साकार, कमनीय (सुन्दर), मनोहर तथा शंख, चक्र, गदा, पद्म और पीताम्बर धारी परमदेव की उपासना करते हैं ॥११४-११९॥ दो भुजाओं से सुशोभित, कमनीय, किशोर, श्यामसुन्दर, शान्त, गोपिकाओं के कान्त, रत्नों के भूषणों से विभूषित एवं तेजस्वी की भक्तगण हर्ष से निरन्तर सेवा करते हैं। और योगी लोग जिसका ध्यान करते हैं वह तेजस्वी आपके अतिरिक्त दूसरा कौन हो सकता है? ॥१२०-१२१॥ हे देव! उसी (आपके) तेज को धारण करने वाले देवों के तेज द्वारा मैं पूर्वकाल में असुरों के वधार्थ ब्रह्मा के स्तुति करने पर आविर्भूत हुई थी। हे विभो! मैं नित्य एवं तेजःस्वरूप हूँ, उस समय मैं शरीर धारण करके रमणीय रमणी रूप बनाकर वहाँ उपस्थित हुई ॥१२२-१२३॥ अनन्तर तुम्हारी माया स्वरूपा मैंने उन असुरों को माया द्वारा मोहित करके मार डाला और फिर हिमालय पर चली गई ॥१२४॥

१. काम°।

ततोऽहं संस्तुता देवैस्तारकाक्षेण पीडितैः। अभवं दक्षजायायां शिवस्त्री पूर्वजन्मनि ॥१२५॥
त्यक्त्वा देहं दक्षयज्ञे शिवाऽहं शिवनिन्दया। अभवं शैलजायायां [1]शैलाधीशस्य कर्मणा ॥१२६॥
अनेकतपसा प्राप्तः शिवश्चात्रापि जन्मनि। पाणिं जग्राह मे योगी प्रार्थितो ब्रह्मणा विभुः ॥१२७॥
शृङ्गारजं च तत्तेजो नालभं देवमायया। स्तौमि त्वामेव तेनेश पुत्रदुःखेन दुःखिता ॥१२८॥
व्रते भवद्विधं पुत्रं लब्धुमिच्छामि सांप्रतम्। देवेन विहिता वेदे साङ्गे स्वस्वामिदक्षिणा ॥१२९॥
श्रुत्वा सर्वं कृपासिन्धो कृपां मे कर्तुमर्हसि। इत्युक्त्वा पार्वती तत्र विरराम च नारद ॥१३०॥
भारते पार्वतीस्तोत्रं यः शृणोति सुसंयतः। सत्पुत्रं लभते नूनं विष्णुतुल्यपराक्रमम् ॥१३१॥
संवत्सरं हविष्याशी हरिमभ्यर्च्य भक्तितः। सुपुण्यकव्रतफलं लभते नात्र संशयः ॥१३२॥
कृष्णस्तोत्रमिदं ब्रह्मन्सर्वसंपत्तिवर्धनम्। सुखदं मोक्षदं सारं स्वामिसौभाग्यवर्धनम् ॥१३३॥
सर्वसौन्दर्यबीजं च यशोराशिविवर्धनम्। हरिभक्तिप्रदं तत्त्वज्ञानबुद्धिसुखप्रदम् ॥ ॥१३४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० पुण्यकव्रते पतिदाने पार्वतीकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रकथनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

पश्चात् तारकासुर से पीड़ित होने पर देवों ने स्तुति की जिससे मैं पूर्व जन्म में दक्ष की पत्नी में जन्म ग्रहण कर शिव की पत्नी हुई ॥१२५॥ मैं शिवा हूँ अतः दक्ष के यज्ञ में शिव-निन्दा के कारग देह त्यागकर पर्वतराज हिमालय के कर्मवश उनकी पत्नी मेना से प्रकट हुई ॥१२६॥ इस जन्म में भी विप्र एवं योगी शिव ने, अनेक तपस्याएँ करने तथा ब्रह्मा के प्रार्थना करने पर मेरा पाणिग्रहण किया ॥१२७॥ किन्तु हे ईश! (शिव के साथ विहार करते समय) देव माया से वञ्चित होने के नाते उनके श्रृंगार जन्य तेज (वीर्य) को प्राप्त न कर सकी। इसी कारण पुत्र-दुःख से दुःखी होकर मैं आप की स्तुति कर रही हूँ ॥१२८॥ इस व्रत में मैं सम्प्रति आप के समान पुत्र प्राप्त करना चाहती हूँ और देवों ने सांग वेद में अपने स्वामी की ही दक्षिणा निरूपित की ॥१२९॥ अतः हे कृपासिन्धो! आप सब कुछ सुनकर मेरे ऊपर कृपा करें। हे नारद! इतना कह कर पार्वती चुप हो गयीं ॥१३०॥ भारत में पार्वती द्वारा किये गये इस स्तोत्र को जो सुसंयत होकर श्रवण करेगा, उसे विष्णु के समान पराक्रमी सत्पुत्र की अवश्य प्राप्ति होगी ॥१३१॥ पूरे वर्ष भर हविष्य का भोजन और भक्तिपूर्वक भगवान् की अर्चना करने पर वह मनुष्य इस सुपुण्यक व्रत का फल अवश्य प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं ॥१३२॥ हे ब्रह्मन्! कृष्ण का यह स्तोत्र ; समस्त सम्पत्तियों का वर्द्धक, सुख और मोक्ष का दायक, सार रूप, स्वामी का सौभाग्यवर्द्धक, समस्त सौन्दर्य का कारण, कीर्ति-राशि की वृद्धि करने वाला, हरिभक्ति तत्त्वज्ञान बुद्धि एवं सुख देने वाला भी है ॥१३३-१३४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपति खण्ड में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत पुण्यक व्रत के प्रसङ्ग में पतिदान के अवसर पर पार्वती कृत श्रीकृष्ण-स्तोत्र कथन नामक सातवाँ अध्याय समाप्त ॥७॥

१क. शैलजा च स्वक०।

अथाष्टमोऽध्यायः

नारायण उवाच

पार्वत्याः स्तवनं श्रुत्वा श्रीकृष्णः करुणानिधिः। स्वरूपं दर्शयामास सर्वादृश्यं सुदुर्लभम् ॥१॥
स्तुत्वा देवी ध्यानपरा कृष्णसंलग्नमानसा। ददर्श तेजसां मध्ये स्वरूपं सर्वमोहनम् ॥२॥
सद्रत्नसाररचिते हीरकेण परिष्कृते। युक्ते माणिक्यमालाभी रत्नपूर्णे मनोरमे ॥३॥
पीतांशुकं वह्निशुद्धं वरं वंशकरं परम्। वनमालागलं श्यामं रत्नभूषणभूषितम् ॥४॥
किशोरवयसं चित्रवेषं वै चन्दनाङ्कितम्। चारुस्मितास्यमीड्यं तच्छारदेन्दुविनिन्दकम् ॥५॥
मालतीमाल्यसंयुक्तं केकिपिच्छावचूडकम्। गोपाङ्गनापरिवृतं राधावक्षःस्थलोज्ज्वलम् ॥६॥
कोटिकन्दर्पलावण्यलीलाधाम मनोहरम्। अतीव हृष्टं सर्वेष्टं भक्तानुग्रहकारकम् ॥७॥
दृष्ट्वा रूपं रूपवती पुत्रं तदनुरूपकम्। मनसा वरयामास वरं संप्राप्य तत्क्षणम् ॥८॥
वरं दत्त्वा वरेशस्तु यद्यन्मनसि वाञ्छितम्। दत्त्वाऽभीष्टं सुरेभ्यश्च तत्तेजोऽन्तरधीयत ॥९॥
कुमारं बोधयित्वा तु देवा देव्यै दिगम्बरम्। ददुर्निरुपमं तत्र प्रहृष्टायै कृपान्विताः ॥१०॥
ब्राह्मणेभ्यो ददौ दुर्गा रत्नानि विविधानि च। सुवर्णानि च भिक्षुभ्यो बन्दिभ्यो विश्ववन्दिता ॥११॥

अध्याय ८

गणेशजन्म का वर्णन

नारायण बोले––पार्वती की ऐसी स्तुति सुनकर करुणानिधान भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने स्वरूप का दर्शन दिया, जो सबके लिए अदृश्य और अति दुर्लभ है ॥१॥ श्रीकृष्ण में अपना चित्त लगाये हुई ध्यानपरायण देवी (पार्वती) ने तेज के मध्य सब को मोहित करनेवाला स्वरूप देखा, जो उत्तम रत्न के सार भाग से रचित और हीरे जड़े हुए, रत्नपूर्ण, मनोरम, माणिक्य-माला से सुशोभित, अग्नि-विशुद्ध पीताम्बर धारण किये, उत्तम, परम वंश कारक, गले में वनमाला से भूषित, श्यामल, रत्नों के भूषणों से सुशोभित, किशोरावस्था वाला, विचित्रवेष, चन्दन-चर्चित, सुन्दर मन्द मुसुकान युक्त मुख, जिससे शारदीय चन्द्रमा तिरस्कृत हो रहा था, मालती माला पहने, (मुकुट में) मोरपंख की चूडा बनाये, गोपिकाओं से घिरे, राधा को वक्षःस्थल में लगाने से उज्ज्वल, करोड़ों काम के लावण्य की शोभा का धाम, मनोहर, अतिहर्षित, सभी के अभीष्ट और भक्तों पर अनुग्रह करने वाला था ॥२-७॥ रूपवती पार्वती ने उस रूप को देख कर उन्हीं के अनुरूप पुत्र की अभिलाषा मन से प्रकट की और उसी क्षण उन्हें वरदान भी प्राप्त हो गया ॥८॥ वरेश भगवान् श्रीकृष्ण, जो तेजःस्वरूप थे, देवताओं का भी मनोरथ पूरा करके वहीं अन्तर्हित हो गये ॥९॥ सनत्कुमार को समझाकर कृपालु देवों ने अति हर्षित पार्वती को निरुपम शिव लौटा दिया। अनन्तर विश्ववन्दिता दुर्गा ने ब्राह्मणों को विविध-भाँति के रत्न तथा भिक्षुकों और वन्दियों को सुवर्ण प्रदान किया। ब्राह्मणों, देवों और पर्वतों को भोजन कराया तथा परमोत्तम उप-

ब्राह्मणान्भोजयामास देवान्वै पर्वतांस्तथा। शंकरं पूजयामास चोपहारैरनुत्तमैः ॥१२॥
दुन्दुभिं वादयामास कारयामास मङ्गलम्। संगीतं गाययामास हरिसंबन्धि सुन्दरम् ॥१३॥
व्रतं समाप्य सा दुर्गा दत्त्वा दानानि सस्मिता। सर्वांश्च भोजयित्वा तु बुभुजे स्वामिना सह ॥१४॥
ताम्बूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम्। क्रमात्प्रदाय सर्वेभ्यो बुभुजे तेन कौतुकात् ॥१५॥
पयःफेननिभां शय्यां रम्यां सद्रत्नमञ्चके। पुष्पचन्दनसंयुक्तां कस्तूरीकुङकुमान्विताम्।
रहसि स्वामिना सार्धं सुष्वाप परमेश्वरी ॥१६॥
कैलासस्यैकदेशे च रम्ये चन्दनकानने। सुगन्धिकुसुमाढ्येन वायुना सुरभीकृते ॥१७॥
भ्रमरध्वनिसंयुक्ते पुंस्कोकिलरुताश्रये। व्यहार्षीत्सा सुरसिका तत्र तेन सहाम्बिका ॥१८॥
रेतःपतनकाले च स विष्णुर्विष्णुमायया। विधाय विप्ररूपं तदाजगाम रतेर्गृहम् ॥१९॥
जटावन्तं विना तैलं कुचैलं भिक्षुकं मुने। अतीव शुक्लदशनं तृष्णया परिपीडितम् ॥२०॥
अतीव कृशगात्रं च बिभ्रत्तिलकमुज्ज्वलम्। बहुकाकुस्वरं दीनं दैन्यात्कुत्सितमूर्तिमत् ॥२१॥
आजुहाव महादेवमतिवृद्धोऽन्नयाचकः। दण्डावलम्बनं कृत्वा रतिद्वारेऽतिदुर्बलः ॥२२॥

हारों द्वारा शंकर जी की पूजा की ॥१०-१२॥ नगाड़ा बजवाया, मंगल कराया एवं भगवत्सम्बन्धी सुन्दर संगीत गान कराया ॥१३॥ इस प्रकार व्रत समाप्त करके और दान देने के उपरान्त दुर्गा ने मन्द मुसकान करती हुई सबको भोजन कराया। अनन्तर स्वयं भी स्वामी शिव के साथ भोजन किया ॥१४॥ कपूर आदि से सुवासित एवं परम रम्य ताम्बूल क्रमशः सबको देकर उसी कौतुक से स्वयं भी खाया ॥१५॥ पश्चात् परमेश्वरी ने उत्तम रत्न के बने पलंग पर दूध के फेन के समान उज्ज्वल, रमणीक, पुष्प-चन्दन से युक्त और कस्तूरी-कुंकुम से समन्वित शय्या पर पति के साथ एकान्त में शयन किया ॥१६॥ फिर कैलाश के एक भाग में रमणीक चन्दनवन में, जो सुगन्धित पुष्पों से सम्पन्न वायु से सुगन्धित, भौरों की ध्वनियों से गुंजित और नर कोकिल के सुन्दर-वाणी बोलने का एकमात्र आश्रय था; सुरसिका अम्बिका शिव के साथ विहार करने लगीं ॥१७-१८॥ किन्तु वीर्य स्खलित होने के समय वे विष्णु विष्णुमाया के द्वारा ब्राह्मण का वेष बना कर उनके रतिगृह के द्वार पर आ पहुँचे ॥१९॥ हे मुने! उनका रूप भिक्षुक ब्राह्मण का था, जो बिना तेल के जटा भार लिये, फटे-पुराने वस्त्र एवं अत्यन्त शुक्ल दाँत वाले तथा तृष्णा (प्यास) से अति पीड़ित थे ॥२०॥ वे क्षीणकाय, अति उज्ज्वल तिलक धारी, शोकाकुल स्वर वाले और दैन्य से कुत्सित मूर्तिमान् लग रहे थे ॥२१॥ अन्न की याचना करने वाले एवं अति दुर्बल उस अतिवृद्ध ने डंडे के सहारे रतिगृह के दरवाजे पर पहुँच कर महादेव जी को बुलाया ॥२२॥

---

१ क. रत्ननिर्मिताम्।

ब्राह्मण उवाच

किं [1]करोषि महादेव रक्ष मां शरणागतम्। सप्तरात्रिव्रतेऽतीते पारणाकाङ्क्षिणं क्षुधा ॥२३॥
किं [2]करोषि महादेव हे तात करुणानिधे। पश्य वृद्धं जराग्रस्तं तृषया परिपीडितम् ॥२४॥
मातरुत्तिष्ठ मेऽन्नं त्वं प्रयच्छाद्य शिवं जलम्। अनन्तरत्नोद्भवजे रक्ष मां शरणागतम् ॥२५॥
मातर्मातर्जगन्मातरेहि नाहं जगद्बहिः। सीदामि तृषया कस्मात्स्थितायामात्ममातरि ॥२६॥
इति काकुस्वरं श्रुत्वा शिवस्योत्तिष्ठतो मुने। पपात वीर्यं शय्यायां न योनौ प्रकृतेस्तदा ॥२७॥
उत्तस्थौ पार्वती त्रस्ता सूक्ष्मवस्त्रं पिधाय च। आजगाम [3]बहिर्द्वारं पार्वत्या सह शंकरः ॥२८॥
ददर्श ब्राह्मणं दीनं जरया परिपीडितम्। वृद्धं लुलितगात्रं च बिभ्रतं दण्डमानतम् ॥२९॥
तपस्विनमशान्तं च शुष्ककण्ठौष्ठतालुकम्। कुर्वन्तं परया भक्त्या प्रणामं स्तवनं तयोः ॥३०॥
श्रुत्वा तद्वचनं तत्र नीलकण्ठः सुधोपमम्। उवाच परया [4]प्रीत्या प्रसन्नस्तं प्रहस्य च ॥३१॥

शंकर उवाच

गृहं ते कुत्र विप्रर्षे वद वेदविदां वर। किं नाम भवतः क्षिप्रं ज्ञातुमिच्छामि सांप्रतम् ॥३२॥

पार्वत्युवाच

आगतोऽसि कुतो विप्र मम भाग्यादुपस्थितः। अद्य मे सफलं जन्म ब्राह्मणो मद्गृहेऽतिथिः ॥३३॥

ब्राह्मण बोले—हे महादेव! क्या कर रहे हो? मुझ शरणागत की रक्षा करो। मैं सात रात वाला व्रत करके क्षुधा से पीड़ित होकर भोजन करना चाहता हूँ ॥२३॥ हे महादेव, हे तात! हे करुणानिधे! क्या कर रहे हो? वृद्धावस्था से ग्रस्त एवं प्यास से अत्यन्त पीड़ित मुझ वृद्ध की ओर देखो ॥२४॥ हे मातः! उठो! तुम मुझे कल्याणप्रद जल और अन्न प्रदान करो। हे अनन्तरत्नों के उद्भव-स्थान हिमालय की पुत्री! मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ, मेरी रक्षा करो ॥२५॥ हे मातः! हे मातः! हे जगन्मातः! आओ। मैं संसार से बाहर नहीं हूँ। अपनी माता के रहते हुए भी मैं तृष्णा से अति पीड़ित हो रहा हूँ ॥२६॥ हे मुने! इस प्रकार के शोकाकुल शब्द सुनने पर शिव के उठते समय उनका वीर्य शय्या पर ही गिर गया प्रकृति दुर्गा के गर्भ में नहीं ॥२७॥ अनन्तर त्रस्त होकर पार्वती भी सूक्ष्म वस्त्र पहन कर शंकर के साथ दरवाजे पर आयीं ॥२८॥ शिव ने ब्राह्मण को देखा, जो दीन, बुढ़ापे से दुःखी, वृद्ध, हिलती-डुलती देह वाला, तपस्वी, अशान्त, झुके दण्ड धारण करने वाला, सूखा कण्ठ, ओंठ एवं तालू वाला था और उन दोनों की परा भक्ति के साथ प्रणाम व स्तुति कर रहा था ॥२९-३०॥ नीलकंठ (शिव) ने उसकी अमृतोपम वाणी सुनकर बड़े प्रेम से हँसकर उससे कहा ॥३१॥

शंकर बोले—हे विप्रर्षे! हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ! तुम्हारा घर कहां है? और आप का नाम क्या है, मैं शीघ्र जानना चाहता हूँ ॥३२॥

पार्वती बोलीं—हे विप्र! मेरे भाग्य से तुम यहाँ आये हो, कहाँ से आ रहे हो? आज मेरा जन्म सफल

---

१ क. ०रोमि। २ क. ०रोमि। ३ क. रतिद्वा०। ४ क. भक्त्या प्र०।

अतिथिः पूजितो येन त्रिजगत्तेन पूजितम्। तत्रैवाधिष्ठिता देवा ब्राह्मणा गुरवो द्विज ॥३४॥
तीर्थान्यतिथिपादेषु शश्वत्तिष्ठन्ति निश्चितम्। तत्पादधौततोयेन मिश्रितानि लभेद्गृही ॥३५॥
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। अतिथिः पूजितो येन स्वात्मशक्त्या यथोचितम् ॥३६॥
महादानानि सर्वाणि कृतानि तेन भूतले। अतिथिः पूजितो येन भारते भक्तिपूर्वकम् ॥३७॥
नानाप्रकारपुण्यानि वेदोक्तानि च यानि वै। तानि वैऽतिथिसेवायाः कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥३८॥
अपूजितोऽतिथिर्यस्य भवनाद्विनिवर्तते। पितृदेवाग्नयः पश्चाद्गुरवो यान्त्यपूजिताः ॥३९॥
यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च। तानि सर्वाणि[1] लभते नाभ्यर्च्यातिथिमीप्सितम् ॥४०॥

ब्राह्मण उवाच

जानासि वेदान्वेदज्ञे वेदोक्तं कुरु पूजनम्। क्षुत्तृड्भ्यां पीडितो मातर्वचनं च श्रुतौ श्रुतम् ॥४१॥
व्याधियुक्तो निराहारो यदा वाऽनशनव्रती। मनोरथेनोपहारं भोक्तुमिच्छति मानवः ॥४२॥

पार्वत्युवाच

भोक्तुमिच्छसि किं विप्र त्रैलोक्ये यत्सुदुर्लभम्। दास्यामि भोक्तुं त्वामद्य मज्जन्म सफलं कुरु ॥४३॥

हो गया। मेरे घर ब्राह्मण, अतिथि रूप में पधारे हैं ॥३३॥ हे द्विज! क्योंकि जिसने अतिथि की पूजा की, उसने तीनों लोकों की पूजा की। देव, ब्राह्मण और गुरु लोग वहीं निवास करते हैं ॥३४॥ अतिथि के चरणों में तीर्थगण निश्चित निवास करते हैं। गृहस्थ उनके चरण-प्रक्षालित जल मिश्रित तीर्थों को प्राप्त करता है ॥३५॥ अतः जिसने अपनी शक्ति के अनुसार अतिथि की यथोचित अर्चना की है वह समस्त तीर्थों में स्नान और समस्त यज्ञों में दीक्षित हो चुका ॥३६॥ वह पृथिवी पर सभी महादान कर चुका जिसने भारत में भक्तिपूर्वक अतिथि की पूजा की ॥३७॥ वेद में कहे हुए अनेक भाँति के जितने पुण्य हैं, वे और अन्य भी अतिथि-सेवा के सोलहवें भाग के समान भी नहीं हैं ॥३८॥ इसलिए अतिथि जिसके घर से बिना पूजित हुए चला जाता है, उसके पितर, देव, अग्नि और पश्चात् गुरु भी अपूजित ही रहकर चले जाते हैं ॥३९॥ अभीष्ट अतिथि का पूजन न करने पर ब्रह्महत्या आदि सभी पापों का भागी होना पड़ता है ॥४०॥

ब्राह्मण बोला—हे वेदज्ञे! तुम वेदों को जानती हो, अतः वेदानुसार पूजन करो। हे मातः! मैं क्षुधा और तृषा (प्यास) से अतिपीड़ित हो रहा हूँ। मैंने वेदों में यह सुना है कि—रोगी, भूखा और अनशन का व्रती मनुष्य मनचाहा भोजन करना चाहता है ॥४१-४२॥

पार्वती बोलीं—हे विप्र! तुम क्या खाना चाहते हो? तीनों लोकों में जो अति दुर्लभ हो, वही भोजन तुम्हें कराऊँगी, मेरा जन्म सुफल करो ॥४३॥

---

१ क. ०णि नश्यन्ते नाभ्यर्च्यातिथिपूजनात्।

ब्राह्मण उवाच

व्रते सुव्रतया सर्वमुपहारं समाहृतम्। नानाविधं मिष्टमिष्टं भोक्तुं श्रुत्वा समागतः ॥४४॥
सुव्रते तव पुत्रोऽहमग्रे मां पूजयिष्यसि। दत्त्वा मिष्टानि वस्तूनि त्रैलोक्ये दुर्लभानि च ॥४५॥
ताताः पञ्चविधाः प्रोक्ता मातरो विविधाः स्मृताः। पुत्रः पञ्चविधः साध्वि कथितो वेदवादिभिः ॥४६॥
विद्यादाताऽन्नदाता च भयत्राता च जन्मदः। कन्यादाता च वेदोक्ता नराणां पितरः स्मृताः ॥४७॥
गुरुपत्नी गर्भधात्री स्तनदात्री पितुःस्वसा। स्वसा मातुः सपत्नी च पुत्रभार्याऽन्नदायिका ॥४८॥
भृत्यः शिष्यश्च पोष्यश्च वीर्यजः शरणागतः। धर्मपुत्राश्च चत्वारो वीर्यजो धनभागिति ॥४९॥
क्षुत्तृड्भ्यां पीडितो मातर्वृद्धोऽहं शरणागतः। सांप्रतं तव वन्ध्याया अनाथः पुत्र एव च ॥५०॥
पिष्टकं परमान्नं च सुपक्वानि फलानि च। नानाविधानि पिष्टानि कालदेशोद्भवानि च ॥५१॥
पक्वान्नं स्वस्तिकं क्षीरमिक्षुमिक्षुविकारजम्। घृतं दधि च शाल्यन्नं घृतपक्वं च व्यञ्जनम् ॥५२॥
लड्डुकानि तिलानां च मिष्टान्नैः सगुडानि च। ममाज्ञातानि वस्तूनि सुधया तुल्यकानि च ॥५३॥
ताम्बूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम्। जलं सुनिर्मलं स्वादु द्रव्याण्येतानि वासितम् ॥५४॥
द्रव्याणि यानि भुक्त्वा मे चारु लम्बोदरं भवेत्। अनन्तरत्नोद्भवजे तानि मह्यं प्रदास्यसि ॥५५॥
स्वामी ते त्रिजगत्कर्ता प्रदाता सर्वसंपदाम्। महालक्ष्मीस्वरूपा त्वं सर्वैश्वर्यप्रदायिनी ॥५६॥

ब्राह्मण बोला—हे सुव्रते ! मैंने सुना है कि—इस व्रत में उत्तम व्रत वाली आपने सभी प्रकार का भोजन एकत्रित किया है, अतः अनेक भाँति के मिष्टान्न भोजन करने आया हूँ ॥४४॥ हे सुव्रते ! मैं तुम्हारा पुत्र हूँ, तीनों लोकों में अतिदुर्लभ मिष्ठान्न देकर सर्वप्रथम मेरा पूजन करो ॥४५॥ हे साध्वि ! पिता पाँच प्रकार के बताये गये हैं, मातायें अनेक होती हैं और पुत्र पाँच प्रकार के होते हैं, वेदवादियों ने ऐसा कहा है ॥४६॥ विद्या देने वाला, अन्न-दाता, भय-रक्षक, जन्मदाता, और कन्यादाता, वेदानुसार मनुष्यों के ये पाँच प्रकार के पिता होते हैं ॥४७॥ गुरुपत्नी, गर्भ में धारण करने वाली, स्तन पिलाने वाली, पिता की भगिनी, माता की भगिनी सपत्नी (सौतेली मां) पुत्र की स्त्री, और भोजन देने वाली मनुष्यों की मातायें होती हैं ॥४८॥ सेवक, शिष्य, पोष्य अपने वीर्य से उत्पन्न और शरणागत ये पाँच पुत्र कहलाते हैं, जिनमें चार धर्मपुत्र कहलाते हैं और अपने वीर्य से उत्पन्न होने वाला पुत्र धन का भागी होता है ॥४९॥ हे मातः ! मैं क्षुधा-तृषा से पीड़ित, वृद्ध और तुम्हारा शरणागत हूँ, इस समय तुम वन्ध्या का अनाथ पुत्र हूँ ॥५०॥ पूड़ी, खीर, पके फल, आटे के बने हुए नाना प्रकार के पदार्थ, कालदेशानुसार उत्पन्न हुई वस्तुएँ, पक्वान्न, स्वस्तिक, दूध, ऊख के रस और उससे बने पदार्थ, घृत, दही, साठी चावल का भात, घृतपक्व व्यञ्जन, तिलों के लड्डू, गुड़ों के मिष्टान्न, और जिन्हें मैं नहीं जानता, वे अमृतोपम वस्तुएँ भी तथा कर्पूरादि से सुवासित उत्तम रम्य ताम्बूल, निर्मल एवं सुस्वादु जल तथा हे शैलेजे !, मुझे ये सभी वस्तुएँ और अन्य वस्तुएँ भी प्रदान करो, जिन्हें खाकर मैं सुन्दर लम्बोदर हो जाऊँ ॥५१–५५॥ तुम्हारा स्वामी तीनों लोकों का कर्ता और समस्त सम्पत्ति का प्रदाता है और तुम समस्त ऐश्वर्य प्रदान करने वाली महालक्ष्मी हो ॥५६॥ रमणीय रत्नसिंहासन, अमूल्य रत्नों के भूषण, अतिदुर्लभ अग्नि-

रत्नसिंहासनं रम्यममूल्यं रत्नभूषणम्। वह्निशुद्धांशुकं चारु प्रदास्यसि सुदुर्लभम् ॥५७॥
सुदुर्लभं हरेर्मन्त्रं हरौ भक्तिं दृढां सति। हरिप्रिया हरेः शक्तिस्त्वमेव सर्वदा स्थिता ॥५८॥
ज्ञानं मृत्युंजयं नाम दातृशक्तिं सुखप्रदाम्। सर्वसिद्धिं च किं मातरदेयं स्वसुताय च ॥५९॥
मनः सुनिर्मलं कृत्वा धर्मे तपसि संततम्। श्रेष्ठे सर्वं करिष्यामि न कामे जन्महेतुके ॥६०॥
स्वकामात्कुरुते कर्म कर्मणो भोग एव च। भोगौ शुभाशुभौ ज्ञेयौ तौ हेतू सुखदुःखयोः ॥६१॥
दुःखं न कस्माद्भवति सुखं वा जगदम्बिके। सर्वं स्वकर्मणो भोगस्तेन तद्विरतो बुधः ॥६२॥
कर्म निर्मूलयन्त्येव सन्तो हि सततं मुदा। हरिभावनबुद्ध्या तत्तपसा भक्तसङ्गतः ॥६३॥
इन्द्रियद्रव्यसंयोगसुखं विध्वंसनावधि। हरिसंलापरूपं च सुखं तत्सार्वकालिकम् ॥६४॥
हरिस्मरणशीलानां नाऽऽयुर्याति सतां सति। न तेषामीश्वरः कालो न च मृत्युंजयो ध्रुवम् ॥६५॥
चिरं जीवन्ति ते भक्ता भारते चिरजीविनः। सर्वसिद्धिं च विज्ञाय स्वच्छन्दं सर्वगामिनः ॥६६॥
जातिस्मरा हरेर्भक्ता जानते कोटिजन्मनः। कथयन्ति कथां जन्म लभन्ते स्वेच्छया मुदा ॥६७॥
परं पुनन्ति ते पूतास्तीर्थानि स्वीयलीलया। पुण्यक्षेत्रेऽत्र सेवायै परार्थं च भ्रमन्ति ते ॥६८॥
वैष्णवानां पदस्पर्शात्सद्यः पूता वसुंधरा। कालं गोदोहमात्रं तु तीर्थे यत्र वसन्ति ते ॥६९॥
गुरोरास्याद्विष्णुमन्त्रः श्रुतौ यस्य प्रविशयति। तं वैष्णवं तीर्थपूतं प्रवदन्ति पुराविदः ॥७०॥

विशुद्ध वस्त्र, अति दुर्लभ भगवान् का मंत्र और हरि की दृढ़भक्ति देने की कृपा करो, क्योंकि तुम भगवान् की प्रिया और उनकी शक्ति होकर सदा स्थित रहती हो ॥५७-५८॥ मृत्युञ्जयज्ञान, सुख देने वाली दातृशक्ति तथा सब सिद्धियाँ दो और, हे माता !, अपने पुत्र के लिए क्या अदेय है ? हे श्रेष्ठे ! धर्म एवं तप में अपने मन को अतिस्वच्छ करके मैं सब कुछ करूँगा, परन्तु जन्म देनेवाली कामनाओं के वश में नहीं होऊँगा ॥५९-६०॥ अपनी कामना के अनुसार कर्म किया जाता है और कर्मफल भोग किया जाता है और भोग शुभ अशुभ (भला-बुरा) दो प्रकार के होते हैं, जो सुख और दुःख के हेतु हैं ॥६१॥ हे जगदम्बिके ! न किसी से दुःख होता है और न किसी से सुख, अपने कर्मों का सब भोग है। इसीलिए पण्डित उससे (कामना से) विरत (उदासीन) रहते हैं ॥६२॥ भगवान् में प्रेम करने वाली बुद्धि, तप और भक्तों के संसर्ग से सन्त महात्मा निरन्तर प्रसन्नचित्त होकर कर्म का निर्मूलन ही करते रहते हैं ॥६३॥ क्योंकि इन्द्रियों और उनके विषयों के संयोग से उत्पन्न सुख नश्वर होता है और भगवान् के कीर्तन रूप सुख सभी कालों में विद्यमान रहता है ॥६४॥ हे सती ! भगवान् का भजन करने वाले सज्जनों की आयु नष्ट नहीं होती है। काल उन पर अधिकार नहीं कर सकता है और न मृत्युञ्जय ही कर सकते हैं ॥६५॥ भारत में वे भक्तलोग चिरजीवी होते हैं और समस्त सिद्धि प्राप्त कर वे स्वतंत्रतापूर्वक सब स्थानों में आते-जाते हैं ॥६६॥ भगवान् के भक्तों को पिछले जन्मों का स्मरण बना रहता है, इसीलिए वे करोड़ों जन्मों की बातें जानते हैं, उनकी कथा कहते रहते हैं और प्रसन्नतापूर्वक स्वेच्छया जन्म ग्रहण करते हैं ॥६७॥ वे अति पुनीत होते हैं और अपनी लीला से तीर्थों को पवित्र करते हैं। इस पुण्य क्षेत्र में वे दूसरे की सेवा के लिए भ्रमण किया करते हैं ॥६८॥ जिस तीर्थ में वैष्णवगण गोदोहन काल तक ठहर जाते हैं उनके चरण-स्पर्श होने से यह पृथ्वी तुरन्त पवित्र हो जाती है ॥६९॥ क्योंकि गुरु के मुख

पुरुषाणां शतं पूर्वमुद्धरन्ति शतं परम्। लीलया भारते भक्त्या सोदरान्मातरं तथा।।७१।।
मातामहानां पुरुषान्दश पूर्वान्दशापरान्। मातुः प्रसूमुद्धरन्ति दारुणाद्यमताडनात्।।७२।।
भक्तदर्शनमाश्लेषं मानवाः प्राप्नुवन्ति ये। ते स्नाताः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षिताः।।७३।।
न लिप्ताः पातकैर्भक्ताः संततं हरिमानसाः। यथाऽग्नयः सर्वभक्ष्या यथा द्रव्येषु वायवः।।७४।।
त्रिकोटिजन्मनामन्ते प्राप्नोति जन्म मानवम्। प्राप्नोति भक्तसङ्गं स मानुषे कोटिजन्मतः।।७५।।
भक्तसङ्गाद्भवेद्भक्तेरङ्कुरो जीविनः सति। अभक्तदर्शनादेव स च प्राप्नोति शुष्कताम्।।७६।।
पुनः प्रफुल्लतां याति वैष्णवालापमात्रतः। अङ्कुरश्चाविनाशी च वर्धते प्रतिजन्मनि।।७७।।
तत्तरोर्वर्धमानस्य हरिदास्यं फलं सति। परिणामे भक्तिपाके पार्षदश्च भवेद्धरेः।।७८।।
महति प्रलये नाशो न भवेत्तस्य निश्चितम्। सर्वसृष्टेश्च संहारे ब्रह्मलोकस्य वेधसः।।७९।।
तस्मान्नारायणे भक्तिं देहि मामम्बिके सदा। न भवेद्विष्णुभक्तिश्च विष्णुमाये त्वया विना।।८०।।
तद्व्रतं लोकशिक्षार्थं तत्तपस्तव पूजनम्। सर्वेषां फलदात्री त्वं नित्यरूपा सनातनी।।८१।।
गणेशरूपः श्रीकृष्णः कल्पे कल्पे तवाऽऽत्मजः। त्वत्क्रोडमागतः क्षिप्रमित्युक्त्वाऽन्तरधीयत।।८२।।

से भगवान् विष्णु का मन्त्र जिसके कर्ण-विवर में प्रविष्ट होता है, उसे पुरावेत्ताओं ने तीर्थ के समान पवित्र वैष्णव कहा है।।७०।। भारत में भक्त लोग अपने पूर्वजों की सौ पीढ़ियों और भावी सौ पीढ़ियों का उद्धार अनायास करते हैं, उसी भाँति सोदर भ्राता, माता तथा मातामह (नाना) कुल की पूर्व और पर की दश-दश पीढ़ियों समेत नानी का भीषण यमताड़न से उद्धार करते हैं।।७१-७२।। जो मानव भक्त का दर्शन और आलिंगन करते हैं वे मानो समस्त तीर्थों की यात्रा और सभी यज्ञों में दीक्षित हो चुके।।७३।। हरि का निरन्तर ध्यान करने वाले भक्त कभी पातकों से लिप्त नहीं होते हैं जैसे सर्वभक्षी अग्नि और द्रव्यों (पृथिवी, जल, तेज आदि) में वायु किसी से लिप्त नहीं होते।।७४।। तीन करोड़ जन्मों के पश्चात् मानव-जन्म प्राप्त होता है और करोड़ों जन्मों में मानव को भक्तों का सत्संग मिलता है।।७५।। हे सती! भक्तों के सत्संग से भक्ति का अंकुर उत्पन्न होता है, जो अभक्तों के दर्शन से सूख जाता है।।७६।। पर पुनः वह वैष्णवों के साथ वार्तालाप होने पर प्रफुल्लित हो जाता है क्योंकि वह अंकुर अनश्वर होता है और प्रत्येक जन्म में वृद्धि प्राप्त करता है।।७७।। हे सती! उस वृक्ष के बड़े होने पर उसमें भगवान् का दास्य रूप फल लगता है और परिणाम में भक्ति के पकने (दृढ़ होने) पर वह भगवान् का पार्षद हो जाता है।।७८।। फिर महान् प्रलय में भी जबकि ब्रह्मा समेत ब्रह्मलोक आदि समस्त सृष्टि का संहार हो जाता है, उसका नाश नहीं होता है, यह सुनिश्चित है।।७९।। हे अम्बिके! इसलिए हमें भगवान् की भक्ति सदा देने की कृपा करो। हे विष्णुमाये! बिना तुम्हारी कृपा के भगवान् की भक्ति नहीं होती है।।८०।। तुम्हारा अपना व्रत, अपना तप और पूजन करना लोक शिक्षार्थ होता है, क्योंकि तुम सभी लोगों को फल प्रदान करने वाली, नित्यरूपा और सनातनी हो।।८१।।प्रत्येक कल्प में भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारे गणेश रूप पुत्र होते हैं और वे शीघ्र ही (पुत्र बनकर) तुम्हारी गोद में आ रहे हैं, यह कह कर ब्राह्मण अन्तर्हित हो गया।।८२।।

कृत्वाऽन्तर्धानमीशश्च बालरूपं विधाय सः। जगाम पार्वतीतल्पं मन्दिराभ्यन्तरस्थितम्॥८३॥
तल्पस्थे शिववीर्ये च मिश्रितः स बभूव ह। ददर्श गेहशिखरं प्रसूते बालके यथा॥८४॥
शुद्धचम्पकवर्णाभः कोटिचन्द्रसमप्रभः। सुखदृश्यः सर्वजनैश्चक्षूरश्मिविवर्धकः॥८५॥
अतीव सुन्दरतनुः कामदेवविमोहनः। मुखं निरुपमं बिभ्रच्छारदेन्दुविनिन्दकम्॥८६॥
सुन्दरे लोचने बिभ्रच्चारुपद्मविनिन्दके। ओष्ठाधरपुटं बिभ्रत्पक्वबिम्बविनिन्दकम्॥८७॥
कपालं च कपोलं च परमं सुमनोहरम्। नासाग्रं रुचिरं बिभ्रद्वीन्द्रचञ्चुविनिन्दकम्॥८८॥
त्रैलोक्ये वै निरुपमं सर्वाङ्गं बिभ्रदुत्तमम्। शयानः शयने रम्ये प्रेरयन्हस्तपादकम्॥८९॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणेशख० नारदना० गणेशोत्पत्तिवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥८॥

नवमोऽध्यायः

नारायण उवाच

हरौ तिरोहिते शर्वाणी दुर्गा शंकरस्तदा। ब्राह्मणान्वेषणं कृत्वा बभ्राम परितो मुने॥१॥

पार्वत्युवाच

अये विप्रेन्द्रातिवृद्ध क्व गतोऽसि क्षुधातुरः। हे तात दर्शनं देहि प्राणान्वै रक्ष मे विभो॥२॥

इतना कहकर वे अन्तर्हित हो गये॥८२॥ भगवान् ने अन्तर्धान होकर अपना बाल रूप बनाया और मन्दिर के भीतर स्थित पार्वती की शय्या पर शिव के वीर्य में मिश्रित हो गये और प्रसूत बालक की भाँति ऊपर मन्दिर-कलश की ओर देखने लगे॥८३-८४॥ वे शुद्ध चम्पा के समान वर्ण वाले, करोड़ों चन्द्रमा की भाँति कान्ति वाले, सभी लोगों के देखने में सुखप्रद और नेत्र-ज्योति के वर्द्धक, अत्यन्त सुन्दर शरीर वाले, काम को भी मोहित करने वाले तथा शारदीय चन्द्रमा से भी श्रेष्ठ मुख वाले थे। उनके, रम्य कमल को निन्दित करने वाले युगलनयन, पके बिम्बाफल को तिरस्कृत करने वाला अधरबिम्ब, परम मनोहर कपोल और कपाल तथा तोते की चोंच को तिरस्कृत करने वाली नाक थी। इस भाँति निरुपम समस्त अंगों को धारण किये वे सुन्दर शय्या पर पड़े-पड़े अपने हाथों और पैरों को चला रहे थे॥८६-८९॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण-संवाद में गणेशोत्पत्ति-वर्णन नामक आठवाँ अध्याय समाप्त॥८॥

अध्याय ९

बाल गणेश का दर्शन

नारायण बोले—हे मुने! भगवान् के अन्तर्हित होने पर पार्वती दुर्गा और शंकर ने ब्राह्मण की खोज में चारों ओर भ्रमण करना आरम्भ किया॥१॥

पार्वती बोलीं—हे अतिवृद्ध विप्रेन्द्र! तुम बहुत भूखे थे, कहाँ चले गये हो? हे तात! हे विभो! मुझे दर्शन देकर मेरे प्राणों की रक्षा करो॥२॥ हे शिव! शीघ्र उठो और ब्राह्मण की खोज करो। क्षण मात्र ही

शिव शीघ्र समुत्तिष्ठ ब्राह्मणान्वेषणं कुरु। क्षणमुन्मनसोरेष गतः प्रत्यक्षमावयोः॥३॥
अगृहीत्वा गृहात्पूजां गृहिणोऽतिथिरीश्वरः। यदि याति क्षुधार्तश्च तस्य किं जीवनं वृथा॥४॥
पितरस्तन्न गृह्णन्ति पिण्डदानं च तर्पणम्। तस्याऽऽहृतिं न गृह्णाति वह्निः पुष्पं जलं सुराः॥५॥
हव्यं पुष्पं जलं द्रव्यमशुचेश्च सुरासमम्। अमेध्यसदृशः पिण्डः स्पर्शनं पुण्यनाशनम्॥६॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वाग्बभूवाशरीरिणी। कैवल्ययुक्ता सा दुर्गा तां शुश्राव शुचाऽऽतुरा॥७॥
शान्ता भव जगन्मातः स्वसुतं पश्य मन्दिरे। कृष्णं गोलोकनाथं तं परिपूर्णतमं परम्॥८॥
सुपुण्यकव्रततरोः फलरूपं सनातनम्। यत्तेजो योगिनः शश्वद्ध्यायन्ति संततं मुदा॥९॥
ध्यायन्ति वैष्णवा देवा ब्रह्मविष्णुशिवादयः। यस्य पूज्यस्य सर्वाग्रे कल्पे कल्पे च पूजनम्॥१०॥
यस्य स्मरणमात्रेण सर्वविघ्नो विनश्यति। पुण्यराशिस्वरूपं च स्वसुतं पश्य मन्दिरे॥११॥
कल्पे कल्पे ध्यायसि यं ज्योतीरूपं सनातनम्। पश्य त्वं मुक्तिदं पुत्रं भक्तानुग्रहविग्रहम्॥१२॥
तव वाञ्छापूर्णबीजं तपःकल्पतरोः फलम्। सुन्दरं स्वसुतं पश्य कोटिकन्दर्पनिन्दकम्॥१३॥
नायं विप्रः क्षुधार्तश्च विप्ररूपी जनार्दनः। किंवा विलापं कुरुषे क्व वा वृद्धः क्व चातिथिः॥
सरस्वती त्वेवमुक्त्वा विरराम च नारद ॥१४॥
त्रस्ता श्रुत्वाऽऽकाशवाणीं जगाम स्वालयं सती। ददर्श बालं पर्यङ्के शयानं सस्मितं मुदा॥१५॥

उन्मन रहते हम दोनों के वे प्रत्यक्ष हुए थे ॥३॥ हे ईश्वर! किसी गृहस्थ के घर से बिना पूजा (सम्मान) ग्रहण किये अतिथि यदि भूखा और प्यासा चला जाता है, तो उस (गृहस्थ) का व्यर्थ जीवन किस काम का होता है ॥४॥ क्योंकि पितर लोग उसके हाथ का पिण्डदान और तर्पण, अग्नि उसकी दी हुई आहुति और देवगण उसके हाथ का पुष्प एवं जल नहीं ग्रहण करते हैं ॥५॥ उसका हव्य, पुष्प, जल और द्रव्य मद्य की भाँति अशुद्ध हो जाता है, पिण्ड अपवित्र की भाँति रहता है, और उसका स्पर्श करने से पुण्य-नाश होता है ॥६॥ इसी बीच आकाश वाणी हुई, जिसे कैवल्य (पद) युक्ता दुर्गा ने, जो शोकाकुल हो रही थीं, सुना ॥७॥ हे जगन्मातः! शान्त हो जाओ, भवन में जाकर अपने पुत्र का दर्शन करो, जो गोलोकनाथ, परिपूर्णतम परमोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण का स्वरूप है ॥८॥ वह सुपुण्यक नामक व्रत वृक्ष का सनातन फल रूप है, जिस के तेज का योगी लोग प्रसन्न चित्त से निरन्तर ध्यान करते रहते हैं ॥९॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि वैष्णव देवगण प्रत्येक कल्प में सभी देवों के पहले जिसकी पूजा करते हैं ॥१०॥ जिसके स्मरण मात्र से समस्त विघ्नों का नाश हो जाता है, पुण्य राशि स्वरूप उस अपने पुत्र को मन्दिर में जाकर देखो ॥११॥ प्रत्येक कल्प में तुम जिस सनातन ज्योतिरूप का ध्यान करती हो, उसी मुक्ति देने वाले पुत्र को देखो, जो भक्तों पर अनुग्रहार्थ शरीर धारण किये हुए हैं ॥१२॥ वह तुम्हारी अभिलाषा-पूर्ति का बीज एवं तपरूपी कल्पवृक्ष का फल है। अपने उस सुन्दर पुत्र को देखो, जो करोड़ों काम को विनिन्दित कर रहा है ॥१३॥ वह भूखा-प्यासा ब्राह्मण नहीं था, ब्राह्मण वेष में भगवान् जनार्दन थे। अतः क्यों विलाप कर रही हो ? कहाँ वह वृद्ध रहा और कहाँ वह अतिथि है। हे नारद! इतना कहकर वह वाणी सरस्वती चुप हो गयीं ॥१४॥ भयभीत दुर्गा ने आकाशवाणी सुनकर अपने भवन में जाकर पलंग पर लेटे और मुसकराते हुए बालक को देखा ॥१५॥ वह गृह-कलश की ओर ताक रहा था,

पश्यन्तं गेहशिखरं शतचन्द्रसमप्रभम् । स्वप्रभापटलेनैव द्योतयन्तं महीतलम् ॥१६॥
कुर्वन्तं भ्रमणं तल्पे पश्यन्तं स्वेच्छया मुदा। उमेति शब्दं कुर्वन्तं रुदन्तं तं स्तनार्थिनम् ॥१७॥
दृष्ट्वा तदद्भुतं रूपं त्रस्ता शंकरसंनिधिम्। गत्वा सोवाच गिरिशं सर्वमङ्गलमङ्गला ॥१८॥

पार्वत्युवाच

गृहमागच्छ सर्वेश तपसां फलदायकम्। कल्पे कल्पे ध्यायसि यं तं पश्याऽऽगत्य मन्दिरे ॥१९॥
शीघ्रं पुत्रमुखं पश्य पुण्यबीजं महोत्सवम् । पुंनामनरकत्राणं कारणं भवतारणम् ॥२०॥
स्नानं च सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षणम् । पुत्रसंदर्शनस्यास्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥२१॥
सर्वदानेन यत्पुण्यं क्ष्माप्रदक्षिणतश्च यत्। पुत्रदर्शनपुण्यस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥२२॥
सर्वैस्तपोभिर्यत्पुण्यं यदेवानशनैर्व्रतैः। सत्पुत्रोद्भवपुण्यस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥२३॥
यद्विप्रभोजनैः पुण्यं यदेव सुरसेवनैः। सत्पुत्रप्राप्तिपुण्यस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥२४॥
पार्वत्या वचनं श्रुत्वा शिवः संहृष्टमानसः । अजगाम स्वभवनं क्षिप्रं वै कान्तया सह ॥२५॥
ददर्श तल्पे स्वसुतं तप्तकाञ्चनसंनिभम् । हृदयस्थं च यद्रूपं तदेवातिमनोहरम् ॥२६॥
दुर्गा तल्पात्समादाय कृत्वा वक्षसि तं सुतम्। चुचुम्बाऽऽनन्दजलधौ निमग्ना सेत्युवाचतम् ॥२७॥

सैकड़ों चन्द्रमा के समान उसकी कान्ति थी और अपने कान्ति-समूह से पृथ्वीतल को प्रकाशित कर रहा था ॥१६॥ उस शय्या पर इधर-उधर लोट-पोट कर प्रसन्नचित्त से स्वेच्छया देख रहा था तथा दुग्ध-पान के लिए रोदन करते हुए उमा शब्द कह रहा था ॥१७॥ समस्त मंगलों का मंगल करने वाली गौरी बालक का ऐसा अद्भुत रूप देखकर तुरन्त शंकर के पास गयीं और कहने लगीं ॥१८॥

पार्वती बोलीं—हे सर्वेश! घर चलो और प्रत्येक कल्प में जिस तप-फल-दाता का नित्य ध्यान करते हो उसको मन्दिर में चल कर देखो ॥१९॥ शीघ्र पुत्र का मुख देखो, जो पुण्य का कारण, महान् उत्सव रूप, पुंनाम नरक से बचाने का एकमात्र कारण और संसार से तारने वाला है ॥२०॥ समस्त तीर्थों का स्नान, समस्त यज्ञों की दीक्षा ग्रहण करना इस पुत्रदर्शन की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं है ॥२१॥ समस्त दान तथा समस्त पृथ्वी की प्रदक्षिणा करने से जिस पुण्य की प्राप्ति होती है, वह पुत्र-दर्शन-पुण्य की सोलहवीं कला के भी समान नहीं है ॥२२॥ समस्त तप और व्रतोपवास द्वारा जितने पुण्य की प्राप्ति होती है, वह उत्तम पुत्र के जन्म-पुण्य की सोलहवीं कला के भी समान नहीं होती है ॥२३॥ ब्राह्मण-भोजन और देवों की सेवा द्वारा जो पुण्य प्राप्त होता है वह उत्तम पुत्र की प्राप्तिरूप पुण्य की सोलहवीं कला के समान नहीं होता है ॥२४॥ पार्वती की बातें सुनकर शंकर का चित्त अति प्रसन्न हो गया, अनन्तर अपनी कान्ता के साथ शीघ्र वे अपने भवन में आये और शय्या पर तपाये सुवर्ण की भाँति गौरवर्ण अपने पुत्र को देखा, जो हृदयस्थित रूप से भी अति मनोहर था। ॥२५-२६॥ दुर्गा ने शय्या से पुत्र को उठाकर अपनी गोद में ले लिया और आनन्द-सागर में निमग्न होकर उसका चुम्बन किया, अनन्तर उससे कहा—

संप्राप्याऽमूल्यरत्नं त्वां पूर्णमेव सनातनम्। यथा मनो दरिद्रस्य सहसा प्राप्य सद्धनम्॥२८॥
कान्ते सुचिरमायाते प्रोषिते योषितो यथा। मानसं परिपूर्णं च बभूव च तथा मम॥२९॥
सुचिरं गतमायान्तमेकपुत्रा यथा सुतम्। दृष्ट्वा तुष्टा यथा वत्स तथाऽहमपि सांप्रतम्॥३०॥
सद्रत्नं सुचिरं भ्रष्टं प्राप्य हृष्टो यथा जनः। अनावृष्टौ सुवृष्टिं च संप्राप्याहं तथा सुतम्॥३१॥
यथा सुचिरमन्धानां स्थितानां च निराश्रये। चक्षुः सुनिर्मलं प्राप्य मनः पूर्णं तथैव मे॥३२॥
दुस्तरे सागरे घोरे पतितस्य च संकटे। अनौकस्य प्राप्य नौकां मनः पूर्णं तथा मम॥३३॥
तृष्णया शुष्ककण्ठानां सुचिराच्च सुशीतलम्। सुवासितं जलं प्राप्य मनः पूर्णं तथा मम॥३४॥
दावाग्निपतितानां च स्थितानां च निराश्रये। निरग्निमाश्रयं प्राप्य मनः पूर्णं तथा मम॥३५॥
चिरं बुभुक्षितानां च व्रतोपोषणकारिणाम्। सदन्नं पुरतो दृष्ट्वा मनः० ॥३६॥
इत्युक्त्वा पार्वती तत्र क्रोडे कृत्वा स्वबालकम्। प्रीत्या स्तनं ददौ तस्मै परमानन्दमानसा॥३७॥
क्रोडे चकार भगवान्बालकं हृष्टमानसः। चुचुम्ब गण्डे वेदोक्तं युयुजे चाऽऽशिषं मुदा॥३८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० बालगणेशदर्शनं
नाम नवमोऽध्यायः॥९॥

जिस प्रकार दरिद्र का मन सहसा उत्तम धन प्राप्त करके प्रफुल्लित होता है, उसी भाँति मैंने अमूल्य रत्न के रूप में तुम्हें प्राप्त किया है, तुम्हीं पूर्ण सनातन हो॥२७-२८॥ जिस प्रकार चिरकाल तक परदेश में रहकर आये हुए पति को पाकर स्त्री का मन आनन्द से भर जाता है, उसी प्रकार मेरा मन भी आनन्द से परिपूर्ण हो रहा है॥२९॥ जिस प्रकार एक पुत्र वाली स्त्री चिरकाल से गये हुए अपने पुत्र के आने पर उसे देखकर सन्तुष्ट हो जाती है उसी प्रकार इस समय मैं भी सन्तुष्ट हो रही हूँ॥३०॥ चिरकाल का खोया हुआ उत्तमरत्न पाकर और अनावृष्टि के बाद सुवृष्टि होने पर मनुष्य जैसे हर्षित होता है, वैसे ही पुत्र पाकर मैं हर्षित हो रही हूँ॥३१॥ चिरकाल के आश्रयहीन अन्धे को निर्मल नेत्र प्राप्त होने की भाँति मेरा मन पूर्ण प्रसन्न हो गया है॥३२॥ घोर दुस्तर सागर में गिरे हुए नौकाहीन पुरुष को संकटकाल में तुरन्त नौका मिल जाने की भाँति मेरा मन पूर्ण प्रसन्न हो गया है॥३३॥ प्यास से चिरकाल से सूखे हुए कण्ठ वाले मनुष्य को अतिशीतल और सुवासित जल प्राप्त होने पर जिस प्रकार उसका मन पूर्ण प्रसन्न हो जाता है उसी प्रकार मेरा मन प्रसन्न हो रहा है॥३४॥ दावाग्नि में पड़े हुए आश्रयहीन पुरुष को अग्निरहित उत्तम स्थान प्राप्त होने पर जैसे उसका मन पूर्ण आनन्दमग्न हो जाता है वैसे ही मेरा मन आनन्दमग्न हो रहा है॥३५॥ व्रत में उपवास करने वाले पुरुष को, जो चिरकाल से अति क्षुधापीड़ित हो रहा हो, सामने उत्तम भोजन देखकर जिस प्रकार आनन्द होता है उसी भाँति मेरा मन आनन्द से पूर्ण है॥३६॥ इतना कहकर पार्वती ने अपने बच्चे को गोदी में रखकर परमानन्दमग्न चित्त से उसे स्तनपान कराया। अनन्तर शिव ने भी उसे गोद में रखकर अतिप्रसन्नता से उसका कपोल चुम्बन किया और वेदोक्त आशीर्वाद प्रदान किया॥३७-३८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण के संवाद में बाल-गणेश-दर्शन नामक नवाँ अध्याय समाप्त॥९॥

दशमोऽध्यायः

तौ दम्पती बहिर्गत्वा पुत्रमङ्गलहेतवे। विविधानि च रत्नानि द्विजेभ्यो ददतुर्मुदा ॥१॥
बन्दिभ्यो भिक्षुकेभ्यश्च दानानि विविधानि च। नानाविधानि वाद्यानि वादयामास शंकरः ॥२॥
हिमालयश्च रत्नानां ददौ लक्षं द्विजातये। सहस्रं च गजेन्द्राणामश्वानां च त्रिलक्षकम् ॥३॥
दशलक्षं गवां चैव पञ्चलक्षं सुवर्णकम्। मुक्तामाणिक्यरत्नानि मणिश्रेष्ठानि यानि च ॥४॥
अन्यान्यपि च दानानि वस्त्राण्याभरणानि च। सर्वाण्यमूल्यरत्नानि क्षीरोदोत्पत्तिकानि च ॥५॥
ब्राह्मणेभ्यो ददौ विष्णुः कौस्तुभं कौतुकान्वितः। ब्रह्मा विशिष्टदानानि विप्राणां वाञ्छितानि च ॥
सुदुर्लभानि सृष्टौ च ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥६॥
धर्मः सूर्यश्च शक्रश्च देवाश्च मुनयस्तथा। गन्धर्वाः पर्वता देव्यो ददुर्दानं क्रमेण च ॥७॥
तापसानां सहस्राणि रुचकानां शतानि च। शतानि गन्धसाराणां मणीन्द्राणां च नारद ॥८॥
माणिक्यानां सहस्राणि रत्नानां च शतानि च। शतानि कौस्तुभानां च हीरकाणां शतानि च ॥
हरिद्वर्णमणीन्द्राणां सहस्राणि मुदाऽन्विताः ॥९॥
गवां रत्नानि लक्षाणि गजरत्नसहस्रकम्। अमूल्यान्यश्वरत्नानि श्वेतवर्णानि कौतुकात् ॥१०॥
शतलक्षं सुवर्णानां वह्निशुद्धांशुकानि च। ब्राह्मणेभ्यो ददौ ब्रह्मा तत्र क्षीरोदधिर्मुदा ॥११॥
हारं चामूल्यरत्नानां त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्। अतीव निर्मलं सारं सूर्यभानुविनिन्दकम् ॥१२॥
परिष्कृतं च माणिक्यैर्हीरकैश्च विराजितम्। रम्यं कौस्तुभमध्यस्थं ददौ देवी सरस्वती ॥१३॥

अध्याय १०

गणेश-जन्मोत्सव

नारायण बोले—उन दोनों दम्पति ने बाहर दरवाजे पर पुत्र के मंगलार्थ ब्राह्मणों को अनेक भाँति के रत्न प्रदान किये ॥१॥ बन्दीगण और भिक्षुकों को भी अनेक भाँति के दान दिये और शंकर ने अनेक प्रकार के बाजे बजवाये ॥२॥ हिमालय ने एक लाख रत्न ब्राह्मणों को दान दिये तथा एक सहस्र गजेन्द्र, तीन लाख घोड़े, दस लाख गौएँ, पाँच लाख सुवर्ण, मोती, माणिक्य, रत्न, अन्य श्रेष्ठ मणियाँ, सुन्दर वस्त्र, आभूषण, क्षीरसागर से उत्पन्न अमूल्य रत्न तथा अन्य प्रकार के दान प्रदान किये। विष्णु ने कौतुकवश कौस्तुभ का दान ब्राह्मणों को अर्पित किया। ब्रह्मा ने सुप्रसन्न होकर ब्राह्मणों को उनके अभिलषित विशिष्ट दान से सन्तुष्ट किया, जो उनकी सृष्टि में अति दुर्लभ था ॥३-६॥ इसी प्रकार धर्म, सूर्य और इन्द्र आदि देव, मुनिवृन्द, गन्धर्वगण, पर्वत एवं देवियों ने क्रमशः ब्राह्मणों को दान प्रदान किया ॥७॥ एक सहस्र माणिक्य, सौ रत्न, सौ कौस्तुभ मणि, सौ हीरे, एक सहस्र नीलमणि, एक लाख गौएँ, एक लाख रत्न, एक सहस्र उत्तम गज, श्वेत वर्ण के अमूल्य घोड़े, सौ लाख सुवर्ण, अग्निविशुद्ध वस्त्र ब्राह्मणों को ब्रह्मा ने प्रदान किये। क्षीरसागर ने अमूल्य रत्नों का हार, जो तीनों लोकों में दुर्लभ, अतिनिर्मल, ठोस सूर्य-किरण को तिरस्कृत करनेवाला, परिष्कृत, माणिक्य और हीरों से सुशोभित, रम्य एवं मध्य भाग में कौस्तुभ मणि से विभूषित था

त्रैलोक्यसारं हारं च सद्रत्नगणनिर्मितम्। भूषणानि च सर्वाणि सावित्री च ददौ मुदा॥१४॥
लक्षं सुवर्णलोष्टानां धनानि विविधानि च। शतान्यमूल्यरत्नानां कुबेरश्च ददौ मुदा॥१५॥
दानानि दत्त्वा विप्रेभ्यस्ते सर्वे ददृशुः शिशुम्। परमानन्दसंयुक्ताः शिवपुत्रोत्सवे मुने॥१६॥
भारं वोढुमशक्ताश्च ब्राह्मणा बन्दिस्तथा। स्थायंस्थायं च गच्छन्तो धनानि पथि कातराः॥१७॥
कथयन्ति कथाः सर्वे विश्रान्ताः पूर्वदायिनाम्। वृद्धाः शृण्वन्ति मुदिता युवानो भिक्षुका मुने॥१८॥
विष्णुः प्रमुदितस्तत्र वादयामास दुन्दुभिम्। संगीतं गापयामास कारयामास नर्तनम्॥१९॥
वेदांश्च पाठयामास पुराणानि च नारद। मुनीन्द्रानानयामास पूजयामास तान्मुदा॥२०॥
आशिषं दापयामास कारयामास मङ्गलम्। सार्धं देवैश्च देवीभिर्ददौ तस्मै शुभाशिषः॥२१॥

विष्णुरुवाच

शिवेन तुल्यं ज्ञानं ते परमायुश्च बालक। पराक्रमे मया तुल्यः सर्वसिद्धीश्वरो भव॥२२॥

ब्रह्मोवाच

यशसा ते जगत्पूर्णं सर्वपूज्यो भवाचिरम्। सर्वेषां पुरतः पूजा भवत्वतिसुदुर्लभा॥२३॥

धर्म उवाच

मया तुल्यः सुधर्मिष्ठो भवान्भवतु दुर्लभः। सर्वज्ञश्च दयायुक्तो हरिभक्तो हरेः समः॥२४॥

सरस्वती देवी ने ऐसा हार प्रदान किया, जो तीनों लोकों का सारभाग तथा, उत्तम रत्नों से सुरचित था। सावित्री ने प्रेम से समस्त आभूषण अर्पित किये॥८-१४॥ कुबेर ने प्रसन्न होकर एक लाख सुवर्ण की ईंटें, अनेक भाँति के धन और सौ अमूल्य रत्न दान किये॥१५॥ हे मुने! शिव के पुत्रोत्सव में इस प्रकार ब्राह्मणों को दान देने के उपरान्त उन सब ने परमानन्द मग्न होकर बच्चे का दर्शन किया॥१६॥ उस समय ब्राह्मणगण और बन्दी वृन्द दान के धन से बोझिल होने के नाते मार्ग में कातर होकर धीरे-धीरे चल रहे थे॥१७॥ हे मुने! वे लोग विश्राम करते हुए पूर्वदाताओं की कथा भी कर रहे थे, जिसे वृद्ध, युवा सभी भिक्षुक आदि सप्रेम सुन रहे थे॥१८॥ हे नारद! विष्णु ने प्रसन्न होकर नगाड़े बजवाये, संगीत और नाच कराया, वेदों और पुराणों का पाठ कराया, मुनीन्द्रों को बुलाकर प्रसन्नतापूर्वक उनकी अर्चना की और उनके द्वारा बच्चे को मंगल आशीर्वाद दिलवाया। उनके साथ देवों और देवियों ने भी शुभाशीर्वाद प्रदान किया॥१९-२१॥

विष्णु बोले—हे बालक! शिव के समान तुम्हारा ज्ञान और परमायु हो, मेरे समान पराक्रम हो और समस्त सिद्धियों के अधीश्वर हो जाओ॥२२॥

ब्रह्मा बोले—तुम्हारे यश से समस्त जगत् आच्छन्न हो, शीघ्र ही सबके पूज्य बनो और सभी लोगों के पहले तुम्हारी अति दुर्लभ पूजा हो॥२३॥

धर्म बोले—मेरे समान आप दुर्लभ धर्मात्मा हों, सर्वज्ञ, दयालु, हरिभक्त और भगवान् के समान हों॥२४॥

महादेव उवाच

दाता भव मया तुल्यो हरिभक्तश्च बुद्धिमान्। विद्यावान्पुण्यवाञ्छान्तो दान्तश्च प्राणवल्लभ ॥२५॥

लक्ष्मीरुवाच

मम स्थितिश्च गेहे ते देहे भवतु शाश्वती। पतिव्रता मया तुल्या शान्ता कान्ता मनोहरा ॥२६॥

सरस्वत्युवाच

मया तुल्या सुकविता धारणाशक्तिरेव च। स्मृतिर्विवेचनाशक्तिर्भवत्वतितरां सुत ॥२७॥

सावित्र्युवाच

वत्साहं वेदजननी वेदज्ञानी भवाचिरम्। मन्मन्त्रजपशीलश्च प्रवरो वेदवादिनाम् ॥२८॥

हिमालय उवाच

श्रीकृष्णे ते मतिः शश्वद्भक्तिर्भवतु शाश्वती। श्रीकृष्णतुल्यो गुणवान्भव कृष्णपरायणः ॥२९॥

मेनकोवाच

समुद्रतुल्यो गाम्भीर्ये कामतुल्यश्च रूपवान्। श्रीयुक्तः श्रीपतिसमो धर्मे धर्मसमो भव ॥३०॥

वसुंधरोवाच

क्षमाशीलो मया तुल्यः शरण्यः सर्वरत्नवान्। निर्विघ्नो विघ्ननिघ्नश्च भव वत्स शुभाश्रयः ॥३१॥

महादेव बोले—हे प्राणप्रिय ! मेरे समान दाता, हरिभक्त, बुद्धिमान्, विद्यावान्, पुण्यवान्, शान्त और दमनशील हो॥२५॥

लक्ष्मी बोलीं—तुम्हारे देह-गेह में मेरी निरन्तर स्थिति रहेगी, मेरे ही समान पतिव्रता, मनोहर और शान्ता स्त्री तुम्हें मिलेगी॥२६॥

सरस्वती बोलीं—हे सुत ! मेरे समान उत्तम कविता, अत्यन्त धारणा-शक्ति, स्मरण-शक्ति और विवेचन-शक्ति हो॥२७॥

सावित्री बोलीं—हे वत्स ! मैं वेदमाता हूँ, तुम शीघ्र वेदज्ञानी हो, मेरा मंत्र जप करने का स्वभाव और वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ हो॥२८॥

हिमालय बोले—भगवान् श्रीकृष्ण में तुम्हारी मति अतिशय निरन्तर लगी रहे, उनकी शाश्वती भक्ति तुम्हें प्राप्त हो, उनके समान गुणवान् हो और कृष्णपरायण हो॥२९॥

मेनका बोली—समुद्र के तुल्य गम्भीर, काम के समान रूपवान्, विष्णु के समान श्रीयुक्त और धर्म के समान धार्मिक हो॥३०॥

वसुन्धरा बोली—हे वत्स ! मेरे समान क्षमाशील, शरणप्रद, समस्त रत्नयुक्त, विघ्नरहित, विघ्नविनाशक और शुभसदन हो॥३१॥

पार्वत्युवाच

ताततुल्यो महायोगी सिद्धः सिद्धिप्रदः शुभः। मृत्युंजयश्च भगवान्भवत्वतिविशारदः ॥३२॥
ऋषयो मुनयः सिद्धा सर्वे युयुजुराशिषः। ब्राह्मणा बन्दिनश्चैव युयुजुः सर्वमङ्गलम् ॥३३॥
सर्वं ते कथितं वत्स सर्वमङ्गलमङ्गलम्। गणेशजन्मकथनं सर्वविघ्नविनाशनम् ॥३४॥
इमं सुमङ्गलाध्यायं यः शृणोति सुसंयतः। सर्वमङ्गलसंयुक्तः स भवेन्मङ्गलालयः ॥३५॥
अपुत्रो लभते पुत्रमधनो लभते धनम्। कृपणो लभते सत्त्वं शश्वत्संपत्प्रदायि च ॥३६॥
भार्यार्थी लभते भार्यां प्रजार्थी लभते प्रजाम्। आरोग्यं लभते रोगी सौभाग्यं दुर्भगा लभेत् ॥३७॥
भ्रष्टपुत्रं नष्टधनं प्रोषितं च प्रियं लभेत्। शोकाविष्टः सदाऽऽनन्दं लभते नात्र संशयः ॥३८॥
यत्पुण्यं लभते मर्त्यो गणेशाख्यानकश्रुतौ। तत्फलं लभते नूनमध्यायश्रवणान्मुने ॥३९॥
अयं च मङ्गलाध्यायो यस्य गेहे च तिष्ठति। सदा मङ्गलसंयुक्तः स भवेन्नात्र संशयः ॥४०॥
यात्राकाले च पुण्याहे यः शृणोति समाहितः। सर्वाभीष्टं स लभते श्रीगणेशप्रसादतः ॥४१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणेशख० नारदना० गणेशोद्भवमङ्गलं
नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

पार्वती बोलीं–पिता के समान महायोगी, सिद्ध, सिद्धिदायक, शुभ, ऐश्वर्य सम्पन्न मृत्युञ्जय तथा अतिविशारद हों। अनन्तर ऋषियों, मुनियों और सिद्धों ने शुभाशिष प्रदान किया। ब्राह्मणों और बन्दियों ने समस्त मंगल प्रदान किया ॥३२-३३॥ हे वत्स! इस प्रकार मैंने गणेश-जन्म तुम्हें सुना दिया, जो समस्त मंगलों का मंगल और समस्त विघ्नों का विनाशक है॥३४॥ इस मंगलाध्याय का जो संयमपूर्वक श्रवण करता है, वह समस्त मंगलों से युक्त एवं मंगलों का आश्रय होता है॥३५॥ पुत्रहीन को पुत्र, निर्धन को धन तथा कृपण को सत्त्व की प्राप्ति होती है और निरन्तर सम्पत्ति भी। स्त्री चाहने वाले को स्त्री, प्रजार्थी को प्रजा, रोगी को आरोग्य, अभागे को सौभाग्य प्राप्त होता है॥३६-३७॥ उसी प्रकार खोये हुए पुत्र की प्राप्ति, नष्ट धन की प्राप्ति और प्रवासी प्रिय की प्राप्ति होती है। शोकाकुल को सदा आनन्द प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं॥३८॥ हे मुने! गणेश जी के आख्यान के सुनने से मनुष्य को जिस पुण्य की प्राप्ति होती है वह पुण्य इस अध्याय के सुनने से भी निश्चय प्राप्त होता है॥३९॥ और यह मंगलाध्याय जिसके घर में विराजमान रहता है वह सदा मंगलयुक्त होता है, इसमें संशय नहीं॥४०॥ यात्रा के समय और पुण्य दिवस में सावधान होकर जो इसे सुनता है, वह श्रीगणेश की कृपा से सब अभीष्ट प्राप्त करता है॥४१॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में
गणेशोद्भवमंगल नामक दसवाँ अध्याय समाप्त ॥१०॥

अथैकादशोऽध्यायः

नारायण उवाच

हरिस्तमाशिषं कृत्वा रत्नसिंहासने वरे। देवैश्च मुनिभिः सार्धमवसत्तत्र संसदि ॥१॥
दक्षिणे शंकरस्तस्य वामे ब्रह्मा प्रजापतिः। पुरतो जगतां साक्षी धर्मो धर्मवतां वरः ॥२॥
तथा धर्मसमीपे च सूर्यः शक्रः कलानिधिः। देवाश्च मुनयो ब्रह्मन्नूषुः शैलाः सुखासने ॥३॥
ननर्त नर्तकश्रेणी जगुर्गन्धर्वकिंनराः। श्रुतिसारं श्रुतिसुखं तुष्टुवुः श्रुतयो हरिम् ॥४॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र द्रष्टुं शंकरनन्दनम्। आजगाम महायोगी सूर्यपुत्रः शनैश्चरः ॥५॥
अत्यन्तनम्रवदन ईषन्मुद्रितलोचनः। अन्तर्बहिः स्मरन्कृष्णं कृष्णैकगतमानसः ॥६॥
तपःफलाशी[1] तेजस्वी ज्वलदग्निशिखोपमः। अतीव सुन्दरः श्यामः पीताम्बरधरो वरः ॥७॥
प्रणम्य विष्णुं ब्रह्माणं शिवं धर्मं रविं सुरान्। मुनीन्द्रान्बालकं द्रष्टुं जगाम तदनुज्ञया ॥८॥
प्रधानद्वारमासाद्य शिवतुल्यपराक्रमम्। द्वाःस्थं वै शूलहस्तं च विशालाक्षमुवाच ह ॥९॥

अध्याय ११

शनैश्चर के साथ पार्वती का कथोपकथन

नारायण बोले—उस बालक को शुभाशिष प्रदान करके भगवान् विष्णु देवों और मुनियों समेत सभा-मध्य में उत्तम रत्न-सिंहासन पर विराजमान हुए ॥१॥ उनके दाहिने भाग में शंकर, बायें भाग में प्रजापति ब्रह्मा, सामने जगत् के साक्षी एवं धार्मिकों में सर्वश्रेष्ठ धर्म स्थित हुए ॥२॥ हे ब्रह्मन्! धर्म के समीप सूर्य, इन्द्र, कलानिधि (चन्द्र), देव, मुनि और पर्वतगण उस स्थान पर सुखासीन हुए ॥३॥ नृत्य करने वालों की श्रेणी (अप्सरायें) नृत्य करने लगी, गन्धर्व और किन्नर गान करने लगे और श्रुतियाँ वेद के तत्त्व भगवान् विष्णु की स्तुति करने लगीं, जो सुनने में अति मधुर लग रही थी ॥४॥ इसी बीच शंकर-नन्दन (गणेश) को देखने के लिए सूर्य के पुत्र महायोगी शनैश्चर आये ॥५॥ वे अत्यन्त नीचे मुख किये, नेत्र को थोड़ा मूंदे हुए एवं भगवान् कृष्ण में दत्तचित्त होकर बाहर-भीतर सभी ओर कृष्ण का स्मरण कर रहे थे ॥६॥ वे तपःफल का उपभोग करने वाले तेजस्वी, प्रज्वलित अग्नि की शिखा के समान, अति सुन्दर श्याम वर्ण और पीताम्बर से भूषित थे ॥७॥ विष्णु, ब्रह्मा, शिव, धर्म, सूर्य आदि देवों और मुनियों को प्रणाम कर शनि उनकी आज्ञा से बालक के दर्शनार्थ गये ॥८॥ प्रधान दरवाजे पर पहुँचकर द्वारपाल विशालाक्ष से, जो शिव के समान पराक्रमी और हाथ में शूल लिये था, शनि ने कहा ॥९॥

---

१ क ०लानि संयम्य ज्व०।

शनैश्चर उवाच

शिवाज्ञया शिशुं द्रष्टुं यामि शंकरकिंकर। विष्णुप्रमुखदेवानां मुनीनामनुरोधतः ॥१०॥
आज्ञां देहि च मां गन्तुं पार्वतीसंनिधिं बुध। पुनर्यामि शिशुं दृष्ट्वा विषयासक्तमानसः ॥११॥

विशालाक्ष उवाच

आज्ञावहो न देवानां नाहं शंकरकिंकरः। मार्गं दातुं न शक्तोऽहं विना मन्मातुराज्ञया ॥१२॥
इत्युक्त्वाऽभ्यन्तरभ्येत्य प्रेरितः स शिवाज्ञया। ददौ मार्गं ग्रहेशाय विशाल[illegible] मुदा ततः ॥१३॥
शनिरभ्यन्तरं गत्वा चानम्रम्रकंधरः। रत्नसिंहासनस्थां च पार्वतीं [illegible]मतां मुदा ॥१४॥
सखिभिः पञ्चभिः शश्वत्सेवितां श्वेतचामरैः। सखिदत्तं च ताम्बूलमुप[illegible] सुवासितम् ॥१५॥
वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम्। पश्यन्तीं नर्तकीनृत्यं पुत्रं धृ[illegible] च वक्षसि ॥१६॥
नतं सूर्यसुतं दृष्ट्वा दुर्गा संभाष्य सत्वरम्। शुभाशिषं ददौ तस्मै पृष्ट्वा तन्मङ्गलं शुभम् ॥१७॥

पार्वत्युवाच

कथमानम्रवक्त्रस्त्वं श्रोतुमिच्छामि सांप्रतम्। किं न पश्यसि मां साधो बालकं वा ग्रहेश्वर ॥१८॥

शनिरुवाच

सर्वे स्वकर्मणा साध्वि भुञ्जते तपसः फलम्। शुभाशुभं च यत्कर्म कोटिकल्पैर्न लुप्यते ॥१९॥

शनैश्चर बोले—हे शंकर के सेवक ! शिव जी की आज्ञा और विष्णु आदि देवों और मुनियों के अनुरोध से मैं बालक के दर्शनार्थ जा रहा हूँ ॥१०॥ अतः हे विद्वान् ! पार्वती के समीप जाने के लिए मुझे आज्ञा प्रदान करो ! मैं बच्चे को देखकर पुनः लौट आऊँगा क्योंकि मेरा चित्त सदैव विषयों में ही लगा रहता है ॥११॥

विशालाक्ष बोले—मैं देवताओं का आज्ञाकारी नहीं हूँ और न शंकर का भृत्य हूँ। बिना अपनी माता की आज्ञा लिये मार्ग देने में असमर्थ हूँ ॥१२॥ इतना कहकर वह भीतर चला गया और पार्वती जी की आज्ञा लेकर विशालाक्ष ने हर्ष से शनि को आगे जाने दिया ॥१३॥ भीतर जाकर शनि ने कन्धा झुकाये, मुसकराती हुई पार्वती को, जो रत्नसिंहासन पर सुशोभित थीं, नमस्कार किया ॥१४॥ पाँच सखियाँ श्वेत चामर डुलाती हुई, पार्वती की निरन्तर सेवा कर रही थीं। और पार्वती जी सखी के दिये हुए सुवासित पान चबा रही थीं तथा जो अग्निशुद्ध वस्त्र से सुसज्जित और रत्नों के भूषणों से भूषित होकर गोद में बालक लिए अप्सराओं का नृत्य देख रही थीं ॥१५-१६॥ सूर्य-पुत्र शनि को नीचे मुख किये देखकर दुर्गा ने बड़ी शीघ्रता से कहा—और शुभाशीर्वाद देकर उससे कुशल-मंगल पूछा ॥१७॥

पार्वती बोलीं—हे साधो ! हे ग्रहेश्वर ! तुम नीचे मुख क्यों किये हो, मैं सुनना चाहती हूँ। मेरे पुत्र की ओर तुम क्यों नहीं देखते हो ? ॥१८॥

शनि बोले—हे साध्वि ! सभी लोग अपने-अपने कर्मों के फल भोगते हैं। जो शुभ-अशुभ कर्म किया हुआ रहता है, करोड़ों कल्प व्यतीत होने पर भी लुप्त नहीं होता है ॥१९॥ कर्मवश जीव ब्रह्मा, इन्द्र और सूर्य के भवन में जन्म

कर्मणा जायते जन्तुर्ब्रह्मेन्द्रार्यममन्दिरे। कर्मणा नरगेहेषु पश्वादिषु च कर्मणा ॥२०॥
कर्मणा नरकं याति वैकुण्ठं याति कर्मणा। स्वकर्मणा च राजेन्द्रो भृत्यश्चापि स्वकर्मणा ॥२१॥
कर्मणा सुन्दरः शश्वद्व्याधियुक्तः स्वकर्मणा। कर्मणा विषयी मातर्निर्लिप्तश्च स्वकर्मणा ॥२२॥
कर्मणा धनवाँल्लोको दैन्ययुक्तः स्वकर्मणा। कर्मणा सत्कुटुम्बी च कर्मणा बन्धुकण्टकः ॥२३॥
सुभार्यश्च सुपुत्रश्च सुखी शश्वत्स्वकर्मणा। अपुत्रकश्च कुस्त्रीको निस्त्रीकश्च स्वकर्मणा ॥२४॥
इतिहासं चातिगोप्यं शृणु शंकरवल्लभे। अकथ्यं जननीपार्श्वे लज्जाजनककारणम् ॥२५॥
आ बाल्यात्कृष्णभक्तोऽहं कृष्णध्यानैकमानसः। तपस्यासु रतः शश्वद्विषयेऽपि रतः सदा ॥२६॥
पिता ददौ विवाहे तु कन्यां चित्ररथस्य च। अतितेजस्विनी शश्वत्तपस्यासु रता सती ॥२७॥
एकदा सा त्वृतुस्नाता सुवेषं स्वं विधाय च। रत्नालंकारसंयुक्ता मुनिमानसमोहिनी ॥२८॥
हरेः पादं ध्यायमानं मां मां पश्येत्युवाच ह। मत्समीपं समागत्य सस्मिता लोललोचना ॥२९॥
शशाप मामपश्यन्तमृतुनाशाच्च कोपतः। बाह्यज्ञानविहीनं च ध्यानसंलग्नमानसम् ॥३०॥
न दृष्टाऽहं त्वया येन न कृतं ह्यृतुरक्षणम्। त्वया दृष्टं च यद्वस्तु मूढ सर्वं विनश्यति ॥३१॥

ग्रहण करता है, कर्म द्वारा मनुष्यों के घर और कर्म के ही कारण पश्वादि योनियों में जाता है ॥२०॥ कर्म से नरकगामी होता है और कर्म से ही वैकुण्ठ जाता है। अपने ही कर्म से महाराज और अपने ही कर्म के कारण भृत्य (सेवक) होता है ॥२१॥ कर्म से सुन्दर और अपने ही कर्मवश रोगी तथा हे मातः! कर्म से ही विषयी और अपने ही कर्म से निर्लिप्त होता है ॥२२॥ कर्म से लोग धनवान् होते हैं और अपने कर्म के कारण ही दीन होते हैं। कर्म से उत्तम परिवार और कर्म से ही काँटे के समान बन्धु वाला होता है ॥२३॥ अपने ही कर्म से निरन्तर उत्तम स्त्री और उत्तम पुत्र की प्राप्ति होती है तथा स्वयं सुखी रहता है। अपने ही कर्म से निपूत, दुष्टा स्त्री वाला अथवा स्त्रीरहित होता है ॥२४॥ हे शंकरवल्लभे! एक अति गुप्त इतिहास सुनो, जो लज्जाजनक होने के कारण माता के सामने कहने योग्य नहीं है ॥२५॥ मैं बाल्यावस्था से ही भगवान् कृष्ण का भक्त हूँ, उन्हीं के एकमात्र ध्यान में चित्त को लगाये रहता हूँ, उन्हीं के जप में निरन्तर लगा रहता हूँ और विषयों में भी सदा रत रहता हूँ। पिता ने चित्ररथ की कन्या के साथ विवाह कर दिया जो अति तेजपूर्ण और तपस्या में सदैव लगी रहती है ॥२६-२७॥ एक बार ऋतुस्नान करके उसने अपना उत्तम वेष बनाया। रत्नों के आभूषणों से विभूषित होकर वह मुनियों के चित्त को मोहित करने वाली बन गयी ॥२८॥ मन्द-मन्द हँसती हुई वह चञ्चलनयना मेरे समीप आई और मुझसे बोली कि मुझे देखो। उस समय मेरा मन ध्यान में संलग्न था और मैं बाह्य ज्ञान से विहीन था। इसलिए उसकी ओर न देखते हुए मुझे उसने ऋतु-स्नान व्यर्थ हो जाने के कारण क्रोध से शाप दे दिया—हे मूढ़! तुमने इस समय मुझे देखा तक नहीं और मेरे ऋतुकाल की रक्षा नहीं की (अर्थात् उपभोग नहीं किया), इसलिए जो वस्तु तुम देखोगे वह सब नष्ट हो जायगी ॥२९-३१॥ पश्चात् ध्यान से विरत होकर मैंने उस पतिव्रता को

---

१ ख. पश्यन्ती मदमोहिता।

अहं च विरतो ध्यानात्तोषयंस्तां तदा सतीम्। शापं मोक्तुं न शक्ता सा पश्चात्तापमवाप ह ।।३२।।
तेन मातर्न पश्यामि किंचिद्वस्तु स्वचक्षुषा। ततः[1] प्रकृतिनम्रास्यः प्राणिहिंसाभयादहम् ।।३३।।
शनैश्चरवचः श्रुत्वा चाहसत्पार्वती मुने। उच्चैः प्रजहसुः सर्वा नर्तकीकिंनरीगणाः ।।३४।।

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० शनिपार्वतीसं० शनेरधोदृष्टौ कारणकथनं नामैकादशोऽध्यायः ।।११।।

अथ द्वादशोऽध्यायः

नारायण उवाच

दुर्गा तद्वचनं श्रुत्वा सस्मार हरिमीश्वरम् । ईश्वरेच्छावशीभूतं जगदेवेत्युवाच ह ।।१।।
सा च देवी दैववशात् शनिं प्रोवाच कौतुकात् । पश्य मां मच्छिशुमिति निषेकः केन वार्यते ।।२।।
पार्वत्या वचनं श्रुत्वा शनिर्मेने हृदा स्वयम् पश्यामि किं न पश्यामि पार्वतीसुतमित्यहो ।।३।।
यदि बालो मया दृष्टस्तस्य विघ्नो भवेद् ध्रुवम्। अन्यथा सुप्रशस्तं च पुरतः स्वात्मरक्षणम् ।।४।।

सन्तुष्ट किया किन्तु वह शापमुक्त करने में असमर्थ थी, इसीलिए केवल पश्चात्ताप का अनुभव किया ।।३२।। हे मातः! इसी कारण मैं कोई वस्तु अपनी आँखों से नहीं देखता हूँ। और कहीं प्राणियों की हिंसा न हो जाये इस भय से मैंने सदैव नीचे मुख करने का स्वभाव ही बना लिया है ।।३३।। हे मुने! शनैश्चर की ऐसी बातें सुनकर पार्वती हँस पड़ीं और वहाँ नृत्य करने वाली किन्नरियाँ भी ठहाका मारकर हँसने लगीं ।।३४।।

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण-संवाद के प्रकरण में शनि-पार्वती-संवाद में शनि की अधोदृष्टि का कारण वर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ।।११।।

अध्याय १२

शनि के देखने से गणेश का शिरःपतन तथा विष्णु के द्वारा शिरोयोजन

नारायण बोले—दुर्गा ने उसकी बातें सुन कर भगवान् का स्मरण किया और कहा कि समस्त संसार ईश्वर की इच्छा के वशीभूत है ।।१।। अनन्तर दैवसंयोग से कौतुकवश देवी पार्वती ने शनि से कहा—मुझे और मेरे बालक को तुम देखो। जन्मोत्सव को कौन रोकता है ।।२।। पार्वती की बात सुन कर शनि ने अपने मन में विचार किया कि—पार्वती-पुत्र का मैं दर्शन करूँ या न करूँ। क्योंकि यदि मैं बच्चे को देखता हूँ, तो निश्चित ही उसका विघ्न हो जायगा और नहीं तो उनके सामने अपनी आत्मरक्षा अत्यन्त प्रशस्त हो जाएगी ।।३-४।।

---

१ क. ०तः प्रभृति।

इत्येवमुक्त्वा धर्मिष्ठो धर्मं कृत्वा तु साक्षिणम्। बालं द्रष्टुं मनश्चक्रे न तु तन्मातरं शनिः ॥५॥
विषण्णमानसः पूर्वं शुष्ककण्ठौष्ठतालुकः। सव्यलोचनकोणेन ददर्श च शिशोर्मुखम् ॥६॥
शनेश्च दृष्टिमात्रेण चिच्छिदे मस्तकं मुने। चक्षुर्निमीलयामास तस्थौ नम्रानन: शनिः ॥७॥
तस्थौ च पार्वतीक्रोडे तत्सर्वाङ्गं सलोहितम्। विवेश मस्तकं कृष्णे गत्वा गोलोकमीप्सितम् ॥८॥
मूर्च्छां संप्राप सा देवी विलप्य च भृशं मुहुः। मृतेव च पृथिव्यां तु कृत्वा वक्षसि बालकम् ॥९॥
विस्मितास्ते सुराः सर्वे चित्रपुत्तलिका यथा। देव्यश्च शैला गन्धर्वाः सर्वे कैलासवासिनः ॥१०॥
तान्सर्वान्मूर्च्छितान्दृष्ट्वैवाऽऽरुह्य गरुडं हरिः। जगाम पुष्पभद्रां स चोत्तरस्यां दिशि स्थिताम् ११॥
पुष्पभद्रानदीतीरे ह्यपश्यत्कानने स्थितम्। गजेन्द्रं निद्रितं तत्र शयानं हस्तिनीयुतम् ॥१२॥
तयोदक्छिरसं रम्यं मूर्च्छितं सुरतश्रमात्। परितः शावकान्कृत्वा परमानन्दमानसम् ॥१३॥
शीघ्रं सुदर्शनेनैव चिच्छिदे तच्छिरो मुदा। स्थापयामास गरुडे रुधिराक्तं मनोहरम् ॥१४॥
गजच्छिन्नाङ्गविक्षेपात्प्रबोधं प्राप्य हस्तिनी। शावकान्बोधयामास चाशुभं वदती तदा ॥१५॥
रुरोद शावकैः सार्धं सा विलप्य शुचाऽऽतुरा। तुष्टाव कमलाकान्तं शान्तं सस्मितमीश्वरम् ॥१६॥
शङ्खचक्रगदापद्मधरं पीताम्बरं परम्। गरुडस्थं जगत्कान्तं भ्रामयन्तं सुदर्शनम् ॥१७॥

ऐसा सोच कर धर्मात्मा शनि ने धर्म को साक्षी बना कर बालक को देखने के लिए निश्चय किया न कि उसकी माता को ॥५॥ उनका मन पहले से ही खिन्न हो गया था और उनके कण्ठ, ओंठ, तालू सूखने लगे थे। अतः दाहिनी आँख के कोने से उन्होंने बच्चे का मुख देखा ॥६॥ हे मुने! शनि के देखते ही (बच्चे का) मस्तक कट गया और शनि आँखें बन्द कर नीचे मुख किये वहीं ठहर गये ॥७॥ पार्वती की गोद में बच्चे का सर्वांग (शिर विहीन धड़) रक्त से लोहित हो गया और वह (कटा हुआ) शिर गोलोक में जा कर भगवान् कृष्ण में प्रविष्ट हो गया ॥८॥ बार-बार अत्यन्त विलाप करके बालक को गोद में लेकर वह देवी मूर्च्छित होकर पृथिवी पर मृतक के समान गिर पड़ी ॥९॥ देव लोग आश्चर्यचकित होकर चित्र की पुतली की भाँति अवाक् रह गए और वहाँ उपस्थित अन्य देवियाँ, पर्वतगण, गन्धर्व एवं समस्त कैलास-निवासी वैसे हो गये ॥१०॥ उपरांत सभी लोगों को मूर्च्छित देखकर विष्णु गरुड़ पर बैठ कर उत्तर दिशा में स्थित पुष्पभद्रा नदी के तट पर गये ॥११॥ वहाँ पुष्पभद्रा नदी के तट पर पहुँच कर उन्होंने जंगल में हथिनियों के साथ शयन किये गजेन्द्र को देखा, जो सुरत के श्रम से श्रान्त होकर उत्तर शिर किए परमानन्द से सो रहा था और अपने चारों ओर बच्चों को लेटाये था ॥१२-१३॥ भगवान् ने प्रसन्न होकर सुदर्शन चक्र द्वारा उसका शिर काट कर गरुड़ पर रख लिया, जो रुधिर से तर और मनोहर था ॥१४॥ गज के मस्तक कटने से हथिनी जाग्रत हो गयी और अमंगल कहती हुई बच्चों को जगाने लगी। अनन्तर शोकाकुल होकर बच्चों समेत रोदन-विलाप करने लगी और कमलाकान्त भगवान् विष्णु की स्तुति करने लगी, जो शान्त, स्मितभाव से युक्त, शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये, पीताम्बर से विभूषित, गरुड पर स्थित, समस्त जगत् के कान्त एवं सुदर्शन चक्र घुमा रहे थे ॥१५-१७॥

निषेकं खण्डितुं शक्तं निषेकजनकं विभुम्। निषेकभोगदातारं भोगनिस्तारकारणम् ॥१८॥
प्रभुस्ततस्तवनात्तुष्टस्तस्यै विप्र वरं ददौ। मुण्डात्तुण्डं पृथक्कृत्य युयुजेऽन्यगजस्य च ॥१९॥
जीवयामास तं तत्र ब्रह्मज्ञानेन सर्ववित्। सर्वाङ्गे योजयामास गजस्य चरणाम्बुजम् ॥२०॥
त्वं जीवाऽकल्पपर्यन्तं परिवारैः समं गज। इत्युक्त्वा च मनोयायी कैलासं ह्याजगाम सः ॥२१॥
आहृत्य[1] पार्वतीहस्ताद्बालं कृत्वा स्ववक्षसि। रुचिरं तच्छिरः सम्यग्योजयामास बालके ॥२२॥
ब्रह्मस्वरूपो भगवान्ब्रह्मज्ञानेन लीलया। जीवयामास तं शीघ्रं हुंकारोच्चारणेन च ॥२३॥
पार्वतीं बोधयित्वा तु कृत्वा क्रोडे च तं शिशुम्। बोधयामास तां कृष्ण आध्यात्मिकविबोधनैः ॥२४॥

विष्णुरुवाच

ब्रह्मादिकीटपर्यन्तं फलं भङ्क्ते स्वकर्मणः। जगद्बुद्धिस्वरूपाऽसि त्वं न जानासि किं शिवे ॥२५॥
कल्पकोटिशतं भोगी जीविनां तत्स्वकर्मणा। उपस्थितो भवेन्नित्यं प्रतियोनौ शुभाशुभः ॥२६॥
इन्द्रः स्वकर्मणा कीटयोनौ जन्म लभेत्सति। कीटश्चापि भवेदिन्द्रः पूर्वकर्मफलेन वै ॥२७॥
सिंहोऽपि मक्षिकां हन्तुमक्षमः प्राक्तनं विना। मशको हस्तिनं हन्तुं क्षमः स्वप्राक्तनेन च ॥२८॥
सुखं दुःखं भयं शोकमानन्दं कर्मणः फलम्। सुकर्मणः सुखं हर्षमितरे पापकर्मणः ॥२९॥

वे जन्म को खण्डित करने में समर्थ, जन्म के जनक, विभु, जन्म-भोग देने वाले और भोगों से निस्तार करने के एकमात्र कारण हैं॥१८॥ हे विप्र! प्रभु विष्णु ने उसकी स्तुति से संतुष्ट होकर उसे वर प्रदान किया और गज का मस्तक उसके धड़ पर रख कर ब्रह्मज्ञान द्वारा उसे जीवित कर दिया। तथा सर्ववेत्ता भगवान् ने गज के सर्वांग में अपने चरण-कमल का स्पर्श कराया और कहा—'हे गज! अपने परिवारों समेत एक कल्प तक तुम जीवित रहो।' इतना कह कर मन की भाँति (वेग से) चलने वाले भगवान् कैलास आ गये॥१९-२१॥ उन्होंने पार्वती के हाथ से बालक लेकर अपनी गोद में रख लिया तथा सुन्दर गज-मस्तक बालक के धड़ से जोड़ दिया॥२२॥ ब्रह्मस्वरूप भगवान् ने ब्रह्मज्ञान द्वारा लीला की भाँति 'हुँकार' उच्चारण करके उसे शीघ्र जीवित कर दिया॥२३॥ अनन्तर कृष्ण ने पार्वती को समझा-बुझा कर उनकी गोद में बालक रख दिया और आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा उन्हें प्रबोधित किया॥२४॥

विष्णु बोले—ब्रह्मा से लेकर कीड़े पर्यन्त सभी अपने कर्मों के फल भोगते हैं और तुम तो बुद्धि स्वरूप हो। हे शिवे! क्या तुम यह नहीं जानती हो कि—जीवों को अपने कर्म के कारण ही सौ करोड़ कल्पों का भोग प्राप्त होता है और शुभाशुभ कर्म द्वारा ही उन्हें प्रत्येक योनि में नित्य आना-जाना पड़ता है॥२५-२६॥ इन्द्र अपने कर्म वश कीट योनि में उत्पन्न होते हैं और कीट भी पूर्व किए कर्म फलों द्वारा इन्द्र हो जाता है॥२७॥ सिंह भी जन्मान्तरीय कर्म बिना मक्खी को मारने में अशक्त रहता है और कर्मवश मच्छर भी हाथी को मारने में समर्थ हो जाता है॥२८॥ इसलिए सुख, दुःख, भय, शोक और आनन्द कर्मों के फल हैं। सुकर्म का फल सुख-हर्ष है इससे अन्य पाप के फल हैं॥२९॥

१क. आगत्य पार्वतीस्थानं बोधयित्वा तु तं शिशुम्। बो०।

इहैव कर्मणो भोगः परत्र च शुभाशुभः। कर्मोपार्जनयोग्यं च पुण्यक्षेत्रं च भारतम् ॥३०॥
कर्मणः फलदाता च विधाता च विधेरपि। मृत्योर्मृत्युः कालकालो निषेकस्य निषेककृत् ॥३१॥
संहर्तुरपि संहर्ता पातुः पाता परात्परः। गोलोकनाथः श्रीकृष्णः परिपूर्णतमः स्वयम् ॥३२॥
वयं यस्य कलाः पुंसो ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। महाविराड्यदंशश्च यल्लोमविवरे जगत् ॥३३॥
कलांशाः केऽपि तद्दुर्गे कलांशांशाश्च केचन। चराचरं जगत्सर्वं तत्र तस्थौ विनायकः ॥३४॥
श्रीविष्णोर्वचनं श्रुत्वा परितुष्टा च पार्वती। स्तनं ददौ च शिशवे तं प्रणम्य गदाधरम् ॥३५॥
तुष्टाव पार्वती तुष्टा प्रेरिता शंकरेण च। कृताञ्जलिपुटा भक्त्या विष्णुं तं कमलापतिम् ॥३६॥
आशिषं युयुजे विष्णुः शिशुं च शिशुमातरम्। ददौ गले बालकस्य कौस्तुभं च स्वभूषणम् ॥३७॥
ब्रह्मा ददौ स्वमुकुटं धर्मो वै रत्नभूषणम्। क्रमेण देव्यो रत्नानि ददुः सर्वे यथोचितम् ॥३८॥
तुष्टाव तं महादेवश्चात्यन्तं हृष्टमानसः । देवाश्च मुनयः शैला गन्धर्वाः सर्वयोषितः ॥३९॥
दृष्ट्वा शिवः शिवा चैव बालकं मृतजीवितम्। ब्राह्मणेभ्यो ददौ तत्र कोटिरत्नानि नारद ॥४०॥
अश्वानां च गजानां च सहस्राणि शतानि च। बन्दिभ्यः प्रददौ तत्र बालके मृतजीविते ॥४१॥
हिमालयश्च संतुष्टो हृष्टा देवाश्च तत्र वै। ददुर्दानानि विप्रेभ्यो बन्दिभ्यः सर्वयोषितः ॥४२॥
ब्राह्मणान्भोजयामास कारयामास मङ्गलम्। वेदांश्च पाठयामास पुराणानि रमापतिः ॥४३॥

शुभाशुभ कर्मों द्वारा इस लोक और परलोक में भोग प्राप्त होता है और कर्म करने के योग्य पुण्य क्षेत्र भारत है ॥३०॥ कर्मों के फल देने वाले, ब्रह्मा के भी ब्रह्मा, मृत्यु के भी मृत्यु, काल के भी काल और निषेक का भी निषेक करने वाले तथा संहर्ता के संहारक और रक्षा करने वाले के भी रक्षक स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हैं, जो परिपूर्णतम, गोलोकनाथ एवं परे से भी परे हैं ॥३१-३२॥ ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और हम लोग उनकी कला हैं, महाविराट् उनके अंश हैं और उनके लोम-विवरों में विश्व स्थित है ॥३३॥ हे दुर्गे ! कुछ लोग उनकी कला के अंश हैं, कुछ लोग कलांश के अंश हैं। इस प्रकार चराचर समस्त जगत् और विनायक उनमें स्थित हैं ॥३४॥ श्री विष्णु भगवान् की ऐसी बातें सुन कर पार्वती अति प्रसन्न हुईं और गदाधर भगवान् को प्रणाम कर बच्चे को दूध पिलाने लगीं ॥३५॥ शंकर की प्रेरणा वश पार्वती ने अति प्रसन्न होकर भक्तिपूर्वक हाथ जोड़े, कमलापति भगवान् विष्णु की स्तुति की जिससे प्रसन्न होकर विष्णु ने बालक और उसकी माता, दोनों को शुभाशीर्वाद प्रदान किया तथा अपना कौस्तुभ आभूषण बालक के गले में पहना दिया ॥३६-३७॥ उसी प्रकार ब्रह्मा ने अपना मुकुट, धर्म ने रत्नाभूषण और देवियों ने क्रमशः यथोचित रत्न प्रदान किये ॥३८॥ अनन्तर महादेव ने अति हर्षित होकर भगवान् की स्तुति की। उसी भाँति देवगण, मुनि, पर्वत, गन्धर्व और सभी स्त्रियों ने स्तवन किया ॥३९॥ हे नारद ! शिव और शिवा ने बालक को जीवित देख कर ब्राह्मणों को करोड़ों रत्न प्रदान किये ॥४०॥ बालक के जीवित होने पर बन्दियों को एक सहस्र अश्व और सौ गजेन्द्र प्रदान किये ॥४१॥ संतुष्ट होकर हिमालय तथा प्रसन्नचित्त देवों और स्त्रियों ने बन्दियों एवं ब्राह्मणों को अनेक दान प्रदान किये ॥४२॥ रमापति विष्णु ने बच्चे के जीवित होने पर ब्राह्मणों को भोजन, मंगल और वेदों और पुराणों के पाठ कराये ॥४३॥

शनिं संलज्जितं दृष्ट्वा पार्वती कोपशालिनी। शशाप च सभामध्येऽप्यङ्गहीनो भवेति च ॥४४॥
दृष्ट्वा शप्तं शनिं सूर्यः कश्यपश्च यमस्तथा। तेऽतिरुष्टाः समुत्तस्थुर्गामुकाः शंकरालयात् ॥४५॥
रक्ताक्षास्ते रक्तमुखाः कोपप्रस्फुरिताधराः। तां धर्मसाक्षिणं कृत्वा विष्णुं संशप्तुमुद्यताः ॥४६॥
ब्रह्मा तान्बोधयामास विष्णुना प्रेरितः सुरैः। रक्तास्यां पार्वतीं चैव कोपप्रस्फुरिताधराम् ॥४७॥
ब्रह्मागमूचुस्ते तत्र क्रमेण समयोचितम्। भीरवो देवताः सर्वे मुनयः पर्वतास्तथा ॥४८॥

कश्यप उवाच

दुर्दृष्टोऽयं प्राक्तनेन पत्नीशापेन सर्वदा। बालं ददर्श यत्नेन तस्य वै मातुराज्ञया ॥४९॥

सूर्य उवाच

तं धर्मं साक्षिगं कृत्वा सूनोर्वै मातुराज्ञया। मत्पुत्रोऽतिप्रयत्नेन ह्यपश्यत्पार्वतीसुतम् ॥५०॥
यथा निरपराधेन मत्पुत्रं सा शशाप ह। तत्पुत्रस्याङ्गभङ्गश्च भविष्यति न संशयः ॥५१॥

यम उवाच

प्रदाय स्वयमाज्ञां च शशापेयं स्वयं कथम् । वयं शपामः को ऽधर्मो जिघांसोश्च विहिंसने ॥५२॥

ब्रह्मोवाच

शशाप पार्वती रुष्टा स्त्रीस्वभावाच्च चापलात्। सर्वेषां वचनेनैव क्षन्तुमर्हन्तु साधवः ॥५३॥

उस समय शनि को अति लज्जित देख कर पार्वती क्रुद्ध हो गयीं और उस सभामध्य में ही शाप दिया—तुम अंगहीन हो जाओ ॥४४॥ शनि को शाप देते देखकर सूर्य, कश्यप और यम ने अत्यन्त रुष्ट होकर शंकर के गृह से यात्रा की तैयारी कर दी ॥४५॥ क्रोध से उनके नेत्र और मुख रक्तवर्ण हो गए, होंठ फड़कने लगे धर्म को साक्षी बना कर इन लोगों ने पार्वती और विष्णु को शाप देना चाहा ॥४६॥ अनन्तर विष्णु और देवों द्वारा प्रेरित होने पर ब्रह्मा ने सूर्य आदि देवों और पार्वती को समझाया, जिनका मुख रक्तवर्ण हो गया था और कोप से अधर फड़क रहा था ॥४७॥ उन लोगों ने क्रमशः ब्रह्मा से सामयिक बातें कहीं कि—देवता, सभी मुनिगण और पर्वत भीरु होते हैं ॥४८॥

कश्यप बोले—यह पत्नी-शाप द्वारा पहले से ही अशुभ दृष्टि वाला हो गया है किन्तु बालक को इसने उसकी माता की आज्ञा होने पर ही यत्न से देखा ॥४९॥

श्री सूर्य बोले—इसने धर्म को साक्षी बना कर और बालक की माता की आज्ञा होने पर अति प्रयत्न से बच्चे को देखा है ॥५०॥ किन्तु फिर भी इन्होंने निरपराध मेरे पुत्र को शाप दे दिया है, अतः उनके पुत्र का भी अंग भंग हो जायगा, इसमें संशय नहीं ॥५१॥

यम बोले—इन्होंने स्वयं आज्ञा प्रदान कर के स्वयं क्यों शाप दिया ? इस पर हम लोग यदि शाप देते हैं तो अधर्म क्या है ? क्योंकि हनन करने वाले की हिंसा करना अधर्म नहीं है ? ॥५२॥

ब्रह्मा बोले—पार्वती ने रुष्ट होकर और स्त्री-स्वभाव-चपलता के कारण शाप दिया है, किन्तु साधु लोग क्षमाशील होते हैं, अतः आप लोग सभी लोगों के कहने से क्षमा कर दें ॥५३॥

दुर्गे दत्त्वा त्वमाज्ञां च पुत्रदर्शनहेतवे। कथं शपसि निर्दोषमतिथिं त्वद्गृहागतम् ॥५४॥
इत्युक्त्वा शनिमादाय बोधयित्वा च पार्वतीम्। तां तं समर्पणं चक्रे शापमोचनहेतवे ॥५५॥
बभूव पार्वती तुष्टा ब्रह्मणो वचनान्मुने। शान्ता बभूवुस्ते तत्र दिनेशयमकश्यपाः ॥५६॥
उवाच पार्वती तत्र संतुष्टा[1] तं शनैश्चरम्। प्रसादिता शिवेनैव ब्रह्मणा परिसेविता ॥५७॥

पार्वत्युवाच

ग्रहराजो भव शने मद्वरेण हरिप्रियः। चिरजीवी च योगीन्द्रो हरिभक्तस्य का विपत् ॥५८॥
अद्यप्रभृति निर्विघ्ना हरौ भक्तिर्दृढाऽस्तु ते। शापोऽमोघस्ततो मेऽद्य किंचित्खञ्जो भविष्यसि ॥५९॥
इत्युक्त्वा पार्वती तुष्टा बालं धृत्वा[2] च वक्षसि। उवास योषितां मध्ये तस्मै दत्त्वा शुभाशिषः ॥६०॥
शनिर्जगाम देवानां समीपं हृष्टमानसः। प्रणम्य भक्त्या तां ब्रह्मन्नम्बिकां जगदम्बिकाम् ॥६१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० शनिकृतगणेशदर्शनतज्जातगणेशशिरः-
पतनविष्णुकृतगणेशशिरोयोजनशनिशापादिकथनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

(पुनः दुर्गा से कहा—)हे दुर्गे! पुत्र का दर्शन करने के लिए तुम्हीं ने आज्ञा प्रदान की थी, तो घर में आये हुए निर्दोष अतिथि को क्यों शाप दे रही हो॥५४॥ इतना कहकर ब्रह्मा ने पार्वती को समझाने के अनन्तर शापमुक्त होने के लिए शनि को उन्हें सौंप दिया॥५५॥ हे मुने! ब्रह्मा की बात सुन कर पार्वती प्रसन्न हो गयीं और सूर्य, यम, कश्यप भी शान्त हो गए॥५६॥ अनन्तर सुप्रसन्न होकर शिव द्वारा प्रसन्न और ब्रह्मा द्वारा सुसेवित पार्वती ने शनैश्चर से कहा॥५७॥

पार्वती बोलीं—हे शनि! मेरे वरदान द्वारा तुम ग्रहों का राजा, भगवान् का प्रिय, चिरजीवी और योगीन्द्र होगे। हरिभक्तों को कोई संकट नहीं होता है। आज से भगवान् में तुम्हारी निर्विघ्न और दृढ़ भक्ति होगी। मेरा शाप व्यर्थ नहीं होता है, अतः कुछ खञ्जपाद (लंगड़े) रहोगे॥५८-५९॥ सुप्रसन्ना पार्वती ने इतना कह कर उसे शुभाशीर्वाद प्रदान कर बालक को अपनी गोद में रख लिया और स्त्रियों के बीच बैठ गयीं॥६०॥ हे ब्रह्मन्! शनि ने भी हर्षित होकर जगज्जननी पार्वती को भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और देवों के पास चले आये॥६१॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण-संवाद में शनिकृत गणेश-दर्शन, उससे गणेश-शिर का पतन, पुनः विष्णु द्वारा गणेश के शिर जोड़ने और शनि के शाप आदि का कथन नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥१२॥

---

१ क. ०तुष्टं तं। २ क. कृत्वा।

त्रयोदशोऽध्यायः

नारायण उवाच

अथ विष्णुः शुभे काले देवैश्च मुनिभिः सह । पूजयामास तं बालमुपहारैरनुत्तमैः ॥१॥
सर्वाग्रे तव पूजा च मया दत्ता सुरोत्तम । सर्वपूज्यश्च योगीन्द्रो भव वत्सेत्युवाच तम् ॥२॥
वनमालां ददौ तस्मै ब्रह्मज्ञानं च मुक्तिदम् । सर्वसिद्धिं प्रदायैव चकाराऽऽत्मसमं हरिः ॥३॥
ददौ द्रव्याणि चारूणि चोपचारांश्च षोडश । नामभिः[1] स्तवनं चक्रे मुनिभिश्च समं सुरैः ॥४॥
विघ्नेशश्च गणेशश्च हेरम्बश्च गजाननः । लम्बोदरश्चैकदन्तः शूर्पकर्णो विनायकः ॥५॥
एतान्यष्टौ च नामानि सर्वसिद्धिप्रदानि च । आशिषं दापयामास चाऽऽनयामास तान्मुनीन् ॥६॥
सिद्धासनं ददौ धर्मस्तस्मै ब्रह्मा कमण्डलुम् । शंकरो योगपट्टं च तत्त्वज्ञानं सुदुर्लभम् ॥७॥
रत्नसिंहासनं शक्रः सूर्यश्च मणिकुण्डले । माणिक्यमालां चन्द्रश्च कुबेरश्च किरीटकम् ॥८॥
वह्निशुद्धं च वसनं ददौ तस्मै हुताशनः । रत्नच्छत्रं च वरुणो वायू रत्नाङ्गुलीयकम् ॥९॥
क्षीरोदोद्भवसद्रत्नरचितं वलयं वरम् । मञ्जीरं चापि केयूरं ददौ पद्मालया मुने ॥१०॥
कण्ठभूषां च सावित्री भारती हारमुज्ज्वलम् । क्रमेण सर्वदेवाश्च देव्यश्च यौतुकं ददुः ॥११॥
मुनयः पर्वताश्चैव रत्नानि विविधानि च । वसुंधरा ददौ तस्मै वाहनाय च मूषकम् ॥१२॥

अध्याय १३

गणेश की पूजा, स्तुति और कवच

नारायण बोले—विष्णु ने शुभ मुहूर्त में देवों और मुनियों को साथ लेकर परमोत्तम उपहारों द्वारा उस बालक की अर्चना की और कहा—हे सुरोत्तम ! सब से पहले मैंने तुम्हारी पूजा की है अतः हे वत्स ! तुम सब के पूज्य एवं योगिराज होगे ॥१-२॥ भगवान् ने वनमाला, मुक्तिप्रद ब्रह्मज्ञान और समस्त सिद्धियाँ देकर उसे अपने समान बना दिया ॥३॥ सुन्दर द्रव्य और सोलहों उपचार अर्पित कर पश्चात् देवों और मुनियों समेत उनकी नाम-स्तुति करना आरम्भ किया—विघ्नेश, गणेश, हेरम्ब, गजानन, लम्बोदर, एकदन्त, शूर्पकर्ण और विनायक, ये तुम्हारे आठ नाम समस्त सिद्धिप्रदायक हैं। फिर मुनियों को वहाँ बुलवा कर उनसे आशीर्वाद दिलवाया ॥४-६॥ धर्म ने उस बालक को सिद्धासन दिया, ब्रह्मा ने कमण्डलु, शंकर ने योग वस्त्र समेत अति दुर्लभ तत्त्वज्ञान प्रदान किया ॥७॥ इन्द्र ने रत्नसिंहासन, सूर्य ने मणि के युगल कुण्डल, चन्द्र ने माणिक्य-माला, कुबेर ने किरीट, अग्नि ने अग्नि की भाँति विशुद्ध वस्त्र, वरुण ने रत्न का छत्र और वायु ने रत्नों की अंगूठी अर्पित की। हे मुने ! लक्ष्मी ने क्षीर-सागर से उत्पन्न रत्नों का बना कड़ा, उत्तम नूपुर और केयूर (बहूँटा) प्रदान किया ॥८-१०॥ सावित्री ने कण्ठा, भारती ने उज्ज्वल हार तथा समस्त देवता एवं देवियों ने क्रमशः उपहार प्रदान किया ॥११॥ मुनियों और पर्वतों ने अनेक भाँति के रत्न और वसुन्धरा ने उन्हें सवारी के लिए मूषक (चूहा)

---

१. तन्नामकरणं च० ।

क्रमेण देवा देव्यश्च मुनयः पर्वतादयः। गन्धर्वाः किन्नरा यक्षा मनवो मानवास्तथा॥१३॥
नानाविधानि द्रव्याणि स्वादूनि मधुराणि च। पूजां चक्रुश्च ते सर्वे क्रमाद्वै भक्तिपूर्वकम्॥१४॥
पार्वती जगतां माता स्मेराननसरोरुहा। रत्नसिंहासने पुत्रं वासयामास नारद॥१५॥
सर्वतीर्थोदकैः रत्नकलशावर्जितैस्तु तैः। स्नापयामास वेदोक्तमन्त्रेण मुनिभिः सह॥१६॥
अग्निशुद्धे च वसने ददौ तस्मै सती मुदा। गोदावर्युदकैः पाद्यमर्घ्यं गङ्गोदकेन च॥१७॥
दूर्वाभिरक्षतापुष्पैश्चन्दनेन समन्वितम्। पुष्करोदकमानीय पुनराचमनीयकम्॥१८॥
मधुपर्कं रत्नपात्रैरासवं शर्करान्वितम्। स्नानीयं विष्णुतैलं च स्ववैद्याभ्यां विनिर्मितम्॥१९।
अमूल्यरत्नरचितचारुभूषाकदम्बकम्। पारिजातप्रसूनानामन्येषां शतकानि च॥२०॥
मालतीचम्पकादीनां पुष्पाणि विविधानि च। पूजार्हाणि च पत्राणि तुलसीसहितानि च॥२१॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमानि च सादरम्। रत्नप्रदीपनिकरं धूपं च परितो ददौ॥२२॥
नैवेद्यं तत्प्रियं चैव तिललड्डुकपर्वतान्। यवगोधूमचूर्णानां लड्डुकानां च पर्वतान्॥२३॥
पक्वान्नानां पर्वतांश्च सुस्वादुसुमनोहरान्। पर्वतान्स्वस्तिकानां च सुस्वादुशर्करान्वितान्॥२४॥
गुडाक्तानां च लाजानां पृथुकानां च पर्वतान्। शाल्यन्नानां पिष्टकानां पर्वतान्व्यञ्जनैः सह।२५॥
पयोभृत्कलशानां च लक्षाणि प्रददौ मुदा। लक्षाणि दधिपूर्णानां कलशानां च पूजने॥२६॥
मधुभृत्कलशानां च त्रिलक्षाणि च सुन्दरी। सर्पिःसुवर्णकुम्भानां पञ्च लक्षाणि सादरम्॥२७॥

प्रदान किया॥१२॥ क्रमशः सभी देवों, देवियों, मुनियों, पर्वतों, गन्धर्वों, किन्नरों, यक्षों, मनुओं और मानवों ने अनेक प्रकार के स्वादिष्ठ और मधुर उपहार देकर भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की॥१३-१४॥ हे नारद! मन्दहास युक्त मुख-कमल वाली जगत्-माता पार्वती ने रत्नसिंहासन पर अपने पुत्र को सुखासीन कर दिया॥१५॥ अनन्तर मुनियों ने रत्न-कलशों में भरे हुए समस्त तीर्थों के जल से वेद-मंत्र उच्चारण करते हुए उन्हें स्नान कराया। सती ने प्रसन्न होकर अग्नि-विशुद्ध दो वस्त्र प्रदान किये—पुनः गोदावरी के जल का पाद्य एवं गंगोदक का अर्घ्य जो दूर्वा, अक्षत पुष्प एवं चन्दन युक्त था, अर्पित किया। पुष्कर का जल मंगाकर पुनः आचमन और रत्न के पात्र में मधुपर्क और शक्कर मिश्रित आसव प्रदान किया। अश्विनीकुमारों ने उनके स्नानार्थ विष्णु-तैल का निर्माण किया।॥१६-१९॥ पश्चात् अमूल्य रत्नों के सुरचित अनेक उत्तम भूषण, सौ पारिजात पुष्प, मालती और चम्पा आदि अनेक भाँति के पुष्प समेत पूजा के योग्य पत्र, तुलसीदल तथा चन्दन, अगुरु, कस्तूरी एवं कुंकुम अनेक लोगों ने उन्हें सादर अर्पित किये। अनेक रत्न-प्रदीप समेत चारों ओर धूप, उनका प्रिय नैवेद्य—तिल-लड्डू के पर्वत, यव तथा गेहूँ के आटे के लड्डुओं के पर्वत, सुस्वादु एवं मनोहर पक्वान्न के पर्वत, अति स्वादिष्ठ शक्कर समेत स्वस्तिक के पर्वत, गुड़ मिश्रित धान के लावा के पर्वत, चिउरा के पर्वत, व्यंजनों समेत शालि-अन्न तथा पिष्टकों के पर्वतों समेत दूध भरे एक लाख कलश प्रदान किये उनके पूजन में एक लाख दही भरे कलश और तीन लाख मधु भरे कलश सुन्दरी ने अर्पित किये। एवं घी के पाँच लाख सुवर्ण-कलश भी सादर प्रदान किये॥२०-२७॥ अनार, श्रीफल समेत असंख्य अन्य फल, खजूर, कैथा, जामुन, आम, कटहल, केला और

१ क. ०वर्जिता०।

दाडिमानां श्रीफलानामसंख्यानि फलानि च । खर्जूराणां कपित्थानां जम्बूनां विविधानि च ॥२८॥
आम्राणां पनसानां च कदलीनां च नारद । फलानि नारिकेलानामसंख्यानि ददौ मुदा ॥२९॥
अन्यानि परिपक्वानि कालदेशोद्भवानि च । ददौ तानि महाभाग स्वादूनि मधुराणि च ॥३०॥
स्वच्छं सुनिर्मलं चैव कर्पूरादिसुवासितम् । गङ्गाजलं च पानार्थं पुनराचमनीयकम् ॥३१॥
ताम्बूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम् । सुवर्णपात्रशतकं भक्ष्यपूर्णं च नारद ॥३२॥
शैलेश्वरी शैलराजः शैलजः शैलराजजः । शैलराजप्रियामात्याः पुपूजुः शैलजात्मजम् ॥३३॥
ओं श्रीं ह्रीं क्लीं गणेशाय ब्रह्मरूपाय चारवे । सर्वसिद्धिप्रदेशाय विघ्नेशाय नमो नमः ॥३४॥
इत्यनेनैव मन्त्रेण दत्त्वा द्रव्याणि भक्तितः । सर्वे प्रमुदितास्तत्र ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥३५॥
द्वात्रिंशदक्षरो मालामन्त्रोऽयं सर्वकामदः । धर्मार्थकाममोक्षाणां फलदः सर्वसिद्धिदः ॥३६॥
पञ्चलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिस्तु मन्त्रिणः । मन्त्रसिद्धिर्भवेद्यस्य स च विष्णुश्च भारते ॥३७॥
विघ्नानि च पलायन्ते तन्नामस्मरणेन च । महावाग्मी महासिद्धिः [1]सर्वसिद्धिसमन्वितः ॥३८॥
वाक्पतिर्गुरुतां याति तस्य साक्षात्सुनिश्चितम् । महाकवीन्द्रो गुणवान्विदुषां च गुरोर्गुरुः ॥३९॥
संपूज्यानेन मन्त्रेण देवा आनन्दसंप्लुताः । नानाविधानि वाद्यानि वादयामासुरुत्सवे ॥४०॥
ब्राह्मणान्भोजयामासुः कारयामासुरुत्सवम् । ददुर्दानानि तेभ्यश्च वन्दिभ्यश्च विशेषतः ॥४१॥

नारियल के असंख्य फल तथा हे नारद ! देश काल के अनुसार अन्य असंख्य पके फल, जो अति मधुर एवं सुस्वादु थे, उन्हें हर्ष से अर्पित किये ॥२८-३०॥ स्वच्छ निर्मल तथा कर्पूरादि से सुवासित गंगाजल का आचमन उन्हें प्रदान किया ॥३१॥ हे नारद ! कर्पूरादि से सुवासित, उत्तम एवं रम्य ताम्बूल और भोजन भरे सौ सुवर्ण-पात्र से हिमालय, उनकी पत्नी, पुत्र तथा प्रिय मंत्रियों ने पार्वती-पुत्र की पूजा की ॥३२-३३॥ 'ओं श्रीं ह्रीं क्लीं गणेशाय ब्रह्मरूपाय चारवे सर्वसिद्धिप्रदेशाय विघ्नेशाय नमो नमः ।' इसी मंत्र द्वारा हर्षमग्न ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवों ने भक्तिपूर्वक उन्हें सभी वस्तुएँ समर्पित कीं । बत्तीस अक्षर का यह माला-मंत्र समस्त कामनाओं समेत धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप फलप्रद एवं समस्तसिद्धिदायक है ॥३४-३६॥ पाँच लाख जप करने से यह मंत्र सिद्ध हो जाता है और जिसको यह मंत्र सिद्ध हो जाता है वह भारत में विष्णु के समान होता है ॥३७॥ उसके नामस्मरण मात्र से विघ्न भाग जाते हैं तथा वह स्वयं महावाग्मी, महासिद्ध तथा समस्त सिद्धियों से युक्त होता है ॥३८॥ वह निश्चित ही बृहस्पति के तुल्य हो जाता है तथा कविसम्राट्, गुणी और विद्वानों के गुरु का गुरु होता है ॥३९॥ देवगण उस उत्सव में इसी मंत्र द्वारा उनकी पूजा करके आनन्दमग्न हो कर अनेक भाँति के बाजे बजाने लगे ॥४०॥ ब्राह्मणों को भोजन कराया, उत्सव किया तथा ब्राह्मणों और वन्दियों को विशेषतया दान समर्पित किया ॥४१॥

---

१ क ०र्वं संपत्स० ।

नारायण उवाच

अथ विष्णुः सभामध्ये तं संपूज्य गणेश्वरम् । तुष्टाव परया भक्त्या सर्वविघ्नविनाशकम् ॥४२॥

विष्णुरुवाच

ईश त्वां स्तोतुमिच्छामि ब्रह्मज्योतिः सनातनम् । नैव वर्णयितुं शक्तोऽस्म्यनुरूपमनीहकम् ॥४३॥
प्रवरं सर्वदेवानां सिद्धानां योगिनां गुरुम् । सर्वस्वरूपं सर्वेशं ज्ञानराशिस्वरूपिणम् ॥४४॥
अव्यक्तमक्षरं नित्यं सत्यमात्मस्वरूपिणम् । वायुतुल्यं च निर्लिप्तं चाक्षतं सर्वसाक्षिणम् ॥४५॥
संसारार्णवपारे च मायापोते सुदुर्लभे । कर्णधारस्वरूपं च भक्तानुग्रहकारकम् ॥४६॥
वरं वरेण्यं वरदं वरदानामपीश्वरम् । सिद्धं सिद्धिस्वरूपं च सिद्धिदं सिद्धिसाधनम् ॥४७॥
ध्यानातिरिक्तं ध्येयं च ध्यानासाध्यं च धार्मिकम् । धर्मस्वरूपं धर्मज्ञं धर्माधर्मफलप्रदम् ॥४८॥
बीजं संसारवृक्षाणामङ्कुरं च तदाश्रयम् । स्त्रीपुंनपुंसकानां च रूपमेतदतीन्द्रियम् ॥४९॥
सर्वाद्यमग्रपूज्यं च सर्वपूज्यं गुणार्णवम् । स्वेच्छया सगुणं ब्रह्म निर्गुणं स्वेच्छया पुनः ॥५०॥
स्वयं प्रकृतिरूपं च प्राकृतं प्रकृतेः परम् । त्वां स्तोतुमक्षमोऽनन्तः सहस्रवदनैरपि ॥५१॥
न क्षमः पञ्चवक्त्रश्च न क्षमश्चतुराननः । सरस्वती न शक्ता च न शक्तोऽहं तव स्तुतौ ॥५२॥
न शक्ताश्च चतुर्वेदाः के वा ते वेदवादिनः ॥५३॥
इत्येवं स्तवनं कृत्वा मुनीशसुरसंसदि । सुरेशश्च सुरैः सार्धं विरराम रमापतिः ॥५४॥

नारायण बोले—अनन्तर विष्णु ने सभामध्य समस्त विघ्नों के नाशक गणेश्वर की अर्चना करके परा-भक्ति से उनकी स्तुति करना आरम्भ किया॥४२॥

विष्णु बोले—हे ईश! मैं तुम्हारी स्तुति करना चाहता हूँ, तुम ब्रह्मज्योति और सनातन हो, अतः मैं तुम्हारा वर्णन नहीं कर सकता, क्योंकि तुम इच्छारहित हो॥४३॥ समस्त देवों में श्रेष्ठ, सिद्धों और योगियों के गुरु, समस्त के स्वरूप, सब के अधीश्वर, ज्ञानराशि के स्वरूप, अव्यक्त, अविनाशी, नित्य, सत्य, आत्मस्वरूप, वायु के समान निर्लिप्त, सब के साक्षी एवं संसार-सागर को पार करने के लिए मायारूपी जहाज में तुम अति दुर्लभ कर्णधार स्वरूप होकर भक्तों पर कृपा करने वाले हो॥४४-४६॥ उत्तम, वरेण्य, वरप्रद, वरदों के भी अधीश्वर, सिद्ध, सिद्धिस्वरूप, सिद्धिप्रद, सिद्धि के साधन, ध्यान से परे, ध्येय, ध्यान से असाध्य, धार्मिक, धर्मस्वरूप, धर्मज्ञाता, धर्म-अधर्म के फलदायक, संसार रूपी वृक्ष के बीज और उसके आश्रय अंकुर, स्त्री, पुरुष एवं नपुंसकों के रूप, अतीन्द्रिय (इन्द्रियों से दिखायी न देने वाले), सभी के आद्य, सब से पहले पूज्य, सब के पूज्य, गुणसागर, स्वेच्छया सगुण ब्रह्म, पुनः स्वेच्छया निर्गुण ब्रह्म, स्वयं प्रकृति रूप, प्राकृत तथा प्रकृति से परे हो। इसीलिए अनन्त भी अपने सहस्र मुखों द्वारा तुम्हारी स्तुति करने में समर्थ नहीं हैं ॥४७-५१॥ उसी प्रकार पाँच मुख वाले (शिव), चार मुख वाले ब्रह्मा, सरस्वती और मैं तुम्हारी स्तुति करने में समर्थ नहीं हूँ। चारों वेद भी समर्थ नहीं हैं तो वेदवादियों की बात ही क्या॥५२-५३॥ इस प्रकार देवों के अधीश्वर रमापति विष्णु मुनीन्द्रों और देवों की सभा में देवों के साथ उनकी स्तुति कर के चुप हो गये॥५४॥ हे मुने!

इदं विष्णुकृतं स्तोत्रं गणेशस्य च यः पठेत् । सायं प्रातश्च मध्याह्ने भक्तियुक्तः समाहितः ॥५५॥
तद्विघ्ननाशं कुरुते विघ्नेशः सततं मुने । वर्धते सर्वकल्याणं कल्याणजनकः सदा ॥५६॥
यात्राकाले पठित्वा यो याति तद्भक्तिपूर्वकम् । तस्य सर्वाभीष्टसिद्धिर्भवत्येव न संशयः ॥५७॥
तेन दृष्टं च दुःस्वप्नं सुस्वप्नमपजायते । कदाऽपि न भवेत्तस्य ग्रहपीडा च दारुणा ॥५८॥
भवेद्विनाशः शत्रूणां बन्धूनां च विवर्धनम् । शश्वद्विघ्नविनाशश्च शश्वत्सम्पद्विवर्धनम् ॥५९॥
स्थिरा भवेद्गृहे लक्ष्मीः पुत्रपौत्रविवर्धनम् । सर्वैश्वर्यमिह प्राप्य ह्यन्ते विष्णुपदं लभेत् ॥६०॥
फलं चापि च तीर्थानां यज्ञानां यद्भवेद्ध्रुवम् । महतां सर्वदानानां तद्गणेशप्रसादतः ॥६१॥

नारद उवाच

श्रुतं स्तोत्रं गणेशस्य पूजनं च मनोहरम् । कवचं श्रोतुमिच्छामि सांप्रतं भवतारणम् ॥६२॥

नारायण उवाच

पूजायां सुनिवृत्तायां सभामध्ये शनैश्चरः । उवाच विष्णुं सर्वेषां तारकं जगतां गुरुम् ॥६३॥

शनैश्चर उवाच

सर्वदुःखविनाशाय पापप्रशमनाय च । कवचं विघ्ननिघ्नस्य वद वेदविदां वर ॥६४॥
बभूव नो विवादश्च शक्त्या वै मायया सह । तद्विघ्नप्रशमार्थं च कवचं धारयाम्यहम् ॥६५॥

भगवान् विष्णु कृत गणेश के इस स्तोत्र का जो प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल भक्तिपूर्वक एवं संयत होकर पाठ करता है, उसके विघ्नों का नाश स्वयं विघ्नेश निरन्तर करते हैं। उसके समस्त कल्याणों की वृद्धि होती है तथा वहस दैव कल्याण उत्पन्न करता है ॥५५-५७॥ यात्राकाल में जो इसका भक्तिपूर्वक पाठ करके जाता है उसके सम्पूर्ण अभीष्ट (मनोरथ) सिद्ध होते हैं, इसमें संशय नहीं ॥५७॥ उसका देखा अशुभ स्वप्न शुभ स्वप्न हो जाता है और दारुण ग्रहपीड़ा उसे कभी नहीं होती है ॥५८॥ शत्रु-नाश, बान्धव-वृद्धि निरन्तर विघ्न-विनाश और निरन्तर सम्पत्ति की वृद्धि होती है ॥५९॥ गृह में लक्ष्मी का अविचल निवास होता है, पुत्र-पौत्र की वृद्धि होती है और वह इस लोक में समस्त ऐश्वर्य की प्राप्ति करके अन्त में विष्णुलोक प्राप्त करता है ॥६०॥ तीर्थों, यज्ञों और बड़े-बड़े समस्त दानों के जो फल होते हैं, वे सभी फल गणेश की कृपा से उसे सुनिश्चित प्राप्त होते हैं ॥६१॥

नारद बोले—गणेश जी का स्तोत्र और मनोहर पूजन हमने सुन लिया है, अब इस समय उनका संसार से तारने वाला कवच सुनना चाहता हूँ ॥६२॥

नारायण बोले—पूजन सुसम्पन्न होने के उपरांत सभामध्य में शनि ने सभी को तारने वाले और जगत् के गुरु विष्णु से कहा ॥६३॥

शनैश्चर बोले—हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ! विघ्न-विनाशन (गणेश) का कवच बताने की कृपा करें, जो समस्त दुःखों का नाशक और पाप को निर्मूल करने वाला है ॥६४॥ शक्ति माया के साथ हमारा बहुत बड़ा विवाद हो चुका है, इसलिए उस विघ्न के विनाशार्थ मैं कवच धारण करना चाहता हूँ ॥६५॥

विष्णु उवाच

विनायकस्य कवचं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् । सुगोप्यं च पुराणेषु दुर्लभं चाऽऽगमेषु च ॥६६॥
उक्तं कौथुमशाखायां सामवेदे मनोहरम् । कवचं विघ्ननाथस्य सर्वविघ्नहरं परम् ॥६७॥
राज्यं देयं शिरो देयं प्राणा देयाश्च सूर्यज । एवंभूतं च कवचं न देयं प्राणसंकटे ॥६८॥
आविर्भावस्तिरोभावः स्वेच्छया यस्य मायया । नित्योऽयमेकदन्तश्च कवचं चास्य वत्सक ॥६९॥
पूजाऽस्य नित्या स्तोत्रं च कल्पे कल्पेऽस्ति संततम् । अस्य[1] वै जन्मनः पूर्वं मुनयश्च सिषेविरे ॥७०॥
यथा मदवतारेषु जन्म विग्रहधारणम् । तथा गणेश्वरस्यापि जन्म शैलसतोदरे ॥७१॥
यद्धृत्वा मुनयः सर्वे जीवन्मुक्ताश्च भारते । निःशङ्काश्च सुराः सर्वे शत्रुपक्षविमर्दकाः ॥७२॥
कवचं बिभ्रतां मृत्युर्न भिया याति संनिधिम् । नाऽऽयर्व्ययो नाशुभं च ब्रह्माण्डे न पराजयः ॥७३॥
दशलक्षजपेनैव सिद्धं तु कवचं भवेत् । यो भवेत्सिद्धकवचो मृत्युं जेतुं स च क्षमः ॥७४॥
सुसिद्धकवचो वाग्मी चिरंजीवी महीतले । सर्वत्र विजयी पूज्यो भवेद्ग्रहणमात्रतः ॥७५॥
मालामन्त्रमिमं पुण्यं कवचं मङ्गलं शुभम् । बिभ्रतां सर्वपापानि प्रणश्यन्ति सुनिश्चितम् ॥७६॥
भूतप्रेतपिशाचाश्च कूष्माण्डा ब्रह्मराक्षसाः । डाकिनीयोगिनीयक्षवेताला भैरवादयः ॥७७॥

श्री विष्णु बोले—विनायक का कवच तीनों लोकों में अति दुर्लभ है, वह पुराणों में अति गोप्य और शास्त्रों में भी दुर्लभ है ॥६६॥ विघ्नेश्वर (गणेश) का कवच, जो समस्त विघ्नों का नाशक एवं परमोत्तम है, सामवेद की कौथुमीशाखा में मनोहर ढंग से कहा गया है ॥६७॥ हे (सूर्य-पुत्र)! राज्य दिया जा सकता है, शिर दिया जा सकता है और प्राण भी दिये जा सकते हैं किन्तु प्राण संकट उपस्थित होने पर भी ऐसा कवच नहीं दिया जा सकता है ॥६८॥ हे वत्स! जिनकी माया से अविर्भाव और तिरोभाव हुआ करते हैं, वे एकदन्त (गणेश) नित्य हैं, उन्हीं का यह कवच है ॥६९॥ इनकी नित्य पूजा और स्तोत्र प्रत्येक कल्प में निरन्तर होते रहते हैं, इनके जन्म होने से पूर्व भी मुनिगण इनकी सेवा करते रहते हैं ॥७०॥ जिस प्रकार मैं अपने अवतार में जन्म और शरीर धारण करता हूँ, उसी भाँति पार्वती के उदर से गणेश ने भी जन्म ग्रहण किया है ॥७१॥ भारत में मुनिगण उनका कवच धारण कर जीवन्मुक्त हो जाते हैं और देवगण निःशंक होकर शत्रुओं का दलन करते हैं ॥७२॥ कवच धारण करने वालों के समीप मृत्यु भयवश नहीं जाती है तथा उसकी आयु का व्यय, अशुभ और ब्रह्माण्ड में पराजय नहीं होता है ॥७३॥ दश लाख जप करने से यह कवच सिद्ध हो जाता है और जिसे कवच सिद्ध हो जाता है, वह मृत्यु को भी जीतने में समर्थ होता है ॥७४॥ कवच के सिद्ध होने पर वह पुरुष महासत्यवक्ता, चिरकालजीवी एवं पृथ्वीमण्डल में सर्वत्र विजयी होता है तथा केवल कवच के ग्रहण मात्र से पूज्य होता है ॥७५॥ इस मालामन्त्र और पुण्य, मंगल एवं शुभ कवच के धारण करने वाले के समस्त पाप निश्चित नष्ट हो जाते हैं ॥७६॥ भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, डाकिनी, योगिनी, यक्ष, वेताल, भैरव आदि, बालग्रह, ग्रह,

---

१ क. यस्यास्य ज० ।

बालग्रहा ग्रहाश्चैव क्षेत्रपालादयस्तथा। वर्मणः शब्दमात्रेण पलायन्ते च भीरवः ॥७८॥
आधयो व्याधयश्चैव शोकाश्चैव भयावहाः। न यान्ति संनिधिं तेषां गरुडस्य यथोरगाः ॥७९॥
ऋजवे गुरुभक्ताय स्वशिष्याय प्रकाशयेत्। खलाय परशिष्याय दत्त्वा मृत्युमवाप्नुयात् ॥८०॥
संसारमोहनस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः। ऋषिश्छन्दश्च गायत्री[1] देवो लम्बोदरः स्वयम् ॥८१॥
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः। सर्वेषां कवचानां च सारभूतमिदं मुने ॥८२॥
ओं[2] गं हुं श्री गणेशाय स्वाहा मे पातु मस्तकम्। द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रो ललाटं मे सदाऽवतु ॥८३॥
ओं ह्रीं क्लीं श्रीं गमिति वै सततं पातु लोचनम्। तारकां पातु विघ्नेशः सततं धरणीतले ॥८४॥
ओं ह्रीं श्रीं क्लीमिति परं संततं पातु नासिकाम्। ओं गौं गं शूर्पकर्णाय स्वाहा पात्वधरं मम ॥८५॥
दन्तांश्च तालुकां जिह्वां पातु मे षोडशाक्षरः। ओं लं श्रीं लम्बोदरायेति स्वाहा गण्डं सदाऽवतु ॥८६॥
ओं क्लीं ह्रीं विघ्ननाशाय स्वाहा कर्णं सदाऽवतु। ओं श्रीं गं गजाननायेति स्वाहा स्कन्धं सदाऽवतु ॥८७॥
ओं ह्रीं विनायकायेति स्वाहा पृष्ठं सदाऽवतु। ओं क्लीं ह्रीमिति कङ्कालं पातु वक्षःस्थलं परम् ॥८८॥
करौ पादौ सदा पातु सर्वाङ्गं विघ्ननाशकृत्। प्राच्यां लम्बोदरः पातु चाऽऽग्नेय्यां विघ्ननायकः ॥८९॥
दक्षिणे पातु विघ्नेशो नैर्ऋत्यां तु गजाननः। पश्चिमे पार्वतीपुत्रो वायव्यां शंकरात्मजः ॥९०॥
कृष्णस्यांशश्चोत्तरे च परिपूर्णतमस्य च। ऐशान्यामेकदन्तश्च हेरम्बः पातु चोर्ध्वतः ॥९१॥

क्षेत्रपाल आदि तथा भीरु आदि जैसे उसके शब्दमात्र से पलायन कर जाते हैं ॥७७-७८॥ जैसे गरुड की सन्निधि में सर्प नहीं जाते वैसे आधि, व्याधि और भयावह शोक उसके समीप नहीं जाते हैं ॥७९॥ इसलिए सरल एवं गुरुभक्त शिष्य को यह कवच देना चाहिए किन्तु दुष्ट और पर-शिष्य को देने से मृत्यु प्राप्त होती है ॥८०॥ संसारमोहन इस कवच के प्रजापति ऋषि, बृहती छन्द, स्वयं लम्बोदर देवता हैं तथा धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की प्राप्ति के लिए इसका विनियोग कहा गया है ॥८१-८२॥ हे मुने ! यह कवच सभी कवचों का सार भाग है। 'ओं गं हुं श्रीगणेशाय स्वाहा' यह मेरे मस्तक की रक्षा करे, बत्तीस अक्षर वाला मंत्र मेरे ललाट की सदा रक्षा करे ॥८३॥ 'ओं ह्रीं क्लीं श्रीं गं' मेरे नेत्र की सतत रक्षा करे। इस भूतल पर विघ्नेश मेरी पुतली की सतत रक्षा करें ॥८४॥ 'ओं ह्रीं श्रीं क्लीं' यह निरन्तर नासिका की रक्षा करे। 'ओं गौं गं शूर्पकर्णाय स्वाहा' यह मेरे अधर की रक्षा करे। सोलह अक्षर वाला मंत्र मेरे दाँत, तालु और जिह्वा की रक्षा करे ॥८५॥ 'ओं लं श्रीं लम्बोदराय स्वाहा' यह सदा कपोल की रक्षा करे ॥८६॥ 'ओं क्लीं ह्रीं विघ्ननाशाय स्वाहा' यह कान की रक्षा करे 'ओं श्रीं गं गजाननाय स्वाहा' सदा कंधे की रक्षा करे 'ओं ह्रीं विनायकाय स्वाहा' यह सदा पीठ की रक्षा करे ॥८७॥ 'ओं क्लीं ह्रीं' यह ठठरी और वक्षःस्थल की सदा रक्षा करे। ॥८८॥ विघ्ननाश करने वाला (मंत्र) हाथ, पैर और सर्वांग सदा की रक्षा करे। पूर्व दिशा में लम्बोदर रक्षा करें, अग्नि दिशा में विघ्ननायक, दक्षिण में विघ्नेश, नैर्ऋत्य में गजानन, पश्चिम में पार्वतीपुत्र, वायव्य में शंकरात्मज, उत्तर में परिपूर्णतम श्रीकृष्ण के अंश, ईशान में एकदन्त, ऊपर हेरम्ब, नीचे गणाधिप, चारों ओर सर्वपूज्य तथा स्वप्न और

---

१. ख. बृहती। २. क. ओं गो गं श्री०।

अधो गणाधिपः पातु सर्वपूज्यश्च सर्वतः। स्वप्ने जागरणे चैव पातु मां योगिनां गुरुः ॥९२॥
इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम्। संसारमोहनं नाम कवचं परमाद्भुतम् ॥९३॥
श्रीकृष्णेन पुरा दत्तं गोलोके रासमण्डले। वृन्दावने विनीताय मह्यं दिनकरात्मज ॥९४॥
मया दत्तं च तुभ्यं च यस्मै कस्मै न दास्यसि। परं वरं सर्वपूज्यं सर्वसंकटतारणम् ॥९५॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवत्कवचं धारयेत्तु यः। कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ सोऽपि विष्णुर्न संशयः ॥९६॥
अश्वमेघसहस्राणि वाजपेयशतानि च। ग्रहेन्द्र कवचस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥९७॥
इदं कवचमज्ञात्वा यो भजेच्छंकरात्मजम्। शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥९८॥
दत्त्वेदं सूर्यपुत्राय विरराम सुरेश्वरः। परमानन्दसंयुक्ता देवास्तस्थुः समीपतः ॥९९॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख०· नारदना० गणेशपूजास्तवकवचकथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

चतुर्दशोऽध्यायः

नारायण उवाच

देवास्तस्यां सभायां ते सर्वे संहृष्टमानसाः। गन्धर्वा मुनयः शैलाः पश्यन्तः सुमहोत्सवम् ॥१॥
एतस्मिन्नन्तरे दुर्गा स्मेराननसरोरुहा। उवाच विष्णुं प्रणता देवेशं तत्र संसदि ॥२॥

जागरण में योगियों के गुरु मेरी रक्षा करें ॥८९-९२॥ हे वत्स! इस संसारमोहन नामक परम अद्भुत कवच को मैंने तुम्हें बता दिया है, जो समस्त मन्त्रसमुदाय रूप शरीर धारण किए हुए है ॥९३॥ हे दिनकरात्मज! पूर्व काल में भगवान् श्रीकृष्ण ने गोलोक में वृन्दावन के रासमण्डल में मुझ विनीत को यह कवच प्रदान किया था और आज मैंने तुम्हें प्रदान किया है, अतः इसे जिस किसी को न दे देना। यह परमोत्तम, श्रेष्ठ, सब का पूज्य और समस्त संकट से बचाने वाला है ॥९४-९५॥ गुरु की सविधि अर्चना करके जो यह कवच कण्ठ में या दाहिनी भुजा में धारण करता है वह विष्णु है, इसमें संशय नहीं ॥९६॥ हे ग्रहेन्द्र! सहस्र अश्वमेध और सौ वाजपेय यज्ञ इस कवच की सोलहवीं कला के भी समान नहीं हैं ॥९७॥ पुनः इस कवच को बिना जाने जो शंकर-पुत्र गणेश की आराधना करता है, उसके सौ लाख जप करने पर भी मंत्र सिद्धिदायक नहीं होता है ॥९८॥ देवाधीश्वर भगवान् सूर्य-पुत्र शनि को यह संसारमोहन नामक कवच देकर चुप हो गए और देवगण भी परमानन्दमग्न होकर वहीं स्थित हो गए ॥९९॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायणसंवाद में गणेश की पूजा, स्तुति और कवच वर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥१३॥

अध्याय १४

कार्तिकेय का जन्म-कथन

नारायण बोले—सभी सभासद—देवता, गन्धर्व, मुनि और पर्वतगण जो उस महोत्सव को देख रहे थे, अत्यन्त प्रसन्नचित्त थे ॥१॥ इसी बीच मन्द हास करती हुई कमल-वदना दुर्गा ने उस सभा में देवेश विष्णु से विनय-विनम्र होकर कहा ॥२॥

पार्वत्युवाच

त्वं पाता सर्वजगतां नाथ नाहं जगद्बहिः। कथं मत्स्वामिनो वीर्यममोघं रक्षितं प्रभो॥३॥
रतिभङ्गे कृते देवैर्ब्रह्मणा प्रेरितैस्त्वया। भूमौ निपतितं वीर्यं केन देवेन वै हृतम्॥४॥
सर्वे देवास्त्वत्पुरतस्तदन्विष्यन्तु सादरम्। अराजकं कथं युक्तं तिष्ठति त्वयि राजनि॥५॥
पार्वतीवचनं श्रुत्वा प्रहस्य जगदीश्वरः। उवाच देववर्गे च मुनिवर्गे च तिष्ठति ॥६॥

विष्णुरुवाच

देवाः शृणुत मद्वाक्यं पार्वतीवचनं श्रुतम्। शिवस्यामोघवीर्यं यत्तत्पुरा केन निर्हृतम्॥७॥
सभामानयत क्षिप्रं न चेद्दण्डमिहार्हथ। स किंराजा न शास्ता यः प्रजाबाध्यश्च पाक्षिकः॥८॥
विष्णोस्तद्वचनं श्रुत्वा समालोच्य परस्परम्। ऊचुः सर्वे शिवावाक्यैस्त्रासिताः पुरतो हरेः॥९॥

ब्रह्मोवाच

तद्वीर्यं निर्हृतं येन पुण्यभूमौ च भारते। स वञ्चितो भवत्वत्र पुण्याहे पुण्यकर्मणि॥१०॥

महादेव उवाच

मद्वीर्यं निर्हृतं येन पुण्यभूमौ च भारते। स वञ्चितो भवत्वत्र सेवने पूजने तव॥११॥

पार्वती बोलीं—हे नाथ! तुम समस्त जगत् के रक्षक हो और मैं भी इस जगत् से बाहर नहीं हूँ। अतः हे प्रभो! मेरे स्वामी का वह अमोघ वीर्य कहाँ सुरक्षित है (बताने की कृपा करें)॥३॥ तुम्हारी प्रेरणा से देवों और ब्रह्मा द्वारा मेरे रतिभंग किये जाने पर उनका वीर्य पृथ्वी पर गिर पड़ा था, पता नहीं किस देव ने उसका अपहरण कर लिया॥४॥ (हमारे) सभी देवगण आपके सामने ही उसकी खोज करें—क्योंकि आप ऐसे राजा के अधिकार में ऐसी अराजकता उचित नहीं है॥५॥ पार्वती की ऐसी बात सुन कर जगदीश्वर भगवान् ने हँस कर देवों और मुनियों के समक्ष कहा॥६॥

विष्णु बोले—हे देवगण! मेरी बात सुनो! तुम लोगों ने पार्वती की बात तो सुन ली। पूर्वकाल में शिव के अमोघ वीर्य का किसने अपहरण किया?॥७॥ उसे इस सभा में शीघ्र उपस्थित करो अन्यथा दण्ड के भागी बनोगे। क्योंकि जो शासन ठीक से न करे, प्रजा पीड़ित हो या पक्षपात करे, वह निन्दनीय राजा है॥८॥ भगवान् विष्णु की बात सुनकर सभी ने आपस में विचार-परामर्श किया और पार्वती की बात से त्रस्त होकर उन लोगों ने भगवान् के सामने कहना आरम्भ किया॥९॥

ब्रह्मा बोले—इस पुण्य क्षेत्र भारत में तुम्हारे वीर्य का जिसने अपसरण किया है, वह पुण्य दिवस के पुण्य कर्म से वंचित रह जाये॥१०॥

महादेव बोले—इस पुण्य भूमि भारत में मेरे वीर्य का जिसने अपहरण किया है, वह तुम्हारी सेवा-पूजा से वंचित रहे॥११॥

यम उवाच

स वञ्चितो भवत्वत्र शरणागतरक्षणे। एकादशीव्रते चैव तद्वीर्यं येन निर्हृतम्॥१२॥

इन्द्र उवाच

तद्वीर्यं निर्हृतं येन पापिनां पापमोचने। भवत्वत्र यशो लुप्तं तत्पुण्यं कर्म संततम्॥१३॥

वरुण उवाच

भवत्वत्र कलौ जन्म[1] वर्षे स्याद्भारते हरे। शूद्रयाजकपत्न्याश्च गर्भे तद्येन निर्हृतम्॥१४॥

कुबेर उवाच

न्यासहारी स भवतु विश्वासघ्नश्च मित्रहा। सत्यघ्नश्च कृतघ्नश्च तद्वीर्यं येन निर्हृतम्॥१५॥

ईशान उवाच

परद्रव्यापहारी च स भवत्वत्र भारते। नरघाती गुरुद्रोही तद्वीर्यं येन निर्हृतम्॥१६॥

रुद्रा ऊचुः

ते मिथ्यावादिनः सन्तु भारते पारदारिकाः। गुरुनिन्दारताः शश्वत्तद्वीर्यं यैश्च निर्हृतम्॥१७॥

कामदेव उवाच

कृत्वा प्रतिज्ञां यो मूढो न संपालयते भ्रमात्। भाजनं तस्य पापस्य स भवेद्येन तद्धृतम्॥१८॥

यम बोले—उस वीर्य का अपहरण जिसने किया है, वह शरणागत की रक्षा और एकादशी व्रत से वंचित रह जाये॥१२॥

इन्द्र बोले—उस वीर्य का जिसने अपहरण किया है, वह पापियों को पाप मुक्त करने में असमर्थ रहे और उसका यश एवं पुण्य कर्म निरन्तर लुप्त होता रहे॥१३॥

वरुण बोले—हे हरे! जिसने उसका अपहरण किया है, वह भारतवर्ष में कलि के समय शूद्र को यज्ञ कराने वाले की पत्नी के गर्भ से जन्म ग्रहण करे॥१४॥

कुंवेर बोले—उस वीर्य का जिसने अपहरण किया है, वह न्यास (धरोहर) का अपहर्त्ता, विश्वासघाती, मित्रहन्ता, सत्यहन्ता एवं कृतघ्न हो॥१५॥

ईशान बोले—जिसने उस वीर्य का अपहरण किया है वह इस भारत में परधन का अपहारी, नरघाती और गुरुद्रोही हो॥१६॥

रुद्रगण बोले—उस वीर्य का जिन लोगों ने अपहरण किया है, वे भारत में झूठ बोलने वाले, परस्त्री-लम्पट और गुरु की निन्दा में रत रहें॥१७॥

कामदेव बोले—जिसने उस (वीर्य) का अपहरण किया है, वह जो मूढ़ भ्रमवश प्रतिज्ञा का पालन नहीं करता है, उसके पाप का भागी हो॥१८॥

---

१ क. ०न्म संन्यासो वा भवान्तरे।

स्ववैद्यावूचतुः

मातुःपितुर्गुरोश्चैव स्त्रीपुत्राणां च पोषणे । भवेतां वञ्चितौ तौ च याभ्यां वीर्यं च तद्धृतम् ॥१९॥

सर्वे देवा ऊचुः

मिथ्यासाक्ष्यप्रदातारो भवन्त्वत्र च भारते । अपुत्रिणो दरिद्राश्च यैश्च वीर्यं हि तद्धृतम् ॥२०॥

देवपत्न्य ऊचुः

ता निन्दन्तु स्वभर्तारं गच्छन्तु परपूरुषम् । सन्तु बुद्धिविहीनाश्च याभिर्वीर्यं हि तद्धृतम् ॥२१॥
देवानां वचनं श्रुत्वा देवीनां च हरिः स्वयम् । कर्मणां साक्षिणं धर्मं सूर्यं चन्द्रं हुताशनम् ॥२२॥
पवनं पृथिवीं तोयं संध्ये रात्रिदिवं मुने । उवाच जगतां कर्ता पाता शास्ता जगत्त्रये ॥२३॥

विष्णुरुवाच

देवैर्न निर्हृतं वीर्यं तदेतत्केन निर्हृतम् । तदमोघं भगवतो महेशस्य जगद्गुरोः ॥२४॥
यूयं च साक्षिणो विश्वे सततं सर्वकर्मणाम् । युष्माभिर्निर्हृतं किंवा किं भूतं वक्तुमर्हथ ॥२५॥
ईश्वरस्य वचः श्रुत्वा सभायां कम्पिताश्च ते । परस्परं समालोच्य क्रमेणोचुः पुरो हरेः ॥२६॥

धर्म उवाच

रतेरुत्तिष्ठतो वीर्यं पपात वसुधातले । मया ज्ञातममोघं तच्छंकरस्य प्रकोपतः ॥२७॥

स्ववैद्य (अश्विनीकुमार) बोले—जिन्होंने वीर्य का अपहरण किया है, वे माता, पिता, गुरु, स्त्री और पुत्र के पालन-पोषण से वंचित रह जायें ॥१९॥

देवगण बोले—जिन्होंने उस वीर्य का अपहरण किया है, वे भारत में झूठी गवाही देने वाले, निपूत और दरिद्र हों ॥२०॥

देवपत्नियाँ बोलीं—जिन स्त्रियों ने उस वीर्य का हरण किया है, वे अपने पति की निन्दा करने वाली एवं परपुरुषगामिनी हों और सदैव बुद्धिहीना हों ॥२१॥ हे मुने ! देवों और देवियों की ऐसी बातें सुन कर जगत् के कर्ता और तीनों लोकों के शासक एवं रक्षक भगवान् विष्णु ने स्वयं कर्मों के साक्षी धर्म, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, पृथ्वी, जल, दोनों संध्याओं, दिन और रात्रि से कहा ॥२२-२३॥

विष्णु बोले—जगद्गुरु एवं भगवान् महेश्वर के अमोघ वीर्य का अपहरण यदि देवों ने नहीं किया है तो किसने उसका अपहरण किया है ? समस्त विश्व में तुम्ही लोग कर्मों के निरन्तर साक्षी हो, अतः तुम्हीं लोगों ने उसका अपहरण किया है या उसका क्या हुआ, बताओ ॥२४-२५॥ उस समय सभा में ईश्वर की ऐसी बातें सुन कर वे लोग काँपने लगे और आपस में परामर्श कर के भगवान् के सामने क्रमशः कहना आरम्भ किया ॥२६॥

धर्म बोले—सुरत के समय क्रुद्ध शंकर के उठते ही उनका वह अमोघ वीर्य पृथ्वी पर गिर पड़ा यह मैं जानता हूँ ॥२७॥

क्षितिरुवाच

वीर्यं वोढुमशक्ताऽहं तद्वह्नौ न्यक्षिपं पुरा। अतीव दुर्वहं ब्रह्मन्नबलां क्षन्तुमर्हसि॥२८॥

अग्निरुवाच

वीर्यं वोढुमशक्तोऽहं न्यक्षिपं शरकानने। दुर्बलस्य जगन्नाथ किं यशः किं च पौरुषम्॥२९॥

वायुरुवाच

शरेषु पतितं वीर्यं सद्यो बालो बभूव ह। अतीव सुन्दरो विष्णो स्वर्णरेखानदीतटे॥३०॥

सूर्य उवाच

रुदन्तं बालकं दृष्ट्वाऽगममस्ताचलं प्रति। प्रेरितः कालचक्रेण निशि संस्थातुमक्षमः॥३१॥

चन्द्र उवाच

रुदन्तं बालकं प्राप्य गृहीत्वा कृत्तिकागणः। जगाम स्वालयं विष्णो गच्छन्बदरिकाश्रमात्॥३२॥

जलमुवाच

अमुं रुदन्तमानीय स्तनं दत्त्वा स्तनार्थिने। वर्धयामासुरीशस्य तं ताः सूर्याधिकप्रभम्॥३३॥

संध्ये ऊचतुः

अधना कृत्तिकानां च षण्णां तत्पोष्यपुत्रकः। तन्नाम चक्रुस्ताः प्रेम्णा कार्तिकेय इति स्वयम्॥३४॥

क्षिति बोली—हे ब्रह्मन्! उस अत्यन्त दुर्वह वीर्य का वहन करने में मैं असमर्थ थी, इस लिए उसे मैंने पहले ही अग्नि में डाल दिया। आप मुझ अबला को क्षमा करें॥२८॥

अग्नि बोले—हे जगन्नाथ! उस वीर्य को वहन करने में मैं भी असमर्थ होकर उसे शर (सरपत) के जंगल में छोड़ दिया, क्योंकि दुर्बल पुरुष का यश और पौरुष क्या है? (अर्थात् कुछ नहीं)॥२९॥

वायु बोले—हे विष्णो! शरों (सरपतों) में गिरा हुआ वीर्य तुरन्त बालक रूप हो गया, जो अत्यन्त सुन्दर एवं स्वर्णरेखा नदी के तट पर विराजमान हुआ॥३०॥

सूर्य बोले—मैंने रोदन करते हुए उस बालक को देखा और अस्ताचल चला गया क्योंकि कालचक्र से प्रेरित होने के नाते रात्रि में मैं स्थित नहीं रह सकता॥३१॥

चन्द्र बोले—हे विष्णो! बदरिकाश्रम से जाती हुई कृत्तिकाओं ने उस रोदन करते हुए बालक को लेकर अपने घर को प्रस्थान किया॥३२॥

जल बोले—(शिव के) उस रोदन करते बालक को, जो दुग्ध-पान के लिए मचल रहा था और सूर्य से अधिक प्रभापूर्ण था, कृत्तिकाओं ने दुग्धपान कराया और वे पालन-पोषण करने लगीं॥३३॥

संध्याएँ बोलीं—इस समय वह पुत्र छह कृत्तिकाओं का पोष्य हुआ है और प्रेमवश उन लोगों ने उसका 'कार्तिकेय' नामकरण भी स्वयं किया है॥३४॥

रात्रिरुवाच

न चक्रुर्बालकं ताश्च लोचनानामगोचरम् । प्राणेभ्योऽपि प्रेमपात्रं यः पोष्टा तस्य पुत्रकः ॥३५॥

दिनमुवाच

यानि यानि च वस्तूनि त्रैलोक्ये दुर्लभानि च । प्रशंसितानि स्वादूनि भोजयामासरेव तम् ॥३६॥
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा संतुष्टो मधुसूदनः । ते सर्वे हरिमित्यूचुः सभायां हृष्टमानसाः ॥३७॥
पुत्रस्य वार्तां संप्राप्य पार्वती हृष्टमानसा । कोटिरत्नानि विप्रेभ्यो ददौ बहुधनानि च ॥३८॥
ददौ सर्वाणि विप्रेभ्यो वासांसि विविधानि च ॥३९॥
लक्ष्मीः सरस्वती मेना सावित्री सर्वयोषितः । विष्णुश्च सर्वदेवाश्च ब्राह्मणेभ्यो ददुर्धनम् ॥४०॥

इति० श्रीब्रह्म० महा० गणेशख० नारदना० कार्तिकेयजन्मकथनं
नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

पञ्चदशोऽध्यायः

नारायण उवाच

पुत्रस्य वार्तां संप्राप्य पार्वत्या सह शंकरः । प्रेरितो विष्णुना देवैर्मुनिभिः पर्वतैर्मुने ॥१॥

रात्रि बोली—वे कृत्तिकाएँ उस बालक को अपनी आँखों के सामने से कभी अलग नहीं करती हैं। वह प्राणों से भी अधिक प्रेमपात्र है। जो पालन करता है, उसी का पुत्र होता है ॥३५॥

दिन बोला—तीनों लोकों में जो अति स्वादिष्ठ एवं दुर्लभ पदार्थ हैं, वे ही उस बच्चे को उन्होंने भोजन कराये ॥३६॥

इस प्रकार सभा में सुप्रसन्न होकर उन लोगों ने भगवान् से कहा और उनकी बातें सुनकर भगवान् मधुसूदन भी अति प्रसन्न हुए ॥३७॥ पुत्र की वार्ता सुनकर पार्वती अति हर्षित हुईं और उन्होंने ब्राह्मणों को पुनः करोड़ों रत्न और बहुत धन प्रदान किये। सभी ब्राह्मणों को अनेक भाँति के वस्त्र भी दिये ॥३८-३९॥ अनन्तर लक्ष्मी, सरस्वती, मेना, सावित्री आदि समस्त स्त्रियों तथा समस्त देवों समेत विष्णु ने ब्राह्मणों को धन दान दिया ॥४०॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपति-खण्ड में नारद-नारायण-संवाद में
कार्तिकेय-जन्म-कथन नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥१४॥

अध्याय १५

नन्दकेश्वर और कार्तिकेय का संवाद

नारायण बोले—हे मुने! पार्वती समेत शिव ने पुत्र का समाचार जानने के उपरान्त भगवान् विष्णु, देवों, मुनियों और पर्वतों द्वारा प्रेरित होकर महाबली एवं पराक्रमी दूतों को (उसे लाने के लिए) भेजा। जिनमें

दूतान्प्रस्थापयामास महाबलपराक्रमान्। वीरभद्रं विशालाक्षं शङ्कुकर्णं[1] कबन्धकम् ॥२॥
नन्दीश्वरं[2] महाकालं वज्रदन्तं [3]भगन्दरम्। गोधामुखं दधिमुखं ज्वलदग्निशिखोपमम्॥३॥
लक्षं च क्षेत्रपालानां भूतानां च त्रिलक्षकम्। वेतालानां चतुर्लक्षं यक्षाणां पञ्चलक्षकम्॥४॥
कूष्माण्डानां चतुर्लक्षं त्रिलक्षं ब्रह्मरक्षसाम्। डाकिनीनां चतुर्लक्षं योगिनीनां त्रिलक्षकम्॥५॥
रुद्रांश्च भैरवांश्चैव शिवतुल्यपराक्रमान्। [4]अन्यांश्च विकृताकारानसंख्यानपि नारद॥६॥
ते सर्वे शिवदूताश्च नानाशस्त्रास्त्रपाणयः। कृत्तिकानां च भवनं वेष्टयामासुरुज्ज्वलम्॥७॥
दृष्ट्वा तान्कृत्तिकाः सर्वा[5] भयविह्वलमानसाः। कार्तिकं कथयामासुर्ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा॥८॥

कृत्तिका ऊचुः

वत्स सैन्यान्यसंख्यानि वेष्टयामासुरालयम्। न जानीमो वयं कस्य करालानि च बालक॥९॥

कार्तिकेय उवाच

भयं त्यजत कल्याण्यो भयं किं वो मयि स्थिते। दुर्निवार्यः कर्मपाको मातरः केन वार्यते॥१०॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र सेनानीर्नन्दिकेश्वरः। पुरतः कार्तिकेयस्य तिष्ठंस्तासामुवाच ह॥११॥

नन्दिकेश्वर उवाच

भ्रातः प्रवृत्तिं शृणु मे मातुश्चपि शुभावहम्। प्रेषितस्य सुरेन्द्रस्य संहर्तुः शंकरस्य च॥१२॥

वीरभद्र, विशालाक्ष, शंकुकर्ण, कबन्धक, नंदीश्वर, महाकाल, वज्रदन्त, भगन्दर, गोधामुख, प्रज्वलित अग्नि-शिखा के समान दधिमुख, एक लाख क्षेत्रपाल, तीन लाख भूतगण, चार लाख वेताल, पांच लाख यक्ष, चार लाख कूष्माण्ड, तीन लाख ब्रह्मराक्षस, तीन लाख डाकिनियाँ और तीन लाख योगिनियाँ थीं॥१-५॥ हे नारद! शिव के समान पराक्रमी रुद्रगण, भैरवगण और अन्य विकृत आकार वाले असंख्य गण थे॥६॥ शिव के इन दूतों ने हाथों में अस्त्र-शस्त्र लेकर कृत्तिकाओं के उज्ज्वल भवन को चारों ओर से घेर लिया॥७॥ अनन्तर सभी कृत्तिकाओं के चित्त इन दूतों को देखकर आकुल हो गये। वे ब्रह्मतेज से देदीप्यमान कार्तिकेय से कहने लगीं॥८॥

कृत्तिकाएँ बोलीं—हे वत्स! हे बालक! असंख्य सेनाओं ने आकर गृह को चारों ओर से घेर लिया है, हम लोग नहीं जानतीं कि—ये भयंकर सेनायें किसकी हैं॥९॥

कार्तिकेय बोले—हे मंगलमयी! भय मत करो, मेरे रहते तुम्हें भय क्या है? हे माताओ! इस दुर्निवार कर्मफल को कौन रोक सकता है? ॥१०॥ इसी बीच सेनानायक नन्दिकेश्वर ने उनके समक्ष कार्तिकेय से कहा ॥११॥

नन्दिकेश्वर बोले– हे भ्रातः! माता जी का शुभ सन्देश मुझसे सुनो तथा प्रेषित सुरेन्द्र एवं संहर्ता

---

१ क. करक्रमम्। २ क. ०कायं व०। ३ क. भलन्दनम्। ४ क. भूतानां च पिशाचानामसं०। ५ क. ०वान्मि०।

कैलासे सर्वदेवाश्च ब्रह्मविष्णुशिवादयः। सभायां ते वसन्तश्च गणेशोत्सवमङ्गले ॥१३॥
शैलेन्द्रकन्या तं विष्णुं जगतां परिपालकम्। संबोध्य कथयामास तवान्वेषणकारणम् ॥१४॥
पप्रच्छ देवान्विष्णुस्तान्क्रमेणाऽऽवाप्तिहेतवे। प्रत्युत्तरं ददुस्ते तु प्रत्येकं च यथोचितम् ॥१५॥
त्वमत्र कृत्तिकास्थाने कथयामासुरीश्वरम्। सर्वे धर्मादयो देवा धर्माधर्मस्य साक्षिणः ॥१६॥
या बभूव रहः क्रीडा पार्वतीशिवयोः पुरा। दृष्टस्य च सुरैः शंभोर्वीर्यं भूमौ पपात ह ॥१७॥
भूमिस्तदक्षिपद्वह्नौ वह्निश्च शरकानने। ततो लब्धः कृत्तिकाभिरमूभिर्गच्छ सांप्रतम् ॥१८॥
तवाभिषेकं विष्णुश्च करिष्यति सुरैः सह। शस्त्रं लब्ध्वाऽखिलं देव तारकं संहनिष्यसि ॥१९॥
पुत्रस्त्वं विश्वसंहर्तुस्त्वां गोप्तुं न क्षमा इमाः। नाग्निं गोप्तुं यथा शक्तः शुष्कवृक्षः स्वकोटरे ॥२०॥
दीप्तिमांस्त्वं च विश्वेषु तासां गेहे न शोभसे। यथा पतन्महाकूपे द्विजराजो न राजते ॥२१॥
करोषि जगदालोकं नाच्छन्नोऽस्यङ्गतेजसा। यथा सूर्यः कराच्छन्नो न भवेत्पूरुषस्य च ॥२२॥
विष्णस्त्वं च जगद्व्यापी नाऽऽसां व्याप्योऽसि शांभव। यथा न केषां व्याप्यं च तत्सर्वं व्यापकं नभः ॥२३॥
योगीन्द्रो नानलिप्तस्त्वं भोगी च परिपोषणे। नैव लिप्तो यथाऽऽत्मा च कर्मभोगेषु जीविनाम् ॥२४॥
विश्वाधारस्त्वमीशश्च नामृते संभवेत्स्थितिः। सागरस्य यथा नद्यां सरितामाश्रयस्य च ॥२५॥

शिव का भी (संदेश सुनो)। कैलाश पर्वत पर ब्रह्मा, विष्णु शिव आदि देवगण सभा में स्थित होकर गणेश जी का मंगलोत्सव मना रहे थे। इसी बीच शैलराज की पुत्री पार्वती ने समस्त जगत् के पालन करने वाले भगवान् विष्णु को सम्बोधित कर तुम्हारे खोजने के विषय में कहा ॥१२-१४॥ अनन्तर विष्णु ने तुम्हारी प्राप्ति के लिए क्रमशः सभी देवों से पूछा और उन लोगों ने एक-एक करके यथोचित उत्तर भी प्रदान किया ॥१५॥ धर्माधर्म के साक्षी सभी धर्म आदि देवों ने ईश्वर से बताया कि तुम इसी कृत्तिकाओं के स्थान में रह रहे हो। पूर्वकाल में शिव-पार्वती का जो एकान्तवास हुआ था, उसमें शिव जी का वीर्य पृथ्वी पर गिर पड़ा था, जिसे सभी देवों ने देखा था। पृथ्वी ने उसे अग्नि में डाल दिया और अग्नि ने सरपत के जंगल में। उसी स्थान से कृत्तिकाओं ने तुम्हें प्राप्त किया, अतः तुम अभी चलो। हे देव! समस्त देवों समेत भगवान् विष्णु तुम्हारा अभिषेक करेंगे और समस्त शस्त्र प्राप्त होने पर आप तारकासुर का वध करेंगे। तुम समस्त विश्व के संहर्ता भगवान् शिव के पुत्र हो। ये सब तुम्हें छिपाने में उसी भाँति असमर्थ हैं जैसे सूखा वृक्ष अपने कोटर में स्थित अग्नि को ॥१६-२०॥। समस्त विश्व में तुम देदीप्यमान हो, जिस प्रकार महाकूप में गिरे हुए चन्द्रमा की शोभा नहीं होती है, उसी भाँति इन (कृत्तिकाओं) के घर में रहने से तुम्हारी शोभा नहीं हो रही है ॥२१॥ तुम अपने अंगतेज से सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित कर रहे हो, किन्तु इन लोगों के तेज से उसी प्रकार आच्छन्न नहीं हो, जैसे पुरुष के हाथ से सूर्य नहीं ढके जा सकते। ॥२२॥ हे शम्भुपुत्र! तुम समस्त जगत् में व्याप्त रहने वाले विष्णु हो, जिस प्रकार आकाश किसी (एक का) व्याप्त न होकर समस्त का व्यापक है, उसी भाँति तुम इन लोगों के व्याप्य नहीं हो ॥२३॥ तुम योगिराज हो और भलीभाँति पोषण करने में भोगी हो, किन्तु इसमें लिप्त नहीं हो, जैसे जीवों के कर्मभोगों में आत्मा नहीं लिप्त होता है ॥२४॥ तुम समस्त विश्व के आधार और अधीश्वर हो। जिस प्रकार सरिताओं के आश्रयभूत सागर की स्थिति नदी में नहीं हो सकती है, उसी प्रकार तुम्हारी स्थिति अमृत में सम्भव नहीं है ॥२५॥ जिस प्रकार गरुड़

नहि सर्वेश्वरावासः संभवेत्कृत्तिकालये । गरुडस्य यथा वासः क्षुद्रे च चटकोदरे ।।२६।।
त्वां च देवा न जानन्ति भक्तानुग्रहविग्रहम् । गुणानां तेजसां राशिं यथाऽऽत्मानमयोगिनः ।।२७।।
त्वामनिर्वचनीयं च कथं जानन्ति कृत्तिकाः । यथा परां हरेर्भक्तिमभक्ता मूढचेतसः ।।२८।।
भ्रातर्यं यं न जानन्ति ते तं कुर्वन्त्यनादरम् । नाऽऽद्रियन्ते यथा भेकास्त्वेकावासं च पङ्कजम् ।।२९।।

कार्तिकेय उवाच

भ्रातः सर्वं विजानामि ज्ञानं त्रैकालिकं च यत् । ज्ञानी त्वं का प्रशंसा ते यतो मृत्युंजयाश्रितः ।।३०।।
कर्मणा जन्म येषां वा यासु यासु च योनिषु । तासु ते निर्वृतिं भ्रातर्नाऽऽप्नुवन्ति च संततम् ।।३१।।
ये यत्र सन्ति सन्तो वा मूढा वा कर्मभोगतः । तेऽपि तं बहु मन्यन्ते मोहिता विष्णुमायया ।।३२।।
सांप्रतं जगतां माता विष्णुमाया सनातनी । सर्वाद्या सर्वरूपा च सर्वदा सर्वमङ्गला ।।३३।।
शैलेन्द्रपत्नी गर्भे सा चालभज्जन्म भारते । दारुणं च तपस्तप्त्वा संप्राप च्छंकरं पतिम् ।।३४।।
ब्रह्मादितृणपर्यन्तं सर्वं मिथ्यैव कृत्रिमम् । सर्वे कृष्णोद्भवाः काले विलीनास्तत्र केवलम् ।।३५।।

का निवास क्षुद्र चटक (गौरइया) पक्षी के उदर में नहीं हो सकता है, उसी भाँति सर्वाधीश्वर का आवास कृत्तिकाओं के घर में असम्भव है।।२६।। तुम भक्तों पर अनुग्रहार्थ शरीर धारण करते हो, गुणों और तेजों की राशि हो, तुम्हें देवगण उसी भाँति नहीं जानते हैं, जैसे योग न साधने वाले आत्मा को।।२७।। तुम अनिर्वचनीय को कृतिकाएँ किस प्रकार जानती हैं, जैसे भक्ति न करने वाले अज्ञानी मनुष्य भगवान् की पराभक्ति को (नहीं जानते हैं) ।।२८।। अतः हे भ्रातः ! जो जिसे नहीं जानते हैं वे उसका अनादर करते हैं जैसे एक जगह रह कर भी मेढक कमल का आदर नहीं करते।।२९।।

कार्तिकेय बोले—हे भ्रातः ! मैं तीनों काल का सम्पूर्ण ज्ञान रखता हूँ। और तुम भी मृत्युञ्जय (शिव) के आश्रित रहने के नाते ज्ञानी हो, इसलिए तुम्हारी क्या प्रशंसा की जाये।।३०।। हे भ्रातः ! कर्मवश जिनका जिन-जिन योनियों में जन्म हुआ है, वे निरन्तर उनसे छुटकारा नहीं पाते हैं।।३१।। क्योंकि कर्मभोगानुसार महात्मा या मूर्ख कोई भी जिस योनि का शरीर धारण करता है वह विष्णु की माया से मोहित होने के नाते उसी को बहुत सम्मानित समझता है।।३२।। सम्प्रति जगत् की माता पार्वती, जो भगवान् विष्णु की माया, सनातनी, सर्वाद्या, सर्वरूपा, सर्वदा सर्वमंगला हैं, भारत में शैलराज (हिमालय) की पत्नी (मैना) के गर्भ से प्रकट हुई हैं, और भीषण तप करके शिव को पतिरूप में प्राप्त किया है।।३३-३४।। ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त सभी मिथ्या और कृत्रिम हैं। सभी भगवान् श्रीकृष्ण से उत्पन्न होकर अन्त में उन्हीं में विलीन हो जाते हैं।।३५।। प्रत्येक कल्प में जगज्जननी पार्वती

कल्पे कल्पे जगन्माता माता मे प्रतिजन्मनि। यज्जन्ममायया बद्धो नित्यः सृष्टिविधावहम् ॥३६॥
प्रकृतेरुद्भवाः सर्वा जगत्यां सर्वयोषितः। काश्चिदंशाः कलाः काश्चित्कलांशांशेन काश्चन ॥३७॥
कृत्तिका ज्ञानवत्यश्च योगिन्यः प्रकृतेः कलाः। स्तन्येनाऽऽभिर्वर्धितोऽहमुपहारेण संततम् ॥३८॥
तासामहं पोष्यपुत्रो मदम्बाः पोषणादिमाः। तस्याश्च प्रकृतेः पुत्रो गतस्त्वत्स्वामिवीर्यतः ॥३९॥
न गर्भजोऽहं शैलेन्द्रकन्याया नन्दिकेश्वर। सा च मे धर्मतो माता तथेमा सर्वसंमताः ॥४०॥
स्तनदात्री गर्भधात्री भक्ष्यदात्री गुरुप्रिया। अभीष्टदेवपत्नी च पितुः पत्नी च कन्यकाः ॥४१॥
सगर्भकन्या भगिनी पुत्रपत्नी प्रियाप्रसूः। मातुर्माता पितुर्माता सोदरस्य प्रिया तथा ॥४२॥
मातुः पितुश्च भगिनी मातुलानी तथैव च। जनानां वेदविहिता मातरः षोडश स्मृताः ॥४३॥
इमाश्च सर्वसिद्धिज्ञाः परमैश्वर्यसंयुताः। न क्षुद्रा ब्रह्मणः कन्यास्त्रिषु लोकेषु पूजिताः ॥४४॥
विष्णुना प्रेरितस्त्वं च शंभोः पुत्रसमो महान्। गच्छ यामि त्वया सार्धं द्रक्ष्यामि सुरसंचयम् ॥४५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणेशख० नारदना० नन्दिकार्तिकेयसंवादो नाम
पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

प्रति जन्म में मेरी माता होती हैं और मैं सृष्टि के समय माया द्वारा नित्य आबद्ध होकर उन्हीं से जन्म ग्रहण करता हूँ। ॥३६॥ सारे जगत् की समस्त स्त्रियाँ प्रकृति से ही उत्पन्न हुई हैं, यह सत्य है—कोई प्रकृति का अंश, कोई कला और कोई कला का अंशांश भाग हैं ॥३७॥ ज्ञानवती एवं योगिनी कृत्तिकाएँ भी प्रकृति की कलाएँ हैं, जिन्होंने अपने स्तन-दुग्ध का उपहार देकर मेरा सम्बर्द्धन किया है ॥३८॥ मैं उनका योग्य पुत्र हूँ और वे मेरी माताएँ हैं। तुम्हारे स्वामी के वीर्य द्वारा मैं उत्पन्न हुआ हूँ, अतः प्रकृति (पार्वती) का भी पुत्र हूँ, किन्तु हे नन्दिकेश्वर! शैलेन्द्र-कन्या (पार्वती) का मैं गर्भजन्य पुत्र नहीं हूँ। वह हमारी धर्म की माता हैं। उसी प्रकार ये भी मेरी सर्वसम्मत माताएँ हैं ॥३९-४०॥ क्योंकि स्तन का दूध पिलाने वाली, गर्भ धारण कर उत्पन्न करने वाली, भोजन देने वाली, गुरु की पत्नी, अभीष्ट देव की पत्नी, पिता की पत्नी (माता), कन्या, गर्भिणी कन्या, भगिनी, पुत्र की पत्नी (बहू), स्त्री की माता (सास), माता की माता (नानी), पिता की माता (दादी), सहोदर की पत्नी, माता और पिता की भगिनी और मातुलानी (मामी), ये सोलह प्रकार की स्त्रियाँ मनुष्यों की वेदविहित माता होती हैं ॥४१-४३॥ इसलिए सम्पूर्ण सिद्धियों को जाननेवाली एवं परमैश्वर्यसम्पन्न ये ब्रह्मा की कन्यायें क्षुद्र नहीं हैं। इनकी तीनों लोकों में पूजा होती है ॥४४॥ तुम भी शिव के महान् पुत्र के समान हो और भगवान् विष्णु के भेजे हुए हो, अतः चलो, तुम्हारे साथ मैं भी चलकर देव-समूह का दर्शन करूँगा ॥४५॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण-संवाद में नन्दि-कार्तिकेय-
संवाद-कथन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥१५॥

षोडशोऽध्यायः

नारायण उवाच

इत्येवमुक्त्वा तं शीघ्रं बोधयित्वा च कृत्तिकाः। उवाच नीतियुक्तं च वचनं शंकरात्मजः ॥१॥

कार्तिकेय उवाच

यास्यामि शंकरस्थानं द्रक्ष्यामि सुरसंचयम्। मातरं बन्धुवर्गांश्चाप्याऽऽज्ञां मे दत्त मातरः ॥२॥
दैवाधीनं जगत्सर्वं जन्म कर्म शुभाशुभम्। संयोगश्च वियोगश्च न च दैवात्परं बलम् ॥३॥
कृष्णायत्तं च तद्दैवं स च दैवात्परस्ततः। भजन्ति सततं सन्तः परमात्मनमीश्वरम् ॥४॥
दैवं वर्धयितुं शक्तः क्षयं कर्तुं स्वलीलया। न दैवबद्धस्तद्भक्तश्चाविनाशीति निर्णयः ॥५॥
तस्माद्भजत गोविन्दं मोहं त्यजत दुःखदम्। सुखदं मोक्षदं सारं जन्ममृत्युभयापहम् ॥६॥
परमानन्दजनकं मोहजालनिकृन्तनम्। शश्वद्भजन्ति यत्सर्वे ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥७॥
कोऽहं भवाब्धौ युष्माकं का वा यूयं ममाम्बिकाः। तत्कर्मस्रोतसां सर्वं पुञ्जीभूतं च फेनवत् ॥८॥
संश्लेषं वा वियोगं वा सर्वमीश्वरचिन्तया। ब्रह्माण्डमीश्वराधीनं न स्वतन्त्रं विदुर्बुधाः ॥९॥
जलबुद्बुदवत्सर्वमनित्यं च जगत्त्रयम्। मायामनित्ये कुर्वन्ति मायया मूढचेतसः ॥१०॥

अध्याय १६

कार्तिकेय का आगमन

नारायण बोले—शिव के पुत्र कुमार ने इतना उन (नन्दिकेश्वर) से कहकर शीघ्र कृत्तिकाओं को भी समझाया और पुनः उन लोगों से नीतियुक्त वचन कहना आरम्भ किया ॥१॥

कार्तिकेय बोले—हे माताओ! मैं देवों को देखने के लिए शंकर जी के यहाँ (कैलाश) जा रहा हूँ, वहाँ माता जी एवं बन्धु-वर्गों का दर्शन करूँगा, अतः आज्ञा देने की कृपा करें ॥२॥ (कोई चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि) समस्त जगत् जन्म, शुभाशुभ कर्म और संयोग-वियोग सभी कुछ दैव (भाग्य) के अधीन रहता है, अतः दैवबल से बढ़कर कोई दूसरा बल नहीं है ॥३॥ और वह दैव भगवान् श्रीकृष्ण के अधीन है क्योंकि वे दैव से भी परे हैं। इसीलिए उस परमात्मा ईश्वर को सन्त लोग सदैव भजते हैं ॥४॥ वह लीला की भाँति दैव को बढ़ा सकता है और नष्ट कर सकता है। उसका भक्त दैव के अधीन नहीं रहता है, अविनाशी होता है, ऐसा सभी का निर्णय है ॥५॥ इसलिए दुःखदायी मोह का त्याग कर गोविन्द को भजो, जो सुखदायक, मोक्षप्रद, सारभूत, जन्म, मृत्यु एवं भय के नाशक, परमानन्द के जनक तथा मोहजाल को काटने वाले हैं और ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आदि जिनका निरन्तर भजन करते रहते हैं ॥६-७॥ क्योंकि इस संसार-सागर में तुम लोगों का मैं कौन हूँ और तुम लोग हमारी कौन हो! सब कर्मों की धाराओं के पूंजीभूत फेन के समान हैं ॥८॥ (सभी का) संयोग-वियोग आदि सब कुछ ईश्वर के अधीन है, यहाँ तक कि समस्त ब्रह्माण्ड भी ईश्वर के अधीन है, स्वतंत्र नहीं है, ऐसा विद्वानों का कहना है ॥९॥ जल के बुल्ले की भाँति तीनों जगत् अनित्य (नश्वर) हैं। इस नश्वर जगत् में मायामोहित चित्त वाले ही माया का कार्य करते हैं ॥१०॥ किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण में दत्त-

सन्तस्तत्र न लिप्यन्ते वायुवत्कृष्णचेतसः। तस्मान्मोहं परित्यज्य चाऽऽज्ञप्तिं दत्त मातरः ॥११॥
इत्येवमुक्त्वा ता नत्वा सार्धं शंकरपार्षदैः। यात्रां चकार भगवान्मनसा श्रीहरिं स्मरन् ॥१२॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र ददर्श रथमुत्तमम्। विश्वकर्मकृतं रम्यं हीरकेण विराजितम् ॥१३॥
सद्रत्नसाररचितं माणिक्येन विराजितम्। पारिजातप्रसूनानां मालाजालैश्च शोभितम् ॥१४॥
मणीन्द्रदर्पणैः श्वेतचामरैरतिदीपितम् । क्रीडार्हमन्दिरै रम्यैश्चित्रितैश्चित्रितं वरम् ॥१५॥
शतचक्रं सुविस्तीर्णं मनोयायि मनोहरम्। प्रस्थापितं च पार्वत्या वेष्टितं पार्षदैर्वरैः ॥१६॥
तमारुहन्तं यानं ता हृदयेन विदूयता। सहसा चेतनां प्राप्य मुक्तकेश्यः शुचाऽऽतुराः ॥१७॥
दृष्ट्वा च स्वपुरः स्कन्दं स्तम्भिताश्चातिशोकतः। उन्मत्ता इव तत्रैव वक्तुमारेभिरे भिया ॥१८॥

कृत्तिका ऊचुः

**किं कुर्मः क्व च यास्यामो वयं वत्स त्वदाश्रयाः। विहायास्मान्क्व यासि त्वं नायं धर्मस्तवाधुना ॥१९॥
स्नेहेन वर्धितोऽस्माभिः पुत्रोऽस्माकं स्वधर्मतः। नायं धर्मो मातृवर्गाननुरक्तः सुतस्त्यजेत् ॥२०॥
इत्युक्त्वा कृत्तिकाः सर्वाः कृत्वा वक्षसि तं सुतम्। पुनर्मूर्च्छामवापुस्ताः सुतविच्छेददारुणम् ॥२१॥
कुमारो बोधयित्वा ता अध्यात्मवचनेन वै। ताभिश्च पार्षदैः सार्धमारुरोह रथं मुने ॥२२॥**

चित्त वाले सज्जन लोग इसमें वायु की भाँति रहकर लिप्त नहीं होते हैं। इसलिए हे माताओ! मोह छोड़कर मुझे आज्ञा प्रदान करो ॥११॥ इस भाँति उन्हें समझा-बुझाकर एवं उन्हें नमस्कार करके भगवान् कुमार ने श्री हरि का स्मरण करते हुए शंकर-पार्षदों के साथ यात्रा आरम्भ की ॥१२॥ इसी बीच उन्हें वहाँ एक उत्तम रथ दिखायी पड़ा, जो विश्वकर्मा द्वारा सुरचित, रम्य, हीरा जड़ित, उत्तम रत्नों के सारभाग से निर्मित, माणिक्य से सुशोभित और पारिजात के पुष्पों की मालाओं से सुशोभित था ॥१३-१४॥ उसमें उत्तम मणियों के दर्पण सुसज्जित थे तथा वह श्वेत चामरों से अति दीपित और रम्य एवं चित्रविचित्र क्रीड़ा मन्दिरों से चित्रित होने के नाते अत्युत्तम था ॥१५॥ वह अतिविस्तृत था। उसमें सौ पहिये (चक्के) लगे थे। वह मन की भाँति चलने वाला और मनोहर था। उसे पार्वती जी ने अनेक उत्तम पार्षदों समेत भेजा था ॥१६॥ उनके रथ पर बैठते समय कृत्तिकाओं को महान् हार्दिक दुःख हुआ। वे सहसा चेतना प्राप्त कर केश खोले एवं शोक से उद्विग्न हो गईं ॥१७॥ अति शोक के कारण स्तम्भित-सी होकर वे कृतिकाएँ अपने सामने स्कन्द को देखते ही पागल-सी हो गयीं और भय से कहने लगीं ॥१८॥

कृतिकाएँ बोलीं—हे वत्स! हम तुम्हारे आश्रित होकर अब क्या करें, कहाँ जायें, तुम हमें छोड़ कर कहाँ जा रहे हो? इस समय तुम्हें ऐसा करना उचित नहीं है ॥१९॥ हम लोगों ने तुम्हें अतिस्नेह से पाला-पोसा है। अपने धर्म के अनुसार तुम हमारे पुत्र हो। यह धर्म नहीं है कि पुत्र इस प्रकार निष्ठुर होकर मातृवर्ग का त्याग करे ॥२०॥ इतना कहकर वे कृतिकाएं पुत्र को अपने वक्षःस्थल (गोद) से लगाकर पुनः मूर्च्छित हो गयीं, क्योंकि पुत्र-वियोग अति भीषण होता है ॥२१॥ हे मुने! अनन्तर कुमार ने उन्हें अध्यात्म सम्बन्धी बातों से आश्वासन दिया और स्वयं कृत्तिकाओं समेत पार्षदों के साथ रथ पर बैठ गये ॥२२॥ हे मुने! (यात्रा के समय)

पूर्णकुम्भं द्विजं वेश्यां शुक्लधान्यानि दर्पणम्। दध्याज्यं मधु लाजांश्च पुष्पं दूर्वाक्षतान्सितान् ॥२३॥
वृषं गजेन्द्रं तुरगं ज्वलदग्निं सुवर्णकम्। पूर्णं च परिपक्वानि फलानि विविधानि च ॥२४॥
पतिपुत्रवतीं नारीं प्रदीपं मणिमुत्तमम्। मुक्तां प्रसूनमालां च सद्योमांसं च चन्दनम् ॥२५॥
ददर्शैतानि वस्तूनि मङ्गलानि पुरो मुने। शृगालं नकुलं कुम्भं शवं वामे शुभावहम् ॥२६॥
राजहंसं मयूरं च खञ्जनं च शकं पिकम्। पारावतं शङ्खचिल्लं चक्रवाकं च मङ्गलम् ॥२७॥
कृष्णसारं च सुरभिं चमरीं श्वेतचामरम्। धेनुं च वत्ससंयुक्तां पताकां दक्षिणे शुभाम् ॥२८॥
नानाप्रकारवाद्यं चाप्यश्रौषीन्मङ्गलध्वनिम् । [1]मनोहरं च संगीतं घण्टाशङ्खध्वनिं तथा ॥२९॥
दृष्ट्वा श्रुत्वा मङ्गलं स ह्यागमत्तातमन्दिरम् । क्षणेनाऽऽनन्दयुक्तश्च मनोयायिरथेन च ॥३०॥
कुमारः प्राप्य कैलासं न्यग्रोधाक्षयमूलके। क्षणं तस्थौ कृत्तिकाभिः पार्षदप्रवरैः सह ॥३१॥
पार्वती मङ्गलं कृत्वा राजमार्गं मनोहरम्। पद्मरागैरिन्द्रनीलैः संस्कृतं परितः पुरम् ॥३२॥
रम्भास्तम्भसमूहैश्च पट्टसूत्रांशुकैस्तथा। श्रीखण्डपल्लवैर्युक्तं पूर्णकुम्भैः सुशोभितम् ॥३३॥
पूर्णकुम्भजलैर्व्याप्तं सिक्तं चन्दनवारिभिः । असंख्यरत्नदीपैश्च मणिराजैर्विराजितम् ॥३४॥
नटनर्तकवेश्यानामुत्सवैः संकुलं सदा। वन्दिभिर्विप्रवर्गैश्च दूर्वापुष्पकरैर्युतम् ॥३५॥
पतिपुत्रवतीभिश्च साध्वीभिश्च समन्वितम् । लक्ष्मीं सरस्वतीं गङ्गां सावित्रीं तुलसीं रतिम् ॥३६॥

(जल) पूर्ण कलश, ब्राह्मण, वेश्या, शुक्ल धान्य (चावल), दर्पण, दही, घी, मधु, लावा, पुष्प, दूर्वा, श्वेत अक्षत, बैल, गजराज, अश्व, प्रज्वलित अग्नि, सुवर्ण, पूरे पके अनेक प्रकार के फल, पतिपुत्रवती स्त्री, प्रदीप, उत्तम मणि, मोती, पुष्पमाला, तुरन्त का (ताजा) मांस और चन्दन इन मांगलिक वस्तुओं को सामने देखा। इसी प्रकार स्यार (गीदड़), नेवला, घड़ा और शव को वाम भाग में देखा, जो शुभ होता है ॥२३-२६॥ राजहंस, मोर, खञ्जन पक्षी, तोता, कोकिल, कबूतर, शंख, गीध, चकवा, कृष्णसार (मृग), सुरभी और चंवरी गौ, श्वेतचामर, वत्स समेत धेनु एवं पताका को दाहिनी ओर देखा ॥२७-२८॥ मंगल ध्वनि करने वाले अनेक प्रकार के वाद्य, मनोर संगीत, तथा घंटा और शंख की ध्वनि सुनकर एवं मंगल का दर्शन करने के उपरान्त कुमार आनन्द युक्त होते हुए मनोवेग रथ द्वारा अपने पिता के भवन को चले ॥२९-३०॥ कैलाश पर पहुँचकर कृत्तिकाओं और उत्तम पार्षदों के साथ रथ से उतरे और क्षणभर अक्षयवट के नीचे ठहरे ॥३१॥ पार्वती ने मंगल करके मनोहर राजमार्ग को पद्मराग मणि, इन्द्रनीलमणि से चारों ओर से संस्कृत, अनेक कदलीस्तम्भों, रेशमी वस्त्रों और श्रीखण्ड के पल्लवों से युक्त पूर्ण कलशों से सुशोभित और जलपूर्ण कलशों से व्याप्त, चन्दन मिश्रित जल से सिक्त तथा मणिराजों एवं असंख्य दीपकों से विराजमान किया। नगर नटों, नर्तकों तथा वेश्याओं के उत्सवों से व्याप्त हो गया। वहाँ हाथों में दूब तथा फूल लिए बन्दियों एवं ब्राह्मणों का वर्ग, पतिपुत्रवती नारियाँ एवं पतिव्रतायें थीं। तब पार्वती लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, सावित्री, तुलसी, रति, अरुन्धती,

---

१ क. हरिशब्दस्य सं०।

अरुन्धतीमहल्यां च दितिं तारां मनोरमाम्। अदितिं शतरूपां च शचीं संध्यां च रोहिणीम् ॥३७॥
अनसूयां तथा स्वाहां संज्ञां वरुणकामिनीम्। आकूतिं च प्रसूतिं च देवहूतिं च मेनकाम् ॥३८॥
तामेकपाटलामेकपर्णां मैनाककामिनीम्। वसुंधरां च मनसां पुरस्कृत्य समाययौ ॥३९॥
रम्भा तिलोतमा मेना घृताची मोहिनी शुभा। उर्वशी रत्नमाला च सुशीला ललिता कला ॥४०॥
कदम्बमाला सुरसा वनमाला च सुन्दरी। एताश्चान्याश्च बह्वो विप्रेन्द्राप्सरसां गणाः ॥४१॥
संगीतनर्तनपराः सस्मिता वेषसंयुताः। करतालकराः सर्वा जग्मुरानन्दपूर्वकम् ॥४२॥
देवाश्च मुनयः शैला गन्धर्वाः किन्नरास्तथा। सर्वे ययुः प्रमुदिताः कुमारस्यानुमज्जने ॥४३॥
नानाप्रकारवाद्यैश्च रुद्रैर्वा पार्षदैः सह। भैरवैः क्षेत्रपालैश्च ययौ सार्धं महेश्वरः ॥४४॥
अथ शक्तिधरो हृष्टो दृष्ट्वाऽऽरात्पार्वतीं तदा। अवरुह्य रथात्तूर्णं शिरसा प्रणनाम ह ॥४५॥
तं पद्मप्रमुखं देवीगणं च मुनिकामिनीः। शिवं च परया भक्त्या सर्वान्संभाष्य यत्नतः ॥४६॥
कार्तिकेयं शिवा दृष्ट्वा क्रोडे कृत्वा चुचुम्ब च। शंकरश्च सुराः शैला देव्यो वै शैलयोषितः ॥४७॥
पार्वतीप्रमुखा देव्यस्तथा देवश्च शंकरः। शैलाश्च मुनयः सर्वे ददुस्तस्मै शुभाशिषः ॥४८॥
कुमारः सगणैः सार्धमागत्य च शिवालयम्। ददर्श तं सभामध्ये विष्णुं क्षीरोदशायिनम् ॥४९॥
रत्नसिंहासनस्थं च रत्नभूषणभूषितम्। धर्मब्रह्मेन्द्रचन्द्रार्कवह्निवाय्वादिभिर्युतम् ॥५०॥

अहल्या, दिति, सुन्दरी तारा, अदिति, शतरूपा, इन्द्राणी, सन्ध्या, रोहिणी, अनसूया, स्वाहा, संज्ञा, वरुण-स्त्री, आकूति, प्रसूति, देवहूति, मेनका, मैनाक की एक पाटला एवं एकपर्णा स्त्री, वसुन्धरा और मनसा को आगे करके वहाँ आयीं ॥३२-३९॥ हे विप्रेन्द्र ! रम्भा, तिलोत्तमा, मेना, घृताची, शुभमूर्ति मोहिनी, उर्वशी, रत्नमाला, सुशीला, ललिता, कला, कदम्बमाला, सुरसा और सुन्दरी वनमाला तथा अन्य अनेक अप्सराओं के समूह उत्तम वेष बनाए मन्दहास करते हुए नृत्यगान कर रहे थे। सभी लोग हाथ में करताल लिए गाते-बजाते आनन्द पूर्वक जा रहे थे ॥४०-४२॥ सभी देवगण, मुनिवृन्द, पर्वतगण, गन्धर्वसमूह, किन्नरगण अति हर्षित होकर कुमार की अगवानी के लिए जा रहे थे ॥४३॥ विभिन्न प्रकार के वाद्य समेत रुद्रगण, पार्षद, भैरवगण एवं क्षेत्रपालों को साथ लिए शिव जी भी चल पड़े ॥४४॥

अनन्तर शक्तिधर कुमार पार्वती को अपने समीप देखकर अति हर्षित हुए और रथ से शीघ्र उतरकर उन्हें शिर से प्रणाम किया तथा पद्मा (लक्ष्मी) आदि देवियों, मुनि की पत्नियों एवं शिव को पराभक्ति से प्रणाम करके संभाषण किया ॥४५-४६॥ पार्वती ने कार्तिकेय को देखकर उन्हें गोद में ले लिया और स्नेहवश उनका चुम्बन करने लगीं। उस समय शंकर, देवगण, पर्वतगण, देवियों, पर्वतपत्नियों पार्वती प्रमुख देवी-वृन्द, देव, शैलगण एवं मुनियों ने कुमार को शुभाशीर्वाद दिया ॥४७-४८॥ पश्चात् गणोंके साथ कुमार शिवालय में आये और सभा के मध्य क्षीरसागरशायी भगवान् विष्णु को उन्होंने देखा, जो रत्नसिंहासन पर सुखासीन, रत्नों के भूषणों से भूषित, धर्म, ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, अग्नि, वायु आदि से आवृत, मुसकराते हुए,

ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम्[1] । स्तुतं मुनीन्द्रैर्देवेन्द्रैः सेवितं श्वेतचामरैः ॥५१॥
तं दृष्ट्वा जगतां नाथं भक्तिनम्रात्मकंधरः। पुलकान्वितसर्वाङ्गः शिरसा प्रणनाम ह ॥५२॥
विधिं धर्मं च देवांश्च मुनीन्द्रांश्च मुदाऽन्वितान्। प्रणनाम पृथक्तत्र प्राप तेभ्यः शुभाशिषः ॥५३॥
पृथक्संभाष्य सर्वांश्चाप्युवास कनकासने । ददौ धनानि विप्रेभ्यः पार्वत्या सह शंकरः ॥५४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारना० कार्तिकेयागमनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

सप्तदशोऽध्यायः

नारायण उवाच

अथ विष्णुर्जगत्कान्तो हृष्टः कृत्वा शुभेक्षणम्। रत्नसिंहासने रम्ये वासयामास षण्मुखम् ॥१॥
नानाविधानि वाद्यानि कांस्यतालादिकानि च। नानाविधानि यन्त्राणि वादयामास कौतुकात् ॥२॥
वेदमन्त्राभिषिक्तैश्च सर्वतीर्थोदपूर्णकैः । सद्रत्नकुम्भशतकैः स्नापयामास तं मुदा ॥३॥
सद्रत्नसारखचितं किरीटं मङ्गलाङ्गदे। अमूल्यरत्नखचितभूषणानि बहूनि च ॥४॥
वह्निशुद्धांशुके दिव्ये क्षीरोदार्णवसंभवम्। कौस्तुभं वनमालां च तस्मै चक्रं ददौ मुदा ॥५॥

प्रसन्नमुख, भक्तों पर कृपा करने वाले, मुनिश्रेष्ठों और देवेन्द्रों से स्तुत तथा श्वेत चामरों से सुशोभित थे ॥४९-५१॥ जगत् के स्वामी भगवान् विष्णु को देखकर कुमार ने भक्ति से अपना कन्धा झुका लिया और समस्त शरीर में पुलयकायमान होकर उन्हें शिर से प्रणाम किया ॥५२॥ पश्चात् ब्रह्मा, धर्म, देवों और मुनियों को प्रणाम किया और उनसे पृथक्-पृथक् शुभाशीर्वाद प्राप्त किया ॥५३॥ तथा सभी लोगों से पृथक्-पृथक् बात-चीत करके सुवर्ण के सिंहासन पर विराजमान हुए। और शिव-पार्वती ने ब्राह्मणों को धन प्रदान किया ॥५४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में कार्तिकेय-आगमन नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥१६॥

अध्याय १७

कार्तिकेय का सेनापति के पद पर अभिषेक

नारायण बोले—जगत्पति भगवान् विष्णु ने हर्षित होकर शुभ मुहूर्त में छह मुख वाले कार्तिकेय को उत्तम रत्नसिंहासन पर सुखासीन किया ॥१॥ कौतुक वश विभिन्न प्रकार के कांस्यताल आदि वाद्य और अनेक प्रकार के यन्त्र वाद्य बजवाना प्रारम्भ किया ॥२॥ वेदमंत्रों के उच्चारण पूर्वक समस्त तीर्थों के जल भरे उत्तम रत्नों के सैकड़ों कलशों से हर्षपूर्वक उनका अभिषेक (स्नान) कराया ॥३॥ उत्तम रत्नों के सारभाग से खचित किरीट, मंगलमय केयूर और अमूल्य रत्नों के अनेक भूषण, अग्निविशुद्ध दो दिव्य वस्त्र, क्षीरसागर से उत्पन्न कौस्तुभमणि,

---

१ क. ०हविग्रहम् ।

ब्रह्मा ददौ यज्ञसूत्रं वेदा वै वेदमातरम्। संध्यामन्त्रं कृष्णमन्त्रं स्तोत्रं च कवचं हरेः॥६॥
कमण्डलुं च ब्रह्मास्त्रं विद्यां वै वैरिमर्दिनीम्। धर्मो धर्ममतिं दिव्यां सर्वजीवे दयां ददौ॥७॥
परं मृत्युंजयं ज्ञानं सर्वशास्त्रावबोधनम्। शश्वत्सुखप्रदं तत्त्वज्ञानं च सुमनोहरम्॥८॥
योगतत्त्वं सिद्धितत्त्वं ब्रह्मज्ञानं सुदुर्लभम्। शूलं पिनाकं परशुं शक्तिं पाशुपतं धनुः॥९॥
संहारास्त्रविनिक्षेपं तत्संहारं ददौ शिवः। श्वेतच्छत्रं रत्नमालां ददौ तस्मै जलेश्वरः॥१०॥
गजेन्द्रं च हयेन्द्रं च सुधाकुम्भं सुधानिधिः। मनोयायिरथं सूर्यः संनाहं च मनोरमम्॥११॥
यमदण्डं यमश्चैव महाशक्तिं हुताशनः। नानाशस्त्राण्युपायानि सर्वे देवा ददुर्मुदा॥१२॥
कामशास्त्रं कामदेवो ददौ तस्मै मुदाऽन्वितः। क्षीरोदोऽमूल्यरत्नानि विशिष्टे रत्ननूपुरे॥१३॥
सावित्री सिद्धिविद्यां च सर्वास्ताः कौतुकाद्ददुः। हिमालयो मयूरं च वाहनार्थं च मूकुटम्॥१४॥
लक्ष्मीश्च परमैश्वर्यं भारती हारमुत्तमम्। पार्वती सस्मिता हृष्टा परमानन्दमानसा॥१५॥
महाविद्यां सुशीलां च विद्यां मेधां दयां स्मृतिम्। बुद्धिं सुनिर्मलां शान्तिं तुष्टिं पुष्टिं क्षमां धृतिम्॥१६॥
सुदृढां च हरौ भक्तिं हरिदास्यं ददौ मुदा। प्रजापतिर्देवसेनां रत्नभूषणभूषिताम्॥१७॥
सुविनीतां सुशीलां च सुन्दरीं सुमनोहराम्। ददौ तस्मै वेदमन्त्रैर्विवाहविधिना स्वयम्॥१८॥
यां वदन्ति महाषष्ठीं पण्डिताः शिशुपालिकाम्। अभिषिच्य कुमारं च सर्वे देवा ययुर्गृहम्॥१९॥

वनमाला और चक्र प्रदान किये ॥४-५॥ ब्रह्मा ने यज्ञोपवीत, वेदों ने वेदमाता गायत्री, सन्ध्यामन्त्र, कृष्णमन्त्र, भगवान् का स्तोत्र, कवच, कमण्डलु, ब्रह्मास्त्र तथा वैरिनाशिनी विद्या, एवं धर्म ने दिव्य धर्मबुद्धि और समस्त जीवों के हितार्थ दया प्रदान की ॥६-७॥ शिव ने उत्तम मृत्युञ्जय ज्ञान, सम्पूर्ण शास्त्रों का ज्ञान, निरन्तर सुखप्रद एवं मनोहर तत्त्वज्ञान, योगतत्त्व, सिद्धितत्त्व, अति दुर्लभ ब्रह्मज्ञान, शूल, पिनाक (धनुष), परशु (फरसा) शक्ति, पाशुपत धनुष, संहार अस्त्र का चलाना और उसका संहार करना, जलाधीश वरुण ने श्वेतच्छत्र और रत्न की माला, गजराज और उत्तम अश्व दिये। सुधानिधि चन्द्रमा ने अमृत-कलश, सूर्य ने मन की भाँति चलने वाला रथ और मनोरम सन्नाह (कवच). यम ने यमदण्ड, अग्नि ने महाशक्ति तथा देवों ने अनेक भाँति के शस्त्र उपहार प्रदान किये ॥८-१२॥ कामदेव ने प्रसन्न होकर कामशास्त्र, तथा क्षीरसागर ने अमूल्य रत्न समेत विशिष्ट रत्नों के नूपुर अर्पित किये ॥१३॥ सवित्री ने सिद्धिविद्या और अन्य देवियों ने कौतुकवश सभी विद्यायें दीं। हिमालय ने सवारी के लिये मयूर तथा मुकुट दिये। लक्ष्मी ने परम ऐश्वर्य और सरस्वती ने उत्तम हार दिया। पार्वती ने हर्षित होकर मन्द मुसुकान करती हुई परमानन्दभाव से महाविद्या, सुशीला, विद्या, मेधा, दया, स्मृति, अतिनिर्मल बुद्धि, शान्ति, तुष्टि, पुष्टि, क्षमा, धृति तथा हरिदास्य समेत भगवान् की सुदृढ़ भक्ति दी। प्रजापति ने रत्नों के भूषणों से भूषित, अति विनीत, सुशील एवं अति मनोहारिणी सुन्दरी देवसेना को वेदमन्त्रों के उच्चारण और विवाह विधि से उन्हें स्वयं प्रदान किया, जिसे पण्डितगण बच्चों को पालने वाली महाषष्ठी कहते हैं। इस प्रकार कुमार का अभिषेक करके सभी देवों ने अपने-अपने गृहों को प्रस्थान किया ॥१४-१९॥

मुनयश्चैव गन्धर्वाः प्रणम्य जगदीश्वरान् । नारायणं च ब्रह्माणं धर्मं तुष्टाव शंकरः ॥२०॥
प्रणनाम हरिं तात धर्ममालिङ्‌ग्य नारद । प्रीत्या ययौ च शैलेन्द्रः सगणः शंकरार्चितः ॥२१॥
ये ये तत्राऽऽगताः सर्वे ययुरानन्दपूर्वकम् । परमानन्दसंयुक्तो देव्या सह महेश्वरः ॥२२॥
कालान्तरे च तान्सर्वान्पुनरानीय शंकरः । पुष्टिं ददौ विवाहेन गणेशाय महात्मने ॥२३॥
सुताभ्यां सगणैः सार्धं पार्वती हृष्टमानसा । सिषेवे स्वामिनः पादपद्मं सा सर्वकामदम् ॥२४॥
इत्येवं कथितं सर्वं कुमारस्याभिषेचनम् । विवाहः पूजनं तस्य गणेशस्य विवाहकम् ॥२५॥
पार्वतीपुत्रलाभश्च देवानां च समागमः । का ते मनसि वाञ्छाऽस्ति किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥२६॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० कुमारगणेशविवाहकुमाराभिषेककथनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अष्टादशोऽध्यायः

नारद उवाच

नारायण महाभाग वेदवेदाङ्गपारग । पृच्छामि त्वामहं किंचिदतिसंदेहवान्यतः ॥१॥
सुतस्य त्रिदशेशस्य शंकरस्य महात्मनः । विघ्ननिघ्नस्य यद्विघ्नमीश्वरस्य कथं प्रभो ॥२॥
परिपूर्णतमः श्रीमान्परमात्मा परात्परः । गोलोकनाथः स्वांशेन पार्वतीतनयः स्वयम् ॥३॥

हे तात नारद, शंकर ने नारायण, ब्रह्मा और धर्म की स्तुति तथा धर्म का आलिंगन करके भगवान् को प्रणाम किया। अनन्तर शंकर से सम्मानित होकर शैलराज हिमालय अपने गणों समेत सप्रेम चले गये। इस प्रकार जो लोग जहाँ से आये थे, आनन्द पूर्वक वहाँ चले गये। पार्वती समेत शिव भी परमानन्दमग्न हुए। कुछ काल के उपरान्त शिव ने पुनः उन लोगों को निमन्त्रित कर सबके समक्ष महात्मा गणेश का पुष्टि के साथ विवाह संस्कार सम्पन्न कराकर वह उन्हें सौंप दी ॥२०-२३॥ तदनन्तर पार्वती अपने दोनों पुत्रों और गणों समेत अति प्रसन्न मन से स्वामी शंकर के चरणकमल की सेवा करने लगीं, जो समस्त कामनाओं का दायक है ॥२४॥ इस भाँति मैंने कुमार का अभिषेक, विवाह एवं पूजन और गणेश का विवाह पार्वती का पुत्र-लाभ और देवों का समागम तुम्हें बता दिया। अब तुम्हारे मन में क्या इच्छा है और पुनः क्या सुनना चाहते हो ॥२५-२६॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में कुमार-गणेश-विवाह और कुमार का अभिषेक कथन नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥१७॥

अध्याय १८

शिव को कश्यप का शाप

नारद बोले—हे नारायण! हे महाभाग! हे वेद-वेदांगों के पारगामी विद्वान्! मैं आप से कुछ पूछना चाहता हूँ क्योंकि मुझे सन्देह हो गया है ॥१॥ हे प्रभो! देवाधीश्वर भगवान् शंकर के पुत्र विघ्ननाशक (गणेश) को विघ्न कैसे हुआ, वे तो ईश्वर हैं और परिपूर्णतम श्रीमान् भगवान् श्रीकृष्ण, जो परमात्मा, परात्पर और गोलोक के नाथ हैं, अपने अंश से स्वयं पार्वती के पुत्र हुए हैं ॥२-३॥ हे विभो! यह आश्चर्य है कि ग्रह की

अहो भगवतस्तस्य मस्तकच्छेदनं विभो। ग्रहदृष्ट्या ग्रहेशस्य कथं मे वक्तुमर्हसि ॥४॥

नारायण उवाच

सावधानं शृणु ब्रह्मन्नितिहासं पुरातनम्। विघ्नेशस्य बभूवेदं विघ्नं येन च नारद ॥५॥
एकदा शंकरः सूर्यं जघान परमक्रुधा। सुमालिमालिहन्तारं शूलेन भक्तवत्सलः ॥६॥
श्रीसूर्योऽमोघशूलेनाशनितुल्येन तेजसा। जहौ स चेतनां सद्यो रथाच्च निपपात ह ॥७॥
ददर्श कश्यपः पुत्रं मृतमुत्तानलोचनम्। कृत्वा वक्षसि तं शोकाद्विललाप भृशं मुहुः ॥८॥
हाहाकारं सुराश्चक्रुर्विलेपुर्भयकातराः। अन्धीभूतं जगत्सर्वं बभूव तमसाऽऽवृतम् ॥९॥
निष्प्रभं तनयं दृष्ट्वा चाशपत्कश्यपः शिवम्। तपस्वी ब्रह्मणः पौत्रः प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा ॥१०॥
मत्पुत्रस्य यथा वक्षश्छिन्नं शूलेन तेऽद्य वै। त्वत्पुत्रस्य शिरश्छिन्नं भविष्यति न संशयः ॥११॥
शिवश्च गलितक्रोधः क्षणेनैवाऽऽशुतोषकः। ब्रह्मज्ञानेन तं सूर्यं जीवयामास तत्क्षणात् ॥१२॥
ब्रह्मविष्णुमहेशानामंशश्च त्रिगुणात्मकः। सूर्यश्च चेतनां प्राप्य समुत्तस्थौ पितुः पुरः ॥१३॥
ननाम पितरं भक्त्या शंकरं भक्तवत्सलम्। विज्ञाय शंभोः शापं च कश्यपं स चुकोप ह ॥१४॥
विषयान्नैव जग्राह कोपेनैवमुवाच ह। विषयांश्च परित्यज्य भजे श्रीकृष्णमीश्वरम् ॥१५॥
सर्वं तुच्छमनित्यं च नश्वरं चेश्वरं विना। विहाय मङ्गलं सत्यं विद्वान्नेच्छेदमङ्गलम् ॥१६॥

दृष्टि (देखने) से ग्रहाधीश्वर भगवान् का भी मस्तकच्छेद हो जाये, यह कैसे हुआ? मुझे बताने की कृपा करें ॥४॥

नारायण बोले—हे ब्रह्मन्! हे नारद! मैं तुम्हें यह पुराना इतिहास बता रहा हूँ कि विघ्नेश्वर (गणेश) को विघ्न कैसे हुआ, सावधान होकर सुनो ॥५॥

एक बार शिव ने परम क्रोध के कारण त्रिशूल से सूर्य को मार डाला, जो सुमाली और माली राक्षसों को मार रहे थे ॥६॥ वज्र के समान तेजस्वी एवं अमोघ (अव्यर्थ) उस शूल के प्रहार से मूर्च्छित होकर सूर्यदेव चेतनाहीन हो गये और रथ से गिर पड़े ॥७॥ अनन्तर कश्यप ने अपने पुत्र (सूर्य) को, जो ऊपर आँख किये मृतक हो गये थे, देखकर अपनी गोद में उठा लिया और शोक से बार-बार विलाप करने लगे ॥८॥ देवों ने हाहाकार किया तथा भयभीत होकर विलाप भी किया। उस समय सारा जगत् तिमिराच्छन्न होने के नाते अन्धकारमय हो गया था ॥९॥ तपस्वी ब्रह्मा के पौत्र और ब्रह्मतेज से प्रदीप्त—कश्यप ने अपने पुत्र को प्रभाहीन देखकर शिव को शाप दिया कि आज तुमने शूल द्वारा जिस प्रकार मेरे पुत्र का वक्षःस्थल छिन्न-भिन्न किया है, ऐसे ही तुम्हारे पुत्र का भी शिर छिन्न-भिन्न हो जायगा, इसमें संशय नहीं ॥१०-११॥ क्षणमात्र में क्रोध निकल जाने पर आशुतोष भगवान् शिव प्रसन्न हो गये और ब्रह्मज्ञान द्वारा उसी समय सूर्य को जीवित कर दिया ॥१२॥ ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर के अंशभूत सूर्य, जो त्रिगुण स्वरूप हैं, चेतना प्राप्त होने पर पिता के सामने उठ कर बैठ गये ॥१३॥ सूर्य ने पिता और भक्तवत्सल शंकर को भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और शिव का शाप जानकर अपने पिता पर क्रोध प्रकट किया ॥१४॥ विषयों का ग्रहण नहीं किया और क्रोध से इस प्रकार कहा कि मैं विषयों को त्यागकर भगवान् श्रीकृष्ण का भजन करूँगा क्योंकि बिना ईश्वर के सब कुछ तुच्छ, अनित्य और नश्वर है। विद्वान् लोग मंगल सत्य का त्याग कर अमंगल नहीं चाहते ॥१५-१६॥

देवैश्च प्रेरितो ब्रह्मा समागत्य ससंभ्रमः । बोधयित्वा रविं तत्र युयोज विषयेष्वजः ।।१७।।
तस्मै दत्वाऽऽशिषः शंभुर्ब्रह्मा च स्वालयं मुदा । जगाम कश्यपश्चैव स्वराशिं रविरेव च ।।१८।।
अथ माली सुमाली च व्याधिग्रस्तौ बभूवतुः । श्वित्रौ गलितसर्वाङ्गौ शक्तिहीनौ हतप्रभौ ।।१९।।
तावुवाच स्वयं ब्रह्मा युवां च भजतां रविम् । सूर्यकोपेन गलितौ युवामेवं हतप्रभौ ।।२०।।
सूर्यस्य कवचं स्तोत्रं सर्वं पूजाविधिं विधिः । जगाम कथयित्वा तौ ब्रह्मलोकं सनातनः ।।२१।।
ततस्तौ पुष्करं गत्वा सिषेवाते रविं मुने । स्नात्वा त्रिकालं भक्त्या च जपन्तौ मन्त्रमुत्तमम् ।।२२।।
ततः सूर्याद्वरं प्राप्य निजरूपौ बभूवतुः । इत्येवं कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।।२३।।

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० विघ्नेशविघ्नकथनं नामाष्टादशोऽध्यायः ।।१८।।

एकोनविंशोऽध्यायः

नारद उवाच

किं स्तोत्रं कवचं नाथ ब्रह्मणा लोकसाक्षिणा । दानवाभ्यां पुरा दत्तं सूर्यस्य परमात्मनः ।।१।।
किं वा पूजाविधानं वा कं मन्त्रं व्याधिनाशनम् । सर्वं चास्य महाभाग तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि ।।२।।

इसी बीच देवों से प्रेरित होकर ब्रह्मा सहसा वहाँ आ गये और सूर्य को भलोभाँति उद्‌बुद्ध करके उन्हें पुनः विषयों में संलग्न किया ।।१७।। पश्चात् शम्भु और ब्रह्मा सूर्य को शुभाशीर्वाद प्रदान कर अपने-अपने लोक में चले गये, कश्यप भी चले गये और सूर्य ने भी अपनी राशि पर प्रस्थान किया ।।१८।। अनन्तर माली, सुमाली दोनों व्याधिपीड़ित हुए। उनको श्वेतकुष्ठ तथा सर्वांग में गलित कुष्ठ हो गया तथा वे शक्तिहीन होकर कान्तिहीन हो गये ।।१९।। उन्हें ब्रह्मा ने स्वयं कहा—'तुम दोनों सूर्य की आराधना करो, सूर्य के कोप के कारण तुम दोनों गलित तथा हतप्रभ हुए हो ।।२०।। पश्चात् सनातन ब्रह्मा ने सूर्य का कवच, स्तोत्र एवं पूजा विधान उन्हें बताकर अपने लोक को प्रस्थान किया और वे दोनों पुष्कर जाकर तीनों काल स्नान और भक्तिपूर्वक उत्तम मंत्र के जप के द्वारा सूर्य की आराधना करने लगे। अनन्तर सूर्य से वरदान प्राप्त कर उन दोनों ने पुनः अपना रूप प्राप्त किया। इस भाँति मैंने सब कुछ सुना दिया है और अब क्या सुनना चाहते हो ।।२१-२३।।

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण-संवाद में विघ्नेश का विघ्न-कथन नामक अट्ठारहवाँ अध्याय समाप्त ।।१८।।

अध्याय १९

सूर्य का पूजन और स्तोत्र

नारद बोले—हे नाथ ! पूर्वकाल में लोकसाक्षी ब्रह्मा ने दोनों दानवों को परमात्मा सूर्य का कौन स्तोत्र एवं कवच प्रदान किया था ।।१।। हे महाभाग ! उनके पूजा का विधान क्या है, रोगनाशक मंत्र कौन है, यह सब कुछ मुझे बताने की कृपा करें ।।२।।

सूत उवाच

नारदस्य वचः श्रुत्वा भगवान्करुणानिधिः । स्तोत्रं च कवचं मन्त्रमूचे तत्पूजनक्रमम् ।।३।।

नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि सूर्यपूजाविधेः क्रमम् । स्तोत्रं च कवचं सर्वं पापव्याधिविमोचकम् ।।४।।
सुमालिमालिनौ दैत्यौ व्याधिग्रस्तौ बभूवतुः । विधिं सस्मरतुः स्तोतुं शिवमन्त्रप्रदायकम् ।।५।।
ब्रह्मा गत्वा च वैकुण्ठं पप्रच्छ कमलापतिम् । शिवं तत्रैव संपश्यन्वसन्तं हरिसंनिधौ ।।६।।

ब्रह्मोवाच

सुमालिमालिनौ दैत्यौ व्याधिग्रस्तौ बभूवतुः । क उपायो वद हरे तयोर्व्याधिविनाशने ।।७।।

विष्णुरुवाच

कृत्वा सूर्यस्य सेवां च पुष्करे पूर्णवत्सरम् । व्याधिहन्तुर्मदंशस्य तौ च मुक्तौ भविष्यतः ।।८।।

शंकर उवाच

सूर्यस्तोत्रं च कवचं मन्त्रं कल्पतरुं परम् । देहि ताभ्यां जगत्कान्त व्याधिहन्तुर्महात्मनः ।।९।।
आवां संपत्प्रदातारौ सर्वदाता हरिः स्वयम् । व्याधिहन्ता दिनकरो यस्य यो विषयो विधे ।।१०।।

सूत बोले—करुणानिधान भगवान् ने नारद की बातें सुनकर सूर्य का स्तोत्र, कवच, मन्त्र और उनकी पूजा का क्रम बताना आरम्भ किया।।३।।

नारायण बोले—हे नारद ! मैं तुम्हें सूर्य की पूजा का विधान, स्तोत्र और समस्त पापों से मुक्त करने वाला कवच बता रहा हूँ, सुनो।।४।।

जब सुमाली और माली नामक दैत्य रोग-पीड़ित हो गये तब उन लोगों ने स्तुति करने के हेतु शिवमन्त्र-प्रदाता ब्रह्मा का स्मरण किया।।५।। अनन्तर ब्रह्मा ने वैकुण्ठ जाकर, वहीं विष्णु के समीप उपस्थित शिव को देखते हुए, कमलापति विष्णु से पूछा।।६।।

ब्रह्मा बोले—हे हरे ! सुमाली और माली नामक दैत्य व्याधि-पीड़ित हो गये हैं, उनके रोगमुक्त होने के लिए कोई उपाय बताने की कृपा करें।।७।।

विष्णु बोले—पुष्कर क्षेत्र में पूरे वर्ष तक सूर्य की, जो मेरे अंश से उत्पन्न एवं व्याधिनाशक हैं, सेवा करने से वे रोगमुक्त हो जायँगे।।८।।

शंकर बोले—हे जगत्कान्त ! व्याधिनाश करने वाले महात्मा सूर्य का स्तोत्र, कवच और कल्पतरु जैसा श्रेष्ठ मन्त्र उन्हें प्रदान करने की कृपा करें।।९।। हे विधे ! हम दोनों केवल सम्पत्ति प्रदान करते हैं किन्तु सब कुछ प्रदान करने वाले स्वयं हरि हैं और व्याधि का नाश केवल सूर्य करते हैं क्योंकि जिसका जो विषय है, उसे वह सम्पन्न करता

तयोरनुमतिं प्राप्य ययौ दैत्यगृहं विधिः । तदा प्रणम्य तं दृष्ट्वा तस्मै ददतुरासनम् ॥११॥
तावुवाच स्वयं ब्रह्मा रोगग्रस्तौ दयानिधिः । स्तब्धावाहाररहितौ पूयदुर्गन्धसंयुतौ ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

गृहीत्वा कवचं स्तोत्रं मन्त्रं पूजाविधिक्रमम् । गत्वा हि पुष्करं वत्सौ भजथः प्रणतौ रविम् ॥१३॥

तावूचतुः

भजावः केन विधिना केन मन्त्रेण वा विधे । किं स्तोत्रं कवचं किं वा तदावाभ्यां वदाधुना ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

कृत्वा त्रिकालं स्नानं च मन्त्रेणानेन भास्करम् । संसेव्य भास्करं भक्त्या नीरुजौ च भविष्यथः ॥१५॥
ॐ ह्रीं नमो भगवते सूर्याय परमात्मने । स्वाहेत्यनेन मन्त्रेण सावधानं दिवाकरम् ॥१६॥
संपूज्य दत्त्वा भक्त्या वै चोपहारांस्तु षोडश । एवं संवत्सरं यावद्ध्रुवं मुक्तौ भविष्यथः ॥१७॥
अपूर्वं कवचं तस्य युवाभ्यां प्रददाम्यहम् । यद्दत्तं गुरुणा पूर्वमिन्द्राय प्रीतिपूर्वकम् ॥१८॥
तत्सहस्रभगाङ्गाय शापेन गौतमस्य च । अहल्याहरणेनैव पापयुक्ताय संकटे ॥१९॥

है॥१०॥ अनन्तर उन दोनों की अनुमति प्राप्त कर ब्रह्मा दैत्यों के घर गये और दैत्यों ने उन्हें देखते ही प्रणाम कर आसन प्रदान किया॥११॥ दयानिधि ब्रह्मा ने स्वयं उन रोग-पीड़ितों से, जो स्तब्ध, आहार-रहित और पीब की दुर्गन्ध से युक्त थे, कहा॥१२॥

ब्रह्मा बोले—हे वत्स! यह कवच, स्तोत्र, मंत्र और पूजाविधान का क्रम ग्रहण कर तुम लोग पुष्कर क्षेत्र चले जाओ और वहाँ सूर्य का नमस्कार पूर्वक भजन करो॥१३॥

वे दोनों बोले—हे विधे! किस विधान और किस मंत्र द्वारा हम उनकी सेवा करेंगे और उनका स्तोत्र क्या है? कवच क्या है? सम्प्रति बताने की कृपा करें॥१४॥

ब्रह्मा बोले—वहाँ जाकर तीनों काल में स्नान करके इस मंत्र द्वारा भक्तिपूर्वक भास्कर की सेवा करने से तुम रोगमुक्त हो जाओगे॥१५॥ 'ओं ह्रीं भगवते सूर्याय परमात्मने स्वाहा' इस मंत्र से सावधान होकर भक्तिपूर्वक दिवाकर का षोडशोपचार पूजन करो। इस भाँति पूरे वर्ष तक उनकी सेवा करने से निश्चित ही रोगमुक्त हो जाओगे॥१६-१७॥ मैं तुम्हें उनका अपूर्व कवच प्रदान कर रहा हूँ, जिसे पूर्व काल में बृहस्पति ने बड़े प्रेम से इन्द्र को प्रदान किया था॥१८॥ जिस समय गौतम के शाप द्वारा इन्द्र के सहस्र भग हो गये थे और जो (इन्द्र) अहल्या के अपहरण द्वारा पापयुक्त एवं संकटग्रस्त हो गये थे, उनसे बृहस्पति ने कहा॥१९॥

बृहस्पतिरुवाच

इन्द्र शृणु प्रवक्ष्यामि कवचं परमाद्‍भुतम्। यद्‍धृत्वा मुनयः पूता जीवन्मुक्ताश्च भारते ॥२०॥
कवचं बिभ्रतो व्याधिर्न भियाऽऽयाति संनिधिम्। यथा दृष्ट्वा वैनतेयं पलायन्ते भुजंगमाः ॥२१॥
शुद्धाय गुरुभक्ताय स्वशिष्याय प्रकाशयेत्। खलाय परशिष्याय दत्त्वा मृत्युमवाप्नुयात् ॥२२॥
जगद्विलक्षणस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः। ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवो दिनकरः स्वयम् ॥२३॥
व्याधिप्रणाशे सौन्दर्ये विनियोगः प्रकीर्तितः। सद्यो रोगहरं सारं सर्वपापप्रणाशनम् ॥२४॥
ॐ क्लीं ह्रीं श्रीं श्रीसूर्याय स्वाहा मे पातु मस्तकम्। अष्टादशाक्षरो मन्त्रः कपालं मे सदाऽवतु ॥२५॥
ॐ ह्रीं[1] ह्रीं श्रीं श्रीं सूर्याय स्वाहा मे पातु नासिकाम्। चक्षुर्मे पातु सूर्यश्च तारकं च विकर्तनः ॥२६॥
भास्करो मेऽधरं पातु दन्तान्दिनकरः सदा। प्रचण्डः पातु गण्डं मे मार्तण्डः कर्णमेव च ॥
मिहिरश्च सदा स्कन्धे जङ्घे पूषा सदाऽवतु ॥२७॥
वक्षः पातु रविः शश्वन्नाभिं सूर्यः स्वयं सदा। कङ्कालं मे सदा पातु सर्वदेवनमस्कृतः ॥२८॥
कर्णौ पातु सदा ब्रध्नः पातु पादौ प्रभाकरः। विभाकरो मे सर्वाङ्गं पातु संततमीश्वरः ॥२९॥
इति ते कथितं वत्स कवचं सुमनोहरम्। जगद्विलक्षणं नाम त्रिजगत्सु सुदुर्लभम् ॥३०॥
पुरा दत्तं च मनवे पुलस्त्येन तु पुष्करे। मया दत्तं च तुभ्यं तद्यस्मै कस्मै न देहि भोः ॥३१॥

बृहस्पति बोले—हे इन्द्र! मैं तुम्हें परम अद्‍भुत कवच बता रहा हूँ, जिसे धारण कर मुनिगण भारत में जीवन्मुक्त हो गये हैं॥२०॥ गरुड़ को देखकर जिस प्रकार सर्पगण पलायन कर जाते हैं उसी भाँति कवचधारी के समीप रोग भयभीत होकर नहीं जाता है॥२१॥ इसलिए शुद्ध और गुरुभक्त शिष्य को इसे बताना चाहिए, क्योंकि यह खल और पर-शिष्य को देने से मृत्यु प्राप्त होती है॥२२॥ इस जगद्विलक्षण कवच का प्रजापति ऋषि, गायत्री छन्द, दिनकर देवता और रोगनाशपूर्वक सौन्दर्य प्राप्ति के लिए इसका विनियोग कहा गया है॥२३॥ वह तुरन्त रोग का हरण करने वाला, सारभाग और समस्त पापों का नाशक है। ओं क्लीं ह्रीं श्रीं श्री सूर्याय स्वाहा' मेरे मस्तक की रक्षा करे। अष्टादश अक्षर का मंत्र मेरे कपाल की सदा रक्षा करे। ओं ह्रीं ह्रीं श्रीं श्रीं सूर्याय स्वाहा' मेरी नासिका की रक्षा करे, सूर्य मेरे नेत्र की रक्षा करें, विकर्त्तन तारका की रक्षा करें, भास्कर मेरे अधर की रक्षा करें, दिनकर सदा दाँतों की रक्षा करें प्रचण्ड मेरे कपोल की रक्षा करें, मार्त्तण्ड कान की रक्षा करें, मिहिर दोनों कंधे, और पूषा जंघे की रक्षा करें॥२४-२७॥ रवि वक्षःस्थल की रक्षा करें, स्वयं सूर्य निरन्तर नाभि की रक्षा करें, सर्वदेव-नमस्कृत सदा मेरी ठठरी की रक्षा करें, ब्रध्न सदा कानों की रक्षा करें, प्रभाकर चरणों की रक्षा करें और ईश्वर विभाकर मेरे सर्वांग की निरन्तर रक्षा करें॥२८-२९॥ हे वत्स! इस प्रकार मैंने जगद्विलक्षण नामक कवच, जो अति मनोहर और तीनों लोकों में अति दुर्लभ है, तुम्हें बता दिया ॥३०॥ पूर्वकाल में पुष्कर क्षेत्र में पुलस्त्य ने यही मनु को दिया था और मैं तुम्हें दे रहा हूँ, अतः इसे जिस-किसी को मत देना॥३१॥

---

१ क. ह्रीं क्लीं श्रीं सू०।

व्याधितो मुच्यसे त्वं च कवचस्य प्रसादतः। भवानरोगी श्रीमांश्च भविष्यति न संशयः ॥३२॥
लक्षवर्षहविष्येण यत्फलं लभते नरः। तत्फलं लभते नूनं कवचस्यास्य धारणात् ॥३३॥
इदं कवचमज्ञात्वा यो मूढो भास्करं यजेत्। दशलक्षप्रजप्तोऽपि मन्त्रसिद्धिर्न जायते ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

धृत्वेदं कवचं वत्सौ कृत्वा च स्तवनं रवेः। युवां व्याधिविनिर्मुक्तौ निश्चितं तु भविष्यथः ॥३५॥
स्तवनं सामवेदोक्तं सूर्यस्य व्याधिमोचनम्। सर्वपापहरं सारं धनारोग्यकरं परम् ॥३६॥

ब्रह्मोवाच

तं ब्रह्म परमं धाम ज्योतीरूपं सनातनम्। त्वामहं स्तोतुमिच्छामि भक्तानुग्रहकारकम् ॥३७॥
त्रैलोक्यलोचनं लोकनाथं पापविमोचनम्। तपसां फलदातारं दुःखदं पापिनां सदा ॥३८॥
कर्मानुरूपफलदं कर्मबीजं दयानिधिम्। कर्मरूपं क्रियारूपमरूपं कर्मबीजकम् ॥३९॥
ब्रह्मविष्णुमहेशानामंशं च त्रिगुणात्मकम्। व्याधिदं व्याधिहन्तारं शोकमोहभयापहम् ॥
सुखदं मोक्षदं सारं भक्तिदं सर्वकामदम् ॥४०॥
सर्वेश्वरं सर्वरूपं साक्षिणं सर्वकर्मणाम् । प्रत्यक्षं सर्वलोकानामप्रत्यक्षं मनोहरम् ॥४१॥
शश्वद्रसहरं पश्चाद्रसदं सर्वसिद्धिदम्। सिद्धिस्वरूपं सिद्धेशं सिद्धानां परमं गुरुम् ॥४२॥
स्तवराजमिमं प्रोक्तं गुह्याद्गुह्यतरं परम्। त्रिसंध्यं यः पठेन्नित्यं व्याधिभ्यः स प्रमुच्यते ॥४३॥

इस कवच के प्रसाद से तुम रोगमुक्त और श्रीमान् हो जाओगे, इसमें संशय नहीं ॥३२॥ एक लाख वर्ष तक हविष्य भक्षण करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, वह इस कवच के धारण मात्र से निश्चय प्राप्त होता है ॥३३॥ जो मूर्ख इस कवच को बिना जाने भास्कर की पूजा-आराधना करता है, दश लाख जप करने पर भी उसकी मंत्रसिद्धि नहीं होती है ॥३४॥

ब्रह्मा बोले—हे वत्स! इस कवच को धारण कर सूर्य की स्तुति करने से तुम लोग निश्चित रोगमुक्त हो जाओगे। सामवेदानुसार सूर्य का व्याधिमोचन नामक स्तोत्र है, जो समस्त पापहारी, समस्त का सारभाग, एवं धन-आरोग्यकारी है ॥३५-३६॥

ब्रह्मा बोले—उस परमधाम ब्रह्म की, जो ज्योतिरूप, सनातन और भक्तों पर अनुग्रह करने वाला है, स्तुति करना चाहता हूँ ॥३७॥ वे तीनों लोकों के नेत्र, लोकपति, पाप से मुक्त करने वाले, तप के फल देने वाले और पापियों को सदा दुःख देने वाले हैं ॥३८॥ कर्मों के अनुरूप फल प्रदायक, कर्म के बीज, दया-निधान, कर्मरूप, क्रियारूप, अरूप, कर्मों के बीज ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर के अंश, त्रिगुणस्वरूप, व्याधिप्रद, व्याधिहन्ता, शोक, मोह तथा भय के नाशक, सुखदायक, मोक्षप्रद, सारभाग, भक्तिप्रद, समस्त कामनाओं को सिद्ध करने वाले सर्वेश्वर सर्वरूप, समस्त कर्मों के साक्षी, सभी लोगों के लिए प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष, मनोहर, निरन्तर रसहरण करने वाले, पश्चात् रसप्रदायक, सम्पूर्णसिद्धिदाता, सिद्धिस्वरूप, सिद्धेश एवं सिद्धों के परम गुरु हैं ॥३९-४२॥ मैंने गुह्य से गुह्यतर यह स्तवराज तुम्हें बता दिया। तीनों संध्याओं में जो नित्य इसका पाठ करेगा वह व्याधियों से मुक्त रहेगा ॥४३॥

आन्ध्यं कुष्ठं च दारिद्र्यं रोगः शोको भयं कलिः। तस्य नश्यति विश्वेश श्रीसूर्यकृपया ध्रुवम् ॥४४॥
महाकुष्ठी च गलितो चक्षुर्हीनो महाव्रणी। यक्ष्मग्रस्तो महाशूली नानाव्याधियुतोऽपि वा ॥४५॥
मासं कृत्वा हविष्यान्नं श्रुत्वाऽतो मुच्यते ध्रुवम्। स्नानं च सर्वतीर्थानां लभते नात्र संशयः ॥४६॥
पुष्करं गच्छतं शीघ्रं भास्करं भजतं सुतौ। इत्येवमुक्त्वा स विधिर्जगाम स्वालयं मुदा ॥४७॥
तौ निषेव्य दिनेशं तं नीरुजौ संबभूवतुः। इत्येवं कथितं वत्स किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥४८॥
सर्वविघ्नहरं सारं विघ्नेशं विघ्ननाशनम्। स्तोत्रेणानेन तं स्तुत्वा मुच्यते नात्र संशयः ॥४९॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० विघ्नकारणकथनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

विंशोऽध्यायः

नारद उवाच

हरेरंशसमुत्पन्नो हरितुल्यो भवान्धिया। तेजसा विक्रमेणैव मत्प्रश्नं श्रोतुमर्हसि ॥१॥
विघ्ननिघ्नस्य यद्विघ्नं श्रुतं तत्परमाद्भुतम्। तद्विघ्नकारणं चैव विश्वकारणवक्त्रतः ॥२॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि स्वात्मसंदेहभञ्जनम्। त्रैलोक्यनाथतनये गजास्ययोजनार्थकम् ॥३॥

उसका अन्धापन, कुष्ठ, दरिद्रता, रोग, शोक, भय और कलि आदि विश्वेश्वर (श्री सूर्य) की कृपा से निश्चित नष्ट हो जाएँगे ॥४४॥ महाकुष्ठी, गलित रोगी, अन्धा, महाव्रणी (घाव वाले), यक्ष्मा (तपेदिक) से पीड़ित, महाशूल का रोगी तथा अनेक भाँति के रोगों से युक्त भी एक मास तक हविष्यान्न-भक्षण और इसके श्रवण करने से निश्चित रोग-मुक्त हो जाएगा और समस्त तीर्थों के स्नान का फल भी उसे प्राप्त होगा, इसमें संशय नहीं ॥४५-४६॥ इसलिए हे पुत्रो! तुमलोग शीघ्र पुष्कर को जाओ और भास्कर की आराधना करो। इतना कहकर ब्रह्मा सुप्रसन्न मन से अपने लोक को चले गये ॥४७॥ हे वत्स! इस प्रकार वे दोनों दिनेश्वर सूर्य की आराधना करके नीरोग हो गये, यह कथा मैंने तुम्हें सुना दी, अब और क्या सुनना चाहते हो ॥४८॥ समस्त विघ्नों के नाशक, सार भाग, विघ्नेश तथा विघ्ननाशक उन सूर्य की इस स्तोत्र द्वारा स्तुति करने पर अवश्य रोगमुक्त हो जाता है ॥४९॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण-संवाद में विघ्नकारण-कथन नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१९॥

अध्याय २०

गणेश को गजमुख जोड़ने का कारण

नारद बोले—आप भगवान् के अंश से उत्पन्न एवं बुद्धि, तेज और विक्रम में उन्हीं के समान हैं, अतः मेरा प्रश्न सुनने की कृपा करें ॥१॥ मैंने विघ्ननाशक (गणेश) की परमाद्भुत विघ्नकथा सुन ली और विश्व के कारण (भगवान्) के मुख से उस विघ्न का कारण भी सुन लिया है। तीनों लोकों के स्वामी शंकर के पुत्र को (गणेश के धड़ पर) जो हाथी का मुख जोड़ा गया है, मुझे सन्देह है। अतः उसके निवारणार्थ मैं इस समय वही सुनना

स्थितेऽष्वन्येषु बहुषु जन्तुष्वब्जभुवः पते। सुप्राणिनां सुरूपेषु नानारूपेषु रूपिणाम् ।।४।।

नारायण उवाच

गजास्ययोजनायाश्च कारणं शृणु नारद । गोप्यं सर्वपुराणेषु वेदेषु च सुदुर्लभम् ।।५।।
तारणं सर्वदुःखानां कारणं सर्वसंपदाम्। हारणं विपदां चैव रहस्यं पापमोचनम् ।।६।।
महालक्ष्म्याश्च चरितं सर्वमङ्गलमङ्गलम्। सुखदं मोक्षदं चैव चतुर्वर्गफलप्रदम् ।।७।।
शृणु तात प्रवक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम् । रहस्यं पाद्मकल्पस्य पुरा तातमुखाच्छ्रुतम् ।।८।।
एकदैव महेन्द्रश्च पुष्पभद्रां नदीं ययौ। महासंपन्मदोन्मत्तः कामी राजश्रियाऽन्वितः ।।९।।
ततीरेऽतिरहःस्थाने पुष्पोद्याने मनोहरे। अतीव दुर्गमेऽरण्ये सर्वजन्तुविवर्जिते ।।१०।।
भ्रमरध्वनिसंयुक्ते पुंस्कोकिलरुतश्रवे । सुगंधिपुष्पसंश्लिष्टवायुना सुरभीकृते ।।११।।
ददर्श रम्भां तत्रैव चन्द्रलोकात्समागताम् । सुरतश्रमविश्रान्तिकामुकीं कामकामुकीम् ।।१२।।
इच्छन्तीमीप्सितां क्रीडां गच्छन्तीं मदनाश्रमम् । एकाकिनीमुन्मनस्कां मन्मथोद्गतमानसाम् ।।१३।।
सुश्रोणीं सुदतीं श्यामां बिम्बाधरसरोरुहाम् । बृहन्नितम्बभारार्तां मत्तवारणगामिनीम् ।।१४।।

चाहता हूँ। हे ब्रह्मपते ! अन्य अनेक जीव-जन्तुओं और अनेक भाँति के उत्तम प्राणियों के विभिन्न प्रकार के सुन्दर रूपों के रहते हाथी का ही मुख उनके धड़ पर क्यों जोड़ा गया ।।२-४।।

नारायण बोले—हे नारद ! हाथी का मुख, जो (उनके धड़ पर) जोड़ा गया है, वह रहस्यमय है, समस्त पुराणों और वेदों में अतिदुर्लभ है, मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो।।५।। वह समस्त दुःखों से पार करने वाला, समस्त सम्पत्तियों का कारण, विपत्तिनाशक, रहस्यमय एवं पाप से मुक्त करने वाला है। महालक्ष्मी का भी चरित, समस्त मंगलों का मंगल, सुखदायक, मोक्षप्रद और चारों वर्ग (धर्म अर्थ, काम एवं मोक्ष) का फल देने-वाला है। हे तात ! मैं तुम्हें पाद्मकल्प का एक प्राचीन इतिहास सुना रहा हूँ, जो रहस्यमय है और जिसे पूर्वकाल में मैंने पिता के मुख से सुना था ।।६-८।।

एक बार महेन्द्र ने पुष्पभद्रा नदी की यात्रा की। वे उस समय महालक्ष्मी के मद से उन्मत्त, राज-लक्ष्मी-सम्पन्न एवं कामी थे ।।९।। उस नदी के तीर पर एकान्त स्थान में फुलवारी थी, जो मनोहर और अति दुर्गम जंगल में थी तथा जहाँ कोई जीवजन्तु नहीं रहता था ।।१०।। वहाँ भौंरों की गुन्जार एवं कोकिलकण्ठ की मधुरध्वनि सुनायी पड़ती थी। सुगन्धित पुष्पों से मिली हुई वायु द्वारा वह उद्यान अतिसुगन्धित था। उन्होंने वहीं रम्भा को देखा, जो चन्द्रलोक से सुरत-श्रम को दूर करने के लिए आयी थी और कामुकी थी ।।११-१२।। अपनी यथेच्छ क्रीड़ा के लिए वह कामदेव के गृह जा रही थी। (इसलिए) वह अकेली, उन्मन तथा कामपीड़ित चित्त वाली थी। ।।१३।। उसका सुन्दर श्रोणीभाग था, सुन्दर दाँतों की पंक्तियाँ थीं एवं वह स्वयं श्यामा (सोलह वर्ष की युवती) थी। उसके खिले कमल की भाँति अधर-बिम्ब थे और वह बृहत् नितम्ब के भार को सम्हालने में दुःखी हो रही थी तथा मतवाले हाथी की भाँति मन्दगति से चल रही थी ।।१४।। मन्दहास समेत उसका मुख शारदीय चन्द्रमा के समान था। वह तीखी

सस्मितास्यशरच्चन्द्रां सुकटाक्षं च बिभ्रतीम् । बिभ्रतीं कबरीं रम्यां मालतीमाल्यशोभिताम् ॥१५॥
वह्निशुद्धांशुकधरां रत्नभूषणभूषिताम् । कस्तूरीबिन्दुना सार्धं सिन्दूरं बिभ्रतीं मुदा ॥१६॥
नीलोत्पलदलश्यामकज्जलोज्ज्वललोचनाम् । मणिकुण्डलयुग्माढ्यगण्डस्थलविराजिताम् ॥१७॥
अत्युन्नतं सुकठिनं पत्रराजिविराजितम् । सुखदं रसिकानां च स्तनयुग्मं च बिभ्रतीम् ॥१८॥
सर्वसौभाग्यवेषाढ्यां सुभगां सुरतोत्सुकाम् । प्राणाधिकां च देवानां स्वच्छां स्वच्छन्दगामिनीम् ॥१९॥
वराप्सरसां रम्यामतीव स्थिरयौवनाम् । गुणरूपवतीं शान्तां मुनिमानसमोहिनीम् ॥२०॥
दृष्ट्वा तामतिवेषाढ्यां तत्कटाक्षेण पीडितः । इन्द्रोऽतीन्द्रियचापल्यात्प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥२१॥

इन्द्र उवाच

क्व गच्छसि वरारोहे क्व गताऽसि मनोहरे। मया दृष्टा हि सुचिरात्कल्याणि सुभगेऽधुना ॥२२॥
तवान्वेषणकर्ताऽहं श्रुत्वा वाचिकवक्त्रतः । त्वय्यासक्तमनाश्चास्मि नान्यां वै गणयामि च ॥२३॥
सुवासितजलार्थी यः किमिच्छेत्पङ्किलं जलम् । पङ्कं नेच्छेच्चन्दनार्थी पङ्कजार्थी न चोत्पलम् ॥२४॥
सुधार्थी न सुरामिच्छेद्दुग्धार्थी नाऽऽविलं जलम् । सुगन्धिपुष्पशायी यो ह्यस्त्रतल्पं न चेच्छति ॥२५॥
स्वर्गी च नरकं नेच्छेत्सुभोगी दुष्टभोजनम् । पण्डितैः सह संवासी नेच्छेत्स्त्रीसंनिधिं नरः ॥
विहाय रत्नाभरणं कोऽपीच्छेल्लोहभूषणम् ॥२६॥

आँखों की कोर से देखने वाली, सुन्दर केशपाश वाली, रमणीय और मालती माला से सुशोभित थी ॥१५॥ वह अग्निविशुद्ध वस्त्रों से सुसज्जित, रत्नों के भूषणों से भूषित, कस्तूरी बिन्दी समेत सिन्दूर की बिंदी धारण किये, नील कमल दल की भाँति श्यामल और कजरारे उज्ज्वल नेत्र वाली, मणि के युगल कुण्डलों से सुशोभित गण्डस्थल वाली तथा अति उन्नत एवं सुकठिन स्तन युगलों से विराजमान थी। जो स्तनद्वय पत्रराजि (कामकला) से सुशोभित एवं रसिकों के लिए सुखप्रद था। ऐसी सुन्दरी को देखकर, जो समस्त शोभास्वरूप, उत्तम वेष की रचना से युक्त, सुभग, सुरत के लिए उत्सुक, देवों की प्राणप्यारी, स्वच्छ, स्वच्छन्द विचरने वाली, अप्सराओं में श्रेष्ठ, अतीव रम्या, स्थायी यौवन वाली, गुणरूप भूषित, शान्त एवं मुनिजनों के चित्त को मोहित करने वाली थी, इन्द्र उसके कटाक्ष से मर्माहत हो गये और इन्द्रियों की चपलतावश उन्होंने उससे कहना भी आरम्भ किया ॥१६-२१॥

इन्द्र बोले—हे वरारोहे! कहाँ जा रही हो। हे मनोहरे! कहाँ गयी थी। हे कल्याणि, हे सुभगे! मैंने बहुत दिनों पर आज तुम्हें देखा है॥२२॥ मैं तुम्हारी ही खोज कर रहा हूँ। मैं दूत के मुख से तुम्हारे विषय में सुन चुका हूँ, इसीलिए मेरा मन तुम्हीं में आसक्त है अन्य और किसी को नहीं चाहता॥२३॥ क्योंकि सुवासित जल चाहने वाला क्या कभी पंकिल (गँदले-जल) की इच्छा करता है? (नहीं) और चन्दन चाहने वाला कीचड़ नहीं चाहता, तथा पंकज (कमल) चाहने वाला उत्पल (कुँई) नहीं चाहता॥२४॥ अमृत का इच्छुक, सुरा (मद्य) नहीं चाहता, दुग्ध का इच्छुक मटमैला जल नहीं चाता। सुगन्धित पुष्पों पर शयन करने वाला अस्त्र की शय्या नहीं चाहता॥२५॥ उसी भाँति स्वर्ग का इच्छुक नरक नहीं चाहता, उत्तम भोगी दुष्ट भोजन की रुचि नहीं करता, पण्डितों के साथ रहने वाला स्त्रियों का सम्पर्क नहीं चाहता। भला रत्नों के आभूषण त्याग कर

त्वां नाऽऽश्लिष्य महाविज्ञां को मूढो गन्तुमिच्छति । विहाय गङ्गां को विज्ञो नदीमन्यां च वाञ्छति ॥२७॥
इन्द्रियैश्चेन्द्रियरतिं वर्धयन्तीं पदे पदे । वरं प्रार्थयितारश्च प्राणिनश्च सुखार्थिनः ॥२८॥
इत्येवमुक्त्वा मघवानवरुह्य गजेश्वरात् । कामयुक्तश्च पुरतस्तस्थौ तस्याश्च नारद ॥२९॥
श्रुत्वा तद्वचनं रम्भा महाशृङ्गारलोलुपा । जहासाऽऽनम्रवदना पुलकाञ्चितविग्रहा ॥३०॥
स्मेराननकटाक्षेण स्तनोर्वोर्दर्शनेन च । [1]नर्मोक्तिगर्भवाक्येन चाहरत्तस्य चेतनाम् ॥३१॥
मितं सारं सुमधुरं सुस्निग्धं कोमलं प्रियम् । पुरुषायत्तबीजं च प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥३२॥

रम्भोवाच

यास्यामि वाञ्छितं यत्र प्रश्नेन तव किं फलम् । नाहं संतोषजननी धूर्तानां दुष्टमित्रता ॥३३॥
यथा मधुकरो लोभात्सर्वपुष्पासवं लभेत् । स्वादु यत्रातिरिक्तं स तत्र तिष्ठति संततम् ॥३४॥
तथैव कामुकी लोके भ्रमेद्भ्रमरवत्सदा । चाञ्चल्यात्स हि कास्वेव वायुवद्रसमाहरेत् ॥३५॥
सुपुमानङ्गवत्स्त्रीणां यथा शाखाश्च शाखिषु । कामुकी काकवल्लोलः फलं भुक्त्वा प्रयाति च ॥३६॥
स्वकार्यमुद्धरेत्तावत्तावद्वासप्रयोजनम् । स्थितिः कार्यानुरोधेन यथा काष्ठे हुताशनः ॥३७॥

लोहे का भूषण कौन चाहेगा ? ॥२६॥ तुम महानिपुण का आलिंगन न करके कौन मूर्ख जाना चाहेगा ? क्योंकि कौन बुद्धिमान् गंगा को त्याग कर अन्य नदी की इच्छा करता है ? तुम सुख चाहने वाले तथा प्रार्थना करने वाले प्राणी को पग-पग पर अपनी इन्द्रियों द्वारा इन्द्रियरति बढ़ाती हो ॥२७-२८॥ हे नारद ! इतना कहकर भगवान् महेन्द्र गजराज से उतर कर काम-भावना से उसके सामने खड़े हो गये ॥२९॥ महाश्रृंगार का लोभ करने वाली रम्भा उनकी बातें सुनकर नीचे मुख किये हँस पड़ी । उस समय उसके शरीर में रोमाञ्च हो रहा था ॥३०॥ हँसमुख कटाक्ष से तथा स्तनों और जाँघों को दिखाकर एवं परिहास की बातों से उनके मन को अपने अधीन कर लिया ॥३१॥ और मित (अल्प) सार (तत्त्व), अति मधुर, सुस्निग्ध, कोमल प्रिय एवं पुरुषों को अपने अधीन करने वाली बातें भी कहना आरम्भ किया ॥३२॥

रम्भा बोली—जहाँ की इच्छा है, वहाँ जाऊँगी। तुम्हें पूछने से क्या लाभ ? मैं तुम्हारे संतोष का कार्य नहीं कर सकती हूँ, क्योंकि धूर्तों की मित्रता अच्छी नहीं होती है ॥३३॥ जिस प्रकार भौंरा लोभवश सभी पुष्पों के रस को लेता है किन्तु जहाँ सबसे अधिक स्वाद मिलता है, वहीं निरन्तर रहता है ॥३४॥ उसी प्रकार कामुकी स्त्रियाँ भी भौंरे की भाँति सदैव लोक में विचरण करती रहती हैं । किन्तु वह (पुरुष) अपनी चञ्चलतावश वायु की भाँति किन्हीं का रस (आनन्द) लेता है ॥३५॥ वृक्षों में शाखा की भाँति सुन्दर पुरुष भी सुन्दरियों के अंगस्वरूप होते हैं। कामुकी स्त्री कौवे के समान चपल होती है—फल (रस) का उपभोग किया और चलती बनी ॥३६॥ जब तक अपना कार्य रहता है तभी तक निवास का प्रयोजन रहता है। क्योंकि काष्ठ (लकड़ी) में स्थित अग्नि की भाँति वह भी कार्यानुरोधवश ही स्थित रहती है ॥३७॥ तालाब में जब तक जल रहता है, उसके जीव-जन्तु तभी तक वहाँ रहते हैं और

---

[1] क. कामाग्न्याहुतिवा० ।

यावत्तडागे तोयानि तावद्यादांसि तेषु च। शोषारम्भे च तोयानि (नां) यान्ति स्थानान्तरं पुनः ॥३८॥
त्वं देवानामीश्वरोऽसि कामिनीनां च वाञ्छितः। पुमांसं रसिकं शश्वद्वाञ्छन्ति रसिकाः सुखात् ॥३९॥
युवानं रसिकं शान्तं सुवेषं सुन्दरं प्रियम्। गुणिनं धनिनं स्वच्छं कान्तमिच्छति कामिनी ॥४०॥
दुःशीलं रोगिणं वृद्धं रतिशक्तिवियोजितम्। अदातारमविज्ञं च नैव वाञ्छन्ति योषितः ॥४१॥
का मूढा न च वाञ्छन्ति त्वामेवं गुणसागरम्। तवाऽऽज्ञाकारिणीं दासीं गृहाणात्र यथा सुखम् ॥४२॥
इत्युक्त्वा सस्मिता सा च तं पपौ वक्रचक्षुषा। कामाग्निदग्धा विगलल्लज्जा तस्थौ समीपतः ॥४३॥
ज्ञात्वा भावं स्मरार्तायाः स्मरशास्त्रविशारदः। गृहीत्वा तां पुष्पतल्पे विजहार तया सह ॥४४॥
चुचुम्ब रहसि प्रौढां नग्नां च सुभगां वराम्। पक्वबिम्बाधरौष्ठीं च सुदत्या चुम्बितस्तया ॥४५॥
नानाप्रकारशृङ्गारान्विपरीतादिकान्मुने। चकार कामी तत्रैव शृङ्गारो मूर्तिमानिव ॥४६॥
तौ कामाहितचित्तौ नो बुबुधाते दिवानिशम्। अन्योन्यगतचित्तौ च कामार्तौ ज्ञानवर्जितौ ॥४७॥
स च कृत्वा स्थले क्रीडां तया सह सुरेश्वरः। ययौ जलविहारार्थं पुष्पभद्रानदीजलम् ॥४८॥
स चकार जलक्रीडां तया सह मुदा क्षणम्। जलात्स्थले स्थलात्तोये विजहार पुनः पुनः ॥४९॥
एतस्मिन्नन्तरे तेन वर्त्मना मुनिपुंगवः। सशिष्यो याति दुर्वासा वैकुण्ठाच्छंकरालयम् ॥५०॥

जब जल सूखने लगता है तो वे दूसरे स्थान पर चले जाते हैं ॥३८॥ तुम देवताओं के अधीश्वर हो, कामिनियों के मनचाहे मनोरथ हो और रसीली स्त्रियाँ रसिक पुरुष को ही सुख के लिए निरन्तर चाहती हैं। कामिनी स्त्री युवा, रसिक, शान्त, उत्तम वेष-भूषा वाला, सुन्दर, प्रिय, गुणी, धनी और स्वच्छ कान्त चाहती है। दुष्ट स्वभाव वाले, वृद्ध, रति-शक्तिहीन, अदाता और मूर्ख को स्त्रियाँ कभी नहीं चाहतीं ॥३९-४१॥ इसलिए कौन ऐसी मूर्खा होगी, जो तुम्हारे ऐसे गुणसागर को न चाहती हो। मैं तुम्हारी आज्ञा पालन करने वाली दासी हूँ, तुम्हें जिस प्रकार सुख मिले, दासी से सेवा ले सकते हो ॥४२॥ इतना कहकर उसने मन्द मुसुकाती हुई अपनी तिर्छी आंखों से उन्हें देखा। वह उस समय कामाग्नि से जल रही थी और उसी कारण निर्लज्ज भी हो रही थी। वह उनके समीप अवस्थित हुई ॥४३॥ कामशास्त्र के निपुण विद्वान् इन्द्र ने उस कामपीड़ित का भाव समझ कर उसे पकड़ लिया और पुष्प-शय्या पर उसके साथ विहार करने लगे ॥४४॥ एकान्त स्थान में नग्न, श्रेष्ठ सुन्दरी तथा पके बिम्बाफल के समान अधर और सुन्दर दाँतों की पंक्तियों वाली उस प्रौढ़ा का चुम्बन किया और वह भी उन्हें चूमने लगी ॥४५॥ हे मुने ! विपरीतादि अनेक प्रकारके श्रृंगार रस के उपभोग से वे बहुत सुखी हुए, जो स्वयं मूर्तिमान् श्रृंगार की भाँति दिखायी देते थे ॥४६॥ वे दोनों सुरत-क्रीड़ा में इतने निमग्न थे कि उन्हें दिनरात का ज्ञान नहीं रह गया था, वे कामपीड़ित होकर एक दूसरे को सदैव चाहते थे उन्हें कुछ भी ज्ञान नहीं रह गया था ॥४७॥ सुरेश्वर इन्द्र उसके साथ स्थल पर क्रीड़ा करके पुनः जलविहार करने के लिए पुष्पभद्रानदी में प्रविष्ट हो गये ॥४८॥ उन्होंने अतिप्रसन्न हो कर उसके साथ जलविहार किया और पुनः जल से निकलकर स्थल पर तथा स्थल से जाकर जल में उसके साथ बार-बार रतिक्रीड़ा करने लगे ॥४९॥ इसी बीच मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा अपने शिष्यों समेत उसी मार्ग से, वैकुण्ठ से कैलास जा रहे थे ॥५०॥ उस समय मुनीन्द्र दुर्वासा को देखकर देवराज इन्द्र एकदम

तं च दृष्ट्वा मुनीन्द्रं च देवेन्द्रः स्तब्धमानसः। ननामाऽऽगत्य सहसा ददौ तस्मै स चाऽऽशिषः ॥५१॥
पारिजातप्रसूनं यद्दत्तं नारायणेन वै। तच्च दत्तं महेन्द्राय मुनीन्द्रेण महात्मना ॥५२॥
दत्त्वा पुष्पं महाभागस्तमुवाच कृपानिधिः। माहात्म्यं तस्य यत्किंचिदपूर्वं मुनिसत्तमः ॥५३॥

दुर्वासा उवाच

सर्वविघ्नहरं पुष्पं नारायणनिवेदितम् । मूर्ध्नीदं यस्य देवेन्द्र जयस्तस्यैव सर्वतः ॥५४॥
पुरः पूजा च सर्वेषां देवानामग्रणीर्भवेत् । तच्छायेव महालक्ष्मीर्न जहाति कदाऽपि तम् ॥५५॥
ज्ञानेन तेजसा बुद्धया विक्रमेण बलेन च। सर्वदेवाधिकः श्रीमान्हरितुल्यपराक्रमः ॥५६॥
भक्त्या मूर्ध्नि न गृह्णाति योऽहंकारेण पामरः। नैवेद्यं च हरेरेव स भ्रष्टश्रीः स्वजातिभिः ॥५७॥
इत्युक्त्वा शंकरांशश्च ह्यगमच्छंकरालयम् । ततस्‍ रम्भान्तिके तिष्ठञ्चिक्षेप गजमस्तके ॥५८॥
तेन भ्रष्टश्रियं दृष्ट्वा सा जगाम सुरालयम्। पुंश्चली योग्यमिच्छन्ती नापरं चञ्चलाऽधमा ॥५९॥
देवराजं परित्यज्य गजराजो महाबली। प्रविवेश महारण्यं तं निक्षिप्य स्वतेजसा ॥६०॥
तत्रैव करिणीं प्राप्य मत्तः संबुभुजे बलात्। साऽतो बभूव वशगा योषिज्जातिः सुखार्थिनी ॥६१॥
तयोर्बभूवापत्यानां निवहस्तत्र कानने । हरिस्तन्मस्तकं छित्त्वा योजयामास बालके ॥६२॥

स्तब्धचित्त हो गये। पुनः सहसा आकर उन्हें प्रणाम किया और मुनि ने उन्हें शुभाशिष प्रदान किया ॥५१॥ महात्मा दुर्वासा ने पारिजात पुष्प महेन्द्र को दे दिया, जिसे नारायण ने उन्हें दिया था ॥५२॥ महाभाग एवं कृपानिधान मुनिश्रेष्ठ ने पुष्प देकर उसका कुछ माहात्म्य भी उन्हें बतलाया, जो अपूर्व था ॥५३॥

दुर्वासा बोले—हे देवेन्द्र! भगवान् का दिया हुआ यह सर्वविघ्ननाशक पुष्प जिसके शिरस्थान पर रहेगा, चारों ओर से उसी का जय होगा ॥५४॥ सब लोगों के पहले उसकी पूजा होगी और वह देवों में अग्रणी होगा। तथा उसकी छाया की भाँति महालक्ष्मी उसका त्याग कभी नहीं करेगी ॥५५॥ ज्ञान, तेज, बुद्धि, विक्रम, बल में वह सभी देवों से अधिक, श्रीमान् एवं विष्णु के समान पराक्रमी होगा ॥५६॥ जो पामर (नीच) अहंकार वश भगवान् के इस नैवेद्य-पुष्प को भक्तिपूर्वक शिर पर धारण न करेगा, वह अपनी जाति से भ्रष्ट होकर श्रीहीन हो जायगा ॥५७॥ इतना कहकर दुर्वासा शंकर के घर चले गये। अनन्तर रंभा के समीप रहते इन्द्र ने उस माला को गजराज के मस्तक पर फेंक दिया, जिससे वे तुरन्त श्रीहत हो गये और उस अवस्था में उन्हें देखकर रम्भा भी स्वर्ग चली गयी, क्योंकि वह पुंश्चली, चञ्चल और अधम होने के नाते अपने समान ही पुरुष को चाहती थी, अन्य को नहीं ॥५८-५९॥ महाबली गजराज ने भी देवराज इन्द्र का त्याग कर महारण्य में प्रवेश किया और मदमत्त होने के नाते अपने तेज द्वारा उन्हें गिराकर वह किसी हथिनी के साथ बलात् उपभोग करने लगा। स्त्री जाति की होने से वह सुखार्थिनी हथिनी उस गजराज के वशीभूत हो गयी। उस जंगल में उन दोनों की संतानों का समूह हो गया। भगवान् ने उसी गजराज का मस्तक काट कर उस बालक (गणेश) के धड़ पर जोड़

इत्येवं कथितं वत्स किं भूयः श्रोतुमिच्छसि। गजास्ययोजनायाश्च कारणं पापनाशनम् ॥६३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० गणपतेर्गजास्ययोजनाहेतुकथनं नाम विंशोऽध्यायः ॥२०॥

एकविंशोऽध्यायः

नारद उवाच

ते देवा ब्रह्मशापेन निःश्रीकाः केन वा प्रभो। बभूवुस्तद्रहस्यं च गोपनीयं सुदुर्लभम् ॥१॥
कथं वा प्रापुरेते तां कमलां जगतां प्रसूम्। किं चकार महेन्द्रश्च तद्भवान्वक्तुमर्हसि ॥२॥

नारायण उवाच

गजेन्द्रेण पराभूतो रम्भया च सुमन्दधीः। भ्रष्टश्रीर्दैन्ययुक्तश्च स जगामामरावतीम् ॥३॥
तां ददर्श निरानन्दो निरानन्दां पुरीं मुने। दैन्यग्रस्तां बन्धुहीनां वैरिवर्गैः समाकुलाम् ॥४॥
इति श्रुत्वा दूतमुखाज्जगाम गुरुमन्दिरम्। तेन देवगणैः सार्धं जगाम ब्रह्मणः सभाम् ॥५॥
गत्वा ननाम तं शक्रः सुरैः सार्धं तथा गुरुः। तुष्टाव वेदवाक्यैश्च स्तोत्रेणापि च संयतः ॥६॥
प्रवृत्तिं कथयामास वाक्पतिस्तं प्रजापतिम्। श्रुत्वा ब्रह्मा नम्रवक्त्रः प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥७॥

दिया ॥६०-६२॥ हे वत्स! इस प्रकार मैंने तुम्हें गजमुख जोड़ने की पापनाशिनी कथा सुना दी और क्या सुनना चाहते हो ॥६३॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में गणपति के गजमुख जोड़ने का हेतु कथन नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२०॥

अध्याय २१

इन्द्र को पुनः लक्ष्मी की प्राप्ति

नारद बोले—हे प्रभो! किस ब्रह्म-शाप द्वारा देवता लोग श्रीहीन हो गये, यह गोपनीय और अतिदुर्लभ रहस्य बताने की कृपा करें तथा यह भी कहने का अनुग्रह करें कि इन्द्र आदि देवों को जगज्जननी लक्ष्मी किस प्रकार प्राप्त हुई और उसके पश्चात् इन्द्र ने क्या किया ॥१-२॥

नारायण बोले—महामूर्ख इन्द्र गजराज और रम्भा द्वारा अपमानित होने पर श्रीहत एवं दीन-हीन होकर अमरावती पुरी चले गये ॥३॥ हे मुने! वहाँ पहुँचने पर दुःखी इन्द्र ने पुरी को भी आनन्द-रहित, दीनता से घिरी, बन्धुविहीन और शत्रुओं से आच्छन्न देखा ॥४॥ दूत के मुख से भी वही उपर्युक्त बातें सुनकर उसे साथ लिए इन्द्र गुरु (बृहस्पति) के घर गये और वहाँ से बृहस्पति एवं देवों के साथ ब्रह्मा की सभा में गये ॥५॥ इन्द्र और बृहस्पति ने देवों समेत वहाँ उन्हें नमस्कार किया और संयत भाव से वेदवाक्य एवं स्तोत्र द्वारा उनकी स्तुति की ॥६॥ अनन्तर बृहस्पति ने ब्रह्मा से समस्त समाचार कह सुनाया, जिसे सुनकर ब्रह्मा ने नीचे मुख करके कहना आरम्भ किया ॥७॥

ब्रह्मोवाच

मत्प्रपौत्रोऽसि देवेन्द्र शश्वद्राजश्रिया ज्वलन्। लक्ष्मीसमः शचीभर्ता परस्त्रीलोलुपः सदा ॥८॥
गौतमस्याभिशापेन भगाङ्गः सुरसंसदि । पुनर्लज्जाविहीनस्त्वं परस्त्रीरतिलोलुपः ॥९॥
यः परस्त्रीषु निरतस्तस्य श्रीर्वा कुतो यशः। स च निन्द्यः पापयुक्तः शश्वत्सर्वसभासु च ॥१०॥
नैवेद्यं श्रीहरेरेव दत्तं दुर्वाससा च ते। गजमूर्ध्नि त्वया न्यस्तं रम्भयाऽऽहृतचेतसा ॥११॥
क्व सा रम्भा सर्वभोग्या क्वाधुना त्वं श्रिया हृतः। सर्वसौख्यप्रदात्री त्वां गता त्यक्त्वा क्षणेन सा ॥१२॥
वेश्या सश्रीकमिच्छन्ती निःश्रीकं न च चञ्चला। नवं नवं प्रार्थयन्ती परिनिन्द्य पुरातनम् ॥१३॥
यद्गतं तद्गतं वत्स निष्पन्नं न निवर्तते। भज नारायणं भक्त्या पद्मायाः प्राप्तिहेतवे ॥१४॥
इत्युक्त्वा तं जगत्स्रष्टा स्तोत्रं च कवचं ददौ। नारायणस्य मन्त्रं च नारायणपरायणः ॥१५॥
स तैः सार्धं च गुरुणा ह्यजपन्मन्त्रमीप्सितम्। गृहीत्वा कवचं तेन पर्यष्टौत्पुष्करे हरिम् ॥१६॥
वर्षमेकं निराहारो भारते पुण्यदे शुभे। सिषेवे कमलाकान्तं कमलाप्राप्तिहेतवे ॥१७॥
आविर्भूय हरिस्तस्मै वाञ्छितं च वरं ददौ। लक्ष्मीस्तोत्रं च कवचं मन्त्रमैश्वर्यवर्धनम् ॥१८॥

ब्रह्मा बोले—हे देवेन्द्र! तुम मेरे प्रपौत्र (परपोता) हो, निरन्तर राजश्री से विभूषित रहते हो और लक्ष्मी के समान शची के तुम पति हो, किन्तु फिर भी दूसरे की स्त्री के लिए सदा लालायित रहते हो ॥८॥ देवसभा में गौतम जी के शाप देने से तुम्हारे सर्वांग में भग ही भग हो गया था, किन्तु फिर भी तुम निर्लज्ज को परायी स्त्री के उपभोग का लोभ बना ही रहा ॥९॥ जो परायी स्त्रियों में सदा आसक्त रहता है, उसे लक्ष्मी और यश की प्राप्ति कहाँ से हो सकती है? वह निरन्तर पापी और सभी सभाओं (समाजों) में निन्दा का पात्र होता है ॥१०॥ दुर्वासा जी ने तुम्हें भगवान् के प्रसाद रूप में माला दी थी, जिसे तुमने रम्भा द्वारा अपहृतचित्त होने के कारण हाथी के मस्तक पर डाल दिया ॥११॥ अब सर्वभोग्या रम्भा कहाँ है और श्रीहृत तुम कहाँ हो? समस्त सुख देने वाली वह रम्भा तुम्हें क्षणमात्र में छोड़ कर चली गयी ॥१२॥ वेश्याएँ चञ्चल स्वभाव की होती हैं—वे श्रीसम्पन्न को ही चाहती हैं, श्रीहीन को नहीं। वे पुराने को छोड़कर नित्य नये-नये को ढूंढ़ती हैं ॥१३॥

हे वत्स! जो हुआ-सो हुआ, जो गया वह लौटेगा नहीं अतः लक्ष्मी-प्राप्ति के लिए अब भक्तिपूर्वक नारायण की सेवा करो। इतना कहकर नारायण-परायण ब्रह्मा ने जगत्स्रष्टा भगवान् का स्तोत्र, कवच और मन्त्र उन्हें दिया ॥१४-१५॥ देवों को साथ लिए बृहस्पति ने उस अभीष्ट मंत्र का जप किया और कवच ग्रहण कर इन्द्र ने पुष्कर क्षेत्र में भगवान् की स्तुति आरम्भ की ॥१६॥ भारत के उस शुभ एवं पुण्यप्रद स्थान में उन्होंने एक वर्ष तक निराहार रहकर कमला की प्राप्ति के लिए कमलाकान्त भगवान् की सेवा की ॥१७॥ अनन्तर भगवान् ने प्रकट होकर उन्हें अभिलषित वरदान, लक्ष्मी-स्तोत्र, कवच और ऐश्वर्यवर्द्धक मन्त्र प्रदान किया ॥१८॥

दत्त्वा जगाम वैकुण्ठमिन्द्रः क्षीरोदमेव च। गृहीत्वा कवचं स्तुत्वा प्राप पद्मालयां मुने ॥१९॥
सुरेश्वरोऽरिं जित्वा वै ह्यलभच्चामरावतीम्। प्रत्येकं च सुराः सर्वे स्वालयं प्रापुरीप्सितम् ॥२०॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० शक्रलक्ष्मीप्राप्तिर्नामैकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

नारद उवाच

आविर्भूय हरिस्तस्मै किं स्तोत्रं कवचं ददौ। महालक्ष्म्याश्च लक्ष्मीशस्तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥१॥

नारायण उवाच

पुष्करे च तपस्तप्त्वा विरराम सुरेश्वरः। आविर्बभूव तत्रैव क्लिष्टं दृष्ट्वा हरिः स्वयम् ॥२॥
तमुवाच हृषीकेशो वरं वृणु यथेप्सितम्। स च वव्रे वरं लक्ष्मीमीशस्तस्मै ददौ मुदा ॥३॥
वरं दत्त्वा हृषीकेशः प्रवक्तुमुपचक्रमे। हितं सत्यं च सारं च परिणामसुखावहम् ॥४॥

मधुसूदन उवाच

गृहाण कवचं शक्र सर्वदुःखविनाशनम्। परमैश्वर्यजनकं सर्वशत्रुविमर्दनम् ॥५॥

हे मुने! देकर भगवान् वैकुण्ठ चले गये और इन्द्र ने क्षीरसागर में पहुँचकर कवच धारण किया तथा स्तुति के द्वारा लक्ष्मी की प्राप्ति की ॥१९॥ इन्द्र ने शत्रु को जीतकर अमरावती पुरी और प्रत्येक देव ने अपने-अपने अभीष्ट स्थान की प्राप्ति की ॥२०॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपति खण्ड में नारद-नारायण-संवाद में इन्द्र की लक्ष्मी-प्राप्ति कथन नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२१॥

अध्याय २२

लक्ष्मी का स्तोत्र और कवच

नारद बोले—हे तपोधन! लक्ष्मी के अधीश्वर भगवान् विष्णु ने वहाँ प्रकट होकर उन्हें महालक्ष्मी का कौन स्तोत्र और कवच प्रदान किया, बताने की कृपा करें ॥१॥

नारायण बोले—इन्द्र पुष्कर क्षेत्र में भगवान् की तपस्या कर रहे थे—उन्हें अति दुःखी देखकर भगवान् स्वयं वहाँ प्रकट हो गये ॥२॥ भगवान् हृषीकेश ने उनसे कहा—यथेच्छ वरदान मांगो। उन्होंने लक्ष्मी की याचना की। भगवान् ने प्रसन्न होकर उन्हें प्रदान किया ॥३॥ वर प्रदान करके भगवान् हृषीकेश ने उनसे कुछ कहना भी आरम्भ किया, जो हित, सत्य, सारभाग और परिणाम में सुखदप्रद था ॥४॥

मधुसूदन बोले—हे शक्र! इस कवच को ग्रहण करो, जो समस्त दुःखों का नाशक, परम ऐश्वर्यप्रद एवं सम्पूर्ण शत्रुओं का मर्दन करने वाला है ॥५॥ समस्त जगत् के जलमग्न होने पर मैंने पहले समय में इसे ब्रह्मा

**ब्रह्मणे च पुरा दत्तं विष्टपे च जलप्लुते। यद्धृत्वा जगतां श्रेष्ठः सर्वैश्वर्ययुतो विधिः॥६॥
बभवुर्मनवः सर्वे सर्वैश्वर्ययुता यतः। सर्वैश्वर्यप्रदस्यास्य कवचस्य ऋषिर्विधिः॥७॥
पङ्क्तिश्छन्दश्च सा देवी स्वयं पद्मालया वरा। सिद्ध्यैश्वर्यसुखेष्वेव विनियोगः प्रकीर्तितः॥८॥
यद्धृत्वा कवचं लोकः सर्वत्र विजयी [1]भवेत्। मस्तकं पातु मे पद्मा कण्ठं पातु हरिप्रिया॥९॥
नासिकां पातु मे लक्ष्मीः कमला पातु लोचने। केशान्केशवकान्ता च कपालं कमलालया॥१०॥
जगत्प्रसूर्गण्डयुग्मं स्कन्धं संपत्प्रदा सदा। ॐ श्रीं कमलवासिन्यै स्वाहा पृष्ठं सदाऽवतु॥११॥
ॐ ह्रीं श्रीं पद्मालयायै स्वाहा वक्षः सदाऽवतु। पातु श्रीर्मम कङ्कालं बाहुयुग्मं च[2] ते नमः॥१२॥
ॐ ह्रीं श्रीं लक्ष्म्यै नमः पादौ पातु मे संततं चिरम्। ॐ ह्रीं श्रीं नमः पद्मायै स्वाहा पातु नितम्बकम्॥१३॥
ॐ श्रीं[3] महालक्ष्म्यै स्वाहा सर्वाङ्गं पातु मे सदा। ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै स्वाहा मां पातु सर्वतः॥१४॥
इति ते कथितं वत्स सर्वसंपत्करं परम्। सर्वैश्वर्यप्रदं नाम कवचं परमाद्भुतम्॥१५॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवत्कवचं धारयेत्तु यः। कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ स सर्वविजयी भवेत्॥१६॥
महालक्ष्मीर्गृहं तस्य न जहाति कदाचन। तस्य च्छायेव सततं सा च जन्मनि जन्मनि॥१७॥
इदं कवचमज्ञात्वा भजेल्लक्ष्मीं स मन्दधीः। शतलक्षप्रजापेऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः॥१८॥**

को दिया, जिसे धारण कर ब्रह्मा सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य से सम्पन्न होकर संसार में श्रेष्ठ हो गये॥६॥ सभी मनुगण समस्त ऐश्वर्य से सम्पन्न हो गये। सकल ऐश्वर्य्य के प्रदायक इस कवच के ब्रह्मा ऋषि, पंक्ति छन्द तथा स्वयं कमला श्रेष्ठ देवता हैं और सिद्धि, ऐश्वर्य्य तथा सुख के लिए इसका विनियोग होता है। इस कवच को धारण कर लोग सर्वत्र विजयी होते हैं। पद्मा मेरे मस्तक की रक्षा करें, हरिप्रिया कण्ठ की रक्षा करें, लक्ष्मी मेरी नासिका की रक्षा करें, कमला दोनों नेत्रों की रक्षा करें, केशवकान्ता केशों की, कमलालया कपाल की जगत्प्रसू युगल गण्डस्थल की और सम्पत्प्रदा दोनों कन्धों की सदा रक्षा करें। 'ओं श्रीं कमलवासिन्यै स्वाहा' सदा पीठ की 'ओं ह्रीं श्रीं पद्मालया स्वाहा' सदा वक्षःस्थल की और श्री मेरे कंकाल तथा दोनों बाहुओं की रक्षा करें, तुम्हें नमस्कार है॥७-१२॥ 'ओं ह्रीं श्रीं लक्ष्म्यै नमः' निरन्तर मेरे चरण की रक्षा करे, 'ओं ह्रीं श्रीं नमः पद्मायै स्वाहा' नितम्ब की और 'ओं श्रीं महालक्ष्म्यै स्वाहा' मेरे सर्वांग की रक्षा करें। 'ओं ह्रीं श्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै स्वाहा' मेरी चारों ओर से रक्षा करे॥१३-१४॥ हे वत्स! इस प्रकार मैंने तुम्हें अद्भुत कवच सुना दिया, जो समस्त सम्पत्ति समेत सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य प्रदान करता है॥१५॥ सविधि गुरु की अर्चना करके जो इस कवच को कण्ठ या दाहिने बाहु में धारण करता है, वह सर्वत्र विजयी होता है। महालक्ष्मी उसके घर का त्याग कभी नहीं करती हैं और प्रत्येक जन्म में छाया की भाँति उसके साथ रहती हैं॥१६-१७॥ किन्तु जो मूर्ख बिना कवच जाने लक्ष्मी की आराधना करेगा, उसके लिए, लाख जप करने पर भी मंत्र सिद्धिप्रद नहीं होगा॥१८॥

---

१ क. सुखी। २ क. च श्रीं न०। ३ क. ह्रीं।

नारायण उवाच

दत्त्वा तस्मै च कवचं मन्त्रं वै षोडशाक्षरम् । संतुष्टश्च जगन्नाथो जगतां हितकारणम् ॥१९॥
ॐ ह्रीं[1] श्रीं क्लीं नमो महालक्ष्म्यै स्वाहा । ददौ तस्मै च कृपया चेन्द्राय च महामुने ॥२०॥
ध्यानं च सामवेदोक्तं गोपनीयं सुदुर्लभम् । सिद्धैर्मुनीन्द्रैर्दुष्प्राप्यं ध्रुवं सिद्धिप्रदं शुभम् ॥२१॥
श्वेतचम्पकवर्णाभां शतचन्द्रसमप्रभाम् । वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम् ॥२२॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां भक्तानुग्रहकारिकाम् । कस्तूरीबिन्दुमध्यस्थं सिन्दूरं भूषणं तथा ॥२३॥
अमूल्यरत्नरचितकुण्डलोज्ज्वलभूषणम् । बिभ्रती कबरीभारं मालतीमाल्यशोभितम् ॥२४॥
सहस्रदलपद्मस्थां स्वस्थां च सुमनोहराम् । शान्तां च श्रीहरेः कान्तां तां भजेज्जगतां प्रसूम् ॥२५॥
ध्यानेनानेन देवेन्द्र ध्यात्वा लक्ष्मीं मनोहराम् । भक्त्या संपूज्य तस्यै च चोपचारांस्तु षोडश ॥२६॥
स्तुत्वाऽनेन स्तवेनैव वक्ष्यमाणेन वासव । नत्वा वरं गृहीत्वा च लभिष्यसि च निर्वृतिम् ॥२७॥
स्तवनं शृणु देवेन्द्र महालक्ष्म्याः सुखप्रदम् । कथयामि सुगोप्यं च त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥२८॥

नारायण उवाच

देवि त्वां स्तोतुमिच्छामि न [2]क्षमाः स्तोतुमीश्वराः । बुद्धेरगोचरां सूक्ष्मां तेजोरूपां सनातनीम्
अत्यनिर्वचनीयां च को वा निर्वक्तुमीश्वरः ॥२९॥

नारायण बोले—हे महामुने ! भगवान् जगन्नाथ ने इन्द्र को कवच देकर कृपया पुनः प्रसन्नतावश उन्हें षोडशाक्षर (सोलह अक्षरों वाला) मन्त्र भी प्रदान किया, जो समस्त जगत् का हितरक्षक है—'ओं ह्रीं श्रीं क्लीं नमो महालक्ष्म्यै स्वाहा' इस मंत्र के साथ उन्होंने सामवेदोक्त ध्यान भी बताया, जो गोपनीय, अतिदुर्लभ, सिद्धों और मुनिवरों से दुष्प्राप्य तथा निश्चित ही सिद्धि का दायक एवं शुभ है ॥१९-२१॥ श्वेत चम्पा के समान रूपरंग वाली, चन्द्रमा की भाँति प्रभा (कान्ति) वाली, अग्निविशुद्ध वस्त्र से सुसज्जित, रत्नों के भूषणों से भूषित, मन्दहास समेत प्रसन्नतापूर्ण मुख वाली, भक्तों पर कृपा करने वाली, सहस्रदल वाले कमल पर आसीन, स्वस्थ, अति मनोहर, शान्त, श्रीहरि की प्रिया तथा जगत् की माता की मैं सेवा कर रहा हूँ ॥२२-२५॥ देवेन्द्र ! इसी ध्यान द्वारा मनोहारिणी लक्ष्मी का ध्यान करके भक्तिपूर्वक षोडशोपचार से उनकी पूजा करनी चाहिए। हे वासव ! इसी स्तोत्र द्वारा उनकी स्तुति और नमस्कार करने से तुम्हें वरदान प्राप्त होगा तथा सुख मिलेगा। हे देवेन्द्र ! मैं तुम्हें महालक्ष्मी का वह सुखप्रद स्तोत्र बता रहा हूँ, जो तीनों लोकों में अतिगोप्य और दुर्लभ है, सुनो ॥२६-२८॥

नारायण बोले—हे देवि ! मैं तुम्हारी स्तुति करना चाहता हूँ, यद्यपि ईश्वर भी तुम्हारी स्तुति करने में समर्थ नहीं हैं क्योंकि तुम बुद्धि से अगोचर, सूक्ष्म, तेजोरूप, सनातनी, और अत्यंत अनिर्वचनीय हो अतः तुम्हारी निरुक्ति कौन कर सकता है ? ॥२९॥

---

१ क. श्रीं महालक्ष्म्यै हरिप्रियायै स्वा० । २ क. क्षमः स्तोतुमीश्वरीम् ।

स्वेच्छामयीं निराकारां भक्तानुग्रहविग्रहाम् । स्तौमि वाङ्मनसोः पारां किंवाऽहं जगदम्बिके ।।३०।।
परां चतुर्णां वेदानां पारबीजं भवार्णवे । [1]सर्वसस्याधिदेवीं च सर्वासामपि संपदाम् ।।३१।।
[2]योगिनां चैव योगानां ज्ञानानां ज्ञानिनां तथा । वेदानां वै वेदविदां जननीं वर्णयामि किम् ।।३२।।
यया विना जगत्सर्वमबीजं[3] निष्फलं ध्रुवम् । यथा स्तनंधयानां च विना मात्रा सुखं भवेत् ।।३३।।
प्रसीद जगतां माता रक्षास्मानतिकातरान् । वयं त्वच्चरणाम्भोजे प्रपन्नाः शरणं गताः ।।३४।।
नमः शक्तिस्वरूपायै जगन्मात्रे नमो नमः । ज्ञानदायै बुद्धिदायै सर्वदायै नमो नमः ।।३५।।
हरिभक्तिप्रदायिन्यै मुक्तिदायै नमो नमः । सर्वज्ञायै सर्वदायै महालक्ष्म्यै नमो नमः ।।३६।।
कुपुत्राः कुत्रचित्सन्ति न कुत्रापि कुमातरः । कुत्र माता पुत्रदोषं तं विहाय च गच्छति ।।३७।।
स्तनंधयेभ्य इव मे हे मातर्देहि दर्शनम् । कृपां कुरु कृपासिन्धो त्वमस्मान्भक्तवत्सले ।।३८।।
इत्येवं कथितं वत्स पद्मायाश्च शुभावहम् । सुखदं मोक्षदं सारं शुभदं संपदः प्रदम् ।।३९।।
इदं स्तोत्रं महापुण्यं पूजाकाले च यः पठेत् । महालक्ष्मीर्गृहं तस्य न जहाति कदाचन ।।४०।।
इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तं च तत्रैवान्तरधीयत । देवो जगाम क्षीरोदं सुरैः सार्धं तदाज्ञया ।।४१।।

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० लक्ष्मीस्तवकवचपूजाकथनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ।।२२।।

किन्तु हे जगदम्बिके ! स्वेच्छामयी, निराकार, भक्तों पर अनुग्रहार्थ शरीर धारण करने वाली और वाणी-मन से परे तुम्हारीस्तुति मैं क्या कर सकता हूँ ? चारों वेदों से परे, संसार सागर को पार करने की एकमात्र कारण, सभी प्रकार के सस्यों और समस्त सम्पदाओं की अधीश्वरी, योगी, योग, ज्ञान, ज्ञानी, वेद और वेदवेत्ताओं की तुम जननी हो, तुम्हारा मैं क्या वर्णन करूँ ।।३०-३२।। क्योंकि जिसके बिना सारा जगत् निर्बीज एवं निष्फल रहता है जैसे बिना माता के दुधमुंहे बच्चों को सुख नहीं मिलता है ।।३३।। तुम जगत् की माता हो, प्रसन्न हो जाओ, हम कातरों की रक्षा करो, हम लोग तुम्हारे चरण-कमल के शरणागत हैं ।।३४।। शक्तिस्वरूप जगन्माता को बार-बार नमस्कार है, ज्ञान देने वाली, बुद्धि देने वाली और सब कुछ देने वाली को नमस्कार है ।।३५।। भगवान् की भक्ति देने वाली, मुक्ति देने वाली को नमस्कार है। सर्वज्ञान रखने वाली एवं सब कुछ देने वाली महालक्ष्मी को बार-बार नमस्कार है ।।३६।। कुपुत्र कहीं हैं भी, किन्तु कुमाता कहीं नहीं होती हैं और क्या अपराधी पुत्र को छोड़कर माता कहीं चली जाती है ? ।।३७।। अतः हे मातः ! दुधमुँहे बच्चे की भाँति मुझे भी तुम दर्शन देने की कृपा करो। हे कृपा-सिन्धो ! हे भक्तवत्सले ! तुम हम पर कृपा करो ।।३८।। हे वत्स ! इस प्रकार मैंने तुम्हें पद्मा का शुभावह स्तोत्र बता दिया, जो सुखप्रद, मोक्षदायक सार, शुभप्रद और सम्पत्तिप्रदायक है ।।३९।। इस प्रकार इस महापुण्य स्तोत्र का जो पूजाकाल में पाठ करता है, उसके घर को महालक्ष्मी कभी नहीं छोड़ती हैं ।।४०।। इतना कहकर श्री भगवान् उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये और उनकी आज्ञा से इन्द्रदेव भी देवों के साथ क्षीरसागर चले गये ।।४१।।

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में लक्ष्मी का स्तव, कवच तथा पूजा कथन नामक बाईसवाँ अध्याय समाप्त ।।२२।।

---

१ क. सर्वेशस्या० । २ क. गोपीनां चैव गोपानां ज्ञा० । ३ क. मवस्तु ।

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

इन्द्रश्च गुरुणा सार्धं सुरैः संहृष्टमानसः। जगाम शीघ्रं पद्मायै तीरं क्षीरपयोनिधेः ॥१॥
कवचं च गले बद्ध्वा सद्रत्नगुटिकान्वितम्। मनसा स्तवनं दिव्यं स्मारं स्मारं पुनः पुनः ॥२॥
ते सर्वे भक्तियुक्ताश्च तुष्टुवुः कमलालयाम्। साश्रुनेत्राश्च दीनाश्च भक्तिनम्रात्मकंधराः ॥३॥
सा तेषां स्तवनं श्रुत्वा सद्यः साक्षाद्बभूव ह। सहस्रदलपद्मस्था शतचन्द्रसमप्रभा ॥४॥
जगद्व्याप्तं सुप्रभया जगन्मात्रा यया मुने। तानुवाच जगद्धात्री हितं सारं यथोचितम् ॥५॥

महालक्ष्मीरुवाच

वत्सा नेच्छामि वो गेहान्गन्तुं नैवं क्षमाऽधुना। भ्रष्टान्दृष्ट्वा ब्रह्मशापाद्बिभेमि ब्रह्मशापतः ॥६॥
प्राणा मे ब्राह्मणाः सर्वे शश्वत्पुत्राधिकं प्रियाः। विप्रदत्तं च यत्किंचिदुपजीव्यं सदैव च ॥७॥
विप्रा ब्रुवन्तु मां तुष्टा यास्यामि भवदाज्ञया। न मे पूजां ध्रुवं कर्तुं क्षमास्ते च तपस्विनः ॥८॥
गुरुभिर्ब्राह्मणैर्देवैर्भिक्षुभिर्वैष्णवैस्तथा । [1]यदभाव्यं भवेद्दैवात्ते शप्ताः सन्ति तैः सदा ॥९॥

अध्याय २३

लक्ष्मी के निवास योग्य स्थानों का वर्णन

नारायण बोले—इन्द्र अति प्रसन्न होकर गुरु बृहस्पति और देवों के साथ लक्ष्मी को लाने के लिए क्षीरसागर के तट पर गये। वहाँ उत्तम रत्न की गुटिका में कवच रखकर उसे गले में बांधे हुए वे मन से बार-बार दिव्य स्तोत्र का स्मरण करने लगे ॥१-२॥ इस भाँति सभी लोगों ने, जो वहाँ उस समय सजलनेत्र, दीन और भक्ति से कन्धे झुकाये खड़े थे, भक्तिपूर्वक कमला की स्तुति की ॥३॥ अनन्तर उन लोगों की स्तुति सुनकर लक्ष्मी साक्षात् प्रकट हो गयीं जो सहस्र दल वाले कमल पर स्थित और सैकड़ों चन्द्रमा के समान कान्तिपूर्ण थीं ॥३॥ हे मुने ! जिसकी उत्तम प्रभा से सारा जगत् व्याप्त था , उस जगत् की धात्री ने उन देवों से कहना आरम्भ किया, जो हितकर, सारभाग और यथोचित था ॥४-५॥

महालक्ष्मी बोलीं—हे वत्स ! मैं तुम लोगों के यहाँ जाना नहीं चाहती। इस समय मैं तुम्हारे घर जाने में असमर्थ हूँ। क्योंकि ब्राह्मण-शाप से भ्रष्ट लोगों को देखकर मैं बहुत भयभीत होती हूँ। ब्राह्मण ही मेरे प्राण हैं और वे निरन्तर मुझे पुत्र से अधिक प्रिय हैं इसलिए ब्राह्मण जो कुछ दे देते हैं वही मेरे जीवन का सहारा रहता है ॥६-७॥ यदि सुप्रसन्न होकर ब्राह्मण आज्ञा प्रदान कर दें तो मैं चल सकती हूँ। अन्यथा मेरी पूजा करने के लिए वे बेचारे अब भी असमर्थ हैं ॥८॥ दैव संयोग से जिसका दुर्भाग्य उपस्थित होता है, उसे गुरु, ब्राह्मण, देव, संन्यासी और वैष्णव द्वारा शाप प्राप्त होता है ॥९॥ यद्यपि भगवान् नारायण समस्त के कारण, सर्वाधीश्वर

---

१ ख. यद्यभाव्यं।

नारायणश्च भगवान्बिभेति ब्रह्मशापतः। सर्वबीजं च भगवान्सर्वेशश्च सनातनः ॥१०॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन्ब्राह्मणा हृष्टमानसाः। आजग्मुः सस्मिताः सर्वे ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा ॥११॥
अङ्गिराश्च प्रचेताश्च क्रतुश्च [1]भृगुरेव च । पुलहश्च पुलस्त्यश्च मरीचिश्चात्रिरेव च ॥१२॥
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः। सनत्कुमारो भगवान्साक्षान्नारायणात्मकः ॥१३॥
कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पञ्चशिखस्तथा। दुर्वासाः कश्यपोऽगस्त्यो गौतमः कण्व एव च ॥१४॥
और्वः कात्यायनश्चैव कणादः पाणिनिस्तथा। मार्कण्डेयो लोमशश्च वसिष्ठो भगवान्स्वयम् ॥१५॥
ब्राह्मणा विविधैर्द्रव्यैः पूजयामासुरीश्वरीम्। देवाश्चारण्यनैवेद्यैरुपहारेण भक्तितः ॥१६॥
स्तुत्वा मुनीन्द्रास्तां भक्त्या चक्रुराराधनं मुदा। आगच्छ देवभवनं मर्त्यं च जगदम्बिके ॥१७॥
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा तानुवाच जगत्प्रसूः। परितुष्टा गामुकी च निर्भया ब्राह्मणाज्ञया ॥१८॥

महालक्ष्मीरुवाच

गृहान्यास्यामि देवानां युष्माकं चाऽऽज्ञया द्विजाः। येषां गेहं न गच्छामि शृणुध्वं भारतेषु च ॥१९॥
स्थिरा पुण्यवतां गेहे सुनीतिपथवेदिनाम्। गृहस्थानां नृपाणां वा पुत्रवत्पालयामि तान् ॥२०॥
यं यं रुष्टो गुरुर्देवो माता तातश्च बान्धवाः। अतिथिः पितृलोकश्च यामि तस्य न मन्दिरम् ॥२१॥
मिथ्यावादी च यः [2]शश्वदनध्यायी च यः सदा। सत्त्वहीनश्च दुःशीलो न गेहं तस्य याम्यहम् ॥२२॥

एवं सनातन हैं, तथापि ब्राह्मण-शाप से वे भी बहुत भयभीत रहते हैं ॥१०॥ हे ब्रह्मन् ! उसी बीच अति हर्षित होकर ब्राह्मणों का वृन्द आ गया, जो मन्द हास समेत ब्रह्मतेज से देदीप्यमान हो रहा था ॥११॥ उनमें अंगिरा, प्रचेता, क्रतु, भृगु, पुलह, पुलस्त्य, मरीचि, अत्रि, सनक, सनन्दन, सनातन, भगवान् सनत्कुमार, साक्षात् नारायणात्मक कपिल, आसुरि, वोढु, पञ्चशिख, दुर्वासा, कश्यप, अगस्त्य, गौतम, कण्व, और्व, कात्यायन, कणाद, पाणिनि, मार्कण्डेय, लोमश और स्वयं भगवान् वशिष्ठ थे ॥१२-१५॥ उपरान्त ब्राह्मणों ने अनेक भाँति के उपहार से ईश्वरी लक्ष्मी की अर्चना की और देवों ने भी वन्य नैवेद्य और उपहार उन्हें भक्तिपूर्वक समर्पित किये। मुनीन्द्रों ने भक्तिपूर्वक स्तुति-आराधना की और सुप्रसन्न होकर कहा—'हे जगदम्बिके ! देवों के घर और मनुष्यों के यहाँ आने की कृपा करो।' उनकी ऐसी बातें सुनकर जगज्जननी महालक्ष्मी ने ब्राह्मणों की आज्ञा से निर्भय एवं अति प्रसन्न होकर भूमण्डल में आने के विचार से उन ब्राह्मणों से कहा ॥१६-१८॥

महालक्ष्मी बोलीं—हे द्विजवृन्द ! तुम लोगों की आज्ञा से मैं देवों के घर जा रही हूँ। किन्तु भारत में जिन लोगों के यहाँ मैं नहीं जाऊँगी, वह तुम्हें बता रही हूँ, सुनो ॥१९॥

पुण्यवानों के घर मैं सुस्थिर होकर निवास करूँगी और उत्तम नीति-मार्ग से चलने वाले गृहस्थ एवं राजाओं के यहाँ रहकर पुत्र की भाँति उनका पालन करूँगी ॥२०॥ किन्तु गुरु, देवता, माता-पिता, बन्धुगण, अतिथि और पितर लोग जिस पर रुष्ट रहेंगे उसके घर कभी नहीं जाऊँगी ॥२१॥ जो निरन्तर मिथ्या भाषण करता है, जो कभी अध्ययन नहीं करता, सत्त्वहीन और दुष्ट स्वभाव का है, उसके घर नहीं जाती हूँ ॥२२॥ सत्य-

---

१ क. ०गुनन्दनः। २ क. ०श्वन्नास्तीति वाचकः सदा।

सत्यहीनः स्थाप्यहारी मिथ्यासाक्ष्यप्रदायकः। विश्वासघ्नः कृतघ्नो यो यामि तस्य न मन्दिरम् ॥२३॥
चिन्ताग्रस्तो भयग्रस्तः शत्रुग्रस्तोऽतिपातकी। ऋणग्रस्तोऽतिकृपणो न गेहं यामि पापिनाम् ॥२४॥
दीक्षाहीनश्च शोकार्तो मन्दधीः स्त्रीजितः सदा। न याम्यपि कदा गेहं पुंश्चल्याः पतिपुत्रयोः ॥२५॥
पुंश्चल्यन्नमवीरान्नं यो भुङ्क्ते कामदः सदा। शूद्रान्नभोजी तद्याजी तद्गेहं नैव याम्यहम् ॥२६॥
यो दुर्वाक्कलहाविष्टः कलिः शश्वद्यदालये। स्त्री प्रधाना गृहे यस्य यामि तस्य न मन्दिरम् ॥२७॥
यत्र नास्ति हरेः पूजा तदीयगुणकीर्तनम्। नोत्सुकस्तत्प्रशंसायां यामि० ॥२८॥
[1]कन्यान्नवेदविक्रेता नरघाती च हिंसकः। नरकागारसदृशं यामि० ॥२९॥
मातरं पितरं भार्यां गुरुपत्नीं गुरोः[2] सुताम्। अनाथां भगिनीं कन्यामनन्याश्रयबान्धवान् ॥३०॥
कार्पण्याद्यो न पुष्णाति संचयं कुरुते सदा। तद्गेहान्नरकागारान्यामि तान्न मुनीश्वराः ॥३१॥
दशनं वसनं यस्य समलं रूक्षमस्तकम्। विकृतौ ग्रासहासौ[3] च यामि तस्य न मन्दिरम् ॥३२॥
मूत्रं पुरीषमुत्सृज्य यस्तत्पश्यति मन्दधीः। यः शेते स्निग्धपादेन यामि० ॥३३॥
अधौतपादशायी यो नग्नः शेतेऽतिनिद्रितः। संध्याशायी दिवाशायी यामि० ॥३४॥

रहित, धरोहर के अपहर्ता, झूठी गवाही देने वाले, विश्वासघाती और कृतघ्न के घर नहीं जाती हूँ ॥२३॥ चिन्ताग्रस्त, भयभीत, शत्रु से घिरे, अतिपापी, ऋणी एवं अतिकृपण इन पापियों के यहाँ नहीं जाती हूँ ॥२४॥ दीक्षाहीन, शोकाकुल, मूर्ख, स्त्रीपराजित एवं पुंश्चली स्त्री के पति-पुत्र के यहाँ नहीं जाती हूँ ॥२५॥ जो सदा पुंश्चली का अन्न खाता है, जो पति-पुत्रहीना विधवा का अन्न खाता है, जो शूद्रान्न खाता है और जो शूद्र को यज्ञ कराता है, उसके घर में नहीं जाती हूँ ॥२६॥ जो कठोर वचन बोलता है, झगड़ालू है, जिसके यहाँ कलि का निरन्तर निवास रहता है और जिसके घर में स्त्री प्रधान है उसके घर नहीं जाती हूँ ॥२७॥ जहाँ भगवान् की पूजा, उनके नाम-गुण का कीर्तन और उनकी प्रशंसा करने में लोग उत्सुक नहीं रहते हैं उसके घर नहीं जाती हूँ ॥२८॥ कन्या, अन्न, एवं वेद का विक्रेता, नरघाती तथा हिंसक के और नरककुण्ड के समान घर में मैं नहीं जाती हूँ ॥२९॥ हे मुनीश्वरवृन्द ! माता, पिता, स्त्री, गुरुपत्नी, गुरु की, पुत्री अनाथ भगिनी, कन्या एवं आश्रयहीन बान्धवों का जो कृपणतावश पालन-पोषण नहीं करता है केवल धन-सञ्चय ही करता रहता है, उसके नरकागार समान घरों में मैं नहीं जाती हूँ ॥३०-३१॥ जिसके दाँत-वस्त्र मैले रहते हैं, मस्तक रूखा रहता है, खाते समय और हँसते समय जिसका मुख विकृत हो जाता है, उसके घर मैं नहीं जाती हूँ ॥३२॥ जो मूर्ख मलमूत्र का त्याग कर उसे पुनः देखता है, और जो गीले पैर शयन करता है, उसके यहाँ मैं नहीं जाती हूँ ॥३३॥ बिना चरण धोये शयन करने वाले और नग्न होकर अत्यन्त शयन करने वाले तथा सन्ध्या समय एवं दिन में शयन करने वाले के घर मैं नहीं जाती हूँ ॥३४॥

---

१ क. ०न्यात्मवे०। २ ख. गुरुं सुतम्। ३. क. ग्रास०।

मूर्ध्नि तैलं पुरो दत्त्वा योऽन्यदङ्गमुपस्पृशेत् । ददाति पश्चाद्गात्रे वा यामि० ।।३५।।
दत्त्वा तैलं मूर्ध्नि गात्रे विण्मूत्रं समुत्सृजेत् । प्रणमेदाहरेत्पुष्पं यामि० ।३६।।
तृणं छिनत्ति नखरैर्नखरैर्विलिखेन्महीम् । गात्रे पादे मलो यस्य यामि० ।।३७।।
स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं सुरस्य च। यो हरेज्ज्ञानशीलश्च[1] यामि० ।।३८।।
यत्कर्म दक्षिणाहीनं कुरुते मूढधीः शठः । स पापी पुण्यहीनश्च यामि० ।।३९।।
मन्त्रविद्योपजीवी च ग्रामयाजी चिकित्सकः । सूपकृद्देवलश्चैव यामि० ।।४०।।
विवाहं धर्मकार्यं वा यो निहन्ति च कोपतः । दिवा मैथुनकारी यो यामि० ।।४१।।
इत्युक्त्वा सा महालक्ष्मीरन्तर्धानं जगाम ह। ददौ दृष्टिं च देवानां गृहे मर्त्ये च नारद ।।४२।।
तां प्रणम्य सुराः सर्वे मुनयश्च मुदाऽन्विताः। प्रजग्मुः स्वालयं शीघ्रं शत्रुत्यक्तं सुहृद्युतम् ।।४३।।
नेदुर्दुन्दुभयः स्वर्गे बभूवुः पुष्पवृष्टयः । प्रापुर्देवाः स्वराज्यं च निश्चलां कमलां मुने ।।४४।।
इत्येवं कथितं वत्स लक्ष्मीचरितमुत्तमम् । सुखदं मोक्षदं सारं किं पुनः श्रोतुमिच्छसि ।।४५।।

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० गणपतेर्गजास्यत्वकारणलक्ष्मीब्राह्मण-विरोधादिलक्ष्मीचरित्रकथनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ।।२३।।

जो पहले शिर में तेल लगाकर पश्चात् अन्य अंगों का तेल से मर्दन करते हैं या समस्त शरीर में तेल लगाते हैं उसके घर मैं नहीं जाती हूँ ।।३५।। जो शिर या शरीर में तेल लगाकर मूत्र-मल का त्याग करता है तथा प्रणाम करता हैं और पुष्प तोड़ता है, मैं उसके घर नहीं जाती हूँ ।।३६।। नखों से तृण तोड़ने और भूमि में नख द्वारा रेखा करने तथा जिसका शरीर और चरण मैला-कुचैला रहता है, उसके घर नहीं जाती हूँ ।।३७।। जो ज्ञानशील होकर अपनी या (दूसरे) की दी हुई ब्राह्मण-वृत्ति (जीविका) का तथा देव-सम्पत्ति का अपहरण करता है, उसके घर मैं नहीं जाती हूँ ।।३८।। जो मूर्खबुद्धि शठ दक्षिणाहीन कर्म करता है, उस पुण्यहीन पापी के घर मैं नहीं जाती हूँ ।।३९।। मंत्रविद्या से जीविका निर्वाह करने वाले, गांव-गाव यज्ञ कराने वाले, वैद्य, भण्डारी, और [illegible] देव-सम्पत्ति का अपहरण करता है, उसके घर मैं नहीं जाती हूँ ।।३८।। जो मूर्खबुद्धि शठ दक्षिणाहीन कर्म करता है, उस पुण्यहीन पापी के [illegible] जो क्रुद्ध होकर विवाह के कार्य या अन्य धार्मिक कार्य को नष्ट कर देता है, उसके घर और दिन में मैथुन करने वाले के घर मैं नहीं जाती हूं ।।४१।। हे नारद! इतना कहकर महालक्ष्मी अन्तर्हित हो गयीं और देवों तथा मनुष्यों के घर पर दृष्टि डालने लगीं ।।४२।। अनन्तर उन्हें प्रणाम करके सभी देवों और महर्षियों ने सुप्रसन्न होकर अपने अपने घरों को शीघ्र प्रस्थान किया, जो उस समय शत्रुओं से रहित एवं मित्र-वर्गों से युक्त था ।।४३।। हे मुने! देवों ने अपना राज्य और निश्चल लक्ष्मी की प्राप्ति करके स्वर्ग में नगाड़े बजवाये और पुष्पों की वर्षा की ।।४४।। हे वत्स! इस प्रकार मैंने लक्ष्मी का उत्तम चरित तुम्हें सुना दिया, जो सुखद, मोक्षदायक एवं सारभाग है। अब और क्या सुनना चाहते हो ।।४५।।

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपति-खण्ड में नारद-नारायण-संवाद में गणपति के गजमुख होने का कारण और लक्ष्मी-ब्राह्मण-विरोधादिरूप लक्ष्मी-चरित-कथन नामक तेईसवाँ अध्याय समाप्त ।।२३।।

---

१ क, ०नहीनश्च।

चतुर्विंशोऽध्यायः

नारद उवाच

नारायण महाभाग हरेरंशसमुद्भव । सर्वं श्रुतं त्वत्प्रसादाद्गणेशचरितं शुभम् ॥१॥
दन्तद्वययुतं वक्त्रं गजराजस्य बालके । विष्णुना योजितं ब्रह्मन्नेकदन्तः कथं शिशुः ॥२॥
कुतो गतोऽस्य दन्तोऽन्यस्तद्भवान्वक्तुमर्हति । सर्वेश्वरस्त्वं सर्वज्ञः कृपावान्भक्तवत्सलः ॥३॥

सूत उवाच

नारदस्य वचः श्रुत्वा स्मेराननसरोरुहः । एकदन्तस्य चरितं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥४॥

नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम् । एकदन्तस्य चरितं सर्वमङ्गलमङ्गलम् ॥५॥
एकदा कार्तवीर्यश्च जगाम मृगयां मुने । मृगान्निहत्य बहुलान्परिश्रान्तो बभूव सः ॥६॥
निशामुखे दिनेऽतीते तत्र तस्थौ वने नृपः । जमदग्न्याश्रमाभ्याशे चोपोष्यानीकसंयुतः ॥७॥
प्रातः सरोवरे राजा स्नातः शुचिरलंकृतः । दत्तात्रयेण दत्तं च ह्यजपद्भक्तितो मनुम् ॥८॥
मुनिर्ददर्श राजानं शुष्ककण्ठौष्ठतालुकम् । प्रीत्याऽऽदरेण मृदुलं पप्रच्छ कुशलं मुनिः ॥९॥

अध्याय २४

गणेश के एकदान्त होने का कारण

नारद बोले—हे नारायण, हे महाभाग ! आप भगवान् के अंश से उत्पन्न हैं आप की कृपा से गणेश जी का समस्त शुभ चरित मैंने सुन लिया ॥१॥ हे ब्रह्मन् ! गजराज के दो दाँतों से युक्त मुख को, भगवान् ने बालक (गणेश) के धड़ पर जोड़ा था, किन्तु वह बालक एकदन्त कैसे हो गया, उसका दूसरा दाँत कहाँ चला गया (क्या हो गया) बताने की कृपा करें, क्योंकि आप सर्वेश्वर, समस्त के ज्ञाता, कृपालु और भक्तवत्सल हैं ॥२-३॥

सूत बोले—नारद की ऐसी बात सुनकर मुसकराते हुए मुखकमल वाले भगवान् ने एकदन्त का चरित कहना आरम्भ किया ॥४॥

नारायण बोले—हे नारद ! मैं तुम्हें एकदन्त का चरित सुना रहा हूँ, जो प्राचीन इतिहास है और समस्त मंगलों का मंगल है ॥५॥

हे मुने ! एक बार राजा कार्तवीर्य मृगया (शिकार) खेलने के लिए गये। वहाँ अनेक मृगों का शिकार करने से वे बहुत श्रान्त हो गये और दिन भी समाप्त हो गया। सायंकाल देखकर राजा जंगल में वहीं सेना समेत ठहर गये, जहाँ समीप ही जमदग्नि का आश्रम था, किन्तु न जानने के कारण राजा को उस रात्रि उपवास करना पड़ा ॥६-७॥ प्रातःकाल सरोवर में राजा ने स्नान किया, तब पवित्र होकर अलंकार धारण किया और दत्तात्रेय के द्वारा प्राप्त मंत्र का भक्तिपूर्वक जप किया ॥८॥ अनन्तर मुनि ने राजा को देखा कि इनके कण्ठ, ओंठ और तालू सूख गये हैं, उन्होंने सादर प्रेमपूर्वक कोमलवाणी से उनका कुशल-समाचार

ननाम संभ्रमाद्राजा मुनिं सूर्यसमप्रभम्। स च तस्मै ददौ प्रीत्या प्रणताय शुभाशिषः॥१०॥
वृतान्तं कथयामास राजा चानशनादिकम् । संभ्रमेणैव मुनिना त्रस्तो राजा निमन्त्रितः॥११॥
विज्ञाप्य तं मुनिश्रेष्ठः प्रययौ स्वालयं मुदा। [1]एतद्वृत्तं कामधेनुं कथयामास भीतवत्॥१२॥
उवाच सा मुनिं भीतं भयं किं ते मयि स्थिते। जगद्भोजयितुं शक्तस्त्वं मया को नृपो मुने॥१३॥
राजभोजनयोग्यार्हं यद्यद्द्रव्यं प्रयाचसे। सर्वं तुभ्यं प्रदास्यामि त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्॥१४॥
सौवर्णानि च रौप्याणि पात्राणि विविधानि च। भोजनार्हाण्यसंख्यानि पाकपात्राणि यानि च॥१५॥
शुद्धरत्नविकाराणि पानपात्राणि यानि च। पात्राणि स्वादुपूर्णानि प्रददौ मुनये च सा॥१६॥
नानाविधानि स्वादूनि परिपक्वफलानि च। पनसाम्रश्रीफलानि नारिकेलादिकानि च॥१७॥
राशीभूतान्यसंख्यानि स्वादुलड्डुकराशयः । यवगोधूमचूर्णानां भक्ष्याणि विविधानि च॥१८॥
पक्वान्नानां पर्वतांश्च परमान्नस्य कन्दरान् । दुग्धानां च घृतानां च नदीर्दध्नां ददौ मुदा॥१९॥
शर्कराणां तथा राशिं मोदकानां च पर्वतान्। पृथुकानां सुशीलानां पर्वतान्प्रददौ मुदा॥२०॥
ताम्बूलं च ददौ पूर्णं कर्पूरादिसुवासितम्। नृपयोग्यं कौतुकाच्च सुन्दरं वस्त्रभूषणम्॥२१॥
मुनिः संभृतसंभारो दत्त्वा द्रव्यं मनोहरम् । भोजयामास राजानं ससैन्यमपि लीलया॥२२॥

पूछा॥९॥ राजा ने भी सहसा मुनि को नमस्कार किया, जो सूर्य के समान कान्तिपूर्ण थे, और मुनि ने विनय-विनम्र राजा को सप्रेम शुभाशिष प्रदान किया॥१०॥ अनन्तर राजा ने अपना रात्रि का अनशन आदि सभी वृत्तान्त उनसे कहा, जिससे मुनि ने राजा को त्रस्त देखकर तुरन्त अपने यहां निमन्त्रित किया॥११॥ मुनिश्रेष्ठ राजा से कहकर प्रसन्नता से अपने कुटीर में आये और भयभीत की भाँति उन्होंने सारा वृत्तान्त कामधेनु से कह सुनाया॥१२॥ उसने भयभीत मुनि से कहा—हे मुने! मेरे रहते तुम्हें भय क्या है? तुम मेरे द्वारा समस्त संसार को भोजन कराने में समर्थ हो, एक राजा की क्या बात है॥१३॥ राजभोजन के योग्य जिस-जिस वस्तु की याचना करोगे, मैं उन सभी वस्तुओं को तुम्हें दूँगी, जो तीनों लोकों में अतिदुर्लभ हैं॥१४॥ सोने-चांदी के विभिन्न प्रकार के भोजनपात्र, असंख्य पाक-पात्र, शुद्ध रत्न के बने पान-पात्र तथा अन्य स्वादु वस्तु से पूर्ण पात्रों को उसने प्रदान किया। अनेक भाँति के पके और स्वादिष्ठ फल, कटहल, आम, श्रीफल, नारियल आदि सुस्वादु लड्डुओं की अनेक राशियां, जवा-गेहूँ के आटे से बने विविध भक्ष्य पदार्थ, पकवानों के पर्वत, परामान्नों की कन्दरायें दूध, दही और घी की नदियाँ प्रदान कीं। शक्करों की राशियाँ, लड्डुओं के पर्वत तथा उत्तम साठीधान के चिपिटान्न (चिउरा) के पर्वत प्रदान किये। कर्पूरादि सुवासित ताम्बूल समर्पित किया। इस प्रकार महान् सम्भार से युक्त होकर मुनि ने राजा को कौतुक वश उसके योग्य सुन्दर वस्त्र, आभूषण एवं उत्तम द्रव्य देकर सेना समेत उन्हें भोजन कराया॥१५-२२॥

---

१ क. लक्ष्मीसमां।

यद्यत्सुदुर्लभं वस्तु परिपूर्णं नृपेश्वरः । जगाम विस्मयं राजा दृष्ट्वा पात्राण्युवाच ह ॥२३॥

राजोवाच

द्रव्याण्येतानि सचिव दुर्लभान्यश्रुतानि च। ममासाध्यानि सहसा क्वऽऽगतान्यवलोकय ॥२४॥
नृपाज्ञया च सचिवः सर्वं दृष्ट्वा मुनेर्गृहम्। राजानं कथयामास वृत्तान्तं महदद्भुतम् ॥२५॥

सचिव उवाच

दृष्टं सर्वं महाराज निबोध मुनिमन्दिरम्। वह्निकुण्डं यज्ञकाष्ठकुशपुष्पफलान्वितम् ॥२६॥
कृष्णचर्मस्रुवस्रुग्भिः शिष्यसंघैश्च संकुलम् । तैजसाधारसस्यादिसर्वसंपद्विवर्जितम् ॥२७॥
वृक्षचर्मपरीधाना दृष्टाः सर्वे जटाधराः । गृहैकदेशे दृष्टा सा कपिलैका मनोहरा॥
चार्वङ्गी चन्द्रवर्णाभा रक्तपङ्कजलोचना ॥२८॥
ज्वलन्ती तेजसा तत्र पूर्णचन्द्रसमप्रभा। सर्वसंपद्गुणाधारा साक्षादिव हरिप्रिया ॥२९॥
इत्येवं बोधितो राजा दुर्बुद्धिः सचिवाज्ञया । मुनिं ययाचे तां धेनुं निबद्धः कालपाशतः ॥३०॥
किं वा पुण्यं च का बुद्धि कः कालः सर्वतो बली। पुण्यवान्बुद्धिमान्दैवाद्राजेन्द्रोऽयाचत द्विजम् ॥३१॥
पुण्यात्प्रजायते कर्म पुण्यरूपं च भारते। पापात्प्रजायते कर्म पापरूपं भयावहम् ॥३२॥
पुण्यात्कृत्वा स्वर्गभोगं जन्म पुण्यस्थले नृणाम्। पापाद्भुक्त्वा च नरकं कुत्सितं जन्म जीविनाम् ॥३३॥

राजा को वहाँ अति दुर्लभ वस्तुएँ पूर्ण रूप से प्राप्त हुईं। पात्रों को देखकर राजा को महान् आश्चर्य हुआ और बोला ॥२३॥

राजा ने कहा—हे सचिव ! ये वस्तुएँ जो दुर्लभ ही नहीं, अपितु अश्रुत भी हैं, मेरे लिए असाध्य हैं। देखो ! ये सहसा कहाँ से आ गयीं ॥२४॥ मंत्री ने राजा की आज्ञा से मुनि का सारा घर देखा और राजा से महान् अद्भुत समाचार कह सुनाया ॥२५॥

सचिव बोला—हे महाराज ! सुनिये ! मैंने मुनि का समस्त घर—अग्नि कुण्ड, यज्ञ-काष्ठ, कुश, फूल, फल, काले मृग के चर्म, स्रुव तथा शिष्य वृन्द से व्याप्त, अग्न्याधार (वेदी), सस्य आदि से युक्त तथा सकल सम्पत्ति से रहित देखा ॥२६-२७॥ सभी लोग वृक्ष की छाल पहने, जटाधारी एवं तपस्वी हैं। घर में एक ओर एक मनोहर कपिला गौ बँधी देखी जो सुन्दर अंगों वाली, चन्द्रमा के समान कांति वाली, रक्त कमल की भाँति नेत्रों वाली एवं पूर्ण चन्द्रमा के समान प्रभा से समन्वित है। वह तेज से जल रही है और भगवान् की प्रेयसी साक्षात् लक्ष्मी की भाँति वह समस्त सम्पत्ति और गुणों का आधार है॥२८-२९॥ इस प्रकार उस दुर्बुद्धि राजा को मंत्री ने सब कुछ बता दिया। पश्चात् उस राजा ने कालपाश से आबद्ध होकर मुनि से उसी गौ की याचना की। क्या पुण्य, क्या बुद्धि और सबसे बली काल क्या ! दैवसंयोगवश पुण्यवान् और बुद्धिमान् होते हुए भी उस महाराज ने ब्राह्मण से याचना की। भारत में पुण्य द्वारा पुण्य कर्म की उत्पत्ति होती है और पाप द्वारा भीषण पाप कर्म की। पुण्य करने से मनुष्यों को स्वर्ग का भोग प्राप्त होता है और पुण्य स्थान में जन्म होता है। उसी भाँति पाप करने से प्राणियों को नरक-भोग और निन्दित जन्म प्राप्त होते हैं ॥३०-३३॥

जीविनां निष्कृतिर्नास्ति स्थिते कर्मणि नारद। तेन कुर्वन्ति सन्तश्च संततं कर्मणः क्षयम् ॥३४॥
सा विद्या तत्तपो ज्ञानं स गुरुः स च बान्धवः। सा माता स पिता पुत्रस्तत्क्षयं कारयेत्तु यः ॥३५॥
जीविनां दारुणो रोगः कर्मभोगः शुभाशुभः। भक्तिवैद्यस्तं निहन्ति कृष्णभक्तिरसायनात् ॥३६॥
माया ददाति तां भक्तिं प्रतिजन्मनि सेविता। परितुष्टा जगद्धात्री भक्तेभ्यो बुद्धिदायिनी ॥३७॥
परा परमभक्ताय माया यस्मै ददाति च। मायां तस्मै मोहयितुं न विवेकं कदाचन ॥३८॥
मायाविमोहितो राजा मुनिमानीय यत्नतः। उवाच विनयाद्भक्त्या कृताञ्जलिपुटो मुदा ॥३९॥

राजोवाच

देहि भिक्षां कल्पतरो कामधेनुं च कामदाम्। मह्यं भक्ताय भक्तेश भक्तानुग्रहकारक ॥४०॥
युष्मद्विधानां दातॄणामदेयं नास्ति भारते। दधीचिर्देवताभ्यश्च ददौ स्वास्थि पुरा श्रुतम् ॥४१॥
भ्रूभङ्गलीलामात्रेण तपोराशे तपोधन। समूहं कामधेनूनां स्रष्टुं शक्तोऽसि भारते ॥४२॥

मुनिरुवाच

अहो व्यतिक्रमं राजन्ब्रवीषि शठ वञ्चक। दानं दास्यामि विप्रोऽहं क्षत्रियाय[1] कथं नृप ॥४३॥
कृष्णेन दत्ता गोलोके ब्रह्मणे परमात्मना। कामधेनुरियं यज्ञे न देया प्राणतः प्रिया ॥४४॥

हे नारद! इस प्रकार कर्म में फँसे रहने पर जीवों का निकलना कठिन हो जाता है। इसीलिए सन्त लोग निरन्तर कर्म का क्षय करते रहते हैं, क्योंकि वही विद्या है, वही तप है, वही ज्ञान है, वही गुरु है, वही बान्धव है, वही माता-पिता और वही पुत्र है, जो कर्म के नाश होने में सहयोग प्रदान करे। जीवों के लिए शुभाशुभ कर्मों का भोग भीषण रोग है। अतः भक्त वैद्य भगवान् कृष्ण की भक्ति रूपी रसायन द्वारा उसी कर्म का नाश करता है। प्रत्येक जन्म में सेवा करने पर माया (दुर्गा) ही भक्ति प्रदान करती है और वही जगत् की धात्री अति सन्तुष्ट होने पर भक्तों को बुद्धि देती है। एवं वही परा माया जिस परम भक्त को मोहित करने के लिए माया प्रदान करती है, उसे विवेक कभी नहीं देती। इसीलिए मायामोहित होकर राजा ने मुनि के समीप आकर भक्तिपूर्वक विनय से हाथ जोड़कर यत्न से कहा ॥३४-३९॥

राजा बोला—हे कल्पतरो! मेरी कामनाओं को सफल करने वाली यह कामधेनु मुझे भिक्षा रूप में देने की कृपा करो। हे भक्तेश! आप भक्तों पर अनुग्रह करते हैं और मैं आप का भक्त हूँ ॥४०॥ भारत में आप के समान दाताओं के लिए कोई वस्तु अदेय नहीं है; क्योंकि यह सुना जाता है कि दधीचि ने पूर्वकाल में देवों को अपनी अस्थि प्रदान की थी। हे तपोधन! आप तपोराशि हैं, भारत में आप भौंह टेढ़ी करने की लीला मात्र से कामधेनुओं का समूह सर्जन करने में समर्थ हैं ॥४१-४२॥

मुनि बोले—हे राजन्! यह बड़ा व्यतिक्रम (उलटा) है, तुम शठ और ठग की भाँति कह रहे हो। हे नृप! भला मैं ब्राह्मण होकर क्षत्रिय को दान कैसे दे सकूंगा ॥४३॥ गोलोक में परमात्मा कृष्ण ने यज्ञ में यह प्राणों से भी अधिक प्रिय कामधेनु ब्रह्मा को दी थी। यह देने योग्य नहीं है ॥४४॥ हे

---

१ क. ०य नृपाधम।

ब्रह्मणा भृगवे दत्ता प्रियपुत्राय भूमिप। मह्यं दत्ता च भृगुणा कपिला पैतृकी मम ॥४५॥
गोलोकजा कामधेनुर्दुर्लभा भुवनत्रये । लीलामात्रात्कथमहं कपिलां स्रष्टुमीश्वरः ॥४६॥
नाहं रे हालिको मूढ स्तुत्या नोत्थापितो बुधः। क्षणेन भस्मसात्कर्तुं क्षमोऽहमतिथिं विना ॥४७॥
गृहं गच्छ गृहं गच्छ मे कोपं नैव वर्धय। पुत्रदारादिकं पश्य दैवबाधित पामर ॥४८॥
मुनेस्तद्वचनं श्रुत्वा चुकोप स नराधिपः। नत्वा मुनिं सैन्यमध्यं प्रययौ विधिबाधितः ॥४९॥
गत्वा सैन्यसकाशं स कोपप्रस्फुरिताधरः। किंकरान्प्रेषयामास धेनुमानयितुं बलात् ॥५०॥
कपिलासंनिधिं गत्वा रुरोद मुनिपुंगवः। कथयामास वृत्तान्तं शोकेन हतचेतनः ॥५१॥
रुदन्तं ब्राह्मणं दृष्ट्वा सुरभिस्तमुवाच ह। साक्षाल्लक्ष्मीस्वरूपा सा भक्तानुग्रहकारिका ॥५२॥

सुरभिरुवाच

इन्द्रो वा हालिको वाऽपि वस्तु स्वं दातुमीश्वरः। शास्ता पालयिता दाता स्ववस्तूनां च संततम् ॥५३॥
स्वेच्छया चेन्नृपेन्द्राय मां ददासि तपोधन। तेन सार्धं गमिष्यामि स्वेच्छया च तवाऽऽज्ञया ॥५४॥
अथवा न ददासि त्वं न गमिष्यामि ते गृहात्। मत्तो दत्तेन सैन्येन दूरी कुरु नृपं द्विषम् ॥५५॥
कथं रोदिषि सर्वज्ञ मायामोहितचेतनः। संयोगश्च वियोगश्च कालसाध्यो न चाऽऽत्मनः ॥५६॥

भूमिपालक! पुनः ब्रह्मा ने अपने प्रिय पुत्र भृगु को दिया और भृगु ने इस कपिला को मुझे दिया है, इसलिए यह हमारी पैतृक सम्पत्ति है॥४५॥ गोलोक में उत्पन्न होने वाली यह कामधेनु तीनों लोकों में अति दुर्लभ है अतः ऐसी कपिला की सृष्टि मैं लीलामात्र से कैसे कर सकता हूँ॥४६॥ रे मूढ़! मैं हलवाहा नहीं हूँ और स्तुति (प्रशंसा) करने से पण्डित लोग कभी उमंग में नहीं आते हैं। हां, यदि तुम अतिथि न होते तो मैं क्षणमात्र में भस्म कर सकता था॥४७॥ इसलिए तुम घर जाओ (फिर कहता हूँ) घर चले जाओ। मेरे क्रोध को न बढ़ाओ। हे पामर (नीच)! तू दैव (दुर्भाग्य) का मारा है अतः घर जाकर स्त्री-पुत्र को देख॥४८॥ मुनि की ऐसी बातें सुनकर राजा क्रुद्ध हो गया और दैवदुर्भाग्य वश मुनि को नमस्कार करके सेनाओं के पास चला गया॥४९॥ वहाँ पहुँचने पर उसके होंठ क्रोध से फड़कने लगे। उसने बलात् गौ लाने के लिए अपने सेवकों को भेजा॥५०॥ उधर मुनिश्रेष्ठ (जमदग्नि) ने गौ के पास जाकर रोदन किया और शोकाकुल होकर सभी वृत्तान्त उससे कह सुनाया॥५१॥ ब्राह्मण को रोदन करते देखकर साक्षात् लक्ष्मी स्वरूप एवं भक्तों पर अनुग्रह करने वाली सुरभी ने उनसे कहा॥५२॥

सुरभी बोली—इन्द्र हों या हलवाहा हो, वह अपनी वस्तु देने के लिए अधिकारी है अतः अपनी वस्तु का वह शासन, पालन, दान निरन्तर कर सकता है। अतः हे तपोधन! यदि तुम अपनी इच्छा से मुझे महाराज को सौंप रहे हो, तो तुम्हारी आज्ञावश मैं स्वेच्छया उसके साथ जाने को तैयार हूँ॥५३-५४॥ किन्तु, यदि तुम नहीं देना चाहते हो तो मैं तुम्हारे घर से कभी नहीं जाऊँगी। मेरी दी हुई सेनाओं द्वारा उस शत्रु राजा को दूर भगा दो॥५५॥ हे सर्वज्ञ! तुम रोदन क्यों करते हो? तुम्हारा चित्त मायामोहित हो गया है क्योंकि (किसी का) संयोग-वियोग

त्वं वा को मे तवाहं का संबन्धः कालयोजितः । यावदेव हि संबन्धो ममत्वं तावदेव हि ।।५७।।
मनो जानाति यद्द्रव्यमात्मीयं चेति केवलम् । दुःखं च तस्य विच्छेदाद्यावत्स्वत्वं च तत्र वै ।।५८।।
इत्युक्त्वा कामधेनुश्च सुषाव विविधानि च । शस्त्राण्यस्त्राणि सैन्यानि सूर्यतुल्यप्रभाणि च ।।५९।।
निर्गताः कपिलावक्त्रात्त्रिकोटयः खड्गधारिणाम् । विनिःसृता नासिकायाः शूलिनः पञ्चकोटयः ।।६०।।
विनिःसृता लोचनाभ्यां शतकोटिधनुर्धराः । कपालान्निःसृता वीरास्त्रिकोटयो दण्डधारिणाम् ।।६१।।
वक्षःस्थलान्निःसृताश्च त्रिकोटयः शक्तिधारिणाम् । शतकोटयो गदाहस्ताः पृष्ठदेशाद्विनिर्गताः ।।६२।।
विनिःसृताः पादतलाद्वाद्यभाण्डाः सहस्रशः । जङ्घादेशान्निःसृताश्च त्रिकोटयो राजपुत्रकाः ।।६३।।
विनिर्गता गुह्यदेशात्त्रिकोटिम्लेच्छजातयः । दत्त्वा सैन्यानि कपिला मुनये चाभयं ददौ ।।६४।।
युद्धं कुर्वन्तु सैन्यानि त्वं न याहीत्युवाच ह । मुनिः संभृतसंभारैर्हर्षयुक्तो बभूव ह ।।६५।।
नृपेण प्रेरितो भृत्यो नृपं सर्वमुवाच ह । कपिलासैन्यवृत्तान्तमात्मवर्गपराजयम् ।।६६।।
तच्छ्रुत्वा नृपशार्दूलस्त्रस्तः कातरमानसः । दूतान्संप्रेष्य सैन्यानि चाऽऽजहार स्वदेशतः ।।६७।।

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० एकदन्तत्वहेतुप्रश्नप्रसङ्गे जमदग्निकार्तवीर्ययुद्धारम्भवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ।।२४।।

समय आने पर होता है, अपने वश से नहीं। तुम मेरे कौन हो और मैं तुम्हारी कौन हूँ। किन्तु कालवश हमारा तुम्हारा सम्बन्ध स्थापित हो गया है क्योंकि जब तक सम्बन्ध रहता है ममत्व भी तभी तक रहता है ।।५६-५७।। मन जिस वस्तु को जानता है कि यह मेरी है और जब तक उस पर अपना स्वत्व रखता है तभी तक उसे उसके वियोग का दुःख होता है ।।५८।। इतना कहकर उस कामधेनु ने विभिन्न प्रकार के शस्त्र अस्त्र और सूर्य के समान कान्ति-पूर्ण सेनायें उत्पन्न कीं ।।५९।। अनन्तर उस कपिला गौ के मुख से तीन करोड़ खड्गधारी, नासिका से पाँच करोड़ शूलधारी, आँखों से सौ करोड़ धनुर्धारी, कपाल से तीन करोड़ दण्डधारी वीर, वक्षःस्थल से तीन करोड़ शक्तिधारी, पृष्ठभाग से सौ करोड़ गदाधारी, तलवे से सहस्रों वाद्य बजाने वाले, जंघाओं से तीन करोड़ राजपुत्र और गुह्य स्थान से तीन करोड़ म्लेच्छ जाति वाले सैनिक निकले। इस भाँति उस कपिला गौ ने सेनाओं को समर्पित कर मुनि को अभय प्रदान किया और कहा—ये सेनायें वहाँ जाकर युद्ध करेंगी, तुम मत जाना। इस प्रकार सम्भार से युक्त होने पर मुनि को महान् हर्ष हुआ और राजा के भेजे हुए दूतों ने लौटकर राजा से यह सब कपिला-सेना का वृत्तान्त कह सुनाया। जिससे अपनी पराजय की सम्भावना सुनकर वह राजा घबराया और दूतों को भेजकर अपने देश से और अधिक सेनाओं को बुलाया ।।६०-६७।।

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण के संवाद में एकदन्त के प्रश्न-प्रसंग में जमदग्नि-कार्तवीर्य्य-युद्धारम्भ-वर्णन नामक चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ।।२४।।

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

हरिं स्मरन्कार्तवीर्यो हृदयेन विदूयता। दूतं प्रस्थापयामास कुपितो मुनिसंनिधिम् ॥१॥
युद्धं देहि मुनिश्रेष्ठ किंवा धेनुं च वाञ्छिताम्। महचं भृत्यायातिथये सुविचार्य यथोचितम् ॥२॥
दूतस्य वचनं श्रुत्वा जहास मुनिपुंगवः। हितं सत्यं नीतिसारं सर्वं दूतमुवाच ह ॥३॥

मुनिरुवाच

दृष्टो नृपो निराहारः समानीतो मया गृहम्। विविधं च यथाशक्त्या भोजितश्च यथोचितम् ॥४॥
कपिलां याचते राजा मम प्राणाधिकां बलात्। तां दातुमक्षमो दूत युद्धं दास्यामि निश्चितम् ॥५॥
मुनेस्तद्वचनं श्रुत्वा दूतः सर्वमुवाच ह। नृपेन्द्रं च सभामध्ये संनाहैः संयुतं भिया ॥६॥
मुनिश्च कपिलामाह सांप्रतं किं करोम्यहम्। कर्णधारं विना नौका तथा सैन्यं विना मया ॥७॥
कपिला च ददौ तस्मै शस्त्राणि विविधानि च। युद्धशास्त्रोपदेशं च संधानं चौपयोगिकम् ॥८॥
जयो भवतु ते विप्र युद्धे जेष्यसि निश्चितम्। तव मृत्युर्न भविता सत्यमस्त्रं विना मुने ॥९॥

अध्याय २५

जमदग्नि और कार्तवीर्यार्जुन के युद्ध का वर्णन

नारायण बोले—राजा कार्तवीर्य ने हार्दिक दुःख में भगवान् का स्मरण करते हुए क्रोधवश मुनि के समीप अपना दूत भेजा ॥१॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं आपका सेवक हूँ एवं अतिथि हूँ, अतः भली भाँति विचार द्वारा निश्चित करके मुझे युद्ध या अभिलषित धेनु जो उचित हो, देने की कृपा करें ॥२॥ दूत की बातें सुनकर मुनिश्रेष्ठ ने हँसकर दूत से कहा, जो हितकर, सत्य और नीति का सार भाग था ॥३॥

मुनि बोले—मैं राजा को उपवास किये देख कर अपने घर लाया और यथाशक्ति विविध प्रकार का यथोचित भोजन कराया ॥४॥ हे दूत ! अब वही राजा बलात् मेरी कपिला गौ माँग रहा है, जो मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय है। इसलिए मैं उसे देने में असमर्थ हूँ, युद्ध ही करूँगा, यही मेरा निश्चय है ॥५॥ मुनि की बातें सुनकर दूत ने सभा में कवचयुक्त राजा से डरते हुए सब कुछ कह दिया ॥६॥ अनन्तर मुनि ने उस गौ से कहा—'सम्प्रति मैं क्या करूँ ? क्योंकि कर्णधार (नाव चलाने वाला मल्लाह) बिना नौका की भाँति मेरे बिना सेना की स्थिति है ॥७॥ कपिला ने उन्हें विविध भाँति के शस्त्र तथा बाण आदि रखने-चलाने की कला और युद्धशास्त्र का उपदेश भी प्रदान किया ॥८॥ (और कहा) हे विप्र ! युद्ध में तुम्हारी विजय निश्चित होगी। हे मुने ! सत्य अस्त्र बिना तुम्हारी मृत्य सम्भव नहीं है ॥९॥ ब्राह्मण का युद्ध ऐसे राजा के साथ, जो दत्तात्रेय

नृपेण सार्धं ते युद्धमयुक्तं ब्राह्मणस्य च। दत्तात्रेयस्य शिष्येण व्यर्थं वै शक्तिधारिणा॥
इत्युक्त्वा कपिला ब्रह्मन्विरराम मनस्विनी ॥१०॥
मुनिर्मनस्वी सैन्यं च सज्जीकृत्य ततो मुने। गृहीत्वा सर्वसैन्यं च स जगाम रणाजिरम्॥११॥
राजा जगाम युद्धाय ननाम मनिपुंगवम्। उभयोः सैन्ययोर्युद्धं बभूव बहुदुष्करम्॥१२॥
राजसैन्यं जितं सर्वं कपिलासेनया बलात्। विचित्रं च रथं राज्ञो बभञ्जे लीलया रणे।१३॥
धनुश्चिच्छेद संनाहं सा सेना कापिली मुदा। नृपेन्द्रः कापिलेयानि जेतुं सैन्यानि चाक्षमः॥१४॥
सैन्यान्वितं शस्त्रवृष्टचा न्यस्तशस्त्रं चकार सा। शरवृष्टचा शस्त्रवृष्टचा राजा मूर्च्छामवाप ह॥१५॥
किंचिच्छिष्टं बलं राज्ञः किंचिदेव पलायितम्। मुनीन्द्रो मूर्च्छितं दृष्ट्वा नृपेन्द्रमतिथिं मुने॥१६॥
कृपानिधिश्च कृपया तत्सैन्यं संजहार च। गत्वा सैन्यं विलीनं च कपिलायां च कृत्रिमम्॥१७॥
नृपाय मुनिना शीघ्रं दत्ताश्चरणरेणवः। आशीर्वादं प्रदत्तं च जयोऽस्त्विति कृपालुना॥१८॥
कमण्डलुजलं प्रोक्ष्य जीवयामास तं नृपम्। स राजा चेतनां प्राप्य समुत्थाय रणाजिरात्॥१९॥
मूर्ध्ना ननाम भक्त्या च मुनिश्रेष्ठं कृताञ्जलिः। मुनिः शुभाशिषं दत्त्वा राजानं त्वालिलिङ्ग सः॥२०॥
पुनस्तं स्नापयित्वा च भोजयामास यत्नतः। नवनीतं हि हृदयं ब्राह्मणानां तु संततम्॥२१॥

का शिष्य और शक्तिधारी है, अनुचित एवं व्यर्थ है। हे ब्रह्मन्! इतना कहकर वह मनस्विनी गौ चुप हो गयी ॥१०॥ पश्चात् मनस्वी मुनि ने सेना को तैयार कर उसके साथ रणक्षेत्र के लिए प्रस्थान किया॥११॥ राजा ने भी युद्धस्थल में पहुँचकर मुनिश्रेष्ठ जमदग्नि को नमस्कार किया। अनन्तर दोनों की सेनाओं में भीषण युद्ध आरम्भ हो गया॥१२॥ कपिला की सेनाओं ने राज-सेनाओं को बलात् पराजित कर दिया और रणस्थल में राजा के विचित्र रथ को लीला पूर्वक तोड़-फोड़ डाला॥१३॥ उसका कवच काट दिया; राजेन्द्र उस कापिली (कपिला की) सेना को जीतने में समर्थ न हो सका॥१४॥ उस (सेना) ने शस्त्र वर्षा द्वारा सैन्य युक्त राजा को शस्त्ररहित कर दिया। बाणवर्षा और शस्त्र वर्षा द्वारा राजा मूर्च्छित हो गया॥१५॥ हे मुने! राजा की कुछ सेना शेष रह गई और कुछ भाग निकली। कृपानिधान मुनि ने उस अतिथि राजा को मूर्च्छित देखकर कृपया उसकी पलायन करने वाली सेना को बुला दिया और मुनि की कृत्रिम सेना कपिला में अन्तर्हित हो गयी॥१६-१७॥ उपरांत मुनि ने राजा को शीघ्र अपना चरण-रज प्रदान किया। उस कृपालु ने शुभाशिष भी दिया कि—'तुम्हारी जय हो'। इतना कहकर कमण्डलु के जल से सिंचन कर उन्हें जीवित कर दिया॥१८॥ चेतना प्राप्त होने पर राजा ने रणस्थल से बाहर निकल कर भक्तिपूर्वक हाथ जोड़ा, शिर से मुनिवर्य को नमस्कार किया और मुनि ने भी शुभाशीर्वाद प्रदान करते हुए राजा का आलिंगन किया तथा स्नान कराकर यत्न से उसे भोजन कराया क्योंकि ब्राह्मणों का हृदय सदा नवनीत (मक्खन) के समान (कोमल) होता है ॥१९-२१॥

अन्येषां क्षुरधाराभमसाध्यं दारुणं सदा। उवाच तं मुनिश्रेष्ठो गृहं गच्छ धराधिप॥ ॥२२॥

राजोवाच

रणं देहि महाबाहो धेनुं किंवा मयेप्सिताम् ॥२३॥

इति श्री ब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० जमदग्निकार्तवीर्यार्जुनयुद्धवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

अथ षड्विंशोऽध्यायः

नारद उवाच

हरिं स्मरन्मुनिश्रेष्ठो वाक्यं श्रुत्वा च भूभृतः। हितं सत्यं नीतिसारं प्रवक्तुमुपचक्रमे॥१॥

मुनिरुवाच

गृहं गच्छ महाभाग रक्ष धर्मं सनातनम्। सर्वसंपत्स्थिरा शश्वत्स्थिते धर्मे सुनिश्चितम्॥२॥

त्वां च दृष्ट्वा निराहारं समानीय गृहं नृप। तव पूजामकरवं यथाशक्ति विधानतः॥३॥

सांप्रतं मूर्च्छितं दृष्ट्वा पादरेणुं शुभाशिषम्। अददां चेतयांचक्रे वक्तुमेवोचितं न च॥४॥

नृपस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रणम्य मुनिपुंगवम्। रथमन्यं त्वारुरोह युद्धं देहीत्युवाच ह॥५॥

अन्य लोगों का हृदय क्षुर (स्तुरे) की धार के समान सदा असाध्य एवं भीषण होता है। (अनन्तर) मुनिवर्य ने कहा—हे राजन् ! अब तुम अपने घर चले जाओ ॥२२॥

राजा बोला—हे महाबाहो ! (मैं घर नहीं जाऊँगा) मुझे युद्ध दीजिये या मेरी मनचाही धेनु (गौ) देने की कृपा करें ॥२३॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण के संवाद में जमदग्नि-कार्तवीर्यार्जुनयुद्धवर्णन नामक पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२५॥

अध्याय २६

ब्रह्मा द्वारा उक्त युद्ध का शमन

नारायण बोले—मुनिश्रेष्ठ ने भगवान् का स्मरण करते हुए, राजा की कही हुई बातों को सुनकर उसे उत्तर देना आरम्भ किया, जो हित, सत्य और नीति का सार भाग था॥१॥

मुनि बोले—हे महाभाग ! अपने घर जाओ और सनातन धर्म की रक्षा करो। क्योंकि धर्म में निरन्तर स्थित रहने पर समस्त सम्पत्ति सुस्थिर रहती है यह सुनिश्चित है॥२॥ हे नृप ! तुम्हें भूखा देखकर मैं अपने घर लाया और सविधान एवं यथाशक्ति तुम्हारा सम्मान किया॥३॥ इस समय भी तुम्हें मूर्च्छित देखकर मैंने अपने चरण-रज समेत शुभाशीर्वाद प्रदान किया, जिससे तुम्हें चेतना प्राप्त हुई और यह कहना उचित भी नहीं है॥४॥ मुनि की बातें सुनकर राजा ने मुनिवर्य को प्रणाम किया और अन्य रथ पर

मुनिः कृत्वा च संनाहं तं योद्धुमुपचक्रमे। राजा तं युयुधे तत्र कोपेन हृतचेतनः ॥६॥
कपिलादत्तशस्त्रेण न्यस्तशस्त्रं चकार तम्। कपिलादत्तया शक्त्या पुनर्मूर्च्छामवाप च ॥७॥
पुनश्च चेतनां प्राप्य राजा राजीवलोचनः। मुनिना युयुधे तत्र कोपेन पुनरेव च ॥८॥
आग्नेयं योजयामास समरे नृपपुंगवः। मुनिर्निर्वापयामास वारुणेन च लीलया ॥९॥
नृपेन्द्रो वारुणास्त्रं च चिक्षेप समरे मुनौ। वायव्यास्त्रेण स मुनिः शमयामास लीलया ॥१०॥
वायव्यास्त्रं नृपश्रेष्ठश्चिक्षेप समरे तदा। गान्धर्वेण मुनिश्रेष्ठः शमयामास तत्क्षणम् ॥११॥
नागास्त्रं च नृपश्रेष्ठश्चिक्षेप रणमूर्धनि। गारुडेन मुनिश्रेष्ठो निजघान क्षणान्मुने ॥१२॥
माहेश्वरं महास्त्रं च शतसूर्यसमप्रभम्। चिक्षेप नृपतिश्रेष्ठो द्योतयन्तं दिशो दश ॥१३॥
वैष्णवास्त्रेण दिव्येन त्रिलोकव्यापकेन च। मुनिर्निर्वापयामास बहुयत्नेन नारद ॥१४॥
मुनिर्नारायणास्त्रं च चिक्षिपे मन्त्रपूर्वकम्। शस्त्रं त्यक्त्वा[1] महाराजो ननाम शरणं ययौ ॥१५॥
ऊर्ध्वं च भ्रमणं कृत्वा क्षणं दीप्त्वा दिशो दश। प्रलयाग्निसमं तत्र स्वयमन्तरधीयत ॥१६॥
जृम्भणास्त्रं च स मुनिश्चिक्षेप रणमूर्धनि। निद्रां प्रापत्तेन राजा सुष्वाप च मृतो यथा ॥१७॥
दृष्ट्वा नृपं निद्रितं तं चार्धचन्द्रेण तत्क्षणम्। चिच्छेद सारथिं यानं धनुर्बाणं मुनिस्तदा ॥१८॥

चढ़कर उनसे कहा—मुझे युद्ध दीजिये ॥५॥ अनन्तर मुनि ने कवच धारण कर उनसे युद्ध करना आरम्भ किया तथा राजा ने भी अति क्रुद्ध होकर उनसे घोर युद्ध किया ॥६॥ मुनि ने कपिला (गौ) के दिये हुए शस्त्र द्वारा राजा को शस्त्ररहित कर दिया और कपिला की दी हुई शक्ति द्वारा राजा पुनः मूर्च्छित हो गया ॥७॥ तदुपरांत चेतना प्राप्त होने पर कमल के समान नेत्र वाले राजा ने क्रुद्ध होकर मुनि के साथ भीषण युद्ध किया। इस श्रेष्ठ नृपति ने युद्धस्थल में मुनि के ऊपर आग्नेयास्त्र का प्रयोग किया, मुनि ने उसे वारुणास्त्र द्वारा लीलापूर्वक समाप्त कर दिया ॥८-९॥ नृपेन्द्र ने रणांगण में मुनि के ऊपर वारुणास्त्र का प्रयोग किया, मुनि ने वायव्यास्त्र द्वारा लीला से उसे शान्त कर दिया ॥१०॥ राजा ने मुनि के ऊपर वायव्यास्त्र का प्रयोग किया, मुनिवर्य ने उसी क्षण गान्धर्वास्त्र द्वारा उसे विफल कर दिया ॥११॥ राजा ने रणक्षेत्र में मुनि के ऊपर नागास्त्र का प्रयोग किया, मुनि-श्रेष्ठ ने क्षणमात्र में उसे गारुड़ास्त्र द्वारा नष्ट कर दिया ॥१२॥ हे नारद! राजा ने मुनि के ऊपर माहेश्वर-अस्त्र का प्रयोग किया, जो सबसे महान्, सैकड़ों सूर्य के समान प्रभापूर्ण और दशो दिशाओं को प्रकाशित कर रहा था। मुनि ने दिव्य वैष्णवास्त्र द्वारा, जो तीनों लोकों में व्यापक था, अतिप्रयत्न से उसे शान्त कर दिया ॥१३-१४॥ अनन्तर मुनि ने राजा के ऊपर नारायणास्त्र का मंत्रपूर्वक प्रयोग किया, महाराज ने शस्त्र त्यागकर उसे नमस्कार किया और उसकी शरण में गये, जिससे वह उसी क्षण दशों दिशाओं में प्रलय-अग्नि के समान ऊपर भ्रमण कर उसी स्थान में स्वयं अन्तर्हित हो गया ॥१५-१६॥ मुनि ने उसी समय रणस्थल में जृंभणास्त्र का प्रयोग किया, जिससे राजा को निद्रा आ गयी और वे मृतक की भाँति सो गये ॥१७॥ मुनि ने राजा को निद्रा-मग्न देखकर उसी क्षण अर्द्धचन्द्राकार अस्त्र का प्रयोग किया, जिससे राजा का सारथी, रथ और धनुष-बाण कट गये

---

१ ख. दृष्ट्वा।

मुकुटं च क्षुरप्रेण च्छत्रं संनाहमेव च। अस्त्रं तूणं वाजिगणं विविधेन च भूभृतः ॥१९॥
मुनिस्तत्सचिवान्सर्वान्नागास्त्रेणैव लीलया। निबध्य स्थापयामास प्रहस्य समरस्थले ॥२०॥
मुनिस्तं बोधयामास सुमन्त्रेणैव लीलया। निबद्धसर्वामात्यानां दर्शयामास भूमिपम् ॥२१॥
दर्शयित्वा नृपं तांश्च मोचयामास तत्क्षणम्। नृपेन्द्रमाशिषं कृत्वा गृहं गच्छेत्युवाच ह ॥२२॥
राजा कोपात्समुत्थाय शूलमुद्यम्य यत्नतः। चिक्षेप तं मुनिश्रेष्ठं मुनिः शक्त्या जघान तम् ॥२३॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा समागत्य रणस्थलम्। सुप्रीतिं जनयामास सुनीत्या च परस्परम् ॥२४॥
मुनिर्ननाम ब्रह्माणं तुष्टाव च रणस्थले। राजा नत्वा विधिं चर्षिं स्वपुरं प्रययौ तदा ॥२५॥
मुनिर्ययौ स्वाश्रमं च स्वलोकं कमलोद्भवः। इत्येवं कथितं किंचिदपरं कथयामि ते ॥२६॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० जमदग्निकार्तवीर्ययुद्धोपशमवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

हरिं स्मृत्वा गृहं गत्वा राजा विस्मितमानसः। आजगाम महारण्ये जमदग्न्याश्रमं पुनः ॥१॥

॥१८॥ अनेक प्रकार के बाण से राजा के मकुट, छत्र, कवच, अस्त्र, तरकस और घोड़ों को भी बेध डाला ॥१९॥ मुनि ने उस समर-भूमि में हँसते-हँसते नागास्त्र द्वारा लीला से उनके मंत्रियों को बांध लिया और सुमन्त्र द्वारा शीघ्र राजा को चैतन्य कर उनके बंधे हुए सभी मंत्रियों को उन्हें दिखाया। ॥२०-२१॥ उपरांत राजा को दिखाकर उन्हें उसी समय मुक्त कर दिया और आशीर्वाद देते हुए कहा कि तुम घर चले जाओ ॥२२॥ क्रुद्ध होकर राजा ने उठकर प्रयत्न से शूल का प्रयोग किया, जिसे मुनि ने शक्ति द्वारा नष्ट कर दिया ॥२३॥ इसी बीच ब्रह्मा ने वहाँ रणक्षेत्र में आकर उत्तम नीति द्वारा समझा-बुझाकर दोनों में प्रीति-भाव उत्पन्न किया ॥२४॥ मुनि ने उस युद्धस्थल में सन्तुष्ट होकर ब्रह्मा को नमस्कार किया, और राजा उस समय ब्रह्मा एवं उन ऋषि को नमस्कार करके अपने नगर चला गया, मुनि अपने आश्रम पर गये और ब्रह्मा भी अपने लोक को चले गये। इतना तो मैंने तुम्हें बता दिया और अब आगे भी कह रहा हूँ, सुनो ॥२५-२६॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण-संवाद में जमदग्नि और कार्तवीर्य का युद्धोपशमन-वर्णन नामक छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२६॥

अध्याय २७

जमदग्नि-विनाश और परशुराम की प्रतिज्ञा

नारायण बोले—भगवान् का स्मरण करके मन में आश्चर्य करता हुआ राजा अपने घर चला गया। अनन्तर वह पुनः उस महान् जंगल में जमदग्नि के आश्रम में आया ॥१॥

रथानां च चतुर्लक्षं रथिनां दशलक्षकम् । अश्वेन्द्राणां गजेन्द्राणां पदातीनामसंख्यकम् ॥२॥
राजेन्द्राणां सहस्रं च महाबलपराक्रमम् । महासमृद्धियुक्तश्च त्रैलोक्यं जेतुमीश्वरः ॥३॥
सर्वतो वेष्टयामास जमदग्न्याश्रमं मुने। रथस्थो वर्मयुक्तश्च कार्तवीर्यार्जुनः स्वयम् ॥४॥
सैन्यशब्दैर्वाद्यशब्दैर्महाकोलाहलैर्मुने। जमदग्न्याश्रमस्थाश्च मूर्च्छामापुर्भयेन च ॥५॥
कुटीं प्रविश्य बलवान्गृहीत्वा कपिलां शुभाम्। पुरं गन्तुं मनश्चक्रे दुर्बुद्धिरसदाशयः ॥६॥
समुत्तस्थौ मुनिश्रेष्ठो गृहीत्वा सशरं धनुः। एकाकी मुक्तगात्रश्च धेनुं नत्वा हरिं स्मरन् ॥७॥
आश्रमस्थाञ्जनान्सर्वानाश्वास्य च यत्नतः। आजगाम रणस्थानं निःशङ्को नृपतेः पुरः ॥८॥
निर्ममे शरजालं च स मुनिर्मन्त्रपूर्वकम्। आच्छादयत्स्वाश्रमं तैर्मानवं वर्मणा यथा ॥९॥
अपरं शरजालं च निर्ममे पुनिपुंगवः। तैरेवाऽऽवरणं चक्रे सर्वसैन्यं यथाक्रमम् ॥१०॥
मुनिना शरजालेन सर्वसैन्यं समावृतम्। तानि सर्वाणि गुप्तानि यथा पत्राणि पञ्जरे ॥११॥
राजा दृष्ट्वा मुनिश्रेष्ठमवरुह्य रथात्पुरः। सार्धं नृपेन्द्रैर्भक्त्या च प्रणनाम कृताञ्जलिः ॥१२॥
नत्वाऽऽरुरोह यानं स मुनेः प्राप्य शुभाशिषः। आरुह्य च नृपश्रेष्ठः स्वयानं हृष्टमानसः ॥१३॥

उसके साथ चार लाख रथ, दश लाख रथ वाले सैनिक और बड़े-बड़े अश्व (घोड़े), हाथी एवं पैदल सैनिक असंख्य थे॥२॥ एक सहस्र अन्य राजा लोग थे, जो महाबली एवं महापराक्रमी थे। इस प्रकार महासमृद्धियुक्त होकर वह राजा वहाँ आया, जो तीनों लोकों को जीतने में समर्थ था॥३॥ उसने जमदग्नि का आश्रम चारों ओर से घेर लिया और स्वयं कार्तवीर्य्यार्जुन कवच पहनकर रथ पर अवस्थित था॥४॥ हे मुने! उसकी सेनाओं के शब्दों, वाद्यों की भीषण ध्वनियों एवं महाकोलाहल से जमदग्नि-आश्रम के सभी लोग भय से मूर्च्छित हो गये॥५॥ बलवान् राजा ने कुटी में प्रविष्ट होकर उस शुभमूर्ति कपिला को पकड़ लिया और दुर्बुद्धि एवं नीच विचार वाला राजा, उसे लेकर अपने घर की ओर जाने का विचार करने लगा॥६॥ अनन्तर धनुष-बाण लेकर एकाकी (अकेले) और खुले शरीर वाले मुनिवर्य धेनु को नमस्कार करके भगवान् का स्मरण करते हुए आश्रम-वासियों को बड़े यत्न से आश्वासन प्रदान कर रणक्षेत्र में राजा के सामने निःशंक पहुँच गये॥७-८॥ मुनि ने वहाँ पहुँचकर यत्नपूर्वक बाणों का जाल-सा बना दिया। कवच पहने हुए मनुष्य के समान उसी जाल से अपने आश्रम को आच्छादित कर दिया॥९॥ मुनिवर्य ने उसी समय एक दूसरे शर-जाल का निर्माण किया और उसी द्वारा राजा की समस्त सेनाओं को क्रमशः आवृत कर दिया॥१०॥ इस प्रकार मुनि-निर्मित बाणों के जाल में राजा की समस्त सेनाएँ आच्छादित होकर पिंजड़े में पक्षी की भाँति गुप्त हो गईं॥११॥ अनन्तर राजा मुनिश्रेष्ठ को देखकर रथ से उतर पड़ा और अपने सहायक राजाओं के साथ हाथ जोड़े भक्ति-पूर्वक उन्हें प्रणाम करने लगा॥१२॥ मुनि का शुभाशीर्वाद प्राप्त होने पर राजा अत्यन्त हर्षित होकर अपने रथ पर बैठा और सहायक राजाओं के साथ अस्त्र, शस्त्र, गदा एवं शक्ति का प्रयोग किया, किन्तु मुनिवर्य

नृपैः सार्धं नृपश्रेष्ठश्चिक्षेप मुनिपुंगवे। अस्त्रं शस्त्रं गदां शक्तिं जघान क्रीडया मुनिः ॥१४॥
मुनिश्चिक्षेप दिव्यास्त्रं चिच्छिदे लीलया नृपः। शूलं चिक्षेप नृपतिस्तं जघान तदा मुनिः ॥१५॥
अपरं शरजालं च निर्ममे मुनिपुंगवः। शस्त्रौघैर्दुर्निवार्यैश्च खण्डं खण्डं चकार सः ॥१६॥
निबद्धाः शरजालेन न च शक्ताः पलायितुम्। जृम्भणास्त्रेण मुनिना ते च सर्वे विजृम्भिताः ॥१७॥
हस्त्यश्वरथपादातसहितं सर्वसैन्यकम्। राजानं निद्रितं दृष्ट्वा न जघान मुनीश्वरः ॥१८॥
गृहीत्वा कपिलां हृष्टो रुदन्तीं शोकमूर्च्छिताम्। बोधयित्वा पुरः कृत्वा स्वाश्रमं गन्तुमुद्यतः ॥१९॥
एतस्मिन्नन्तरे राजा चेतनां प्राप्य नारद। निवारयामास मुनिं गृहीत्वा सशरं धनुः ॥२०॥
जगाम कपिला त्रस्ता स्वस्थानं च रणाजिरात्। मुनिश्च तस्थौ निःशङ्को गृहीत्वा सशरं धनुः ॥२१॥
ब्रह्मास्त्रं च नृपश्रेष्ठः स चिक्षेप मुनौ तदा। ब्रह्मास्त्रेण मुनीन्द्रस्य सद्यो निर्वाणतां गतम् ॥२२॥
दिव्यास्त्रेण मुनिश्रेष्ठो नृपस्य सशरं धनुः। रथं च सारथिं चैव चिच्छिदे वर्म दुर्वहम् ॥२३॥
अथ राजा महाक्रुद्धो ददर्श स्वसमीपतः। दत्तेन दत्तां शक्तिं तामेकपूरुषघातिनीम् ॥२४॥
जग्राह नत्वा दत्तं तं स नत्वा शक्तिमुल्बणाम्। चूर्णयामास तत्रैव शतसूर्यसमप्रभाम् ॥२५॥

ने खेल-खेल में सबको नष्ट कर दिया। मुनि ने भी अपने दिव्य शस्त्र का प्रयोग किया। राजा ने भी उसे लीला से काट दिया राजा ने शूल का प्रयोग किया, मुनि ने उसे काट दिया और अपने बाणों द्वारा एक अन्य शर-जाल-सा निर्माण किया। किन्तु राजा ने अपने दुर्निवार शस्त्रों द्वारा उसके खण्ड-खण्ड कर दिये ॥१३-१६॥ शर-जाल में जो बँध गये थे, वे किसी प्रकार कहीं भाग न सके। पश्चात् अपने जृंभणास्त्र द्वारा मुनि ने हाथी, घोड़े, रथ समेत पैदल आदि सभी सैनिकों को गाढ़-निद्रा में मग्न कर दिया। राजा को निद्रित देखकर मुनिवर्य ने उसको मारा नहीं ॥१७-१८॥ प्रसन्नतावश केवल कपिला (गौ) को, जो रोती हुई मूर्च्छित हो गई थी, प्रबुद्ध किया और (उसे) लेकर अपने आश्रम की ओर प्रस्थान किया ॥१९॥ हे नारद! इसी बीच राजा को चेतना प्राप्त हो गयी, जिससे धनुष-बाण लेकर उसने मुनि को गौ ले जाने से रोक दिया ॥२०॥ किन्तु त्रस्त होने पर भी वह गौ रणस्थल से अपने स्थान को चली गयी और धनुष-बाण लेकर मुनि निःशंक होकर उसी स्थान पर गये ॥२१॥ राजा ने मुनि के ऊपर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया, मुनिवर्य ने भी अपने ब्रह्मास्त्र द्वारा उसे उसी क्षण विफल कर दिया ॥२२॥ अनन्तर मुनि ने अपने दिव्यास्त्रों द्वारा राजा के धनुष-बाण, रथ और सारथि समेत भीषण कवच को भी छिन्न-भिन्न कर दिया ॥२३॥ इससे राजा अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपने समीप रखी हुई उस शक्ति की ओर देखा, जो एक पुरुष का अवश्य संहार करती थी और दत्तात्रेय द्वारा प्राप्त हुई थी ॥२४॥ राजा ने प्रथम दत्तात्रेय को मानसिक नमस्कार किया और अनन्तर उस भीषण शक्ति को। उपरान्त सैकड़ों सूर्य के समान प्रभावाली उस शक्ति को ग्रहण कर राजा उसी स्थान पर उसे घुमाने लगा ॥२५॥

यत्तेजः सर्वदेवानां तेजो नारायणस्य च। शंभोश्च ब्रह्मणश्चैव मायायाश्चैव नारद ॥२६॥
तत्रैवाऽऽवाहयामास स योगी मन्त्रपूर्वकम्। तेजसा द्योतयामास गगनं च दिशो दश ॥२७॥
दृष्ट्वा क्षिपन्तीं तां देवा हाहाकारेण चुक्रुशुः। आकाशस्थाश्च समरं पश्यन्तो दुःखिता हृदा ॥२८॥
चिक्षेप तां चूर्णयित्वा कार्तवीर्यार्जुनः स्वयम्। सद्यः पपात सा शक्तिर्ज्वलन्ती मुनिवक्षसि ॥२९॥
विदार्योरो मुनेः शक्तिर्जगाम हरिसंनिधिम्। दत्ताय हरिणा दत्ता[1] शस्त्रास्त्रनिधये तदा ॥३०॥
मूर्च्छां संप्राप्य स मुनिः प्राणांस्तत्याज तत्क्षणम्। तेजोऽम्बरे भ्रमित्वा च ब्रह्मलोकं जगाम ह ॥३१॥
युद्धे मुनिं मृतं दृष्ट्वा रुरोद कपिला मुहुः। हे तात तातेत्युच्चार्य गोलोकं सा जगाम ह ॥३२॥
सर्वं सा कथयामास गोलोके कृष्णमीश्वरम्। रत्नसिंहासनस्थं तं गोपैर्गोपीभिरावृतम् ॥३३॥
कृष्णेन ब्रह्मणे दत्ता ब्रह्मणा भृगवे पुरा। सा प्रीत्या पुष्करे ब्रह्मन्भृगुणा जमदग्नये ॥३४॥
नत्वा च कामधेनूनां समूहं सा जगाम ह। तदश्रुबिन्दुना मर्त्ये रत्नसंघो बभूव ह ॥३५॥
अथ राजा तं निहत्य बोधयित्वा स्वसैन्यकम्। प्रायश्चित्तं विनिर्वर्त्य जगाम स्वपुरं मुदा ॥३६॥
प्राणनाथं मृतं श्रुत्वा जगाम रेणुका सती। मुनिं वक्षसि संस्थाप्य क्षणं मूर्च्छामवाप सा ॥३७॥

हे नारद! समस्त देवों का तेज, नारायण का तेज और शिव, ब्रह्मा एवं माया का तेज उस योगी ने उसमें मंत्रपूर्वक आवाहित किया, जिससे दशों दिशाओं में आकाश उसके तेज से प्रदीप्त हो उठा ॥२६-२७॥ राजा को मुनिके ऊपर उस शक्ति का प्रयोग करते हुए देखकर देवता लोग दुःखितहृदय होकर ऊँचे स्वर से हाहाकार मचाने लगे, जो उस युद्धको देखने के लिए वहाँ आकाश में खड़े थे ॥२८॥ कार्तवीर्यार्जुन ने स्वयं उसे बड़े वेग से घुमाकर छोड़ा था, वह शक्ति प्रदीप्त होती हुई उसी क्षण मुनि के वक्षःस्थल पर जा गिरी ॥२९॥ मुनि के हृदय को विदीर्ण करती हुई वह शक्ति भगवान् के समीप चली गयी, जिसे भगवान् ने शस्त्रास्त्र के निधान दत्तात्रेय को दिया था ॥३०॥ मुनि को उसी समय मूर्च्छा आ गयी और उनके प्राण निकल गये। तेज आकाश में भ्रमण करते हुए ब्रह्मलोक चला गया ॥३१॥ युद्ध में मुनि को मृतक देखकर वह कपिला गौ बार-बार रोदन करने लगी और हे तात! हे तात! कहती हुई वह गोलोक चली गयी ॥३२॥ गोलोक में पहुँच कर उसने भगवान् श्रीकृष्ण से समस्त वृत्तान्त कह सुनाया, जो वहाँ रत्नसिंहासन पर सुखासीन और गोप-गोपियों से घिरे हुए थे ॥३३॥ हे ब्रह्मन्! सर्वप्रथम भगवान् श्रीकृष्ण ने वह गौ ब्रह्मा को दी थी। ब्रह्मा ने भृगु को और भृगु ने प्रेम वश पुष्कर में जमदग्नि को दी थी ॥३४॥ उपरांत कामधेनुओं के समूह को नमस्कार करके वह चली गयी। उसके अश्रुविन्दु द्वारा मर्त्यलोक में रत्न समूह उत्पन्न हुआ ॥३५॥ इसके पश्चात् राजा ने उन (जमदग्नि) को मारकर अपने सैनिकों को बता कर प्रायश्चित्त किया और अपने नगर चला गया। ३६॥ अपने प्राणनाथ को मृतक सुनकर सती रेणुका वहाँ पहुँची और मुनि को अपने अंक में लेकर क्षणमात्र मूर्च्छित हो गयीं ॥३७॥

---

१ ०त्ता दत्तेनैव नृपाय सा।

ततः सा चेतनां प्राप्य न रुरोद पतिव्रता। एहि वत्स भृगो राम राम रामेत्यवाच ह ॥३८॥
आजगाम भृगुस्तूर्णं क्षणाद्वै पुष्करादहो। ननाम मातरं भक्त्या मनोयायी च योगवित् ॥३९॥
दृष्ट्वा रामो मृतं तातं शोकार्तां जननीं सतीम्। आकर्ण्य रणवृत्तान्तं प्रयान्तीं कपिलां शुचा[1] ॥४०॥
विललाप भृशं तत्र हे तात जननीति च। चितां चकार योगीन्द्रश्चन्दनैराज्यसंयुताम् ॥४१॥
रेणुका राममादाय तूर्णं कृत्वा स्ववक्षसि। चुचुम्ब गण्डे शिरसि रुरोदोच्चैर्भृशं मुने ॥४२॥
राम राम महाबाहो क्व यामि त्वां विहाय च। वत्स वत्सेति कृत्वैवं विललाप भृशं मुहुः ॥४३॥
मत्प्राणाधिक हे वत्स मदीयं वचनं शृणु। पित्रोः शेषक्रियां कृत्वा याया युद्धं न पुत्रक ॥४४॥
गृहे तिष्ठ सुखं वत्स तपस्यां कुरु शाश्वतीम्। समरं[2] नैव सुखदं दारुणैः क्षत्रियैः सह ॥४५॥
मातुर्वचनमश्रुत्वा प्रतिज्ञां तां चकार ह। त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यामि ध्रुवं महीम् ॥४६॥
कार्तवीर्यं हनिष्यामि लीलया क्षत्रियाधमम्। पितॄंश्च तर्पयिष्यामि क्षत्रियक्षतजैस्तथा ॥४७॥
इत्युदीर्य पुरो मातुर्विललाप मुहुर्मुहुः। हितं तथ्यं नीतिसारं बोधयामास मातरम् ॥४८॥

अनन्तर चेतना प्राप्त होने पर उस पतिव्रता ने रोदन नहीं किया, प्रत्युत हे राम, हे राम, हे वत्स! हे भृगो! कह कर परशुराम को बुलाने लगी ॥३८॥ मनोवेग के समान चलने वाले एवं योगवेत्ता परशुराम उसी समय पुष्कर से आ पहुँचे और उन्होंने भक्तिपूर्वक अपनी माता को नमस्कार किया ॥३९॥ पश्चात् राम ने अपने पिता को मृतक देखा, माता को शोकविह्वल और शोकाकुल कपिला को गोलोक जाते हुए देखा एवं युद्ध का समस्त वृत्तान्त सुना। हे तात! हे जननी! ऐसा कहकर उन्होंने भी बार-बार विलाप किया। अनन्तर उस योगिराज ने घृतप्लुत चन्दन काष्ठ की चिता बनायी ॥४०-४१॥ रेणुका ने राम को शीघ्र अपने हृदय से लगाकर उनके कपोल एवं शिर का चुम्बन किया और अत्यन्त ऊँचे स्वर से वह बार-बार रोदन करने लगी। ॥४२॥ राम! हे राम! हे महाबाहो! मैं तुम्हें छोड़कर अब कहाँ जाऊँ तथा हे वत्स! हे वत्स! ऐसा बार-बार कहती हुई अति विलाप करने लगीं ॥४३॥ हे वत्स! तुम मेरे प्राणों से भी अधिक प्रिय हो, अतः मेरी बातें सुनो। हे पुत्र! माता-पिता की अन्त्येष्टिक्रिया करने के उपरांत युद्ध में न जाना ॥४४॥ हे वत्स! सुखपूर्वक घर में रहो, निरन्तर तपस्या करो, किन्तु भीषण क्षत्रियों के साथ युद्ध न करना, क्योंकि वह कभी भी सुखप्रद नहीं होता है ॥४५॥ परशुराम ने माता की बात पर ध्यान न देकर ऐसी प्रतिज्ञा की कि 'मैं निश्चित ही पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रियशून्य कर दूंगा, और उस अधम क्षत्रिय कार्तवीर्य्य का लीला पूर्वक वध करूँगा तथा उसी क्षत्रिय के रक्त से मैं अपने पितरों का तर्पण करूँगा।' अपनी माता के सामने ऐसी प्रतिज्ञा करके परशुराम पुनः विलाप करने लगे। अनन्तर उन्होंने अपनी माता से कहना आरम्भ किया, जो हितकर, सत्य और नीति का सार भाग था ॥४६-४८॥

---

१ क० शुभाम्। २ रं ते नैव शुभ्रं दा०।

राम उवाच

पितुः शासनहन्तारं पितुर्वधविधायकम्। यो न हन्ति महामूढो रौरवं स व्रजेद्ध्रुवम्।।४९।।
अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः। क्षेत्रदारापहारी च पितृबन्धुर्विहिंसकः।।५०।।
सततं मन्दकारी च निन्दकः कटुजल्पकः। एकादशैते पापिष्ठा वधार्हा वेदसंमताः।।५१।।
द्विजानां द्रविणादानं स्थानान्निर्वासनं सति। वपनं ताडनं चैव वधमाहुर्मनीषिणः।।५२।।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र चाऽऽजगाम भृगुः स्वयम्। अतित्रस्तो मनस्वी च हृदयेन विदूयता।।५३।।
दृष्ट्वा तं रेणुकारामौ विनतौ संबभूवतुः। स तावुवाच वेदोक्तं परलोकहिताय च।।५४।।

भृगुरुवाच

मद्वंशजातो ज्ञानी त्वं कथं विलपसे सुत। जलबुद्बुदवत्सर्वं संसारे च चराचरम्।।५५।।
सत्यसारं सत्यबीजं कृष्णं चिन्तय पुत्रक। यद्गतं तद्गतं वत्स गतं नैवाऽऽगमिष्यति।।५६।।
यद्भवेत्तद्भवत्येव भविता यद्भविष्यति। पूर्वार्जितं स्वीयकर्मफलं केन निवार्यते।।५७।।
भूतं भव्यं भविष्यं च यत्कृष्णेन निरूपितम्। निरूपितं यत्तत्कर्म केन वत्स निवार्यते।।५८।।
मायाबीजं मायिनां च शरीरं पाञ्चभौतिकम्। संकेतपूर्वकं नाम प्रातःस्वप्नसमं सुत।।५९।।

राम बोले—पिता की आज्ञा भंग करने वाले और पिता का वध करने वाले का हनन जो नहीं करता है, वह महामूढ़ निश्चित रौरव नरक जाता है।।४९।। अग्नि लगाने वाले, विष देने वाले, हाथ में हथियार रखने वाले, धन का अपहर्त्ता, क्षेत्र (खेत) और पत्नी का अपहरण करने वाला पिता एवं बन्धुओं की हिंसा करने वाला, सतत आलस्य करने वाला, निन्दक, कटुवादी—ये ग्यारहों महान् पापी होते हैं। वेद के मत से ये वध करने के योग्य होते हैं ।।५०-५१।। धन ले लेना, स्थान से निकाल देना, मुण्डन करा देना या ताड़ना देना (बेंत आदि मारना) यही ब्राह्मणोंका विद्वानों ने वध बतलाया है।।५२।। इस बीच वहाँ भृगु स्वयं आ गये। वे अत्यन्त दुःखी मनस्वी हार्दिक दुःख प्रकट करने लगे। उन्होंने रेणुका और राम को विनय-विनम्र देखकर उनसे कुछ कहना आरम्भ किया, जो वेदसम्मत और परलोक के लिए हितकर था।।५३-५४।।

भृगु बोले—हे सुत! तुम मेरे वंश में उत्पन्न हो और ज्ञानी हो, विलाप क्यों कर रहे हो? क्योंकि संसार में समस्त चर-अचर जल के बुल्ले के समान (नश्वर) हैं।।५५।। हे पुत्र! भगवान् श्रीकृष्ण का चिन्तन करो, जो सत्यसार और सत्यबीज रूप है। हे वत्स! जो गया, सो गया, जो चला गया वह पुनः नहीं आयेगा। ।।५६।। जो होनहार रहता है, वह होकर रहता है, क्योंकि अपने जन्मान्तरीय कर्म फल को (भोगने से) कौन रोक सकता है।।५७।। हे वत्स! भगवान् कृष्ण ने जिस भूत, वर्तमान और भविष्य का निर्माण कर दिया है और जिस कर्म का निरूपण कर दिया है, उसे कौन रोक सकता है।।५८।। हे सुत! यह पाँच भूतों (पृथिवी, जल, तेज, आकाश और वायु) का बना शरीर मायावियों का मायाबीज है। प्रातःकाल के स्वप्न की भाँति केवल इसका एक संकेत मात्र नाम रहता है।।५९।।

क्षुधा[1] निद्रा दया शान्तिः क्षमा कान्त्यादयस्तथा। यान्ति प्राणा मनो ज्ञानं प्रयाते परमात्मनि ॥६०॥
बुद्धिश्च शक्तयः सर्वा राजेन्द्रमिव किंकराः। सर्वे तमनुगच्छन्ति तं कृष्णं भज यत्नतः ॥६१॥
के वा केषां च पितरः के वा केषां सुताः सुत। कर्मभिः प्रेरिताः सर्वे भवाब्धौ दुस्तरे परम् ॥६२॥
ज्ञानिनो मा रुदन्त्येव मा रोदीः पुत्र सांप्रतम्। रोदनाश्रुप्रपतनान्मृतानां नरकं ध्रुवम् ॥६३॥
संकेताख्योच्चारणेन यद्रुदन्ति च बान्धवाः। शतवर्षं रुदित्वा तं प्राप्नुवन्ति न निश्चितम् ॥६४॥
पार्थिवांशं च पृथिवी गृह्णात्यस्थित्वचादिकम्। तोयांशं च तथा तोयं शून्यांशं गगनं तथा ॥६५॥
वाय्वंशं च तथा वायुस्तेजस्तेजांशकं तथा। सर्वे विलीनाः सर्वेषु को वाऽऽयास्यति रोदनात् ॥६६॥
नामश्रुतियशःकर्मकथामात्रावशेषितः। वेदोक्तं चैव यत्कर्म कुरु तत्पारलौकिकम् ॥६७॥
स च बन्धुः सुपुत्रश्च परलोकहिताय यः। भृगोस्तद्वचनं श्रुत्वा शोकं तत्याज तत्क्षणम्॥
रेणुका च महासाध्वी तं वक्तुमुपचक्रमे ॥६८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० जमदग्निसंहारपरशुराम-
प्रतिज्ञादिवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

इससे परमात्मा (आत्मा) के शरीरसे निकल जाने पर क्षुधा, निद्रा, दया, शान्ति, क्षमा, कान्ति आदि और मन एवं ज्ञान समेत प्राण भी (शरीर से) चले जाते हैं ॥६०॥ उसकी बुद्धि तथा समस्त शक्तियाँ भी, राजा के पीछे सेवक की भाँति, पीछे लगी चली जाती हैं, इसलिए प्रयत्नपूर्वक कृष्ण को भजो ॥६१॥ हे सुत! कौन किनके पिता हैं और कौन किनके पुत्र। केवल कर्मवश प्रेरित होकर सभी लोग इस दुष्पार संसार-सागर में आकर पड़े हैं ॥६२॥ हे पुत्र! ज्ञानी इस प्रकार रोदन नहीं करते हैं, अतः इस समय रोदन न करो। क्योंकि रोदन करने से आँसू गिरते हैं जिससे मृतक का निश्चित नरकवास होता है ॥६३॥ जिस सांकेतिक नाम का उच्चारण करके बन्धुवर्ग रोदन करते हैं, उसे सौ वर्ष रोदन करने पर भी नहीं पा सकते हैं, यह निश्चित है। क्योंकि शरीर का पार्थिव अंश हड्डी, त्वचा आदि पृथिवी ग्रहण कर लेती है और उसी भाँति जलांश को जल, शून्यांश को आकाश, वायुअंश को वायु और तेज अंश को तेज ग्रहण कर लेता है ॥६४-६६॥ इस प्रकार सब में सब विलीन हो जाते हैं तो रोदन करने से कौन आयेगा। अनन्तर उसके नाम, यश, कर्म की कथा मात्र शेष रह जाती है। अतः वेदोक्त कर्मों को परलोक के लिए अवश्य करो ॥६७॥ क्योंकि जो परलोक का हितैषी होता है वही पुत्र और बन्धु है। भृगु की ऐसी बातें सुनकर महासती रेणुका ने उसी क्षण शोक त्याग दिया और उनसे कहने लगी ॥६८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण-संवाद में जमदग्नि-संहार
और परशुराम-प्रतिज्ञा आदि वर्णन नामक सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२७॥

---

१ क. क्षुन्निद्रातृड्द०।

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

रेणुकोवाच

ब्रह्मन्ननुगमिष्यामि प्राणनाथस्य सांप्रतम्। ऋतोश्चतुर्थदिवसे मृतोऽयं चाद्य मानदः॥१॥
कर्तव्या का व्यवस्थाऽत्र वद वेदविदां वर। त्वमागतो मे सहसा पुण्येन कतिजन्मनाम्॥२॥

भृगुरुवाच

अहो पुण्यवतो भर्तुरनुगच्छ महासति। चतुर्थदिवसं शुद्धं स्वामिनः सर्वकर्मसु॥३॥
शुद्धा भर्तुश्चतुर्थेऽह्नि न शुद्धा दैवपित्र्ययोः। दैवे कर्मणि पित्र्ये च पञ्चमेऽह्नि विशुध्यति॥४॥
व्यालग्राही यथा व्यालं बिलादुद्धरते बलात्। तद्वत्स्वामिनमादाय साध्वी स्वर्गं प्रयाति च॥५॥
मोदते स्वामिना सार्धं यावदिन्द्राश्चतुर्दश। अत ऊर्ध्वं कर्मभोगं भुङक्ष्व साध्वि शुभाशुभम्॥६॥
स पुत्रो भक्तिदाता यः सा च स्त्री याऽनुगच्छति। स बन्धुर्दानदाता यः स शिष्यो गुरुमर्चयेत्॥७॥
सोऽभीष्टदेवो यो रक्षेत्स राजा पालयेत्प्रजाः। स च स्वामी प्रियां धर्ममतिं दातुमिहेश्वरः॥८॥
स गुरुर्धर्मदाता यो हरिभक्तिप्रदायकः। एते प्रशंस्या वेदेषु पुराणेषु च निश्चितम्॥९॥

अध्याय २८

रेणुका बोली—हे ब्रह्मन्! मैं अब अपने प्राणनाथ (स्वामी) का अनुगमन करना चाहती हूँ, किन्तु मेरे ऋतु-धर्म का आज चौथा दिन है, जिसमें मेरे मानदाता ने प्राण त्याग किया है॥१॥ हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ! मेरे अनेक जन्मों के पुण्य प्रभाव वश तुम आ गये हो, तो यह अवश्य बताने की कृपा करो कि मुझे इस अवस्था में क्या व्यवस्था करनी चाहिए॥२॥

भृगु बोले—हे महासति! तुम अपने पुण्यवान् पति का अनुगमन अवश्य करो, क्योंकि स्त्री चौथे दिन अपने पति के समस्त कार्यों के लिए शुद्ध है॥३॥ किन्तु स्त्री चौथे दिन केवल पति के लिए शुद्ध होती है, न कि देवकार्य और पितर कार्यों के लिए। देव एवं पितर कार्यों के लिए वह पाँचवें दिन शुद्ध होती है॥४॥ सँपेरा (साँप पकड़ने वाला) जिस प्रकार बिल से सर्प को बलात् पकड़ लेता है, उसी भाँति स्त्री भी पति को लेकर स्वर्ग चली जाती है॥५॥ हे साध्वि! वहां स्वामी के साथ चौदहों इन्द्रों के समय तक आनन्द-मग्न रहती है। इसके उपरांत तुम भी अपने शुभाशुभ कर्मों का भोग प्राप्त करो॥६॥ पुत्र वही है, जो भक्तिप्रदाता हो और स्त्री वही है, जो पति का अनुगमन करे। बन्धु वही है जो दान दे और शिष्य वही है, जो गुरु का सम्मान-प्रार्थना करे॥७॥ इष्टदेव वही है, जो रक्षा करे। राजा वही है, जो प्रजाओं का पालन करे। स्वामी वही है, जो अपनी प्रिया (स्त्री) को धर्म में लगाने में समर्थ हो सके॥८॥ और गुरु वही है जो धर्म देते हुए भगवान् की भक्ति प्रदान करे। क्योंकि वेदों और पुराणों में ये निश्चित रूप से प्रशंसनीय माने गये हैं॥९॥

रेणुकोवाच

गन्तुं स्वस्वामिना सार्धं का शक्ता भारते मुने। का वाऽप्यशक्ता नारीषु तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥१०॥

भृगुरुवाच

बालापत्याश्च गर्भिण्यो ह्यदृष्टऋतवस्तथा। रजस्वला च कुलटा गलितव्याधिसंयुता ॥११॥
पतिसेवा विहीना या ह्यभक्ता कटुभाषिणी। एता गच्छन्ति चेद्दैवान्न कान्तं प्राप्नुवन्ति ताः ॥१२॥
संस्कृताग्निं पुरो दत्त्वा चितासु शयितं पतिम्। कान्तास्तमनुगच्छन्ति कान्ताश्चेत्प्राप्नुवन्ति ताः ॥१३॥
अनुगच्छन्ति याः कान्तं तमेव प्राप्नुवन्ति ताः। सार्धं कृत्वा पुण्यभोगं दिवि जन्मनि जन्मनि ॥१४॥
इयं ते कथिता साध्वि व्यवस्था गृहिणां ध्रुवम्। तीर्थे ज्ञानमृतानां च वैष्णवानां गतिं शृणु ॥१५॥
या साध्वी वैष्णवं कान्तं यत्र यत्रानुगच्छति। प्रयाति स्वामिना सार्धं वैकुण्ठे हरिसंनिधिम् ॥१६॥
विशेषे नास्ति भक्तानां तीर्थे वाऽन्यत्र नारद। मरणेन फलं तुल्यं मुक्तानां कृष्णभाविताम् ॥१७॥
तयोः पातो नास्ति तस्मान्महति प्रलये सति। नारायणं तं भजेत पुमांस्त्री कमलालयाम् ॥१८॥
तीर्थे ज्ञानमृतश्चापि वैकुण्ठं याति निश्चितम्। सभार्यो मोदते तत्र यावद्वै ब्रह्मणः शतम् ॥१९॥
इत्युक्त्वा रेणुकां तत्र जामदग्न्यमुवाच ह। वेदोक्तं वचनं [1]सर्वं स भृगुः समयोचितम् ॥२०॥

रेणुका बोली—हे मुने! हे तपोधन! भारत में स्त्रियों में कौन-सी स्त्री अपने पति का अनुगमन करने में समर्थ होती है और कौन असमर्थ रहती है यह मुझे बताने की कृपा करें ॥१०॥

भृगु बोले—छोटे-बच्चे वाली, गर्भिणी, अनुत्पन्न रजोधर्म वाली, रजस्वला, कुलटा, गलित कुष्ठ की रोगिणी, पति की सेवा न करने वाली, अभक्ता और कटुवादिनी स्त्री, ये दैव संयोग से यदि अनुगमन करें भी तो पति को नहीं प्राप्त करती हैं ॥११-१२॥ चिता पर पति को शयन कराकर और उसमें सामने संस्काराग्नि लगाने के उपरांत जो स्त्रियाँ पति का अनुगमन करती हैं, वह यदि पति की प्रेयसी हैं, तो अवश्य उसे प्राप्त करती हैं ॥१३॥ क्योंकि जो स्त्रियां पति का अनुगमन करती हैं वे पुनः उसी पति को प्राप्त होती हैं और स्वर्ग में तथा प्रत्येक जन्म में पति के साथ पुण्य का उपभोग करती हैं ॥१४॥ हे साध्वि! इस प्रकार मैंने तुम्हें गृहस्थों की निश्चित व्यवस्था बता दी; अब तीर्थ में ज्ञान पूर्वक मरने वाले वैष्णवों की गति बता रहा हूँ, सुनो ॥१५॥ जो स्त्री पतिव्रता होती है तो उसका वैष्णव पति जहाँ-जहाँ जाता है, वह अवश्य जाती है और पति के साथ वैकुण्ठ में भगवान् के समीप पहुँचती है ॥१६॥ किन्तु हे नारद! भक्तों के तीर्थ या अन्य स्थान में प्राणत्याग करने में कोई विशेषता नहीं होती है। क्योंकि भगवान् कृष्ण के प्रेमी भक्त मुक्त रहते हैं अतः उनके (कहीं भी) मरने में समान फल है। महाप्रलय में भी उनका पतन नहीं होता है। इस लिए पुरुष और स्त्री को नारायण और कमलालया (लक्ष्मी) की सेवा करनी चाहिए ॥१७-१८॥ तीर्थ में ज्ञान पूर्वक मरने पर वह निश्चित वैकुण्ठ जाता है और सौ ब्रह्मा के समय तक वहाँ स्त्री समेत आनन्द का उपभोग करता है ॥१९॥ भृगु ने रेणुका से इस प्रकार कहकर जामदग्न्य (परशुराम) से भी कहना आरम्भ किया, जो वेदसम्मत और सामयिक था ॥२०॥ (उन्होंने कहा)—हे भृगो! हे वत्स! यहाँ

---

१ क. सत्यं।

एहि वत्स महाभाग त्यज शोकममङ्गलम्। उत्तानं कुरु तातं च दक्षिणाशिरसं भृगो॥२१॥
वस्त्रं यज्ञोपवीतं च नूतनं परिधापय। अनश्रुनयनो भूत्वा संतिष्ठन्दक्षिणामुखः॥२२॥
अरणीसंभवाग्निं च गृहाण प्रीतिपूर्वकम्। पृथिव्यां यानि तीर्थानि सर्वेषां स्मरणं कुरु॥२३॥
गयादीनि च तीर्थानि ये च पुण्याः शिलोच्चयाः। कुरुक्षेत्रं च गङ्गां च यमुनां च सरिद्वराम्॥२४॥
कौशिकीं चन्द्रभागां च सर्वपापप्रणाशिनीम्। गण्डकीमथ काशीं च पनसां सरयूं तथा॥२५॥
पुष्पभद्रां च भद्रां च नर्मदां च सरस्वतीम्। गोदावरीं च कावेरीं स्वर्णरेखां च पुष्करम्॥२६॥
रैवतं च वराहं च श्रीशैलं गन्धमादनम्। हिमालयं च कैलासं सुमेरुं रत्नपर्वतम्॥२७॥
वाराणसीं प्रयागं च पुण्यं वृन्दावनं वनम्। हरिद्वारं च बदरीं स्मारंस्मारं पुनः पुनः॥२८॥
चन्दनागुरुकस्तूरीसुगन्धिकुसुमं तथा। प्रदाय वाससाऽऽच्छाद्य स्थापयैनं चितोपरि॥२९॥
कर्णाक्षिनासिकास्ये त्वं शलाकां च हिरण्मयीम्। कृत्वा निर्मन्थनं तात विप्रेभ्यो देहि सादरम्॥३०॥
सतिलं ताम्रपात्रं च धेनुं च रजतं तथा। सदक्षिणं सुवर्णं च दत्त्वाऽग्निं देह्यकातरः॥३१॥
ॐ कृत्वा दुष्कृतं कर्म जानता वाऽप्यजानता। मृत्युकालवशं प्राप्य नरं पञ्चत्वमागतम्॥३२॥
धर्माधर्मसमायुक्तं लोभमोहसमावृतम्। दह सर्वाणि गात्राणि दिव्याँल्लोकान्स गच्छतु॥३३॥
इमं मन्त्रं पठित्वा तु तातं कृत्वा प्रदक्षिणम्। मन्त्रेणानेन देह्यग्निं जनकाय हरिं स्मरन्॥३४॥
ॐ अस्मत्कुले त्वं जातोऽसि त्वदीयो जायतां पुनः। असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेति वद सांप्रतम्॥३५॥

आओ! हे महाभाग! यह अमंगल शोक छोड़ दो और अपने (मृतक) पिता को दक्षिण दिशा की ओर शिर करके उतान शयन कराओ और नवीन वस्त्र एवं यज्ञोपवीत पहनाओ किन्तु उस समय अश्रुपात न होने पाये और दक्षिणाभिमुख रहो॥२१-२२॥ प्रेम पूर्वक अरणी से उत्पन्न अग्नि ग्रहण करो और पृथिवी के समस्त तीर्थों का स्मरण करो॥२३॥ गया आदि तीर्थों और पुण्य पर्वतों—कुरुक्षेत्र, गंगा, नदीश्रेष्ठ यमुना, कौशिकी, समस्त पाप-नाशिनी चन्द्रभागा, गण्डकी, काशी, पनसा, सरयू, पुष्पभद्रा, भद्रा, नर्मदा, सरस्वती, गोदावरी, कावेरी, स्वर्णरेखा, पुष्कर, रैवत, वराह, श्रीशैल, गन्धमादन, हिमालय, कैलास, रत्नपर्वत सुमेरु, वाराणसी, प्रयाग, पुण्य वृन्दावन, हरिद्वार और बदरिकाश्रम का बार-बार स्मरण करो॥२४-२८॥ चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और सुगन्धित पुष्प वहाँ चिता के ऊपर रखकर उन्हें वस्त्र से आच्छादित करो॥२९॥ हे तात! कान, आँख, नाक और मुख में सुवर्ण की शलाका से निर्मन्थन करके ब्राह्मण को सादर समर्पित करो॥३०॥ तिलसमेत ताम्रपात्र, धेनु, रजत (चांदी) और दक्षिणा समेत सुवर्ण प्रदान करके निर्भयता पूर्वक अग्नि लगाओ और कहो कि ओं ज्ञानपूर्वक या अज्ञान वश पाप-पुण्य कर्म करके मनुष्य मृत्यु को प्राप्त हुआ (अर्थात् उसके शारीरिक पांचों भूत अपने-अपने तत्त्वों में विलीन हो गये)॥३१-३२॥ अब धर्माधर्म युक्त और लोभ-मोह से आच्छन्न इस (व्यक्ति के) शरीर के समस्त अंगों को जला दो, जिससे यह दिव्य लोक चला जाये॥३३॥ इस मंत्र को पढ़ते हुए पिता की प्रदक्षिणा करो और भगवान् का स्मरण करते हुए इसी मन्त्र द्वारा पिता का अग्नि संस्कार करो॥३४॥ और यह भी कहो कि—ओं हमारे कुल में तुम उत्पन्न हुए हो, और पुनः तुम्हारा होकर उत्पन्न हो। यह स्वर्गलोक चले

अग्निं देहि शिरःस्थाने हे भृगो भ्रातृभिः सह। तच्चकार भृगुः सर्वं सगोत्रैराज्ञया भृगोः ॥३६॥
अथ पुत्रं रेणुका सा कृत्वा तत्र स्ववक्षसि। उवाच किंचिद्वचनं परिणामसुखावहम् ॥३७॥
अविरोधो भवाब्धौ च सर्वमङ्गलमङ्गलम्। विरोधो नाशबीजं च सर्वोपद्रवकारणम् ॥३८॥
अकर्तव्यो विरोधो वै दारुणैः क्षत्रियैः सह। प्रतिज्ञा चैषा कर्तव्या मदीयं वचनं शृणु ॥३९॥
आलोच्य ब्रह्मणा सार्धं भृगुणा दिव्यमन्त्रिणा। यथोचितं च कर्तव्यं सद्भिरालोचनं शुभम् ॥४०॥
इत्युक्त्वा तं परित्यज्य कान्तं कृत्वा स्ववक्षसि। सा सुष्वाप चितायां च पश्यन्ती तं हरिस्मृतिः ॥४१॥
वह्निं ददौ चितायां च स रामो भ्रातृभिः सह। भ्रातृभिः पितृशिष्यैश्च सार्धं स विललाप च ॥४२॥
राम रामेति रामेति वाक्यमुच्चार्य सा सती। पुरस्ताज्जामदग्न्यस्य भस्मीभूता बभूव सा ॥४३॥
भर्तुर्नाम समाकर्ण्य तत्राऽऽजग्मुर्हरेश्चराः। रथस्थाः श्यामवर्णाश्च सर्वे चारुचतुर्भुजाः ॥४४॥
शङ्खचक्रगदापद्मधारिणो वनमालिनः। किरीटिनः कुण्डलिनः पीतकौशेयवाससः ॥४५॥
रथे कृत्वा रेणुकां तां गत्वा ते ब्रह्मणः पदम्। जमदग्निं समादाय प्रजग्मुर्हरिसंनिधिम् ॥४६॥
तौ दम्पती च वैकुण्ठे तस्थतुर्हरिसंनिधौ। कृत्वा दास्यं हरेः शश्वत्सर्वमङ्गलमङ्गलम् ॥४७॥
अथ रामो ब्राह्मणैश्च भृगुणा सह नारद। पित्रोः शेषक्रियां कृत्वा ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ ॥४८॥
गोभूहिरण्यवासांसि दिव्यशय्यां मनोरमाम्। सुवर्णाधारसहितां जलमन्नं च चन्दनम् ॥४९॥

जायँ, स्वाहा ॥३५॥ हे भृगो! भ्राताओं के साथ तुम उनके शिरोभाग में अग्नि लगाओ। इस प्रकार भृगु की आज्ञा से परशुराम ने सगोत्रियों के साथ सम्पन्न किया ॥३६॥ अनन्तर रेणुका ने वहाँ पुनः राम को अपने अंक से लगाती हुई उनसे कुछ परिणाम में सुखप्रद वचन कहा ॥३७॥ (किसी से) विरोध न करना संसार-सागर में समस्त मंगलों का मंगल है और विरोध करना नाश का बीज एवं समस्त उपद्रवों का कारण है ॥३८॥ अतः भीषण क्षत्रियों के साथ विरोध न करना ऐसी प्रतिज्ञा करो और मेरी बात सुनो ॥३९॥ ब्रह्मा एवं दिव्य मंत्री भृगु के साथ मन्त्रणा (सलाह) करके यथोचित कार्य करना, क्योंकि सज्जनों से किया गया परामर्श शुभ होता है ॥४०॥ इतना कहकर उसे छोड़ कर पति को गोद में लेकर भगवान् का चिन्तन कर उन्हें देखती हुई चिता पर लेट गई ॥४१॥ अनन्तर राम ने भ्राताओं समेत चिता में अग्नि लगाया और भ्राताओं एवं पिता के शिष्य-वर्गों समेत विलाप करने लगे ॥४२॥ सती रेणुका हे राम, हे राम! ऐसा कहती हुई परशुराम के सामने (जलकर) भस्म हो गयी ॥४३॥ स्वामी का नाम सुनते ही भगवान् के दूत-गण रथ पर बैठे वहाँ तुरन्त पहुँच गये, जो श्यामवर्ण, सुन्दर चार भुजाएँ, शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये, वनमाला पहने, किरीट, कुण्डल एवं पीताम्बर धारी थे ॥४४-४५॥ उन लोगों ने रेणुका और जमदग्नि को रथ पर बैठा कर ब्रह्मलोक होते हुए उन्हें भगवान् के समीप पहुँचा दिया ॥४६॥ इस प्रकार वे दम्पती वैकुण्ठ में भगवान् के समीप रह कर समस्त मंगलों की मंगल भगवान् की दास्यभक्ति निरन्तर करने लगे ॥४७॥ हे नारद! इसके पश्चात् राम ने भृगु एवं ब्राह्मणों समेत माता-पिता की शेष अन्त्येष्टि क्रिया सुसम्पन्न कर ब्राह्मणों को धन प्रदान किया—गौ, भूमि, सुवर्ण, वस्त्र, दिव्य एवं सुवर्णाधारसमेत उत्तम शय्या, जल, अन्न, चन्दन, रत्नदीप,

रत्नदीपं रौप्यशैलं सुवर्णासनमुत्तमम् । सुवर्णाधारसहितं ताम्बूलं च सुवासितम् ।।५०।।
छत्रं च पादुके चैव फलं माल्यं मनोहरम्। फलं मूलादिकं चैव मिष्टान्नं च मनोहरम् ।।
ब्राह्मणेभ्यो धनं दत्त्वा ब्रह्मलोकं जगाम सः ।।५१।।
ददर्श ब्रह्मलोकं स शातकुम्भविनिर्मितम्। स्वर्णप्राकारसंयुक्तं स्वर्णस्तम्भैर्विभूषितम् ।।५२।।
ददर्श तत्र ब्रह्माणं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा। रत्नसिंहानस्थं च रत्नभूषणभूषितम् ।।५३।।
सिद्धेन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च ऋषीन्द्रैः परिवेष्टितम् । विद्याधरीणां नृत्यं च पश्यन्तं सस्मितं मुदा ।।५४।।
संगीतमुपशृण्वन्तं गीयमानं च गायकैः। चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन विराजितम् ।।५५।।
तपसां फलदातारं दातारं सर्वसंपदाम् । धातारं सर्वजगतां कर्तारं चेश्वरं परम् ।।५६।।
परिपूर्णतमं ब्रह्म जपन्तं कृष्णमीश्वरम्। गुह्ययोगं प्रवोचन्तं पृच्छन्तं शिष्यमण्डलम् ।।५७।।
दृष्ट्वा तमव्ययं भक्त्या प्रणनाम भृगुः पुरः। उच्चैश्च रोदनं कृत्वा स्ववृत्तान्तमुवाच ह ।।५८।।

भृगुरुवाच

ब्रह्मंस्त्वद्वंशजोऽहं जमदग्निसुतो विधे । पितामहस्त्वमस्माकं सर्वज्ञं कथयामि किम् ।।५९।।
मृगयामागतं भूपं पिता मे चोपवासिनम्। पारणां कारयामास कपिलादत्तवस्तुभिः ।।६०।।
स राजा [1]कपिलालोभात्कार्तवीर्यार्जुनः स्वयम्। घातयामास मत्तातमित्युक्त्वोच्चै रुरोद सः ।।६१।।

चाँदी-पर्वत, सुवर्णाधार समेत उत्तम सुवर्णासन, सुवासित ताम्बूल, छत्र, सुन्दर खड़ाऊँ, फल, सुन्दर माला, फलमूल तथा मनोहर मिष्टान्न प्रदान किया। इस प्रकार ब्राह्मणों को धनदान देकर स्वयं ब्रह्मलोक चले गये ।।४८-५१।। वहाँ पहुँच-कर उन्होंने ब्रह्मलोक देखा, जो सुवर्ण-रचित, सुवर्ण की चहारदीवारी से युक्त और सुवर्ण के स्तम्भों से सुशोभित था ।।५२।। वहाँ ब्रह्मा को देखा, जो ब्रह्मतेज से देदीप्यमान और रत्नसिंहासन पर सुखासीन होकर रत्नों के भूषणों से विभूषित थे ।।५३।। सिद्धों, मुनियों और ऋषियों में श्रेष्ठों से घिरे मन्द मुसुकान करते हुए, विद्याधरियों का नृत्य देख रहे थे ।।५४।। गायक लोगों के गाने-बजाने सुन रहे थे। तथा चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम से भूषित थे। तप फल एवं समस्त सम्पत्ति के दाता, समस्त जगत् के धाता-कर्त्ता, परमेश्वर, परिपूर्णतम परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण का नाम जप रहे थे तथा शिष्यमण्डल के पूछने पर उन्हें गुह्य योग बता रहे थे ।।५५-५७।। ऐसे ब्रह्मा को देख कर भृगु (परशुराम) उनके सामने खड़े हो गये और भक्तिपूर्वक उन्हें प्रणाम किया, अनन्तर ऊँचे स्वर से रोदन करते हुए अपना समस्त वृत्तान्त उनसे बतलाया ।।५८।।

भृगु बोले—हे ब्रह्मन् ! हे विधे ! तुम्हारे वंश में हम उत्पन्न हुए हैं और जमदग्नि के पुत्र हैं। तुम हमारे पितामह हो और सर्वज्ञाता हो, मैं तुमसे क्या कहूँ ।।५९।। मृगया (शिकार) खेलने के लिए आये हुए राजा को मेरे पिता ने भूखा देखकर कपिला की दी हुई वस्तुओं से उसे भोजन कराया ।।६०।। अनन्तर उस राजा कार्तवीर्य्यार्जुन ने वही कपिला ले लेने के लोभ से स्वयं मेरे पिता को मार डाला। इतना कह कर उन्होंने अत्युच्च

---

१ क. मोहा० ।

निरुध्य बाष्पं स पुनरुवाच करुणानिधिः । माता मेऽनुगता साध्वी मां विहाय जगद्गुरो ॥६२॥
अधुनाऽहमनाथश्च त्वं मे माता पिता गुरुः । कर्ता पालयिता दाता पाहि मां शरणागतम् ॥६३॥
आगतोऽहं तव सभां प्रमातुर्मातुराज्ञया । उपायेन जगन्नाथ मद्वैरिहननं कुरु ॥६४॥
स राजा स च धर्मिष्ठः स दयालुर्यशस्करः । स पूज्यः स स्थिरश्रीश्च यो दीनं परिपालयेत् ॥६५॥
धनिदीनौ समं दृष्ट्वा यः प्रजां न च पालयेत् । [1]तद्गेहाद्याति रुष्टा श्रीः स भवेद्भ्रष्टराज्यकः ॥६६॥
श्रुत्वा विप्रबटोर्वाक्यं करुणासागरो विधिः । दत्त्वा शुभाशिषं तस्मै वासयामास वक्षसि ॥६७॥
श्रुत्वा भृगोः प्रतिज्ञां च विस्मितश्चतुराननः । अतीव दुष्करां घोरां बहुजीवविघातिनीम् ॥६८॥
कर्मणा तद्भवेत्सर्वमिति कृत्वा तु मानसे । उवाच जामदग्न्यं तं परिणामसुखावहम् ॥६९॥

ब्रह्मोवाच

प्रतिज्ञा दुष्करा वत्स बहुजीवविघातिनी । सृष्टिरेषा भगवतः संभवेदीश्वरेच्छया ॥७०॥
सृष्टिः सृष्टा मया पुत्र क्लेशेनैवेश्वराज्ञया । सृष्टिलुप्तौ प्रतिज्ञा ते दारुणाऽकरुणा परा ॥७१॥
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां कर्तुमिच्छसि मेदिनीम् । एकक्षत्रियदोषेण तज्जातिं हन्तुमिच्छसि ॥७२॥

स्वर से रोदन किया ॥६१॥ करुणानिधान परशुराम ने किसी प्रकार आँसुओं को रोककर पुनः कहना आरम्भ किया—हे जगद्गुरो! मेरी सती माता भी मुझे छोड़कर उन्हीं के साथ चली गयीं ॥६२॥ इस समय मैं अनाथ हूँ, अतः तुम्हीं मेरे पिता, माता एवं गुरु हो। तथा कर्ता, पालन करने वाले एवं दाता हो, मुझ शरणागत की रक्षा करो ॥६३॥ मैं पूजनीय माता की आज्ञा से तुम्हारी सभा में आया हूँ, अतः हे जगन्नाथ! (किसी भी) उपाय से मेरे वैरी का हनन करो ॥६४॥ क्योंकि वही राजा, धर्मात्मा, दयालु, यशस्वी, पूज्य एवं अचललक्ष्मी से सम्पन्न है, जो दीनों का भलीभाँति पालन करे ॥६५॥ जो धनी एवं दीन को समान समझकर पालन नहीं करता है, उसके घर से रुष्ट होकर श्री चली जाती हैं और वह राज्यच्युत हो जाता है ॥६६॥ करुणासागर ब्रह्मा ने उस ब्राह्मण-बालक की बातें सुनकर उसे शुभाशीर्वाद प्रदान करते हुए अपने हृदय से लगा लिया ॥६७॥ परशुराम की उस प्रतिज्ञा को, जो अत्यन्त दुष्कर, भीषण एवं असंख्य जीवों का नाश करने वाली थी, सुनकर चतुरानन आश्चर्य-चकित हो गये ॥६८॥ कर्म से सब कुछ हो सकता है ऐसा अपने मन में विचार कर उन्होंने जामदग्न्य से कहना आरम्भ किया, जो परिणाम में अतिसुखप्रद था ॥६९॥

ब्रह्मा बोले—हे वत्स! यह तुम्हारी प्रतिज्ञा बहुत दुष्कर है, इसमें अनेक जीवों की हिंसा होगी। यह सृष्टि भगवान् ईश्वर की इच्छा से उत्पन्न होती है ॥७०॥ हे पुत्र! ईश्वर की आज्ञावश मैंने इस सृष्टि का बड़े दुःख से सर्जन किया है और तुम्हारी प्रतिज्ञा अति भीषण एवं निर्दयतापूर्ण है इससे सृष्टि ही लुप्त हो जायगी ॥७१॥ इस पृथिवी को इक्कीस बार बिना राजा का करना चाहते हो, एक क्षत्रिय के अपराधवश उसकी जाति ही मिटाना चाहते हो ॥७२॥ भगवान् की की हुई यह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र के भेद से चार प्रकार की सृष्टि नित्य उत्पन्न

---

१ ख. तद्गेहा०।

ब्रह्मक्षत्रियविट्छूद्रैर्नित्या सृष्टिश्चतुर्विधैः। आविर्भूता तिरोभूता हरेरेव पुनः पुनः ॥७३॥
अन्यथा त्वत्प्रतिज्ञा च भविता प्राक्तनेन ते। बह्वायासेन ते कार्यसिद्धिर्भवितुमर्हति[1] ॥७४॥
शिवलोकं गच्छ वत्स शंकरं शरणं व्रज। पृथिव्यां बहवो भूपाः सन्ति शंकरकिंकराः ॥७५॥
विनाऽऽज्ञया महेशस्य को वा तान्हन्तुमीश्वरः। बिभ्रतः कवचं दिव्यं शक्तेर्वै शंकरस्य च ॥७६॥
उपायं कुरु यत्नेन जयबीजं शुभावहम्। उपायतः समारब्धाः सर्वे सिध्यन्त्युपक्रमाः ॥७७॥
श्रीकृष्णमन्त्रकवचग्रहणं कुरु शंकरात्। दुर्लभं वैष्णवं तेजः शैवं शाक्तं विजेष्यति ॥७८॥
गुरुस्ते जगतां नाथः शिवो जन्मनि जन्मनि। मन्त्रो मत्तो न युक्तस्ते यो युक्तः स भवेद्विधिः ॥७९॥
कर्मणा लभ्यते मन्त्रः कर्मणा लभ्यते गुरुः। स्वयमेवोपतिष्ठन्ते ये येषां तेषु ते ध्रुवम् ॥८०॥
त्रैलोक्यविजयं नाम गृहीत्वा कवचं वरम्। त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यसि महीं भृगो ॥८१॥
दिव्यं पाशुपतं तुभ्यं दाता दास्यति शंकरः। तेन दत्तेन शस्त्रेण[2] क्षत्रसंघं विजेष्यसि ॥८२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० भृगोर्ब्रह्मलोकगमने
ब्रह्मोक्तोपायवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

और विनष्ट होती रहती है ॥७३॥ तुम्हारे जन्मान्तरीय संस्कार वश यह प्रतिज्ञा सफल नहीं हो सकती; हाँ, बहुत प्रयत्न करने पर तो कार्य-सिद्धि हो सकती है ॥७४॥ अतः हे वत्स! शिवलोक में शंकर की शरण में जाओ। क्योंकि पृथ्वी पर शंकर के भक्त अनेक राजा हैं, शंकर और दुर्गा का दिव्य कवच धारण करते हुए उन्हें बिना महेश्वर की आज्ञा के कौन मार सकता है? प्रयत्नपूर्वक उपाय करो जो जय का कारण एवं शुभावह हो। क्योंकि सभी उपक्रम उपाय द्वारा ही आरम्भ करने पर सफल होते हैं ॥७५-७७॥ शंकर से भगवान् श्रीकृष्ण का मन्त्र, कवच एवं दुर्लभ वैष्णव तेज प्राप्त करो, जिससे शैव एवं शाक्त तेज पर विजय प्राप्त कर सको ॥७८॥ जगत् के स्वामी शंकर तुम्हारे जन्म-जन्म के गुरु हैं अतः मेरा मंत्र तुम्हारे लिए युक्त नहीं है और जो युक्त है वह उपाय मैंने तुम्हें बता दिया ॥७९॥ क्योंकि कर्म से मन्त्र प्राप्त होता है और कर्म से ही गुरु प्राप्त होते हैं। अतः जो जिनके हैं वे निश्चित ही उनको मिल जाते हैं ॥८०॥ हे भृगो! तुम उनसे त्रैलोक्यविजय नामक श्रेष्ठ कवच प्राप्त करके इक्कीस बार इस पृथिवी को अवश्य भूपरहित कर सकोगे ॥८१॥ दाता शिव तुम्हें अपना पाशुपत दिव्य अस्त्र प्रदन करेंगे और उन्हीं के दिये मंत्र द्वारा तुम क्षत्रिय-समूहों को जीतोगे ॥८२॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में भृगु का ब्रह्मलोक-गमन तथा ब्रह्मोक्त उपाय वर्णन नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२८॥

१क. ०र्भवतु शाश्वती। २ख. मन्त्रेण।

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः।

नारायण उवाच

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा प्रणम्य च जगद्गुरुम्। स्फीतस्तस्माद्वरं प्राप्य शिवलोकं जगाम सः॥१॥
लक्षयोजनमूर्ध्वं च ब्रह्मलोकाद्विलक्षणम्। अनिर्वाच्यसुशोभाढ्यं वाय्वाधारं मनोहरम्॥२॥
वैकुण्ठं दक्षिणे यस्य गौरीलोकश्च वामतः। यदधो ध्रुवलोकश्च सर्वलोकात्परः स्मृतः॥३॥
तेषामूर्ध्वं च गोलोकः पञ्चाशत्कोटियोजनः। अत ऊर्ध्वं न लोकश्च सर्वोपरि च स स्मृतः॥४॥
मनोयायी स योगीन्द्रः शिवलोकं ददर्श ह। उपमानोपमेयाभ्यां रहितं महदद्भुतम्॥५॥
योगीन्द्राणां वरेण्यैश्च सिद्धविद्याविशारदैः। कोटिकल्पतपःपूतैः पुण्यवद्भिर्निषेवितम्॥६॥
वेष्टितं कल्पवृक्षाणां समूहैर्वाञ्छितप्रदैः। समूहैः कामधेनूनामसंख्यानां विराजितम्॥७॥
पारिजाततरूणां च वनराजिविराजितम्। मधुलुब्धमधुभ्राणां मधुरध्वनिमोहितम्॥८॥
नवपल्लवसंयुक्तं पुंस्कोकिलरुतश्रुतम्। योगेन योगिनां सृष्टं स्वेच्छया शंकरेण च॥९॥
शिल्पिनां गुरुणा स्वप्ने न दृष्टं विश्वकर्मणा। जन्तुभिर्वेष्टितं ब्रह्मन्योगदुष्टैर्निरामयैः॥१०॥
सरोवरशतैर्दिव्यैः पद्मराजीविराजितैः। पुष्पोद्यानायुतैर्युक्तं सदा चातिसुशोभितम्॥११॥
मणीन्द्रसाररचितैः शोभितैर्मणिवेदिभिः। राजमार्गशतैर्दिव्यैः[1] सर्वतः परिभूषितम्॥१२॥

अध्याय २९

नारायण बोले—ब्रह्मा की बातें सुनकर उन्होंने जगद्गुरु (ब्रह्मा) को नमस्कार किया और उनसे वरदान प्राप्त कर उत्साहपूर्वक शिवलोक को प्रस्थान किया॥१॥ जो ब्रह्मलोक से एक लाख योजन ऊपर और ब्रह्मलोक से विलक्षण, अकथनीय शोभा से विभूषित, वायु का आधार एवं मनोहर है॥२॥ उसके दक्षिण में वैकुण्ठ, बांयें गौरी-लोक, नीचे ध्रुवलोक और स्वयं समस्त लोकों से परे है॥३॥ इन सभी लोकों के ऊपर पचास करोड़ योजन की दूरी पर गोलोक है। उसके ऊपर कोई लोक नहीं है, सबसे ऊपर वही है, ऐसा बताया गया है॥४॥ मन के समान वेग से चलने वाले योगिराज परशुराम ने वहाँ पहुँच कर शिवलोक देखा, जो उपमान, उपमेय से रहित, महान् अद्भुत, उत्तम योगिराज एवं सिद्धविद्यानिपुण तथा करोड़ों कल्पों तक तप करके पवित्र होने वाले पुण्यात्माओं से सुसेवित था॥५-६॥ मनोरथ सिद्ध करने वाले कल्पवृक्षों के समूह से घिरा, असंख्य काम-धेनुओं के समूह से सुशोभित, पारिजात वृक्षों की वन-पंक्तियों से विभूषित, मधु के लोभी भ्रमरों की मधुर ध्वनि से मोहित, नये पल्लवों से युक्त, नर कोयलों की कूक से ध्वनित और योगियों के योग से तथा शंकर की स्वेच्छा से निर्मित था। ऐसा निर्माण शिल्पियों के गुरु विश्वकर्मा ने स्वप्न में भी नहीं देखा था। ब्रह्मन्! शिवलोक योगदुष्ट स्वस्थ जन्तुओं से घिरा हुआ था॥७-१०॥ कमलपंक्तियों से शोभित सेकड़ों दिव्य सरोवरों एवं पुष्पों की वाटिकाओं से सदा युक्त होने के नाते अति सुशोभित था॥११॥ उत्तम मणियों के सारभाग की सुरचित वेदियों से अलंकृत, सैकड़ों दिव्य राजमार्ग (सड़कों) से चारों ओर सुभूषित और उत्तम मणियों के सारभाग से सुनिर्मित सैकड़ों गृहों से युक्त

---

[1] क. ०व्यैरभ्यन्तरविभू०।

मणीन्द्रसारनिर्माणशतकोटिगृहैर्युतम् । नानाचित्रविचित्राढ्यैर्मणीन्द्रकलशोज्ज्वलैः ॥१३॥
तन्मध्यदेशे रम्ये च ददर्श शंकरालयम् । मणीन्द्रसाररचितप्राकारं सुमनोहरम् ॥१४॥
अत्यूर्ध्वमम्बरस्पर्शि क्षीरनीरनिभं परम्। षोडशद्वारसंयुक्तं शोभितं शतमन्दिरैः ॥१५॥
अमूल्यरत्नरचितै रत्नसोपानभूषितैः। रत्नस्तम्भकपाटैश्च हीरकेण परिष्कृतैः ॥१६॥
माणिक्यजालमालाभिः सद्रत्नकलशोज्ज्वलैः । [1]नानाविचित्रचित्रेण चित्रितैः सुमनोहरैः ॥१७॥
आलयस्य पुरस्तत्र सिंहद्वारं ददर्श सः । रत्नेन्द्रसारखचितकपाटैश्च विराजितम् ॥१८॥
शोभितं वेदिकाभिश्च बाह्याभ्यन्तरतः सदा। रचिताभिः पद्मरागैर्महामरकतैर्गृहम् ॥१९॥
नानाप्रकारचित्रेण चित्रितं सुमनोहरम्। करालरूपावद्राक्षीद्द्वारपालौ भयंकरौ ॥२०॥
महाकरालदन्तास्यौ विकृतौ रक्तलोचनौ। दग्धशैलप्रतीकाशौ महाबलपराक्रमौ ॥२१॥
विभूतिभूषिताङ्गौ च व्याघ्रचर्माम्बरौ वरौ। पिङ्गलाक्षौ विशालाक्षौ जटिलौ च त्रिलोचनौ ॥२२॥
त्रिशूलपट्टिशधरौ ज्वलन्तौ ब्रह्मतेजसा। तौ दृष्ट्वा मनसा भीतस्त्रस्तः किंचिदुवाच ह ॥२३॥
विनयेन विनीतश्च दुर्विनीतौ महाबलौ। आत्मनः सर्ववृत्तान्तं कथयामास तत्पुरः ॥२४॥
विप्रस्य वचनं श्रुत्वा कृपायुक्तौ बभूवतुः। गृहीत्वाऽऽज्ञां चरद्वारा शंकरस्य महात्मनः ॥२५॥

था, जो उत्तम मणियों के बने अनेक भाँति के चित्र-विचित्र कलशों से समुज्ज्वल दिखायी देते थे ॥१२-१३॥ उनके रम्य मध्य भाग में शंकर जी का गृह देखा, जो मणीन्द्र के सारभाग से रचित परकोटों से अतिमनोहर था ॥१४॥ अत्यन्त ऊँचा, गगनस्पर्शी, क्षीर-नीर के समान उत्तम वर्ण, सोलह दरवाजों से युक्त एवं सैकड़ों गृहों से सुशोभित था ॥१५॥ जो गृह अमूल्य रत्नों की बनी (सीढ़ियों) से विभूषित, हीरा जड़े हुए रत्नों के स्तम्भों और किवाड़ों से युक्त थे ॥१६॥ माणिक्य के जालरूपी मालाओं, उत्तम रत्न के समुज्ज्वल कलशों एवं अनेक भाँति के चित्र-विचित्र तथा अति मनोहर चित्रकारियों से सुशोभित थे ॥१७॥ महल के सामने उन्होंने सिंहद्वार देखा, जो उत्तम रत्नों के सार-भाग से खचित कपाटों (किवाड़ों) से विराजमान था। फिर गृह देखा, जो बाहर-भीतर सदा पद्मराग और महा-मरकत की बनी वेदियों से अलंकृत अनेक भाँति के चित्र-विचित्र तथा अति मनोहर चित्रों से चित्रित था। वहाँ भयंकर विकरालरूप वाले दो द्वारपालों को देखा, जिनके दाँत और मुख, महाभयंकर थे; लाल-लाल विकृत आँखे थीं; वे जले हुए पर्वत के समान थे; महान् बली और पराक्रमी थे; सर्वांग में विभूति (राख) लगाये, उत्तम बाघम्बर ओढ़े, पिंगल-विशाल नेत्र, जटा रखाये, त्रिनेत्र एवं त्रिशूल और पट्टिश (अस्त्र) लिए ब्रह्मतेज से प्रज्वलित थे। उन्हें देखकर भृगु मन में डर गये, किन्तु त्रस्त होते हुए भी कुछ बोले ॥१८-२३॥ विनयविनम्र होकर उन्होंने उन दुर्विनीत एवं महाबलवान् द्वारपालों के सामने अपना समस्त वृत्तान्त कह सुनाया ॥२४॥ विप्र की बातें सुनकर उन दोनों को दया आ गयी, अतः महात्मा शंकर की आज्ञा लेकर उन दोनों ने उन्हें भीतर जाने की

१क. ०मालावि० ।

प्रवेष्टुमाज्ञां ददतुरीश्वरानुचरौ वरौ। भृगुस्तदाज्ञामादाय प्रविवेश हरिं स्मरन् ॥२६॥
प्रत्येकं षोडश द्वारो ददर्श सुमनोहराः। द्वारपालैर्नियुक्ताश्च नानाचित्रविचित्रिताः ॥२७॥
दृष्ट्वा तां महदाश्चर्यादपश्यच्छूलिनः सभाम्। नानासिद्धगणाकीर्णां महर्षिगणसेविताम् ॥२८॥
पारिजातसुगन्धाढ्यवायुना सुरभीकृताम्। ददर्श तत्र देवेशं शंकरं चन्द्रशेखरम् ॥२९॥
त्रिशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्माम्बरं परम्। विभूतिभूषिताङ्गं तं नागयज्ञोपवीतिनम् ॥
रत्नसिंहासनस्थं च रत्नभूषणभूषितम् ॥३०॥
महाशिवं शिवकरं शिवबीजं शिवाश्रयम्। आत्मारामं पूर्णकामं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥३१॥
ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम्। शश्वज्ज्योतिः स्वरूपं च लोकानुग्रहविग्रहम् ॥३२॥
धृतवन्तं जटाजालं दक्षकन्या समन्वितम्। तपसां फलदातारं दातारं सर्वसंपदाम् ॥३३॥
शुद्धस्फटिकसंकाशं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम्। गुह्यं ब्रह्म प्रवोचन्तं शिष्येभ्यस्तत्त्वमुद्रया ॥३४॥
स्तूयमानं च योगीन्द्रैः सिद्धेन्द्रैः परिसेवितम्। पार्षदप्रवरैः शश्वत्सेवितं श्वेतचामरैः ॥३५॥
ज्योतीरूपं च सर्वाद्यं श्रीकृष्णं प्रकृतेः परम्। ध्यायन्तं परमानन्दं पुलकाञ्चितविग्रहम् ॥३६॥
सुस्वरं साश्रुनेत्रंतमुद्गायन्तं गुणार्णवम्। भूतेन्द्रैर्वै रुद्रगणैः क्षेत्रपालैश्च वेष्टितम् ॥३७॥

आज्ञा प्रदान की। भृगु ने आज्ञा पाने पर भगवान् का स्मरण करते हुए भीतर प्रवेश किया ॥२५-२६॥ इसी भाँति सोलह दरवाजों को उन्होंने देखा जो अति मनोहर थे एवं जहाँ अनेक भाँति के चित्र-विचित्र द्वारपाल नियुक्त थे ॥२७॥ उन्हें देखते हुए उन्होंने शिव की सभा को देखा, जो अनेक भाँति के सिद्ध-गणों से आच्छन्न, महर्षिगणों से सुसेवित एवं पारिजात की अति सुगन्धित वायु से सुगन्धपूर्ण थी। वहाँ देवाधीश चन्द्रशेखर शिव को देखा, जो त्रिशूल, पट्टिश लिए, सुन्दर बाघम्बर ओढ़े, सर्वांग में विभूति रमाये, नाग का यज्ञोपवीत पहने, रत्न सिंहासन पर सुखासीन एवं रत्नों के भूषणों से विभूषित थे ॥२८-३०॥ वे कल्याणकारी, कल्याण के बीज, कल्याण के आश्रय, आत्माराम, पूर्णकाम, करोड़ों सूर्य के समान प्रभा वाले, मन्दहास वाले, प्रसन्नमुख, भक्तों पर अनुग्रह करने वाले, निरन्तर ज्योतिःस्वरूप, लोककल्याणार्थ शरीरधारी, जटा-जूट धारण किये, गौरी से युक्त, तप का फल और समस्त सम्पत्ति के प्रदाता, शुद्ध स्फटिक के समान वर्ण वाले, पाँच मुख और तीन नेत्र वाले एवं शिष्यों को तत्त्व मुद्रा गुह्य ब्रह्म का उपदेश करने वाले, योगीन्द्रों से स्तुत, सिद्धेन्द्रों से चारों ओर से सेवित, श्रेष्ठ पार्षदों द्वारा निरन्तर श्वेतचामर से सुसेवित, ज्योतिरूप एवं परमानन्द भगवान् श्रीकृष्ण का, जो सर्वादि और प्रकृति से परे हैं, ध्यान करने वाले महाशिव विभोर होकर सर्वांग में पुलकायमान हो रहे थे। एवं उत्तम स्वर से गुण-सागर भगवान् का भजन करते हुए प्रेम का आँसू बहा रहे थे। तथा भूतगण, रुद्रगण एवं क्षेत्रपालों से आवे-

मूर्ध्ना ननाम परशुरामो दृष्ट्वा तमादरात्। तद्वामे कार्तिकेयं च दक्षिणे च गणेश्वरम्॥३८॥
नन्दीश्वरं महाकालं वीरभद्रं च तत्पुरः। अङ्के ददर्श कान्तां तां गौरीं शैलेन्द्रकन्यकाम्॥३९॥
ननाम सर्वान्मूर्ध्ना च भक्त्या च परया मुदा। दृष्ट्वा हरं परं तोषात्स्तोतुं समुपचक्रमे॥४०॥
सगद्गदपदं दीनः साश्रुनेत्रोऽतिकातरः। कृताञ्जलिपुटः शान्तः शोकार्तः शोकनाशनम्॥४१॥

परशुराम उवाच

ईश त्वां स्तोतुमिच्छामि सर्वथा स्तोतुमक्षमः। [1]अक्षराक्षयबीजं च किंवा स्तौमि निरीहकम्॥४२॥
न योजनां कर्तुमीशो देवेशं स्तौमि मूढधीः। [2]वेदा न शक्ता यं स्तोतुं कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः॥४३॥
वाग्बुद्धिमनसां दूरं सारात्सारं परात्परम्। [3]ज्ञानमात्रेण साध्यं च सिद्धं सिद्धैर्निषेवितम्॥४४॥
यमाकाशमिवाऽद्यन्तमध्यहीनं तथाऽव्ययम्। विश्वतन्त्रमतन्त्रं च स्वतन्त्रं तन्त्रबीजकम्॥४५॥
ध्यानासाध्यं दुराराध्यमतिसाध्यं कृपानिधिम्। त्राहि मां करुणासिन्धो दीनबन्धोऽतिदीनकम्॥४६॥
अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम्। स्वप्नेऽप्यदृष्टं भक्तैश्चाधुना पश्यामि चक्षुषा॥४७॥
शक्रादयः सुरगणाः कलया यस्य संभवाः। चराचराः कलांशेन तं नमामि महेश्वरम्॥४८॥

ष्ठित थे॥३१-३७॥ अनन्तर परशुराम ने सादर उन्हें प्रणाम किया। उनके बाँयें भाग में कार्तिकेय, दाहिने गणेश्वर, नन्दीश्वर, महाकाल एवं वीरभद्र को उनके सामने बैठे हुए देखा। उनके अंक में उनकी पत्नी शैलराज पुत्री गौरी बैठी थीं। उन्होंने उन सबको भक्तिपूर्वक बड़ी प्रसन्नता से शिर से प्रणाम किया और शिव को देखकर अति सन्तुष्ट होकर उनकी स्तुति करना आरम्भ किया। दीन, आँखों में आँसू भरे एवं अतिकातर राम हाथ जोड़कर शान्त भाव से शोकनाशन शिव का गद्गद्वाणी द्वारा गुणगान करने लगे॥३८-४१॥

परशुराम बोले—हे ईश! मैं तुम्हारी स्तुति करना चाहता हूँ, किन्तु स्तुति करने में असमर्थ हूँ। तथा अक्षर (अविनाशी), अक्षयबीज और निरीह (इच्छारहित) की स्तुति ही क्या करूँ॥४२॥ मैं उसकी योजना भी नहीं कर सकता ऐसा मूढ़बुद्धि मैं देवाधीश्वर की स्तुति करता हूँ। जिसकी स्तुति वेद नहीं कर सकते, तो अन्य कौन तुम्हारी स्तुति करने में समर्थ हो सकता है॥४३॥ तुम वाणी, बुद्धि और मन से अति दूर, सारभाग के भी सारभाग, परे से परे, केवल ज्ञानमात्र से साध्य होने वाले, सिद्ध और सिद्धों से सुसेवित हो॥४४॥ आकाश की भाँति आदि, मध्य और अन्त से रहित हो, अविनाशी हो, विश्व के तन्त्र, तन्त्रसे दूर, स्वतन्त्र, तन्त्र के बीज, ध्यान से असाध्य, दुराराध्य अतिसाध्य और कृपानिधान हो, अतः हे करुणासिन्धो! हे दीनबन्धो! मैं अतिदीन हूँ, मेरी रक्षा करो॥४५-४६॥ आज मेरा जन्म सफल हो गया, जीवन सुजीवन हुआ, क्योंकि भक्तगण जिसे स्वप्न में भी नहीं देख पाते हैं, मैं उन्हें इस समय अपनी आँखों देख रहा हूँ॥४७॥ इन्द्र आदि देवगण जिसकी कला से उत्पन्न हैं और चर-अचर जगत् जिसके कलांश से, उस महेश्वर को मैं नमस्कार कर रहा हूँ॥४८॥ जो स्त्रीरूप, नपुंसकरूप एवं पौरुष धारण

---

१ क. °क्षरक्षरबी°। २ क. देवा। ३ क. °नबुद्ध्यवसा°।

स्त्रीरूपं क्लीबरूपं च पौरुषं च बिभर्ति यः। सर्वाधारं सर्वरूपं तं नमामि महेश्वरम् ॥४९॥
यं भास्करस्वरूपं च शशिरूपं हुताशनम्। जलरूपं वायुरूपं तं नमामि महेश्वरम् ॥५०॥
अनन्तविश्वसृष्टीनां संहर्तारं भयंकरम्। क्षणेन लीलामात्रेण तं नमामि महेश्वरम् ॥५१॥
इत्येवमुक्त्वा स भृगुः पपात चरणाम्बुजे। आशिषं च ददौ तस्मै सुप्रसन्नो बभूव सः ॥५२॥
जामदग्न्यकृतं स्तोत्रं यः पठेद्भक्तिसंयुतः। सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोकं स गच्छति ॥५३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० परशुरामस्य कैलाशगमनं
नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः।

शंकर उवाच

कस्त्वं बटो कस्य पुत्रः क्व वासः स्तवनं कथम्। किं वा तेऽहं करिष्यामि वाञ्छितं वद सांप्रतम् ॥१॥

पार्वत्युवाच

शोकाकुलं त्वां पश्यामि विमनस्कं सुविस्मितम्। वयसाऽतिशिशुं [1]शान्तं गुणेन गुणिनां वरम् ॥२॥

करता है तथा सबका आधार और सर्वरूप है, उस महेश्वर को मैं नमस्कार कर रहा हूँ॥४९॥ जो भास्कर-स्वरूप, चन्द्ररूप, अग्निरूप, जलरूप और वायुरूप है उस महेश्वर को नमस्कार करता हूँ ॥५०॥ अनन्त विश्व-सृष्टि का लीला की भाँति क्षणमात्र में संहार करने वाले, भीषण महेश्वर को नमस्कार करता हूँ ॥५१॥ इतना कहकर भृगु उनके चरण-कमल पर गिर पड़े। उन्होंने सुप्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया ॥५२॥ जामदग्न्य-रचित इस स्तोत्र का जो भक्तिपूर्वक पाठ करता है, वह समस्त पाप से मुक्त होकर शिवलोक को जाता है ॥५३॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में परशुराम का
कैलाशगमनवर्णन नामक उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२९॥

अध्याय ३०

शंकर बोले—हे बच्चे! तुम कौन हो, किसके पुत्र हो, कहाँ घर है, (हमारी) स्तुति क्यों कर रहे हो। बताओ, तुम्हारी क्या अभिलाषा है? ॥१॥

पार्वती बोलीं—मैं तुम्हें शोकव्याकुल, उदासीन और अति विस्मित देखती हूँ। तुम्हारी अवस्था छोटे बच्चे की है, किन्तु तुम शान्त एवं गुण से गुणवानों में श्रेष्ठ हो ॥२॥

---

१ क. दान्तं।

भृगुरुवाच

जमदग्निसुतोऽहं च भृगुवंशसमुद्भवः । रेणुकाऽम्बा मे परशुरामोऽहं नामतः प्रभो ॥३॥
क्रीणीहि मां दयासिन्धो विद्यापण्येन किंकरम् । त्वामीश शरणापन्नं रक्ष मां दीनवत्सल ॥४॥
मृगयामागतं भूपं पिता मे चोपवासिनम् । चकाराऽऽतिथ्यमानीय कपिलादत्तवस्तुभिः ॥५॥
राजा तं कपिला लोभाद्घातयामास मन्दधीः । कपिला तं मृतं दृष्ट्वा गोलोकं च जगाम सा ॥६॥
माताऽनुगमनं चक्रे ह्यनाथोऽहं च सांप्रतम् । त्वं मे पिता शिवा माता रक्ष मां पुत्रवत्प्रभो ॥७॥
मया कृता प्रतिज्ञा च शोकेनैवातिदुष्करा । त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यामि महीमिति ॥८॥
कार्तवीर्यं हनिष्यामि समरे तातघातकम् । इत्येतत्परिपूर्णं मे भगवान्कर्तुमर्हति ॥९॥
ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा दृष्ट्वा दुर्गामुखं हरः । बभूवाऽऽनम्रवक्त्रश्च सा च शुष्कौष्ठतालुका ॥१०॥

पार्वत्युवाच

तपस्विन्विप्रपुत्र क्ष्मां निर्भूपां कर्तुमिच्छसि । त्रिःसप्तकृत्वः कोपेन साहसस्ते महान्बटो ॥११॥
हन्तुमिच्छसि निःशस्त्रः सहस्रार्जुनमीश्वरम् । भ्रूभङ्गलीलया यस्य रावणस्य पराजयः ॥१२॥
तस्मै प्रदत्तं दत्तेन श्रीहरेः कवचं बटो । शक्तिरव्यर्थरूपा च यया ते हिंसितः पिता ॥१३॥
हरेर्मन्त्रं संस्तवनं ध्यायते च दिवानिशम् । को वा शक्नोति तं हन्तुं न पश्यामीह भूतले ॥१४॥

भृगु बोले—हे प्रभो ! मैं जमदग्नि का पुत्र एवं भृगु वंश में उत्पन्न हूँ। रेणुका मेरी माता हैं और परशुराम मेरा नाम है ॥३॥ हे दयासिन्धो ! मुझे विद्या प्रदान करके आप अपने सेवक बना लें। हे ईश! हे दीनवत्सल ! मैं आपकी शरण में हूँ, मेरी रक्षा कीजिये ॥४॥ मृगया (शिकार) खेलने के लिए आये हुए राजा को भूखा देखकर मेरे पिता ने कपिला की दी हुई वस्तु से उसका आतिथ्य-सत्कार किया ॥५॥ अनन्तर उस मूर्ख राजा ने कपिला के लिए लालायित होकर मेरे पिता को मार डाला। कपिला उन्हें मृतक देखकर गोलोक चली गयी ॥६॥ माता भी पिता के साथ चली गयी, इस समय मैं अनाथ हूँ। अतः हे प्रभो ! तुम पिता हो और शिवा माता हैं, पुत्र की भाँति मेरी रक्षा करो ॥७॥ मैंने शोकाकुल होकर अति दुष्कर प्रतिज्ञा की है कि—एक्कीस बार इस पृथ्वी को मैं राजाओं से शून्य कर दूँगा और युद्ध में उस कार्तवीर्य्य को नष्ट कर दूँगा, जिसने मेरे पिता का हनन किया है ॥७॥ इस प्रतिज्ञा को भगवान् पूरा करा दें ॥८-९॥ ब्राह्मण की बात सुनकर शिव ने दुर्गा के मुख की ओर देखा और नीचे मुख कर लिया। पार्वती के भी ओंठ और तालू सूख गए ॥१०॥

पार्वती बोलीं—हे तपस्विन् ! ब्राह्मण के पुत्र तुम कोप से इक्कीस बार पृथ्वी को राजा से शून्य करना चाहते हो। हे बटुक ! यह तुम्हारा बहुत बड़ा साहस है। अधीश्वर सहस्रार्जुन को निःशस्त्र होकर मारना चाहते हो, जिसके भौंह टेढ़ी करने पर रावण का पराजय हो गया था ॥११-१२॥ हे बटुक ! दत्तात्रेय ने उसे भगवान् का कवच प्रदान किया है और वह शक्ति कभी भी व्यर्थ नहीं होती है, जिससे उसने तुम्हारे पिता को मारा है ॥१३॥ जो रात-दिन भगवान के मंत्र का जाप और उनकी स्तुति का पाठ करता है, उसे भूतल पर कौन मार

अये विप्र गृहं गच्छ किं करिष्यति शंकरः। अन्ये भूपाश्च मद्भृत्याः का भीस्तेषां मयि स्थिते ॥१५॥

भद्रकाल्युवाच

अये विप्रबटो जाल्म निर्भूपां कर्तुमिच्छसि। यथा हि वामनश्चन्द्रं करेणाऽहर्तुमिच्छति ॥१६॥
कृतयज्ञान्महापुण्यान्महाबलपराक्रमान्। दिगम्बरसहायेन मद्भृत्यान्हन्तुमिच्छसि ॥१७॥
स तयोर्वचनं श्रुत्वा रुरोदोच्चैश्च शोकतः। सहसा पुरतस्तेषां प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यतः ॥१८॥
विप्रस्य रोदनं श्रुत्वा शंकरः करुणानिधिः। पश्यन्दुर्गां च कालीं च ज्ञात्वाऽऽशयमथो विभुः ॥१९॥
तयोरनुमतिं प्राप्य सर्वेशो भक्तवत्सलः। जमदग्निसुतं सद्यः प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥२०॥

शंकर उवाच

अद्यप्रभृति हे वत्स त्वं मे पुत्रसमो महान्। दास्यामि मन्त्रं गुह्यं ते त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥२१॥
एवंभूतं च कवचं दास्यामि परमाद्भुतम्। लीलया मत्प्रसादेन कार्तवीर्यं हनिष्यसि ॥२२॥
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यसि महीं द्विज। जगत्ते यशसा पूर्णं भविष्यति न संशयः ॥२३॥
इत्युक्त्वा शंकरस्तस्मै ददौ मन्त्रं सुदुर्लभम्। त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं परमाद्भुतम् ॥२४॥
स्तवं पूजाविधानं च पुरश्चरणपूर्वकम्। मन्त्रसिद्धेरनुष्ठानं यथावन्नियमक्रमम् ॥२५॥
सिद्धिस्थानं कालसंख्यां कथयामास नारद। वेदवेदाङ्गादिकं च पाठयामास तत्क्षणम् ॥२६॥

सकता है? मैं (ऐसे व्यक्ति को) नहीं देखती हूँ ॥१४॥ हे विप्र! अतः तुम घर चले जाओ। (इसमें) शंकर क्या कर सकेंगे? अन्य राजा लोग मेरे सेवक हैं, मेरे रहते उन्हें क्या भय है? ॥१५॥

भद्रकाली बोलीं—हे ब्राह्मणबटुक! तुम मूर्ख हो, जो पृथ्वी को राजशून्य करना चाहते हो। यह तो वैसा ही है जैसे कोई बौना हाथ से चन्द्रमा को पकड़ना चाहता हो ॥१६॥ क्या तुम अनेक यज्ञों को सुसम्पन्न करने वाले, महापुण्यात्मा एवं महापराक्रमी मेरे सेवकों को शिव की सहायता से मारना चाहते हो? ॥१७॥ परशुराम ने उन दोनों की बातें सुनकर शोकव्याकुल होकर अति ऊँचे स्वर से रोदन किया और उन लोगों के सामने ही सहसा प्राण त्याग देने को तैयार हो गये ॥१८॥ ब्राह्मण का रोदन सुनकर विभु एवं करुणानिधान शिव ने काली और दुर्गा की ओर देखा और उनका आशय जानकर दोनों की अनुमति से सर्वेश्वर एवं भक्तवत्सल शिव ने परशुराम से तुरन्त कहना आरम्भ किया ॥१९-२०॥

शंकर बोले—हे वत्स! आज से तुम मेरे महान् पुत्र के समान हो गये। मैं तुम्हें तीनों लोकों में दुर्लभ गुप्त मन्त्र दूंगा ॥२१॥ और उसी भाँति परम अद्भुत कवच भी दूंगा मेरे प्रसाद से तुम लीला की भाँति कार्तवीर्य्य का हनन कर सकोगे ॥२२॥ हे द्विज! पृथ्वी को इक्कीस बार निर्भूप करोगे, जिससे संसार में तुम्हारा यश पूर्णरूप से फैलेगा, इसमें संशय नहीं। इतना कहकर शिव ने उन्हें अति दुर्लभ मंत्र, त्रैलोक्यविजय नामक परम अद्भुत कवच, स्तोत्र, पूजाविधान, पुरश्चरणपूर्वक मंत्रसिद्धि का अनुष्ठान और यथोचित नियम-क्रम भी बताया ॥२३-२५॥ हे नारद! सिद्धि-स्थान और समय बताते हुए उन्होंने उसी क्षण समस्त वेद, वेदांग आदि पढ़ा दिये ॥२६॥

नागपाशं पाशुपतं ब्रह्मास्त्रं च सुदुर्लभम् । नारायणास्त्रमाग्नेयं वायव्यं वारुणं तथा ॥२७॥
गान्धर्वं गारुडं चैव जृम्भणास्त्रं तथैव च। गदां शक्तिं च परशुं शूलमव्यर्थमुत्तमम् ॥२८॥
नानाप्रकारशस्त्रास्त्रं मन्त्रं च विधिपूर्वकम्। शस्त्रास्त्राणां च संहारं तूणी चाक्षयसायकौ ॥२९॥
आत्मरक्षणसंधानं संग्रामविजयक्रमम् । मायायुद्धं च विविधं हुंकारं मन्त्रपूर्वकम् ॥३०॥
रक्षणं च स्वसैन्यानां परसैन्यविमर्दनम् । नानाप्रकारमतुलमुपायं [1]रणसंकटे ॥
संहारे मोहिनीं विद्यां ददौ मृत्युहरां हरः ॥३१॥
स्थित्वा चिरं गुरोर्वासे सर्वविद्यां विबोध्य सः। तीर्थे कृत्वा मन्त्रसिद्धिं तांश्च नत्वा जगाम सः ॥३२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपति० नारदना० परशुरामस्य शिवदत्तास्त्रशस्त्रादिप्राप्तिवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

नारद उवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि कं मन्त्रं भगवान्हरः। कृपया परशुरामाय किं स्तोत्रं कवचं ददौ ॥१॥
को वाऽस्य मन्त्रस्याऽऽराध्यः किं फलं कवचस्य च। स्तवनस्य फलं किं वा तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥२॥

नागपाश, पाशुपत, अतिदुर्लभ ब्रह्मास्त्र, नारायणास्त्र, आग्नेय, वायव्य,वारुण, गान्धर्व, गारुड़, जृम्भणास्त्र, गदा, शक्ति, परशु, और व्यर्थ न होने वाला शूल प्रदान किया ॥२७-२८॥ विधान समेत अनेक भाँति के शस्त्रास्त्र, मंत्र, शस्त्रास्त्रों की संहार-क्रिया, तरकस, अविनाशी बाण, अपनी रक्षा का उपाय, संग्राम में विजय करने का क्रम, विविध भाँति का माया-युद्ध, मंत्रपूर्वक हुंकार, अपने सैनिकों की रक्षा और शत्रु-सेना का नाश, रण में संकट उपस्थित होने पर अनेक भाँति के अनुपम उपाय, संहार में मृत्युनाशिनी मोहिनी विद्या भी प्रदान की ॥२९-३१॥ गुरु के यहाँ चिरकाल तक रहकर, समस्त विद्याओं को सीख कर और तीर्थ में मन्त्रसिद्धि करने के उपरांत उन सबको नमस्कार करके परशुराम चले गये ॥३२॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में परशुराम को शिव द्वारा अस्त्र-शस्त्रादि की प्राप्ति का वर्णन नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३०॥

अध्याय ३१

नारद बोले—हे भगवन् ! भगवान् हर ने कृपया परशुराम को कौन मन्त्र, कौन स्तोत्र और कौन कवच प्रदान किया, उस मन्त्र का आराध्य देव कौन है, कवच का क्या फल है और उस स्तोत्र का क्या फल है ? मुझे सुनने की इच्छा है, आप बताएँ ॥१-२॥

१क. प्राणं० ।

नारायण उवाच

मन्त्राराध्यो हि भगवान्परिपूर्णतमः स्वयम्। गोलोकनाथः श्रीकृष्णो गोपगोपीश्वरः प्रभुः ॥३॥
त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं परमाद्भुतम्। स्तवराजं महापुण्यं भूतियोगसमुद्भवम् ॥४॥
मन्त्रकल्पतरुं नाम सर्वकामफलप्रदम्। ददौ परशुरामाय रत्नपर्वतसंनिधौ ॥५॥
स्वयंप्रभानदीतीरे पारिजातवनान्तरे। आश्रमे देवलोकस्य माधवस्य च संनिधौ ॥६॥

महादेव उवाच

वत्साऽऽगच्छ महाभाग भृगुवंशसमुद्भव। पुत्राधिकोऽसि प्रेम्णा मे कवचग्रहणं कुरु ॥७॥
शृणु राम प्रवक्ष्यामि ब्रह्माण्डे परमाद्भुतम्। त्रैलोक्यविजयं नाम श्रीकृष्णस्य जयावहम् ॥८॥
श्रीकृष्णेन पुरा दत्तं गोलोके राधिकाश्रमे। रासमण्डलमध्ये च मह्यं वृन्दावने वने ॥९॥
अतिगुह्यतरं तत्त्वं सर्वमन्त्रौघविग्रहम्। पुण्यात्पुण्यतरं चैव परं स्नेहाद्वदामि ते ॥१०॥
यद्धृत्वा पठनाद्देवी मूलप्रकृतिरीश्वरी। शुम्भं निशुम्भं महिषं रक्तबीजं जघान ह ॥११॥
यद्धृत्वाऽहं च जगतां संहर्ता सर्वतत्त्ववित्। अवध्यं त्रिपुरं पूर्वं दुरन्तमपि लीलया ॥१२॥
यद्धृत्वा पठनाद्ब्रह्मा ससृजे सृष्टिमुत्तमाम्। यद्धृत्वा भगवाञ्छेषो विधत्ते विश्वमेव च ॥१३॥
यद्धृत्वा कूर्मराजश्च शेषं धत्ते हि लीलया। यद्धृत्वा भगवान्वायुर्विश्वाधारो विभुः स्वयम् ॥१४॥

नारायण बोले—परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण, जो गोलोक के स्वामी, गोप-गोपियों के ईश्वर एवं प्रभु हैं, स्वयं इसके देवता हैं ॥३॥ परम अद्भुत त्रैलोक्य विजय नामक कवच, ऐश्वर्य योग से उत्पन्न महापुण्य स्तवराज, और कल्पतरु नामक मंत्र, जो समस्त कामनाओं का फल प्रदान करता है, उन्होंने सुमेरु पर्वत के समीप स्वयंप्रभा नदी के किनारे पारिजात बन के बीच देवलोक के आश्रम में माधव के समीप परशुराम को प्रदान किया था ॥४-६॥

शंकर बोले—हे वत्स ! हे भृगु-वंश में उत्पन्न महाभाग ! आओ, यह कवच ग्रहण करो। प्रेमतः तुम मेरे पुत्र से भी अधिक प्रिय हो ॥७॥ हे राम ! मैं तुम्हें भगवान् श्रीकृष्ण का त्रैलोक्यविजय नामक कवच बता रहा हूँ, जो समस्त ब्रह्माण्ड में परम अद्भुत एवं विजयप्रद है, सुनो। पूर्व समय में भगवान् श्रीकृष्ण ने गोलोक में राधिकाश्रम के रासमण्डल के मध्य वृन्दावन नामक वन में मुझे यह प्रदान किया था। यह अति गुह्यतर, तत्त्वरूप, सम्पूर्ण मंत्र-समूह का शरीर एवं पुण्य से पुण्यतर है; परम स्नेह के नाते मैं तुम्हें बता रहा हूँ ॥८-१०॥ इसके धारण और पाठ करने से ईश्वरी मूल प्रकृति देवी ने शुम्भ, निशुम्भ, महिषासुर एवं रक्तबीज का वध किया था ॥११॥ इसके धारण करने से मैं समस्त तत्त्वों का वेत्ता एवं समस्त जगत् का संहर्ता हुआ हूँ। और मैंने दुर्द्धर्ष त्रिपुरासुर का इसीसे से अनायास वध किया था ॥१२॥ इसके धारण और पाठ करने से ब्रह्मा ने उत्तम सृष्टि की रचना की तथा इसके धारण करने से भगवान् शेष समस्त विश्व का धारण करते हैं ॥१३॥ इसके धारण करने से कच्छपराज लीला पूर्वक शेष को धारण करते हैं। इसे धारण कर वायु समस्त विश्व

यद्धृत्वा वरुणः सिद्धः कुबेरश्च धनेश्वरः । यद्धृत्वा पठनादिन्द्रो देवानामधिपः स्वयम् ॥१५॥
यद्धृत्वा भाति भुवने तेजोराशिः स्वयं रविः । यद्धृत्वा पठनाच्चन्द्रो महाबलपराक्रमः ॥१६॥
अगस्त्यः सागरान्सप्त यद्धृत्वा पठनात्पपौ । चकार तेजसा जीर्णं दैत्यं वातापिसंज्ञकम् ॥१७॥
यद्धृत्वा पठनाद्देवी सर्वाधारा वसुंधरा । यद्धृत्वा पठनात्पूता गङ्गा भुवनपावनी ॥१८॥
यद्धृत्वा जगतां साक्षी धर्मो धर्मभृतां वरः । सर्वविद्याधिदेवी सा यच्च धृत्वा सरस्वती ॥१९॥
यद्धृत्वा जगतां लक्ष्मीरत्नदात्री परात्परा । यद्धृत्वा पठनाद्वेदान्सावित्री सा सुषाव च ॥२०॥
वेदाश्च धर्मवक्तारो यद्धृत्वा पठनाद्भृगो । यद्धृत्वा पठनाच्छुद्धस्तेजस्वी हव्यवाहनः ॥
सनत्कुमारो भगवान्यद्धृत्वा ज्ञानिनां वरः । ॥२१॥
दातव्यं कृष्णभक्ताय साधवे च महात्मने । शठाय परशिष्याय दत्त्वा मृत्युमवाप्नुवात् ॥२२॥
त्रैलोक्यविजयस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः । ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवो रासेश्वरः स्वयम् ॥२३॥
त्रैलोक्यविजयप्राप्तौ विनियोगः प्रकीर्तितः । परात्परं च कवचं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥२४॥
प्रणवो मे शिरः पातु श्रीकृष्णाय नमः सदा । पायात्कपालं कृष्णाय स्वाहा पञ्चाक्षरः स्मृतः ॥२५॥
कृष्णेति पातु नेत्रे च कृष्ण स्वाहेति तारकम् । हरये नम इत्येवं भ्रूलतां पातु मे सदा ॥२६॥
ॐ गोविन्दाय स्वाहेति नासिकां पातु संततम् । गोपालाय नमो गण्डौ पातु मे सर्वतः सदा ॥२७॥

का आधार और व्यापक हुआ है ॥१४॥ इसके धारण मात्र से वरुण सिद्ध हो गये, कुबेर धनाधीश हुए और इसके धारण तथा पाठ करने से इन्द्र देवों के स्वयं अधीश्वर हुए हैं ॥१५॥ इसे धारण कर सूर्य स्वयं तेजोराशि होकर लोकों में सुशोभित होते हैं। इसके धारण एवं पाठ करने से चन्द्र महाबली और पराक्रमी हो गये ॥१६॥ इसे धारण कर अगस्त्य ने सातों सागरों को पान कर लिया था और अपने तेज से वातापी राक्षस को नष्ट किया था ॥१७॥ इसके धारण एवं पाठ करने से देवी वसुन्धरा समस्त का आधार हुई है। इसके धारण एवं पाठ से गंगा स्वयं पवित्र होकर लोकपावनी हो गयीं ॥१८॥ इसे धारण कर धर्म धार्मिक जनों में श्रेष्ठ एवं जगत् के साक्षी हुए हैं, इसे धारण कर सरस्वती सम्पूर्ण विद्याओं की अधीश्वरी देवी और लक्ष्मी रत्न देने वाली एवं श्रेष्ठ से श्रेष्ठ हुई हैं। इसके धारण और पाठ करने से सावित्री ने वेदों को उत्पन्न किया, तथा हे भृगो! इसे धारण कर वेदगण धर्म के वक्ता हुए। इसे धारण कर पाठ करने से अग्नि शुद्ध एवं तेजस्वी हुए, और इसे धारण कर भगवान् सनत्कुमार श्रेष्ठ ज्ञानी हो गये ॥१९-२१॥ इसलिए इसे भगवान् कृष्ण के भक्त को, जो साधु महात्मा हो, देना चाहिए। क्योंकि शठ एवं परशिष्य को देने से मृत्यु प्राप्त होती है ॥२२॥

इस त्रैलोक्यविजय नामक कवच के प्रजापति ऋषि, गायत्री छन्द और स्वयं रासेश्वर (भगवान् श्रीकृष्ण) देवता हैं। त्रैलोक्य-विजय-प्राप्ति के लिए इसका विनियोग कहा गया है। यह कवच परे से परे और तीनों लोकों में दुर्लभ है। 'ओं श्रीकृष्णाय नमः' सदा मेरे शिर की रक्षा करे, पांच अक्षर वाले 'कृष्णाय स्वाहा' कपाल की रक्षा करे ॥२३-२५॥ कृष्ण दोनों नेत्रों की रक्षा करें, 'कृष्णाय स्वाहा' पुतलियों की रक्षा करे। 'हरये नमः' सदा मेरी भौंह की रक्षा करे ॥२६॥ 'ओं गोविन्दाय स्वाहा' निरन्तर नासिका की रक्षा करे, 'गोपालाय नमः' सदा दोनों कपोलों की

ॐ नमो गोपाङ्गनेशाय कर्णौ पातु सदा मम। ॐ कृष्णाय नमः शश्वत्पातु मेऽधरयुग्मकम् ।।२८।।
ॐ गोविन्दाय स्वाहेति दन्तौघं मे सदाऽवतु। पातु कृष्णाय दन्ताधो दन्तोर्ध्वं क्लीं सदाऽवतु ।।२९।।
ॐ श्रीकृष्णाय स्वाहेति जिह्विकां पातु मे सदा। रासेश्वराय स्वाहेति तालुकं पातु मे सदा ।।३०।।
राधिकेशाय स्वाहेति कण्ठं पातु सदा मम। नमो गोपाङ्गनेशाय वक्षः पातु सदा मम ।।३१।।
ॐ गोपेशाय स्वाहेति स्कन्धं पातु सदा मम। नमः किशोरवेषाय स्वाहा पृष्ठं सदाऽवतु ।।३२।।
उदरं पातु मे नित्यं मुकुन्दाय[1] नमः सदा। ॐ क्लीं कृष्णाय स्वाहेति करौ पातु सदा मम ।।३३।।
ॐ विष्णवे नमो बाहुयुग्मं पातु सदा मम। ॐ ह्रीं भगवते स्वाहा नखरं पातु मे सदा ।।३४।।
ॐ नमो नारायणायेति नखरन्ध्रं सदाऽवतु। ॐ श्रीं[2] क्लीं पद्मनाभाय नाभिं पातु सदा मम ।।३५।।
ॐ सर्वेशाय स्वाहेति कङ्कालं पातु मे सदा। ॐ गोपीरमणाय स्वाहा नितम्बं पातु मे सदा ।।३६।।
ॐ गोपीनां प्राणनाथाय पादौ पातु सदा मम ।।३७।।
ॐ केशवाय स्वाहेति मम केशान्सदाऽवतु। नमः कृष्णाय स्वाहेति ब्रह्मरन्ध्रं सदाऽवतु ।।३८।।
ॐ माधवाय स्वाहेति मे लोमानि सदाऽवतु। ॐ ह्रीं श्रीं रसिकेशाय स्वाहा सर्वं सदाऽवतु ।।३९।।
परिपूर्णतमः कृष्णः प्राच्यां मां सर्वदाऽवतु। स्वयं गोलोकनाथो मामाग्नेय्यां दिशि रक्षतु ।।४०।।

रक्षा करे।।२७।। 'ओं नमो गोपांगनेशाय' मेरे कानों की सदा रक्षा करे और 'ओं कृष्णाय नमः' दोनों होठों की रक्षा करे।।२८।। 'ओं गोविन्दाय स्वाहा' मेरी दंतपंक्तियों की रक्षा करे, 'कृष्णाय स्वाहा' दांतों के निचले भाग और 'क्लीं' दाँतों के ऊपरी भाग की रक्षा करे।।२९।। 'ओं श्री कृष्णाय स्वाहा' सदा मेरी जिह्वा की रक्षा करे, 'रासेश्वराय स्वाहा' सदा मेरे तालु की रक्षा करे।।३०।। 'राधिकेशाय स्वाहा' सदा मेरे कण्ठ की रक्षा करे। 'नमो गोपांगनेशाय' मेरे वक्षःस्थल की रक्षा करे।।३१।। 'ओं गोपेशाय स्वाहा' सदा मेरे कन्धे की रक्षा करे' 'नमः किशोरवेषाय स्वाहा' मेरे पृष्ठ की रक्षा करे।।३२।। 'मुकुन्दाय नमः' मेरे उदर की नित्य रक्षा करे, 'ओं ह्रीं क्लीं कृष्णाय स्वाहा' सदा मेरे हाथों की रक्षा करे।।३३।। 'ओं विष्णवे नमः' मेरी बाहुओं की रक्षा करे। 'ओं ह्रीं भगवते स्वाहा' सदा मेरे नखों की रक्षा करे।।३४।। 'ओं नमो नाराणाय' सदा नखच्छिद्रों की रक्षा करे। 'ओं श्रीं क्लीं पद्मनाभाय' सदा मेरी नाभी की रक्षा करे। ।।३५।। 'ओं सर्वेशाय स्वाहा' सदा मेरे कंकाल की रक्षा करे। ओं 'गोपीरमणाय स्वाहा' मेरे नितम्ब की रक्षा करे।।३६।। 'ओं गोपीनां प्राणनाथाय' सदा मेरे चरण की रक्षा करे।।३७।। 'ओं केशवाय स्वाहा' सदा मेरे केशों की रक्षा करे। 'नमः कृष्णाय स्वाहा' सदा ब्रह्मरन्ध्र की रक्षा करे।।३८।। 'ओं माधवाय स्वाहा' सदा मेरे लोमों की रक्षा करे। 'ओं ह्रीं श्रीं रसिकेशाय स्वाहा सदा सब की रक्षा करे।।३९।। परिपूर्णतम कृष्ण सर्वदा पूर्वदिशा में मेरी रक्षा करे, स्वयं गोलोकनाथ अग्निकोण में मेरी रक्षा करे।।४०।। पूर्णब्रह्मस्वरूप सदा दक्षिण में मेरी रक्षा करें। नैर्ऋत्य में कृष्ण मेरी

---

१ क. मुक्तिदाय नमो नमः। २ ख. ह्रीं ह्रीं।

पूर्णब्रह्मस्वरूपश्च दक्षिणे मां सदाऽवतु। नैर्ऋत्यां पातु मां कृष्णः पश्चिमे पातु मां हरिः ॥४१॥
गोविन्दः पातु मां शश्वद्वायव्यां दिशि नित्यशः। उत्तरे मां सदा पातु रसिकानां शिरोमणिः॥४२॥
ऐशान्यां मां सदा पातु वृन्दावनविहारकृत्। वृन्दावनीप्राणनाथः पातु मामूर्ध्वदेशतः॥४३॥
सदैव माधवः पातु बलिहारी महाबलः। जले स्थले चान्तरिक्षे नृसिंहः पातु मां सदा॥४४॥
स्वप्ने जागरणे शश्वत्पातु मां माधवः सदा। सर्वान्तरात्मा निर्लिप्तः पातु मां सर्वतो विभुः॥४५॥
इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम्। त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं परमाद्भुतम्॥४६॥
मया श्रुतं कृष्णवक्त्रात्प्रवक्तव्यं न कस्यचित्। गुरुमभ्यर्च्य विधिवत्कवचं धारयेत्तु यः॥४७॥
कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ सोऽपि विष्णुर्न संशयः। स च भक्तो वसेद्यत्र लक्ष्मीर्वाणी वसेत्ततः॥४८॥
यदि स्यात्सिद्धकवचो जीवन्मुक्तो भवेत्तु सः। निश्चितं कोटिवर्षाणां पूजायाः फलमाप्नुयात्॥४९॥
राजसूयसहस्राणि वाजपेयशतानि च। अश्वमेधायुतान्येव नरमेधायुतानि च॥५०॥
महादानानि यान्येव प्रादक्षिण्यं भुवस्तथा। त्रैलोक्यविजयस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥५१॥
व्रतोपवासनियमं स्वाध्यायाध्ययनं तपः। स्नानं च सर्वतीर्थेषु नास्यार्हति कलामपि॥५२॥
सिद्धत्वममरत्वं च दासत्वं श्रीहरेरपि। यदि स्यात्सिद्धकवचः सर्वं प्राप्नोति निश्चितम्॥५३॥
स भवेत्सिद्धकवचो दशलक्षं जपेत्तु यः। यो भवेत्सिद्धकवचः सर्वज्ञः स भवेद्ध्रुवम्॥५४॥

रक्षा करें, पश्चिम में हरि मेरी रक्षा करें॥४१॥ गोविन्द वायव्यकोण में मेरी निरन्तर रक्षा करें, रसिकों के शिरोमणि सदा उत्तर में मेरी रक्षा करें॥४२॥ वृन्दावनविहारी सदा ऐशान्यकोण में मेरी रक्षा करे। वृन्दावनीप्राणनाथ सदा उर्ध्वदेश में मेरी रक्षा करें॥४३॥ बलिहारी एवं महाबलवान् माधव मेरी सदैव रक्षा करें। जल, स्थल एवं आकाश में सदा नृसिंह मेरी रक्षा करें॥४४॥ सदा सोते-जागते माधव मेरी निरन्तर रक्षा करें। सर्वान्तरात्मा विभु, जो निर्लिप्त रहते हैं, मेरी चारों ओर से रक्षा करें॥४५॥ हे वत्स! इस प्रकार मैंने त्रैलोक्यविजय नामक कवच, जो समस्त मन्त्रसमुदाय का शरीर और परम अद्भुत है, तुम्हें बता दिया॥४६॥ मैंने भगवान् श्रीकृष्ण के मुख से यह सुना है, इसलिए किसी को न बताना। विधिपूर्वक गुरु की अर्चना करके जो इस कवच को कण्ठ में या दाहिनी बाहु में धारण करता है, वह भी विष्णु ही है, इसमें संशय नहीं। वह भक्त जहाँ निवास करता है वहाँ लक्ष्मी सरस्वती सदा निवास करती हैं॥४७-४८॥ यदि कवच सिद्ध हो जाता है, तो वह जीवन्मुक्त होता है और करोड़ों वर्षों की पूजा का फल उसे निश्चित प्राप्त होता है॥४९॥ सहस्र राजसूय, सौ वाजपेय, दश सहस्र अश्वमेध, दस सहस्र नरमेध, सभी महादान और निखिल पृथ्वी की प्रदक्षिणा के फल इस त्रैलोक्यविजय नामक कवच की सोलहवीं कला के भी समान नहीं हैं॥५०-५१॥ व्रत, उपवास, नियम, स्वाध्याय, अध्ययन, तप और समस्त तीर्थों के स्नान इसकी कला के भी समान नहीं है॥५२॥ जो सिद्धकवच हो जाता है, तो उसे सिद्धत्व, अमरत्व और श्रीहरि का दासत्व आदि सब कुछ निश्चित प्राप्त होता है॥५३॥ जो दश लाख इसका जप करता है, वह सिद्धकवच एवं सर्वज्ञ होता है॥५४॥ इस कवच को बिना जाने जो भगवान् की आराधना करता

इदं कवचमज्ञात्वा भजेत्कृष्णं सुमन्दधीः। कोटिकल्पं प्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥५५॥
गृहीत्वा कवचं वत्स महीं निःक्षत्त्रियां कुरु। त्रिःसप्तकृत्वो निःशङ्कः सदानन्दो हि लीलया ॥५६॥
राज्यं देयं शिरो देयं प्राणा देयाश्च पुत्रक। एवं भूतं व कवचं न देयं प्राणसंकटे ॥५७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० परशुरामाय श्रीकृष्णकवचप्रदानं
नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः ।

भृगुरुवाच

संप्राप्तं कवचं नाथ शश्वत्सर्वाङ्गरक्षणम्। सुखदं मोक्षदं सारं शत्रुसंहारकारणम् ॥१॥
अधुना भगवन्मन्त्रं स्तोत्रं पूजाविधिं प्रभो। देहि मह्यमनाथाय शरणागतपालक ॥२॥

महादेव उवाच

ॐ श्रीं नमः श्रीकृष्णाय परिपूर्णतमाय च। स्वाहेत्यनेन मन्त्रेण भज गोपीश्वरं प्रभुम् ॥३॥
मन्त्रेषु मन्त्रराजोऽयं महान्सप्तदशाक्षरः । सिद्धोऽयं पञ्चलक्षेण जपेन् मुनिपुंगव ॥४॥

है, वह अतिमन्दबुद्धि (मूर्ख) है और करोड़ों कल्प तक जपा जाने पर भी उसका मंत्र सिद्धिप्रद नहीं होता है ॥५५॥ हे वत्स ! इस कवच को ग्रहण कर पृथ्वी को निःशंक लीला की भाँति इक्कीस बार क्षत्रियरहित करो और सदा आनन्द से रहो ॥५६॥ हे पुत्रक ! राज्य दे देना, शिर दे देना तथा प्राण भी दे देना पर, प्राण संकट उपस्थित होने पर भी यह कवच कभी न देना ॥५७॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में परशुराम को
श्रीकृष्ण का कवच प्रदान नामक इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३१॥

अध्याय ३२

भृगु बोले—हे नाथ ! निरन्तर सर्वांग की रक्षा करने वाला यह कवच मुझे प्राप्त हो गया, जो सुखप्रद, मोक्षदायक, साररूप एवं शत्रु के संहार करने का कारण है ॥१॥ हे भगवन् ! हे प्रभो ! अब मुझे मंत्र, स्तोत्र और पूजा विधान बताने की कृपा कीजिये, क्योंकि मैं अनाथ हूँ और आप शरणागत के पालक हैं ॥२॥.

महादेव बोले—'ओं श्रीं नमः श्रीकृष्णाय परिपूर्णतमाय स्वाहा' इस मन्त्र से गोपीनाथ प्रभु का पूजन करो ॥३॥ यह सत्रह अक्षरों का महान् मंत्र मंत्रो का राजा है। हे मुनिश्रेष्ठ ! पांच लाख जप करने से यह मंत्र सिद्ध होता है ॥४॥

तद्दशांशं च हवनं तद्दशांशाऽभिषेचनम्। तर्पणं तद्दशांशं च तद्दशांशं च मार्जनम्॥५॥
सुवर्णानां च शतकं पुरश्चरणदक्षिणा। मन्त्रसिद्धस्य पुंसश्च विश्वं करतले मुने॥६॥
शक्तः पातुं समुद्रांश्च विश्वं संहर्तुमीश्वरः। पाञ्चभौतिकदेहेन वैकुण्ठं गन्तुमीश्वरः॥७॥
तस्य संस्पर्शमात्रेण पदपङ्कजरेणुना। पूतानि सर्वतीर्थानि सद्यः पूता वसुंधरा॥८॥
ध्यानं च सामवेदोक्तं शृणु मन्मुखतो मुने। सर्वेश्वरस्य कृष्णस्य भक्तिमुक्तिप्रदायि च॥९॥
नवीनजलदश्यामं नीलेन्दीवरलोचनम्। शरत्पार्वणचन्द्रास्यमीषद्धास्यं मनोहरम्॥१०॥
कोटिकन्दर्पलावण्यं लीलाधाममनोहरम्। रत्नसिंहासनस्थं तं रत्नभूषणभूषितम्॥११॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं पीताम्बरधरं वरम्। वीक्ष्यमाणं च गोपीभिः सस्मिताभिश्च संततम्॥१२॥
प्रफुल्लमालतीमालावनमालाविभूषितम्। दधतं कुन्दपुष्पाढ्यां चूडां चन्द्रकचर्चिताम्॥१३॥
प्रभां क्षिपन्तीं नभसश्चन्द्रतारान्वितस्य च। रत्नभूषितसर्वाङ्गं राधावक्षःस्थलस्थितम्॥१४॥
सिद्धेन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च देवेन्द्रैः परिसेवितम्। ब्रह्मविष्णुमहेशैश्च श्रुतिभिश्च स्तुतं भजे॥१५॥
ध्यानेनानेन तं ध्यात्वा चोपचारांस्तु षोडश। दत्त्वा भक्त्या च संपूज्य सर्वज्ञत्वं लभेत्पुमान्॥१६॥
अर्घ्यं पाद्यं चाऽऽसनं च वसनं भूषणं तथा। गामर्घ्यं मधुपर्कं च यज्ञसूत्रमनुत्तमम्॥१७॥

उसका दशांश हवन, उसका दशांश अभिषेचन, उसका दशांश मार्जन और सौ सुवर्ण (की मोहर) पुरश्चरण की दक्षिणा देनी चाहिए। हे मुने! मंत्रसिद्ध हो जाने पर उस पुरुष के हाथ में समस्त विश्व हो जाता है और वह समस्त विश्व का संहार भी करने में समर्थ होता है। इसी पाञ्चभौतिक शरीर से वह वैकुण्ठ जाने में समर्थ होता है और उसके चरणकमल की धूलि का स्पर्श होते ही समस्त तीर्थ एवं निखिल पृथिवी तुरन्त पवित्र हो जाती है॥५-८॥ हे मुने! भगवान् श्रीकृष्ण का सामवेदोक्त ध्यान मेरे मुख से सुनो, जो भक्ति और मुक्ति दोनों प्रदान करता है॥९॥ नवीन मेघ के समान श्याम, नीलकमल की भाँति युगल नयन, शरत्पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मुख, मनोहर मन्दहास तथा करोड़ों काम की भाँति लावण्य से युक्त, मनोहर लीला धाम, रत्नसिंहासन पर स्थित, रत्नों के भूषणों से भूषित, चन्दन-चर्चित सर्वांग, पीताम्बर धारण किये और मन्द मुसुकान करती हुई गोपियाँ से निरन्तर देखे जाते हुए, अत्यन्त विकसित मालती पुष्पों की माला एवं वनमाला धारण किये, चन्द्रक (चन्द्रिका) समेत कुन्द पुष्प भूषित चूडा धारण किये, चन्द्रमा और तारागण से युक्त आकाश की प्रभा को तिरस्कृत करने वाली कान्ति से युक्त, रत्नों से सर्वांग भूषित राधा के वक्षःस्थल पर स्थित, सिद्धेन्द्रगण, मुनिवर्यवृन्द और देवाधीश्वरों से सुसेवित एवं ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर द्वारा तथा वेदों द्वारा स्तुत भगवान् की मैं सेवा कर रहा हूँ॥१०-१५॥ इस भाँति ध्यानपूर्वक सोलहो उपचार से भक्तिपूर्वक पूजन करने पर मनुष्य सर्वज्ञ हो जाता है॥१६॥ अर्घ्य, पाद्य, आसन, वसन, भूषण, गौ, अर्घ्य, मधुपर्क, परमोत्तम यज्ञसूत्र, धूप, दीप, नैवेद्य, और पुनः

१क. भोजनम्।

धूपदीपौ च नैवेद्यं पुनराचमनीयकम्। नानाप्रकारपुष्पाणि ताम्बूलं च सुवासितम् ॥१८॥
मनोहरं दिव्यतल्पं कस्तूर्यगुरुचन्दनैः । भक्त्या भगवते देयं माल्यं पुष्पाञ्जलित्रयम् ॥१९॥
ततः षडङ्गं संपूज्य पश्चात्संपूजयेद्‌गणम्। श्रीदामानं सुदामानं वसुदामानमेव च ॥२०॥
हरिभानुं चन्द्रभानुं सूर्यभानुं सुभानुकम्। पार्षदप्रवरान्सप्त पूजयेद्भक्तिभावतः ॥२१॥
गोपीश्वरीं राधिकां च मूलप्रकृतिमीश्वरीम्। कृष्णशक्तिं कृष्णपूज्यां पूजयेद्भक्तिपूर्वकम् ॥२२॥
गोपगोपीगणं शान्तं मां ब्रह्माणं च पार्वतीम्। लक्ष्मीं सरस्वतीं पृथ्वीं सर्वदेवं सपार्षदम् ॥२३॥
देवषट्कं समभ्यर्च्य पुनः पञ्चोपचारतः। पश्चादेवंक्रमेणैव श्रीकृष्णं पूजयेत्सुधीः ॥२४॥
गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम्। देवषट्कं समभ्यर्च्य चेष्टदेवं च पूजयेत् ॥२५॥
गणेशं विघ्ननाशाय व्याधिनाशाय भास्करम्। आत्मनः शुद्धये वह्निं श्रीविष्णुं मुक्तिहेतवे ॥२६॥
ज्ञानाय शंकरं दुर्गां परमैश्वर्यहेतवे । संपूजने फलमिदं विपरीतमपूजने ॥२७॥
ततः कृत्वा परीहारमिष्टदेवं च भक्तितः। स्तोत्रं च सामवेदोक्तं पठेद्भक्त्या च तच्छृणु ॥२८॥

महादेव उवाच

परं ब्रह्म परं धाम परं ज्योतिः सनातनम्। निर्लिप्तं परमात्मानं नमाम्यखिलकारणम् ॥२९॥
स्थूलात्स्थूलतमं देवं सूक्ष्मात्सूक्ष्मतमं परम्। सर्वदृश्यमदृश्यं च स्वेच्छाचारं नमाम्यहम् ॥३०॥

आचमन समेत विविध भाँति के पुष्प, सुवासित ताम्बूल, कस्तूरी, अगुरु, चन्दन समेत मनोहर दिव्य शय्या, माला और तीन पुष्पाञ्जलि भक्तिपूर्वक भगवान् को अर्पित करना चाहिए ॥१७-१९॥ अनन्तर षडंग पूजन और गणपूजन करके श्रीदामा, सुदामा, वसुदामा, हरिभानु, चन्द्रभानु, सूर्यभानु, एवं सुभानु इन सातों पार्षद-प्रवरों का भक्तिभाव से पूजन करे ॥२०-२१॥ उपरांत गोपियों की अधीश्वरी राधिका की भक्तिपूर्वक पूजा करे,जो मूल प्रकृति, ईश्वरी, भगवान् कृष्ण की शक्ति और उनकी पूज्या हैं ॥२२॥ गोप-गोपीगण, शान्त मुझ ब्रह्मा, पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती, पृथ्वी, पार्षद समेत सर्वदेव एवं पांचों उपचारों से छहों देवों की अर्चना करने के अनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण की इसी क्रम से अर्चना करनी चाहिए ॥२३-२४॥ गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव, पार्वती इन छह देवों की पूजा करके इष्टदेव की अर्चना करनी चाहिए ॥२५॥ फिर विघ्नविनाशार्थ गणेश की, रोगनाश के लिए भास्कर की, आत्म-शुद्धि के लिए अग्नि की, मुक्त्यर्थ श्री विष्णु की, ज्ञानार्थ शंकर की और परम ऐश्वर्य्य के लिए पार्वती की पूजा करनी चाहिए। इनके पूजन से उपर्युक्त फल प्राप्त होता है और न पूजने से विपरीत फल ॥२६-२७॥ अनन्तर परीहार पूर्वक भक्ति से इष्टदेव की पूजा करके सामवेदोक्त स्तोत्र का भक्तिपूर्वक पाठ करे, उसे मैं बता रहा हूँ, सुनो ॥२८॥

महादेव बोले—परब्रह्म, परंधाम, परम ज्योति, सनातन एवं निर्लिप्त परमात्मा को मैं नमस्कार कर रहा हूँ ॥२९॥ स्थूल से स्थूलतम, सूक्ष्म से अतिसूक्ष्म, सबको दिखायी देने वाले और अदृश्य स्वेच्छाचारी उस परमदेव को मैं नमस्कार कर रहा हूँ ॥३०॥

साकारं च निराकारं सगुणं निर्गुणं [1]प्रभुम् सर्वाधारं च सर्वं च स्वेच्छारूपं नमाम्यहम् ॥३१॥
अतीव कमनीयं च रूपं निरुपमं विभुम्। करालरूपमत्यन्तं बिभ्रतं प्रणमाम्यहम् ॥३२॥
कर्मणः कर्मरूपं तं साक्षिणं सर्वकर्मणाम्। फलं च फलदातारं सर्वरूपं नमाम्यहम् ॥३३॥
स्रष्टा पाता च संहर्ता कलया मूर्तिभेदतः। नानामूर्तिः कलांशेन यः पुमांस्तं नमाम्यहम् ॥३४॥
स्वयं प्रकृतिरूपश्च मायया च स्वयं पुमान्। तयोः परः स्वयं शश्वत्तं नमामि परात्परम् ॥३५॥
स्त्रीपुंनपुंसकं रूपं यो बिभर्ति स्वमायया। स्वयं माया स्वयं मायी यो देवस्तं नमाम्यहम् ॥३६॥
तारकं सर्वदुःखानां सर्वकारणकारणम् । धारकं[2] सर्वविश्वानां सर्वबीजं नमाम्यहम् ॥३७॥
तेजस्विनां रविर्यो हि सर्वजातिषु वाडवः। नक्षत्राणां च यश्चन्द्रस्तं नमामि जगत्प्रभुम् ॥३८॥
रुद्राणां वैष्णवानां च ज्ञानिनां यो हि शंकरः। नागानां यो हि शेषश्च तं नमामि जगत्पतिम् ॥३९॥
प्रजापतीनां यो ब्रह्मा सिद्धानां कपिलः स्वयम्। सनत्कुमारो मुनिषु तं नमामि जगद्गुरुम् ॥४०॥
देवानां यो हि विष्णुश्च देवीनां प्रकृतिः स्वयम्। स्वायंभुवो मनूनां यो मानवेषु च वैष्णवः॥
नारीणां शतरूपा च बहुरूपं नमाम्यहम् ॥४१॥
ऋतूनां यो वसन्तश्च मासानां मार्गशीर्षकः। एकादशी तिथीनां च नमाम्यखिलरूपिणम् ॥४२॥

साकार, निराकार, सगुण, निर्गुण, सबका आधार और स्वेच्छा रूप उस सर्वमय प्रभु को मैं नमस्कार कर रहा हूँ ॥३१॥ अत्यन्त सुन्दर, अनुपम रूप और अत्यन्त करालरूप धारण करने वाले उस विभु (व्यापक) को मैं नमस्कार कर रहा हूँ ॥३२॥ कर्मों के कर्मरूप और समस्त कर्मों के साक्षी, फलरूप एवं फल के दाता उस सर्वरूप को मैं नमस्कार कर रहा हूँ ॥३३॥ कला द्वारा मूर्तिभेद से (जगत् का) सर्जन, पालन, संहार करने वाले और अपनी कलाओं के अंश से अनेक भाँति की मूर्ति धारण करने वाले उस पुरुष को मैं नमस्कार कर रहा हूँ ॥३४॥ जो स्वयं प्रकृति रूप और माया द्वारा स्वयं पुरुष रूप है तथा उन दोनों से निरन्तर परे है, उस परात्पर (देव) को मैं नमस्कार कर रहा हूँ ॥३५॥ जो अपनी माया द्वारा स्त्री, पुरुष एवं नपुंसक रूप धारण करता है और स्वयं माया रूप तथा स्वयं मायी (माया करने वाला) है, उस देव को मैं नमस्कार कर रहा हूँ ॥३६॥ समस्त दुःखों से पार करने वाले, सभी कारणों के कारण, समस्त विश्वों को धारण करने वाले और समस्त के बीज रूप को नमस्कार कर रहा हूँ ॥३७॥ जो तेजस्वियों का सूर्य, समस्त जातियों में ब्राह्मण है और नक्षत्रों में चन्द्रमा रूप है, उस जगत्प्रभु को नमस्कार कर रहा हूँ ॥३८॥ जो रुद्रों, वैष्णवों एवं ज्ञानियों में शंकर और नागों में शेषरूप हैं, उस जगत्पत्ति को नमस्कार कर रहा हूँ ॥३९॥ जो प्रजापतियों में ब्रह्मा, सिद्धों में स्वयं कपिल और मुनियों में सनत्कुमार रूप हैं, उस जगत् के गुरु को नमस्कार कर रहा हूँ ॥४०॥ जो देवों में विष्णु, देवियों में स्वयं प्रकृति रूप, मनुओं में स्वायम्भुवरूप और मनुष्यों में वैष्णव रूप है, तथा स्त्रियों में शतरूपा रूप हैं उस बहुरूपी को मैं नमस्कार कर रहा हूँ ॥४१॥ जो ऋतुओं में वसन्त, मासों में मार्गशीर्ष (अगहन) और तिथियों में एकादशी रूप है, उस अखिल रूप को नमस्कार कर रहा हूँ ॥४२॥

१क. परम्। २क, ०रणं सर्वबीजानां सर्वरूपं न०।

सागरः सरितां यश्च पर्वतानां हिमालयः। वसुंधरा सहिष्णूनां तं सर्वं प्रणमाम्यहम् ॥४३॥
पत्राणां तुलसीपत्रं दारुरूपेषु चन्दनम् । वृक्षाणां कल्पवृक्षो यस्तं नमामि जगत्पतिम् ॥४४॥
पुष्पाणां पारिजातश्च सस्यानां धान्यमेव च। अमृतं भक्ष्यवस्तूनां नानारूपं नमाम्यहम् ॥४५॥
ऐरावतो गजेन्द्राणां वैनतेयश्च पक्षिणाम्। कामधेनुश्च धेनूनां सर्वरूपं नमाम्यहम् ॥४६॥
तैजसानां सुवर्णं च धान्यानां यव एव च। यः केसरी पशूनां च वररूपं नमाम्यहम् ॥४७॥
यक्षाणां च कुबेरो यो ग्रहाणां च बृहस्पतिः। दिक्पालानां महेन्द्रश्च तं नमामि परं वरम् ॥४८॥
वेदसंघश्च शास्त्राणां पण्डितानां सरस्वती। अक्षराणामकारो यस्तं प्रधानं नमाम्यहम् ॥४९॥
मन्त्राणां विष्णुमन्त्रश्च तीर्थानां जाह्नवी स्वयम्। इन्द्रियाणां मनो यो हि सर्वश्रेष्ठं नमाम्यहम् ॥५०॥
सुदर्शनं च शस्त्राणां व्याधीनां वैष्णवो ज्वरः। तेजसां ब्रह्मतेजश्च वरेण्यं तं नमाम्यहम् ॥५१॥
बलं यो वै बलवतां मनो वै शीघ्रगामिनाम्। कालः कलयतां यो हि तं नमामि विचक्षणम् ॥५२॥
ज्ञानदाता गुरूणां च मातृरूपश्च बन्धुषु। मित्रेषु जन्मदाता यस्तं सारं प्रणमाम्यहम् ॥५३॥
शिल्पिनां विश्वकर्मा यः कामदेवश्च रूपिणाम् । पतिव्रता च पत्नीनां नमस्यं तं नमाम्यहम् ॥५४॥
प्रियेषु पुत्ररूपो यो नृपरूपो नरेषु च। शालग्रामश्च यन्त्राणां तं विशिष्टं नमाम्यहम् ॥५५॥
धर्मः कल्याणबीजानां वेदानां सामवेदकः। धर्माणां सत्यरूपो यो विशिष्टं तं नमाम्यहम् ॥५६॥
जले शैत्यस्वरूपो यो गन्धरूपश्च भूमिषु। शब्दरूपश्च गगने तं प्रणम्यं नमाम्यहम् ॥५७॥

जो सरिताओं में सागर, पर्वतों में हिमालयरूप, सहिष्णुओं में वसुन्धरा रूप है, उस सर्वमय को प्रणाम कर रहा हूँ ॥४३॥ जो पत्रों में तुलसीपत्र, दारुरूप (लकड़ियों) में चन्दन और वृक्षों में कल्पवृक्ष है, उस जगत्पति को नमस्कार कर रहा हूँ ॥४४॥ जो पुष्पों में पारिजात, सस्यों में धान्य और भक्ष्य वस्तुओं में अमृतरूप है, उस नाना रूप वाले को नमस्कार करता हूं ॥४५॥ जो गजेन्द्रों में ऐरावत, पक्षियों में वैनतेय (गरुड़), धेनुओं में कामधेनु है उस सब रूप को नमस्कार करता हूं ॥४६॥ जो तैजस पदार्थों में सुवर्ण, धान्यों में यव, पशुओं में केसरी (सिंह) रूप है, उस श्रेष्ठ रूप को नमस्कार करता हूँ ॥४७॥ जो यक्षों में कुबेर, ग्रहों में बृहस्पति, दिक्पालों में महेन्द्र रूप है, उस श्रेष्ठ रूप को नमस्कार करता हूँ ॥४८॥ जो शास्त्रों में वेदगण, पण्डितों में सरस्वती, अक्षरों में आकार रूप है, उस प्रधान देव को नमस्कार करता हूँ ॥४९॥ जो मन्त्रों में विष्णु मन्त्र, तीर्थों में स्वयं गंगा और इन्द्रियों में मनरूप है, उस सर्वश्रेष्ठ को नमस्कार करता हूं ॥५०॥ जो शस्त्रों में सुदर्शन, व्याधियों में वैष्णव ज्वर, तेजों में ब्रह्मतेज रूप है, उस वरेण्य को नमस्कार करता हूं ॥५१॥ जो बलवानों में बल, शीघ्रगामियों में मन, गिनने में कालरूप है, उस विलक्षण को नमस्कार करता हूँ ॥५२॥ जो गुरुओं में ज्ञानदाता, बन्धुओं में माता, मित्रों में जन्मदाता है, उस साररूप को नमस्कार करता हूँ ॥५३॥ जो शिल्पियों में विश्वकर्मा, रूपवानों में कामदेव, पत्नियों में पतिव्रता रूप है, उस नमस्कार योग्य को नमस्कार है ॥५४॥ जो प्रियों में पुत्र रूप, मनुष्यों में राजा रूप, यन्त्रों में शालग्राम रूप है, उस विशिष्ट को नमस्कार करता हूँ ॥५५॥ जो कल्याणबीजों का धर्मरूप, वेदों में सामवेद, और धर्मों में सत्यरूप है, उस विशिष्ट को नमस्कार करता हूँ ॥५६॥ जो जल में शीतलता रूप, पृथिवी में गन्धरूप, आकाश में शब्दरूप है, उस प्रणामयोग्य को नमस्कार करता हूँ ॥५७॥

क्रतूनां राजसूयो यो गायत्री छन्दसां च यः । गन्धर्वाणां चित्ररथस्तं गरिष्ठं नमाम्यहम् ॥५८॥
क्षीरस्वरूपो गव्यानां पवित्राणां च पावकः । पुण्यदानां च यः [1]स्तोत्रं तं नमामि शुभप्रदम् ॥५९॥
तृणानां कुशरूपो यो व्याधिरूपश्च वैरिणाम् । गुणानां शान्तरूपो यश्चित्ररूपं नमाम्यहम् ॥६०॥
तेजोरूपो ज्ञानरूपः सर्वरूपश्च यो महान् । सर्वानिर्वचनीयं च तं नमामि स्वयं विभुम् ॥६१॥
सर्वाधारेषु यो वायुर्यथाऽऽत्मा नित्यरूपिणाम् । आकाशो व्यापकानां यो व्यापकं तं नमाम्यहम् ॥६२॥
वेदानिवर्चनीयं यं न स्तोतुं पण्डितः क्षमः । यदनिर्वचनीयं च को वा तत्स्तोतुमीश्वरः ॥६३॥
वेदा न शक्ता यं स्तोतुं जडीभूता सरस्वती । तं च वाङ्मनसोः पारं को विद्वान्स्तोतुमीश्वरः ॥६४॥
शुद्धतेजः स्वरूपं च भक्तानुग्रहविग्रहम् । अतीव कमनीयं च श्यामरूपं नमाम्यहम् ॥६५॥
द्विभुजं [2]मुरलीवक्त्रं किशोरं सस्मितं मुदा । शश्वद्गोपाङ्गनाभिश्च वक्ष्यमाणं नमाम्यहम् ॥६६॥
राधया दत्तताम्बूलं भुक्तवन्तं मनोहरम् । रत्नसिंहानस्थं च तमीशं प्रणमाम्यहम् ॥६७॥
रत्नभूषणभूषाढ्यं सेवितं श्वेतचामरैः । पार्षदप्रवरैर्गोपकुमारैस्तं नमाम्यहम् ॥६८॥
वृन्दावनान्तरे रम्ये रासोल्लाससमुत्सुकम् । रासमण्डलमध्यस्थं नमामि रसिकेश्वरम् ॥६९॥
शतशृङ्गे महाशैले गोलोके रत्नपर्वते । विरजापुलिने रम्ये प्रणमामि विहारिणम् ॥७०॥

यज्ञों में राजसूय, छन्दों में गायत्री तथा गन्धर्वों में चित्ररथ है, उस गरिष्ठ को नमस्कार करता हूँ ॥५८॥ जो गव्य पदार्थों में दुग्धरूप, पवित्रों में अग्नि और पुण्यदाताओं में स्तोत्र रूप है उस शुभप्रद को नमस्कार करता हूँ ॥५९॥ जो तृणों में कुशरूप, वैरियों में व्याधिरूप और गुणों में शान्त रूप है उस चित्ररूप को नमस्कार करता हूँ ॥६०॥ जो तेजोरूप, ज्ञानरूप, सर्वरूप, महान् और सबसे अनिर्वचनीय रूप है, उस स्वयं विभु को नमस्कार करता हूँ ॥६१॥ जो समस्त आधारों में वायु, नित्य रूपियों में आत्मारूप और व्यापकों में आकाश रूप है, उस व्यापक को नमस्कार करता हूँ ॥६२॥ जिस, वेद के अनिर्वचनीय की स्तुति करने में पण्डित भी समर्थ नहीं है और जो अनिर्वचनीय है, उसकी स्तुति करने में कौन समर्थ हो सकता है ॥६३॥ वेद जिसकी स्तुति नहीं कर सकते हैं और सरस्वती भी (जिसकी स्तुति करने में) जड़ीभूत रहती हैं, उस वाणी-मन से परे की स्तुति करने में कौन विद्वान् समर्थ हो सकता है ॥६४॥ शुद्ध तेजःस्वरूप, भक्तों के अनुग्रहार्थ शरीर धारण करने वाले, अत्यन्त सुन्दर एवं श्याम रूप को नमस्कार करता हूँ ॥६५॥ दो भुजाएँ, मुख में मुरली, किशोररूप, मन्दहास, और निरन्तर गोपियों का वृन्द जिसे नयनकोर से देखा करता है, उसे नमस्कार करता हूँ ॥६६॥ राधा के दिये हुए मनोहर ताम्बूल को खाने वाले और रत्नसिंहासन पर सुशोभित उस ईश को प्रणाम करता हूँ ॥६७॥ रत्नों के भूषणों से भूषित, श्रेष्ठ पार्षदों और गोपकुमारों द्वारा श्वेतचामरों से सुसेवित उस देव को नमस्कार करता हूँ ॥६८॥ वृन्दावन के मध्य रम्य स्थान में (सदैव) रासोल्लास के हेतु समुत्सुक रहने वाले रासमण्डल के मध्यवर्ती रसिकेश्वर को नमस्कार करता हूँ ॥६९॥ गोलोक के सौ शिखर वाले महाशैल रत्नपर्वत पर और विरजा (नदी) के रम्य तट पर विहार करने वाले को प्रणाम करता हूँ ॥७०॥

१क. स्तोयस्तं । २ क. °हस्तं° ।

परिपूर्णतमं शान्तं राधाकान्तं मनोहरम्। सत्यं ब्रह्मस्वरूपं च नित्यं कृष्णं नमाम्यहम्॥७१॥
श्रीकृष्णस्य स्तोत्रमिदं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः। धर्मार्थकाममोक्षाणां स दाता भारते भवेत्॥७२॥
हरिदास्यं हरौ भक्तिं लभेत्स्तोत्रप्रसादतः। इह लोके जगत्पूज्यो विष्णुतुल्यो भवेद्ध्रुवम्॥७३॥
सर्वसिद्धेश्वरः शान्तोऽप्यन्ते याति हरेः पदम्। तेजसा यशसा भाति यथा सूर्यो महीतले॥७४॥
जीवन्मुक्तः कृष्णभक्तः स भवेन्नात्र संशयः। अरोगी गुणवान्विद्वान्पुत्रवान्धनवान्सदा॥७५॥
षडभिज्ञो दशबलो मनोयायी भवेद्ध्रुवम्। सर्वज्ञः सर्वदश्चैव स दाता सर्वसंपदाम्॥७६॥
कल्पवृक्षसमः शश्वद्भवेत्कृष्णप्रसादतः। इत्येवं कथितं स्तोत्रं वत्स त्वं गच्छ पुष्करम्॥७७॥
तत्र कृत्वा मन्त्रसिद्धिं पश्चात्प्राप्स्यसि वाञ्छितम्। त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां कुरु पृथ्वीं यथासुखम्।
ममाऽऽशिषा मुनिश्रेष्ठ श्रीकृष्णस्य प्रसादतः ॥७८॥

इति श्री ब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० स्तवप्रदानं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः॥३२॥

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

शिवं प्रणम्य स भृगुर्दुर्गां कालीं मुदाऽन्वितः। गत्वा पुष्करतीर्थं च मन्त्रसिद्धिं चकार ह॥

परिपूर्णतम, शान्त, राधाकान्त, मनोहर, सत्य, ब्रह्मस्वरूप कृष्ण को नित्य नमस्कार करता हूँ॥७१॥ भगवान् श्रीकृष्ण के इस स्तोत्र को तीनों समय जो पाठ करता है, वह भारत में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का दाता होता है॥७२॥ इस स्तोत्र के प्रसाद से उसे भगवान् की भक्ति समेत हरिदास्य प्राप्त होता है और इस लोक में वह विष्णु के समान निश्चित रूप से जगत्पूज्य होता है॥७३॥ वह समस्त सिद्धों का अधीश्वर, शान्त और अन्त में भगवान् के लोक को जाता है। तेज और यश से वह सूर्य के समान पृथ्वी पर सुशोभित होता है॥७४॥ वह कृष्णभक्त जीवन्मुक्त होता है, इसमें संशय नहीं। नीरोग, गुणवान्, विद्वान्, पुत्रवान्, सदा धनवान्, षडभिज्ञ, दशबल और मन की भाँति शीघ्रगामी होता है। सर्वज्ञाता, सर्वदानी, समस्त सम्पत्ति का दाता और भगवान् श्रीकृष्ण के प्रसाद से वह निरन्तर कल्पवृक्ष के समान होता है। हे वत्स! इस प्रकार मैंने तुम्हें स्तोत्र सुना दिया, अब तुम पुष्कर चले जाओ॥७५-७७॥ वहाँ मन्त्रसिद्धि करने के पश्चात् अपना अभीष्ट प्राप्त करोगे। हे मुनिश्रेष्ठ! मेरे आशीर्वाद और भगवान् श्रीकृष्ण के प्रसाद से सुख पूर्वक तुम पृथ्वी को इक्कीस बार निःक्षत्रिय करो॥७८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में स्तव-प्रदान नामक बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त॥३२॥

अध्याय ३३

नारायण बोले—भृगु ने सप्रेम शिव, दुर्गा और काली को प्रणाम करके पुष्कर तीर्थ में जाकर मन्त्र सिद्ध करना आरम्भ किया॥१॥ वे भक्तिपूर्वक एक मास तक निराहार रहे—केवल भगवान् श्रीकृष्ण

स बभूव निराहारो मासं भक्तिसमन्वितः। ध्यायन्कृष्णपदाम्भोजं वायुरोधं चकार सः ॥२॥
ददर्श चक्षुरुन्मील्य गगनं तेजसाऽऽवृतम्। दिशो दश द्योतयन्तं समाच्छन्नदिवाकरम् ॥३॥
तेजोमण्डलमध्यस्थं रत्नयानं ददर्श ह। ददर्श तत्र पुरुषमत्यन्तं सुन्दरं वरम् ॥४॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम्। प्रणम्य दण्डवन्मूर्ध्ना वरं वव्रे तमीश्वरम् ॥५॥
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यामि महीमिति। पादारविन्दे सुदृढां तां भक्तिमनपायिनीम् ॥६॥
दास्यं सुदुर्लभं शश्वत्त्वत्पादाब्जे च देहि मे। कृष्णस्तस्मै वरं दत्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥७॥
भृगुः प्रणम्य भवनं तज्जगाम परात्परम्। पस्पन्द दक्षिणाङ्गं च परं मङ्गलसूचकम् ॥८॥
वाञ्छाप्रतीतिजननं सुस्वप्नं च ददर्श ह। मनः प्रसन्नं स्फीतं च तद्बभूव दिवानिशम् ॥
संभाष्य स्वजनं सर्वं गृहे तस्थौ मुदाऽन्वितः ॥९॥
स्वशिष्यान्पितृशिष्यांश्च भ्रातृवर्गांश्च बान्धवान्। आनीयाऽऽनीय विविधान्मन्त्रांश्च स चकार ह ॥१०॥
पौर्वापर्यं स्ववृत्तान्तं तानेवोक्त्वा शुभक्षणे। तैरेव सार्धं बलवान्बभूव गमनोन्मुखः ॥११॥
ददर्श मङ्गलं रामः शुश्राव जयसूचकम्। बुबुधे मनसा सर्वं स्वजयं वैरिसंक्षयम् ॥१२॥
यात्राकाले च पुरतः शुश्राव सहसा मुनिः। हरिशब्दं शङ्खरवं घण्टादुन्दुभिवादनम् ॥१३॥

के चरण-कमल का ध्यान करते हुए उन्होंने अपनी श्वास-गति रोक ली ॥२॥ अनन्तर आँखें खुलने पर उन्हें आकाश तेज से आच्छन्न दिखायी पड़ा। वहाँ दशो दिशाओं को प्रदीप्त करते हुए तथा सूर्य को आच्छादित किये तेजोमण्डल के मध्य में एक रत्न का यान (विमान) दिखायी पड़ा और उसमें अत्यन्त सुन्दर एवं श्रेष्ठ एक पुरुष दिखायी पड़ा, जो मन्दहास समेत प्रसन्न मुख एवं भक्तों पर अनुग्रह करनेवाला था। उस ईश्वर को शिर से दण्डवत्प्रणाम करके उससे वर की याचना की कि—'मैं इक्कीस बार इस पृथिवी को निःक्षत्रिय करूँ, आपके चरण कमल में अति दृढ़ एवं अविनाशिनी भक्ति प्राप्त हो तथा अपने चरणकमल का निरन्तर अतिदुर्लभ दास्य भाव मुझे प्रदान करने की कृपा करें।' भगवान् कृष्ण ने उन्हें वर प्रदान किया और उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये ॥३-७॥ भृगु भी उस परात्पर भगवान् को प्रणाम कर अपने घर चले आये। परम मंगल सूचक उनका दक्षिणांग फड़कने लगा। मनोरथ सिद्ध होने का सुस्वप्न भी देखा। और तभी से दिन रात मन से प्रसन्न एवं स्फूर्तियुक्त रहने लगा। अपने परिवार के लोगों से समस्त वृत्तान्त बताकर घर में आनन्द चित्त से रहने लगे ॥८-९॥ अनन्तर अपने शिष्यों, पिता के शिष्यों, भ्राताओं और बन्धुवर्गों को बुला-बुलाकर विविध भाँति के मंत्रों की शिक्षा देने लगे ॥१०॥ शुभ क्षण में उन सबसे अपना समस्त वृत्तान्त कहते हुए उन सबों के साथ (युद्धार्थ) चलने की तैयारी की ॥११॥ उस समय राम ने विजयसूचक शब्द सुना और मंगल दर्शन किया। जिससे उन्होंने मन में निश्चय किया कि—मेरा विजय होगा और शत्रुओं का नाश होगा ॥१२॥ यात्रासमय मुनि ने अपने सामने सहसा घोड़े का शब्द, शंख-शब्द तथा घण्टा और नगाड़े की ध्वनि सुनी एवं आकाशवाणी का संगीत भी सुना कि—'तुम्हारा विजय होगा।'

आकाशवाणीसंगीतं जयस्ते भवितेति च। नवेङ्गितं च कल्याणं मेघशब्दं जयावहम् ॥१४॥
चकार यात्रां भगवाञ्छ्रुत्वैवं विविधं शुभम्। ददर्श पुरतो विप्रवह्निदैवज्ञभिक्षुकान् ॥१५॥
ज्वलत्प्रदीपं दधतीं पतिपुत्रवतीं सतीम्। पुरो ददर्श स्मेरास्यां नानाभूषणभूषिताम् ॥१६॥
शिवं शिवां पूर्णकुम्भं चाषं च नकुलं तथा। गच्छन्ददर्श रामश्च यात्रामङ्गलसूचकम् ॥१७॥
कृष्णसारं गजं सिंहं तुरङ्गं गण्डकं द्विपम्। चमरीं राजहंसं च चक्रवाकं शुकं पिकम् ॥१८॥
मयूरं खञ्जनं चैव शङ्खचिल्लं चकोरकम्। पारावतं बलाकं च कारण्डं चातकं चटम् ॥१९॥
सौदामनीं शक्रचापं सूर्यं सूर्यप्रभां शुभाम्। सद्योमांसं सजीवं च मत्स्यं शङ्खं सुवर्णकम् ॥२०॥
माणिक्यं रजतं मुक्तां मणीन्द्रं च प्रवालकम्। दधि लाजाञ्छुक्लधान्यं शुक्लपुष्पं च कुङ्कुमम् ॥२१॥
पर्णं पताकां छत्रं च दर्पणं श्वेतचामरम्। धेनुं वत्सप्रयुक्तां च रथस्थं भूमिपं तथा ॥२२॥
[1]दुग्धमाज्यं तथा पूगममृतं पायसं तथा। शालग्रामं [2]पक्वफलं स्वस्तिकं शर्करां[3] मधु ॥२३॥
मार्जारं च वृषेन्द्रं च मेषं पर्वतमूषिकम्। मेघाच्छन्नस्य च रवेरुदयं चन्द्रमण्डलम् ॥२४॥
कस्तूरीं व्यजनं[4] तोयं हरिद्रां तीर्थमृत्तिकाम्। सिद्धार्थं[5] सर्षपं दूर्वां विप्रबालं च बालिकाम् ॥२५॥
मृगं वेश्यां षट्पदं च कर्पूरं पीतवाससम्। गोमूत्रं गोपुरीषं च गोधूलिं गोपदाङ्कितम् ॥२६॥
गोष्ठं गवां वर्त्म रम्यां गोशालां गोगतिं शुभाम्। भूषणं देवमूर्तिं च ज्वलदग्निं महोत्सवम् ॥२७॥

कल्याणात्मक नूतन चेष्टायें और विजयसूचक घन-गर्जन हुआ ॥१३-१४॥ भगवान् परशुराम ने इस प्रकार के विविध शुभ नादों को सुनते हुए (युद्ध) यात्रा आरम्भ की। उसी समय सामने ब्राह्मण, वह्नि, दैवज्ञ (ज्योतिषी), संन्यासी तथा प्रज्वलित दीपक हाथ में लिए पतिपुत्रवती पतिव्रता स्त्री का दर्शन किया, जो मन्दहास करती हुई प्रसन्न मुख एवं अनेक भाँति के भूषणों से भूषित थी ॥१५-१६॥ यात्रा करते हुए राम ने स्यार, शिवा (सियारिन), पूर्ण कलश, नीलकंठ और नकुल (नेवला) इन मंगल सूचकों को देखा ॥१७॥ पुनः कृष्ण मृग, गज, सिंह, घोड़े, गण्डक, चमरी गौ, राजहंस, चक्रवाक, तोता, कोयल, मोर, खञ्जन पक्षी, शंखचिल्ल चकोर, कबूतर, बगुला, हारिल, पपीहा, गौरैया, विद्युत्, इन्द्रधनुष सूर्य और सूर्य की शुभ कांति, नवीन मांस, सजीव मत्स्य, शंख, सुवर्ण, माणिक्य, रजत (चांदी), मोती, मणीन्द्र, प्रवाल (मूँगा), दही, धान का लावा, शुक्ल धान्य, श्वेत पुष्प, कुंकुम, पलाश, पताका, छत्र, दर्पण, श्वेत चामर, सवत्सा गौ, रथ पर स्थित राजा, दुग्ध, घृत, सुपाड़ी, अमृत, खीर, शालग्राम, पके फल, स्वस्तिक, शक्कर, मधु, बिल्ली, सांड़, भेंड़ा, पर्वतीय चूहा, मेघाच्छन्न सूर्य का उदय, चन्द्रमण्डल, कस्तूरी, पंखा, जल, हरदी, तीर्थ की मिट्टी, राई, सरसों, दूर्वा, ब्राह्मण बालक और बालिका, मृग, वेश्या, भौंरा, कपूर, पीताम्बर, गोमूत्र, गोबर, गौ का चरणचिह्न, गोधूलि, गौओं के रहने का स्थान, उनके मार्ग, गोशाला, गौओं की शुभ गति, भूषण, देवमूर्ति, प्रज्वलित अग्नि, महोत्सव, ताँबा, स्फटिक,

---

१क. ०ग्धं च रोचनामाल्यम०। २क. ०कङ्कफ०। ३क. ०र्करान्विता। ४क. कज्जलं०। ५क. ०द्धान्नं।

ताम्रं च स्फटिकं [1]वन्द्यं सिन्दूरं माल्यचन्दनम्। गन्धं च हीरकं रत्नं ददर्श दक्षिणे शुभम्॥२८॥
सुगन्धिवायोराघ्राणं प्राप विप्राशिषं शुभाम् ॥२९॥
इत्येवं मङ्गलं ज्ञात्वा प्रययौ स मुदाऽन्वितः। अस्तं गते दिनकरे नर्मदातीरसंनिधौ॥३०॥
तत्राक्षयवटं दिव्यं ददर्श सुमनोहरम्। अत्यूर्ध्वं विस्तृतमतिपुण्याश्रमपदं परम् ॥३१॥
पौलस्त्यतपसः स्थानं सुगन्धिमरुदन्वितम्। कार्तवीर्यार्जुनाभ्याशे तत्र तस्थौ गणैः सह॥३२॥
सुष्वाप पुष्पशय्यायां किंकरैः परिसेवितः। निद्रां ययौ परिश्रान्तः परमानन्दसंयुतः॥३३॥
निशातीते च स भृगुश्चारु स्वप्नं ददर्श ह। न चिन्तितं यन्मनसा वायुपित्तकफं विना॥३४॥
गजाश्वशैलप्रासादगोवृक्षफलितेषु च। आरुह्यमाणमात्मानं रुदन्तं कृमिभक्षितम्॥३५॥
आरुह्यमाणमात्मानं नौकायां चन्दनोक्षितम्। धृतवन्तं पुष्पमालां शोभितं पीतवाससा॥३६॥
विण्मूत्रोक्षितसर्वाङ्गं वसापूयसमन्वितम्। वीणां वरां वादयन्तमात्मानं च ददर्श ह॥३७॥
विस्तीर्णपद्मपत्रैश्च स्वं ददर्श सरित्तटे। दध्याज्यमधुसंयुक्तं भुक्तवन्तं च पायसम्॥३८॥
भुक्तवन्तं च ताम्बूलं लभन्तं ब्राह्मणाशिषम्। फलपुष्पप्रदीपं च पश्यन्तं स्वं ददर्श ह॥३९॥
परिपक्वफलं क्षीरमुष्णान्नं शर्करान्वितम्। स्वस्तिकं भुक्तवन्तं स्वं ददर्श च पुनः पुनः॥४०॥

वन्दनीय सिन्दूर, माला, चन्दन, गन्ध, हीरा और रत्न दाहिनी ओर देखा॥१८-२८॥ सुगन्धित वायु का सूंघना तथा ब्राह्मणों का शुभाशीर्वाद उन्हें प्राप्त हुआ॥२९॥ इस प्रकार मंगल समय जानकर परशुराम ने प्रसन्नता पूर्वक यात्रा की। सूर्य के अस्त होते-होते नर्मदा तट पर पहुँचकर वहाँ उस दिव्य एवं अति मनोहर अक्षयवट वृक्ष को देखा, जो अति ऊँचा, विस्तृत (चौड़ा) एवं आश्रम के समीप था॥३०-३१॥ वह पौलस्त्य का तपः-स्थान था, जहाँ सदैव सुगन्धित वायु चलता रहता था। ऐसे कार्तवीर्यार्जुन के समीप वाले स्थान में अपने गणों समेत उन्होंने निवास किया। पुष्प-शय्या पर शयन किया और किंकर लोग उनकी सेवा कर रहे थे। अधिक श्रान्त होने के कारण वे परम आनन्द से निद्रामग्न हो गये॥३२-३३॥ रात्रि के अन्तिम प्रहर में उन्होंने बिना कफ, वायु, पित्त के प्रकोप के, सुन्दर स्वप्न देखा, जिसे कभी सोचा भी नहीं था॥३४॥ स्वप्न में गज, घोड़े, पर्वत, प्रासाद, गौ और फल समेत वृक्ष पर चढ़ते हुए, रोदन करते हुए एवं कीड़ों द्वारा खाये जाते हुए अपने को देखा। नौका पर बैठे अपने को देखा तथा चन्दन-चर्चित सर्वांग, पुष्पमाला धारण किये, पीताम्बर भूषित, विष्ठा, मूत्र समेत चर्बी और पीव सर्वांग में लगाये तथा सुन्दर वीणा बजाते हुए देखा॥३५-३७॥ नदी के तट पर विस्तृत कमल पत्तों पर दही, घी और मधु समेत खीर खाते हुए अपने को देखा॥३८॥ ताम्बूल खाते एवं ब्राह्मणों से आशीर्वाद ग्रहण करते तथा फल, पुष्प, प्रदीप देखते अपने को देखा॥३९॥ परिपक्व फल, क्षीर शक्कर समेत उष्ण (गरम) अन्न और स्वस्तिक (बरा) खाते अपने को बार-बार देखा॥४०॥ जोंक, बिच्छू, मछली, और सर्प से डंसे

१क. रैत्यं सि०।

जलौकसा वृश्चिकेन मीनेन भुजगेन च। भक्षितं भीतमात्मानं पलायन्तं ददर्श सः ॥४१॥
ततो ददर्श चाऽऽत्मानं मण्डलं चन्द्रसूर्ययोः । पतिपुत्रवतीं नारीं पश्यन्तं सस्मितं द्विजम् ॥४२॥
सुवेषया कन्यकया सस्मितेन द्विजेन च। ददर्श श्लिष्टमात्मानं तुष्टेन परितुष्टया ॥४३॥
फलितं पुष्पितं वृक्षं देवताप्रतिमां नृपम्। गजस्थं च रथस्थं च पश्यन्तं स्वं ददर्श सः ॥४४॥
पीतवस्त्रपरिधानां रत्नालंकारभूषिताम् । विशन्तीं ब्राह्मणीं गेहं पश्यन्तं स्वं ददर्श सः ॥४५॥
शंख च स्फटिकं श्वेतमालां मुक्तां च चन्दनम् । सुवर्णं रजतं रत्नं पश्यन्तं स्वं ददर्श सः ॥६॥
गजं वृषं च सर्पं च श्वेतं च श्वेतचामरम् । नीलोत्पलं दर्पणं च भार्गवो वै ददर्श सः ॥४७॥
रथस्थं नवरत्नाढ्यं मालतीमाल्यभूषितम् । रत्नसिंहासनस्थं स्वं भृगुः स्वप्ने ददर्श सः ॥४८॥
पद्मश्रेणीं पूर्णकुम्भं दधिलाजान्घृतं मधु। पर्णच्छत्रं छत्रिणं च भृगुः स्वप्ने ददर्श सः ॥४९॥
बकपङ्क्तिं हंसपङ्क्तिं कन्यापङ्क्तिं व्रतान्विताम्। पूजयन्तीं घटं शुभ्रं भृगुः स्वप्ने ददर्श सः ॥५०॥
मण्डपस्थं द्विजगणं पूजयन्तं हरं हरिम्। जयोऽस्त्वित्युक्तवन्तं तं भृगुः स्वप्ने ददर्श सः ॥५१॥
सुधावृष्टिं पर्णवृष्टिं फलवृष्टिं च शाश्वतीम्। पुष्पचन्दनवृष्टिं च भृगुः स्वप्ने ददर्श सः ॥५२॥
सद्योमांसं जीवमत्स्यं मयूरं श्वेतखञ्जनम् । सरोवरं च तीर्थानि भृगुः स्वप्ने ददर्श सः ॥५३॥
पारावतं शुकं चाषं शङ्खं चिल्लं च चातकम्। व्याघ्रं सिंहं च सुरभीं भृगुः स्वप्ने ददर्श सः ॥५४॥
गोरोचनां हरिद्रां च शुक्लधान्याचलं वरम् । ज्वलदग्निं तथा दूर्वां भृगुः स्वप्ने ददर्श सः ॥५५॥

जाते एवं भीत होकर भागते हुए अपने को देखा ॥४१॥ पुनः उस ब्राह्मण ने अपने समेत चन्द्र सूर्य का मण्डल और मन्दहास करती हुई पति-पुत्रवती स्त्री को देखते एवं मुसकराते हुए द्विज को देखा। सजी-धजी एवं सन्तुष्ट कन्या और सन्तुष्ट एवं मुसकराते हुए ब्राह्मण द्वारा अपने को आलिंगित देखा ॥४२-४३॥ फूल-फल समेत वृक्ष, देवता की मूर्ति, राजा और गज एवं रथ पर बठे अपने को देखा ॥४४॥ पीताम्बर पहने, रत्नों के भूषणों से भूषित होकर घर में प्रवेश करती हुई ब्राह्मणी को देखते अपने को देखा ॥४५॥ शंख, स्फटिक, श्वेतमाला, मुक्ता, चन्दन, सुवर्ण, चाँदी और रत्न देखते अपने को देखा ॥४६॥ गज, वृष (बैल), सर्प, श्वेत, श्वेतचामर, नीलकमल, और दर्पण भार्गव ने देखे ॥४७॥ राम ने स्वप्न में रथपर बैठे, नूतन रत्नों से भूषित, मालती माला से सुशोभित और रत्न सिंहासन पर स्थित अपने को देखा ॥४८॥ कमल-पंक्तियाँ, पूर्णघट, दही, लावा, घृत, मधु, पत्ते का छत्र तथा अपने को छत्र लगाये देखा ॥४९॥ बगुला की पंक्ति, हंसों की पंक्ति तथा व्रत करनेवाली कन्याओं की पंक्ति को, जो शुभ्र कलश की पूजा कर रही थीं, राम ने स्वप्न में देखा ॥५०॥ मण्डप में बैठे एवं विष्णु और शिव को पूजते हुए ब्राह्मणों को, जो कह रहे थे कि—'तुम्हारा विजय हो,' स्वप्न में देखा ॥५१॥ सुधावृष्टि, पत्ते की वर्षा, निरन्तर फल की-वर्षा एवं पुष्प-चन्दन की वर्षा स्वप्न में उन्होंने देखी ॥५२॥ तुरन्त का मांस, जीवित मत्स्य, मोर, श्वेत खञ्जन पक्षी, सरोवर एवं तीर्थ राम ने स्वप्न में देखे ॥५३॥ कबूतर, तोते, नीलकण्ठ, श्वेत चीलह पक्षी, पपीहा, बाघ, सिंह और गौ को स्वप्न में देखा ॥५४॥ गोरोचना, हरिद्रा, चावल का पर्वत, प्रज्वलित अग्नि एवं दूर्वा को स्वप्न

देवालयसमूहं च शिवलिङ्गं च पूजितम्। अर्चितां मृण्मयीं शैवां भृगुः स्वप्ने ददर्श सः ॥५६॥
यवगोधूमचूर्णानां [1]भक्ष्याणि विविधानि च। भृगुर्ददर्श स्वप्ने च बुभुजे च पुनः पुनः ॥५७॥
दिव्यवस्त्रपरिधानो रत्नभूषणभूषितः। अगम्यागमनं स्वप्ने चकार भृगुनन्दनः ॥५८॥
ददर्श नर्तकीं वेश्यां रुधिरं च सुरां पपौ। रुधिरोक्षितसर्वाङ्गः स्वप्ने च भृगुनन्दनः ॥५९॥
पक्षिणां पीतवर्णानां मानुषाणां च नारद। मांसानि बुभुजे रामो हृष्टः स्वप्नेऽरुणोदये ॥६०॥
अकस्मान्निगडैर्बद्धं क्षतं शस्त्रेण स्वं पुनः। दृष्ट्वा च बुबुधे प्रातः समुत्तस्थौ हरिं स्मरन् ॥६१॥
अतीव हृष्टः स्वप्नेन प्रातःकृत्यं चकार सः। मनसा बुबुधे सर्वं विजेष्यामि रिपुं ध्रुवम् ॥६२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

स प्रातराह्निकं कृत्वा समालोच्य च तैः सह। दूतं प्रस्थापयामास कार्तवीर्याश्रमं भृगुः ॥१॥
स दूतः शीघ्रमागत्य वसन्तं राजसंसदि। वेष्टितं सचिवैः सार्धमुवाच नृपतीश्वरम् ॥२॥

में भृगु ने देखा ॥५५॥ देव-मन्दिरों के समूह, पूजित शिवलिंग, दुर्गा की मिट्टी की पूजित मूर्ति को स्वप्न में देखा ॥५६॥ जवा, गेहूँ के आंटे के बने अनेक भांति के भक्ष्य पदार्थ और उन्हें बार-बार खाते अपने को स्वप्न में भृगु ने देखा ॥५७॥ भृगुनन्दन राम ने स्वप्न में दिव्य वस्त्र पहने एवं रत्नों के भूषणों से भूषित हो अगम्या स्त्री के साथ संभोग किया स्वप्न में नृत्य करती वेश्या को देखा तथा रुधिर और मद्य का पान किया और रुधिर से भीगा अपना सर्वांग देखा ॥५८-५९॥ हे नारद! राम ने स्वप्न में अरुणोदय समय पीले रंग के पक्षी और मनुष्यों का मांस सुप्रसन्न होकर खाया ॥६०॥ पुनः अकस्मात् बेड़ी से आबद्ध होकर शस्त्र से अपने को क्षत देखा। ऐसा स्वप्न देखते हुए प्रातःकाल भगवान् का स्मरण करते हुए वे उठ बैठे ॥६१॥ स्वप्न से अति हर्षित होकर उन्होंने प्रातःकाल का नित्य-कर्म समाप्त किया और मन में निश्चित बोध किया कि—मैं शत्रु को निश्चित जीतूंगा ॥६२॥

श्रीब्रह्मवैवर्तपुराण के तीसरे गणपति-खण्ड में नारद-नारायण-संवाद में तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३३॥

अध्याय ३४

नारायण बोले—प्रातःकालीन कर्म समाप्त करके राम ने अपने लोगों के साथ मंत्रणा (सलाह) की और कार्तवीर्य्य के यहाँ दूत भेज दिया ॥१॥ उस दूत ने शीघ्र राजसभा में आकर राजा से, जो अपने मंत्रियों के साथ घिरा बैठा था, कहा ॥२॥

१क. पिष्टानि लड्डुकानि च।

रामदूत उवाच

नर्मदातीरसांनिध्ये न्यग्रोधाक्षयमूलके । स भृगुर्भ्रातृभिः सार्धं त्वं तत्राऽऽगन्तुमर्हसि ॥३॥
युद्धं कुरु महाराज जातिभिर्ज्ञातिभिः सह। त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यति महीमिति ॥४॥
इत्युक्त्वा रामदूतश्चाप्यगच्छद्रामसंनिधिम् । राजा विधाय संनाहं समरं गन्तुमुद्यतः ॥५॥
गच्छन्तं समरं दृष्ट्वा प्राणेशं सा मनोरमा। तमेव वारयामास वासयामास संनिधौ ॥६॥
राजा मनोरमां दृष्ट्वा प्रसन्नवदनेक्षणः । तामुवाच सभामध्ये वाक्यं मानसिकं मुने ॥७॥

कार्तवीर्यार्जुन उवाच

मामेवाह्वयते कान्ते जमदग्निसुतो महान्। स तिष्ठन्नर्मदातीरे रणाय भ्रातृभिः सह ॥८॥
संप्राप्य शंकराच्छस्त्रं मन्त्रं च कवचं हरेः। त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां कर्तुमिच्छति मेदिनीम् ॥९॥
आन्दोलयन्ति मे प्राणा मनः संक्षुभितं मुहुः। शश्वत्स्फुरति वामाङ्गं दृष्टं स्वप्नं शृणु प्रिये ॥१०॥
तैलाभ्यङ्गितमात्मानपपश्यं गर्दभोपरि। ओण्ढपुष्पस्य माल्यं च बिभ्रतं रक्तचन्दनम् ॥११॥
रक्तवस्त्रपरीधानं लोहालंकारभूषितम् । क्रीडन्तं च हसन्तं च निर्वाणाङ्गारराशिना ॥१२॥

रामदूत बोला—हे महाराज! नर्मदा तट पर स्थित उस अक्षय मूल वाले वट वृक्ष के नीचे भृगु अपने भ्राताओं समेत स्थित हैं, अतः अपने जाति-बन्धुओं समेत वहाँ चल कर उनसे युद्ध करो—'वे इक्कीस बार पृथ्वी को निर्भूप करेंगे ॥३-४॥ इतना कह कर राम का दूत राम के पास चला आया। उधर राजा भी कवच आदि धारण कर समर जाने को तैयार हुआ ॥५॥ युद्ध के लिए जाते हुए प्राणेश को देख कर उसकी पत्नी मनोरमा ने उसे मना किया और पास बुला कर अपने वक्ष से लगा लिया ॥६॥ हे मुने! मनोरमा को देख कर राजा का मुख और नेत्र प्रसन्नता से खिल उठा। उसने अपना मानसिक विचार सभामध्य में ही उससे कहना आरम्भ किया ॥७॥

कार्तवीर्यार्जुन बोले—हे कान्ते! जमदग्नि का महान् पुत्र राम मुझे बुला रहा है, जो अपने भ्राताओं समेत युद्ध के लिए नर्मदा के तट पर स्थित है ॥८॥ शंकर से शस्त्र, मंत्र और कवच प्राप्त कर वह इक्कीस बार पृथ्वी को निर्भूप करना चाहता है ॥९॥ इससे मेरे प्राण भयाकुल हो रहे हैं, मन बार-बार संक्षुब्ध हो रहा है, बायाँ अंग निरन्तर फड़क रहा है और हे प्रिये! मैंने जो स्वप्न देखा है, तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ॥१०॥ सर्वाङ्ग में तेल लगाये, गधे पर बैठे अपने को देखा है और अड़हुल पुष्प की माला धारण किये, रक्त चन्दन लगाये, रक्त वस्त्र पहने, लोहे के आभूषण से भूषित, बुझे कोयलों की ढेरी पर खेलते और हँसते अपने को मैंने देखा है ॥११-१२॥

१क. ०वाऽऽह्वायते वीर्याज्ज० ।

भस्माच्छन्नां च पृथिवीं जपापुष्पान्वितां सति। रहितं चन्द्रसूर्याभ्यां रक्तसंध्यान्वितं नभः॥१३॥
मुक्तकेशां च नृत्यन्तीं विधवां छिन्ननासिकाम्। रक्तवस्त्रपरीधानामपश्यं चाट्टहासिनीम्॥१४॥
सशरामग्निरहितां चितां भस्मसमन्विताम्। भस्मवृष्टिमसृग्वृष्टिमग्निवृष्टिमपीश्वरि॥१५॥
पक्वतालफलाकीर्णां पृथिवीमस्थिसंयुताम्। अपश्यं कर्परौघं च छिन्नकेशनखान्वितम्॥१६॥
पर्वतं लवणानां च राशीभूतं कपर्दकम्। चूर्णानां चैव तैलानामदृशं कन्दरं निशि॥१७॥
अदृशं पुष्पितं वृक्षमशोककरवीरयोः। तालवृक्षं च फलितं तत्र चैव पतत्फलम्॥१८॥
स्वकरात्पूर्णकलशः पपात च बभञ्ज च। इत्यपश्यं च गगनात्संपतच्चन्द्रमण्डलम्॥१९॥
अपश्यमम्बरात्सूर्यमण्डलं संपतद्भुवि। उल्कापातं धूमकेतुं ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः॥२०॥
विकृताकारपुरुषं विकटास्यं दिगम्बरम्। आगच्छन्तं चाग्रतस्तमपश्यं च भयानकम्॥२१॥
बाला द्वादशवर्षीया वस्त्रभूषणभूषिता। संरुष्टा याति मद्गेहादित्यपश्यमहं निशि॥२२॥
आज्ञां त्वं देहि राजेन्द्र त्वद्गेहाद्यामि काननम्। वदसि त्वं मामिति च निशपश्यमहं शुचा॥२३॥
रुष्टो विप्रो मां शपते संन्यासी च तथा गुरुः। भित्तौ पुत्तलिकाश्चित्रा नृत्यन्तीश्च ददर्श ह॥२४॥
चञ्चलानां च गृध्राणां काकानां निकरैः सदा। पीडितं महिषाणां च स्वमपश्यमहं निशि॥२५॥
पीडितं तैलयन्त्रेण भ्रामितं तैलकारिणा। दिगम्बरान्पाशहस्तानपश्यमहमीश्वरि॥२६॥

पृथ्वी को भस्म (राख) से आच्छन्न और जपापुष्प (अड़हुल से) युक्त तथा आकाश को चन्द्र-सूर्य से रहित और रक्त वर्ण की संध्या से युक्त देखा॥१३॥ खुले केश, नृत्य करती, छिन्न नासिका (कटी नाक), रक्त वस्त्र पहने और अट्टहास करती हुई विधवा स्त्री को देखा है॥१४॥ हे ईश्वरि! बाणयुक्त, अग्नि रहित, तथा भस्म (राख) युक्त चिता को एवं भस्म की वर्षा, रक्त की वर्षा और अग्नि की वर्षा को देखा है॥१५॥ पके ताड़ फल से आच्छन्न एवं अस्थि (हड्डी) से युक्त पृथ्वी को कटे केश और नख से युक्त तथा कपाल (खोपड़ी) के समूह को देखा है॥१६॥ नमक के पर्वत, कौड़ी की राशि, चूर्ण और तेल की कन्दरा (गुफा) को रात (स्वप्न) में देखा है॥१७॥ अशोक और कनेर के फूले वृक्ष, फल लगे ताड़ वृक्ष और उसके गिरते हुए फल को देखा। अपने हाथ से पूर्ण कलश गिर पड़ा और फूट गया, यह देखा। आकाश से गिरते चन्द्रमण्डल को देखा है॥१८-१९॥ आकाश से सूर्य मण्डल को पृथ्वी पर गिरते देखा है। उल्कापात, धूमकेतु तारा और चन्द्र-सूर्य का ग्रहण देखा है॥२०॥ विकृत आकार वाला पुरुष, जो भीषण मुख, नग्न एवं भयानक था, सामने से आ रहा था, ऐसा देखा है॥२१॥ वस्त्र-भूषणों से भूषित, बारह वर्ष की स्त्री रुष्ट होकर मेरे घर से जा रही थी, ऐसा रात स्वप्न में मैंने देखा है॥२२॥ और वह कह रही थी कि—'हे राजेन्द्र! आज्ञा प्रदान करो, मैं तुम्हारे घर से वन जाना चाहती हूँ, मुझसे कहो। शोकग्रस्त होकर मैंने रात में यह देखा है॥२३॥ रुष्ट होकर ब्राह्मण, संन्यासी और गुरु मुझे शाप दे रहे थे। और दीवाल पर चित्रित पुतलियाँ नाच रही थीं, ऐसा देखा है॥२४॥ चंचल गीधों, कौओं और भैंसों के समूहों से पीड़ित अपने को मैंने रात में देखा है॥२५॥ हे ईश्वरि! तेली द्वारा कोल्हू में घुमाये जाते हुए अपने को और हाथों में फांस लिए दिगम्बरों (नग्नों) को मैंने देखा है॥२६॥ अपने घर में सभी गवैयों कों नाचते-गाते देखा है। परमानन्द पूर्ण विवाह मैंने रात में देखा

नृत्यन्ति गायकाः सर्वे गानं गायन्ति मे गृहे। विवाहं परमानन्दमित्यपश्यमहं निशि ॥२७॥
रमणं कुर्वतो लोकान्केशाकेशि च कुर्वतः। अदृशं समरं रात्रौ काकानां च शुनामपि ॥२८॥
मोटकानि च पिण्डानि श्मशानं शवसंयुतम्। रक्तवस्त्रं शुक्लवस्त्रमपश्यं निशि कामिनि ॥२९॥
कृष्णाम्बरा कृष्णवर्णा नग्ना वै मुक्तकेशिनी। विधवा श्लिष्यति च मामपश्यं निशि शोभने ॥३०॥
नापितो मुण्डते मुण्डं श्मश्रुश्रेणीं च मे प्रिये। वक्षःस्थलं च नखरमित्यपश्यमहं निशि ॥३१॥
पादुकाचर्मरज्जूनामपश्यं राशिमुल्बणम्। चक्रं भ्रमन्तं भूमौ च कुलालस्येति सुन्दरि ॥३२॥
वात्यया घूर्णमानं च शुष्कवृक्षं तमुत्थितम्। पूर्णमानं कबन्धं वै चापश्यं निशि सुव्रते ॥३३॥
ग्रथितां मुण्डमालां च चू (घू) र्णमानां च वात्यया। अतीव घोरदशनामप्यपश्यमहं वरे ॥३४॥
भूतप्रेता मुक्तकेशा वमन्तश्च हुताशनम्। मां भीषयन्ति सततमित्यपश्यमहं निशि ॥३५॥
दग्धजीवं दग्धवृक्षं व्याधिग्रस्तं नरं परम्। अङ्गहीनं च वृषलमप्यपश्यमहं निशि ॥३६॥
गेहपर्वतवृक्षाणां सहसा पततं परम्। मुहुर्मुहुर्वज्रपातमप्यपश्यमहं निशि ॥३७॥
कुक्कुराणां शृगालानां रोदनं च मुहुर्मुहुः। गृहे गृहे च नियतमपश्यं सर्वतो निशि ॥३८॥
अधःशिरस्तूर्ध्वपादं मुक्तकेशं दिगम्बरम्। भूमौ भ्रमन्तं गच्छन्तं चाप्यपश्यमहं नरम् ॥३९॥
विकृताकारशब्दं च ग्रामादौ देवरोदनम्। प्रातः श्रुत्वैवावबुद्धः क उपायो वदाधुना ॥४०॥
नृपतेर्वचनं श्रुत्वा हृदयेन विदूयता। सगद्गदं च रुदती तमुवाच नृपेश्वरम् ॥४१॥

है ॥२७॥ लोग परस्पर में केश पकड़ कर रमण करते थे, तथा रात में कौवे, कुत्ते का युद्ध देखा है ॥२८॥ हे कामिनि ! रात में मैंने मोटक, पिण्ड, शव समेत श्मशान, रक्त वस्त्र और श्वेत वस्त्र देखा है ॥२९॥ हे शोभने ! रात में काले वस्त्र वाली, काले वर्ण वाली, नग्न और केश खोले विधवा स्त्री मेरा आलिंगन कर रही थी, ऐसा मैंने देखा है ॥३०॥ हे प्रिये ! नापित (नाई) दाढ़ी मूछ समेत मेरा मुण्डन कर रहा था और वक्षः स्थल में नख-व्रण (घाव) रात में मैंने देखा है ॥३१॥ हे सुन्दरि ! पादुका, चमड़े की रस्सी की उत्कट राशि एवं भूमि पर घूमते हुए कुम्हार का चक्का मैंने देखा है ॥३२॥ हे सुव्रते ! रात में वायु द्वारा घूमते हुए सूखा वृक्ष उठ कर खड़ा हो गया है, कबन्ध (सिर से अलग धड़) घूम रहा है, ऐसा मैंने देखा है ॥३३॥ हे श्रेष्ठे ! गूँथी हुई मुण्डमाला को, जो प्रचण्ड वायु (बवन्डर) के झोंके से घूम रही थी और जिसके और दाँत विकराल थे, मैंने देखा है ॥३४॥ रात में यह भी देखा है कि—भूत-प्रेत खुले केश रह कर अग्नि का वमन करके मुझे निरन्तर भयभीत कर रहे हैं ॥३५॥ जले हुए जीव, जले हुए वृक्ष, परम रोगी मनुष्य और अंगहीन शूद्र को मैंने रात में देखा है ॥३६॥ घर, पर्वत और वृक्षों के सहसा पतन और बार-बार वज्रपात भी रात में मैंने देखा है ॥३७॥ प्रत्येक घर में कुत्ते और स्यार के बार-बार रोदन भी देखा है, जो चारों ओर नियत होकर कर रहे थे ॥३८॥ रात में मैंने यह भी देखा कि—कोई मनुष्य नीचे शिर, ऊपर चरण कर, खुले केश और नग्न होकर भूमि पर घूमते हुए चल रहा है ॥३९॥ गाँव आदि में विकृत आकार वालों का शब्द और देवों का रोदन सुनते ही मैं प्रातःकाल जगा हूँ, बताओ, इस समय इसका क्या उपाय है ॥४०॥ राजा की बातें सुन कर दुखी हृदय से रोती हुई मनोरमा ने गद्गद वाणी में राजा से कहा ॥४१॥

हे नाथ रमणश्रेष्ठ श्रेष्ठ सर्वमहीभृताम्। प्राणातिरेक प्राणेश शृणु वाक्यं शुभावहम्॥४२॥
नारायणांशो भगवाञ्जामदग्न्यो महाबली। सृष्टिसंहर्तुरीशस्य शिष्योऽयं जगतः प्रभोः॥४३॥
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यामि महीमिति। प्रतिज्ञा यस्य रामस्य तेन सार्धं रणं त्यज॥४४॥
पापिनं रावणं जित्वा शूरं त्वमपि मन्यसे। स त्वया न जितो नाथ स्वपापेन पराजितः॥४५॥
यो न रक्षति धर्मं च तस्य को रक्षिता भुवि। स नश्यति स्वयं मूढो जीवन्नपि मृतो हि सः॥४६॥
शुभाशुभस्य सततं साक्षी धर्मस्य कर्मणः। आत्मारामः स्थितः स्वान्तो मूढस्त्वं नहि पश्यसि॥४७॥
पुत्रदारादिकं यद्यत्सर्वैश्वर्यं सुधर्मिणाम्। जलबुद्बुदवत्सर्वमनित्यं नश्वरं नृप॥४८॥
संसारं स्वप्नसदृशं मत्वा सन्तोऽत्र भारते। ध्यायन्ति सततं धर्मं तपः कुर्वन्ति भक्तितः॥४९॥
दत्तेन दत्तं यज्ज्ञानं तत्सर्वं विस्मृतं त्वया। अस्ति चेद्विप्रहिंसायां कुबुद्धे त्वन्मनः कथम्॥५०॥
सुखार्थे मृगयां गत्वा तत्रोपोष्य द्विजाश्रमे। भुक्त्वा मिष्टमपूर्वं च हतो विप्रो निरर्थकम्॥५१॥
गुरुविप्रसुराणां च यः करोति पराभवम्। अभीष्टदेवस्तं रुष्टो विपत्तिस्तस्य संनिधौ॥५२॥
स्मरणं कुरु राजेन्द्र दत्तात्रेयपदाम्बुजम्। गुरौ भक्तिश्च सर्वेषां सर्वविघ्नविनाशिनी॥५३॥

मनोरमा बोली—हे रमणश्रेष्ठ ! नाथ ! आप सभी राजाओं में श्रेष्ठ हैं। हे प्राणों से अधिक ! प्राणेश ! मेरी शुभ बातें सुनो॥४२॥ भगवान् जामदग्न्य महाबली एवं नारायण के अंश हैं और सृष्टि का संहार करने वाले एवं जगत् के स्वामी शंकर के शिष्य हैं॥४३॥ इक्कीस बार पृथ्वी को निर्भूप करूँगा, ऐसी जिसकी प्रतिज्ञा है, उस राम के साथ युद्ध करने की बात छोड़ दो॥४४॥ पापी रावण को जीत कर तुम भी अपने को शूर मानते हो। हे नाथ ! उसको तुमने जीता नहीं, अपितु वह अपने पाप से पराजित हुआ॥४५॥ क्योंकि जो धर्म की रक्षा नहीं करता है भूतल पर उसकी रक्षा कौन कर सकता है ? वह मूढ़ स्वयं नष्ट हो जाता है और जीवित रहते हुए भी मृतक रहता है॥४६॥ जो शुभ-अशुभ, धर्म-कर्म का साक्षी, आत्माराम और अन्तःकरण में स्थित है, मूढ़ता के कारण तुम उसे नहीं देख रहे हो॥४७॥ हे राजन् ! सुधर्मी पुरुषों के लिए पुत्र, स्त्री आदि समस्त ऐश्वर्य जल के बुल्ले के समान अनित्य और नश्वर हैं॥४८॥ इसीलिए भारत में सन्त महात्मा लोग संसार को स्वप्नवत् मान कर निरन्तर धर्म का ध्यान करते और भक्तिपूर्वक तप करते हैं॥४९॥ दत्तात्रेय के दिए हुए समस्त ज्ञान को तुमने विस्मृत कर दिया, नहीं तो ब्राह्मण की हिंसारूपी कुबुद्धि में तुम्हारा मन कैसे लगता॥५०॥ सुख के लिए मृगया (शिकार) खेलने गए थे वहाँ उपवास करने पर ब्राह्मण के आश्रम में अपूर्व मधुर भोजन किया और निरर्थक उसी ब्राह्मण को मार डाला॥५१॥ गुरु, ब्राह्मण, देवता का जो अपमान करता है, अभीष्ट देव उस पर रुष्ट हो जाते हैं और विपत्ति उसके समीप आ जाती है॥५२॥ हे राजेन्द्र ! दत्तात्रेय के चरण-कमल का स्मरण करो, क्योंकि गुरु में भक्ति करने से समस्त विघ्नों का नाश होता है॥५३॥ उन्हीं गुरुदेव की अर्चना करके भृगु की

गुरुदेवं समभ्यर्च्य तं भृगुं शरणं व्रज। विप्रे देवे प्रसन्ने च क्षत्रियाणां नहि क्षतिः ॥५४॥
विप्रस्य किंकरो भूपो वैश्यो भूपस्य भूमिप। सर्वेषां किंकराः शूद्रा ब्राह्मणस्य विशेषतः ॥५५॥
अयशः शरणं शश्वत्क्षत्रियस्य च क्षत्रिये। महद्यशस्तच्छरणं गुरुदेवद्विजेषु च ॥५६॥
ब्राह्मणं भज राजेन्द्र गरीयांसं सुरादपि। ब्राह्मणे परितुष्टे च संतुष्टाः सर्वदेवताः ॥५७॥
इत्येवमुक्त्वा राजेन्द्रं क्रोडे कृत्वा महासती। मुहुर्मुहुर्मुखं दृष्ट्वा विललाप रुरोद च ॥५८॥
क्षणं तिष्ठ महाराज पुनरेवमुवाच सा। स्नानं कुरु महाराज भोजयिष्यामि वाञ्छितम् ॥५९॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकर्पूरैः कुङ्कुमैर्युतम्। अनुलेपं करिष्यामि सर्वाङ्गे तव सुन्दर ॥६०॥
क्षणं सिंहासने तिष्ठ क्षणं वक्षसि मे प्रभो। सभायां [1]पुष्परचिते तल्पे पश्यामि शोभनम् ॥६१॥
शतपुत्राधिकः प्रेम्णा सतीनां वै पतिर्नृप। निरूपितो भगवता वेदेषु हरिणा स्वयम् ॥६२॥
मनोरमावचः श्रुत्वा राजा परमपण्डितः । बोधयामास तां राज्ञीं ददौ प्रत्युत्तरं पुनः ॥६३॥

कार्तवीर्यार्जुन उवाच

शृणु कान्ते प्रवक्ष्यामि श्रुतं सर्वं त्वयेरितम्। शोकार्तानां च वचनं न प्रशंस्यं सभासु च ॥६४॥
सुखं दुःखं भयं शोकः कलहः प्रीतिरेव च। कर्मभोगार्हकालेन सर्वं भवति सुन्दरि ॥६५॥

शरण में चले जाओ। ब्राह्मण और देवता के प्रसन्न होने पर क्षत्रियों की कोई हानि नहीं होती है ॥५४॥ हे भूमि-पाल ! राजा ब्राह्मण का सेवक होता है, वैश्य राजा का और शूद्र सबका सेवक होता है विशेष कर ब्राह्मण का ॥५५॥ क्षत्रिय की शरण जाने से क्षत्रियों का महान् अयश होता है किन्तु गुरु, देवता और ब्राह्मणों की शरण जाने से उसे महान् यश की प्राप्ति होती है ॥५६॥ हे राजेन्द्र ! देवों से भी श्रेष्ठ ब्राह्मण होते हैं अतः उनकी सेवा करो, क्योंकि ब्राह्मण के प्रसन्न होने पर सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं ॥५७॥ इस प्रकार उस महासती ने राजेन्द्र को सब बातें बता कर उन्हें अपने अंक से लगा लिया और उनका मुख देख कर बार-बार विलाप-रोदन करने लगी ॥५८॥ उसने पुनः कहा—हे महाराज ! क्षण मात्र ठहरो, स्नान करो, मैं तुम्हें मनचाहा भोजन कराऊँगी ॥५९॥ हे सुन्दर ! चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कर्पूर और कुंकुम युक्त अनुलेप (उवटन) तुम्हारे सर्वांग में लगाऊँगी ॥६०॥ हे प्रभो ! क्षण मात्र सिंहासन पर बैठ कर क्षणमात्र मेरे वक्षःस्थल पर बैठो, सभा में पुष्पशय्या पर मैं तुम्हें देखना चाहती हूँ ॥६१॥ क्योंकि हे नृप ! पतिव्रताओं के लिए पति उसके सैकड़ों पुत्रों से प्रेम में अधिक होता है, इसे वेद में भगवान् ने स्वयं बताया है ॥६२॥ मनोरमा की बातें सुनकर उस महान् पण्डित राजा ने रानी को समझाया और पुनः प्रत्युत्तर रूप में कहा ॥६३॥

कार्तवीर्यार्जुन बोले—हे कान्ते ! मैंने तुम्हारी सभी बातें सुन लीं। शोकाकुल की बातें सभा में प्रशस्त नहीं मानी जाती हैं ॥६४॥ हे सुन्दरि ! सुख, दुःख, भय, शोक, कलह (झगड़ा) और प्रीति ये सब कर्मभोग के उचित समय पर

---

१ क. रतितल्पे च पश्यामि जन्म शो० ।

कालो ददाति राजत्वं कालो मृत्युं पुनर्भवम्। कालः सृजति संसारं कालः संहरते पुनः॥६६॥
करोति पालनं कालः कालरूपी जनार्दनः। कालस्य कालः श्रीकृष्णो विधातुर्विधिरेव च॥६७॥
संहर्तुर्वाऽपि संहर्ता पातुः पाता च कर्मकृत्। स कर्मणां कर्मरूपी ददाति तपसां फलम्॥६८॥
कः केन हन्यते जन्तुः कर्मणा वै विना सति। स्रष्टा सृजति सृष्टिं च संहर्ता संहरेत्पुनः॥६९॥
पाता पाति च भूतानि यस्याऽऽज्ञां परिपालयेत्। यस्याऽऽज्ञया वाति वातः संततं भयविह्वलः॥७०॥
शश्वत्संचरते मृत्युः सूर्यस्तपति संततम्। वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निः कालो भ्रमति भीतवत्॥७१॥
तिष्ठन्ति स्थावराः सर्वे चरन्ति सततं चराः। वृक्षाश्च पुष्पिताः काले फलिताः पल्लवान्विताः॥७२॥
शुष्यन्ति कालतः काले वर्धन्ते च तदाज्ञया। आविर्भूता तिरोभूता सृष्टिरेव यदाज्ञया॥
तस्याऽऽज्ञया भवेत्सर्वं न किंचित्स्वेच्छया नृणाम् ॥७३॥
नारायणांशो भगवाञ्जामदग्न्यो महाबलः। त्रिः सप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यति महीमिति॥७४॥
प्रतिज्ञा विफला तस्य न भवेत्तु कदाचन। निश्चितं तस्य वध्योऽहमिति जानामि सुव्रते॥७५॥
ज्ञात्वा सर्वं भविष्यं च शरणं यामि तत्कथम्। प्रतिष्ठितानां चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते॥७६॥
इत्येवमुक्त्वा राजेन्द्रः समरं गन्तुमुद्यतः। वाद्यं च वादयामास कारयामास मङ्गलम्॥७७॥
शतकोटिनृपाणां च राजेन्द्राणां त्रिलक्षकम्। अक्षौहिणीनां शतकं महाबलपराक्रमम्॥७८॥

क्योंकि काल ही राजत्व प्रदान करता है, काल ही मृत्यु और पुनर्जन्म प्रदान करता है, काल संसार का सर्जन करता है और उसका पुनः संहार भी करता है॥६६॥ काल ही पालन करता है, जनार्दन काल रूपी हैं और भगवान् श्रीकृष्ण काल के काल, विधाता के विधाता, संहर्त्ता के संहर्त्ता, पालक के पालक तथा कर्म करने वाले हैं। वही कर्मों के कर्म रूपी होकर तप के फल प्रदान करते हैं। हे सति! अतः बिना कर्म के कौन किसे मार सकता है॥६७-६८½॥ जिसकी आज्ञा से स्रष्टा सृष्टि का सर्जन करता है, संहर्त्ता संहार करता है, और पालक जीवों की रक्षा करता है॥६९½॥ जिसकी आज्ञा से वायु भयभीत होकर निरन्तर बहता रहता है, मृत्यु का निरन्तर संचार होता है, और सूर्य सदैव तपते हैं॥७०½॥ इन्द्र वर्षा करते हैं, अग्नि जलाता है, भीत होकर काल भ्रमण करता है। सभी स्थावर गण स्थित रहते हैं और चर लोग निरन्तर चलते हैं॥७१½॥ कालानुसार वृक्ष फूल-फल और पल्लव से युक्त होते हैं, कालानुसार सूख जाते हैं और उसकी आज्ञा से समय पर बढ़ते हैं॥७२½॥ उसी की आज्ञा से सृष्टि प्रकट और अन्तर्हित होती रहती है, उसी की आज्ञा से मनुष्यों का सभी कुछ होता है, स्वेच्छा से कुछ भी नहीं होता॥७३॥ भगवान् परशुराम नारायणांश और महाबली हैं, इक्कीस बार पृथ्वी को निर्भूप करेंगे, यह प्रतिज्ञा उनकी कभी विफल नहीं हो सकती है। अतः हे सुव्रते! मेरा वध उन्हीं के द्वारा होगा, यह सुनिश्चित जानता हूँ॥७४-७५॥ सब भविष्य जान कर मैं उनकी शरण कैसे जा सकता हूँ, क्योंकि प्रतिष्ठितों के लिए अयश मरण से भी अधिक दुःख-प्रद होता है॥७६॥ इतना कह कर वह राजेन्द्र समर जाने के लिए तैयार हो गया—वाद्य बजवाने लगा और मंगल कराने लगा॥७७॥ सौ करोड़ राजा, तीन लाख महाराज, महाबली और पराक्रमी सैनिकों की सौ अक्षौहिणी

अश्वानां च गजानां च पदातीनां तथैव च। असंख्यकं रथानां च गृहीत्वा गन्तुमुद्यतः ॥७९॥
बभूव स्तिमिता साध्वी दृष्ट्वा तं गमनोन्मुखम्। धृतवन्तं च सन्नाहमक्षयं सशरं धनुः ॥८०॥
क्रीडागारे क्षणं तस्थौ कृत्वा कान्तं स्ववक्षसि। पश्यन्ती तन्मुखाम्भोजं चुचुम्ब च मुहुर्मुहुः ॥८१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणेशख० नारदना० चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

मनोरमा प्राणनाथं क्षणं कृत्वा स्ववक्षसि। भविष्यं मनसा चक्रे यद्यत्स्वामिमुखाच्छ्रुतम् ॥१॥
पुत्रांश्च पुरतः कृत्वा बान्धवांश्च स्वकिंकरान्। सस्मार सा हरिपदं मेने सत्यं भवेन्मुने ॥२॥
योगेन भित्त्वा षट्चक्रं वायुं संस्थाप्य मूर्धनि। ब्रह्मरन्ध्रस्थकमले सहस्रदलसंयुते ॥३॥
स्वान्तमाकृष्य विषयाज्जलबुद्बुदसंनिभात्। संस्थाप्य बध्वा ज्ञानेन लोलं ब्रह्मणि निष्कले ॥४॥
त्रिविधं कर्म संन्यस्य निर्मूलमपुनर्भवम्। तत्र प्राणांश्च तत्याज न च प्राणाधिकं प्रियम् ॥५॥
स राजा तां मृतां दृष्ट्वा विललाप रुरोद च। संनाहं संपरित्यज्य कृत्वा वक्ष्यस्युवाच ताम् ॥६॥

सेना तथा हाथी, घोड़े, पैदल और रथ असंख्य थे, उन्हें लेकर चलना चाहा। इसी बीच सती मनोरमा ने मन्दहास करती हुई उन्हें रोक कर उनके अक्षय कवच और बाण समेत धनुष ले लिया ॥७८-८०॥ उन्हें क्रीड़ागार में ले जाकर क्षणमात्र अपने वक्ष से लगाया और उनका मुखकमल देखती हुई बार-बार चुम्बन करने लगी ॥८१-८२॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण-संवाद में कार्तवीर्य्यार्जुन-संनाह नामक चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३४॥

अध्याय ३५

नारायण बोले—मनोरमा ने क्षणमात्र अपने प्राणेश्वर को अंग से लगा कर स्वामी के मुख से जो कुछ सुना था, उसका भावी अर्थ मन में निश्चय किया ॥१॥ हे मुने! अनन्तर उसने अपने पुत्रों, बन्धुओं और भृत्यों (नौकरों) को अपने सामने बुलवाया और होनहार को अटल समझ कर भगवच्चरण का स्मरण करने लगी ॥२॥ तथा योग द्वारा षट् चक्र का भेदन कर वायु को मूर्द्धा (ब्रह्माण्ड) में स्थापित किया और जल के बुल्ले के समान विषयों से अपने मन को हटा कर ब्रह्मरन्ध्र स्थित सहस्र दल वाले कमल में उसे लगा दिया। उसी स्थान पर निष्कल (निर्गुण) ब्रह्म में उस चंचल मन को ज्ञान द्वारा बाँध कर अविचल कर दिया ॥३-४॥ पुनर्जन्म न हो इसलिए निर्मूल करने के लिए तीनों प्रकार के कर्मों का त्याग किया और प्राण परित्याग भी उसी स्थान में कर दिया किन्तु प्राणाधिक प्रिय का त्याग नहीं किया ॥५॥ उसे मृतक देख राजा विलाप और रोदन करने लगा और कवच त्याग कर उसे गोद में लेकर कहने लगा ॥६॥

राजोवाच

मनोरमे समुत्तिष्ठ न यास्यामि रणाजिरम्। सचेतना मां पश्येति विलपन्तं मुहुर्मुहुः ॥७॥
मनोरमे समुत्तिष्ठ मया सार्धं गृहं व्रज। न करिष्यामि समरं भृगुणा सह भामिनि ॥८॥
मनोरमे समुतिष्ठ श्रीशैलं व्रज सुन्दरि। तत्र क्रीडां करिष्यामि त्वया सार्धं यथा पुरा ॥९॥
मनोरमे समुत्तिष्ठ व्रज गोदावरीं प्रिये। जलक्रीडां करिष्यामि त्वया सार्धं यथा पुरा ॥१०॥
मनोरमे समुत्तिष्ठ नन्दनं व्रज सुन्दरि। पुष्पभद्रानदीतीरे विहरिष्यामि निर्जने ॥११॥
मनोरमे समुत्तिष्ठ मलयं व्रज सुन्दरि। त्वया सार्धं रमिष्येऽहं तत्र चन्दनकानने ॥१२॥
शीतेन गन्धयुक्तेन वायुना सुरभीकृते। भ्रमरध्वनिसंयुक्ते पुंस्कोकिलरुतश्रिते ॥१३॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुकुंमालेपनं कुरु। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं पश्य मां सस्मिते सति ॥१४॥
सुधातुल्यं सुमधुरं वचनं रचय प्रिये। कुटिलभ्रूविकारं च कथं न कुरुषेऽधुना ॥१५॥
नृपस्य रोदनं श्रुत्वा वागबभूवाशरीरिणी। स्थिरो भव महाराज कुरुषे रोदनं कथम् ॥१६॥
त्वं महाज्ञानिनां श्रेष्ठो दत्तात्रेयप्रसादतः। जलबुद्बुदवत्सर्वं संसारं पश्य शोभनम् ॥१७॥
कमलांशा च सा साध्वी जगाम कमलालयम्। त्वमेव गच्छ वैकुण्ठं रणं कृत्वा रणाजिरे ॥१८॥
इत्येवं वचनं श्रुत्वा जहौ शोकं नराधिपः। ततश्चन्दनकाष्ठेन चितां दिव्यां चकार ह ॥१९॥
संस्काराग्निं कारयित्वा पुत्रद्वारा ददाह ताम्। नानाविधानि रत्नानि ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥२०॥

राजा बोले—हे मनोरमे! उठो, मैं अब रण में नहीं जाऊँगा। चेतना प्राप्त कर मुझे देखो। इस भाँति बार-बार विलाप करने लगा ॥७॥ हे मनोरमे! उठो। मेरे साथ घर चलो। हे भामिनि! मैं अब भृगु से युद्ध नहीं करूँगा ॥८॥ हे मनोरमे! हे सुन्दरि! उठो, श्री शैल पर चलो और वहाँ पहले की भाँति तुम्हारे साथ क्रीड़ा करूँगा ॥९॥ हे मनोरमे, प्रिये! उठो, गोदावरी चलो, वहाँ पहले की भाँति तुम्हारे साथ जल-क्रीड़ा करूँगा ॥१०॥ हे मनोरमे, सुन्दरि! उठो, नन्दन चलें; पुष्पभद्रा नदी के तट पर निर्जन स्थान में तुम्हारे साथ विहार करूँगा ॥११॥ हे मनोरमे, सुन्दरि! उठो, मलय चलें, वहाँ चन्दन वन में तुम्हारे साथ रमण करूँगा ॥१२॥जो शीतल, सुगन्ध वायु से सुगन्धित, भौंरों की गूँज से युक्त एवं पुरुष कोकिल की मधुर ध्वनि से संयुक्त है ॥१३॥ वहाँ चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम का लेपन करके मन्द मुसुकान करती हुई तुम चन्दनर्चचित मेरे सर्वांग को देखो ॥१४॥ हे प्रिये! अमृत की भाँति अत्यन्त मधुर वचन बोलो। तुम इस समय अपनी भौंहों को टेढ़ी क्यों नहीं कर रही हो ॥१५॥ राजा का रोदन सुन कर वहाँ आकाशवाणी हुई—'हे महाराज! (चित्त को) स्थिर करो, रोदन क्यों कर रहे हो ॥१६॥ तुम दत्तात्रेय के प्रसाद से महाज्ञानियों में श्रेष्ठ हो, इस सुन्दर संसार को जल के बुलबुले के समान समझो ॥१७॥ वह पतिव्रता कमला (लक्ष्मी) का अंश थी अतः कमला के यहाँ चली गयी और रण में तुम भी युद्ध करके वैकुण्ठ चले जाओ ॥१८॥ इतना सुन कर राजा ने शोक त्याग दिया और रानी के लिए चन्दन काष्ठ की दिव्य चिता बनायी। पुत्र द्वारा उसका दाह संस्कार सुसम्पन्न करा कर ब्राह्मणों को हर्ष से, अनेक भाँति के रत्न प्रदान किये ॥१९-२०॥

नानाविधानि दानानि [1]वस्त्राणि विविधानि च। मनोरमायाः पुण्येन ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥२१॥
भुज्यतां भुज्यतां शश्वद्दीयतां दीयतामिति। शब्दो बभूव सर्वत्र कार्तवीर्याश्रमे मुने ॥२२॥
कोषेषु स्वाधिकारेषु स्थितं यद्यद्धनं तदा। मनोरमायाः पुण्येन ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥२३॥
राजा जगाम समरं हृदयेन विदूयता। सार्धं सैन्यसमूहैश्च वाद्यभाण्डैरसंख्यकैः ॥२४॥
ददर्शामङ्गलं राजा पुरो वर्त्मनि वर्त्मनि। ययौ तथाऽपि समरं नाऽऽजगाम गृहं पुनः ॥२५॥
मुक्तकेशीं छिन्ननासां रुदतीं च दिगम्बराम्। कृष्णवस्त्रपरीधानामपरां विधवामपि ॥२६॥
मुखदुष्टां योनिदुष्टां व्याधियुक्तां च कुट्टिनीम्। पतिपुत्रविहीनां च डाकिनीं पुंश्चलीं तथा ॥२७॥
कुम्भकारं तैलकारं व्याधं सर्पोपजीविनम्। कुचैलमतिरूक्षाङ्गं नग्नं काषायवासिनम् ॥२८॥
वसाविक्रयिणं चैव कन्याविक्रयिणं तथा। चितादग्धं शवं भस्म निर्वाणाङ्गारमेव च ॥२९॥
सर्पक्षतं नरं सर्पं गोधां च शशकं विषम्। श्राद्धपाकं च पिण्डं च मोटकं च तिलांस्तथा ॥३०॥
देवलं वृषवाहं च शूद्रश्राद्धान्नभोजिनम्। शूद्रान्नपाचकं शूद्रयाजकं ग्रामयाजकम् ॥३१॥
कुशपुत्तलिकां चैव शवदाहनकारिणम्। शून्यकुम्भं भग्नकुम्भं तैलं लवणमस्थि च ॥३२॥
कार्पासं कच्छपं चूर्णं कुक्कुरं शब्दकारिणम्। दक्षिणे च सृगालं च कुर्वन्तं भैरवं रवम् ॥३३॥
कपर्दकं च क्षौरं च छिन्नकेशं नखं मलम्। कलहं च विलापं च तथा तत्कारिणं जनम् ॥३४॥

मनोरमा के पुण्यार्थ उन्होंने अनेक भाँति के वस्त्र समेत विविध भाँति के दान ब्राह्मणों को सुप्रसन्न मन से प्रदान किये ॥२१॥ हे मुने! उस समय कार्तवीर्यार्जुन के आश्रम में खाओ-खाओ और हमें दो-दो ऐसा निरन्तर शब्द हो रहा था। अपने अधिकार में स्थित कोष में जितना धन था, वह मनोरमा के पुण्यार्थ ब्राह्मणों को उन्होंने दे दिया ॥२२-२३॥ उपरान्त राजा ने संतप्त हृदय से असंख्य सैनिकों और वाद्यों समेत रणस्थल की यात्रा आरम्भ की ॥२४॥ जाते समय मार्गों में सामने उन्होंने अमंगल देखा, किन्तु उसकी उपेक्षा कर के समर के लिए चले ही गये, घर नहीं लौटे ॥२५॥ केश खोले, छिन्न नासिका वाली, रोदन करती हुई, नग्न, काला वस्त्र पहने विधवा स्त्री तथा मुख दुष्ट, योनिदुष्ट, रोगिणी, कुट्टिनी, पतिपुत्रहीना, डाकिनी, पुंश्चली, कुम्हार, तेली, व्याध (बहेलिया), सँपेरा, मलिन वस्त्रधारी, अत्यन्त, रूक्षशरीर, नग्न, गेरुआ वस्त्रधारी, चर्बी का विक्रेता, कन्या-विक्रेता, चिता में जला हुआ शव, राख, कोयला, साँप का काटा-मनुष्य, गोह, शशक (खरगोश), विष, श्राद्ध का पाक, पिण्ड, मोटक, तिल, शूद्र के मन्दिर का पुजारी, वृषवाह (गाड़ीवान हलवाहे आदि), शूद्र के श्राद्ध का अन्न खाने वाला, शूद्र का भण्डारी, शूद्र का यज्ञ कराने वाला, गाँव-गाँव यज्ञ कराने वाला, कुश का पुतला बना कर शव का दाह करने वाला, छूछा घड़ा, फूटा घड़ा, तेल, नमक, हड्डी, कपास, कछुवा, चूर्ण, भूँकता हुआ कुत्ता, दाहिनी ओर भीषण शब्द करता हुआ स्यार, कौड़ी, बाल बनवाना, छिन्न केश, नख, मल, कलह, विलाप तथा विलाप करने वाला मनुष्य, अमंगल बोलने वाला, रोने वाला, शोक करने वाला, झूठी गवाही देने वाला, चोर, मनुष्य-घातक, पुँश्चली स्त्री के

---

१. क. वस्तूनि।

अमङ्गलं वदन्तं च रुदन्तं शोककारिणम् ॥३५॥
मिथ्यासाक्ष्यप्रदातारं चौरं च नरघातिनम्। पुंश्चलीपतिपुत्रौ च पुंश्चल्योदनभोजिनम्॥३६॥
देवतागुरुविप्राणां वस्तुवित्तापहारिणम्। दत्तापहारिणं दस्युं हिंसकं सूचकं खलम्॥३७॥
पितृमातृविरक्तं च द्विजाश्वत्थविधातिनम्। सत्यघ्नं च कृतघ्नं च स्थाप्यस्याप्यपहारिणम्॥३८॥
विप्रमित्रद्रोहमेवं क्षतं विश्वासघातकम्। गुरुदेवद्विजानां च निन्दकं स्वाङ्गघातकम्॥३९॥
जीवानां घातकं चैव स्वाङ्गहीनं च निर्दयम्। व्रतोपवासहीनं च दीक्षाहीनं नपुंसकम्॥४०॥
गलितव्याधिगात्रं च काणं[1] बधिरमेव च। पुल्कसं छिन्नलिङ्गं च सुरामत्तं सुरां तथा॥४१॥
क्षिप्तं वमन्तं रुधिरं महिषं गर्दभं तथा। मूत्रं पुरीषं श्लेष्माणं रूक्षिणं नृकपालिनम्॥४२॥
चण्डवातं रक्तवृष्टिं वाद्यं वै वृक्षपातनम्। वृकं च सूकरं गृध्रं श्येनं कंकं च भल्लुकम्॥४३॥
पाशं च शुष्ककाष्ठं च वायसं गन्धकं तथा ॥४४॥
प्रतिग्राहिब्राह्मणं च तन्त्रमन्त्रोपजीविनम्। वैद्यं च रक्तपुष्पं चाप्यौषधं तुषमेव च॥४५॥
कुवार्तां मृतवार्तां च विप्रशापं च दारुणम्। दुर्गन्धिवातं दुःशब्दं राजाऽपश्यत्स वर्त्मनि॥४६॥
मनश्च कुत्सितं प्राणाः क्षुभिताश्च निरन्तरम्। वामाङ्गस्पन्दनं देहजाड्यं राज्ञो बभूव ह॥४७॥
तथाऽपि राजा निःशंको ददर्श समराङ्गणम्। सर्वसैन्यसमायुक्तः प्रविवेश रणाजिरम्॥४८॥

पति-पुत्र, पुंश्चली का भात खाने वाला, देवता, गुरु, विप्र की वस्तु और धन का अपहरण करने वाला, दान दी हुई वस्तु का अपहरण करने वाला, दस्यु, हिंसक, चुगुलखोर, खल (दुष्ट), पिता-माता से विरक्त रहने वाला, ब्राह्मण एवं पीपल का घाती, सत्यनाशक, कृतघ्न, धरोहर का अपहर्त्ता, ब्राह्मण और मित्र से द्रोह करने वाला, आहत, विश्वासघाती, गुरु, देवता और ब्राह्मण के निन्दक, अपने अंग का नाशक, जीवों का घातक, अंगहीन, निर्दयी, व्रत और उपवास से रहित, दीक्षाहीन, नपुँसक, गलितरोग-ग्रस्त शरीर वाला, काना, बहिरा, चाण्डाल, कटे लिंग वाला, सुरापान से मत्त, मद्यविक्रेता, रुधिर वमन करने वाला, भैंसा, गधा, मूत्र, विष्ठा, कफ, रुखा, नरमुण्डधारी, प्रचण्ड वायु, रुधिर की वर्षा, वाद्य, वृक्ष का गिरना, भेंड़िया, सूकर, गीध, बाज, कंक, भालू, फाँस, सूखा काष्ठ, कौआ, गन्धक, दान लेने वाला ब्राह्मण, तन्त्र-मन्त्र से जीविका चलाने वाला, वैद्य, रक्तपुष्प, औषध, भूसी, निन्दित समाचार, मृतक समाचार, भीषण ब्राह्मण-शाप, दुर्गन्धपूर्ण वायु और दुःशब्द, ये सब मार्ग में राजा ने देखे॥२६-४६॥ इससे राजा का मन म्लान हो गया, प्राण क्षुब्ध होने लगे, वामांग फड़कने लगा और देह शिथिल हो गयी॥४७॥ तथापि राजा निःशंक होकर समर भूमि की ओर देखने लगा और समस्त सेनाओं समेत रणांगण में

---

[1] क. यक्ष्मव्याधिनमे०।

अवरुह्य रथात्तूर्णं दृष्ट्वा च पुरतो भृगुम्। ननाम दण्डवद्भूमौ राजेन्द्रैः सह भक्तितः ॥४९॥
आशिषं युयुजे रामः स्वर्गं याहीति वाञ्छितम्। तेषां सह्यं तद्बभूवुर्दुर्लङ्घ्या ब्राह्मणाशिषः ॥५०॥
भृगुं प्रणम्य राजेन्द्रो राजेन्द्रैः सह तत्क्षणात्। आरुरोह रथं तूर्णं नानायुधसमन्वितम् ॥५१॥
नानाप्रकारवाद्यं च दुन्दुभिं मुरजादिकम्। वादयामास सहसा ब्राह्मणेभ्यो ददौ धनम् ॥५२॥
उवाच रामो राजेन्द्रं राजेन्द्राणां च संसदि। हितं सत्यं नीतिसारं वाक्यं वेदविदां वरः ॥५३॥

परशुराम उवाच

शृणु राजेन्द्र धर्मिष्ठ चन्द्रवंशसमुद्भव। विष्णोरंशस्य शिष्यस्त्वं दत्तात्रेयस्य धीमतः ॥५४॥
स्वयं विद्वांश्च वेदांश्च श्रुत्वा वेदविदो मुखात्। कथं दुर्बुद्धिरधुना सज्जनानां विहिंसना ॥५५॥
त्वं पूर्वमहनो लोभान्निरीहं ब्राह्मणं कथम्। ब्राह्मणी शोकसंतप्ता भर्त्रा सार्धं गता सती ॥५६॥
किं भविष्यसि ते भूप परत्रैवानयोर्वधात्। सर्वं मिथ्यैव संसारं पद्मपत्रे यथा जलम् ॥५७॥
सत्कीर्तिश्चाथ दुष्कीर्तिः कथामात्रावशेषिता। विडम्बना वा किमतो दुष्कीर्तेश्च सतामहो ॥५८॥
क्व गता कपिला त्वं क्व क्व विवादो मुनिः कुतः। यत्कृतं विदुषा राज्ञा न कृतं हालिकेन तत् ॥५९॥

प्रविष्ट हुआ ॥४८॥ वहाँ राम को सामने देख कर रथ से तुरन्त उतर पड़ा और सहसा उन्हें भूमि पर सहायक राजकुमारों समेत भक्तिपूर्वक दण्डवत्प्रणाम करने लगा ॥४९॥ राम ने शुभाशिष प्रदान किया कि—'अभिलषित स्वर्ग प्राप्त करो।' यह उन लोगों के लिए सह्य हो गया क्योंकि ब्राह्मणों के आशीर्वाद अलंघ्य होते हैं ॥५०॥ सहायक राजकुमारों के साथ राजा उसी समय भृगु को प्रणाम कर अनेक अस्त्रों से युक्त होकर शीघ्रता से रथ पर बैठा और अनेक प्रकार के वाद्यों समेत दुन्दुभि (नगाड़ा) एवं मृदंग बजवाया और ब्राह्मणों को धन दान दिया ॥५१-५२॥ अनन्तर वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ राम ने राजाओं की उस सभा में राजा से कहा, जो हितकर, सत्य और नीति का सार भाग था ॥५३॥

परशुराम बोले—हे राजन्! तुम धर्मात्मा, चन्द्रवंश में उत्पन्न और भगवान् विष्णु के अंश एवं विद्वान् दत्तात्रेय के शिष्य हो ॥५४॥ तथा वेदवेत्ता के मुख से वेदों को सुन कर स्वयं भी विद्वान् हो। किन्तु सम्प्रति तुम्हारी दुर्बुद्धि कैसे हो गयी सज्जनों की हिंसा की ॥५५॥ तुमने पहले लोभवश एक निरीह ब्राह्मण की हिंसा कैसे की, जिससे पतिव्रता ब्राह्मणी शोक से सन्तप्त होकर पति के साथ चली गयी ॥५६॥ हे भूप! इन दोनों के वध करने से तुम्हें लोक-परलोक में क्या लाभ होगा? कमलपत्र पर स्थित जल की भाँति समस्त संसार मिथ्या है ॥५७॥ प्राणी यहाँ केवल यश-अयश का भागी होता है और (जो कुछ करता है उसकी) कथा मात्र शेष रह जाती है। अहो सज्जनों को अयश प्राप्त करने की विडम्बना से क्या लाभ ॥५८॥ वह कपिला कहाँ गयी, उसके निमित्त होने वाला विवाद कहाँ और वे मुनि कहाँ चले गये। (इससे यही कहना पड़ता है कि) एक विद्वान् राजा ने जैसा अनुचित कर्म किया, वैसा एक हलवाहा भी नहीं कर सकता ॥५९॥ तुम्हें उपवास किये

त्वामुपोषितमीशं हि दृष्ट्वा तातो हि धार्मिकः। पारणां कारयामास दत्तं तस्य फलं त्वया ॥६०॥
अधीतं विधिवद्दत्तं ब्राह्मणेभ्यो दिने दिने। जगत्ते यशसा पूर्णमयशो वार्धके कथम् ॥६१॥
दाता बलिष्ठो धर्मिष्ठो यशस्वी पुण्यवान्सुधीः। कार्तवीर्यार्जुनसमो न भूतो न भविष्यति ॥६२॥
पुरातना वदन्तीति वन्दिनो धरणीतले। यो विख्यातः पुराणेषु तस्य दुष्कीर्तिरीदृशी ॥६३॥
दुर्वाक्यं दुःसहं राजंस्तीक्ष्णास्त्रादपि जीविनाम्। संकटेऽपि सतां वक्त्राद्दुरुक्तिर्न विनिर्गता ॥६४॥
न ददामि दुरुक्तिं ते प्रकृतं कथयाम्यहम्। उत्तरं देहि राजेन्द्र मह्यं राजेन्द्रसंसदि ॥६५॥
सूर्यचन्द्रमनूनां च वंशजाः सन्ति संसदि। सत्यं वद सभायां च शृण्वन्तु पितरः सुराः ॥६६॥
शृण्वन्तु सर्वे राजेन्द्राः सदसद्वक्तुमीश्वराः। पश्यन्तो हि समं सन्तः पाक्षिकं न वदन्ति च ॥६७॥
इत्युक्त्वा रैणुकेयश्च विरराम रणस्थले। राजा बृहस्पतिसमः प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥६८॥

कार्तवीर्यार्जुन उवाच

शृणु राम हरेरंशो हरिभक्तो जितेन्द्रियः। श्रुतो धर्मो मुखाद्येषां त्वं च तेषां गुरोर्गुरुः ॥६९॥
कर्मणा[1] ब्राह्मणो जातः करोति ब्रह्मभावनाम्। स्वधर्मनिरतः शुद्धस्तस्माद्ब्राह्मण उच्यते ॥७०॥

देख कर मेरे धार्मिक पिता ने तुम्हें भोजन कराया, जिसका तुमने यह फल प्रदान किया ॥६०॥ तुमने स्वयं वेदाध्ययन किया है, ब्राह्मणों को प्रतिदिन धन दान किया है जिससे समस्त जगत् में तुम्हारा पूर्ण यश व्याप्त है किन्तु अब वृद्धावस्था में तुमने यह अयश क्यों प्राप्त किया ॥६१॥ क्योंकि 'दाता, बलवान्, धर्मात्मा, यशस्वी, पुण्यवान् एवं विद्वान् कार्तवीर्य्यार्जुन के समान न कोई हुआ और न होगा' ऐसा पृथ्वीतल पर पुराने वन्दीगण गाते हैं। जो पुराणों में प्रख्यात है, उसकी ऐसी अपकीर्ति कैसे हुई ॥६३॥ हे राजन्! जीवों का कटुवचन तीक्ष्ण अस्त्र से भी दुःसह होता है, पर कितना बड़ा संकट क्यों न हो, सज्जनों के मुख से कभी भी बुरी बात नहीं निकलती है ॥६४॥ मैं तुम्हें दुष्ट वचन नहीं कह रहा हूँ, केवल प्रासंगिक बात कह रहा हूँ। अतः हे राजेन्द्र! इस राजसभा के भीतर मुझे उत्तर प्रदान करो ॥६५॥ क्योंकि इस सभा में सूर्य, चन्द्र एवं मनु के वंशज विराजमान हैं अतः सभा में सत्य-सत्य कहो, जिससे देवता, पितर लोग सुनें और सत् असत् कहने के अधिकारी राजेन्द्रगण भी सुनें। सन्त लोग सब को समान भाव से देखते हुए कभी भी पक्षपात नहीं करते हैं ॥६६-६७॥ इतना कह कर उस रणभूमि में परशुराम चुप हो गए, अनन्तर बृहस्पति के समान राजा ने कहना आरम्भ किया ॥६८॥

कार्तवीर्य्यार्जुन बोले—हे राम! आप भगवान् के अंश, भगवद्भक्त एवं जितेन्द्रिय हैं और जिनके मुख से मैंने धर्म का श्रवण किया है, तुम उनके गुरु के गुरु हो ॥६९॥ जो कर्म से ब्राह्मण होकर उत्पन्न होता है, ब्रह्म की भावना करता है, अपने धर्म में निरन्तर लगा रहता है तथा शुद्ध है उसे 'ब्राह्मण' कहते हैं ॥७०॥ जो सदैव बाहर-

---

१ ख. °णा वाऽप्यसद्बुद्ध्या क° ।

अन्तर्बहिश्च मननात्कुरुते कर्मनित्यशः । मौनी शश्वद्वदेत्काले यो वै स मुनिरुच्यते ॥७१॥
स्वर्णे लोष्टे गृहेऽरण्ये पंके सुस्निग्धचन्दने। समताभावना यस्य स योगी परिकीर्तितः ॥७२॥
सर्वजीवेषु यो विष्णुं भावयेत्समताधिया। हरौ करोति भक्तिं च हरिभक्तः स च स्मृतः ॥७३॥
तपो धनं ब्राह्मणानां तपः कल्पतरुर्यथा। तपस्या कामधेनुश्च सततं तपसि स्पृहा ॥७४॥
ऐश्वर्ये क्षत्रियाणां च वाणिज्ये च तथा विशाम्। शूद्राणां विप्रसेवैव स्पृहा वेदेष्वनिन्दिता ॥७५॥
क्षत्रियाणां च तपसि स्पृहाऽतीवाप्रशंसिता। ब्राह्मणानां विवादे च स्पृहाऽतीव विनिन्दिता ॥७६॥
रागी राजसिकं कार्यं[1] कुरुते कर्मरागतः । रागान्धो यो राजसिकस्तेन राजा प्रकीर्तितः ॥७७॥
रागतः कामधेनुश्च मया वै याचिता मुने। को दोष एव मे जातः क्षत्रियस्यानुरागिणः ॥७८॥
कुतः कस्य मुनेरस्ति कामधेनुस्त्वया विना। स्पृहा रणे वा भोगे वा युष्माकं च व्यतिक्रमः ॥७९॥
त्रिंशदक्षौहिणीं सेनां राजेन्द्राणां त्रिकोटिकाम्। निहत्याऽऽयान्तमेकं मां न हन्तुं सहनं मुने ॥८०॥
आत्मानं हन्तुमायान्तमपि वेदाङ्गपारगम् । न दोषो हनने तस्य न तेन ब्रह्महाऽभवम् ॥८१॥
प्रायश्चित्तं हिंसकानां न वेदेषु निरूपितम् । वधः समुचितस्तेषामित्याह कमलोद्भवः ॥८२॥

भीतर मनन करते हुए कर्म करता है और सदा मौन रह कर समय पर बोलता है, उसे 'मुनि' कहा जाता है ॥७१॥ सुवर्ण, मिट्टी, घर, वन, कीचड़ और अतिस्निग्ध चन्दन में जिसकी भावना समान रहती है, उसे 'योगी' कहा जा है ॥७२॥ जो समान भाव से विष्णु को सभी जीवों में देखता है और भगवान् में भक्ति करता है, उसे 'हरिभक्त' कहा जाता है ॥७३॥ ब्राह्मणों का धन तप है, जो कल्पवृक्ष की भाँति (समस्त फलदायक) होता है और तपस्या कामधेनु रूप है अतः निरन्तर तप करने की इच्छा ब्राह्मणों की, क्षत्रियों की स्पृहा ऐश्वर्य के प्रति, वैश्यों की इच्छा व्यापार के प्रति और शूद्रों की स्पृहा ब्राह्मणों की सेवा के प्रति वेदों में प्रशंसीय कही गई है ॥७४-७५॥ तप करने की क्षत्रियों की इच्छा अत्यन्त अनुचित है और विवाद करने की ब्राह्मणों की स्पृहा अति निन्दित है ॥७६॥ रागी राग (अनुराग) वश राजस कार्य करता है, और रागान्ध होकर रजोगुण में लिप्त होने के कारण 'राजा' कहलाता है ॥७७॥ हे मुने! मैंने भी राग के वश होकर कामधेनु की याचना की थी। अतः मुझ अनुरागी क्षत्रिय का दोष ही क्या हुआ ॥७८॥ तथा तुमको छोड़कर किस मुनि के पास कामधेनु है। रण या भोग के प्रति तुम्हारी इच्छा व्यतिक्रम (उलटी) है ॥७९॥ हे मुने! तीस अक्षौहिणी सेना और तीन करोड़ राजाओं को मार कर जो एक मुझे मारने आये उसका सहन कैसे किया जाये ॥८०॥ अपने को मारने के लिए कोई वेद का निष्णात विद्वान् ही क्यों न आये, तो उसके मारने में कोई दोष नहीं है, इससे हम ब्रह्मघाती नहीं हैं ॥८१॥ क्योंकि हिंसकों के वध करने पर वेदों में कोई प्रायश्चित्त नहीं बताया गया है, उनका वध करना ही समुचित है, ऐसा ब्रह्मा ने कहा है

---

१ क. स्वर्गं ।

पित्रा ते निहता भूपा महाबलपराक्रमाः। इदानीं राजपुत्राश्च शिशवोऽत्र समागताः ॥८३॥
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां कृत्स्नां कर्तुं महीमिति। त्वया कृता प्रतिज्ञा या तस्यास्त्वं पालनं कुरु ॥८४॥
क्षत्रियाणां रणो धर्मो रणे मृत्युर्न गर्हितः। रणे स्पृहा ब्राह्मणानां लोके वेदे बिडम्बना ॥८५॥
तपोधनानां विप्राणां वाग्बलानां युगे युगे। शान्तिः स्वस्त्ययनं कर्म विप्रधर्मो न संगरः ॥८६॥
क्षत्रियाणां बलं युद्धं व्यापारश्च बलं विशाम्। भिक्षाबलं भिक्षुकाणां शूद्राणां विप्रसेवनम् ॥८७॥
हरौ भक्तिर्हरेर्दास्यं वैष्णवानां बलं हरिः। हिंसा बलं खलानां च तपस्या च तपस्विनाम् ॥८८॥
बलं वेषश्च वेश्यानां योषितां यौवनं बलम्। बलं प्रतापो भूपानां बालानां रोदनं बलम् ॥८९॥
सतां सत्यं बलं मिथ्या बलमेवासतां सदा। अनुगानामनुगमः स्वल्पस्वानां च संचयः ॥९०॥
विद्या बलं पण्डितानां धैर्यं साहसिनां बलम्। शश्वत्कुकर्मशीलानां गाम्भीर्यं साहसं बलम् ॥९१॥
धनं बलं च धनिनां शुचीनां च विशेषतः। बलं विवेकः शान्तानां गुणिनां बलमेकता ॥९२॥
गुणो बलं च गुणिनां चौराणां चौर्यमेव च। प्रियवाक्यं च कापट्यमधर्मः पुंश्चलीबलम् ॥९३॥
हिंसा च हिंस्रजन्तूनां सतीनां पतिसेवनम्। वरशापौ सुराणां च शिष्याणां गुरुसेवनम् ॥९४॥
बलं धर्मो गृहस्थानां भृत्यानां राजसेवनम्। बलं स्तवः स्तावकानां ब्रह्म च ब्रह्मचारिणाम् ॥९५॥
यतीनां च सदाचारो न्यासः संन्यासिनां बलम्। पापं बलं पातकिनामशक्तानां हरिर्बलम् ॥९६॥

तुम्हारे पिता ने महाबलवान् और महापराक्रमी राजाओं का हनन किया है, इस समय उन्हीं के राजकुमार बच्चे ये तुम्हारे सामने आये हैं॥८३॥ अतः तुमने भी इक्कीस बार इस समस्त पृथिवी को निर्भूप करने की जो प्रतिज्ञा की है, उसका पालन करो ॥८४॥ क्षत्रियों का धर्म युद्ध करना है, इसलिए युद्ध में उनकी मृत्यु होना निन्दित नहीं है। और ब्राह्मणों की युद्ध विषयिणी इच्छा भी लोक वेद दोनों में विडम्बना मात्र है॥८५॥ इसलिए तपोधन वाले ब्राह्मणों का, जिनका वाग्बल प्रधान है, प्रत्येक युग में शान्ति समेत स्वस्त्ययन (मांगलिक) कर्म करना ही विप्र-धर्म है, युद्ध करना नहीं॥८६॥ क्षत्रियों का युद्ध बल, वैश्यों का व्यापार बल, भिक्षुक (संन्यासी) का भिक्षा बल शूद्रों का ब्राह्मण-सेवा बल, हरिदास्यों का भगवान् में भक्ति करना बल, वैष्णवों का नारायण बल, दुष्टों का हिंसा बल, तपस्वियों का तप बल, वेश्याओं का वेशभूषा बल, स्त्रियों का यौवन बल, राजाओं का प्रताप बल, बालकों का रोदन बल, सज्जनों का सत्य बल, असज्जनों का सदा मिथ्या कहना बल, अनुगामियों का अनुगमन (पीछे चलना) बल, अल्प धन वालों का संचय बल, पण्डितों का विद्या बल, साहसियों का धैर्य बल, धनिकों और विशेषकर पवित्र रहने वालों का धन बल, शान्त पुरुषों का विवेक बल, गुणियों का एकता बल, गुणीलोगों का गुण बल, चोरों का चोरी बल और पुंश्चली स्त्रियों का कपटपूर्ण प्रिय बोलना तथा अधर्म करना बल है॥८७-९३॥ हिंसक जीवों का हिंसा बल, सती स्त्रियों का पति-सेवा बल, देवों का वरदान और शाप बल, शिष्यों का गुरु-सेवा बल, गृहस्थों का धर्म बल, नौकरों का राज-सेवा बल, स्तुति करने वालों का स्तुति बल, ब्रह्मचारियों का ब्रह्म बल, यतियों का सदाचार बल, संन्यासियों का त्याग बल, पातकियों का पाप बल, असमर्थ लोगों का भगवान् बल हैं॥९४-९६॥ पुण्यात्माओं का पुण्य बल, प्रजाओं का राजा बल,

पुण्यं बलं पुण्यवतां प्रजानां नृपतिर्बलम्। फलं बलं च वृक्षाणां जलजानां जलं बलम्॥९७॥
जलं बलं च सस्यानां मत्स्यानां च जलं बलम्। शान्तिर्बलं च भूपानां विप्राणां च विशेषतः॥९८॥
विप्रः शान्तो रणोद्योगी नैव दृष्टो न च श्रुतः। स्थिते नारायणे देवे[1] बभूवाद्य विपर्ययः॥९९॥
इत्येवमुक्त्वा राजेन्द्रो विरराम रणाजिरे। तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सद्यस्तूष्णीं बभूव ह॥१००॥
रामस्य भ्रातरः सर्वे तीक्ष्णशस्त्रासिपाणयः। आरेभिरे रणं कर्तुं महावीरास्तदाज्ञया॥१०१॥
रणोन्मुखांश्च तान्दृष्ट्वा मत्स्यराजो महाबलः। समारेभे रणं कर्तुं मङ्गलो मङ्गलालयः॥१०२॥
शरजालेन राजेन्द्रो वारयामास तानपि। चिच्छिदुः शरजालं च जमदग्निसुतास्तदा॥१०३॥
राजा चिक्षेप दिव्यास्त्रं शतसूर्यप्रभं मुने। माहेश्वरेण मुनयश्चिच्छिदुश्चैव लीलया॥१०४॥
दिव्यास्त्रेणैव मुनयश्चिच्छिदुः सशरं धनुः। रथं च सारथिं चैव राज्ञः संनाहमेव च॥१०५॥
न्यस्तशस्त्रं नृपं दृष्ट्वा मुनयो हर्षविह्वलाः। दधार शूलिनः शूलं मत्स्यराजजिघांसया॥१०६॥
शूलनिःक्षेपसमये वाग्बभूवाशरीरिणी। शूलं त्यजत विप्रेन्द्राः शिवस्याव्यर्थमेव च॥१०७॥
शिवस्य कवचं दिव्यं दत्तं दुर्वाससा पुरा। मत्स्यराजगलेऽस्त्येतत्सर्वावयवरक्षणम्॥१०८॥

वृक्षों का फल बल, जलोत्पन्नों का जल बल, सस्यों (धान्यों) का जल बल, मत्स्यों का जल बल, राजाओं और विशेषतया ब्राह्मणों का बल शान्ति है॥९७-९८॥ युद्ध के लिए प्रयत्न करने वाला शान्त ब्राह्मण न कहीं देखा गया है और न सुना गया है। नारायण देव के रहते ही ऐसा विपर्यय (उलटा) हो रहा है॥९९॥ उस रणांगण में इतना कहकर वह राजा चुप हो गया और उसकी बातें सुनकर वे भी तुरन्त चुप हो गये॥१००॥ अनन्तर तीक्ष्ण शस्त्र तलवार आदि हाथ में लिए राम के महावीर भ्राताओं ने उनकी आज्ञा से युद्ध करना आरम्भ कर दिया॥१०१॥ महाबली राजेन्द्र मत्स्यराज भी, जो मंगल एवं मंगल निवास रूप हैं, उन्हें रणोन्मुख देखकर युद्ध के लिए तैयार हो गया॥१०२॥ राजेन्द्र ने अपने बाण-जालों द्वारा उन्हें रोक दिया और जमदग्नि के पुत्रों ने भी उसी समय उसके बाण-जाल को काट दिया॥१०३॥ हे मुने! राजा ने सैकड़ों सूर्य के समान कान्तिपूर्ण दिव्यास्त्र का प्रयोग किया, जिसे मुनियों ने माहेश्वर अस्त्र द्वारा लीला की भाँति काट दिया॥१०४॥ अनन्तर मुनियों ने दिव्यास्त्र द्वारा राजा का बाण समेत धनुष, रथ, सारथी और कवच खण्ड-खण्ड करके गिरा दिया॥१०५॥ उस समय राजा को शस्त्र-रहित देखकर मुनिगण बहुत प्रसन्न हुए और मत्स्यराज का हनन करने के लिए उन लोगों ने शंकर का शूल प्रयोग करना चाहा॥१०६॥ उसी बीच जब वे शूल प्रयोग कर रहे थे, आकाश वाणी हुई—हे विप्रेन्द्र! शिव का यह शूल व्यर्थ नहीं जाता है अतः अभी इसका प्रयोग न करो। राजा को पहले समय में दुर्वासा ने दिव्य शिव-कवच प्रदान किया था, जो राजा के गले

---

१ क. विप्रे।

प्राणानां च प्रदातारं कवचं याचतं नृपम्। तदा निक्षिप्तशूलं च जघान नृपतीश्वरम्॥१०९॥
तच्छूलं तं नृपं प्राप्य शतखण्डं गतं मुने। श्रुत्वैवाऽऽकाशवाणीं च शृङ्गी संन्यासवेषकृत्॥११०॥
ययाचे कवचं भूपं जमदग्निसुतो महान्। राजा ददौ च कवचं ब्रह्माण्डविजयं परम्॥१११॥
गृहीत्वा कवचं तच्च शूलेनैव जघान ह। पपात मत्स्यराजश्च शतचन्द्रसमाननः॥
महाबलिष्ठो गुणवांश्चन्द्रवंशसमुद्भवः ॥११२॥

नारद उवाच

शिवस्य कवचं ब्रूहि मत्स्यराजेन यद्धृतम्। नारायण महाभाग श्रोतुं कौतूहलं मम॥११३॥

नारायण उवाच

कवचं शृणु विप्रेन्द्र शंकरस्य महात्मनः। ब्रह्माण्डविजयं नाम सर्वावयवरक्षणम्॥११४॥
पुरा दुर्वाससा दत्तं मत्स्यराजाय धीमते। दत्त्वा षडक्षरं मन्त्रं[1] सर्वपापप्रणाशनम्॥११५॥
स्थिते च कवचे देहे नास्ति मृत्युश्च जीविनाम्। अस्त्रे शस्त्रे जले वह्नौ सिद्धिश्चेन्नास्ति संशयः॥११६॥
यद्धृत्वा पठनाद्बाणः शिवत्वं प्राप लीलया। बभूव शिवतुल्यश्च यद्धृत्वा नन्दिकेश्वरः॥११७॥
वीरश्रेष्ठो वीरभद्रो साम्बोऽभूद्धारणाद्यतः। त्रैलोक्यविजयी राजा हिरण्यकशिपुः स्वयम्॥११८॥

में बँधा है और उसके समस्त अवयव की रक्षा करता है। प्रथम राजा से उस प्राणप्रद कवच को मांग लो, पश्चात् शूल का प्रयोग करो। हे मुने! उन लोगों ने शूल का प्रयोग कर दिया था इसलिए राजा के पास पहुँचकर वह शूल सैकड़ों खण्डों में होकर गिर गया। आकाशवाणी सुनकर जमदग्नि के पुत्र श्रृंगी संन्यासी ने वेष बनाकर राजा से कवच की याचना की। राजा ने ब्रह्माण्डविजय नामक वह कवच सहर्ष प्रदान किया॥१०७-१११॥ अनन्तर कवच लेकर उन्होंने शूल का प्रयोग किया, जिससे आहत होकर मत्स्यराज गिर गया, जो सैकड़ों चन्द्रों के समान मुख, वाला, महाबली, गुणवान् एवं चन्द्रवंश में उत्पन्न था॥११२॥

नारद बोले—हे नारायण! हे महाभाग! मत्स्यराज ने शिव का जो कवच धारण किया था, वह मुझे बताने की कृपा करें, उसे सुनने का मुझे कौतूहल है॥११३॥

नारायण बोले—हे विप्रेन्द्र! महात्मा शिव का ब्रह्माण्ड बिजय नामक कवच जो समस्त शरीर के अंगों की रक्षा करता है, तुम्हें बता रहा हूँ,सुनो। पहले समय में दुर्वासा ने विद्वान् मत्स्यराज को प्रथम षडक्षर मंत्र प्रदान किया था, जो समस्त पापों का नाश करता है॥११४-११५॥ देह में कवच के रहते हुए प्राणियों की मृत्यु नहीं हो सकती है, अस्त्र, शस्त्र, जल, अग्नि भी उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकते हैं, इसमें संशय नहीं॥११६॥ जिसे धारण कर पाठ करने से बाणासुर ने लीला की भांति शिवत्व प्राप्त किया, नन्दिकेश्वर शिव के समान हो गये, साम्ब वीरों में श्रेष्ठ तथा महावीर हुए तथा जिसे धारण कर स्वयं राजा हिरण्यकशिपु तीनों लोकों का विजेता हुआ॥११७-११८॥

---

१. क. ओं नमः शिवायेति च।

हिरण्याक्षश्च विजयो चाभवद्धारणाद्धि सः। यद्धृत्वा पठनात्सिद्धो दुर्वासा विश्वपूजितः ॥११९॥
जैगीषव्यो महायोगी पठनाद्धारणाद्यतः। यद्धृत्वा वामदेवश्च देवलः पवनः स्वयम्
अगस्त्यश्च पुलस्त्यश्चाप्यभवद्विश्वपूजितः ॥१२०॥
ॐ नमः शिवायेति च मस्तकं मे सदाऽवतु। ॐ नमः शिवायेति च स्वाहा भालं सदाऽवतु ॥१२१॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं शिवायेति स्वाहा नेत्रे सदाऽवतु। ॐ ह्रीं क्लीं हूं शिवायेति नमो मे पातु नासिकाम् ॥१२२॥
ॐ नमः शिवाय शान्ताय स्वाहा कण्ठं सदाऽवतु। ॐ ह्रीं श्रीं हूं संहारकर्त्रे स्वाहा कर्णौ सदाऽवतु ॥१२३॥
ॐ ह्रीं श्रीं पञ्चवक्त्राय स्वाहा दन्तं सदाऽवतु। ॐ ह्रीं महेशाय स्वाहा चाधरं पातु मे सदा ॥१२४॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं त्रिनेत्राय स्वाहा केशान्सदाऽवतु। ॐ ह्रीं ऐं महादेवाय स्वाहा वक्षः सदाऽवतु ॥१२५॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं मे रुद्राय स्वाहा नाभिं सदाऽवतु। ॐ ह्रीं मैं श्रीमीश्वराय स्वाहा पृष्ठं सदाऽवतु ॥१२६॥
ॐ ह्रीं क्लीं मृत्युंजयाय स्वाहा भ्रुवौ सदाऽवतु। ॐ ह्रीं श्रींक्लीमीशानाय स्वाहा पार्श्वं सदाऽवतु ॥१२७॥
ॐ ह्रीमीश्वराय स्वाहा चोदरं पातु मे सदा। ॐ श्रीं ह्रीं मृत्युंजयाय स्वाहा बाहू सदाऽवतु ॥१२८॥
ॐ ह्रीं श्रीं [1]क्लीमीश्वराय स्वाहा पातु करौ मम। ॐ महेश्वराय रुद्राय नितम्बं पातु मे सदा ॥१२९॥
ॐ ह्रीं श्रीं भूतनाथाय स्वाहा पादौ सदाऽवतु। ॐ सर्वेश्वराय शर्वाय स्वाहा पादौ सदाऽवतु ॥१३०॥

जिसके धारण से हिरण्याक्ष विजयी हुआ, जिसके पाठ करने से दुर्वासा सिद्ध और विश्वपूजित हुए ॥११९॥ जिसे पढ़ने और धारण करने से जैगीषव्य महायोगी हुए तथा वामदेव, देवल, स्वयं पवन देव, अगस्त्य और पुलस्त्य विश्वपूजित हुए हैं ॥१२०॥ 'ओं नमः शिवाय' मेरे मस्तक की रक्षा करे, 'ओं नमः शिवाय स्वाहा' सदा भाल की रक्षा करे ॥१२१॥ 'ओं ह्रीं श्रीं क्लीं शिवाय स्वाहा' नेत्र युगल की रक्षा करे। 'ओं ह्रीं क्लीं हूं शिवाय नमः' मेरी नासिका की रक्षा करे ॥१२२॥ 'ओं नमः शिवाय शान्ताय स्वाहा' सदा कण्ठ की रक्षा करे, 'ओं ह्रीं श्रीं हूं संहारकर्त्रे स्वाहा' दोनों कानों की रक्षा करे ॥१२३॥ 'ओं ह्रीं श्रीं पञ्चवक्त्राय स्वाहा' सदा दाँतों की रक्षा करे, 'ओं ह्रीं महेशाय स्वाहा' सदा मेरे अधर की रक्षा करे ॥१२४॥ 'ओं ह्रीं श्रीं क्लीं त्रिनेत्राय स्वाहा' सदा केशों की रक्षा करे। 'ओं ह्रीं ऐं महादेवाय स्वाहा' सदा वक्षःस्थल की रक्षा करे ॥१२५॥ 'ओं ह्रीं श्रीं क्लीं रुद्राय स्वाहा' मेरी नाभि की रक्षा करे। 'ओं ह्रीं ऐं श्रीं ईश्वराय स्वाहा' मेरे पृष्ठ की रक्षा करे ॥१२६॥ 'ओं ह्रीं क्लीं मृत्युञ्जयाय स्वाहा' सदा भौंहों की रक्षा करे। 'ओं ह्रीं श्रीं ह्रीं ईशानाय स्वाहा' सदा पार्श्व भाग की रक्षा करे ॥१२७॥ 'ओं ह्रीं ईश्वराय स्वाहा' उदर की रक्षा करे। 'ओं श्रीं क्लीं मृत्युञ्जयाय स्वाहा' सदा बाहुओं की रक्षा करे ॥१२८॥ 'ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ईश्वराय स्वाहा' मेरे हाथों की रक्षा करे'। 'ओं महेश्वराय रुद्राय' नितम्ब की सदा रक्षा करे ॥१२९॥ 'ओं ह्रीं श्रीं भूतनाथाय स्वाहा' चरण की रक्षा करे'। 'ओं सर्वेश्वराय सर्वाय स्वाहा' चरणों की रक्षा करे ॥१३०॥ पूर्व दिशा में भूतेश, अग्निकोण में शंकर, दक्षिण

---

१. क. ०मीशानाय।

प्राच्यां मां पातु भूतेश आग्नेय्यां पातु शंकरः। दक्षिणे पातु मां रुद्रो नैर्ऋत्यां स्थाणुरेव च ॥१३१॥
पश्चिमे खण्डपरशुर्वायव्यां चन्द्रशेखरः। उत्तरे गिरिशः पातु चैशान्यामीश्वरः स्वयम् ॥१३२॥
ऊर्ध्वे मृडः सदा पातु चाधो मृत्युंजयः स्वयम्। जले स्थले चान्तरिक्षे स्वप्ने जागरणे सदा ॥१३३॥
पिनाकी पातु मां प्रीत्या भक्तं वै भक्तवत्सलः। इति ते कथितं वत्स कवचं परमाद्भुतम् ॥१३४॥
दशलक्षजपेनैव सिद्धिर्भवति निश्चितम्। यदि स्यात्सिद्धकवचो रुद्रतुल्यो भवेद्ध्रुवम् ॥१३५॥
तव स्नेहान्मयाऽऽख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचित्। कवचं काण्वशाखोक्तमतिगोप्यं सुदुर्लभम् ॥१३६॥
अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च। सर्वाणि कवचस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥१३७॥
कवचस्य प्रसादेन जीवन्मुक्तो भवेन्नरः। सर्वज्ञः सर्वसिद्धेशो मनोयायी भवेद्ध्रुवम् ॥१३८॥
इदं कवचमज्ञात्वा भजेद्यः शंकरप्रभुम्। शतलक्षं प्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥१३९॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० शंकरकवचकथन
नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥

में रुद्र, और नैर्ऋत्य में स्थाणु मेरी रक्षा करें॥१३१॥ पश्चिम में खण्डपरशु, वायव्य में चन्द्रशेखर, उत्तर में गिरीश, ईशान में स्वयं ईश्वर रक्षा करें॥१३२॥ ऊपर की ओर मृड, नीचे स्वयं मृत्युञ्जय और जल, स्थल, अन्तरिक्ष, शयन, जागरण में मुझ भक्त की भक्तवत्सल पिनाकी प्रेम से रक्षा करें। हे वत्स! इस भाँति मैंने तुम्हें परम अद्भुत कवच बता दिया॥१३३-१३४॥ दश लाख जप करने से इसकी निश्चित सिद्धि होती हैं। यदि सिद्धकवच हो जाये तो निश्चित ही रुद्र के समान हो जाता है॥१३५॥ स्नेहवश मैंने यह कवच तुम्हें बता दिया है, किसी से कहना नहीं। काण्वशाखोक्त यह कवच अति गोप्य और अति दुर्लभ है॥१३६॥ सहस्र अश्वमेध, सौ राजसूय आदि सभी यज्ञ इस कवच की सोलहवीं कला के भी समान नहीं हैं॥१३७॥ इस कवच के प्रसाद से मनुष्य जीवन्मुक्त, सर्वज्ञाता, समस्त सिद्धियों का ईश तथा मन के समान वेगगामी होता है॥१३८॥ इस कवच को बिना जाने जो प्रभु शंकर की सेवा करता है, सौ लाख जप करने पर भी उसका मंत्र सिद्धिप्रद नहीं होता है॥१३९॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण-संवाद में
शंकरकवचकथन नामक पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त॥ ३५॥

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

मत्स्यराजे निपतिते राजा युद्धविशारदः। राजेन्द्रान्प्रेषयामास युद्धशास्त्रविशारदान्॥१॥
बृहद्बलं सोमदत्तं विदर्भं मिथिलेश्वरम्। निषधाधिपतिं चैव मगधाधिपतिं तथा॥२॥
आययुः समरे योद्धुं जामदग्न्यं महारथाः। त्रितयाक्षौहिणीभिश्च सेनाभिः सह नारद॥३॥
रामस्य भ्रातरः सर्वे वीरास्तीक्ष्णास्त्रपाणयः। वारयामासुरस्त्रैश्च तानेव रणमूर्धनि॥४॥
ते वीराः शरजालेन दिव्यास्त्रेण प्रयत्नतः। वारयामासुरेकैकं भ्रातृवर्गान्भृगोस्तथा॥५॥
आययौ समरे शीघ्रं दृष्ट्वा तांश्च पराजितान्। पिनाकहस्तः स भृगुर्ज्वलदग्निशिखोपमः॥६॥
चिक्षेप नागपाशं च जामदग्न्यो महाबलः। चिच्छेद तं गारुडेन सोमदत्तो महाबलः॥७॥
भृगुः शंकरशूलेन सोमदत्तं जघान ह। बृहद्बलं च गदया विदर्भं मुष्टिभिस्तथा॥८॥
मैथिलं मुद्गरेणैव शक्त्या वै नैषधं तथा। मागधं चरणोद्घातैरस्त्रजालेन सैनिकान्॥९॥
निहत्य निखिलान्भूपान्संहाराग्निसमो रणे। दुद्राव कार्तवीर्यं च जामदग्न्यो महाबलः॥१०॥
दृष्ट्वा तं योद्धुमायान्तं राजानश्च महारथाः। आययुः समरं कर्तुं कार्तवीर्यं निवार्य च॥११॥

अध्याय ३६

नारायण बोले—हे नारद ! मत्स्यराज के मारे जाने पर युद्धनिपुण राजा ने युद्धशास्त्र में पारंगत राजेन्द्रों—बृहद्बल, सोमदत्त, विदर्भ, मिथिलेश्वर, निषधेश्वर तथा मगधेश्वर को भेजा। नारद! तीन अक्षौहिणी सेना लेकर उन लोगों ने जमदग्नि-पुत्र के साथ युद्ध करने के लिए आये॥१-३॥ तीक्ष्ण अस्त्र हाथों में लिए राम के सभी वीर भ्राताओं ने रणक्षेत्र में अपने अस्त्रों द्वारा उन्हें रोक दिया॥४॥ उन वीरों ने भी बाण-समूह और दिव्य अस्त्रों द्वारा भृगु के भ्राताओं को क्रमशः एक-एक करके रोक दिया॥५॥ भ्राताओं को पराजित देखकर भृगु स्वयं हाथ में पिनाक धनुष लिए प्रज्वलित अग्नि-शिखा की भाँति देदीप्यमान होते हुए रणभूमि में आ गये॥६॥ अनन्तर महाबली राम ने नागपाश का प्रयोग किया। महाबलवान् सोमदत्त ने उसे गरुडास्त्र से काट दिया॥७॥ अनन्तर भृगु ने शंकर-शूल द्वारा सोमदत्त का हनन कर दिया। उसी भाँति गदा से बृहद्बल का, मुष्टियों से विदर्भ का, मुद्गर से मैथिल का, शक्ति से नैषध का, चरण-प्रहार से मगधेश्वर का तथा अस्त्रों के समूह से सैनिकों का वध किया॥८-९॥ रण में संहाराग्नि की भाँति महाबली राम ने समस्त भूपों को मार कर कार्त्तवीर्य की ओर दौड़े॥१०॥ महारथी राजाओं ने भृगु को युद्ध करने के लिए आते हुए देख कर कार्त्तवीर्य को हटाकर स्वयं युद्ध करना आरम्भ किया॥११॥ उनमें सौ कान्यकुब्ज, सौ सौराष्ट्र, सौ राष्ट्रीय, सौ

कान्यकुब्जाश्च शतशः सौराष्ट्राः शतशस्तथा। राष्ट्रीयाः शतशश्चैव वीरेन्द्राः शतशस्तथा ॥१२॥
सौम्या[1] वाङ्गाश्च शतशो महाराष्ट्रास्तथा दश। तथा गुर्जरजातीयाः कलिङ्गाः शतशस्तथा ॥१३॥
कृत्वा ते शरजालं च [2]भृगुं चिच्छिदुरेव च। तं छित्वाऽभ्युत्थितो रामो नीहारमिव भास्करः ॥१४॥
त्रिरात्रं युयुधे रामस्तैः सार्धं समराजिरे। द्वादशाक्षौहिणीं सेनां तथा चिच्छेद पर्शुना ॥१५॥
रम्भास्तम्भसमूहं च यथा खड्गेन लीलया। छित्त्वा सेनां भूपवर्गं जघान शिवशूलतः ॥१६॥
सर्वांस्तान्निहतान्दृष्ट्वा सूर्यवंशसमुद्भवः। आजगाम सुचन्द्रश्च लक्षराजेन्द्रसंयुतः ॥१७॥
द्वादशाक्षौहिणीभिश्च सेनाभिः सह संयुगे। कोपेन युयुधे रामं सिंहं सिंहो यथा रणे ॥१८॥
भृगुः शंकरशूलेन नृपलक्षं निहत्य च। द्वादशाक्षौहिणीं सेनामहन्वै पर्शुना बली ॥१९॥
निहत्य सर्वाः सेनाश्च सुचन्द्रं युयुधे बली। नागास्त्रं प्रेरयामास निर्हन्तुं तं भृगुः स्वयम् ॥२०॥
नागपाशं च चिच्छेद गारुडेन नृपेश्वरः। जहास च भृगुं राजा समरे च पुनः पुनः ॥२१॥
भृगुर्नारायणास्त्रं च चिक्षेप रणमूर्धनि। अस्त्रं ययौ तं निहन्तुं शतसूर्यसमप्रभम् ॥२२॥
दृष्ट्वाऽस्त्रं नृपशार्दूलश्चावरुह्य रथात्क्षणात्। न्यस्तशस्त्रः प्राणमच्च स्तुत्वा नारायणं शिवम् ॥२३॥
तमेव प्रणतं त्यक्त्वा ययौ नारायणान्तिकम्। अस्त्रराजो भगवतो रामः संप्राप विस्मयम् ॥२४॥

वीरेन्द्र (प्रधानवीर) सौ सौम्य, सौ बंगाल के, दस सौ महाराष्ट्र के, सौ गुजरात एवं कलिंग देश के राजा थे ॥१२-१३॥ उन लोगों ने बाणों का जाल बनाकर परशुराम को छाप लिया, किन्तु राम उसे काट कर, कुहासे को काटकर निकलते हुए सूर्य की भाँति ऊपर उठ गये ॥१४॥ समरांगण में राम ने उन राजाओं के साथ तीन रात्रि तक युद्ध किया—फरसे से बारह अक्षौहिणी सेना को काट डाला। कदली के स्तम्भ-समूह को खड्ग से काटने की भांति उन्होंने सैनिकों को लीलापूर्वक काटने के उपरान्त शिवशूल द्वारा राजाओं के समूह को मार डाला ॥१५-१६॥ उन सबको निहत देखकर राजा सुचन्द्र, जो सूर्यवंश में उत्पन्न था, एक लाख राजाओं को साथ लेकर वहाँ युद्ध करने के लिए आ गया ॥१७॥ युद्ध में राजा के साथ बारह अक्षौहिणी सेना थी। सिंह के ऊपर सिंह के आक्रमण करने की भाँति राम ने उस रण में क्रुद्ध होकर युद्ध किया ॥१८॥ बलवान् भृगु ने शंकर के शूल से राजा के एक लाख राजाओं को मारकर उनकी बारह अक्षौहिणी सेना को भी फरसे से काटकर गिरा दिया ॥१९॥ सेनाओं को मारने के अनन्तर उन्होंने सुचन्द्र से युद्ध करना आरम्भ किया। बली भृगु ने स्वयं उसके ऊपर नागास्त्र का प्रयोग किया, जिसे उस नृपेश्वर ने गारुड अस्त्र से काट दिया। और उस युद्ध में वह राजा भृगु का बार-बार उपहास करने लगा ॥२०-२१॥ यह देखकर भृगु ने रणस्थल में उस पर नारायणास्त्र का प्रयोग किया, जो सैकड़ों सूर्य के समान कान्ति पूर्ण था ॥२२॥ वह राजसिंह उस अस्त्र को आते हुए देख कर उसी क्षण से रथ से उतरकर भूमि पर खड़ा हो गया और शस्त्ररहित होकर नारायण और शिव की स्तुतिपूर्वक उसने उसे प्रणाम किया ॥२३॥ उसे प्रणत देख कर वह अस्त्रराज राजा को छोड़ कर नारायण के समीप चला गया। इसे देख राम को अति आश्चर्य

१क० सौवीराङ्गा०। २ख० भृगुश्चिच्छेद तत्क्षणम्।

भृगुः शक्तिं च मुसलं तोमरं पट्टिशं तथा। गदां परशुं च कोपेन चिक्षिपे तज्जिघांसया ॥२५॥
जग्राह काली तान्सर्वान्सुचन्द्रस्यन्दनस्थिता। चिक्षेप शिवशूलं स नृपमाल्यं बभूव सः ॥२६॥
ददर्श पुरतो रामो भद्रकालीं जगत्प्रसूम्। वहन्तीं मुण्डमालां च विकटास्यां भयंकरीम् ॥२७॥
विहाय शस्त्रमस्त्रं च पिनाकं च भृगुस्तदा। तुष्टाव तां महामायां भक्तिनम्रात्मकंधरः २८॥

परशुराम उवाच

नमः शंकरकान्तायै सारायै ते नमो नमः। नमो दुर्गतिनाशिन्यै मायायै ते नमो नमः ॥२९॥
नमो नमो जगद्धात्र्यै जगत्कर्त्र्यै नमो नमः। नमोऽस्तु ते जगन्मात्रे कारणायै नमो नमः ॥३०॥
प्रसीद जगतां मातः सृष्टिसंहारकारिणि। त्वत्पादौ शरणं यामि प्रतिज्ञां सार्थिकां कुरु ॥३१॥
त्वयि मे विमुखायाञ्च को मां रक्षितुमीश्वरः। त्वं प्रसन्ना भव शुभे मां भक्तं भक्तवत्सले ॥३२॥
युष्माभिः शिवलोके च मह्यं दत्तो वरः पुरा। तं वरं सफलं कर्तुं त्वमर्हसि वरानने ॥३३॥
रैणुकेयस्तवं श्रुत्वा प्रसन्नाऽभवदम्बिका। मा भैरित्येवमुक्त्वा तु तत्रैवान्तरधीयत ॥३४॥
एतद्भृगुकृतं स्तोत्रं भक्तियुक्तश्च यः पठेत्। महाभयात्समुत्तीर्णः स भवेदेव लीलया ॥३५॥
स पूजितश्च त्रैलोक्ये तत्रैव विजयी भवेत्। ज्ञातिश्रेष्ठो भवेच्चैव वैरिपक्षविमर्दकः ॥३६॥
एतस्मिन्नतरे ब्रह्मा भृगुं धर्मभृतां वरम्। आगत्य कथयामास रहस्यं राममेव च ॥३७॥

हुआ ॥२४॥ अनन्तर भृगु ने क्रुद्ध होकर उसका हनन करने के लिए शक्ति, मूसल, तोमर, पट्टिश, गदा और फरसे का प्रयोग किया, किन्तु सुचन्द्र के रथ पर स्थित काली ने उन सबको पकड़ लिया। राम ने शिव-शूल का प्रयोग किया, वह राजा के पास पहुँच कर उनके कण्ठ की माला हो गया ॥२५-२६॥ अनन्तर राम ने जगज्जननी काली को देखा, जो मुण्डमाला धारण किये विकट मुख एवं भीषण रूप वाली थीं ॥२७॥ भृगु ने तुरन्त शस्त्र, अस्त्र और पिनाक को अलग रख कर भक्ति से कन्धे झुकाये हुए, उस महामाया की स्तुति करना आरम्भ किया ॥२८॥

परशुराम बोले—शंकर की कान्ता को नमस्कार है, सारभाग रूप को बार-बार नमस्कार है, दुर्गति-नाशिनी को नमस्कार है, महामाया को बार-बार नमस्कार है ॥२९॥ जगत् की धात्री को नमस्कार है, जगत् का निर्माण करने वाली को नमस्कार है। जगत् की माता को नमस्कार है और कारण रूप आपको बार-बार नमस्कार है ॥३०॥ हे सृष्टि का संहार करने वाली जगत् की माता ! प्रसन्न हो जाओ, मैं तुम्हारे चरण की शरण में हूँ, मेरी प्रतिज्ञा सफल करो ॥३१॥ तुम्हारे विमुख रहने पर मुझे रक्षित रखने में कौन समर्थ हो सकता है। अतहे: शुभे ! हे भक्तवत्सले ! मुझ भक्त पर तुम प्रसन्न हो जाओ ॥३२॥ हे वरानने ! पूर्व समय तुम लोगों ने शिव-लोक में मुझे वरदान दिया था, उसे सफल करने की कृपा करो ॥३३॥ उपरान्त रेणुका-पुत्र राम की ऐसी स्तुति सुन कर अम्बिका देवी प्रसन्न हो गयीं। 'मत डरो' ऐसी आकाशवाणी हुई और वे उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गयीं ॥३४॥ भृगुरचित इस स्तोत्र का जो भक्तिपूर्वक पाठ करेगा वह महान् भय से लीला पूर्वक पार हो जायगा ॥३५॥ वह तीनों लोक में पूजित एवं विजयी होगा, ज्ञानियों में श्रेष्ठ और शत्रुदल का मर्दन करेगा ॥३६॥ इसी बीच धार्मिकश्रेष्ठ भृगु के समीप ब्रह्मा आये और उनसे समस्त रहस्य बताया ॥३७॥

ब्रह्मोवाच

शृणु राम महाभाग रहस्यं पूर्वमेव च। सुचन्द्रजयहेतुं च प्रतिज्ञासार्थकाय च ॥३८॥
दशाक्षरी महाविद्या दत्ता दुर्वाससा पुरा। सुचन्द्रायैव कवचं भद्रकाल्या सुदुर्लभम् ॥३९॥
कवचं भद्रकाल्याश्च देवानां च सुदुर्लभम्। कवचं तद्गले यस्य सर्वशत्रुविमर्दकम् ॥४०॥
अतीव पूज्यं शस्तं च त्रैलोक्यजयकारणम्। तस्मिन्स्थिते च कवचे कस्त्वं जेतुमलं भुवि ॥४१॥
भृगुर्गच्छतु भिक्षार्थं करोतु प्रार्थनां नृपम्। सूर्यवंशोद्भवो राजा दाता परमधार्मिकः ॥४२॥
प्राणांश्च कवचं मन्त्रं सर्वं दास्यति निश्चितम् ॥४३॥
भृगुः संन्यासिवेषेण गत्वा राजान्तिकं मुने। भिक्षां चकार मन्त्रं च कवचं परमाद्भुतम् ॥४४॥
राजा ददौ च तन्मन्त्रं कवचं परमादरात्। ततः शंकरशूलेन तं जघान नृपं भृगुः ॥४५॥
इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० भृगुकार्तवीर्ययुद्धवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

नारद उवाच

कवचं श्रोतुमिच्छामि तां च विद्यां दशाक्षरीम्। नाथ त्वत्तो हि सर्वज्ञ भद्रकाल्याश्च सांप्रतम् ॥१॥

ब्रह्मा बोले—हे महाभाग ! हे राम ! मैं तुम्हें पहले का एक रहस्य बता रहा हूँ, जो सुचन्द्र को जीतने का कारण है एवं प्रतिज्ञा को सफल करेगा, सुनो। पूर्वकाल में दुर्वासा ने दश अक्षर की महाविद्या और भद्रकाली का अति दुर्लभ कवच सुचन्द्र को प्रदान किया था ॥३८-३९॥ भद्रकाली का कवच देवों के लिए भी अति दुर्लभ है। समस्त शत्रुओं का मर्दन करने वाला वह कवच, जो त्रैलोक्य में अत्यन्त पूजित, प्रशस्त और तीनों लोकों के विजय का कारण है, जिसके गले में बँधा रहेगा, उस तुमको भूतल में जीतने के लिए भला कौन समर्थ हो सकता है ? ॥४०-४१॥ अतः हे भृगो ! उसे राजा से मांगने के लिए तुम जाओ और उसकी प्रार्थना करो। राजा सूर्य वंश में उत्पन्न, दाता और परम धार्मिक है। वह प्राण, कवच और मंत्र आदि सब कुछ तुम्हें निश्चित दे देगा ॥४२-४३॥ हे मुने ! भृगु ने संन्यासी के वेष में राजा के पास जाकर मंत्र एवं परमाद्भुत कवच की याचना की ॥४४॥ राजा ने परम आदर-पूर्वक उन्हें मन्त्र समेत कवच प्रदान किया। जिससे भृगु ने शिव शूल द्वारा उस राजा को मार दिया ॥४५॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में भृगुकार्त्तवीर्य्य-युद्धवर्णन नामक छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३६॥

अध्याय ३७

नारद बोले—हे नाथ ! हे सर्वज्ञ ! मैं इस समय भद्रकाली का कवच और वह दशाक्षरी विद्या आपसे जानना चाहता हूँ, बताने की कृपा करें ॥१॥

नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि महाविद्यां दशाक्षरीम्। गोपनीयं च कवचं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्॥२॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहेति च दशाक्षरीम्। दुर्वासा हि ददौ राज्ञे पुष्करे सूर्यपर्वणि॥३॥
दशलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिः कृता पुरा। पञ्चलक्षजपेनैव पठन्कवचमुत्तमम्॥४॥
बभूव सिद्धकवचोऽप्ययोध्यामाजगाम सः। कृत्स्नां हि पृथिवीं जिग्ये कवचस्य प्रसादतः॥५॥

नारद उवाच

श्रुता दशाक्षरी विद्या त्रिषु लोकेषु दुर्लभा। अधुना श्रोतुमिच्छामि कवचं ब्रूहि मे प्रभो॥६॥

नारायण उवाच

शृणु वक्ष्यामि विप्रेन्द्र कवचं परमाद्भुतम्। नारायणेन यद्दत्तं कृपया शूलिने पुरा॥७॥
त्रिपुरस्य वधे घोरे शिवस्य विजयाय च। तदेव शूलिना दत्तं पुरा दुर्वाससे मुने॥८॥
दुर्वाससा च यद्दत्तं सुचन्द्राय महात्मने। अतिगुह्यतरं तत्त्वं सर्वमन्त्रौघविग्रहम्॥९॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहा मे पातु मस्तकम्। क्लीं कपालं सदा पातु ह्रीं ह्रीं ह्रीमिति लोचने॥१०॥
ॐ ह्रीं त्रिलोचने स्वाहा नासिकां मे सदाऽवतु। क्लीं कालिके रक्ष स्वाहा दन्तान्सदाऽवतु॥११॥
क्लीं भद्रकालिके स्वाहा पातु मेऽधरयुग्मकम्। ॐ ह्रीं ह्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहा कण्ठं सदाऽवतु॥१२॥

नारायण बोले—हे नारद! मैं तुम्हें दशाक्षरी विद्या तथा वह गोपनीय कवच, जो तीनों लोकों में दुर्लभ है, बता रहा हूँ, सुनो॥२॥

'ओं ह्रीं श्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहा' यही दशाक्षरी विद्या है, जिसे सूर्यग्रहण के समय पुष्कर में दुर्वासा ने राजा को प्रदान किया था॥३॥ दश लाख जप करके उन्होंने पूर्वकाल में इस मंत्र की सिद्धि प्राप्त की थी और पाँच लाख जप करके पाठ करते हुए परमोत्तम कवच को सिद्ध किया था॥४॥ सिद्धकवच होने पर वे अयोध्या आये थे और इसी कवच के प्रभाव से समस्त पृथ्वी पर विजय प्राप्त किया था॥५॥

नारद बोले—हे प्रभो! मैं तीनों लोकों में दुर्लभ दशाक्षरी विद्या सुन ली, किन्तु अब कवच सुनना चाहता हूँ, अतः उसे कहने की कृपा करें॥६॥

नारायण बोले—हे विप्रेन्द्र! मैं तुम्हें वह परम अद्भुत कवच बता रहा हूँ, जिसे पूर्व समय नारायण ने कृपया शिव को दिया था॥७॥ उसी से त्रिपुरासुर का घोर वध होने से उनका विजय हुआ था। हे मुने! उसे ही पूर्व काल में शिव ने दुर्वासा को दिया था॥८॥ और दुर्वासा ने महात्मा सुचन्द्र को दिया है, जो अत्यन्त गुप्ततर तथा तत्त्व समेत समस्त मंत्रों का शरीरस्वरूप है॥९॥ 'ओं ह्रीं श्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहा' मेरे मस्तक की रक्षा करे, 'क्लीं' कपाल की रक्षा और 'ह्रीं ह्रीं ह्रीं' दोनों नेत्रों की रक्षा करें॥१०॥ 'ओं ह्रीं त्रिलोचने स्वाहा' सदा मेरी नासिका की रक्षा करे, 'क्लीं कालिके रक्ष रक्ष स्वाहा' सदा दाँतों की रक्षा करे॥११॥ 'क्लीं भद्रकालिके स्वाहा' मेरे दोनों ओंठों की रक्षा करे, 'ओं ह्रीं ह्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहा' सदा कण्ठ की रक्षा करे॥१२॥ 'ओं ह्रीं कालिकायै

ॐ ह्रीं कालिकायै स्वाहा कर्णयुग्मं सदाऽवतु। ॐ क्रीं क्रीं क्लीं काल्यै स्वाहा स्कन्धं पातु सदा मम ॥१३॥
ॐ क्रीं भद्रकाल्यै स्वाहा मम वक्षः सदाऽवतु। ॐ क्लीं कालिकायै स्वाहा मम नाभिं सदाऽवतु ॥१४॥
ॐ ह्रीं कालिकायै स्वाहा मम पृष्ठं सदाऽवतु। रक्तबीजविनाशिन्यै[1] स्वाहा हस्तौ[1] सदाऽवतु ॥१५॥
ॐ ह्रीं क्लीं मुण्डमालिन्यै स्वाहा पादौ सदाऽवतु। ॐ ह्रीं चामुण्डायै स्वाहा सर्वाङ्गं मे सदाऽवतु ॥१६॥
प्राच्यां पातु महाकाली[2] चाग्नेय्यां रक्तदन्तिका। दक्षिणे पातु चामुण्डा नैर्ऋत्यां पातु कालिका ॥१७॥
श्यामा च वारुणे पातु वायव्यां पातु चण्डिका। उत्तरे विकटास्या चाप्यैशान्यां साट्टहासिनी ॥१८॥
पातूर्ध्वं लोलजिह्वा सा मायाद्या पात्वधः सदा। जले स्थले चान्तरिक्षे पातु विश्वप्रसूः सदा ॥१९॥
इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम्। सर्वेषां कवचानां च सारभूतं परात्परम् ॥२०॥
सप्तद्वीपेश्वरो राजा [3]सुचन्द्रोऽस्य प्रसादतः। कवचस्य प्रसादेन मान्धाता पृथिवीपतिः ॥२१॥
प्रचेता लोमशश्चैव यतः सिद्धो बभूव ह। यतो हि योगिनां श्रेष्ठः सौभरिः पिप्पलायनः ॥२२॥
यदि स्यात्सिद्धकवचः सर्वसिद्धेश्वरो भवेत्। महादानानि सर्वाणि तपांस्येवं व्रतानि च॥
निश्चितं कवचस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥२३॥

स्वाहा' सदा दोनों कानों की रक्षा करें। 'ओं क्रीं क्रीं क्लीं काल्यै स्वाहा' मेरे कन्धों की रक्षा करे ॥१३॥ 'ओं क्रीं भद्रकाल्यै स्वाहा' सदा मेरे वक्षःस्थल की रक्षा करे, 'ओं क्लीं कालिकायै स्वाहा' सदा मेरी नाभि की रक्षा करे ॥१४॥ 'ओं ह्रीं कालिकायै स्वाहा' मेरे पृष्ठ की रक्षा करे, 'रक्तबीजनाशिन्यै स्वाहा' सदा हाथों की रक्षा करे ॥१५॥ 'ओं ह्रीं क्लीं मुण्डमालिन्यै स्वाहा' सदा चरणों की रक्षा करे, 'ओं ह्रीं चामुण्डायै स्वाहा' सदा मेरे सर्वांग की रक्षा करे ॥१६॥ पूर्व में महाकाली, अग्निकोण में रक्तदन्तिका, दक्षिण में चामुण्डा, नैर्ऋत्य में कालिका, पश्चिम में श्यामा, वायव्य में चण्डिका, उत्तर में विकटास्या (विकट मुख वाली) और ईशान में अट्टहासिनी रक्षा करें ॥१७-१८॥ ऊपर की ओर लोलजिह्वा रक्षा करें, नीचे की ओर मायाद्या और जल, स्थल एवं अन्तरिक्ष (आकाश) में विश्वप्रसू (जगज्जननी) रक्षा करें ॥१९॥ हे वत्स! इस प्रकार मैंने तुम्हें यह कवच बता दिया, जो समस्त मन्त्र-समुदाय का शरीर, सभी कवचों का सारभाग एवं परात्पर है ॥२०॥ इसी के प्रभाव से राजा सुचन्द्र सातों द्वीपों के अधीश्वर एवं मान्धाता पृथ्वीपति हुए ॥२१॥ प्रचेता और लोमश मुनि भी इसी कारण सिद्ध हुए और सौभरि एवं पिप्पलायन योगियों में श्रेष्ठ हुए ॥२२॥ यदि कोई सिद्धकवच हो जाता है, तो वह समस्त सिद्धियों का अधीश्वर होता है। समस्त महादान, तप और व्रत इस कवच की सोलहवीं कला के समान भी नहीं हैं ॥२३॥

१क गुह्यं स०। २क. भद्रका०। ३क. सुरथो।

इदं कवचमज्ञात्वा भजेत्कालीं जगत्प्रसूम्। शतलक्षं प्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥२४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० भद्रकालीकवचनिरूपणं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥

अथाष्टत्रिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

सुचन्द्रे पतिते ब्रह्मन्राजेन्द्राणां शिरोमणौ। अगमत्पुष्कराक्षस्तु सेनात्र्यक्षौहिणीयुतः ॥१॥
सूर्यवंशोद्भवो राजा सुचन्द्रतनयो महान्। महालक्ष्मीसेवकश्च लक्ष्मीवान्सूर्यसंनिभः ॥२॥
महालक्ष्म्याश्च कवचं गले यस्य मनोहरम्। परमैश्वर्यसंयुक्तस्त्रैलोक्यविजयी ततः ॥३॥
तं दृष्ट्वा भ्रातरः सर्वे रैणुकेयस्य धीमतः। आययुः समरं कर्तुं नानाशस्त्रास्त्रपाणयः ॥४॥
राजेन्द्रः शरजालेन च्छादयामास तांस्तथा। चिच्छिदुः शरजालं च ते वीराश्चैव लीलया ॥५॥
चिच्छिदुः स्यन्दनं राज्ञस्ते वीराः पञ्चबाणतः। सारथिं पञ्चबाणेन रथाश्वं दशबाणतः ॥६॥
तद्धनुः सप्तबाणेन तूर्णं वै पञ्चबाणतः। चिच्छिदुस्तद्भ्रातृवर्गान्विप्राः शंकरशूलतः ॥७॥

अतः इस कवच को बिना जाने जगज्जननी भद्रकाली की जो आराधना करता है, उसका मंत्र सौ लाख जपा जने पर भी सिद्धिप्रद नहीं होता है ॥२४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण-संवाद में भद्रकाली-कवच कथन-नामक सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३७॥

अध्याय ३८

नारायण बोले—हे ब्रह्मन्! राजा सुचन्द्र के मरने पर राजा पुष्कराक्ष युद्ध करने के लिए रणभूमि में आया, जो राजाओं में शिरोमणि था। उसके साथ तीन अक्षौहिणी सेना थी ॥१॥ वह राजा सूर्यवंश में उत्पन्न, सुचन्द्र का बड़ा पुत्र, महालक्ष्मी का सेवक, लक्ष्मीवान् और सूर्य के समान तेजस्वी था ॥२॥ महालक्ष्मी का मनोहर कवच जिसके गले में बंधा रहता है, वह परम ऐश्वर्य से सम्पन्न और तीनों लोकों का विजेता होता है ॥३॥ उसे देख कर धीमान् राम के भ्रातृगण विविध शस्त्रों को हाथ में लिए उससे समर करने के लिए आये ॥४॥ राजकुमार ने अपने बाण-जाल से उन्हें ढक दिया और उन वीरों ने भी लीला की भाँति उस बाण-जाल को काट कर गिरा दिया ॥५॥ पुनः उन वीरों ने पाँच बाण से राजा का रथ, पाँच वाण से सारथी, दश बाण से रथ के घोड़े, सात बाण से धनुष, पाँच बाण से तरकस और शंकर के शूल द्वारा उसके भ्रातृ-वर्गों को काट डाला ॥६-७॥ उनकी तीन अक्षौहिणी सेना

ते च त्र्यक्षौहिणीं सेनां निजघ्नुश्चापि लीलया। हन्तुं नृपेन्द्रं ते वीराः शिवशूलं निचिक्षिपुः॥
गले बभूव तच्छूलं राज्ञः पुष्करमालिका ॥८॥
शक्तिं च परिघं चैव भुशुण्डीं मुद्गरं तथा। गदां च चिक्षिपुर्विप्राः कोपेन ज्वलदग्नयः॥९॥
तानि शस्त्राणि चूर्णानि क्ष्माभृतो देहयोगतः। विस्मिता भ्रातरः सर्वे भृगोरेव महामुने॥१०॥
रथं धनुश्च शस्त्राणि चास्त्राणि विविधानि च। सेनां प्रस्थापयामास कार्तवीर्यार्जुनः स्वयम्॥११॥
राजा स्यन्दनमारुह्य पुष्कराक्षो महाबलः। चकार शरजालं च महाघोरतरं मुने॥१२॥
चिच्छिदुः शरजालं च ते वीराः शस्त्रपाणयः। राजा प्रस्वापनेनैव निद्रितांस्तांश्चकार ह॥१३॥
भ्रातॄंश्च निद्रितान्दृष्ट्वा जामदग्न्यो महाबलः। क्षतविक्षतसर्वाङ्गान्बोधयामास तत्त्वतः॥१४॥
बोधयित्वा तान्निवार्य जगाम रणमूर्धनि। चिक्षेप पर्शुं कोपेन शीघ्रं राजजिघांसया॥१५॥
छित्त्वा राज्ञः किरीटं च पर्शुर्भूमौ पपात ह। जग्राह परशुं शीघ्रं जामदग्न्यो महाबलः॥१६॥
तदा शंकरशूलं च चिक्षिपे मन्त्रपूर्वकम्। नृपस्य कुण्डलं छित्त्वा जगाम शिवसंनिधिम्॥१७॥
राजा निहन्तुं तं रामं शरजालं चकार ह। चिच्छेद शरजालं च रैणुकेयश्च लीलया॥१८॥
क्रमेण राजा नानास्त्रं चिक्षिपे मन्त्रपूर्वकम्। तच्चिच्छेद क्रमेणैव भृगुः शस्त्रभृतां वरः॥१९॥
भृगुश्चिक्षेप नानास्त्रं महासंधानपूर्वकम्। तच्चिच्छेद महाराजः संधानेनैव लीलया॥२०॥

को लीला पूर्वक काट कर उन्होंने राजा को मारने के लिए शिव-शूल का प्रयोग किया, किन्तु वह शूल राजा के गले में जाकर कमल की माला बन गया॥८॥ अनन्तर प्रज्वलित अग्नि की भाँति क्रुद्ध होकर ब्राह्मणों ने शक्ति, परिघ, भुशुण्डी, मुद्गर और गदा का प्रयोग किया॥९॥ हे महामुने! राजा के शरीर में पहुँचते ही उपर्युक्त सभी शस्त्र चूर्ण-चूर्ण होकर गिर गये। इसे देख कर भृगु के सभी भ्राताओं को महान् आश्चर्य हुआ॥१०॥ उपरांत कार्त्तवीर्य्यार्जुन ने स्वयं रथ, धनुष, अनेक शस्त्रास्त्रों और सेना को राजा के पास भेजा॥११॥ हे मुने! महाबली राजा पुष्कराक्ष ने उस रथ पर बैठ कर महाघोरतर बाण-वर्षा करना आरम्भ किया॥१२॥ शस्त्र हाथों में लिए उन वीरों ने भी उनका शरजाल काट दिया। राजा ने प्रस्वापन द्वारा उन्हें निद्रित कर दिया॥१३॥ उपरांत महाबली जामदग्न्य (राम) ने भ्राताओं को, जिनके अंग क्षत विक्षत (छिन्न-भिन्न) हो गए थे, निद्रित देख कर भलीभाँति उद्बुद्ध कर के रणस्थल से उन्हें हटा दिया और स्वयं क्रुद्ध होकर राजा को मारने के लिए फरसे का शीघ्र प्रयोग किया। फरसा राजा का किरीट काट कर पृथ्वी पर गिर पड़ा। महाबली राम ने उसे शीघ्र पकड़ लिया॥१४-१६॥ अनन्तर उन्होंने मंत्रपूर्वक शिव-शूल का प्रयोग किया, वह राजा का कुण्डल काट कर शिव के पास चला गया॥१७॥ राजा ने पुनः राम के हननार्थ बाणों का जाल-सा बिछा दिया, किन्तु भृगु ने उसे लीला पूर्वक काट दिया॥१८॥ राजा ने क्रमशः मन्त्रपूर्वक अनेक भाँति के अस्त्रों का प्रयोग किया, जिन्हें शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ राम ने क्रमशः काट कर गिरा दिया॥१९॥ भृगु ने भी अनेक भाँति के अस्त्रों का महासन्धानपूर्वक प्रयोग किया, जिसे महाराजा ने हस्तलाघव द्वारा काट कर गिरा दिया॥२०॥ राम ने मंत्रपूर्वक ब्रह्मास्त्र का संधान करके प्रयोग किया, राजा ने

रामश्चिक्षेप संधाय ब्रह्मास्त्रं मन्त्रपूर्वकम्। राजा निर्वापणं चक्रे संधानेनैव लीलया ॥२१॥
सर्वाण्यस्त्राणि शस्त्राणि रामः पाशुपतं विना। चिक्षेप कोपविभ्रान्तो भूपश्चिच्छेद तानि च ॥२२॥
रामः स्नात्वा[1] शिवं नत्वाऽऽददे पाशुपतं मुने। नारायणश्च भगवानवोचद्द्विप्ररूपधृक् ॥२३॥

वृद्धब्राह्मण उवाच

किं करोषि भृगो वत्स त्वमेव ज्ञानिनां वरः। नरं हन्तुं पाशुपतं कोपात्किं क्षिपसि भ्रमात् ॥२४॥
विश्वं पाशुपतेनैव भवेद्भस्म च सेश्वरम्। सर्वघ्नं स्याच्छस्त्रमिदं विना श्रीकृष्णमीश्वरम् ॥२५॥
अहो पाशुपतं जेतुं नालमेव सुदर्शनम्। हरेः सुदर्शनं चैव सर्वास्त्रपरिमर्दकम् ॥२६॥
खट्वाङ्गिनः पाशुपतं हरेरेव सुदर्शनम्। एते प्रधाने सर्वेषामस्त्राणां च जगत्त्रये ॥२७॥
त्यज पाशुपतं ब्रह्मन्मदीयं वचनं शृणु। यथा जेष्यसि राजानं पुष्कराक्षं महाबलम् ॥२८॥
कार्तवीर्यमजेतारं यथा जेष्यसि सांप्रतम्। श्रूयतां सावधानेन तत्सर्वं कथयामि ते ॥२९॥
महालक्ष्म्याश्च कवचं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्। भक्त्या च पुष्कराक्षेण धृतं कण्ठे विधानतः ॥३०॥
परं दुर्गतिनाशिन्याः कवचं परमाद्भुतम्। धृतं च दक्षिणे बाहौ पुष्कराक्षसुतेन च ॥३१॥
कवचस्य प्रभावेण विश्वं जेतुं क्षमौ च तौ। को जेता च त्रिभुवने देहे च कवचे स्थिते ॥३२॥

संधान से ही उसे लीला पूर्वक समाप्त कर दिया ॥२१॥ अनन्तर राम ने कुपित होकर पाशुपत को छोड़ कर सभी अस्त्रों का प्रयोग किया, राजा ने उसे काट कर गिरा दिया ॥२२॥ हे मुने! राम ने शिव को नमस्कार कर के पाशुपत अस्त्र ग्रहण किया, उसी समय नारायण ने ब्राह्मण रूप धारण कर उनसे कहा ॥२३॥

ब्राह्मण बोले—हे वत्स, भृगो! तुम ज्ञानियों में श्रेष्ठ होकर यह क्या कर रहे हो, एक मनुष्य के वध के लिए भ्रम से कोपवश पाशुपत का प्रयोग कर रहे हो?॥२४॥ ऐसा करने से पाशुपत द्वारा शंकर समेत सारा विश्व भस्म हो जायगा, क्योंकि भगवान् श्रीकृष्ण को छोड़ कर अन्य सब का विनाश इसके द्वारा हो सकता है ॥२५॥ इतना ही नहीं, पाशुपत को जीतने के लिए भगवान् का सुदर्शन चक्र भी समर्थ नहीं है, वह सभी अस्त्रों एवं शत्रुओं का मर्दन करता है ॥२६॥ इस प्रकार तीनों लोकों में शिव का पाशुपत और भगवान् का सुदर्शन चक्र, ये दोनों समस्त अस्त्रों में प्रधान हैं ॥२७॥ अतः हे ब्रह्मन्! पाशुपत रख कर मेरी बातें सुनो! महाबली पुष्कराक्ष को जिस प्रकार जीतोगे मैं बता रहा हूँ ॥२८॥ अजेता कार्त्तवीर्य्य को जिस प्रकार जीतोगे, मैं सभी कुछ बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ॥२९॥ राजा पुष्कराक्ष ने तीनों लोकों में दुर्लभ महालक्ष्मी का कवच भक्तिपूर्वक सविधान अपने कण्ठ में बाँधा है ॥३०॥ तथा पुष्कराक्ष के पुत्र ने दुर्गतिनाशिनी दुर्गा का परमोत्तम कवच अपने दाहिने बाहु में बाँध रखा है ॥३१॥ कवच के प्रभाव से ये दोनों समस्त विश्व को जीतने में समर्थ हैं, अतः देह में कवच के रहते इन्हें तीनों लोक में कौन जीत सकता है? ॥३२॥

---

१. ख. स्तुत्वा।

अहं यास्यामि भिक्षार्थं संनिधाने तयोर्मुने। करिष्यामि च तद्भिक्षां प्रतिज्ञासफलाय ते ।।३३।।
ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा रामः संत्रस्तमानसः। उवाच ब्राह्मणं वृद्धं हृदयेन विदूयता ।।३४।।

परशुराम उवाच

न जानामि महाप्राज्ञ कस्त्वं ब्राह्मणरूपधृक् । शीघ्रं च ब्रूहि मां मूढं तदा गच्छ नृपान्तिकम् ।।३५।।
जामदग्न्यवचः श्रुत्वा प्रहस्य ब्राह्मणः स्वयम्। उक्त्वा चाहं विष्णुरिति ययौ भिक्षितुमीश्वरः ।।३६।।
गत्वा तयोः संनिधानं ययाचे कवचे च तौ। ददतुस्तौ च कवचे विष्णवे विष्णुमायया ।।
गृहीत्वा कवचे विष्णुर्वैकुण्ठं निर्जगाम सः ।।३७।।

नारद उवाच

महालक्ष्म्याश्च कवचं केन दत्तं महामुने। पुष्कराक्षाय भूपाय श्रोतुं कौतुहलं मम ।।३८।।
कवचं चापि दुर्गायाः पुष्कराक्षसुताय च। दुर्लभं केन वादत्तं तद्भवान्वक्तुमर्हति ।।३९।।
कवचं चापि किंभूतं तयोर्वा तस्य किं फलम्। मन्त्रौ तु किंप्रकारौ च तन्मे ब्रूहि जगद्गुरो ।।४०।।

नारायण उवाच

दत्तं सनत्कुमारेण पुष्कराक्षाय धीमते। महालक्ष्म्याश्च कवचं मन्त्रश्चापि दशाक्षरः ।।४१।।
स्तवनं चापि गोप्यं वै प्रोक्तं तच्चरितं च यत्। ध्यानं च सामवेदोक्तं पूजां चैव मनोहराम् ।।४२।।

हे मुने ! मैं उन दोनों के पास उसी के भिक्षार्थ जा रहा हूँ, जिससे तुम्हारी प्रतिज्ञा सफल हो जाये ।।३३।। ब्राह्मण की ऐसी बातें सुन कर राम का चित्त संत्रस्त हो गया, हार्दिक वेदना का अनुभव करते हुए उन्होंने वृद्ध ब्राह्मण से कहा ।।३४।।

परशुराम बोले—हे महाप्राज्ञ ! यह मैं नहीं जानता कि वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण किए आप कौन हैं, पहले आप मुझ मूढ को बताने की कृपा करें और पश्चात् राजा के समीप जायें ।।३५।। जामदग्न्य की बात सुनकर ब्राह्मण ने स्वयं हँस कर कहा—'मैं विष्णु हूँ।' पश्चात् ईश्वर भिक्षा के लिए चले गये ।।३६।। उन दोनों के पास जाकर उन्होंने उनसे कवच की याचना की। उन दोनों ने भी विष्णु-माया से प्रेरित होकर विष्णु को अपना-अपना कवच दे दिया और विष्णु ने उन्हें लेकर वैकुण्ठ चले गये ।।३७।।

नारद बोले—हे महामुने ! राजा पुष्कराक्ष को महालक्ष्मी का कवच किसने प्रदान किया था, यह सुनने का मुझे कौतूहल हो रहा है ।।३८।। और पुष्कराक्ष के पुत्र को दुर्गा का दुर्लभ कवच किसने दिया है, यह भी आप बताने की कृपा करें ।।३९।। हे जगद्गुरो ! उन दोनों के कवच, उसके फल और मन्त्र मुझे बतायें ।।४०।।

नारायण बोले—सनत्कुमार ने विद्वान् पुष्कराक्ष को महालक्ष्मी का कवच, दशाक्षर मन्त्र, गोप्य स्तव, उनका चरित, सामवेदोक्त ध्यान और मनोहर पूजा बतायी ।।४१-४२।। पूर्वकाल में दुर्गा का कवच दुर्वासा ने दिया था तथा

दुर्गायाश्चापि कवचं दत्तं दुर्वाससा पुरा। स्तवनं चातिगोप्यं च मन्त्रश्चापि दशाक्षरः ॥४३॥
पश्चाच्छ्रोष्यसि तत्सर्वं देव्याश्च परमाद्भुतम्। महायुद्धसमारम्भे दत्तं प्रार्थनया च यत् ॥४४॥
महालक्ष्म्याश्च मन्त्रं च शृणु तं कथयामि ते। ॐ श्रीं कमलवासिन्यै स्वाहेति परमाद्भुतम् ॥४५॥
ध्यानं च सामवेदोक्तं शृणु पूजाविधिं मुने। दत्तं तस्मै कुमारेण पुष्कराक्षाय धीमते ॥४६॥
सहस्रदलपद्मस्थां पद्मनाभप्रियां सतीम्। पद्मालयां पद्मवक्त्रां पद्मपत्राभलोचनाम् ॥४७॥
पद्मपुष्पप्रियां पद्मपुष्पतल्पाधिशायिनीम्। पद्मिनीं पद्महस्तां च पद्ममालाविभूषिताम् ॥४८॥
पद्मभूषणभूषाढ्यां पद्मशोभाविवर्धिनीम् । पद्माटवीं प्रपश्यन्तीं सस्मितां तां भजे मुदा ॥४९॥
चन्दनाष्टदले पद्मे पद्मपुष्पेण पूजयेत्। गणं संपूज्य दत्त्वा चैवोपचारांश्च षोडश ॥५०॥
ततः स्तुत्वा च प्रणमेत्साधको भक्तिपूर्वकम्। कवचं श्रूयतां ब्रह्मन्सर्वसारं वदामि ते ॥५१॥

नारायण उवाच

शृणु विप्रेन्द्र पद्मायाः कवचं परमं शुभम्। पद्मनाभेन यद्दत्तं ब्रह्मणे नाभिपद्मके ॥५२॥
संप्राप्य कवचं ब्रह्मा तत्पद्मे ससृजे जगत्। पद्मालयाप्रसादेन सलक्ष्मीको बभूव सः ॥५३॥
पद्मालयावरं प्राप्य पाद्मश्च जगतां प्रभुः। पाद्मेन पद्मकल्पे च कवचं परमाद्भुतम् ॥५४॥
दत्तं सनत्कुमाराय प्रियपुत्राय धीमते। कुमारेण च यद्दत्तं पुष्कराक्षाय नारद ॥५५॥

गोप्य स्तवसमेत दशाक्षर मन्त्र भी बताया था ॥४३॥ देवी का परम अद्भुत कवच आदि सब कुछ पश्चात् बताऊँगा, जो महायुद्ध के आरम्भ के समय प्रार्थना करने पर उन्होंने दिया था ॥४४॥ इस समय महालक्ष्मी का मंत्र तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो। 'ओं श्रीं कमलवासिन्यै स्वाहा' यह परमोत्तम मंत्र है ॥४५॥ हे मुने ! सामवेदोक्त ध्यान और पूजा-विधान, जो कुमार ने पुष्कराक्ष को दिया था, बता रहा हूँ, सुनो ॥४६॥ सहस्र दल वाले कमल पर स्थित, पद्मनाभ (विष्णु) की प्रेयसी, सती, कमलालया, कमलमुखी, कमलपत्र के समान नेत्र वाली, कमलपुष्पप्रिया, कमल पुष्प की शय्या पर शयन करने वाली, पद्मिनी, कमल हाथ में लिए, कमल की माला से सुशोभित, कमल के भूषणों से विभूषित, कमल की शोभा बढ़ाने वाली, कमल-वन को देखती हुई और मन्द-मन्द मुसुकाती उस लक्ष्मी की मैं सहर्ष सेवा कर रहा हूँ ॥४७-४९॥ चन्दन द्वारा अष्टदल कमल पर लिख कर कमलपुष्प से पूजन करे। गण की पूजा, सोलहों उपचार का समर्पण और स्तुति करके साधक को चाहिए कि भक्तिपूर्वक प्रणाम करे। हे ब्रह्मन् ! अब तुम्हें समस्त का सार-भाग वह कवच बता रहा हूँ, सुनो ॥५०-५१॥

नारायण बोले—हे विप्रेन्द्र ! पद्मा (लक्ष्मी) का वह परम शुभ कवच, जिसे भगवान् पद्मनाभ ने अपने नाभिकमल में स्थित ब्रह्मा को प्रदान किया था, तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो। ब्रह्मा ने कवच प्राप्त कर उसी कमल पर सारे संसार की रचना आरम्भ की और कमलालया (लक्ष्मी) के प्रसाद से लक्ष्मीसम्पन्न भी हो गए ॥५२-५३॥ जगत् के स्वामी ब्रह्मा ने लक्ष्मी से वर प्राप्त करके पद्मकल्प में वह परम अद्भुत कवच अपने धीमान् प्रिय पुत्र सनत्कुमार को प्रदान किया था। हे नारद ! वही कवच सनत्कुमार ने पुष्कराक्ष को दिया है ॥५४-५५॥ जिसे धारण करने और पाठ करने से ब्रह्मा समस्त सिद्धों के महान् अधीश्वर,

यद्धृत्वा पठनाद्ब्रह्मा सर्वसिद्धेश्वरो महान्। परमैश्वर्यसंयुक्तः सर्वसंपत्समन्वितः ॥५६॥
यद्धृत्वा च धनाध्यक्षः कुबेरश्च धनाधिपः। स्वायंभुवो मनुः श्रीमान्पठनाद्धारणाद्यतः ॥५७॥
प्रियव्रतोत्तानपादौ लक्ष्मीवन्तौ यतो मुने। पृथुः पृथ्वीपतिः सद्यो ह्यभवद्धारणाद्यतः ॥५८॥
कवचस्य प्रसादेन स्वयं दक्षः प्रजापतिः। धर्मश्च कर्मणां साक्षी पाता यस्य प्रसादतः ॥५९॥
यद्धृत्वा दक्षिणे बाहौ विष्णुः क्षीरोदशायितः। भक्त्या विधत्ते कण्ठे च शेषो नारायणांशकः ॥६०॥
यद्धृत्वा वामनं लेभे कश्यपश्च प्रजापतिः। सर्वदेवाधिपः श्रीमान्महेन्द्रो धारणाद्यतः ॥६१॥
राजा मरुत्तो भगवानभवद्धारणाद्यतः। त्रैलोक्याधिपतिः श्रीमान्नहुषो यस्य धारणात् ॥६२॥
विश्वं विजिग्ये खट्वाङ्गः पठनाद्धारणाद्यतः। मुचुकुन्दो यतः श्रीमान्मान्धातृतनयो महान् ॥६३॥
सर्वसंपत्प्रदस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः। ऋषिश्छन्दश्च बृहती देवी पद्मालया स्वयम् ॥६४॥
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः। पुण्यबीजं च महतां कवचं परमाद्भुतम् ॥६५॥
[1]ॐ ह्रीं कमलवासिन्यै स्वाहा मे पातु मस्तकम्। श्रीं मे पातु कपालं च लोचने श्रीं श्रियै नमः ॥६६॥
[2]ॐ श्रीं श्रियै स्वाहेति च कर्णयुग्मं सदाऽवतु। [3]ॐ श्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै स्वाहा मे पातु नासिकाम् ॥६७॥
ॐ श्रीं पद्मालयायै च स्वाहा दन्तान्सदाऽवतु। ॐ श्रीं कृष्णप्रियायै च दन्तरन्ध्रं सदाऽवतु ॥६८॥

परम ऐश्वर्य सम्पन्न तथा समस्त सम्पत्ति से युक्त हुए ॥५६॥ जिसे धारण कर कुबेर धनाध्यक्ष और धन के अधीश्वर हुए तथा धारण एवं पाठ करने से स्वायम्भुव मनु हुए ॥५७॥ हे मुने! उसके धारण करने से प्रियव्रत और उत्तान-पाद लक्ष्मीवान् तथा राजा पृथु तत्क्षण पृथ्वीपति हुए ॥५८॥ कवच के प्रसाद से दक्ष स्वयं प्रजापति हुए। उसके प्रसाद से धर्म कर्मों के साक्षी हुए, दाहिने बाहु में धारण करने से विष्णु क्षीरसागरशायी हुए और उसे नारायण के अंश से उत्पन्न शेष भक्तिपूर्वक कण्ठ में धारण किये हुए हैं ॥५९-६०॥ उसे धारण कर कश्यप प्रजापति ने वामन को प्राप्त किया और महेन्द्र समस्त देवों के अधिप हुए ॥६१॥ उसे धारण कर राजा मरुत्त भगवान् हो गए, श्रीमान् राजा नहुष तीनों लोकों के अधीश्वर हुए ॥६२॥ पढ़ने और धारण करने से राजा खट्वांग ने विश्व विजय किया और मान्धाता के पुत्र राजा मुचुकुन्द श्रीपति हुए ॥६३॥ समस्त-सम्पत्ति-प्रदायक इस कवच के प्रजापति ऋषि, बृहती छन्द, स्वयं पद्मालया देवी, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पदार्थ की प्राप्ति के लिए इसका विनियोग कहा गया है, यह कवच परम अद्भुत और महान् होने का एकमात्र पुण्य बीज है ॥६४-६५॥ 'ओं ह्रीं कमलवासिन्यै स्वाहा' मेरे मस्तक की रक्षा करे, 'श्रीं' मेरे कपाल की रक्षा करे 'श्रीं श्रियै नमः' दोनों नेत्रों की रक्षा करे ॥६६॥ 'ओं श्रीं श्रियै स्वाहा' सदा मेरे कानों की रक्षा करे। 'ओं श्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै स्वाहा' मेरी नासिका की रक्षा करे ॥६७॥ 'ओं श्रीं पद्मालयायै स्वाहा' सदा दाँतों की रक्षा करे। 'ओं श्रीं कृष्णप्रियायै' सदा दाँतों के छिद्रों की रक्षा करे ॥६८॥

१क. ओं क्लीं ह्रीं श्रीं क०। २क. ओं ह्रीं श्रीं। ३क. ह्रीं श्रीं म०।

ॐ श्रीं नारायणेशायै मम कण्ठं सदाऽवतु। ॐ श्रीं केशवकान्तायै मम स्कन्धं सदाऽवतु ॥६९॥
ॐ श्रीं पद्मनिवासिन्यै स्वाहा नाभिं सदाऽवतु। ॐ ह्रीं श्रीं संसारमात्रे मम वक्षः सदाऽवतु ॥७०॥
ॐ श्रीं मों कृष्णकान्तायै स्वाहा पृष्ठं सदाऽवतु। ॐ ह्रीं श्रीं श्रियै स्वाहा च मम हस्तौ सदाऽवतु ॥७१॥
ॐ श्रीनिवासकान्तायै मम पादौ सदाऽवतु। ॐ ह्रीं श्रीं श्रियै स्वाहा सर्वाङ्गं मे सदाऽवतु ॥७२॥
प्राच्यां पातु महालक्ष्मीराग्नेय्यां कमलालया। पद्मा मां दक्षिणे पातु नैर्ऋत्यां श्रीहरिप्रिया ॥७३॥
पद्मालया पश्चिमे मां वायव्यां पातु सा स्वयम्। उत्तरे कमला पातु चैशान्यां सिन्धुकन्यका ॥७४॥
नारायणी च पातूर्ध्वमधो विष्णुप्रियाऽवतु। संततं सर्वतः पातु विष्णुप्राणाधिका मम ॥७५॥
इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम्। सर्वैश्वर्यप्रदं नाम कवचं परमाद्भुतम् ॥७६॥
सुवर्णपर्वतं दत्त्वा मेरुतुल्यं द्विजातये। यत्फलं लभते धर्मी कवचेन[1] ततोऽधिकम् ॥७७॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवत्कवचं धारयेत्तु यः। कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ स श्रीमान्प्रतिजन्मनि ॥७८॥
अस्ति लक्ष्मीगृहे तस्य निश्चला शतपूरुषम्। देवेन्द्रैश्चासुरेन्द्रैश्च सोऽवध्यो निश्चितं भवेत् ॥७९॥
स सर्वपुण्यवान्धीमान्सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। स स्नातः सर्वतीर्थेषु यस्येदं कवचं गले ॥८०॥
यस्मै कस्मै न दातव्यं लोभमोहभयैरपि। गुरुभक्ताय शिष्याय शरण्याय[2] प्रकाशयेत् ॥८१॥

'ओं श्रीं नारायणेशायै' मेरे कण्ठ की सदा रक्षा करे। 'ओं श्रीं केशवकान्तायै' सदा मेरे कन्धों की रक्षा करे ॥६९॥ 'ओं श्रीं पद्मनिवासिन्यै स्वाहा' सदा नाभि की रक्षा करे, 'ओं ह्रीं श्रीं संसारमात्रे' सदा मेरे वक्षःस्थल की रक्षा करे ॥७०॥ 'ओं श्रीं मों कृष्णकान्तायैस्वाहा' सदा पृष्ठ की रक्षा करे, 'ओं ह्रीं श्रीं श्रियै स्वाहा' मेरे हाथों की सदा रक्षा करे ॥७१॥ 'ओं श्रीनिवासकान्तायै' सदा मेरे चरणों की रक्षा करे। 'ओं ह्रीं श्रीं श्रियै स्वाहा' सदा मेरे सर्वांग की रक्षा करे ॥७२॥ पूर्व दिशा में महालक्ष्मी, अग्निकोण में कमलालया, दक्षिण में पद्मा, नैर्ऋत्य में श्रीहरिप्रिया, पश्चिम में पद्मालया, वायव्य में वह स्वयं, उत्तर में कमला और ईशान में सिन्धुकन्यका मेरी रक्षा करें ॥७३-७४॥ ऊपर की ओर नारायणी रक्षा करें, नीचे विष्णुप्रिया और मेरे चारों ओर विष्णुप्राणाधिका निरन्तर रक्षा करें ॥७५॥ हे वत्स! इस प्रकार मैंने तुम्हें सर्वैश्वर्यप्रद नामक कवच, जो समस्त मन्त्र-समुदाय का स्वरूप तथा परम अद्भुत है, बता दिया ॥७६॥ मेरु के समान सुवर्ण का पर्वत ब्राह्मणों को दान करने से जो पुण्य फल प्राप्त होता है, उससे अधिक फल धर्मी को इस कवच द्वारा प्राप्त होता है ॥७७॥ सविधि गुरु की पूजा करके जो इस कवच को कण्ठ या दाहिने बाहु में धारण करता है, वह प्रतिजन्म में श्रीमान् होता है ॥७८॥ लक्ष्मी उसके घर सौ पीढ़ी तक निश्चल निवास करती हैं और वह देवेन्द्रों एवं असुरराजों से निश्चित अवध्य रहता है ॥७९॥ जिसके गले में यह कवच वर्तमान रहता है, वह समस्तपुण्यवान्, विद्वान्, समस्त यज्ञों में दीक्षित और समस्त तीर्थों में स्नान कर चुका हुआ होता है ॥८०॥ अतः लोभ, मोह एवं भय वश भी इसे जिस किसी को न प्रदान करे, गुरुभक्त शिष्य को, जो शरण योग्य हो, बताये

---

१. चे च हृदि स्थिते। २क. सरलाय।

इदं कवचमज्ञात्वा जपेल्लक्ष्मीं जगत्प्रसूम्। कोटिसंख्यं प्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥८२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० श्रीलक्ष्मीकवचवर्णनं
नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

नारद उवाच

कवचं कथितं ब्रह्मन्पद्मायाश्च मनोहरम् । परं दुर्गतिनाशिन्याः कवचं कथय प्रभो ॥१॥
पद्माक्षप्राणतुल्यं च जीवनं बलकारणम् । कवचानां च यत्सारं दुर्गासेवनकारणम् ॥२॥

नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि दुर्गायाः कवचं शुभम् । श्रीकृष्णेनैव यद्दत्तं गोलोके ब्रह्मणे पुरा ॥३॥
ब्रह्मा त्रिपुरसंग्रामे शंकराय ददौ पुरा। जघान त्रिपुरं रुद्रो यद्धृत्वा भक्तिपूर्वकम् ॥४॥
हरो ददौ गौतमाय पद्माक्षाय च गौतमः। यतो बभूव पद्माक्षः सप्तद्वीपेश्वरो जयी ॥५॥
यद्धृत्वा पठनाद्ब्रह्मा ज्ञानवाञ्छक्तिमान्भुवि। शिवो बभूव सर्वज्ञो योगिनां च गुरुर्यतः ॥
शिवतुल्यो गौतमश्च बभूव मुनिसत्तमः ॥६॥

॥८१॥ इस कवच को विना जाने जो जगज्जननी लक्ष्मी की आराधना करता है, उसके लिए करोड़ों की संख्या में जप किया जाने पर भी मंत्र सिद्धिप्रद नहीं होता है ॥८२॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में श्रीलक्ष्मी-कवच-वर्णन
नामक अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३८॥

अध्याय ३९

नारद बोले—हे ब्रह्मन् ! हे प्रभो ! पद्मा का मनोहर कवच आपने सुना दिया, अब परम दुर्गतिनाशिनी दुर्गा का कवच कहने की कृपा करें ॥१॥ जो राजा पद्माक्ष के प्राण के समान, जीवन और बल का कारण, समस्त कवचों का सारभाग और दुर्गा की आराधना का एकमात्र कारण है ॥२॥

नारायण बोले—हे नारद ! दुर्गा का शुभ कवच मैं तुम्हें बताऊँगा जिसे गोलोक में भगवान् श्रीकृष्ण ने पूर्व समय ब्रह्मा को प्रदान किया था ॥३॥ त्रिपुरासुर के संग्राम में ब्रह्मा ने शंकर को कवच दिया और जिसे भक्तिपूर्वक धारण कर रुद्र ने त्रिपुर का वध किया ॥४॥ उपरान्त शिव ने गौतम को एवं गौतम ने पद्माक्ष को दिया। जिससे पद्माक्ष विजयी एवं सातों द्वीपों के अधीश्वर हुए हैं ॥५॥ जिसे धारण और पाठ करने से ब्रह्मा भूतल पर (सबसे अधिक) ज्ञानवान् और शक्तिमान् हुए, शिव सर्वज्ञाता एवं योगियों के गुरु हुए तथा मुनिश्रेष्ठ गौतम शिव

ब्रह्माण्डविजयस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः। ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवी दुर्गतिनाशिनी ॥७॥
ब्रह्माण्डविजये चैव विनियोगः प्रकीर्तितः। [1]पुण्यतीर्थं च महतां कवचं परमाद्भुतम् ॥८॥
ओं ह्रीं दुर्गतिनाशिन्यै स्वाहा मे पातु मस्तकम्। ओं ह्रीं मे पातु कपालं चाप्यों[2] ह्रीं श्रीं पातु लोचने ॥९॥
पातु मे कर्णयुग्मं चाप्यों दुर्गायै नमः सदा। ओं ह्रीं श्रीमिति नासां मे सदा पातु च सर्वतः ॥१०॥
ह्रीं[4] श्रीं ह्रूमिति दन्तांश्च पातु क्लीमोष्ठयुग्मकम्। क्लीं[5] क्लीं क्लीं पातु कण्ठं च दुर्गे रक्षतु गण्डके ॥११॥
स्कन्धं[6] महाकालि दुर्गे स्वाहा पातु निरन्तरम्। वक्षो विपद्विनाशिन्यै स्वाहा मे पातु सर्वतः ॥१२॥
दुर्गे दुर्गे रक्ष पार्श्वौ स्वाहा नाभिं सदाऽवतु। दुर्गे दुर्गे देहि रक्षां पृष्ठं मे पातु सर्वतः ॥१३॥
ओं[7] ह्रीं दुर्गायै स्वाहा च हस्तौ पादौ सदाऽवतु। ॐ ह्रीं दुर्गायै स्वाहा च सर्वाङ्गं मे सदाऽवतु ॥१४॥
प्राच्यां पातु महामाया चाऽऽग्नेय्यां पातु कालिका। दक्षिणे दक्षकन्यां च नैर्ऋत्यां शिवसुन्दरी ॥१५॥
पश्चिमे पार्वती पातु वाराही वारुणे सदा। कुबेरमाता कौबेर्यामैशान्यामीश्वरी सदा ॥१६॥
ऊर्ध्वं नारायणी पातु त्वम्बिकाऽधः सदाऽवतु। ज्ञानं ज्ञानप्रदा पातु स्वप्ने निद्रा सदाऽवतु ॥१७॥
इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम्। ब्रह्माण्डविजयं नाम कवचं परमाद्भुतम् ॥१८॥

के तुल्य हुए ॥६॥ ब्रह्माण्डविजय नामक इस कवच के प्रजापति ऋषि, गायत्री छन्द, दुर्गतिनाशिनी दुर्गा देवी और ब्रह्माण्ड के विजयार्थ इसका विनियोग कहा गया है। यह कवच परम अद्भुत एवं महान् लोगों का पुण्यतीर्थ है ॥७-८॥ 'ओं ह्रीं दुर्गतिनाशिन्यै स्वाहा' मेरे मस्तक की रक्षा करे, 'ओं ह्रीं' मेरे कपाल की करे और 'ओं ह्रीं श्रीं' दोनों नेत्रों की रक्षा करे ॥९॥ 'ओं दुर्गायै नमः' सदा मेरे कानों की और 'ओं ह्रीं श्रीं' सदा चारों ओर से मेरी नासिका की रक्षा करे॥१०॥ 'ह्रीं श्रीं ह्रूं' दाँतों की, 'क्लीं' दोनों ओंठों की तथा 'क्लीं क्लीं क्लीं' कण्ठ की और 'दुर्गे' कपोलों की रक्षा करे ॥११॥ 'महाकालि दुर्गे स्वाहा' निरन्तर कन्धे की और 'विपद्विनाशिन्यै स्वाहा' वक्षःस्थल की चारों ओर से रक्षा करे ॥१२॥ 'दुर्गे दुर्गे रक्ष' दोनों पार्श्वों की और 'दुर्गे स्वाहा' सदा नाभि की रक्षा करे। 'दुर्गे दुर्गे देहि रक्षां' सब ओर से पीठ की रक्षा करे ॥१३॥ 'ओं ह्रीं दुर्गायै स्वाहा' सदा हाथ और चरण की और 'ओं ह्रीं दुर्गायै स्वाहा' सदा मेरे सर्वांग की रक्षा करे ॥१४॥ पूर्व की ओर महामाया, अग्निकोण में कालिका, दक्षिण में दक्षकन्या, नैर्ऋत्य में शिवसुन्दरी, पश्चिम में पार्वती, वायव्य में वाराही, उत्तर में कुबेरमाता और ईशान में ईश्वरी सदा रक्षा करें ॥१५-१६॥ ऊपर की ओर नारायणी, नीचे की ओर अम्बिका, ज्ञान की ज्ञानप्रदा तथा स्वप्न में निद्रा देवी सदा रक्षा करें ॥१७॥ हे वत्स! इस प्रकार मैंने परम अद्भुत और समस्त मन्त्रसमूहस्वरूप ब्रह्माण्डविजय नामक कवच तुम्हें बता दिया ॥१८॥ सभी तीर्थों में सविधि स्नान से, समस्त यज्ञों के अनुष्ठान से और समस्त

१क. ०ण्यजीवश्च०। २. चाप्पैं ह्रीं। ३क. ओं ऐं ह्रीं श्रीं ह्रीं इति ना०। ४क. श्रीं ह्रीं क्लीमिति दन्तालिं पातु ह्रीं मो०। ५क. क्लीं ह्रीं ह्रीं पा०। ६क. ०न्धं दुर्गविनाशिन्यै स्वा०। ७क. ओं श्रीं ह्रीं।

सुस्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु यत्फलम् । सर्वव्रतोपवासे च तत्फलं लभते नरः ॥१९॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालंकारचन्दनैः । कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ कवचं धारयेत्तु यः ॥२०॥
स च त्रैलोक्यविजयी सर्वशत्रुप्रमर्दकः । ॥२१॥
इदं कवचमज्ञात्वा भजेद्दुर्गतिनाशिनीम् । शतलक्षं प्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥२२॥
कवचं कण्वशाखोक्तमुक्तं नारद सिद्धिदम् । यस्मै कस्मै न दातव्यं गोपनीयं सदुर्लभम् ॥२३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० दुर्गतिनाशिनीकवचं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

तं गृहीत्वा तदा विष्णौ वैकुण्ठं च गते सति । सपुत्रं च सहस्राक्षं जघान भृगुनन्दनः ॥१॥
कृत्वा युद्धं तु सप्ताहं ब्रह्मास्त्रेण प्रयत्नतः । राजा कवचहीनोऽपि सपुत्रश्च पपात ह ॥२॥
पतिते तु सहस्राक्षे कार्तवीर्यार्जुनः स्वयम् । आजगाम महावीरो द्विलक्षाक्षौहिणीयुतः ॥३॥
सुवर्णरथमारुह्य रत्नसारपरिच्छदम् । नानास्त्रं परितः कृत्वा तस्थौ समरमूर्धनि ॥४॥

व्रतों एवं उपवास करने से जो फल प्राप्त होता है, वह फल मनुष्य को इसके द्वारा प्राप्त होता है ॥१९॥ जो अनेक भाँति के वस्त्र, अलंकार और चन्दन द्वारा सविधि गुरु की अर्चा करके इसे कण्ठ या दाहिने बाहु में धारण करता है, वह तीनों लोकों का विजयी एवं समस्त शत्रुओं का मर्दक होता है। अतः इस कवच को बिना जाने जो दुर्गतिनाशिनी की सेवा करता है, उसका सौ लाख जप करने पर भी मंत्र सिद्धप्रद नहीं होता है ॥२०-२२॥ हे नारद ! सिद्धिप्रद तथा काण्वशाखोक्त यह कवच, जो गोपनीय और अति दुर्लभ है, जिस किसी को नहीं देना चाहिए ॥२३॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण के संवाद में दुर्गतिनाशिनी-कवच-वर्णन नामक उन्तालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३९॥

अध्याय ४०

नारायण बोले—तब उसे लेकर विष्णु के वैकुण्ठ चले जाने पर भृगुनन्दन राम ने पुत्र समेत सहस्राक्ष का वध किया ॥१॥ कवचहीन होने पर भी राजा ब्रह्मास्त्र द्वारा सात दिन तक युद्ध कर सपुत्र समाप्त हो गया ॥२॥ सहस्राक्ष के मर जाने पर महावीर कार्त्तवीर्य्यार्जुन स्वयं दो लाख अक्षौहिणी सेना समेत युद्ध के लिए आ गया ॥३॥ वह सुवर्ण के रथ पर चढ़ कर, रत्नों के सारभाग से निर्मित पोशाक पहने हुए और अपने चारों ओर विविध अस्त्रों को

समरे तं परशुरामो राजेन्द्रं च ददर्श ह । रत्नालंकारभूषाढ्यैं राजेन्द्राणां च कोटिभिः ॥५॥
रत्नातपत्रभूषाढ्यं रत्नालंकारभूषितम् । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं सस्मितं सुमनोहरम् ॥६॥
राजा दृष्ट्वा मुनीन्द्रं तमवरुह्य रथादहो । प्रणम्य रथमारुह्य तस्थौ नृपगणैः सह ॥७॥
ददौ शुभाशिषं तस्मै रामश्च समयोचिताम् । प्रोवाच च गतार्थं तं स्वर्गं गच्छेति सानुगः ॥८॥
उभयोः सेनयोर्युद्धमभवत्तत्र नारद । पलायिता रामशिष्या भ्रातरश्च महाबलाः ॥
क्षतविक्षतसर्वाङ्गाः कार्तवीर्यप्रपीडिताः ॥९॥
नृपस्य शरजालेन रामः शस्त्रभृतां वरः । न ददर्श स्वसैन्यं च राजसैन्यं तथैव च ॥१०॥
चिक्षेप रामश्चाऽऽग्नेयं बभूवाग्निमयं रणे । निर्वापयामास राजा वारुणेनैव लीलया ॥११॥
चिक्षेप रामो गान्धर्वं शैलसर्पसमन्वितम् । वायव्येन महाराजः प्रेरयामास लीलया ॥१२॥
चिक्षेप रामो नागास्त्रं दुर्निवार्यं भयंकरम् । गारुडेन महाराजः प्रेरयामास लीलया ॥१३॥
माहेश्वरं च भगवांश्चिक्षेप भृगुनन्दनः । निर्वापयामास राजा वैष्णवास्त्रेण लीलया ॥१४॥
ब्रह्मास्त्रं चिक्षिपे रामो नृपनाशाय नारद । ब्रह्मास्त्रेण च शान्तं तत्प्राणनिर्वापणं रणे ॥१५॥
दत्तदत्तं च यच्छूलमव्यर्थं मन्त्रपूर्वकम् । जग्राह राजा परशुरामनाशाय संयुगे ॥१६॥
शूलं ददर्श रामश्च शतसूर्यसमप्रभम् । प्रलयाग्निशिखोद्रिक्तं दुर्निवार्यं सुरैरपि ॥१७॥

सुरक्षित किये हुए रणभूमि में स्थित था ॥४॥ अनन्तर समरांगण में परशुराम ने उस राजेन्द्र को देखा, जो रत्नों के अलंकारों से विभूषित करोड़ों राजेंद्रों से युक्त, रत्नों के छत्र से समन्वित, रत्नों के आभूषणों से भूषित, सर्वांग में चन्दन लगाये, मुस्कराता हुआ और अत्यन्त मनोहर था ॥५-६॥ उस समय राजा भी मुनीन्द्र राम को देखकर रथ से उतर पड़ा और उन्हें प्रणाम कर पुनः राजाओं समेत रथ पर बैठ गया ॥७॥ राम ने शुभाशिष देकर उससे समयोचित बात कही कि 'अनुचरों समेत अब स्वर्ग को प्रस्थान करो' ॥८॥ हे नारद ! अनन्तर दोनों सैनिकों में युद्ध आरम्भ हुआ, जिसमें राम के शिष्यगण और महाबली भ्रातृगण कार्तवीर्य्य से अतिपीड़ित एवं छिन्न-भिन्न सर्वांग होने पर रण से भाग निकले ॥९॥ राजा के बाण-जाल से आच्छन्न होने के कारण राम अपनी सेना और राजा की सेनाओं को नहीं देख सके ॥१०॥ पश्चात् राम ने समर में आग्नेय बाण का प्रयोग किया जिससे सब कुछ अग्निमय हो गया। राजा ने वारुण बाण द्वारा उसे लीला पूर्वक भाँति शान्त कर दिया ॥११॥ राम ने पर्वत-सर्प-युक्त गान्धर्व अस्त्र का प्रयोग किया, जिसे महाराज ने वायव्य बाण द्वारा समाप्त कर दिया ॥१२॥ राम ने अनि-वार्य एवं भयंकर नागास्त्र का प्रयोग किया, जिसे महाराज ने गारुड़ अस्त्र द्वारा बिना यत्न के नष्ट कर दिया ॥१३॥ भृगुनन्दन भगवान् राम ने माहेश्वर अस्त्र का प्रयोग किया, जिसे राजा ने वैष्णव अस्त्र द्वारा लीला पूर्वक समाप्त कर दिया ॥१४॥ हे नारद ! अनन्तर राम ने राजा के बिनाशार्थ ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया, राजा ने भी ब्रह्मास्त्र द्वारा उस प्राणनाशक को युद्ध में शान्त कर दिया ॥१५॥ राजा ने उस रण में परशुराम के वधार्थ दत्तात्रेय-प्रदत्त शूल का मंत्र-पूर्वक उपयोग किया, जो कभी भी व्यर्थ न होने वाला था ॥१६॥ राम ने सैकड़ों सूर्य के समान कान्ति-पूर्ण, प्रलयकालीन अग्निशिखा से बढ़ा-चढ़ा और देवों के लिए भी दुर्निवार उस शूल को देखा ॥१७॥ हे नारद !

पपात शूलं समरे रामस्योपरि नारद। मूर्च्छामवाप स भृगुः पपात च हरिं स्मरन्॥१८॥
पतिते तु तदा रामे सर्वे देवा भयाकुलाः। आजग्मुः समरं तत्र ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥१९॥
शंकरश्च महाज्ञानी महाज्ञानेन लीलया। ब्राह्मणं जीवयामास तूर्णं नारायणाज्ञया॥२०॥
भृगुश्च चेतनां प्राप्य ददर्श पुरतः सुरान्। प्रणनाम परं भक्त्या लज्जानम्रात्मकंधरः॥२१॥
राजा दृष्ट्वा सुरेशांश्च भक्तिनम्रात्मकंधरः। प्रणम्य शिरसा मूर्ध्ना तुष्टाव च सुरेश्वरान्॥२२॥
तत्राऽऽजगाम भगवान्दत्तात्रेयो रणस्थलम्। शिष्यरक्षानिमित्तेन कृपालुर्भक्तवत्सलः॥२३॥
भृगुः पाशुपतास्त्रं च सोऽग्रहीत्कोपसंयुतः। दत्तदत्तेन दृष्टेन बभूव स्तम्भितो भृगुः॥२४॥
ददर्श स्तम्भितो रामो राजानं रणमूर्धनि। नानापार्षदयुक्तेन कृष्णेनाऽऽरक्षितं रणे॥२५॥
सुदर्शनं प्रज्ज्वलन्तं भ्रमणं कुर्वता सदा। सस्मितेन स्तुतेनैव ब्रह्मद्विष्णुमहेश्वरैः॥२६॥
गोपालशतयुक्तेन गोपवेषविधारिणा। नवीजलदाभेन वंशीहस्तेन गायता॥२७॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वाग्बभूवाशरीरिणी। दत्तेन दत्तं कवचं कृष्णस्य परमात्मनः॥२८॥
राज्ञोऽस्ति दक्षिणे बाहौ सद्रत्नगुटिकान्वितम्। गृहीतकवचे शंभौ भिक्षया योगिनां गुरौ॥२९॥
तदा हन्तुं नृपं शक्तो भृगुश्चेति च नारद। श्रुत्वाऽशरीरिणीं वाणीं शंकरो द्विजरूपधृक्॥३०॥

राम के ऊपर वह शूल गिरा, जिससे भगवान् का स्मरण करते हुए भृगु मूर्च्छित हो गये॥१८॥ राम के गिर जाने पर समस्त देवगण भयाकुल हो गये, उस समय युद्ध में ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर भी आ गये॥१९॥ नारायण की आज्ञा से महाज्ञानी शिव ने अपने महाज्ञान द्वारा लीलापूर्वक शीघ्र ब्राह्मण को जीवित कर दिया॥२०॥ चेतना प्राप्त होने पर भृगु ने अपने सामने स्थित देवों को देखा और लज्जा से कन्धे को झुकाकर भक्तिपूर्वक सभी को प्रणाम किया॥२१॥ राजा ने भी वहाँ देवों को देखकर भक्ति से कन्धे झुकाये शिर से सबको प्रणाम किया और देवेश्वरों की स्तुति की॥२२॥ इसी बीच वहाँ रणभूमि में अपने शिष्य के रक्षार्थ कृपालु एवं भक्तवत्सल भगवान् दत्तात्रेय आ गये॥२३॥ अनन्तर राम ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर पाशुपत अस्त्र का ग्रहण किया, किन्तु उसी क्षण दत्तात्रेय के दृष्टिपात द्वारा भृगु स्तम्भित हो गये॥२४॥ स्तम्भित होने पर भी राम ने रण में राजा को देखा, जो रणभूमि में अनेक पार्षदों समेत भगवान् कृष्ण से सुरक्षित था॥२५॥ प्रज्वलित सुदर्शनचक्र घुमाकर कृष्ण सदा उसकी रक्षा कर रहे थे और ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर मुसकराते हुए कृष्ण की स्तुति कर रहे थे॥२६॥ सैकड़ों लिये गोपों से युक्त, गोपवेष धारण करने वाले, नवीन मेघ के समान कान्ति वाले और हाथ में मुरली लिये हुए श्रीकृष्ण गायन कर रहे थे॥२७॥ इसी बीच वहाँ आकाशवाणी हुई कि दत्तात्रेय द्वारा परमात्मा कृष्ण का कवच राजा को प्राप्त है, जिसे उसने उत्तम रत्न की गुटिका (तावीज) में रखकर अपने दाहिने बाहु में धारण कर रखा है, अतः योगियों के गुरु शिव भिक्षा द्वारा उसे ग्रहण करें, तब राजा को मारने में भृगु समर्थ होंगे। हे नारद! इस आकाशवाणी को सुनकर शिव ने ब्राह्मण का वेष बनाया और राजा से वह

भिक्षां कृत्वा तु कवचमानीय च नृपस्य च। शंभुना भृगवे दत्तं कृष्णस्य कवचं च यत् ॥३१॥
एतस्मिन्नन्तरे देवा जग्मुः स्वस्थानमुत्तमम्। प्रत्युवाचापि परशुरामो वै समरे नृपम् ॥३२॥

परशुराम उवाच

राजेन्द्रोत्तिष्ठ समरं कुरु साहसपूर्वकम्। कालभेदे जयो नृणां कालभेदे पराजयः ॥३३॥
अधीतं विधिवद्दत्तं कृत्स्ना पृथ्वी सुशासिता। [1]सम्यक्कृतश्च संग्रामो त्वयाऽहं मूर्च्छितोऽधुना ॥३४॥
जिताः सर्वे च राजेन्द्रा लीलया रावणो जितः। जितोऽहं दत्तशूलेन शंभुना जीवितः पुनः ॥३५॥
रामस्य वचनं श्रुत्वा राजा परमधार्मिकः। मूर्ध्ना प्रणम्य तं भक्त्या यथार्थोक्तिमुवाच ह ॥३६॥

राजोवाच

किमधीतं तथा दत्तं का वा पृथ्वी सुशासिता। हताः कतिविधा भूपा मादृशा धरणीतले ॥३७॥
बुद्धिस्तेजो विक्रमश्च विविधा रणमन्त्रणा। श्रीरैश्वर्यं तथा ज्ञानं दानशक्तिश्च लौकिकम् ॥३८॥
आचारो विनयो विद्या प्रतिष्ठा परमं तपः। सर्वं मनोरमासङ्गे गतमेव मम प्रभो ॥३९॥
सा च स्त्री प्राणतुल्या मे साध्वी पद्मांशसंभवा। यज्ञेषु पत्नी मातेव स्नेहे क्रीडति सङ्गिनी ॥४०॥

कृष्ण का कवच माँगकर भृगु को दे दिया ॥२८-३१॥ अनन्तर देवगण अपने-अपने स्थान पर चले गये और राम ने रण में पुनः राजा से कहा ॥३२॥

परशुराम बोले—हे राजेन्द्र ! उठो, साहसपूर्वक युद्ध करो। समय के भेद से मनुष्यों का जय और पराजय हुआ करता है ॥३३॥ क्योंकि मैंने विधिवत् अध्ययन कर शिष्यों को अध्ययन कराया, समस्त पृथिवी पर सुशासन किया और अच्छे ढंग से युद्ध किया, किन्तु तुम्हारे द्वारा मूर्च्छित हो गया ॥३४॥ लीला से समस्त राजाओं समेत रावण को जीता, पर दत्तके शूल से मैं भी पराजित हो गया। फिर शिव ने आकर मुझे जीवित कर दिया ॥३५॥ राम की ऐसी बातें सुनकर परम धार्मिक राजा ने भक्तिपूर्वक शिर से उन्हें प्रणाम किया और यथार्थ वचन कहना आरम्भ किया ॥३६॥

राजा बोला—आपने क्या अध्ययन किया, क्या दिया, किस पृथ्वी पर सुशासन किया और भूतल पर मेरे समान कितने राजा (आपके द्वारा) निहत हुए ? ॥३७॥ हे प्रभो ! हमारी बुद्धि, तेज, विक्रम, विविध प्रकार की युद्ध-मन्त्रणा (सलाह), श्री, ऐश्वर्य, ज्ञान, दानशक्ति, लौकिक यश, आचार, विनय, विद्या, प्रतिष्ठा, परम तप आदि सब कुछ मेरा मनोरमा के साथ चला गया ॥३८-३९॥ वह मेरी पत्नी प्राण के समान, पतिव्रता और कमला के अंश से उत्पन्न थी। यज्ञों में पत्नी, स्नेह करने में माता की भाँति और क्रीड़ा के समय संगिनी (साथी) थी, शयन, भोजन और युद्ध में बाल्यकाल से साथ रहती थी, अतः उसके बिना

---

१. क. यशः कृतं च संसारे स्व०।

आबाल्यात्सङ्गिनी शश्वच्छयने भोजने रणे। तां विना प्राणहीनोऽहं विषहीनो यथोरगः ॥४१॥
त्वया न दृष्टं युद्धं मे पुरेयं शोचना स्थिता। द्वितीया शोचना विप्र हतोऽहं ब्राह्मणेन च ॥४२॥
काले सिंहः सृगालं च सृगालः सिंहमेव च। काले व्याघ्रं हन्ति मृगो गजेन्द्रं हरिणस्तथा ॥४३॥
महिषं मक्षिका काले गरुडं च तथोरगः। किंकरः स्तौति राजेन्द्रं काले राजा च किंकरम् ॥४४॥
इन्द्रं च मानवः काले काले ब्रह्मा मरिष्यति। तिरो भूत्वा सा प्रकृतिः काले श्रीकृष्णविग्रहे ॥४५॥
मरिष्यन्ति सुराः सर्वे त्रिलोकस्थाश्चराचराः। सर्वे काले लयं यान्ति कालो हि दुरतिक्रमः ॥४६॥
कालस्य कालः श्रीकृष्णः स्रष्टुः स्रष्टा यथेच्छया। संहर्ता चैव संहर्तुः पातुः पाता परात्परः ॥४७॥
महास्थूलात्स्थूलतमः सूक्ष्मात्सूक्ष्मतमः कृशः। [1]परमाणुपरः कालकालः स्यात्कालभेदकः ॥४८॥
यस्य लोमानि विश्वानि स पुमांश्च महाविराट्। तेजसां षोडशांशश्च कृष्णस्य परमात्मनः ॥४९॥
ततः क्षुद्रविराड्जातः सर्वेषां कारणं परम्। यः स्रष्टा च स्वयं ब्रह्मा यन्नाभिकमलोद्भवः ॥५०॥
नाभेः कमलदण्डस्य योऽन्तं न प्राप यत्नतः। भ्रमणाल्लक्षवर्षं च ततः स्वस्थानसंस्थितः ॥५१॥
तपश्चक्रे ततस्तत्र लक्षवर्षं च वायुभुक्। ततो ददर्श गोलोकं श्रीकृष्णं च सपार्षदम् ॥५२॥

मैं विषहीन साँप की भाँति प्राणहीन हो गया हूँ ॥४०-४१॥ हे विप्र! आपने मेरा युद्ध पहले कभी नहीं देखा था। मुझे पहला यही शोक है, दूसरा शोक यह है कि मैं ब्राह्मण द्वारा निहत हो रहा हूँ ॥४२॥ यद्यपि समयानुसार सिंह स्यार को मारता है, और स्यार सिंह को। समय पर मृग बाघ को मारता है और हरिण गजराज को ॥४३॥ काल में ही मक्खी महिष (भैंसे) को मारती है, और उसी प्रकार सर्प गरुड़ को। सेवक राजा की स्तुति करता है और समय आने पर राजा सेवक की प्रार्थना करता है ॥४४॥ काल आने पर मानव इन्द्र को मार देता है एवं काल के आने पर ब्रह्मा भी मर जायंगे। काल आने पर प्रकृति भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर में विलीन हो जाती है ॥४५॥ सभी देवगण मर जायंगे और तीनों लोकों के चर-अचर समेत समस्त जगत् काल में विलीन हो जाता है, अतः काल ही दुर्निवार है ॥४६॥ परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण स्वेच्छा से काल के भी काल, स्रष्टा के स्रष्टा, संहर्ता के संहारक और रक्षक के रक्षक एवं परात्पर हैं ॥४७॥ महास्थूल से स्थूलतम, सूक्ष्म से सूक्ष्मतम, कृश (दुर्बल), परमाणु से भी परे, काल के काल और कालभेद करने वाले हैं ॥४८॥ उनके लोमों में असंख्य विश्व हैं और महाविराट् पुरुष परमात्मा श्रीकृष्ण के तेज का सोलहवाँ अंशरूप है ॥४९॥ उनसे क्षुद्र विराट् की उत्पत्ति हुई, जो समस्त के परम कारण हैं। स्वयं ब्रह्मा, जो सृष्टि करने वाले हैं, उनके नाभिकमल से उत्पन्न हुए हैं, किन्तु प्रयास करने पर भी ब्रह्मा उस कमलदण्ड का अन्त नहीं पा सके। एक लाख वर्ष तक उसकी खोज में भ्रमण कर पुनः अपने स्थान पर स्थित हो गये ॥५०-५१॥ अनन्तर वायुभक्षण करते हुए एक लाख वर्ष तक तप करने पर उन्हें पार्षद समेत भगवान् श्रीकृष्ण और गोलोक का दर्शन प्राप्त हुआ ॥५२॥

१क. पुराणः परमः का०।

गोपगोपीपरिवृतं द्विभुजं मुरलीधरम्। रत्नसिंहासनस्थं च राधावक्षःस्थलस्थितम् ॥५३॥
दृष्ट्वाऽनुज्ञां गृहीत्वा च प्रणम्य च पुनः पुनः। ईश्वरेच्छां च विज्ञाय स्रष्टुं सृष्टिं मनो दधे ॥५४॥
यः शिवः सृष्टिसंहर्ता स च स्रष्टुर्ललाटजः। विष्णुः पाता क्षुद्रविराट्श्वेतद्वीपनिवासकृत् ॥५५॥
सृष्टिकारणभूताश्च ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । सन्ति विश्वेषु सर्वेषु श्रीकृष्णस्य कलोद्भवाः ॥५६॥
तेऽपि देवाः प्राकृतिकाः प्राकृतश्च महाविराट्। सर्वप्रसूतिः प्रकृतिः श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः ॥५७॥
न शक्तः परमेशोऽपि तां शक्तिं प्रकृतिं विना। सृष्टिं विधातुं मायेशो न सृष्टिर्मायया विना ॥५८॥
सा च कृष्णे तिरो भूत्वा सृष्टिसंहारकारके। साऽऽविर्भूता सृष्टिकाले सा च नित्या[1] महेश्वरी ॥५९॥
कुलालश्च घटं कर्तुं यथाऽशक्तो मृदं विना। स्वर्णं विना स्वर्णकारः कुण्डलं कर्तुमक्षमः ॥६०॥
सा च शक्तिः सृष्टिकाले पञ्चधा चेश्वरेच्छया। राधा पद्मा च सावित्री दुर्गा देवी सरस्वती ॥६१॥
प्राणाधिष्ठातृदेवी या कृष्णस्य परमात्मनः। प्राणाधिकप्रियतमा सा राधा परिकीर्तिता ॥६२॥
ऐश्वर्याधिष्ठातृदेवी सर्वमङ्गलकारिणी। परमानन्दरूपा च सा लक्ष्मीः परिकीर्तिता ॥६३॥
विद्याधिष्ठातृदेवी या परमेशस्य दुर्लभा। या माता वेदशास्त्राणां सा सावित्री प्रकीर्तिता ॥६४॥

तब ब्रह्मा ने गोप-गोपियों से घिरे, दो भुजाओं वाले, अधर पर मुरली रखे, रत्नसिंहासन पर अवस्थित और राधा के वक्षःस्थल पर विराजमान कृष्ण को देखकर उन्हें बार-बार प्रणाम किया और उनकी आज्ञा लेकर ईश्वर की इच्छा जानते हुए सृष्टि सर्जन करने का मन में निश्चय किया ॥५३-५४॥ जो शिव सृष्टि का संहार करते हैं वे स्रष्टा (ब्रह्मा) के भाल से उत्पन्न हुए हैं और श्वेतद्वीपनिवासी रक्षक विष्णु क्षुद्र विराट् कहे जाते हैं ॥५५॥ भगवान् श्रीकृष्ण की कला से उत्पन्न होने वाले ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर सभी विश्वों में सृष्टि के कारण रूप हैं ॥५६॥ समस्त देवगण भी प्राकृत (प्रकृति जन्य) हैं और महाविराट् भी प्रकृति से उत्पन्न हैं प्रकृति सबकी जननी है और भगवान् श्रीकृष्ण प्रकृति से परे हैं। परमेश्वर भी बिना प्रकृति-शक्ति के सृष्टि करने में समर्थ नहीं हैं। वे मायाधीश्वर हैं बिना माया के सृष्टि सम्भव नहीं होती है ॥५७-५८॥ सृष्टि-संहार करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण में वह प्रकृति (महाप्रलय में) तिरोहित हो जाती है और सृष्टि के अवसर पर पुनः प्रकट होती है। वह महेश्वरी प्रकृति नित्य है ॥५९॥ जिस प्रकार बिना मिट्टी के कुम्हार घड़ा बनाने में और सोनार सुवर्ण बिना कुण्डल बनाने में असमर्थ रहता है, उसी प्रकार माया के बिना सृष्टि असम्भव है ॥६०॥ शक्ति रूप वह प्रकृति सृष्टि के समय ईश्वर की इच्छा से अपने को—राधा, पद्मा, सावित्री, दुर्गा और सरस्वती देवी, इनपांच रूपों में विभक्त करती है ॥६१॥ परमात्मा श्रीकृष्ण के प्राणों की अधिष्ठात्री देवी एवं तथा उनके प्राणों से भी अधिक प्रियतमा होने के नाते उसे 'राधा' कहा जाता है ॥६२॥ ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री देवी एवं सम्पूर्ण मंगल करने वाली उस परमानन्द रूपा को 'लक्ष्मी' कहा गया है ॥६३॥ जो परमेश्वर की दुर्लभा शक्ति विद्या की अधिष्ठात्री देवी तथा वेदशास्त्रों की जननी है, उसे 'सावित्री' कहा गया है ॥६४॥ बुद्धि की अधि-

---

१क. ०त्या यथेश्वराः।

बुद्ध्यधिष्ठातृदेवी या सर्वशक्तिस्वरूपिणी। सर्वज्ञानात्मिका सर्वा सा दुर्गा दुर्गनाशिनी॥६५॥
वागधिष्ठातृदेवी या शास्त्रज्ञानप्रदा सदा। कृष्णकण्ठोद्भवा सा स्याद्या च देवी सरस्वती॥६६॥
पञ्चधाऽऽदौ स्वयं देवी मूलप्रकृतिरीश्वरी। ततः सृष्टिक्रमेणैव बहुधा कलया च सा॥६७॥
योषितः प्रकृतेरंशाः पुमांसः पुरुषस्य च। मायया सृष्टिकाले च तद्विना न भवेद्भवः॥६८॥
सृष्टिश्च प्रतिविश्वेषु ब्रह्मन्ब्रह्मोद्भवा सदा। पाता विष्णुश्च संहर्ता शिवः शश्वच्छिवप्रदः॥६९॥
दत्तदत्तं ज्ञानमिदं राम मह्यं च पुष्करे। दीक्षाकाले च माघ्यां च मुनिप्रवरसंनिधौ॥७०॥
इत्युक्त्वा कार्तवीर्यश्च रामं नत्वा च सस्मितः। आरुरोह रथं शीघ्रं गृहीत्वा सशरं धनुः॥७१॥
रामस्ततो राजसैन्यं ब्रह्मास्त्रेण जघान ह। नृपं पाशुपतेनैव लीलया श्रीहरिं स्मरन्॥७२॥
एवं त्रिःसप्तकृत्वश्च क्रमेण च वसुंधराम्। रामश्चकार निर्भूपां लीलया च शिवं स्मरन्॥७३॥
गर्भस्थं मातुरङ्कस्थं शिशुं वृद्धं च मध्यमम्। जघान क्षत्रियं रामः प्रतिज्ञापालनाय वै॥७४॥
कार्तवीर्यश्च गोलोकं त्वगमत्कृष्णसंनिधिम्। जगाम परशुरामश्च स्वालयं श्रीहरिं स्मरन्॥७५॥
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां महीं दृष्ट्वा महेश्वरः। पर्शुना रमणं दृष्ट्वा परशुरामं चकार तम्॥७६॥
देवाश्च मुनयो देव्यः सिद्धगन्धर्वकिन्नराः। सर्वे चक्रुः पुष्पवृष्टिं राममूर्ध्नि च नारद॥७७॥

ष्ठात्री देवी, समस्त शक्तिस्वरूपिणी, समस्त ज्ञानस्वरूपा, सर्वरूपा और दुर्गतिनाशिनी देवी को 'दुर्गा' कहा जाता है॥६५॥ वाणी की अधिष्ठात्री देवी को, जो सदा शास्त्र-ज्ञान प्रदान करती है और भगवान् श्रीकृष्ण के कण्ठ से उत्पन्न है, 'सरस्वती देवी' कहते हैं॥६६॥ वह ईश्वरी मूलप्रकृति आदि में स्वयं पांच रूपों में प्रकट होती है और अनन्तर सृष्टि-क्रम से अपनी कला द्वारा बहुत रूपों में हो जाती है॥६७॥ अतः विश्व की समस्त स्त्रियाँ प्रकृति के अंश से और पुरुष (पुरुषोत्तम) के अंश से उत्पन्न हैं, क्योंकि सृष्टिकाल में बिना माया के जन्म सम्भव नहीं होता है॥६८॥ हे ब्रह्मन्! प्रत्येक विश्व में सृष्टि का सर्जन ब्रह्मा ही करते हैं, सदा पालन विष्णु करते हैं और निरन्तर शिव (कल्याण) प्रद शिव संहार करते हैं॥६९॥ हे राम! यह ज्ञान दत्तात्रेय ने मुझे पुष्कर क्षेत्र में माघी पूर्णिमा के दिन मुनिश्रेष्ठ के समीप प्रदान किया था॥७०॥ राम से इतना कह कर कार्त्तवीर्य्य ने राम को नमस्कार किया और धनुष बाण लेकर शीघ्र रथ पर बैठ गया॥७१॥ अनन्तर राम ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कर राजसेनाओं का विनाश किया और श्रीहरि का स्मरण करते हुए लीला पूर्वक राजा को पाशुपत अस्त्र द्वारा मार डाला॥७२॥ इस भाँति राम ने शिव के स्मरणपूर्वक क्रमशः इस पृथ्वी को लीलापूर्वक इक्कीस बार भूपविहीन किया॥७३॥ राम ने अपनी प्रतिज्ञा के रक्षणार्थ माता के गर्भ एवं गोद में स्थित शिशुओं, वृद्धों एवं युवा क्षत्रियों का विनाश किया।॥७४॥ निधन होने पर कार्त्तवीर्य्य गोलोक में भगवान् श्रीकृष्ण के समीप चला गया और परशुराम भी प्रसन्न होकर श्री हरि का स्मरण करते हुए वहाँ से चले गये॥७५॥ महेश्वर ने इक्कीस बार पृथ्वी को निःक्षत्रिय करते तथा पर्शु (फरसे) से ही रमण करते देखकर 'परशुराम' उनका नामकरण किया॥७६॥ हे नारद! देवगण, मुनिवृन्द, देवियों एवं सिद्धों, गन्धर्वों और किन्नर गणों ने राम के शिर पर पुष्पों की वर्षा की॥७७॥ स्वर्ग में

स्वर्गे दुन्दुभयो नेदुर्हर्षशब्दो बभूव ह। यशसा चैव परशुरामस्याऽऽपूरितं जगत् ॥७८॥
ब्रह्मा भृगुश्च शुक्रश्च वाल्मीकिश्च्यवनस्तथा। जमदग्निर्ब्रह्मलोकादाजगाम प्रहर्षितः ॥७९॥
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गाः सानन्दाश्रुसमन्विताः। दूर्वापुष्पकराः सर्वे कुर्वन्तो मङ्गलाशिषः ॥८०॥
प्रणनाम च तान्रामो दण्डवत्पतितो भुवि। क्रोडे चकार ब्रह्माऽऽदौ क्रमात्तातेति संवदन्[1] ॥८१॥
तमुवाचाथ परशुरामं ब्रह्मा जगद्गुरुः। वेदसारं नीतियुतं परिणामसुखावहम् ॥८२॥

ब्रह्मोवाच

शृणु राम प्रवक्ष्यामि सर्वसंपत्करं परम्। काण्वशाखोक्तवचनं सत्यं वै सर्वसंमतम् ॥८३॥
पूज्यानामेव सर्वेषामिष्टः पूज्यतमः परः। जनको जन्मदानाच्च पालनाच्च पिता स्मृतः ॥८४॥
गरीयाञ्जन्मदातुश्च सोऽन्नदाता पिता मुने। विनाऽन्नं नश्वरो देहो न नित्यं पितुरुद्भवः ॥८५॥
तयोः शतगुणं माता पूज्या मान्या च वन्दिता। गर्भधारणपोषाभ्यां सैव प्रोक्ता गरीयसी ॥८६॥
तेभ्यः शतगुणं पूज्योऽभीष्टदेवः श्रुतौ श्रुतः। ज्ञानविद्यामन्त्रदाताऽभीष्टदेवात्परो गुरुः ॥८७॥
गुरुवद्गुरुपुत्रश्च गुरुपत्नी ततोऽधिका। देवे रुष्टे गुरू रक्षेद् गुरौ रुष्टे न कश्चन ॥८८॥

दुन्दुभी बजने लगी, देवों ने महान् हर्ष प्रकट किया। परशुराम के यश से समस्त जगत् आच्छन्न हो गया ॥७८॥ पश्चात् ब्रह्मा, भृगु, शुक्र, वाल्मीकि, च्यवन और जमदग्नि अत्यन्त हर्षित होकर ब्रह्मलोक से वहाँ आये ॥७९॥ सभी लोग रोमाञ्चित शरीर एवं आनन्द के आँसू से युक्त थे, दूर्वा और पुष्प हाथ में लिए मंगल आशीर्वाद दे रहे थे ॥८०॥ उन्हें देखकर राम ने भूमि में लेट कर दण्डवत् प्रणाम किया। पहले ब्रह्मा ने गोद में लिया, फिर हे तात! कह कर हर्ष प्रकट किया ॥८१॥ जगद्गुरु ब्रह्मा ने परशुराम से वेद का सारभाग, नीतिपूर्ण एवं परिणाम में सुखदायक वचन कहा ॥८२॥

ब्रह्मा बोले—हे राम! मैं तुम्हें समस्तसम्पत्तिप्रद, श्रेष्ठ, सत्य और सर्वसम्मत काण्वशाखा का वचन बता रहा हूँ, सुनो। सभी पूज्य गणों में इष्टदेव परम पूज्य होता है। (कोई) जन्म देने के कारण जनक और पालन करने के नाते पिता कहलाता है ॥८३-८४॥ हे मुने! उस जन्मदाता से अन्नदाता पिता श्रेष्ठ होता है क्योंकि बिना अन्न के देह नष्ट हो जाती है और पिता से उत्पन्न होना नित्य नहीं है ॥८५॥ उन दोनों में माता सौ गुनी अधिक पूज्या, मान्या एवं वन्दिता होती है। गर्भ धारण तथा पोषण करने के नाते वह श्रेष्ठ कही गयी है ॥८६॥ इन लोगों से सौ गुना अधिक अभीष्ट देव पूज्य है, ऐसा वेद में सुना गया है। ज्ञान, विद्या और मन्त्र देने वाला गुरु अभीष्टदेव से भी श्रेष्ठ है ॥८७॥ गुरुवत् गुरुपुत्र भी सम्माननीय होता है और गुरुपत्नी उससे भी अधिक। क्योंकि देवता के रुष्ट होने पर गुरु रक्षक होता है और गुरु के रुष्ट होने पर कोई नहीं ॥८८॥ गुरु ब्रह्मा, गुरु विष्णु और गुरु महेश्वर

१क. संरुदन्।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुरेव परं ब्रह्म ब्राह्मणेभ्यः प्रियः परः ॥८९॥
गुरुर्ज्ञानं ददात्येव ज्ञानं च हरिभक्तिदम्। हरिभक्तिप्रदाता यः को वा बन्धुस्ततः परः ॥९०॥
अज्ञानतिमिराच्छन्नो ज्ञानदीपं यतो लभेत्। लब्ध्वा च निर्मलं पश्येत्को वा बन्धुस्ततः परः ॥९१॥
गुरुदत्तं सुमन्त्रं च जप्त्वा ज्ञानं ततो लभेत्। सर्वज्ञत्वाच्च सिद्धिं च को वा बन्धुस्ततोऽधिकः ॥९२॥
सुखं जयति सर्वत्र विद्यया गुरुदत्तया। यया पूज्योऽपि जगति को वा बन्धुस्ततोऽधिकः ॥९३॥
विद्यान्धो वा धनान्धो वा यो मूढो न यजेद्गुरुम्। ब्रह्महत्यादिकं पापं लभते नात्र संशयः ॥९४॥
दरिद्रं पतितं क्षुद्रं नरबुद्ध्या भजेद्गुरुम्। तिर्थस्नातोऽपि न शुचिर्नाधिकारी च कर्मसु ॥९५॥
अभीष्टदेवः श्रीकृष्णो गुरुस्ते शंकरः स्वयम्। शरणं गच्छ हे पुत्र देवपूज्यतमं गुरुम् ॥९६॥
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपा त्वया पृथ्वी कृता यतः। प्राप्ता त्वया हरेर्भक्तिस्तं शिवं शरणं व्रज ॥९७॥
शिवां च शिवरूपं च शिवदं शिवकारणम्। शिवाराध्यं शिवं शान्तं गुरुं त्वं शरणं व्रज ॥९८॥
गोलोकनाथो भगवानंशेन शिवरूपधृक्। य इष्टदेवः स गुरुस्तमेव शरणं व्रज ॥९९॥
आत्मा कृष्णः शिवो ज्ञानं मनोऽहं सर्वजीविषु। प्राणा विष्णुः सा प्रकृतिः सर्व शक्तियुता सुत ॥१००॥

देव हैं, गुरु ही परब्रह्म तथा ब्राह्मण से भी अधिक प्रिय हैं ॥८९॥ गुरु ज्ञान प्रदान करते हैं, जिससे हरि की भक्ति प्राप्त होती है। फिर जो भगवान् की भक्ति प्रदान करता है उससे बढ़कर दूसरा कौन बन्धु हो सकता है? ॥९०॥ अज्ञान रूपी अन्धकार से आच्छन्न प्राणी जिसके द्वारा ज्ञानरूपी दीपक प्राप्त करता है और प्राप्त करके निर्मल दर्शन करता है उससे बढ़कर अन्य कौन बन्धु है? ॥९१॥ गुरु के दिये हुए मंत्र का जप करके (शिष्य) उससे ज्ञान प्राप्त करता है और सर्वज्ञता एवं सिद्धि को भी प्राप्त कर सकता है, अतः उससे बढ़कर अन्य कौन बन्धु हो सकता है? ॥९२॥ गुरु की दी हुई विद्या द्वारा सर्वत्र सुख से जीतता है, और उस (विद्या) से जगत् में पूज्य होता है, अतः उससे अधिक बन्धु कौन है? ॥९३॥ जो मूर्ख विद्या से या धन से अन्धा होकर गुरु की अर्चना नहीं करता है, उसे ब्रह्महत्या आदि पाप का भागी होना पड़ता है, इसमें संशय नहीं ॥९४॥ जो व्यक्ति दरिद्र, पतित और क्षुद्र गुरु को मनुष्य समझकर सेवा करता है, वह तीर्थ-स्नान करने पर भी पवित्र नहीं होता है और न कर्मों का अधिकारी ही होता है ॥९५॥ भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारे अभीष्ट देव हैं और शिव जी स्वयं गुरु हैं, अतः हे पुत्र! देवों से भी अधिक पूजनीय गुरु की शरण में जाओ ॥९६॥ जिसके द्वारा तुमने इक्कीस बार इस वसुन्धरा को निःक्षत्रिय किया है और जिससे भगवान् की भक्ति प्राप्त की है, उस शिव की शरण में जाओ ॥९७॥ शिवा (भवानी) रूप, शिवरूप, शिवप्रद, शिवकारण, शिवा के आराध्य-देव एवं शान्त गुरु शिव की शरण में जाओ ॥९८॥ गोलोकाधीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ही अंश से शिवरूप धारण करते हैं। जो इष्टदेव है, वही गुरु है, अतः उसकी शरण में जाओ ॥९९॥ हे सुत! समस्त जीवों के आत्मा भगवान् कृष्ण हैं, शिव ज्ञान हैं, मैं मन हूँ, विष्णु प्राण हैं और वह प्रकृति समस्त शक्ति से युक्त है ॥१००॥

ज्ञानदं ज्ञानरूपं च ज्ञानबीजं सनातनम् । मृत्युंजयं कालकालं तं गुरुं शरणं व्रज ॥१०१॥
ब्रह्मज्योतिः स्वरूपं तं भक्तानुग्रहविग्रहम् । शरणं व्रज सर्वज्ञं भगवन्तं सनातनम् ॥१०२॥
प्रकृतिर्लक्षवर्षं च तपस्तप्त्वा यमीश्वरम् । कान्तं प्रियपतिं लेभे तं गुरुं शरणं व्रज ॥१०३॥
इत्युक्त्वा मुनिभिः सार्धं जगाम कमलोद्भवः । रामश्च गन्तुं कैलासं मनश्चक्रे च नारद ॥१०४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपति० नारदना० भृगोः कैलासगमनोपदेशो नाम
चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

हरेश्च कवचं धृत्वा कृत्वा निःक्षत्त्रियां[1] महीम् । रामो जगाम कैलासं नमस्कर्तुं शिवं गुरुम् ॥१॥
गुरुपत्नीं शिवामम्बां द्रष्टुं गुरुसुतौ च तौ । गुणैर्नारायणसमौ कार्तिकेयगणेश्वरौ ॥२॥
मनोयायी महात्मा स भृगुः संप्राप्य तत्क्षणम् । ददर्श नगरं रम्यमतीव सुमनोहरम् ॥३॥
शुद्धस्फटिकसंकाशैर्मणिभिः सुमनोहरैः । सुवर्णभूमिसदृशै राजमार्गैर्विराजितम् ॥४॥

ज्ञानप्रद, ज्ञानरूप, ज्ञान के बीज, सनातन, मृत्यु के विजेता और काल के भी काल उस गुरु की शरण में जाओ ॥१०१॥ ब्रह्मज्योतिःस्वरूप, भक्तों पर अनुग्रहार्थ रूप धारण करने वाले, सर्वज्ञाता एवं सनातन भगवान् की शरण में जाओ ॥१०२॥ प्रकृति ने एक लाख वर्ष तक तप करके जिस ईश्वर को मनोहर एवं प्रियपति के रूप में प्राप्त किया है, उस गुरु की शरण में जाओ ॥१०३॥ हे नारद ! इतना कहकर ब्रह्मा मुनियों समेत चले गये और राम ने कैलाश जाने का निश्चय किया ॥१०४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण-संवाद में भृगु को कैलास-गमन-उपदेश-वर्णन नामक चालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४०॥

अध्याय ४१

कैलास का वर्णन

नारायण बोले—राम ने भगवान् का कवच धारण करके पृथिवी को निःक्षत्रिय किया और पश्चात् गुरु शिव को नमस्कार करने के लिए तथा गुरुपत्नी माता पार्वती और गुणों में नारायण के समान कार्तिकेय एवं गणेश नामक गुरुपुत्रों को देखने के लिए कैलास की यात्रा की ॥१-२॥ मन के समान वेग-गामी महात्मा भृगु ने उसी क्षण कैलास पहुँच कर रम्य एवं अति मनोहर उस नगर को देखा, जो शुद्ध स्फटिक के समान मणियों एवं अतिमनोहर सुवर्ण-भूमि के समान राजमार्गों (सड़कों) से सुशोभित, सिन्दूर

---

१. क. ०र्णल्यमास० ।

सिन्दूरारुणवर्णैश्च वेष्टितं मणिवेदिभिः । संयुक्तं मुक्तानिकरैः पूरितं मणिमण्डपैः ॥५॥
यक्षाणामालयैर्दिव्यैः संयुक्तं शतकोटिभिः । कपाटस्तम्भसोपानैः शोभितैर्मणिनिर्मितैः ॥६॥
सुवर्णकलशैर्दिव्यै राजतैः श्वेतचामरैः । रत्नकाञ्चनपूर्णैश्च यक्षेन्द्रगणवेष्टितैः ॥७॥
रत्नभूषणभूषाढ्यैर्दीपितैः सुन्दरीगणैः । बालिकाभिर्बालकैश्च चित्रपुत्तलिकाकरैः ॥८॥
क्रीडद्भिः सस्मितैः शश्वत्स्वच्छन्दं च विराजितैः । पारिजातद्रुमगणैः स्वर्णदीतीरनीरजैः ॥९॥
आकीर्णं पुष्पजालैश्च पुष्पितैश्च सुगन्धिभिः । कल्पवृक्षाश्रितैः सिद्धैः कामधेनुपुरस्कृतैः ॥१०॥
सिद्धविद्यासु निपुणैः पुण्यवद्भिर्निषेवितम् । त्रिलक्षयोजनोच्छ्रायैर्वटवृक्षैरथाक्षयैः ॥११॥
शतयोजनविस्तीर्णैः शतस्कन्धसमन्वितैः । असंख्यशाखानिकरैरसंख्यफलसंयुतैः ॥१२॥
नानापक्षिगणाकीर्णैः सुमनोहरशब्दितैः । कम्पितैः शीतवातेन मण्डितं च सुगन्धिना ॥१३॥
पुष्पोद्यानसहस्रेण सरसां च शतेन च । सिद्धेन्द्रालयलक्षैश्च मणिरत्नविकारजैः ॥१४॥
रामश्च दृष्ट्वा नगरमतिसंहृष्टमानसः । ददर्श पुरतो रम्यं श्रीयुक्तं शंकरालयम् ॥१५॥
सुवर्णमूल्यशतकैर्मणिभिः स्वर्णवर्णकैः । खचितं रत्नसारैश्च रचितं विश्वकर्मणा ॥१६॥
त्रिपञ्चयोजनोच्छ्रायं चतुर्योजनविस्तृतम् । चतुरस्रं चतुष्कोणं प्राकारं सुमनोहरम् ॥१७॥
द्वारं रत्नकपाटेन नानाचित्रान्वितेन च । मणीन्द्रवेदिभिर्युक्तं मणिस्तम्भविराजितैः ॥१८॥

के समान लालवर्ण की मणिवेदियों से वेष्टित मोतियों के समूहों से युक्त, मणिनिर्मित मण्डपों से पूर्ण और यक्षों के दिव्य सौ करोड़ गृहों से युक्त था। उन (गृहों) में मणि के बने किवाड़, खम्भे और सीढ़ियाँ थीं ॥३-६॥ उनमें सुवर्ण के दिव्य कलश, चांदी के श्वेत चामर, रत्नों और सुवर्णों के ढेर, यक्षेन्द्रों के समूह रत्नों के भूषणों से अत्यन्त भूषित सुन्दरी-गण, हाथों में कठपुतली लिये बालक-बालिकागण, जो मन्द मुसुकान समेत स्वच्छन्द होकर निरन्तर खेल रहे थे, विराजमान थे। स्वर्ग की नदी (गंगा) के किनारे उत्पन्न होने वाले पारिजात वृक्ष थे। सुगन्धित पुष्पों के समूह बिखरे हुए थे। कल्पवृक्षों के आश्रय में सिद्धगण, कामधेनु, सिद्धविद्याओं में निपुण पुण्यवान् लोग थे। वहाँ अक्षय वट वृक्ष थे जो तीन लाख योजन ऊँचे, सौ योजन विस्तीर्ण, सौ स्कन्धों, असंख्य शाखाओं और असंख्य फलों से युक्त, अति मनोहर शब्द करने वाले असंख्य पक्षिगणों और शीतल सुगन्धित वायु से कम्पित थे। वह नगर सहस्र वाटिकाओं, सौ नदियों और मणिरत्नों के बने एक लाख सिद्धों के गृहों से पूर्ण था ॥७-१४॥ इस प्रकार नगर को देखकर राम का चित्त अति प्रसन्न हुआ। अनन्तर उन्होंने सामने रम्य एवं श्रीसम्पन्न शंकर का भवन देखा ॥१५॥ सौ सुवर्ण मूल्य वाली एवं सोने के समान वर्ण वाली मणियों और रत्नों के सार भागों से विश्वकर्मा ने उसका निर्माण किया था ॥१६॥ वह पन्द्रह योजन ऊँचे, चार योजन चौड़े, चौकोर और अति मनोहर प्राकार (चहार दीवारी) से घिरा था ॥१७॥ अनेक भाँति के चित्रों से चित्रित रत्नों के किवाड़ से विभूषित उसका द्वार था, जो उत्तम मणि की वेदियों और मणि के स्तम्भों से युक्त था ॥१८॥ हे

तद्दक्षिणे वृषेन्द्रं च वामे सिंहं च नारद। नन्दीश्वरं महाकालं पिङ्गलाक्षं भयंकरम्॥१९॥
विशालाक्षं च बाणं च विरूपाक्षं महाबलम्। विकटाक्षं भास्कराक्षं रक्ताक्षं विकटोदरम्॥२०॥
संहारभैरवं कालभैरवं च भयंकरम्। रुरुभैरवमीशाभं महाभैरवमेव च॥२१॥
कृष्णाङ्गभैरवं चैव क्रोधभैरवमुल्बणम् । कपालभैरवं चैव रुद्रभैरवमेव च॥२२॥
सिद्धेन्द्रादीन्रुद्रगणान्विद्याधरसुगुह्यकान् । भूतान्प्रेतान्पिशाचांश्च कूष्माण्डान्ब्रह्मराक्षसान्॥२३॥
वेतालान्दानवांश्चैव योगीन्द्रांश्च जटाधरान् । यक्षान्किंपुरुषांश्चैव किन्नरांश्च ददर्श ह॥२४॥
तान्दृष्ट्वा नन्दिकेशाज्ञां गृहीत्वा भृगुनन्दनः । तान्संभाष्याभ्यन्तरं च जगामाऽऽनन्दसंप्लुतः॥२५॥
रत्नेन्द्रसारखचितं ददर्श शतमन्दिरम् । अमूल्यरत्नकलशैर्ज्वलद्भिश्च विराजितम्॥२६॥
अमूल्यरत्नरचितैर्मुक्तानिर्मलदर्पणैः । हीरसारविकारैश्च कपाटैश्च विराजितम्॥२७॥
गोरोचनाभिर्मणिभिर्युतं स्तम्भसहस्रकैः । मणिसारविकारैश्च सोपानैः परिशोभितम्॥२८॥
ददर्शाभ्यन्तरं द्वारं नानाचित्रैश्च चित्रितम् । माणिक्यमुक्ताग्रथितैर्मालाजालैर्विराजितम्॥२९॥
ददर्श कार्तिकेयं च वामे दक्षे गणेश्वरम्। वीरभद्रं महाकायं शिवतुल्यपराक्रमम्॥३०॥
प्रधानपार्षदगणान्क्षेत्रपालांश्च नारद । रत्नसिंहासनस्थांश्च रत्नभूषणभूषितान्॥३१॥
तान्संभाष्य भृगुः शीघ्रं महाबलपराक्रमः । पर्शुहस्तः स परशुरामो गन्तुं समुद्यतः॥३२॥
गच्छन्तं तं गणेशश्च क्षणं तिष्ठेत्युवाच ह। निद्रितो निद्रया युक्तो महादेवोऽधुनेति च॥३३॥

नारद ! उसके दाहिने भाग में नन्दी, बायें भाग में सिंह, नन्दीश्वर, महाकाल, भयंकर पिंगलाक्ष, विशालाक्ष, बाण, महाबली विरूपाक्ष, विकटाक्ष, भास्कराक्ष, रक्ताक्ष, विकटोदर, संहारभैरव, भयंकर कालभैरव, रुरुभैरव, ईशाभ, महाभैरव, कृष्णांगभैरव, क्रोधभैरव, उल्बण, कपालभैरव और रुद्रभैरव थे॥१९-२२॥ अनन्तर सिद्धेन्द्र आदि रुद्र गण, विद्याधर, गुह्यकगण, भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, वेताल, दानव, जटाधारी योगीन्द्रगण, यक्षगण, किम्पुरुषों और किन्नरों को देखा॥२३-२४॥ उन्हें देखने के पश्चात् भृगुनन्दन (राम) नन्दिकेश्वर की आज्ञा से सबसे बात-चीत करके आनन्दमग्न होते हुए भीतर चले गये॥२५॥ वहाँ उन्होंने सैकड़ों मन्दिरों को देखा, जो रत्नेन्द्र के सार भाग से खचित, अमूल्य रत्नों के समुज्ज्वल कलशों से सुशोभित, अमूल्य रत्नों के बने मोती जैसे निर्मल दर्पणों और हीरों के सारभाग से बने किवाड़ों से विराजित, गोरोचन एवं मणि के सहस्र स्तम्भों से युक्त और मणि के सारभाग से बनी सीढ़ियों से परिशोभित थे। फिर अनेक चित्रों से चित्रित, तथा माणिक्य एवं मोती से बँधे मालाजाल से विराजित वहाँ का भीतरी दरवाजा देखा॥२६-२९॥ वामभाग में कार्तिकेय को तथा दाहिने गणेश्वर, महाकाय और शिव के समान पराक्रमी वीरभद्र को देखा॥३०॥ हे नारद ! प्रधान पार्षदगणों समेत क्षेत्रपालों को देखा जो रत्नों के सिंहासनों पर स्थित एवं रत्नभूषणों से भूषित थे॥३१॥ हाथ में फरसा लिए महाबलवान् एवं पराक्रमी परशुराम उन लोगों से सम्भाषण करके आगे जाने के लिए तैयार हो गये॥३२॥ उन्हें जाते हुए देख कर गणेश ने कहा—थोड़ी देर रुको, महादेव इस समय निद्रायुक्त होकर शयन कर रहे हैं॥३३॥ हे भ्रात: !

ईश्वराज्ञां गृहीत्वाऽहमत्राऽऽगत्य क्षणान्तरे । त्वया सार्धं गमिष्यामि भ्रातस्तिष्ठात्र सांप्रतम् ॥३४॥
गणेशवाक्यं परशुरामः श्रुत्वा महाबलः । बृहस्पतिसमो वक्ता प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥३५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० कैलासवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥

अथ द्वाचत्वारिंशोऽध्यायः

परशुराम उवाच

यास्याम्यन्तः पुरं भ्रातः प्रणामं कर्तुमीश्वरम् । प्रणम्य मातरं भक्त्या यास्यामि त्वरितं गृहम् ॥१॥
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां कृत्वा पृथ्वीं च लीलया । कार्तवीर्यः सुचन्द्रश्च हतो यस्य प्रसादतः ॥२॥
नानाविद्या यतो लब्ध्वा नानाशास्त्रं सुदुर्लभम् । तं गुरुं जगतां नाथं द्रष्टुमिच्छामि सांप्रतम् ॥३॥
सगुणं निर्गुणं चैव भक्तानुग्रहविग्रहम् । सत्यं सत्यस्वरूपं च ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ॥४॥
स्वेच्छामयं दयासिन्धुं दीनबन्धुं मुनीश्वरम् । आत्मारामं पूर्णकामं व्यक्ताव्यक्तं परात्परम् ॥५॥
परापराणां स्रष्टारं पुरुहूतं पुरुष्टुतम् । पुराणं परमात्मानमीशानं त्वादिमव्ययम् ॥६॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं सर्वमङ्गलकारणम् । सर्वमङ्गलदं शान्तं सर्वैश्वर्यप्रदं वरम् ॥७॥
आशुतोषं प्रसन्नास्यं शरणागतवत्सलम् । भक्ताभयप्रदं भक्तवत्सलं समदर्शनम् ॥८॥

मैं क्षण भर में वहाँ जाकर उनसे आज्ञा लेकर अभी आ रहा हूँ, और तुम्हारे साथ वहाँ चलूँगा ॥३४॥ गणेश की बातें सुनकर बृहस्पति के समान वक्ता तथा महाबली परशुराम ने उनसे कहना प्रारम्भ किया ॥३५॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण-संवाद में कैलास-वर्णन नामक एकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४१॥

अध्याय ४२

परशुराम और गणपति का परस्पर विवाद

परशुराम बोले—हे भ्रातः! मैं भक्तिपूर्वक ईश्वर (शिव) और माता पार्वती को प्रणाम करने के लिए अन्तःपुर जा रहा हूँ, पश्चात् मैं शीघ्र चला जाऊँगा ॥१॥ क्योंकि जिसके प्रसाद से मैंने इक्कीस बार इस पृथ्वी को निर्भूप किया—कार्तवीर्य्य और सुचन्द्र का वध किया एवं अनेक भाँति की विद्या तथा अनेक दुर्लभ अस्त्र प्राप्त किये, उन जगत् के नाथ गुरु का मैं इस समय दर्शन करना चाहता हूँ ॥३॥ वे सगुण, निर्गुण, भक्तों के अनुग्रहार्थ शरीर धारण करने वाले, सत्यस्वरूप, ब्रह्म, ज्योतिःस्वरूप और सनातन हैं तथा सत्य, स्वेच्छामय, दया के सागर, दीनों के हितैषी, मुनीश्वर, आत्मा में रमण करने वाले, पूर्णकाम, व्यक्त (प्रकट) अव्यक्त (अप्रकट), परे से भी परे, पर-अपर की सृष्टि करने वाले, बहुतों से आहूत, बहुतों से स्तुत, पुराणरूप, परमात्मा, ईशान, आदिरूप, अव्यय (अविनाशी), सम्पूर्ण मंगलों के मंगल, समस्त मंगल प्रदायक, शान्त, सम्पूर्ण ऐश्वर्य देने वाले, श्रेष्ठ, आशुतोष, प्रसन्नमुख, शरणागत के प्रेमी, भक्तों को अभय देने वाले, भक्तवत्सल और समदर्शी हैं ॥४-८॥

इत्थं परशुरामोऽस्थादुक्त्वा गणपतेः पुरः। वाचा मधुरया तत्र समुवाच गणेश्वरः॥९॥

गणेश्वर उवाच

क्षणं तिष्ठ क्षणं तिष्ठ शृणु भ्रातरिदं वचः। रहःस्थलस्थितो नैव द्रष्टव्यः स्त्रीयुतः पुमान्॥१०॥
स्त्रीसंयुक्तं च पुरुषं यः पश्यति नराधमः। करोति रसभङ्गं वा कालसूत्रं व्रजेद्ध्रुवम्॥११॥
तत्र तिष्ठति पापीयान्यावच्चन्द्रदिवाकरौ। विशेषतश्च पितरं गुरुं वा भूपतिं द्विजम्॥१२॥
रहःसुरतसंसक्तं नहि पश्येद्विचक्षणः। कामतः कोपतो वाऽपि यः पश्येत्सुरतोन्मुखम्॥१३॥
स्त्रीविच्छेदो भवेत्तस्य ध्रुवं सप्तसु जन्मसु। श्रोणीं वक्षःस्थलं वक्त्रं यः पश्यति परस्त्रियः॥
कामतोऽपि विमूढश्च [1]सोऽन्धो भवति निश्चितम् ॥१४॥
गणेशस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य भृगुनन्दनः। तमुवाच महाकोपान्निष्ठुरं वचनं मुने॥१५॥

परशुराम उवाच

अहो श्रुतं किं वचनमपूर्वं नीतिसंयुतम्। इदमेवमहो नैवं श्रुतमीश्वरवक्त्रतः॥१६॥
श्रुतं श्रुतौ वाक्यमिदं कामिनां च विकारिणाम्। निर्विकारस्य च शिशोर्न दोषः कश्चिदेव हि॥१७॥
यास्याम्यन्तःपुरं भ्रातस्तव किं तिष्ठ बालक। यथादृष्टं करिष्यामि मत्कार्यं समयोचितम्॥१८॥

इस प्रकार कहकर परशुराम गणपति के सामने खड़े हो गये। तब गणनायक ने मधुरवाणी द्वारा उसका उत्तर देना आरम्भ किया॥९॥

गणेश्वर बोले—हे भ्रातः! क्षणमात्र ठहरो और मेरी बात सुनो—एकान्तस्थल में स्थित स्त्री-पुरुष को नहीं देखना चाहिए॥१०॥ क्योंकि जो नराधम स्त्रीयुक्त पुरुष को देखता है अथवा रसभंग करता है, उसे कालसूत्र नामक नरक में निश्चित जाना पड़ता है॥११॥ हे द्विज! चन्द्रमा-सूर्य के समय तक उस पापी को वहाँ रहना पड़ता है। विशेषतया पिता, गुरु, राजा और ब्राह्मण को एकान्त में सुरत-संसक्त जानकर विद्वान् उन्हें न देखें। क्योंकि कामना से या क्रोधवश जो सुरतोन्मुख प्राणी को देखता है, उसे सात जन्मों तक निश्चित स्त्रीवियोग होता है। और जो काम भाव से परस्त्री का नितम्ब, वक्षःस्थल और मुख देखता है, वह महामूढ़ निश्चित अन्धा होता है॥१२-१४॥ हे मुने! गणेश की बातें सुनकर भृगुनन्दन ने हँसकर क्रुद्धभाव से निष्ठुर वचन कहना आरम्भ किया॥१५॥

परशुराम बोले—अहो! आज मैंने नीतियुक्त और अपूर्व वाक्य सुना, क्योंकि ईश्वर (शिव) के मुख से मैंने ऐसा कभी नहीं सुना था॥१६॥ कामी और विकारयुक्त पुरुषों के लिए ही ऐसी बातें वेद में बतायी गयी हैं, ऐसा मैंने सुना है। निर्विकार बच्चे को कोई दोष नहीं लगता। इसलिए हे भ्रातः! मैं अन्तःपुर जा रहा हूँ, बालक! तुम्हें, क्या करना है, रुको (अर्थात् जाने से मुझे मत रोको)॥१७॥ मैं वहाँ जाकर जैसा देखूंगा वैसा समयोचित कार्य करूँगा॥१८॥ वे तुम्हारे ही पिता माता हैं, ऐसा भी तो नहीं कहा

---

[1] क. षण्ढो भ०।

तवैव तातो माता चत्येवं नैव निरूपितम्। जगतां पितरौ तौ च पार्वतीपरमेश्वरौ ॥१९॥
पार्वती स्त्री पुमाञ्छंभुरिति कैर्न निरूपितः। सर्वरूपः शंकरश्च सर्वरूपा च पार्वती ॥२०॥
गुणातीतस्य का क्रीडा तद्भङ्गो वा कुतो विभो। क्रीडा लज्जा भीतिभङ्गो ग्राम्यस्यैव न चेशितुः ॥२१॥
स्तनन्धयं च मां दृष्ट्वा पित्रोर्लज्जा कुतो भवेत्। लज्जायाश्च कुतो लज्जा लज्जेशस्य च सा कुतः ॥२२॥
लज्जा लज्जां किमाप्नोति तापं किं वा हुताशनः। शीतं शैत्यमहो भ्रातर्निदाघो दाहमेव च ॥२३॥
भीतेर्भीतिमवाप्नोति मृत्योर्मृत्युर्बिभेति किम्। कुतो ज्वरो ज्वरं हन्ति व्याधिं व्याधिश्च जीर्यति ॥२४॥
संहर्तारं च संहर्ता कालः कालाद्बिभेति किम्। स्रष्टारं सृजते स्रष्टा पाता किं पाति ते मते ॥२५॥
क्षुत्क्षुधं समवाप्नोति तृष्णा तृष्णां प्रयाति किम्। निद्रा निद्रां च शोभां श्रीः शान्तिः शान्तिं च ते मते ॥२६॥
पुष्टिः पुष्टिं किमाप्नोति तुष्टिस्तुष्टिं क्षमा क्षमाम्। आत्मनः परमात्माऽस्ति शक्तिः शक्त्या बिभेति किम् ॥२७॥
कामक्रोधौ लोभमोहौ स्वात्मनैते न बाधिताः। दया न बद्धा दयया नेच्छा बद्धेच्छया प्रभो ॥२८॥
ज्ञानबुद्धयोः को विकारो जरां नो बाधते जरा। चिन्ता न चिन्तया ग्रस्ता चक्षुश्चक्षुर्न पश्यति ॥२९॥
हर्षो मुदं किं प्राप्नोति शोकं शोको न बाधते। का विपत्तिर्विपत्तेश्च संपत्तिः संपदः कुतः ॥३०॥

गया है। क्योंकि वे पार्वती और परमेश्वर (शिव) समस्त जगत् के माता-पिता हैं ॥१९॥ यह कोई भी नहीं कहता है कि पार्वती स्त्री और शिव पुरुष हैं। शिव सर्वरूप हैं और पार्वती सर्वरूपा हैं। हे विभो! गुणों से परे रहने वाले की कैसी क्रीड़ा और कैसा उसका भंग करना? (रति) क्रीड़ा, लज्जा, भय और भंग ग्राम्य जनों के लिए है ईश्वर के लिए नहीं ॥२०२१॥ दुग्धपान करने वाले मुझ बच्चे को देखकर माता-पिता को लज्जा क्या हो सकती है? लज्जा को और लज्जाधीश्वर को लज्जा कहाँ? ॥२२॥ क्या लज्जा लज्जा को प्राप्त करती है या अग्नि ताप को प्राप्त करता है? हे भाई! शीत को शीत, तेज को दाह (गर्मी), भय को भय और मृत्यु को मृत्यु प्राप्त होती है क्या? ज्वर ज्वर का और रोग रोग का नाश करता है क्या? ॥२३-२४॥ संहर्त्ता संहर्त्ता से और कला काल से भयभीत होता है क्या? क्या तुम्हारे मत से स्रष्टा सृष्टिकर्ता का सर्जन करता है और रक्षक रक्षक की रक्षा करता है? ॥२५॥ क्षुधा क्षुधा को और तृष्णा तृष्णा को प्राप्त होती है क्या? तुम्हारे मत से निद्रा निद्रा को, शोभा शोभा को, शान्ति शान्ति को, पुष्टि पुष्टि को, तुष्टितुष्टि को और क्षमा क्षमा को प्राप्त होती है क्या? आत्मा से परमात्मा और शक्ति से शक्ति भयभीत होती है क्या? ॥२६-२७॥ हे प्रभो! काम-क्रोध, लोभ-मोह ये अपने से नष्ट नहीं होते हैं। दया दया से अथवा इच्छा इच्छा से आबद्ध नहीं होती है ॥२८॥ ज्ञान-बुद्धि में विकार होता है क्या? जरा (बुढ़ाई) जरा से नष्ट नहीं होती है। चिन्ता चिन्ता से ग्रस्त नहीं होती है और आँख आँख को नहीं देखती है ॥२९॥ क्या हर्ष को हर्ष होता है? शोक शोक को नष्ट नहीं करता है। विपत्ति को विपत्ति क्या? और सम्पत्ति को सम्पत्ति कहां होती है? ॥३०॥

मेधाया धारणाशक्तिः स्मृतेर्वा स्मरणं कुतः। न दग्धः स्वप्रतापेन विवस्वानिति संमतः ॥३१॥
विपरीतमतो भ्रातस्त्वयैवाऽऽचारितोऽधुना। न श्रुतोऽयं गुरुमुखान्न दृष्टो न श्रुतौ श्रुतः ॥३२॥
इत्युक्त्वा चापि परशुरामः शश्वत्प्रहस्य सः। शीघ्रं गन्तुं मनश्चक्रे तद्गृहाभ्यन्तरं मुदा ॥३३॥
तच्च रामवचः श्रुत्वा जितक्रोधो गणेश्वरः। शुद्धसत्त्वस्वरूपश्च प्रहस्य तमुवाच ह ॥३४॥

गणपतिरुवाच

अज्ञानतिमिराच्छन्नो ज्ञानं प्राप्नोति तद्विदः। पितुर्भ्रातुर्मुखाज्ज्ञानं दुर्लभं भाग्यवाँल्लभेत् ॥३५॥
श्रुतं ज्ञानं विशिष्टं च ज्ञानिनामपि दुर्लभम्। किंचिन्मे त्वं मन्दबुद्धेः शृणु भ्रातर्निवेदनम् ॥३६॥
यो निर्गुणः स निर्लिप्तः शक्तिभिर्नहि संयुतः। सिसृक्षुराश्रितः शक्त्या निर्गुणः सगुणो भवेत् ॥३७॥
यावन्ति च शरीराणि भोगार्हाणि महामुने। प्राकृतानि च सर्वाणि विना श्रीकृष्णविग्रहम् ॥३८॥
ध्यायन्ति योगिनस्तं च शुद्धज्योतिः स्वरूपिणम्। हस्तपादादिरहितं निर्गुणं प्रकृतेः परम् ॥३९॥
वैष्णवास्तं नमस्यन्ति भक्तानुग्रहकारकम्। कुतो बभूव तज्ज्योतिरहो तेजस्विना विना ॥४०॥
ज्योतिरभ्यन्तरे नित्यं शरीरं श्यामसुन्दरम्। द्विभुजं मुरलीहस्तं सस्मितं पीतवाससम् ॥४१॥
अतीवामूल्यसद्रत्नभूषणैश्च विभूषितम्। ज्योतिरभ्यन्तरे मूर्तिं पश्यन्ति कृपया विभोः ॥४२॥

मेघा को धारणा शक्ति या स्मृति को स्मरण नहीं होता है और सूर्य अपने प्रताप से कभी भी दग्ध नहीं होते हैं, ऐसा सभी का मत है ॥३१॥ हे भ्रातः! इस समय तुमने ही विपरीताचरण किया है। मैंने न तो यह गुरु के मुख से सुना और न वेद में कभी देखा-सुना ॥३२॥ इतना कहकर परशुराम ने निरन्तर हँस कर प्रसन्न चित्त से घर के भीतर शीघ्र जाना चाहा ॥३३॥ राम की बातें सुनकर क्रोध को जीते हुए तथा शुद्धसत्त्वस्वरूप गणनायक ने हँसकर उनसे कहा ॥३४॥

गणपति बोले—अज्ञान अन्धकार से आच्छन्न प्राणी उसके वेत्ता से ज्ञान ग्रहण करता है, किन्तु पिता और भ्राता के मुख से दुर्लभ ज्ञान को भाग्यवान् ही प्राप्त करता है ॥३५॥ हे भ्राता! मैंने ज्ञानियों के लिये भी दुर्लभ विशिष्ट ज्ञान सुना है अतः मुझ मन्द बुद्धि का भी कुछ निवेदन सुनो ॥३६॥ जो निर्गुण है, वही निर्लिप्त है, वह शक्ति के साथ नहीं रहता है। सृष्टि करने वाला शक्ति के आश्रित ही रहेगा। एवं निर्गुण ही कभी सगुण हो जाता है ॥३७॥ हे महामुने! एक भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर को छोड़कर अन्य जितने शरीर हैं, सब भोग के योग्य एवं प्राकृत हैं ॥३८॥ अतः योगी गण उसी निर्गुण का ध्यान करते हैं, जो शुद्ध ज्योतिःस्वरूप, हाथ-पैर आदि से रहित एवं प्रकृति से परे है ॥३९॥ भक्तों पर अनुग्रह करने वाले उसी को वैष्णव लोग नमस्कार करते हैं क्योंकि तेजस्वी के बिना उसकी ज्योति कहाँ सम्भव हो सकती है ॥४०॥ उस ज्योति के भीतर श्याम और सुन्दर नित्य शरीर रहता है, जो दो भुजा, हाथ में मुरली, मन्द मुसुकान, पीताम्बर और अति अमूल्य उत्तम रत्नों के भूषणों से भूषित है। योगी लोग उसी विभु की कृपा से ज्योति के भीतर उस मूर्ति को देखते हैं ॥४१-४२॥

तदा दास्ये नियुक्तास्ते भवन्त्येवेश्वरेच्छया। योगस्तपो वा दास्यस्य कलां नार्हति षोडशीम् ।।४३।।
यदा सृष्टचन्मुखः कृष्णः ससृजे प्रकृतिं मुदा। तद्योनौ ह्यर्पितं वीर्यं वीर्याड्डिम्भो बभूव ह ।।४४।।
दिव्येन लक्षवर्षेण गर्भाड्डिम्भो विनिर्गतः। तदा बभूव निःश्वासस्ततो वायुर्बभूव ह ।।४५।।
निःश्वासेन समं भ्रातर्मुखबिन्दुर्विनिर्गतः। ततो बभूव सहसा जलराशिर्हरेः पुरः ।।४६।।
तज्जले च स्थितो डिम्भो दिव्यवर्षाणि लक्षकम्। ततो बभूव सहसा विश्वाधारो महाविराट् ।।४७।।
यावन्ति गात्रलोमानि तस्य सन्ति महात्मनः। ब्रह्माण्डानि च तावन्ति विद्यमानानि निश्चितम् ।।४८।।
तत्रैव प्रतिविध्यण्डे ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। देवा नराश्च मुनयो विद्यमानाश्चराचराः ।।४९।।
महाविराडाश्रयश्च सर्वस्य च जनस्य च। निःश्वासवायुर्भगवान्बभूव श्रीहरेर्मुने ।।५०।।
महाविष्णुश्च कलया ततः क्षुद्रविराडभूत्। तन्नाभिकमले ब्रह्मा शंकरस्तल्ललाटजः ।।५१।।
विष्णुस्तदंशः पाता यः श्वेतद्वीपनिवासकृत्। एवं ते प्रतिविध्यण्डे ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।।५२।।
स्वयं च स्वांशकलया नानामूर्तिधरो हरिः। तदाऽभवच्च सगुणः सर्वशक्तियुतस्तदा ।।५३।।
कथं लज्जादिरहितः स च स्वेच्छामयो महान्। सर्वदा सर्वभोगार्हः सर्वशक्तिसमन्वितः ।।५४।।

वे ईश्वर की इच्छा से उनके दास्य कर्म में नियुक्त होते हैं। योग या तप दास्य की सोलहवीं कला के भी समान नहीं होता है।।४३।। भगवान् श्रीकृष्ण ने जब सृष्टि करना चाहा तब प्रसन्नचित्त से प्रकृति की सृष्टि की और उसकी योनी में वीर्य का निक्षेप किया। वीर्य से डिम्भ (सुवर्ण-पिण्ड) हुआ और वह डिम्भ दिव्य एक लाख वर्ष के उपरांत गर्भ से बाहर निकला। तब निश्वास हुआ उससे वायु उत्पन्न हुआ ।।४४-४५।। हे भ्रातः! निःश्वास के साथ ही मुख से बिन्दु गिरा, जिससे भगवान् के सामने ही सहसा जल की राशि उत्पन्न हो गई ।।४६।। उस जल के भीतर वह डिम्भ एक लाख दिव्य वर्ष तक स्थित रहा। उस से सहसा महाविराट् की उत्पत्ति हुई जो विश्व का आधार है।।४७।। उस महात्मा (विराट्) के शरीर में जितने लोम हैं, उतने ही ब्रह्माण्ड विद्यमान हैं ।।४८।। प्रत्येक ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा, विष्णु, शिव देववृन्द एवं मुनिगण आदि चर-अचर विद्यमान रहते हैं।।४९।। सभी जनों का यह महाविराट् आश्रय है। हे मुने! श्रीहरि के निःश्वास से वायु भगवान् हुए और कला से महाविष्णु। उनसे क्षुद्रविराट् (विष्णु) उत्पन्न हुए जिनके नाभिकमल से ब्रह्मा तथा ब्रह्मा के ललाट से शंकर उत्पन्न हुए।।५०-५१।। भगवान् के अंश से उत्पन्न होने वाले विष्णु, जो श्वेत द्वीप में निवास करते हैं, सृष्टि के रक्षक हैं। इस प्रकार प्रत्येक ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर होते हैं।।५२।। भगवान् स्वयं अपने अंश की कला द्वारा अनेक प्रकार की मूर्ति धारण करते हैं। तब वे सगुण हुए और तब सर्वशक्तिमान् कहलाये।।५३।। वे स्वेच्छामय और महान् होते हुए लज्जा आदि से रहित कैसे हैं? वे समस्त शक्ति से युक्त होने के नाते सर्वदा सब भोगों के लिए उपयुक्त हैं।।५४।।

लज्जा नास्त्येव लज्जायामतोऽयं सर्वसंमतः । या च लज्जावती देवी तस्या लज्जा कुतो गता ॥५५॥
सर्वशक्तिमती दुर्गा प्रकृत्या सा च शैलजा । तस्या लज्जादयः सन्ति सर्वदा सर्वसंमताः ॥५६॥
पञ्चधा प्रकृतिर्या च श्रीकृष्णस्य बभूव ह । राधा पद्मा च सावित्री दुर्गा देवी सरस्वती ॥५७॥
प्राणाधिष्ठातृदेवी या कृष्णस्य परमात्मनः । प्राणाधिका प्रिया सा च राधाऽऽस्ते तस्य वक्षसि ॥५८॥
विद्याधिष्ठातृदेवी या सावित्री ब्रह्मणः प्रिया । लक्ष्मीर्नारायणस्यैव सर्वसंपत्स्वरूपिणी ॥५९॥
सरस्वती द्विधा भूत्वा कृष्णस्य मुखनिर्गता । [1]सावित्री ब्रह्मणः कान्ता स्वयं नारायणस्य च ॥६०॥
बुद्ध्यधिष्ठातृदेवी या ज्ञानसूः शक्तिसंयुता । सा दुर्गा शूलिनः कान्ता तस्या लज्जा कुतो गता ॥६१॥
प्रकृतिः पञ्चधा भ्रातर्गोलोके च बभूव ह । इमाः प्रधानाः कलया बभूवुर्नैकधा यतः ॥६२॥
विप्रेन्द्र नित्यं वैकुण्ठं ब्रह्माण्डात्परमुच्यते । अविनाशि स्थलं शश्वल्लये प्राकृतिके ध्रुवम् ॥६३॥
तत्र नारायणो देवः कृष्णार्धांशश्चतुर्भुजः । वनमाली पीतवासाः शक्त्या वै पद्मया सह ॥६४॥
स्वयं कृष्णश्च गोलोके द्विभुजः श्यामसुन्दरः । सस्मितो मुरलीहस्तो राधावक्षः स्थलस्थितः ॥६५॥
शश्वद्गोगोपगोपीभिः संयुक्तो गोपरूपधृत् । परिपूर्णतमः श्रीमान्निर्गुणः प्रकृतेः परः ॥६६॥

यद्यपि लज्जा को लज्जा नहीं होती है, यह सर्वसम्मत है, तथापि जो देवी लज्जावती है, उसकी लज्जा कहाँ चली जायगी? ॥५५॥ दुर्गा सर्वशक्तिसम्पन्न हैं किन्तु इस समय हिमालय से उत्पन्न होने के नाते प्राकृत हैं। इसलिए उनमें सर्वदा लज्जा आदि वर्तमान रहते हैं, यह सर्वसम्मत है ॥५६॥ भगवान् श्रीकृष्ण की जो प्रकृति— राधा, पद्मा, सावित्री, दुर्गा और सरस्वती देवी इन पाँच रूपों में परिणत हुई थी, उनमें परमात्मा कृष्ण के प्राणों की अधिष्ठात्री देवी और प्राणों से अधिक प्रिय जो है, उसका नाम राधा है, जो उनके वक्षःस्थल पर स्थित रहती है ॥५७-५८॥ विद्या की अधिष्ठात्री देवी सावित्री ब्रह्मा की पत्नी हुईं और समस्त सम्पत्ति-स्वरूपा लक्ष्मी नारायण की पत्नी हुई ॥५९॥ भगवान् श्रीकृष्ण के मुख से निकल कर सरस्वती दो रूपों में प्रकट हुईं जिसमें एक सावित्री रूप से ब्रह्मा की और स्वयं सरस्वती नारायण की प्रिय पत्नी हुईं ॥६०॥ बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी जो ज्ञानजननी एवं शक्तियुक्त हैं, वह दुर्गा शिव की कान्ता हुई हैं, अतः उनकी लज्जा कहाँ चली जायगी? ॥६१॥ हे भ्रातः! गोलोक में ही प्रकृति इन पांचों रूपों में परिणत हुई और कला से ये ही प्रधान हैं क्योंकि ये एक ही बार नहीं हुई हैं ॥६२॥ हे विप्रेन्द्र! नित्य वैकुण्ठलोक ब्रह्माण्ड से श्रेष्ठ और अविनाशी स्थान है। यह प्राकृत लय में भी निरन्तर विद्यमान रहता है ॥६३॥ वहाँ भगवान् कृष्ण के अर्द्धांश भाग विष्णु लक्ष्मी के साथ रहते हैं, जो चार भुजाओं, वनमाला एवं पीताम्बर से सुशोभित हैं और स्वयं श्यामसुन्दर भगवान् श्रीकृष्ण गोलोक में दो भुजा, मन्द मुसुकान तथा हाथ में मुरली लिए राधा के वक्षःस्थल पर स्थित रहते हैं ॥६४-६५॥ वे निरन्तर गोप-गोपी से संयुक्त, गोपवेष धारण किये, परिपूर्णतम, श्रीमान्, निर्गुण,

---

१. क० भारती ब्र० ।

स्वेच्छामयः स्वतन्त्रस्तु परमानन्दरूपधृत् । सुराः कलोद्भवा यस्य षोडशांशो महाविराट् ॥६७॥
यतो भवन्ति विश्वानि स्थूलसूक्ष्मादिकानि च । पुनस्तत्र प्रलीयन्त एवमेव मुहुर्मुहुः ॥६८॥
गोलोक ऊर्ध्वं वैकुण्ठात्पञ्चाशत्कोटियोजनः । नास्ति लोकस्तदूर्ध्वं च नास्ति कृष्णात्परः प्रभुः ॥६९॥
इदं श्रुतं शंभुवक्त्रान्मया ते कथितं द्विज । क्षणं तिष्ठाधुना भ्रातरीश्वरः सुरतोन्मुखः ॥७०॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणेशख० नारदना० गणेशपरशुरामसंवादो नामद्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

गणेशवचनं श्रुत्वा स तदा वेगतः सुधीः । पर्शुहस्तः स वै रामो निर्भयो गन्तुमुद्यतः ॥१॥
गणेश्वरस्तदा दृष्ट्वा शीघ्रमुत्थाय यत्नतः । वारयामास संप्रीत्या चकार विनयं पुनः ॥२॥
रामस्तं प्रेरयामास हुं कृत्वा तु पुनः पुनः । बभूव च ततस्तत्र वाग्युद्धं हस्तकर्षजैः ॥३॥
पर्शुनिःक्षेपणं कर्तुं मनश्चक्रे भृगुस्तदा । हाहा कृत्वा कार्तिकेयो बोधयामास संसदि ॥४॥
अव्यर्थमस्त्रं हे भ्रातर्गुरुपुत्रे कथं क्षिपेः । गुरुवद्गुरुपुत्रं च मा भवान्हन्तुमर्हति ॥५॥

प्रकृति से परे, स्वेच्छामय, स्वतन्त्र और परमानन्दरूपधारी हैं। उनकी कला से समस्त देवगण उत्पन्न हुए हैं तथा महाविराट् उनका सोलहवाँ अंश है॥६६-६७॥ उनसे स्थूल-सूक्ष्म आदि विश्व उत्पन्न होते हैं तथा पुनः उन्हीं में विलीन हो जाते हैं, ऐसा बार-बार होता रहता है॥६८॥ वैकुण्ठ से ऊपर पचास करोड़ योजन की दूरी पर गोलोक स्थित है, जिसके ऊपर कोई अन्य लोक नहीं है तथा भगवान् श्रीकृष्ण से महान् कोई अन्य प्रभु नहीं है॥६९॥ हे द्विज ! यह सब मैंने शम्भु के मुख से सुना था, जो तुम्हें बताया है। अतः हे भ्रातः ! इस समय क्षणमात्र ठहरो। क्योंकि ईश्वर शिव सम्प्रति सुरतोन्मुख हैं॥७०॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण के संवाद-प्रकरण में गणेश-परशुराम-संवाद-वर्णन नामक बयालीसवाँ अध्याय समाप्त॥४२॥

अध्याय ४३

गणेश का दन्त-भंग

नारायण बोले—गणेश की बातें सुनकर विद्वान् राम ने फरसा हाथ में लिए निर्भय होकर वेग से भीतर जाना चाहा॥१॥ तब गणाधीश ने यह देखकर शीघ्र उठकर प्रयत्नपूर्वक सप्रेम राम को रोका तथा पुनः विनती की॥२॥ किन्तु राम ने हुंकार करके उन्हें बार-बार ललकारा जिससे दोनों में वाग्युद्ध हुआ और हाथापाई होने लगी॥३॥ उस समय भृगु ने उन पर फरसा चलाना चाहा, जिस पर सभा में हाहाकार करके कार्तिकेय ने कहा—हे भ्रातः ! निष्फल न होने वाले इस अस्त्र को गुरुपुत्र के ऊपर क्यों चलाते हो ? गुरु के समान ही गुरुपुत्र को आप मारने योग्य नहीं हैं॥५॥ फरसा चलाते हुए राम को क्रुद्ध और रक्तकमल की

पर्शुं क्षिपन्तं कुपितं रक्तपद्मदलेक्षणम्। गणेशो रोधयामास निवर्तस्वेत्युवाच तम् ॥६॥
पुनर्गणेशं रामश्च प्रेरयामास कोपतः। पपात पुरतो [1]वेगान्मानहीनो गजाननः ॥७॥
गजाननः समुत्थाय धर्मं कृत्वा तु साक्षिणम्। पुनस्तं बोधयामास जितक्रोधः शिवात्मजः ॥८॥
निवर्तस्व निवर्तस्वेत्युच्चार्य च पुनः पुनः। प्रवेशने ते का शक्तिरीश्वराज्ञां विना प्रभो ॥९॥
मम भ्राता त्वमतिथिर्विद्यासंबन्धतो ध्रुवम्। ईश्वरप्रियशिष्यश्च सोढं वै तेन हेतुना ॥१०॥
नह्यहं कार्तवीर्यश्च भूपास्ते क्षुद्रजन्तवः। [2]अतो विप्र न जानासि मां च विश्वेश्वरात्मजम् ॥११॥
क्षणं तिष्ठ निवर्तस्व समये ब्राह्मणातिथे। क्षणान्तरे त्वया सार्धं यास्यामीश्वरसंनिधिम् ॥१२॥

नारायण उवाच

हेरम्बवचनं श्रुत्वा प्रजहास पुनः पुनः। पर्शुं क्षेप्तुं मनश्चक्रे प्रणम्य हरिशंकरौ ॥१३॥
पर्शुं क्षिपन्तं कोपेन तं च रामं गजाननः। दृष्ट्वा मुमूर्षुं देवेशो धर्मं कृत्वा तु साक्षिणम् ॥१४॥
[3]योगेन वर्धयामास शुण्डां तां कोटियोजनाम्। योगीन्द्रस्तत्र संतिष्ठन्भ्रामयित्वा पुनः पुनः ॥१५॥
शतधा वेष्टयित्वा तु भ्रामयित्वा तु तत्र वै। ऊर्ध्वमुत्तोल्य वेगेन क्षुद्राहिं गरुडो यथा ॥१६॥

भाँति लाल नेत्र किये देखकर गणेश ने उन्हें रोका और कहा—'लौट जाओ! किन्तु राम ने क्रुद्ध होकर पुनः गणेश को ललकारा, यह देखकर अपमानित गजानन वेग से दौड़कर उनके सम्मुख आ गये ॥६-७॥ गणेश ने उठ कर धर्म को साक्षी किया और क्रोधजयी शिवपुत्र ने उन्हें पुनः समझाया तथा बार-बार कहा—हे प्रभो! लौट जाओ, लौट जाओ। बिना ईश्वर (शिव) की आज्ञा के भीतर प्रविष्ट होने की तुम्हारी शक्ति नहीं है ॥८-९॥ तुम विद्या सम्बन्ध से मेरे भ्राता और अतिथि हो, ईश्वर के प्रिय शिष्य हो। इसीलिए मैं तुम्हारी सभी बातों का सहन कर रहा हूँ ॥१०॥ हे विप्र! न मैं कार्तवीर्य्य हूँ और न तुम्हारे (संग्राम वाले) क्षुद्रजन्तु राजा हूँ, इसी लिए तुम मुझ विश्वेश्वरपुत्र को नहीं जानते हो ॥११॥ हे ब्राह्मण अतिथि! क्षणमात्र ठहरो, लौट जाओ, मैं तुम्हारे साथ शिव के समीप क्षणभर में चलूँगा ॥१२॥

नारायण बोले—हेरम्ब (गणेश) की ऐसी बातें सुनकर भृगु ने बार-बार उनका उपहास किया, और हरि तथा शिव को प्रणाम करके फरसा चलाने का ही मन में निश्चय किया ॥१३॥ गजानन ने देखा कि परशुराम क्रुद्ध होकर मारने की इच्छा से फरसा चलाना ही चाहते हैं, अतः उस समय धर्म को साक्षी बनाकर उन्होंने योग द्वारा अपने शुण्डदण्ड (सूँड) को बढ़ाया, जो करोड़ योजन लम्बा हो गया योगीन्द्र गणेश ने वहीं खड़े होकर उसे बार-बार घुमाया ॥१४-१५॥ उससे परशुराम को सैकड़ों बार वेष्टित (लपेट) कर घुमाया। पश्चात् छोटे सर्प को गरुड़ की भाँति उसे वेग से ऊपर उठाकर योग द्वारा आहत राम को उन्होंने सातों द्वीप,

---

१ क. ०गाच्छन्नमानो। २ क. अये। ३ क. कोपेन।

सप्तद्वीपांश्च शैलांश्च मेरुं चाखिलसागरान् । क्षणेन दर्शयामास रामं योगपराहतम् ॥१७॥
हस्तपादाद्यनाथं तं जडं सर्वाङ्गकम्पितम् । पुनस्तं भ्रामयामास दर्पितं दर्पनाशनः ॥१८॥
भूर्लोकं च भुवर्लोकं स्वर्लोकं च सुरेश्वरः । जनोलोकं तपोलोकं दर्शयामास लीलया ॥१९॥
पुनस्तत्र भ्रामयित्वा ब्रह्माण्डादूर्ध्वमुत्तमम् । सत्यलोकं ब्रह्मलोकं ध्रुवलोकं च तत्परम् ॥२०॥
गौरीलोकं शंभुलोकं दर्शयामास नारद । दर्शयित्वा तु विध्यण्डं स पपौ सप्तसागरान् ॥२१॥
पुनरुद्गिरणं चक्रे सनक्रमकरोदकम् । तत्र तं पातयामास गम्भीरे सागरोदके ॥२२॥
मुमूर्षुं तं संतरन्तं पुनर्जग्राह लीलया । पुनस्तत्र भ्रामयित्वा ब्रह्माण्डादूर्ध्वमप्यमुम् ॥२३॥
वैकुण्ठं दर्शयामास सलक्ष्मीकं जनार्दनम् ॥२४॥
क्षणं तत्र भ्रामयित्वा योगीन्द्रो योगमायया । पुनः करं च योगेन वर्धयामास लीलया ॥२५॥
गोलोकं दर्शयामास विरजां च नदीश्वरीम् । वृन्दावनं शृङ्गशतं शैलेन्द्रं रासमण्डलम् ॥२६॥
गोपीगोपादिभिः सार्धं श्रीकृष्णं श्यामसुन्दरम् । द्विभुजं मुरलीहस्तं सस्मितं सुमनोहरम् ॥२७॥
रत्नसिंहासनस्थं च रत्नभूषणभूषितम् । तेजसा कोटिसूर्याभं राधावक्षःस्थलस्थितम् ॥२८॥
एवं कृष्णं दर्शयित्वा प्रणमय्य पुनः पुनः । क्षणेन लम्बमानं च भ्रामयित्वा पुनः पुनः ॥२९॥

पर्वतगण, मेरु और समस्त सागर क्षणमात्र में दिखा दिये ॥१६-१७॥ अनन्तर दर्पनाशन गणेश ने पुनः अभिमानी राम को, हाथ-चरण आदि से असहाय, जड़ तथा सर्वांग में कम्पित करके पुनः भ्रमण कराया ॥१८॥ फिर सुरेश ने भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, जनोलोक तथा तपोलोक को लीलापूर्वक दिखा दिया। पुनः वहाँ घुमाकर ब्रह्माण्ड से ऊपर उत्तम सत्यलोक, ब्रह्मलोक, ध्रुवलोक, उससे परे गौरीलोक और शिवलोक का दर्शन कराया। फिर ब्रह्माण्ड दिखा कर सातों सागरों का पान कर लिया ॥१९-२१॥ पुनः मगर आदि जलचर जीवों समेत समुद्र को बाहर उगल दिया और उसी गम्भीर सागर-जल में उन्हें गिरा दिया ॥२२॥ वहाँ तैरते हुए मरणासन्न राम को लीलापूर्वक पकड़ कर पुनः घुमाकर ब्रह्माण्ड से भी ऊपर वैकुण्ठ लोक में लक्ष्मी समेत चतुर्भुजधारी भगवान् का उन्हें दर्शन कराया। ॥२३-२४॥ इस भाँति योगीन्द्र गणेश ने क्षणमात्र में पुनः योगमाया द्वारा उन्हें भ्रमण कराकर लीला पूर्वक अपने शुण्ड (सूँड) को बढ़ाया और उन्हें नदीश्वरी विरजा समेत गोलोक का दर्शन कराया। फिर वृन्दावन, सौ शिखरवाला पर्वतराज, रास-मण्डल एवं गोप-गोपी आदि समेत श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण का दर्शन कराया, जो दो भुजा से युक्त, हाथ में मुरली लिये, मन्दहास समेत अति मनोहर, रत्नसिंहासन पर स्थित, रत्नों के भूषणों से भूषित, करोड़ों सूर्य के समान कान्तिमान्, और राधा के वक्षःस्थल पर विराजमान थे ॥२५-२८॥ इस भाँति कृष्ण का दर्शन और उन्हें बार-बार प्रणाम कराकर पुनः सूँड को बढ़ाया। उसे बार-बार घुमाकर इष्टदेव भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन करा कर

दृष्ट्वा कृष्णं चेष्टदेवं सर्वपापप्रणाशनम्। भ्रूणहत्यादिकं पापं भृगोर्दूरं चकार ह॥३०॥
न भवेद्यातना नष्टा विना भोगेन पापजा। स्वल्पां च बुभुजे रामो गताऽन्या कृष्णदर्शनात्॥३१॥
क्षणेन चेतनां प्राप्य भुवि वेगात्पपात ह। बभूव दूरीभूतं च गणेशस्तम्भनं भृगोः॥३२॥
सस्मार कवचं स्तोत्रं गुरुदत्तं सुदुर्लभम्। अभीष्टदेवं श्रीकृष्णं गुरुं शंभुं जगद्गुरुम्॥३३॥
चिक्षेप पर्शुमव्यर्थं शिवतुल्यं च तेजसा। ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रभाशतगुणं मुने॥३४॥
पितुरव्यर्थमस्त्रं च दृष्ट्वा गणपतिः स्वयम्। जग्राह वामदन्तेन नास्त्रं व्यर्थं चकार ह॥३५॥
निपात्य पर्शुर्वेगेन च्छित्वा दन्तं समूलकम्। जगाम रामहस्तं च महादेवबलेन च॥३६॥
हाहेति शब्दमाकाशे देवाश्चक्रुर्महाभिया। वीरभद्रः[1] कार्तिकेयः क्षेत्रपालाश्च पार्षदाः॥३७॥
पपात भूमौ दन्तश्च सरक्तः शब्दयंस्तदा। पपात गैरिकायुक्तो यथा स्फटिकपर्वतः॥३८॥
शब्देन महता विप्र चकम्पे पृथिवी भिया। कैलासस्था जनाः सर्वे मूर्च्छामापुः क्षणं भिया॥३९॥
निद्रा बभञ्ज तत्काले निद्रेशस्य जगत्प्रभोः। आजगाम बहिः शंभुः पार्वत्या सह संभ्रमात्॥४०॥
पुरो ददर्श हेरम्बं लोहितास्यं क्षतेन तम्। भग्नदन्तं जितक्रोधं सस्मितं लज्जितं मुने॥४१॥

राम के भ्रूण हत्या आदि समस्त पापों को नष्ट कराया, क्योंकि भगवान् सभी पापों के विनाशक हैं॥२९-३०॥ पापजन्य यातना बिना भोगे नष्ट नहीं होती है। राम ने कुछ का उपभोग किया था और शेष भगवान् कृष्ण के दर्शन से नष्ट हो गयी॥३१॥ पुनः क्षणमात्र में चेतना प्राप्त होने पर वेग से भूतल पर राम आ गये और गणेश कृत स्तम्भन भी दूर हो गया॥३२॥ तब परशुराम ने गुरु प्रदत्त अतिदुर्लभ कवच एवं स्तोत्र, अभीष्टदेव श्रीकृष्ण और जगद्गुरु गुरुदेव शिव का स्मरण किया॥३३॥ हे मुने! तदुपरांत उस अव्यर्थ फरसे का प्रयोग कर दिया, जो शिव तुल्य एवं तेज में ग्रीष्मकालीन मध्याह्न सूर्य की प्रभा से सौ गुना अधिक था॥३४॥ गणपति ने अपने पिता के उस अमोघ अस्त्र को (राम द्वारा प्रयुक्त) देखकर स्वयं अपने बांयें दांत से उसे ग्रहण कर लिया, और उसे व्यर्थ नहीं किया॥३५॥ वह फरसा वेग से गणपति का बायां दाँत समूल नष्ट कर महादेव के बल द्वारा पुनः राम के हाथ में पहुँच गया॥३६॥ यह देखकर आकाश में देवगण तथा वीरभद्र, कार्तिकेय एवं पार्षद समेत क्षेत्रपाल लोग महाभय से हाहाकार करने लगे॥३७॥ तब गेरू युक्त स्फटिक के पर्वत की भाँति वह रक्त युक्त दाँत शब्द करते हुए भूमि पर गिर पड़ा॥३८॥ हे विप्र! उसके महान् शब्द से भयभीत हुई पृथिवी कांप उठी और कैलासनिवासी सभी लोग भय के मारे क्षण मात्र के लिए मूर्च्छित हो गये॥३९॥ अनन्तर जगत्स्वामी और निद्रा के अधीश्वर शिव जी की भी निद्रा भंग हो गयी, पार्वती समेत सहसा वे बाहर आ गये॥४०॥ हे मुने! उन्होंने सामने देखा कि प्रहार से गणेश का मुख रक्तपूर्ण है, दाँत टूट गया है, उन्होंने क्रोध को जीत लिया हैं फिर भी वे मुसकरा रहे हैं और लज्जित हैं॥४१॥

१क. ०द्रश्च नन्दिश्च।

पप्रच्छ पार्वती शीघ्रं स्कन्दं किमिति पुत्रक । स च तां कथयामास वार्तां पौर्वापरीं भिया ॥४२॥
चुकोप दुर्गा कृपया रुरोद च मुहुर्मुहुः । उवाच शंभोः पुरतः पुत्रं कृत्वा स्ववक्षसि ॥४३॥
संबोध्य शंभुं शोकेन भिया विनयपूर्वकम् । उवाच प्रणता साध्वी प्रणतार्तिहरं पतिम् ॥४४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० गणेशदन्तभङ्गकारणवर्णनं
नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

पार्वत्युवाच

सर्वे जानन्ति जगति दुर्गां शंकरकिंकरीम् । अपेक्षारहिता दासी तस्या वै जीवनं वृथा ॥१॥
ईश्वरस्य समाः सर्वास्तृणपर्वतजातयः । दासीपुत्रस्य शिष्यस्य दोषः कस्येति च प्रभो ॥२॥
विचारं कर्तुमुचितं त्वं च धर्मविदां वरः । वीरभद्रः कार्तिकेयः पार्षदाः सन्ति साक्षिणः ॥३॥
साक्ष्ये मिथ्यां को वदेद्वा द्वावेषां भ्रातरौ समौ । साक्ष्ये समे शत्रुमित्रे सतां धर्मनिरूपणे ॥४॥
साक्षी सभायां यत्साक्ष्यं जानन्नप्यन्यथा वदेत् । कामतः क्रोधतो वाऽपि लोभेन च भयेन च ॥५॥
स याति कुम्भीपाकं च निपात्य शतपूरुषम् । तैश्च सार्धं वसेत्तत्र यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥६॥

पार्वती ने शीघ्र स्कन्द से पूछा—हे पुत्र ! यह क्या हुआ ? उन्होंने भय से पूर्वापर सभी बातें कह कर उन्हें सुना दीं । उपरांत दुर्गा को क्रोध उत्पन्न हुआ; शिव के सम्मुख वे दयावश बार-बार रोदन करने लगीं और पुत्र को अपनी गोद में रखकर बोलीं ॥४२-४३॥ शोक और भय के कारण विनय पूर्वक शिव को सम्बोधित करके उस पतिव्रता ने नम्र होकर भक्तों के दुःखनाशक अपने पति से कहा ॥४४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण-संवाद में गणेश-दन्तभंग का
कारण वर्णन नामक तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४३॥

अध्याय ४४

गणेश-स्तोत्र-कथन

पार्वती बोलीं—संसार में सभी लोग जानते हैं कि दुर्गा शंकर की दासी है, किन्तु (स्वामी के यहाँ) जिसकी आवश्यकता ही न हो उस दासी का जीवन व्यर्थ है ॥१॥ हे प्रभो ! ईश्वर (शिव) के यहाँ तृण से लेकर पर्वत तक सभी समान भाव से देखे जाते हैं । इसमें किस का दोष है ? मेरे पुत्र का या आपके शिष्य का ? ॥२॥ आप धर्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ हैं, अतः इसका विचार करना परमावश्यक है। वीरभद्र-कार्तिकेय और सभी पार्षदगण इसमें साक्षी भी हैं ॥३॥ ये दोनों (गणेश, कार्तिकेय) यद्यपि भ्राता हैं, पर साक्ष्य देने में मिथ्या कौन बोल सकता है, क्योंकि धर्म-निरूपण में साक्ष्य देते समय सज्जनों के लिए शत्रु-मित्र सब समान होते हैं ॥४॥ सभा में साक्षी यदि जानते हुए भी काम, क्रोध, लोभ या भय से मिथ्या कह दे तो वह अपनी सौ पीढ़ियों समेत कुम्भीपाक नरक में जाता है और वहाँ उन लोगों के साथ चन्द्र-सूर्य के समय तक निवास करता

अहं विबोधितुं शक्ता निर्णेत्री च द्वयोरपि। तथाऽपि तव साक्षात्तु ममाऽऽज्ञा निन्दिता श्रुतौ ॥७॥
किंकराणां प्रभा कुत्र नृपे वसति संसदि। उदिते भास्करे पृथ्व्यां खद्योतो हि यथा प्रभो ॥८॥
सुचिरं तपसा प्राप्तं त्वदीयं चरणाम्बुजम्। परित्यागभयेनैव संततं भीतया मया ॥९॥
यत्किंचित्कोपशोकाभ्यामुक्तं मोहेन तत्परम्। तत्क्षमस्व जगन्नाथ पुत्रस्नेहाच्च दारुणात् ॥१०॥
त्वया यदि परित्यक्ता तदा पुत्रेण तेन किम्। साध्व्या सद्वंशजायाश्च शतपुत्राधिकः पतिः ॥११॥
असद्वंशप्रसूता या दुःशीला ज्ञानवर्जिता। स्वामिनं मन्यते नासौ पित्रोर्दोषेण कुत्सिता ॥१२॥
कुत्सितं पतितं मूढं दरिद्रं रोगिणं जडम्। कुलजा विष्णुतुल्यं च कान्तं पश्यति संततम् ॥१३॥
हुताशनो वा सूर्यो वा सर्वतेजस्विनां वरः। पतिव्रतातेजसश्च कलां नार्हति षोडशीम् ॥१४॥
महादानानि पुण्यानि व्रतान्यनशनानि च। तपांसि पतिसेवायाः कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥१५॥
पुत्रो वाऽपि पिता वाऽपि बान्धवोऽथ सहोदरः। योषितां कुलजातानां न कश्चित्स्वामिनः समः ॥१६॥
इत्युक्त्वा स्वामिनं दुर्गा ददर्श पुरतो भृगुम्। शंभोः पदाब्जं सेवन्तं निर्भयं तमुवाच ह ॥१७॥

पार्वत्युवाच

अये राम महाभाग ब्रह्मवंश्योऽसि पण्डितः। पुत्रोऽसि जमदग्नेश्च शिष्योऽस्य योगिनां गुरोः ॥१८॥

है ॥५-६॥ यद्यपि मैं दोनों का निर्णय करके बता देने में समर्थ हूँ, तथापि तुम्हारे रहते हुए यह मेरे लिये उचित नहीं है, क्योंकि ऐसे समय में मेरी आज्ञा वेद में निन्दित है ॥७॥ हे प्रभो! सभा में राजा के वर्तमान रहते सेवकों का तेज वैसा ही होता है, जैसे सूर्य के उदित रहते पृथ्वी पर जुगनू का ॥८॥ मैंने अत्यन्त चिरकाल तक तप करके आपका चरण-कमल प्राप्त किया है, परित्यागभय के कारण ही मैं सदैव भयभीत रहती हूँ, अतः हे जगन्नाथ! क्रोध, शोक एवं मोहवश और दारुण पुत्र-स्नेहवश जो कुछ मैंने कहा है, उसे क्षमा करें ॥९-१०॥ क्योंकि आपने यदि मेरा त्याग कर दिया, तो पुत्र लेकर ही मैं क्या करूंगी? कुलीन पतिव्रताओं के लिए पति सौ पुत्रों से भी अधिक प्रिय होता है ॥११॥ जो अकुलीना, दुष्टा एवं अज्ञानी स्त्री होती है वह माता-पिता के दोष से निन्दित होने के कारण पति का सम्मान नहीं करती है ॥१२॥ निन्दित, पतित, मूर्ख, दरिद्र, रोगी, तथा जड़ पति को भी कुलीनाएँ निरन्तर विष्णु के समान देखती हैं ॥१३॥ इसीलिए अग्नि या समस्त तेजस्वियों में श्रेष्ठ सूर्य भी पतिव्रता स्त्री के तेज की सोलहवीं कला के समान भी नहीं होते हैं ॥१४॥ महादान, पुण्य, व्रत, उपवास और तप पतिसेवा की सोलहवीं कला के समान नहीं होते हैं ॥१५॥ पुत्र, पिता, बन्धु और सहोदर कोई भी कुलीन स्त्रियों के लिए पति के समान नहीं होता है ॥१६॥ स्वामी से इतना कहकर दुर्गा ने सामने भृगु को देखा, जो शिव के चरण-कमल की सेवा कर रहा था और निर्भय था। उससे वह बोलीं ॥१७॥

पार्वती बोलीं—हे महाभाग राम! तुम ब्राह्मण वंश में उत्पन्न और पण्डित हो, जमदग्नि के पुत्र एवं योगियों के गुरु (शिव) के शिष्य हो ॥१८॥ तुम्हारी माता रेणुका थीं, जो पतिव्रता, कमला के अंश से उत्तम कुल

माता ते रेणुका साध्वी पद्मांशा सत्कुलोद्भवा । मातामहो वैष्णवश्च मातुलश्च ततोऽधिकः ।।१९।।
त्वं च रेणुकभूपस्य मनुवंशोद्भवस्य च । दौहित्रो मातुलः साधुः शूरो विष्णुपदाश्रयः ।।२०।।
कस्य दोषेण दुर्धर्षस्त्वं न जानेऽप्यशुद्धधीः । येषां दोषैर्जनो दुष्टस्तमृते शुद्धमानसः ।।२१।।
अमोघं प्राप्य पर्शुं च गुरोश्च करुणानिधेः । परीक्षां क्षत्रिये कृत्वा बभूवास्य सुते पुनः ।।२२।।
गुरवे दक्षिणादानमुचितं च श्रुतौ श्रुतम् । भग्नो दन्तस्तत्सुतस्य छिन्धि मस्तकमप्यहो ।।२३।।
गणेश्वरं रणे जित्वा स्थितश्चेदावयोः पुरः । स त्वं लब्ध्वाऽऽशिषो लोके पूजितोऽभूर्जगत्त्रये ।।२४।।
पर्शुनाऽमोघवीर्येण शंकरस्य वरेण च । हन्तुं शक्तः सृगालश्च सिंहं शार्दूलमाखुभुक् ।।२५।।
त्वद्विधं लक्षकोटिं च हन्तुं शक्तो गणेश्वरः । जितेन्द्रियाणां प्रवरो नहि हन्ति च मक्षिकाम् ।।२६।।
तेजसा कृष्णतुल्योऽयं कृष्णांशश्च गणेश्वरः । देवाश्चान्ये कृष्णकलाः पूजाऽस्य पुरतस्ततः ।।२७।।
व्रतप्रभावतः प्राप्तः शंकरस्य वरेण च । शोकेनातिकठोरेण नहि संपद्विनाऽऽपदम् ।।२८।।
इत्युक्त्वा पार्वती रोषात्तं रामं शप्तुमुद्यता । रामः सस्मार तं कृष्णं प्रणम्य मनसा गुरुम् ।।२९।।
एतस्मिन्नन्तरे दुर्गा ददर्श पुरतो द्विजम् । अतीव वामनं बालं सूर्यकोटिसमप्रभम् ।।३०।।

में उत्पन्न हुई थीं। मातामह (नाना) वैष्णव और मातुल (मामा) तो उनसे भी बढ़ कर थे ।।१९।। मनुवंश में उत्पन्न राजा रेणुक के तुम दौहित्र (कन्यापुत्र) हो। तुम्हारा मातुल (मामा) साधु, शूर और विष्णु के चरणों के आश्रय में सदैव रहता है ।।२०।। मैं नहीं समझता कि तुम किसके दोष से दुर्द्धर्ष होते हुए भी अशुद्ध बुद्धि वाले हो गये। जिनके दोष से मनुष्य दुष्ट होता है उनके न रहने पर शुद्ध-चित्त होता है ।।२१।। करुणानिधि गुरु से अमोघ फरसा प्राप्त करके तुमने पहले क्षत्रियों पर उसकी परीक्षा की और अब गुरु के पुत्र पर की है ।।२२।। इस प्रकार गुरु के लिए दक्षिणा देना वेद में तुमने उचित ही सुना है। गुरु के पुत्र का अभी दाँत ही भग्न किया (तोड़ा) है अब उसका मस्तक भी काट डालो। ।।२३।। गणेश्वर को रण में जीतकर तदि तुम हम लोगों के सामने स्थित हो तो तुम आशीर्वाद प्राप्त करके तीनों लोकों में पूजित हो गये ।।२४।। (यह नहीं जानते कि)—शंकर का अमोघ अस्त्र फरसा और उनका वरदान प्राप्त कर स्यार सिंह को और चूहा बाघ को मारने में समर्थ हो जाता है ।।२५।। तुम्हारे ऐसे लाखों करोड़ों को मारने में गणेश्वर समर्थ हैं, किन्तु जितेन्द्रियों में श्रेष्ठ पुरुष मक्खी का हनन नहीं करता है ।।२६।। गणनायक तेज में कृष्ण के समान और साक्षात् उनका अंश हैं, अन्य देवगण उनकी कला हैं, इसीलिए इनकी पूजा सबके पहले होती है ।।२७।। व्रत के प्रभाव, शंकर के वरदान और अति कठोर शोक करने पर मैंने इन्हें प्राप्त की है, क्योंकि बिना दुःख के सुख सम्भव नहीं होता है ।।२८।। इतना कहकर पार्वती रोष के कारण राम को शाप देने के लिए तैयार हो गयीं, यह देखकर राम मन ही मन गुरु को प्रणाम कर कृष्ण का स्मरण करने लगे ।।२९।। इसी बीच दुर्गा ने अपने सामने एक बहुत ही बौने ब्राह्मण-बालक को देखा, जो करोड़ों सूर्य की प्रभा से पूर्ण था, शुक्ल दाँत, शुक्ल वस्त्र, शुक्ल यज्ञोपवीत, दण्ड, और छत्र धारण किये हुए था।

शुक्लदन्तं शुक्लवस्त्रं शुक्लयज्ञोपवीतिनम् । दण्डिनं छत्रिणं चैव सुप्रभं तिलकोज्ज्वलम् ॥३१॥
दधतं तुलसीमालां सस्मितं सुमनोहरम् । रत्नकेयूरवलयं रत्नमालाविभूषितम् ॥३२॥
रत्ननूपुरपादं च सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम् । रत्नकुण्डलयुग्माढ्यगण्डस्थलविराजितम् ॥३३॥
स्थिरमुद्रां दर्शयन्तं भक्तं वामकरणे च । दक्षिणेऽभयमुद्रां च भक्तेशं भक्तवत्सलम् ॥३४॥
बालिकाबालकगणैर्नगरैः सस्मितैर्युतम् । कैलासवासिभिः सर्वैरावृद्धैरीक्षितं मुदा ॥३५॥
तं दृष्ट्वा संभ्रमाच्छंभुः सभृत्यः सहपुत्रकः । मूर्ध्ना भक्त्या प्रणमच्च दुर्गा च दण्डवद्भुवि ॥३६॥
आशिषं प्रददौ बालः सर्वेभ्यो वाञ्छितप्रदाम् । तं दृष्ट्वा बालकाः सर्वे महाश्चर्यं ययुर्भिया ॥३७॥
दत्त्वा तस्मै शिवो भक्त्या तूपचारांस्तु षोडश । पूजां चकार श्रुत्युक्तां परिपूर्णतमस्य च ॥३८॥
तुष्टाव काण्वशाखोक्तस्तोत्रेण नतकंधरः । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गो भगवन्तं सनातनम् ॥३९॥
रत्नसिंहासनस्थं च प्रावोचच्छंकरः स्वयम् । अतीव तेजसाऽत्यन्तं प्रच्छन्नाकृतिमेव च ॥४०॥

शंकर उवाच

आत्मारामेषु कुशलप्रश्नोऽतीव विडम्बनम् । ते शश्वत्कुशलाधाराः कुशलाः [1]कुशलप्रदाः ॥४१॥

वह प्रभापूर्ण उज्ज्वल तिलक और तुलसी की माला पहने, मन्दहास समेत, अति मनोहर था। वह रत्नों के केयूर, कंकण और रत्नों की माला से भूषित था, रत्नों के नूपुर से सुशोभित उसके चरण थे और वह उत्तम रत्न के मुकुट से समुज्ज्वल तथा रत्नों के युगल कुण्डलों से युक्त गण्डस्थल से शोभित था ॥३०-३३॥ भक्त को बायें हाथ से स्थिर होने की मुद्रा और दाहिने से अभय मुद्रा दिखाते हुए, भक्तों के ईश एवं भक्तवत्सल था ॥३४॥ मन्दहास करते हुए नगर के बालक-बालिकागण उसे चारों ओर से घेरे हुए थे और कैलाशवासी सभी युवा-वृद्ध प्रसन्नता से उसे देख रहे थे ॥३५॥ शम्भु ने उसे देखकर सहसा सेवक और पुत्रों समेत भक्तिपूर्वक शिर से प्रणाम किया तथा दुर्गा ने भूमि पर दण्डवत् किया ॥३६॥ अनन्तर उस बालक ने सबको अभीष्ट सिद्ध होने का आशीर्वाद दिया। नगर के सभी बालक उस आश्चर्य को देखकर भय से चले गये ॥३७॥ उपरान्त शिव ने भक्तिपूर्वक उस परिपूर्णतम बालक भगवान् की सोलहों उपचार से वेदोक्त अर्चना की तथा सर्वांग में पुलकायमान हो कन्धे झुकाकर काण्व शाखा के अनुसार स्तोत्र से सनातन भगवान् की स्तुति की ॥३८-३९॥ पश्चात् स्वयं शिव ने रत्नसिंहासन पर स्थित तथा अत्यन्त तेज के कारण आकार को आच्छन्न किये उस बालक से कहा ॥४०॥

शंकर बोले—आत्मा में रमण करने वालों के लिए कुशल प्रश्न करना अत्यन्त विडम्बना ही है, क्योंकि वे निरन्तर कुशल के आधार, कुशलस्वरूप और कुशलप्रदायक होते हैं ॥४१॥ हे ब्राह्मण ! आज मेरा जन्म

१क. ०शलात्मिकाः ।

अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम् । प्राप्तस्त्वमतिथिर्ब्रह्मन्कृष्णसेवाफलोदयात् ॥४२॥
परिपूर्णतमः कृष्णो लोकनिस्तारहेतवे । पुण्यक्षेत्रे हि कलया भारते च कृपानिधिः ॥४३॥
अतिथिः पूजितो येन पूजिताः सर्वदेवताः । अतिथिर्यस्य संतुष्टस्तस्य तुष्टो हरः स्वयम् ॥४४॥
स्नानेन सर्वतीर्थेषु सर्वदानेन यत्फलम् । सर्वव्रतोपवासेन सर्वयज्ञेषु दीक्षया ॥४५॥
सर्वैस्तपोभिर्विविधैर्नित्यैर्नैमित्तिकादिभिः । तदेवातिथिसेवायाः कलां नार्हति षोडशीम् ॥४६॥
अतिथिर्यस्य भग्नाशो याति रुष्टश्च मन्दिरात् । कोटिजन्मार्जितं पुण्यं तस्य नश्यति निश्चितम् ॥४७॥
स्त्रीगोघ्नश्च कृतघ्नश्च ब्रह्मघ्नो गुरुतल्पगः । पितृमातृगुरूणां च निन्दको नरघातकः ॥४८॥
संध्याहीनो स्वघाती च सत्यघ्नो हरिनिन्दकः । ब्रह्मस्वस्थाप्यहारी च मिथ्यासाक्ष्यप्रदायकः ॥४९॥
मित्रद्रोही कृतघ्नश्च वृषवाहश्च सूपकृत् । शवदाही ग्रामयाजी ब्राह्मणो वृषलीपतिः ॥५०॥
शूद्रश्राद्धान्नभोजी च शूद्रश्राद्धेषु भोजकः । कन्याविक्रयकारी च श्रीहरेर्नामविक्रयी ॥५१॥
[1]लाक्षामांसतिलानां च लवणस्य तिलस्य च । विक्रेता ब्राह्मणश्चैव तुरगाणां गवां तथा ॥५२॥
एकादशीकृष्णसेवाहीनो विप्रश्च भारते । एते महापातकिनस्त्रिषु लोकेषु निन्दिताः ॥५३॥
कालसूत्रे च नरके पतन्ति ब्रह्मणां शतम् । एतेभ्योऽप्यधमः सोऽपि यश्चातिथिपराङ्मुखः ॥५४॥

सफल हो गया, जीवन उत्तम हो गया, क्योंकि भगवान् कृष्ण की सेवा का फलोदय होने से तुम हमें अतिथिरूप में प्राप्त हुए हो ॥४२॥ परिपूर्णतम एवं कृपानिधान भगवान् कृष्ण लोक के निस्तार के लिए पुण्य क्षेत्र भारत में अपनी कला द्वारा अवतीर्ण होते रहते हैं ॥४३॥ जो अतिथि की पूजा करता है उससे सभी देवता पूजित हो जाते हैं। अतिथि के प्रसन्न होने पर स्वयं भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥४४॥ समस्त तीर्थों में स्नान, समस्त दान, समस्त व्रत के उपवास, सम्पूर्ण यज्ञों की दीक्षा तथा विविध भाँति के नित्य नैमित्तिक आदि सभी तप के फल अतिथि-सेवा की सोलहवीं कला के भी समान नहीं होते हैं ॥४५-४६॥ अतिथि जिसके घर से निराश एवं रुष्ट होकर चला जाता है, उसका करोड़ों जन्म का संचित पुण्य निश्चित नष्ट हो जाता है ॥४७॥ स्त्री और गौ का घाती, कृतघ्न, ब्रह्म-घाती, गुरुस्त्रीगामी, पिता, माता और गुरु का निन्दक, नरहन्ता, संध्याकर्महीन, आत्महन्ता, सत्य का घाती, हरिनिन्दक, ब्राह्मण-धन का अपहर्ता, मिथ्यासाक्ष्य (झूठी गवाही) देने वाला, मित्रद्रोही, कृतघ्न, बैलों पर लादने वाला, भण्डारी, शव-दाह का कर्म करने वाला, गांवों को पुजाने वाला, वृषली (शूद्र स्त्री) का पति ब्राह्मण, शूद्रों का श्राद्धान्न भोजन करने वाला, शूद्रों के श्राद्ध में खिलाने वाला, कन्याविक्रेता, भगवान् का नाम विक्रेता, लाख (लाह), मांस, तिल, नमक, घोड़े और गौओं का विक्रेता ब्राह्मण तथा भारत में एकादशी व्रत और भगवान् कृष्ण की सेवा से हीन ब्राह्मण, ये तीनों लोकों में 'महापातकी' कहे जाते हैं और अतिनिन्दित हैं ॥४८-५३॥ ये सब कालसूत्र नरक में सौ ब्रह्मा के समय तक पड़े रहते हैं तथा इनसे भी बढ़कर वह है जो अतिथि को निराश लौटा देता है ॥५४॥

१क० ०क्षालोहरसानां च ।

नारायण उवाच

शंकरस्य वचः श्रुत्वा संतुष्टः श्रीहरिः स्वयम् । मेघगम्भीरया वाचा तमुवाच जगत्पतिः ॥५५॥

विष्णुरुवाच

श्वेतद्वीपादागतोऽहं ज्ञात्वा कोलाहलं च वः । अस्य रामस्य रक्षार्थं कृष्णभक्तस्य सांप्रतम् ॥५६॥
नैतेषां कृष्णभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित् । रक्षामि तांश्चक्रहस्तो गुरुमन्यं विना शिव ॥५७॥
नाहं पाता गुरौ रुष्टे बलवद्गुरुहेलनम् । तत्परः पातकी नास्ति सेवाहीनो गुरोश्च यः ॥५८॥
मान्यः पूज्यश्च सर्वेभ्यः सर्वेषां जनको भवेत् । अहो यस्य प्रसादेन सर्वान्पश्यति मानवः ॥५९॥
जनको जन्मदानाच्च रक्षणाच्च पिता नृणाम् । ततो विस्तारकरणात्कलया स प्रजापतिः ॥६०॥
पितुः शतगुणं माता पोषणाद्गर्भधारणात् । वन्द्या पूज्या च मान्या च 'प्रसूः स्याद्वै वसुंधरा ॥६१॥
मातुः शतगुणं वन्द्यः पूज्यो मान्योऽन्नदायकः । यद्विना नश्वरो देहो विष्णुश्च कलयाऽन्नदः ॥६२॥
अन्नदातुः शतगुणोऽभीष्टदेवः परः स्मृतः । गुरुस्तस्माच्छतगुणो विद्यामन्त्रप्रदायकः ॥६३॥
अज्ञानतिमिराच्छन्नं ज्ञानदीपेन चक्षुषा । यः सर्वार्थं दर्शयति तत्परो नैव बान्धवः ॥६४॥

नारायण बोले—शंकर की बातें सुनकर स्वयं श्रीभगवान् प्रसन्न हुए और पश्चात् जगत्पति ने मेघ की भाँति गंभीर वाणी द्वारा उनसे कहना प्रारम्भ किया ॥५५॥

विष्णु बोले—मैं तुम लोगों का कोलाहल (शोरगुल) सुनकर इस कृष्णभक्त राम के रक्षणार्थ इस समय श्वेत द्वीप से आ रहा हूँ ॥५६॥ हे शिव ! इन कृष्ण-भक्तों का कहीं भी अमंगल नहीं होता है। मैं हाथ में चक्र लेकर उनकी रक्षा करता हूँ। केवल अपने को ही गुरु मान लेने वाले (गुरुद्रोही) को छोड़कर ॥५७॥ क्योंकि गुरु के रुष्ट होने पर मैं उसकी रक्षा नहीं कर सकता हूँ। गुरु-अनादर बलवान् होता है। गुरुसेवा से हीन प्राणी से बढ़कर कोई अन्य पातकी नहीं है ॥५८॥ अहो ! जिसकी कृपा से मानव सभी को देखता है, वह सब का पूज्य माननीय और सबका जनक हो सकता है ॥५९॥ वही मनुष्यों का जन्म देने से जनक, पालन करने से पिता और कला द्वारा विस्तार करने से प्रजापति कहलाता है ॥६०॥ पोषण और गर्भ में धारण करने के नाते माता, पिता से सौगुने अधिक वन्दनीय, पूजनीय और मान्य है; इतना ही नहीं, जननी वसुन्धरा रूप है ॥६१॥ अन्नदाता, माता से सौ गुना वन्दनीय, पूज्य और मान्य होता है, क्योंकि उसके बिना यह देह नष्ट हो जाती है। विष्णु कला रूप से अन्न-दाता होते हैं ॥६२॥ अन्नदाता से सौ गुने अधिक इष्टदेव होता है तथा उससे सौ गुने अधिक गुरु होता है, जो विद्या और मन्त्र प्रदान करता है ॥६३॥ गुरु अज्ञान अन्धकार से आच्छन्न प्राणी को अपने ज्ञानदीपक नेत्र से सभी वस्तुओं का दर्शन कराता है, अतः उससे बढ़कर कोई अन्य बन्धु नहीं है ॥६४॥ गुरुप्रदत्त मन्त्र द्वारा तप करके

१क. प्रसूरूपा व०

गुरुदत्तेन मन्त्रेण तपसेष्टसुखं लभेत् । सर्वज्ञत्वं सर्वसिद्धिं तत्परो नैव बान्धवः ॥६५॥
सर्वं जयति सर्वत्र विद्यया गुरुदत्तया । तस्मात्पूज्यो हि जगति को वा बन्धुस्ततोऽधिकः ॥६६॥
विद्यान्धो वा धनान्धो वा यो मूढो न भजेद्गुरुम् । ब्रह्महत्यादिभिः पापैः स लिप्तो नात्र संशयः ॥६७॥
दरिद्रं पतितं क्षुद्रं नरबुद्ध्याऽऽचरेद्गुरुम् । तीर्थस्नातोऽपि न शुचिर्नाधिकारी च कर्मसु ॥६८॥
पितरं मातरं भार्यां गुरुपत्नीं गुरुं परम् । यो न पुष्णाति कापट्यात्स महापातकी शिव ॥६९॥
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः । गुरुरेव परं ब्रह्म गुरुर्भास्कररूपकः ॥७०॥
गुरुश्चन्द्रस्तथेन्द्रश्च वायुश्च वरुणोऽनलः । सर्वरूपो हि भगवान्परमात्मा स्वयं गुरुः ॥७१॥
नास्ति वेदात्परं शास्त्रं नहि कृष्णात्परः सुरः । नास्ति गङ्गासमं तीर्थं न पुष्पं तुलसीदलात् ॥७२॥
नास्ति क्षमावती भूमेः पुत्रान्नास्त्यपरः प्रियः । न च दैवात्परा शक्तिर्नैकादश्याः परं व्रतम् ॥७३॥
शालग्रामात्परो यन्त्रो न क्षेत्रं भारतात्परम् । परं पुण्यस्थलानां च पुण्यं वृन्दावनं यथा ॥७४॥
मोक्षदानां यथा काशी वैष्णवानां यथा शिवः । न पार्वत्याः परा साध्वी न गणेशात्परो वशी ॥७५॥
न च विद्यासमो बन्धुर्नास्ति कश्चिद्गुरोः परः । विद्यादातुः पुत्रदारौ तत्समौ नात्र संशयः ॥७६॥
गुरुस्त्रियां च पुत्रे चाप्यभवद्रामहेलनम् । परं संमार्जनं कर्तुमागतोऽहं तवाऽऽलयम् ॥७७॥

मनुष्य अभीष्ट सुख, सर्वज्ञत्व और समस्त सिद्धि प्राप्त कर सकता है, अतः उससे बढ़कर अन्य कोई बन्धु नहीं होता है। ॥६५॥ मनुष्य गुरु की दी हुई विद्या द्वारा सर्वत्र सब पर विजय प्राप्त करता है, अतः संसार में उससे अधिक पूज्य और बन्धु कौन हो सकता है ? ॥६६॥ इसीलिए विद्या या धन से अन्धा होकर जो मूर्ख गुरु-सेवा नहीं करता है, वह ब्रह्महत्या आदि पापों का भागी होता है, इसमें संशय नहीं ॥६७॥ इस प्रकार दरिद्र, पतित और क्षुद्र गुरु के प्रति भी जो मनुष्य-बुद्धि से आचरण करता है, वह तीर्थों में स्नान करने पर भी शुद्ध नहीं होता है और न कर्मों का अधिकारी ही होता है ॥६८॥ हे शिव ! पिता, माता, स्त्री, गुरुपत्नी और परम गुरु का जो कपट के कारण पोषण नहीं करता है, वह महापातकी है। गुरु ब्रह्मा है, गुरु विष्णु है, गुरु भगवान् शंकर है, गुरु ही परब्रह्म है और गुरु सूर्यरूप है। गुरु ही चन्द्र, इन्द्र, वायु, वरुण तथा अग्नि है। गुरु ही स्वयं सर्वरूप भगवान् परमात्मा है। ॥६९–७१॥ वेद से बढ़कर कोई शास्त्र और कृष्ण से बढ़कर कोई देवता नहीं है। गंगा के समान तीर्थ, तुलसी दल से बढ़कर अन्य पुष्प, पृथिवी से बढ़कर क्षमाशील और पुत्र से बढ़कर कोई प्रिय नहीं है। दैव से बढ़कर शक्ति, एकादशी से बढ़कर व्रत, शालग्राम से बढ़कर यंत्र, भारत से बढ़कर क्षेत्र एवं पुण्यस्थलों में वृन्दावन से अधिक पवित्र कोई नहीं है ॥७२-७४॥ मोक्षदायकों में काशी और वैष्णवों में शिव से बढ़कर कोई नहीं है। पार्वती से बढ़कर पतिव्रता और गणेश से बढ़कर आत्मसंयमी कोई नहीं है ॥७५॥ विद्या के समान बन्धु और गुरु से बढ़कर कोई दूसरा हितैषी नहीं है। विद्या देने वाले की पत्नी और पुत्र भी उन्हीं के समान हैं, इसमें संशय नहीं ॥७६॥ गुरुपत्नी और उनके पुत्र का राम ने अपमान किया है, उसी का क्षालन करने के लिए मैं तुम्हारे घर आया हूँ ॥७७॥

नारायण उवाच

इत्येवमुक्त्वा शंभुं च दुर्गां संबोध्य नारद। उवाच भगवांस्तत्र सत्यसारं परं वचः ॥७८॥

विष्णुरुवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि मदीयं वचनं शुभम्। नीतियुक्तं वेदसारं परिणामसुखावहम् ॥७९॥
यथा ते गजवक्त्रश्च कार्तिकेयश्च पार्वति। तथा परशुरामश्च भार्गवो नात्र संशयः ॥८०॥
नास्त्येषु स्नेहभेदश्च तव वा शंकरस्य च। विचार्य सर्वं सर्वज्ञे कुरु मातर्यथोचितम् ॥८१॥
पुत्रेण सार्धं पुत्रस्य विवादो दैवदोषतः। दैवं हन्तुं को हि शक्तो दैवं च बलवत्तरम् ॥८२॥
पुत्राभिधानं वेदेषु[1] पश्य वत्से वरानने। एकदन्त इति ख्यातं सर्वदेवनमस्कृतम् ॥८३॥
पुत्रनामाष्टकं स्तोत्रं सामवेदोक्तमीश्वरि। शृणुष्वावहितं मातः[2] सर्वविघ्नहरं परम् ॥८४॥

विष्णुरुवाच

गणेशमेकदन्तं च हेरम्बं विघ्ननायकम्। लम्बोदरं शूर्पकर्णं गजवक्त्रं गुहाग्रजम् ॥८५॥
अष्टाख्यार्थं च पुत्रस्य शृणु मातर्हरप्रिये। स्तोत्राणां सारभूतं च सर्वविघ्नहरं परम् ॥८६॥
ज्ञानार्थवाचको गश्च णश्च निर्वाणवाचकः। तयोरीशं परं ब्रह्म गणेशं प्रणमाम्यहम् ॥८७॥
एकशब्दः प्रधानार्थो दन्तश्च बलवाचकः। बलं प्रधानं सर्वस्मादेकदन्तं नमाम्यहम् ॥८८॥

नारायण बोले—हे नारद! इस प्रकार कह कर शिव और दुर्गा को सम्बोधित करके भगवान् ने सत्य का सार एवं श्रेष्ठ वचन कहा ॥७८॥

विष्णु बोले—हे देवि! मैं तुमसे कुछ शुभ वचन कह रहा हूँ, जो नीतियुक्त, वेद का सार भाग और परिणाम में सुखप्रद होगा, सुनो ॥७९॥ हे पार्वती! जिस प्रकार तुम्हारे पुत्र गजानन और कार्तिकेय हैं उसी भाँति भार्गव परशुराम भी हैं, इसमें संशय नहीं ॥८०॥ हे सर्वज्ञे, हे मातः! तुम्हारा और शिव का इसमें स्नेह-भेद भी नहीं है, अतः विचार करके जो उचित हो, करो ॥८१॥ पुत्र के साथ पुत्र का विवाद हो गया, तो यह दैव का दोष है। दैव को हटाने में कौन समर्थ है? वह सबसे बलवान् होता है ॥८२॥ हे वत्से! हे वरानने! वेदों में पुत्र का नाम देखो—'एकदन्त' यही विख्यात है जो सब देवों से नमस्कृत है ॥८३॥ अतः हे ईश्वरि! हे मातः! सामवेदानुसार पुत्र का नामाष्टक स्तोत्र, जो समस्त विघ्नों का परम नाशक है, सावधानी से सुनो ॥८४॥

विष्णु बोले—गणेश, एकदन्त, हेरम्ब, विघ्ननायक, लम्बोदर, शूर्पकर्ण (सूप के समान कान वाले), गजानन, गुहाग्रज (स्कन्द के ज्येष्ठ भ्राता), यही आठ नाम हैं ॥८५॥ हे हरप्रिये! मातः! पुत्र के इन आठों नामों के अर्थ सुनो, जो स्तोत्रों का सारभाग और समस्त विघ्नों का परम नाशक है ॥८६॥ ग का अर्थ ज्ञान, ण का अर्थ (मुक्ति), इन दोनों के अधीश्वर परब्रह्म गणेश को मैं प्रणाम कर रहा हूँ ॥८७॥ एक का अर्थ प्रधान, दन्त का अर्थ बल है, अतः सबसे प्रधान बली एकदन्त को मैं नमस्कार कर रहा हूँ ॥८८॥ हे का अर्थ दीन और रम्ब का अर्थ पालन करना है,

---

१ क. देवेषु। २ क. मत्तः।

दीनार्थवाचको हेश्च रम्बः पालकवाचकः । पालकं दीनलोकानां हेरम्बं प्रण० ॥८९॥
विपत्तिवाचको विघ्नो नायकः खण्डनार्थकः । विपत्खण्डनकारं तं प्रणमे विघ्ननायकम् ॥९०॥
विष्णुदत्तैश्च नैवेद्यैर्यस्य लम्बं पुरोदरम् । पित्रा दत्तैश्च विविधैर्वन्दे लम्बोदरं च तम् ॥९१॥
शूर्पाकारौ च यत्कर्णौ विघ्नवारणकारकौ । संपद्दौ ज्ञानरूपौ च शूर्पकर्णं नमाम्यहम् ॥९२॥
विष्णुप्रसादं मुनिना दत्तं यन्मूर्ध्नि पुष्पकम् । तद्गजेन्द्रमुखं कान्तं गजवक्त्रं न० ॥९३॥
गुहस्याग्रे च जातोऽयमाविर्भूतो हरालये । वन्दे गुहाग्रजं देवं सर्वदेवाग्रपूजितम् ॥९४॥
एतन्नामाष्टकं दुर्गे नानाशक्तियुतं परम् । एतन्नामाष्टकं स्तोत्रं [1]नानार्थसहितं शुभम् ॥९५॥
त्रिसंध्यं यः पठेन्नित्यं स सुखी सर्वतो जयी । ततो विघ्नाः पलायन्ते वैनतेयाद्यथोरगाः ॥९६॥
गणेश्वरप्रसादेन महाज्ञानी भवेद्ध्रुवम् । पुत्रार्थी लभते पुत्रं भार्यार्थी कुशलां स्त्रियम् ॥९७॥
महाजडः कवीन्द्रश्च विद्यावांश्च भवेद्ध्रुवम् । पुत्र त्वं पश्य वेदे च तथा कोपं च नो कुरु ॥९८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० गणेशस्तोत्रकथनं नाम
चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥

अतः दीनों और लोकों के पालनकर्ता हेरम्ब को मैं प्रणाम कर रहा हूँ ॥८९॥ विघ्न का अर्थ है विपत्ति और नायक का अर्थ है खण्डन करना, अतः विपत्ति के खण्डन करने वाले विघ्ननायक को मैं प्रणाम कर रहा हूँ ॥९०॥ भगवान् विष्णु के दिये हुए नैवेद्य खाने से तथा पिता द्वारा भी विविध भाँति के नैवेद्य देने से जिसका उदर लम्बा हो गया है, उस लम्बोदर की मैं वन्दना कर रहा हूँ ॥९१॥ विघ्नों को दूर भगाने के लिए जिसके दोनों कान सूप की भाँति बड़े हैं, सम्पत्तिदायक हैं तथा ज्ञानस्वरूप हैं, उन शूर्पकर्ण को नमस्कार कर रहा हूँ ॥९२॥ मुनिप्रदत्त विष्णु का प्रसाद पुष्प जिसके मस्तक पर था, उस मनोहर गजेन्द्र मुखवाले गजानन को मैं नमस्कार कर रहा हूँ ॥९३॥ शिव के घर स्कन्द से प्रथम यह प्रकट हुए हैं, अतः समस्त बड़े देवों से पूजित गुहाग्रज देव की मैं वन्दना कर रहा हूँ ॥९४॥ हे दुर्गे ! इस प्रकार यह अष्टक अनेक शक्तियों और अनेक अर्थों से युक्त एवं शुभ स्तोत्र है ॥९५॥ जो तीनों कालों में इसका नित्य पाठ करता है, वह सुखी और सबसे विजयी होता है तथा गरुड़ से साँप की भाँति उससे सभी विघ्न पलायन कर जाते हैं ॥९६॥ गणेश्वर के प्रसाद से वह निश्चित रूप से महाज्ञानी होता है। पुत्रार्थी पुत्र और भार्या चाहने वाला कुशल स्त्री प्राप्त करता है ॥९७॥ महामूर्ख कवीन्द्र और विद्यावान् होता है। अतः हे पुत्र ! तुम वेद में देखो, कोप न करो ॥९८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में गणेश-स्तोत्र-कथन नामक चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४४॥

---

१ क. नामार्थस० ।

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

पार्वतीं बोधयित्वा तु विष्णू राममुवाच ह। हितं सत्यं नीतिसारं परिणामसुखावहम्॥१॥

विष्णुरुवाच

राम त्वमधुना सत्यमपराधी श्रुतेर्मते। कोपात्कृत्वा दन्तभङ्गं गणेशस्य स्थिते[1] शिवे॥२॥
स्तोत्रेणैव मयोक्तेन स्तुत्वा गणपतिं परम्। काण्वशाखोक्तविधिना स्तुहि दुर्गां जगत्प्रसूम्॥३॥
श्रीकृष्णस्य परा शक्तिर्बुद्धिरूपा जगत्प्रभोः। अस्यां च तव रुष्टायां हता बुद्धिर्भविष्यति॥४॥
सर्वशक्तिस्वरूपेयमनया शक्तिमज्जगत्। अनया शक्तिमान्कृष्णो निर्गुणः प्रकृतेः परः॥५॥
सृष्टिं कर्तुं न शक्तश्च ब्रह्मा शक्त्याऽनया विना। वयमस्यां प्रसूताश्च ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥६॥
सुरसंघेऽसुरग्रस्ते काले घोरतरे द्विज। तेजःसु सर्वदेवानामाविर्भूता पुरा[2] सती॥७॥
कृष्णाज्ञयाऽसुरान्हत्वा दत्त्वा तेभ्यः पदं ततः। दक्षपत्न्यां जनिं लेभे दक्षस्य तपसा पुरा॥८॥

अध्याय ४५

परशुरामकृत दुर्गास्तोत्र

नारायण बोले—इस प्रकार पार्वती को समझाकर विष्णु ने राम से हितकर, सत्य, नीति का सार और परिणाम में सुखप्रद वचन कहा॥१॥

विष्णु बोले—हे राम! तुम इस समय वेदानुसार सत्य अपराधी हो, क्योंकि शिव के रहते तुमने कोप से गणेश का दाँत तोड़ दिया है॥२॥ अतः मेरे कहे हुए स्तोत्र द्वारा ही श्रेष्ठ गणपति की स्तुति करके तुम काण्वशाखानुसार जगज्जननी दुर्गा की स्तुति करो॥३॥ क्योंकि जगत्स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण की यह बुद्धिरूप पराशक्ति है, अतः इसके रुष्ट होने पर तुम्हारी बुद्धि नष्ट हो जायगी॥४॥ यह सम्पूर्ण शक्तिरूप है और सारा जगत् इसी के द्वारा शक्तिमान् हुआ है। निर्गुण एवं प्रकृति से परे रहने वाले भगवान् श्रीकृष्ण भी इसी से शक्तिमान् हैं॥५॥ इस शक्ति के विना ब्रह्मा भी सृष्टि करने में असमर्थ रहते हैं। ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर आदि हम लोग इन्हीं से उत्पन्न हुए हैं॥६॥ हे द्विज! देवगणों के असुरों के अधीन हो जाने पर उस अति घोर काल में समस्त देवों के तेज से यह सती पहले उत्पन्न हुई थी॥७॥ भगवान् कृष्ण की आज्ञा से राक्षसों का बध करके इसने देवों को उनका अपना पद (अधिकार) प्रदान किया तथा दक्ष की तपस्या के कारण उनकी पत्नी में जन्म ग्रहण किया॥८॥ और शंकर की पत्नी होने पर पुनः पति-निन्दा के कारण उस

---

१ ख. स्थितोऽशि०। २ क. सनातनी।

भार्या भूत्वा शंकरस्य पुनः पत्युश्च निन्दया । देहं त्यक्त्वा शैलपत्न्यां जनिं लेभे पुरा सती ॥९॥
शंकरस्तपसा लब्धो योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः । लब्धो गणपतिः पुत्रः कृष्णांशः कृष्णसेवया ॥१०॥
यं ध्यायस्येव नित्यं किं तं न जानासि बालक । स एव भगवान्कृष्णश्चांशेन गिरिजासुतः ॥११॥
कृताञ्जलिर्नतो भूत्वा स्तुहि दुर्गां शिवप्रियाम् । शिवां शिवप्रदां शैवां शिवबीजां शिवेश्वरीम् ॥१२॥
शिवायाः स्तोत्रराजेन पुरा शूलिकृतेन वै । त्रिपुरस्य वधे घोरे ब्रह्मणा प्रेरितेन च ॥१३॥
इत्युक्त्वा श्रीपदं शीघ्रं जगाम श्रीनिकेतनम् । गते हरौ हरिं स्मृत्वा रामस्तां स्तोतुमुद्यतः ॥१४॥
स्तोत्रेण विष्णुदत्तेन सर्वविघ्नहरेण च । धर्मार्थकाममोक्षाणां कारणेन च नारद ॥१५॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा स्नात्वा गङ्गोदके शुभे । गुरुं प्रणम्य भक्तेशं धृत्वा धौते च वाससी ॥१६॥
आचम्य नत्वा मूर्ध्ना तां भक्तिनम्रात्मकंधरः । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गश्चानन्दाश्रुसमन्वितः ॥१७॥

परशुराम उवाच

श्रीकृष्णस्य च गोलोके परिपूर्णतमस्य च । आविर्भूता विग्रहतः पुरा सृष्ट्युन्मुखस्य च ॥१८॥
सूर्यकोटिप्रभायुक्ता वस्त्रालंकारभूषिता । वह्निशुद्धांशुकाधाना सस्मिता सुमनोहरा ॥१९॥

(दक्ष-जनित) देह का त्याग कर दिया तथा हिमालय की पत्नी में जन्म लिया ॥९॥ अनन्तर तप करके योगीन्द्रों के गुरु के गुरु शंकर को पति रूप में पुनः प्राप्त किया और भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा करके गणपति पुत्र प्राप्त किया है, जो कृष्ण का अंश है॥१०॥ हे बालक! जिसका नित्य ध्यान करते हो, क्या उसे नहीं जानते? वही भगवान् कृष्ण अंशतः गिरिजा के पुत्र हुए हैं॥११॥ इसलिए हाथ जोड़कर विनम्र हो शिवप्रिया दुर्गा की स्तुति करो, जो शिवा (कल्याणरूपा), शिवप्रदा, शिव-भक्त, शिवबीज स्वरूप तथा शिव की ईश्वरी है॥१२॥ पहले के शंकर कृत स्तोत्रराज से तुम शिवा की स्तुति करो, जिसे उन्होंने त्रिपुर के घोर वध के समय ब्रह्मा से प्रेरित होकर उन्होंने रचा था॥१३॥ हे नारद! इतना कह कर वह (वामन बालक) शीघ्रता से विष्णुलोक चला गया। भगवान् के चले जाने पर भगवान् का स्मरण करके राम पार्वती की उस स्तोत्र द्वारा स्तुति करने के लिए तैयार हो गये, जो विष्णुप्रदत्त, समस्तविघ्नहारी और धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष का कारण था॥१४-१५॥ शुभ गंगाजल में स्नान करके हाथ जोड़कर, भक्तों के ईश गुरु को प्रणाम करके दो धुले वस्त्रों को पहना और आचमन करके भक्ति से कन्धे झुकाये, सर्वांग में पुलक (रोमाञ्च) एवं नेत्रों में आनन्द के आंसू भरे तथा शिर से नमस्कार करते हुए राम ने देवी की स्तुति की॥१६-१७॥

परशुराम बोले—पूर्व समय गोलोक में परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण की देह से, जब वे सृष्टि के उन्मुख हो रहे थे, तुम प्रकट हुई॥१८॥ तुम करोड़ों सूर्य की प्रभा से युक्त, वस्त्र-आभूषणों से विभूषित, अग्नि की भाँति

नवयौवनसंपन्ना [1]सिन्दूरारुण्यशोभिता। ललितं कबरीभारं मालतीमाल्यमण्डितम् ॥२०॥
अहोऽनिर्वचनीया त्वं चारुमूर्तिं च बिभ्रती। मोक्षप्रदा मुमुक्षूणां महाविष्णुर्विधिः स्वयम् ॥२१॥
मुमोह क्षणमात्रेण दृष्ट्वा त्वां सर्वमोहिनीम्। [2]बालैः संभूय सहसा सस्मिता धाविता[3] पुरा ॥२२॥
सद्भिः ख्याता तेन राधा मूलप्रकृतिरीश्वरी। कृष्णस्तां सहसा[4] भीतो वीर्याधानं चकार ह ॥२३॥
ततो डिम्भं महज्जज्ञे ततो जातो महान्विराट्। यस्यैव लोमकूपेषु ब्रह्माण्डान्यखिलानि च ॥२४॥
राधारतिक्रमेणैव तन्निःश्वासो बभूव ह। स निःश्वासो महावायुः स विराड्विश्वधारकः ॥२५॥
भयघर्मजलेनैव पुप्लुवे विश्वगोलकम्। स विराड्विश्वनिलयो जलराशिर्बभूव ह ॥२६॥
ततस्त्वं पञ्चधा भूय पञ्च मूर्तीश्च बिभ्रती। प्राणाधिष्ठातृमूर्तिर्या कृष्णस्य परमात्मनः ॥२७॥
कृष्णप्राणाधिकां राधां तां वदन्ति पुराविदः। वेदाधिष्ठातृमूर्तिर्या वेदशास्त्रप्रसूरपि ॥२८॥
तां सावित्रीं शुद्धरूपां प्रवदन्ति मनीषिणः। ऐश्वर्याधिष्ठातृमूर्तिः शान्तिस्त्वं शान्तरूपिणी ॥२९॥
लक्ष्मीं वदन्ति सन्तस्तां शुद्धां सत्त्वस्वरूपिणीम्। रागाधिष्ठातृदेवी या शुक्लमूर्तिः सतां प्रसूः ॥३०॥
सरस्वतीं तां शास्त्रज्ञां शास्त्रज्ञाः प्रवदन्त्यहो। बुद्धिर्विद्या सर्वशक्तेर्या मूर्तिरधिदेवता ॥३१॥
सर्वमङ्गलदा सन्तो वदन्ति सर्वमङ्गलाम्। सर्वमङ्गलमङ्गल्या सर्वमङ्गलरूपिणी ॥३२॥

विशुद्ध वस्त्र पहने, मन्दहास करती हुई, अति मनोहर, नवयौवना, सिन्दूर की लाली से सुशोभित, मालती-माला से विभूषित और ललित कवरी भार (केशपाश) धारण किये हुई थीं ॥१९-२०॥ अहो! सुन्दर मूर्ति धारण करने वाली तुम अनिर्वचनीया, एवं मुमुक्षजनों को मोक्ष देने वाली हो और तुम्हारा सर्वमोहन रूप देखकर स्वयं महाविष्णु और ब्रह्मा क्षणमात्र में मोहित हो गये थे। तुम सहसा बच्चों के साथ मन्दहास करते दौड़ने लगी थीं, इसीलिए सज्जनों ने तुम मूलप्रकृति ईश्वरी को 'राधा' नाम से प्रख्यात किया। कृष्ण ने भी सहसा भयभीत होकर तुम में बीर्याधान किया ॥२१-२३॥ जिससे महान् डिम्भ (सुवर्ण का अंडा) उत्पन्न हुआ, और उससे महाविराट् का जन्म हुआ है जिसके लोमकूपों में निखिल ब्रह्माण्ड भरे पड़े हैं ॥२४॥ राधा के साथ रति करते समय क्रमशः जो उनका निःश्वास उत्पन्न हुआ, वह निःश्वास महावायु एवं विश्व का आधार विराट् हुआ ॥२५॥ उस समय उनके पसीने के जल से गोलाकार विश्व उत्पन्न हुआ। वह विश्व-धारक विराट् जलराशि हो गया ॥२६॥ अनन्तर तुमने अपने को पाँच रूपों में प्रकट किया। जो परमात्मा कृष्ण की प्राणाधिष्ठात्री मूर्ति है वह उनके प्राणों से भी अधिक प्रिय है, अतः पुरावेत्ता लोग उसे राधा कहते हैं। वेदों की अधिष्ठात्री देवी, जो वेद शास्त्रों की जननी भी है, उसे मनीषी गण शुद्धरूपा सावित्री कहते हैं। ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री मूर्ति तुम शान्ति एवं शान्त रूपा हो, अतः उस शुद्ध सत्त्वस्वरूपा को सन्त लोग लक्ष्मी कहते हैं। रागों की अधिष्ठात्री देवी, जो शुक्लरूप एवं सज्जनों की जननी है, उस शास्त्रज्ञा को शास्त्रज्ञ लोग सरस्वती कहते हैं। बुद्धि और विद्यारूप, समस्त शक्ति की अधिदेवता, तथा समस्त मंगलों को देने वाली जो मूर्ति है उसे सन्त लोग सर्वमंगला कहते हैं। तुम समस्त मंगलों की मंगलकारिका तथा सकल मंगल स्वरूपा, हो ॥२७-३२॥ हे

१क. ०न्दूरबिन्दुशो०। २. रासे सं०। ३. क. राधिता। ४क. ०साऽऽज्ञाय भी०।

सर्वमङ्गलबीजस्य शिवस्य निलयेऽधुना। शिवे शिवास्वरूपा त्वं लक्ष्मीर्नारायणान्तिके ॥३३॥
सरस्वती च सावित्री वेदसूर्ब्रह्मणः प्रिया। राधा रासेश्वरस्यैव परिपूर्णतमस्य च ॥३४॥
परमानन्दरूपस्य परमानन्दरूपिणी। त्वत्कलांशांशकलया देवानामपि योषितः ॥३५॥
त्वं विद्या योषितः सर्वाः सर्वेषां बिजरूपिणी। छाया सूर्यस्य चन्द्रस्य रोहिणी सर्वमोहिनी ॥३६॥
शची शक्रस्य कामस्य कामिनी रतिरीश्वरी। वरुणानी जलेशस्य वायोः स्त्री प्राणवल्लभा ॥३७॥
वह्नेः प्रिया हि स्वाहा च कुबेरस्य च सुन्दरी। यमस्य तु सुशीला च नैर्ऋतस्य च कैटभी ॥३८॥
ऐशानी स्याच्छशिकला शतरूपा मनोः प्रिया। देवहूतिः कर्दमस्य वसिष्ठस्याप्यरुन्धती ॥३९॥
लोपामुद्राऽप्यगस्त्यस्य देवमाताऽदितिस्तथा। अहल्या गौतमस्यापि सर्वाधारा वसुंधरा ॥४०॥
गङ्गा च तुलसी चापि पृथिव्यां या सरिद्वरा। एताः सर्वाश्च या ह्यन्या सर्वास्त्वत्कलयाऽम्बिके ॥४१॥
गृहलक्ष्मीर्गृहे नृणां राजलक्ष्मीश्च राजसु। तपस्विनां तपस्या त्वं गायत्री ब्राह्मणस्य च ॥४२॥
सतां [1]सत्त्वस्वरूपा त्वमसतां कलहाङ्कुरा। ज्योतीरूपा निर्गुणस्य शक्तिस्त्वं सगुणस्य च ॥४३॥
सूर्ये प्रभास्वरूपा त्वं दाहिका च हुताशने। जले शैत्यस्वरूपा च शोभारूपा निशाकरे ॥४४॥
त्वं भूमौ गन्धरूपा चाप्याकाशे शब्दरूपिणी। क्षुत्पिपासादयस्त्वं च जीविनां सर्वशक्तयः ॥४५॥
सर्वबीजस्वरूपा त्वं संसारे साररूपिणी। स्मृतिर्मेधा च बुद्धिर्वा ज्ञानशक्तिर्विपश्चिताम् ॥४६॥

इस समय तुम शिव के भवन में समस्त मंगलों का बीज हो। तुम शिव में शिवास्वरूप, नारायण के यहाँ लक्ष्मी, और ब्रह्मा के यहाँ सरस्वती तथा वेद-जननी सावित्री हो। परिपूर्णतम श्रीकृष्ण की तुम राधा हो, परमानन्दरूप की परमानन्दरूपिणी हो। तुम्हारी ही कलाओं के अंशांश से देवों की पत्नियाँ उत्पन्न हुई हैं ॥३३-३५॥ तुम विद्या, सभी स्त्रियाँ और सबकी बीज रूपा हो। तुम सूर्य की छाया और चन्द्रमा की रोहिणी हो, जो सबको मोहित करती है। तुम इन्द्र की इन्द्राणी, कामदेव की कामिनी रति, वरुण की वरुणानी एवं वायु की प्राणवल्लभा स्त्री हो ॥३६-३७॥ अग्नि की प्रिया स्वाहा, कुबेर की सुन्दरी, यम की सुशीला, नैर्ऋत की कैटभी, शंकर की शशिकला, मनु की प्रिया शतरूपा, कर्दम की देवहूति, वसिष्ठ की अरुन्धती, अगस्त्य की लोपामुद्रा, देवों की माता अदिति, गौतम की अहल्या और सब की आधार वसुन्धरा (पृथ्वी) हो। हे अम्बिके! पृथ्वी पर गंगा, तुलसी और श्रेष्ठ नदियाँ जो हैं वे सब तथा अन्य समस्त तुम्हारी कला से उत्पन्न हुई हैं ॥३८-४१॥ मनुष्यों के घर में गृहलक्ष्मी, राजाओं की राजलक्ष्मी, तपस्वी जनों की तपस्या, ब्राह्मण की गायत्री, सज्जनों की सत्त्वस्वरूपा, असज्जनों को कलहबीज, निर्गुण की ज्योतिरूप, सगुण की शक्ति, सूर्य की प्रभा, अग्नि की दाहिका, जल में शैत्य रूप, चन्द्र में शोभा रूप, पृथिवी में गन्ध-रूप, आकाश में शब्द रूप और जीवों की भूख-प्यास आदि समस्त शक्तियाँ तुम्हीं हो ॥४२-४५॥ संसार में सर्वबीजरूप और साररूप एवं विद्वानों की स्मृति, मेधा, बुद्धि और ज्ञानशक्ति हो ॥४६॥ कृष्ण ने शिव

---

१ क. सत्यस्व०।

कृष्णेन विद्या या दत्ता सर्वज्ञानप्रसूः शुभा। शूलिने कृपया सा त्वं यया मृत्युंजयः शिवः ॥४७॥
सृष्टिपालनसंहारशक्तयस्त्रिविधाश्च याः। ब्रह्मविष्णुमहेशानां सा त्वमेव नमोऽस्तु ते ॥४८॥
मधुकैटभभीत्या च त्रस्तो धाता प्रकम्पितः। स्तुत्वा मुक्तश्च यां देवीं तां मूर्ध्ना प्रणमाम्यहम् ॥४९॥
मधुकैटभयोर्युद्धे त्राताऽसौ विष्णुरीश्वरीम्। बभूव शक्तिमान्स्तुत्वा तां दुर्गां प्रण० ॥५०॥
त्रिपुरस्य महायुद्धे सरथे पतिते शिवे। यां तुष्टुवुः सुराः सर्वे तां दुर्गां प्रण० ॥५१॥
विष्णुना वृषरूपेण स्वयं शंभुः समुत्थितः। जघान त्रिपुरं स्तुत्वा तां दुर्गां प्रण० ॥५२॥
यदाज्ञया वाति वातः सूर्यस्तपति संततम्। वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निस्तां दुर्गां प्रण० ॥५३॥
यदाज्ञया हि कालश्च शश्वद्भ्रमति वेगतः। मृत्युश्चरति जन्तूनां तां दुर्गां प्रण० ॥५४॥
स्रष्टा सृजति सृष्टिं च पाता पाति यदाज्ञया। संहर्ता संहरेत्काले तां दुर्गां प्रण० ॥५५॥
ज्योतिःस्वरूपो भगवाञ्छ्रीकृष्णो निर्गुणः स्वयम्। यया विना न शक्तश्च सृष्टिं कर्तुं नमामि ताम् ॥५६॥
रक्ष रक्ष जगन्मातरपराधं क्षमस्व मे। शिशूनामपराधेन कुतो माता हि कुप्यति ॥५७॥
इत्युक्त्वा परशुरामश्च नत्वा तां च रुरोद ह। तुष्टा दुर्गा संभ्रमेण चाभयं च वरं ददौ ॥५८॥
अमरो भव हे पुत्र वत्स सुस्थिरतां व्रज। शर्वप्रसादात्सर्वत्र जयोऽस्तु तव संततम् ॥५९॥

को कृपया जो सर्वज्ञान की जननी विद्या प्रदान की, जिससे शिव मृत्युञ्जय हो गये हैं, वह तुम्हीं हो ॥४७॥ ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर की सृष्टि, पालन और संहार ये तीन प्रकार की शक्तियाँ तुम्हीं हो, अतः तुम्हें नमस्कार है ॥४८॥ मधुकैटभ के भय से ब्रह्मा त्रस्त होकर काँप गये, फिर वे जिसकी स्तुति करने से मुक्त हुए उस देवी को मैं शिर से प्रणाम कर रहा हूँ ॥४९॥ मधुकैटभ के युद्ध के समय जिस ईश्वरी की स्तुति करके त्राता विष्णु शक्तिमान् हुए, उस दुर्गा को मैं प्रणाम कर रहा हूँ ॥५०॥ त्रिपुर के महायुद्ध में रथ समेत शिव के गिर जाने पर देवों ने जिस देवी की स्तुति की उस दुर्गा को मैं प्रणाम कर रहा हूँ ॥५१॥ विष्णु ने स्वयं वृष (बैल) रूप बनकर शिव को उठाया, पश्चात् शम्भु ने जिसकी स्तुति कर त्रिपुर का हनन किया उस दुर्गा को मैं प्रणाम कर रहा हूँ ॥५२॥ जिसकी आज्ञा से वायु चलता है, सूर्य सतत तपता है, इन्द्र वर्षा करता है और अग्नि जलाता है, उस दुर्गा को मैं प्रणाम कर रहा हूँ ॥५३॥ जिसकी आज्ञा वश काल निरन्तर वेग से भ्रमण किया करता है और मृत्यु जन्तुओं में विचरण करता है, उस दुर्गा को मैं प्रणाम कर रहा हूँ ॥५४॥ जिसकी आज्ञा से स्रष्टा सृष्टि का सर्जन करते हैं, विष्णु पालन करते हैं और शिव संहार करते हैं, उस दुर्गा को मैं प्रणाम कर रहा हूं ॥५५॥ ज्योतिःस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं निर्गुण हैं और जिस शक्ति के बिना सृष्टि करने में समर्थ नहीं होते हैं उस देवी को नमस्कार करता हूँ ॥५६॥ हे संसार की माता ! मेरी रक्षा करो। मेरी रक्षा करो। मेरा अपराध क्षमा करो, बच्चों के अपराध से माता कहाँ कुपित होती है ? ॥५७॥ इतना कहकर नमस्कार करके परशुराम रोदन करने लगे, जिससे सहसा दुर्गा ने प्रसन्न होकर उन्हें अभय और वर प्रदान किया ॥५८॥ हे पुत्र ! अमर हो, हे वत्स ! सुस्थिर हो और सबके प्रसाद से तुम्हारा सर्वत्र जय हो ॥५९॥ सबके अन्तरात्मा भगवान् निरन्तर प्रसन्न रहें, कृष्ण में तुम्हारी

सर्वान्तरात्मा भगवांस्तुष्टः स्यात्संततं हरिः। भक्तिर्भवतु ते कृष्णे शिवदे च शिवे गुरौ॥६०॥
इष्टदेवे गुरौ यस्य भक्तिर्भवति शाश्वती। तं हन्तुं न हि शक्ता वा रुष्टा वा सर्वदेवताः॥६१॥
श्रीकृष्णस्य च भक्तस्त्वं शिष्यो वै शंकरस्य च। गुरुपत्नीं स्तौषि यस्मात्कस्त्वां हन्तुमिहेश्वरः॥६२॥
अहो न कृष्णभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित्। अन्यदेवेषु ये भक्ता न भक्ता वा निरङ्कुशाः॥६३॥
चन्द्रमा बलवांस्तुष्टो येषां भाग्यवतां भृगो। तेषां तारागणा रुष्टाः किं कुर्वन्ति च दुर्बलाः॥६४॥
यस्मै तुष्टः पालयति नरदेवो महान्सुखी। तस्य किंवा करिष्यन्ति रुष्टा भृत्याश्च दुर्बलाः॥६५॥
इत्युक्त्वा पार्वती तुष्टा दत्त्वा रामाय चाऽऽशिषम्। जगामान्तःपुरं तूर्णं हर्षशब्दो बभूव ह॥६६॥
स्तोत्रं वै कण्वशाखोक्तं पूजाकाले च यः पठेत्। यात्राकाले तथा प्रातर्वाञ्छितार्थं लभेद्ध्रुवम्॥६७॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रं कन्यार्थी कन्यकां लभेत्। विद्यार्थी लभते विद्यां प्रजार्थी चाऽऽप्नुयात्प्रजाः॥६८॥
भ्रष्टराज्यो लभेद्राज्यं नष्टवित्तो धनं लभेत्। यस्य रुष्टो गुरुर्देवो राजा वा बान्धवोऽथवा॥६९॥
तस्मै तुष्टश्च वरदः स्तोत्रराजप्रसादतः। दस्युग्रस्तः [1]फणिग्रस्तः शत्रुग्रस्तो भयानकः॥७०॥
व्याधिग्रस्तो भवेन्मुक्तः स्तोत्रस्मरणमात्रतः। राजद्वारे श्मशाने च कारागारे च बन्धने॥७१॥
जलराशौ निमग्नश्च मुक्तस्तत्स्मृतिमात्रतः। स्वामिभेदे पुत्रभेदे मित्रभेदे च दारुणे॥७२॥

भक्ति हो और श्रीकृष्ण एवं कल्याणप्रद गुरु शिव में भक्ति हो॥६०॥ क्योंकि इष्टदेव और गुरु में जिसकी निरन्तर निश्चल भक्ति बनी रहती है, उसे समस्त देवता के रुष्ट रहने पर भी कोई मार नहीं सकता है॥६१॥ श्रीकृष्ण के भक्त और शंकर के शिष्य होकर तुम गुरुपत्नी की स्तुति कर रहे हो, अतः तुम्हें मारने में कौन समर्थ हो सकता है?॥६२॥ अहो! कृष्ण के भक्तों का कहीं भी अशुभ नहीं होता। अन्य देवता के जो भक्त हैं, वे या तो भक्त नहीं हैं या निरंकुश हैं॥६३॥ हे भृगो! जिन भाग्यवानों पर चन्द्रमा प्रसन्न हों और तारागण रुष्ट हों तो दुर्बल तारे उनका क्या बिगाड़ सकते हैं?॥६४॥ राजा प्रसन्न चित्त से जिसका पालन करता है, वह महासुखी होता है। यदि सेवक वर्ग उस पर असन्तुष्ट रहें तो वे दुर्बल कर ही क्या सकते हैं?॥६५॥ इतना कहकर पार्वती ने प्रसन्न होकर राम को आशीर्वाद दिया और शीघ्रता से अपने अन्तःपुर चली गयीं। तदनन्तर हर्ष का शब्द होने लगा॥६६॥ इस काण्वशाखोक्त स्तोत्र का, जो पूजा समय, यात्रा समय और प्रातःकाल पाठ करता है, उसे निश्चित अभीष्ट प्राप्त होता है॥६७॥ पुत्र चाहने वाले को पुत्र, कन्यार्थी को कन्या, विद्यार्थी को विद्या, प्रजार्थी को प्रजा, नष्ट राज्य वाले को राज्य और नष्ट धन वाले को धन की प्राप्ति होती है॥६८½॥ जिसके ऊपर गुरुदेव, राजा या बन्धुगण रुष्ट रहते हैं, इस स्तोत्रराज के प्रसाद से वे सब उस पर प्रसन्न हो जाते हैं। लुटेरों से घिरा, सर्पग्रस्त, शत्रुओं से घिरा, भयानक और रोगी इस स्तोत्र के स्मरण मात्र से मुक्त हो जाता है। राजदरबार, श्मशान, कारागृह (जेल), बन्धन तथा जल-राशि में निमग्न व्यक्ति इसके स्मरण मात्र से मुक्त हो जाता है। पति, पुत्र या मित्र से घोर विरोध होने पर इस स्तोत्र के स्मरण मात्र से उसे निश्चित ही अभीष्ट-सिद्धि मिलती है॥६९-७२½॥ एक वर्ष तक हविष्य भोजन कर जो स्त्री इस

---

१ क. ग्रहग्र०।

स्तोत्रस्मरणमात्रेण वाञ्छितार्थं लभेद्ध्रुवम्। कृत्वा हविष्यं वर्षं च स्तोत्रराजं शृणोति या ॥७३॥
भक्त्या दुर्गां च संपूज्य महावन्ध्या प्रसूयते। लभते सा दिव्यपुत्रं ज्ञानिनं चिरजीविनम् ॥७४॥
असौभाग्या च सौभाग्यं षण्मासश्रवणाल्लभेत्। नवमासं काकवन्ध्या मृतवत्सा च भक्तितः ॥७५॥
स्तोत्रराजं या शृणोति सा पुत्रं लभते ध्रुवम्। कन्यामाता पुत्रहीना पञ्चमासं शृणोति या ॥७६॥
घटे संपूज्य दुर्गां च सा पुत्रं लभते ध्रुवम् ॥७७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० परशुरामकृतदुर्गास्तोत्रं
नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

स्तुत्वा तां परशुरामोऽसौ हर्षसंफुल्लमानसः। स्तोत्रेण हरिणोक्तेन स तुष्टाव गणाधिपम् ॥१॥
पूजां चकार भक्त्या च नैवेद्यैर्विविधैरपि। धूपैर्दीपैश्च गन्धैश्च पुष्पैश्च तुलसीं विना ॥२॥
संपूज्य भ्रातरं भक्त्या स रामः शंकराज्ञया। गुरुपत्नीं गुरुं नत्वा गमनं कर्तुमुद्यतः ॥३॥

स्तोत्रराज का श्रवण करती है और दुर्गा की पूजा करती है, वह महावन्ध्या हो जाने पर भी बच्चा उत्पन्न करती है। उसे ज्ञानी, चिरजीवी और दिव्य पुत्र की प्राप्ति होती है ॥७३-७४॥ छह मास तक श्रवण करने से दुर्भगा सौभाग्य प्राप्त करती है। नव मास तक भक्तिपूर्वक इस स्तोत्रराज के सुनने से काकवन्ध्या और मृतवत्सा भी पुत्र प्राप्त करती है ॥७५॥ जो स्तोत्रराज का श्रवण करती है, वह निश्चित ही पुत्र पाती है। कन्या जनने वाली स्त्री पुत्रहीन होने पर पांच मास तक इसका श्रवण और कलश में दुर्गापूजन करके निश्चित रूप से पुत्र प्राप्त करती है ॥७६-७६॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में परशुरामकृत
दुर्गा-स्तोत्र-वर्णन नामक पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४५॥

अध्याय ४६

गणेश और तुलसी का संवाद तथा फलश्रुति

नारायण बोले—परशुराम ने प्रसन्नचित्त होकर पार्वती की स्तुति के उपरान्त भगवान् के कहे हुए स्तोत्र द्वारा गणेश की भी स्तुति की ॥१॥ और तुलसी के बिना विविध नैवेद्य द्वारा भक्तिपूर्वक धूप, दीप, गन्ध एवं पुष्प से उनकी पूजा की ॥२॥ शंकर की आज्ञा से राम ने भ्राता गणेश को पूजकर गुरुपत्नी और गुरु को नमस्कार करके गृह की ओर प्रस्थान किया ॥३॥

नारद उवाच

पूजां भगवतश्चक्रे रामो गणपतेर्यदा। नैवेद्यैर्विविधैः पुष्पैस्तुलसीं च विना कथम् ॥४॥
तुलसी सर्वपुष्पाणां मान्या धन्या मनोहरा। कथं पूतां सारभूतां न गृह्णाति गणेश्वरः ॥५॥

नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम्। ब्रह्मकल्पस्य वृत्तान्तं निगूढं च मनोहरम् ॥६॥
एकदा तुलसी देवी प्रोद्भिन्ननवयौवना। तीर्थं भ्रमन्ती तपसा नारायणपरायणा ॥७॥
ददर्श गङ्गातीरे सा गणेशं यौवनान्वितम्। अतीव सुन्दरं शुद्धं सस्मितं पीतवाससम् ॥८॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम्। ध्यायन्तं कृष्णपादाब्जं जन्ममृत्युजरापहम् ॥९॥
जितेन्द्रियाणां प्रवरं योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुम्। सुरूपहार्यं निष्कामं सकामा तमुवाच ह ॥१०॥

तुलस्युवाच

अहो ध्यायसि किं देव शान्तरूप गजानन। कथं लम्बोदरो देहो गजवक्त्रं कथं तव ॥११॥
एकदन्तः कथं वक्त्रे वदामुत्र च कारणम्। त्यज ध्यानं महाभाग सायंकाल उपस्थितः ॥१२॥
इत्युक्त्वा तुलसी देवी प्रजहास पुनः पुनः। परं चेतसि दग्धा सा कामबाणैः सुदारुणैः ॥१३॥

नारद बोले—राम ने विविध नैवेद्य और पुष्पों से भगवान् गणेश्वर देव की पूजा की, किन्तु तुलसी के बिना उनकी पूजा कैसे सम्पन्न हुई? क्योंकि सभी पुष्पों में तुलसी मान्या, धन्या एवं मनोहरा है। तब सारभूत (तुलसी) को गणेश्वर क्यों नहीं ग्रहण करते हैं? ॥४-५॥

नारायण बोले—हे नारद! मैं एक प्राचीन इतिहास, जिसमें ब्रह्म कल्प का निगूढ़ एवं मनोहर वृत्तान्त भरा पड़ा है, तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ॥६॥ एक बार तुलसी देवी अपने नवयौवन में तप के व्याज से नारायण का भजन करती हुई तीर्थों में भ्रमण कर रही थीं। अनन्तर गंगा के तट पर नवयौवनपूर्ण गणेश को उन्होंने देखा, जो अत्यन्त सुन्दर, शुद्धचित्त, मन्दहास करते हुए एवं पीताम्बर पहने हुए स्थित थे ॥७–८॥ सर्वांग में चन्दन का लेप लगाये और रत्नों के भूषणों से भूषित हुए गणेश भगवान् कृष्ण के चरण-कमल का ध्यान कर रहे थे, जो जन्म, मृत्यु और जरा का अपहर्ता है ॥९॥ जितेन्द्रियों में श्रेष्ठ, योगीन्द्रों के गुरुओं के गुरु व अत्यन्त सुन्दर एवं निष्काम उन्हें देखकर कामातुर तुलसी ने उनसे कहा ॥१०॥

तुलसी बोली—हे देव गजानन! शान्त रूप से किसका ध्यान कर रहे हो? तुम्हारी देह में यह लम्बा उदर और गजमुख कैसे हो गया? ॥११॥ हे महाभाग! तुम्हारे मुख में एक ही दाँत क्यों है? इसका कारण बताओ, अब सायंकाल हो रहा है, ध्यान करना बन्द करो ॥१२॥ इतना कहकर तुलसी देवी बार-बार हँसने लगीं, किन्तु मन में भीषण कामबाणों से वह दग्ध हो रही थी ॥१३॥ हे मुने! अनन्तर गणेश

गणेशस्य प्रधानाङ्गे दत्त्वा किंचिज्जलं मुने। जघान तर्जन्यग्रेण निष्पन्दं कृष्णमानसम् ॥१४॥
बभूव ध्यानभग्नं च तस्य नारद चेतनम्। दुःखं च ध्यानभेदेन तद्विच्छेदो हि शोकदः ॥१५॥
ध्यानं त्यक्त्वा हरिं स्मृत्वा चापश्यत्कामिनीं पुरः। नवयौवनसंपन्नां सस्मितां कामपीडिताम् ॥१६॥
लम्बोदरश्च तां दृष्ट्वा परं विनयपूर्वकम्। उवाच सस्मितः शान्तः शान्तां कामातुरां वशी ॥१७॥

गणेश्वर उवाच

का त्वं वत्से कस्य कन्या मातर्मां ब्रूहि किं शुभे। पापदोऽशुभदः शश्वद्ध्यानभङ्गस्तपस्विनाम् ॥१८॥
कृष्णः करोतु कल्याणं हन्तु विघ्नं कृपानिधिः। [1]तद्ध्यानभङ्गजाद्दोषान्नाशुभं स्यात्तु ते शुभे ॥१९॥
गणेशवचनं श्रुत्वा तमुवाच स्मरातुरा। सस्मितं सकटाक्षं च देवं मधुरया गिरा ॥२०॥

तुलस्युवाच

धर्मात्मजस्य कन्याऽहमप्रौढा च तपस्विनी। तपस्या मे स्वामिनोऽर्थे त्वं स्वामी भव मे प्रभो ॥२१॥
तुलसीवचनं श्रुत्वा गणेशः श्रीहरिं स्मरन्। तामुवाच महाप्राज्ञः प्राज्ञीं मधुरया गिरा ॥२२॥

के प्रधान अंग में उसने थोड़ा-सा जल डालकर अपनी तर्जनी के अग्र भाग से उनको धक्का दिया, जो भगवान् कृष्ण में निश्चल मन लगाये हुए थे ॥१४॥ हे नारद! इससे उनका ध्यान भंग हो गया और ध्यान भङ्ग होने से उन्हें दुःख हुआ। क्योंकि ध्यान का टूटना शोकप्रद होता है ॥१५॥ ध्यान त्यागकर हरि का स्मरण करके उन्होंने सामने एक कामिनी स्त्री को देखा, जो नवयौवन से सम्पन्न, मन्द मुसुकान करती हुई काम-पीड़ित हो रही थी ॥१६॥ संयमी लम्बोदर ने मन्दहास समेत शान्त भाव से उसे देखकर विनयपूर्वक उस कामातुरा से कहा ॥१७॥

गणेश्वर बोले—हे वत्से! तुम कौन हो? किस की कन्या हो? हे मातः! हे शुभे! मुझे बताओ। तपस्वियों का निरन्तर ध्यान भंग करना पाप और अशुभ फल देने वाला होता है ॥१८॥ हे शुभे! कृष्ण तुम्हारा कल्याण करें, विघ्न को कृपा निधान नष्ट करें, उनके ध्यान भंग जनित दोष से तुम्हारा अशुभ न हो ॥१९॥ गणेश की बातें सुनकर कामातुरा तुलसी ने मन्दहास एवं उन पर कटाक्ष करती हुई अपनी मधुरवाणी द्वारा उस देव से कहा ॥२०॥

तुलसी बोली—हे प्रभो! मैं धर्मपुत्र की कन्या हूँ, अप्रौढ़ा और तपस्विनी हूँ, पति के लिए तप कर रही हूं, अतः तुम हमारे स्वामी बनो ॥२१॥ तुलसी की बात सुनकर महाविद्वान् गणेश ने भगवान् का स्मरण करते हुए, उस विदुषी से मधुरवाणी द्वारा कहा ॥२२॥

१क. मद्ध्या०।

गणेश उवाच

हे मातर्नास्ति मे वाञ्छा घोरे दारपरिग्रहे । दारग्रहो हि दुःखाय न सुखाय कदाचन ॥२३॥
हरिभक्तेर्व्यवायश्च तपस्यानाशकारकः । मोक्षद्वारकपाटश्च भवबन्धनपाशकः ॥२४॥
गर्भवासकरः शश्वतत्त्वज्ञाननिकृन्तकः । संशयानां समारम्भो यस्त्याज्यो वृषलैरपि ॥२५॥
गेहोऽहंकरणानां च सर्वमायाकरण्डकम् । साहसानां समूहश्च दोषाणां च विशेषतः ॥२६॥
निवर्तस्व महाभागे पश्यान्यं कामुकं पतिम् । कामुकेनैव कामुक्याः संगमो गुणवान्भवेत् ॥२७॥
इत्येवं वचनं श्रुत्वा कोपात्सा तं शशाप ह । दारास्ते भविताऽसाध्वी गणेश्वर न संशयः ॥२८॥
इत्याकर्ण्य सुरश्रेष्ठस्तां शशाप शिवात्मजः । देवि त्वमसुरग्रस्ता भविष्यसि न संशयः ॥२९॥
तत्पश्चान्महतां शापाद्वृक्षस्त्वं भवितेति च । महातपस्वीत्युक्त्वा तां विरराम च नारद ॥३०॥
शापं श्रुत्वा तु तुलसी सा रुरोद पुनः पुनः । तुष्टाव च सुरश्रेष्ठं स प्रसन्न उवाच ताम् ॥३१॥

गणेश्वर उवाच

पुष्पाणां सारभूता त्वं भविष्यसि मनोरमे । कलांशेन महाभागे स्वयं नारायणप्रिया ॥३२॥
प्रिया त्वं सर्वदेवानां श्रीकृष्णस्य विशेषतः । पूता विमुक्तिदा नृणां मया भोग्या न नित्यशः ॥३३॥

गणेश बोले—हे मातः ! स्त्री ग्रहण (विवाह) करना भयंकर है, अतः मुझे इसकी इच्छा नहीं है। विवाह कभी भी सिवाय दुःख के सुखकर नहीं होता है ॥२३॥ इससे हरिभक्ति का व्यवधान तथा तप का नाश होता है और यह मोक्ष द्वार का कपाट (किवाड़) तथा संसार बन्धन का फांस रूप है ॥२४॥ गर्भवास का निरन्तर तत्त्वज्ञान का नाशक कारण, और संशयो का आरंम्भक होता है, जिसे शूद्र को भी त्याग देना चाहिए । यह अहंकारों का घर, समस्त माया की पिटारी, साहसों का समूह एवं विशेषकर दोषों का समूह है ॥२५-२६॥ अतः हे महा ! भागे तुम लौट जाओ औरकिसी अन्य कामुक पति को ढूंढ़ो, क्योंकि कामुक का ही कामुकी के साथ संगम होना हितकर होता है ॥२७॥ ऐसी बातें सुनकर उसने क्रोधवश उन्हें शाप दिया कि हे गणेश्वर ! तुम्हें व्यभिचारिणी स्त्री मिलेगी, इसमें संशय नहीं ॥२८॥ इतना सुनकर शिवपुत्र गणेश ने भी उसे शाप दिया कि देवि ! तुम असुर के अधीन रहोगी, इसमें संशय नहीं ॥२९॥ उसके अनन्तर बड़ों के शाप से तुम्हें वृक्ष होना पड़ेगा। इतना कहकर, हे नारद !, वे महातपस्वी चुप हो गये ॥३०॥ शाप सुनकर तुलसी बार-बार रोदन करने लगी और उस देवश्रेष्ठ की स्तुति की। तब प्रसन्न होकर गणेश ने उससे कहा ॥३१॥

गणेश्वर बोले—हे मनोरमे ! तुम पुष्पों में सारभूत (तुलसी) होगी, और हे महाभागे !, कलांश द्वारा स्वयं नारायण की प्रिया भी ॥३२॥ समस्त देवों तथा विशेषकर भगवान् श्रीकृष्ण की प्रिया बनोगी। तुम पवित्र होगी एवं मनुष्यों को मुक्ति प्रदान करोगी, पर हम कभी भी (तुम्हारा) उपभोग नहीं करेंगे ॥३३॥ देवश्रेष्ठ गणेश

इत्युक्त्वा तां सुरश्रेष्ठो जगाम तपसे पुनः। हरेराराधनव्यग्रो बदरीसंनिधिं ययौ ॥३४॥
जगाम तुलसीदेवी हृदयेन विदूयता। निराहारा तपश्चक्रे पुष्करे लक्षवर्षकम् ॥३५॥
पश्चान्मुनीन्द्रशापेन गणेशस्य च नारद। सा प्रिया शङ्खचूडस्य बभूव सुचिरं मुने ॥३६॥
ततः शंकरशूलेन स ममारासुरेश्वरः। सा कलांशेन वृक्षत्वं ययौ नारायणप्रिया ॥३७॥
कथितश्चेतिहासस्ते श्रुतो धर्ममुखात्पुरा। मोक्षप्रदश्च सारश्च पुराणेन प्रकीर्तितः ॥३८॥
ततः परशुरामोऽसौ जगाम तपसे वनम्। प्रणम्य शंकरं दुर्गां संपूज्य च गणेश्वरम् ॥३९॥
पूजितो वन्दितः सर्वैः सुरेन्द्रमुनिपुंगवैः। पार्वतीशिवसांनिध्ये सुखं तस्थौ गणेश्वरः ॥४०॥
इदं गणपतेः खण्डं यः शृणोति समाहितः। स राजसूययज्ञस्य फलमाप्नोति निश्चितम् ॥४१॥
अपुत्रो लभते पुत्रं श्रीगणेशप्रसादतः। धीरं वीरं च धनिनं गुणिनं चिरजीविनम् ॥४२॥
यशस्विनं पुत्रिणं च विद्वांसं सुकवीश्वरम्। जितेन्द्रियाणां प्रवरं दातारं सर्वसंपदाम् ॥४३॥
सुशीलं[1] च सदाचारं प्रशंस्यं वैष्णवं लभेत्। अहिंसकं दयालुं च तत्त्वज्ञानविशारदम् ॥४४॥
भक्त्या गणेशं संपूज्य वस्त्रालंकारचन्दनैः। श्रुत्वा गणपतेः खण्डं महावन्ध्या प्रसूयते ॥४५॥

उससे इतना कहकर भगवान् की आराधना में व्यग्र होने के कारण पुनः तप करने के लिए बदरिकाश्रम के निकट चले गये और हार्दिक दुःख का अनुभव करती हुई तुलसी भी पुष्कर चली गयी। उसने वहाँ एक लाख वर्षतक निराहार रहकर तप किया ॥३४-३५॥ हे नारद! हे मुने! मुनिश्रेष्ठ गणेश के शापवश वह चिरकाल तक शंखचूड़ की प्रिया रही ॥३६॥ पश्चात् शिव के शूल से उसका निधन होने पर वह नारायण की प्रिया तुलसी कलांश से वृक्ष होकर उत्पन्न हुई ॥३७॥ मैंने धर्म के मुख से जिस प्रकार यह इतिहास सुना था, तुम्हें सुना दिया, जो पुराण में प्रसिद्ध, मोक्षप्रद तथा सारभूत है ॥३८॥ अनन्तर वे परशुराम गणेश की पूजा और शंकर एवं दुर्गा को प्रणाम करके तप के लिए वन चले गये ॥३९॥ समस्त सुरनायकों और मुनि-श्रेष्ठों द्वारा पूजित एवं वन्दित होकर गणेश भी पार्वती शिव के समीप सुखपूर्वक रहने लगे ॥४०॥ इस प्रकार सावधान होकर इस गणपति खण्ड का जो श्रवण करता है, वह निश्चित रूप से राजसूय यज्ञ का फल प्राप्त करता है। श्री गणेश के प्रसाद से पुत्रहीन व्यक्ति ऐसे पुत्र की प्राप्ति करता है, जो धीर, वीर, धनी, गुणी, चिरजीवी, यशस्वी, पुत्री, विद्वान्, कवीश्वर, जितेन्द्रियों में श्रेष्ठ, समस्त सम्पत्ति के दाता, सुशील, सदाचारी, प्रशंसनीय, वैष्णव, अहिंसक, दयालु, और तत्त्वज्ञान में निपुण होता है ॥४१-४४॥ गणेश की भक्तिपूर्वक वस्त्राभूषण एवं चन्दन से पूजा करके गणपतिखण्ड के श्रवण करने पर महावन्ध्या भी प्रसव करती है। हे ब्रह्मन्! मृतवत्सा और काकवन्ध्या निश्चित रूप से पुत्र प्राप्त

---

१ क. सुपवित्रं स०।

मृतवत्सा काकवन्ध्या ब्रह्मन्पुत्रं लभेद्ध्रुवम्। अदूष्यदूषणपरा शुद्धा चैव लभेत्सुतम्॥४६॥
सपूर्णं ब्रह्मवैवर्तं श्रुत्वा यल्लभते फलम्। तत्फलं लभते मर्त्यः श्रुत्वेदं खण्डमुत्तमम्॥४७॥
वाञ्छां कृत्वा तु मनसि शृणोति परमास्थितः। तस्मै ददाति सर्वेष्टं शूरश्रेष्ठो गणेश्वरः॥४८॥
श्रुत्वा गणपतेः खण्डं विघ्ननाशाय यत्नतः। स्वर्णयज्ञोपवीतं च श्वेतच्छत्रं च माल्यकम्॥४९॥
प्रदीयते वाचकाय स्वस्तिकं तिललड्डुकान्। परिपक्वफलान्येव देशकलोद्भवानि च॥५०॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारदनारायणसंवादे परशुरामागमगनैतत्खण्डश्रवणफलवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः॥४६॥

समाप्तमिदं श्रीब्रह्मवैवर्तपुराणस्य तृतीयं महागणपतिखण्डम्

करती हैं। एवं दूषण रहित के ऊपर दोष लगानेवाली स्त्री भी शुद्ध होकर पुत्र प्राप्त करती है॥४५-४६॥ मनुष्य को समस्त ब्रह्मवैवर्त पुराण के सुनने से जिस फल की प्राप्ति होती है, वह फल इस उत्तम खण्ड के सुनने पर भी प्राप्त होता है॥४७॥ जो मन में अभिलाषा रखकर परमश्रद्धापूर्वक इसका श्रवण करता है, उसे श्रेष्ठ गणेश्वर समस्त अभीष्ट प्रदान करते हैं॥४८॥ गणपतिखण्ड सुनकर विघ्न के नाशार्थ सुवर्ण का यज्ञोपवीत, श्वेत छत्र, माला, तिल के लड्डू एवं देश-काल के अनुसार उत्पन्न फल समेत स्वस्तिक (मंगल द्रव्य) वाचक को समर्पित करना चाहिए॥४९-५०॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में परशुराम के आगमन तथा इस खण्ड के सुनने का फल वर्णन नामक छियालीसवाँ अध्याय समाप्त॥४६॥

⊙⊙

श्रीब्रह्मवैवर्तपुराण का तीसरा महागणपतिखण्ड समाप्त